हिन्दी

विश्वकोष

(चतुर्थ भाग)

कपिल (सं० वि०) कम्-इलच् पादेशश्च। कमेः पश्च। उण् ११५६। १ पिङ्गलवर्ण, भूरा, तामड़ा, मटमैला। (पु०) २ अग्नि, आग। ३ वर्णविशेष, मटमैला रंग। ४ कुक्कुर, कुत्ता। ५ शिलारस, लोबान्। ६ महादेव। ७ विष्णु। ८ सर्पविशेष, एक सांप। ९ दानवविशेष, एक राक्षस। १० वरुणवृक्ष, एक पेड़। ११ पित्तल, पीतल। १२ मूषिकभेद, किसी किस्मका चूहा। इसके काटनेसे व्रणकोथ, ज्वर और ग्रन्थ्युद्भव होता है। (सुश्रुत) १३ कुशद्वीपका पर्वतविशेष, एक पहाड़। (भागवत ५।२०।१५) १४ सूर्य, आफताब। १४ वितथके पुत्र। १५ वसुदेवके पुत्र। नराचीके गर्भसे यह उत्पन्न हुये थे। १६ मुनिविशेष। इनके पिताका नाम कर्दम और माताका नाम देवहूति रहा। इन्होंने सांख्यदर्शन बनाया है।

सांख्याचार्य कपिल एक अति प्राचीन ऋषि थे। वेदके उपनिषद्भागमें इनका नाम मिलता है*। यह सिद्धर्षियोंमें सर्वश्रेष्ठ रहे। इसीसे भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

"गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः।" (गीता १०।२६)

हम गन्धर्वोंमें चित्ररथ और सिद्धोंमें कपिल मुनि हैं।

---

* "ऋषिं प्रसूतं कपिलं यस्तमग्रे ज्ञानैर्बिभर्ति।" (श्वेताश्वतर ५।२) प्रसूत कपिल ऋषिको जिन्होंने सर्वप्रथम ज्ञानद्वारा पोषण किया।

भागवतमें लिखते—कपिल भगवान्‌का पञ्चम अवतार रहे। उन्होंने महायोगी कर्दमके औरस और देवहूतिके गर्भसे जन्म लिया था। उनके जन्मकाल आकाशमें वर्षणशील मेघसे नानाविध वाद्य बजे, गन्धर्व नाचने लगे, अप्सरोंने आनन्दगीत आरम्भ किये, पक्षियों द्वारा पुष्प बरसाये गये और दिक्, जल एवं सर्वप्राणीके मन प्रसन्न हुये। स्वयं ब्रह्मा कर्दमके आश्रम आये थे। उन्होंने कर्दमकी ओर देखकर कहा—हे मुने! तुम्हारे यह बालक साक्षात् ईश्वर हैं। यह सिद्धोंके अधीश्वर हो जायेंगे और सांख्याचार्य-कर्तृक पूजित हो जगत्‌में 'कपिल' नाम पायेंगे। इन्होंने ज्ञानसाधन सांख्यशास्त्र उपदेश करनेको ही यह अवतार लिया है।

कपिलने अपने पिता कर्दम और माता देवहूतिको ज्ञान उपदेश किया था। देवहूतिने स्त्री होते भी पुत्रसे तत्त्वकथा सुन ज्ञान और मोक्ष पाया।

भागवतमें देवहूतिके उपदेशच्छलसे कपिलवाद का सांख्यमत वर्णित है,—

"जो सकल इन्द्रिय प्रकाशात्मक रहते और जिनके द्वारा शब्द स्पर्शादि विषय अनुभव करते, उनकी प्रकृति भगवान्‌के प्रति उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति ही निष्कामा भागवती भक्ति कहते हैं। यह भक्ति [illegible] लिये वह मुक्तिसे श्रेष्ठ है। किन्तु इन्द्रियाँ वह

हत्ति: स्वत: नहीं आती, वेदविहित कर्ममें प्रवृत्ति लगनेसे उत्पन्न हो जाती है। ऐसी भक्ति होनेपर क्रमसे मुक्ति भी मिलती है। जो ईश्वरको आत्मवत् प्रिय, पुत्रवत् स्नेहपात्र, सखा-जैसा विश्वासभाजन, गुरुकी भांति उपदेष्टा, बन्धुकी तरह हितकारी और इष्टदेव सदृश पूज्य समझता अर्थात् जो सर्वतोभावसे भगवान्‌का भजन करता, उसका काल कुछ बना नहीं सकता।

"प्रतिलोम बुद्धिविशिष्ट आत्मा ही पुरुष है। वह पुरुष अनादि, निर्गुण और प्रकृतिसे भिन्न है। पुरुष केवल साक्षीस्वरूप होता है। वह स्वयं प्रकाश पाता और यह विश्व उसके साथ मिलजुल प्रकाशित हो जाता है। वही पुरुष अपने निकट विष्णुकी शक्तिरूपा अव्यक्तगुणमयी प्रकृतिको लीलावशत: पहुंचने पर अवज्ञाक्रमसे ग्रहण कर लेता है। प्रकृति अपने गुणसे समानरूप विचित्र प्रजासृष्टि करती है। जिसमें अविशेष अथच विशेषका जो आश्रय प्रधान पाता, वही प्रकृति कहाता है। फिर प्रधान त्रिगुण रहता, अतएव अव्यक्त अर्थात् अकार्य ठहरता है। सुतरां वह न तो महत्तत्त्व और न जीवनस्वरूप नित्य अर्थात् जीवकी ही प्रकृति है। प्रधानके कार्यस्वरूप चतुर्विंशति पदार्थ हैं। यथा—भूमि, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश पञ्च महाभूत, गन्धतन्मात्र, रसतन्मात्र, रूपतन्मात्र, स्पर्श-तन्मात्र तथा शब्दतन्मात्र पञ्चतन्मात्र, चक्षु, कर्ण, जिह्वा, घ्राण, त्वक्, वाक्, पाणि, पाद, पायु एवं उपस्थ दश इन्द्रिय, मन:, बुद्धि, अहङ्कार और चित्त चार अन्तरिन्द्रिय। अन्त:करणके अन्तरिन्द्रिय ठहरते भी वृत्तिभेदसे उक्त चार प्रकारका प्रभेद पड़ जाता है। यह चतुर्विंशति तत्त्व सगुण ब्रह्मके सन्निवेशका स्थान हैं। एतद्भिन्न काल पञ्चविंश तत्त्व है।

"निष्काम धर्म, निर्मल मन:, भक्तियोग, तत्त्वदर्शिज्ञान, प्रबल वैराग्य, तपोयुक्त योग एवं दृढ़तर आत्मसमाधि द्वारा पुरुषकी प्रकृति क्रमश: काष्ठकी भांति जल शेषको तिरोहित हो सकती है। पुरुषकी प्रकृति इसप्रकार एकबार जल जानेसे फिर उभरने नहीं पाती। उस समय पुरुष समझता—इसका भोग भुक्त हो गया। पुरुषको जन्मजन्मान्तरमें अध्यात्मरत हो जब ब्रह्मलोकप्राप्तिके विषयमें भी वैराग्य आता और भगवान्‌के प्रति ऐकान्तिक भक्तिमान् बननेसे आत्मतत्त्व देखाता, तब वह कैवल्यधाममें देहातिरिक्त सदाश्रयस्वरूप परमानन्द पाता है। फिर लिङ्गशरीर नाश हो जानेसे आनन्दलाभ कर पुनर्बार उसको निबटना नहीं पड़ता। आत्मज्ञानके बलसे सकल मिथ्या ज्ञान विनष्ट हो जाता है।"

कपिल मुनिने अपने सांख्यसूत्रमें भी देखाया है—

वस्तुमात्र सत् है अर्थात् किसी वस्तुका उद्भव किंवा विनाश नहीं। वस्तुको आविर्भाव होनेसे हम देख पाते और तिरोभाव होनेसे उसके लिये पछताते हैं। आविर्भावके पूर्व भी वस्तुकी सत्ता स्वीकार करना पड़ती है। ऐसा न माननेपर एकमात्र उपादानसे सकल कार्य उत्पन्न हो सकते हैं। असत्कार्यवादि-मतमें उपादान मृत्तिकाके साथ घटके सम्बन्धकी भांति पटका भी सम्बन्ध नहीं लगता। सम्बन्ध न रहते भी जैसे मृत्तिकासे घट बनता, वैसे ही पट भी बन सकता है। किन्तु उत्पत्तिके पूर्व कार्यको सत् स्वीकार करते मृत्तिकासे पटोत्-पत्तिकी आपत्ति पड़ नहीं सकती। क्योंकि मृत्तिकासे पटका कोई सम्बन्ध नहीं। जिसके साथ जिसका कोई विशिष्ट सम्बन्ध नहीं रहता, उससे वह कैसे उपजता है। घटके साथ उत्पत्तिसे पूर्व भी मृत्तिकाका सम्बन्ध होता है। इसीसे मृत्तिकासे घट बन जाता है। यदि उत्पत्तिसे पूर्व कार्य असत् ठहरे, तो मृत्तिका-रूप सत्कारणके साथ असत् घटरूप कार्यका सम्बन्ध बंध न सके। सुतरां असत्कार्यवादियोंके मतमें घटसंसर्गशून्य मृत्तिकासे घटोत्पत्ति होनेकी भांति असम्बन्ध मृत्तिकासे पटकी उत्पत्ति होनेमें क्या बाधा है? अथवा संसर्ग न रहते मृत्तिकासे पटोत्पत्ति न होनेकी भांति घट भी कैसे बन सकता है! उक्त दोनों विषय सत्कार्यवादके स्थापनकी प्रधानतम युक्ति हैं।

आशङ्का कैसे आ सकती है—उत्पत्तिसे पूर्व कार्यको सत्ता स्वीकार करते उत्पत्तिसे पूर्व कार्यका प्रत्यक्ष क्यों नहीं होता। कारण महर्षि कपिलके मतानुसार कार्यमात्र उत्पत्तिसे पहले कारणमें अव्यक्तावस्थाके डिम्बस्थित सर्पकी भांति अवस्थान करता है। डिम्बसे निकलनेके पहले जैसे सर्प देख नहीं पड़ता, वैसे ही कारणसे अभिव्यक्त होनेके पहले कार्य भी दृष्टिमें नहीं चढ़ता।

पदार्थोंकी संख्या ठहरानेसे ही इनका बनाया दर्शनसूत्र सांख्य कहाता है। सांख्य देखो। कपिलके कहे पचीसो पदार्थ यह हैं—१ महत्तत्त्व, २ अहङ्कार, ३ मन, ४ शब्दतन्मात्र, ५ स्पर्शतन्मात्र, ६ रूपतन्मात्र, ७ रसतन्मात्र, ८ गन्धतन्मात्र, ९ चक्षुः, १० कर्ण, ११ नासिका, १२ जिह्वा, १३ त्वक्, १४ वाक्, १५ पाणि, १६ पाद, १७ पायु, १८ उपस्थ, १९ आकाश, २० वायु, २१ तेजः, २२ जल, २३ चिति, २४ आत्मा और २५ प्रकृति। कार्यकारिता-रहित सत्व, रजः और तमः त्रिगुणको प्रकृति कहते हैं। इस प्रकृतिका प्रथम कार्य बुद्धितत्त्व है। बुद्धितत्त्व ही महत्तत्त्व कहाता है। बुद्धितत्त्वसे अहङ्कार और अहङ्कारसे शब्द प्रभृति तन्मात्र तथा चक्षुः प्रभृति इन्द्रियकी उत्पत्ति हुयी है। फिर पञ्चतन्मात्रसे पञ्च महाभूत निकले हैं। अर्थात् शब्दतन्मात्रसे आकाश, स्पर्शसे वायु, रूपसे तेज, रससे जल और गन्धसे पृथिवीकी उत्पत्ति है। आत्मा नित्य स्वप्रकाश और निर्विकार है। सुख दुःख प्रभृति कुछ भी उसे स्पर्श नहीं करता। जब अन्तःकरणके बुद्धितत्त्वका सुख एवं दुःखाकार भाव उठता, तब अन्तःकरणके साथ आत्माका अभेद ज्ञान लगनेसे अन्तःकरणका सुख तथा दुःखादि आत्मामें मालूम पड़ता है। किसी हृदमें भ्रम पड़नेसे मनुष्यका हस्त मस्तकादि देखायी देनेकी भांति अभेद ज्ञानसे अन्तःकरणका धर्म सुखदुःखादि आत्मामें झलकता है।

कपिलने तीन प्रमाण माने हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द। इन्द्रियसे जो ज्ञान आता, उसका कारण प्रत्यक्ष प्रमाण कहाता है। घटादि विषयके साथ इन्द्रियका सम्बन्ध लगनेसे अन्तःकरणमें विषयाकार परिणाम उत्पन्न होता है। वह परिणाम अत्यन्त निर्मल रहता है। फिर उसमें स्वप्रकाश आत्मा प्रतिबिम्बित होनेसे सकल विषय अनुभव करता है। व्याप्तिज्ञानके लिये ज्ञानको अनुमिति कहते हैं। अनुमितिका कारण ही अनुमान प्रमाण है। जो हेतु साध्यका अव्यभिचारी रहता (साध्यशून्य स्थान नहीं होता), उसीमें साध्यके सामान्याधिकरण्य (साध्याधिकरणमें उसी हेतुके अस्तित्व)को व्याप्ति कहते हैं। फिर साधन किये जानेवालेका नाम साध्य है। जैसे "पर्वतो वह्निमान् धूमात्" अर्थात् 'धूमसे पर्वत वह्निमान् है' स्थानपर पर्वतमें साधन किये जानेसे वह्नि साध्य ठहरता है। जिसके द्वारा साध्यका साधन करते, उसीको हेतु कहते हैं। जैसे धूम है। कारण धूम देखकर ही पर्वतमें वह्निका साधन किया जाता है। वह्निशून्य स्थानमें धूम नहीं रहता। किन्तु वह्निके अधिकरणमें धूमका अस्तित्व होता है। अतएव धूममें वह्निकी व्याप्ति पड़ते कोई विरोध नहीं आता। शब्दसे होनेवाले ज्ञानके कारणको ही शब्दप्रमाण कहते हैं। कपिल वेदान्तिककी भांति एक जीववादी नहीं। इनके कथनानुसार सकलका एक जीवात्मा माननेसे रामको सुख मिलनेपर श्याम भी उसे अनुभव कर सकता है। नैयायिकादिकी भांति सांख्य पण्डित आत्मामें दुःख और सुखका होना नहीं मानते। वह विषयमें ही सुख और दुःख स्वीकार करते हैं। यदि विषयमें सुख एवं दुःख न रहता, तो अभिलषित विषय मिलते ही सुख और अनभिलषित विषयसे दुःख न पड़ता। अभिलषित विषयमें सत्वगुणके उद्भवसे सुख और रजोगुणके उद्भवसे दुःख होता है।

कपिलने सांख्यसूत्रमें वेदका प्राधान्य स्वीकार किया है। किन्तु ईश्वरका अस्तित्व इन्होंने नहीं माना। सांख्यसूत्रके मतसे अस्तित्व माननेपर ईश्वरको जगत्का कर्ता कहना पड़ेगा। ऐसा होनेसे विषम सृष्टिकारी ईश्वर मनुष्यकी भांति पक्षपाती ठहरता है। किसी मतसे ईश्वरके लिये एकको सुखी और दूसरेको दुःखी करना उचित नहीं। क्योंकि

ईश्वर सकलके निकट समान है। अयस्कान्त मणिमें चेतन-सम्बन्ध न रहते भी लौह आकर्षण करनेवाली प्रवृत्तिकी भांति चैतन्यमय ईश्वर अचेतन प्रकृतिकी सृष्टि रचनेमें लग सकता है। कपिलके कथनानुसार अन्तःकरण जब प्रकृतिमें लीन हो जाता, तब पुरुष मुक्ति पाता है। अन्तःकरण बना रहनेसे पुरुषको मुक्ति नहीं मिलती।

कपिलकी ही कोपानलमें सगरराजाका वंश ध्वंस हुवा था। कोई सगरनायक कपिलको स्वतन्त्र बताता है।

१७ ब्राह्मण-सम्प्रदायविशेष। यह अपनेको कपिल-वंशोद्भव बताते हैं। सूरत, भड़ोंच और जम्बुसरमें कपिलब्राह्मण रहते हैं।

कपिलक (सं० त्रि०) कप-इलन् स्वार्थे क, रस्य लः। १ कम्पान्वित, कंपनेवाला। २ कपिल, भूरा, तामड़ा। (पु०) ३ पिङ्गलवर्ण, भूरा रंग।

कपिलक्षेत्र—नर्मदा और महीसागरका मध्यवर्ती उपकूल। स्कन्दपुराणोक्त रेवाखण्डके मतसे यह अति पुण्यस्थल है। कपिलासङ्गम देखो।

कपिलगङ्गिका (सं० स्त्री०) कपिलगङ्गा, कामरूपकी एक नदी। (कालिकापु० ७८।१४८) इसका वर्तमान नाम कपिली है।

कपिलच्छाया (सं० स्त्री०) मृगनाभि, कस्तूरी, मुश्क।

कपिलता (सं० स्त्री०) १ शुकशिम्बी, केवांच। २ भूरापन।

कपिलदेव (सं० पु०) किसी स्मृतिशास्त्रके प्रणेता।

कपिलद्युति (सं० पु०) कपिला रक्ता पिङ्गलवर्णा वा द्युतिर्यस्य, बहुव्री०। सूर्य, सूरज।

कपिलद्राक्षा (सं० स्त्री०) कपिला कपिलवर्णा द्राक्षा, कर्मधा०। कपिलवर्ण वृहद् द्राक्षाविशेष, एक बड़ा और तामड़ा अङ्गूर। इसका संस्कृत पर्याय—दीर्घद्राक्षा, गोस्तनी, कपिलफला, अमृतरसा, दीर्घफला, मधुवल्ली, मधुफला, मधुली, हरिता, हारहारा, सुफला, मृद्वी, हिमोत्तरा, पथिका, हैमवती, शतवीर्या और काश्मरी है। यह मधुर, शीतल, हृद्य तथा मदहर्षद और दाह, मूर्छा, ज्वर, श्वास, तृष्णा एवं ह्रास (वमनवेग) निवारक होती है। (राजनिघण्टु)

कपिलदामोदर—संस्कृतके एक प्राचीन कवि। (सुभाषितावली)

कपिलद्रुम (सं० पु०) कपिलः कपिलवर्णो द्रुमः, मध्यपदलो०। काष्ठीनाम सुगन्धकाष्ठ, एक खुशबूदार लकड़ी।

कपिलद्वीप—एक पवित्र तीर्थ। यहां भगवान्‌की अनन्तमूर्ति विराजती है।

कपिलधारा (सं० स्त्री०) कपिलानां धारा दुग्धधारा इव शुद्धा धारा यस्याः कपिलानां दुग्धधाराभिः सम्भूता निर्मला धारा यस्याः इति वा, आकारस्य ह्रस्वत्वम्। ङ्याषोः संज्ञा छन्दसो बहुलम्। पा ६।३।६३। १ गङ्गा। २ तीर्थविशेष। (काशी० ६२ अ०) ३ कपिला गायके दुग्धकी धारा।

कपिलफला (सं० स्त्री०) कपिलं फलमस्याः, बहुव्री०। कपिलद्राक्षा, अङ्गूर।

कपिलमत (सं० क्ली०) कपिलस्य-मुनेर्मतम्, ६-तत्। कपिलमुनि वा सांख्यदर्शनका मत।

कपिलमुनि (सं० पु०) बङ्गाल प्रान्तके खुलना जिलेका एक ग्राम। यह कपोताक्ष (कबदक) नदीके तटपर अवस्थित है। पूर्वकाल कपिल नामक किसी साधुने यहां कपिलेश्वरी देवमूर्ति स्थापन की थी। उन्हींके नामानुसार यह स्थान कपिलमुनि कहाया। चैत्रमासमें वारुणीके दिन कपिलेश्वरी देवीका महोत्सव होता है। फिर उसी समय मेला भी लगा करता है। वारुणीको यहां कपोताक्ष नदीमें स्नान और देवीदर्शन करनेसे अशेष पुण्य मिलता है। इसके उपलक्षमें नाना स्थानसे तीर्थयात्री आते हैं। जाफर अली नामक किसी मुसलमान पीरकी यहां सुन्दर मसजिद बनी है। यह ग्राम अक्षा० २२° ४१′ उ० और देशा० ८९° २१′ पू०पर पड़ता है।

कपिलरुद्र—संस्कृतके एक प्राचीन कवि। (सुभाषितावली)

कपिललिङ्ग—लिङ्गविशेष। यह मेघना नदीके पूर्वतट प्रायः दो हजार हाथ दूर नरपालके निकट अवस्थित है। (म० ब्रह्मखण्ड १६।४२)

कपिललौह (सं० क्ली०) पित्तल, पीतल।

कपिलवस्तु (सं० क्लो०) प्राचीन नगरविशेष, एक पुराना शहर। यह शाक्य-राजावोंकी राजधानी रहा। शाक्यसिंहने यहीं जन्मग्रहण किया था। बौद्धग्रन्थ पढ़नेसे समझ पड़ता—बुद्धदेवके समय कपिलवस्तुमें विस्तर व्यक्तियोंका वास रहा। सुन्दर राजप्रासाद, मनोहर उद्यान और असंख्य सुरम्य हर्म्य स्थान स्थान पर शोभित थे। फिर यहां नाना देशीय लोग आते-जाते रहे। शाक्य देखो।

प्रसिद्ध चीन-परिव्राजक फाह्नियान् और हिउएन सियङ्ग कपिलवस्तु देखने आये थे। उन्होंने क्रमान्वयसे 'किअ वी-लो-वे' और 'कि-पि-लो-फ-स्से-ति' नामपर इस स्थानका उल्लेख किया है।

हिउएन सियङ्गकी वर्णनासे समझते—कपिलवस्तु एक क्षुद्रराज्य और परिमाणका फल प्रायः ६०० मील (४००० लि) है। उभय परिव्राजकोंके समय कपिलवस्तुको अवस्था नितान्त शोचनीय हो गयी थी। पूर्व जो-जो स्थान समृद्धिशाली रहे, वही उनको जनमानवशून्य मरुप्राय देख पड़े। यहां तक, कि उस समय शाक्य-राजधानी कपिलवस्तु नगरको पूर्वश्री देखनेमें आती न थी। नगरका प्राचीन इष्टकनिर्मित प्रासाद टूटा-फूटा पड़ा रहा। उसीके निकट हीनयान मतावलम्बियोंका एक सङ्घाराम था। सिवा इसके हिन्दुवोंके दो मन्दिर भी रहे। प्रासादके मध्यस्थलमें शुद्धोदन राजाकी प्रस्तरमूर्ति थी। उससे थोड़ी दूरपर बुद्धजननी मायादेवीका अन्तःपुर रहा। फिर नगरके इधर उधर अनेक स्तूप देख पड़ते थे।

वर्तमान फैजाबादसे घर्घरा एवं गण्डकी नदीके मध्यवर्ती स्थान और दोनों नदीके सङ्गम पर्यन्त चीनपरिव्राजक-वर्णित कपिलवस्तु राज्य समझ पड़ता है। फैजाबादसे २५ मील उत्तर-पूर्व अवस्थित बस्ती जिलाके अन्तर्गत मन्सूर परगनेका सामोल भुइला स्थान ही प्राचीन कपिलवस्तु नगर माना गया है। आजकल सबलोग उसे 'भुइला ताल' कहते हैं। (Cunningham's Arch. Survey of India, Vol. XII. p. 83-172.)

कपिलशिंशपा (सं० स्त्री०) कपिला पिङ्गलवर्णा शिंशपा, कर्मधा०। शिंशपा वृक्षविशेष, भूरी सीसम। इसका संस्कृत पर्याय—कपिला, पीता, सारिणी, कपिलाची, भस्मगर्भा और कुशिंशपा है। राजनिघण्टुके मतसे यह तिक्त एवं शीतवीर्य और आमवात, पित्त, ज्वर, वमन तथा हिक्कानाशक है।

कपिलसंहिता (सं० स्त्री०) एक उपपुराण। इसमें उत्कल देशके तीर्थोंका माहात्म्य वर्णित है।

कपिलस्मृति (सं० स्त्री०) कपिलप्रणीता स्मृतिः, मध्यपदलो०। सांख्यशास्त्र। वेदके अर्थका अनुभव रहने और मुनिप्रणीत ठहरनेसे सांख्यशास्त्रका स्मृतित्व माना जाता है। "कपिलस्मृतेरनवकाशदोषमाशङ्क्य मातवादिस्मृत्यन्तरानवकाशदोषात् सांख्यमतं प्रत्याख्यातम्।" 'स्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्ग इत्यादि सांख्य।' (सांख्यसूत्रभाष्य)

कपिला (सं० स्त्री०) कपिलो वर्णो ऽस्यास्ति, कपिल अर्शआदित्वात् अच्-टाप्। १ पुण्डरीक नामक दिग्गजकी पत्नी। २ भस्मगर्भ शिंशपावृक्ष, भूरी सीसम। ३ रेणुका नामक गन्धद्रव्य, एक खुशबूदार चीज। ४ स्वर्णवर्ण गाय। ५ दक्षकन्या। ६ दहकन्या। ७ कामधेनु। ८ शिंशपा, सीसम। ९ राजरीति, किसी किस्मकी पीतल। १० कामरूपस्थ नदीविशेष। (कालिकापु० ८१ अ०) ११ मध्यप्रदेशके अन्तर्गत एक नदी। यह नर्मदा नदीसे मिल गयी है।

"आपगा कपिला नाम व्युष्टा ब्रह्मर्षिं देवतैः।
नर्मदा सङ्गमस्तत्र रुद्रावर्तः प्रकीर्तितः॥" (रेवाखण्ड २६ अ०)

कपिला और नर्मदा नदीका सङ्गमस्थान रुद्रावर्त कहाता है। रेवाखण्डके मतमें यहां स्नानध्यानपूर्वक महेश्वरकी पूजा करनेपर अक्षय स्वर्ग लाभ होता है। ११ तीर्थविशेष। १२ श्यामलता। १३ विशाल देशका एक ग्राम। (भ० ब्रह्मखण्ड ४६।१८) १४-निर्विषजलायुका, जोंक। १५ कृच्छ्रसाध्य लूताभेद, मुश्किलसे आराम होनेवाली मकड़ी। १६ कपिलवर्णा, भूरी।

कपिलाची (सं० स्त्री०) कपिलं कपिलवर्णं अक्षि इव पुष्पं यस्याः। १ मृगभेद, किसी किस्मका सफेद हिरन। इसकी आंखें भूरी होती हैं। २ कपिलशिंशपा, भूरी सीसम।

कपिलाचार्य (सं॰ पु॰) कपिलः कपिलनामा आचार्यः, कर्मधा॰। १ कपिलऋषि। २ विष्णु।

"महर्षिः कपिलाचार्यः कृतज्ञो मेदिनीपतिः।" (विष्णुस॰)

कपिलाञ्जन (सं॰ पु॰) कपिलं अञ्जनं यत्र, बहुव्री॰। शिव, महादेव।

कपिलातीर्थ (सं॰ क्ली॰) तीर्थविशेष। इस तीर्थमें ब्रह्मचारी रह स्नान और पितृलोक तथा देवताकी अर्चना करनेसे सहस्र कपिला गोदानका फल मिलता है। (भारत ३।८३।४५)

कपिलादान (सं॰ क्ली॰) कपिलाया दानम्, ६-तत्। कपिलागोदान। मत्स्यपुराणमें कपिलाके दानका यह मन्त्र लिखा है—

"कपिले सर्वभूतानां पूजनीयासि रोहिणी।
तीर्थदेवमयी यस्मात् अतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥"

घण्टा, चामर, किङ्किणी, दिव्य वस्त्र एवं हेमदर्पण भूषित, पयस्वी, सुशील, तरुण और वत्सयुक्त कपिला देना चाहिये। इस दानसे स्वर्गलाभ होता है।

कपिलाधिका (सं॰ स्त्री॰) तैलपिपीलिका, तिलचटा।

कपिलापुर—दक्षिणापथका एक नगर। (रेवाखण्ड १७६) यह सम्भवतः नर्मदा किनारे अवस्थित है।

कपिलार्जक (सं॰ पु॰) कपिलवर्ण-तुलसीवृक्ष, भूरी तुलसीका पेड़।

कपिलावट (सं॰ पु॰) कपिलया कृतो ऽवटः गर्तः। तीर्थविशेष। (भारत, वन ८४।९८)

कपिलावर्त—बम्बई प्रान्तके भड़ोंच ज़िलेमें नर्मदा और कपिला नदीका सङ्गमस्थान। स्कन्दपुराणके रेवा-खण्डमें इसका नाम रुद्रावर्त लिखा है।

कपिलाश्व (सं॰ पु॰) कपिलाः कपिलवर्णा अश्वा यस्य, बहुव्री॰। १ इन्द्र। २ एक राजा। ३ सूर्यवंशीय कुवलयाश्वके पुत्र।

कपिलासङ्गम—कपिला और नर्मदा नदीके सङ्गमका स्थान। यहां स्नान करनेसे अशेष फललाभ होता है। इसके निकट अनेक पवित्र तीर्थ हैं। (रेवाखण्ड १२८०) यह बम्बई प्रान्तवाले वर्तमान भड़ोंच ज़िलेके अन्तर्गत है।

कपिलाह्रद (सं॰ पु॰) तीर्थविशेष। (भारत, वन ८४ अ॰)

कपिलिका (सं॰ स्त्री॰) कपिला संज्ञायां कन्-टाप् अतइत्वम्। १ शतपदीभेद, किसी किस्मकी कनखजूरा।

"शतपद्यस्तु परुषा कृष्णा चित्रा कपिलिका पीतिका रक्ता श्वेता अग्निप्रभा इत्यष्ट।" (सुश्रुत) २ पिपीलिकाविशेष, एक चींटी।

कपिली—नदीविशेष, एक दरया। इसका प्राचीन नाम कपिला वा कपिलगङ्गिका है।

कपिलीकृत (सं॰ त्रि॰) अकपिलं कपिलं कृतम्, कपिल अभूत तद्भावे च्वि-कृ-क्त। कपिल बनाया हुवा, जो भूरा किया गया हो।

कपिलेन्द्रदेव—उत्कलके एक राजा। बाल्यकाल यह किसी ब्राह्मणके मवेशी चराते थे। फिर इन्होंने उत्कलराज नेत्रवासुदेवके निकट जा नौकरी की। कार्यदक्षता गुणसे यह नेत्रवासुदेवके अत्यन्त प्रियपात्र बन गये। वासुदेवके मरने पर इन्होंने अपने साहस-बलसे उत्कलका राजसिंहासन पाया था। इनके राजत्वका काल २७ वर्ष (१४५२—१४७९ ई॰) रहा।

कपिलेश (सं॰ क्ली॰) कपिलेन प्रतिष्ठापितं ईशं लिङ्गम्, मध्यपदलो॰। काशीस्थ शिवलिङ्गविशेष।

"कपिलेशं महालिङ्गं कपिलेन प्रतिष्ठितम्।
मुच्यन्ते कपयोऽप्यस्य दर्शनात् किमु मानवाः॥" (काशीखण्ड)

कपिलेश्वर—१ एक प्राचीन नगर। २ मन्द्राज प्रान्तवाले गोदावरी ज़िलेकी रामचन्द्रपुर तहसीलका एक ग्राम। यह अक्षा॰ १६° ४६′ उ॰ और देशा॰ ८१° ५७′ २०″ पू॰ पर अवस्थित है। यहांकी लोकसंख्या, पांच हज़ारसे अधिक है।

कपिलोमफला (सं॰ स्त्री॰) कपीनां लोम इव लोमावृतं फलं यस्याः, बहुव्री॰। कपिकच्छु, केवांच।

कपिलोमा (सं॰ स्त्री॰) कपीनां लोम इव लोम-मञ्जरी यस्याः, बहुव्री॰। रेणुका नामक गन्ध द्रव्य, एक खुशबूदार चीज़।

कपिलोह (सं॰ क्ली॰) कपिवत् पिङ्गलं लोहम्। १ पित्तल, पीतल। २ राजरीति, बढ़िया पीतल।

पित्तल देखो।

कपिल्लक (सं॰ पु॰) कम्पिल्लक, नारङ्गीका चूरन।

कपिश्लिका (वै॰ स्त्री॰) कपिवर्णा वर्तिका पृषोदरा-

दित्वात् क्लीब:। गजपिप्पली, गजपीपर।
गजपिप्पली देखो।

कपिवक्त्र (सं० पु०) कपेर्वानरस्य वक्त्रमिव वक्त्रं यस्य, बहुव्री०। १ देवर्षि नारद। महाभारतमें नारदके वानरमुख सम्बन्धपर इस प्रकार लिखा,—किसी समय देवर्षि नारद और उनके भागिनेय पर्वत ऋषिने इस लोकमें आ मनुष्योंके साथ एकत्र रहनेकी विचार किया। फिर दोनों दोनोंको शुभाशुभ यावतीय मनोभाव बता देनेकी प्रतिज्ञाकर सृञ्जन राजाके राज्यमें बस गये। राजाने उभय ऋषिकी परिचर्याके लिये स्वीय कन्याको नियुक्त किया था। कुछ दिन पीछे नारद उस कन्याके प्रति अत्यन्त आसक्त हुये, किन्तु लज्जावशत: यह मनोभाव भागिनेय पर्वतसे बता न सके। पर्वतको आकार इङ्गित द्वारा उनका मनोभाव अवगत हुवा था। उन्होंने अतिशय क्रुद्ध हो नारदको प्रतिज्ञाभङ्ग करनेपर अभिशाप दिया,—'यह राजकन्या तुम्हारी भार्या बनेगी। फिर तुम वानरका मुख धारण कर इस मर्त्यभूमिपर घूमते फिरोगे।' (भारत, शान्ति ३० अ०) (क्ली०) २ वानरका मुख, बन्दरका मुंह।

कपिवदान्य (सं० पु०) आम्रातकवृक्ष, आमड़ेका पेड़।

कपिवल्लिका, कपिवल्ली देखो।

कपिवल्ली (सं० स्त्री०) कपिरिव कपिलोम इव वल्ली, मध्यपदलो०। गजपिप्पली, गजपीपर। २ कपित्थवृक्ष, कैथेका पेड़।

कपिवास (सं० पु०) पारिशाख्यवृक्ष, किसी किस्मके पीपलका पेड़।

कपिविरोचन (सं० क्ली०) मरिच, मिर्च।

कपिविरोधि, कपिविरोचन देखो।

कपिवीज (सं० क्ली०) शूकशिम्बीवीज, केवांचका तुख्‌म।

कपिवृक्ष (सं० पु०) पारिशाख्यवृक्ष, किसी किस्मका पीपल।

कपिश (सं० पु०) कपि: वर्णविशेष: कपिल नाम वा अस्त्यस्य, कपि-श। लोमादिपामादिपिच्छादिभ्य: शनेलच:। पा ५।२।१००। १ श्यामवर्ण, मटमैला रंग। यह कृष्ण एवं पीत उभय वर्ण मिलनेसे बनता है। २ सिल्हक नाम गन्धद्रव्य, लोबान। ३ द्राक्षामद्य, अङ्गूरी शराब।
"यामा न पश्यत् कपिशं पिपासत:।" (माघ)
४ शिव। ५ जनपदविशेष, एक बसती। कापिशी देखो। (त्रि०) ६ कपिशवर्णयुक्त, मटमैला।

कपिशा (सं० स्त्री०) कपिश-टाप्। १ सुरा, शराब। २ माधवीलता, चमेली। ३ नदीविशेष, एक दरया। रघुराजा इसी नदीको पारकर उत्कल पहुंचे थे। (रघुवंश) इसका वर्तमान नाम कसाई है। यह मेदिनीपुरके दक्षिणांशसे प्रवाहित हो बङ्गोपसागरमें जा गिरी है। ४ पिशाचोंकी माता। यह काश्यपकी एक स्त्री रहीं।

कपिशाञ्जन (सं० पु०) कपिशं अञ्जनं कपिशयुक्तं वा अञ्जनं यत्र, बहुव्री०। शिव।

कपिशापुत्र (सं० पु०) कपिशाया: मदोन्मत्ताया: पिशाच्या: पुत्र:, ६-तत्। पिशाच, शैतान्।

कपिशायन (सं० पु०) १ देवता। २ मद्यविशेष; किसी किस्मकी शराब। यह कपिश देशमें अङ्गूरसे बनायी जाती है।

कपिशिका, कपिशीका देखो।

कपिशीका (सं० स्त्री०) कपिश स्वार्थे बाहुलकात् ईकन् टाप् च। मद्यविशेष, किसी किस्मकी शराब।

कपिशीर्ष (सं० क्ली०) कपीनां प्रियं शीर्षं प्राकारादीनां अग्रप्रदेश:, मध्यपदलो०। प्राचीरादिका अग्रभाग, दीवारका सिरा।

कपिशीर्षक (सं० क्ली०) कपीनां शीर्षवर्णवत् कायति प्रकाशते, कपिशीर्ष-कै-क। १ हिङ्गुल, शिङ्गरफ, ईंगुर। २ प्राचीरादिका अग्रभाग, दीवारका सिरा।

कपिशीर्ष्णी (सं० स्त्री०) वादित्रविशेष, किसी किस्मका बाजा।

कपिष्ठल (सं० पु०) ऋषिविशेष। कापिष्ठल देखो।

कपिस्कन्ध (सं० पु०) कपीनां स्कन्ध इव स्कन्धो यस्य, मध्यपदलो०। दानवविशेष। (हरिवंश)

कपिस्थल (सं० क्ली०) कपीनां स्थलं आवासम्, ६-तत्।

१ वानरोंके निवासका स्थान, बन्दरोंके रहनेका मुकाम। २ पञ्जाबका एक प्राचीन जनपद। वर्तमान नाम कैथल है। यहां अञ्जनाका मन्दिर विद्यमान है।

कपिस्वर (सं० त्रि०) कपीनां स्वर इव स्वरो यस्य, बहुव्री०। वानरकी भांति स्वरविशिष्ट, जो बन्दरकी तरह आवाज़ रखता हो।

कपिहस्तक (सं० पु०) कपिकच्छु, केवांच।

कपी (हिं० स्त्री०) घिरनी, चरखी, रस्सी लपेटनेका औज़ार।

कपीकच्छु (सं० स्त्री०) कपिकच्छु, संज्ञायां वा दीर्घः। कपिकच्छुलता, केवांच।

कपीज्य (सं० पु०) कपिभिर्वानरैरिज्यते पूज्यते, कपि-यज्-क्यप्। १ रामचन्द्र। २ क्षीरिकावृक्ष, खिरनी। ३ सुग्रीव। ४ हनूमान्।

कपीत (सं० पु०) कपिभिरितः प्राप्तः प्रियत्वेनेति शेषः। श्वेतगुञ्जावृक्ष, एक बेल।

कपीतक (सं० पु०) प्लक्षवृक्ष, पाकुर, सहोरा।

कपीतन (सं० पु०) कपीनां ईं लक्ष्मीं तनोति, कपि-ई-तन् पचाद्यच्। १ आम्रातक, आमड़ा। २ गर्दभाण्डवृक्ष, पाकर, सहोरा। ३ शिरीष, सरसों। ४ अश्वत्थ, पीपल। ५ गुवाकवृक्ष, सुपारीका पेड़। ६ बिल्ववृक्ष, बेलका पेड़। ७ गण्डसुण्ड। ८ उदुम्बर-वृक्ष, गूलर।

कपीन्द्र (सं० पु०) कपिरिन्द्र इव कपिषु इन्द्रः श्रेष्ठो वा। १ हनूमान्। २ वालि। ३ सुग्रीव। ४ विष्णु।

"शरीरभूतभृद्भोक्ता कपीन्द्रो भूरिदक्षिणः।" (भारत १३।१४९।६६)

५ जाम्बवान्।

कपीवह (सं० क्ली०) कपिवह दीर्घः। इको वहे ऽपीलोः। पा ६।३।१२१। सरोवरविशेष, एक तालाब।

कपीवान् (सं० पु०) वशिष्ठ ऋषिके एक पुत्र। यह चतुर्थ मन्वन्तरके सप्तर्षियोंमें रहे।

कपीवान् (सं० पु०) वशिष्ठ ऋषिके एक पुत्र। (हरिवंश)

कपीश (सं० पु०) कपियोंके राजा, बन्दरोंके मालिक। वालि, सुग्रीव, हनुमान् प्रभृतिको कपीश कहते हैं।

कपीष्ट (सं० पु०) कपीनां इष्टः प्रियः, ६-तत्। १ राजादनीवृक्ष, खिरनी। २ कपित्थवृक्ष, कैथा।

कपुच्छल (वै० क्ली०) कस्य शिरसः पुच्छमिव लाति, क-पुच्छ-ला-क। १ केशचूड़ा। २ स्रुक्का अग्रभाग।

"इदमेव कपुच्छलमयं दण्डः स्वाहाकारः।" (शतपथब्राह्मण ८।३।१।१०)

कपुष्टिका (सं० स्त्री०) कस्य शिरसः पुष्टौ पोषणाय कायति, क-पुष्टि-कै-क-टाप्, कस्य शिरसः पुष्टौ पोषणाय हितं, क-पुष्टि-कन्-टाप् वा। केशकी चूड़ाके संस्कारका कार्य।

"अथातस्तृतीये वर्षे चूडाकरणं कपुष्टिका।" (गोभिल)

कपूत (हिं० पु०) कुपुत्र, खराब लड़का, जो पुत्र अपने कुलका धर्म छोड़ असदाचरण करता हो।

कपूती (हिं० स्त्री०) पुत्रका असदाचरण, बुरे लड़केकी हालत।

कपूय (सं० त्रि०) कुत्सितं पूयते, कु-पूय-अच् पृषोदरादित्वात् उलोपः। दुर्गन्धि, बदबूदार, खराब।

कपूर (हिं० पु०) कर्पूर, काफूर। यह एक जमा हुवा खुशबूदार मसाला है। कपूर हवा लगनेसे उड़ता और आगकी लपट छू जानेसे जलता है। कर्पूर देखो।

कपूरकचरी (हिं० स्त्री०) गन्धपलाशी, गंधौली। यह एक प्रकारकी लता है। इसके मूलसे सुगन्ध निकलता है। आसामकी झाड़ी इसके पत्रसे पापोश निर्माण करती हैं। गन्धपलाशी देखो।

कपूरकाट (हिं० पु०) धान्यविशेष, किसी किस्मका जड़हन धान। यह सूक्ष्म होता है। इसका तण्डुल सुगन्ध और स्वादु है।

कपूरा (हिं० पु०) मेष छाग प्रभृति पशुका अण्डकोष, भेड़ बकरी वगैरह चौपायोंके बैजोंका थैला।

कपूरी (हिं० त्रि०) १ कर्पूरविशिष्ट, काफूरी, जो कपूरसे तैयार किया गया हो। २ कर्पूरवर्णविशिष्ट; काफूरका रङ्ग रखनेवाला, हलका पीला। (पु०) ३ वर्णविशेष, एक रङ्ग। यह कुछ-कुछ पीतवर्ण रहता है। केसर, फिटकरी और हरसिंगारके फूलसे इसे तैयार करते हैं। ४ ताम्बूलविशेष, किसी किस्मका पान। यह अति दीर्घ एवं कटु होता है। इसका प्रान्त भङ्गुर रहता है। इसको बम्बईकी ओर लोग अधिक खाते हैं। मुनर्जमें आता—कपूरी पान खानेसे

पुरुष नपुंसक हो जाता है। (स्त्री०) ५ ओषधि-विशेष। इसका पत्र दीर्घ होता है। पत्रके मध्य भागमें एक श्वेत रेखा पड़ी रहती है। मूल कपूरकी भांति सुगन्ध देता है।

कपृथ् (वै० पु०) कुत्सित प्रथयति, कु-प्रथि-क्विप् वैदिकत्वात् निपातेन सिद्धम्। १ पुरुषत्व, मर्दानगी। (त्रि०) २ कुत्सित प्रकाशक।

कपोत (सं० पु०) को-वायुः पोतः नौरिवास्य, कव-ओतच् वस्य पः। कवेरोतच् पश्च। उण् १।६३। १ पक्षी, चिड़िया। २ हाथोंकी एक अनोखी स्थिति। ३ पक्षिविशेष, घुग्घू। ४ मूषिकभेद, एक चूहा। ५ कपोतसमूह, कबूतरोंका झुण्ड। ६ पारद, पारा। ७ सर्जिक्षार, सज्जीखार। ८ पारीशवृक्ष, पलाश-पीपल। ९ भूरा रङ्ग। १० सुरमेकी सफेदी। ११ पारावतपक्षी, कुमरी, कबूतर। लाटिन भाषामें कपोतजातिका नाम कोलम्बिडी (Columbidæ) है।

इसका संस्कृतपर्याय—गृहकपोत, पारावत, पारापत, कलरव, छेद्य और गृहकुक्कुट है। जङ्गली कबूतरको वनकपोत, चित्रकण्ठ, कोकदेव, दहन, धूसर, भीषण, धूम्रलोचन, अग्निसहाय और गृह-नाशन कहते हैं।

पृथिवीपर सर्वत्र कपोत देख पड़ता है। किन्तु अष्ट्रेलिया और भारत-महासागरके उपकूलवर्ती प्रदेशोंमें इसकी संख्या अधिक है। अमेरिकामें यथेष्ट कपोत होते भी विभिन्न प्रकारका नहीं मिलता। भारतवर्ष एवं मलयद्वीपमें जैसे इसकी संख्या अधिक आती, वैसे ही विभिन्न प्रकारकी श्रेणी देखाती है। युरोप और उत्तर-एशियामें इसको संख्या सर्वापेक्षा अल्प है।

खगतत्त्ववेत्ताओंने आजतक प्रायः तीन सौसे भी अधिक कपोतश्रेणी आविष्कार की हैं। उक्त सकल विभिन्न श्रेणियोंमें अधिकांश अति सुन्दर देख पड़ते हैं। अनेक कपोतोंका गात्र भिन्न भिन्न वर्णोंमें चित्रित रहनेसे बहुत ही मनोहर मालूम देता है। प्रायः सकल श्रेणियोंका अङ्गसौष्ठव सम्यक् सुगठित और सुदृश्य है। कपोतकी अधिकांश श्रेणियां मनुष्यका उपयोगी खाद्य हैं। फिर अनेक स्थलमें यह खाद्य-रूपसे प्रचुर व्यवहृत होती हैं।

कपोतोंके मध्य दाम्पत्य प्रेम अति सुन्दर है। एक बार जो जोड़ी मिल जाती, वह जीवन रहते कभी छूटते नहीं देखाती। इनके इस अविच्छिन्न प्रेमकी कथा सकल देशोंके काव्यमें विशेष प्रसिद्ध है।

कपोत और कपोती दोनों घर बना लेने, अण्डे देने और बच्चे सेनेमें एक दूसरेको साहाय्य करते हैं। यह किसी स्थानको तोड़ फोड़ अपना घोंसला बना नहीं सकते। वृक्षके ऊपर, पर्वतके गह्वरमें, इष्टकालयकी कार्निसके नीचे या देवालयके गात्रपर गर्तको निकाल कपोत अलग घोंसला तैयार करता है। एकबार दो श्वेतवर्ण डिम्ब होते हैं। कोई कोई श्रेणी एकमात्र डिम्ब देती है। किन्तु दोसे अधिक किसीके नहीं रहते। कपोत प्रति मास डिम्ब दिया करते हैं। फिर डिम्ब फूटनेमें १५ दिन लगते हैं। यह १५ दिन ताप पहुंचानेके हैं। कपोती डिम्ब दे प्रथम ३ दिन एकाक्रम दिवारात्र बराबर ताप लगाती, केवल एक बार खानेको उठ जाती है। प्रथम ३ दिन अधिक क्षण वह कपोतको ताप पहुंचानेसे रोकती अथवा क्षणमात्र भी डिम्बको खाली नहीं छोड़ती। कपोती जब खानेको जाती, तब ताप पहुंचानेको कपोतकी बारी आती है। कपोतको निकट न देख वह अत्यन्त क्षुधातुर होते भी डिम्बको अनावृत छोड़ कैसे उठेगी! कपोत निकट न रहनेसे क्षुधा लगने पर कपोती उसे बुलानेको गम्भीर शब्द करती है। कपोत दूर होते भी उक्त शब्द सुनते ही घोंसलेमें आ पहुंचता है। प्रथम तीन दिन बीत जानेसे वह डिम्बको छोड़ उठ जाती है। दिनको अधिक क्षण कपोत ताप पहुंचाता और रातको कपोतीके कार्य करनेका समय आता है। १५ दिन पीछे डिम्ब फूटनेसे शावक निकलता है। यह शावक चर्माच्छादित मांसपिण्डमात्र होता है। इसके गात्रमें पालकका कोई चिह्न देख नहीं पड़ता और चक्षुद्वय बन्द रहता है। डिम्ब फूटनेसे कपोती फिर ३ दिन ताप देनेको बैठती है। प्रथम ३ दिनकी भांति इस बार भी वह

आहार तथा निद्रा त्याग करती है। कपोत और कपोती दोनों शावकको खिलाते हैं। प्रथमतः यह जो खाते, उसीको अपने उदरस्थ खाद्यके आधारमें रख और दुग्धवत् तरल पदार्थमें परिणत कर शावकके मुखमें पहुंचाते हैं। कुछ दिन बीतने पर वही पदार्थ मण्डवत् कर और शेषको अर्धगलित रख खिलाया जाता है। इसी प्रकार वयोवृद्धिके साथ खाद्यकी अवस्था बदल क्रमशः कठिन द्रव्य खिलाना सिखाते हैं।

डिम्ब फूटनेसे ५।६ दिन पीछे पालकको रेखा देख पड़ती है। एक मासके मध्य शावकका सर्वाङ्ग पालकसे आच्छादित हो जाता, किन्तु उसे चुगना नहीं आता। फिर भी इस समय वह पितामाताके साथ उड़ भूमिपर उतरना और घोंसलेपर चढ़ना सीखता है। इतने दिन उसे खिला देना पड़ता है। मास वा दो मासका होनेपर शावक चुगने लगता है।

कपोत-पक्षके शेष भागमें ३।४ बड़े पालक रहते हैं। प्रथम उनसे पक्षमें उड़नेके उपयुक्त १० पालक निकलते हैं। जिस प्रकार सात वत्सरकी वयसमें मनुष्यके कच्चे दांत गिर फिर आते, वैसे ही उड़ना आरम्भ करनेवाले कपोतके पक्षस्थित पालक झड़कर पुनः प्रकाश पाते हैं। सर्वाग्र-पक्षके उड़नेयोग्य भीतरी पर प्रथमसे आरम्भ हो झड़ा करते हैं। एक जबतक झड़कर भर नहीं जाता, तबतक दूसरेका गिरना असम्भव आता है। इसी प्रकार पञ्चम पालक गिरनेपर कपोतका वयस बदलता है। फिर दशम पालक झड़ जानेसे यह युवावस्थाको प्राप्त होता है।

कपोत फल शस्यादि खा जीवनधारण करता है। यह किसी प्रकारके कीटादि नहीं खाता। किन्तु किसी श्रेणीका कपोत क्षुद्र-क्षुद्र शम्बूक खा जाता है। हिन्दूस्थानका कबूतर 'गुटरगूं' बोलता है। यह हर्षके समय ही शब्द करता, पीड़ित होनेपर मौनी रहता है। कपोत अपनी श्रेणीकी कपोतीको मनोनीत करता, किन्तु गृहपालित मनुष्यके वशीभूत हो जानेसे भिन्न श्रेणीवालीके साथ भी रहता है। कपोतोंमें स्त्रीजाति ही यथेच्छ-व्यवहार चलाती है। अनेक स्थलमें एक कपोतीके लिये दो कपोत लड़ते देखे गये हैं। फिर कपोती नूतन कपोतकी ओर झुक पड़ी है। इसी प्रकार दो दम्पतीके मध्य विवाद बढ़नेपर परस्पर स्त्रीपरिवर्तन हुवा है। सन्ध्याकाल कपोत अति शीघ्र शीघ्र गृहप्रवेश करता, किन्तु अन्यान्य पक्षियोंकी भांति प्रातःकाल ही उसे छोड़ नहीं चलता। सूर्यका किरण कुछ अधिक अच्छा लगता है। इसकी दृष्टिशक्ति और श्रवणशक्ति अति तीक्ष्ण है। कपोतके दोनों पक्ष अति सबल और लघु होते हैं। इसीसे यह बहुत द्रुत उड़ सकता है।

साधारणतः कपोत देखनेमें अति सुन्दर लगता है। इसका वर्ण और आकार नानाप्रकार है। चञ्चु अधिक दीर्घ नहीं रहता, प्रायः १ इञ्चसे भी अल्प पड़ता है। उसके दोनों भाग सरल एवं ईषत् सङ्कुचित होते हैं। किसी चञ्चुका अग्रभाग अल्प और किसीका अधिक झुक जाता है। ऊपरी चञ्चुके मूलमें ईषत् मांस उभरता है। यह मांस अति कोमल और समान होता है। इसी मांसपर बिलकुल कपालके नीचे दोनों सरल नासाविवर रहते हैं। कपालसे ऊपर मस्तक गोल हो पश्चात् दिककी ढल जाता है। मुखका विवर अत्यन्त क्षुद्र वा अति वृहत् नहीं होता। दोनों चक्षु चञ्चुसे विस्तर पश्चात् मस्तकके दोनों पार्श्वपर समसूत्रपातसे अवस्थान करते हैं। पक्ष अधिक दीर्घ होते हैं। किसी-किसी श्रेणीके कपोतका पक्ष लपेट लिया जानेसे शेष प्रान्त सूक्ष्म पड़ता और किसीका ईषत् गोलाकार बनता है। पुच्छके पालक भी इसी प्रकार भिन्न-भिन्न आकार धारण करते हैं। पुच्छमें प्रायः १२से १४ तक पालक रहते हैं। वह अन्यान्य स्थानके पालकसे यथेष्ट दीर्घ होते हैं। फिर किसी-किसी श्रेणीवाले कपोतके पुच्छमें सोलह या दश मात्र पालक होते हैं। साधारणः इसके पैर घुटनेके ऊपरी भाग पर्यन्त पालकसे आच्छादित रहते हैं। पैरमें तीन अङ्गुलि अङ्गुलि नातिदीर्घ होती हैं। पैरमें तीन अङ्गुलि आगे और एक पीछे पाते हैं। पश्चात्की अङ्गुलि

सम्मुखवाली अङ्गुलिकी भांति समसूत्रपातसे अवस्थान करती है। नख दण्डोपवेशी पक्षीकी भांति वक्र रहते हैं। फिर अङ्गुलि भी दण्डोपवेशी पक्षीकी भांति ग्रन्थिल होती हैं। किसी किसी श्रेणीवाले कपोतके समस्त पादपर पालक निकल आते हैं।

हिन्दूस्थानमें कबूतर-खेलके लिये पाला जाता है। इसीसे इसका व्यवसाय चला करता है। केवल हिन्दुस्थानमें ही नहीं, पृथिवीके सकल स्थलपर कपोत मनुष्यके आलयमें पलता है।

शाकुनशास्त्रके अनुसार पालक वा व्यवसायी इसको श्रेणी आकार, कार्य एवं गुणादि देख विभाग करते हैं। इसकी प्रायः दो जाति हैं—गोला और गिरहबाज़। इन दो जातिके कपोत फिर अनेक विभागमें बंटते हैं। गोलावोंमें लक्का, गुली, शीराज़ी, कौड़ियाला, बुग़दादी, सुक्खा, आखू ता, कबरा, सूंगिया, लोटन प्रभृति प्रधान हैं।

हिन्दुस्थानी लोगोंके घरों और मठोंमें एक-प्रकारका गोला स्वयं अयाचित रूपसे रहा करता है। उसे जङ्गली कबूतर कहते हैं। यह नाना वर्णका होता है। इसका मूल्य अति अल्प है।

गिरहबाज़ोंमें काग़ज़ी, सब्ज़ा, नीला, स्याहा, अबलक़ा, सुर्खा, सादा, ज़र्दा, भूरा, गण्डेदार, दोबाज़ वग़ैरह अच्छे समझे जाते हैं।

गोला और दोबाज़ देखते ही पहचान पड़ता है। गोलेसे गिरहबाज़की चोंच साफ़ होती है। फिर गोलेके चक्षुमें सर्वदा शान्त भाव रहता, किन्तु गिरहबाज़ अपनी आंख घुमाया करता है।

गिरहबाज़ पैरमें पर आनेसे झबरा और मस्तेपर चोटी बढ़ जानेसे चोटियाला कहाता है। फिर पैरमें पर और मस्तेपर चोटी दोनों होनेसे इसको झबरा-चोटियाला कहते हैं।

पहले हिन्दुस्थानमें क़पोतके असंख्य भेद रहे। किन्तु आजकलकी श्रेणियोंको देख प्राचीन नामोंके निर्णय करनेका कोई उपाय नहीं। प्राचीन कवियोंके काव्यमें प्रमाण आता, कि पुराने समय भी हिन्दुस्थानमें कपोत पाला जाता था। राजा-महाराज और सेठ-साहूकार इसे यथेष्ट रूपसे क्रीड़ादिके लिये रख लेते। उस समय लोग कपोतको बहुत अच्छा समझते और बड़ा आमोद करते थे।

हिन्दुस्थानमें बालक इसे बड़ा खेला करते हैं। कपोत उड़ानेके लिये गृहके सर्वापेक्षा उच्च प्राचीर वा किसी वृक्षकी ऊर्ध्व शाखापर बल्ली गाड़ना या बांधना पड़ती है। इस बल्लीपर एक चौकोन छतरी लगती है। कपोत उड़नेसे इसी छतरी पर आकर बैठता है। छतरीमें कपड़ेका जाल रहता है। इस जालमें एक डोरी लगती, जो भूमिपर लटका करती है। डोरी नीचेसे खींचनेपर छतरीका जाल चारो ओरसे ऊपरको उभर बन्द हो जाता है। जब कोई बाहरी कबूतर भूलसे आ छतरीपर बैठता, तब खेलाड़ी नीचेसे डोरी खेंचता है। इससे छतरीका जाल बन्द होते ही कबूतर फंसता है। फिर छतरीको गरारी ढीली कर उतार देते और नवागत कपोतको पकड़ लेते हैं। यह अपना स्थान खूब पहचानता है। कलकत्तेके कबूतर मिर्ज़ापुर और अलाहाबादसे छूटते भी अपने स्थानपर आ पहुंचते हैं। वर्तमान युरोपीय महासमरमें इसने इधरसे उधर पत्र पहुंचानेमें बड़ा साहाय्य किया है। पूर्व समय भी कबूतर हरकारेका काम करते थे। उर्दूके किसी कविने कहा है—

"ख़त कबूतर किसतरह ले जाये बामेयार पर।
पर कतरनेको लगी हैं कैंचियें दीवार पर॥"

काठ या बांसके जिस घरमें इसे रखते, उसको काबुक कहते हैं। इसमें एक-एक जोड़ा कबूतर रहनेको दरबे बने होते हैं। उन्हींमें खेलाड़ी इसे खिला-पिला सन्ध्याको बन्द कर देते हैं। हिन्दुस्थानमें प्रायः कबूतरको अकरा खिलाया जाता है।

हिन्दुस्थानमें इसे शीतला, यक्ष्मा, श्लेष्मा वा शोथ रोग अधिक लगता है। शीतला निकलनेसे कपोतको जलमें भीगने देना न चाहिये। फिर तारपीनका तेल चुपड़नेसे उक्त रोग आरोग्य होता है। शोथ बढ़नेपर इसे रौद्रमें रखते और लहसुनका एक बीज खिलाया करते हैं। श्लेष्मापर भी यही औषध चलता है। यक्ष्मा होनेसे सरसोंके तेलका फलीता जला भस्म खिलाया

जाता है। होमिओपाथिके मतका कोई कोई औषध इसके लिये विशेष उपकारी है।

गिरहबाज़ कबूतर आकाशमें उड़ते या भूमिपर उतरते समय उलट-पुलट गिरह लगाता है। यह इसकी जातिका स्वभावसिद्ध कार्य है। इस कामको गिरहबाज़ी कहते हैं। कोई कोई कबूतर बड़ी गिरहबाज़ी करता है। गिरहबाज़ एकबार उड़नेसे बहुत ऊंचे चढ़ता, इसीसे अनेक समय श्येन (शिकरा) पक्षी द्वारा मारे पड़ता है। फिर कोई कोई एकबारगी ही दोनों ओर गिरह लगा उड़ सकता है। एक प्रकारका गिरहबाज़ बांसों चढ़ता है। किन्तु पट्ठा पहले पूरे तौरपर गिरहबाज़ी कर नहीं सकता, थोड़ा-बहुत घूम फिर सीधे उड़ने लगता है। जो गिरहबाज़ अति अल्प दूर जा गिरहबाज़ी करता, उसे गरमाया समझना पड़ता है। गर्म होनेसे अधिक दूर उड़ना असम्भव है।

क्या गोला, क्या गिरहबाज़—सब तरहके कबूतरोंको धूप अच्छी लगती और उनके लिये फायदेमन्द भी ठहरती है। विशेषत: गिरहबाज़ भली भांति धूप न मिलनेसे घबरा जाता है। आतपहीन स्थान इसके लिये विषम अनिष्टकर है। गिरहबाज़ व्याकुल होनेसे पुच्छके पालक उखड़ने या कटनेपर आराम पाता है। यह दैर्घ्यमें अधिक बड़ा नहीं पड़ता, साधारणत: १२से १५ इञ्च पर्यन्त रहता है। इसको अंगरेज़ीमें टम्बलर-पिजन (Tumbler-pigeon) कहते हैं।

गोला कबूतर देखनेमें अति सुन्दर लगता है। इसके भिन्न भिन्न परिवारकी आकृतिमें जो विशेष वैलक्षण्य आता, वह नीचे लिखा जाता है—

कलगीदार—इस कपोतकी श्रेणीका विशेष लक्षण—मस्तकके पश्चाद्देशसे चञ्चुके पार्श्वकी राह पक्षके ऊपरी भाग पर्यन्त दो स्तर उच्च पालकोंका होना है। इसका एक स्तर वक्ष और अपर स्तर पृष्ठकी ओर झुक पड़ता, मध्यस्थल सीमन्तकी भांति रहता है। जैकोबिन सुर्ख़, स्याह, सफ़ेद और ज़र्द रङ्गका होता है। पृष्ठ, पुच्छ, वक्ष:स्थल और मस्तक प्राय: श्वेत रहता, केवल पक्षके वर्णमें ही भेद पड़ता है। फिर जो चिह्न सदृश लगता, वह ईष्टकके रङ्गमें ईषत् पीत मिला देनेके वर्णसे मिलता है। स्याहेका रंग निहायत काला रहता, जिसमें कुछ कुछ नीलापन झलकता है। दोनों पक्षोंपर ही उक्त वर्ण होता है। फिर गलदेशवाले पूर्वोक्त दोनों स्तरोंमें पालककी शिखायें उन्हीं उन्हीं वर्णोंकी देख पड़ती हैं। बिलकुल सफ़ेद और कुछ बैंजनी लगनेवाले खाकी रंगका जैकोबिन (कलगीदार) भी कहीं कहीं मिल जाता है। इसका चक्षु ईषत् क्षुद्र और चक्षुके मणिका चतुष्पार्श्व असित होता है। पक्षके शेष बड़े पालक तीन ही रहते हैं। यह अति भीरु होता है। अंगरेज़ीमें इस श्रेणीको जैकोबाइन और जाक (Jacobine and Jack) कहते हैं।

लक्का—क्षुद्र श्रेणीका कपोत है। लक्केका विशेष चिह्न पुच्छके पालकोंका मयूर-पक्षकी भांति सर्वदा छत्राकार रहना है। ऐसे कबूतरको पूरालक्का कहते हैं। साधारणत: जिनके पुच्छमें पालकपूर्ण छत्राकार नहीं आते, वह आधे लक्का कहाते हैं। पूरे लक्केका वर्ण समस्त श्वेत होता है। फिर वर्ण अधिक उज्ज्वल सफ़ेद रेशमकी भांति रहते इसको रेशमी लक्का कहते हैं। कोई कोई पूरा लक्का बिलकुल काला भी रहता, जो देखनेमें अधिक मनोहर नहीं लगता। आधा लक्का सफ़ेद, काला और बिसुनकान्ताके रङ्गका होता है। जो लक्का देखनेमें नानावर्णविशिष्ट और सुन्दर रहता, उसका नाम नक़्शा पड़ता है। पूरा लक्का भूमिपर चुगते समय बहुत पक्का लगता है। यह बैठ जाते या चलनेको पैर उठाते अपना गलदेश कुछ झुका ऐसे सुन्दर भावसे हिलाता, कि देखते ही हृदयमें आनन्द उमड़ आता है। दो-एक श्रेणीवाले लक्कोंके मस्तकपर चोटी नहीं रहती। किन्तु सकलके ही पैरोंमें पर होते हैं। अंगरेज़ीमें इसको फैनटेल-पिजन (Fantail pigeon) यानी लमपरा कबूतर कहते हैं।

शीराज़ी—स्याह, सुर्ख़, ज़र्द, गहरा खाकी और

काश्मीरी वगैरह तरह तरहके रङ्गोंका होता है। इसके विशेष चिह्नमें चञ्चुके मूलसे चञ्चुके पश्चात् अवटु (गुद्दी), पृष्ठ एवं पक्षको राह पुच्छके मूल पर्यन्त एकमात्र वर्ण रहता और निम्न चञ्चु के नीचे गलदेश, वक्षस्थल, पक्षका निम्नभाग तथा पुच्छका पालक श्वेत देख पड़ता है। फिर वयोवृद्धिके साथ जघनदेश अङ्गुलिके ग्रन्थि पर्यन्त पालकसे ढंक जाता है। इस जातिका कपोत बहुत बड़ा होता है। शीराज़ी देखनेमें अति सुन्दर लगता, किन्तु गम्भीर भीमकाय और बलशाली रहता है। सुर्ख शीराज़ीका रङ्ग बिलकुल लाल नहीं होता। उसमें चिह्नके वर्णपर ईषत् कृष्णाभ पीतका भाग ही अधिक देख पड़ता है। स्याह शीराज़ीका वर्ण घोर नीलवर्णयुक्त कृष्ण लगता है। ज़र्द शीराज़ी हरिताभ चिक्कण होता है। खाकी शीराज़ी देखनेमें सुन्दर और स्याहेसे नम्रप्रकृति रहता है। काश्मीरी खाकी होते भी पालक, वक्ष, पृष्ठ, पक्ष तथा अवटु (गुद्दी)का वर्ण श्वेत लगता और बैंजनी मिला बूंद बूंद दाग़ पड़ता है। एकरंगी शीराज़ीको वक्ष एवं उदरमें भिन्न वर्णका एक क्षुद्र पालक रहनेसे गुलदार कहते हैं। गुलदार शीराज़ी देखनेमें अति सुन्दर लगता है।

मुक्खा—प्रधानतः दो श्रेणीका होता है—स्याह और धब्बेदार। यह देखनेमें अति सुन्दर रहता है। इसके विशेष चिह्नमें चञ्चुके ऊपर चञ्चुके उपरिभागसे शिखाके कोल पर्यन्त मस्तक धब्बेदार सफ़ेद लगता और दोनों पक्ष तथा समस्त देहका अन्य वर्ण पड़ता है। यह अति क्षुद्र जातिका कपोत है। फिर मुक्खा जितना ही क्षुद्र रहता, उतना ही सुदृश्य लगता है। यह भी लक्केका तरह गर्दन हिलाता और अवटु (गुद्दी) उठाते समय सुन्दर एवं सौष्ठवसम्पन्न देखाता है। स्याह मुक्खेमें उज्ज्वलता अधिक होती है। इसका भी गलदेश नानावर्णमिश्रित चिक्कण रहता है। सिवा स्याहेके दूसरे रङ्गके मुक्खेको ही किसीके मतमें धब्बेदार कहते हैं। धूसर चिह्न-सदृश वर्णविशिष्ट मुक्खा चञ्चुस्निग्धकर होता है। इसके पैरमें पर नहीं रहता। किन्तु मस्तक पर शिखा निकल आती है। मस्तकका श्वेतवर्ण चञ्चुके नीचे या गलदेशमें फैल जानेसे इसको दाग़ी मुक्खा कहते हैं। दाग़ी मुक्खेका मूल्य एवं आदर अल्प रहता और रूप भी ईषत् विश्री लगता है। विलायती मुक्खेके मस्तक तथा पक्षवाले तीन बड़े पालक और पुच्छका वर्ण काला होता है। शिखा कुछ बढ़ मस्तकके सम्मुख झुक आती है। गात्रका वर्ण श्वेत रहता है। वहां तीन प्रकारका मुक्खा होता है। इन तीनों श्रेणीवाले कपोतके मस्तकका वर्ण यथाक्रम कृष्ण, पीत और रक्त लगता है। फिर मस्तकका वर्ण, पक्ष एवं पुच्छके बड़े पालकोंमें भी रहता है। अंगरेज़ोंमें इसे नन-पिजन (nun-pigeon) यानी वैरागन कहते हैं।

कौड़ियाला—चञ्चु कौड़ी जैसे होते हैं। चञ्चुके चतुष्पार्श्व और नासिकाके मूलमें चञ्चु के ऊपर ईषत् रक्ताभ कोमल मांसके बड़े बड़े फूल पड़ जाते हैं।

चोटियाला—विशेषत्वसे मस्तकपर शिखा और पादमें पालकका विकाश देखाता है। पैरमें एड़ीके पास जो पर रहते, वह बहुत बड़े लगते हैं। चोटियाला देखनेमें अधिक सुदृश्य नहीं होता। शीराज़ीको तरह यह भी अति वृहत् एवं भीमकाय रहता, किन्तु माधुर्यपूर्ण गम्भीर भावके बदले अपनेमें कुछ भीमदर्शनत्व रखता है। चोटियालोंमें किसी किसी श्रेणीका चञ्चु ईषत् कृष्णाभ लगता है। इनमें सुर्खोंकी संख्या ही अधिक है। फिर सफ़ेद काला चोटियाला भी होता है। यह कोटरमें बैठ गुटरगूं शब्द निकाला करता है। उक्त शब्द करते समय गलदेशका अभ्यन्तरस्थ खाद्याधार फूल उठता है। उक्त खाद्याधार या खोल को अंगरेज़ोंमें क्राप (Crop) और इस श्रेणीके कपोतको क्रापार (Cropper) कहते हैं। पैरके परोंको देख कोई इसे फ्लायाइड पिजन (Flay-thighed pigeon) भी कह देते हैं।

गलफुला—दो प्रकारका है—स्याह और सफ़ेद। यह अति वृहत्काय होता है। इसके चञ्चु से नीचे वक्षःस्थल पर्यन्त समस्त स्थान थैलीको तरह फूल

उठता है। अंगरेजीमें इसे पोउटर पिजन (Pouter pigeon) कहते हैं।

लोटन—एक प्रकारका क्षुद्रजातीय श्वेतवर्ण गोला है। यह मट्टीमें लोट सकता है। इसीसे इसको लोटन कहा करते हैं। लोटानेके लिये लोटनको दक्षिण हस्तसे ऐसे पकड़ते, जिसमें वृद्धाङ्गुष्ठ द्वारा एक ओर अनामिका तथा कनिष्ठा द्वारा अपर पक्ष दबा रखते हैं। तर्जनी एवं मध्यमा गलदेशके दोनों पार्श्वसे वक्षःस्थलके दोनों पार्श्वपर पहुंच जाती है। फिर दक्षिण एवं वाम लोटनको इसप्रकार हिलाते, जिसमें घाट (गुद्दी)को एकवार दाहने और बायें हिलता पाते हैं। कोई एक मिनट ऐसे ही हिला मट्टीपर छोड़ देनेसे यह लोटा करता है। ४।५ लोट लगाने पर इसे पकड़ उठा देना चाहिये। नतुवा कड़ो मट्टोसे टक्करा मुत्था फट जाना सम्भव है। इसको अंगरेजीमें स्वतन्त्र नाम न रहते भी टम्बलर (Tumbler) कह सकते हैं। जो एकवारगी हो बहुत लोट सकता, उसे कबूतर वाज़ बेदम-लोटन कहता है।

घाउव—(घुग्घू) के अनेक भेद हैं। इसका चञ्चु अधिक क्षुद्र होता है। गलदेशके पालक वक्षके ऊपर उत्तराभिमुखो हो नहीं रहते, दोनों पार्श्वको झुक बीचमें बालोंकी विरुनीसदृश लगते हैं। इसका समस्त गलदेश भर नहीं जाता, वक्षके ऊर्ध्व देशमें अर्ध अङ्गुलि परिमित स्थान वैसा देखाता है। इस जातिका कपोत सुगठित और दृढ़काय होता है। इसको मस्तक पर शिखा रहनेसे 'टरपेट' कहते हैं।

घाखूला—वर्णमें कृष्णको अधिकता लिये धूसर रहता है। पञ्जु रक्तकमलको भांति लाल होते है। चञ्चु क्षुद्र और कृष्णवर्ण लगता है। गलदेश मयूरकी भांति चिक्कण देख पड़ता है। चञ्चुमें फूल नहीं पाते। चक्षुको आवरणी कृष्णवर्ण रहती है।

कवरा—मस्तकसे गलदेश पर्यन्त कृष्णका आधिक्य लिये धूसर रहता है। फिर पृष्ठ और वक्षस्थल पाटल तथा श्वेत विन्दुयुक्त होता है।

मूंगिया—रक्त एवं पीतमिश्रित होता है। फिर चञ्चु रक्तवर्ण रहता और चञ्चुके पार्श्वपर फूल पड़ता है।

दरयायी—देखनेमें खर्वाकार लगता है। इसका चञ्चु क्षुद्र होता है। इस कपोतका गलदेश पर्यन्त मस्तक और पुच्छ एकवर्ण रहता, मध्यस्थल श्वेत पड़ता है। जिसके मध्यस्थलमें गुल निकलता, उसको कबूतरबाज़ गुल-दरयायी कहता है। यह कृष्ण, रक्त और पीतवर्ण होता है।

बुग़दादी—देखनेमें काला होता है। इसका चञ्चु प्रायः डेढ़ इञ्च लम्बा और उसका अग्रभाग टेढ़ा रहता है। बड़े बड़े चञ्चुवोंके पार्श्वमें फूल पड़ जाता है। यह एक हस्त पर्यन्त दीर्घ होता है। किसी किसीके कथनानुसार यह कपोत तुर्कोंके बुग़दाद नगरसे इस देशमें आया है।

उलूक-जातीय—प्रवादानुसार उलूक और कपोतके सङ्गमसे उत्पन्न है। यह देखनेमें श्वेत और खर्वाकार होता है। फिर कोई कोई उलूक सदृश भी देख पड़ता है। यह उलूककी भांति बोलता है।

गिरहवालोंमें नीचे लिखे कबूतर अच्छे होते हैं—

अबलक्का—देखनेमें सफेद लगता है। चञ्चुके पार्श्वपर सरसों-जैसा एक क्षुद्र चिह्न अथवा पक्षपर कलङ्क रहता है। सर्षप-सदृश कृष्ण चिह्नविशिष्ट अबलक्का अधिक चिह्नयुक्त श्रावक उत्कृष्ट जातीय समझा जाता है।

जदा—पीताधिक्य रक्तवर्ण देख पड़ता है। पक्षपर रेखा रहती है। फिर चञ्चुके मध्य दो गोलाकार दाग़ होते हैं।

कागजी—सफेद होता है। इसको चञ्चुमें वर्णविशिष्ट कलङ्क रहनेसे मोतीचूर कहते हैं।

खुतमी—ईषत् पिङ्गल रहता और चञ्चुमें गोलाकार कलङ्क लगता है। इसमें स्रोतातिको संख्या प्रति अल्प आती है।

इस परिवारवाले दोबाज़के पक्षमें अनेक पालक श्वेत होते हैं। जिसके पक्षमें केवल एकमात्र पालक श्वेत आता, वह एकबाज़ कहाता है।

आसमानी—देखनेमें तरल धूसरवर्ण होता है। इसका चञ्चु श्वेत रहता है।

सफ़ेद—ख्याहा, चीना और मामूली तीन श्रेणीमें विभक्त है। ख्याहेकी पूंछ काली या लाल होती है। गलेमें कयी चपटे और आंखमें गोल दाग़ रहते हैं। चीनाके गलेमें कितनी ही लाल छींटें पड़ जाती हैं। आंख रङ्गीन रहती है। फिर उसमें दो गोल दाग़ भी होते हैं। ख्याहा और चीना दोनों देखनेमें बहुत अच्छे लगते हैं। मामूली सफ़ेदके अङ्ग, गलदेश और पुच्छमें कलङ्क रहता है।

भूरा—इस कपोतके गलदेश, पृष्ठ एवं पुच्छमें सफेद और काली छींट रहती है। फिर किसीके केवल अङ्ग और चक्षुमें ही कलङ्क देख पड़ता है।

सब्ज़ा—देखनेमें गाढ़ धूसरवर्ण होता है। पक्षपर दो-दो रेखा रहती हैं। यह कपोत बाज़ी, चक्कर और उड़ानके हिसाबसे भला-बुरा समझा जाता है।

अंगरेज़ खगतत्त्ववेत्तावोंके मतसे कपोत और उलूकका साधारण नाम कोलम्बिडी (Columbidee) है। यह प्रधानतः शस्य खा जीवन धारण करते हैं। फिर इन्हें भूमिपर घूम घूम चुगना अच्छा लगता है। इनमें अधिकांशका वर्ण नील रहता है। वर्ण और स्वभावके अनुसार कपोतकी तीन श्रेणी ठहरायी गयी हैं। १म लफोलेमिनी (Lapholaeminœ) अर्थात् कलगीदार, (Crested-pigeons) २य पालम्बिनी (Palumbinea) अर्थात् वन्य (Wood-pigeons) और ३य कोलम्बिनी (Columbinae) अर्थात् पार्वत्य (Rock-pigeons) कपोत।

प्रथम श्रेणीकी एकमात्र जाति आजकल अष्ट्रेलियामें देख पड़ती है। इस कपोतके मस्तकपर मयूरकी चूड़ाके समान द्विगुण शिखा रहती है। अंगरेज़ी खगतत्त्वमें इसको लाफोलेमस आण्टार्टिकस (Lapholaemus antarticus) अर्थात् दक्षिण-महासागरीय द्विगुण शिखायुक्त कपोत कहते हैं। २य श्रेणीमें एक प्रकार बैंगनी चमक लिये पतले आसमानी रङ्गका कबूतर होता है। यह मध्य-भारतके पूर्वांशसे समुद्रोपकूलपर्यन्त सकल स्थानोंमें मिलता है। आसाम, आराकान और रामरी द्वीपमें भी इसकी संख्या यथेष्ट हैं। हिमालयके मध्यप्रदेशमें इसी जातिका एकप्रकार शिखायुक्त कपोत होता है। इसका रूप अति मनोहर लगता है। दारजिलिङ्गके निकट इस जातिके जो एक प्रकार कपोत रहते, उन्हें नेपाली 'नामपुम्फो' कहते हैं। फिर नीलगिरि पर्वतमें इसी जातिके होनेवाले एकप्रकार कपोत राजकपोत कहाते हैं। यह दैर्घ्यमें पुच्छके पालक समेत प्रायः २५ इञ्च पड़ता है। हिन्दुस्थानके जङ्गली गोले और गिरहबाज़ इस श्रेणीमें आ सकते हैं। ३य श्रेणीके पार्वत्य कपोत कुमायूं प्रदेशके उत्तर, उत्तर-एशिया और जापानसे समस्त युरोपखण्ड पर्यन्त देख पड़ते हैं। इनका वर्ण अधिक नील नहीं रहता, नीलका आधिक्य लिये धूसर लगता है। काश्मीर अञ्चलमें हिमालय पर एकप्रकार श्वेतचञ्चु कपोत होते हैं। यह देखनेमें अतिसुन्दर समझ पड़ते हैं।

इन सकल एवं अन्यान्य जाति वा कपोत भेदके अंगरेजी खगतत्त्वमें लिखे लक्षणालक्षण अतिसूक्ष्म रूपसे बता देना एकप्रकार असम्भव है। कारण उक्त जातीय पक्षी न देख केवल कविकी वर्णनाके सहारे कोई आकृति कल्पना कर लिखना कैसे युक्तिसिद्ध हो सकता है। इसीसे अंगरेजी खगतत्त्वके अनुसार समस्त जातिके लक्षणालक्षण नहीं लिखे।

कपोत अति सुखी प्राणी है। अति सामान्य असुख और विपद्से इसकी समूह क्षति हो जाती है। हिन्दुस्थानमें कपोतको लक्ष्मीका वरपुत्र मानते हैं। अनेकको विश्वास रहता—इसे पालनेसे गृहस्थका मङ्गल बढ़ता, दरिद्रत्व घटता और लक्ष्मीका दर्शन मिलता है। फिर इसके परका वायु मनुष्यके शरीरमें लगनेसे सर्वरोग दूर होता है। इसीसे कितने ही लोग कपोत पालते हैं। वन्य कपोतको गृहमें आ बसने पर कोई नहीं उड़ाता। कलकत्तेमें बङ्गाली और हिन्दुस्थानी महाजन अपने अपने व्यवसायके स्थानमें सयत्न कपोत प्रतिपालन करते हैं।

मनुष्यके असाधारण अध्यवसायसे राजकपोतका एक अपूर्व गुण आविष्कृत हुवा है। यह सिखाने

पर दूर देशसे लिपि ला सकता है। इसका पक्ष अत्यन्त सबल होता है। आश्चर्यका विषय देखाता—इस श्रेणीके कपोतमें जिसका पक्ष जितना सबल आता, वह उतना ही अधिक जी जाता है। यह स्वभावत: दीर्घकाय और बलिष्ठ रहता, किन्तु देखनेमें अति सुन्दर लगता है। राजकपोत हिन्दुस्थानी कौड़ियालेके अन्तर्गत है। आजकल इसके द्वारा लिपि प्रेरणकी बात अधिक सुन नहीं पड़ती। पहले तुर्की राज्यमें उक्त प्रथा बहुत चलती थी। आज भी वहां कहीं कहीं धनियोंके पास दो-एक लिपिवाही कपोत विद्यमान हैं। ११४७ ई०को बुगदादके सम्राट् नूरुद्दीन मुहम्मदने यह प्रथा चलायी थी। फिर १२५८ ई०को बुगदाद नगर मङ्गोलीयोंके हाथ पड़नेसे यह प्रथा रहित हुयी। फ्राङ्को-प्रूसिया युद्धमें भी यह कपोत देख पड़े थे। थोड़े ही दिन हुये कलकत्तेकी बड़ी अदालतमें एक पत्रवाही कपोत आ गया था। अंगरेजीमें इसे कारियर पिजन (Carrier pigeon) अर्थात् चिट्ठी पहुंचानेवाला कबूतर कहते हैं। वर्तमान युरोपीय समरमें इसने कुछ कम काम नहीं किया।

लिपिवाही कपोतको सिखानेमें बहु यत्न, आयास और समय लगता है। शावक परिणत होनेपर एक स्त्री और एक पुरुष निकाल एकत्र रखना और यथेष्ट प्रणय उपजानेको यत्न करना पड़ता है। फिर पत्र लानेके स्थानको इन्हें पिंजड़ेमें डाल भेज देते हैं। इनमें एकको पृथक् कर कहीं ले जानेपर दूसरा भी उड़ उसके पास निश्चय पहुंच जाता है। बहुत पतले और कड़े कागज़पर पत्र लिख किसी पक्षके पालकमें आलपीनसे नत्थी कर देते हैं। आलपीनका सूक्ष्माग्रभाग शरीरको बाहरी ओर रहता है। फिर उड़ा देने पर यह उसी घरमें जा पहुंचता, जिसमें इसका जोड़ा रहता है। वासस्थानके प्रति अत्यन्त ममता बढ़नेसे एकमात्र कपोत पालनेसे भी काम चल सकता है। इसी प्रकार शिक्षित कपोत जहां संवाद लेना आवश्यक आता, वहां किसीके हाथ सौंप भेज दिया जाता है। पूर्वोक्त रूपसे लिपि लगा देनेपर कपोत प्राणपणसे उड़ प्रतिपालकके गृह आ पहुंचता है। इसको सिखानेमें प्रथमत: घर भूल न जाने और बड़ी दूरसे लौट आनेके लिये पाव कोस दूर ले जाकर छोड़ना पड़ता है। पाव कोस अभ्यस्त होनेपर आधकोस, धीरे-धीरे एक, दो, तीन, चार, पांच कोस पर ले जाकर इसे छोड़ते हैं। पीछे ग्रामान्तर और अवशेषको देशान्तर ले जा इसे सिखाना पड़ता है। यह अति शीघ्र सीखता है। शेषको इतनी क्षमता पाता, कि यह समुद्र पार भी आता-जाता है। शिक्षित कपोत एक घण्टेमें २० कोस उड़ सकता है। अधिक दूरसे पत्र मंगानेको इसे उड़ानेके पहले आठ घण्टे अनाहार किसी अन्धकार गृहमें बन्द कर देते हैं। शेषको छोड़ने पर एकबारगी ही अति ऊर्ध्व देशसे उड़ते उड़ते क्षुधाकी ज्वालामें प्रभुके निकट आ पहुंचता है। सुनमें आया, कि समुद्र पार करनेमें कितने ही कपोतोंने पानी पर गिर अपना प्राण गंवाया है। कुहरा पड़ने या पानीकी झड़ लगनेसे यह सहज और स्वल्पायासमें उड़ नहीं सकता। सुतरां ऐसे समय उड़ाने या राहमें ऐसा समय आ जानेसे इसपर अत्यन्त विपद् पड़ती है।

यह प्रथा केवल तुर्कीमें ही न रही, पीछे युरोपके नाना स्थानोंमें चल पड़ी। पहले मिसर, पालेस्ताइन, तुर्की, अरबस्थान और ईरानमें युद्धके समय जय-पराजय, सैन्य आनयन, खाद्य अप्राचुर्य प्रभृतिका संवाद इस कपोत द्वारा सहजमें सम्पन्न होता था। इङ्गलेण्डके विलासी धनी लोग भी उस समय इनके द्वारा प्रणयिनी और बन्धुबान्धवके निकट संवादादि भेजते रहे।

अनुमान लगा सकते—रामायण महाभारतादिके समय भी भारतमें पक्षीके मुखसे संवाद भेजनेकी प्रथा चलती थी। महाभारतमें एक गल्प लिखा है—गृहमें ऋतुमती और कामातुर पत्नी छोड़ चेदि-देशाधिपति महाराज उपरिचर पिताके निदेशसे मृगयाको गये थे। वहां वृक्षकी छायामें श्रान्ति दूर करते-समय पत्नीको स्मरण पर आते ही उनका रेत:

गिर पड़ा। महाराजने उद्विग्न हो उस रेतःको पत्तेके दोनेमें भर और किसी श्येन पक्षीको सौंपकर पत्नीके निकट भेजा था। श्येनने वह दोना मुखमें दवा चेदिराजधानीके अभिमुख जाते जाते किसी दूसरे श्येनसे झगड़ फेंक दिया। इससे मत्स्यके उदरमें व्यासकी जननी मत्स्यगन्धाका जन्म हुवा। उक्त उपाख्यानसे समझ पड़ता—श्येनपक्षी भी शिक्षित होनेसे लिपिवहनका कार्य कर सकता है। एतद्भिन्न नलदमयन्तीमें 'हंसदूत' की कथा मिलती है। दमयन्तीका पोषित हंस आकर नलसे उनके रूपका उत्कर्ष बता गया था। यह उपाख्यान इतने दिन कविकी कल्पना मात्र उपेक्षित होते रहे। किन्तु जब कपोतके इस स्वभावकी बात खुली, तब उक्त पौराणिक उपाख्यानोंके अमूलक होनेकी श्रद्धा घटी।

हम देखते—प्रायः सकल ही देशोंमें लोग कपोतको पवित्र पक्षी समझते हैं। भारतवासी इसे लक्ष्मीका वरपात्र कहते हैं। फिर मक्का नगरमें कपोतेश्वर नामक शिवलिङ्ग और कपोतेशी नाम्नी भवानीकी मूर्ति विद्यमान है। प्राचीन आसिरीया देशके राजा इसकी परम भक्ति करते थे। अरब देशके हयत्काय नील कपोतको महासम्मान मिलता है। मुसलमानोंके धर्मग्रन्थमें इसे 'स्वर्गदूत' कहा है। मुसलमान् बताते—मुहम्मद जब कुछ जानना चाहते, तब स्वर्गसे कपोत आ उनके कानमें सब बात सुनाते थे। मक्केके काबेमें यह अति यत्नसे पाले जाते और मुसलमान् इन्हें काबेकी कुमरी समझ कभी नहीं खाते। पहले अंगरेज भी कपोतको होली बर्ड (Holy bird) अर्थात् पवित्र पक्षी समझ आदर करते थे।

हमारे पुराणमें भी लिखते—शिवि राजाकी दानशीलता देखनेको अग्नि कपोत और इन्द्र श्येनका रूप बना उनके निकट उपस्थित हुये। कपोतने श्येनके भयसे भीत हो शिविके क्रोड़में पड़ आश्रय मांगा था। शिविने शरणागतको बचा और श्येनको तुष्ट करनेके लिये अपने देहका समस्त मांस गंवा महायश पाया। इसीसे कपोतका नाम अग्निमूर्ति पड़ा है।

हमारे आयुर्वेद शास्त्रमें इसके मांसका गुणागुण लिखा है। महर्षि चरकके मतसे कपोतका मांस कषाय, मधुर, शीतल और रक्तपित्तनाशक है। हारीत उसे बृंहण, बलकर, वातपित्तनाशक, तृप्तिकर, शुक्रवर्धक, रुचिकर और मानवको हितकर बताते हैं। फिर भावमिश्रने कपोतके मांसको गुरु, स्निग्ध, रक्तपित्त एवं वायुनाशक, संग्राही, शीतल, त्वक्‌को हितकर और वीर्यवर्धक कहा है। सुश्रुत तथा वाभटके मतमें कृष्णवर्ण कपोतका मांस गुरु, लवणयुक्त, स्वादु और सर्वदोषकर होता है। घु॰घू देखो।

(क्लो॰) सौवीराञ्जन, सुरमा। २ कपोताञ्जन, भूरा सुरमा।

कपोतक (सं॰ क्लो॰) कपोत इव कपोतवर्णवत् कायति प्रकाशते, कपोत-कै-क। १ सौवीराञ्जन, सुरमा। २ कपोताञ्जन, भूरा सुरमा। (पु॰) ३ क्षुद्र-कपोत, छोटा कबूतर। ४ हाथ जोड़नेकी एक रीति।

कपोतकनिषादी (सं॰ पु॰) अश्वका एक वातव्याधि, घोड़ेको होनेवाली वाईकी एक बीमारी। कठिनतासे उठाने पर भी जो घोड़ा भूमिपर गिर पड़ता, वह इस रोगसे पोड़ित ठहरता है। कपोतनिषादी होनेपर अश्व मुश्किलसे जीता है। (जयदत्त)

कपोतकीय (सं॰ त्रि॰) कपोतोऽस्त्यस्य, कपोत-छ-कुक् च। नड़ादीनां कुक् च। पा ४।२।९१। कपोतयुक्त, कबूतरोंसे भरा हुवा।

कपोतकीया (सं॰ स्त्री॰) कपोतयुक्त देश, कबूतरोंसे भरा हुवा मुल्क।

कपोतचक्र (सं॰ पु॰) दावाटचक्र वृक्ष, बेंटुवा।

कपोतचरणा (सं॰ स्त्री॰) कपोतस्य चरणस्वरूपवत् आकारो ऽस्त्यस्याः, कपोत-चरण अर्श आदित्वात् अच्-टाप्। १ नलीनामक गन्धद्रव्य, एक खुशबूदार चीज़। २ चोरिका, खिरनी।

कपोतपर्णी (सं॰ स्त्री॰) एला, इलायचीका पेड़।

कपोतपाक (सं॰ पु॰) कपोतस्य पाकः डिम्बः, ६-तत्। १ कपोतशिशु, कबूतरका बच्चा। २ पार्वत्य जातिभेद, एक पहाड़ी कौम।

कपोतपाद (सं॰ त्रि॰) कपोतस्य पादाविव पादौ यस्य, हस्त्यादित्वात् मान्त्यलोपः। पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः। पा

५।११।१२८। कपोतकी भांति पादयुक्त, जो कबूतरकी तरह पैर रखता हो।

कपोतपालिका (सं० स्त्री०) कपोतान् पालयति, कपोत-पाल-णिच्-ण्वुल् स्वार्थे कन्-टाप् अत इत्वम्। विटङ्क, काबुक, दर्बा, शामियाना, चिड़ियाखाना।

कपोतपाली (सं० स्त्री०) कपोतान् पालयति, कपोत-पाल-णिच्-अण्-ङीप्। कपोतपालिका, काबुक, दर्बा, कबूतरोंकी छतरी।

"विक्रेयया छविमपविपैः कपोतपालीषु निकेतनानाम्।" (माघ)

कपोतपुट (सं० क्ली०) औषधपुटभेद, दवाकी एक तह। जो पुट अष्टसंख्यक वनोपलसे खातमें दिया जाता, वही कपोतपुट कहाता है। (भावप्रकाश)

कपोतपुरीष (सं० पु०) पारावतविष्ठा, कबूतरका बीट। यह व्रणदारण होता है।

कपोतराज (सं० पु०) पारावतप्रभु, कबूतरोंका राजा या सरदार।

कपोतरेतस् (सं० पु०) प्रवरमुनि विशेष।

कपोतरोमा (सं० पु०) १ राजा उशीनरके पुत्र। कपोतरूपी अग्निके वरसे इनका जन्म हुवा था। (भारत, वन १९६ अ०) २ यदुवंशीय कुकुर नृपतिके पौत्र। (हरिवंश ३८ अ०)

कपोतलुब्धकीय (सं० क्ली०) कपोतं लुब्धकञ्च अधिकृत्य कृतो ग्रन्थः, कपोतलुब्धक-छ। महाभारतके अन्तर्गत आख्यायिका विशेष। इसमें कपोत और लुब्धकके गल्पच्छलसे उपदेश दिया है—गृहस्थको प्राण देकर भी अतिथिसत्कार करना चाहिये।

कपोतवङ्का (सं० स्त्री०) काकमाची, केवैया।

कपोतवक्त्रा, कपोतवङ्का देखो।

कपोतवङ्का (सं० स्त्री०) कपोती वञ्चते प्रतार्यते ऽनया, कपोत-वञ्च् करणे घञ्, कुत्वं टाप् च। ब्राह्मी, एक बूटी। ब्राह्मी देखो।

कपोतवर्ण (सं० त्रि०) धूसर, चमकीला भूरा, कबूतरका रङ्ग रखनेवाला।

कपोतवर्णा, कपोतवर्णी देखो।

कपोतवर्णी (सं० स्त्री०) कपोतस्य वर्ण इव वर्णो यस्याः, गौरादित्वात् ङीष्। सूक्ष्मैला, छोटी इलायची।

कपोतवल्ली (सं० स्त्री०) कपोतवर्णा वल्ली, मध्यपदलो०। ब्राह्मी, एक बूटी। युक्तप्रदेशमें यह बम्बा किनारे होती है।

कपोतवाण (सं० स्त्री०) कपोतपाद इव यो वाणस्तद्वत् आकारो यस्य। नलिका नामक गन्धद्रव्य, एक खुशबूदार चीज़।

कपोतविष्ठा (सं० स्त्री०) कपोतपुरीष देखो।

कपोतवृत्ति (सं० त्रि०) कपोतानां येमो वृत्तिरिव वृत्तिर्यस्य बहुव्री०। १ सञ्चयहीन, इकट्ठा न करनेवाला, जो कबूतरकी तरह रोज़ कमाता-खाता हो। (स्त्री०) २ सञ्चयशून्य जीविका, जिस रोज़गारमें कुछ जोड़ न सकें।

कपोतवेगा (सं० स्त्री०) कपोतानां वेगो गतिरिव वेगः द्रुत-वृद्धिर्यस्याः, मध्यपदलो०। ब्राह्मीनामक महाक्षुप, एक झाड़।

कपोतव्रत (सं० त्रि०) १ कपोतकी भांति कष्ट पाते भी मौनधारण करनेवाला, जो सताया जावे भी कबूतरकी तरह बोलता न हो। (पु०) २ कपोतका व्रत, कबूतरका अहद। मौनधारणपूर्वक ताड़नादि सहन करना कपोतव्रत कहाता है।

कपोतसार (सं० क्ली०) कपोतवर्ण इव सारः कृष्ण-वर्णो यस्य, बहुव्री०। स्रोतोऽञ्जन, सुरमा।

कपोतहस्त (सं० क्ली०) उपासनाके समय हाथ जोड़नेकी एक रीति।

कपोतहस्तक, कपोतहस्त देखो।

कपोताक्षनदी—बङ्गालकी एक नदी। चलित भाषामें इसे कपोतक कहते हैं। नदिया जिलेमें चन्द्रपुरके निकट माथाभांगा नदीसे यह निकली है। उत्पत्ति-स्थलसे थोड़ी दूर पूर्वकी ओर चल नदिया और यशोरके मध्य यह दक्षिणाभिमुखी हो गयी है। इस स्थानपर यही नदी नदिया, चौबीसपरगना और यशोर ज़िलेकी सीमाको निर्देश करती है। चौबीसपरगनेके भाग्यानुलीसे ५ मील पूर्व 'मरीकाय गङ्गा'में कपोताक्ष नदी आ गिरी है। गङ्गामें कलकत्तेसे नौका आया-जाया करती हैं। उक्त गङ्गाके सङ्गमस्थानसे २ मील दक्षिण इससे पूर्वमुख यशोर

ज़िलेका 'चांदखाली' नाला निकला है। चांदखाली नालेके मुखसे अचा० २२° १३´ ३० उ० और देशा० ८९° २०´ पू० पर इससे खोल-पटुवा नदी आ मिली है। इन दोनों संयुक्त नदियोंके सङ्गमस्थलसे दक्षिण कहीं इसे पांगासी, कहीं वाड़, कहीं पांगा, कहीं नामगाद और कहीं समुद्र कहते हैं। सागरके निकटवर्ती स्थानपर इसका नाम मालच है। यह अवशेषको मालच नामसे ही वङ्गोपसागरमें प्रविष्ट हुयी है।

यशोर ज़िलेमें इस नदीके तीर सागरदांड़ी नामक एक क्षुद्र ग्राम है। १८२८ ई०को इसी ग्राममें बङ्गालके प्रसिद्ध कवि और मेघनादवध तथा व्रजाङ्गनादि काव्यके प्रणेता माइकेल मधुसूदनने जन्मग्रहण किया था।

कपोताङ्घ्रि (सं० स्त्री०) कपोतस्य अङ्घ्रि इव, उपमि०। नलिका नामक गन्धद्रव्य, एक खुशबूदार चीज़।

कपोताञ्जन (सं० क्लो०) कपोतवर्णं अञ्जनम्, मध्यपदलो०। स्त्रोतोञ्जन, सुरमा।

कपोताण्डोपमफल (सं० क्लो०) निम्बूभेद, किसी क़िस्मका काग़ज़ी नीबू।

कपोताभ (सं० पु०) कपोतस्य आभा इव आभा यस्य, मध्यपदलो०। १ कपोतवर्ण, पीला या मैला भूरा रङ्ग। २ मूषिकविशेष, किसी क़िस्मका चूहा। इसके काटनेसे दष्टस्थान पर ग्रन्थि, पिड़का और शोथकी उत्पत्ति होती है। फिर उससे वायु, पित्त, कफ और रक्त चारों बिगड़ जाते हैं। (सुश्रुत) (त्रि०) ३ कपोतसदृश वर्णविशिष्ट, चमकीला भूरा, जो कबूतरका रङ्ग रखता हो।

कपोतारि (सं० पु०) कपोतानां अरिर्मारकः, ६-तत्। श्येनपक्षी, बाज़ चिड़िया।

कपोतिका (सं० स्त्री०) कपोत स्वार्थे कन्-टाप् अत इत्वम्। १ कपोती, कबूतरी। २ चाणक्यमूल, किसी क़िस्मकी मूली।

कपोती (सं० स्त्री०) कपोत-ङीष्। १ कपोतजातिकी स्त्री, कबूतरी। २ यज्ञीय यूपविशेष। ३ पिड़की, फाख़्ता। (त्रि०) ४ कपोतयुक्त, कबूतर रखनेवाला। ५ कपोतसदृश आकारयुक्त, जो कबूतरकी शक्ल रखता हो। ६ कपोतवर्ण, कबूतरका रङ्ग रखनेवाला।

कपोतेश्वरी (सं० स्त्री०) कपोतेश्वर-ङीष्। पार्वती, दुर्गा।

कपोल (सं० पु०) कपि-ओलच् नलोपः। कपिगडिगण्डिकटिपटिभ्य ओलच्। उण् १।६३। १ मस्तक, मत्था। २ गण्डस्थल, गाल। यह लज्जासे सिकुड़ता, भयसे उभरता, क्रोधसे कांपता, हर्षसे खिलता, स्वाभाविक भावसे सम रहता, कष्टसे शुष्क पड़ता और उत्साहसे पूर्ण लगता है।

कपोलकल्पना (सं० स्त्री०) अमूलक कल्पना, झूठ बात।

कपोलकल्पित (सं० त्रि०) असत्य, झूठ।

कपोलकवि—संस्कृतके एक प्राचीन कवि।

कपोलकाष (सं० पु०) कपोलानां काषः (कषति अनेन इति काषः) कर्षणस्थानम्। १ हस्तिगण्डस्थल, हाथीकी कनपटी। २ वृक्षादिका स्कन्धस्थान, हाथीके अपनी कनपटी रगड़नेका मुकाम, पेड़का तना।

"नीलाद्रिः सुरकरियां कपोलकाषः।" (भारवि)

कपोलगेंदुवा (हिं० पु०) गण्डस्थलोपधान, गलतकिया।

कपोलफलक (सं० पु०) कपोलः फलक इव। प्रशस्त गण्डस्थल, चपटा गाल। सम्भवतः कपोलास्थिको ही कपोलफलक कहते हैं।

कपोलभित्ति (सं० स्त्री०) कपोला भित्तय इव, उपमि०। विस्तृतकपोल, लम्बा-चौड़ा गाल।

कपोलराग (सं० पु०) गण्डस्थलकी रक्तता, गालकी चमक।

कपोली (सं० स्त्री०) जान्वग्रभाग, घुटनेका अगला हिस्सा।

कपोला (हिं० पु०) वैश्यजातिविशेष, बनियोंकी एक क़ौम।

कप्तान (अं० पु०=Captain) १ सेनानी, सिपहसलार। २ पोताध्यक्ष, जहाज़का मुहाफ़िज़। ३ नायक, अगुवा।

कप्तानी (हिं० स्त्री०) १ अध्यक्षता, सरदारी। (वि०) अध्यक्षसम्बन्धीय, सरदारसे सरोकार रखनेवाला।

कप्पर (हिं० पु०) कर्पट, कपड़ा।

कप्फा (हिं० पु०) १ अहिफेनस्वेद, अफीमका अर्क। इसमें वस्त्र आर्द्रकर मदक प्रस्तुत करनेको शुष्क करते हैं। २ चालनी, गिरवाला, साफ़ा। यह एक प्रकारका वस्त्र होता है। किसी पात्रके मुखमें लपेट इसपर अफीमको शुष्क करते हैं।

कप्यास्य (सं० पु०) कपिराख्या यस्य, बहुव्री०। १ वानर, बन्दर। २ सिल्हक, लोबान्।

कप्यास (सं० पु०) कपीनां आसः (आस्यते अनेन इति आसः), ६-तत्। वानरगुद, बन्दरकी पीठके सामनेका हिस्सा।

कफ (सं० पु०) केन जलेन फलति, क-फल-ड। अन्यत्रापि दृश्यते। पा ३।२।१०१। शरीरस्थ धातुविशेष, श्लेष्मा, बलगम। "क" शब्दका अर्थ देह और "फल्" धातुका अर्थ गति है। सुतरां इससे स्पष्ट समझ पड़ता—प्राणियोंके देहमें सर्वत्र गमन करनेवालेको विद्वान् कफ कहता है। यह शरीरस्थ सौम्य (जलीय, स्निग्ध-गुणविशिष्ट) धातु है। हिन्दीमें भी इसे प्रायः कफ ही कहते हैं। इसका संस्कृत पर्याय—क्लेदन, सङ्घात, सौम्यधातु, श्लेष्मा, घन और बली है। कफ देहको धारण करनेसे 'धातु', समस्त देहको दूषित करनेसे 'दोष' और क्लेद द्वारा सर्वशरीरको मलिन करनेसे 'मल' कहलाता है। यह नाम, स्थान और कार्यभेदसे पांच भागमें विभक्त है—

> "कफस्यैतानि नामानि क्लेदनश्चावलम्बनः।
> रसनः स्नेहनश्चापि श्लेष्मः स्थानभेदतः॥" (सुश्रुत)

१ क्लेदन, २ अवलम्बन, ३ रसन, ४ स्नेहन और ५ श्लेषण कफके पांच नाम हैं।

> "आमाशयेऽथ हृदये कण्ठे शिरसि सन्धिषु।
> स्थानेष्वेषु मनुष्याणां श्लेष्मा तिष्ठत्यनुक्रमात्॥" (सुखबोध)

१ आमाशय, २ हृदय, ३ कण्ठ, ४ मस्तक, और सन्धिस्थान—शरीरके पांच स्थानोंमें श्लेष्मा प्रधानतः रहता है। क्लेदन नामक श्लेष्माका आमाशय, अवलम्बनका हृदय, रसनका कण्ठ, स्नेहनका मस्तक और श्लेषणका आश्रयस्थल सन्धिस्थान है। सर्वशरीरव्यापी होते भी जब यह अविकृत अवस्थामें रहता, तब केवलमात्र पूर्वोक्त आमाशयादि पञ्चस्थानमें ही ठहरता है। श्लेष्माके जो उल्लिखित पञ्चविध कार्य क्लेदनादि पृथक् पृथक् पड़ते, उन्हें भी इस स्थलपर लिखते हैं—

> "क्लेदनः क्लेदयत्यन्नमात्मशक्त्याऽपराण्यपि।
> अनुगृह्णाति च श्लेष्मस्थानान्युदककर्मणा॥
> रसयुक्तात्मवीर्येण हृदयस्यावलम्बनम्।
> त्रिकसन्धारणञ्चापि विदधात्यवलम्बनः।
> रसनावस्थितस्तु च रसनो रसबोधनात्।
> स्नेहनः स्नेहदानेन समस्तेन्द्रियतर्पणः।
> श्लेषणः सर्वसन्धीनां श्लेषं विदधात्यसौ॥" (सुश्रुत)

१म—क्लेदन नामक श्लेष्मा अपनी शक्तिसे भुक्त द्रव्यको भिगाता और पित्ताकृति सकल आहारीय वस्तुको गलाता है। फिर यह भिन्न (गला हुवा) अन्न देहके अन्यान्य सकल स्थानोंमें पहुंच हृदयावलम्बन, त्रिक (मेरुदण्डके निम्न एवं उपरिस्थ सन्धिस्थान अर्थात् गुह्यके सन्निकट शेषास्थि तथा घाट), सन्धारण, रसग्रहण एवं इन्द्रियसमूहको शैत्यगुणसे सन्तृप्तिकरण तथा सन्धिसंश्लेषण प्रभृति उदककर्म द्वारा आनुकूल्य पहुंचाता है। २य—वक्षःस्थलस्थित अवलम्बन नामक श्लेष्मा रसके सहयोग स्वीय शक्ति द्वारा हृदयको अवलम्बन और त्रिकदेशको धारण करता है। ३य—रसन नामक रसनास्थ कफ आहारीय वस्तुसमूहके रसका ज्ञान उपजाता है। ४र्थ—स्नेहन नामक श्लेष्मा स्नेहपदार्थ प्रदानपूर्वक समस्त इन्द्रियको तृप्ति लाता है। ५म—श्लेषण नामक कफ सन्धिसमूहका संश्लेष (मेल) विधान करता है। वाभटके मतसे—

> "कफधामाश्च शेषाणां यत् करोत्यवलम्बनम्।
> अतोऽवलम्बकः श्लेष्मा यस्त्वामाशयसंस्थितः।
> क्लेदकः सोऽन्नसङ्घातक्लेदनात् रसबोधनात्।
> बोधको रसनास्थायी शिरःसंस्थोऽक्षितर्पणात्।
> तर्पकः सन्धिसंश्लेषात् श्लेषकः सन्धिषु स्थितः।" (वाभट)

अवलम्बक, क्लेदक, श्लेषक, बोधक एवं तर्पक—पांच नामसे कफ ५ भागमें विभक्त है। अवलम्बक श्लेष्मा पूर्वोक्त अवलम्बन कफोक्त क्रियाशील एवं स्थानगत, क्लेदक श्लेष्मा क्लेदनकी भांति कार्यकारी तथा स्थानगत, श्लेषक पूर्वोक्त श्लेषणके सदृश क्रिया-

विशिष्ट एवं स्थानगत, बोधक रसनकी भांति कार्यकारी तथा स्थानगत और तर्पकश्लेष्मा सुश्रुतोक्त श्लेष्मा इनके सदृश क्रियाकारी एवं स्थानाश्रयी है।

"श्लेष्मा श्वेतो गुरुः स्निग्धः पिच्छिलः शीत एव च।
मधुरस्त्वविदग्धः स्याद्विदग्धो लवणः स्मृतः॥" (सुश्रुत)

श्लेष्मा श्वेत, गुरु (भारी), स्निग्ध, पिच्छिल, शीतल, मधुर रसात्मक और बिगड़नेसे लवण रसविशिष्ट होता है।

कफके प्रकोपका कारण और काल—गुरुपाकी, मधुररसविशिष्ट, अत्यन्त स्निग्ध, द्रव (तरल) तथा पिष्टक एवं घृतसंयुक्त द्रव्य, दुग्ध तथा मधुररस खाने, दिनको सो जाने, और बाल्यकाल, शीतकाल, वसन्तकाल, रात्रिका प्रथमकाल, प्रभात तथा भोजनका अन्त समय आनेसे कफ प्रकुपित होता है। कफ उभरनेसे स्तिमितभाव, मधुररस, शीतता, शौक्ल्य, प्रसेक, मलप्राचुर्य, स्थिरता, लवणाक्तता, कण्डू, आलस्य, चिरकारिता, कठिनता, शोथ, अरुचि, स्निग्धता, तन्द्रा, तृप्ति, उपदेह, कास और गुरुता—विंशतिप्रकार लक्षण देख पड़ता है। कफज रोगमें रुक्ष द्रव्य, क्षार द्रव्य, कषाय द्रव्य, तिक्त द्रव्य एवं कटु द्रव्यका सेवन, व्यायाम, निष्ठीवन (खखारकर थूकना), धूमपान, उष्ण शिरोविरेचक द्रव्य (नस्यादि)का व्यवहार, वमनकारक द्रव्यका प्रयोग, स्वेद (गर्म जलसे अभिषिक्त फलालेन आदि वस्त्रद्वारा सेकप्रदान), उपवास, मैथुन, पथपर्यटन, युद्ध, जागरण, जलक्रीड़ा और पदादि द्वारा आघात लगाना उपकारी है। ऐसे ही आहार विहार और औषधादिसे प्रकुपित कफ दब जाता है। उक्त रुक्ष द्रव्यादिको कफसंशमनवर्ग कहते हैं।

जलक्रीड़ा (सन्तरण) और शीतल क्रिया द्वारा किस प्रकार कफ प्रशमित होता है—प्रश्नके उत्तरमें कहा जाता, कि जलक्रीड़ाजनित शीतलतासे शारीरिक ताप चलने नहीं पाता। सुतरां चतुर्दिक् कर्दम लेपन कर देनेसे पाकाग्नि प्रखर पड़ने पर सत्वर पाकक्रिया सम्पन्न होनेकी भांति शारीरिक अग्नि जलक्रीड़ादिसे अत्यन्त प्रखर हो कफको सुखाता है। कफ बढ़नेसे अग्निमान्द्य, नासिकादिसे कफस्राव एवं आलस्य आता, देह गुरु तथा श्वेतवर्ण देखाता, अङ्गादि शीतल एवं शिथिल पड़ जाता और श्वास, कास तथा निद्राका आधिक्य सताता है। फिर कफ घटनेसे भ्रान्ति लगती, हृदयादि श्लेष्माशयकी शून्यता झलकती, द्रवत्वकी अल्पता पड़ती और शारीरिक सन्धिसमूहकी शिथिलता बढ़ती है। जिस व्यक्तिके शरीरमें कफ अधिक परिमाणसे रहता, वह कफके गुणक्रियादि विशिष्ट हो कफात्मक प्रकृतिको पहुंचता है। ऐसे व्यक्तिको कफप्रकृतिक कहते हैं। श्लेष्मप्रकृतिका लक्षण—गम्भीर बुद्धि, श्यामवर्ण एवं स्निग्ध केश, क्षमाशीलता, वीर्यवत्ता, स्थूलदेह, समधिक बलवत्ता और निद्रावस्थामें स्वप्नयोगसे जलाशय-दर्शन है। फिर श्लेष्मप्रकृति बिगड़नेसे स्नेह, बन्ध (बद्धता), स्थिरता, गौरव, वृषकी भांति बल, क्षमा, धृति और अलोभ लक्षित होता है। (सुखबोध)

सुश्रुतके मतसे श्लेष्मप्रकृतिका लक्षण—नीलवर्ण केश, सौभाग्यवत्ता, मेघ एवं मृदङ्गकी भांति स्वर, निद्रावस्थामें स्वप्नयोगसे प्रफुल्ल पद्म कुमुदादि विविध पुष्प, सन्तरणशील हंस चक्रवाकादि जलक्रीड़क पक्षी तथा हरित् मनोहर सरोवरादि जलाशय-दर्शन, रक्तान्तनेत्र, सुविभक्तगात्र, समावयव, स्निग्धदेह, सत्त्वगुणयुक्त क्लेशसहिष्णुता और गुरुको मान्यकारिता है।

मानवके शरीरमें दो प्रकारका कफ होता है—साम और निराम। आम (अपक्व)-रस-मिश्रित रहनेवाले कफका नाम साम है। फिर अपक्व रस-विहीन कफ निराम कहाता है। निराम कफ अविकृत और निर्दोष होता है। उससे किसीप्रकार अनिष्ट आनेकी सम्भावना नहीं। किन्तु साम कफ विकृत और दूषित है। वह नानाप्रकार अहित उत्पन्न करता है। इसीसे उसके सकल लक्षण लिखे गये हैं—

"आलस्यतन्द्राहृदयाविशुद्धिदोषाप्रवृत्त्याविलमूत्रतामिः।
कुर्वन्नवादविशुद्धताभिरामान्वितं व्याधिमुदाहरन्ति॥" (भावप्रकाश)

आलस्य, तन्द्रा, हृदयकी अविशुद्धता (वक्षःस्थलमें कफकर्दमका बाधाबोध), दोषकी अप्रवृत्ति (स्राव न

होना), मूत्रकी आविलता (मैलापन), उदरमें भारबोध, अरुचि और निद्रालुता—साम कफका लक्षण है।

प्रथम ही प्रकृति प्रत्यय निर्देशक व्युत्पत्ति द्वारा प्रतिपन्न किया—कफ सर्वशरीरमें चलता-फिरता है। फिर यह भी कहा जा चुका—अविकृत अवस्थापर हृदय, कण्ठ, आमाशय मस्तक एवं सन्धिस्थलमें रहता और विकृत होनेपर कफ स्वस्थान छोड़ शरीरके सर्व-स्थानमें पहुंच नानाप्रकार रोग उत्पादन करता है। किन्तु यह सर्वत्र देहमें प्रसरणशील रहते भी वायुके साहाय्य व्यतीत हृदयादि स्वस्थानसे अन्यत्र कैसे जा सकता है। यथा—

"पित्तं पङ्गु कफः पङ्गुः पङ्गवो मलधातवः।
वायुना यत्र नीयन्ते तत्र वर्षन्ति मेघवत्॥" (शार्ङ्गधर)

पित्त, कफ, विष्ठामूत्रादि मल और रस रक्तादि धातु समस्त पङ्गुवत् अचल हैं। वह स्वयं शरीरमें कदाच चलफिर नहीं सकते। फिर वायुकर्तृक जिस स्थानमें पहुंचाये जाते, वहीं उक्त धातु मेघ वर्षणकी भांति अपनी क्रिया देखाते हैं। अर्थात् कफ बिगड़ने, उभरने या बढ़ने पर वायुद्वारा शरीरके नाना स्थानोंमें पहुंच नानाप्रकार व्याधि उत्पादन करता है। जैसे—वक्षःस्थ फुसफुसमें श्वास तथा कासरोग, मस्तकमें शिरःपीड़ा और नासिकामें आ कफ प्रतिश्याय रोग लगा देता है।

पथ्य—वमन, उपवास, नेत्राञ्जन, मैथुन, शरीर-मार्जन, उष्ण जलादिके स्वेद, चिन्ता, जागरण, परिश्रम, अत्यधिक पथपर्यटन, तृष्णाके वेगधारण, गण्डूषधारण, प्रतिसारण (दन्त, जिह्वा एवं मुखमें घर्षण द्रव्यके प्रयोग), शिरोविरेचक नस्य, हस्ती अश्वादि यानारोहण, धूमपान, शरीराच्छादन, युद्ध, मनोदुःख उत्पादन, रूक्षद्रव्य, उष्णद्रव्य, पुरातन तथा षष्टिक धान्य, शिम्बिक, तृणधान्य, चणक, मुद्ग, कुलत्थ, माष, यव, क्षार, सर्षपतैल, उष्णजल, धन्वदेशज मांस, राजसर्षप, वेताग्र, पटोल, कारवेल्ल, वार्ताकी, उडुम्बर, कर्कोटक, मोचा, रसुन, निम्ब, आम मूलक, कटुकी, आड़हर, मधु, ताम्बूल, पुरातन मद्य, त्रिकटु, त्रिफला, गोमूत्र, लाई, कष्टतण्डुलजलपान, ईषदुष्ण ग्टह, कांस्य, लौह, मुक्ता, कर्पूररसयुक्त तिक्तकर एवं कषाय द्रव्य और अधोगमनके आचरण, पान वा आहारादिसे कफ नष्ट होता है।

अपथ्य—स्नेहप्रयोग, तैलाभ्यङ्ग, उपवेशन, दिवा-निद्रा, स्नान, नतन जल, नूतन तण्डुल, मटर, मत्स्य, मांस, गुड़ादि मिष्टद्रव्य, छेने या मावे, दधि प्रभृति दुग्धविकृत द्रव्य, कमरख, पोय, कटहल, धान, खजूर, दुग्ध, अनुलेपन, नारिकेल, मिष्टान्न, मधुरद्रव्य, अम्लद्रव्य, गुरुद्रव्य और हिम—सकलका आचरण, आहार वा विहारादि कफके लिये अपथ्य ठहरता अर्थात् कफ अनिष्ट उत्पन्न करता, उभरता तथा बढ़ता है।

कफ़ (अ० पु०=Cuff) १ पिप्पलाञ्चल, आस्तीनकी चुनटदार सञ्जाफ़। यह एक दोहरी पट्टी रहती, जो कुरते या कमीजकी बांहमें हाथके पास लगती है। इसमें कोई दो, कोई तीन और कोई चार बटन तक टंकाता है। चूड़ीदार कुरतेमें इसको प्रायः रखते हैं। कमीजमें कफ जरूर रहता है। २ मुष्टि प्रहार, धौल, थप्पड़, तमाचा। ३ यन्त्रविशेष, एक औजार, नाल। यह लोहेका होता है। इसको मार-मार चमकसे आग निकाली जाती है।

कफ (फा० पु०) फेन, झाग।

कफकर (सं० त्रि०) कफं करोति, कफ-कृ-अच्। १ कफवृद्धिकारक, बलगम बढ़ानेवाला। २ श्लेष्मा उत्पादन करनेवाला, जो जुकाम लाता हो। महर्षि सुश्रुतके मतसे काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, मेदा, महामेदा, छिन्नरुहा, कर्कटशृङ्गी, तुगाक्षीरी, पद्मक, प्रपौण्डरीक, ऋद्धि, वृद्धि, मृद्विका, जीवन्ती और मधुक—काकोल्यादि-गणोक्त सकल द्रव्य कफकर हैं।

अन्यान्य द्रव्य कफ शब्दमें देखो।

क़फ़कूर्चिका (सं० स्त्री०) कफं कूर्चति विकृतं करोति, कफ-कूर्च-ण्वुल्-टाप् अत इत्वम् च। लाला, लार।

कफकेतु (सं० पु०) कफरोगाधिकारका औषध, बलगमकी एक दवा। टङ्कण, मागधी, शङ्ख एवं

वत्सनाभ बराबर बराबर ले आद्रकके खरसमें तीन भावना देनेसे यह रस बनता है। मात्रा गुञ्जामात्र है। (भैषज्यरत्नावली)

कफक्षय (सं० पु०) कफानां क्षयः, ६-तत्। शरीरस्थ स्वाभाविक कफका नाश, जिस्मके कुदरती बलग़मका बिगाड़।

कफगण्ड (सं० पु०) गलरोग, गलेकी एक बीमारी। यह स्थिर, सवर्ण, गुरु, उग्रकण्डू, शीत, महान्‌कफात्मक, पारुष्ययुक्त और चिरवृद्धिपाक होता है। फिर इस रोगके प्रभावसे रोगीका मुख वैरस्य पकड़ता और तालु तथा गल सूखने लगता है। (माधवनिदान)

कफगीर (फ़ा० पु०) कब्बा, करछी, डोई। इसका अग्रभाग करतलकी भांति चपटा रहता और दण्ड लम्बा लगता है। कफगीरसे दाल, भात, खिचड़ी, घी वग़ैरहका मैल उतारते और पूरी-कचौरी भी निकालते हैं। हिन्दुस्थानमें इसे प्रायः कलछुल कहते हैं।

कफगुल्म (सं० पु०) श्लेष्मज गुल्म, बलग़मके बिगाड़से पेटमें पड़नेवाली गिलटी या गांठ। इसका रूप— स्तैमित्य, शीतज्वर, गात्रसाद, हृल्लास, कास, अरुचि, गौरव, शैत्य और कठिनोन्नतत्व है। (चरक)

कफघ्न (सं० त्रि०) कफं तद्विकारञ्च हन्ति, कफ-हन्-टक्। श्लेष्मनाशक वा कफजनित पीड़ानाशक, बलग़म या बलग़मकी बीमारी दूर करनेवाला। सुश्रुतोक्त आरग्वधादि, वरुणादि, सालसारादि, लोध्रादि, अर्कादि, सुरसादि, पिप्पल्यादि, एलादि, वृहत्यादि, पटोलादि, ऊषकादि तथा मुस्तादि गणोक्त और त्रिकटु, त्रिफला, पञ्चमूल एवं दशमूल प्रभृति सकल द्रव्य कफनाशक हैं।

अन्यान्य कफघ्न द्रव्य कफ शब्दमें देखो।

कफघ्नी (सं० स्त्री०) कफघ्न-ङीप्। १ शुकनासा, केंवाच। २ वृषाभेद, एक पेड़।

कफज (सं० त्रि०) कफाज्जायते, कफ-जन-ड। श्लेष्मासे उत्पन्न, बलग़मसे पैदा।

कफज्वर (सं० पु०) कफनिमित्तो ज्वरः, मध्यपदलो०। श्लेष्मजन्य ज्वर, बलग़मी बुख़ार। ज्वर देखो।

कफणि (सं० पु०-स्त्री०) केन सुखेन फणति अनायासेन सङ्कोच-विकोचनत्वं प्राप्नोति, क-फण्-इन्; केन अनायासेन स्फुरति, क-स्फुर-इन् पृषोदरादित्वात् साधुः। कफोणि, मिरफ़क़, कोहनी, बांहके बीचकी गांठ।

कफणी (सं० स्त्री०) कफणि देखो।

कफद (सं० त्रि०) कफं ददाति, कफ-दा-ड। श्लेष्मकारक, बलग़म पैदा करनेवाला।

कफ़न (अ० पु०) शवाच्छादनवस्त्र, मुर्देपर डाला जानेवाला कपड़ा।

कफ़नखसोट (हिं० वि०) १ शवके आच्छादनका वस्त्र नोच लेनेवाला, जो मुर्देपर डाला जानेवाला कपड़ा फाड़ लेता हो। पहले डोम श्मशानमें मुर्देका कपड़ा उतार आपसमें फाड़ लेते थे। २ कृपण, कञ्जूस। ३ दरिद्रका धन हरण करनेवाला, जो ग़रीबका माल उड़ा लेता हो।

कफ़नखसोटी (हिं० स्त्री०) १ शवाच्छादनवस्त्रकी चीरफाड़, मुर्देपर डाले जानेवाले कपड़ेकी नोचखसोट। यह डोमोंका कर है। २ वृत्तिविशेष, रुपया कमानेकी एक चाल। अयोग्य रीतिसे दरिद्रका धनहरण करना कफ़नखसोटी कहाता है। ३ कृपणता, कञ्जूसी।

कफ़नचोर (हिं० पु०) १ प्रधान तस्कर, बड़ा चोर। जो गड़े मुर्देको उखाड़ कफ़न चुराता, वही कफ़नचोर कहाता है। २ दुष्ट, बदमाश, उचक्का। क्षुद्र द्रव्य चोराने और किसीको देखमें न आनेवालेका नाम कफ़नचोर है।

कफनाड़ी (सं० स्त्री०) दन्तमूलगत रोगविशेष, दांतोंकी जड़में होनेवाली एक बीमारी।

कफ़नाना (हिं० क्रि०) शवको वस्त्रसे आच्छादन करना, मुर्देको कपड़ा ओढ़ाना।

कफ़नाशन (सं० त्रि०) कफं नाशयति, कफ-नश-णिच्-ल्युट्। कफको नाश करनेवाला, जो बलग़म मिटाता हो।

कफ़नी (हिं० स्त्री०) १ शवके कण्ठमें पड़नेवाला वस्त्र, जो कपड़ा मुर्देके गलेमें डाला जाता हो।

२ परिच्छदविशेष, पहननेका एक कपड़ा। इसे साधु धारण करते हैं। कफनी सिलाई नहीं जाता। इसमें शिर निकालनेको एक छिद्र रहता है। इसका दूसरा नाम चोलना है।

कफप्रकृति (सं० स्त्री०) स्थिरचित्तता स्निग्धकेशत्व आदि, दिलका ठहराव और बालोंका चिकनापन वगैरह।

कफप्राय (सं० त्रि०) कफः प्रायः बाहुल्येन यत्र, बहुव्री०। कफबहुल, जो बहुत बलग़म रखता हो।

कफमन्दिर (सं० पु०-क्ली०) मत्स्यभेद, माड़, झाग।

कफरुहा (सं० स्त्री०) नागरमुस्ता, नागरमोथा।

कफरोग (सं० पु०) कफजन्य रोगमात्र, बलग़मसे पैदा होनेवाली कोई बीमारी।

कफरोहिणी (सं० स्त्री०) कफजन्य गलरोगविशेष, बलग़मसे गलेमें होनेवाली एक बीमारी। गलरोहिणी देखो। यह स्रोतनिरोधन, मन्दपाक, स्थिराङ्कुर और कफसम्भव होती है। (माधवनिदान)

कफल (सं० त्रि०) कफः साध्यत्वेन अस्त्यस्य, कफ-लच्। कफविशिष्ट, बलग़मी।

कफवर्धक (सं० त्रि०) कफं वर्धयति, कफ-वृध-णिच्-ण्वुल्। श्लेष्माकी वृद्धि करनेवाला, जो बलग़म बढ़ाता हो।

कफवर्धन (सं० पु०) कफं कफजनितं विकारं वा वर्धयति, कफ-वृध-णिच्-ल्यु। १ पिण्डीतगर वृक्ष, किसी किस्मके तगरका पेड़। (त्रि०) २ कफवर्धक, बलग़म बढ़ानेवाला।

कफविरोधि (सं० क्ली०) कफं विशेषेण रुणद्धि, कफ-वि-रुध-णिनि। १ मरिच, मिर्च। (त्रि०) २ श्लेष्मरोधक, बलग़म रोकनेवाला।

कफविरोधी (सं० त्रि०) श्लेष्मरोधक, बलग़म रोकनेवाला।

क़फ़स (अ० पु०) १ पिञ्जर, पिंजरा। २ बन्दीगृह, क़ैदखाना। ३ कटहरा। ४ सङ्कुचित स्थान, तङ्ग जगह। जिसमें वायु और प्रकाश नहीं रहता, उस स्थानका नाम क़फ़स पड़ता है।

कफशमनवर्ग (सं० पु०) कफशान्तिकर द्रव्यगण, बलग़म ठण्ढा करनेवाली चीज़ोंका जख़ीरा। कफ देखो।

कफसम्भव (सं० त्रि०) कफात् सम्भवः उत्पत्तिर्यस्य, ५-तत्। कफजात, बलग़मसे निकलनेवाला।

कफस्थान (सं० क्ली०) कफाशय, बलग़मका मुक़ाम। आमाशय, वक्षःस्थल, कण्ठ, शिर और सन्धिको कफस्थान कहते हैं।

कफस्राव (सं० पु०) नेत्रसन्धिगत रोगविशेष, आंखके जोड़में पैदा होनेवाली एक बीमारी। इसमें नेत्रका सन्धि पकता और उससे श्वेत, सान्द्र एवं पिच्छिल पूय पड़ता है। (माधवनिदान)

कफहर (सं० त्रि०) कफं हरति नाशयति, कफ-हृ-अच्। कफनाशक, बलग़म दूर करनेवाला।

कफहृत् (सं० स्त्री०) कफं हरति, कफ-हृ-क्विप्। श्लेष्मनाशक, बलग़म दूर करनेवाला।

कफातिसार (सं० पु०) कफजन्य अतिसार, बलग़मी दस्त। इसमें प्रथम लङ्घन और पाचन हितकर है। फिर आमातिसारघ्न दीपनगण प्रयोग करना चाहिये। कफातिसारमें मनुष्य शुक्ल, सान्द्र, सकफ, श्लेष्मयुक्त, पूतिगन्ध, शीत और हृष्टरोमा हो जाता है। (माधवनिदान)

कफात्मक (सं० त्रि०) कफ आत्मा यस्य, कफात्मन्-कन्। १ कफमय, बलग़मी। २ कफरूपी, बलग़मकी सूरत रखनेवाला।

कफान्तक (सं० पु०) कफस्य अन्तको नाशकः। बर्बूरक वृक्ष, बबूलका पेड़।

क़फ़ाबन्द (हिं० पु०) कण्ठके पश्चाद्भागको फांस कर किया जानेवाला एक पेंच। कुश्तीमें जब एक पहलवान् नीचे आ जाता, तब ऊपरवाला दाहनी ओर बैठ अपना वाम हस्त उसकी कटिमें घुसेड़ दक्षिण हस्त तथा पादसे उसका कण्ठ दबाता और वामहस्तसे लंगोट पकड़ उसे उलटाता है। इसीका नाम क़फ़ाबन्द है। फ़ारसीमें 'क़फ़ा' कण्ठके पश्चाद्भागको कहते हैं।

कफारि (सं० पु०) कफस्य अरिः शत्रुः, ६-तत्। १ आर्द्रक, अदरक। २ शुण्ठी, सोंठ।

क़फ़ालत (अ० पु०) बन्धकता, ज़मानत। प्रतिभू-पत्रको क़फ़ालतनामा कहते हैं।

कफाशय (सं० पु०) कफस्थान, बलग़मका मुक़ाम।

कफिनी (सं० स्त्री०) कफिन्-ङीप्। १ हस्तिनी, हथिनी। २ कफप्रधान स्त्री, बलगमी औरत। ३ नदी-विशेष, एक दरया।

कफिन्ना (हिं० पु०) काष्ठ वा लोहका कोण। यह जहाज़के तिरछे शहतीर जोड़नेमें लगता है। कफिन्ना शब्द अंगरेजी 'कफ़'से बना है।

कफी (सं० त्रि०) कफो ऽस्त्यस्य, कफ-इनि। इन्द्वाव-वापगर्ह्यात् प्राणिस्थादिनिः। पा ५।२।१२८। १ श्लेष्मयुक्त, बलगमी। (पु०) २ गज, हाथी।

कफ़ीना (हिं० पु०) जहाज़की फ़र्शका तख़्ता। यह अंगरेजी 'कफ़' शब्दसे बना है।

कफील (अ० पु०) बन्धक, ज़ामिन, ज़मानत देनेवाला।

कफेलु (सं० त्रि०) कफं लाति आदत्ते, कफ-ला-कु निपातनात् एत्वम्। अन्दूदृन्भूफजम्बूकम्बू कफेलूकर्कन्धूदिधिषु। उण् १।८५। १ कफयुक्त, बलगमी। २ श्लेष्मातकवृक्ष, लसोड़ेका पेड़।

कफोणि (सं० पु०-स्त्री०) केन सुखेन फणति स्फुरति वा, क-फण-स्फुर वा इन्, पृषोदरादित्वात् साधुः। कूर्पर, कोहनी।

कफोणिघात (सं० पु०) कूर्परप्रहार, कोहनीकी मार।

कफोत्कट (सं० त्रि०) कफप्रधान, बलगमी, जो बड़ा बलगम रखता हो।

कफोत्क्लिष्ट (सं० पु०) नेत्ररोगभेद, आंखकी एक बीमारी। यह रोग होनेसे मानव कफके कारण स्निग्ध, श्वेत, सलिलप्लावित और परिलाह्य रूप देखता है। (माधवनिदान)

कफोत्क्लेश (सं० पु०) कफके वमनकी उपस्थिति, बलगम निकालनेके लिये आमादगी।

कफोदर (सं० क्ली०) कफजन्य उदररोग, बलगमसे होनेवाली पेटकी एक बीमारी। इससे उदर शीतल, गुरु, स्थिर, महच्छोफयुत, सस्राद, स्निग्ध एवं शुक्ल शिरावनद्ध रहता और आनन तथा नखका वर्ण श्वेत लगता है। (माधवनिदान)

कफोड़ (दे० पु०) कफोणि वेदे कफोड़ादेशः पृषो-दरादित्वात्। कफोणि, कोहनी।

कब (हिं० क्रि०-वि०) कदा, किस समय।

कबड़िया (हिं० पु०) जातिविशेष, एक कौम। यह लोग मुसलमान् होते और अवधमें तरकारी बोते हैं। फिर अपनी बोई तरकारी बेंचना भी इन्हींको काम है।

कबड्डी (हिं० स्त्री०) १ बालकोंकी एक क्रीड़ा, लड़कोंका एक खेल। इसमें बालक पहले अपने दो दल बनाते हैं। फिर मैदानमें एक लकीर खींची जाती, जो पाला या डांड़मेड़ कहाती है। इसको एक ओर एक दल और दूसरी ओर दूसरा दल रहता है। फिर क्रीड़ा आरम्भ होती है। किसी दलका एक बालक 'कबड्डी-कबड्डी' कहते पालेकी दूसरी ओर जाता और विपक्ष दलके किसी बालकको छूनेकी चेष्टा लगाता है। यदि वह किसी बालकको छूकर और आता और विपक्ष दलके किसी बालकको छूनेकी चेष्टा लगाता है। यदि वह किसी बालकको छूकर लौट आता और विपक्ष दलकी ओर पकड़ा नहीं जाता, तो जिस बालकको वह छू आता, वह मरा कहाता अर्थात् खेलसे निकाल दिया जाता है। किन्तु छूनेवाला बालक छूकर लौट न सकने और विपक्ष दलके बालकोंके पकड़में पड़नेसे स्वयं मर जाता अर्थात् हार खाता है। इसीप्रकार एक ओरके जब सब बालक मर जाते, तब दूसरी ओरके बालक पूर्णरूपसे विजय पाते हैं। फिर दूसरी ओरके बालक छूने आते और पूर्वोक्त रीतिसे मारते या मर जाते हैं। इस खेलसे बालकोंमें दौड़ने-झपटनेकी शक्ति आती और उनकी बुद्धि तथा दृष्टि तीव्र पड़ जाती है। २ कांपा, कम्पा।

कबन्ध (सं० क्ली०) कस्य प्राणवायोः बन्ध आश्रयः, ६-तत्। १ जल, पानी। (पु०) कं जलं बध्नाति, क-बन्ध-अण्। २ उदर, पेट। ३ राहु। ४ धूम-केतु। इनकी संख्या ९८ है। आकृति कबन्धसे मिलती है। कबन्ध कालके पुत्र हैं। इनका उदय दारुण फल देता है। ५ मस्तकहीन जीवित एवं क्रियायुक्त कलेवर, सरकटा जीता जागता धड़। आल्हामें लिखते, कि कबन्ध घोररूपसे तलवार करते थे। ६ आथर्व विशेष। ७ मुनिविशेष। ८ मेघ, बादल। ९ गन्धर्वविशेष। १० दीर्घगोलाकार काष्ठ

पात्र, लकड़ीका बड़ा पोपा। ११ राक्षसविशेष। रामायणमें लिखा—दनु नामक किसी दानवको उग्र-तपस्या द्वारा तुष्ट करनेपर ब्रह्मासे दीर्घ जीवनका वर मिला था। वरके प्रभावसे अत्यन्त गर्वित हो किसी समय वह इन्द्रसे युद्ध करनेको जा पहुंचा। इन्द्रने वज्राघातसे उसका हस्त और मस्तक शरीरमें घुसेड़ दिया था। किन्तु ब्रह्मवरके कारण उससे भी प्राण-वियोग न हुवा। इसीप्रकार विक्षत शरीरमें दिन दिन क्लिष्ट हो दनु वारम्वार इन्द्रसे अनुग्रह प्रार्थना करने लगा। फिर इन्द्रने भी उसके प्रति सदय हो योजन-परिमित हस्तद्वय और वक्षःस्थलके उपरिभागमें एक वदन बना दिया था। दनु उसी मूर्तिसे वन-वन जा और दीर्घबाहु द्वारा वन्यजन्तु खा अवस्थान करने लगा। फिर एकदा पिताकी आज्ञा प्रतिपालन करनेको राम लक्ष्मण और सीताके साथ उसी वनमें जा पहुंचे। इस राक्षसने दीर्घ बाहुद्वारा उन्हें पकड़ लिया था। रामने वीर्यभरमें लघु हस्तसे स्वीय खड्ग द्वारा दनुका प्राण विनाश किया। रामहस्तसे मरने पर कवन्ध दिव्यमूर्ति धारण कर स्वर्गको चला गया।

महाभारतके मतसे यह राक्षस पहले विश्वावसु नामक गन्धर्व रहा, पीछे किसी ब्राह्मणके अभिशाप वश राक्षसयोनिको प्राप्त हुवा।

कवन्धता (सं॰ स्त्री॰) मस्तकहीनता, क़त्ल, शिर कट जानेकी हालत।

कवन्धी (वै॰ पु॰) १ ऋषिविशेष। 'अथ कबन्धी कात्यायन उपेत्य पप्रच्छ।' (प्रश्नोपनिषद्) (त्रि॰) कं जलं अस्यास्ति, क-बन्ध-इनि। जलयुक्त, आबदार।

क़बर, कब्र देखो।

क़बरस्थान, कब्रस्तान देखो।

कबरा (हिं॰ वि॰) कर्बुर, धवलक, सफ़ेद रङ्गपर काले, लाल, पीले या किसी दूसरे रंगके अथवा काले, पीले, लाल या किसी दूसरे रंगपर सफ़ेद धब्बे रखनेवाला।

क़बरिस्तान, कब्रस्तान देखो।

कबरी—जातिविशेष, एक क़ौम। मन्द्राजप्रदेशमें इस जातिके लोग रहते हैं। यह प्रायः १८ शाखामें विभक्त हैं। उनमें बलिगि और तोत्तियार शाखा ही प्रधान है।

पहले कबरी खेतीबारीके लिये ज़मीन् रखते थे। उसी ज़मीन्‌को अपर निकृष्ट जाति द्वारा जोता-बोवा जो आय मिलता, उससे इनकी जीविकाका काम चलता। आजकल इनमें वह पूर्वप्रथा रहते भी कितने ही लोग स्वयं कृषिकार्य करते हैं। फिर कोई नाव चलाता और कोई बनियेकी दुकान् लगाता है।

तोत्तियार शाखा किसी किसी स्थानमें तोत्तियान वा कम्बलत्तार नामसे भी प्रसिद्ध है। यह परिश्रमी और बड़े उत्साही हैं। कृषिकार्यसे लगा अनेक उच्च काय पर्यन्त इनके द्वारा सम्पन्न होते हैं। मन्द्राज नगरमें तोत्तियार अनेक उत्तम उत्तम कार्य चलाते हैं।

तोत्तियार ६ श्रेणीमें विभक्त हैं। प्रत्येक श्रेणी अपर श्रेणीसे स्वतन्त्र रहती है। प्रायः पांच-सौ वर्ष पहले कितने ही तोत्तियारोंने मदुरा ज़िलेमें जाकर उपनिवेश किया था।

यह सकल ही विष्णुके उपासक हैं। विष्णुकी अलौकिक लीला-क्रीड़ामें यह आन्तरिक विश्वास रखते हैं। किसीके विष्णुकी निन्दा करनेपर इनके प्राणमें बड़ा आघात लगता है। फिर निन्दाकारीको यथोचित शास्ति देनेसे कोई पीछे नहीं हटता। इनमें बहुतसे लोग इन्द्रजाल जानते हैं। इसीसे साधारण इनको भय भक्ति देखाते हैं। सुनते—यह इन्द्रजालके बलसे सांपके काटेका विष उतार सकते हैं। पुरुष मस्तक पर पगड़ी बांधते हैं। स्त्रियां नानाविध अलङ्कार पहनती हैं। इनका वक्षःस्थल कितना ही अनावृत रहता है। किन्तु उससे उन्हें लज्जा नहीं आती।

तोत्तियारोंमें बहुविवाहकी प्रथा प्रचलित है। किन्तु प्रायः सकल ही एकबार विवाह करते हैं। एक पत्नीके मरनेपर अपर पत्नी ग्रहण की जाती है। इनके विवाह वा धर्मकर्ममें ब्राह्मणोंको आवश्यकता नहीं पड़ती। कोड़ाङ्गिनायकन नामक इनका एक प्रधान रहता है। वही विवाहादि सम्पन्न करता है। जन्मकुण्डली बनाना भी उसीका काम है।

कबरी प्रधानतः तैलङ्ग होते हैं। यह प्रधानतः तैलङ्ग भाषा ही व्यवहार करते हैं। किन्तु स्वदेश छोड़ अन्य स्थानमें रहनेवालोंकी बात स्वतन्त्र है।

क़बा (अ० पु०) परिच्छदविशेष, पहननेका एक कपड़ा। यह जानु पर्यन्त दीर्घ एवं ईषत् शिथिल होता है। इसका अग्रभाग मुक्त और बाहु चलित रहता है।

कबाड़ (हिं० पु०) १ निष्प्रयोजन वस्तु, बेकाम चीज़। २ निरर्थक कार्य, बेहूदा काम।

कबाड़ा (हिं० पु०) निरर्थक व्यापार, झगड़ा-झञ्झट।

कबाड़िया, कबाड़ी देखो।

कबाड़ी (हिं० पु०) १ निरर्थक वस्तुविक्रेता, बेकाम चीज़ बेचनेवाला। २ क्षुद्र व्यवसायी, जो शख़्स छोटा मोटा रोज़गार करता हो। (वि०) ३ नीच, वासोना, छोटा।

कबाब (अ० पु०) मांसभेद, किसी क़िस्मका गोश्त। पहले मांसको भली भांति काटकूट बारीक बनाते, फिर उसमें बेसन, नमक और मसाला मिलाते हैं। अन्तको इसकी गोलियां बना लोहेकी सीखमें गोदते और घीके पुटसे कोयलेकी आंचपर सेंकते हैं। इन्हीं सेंकी हुई गोलियोंका नाम कबाब है। इसे प्रायः मुसलमान् ही खाते हैं।

कबाबचीनी (हिं० स्त्री०) शीतलचीनी। इसे संस्कृतमें कक्कोल वा कङ्कोल, नेपालीमें तिम्मुई, कश्मीरीमें सुरतमर्ज़, मारवाड़ीमें हिमसीमोर, गुजरातीमें तदामरी, दक्षिणीमें दुमकी, तामिलमें वाल-मिलकु, तैलगुमें तोकमिरियालु, कनारीमें बालमेनसु, मलयमें कोपुनक्कुस, ब्राह्मीमें सिनबनकरव, सिंहलीमें वलगुमदरिस, अरबीमें कबाबा और फ़ारसीमें किबा-बेह कहते हैं। (Piper cubeba)

यह झाड़ी यवद्वीप और मोलूकास द्वीपमें स्वभावतः उत्पन्न होती है। भारतवर्षमें भी कहीं कहीं इसकी कृषि की जाती है। भारतवासी इसके फलको बाहरसे मंगाते हैं। इसके गोंदको राल किसी बड़े काममें नहीं लगती। पत्र बेरके पत्तोंसे मिलते हैं। किन्तु उनमें नुकीलापन कुछ अधिक रहता है। पत्तोंकी खड़ी नसें ऊपरको उठ आती हैं। फल गुच्छेमें रहता और गोल-मिर्च जैसा देख पड़ता है। इसे भी कबाबचीनी ही कहते हैं। यह खानेमें मरिचसे मृदु, कटु एवं तिक्त लगती है। पहले यवद्वीप-वासी इसे किसी विदेशीयके हाथ बेचनेमें हिचकते थे। वह भय रखते—कोई हमारे इस अपूर्व फलको अपने देशमें जाकर लगा न ले। अरबके प्राचीन वैद्योंको विदित था—कबाबचीनी मूत्रप्रवाहके मार्गको लसदार झिल्लीको बड़ा लाभ पहुंचाती है। किन्तु लोग इसे वायुनाशक गन्ध द्रव्यकी भांति ही व्यवहार करते आये हैं। कबाबचीनी धातुदौर्बल्य और प्रमेह-का महौषध है। यह दीपन, पाचन और मूत्रवर्धक होती है। बम्बईके वैद्य इसे औषधोंमें अधिक व्यवहार करते हैं। कबाबचीनी कण्ठके स्वरको भी सुधारती है। गाने-बजानेवाले इसे प्रायः मुंहमें डाले रहते हैं। कक्कोल देखो।

कबाबी (अ० वि०) १ कबाब बेचनेवाला। २ कबाब खानेवाला।

कबाय (हिं०) क़बा देखो।

कबार (हिं० पु०) १ व्यवसाय, कामकाज। २ वृक्ष-विशेष, एक पेड़।

कबाल (हिं० स्त्री०) खर्जूरिकातन्तु, खजूरका रेशा। इसे बटकर रस्सी तैयार की जाती है।

क़बाला (अ० पु०) लेख्यभेद, एक दस्तावेज़। इसके द्वारा एककी सम्पत्ति दूसरेके अधिकारमें जाती है।

क़बाला लिखनेवाले मुहरिरको 'क़बालानवीस', और जायदाद बेचनेवालेकी ओरसे ख़रीदनेवालेको दी जानेवाली सनदको 'क़बाला-नीलाम' कहते हैं।

क़बाहट (हिं०) क़बाहत देखो।

क़बाहत (अ० स्त्री०) १ अभद्रता, बुराई। २ कठिनता, दिक़्क़त, अड़चन।

कबित्थ (सं० पु०) कपित्थवृक्ष, कैथेका पेड़।

कबिल (सं० वि०) कपिल, भूरा, तांबड़ा। (पु०) २ कपिलवर्ण, भूरा या तांबड़ा रंग।

कबीठ (हिं० पु०) १ कपित्थवृक्ष, कैथेका पेड़। २ कपित्थफल, कैथेका मेवा।

कबीर (अ० वि०) लब्धप्रतिष्ठ, बड़ा। बहुत बड़े आदमीको अमीर-कबीर कहते हैं। (हिं० स्त्री०) अश्लील गीत, फोहश गाना। यह होलीमें गायी जाती है। कोई कबीर कहनेसे पहले लोग 'अररर कबीर' पद लगा लिया करते हैं।

कबीर—कबीरपन्थी नामक सम्प्रदायके प्रवर्तक। ठीक कह नहीं सकते—कबीर किसके पुत्र अथवा किस जातिके व्यक्ति रहे। इनकी जाति, सन्तति और उत्पत्तिके विषयमें नाना विवरण मिलते हैं। मुसलमान् इन्हें अपनी जातिके व्यक्ति बताते हैं। किन्तु भक्तमालमें लिखा है—

रामानन्द-शिष्य किसी ब्राह्मणके एक बालविधवा कन्या रही। किसी दिन वह ब्राह्मण कन्या साथ ले गुरुदर्शनको पहुंचे। फिर रामानन्दने उस ब्राह्मण-कन्याकी भक्ति देख सहसा पुत्रवती होनेको आशीर्वाद दिया था। आशीर्वाद भी वृथा न गया, बालविधवा कन्याके एक पुत्र उत्पन्न हुवा। उसी पुत्रका नाम कबीर है। भूमिष्ठ होते ही अभागिनी जननी लोकापवादके भयसे गुप्तभावसे शिशुको स्थानान्तरपर छोड़ आयी थी। फिर किसी जोलाहे और उसकी स्त्रीने दैवात् शिशुको पाकर निज पुत्रकी भांति लालनपालन किया।

कबीरपन्थी भक्तमालके प्रथम अंशको बिलकुल नहीं मानते। उनके मतमें कबीर एकदिन काशीके निकट 'लहर तालाब' नामक सरोवरके पद्मपत्र पर तैरते थे। उसी स्थानसे नूरी जोलाहा अपनी पत्नी नीमाके साथ विवाहनिमन्त्रणमें जाता रहा। नीमा इस शिशुको देख अपनी स्वामीके निकट ले आयी। फिर शिशुने उससे पुकार कर कहा—हमें काशी ले चलो। नूरी सद्योजात शिशुकी बात सुन अतिशय विस्मयापन्न हुवा और सोचने लगा—कोई उपदेवता मानवदेह धारणकर आ गया। अन्तको उसने प्राणके भयसे डर और शिशुको फेंक पलायन किया। किन्तु शिशु उसके पीछे पड़ा था। कोई आध कोस जाकर नूरीने देखा, कि शिशु उसके सम्मुख रहा। उस समय वह भयसे जड़ीभूत हो गया। शिशुने उसका भय निवारणकर कहा था—तुम हमें प्रतिपालन करो और किसी बातसे न डरो। इसीप्रकार शिशुरूपी कबीर जोलाहेके हाथ लालित पालित हुये।

कबीरके जीवनका प्रथमांश जैसा कौतुकावह आता, वैसा ही अवशिष्ट अंश भी देखाता है। भक्ति-माहात्म्य नामक संस्कृत ग्रन्थमें लिखा है—

पूर्वकाल वेदान्ताभ्यासनिरत एक ब्राह्मण रहे। वह स्त्री-पुत्रके लिये शिल्पकार्यसे जीविका चलाते थे। एकदिन सूत्र लेनेको उन्हें तन्तुवायके भवन जाना पड़ा। वहांसे अपने घर लौटनेपर वह ज्वर रोगसे आक्रान्त हुये और दैवयोगसे उसी ज्वरमें मर गये। मृत्युकालको स्मरण आनेसे ही तन्तुवायके घर उनका जन्म हुवा। तन्तुवायके घर जन्म ले ब्राह्मणने प्रथम वस्त्रादि निर्माण करना सीखा था। किन्तु पूर्वसंस्कार-वशत: उनमें ब्रह्मज्ञान भी उत्पन्न हुवा। वह सर्वदा कहा करते थे—संसार असार और यह जीवन पद्म-पत्रपर जलके समान है। इस काशीधाममें कौन हमारा गुरु होगा? कौन हमें इस संसार-सागरसे बचायेगा? कर्णधार न मिलने पर यह देहतरी कैसे चलेगी?

किसी दिन उन्होंने कितने ही साधुवोंके निकट उपस्थित हो अपना मनोभाव प्रकट किया। वैष्णव-साधुवोंने उनसे पूछा,—तुम कौन और क्या चाहते हो। उन्होंने कहा—हम जातिके तन्तुवाय और रामानन्दके शिष्य होना चाहते हैं। वैष्णव उपहास कर कहने लगे—तुम म्लेच्छ हो, तुम्हारा गुरु कौन होगा!

फिर तन्तुवायरूपी कबीर भग्नमनोरथ घरको लौटे थे। उनका मन अस्थिर हो गया। उन्होंने फिर साधुवोंके निकट जा अपने मनका दुःख देखाया था। किन्तु इस बार भी उनकी मनस्कामना पूर्ण न हुयी। फिर वह अस्थिर चित्तसे वाराणसीमें घूमने लगे। वह जिसको देखते, उसीसे पूछते थे—क्या आप बता सकते, गुरु रामानन्द कहां हैं। इसीप्रकार बहुदिन बीत गये। किसी दिन एक वैष्णवने उनसे दयाकर कहा था—गुरु रामानन्द अमुक स्थानपर रहते हैं।

रात्रि बीतनेपर वह बहिर्द्वार खोल प्रत्यह गङ्गा-स्नानको निकलते हैं। तुम रातको उनके बहिर्द्वारके सम्मुख जाकर सो रहो। जब वह द्वार खोल बाहर आयेंगे, तब उनके पद तुम्हारे अङ्गमें छू जायेंगे। उस समय उनके मुखसे निकले नामको तुम गुरुमन्त्र समझ ग्रहण कर लेना। सिवा इसके रामानन्दके शिष्य होनेका दूसरा कोई उपाय नहीं।

कबीर वैष्णवकी बातसे आश्वस्त हुये और शुभ-दिनको रात्रि बीतनेसे रामानन्दके द्वारपर लेट गये। रात्रि शेष होनेपर रामानन्द प्रातःकृत्यादि निबटा और कुश तिल उठा जैसे ही बाहर निकले, वैसे ही कबीरके अङ्गमें उनके पद छू गये। कबीरने भी महासमादरसे गुरुके पद चूम लिये थे। रामानन्द म्लेच्छके गात्रमें पद लगते देख बोल उठे—राम! राम! तुम कौन। इसप्रकार कबीरका मनोरथ पूरा हुवा। उन्होंने रामानन्दको गुरु कह साष्टाङ्ग प्रणिपात किया।*

उसी दिनसे कबीरने 'राम' नामको सार माना था। वह स्तव-स्तुति कुछ न करते, केवल 'राम' नामको ही मुक्तिका सोपान समझते रहे। फिर कबीर तिलक-माला धारण कर अपरापर वैष्णवोंकी भांति काशीधाममें रहने लगे।

कबीरका आचार व्यवहार देख वैष्णव बिगड़े थे। एकदिन उन्होंने कबीरको बोलाकर कहा—रे म्लेच्छा-धम! तू किस साहससे तिलकमाला धारण करता है! तुझको यह दुर्बुद्धि किसने दी है।

कबीरने शान्तशिष्ट भावसे उत्तर दिया—मैं सत्य कहता हूं, गुरु रामानन्दने मुझे राममन्त्र दिया और इसीसे मैंने ऐसा कार्य किया है।

फिर सबने जाकर रामानन्दसे कबीरकी कथा कही थी। रामानन्दने अत्यन्त क्रुद्ध हो उन्हें बोला भेजा। उन्होंने गुरुके निकट जा कृताञ्जलिपुटसे धीरभावमें कहा—हे नाथ! क्या आप भूल गये? उस दिन रात्रिशेष पर मैं आपके द्वारपर जाकर लेटा था। आपने मेरे अङ्गपर पद रख राम नाम उच्चारण किया। उसी दिन मैंने राममन्त्र लाभ किया था। उसी दिनसे मैं नियत राम नाम जपता हूं। प्रभो! इसमें यदि मेरा दोष मान लीजिये, तो दयाकर क्षमा कीजिये।

रामानन्दको कबीरका परिचय मिला और उन्होंने क्रोध परित्यागकर हंसते हंसते आशीर्वाद दिया। उसी दिनसे सब लोग कबीरको एक भक्त समझने लगे। यह नहीं—कबीर केवल भक्त ही रहे। उनका हृदय दरिद्रके दुःखसे विकल उठता था। किसी दिन वह एक वस्त्र बेचने जाते रहे। पथमें कोई वृद्ध मिल गया। उस समय शीतकाल रहा। दरिद्र वृद्धने शीतार्त हो उनसे वस्त्र मांगा था। कबीरने दरिद्रको दुर्दशा देख अम्लानवदन वस्त्र दे डाला। दान किया तो सही, किन्तु परमुहूर्त उनके मनमें संसारका उपाख्यान निकल पड़ा—हाय! आज मेरे घरमें अन्न नहीं, माता राहमें बैठी मेरे आनेकी ताक लगाये होगी; मैं रिक्त हस्त कैसे घर वापस जाऊंगा। फिर उन्होंने मन ही मन सोचा—आज दरिद्रको यह वस्त्र दे मुझे जो सुख मिला, वस्त्र बेच कर अर्थ ले उसका होना कहां था; मेरे अदृष्टमें जो आये, वही पड़ जायेगा। कबीर घर को लौट आये। आकर उन्होंने सुना था—माता अन्नव्यञ्जन बना बैठे राह देख रही हैं। कबीरने मातासे पूछा—माता! आज हमारा संसार कैसे चला, आज तो हमारे कोई संस्थान न था। माताने उत्तर दिया—कबीर! यह क्या, तुम्हींने तो आदमी भेज हमारे पास अर्थ पहुंचाया है। कबीर आश्चर्यमें आ गये और आवेग गद्गद्भावमें मातासे कहने लगे—'माता! तुम धन्य हो। साक्षात् भक्तवत्सल भगवान् आकर तुम्हें अर्थ दे गये हैं। माता! दीनदुःखीको धन वितरण करो। हमें धनका क्या प्रयोजन है?'

कबीरकी माताने दीन-दरिद्रको धन बांटा था। चारो ओर राष्ट्र हो गया—'कबीर बड़े दाता हैं। जो जाता वही पाता, कोई वृथा घूम नहीं पाता।'

यह वदान्यता सुन एक दिन चारो ओरसे बहुतसे

---

* रैखतेके मतमें कबीरने रामानन्दसे दीक्षाकी प्रार्थना की थी—
"प्रथमहि कप जोलाहा कीन्हा।" पारिखर्ण मोहिं काहु न चीन्हा॥
रामानन्द गुरु दीक्षा देहु। गुरुपूजा कछु हमसों लेहु॥"

लोग इनके घर आकर अतिथि हुये। इन्होंने देखा,—'बड़ा ही विभ्राट है! मैं दरिद्र, निर्धन हूं। गृहमें अन्नका संस्थान नहीं। कैसे इतने लोगोंकी मनस्तुष्टि की जायेगी।' इनका मन अस्थिर पड़ गया था। यह गृहान्तरमें जा सोचने लगे। उधर भगवान्‌ने कबीरका रूप बना और अतिथियोंको धनरत्नसे सजा विदा कर दिया। इन्होंने घर आकर यह अपूर्व घटना सुनी। फिर कबीर क्या स्थिर रह सकते थे! प्राण छोड़ छोड़ यह केवल इष्टदेवको पुकारने लगे।

किसी दिन इन्होंने राजसभामें पहुंच एक अञ्जलि जल भर पूर्वमुख फेंका था। राजा इन्हें पागल समझ हंस पड़े। उस समय इन्होंने निर्भय राजाको सम्बोधन कर कहा था,—राजन्! हंसनेका कोई कारण नहीं। जगन्नाथपुरीमें किसी पूजक ब्राह्मणके पैरपर उष्ण ओदन गिर पड़ा है। मैंने उसीके पैरपर शीतल जल डाला।

कबीरकी बातसे राजाको बड़ा कौतूहल लगा था। उन्होंने जगन्नाथपुरीको दूत भेजा। चरने लौट कबीरकी बात सप्रमाण की थी। फिर राजाने कबीरको एक सिद्धपुरुष ठहरा लिया। साक्षात् करनेको वह स्वयं इनके घर जा पहुंचे। कबीर राजाको अपने क्षुद्र कुटीरमें देख अतिशय आह्लादित हुये और हाथ जोड़ कहने लगे,—'महाराज! आपके आगमनसे यह दास कृतार्थ हुवा। किङ्करको कुछ करनेके लिये आदेश दीजिये।' राजाने इन्हे आलिङ्गन कर कहा,—हे वैष्णव! आप हमारा दोष ग्रहण न कीजिये। हमने बेसमझे आपका उपहास किया है। बतलाइये, क्या करनेसे आप सुखी होंगे। धनरत्न जो चाहिये, हम अभी देनेको प्रस्तुत हैं।

इन्होंने सहास्यमुख उत्तर दिया था,—'राजन्! धनरत्नका क्या प्रयोजन है। जीवन और मरण—उभय समान होते हैं। मैं मूर्ख हूं। इस तुच्छ जीविकानिर्वाहके लिये धन नहीं चाहता। जो दीन दरिद्र, क्षुधातुर और अर्थके लिये लालायित है, अपनी इच्छाके अनुसार उसे धन दीजिये। आपको महापुण्य होगा।' राजा हृष्टचित्त निज प्रासादको लौटे थे। उसी दिन उन्होंने राज्यमय घोषणा की—कबीर हमको अति प्रिय हैं।

कुछ दिन पीछे यह तीर्थयात्राको निकले और मथुरा दर्शन कर दिल्ली पहुंचे थे। उस समय दिल्लीमें मुसलमानराज सिकन्दर लोदीका राजत्व रहा। दुष्टोंने जाकर सुलतानसे कह दिया—एक दाम्भिक जोलाहा आकर अनेकोंकी वञ्चना करता है। ऐसे व्यक्तिको राजदण्ड मिलना उचित है।

सिकन्दरने कबीरको पकड़नेके लिये आदेश लगाया था। यथासमय राजपुरुषोंने आ इन्हें पकड़ लिया। फिर इन्होंने उनके मुख प्राणदण्ड मिलनेकी बात सुनी। सिकन्दरके समीप पहुंचने पर पारिषदोंने इनसे नमस्कार करनेको कहा था। किन्तु इन्होंने उनकी बातपर कर्णपात न किया और हंसते हंसते सुना दिया—किसको प्रणाम किया जाये, इस संसारमें कौन वध्य नहीं।

फिर सुलतानने अति क्रुद्ध हो और इन्हें शृङ्खला-बद्ध कर यमुनाके अगाध सलिलमें डालनेका आदेश निकाला था। राजपुरुषोंने तत्क्षणात् कबीरको यमुनाके जलमें निक्षेप किया। कालिन्दीके कृष्ण नीरमें इनका देह अदृश्य हो गया। किन्तु परक्षण ही सकलने यमुनाके परपार इन्हें सहास्य मुख घूमते देखा। दुष्ट लोगोंने सुलतानसे जाकर कह दिया—'कबीर ऐन्द्रजालिक हैं। सामान्य इन्द्रजाल-विद्याके प्रभावसे निश्चय उन्हें रक्षा मिली है। इसबार अग्निके मध्य निक्षेप कराइये।' दिल्लीश्वरने दुष्टोंकी बातोंमें पड़ राजपुरुष बोला कर इन्हें महानलमें जला डालनेको कहा था। किन्तु कैसा आश्चर्य! ज्वलन्त अनलमें इनका एक केश नष्ट न हुवा।

कबीरकी इस अमानुष घटनासे भी दिल्लीश्वरको चैतन्य आया न था। उन्होंने क्रोधसे उन्मत्त और दुर्जनोंकी बातके वशीभूत हो हाथीके पैर नीचे इन्हें दबा मार डालनेको आदेश दिया। किन्तु भगवान् जिसपर सदय रहते, हजार हाथी भी उसका क्या कर सकते हैं। आज मतवाला हाथी भी इनका सिंहरूप देख भयसे भाग गया।

सिकन्दर कबीरको भूयसी प्रशंसा करने लगे। इसबार सुलतानका मन भी झुक पड़ा था। उन्होंने इन्हें बोला सादर सम्भाषणमें कहा—साधु! हमारा दोष क्षमा कीजिये। आप महाजन हैं। आज आपकी महिमा हम समझ सके हैं।

यह दिल्लीश्वरसे विदाय हो काशीधाम पहुंचे और संसारकी अनित्यता देख आत्मज्ञानके लाभको यत्नवान् हुये। काशीमें भी चारो ओर इनके विपक्ष घूमते थे। एक दिन कोई दुष्ट कबीरके नामसे काशीवासी समस्त साधुवोंको निमन्त्रण दे आया। घटनाक्रमसे उसी दिन यह स्थानान्तर गये थे, कुटीरमें केवल कुछ शिष्य रहे। निमन्त्रण मिलनेसे काशीके सहस्र सहस्र साधु इनके वासस्थान पर उपनीत हुये। सहस्राधिक अतिथियोंको क्षुधार्त देख शिष्योंका प्राण सूख गया। सकल ही सोचते थे—इतने लोगोंको खिला पिला कैसे विदा करेंगे। परक्षण ही भक्तवत्सल भगवान् कबीररूपसे भक्ष्य भोज्य ला सर्वसमक्ष देख पड़े और स्वहस्तसे साधुवोंको भोजन करा चल दिये। प्रकाश कर नहीं सकते—साधु कितने परितृप्त हुये थे। यह गृहको लौट महासमारोह देखकर अत्यन्त विस्मयमें आये। किसी शिष्यको पुकार इन्होंने पूछा था—वत्स! यह क्या व्यापार है, किस लिये इतने लोग आये हैं। शिष्य आश्चर्य हो कहने लगा—आप क्या कह रहे हैं; आपने जिन सहस्राधिक व्यक्तियोंको खिलाया पिलाया, उन्होंने आकर यह महोत्सव मचाया है।

कबीर समझ गये—यह सकल हरिकी लीला है। इन्होंने मनोभाव छिपा शिष्यसे कहा था—वत्स! मैं क्षुधासे अतिशय कातर हो गया हूं, मुझे साधुवोंका प्रसाद ला दो।

फिर जो कबीरके नियत अनिष्टकी चेष्टा करते, वह दुर्जन भी महत्त्वके गुणसे वशीभूत होने लगे। जब वह इनके निकट निज निज दोष स्वीकार कर कितनी ही क्षमा मांगते, तब साधु कबीर सकलको आलिङ्गनकर राम नाम पुकारते थे।

काशीवासी मात्र इनके गुणके पक्षपाती बन गये। किसी दिन एक रूपवती वेश्याने कबीरके निकट आ कहा था—महाजन्! मैं नृत्यगीतादि नानाप्रकार उपभोग द्वारा आपको सन्तुष्ट करना चाहती हूं।

रूपसौन्दर्यशालिनी और नृत्यगीतादि-निपुणा नर्तकीको देख यह सहास्य बोल उठे,—'मैं सुखभोग और नृत्यगीत नहीं समझता। फिर मैं स्त्री और पुरुष दोमें एक भी नहीं। मुझसे आपकी मनस्कामना कैसे पूर्ण होगी?' नर्तकीने अति काकुतिमिनति भावमें इनसे प्रार्थना की—मैं बड़ी आशासे आयी हूं। मुझे क्या हताश हो लौटना पड़ेगा।

इन्होंने धीर भावसे उत्तर दिया—देखो! मेरे गृहमें स्वयं भक्तवत्सल हरि विराजते हैं। वह अति रागी और महाभोगी हैं। उनके सामने नाचगा आप अपनी भोगपिपासा मिटा सकती हैं।

नर्तकी महा आनन्दित हुयी—मेरा ऐसा सौभाग्य, कि मैं स्वयं भगवान्को नृत्यगीत द्वारा रिझाऊंगी। उसी दिनसे वह वेश्या कबीरके गृहमें रह प्रत्यह नाचने गाने लगी। इसी प्रकार कुछ दिन बीते थे। मनही मन वेश्या कबीरको चाहती थी। एक दिन गभीर रजनीको सब लोग सो गये। किन्तु वेश्याकी आंख न झपकी। कबीरके सम्भोगकी लालसासे उसका चित्त अस्थिर हुआ था। वह किसी प्रकार आत्मसंयम कर न सकी और कबीरके सोनेकी जगह मनके आवेगमें आ पहुंची। उसने गभीर असारजनीको वहां कबीरके बदले ज्योतिर्मय हरिकी मूर्ति देखी थी।

फिर उसकी कामपिपासा न जाने कहां अन्तर्हित हुयी! चक्षुसे प्रेमाश्रुकी धारा बही थी। उसके लिये संसार असार समझ पड़ा। वेश्या उसी अमानिशाको एकाकी गृह छोड़ निबिड़ अरण्यकी ओर चली गयी।

इन्होंने प्रत्यूष उठ वेश्याको घरमें न देखा। उसके अलङ्कार वस्त्रादि सकल पड़े थे। कबीरने भावना लगायी—इतने दिनमें सम्भवतः वेश्याने सद्गति पायी है। इन्होंने शिष्योंको बोलाकर कहा—मेरे चलनेका समय आ पहुंचा है। वत्स! तुम काशीवासियोंको संवाद दो—मणिकर्णिकाघाट पर सब लोग कबीरसे आकर मिलो।

शिष्योंने चारो ओर गुरुकी आज्ञा घोषणा की थी। दल दल लोग आ-आ पुण्यसलिलाके तटपर समवेत हुये। सकल ही कबीरकी बात सुननेको उत्कण्ठित थे। यह अपने प्रियजनोंको उपस्थित देख मिष्ट भावसे कहने लगे—मैं परपार जावूंगा। मेरे इह-जीवनकी लीला समाप्त हो गयी है। भाइयो! मैं अन्त्यज म्लेच्छके घरमें जन्म ले कर्मसूत्रसे वैष्णव बना हूं। इस मिथ्या अपवित्र देहको रखनेसे क्या फल मिलेगा। मगरराज्य*में मेरा मोक्ष होगा।

कबीरकी बात सुन सकल ही हाहाकार करने लगे। इन्होंने मधुर भाषामें देहकी अनित्यता देखा सर्वसाधारणको सान्त्वना दी।

अनन्तर यह सकलको साथ ले मणिकर्णिकाके परपार पहुंचे थे। वहीं जाकर इनका निद्राकर्षण लगा। कबीर भूमिमें लेट गये। शिष्योंने इनके शरीर पर वस्त्राच्छादन किया था। फिर दो घण्टे बीतते भी यह न उठे। इससे सकलका मन अस्थिर हुवा था। शिष्योंमें भी कोई साहस कर इनके अङ्गका आवरण खोल न सका। दो घण्टे अपेक्षा कर सबके मनमें विजातीय भाव उदय हुवा था। सभीने बारम्बार इन्हें जगानेको कहा। फिर अगत्या शिष्योंने गुरुका आवरणवस्त्र खींच लिया। किन्तु वस्त्रके मध्य कबीरका दर्शन मिला न था। सबने वस्त्र और शरासन पड़ा पाया। इसी प्रकार भक्त कबीरने परमपद लाभ किया। (भक्तिमाहात्म्य)

* भक्तिमाहात्म्यका जो पुस्तक मिला, उसमें 'मगर'के स्थानमें 'मगध' शब्द लिखा है। किन्तु 'मगर' ही युक्तिसङ्गत समझा जाता है। इसीसे यह पाठ ग्रहण किया गया।

सुना जाता—मृत्यु होनेसे कबीरके शवदेहपर हिन्दुवों और मुसल-मानोंमें विवाद उठा था। उसी समय कबीर स्वयं आ यह बात कह कर अन्तर्हित हुये—मेरे शवदेहका आवरण खोलकर देखिये। आवरण खोलनेपर शवके अभावमें सबको कुछ फूल देख पड़े। काशीके राजा वीरसिंहने वही आधे फूल ला जलाये थे। फिर फूलोंका भस्म काशीके 'कबीर-चौरा' नामक स्थानमें समाहित किया गया। उधर पठानराज बिजलीखान् आधे फूल गोरखपुरके निकट मगर नामक ग्राममें ले जाकर गड़ाये थे। उन्होंने वहां एक सुन्दर समाधिस्तम्भ भी बनवा दिया। उक्त 'कबीरचौरा' और 'मगरका समाधिदेव' कबीर-पन्थियोंका प्रधान तीर्थस्थान गिना जाता है।

वस्तुतः कौन न मानेगा—कबीर एक महत् व्यक्ति रहे। यह कोई जाति क्यों न हों, इनके निकट हिन्दू-मुसलमान सकल ही समान थे। यह अकुतोभयसे शास्त्र और क़ुरान्‌का प्रतिवाद कर गये हैं। कबीर कहते—'हिन्दुवोंके राम और मुसलमानोंके रहीम स्वतन्त्र नहीं, अनुसन्धान करनेसे हृदयमें मिलेंगे। यह विश्व जिनका संसार और अल्लाह एवं राम जिनके सन्तान ठहरते, उन्होंको हम पीर समझते हैं।' कबीर जप पूजादि मानते न थे। इसके सम्बन्धमें यह कहा करते—

"मनका फेरत युग गयो गयो न मनका फेर।
करका मनका छोड़ कर मनका मनका फेर॥"

जपके मालाकी गुरिया सरकाते-सरकाते युग बीत गया, किन्तु मनका द्वन्द्व न मिटा। इसीसे कहते—हाथकी गुरिया छोड़ मनकी गुरिया सरकाया कीजिये।

यह जातिभेद भी मानते न थे।* इनके वचनमें मिलता है—

"सबसे हिलिये सबसे मिलिये सबका लिजिये नांव।
हांजी हांजी सबसे किजिये बसिये अपने गांव॥"

सबके साथी बनो, सबसे मिलो और सबका नाम ग्रहण करो। फिर सबसे 'हांजी हांजी' भी कहो, किन्तु अपने ही स्थानपर रहो।

कबीर संसारकाण्डको देख दुःखसे कहते थे—

"ब्राह्मन ठाकुर मूरख भये शूद्र पढ़े गीता।
ठग ठगार बद अच्छा खावे दुःख पावे पढ़ीता॥
सांचेको मारे लठा झूठा जगत् पिताय।
गोरस गलियनमें फिरे बैठे सुरा बिकाय॥
सतीको ना धोती मिले गनी पहरे खासा।
कहे कबीरा देखो भाई दुनियाकेर तमासा॥"

जातिकुलकी भांति इनके समयपर भी कबीरपन्थी गड़बड़ डाला करते हैं। उनके कथनानुसार कबीरने संवत् १२०५ को टकसार-शास्त्र प्रकाश किया और

* जाति पांति कुल कापरा यह शोभा दिन चारि।
कहे कबीर सुनहु रामानंद येहु रहे झकमारि॥
जाति हमारी बानिया कुल करता उर माहि।
कुटुंब हमारे सन्त हो मूरख समझत नाहि॥

संवत् १२०५ को मगर नगरमें इहलोक छोड़ दिया। ऐसा होनेसे प्रायः ३ शतवर्ष इनका परमायु पाता है। यह क्या सम्भव है! किन्तु भक्तिमाहात्म्य और कई मुसलमानी इतिहासके ग्रन्थ पढ़नेसे हम समझते—कबीर सिकन्दर लोदीके समसामयिक रहे। १५४४ संवत् सिकन्दरने राज्य पाया था। अतएव सम्भवपर मानते उस समय कबीर विद्यमान रहे।

सिखोंके धर्मगुरु नानकने कबीरका मत अपने ग्रन्थमें उद्धृत किया है। एतद्भिन्न सत्नामियों, माधवों, श्रीनारायणियों और शून्यवादियोंके पुस्तकमें भी इनका मत मिलता है। इससे समझ पड़ा—उक्त सम्प्रदायप्रवर्तकोंने इनका मत ले साथ साथ अपना धर्म प्रचार किया है। अन्यान्य विवरण कबीरपन्थी शब्दमें देखो।

कबीर-उद्-दीन्—ताज-उद्-दीन इरकीके पुत्र। दिल्ली-वाले बादशाह अला-उद्-दीन्के समय यह जीवित रहे। इन्होंने उनके अभिभवपर एक पुस्तक लिखा था।

कबीरपन्थी—सम्प्रदाय विशेष। इन्होंने महात्मा कबीरका प्रवर्तित धर्ममत अवलम्बन किया है।

कबीरपन्थी सकल देवतावोंकी अपेक्षा विष्णुके प्रति अधिक भक्ति देखाते हैं। रामानन्दी प्रभृति वैष्णव सम्प्रदायके साथ यह सद्भाव रखते और आचार-व्यवहारमें भी मिलते-जुलते हैं। इसीसे कितने ही लोग इन्हें वैष्णव कहते हैं। कबीरपन्थी अपरापर वैष्णवोंकी भांति तिलक लगाते, नासिका-पर चन्दन वा गोपीचन्दनकी रेखा बनाते, कण्ठमें तुलसीमाला लटकाते और हाथमें भी जपकी माला झुलाते हैं। किन्तु यह इस तिलकमुद्राको वृथा आड़म्बरमात्र समझते हैं। वास्तविक इनकी विवेचनामें शास्त्रोक्त देवदेवीका पूजन अथवा क्रिया-कलापका अनुष्ठान प्रयोजनीय नहीं ठहरता।

कबीरपन्थियोंमें प्रधानतः दो दल होते हैं—गृहस्थ और सन्यासी। गृहस्थ स्व स्व जातिगत और वर्णगत आचार व्यवहार अवलम्बन करते हैं। फिर कोई निज धर्मको छोड़ हिन्दुवोंके उपास्य देवतावोंको भी पूजता है। संसारत्यागी सन्यासी एकमन नयनके अगोचर केवल कबीरदेवका ही भजन करते हैं। उन्हें गुरुके निकट मन्त्र लेना नहीं पड़ता। वह केवल विह्वल हो प्राणभर धर्मगान करनेको ही उपासना समझते और अपनी इच्छाके अनुसार वेशभूषा रखते हैं। फिर कोई नग्नप्राय हो कर भी पथ पथ घूमते फिरता है। सन्यासियोंके महन्त मस्तक पर टोपी लगाते हैं। उक्त दोनों दल प्रायः १२ शाखामें विभक्त हैं। इन १२ शाखाप्रवर्तकोंके नाम नीचे लिखते हैं,—

(१) श्रुत गोपालदास—सुखनिधानके प्रणेता रहे। इनके शिष्य परम्परासे द्वारकाके अखाड़े, वाराणसीके कबीर-चौरे, मगरके समाधि और जगन्नाथके अखाड़े पर कर्तृत्व रखते हैं।

(२) भगोदास—बीजकके रचयिता थे। इनके अनुगामी शिष्य-प्रशिष्य धनौती नामक स्थानमें रहते हैं।

(३) नारायण दास और (४) चूड़ामणि दास—धर्मदास नामक वणिक्के पुत्र तथा गृहस्थ रहे। इसीसे सब लोग इन्हें 'वंशगुरु'की भांति सम्बोधन करते थे। आजकल चूड़ामणिका वंश समाज-भ्रष्ट और नारायणका वंश नष्ट हो गया है।

(५) जीवनदास—सत्नामी सम्प्रदायके प्रवर्तक थे। सत्नामी देखो।

(६) जग्गूदासकी गद्दी कटकमें है।

(७) कमलको लोग कबीरका पुत्र बताते हैं। किन्तु इस पक्षपर कोई विशेष प्रमाण नहीं मिलता। यह बम्बईमें रहते थे। इनके मतावलम्बी योगाभ्यासी होते हैं।

(८) टकसाली—बरदावासी थे।

(९) ज्ञानी—सहसरामके निकट मझनी ग्राममें रहते थे।

(१०) साहबदास—कटकनिवासी और मूलपन्थी नामक सम्प्रदायके प्रवर्तक थे। मूलपन्थी देखो।

(११) नित्यानन्द और (१२) कमलानन्द—दाक्षि-णात्यवासी थे।

सिवा इनके दान-कबीरी, मंगरेल-कबीरी, हंस-कबीरी प्रभृति दूसरी शाखा भी विद्यमान हैं।

यह पूर्वोक्त स्थानोंमें वाराणसीके 'कबीरचौरा'को ही सर्वप्रधान तीर्थ समझते हैं।

कबीरपन्थियोंका प्रकृत धर्ममत सहजमें मालूम नहीं पड़ता। किन्तु सम्प्रदायका ग्रन्थ पढ़नेसे अनेक अंशमें माना गया—हिन्दूधर्मसे ही यह मत निकला है। कबीरपन्थी एकमात्र अपने मतको छोड़ अपरापर सकल धर्म दूषित बताते हैं। इनके मतमें कबीर-प्रवर्तित धर्मव्यतीत दूसरे सकल सम्प्रदाय भ्रमपूर्ण हैं।

कबीरपन्थी एक ईश्वरको मानते हैं। वह साकार और सगुण है। उसके पाञ्चभौतिक शरीर और त्रिगुण-विशिष्ट अन्तःकरण विद्यमान है। वह सर्वशक्तिमान् एवं सर्वदोष-विवर्जित रहता और स्वेच्छानुसार सर्वप्रकार आकार बना सकता, किन्तु अपरापर सकल विषयमें मनुष्यसे पार्थक्य नहीं पड़ता। यह अपने सम्प्रदायके साधुवोंको ईश्वरानुरूप बताते, जो परलोकमें उसके समान रह एकत्र परम सुख पाते हैं। ईश्वर आद्यन्तहीन और नित्यस्वरूप है। बीजमें वृक्षके शाखापत्रकी भांति सकल वस्तु व्यक्त होनेसे पूर्व ईश्वरके शरीरमें अव्यक्तभावसे अन्तर्निविष्ट रहते हैं।

फिर इनके कथनानुसार परमपुरुष परमेश्वरने प्रलयान्तको ७२ युग पर्यन्त एकाकी रह विश्व-सृष्टिकी इच्छा की थी। अवशेषको उसकी इच्छाने एक स्त्रीमूर्ति बनायी। उसी स्त्रीका नाम माया है। माया आद्याशक्ति वा प्रकृति कहाती है। परमेश्वरने मायाके साथ सम्भोग किया था। उससे ब्रह्मा, विष्णु और शिवकी उत्पत्ति हुयी। फिर परमपुरुष छिप गये। क्रमशः माया अपने पुत्रोंके निकट पहुंचने लगी। उन्होंने उसका परिचय पूछा था। मायाने उत्तरमें कहा—'मैं निराकार, अगोचर और आदिपुरुषकी सहचारिणी हूं। इस समय तुम्हारी सहचर्याके लिये आयी हूं।' किन्तु ब्रह्मा, विष्णु और शिवने सहसा उसकी बात मानी न थी। विशेषतः विष्णु ऐसे वैसे व्यक्ति न रहे, न थी। विशेषतः विष्णु ऐसे वैसे व्यक्ति न रहे, मायासे कठिन प्रश्न करने लगे। फिर अवलम्ब कुछ हो माया अपने पुत्रोंको डरानेके लिये दुर्गामूर्तिमें आविर्भूत हुयी। उस महाभयङ्करी मूर्तिको देख ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर बहुत डरे और आत्मविस्मृत हो मायाको मनोवाञ्छा पूर्ण करते गये। इससे तीन कन्या हुयीं—सरस्वती, लक्ष्मी और उमा। माया ब्रह्मादिके साथ तीनों कन्यावोंका विवाह कर ज्वाला-मुखी प्रदेशमें रहने लगी। उसने उक्त छहों पर विश्व बनाने और नानाविध भ्रमात्मक ज्ञान एवं भ्रममूलक क्रियाकाण्ड चलानेका भार डाला था। ब्रह्मादि सकल मायाके अधीन हैं। इसीसे उनका पूजनादि करनेकी विशेष आवश्यकता नहीं पड़ती। केवल कबीरके स्वरूपज्ञानको लाभ करना ही सर्वधर्मका मूल अभिप्राय है। फिर भी सकल देवता और उपासक उस दुर्लभ ज्ञानको पा नहीं सकते।

सकल जीवोंका आत्मा समान है। वह पापमुक्त होनेसे मनमाना रूप परिग्रह कर सकता है। जीवात्मा जबतक पापसे नहीं छूटता, तबतक नाना योनि घूमता है। उल्कापात होनेसे वह किसी ग्रहके शरीरमें प्रवेश करता है। स्वर्ग और नरक—उभय मायाके कार्य हैं। वास्तविक स्वर्ग और नरक कहीं नहीं होता। पृथिवीका सुख ही स्वर्ग और पृथिवीका दुःख ही नरक है।

कबीरपन्थी संसारके त्यागको ही सत् परामर्श बताते हैं। कारण—संसारमें रहते आशा, भय, लोभ प्रभृति द्वारा चित्तकी शुद्धि नहीं होती। सुतरां शान्तिके लाभमें भी नाना विघ्न पड़ते हैं। गुरुकी भक्ति ही प्रधान धर्म है। दोष करने पर गुरु शिष्यको भर्त्सना कर सकता, किन्तु दण्ड देनेका अधिकार नहीं रखता। कबीर देखो।

युक्तप्रदेश और मध्यभारतमें अनेक कबीरपन्थी रहते हैं। इनमें कोई विषयी और कोई धर्मव्रताव-लम्बी है। यह अत्यन्त सत्यप्रिय, उपद्रवशून्य और सुशील होते हैं। इनके उदासीन अपरापर सन्यासियों-की भांति न तो दुरन्तस्वभाव रहते और न भिक्षा मांगते ही फिरते हैं।

काशीधाममें कबीरचौरा नामक स्थानपर अनेक कबीरपन्थी पहुंच वास करते हैं। पूर्व काशीराज बलवन्तसिंहने इनके आहारादिकी वृत्ति बांध दी थी।

उनके पुत्र चेतसिंहने इनको संख्या निरूपण करनेको काशीके निकट एक मेला लगाया। उसमें प्रायः ३५००० कबीरपन्थी सन्यासी पहुंचे थे।

कबीर-बड़ (हिं० पु०) विशाल वटवृक्ष, बरगदका बड़ा पेड़। यह भड़ोंचके निकट नर्मदा किनारे अवस्थित है। इसका परीणाह चतुर्दश सहस्र हस्त-परिमित आता है। कबीरबड़की छायामें सप्त सहस्र व्यक्ति विश्राम कर सकते हैं।

कबीला (अ० स्त्री०) पत्नी, जोड़।

कबीला (हिं० पु०) वृक्षविशेष, एक पेड़। यह बङ्गालके सिंहभूम, उड़ीसेके पुरी, युक्तप्रदेशके गढ़वाल तथा कुमायूं और पञ्जाबके कांगड़े जिलेमें उत्पन्न होता है। मध्यप्रदेश, दाक्षिणात्य, काश्मीर तथा नेपालकी तराईमें भी इसका अभाव नहीं। कबीला एक क्षुद्र वृक्ष है। पत्र अमरूदसे मिलते हैं। फलोंका गुच्छ बनता, जो रक्तवर्ण धूलिसे आच्छादित रहता है। इस धूलिसे रेशमको रंगते हैं। पहले एक सेर रेशमको आधसेर सोडा डाल जलमें उबालते हैं। मुलायम पड़नेसे रेशम निकाल लेते हैं। फिर १ पाव कबीला (रक्तवर्ण धूलि), आधछटांक तिलतैल, १ पाव फिटकरी और सोडा छोड़ वही जल पावघण्टे उबाला जाता है। पीछे रेशम डाल कोई १५ मिनट और उबालना पड़ता है। इससे रेशम नारङ्गीके रंगको हो जाती है। कबीलासे मरहम भी बनता, जो फोड़े-फुन्सीपर चढ़ता है। कबीला उष्ण, रेचक और विषाक्त रहता है। इसकी अधिकसे अधिक मात्रा ६ रत्ती है। कबुलवाना, कबुलाना देखो।

कबुलाना (हिं० क्रि०) स्वीकार या क़बूल कराना, मुंहसे कहाना।

कबुलि (सं० स्त्री०) जन्तुके देहका पश्चात् भाग, जानवरके जिस्मका पिछला हिस्सा।

कबूतर (फ़ा० पु०) कपोत, परेवा। कपोत देखो।

कबूतरका झाड़ (हिं० पु०) एक पितपापड़ा। यह वृक्ष दक्षिण-पश्चिम भारत और सिंहलमें उत्पन्न होता है। फिर दक्षिण कोङ्कण, मलय और अष्ट्रेलियामें भी इसका अभाव नहीं। बम्बई प्रान्तमें कहीं कहीं इसे लोग आहारमें व्यवहार करते हैं। यह वृक्ष सुखा कर पितपापड़ेकी भांति औषधमें डाला जाता है। किन्तु इसका आस्वाद उससे कुछ कटु और अप्रिय लगता है।

कबूतरका फूल (हिं० पु०) पुष्पविशेष, एक फूल।

कबूतरकी जड़ (हिं० स्त्री०) मूलविशेष, एक जड़ी।

कबूतरबाज (फ़ा० पु०) कपोतपालक, कबूतर पालने या उड़ानेवाला।

कबूतरबाज़ी (फ़ा० स्त्री०) कपोतपालका कार्य, कबूतर पालने या उड़ानेका काम।

कबूतरी (फ़ा० स्त्री०) १ कपोतिका, मादा कबूतर। २ बेड़न, गांवकी नाचनेगानेवाली रण्डी।

कबूद (फ़ा० वि०) १ नील, श्याम, आसमानी, नीला। (पु०) २ नीला वंशलोचन, नीलकण्ठी।

कबूदी (फ़ा० वि०) कृष्ण, श्याम, आसमानी, नीला।

क़बूल (अ० पु०) १ स्वीकार, मञ्जूर। २ सम्मति, रज़ा, एकमत। ३ अनुकूल ग्रहण, मुवाफ़िक़ पहुंच। ४ प्रतिपत्ति, इक़रार। ५ ताजक ज्योतिषोक्त योग-विशेष।

क़बूलना (हिं० क्रि०) स्वीकार करना, कह देना, मानना।

कबूलसूरत (अ० वि०) सुन्दर, खूबसूरत।

क़बूलियत (अ० स्त्री०) १ प्रतिपत्ति, मञ्जूरी, सक़ार। २ पट्टोलिकाकी प्रतिमूर्ति, पट्टेकी नक़ल।

क़बूली (फ़ा० स्त्री०) तण्डुल एवं चणक-वेदलका पक्व सम्मिश्रण, चावल और चनेकी दालसे बनी हुयी खिचड़ी।

क़ज़ा (अ० पु०) १ मलावरोध, क़ब्ज़ियत, पड़, दस्त साफ़ न आनेकी हालत। २ अधिकार, दख़ल। ३ नियमविशेष, एक क़ायदा। यह मुसलमान् बादशाहोंके समय चलता रहा। इसके अधिकार पर सेनानी अपना वेतन ज़मीन्दारसे लेता और लिया हुआ धन भूमिके करमें मुजरे देता था। अकबरने यह नियम रहित किया, किन्तु अवधके नवाबोंने फिर चला दिया। वह दो प्रकारका होता था— बाकबामी और अमानी या बहुबी। बाकबामीके

अनुसार सेनानी अपना वेतन पहले ही ज़मीन्दारसे पाता, पीछे भूमिके करसे उतना धन आता या न आता। अमानी या वसूलीके अनुसार सेनानी यथाशक्ति धन ग्रहण करता था। फिर वह सैकड़े पीछे ५) रु॰ कमीशन भी पाता रहा। ४ आज्ञापत्रविशेष, एक हुक्मनामा। इसीके अधिकार पर मुसलमान् बादशाहोंके समय सेनानी अपना वेतन जमीन्दारोंसे ग्रहण करता था। बलपूर्वक अधिकार करनेको 'क़ब्ज़-बिल-जब्र' और पूर्ण अधिकारको 'क़ब्ज़-ओ-दख़ल' कहते हैं।

कब्ज़ा (अ॰ पु॰) १ मुष्टि, गिरफ़्त, चुङ्गल, पञ्जा। २ दण्ड, दस्ता, बेंट। ३ द्वारसन्धि, नरमादगी, कड़ा। यह लौह पित्तल प्रभृति धातुसे बनता है। कब्जेमें दो चतुष्कोण खण्ड संयुक्त रहते, जो सूचीपर चल सकते हैं। यह कपाट एवं पेटिकादिमें सन्धिस्थान घुमानेको लगाया जाता है। ४ ग्रहण, दख़ल। ५ उपरिस्थ बाहु, ऊपरला बाज़ू, भुजदण्ड। ६ मल्लयुद्धका कूटोपायविशेष, गट्टा, पहुंचा, कुश्तीका एक पेंच। कुश्तीमें एक पहलवान्‌को दूसरेका गट्टा पकड़ते, उसके हाथपर चोट चलाने, झटका लगाने और अपने हाथको छोड़ा लानेका नाम कब्ज़ा है।

क़ब्ज़ादार (फ़ा॰ वि॰) १ अधिकारी। २ क़ब्ज़ा लगा हुवा, जो क़ब्ज़ेसे जुड़ा हो।

क़ब्ज़ियत (अ॰ स्त्री॰) मलावरोध, क़ब्ज़, दस्त साफ न उतरनेकी हालत।

क़ब्ज़ुलवसूल (फ़ा॰ पु॰) पत्रविशेष, एक कागज़। इसपर वेतन लेनेवाला अपने हस्ताक्षर करता है।

कब्बल—महिसुर राज्यका एक कोणाकार गिरि। यह मागवकी तहसीलमें सिङ्गसा और अर्कवती नदीके मध्य अक्षा॰ १२° ३०´ उ॰ तथा देशा॰ ७७° २२' पू॰पर अवस्थित है। पहले महिसूरके हिन्दू और मुसलमान् राजा दोषी व्यक्तिको इसी गिरि पर ले जा कर बन्दी बनाते थे। इस स्थानका वायु अस्वास्थ्यकर है। इसीसे अपराधीका जीवन शीघ्र निःशेष हो जाता था।

क़ब्र (अ॰ स्त्री॰) शवस्थान, समाधि, तुरबत, मज़ार।

क़ब्रस्तान (फ़ा॰ पु॰) प्रेतावास, गोरिस्तान, बहुतसी क़ब्रोंकी जगह।

कभी (हिं॰ क्रि॰-वि) १ पूर्व, एकदा, पेश्तर, किसी समय। २ क्वचित्, कदाचित्, गाह-गाह, बाज़ औक़ात्। ३ कदापि, कहिंचित्, किसी वक़्त।

कभी कभी (हिं॰ क्रि॰ वि॰) कदा कदा, गाहे, जबतब।

कभू, कभी देखो।

कम् (सं॰ अव्य॰) १ जल, पानी। २ मस्तक, मत्था। ३ सुख, आराम। ४ मङ्गल, भलाई। ५ पादपूरणार्थं निरर्थक शब्द।

कम (फ़ा॰ वि॰) १ अल्प, थोड़ा। २ गर्ह्य, ख़राब। यह शब्द उपरोक्त दोनों अर्थमें क्रियाविशेषणकी भांति भी आता है।

कम-असल (फ़ा॰ वि॰) अकुलीन, वर्णसङ्कर, हरामी, कुसूत, घटियल।

कमक (सं॰ त्रि॰) कम्-णिङ्-भावे अच् स्वार्थे अक्। १ कामुक, ख्वाहिशमन्द, चाहनेवाला। (पु॰) २ गोत्रप्रवर्तक एक ऋषि।

कम-कम (फ़ा॰ क्रि-वि॰) अल्प-अल्प, थोड़ा थोड़ा।

कमकस (हिं॰ वि॰) अलस, सुस्त, जोरसे काम न करनेवाला।

कमख़्वाब (फ़ा॰ पु॰) वस्त्रविशेष, एक कपड़ा। यह गाढ़ एवं स्थूल रहता और कीटसूत्रसे बनता है। फिर इसपर सुवर्ण एवं रजतके सूत्रसे प्रसून भी बना देते हैं। किसी कमख़्वाब पर एक ओर और किसी पर दोनों ओर कलाबत्तूके बेलबूटे रहते हैं। यह बहुमूल्य वस्त्र है। इसका खण्ड (थान) चार या साढ़े चार गज पड़ता है। काशीमें कमख़्वाब बहुत तैयार होता है।

कमख़ोरा (फ़ा॰ पु॰) पशुरोगविशेष, चौपायोंकी एक बीमारी। यह रोग पशुके मुखमें होता है। इसके प्रभावसे पशु अपना मुख चला नहीं सकते और भूखे रहते हैं।

कमङ्गर (हिं॰ पु॰) १ कार्मुककार, कमानगर, चाप बनानेवाला। २ अस्थियोजयिता, हड्डियां जोड़ने या

बेठानेवाला। ३ चित्रकार, मुसौवर। (वि०) ४ कुशल, होशियार।

कमङ्गरा (हिं० स्त्री०) १ कार्मुककरण, कमानगरी, चाप बनानेका काम। २ अस्थियोजनविद्या, हड्डियोंके जोड़ने या बांधनेका हुनर।

कमचां (हिं० पु०) १ क्षुद्र कार्मुक, कमानचा, छोटी कमान्। २ सारङ्गी, चौतारा, किंगरी। ३ स्थितिस्थापकत्वविशिष्ट चित्रायस-पदार्थ, लोहेकी कमानी। इस यन्त्रको तबक व्यवहार करते हैं। पहले कमचेमें एक रज्जु बांध आस्फोटनीको आहत कर लेते, पीछे घुमा देते हैं। ४ कुञ्चित पटल, मेहराबदार छत। ५ अन्तःशाला, खास कमरा। ६ वेणु वा भाबू प्रभृतिकी चाम एवं नमनशील शाखा, बांस या भाबूकी पतली और लचीली डाल। इससे मञ्जूषा बनती है। ७ वेणुका चाम तथा नमनशील खण्ड, बांसकी तीली। ८ चाम एवं नमनशील यष्टि, पतली और लचीली छड़ी। ९ काष्ठादिका चामखण्ड, लकड़ी वगैरहका नाजुक टुकड़ा।

कमची (तु० स्त्री०) १ कञ्चिका, बांसकी डाल। २ यष्टिविशेष, नाजुक छड़ी। ३ काष्ठादिका चामखण्ड, लकड़ी वगैरहका नाजुक टुकड़ा।

कमच्छा (हिं०) कामाख्या देखो।

कमजोर (फा० वि०) निर्वीर्य, नाताकत, लचर।

कमजोरी (फा० स्त्री०) असामर्थ्य, नातवानी, छिचरमिचर।

कमचा (हिं० पु०) स्थितिस्थापकत्वविशिष्ट, चित्रायसपदार्थविशेष, लोहेकी कमानी। कमचा देखो।

कमटा (हिं० पु०) वृक्षविशेष, एक पेड़। यह कण्टकाकीर्ण एवं क्षुद्र होता है।

कमटी (हिं०) कमची देखो।

कमठ (सं० पु०-क्ली०) काम-अठ। कमेरठः। उण् १।१०२। १ कच्छप, कछुवा। कच्छप देखो। २ विष्णुका द्वितीय अवतार। ३ वंश, बांस। ४ दैत्यविशेष, एक राक्षस। ५ शल्लकी, खारपुश्त, सेह। ६ काम्बोजराजविशेष, एक राजा। (भारत २।४।२२) ७ भाण्डविशेष, एक बरतन। प्रधानतः तुम्बी वा नारिकेलको कोलकर जो पात्र मुनियोंके लिये बनाया जाता, वही कमठ कहाता है। ८ मुनिविशेष, एक ऋषि। ९ वादित्रविशेष, एक बाजा। यह एक चर्मावृत प्राचीन वाद्य है।

कमठपति (सं० पु०) कच्छपराज, कछुवोंके राजा।

कमठा (हिं० पु०) १ चाप, कमान्। २ एक जैन महात्मा। इन्होंने उग्र तपस्या करके सकाम निर्जरा पायी थी।

कमठासुरवध (सं० पु०) गणेशपुराणका एक अंश। इसमें कमठ दैत्यके वधकी कथा लिखी है।

कमठी (सं० स्त्री०) कमठ-ङीष्। १ क्षुद्रकच्छपजाति, छोटे-छोटे कछुवोंका गिरोह। २ कच्छपी, कछुयी। ३ शल्लकी, खारपुश्त, सेह।

कमण्डल (हिं०) कमण्डलु देखो।

कमण्डली (हिं० वि०) १ कमण्डलुयुक्त, जो कमण्डल रखता हो। २ पाषण्ड, पुर-फितरत, बहुरूपिया। (पु०) ३ ब्रह्मा।

कमण्डलु (सं० पु०-क्ली०) कस्य जलस्य प्रजापतेर्वा सारः तं लाति गृह्लाति, क-मण्ड-ला-डु। कुम्भकरणौ मितद्रादिभ्य उपसंख्यानम्। पा ३।२।१८० वार्तिक। १ मृत्तिका, काष्ठ, तुम्बी वा नारिकेल द्वारा निर्मित सन्यासियोंका एक पात्र, कमण्डल, तोंबा। इसका संस्कृत पर्याय—कुण्डीय और करक है। २ प्लक्षवृक्ष, पाकरका पेड़। ३ अश्वत्थभेद, पारस-पीपल।

कमण्डलुतरु (सं० पु०) प्लक्षवृक्ष, पाकरका पेड़।

कमण्डलुधर (सं० पु०) शिव, कमण्डलु धारण करनेवाले महादेव।

कमती (हिं० स्त्री०) १ अल्पत्व, कमी, घटी। (वि०) २ अल्प, कम, थोड़ा, जो बहुत न हो।

कमद्यू (वे० स्त्री०) स्त्रीविशेष, वेनपुत्री।

"कमद्युवं विमदायोहथु र्युवम्।" (ऋक् १०।६५।१२)

कमन (सं० त्रि०) कम-णिङ् भावे युच्। १ कमनीय, खूबसूरत। २ कामुक, ख्वाहिशमन्द, चाहनेवाला। (पु०) ३ अशोकवृक्ष। ४ मदन, कामदेव। ५ ब्रह्मा।

कमनचा (हिं० पु०) कमानचा, कमचा, बढ़ईका एक औजार। यह बरमा घुमानेमें काम देता है।

कमनच्छद (सं० पु०) कमनः कमनीयः छदः पक्षो यस्य, बहुव्रो०। कङ्कपक्षी, बगला, बूटीमार।

कमना (हिं० क्रि०) न्यून पड़ना, घटना, उतरना, ढलना, नीचेको चलना।

कमनीय (सं० त्रि०) काम्यते यत्, कम् कर्मणि अनीयर्। १ स्पृहणीय, कामना करने योग्य, चाहने काबिल। २ सुन्दर, खूबसूरत। इसका संस्कृत-पर्याय—चारु, हारि, रुचिर, मनोहर, वल्गु, कान्त, अभिराम, बन्धुर, वाम, रुच्य, सुषम, शोभन, मञ्जु, मञ्जुल, मनोरम, साधु, रम्य, मनोज्ञ, पेशल, हृद्य, सुन्दर, काम्य, कम्र, सौम्य, मधुर और प्रिय है।

कमनीयता (सं० स्त्री०) कमनीयस्य भावः, कमनीय-तल्-टाप्। तस्य भावस्तत्वतलौ। पा ५।१।११९। १ सौन्दर्य, खूबसूरती। २ कमनीयत्व, मरगूबी, दिलख़्वाही।

कमनैत (हिं० पु०) १ धनुर्धर, कमानबरदार, जो कमान रखता हो।

कमनैती (हिं० स्त्री०) धनुर्विद्या, कमानबरदारी, कमान इस्तेमाल करनेका इल्म।

कमन्द (फ़ा० स्त्री०) १ पाश, जाल। २ अस्थिर-ग्रन्थि, सरकफन्दा। ३ रज्जुकी तुलाधिरोहिणी, रस्सीकी तुली हुयी सीढ़ी। इससे तस्कर उच्च भवनों पर चढ़ जाते हैं। ४ पाशबन्ध, जालका फन्दा।

कमन्द (हिं०) कबन्ध देखो।

कमन्ध (सं० क्लो०) कं शिरः अन्धं शून्यं यस्य। १ कबन्ध, सरकटा धड़। कमं दीप्तिं जीवनं वा दधाति, कम-धा-ड पृषोदरादित्वात्। २ जल, पानी। हिन्दीमें लड़ायी-झगड़े और सरफन्द का भी कमन्ध कहते हैं।

कमबख़्त (फ़ा० वि०) दैवोपहत, बदनसीब, अभागी।

कमबख़्ती (फ़ा० स्त्री०) मन्दभाग्य, बदनसीबी।

कमयाब (फ़ा० वि०) विरल, अजीब, मुश्किलसे मिलनेवाला।

कमर (सं० त्रि०) कम-अर-चित्। अर्तिकमिभ्रमिचमिदेविव-सिभ्यश्चित्। उण् ३।१३२। कामुक, ख़ाहिशमन्द, चाहने-वाला।

कमर (फ़ा० स्त्री०) १ श्रोणी, कटि, सुलब, कूला। कटि देखो। २ मध्य, दरमियान्, बीच। ३ मेखला, मिन्तका, पट्टा। ४ मल्लयुद्धका एक हस्तलाघव, कुश्तीका कोयी पेंच। यह कटिप्रदेशसे चलता है। इसी प्रकार 'कमरकी टंगड़ी' भी होती है। एक पहलवान् जब दूसरेकी पीठपर आता और अपना बायां हाथ उसकी कमर पर पहुंचाता, तब नीचेवाला अपना बायां हाथ बगलसे निकाल उसकी कमर पर चढ़ाता और बायीं टांग लड़ा कमरके जोरसे उसको सामने घुमा लाता है।

कमरंग (हिं० पु०) कर्मरङ्ग, कमरख। कमरख देखो।

कमरकटा (हिं० पु०) प्राकार, वक्षोदघ्न, सीनापनाह, कंगूरेदार ऊंची दीवार।

कमरकस (हिं० पु०) पलाशनिर्यास, ढांककी गोंद। इसे चुनिया-गोंद भी कहते हैं। यह रक्तवर्ण एवं भासुर होता है। इसका आस्वाद कषाय है। कमर-कस संग्रहणी और कासश्वासका महौषध है।

कमरकसायी (हिं०) कमरकुशायी देखो।

कमर-कुशायी (फ़ा० स्त्री०) अपराधीसे लिया जाने-वाला एक कर, असामीसे वसूल होनेवाला रुपया। यह प्रथा पूर्वकाल प्रचलित रही। जब कोयी असामी सिपाहीसे मूत्रपुरीषके लिये अवकाश लेता, तब उसे करस्वरूप कुछ धन देता था। इसीका नाम 'कमर-कुशायी' है। २ मेखलोद्घाटन, कमरबन्दकी खोलायी।

कमरकोट, कमरकटा देखो।

कमरकोठा (हिं० पु०) स्थपाका एक भाग, शहतीर लट्ठे या कड़ीका एक हिस्सा। यह भित्तिसे बहिर्वर्ती रहता है।

कमरख (हिं० पु०) कर्मरङ्ग, एक पेड़। (Averrhœ Carambola) इसे बंगलामें कामरांगा, आसामीमें करदयी, गुजरातीमें तमरक, मराठीमें करमर, तामिलमें तमर्त, तेलगुमें करोमोंग, मलयमें तमरत्तक और ब्रह्मीमें ज़ौनसी कहते हैं। कमरखमें अम्लत्व, उष्णत्व, वातहरत्व एवं पित्तजनकत्व रहता, किन्तु पकनेसे मधुराम्लत्व तथा बल-पुष्टि-रुचिकरत्व बढ़ता है। (राजनिघण्टु) यह कटुपाक, अम्ल-पित्तकर और तीक्ष्ण गुणविशिष्ट है। (राजवल्लभ) कमरखका

-आम-फल ग्राही, अम्ल, वातनाशन, उष्ण एवं पित्तकार रहता, किन्तु पक जानेसे मधुर तथा अम्ल लगता और बल, पुष्टि एवं रुचिकी वृद्धि करता है। (वैद्यकनिघण्टु) यह हिम, ग्राही, अम्ल और कफ तथा वातनाशन है। (भावप्रकाश)

कमरख एक क्षुद्र वृक्ष है। इसके पत्र एक अङ्गुल प्रशस्त, दो अङ्गुल दीर्घ तथा ईषत् तीक्ष्णाग्र रहते और सुषिरमें लगते हैं। ऊंचायीमें यह १५।२० फीटसे अधिक नहीं चलता। भारतमें कमरखकी कृषि बहुत होती है। फल उसीजनेसे अति स्वादु लगते हैं। यह उत्तरमें लाहोरतक मिलता है।

कच्चे फलोंका रस रंगनेमें खटायीकी तरह छोड़ा जाता और सम्भवतः काटका काम देखाता है। इसका पत्र, मूल और फल शीतल औषधकी भांति व्यवहृत होता है। सूखा फल ज्वरमें खिला सकते हैं।

कमरख दो प्रकारका होता है—मीठा और खट्टा। मीठा कमरख ज्वरके लिये उपयोगी है। किन्तु कच्चा खानेसे ज्वर आता और वक्षःस्थल दुःख पाता है। पक्का फल चटनी और तरकारीमें भी पड़ता है।

कमरख वर्षामें फूलता और शीतकालको पकता है। फल प्रायः ३ इञ्च लम्बा होता है। ग्रामीण इसे कच्चा भी खाते हैं। इसका शस्य मृदु, सरस और आल्हादन है। इसको उसीज और थोड़ी दारचीनी डाल शर्बत बनाते हैं। यह शर्बत पीनेमें बहुत अच्छा लगता है। कमरखका गुलकन्द भी उम्दा होता है।

इसका काष्ठ हलका, लाल, कड़ा और दानेदार रहता है। सुन्दरवनमें इसे मकान् और साज़सामान् बनानेमें व्यवहार करते हैं।

कमरखी (हिं० वि०) १ कमरङ्गाकार, कमरख-जैसा, फांकदार। (स्त्री०) २ कमरङ्गाकार रचना, फांकदार कटाव।

कमरचख्डी (हिं० स्त्री०) खड्ग, तलवार।

कमरटूटा (हिं० वि०) १ वक्रपृष्ठ, खमीदापुश्त, कुबड़ा। २ नपुंसक, नामर्द, कमरका ढीला।

कमरतेगा (हिं० पु०) मल्लयुद्धका एक हस्तलाघव, कुश्तीका कोई पेंच।

कमरतोड़, कमरतेगा देखो।

कमर-दिवाल (हिं० पु०) चर्ममेखला, चमड़ेका पट्टा। इससे अश्वके पृष्ठपर पर्याण कसा जाता है।

कमरपट्टी (हिं० स्त्री०) कटिबन्ध, कमरकी पच्ची। इसे चपकन वगैरहमें कमरके ऊपर लगाते हैं।

कमरपेटा (हिं० पु०) १ व्यायामविशेष, एक कसरत। इसे माल खम्भपर लगाते हैं। यह कमरमें बेंत लपेट और खाली हाथ—दो प्रकार किया जाता है। 'कमरलपेटेकी उलटी' भी एक कसरत है। २ मल्लयुद्धका एक हस्तलाघव, कुश्तीका एक पेंच। एक पहलवान् नीचे आनेसे दूसरा अपनी दाहनी टांग नीचेवालेकी कमरमें डाल-अपने बायें पैरकी जांघ और पिंडलीके बीच लाता तथा बायें हाथका पञ्जा उसके बांये हाथके घुटनेपर भीतरसे दबाता है। फिर दाहने हाथसे उसका दाहना बाजू खींच हफ़्ता चढ़ाता और उसको आसमान देखाता है।

कमरबन्द (फ़ा० पु०) १ मेखला, हलका, घेरा। २ कटिकी चारो ओर लपेटा हुआ वस्त्र, कमरकी चारो ओर कसा जानेवाला कपड़ा। (वि०) ३ बद्धकटि, तैयार, कमर बांधे हुवा।

कमरबन्दी (फ़ा० स्त्री०) १ युद्धसज्जा, लड़ायीकी पोशाक। २ युद्धके अर्थ सज्जीकरण, जङ्गकी तैयारी।

कमरबन्ध (फ़ा० पु०) मल्लयुद्धका एक हस्तलाघव, कुश्तीका कोई पेंच। यह वक्षःस्थल और जङ्घाके बल होता है।

कमरबल्ला (हिं० पु०) काष्ठखण्डविशेष, एक लकड़ी। यह खपड़ेके पटलमें दीर्घस्थूणाके नीचे तड़कपर चढ़ता है।

कमरबस्ता (फ़ा० वि०) १ सज्ज, उद्यत, तैयार, कमर कसे हुवा। (पु०) २ कमरबल्ला, खपड़ेलमें लगनेवाली एक लकड़ी।

कमरा (पो० पु०=Camera) १ कोष्ठ, आगार, कोठरी, कोठा। २ आलोकलेख्य-यन्त्रविशेष, अकससे तसवीर उतारनेके फनका एक औज़ार। यह सम्पुटसदृश बनता और मुखपर प्रतिबिम्ब लेनेका गोलाकार स्फटिक लगता है। इसको प्रयोजन पड़नेसे घटा-

बढ़ा सकते हैं। उक्त स्फटिक (Lens)के सम्मुख एक निराधार काच (Ground glass) पड़ता है। उसीपर प्रथम केन्द्र (Focus) किया जाता है। पीछे निराधार काच हटा स्खलन (Slide) लगाते हैं। उसीके अन्तर्गत पट्ट होता है। स्खलनका आच्छादन उठानेसे पट्ट खुलता और स्फटिक निकलनेसे प्रतिविम्ब पड़ता है। यह दो प्रकारका होता है—लूसिडा (Lucida) अर्थात् सुप्रभ और अवस्क्यूरा (Obscura) अर्थात् निष्प्रभ। सुप्रभ यन्त्र असाधारण आकारके क्षकचायत वा दर्पण-विन्यास द्वारा प्रतिविम्बपर चित्र प्रदान करता है। उक्त चित्रको यथासुख देखनेके लिये पत्र वा स्थूल पटपर उतार सकते हैं। निष्प्रभ उपकरण द्विगुण कूर्मपृष्ठाकार स्फटिक द्वारा प्राप्त बाह्य द्रव्यकी प्रतिमा काच वा सम्पुटके केन्द्रमें रखे शुक्ल पृष्ठपर उतारता है। (हिं०) २ कम्बल। ३ कीटविशेष, एक कीड़ा।

कमरिया (हिं० स्त्री०) १ छोटा कम्बल। "सूर श्यामक कारी कमरिया चढ़े न दूजो रङ्ग।" (सूर) २ कटि, कमर। (पु०) हस्तिविशेष, एक हाथी। इसका देह क्षुद्र, शुण्ड दीर्घ और पद स्थूल रहता है। कमरिया अति प्रबल हस्ती है।

कमरी (फ़ा० वि०) १ दुर्बलकटि, कमजोर कमर-वाला। यह शब्द प्रायः अश्वके विशेषणमें आता है। (स्त्री०) २ क्षुद्रकञ्चुक, मिरज़यी। ३ कमली, छोटा कम्बल। ४ काष्ठखण्डविशेष, एक लकड़ी। यह सार्ध किष्कुपरिमित दीर्घ रहती और चक्रके शीर्षपर लगती है। (पु०) ५ भग्ननौका, उखड़ा जहाज़। ६ अश्वरोगविशेष, घोड़ेकी एक बीमारी। इसके कारण अश्व अपने पृष्ठपर भार वा आरोहीको अधिक क्षण रख नहीं सकता।

कमरँगा (हिं० पु०) मिष्टान्नविशेष, एक मिठायी। यह बङ्गालमें बहुत बनता है।

क़मरुद्दीन खान्—एतमाद्-उद्-दौला मुहम्मद आमिन खान् वज़ीरके लड़के। इनका प्रधान नाम मीर मुहम्मद फ़ाज़िल था। १७२४ ई०को निज़ाम-उल्-मुल्क असफ़ जाहके पदत्याग करने पर बादशाह मुहम्मद शाहने 'एतमाद-उद्-दौला नवाब क़मरुद्दीन खान् बहादुर नसरतजङ्ग' उपाधि दे इन्हें स्वयं वज़ीर बनाया। अहमदशाह अबदालीके प्रथम आक्रमण करते ही यह शाहज़ादे अहमदके साथ लड़नेको भेजे गये थे। किन्तु १७४८ ई०को ११ वीं मार्चको सरहिन्दके युद्धपर अपने डेरेमें नमाज़ पढ़ते समय तोपका गोला लगनेसे इनका देहान्त हुवा।

क़मरुद्दीन मीर—एक सुप्रसिद्ध मुसलमान् कवि। इनका उपनाम मिन्नत रहा। यह दिल्लीके अधिवासी थे। वारन हेष्टिङ्गसने मुरशिदाबादके नवाबको सिफ़ारिश पर 'मलिक-उश-शुअरा' अर्थात् कविराजका उपाधि इन्हें प्रदान किया। यह दक्षिण हैदराबाद निज़ामसे मिलने गये थे। वहां इन्होंने उनकी प्रशंसामें एक 'क़सीदा' लिखा, जिसके लिये ५०००) रु० नक़द पुरष्कार मिला। यह १७९३ ई०को कलकत्तेमें उर्दू और फ़ारसीके डेढ़ लाख शेर छोड़ मरे थे। इनका बनाया 'चमनिस्तान' और 'शकरिस्तान' ग्रन्थ छप गया है।

कमल (सं० पु०-क्ली०) कम-णिङ् भावे इपादित्वात् कलच्, कं जलं अलति अलङ्करोति, कम्-अल्-अच् वा। १ पद्म, कंवल। उत्पल और पद्म देखो। यह श्वेत, नील और रक्त—त्रिविध होता है। कमल शीतल, वर्णकर एवं मधुर, और पित्त, कफ, तृष्णा, दाह, रक्त, विस्फोटक, विष तथा विसर्पहर है। श्वेत शीतल एवं मधुर और कफ तथा पित्तघ्न होता है। किन्तु रक्त एवं नीलमें श्वेत कमलसे अल्प गुण रहता है। (भावप्रकाश)

२ जल, पानी। ३ ताम्र, तांबा। ४ क्लोम, ज़हरा, तलखा। ५ औषध, दवा। ६ सारसपक्षी। ७ मृगविशेष, एक हिरन। ८ पाटलवर्ण, एक रंग। ९ आकाश, आसमान्। १० चातकपक्षी, एक चिड़िया। ११ ध्रुवक, एक ताल।

"उक्ती मलयताखेन लघुमध्ये द्रुतैर्गुरुः।
समद्याचद्देर्युतः कमलोऽयं भयानके॥" (सङ्गीतदामोदर)

१२ पद्मकाष्ठ। १३ कुङ्कुम, रोरी। १४ मूत्राशय, मसाना। १५ ब्रह्मा। १६ कमलाका बसाया एक

नगर। १७ छन्दोविशेष। इसमें तीन तीन लघु-वर्णके चार पद होते हैं। एकमात्रिक छन्द और छप्पय भी कमल कहाता है। १८ अक्षिगोलक, आंखका डेला। १९ गर्भाशयका अग्रभाग, धरन, फल। २० दीपक रागका द्वितीय पुत्र और जय-जयन्तीका पति। २१ काचपात्रविशेष, शीशेका एक गिलास। इसकी आकृति कमलसे मिलती है। वह मोम-बत्ती जलानेके काम आता है। २२ रोगविशेष, एक बीमारी। इससे चक्षु पीले हो जाते हैं। बहुधा लोग इसे 'कांवर' कहते हैं। (त्रि०) २३ कामुक, खाहिशमन्द, चाहनेवाला। २४ पाटलवर्णयुक्त।

कमल-अण्डा (हिं० पु०) पद्मबीज, कमल-गट्टा।

कमलक (सं० क्ली०) कमल स्वार्थे कन्। १ कमल, कंवल। २ काश्मीरस्थ नगरविशेष। (राजत० ४।४८३)

कमलकन्द (सं० पु०) शालूक, कमलकी जड़। यह कटु, तुवर, मधुर, गुरु, मलस्तम्भकर, रुच, नेत्र्य, वृष्य, शीतल, दुर्जर एवं ग्राहक और रक्तपित्त, दाह, तृष्णा, कफ, पित्त, वात, गुल्म, कास, क्रमि, मुखरोग तथा रक्तदोषनाशक होता है। (वैद्यकनिघण्टु)

कमलकर्णिका (सं० स्त्री०) पद्मबीजकोष, कमल-गट्टेकी खोल। यह मधुर, तुवर, शीतल, लघु, तिक्त, मुखस्वच्छकर और रक्तदोष तथा तृषाहर होती है। (वैद्यकनिघण्टु)

कमलकीट (सं० पु०) कमलवर्णः कीटः। १ कीट-विशेष, कोई कीड़ा। २ ग्रामविशेष, कोई गांव।

कमलकेशर (सं० पु०-क्ली०) पद्मकिञ्जल्क, कमलका सूत। यह शीतल, ग्राही, मधुर, कटु, रुच, गर्भ-स्थैर्यकर और रुच्य होता है। (वैद्यकनिघण्टु)

कमलकोरक (सं० पु०) कमलस्य कोरकः, ६-तत्। पद्मकलिका, कमलकी कली।

कमलकोष (सं० पु०) कमलस्य कोषः, ६-तत्। कमलकोरक, कमलकी कली।

कमलखण्ड (सं० क्ली०) कमल-खण्ड। कमलादिभ्यः षण्डः। पा ४।२।५१। (वार्तिक) पद्मसमूह, कमलोंका मजमा।

कमलगट्टा (हिं० पु०) पद्मबीज, कंवलका तुख्म। यह छत्रकसे बहिर्गत होता है। वल्कल कठोर पड़ता है। कमलगट्टा श्वेतवर्ण सारभूत द्रव्यके समान रहता है। कमलबीज देखो।

कमलगर्भ (सं० पु०) पद्मछत्रक, कंवलका छाता।

कमलगर्भाभ (सं० त्रि०) कमलगर्भस्य आभा इव आभा यस्य, मध्यपदलो०। पद्मके मध्यस्थलकी भांति कान्तिविशिष्ट, कंवलके छत्तेकी तरह चमकनेवाला।

कमलगुप्त—संस्कृतके एक प्राचीन कवि। (सूक्तिकर्णामृत)

कमलच्छद (सं० पु०) कमलः कमलवर्णः छदः पत्नो यस्य, बहुव्री०। १ कङ्कपक्षी, बगला, बूटीमार। २ पद्मदल, कंवलका पत्ता।

कमलज (सं० पु०) कमलात् विष्णोर्नाभिकमलात्, जायते, कमल-जन-ड। ब्रह्मा।

कमलदेव—संस्कृतके एक प्राचीन विद्वान्। इनका निवासस्थान चन्द्रपुर रहा। कमलदेव निम्बदेवके पिता और गणितप्रदीप-रचयिता लक्ष्मीधर तथा पदन्याससिद्धि-रचयिता नागनाथके पितामह थे।

कमलदेवी (सं० स्त्री०) काश्मीरराज ललितादित्यकी पत्नी और राजा कुवलयापीड़की माता। (राजतरङ्गिणी ४।३०१)

कमलनयन (सं० त्रि०) कमलसदृश सुन्दर नेत्रयुक्त, जिसके कंवलकी तरह खूबसूरत आंख रहे। (पु०) २ विष्णु। ३ रामचन्द्र। ४ कृष्ण।

कमलनयन—संस्कृतके एक प्राचीन विद्वान्। देवराजने निघण्टुभाष्यमें इनका वचन उद्धृत किया है।

कमलनयनदीक्षित—संस्कृतके एक प्राचीन विद्वान्। कवीन्द्रने इनका उल्लेख किया है।

कमलनाभ (सं० पु०) नाभिमें कमल रखनेवाले विष्णु।

कमलनाल (सं० क्ली०) मृणाल, कंवलकी डण्डी।

"कमलनाल इव चाप चढ़ावूं।
शत योजन प्रमाण ले धावूं॥" (तुलसी)

कमलपलाश (सं० त्रि०) कमलपत्रवत् अक्षियस्य। कमलपत्रकी भांति चक्षुविशिष्ट, जिसके कंवलकी पखुड़ी-जैसी आंख रहे।

कमलबन्ध (सं० पु०) चित्रकाव्यविशेष, किसी

चित्रको मायरी। इसके अक्षर नियमपूर्वक लिखनेसे कमलका चित्र उतर आता है।

कमलबन्धु (सं० पु०) कमलोंका बन्धु सूर्य।

कमलवायी (हिं० स्त्री०) रोगविशेष, एक बीमारी। इससे शरीर पीला पड़ जाता है।

कमलभव (सं० पु०) कमलात् भवतीति. कमल-भू-अच्। १ कमलज, ब्रह्मा। २ एक जैन ग्रन्थकार। इन्होंने कर्णाटी भाषामें शान्तिनाथपुराण बनाया है।

कमलभू (सं० पु०) ब्रह्मा।

कमलमूल (सं० क्ली०) कमलकन्द, कंवलकी जड़।

कमलयोनि (सं० पु०) कमलं विष्णुनाभिकमलं योनिरुत्पत्तिस्थानं यस्य, बहुव्री०। १ ब्रह्मा। (स्त्री०) पद्मकी उत्पत्तिका स्थान, कंवल पैदा होनेकी जगह।

कमलयोनि—संस्कृतके एक प्राचीन विद्वान्। नृसिंहने सूर्यसिद्धान्तवासनाभाष्यमें इनका वचन उद्धृत किया है।

कमललोचन—सङ्गीतचिन्तामणि और सङ्गीतामृतनामक संस्कृत ग्रन्थरचयिता।

कमलवती, कमलदेवी देखो।

कमलवीज (सं० क्ली०) पद्मवीज, कंवलका तुख्म, कमलगट्टा। भावप्रकाशके मतसे यह स्वादु, कषाय एवं तिक्तरस, शीतल, गुरु, विष्टम्भि, शुक्रवर्धक, रुच, बलकारक, संग्राहक, गर्भसंस्थापक और कफ, वायु, पित्त, रक्त तथा दाहनाशक है।

कमलवदन (सं० त्रि०) कमलमिव वदनं यस्य, बहुव्री०। पद्मकी भांति मुखकान्तिविशिष्ट, जो कमल-की तरह खूबसूरत मुंह रखता हो।

कमलवर्धन—एक कम्पनराज। यह काश्मीरराजके प्रबल शत्रु रहे। बालक शूरवर्माके राजा होने पर इन्होंने सुयोग देख काश्मीरराज्य आक्रमण किया। एकाङ्ग और तन्त्रीगणने इनसे हार मानी थी। फिर इनके भयसे काश्मीरराज सिंहासनकी आशा छोड़ गुप्त भावमें भाग खड़े हुये। इन्हें काश्मीरके राजा बननेकी बड़ी आशा थी। किन्तु ब्राह्मणोंने इन्हें किसी प्रकार सिंहासनपर बैठने न दिया और इनके बदले यशस्कर नामक किसी सामान्य व्यक्तिको अभिषिक्त किया। कमलवर्धन ८१६ शकको विद्यमान थे।

कमल वसु—बङ्गालके एक विख्यात व्यक्ति। साधारणतः लोग इन्हें 'फिरङ्गी कमलवोस' कहते हैं। किन्तु इस विजातीय उपाधिके संयुक्त होनेका कारण बहुतसे लोग नहीं जानते।

कमल वसुका असली नाम रामकमल वसु था। १७६७ ई०को इन्होंने गोवरडांगीके निकटवर्ती गोईपुर नामक ग्राममें जन्म लिया। इनके पिता माणिकचन्द्र वसु चन्दननगरवाले फ़ान्सीसियोंके अधीन तहसीलदार थे। उसी समय गोईपुरमें कराल कालरूपी शीतला रोगका प्रादुर्भाव हुवा। अधिवासी प्राणके भयसे स्थानान्तरको भाग रहे थे। माणिकचन्द्र स्त्री और अपने चार पुत्र चन्दन-नगर ले आये। फिर वह जन्मभूमिको लौटे न थे। रामकमल गुरुकी पाठ-शालामें यत्सामान्य बंगला और फ़ारसी पढ़ने लगे।

यह अपने पिताके ज्येष्ठ पुत्र थे। पिताकी अवस्था अच्छी न रहनेसे इन्हें अर्थोपार्जनकी चेष्टा करना पड़ी। २० वर्षके वयःक्रमकाल यह पोर्तगीज़ोंके सरकारी जहाजी कार्यमें नियुक्त हुये। जहाज़ी कप्तानोंके साथ संस्रव रहनेसे इन्होंने अल्प दिनमें सामान्य चलित पोर्तगीज़ भाषा सीखी थी। किन्तु कोई उन्नति न हुयी। इन्हें घाटपचसे कुछ रुपया ऋण लेना पड़ा था। उसी रुपयेके लिये यह थोड़े दिन कारागृहमें भी रहे। फिर गोपीमोहन ठाकुरके यत्न और साहाय्यसे इन्होंने छुटकारा पाया।

रामकमलने जेलसे लौट अपना रुपया लगा व्यव-साय आरम्भ किया था। इस बार इनका भाग्य फिरा, डि' सुज़ा प्रभृति प्रधान प्रधान वणिकोंके साथ कारबार चलने लगा। पोर्तगीज़ वणिकोंसे साथ कामकाज कर यह सम्यक् सम्पत्तिशाली बन गये। फिर रामकमल चन्दननगरके जुलाहोंसे एक प्रकारकी छींट तैयार करा अमेरिका भेजने लगे। उससे इन्हें विलक्षण लाभ हुवा था। कहते—प्रत्येक जहाजमें ५००००) रु० मिले। इसीप्रकार इन्होंने दश बार लाभ उठाया था। पोर्तगीजों (फिरङ्गियों)के संस्रवसे बड़े आदमी बननेपर लोग इन्हें 'फिरङ्गी कमल बोस' कहने लगे। वास्तविक यह एक कट्टर हिन्दू थे। रामकमल दोल-दुर्गोत्सवादि

सकल पूजा महासमारोहसे सम्पन्न करते। विशेषतः ब्राह्मण पण्डितों पर इन्हें विलक्षण श्रद्धाभक्ति थी। दीनदरिद्रोंको यह यथेष्ट साहाय्य पहुंचाते। फिर ब्राह्मण पण्डितोंको भी यह कितनी ही जमीन् माफ़ी दे गये हैं। कहते—रामकमलके घरसे कभी अतिथि विमुख फिरते न थे।

५३ वत्सरके वयसमें ५ पुत्र, कलकत्ते एवं चन्दन-नगरमें भूमिसम्पत्ति और बहुतसा नक़द रुपया छोड़ इहसंसारसे रामकमल चल बसे।

मध्य मध्य कलकत्ते आ अपने भवनमें यह ठहरते थे। सर्वप्रथम उसी भवनमें डेविड् हेयरने हिन्दू-कालेजकी स्थापना की। फिर राममोहन रायने भी उसी भवनमें प्रथम अपना मत चलाया और डफ साहबने आकर बङ्गालको चारो ओर मिशनरी भेजनेका बीड़ा उठाया था। कलकत्तेमें आदि ब्राह्म-समाजके निकट दो-तीन मकान् छोड़ कमल वसुका वही प्रसिद्ध भवन विद्यमान है। इनके वंशधरोंसे मल्लिकोंने उक्त भवन ख़रीद लिया है। आज भी अनेक वृद्ध उसे 'फिरङ्गी कमल वोसका घर' कहते हैं।

कमलषण्ड (सं० पु०) कमलानां षण्डः समूहः, ६-तत्। पद्मसमूह, कंवलोंका मजमा।

कमलसम्भव (सं० पु०) कमलात् सम्भव उत्पत्तिर्यस्य, बहुव्रो०। कमलसे उत्पन्न होनेवाले ब्रह्मा।

कमलसिंह—तच्चकवंशीय एक प्राचीन विद्वान् नरेश। १३२५ ई०को यह राज्य करते थे। कमलसिंह देववर्मा (१३५० ई०)के पिता और वीरसिंहके पितामह रहे।

कमला (सं० स्त्री०) कमल-टाप्। १ लक्ष्मी। यह विष्णुकी पत्नी हैं। २ सुन्दरस्त्री, ख़ूबसूरत औरत। ३ निम्बुकविशेष, नारङ्गी। इस वृक्षको संस्कृत भाषामें कमला, नारङ्ग, नागरङ्ग, सुरङ्ग, त्वग्गन्ध, त्वक्सुगन्ध, गन्धाढ्य, गन्धपत्र एवं मुखप्रिय; हिन्दीमें नारङ्गी, बंगलामें कमला नेंबू, नेपालीमें सुन्तला, पञ्जाबीमें सन्तरा, गुजरातीमें नारङ्गी, बम्बैयामें नारिङ्गसाल, मारवाड़ीमें सङ्कलिम्बा, दक्षिणीमें नारिङ्गी, तामिलमें किचिलि, तैलगुमें गज्जनिम्म, कर्णाटीमें कित्तलेहण्णे, मलयमें माधुरनारङ्गा, मलिस्सुरीमें जेरुक, अरबीमें नारञ्ज, फारसीमें नारङ्ग, ब्राह्मीमें थलवय और सिंहलीमें दोदङ्ग कहते हैं। (Citrus Aurantium)

इसको अंगरेजी आरेञ्ज, फ्रेञ्च आरेञ्जर, पोर्तगीज लरञ्जिरा (Laranjeira de fructo dolce), रूसी नारञ्जस, रूमीय नारञ्ज, जर्मन ओरङ्गेन बौम (Orangen baum), इटलीय अरनसियो (Arancio) और लाटिन अरङ्गिया (Arangia) है। अंगरेजी 'आरेञ्ज' शब्द अरबी 'नारञ्ज'का अपभ्रंश है। फिर अरबी 'नारञ्ज' संस्कृत 'नारङ्ग' शब्दका रूपान्तर मात्र लगता है।

इस बातपर भी गड़बड़ पड़ता—नारङ्गका नाम कमला क्यों चलता है। किसी किसीके कथनानुसार आसाममें कमला नदी है। उसके निकट विस्तर उत्पन्न होनेसे इसको कमला कहते हैं। फिर कोई बताता—पहले त्रिपुराकी राजधानी कुमिल्लासे यह नीबू आता था। इसीसे कुमिल्लाके प्राचीन नाम कमलाङ्कके बदल कमला नाम पड़ गया। किन्तु हमारी विवेचनामें यह दोनों बातें ठीक नहीं। क्योंकि बहुत दिनसे तैलङ्ग देशमें इसे 'कमलापन्दु' कहते आये हैं। फिर कमला नाम भी अन्ततः २।३ शत वर्षका प्राचीन है। कृष्णानन्दने तन्त्रसारमें इसका उल्लेख किया है—

> "रम्भाफलं तिन्तिड़ीकं कमलं नागरङ्गकम्।
> फलान्येतानि भोज्यानि पथ्योऽन्यानि विवर्जयेत्॥"

इसकी कृषि भारतके अनेक प्रान्तमें होती है। विशेषतः खासिया पहाड़ोंके दक्षिण मुखकी उपत्यका और मध्यप्रदेशके नागपुर जिलेमें इसे बहुत लगाते हैं। कुछ कुछ नारङ्गी नेपाल, सिकिम और हिमा-लयके दो-एक स्थानमें भी लगायी जाती है। ब्रह्म-देशमें यह बहुत कम होती है। निम्नबङ्गमें या तो फल ही नहीं आता या फीका पड़ जाता है। भारतवर्षमें जलवायुके अनुसार दिसम्बर और मार्च मासके मध्य फल उतरता है। नागपुरकी नारङ्गी वर्षमें दो बार होती है।

उद्भिद्तत्त्वज्ञ डि काण्डोलने लिखा,—'दो सहस्र वर्ष पूर्व भारतवर्षमें कमला नीबू न था। यदि इसका अस्तित्व रहता, तो संस्कृत शास्त्रमें अवश्य उल्लेख

मिलता और ग्रीक वर्णनामें भी नाम निकलता। नारङ्गी चीनसे भारत आयी है।' किन्तु डाक्टर बोनेविया इसे भारतका ही द्रव्य बताते हैं।

यह चार प्रकारकी होती है—(१) सन्तरा, (२) नारङ्गी, (३) मलता और (४) मन्दारिन।

(१) सन्तरेका छिलका चिकना, पीला और नारङ्गी रहता है। त्वक् पृथक् पड़ती है। इस जातिकी कमला नागपुर, दिल्ली, अलवर, गुड़गांव, लाहोर, मूलतान, पूने, मन्द्राज, कुर्ग, सिलहट, भोटान, नेपाल और सिंहलमें लगायी जाती है। अग्रहायण वा पौष मास इसका फल पकता है।

(२) नारङ्गी सन्तरेसे अधिक उत्पन्न होती है। लगानेसे यह भारतमें सब जगह उपज सकती है। इसका छिलका सन्तरेसे कड़ा और पतला रहता है। फिर त्वक् भी पृथक् नहीं पड़ती। यह माघ मास फल देती और धूप सह लेती है। इसका रस सन्तरेसे फीका निकलता है।

(३) मलता या सुर्ख नारङ्गी कई प्रकारकी होती है। आजकल हिमालय और दारजिलिङ्गमें जो छरी और बड़ी नारङ्गी उपजती, वह इसीकी अवनति मात्र समझ पड़ती है। ब्रह्मदेशमें बिलकुल इसी प्रकारकी एक नारङ्गी मिलती है। पूनेकी छोटी लाल 'मुसेम्बी' जञ्जीबारसे इस देशमें आयी है। लखनऊमें सिपाही विद्रोहसे पहले सुर्ख नारङ्गी बहुत लगायी जाती थी। यह कंकरीली जमीनमें खूब होती है। इस अमृततुल्य स्वादु रहती है। गुजरान्-वालेकी सुर्ख नारङ्गी अंगरेजोंको बहुत अच्छी लगती और सबसे उम्दा समझ पड़ती है।

(४) मन्दारिन देखनेमें छुद्राकार और रक्तवर्ण होती है। यह खानेमें सुस्वादु लगती है। सकल प्रकार कमलाकी अपेक्षा इसके पत्र और फलमें सद्-गन्ध अधिक रहता है। प्रधानतः यह पर्वतोंपर उपजती है। भारतवर्षमें प्रकृत मन्दारिन नहीं मिलती, सिंहलमें देख पड़ती है।

पहले युरोपमें कमला उपजती न थी। इसे पोर्तुगीज भारतवर्षसे वहां ले गये हैं।

नारङ्गीका व्यवसाय प्रधानतः दो स्थानोंमें होता है—सिलहट (श्रीहट्ट) और नागपुर। इसके लगानेमें मूलपर आर्द्रता रहना आवश्यक है। किन्तु जल निश्चल होना न चाहिये। श्रीहट्टमें इस बातकी सुविधा है। भूमि ढालू रहनेसे नदीकी लहर आती और वृक्षोंको सींचकर चली जाती है। वहां कमसे कम १००० एकरमें नारङ्गी लगाते हैं। पथिक घण्टे दो घण्टे इस बागमें घूम सकता है। दिसम्बर और जनवरी मास नारङ्गीसे लदे वृक्ष देख हृदय फूल उठता है। ऐसा बाग युरोपमें भी कहीं देख नहीं पड़ता।

कृषि—बीज जनवरी और फरवरी मास प्रायः ६ इञ्च भूमिके सम्पुटमें सघनरूपसे बोया जाता है। उक्त सम्पुट इतने ऊंचे रहते, कि शूकर अपना दांत लगा नहीं सकते। फिर चूहों और गिलहरियोंको दूर रखनेके लिये जाल भी डाल देते हैं। वृष्टि होनेसे बीजाङ्कुर भिन्न किये जाते हैं। किन्तु इस कार्यमें सम्पुट तोड़ मूलसे मृत्तिकाको इस प्रकार झटकते, जिसमें कोई हानि न पड़े। पीछे उन्हें उद्यानके पोषणस्थानमें लगाते हैं। बीजाङ्कुर पोषणस्थानमें तबतक रहते, जबतक उद्यानमें अपने ईप्सित स्थलपर फिर नहीं पहुंचते। किन्तु यह नियम सदोष प्रतीत होता है। कारण पोषणस्थान वर्षमें केवल एकबार पक्षोवर मास निराया जाता है। कलम लगाना किसीको मालूम नहीं। फिर बीज चुननेमें भी अल्प ही चेष्टा करते हैं।

संग्रह एवं विक्रयण—प्रत्येक संग्राहकके पास २० फीट ऊंची बांसकी सिढ़ी होती है। उसकी पीठपर एक मोटा जालीदार थैला लटकता, जिसका मुंह बेतके छल्लेसे खुला रहता है। इसी थैलेमें वह नारङ्गी तोड़ तोड़ डालता है। फिर वह उतरनेसे पहले मुरझायी पत्तियां और सूखी डालियां भी गिरा देता है। सिवा इसके नारङ्गीके वृक्षमें दूसरा हाथ नहीं लगाते। लड़के गुलेल लिये कौवे उड़ाया करते हैं। आंधीसे गिरी नारङ्गियां सूवरों और कुत्तोंको खिलायी जाती हैं। इसकी गणना गण्डेके हिसाबसे चलती है। ७५० गण्डे (३०००)का एक बोन होता है। इसकी नारङ्गियां ६) रु० बोन बिकती हैं।

नागपुर और कामठीमें भी नारङ्गीके बहुतसे बाग़ हैं। मध्यप्रदेशमें इसकी क्षषि बढ़ रही है। नागपुरका सन्तरा बम्बई अधिक जाता है। युक्तप्रदेशमें नेपाल, दिल्ली और कुछ नागपुरसे भी नारङ्गी आती हैं।

नारङ्ग—मधुराम्ल, अग्निप्रदीपक और वातनाशक है। फिर दूसरी नारङ्गी अत्यन्त अम्लरस, उष्णवीर्य, दुष्पच्य, वायुनाशक और सारक होती है। (भावप्रकाश)

राजनिघण्टुके मतसे यह मधुर एवं अम्ल, गुरु, रोचन, बल्य, रुच्य और वात, आम, क्रमि, शूल तथा श्रमनाशक है।

हकीमोंमें नारङ्गीके छिलके और फूलको गम और खु.श्क समझते हैं। इसका गूदा तर रहता है। ठण्डकसे खांसी आने या बोखार चढ़ जानेसे नारङ्गी खिलाते हैं। इसका अर्क सफ़रे और सफ़रेके दस्तको दूर करता है। कीड़े या के को रोकनेके लिये इसे बहुत काममें लाते हैं। नारङ्गीका अर्क भी निहायत ताक़तवर है। इसके छिलके और फूलसे तेल बनता, जो मालिशमें दवाके तौर पर चलता है।

डाक्टर ऐन्सली लिखते,—'हिन्दू चिकित्सकोंके मतानुसार नारङ्ग रक्तशोधक, ज्वरमें पिपासानिवारक, पीनसरोगहर और क्षुधावर्धक है। ग्रीष्मके समय खूब पकी नारङ्गीका शर्बत अंगरेजोंके लिये बहुत उपादेय होता है। इसका छिलका वातनाशक और अजीर्ण रोगके लिये हितकर है।'

भारतवर्षीय फार्माकोपियाके मतसे नारङ्गी बलकर और अग्निवर्धक है। अजीर्ण रोग और साधारण दुर्बलता पर यह बड़ा उपकार करती है। इसके पत्रको चूवानेसे जो जल निकलता, वह आध छटांक स्नायवीय एवं मूर्च्छारोगपर प्रयोग करनेसे आक्षेप मिटता है।

मुखपर व्रण होनेसे कोई कोई नारङ्गीका सूखा छिलका घिसकर लगाता है। फिर सूखे ही छिलकेको जलमें रगड़ चर्मरोगपर व्यवहार करनेसे आशु फल मिलता है।

भारतवर्षमें प्रायः सर्वत्र ही नारङ्गी सुखादु फलकी भांति समादृत होती है। इसका वृक्ष बहुदिन पर्यन्त जीता जागता है। सुननेमें आया—एक एक वृक्ष ५१६ शत वर्षसे नहीं मुरझाया। इसका वृक्ष ५० फीट पर्यन्त उच्च विस्तृत होता है। प्रत्येक वृक्षमें ५००से १००० पर्यन्त फल उतरते हैं।

नारङ्गका पत्र जलमें चूवानेपर एक प्रकार तैल निकलता है। उसका गन्ध अति तीव्र अथच तृप्तिकर होता है। अंगरेज़ उसे 'निरोली आयेल' कहते हैं। वह अतर बनानेमें काम आता है। विलायतवाले लेवेण्डर, साबुन प्रभृति द्रव्योंमें उसे मिलाते हैं।

नारङ्गीके फूलसे जो तैलवत् निर्यास निकलता, उसका अतर अति उत्कृष्ट रहता है।

किसी-किसी वैज्ञानिकने देखभाल नारङ्गीके तेलसे कपूर निकाला है। उस कपूरको 'निरोली काम्फर' कहते हैं।

४ गङ्गा। "कमला कल्पलतिका काली कलुषवैरिणी।" (काशीख० २९।४४) ५ नर्तकी विशेष, एक नाचने-गानेवाली रण्डी। यह पीछे राजा जयापीड़की पत्नी बनी थी। ६ काश्मीरस्थ पुरीविशेष, काश्मीरका एक शहर। (राजतरङ्गिणी ४।४८२) ७ छन्दोविशेष। इसमें दो नगण और एक सगण रहता अर्थात् ८ लघु वर्णके पीछे एक गुरुवर्ण लगता है।

"द्विगुण नगण सहितः सगण इह हि विहितः।
फणिपति मति विमला क्षितिप भवति कमला॥" (वृत्तरत्नाकर)

८ कामरूपमें प्रवाहित एक नदी। इस नदीके तीरकी भूमि अधिक उर्वरा है। (भ० ब्रह्मखण्ड १६।५४)

९ उत्तर विहारकी एक नदी। यह नदी नेपाल राज्यमें हिमालयसे निकली है। इसके दक्षिण अंशको बूढ़ी कमला कहते हैं। ब्रह्मखण्डमें इसीको तेरभुक्तकी पुण्यसलिला कमला नदी बताया है। इसके तीरपर शिलानाथ ग्राम है। उसी ग्राममें शिलानाथ नामक महादेवकी लिङ्गमूर्ति प्रतिष्ठित है।

(भ० ब्रह्मखण्ड ४८।१९)

१० विशालराज्यका एक प्राचीन ग्राम। (भ०ब्रह्मखण्ड २९७०)

कमला (हिं० पु०) १ कम्बल, झांझा, सूंड़ी। यह रूयेंदार कीड़ा है। मनुष्यका देह इसके स्पर्शसे खुजलाने लगता है। २ क्रमिविशेष, ढोला, लट,

एक लम्बा और सफेद कीड़ा। यह अन्न और चीय-माण फलादिमें पड़ता है।

कमलाकर (सं० पु०) कमलानां आकरः उत्पत्ति-स्थानम्, ६-तत्। सरोवरविशेष, एक तालाव। जिस सरोवर वा तड़ागमें अधिक कमल रहते, उसे ही कमलाकर कहते हैं। २ पद्मसमूह, कवंलोंका मजमा। ३ कमलाकरभट्टनिर्मित स्मृतिशास्त्रका एक ग्रन्थ। ४ गोदावरी-तीरवर्ती देवगिरिनिवासी नृसिंहके पुत्र। इन्होंने सिद्धान्ततत्त्वविवेक और जातकतिलक नामक संस्कृत ग्रन्थ बनाया था।

कमलाकर भट्ट—विख्यात स्मृतिसंग्रहकार। यह राम-कृष्णभट्टके पुत्र, नारायणभट्टके पौत्र और दिनकर भट्टके सहोदर थे। इन महात्माने अनेक स्मृतिशास्त्र बनाये। इनके निम्नलिखित ग्रन्थ प्रधान हैं—१ तत्त्व-कमलाकर, २ पूतकमलाकर, ३ तीर्थकमलाकर, ४ संस्कारप्रयोग वा संस्कारपद्धति, ५ कार्तवीर्यार्जुन-दीपदानप्रयोग, ६ शान्तिरत्न, ७ शूद्रधर्मतत्त्व, ८ सहस्र चण्डादि विधि, ९ निर्णयसिन्धु, १० विवादताण्डव। इनके ग्रन्थ पढ़नेसे समझ सकते—कमलाकर भट्ट १५२८ शकको विद्यमान रहे।

कमलाकान्त (सं० पु०) १ लक्ष्मीपति विष्णु। २ राम। ३ कृष्ण।

कमलाकान्त भट्टाचार्य—१ बङ्गालके एक दिग्गजपण्डित। यह नवद्वीपाधिपति महाराज कृष्णचन्द्रके समसाम-यिक रहे। किसी किसी श्लोकमें इनका नाम आया है—"श्रीपादकमलाकान्त बलराम शङ्करः।" किन्तु अन्य कोई परिचय नहीं मिलता। कहते—श्रीकान्त, कमलाकान्त, बलराम और शङ्कर चारों पण्डितोंके एकत्र एकपक्ष हो विचारपर बैठनेसे स्वयं सरस्वती भी अपर पक्ष अव-लम्बन कर जीत सकती न थीं। महाराज कृष्णचन्द्रने इन्हें स्वीय सभामें रखनेके लिये बड़ी चेष्टा की। किन्तु किसी विशेष कारणसे यह विरक्त हो और राजसभा छोड़ अपने ग्राममें आकर रहने लगे। चौबीस-परगनेके अन्तर्गत 'पूंड़ा' ग्राममें इनका वास था। पण्डित-मण्डलीका वास रहनेसे पूंड़ा छोटे नवद्वीपके नामसे विख्यात हुवा। आज भी वहां इनके वंशधर रहते हैं।

२ एक प्रसिद्ध साधक और वर्धमानको राजसभाके पण्डित। १८०९ ई०को अम्बिकाकालनासे वर्धमान आ इन्होंने तत्कालीन वर्धमानाधिपति तेजश्चन्द्रको रिझाया और सभाके पण्डितका पद पाया था।

कमलाकान्त सात्त्विक, अभिमानशून्य और देवीके परम भक्त रहे। इष्टकी निष्ठासे मुग्ध हो तेजश्चन्द्रने इन्हें अपने गुरुपदपर वरण किया और निवासार्थं वर्धमानके निकट कोटालहाट ग्राममें सुन्दर भवन बनवा दिया। उक्त भवनमें कमलाकान्त महासमा-रोहसे श्रीश्यामापूजा मनाते। इस पूजाके दिन शत्रु मित्र सकल एकत्र हो इन्हें कृतार्थ करते और इनकी भक्तिगाथा सुनते थे।

जैसी पदावलीसे रामप्रसादने देवीको रिझाया और जैसी पदावलीने आजतक बङ्गालियोंके हृदयमें अमृत बहाया, कमलाकान्तने वैसी ही पदावली गा कर किसी समय वर्धमानवासियोंको उन्मत्त बनाया। क्या बालक, क्या युवक, क्या वृद्ध—जो लोग अनुरोध लगाते, उन्होंको यह किसी न किसी ताल-स्वरमें एक श्यामाविषयक पद स्वयं बना, गा एवं सुनाकर रिझाते थे।

यह निर्भीक और सरलचित्त रहे। लोगोंसे सुन पाते,—एक दिन कमलाकान्त रात्रिकालको ओड़-गांवके मैदानसे चले जाते थे। हठात् कतिपय दस्युने भीमरवसे उनपर आक्रमण किया। उन्होंने देखा, कि इसबार उनका अन्तिमकाल उपस्थित था। फिर वह निर्भय परमानन्दसे रामप्रसादके स्वरमें श्यामा माताको पुकारने लगे। उक्त गान सुन दस्यु, मोहित हुये थे। उन्होंने वैरभाव छोड़ और उनके पदपर लोट क्षमा मांगी। कमलाकान्त उन्हें सन्तुष्ट कर वर्धमान लौट गये।

यह विवेकके स्रोतमें डूब रहते, संसारकी कुछ भी ममता रखते न थे। सुननेमें आया—लोको जलानेके लिये चिता प्रज्वलित होते कमलाकान्तने नाच नाच श्यामामाताका नाम गाया।

कुमार प्रतापचन्द्रभी इनके शिष्य हो गये थे। कहते—मृत्युकाल महाराज तेजश्चन्द्र स्वयं कमला-

कान्तके भवन पहुंचे। उन्होंने गङ्गातीर जानेके लिये बहुत अनुनय विनय किया, जिसपर कमलाकान्तने एक पदावली गा कर मत फिरा दिया।

अनन्तर इन्होंने इहसंसार छोड़ा था। प्रवादानुसार कमलाकान्तका शवदेह साधककी शवशय्या भेदकर भोगवतीके स्रोतवेगमें बह गया।

कमलाकान्त विद्यालङ्कार—बङ्गालके एक सुप्रसिद्ध पण्डित। आजकल अंगरेज़ प्राच्य विषयमें ज्ञान लाभ कर और खोदित-लिपि, प्राचीन हस्ताक्षर प्रभृति पढ़ जो तत्त्व ढूंढ़नेमें लगे, उसके मूल पण्डित कमलाकान्त विद्यालङ्कार ही रहे। १८०० ई०के मध्यभाग यह एशियाटिक सोसाइटीके पण्डितपदपर प्रतिष्ठित थे। फिर उसी समय प्रिन्सेप साहब उक्त सभाके सम्पादक रहे। प्राचीन शिलालेख, ताम्रफलक और हस्ताक्षर प्रभृतिका मर्मोद्धार करना ही पण्डित कमलाकान्तका कार्य था। दिल्ली और इलाहाबादमें दो लौहस्तम्भोंपर प्राचीन अप्रचलित भाषासे कोई विषय अङ्कित रहा। उसकी अनुलिपि पूर्व ही प्रचारित हो चुकी थी। किन्तु सर विलियम जोन्स, कोलब्रुक और होरेस-हैमेन विल्सन प्रभृति संस्कृतवित् साहब उसका अर्थ लगा या उस जातिके अक्षरोंका बिन्दु विसर्ग भी बता न सके। शेषको कमलाकान्त उक्त लिपिका मर्मोद्धार करनेपर दृढ़प्रतिज्ञ हुये और अक्षर ठहरानेकी चेष्टा चलाने लगे। फिर देहली, सांची और गिरनार प्रभृति स्थानोंकी खोदितशिलालेखका सादृश्य पा तथा बङ्गाक्षरों एवं देवनागराक्षरोंसे मिला इन्होंने एक-एक अक्षर बता दिया। सर्वाग्र 'द' और 'न' स्थिर हुवा था। उक्त दोनों अक्षर पढ़े पढ़नेसे काम कितना ही सीधा पड़ गया। तत्पर 'ा', 'ि' और 'ु' आदिको कमलाकान्तने स्थिर किया था। क्रमशः अन्यान्य वर्णों और शब्दोंको निकाल इन्होंने दोनों लिपिका प्राचीन पाली भाषामें खोदित होना ठहराया। प्राचीन पाली वर्णमालाके उद्धावनका मूल बङ्गीय पण्डित कमलाकान्त विद्यालङ्कार ही थे।

पीछे इन्होंने उक्त दोनों लिपिका अर्थोद्धार और भाष्य किया। १८३७ ई०को वही अर्थ और भाष्य साधारणमें प्रचारित हुवा था। विद्वज्जन-समाजमें बड़ी खलबली पड़ी। भारतेतिहासके तमसाच्छन्न अध्यायपर नूतन आलोक पड़ा था। किन्तु जिनके द्वारा इतना काण्ड हुवा, उनको कोई फल न मिला। फल सम्पादक प्रिन्सेप साहबने पाया था। अमेरिका और युरोपके विद्यानुरागी प्रिन्सेप साहबको धन्य धन्य कहने लगे। किन्तु प्रिन्सेप साहब अकृतज्ञ न थे। वह अपनी प्रबन्धावलीमें कमलाकान्तको ही मर्मोद्भेदक और टीकाकार लिख गये हैं।

बरेलीमें मिली एक कुटिल लिपिकी समालोचनाके समय इन्होंने मुग्ध हो बताया—ऐसा सुन्दर भाव और भाषण हमने अन्य किसी लिपिमें आजतक नहीं पाया। कमलाकान्तने ही प्रथम यह बात कही—इसी लिपिसे बङ्गीय वर्णमाला निकली या मिली है। यह दूसरा भी विशेष कार्य कर पुरातत्त्वकी आलोचनामें समधिक उन्नति देखा गये हैं। दिल्ली और इलाहाबादकी पूर्वोक्त लिपिके अक्षरोंसे संख्यावाचकत्व प्रतिपादित होता था। नाना संस्कृत ग्रन्थ देख कमलाकान्तने ठहराया—कौन अक्षर किस संख्याके लिये आया है। इस स्थलपर उसके दो एक उदाहरण देते हैं—"सनयुगाकृतिश्चतुरेको विसर्गः।" (कातन्त्र)

४ (चार)का अङ्क स्त्रीके स्तनयुग और विसर्गकी आकृति रखता है। कातन्त्र व्याकरणमें कमलाकान्तने उक्त सूत्र देख निर्णय किया—विसर्ग (:) वर्ण (४) चारके अङ्कका बोधक माना गया है। इसी प्रकार पिङ्गलकृत प्राकृत व्याकरणका सूत्र ६ (छह) संख्याको बतानेवाला ठहरा है।

इससे पूर्व और पर प्रिन्सेप साहब कमलाकान्तपण्डितके साहाय्यपर नाना विषयमें कृतकार्य हुये। वह स्वयं विशेषरूपसे संस्कृत भाषाके अभिज्ञ न रहे। पण्डित कमलाकान्त ही उनके चक्षु बन गये। हम अच्छी तरह समझते—कमलाकान्त यशोलिप्सु न थे। कारण बिन्दु मात्र भी यशोलिप्सा रखते यह निज कृत अनेक कार्योंमें एक न एक अपने नामपर चलाते और लाभ एवं कीर्ति उठाते। फिर डाक्टर

राजेन्द्रलाल मित्रको भांति इनका नाम पृथिवीके सकल स्थानोंमें विघोषित हो जाता।

कमलाकार (सं० पु०) १ एक छप्पय। इसमें २७ गुरु एवं ९८ लघु अर्थात् १२५ वर्ण और १५२ मात्राका समावेश होता है। (त्रि०) २ कमलका आकार रखनेवाला, जो कमल जैसा हो।

कमलाश्व (सं० पु०) पुण्यस्थानविशेष, एक परस्तिश-गाह। इसे कमलवतीने बनवाया था। (राजत०)

कमलाक्ष (सं० त्रि०) कमलमिव अक्षि यस्य, बहुव्री०। १ पद्मकी भांति सुन्दर चक्षुविशिष्ट, जो कमलको तरह आंखें रखता हो। (पु०) २ पद्मवीज, कमलगट्टा। यह स्वादु, रुच्य, पाचन, कटुक, शीतल, तुवर, तिक्त, गुरु, विष्टम्भकारक, गर्भस्थितिकर, रुच्य, हृद्य, वातकर, वल्य, ग्राही, कफक्षत एवं लेखन और पित्त, रक्त, वमि तथा दाहनाशक है। (वैद्यकनिघण्टु) ३ स्थानविशेष, किसी जगहका नाम।

कमलाग्रजा (सं० स्त्री०) हरिद्रा, हलदी।

कमलादेवी—१ कादम्बराज शिवचित्तवीरप्रमादिदेवकी पटरानी। दाक्षिणात्यको शिलालिपि पढ़नेसे समझते—कमलादेवीके पति गोपकपूरी (गोवा)में राजत्व करते थे। यह अपने पतिकी प्रियतमा महिषी रहीं। देवद्विजपर इन्हें बड़ी भक्ति श्रद्धा थी। अपनी दानशीलता और परोपकारिताके गुणसे यह श्रेष्ठ रमणीके मध्य परिगणित रहीं। इन्होंने वेद-वेदाङ्गपारदर्शी ब्राह्मणोंको अनेक ग्राम दे डाले। फिर इन्हींके अनुरोधसे ११७४ ई०को कादम्बराजने ब्राह्मणोंको देगम्व ग्राम प्रदान किया। कमलादेवी उमाको पूजती थीं।

इतिहासमें दूसरी कमलादेवीका नाम भी मिलता है। नीचे उनका विवरण लिखा है,—

२ गुजरातके राजा करणरायकी परमासुन्दरी पत्नी। १२९७ ई०को सम्राट् अला-उद्-दीन् खिलजीने गुजरात जय किया था। उस समय बन्दियोंके साथ कमलादेवी भी दिल्ली पहुंचायी गयीं। कुछ दिन पीछे अला-उद्-दीन्‌की कुशलता और प्ररोचनासे इन्होंने सम्राट्‌को गले लगाया था। फिर १३०६ ई०को कमलादेवीके गर्भसे उत्पन्न गुजरातकी राजकन्या देवलदेवी भी दिल्ली पहुंच गयीं। अला-उद्-दीन्‌के पुत्र शाहजादे खिज्र खां उनके रूपसे मुग्ध हुये थे। अवशेषको देवलदेवी और शाहजादे खिज्रखान्‌का भी विवाह हो गया। मुबारिक शाहने सम्राट् बन अपने भ्राता खिज्र खान्‌को ग्वालियरके निकट बन्द कर मारा और देवलदेवीको घरमें डाला था। खिज्र खान् और देवलदेवीका प्रणय कथापर तदानीन्तन राजकवि अमीर ख़ुसरो एक सुन्दर फ़ारसी काव्य लिख गये हैं। इतिहासलेखक मुसलमानोंने कमलादेवीको 'कंवला देवी' कहा है।

कमलानन्दन—कमलाके पुत्र दिनकर मिश्र।

कमलानिवास (सं० पु०) लक्ष्मीका वासस्थान, कमल।

कमलापति (सं० पु०) कमलायाः पतिः, ६-तत्। लक्ष्मीके स्वामी, विष्णु।

कमलायताक्ष (सं० त्रि०) कमलके समान दीर्घ चक्षु रखनेवाला, जिसके कमलकी तरह बड़ी आंख रहे।

कमलायुध (सं० पु०) १ संस्कृतके एक प्राचीन कवि। २ कान्यकुब्जके एक प्राचीन नृपति।

कमलालय (सं० क्ली०) मन्द्राजप्रान्तीय तञ्जोर ज़िलेके तिरुवलूर नगरका एक पवित्र तीर्थ। यहां महादेवकी लिङ्गमूर्ति विद्यमान है।

कमलालया (सं० स्त्री०) कमलं आलयो यस्याः। कमलमें रहनेवाली लक्ष्मी।

कमलासख (सं० पु०) कमलायाः सखा, टच्। राजाहः सखिभ्यष्टच्। पा ५।४।९१। लक्ष्मीके सखा विष्णु।

कमलासन (सं० पु०) कमलं आसनं यस्य, बहुव्री०। १ कमलपर बैठनेवाले ब्रह्मा। "क्रान्तानि पूर्वं कमलासनेन।" (कुमार) (क्ली०) कमलाया लक्ष्म्या असनं क्षेपणं दानमित्यर्थः। २ लक्ष्मीका दान। ३ पद्मासन। यह दो प्रकार होता है—बद्ध और मुक्त। मुक्तमें वामपद पहले दक्षिण पदको जङ्घापर चढ़ाया जाता, फिर दक्षिणपद वामपदकी जङ्घापर आता है। अन्तको दोनों हाथकी हथेली जानुपर खुली रखते हैं।

इसी प्रकार मेरुदण्डको सीधा कर बैठनेका नाम मुक्त पद्मासन है। बद्ध पद्मासनमें पदोंके चढ़ानेका नियम तो ऐसा ही रहता है। किन्तु वाम हस्तको पीठके पीछे घुमा वाम पदका और दक्षिण हस्तको पीठके पीछे घुमा दक्षिण पदका अङ्गुष्ठ पकड़ते हैं। फिर चिबुक वक्षःस्थलपर जमा और नासाके अग्रभागपर दृष्टि लगा सीधे बैठा जाता है। यह पद्मासन अति उत्तम रहता और घण्टे आध घण्टे अभ्यस्त होनेपर साधकके सब रोग हरता है।

कमलासनस्थ (सं० पु०) कमलं विष्णोर्नाभिकमलं तद्रूपे आसने तिष्ठति, कमल-आसन-स्था-क। विष्णुके नाभिकमलपर रहनेवाले ब्रह्मा।

कमलाहट्ट (सं० पु०) काश्मीरका एक बाजार। काश्मीरकी रानी कमलावतीने इसे लगाया था।

(राजतरङ्गिणी ४।२०८)

कमलाहास (सं० पु०) पद्मका खुलना या मुंदना, कंवलके फूलने या बंद होनेकी हालत।

कमलाकर—संस्कृतके एक प्राचीन ग्रन्थकार। यह नृसिंहके पुत्र, कृष्णके पौत्र और दिवाकरके प्रपौत्र रहे। इन्होंने अपूर्वभावनोपपत्ति, जातकतिलक, ज्योत्पत्तिविचार, त्रिशती, मनोरमाग्रहलाघवटीका, शेषाङ्कगणना, सिद्धान्ततत्त्वविवेक (यह १५०३ ई०को बनारसमें लिखा गया) और सूर्यसिद्धान्तटीका सौरवासना ग्रन्थ लिखा है।

कमलाकर देव—आनन्दविलास नामक ग्रन्थके रचयिता।

कमलाकर भट्ट—एक प्राचीन संस्कृत ग्रन्थकार। १६१६ ई०को इन्होंने 'निर्णयसिन्धु' बनाया था। इनके लिखे ग्रन्थ यह हैं—अग्निनिर्णय, आचारदीप वा आचारदीपिका, आश्वलायनशाखा-श्राद्धप्रयोग, आह्निकविधि, उत्तरपाद, ऐन्द्रीमहाशान्ति-सहितराजाभिषेकप्रयोग, कर्मविपाकरत्न, कल्पलताहोमप्रयोग, काव्यप्रकाश-व्याख्या, क्रियापाद, गयाकृत्य, गीतगोविन्दभाष्यरत्नमाला, गोत्रप्रवर-निर्णय वा गोत्रप्रवरदर्पण, ग्रहयज्ञ, चण्डीविधानपद्धति, जलाशयोत्सर्गविधि, जीर्णोद्धारविधि, तन्त्रवार्तिकटीका, तिलगर्भदानप्रयोग, तीर्थयात्रा, तुलापद्धति, त्रिपद्मदानविधि, त्रिस्थलीसेतु, दानकमलाकर, दायविभाग, धर्मतत्त्व, नारायणबलिप्रयोग, निर्णयसिन्धु, नीतिकमलाकर, पशुबन्ध, पशुलाङ्गलदानविधि, पितृभक्तितरङ्गिणी, पूर्तकमलाकर, प्रतिष्ठाविधि, प्रवरदर्पण, प्रायश्चित्तरत्न, बह्वृचाह्निक, भक्तिरत्न, भावार्थवाद, मन्त्रकमलाकर, रजतदानप्रयोग, रथदानविधि, रामकल्पद्रुम, रामकौतुकमहाकाव्य, लक्षहोमविधि, लिङ्गार्चाप्रतिष्ठाविधि, विघ्नेशदानविधि, विवादताण्डव, विश्वचक्रदानविधि, व्यवहार, व्रतकमलाकर, व्रतार्क, शतचण्डीसहस्रचण्डीप्रयोग, शतमान-दानविधि, शान्तिरत्न वा शान्तिरत्नाकर, शास्त्रदीपिकालोक, शास्त्रमाला, शिवप्रतिष्ठा, शूद्रधर्मतत्त्व, श्राद्धनिर्णय, श्राद्धसार, श्रावणीप्रयोग, श्वेताश्वदानविधि, षोडशसंस्कार, संस्कारपद्धति, समयकमलाकर, सरस्वतीदानविधि, सर्वशास्त्रार्थनिर्णय, सहस्रचण्ड्यादिप्रयोगपद्धति, सुवर्णपृथिवीदानविधि, स्थालीपाकप्रयोग, हिरण्यगर्भदानविधि और कमलाकरभट्टीय। नृसिंहने अर्थसागर, पुरुषोत्तमने द्रव्यशुद्धिदीपिका और बालकृष्णने ऋग्वेददैवताक्रमनामक ग्रन्थमें इनका वचन उद्धृत किया है।

कमलाकरभिक्षु—संस्कृतके एक प्राचीन विद्वान्। वासवदत्तामें सुबन्धुने इनका उल्लेख किया है।

कमलिनी (सं० स्त्री०) कमलानि सन्ति अत्र, कमल-इनि। पुष्करादिभ्यो देशे। पा ५।२।१३५। १ पद्मिनी, कंवलका पेड़। यह शीतल, गुरु, मधुर, लवण, रुक्ष, पित्त, असृक् तथा कफघ्न और वात एवं विष्टम्भकर होती है। कमलिनीका कन्द शीत, तुवर, मधुर, तिक्त, पाकमें अति कटु, लघु, ग्राहक, वातकृत् और कफ एवं पित्तनाशक है। (वैद्यकनिघण्टु) २ पद्माकर, कंवलोंका खजाना। जिस सरोवर वा कुण्डमें बहुतसे कमल रहते, उसे ही कमलिनी कहते हैं। ३ गङ्गा।

"कुमुदती कमलिनी कान्तिः कम्पितदायिनी।" (काशीखण्ड २९।३०)

कमली (सं० पु०) ब्रह्मा।

कमली (हिं० स्त्री०) छोटा कम्बल, कमरी।

कमलेक्षण (सं० त्रि०) कमलमिव ईक्षणं यस्य, बहुव्री०। पद्म चक्षु, कंवलकी तरह खूबसूरत आंखें रखनेवाला।

कमलेश (सं० पु०) कमलाके ईश विष्णु।

कमलेश्वर (सं० क्लो०) एक तीर्थ। (कूर्मपु० ३१७०) किसी किसी पुस्तकमें कमलेश्वरके स्थानपर 'कालके-श्वर' पाठ देख पड़ता है।

कमलो (हिं० पु०) उष्ट्र, ऊंट, सांडिया।

कमलोत्तर (सं० क्लो०) कमलमिव उत्तरं श्रेष्ठं कमला-दुत्तरं उत्तममिव वा। कुसुम्भपुष्प, कुसुमका फल।

कमवाना (हिं० क्रि०) १ लाभ करवाना, दिलवाना। २ मलमूत्र उठवाना, साफ करवाना। ३ मुण्डन करवाना, बाल बनवाना। ४ संस्कार करवाना, सुधरवाना।

कमसमझी (हिं० स्त्री०) मन्दमतिता, नाफहमी, बेवकूफी।

कमसरियट (अं० पु० = Commissariat) सेनाका एक विभाग, फौजका कोई महकमा। यह सेनाको खाद्यादि सामग्री पहुंचाता है।

कमसिन (फा० वि०) अल्पवयस्क, जो उम्रमें छोटा हो।

कमसिनी (फा० स्त्री०) शैशव, लकड़पन।

कमहा (हिं० वि०) कार्यकारी, कामकाजी।

कमहिम्मत (फा० वि०) भीरुहृदय, डरपोक।

कमहिम्मती (फा० स्त्री०) भीरुता, बुज़दिली, डरपोकी।

कमा (सं० स्त्री०) कम-णिङ् भावे अ-टाप्। शोभा, खूबसूरती, चमक।

कमाई, कमायी देखो।

कमाऊ, कमायू देखो।

कमाची (हिं० स्त्री०) १ कञ्चिका, कनची। २ कमा-नचा, झुकी हुयी तीली।

कमाण्डर (अं० पु० = Commander) सेनाध्यक्ष, सरदार, सरगिरोह। यह अफसर फौजमें लफटनण्ट-के ऊपर और कपतानके नीचे काम करता है।

कमाण्डर-इन-चीफ, (अं० पु० = Commander-in-chief) प्रधान सेनाध्यक्ष, सिपह-सालार, जङ्गी लाट।

कमान (फा० स्त्री०) १ कार्मुक, धनुष, चाप, कमठा। २ खण्डमण्डल, तोरण, मेहराब। ३ इन्द्र-धनुः, इन्द्रायुध, कौस-कुज़ा। ४ लोहनाली, अग्न्यस्त्र, तोप, तुपक, बन्दूक। ५ व्यायामविशेष, एक कसरत। इसमें मालखम्भपर कसरत करनेवाला कमानकी तरह टेढ़ा पड़ जाता है। ६ यन्त्रविशेष, एक औज़ार। इससे आस्तरण बुना जाता है। ७ यन्त्रभेद, कोयी औज़ार। इससे दो पदार्थोंके मध्यका अन्तर निर्धा-रित होता है। (वि०) ८ कुञ्चनीय, नमनशील, लचीला। ९ वक्र, टेढ़ा, झुका हुवा।

कमान (हिं० स्त्री०) १ आदेश, हुक्म। २ अधिकार, दृष्ट, तियार। यह अंगरेज़ीके कमाण्ड (Command) शब्दका अपभ्रंश है।

कमान-अफसर (हिं० पु०) आज्ञापक पुरुष, हुक्म देनेवाला सरदार। यह अंगरेज़ीके कमाण्डिङ्ग आफिसर (Commanding officer) शब्दका अप-भ्रंश है।

कमानगर (फा० पु०) १ कार्मुककार, कमान बनानेवाला। २ अस्थि-योजयिता, हड्डी जोड़नेवाला।

कमानगरी (फा० स्त्री०) १ कार्मुक विधान, कमान बनानेका काम। २ अस्थियोजना, हड्डीकी जोड़ायी।

कमानचा (फा० पु०) १ क्षुद्र कार्मुक, छोटी कमान, कमठा। २ सारङ्गी, चौतारा, किंगरी। ३ सार-ङ्गीका धनुष, स्थितिस्थापकत्वविशिष्ट पदार्थ, लोहेकी कमानी। ४ खण्डमण्डलाकार पटल, मेहराबदार छत। ५ विविक्त भवन, पोशीदा कमरा।

कमानदार (फा० वि०) १ खण्डमण्डलाकार, मेह-राबदार। (पु०) २ धनुर्धर, कमान लिये हुवा।

कमानदार (हिं० पु०) आज्ञापक, सेनापति, सर-दार, सरगिरोह।

कमाना (हिं० क्रि०) १ उपार्जन करना, घर भरना। २ परिश्रम करना, मरना-मिटना। ३ अभ्यास बढ़ाना, मश्क़पर लाना। ४ परिष्कार करना, मसालेसे भरना। ५ मलमूत्र उठाना, झाड़ू लगाना। ६ भूमि प्रस्तुत करना, जुरखेज़ीसे भरना। ७ पौंश्चल्यसे निर्वाह करना, छिनालेसे पेट भरना। ८ धनोपार्जन करना, रुपयेको पैदामें पड़ना। ९ क्षुर चलाना, बाल बनाना। १० न्यून बनाना, घटाना।

कमानिया (हिं० पु०) धानुष्क, कमानदार।

कमानी (फ़ा० स्त्री०) १ स्थिति-स्थापकत्व-विशिष्ट पदार्थ, कोयी लचीली चीज़। जैसे—तीक्ष्णायस दण्ड पात्र वा व्यावर्तन, भारतीय वर्षक पिण्ड, संहत समीरणका समवाय। यह द्रव्य नाना प्रकार यन्त्र-विषयक कार्यमें लगता है। कमानीसे बल घाते या पहुंचाते, गतिको नियमपर लाते, गुरुत्व वा अन्य शक्ति नपाते और सहट्ट लगाते हैं। यन्त्र सामग्रीमें इसके जो प्रधान भेद चलते, उन्हें नीचे लिखते हैं—१ संश्लिष्ट (पेचदार), २ व्यावर्तित (लचीली या बालकमानी), ३ विलोल (मरगोल), ४ अण्डाकार (बेज़ावी), ५ अर्धाण्डाकृति (निस्फ़ बेज़ावी), ६ प्रधान (बड़ी), ७ साटोप (ऐंठदार)। यह लोह वा पित्तलसे बनती है। भारतीय वर्षक (रबरकी) तथा वायव (हवायी) कमानी अर्धाण्डाकार रहती और चलनशील (चलते) द्रव्यपर लगती है। यह घड़ी या पङ्खा चलाती, झटका बचाती, तौल ठहराती और धक्का लगाती है। दबानेसे दब जाते भी कमानी अपने आप ऊपर उठ आती है।

२ वक्र एवं नमनशील लौहशलाका, लोहेकी झुकी हुयी लचकदार तीली। यह छाते और चश्मे वगैरहमें लगती है। ३ मेखलाविशेष, एक पेटी। यह चर्ममय होती है। इस कमानीके भीतर लौहमय एवं नमनशील पट्ट रहता है। फिर उभय प्रान्तपर उपाधान लगा देते हैं। जिस रोगीका अन्त्र उतरता, वह कटिमें कमानी कसता है। इससे अन्त्र उतरने नहीं पाता। ४ धनुषाकार काष्ठविशेष, झुकी हुयी कोई लकड़ी। इसके दोनों प्रान्त रज्जु, लोहसूत्र वा कुन्तलसे बंधे रहते हैं। ५ वंशखण्डविशेष, बांसकी एक फट्टी। यह सूक्ष्म रहती और दरी बुननेके यन्त्रमें लगती है। ६ लोहनाड़ीके तालकका विशीर्ण स्थितिस्थापकत्व विशिष्ट पदार्थ, बन्दूकके तालेकी सूखी कमानी।

कमानीदार (फ़ा० वि०) स्थितिस्थापकत्वविशिष्ट पदार्थयुक्त, जो कमानी रखता हो।

कमायज (हिं० स्त्री०) कमानचा, सारङ्गीका गज़।

कमायी (हिं० स्त्री०) १ उपार्जित, लभ्यांश, उजरत, आमदनी। २ लाभ, फ़ायदा। ३ उद्यम, कामकाज।

कमाल (अ० पु०) १ सिद्धि, तकमील, पूरापन। २ आश्चर्य, ताज्जुब, अचम्भा। ३ कौशल, होशियारी। ४ नैपुण्य, कारीगरी। ५ कबीरके पुत्र। यह भी एक पहुंचे साधु थे। कबीरकी बात काट डालना इनका लक्ष्य रहा। (वि०) ६ सिद्ध, पूरा। ७ अत्यन्त, बहुत ज़्यादा।

कमाबू (हिं० वि०) उपार्जन करनेवाला, जो पैदा करता हो।

कमासुत (हिं० वि०) धनोपार्जन करनेवाला, जो रुपया कमाता हो।

कमिता (सं० पु०) कम-णिङ्-भावे तृच्। कामुक, मस्त, चाहनेवाला।

कमिश्नर (अं० पु०=Commissioner) १ नियोगी, मुख़्तारकार। २ अधिकारी, अमीन। माल और पुलिसके बड़े अफ़सरको भी कमिश्नर कहते हैं।

कमी (फ़ा० स्त्री०) १ न्यूनता, कोताही, घाटा। २ अप्राप्ति, कमयाबी, तङ्गी। ३ हानि, नुक़सान्। ४ ह्रास, तकलील, उतार। ५ अपचय, गबन, घाववध। ६ उपशम, तख़फ़ीफ़, नरमी।

कमीज़ (हिं० स्त्री०) पुतक, अधोवसन, पहननेका एक कपड़ा। यह एक प्रकारका कुर्ता है। इसमें कली और चौबगला नहीं लगाते। पीठ पर चुनट पड़ती है। फिर हाथमें कफ़ और गलेमें कालर भी रहता है। भारतीयोंने अंगरेज़ोंसे कमीज़ पहनना सीखा है। अरबीमें इसे क़मीस कहते हैं।

कमीनगाह (अ० स्त्री०) निभृत स्थान, घातकी जगह।

कमीना (फ़ा० वि०) अधम, जघन्य, कम-असल, रज़ील, पाजी, ओछा।

कमीनापन (हिं० पु०) जघन्यता, काम-असली, ओछापन।

कमीनी बाछ (हिं० स्त्री०) करविशेष, किसीकिस्मको उगाही। यह कर गांवमें खेती न करनेवाले नीच लोग ज़मीन्दारको देते हैं।

कमीला, कबीला देखो।

कमीशन (अं० स्त्री०=Commission) १ आचरण, इरतिकाब, करतब। २ समर्पण, सुपुर्दगी। ३ अधिकार, इख़्तियार। ४ आदेश, हुक्म। ५ परार्थ-विक्रय, दलाली। ६ नियुक्तजन, जमात, जथा।

कमीस (अ० स्त्री०) कमीज, किसी क़िस्मका कुरता।

कमुकन्दर (हिं० पु०) धनु भञ्जनकारी रामचन्द्र।

कमुवा (हिं० पु०) नौदण्डका मुष्टि, नाव चलानेके डांडका कब्जा।

कमून (अ० पु०) जीरक, जीरा।

कमूनी (फ़ा० वि०) १ जीरक-सम्बन्धीय, जीरेसे ताल्लुक रखनेवाला। जीरकके अवलेहको 'जवारिश कमूनी' कहते हैं। (स्त्री०) २ औषधविशेष, एक दवा। इसमें जीरा बहुत पड़ता है।

कमूल, कमलाई देखो।

कमेटी (अं० स्त्री०=Committee) कार्यसम्पादिका सभा, पञ्चायत।

कमेड़ी (हिं० स्त्री०) क़ुमरी, कपोतिका।

कमेरा (हिं० पु०) कर्मकर, मजदूर, नौकर। प्रधानतः खेतीके काम करनेवाले नौकरको 'कमेरा' कहते हैं।

कमेला (हिं० पु०) १ शूना, वध्यस्थान, क़त्लगाह। २ कमीला, एक पौदा।

कमेहरा (हिं० पु०) संस्थानविशेष, एक सांचा। यह मट्टीका होता है। इसमें कसकुटकी चूड़ियां ढाली जाती हैं।

कमोदन (हिं० स्त्री०) कुमुदिनी, कोकाबेली।

कमोदपुष्प (सं० क्ली०) जलपुष्पविशेष, पानीमें होनेवाला एक फूल।

कमोदिक (हिं० पु०) १ कमोदराग गानेवाला। २ गायक, गवैया।

कमोदिन (हिं० स्त्री०) कुमुदिनी, कोकाबेली।

कमोना—युक्तप्रदेशके बुलन्दशहर जिलेका एक ग्राम। यह काली नदीके दक्षिण तटसे थोड़ी दूर अवस्थित है। यहां एक सुप्रसिद्ध दुर्ग विद्यमान है।

कमोरा (हिं० पु०) १ मृत्पात्रविशेष, मट्टीका एक बरतन। इसका मुख प्रशस्त रहता है। इसमें दुग्ध दूहते और रखते हैं। यह दही जमानेके काम भी आता है। २ घट, घड़ा।

कमोरी (हिं० स्त्री०) क्षुद्र मृत्पात्रविशेष, मट्टीका एक छोटा बरतन। इसका मुख प्रशस्त रहता है। यह दुग्ध दूहने तथा रखने और दही जमानेके काम आती है।

कम्प (सं० पु०) कपि भावे घञ् इदित्वात् नुम्। १ स्फुरण, लरजिश, थरथराहट, कपकपी। इसका संस्कृत पर्याय—वेपथु, वेपन, वेप और कम्पन है। २ उच्चारणविशेष, एक तलफ़्फ़ुज़। यह स्वरितका एक संस्कार है। स्वरितके आगे उदात्त स्वर आनेसे इस स्फुरणकी आवश्यकता पड़ती है। ३ वेपथु, बुखारकी कंपकपी। ४ अनुभावविशेष। यह शृङ्गार-रसका सात्विक अनुभाव है। इसमें शीत, कोप, भय प्रभृतिसे अकस्मात् शरीर कंपने लगता है। ५ कंगनी, उभरा हुवा दीवारका किनारा। यह मन्दिरों और स्तम्भोंके नीचे रहती है।

कम्प (अं० पु०=Camp) १ शिविर, डेरा, खेमा। २ सैन्यनिवास, पड़ाव, छावनी। ३ सेना, फ़ौज, लशकर।

कम्पज्वर (सं० पु०) कम्पयुक्तो ज्वरः, मध्यपदलो०। शीतज्वर, विषम, तपलरजा, जूड़ी। यह ज्वर वायुसे उत्पन्न होता है। ज्वर देखो।

कम्पति (सं० पु०) समुद्र, बहर।

कम्पन (सं० त्रि०) कपि-युच् इदित्वात् नुम्। १ कम्पयुक्त, कांपनेवाला, जिसको कपकपी लगी हो या जो कांपता हो। इसका संस्कृत पर्याय—चलन, कम्प, चल, लोल, चलाचल, चञ्चल, तरल, पारिप्लव, परिप्लव, चपल और चटुल है। २ कम्पकारक, कंपानेवाला। (पु०-क्ली०) ३ कम्प, कपकपी। ४ शीतऋतु, जाड़ेका मौसम। ५ एक राजा।

> "काम्बोजराजः कनठः कम्पनस्तु महाबलः।
> सततः कम्पयामास यवनानेक एव यः॥" (महाभारत १।४।१९)

६ अस्त्रविशेष, एक हथियार। ७ सन्निपातजन्य ज्वर-विशेष, एक बुखार। भावमिश्रने कफोल्वण सन्निपात ज्वरको ही कम्पन कहा है,—

"जड़ता गदगदा वाणी रात्रौ निद्रा भवत्यपि।
प्रस्तब्धे नयने चैव मुखमाधुर्यमेव च॥
कफोल्बणस्य लिङ्गानि सन्निपातस्य लक्षयेत्।
मुनिभिः सन्निपातो ऽयमुक्तः कम्पनसंज्ञकः॥" (भावप्रकाश)

कफोल्वण सन्निपातमें शरीरमें जड़ता आती, वाणी गद्गद् पड़ जाती, रात्रिको निद्रा अधिक सताती, आंख सुखाती और मुखमें मिठास देखाती है। मुनियोंने इसी ज्वरका नाम कम्पन रखा है। ८ काश्मीर-निकटवर्ती एक नगर। ९ उच्चारणविशेष, एक तलफ़्फ़ुज़। १० कंपायी, हिलने डुलनेकी हालत।

कम्पना (सं० स्त्री०) कम्पन-टाप्। १ नदीविशेष, एक दरया। २ सेना, फौज।

कम्पनीय (सं० त्रि०) कम्पन-ढक। चलनशील, मुतहरिक, जो हिल डुल सकता हो।

कम्पमान (सं० त्रि०) कपि-शानच् इदित्वात् नुम्। कम्पयुक्त, जो कांपता हो।

कम्पयत् (सं० त्रि०) कंपानेवाला, जो हिलाता डुलाता हो।

कम्पलक्ष्मा (सं० पु०) कम्पः चलनं लक्ष्म लक्षणं यस्य, बहुव्री०। वायु, हवा।

कम्पवायु (सं० पु०) कम्पः कम्पकरः वायुः। वात-रोगविशेष, वायीकी एक बीमारी। इसमें सर्वशरीर कंपने लगता है। वातव्याधि देखो।

कम्पा (सं० स्त्री०) कपि भावे अ-टाप्। कम्पन, कंपकंपी।

कम्पाक (सं० पु०) कम्पया चलनेन कायति प्रकाशते, कम्प कै-क। वायु, हवा।

कम्पान्वित (सं० त्रि०) कम्पयुक्त, कंपनेवाला, जो घबराया हो।

कम्पित (सं० क्ली०) कपि भावे क्त। १ कम्पन, कंपकंपी। (त्रि०) २ कम्पयुक्त, कंपनेवाला। ३ कंपाया, जो हिलाया डुलाया गया हो।

कम्पिल (सं० पु०) कम्प-इलच्। १ रोचनी, सफ़ेद नौसादर। इसका संस्कृत पर्याय—कम्पिल्ल, कम्पिल्लक, कम्पील, कम्पिल्लक, रक्ताङ्ग, रेची, रेचनक, रञ्जक, लोहिताङ्ग और रक्तचूर्णक है। राजनिघण्टके मतसे यह विरेचक, कटु, उष्ण एवं लघु और व्रण, कफ, कास तथा जन्तुक्रमिनाशक है। फिर सुश्रुत इसके तैलको तिक्त, कटु, कषायरस एवं व्रणशोधक और अधोगत दोष, क्रमि, कफ, कुष्ठ तथा वायुनाशक बताते हैं। २ युक्तप्रदेशके फरुखाबाद जिलेकी कायमगञ्ज तहसीलका एक ग्राम। महाभारतमें इसका नाम काम्पिल्य लिखा है। काम्पिल्य देखो।

कम्पिला (सं० स्त्री०) घृतकुमारी, घीकुवार।

कम्पिल्ल (सं० पु०) कम्प-इल्ल। श्वेतविड्वत्, सफ़ेद नौसादर।

कम्पिल्लक (सं० पु०) कम्पिल्ल स्वार्थे कन्। श्वेत-विड्वत्, सफ़ेद नौसादर।

कम्पिल्लमालक (सं० पु०) वकुलभेद, किसी क़िस्मकी मौलसिरी।

कम्पिल्य, कम्पिल्ल देखो।

कम्पी (सं० त्रि०) कम्पो अस्यास्ति, कम्प-इनि। १ कम्पयुक्त, कंपनेवाला। २ कंपानेवाला, जो कंपाता हो। "गीती शीघ्री शिरःकम्पी तथा लिखितपाठकः।
अनर्थज्ञो ऽल्पकण्ठश्च षडेते पाठकाधमाः॥" (शिक्षा ३२)

कम्प्य (सं० त्रि०) कपि-णिच् कर्मणि यत्। १ चलन-शील, मुतहरिक, जो हिलाया डुलाया जा सकता हो। २ स्फुरणके साथ उच्चारित होनेवाला, जो आवाज़को हिला डुला कर बोला जाता हो।

कम्र (सं० त्रि०) कम्नि-र। नमिकम्पिस्म्यजसकमहिंस-दीपो रः। पा ३।२।१६७। कम्पान्वित, कांपनेवाला।

"विधाय कम्राणि मुखानि कम्रति।" (नैषध १।४२)

कम्रा (सं० स्त्री०) कम्र स्त्रियां टाप्। शाखा, डाल।

कम्बन—दाक्षिणात्यके प्रसिद्ध तामिल कवि। मन्द्राज प्रान्तीय वेल्लूर जिलेके वेन्नेइ नेल्लूर नामक ग्राममें इन्होंने जन्म लिया था। यह बल्लाल शूद्रवंशीय रहे। इन्होंने बारह वर्षके वयससे वाल्मीकि-रामायणका तामिल भाषामें अनुवाद आरम्भ किया और पचास वर्षके वयःक्रमकाल पूरे उतार दिया। चोलाधिप करिकाल चोल कविलके गुणसे मुग्ध हो इनकी प्रशंसा करते थे। फिर राजेन्द्र-चोलने इन्हें अपनी

सभामें बोला राजकविका उपाधि दिया। यह ८०७ शकको विद्यमान रहे। इनका बनाया तामिल रामायण 'कम्बनपादल', 'काञ्चिवरम् पिल्लतामल', 'चोलकुरवञ्ज' (करिकाल चोलका इतिहास) और 'कम्बन अगराधि' नामक तामिल अभिधान दाक्षिणात्यमें प्रसिद्ध है। इन्होंने मदुरा नगरमें ६० वर्षके वयःक्रमकाल इहलोक छोड़ा था। (Wilson's Mackienzie Collection.)

कोई कोई इनका नाम कम्बर और जन्मस्थान तञ्जोर ज़िलेका कम्ब नाडू नामक ग्राम बताता है। इन्होंने रामायणका अपना तामिल अनुवाद राजेन्द्र चोलके समयमें आरम्भ कर कुलोत्तुङ्ग चोलके राज्यकाल पूरे उतारा था। (Caldwell's Dravidian Grammar, p. 134.)

कम्बम्—मन्द्राजप्रान्तके कर्णाल ज़िलेका एक नगर।

कम्बर (सं० पु०) कम्ब-अरन्। विविधवर्ण, चित्रवर्ण, गूनागून् रंग। (त्रि०) २ नानाविध वर्णविशिष्ट, रंग-ब-रंग।

कम्बर—सिन्धुप्रदेशकी एक तहसील। यह अक्षा० २७° २८′ एवं २७° ५८′ ३०″ उ० और देशा० ६७° ३५′ ४५″ तथा ६८° १०′ पू०के मध्य अवस्थित है। भूमिका परिमाण ८७७ वर्गमील पड़ता है। यहां प्रायः एक लक्ष मनुष्य रहते हैं। इसका अपर नाम महादतपुर है। शिकारपुर ज़िलेसे यहां तहसील उठ आयी है। इसके प्रधान नगरका नाम भी कम्बर ही है। यह अक्षा० ७३° ३५′ उ० और देशा० ६८° २′ ४५″ पू०पर अवस्थित है। १८४४ ई०को बलूचियोंने उक्त नगर लूटा था। फिर दूसरे ही वर्ष अग्निप्रयोगसे कम्बर एककाल ध्वंस हो गया।

कम्बल (सं० पु०-क्ली०) कम्ब वृषादित्वत् कलच्। १ मेषादिके लोमसे निर्मित एक वस्त्र, भेड़ वगैरहके बालसे बना एक कपड़ा। इसका संस्कृत पर्याय—रल्लक, वेणक, रोमयोनि, रेणुका और प्रावार है। इस देशमें कितने ही कम्बल व्यवहार करते हैं। पूर्व कम्बल कवचका कार्य देता था। किसी किसीके कथनानुसार कम्बलको रुयी भरा पहननेसे बन्दूककी गोली तक शरीरमें घुस नहीं सकती। २ सर्पविशेष, कोई सांप। ३ गो प्रभृतिके गलका रोम, मवेशियोंकी गर्दनका बाल। ४ उत्तरीय, ऊनी चादर। ५ मृगविशेष, एक हिरन। ६ नागद्वय, सांपका जोड़ा। इसमें एक पाताल और एक वरुण देवके सभास्थलमें रहता है। ७ कृमिविशेष, एक कीड़ा। ८ तीर्थविशेष।

"प्रयागं सुप्रतिष्ठानं कम्बलाश्वतरौ तथा।
तीर्थं भोगवती चैव वेदिरेषा प्रजापतेः॥" (भारत, वन ८५ अ०)

९ जल,पानी। १० लोणिकाशाक, लोनिया। ११ सास्ना।

कम्बलक (सं० पु०) कम्बल स्वार्थे कन्। कम्बल, ऊनी कपड़ा, ऊनी पोशाक।

कम्बलकारक (सं० पु०) कम्बलं करोति, कम्बल-कृ-ण्वुल्। कम्बलनिर्माता, ऊनी कपड़ा-बनानेवाला।

कम्बलधारक (सं० पु०) कम्बल-धृ-ण्वुल्। कम्बलधारी, ऊनी कपड़ा ओढ़नेवाला।

कम्बलधावक (सं० पु०) कम्बल परिष्कार करनेवाला, जो ऊनी कपड़ा धोता हो।

कम्बलबर्हिष (सं० पु०) १ अन्धकराजके एक पुत्र। (भागवत ९।२४।११)

कम्बलवान् (सं० त्रि०) कम्बलो ऽस्यास्ति, कम्बल-मतुप् मस्य वः। १ कम्बलविशिष्ट, ऊनी कपड़ा रखनेवाला। २ प्रशस्त गलकम्बलविशिष्ट, गर्दनपर खूब बाल रखनेवाला।

कम्बलवाह्य (सं० पु०) रथविशेष, एक गाड़ी। इस पर मोटा कम्बल ढका रहता है। इस गाड़ीमें बैल ही जुतते हैं।

कम्बलवाह्यक, कम्बलवाह्य देखो।

कम्बलहार (सं० पु०) कम्बलं हरति, कम्बल-हृ-अण्। १ कम्बलहारक, ऊनी कपड़ा चोरानेवाला। २ ऋषिविशेष।

कम्बलार्ण (सं० क्ली०) कम्बलरूपं ऋणम्, कम्बल-ऋण वृद्धिः। प्रवत्सतरकम्बलवसनार्णदशानामृणे। पा ६।१।८९। (वार्तिक) कम्बलरूप ऋण, ऊनी कपड़ेका क़र्ज़।

कम्बलिका (सं० स्त्री०) कम्बल-ई-स्वार्थे कन् ह्रस्वः टाप् च। १ क्षुद्र कम्बल, कमली। २ कम्बलमृगकी स्त्री।

कम्बलिवाह्यक (सं० क्ली०) कम्बलः सास्ना अस्त्यस्य, कम्बल-इनि; कम्बलिभिर्वृषैरुह्यते, कम्बलिन्-वह कर्मणि ण्यत् स्वार्थे संज्ञायां वा कन्। गोशकट, बैलगाड़ी। इसका संस्कृत पर्याय—गन्त्री और गान्त्री है।

कम्बली (सं० पु०) कम्बलः गलकम्बलः प्रशस्तो ऽस्त्यस्य, कम्बल-इनि। १ वृष, बैल। (त्रि०) २ कम्बलाच्छादित, ऊनी कपड़ेसे ढका हुवा।

कम्बलीय (सं० त्रि०) कम्बलाय हितम्, कम्बल-छ। मेषलोमयुक्त, ऊनी कपड़ेके लायक़।

कम्बल्य (सं० क्ली०) कम्बल-यत्। कम्बलाच्च संज्ञायाम्। पा ५।१।३। शतपलपरिमित ऊर्णा, सौपल ऊन।

कम्बालायी (सं० पु०) शङ्खचिल, किसी क़िस्मकी चील।

कम्बि (सं० स्त्री०) कमु बाहुलकात् बिन्। १ दर्वी, कल्छा, चम्मच। २ वंशांश, बांसकी खपाच। ३ वंशाङ्कुर, बांसकी कोपल।

कम्बिका (सं० स्त्री०) वादित्रविशेष, एक बाजा।

कम्बु (सं० पु०) कम-उण्-बुकच्। १ शङ्ख, घोंघा, कौड़ी। २ वलय, सीपकी चूड़ी। ३ शम्बुक, घोंघा। ४ हस्ती, हाथी। ५ चित्रवर्ण, कई-तरहका रंग। ६ ग्रीवादेश, गर्दन। ७ नलक, नली, हड्डी। ८ मानभेद, एक नाप।

कम्बुक (सं० पु०) कम्बु स्वार्थे कन्। १ कम्बु, शङ्ख। २ नीचपुरुष, कमीना शख़्स।

कम्बुकण्ठी (सं० स्त्री०) कम्बुरिव कण्ठो ऽस्याः, कण्ठ ङीष्। शङ्खकी भांति कण्ठमें तीन चिह्न रखनेवाली स्त्री, जिस औरतके गलेमें शङ्खकी तरह तीन दाग़ रहें।

कम्बुककुसुमा (सं० स्त्री०) शङ्खपुष्पी, सखौली।

कम्बुका (सं० स्त्री०) अश्वगन्धावृक्ष, असगंधका पेड़। अश्वगन्धा देखो।

कम्बुकाष्ठा (सं० स्त्री०) कम्बु चित्रवर्णं काष्ठं यस्याः, बहुव्री०। अश्वगन्धाक्षुप, असगन्धका झाड़।

कम्बुग्रीव (सं० त्रि०) कम्बुरिव रेखात्रययुक्ता ग्रीवा यस्य। शङ्खकी भांति रेखात्रयविशिष्ट गलदेशयुक्त, जिसके गलेमें शङ्खकी तरह तीन सतरें रहें। "कम्बुग्रीवः पुष्कराक्षो मतीयुक्तो भवेन्नृप।" (भारत १।१५१)

कम्बुग्रीवा (सं० स्त्रि०) कम्बुरिव रेखात्रययुक्ता ग्रीवा, उपमि०। शङ्खकी भांति रेखात्रययुक्त ग्रीवा, शङ्खकी तरह तीन सतर रखनेवाली गर्दन।

कम्बुपुष्पी (सं० स्त्री०) कम्बुवद् शुभ्रं पुष्पं यस्याः, बहुव्री०। शङ्खपुष्पी, सखौली।

कम्बुमालिनी (सं० स्त्री०) कम्बुतुल्य पुष्पाणां मालासमूहः अस्त्यस्याः। शङ्खपुष्पी, सखौली।

कम्बू (सं० त्रि०) कम्ब-ऊ निपातनात् साधुः। जम्बूहम्बू शम्बू कम्बू कफेलुककर्कन्धूदिधिषु। उण् १।८५। १ अपहरणकारी, चोरानेवाला। (पु०) २ तस्कर, चोर। ३ वलय, चूड़ी। (स्त्री०) ४ शङ्ख।

कम्बूक (सं० पु०) कम्बू स्वार्थे कन्। १ कम्बु, शङ्ख। (वै०) २ भ्रवलक्, धानकी भूसी।

कम्बूपृत (सं० पु०) शङ्ख, खरमोहरा।

कम्बो—जातिविशेष एक क़ौम। आजकल इस जातिके लोग पञ्जाब और युक्तप्रदेशके बिजनौर ज़िलेमें रहते हैं। पूर्वका कम्बो सिन्धुनद छोड़ काबुलके उत्तर प्रदेशमें वास करते थे। संस्कृत शास्त्रमें इन्हींको 'काम्बोज' और इनके पूर्ववासस्थानको 'कम्बोज' कहते हैं। उस समय यह सकल भारतीय क्षत्रिय रहे। किन्तु मुहम्मद गज़नवीने इनमें कितनों ही को मुसलमान् बना डाला। मुग़ल इनसे बड़ी घृणा रखते थे। फ़ारसीमें कहते हैं,—

"अौवल कम्बो दोयम अफ़्ग़ान् सोयम बदज़ात कश्मीरी।"

कम्बोज (सं० पु०) कम्ब-ओज। १ शङ्खविशेष, किसी क़िस्मका खरमोहरा या घोंघा। २ हस्तिविशेष, एक हाथी। ३ देशविशेष, एक मुल्क। यह अफ़ग़ानिस्तानका एक भाग है। इसकी अवस्थिति गान्धारके निकट मानी जाती है। किन्तु शक्तिसङ्गमतन्त्रमें लिखा है,—

"पाञ्चालदेशमारभ्य म्लेच्छाद्दक्षिणपूर्वतः।
काम्बोजदेशो देवेशि वाजिराशिपरायणः॥"

पञ्चालसे लगा म्लेच्छ देशके दक्षिणपूर्व पर्यन्त कम्बोज गिना जाता है। यहां विस्तर घोटक उत्पन्न होते हैं।

किन्तु कोई कोई खम्भातको कम्बोज कहता है। रघुवंश देखते—महाराज रघुने पारसीकों, सिन्धुनद-तीरवासियों और हूणोंको हरा कम्बोजदेशीय राजावों-को जीता था। काम्बोजोंने उनके निकट अवनत हो उत्कृष्ट अश्व और राशीकृत सुवर्ण उपढौकन-स्वरूप प्रदान किया। फिर रघु अश्वके साहाय्यसे गौरीगुरु पर्वतपर चढ़ गये।* (रघुवंश ४र्थ सर्ग)

रघुवंशकी उक्त वर्णनासे समझ पड़ा—कम्बोज देश सिन्धुनदके उत्तर और गौरीगुरु† पर्वतके निकट रहा। मार्कण्डेयपुराणमें गौरग्रीव और महाभारतमें सुवास्तु नदीके साथ गौरीनदीका उल्लेख मिलता है। यह सुवास्तु और गौरीनदी वर्तमान पञ्जाबके उत्तरस्थ स्वात प्रदेशके उत्तर अवस्थित है।

सुतरां रघुवंशका मत मानते वर्तमान सिन्धु और लन्दई नदीके उत्तरांशमें पूर्वकाल कम्बोज नामक जनपद रहा। पहले कम्बोजवासी संस्कृत भाषा बोलते थे। (निरुक्त २।२) कम्बो देखो।

(त्रि०) ४ कम्बोजदेशवासी, खम्भातका रहनेवाला।

कम्बोज (कम्बोडिया)—जनपदविशेष, एक मुल्क। यह अक्षा० ८° ४७′ से १५° ३० पर्यन्त विस्तृत है। इससे उत्तर लेयस देश, पूर्व कोचिन-चीन, दक्षिण श्यामोपसागर एवं चीनसागर और पश्चिम श्यामदेश पड़ता है।

पहले स्वाधीन रहते समय कम्बोज राज्य बहुदूर पर्यन्त विस्तृत रहा। धर्मप्राण भारतीय राजा इस दूरदेश पर राजत्व करते थे। उनका कीर्तिकलाप, धर्मानुराग, देवद्विजभक्तिभाव और असाधारण शौर्य-वीर्यका गौरव बहुशतवर्ष गत होते भी आज कम्बोजके नगर, कानन, पर्वतगह्वर, शिलाफलक तथा प्रकाण्ड प्रकाण्ड देवमन्दिरादिके भग्नावशेषपर देदीप्यमान है। इस देशके प्राचीन भारतीय राजावोंका इतिहास इतने दिन खनिगर्भमें मणिकी भांति छिपा था। किन्तु अन्तको फरासीसी पण्डितोंने अपनी गभीर गवेषणाके प्रभावसे उसे साधारणके समक्ष खोल दिया। भारतीयोंके लिये यह न्यून गौरवका विषय नहीं। दीन दरिद्र धर्मभीरु भारतीय अपने प्राचीन राजावों द्वारा सुदूरवर्ती कम्बोज राज्यमें स्थापित अतुलनीय कीर्तिको अब समझ सकते हैं। जिसे हम भारत-वर्षमें भी ढूंढ नहीं पाते, उसीके अनेक उदाहरण इस सामान्य देशमें देखाते हैं।

पुरातत्त्व—वर्तमान कम्बोजके बकु, वकङ्ग, लोलि, प्रे, वमनम, फनम, चिसोर पर्वत, बोम्बङ्ग जिले (आज-कल यह श्याम राज्यके अन्तर्गत है), फिमनक, केदि-चर और अङ्गचमनिक नामक स्थानसे प्राचीन कर्णाटी अक्षरके अनेक संस्कृत शिलालेख मिले हैं। उक्त शिलालेख पढ़नेसे समझ पड़ा—पूर्वकालको कम्बोज राज्य पश्चिम श्यामदेशसे पूर्व अनामके दक्षिणांश पर्यन्त विस्तृत रहा। इसके प्राचीन अधिवासी 'कम्बूज' वा 'काम्बोज' कहाते थे। उक्त काम्बोज वर्तमान कम्बोज राज्यके आदिम अधिवासी न रहे। प्रवाद है—

"तक्षशिलासे अनतिदूर रोमविषयपर एक धर्म-निष्ठ विचक्षण नृपति राजत्व करते थे। उनके पुत्र युवराज 'कृखङ्ग' किसी गर्हित कर्मके लिये राज्यसे निर्वासित हुये। उन्हीं राजकुमारने नाना स्थान घूमफिर इस कम्बोज राज्यमें आ उपनिवेश स्थापन कर दिया।"

---

* "विनीताध्वश्रमास्तस्य सिन्धुतीर विचेष्टनैः।
तत्र हूणावरोधानां भर्तृषु व्यक्तविक्रमम्।
काम्बोजाः समरे सोढुं तस्य वीर्यमनीश्वराः।
गजालानपरिक्लिष्टैरक्षोटैः सार्धमानताः।
तेषां सदश्वभूयिष्ठास्तुङ्गा द्रविणराशयः।
उपदा विविशुः शश्वन्नोत्सेकाः कोशलेश्वरम्।
ततो गौरीगुरुं शैलमारुरोहाश्वसाधनः।" (रघु ४र्थ सर्ग)

† मल्लिनाथने 'गौरीगुरु'का अर्थ हिमालय लगाया है। किन्तु इस स्थानपर गौरीगुरु एक स्वतन्त्र पर्वत समझ पड़ता है। पाश्चात्य प्राचीन भौगोलिक टलेमिने 'गोरिया' (Goryaia) नामक एक जनपदका उल्लेख किया है। (Ptolemy, BK. VII, ch. I.) इसी जनपदके मध्य गौरीनदी प्रवाहित है। यह नदी वर्तमान काबुल नदीमें जा गिरी है। फिर उसे ऋक्‌संहिता और महाभारतने भी गौरीनदी ही लिखा है। उसकी चारो ओर पर्वतमाला खड़ी है। कालिदासने इसी पर्वत-मालाको गौरीगुरु कहा है। विशेषतः इस पर्वतसे ही गौरीनदी निकली है। उक्त पार्वतीय प्रदेशको ही टलेमिने 'गोरिया' बताया है।

उक्त प्रवाद प्रकृत होनेसे मानना पड़ेगा—वह राजकुमार पञ्जाब और काबुलके उत्तरस्थ कम्बोज नामक प्राचीन जनपदसे इस देशमें आये थे। वास्तविक कम्बोजके वर्तमान काम्बोजोंके साथ काश्मीरियों और कम्बोजोंका बहुत कुछ सौसादृश्य लक्षित होता है। फिर यहांके प्राचीन देवमन्दिरादिके निर्माणकी प्रणाली भी काश्मीरके मन्दिरोंसे मिलती है। सुतरां स्वीकार करना पड़ा—इस कम्बोज राज्यका नाम भारतीय शास्त्रोक्त सिन्धु नदके उत्तर अवस्थित 'कम्बोज'से हुवा है।

समझ न पाये—किस समय इस देशमें वह राजकुमार आये थे। किसी किसीके अनुमानसे काश्मीरराज तुङ्गिनके राजत्वकाल (३१९ ई०) भारतके पश्चिम प्रदेशमें नानारूप हलचल पड़ी। सम्भवतः उसी समय इस देशमें भारतीय उपनिवेश स्थापित हुवा होगा। किन्तु निश्चय कह नहीं सकते—यह विषय कहांतक सत्य है।

स्थानीय शिलालेखमें 'किरात' जातिका नाम मिलता है। सम्भवतः वही इस देशके आदिम अधिवासी हैं। विष्णु, कूर्म, वामन, गरुड़, ब्रह्माण्ड प्रभृति पुराणोंके अनुसार भी भारतवर्षके पूर्वसीमान्तवासी किरात कहाते हैं।

कम्बोज और आनाम (अन्नम्) देश ब्रह्माण्डपुराणोक्त अङ्गद्वीप ही समझ पड़ता है। उक्त द्वीपके विवरणमें लिखा है,—

"अङ्गद्वीपं निबोधध्वं नानाखण्डसमाकुलम्।
नानाम्लेच्छगणाकीर्णं तद्द्वीपं बहुविस्तरम्॥
हेमविद्रुमसम्पूर्णं रत्नानामाकरं श्रितौ।
नदीशैलवनैश्चित्रं सक्षिरं लवणाम्भसा॥
तत्र चन्द्रगिरिर्नामनैकनिर्झरकन्दरः।
तत्र सानुदरी चास्य नानासत्त्वसमाश्रया॥
तन्मध्ये नागदेशस्य नैकदेशो महागिरिः।
कोटिश्च नागनिलयं प्राप्ते नदनदीपतेः॥"

(ब्रह्माण्ड ५४ अ०)

युरोपीय ऐतिहासिकोंने कहा—७५६ ई०को चीनपति मिङ्ग होयाङ्गतीने टङ्गिनमें 'अन्नम्' नामक एक सामरिक जिला संस्थापन किया था। उसीके अनुसार समस्त देशका नाम अन्नम् या आनाम हुवा। किन्तु हमारी विवेचनामें 'अन्नम्' 'अङ्गम्' शब्दका अपभ्रंश है। भारतवर्षमें जैसे अङ्ग-राज्यकी राजधानी चम्पा कहाती, वैसे ही अन्नम् देशकी राजधानी भी चम्पा नामसे पुकारी जाती है। इसलिये पूर्वकाल (शिलालेखके अनुसार) उक्त अन्नम् देशको चम्पाराज्य भी कह देते थे। वर्तमान कम्बोजके जिस स्थानसे सर्वप्राचीन-संस्कृत शिलालेख निकला, उसका नाम 'अङ्ग-चमनिक' खुला है। यह नाम भी 'अङ्गचम्पिक' वा 'अङ्गचम्पा' शब्दका अपभ्रंश समझ पड़ता है। इन कई प्रमाणोंसे उक्त स्थानको एक स्वतन्त्र अङ्गदेश वा अङ्गद्वीप मान सकते हैं। कम्बोज और अन्नम्का मध्यवर्ती पर्वत ही सम्भवतः ब्रह्माण्डपुराणोक्त चन्द्रगिरि है। चम्पा शब्दमें अन्यान्य विवरण देखो।

इतिहास—कम्बोजके भारतीय राजावोंका इतिहास अन्धकाराच्छन्न है। आज भी समस्त शिलालेख अथवा स्थानीय प्राचीन पुस्तकादि सङ्गृहीत नहीं हुये, जिनके द्वारा घोर अन्धकारसे ऐतिहासिक सत्य निकाला जा सके।

अधुनातन कम्बोजसे मिलनेवाले सर्वप्राचीन शिलालेखका समय ५२६ शक है। किन्तु उसमें किसी राजाका नाम नहीं। शिलालेखोंसे जिन राजावोंके नाम निकले, उनमें 'भववर्मा' नृपति ही सर्वप्रथम ठहरे हैं। भववर्माके पीछे शिलालेखोंमें निम्नलिखित राजावोंके नाम मिलते हैं,—

राजाका नाम			समय
भववर्मा	...	...	५४८ शक
महेन्द्रवर्मा, ईशानवर्मा		...	
जयवर्मा	...	...	५८६-५८९ ,,
भववर्मा	...	...	५८९ ,,
पृथिवीवर्मा	...	...	
इन्द्रवर्मा (पृथिवीवर्माके पुत्र)			७९९ शक
यशोवर्मा (इन्द्रवर्माके पुत्र)			८११ ,,
हर्षवर्मा (यशोवर्माके ज्येष्ठपुत्र)			
ईशानवर्मा २य, (यशोवर्माके २य पुत्र)			८३२ ,,

राजाका नाम		समय
जयवर्मा (इन्द्रवर्माके २य पुत्र)		८५० शक
हर्षवर्मा २य, (जयवर्माके कनिष्ठ भ्राता)		८६४ „
राजेन्द्रवर्मा (हर्षवर्माके ज्येष्ठभ्राता)		८६६ „
जयवर्मा (राजेन्द्रवर्माके पुत्र)		८९० „
उदयातित्यवर्मा १म	...	९२३ „
जयवीरवर्मा	...	९२४ „
सूर्यवर्मा	...	९२९-९५० „
उदयादित्यवर्मा २य,	...	९५१ „
हर्षवर्मा ३य, (उदयके कनिष्ठभ्राता)		
उदयाकर वर्मा	...	९८८ „
जयवर्मा	...	
धरणीधर वर्मा	...	१०३१ „
सूर्यवर्मा	...	१०३४ „
जयवर्मा (परम वैष्णव)	...	११०८ „

उपरोक्त राजावोंमें पृथिवीचन्द्रके पुत्र हर्षवर्माने वकु नामक स्थानपर ८०० शकको पृथिवीचन्द्रेश्वर नामसे एक वृहत् शिवमन्दिर प्रतिष्ठा किया था। उनके मरने पर पुत्र यशोवर्मा भी शिवमन्दिर प्रतिष्ठा कार पिताके अनुवर्ती बने। यशोवर्माके भ्राता जयवर्माके समयसे यहां बौद्धधर्म हुआ था। उससे पहले काम्बोजमें कहीं बौद्ध न रहे। किन्तु प्रचारित होते भी उस समय किसी भारतीय राजाने बौद्धधर्म ग्रहण न किया। जयवर्मा परम वैष्णव रहे। सम्भवत: ११०० शकको उन्होंने स्थानीय अङ्कोरवटका देवमन्दिर प्रतिष्ठा किया। उक्त जयवर्माके पीछे शिलालेखमें किसी दूसरे भारतीय राजाका नाम आजतक नहीं निकला। किन्तु अनुसन्धान हो रहा है। कौन कह सकता—कहांतक फल मिलेगा।

चीनका इतिहास पढ़नेसे समझ पड़ा—ई०के ६ष्ठ शताब्द कम्बोजराजने चीनराजके निकट अपना दूत भेजा था।

सम्भवत: ई०के द्वादश शताब्दसे इस राज्यमें बौद्धधर्म बढ़ने लगा। कारण उसी समयसे फिर भारतीय राजावोंका नाम सुननेमें न आया। किन्तु कम्बोजके बौद्धोंका इतिहास भी गाढ़ तिमिराच्छन्न है। मालूम पड़ता—श्यामदेशीय बौद्ध राजावोंके प्रबल होनेसे कम्बोज उनके अधीन हुवा।

ई०के सप्तदश शताब्द फ़रासीसी वाणिज्यके अभिप्रायसे कम्बोजमें घुसे थे। १७८७ ई०को आनामके राजा घियालङ्गने फरासीसके अधिपति षोड़श लुयीसे सन्धि स्थापन की। उसके अनुसार फ़रासीसी युद्धकाल आनामके राजाको साहाय्य पहुंचाते थे। उन्होंके साहाय्यसे घियालङ्गने उस समय टनकिङ्ग और कम्बोज अधिकार किया। १८३१ ई०को आनामके राजा मर गये। फिर १८४१ ई०को उनके पौत्र तिवेनफ्री राजा हुये। उन्होंने कयी फरासीसी और स्पेनी खृष्टान धर्मप्रचारकोंको मार डालनेका आदेश दिया था। उससे समस्त फ़रासीसी और स्पेनी बिगड़ उठे। १८४७ ई०को कप्तान रिगल-डि-गिनोलो १७८७ ई०का सन्धिपत्र निष्पत्ति करनेको ससैन्य भेजे गये। किन्तु आनामके राजाने फरासीसका आदेश सुना न था। फिर फरासीसी सेनापतिने युद्ध घोषणा की। अनेक वार युद्ध चलते भी आनामके राजा फ़रासीसियोंसे न दबे। किन्तु आनाममें गड़बड़ देख १८५९ ई०को कम्बोजके ईसाायियोंने मिलजुल विद्रोह लगाया था। नौसेनापति गिनोलो उन्हें साहाय्य करनेको सैगन नदीको राह कम्बोजमें घुस पड़े। फिर फ़रासीसीको छोड़ लड़े थे। उनके पुन: पुन: आक्रमण मारनेपर कम्बोजराज डोल उठे। १८६२ ई०को २६ वीं मयीको आनामराजने सन्धि करनेको कम्बोजकी राजधानी सैगन नगर दूत भेजा था। १५ वीं जूनको सन्धिपत्र साक्षरित हुवा। फ़रासीसियोंने आजने युद्धका व्ययादि और पूर्व सन्धिपत्रके अनुसार प्राप्य अर्थ ले लिया। पीछे खृष्टान-धर्मप्रचारकोंको अबाध धर्मप्रचार करनेकी क्षमता मिली।

उस समय कम्बोज आनाम और श्यामके अधीन करद राज्य-भुक्त रहा। एक राजप्रतिनिधि द्वारा यह शासित होता था। फ़रासीसी कम्बोजराज्यमें पहुंचे और मिकङ्ग नदी तीरवर्ती प्रदेशकी उर्वरता एवं शस्यशालिता देख विमोहित हुये। उन्होंने उक्त स्थान हस्तगत करना चाहा था। अन्यतम नौसेना-

इसका जैसा वृहत् मन्दिर अति अल्प ही देख पड़ता है। मन्दिरका आयतन कोयी आध कोस होगा। इसका परिवेष्टक प्राचीर १०८०×११०० फीट पड़ता, जो चारो ओर २३० फीट विस्तृत खात द्वारा घिरता है। खातके ऊपर मन्दिर जानेके लिये सुदृढ़ सुरम्य स्तम्भ परिशोभित सेतु बंधा है। सेतुके आगे गोपुर है। उसके मध्यसे मन्दिरके बहिर्प्राङ्गणको जाना पड़ता है।

नैऋतकोणसे मन्दिरमें घुसनेपर वाम दिक् अपूर्व दृश्य नयनगोचर होता है। यहां भीष्मको शरशय्या बनी है। मध्यस्थलमें कुरुपितामह भीष्म शरशय्यापर शायित हैं। उनकी दोनों ओर मुकुट एवं किरीट शोभित कुरु तथा पाण्डवपक्षीय वीर खड़े और गज एवं रथपर तेजःपुञ्ज महारथी चढ़े हैं। पितामह भीष्मसे अनतिदूर गजके ऊपर राजा दुर्योधन म्लानवदन अपेक्षा कर रहे हैं। शत शत वर्ष गत होते भी इन मूर्तियोंमें कोयी वैलक्षण्य नहीं पड़ा। यह प्रस्तरखोदित सकल मूर्ति दूरसे देखनेपर जीवन्त बोध होती हैं।

मन्दिरके मध्य पश्चिमोत्तर रामायणका दृश्य है। राक्षस और वानर घोरतर युद्ध कर रहे हैं। विकट मूर्तिधारी राक्षसवीर रथपर बैठ बाण बरसाते हैं। मध्यस्थलमें राम हनूमान् पर चढ़ रावणके प्रति बाण निक्षेप करते हैं। उनके दोनों पार्श्व लक्ष्मण और विभीषण दण्डायमान हैं। सिंहयोजित रथपर रावण रामके शरपीड़नसे जर्जरित हो बैठा है।

उत्तर-पश्चिम भागमें देवासुरके समरका दृश्य है। विविध मूर्तिधारी मुकुटशोभित देव अश्वयोजित रथपर चढ़ बाण फेंकते हैं। विकट मूर्तिधारी असुर भी जी छोड़ लड़ रहे हैं। यहां की मूर्तियोंमें सूर्य और चन्द्रदेवकी ज्योतिर्मय मूर्ति अति सुन्दर है। देव स्व स्व वाहनपर आरूढ़ हैं।

उत्तरपूर्व मञ्च—यहां भी देवासुरका युद्ध है। चतुराननं, पञ्चानन, षड़ानन और गरुड़ोपरि शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी विष्णु असुरदलन करते हैं। बहु मुख एवं बहु हस्तविशिष्ट देव अश्व, गज, सिंह वा गेंडेपर चढ़ धनुर्वाण लिये युद्धमें व्यापृत हैं। युद्धस्थलसे अदूर जटाजूटविलम्बित महादेवकी मूर्ति है। सिद्धर्षि योगी पुष्पकरसे उनकी अर्चना कर रहे हैं।

उत्तरभागसे ईषत् पूर्व दूसरा मञ्च है। यहांका शिल्पनैपुण्य और स्थापत्य कार्यादि अभीतक शेष नहीं हुवा। सकल ही मानो असम्पूर्ण पड़ा है। यहां भी पौराणिक दृश्य है। विष्णु गरुड़ोपरि आरोहण कर किसी गजारोही असुरको मार रहे हैं। दूसरी भी अनेक देवासुरमूर्ति असम्पूर्ण अवस्थामें पड़ी हैं।

पूर्वदक्षिण भागमें समुद्रके मन्थनका दृश्य है। क्या शिल्पकार्य, क्या चित्रकार्य, क्या स्थापत्यविद्या—सर्व विषयमें इस मञ्चने पराकाष्ठा पायी है। बोध होता—समुद्रके मन्थनका ऐसा जीवन्त दृश्य दूसरे स्थानपर कहीं नहीं। मध्यस्थलमें कूर्मके ऊपर मन्दराचल स्थापित है। उसके ऊपर विष्णु बैठे हैं। मन्दर वासुकी द्वारा वेष्टित है। नागराजके मुखकी ओर प्रायः एक शत विकटाकार दैत्य और पुच्छभागमें एक शत देवमूर्ति हैं। दैत्य खर्व, बलिष्ठ, शिरस्त्राण एवं कवचावृत, कर्णोमें कुण्डल पहने और लम्बी दाढ़ी रखे हैं। देवोंके मस्तकपर मुकुट, कण्ठमें हार, हस्तमें वलय, दो-दो अङ्गद और यज्ञसूत्र शोभित है। यह दोनों सौ मूर्ति एक भावसे खड़ी हैं।

जहां समुद्र मथा जाता, उसके उपरिभागका दृश्य अति चमत्कार देखाता है। मानों शत शत स्वर्गविद्याधरी और अप्सरा आकाशके पथमें नृत्य करती हैं। फिर अधोभागमें सागरका दृश्य है। नाना प्रकार सामुद्रिक जीवजन्तु मत्स्यादि इस कल्पित समुद्रमें खेलते फिरते हैं। स्वच्छ सलिलमें कैसे धीरे धीरे स्रोत चल रहा है!

दक्षिणपूर्व भागमें दूसरा मञ्च है। यहां यमालयका दृश्य विद्यमान है। पापका निग्रह और पुण्यका पुरस्कार देख पड़ता है। स्वर्ग एवं नरक और सुख तथा दुःखका दृश्य प्रदर्शित हुवा है। नरकयन्त्रणाकी ३६ मूर्तियां खोदी गयी हैं। प्रत्येक मूर्तिके नीचे खोदित लिपिमें लिखते—इस प्रकार पाप कमानेपर प्राणी ऐसे ही नरकभोग करते हैं।

उक्त मञ्चको छोड़ थोड़ी दूर पश्चिम चलनेपर दूसरा सुदृश्य मञ्च मिलता है। यहां काम्बोजके राजावों और उनके परिवारवालोंको मूर्ति खुदी हैं। इस कारुकार्यका पारिपाट्य देख चमत्कृत होना पड़ता है। ऐसा भड़कीला दृश्य काम्बोजमें दूसरे स्थानपर कहां देख सकते हैं। कहीं पीनोन्नत-पयोधरा सुचारुहासिनी राजमहिला विविध अलङ्कारसे विभूषित हो एक रथपर बैठी समारोहके साथ बीचमें चली जा रही हैं। ऊपर चित्रविचित्र चन्द्रातप दोदुल्यमान है। फिर उन्हींके पश्चात् दिव्यरूपधारिणी मनोमोहिनी राजकन्या नरचालित रथपर चढ़ मानो किसी स्थानको गमन करती हैं। उनके साथ सखी पुष्पचयनकर उपहार देती हैं। दास और दासी दोनों निकटवर्ती फलशाली वृक्षसे फल लाकर छोटे छोटे बच्चोंको बांटते हैं। राजकन्यावोंके पार्श्वपर सहचरियोंमें कोयी चामर डोलाती, कोई मस्तकपर छाता लगाती और कोयी सुस्वादु फल लिये अपनी स्वामिनीको दिखाती है। उसीसे अदूर निर्जन उपवनका दृश्य है। गिरिमालाके मध्य तरुराजी खड़ी है। तरुके तलपर मृगका शिशु खेल रहा है। फिर तरुकी शाखापर नानाविध पक्षी बैठे हैं।

मञ्चके उपरिभागमें कवचावृत राजपुरुष, नर्तक और धानुष्क दण्डायमान हैं। इनकी वेशभूषा भी राजसभाके लिये उपयोगी है। सम्मुख ही राजसभा है। कुण्डलधारी जटाजूट-विलम्बित ब्राह्मण गम्भीर भावसे समासीन हैं। राजा और राजकुमार पदोचित वेशभूषा बना यथायोग्य आसनपर उपविष्ट हैं। अस्त्रधारी योद्धा राजसभाको उज्ज्वल कर रहे हैं। उक्त दृश्य देखनेसे धारणा पड़ती—प्राचीन भारतीय राजसभा किस भावसे लगती थी। परम वैष्णव जयवर्मा अङ्कोरवटकी उक्त महाकीर्ति स्थापन कर गये हैं।

अङ्कोरवट नामक मन्दिरसे दक्षिणपूर्व साढ़े पांच कोस दूर दूसरे भी तीन पवित्र स्थान विद्यमान हैं। उनके नाम बकङ्ग, बकु और लोलि हैं।

बकङ्गका मन्दिर अति प्राचीन है। वह देखनेमें त्रिकोणाकार और छह तलमें विभक्त है। प्रत्येक तलमें निर्गम विद्यमान है। ऊपर ही ऊपर स्थापित हो अन्तको ३८ हाथ ऊंचे त्रिभुजने मन्दिररूप धारण किया है। प्रत्येक मध्यस्थलमें सिढ़ी है। उसमें जो सिंहमूर्ति खोदित रही, वह आजकल प्रायः देख नहीं पड़ती। निर्गमके प्रत्येक कोणमें गजमूर्ति विद्यमान है। मन्दिरकी चारो ओर इष्टकनिर्मित क्षुद्र क्षुद्र आठ मन्दिर हैं। स्थानीय लोगोंके कथनानुसार वहांतक प्रधान मन्दिरकी सीमा चली गयी है। आठो मन्दिरके तोरण-प्राचीरमें संस्कृत भाषासे ८१० पङ्क्ति लिपि खुदी हैं। इससे मन्दिरके निर्माताका कुछ परिचय मिलता है। काम्बोजके राजा इन्द्रवर्माने हरगौरीपूजाके लिये उक्त मन्दिर बनवाया था।

बकु नामक स्थानमें पास ही पास छह शिवमन्दिर बने हैं। प्रत्येक प्रवेशद्वारके प्राचीरपर बकङ्गके मन्दिरकी भांति संस्कृत भाषामें लिपि खोदित है। बकङ्गके मन्दिरसे केवल संस्कृत भाषाकी लिपि निकली, किन्तु बकुके मन्दिरमें संस्कृत एवं काम्बोज-प्रचलित ख्मेर भाषाकी लिपि भी मिली है। शिलालेखके अनुसार परमेश्वर और इन्द्रेश्वर नामपर उक्त देवमन्दिर उत्सर्ग किये गये हैं। बकुमें तीन शक्तिमन्दिर हैं। मन्दिरका कारुकार्य अति सुन्दर है।

बकुसे कोई पाव कोस उत्तर चलने पर लोलि नामक स्थान मिलता है। वहां इष्टकनिर्मित चार देवमन्दिर हैं। स्थान स्थानपर भग्न स्तम्भ पड़े हैं। उन्हें देखते ही समझ पड़ता—यहां कोई वृहत् देवालय रहा। आजकल मञ्चका और भित्तिका सामान्य ध्वंसावशेष मात्र पड़ा है। प्रत्येक मन्दिरमें वामदिक् अनुशासनलिपि खोदित है। उसको पढ़नेसे समझ पाये—काम्बोजराज यशोवर्माने ८१५ शकको शिव एवं भवानीके सेवार्थ उक्त मन्दिर बनवाये थे। वह अपने उत्तराधिकारियोंको देवसेवामें विशेष मनोयोग करनेके लिये पुनः पुनः आदेश दे गये हैं।

ऊपर जिनके संक्षिप्त विवरण दिये, उनको छोड़ दूसरे भी अनेक मन्दिर बने हैं। उनमें बेयोन नगरका ब्रह्ममन्दिर ही सर्वप्रधान है। शिल्पशास्त्रवित्

पण्डितोंके मतमें अङ्कोरवटके मन्दिरसे काम्बोजके ब्रह्म-मन्दिर सर्वप्रकार श्रेष्ठ हैं। क्या शिल्पनैपुण्य, क्या कारुकार्य और क्या स्थापत्यकर्म—सबमें ब्रह्ममन्दिरके निर्माता अपना-अपना प्राधान्य देखा गये हैं। विशेषत: समस्त भारतमें जो ढूंढे नहीं मिलता, वही चतुर्मुख ब्रह्माका मन्दिर काम्बोजमें देख पड़ता है।

ब्रह्ममन्दिर।

उक्त ब्रह्ममन्दिर देखनेसे मनमें कयी बातें उठती हैं। हमारे आराध्य वेदके शिरोभाग उपनिषद् ग्रन्थमें सर्वप्रथम ब्रह्माकी उपासना देख पड़ती है। ब्रह्मा भारतीयोंके सर्वप्रथम उपास्य देवता हैं। उपनिषद्में निराकार परब्रह्म और पुराणमें चतुर्मुख ब्रह्मा ही कहे गये हैं। पुराणमें अनेक ब्रह्मतीर्थोंके नाम भी मिलते हैं। किन्तु देखने या सुननेमें नहीं आया—भारतवर्षमें किसने कहां ब्रह्माका मन्दिर बनाया है। फिर इस प्रश्नका उत्तर देना भी कठिन है—काम्बोजके भारतीयोंने कहांसे ब्रह्ममन्दिरका तत्त्व पाया। समझ पड़ता—जब भारतके उत्तरस्थ काम्बोजदेशवासी काम्बोज जन्मभूमि छोड़ इस सुदूर प्रदेशमें आते, तब उसी आदिकाम्बोज देशमें ब्रह्मोपासनाके साथ ब्रह्ममन्दिर भी बनाते थे। कयी शत वर्ष गुजरने और विधर्मियोंका पुन: पुन: आक्रमण पड़नेसे उसका चिह्नमात्र विलुप्त हो गया। नहीं समझते—भविष्यत्‌के गर्भमें क्या निहत है। सम्भवत: हिमालयके दुर्गम तुषारवेष्टित गह्वरसे ब्रह्ममन्दिरका गूढ़ तत्त्व निकला होगा।

किसी किसी पाश्चात्य पण्डितके कथनानुसार पहले मध्य एशियामें ब्रह्ममन्दिर रहा। प्राचीन काम्बोजोंने यहां आ उसीके अनुसार ब्रह्मालय बनाया। भगवान् जानें—यह बात कहांतक सत्य है।

काम्बोजके ब्रह्ममन्दिरोंका यही विशेषत्व पाते—प्रत्येक चूड़ापर चतुर्मुख शोभा देखाते हैं। फिर एक बृहत् मन्दिर अङ्कोरवटके समकक्ष हो सकता है। अति क्षुद्रका भी आयतन और गठन सामान्य नहीं। पूर्व पृष्ठमें किसी क्षुद्र ब्रह्ममन्दिरका चित्र खींचा है। किन्तु चित्र उतारकर देखाया जा न सका—मन्दिरका अभ्यन्तर किस प्रणाली और कैसे कौशलसे बना है।

वास्तविक शिल्पियोंने भली भांति अपनी अपनी क्षमताका परिचय दिया है।

बड़े मन्दिरके निकट ही दूसरे भी कयी छोटे छोटे ब्रह्ममन्दिर देख पड़ते हैं।

वेवोन नगरसे पूर्व आध कोस दूर 'पतन-ता-फ्रम' नामक एक प्रथम श्रेणीका उच्च मन्दिर है। उसका संस्कृत नाम ब्रह्मपत्तन ठहरता है। उक्त मन्दिर चतुरस्र है। प्रति दिक् प्राय: ४०० फीट विस्तृत है। पूर्वोक्त मन्दिरका बहिर्दृश्य जितना नयनप्रीतिकर रहा, आजकल 'उसका कणामात्र भी नहीं' कहनेसे क्या बिगड़ा! सम्प्रति मन्दिरकी चारो ओर वन बढ़ गया है। भित्ति तोड़ फोड़ महीरुह मस्तक उठाये खड़े हैं। इधर-उधर टूट-फूट जानेसे मन्दिर वन्य जीवजन्तुका वासस्थान बना है। पूर्वको जहां शङ्ख घण्टा ध्वनिसे प्राण प्रफुल्ल हो जाते, आजकल वहां दिवाभागमें भी शृगाल अपना उच्च स्वर सुनाते हैं। भारतीयोंके भारतीयत्व लोप होते होते ऐसी शोचनीय अवस्था आयी है। केवल मन्दिरसे ही नहीं— कम्बोजके क्रोमि नामक पर्वतसे भी अनेक ब्रह्ममूर्ति निकली हैं। काशीमें शिवलिङ्ग अधिक देख पड़ने की भांति उक्त पर्वतमें असंख्य ब्रह्ममूर्ति मिलती हैं।

कम्बोजराज भी ब्रह्मापर सातिशय भक्ति और श्रद्धा रखते थे। स्थानीय प्राचीन लोगोंके कथनानुसार एक राजाने किसी नागराजकी कन्यासे विवाह किया। उसपर नागराजके उत्पातसे वह व्यतिव्यस्त हो गये। शेषको उन्होंने नागद्वारमें एक ब्रह्ममूर्ति स्थापन की। उससे उनका सकल भय छूटा था। नागराज नगर त्यागकर भागे। वह ब्रह्ममूर्ति आज भी नागद्वारमें विद्यमान है। एक चीन-परिव्राजक १२९५ ई०को यहां आये थे। उन्होंने देखकर इसको पञ्चानन बुद्धदेवकी मूर्ति बताया है। किन्तु उन्हींका भ्रम मानना पड़ेगा। अथवा चीन-परिव्राजक बौद्धोंके रीत्यनुसार जो देख पाते, उसे बौद्धधर्म-संक्रान्त ही बताते थे।

कम्बोजके नाना स्थानोंमें बौद्धोंके देखने योग्य द्रव्य भी विद्यमान हैं। कहीं बृहत् पाषाणमें खोदित ध्यानी बुद्ध, कहीं प्रत्येक-बुद्ध और कहीं बुद्धनिर्वाणका आध्यात्मिक दृश्य है। आज भी अनुसन्धान हो रहा है। कम्बोजका पुरातत्त्व जाननेके लिये फरासीसी पण्डित बद्धपरिकर हैं। भविष्यत्में नूतन नूतन विषय आविष्कृत होना सम्भव है।

जलवायु—कम्बोजका जलवायु बङ्गदेशसे मिलता है। ज्यैष्ठसे भाद्रमासतक वर्षाका समय रहता और उत्तर-पूर्व वायु बहता है। दक्षिण-पश्चिम वायु चलनेसे भूमि सूखती है। यहां तापमान (थरमामोटर) यन्त्रमें १०२° डिग्रीसे अधिक कभी उत्ताप नहीं होता। फिर अधिक शीत पड़नेसे पारा ५७° डिग्री-तक उतर जाता है। देशीय और युरोपीय—दोनोंके लिये यह स्थान अतिमनोरम और स्वास्थ्यकर है। कम्बोजदेश समतल लगता है। नदीके तटकी भूमि अतिशय उर्वरा आती और फलसे वृक्षकी शाखा भर जाती है।

उत्पन्न द्रव्य—कम्बोजमें धान, पान, सुपारी, चन्दन-काठ और रेवन्दचीनीकी उत्पत्ति यथेष्ट होती है। लौह, रौप्य और हस्तिदन्त भी अधिक मिलता है। ई०के नवम शताब्द दो अरब भ्रमणकारी यहां आये थे। उन्होंने लिखा,—"जगत्का सर्वोत्कृष्ट मलमल कम्बोजमें मिलता है। फिर यहां प्रस्तुत हो वह पृथिवीपर सर्वत्र भेजा जाता है।"

जीवजन्तु—हस्ती, महिष, मृग और गोमेषादि वनमें दल दल देख पड़ते हैं।

भाषा—कम्बोजमें ख्मेर और आनामकी भाषा प्रचलित है। किन्तु आजकल काम्बोज प्रधानत: ख्मेरकी भाषामें बात करते हैं। यही कम्बोजकी आदिभाषा समझी जाती है।

कम्बोज देशका विस्तृत विवरण देखनेको निम्नलिखित ग्रन्थ पढ़ना चाहिये—

Henri mouhot's Travels in Indo-China, Combodia, and Laos.

Die Volker der Oestlichen Asien von Dr. A. Bastian.

J. Garnier's Voyage d, Exploration en Indo-China.

A bal Remusat's Nouveaux Melanges Asiatiques—Croizier's.

L, Art Khmer; Legends Indo-Chinoises relatives aux monuments de pierre de' Pancien Combodge Aymonier's.

Notice sur le Combodge, Geographie du Combodge.

Journal Asiatique 1882-83-84, Journal of the Indo-China Society of Paris 1877-78, Journal of the Anthropological Society of Bombay, Vol. I. P. 505-532.

कम्बुतायी (सं॰ पु॰) शङ्खचिह्न, किसी किस्मकी चील।

कम्भ (सं॰ त्रि॰) कं जलं सुखं वा अस्यास्ति, कम-भ। कंशंभ्यां बभयुस्तितुतयसः। पा ५।२।१३८। १ जलयुक्त, पानीसे भरा हुवा। २ सुखी, खुश, जिसे आराम रहे।

कम्भारी (सं॰ स्त्री॰) कं जलं बिभर्ति धारयति, कम्-भृ-अण्-ङीप्‌ ङीष् वा। गाम्भारी वृक्ष, गंभारि। गंभारी देखो।

कम्भु (सं॰ स्त्री॰) कं जलं तत्तुल्यं शैत्यं बिभर्ति, कम्-भृ-डु। उशीर, खस।

कम्मल (हिं॰ पु॰) कम्बल देखो।

कम्मा (हिं॰ पु॰) ताड़पत्रपर लिखित लेख, जो मजमून् ताड़के पत्तेपर लिखा हो।

कम्र (सं॰ त्रि॰) कामयति, कम्-र। नमिकम्पिस्म्यजसकमहिंसदीपो रः। पा ३।२।१६७। १ कामुक, मैथुनेच्छायुक्त, चाहनेवाला। २ कमनीय, मनोहर, खूबसूरत, चाहने लायक।

कम्रा (सं॰ स्त्री॰) कम्र-टाप्। १ कमनीया, मनोरमा, दिलको लोभानेवाली। २ कामुकी, चाहनेवाली। ३ गङ्गा।

"कमनीयजला कम्रा कपर्द्दि सुकपर्द्दगा।" (काशीखण्ड २९।४४)

कय (वै॰ त्रि॰) किम् पृषोदरादित्वात् वेदे कयादेशः। १ क्या, कौन। (पु॰) को वायु इव याति गच्छति अथवा कं जलमिव याति, क-या-ड। २ वयः, वयःक्रम, उम्र। ३ दैत्यविशेष। इसका दूसरा नाम कासार था। इसने वालखिल्यसे वेदकी एक संहिता पढ़ी। (भागवत)

कयपूती (हिं॰ स्त्री॰) वृक्षविशेष, एक पेड़। यह सततहरित है। इसका उत्पत्तिस्थान सुमात्रा, यवद्वीप प्रभृति पूर्वीय द्वीपपुञ्ज है। कयपूतीके पत्रसे तैल निकालते हैं। उक्त तैल कर्पूरकी भांति स्थायी, अति परिष्कार और आस्वादमें तीक्ष्ण होता है। कयपूतीके तैलको अङ्गमें पीड़ा उठनेसे लगाते हैं।

कयस्था (सं॰ स्त्री॰) को वायु इव याति गच्छति, किंवा कं जलमिव याति, क-या-ड-स्था-क-टाप्। पातो ऽनुपसर्गे कः। पा ३।२।३। अजाद्यतष्टाप्। पा ४।१।४। १ काकोली, एक दवा। २ हरीतकी, हर। ३ सूक्ष्मैला, छोटी इलायची।

कया, काया देखो।

कया (वै॰ अव्य॰) किस रीतिसे, किस तौरपर।

कयाटु (वै॰ त्रि॰) शरीरको व्यय करनेवाला, जो जिस्मको खपाता हो।

कयाधू (सं॰ स्त्री॰) जम्भासुरकी कन्या। यह हिरण्यकशिपुकी स्त्री और प्रह्लादकी माता रहीं। हिरण्यकशिपुके औरस और कयाधूके गर्भसे संह्लाद, अनुह्लाद, प्रह्लाद तथा ह्लाद—चार पुत्रने जन्म लिया।

क़याम (अ॰ पु॰) १ स्थिति, ठहराव। २ जीवन, ज़िन्दगी। ३ स्थिरता, पोढ़ाई। ४ प्रार्थना करते समय खड़े होनेकी हालत। शान्तिरक्षाको 'क़याम-अमन' और स्थिर रहनेवालेको 'क़याम-पिज़ीर' कहते हैं।

क़यामत (अ॰ स्त्री॰) १ प्रलय, आखिरी दिन। ईसायी, मुसलमान् और यहूदी प्रलयके अन्तिम दिवसको क़यामत कहते हैं। इसी दिन यावतीय मृत व्यक्ति मृत्युकी गहरी निद्रासे उठते और ईश्वरके सम्मुख अपने-अपने कर्मका शुभाशुभ फल पानेको पहुंचते हैं। २ विपद्, मुसीबत। ३ सन्ताप, दुःख, रोवापीटी। ४ उत्पात, बखेड़ा, खलबली।

कयारी (हिं॰ स्त्री॰) शुष्कतृण, सूखी घास।

क़यास (अ॰ पु॰) १ विचार, ख़याल, राय। २ अनुमान, अन्दाज़।

क़यासन् (अ॰ क्रि॰-वि) अनुमानतः, अन्दाज़न्, अटकलसे।

क़ुयासी (अ० वि०) १ मानस, ख़याली। २ काल्प-
निक, अन्दाज़ी, अटकली। ३ आनुषङ्गिक, सुश्रावेह, एकसां। कल्पित विषयको 'अमर-क़ुयासी' और काल्पनिक प्रमाणको 'सुबूत-क़ुयासी' कहते हैं।

कयाह (सं० पु०) पक्वताल सदृश वर्ण अश्व, जो घोड़ा पके छुहारे जैसे रंगका हो।

कय्य—एक राजा। इन्होंने श्रीकय्यस्वामी नामक मठ और कय्यविहार नामक विहार बनवाया था। (राजत०)

कर (सं० पु०) कीर्यते विक्षिप्यते असौ अनेन वा कर्मणि वा करणे अप्। १ हस्त, हाथ। २ शुण्डा-दण्ड, हाथीकी सूंड। ३ किरण, रश्मि। ४ वर्षो-पल, ओला। ५ प्रत्यय। ६ विषय, काम। ७ कर्ता, करनेवाला। ८ एक कारक। यह पूर्वको उपपद आनेसे लगता और इससे जनक आदि समझ पड़ता है, जैसे—सुखकर इत्यादि। ९ शुल्क, महसूल। १० चौबीस अङ्गुलकी नाप। ११ आहुल्यक्षुप, एक झाड़। काश्मीरमें इसे तवरडू कहते हैं। १२ राजस्व, मालगुज़ारी, टिकस। यह नृपतिका प्राप्य अंश होता है। इसका संस्कृत पर्याय—भागधेय, बलि, कार और प्रत्याय है।

"क्रयविक्रयमध्वानं भक्तञ्च सपरिव्ययम्।
योगक्षेमञ्च संप्रेक्ष्य वणिजो दापयेत् करान्॥
यथा फलेन युज्येत राजा कर्ता च कर्मणाम्।
तथावेक्ष्य नृपो राष्ट्रे कल्पयेत् सततं करान्॥" (मनु)

नृपतिको क्रय विक्रय प्रभृतिका लाभालाभ देख कर संग्रह करना चाहिये। राजा ऐसी विवेचनासे कर लगायें, जिसमें कर्मकर्ता और वह दोनों फलका भाग पायें।

"पञ्चाशद्भाग आदेयो राज्ञा पशुहिरण्ययोः।
धान्यानामष्टमो भागः षष्ठो द्वादश एव वा॥"

राजाको पशु एवं सुवर्णादिके पचास और भूमि-सम्बन्धीय उत्कर्ष तथा अनुत्कर्षकी विवेचनासे धान्यके छह, आठ या बारह भागमें एक भाग लेना चाहिये।

"आददीताथ षड्भागं द्रुमांसमधुसर्पिषाम्।
गन्धौषधिरसानाञ्च पुष्पमूलफलस्य च॥
पत्रशाकतृणानाञ्च चर्मणां वैदलस्य च।
मृण्मयानाञ्च भाण्डानां सर्वस्याश्ममयस्य च॥"

द्रुम, प्रस्तर, मधु, घृत, गन्धद्रव्य, रस, पुष्प, मूल, फल, पत्र, शाक, तृण, चर्म, पिष्टक, मृत्पात्र और प्रस्तरपात्र प्रभृतिका षष्ठांश राजाको प्राप्य है।

"म्रियमाणोऽप्याददीत न राजा श्रोत्रियात् करम्।
न च क्षुधास्य संसीदेच्छ्रोत्रियो विषये वसन्॥" (मनु ७ अ०)

अत्यन्त धनहीन होते भी राजाको श्रोत्रियका धन ग्रहण करना उचित नहीं। किन्तु व्यवसायी होनेसे श्रोत्रियको राजकर देना पड़ता है।

निम्नलिखित समुदय देख भाल वणिक्के विक्रय द्रव्यका मूल्य निर्धारण करना चाहिये,—

अमुक वस्तु क्रय करनेमें क्या मूल्य लगा है, अमुक वस्तु बेचनेसे कितना लाभ होगा, अमुक वस्तु रक्षा करने अथवा चौरादिसे निरापद रखनेमें वणिक्को क्या व्यय पड़ा है, अब उसे बेचनेमें कितना लाभ निकलेगा। राजा केवल अपने राज्यकी रक्षा करनेमें हुये व्यय वा परिश्रमादिको देख एकदेशदर्शी रूपसे कर निर्धारण नहीं करते। उन्हें कृषक वणिक् प्रभृतिका समस्त कार्य पर्यालोचनाकर कर लगाना होता है। वत्स एवं भ्रमरके अल्प अल्प क्षीर तथा मधु भक्षण करनेकी भांति राजाको भी वणिक्का मूलधन उच्छेद न कर कर लेना उचित है। यदि सर्वस्वाप-हारी राजा द्वारा श्रोत्रियको क्षुधासे अवसन्न होना पड़ता, तो उसका राष्ट्र अचिरात् मट्टीमें मिलता है। अतएव राजा शास्त्र एवं ज्ञानानुष्ठानमें प्रवृत्त हो अवश्य वह कार्य करें, जिसे लोग धर्मविरुद्ध न कहें और जिसमें श्रोत्रिय चौरादिके भयसे निरुद्वेग रह सकें। राजकर्तृक सुरक्षित श्रोत्रिय जो धर्मानुष्ठान उठाते, वह नृपतिका आयुः एवं धन और राष्ट्रका वैभव बढ़ाते हैं। (मनु)

करइत (हिं० पु०) कृमिविशेष, एक कीड़ा। यह प्रायः छह अङ्गुलिपरिमित दीर्घ रहता और वायुमें उड़ा करता है।

करई (हिं० स्त्री०) १ पात्रविशेष, एक बरतन। यह पात्र जल रखनेके काम आता है। करईमें मामी

भी लगती है। २ पक्षिविशेष, एक चिड़िया। यह क्षुद्र रहती और गोधूमके कोमल तरु चञ्चुसे काट काट भक्षण करती है।

करंगा (हिं॰ पु॰) धान्यविशेष, किसी किस्मका धान। यह सान्द्र और ईषत् कृष्णवर्ण तुषविशिष्ट रहता है। आश्विन मास इसके पाकोन्मुख होनेका समय है।

करंगी (स्त्री॰) करंगा देखो।

करंजा (हिं॰ पु॰) १ कंजा। २ वृक्षविशेष, एक पेड़। ३ कोई आतिशबाजी। (वि॰) ४ धूसरवर्ण नेत्रविशिष्ट, जो भूरी आंख रखता हो।

करंजुवा (हिं॰ पु॰) १ कंजा। २ करंज, एक पेड़। ३ कोई आतिशबाजी। ४ अङ्कुरविशेष, एक कोपल। इसे घमोई भी कहते हैं। यह वंश, इक्षु प्रभृति जातीय वृक्षोंमें फूटता है। करंजुवा जिस वृक्षमें निकलता, उसको नाश करता है। ५ यवरोगविशेष, जौके पौदेको एक बीमारी। यह कृषिको हानि पहुंचाता है। ६ वर्णविशेष, एक रंग। यह खाकी होता है। माजू, कसीस, फिटकिरी और नासपाल मिला इस रंगको बनाते हैं। (वि॰) ७ धूसरवर्ण नेत्रविशिष्ट, भूरी आंख रखनेवाला। ८ धूसर, खाकी।

करंड (हिं॰ पु॰) प्रस्तरविशेष, एक पत्थर। इसे कुरुल भी कहते हैं। करंड अस्त्रशस्त्र पैनानेके काम आता है।

करंडी (हिं॰ स्त्री॰) अंडी, कच्चे रेशमकी चादर।

करंसी (हिं॰ स्त्री॰) यन्त्रविशेष, एक औज़ार। यह १ हस्त दीर्घ, ६ अङ्गुलि प्रशस्त और ३ अङ्गुलि सान्द्र होती है। चमार इसपर जूता सीते हैं।

करक (सं॰ पु॰-क्ली॰) किरति विक्षिपति जलमस्मात् करोति जलमत्र वा, कृ वा कृ-वुन्। कृञादिभ्यः संज्ञायां वुन्। उण् ५।३५। १ करङ्क, कमण्डलु, करवा। २ दाड़िम्बवृक्ष, अनारका पेड़। ३ करल्लवृक्ष, करीलका पेड़। ४ पलाशवृक्ष, टेसूका पेड़, ढाक। ५ करवीरवृक्ष, कनेर। ६ वकुलवृक्ष, मौलसिरी। ७ कोविदार, कचनार। ८ कुसुम्भवृक्ष, कुसुमका पेड़। ९ नारिकेलका अस्थि, नारियलका खोपड़ा। १० गोमयच्छत्र, गोवरपर लगनेवाला छाता। ११ करङ्क, ठठरी। १२ पक्षिविशेष, एक चिड़िया। १३ राजस्व, मालगुजारी, टिकस। १४ दाड़िम्बफल, अनार। १५ करका, ओला, पत्थर।

करक (हिं॰ स्त्री॰) १ पीड़ाविशेष, एक दर्द। जो वेदना रह रहके उठती, उसको संज्ञा 'करक' पड़ती है। २ मूत्ररोगविशेष, पेशाबकी एक बीमारी। इसमें पेशाब साफ नहीं उतरता और बीच बीच दर्द उठता है। ३ चिह्नविशेष, एक निशान्। यह किसी वस्तुके आघात, संघर्ष वा भारसे शरीरपर पड़ती है।

करकङ्कणन्याय (सं॰ पु॰) न्यायविशेष, एक क़ायदा। कर शब्द कहनेसे जैसे कङ्कणादि अलङ्कारयुक्त कर समझा जाता, वैसेही इससे न्यायसूचक दृष्टान्तका भावार्थ आता है।

करकच (सं॰ पु॰) १ सामुद्रिक लवणविशेष, समुद्रके पानीसे निकाला जानेवाला एक नमक। कड़कच देखो। २ नख, नाखून। ३ ज्योतिषोक्त संज्ञाविशेष। शनिकी षष्ठी, शुक्रकी सप्तमी, वृहस्पतिकी अष्टमी, बुधकी नवमी, मङ्गलकी दशमी, चन्द्रकी एकादशी और रविवारकी द्वादशी तिथिको करकच कहते हैं।

"शनिमार्गवजीवज्ञकुजशीमार्कवासरे।
षष्ठ्यादितिथयः सप्त क्रमात् करकचाः स्मृताः॥" (ज्योतिस्तत्त्व)

करकच्छपिका (सं॰ स्त्री॰) कच्छपस्येवाकृतिरस्ति अस्या मुद्रायाः, ठन्। कूर्ममुद्रा। मुद्रा देखो। तान्त्रिक अर्चनाकाल मत्स्यकूर्मादि अनेक प्रकार मुद्रा बनाते हैं। उनमें कूर्म अर्थात् कच्छपाकार व्यवहृत होनेवाली मुद्राको ही करकच्छपिका वा कूर्ममुद्रा कहते हैं।

करकञ्ज (सं॰ क्ली॰) करपद्म, हाथका कमल।

करकट (सं॰ पु॰) भरद्वाज पक्षी, एक चिड़िया।

करकट (हिं॰ पु॰) असार, मल, कूड़ा, झाड़न।

करकटिया (हिं॰ स्त्री॰) कर्करेट, एक चिड़िया। यह एक प्रकारका सारस है। इसका उदर एवं अधोभाग कृष्णवर्ण रहता है। मस्तकपर शिखा होती है। फिर कण्ठ भी श्याम ही रहता है। शरीरका

अवशिष्ट अंश धूसर देख पड़ता है। पुच्छ एक वितस्ति-परिमित दीर्घ और वक्र होता है।

करकण्टक (सं० पु०) करे कण्टक इव। नख, नाखून।

करकना (हिं० क्रि०) १ अकस्मात् भङ्ग होना, तड़से टूट जाना, चटचटाना, फूटना, फटना। २ पीड़ा होना, दर्द उठना। ३ वक्षःस्थलमें उग्रतर पीड़ा उठना, छातीमें गहरा दर्द पड़ना, कसकना, खटकना, सालना।

करकनाथ (हिं० पु०) कृष्णवर्ण पक्षिविशेष, एक काली चिड़िया। इसके अस्थि पर्यन्त कृष्णवर्ण होते हैं।

करकपात्रिका (सं० स्त्री०) करकः करकमण्डलुरूपा पात्रिका। चर्मपात्रविशेष, मशक। यह पानी भरनेके काम आती है।

करकमल (सं० क्ली०) करं कमलमिव, उपमि०। पद्मकी भांति सुन्दर हस्त, कंवलकी तरह खूबसूरत हाथ।

करकर (हिं० पु०) १ कर्कर, एक नमक। यह समुद्रके जलसे निकलता है। (वि०) २ कठोर, गड़नेवाला।

करकरा (हिं० पु०) १ कर्करेटु, करकटिया। करकटिया देखो। (वि०) २ कठोर, खुरखुरा, गड़नेवाला।

करकराहट (हिं० स्त्री०) १ कठोरता, कड़ाई, खुरखुराहट। २ पीड़ा, दर्द।

करकलस (सं० पु०) करः कलस इव, उपमि०। जलादि ग्रहणके लिये उभय करका मिलान, अञ्जलि, पानी वगैरह लेनेको दोनों हाथका मिलाव।

करकलित (सं० त्रि०) करेण कलितः धृतः। हस्त द्वारा धृत, हाथसे पकड़ा हुवा।

करकशालि (सं० पु०) रसालेक्षु, पौंड़ा, गन्ना।

करकस (हिं० वि०) कर्कश, कड़ा।

करका (सं० स्त्री०) कृणोति अपचयं करोति फलादिकम्, किरति क्षिपति जलं वा, कृञ्-वुन्-टाप् क्षिपकादित्वात् नेत्वम्। १ वर्षोपल, ओला, पत्थर। इसका संस्कृत पर्याय—वर्षोपल, मेघोपल, बीजोदक, घनकफ, मेघास्थि, वार्चर, कर, करक, राधरङ्गु और धाराङ्कुर है। २ कारवल्ली, करेला।

करकाच (सं० त्रि०) करका मेघमवशिलावत् अच्छि यस्य, मध्यपदलो०। करकाकी भांति शुभ्रवर्ण चक्षु रखनेवाला।

करकाचतुर्थी (सं० स्त्री०) कार्तिक कृष्णपक्षकी चतुर्थी, करवा चौथ। इस तिथिको भारतीय स्त्रियां व्रत रहती हैं। रात्रिको चन्द्रोदय होनेसे करवाकी टोंटीसे अर्घ प्रदानकर वह खाती पीती हैं। इस पूजामें कच्चे चावलके आटेका चीनी मिला लड्ड लगता, जिसे सब कोई पिंडी कहता है। प्रवादानुसार करकाचतुर्थीको ही करवेकी टोंटीसे जाड़ा निकलता है। खिलाड़ी इसी तिथिको दीपमालिकाके जुवेका मुहूर्त करते थे।

करकाज (सं० त्रि०) करकाया जायते, जन-ड। पञ्चम्यामपि दृश्यते। पा ३।२।९८। करकाजात, ओलेसे निकला हुवा।

करकाजल (सं० क्ली०) करकाया जलम्, ६-तत्। दिव्य जलभेद, ओलेका पानी। दिव्य वायु एवं तेजःके संयोगसे संहत आकाशसे पाषाणखण्डकी भांति पतित जलीय पदार्थके निःसृत जलको करकाजल वा शिलजल कहते हैं। यह रूक्ष, निर्मल, गुरु, स्थिर, अतिशय शीतल, पित्तनाशक और कफ एवं वायुवर्धक है। (भावप्रकाश)

करकाम्बु (सं० क्ली०) करकाजल, ओलेका पानी।

करकाम्भः (सं० पु०-क्ली०) करकावत् अम्भो विद्यते यत्र, बहुव्री०। १ नारिकेलवृक्ष, नारियलका पेड़। २ करकाजल, ओलेका पानी।

करकायु (सं० पु०) धृतराष्ट्रके एक पुत्र।

करकासार (सं० पु०) करकाया आसारः, ६-तत्। शिलावृष्टि, आस्मानसे पत्थरोंका गिरना।

करकिसलय (सं० क्ली०-पु०) करः किसलयमिव। करपल्लव, पल्लवकी भांति सुन्दर हस्त, जो हाथ पत्तेकी तरह खूबसूरत हो।

करकुड्मल (सं० क्ली०) करः कुड्मलवत्। मुकुलिताङ्गुलि हस्त, हाथकी उंगली।

करकृष्णा (सं० स्त्री०) जीरक, जीरा।

करकोष (सं० पु०) कराभ्यां निर्मितः कोषः, मध्य-

पहलो०। करकलस, अञ्जलि, पानी लेनेको दोनों हाथ मिला अंगुलीका बनाव।

करकोष्ठी (सं० स्त्री०) करस्थिता कोष्ठा। करस्थिता रेखा, हाथकी रेखा।

करखा (हिं० पु०) १ युद्धसङ्गीत, लड़ाईका गाना। २ छन्दोविशेष। करखेमें प्रत्येक पाद ३७ मात्रा रखता और अन्तको यगण पड़ता है। ३ उत्कर्ष, उत्तेजना, लागडांट। ४ कलङ्क, कालिख।

करगता (हिं० पु०) सुवर्ण रौप्य वा सूत्रकी मेखला, सोने चांदी सूत वगैरहकी करधनी।

करगह (हिं० पु०) १ निम्नस्थानविशेष, एक नीची जगह। यह तन्तुवायका कर्मशालामें होता है। जुलाहे पैर लटका करगहपर बैठते और वस्त्र बुनते हैं। २ यन्त्रविशेष, एक औज़ार। इससे तन्तुवाय वस्त्र प्रस्तुत करते हैं। ३ तन्तुवायकर्मशाला, जुलाहोंका कारखाना।

करगहना (हिं० पु०) प्रस्तर वा काष्ठखण्डविशेष, एक पत्थर या लकड़ी। इसे भरेठा भी कहते हैं। करगहना द्वार निर्माण करते समय चौखटपर जोड़ाई करनेके लिये रखा जाता है।

करगही (हिं० स्त्री०) धान्यविशेष, एक धान। यह अग्रहायण मास कटती और एक प्रकारका मोटा जड़हन धान ठहरती है।

करगी (हिं० स्त्री०) मार्जनीविशेष, एक खुरचनी। इससे कर्मशालामें परिष्कार की हुयी शर्करा बटोरी जाती है।

करग्रह (सं० पु०) करो गृह्यते यत्र, आधारे अप्। १ विवाह, शादी, परनावा। २ हस्तधारण, हाथकी पकड़। ३ प्रजासे प्राप्य राजस्वका ग्रहण, अदा मालगुज़ारी, टिकस वसूल करनेका काम।

करग्रहण (सं० क्ली०) करस्य ग्रहणं यत्र, बहुव्री०। करग्रह देखो।

करग्रहारम्भ (सं० पु०) करग्रहस्य आरम्भ प्रकृतिपुञ्जेभ्यो यत्र। वार्षिक करके ग्रहणारम्भका दिन, सलाना मालगुज़ारी वसूल करनेका आगाज़। इसे पुण्याह और पुण्या भी कहते हैं। अश्लेषा, आर्द्रा, ज्येष्ठा, मूला, पूर्वफल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वभाद्रपद, मघा, भरणी एवं कृत्तिका भिन्न अन्य नक्षत्र, मिथुन, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, तथा मीनलग्न और रवि, सोम, बुध, बृहस्पति एवं शुक्रवारको करग्रह आरम्भ करना चाहिये।

"नौयोग्यमसमीक्ष्यमेषु प्रये सौम्येषु शुभे दिने ग्रहाः।
कुर्यादतुलानि समीक्षितानि करग्रहारम्भमपि प्रजाभ्यः॥"

ऐसेही समय भारतीय ज़मीन्दार देवतादिकी अर्चना कर नया खाता बनाते और अपने अपने साध्यानुसार ब्राह्मण तथा आत्मीय बन्धु प्रभृतिको खिलाते हैं।

करग्राम (सं० पु०) गोण्डवन प्रदेशस्थ नगरविशेष। यह नगर गोंड जातिकी राजधानी रहा। उक्त प्रदेशके अन्तर्गत रत्नपुरसे ६४ कोस उत्तर करग्राम अवस्थित है।

करग्राह (सं० पु०) करं गृह्णाति यः, ग्रह-ण। विभाषा ग्रहः। पा ३।१।१४३। १ राजा, बादशाह। २ राजस्व आदायकारी, गुमाश्ता, मालगुज़ारी या टिकस वसूल करनेवाला। ३ साधारणतः हस्तग्रहणकारीमात्र, जो हाथ पकड़ता हो।

करग्राहक (सं० पु०) करं गृह्णाति, ग्रह-ण्वुल्। ण्वुल् तृचौ। पा ३।१।१३३। १ पति, मालिक, मालगुज़ारी पानेवाला। २ राजस्व आदायकारी, मालगुज़ारी वसूल करनेवाला, गुमाश्ता। ३ हस्तग्रहणकारी, हाथ पकड़नेवाला।

करग्राही (सं० पु०) करं गृह्णाति, ग्रह-ण्वुन्। शिल्पिनि ष्वुन्। पा ३।१।१४५। करग्राह। करग्राह देखो।

करघर्षण (सं० पु०) कराभ्यां घृष्यते ऽसौ, घृष कर्मणि ल्युट्। १ दधिमन्थनदण्ड, मथानी। इसका संस्कृत पर्याय—वैशाख, दधिचार और तक्राट है। (क्ली०) २ हस्तघर्षण, हाथोंका मलना।

करघर्षी (सं० पु०) कराभ्यां करयो वा घर्षणं विद्यते यस्य यत्र वा, कर-घर्ष-इनि। क्षुद्र मन्थनदण्ड, छोटी मथानी।

करघा (हिं० पु०) वस्त्र प्रस्तुत करनेका एक यन्त्र, कपड़े बुननेकी एक चरखी। करगह देखो।

करघाट (सं० पु०) विषवृक्षविशेष, एक ज़हरीला पेड़। इसके वल्कल और निर्यासमें विष रहता है। (सुश्रुत)

करङ्क (सं० पु०) कस्य मस्तकस्य रङ्क इव। १ मस्तक, माथा। २ कपाल, खोपड़ा। ३ नारिकेलास्थि, नारियलका खोपड़ा। ३ कमण्डलु। ४ शरीरास्थि, जिस्मकी हड्डी। ५ पात्रविशेष, एक बरतन। ६ भिक्षापात्र, भीख मांगनेका बरतन। ७ इक्षुविशेष, किसी किस्मकी ऊख।

करङ्कपावन (सं० क्लो०) तापी नदीके उत्तरस्थ एक तीर्थ। (तापीखण्ड ११।१)

करङ्कशालि (सं० पु०) करङ्क इति नाम्ना शोभते, करङ्क-शाल-इन्। इक्षुविशेष, एक ऊख। यह मधुर, शीतल, रुचिकृत्, मृदु, पित्तघ्न, दाहहर, वृष्य और तेजोबलवर्धन होता है। (वैद्यकनिघण्टु)

करङ्कीभूत (सं० त्रि०) अस्थिमात्रसे स्थित, हड्डी बना हुवा।

करङ्कण (सं० क्लो०) विपणि, हाट, बाजार या मेला।

करङ्कुलि—मन्द्राजप्रान्तीय चेङ्गलपट जिलेके अन्तर्गत मधुरान्तक तहसीलका एक नगर। यह अक्षा० १२° २१′ उ० एवं देशा० ७९° ५६′ ४०″ पू०पर मन्द्राजसे २४ कोस दूर ट्राङ्करोड किनारे अवस्थित है। यहांका जलवायु अधिक अच्छा नहीं। १७९५से १८२५ ई० तक करङ्कुलिमें थाना रहा। इसका दुर्ग विख्यात है। दुर्गका आयतन १५०० गज है। चारो ओर प्रस्तरका खेत खड़ा है। दुर्गका प्राकार टूट गया है। उसीके प्रस्तरसे स्थानीय पूर्तकार्य होता है। अंगरेजों और फरासीसियोंके युद्धकाल इस दुर्गमें फौज रहती थी। १७५५ ई०को दुर्ग अंगरेजोंके अधिकारमें रहा; किन्तु १७५७ ई०को फरासीसियोंने ले लिया। फिर अंगरेजोंने दुर्ग अधिकार करनेको बड़ी चेष्टा लगायी थी। अधिक सैन्यचय होते भी वह दुर्ग उद्धार कर न सके। १७५९ ई०को करनल कूटने बड़े जोरसे आक्रमण मारा था। उस समयसे आज तक दुर्गपर अंगरेजोंका अधिकार बना है।

करचंग (हिं० पु०) वाद्यविशेष, एक बाजा। यह एक प्रकारका छोटा डफ है। ख्याल या लावनी गानेवाले इसपर ताल लगाते हैं।

करचिमाला (हिं० पु०) वृक्षविशेष, एक पेड़। (Bridelia lancaefolia) यह बङ्गालमें उपजता और बहुत बड़ा लगता है।

करचुली—चेदिवंश। कलचुरी देखो।

करच्छद (सं० पु०) कर इव आवरणकारी छदो यस्य। शाखोटवृक्ष, सहोरेका पेड़। शाखोट देखो।

करच्छदा (सं० स्त्री०) करकिरणवत् लोहितवर्णं छदं पुष्पं यस्याः। १ सिन्दूरपुष्पी, सिंदुरिया। २ शाकतरु, सगुनका पेड़।

करछा (हिं० पु०) १ खजाका, बड़ी करछी। २ पक्षिविशेष, एक पहाड़ी चिड़िया। यह हिमालय, काश्मीर, नेपाल प्रभृति प्रदेशोंमें जलके निकट रहता है। करछा शीतकालको पर्वतसे समतल भूमिपर आ जलके निकट ठहरता है। जलमें सन्तरण और विगाहन करना इसे अच्छा लगता है। करछेके सनखपाद आधे-आधे लकसे आवृत रहते हैं। यह अपने पादसे द्रव्य ग्रहण कर सकता है। लोग करछेका आखेट खेलते हैं। किन्तु इसका मांस अच्छा नहीं होता।

करछाल (हिं० स्त्री०) उत्पतन, उछाल, कूदफांद।

करछियां (हिं० स्त्री०) पक्षिविशेष, एक चिड़िया। करछा देखो।

करछी (हिं० स्त्री०) खजाका, कलछी।

करछुल, करछी देखो।

करछुली, करछी देखो।

करछुला (हिं० स्त्री०) १ खजाका, करछी। २ खजाका विशेष, एक बड़ी कलछी। इसे भड़भूंजे चबेना भूनने और खपड़ेमें भाड़की तप्त रेणुका डालनेको व्यवहार करते हैं। करछुलेमें एक सुदीर्घ काष्ठयष्टि लगा रहता है।

करज (सं० पु०-क्लो०) करे जायते, कर-जन-ड। १ व्याघ्रनख नामक गन्धद्रव्य, एक खुशबूदार चीज। २ करञ्जवृक्ष, करौंदेका पेड़। ३ नख, नाखून।

"नखलोमध मश्रीयात्‌ छिन्द्यात्‌ करजैस्तृणम्‌।" (मनु ४।७१)

४ करजातद्रव्यमात्र, हाथसे पैदा कोई चीज। (त्रि०) ५ हस्तजात, हाथसे पैदा।

करजगि—धारवाड़का एक विभाग। इसकी भूमिका परिमाण ४४२ वर्गमील है। लोकसंख्या प्रायः ८४

हजार मिकलेगी। इसी विभागके मध्य पूर्वसे पश्चिम वरदनदी प्रवाहित है।

कारजाख्य (सं॰ पु॰-क्ली॰) करजस्य नखस्येव आख्या यस्य। नखी नामक गन्धद्रव्य, एक खुशबूदार चीज़।

करज्योड़ि (सं॰ पु॰) करं जोड़यति, जड़ बन्धे इन्। १ हस्तज्योड़ि महाकन्दशाक, हाताजोड़ी। २ काष्ठपाषाणभेद।

करज्योड़िकन्द (सं॰ पु॰) करज्योड़ि नामक कन्द-वृक्ष, हाताजोड़ी जड़ीका पौदा। यह रसबन्धकृत् और वश्यकृत् होता है। (राजनिघण्टु)

करञ्ज (सं॰ पु॰) कं सुखं शिरोसुखं वा रञ्जयति, करञ्ज-णिच्-अण्। १ स्वनामख्यात वृक्षविशेष, करौंदा। वैद्यकमतसे यह चार प्रकारका होता है,—

१ नक्तमाल, पूतिक, चिरविल्व, पूतिपर्ण, वृक्षफल, रोचन, करज, करञ्जक, चिरिविल्व वा उदकीर्य।

२ प्रकीर्य, पूतिकरज, पूतिक, कलिकारक, पूति-करञ्ज, सकण्टक, सुमना, रजनीपुष्प, प्रकीर्ण, कलि-मालक, कलहनाशक, कैडर्य, कलिमाल और पूतिकरज।

३ षड्ग्रन्था, महाकरञ्ज, विषघ्नी, हस्तिचारिणी, रासायिनी, काकघ्नी, मदहस्तिनी, हस्तिकरञ्जक, काकभाण्डी वा मधुमती।

४ करमर्दक, कृष्णपाकफल, अविम्ल, सुषेण, कृष्ण-पाक, पाकफल, कृष्णफल, पाककृष्णफल, कृष्ण-फलपाक, पाककृष्ण, फलकृष्ण, पाकफलकृष्ण, वना-लय, वस्तालक, कराम्बुक, बोल, वश्र, आविग्न, कर-मर्दी, वनेक्षुद्रा, कराम्ल, करमर्द वा पाणिमर्द।

१ नक्तमालको हिन्दीमें करंज या किरमाल, महाराष्ट्रीमें करञ्ज, पञ्जाबीमें सुकचन, तामिलमें पुङ्गम्, तैलङ्गीमें कणुग वा कानुगैरा, सिंहलीमें मोगल करन्द, कर्णाटीमें कोङ्गय और ब्रह्मीमें ख-मैन कहते हैं। इसका अंगरेजी वैज्ञानिक नाम पोङ्गेमिया ग्लाबरा (Pongamia glabra) है।

यह एक सीधा वृक्ष है। मध्य एवं पूर्व हिमा-लयसे सिंहल तथा मलाका पर्यन्त भारतवर्षमें सब जगह करञ्ज मिलता है। वृक्ष प्रायः ४०।५० फीट ऊंचा होता है। छोटे नागपुरमें इसके काष्ठका भस्म रंगमें पड़ता है।

वैद्यकमतसे यह कटु, उष्णवीर्य, रक्तपित्तजनक, क्रमिनाशक और ईषत् पित्तवर्धक है। फिर करञ्ज चक्षुरोग, वातव्याधि, कुष्ठ, कण्डू, व्रण, चर्मरोग और विसूचिकाको दूर करता है। यह खाने और लगाने—दोनों कामोंमें चलता है। ५ बिन्दुकी मात्रा होती है। युरोपीय चिकित्सकोंके मतमें इसकी पत्तो ओस व्रतरोगपर लगानेसे विशेष उपकार होता है। डाक्टर ऐन्सलीके कथनानुसार करञ्जके तन्तुमय मूलका रस व्रतस्थान-परिष्कारक और नलीके घावका मुख बन्द करनेवाला है। फिर डाक्टर गिब्सन इसके तेलको सर्वप्रकार चर्मरोगके पक्षमें विशेष उपकारक समझते हैं। तैल निकालनेके लिये इसका बीज अग्रहायण मास संग्रहकर घानीमें पेरना पड़ता है। एक मन बीजसे कोई साढ़े छह सेर तेल निकलता और ५५° उत्तापमें जम सकता है। दक्षिणदेशमें इसे जलाया करते हैं। छोटे नागपुरमें लोग इसके फल खाते हैं। पत्तियोंका अच्छा चारा बनता, जिसके खानेसे गायोंका दुग्ध बढ़ता है। इसका काठ स्वल्प कठोर, श्वेत, प्रदर्शनसे पीत पड़ जानेवाला, दुर्भेद्य, तन्तुमय, अविरल, समकणविशिष्ट, अनायास कार्यमें न आनेवाला, अस्थिर और अनायास क्रमिसे आक्रान्त होनेवाला है। किन्तु जलमें रख मसाला लगानेसे वह सुधर जाता है। निम्न बङ्गालमें करञ्जका काठ तेलके कारखाने बनाने और आग जलानेमें लगता है। किन्तु दक्षिण भारतमें उससे रथके स्थूल चक्र बनते हैं।

२ प्रकीर्यको हिन्दीमें कटकरञ्ज, महाराष्ट्रीमें सागरगोता, दक्षिणीमें गच्छ, तामिलमें कलिचिमरम् वा गच्छचेत्तु और सिन्धीमें किरमत कहते हैं। इसका अंगरेजी वैज्ञानिक नाम गीलनदिनिया बोण्डु-सेला (Guilandina Bonduc.) है।

यह समग्र भारत, प्रधानतः बङ्गाल, ब्रह्मदेश और दाक्षिणात्यमें होता है। इसमें कण्टक रहते और हरिद्वर्ण पुष्प लगते हैं।

वैद्यकमतसे यह कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, विषरोगहर, वातश्लेष्मनाशक और कुष्ठ, चर्मरोग तथा चतरोगमें उपकारक है। इसका फल व्यवहार करनेसे शीघ्र ज्वर छूट जाता है।

कटकरञ्जके बीजको अंगरेज बण्डकनट (Bonduc nut) कहते हैं। यह देखनेमें श्वेतवर्ण, अतिशय कठिन और खानेमें अत्यन्त तिक्त होता है। परीक्षा करनेपर इससे तैल, शस्य, शर्करा और निर्यास निकालते हैं। भारतमें पसारी इसका बीज बेचते हैं। सविराम ज्वरपर इसे प्रयोग करनेसे सद्य सद्य उपकार होता है। करञ्जके बीजका तेल संचोभ और पक्षाघातके लिये हितकर है। इसको लगानेसे शरीरकी कान्ति बढ़ती, त्वक् मृदु पड़ती और फुनसी मिटती है।

कटकरञ्जके पत्रसे भी तैल निकाला जाता है। बीजके कड़े छिलकेसे चूड़ी, हार और माला जपनेकी गुरिया बनाते हैं। कटकरञ्जकी माला लाल रेशममें पिरोकर पहनने पर गर्भवती स्त्री गर्भपातसे बचती है। बालक बीजसे गोली खेलते हैं।

करञ्जक (सं० पु०) १ करञ्ज, करोंदा। यह वृक्ष छःप्रकारका होता है। पहलेको चिरविल्व, नक्तमाल; दूसरेको प्रकीर्य, पूतिकरञ्ज, पूतिक, कलिकारक; तीसरेको षड्ग्रन्थि, चौथेको मर्कटी, पांचवेंको अङ्गारवल्लरी और छठेको करमर्दी, वनेखुद्रा, कराम्ल तथा करमर्दक कहते हैं। करञ्जक कटु, तीक्ष्ण तथा वीर्योष्ण, और अनिल, कुष्ठ, उदावर्त, गुल्म, अर्श, व्रण, क्रमि एवं कफघ्न है। इसका पत्र कफ, वात, अर्श, क्रमि एवं शोथहर और भेदन, पाककटु, वीर्योष्ण, पित्तल तथा लघु होता है। फल कफ, वात, मेह, अर्श, क्रमि और कुष्ठ रोग मिटाता है। फिर घृतपूर्ण करञ्ज भी ऐसे ही गुण रखता है। (भावप्रकाश) इसका पुष्प उष्णवीर्य और पित्त, वात तथा कफघ्न है। घृतपूर्ण करञ्जका अङ्कुर अग्निदीपन, रस एवं पाकमें कटु, पाचन और कफ, वात, अर्श, कुष्ठ, क्रमि, विष तथा शोथहर होता है। किसी किसीने करञ्जकके भेदमें महाकरञ्ज, घृतकरञ्ज, पूतिकरञ्ज, गुच्छकरञ्ज, करञ्जिकादिका नाम लिया है। प्रत्येक शब्दमें गुण देखो। २ भृङ्गराज, भृंगरा। ३ करञ्जफल।

करञ्जतैल (सं० क्ली०) करौंदेका तेल। यह तीक्ष्ण, उष्ण एवं नेत्र, वात, कुष्ठ, कण्डू तथा लेपसे नानाविध चर्मरोग दूर करता है। (राजनिघण्टु)

करञ्जद्वय (सं० क्ली०) करञ्जयुग्म, दोनों करौंदे। इसमें एक चिरविल्व और दूसरा कण्टकीविटपकरञ्ज होता है।

करञ्जनगर—१ बरार प्रान्तके अमरावती ज़िलेका एक प्राचीन नगर। यह अक्षा० २०° २९´ उ० और देशा० ७७° ३२´ पू०पर अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः एक सहस्र है। करञ्ज नामक किसी ऋषिके नामपर इसका नाम भी करञ्जनगर पड़ा है। प्रवादानुसार करञ्ज ऋषिने कठोर रोगसे आक्रान्त हो महामायाको आराधना की थी। देवीने उनपर सन्तुष्ट हो यहां एक सरोवर बना दिया। करञ्ज उक्त सरोवरमें नहा रोगमुक्त हुये। उसी समयसे यह स्थान पुण्यतीर्थ समझा जाता है। लिङ्गपुराणमें करञ्जतीर्थका नाम विद्यमान है। यहां नीललोहित महादेव प्रतिष्ठित हैं। (लिङ्गपुराण ९१।५०) आज भी अनेक प्राचीन मन्दिर देख पड़ते हैं। उनके निर्माणकी प्रणाली प्रशंसनीय है। करञ्जनगरमें वाणिज्य व्यवसायके लिये अनेक वणिक् रहते हैं।

२ मध्यप्रदेशके वरधा ज़िलेका एक नगर। यह वरधा नगरसे १० कोसपर अवस्थित है। चारो ओर गिरिमाला खड़ी है। प्रायः ३०० वर्ष पूर्व नवाब मुहम्मद ख़ानने इसे बसाया था। यहां रुई और अहिफेन उत्पन्न होता है।

करञ्जफल (सं० पु०) करञ्जफलवत् फलं फलं यस्य। कपित्थ वृक्ष, कैथेका पेड़।

करञ्जफलक (सं० पु०) करञ्जफल स्वार्थे कन्। इवे प्रतिकृतौ। पा ५।३।९६। कपित्थवृक्ष, कैथेका पेड़।

करञ्जयुग्म, करञ्जद्वय देखो।

करञ्जभेद (सं० पु०) करञ्जवेल देखो।

करञ्जह (सं० त्रि०) करञ्जनाशक, करौंदेको मिटानेवाला।

करञ्जाद्यघृत (सं० क्लो०) करौंदे वगैरह चीजोंसे बना हुवा घी। करञ्ज, निम्ब, अर्जुन, शाल, जम्बु एवं वटकी त्वक् ४ शरावक, तथा इन्हीं द्रव्योंका कल्क १ शरावक, घृत ४ शरावक और ४ शरावक जल डाल डाल सबको एक बरतनमें पकाते हैं। फिर १६ शरावक शेष रहनेसे यह घृत बनता है। करञ्जाद्यघृत दाहपाक और श्रुतिरागयुक्त उपदंशके दोषको दूर करता है। (चक्रपाणिदत्त)

करञ्जिका (सं० स्त्री०) १ कंटीला करौंदा। यह पाकमें कटु, तुवर, ग्राहक, उष्णवीर्य एवं तिक्त और मेह, कुष्ठ, अर्श, व्रण, वात तथा कृमिनाशक है। इसका पुष्प वीर्यमें उष्ण, तिक्त और वात तथा कफहर होता है। (दैयकनिघण्टु) २ नक्तमालफल, बड़ाकरौंदा।

करञ्जी (सं० स्त्री०) १ महाकरञ्ज, बड़ा करौंदा। यह स्तम्भन, तिक्त, तुवर, कटुपाक एवं वीर्योष्ण और पित्त, अर्श, वमि, कृमि, कुष्ठ तथा प्रमेहघ्न है। (भावप्रकाश) २ करञ्जवल्ली, करौंदेकी बेल।

करट (सं० पु०) कं कुत्सितं वा रटति रवं करोति, क-रट्-अच्। पचादिभ्यो लुपिन्च:। पा ३।१।१३४। १ काक, कौवा। २ हस्तिगण्ड, हाथीकी कनपटी।

"अयं हि भिन्नकरटं पत्निनं वनगोचरम्।
उपस्थाय सदोनातं करेण: प्रकरं स्पृशेत्॥" (भारत)

३ कुसुम्भवृक्ष, कुसुमका पेड़। ४ दुष्ट जीवनधारी, खराब आदमी, बुरा पेशा करनेवाला। ५ एकादशाह श्राद्ध। ६ दुर्दुरुढ़, कट्टरनास्तिक। ७ वाद्यभेद, एक बाजा।

करटक (सं० पु०) करट स्वार्थे-कन्। १ चौरशास्त्र प्रवर्तक कर्णीके पुत्र। २ हितोपदेश वर्णित एक शृगाल। करट देखो।

करटा (सं० स्त्री०) करट-टाप्। १ दुःखदाता गाय, मुश्किलसे लगनेवाली गाय। २ हस्तिगण्डस्थल, हाथीको कनपटी।

करटिनी (सं० स्त्री०) हस्तिनी, हथिनी।

करटी (सं० पु०) करटो विद्यतेऽस्य, प्राशस्त्येन इन्। हस्ती, हाथी।

करटु (सं० पु०) क-अटु। कर्करेटु पक्षी, इसकी गर्दन काली होती है। कानोंके पर आगे बढ़ दो सुन्दर सफेद गुच्छे बना देते हैं। यह एशिया और अफरीकाके कयी भागोंमें पाया जाता है।

करड़ करड़ (हिं० पु०) १ शब्दविशेष, एक आवाज़। जब कोयी चीज़ बार-बार टूटती फूटती या चटखती, तब यह आवाज़ निकलती है। प्राय: दन्तसे कठिन वस्तु भङ्ग करते जो शब्द पुन: पुन: आता, वही करड़-करड़ कहाता है। (क्रि० वि०) २ शब्दके साथ तोड़फोड़।

करण (सं० क्ली०) क्रियते अनेन, कृ-ल्युट्। १ व्याकरणोक्त कारकविशेष। क्रियानिष्पत्तिके कारणसमूहमें कारणान्तरका व्यवधान न पड़ते जो वस्तु क्रियाकी निष्पत्तिका कारण माना जाता, वही करणकारक कहाता है। इसके द्वारा कर्ता क्रियाको सिद्ध करता है। जैसे—रामने रावणको बाणसे मार डाला। यहां हस्तादि मारनेका निष्पन्न कारक ठहरते भी संयोगके प्राधान्यसे बाण ही करणकारक होता है। हिन्दीमें इस कारकका चिह्न 'से' है।

"क्रियाया: परिनिष्पत्तिर्यद्व्यापारादनन्तरम्।
विवक्ष्यते यदा यत्र तत् करणमुदाहृतम्॥" (हरिकारिका)

२ चक्षुरादि इन्द्रिय। ३ देह, जिस्म। ४ क्रिया, काम। ५ स्थान, जगह। ६ हेतु, सबब। ७ हस्तलेप, हाथकी लिपायी-पोतायी। ८ नृत्यका प्रकार, नाचका तर्ज़। ९ गीतविशेष, एक गाना। १० क्रियाभेद, एक काम। ११ संवेशन, बैठाव। १२ ज्योतिषके गणितकी एक क्रिया। वव, बालव, कौलव, तैतिल, गर, वणिज, विष्टि, शकुनि, चतुष्पद, किन्तुघ्न और नाग—ग्यारह करण होते हैं। इनके अधिष्ठातृदेवता यथाक्रम यह हैं—इन्द्र, कमलज, मित्र, अर्यमा, भू, श्री, यम, कलि, वृष, फणी और मारुत। ववादि सात करण शुक्लप्रतिपद्के शेषार्धसे कृष्णचतुर्दशीके प्रथमार्ध और अवशिष्ट चार कृष्णचतुर्दशीके शेषार्धसे शुक्लप्रतिपद्के प्रथमार्ध तक रहते हैं। १३ विष्णु। १४ जातिविशेष, एक कौम। ब्रह्मवैवर्तपुराणमें लिखते—वैश्यके औरस तथा शूद्राके गर्भसे करण

निकले हैं। (ब्रह्मजन्म ८५ अ०) यह भारतवर्षके नाना स्थानोंमें रहते हैं। इनका आचार व्यवहार ब्राह्मणोंसे मिलता-जुलता है। १५ कायस्थ जातिकी एक श्रेणी। कायस्थ देखो। दाक्षिणात्यमें कहीं कहीं कर्णत्तु नाम भी प्रसिद्ध है। १६ स्मृतिशास्त्रके मतसे एक व्रात्यक्षत्रिय जाति।

"झल्लो मल्लश्च राजन्यात् व्रात्यान्निच्छिविरेव च।
नटश्च करणश्चैव खसद्रविड़ एव च॥" (मनु १०।२१)

१७ असभ्य अवस्थामें पतित एक जाति। आसामके पूर्वांश पार्वतीय प्रदेश, एवं ब्रह्म और श्याम देशमें यह लोग रहते हैं। सकल स्थानोंके करण देखनेमें एक प्रकार नहीं लगते। देशभेदसे आकारमें भी वैलक्षण्य आ गया है। यह बलशाली, साहसी और भीमकाय होते हैं। मुखपर गोदा रखनेके कारण स्त्रीपुरुष दूरसे भयङ्कर देख पड़ते हैं। असभ्य होते भी करण अति सरल, सत्यवादी और निरीह हैं। युद्धविग्रह किसीको अच्छा नहीं लगता। सब लोग शान्तिप्रिय होते हैं। किन्तु किसीके अनिष्ट करने या दोषी ठहरनेसे इनका वीर्यवह्नि भभक उठता है। ५।७ ब्रह्मवासी बलवीर्यमें एक करणके समकक्ष पड़ते हैं। बलशाली होते भी यह लड़ने भिड़नेसे अलग रहते हैं। किन्तु इससे करण अलस नहीं ठहरते। यह जहां वास करते, वहां अपने अपरिसीम परिश्रम और यत्नसे भूमिको प्रचुर शस्यशालिनी बना रखते हैं। फिर भी इन्हें एककाल निर्दोष कह नहीं सकते। कारण यह नशा बहुत पीते हैं। करण मद्यके लिये लालायित रहते और उसे पानेपर अर्थको भी तुच्छ समझते हैं।

यह लिखना-पढ़ना कुछ नहीं जानते और न किसी धर्मशास्त्रको ही मानते हैं। मूर्खताका कारण पूछने पर इनके मुखसे सुननेमें आया, किसी समय ईश्वरने महिषचर्मपर अपना आदेश और धर्मशास्त्र लिख मनुष्योंको बुलाया था। मनुष्योंमें सब लोग ईश्वरका आदेश और धर्मशास्त्र ग्रहण करनेको पहुंचे, किन्तु समय न मिलनेसे केवल करण आ न सके; सुतरां चिरकालको धर्मशास्त्रहीन हो गये।

१८ जम्बीरवृक्ष, जंभोरी-नीबूका पेड़। (क्लो॰) १९ योगियोंका आसन। २० क्षतादि। २१ लेख्य-पत्र, साक्षिदिव्यादि।

करणक (सं॰ त्रि॰) १ द्वारा, से। पूर्ववर्ती किसी पदके साथ बहुब्रीहि समास न रहते इसका प्रयोग असम्भव है।

करणत्राण (सं॰ क्लो॰) करणैः हस्तादिभिः त्रायते यत्, करण-त्रा-ल्युट्। मस्तक, सर, मत्था।

करणत्व (सं॰ क्लो॰) साधनत्व, तायीद, जरिया।

करणनियम (सं॰ पु॰) इन्द्रियनिग्रह, हवासकी रोक।

करणवाचक (सं॰ पु॰) करणं वाचयति, करण-वच-णिच्-ण्वुल्। करणबोधक, जरियेको जाहिर करनेवाला।

करणवास—युक्तप्रदेशके बुलन्दशहर जिलेका एक नगर। यह बुलन्दशहरसे ३० मील दक्षिणपूर्व अनूप-शहरको तहसीलमें गङ्गाके दक्षिण तीर अवस्थित है। प्रायः समस्त अधिवासी हिन्दू और जमींदार बैस-राजपूत हैं। दशहरेको यहां एक मेला लगता है। इतना बड़ा मेला बुलन्दशहर जिलेमें दूसरा नहीं होता। शीतलाका एक अतिप्राचीन मन्दिर विद्यमान है। प्रति सोमवारको उक्त मन्दिरमें स्त्रियां उपस्थित हो पूजा चढ़ाया करती हैं। दिबायीसे करणवास तक सड़क लगी है।

करणविन्यय (सं॰ पु॰) उच्चारणका नियम, तलफ़्फ़ुज़का तरीका।

करणस्थानभेद (सं॰ पु॰) इन्द्रियका पार्थक्य, हलक़का फ़र्क़।

करणा (सं॰ स्त्री॰) वाद्ययन्त्रविशेष, एक बाजा। यह वृहत् और सच्छिद्र यन्त्र है। भारतवर्ष और पारस्यमें इसे व्यवहार करते हैं। ध्वनि कर्णभेदी है। इसका दैर्घ्य १५ फ़ीट होता है।

करणाधिप (सं॰ पु॰) करणानां अधिपः, ६-तत्। १ जीव, रूह। २ इन्द्रियाधिष्ठातृ देवता। कर्णके दिक्, त्वक्‌के वायु, नेत्रके अर्क, रसनाके प्रचेता, नासिकाके अश्विनीकुमारद्वय, वाक्‌के वह्नि, पाणिके इन्द्र, पादके उपेन्द्र, पायुके मित्र, उपस्थके प्रजापति,

मनके चन्द्र, बुद्धिके चतुर्मुख, अहङ्कारके रुद्र और मनके अधिप अच्युत हैं। २ ववादिके स्वामी।

करणिक (सं० पु०) करणव्यवहारज्ञ कायस्थ।

करणी (सं० स्त्री०) क्रियते क्रियाविशेषोऽत्र, क्र-करणे ल्युट्-ङीष्। १ गणितशास्त्रोक्त क्रियाविशेष। अति सूक्ष्मरूपसे जिस राशिका मूल निकाल नहीं सकते, उसे करणी कहते हैं। (Surds) २ करणकी स्त्री।

करणीय (सं० त्रि०) क्रियते यत् यत्र वा, कर्मणि आधारे च क्र-अनीयर्। कृत्यल्युटो बहुलम्। पा ३।३।११३। कार्य, करने लायक।

करणीसुता (सं० स्त्री०) पोष्यपुत्रीरूपसे ग्रहण की जानेवाली सुता, जो लड़की पालनेके लिये बेटीकी तरह रखी जाती हो।

करण्ड (सं० पु०) क्रियते, क्र कर्मणि अण्डन्। अण्डन् कृसभृवृञः। उण् १।१२८। १ मधुकोष, शहदका छत्ता। २ असि, तलवार। ३ कारण्डव पक्षी, एक हंस। ४ दलाढक, हज़ारा चमेली। ५ वंशादि-रचित पुष्पपात्रविशेष, फूलकी डाली या पेटारी। ६ कालखण्ड, यकृत्। ८ शैवालविशेष, किसी किस्मका सेवार। हिन्दीमें करण्ड चाकू, हथियार वगैरह टैनेके कुरुल पत्थरको कहते हैं।

करण्डक (सं० पु०) वंशादिरचित पुष्पपात्रविशेष, बांसकी डलिया या पेटारी।

करण्डकनिवाप (सं० पु०) बौद्धग्रन्थोक्त एक पुण्य-स्थान। यह राजगृहके समीप अवस्थित है।

करण्डफल (सं० पु०) कपित्थवृक्ष, कैथेका पेड़।

करण्डफलक, करण्डफल देखो।

करण्डा (सं० स्त्री०) करण्ड-टाप्। १ पुष्पभाण्ड, फूल रखनेकी पेटारी। २ यकृत्।

करण्डिक (सं० पु०) करण्डः विद्यते यस्य, करण्ड-इकन्। करण्डवत् चर्ममय थली रखनेवाला जीव, जिस जानवरके सुर्देकी तरह चमड़ेकी थैली रहे।

करण्डी (सं० पु०) करण्डवत् आकारोऽस्ति अस्य, इनि। १ मत्स्यविशेष, एक मछली। २ पुष्पपात्र-विशेष, फूलकी पेटारी। हिन्दीमें करण्डी अण्डी यानी कच्चे रेशमसे बनी चादरको कहते हैं।

करण्य (सं० पु०) करण-भव यत्। करणिक, कायस्थजाति।

करतब (हिं० पु०) १ कर्तव्य, फ़र्ज़, काम। २ कला, हुनर। ३ जादू। ४ चालाकी।

करतबिया (हिं० वि०) करतब करनेवाला।

करतबी, करतबिया देखो।

करतरी (हिं०) कर्तरी देखो।

करतल (सं० पु०) करस्य तलः, ६-तत्। १ हस्त-तल, हथेली। २ डगण, चार मात्राका एक गण। इसमें प्रथम दो मात्रा लघु और अन्तकी एक मात्र दीर्घ आती है। ३ एक प्रकारका छप्पय।

करतलगत (सं० त्रि०) हथेलीमें पहुंचा हुवा, जो हाथ आ गया हो।

करतलधृत (सं० त्रि०) हथेलीमें रखा हुवा, जो हाथमें पकड़कर रखा गया हो।

करतलस्थ (सं० त्रि०) हथेलीमें रखा हुवा।

करतली (हिं० स्त्री०) १ गाड़ीवान्के बैठनेकी जगह। २ हथेली। ३ ताली।

करतव्य (हिं०) कर्तव्य देखो।

करता (हिं० पु०) १ कर्ता, करनेवाला। कर्ता देखो। २ वृत्तविशेष, एक छंद। इसमें एक नगण, एक लघु और एक गुरु—सब पांच अक्षर आते हैं। ३ गोलीका टप्पा।

करतार (हिं० पु०) १ कर्तार, विधाता। २ करताल

करतारी (हिं० स्त्री०) ताली, हथेलियोंकी आवाज़ २ वाद्यविशेष, एक बाजा।

करताल (सं० क्ली०) कराभ्यां दीयमानस्तालो यत्र बहुव्री०। १ झलक, एक बाजा। यह यन्त्र कांस्य धातु-बनता है। २ शब्दविशेष, एक आवाज़। यह दोनों हथेलियां बजानेसे निकलता है। ३ मंजीरा, झांझ।

करतालक (सं० क्ली०) करताल स्वार्थे कन्। करताल देखो।

करतालध्वनि (सं० पु०) करतालस्य ध्वनिः, ६-तत्। करतालका वाद्य, मंजीरा वगैरह बाजा।

करताली (सं० स्त्री०) करताल गौरादित्वात् ङीष्। १ वाद्यविशेष, एक बाजा। २ करतलद्वयके

अभिघातसे उत्पादित शब्द, हथेलियां बजानेको आवाज।

करती (हिं० स्त्री०) मृतवत्सका चर्म, मरे बछड़ेका चमड़ा। इसमें भूसा भर लोग बछड़ा जैसा बना देते और उसे देखा गायको लगा लेते हैं।

करतू (हिं० स्त्री०) काष्ठखण्डविशेष, लकड़ीका एक टुकड़ा। यह खेत सींचनेको बेंड़ीको रस्सीके सिरेपर लगती और हाथमें रहती है। करतूके ही सहारे बेंड़ी पानीमें डुबायी और ऊपर उठायी जाती है।

करतूत (हिं० स्त्री०) १ कर्तव्य, काम, करनी। २ कला, हुनर, करतब। ३ कुकर्म, बुरा काम।

करतूति, करतूत देखो।

करत्रप (सं० क्ली०) श्वेतकेतक, सफेद केवड़ा।

करतोय (सं० क्ली०) वर्षोपलजल, ओलेका पानी।

करतोया (सं० स्त्री०) कराभ्यां च्युतं हरपार्वतीपरिणयकालीन हरकराभ्यां क्षरितं तोयं जलं विद्यते यत्र, अर्शादित्वादच्। स्वनामख्यात नदीविशेष, एक दरया। गौरीके विवाह समय शिवके पाणिनिःसृत जलसे यह नदी निकली थी। करतोया अतिशय पवित्र है। वर्षाकाल सकल नदीका जल शास्त्रमें अशुचि कहा है। किन्तु इस नदीका जल किसी समय नहीं बिगड़ता। यह तीर्थस्थलोंके मध्य गणनीय है। इस तीर्थमें पहुंच त्रिरात्र उपवास करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। (भारत, ३।८५।४)

पूर्वकालको करतोया वङ्ग और कामरूपके मध्य सीमा-निर्देशक रही। कामरूप देखो। किन्तु आजकल इसकी गति सम्पूर्ण बदल गयी है। पहले यह रङ्गपुरमें पश्चिमसे बहती थी। सम्प्रति जलपाइगुड़ी जिलेके उत्तर-पश्चिम वैकुण्ठपुरके जङ्गलसे निकल बराबर दक्षिणको आती और रङ्गपुरके मध्यसे बगुड़ा जिलेके दक्षिण चलहलिया नदीके साथ मिल जाती है। इसी स्थानसे करतोयाकी गतिमें बड़ा गड़बड़ पड़ता है। निर्णय करना सरल नहीं—नाना शाखा चारो ओर हो कहां गयी हैं। विशेषतः गत कयी शतवर्षसे त्रिस्रोता नदी इस अञ्चलमें जिस भावसे निर्दिष्ट गतिको छोड़ बही, उससे प्राचीन करतोयाकी पूर्वगति निर्णय करनेमें बड़ी असुविधा पड़ी है।

उक्त स्थानसे यह आगे बढ़ फुलझरके नाम आत्रेयी नदीसे मिल गयी है। अनेक लोग इस फुलझरको ही प्राचीन करतोया नदी लिखते हैं। फिर किसीके मतमें महानदी और त्रिस्रोताको मध्यवर्ती 'करती' प्राचीन करतोयाकी ऊर्ध्वगति और बगुड़ा जिलेकी यमुना मध्यगति है।

आजकल अत्यन्त क्षुद्र आकार बनाते भी पौराणिक समय करतोया महास्रोतस्वतीरूपसे चली जाती थी।

करथरा (हिं० पु०) पर्वतविशेष, एक पहाड़। यह सिन्धुनदके उसपार सिन्धुप्रदेश और बलूचिस्थानके मध्य अवस्थित है।

करद (सं० त्रि०) करं ददाति, कर-दा-ड। १ राजस्वप्रदानकारी, खिराज देनेवाला। २ परित्राणार्थ हस्तप्रदानकारी, मददके लिये हाथ फैलानेवाला।

करदक्ष (सं० त्रि०) लघुहस्त, निपुण, दस्तकार, कारीगर।

करदम (हिं० पु०) कर्दम देखो।

करदल, करदला देखो।

करदला (हिं० पु०) वृक्षविशेष, एक पौदा। इस क्षुद्र वृक्षको त्वक् चिक्कण एवं पीताभ होती है। वृन्तसे अन्तमें लघु पत्रके गुच्छ लगते हैं। शरद् बीतने पर पत्र निकलनेसे पूर्व पीतवर्ण पुष्प आते और उनके मध्य दो-दो बीज पड़ जाते हैं। मार्च एवं अप्रेल मास इसके विकसित होनेका समय है। करदला हिमालय पर पांच हजार फीट ऊंचे उगता है। बीज खाद्यरूपसे व्यवहृत होते हैं।

करदा (हिं० पु०) १ गर्द, कूड़ा, करकट। यह अनाज वगैरह चीजोंमें मिली धूलका नाम है। इसके परिवर्तनमें दिया जानेवाला द्रव्य वा मूल्य भी 'करदा' ही कहाता है। वस्तुतः यह गर्द शब्दका अपभ्रंश है। २ बट्टा, बदलायी। ३ कटौती।

करदायी (सं० त्रि०) करं ददाति, कर-दा-णिनि। नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः। पा ३।१।१३४। करप्रदानकारी, खिराज देनेवाला।

करदीकृत (सं० त्रि०) अकरदं करदं क्रियते स्मेन, च्वि। कर देनेको बाध्य किया हुवा, जो खिराज अदा करनेको मजबूर बनाया गया हो।

करदौना (हिं० पु०) दौना।

करद्रुम (सं० पु०) किरति विक्षिपति समन्तात् शाखाः, कृ-अच्, करश्चासौ द्रुमश्चेति, नित्य-समा०। कारस्करवृक्ष, कुचिला।

करद्विष् (सं० पु०) करं द्वेष्टि, कर-द्विष-क्विप्। १ गोत्रभेद। २ वेदशाखाभेद।

करधनी (हिं० स्त्री०) १ किङ्किणी, कमरका एक गहना। यह स्वर्ण वा रौप्यमय होती है। बालकोंकी करधनीमें घुंघरू लगाते हैं। फिर स्त्रियोंके पहननेकी करधनी सादी ही रहती है। २ कटिमें धारण किया जानेवाला एक सूत्र, कमरमें पहननेका लड़दार सूत। (पु०) ३ धान्यविशेष, किसी किस्मका धान। इसकी भूसी काली होती है। किन्तु चावल रक्ताभ निकलता है।

करधर (हिं० पु०) १ खाद्यविशेष, महुवेकी रोटी। इसे महुवरी भी कहते हैं। २ मेघ, बादल।

करधृत (सं० त्रि०) हस्तद्वारा धारण किया हुवा, जो हाथसे पकड़ लिया गया हो।

करन (हिं० पु०) ओषधिविशेष, ज़रिश्क, एक जड़ी-बूटी। यह खानेमें अम्लमधुर होता है। इसे चटनी आदिमें व्यवहार करते हैं। करनका सेवन करनेसे दस्त साफ़ उतरता है। यह रेचक भी है।

करनधार (हिं०) कर्णधार देखो।

करनफूल (हिं० पु०) अलङ्कारविशेष, एक गहना। यह स्वर्ण वा रौप्यमय होता है। स्त्रियां इसे कर्णमें धारण करती हैं। करनफूल पुष्पाकार बनता है। इसे पहननेको कानकी लौ छेदायी और बारीक-बारीक सींकोंके कई टुकड़े डाल डाल बढ़ायी जाती है। यह दो प्रकारका होता है—साधारण एवं जड़ाऊ। करनफूलमें स्त्रियां झूमके भी लटका लिया करती हैं।

करनबेध (हिं०) कर्णवेध देखो।

करना (हिं० पु०) १ वृक्षविशेष, एक पौदा। इसके पत्र केतककी भांति दीर्घ एवं कण्टकरहित रहते हैं। पुष्प श्वेतवर्ण आते हैं। सौरभ किञ्चित् मिष्ट लगता है। इस वृक्षको कर्ण और सुदर्शन भी कहते हैं। २ निम्बुक विशेष, एक नीबू। यह बिजौरेकी भांती दीर्घ होता है। अपर नाम पहाड़ी नीबू है। ३ कार्य, काम। (क्रि०) ४ समाप्तिपर लाना, भुगताना, निपटाना। ५ पकाना, बनाना। ६ भेजना, पहुंचाना। ७ प्रणय लगाना, मुहब्बत बढ़ाना। ८ व्यवसाय चलाना, काम लगाना। ९ सवारी लाना, भाड़ा ठहराना। १० बुझाना, उठाना। ११ रूप बदलना। १२ उठाना। १३ रंगना। १४ मारना। १५ मज़ा लेना।

यह क्रिया सर्वप्रधान है। इससे सब क्रियावोंका अर्थ निकल सकता है। फिर किसी संज्ञाके पीछे लगा देनेसे यह उस संज्ञाके अर्थकी क्रिया बना देती है।

करनाई (हिं० स्त्री०) करनाय, तुरही।

करनाटक (हिं०) कर्णाटक देखो।

करनाटकी (हिं० पु०) १ कर्णाटक, करनाटकका बाशिन्दा। २ नट, कला खेलनेवाला। ३ बाज़ीगर, इन्द्रजाल देखानेवाला।

करनाल (हिं० पु०) १ करनाय, नरसिंहा। २ बड़ा ढोल। यह गाड़ीपर लद कर चलता है। ३ किसी किस्मकी तोप।

करनाल—१ पञ्जावप्रान्तका एक ज़िला। यह अक्षा० २९° ९´ एवं ३०° ११´ उ० और देशा० ७६° १३´ तथा ७७° १५ ३०´´ पू०के मध्य अवस्थित है। इसके उत्तर अम्बाला ज़िला तथा पटियाला राज्य, पश्चिम पटियाला एवं झींद, दक्षिण दिल्ली तथा रोहतक ज़िला और पूर्व यमुना नदी पड़ती है। करनाल ज़िलेमें तीन तहसीलें हैं—पानीपत, करनाल और कैथल। भूमिका परिमाण २३९६ वर्गमील आता है। लोकसंख्या प्रायः सवा छह लाख है। भूमि दो प्रकारकी है—बांगर और खादर। ऊंचे मैदानकी 'बांगर' और नीची जगहको 'खादर' कहते हैं। यमुना, घाघरा, सरस्वती, बड़ा नदी, चौतङ्ग और मार्यो नदी प्रधान नदी हैं। खेत सींचनेको कयी नहरें भी निकली हैं। झील और दलदल बहुत देख पड़ती हैं। पञ्जावके दूसरे

ज़िलोंकी अपेक्षा इस ज़िलेमें कुछ अधिक हैं। धातुमें नमक और नौसादर होता है। कैथल तहसीलमें नौसादर बनाया जाता है। करनाल शिकारके लिये प्रसिद्ध है। हरिण, नीलगाय और दूसरे मृग बहुतायतसे मिलते हैं। नहरोंके निकट अनेक प्रकारके पक्षी विद्यमान हैं। यमुना, दलदल और ग्रामके तालावमें मछलियां भरी पड़ी हैं।

इतिहास—करनाल नगरको कर्णने बसाया था। कुरु क्षेत्रका अधिक अंश इसी ज़िलेमें आ गया है। पानीपतके मैदानमें तीन बार घोर युद्ध हुवा। १५२६ ई०को बाबरने इब्राहीम लोदीको हराया था। फिर १५५६ ई०में अकबरने शेरशाहको यहांसे मार भगाया। १७६१ ई०को ७वीं जनवरीको अहमदशाह दुरानीने मराठोंको नीचा देखा दिल्लीका सिंहासन पाया। १७५९ ई०में नादिरशाहने मुहम्मदशाहकी फ़ौजको परास्त किया था। १७६७ ई०को सिख देसूसिंहने कैथलका क़िला लूट लिया। फिर झींदके राजाने करनालका निकटस्थ देश अधिकार किया था, किन्तु मराठोंने १७९५ ई०में उनसे छीन जार्ज टोमसको दे दिया। राजा गुरदित्त सिंहने टोमसको हटा वहां अधिकार जमाया और १८०५ ई०तक अपना राज्य चलाया। अन्तको अंगरेज़ोंने उसे उनसे छीन अपने राज्यमें मिला लिया। १८४३ ई०को कैथल अंगरेज़ोंके हाथ लगा था। १८५० को थानेश्वर सिखोंसे छूटा। यमुनाके उस किनारे रेलवे लगी है। करनालमें कृषिकार्य और व्यवसायकी कोयी कमी नहीं। यहां गेहूं बहुत होता है। खरीफ़में चावल, रुयी, ऊख, ज्वार और दाल बो देते हैं। खेत खब सींचे जाते हैं। खाद डालनेकी चाल भी चल पड़ी है।

अम्बाला, दिल्ली और हिसारको करनालसे अनाज तथा कच्चा माल भेजा जाता है। ग्रामकी गुड़की मण्डी है। बाहरसे विलायती कपड़ा, नमक, ऊन और तेलहन आता है। रुयी कपड़ा बुननेमें लगती है। कैथल और गूलकी मट्टीसे हज़ारों रुपयेका नौसादर तैयार होता है। करनालमें कम्बल, बूट तथा शीशेके नक़्शदार बरतन और पानीपतमें चमड़ेके कुप्पे बनते हैं। ग्राण्डट्रङ्क रोड करनालके बीच दिल्लीसे अम्बाले तक लगी है। नदी और नहरमें नाव चलती है।

करनालमें डिपटी कमिश्नर, असिष्टण्ट-कमिश्नर और तहसीलदार प्रबन्धकर्ता हैं। पुलिसके १७ थाने बने हैं। करनालमें एक जेल है। यहां पशुवोंकी चोरी अधिक होती है। सानसिये, बलूची और तागू चोर समझे जाते हैं। करनालमें शिक्षा बढ़ रही है। पानीपतमें अरबीका बड़ा मदरसा है। लोग हिन्दी बोला करते हैं।

प्रायः करनालमें २९ इञ्च वृष्टि होती है। किन्तु कहीं कहीं १८ इञ्चसे भी कम पानी पड़ता है। नहर किनारे ज्वर, संग्रहणी और उदरव्याधिका प्रावल्य रहता है। समय समय पर शीतला और विशूचिका भी फूट पड़ती है। इस ज़िलेमें ६ दातव्य औषधालय प्रतिष्ठित हैं।

२ करनाल ज़िलेकी तहसील। क्षेत्रफल ८३२ वर्गमील है। लोकसंख्या सवा दो लाखसे अधिक लगती है। ७ फौजदारी और ६ दीवानी आदालतें हैं।

३ करनाल ज़िलेका प्रधान नगर। यह अक्षा० २९° ४२′ १७″ उ० और देशा० ७७° १′ ४५″ पू०पर अवस्थित है। करनाल अत्यन्त प्राचीन नगर है। स्थानीय दुर्गमें बहुत दिन तक अंगरेज़ोंकी छावनी रही। सन् १८४१ ई०को फिर अंगरेज़ोंने यह दुर्ग छोड़ दिया था। १८४० ई०को काबुलके अमीर दोस्त मुहम्मद यहां कुछ महीनेतक बन्दी रहे।

करनाल उच्चभूमि पर बसा है। नीचे यमुनाकी नहर बहती है। नगरको चारो ओर १२ फीट ऊंचा प्राचीर खड़ा है। लोकसंख्या प्रायः २५ हज़ार है। नहर और दलदलके कारण ज्वरका प्रकोप रहनेसे बसती कुछ उजड़ गयी है। सड़कें पक्की होते भी तङ्ग हैं।

करनाल—बम्बई प्रान्तके थाना ज़िलेका एक दुर्ग तथा पर्वत। यह अक्षा० १९° ३५′ उ० और देशा० ७३° १०′ पू०पर वेगवती नदीसे कुछ मील पश्चिम अवस्थित है। इसमें एक उच्च और एक निम्न दुर्ग विद्यमान है। उच्च दुर्गपर १२५ फीटका एक स्तम्भ बना

है। लोग उसे पादुका पर काढ़ते और चढ़नेसे दूर रहते हैं। उत्तर कोङ्कण पर आक्रमण करनेको पहले यहां मुसलमानोंकी सेना सन्निवेशित थी। १५४० ई०को अहमदनगरके सिपाहियोंने इसे अधिकार किया। फिर पोर्तगीजोंने करनाल लिया, किन्तु कई हजार रुपया पानेपर छोड़ दिया। १६७० ई०को शिवाजीने मुगलोंको निकाल इसे छीना था। शिवाजीके मरनेपर औरंगजेबके सेनापतियोंने इसे फिर ले १७२५ ई०तक अपने अधिकारमें रखा। अन्तको १८१८ ई०को यह अंगरेजोंके हाथ आया।

करनिहित (सं० त्रि०) हाथमें रखा हुआ।

करनी (हिं० स्त्री०) १ कर्म, करतूत। २ अन्त्येष्टि-क्रिया, मरनेपर किया जानेवाला कामकाज। ३ कन्नी, एक औजार। यह लोहेको होती है। राजमिस्त्री इससे मकान बनानेमें ईंटपर गारा लगा दूसरी ईंट रखते हैं।

करनूल—मन्द्राज प्रान्तका एक जिला। यह अक्षा० १४° ५४′ एवं १६° १४′ उ० और देशा० ७७° ४६′ तथा ७८° १५′ पू०के मध्य अवस्थित है। इसके उत्तर तुङ्गभद्रा तथा कृष्णानदी, दक्षिण कड़प्पा एवं बल्लारी जिला, पूर्व नेल्लर तथा कृष्णा और पश्चिम बल्लारी जिला है। क्षेत्रफल ७७८८ वर्गमील निकलता है। लोकसंख्या ७ लाखसे ऊपर है। बङ्गणपल्लीका क्षुद्रराज्य इसी जिलेमें पड़ता है।

करनूलके केन्द्रस्थानसे नल्लमलय और यल्लमलय दो पर्वतमाला दक्षिण तथा उत्तर समामान्तर गयी हैं। नल्लमलय प्रायः ७० मील लम्बा और कहीं कहीं २५ मीलतक चौड़ा है। बिरमकोंड, गुन्दलब्रह्मेश्वरम् और दुर्गपूकोंड ३००० फीटसे ऊंची चोटियां हैं। इस पर्वतकी पांच अधित्यकामें गुन्दलब्रह्मेश्वरम्की उपत्यका प्रधान है। ऊपर चढ़नेकी दो पगडण्डियां लगी हैं। पूर्वीय विभाग कमवममें पर्वत अधिक है। इस अधित्यकाकी पूर्वसीमापर वेलीकोंड पर्वतमाला खड़ी है। नल्लमलयके समामान्तर अनेक क्षुद्र पर्वतमाला हैं। देशीय नृपतियोंने घाटियोंमें दाम बांध भूमि सींचनेको सरोवर बनाये थे। गुन्दलकम्म नदीके दामसे सुप्रसिद्ध कमवम सरोवर भरा है। यह प्रायः १५ वर्गमील परिमित है। ६००० एकर भूमि इससे सींची जाती है। दक्षिण विभागमें सगिलेरु और उत्तर विभागमें गुन्दलकम्म नदी बहती है।

कमवम अधित्यकासे नन्दीकनम् तथा मन्तराल सङ्कटमार्ग द्वारा मध्य विभागमें पहुंचते हैं। यह अधित्यका अतिशय प्रशस्त और समान है। काली मट्टीमें रुयी बहुत होती है। उत्तरको भवनाशी और दक्षिणको कुन्देरु नदी प्रवाहित है। ग्रीष्म ऋतुमें यह प्रान्त शुष्क पड़ जाता है। किन्तु पर्वतके पार्श्वपर हरेभरे जङ्गल तथा बाग मिलते और नाले एवं झरने चलते हैं। ठीक इसी अधित्यकाके नीचे मन्द्राज-इरिगेशन-कम्पनीको नहर लगी है। कुछ दिन हुये, पर्वतके पार्श्वाङ्गमें भूतत्त्वज्ञोंने पत्थरके यन्त्र पाये थे। कहते—उक्त यन्त्रोंसे वह लोग कार्य करते, जो अधित्यकावोंके पानीमें डूबते भी विद्यमान रहे।

पश्चिम विभाग दूसरे विभागोंसे विभिन्न देख पड़ता है। इसके पर्वत वृक्षरहित हैं। दक्षिणसे उत्तरको हिन्दरी नदी बहती और करनूलके निकट तुङ्गभद्रामें गिरती है। १८६० ई०को सङ्केसलमें तुङ्गभद्राका बांध भूमि सींचने और नाव खींचनेके लिये नहर निकालनेको पड़ा था। बाढ़ टूटनेपर रेतमें बढ़िया तरबूज होता है। सङ्गमेश्वरममें कृष्णा और भवनाशा दोनो मिल गयी हैं। इसी सङ्गमके नीचे चक्रतीर्थम् विद्यमान है।

कुन्देरु अधित्यकामें चूर्णखण्डकी शिला भरी हैं। यह मकान बनानेका अच्छा मसाला है। करनूलका चूर्णखण्ड (Lithograph) लिथोमें लगता है। इस जिलेमें हीरक, लौह, सिन्दूर और ताम्रकी खनि विद्यमान हैं। नल्लमलय और यल्लमलयसे अनेक जलप्रपात भी निकलते हैं।

नल्लमलयका प्रायः २००० वर्गमील परिमित वन सुप्रसिद्ध है। इसमें हजारों रुपयेकी बढ़िया लकड़ी होती है। पश्चिमके वन सघन और पूर्वके वन विरल हैं। उत्तरके जङ्गलोंमें गोचर-भूमि बहुत है। यल्लमलयके पर्वत वृक्षरहित हैं। किन्तु अवसर्पिणी

भूमिपर अनेक प्रकार गुल्म देख पड़ते हैं। वनमें कटु पूगफल, मधु, मधूच्छिष्ट (मोम), चिञ्चा (इमली), लाक्षा और वंशतण्डुलकी उत्पत्ति अधिक है।

नल्लमलय पर्वतपर व्याघ्र अल्प हैं। किन्तु वह मनुष्यपर प्रायः टूटा करते हैं। चीते, भेड़िये, हायने, लोमड़ियां और गीदड़ दूसरे हिंस्र जीव हैं। भालू कहीं देख नहीं पड़ता। पर्वतपर चित्रमृग और अनेक प्रकारके हरिण चरते फिरते हैं। उत्तर नल्लमलयमें जङ्गली भैंसा मिलता है। सेह और सूवर भी जङ्गलमें बहुत हैं। नानाप्रकार पक्षी उड़ा करते हैं। यहां मछली मारनेका व्यवसाय नहीं चलता। अजगर सांप भरे पड़े हैं। व्याघ्र एवं मृगचर्म और हरिणशृङ्ग कुछ कुछ बिकता है।

इस जिलेमें ईसायी बहुत रहते हैं। तेलगु भाषा चलती है। किन्तु पत्तीकोंडमें बहुतसे लोग कनारी बोली बहते हैं। नल्लमलय पर वन्यजातिके चेंचू विद्यमान हैं। कृषिकार्य उन्हें अच्छा नहीं लगता। पर्वतमें उत्सवके समय वह यात्रियोंसे कर लिया करते हैं। करनूलके प्रधान नगर यह हैं,—करनूल, नन्दियाल, कमबम, गुटूर, मद्दीखेरा और पेपली।

यहां ज्वार, दाल, रुयी, तेल और नीलकी कृषि अधिक होती है। ऊख और धानको सींच सींच बढ़ाते हैं। गेहूं और सन कहनेको बोया जाता है। तम्बाकू, मिर्च, केले और अखरोटको ग्रामके निकट लगाते हैं। लोगोंका प्रधान खाद्य जुवार है। यह प्रधानतः दो प्रकारकी होती है—पीली और सफ़ेद। पीली जुवार जून मास लाल या काली भूमिमें बो दी जाती है। किन्तु पीली जुवार सितम्बर या अक्तोबर मास खेतमें पड़ती और फ़रवरी तथा मार्च मास कटती है। नल्लमलयकी कितनी ही कृषिभूमि अब जोती-बोयी न जानेसे वन्य बन गयी है। सङ्केसलसे कड़प्पा तक १८९ मील लम्बी नहर लगी है। करनूल जिलेमें इसकी लम्बायी १४० मील है। यह ६० गज चौड़ी और ८ फ़ीट गहरी बहती है।

करनूलमें कपड़े बुननेका काम अधिक होता है। नल्लमलय पर्वतके नीचे लोहा भी मिलता है। यल्लमलयसे हीरा निकालते हैं। पत्थर काटनेमें बहुतसे आदमी लगे रहते हैं। नील और गुड़ भी तैयार होता है। अनेक नगरों और ग्रामोंमें साप्ताहिक हाट लगते हैं। यहांसे अनाज बाहर भेजा नहीं जाता और पूर्वतटसे नमक आता है। किन्तु करनूलमें मट्टीका नमक बहुत बनता है। रुयी, नील, तम्बाकू, चमड़ा और रुयीके कपड़े तथा कालीनका चालान होता है। बाहरसे आनेवाले द्रव्यमें विलायती वस्त्र, सुपारी, नारियल और सूखा मसाला प्रधान है। करनूलमें कोयी ६०० मील सड़क बनी है।

करनूल वरङ्गलके प्राचीन तेलङ्ग राज्यका विभाग है। उक्त राज्यके अधःपतनसे यह सम्भवतः स्वतन्त्र हो गया था। ईश्वर-राव राजा रहे। उनके पुत्र नरसिंह रावको विजयनगरके महाराजने गोद लिया था। फिर वह उक्त विशाल राज्यके राजा बन गये। विजयनगराधिप अच्युतदेवरायके समय करनूलका दुर्ग निर्मित हुवा। फिर यह प्रान्त रामराजाको जागीरमें मिला था। १५६४ ई०को तालिकोट युद्धमें बीजापुर, गोलकुण्डा तथा अहमदनगरके नवाबोंने विजयनगरके राजाको हराया और करनूलको बीजापुरके एक प्रान्तमें लगाया। पहले सूबेदार अबसीनियावाले अबदुल वहाब रहे। उन्होंने मन्दिरोंको मसजिद बना डाला।

१६५१ ई०को औरङ्गजेबने बीजापुर जीत पठान खिज़ीर खान्को सैनिक-सेवाके पुरस्कारमें दिया था। उनके पुत्र दाऊद खान्ने उन्हें मार डाला। दाऊद खान्के मरनेपर उनके भाई इब्राहीम खान् और अलिफ़ खान्ने मिलकर राज्य चलाया। उक्त दोनों भाइयोंका उत्तराधिकार अलिफ़ खान्के पुत्र इब्राहीम खान्को मिला था। उन्होंने दुर्ग बनाया और उसका बल बढ़ाया। फिर उनके पुत्र और पौत्रने राज्य किया था। पौत्रका नाम हिम्मत खान् रहा। कर्णाटककी चढ़ायी पर निज़ाम नजीरजङ्गको ओरसे कड़प्पा और सवनूरवाले नवाबोंके साथ हिम्मत खान् भी गये थे। वहां कड़प्पाके नवाबने धोकेसे नजीरजङ्गको मारा। निज़ामके भतीजे दक्षिणके सूबेदार

बने। किन्तु पठान-नवाब उनसे असन्तुष्ट रहे। रायचोटीमें हिम्मत खान् बहादुरने उन्हें मार डाला। उत्तेजित सैनिकोंने हिम्मत खान्के भी टुकड़े उड़ाये थे। फिर नजीरजङ्गके दूसरे भतीजे सलावत खान् सूबेदार हुये। १७५२ ई०को हैदराबाद लौटते उन्होंने आक्रमण मार करनूल अधिकार किया था, किन्तु कुछ रुपया ले हिम्मतखान्के भाई मुनव्वर खान्को सौंप दिया। थोड़े ही दिन बाद हैदर अलीने करनूल आक्रमण कर दो लाख (गडवाल) रुपया पाया था।

१८०० ई०को यह जिला कड़प्पा और बल्लारीके साथ अंगरेजोंको दिया गया। उस समयसे नवाब अलिफ् खान् एक लाख (गडवाल) रुपया प्रतिवर्ष सरकारको पहुंचाते रहे। १८१५ ई०को अलिफ खान्के मरने पर उनके भाई मुजफ्फर जङ्गने सिंहासन और दुर्ग अधिकार किया। अलिफ् खान्के ज्येष्ठपुत्र मुनावर खान्ने अंगरेजोंसे साहाय्य मांगा था। फिर बल्लारीसे करनैल मरियट फौज लेकर पहुंचे। मुजफ्फर खान् करनूलसे निकाले और मुनव्वर खान् मसनद पर बैठाले गये थे। १८२३ ई०को मुनव्वर खान् मरे। उनके भाई मुजफ्फर करनूल सिंहासनारुढ़ होने आ रहे थे। किन्तु उन्होंने बल्लारीके निकट अपनी पत्नीको मार डाला। इसीसे वह बल्लारीके क़िलेमें कैद हुये और १८७९ ई०को मर गये।

१८३८ ई०को समाचार मिला—करनूलके नवाब गवरनमेण्टके विरुद्ध युद्धकी तैयारी करनेमें लगे हैं। अन्वेषण करने पर मालूम हुवा—दुर्ग तथा प्रासादमें अस्त्रशस्त्र और गोली बारूदका ढेर किया गया है। फिर अंगरेजोंने तीक्ष्ण युद्धके पीछे दुर्ग और नगर अधिकार किया। नवाब हिन्द्री नदीके वामतट पर जोरापुर ग्रामको भागे थे। अन्तको उन्होंने आत्मसमर्पण किया। वह त्रिचनापल्लीके क़िलेमें बन्दी रहे। वहां उनके एक भृत्यने उन्हें मार डाला। उनका राज्य ज़ब्त हुवा और उनके वंशलोंको पेनशन मिला। १८५८ ई०को करनूल जिला बनाया गया।

यहां शिक्षाका सुप्रचार नहीं। जलवायु स्वास्थ्यकर है। पश्चिम और उत्तर-पूर्वसे अधिक वायु आता है। जूनसे सितम्बर मासतक वृष्टि होती है। नल्लमलय पर्वतके नीचे ज्वरका प्रकोप रहता है। मैदानमें गोचरभूमि नहीं। पशु पर्वत पर चरते हैं। किन्तु ग्रीष्म ऋतुमें पर्वतकी घास जल जानेसे पशु भूखों मरते हैं। करनूल, कमबम और नन्दियालमें दातव्य औषधालय विद्यमान हैं।

२ करनूल जिलेके रमलकोट परगनेका प्रधान नगर। यह अक्षा० १५° ४९′ ५८″ उ० और देशा० ७८° ५′ २९″ पू०पर अवस्थित है। लोकसंख्या २० सहस्रसे अधिक आती है। यह करनूल जिलेका हेड क्वार्टर है। हिन्द्री और तुङ्गभद्रा नदीके सङ्गम पर बसती पड़ी है। भूमि पार्वत्य है। स्थानीय दुर्ग गोपाल राजने बनाया था। १८६५ ई०को इसका सामान उतारा गया। आवरणपटके गिराये जाते भी चार वप्र (बुर्ज) और तीन द्वार विद्यमान हैं। इसमें नवाबका प्रासाद था। १८७१ ई०तक दुर्गमें सेना रही। किसी समय करनूलमें विसूचिका अधिक देख पड़ती थी। किन्तु म्युनिसपलिटीने कितना ही धन व्यय कर इसका स्वास्थ्य सुधारा है। फिर भी नहर निकलनेसे ज्वरका वेग बहुत बढ़ जाता है। १८७७-७८ ई०को दुर्भिक्ष पड़नेसे करनूल पर बड़ी विपद् आयी थी। रेलका गूटी ष्टेशन ३० कोस दूर है। इसमें आधे हिन्दू और आधे मुसलमान रहते हैं।

करनैल (अ० पु० = Colonel) सैन्यदलाध्यक्ष, फौजका अफसर। यह ब्रिगेडियर-जनरलके नीचे रहता है।

करन्धम (सं० पु०) करं धमति अग्निसंयोगं करोति, कर-ध्मा-खश्‌ सुम् च। उपपदमें रमादयापिधमाय। ३।२।३७। सुवर्चाः, इक्ष्वाकुवंशीय खनीनेत्र नामक राजाके पुत्र। सत्ययुगके समय मनु-वंशमें खनीनेत्र राजाने जन्म लिया था। वह अतिशय उद्धत रहे। उन्होंने स्वीय भ्रात और प्रजावर्गको निरन्तर सताया। उद्धतप्रकृतिवशतः प्रजाको रिझा वह स्वीय पूर्वपुरुषोचित यश पा न सके थे। परिशेषमें दिग्विजयी सर्वा

होते भी प्रजाने उन्हें सिंहासनसे उतार करन्धमको भगाया और उनके पुत्र सुवर्चाको राजा बनाया।

सुवर्चा पिताको विवेक-क्रियारत रहनेसे राज्यच्युत और निर्वासित होते देख सतत संयत-चित्तसे प्रजाके हितसाधनमें लगे थे। प्रजा भी उनको ब्रह्मनिष्ठ, सत्यव्रत, शुचि, शमदमादि गुणभूषित, मनस्वी और धार्मिक पा अत्यन्त अनुरक्त हुयी। कालवश सदा धर्म-निरत सुवर्चाको अर्थहीन होनेसे सामन्त सताने लगे।

इन धर्मात्मा नृपतिने कोष एवं वाहनादि विहीन हो सामन्तगणके भयसे अपने अनुरक्त भृत्योंके साथ स्वपुरीको बचाया था। बलहीन होते भी नियत धर्म-परायण रहनेसे उत्पीड़क -सामन्त इन्हें विनष्ट कर न सके। अवशेषमें जब राजाको सामन्तगणने निदारुण रूपसे सताया, तब इन्होंने अपना कर मनमें लगाया था। उसपर अग्निसे इनका भीमपराक्रम सैन्यसमूह निकल आया। फिर बलीयान् नृपतिने अपूर्वरूप आविर्भूत सैन्यसमूहसे परिवृत हो स्वीय सीमाके अन्तर्वर्ती नृपतिगणको नीचा देखाया था। स्वीय कर अग्निमें जलानेपर उस दिनसे सुवर्चाका नाम 'करन्धम' पड़ गया।

करन्धय (सं॰ वि॰) करं धयति लेढ़ि, कर-धे-खश्-मुम्। हस्तलेहक, हाथ चूमने या चाटनेवाला।

करन्यस्तकपोलान्त (सं॰ अव्य॰) हस्तार्पित कपोलके अन्तपर, हाथपर रखे हुये गालके सिरे।

करन्यास (सं॰ पु॰) करे करावयवे न्यासः, ७-तत्। तन्त्रोक्त न्यासविशेष। तन्त्रोक्त मन्त्र उच्चारणपूर्वक अङ्गुष्ठ प्रभृति अङ्गुलिसमूहके तल और पृष्ठदेशपर जो न्यास किया जाता, वही करन्यास कहाता है।

करपच (सं॰ पु॰) करौ पचवत् यस्य, बहुव्री॰। चौमगोदड़ वगैरह।

करपङ्कज (सं॰ पु॰) करः पङ्कजमिव। पद्महस्त, कंवल-जैसा हाथ।

करपण्य (सं॰ क्ली॰) करार्थं राजस्वार्थं पण्यम्, मध्यपदलो॰। राजस्वके लिये दिया जानेवाला विक्रेय वस्तु, जो चीज़ खिराजके लिये दी जाती हो।

करपत्र (सं॰ क्ली॰) करमवयवम् प्रतति, कर-पत-इन्। दारीवयपुरुषत्तुदविषिवाहिइन्। पा ३।१।१८२। १ क्रकच, करौत। यह सुश्रुतमें कथित विंशति अस्त्रोंका एकप्रकार भेद है। इससे छेदन और लेखन कर्म होता है। २ स्नानके समय जलका इधर-उधर कटाव, नहाते वक्त पानीको अपने इधर उधर हाथसे झकोलनेका काम।

करपत्रक (सं॰ क्ली॰) क्रकच, करौत।

करपत्रवान् (सं॰ पु॰) करपत्रवत् पत्रं यस्य तत् अस्यास्ति, करपत्र-मतुप्, मस्य वः। तदस्यास्यस्मिन्निति मतुप्। पा ५।२।९४। तालवृक्ष, ताड़का पेड़।

करपत्रिका (सं॰ स्त्री॰) करौ पत्रं यानमिव यस्याः, कर-पत्र-कप्-टाप् अत इत्वम्। १ जलक्रीड़ा, पानीका खेल। २ तिलपर्णी।

करपर (हिं॰ पु॰) १ कर्पर, खोपड़ा। (वि॰) २ कृपण, कञ्जूस।

करपरी (हिं॰ स्त्री॰) बरी, मुंगौरी-मेथौरी।

करपर्ण (सं॰ पु॰) करवत् पर्णं यस्य। १ भिण्डा वृक्ष, भिण्डीका पेड़। २ रक्तैरण्ड, लाल रेंड़। एरण्ड देखो।

करपल्लवी (हिं॰) करपल्लवी देखो।

करपल्लव (सं॰ पु॰) करस्य पल्लववत्। १ अङ्गुलि, उंगली। २ हस्त, हाथ। ३ अङ्गुलियोंके सङ्केतसे कथनोपकथन करनेकी विद्या, उंगलियोंके इशारेसे बात करनेका हुनर।

"अग्निकण कमल चक्र टङ्कार। तरु पर्वत यौवन शृङ्गार॥
अंगुलि अधर चुटकि मात। राम कहें लक्ष्मण सों बात॥"

हाथसे अग्निका फण बनानेपर अकारादि स्वर, कमल बनानेपर ककारादि, चक्र देखानेपर चकारादि, टङ्कार लगानेपर टकारादि, तरु बतानेपर तकारादि, पर्वत बनानेपर पकारादि, यौवन देखानेपर यकारादि और शृङ्गार सुझानेपर शकारादि वर्णका बोध होता है। फिर एकादिक्रमसे अङ्गुलि देखानेपर अक्षर और चुटकी बजानेपर मात्रा ठहराते हैं।

करपल्लवी (सं॰ स्त्री॰) हस्तके सङ्केतसे कथनोपकथन, हाथके इशारेकी बातचीत। करपल्लव देखो।

करपा (हिं॰ पु॰) डांट, लेहना। अनाजके बालदार डण्ठको करपा कहते हैं।

करपात्र (सं॰ क्ली॰) करः पात्रवत् यत्र। १ जल-क्रीड़ा, पानीका खेल। २ हस्तरूप पात्र, बरतनका काम देनेवाला हाथ। योगी अपने करका पात्र और उदरकी झोली रखते हैं।

करपात्रिका (सं॰ स्त्री॰) करपात्र देखो।

करपान (हिं॰ पु॰) रोगविशेष, एक बीमारी। यह एकप्रकारका चर्मरोग है। इससे बालकोंके शरीरपर रक्तवर्ण दाने उभरते हैं।

करपाल (सं॰ पु॰) करं पालयति, कर-पाल-अण्। कर्मण्यण्। पा ३।२।१। खड्ग, तलवार। इसमें एक ही ओर धार रहती है।

करपालिका (सं॰ स्त्री॰) करं पालयति, कर-पाल-ण्वुल्-टाप्। ण्वुल् तृचौ। पा ३।१।१३३। १ क्षुद्र हस्त-यष्टि, हाथकी छोटी छड़ी। २ छुरा। ३ मुदगर।

करपाली (सं॰ स्त्री॰) करं पालयति, कर पाल-णिनि-ङीप्। नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः। पा ३।१।१३४। १ क्षुद्रहस्तयष्टि, हाथकी छोटी छड़ी। २ छुरा। ३ मुदगर।

करपीड़न (सं॰ क्ली॰) करस्य वधूकरस्य पीड़नं वरेण यत्र, बहुव्री॰। विवाह, पाणिग्रहण।

करपुट (सं॰ पु॰) करयोः पुटः, ६-तत्। बद्धाञ्जलि, अंजुरी।

करपृष्ठ (सं॰ क्ली॰) हस्तका पश्चाद् भाग, हाथका पिछला हिस्सा।

करप्रचेय (सं॰ त्रि॰) १ हस्तद्वारा ग्रहण किया जानेवाला, जो हाथसे पकड़ा जाता हो। २ करद्वारा इकट्ठा किया जानेवाला, जो टिकससे लिया जाता हो।

करप्रद (सं॰ त्रि॰) करं प्रददाति, कर-प्र-दा-क॥ आतश्चोपसर्गे। पा ३।१।१३६। १ करदाता, महसूल या टिकस देनेवाला। २ हस्तप्रदान करनेवाला, जो हाथ लगाता हो।

करप्राप्त (सं॰ त्रि॰) हस्तगत, पाया हुवा, जो हाथमें आ गया हो।

करफु (बौद्धशब्द) कोयी विशेष जल संख्या, बहुत बड़ी अदद।

करफूस (हिं॰ पु॰) दौर्गा।

करबच (हिं॰ स्त्री॰) गौन, खुरजी। यह एक प्रकारकी दोहरी थैली रहती और बैलपर लदती है।

करबड़ावली (सं॰ स्त्री॰) अत्यम्लपर्णी, अम्लोपूरन।

करबला (अ॰ स्त्री॰) १ अरब देशकी एक समतल भूमि। यह अत्यन्त निर्जन स्थान है। मुसलमानोंके हुसेनका यहीं वध हुवा था। २ ताज़िये गाड़नेकी जगह। करबलेका मेला मुहर्रमके १०वें दिन होता है। ३ निर्जल स्थान, पानी न मिलनेकी जगह।

करबस (हिं॰ पु॰) कशाभेद, किसी किस्मका चाबुक। यह दरयायी घोड़ेके चर्मसे अफ़रीकाके सिनार नगरमें बनता है। मिस्र देशमें इसका व्यवहार अधिक है।

करवाल (सं॰ पु॰) करस्य बालः सुत इव। १ नख, नाखून। करं आश्रित्य वलते हिनस्ति, वल-अण्। २ खड्ग, तलवार। इसका संस्कृत पर्याय असि, खड्ग, तीक्ष्णवर्म, दुरासद, विशसन, श्रीगर्भ, विजय, धर्मपाल वा धर्ममाल, निस्त्रिंश, चन्द्रहास, कौक्षेयक, मण्डलाग्र, करपाल, तरवार और रिष्टि है। गठनके आकारानु-सार इसके दूसरे भी कयी नाम मिलते हैं।

अति पूर्वकाल अर्थात् वैदिक समयसे भारतवर्षीय वीर करवाल व्यवहार करते आये हैं। वैशम्पायनोक्त धनुर्वेद, वीरचिन्तामणि, लौहार्णव, युक्तिकल्पतरु, बृहत्संहिता प्रभृति प्राचीन संस्कृत ग्रन्थमें करवाल वा खड्गका विवरण यथेष्ट मिलता है।

वीरचिन्तामणिके मतसे खड्ग निर्माण करनेको दो प्रकारका लौह उपयुक्त है—निरङ्ग और साङ्ग। फिर शार्ङ्गधरपद्धति ग्रन्थमें प्रधान साङ्गलौह दश प्रकारका कहा है। यथा—१ रोहिणी, २ मयूरग्रीवक, ३ मयूरवज्र, ४ सुवर्णवज्र, ५ मौक्तिकवज्र, ६ स्वर्णक, ७ ग्रन्थिवज्र, ८ शैवालमालाभ, ९ नीलपिच्छ और १० तित्तिराङ्ग।

१ रोहिणी छोटे आहड़ जैसी, अत्यन्त कठिन और अल्प नीलवर्ण लौह है। इससे क्षत आनेपर बड़ी वेदना बढ़ती है।

२ जो लौह मयूरके कण्ठकी भांति वर्णविशिष्ट देखाता, वही मयूरकण्ठ कहाता है।

३ नागकेशरके पुष्पकी आभा रखनेवाला लौह मयूरवक्षक है।

४ सुवर्णवज्रमें स्वर्णके चिह्न होते हैं। यह अधिक मूल्यवान् है।

५ नीपल वज्रके दोनों पार्श्व आभायुक्त रहते हैं। मध्यमें स्वर्णरेखा पड़ जाती है। फिर आघात लगाने पर संघात स्थान धूम्रवर्ण निकल आता है।

६ स्वर्णकको तोड़नेसे उपरी भागमें पद्मके डण्ठल-की भांति सूक्ष्म छिद्र देख पड़ता है। इसका अपर नाम कङ्कोलवज्रक है।

७ ग्रन्थिवज्रके सर्वाङ्गमें गांठ रहती है। यह लौह मूल्यवान् और दुर्लभ है।

८ जिसके अङ्गमें अविच्छिन्न सूत्र रहता और दूर्वाकी भांति वर्ण देख पड़ता, उसको विद्वान् शैवालमालाम कहता है।

९ नीलवरीसे आभामें मिलता जुलता लौह नील-पिण्ड कहाता है।

१० तित्तिराङ्कका वर्ण तित्तिर पक्षीसे मिलता है। यह महामूल्य और दुर्लभ लौह है। इससे उत्कृष्ट अस्त्र बनता है।

लौहार्णवके मतसे निरङ्ग लौह तीन प्रकारका होता है—रोहिणी, पाण्डुर और कृष्ण। कृष्णको आजकल कान्तलौह (फ़ौलाद) कहते हैं।

प्राचीन ग्रन्थमें १५ प्रकार लक्षणाक्रान्त करवालका उल्लेख मिलता है। यथा—१ कालखड्ग, २ नकुलाङ्ग, ३ मुद्रवक्ष, ४ महाखड्ग, ५ केतकीवक्ष, ६ कुटीरक, ७ कज्जलगात्र, ८ कालगिरि, ९ धवलगिरि, १० कान्ति-लौह, ११ दमनवक्त्र, १२ वामनाच, १३ महिष, १४ अङ्गपत्र और १५ गजवक्ष।

१ काली ज़मीनवाली तलवारका नाम कालखड्ग है। यह स्वर्णकी भांति चमकता और अल्प वज्रचिह्न-युक्त रहता है। कालखड्गको डाकुनीवज्र भी कहते हैं।

२ नकुलाङ्गपर ऊर्ध्वगामी कपिलकी आभा देख पड़ती है। इसके स्पर्शसे सर्पादि भी मर जाते हैं।

३ अपने शरीरमें मालाकार छोटी छोटी कुण्डली रखनेवाला करवाल मुद्रवक्ष है।

४ महाखड्गका अन्तर्भाग अति कठिन होता है। भूमिपर कोयी चिह्न देख नहीं पड़ता। किन्तु मध्य एवं पार्श्व स्थल अत्यन्त तीक्ष्ण पड़ता है।

५ केतकीवज्रकी भूमिपर केतकीपत्रकी भांति चिह्न रहते हैं।

६ कुटीरकका अङ्ग सूक्ष्म रजतपत्राकार अथच कृष्णवर्ण होता है। इसके द्वारा क्षत लगने पर शोथ उपजता है।

७ कज्जलगात्रकी धार सादी रहती है। मध्यभाग कज्जलकी भांति होता है। फिर सर्वाङ्गमें कृष्णवर्ण चिह्न देख पड़ते हैं।

८ कालगिरिके अङ्गमें स्वर्णविन्दु और श्याम चिह्न रहते हैं।

९ धवलगिरि पाण्डुर लौहसे बनता है। भूमि तथा अङ्गकी आभा रौप्यकी भांति साफ़ चमका करती है।

१० कान्तिलौह-निर्मित, अङ्गमें रौप्यचिह्नयुक्त और अल्प नीलवर्ण करवालका नाम निरङ्ग वा कान्तिलौह है। यह दुर्लभ और अति मूल्यवान् होता है।

११ जिस तीक्ष्णधार असिके अङ्गमें दौनेके पत्र जैसा चिह्न रहता, उसे विद्वान् दमनवक्त्र कहता है।

१२ वामनाच अति कठिन और चिह्नरहित होता है।

१३ महिषमें नील मेघकी भांति आभा और एरण्ड वीजकी भांति रेखा रहती है।

१४ अङ्गपत्रको रगड़नेसे दर्पणकी भांति प्रतिविम्ब देख पड़ता है।

१५ गजवक्षका अङ्ग अति मसृण, घन और स्थूल रेखाविशिष्ट होता है। धार अति तीक्ष्ण आती है। यह रक्त छूते ही शरीरमें घुस जाता है। इस असिका धौत जल पीनेसे आधिव्याधि दूर होता है।

देशभेदसे करवालका गुणागुण स्वतन्त्र होता है। प्राचीन धनुर्वेदके मतसे खटी, खट्टेर, ऋषिक, वङ्ग, शूर्पारक, विदेह, अङ्ग, मध्यमग्राम, चेदी, सहग्राम, चीन और कालञ्जरसे जो लौह निकलता, वही खड्गके निर्माणार्थ प्रशस्त पड़ता है।

खटी और खट्टेर देशजात करवाल अत्यन्त सुदृश्य आता है। स्फटिक देशका खड्ग गुरुभार रहता और अल्पायाससे ही शरीर छेदन करता है। वङ्गदेशका करवाल अति तीक्ष्ण होता है। इससे छेद भेद करनेमें देर नहीं लगती। शूर्पारक देशीय खड्ग अतिशय कठिन लगता है। विदेहका करवाल अत्यन्त तेजस्वी और प्रभावशाली है। मध्यमग्रामका खड्ग लघु और अति तीक्ष्ण रहता है। चेदिदेशका करवाल हलका और तीक्ष्ण लगता, किन्तु सारहीन ठहरता है। सहग्रामका खड्ग अति तीक्ष्ण और बहुत हलका होता है। चीनदेशीय करवाल तीक्ष्ण और अधिक निर्मल निकलता है। कालञ्जरके निकट जो खड्ग बनता, वह दीर्घकाल स्थायी, तीक्ष्ण और सुलक्षणयुक्त रहता है।

करवालको अष्टाङ्ग भी कहते हैं। कारण इसकी परीक्षा ८ प्रकार करना पड़ती है—१ अङ्ग, २ रूप, ३ जाति, ४ नेत्र, ५ अरिष्ट, ६ भूमि, ७ ध्वनि और ८ परिमाण।

१ प्रस्तुत होनेपर खड्गके शरीरमें जो नाना प्रकार चिह्न रहते, उन्हींको अङ्ग कहते हैं। अङ्ग प्रायः १०० प्रकार हो सकते हैं।

२ करवालका रङ्ग ही रूप कहाता है। प्रधानतः रूप चार प्रकार होता है—नीलरूप, कृष्णरूप, पिङ्गल रूप और धूम्ररूप। सिवा इसके मिश्ररूप भी देखनेमें आता है।

३ खड्गकी जाति चारप्रकार है—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। फिर जातिसङ्कर भी हुवा करता है। सर्व विषयमें श्रेष्ठ गिना जानेवाला करवाल ब्राह्मण है। इसके द्वारा अल्प क्षत आते भी सर्वाङ्ग दुखता और शोथ उठता है। मूर्छा, पिपासा, दाह और ज्वरका वेग बढ़नेसे शीघ्र प्राण निकल जाता है। हर, आंवला और बहेड़ा—तीनों द्रव्य कूट पीस एक दिन लगा कर रखते भी यह मलिन नहीं पड़ता, वरं अधिक परिष्कार निकलता है। हिमालय और कुशद्वीपमें कभी कभी ब्राह्मण करवाल मिल जाता है।

घनवर्ण, तीक्ष्णधार, कठिनध्वनियुक्त और आघातसह खड्गको क्षत्रिय कहते हैं। यह संस्कार न करते भी बहु दिन परिष्कार रहता और शाण यन्त्रपर चढ़ते बहु अग्निकणा निकाला करता है। इसका क्षत होनेसे तृष्णा, दाह, मलमूत्ररोध, ज्वर, तथा मूर्छा रोग बढ़ता और किसी समय मृत्यु पर्यन्त आ पड़ता है।

वैश्य जातीय करवाल नील तथा कृष्णवर्ण होता है। संस्कार करनेसे यह अति उज्ज्वल निकलता है। किन्तु इसमें तीक्ष्णता शाण पर चढ़ानेसे ही आती है।

जो खड्ग देखनेमें मेघवर्ण लगता, मोटी धार रखता, मृदुध्वनि करता और शाणपर चढ़ते भी तीक्ष्ण नहीं पड़ता, उसे विद्वान् शूद्र कहता है।

बहु जातिके लक्षण रखनेवाला करवाल जातिसङ्कर कहाता है।

४ भिन्न भिन्न चिह्नका नाम नेत्र है। खड्गवेत्तावोंके मतमें नेत्रचिह्न तीससे अधिक नहीं होते। यथा—चक्र, पद्म, गदा, शङ्ख, डमरु, धनुः, अङ्कुश, छत्र, पताका, वीणा, मत्स्य, शिव, ध्वज, अर्धचन्द्र, कलस, शूल, व्याघ्रनेत्र, सिंह, सिंहासन, गज, हंस, मयूर, पुत्तलिका, जिह्वा, दण्ड, खड्ग, चामर, शिखा, पुष्पमाला और सर्पाकार चिह्न।

५ करवालके अमङ्गलजनक चिह्नका ही नाम अरिष्ट है। यह ३० प्रकार होता है। यथा—छिद्र, रेखा, भिन्न, काकपद, भेकशिर, बिडालचक्षु, इन्दुर, शर्करा, नीला, मशक, भ्रमरपद, सूची, बिन्दु, कपोतक, निम्नतिबिन्दु, खर्पर, शकल, शूकर, कुशपत्र, जाल, कराल, काकपत्र, खर्जुर, शृङ्ग, गोपुच्छ, खञ्जा, लाङ्गल और बड़िश। अरिष्ट लक्षणाक्रान्त खड्ग धारण करनेवालेपर नाना विपद् पड़ती है।

६ खड्गकी भूमि दो प्रकारके अर्थोंमें व्यवहृत होती है—प्रथम देह वा काया और द्वितीय जन्मस्थान। करवालकी भलायी बुरायी देखनेको जन्मस्थानका विषय समझ लेना चाहिये। इसका जन्मस्थान (भूमि) द्विविध रहता है—दिव्य और भौम। स्वर्गमें जो लौह उपजता, उसका नाम दिव्य पड़ता है। फिर भारतवर्षमें उत्पन्न होनेवाला लौह भौम है।

युक्तिकल्पतरु नामक संस्कृत ग्रन्थमें लिखा—पुराकालको प्रथमतः देवासुर-युद्धमें खड्ग निकला था। तदनुरूप करवाल किसी किसी स्थानमें रखे हैं। उनमें स्थूलधार, अति लघु, निर्मल, सुन्दरनील, अरिष्टहीन, दुर्भेद्य, उत्तम ध्वनियुक्त, संस्कार न करते भी निर्मल रहनेवाले और टूटनेसे दो बारा न जुड़नेवाले दिव्य हैं। दिव्य खड्गका आघात आनेसे दाह और अन्नपाक उत्पन्न होता है। सम्भवतः उल्काके लोहसे बने करवालको भी दिव्य कह सकते हैं।

भौम खड्गका लक्षण देखनेको प्रथम लौहतत्त्व समझ लेना उचित है। लौह देखो। यह दो प्रकारका होता है—अमृत और विषजन्मा। एक प्राचीन किंवदन्तीके अनुसार पूर्वकालको देवादिदेवने विषपान किया था। वह पीत विष क्रमशः विन्दु विन्दु नाना देशोंमें गिर पड़ा। उन्हीं विषविन्दुसे कालायस (ईस-पात) बन विषजन्मा कहाया है। देवगणने समुद्र-मन्थनोत्थित अमृत पान किया था। उस पीत अमृतका विन्दु जहां गिरा, वहीं शुद्ध लौह बना। शुद्ध-लौहको ही अमृतजन्मा कहते हैं। शुद्ध लौह वाराणसी, मगध, सिंहल, नेपाल, अङ्गदेश, सुराष्ट्र प्रभृति स्थानमें उत्पन्न होता है। पौड़, कलिङ्ग, भद्र, पाण्डर, अयस्कान्त और वज्र प्रभृति विविध शुद्ध लौह मिलता है। इस लौहका खड्ग ही उत्कृष्ट बनता है।

७ ध्वनि अर्थात् शब्द सुनकर करवालको भलायी-बुरायी पहचानी जाती है। ध्वनि प्रथमतः दो प्रकार होता है—घोर और भार। हंस, कांस्य, ढक्का और मेघका ध्वनि घोर कहाता है। घोर-ध्वनियुक्त खड्गको उत्तम समझते हैं। काक, वीणा, खर और प्रस्तरोत्थित ध्वनि भार होता है। भारध्वनियुक्त करवाल बुरा ठहरता है।

८ खड्गका मान उत्तम और अधम भेदसे विविध है। विशाल एवं अल्पभारको उत्तम और क्षुद्र तथा भारवान्को अधम कहते हैं। फिर इसमें उत्तम, मध्यम और अधम तीन भेद पड़ते हैं। नागार्जुनकी भांति जितने मुष्टि दीर्घ उतनी ही अङ्गुलिके चतुर्थ भाग विस्तृत और पलपरिमित करवाल उत्तम होता है। मध्यम खड्ग जितनी मुष्टि दीर्घ रहता, विस्तृतिमें उसकी अर्ध अङ्गुलिके तीन भागमें एक भाग और परिमाणमें अर्ध पल पड़ता है। अधम करवाल जितने मुष्टि दीर्घ, उतनी ही अङ्गुलिके चार भागमें एक भाग विस्तृत और उससे अर्ध वा अधिक पल परिमित होता है।

पूर्वकालको राजा बड़े यत्नसे असिचालना सीखते थे। वैशम्पायनोक्त धनुर्वेदमें ३२ प्रकारकी असि-चालन-क्रियाका नाम मिलता है। यथा—भ्रान्त, उद्भ्रान्त, आविद्ध, आप्लुत, विप्लुत, सृत, संपात, समुदीर्ण, निग्रह, प्रग्रह, पदावकर्षण, सन्धान, मस्तक-भ्रामण, भुजभ्रामण, पाश, पाद, विबन्ध, भूमि, उद्भ्रमण, गति, प्रत्यागति, आक्षेप, पातन, उत्थानक, प्लुति, लघुता, सौष्ठव, शोभा, स्थैर्य, दृढ़मुष्टिता, तिर्यक्-प्रचार और ऊर्ध्वप्रचार।

करवालिका (सं॰ स्त्री॰) एक धारास्त्रविशेष, एक छोटी तलवार।

करवी (हिं॰ स्त्री॰) पशुखाद्यविशेष, कटिया, चरी, चौपायोंका एक खाना। ज्वार या मकयीके हरे भरे पेड़ 'करबी' कहाते हैं। यह गडांसेसे पहुंटे पर बारीक काट कूट गाय-भैंस प्रभृति पशुको खिलायी जाती है।

करवीला (हिं॰ वि॰) चरीवाला, जो करवीसे भरा हो।

करवुर (हिं॰) कर्बुर देखो।

करवूस (हिं॰ पु॰) चर्म वा सूत्ररज्जु, एक रस्सी या तसमा। यह अश्वके पर्याण (जीन)में अस्त्रशस्त्र रखनेको टांक दिया जाता है।

करभ (सं॰ पु॰) १ मणिबन्धसे कनिष्ठ अङ्गुलि पर्यन्त हस्तका बहिर्भाग, कफ़दस्त, कलायीसे उंगलियोंकी जड़तक हाथका हिस्सा। २ करिशुण्ड, हाथीकी सूंड। ३ गजशिशु, हाथीका बच्चा। ४ उष्ट्र, ऊंट। ५ उष्ट्रशावक, ऊंट या किसी दूसरे जानवरका बच्चा। ६ नखी नामक गन्धद्रव्य, एक खुशबूदार चीज़। ७ सूर्यावर्त। ८ एक दोहा। इसमें १६ गुरु और १६ लघु लगते हैं।

करभक (सं॰ पु॰) अनुकम्पितः करभः करभकः,

करभ-कन्। अनुकम्पायाम्। पा ५।३।७६। १ प्रियतम हस्तिशावक वा उष्ट्रशावक। २ करभ। करभ देखो।

करभकाण्डिका (सं॰ स्त्री॰) करभस्य प्रियं काण्डं यस्याः, बहुव्री॰। करभकाण्ड-कप्-टाप् इत्वम्। उष्ट्रकाण्डी, ऊंटकटारेका पेड़।

करभञ्जक (सं॰ त्रि॰) करं भनक्ति, कर-भनज-ण्वुल्। ण्वुल् वचौ। पा ३।१।१३३। १ करभङ्गकारी, हाथ तोड़नेवाला। (पु॰) २ प्राचीन जनपदविशेष, एक पुरानी बसती। (महाभा॰ भीष्म ८।६८)

करभञ्जिका (सं॰ स्त्री॰) करभञ्ज-टाप् इत्वम्। १ करभङ्गकारिणी, हाथ तोड़नेवाली। २ महाकरञ्ज, बड़ा करौंदा। ३ लताकरञ्ज, बेलका करौंदा।

करभञ्जन (सं॰ त्रि॰) करं भनक्ति, भनज-ल्युट्। करभङ्गकारी, हाथ तोड़नेवाला।

करभण्डिका, करभञ्जिका देखो।

करभप्रिय (सं॰ पु॰) क्षुद्र पीलुवृक्ष, छोटे पीलूका पेड़।

करभप्रिया (सं॰ स्त्री॰) करभस्य उष्ट्रस्य करिशावकस्य वा प्रिया, ६-तत्। १ क्षुद्र दुरालभा, छोटा जवासा। २ दुरालभा, जवासा। ३ उष्ट्र वा करिशावकादिकी स्त्री, छोटी हथिनी या ऊंटनी।

करभवल्लभ (सं॰ पु॰) करभस्य वल्लभः, ६-तत्। १ उष्ट्रप्रिय पीलुवृक्ष, छोटा पोलू। २ कपित्थ वृक्ष, कैथा।

करभवारुणी (सं॰ स्त्री॰) उष्ट्रकण्टकगुल्मोत्थित वारुणी, ऊंटकटारेकी शराब।

करभादनिका, करभादनी देखो।

करभादनी (सं॰ स्त्री॰) करभेन उष्ट्रेन अद्यते, करभ-अद कर्मणि ल्युट्-ङीष्। क्षुद्र दुरालभा, छोटा जवासा।

करभी (सं॰ पु॰) करभः हस्तस्य अवयवभेदस्तद्वत् आकारो ऽस्ति शुण्डे यस्य अथवा करो हस्त इव भाति, कर-भ-ड; करभः शुण्डस्तदस्ति यस्य, बहुव्री॰। १ हस्ती, हाथी। (स्त्री॰) करभस्य स्त्री, करभ-ङीष्। जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्। पा ४।१।६३। २ स्त्रीकरभ, हथिनी या ऊंटनी। ३ क्षुद्रमेषशृङ्गी, छोटी मेढ़ासींगी। ४ श्वेतापराजिता, एक बूटी।

करभीय (सं॰ त्रि॰) करभ-ढञ्। हस्ती वा उष्ट्रसम्बन्धीय, हाथी या ऊंटके मुताल्लिक।

करभीर (सं॰ पु॰) करभिनं करिणं ईरयति प्रेरयति मृत्युमुखम्, करभ-ईर-अण्। सिंह, शेर।

करभू (सं॰ स्त्री॰) करात् भवति, कर भू-क्विप्। नख, नाखून।

करभूषण (सं॰ क्ली॰) करो भूष्यते अनेन, कर-भूष-ल्युट्। १ कङ्कण, चूड़ी। २ हस्तालङ्कार मात्र, हाथका कोयी गहना।

करभोरु (सं॰ स्त्री॰) करभ-वत् ऊरुर्यस्याः ऊङ्। प्रशस्त ऊरुविशिष्टा स्त्री, चौड़ी जांघवाली औरत।

करम (हिं॰ पु॰) १ कर्म, काम। २ भाग्य, क़िस्मत। ३ वृक्षविशेष, एक पेड़। यह अत्यन्त उच्च वृक्ष है। करम शीतल भूमिमें उत्पन्न होता है। इसकी त्वक् श्वेतवर्ण एवं असम निकलती और साथ कुछ मोटी पड़ती है। काष्ठ पीतवर्ण तथा सुदृढ़ रहता है। करम मकान् मेज़ और अलमारी बनानेमें लगता है। (अ॰ पु॰) ४ कृपा, मेहरबानी। ५ निर्यासविशेष, एक गोंद। यह अरब और अफ़रीकामें होता है।

करमई (हिं॰ स्त्री॰) वृक्षविशेष, एक पेड़। यह कचनारसे मिलती और दाक्षिणात्यमें उपजती है। बङ्गाल, आसाम और ब्रह्मदेशमें भी करमयी होती है। इसके कटु पत्र चबाने और शाक बनानेमें काम आते हैं।

करमकल्ला (हिं॰ पु॰) गांठ गोभी, पत्तोंका एक फूल। इसमें अनेक पत्र एकत्र हो पुष्पाकार बन जाते हैं। यह शाकमें व्यवहृत होता है। शीतकालको गोभी उठ जानेपर करमकल्ला आता है। चैत्र मास इसके पत्र फूट पड़ते हैं। बीचके डण्ठलमें सर्षपकी भांति बीज और पत्र निकलते हैं। इसकी फलीमें छोटे छोटे बीज रहते हैं। पहले इसको तरकारी उच्च वर्णके लोग खाते न थे। किन्तु अब लोग बहुत कम परहेज़ करते हैं।

करमङ्गल—बारह-महलके मध्यका एक प्राचीन ग्राम। आजकल यहां जङ्गल हो गया है। किन्तु इससे थोड़ी दूर पर्वतपर देवमन्दिर और राजगृहादि बने हैं। करमङ्गल राजकोटसे २१ कोस दक्षिणपूर्व अवस्थित है।

करमचन्द (हिं० पु०) कर्म, काम, भाग्य, किस्मत।

करमट्ट (सं० पु०) करं हस्तिशुण्डं अट्टति अति-क्रामयति, कर-अट्ट-ख-मुम्। १ गुवाकवृक्ष, सुपारीका पेड़।

करमंट्ठा (हिं० वि०) कृपण, कञ्जूस।

करमठ (हिं०) कर्मठ देखो।

करमण्डल—भारतवर्षके दक्षिण पूर्वका उपकूल। इस नामकी उत्पत्तिपर कुछ गड़बड़ चलता है। किसी किसीके कथनानुसार पुलिकटके निकटस्थ प्राचीन 'करुमणल' ग्रामसे यह नाम निकला है। पूर्वको करमण्डलमें पोर्तगीजोंका जहाज़ लगता और पद्ग्तियोंका वास रहता था। फिर कोई कहता—तामिल 'चोरमण्डल'को अंगरेजोंने बिगाड़ 'करमण्डल' नाम बनाया है। शेषोक्त मत युक्तिसङ्गत है। तामिल 'चोरमण्डल'को संस्कृतमें चोलमण्डल कहते हैं। प्राचीन चोल राजावोंके समयसे यह नाम निकला है। चोल देखो। प्राचीन पाश्चात्य भौगोलिक टलेमिने इस स्थानका नाम सोरेते (Soretai) लिखा है। (Ptolemy, Geog. Bk. VII. ch. I.)

करमध्य (सं० क्लो०) कर्ष, २ तोलेका वजन।

करमरिया (हिं० स्त्री०) शान्ति, शमन, चैन। समुद्रमें वायु मन्द पड़नेसे तरङ्गका वेग घटना करमरिया कहाता है। यह शब्द पोर्तगीज भाषासे लिया गया है।

करमरी (सं० पु०) किरति विक्षिपति दण्डादीन् अत्र, क्ल अधिकरणे अप्, करः कारागारः तत्र मरः मृत्युवत् क्लेशो यस्य, बाहुलकात् इनि अथवा करे स्त्रियते, कर-मृ-इनि। बन्दी, कैदी।

करमर्द (सं० पु०) करं मृद्नाति, कर-मृद-अण्। करमर्दक वृक्ष, करौंदेका पेड़। भावप्रकाशने इसके अपक्क फलको अम्ल, गुरु, तृष्णानाशक, उष्ण एवं रुचिकर और पित्त, रक्त तथा कफ-वृद्धिकारक कहा है। पक्क करमर्द मधुर, रुचिजनक एवं लघु और पित्त तथा वायुनाशक है। करञ्ज देखो।

करमर्दक (सं० पु०) करं मृद्नाति, कर-मृद-ण्वुल् वा करमर्द एव, स्वार्थे कन्। १ करमर्द, करौंदा। २ लताविशेष, एक बेल।

करमर्दिका (सं० स्त्री०) करमर्दक देखो।

करमर्दा—एक नदी या दरया। यह नदी नर्मदासे मिल गयी है। इसका सङ्गमस्थान पुण्यतीर्थ माना जाता है। उक्त स्थानपर करमर्देश्वर शिवलिङ्ग प्रतिष्ठित है। स्कन्दपुराणीय रेवाखण्डके मतानुसार करमर्दा सङ्गममें नहा करमर्देश्वरका दर्शन करनेसे पुनर्जन्म नहीं होता।

करमर्दिका (सं० स्त्री०) करौंदी। यह पर्वतज द्राक्षाके सदृश होती है। (भावप्रकाश)

करमर्दी (सं० पु०-स्त्री०) करं मृद्नाति, मृद-णिनि। १ करमर्दवृक्ष, करौंदा। २ करञ्जवृक्ष, करील।

करमयोषि—द्वारभङ्गके अन्तर्गत ग्रामविशेष, दरभङ्गाका एक गांव। द्वारभङ्गराजाके मन्त्री करमयोषिने इसे बसाया था। (भवि० ब्रह्मखण्ड ४४।१६०-६१)

करमसेंक (हिं० पु०) १ पञ्चायती हुक्का। २ अल्प घृतमें सेंका हुवा पराठा। यह बड़ी मुश्किलसे खानेमें आता है।

करमा (हिं०) कर्मा देखो।

करमा बाई—एक असाधारण भक्तिमती ब्राह्मणकन्या। दाक्षिणात्य प्रदेशके खाजल ग्राममें इनका जन्म हुवा था। पिताका नाम परशुराम पण्डित रहा। वह स्थानीय राजाके पुरोहित थे। राजा और राजपुरोहित—दोनों परमवैष्णव रहे। उस समय धर्मशास्त्रका मूल उद्देश्य समझनेको स्त्रियां भी विद्या पढ़ती थीं। करमा बायी शैशवकाल हो विद्यावती बन गयीं। विद्याशिक्षाके साथ-साथ इन्हें वैष्णवधर्मपर भी अधिकतर भक्ति बढ़ी। पण्डित परशुरामने यथाकाल करमा बाईको सत्पात्रके हाथ सौंपा था। सम्पूर्ण अनिच्छा रहते भी पिताके अनुरोधसे इन्होंने विवाह कर लिया। किन्तु स्वामीको अवैष्णव एवं विषयी देख यह सहवास वा गृहस्थाली करनेसे असम्मत हुयीं। इनके सकल कार्योंसे साधारणको विस्मय आ जाता। फिर करमा बाई सर्वदा निर्जन स्थानमें बैठ इष्टदेवके पादपद्मको चिन्ता करती, पागलकी भांति कभी हंसती, कभी रो उठती और कभी 'हा नाथ!' पुकारकर चिल्लाने लगती थीं। कुछ काल पीछे पुनर्वार इन्हें स्वामीके गृह पहुं-

चानेको विशेष यत्न हुवा। कृष्णके प्रेमरसका आस्वाद पानेसे करमा बाईको संसार विषवत् घृण्य लगता था। सुतरां स्वामीके गृह जानेको अत्यन्त अनिष्टकर समझ यह सर्वदा रोते रहीं। अन्तको किसीसे कुछ न कह इन्होंने चुपके चुपके वृन्दावन जाना स्थिर किया। रात्रिकालको यह अपनी कोठरीसे बाहर निकलीं। घरके सकल द्वार बन्द थे। बाहर जानेको कोई राह न देख करमा बाई मनके आवेगमें अटारीसे नीचे कूद पड़ीं। किन्तु यह कभी घरसे बाहर निकलती न थीं। इन्हें क्या मालूम—कहां वृन्दावन और कहां पथ रहा। फिर भी इन्होंने कङ्गालकी तरह अकेले ऊर्ध्व श्वाससे वृन्दावनके उद्देश यात्रा आरम्भ की।

प्रभात होनेपर परशुराम पण्डित गृहमें कन्याको न देख अत्यन्त व्यस्त हुये और राजाके निकट पहुंच सकल कथा कहने लगे। राजाने उन्हें आश्वास दे चारो ओर करमा बाईको ढूंढ़नेके लिये आदमी भेजे थे। इन्होंने राहमें जाते जाते पीछे घूमकर देखा—मुझे ढूंढ़नेको लोग आते हैं। इससे यह अत्यन्त व्यतिव्यस्त हुयीं। चारो ओर खुला मैदान था। छिपनेको कहीं उपयुक्त स्थान न मिला। सम्मुख उष्ट्रका केवल एक मृतदेह पड़ा रहा। शृगालों और कुक्कुरोंने उसका मांसादि प्रायः खा डाला था। भीषण दुर्गन्ध उठता, निकट पहुंचना दुःसाध्य रहा। अन्तिमतो करमा उसी उष्ट्रदेहके उदरमें छिप गयीं। उद्देश्य भी सिद्ध हुवा। अन्वेषणकारी उसकी दूसरी दिक् चल दिये। अनाहार केवल कृष्णचिन्ता करते इन्होंने इस भयसे तीन दिन उसी उष्ट्रदेहमें काटे थे—फिर कोई कहीं आ न पहुंचे। तीन दिन पीछे वहांसे बाहर आ और नदीमें नहा करमा बाईने शरीरको निर्मल किया। इसीप्रकार पथमें बहु क्लेश उठा यह वृन्दावन पहुंची थीं। पवित्र वृन्दावनके दर्शनसे बहु दिनका अभिलाष पूर्ण हुवा और मन एवं प्राण आनन्दसे फूल उठा। फिर यह ब्रह्मकुण्डके तीर वनमें कृष्णदर्शन पानेको ध्यानयोगसे बैठ गयीं।

उधर परशुराम पण्डित कन्याके विरहसे अत्यन्त घबरा देशदेशान्तर घूमते घूमते वृन्दावन पहुंचे थे। उन्हें बहु वन और बहु स्थान ढूंढ़ते भी कन्याका कोई सन्धान न मिला। अन्तको वह एक दिन किसी विशाल वृक्षकी उच्च शाखापर चढ़ चारो ओर देखने लगे। देखते देखते उन्होंने हठात् ब्रह्मकुण्डके तीर निविड़ वनमें करमा बाईको बैठे पाया। वह घबराकर वृक्षसे उतरे और साथियोंको ले कन्याके निकट पहुंचे। किन्तु उन्होंने अपनी कन्या विभिन्न पायी थी। संसारकी मलिनता करमा बाईके देहमें न रही। समुदाय शरीरमें *तपःप्रभा* चमकती थी। मुखमण्डल एक आश्चर्य ज्योतिसे पवित्र रहा। फिर यह बाह्यज्ञान न रख ध्यानमें मग्न थीं। चक्षुद्वयसे प्रेमाश्रुकी धारा बहते रही। कन्याकी ऐसी अवस्था देख परशुरामका हृदय फटने लगा। फिर वह करमा बाईको कन्या समझ न सके। अन्तको अत्यन्त घबरा परशुरामने इन्हें साष्टाङ्ग *प्रणिपात किया।*

बहुक्षण पीछे इन्होंने चक्षु खोले थे। सम्मुख पिताको देख करमाबाईने नीरव प्रणाम किया। फिर यह नीरव ही बैठ रहीं, मानो पिताको कहीं देखा नहीं। पण्डित परशुरामने विनयपूर्वक इनसे लौटनेको कहा और घरमें बैठ कृष्णचिन्तामें लगनेको अनुरोध किया। किन्तु यह किसीप्रकार उसपर स्वीकृत न हुयीं। इन्होंने पिताको उक्त आशा छोड़ने पर अनुरोध किया और सर्वदा कृष्ण-कृष्ण रटनेको उपदेश दिया। कृष्णनाम लेनेको उपदेश देते समय यह प्रेमसे मूर्छित हुयीं एवं पुनर्वार अपने आप मानो चेत उठीं।

परशुराम पण्डित कन्याको ऐसी असाधारण भक्तिसे चौंक पड़े थे। वारंवार अनुरोध करते भी वह इन्हें वापस ला न सके। अन्ततः परशुराम रोते-पीटते घर लौट आये और राजाको जाकर सब हाल सुनाये। राजा भी विशेष *भगवत् प्रेमिक* रहे। वह करमा बाईको देखने वृन्दावन पहुंचे थे। वहां साक्षात्कार होनेपर राजाने इनकी अनिच्छा रहते भी एक कुटीर बनवा दिया। इस कुटीरका ध्वंसावशेष आज भी वृन्दावनमें विद्यमान है। किसी करमा

बाईका पुरीमें भी एक मन्दिर खड़ा है। इस मन्दिरमें जगन्नाथजीको खिचड़ीका भोग लगता है।

करमाल (हिं॰ पु॰) कर्म, नसीब। यह शब्द केवल पद्यमें पड़ता है।

करमाल (सं॰ पु॰) करिशुण्डः तदाकृतिवत् माला समूहो यस्य। १ धूम, धूवां। २ मेघ बादल।

करमाला (सं॰ स्त्री॰) करं कराङ्गुलि-पर्व माला इव जपसंख्या हेतुत्वात्। करपर्वरूप माला, उंगलियोंके पोरकी जपनी। अनामिकाके मध्यसे कनिष्ठादि क्रम पर तर्जनीके मूलपर्व पर्यन्त क्रमशः दश बार जप करनेको करमाला कहते हैं। इसमें मध्यमाका मूल और मध्य पर्व छूट जाता है।

"आरभ्यानामिकामध्यं दक्षिणावर्तयोगतः।
तर्जनीमूलपर्यन्तं करमाला प्रकीर्तिता॥" (तन्त्रसार)

करमाली (सं॰ पु॰) सूर्य, आफ़ताब।

करमी (हिं॰ वि॰) कर्मकारी, काम करनेवाला।

करमुंहा (हिं॰ वि॰) १ कृष्णवर्ण मुखविशिष्ट, काला वदन रखनेवाला। २ कलङ्कयुक्त, बदनाम।

करमुक्त (सं॰ क्ली॰) करेण गृहीत्वा अरातिं प्रति मुच्यते, कर-मुच्-क्त। निष्ठा। पा ३।२।१०२। १ अस्त्रभेद, बरछा। (त्रि॰) २ हस्तच्युत, हाथसे छूटा हुआ। ३ निष्कर, लाखिराज।

करमुखा, करमुंहा देखो।

करमूल (सं॰ क्ली॰) मणिबन्ध, कलायी।

करमूली (हिं॰ स्त्री॰) वृक्षविशेष, एक पेड़। यह एक पार्वत्य वृक्ष है। कूमायूं और गढ़वालमें इसे अधिक देखते हैं। काष्ठ कठोर तथा रक्ताभ धूसरवर्ण होता है, यह गृह एवं कृषियन्त्र निर्माणमें लगती है। करमूलीके छोटे छोटे पात्र भी बनते हैं।

करमैस (हिं॰ पु॰) काष्ठखण्ड विशेष, अमैर, कुलबांसी। यह करगहमें ऊपर बंधता है। करमैसको नचनियां पैरसे दबाने पर सूत चढ़ता उतरता है।

करमैती करमा बाई देखो।

करमोद (हिं॰ पु॰) धान्यविशेष, एक धान। यह मार्गशीर्ष मासमें कटता है।

करमोदा (सं॰ स्त्री॰) नदीविशेष, एक दरया।
(विष्णु, मार्क और ब्रह्माण्डपु॰)

करम्ब (सं॰ त्रि॰) क्रियते, कृ-अम्बच्। कृकदिकडिकटिभ्यो ऽम्बच्। उण् ४।८२। १ मिश्रित, मिलावटी। (क्ली॰) २ मिश्रण, मिलावट। (पु॰) ३ दधिमिश्रित खाद्य, दही मिला खाना।

करम्बक, करम्ब देखो।

करम्बित (सं॰ त्रि॰) करम्बमिश्रणं जातोऽस्य, करम्ब-इतच्। १ मिश्रित, मिला हुवा। २ खचित, जड़ा हुवा।
"मधुकरनिकर करम्बित कोकिलकूजित कुञ्जकुटीरे।" (गीतगोविन्द)

करम्बी (सं॰ स्त्री॰) कलम्बी शाक, एक सब्ज़ी।
कलम्बी देखो।

करम्भ (सं॰ पु॰) केन जलेन रभ्यते एकत्रीक्रियते धातूनामनेकार्थत्वात् क-रभ-घञ्। अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्। पा ३।३।१९। रभेरशब्लिटोः। पा ७।१।६३। १ दधिमिश्रित सक्तु, दहीदार सत्तू। २ दग्ध यवमाल, चबेना, बहुरी। ३ अविरल पिष्ट यव, दरा हुवा दाना। ४ मिश्रगन्ध, मिलावटी बू। ५ प्रियङ्गुफल। ६ शतमूली, सतावर। ७ शकुनिके पुत्र और देवरातके पिता। ८ रम्भके भ्राता। ९ त्वक्सार-निर्यासविष, एक ज़हर। १० पुष्पविशेष, एक फूल।

करम्भक (सं॰ क्ली॰) करम्भ स्वार्थे कन्। १ दधिमिश्रित सक्तु, दहीदार सत्तू। इसका अपर नाम कर्कसार है। "निर्वैरस्त्रिभिः प्रादात् द्विजन्मभ्यः करम्भकम्।" (राजत॰ ५।१८) २ श्वेतकिणिही, एक दरख़्त। ३ अविरल पिष्ट यव, दरा हुवा दाना।

करम्भा (सं॰ स्त्री॰) केन जलेन वायुना रभ्यते सिच्यते विकीर्यते वा,क-रभ-घञ्-टाप्। १ शतावरी। २ प्रियङ्गु वृक्ष। ३ इन्दीवरा। ४ कलिङ्ग देशीय स्वनामख्यात एक रमणी। पुरुवंशीय अक्रोधन नृपतिने इनसे विवाह किया था। करम्भाके ही गर्भमें देवातिथिका जन्म हुवा। (भारत, आदि ९५।२२)

करम्भाद (वै॰ त्रि॰) करम्भ भक्षण करनेवाले। यह पूषाका एक उपाधि है।

करम्भि (सं॰ पु॰) यदुवंशीय एक राजा। इनके पिताका नाम शकुनि और पुत्रका नाम देवरात था।

करर (हिं॰ पु॰) १ विषकृमिविशेष, कोई जहरीला कीड़ा। इसका शरीर ग्रन्थिविशिष्ट होता है। २ अश्वविशेष, किसी रंगका एक घोड़ा। ३ वृक्षविशेष, एक पेड़। इसे जङ्गली कुसुम कहते हैं। यह भारतके उत्तर-पश्चिम पंजाब प्रभृति देशमें अधिक उत्पन्न होता है। पीलीका तैल इसीके बीजसे निकलता है। अफ़रीदी अपना मोमजामा उक्त तैलसे प्रस्तुत करते हैं। कररमें पुष्प बहुत आते हैं। काष्ठ मृदु रहता है। शाखा एवं पत्र पशुका खाद्य है।

कररना, कर्राना देखो।

करराना (हिं॰ स्त्री॰) धनुःके आकर्षणका शब्द, कमान् चढ़ानेकी आवाज़।

करराना (हिं॰ स्त्री॰) १ मरराना, चरराना, टूट फूट जाना। २ कठोर शब्द कहना, कड़े पड़ना।

करारी (सं॰ स्त्री॰) करिदन्तमूल, हाथीके दांतकी जड़।

करारी (हिं॰ स्त्री॰) गन्धशटी, वनतुलसी।

कररुद्ध (सं॰ त्रि॰) करे कारागारे हस्तेन वा रुद्धः। १ कारागारमें आवद्ध, कैद खानेमें पड़ा हुवा। २ हस्त द्वारा आबद्ध, हाथसे रुका हुवा।

कररुह (सं॰ पु॰) करात् रोहति उत्पद्यते, कर-रुह-क। इगुपधा। पा ३।१।१३५। १ नख, नाखून। २ अङ्गुलि, उंगली। ३ कृपाण, तलवार। ४ नखी नामक गन्धद्रव्य, एक खुशबूदार चीज़। ५ अगर्वादि धूप।

कररेखा (सं॰ स्त्री॰) करस्थ रेखा, हाथकी लकीर। सामुद्रिकके मतानुसार यह शुभाशुभ फल देती है।

कररेचक रत्न (सं॰ क्ली॰) नृत्यमुद्राविशेष, नाचमें हाथका एक घुमाव। यह अत्यन्त कठिन होता है। इसमें दोनों कर कटिपर रख स्वस्तिकके सहारे मस्तक पर्यन्त पहुंचाते और मण्डलाकार बनाते हैं। पुनर्वार एक कर नितम्ब पर लाया और अपर कर चक्रकी भांति घुमाया जाता है। इसी प्रकार दोनों कर भूला करते हैं। इसके पीछे लपेट लगा और फैला दोनों कर स्कन्धके निकट घुमाना पड़ते हैं।

करर्द्धि (सं॰ स्त्री॰) करस्य ऋद्धिः। १ करसम्पत्, हाथकी दौलत। २ करताली, हथेलियोंकी आवाज़। ३ करताल, एक बाजा।

करल (सं॰ पु॰) कपित्थ वृक्ष, कैथेका पेड़।

करल (हिं॰ पु॰) कटाह, कड़ाह।

करला (हिं॰ पु॰) अङ्कुर, किल्ला।

करली (स्त्री॰) करला देखो।

करलुरा (हिं॰ पु॰) लताविशेष, एक बेल। यह काष्ठकाकोयें होता है। पुष्प श्वेत एवं पाटल निकलते हैं। भारतवर्षमें करलुरा सर्वत्र मिलता है। फरवरीसे मयी तक पुष्प आते और अगस्त सितम्बरको फल लग जाते हैं। पुष्पोंका अचार बनता है। शाखा-पत्र खानेमें हाथीको बहुत अच्छे लगते हैं।

करवंठ (हिं॰ स्त्री॰) लताविशेष, एक बेल। यह युक्त प्रदेश, बङ्गाल, दाक्षिणात्य और सिंहलमें होती है। पत्र ४।५ इञ्च दीर्घ और पुष्प पीतवर्ण लगते हैं। करवंठको कोमल शाखासे छाजन छाते या डोरी बनाते हैं।

करवट (हिं॰ स्त्री॰) १ करवत, दक्षिण वा वाम पार्श्व लेटनेकी स्थिति। (पु॰) २ करपत्र, करवत, आरा।

करवत (हिं॰ पु॰) करपत्र, आरा।

करवर (हिं॰ स्त्री॰) विपद्, आफ़त, औचट।

करवरना (हिं॰ क्रि॰) कलरव करना, चहकना।

करवल (हिं॰ स्त्री॰) कांस्यमिश्रित रौप्य, जस्तामिली चांदी। करवल रूपयमें दो आने कांस्य धातु रखती है।

करवा (हिं॰ पु॰) १ पात्रविशेष, एक लोटा-जैसा बरतन। यह मट्टीसे टोंटीदार बनाया जाता है। २ कोनिया, घोड़िया। यह लोहेसे बनती और जहाज़में लगती है। ३ मत्स्यविशेष, एक मछली। यह पञ्जाब, बङ्गाल और दक्षिणमें मिलती है।

करवा-गौर (हिं॰ स्त्री॰) कार्तिक कृष्णचतुर्थी, कातिक महीनेके अंधेरे पाखकी चौथ। भारतवर्षमें इस दिन सौभाग्यवती स्त्रियां गौरीका व्रत रहती हैं। सायंकाल मट्टीके करवेसे चन्द्रमाको अर्घ्य दिया जाता है। पक्वान्नयुक्त करवेका दान भी होता है।

करवाचौथ, करवागौर देखो।

करवाना (हिं॰ स्त्री॰) कराना, काममें लगाना।

करवार (सं॰ पु॰) करं वृणोति वारयति आक्रमणकारिभ्यो वा, कर-वृ-अण्। कर्मण्यण्। पा ३।२।१। कृपाण, तलवार।

करवार—कनाड़ा प्रान्तका एक नगर। यह अक्षा० १४° ५०′ उ० और देशा० ७४° ११′ पू०पर गोवासे २२ कोस दक्षिणपूर्व अवस्थित है। १६६३ ई०को विलायतकी ईष्ट इण्डिया कम्पनीने यहां अपनी कोठी बनायी थी। किन्तु टीपू सुलतान्के समय उसका विनाश हुवा। स्थानीय अधिवासी कोङ्कण भाषा बोलते हैं। फिर बहु दिन विजयपुर राज्यके अधीन रहनेसे महाराष्ट्र भाषा भी चलती है।

करवारक (सं० पु०) करं वारयति आच्छादयति, कर-वृ-ण्वुल्। १ स्कन्धदेव। २ हस्तावरणकारी, हाथको रोक लेनेवाला। ३ राजस्वबन्धकारी, खिराज न चुकानेवाला।

करवाल (हिं० पु०) १ तलवार, २ नख, नाखून।

करवालिका (सं० स्त्री०) करपालिका, छोटी गदा।

करविन्द स्वामी—आपस्तम्ब-श्रौतसूत्रके एक भाष्यकार।

करवी (सं० स्त्री०) कस्य वायोः रवो विद्यतेऽत्र, गौरादित्वात् ङीष। १ हिङ्गुपत्री, एक बूटी। २ कवरी, लट। ३ स्वनामख्यात प्रसिद्ध पुष्प, एक फूल। करवीर देखो।

करवीक (सं० क्ली०) करवी स्वार्थे कन्। करवी। करवी देखो।

करवीर (सं० पु०) करं वीरयति, वीर विक्रान्तौ अण्। १ कृपाण, तलवार। २ देशभेद, काराष्ट्रदेश। ३ राजपुरीविशेष, एक शहर। यह चेदिदेशके निकट अवस्थित है। गोमन्त पर्वतसे करवीर पैदल पहुंचनेमें तीन दिन लगते हैं। कंसका वध सुन जरासन्ध क्रुद्ध हुये और राम तथा कृष्णके विनाशकी कामनासे मथुरापुरी घेरे पड़े थे। किन्तु रामकृष्णने अपने पराक्रमसे उन्हें सम्पूर्णरूप पराजय किया। जरासन्ध फिर भागे थे। वृद्ध चेदीश्वरके अभिप्रायानुसार राम और कृष्णने चेदिसे अनतिदूरवर्ती करवीरपुरकी ओर यात्रा की। आगमनकी वार्ता सुन उक्त करवीरपति शृगाल रामकृष्णकी राह रोकनेको उपस्थित हुये, किन्तु घोरतर युद्धमें मारे गये। (हरिवंश ९९-१०१ अ०) महाभारतके समयसे यह एक तीर्थस्थान माना जाता है। स्कन्दपुराणके सह्याद्रिखण्डमें लिखा है—

> "योजनं दश हे पुत्र काराष्ट्रो देशदुर्धरः ॥ २४ :
> तन्मध्य पञ्चक्रोशञ्च काश्याद्यवाधिकं भुवि।
> क्षेत्रं वै करवीराख्यं क्षेत्रं लक्ष्मीविनिर्मितम् ॥ २५
> तत्क्षेत्रं हि महत् पुण्यं दर्शनात् पापनाशनम्।
> तत्क्षेत्रे ऋषयः सर्वे ब्राह्मणा वेदपारगाः ॥ २६
> तेषां दर्शनमात्रेण सर्वपापक्षयो भवेत्।
> तत्क्षेत्रं केवलं पीठं महालक्ष्म्याय तत्त्वतः ॥२७(उत्तरार्ध २म०)

हे पुत्र! दुर्दम काराष्ट्रदेश दशयोजन विस्तृत है। उसीके मध्य काशी प्रभृतिसे अधिक पुण्यस्थान लक्ष्मीविनिर्मित करवीर क्षेत्र है। इस क्षेत्रको देखनेसे महापुण्य मिलता और पाप मिटता है। यहां वेदपारग ब्राह्मण और ऋषि रहते हैं। उनके दर्शन मात्रसे सकल पाप भागता है। केवल इसी क्षेत्रको महालक्ष्मीका पीठ कहते हैं।

काराष्ट्रदेशका वर्तमान नाम कराढ़ है। इसी कराढ़में करवीर पड़ता है। कराढ़ देखो।

४ श्मशान, मरघट। ५ ब्रह्मावर्त। ६ दृषद्वती तीरकी चन्द्रशेखरनामक राजपुरी।

७ पुष्पवृक्षविशेष, एक पेड़। इसका संस्कृत पर्याय—प्रतिहास, शतप्रास, चण्डात, हयमारक, प्रतीहास, अश्वघ्न, हयारि, अश्वमारक, श्वेतकुम्भ, तुरङ्गारि, अश्वहा, वीर, हयमार, हयघ्न, शतकुन्द, अश्वरोधक, वीरक, कुन्द, शकुन्द, श्वेतपुष्पक, अश्वान्तक, नखराह्व, अश्वनाशन, स्थलकुमुद, दिव्यपुष्प, हरिप्रिय, गौरीपुष्प और सिन्धुपुष्प है। यह दो प्रकारका होता है—श्वेत और रक्त। श्वेतको श्वेतपुष्प, श्वेतकुम्भ एवं अश्वमार और रक्तकरवीरको रक्तपुष्प, चण्डात तथा लगुड़ कहते हैं। हिन्दी तथा दक्षिणी भाषामें कनेर, तामिलमें अलारि, तेलङ्गमें गेन्नेरु और अंगरेजीमें यह ओलीण्डर (Oleander) कहाता है। इसका वैज्ञानिक अंगरेजी नाम नेरियम ओडोरम (*Nerium odorum*) है। कनेर देखो।

उभयप्रकार करवीर भारतवर्षके नाना स्थानमें उत्पन्न होता है। किसी वृक्षमें केवल रक्त अथवा श्वेत और किसी किसीमें श्वेतरक्तमिश्रित पुष्प आते हैं। शेषोक्त करवीरको अनेक लोग पद्मकरवी कहते हैं। वैद्यकशास्त्रके मतसे उभयप्रकार करवीर तिक्त,

कषाय, कटु और उष्णवीर्य होता है। व्रण, चक्षुरोग, कुष्ठ, क्षत, क्रिमि और कण्डु प्रभृति रोगपर इसका मूल लगाया जाता है। करवीरका मूल विषाक्त है। (चक्रदत्त, भावप्रकाश, शार्ङ्गधर) हकीमी किताबोंमें इसका नाम खरजहरा लिखा है। यह प्रदाह और स्फोटक निवारक होता है। यह लगानेमें ही आता, खानेसे क्या आदमी क्या जानवर सबके लिये ज़हरका काम कर जाता है। मीर मुहम्मद हुसेन नामक मुसलमान हकीमने कहा,—कि कनेरका मूल अपर सकल स्थलमें विषमय पड़ते भी सर्पके काटनेपर विषनिवारक ठहरा है। कोड़ामकोड़ा मारनेको इसका मूल प्रयोगमें आता है।

स्त्रियां अनेक समय करवीरका मूल खा आत्महत्या करती हैं। इसीसे दक्षिणदेशमें स्त्रियोंके मध्य विवाद उपस्थित होनेपर कहा जाता है—कनेरके पास जावो। डाक्टर डाइमकके कथनानुसार करवीरके मूलमें तीव्र हृद्विष होता है। इसका ·०००१६ ग्रेन मात्र एक मेंड़कको खिलाया गया था। १४ मिनट पीछे ही उसकी हृद्गति रुक गयी। इसका मूल खानेसे दिलका चलना और पसीनेका निकलना बन्द हो जाता है।

करवीपुष्प हिन्दू देवताओंको अति प्रिय है। फिर इसका पत्र एवं वल्कल सुखा बांटकर लगानेसे सर्वप्रकार चर्मरोगको उपकार पहुंचाता है।

करवीरक (सं० क्ली०) करवीरवत् कायति प्रकाशते, कै-क वा करं वीरयति, वीर विक्रान्तौ ण्वुल्। १ अर्जुन वृक्ष। २ करवीर, कनेर। ३ खड्ग, तलवार। ४ करवीर मूलरूप विष, ज़हरीली कनेरकी जड़।

करवीरकन्दसंज्ञ (सं० पु०) करवीर कन्द इति संज्ञा यस्य। तैलकन्द।

करवीरका (सं० स्त्री०) मनःशिला।

करवीरणी (सं० स्त्री०) पुष्पवृक्ष विशेष, एक फूलदार पेड़। कोङ्कण देशमें इसे 'ककर-खिरनी' कहते हैं। यह ग्रीष्म ऋतुमें होती है। पुष्प रक्त लगते हैं। करवीरणी तिक्त, उष्ण एवं कटु रहती और कफ, वात, विष, आध्मानवात, छर्दि, ऊर्ध्व श्वास तथा क्रिमिको दूर करती है। (वैद्यकनिघण्टु)

करवीरतैल, करवीराद्यतैल देखो।

करवीरपुर (सं० क्ली०) करवीर देखो।

करवीरभुजा (सं० स्त्री०) करवीरभुजः शाखा इव भुजः शाखा यस्याः, बहुव्री०। आढ़की वृक्ष, अड़हरका पेड़।

करवीरभूषा (सं० स्त्री०) करवीरस्य भूषेव भूषा अस्याः। आढ़की, अड़हर।

करवीराक्ष (सं० पु०) खर राक्षसका सेनापति।

करवीराद्यतैल (सं० क्ली०) करवीरं आद्यं प्रधानं यत्र, बहुव्री०। तैल विशेष, कनेरका तेल। श्वेतकरवीरके मूलका रस, गोमूत्र, चित्रक और विड़ङ्ग डाल यथाविधि तैल पकानेसे यह औषध प्रस्तुत होता है। इसमें तिलतैल ४ शरावक, करवीरादिकल्क १ शरावक और जल १६ शरावक पड़ता है। करवीराद्य तैल कुष्ठरोग और भगन्दरको दूर करता है।

श्वेत करवीरका मूल और विष समभाग कूटपीस गोमूत्र एवं तैलमें यथाविधि पाक करनेसे श्वेत करवीराद्यतैल प्रस्तुत होता है। इसके लगानेसे चर्मदल, सिध्म, पामा, विस्फोट प्रभृति रोग मिटते हैं।

रक्त करवीर, जाती, पीतशाल एवं मल्लिकाका पुष्प समभाग और सबके बराबर तैल यथाविधि डालकर पकानेसे जो तैल बनता, वह नासारोगको दूर करता है।

करवीरालुजा (सं० स्त्री०) आढ़की, अड़हर।

करीवीरिका (सं० स्त्री०) मनःशिला।

करवीरी (सं० स्त्री०) किरति विक्षिपति दानवराक्षसादीन्, क्त-अच् करः वीरः पुत्रो अस्याः। १ अदिति। २ पुत्रवती, जिस औरतके बहादुर लड़का रहे। ३ श्रेष्ठगवी, अच्छी गाय।

करवीर्य (सं० पु०) करवीरपुरे भवः, करवीर-यत्। १ धन्वन्तरिके प्रति आयुर्वेद-प्रश्नकर्ता ऋषि विशेष, एक पुराने हकीम। २ बाहुबल, हाथका जोर।

करवील (हिं० पु०) करील, करीर, कचड़ा।

करवैया (हिं० वि०) कर्ता, करनेवाला।

करवोटी (हिं० स्त्री०) पक्षिविशेष, एक चिड़िया। इसे करवोटिया भी कहते हैं।

करशाखा (सं० स्त्री०) करस्य शाखा इव। १ अङ्गुली। इसका संस्कृत पर्याय अग्रुव, शाखा, क्षिप, विश, शर्या, रसना, धीति, अथर्य, विप, कक्ष्या, अवनि, हरित्, स्वसार, जामि, सनाभि, योक्त्र, योजन, धुर, शाखा, अभीशु, दीधिति और गभस्ति है। (वेदनिघण्टु, २ अ०)

करशीकर (सं० पु०) करात् करिशुण्डात् निःसृतः शीकरः करस्य शीकरो वा। १ हस्तिशुण्डनिक्षिप्त जलकणा, हाथीकी सूंडसे फेंका हुवा पानी। इसका अपर संस्कृत नाम वमथु है।

"उदालमपि शमयांबभूव गंजा विविशाः करशीकरेण।" (रघु)

२ वमन, कै, छांट।

करशुद्धि (सं० स्त्री०) करस्य शुद्धि, ६-तत्। हस्तशोधन, हाथ की सफाई। 'फट्' मन्त्र पढ़ गन्धपुष्प द्वारा हस्तशोधन करते हैं। "पादाद्यर्घ्यादिकन्यासः करशुद्धिकृतः परम्।" (तन्त्रसार) पूजादि कार्यमें ऋष्यादि न्यासके पीछे ही करशुद्धि आती है।

करशू (हिं० पु०) वृक्षविशेष, एक पेड़। यह विशाल वृक्ष सर्वदा हरिद्वर्ण बना रहता है। अफगानिस्तानसे भूटानतक करशू पाया जाता है। काष्ठ सुदृढ़ होता है। अङ्गार (कोयला) अति उत्तम निकलता है। पत्र पशुखाद्य है। चीनांशुकका कीट करशूपर प्रतिपालित होता है।

करशूक (सं० पु०) करस्य करे वा शूकः सूक्ष्माग्रः सूच्याग्र इव वा। नख, नाखून।

करशोथ (सं० पु०) हस्तशोथ, कलायीकी सूजन।

करश्मा (फा० पु०) आश्चर्य कर्म, अनोखा काम, जादू, चालाकी।

करष (हिं०) कर्ष देखो।

करषक (हिं०) कर्षक देखो।

करषना, करसना देखो।

करस (वै० क्ली) क्रियते यत्, कृ-असुन्। कर्म, काम।

"प्रते पूर्वाणि करणानि विप्रा विद्वां आह विदुषे करांसि।" (ऋक् ४।१९।१०)

करस (हिं० पु०) कण्डेका चूर। यह आग सुलगानेके काम आता है।

करसना (हिं० क्रि०) १ आकर्षण करना, खींचना, घसीटना। २ सुखाना, झुराना। ३ एकत्र करना, समेटना।

करसनी (हिं० स्त्री०) लताविशेष, एक बेल। यह उत्तर भारतमें उत्पन्न होती है। पत्र २।३ इञ्च दीर्घ और धूसरवर्ण रोमसे आच्छादित रहता है। फरवरी और मार्च मास पुष्प आते हैं। पक्व फलके रंगसे बेगनी स्याही तैयार होती है। मूल एवं पत्र औषधमें पड़ता है। करसनीका अपर नाम हीर है।

करसमा (हिं०) करश्मा देखो।

करसम्भव (सं० क्ली०) रोमकलवण, सांभर नमक।

करसा, करस देखो।

करसाइल, करसायल देखो।

करसाद (सं० पु०) करस्य सादः अवसन्नता, कर-सद भावे घञ्। १ हस्तदौर्बल्य, हाथकी कमजोरी। २ किरणकी अवसन्नता, शुवावोंका कुम्हिलाव।

करसान (हिं० पु०) कृषाण, किसान।

करसायर, करसायल देखो।

करसायल (सं० पु०) कृष्णसार, काला हिरन।

"जाके कुलको कौन है, गहे रहे सो तौन।
करसायलके सींगको ऐंठ जमावत कौन॥"

करसी (हिं० स्त्री०) १ करस, कण्डेका चूरचार। २ उपला, उपरी।

करसूत्र (सं० क्ली०) करे स्थितं सूत्रम्, ७-तत्। १ दस्तका सूक्ष्म सूत्र, हाथका बारीक सूत। २ विवाहादिकालीन मङ्गलार्थ हस्तधृत सूत्र, रखिया, कंगन।

करस्थाली (सं० पु०) करः स्थालीव यस्य। महादेव। जैसे स्थाली (हांडी) में पाक पड़ता, वैसे ही प्रलय काल महाकालरूप महादेवके हाथ समुदाय भूत मरता है।

"तलताल: करस्थाली ऊर्ध्वसंहननो महान्।" (भारत, अनु० १७ अ०)

करस्न (वै० पु०) करं स्नाति करोति धातूनामनेकार्थत्वात्, कृ-अप्-स्ना-क। कर्मकर बाहु, काम करने वाला बाजू।

"देवत् सृप्रा करस्ना दधिषे वपुंषि।" (ऋक् ३।१८।५)

करस्पर्शन (सं० क्ली०) नृत्योतमुत करणविशेष, नाचका एक ढंग। इसमें ग्रीवा उचकर उछाली जाती

है। फिर नर्तक पृथिवी पर पड़ता और कुक्कुटासन बना उभय हस्त उलटा करता है।

करह्मा (हिं०) करह्मा देखो।

करस्वन (सं० पु०) हस्तध्वनि, हाथकी आवाज़, ताल।

करह (हिं० पु०) १ करभ, ऊंट। २ पुष्पकलिका, फूलकी कली।

करहंस, करहच, करहच्च, करहन्त (हिं०) करहचा देखो।

करहकटङ्ग (हिं० पु०) गढ़करङ्ग, मालवेके सूबेकी एक सरकार। यह अकबरके समय बनी थी।

करहञ्चा (सं० स्त्री०) समाचर छन्दोविशेष, सात हरफकी एक बहर।

करहनी (हिं० पु०) धान्य विशेष, एक अगहनी धान। यह अग्रहायण मास कटता है। इसका तण्डुल बहुदिन पर्यन्त चलता है।

करहा (हिं० पु०) श्वेतशिरीष वृक्ष, सफेद सरिसका पेड़।

करहाई (हिं० स्त्री०) लताविशेष, एक बेल।

करहाट (सं० पु०) करेण विकिरणेन हाट्यते दीप्यते, कर-हट-णिच्-अण्। १ पद्मादिका मूल, कंवलकी जड़। इसे मुरार और भसीड़ भी कहते हैं। २ मदनवृक्ष, मैनफल। ३ महापिण्डीतक, बड़ी खजूरका पेड़। ४ शककरा। ५ देशविशेष, एक मुल्क।

करहाटक (सं० पु०-क्ली०) करहाट इव स्वार्थे कन्। अथवा करं हटयति, कर-हट-णिच्-ण्वुल्। १ मदन वृक्ष, मैनफल। २ कमलकन्द, मुरार। ३ कमलपत्रान्तर्गत छत्र, कमलका भीतरी छाता। यह प्रथम पीतवर्ण रहता, किन्तु बढ़नेसे हरिद्वर्ण निकलता है। ४ जनपदविशेष, एक बसती। (भारत, सभा०) आजकल इसे कराढ़ कहते हैं। कराढ़ देखो। ५ स्वर्णका हस्तालङ्कार, हाथमें पहननेको सोनेका गहना।

करही (हिं० स्त्री०) बालका बचा हुवा दाना। जो दाना कूटने पीटनेपर भी बालमें लगा रह जाता, वही करही कहाता है।

करा (हिं०) कला देखो।

करादत (हिं० पु०) कृष्णसर्पविशेष, एक काला सांप। यह अत्यन्त विषमय होता है।

कराइन (हिं० स्त्री०) छप्परके ऊपरकी घास।

कराई (हिं० स्त्री०) द्विदलत्वक्, दालका छिलका।

करांकुल (हिं०) कलाङ्कुर देखो।

करांत (हिं० पु०) करपत्र, करौत, आरा।

करांती (हिं० पु०) करपत्र चलानेवाला, आराकश, जो आरेसे लकड़ी चीरता हो।

करागार (सं० पु०) करस्य आगारः। राजस्वके आयका स्थान, खिराज आनेकी जगह।

कराग्र (सं० पु०) करिपुष्कर, हाथीकी सूंड़का सिरा।

कराग्रपल्लव (सं० पु०) अङ्गुलि, उंगली।

कराघात (सं० पु०) करेण आघातः, ३-तत्। १ हस्ताघात, हाथकी मार। ठूंसे, घूंसे, थप्पड़ वगैरहको कराघात कहते हैं। २ हस्ताङ्गुलि, अंगूठा।

कराङ्गण (सं० क्ली०) करस्य अङ्गनम्, ६-तत्। १ राजस्व आदायका स्थान, महसूल पड़नेकी जगह। २ हाट, बाज़ार।

कराङ्गुलि (सं० पु०) करस्य अङ्गुलिः, ६-तत्। हस्ताङ्गुलि, हाथकी उंगली।

कराची—भारतके सर्वपश्चिम प्रदेशस्थ सिन्धुदेशका एक ज़िला और नगर। इसके उत्तर शिकारपुर, पूर्व हैदराबाद ज़िला तथा सिन्धु नद, पश्चिम सागर एवं बलूचिस्तान और दक्षिण कोरी नदी तथा सागर है। कराची ज़िले और बलूचिस्तानके बीच बहुत दूर तक हाब नदी सीमास्वरूप प्रवाहित है। यह ज़िला उत्तर-दक्षिण प्रायः २०० मील दीर्घ और पूर्व-पश्चिम ११० मील विस्तृत है। परिमाणफल १४११५ वर्गमील है। कराची शहर ज़िलेका सदर मुकाम है। सिन्धु नदके मुहानेसे बलूचिस्तानकी पूर्व सीमा पर्यन्त कराचीका भूमिभाग सकल स्थल पर समान उच्च नहीं आता। पश्चिमांशमें कोहिस्तान नामक उपविभागके मध्य कितना ही पार्वत्य प्रदेश पड़ता है। बलूचिस्तानके पूर्वांशस्थित हाला पर्वतसे कुछ पर्वतशिखर निकले हैं। इस पार्वत्य प्रदेशके मध्य मध्य उर्वर उपत्यका आ गयी है। भूमिभाग साधारणतः दक्षिणपूर्वमुख नीचा है। उपकूल भागमें बहु संख्यक क्षुद्र सागरशाखाने प्रवेश किया है। देशके

अध्यस्तरमें नदी-किनारे बबूलका वन यथेष्ट है। सिन्धु नद ही स्थानीय प्रधान नदी है। किन्तु हाव नदीसे इस जिलेके अधिकांश स्थलमें जल आता है। कराचीमें सिन्धु नद प्राय: १२५ मील विस्तृत है। दक्षिणांशको सिन्धु बहु शाखामें विभक्त हो सागरसे जा मिला है। उक्त शाखाकी गति अत्यन्त परिवर्तनशील है। पहले सीता और बाघियार शाखा बहुत विस्तृत थी। जहाज, स्वच्छन्द आते-जाते थे। किन्तु १८३७ ई०से बाघियार नदीका जल भिन्न पथको पकड़ बहता है। प्राचीन स्रोत क्रमश: बन्द हो गया। बागना नामक शाखाके तीर कराची जिलेका पुराना 'शाहबन्दर' अवस्थित था। यह स्थान बहु दिन पर्यन्त कलहोरा राजवंशका जहाजी बन्दर रहा। फिर यहां युद्धके जहाज भी ठहरते थे। किन्तु आजकल इस स्थानसे नदी प्राय: १० मील हट गयी है। अब हजामरी शाखा ही सिन्धुका प्रधान मुख मानी जाती है। १८४५ ई० को यह शाखा अति क्षुद्र रही। छोटी नौका भी अति कष्टसे आती जाती थी। इस जिलेके बीच, ऊपरी भाग सेवयानमें 'मञ्छर' नामक एक हहत् ह्रद भरा है। इतना बड़ा ह्रद सिन्धुप्रदेशमें दूसरे स्थानपर देख नहीं पड़ता। कराची नगरसे ७८ मील उत्तर पार्वत्य प्रदेशमें 'पीरमांघो' नामक स्थानपर कितने ही उष्ण प्रस्रवण विद्यमान हैं। इस स्थानकी प्राकृतिक शोभा अति सुन्दर है। भ्रमणकारी प्राय: इस स्थानकी शोभा देखने आया करते हैं। यहां एक दलदल भी है। इस दलदलमें असंख्य कुम्भीर रहते हैं। अरण्य जन्तुमें चीता, हायना, भेड़िया, शृगाल, उल्कामुखी, भल्लुक, हरिण और वन्यमेष प्रधान हैं। पक्षियोंमें शकुनिकी संख्या यथेष्ट पाती है। कोहिस्तानमें नाना जातीय सरीसृप देख पड़ते हैं।

कराची जिलेमें मुसलमानोंकी ही संख्या सर्वापेक्षा अधिक है। फिर हिन्दुवों और दूसरे लोगोंकी गणना लगती है। हिन्दुवोंमें ब्राह्मण, राजपूत और लोहाने अधिक देख पड़ते है। अन्यान्य जातिमें जैन, ईरानी, यहूदी और बौद्ध हैं। यह जिला कराची, सेवयान, जीवक और शाहबन्दर नामक चार उपविभागमें विभक्त है। करारो, कोटरो, सेवयान, बुबक, जदु, ठाठा, केती बन्दर, मफ़न्द, और मीरपुर बतोरा नगर प्रधान समझा जाता है। कराची, केती और घिरगयड़ (श्रीगण्ड) तीन बन्दर हैं।

स्थानीय लोगोंके कथनानुसार ठाठा नगरसे ग्रीकसम्राट् अलकसेन्दर (सिकन्दर)-के सेनापति नियारकस् पारस्य सागरको गये थे। सेवयान नगरमें किसी अति प्राचीन दुर्गका भग्नावशेष विद्यमान है। अनेक लोग कहते, कि उक्त दुर्गके निर्माता भी अलकसेन्दर ही रहे। कराची जिलेका अति अल्प स्थान ही बोया जाता है। हृष्टि, कूप और निर्झरके जल पर ही कृषिकार्य चलता है। मलीरमें ज्वार, बाजरा, यव और इक्षुकी उपज है। जीवक और शाहबन्दरके निकटवर्ती स्थानमें चावल, गेहूं, ऊख, मकई, रूई तथा तम्बाकू बोते हैं। कोहिस्तानके पार्वत्य क्षेत्रमें किसी प्रकारका शस्य नहीं होता। यहांके लोग प्राय: दुग्धाहारी हैं। पशुमांससे ही जीवन धारण करते हैं। यहां तीन फसलें होती हैं। एक ज्येष्ठ-आषाढ़में बोयी और कार्तिक-अग्रहायणमें काटी जाती है। दूसरी कार्तिक-अग्रहायणमें पड़ती और वैशाख-ज्येष्ठ कटती है। तीसरीको फाल्गुन-चैत्रमें डाल आषाढ़ श्रावण मास काट लेते हैं। कराची जिलेका प्रधान पण्य द्रव्य रूई, गेहूं और ऊन है।

शाहबन्दरके निकट श्रीगण्ड खाड़ीमें यथेष्ट लवण निकलता है। कप्तान बाकेने १८४७ ई०को स्थानीय लवणस्तर देख कहा था, 'इस लवणसे क्रमागत ४०० वत्सर समस्त पृथिवीका निर्वाह हो सकता है।' किन्तु लवणके शुल्कका परिमाण द्विगुण रहनेसे कोई व्यवसाय चला नहीं सकता। समुद्रमें मत्स्य पकड़नेका काम भी होता है। मुहाने मुसलमान यह व्यवसाय करते हैं। ठाठा नगरी लूंगी नामक शीतवस्त्र और बुबक नगर कालीनके लिये विख्यात है। कराची जिलेके अधिकांश नगर सिन्धुके इतिहाससे विशेष संश्लिष्ट हैं। सिन्धु देखो।

कराची नगरमें सिन्धु प्रदेशका सेनावास स्थापित

है। इसी नगरसे बिलकुल दक्षिण कराची उपसागर है। उपसागरके एक पार्श्वपर मानोरा अन्तरीप पड़ता है। मानोरा अन्तरीप और क्लिफटन नामक स्वास्थ्यनिवासके बीच कराची उपसागर प्राय: साढ़े तीन मील विस्तृत है। किन्तु प्रवेशका मुख घोंचेके पर्वत (क्षुद्र क्षुद्र पार्वत्य द्वीप) और क्रियामारी नामक द्वीपसे रुका है। मानोरा अन्तरीपमें एक आलोकस्तम्भ है। इस आलोकस्तम्भके पश्चात् एक क्षुद्र दुर्ग भी खड़ा है।

१७२५ ई०को जहां हाव नदी सागरसे मिली, वहां खड़क नामक एक नगरी रही। उस समय खड़कका व्यवसाय वाणिज्य बहुत विस्तृत था। क्रमश: काल आनेपर खड़क बन्दरके प्रवेशका पथ बालूसे रुक गया। फिर थोड़ी दूर दक्षिण वर्तमान कराची नगरके स्थानपर 'कलाचीकुण' नामक दूसरा क्षुद्र नगर रहा। इसी स्थानसे कराचीकी चारो ओर व्यवसाय वाणिज्यका लेनदेन बढ़ा। क्रमश: यहां दुर्ग बना था। फिर मसकट नगरसे तोप मंगा दुर्गकी रक्षा की गयी। अन्तको शाहबन्दरका व्यवसाय बिलकुल बन्द हो जानेसे यह स्थान समृद्धिशाली हुवा। लोगोंके विश्वासानुसार उक्त कलाची नामसे ही 'कराची' शब्द निकला है।

करावीन (सं० पु०) खञ्जन, खड़रैचा।

कराट (सं० स्त्री०) कराय विक्षेपाय अटति, अट-अच्। थप्पड़, तमाचा।

करातग्राम काशी जिलेका एक ग्राम।

(भवि० ब्रह्मखण्ड ५३।५४)

कराड़ (हिं० पु०) १ क्रय करनेवाला, महाजन, जो माल खरीदता हो। २ वणिक् जातिविशेष। यह बनिये पञ्जाबमें उत्तरपश्चिम रहते हैं। महाजनी इनका धन्धा है। ३ नदीके ऊपरका हिस्सा, टीला। सम्यक् उच्च नदीतटको कराड़ कहते हैं।

कराढ़—१ बम्बईप्रान्तके सतारा जिलेका एक विभाग। इसकी भूमिका परिमाण ३९५ वर्ग मील है। महाभारतमें सञ्जयन्ती नगरीके साथ 'करहाटक' नामसे इस स्थानका उल्लेख आया है।

"नगरीं सञ्जयन्तीञ्च पाषण्डं करहाटकम्।
दूतैरेव वशे चक्रे करञ्चैनामदापयत्॥" (सभा ३१७०)

दाक्षिणात्यवाले बनवासी प्रभृति प्राचीन स्थानके किसी किसी शिलाफलकमें भी कराढ़का नाम करहाटक लिखा है। स्कन्दपुराणके सह्याद्रिखण्डमें यह भूभाग काराष्ट्र नामसे उक्त है। सह्याद्रिखण्डके मतसे काराष्ट्र कोयनासङ्गमके दक्षिण और वेदवती नदीके उत्तर सब मिलाकर १० योजन पड़ता है।

"वेदवत्याश्चोत्तरे तु कोयनासङ्गदक्षिणे।
काराष्ट्रनाम देशश्च दुष्टदेश: प्रकीर्तित:॥" (उत्तरार्ध २।१)

यहां लक्षाधिक हिन्दू रहते हैं। उनमें कराढ़ ब्राह्मणोंकी ही संख्या अधिक है। कराढ़-ब्राह्मण देखो।

२ कराढ़ विभागका प्रधान नगर। यह कृष्णा एवं कोयना नदीके सङ्गम स्थान, अक्षा० १७° १७' उ० तथा देशा० ७४° १३' ३०" पू० पर अवस्थित है। लोकसंख्या प्राय: ११ सहस्र है। उसमें ९ हजार हिन्दू निकलते हैं। सब-जजकी अदालत, डाकघर, औषधालय प्रभृति विद्यमान है।

कराढ़-ब्राह्मण (काराष्ट्र ब्राह्मण) महाराष्ट्र ब्राह्मणोंकी एक श्रेणी। जन्मभूमिके अनुसार यह ब्राह्मण भी कराढ़ कहाते हैं। स्कन्दपुराणमें इन्हें अतिनिन्दित और दुष्ट लिखा है—

"काराष्ट्रो नाम देशश्च दुष्टदेश: प्रकीर्तित:॥२
सर्वे लोकाश्च कठिना दुर्जना: पापकर्मिण:।
तद्देशजाश्च विप्रास्तु काराष्ट्रा इति नामत:॥४
पापकर्मरता नष्टा व्यभिचारसमुद्भवा:।
खरस्य ह्यस्थियोगेन रेत: क्षिप्तं विभावकम्॥५
तेन तेषां समुत्पत्तिर्जाता वै पापकर्मिणाम्।
तद्देशे मातृकादेवी महादुष्टा कुरूपिणी॥६
तस्या: पूजा वहाबे च ब्राह्मणो दीयते बलि:।
ते दंष्ट्रिणीवशा नष्टा ब्रह्महत्यां करोति च॥७
न कृता येन सा हत्या कुलं तस्य क्षयं व्रजेत्।
एवं पुरा तया देव्या वरो दत्तो द्विजान् किल॥८
तेषां दर्शनमात्रेण सचैलं स्नानमाचरेत्।
तेषां देशान्तरे यातुर्न श्राद्धं योजनत्रयम्॥९
केवलं विपमाप्नोति पातकं अतिदुस्तरम्।" (सह्याद्रिखण्ड २।२ अ०)

कराढ़ ब्राह्मण सकल ही शाक्त होते हैं। लोग कहते—पहले इनमें प्रति वर्ष देवी भक्तिके उद्देश एक

ब्राह्मणशिशु बलि चढ़ानेकी प्रथा रही। १८१८ ई० पीछे यह प्रथा एक काल उठ गयी है। इनका आचार व्यवहार अनेक अंशमें अपर महाराष्ट्रोंसे मिलता है। सुप्रसिद्ध महाराष्ट्र कवि मोरोपन्त कराढ़ ब्राह्मण ही थे। इनमें भिन्न गोत्र और अनेक घर देख पड़ते हैं। यथा—

गोत्र		घर
काश्यप गोत्र	...	७२
अत्रिगोत्र	...	७५
भरद्वाजगोत्र	...	७७
जमदग्निगोत्र	...	७५
वशिष्ठगोत्र	...	८०
कौशिकगोत्र	...	४७
नैध्रुवगोत्र	...	२४
गौतमगोत्र	...	१५
गार्ग्यगोत्र	...	१६
मुद्गलगोत्र	...	८
विश्वामित्रगोत्र	...	१
बादरायणगोत्र	...	१
कौण्डिन्यगोत्र	...	१
उपमन्युगोत्र	...	१
आङ्गिरसगोत्र	...	१
लोहिताक्षगोत्र	...	१
वैष्णगोत्र	...	६
शाण्डिल्यगोत्र	...	६
कुत्सगोत्र	...	३
वात्स्यगोत्र	...	२
भार्गवगोत्र	...	२
पार्थिवगोत्र	...	२

महाराष्ट्र देखो।

कर्णाटक प्रदेशमें कराढ़ ब्राह्मण मिलते हैं। यह चितपावनोंसे मिलते जुलते हैं। वर्ण कुछ अधिक काला रहता है। किसीकी आंख भूरी या नीली नहीं होती। विजयदुर्गा, आर्यदुर्गा और महालक्ष्मी इनकी कुलदेवता हैं। महिसुर राज्यके शङ्कराचार्य गुरु माने जाते हैं। यह व्रतादि और उत्सवादि दूसरे ब्राह्मणोंकी भांति सम्पन्न किया करते करते हैं। बालक विद्यालयोंमें पढ़ते हैं। कराढ़ शुद्ध, स्वच्छ, अतिथिसेवी और आज्ञाकारी होते हैं। इनमें कोई व्यवसायी, कोई ज्योतिषी और कोई भिक्षुक है। ऋग्वेद इनका प्रधान वेद है।

करात (हिं० पु०) कीरात, ४ जौकी तौल। इससे स्वर्ण, रौप्य वा औषध तौलते हैं।

कराना (हिं० क्रि०) कार्यमें लगाना, करवाना।

क़राबत (अ० स्त्री०) १ आसन्नता, इत्तिसाल, नज़दीकी। २ सम्बन्ध, अपनायत।

क़राबतदारी (फ़ा० स्त्री०) सम्बन्धिभाव, रिश्तेदारी।

क़राबा (अ० पु०) काचपात्र विशेष, शीशेका एक बरतन। इसका आकार वृहत् और मुख क्षुद्र रहता है।

करामर्द (सं० पु०) करं आ सम्यक् मृद्नाति, कर-आ-मृद-अण्। करमर्दवृक्ष, करौंदेका पेड़।

करामात (अ० स्त्री०) आश्चर्यव्यापार, सिद्धि, करिश्मा, अनहोनी। यह शब्द 'करामत' का बहुवचन है। करामात दिखानेवालेको करामाती (सिद्ध) कहते हैं।

कराम्लक (सं० पु०) कीर्यते विक्षिप्यते अम्ल यस्मात्, कॄ कर्मणि अप्-कप्। कृष्णपाकफल वृक्ष, करौंदेका पेड़।

करामल, करामलक देखो।

करामलक (सं० पु०) करं कीयमाणं अम्लं यस्मात्, कर-अम्ल-कप्। करमर्दक वृक्ष, करौंदेका पेड़।

करायजा (हिं० पु०) १ कुटज, कोरैया। २ इन्द्रयव।

करायल (हिं० पु०) १ कलौंजी, मंगरैला। २ तेल वा घृतसे किया हुआ बेसवार, तेल या घी-में पकाया हुवा मूंग या उड़दकी दालका झोल। प्रायः तरकारीके झोलको भी करायल कह दिया करते हैं।

करायिका (सं० स्त्री०) करामिव आचरति उड्डयनकाले करवल्लम्बमानत्वात्, कर-क्यङ्-ण्वुल्-टाप्। उपमानादाचारे। पा ३।१।१०। १ बलाकापक्षी, छोटा बगला। २ पक्षिभेद, एक चिड़िया।

करार (हिं० पु०) १ नदीका उच्च तट, दरयाका

ऊंचा किनारा। यह पानीके काटसे निकल आता है। २ ठौर ठीक।

क़रार (अ० पु०) १ स्थैर्य, मजबूती। २ धैर्य, धीरज। ३ सुख, आराम। ४ प्रतिज्ञा, कौल।

करारना (हिं० क्रि०) कां कां करना, श्रुतिकटु शब्द निकालना। यह क्रिया काकपक्षीका बोलना बताती है।

करारवीर—काशीका एक ग्राम। यह काशीसे ४ योजन दूर वायुकोणमें अवस्थित है। यवनपुर यहांसे बहुत नजदीक पड़ता है। करारवीरमें एक प्राचीन दुर्ग विद्यमान है। (भवि० ब्रह्मखण्ड ५०।१०३)

करारा (हिं० पु०) १ नदीका उच्च तट, दरयाका ऊंचा किनारा। २ टीला, ढूह। ३ करट, कौवा। ४ मिष्टान्न विशेष, एक मिठाई। (वि०) ५ कठोर, कड़ा। ६ सुदृढ़, मजबूत, दिलका कड़ा। ७ कड़ा सेंका हुवा, सुरसुरा। ८ तीक्ष्ण, तेज। ९ उत्तम, अच्छा। १० बड़ा, भारी। ११ बलवान्, ताकतवर।

करारापन (हिं० पु०) कठोरभाव, कड़ाई।

करारी (हिं० पु०) १ करार करनेवाला, जो वचन दे चुका हो। २ उपासक सम्प्रदायविशेष। यह काली, चामुण्डा प्रभृति देवीकी भयङ्कर मूर्ति पूजते हैं। भारतके नाना स्थानमें जो शलाकादि द्वारा अपना मांस छेद भिक्षा मांगते फिरते हैं, उन्हींको बहुतसे लोग करारी कहते हैं।

करारोट (सं० पु०) करे आरोटते भाति, कर-आ-रुट-अच्। अङ्गुरीयक, अंगूठी, हाथका छल्ला।

करार्पित (सं० त्रि०) हस्तसे अर्पण किया हुवा, जो हाथमें दिया गया हो।

कराल (सं० क्ली०) कराय चक्षुरोगादिविक्षेपाय अलति शक्नोति, कर-अल-अच्। १ पर्णास, काली तुलसी। २ घृतादि भ्रष्ट वेसवार, करायल। (पु०) करं आलाति गृह्णाति अथवा भयप्रदर्शनाय अलति पर्याप्नोति, कर-आ-ला-क। ३ सर्जरसयुक्त तैल। ४ दन्तरोग भेद, दांतकी एक बीमारी। कुपित वायु दन्तका आश्रय पकड़ क्रम क्रम सब दांतोंको विकृत और भयानक भावसे उठा देता है। इसीको कराल रोग कहते हैं। यह असाध्य होता है। (माधवनिदान) ५ कस्तूरमृग, एक हिरन। ६ दैत्यविशेष, एक राक्षस। ७ गन्धर्वविशेष। ८ मत्स्यविशेष, एक मछली। ९ कृष्णार्जक, काला बबूल। (त्रि०) १० तुङ्ग, ऊंचा। दन्तुर, ऊंचे दांतवाला। ११ भयानक, डरावना। १२ प्रशस्त, खुला हुवा।

करालक, कराल देखो।

करालकर (सं० त्रि०) १ बलवान् हस्तविशिष्ट, ताकतवर हाथ रखनेवाला। २ बलवान् शुण्डयुक्त, जोरदार सूंड रखनेवाला।

करालकलिक (सं० पु०) कुन्दपुष्पवृक्ष, कुन्दके फूलका पेड़।

करालकेशर (सं० पु०) करालः केशरो यस्य। सिंह, शेर।

करालत्रिपुटा (सं० स्त्री०) करालानि त्रीणि पुटानि यस्याः। लङ्का नामक शिम्बी धान्य, किसी किस्मका अनाज।

करालदंष्ट्र (सं० त्रि०) भयङ्करदंष्ट्राविशिष्ट, खूंखार दाढ़ रखनेवाला।

करालदंष्ट्रा (सं० स्त्री०) करालाः दंष्ट्रा यस्याः। १ काली। २ भयानकदन्तविशिष्टा स्त्री, खौफ़नाक दांतवाली औरत।

करालमञ्च (सं० पु०) सङ्गीततालविशेष, गानेका एक ताल। इसमें तीन खाली और दो भरे ताल लगते हैं। मृदङ्गमें करालमञ्च इस प्रकार बोलता है—धा केटे खत्ता केटेताग गदिधेने नागदेत धा।

करालम्ब (सं० स्त्री०) करं आलम्बते ग्रहणार्थं गृह्णाति, लम्ब-अच्। १ करग्रहणकारी, हाथ पकड़नेवाला। (पु०) २ हस्त द्वारा साहाय्य प्रदान, हाथकी पकड़।

कराललोचन (सं० त्रि०) कराले लोचने यस्य। भयानक चक्षुविशिष्ट, डरावनी आंखोंवाला।

करालवदना (सं० स्त्री०) करालं वदनं यस्याः। १ काली। २ भयङ्करमुखी स्त्री।

कराला (सं० स्त्री०) कराल-टाप्। १ शारिवा, अनन्तमूल। २ विडङ्ग।

करालाङ्ग (सं० क्ली०) विडङ्ग।

करालानन (सं० त्रि०) करालं आननं यस्य। भयङ्कर मुखविशिष्ट, डरावनी सूरतवाला।

करालास्य (सं० त्रि०) दन्तुरवदन, खौफ़नाक दांतों-वाला।

करालिक (सं० पु०) कराणां करसदृशशाखानां आलिः श्रेणिर्यत्र कराल-कप् इत्वम्। १ वृक्ष, पेड़। २ करवाल, तलवार।

करालिका (सं० स्त्री०) दुर्गा देवी।

करालित (सं० त्रि०) कराल-इतच्। भययुक्त, डरा हुवा। २ भयङ्कर किया हुवा, जो खौफ़नाक बना दिया गया हो। ३ बढ़ाया हुवा।

कराली (सं० स्त्री०) कराल-ङीप्। १ अग्निकी सप्त जिह्वाके अन्तर्गत जिह्वाविशेष, आगकी सात जीभोंमें एक जीभ।

"काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा।
स्फुलिङ्गिनी विश्वरुची च देवी लोलायमाना इति सप्त जिह्वा॥"
(मुण्डकोपनिषत्)

(पु०) २ महादोषान्वित अश्व, निहायत ऐबदार घोड़ा। जिसके नीचे या ऊपर एक बड़ा दांत निकल आता, वह घोड़ा कराली कहाता है। (जयदत्त)

कराव (हिं० पु०) कर्म, कामकाज। यह शब्द प्रायः विवाहादि कर्मके लिये व्यवहृत होता है।

करावा, कराव देखो।

करास्फोट (सं० पु०) करेण आस्फोटः शब्दो यत्र। १ वक्षःस्थलपर एक हाथ सङ्कुचित भावसे रख अन्य हस्त द्वारा ताड़न, तालठोंकाव। २ कराघात, हाथकी मार।

कराह (सं० पु०) १ वेदनासूचक स्वर, तकलीफ़की आवाज़। शरीरमें पीड़ा होनेसे मनुष्य कराहता है। २ कड़ाह, लोहेकी बड़ी कड़ाही।

कराहना (हिं० क्रि०) पीड़ित स्वरसे बोलाना, कांखना, हाय हाय करना।

कराहा (हिं० पु०) कड़ाह, बड़ी कड़ाही।

कराही (हिं० स्त्री०) कड़ाही।

करि (हिं० पु०) करी, हाथी।

करिक (सं० पु०) करो विद्यतेऽस्य अस्य, कन्। विट्खदिर, एक खैर।

करिकणवल्ली (सं० स्त्री०) करिकणः गजपिप्पल्य-वयव इव वल्ली। चविका लता।

करिकणा (सं० स्त्री०) गजपिप्पली, बड़ी पीपल।

करिकणावल्ली (सं० स्त्री०) करिकणायाइव वल्ली। चविका वृक्ष, चव्यका पेड़।

करिकर (सं० पु०) करिणः करः, ६-तत्। हस्ति-शुण्ड, हाथीकी सूंड़।

करिकर्णपलाश (सं० पु०) हस्तिकर्णपलाश, बड़ा ढाक।

करिकल्प (सं० पु०) विधान, व्यवस्था, तजवीज़।

करिका (सं० स्त्री०) करो विलेखनमस्ति अस्याः, अर्शादित्वादच्। १ करोंदा, कटैया। २ नख-क्षत, नाखूनका दाग़ या ज़ख्म।

करिकाल—कर्णाटकका एक नगर। यह अक्षा० १०° ५५´ उ० और देशा० ७०° ५२´ पू०पर तिरुवाङ्कोड़ नगरसे ४ कोस दक्षिण अवस्थित है। करिकाल अति प्राचीन नगर है। १७४० से १७६३ ई० तक चलनेवाले कर्णाटक समरके समय यह नगर सुदृढ़ किया गया था। यहां अंगरेजोंसे फरासीसी लड़ मरे। करिकाल नदी कावेरी नदीकी शाखा है। इसकी चारो ओर अपर्याप्त शस्य उत्पन्न होता है। लवण यहांसे बाहर भेजते हैं।

करिकालचोल—एक विख्यात चोलराज। यह परा-न्तक चोलके ज्येष्ठ पुत्र रहे। इन्होंने पाण्ड्यराज वीरपाण्ड्यको युद्धमें हराया था। फिर करिकाल चोलने कावेरीके जलप्लावनसे तञ्जोर ज़िला बचानेको एक बांध बनावाया। ९०० शकमें यह विद्यमान थे।

करिकुम्भ (सं० क्ली०) करिणः कुम्भः ६-तत्। १ गजकुम्भ, हाथीके मत्थेकी घड़े-जैसी जगह। २ गन्धचूर्ण।

करिकुम्भक (सं० पु०) नागकेशरचूर्ण।

करिकुसुम्भ (सं० पु०) करी नागकेशरस्तद्वत् कुसुम्भः। १ नागकेशरवृक्ष। २ नागकेशरचूर्ण।

करिकृष्णा (सं० स्त्री०) गजपिप्पली, बड़ी पीपल।

करिकेशर (सं० क्ली०) नागकेशर।

करिखई (हिं० स्त्री०) १ नीलता, कालिमा। २ कलङ्क, बदनामी।

करिखा (हिं० पु०) १ नीलता, कालिख। २ कलङ्क, बदनामी।

करिगर्जित (सं० क्ली०) करिणः गर्जितं गर्जनम्, भावे क्त। बृंहित, हाथीका चिङ्गार।

करिगह, करगह देखो।

करिङ्ग—मन्द्राज प्रान्तके राजमहेन्द्री जिलेका एक बन्दर। यह समुद्रके तटपर राजमहेन्द्री नगरसे १५ कोस दक्षिण-पूर्व अवस्थित है। नाना स्थानोंसे यहां जहाज आ लगा करते हैं। वाणिज्य-व्यवसाय भी खूब होता है। पहले यह नगर अधिक समृद्धिशाली रहा। किन्तु अब वह बात देख नहीं पड़ती। १७८४ ई०को समुद्रसे तरङ्ग आनेपर करिङ्ग डूब गया था। उससे बहुत लोग मरे और मकान् गिरे पड़े। इसके पार्श्वस्थ समुद्रको करिङ्गसागर कहते हैं। 'करिङ्ग' कलिङ्ग शब्दका अप-भ्रंश है। कलिङ्ग देखो।

करिचर्म (सं० क्ली०) गजचर्म, हाथीका चमड़ा।

करिज (सं० पु०) करिणो जायते, करि-जन-ड। पञ्चम्यामजातौ। पा ३।२।९८। गजशावक, हाथीका बच्चा।

करिजा (सं० स्त्री०) गजमुक्ता।

करिणी (सं० स्त्री०) करिन् स्त्रियां ङीप्। १ हस्तिनी, हथिनी। २ देवताविशेष, एक देवी। ३ वैश्यके औरस और शूद्राके गर्भसे उत्पन्न होनेवाली कन्या।

करिणीसहाय (सं० पु०) गज, हथिनीका जोड़ा हाथी।

करिदन्त (सं० पु०) गजदन्त, हाथीका दांत।

करिदन्ताभ (सं० क्ली०) मूलक, मूली।

करिदमन (सं० पु०) नागदमन, नागदौना।

करिदारक (सं० पु०) करिणं दारयति, करि-दृ-णिच्-ण्वुल्। सिंह, शेर।

करिनासिका (सं० स्त्री०) करिणः नासिका। १ गजनासिका, हाथीकी नाक। २ यन्त्रविशेष, एक बाजा।

करिनी (हिं०) करिणी देखो।

करिप (सं० पु०) करिणं पाति रक्षति, करि-पा-क। हस्तिपालक, महावत।

करिपत्र (सं० क्ली०) तालीशपत्र।

करिपत्रक, करिपत्र देखो।

करिपथ (सं० पु०) करिणः पथ, ६-तत्। १ गजके गमनयोग्य पथ, हाथीके चलने लायक राह। २ देवपथ, हाथीकी राह। ३ जनपदविशेष, एक बसती।

करिपिप्पली (सं० स्त्री०) करिसंज्ञका पिप्पली, मध्यपदलो०। गजपिप्पली, बड़ी पीपल।

करिपोत (सं० पु०) करिणं बध्नाति यत्र, बन्ध आधारे घञ्। १ हस्तिबन्धनस्तम्भ, हाथी बांधनेका खूंटा। (क्ली०) भावे घञ्। भावे। पा ३।३।१८। २ गजबन्धन, हाथीका बंधाव।

करिवर (सं० पु०) करिणां वरः। श्रेष्ठ गज, बढ़िया हाथी।

करिबू (हिं० पु०) हरिणविशेष, एक बारहसिङ्गा। यह अमेरिकाके उत्तरीय ध्रुवप्रदेशमें पाया जाता है। इससे लोगोंका बड़ा काम निकलता है। मांस खानेमें आता है। चर्म वस्त्ररूपसे व्यवहृत होता है। फिर उसका तम्बू और जूता भी बनता है। अस्थिसे छुरी प्रस्तुत करते हैं।

करिभ (सं० क्ली०) करीव भाति, भा-क। अश्वत्थवृक्ष, पीपलका पेड़।

करिमकर (सं० पु०) काल्पनिक राक्षस, झूठा देव।

करिमाचल (सं० पु०) करिणं हन्तुं माचं शब्दं लाति विस्तारयति, करि-माच ला क। सिंह, शेर।

करिमुख (सं० पु०) करिणो मुखमिव मुखं यस्य। १ गणेश। ब्रह्मवैवर्तके गणेशखण्डमें लिखते—पार्वतीनन्दन गणेशके जन्म लेनेपर सकल देव सुन्दरमूर्ति देखने पहुंचे थे। भगवतीने क्रमशः सकल देवको आ लौटते देखा। किन्तु उस देवमण्डलीमें शनिको न देख उन्होंने अपने प्राण-प्यारे सुन्दर पुत्रको आकर देखनेके लिये उनसे बारंबार अनुरोध किया था। शनि इस भयसे गणपतिको देखने न गये—मेरी दृष्टिसे समुदय भस्म हो जाता है। अन्ततः भगवतीके आदेशसे उन्हें जाना पड़ा। शनिने आकर भगवतीसे कहा था—मैं जिसे देख पाता, वही भस्म हो जाता है। बारंबार ऐसा कहनेपर भी भगवतीने उनसे गणेशको देखनेके लिये आग्रह प्रकाश किया। उस समय शनिने निरुपाय हो गणेशको देखनेके लिये अपने मुखवस्त्रका एक प्रान्त खोला था। उनको दृष्टि

प्रथम गणपतिके मस्तकपर पड़ी। उससे मस्तक जल गया था। मस्तक विनष्ट होते देख शनिने अपनी आंख पर फिर परदा डाला। पार्वती भी प्रियपुत्रको मस्तकहीन देख शोकसे घबरा गयीं। उसी समय देववाणी हुई थी, 'उत्तरकी ओर शिर किये एक हाथी सोता है। उसीका मुण्ड गणेशका मस्तक बनेगा।' देवगणने अनुसन्धानको निकल देखा था—इन्द्रका हस्ती ऐरावत इसी प्रकार सोता है। उस समय अगत्या देवताने उसी करिका मुख काट गणेशके देहमें जोड़ दिया। इसी प्रकार गणपतिका करिमुख बना था। २ गजमुख, हाथीका मुंह।

करिया (हिं० पु०) १ कर्ण, पतवार। २ कर्णधार, मल्लाह, नाव चलानेवाला। ३ सर्प, काला सांप। ४ इक्षुरोगविशेष, ऊखको एक बीमारी। इससे रस सूखने लगता और पौदा काला पड़ता है। (वि०) ५ कृष्णवर्ण, काला।

करियाई (हिं० स्त्री०) १ नीलता, स्याही, कालापन। २ कालिख।

करियाद (सं० क्ली०) जलहस्ती, दरयायी घोड़ा। यह एक दूध पीनेवाला जन्तु है। जङ्गली सूअरसे करियाद मिल जाता है। इसका शिर मोटा और वर्गाकार होता है। थूथन बहुत बड़ा रहता है। चक्षु एवं कर्ण क्षुद्र और शरीर मोटा तथा भारी लगता है। पैर छोटे रहते हैं। पैरमें चार उंगलियां होती हैं। पूंछ छोटी पड़ती है। पेटमें दो थन लगते हैं। खालपर बाल नहीं जमते। यह प्रायः अफ्रीकामें सब जगह रहता है। लम्बाई १७ फीट आती है। पानीमें रहना इसे बहुत अच्छा लगता है। किन्तु भूमिपर घासपात खा यह अपना जीवन चलाता है। करियाद अनेक प्रकारका होता है।

करियारी (हिं० स्त्री०) १ कलिकारी, कलियारी, एक जुहर। २ लगाम।

करिर (सं० पु०-क्ली०) किरति विक्षपति, कृ संज्ञायां इरन्। १ वंशाङ्कुर, बांसका किल्ला। अबलगुल्म, एक झाड़। २ घट, घड़ा।

करिरत (सं० क्ली०) करिणां रतमिव रतम्, मध्यपद-लो०। १ कामशास्त्रोक्त एक प्रकार रति।

"भुग्नाननभुजालग्नस्तनानुरतां स्वयमधोमुखीं स्त्रियम्।
कामति सकरक्षेपमेहने यत्तु करिरतं तदुच्यते॥" (शब्दचि०)

२ गजका रमण, हाथीका भोग।

करिरा (सं० स्त्री०) हस्तिदन्तका मूल, हाथीके दांतकी जड़।

करिरी, करिरा देखो।

करिव (सं० त्रि०) करिणं वाति हिनस्ति, करि-वा-क। करिको मार डालनेवाला, जो हाथीको मौतके मुंहमें पहुंचाता हो।

करिवर, करिवर देखो।

करिवैजयन्ती (सं० स्त्री०) गजपताका, हाथीका निशान या झण्डा।

करिशावक (सं० पु०) करिणां शावकः। हस्तिशिशु, हाथीका बच्चा। पांच या दश वर्षवाले बच्चेको शावक कहते हैं। इसका संस्कृत पर्याय—कलभ, करभ, करिपोत, करिज, विक्क और विक्क है।

करिशुण्ड (सं० क्ली०) करिणः शुण्डम्। गजशुण्ड, हाथीकी सूंड।

करिष्ठ (वै० त्रि०) अतिशयेन कर्ता, इष्ठन्। कर्तृतम, बड़ाकाम करनेवाला।

"युञ्ज वह्निष्ठ आसति करिष्ठः।" (ऋक् ७।८७।७)

करिष्णु (सं० पु०) कृ-इष्णुच्। करणशील, करनेवाला।

करिष्यत् (सं० त्रि०) करनेको इच्छुक, करनेवाला।

करिष्यमाण (सं० त्रि०) करनेको प्रस्तुत, जो करने जाता हो।

करिसुत (सं० पु०) करिणः सुतः, ६-तत्। हस्तिशावक, हाथीका बच्चा।

करिसुन्दरिका (सं० स्त्री०) करीव सुन्दरी, करिसुन्दरी संज्ञायां कन्-टाप् इत्वञ्च। १ नागयष्टि। २ वस्त्र शुष्क करनेका यन्त्रविशेष, कपड़ा सुखानेकी एक कल। (हारावली)

करिस्कन्ध (सं० क्ली०) करिणां समूहः, करिन्-स्कन्धच्। १ गजसमूह, हाथियोंका झुण्ड। करिणः

स्कन्धम्, ६-तत्। २ गजका स्कन्ध, हाथीका कन्धा। (त्रि०) करि स्कन्धमिव स्कन्धं यस्य। ३ करिकी भांति स्कन्धविशिष्ट, हाथीकी तरह कन्धा रखनेवाला।

करिहस्ताचार (सं० पु०) नृत्यभेद, किसी किस्मका नाच। यह एक देशी भूमिचार है। इसमें हंसस्थानक बना उभय पद तिर्यक् रखते और भूमिपर मर्दन करते हैं।

करिहां (हिं० स्त्री०) करिहांव देखो।

करिहांव (हिं० पु०) कटि, कमर। २ कोल्हूका मध्य भाग। यह गड़ारीदार होता है। इसीमें कनैठा और भुजेला चक्कर खाया करता है।

करिहारी (हिं० स्त्री०) कलियारी, करियारी।

करी (सं० पु०) करः शुण्डः अस्ति अस्य, कर-इनि। १ हस्ती, हाथी। २ अष्ट संख्या, आठकी अदद।

करी (हिं० स्त्री०) १ कड़ी, धरन, काठका लम्बा और पतला शहतीर। यह छत पाटनेमें लगती है। २ कलिका, कली। ३ छन्दोविशेष, चौपैया। इसमें १५ मात्रा लगती हैं।

करीति (सं० पु०) महाभारतोक्त जनपदविशेष, एक बसती। (भारत, भीष्म)

करीना (हिं० पु०) १ छेनी, टांकी। इससे पत्थर गढ़ा जाता है। २ मसाला, केराना।

क़रीना (अ० पु०) १ नियम, तरीका। २ प्रथा, चाल। ३ क्रम, सिलसिला। ४ व्यवहार, क़ायदा। ५ नेचेका एक हिस्सा। यह वस्त्रसे आच्छादित रहता है। करीना फरशीके मुंहपर जमकर बैठता है।

करीन्द्र (सं० पु०) करिणां इन्द्रः, ६-तत्। १ करिश्रेष्ठ, बढ़िया हाथी। २ ऐरावत, इन्द्रका हाथी।

क़रीब (अ० क्रि० वि०) १ निकट, नज़दीक, पास। २ प्रायः, लगभग।

करीम (अ० पु०) १ ईश्वर। (वि०) २ करुणामय, मेहरबान्।

करीमखान्—१ एक पठान-दलपति। यह ई० अष्टादश शताब्दके शेषभाग चीतूसे मिल ग्वालियरका राज्य लूटने लगे। अन्तको सेंधियाने इन्हें पकड़ लिया था। किन्तु इन्होंने बहुतसा रुपया ले इन्हें छोड़ दिया। छूटनेपर यह अधिक प्रबल पड़े थे। देशके लोग करीमका नाम सुनते ही कांपने लगते। अनेक कष्टसे यह फिर इन्दोरमें पकड़े गये। कुछ दिन पीछे छूटनेपर इन्होंने अंगरेजोंके विरुद्ध अस्त्र उठाये थे। १८१८ ई०को करनेल आदमने इनके विपक्ष सैन्य भेजा। इन्होंने उस समय यशोवन्त रायका आश्रय लेना चाहा था। किन्तु १५ वीं फरवरीको इन्हें बाध्य हो मालकोमके निकट वश्यता माननी पड़ी। करीमखानको जीविका निर्वाहके लिये गोरखपुर जिलेमें बुरहियापार मिला था। इनके सन्तान १८५७ ई०के विद्रोह पर्यन्त उक्त स्थानका आय उपभोग करते रहे।

२ ईरानी जन्द जातिके एक सरदार। इन्होंने जन्दों और माफियोंकी फौज जुटा पारस्यसे अफगानोंको भगाया था। १७५९ से १७७९ ई०तक करीम खान्ने ईरान्में निष्कण्टक राज्य किया। १७७९ ई०को २री मार्चको ८० वत्सरके वयसपर यह मर गये।

करीमभाट (हिं० पु०) वन्यतृणविशेष, एक जङ्गली घास। यह पशुका खाद्य है।

करीर (सं० पु०-क्ली०) किरति विक्षिपति आवरणान्, कृ-ईरन्। कॄशॄपॄकटिपटिशौटिभ्य ईरन्। उण् ४।३०। १ वंशाङ्कुर, बांसका कला। यह कटु, तिक्त, अम्ल, कषाय, लघु, शीतल, रुचिकर और पित्त, रक्त, दाह तथा कृच्छ्रघ्न होता है। इसका पर्व निर्गुण है। (राजनिघण्टु) २ घट, घड़ा। ३ अङ्कुरमात्र, कोई अंखुवा।

"द्विर्माग-दंशस्त करीरमेव मां नियम्य किन्नासि फले ग्रहिष्यता।" (नैषध)

४ मरुभूमिजात उष्णप्रिय कण्टकवृक्ष विशेष, करील, कचड़ा। इसे हिन्दुस्थान तथा बङ्गालमें उंटकटारा, अरब एवं बम्बईमें कबर, सीरियामें कबार, तुरुष्कमें कबरिस, और पारस्यमें कबर या कुरक कहते हैं। (Capparis aphylla) संस्कृत पर्याय—क्रकर, ग्रन्थिल, क्रकच, निष्पत्रिका, करिर, गूढ़पत्र, करक और तीक्ष्णकण्टक है। यह वृक्ष भारतवर्षमें सचराचर उत्पन्न होता है। फल व्यवहारमें आया करता है। यह कटु, तिक्त, स्वेदजनक, उष्ण और

भेदक है। अर्श, कफ, वायु, आम, विषज शोथ और व्रणको करीर नाश करता है। त्वक् लगानेमें चलती है। मात्रा २ माशे है। (भावप्रकाश)

मखज़न-उल्-अदविया नामक हकीमी ग्रन्थके मतानुसार इसके मूलकी त्वक् ग्रहणीय है। यह कण्डुघ्न, कटु, परिष्कारक और पक्षाघात तथा सकल प्रकार वातरोगके लिये उपकारक है। इसका अर्क, कानमें डालनेसे कीड़ा मर जाता है।

ऐन्सली साहब दूषित व्रणका इसे महौषध बताते हैं।

यह घना और डालदार झाड़ है। प्रधानतः कंकरीली जगहमें करीर उपजता है। अरब, इजिप्त (मिस्र) और नूबियामें भी यह पाया जाता है। वसन्त ऋतुके आदिमें फूल और अप्रेल मास फल आते हैं। फल खाया जाता है। करीरका अचार भी लोग बना लेते हैं। इसमें पत्र नहीं लगते। डण्ठल हरा और फूल गुलाबी होता है। काष्ठ हलका पीला रहता और खुला रखनेसे भूरा निकल पड़ता है। इसमें चमक, कड़ाई और दानेदारी अच्छी होती है। परिमाण प्रत्येक घन-फुटमें कोई २६ सेर बैठता है। इससे छतकी छोटी कड़ियां, अरंगे और नावकी कोनियां तैयार करते हैं। यह तेलकी कलों और खेतीके औज़ारोंमें भी लगता है। करीलकी लकड़ी कड़वी रहने और दीमक न लगनेसे मूल्यवान् समझी जाती है। यह जलानेमें भी अच्छी रहती है। डालें हरी ही मसालकी तरह जला करती हैं।

कवितामें भी करीलका यथेष्ट उल्लेख है। मालती इसपर भ्रमरको जाते देख कुढ़ती और जलती है। पत्र न आनेपर कवि इसीके अदृष्टको बुरा बताते, वसन्तपर कोई दोष नहीं लगाते।

करीरक (सं० क्ली०) करीर एव स्वार्थे कन्। १ वंशाङ्कुर, बांसका अंखुवा। २ युद्ध, लड़ाई।

करीरकुण (सं० क्ली०) करीरस्य पाकः, करीर-कुणच्। (तस्य पाकमूले पिलादिकर्णादिभ्यः कुणब्जाहचौ। पा ५।२।२४।) १ करीरपाक, करीलकी तरकारी। २ करीरफल-काल, करीलके फलनेका समय।

करीरप्रस्थ (सं० पु०) नगरविशेष, एक शहर। कारीरिप्रस्थ भी एक पाठ है।

करीरफल (सं० क्ली०) करीरबीज, करीलका तुख़म्।

करीरा (सं० स्त्री०) करीर-टाप्। १ चीरिका, झींगुर। २ हस्तिदन्तमूल, हाथीके दांतकी जड़। ३ मनःशिला।

करीरिका (सं० स्त्री०) करीरमिव आकृतिर्यस्याः, करीर-ठन्-टाप् च। १ हस्तिदन्तमूल, हाथीके दांतकी जड़। २ झिल्ली, झींगुर।

करीरी (सं० स्त्री०) किरति, कॄ-ईरन् गौरादित्वात् ङीष्। १ हस्तिदन्तमूल, हाथीके दांतकी जड़। २ चीरिका, झींगुर।

करील (हिं० पु०) वृक्षविशेष, एक पेड़। करीर देखो।

करीष (सं० पु०-क्ली०) कीर्यते विक्षिप्यते, कॄ-ईषन्। (कॄतॄभ्यामीषन्। उण् ४।२६।) १ शुष्कगोमय, सूखा गोबर। २ पशुका पुरीषमात्र, गोबर। ३ वनभव गोमय, जङ्गली गोबर, बिनुआं कण्डा। इसका अग्नि अति उत्तम होता है। ४ पर्वतविशेष, एक पहाड़।

करीषक (सं० पु०) करीष एव स्वार्थे कन्। १ करीष। करीष देखो। २ जनपदविशेष, एक मुल्क। (भारत, भीष्म)

करीषगन्धि (सं० त्रि०) करीषस्य गन्ध इव गन्धो यस्य। शुष्क गोमयकी भांति गन्धयुक्त, सूखे गोबरकी तरह महकनेवाला।

करीषङ्कष (सं० त्रि०) गोमय झाड़नेवाला, जो गोबर उठाता हो।

करीषङ्कषा (सं० स्त्री०) करीषं कषति हिनस्ति, करीष-कष-खच्-मुम्। (सर्वकूलाभ्रकरीषेषु कषः। पा ३।२।४२।) वायु, हवा।

करीषाग्नि (सं० पु०) करीषस्थितो ऽग्निः। शुष्क-गोमयवह्नि, सूखे गोबरकी आग।

करिषी (सं० स्त्री०) करीषिन् स्त्रियां ङीप्। गोमयाधिष्ठात्री लक्ष्मी देवी।

"गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्" (श्रीसूक्त)

करीषी (सं० पु०) करीषः विद्यते यत्र, करीष-इनि। करीषयुक्त देश, सूखे गोबरका मुल्क।

करखी (हिं० क्रि० वि०) तिर्यक् दृष्टि द्वारा, तिरछी नज़रसे।

करुण (सं० पु०) करोति मनः आनुकूल्याय, कृ-उनन्। कृवृदारिभ्य उनन्। उण् ३।५३। १ स्वनामख्यात निम्बूक वृक्ष, किसी क़िस्मके नीबूका पेड़। (Citrus decumana) इसे हिन्दीमें महानीबू, चकोतरा, बातावी नीबू या सदाफल, बंगलामें बतोर या बातापी नीबू, सिन्धीमें बिजोरा, गुजरातीमें ग्रेपकोतरु, मराठीमें पपनस, मारवाड़ीमें पप्पा, तामिलमें बोम्बलिनस, तेलगुमें पाद-पन्दू, कनाड़ीमें चकोतराहन्नू, मलयमें बोम्बेलिमरुङ्ग, मिस्रीमें पूमपलेमूस, ब्रह्मीमें शङ्कतोनेस और सिंहली-में जमबूल कहते हैं। यह मलयद्वीपपुञ्ज, फ्रेण्डली और फिजीमें स्वभावतः उत्पन्न होता है। करुण जवद्वीपसे भारतमें आया है। उष्णप्रधान देशमें अधिकांश इसे लगाते हैं। भारत तथा ब्रह्ममें यह अधिक होता है। किन्तु दाक्षिणात्य तथा वङ्गदेशकी अपेक्षा आर्यावर्तमें यह कम मिलता है। बताविया से आने कारण ही इसे बतावी कहते हैं। इसका फल बहुत बड़ा रहता और तौलनेपर कभी कभी पांचसे दश सेरतक निकलता है। यह देखनेमें गोलाकार होता है। त्वक् चिकनी और पीली देख पड़ती है। गूदा सफेद या गुलाबी लगता है। गोंद किसी काम नहीं आता। यह वृक्ष सदा फला करता है। बम्बईके बाज़ारमें जो करुण दिसम्बर या जनवरी मास आता, वह सबसे अच्छा कहा जाता है।

राजवल्लभने इसके फलको कफ, वायु, आम तथा मेदोनाशक और पित्त-प्रकोपक बताया है।

२ शृङ्गारादि अष्टरसके अन्तर्गत तृतीय रस। साहित्यदर्पण इसका लक्षणादि इस प्रकार लिखता—बन्धुबान्धवादिके वियोगसे करुण रस उठता है। इसका कपोतवर्ण होता है। अधिष्ठात्री देवता यम हैं। करुणरसका स्थायिभाव शोक, आलम्बन-भाव शोच्य जन (जिसका वियोग पड़ गया हो) और उसके दाहादि-की अवस्था ही उद्दीपनभाव है। इसका अनुभाव देवनिन्दा, भूतलपर पतन, क्रन्दन, विवर्णता, ऊर्ध्व-श्वास, निर्वातस्थ प्रदीपकी भांति निर्जीववत् निश्वासकी रोक और प्रलाप है। करुण रसका व्यभिचार भाव वैराग्य, जड़ता और चिन्ता प्रभृति है। देवनिन्दाका उदाहरण नीचे देते हैं,—

"विपिने क जटानिबन्धनं तव चेदं क मनोहरं वपुः।
अनयो र्घटना विधेः स्फुटं ननु खड्गेन शिरीषकर्त्तनम्॥"
(साहित्यदर्पणध्वृत राघवविलास

सङ्गीतशास्त्रमें यह रागरागिनी करुणरसमें गेय है,—भैरव, भैरवी, रामकली, खट, गान्धार, जोगिया, विभास, कुकुभ, देवकरी, अलैया, विलावल, सिंदूरा, सिन्धु, मुलतानी, पूर्वी, टोड़ी, गौरी, केदारा, ईमन कल्याण, जयजयन्ती, हमीर, भूपाली, कान्हड़ा, खम्माच, झंझौटी, विहाग, बागेश्वरी, सूरत, शङ्करा, मोहिनी, मालकोष, बङ्गाली, मलार और ललित।

३ दया, मेहरबानी, दूसरेका दुःख दूर करनेकी इच्छा। ४ करुणाका विषय, मेहरबानीकी बात। "अनुरोदितीव करुणेन पत्रिणां विरुतेन॥" (माघ) ५ बुद्धदेव, किसी बुद्धदेवका नाम। ६ परमेश्वर। ७ प्राणियोंके अभयजनक परिव्राजक। ८ तीर्थविशेष। (कालिकापुराण) ९ फलितवृक्ष, मेवादार पेड़। १० मल्लिका वृक्ष, चमेली। ११ असुरविशेष। (त्रि०) १२ दयायुक्त, मेहरबान्। १३ शोकार्त्त, रञ्जीदा। (अ०) १४ शोकसे रो-रो कर। (क्ली०) १५ पावन कर्म, पकीज़ा काम।

करुणध्वनि (पु० सं०) करुणासूचकः ध्वनिः। दुःख वा शोकमें मानव मुखसे निर्गत शब्द, अफ़सोसकी आवाज़।

करुणमल्ली (सं० स्त्री०) करुणा करुणयोग्या मल्ली। नवमल्लिका, मोतिया। (Jasminum sambac) इसे हिन्दीमें मोतिया, बेला, वनमल्लिका या मोगरा, बंगलामें मल्लिक, पञ्जाबीमें चम्ब, मराठीमें मोगरी, मारवाड़ीमें मोगरा, गुजरातीमें मोगरो, तामिलमें मल्लिय्, तेलगुमें बोंडु मल्ले, कनाड़ीमें मल्लिगे, मलयमें

पुन मुल, ब्रह्मीमें मल्लि, सिंहलीमें पिचिमल, अरबीमें समन और फ़ारसीमें गुले सुफ़ेद कहते हैं।

करुणमल्ली एक सुगन्धिलता है; भारत, ब्रह्मदेश और सिंहलमें सर्वत्र २००० फीट ऊंचे स्थानमें उत्पन्न होती है। दोनों गोलार्धके उष्णप्रधान देशमें इसे लगाया करते हैं।

इसका पुष्प अति सुगन्धि होता है। भारतवर्षमें करुणमल्लीका तैल अधिक व्यवहारमें आता है। पुष्पको बांटकर स्तनपर लगानेसे दुग्ध बहुत उतरता है। नासूरपर पत्तीका पुलटिस चढ़ता है। पञ्जाबमें यह पागलपन, आंखकी कमज़ोरी और मुंहकी बीमारीपर चलती है।

पूर्वीय देशमें सुगन्धके कारण इसके पुष्पका बड़ा आदर है। अरबी, फारसी और संस्कृतके कवि प्रायः इसका उल्लेख किया करते हैं।

करुणविप्रलम्भ (सं० पु०) करुणयुक्तो विप्रलम्भः। शृङ्गार-रसका एक भेद। नायक-नायिकाके मध्य एकके परलोक जाने पर पुनर्वार मिलनकी आशासे जीवित व्यक्ति जिस प्रकार कष्टसे जीवन बिताता, वही करुणविप्रलम्भ कहाता है। जैसे—कादम्बरीके पुण्डरीक और महाश्वेता-वृत्तान्तमें पुनर्वार पुण्डरीकके लाभ विषयपर करुण रस ही पटकता है। किन्तु देववाणी सुननेपर पुण्डरीकसे मिलनेकी आशा शृङ्गाररसका उद्रेक है।

करुणवेदित्व (सं० क्ली०) करुणं दयां वेत्ति जानाति, विद्-णिनि भावे त्व। दयावान्का धर्म, मेहरबान्का फ़र्ज़।

करुणवेदी (सं० त्रि०) करुणं दयां वेत्ति परदुःखं अनुभवति, विद्-णिनि। दयावान्, मेहरबान्।

करुणा (सं० स्त्री०) करोति चित्तं परदुःखहरणाय, कृ-उनन्-टाप्। १ अपरके दुःखविनाशकी इच्छा, दया, तर्स। इसका संस्कृत पर्याय—कारुण्य, घृणा, कृपा, दया, अनुकम्पा, अनुक्रोश और शूक है। २ शोक, रञ्ज, अफ़सोस। ३ गङ्गाका एक नाम।
"कुटस्था करुणा कान्ता कूर्मयाना कलावती।" (काशीख० २९।४६)
४ पुलस्त्य मुनिकी कनिष्ठा कन्या। ५ कगवाच।

करुणाकर (सं० त्रि०) करुणाया आकारः, ६-तत्। अत्यन्त दयालु, निहायत मेहरबान्। (पु०) २ पद्मनाभके पिता।

करुणात्मक (सं० त्रि०) करुणः करुणारसः आत्मा यस्य, बहुव्री०। करुणरसविशिष्ट, रहमदिल, अफ़सोससे भरा हुवा।

करुणात्मा (सं० पु०) करुणो दयार्द्र आत्मा यस्य, बहुव्री०। दयावान्, मेहरबान्।

करुणादृष्टि (सं० स्त्री०) १ दयाकी दृष्टि, मेहरबानी। २ दृष्टि विशेष, एक नज़र। यह नृत्यकी एक दृष्टि है। इसमें ऊपरी पलक दबायीं और आंसू गिरा नाककी नोकपर नज़र लायी जाती है।

करुणानिदान (सं० त्रि०) करुणा निदीयते निखिलं दीयते येन, करुणा-नि-दा-ल्युट्। दयालु, मेहरबानी करनेवाला।

करुणानिधान, करुणानिदान देखो।

करुणानिधि (सं० त्रि०) करुणा निधीयतेऽत्र, करुणा-नि-धा-कि। कर्मण्यधिकरणे च। पा ३।३।९३। दयावान्, मेहरबान्।

करुणान्वित (सं० त्रि०) करुणाया अन्वितः, ३-तत्। करुणायुक्त, मेहरबान्।

करुणापर, करुणान्वित देखो।

करुणामय (सं० त्रि०) करुणाः प्राचुर्येण अस्त्यस्य, करुणा-मयट्। दयामय, मेहरबान्।

करुणामल्ली, करुणमल्ली देखो।

करुणायुक्त (सं० त्रि०) करुणया युक्तः, ३-तत्। दयावान्, मेहरबान्।

करुणारम्भ (सं० त्रि०) करुणः करुणरस आरम्भो यत्र, बहुव्री०। १ करुणारससे आरम्भ कर लिखित, अफ़सोससे शुरू कर लिखा हुवा। (पु०) २ करुणरसका आरम्भ, अफ़सोसका आग़ाज़।

करुणार्द्र (सं० पु०) करुणाया आर्द्रः, ३-तत्। अत्यन्त दयालु, रहमदिल।

करुणार्द्रचित्त (सं० पु०) करुणाया आर्द्रं चित्तं यस्य, बहुव्री०। दयालुहृदय, रहमदिल।

करुणावान् (सं० त्रि०) शोकार्त, रहमके लायक।

करुणाविप्रलम्भ, करुणविप्रलम्भ देखो।

करुणावृत्ति, करुणार्द्र देखो।

करुणावेदिता (सं० स्त्री०) करुणवेदित्व देखो।

करुणासागर (सं० पु०) करुणायां सागर इव, उपमि०। दयाका समुद्रस्वरूप, निहायत मेहरबान्।

करुणी (सं० पु०) करुणा अस्त्यस्य, करुणा-इनि। सुखादिभ्यश्च। पा ५।२।१३१। १ करुणायुक्त, दयावान्, मेहरबान्। २ शोकार्त, पुर-अफसोस। (स्त्री०) ग्रीष्मपुष्पी, गरमीमें फूलनेवाला एक पेड़। इसे कोङ्कणमें काकरखिकली कहते हैं। करुणीका संस्कृत पर्याय—ग्रीष्मपुष्पी, रक्तपुष्पी, चारिणी, राजप्रिया, राजपुष्पी, सूक्ष्मा और ब्रह्मचारिणी है। यह कटु, तिक्त, उष्ण और कफ, वायु, आध्मान (पेट फूलना), विषवमन तथा ऊर्ध्वश्वासनाशक होती है। (राजनिघण्टु)

करुत्याम (सं० पु०) तुर्वसुवंशीय दुष्मन्त राजाके एक पुत्र। (हरिवंश ३२ अ०)

करुना (हिं०) करुणा देखो।

करुन्धक (सं० पु०) सूरके पुत्र और वसुदेवके भ्राता।

करुभम (सं० पु०) तुर्वसुवंशीय त्रैसाणुके एक पुत्र। (हरिवंश ३२ अ०)

करुम (वै० पु०) अथर्ववेदोक्त पिशाच विशेष।

"ये शालाः परिनृत्यन्ति सायं गर्दभनादिनः।
कुसूला ये च कुक्षिलाः ककुभाः करुमाः स्रिमाः।
तानोषधे त्वं गन्धेन विषूचीनान् विनाशय॥" (अथर्व ८।६।१०)

करुर (हिं०) कटु देखो।

करुवा (हिं०) कटु देखो।

करुवा (हिं० पु०) वृक्षविशेष, एक पेड़। यह दारचीनीसे मिलता जुलता है। दाक्षिणात्यके उत्तर कनाड़ेमें करुवा उत्पन्न होता है। इसके सुगन्धि वल्कल तथा पत्रका तेल शिरःपीड़ादि रोगपर व्यवहार किया जाता है। फल दारचीनीकी अपेक्षा वृहत् आता और काली दारचीनी कहाता है।

करुवायी (हिं० स्त्री०) कटुता, तीखापन।

करुवार (हिं० पु०) १ नौदण्डविशेष, नावका एक डांड़। पत्तेका बांस अधिक लम्बा लगता है। बेपतवारकी नाव इसीसे चलायी जाती है। २ लोहेका एक वन्द। इसके नोकदार किनारे मुड़े रहते हैं। इससे काठ या पत्थर जोड़ा जाता है।

करू (हिं०) कटु देखो।

करू (सं० स्त्री०) कृ-ऊ। १ कर्तन, काट-छांट। २ कृत्त, कटा हुवा।

करूकर (वै० क्ली०) ग्रीवा तथा कशेरुकाका ग्रन्थि, गर्दन और रीढ़का जोड़।

करूलती (वै० त्रि०) नष्टदन्त, दंतटुटा।

करूला (हिं० पु०) १ कङ्कणविशेष, हाथका कड़ा। २ स्वर्णविशेष, एक सोना। इसमें तोले पीछे ४ रत्ती चांदी रहती है। ३ कुल्ला।

करूष (सं० पु०) कृ-ऊषन्। जनपदविशेष, एक मुल्क। दन्तवक्र इस देशके अधिपति थे। (भारत, सभा ४ अ०) वर्तमान शाहाबाद जिलेका ही नाम करूष है। रामायणमें इसका अवस्थान गङ्गातट पर लिखा है। पहले करूषमें वन अधिक था। ताड़का राक्षसी यहीं बसते रही।

करूषक (सं० पु०) १ वैवस्वत मनुके पुत्र। २ फलविशेष, फालसा।

करूषज (सं० पु०) करूषदेशे जायते, करूष-जन-ड। दन्तवक्र।

"ताविहाय पुनर्जातौ शिशुपालकरूषजौ।" (भारत, आदि)

करूषाधिपति (सं० पु०) करूषस्य तन्नामकजनपदस्य अधिपतिः, ६-तत्। १ करूष देशके राजा। २ दन्तवक्र।

करेंसी (अं० स्त्री० = Currency) १ प्रचार, रिवाज, चलन। २ प्रचलित मुद्रा, सिक्का, चलता रुपया, सरकारी नोट।

करेजा (हिं० पु०) यकृत्, कलेजा, दिल।

करेजी (हिं० स्त्री०) पशुकी यकृत्‌का मांस, जानवरके कलेजेका गोश्त। कद्दानोंकी तहमें जो सोंधी पपड़ी रहती, उसे जनता 'पत्थरकी करेजी' कहती है।

करेट (सं० पु०) करे कराङ्गुलिषु, अटति उत्पद्यते, करे-अट्-अच् अलुक्समा०। नख, नाखून।

करेटव्या (सं० पु०) करे अटं अटनं अवति, करे-

भट-ष्ये-ड-टाप् भलुकृषमा०। भनेच्छू पची, भनेस चिड़िया। इसका तेल गठियेको भकसीर दवा है।

करेटु (सं० पु०) के जले वायौ वा रेटति, क-रेट-कु। १ पचिविशेष, किसी किस्मका सारस। इसका संस्कृत पर्याय—कर्करेटु, करटु और कर्करादुक है।

करेटुक, करेटु देखो।

करेडुक (सं० पु०) १ करेटु पची, एक सारस। २ ककंट, केकड़ा।

करेणु (सं० पु०-स्त्री०) क-एणु। (कृञ्यायेणुः। उण् ३।१।) १ गज, हाथी। २ हस्तिनी, हथिनी। वैद्यक मतसे हस्तिनीका दुग्ध किञ्चित् कषाययुक्त, मधुररस, वृष्य, गुरु, स्निग्ध, स्थैर्यंकर, शीतल, चक्षुको हितकर और बलकारक होता है। ३ कर्णिकार वृक्ष, कनेरका पेड़। ४ महौषधिविशेष, एक बूटी। ५ सचीर गजाकार कन्दविशेष, एक दूधिया डला। इसके कन्दमें दूध बहुत होता है। आकार गजसे मिलता है। इसमें हस्तिकर्णपलाश-जैसे दो पत्र निकलते हैं। गुणमें यह सोमरसके तुल्य है। (सुश्रुत)

करेणक (सं० क्लो०) कर्णिकारका विषमय फल।

करेणुका (सं० स्त्री०) करेणु स्वार्थे कन्-टाप्। हस्तिनी, हथिनी।

करेणुपाल (सं० पु०) करेणुं पालयति रक्षति, करेणु-पाल-णिच्-अच्। हस्तिनी-पालक, हथिनीका महावत।

करेणुभू (सं० पु०) करेणौ करेणुविषये भवति हस्ति शास्त्रप्रवर्तनाय प्रभवति, करेणु-भू-क्विप्। १ पालकाप्य नामक मुनि। यही हस्तिशास्त्रके प्रवर्तक थे। (त्रि०) २ हस्तिनीसे उत्पन्न, हथिनीसे पैदा।

करेणुमती (सं० स्त्री०) नकुलकी पत्नी। यह चेदि-राजकी कन्या थीं। (भारत, आदि ८५ भ०)

करेणुवर्य (सं० पु०) सुविशाल वा बलवान् हस्ती, बड़ा या ताकतवर हाथी।

करेणुसुत (सं० पु०) १ पालकाप्य मुनि। २ गज-शावक, हाथीका बच्चा।

करेणू (सं० पु०-स्त्री०) क-एणू। १ गज, हाथी। २ हस्तिनी, हथिनी।

करेता (हिं० पु०) बला, बरियारा।

करेनर (सं० पु०) १ तुरुष्क नामक गन्ध द्रव्य, शिलारस, लोबान। २ मूषिक, चूहा।

करेन्दुक (सं० पु०) करेण रश्मिना इन्दुरिव कायति शोभते, कर-इन्दु-कै-क। भूतृण, गन्धतृण, चांदको तरह चमकनेवाली घास। गन्धतृण देखो।

करेपाक (हिं० स्त्री०) कृष्णनिम्ब, काली या मीठी नीम।

करेब (हिं० स्त्री०) वस्त्रविशेष, एक कपड़ा। यह रेशमसे बनती और काली तथा पतली रहती है। अङ्गरेजीमें इसे क्रेप (Crape) कहते हैं।

करेमू (हिं० पु०) कलम्बु, एक घास। यह जलमें उत्पन्न होता है। जल पर करेमू फैल पड़ता है। डण्ठल पीला और पतला रहता है। डण्ठलको गांठसे दो सुदीर्घ पत्र फूटते हैं। बालक डण्ठलको बाद्य रूपसे व्यवहारमें लाते हैं। करेमूका शाक भी बनता है। यह अहिफेनके विषका महौषध है। इसका रस निकालकर पिलानेसे अफीम उतर जाती है। कलम्बी देखो।

करेर (हिं० वि०) कठोर, कड़ा।

करेरुवा (हिं० पु०) लताविशेष, एक बेल। इसमें कण्टक रहते और पत्र निम्बूकके पत्रसे मिलते हैं। चैत्र-वैशाख मास यह फूलता है। इसके पटोलवत् फलमें बीज अधिक होते हैं। करेरुवा अति कटु लगता है। फलका शाक बनता है। लोगोंके विश्वा-सानुसार आर्द्रा नक्षत्रके प्रथम दिवस करेरुवा भक्षण करनेसे वत्सर पर्यन्त पिल्लुका नहीं होती। इसका पत्र क्षतस्थान पर प्रयोग किया जाता है।

करेल (हिं० पु०) १ मुद्गरविशेष। यह एक वृहत् मुद्गर है। इसे उभय करसे घुमाते हैं। परिमाणमें करेल दो मुद्गरसे कम नहीं पड़ता। पाददेश गोला-कार होनेसे इसे भूमिपर रख नहीं सकते। २ करेल भांजनेकी कसरत।

करेलनी (हिं० स्त्री०) एक फरुही। इससे तृणको एकत्र कर ढेर लगाया जाता है।

करेला (हिं० पु०) १ कारवेल, एक बेल। यह

लता क्षुद्र होती है। इसके पत्र नोकदार और पांच भागमें विभक्त रहते हैं। फल लम्बा तथा गुल्मी-जैसा आता और अपनी त्वक् पर छोटा-बड़ा दाना लाता है। करेलेकी तरकारी बहुत अच्छी होती है। यह कच्चे आमका कुचला और मसाला भर तेलमें पकाया जाता है। भली भांति भूंजा करेला कई दिन तक नहीं बिगड़ता। इसका छीलन भी तेलमें तलकर खाते हैं। करेलेका अचार बाज़ारमें बिका करता है। इसे ग्रीष्म और वर्षा ऋतुमें बोते हैं। ग्रीष्म ऋतुका करेला फाल्गुन मास क्यारियोंमें लगाया जाता है। इसकी लता भूमि पर फैल पड़ती और तीन-चार मास चलती है। फल पीला निकलता और कलौंजी बनानेमें लगता है। वर्षा ऋतुका करेला किसी पेड़ या लकड़ीके ठाट पर चढ़ाया जाता है। यह कई वर्ष तक फूला फला करता है। फल सूक्ष्म एवं भरा रहता है। जङ्गली करेलेका नाम करेली है।

इसका अङ्गरेजी वैज्ञानिक नाम मोमोर्डिका चार-नशिया (Momordica Charantia) है। इसे वंगलामें करला, उड़ियामें करेल, आसामीमें ककरल, पञ्जाबीमें करिला, सिन्धीमें करेलो, मराठीमें कारला, मारवाड़ीमें कारली, गुजरातीमें करेलु, तामिलमें पावक्काचेदि, तेलगुमें तेल्लकाकर, कनाड़ीमें कागलकाइ, मलयमें कय्यक, ब्रह्मीमें केघिनगाखिन, सिंहलीमें करविल और अरबीमें क़िसाउलबरी कहते हैं। यह समग्र भारतमें लगाया और मलय, चीन तथा अफ्रीकामें भी पाया जाता है। करेला नाना प्रकारका होता है। इसे फरवरी-मार्च मास उत्तम भूमिमें बोना चाहिये। क्यारियों और उनमें बोये जानेवाले बीजोंके बीच दो-दो फीटका अन्तर रहता है। पहले इसे प्रति सप्ताह दो बार सींचते हैं। लता फैल पड़ने पर सप्ताहमें एक ही बार पानी देना पड़ता है। १८७७-७८ ई०की दुर्भिक्षके समय खान्देश ज़िलेके लोगोंने करेलेकी पत्तियां चबा जीवन धारण किया था।

२ हारकी गुटिका। यह दीर्घ रहता और मालामें बड़ी गुटिका या कोड़ेदार मुद्राके मध्य पड़ता है। ३ अग्निक्रीड़ाविशेष, एक आतशबाज़ी। कारवेल्ल देखो।

करेली (हिं० स्त्री०) क्षुद्र कारवेल्ल, छोटा करेला। इसका फल अतिक्षुद्र और कटु होता है।

करेवर (सं० पु०) कीर्यते क्षिप्यते पाषाणः कपिभिरिति यावत् करस्तस्मिन् व्रियते उत्पद्यते, करे-वृ-अच्। सिल्हक, लोबान्।

करैत (हिं० पु०) सर्पविशेष, एक सांप। यह काला और ज़हरीला होता है।

करैल (हिं० स्त्री०) १ मृत्तिकाविशेष, कचिला मट्टी। यह काली होती है। ग्रीष्म ऋतुमें तड़ागका जल सूखने पर करैल निकलती है। यह अपनी कठोरताके लिये प्रसिद्ध है। इसकी दीवार बहुत मज़बूत बनती है। पानीमें घोलनेसे करैल लसलसानेमें लगती है। यह शिर मलनेके भी काम आती है। कुम्हार इसे चाक पर चढ़ा खिलौने वगैरह तैयार करते हैं। २ भूमिविशेष, एक ज़मीन्। इसकी मिट्टी काली और चिकनी रहती है। यह भूमि मालव देशमें अधिक देख पड़ती है। (पु०) ३ करीर, बांसका अंखुवा।

करैला (हिं० पु०) कारवेल्ल, करेला।

करैली (हिं० स्त्री०) क्षुद्र कारवेल्ल, छोटा करेला।

करैलो (हिं० स्त्री०) कचिला मट्टी।

करोट (सं० पु०) के मस्तके रोटते दीप्यते, क-रुट्-अच्। शिरोस्थि, मत्थेकी हड्डी, खोपड़ा। (Cranium)

करोट (हिं० स्त्री०) करवट, दाहने या बायें हाथके बल लेटनेकी हालत।

करोटक (सं० पु०) सर्पविशेष, एक सांप।

करोटन (अं० पु०=Croton) वृक्ष जातिविशेष, पौदेकी एक क़िस्म। यह गुल्मवत् (झाड़दार) होता है। त्वक् आर्द्र और रस कटु दुग्धवत् निकलता है। किसी किसी करोटनमें कण्टक भी रहते हैं। यह वृक्ष अनेक प्रकारके देखे जाते हैं। प्रत्येक करोटनमें मञ्जरी आती है। फलमें बीज रहते हैं। परण्डादि इसी श्रेणीके वृक्ष हैं। करोटनका तैल और अर्क औषधमें व्यवहृत होता है।

करोटि (सं॰ स्त्री॰) क-रुट्-इन्। शिरोस्थि, खोपड़ी। कपाल देखो।

करोटिका, करोटि देखो।

करोटी (सं॰ स्त्री॰) करोट-गौरादित्वात् ङीष्। शिरोस्थि, खोपड़ी।

करोड़ (हिं॰ वि॰) एक कोटी, एक शत लक्ष, सौ लाख, १०००००००।

करोड़खुख (हिं॰ वि॰) मिथ्यावादी, झूठा, डींगिया, डफोलशङ्ख।

करोड़पती (हिं॰ वि॰) कोटि कोटि रुपयेका अधीश, करोड़ों रुपये रखनेवाला।

करोड़ी (हिं॰ पु॰) टकसाधीश, खज़ाञ्ची, रोकड़िया।

करोत (हिं॰ पु॰) करपत्र, आरा।

करोत्कर (सं॰ पु॰) कराणां उत्करः समूहः। १ कर-समूह, किरणोंका ढेर। २ गुरुकर, भारी महसूल।

करोत्पल (सं॰ क्ली॰) करपङ्कज, कंवल-जैसा हाथ।

करोदक (सं॰क्ली॰) हस्तधृत जल, हाथमें रखा या पड़ा हुवा पानी।

करोदना, करोना देखो।

करोद्‌ञ्जन (सं॰ पु॰) कृष्णसर्षप, काला सरसों।

करोध (हिं॰) क्रोध देखो।

करोना (हिं॰ क्रि॰) किसी पैनी चीज़से रगड़ना, खुरचना।

करोनी (हिं॰ स्त्री॰) १ खुरचन, करोचन। पक्व दुग्ध वा दधिका जो अंश पात्रमें चिपका रहनेसे खुर-चकर उतारा जाता, वही करोनी कहाता है। प्रवा-दानुसार करोनी या करोचन खानेसे बालकोंकी बुद्धि मन्द पड़ जाती है। इसीसे स्त्रियां प्रायः अपने बालकोंको करोचन नहीं खिलातीं। २ यन्त्रविशेष, एक औज़ार। यह पित्तल वा लौहसे बनती और पक्व दुग्ध वा दधिके पात्रमें चिपके हुये अंशको खुरचनेमें चलती है।

करोर (हिं॰ वि॰) कोटि, करोड़।

करोला (हिं॰ पु॰) १ पात्रविशेष, गड़वा। २ भक्षुक, रोक।

करौंछा (हिं॰ वि॰) कृष्ण, श्याम, सांवला।

करौंजी (हिं॰ स्त्री॰) १ कृष्णजीरक, काला जीरा।

करौंट (हिं॰ स्त्री॰) करवट, दाहने या बायें हाथके बल लेटनेकी हालत। बायीं करौंट लेटनेसे खाना जल्द हज़म होता है।

करौंदा (हिं॰ पु॰) १ करमर्दवृक्ष, एक कंटीला झाड़। इसके पत्र क्षुद्र रहते और निम्बूकके पत्रसे मिलते हैं। पुष्प यूथिकाकी भांति श्वेत एवं सुगन्धि लगते और देखनेमें बहुत सुन्दर जंचते हैं। वर्षा ऋतुमें फल आते और अम्ल होनेसे चटनी तथा अचार बनानेके काममें लाये जाते। करौंदेसे लाक्षा निक-लते और फलको रङ्गमें डालते हैं। शाखा छीलनेसे लाक्षा प्राप्त होता है। दाक्षिणात्यमें करौंदेके काष्ठसे केशमार्जनी और खलाका बनायी जाती है। करम देखो।

२ गुल्मविशेष, एक झाड़। यह कण्टकाकीर्ण रहता और वनमें उपजता है। फल क्षुद्र एवं मिष्ट होता है। ३ कर्णरोगविशेष, कानकी एक बीमारी। कर्णके निकट जो गिलटी निकल आती, वही करौंदा कहलाती है।

करौंदिया (हिं॰ वि॰) कृष्ण-रक्तवर्णविशिष्ट, करौं-देका रङ्ग रखनेवाला। (पु॰) २ वर्णविशेष, एक रङ्ग। यह वर्ण रक्त रहता, किन्तु उसमें नीलताका कुछ अंश झलकता है। यह अब्बासी रङ्गकी तरह एक पाव शहाबके फल, आध छटांक अमचूर और आठ माशे नील मिलानेसे तैयार होता है।

करौत (हिं॰ पु॰) १ करपत्र, आरा। (स्त्री॰) २ उढ़री औरत।

करौता (हिं॰ पु॰) १ करौत, आरा। २ करैल, कचिला मट्टी। ३ क़राबा, बड़ी शीशी। (स्त्री॰) ४ उढ़री औरत।

करौती (हिं॰ स्त्री॰) १ क्षुद्र करपत्र, आरी। २ क़राबा, मंझोली शीशी। ३ शीशेकी भट्ठी।

करौना (हिं॰ पु॰) यन्त्रविशेष, एक औज़ार। यह एक छेनी या क़लम है। कसेरे इससे पात्रों पर कारुकार्य बनाते हैं।

करौला (हिं॰ पु॰) हांकेवाला आदमी, जो शख्स शिकारको हका भगा उठाता हो।

करौली (हिं॰ स्त्री॰) खड्ग, तलवार। यह सीधी रहती और भोंकनेमें चलती है।

करौली—१ राजपूतानेका एक देशीय राज्य। यह अक्षा॰ २६° ३´ एवं २६° ४९´ उ॰ और देशा॰ ७६° ३५´ तथा ७७° २६´ पू॰के मध्य अवस्थित है। यहां भरतपुर और करौली एजेन्सीका तत्त्वावधान चलता है। इसके उत्तर एवं उत्तरपूर्व भरतपुर तथा धवलपुर, दक्षिणपश्चिम जयपुर और दक्षिण-पूर्व चम्बल नदी है। चम्बल नदी ही इसे ग्वालियरसे पृथक् करती है। भूमिका परिमाण १२०८ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः १५ लाख है।

करौली राज्य उच्च, निम्न और पर्वतमय है। उत्तर और गिरिमाला सीमाके प्राचीररूपसे मस्तक उठाये खड़ी है। गिरिका शृङ्ग: उच्चतामें १४०० फीटसे अधिक नहीं। यहां चम्बल नदी ही प्रधान है। इस नदीसे पांच शाखा निकल करौलीमें बही हैं। नाम पञ्चनद है। पञ्चनद उत्तरमुखी हो वाणगङ्गासे मिल गया है। करौली नगरके दक्षिण-पश्चिम कालिन्नर और जिरौते नामसे दो क्षुद्र नदी बहती हैं। इन दोनों नदीमें वर्षाकाल भिन्न अपर समय अतिसामान्य जल रहता है। यहां पर्वतोंके कुण्डोंका जल उष्णप्रधान और अस्वास्थ्यकर है।

पर्वतमें प्रधानतः दो प्रकारका प्रस्तर है—एक विन्ध्य और अपर मणिप्रस्तर। जहां मणिप्रस्तर रहता, उसीको चारो ओर अधिक परिमाणसे विन्ध्य भी देख पड़ता है। स्थानीय चूनेका पत्थर नीलाभ, कपिल अथवा हरिद्वर्णविशिष्ट होता है। बढ़िया बिल्लौरी पत्थर भी पाया जाता है। ताजमहलका प्रायः अनेकांश करौलीके पत्थरसे ही बना है। यहांका एक पत्थर अनेक स्थानमें चूनेके लिये फूंका जाता है। करौलीके अधिकांश ग्राम प्रस्तरनिर्मित हैं। यहांसे उत्तरपूर्व पर्वतपर लौह-खनि निकली है।

जीवजन्तु—चम्बल नदीके निकट वनमें सिंह, भल्लूक, हरिण, सांभर, और नीलगाय बहुत हैं। नगरके पास शशक, उद्बिड़ाल, चक्रवाक, कुक्कुट, एवं जलाशयादिमें बक, हंस, कारण्डव प्रभृति नानाप्रकार पक्षी देख पड़ते हैं। मत्स्यादि भी बहुत हैं। करौलीके पश्चिमांशमें विस्तर सर्प, कुम्भीर प्रभृति सरीसृप रहते हैं।

उद्भिज्ज—करौलीको उच्च गिरिमालामें बड़ा कोयी वृक्ष नहीं। चम्बलनदीके ऊर्ध्वभागमें धातकी, पलाश, खदिर, कार्पास, शाल, गर्जन, और निम्बवृक्ष होता है। यहां कृषिमें यव, गेहूं, चना, तम्बाकू, धान्य, ज्वार, बाजरा, इक्षु और सनकी उत्पत्ति है। स्थानीय जलाशय, कुण्ड और चम्बल नदीके तरङ्गसे कृषिकार्य चलता है।

वाणिज्य—यहां वस्त्र, लवण, इक्षु, तुला, महिष एवं वृष मंगाया और धान्य, कार्पास तथा छाग बाहर भेजा जाता है।

जलवायु—स्थानीय जलवायु अधिक मन्द नहीं। ज्वर, अतिसार और वातरोग लग जाता है। किन्तु दूसरी बीमारी इस राज्यमें नहीं होती।

इतिहास—मुकजीकी कारिकाके अनुसार करौलीके प्रथम राजा धर्मपाल थे। नीचे उक्त कारिका दी जाती है—

मुकजीकी कारिका।	बयानभाटका विवरण।	समय।
धर्म्मपाल		
सिंहपाल		
जगपाल		
नरपालदेव		
संग्रामपाल		
कुण्डपाल		
सोमपाल		
पोषपाल		
बिरामपाल		
ज्येष्ठपाल		
विजयपाल	विजयपाल	१०३० ई०।
तिहुनपाल	तिहुनपाल	१०६० ,,
धर्म्मपाल	क्षितिपाल	१०९० ,,
कुमार (कुंवर) पाल	धर्म्मपाल	११२० ,,
अजयपाल	कुंवरपाल	११५० ,,
हरिपाल	अजयपाल	११८० ,,
सोहपाल	हरिपाल	११९६ ,,
अनङ्गपाल	सोहनपाल	१२२० ,,

मुकलोकी तालिका।	समय।
पृथ्वीपाल	१२४२ ,,
राज्ञापाल	१२६४ ,,
त्रिलोकपाल	१२८६ ,,
विपलपाल	१३०८ ,,
असन्तपाल	१३३० ,,
युगलपाल	१३५२ ,,
अर्जुनपाल (१म)	१३७४ ,,
विक्रमजित्पाल	१३९६ ,,
अभयचांदपाल	१४१८ ,,
पृथ्वीराजपाल	१४४० ,,
चन्द्रसेनपाल	१४६२ ,,
भारतीचंद	१४८४ ,,
गोपालदास	१५०६ ,,
द्वारकादास	१५२८ ,,
मुकुन्ददास	१५५० ,,
युगपाल	१५८२ ,,
तुलसीपाल	१५९४ ,,
धर्मपाल (२य)	१६१६ ,,
रतनपाल	१६३८ ,,
आर्तिपाल	१६६० ,,
अजयपाल (२य)	१६८२ ,,
यादिपाल	१७०४ ,,
मुज्ञाधरपाल	१७२६ ,,
कुंवरपाल (२य)	१७४८ ,,
गोपीपाल	१७७० ,,
माणिकपाल	१७९२ ,,
अमूल्यपाल	१८१४ ,,
हरिपाल (२य)	१८३६ ,,
मधुपाल	१८५६ ,,
अर्जुनपाल	१८७९ ,,

करौलीके राजा अर्जुनपाल अपनेको कृष्णके वंशधर और यदुवंशीय बताते थे। पहले यह वंश वृन्दावनके निकट व्रजधाममें वास करता था। किसी समय बरसानेमें भी इसका राजत्व रहा। १०५२ ई०को मुसलमानोंने यह स्थान अधिकार किया था। उस समयसे इस वंशने करौलीमें आ अपना राज्य जमाया। १४५४ ई०को मालवपति महमूद खिलजीने करौली आक्रमण किया था। अकबर बादशाहने मालव-जयके पीछे इस राज्यको दिल्लीमें मिला लिया। मुग-लोंके गौरवका रवि जब डूब गया, तब महाराष्ट्रोंने इस स्थानको अधिकार कर २५०००) रु० वार्षिक कर लगा दिया। १८१० ई०को पेशवाने करौलीका उपस्वत्व अंगरेजोंको सौंपा था। अंगरेजोंने करौ-लीके राजासे यह बन्दोबस्त बांधा—विपद् पड़नेसे करौलीके राजा सैन्यसंग्रह द्वारा अंगरेजोंको यथासाध्य साहाय्य देंगे। फिर करौलीका राज्य अंगरेजोंके आश्रित हुवा।

१८५२ ई०को महाराज नरसिंहने इहलोक छोड़ा था। उनके पुत्रादि न रहनेसे करौलीको अंगरेजी राज्यमें मिलानेकी बात चली। किन्तु अनेक कल्प-नाके पीछे राजाके आत्मीय मदनपालको राज्यका सिंहासन सौंपा गया। मदनपालने १८५७ ई०को विद्रोहके समय कोटाके विद्रोहियोंके विपक्ष सैन्य भेज अंगरेजोंको यथेष्ट साहाय्य दिया था। इसीसे अंगरेजोंने उनको जि, सी, एस, आईके उपाधिसे विभूषित किया। १५के स्थानमें १७ तोपोंकी सलामी भी हो गयी थी। १८६७ ई०को मदनपालका मृत्यु होनेपर दो राजावोंके पीछे १८७९ ई०में अर्जुन-पालको करौलीका सिंहासन मिला।

करौली राज्यके महसूलसे कितना ही कर दिया जाता है। यहां रीतिके अनुसार पुलिस नहीं। राजाके सिपाही ही पुलिसका काम करते हैं। करौली-में १६० सवार, १७७० पैदल, ३२ गोलन्दाज और ४० तोपें हैं। सिपाही निम्नलिखित १२ दुर्गोंमें रहते हैं— करौली नगर, ऊंटगढ़, मन्द्रेल, नारोली, सपोतरा, दौलतपुर, थाली, जखूरा, निन्दा, खुदा, उन्द और खोदाई। करौलीको टकसाल अलग है। उसमें चांदीका रुपया बनता है।

२ करौली राज्यका प्रधान नगर। यह अक्षा० २६° ३०´ उ० और देशा० ७७° ५´ पू०पर मथुरासे ३५ कोस दूर अवस्थित है। किसी किसीके मता-नुसार अर्जुनदेवके प्रतिष्ठित कल्याणजीवाले मन्दिरसे ही इस नगरका नाम करौली पड़ा। १३४८ ई०को अर्जुनदेवने यह नगर बसाया था। किसी समय

बढ़ते भी पार्वतीय मीना जातिके उत्पातसे इसकी समृद्धि मिट गयी। १५०६ ई०को राजा गोपालदासके शासनकाल इस नगरने पूर्वश्री पायी थी। उसी समय यहां बहु सुरम्य हर्म्य बने। नगर प्राय: एक कोस है। इसकी चारो ओर विल्लौरी पत्थरका प्राचीर खड़ा है। नगरमें घुसनेको ६ सिंहद्वार और ११ गुप्तद्वार हैं। करौलीके मध्य गोपालदासके समयका एक सुबृहत् राजप्रासाद बना है। प्रासादकी चारो ओर अत्युच्च प्राचीर है। सिंहद्वार दो हैं। प्रासादके मध्य राजमहल और दीवान-आम नामक गृह देखने योग्य है। इन दोनों गृहोंका चित्र विचित्र कारुकार्य और शिल्पनैपुण्य देखनेसे निर्माणकारियोंकी यथेष्ट प्रशंसा करना पड़ती है। यहां शिकारगञ्ज, शिकारमहल और आममहल नामक तीन मनोरम उद्यान बने हैं।

कर्क (सं० पु०) कृ-क। कृदाधारार्चिकलिभ्यः कः। उण् ३।४०। १ श्वेत अश्व, सफ़ेद घोड़ा। २ कुलीर, केकड़ा। इसका शरीर वल्कलसदृश शङ्खास्थिसे आच्छादित रहता है। पाद दश होते हैं। उनमें अगला जोड़ा चुङ्गल बन जाता है। ३ दर्पण, आयीना। ४ घट, घड़ा। ५ कर्कट राशि। पुनर्वसुके अन्तिम चरण, पुष्या और अश्लेषा नक्षत्रपर यह राशि रहता है। ६ अग्नि, आग। ७ तिल। ८ सौन्दर्य, खूबसूरती। ९ कण्टक, कांटा। १० कर्कटवृक्ष, ककड़ासींगी। ११ कङ्कर, किसी क़िस्मका पत्थर। १२ वदरी वृक्ष, बेरका पेड़, बेरी। १३ बिल्ववृक्ष, बेलका पेड़। १४ गन्धक। १५ काक, कौवा। १६ कङ्कपक्षी, एक चिड़िया। १७ मानभेद, एक तौल। १८ वृक्षविशेष, एक पेड़। १९ कात्यायनश्रौतसूत्रके एक भाष्यकार। (त्रि०) २० शुभ्रवर्ण, सफ़ेद। २१ श्रेष्ठ, बड़ा। २२ उत्तम, अच्छा।

कर्क—राष्ट्रकूटाधिपति गोविन्दराजके पुत्र। खोदित शिलालेखके अनुसार यही प्रथम कर्क रहे। इनके दो पुत्र थे—इन्द्रराज और कृष्णराज। कर्कके मरनेपर राष्ट्रकूटराज्य दो भागमें बंट गया। ६८५ ई०को कर्क राज्य करते थे। राष्ट्रकूट देखो।

राष्ट्रकूट-वंशीय २य कर्क—गुजरातराज ३य इन्द्रके पुत्र रहे। उनका अपर नाम सुवर्णवर्ष था। वह गुजरातमें राजत्व चलाते थे। २य ध्रुवराज उनके पुत्र रहे। वरदा और अपर स्थानके ताम्रशासन और शिलालेखमें उनका समय ७३४ और ७४९ शक निर्दिष्ट है। उक्त उभय राष्ट्रकूटराज प्रबल पराक्रान्त थे। इस वंशमें एक ३य कर्क भी रहे। उनका अपर नाम अमोघवर्ष वा वल्लभनरेन्द्र था। पिता ४र्थ कृष्णराज रहे। समय ८७२-७३ ई० बताया जाता है।

कर्क उपाध्याय—कात्यायनश्रौतसूत्र और पारस्करगृह्यसूत्रके भाष्यकार। सायणाचार्यसे पहले यह विद्यमान रहे। सायणने अपने वेदभाष्यमें कर्कका मत उद्धृत किया है।

कर्कखण्ड (सं० पु०) कर्कः खण्डः भूमिभागो यत्र, बहुव्री०। जनपदविशेष, एक मुल्क। (भारत, वन २५३-७८)

कर्कचिर्भिटिका, कर्कचिर्भिटी देखो।

कर्कचिर्भिटी (सं० स्त्री०) कर्कवर्णा शुक्ला चिर्भिटी, मध्यपदलो०। १ चिर्भिटी, छोटी ककड़ी। २ कर्कटी भेद, किसी क़िस्मकी ककड़ी।

कर्कट (सं० पु०) कर्क-अटन्। १ वृक्षविशेष, एक पेड़। इसका संस्कृत पर्याय—कर्क, क्षुद्रधात्री, क्षुद्रामलक और कर्कफल है। फल छोटे आंवलेके बराबर होता है। यह रूक्ष, कषाय, अतिदीपन, कफपित्तकर, ग्राही, चक्षुष्य, लघु और शीतल है। (राजनिघण्टु) २ जलजन्तुविशेष, केकड़ा। इसका संस्कृत पर्याय—कर्कटक, कुलीर, कुलीरक, संदंशक, पङ्कवास और तिर्यक्गामी है। इसको बंगलामें कांकड़ा, मराठीमें दरजाका केकड़ा, तामिलमें नण्डलनांडु, तेलगुमें समुद्रपु, मलयमें कपितिङ्क, फारसीमें पञ्चपा, अरबीमें खिरचिङ्ग, लाटिनमें कानसर (Cancer) और अंगरेजीमें क्राब (Crab) कहते हैं। युरोपीय प्राणितत्वविदोंने कर्कट जातिको दृढ़ावरणविशिष्ट दशपादी जीवश्रेणी (Crustaceans of the order Decapoda)के मध्य माना है।

इसके वक्ष:स्थलनि:सृत पांच जोड़े प्रत्यङ्ग होते हैं। इसीसे फारसीमें इसे 'पञ्चपा' अर्थात् पञ्चपद-

विशिष्ट कहा है। वक्षदेशके प्रत्येक पार्श्वमें श्वासेन्द्रिय वेष्टित है।

कर्कट पृथिवीके नाना स्थानमें रहता है। फिर यह कयी प्रकारका है। समुद्रमें रहनेवाला कर्कट स्वभावतः बहुत बड़ा होता है। किन्तु जो नदीमें वास करता, वह सामुद्रिक कर्कटको अपेक्षा क्षुद्र पड़ता है। फिर जलाशयमें रहनेवाला नदीके कर्कटसे भी छोटा निकलता है। सकल प्रकार कर्कटका पृष्ठावरण देखनेमें समान नहीं लगता। देशभेद और जलवायुके अवस्थाभेदसे नाना स्थानपर कयी आकारका कर्कट होता है। यह अण्डज जीव है। प्रथमावस्था पर मातृवक्षमें कर्कट अति क्षुद्र डिम्बाकार रहता है। समय आनेसे डिम्ब फूटनेपर यह निकल पड़ता है। उस अवस्थामें इसको किसी प्रकारका कीड़ा समझनेसे भ्रम उत्पन्न होता है। यह डिम्बसे निकलते ही जलमें तैरने लगता है। उस समय इसको अनेक विपद् झेलना पड़ता है। जलचर जीव अपना आहार समझ सद्योजात कर्कट पकड़कर खा जाते हैं। यह जितना ही बढ़ता, उतना ही इसका रूप भी बदलता है। प्रथमावस्थासे पांच प्रकार रूप बदलनेपर प्रकृत कर्कट रूप देख पड़ता है।

यह समुद्रके अतल सलिल, जलके तट अथवा सलिल निकटस्थ पर्वतके गर्तमें रहता है। फिर उस वनमें भी कर्कट गर्त बना वास करता, जहां समुद्र अथवा नदीका जल समय-समय पहुंचता है। दा-एक जातिको छोड़ सकल प्रकार कर्कट पद द्वारा तैर नहीं सकता, वरं स्थलपर घूमा करता है।

इसके बराबर झगड़ालू और भुक्खड़ जलचर जीव दूसरा नहीं होता। बहुत कर्कट एकत्र होते ही युद्ध चल पड़ता है। बलवान् विजय पाता और अतिक्षीण मारा जाता है। शीतकालको यह गभीर जलमें रहता, फिर ग्रीष्म लगनेपर तटके निकट आ पहुंचता है। पृथिवीका सकल प्रकार कर्कट मानवजातिके खाने लायक होता है। राजनिघण्टुके मतसे यह मलमूत्रपरिष्कारक, भग्नसन्धानकारी (भङ्गस्थानको जोड़ सकनेवाला) और वायुपित्तनाशक है। कृष्णकर्कट अर्थात् काला केकड़ा बलकारक, ईषत् उष्ण और वायुनाशक होता है।

३ कङ्कपक्षी, करकरा, एक चिड़िया। ४ पद्ममूल, भसीड़, कंवलकी मोटी जड़। ५ तुम्बी, लौकी। ६ मेषादि द्वादश राशिमें चतुर्थ राशि। यह राशि पुनर्वसु नक्षत्रके शेष पादसे पुष्या और अश्लेषा नक्षत्र तक रहता है। इसके देवता कुलीराकृति हैं। उनका पृष्ठदेश उन्नत होता है। वह श्वेतवर्ण, कफप्रकृति, स्निग्ध, जलचर, विप्रवर्ण, उत्तर दिक्पाल, बहुस्त्रीसङ्ग और बहु सन्तानशाली हैं। कर्कट राशिमें जन्म लेनेसे मनुष्य कपटचित्त, मृदुभाषी, मन्त्रणाकुशल, प्रवासी और अरूपी निकलता है। फिर जन्मकालीन चन्द्र इस राशिमें रहनेसे मानव नृत्यगीतादि बहु कलाभिज्ञ, निर्मलवृत्ति, कृश, सुगन्धप्रिय, जलकेलिप्रिय, धनवान्, बुद्धिमान् और दाता होता है। जो कर्कट लग्नमें जन्म ग्रहण करता, वह भोगी, सर्वजनप्रिय, मिष्टान्नपानभोजी और आत्मीयप्रिय रहता है।

७ सर्पविशेष, एक सांप। ८ कलश, घड़ा। ९ कीलक, कील। १० कण्टक, कांटा। ११ रोगविशेष, एक बीमारी (Cancer)। यह अर्बुदक्षत-रोग असाध्य होता है। १२ तुलादण्डका आभुग्न प्रान्त, तराजूकी डण्डीका टेढ़ा सिरा। इसीमें पलड़ेकी रस्सी बंधती है। १३ मण्डलकी जीवा, दायरेका निम्न कुतर। १४ शाल्मलीवृक्ष, सेमरका पेड़। १५ बिल्ववृक्ष, बेलका पेड़। १६ कर्कटशृङ्ग, ककड़ासींगी। १७ सड़ंसा। १८ नृत्यहस्तकविशेष, नाचकी एक क्रिया। इसमें हस्तद्वयकी अङ्गुलि बाह्य एवं अभ्यन्तर रूपसे मिला चटकायी जाती हैं। यह आलस्यके भावको बताता है।

कर्कटक (सं० पु०-क्ली०) कर्कट एव स्वार्थे कन्। १ कुलीर, केकड़ा। २ कर्कटराशि। ३ वृक्षविशेष, एक पेड़। ४ काण्ड भग्न नामक अस्थिभङ्गविशेष, हड्डी टूटनेकी बीमारी। ५ विषविशेष, एक ज़हर। यह त्रयोदशविध स्थावरकन्द विषमें अन्यतम है। ६ कीलक, कीला। यह केकड़ेके पञ्जेकी भांति

टेढ़ा रहता है। ७ इक्षुभेद, किसी किस्मकी ऊख। ८ इक्षु, ऊख। ९ काष्ठामलक, जङ्गली आँवला। १० सन्निपातज्वर विशेष, एक बुखार। यह मध्यहीन-प्रवृद्ध वातादिसे उत्पन्न होता है। इसमें व्यथा, वेपथु, तृष्णा, दाह, गौरव, अग्निमान्द्य प्रभृति रोग लग जाते हैं। फिर अन्तर्दाह और वाक्यनिरोध भी हुवा करता है। (भावप्रकाश) ११ कर्कटशृङ्ग, ककड़ासींगी।

कर्कटकरज्जु (सं० पु०) रज्जुविशेष, एक रस्सी। इसमें केकड़ेके पञ्जे-जैसी एक कील लगी रहती है।

कर्कटकास्थि (सं० क्ली०) कुलीरकास्थि, केकड़ेकी खोल।

कर्कटकी (सं० स्त्री०) १ कर्कटशृङ्गी, ककड़ासींगी। २ कर्कटस्त्री, मादा केकड़ा।

कर्कटक्रान्ति (सं० स्त्री०) निरक्षरेखासे साढ़े तेरह कोस उत्तरस्थित अक्ष-रेखा, खत्त-सरतान् (Tropic of cancer)।

कर्कटचरण (सं० पु०) कुलीरकपाद, केकड़ेका पैर।

कर्कटच्छदा (सं० स्त्री०) १ पीतघोषा, पीले फूलकी तरोयी।

कर्कटवल्ली (सं० स्त्री०) १ गजपिप्पली, बड़ी पीपल। २ शुकशिम्बी, खजोहरा। ३ अपामार्ग, लटजीरा।

कर्कटशृङ्गिका (सं० स्त्री०) कर्कटतुल्यं शृङ्गमस्याः, कर्कटशृङ्ग स्वार्थे कन्-टाप् इत्वम्। कर्कटशृङ्गी, ककड़ासींगी।

कर्कटशृङ्गी (सं० स्त्री०) कर्कटस्य शृङ्गमिव शृङ्गमग्रभागो यस्याः, बहुव्री०। स्वनामख्यात कर्कटदंष्ट्राकार ओषधि, ककड़ासींगी। इसे नेपालीमें रनीवलयी और पञ्जाबीमें गरखर कहते हैं। (Rhus succedanea) यह वृक्ष कोयी ३० फीट ऊंचा होता है। हिमालयपर काश्मीरसे सिकिम और भूटानतक कर्कटशृङ्गी मिलती है। यह खसिया-पहाड़ और जापानमें भी पायी जाती है। जापानमें इसकी छालको खोदकर रस निकालते हैं। इस रससे रङ्ग (वार्निश) तैयार होता है। फिर फलको कुचल कर एक दूसरे फलके साथ उबालते और मोम निकालते हैं। इस मोमकी बत्तियां बनती हैं। कभी कभी यह 'जापानी मोम'के नामसे विलायत भी बिकनेको भेजा जाता है। इसका दुग्ध अति तीक्ष्ण होता है। फल एक वाजारू चीज़ हैं। काश्मीरमें इसे क्षयरोगपर प्रयोग करते हैं।

भल्लुक कर्कटशृङ्गीका वल्कल खाता है। काष्ठ श्वेत, प्रभायुक्त तथा मृदु रहता, किन्तु अभ्यन्तरमें कुछ छाया निकलता है। इसका संस्कृत पर्याय—कर्कटाख्या, महाघोषा, शृङ्गी, कुलीरशृङ्गी, वक्राङ्गी, कुलिङ्गी, कासनाशिनी, घोषा, वनमूर्धजा, चक्रा, शिखरी, कर्कटाङ्गा, कर्कटी, विषाणिका, कौलीरा, चन्द्रास्पदा और वाक्राङ्गा है। यह काषाय एवं तिक्तरस, उष्णवीर्य और कफ, वायु, क्षय, ज्वर, ऊर्ध्व वायु, तृष्णा, कास, हिक्का, अरुचि तथा वमिनाशक होती है। (राजनि०)

कर्कटा (सं० स्त्री०) १ कर्कटशृङ्गी, ककड़ासींगी। २ खिखसा। यह एक लता है। इसमें कारवेल्ल सदृश क्षुद्र फल आते हैं। कर्कटाके फलका शाक बनाया जाता है।

कर्कटाक्ष (सं० पु०) कर्कट इव अक्षि ग्रन्थिभेदोऽस्य, बहुव्री०। कर्कटिकालता, ककड़ीकी बेल।

कर्कटाख्य, कर्कटाक्ष देखो।

कर्कटाख्या (सं० स्त्री०) कर्कटस्य आख्या एव आख्या यस्याः, बहुव्री०। १ कर्कटशृङ्गी, ककड़ासींगी। २ कर्कटिका, ककड़ी।

कर्कटाङ्गा (सं० स्त्री०) कर्कटस्य अङ्गं शृङ्गमिव शृङ्गमग्रभागमस्याः, कर्कटाङ्ग-टाप्। कर्कटाख्या देखो।

कर्कटादिलेह (सं० पु०) लेहविशेष, एक चटनी। कर्कटशृङ्गी, अतिविषा (अतीस), शुण्ठी, धातकी (धायके फूल), विल्व, बालक (बाला), मुस्त तथा कोलमज्जा (बेरकी गुठलीकी मींगी) बराबर बराबर कूटपीस और छानकर मधुके साथ बालकको चटानेसे ज्वर अतीसार एवं ग्रहणीरोग दूर हो जाता है। (रसरत्नाकर)

कर्कटास्थि (सं० क्ली०) कर्कटस्य अस्थि, ६-तत्। कुलीरका अस्थि, केकड़ेकी खोल।

कर्कटाह्व (सं० पु०) कर्कटमाह्वयते स्पर्धते कफककर्कशत्वात्, कर्कट-आ-ह्वे-क। विल्ववृक्ष, बेलका पेड़।

कर्कटाङ्गा (सं॰ स्त्री॰) कर्कटाङ्ग-टाप्। कर्कटशृङ्गी, ककड़ासींगी।

कर्कटि (सं॰ स्त्री॰) करं कटति प्राप्नोति, कर-कट्-इन् शकन्ध्वादित्वात् अलोपः। कर्कटी, ककड़ी।

कर्कटिका (सं॰ स्त्री॰) कर्कटी स्वार्थे कन्-टाप् ह्रस्वश्च। कर्कटी, ककड़ी।

कर्कटिकेश (सं॰ क्ली॰) कामरूपका एक ग्राम। व्याहके पीछे इस ग्रामका प्रदक्षिण करना पड़ता है।

"उद्यतन्तु यदा गन्तुं व्याहं कृत्वा विधानतः।
विधाय कर्कटिकेशं ग्रामस्यास्य प्रदक्षिणम्।" (योगिनीतन्त्र)

कर्कटिनी (सं॰ स्त्री॰) कर्कटवत् आकारो ऽस्त्यस्याः, कर्कट-इन्-ङीप्। दारुहरिद्रा, दारुहल्दी।

कर्कटी (सं॰ स्त्री॰) कर्कं कण्टकं अटति गच्छति, कर्क-अट्-इन्-ङीष्-शकन्ध्वादित्वात् अलोपः वा करं कटति, कर-कट-इन्-ङीष्। १ शाल्मलीवृक्ष, सेमरका पेड़। २ सर्पविशेष, एक सांप। ३ देवदाली लता, एक बेल। ४ कर्कटशृङ्गी, ककड़ासींगी। ५ एर्वारु, फूट। ६ घोटिका वृक्ष, एक पेड़। ७ बदरी, बेरी। ८ कोमल श्रीफल। ९ घट, गगरी। १० तरोयी। ११ फललताविशेष, ककड़ी। (Cucumis Utilissimus) इसका संस्कृत पर्याय—कटुदली, छर्दापनिका, पीनसा, मूत्रफला, त्रपुषा, हस्तिपर्णी, लोमशकाण्डा, मूत्रला, बहुकन्दा, कर्कटाच, शान्तनु, चिर्भटी, वालुकी, एर्वारु और त्रपुषी है।

इसे पश्चिमोत्तर प्रदेश, बङ्गाल और पञ्जाबमें बोते हैं। फल सीधा या झुका होता है। यह कच्ची पक्की खायी जाती है। कच्ची ककड़ी छीलकर नमक और काली मिर्चके साथ खानेसे बहुत अच्छी लगती है। कोई कोई इसकी तरकारी भी बना डालते हैं।

कर्कटीका फल २।३ फीट लम्बा होता है। नर्म ककड़ियोंपर मुलायम भूरे रूयें रहते हैं। पहले यह पीली हरी लगती, किन्तु पकनेसे नारङ्गी पड़ती है। कर्कटी ग्रीष्म ऋतुका फल है। युक्तप्रदेशमें दूसरे समय यह हो नहीं सकती। इसके लिये भूमि सूखी, ढीली और खुली रहना चाहिये। खाद डालकर खेतमें क्यारी बनाते और तीन चार बीज ३ फीटके अन्तर लगाते हैं। दश दिनमें खेत सींचना पड़ता है।

ककड़ीके बीजका तेल मीठा होता है। यह खाने और जलानेमें लगता है।

भावप्रकाशके मतसे कर्कटी मधुर, शीतल, रूक्ष, मलरोधक, गुरु, रुचिकर और पित्तनाशक है। पक्व कर्कटी तृष्णा, अग्नि एवं पित्त बढ़ाती और मूत्ररोध घटाती है। तिक्त कर्कटी रक्तपित्तनाशक और कफदोषकारक होती है। इसका पाक इस प्रकार बनता है—परिपुष्ट कर्कटीको वल्कल तथा बीज निकाल गोलाकार खण्ड खण्ड काटते हैं। फिर उस तेलमें तलकर घृत, दुग्ध और शर्कराके साथ यह पागी जाती है। अन्ततः सूक्ष्म एलाका चूर्ण सुवासित करनेको पड़ता है। यह पाक खानेमें अति स्वादु और स्वास्थ्यके लिये लाभदायक है।

कर्कटीबीज (सं॰ क्ली॰) कर्कटीके फलका बीज, ककड़ीका बीजा। इसे ठण्डाईमें डालते हैं।

कर्कटु (सं॰ पु॰) कर्कट-कु। करेटुपक्षी, एक चिड़िया।

कर्कड़ (सं॰ पु॰) खटिका, खड़िया मट्टी।

कर्कंद—चट्टलस्थ ग्रामविशेष भवि॰ ब्रह्मखण्ड १५।२२)

कर्कन्दु, कर्कन्धु देखो।

कर्कन्धु (सं॰ पु॰ स्त्री॰) कर्कं कण्टकं दधाति, कर्क-धा-कु-नुम्। क्षुद्रबदरवृक्ष, झड़बेरीका पेड़। (Zizyphus jujuba) यह समग्र भारत, सिंहल, मलक्का, ब्रह्मदेश, अफगानस्तान, अफरीका, मलयद्वीपपुञ्ज, चीन और अष्ट्रेलियामें होता है। भारतवर्ष इसका आदि उत्पत्तिस्थान है। यहींसे कर्कन्धु अन्य देशोंमें फैला है। कहते—पहले साधुसन्त बदरिकाश्रममें इसीका फल खा जीवनयात्रा निर्वाह करते थे।

इसका वल्कल और फल चमड़ा रंगनेमें लगता है। ब्रह्मदेशमें कर्कन्धुके फलसे रेशम भी रंगा जाता है। दरिद्र फलको अधिक खाया करते हैं। कभी कभी फलको कूट पीस रोटी भी बना लेते हैं। पत्र पशुका खाद्य है। तसरके कीड़े भी इसके पत्रपर पलते हैं।

भावप्रकाशके मतसे यह अम्ल, कषाय तथा ईषत्

मधुररस, स्निग्ध, तिक्त, गुरु और वातपित्तनाशक है। शुष्क कर्कन्धु भेदक, अग्निकारक, लघु और तृष्णा, क्लान्ति तथा रक्तनाशक होता है।

कहीं कहीं कर्कन्धु शब्द क्लीवलिङ्ग भी कहा गया है। २ कर्कन्धुफल, झड़बेरी।

कर्कन्धुक (सं० क्लो०) बदरी फल, छोटा बेर। यह मधुर, स्निग्ध, गुरु और पित्तानिल तथा वातपित्तहर होता है। (मदनपाल)

कर्कन्धुको (सं० स्त्रो०) १ बदरीभेद, किसी किस्मकी बेरी। २ क्षुद्रबदरवृक्ष, झड़बेरी।

कर्कन्धुकुण (सं० पु०) कर्कन्धूणां पाकः, कर्कन्धु-कुणप्। कर्कन्धुके पाकका समय, बेर पकनेका मौसम।

कर्कन्धुमती (सं० स्त्रो०) कर्कन्धुरस्त्यत्र भूमौ इति शेषः, कर्कन्धु-मतुप्-ङीष्। कर्कन्धुयुक्त भूमि, झड़बेरीको जमीन्।

कर्कन्धुरोहित (सं० स्त्रो०) कर्कन्धुफलसदृश रक्तवर्ण, झड़बेरीके बेरको तरह सुर्खासुर्ख।

कर्कन्धू (सं० पु० स्त्रो०) कर्कं कण्टकं दधाति, कर्क-धा-कु ततो निपातनात् सिद्धम्। कर्कन्धुवृक्ष, झड़बेरीका पेड़। कर्कन्धु देखो।

कर्कफल (सं० क्लो०) कर्कस्य कर्कटस्य फलम्, ६-तत्। १ कर्कटफल, ककोड़ा। २ क्षुद्र आमलकी, छोटा आंवला।

कर्कर (सं० पु०-क्ली०) कर्क-रा-क। १ चूर्ण खण्ड, चूनेका कङ्कड़। २ कङ्कर, कांकर। ३ दर्पण, आयोना। ४ सर्पविशेष, एक सांप। (भारत १।३५।१६) ५ मुद्गर, हथौड़ा। ६ अस्थि, हड्डी। ७ तरुण पशु, नया जानवर। ८ चर्मखण्ड विशेष, चमड़ेका तसमा। (त्रि०) कर्क-अरन्। ९ कठोर, कड़ा। १० दृढ़, मजबूत।

कर्करट (सं० पु०) पक्षिविशेष, एक चिड़िया।

कर्कराक्ष (सं० त्रि०) कर्करं कर्कशं अक्षि यस्य, बहुव्री०। १ कर्कश चक्षु, कड़ी आंखवाला। (पु०) २ खञ्जनपक्षी, ममोला, झांपो, धोबन।

कर्कराङ्ग (सं० पु०) कर्कटतुल्यं अङ्गं यस्य, बहुव्री०। कालकण्ठ, खञ्जन, धोबन।

कर्कराटु (सं० पु०) कर्कं हासं रटति प्रकाशयति, कर्क-रट-कु कुन् वा। १ कटाक्ष, तिरछी नजर। २ कर्करेटु पक्षी, एक चिड़िया।

कर्कराटुक (सं० पु०) कर्क कर्कशं रटति रौति, कर्क-रट-उकञ् स्वार्थे कन्। १ कर्करेटु पक्षी, एक चिड़िया। इसकी बोली बहुत कड़ी होती है। २ कटाक्ष, तिरछी नजर।

कर्करान्धक, कर्करान्धुक देखो।

कर्करान्धुक (सं० पु०) कर्करः कठोर अन्धुः स्वार्थे कन्, कर्मधा०। अन्धकूप, अंधवा कूवां। इसका मुख तृणादिसे आच्छादित हो छिप जाता है।

कर्कराल (सं० पु०) कर्करः सन् अलति प्राप्नोति, कर्कर-अल-अच्। चूर्णकुन्तल, जुल्फ, छल्ला, घूंगर।

कर्करि (वै० स्त्रो०) वाद्यविशेष, किसी किस्मका बाजा।

कर्करिका (सं० स्त्रो०) चक्षुखर्जु, आंखको खुजला या किरकिराहट। कर्करी देखो।

कर्करी (सं० स्त्रो०) कर्कं हासवत् निर्मलं सलिलं राति, कर्क-रा-क गौरादित्वात् ङीष्। १ सनाल जलपात्र, गड़वा। इसका संस्कृत पर्याय—आलु, गलन्तिका, अलु और आरु है। २ तण्डुलधावनपात्र, चावल धोनेका बरतन। ३ गलन्तिका, झज्झर। ४ भाण्डविशेष, एक बरतन। ५ दर्पण, आयोना। (वै०) ८ वाद्यविशेष, एक बाजा।

कर्करीका (सं० स्त्रो०) कर्करी स्वार्थे कन् न ह्रस्वः। क्षुद्र सनाल जलपात्र, छोटा गड़वा।

कर्करेट (सं० क्लो०) कर्क कर्कंति शब्दं रेटते यत्र, कर्कर-रेट-घञ्। नखरवत् सङ्कुचित हस्त, पञ्जेको तरह सिकोड़ा हुवा हाथ। इसकी यह स्थिति किसीका कण्ठ पकड़ते समय होती है।

कर्करेटु (सं० पु०) कर्कं कर्कंति शब्दं रेटते भाषते रौति वा, मृगय्वादित्वात् साधुः। करेटु पक्षी, करकरा, करकटिया। यह एक प्रकारका सारस है।

कर्कश (सं० पु०) कर्को कषोऽस्त्यस्य, कर्क-श। १ काम्पिल्लवृक्ष, कमीलेका पेड़। २ कासमर्द, कसौंदी। ३ पटोल, परवल। ४ इक्षुभेद, एक ऊख।

५ गुड़त्वक्, दालचीनी। ६ खड्ग, तलवार। (त्रि०) ७ अमसृण, खुरखुरा। ८ निर्दय, बेरहम। ९ क्रूर, पाजी। १० दुर्बोध, समझमें मुश्किलसे आनेवाला, कड़ा। ११ क्रपण, कञ्जूस। १२ साहसी, हिम्मतवर। १३ कठोर, सख्त।

कर्कशच्छद (सं० पु०) कर्कशः छदः पत्रमस्य, बहुव्री०। १ पटोल, परवल। २ पाटलवृक्ष, सुलतान चम्पा। ३ शाखोट वृक्ष, सहोरेका पेड़। ४ शाकवृक्ष, सागौनका पेड़। ५ कृष्णकुष्माण्ड, काला कुम्हड़ा।

कर्कशच्छदा (सं० स्त्री०) कर्कशः अमसृणः छदो यस्याः, कर्कशच्छद-टाप्। १ घोषा, तरोयी। २ दग्धावृक्ष, बंदाल। कोङ्कणमें इसे कवही कहते हैं।

कर्कशता (स्त्री०) कर्कशत्व देखो।

कर्कशत्व (सं० क्ली०) कर्कशस्य भावः, कर्कश त्व। कर्कशता, कड़ापन, सख्ती। कर्कश देखो।

कर्कशदल (सं० पु०) कर्कशं दलं पत्रमस्य, बहुव्री०। १ पटोल, परवल। २ सहोरेका पेड़।

कर्कशदला (सं० स्त्री०) कर्कशं दलं यस्याः, कर्कशदल-टाप्। १ दग्धिका, बंदाल। २ कोशातकी, तरोयी।

कर्कशवाक्य (सं० क्ली०) कर्कशञ्च तत् वाक्यञ्चेति, कर्मधा०। १ निष्ठुर वचन, कड़ी बात। २ नीरस वाक्य, रूखा बोल।

कर्कशा (सं० स्त्री०) कर्कश-टाप्। १ व्यभिचारिणी स्त्री, छिनाल औरत। २ वृश्चिकाली वृक्ष, विछुवा। ३ क्षुद्रमेषशृङ्गी, छोटी मेढ़ासींगी। ४ वनवदर, झड़वेरी।

कर्कशिका (सं० क्ली०) कर्कश-कन्-टाप् अत इत्वम्। वनकोली, झड़वेरी।

कर्कसार (सं० क्ली०) कर्कः कर्कशः सारो यत्र, बहुव्री०। दधिसक्तु, दहीका सत्तू।

कर्काक (सं० पु०) कर्कटिका, ककड़ी।

कर्कारु (सं० पु०) कर्कं हास्यवत् शौक्ल्यं ऋच्छति प्राप्नोति, कर्क-ऋ-उण्। १ कुष्माण्डभेद, कुम्हड़ा, पेठा। भावप्रकाशके मतसे यह शीतल, गुरु, मलबद्धकारक, धारयुक्त और कफ तथा वायुनाशक है। २ कलिङ्गलता, कलींदा, तरबूज। ३ अतिक्षुद्रकुष्माण्ड, बहुत छोटा कुम्हड़ा, कुम्हड़ी। (स्त्री०) ४ कुष्माण्डीलता, कुम्हड़ेकी बेल।

कर्कारुक (सं० पु०) कर्कं हासं हितकारित्वात् ऋच्छति जनयति, कर्क-ऋ-उकञ्। १ कालिन्दवृक्ष, कलींदेका पेड़। सुश्रुतके मतसे इसका फल गुरु, विष्टम्भी, शीतल, स्वादु, कफकारक, मलमूत्र-परिष्कारक, क्षारयुक्त और मधुररस होता है। २ कुष्माण्ड, कुम्हड़ा।

कर्कारु (सं० स्त्री०) कुष्माण्डीलता, कुम्हड़ेकी बेल।

कर्कि (सं० पु०) कर्क-इन्। १ कर्कट राशि, बुर्जसरतान्। २ औरङ्गाबादका पूर्व नाम।

कर्की (सं० स्त्री०) कर्क-अच्-ङीष्। १ कर्कटी, ककड़ी। (पु०) कर्क-इन्। २ कर्कट-राशि, बुर्जसरतान्।

कर्कीप्रस्थ (सं० पु०) नगरविशेष, एक पुरातन शहर।

कर्केतन (सं० पु०-क्ली०) कर्कं हास्यादौ तनोति, कर्क-तन-अच् अलुक् समा०। रत्नविशेष, एक जवाहर। इसे हिन्दीमें तथा फारसीमें जमुरद, हिब्रूमें टारशिस, ग्रीकमें वेरलस, लाटिनमें स्मारगडास (Smaragdus), पोलण्डीमें जमरगद, रूसीमें इसुमरद, ओलन्दाजमें स्मरगद् वा एसमरद्, दिनेमार एवं स्विसमें समरद, रोमकमें समरलदो, पोर्तगीजमें ऐसमरल्द, वाइवेल तथा फरासीसीमें वेरिल (Beril) और अंगरेजीमें वेरिल या क्रिसोबेरिल (Beryl or Chrysoberyl) कहते हैं।

गरुड़पुराणमें लिखा है—वायुने हृष्टचित्त दैत्यपतिके सकल नख उठा चतुर्दिक् फेंकने पर कर्केतन नामक पूज्यतम रत्न पृथिवीसे उत्पन्न हुवा। स्निग्ध, विशुद्ध, सर्वत्र समवर्ण, परिमाणमें गुरु, विचित्र और त्रासव्रणादि दोषवर्जित कर्केतन अति उत्कृष्ट होता है। रक्तकी भांति लोहित, चन्द्रकी तरह पाण्डुर, मधुकी भांति ईषत् पीत, ताम्रकी तरह अल्प रक्त पीत, और अग्निकी भांति उज्ज्वल, नील तथा श्वेत कर्केतन पापनाशक है। संस्कारकके दोषसे यह अधिक ज्योतिर्मय नहीं होता। कर्केतन स्वर्णपर जड़ कण्ठ वा हस्तमें पहननेसे अति सुन्दर लगता है। इससे

आयु, वंश तथा सुख बढ़ता और रोग एवं कलिदोष छूट पड़ता है। निर्दोष कर्केतन पहननेवाला सर्वत्र पूजित, अनेक धनशाली, बहुबान्धव, दीप्तिमान् और नित्यप्रसन्न रहता है। यह मणि जितना उज्ज्वल तथा गुरु मिलता, उतना ही मूल्य भी अधिक लगता है। (७५ अ०)

कर्केतन भारतवर्ष, सिंहल, उत्तर-अमेरिका, मिसर, रूसके यूराल पर्वतस्थ तर्जोवाजनदीगर्भ, ब्रेजिल, मोरविया और पेरुमें होता है।

दक्षिण भारतमें कोयम्बातुरसे २० कोस ईशान कोण पर कर्केतनकी खानि है। यह नाना स्थानपर मरकत, इन्द्रनील प्रभृतिके साथ देख पड़ता है।

यह हरित्, नील प्रभृति नानावर्णविशिष्ट होता है। उत्कृष्ट कर्केतन अल्प हरित् वा दूर्वा तृणके वर्ण सदृश रहता है। इसमें औज्ज्वल्य भी अधिक देख पड़ता है। आपेक्षिक गुरुत्व ३'६से ३'८ पर्यन्त लगता है। इससे स्फटिक काटते हैं। फिर कर्केतनको काटने छाटनेमें इन्द्रनील और माणिक्य आवश्यक है। इसको रगड़नेसे वैद्युतिक ज्योतिः निकलता, जो गुणके अनुसार कयी घण्टे रह सकता है। अर्धस्वच्छ कर्केतन विड़ालाची (लसुनिया) नामसे बाजारमें बिकता है।

अति उज्ज्वल स्वच्छ कर्केतनका मूल्य अधिक है। यह १०००)से २०००) रु० तक आता है।

कर्केसर, कर्केतन देखो।

कर्केधुकी (सं० स्त्री०) भूवदरी, झड़वेर।

कर्कोट (सं० पु०) कर्क-ओट। नागराजविशेष, सांपोंका एक राजा। "अनन्तो वासुकिः पद्मो महापद्मो ऽपि तक्षकः। कर्कोटः कुलिकः शङ्ख इत्यष्टौ नागनायकाः॥" (त्रिकाण्डशेष)

कर्कोटक (सं० पु०) कर्कं कण्टकमयत्वात् कठोरं अटति प्राप्नोति तद्वत् कायति प्रकाशते, कर्क-अट्-अच्-कन् पृषोदरादित्वात् ओकारादेशः। १ बिल्व-वृक्ष, वेलका पेड़। २ कद्रुपुत्र नागराज। ३ इक्षु, ऊख। ४ फलशाकलताविशेष, ककोड़ा, खेखसा। इसका फल स्थावर विषके अन्तर्गत है। फलविष देखो। ५ महाभारत तथा पुराणोक्त जनपदविशेष। (मार्कण्डेयपु० ५८।८, महाभा० द्रोण, वृहत्संहिता १४।१२) इसका वर्तमान नाम कारा है। यह जयपुर राज्यमें पड़ता है।

कर्कोटकविष (सं० क्ली०) कर्कोटकका विष, ककोड़ेका ज़हर।

कर्कोटका, कर्कोटकी देखो।

कर्कोटकी (सं० स्त्री०) कर्कोटक गौरादित्वात् ङीष्। १ पीतघोषा, बनतरोयी। इसका संस्कृत पर्याय—कटुफला, महाजालिनी, धामार्गव और राजकोषातकी है। धामार्गव देखो। २ कोषातकी, तरोयी। ३ फलशाकविशेष, गोल कुम्हड़ा। यह मूत्राघात, प्रमेह, अरोचक, कफ, अश्मरी तथा तृष्णाहर, पुष्टिकर, हृद्य, स्वादु और वल्य होती है। (राजनिघण्टु)

कर्कोटकीफल (सं० क्ली०) १ घोषाफल, तरोयी। २ वृत्तकुष्माण्ड, गोलकुम्हड़ा। ३ झिङ्गाफल, ककोड़ा।

कर्कोटपत्र (सं० क्ली०) कर्कोटपत्र, ककोड़ेका पत्ता। यह वमनमें घोंटकर पिलानेसे रोगीका हितसाधन करता है।

कर्कोटमूल (सं० क्ली०) कर्कोटकमूल, ककोड़ेकी जड़।

कर्कोटवापी (सं० स्त्री०) कर्कोटनाम नागेन कृता वापी, मध्यपदलो०। काशीस्थ तीर्थविशेष।

"कर्कोटवाप्यां देवायां सरोषैः कुष्टलमम्।" (काशीखण्ड)

कर्कोटिका (सं० स्त्री०) कर्कोट स्वार्थे कन्-टाप् अत इत्वम्। १ कुष्माण्डी लता, पेठेकी बेल। २ कर्कोटक, ककोड़ा।

कर्कोटिकाकन्दरज (सं० क्ली०) कर्कोटमूलचूर्ण, ककोड़ेकी जड़का चूरन। काण्डुरोगमें यह सूंघा जाता है।

कर्कोटी (सं० स्त्री०) १ कर्कोटिका, ककोड़ा। २ देवताड़ वृक्ष।

कर्कोल (सं० क्ली०) कक्कोल, शीतलचीनी।

कर्चरिका (सं० स्त्री०) कं सुखं यथा तथा चर्यते उपयुज्यते, क-चर-कन् पृषोदरादित्वात् साधुः। पिष्टक विशेष, कचौरी, दालपूरी। यह उड़दकी पीसी दाल सेङ्के आटेमें भर और घीमें तलकर बनायी जाती है।

कर्चुरी (सं० स्त्री०) कं जलं चुर्यते अत, क-चुर-ङीष् पृषोदरादित्वात् साधुः। कर्चरिका देखो।

कर्चौ (हिं० स्त्री०) पक्षिविशेष, एक चिड़िया।

कर्चर (सं० क्ली०) १ सुवर्ण, सोना। २ हरिताल विशेष, किसी किस्मका हरताल।

कर्चूर (सं० पु० क्ली०) कर्ज-उर, पृषोदरादित्वात् साधुः। १ कर्वूर,हरताल। २ स्वर्ण, सोना। ३ एकाङ्गी-नाम वणिग्द्रव्य, कचूर। यह कटु, तिक्त, उष्ण, मुख-परिष्कारक और कफ, कास तथा गलगण्डनाशक है। (राजनिघण्टु) चरकने त्वक्शून्य कर्चूरको रुचि-कारक, अग्निवर्धक, सुगन्धि, कफ एवं वायुनाशक और श्वास, हिक्का तथा अर्शोरोगके लिये हितकर कहा है। ४ आमहरिद्रा, आमाहलदी। ५ शटी, जङ्गली अदरक।

कर्चूरक (सं० पु०) कर्चूर स्वर्णमिव कायति प्रका-शते, कर्चूर-कै-क। कर्चूर देखो।

कर्ज (अ० पु०) ऋण, उधार।

कर्जदार (फा० वि०) ऋणी, देनदार, उधार लेनेवाला।

कर्ज़ा, कर्ज देखो।

कर्ज़ी (हिं० वि०) अधमर्ण, कर्ज़दार, जो उधार ले चुका हो।

कर्ण (सं० पु०) कीर्यते क्षिप्यते वायुना शब्दो यत्र, कृ-न-नित् कर्णते आकर्णते अनेन,कर्ण करणे अप् वा। कृवृजृसिद्रुपन्यनिस्वपिभ्यो नित्। उण् ३।१०। १ श्रवणेन्द्रिय, गोश, कान। इसका संस्कृत पर्याय—शब्दग्रह, श्रोत्र, श्रुति, श्रवण, श्रव, श्रोत्र और वचोग्रह है। श्रवणेन्द्रियके वाह्याभ्यन्तर समुदाय अवयवके लिये 'कर्ण' शब्द व्यव-हृत होता है। किन्तु गह्वरके आकाशस्थानमें ही कर्णेन्द्रियका कार्य चलता है। सुतरां उसी आका-शको 'श्रवणेन्द्रिय' कहते हैं। इस इन्द्रियको अधि-ष्ठाढ देवता दिक् हैं। शब्द कर्णका विषय ठहरता है।

आजकलके शारीरतत्त्वविद् पण्डित मनुष्य और यावतीय स्तन्यपायी जीवका कर्ण तीन भागमें विभक्त करते हैं—१ वहिःकर्ण, २ ढक्का (Tympanum) और कर्णा-भ्यन्तरस्थ विवर (Labyrinth)। फिर वहिःकर्णके दो अंश होते हैं—कर्णशष्कुली (Auricle) और कर्ण-प्रणाली वा कर्ण-वहिर्द्वार (Auditory canal or external meatus)।

कर्णशष्कुली उपास्थिक सङ्गठनके अनुसार उच्च और निम्नगामी है। इसके गभीर एवं प्रशस्त मध्यस्थानको कर्णस्थाली (Concha) और निम्नतम दोलायमान अंशको कर्णपाली (Lobe) कहते हैं। कर्णस्थालीसे गोल छिद्र नीचे चले गये हैं। भारतमें कर्णवेधके समय कर्णपाली छेदी जाती है। वहिःकर्णमें एक उपास्थि होता है। उसमें कई छिद्र रहते हैं। वही छिद्र सूत्राकार सारी झिल्लीमें पूर जाते हैं। कर्ण-शष्कुलीके एक भागसे अपर भागको कई पेशियां पहुंची हैं। पेशियां कुल तीन हैं। वह पार्श्वस्थ शिरत्वक् (Scalp)से कर्णमें फैली हैं। मनुष्यके लिये पेशियां अधिक आवश्यक नहीं। किन्तु स्तन्यपायी जीवके पक्षमें पेशियां अवश्य रहना चाहिये।

कर्णप्रणाली आध इञ्च परिसर होती है। वह कर्णस्थालीसे अभ्यन्तरको गयी है। उसके उभय पार्श्वकी अपेक्षा मध्य भाग अधिक सीधा रहता है। इसीसे कर्णके अभ्यन्तर कोई चीज़ घुस जाने पर निका-लनेमें कष्ट पड़ता है। अधोभाग ऊपरी भागकी अपेक्षा वृहत् रहने कारण कर्णप्रणालीके सिरेसे मध्य कर्णकी झिल्ली तिर्यक्भावपर अवस्थित है। कर्ण-प्रणाली अस्थिगर्भ और उपास्थियुक्त है। अस्थिगर्भ भागके मध्य झिल्लीसे लिपटा सूक्ष्म भ्रूण होता है। किसी किसी प्राणीके वह स्वतन्त्र भावसे केवल अस्थिकी भांति रहता है।

कर्णरन्ध्रके वहिर्भागमें सुखाभिमुखी स्थानका नाम कर्णपत्रक (Tragus)। कर्णके रन्ध्रमें खोलदार ग्रन्थि रहता है। इसी ग्रन्थिके कारण कीट वा मलादि कर्णमें प्रवेश कर नहीं सकता।

कर्णके वहिर्द्वार और विवरके मध्यवर्ती गह्वर-को मध्यकर्ण वा ढक्का (Tympanum) कहते हैं। यह स्थान वायुपूर्ण है। वायु गलकोषसे यूष्टेकियान नली होकर ढक्कामें घुसता है। ढक्काको झिल्ली और कर्णविवरके साथ सचल अस्थियोंगी संयुक्त है।

ढक्काका गह्वर देखनेमें असमान और सीधी सीधी सूक्ष्म लोमवत् उपत्वक्से सज्जित है। यह उपत्वक्

गलकोषसे निकल यूष्टिकियान नली द्वारा कर्णमण्ड-लमें पहुंची है।

ढक्कामें तीन क्षुद्रास्थि होते हैं। वह अपने आका-रानुसार मुद्गरास्थि (Malleus), पताकास्थि (Incus) और पादधारणास्थि कहाते हैं। ढक्काकी झिल्ली उक्त गह्वरके वहिः-प्राचीर रूपसे सङ्गठित है। वह डिम्बाकृति देख पड़ती है। उसी झिल्लीके ऊपरी और अधोदिक्के बीचोंबीच क्षुद्र श्रेणीका प्रथम अस्थि मुद्गरकी मुठियाके आकार संश्लिष्ट है। उसीको मुद्गरास्थि कहते है।

ढक्का गह्वरमें कर्णाभ्यन्तरके साथ संस्रव रखनेको दो गवाक्ष हैं। वह कोमल झिल्लीसे आवद्ध रहते हैं। उनमें एकको डिम्बाकार (Fenestra ovalis) और अपरको गोल गवाक्ष (Fenestra rotunda) कहते हैं। प्रथम कर्णविवरके प्रवेशद्वारका प्रदर्शक है। वह अपनी झिल्लीके ज़रिये क्षुद्र श्रेणीके अन्तरास्थि (पादधारणास्थि)से दृढ़ रूपमें संयुक्त है। द्वितीय गवाक्ष कर्णविवरके शम्बुकाकार गह्वर (Cochlea)की ओर अवस्थित है।

ढक्केके मुद्गरास्थिसे एकाधिक पेशी लिप्त हैं। उनमें एक करोटीवाले कीलकास्थिके मज्जावत् स्थानसे उत्पन्न हुयी है। उसका वैज्ञानिक अंगरेज़ी नाम लाक्साटोर टिम्पनी (Laxator tympani) है। फिर दूसरी शङ्ख-स्थिके प्रस्तरवत् कठिन स्थानसे निकली है। उसे वैज्ञानिक अंगरेज़ीमें टेनसोर टिम्पनी (Tensor tympani) कहते हैं। शेषोक्त पेशी मुद्गरास्थिकी मूठसे सन्निविष्ट है। शारीरतत्वविद्में अनेकको प्रथम श्रेणीके अस्तित्व पर सन्देह है। उनको समझमें उसे—पेशी नहीं—बन्धनी कह सकते हैं।

ध्वजके आकारका अस्थि पताकास्थि कहाता है। किन्तु यह बात देख नहीं पड़ती। वह पेषण-दन्तकी तरह रहता है। क्षुद्र अंश पीछे चल ढक्का-गह्वरके पश्चाद्भागमें बुदबुदाकार कोष (Mastoid cells) पर झुका और वृहद् अंश अधोगामी हो अन्तको पादधारणी-अस्थिके मत्थे पर गोलाकार तथा समान पड़ा है।

पादधारणी-अस्थि अश्वारोहीके पद रखनेकी रकाब-जैसा होता है। वह मस्तक, ग्रीवा, दो शाखा और भूमि रखता है। उसके कोणाकार उच्चांशसे एक सूक्ष्म पेशी (Stapedius) निकल डिम्बाकार गवा-क्षके पश्चाद्भागमें ग्रीवादेशपर सन्निवेशित है। ग्रीवा-देशका पश्चाद्भाग खींचनेसे वह कर्णविवरके द्वारको सिकोड़ती है।

पहले लिखा—यूष्टेकियान नलीसे ढक्काका गह्वर खुला है। यूष्टेकियान एक शारीरवित् रहे। उन्होंने पहले उक्त नलीको आविष्कार किया था। इससे उसको भी यूष्टेकियान कहते हैं। वह प्रायः डेढ़ इञ्च लम्बी है। अल्प भाग अस्थिमय और अधिकांश उपास्थियुक्त होता है। उक्त नलीके मध्यसे वायु चल ढक्काके ऊपर और बीच पहुंचता है। उसी पथसे गह्वरस्थ सञ्चित श्लेष्मादि भी निकलता है।

कर्णाभ्यन्तरस्थ विवर श्रवणेन्द्रियका मूल अंश है। यहां कर्णेन्द्रिय-वायुके स्पन्दजनक सूत्र पड़े हैं। यह तीन अंशमें विभक्त है—विवरद्वार (Vestibule), अर्धगोलाकार नलीसमूह (Semi-circular canals) और शम्बुकाकार गह्वर (Cochlea)। उक्त तीनों गर्ताकार कर्णाभ्यन्तरस्थ विवरकी तरह लिपट शङ्खा-स्थिके प्रस्तरवत् अति कठिनांशमें अवस्थित हैं। ढक्काके गोल तथा डिम्बाकार गवाक्षसे उनका बाहरी और कर्णाभ्यन्तरको श्रोत्रनलीसे भीतरी सम्बन्ध है। श्रोत्र-नली ही करोटीके गह्वरसे कर्णविवर तक श्रोत्र सम्ब-न्धीय स्नायु (Auditory nerve) को वहन करती है।

उपरोक्त गर्तके चारो पार्श्व अस्थिमय कर्णाभ्यन्त-रस्थ विवर (Osseous labyrinth) है। उसमें फिर झिल्लीका कर्णाभ्यन्तरस्थ विवर (Membranous labyrinth) झलकता है।

विवरद्वार कर्णाभ्यन्तरके मध्यगह्वररूपसे अव-स्थित है। उसी स्थानसे अर्धगोलाकार नलीसमूह और शम्बुकाकार गह्वर निकलता है। उक्त द्वार उच्चतामें इञ्चका पञ्चम भाग पड़ता है। उसके वहि-र्गात्रमें पांच छिद्र होते हैं। उन्हीं छिद्रसे अर्ध-गोलाकार नलीसकल निकला है। पश्चात् दिक्को

शम्बुकाकार गह्वर है। उसके बहिर्गात्रमें डिम्बाकार गवाक्ष और भ्यन्तरमें क्षुद्र क्षुद्र गोलाकार छिद्र रहते हैं। उनसे श्रोत्र सम्बन्धीय स्नायुका स्पन्दजनक सूत्र-सकल भीतरको सरकता है।

उक्त गोलाकार नली तीन हैं। उनके उभय पार्श्वों में छोटे-बड़े द्वार होते हैं।

शम्बुकाकार गह्वर देखनेमें शम्बुक-जैसा लगता है। वह कर्णविवरका अग्रवर्ती है।

अस्थिमय कोमल विवरद्वार और अर्धगोलाकार नलीके मध्यका कोमल अंश 'कानका चक्कर' (Membraneus labyrinth) कहाता है। अस्थिमय चक्कर झिल्लीके चक्करसे आकार प्रकारमें मिलता है। फिर भी उभयके आयतनमें अन्तर है। दोनों चक्करोंमें पेरिलिम्फ (Perilymph) नामक एक तरल पदार्थ रहता है। झिल्लीके चक्करमें एण्डोलिम्फ (Andolymph) नामक एक दूसरा तरल पदार्थ भी है। फिर उसके किसी किसी स्थान विशेषतः विवरद्वारवाले स्नायुके प्रान्तभागमें क्या मनुष्य क्या निकृष्ट पशुके चूने जैसा एक पदार्थ देख पड़ता है। मानव, स्तन्यपायी जन्तु, पक्षी और सरीसृपके मध्य चूना मिली एक बुकनी (Otoconia) रहती है।

विवरके द्वारांशमें दो परदे होते हैं। ऊपरवाला किञ्चित् दीर्घ और डिम्बाकार है। अंगरेजीमें उसे युट्रिकुलस या कामनसिनस (Utriculus or commonsinus) कहते हैं। अपर देखनेमें प्रथमसे किञ्चित् क्षुद्र और गोलाकार है। वह नीचे रहता है। उसका नाम कोषाणु (Succulus) है।

सुश्रुतके मतसे प्रत्येक कर्णमें एक एक शृङ्गाटक सन्धि होती है। अस्थि दो रहते, जिन्हें तरुण कहते हैं। फिर कर्णमें २ पेशी, १० शिरा और ६ धमनी हैं। उक्त छह धमनीमें २ वायुवाहिनी, २ शब्दकारिणी और २ शब्दकारिणी होती हैं। चरकमें कर्णको प्रान्तरीक्ष पदार्थ माना है।

"यदिविलक्षणयते महान्ति चाणूनि च स्रोतांसि तदन्तरिक्षं शब्दः श्रोत्रञ्च।"

(चरक, शारीरस्थान ७ अ०)

शरीरका छिद्रसमूह, वृहत् एवं सूक्ष्म स्रोतसकल, शब्द और कर्ण आन्तरिक्ष पदार्थ है।

कर्णके अवयव हमने एक एक कर लिख दिये हैं। अब देखना चाहिये—कर्णसे कैसे सुनते और कर्णके यन्त्र कैसे चलते हैं।

युरोपीय वैज्ञानिकोंके मध्य किसी किसीके मतानुसार शब्द कर्णगोचर होनेसे पूर्व प्रथम वायुद्वारा कर्णशष्कुलीमें पहुंचता है। उसी क्षण वायुके प्रभावसे उसके तरल पदार्थका आणविक कम्पन होने लगता है। शब्द सञ्चालित होते ही वायु द्वारा ढक्काकी झिल्ली हिलती है। वायुसे शब्द जितने बार इधर उधर चलता, ढक्काकी झिल्लीका भी उतने ही बार उत्कम्पन उठता है। फिर मुद्गरास्थि हिलडुल पताकास्थि और डिम्बाकार गवाक्षकी झिल्लीको जगा देता है। तत्क्षणात् ढक्काकी पेशीसे झिल्लीका वितान कांपता है। ढक्काके गह्वरमें वायु दो प्रकार कार्य सम्पादन करता है। प्रथमतः वह गवाक्षकी झिल्लीके बहिर्भागमें रौत्यनुसार ताप पहुंचाता है। उससे झिल्लीकी स्थितिस्थापकता नहीं बिगड़ती। द्वितीयतः ढक्काके गह्वरमें वायु घुसते क्षुद्रास्थिमाला चलने लगती है। शब्दविज्ञानके अनुसार वायुसंस्पर्शसे क्षुद्रास्थिमें शब्द उठता है।

कर्णाभ्यन्तरस्थ विवरमें तीन प्रकार शब्द पहुंचता है—प्रथमतः अस्थिकोश्रेणी, द्वितीयतः ढक्कागह्वरके वायु और तृतीयतः मस्तकास्थिके मध्यसे।

कर्णके भीतरी विवरद्वारको ही श्रवणेन्द्रियका मूलयन्त्र कहते हैं। पक्ष्यादिके कर्णमें अपरांश न रहते भी उक्त अंग तो होता ही है।

वृहत्काय जन्तुमें कर्णके मध्यभागपर एक विवरद्वार देख पड़ता है। वहां कानकी बुकनी मिलनेसे शब्दको विशेष सुविधा मिलती है। उसके पास पहुंचते ही शब्द झनझनाने लगता है। उक्त शब्द विवरद्वारकी झिल्ली और अर्धगोलाकार नलीके प्रसारित अंश (Ampullæ) तथा स्नायुमें सञ्चारित होता है।

अर्धगोलाकार नलीसमूहकी दीर्घता, विस्तृति और उच्चता द्रष्टव्य है। उसीसे शब्दकी गति समझ

पड़ती है। शब्द बन्द हो जाते भी उसका भाव एककाल कर्णसे नहीं निकलता। कान देखो।

२ नौकादण्ड, नावका डांड़। ३ सुवर्णालि द्रव्य। ४ चार बाहु और तीन हाथ कोटिका चेत्र। (त्रि०) ५ कुटिल, टेढ़ा। ६ दीर्घकर्ण, लम्बे कानवाला। (कात्यायनशु: २।४।४०)

कर्ण—युधिष्ठिरके अग्रज। भोजराजकी दुहिता कुन्ती अविवाहितावस्थासे पितृगृहपर अतिथिसेवामें लगी रहती थीं। एकदा दुर्वासा ऋषि उनके अतिथि बने। उन्होंने अतियत्नसे उनकी सुश्रूषा उठायी थी। मुनिने उससे परितुष्ट हो कुन्तीको एक मन्त्र देकर कहा—इस मन्त्रसे कोई देवता बोलानेपर आ तुमसे सहवास करेगा। कुन्तीने आश्चर्य प्रभावशाली मन्त्र पा कौतूहलवश सूर्यदेवको बोलाया था। सूर्यने उसी क्षण उपस्थित हो उनसे सहवास किया। सहवास मात्रसे कवचकुण्डलधारी सूर्यसम तेजस्वी एक नवकुमार निकल पड़े। कुन्ती लोकलज्जाके भयसे उन्हें अश्वनदीके जलमें बहा आयीं। कुमार कर्ण स्रोतमें बहते जाते थे। उसी समय अधिरथ नामक किसी सूतने उन्हें देख लिया। अधिरथ अपुत्रक थे। उन्होंने ऐसा सुन्दर शिशु देख नदीसे उठाया और परमानन्दमें निज पत्नी राधाके हाथ पुत्रनिर्विशेषसे खिलाया पिलाया। कवचकुण्डलरूप वसु (धन) देख उन्होंने कर्णका नाम 'वसुषेण' रख दिया।

कर्णने प्रथम द्रोणके निकट अस्त्र शिक्षा पायी थी। धनुर्वेदशिक्षाके समय अर्जुनसे उन्हें ईर्षा उत्पन्न हुयी। किसी दिन रङ्गभूमिमें द्रोणाचार्यने शिष्योंकी परीक्षा ली थी। उसमें अलौकिक कार्य देखानेपर उन्होंने अर्जुनकी बड़ी प्रशंसा की। वह कर्णसे सही न गयी। रङ्गस्थलमें सर्वसमक्ष उपस्थित हो अर्जुनको ललकार उन्होंने कहा था—'अर्जुन! तुम्हारा वह कौशल हम भी सबको देखा सकते हैं। तुम्हें कोई आश्चर्य मानना न चाहिये।' फिर कर्णने सर्वसमक्ष अर्जुनकी भांति अलौकिकी धनुर्विद्याका परिचय दिया। उस समय दुर्योधन उनकी कार्यप्रणाली देख मोहित हुये थे। उन्होंने बन्धुत्व स्थापन कर मान बढ़ानेके लिये कर्णको अङ्गराज्य दे डाला।

कर्ण सर्वदा दुर्योधनके निकट ही रहते थे। उनके मिलनेसे दुर्योधनका पाण्डवभय कितना ही छूट गया।

एक दिन कर्णने द्रोणाचार्यसे कहा था,—'गुरो! अनुग्रहकर हमें ब्रह्मास्त्र दे दीजिये। आपसे हमको आशानुरूप प्राय: सकल अस्त्र मिले हैं। केवल ब्रह्मास्त्र बाकी है। उसको दे हमारी मनस्कामना पूर्ण करना चाहिये।' द्रोण समझते थे, कि कर्ण अर्जुनसे बड़ा द्वेष रखते हैं। उसीसे उन्होंने कहा,—'जो नित्य शुद्ध व्रताचारी ब्राह्मण अथवा तपःस्वाध्यायनिरत क्षत्रिय रहता, वही व्यक्ति ब्रह्मास्त्रके उपयुक्त ठहरता है। तुम्हें ब्रह्मास्त्र मिल नहीं सकता।'

फिर कर्ण ब्रह्मास्त्रके हेतु महेन्द्र पर्वतपर पहुंचे। वहां अपनेको ब्राह्मण बता उन्होंने परशुरामसे नानाविध अस्त्रशिक्षा पायी। फिर कर्ण परशुरामके अतिप्रिय पात्र बन गये। किसी दिन वह समुद्रतार जा शरक्रीड़ा करते थे। घटनाक्रम उनके शरप्रवाहसे किसी ब्राह्मणका होमधेनु पञ्चत्वप्राप्त हुवा। कर्णने ब्राह्मणके पैरों पड़ अनेक अनुनय विनय करते अपने अनजान दोषके लिये क्षमा मांगी। ब्राह्मणने क्रोधमें उन्हें अभिशाप दिया—कि 'जिसके लिये इतनी स्पर्धा (हरानेके लिये सर्वदा चेष्टा) किया करते, उसीके हाथ तुम मारे जावोगे।' कर्ण क्षुण्णमन आश्रमको लौट आये। कुछ दिन रहते रहते उन्होंने परशुरामसे ब्रह्मास्त्र प्राप्त किया।

एक दिन परशुराम कर्णकी जङ्घपर मस्तक रख सोते थे। उसी समय अलर्क जातीय अष्टपाद कीट आकर कर्णके ऊरुदेशको एक दिक् भेद अपर पार निकल गया। कर्ण गुरुकी निद्रा टूटनेके भय वह असह्य यन्त्रणा सहते रहे। किन्तु उस दारुण दंशनसे ऊरु विदीर्ण होते रुधिरका स्रोत बह चला। गात्रमें रक्त लगाते ही परशुराम जागे। उनके आंख खोलते ही कीट मर गया। फिर परशुरामने कर्णसे कहा,—'वत्स! तुमने इस कीटका असह्य दंशन

कसे सहा? ब्राह्मण कभी इसप्रकार सह नहीं सकता। अतएव शीघ्र सत्य सत्य कहो, तुम कौन हो।'

कर्णने अवनत हो विनीत भावसे उत्तर दिया,—'गुरो! मुझे क्षमा करो। मैंने मिथ्या कह आपके निकट बड़ा ही अपराध किया है। मैं ब्राह्मण नहीं, सामान्य सूतपुत्र हूं। सूतकन्या राधा मेरी माता होती हैं। मेरा नाम कर्ण है।' उस समय परशुरामने क्रुद्ध हो कहा था,—'देखो कर्ण! तुमने ब्रह्मास्त्र लेनेको हमसे प्रतारणा की है। इसलिये युद्धकाल उस अस्त्रका स्मरण तुम्हें न रहेगा। अब शीघ्र हमारे सम्मुखसे चल दो।'

कर्ण हस्तिनाको लौट आये। कुछ दिन पीछे वह दुर्योधनके साथ कलिङ्ग गये। वहां कलिङ्गराज चित्राङ्गदकी कन्याका स्वयम्बर था। स्वयम्बरसभामें दुर्योधनने अपने वीरोंके साहाय्यसे राजकन्याको हरण किया। उस समय कर्णके साथ जरासन्धका घोर युद्ध हुवा था। उसी युद्धमें जरासन्धने वीरत्व दर्शनसे सन्तुष्ट हो कर्णको मालिनी नगरी सौंप दी। अतःपर कर्णका विवाह हुवा। पत्नीका नाम पद्मावती था।

कर्ण पाण्डवोंको मार डालनेके लिये सर्वदा दुर्योधनसे कुपरामर्श किया करते, किन्तु कृतकार्य हो न सकते थे। भीष्म कर्णके आचरणसे असन्तुष्ट हो कभी कभी निन्दा कर बैठते। वह कर्णको असह्य होती थी। उन्होंने घोषयात्राकी दुर्घटना पीछे एक दिन दुर्योधनसे कहा,—'मित्र! हमारी एक बात आपको सुनना पड़ेगी। भीष्म सर्वदा हम लोगोंकी निन्दा और अर्जुनकी प्रशंसा किया करते हैं। विशेषतः आपके सामने वह हमारी अवज्ञा करते हैं। अब हमें अनुमति दीजिये। हम अकेले ही समस्त पृथिवी जीत लें।'

दुर्योधनकी अनुमतिसे कर्ण दिग्विजय करने निकले थे। वह द्रुपद, भगदत्त एवं वङ्ग, कलिङ्ग, मण्डिक, मिथिला, मगध, कर्कखण्ड, अवन्तीपुर, अहिच्छत्र, वत्स, केरल, मृत्तिकावती, मोहन, त्रिपुर, कोशल, रुक्मी, चेदि, अवन्ति, म्लेच्छ, भद्रक, रोहितक, आग्नेय, मालव, शशक, आटविक प्रभृति नाना देशीय राजगण और अपरापर सभ्य तथा असभ्य जातिको जीत अति अल्पकालमें ही हस्तिना लौट आये। दुर्योधनके पक्षपातियोंने कर्णको शत शत धन्यवाद दिया था। फिर दुर्योधनने वैष्णव यज्ञका अनुष्ठान किया। उस समय कर्णने उनसे कहा था,—'आजसे मुंहमांगी चीज़ हम याचकको देंगे। यही हमारी प्रतिज्ञा है। जब तक हम अर्जुनको मार न सकेंगे, तब तक इसी व्रतको पालन करेंगे।'

वृषकेतु नामक उनके एक पुत्रने जन्म लिया। एक दिन श्रीकृष्णने दानपरीक्षा करनेको वृद्ध ब्राह्मणके वेश कर्णसे साक्षात् कर कहा,—'हम तुम्हारे वृषकेतु पुत्रका मांस खाना चाहते हैं।' कर्णने वही किया था। उनकी स्त्रीने वृषकेतुका मांस रांध कृष्णके सम्मुख खानेको रख दिया। कृष्णने कर्णके आचरणसे अत्यन्त सन्तुष्ट हो मृतसञ्जीवनी विद्याके प्रभावसे वृषकेतुको फिर जिलाया। इसी अलौकिक दानके लिये 'दाताकर्ण' नाम पड़ गया।

एक दिन निद्रितावस्थामें कर्णने स्वप्न देखा,—सूर्य सामने खड़े कह रहे हैं,—'कर्ण! इन्द्र पाण्डवगणके हितसाधनको ब्राह्मणके वेश तुमसे कवच और कुण्डल मांगने आयेंगे। अतएव उनको कवच कुण्डल देनेसे सावधान!' किन्तु उन्होंने स्वप्नमें उत्तर दिया,—'प्राण जाते भी हम अपनी प्रतिज्ञा न छोड़ेंगे।' फिर सूर्यने उनसे कवचकुण्डलके बदले इन्द्रको शक्ति ले लेनेको अनुरोध किया। प्रभात होते इन्द्रने ब्राह्मणके वेश आ कर्णसे कवच कुण्डल मांगि थे। कर्णने कहा, 'देवराज! हम आपको पहचानते हैं। आप कवचकुण्डल लीजिये, किन्तु अपनी शत्रुमर्दिनी शक्ति दे दीजिये।' इन्द्र इस पर सम्मत हुये। अन्तको जाते समय इन्द्र बोल उठे,—'कर्ण! इस शक्तिसे हम शत शत शत्रु मार डालते थे। किन्तु आपके हाथसे छूटने पर एक शत्रुको मार यह हमारे पास चली आवेगी।'

इधर पाण्डवोंका अज्ञातवास पूरा हुवा। उन्होंने पाञ्चालराज पुरोहितको सन्धिके लिये धृतराष्ट्रके निकट भेजा था। भीष्म पाण्डवोंका कुशल संवाद पूछ कहने

लगे,—'पाण्डव परम धार्मिक हैं। इसीसे युद्धमें आत्मीय कुटुम्बको न मिटा उन्होंने सन्धिका प्रस्ताव उठाया है। वास्तविक अर्जुनकी भांति दूसरा योद्धा पृथिवी पर देख नहीं पड़ता। कौरव पक्षमें उनके सम्मुख जानेवाला कौन वीर है!' यह बातें कर्ण सह न सके। उन्होंने भीष्मकी बड़ी निन्दा उड़ायी। अन्तको कर्ण और शकुनिके परामर्शसे सन्धि रह गयी।

कुरुक्षेत्रके महासमरमें प्रथम भीष्म कौरव-सेनापति बने थे। उन्होंने अपनी सेनाका सुप्रबन्ध बांध दुर्योधनसे कहा,—'देखो। कर्ण नीच जाति और क्षुद्र प्रकृति है। वह परशुरामके निकट अभिशप्त हुवा और कवचकुण्डल खो चुका है। ऐसे सामान्य व्यक्तिको अर्धरथी ही विवेचना करना उचित है।' यह बात सुन कर्णका सर्वाङ्ग जल उठा। उसी समय उन्होंने प्रतिज्ञा की,—'जितने दिन भीष्म जीवित रहेंगे, उतने दिन हम कभी युद्धमें अस्त्रधारण न करेंगे।' यही कहकर उन्होंने रणक्षेत्र छोड़ा था।

दश दिन युद्ध होने पीछे कुरुपितामह भीष्म शर-शय्या पर सो गये। कर्णने एक दिन रात्रिकालको उनसे मिल कहा था,—'आप सर्वदा जिसकी निन्दा करते रहे, मैं वही कर्ण हूं।' भीष्मने इन्हें देख रक्षकोंको हटाया, पीछे सस्नेह यह कहते कर्णको गले लगाया,—'हमने नारद और व्यासके मुख तुमको कुन्तीका पुत्र सुना है। पाण्डवगणसे द्वेष रखने-पर ही हम तुम्हें कुछ कड़ी बात बोल देते थे। वास्तविक तुम्हारी तरह दाता और ब्रह्मनिष्ठापर दूसरा देख नहीं पड़ता था। तुमसे हमारा पूर्व भाव दूर हो गया है। अब तुम हमारी मानो, तो अपने सहोदर पाण्डवोंकी ओरसे युद्ध ठानो।'

तेजस्वी कर्णने उत्तर दिया,—'आपके कहनेसे अब मेरे कुन्तीपुत्र होनेमें कोई सन्देह नहीं। किन्तु पितामह! इतने दिन मैं दुर्योधनके ऐश्वर्यसे ही प्रतिपालित हुवा हूं। फिर उनको मैंने एक बार आश्वास भी दिया था। अब मैं कैसे उन्हीं प्रिय बन्धु दुर्योधनसे लड़ूं। प्राण जाना अच्छा है। मैं अपनी प्रतिज्ञा न तोड़ूंगा।' भीष्मने कहा,—'तो स्वर्गकाम होकर लड़ो। कूट युद्धसे अलग रहो।'

भीष्मके पीछे द्रोणाचार्य कौरवोंके सेनापति हुये। कर्णने उनके अधीन अनेक बार युद्ध किया था। उसी समय उन्होंने बालक अभिमन्युको कूट युद्धमें मारनेका परामर्श उठाया और इस कार्यमें यथेष्ट साहाय्य पहुंचाया।

कर्ण एकाघ्नी शक्ति द्वारा अर्जुनको मारना चाहते थे। किन्तु उनके मनकी आशा मनमें ही रह गयी। भीमनन्दन घटोत्कच कुरुसैन्यके दलनमें दौड़ कर्णके सामने आये थे। उन्होंने अपने बचानेके लिये एकाघ्नी शक्ति छोड़ घटोत्कचको मार डाला। द्रोणके निहत होने पर कर्ण कुरुसैन्यके सेनापति बने। उनके सारथी शल्य रहे। यथा समय महावीर कर्ण ससैन्य समरक्षेत्रमें उतर पड़े। उनकी युद्धनीति और वीरता देख पाण्डवपक्षमें हाहाकार उठा। किन्तु कर्णसे सारथी शल्य विमुख थे। कर्ण अर्जुनके मारनेको जितना आस्फालन लगाते, शल्य उतना ही प्रतिवाद कर अर्जुनकी प्रशंसा सुनाते और उनकी निन्दा करते थे। किन्तु कर्णने निज बाहुबलसे ७७ प्रभद्रक, २५ पाञ्चाल, भानुदेव, चित्रसेन, सेनाविन्दु, तपन, सूरसेन चेदि और अपरापर स्थानके असंख्य सैन्यको मार गिराया। फिर उन्होंने अर्जुन व्यतीत युधिष्ठिरादि पाण्डवको भी हराया। कर्णने कुन्तीके निकट अर्जुनको छोड़ अपर किसी पाण्डवके न मारनेकी प्रतिज्ञा की थी। इसीसे युधिष्ठिरादि पाण्डव हार कर भी जीते रहे।

अन्तको अर्जुनके साथ कर्णका घोरतर युद्ध हुवा। उस युद्धमें श्रीकृष्णके कौशलसे वह अन्तिम शय्यापर सो गये। (महाभारत)

कर्णका प्रथम नाम वसुषेण रहा। पालक पिता सूतने उनका यही नाम रखा था। पीछे पृथक् पृथक् कार्यके अनुसार कर्ण, वैकर्तन, अर्कनन्दन, अङ्गराज, अङ्गेश्वर, चम्पेश, चम्पाधिप, अङ्गाधिप और घटोत्कचान्तक प्रभृति नाम हुवा। प्रतिपालक पिता तथा पालिका माताके परिचयानुसार कर्णको लोग सूतपुत्र,

राधेय, राधापुत्र प्रभृति भी कहते थे। २ धृतराष्ट्रके एक पुत्र। (भारत, आदि ११७।३)

कर्ण—मेवाड़के एक राणा। यह राजपूत-वीरकेशरी प्रतापसिंहके पौत्र और राणा अमरसिंहके ज्येष्ठपुत्र थे। पितृनिदेशपर विधर्मी कवलसे जन्मभूमिको बचानेके लिये इन्होंने अनेक बार मुगल-सम्राट्से युद्ध किया।

इनके समय मेवाड़ बहुत बिगड़ा था। पुनः पुनः लड़नेपर मेवाड़का राजकोष शून्य हुवा और मेवाड़के प्रधान प्रधान वीरका प्राण गया। ऐसी अवस्थामें राजपूत-वीर कितने दिन मुगलवाहिनीके विरुद्ध अस्त्र चला सकते थे! अन्तको राजकोष शून्य होनेसे कर्ण सूरत नगर लूट अर्थसंग्रह करनेपर वाध्य हुये। १६१३ ई०को यह जहांगीरके पुत्र खुरम (शाहजहान्)-से हार गये। फिर मेवाड़के राणा अमरको मुगल-सम्राट्से लड़ना पड़ा था। सन्धि होनेपर कर्ण खुरमके साथ अजमेर जा जहांगीर बादशाहसे मिले। बादशाहने यथेष्ट आदर-अभ्यर्थनाके साथ इन्हे अपने दक्षिण पार्श्व बैठनेको आसन दिया। उस समय प्रति दिन बादशाह कर्णसे मिलते और बहुमूल्य वस्त्रोपहार तथा विविध द्रव्य-सामग्री दे सम्मानवर्धन करते थे। जहांगीर अपनी जीवनीमें लिख चुके हैं—

'मातृभूमिकी प्राकृतिक अवस्थाके अनुसार कर्ण सुखसेव्य द्रव्यसामग्री अपने व्यवहारमें लाना जानते न थे। वह अतिशय लाजुक और अतिअल्पभाषी रहे। फिर हमसे बहुत मिलने जुलनेकी इच्छा भी वह रखते न थे। अपने प्रति विश्वास बढ़ानेके लिये हम उनको सान्त्वनावाक्यसे आश्वास दिया करते। हम एक दिन उन्हें नूरजहांके निकट ले गये। महिषीने उन्हें हस्ती, अश्व, खड्ग प्रभृति नाना प्रकार पारितोषिक दिया था।'

वास्तविक जहांगीर कर्णसे विजेताकी तरह व्यवहार करते न थे। वह सर्वदा कर्णका सम्भ्रम बढ़ानेको सचेष्ट रहते। १६२१ ई०में मेवाड़के अन्तिम स्वाधीन राजा महाराणा अमरसिंहने ज्येष्ठपुत्र कर्णको सिंहासन दे डाला।

कर्णके राणा बननेपर मेवाड़में शान्तिका राजत्व चला था। मुगलोंके आक्रमणसे मेवाड़के भग्न और नष्ट अंशोंका इन्होंने पुनः संस्कार कराया। राजधानीके चतुःपार्श्वस्थ प्राकार परिखा द्वारा घेरे गये। पेशोलाका जलरोधक बांध भी बढ़ा था। १६२८ ई० (१६८४ संवत्)को प्रियपुत्र जगत्सिंहके हाथ राज्य-भार सौंप इन्होंने परलोक गमन किया।

२ आर्यावर्तके एक सम्राट्। यह कर्णचेदि नामसे प्रसिद्ध थे। कर्णदेव देखो।

कर्णक (सं० पु०) कर्णयति विभिद्य जायते, कर्ण-ख्वुल्। १ वृक्ष प्रभृतिका शाखापत्रादि, पेड़ वगैरहको फोड़कर निकलनेवाला पत्ता वगैरह। २ मत्स्यविशेष, एक मछली। ३ सन्निपातविशेष। इस रोगमें दोषत्रयसे कर्णमूलपर शोथ उठता और तीव्र ज्वर चढ़ता है। फिर कण्ठग्रह, वधिरता श्वासन, प्रलाप, प्रस्वेद, मोह और दहनका प्राबल्य भी देख पड़ता है। ४ वृक्षादिका एक रोग, पेड़ वगैरहकी एक बीमारी। ५ कर्णधार, मांझी। (पु०) ६ नौकाके पार्श्वका उत्क्षेप, नाव या जहाजका बगली उभार। ७ तन्तु, किसलय, सूत, किल्ला। ८ प्रसारित पद, फैले हुये पैर। (त्रि०) ९ भिक्षुक, भीख मांगनेवाला।

कर्णकवान् (०त्रि०) कर्णकविशिष्ट, जिसमें बगली डालें रहें।

कर्णकटु (सं० त्रि०) अप्रिय, कानमें खटकनेवाला, जो सुननेमें बुरा लगता हो।

कर्णकण्डु (सं० पु०-स्त्री०) कर्णस्य कर्णे जातो वा कण्डुः। कर्णस्रोतोगत रोगविशेष, कानके गढ़ेकी खुजली। कफसंयुक्त मारुत यह रोग लगा देता है। (माधवनिदान) कफनाशक विधिसमूह ही कर्णकण्डुका प्रधान औषध है।

कर्णकण्डू (सं० स्त्री०) कर्णकण्डु देखो।

कर्णक-सन्निपात, कर्णक देखो।

कर्णकिट्ट (सं० क्ली०) कर्णमल, कानका मैल।

कर्णकीटा (सं० स्त्री०) कर्णगतः कर्णस्य भेदकः कीटः, कर्णकीट-टाप् मध्यपदलो०। १ कर्ण-जलौका, कनसलाई। २ शतपदी, हजारपा, कनखजूरा। (Julus cornifex)

कर्णकोटी (सं० स्त्री०) कर्णे स्थिता कर्णस्य भेदिका कोटी, क्षुद्रार्थे ङीष् मध्यपदलो०। कर्णजलौका, कनसलायी। इसका संस्कृत पर्याय—कर्णजलौका, शतपदी, चित्राङ्गी, पुषिका और कर्णेन्दुन्दुभि है।

कर्णकुब्ज (सं० क्ली०) नगरविशेष, एक शहर। यह वर्तमान गुजरात प्रदेशके जूनागढ़का पौराणिक नाम है। कन्यकुब्ज देखो।

कर्णकुहर (सं० क्ली०) कर्णगतं कुहरम्, मध्यपदलो०। कर्णगत छिद्र, कानका छेद।

कर्णकूपकश्वसेक (सं० पु०) जीवविशेष, किसी किस्मका जानवर। यह जलके मध्य अधोगच्छ द्वारा श्वास ग्रहण करता है। शामुकादि इसी श्रेणीके जीव हैं।

कर्णकृमि (सं० पु०) कर्णगतः सन् कर्णभेदकः कृमिः, मध्यपदलो०। शतपदी, कनखजूरा।

कर्णक्ष्वेड़ (सं० पु०) कर्णस्य कर्णे जातो वा क्ष्वेड़ः। कर्णरोगविशेष, कानकी एक बीमारी। पित्तादिसे युक्त वायु कानमें वेणुघोषके समान शब्द किया करता है। इसीको कर्णक्ष्वेड़ कहते हैं। (माधवनि०) कर्णके मध्य सर्षपतैल डालनेसे यह रोग विनष्ट होता है।

कर्णखरिक (सं० पु०) वैश्य जाति, बनियोंकी एक कौम। वैश्य देखो।

कर्णग (सं० पु०) कर्णं गच्छति, कर्ण-गम-ड। १ शब्द, आवाज़। (त्रि०) २ कर्णस्थित, कानमें पड़ा हुवा। ३ आकर्ण, कानतक फैला हुवा।

कर्णगढ़—विहारप्रान्तके भागलपुर जिलेकी एक पार्वत्य भूमि। यह अक्षा० २५° १४′ ४५″ उ० और देशा० ८६° ५८′ ३०″ पूर्व पर अवस्थित है।

देशावली और भविष्य-ब्रह्मखण्डमें इसका नाम कर्णदुर्ग लिखा है। 'पहले यहां ब्राह्मणभूमिकी राजधानी थी। संवत् १६७८ को कर्णदुर्गमें सभासिंह राजत्व करते थे। उन्हें राजा कीर्तिचन्द्रने मार डाला। सभासिंहके पीछे हेमन्तसिंहने यहां राजत्व किया। इसी कर्णगढ़से आधकोस पूर्व शिलावती नदी बहती है। उससे सवा कोस पश्चिम विशालाक्षी नामी महामायाका मन्दिर है।'

(विक्रमसागरोद्ध त देशावलीविवृति)

कर्णगढ़का शिवमन्दिर विख्यात है। सब मिलाकर चार मठ बने हैं। एकमें वृहदाकार शिवलिङ्ग है। यह शिवमन्दिर प्रायः ५।६ शत वर्षका प्राचीन है। सकल अधिवासी शैव न रहते भी कार्तिक-संक्रान्तिके दिवस बड़े समारोहसे शिवकी पूजा होती है। प्रवादानुसार इस स्थान पर कुन्तीपुत्र कर्णका राजत्व था। उन्होंने एक दुर्ग निर्माण कराया, जिसके अनुसार यह कर्णदुर्ग वा कर्णगढ़ कहाया। प्राचीन अट्टालिकाका भग्नावशेष नाना स्थान पर पड़ा है।

पहले यहां पहाड़ी बड़ा उत्पात उठाते थे। इसीसे १७८० ई०को भागलपुर जिलेके तहसीलदार क्लीवलेण्ड साहबने यहां एक दल देशीय सैन्य स्थापन किया।

कर्णगूथ (सं० क्ली०) कर्णस्य कर्णजातं वा गूथम्। कर्णमल, कानका मैल।

कर्णगूथक (सं० पु०) कर्णगूथ संज्ञायां कन्। कर्णरोगविशेष, कानकी एक बीमारी। कर्णकुहरमें पित्तके सन्तापसे श्लेष्मा सूखनेपर यह रोग उठता है। (सुश्रुत) तैल वा स्वेदप्रयोगमें ढीला कर शलाका द्वारा कर्णका मल निकाल डालना चाहिये। (चक्रदत्त)

कर्णगृहीत (सं० स्त्री०) कर्णेन गृहीतः, ३-तत्। १ श्रुत, सुना हुवा। २ कर्णकर्षक हत, जो अपने कान पकड़ा चुका हो।

कर्णगोचर (सं० स्त्री०) कर्णस्य गोचरः विषयोभूतः, ६-तत्। कर्णके विषयीभूत, सुन पड़नेवाला, जो कानमें आ सकता हो।

कर्णग्राम—१ भागीरथीतीरवर्ती वङ्गका एक ग्राम।

(भविष्य ब्रह्मखण्ड ७।३४)

कर्णग्राह (सं० पु०) कर्णमरित्रं गृह्णाति, कर्णग्रह-अण्। कर्णधार, मल्लाह, मांझी।

कर्णग्राहवत् (सं० त्रि०) कर्णधारयुक्त, जिसमें मांझी रहें।

कर्णच्छिद्र (सं० क्ली०) कर्णस्य छिद्रम्, ६-तत्। कर्णरन्ध्र, कानका छेद।

कर्णजप (सं० पु०) गुप्तसंवाददाता, मुखबिर, भेदिया।

कर्णजलूका (सं० स्त्री०) कर्णस्य कर्णं वा जलूका इव, उपमि०। कर्णकीटा, कनखजूरा।

कर्णजलौका (सं० स्त्री०) कर्णे जलौकेव। कर्णकीटी, कनसलायी।

कर्णजाप (सं० पु०) गुप्तसंवाद, कानाफूसी।

कर्णजाड्य (सं० क्ली०) कर्णोंमें रोग, कानकी एक बीमारी। प्रकुपित दोष श्रोत्र, अक्षि, घ्राण और वदनमें मस्से डाल देते हैं। उनसे कान पक और रोगी बधिर पड़ जाता है। (सुश्रुत)

कर्णजाह (सं० क्ली०) कर्णस्य मूलम्, कर्ण-जाहम्। कर्णमूल, कानकी जड़।

कर्णजित् (सं० पु०) कर्णं जितवान्, कर्ण-जि-क्विप्। अर्जुन। इन्होंने कर्णको जीता था।

कर्णजीरक (सं० क्ली०) क्षुद्र जीरक, छोटा जीरा।

कर्णज्योति (सं० स्त्री०) कर्णस्फोटा, कानकी झुम्की।

कर्णतः (सं० अव्य०) कर्णसे पृथक्, कानसे दूर।

कर्णताल (सं० पु०) कर्णे तालः ताड़ना, ७-तत्। कर्णताड़ना, कानकी फटकार।

कर्णतीर्थ (सं० क्ली०) तीर्थविशेष। (ब्रह्मतीर्थतत्त्व)

कर्णदर्पण (सं० पु०) कर्णे दर्पण इव, उपमि०। ताड़ङ्क नामक कर्णभूषणविशेष, कानमें पहननेकी एक बाली।

कर्णदुन्दुभि (सं० स्त्री०) कर्णे कर्णाभ्यन्तरे दुन्दुभिरिव तत्तुल्य ध्वनिजनकत्वात्। शतपदी, कनखजूरा।

कर्णदेव—चेदिराजवंशके एक अद्वितीय महावीर और दिग्विजयी राजा। यह कलचुरि राजा गाङ्गेयदेवके पुत्र और उत्तराधिकारी थे। हूण-राजकुमारी आवल्लदेवीसे इन्होंने विवाह किया। इन्होंने कर्णावती नगर बसाया; और पाण्ड्य, मुरल, कुङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, कीर और हूणके राजाओंको वशीभूत किया था।

कर्णदेवके पिता गाङ्गेयदेवने बुंदेलखण्डसे पश्चिम कनौजतक राज्य किया। उन्हींके समय इन्होंने प्रथम मगधपर आक्रमण मारा था। किन्तु दीपङ्कर अतीशके यत्नसे सन्धि हो गयी। १०४० ई०को प्रयागके सुप्रसिद्ध अक्षयवट मूलपर गाङ्गेयदेवने प्राण छोड़ा था। (Memoirs, A. S. B. Vol. III. Vol. p. 11) उसके पीछे ही कर्णदेव सुविस्तृत चेदिराज्य पा कर दिग्विजयकी उच्चाशासे निकल पड़े। इन्होंने गुजरातसे वङ्गालतक समस्त देश जीता। कर्णदेवकी सभामें गङ्गाधर कविका बड़ा आदर था। फिर चोड़, कुङ्ग, हूण, गौड़, गुर्जर और कीरके राजा इनकी हाजिरीमें रहते थे। नागपुर-प्रशस्तिके अनुसार जिसे देशके अन्य राजाओंने सताया और कर्णने अपने अधीन बनाया था, उसे मालवके उदयादित्यने छोड़ाया। कृष्णमिश्रके प्रबोधचन्द्रोदय और अन्य शिलालेखमें लिखा है—"चन्देल कीर्तिवर्माके सेनापति गोपालने कर्णको पराजय किया था। हेमचन्द्रके वचनानुसार यह अनहिलवाड़के २य भीमदेवसे हार गये। फिर विल्हणने भी विक्रमाङ्कदेवचरितमें पश्चिमीय चालुक्य १म सोमदेवसे इनके हारनेकी बात लिखी है।

कर्णदेव (सं० पु०) एक प्रसिद्ध चालुक्यराज। यह अनहिलवाड़ाधिपति भीमदेवके पुत्र थे। राज्यकाल संवत् ११२०-११५० रहा। इनके पुत्रका नाम जयसिंह सिद्धराज था। इसी वंशमें दूसरे कर्णदेव भी हुये। वह सारङ्गदेवके पुत्र थे। उन्होंने संवत् १३५३से १३६० तक गुजरातके अनहिलवाड़में राजत्व किया।

कर्णदेवता (सं० पु०) श्रोत्रेन्द्रियके अधिपति वायु।

कर्णधार (सं० पु०) कर्णमरित्रं धारयति, कर्ण-धृ-अण् उपपदात् अच् वा। १ नाविक, मल्लाह। (त्रि०) २ दुःखादि निवारक, तकलीफ़ वगैरह मिटानेवाला।

"अकर्णधारा पृथिवी शून्येव प्रतिभाति मे।
गते दशरथे स्वर्गं रामे चारण्यमाश्रिते॥" (रामायण २।८८।१७)

कर्णधारता (सं० स्त्री०) नाविकका काम, मल्लाही।

कर्णधारिणी (सं० स्त्री०) कर्णं अन्यजीवापेक्षाया विपुलं धरति, कर्ण-धृ-णिनि-ङीप्। हस्तिनी, हथिनी। इसके कान दूसरे जीवकी अपेक्षा बड़े होते हैं।

कर्णनाद (सं० पु०) कर्णस्रोतोगत रोग, कानकी एक बीमारी। जब वायु नाड़ीके मार्गसे हट जाता, तब कर्णमें पहुंच भेरी, मृदङ्ग और शङ्खवत् नाद लगाता है। (माधवनिदान, सुश्रुत) सर्षपतैल अथवा अपामार्ग जला और कल्कके साथ तिलतैल पका

कानमें डालनेसे कर्णनादरोग आरोग्य होता है। (चक्रदत्त)

कर्णनासा (सं० स्त्री०) श्रोत्रेन्द्रिय तथा घ्राणेन्द्रिय, कान और नाक।

कर्णन्दु (सं० स्त्री०) स्त्रीके कानकी बाली, तरौना, पात।

कर्णपत्रक (सं० पु०) कर्णे पत्रमिव कायति शोभते, कर्ण-पत्र-कै-क। कर्णपाली, बाहरी कानका हिस्सा।

कर्णपथ (सं० पु०) कर्ण एव पन्थाः, अच्। कर्णच्छिद्र, कानका छेद। कर्णकुहर ही शब्दके प्रवेशका पथ है।

कर्णपर (सं० पु०) कर्णालङ्कार, कानका जेवर।

कर्णपरम्परा (सं० स्त्री०) कर्णानां परम्परा, ६-तत्। श्रोत्रेन्द्रियकी प्राचीन प्रथा, कानकी पुरानी चाल। एकसे दूसरे और दूसरेसे तीसरे कानमें क्रमशः विषयकी विस्तृति होनेका नाम कर्णपरम्परा है।

कर्णपराक्रम (सं० पु०) अपभ्रंशयोग्य विविध छन्दोयुक्त काव्यविशेष, किसी किस्मकी शायरी।

कर्णपर्व (सं० क्ली०) महाभारतका अष्टम पर्व। इस पर्वमें कर्णके सेनापतित्व ग्रहण करनेके पीछे होनेवाली सकल घटना वर्णित है। कर्ण देखो।

कर्णपाक (सं० पु०) कर्णरोगविशेष, कानकी एक बीमारी। क्षत, अभिघात, पिड़का वा वातादि तीन दोष कुपित होनेपर रक्त अथवा पीतवर्ण स्राव निकलता और कर्णका मध्य अतिशय उष्ण पड़ जलने लगता है। इसीको कर्णपाक रोग कहते हैं। (सुश्रुत) मालती-पत्रका रस अथवा मधुके साथ गोमूत्र कर्णमें डालनेसे कर्णपाकरोग विनष्ट होता है। फिर हरिताल तथा गोमूत्र मिला अथवा जामुन और आमके नूतन पत्र एवं कपित्थ तथा कार्पासके बीज समभाग कूट पीस और रस निकाल कानमें भरनेसे भी कर्णपाक मिट जाता है। (चक्रदत्त)

कर्णपालि (सं० स्त्री०) कर्णं पालयति शोभयति, कर्ण-पाल-इन्। कर्णलतिका, बिनागोश, कानकी लौ। (Lobe)

कर्णपाली (सं० स्त्री०) कर्णं पालयति शोभयति, कर्णपाल-अच्-ङीष्। १ कर्णलतिका, कानकी लौ। २ कर्णभूषणविशेष, कानकी बाली। ३ कर्णपालीगत रोग, कानकी लौमें होनेवाली एक बीमारी। यह पञ्चविध होती है—परिपोट, उत्पात, उन्मन्थ, दुःखवर्धन और परिलेही। (सुश्रुत)

कर्णपाश (सं० पु०) सुन्दर कर्ण, खूबसूरत कान।

कर्णपिशाची (सं० स्त्री०) कर्णं स्वरूपं पिनष्टि, कर्णं पिट् आवयति नाशयति स्वरूपदर्शनेन, कर्ण-पिश्-क्विप्-आ-चि-पिच्-अच्-ङीष्। देवीविशेष, एक शक्ति। इसका ध्यान है—

"कृष्णां रक्तविलोचनां त्रिनयनां खर्वाञ्च लम्बोदरीं,
बन्धूकारुणजिह्विकां वराभयामीयुक्तकरांसुम्न खीम्।
धूम्राभिर्जटिलां कपालविलसत् पाणिद्वयां चञ्चलां,
सर्वज्ञां शवहृत् कृताधिवसतीं पैशाचिकीं तां नुमः॥"

रक्तवर्ण, रक्तचक्षु, त्रिनयना, खर्वाकृति, लम्बोदरी, बन्धूकपुष्पवत् रक्तजिह्वा, वर तथा अभयदानसे उभयकर व्यापृता, ऊर्ध्वमुखी, धूम्रवर्णा, जटामालिनी, अपर हस्त द्वयमें नरमुण्डधृता, चञ्चला, शवहृदयवासिनी और सर्वज्ञा पैशाचिकीको नमस्कार है।

निशाकाल वा पर्धरात्रको उक्त ध्यान लगा पूजा करना चाहिये। दग्ध मत्स्यका बलि निम्नलिखित मन्त्र पढ़कर चढ़ाया जाता है—"ओं कर्णपिशाचि दग्धमीनबलिं गृह्ण गृह्ण मम सिद्धिं कुरु कुरु स्वाहा।"

पूजाके दिन प्रातःकाल कुछ जप कर मध्याह्नको एकबार निरामिष खाना चाहिये। प्रातःकालकी ही बराबर रातको भी जप करना पड़ता है। ताम्बूलादि भिन्न रातको अन्य भोजन नहीं पाते। जपका दशमांश तर्पण करना चाहिये। निम्नलिखित मन्त्र एक लक्ष पुरश्चरण कर दशमांश होम होता है—

"ओं कर्णपिशाचीं तर्पयामि ह्रीं स्वाहा।"

अभावमें दशभाग तर्पण कर वर मांगना चाहिये। यन्त्रपर चन्दनसे मूलबीज बना इष्टदेवताकी पूजा करना पड़ती है। आकाशमें हुङ्कारादिकी भांति शब्द उठने और दीर्घ अग्निशिखा झलकने पर साधकका कार्य सिद्ध होता है।

कर्णपुट (सं० क्ली०) कर्णस्य पुटम्, ६-तत्। कर्णच्छिद्र, कानका छेद।

कर्णपुत्रिका (सं० स्त्री०) कर्णशष्कुली, कानकी साल।

कर्णपुर (सं० क्ली०) कर्णस्य पुरम्, ६-तत्। कर्णकी राजधानी चम्पानगरी। आजकल इसे भागलपुर कहते हैं।

कर्णपुरी (सं० स्त्री०) कर्णस्य पुरी, ६-तत्। चम्पानगरी, भागलपुर।

कर्णपुष्प (सं० पु०) कर्णवत् कर्णाकारं कर्णभूषणयोग्यं पुष्पं वा यस्य। १ मोरटलता, एक बेल। २ नीलझिण्टी, काली झाड़ी।

कर्णपूर् (सं० स्त्री०) कर्णस्य पूः पुरम्, ६-तत्। कर्णके राज्यकी पुरी, भागलपुर। इसका संस्कृत पर्याय—चम्पा, मालिनी और लोमपादपूः है।

कर्णपूर (सं० पु०) कर्णं पूरयति अलङ्करोति, कर्ण-पूर-अण्। १ शिरीषवृक्ष, सिरिसका पेड़। २ नीलपद्म, काला कंवल। ३ अशोकवृक्ष। ४ कर्णभूषण, करनफूल। ५ बालग्रह। यह स्कन्दादि सात रहते और बालकोंको पीड़ा करते हैं। ६ नन्दीवृक्ष, एक पीपल।

कर्णपूरक (सं० पु०) कर्णं पूरयति भूषयति, कर्ण-पुर-ण्वुल्, कर्णपूर स्वार्थे कन् वा। १ कदम्बवृक्ष, कदम्बका पेड़। २ अशोकवृक्ष। ३ तिलक, तिल।

कर्णपूरण (सं० क्ली०) कर्णस्य पूरणम्, ६-तत्। तैलादिसे कर्णका पूरण, तेल वगैरहसे कानका भराव। स्नेहादिकी मात्रासे भिषक्को भली भांति कर्ण भरना चाहिये। नित्य कर्णपूरणसे मनुष्य न तो ऊंचा सुनता और न बहरा पड़ता है। रसाद्यसे भोजनके पहले और तैलाद्यसे सूर्यास्तके पीछे कर्णको भरना अच्छा है। (वैद्यक) २ कर्णपूरणद्रव्य, कानमें डालनेकी चीज़।

कर्णप्रणाद (सं० पु०) कर्णे अङ्गुलिपिहितकर्णे प्रणादः शब्दविशेषः, ७-तत्। कर्णनादनामक रोगविशेष।

कर्णनाद देखो।

कर्णप्रतिनाह (सं० पु०) कर्णे जातः प्रतिनाहः रोगविशेषः, मध्यपदलो०। कर्णरोगविशेष, कानकी एक बीमारी। कर्णका मल पिघल घ्राण और मुखतक आ पहुंचनेसे कर्णप्रतिनाह रोग समझा जाता है। इस रोगसे मस्तकके अर्ध भागमें वेदना हुवा करती है। (माधवनिदान) कर्णप्रतिनाह रोगमें स्नेह और स्वेद प्रयोगकर नस्यादि लेना चाहिये। (चक्रदत्त)

कर्णप्रतीनाह (सं० पु०) कर्णरोगविशेष, कानकी एक बीमारी। कर्णप्रतिनाह देखो।

कर्णप्रयाग—युक्त प्रदेशके गढ़वाल ज़िलेका एक ग्राम। यह पिण्डार तथा अलकानन्दा नदीके सङ्गमस्थान (अक्षा० ३०° १५´ उ० और देशा० ७९° १४´ ४०´´ पू०) पर अवस्थित है। कर्णप्रयाग अतिपूर्वसे एक महातीर्थ माना जाता है। यहां गङ्गाके सङ्गममें नहानेसे अशेष पुण्य मिलता है। हिमालयको जाते समय यात्री इस तीर्थका दर्शन करते हैं। यहां हिमाचलनन्दिनी उमाका मन्दिर है। स्थानीय पण्डावोंके कथनानुसार भगवान् शङ्कराचार्यने यह देवीमन्दिर बनाया था। पहले यहां पिण्डार उतरनेके लिये रस्सीका झूला रहा। किन्तु अब लोहका सेतु बन गया है।

कर्णप्रयागके एक मन्दिरमें कर्णकी प्रतिमूर्ति है। किसी किसीके मतानुसार कर्णके नामपर ही इसे कर्णप्रयाग कहते हैं। यह समुद्रतलसे २५६० फीट ऊंचा है।

कर्णप्रान्त (सं० पु०) कर्णस्य प्रान्तः सीमादेशः, ६-तत्। कर्णकी शेष सीमा, कानका छोर।

कर्णप्राय (सं० पु०) देशविशेष, एक मुल्क। यह देश नैऋत दिक्में अवस्थित है। (वृहत्सं० १४।१८)

कर्णप्रावरण—जनपदविशेष, एक मुल्क। महाभारतमें यह जनपद दक्षिणदेशीय कालमुख, कोलगिरि, निषाद प्रभृतिके साथ उक्त है। (सभाप० ३०अ०)

देशावलीके मतमें कर्णप्रावरण मालव देशसे पश्चिम पड़ता है। मत्स्यपुराणमें एक अपर कर्णप्रावरणका नाम है। उसी जनपदसे पावनी नदी प्रवाहित है। (मत्स्यपु० १२१।५८) वह सम्भवतः हिमालयसे उत्तर लगता है।

कर्णप्रावरण अपने अधिवासियोंका भी बोधक है। पाश्चात्य मेगस्थिनिसने भारतपुस्तकमें कर्णप्रावरणोंको एनेटोकेटे (Enotokoitoi) लिखा है।

कर्णफल (सं० पु०) कर्णः फलमिव यस्य। मत्स्यविशेष, एक मछली। (Ophiocephalus kurrawey) राजवल्लभके मतसे यह अजीर्ण और कफकर है।

कर्णफुली—चट्टग्रामकी एक नदी। यह अक्षा० २२°

५५´ उ० और देशा० ९२° ४४´ पू० पर अवस्थित है। कर्णफुली जयन्ताद्रिसे निकल दक्षिणमुख बङ्गोपसागरमें जा गिरी है। इसके दक्षिण कूलपर चट्टग्राम नगर और बन्दर है। प्रधान शाखा चार हैं—कासालङ्ग, चिङ्गड़ी, कपताई और रङ्गियाङ्ग।

कर्णफुलीके उत्पत्तिस्थान पर नीलकण्ठ नामक शिवलिङ्ग प्रतिष्ठित है। इस नदीमें नहानेसे पुण्य होता है। (भविष्य ब्रह्मखण्ड १४।६)

कर्णबन्धनाकृति (सं० स्त्री०) कर्णवेधके अनन्तर कर्णके बन्धनकी आकृति। यह पञ्चदश विध होती है— १ नेमिसन्धानक, २ उत्पलभेद्यक, ३ वल्लूरक, ४ आसङ्गिम, ५ गण्डकर्ण, ६ आहार्य, ७ निर्वेधिम, ८ व्यायोजिम, ९ कपाटसन्धिक, १० अर्धकपाटसन्धिक, ११ संक्षिप्त, १२ हीनकर्ण, १३ वल्लीकर्ण, १४ यष्टिकर्ण और १५ काकौष्टक।

कर्णभूषण (सं० क्ली०) कर्णं भूषयति, कर्ण-भूष-ल्यु। १ कर्णालङ्कार, कानका जेवर। २ अशोकवृक्ष। ३ नागकेशर।

कर्णभूषा (सं० स्त्री०) कर्णं भूषयति, कर्ण-भूष-अच्-टाप्। कर्णभूषण, कानका जेवर।

कर्णमद्गुर (सं० पु०) मत्स्यभेद, एक मछली। (Silurus unitus)

कर्णमल (सं० क्ली०) कर्णस्य मलम्, ६-तत्। कर्णगूथ, खूंट, कानका मैल।

कर्णमुकुर (सं० पु०) कर्णे मुकुरः दर्पण इव, उपमि०। कर्णालङ्कार विशेष, कानका वाला।

कर्णमुख (सं० त्रि०) कर्णके अधीनस्थ, कर्णके पीछे रहनेवाले।

कर्णमूल (सं० क्ली०) कर्णस्य मूलम्, ६-तत्। कर्णका मूलदेश, कानकी जड़। २ कर्णरोगविशेष, कानकी एक बीमारी। इसमें कानकी जड़ सूजती है।

कर्णमूलीय (सं० त्रि०) कर्णमूल-छण्। कर्णमूल सम्बन्धीय, कानकी जड़के मुताल्लिक।

कर्णमृदङ्ग (सं० पु०) कानकी भीतरी झिल्ली। यह अस्थिपर चढ़ा रहता है। इसी पर जब कम्पित वायुका आघात लगता, तब जीवको शब्दका ज्ञान उपजता है।

कर्णमोचक (सं० पु०) कर्णस्फोटा, कानकी लौ।

कर्णमोटा (सं० स्त्री०) ववूरवृक्ष, बबूलका पेड़।

कर्णमोटि, कर्णमोटी देखो।

कर्णमोटी (सं० स्त्री०) कर्णं कर्णोपलक्षितं रोगविशेषं मोटयति नाशयति, कर्ण-मुट्-इन्-ङीप्। चामुण्डा देवी।

कर्णमोरट (सं० पु०) कर्णस्फोटा, एक बेल।

कर्णयुग्मप्रकीर्ण (सं० क्ली०) नृत्यचालकविशेष, नाचकी एक चाल। इसमें हस्तद्वयको घुमा पार्श्वके सम्मुख लाते हैं।

कर्णयोनि (सं० त्रि०) कर्णः योनिः स्थानमस्य, बहुव्री०। १ कर्णग्राह्य, कानमें पड़ने लायक। २ कर्णसे उत्पन्न, कानसे पैदा।

कर्णरन्ध्र (सं० पु०) कर्णस्य रन्ध्रः, ६-तत्। कर्णगत छिद्र, कानका छेद।

कर्णराज—गुजरातके अनहिलवाड़वाले एक राजा। यह भीमराजके एक पुत्र थे। १०७२ ई०को भीमके स्वर्गारोहण करनेसे इनपर राज्यका भार पड़ा। शासननीतिके गुणसे राज्यके सामन्त और पार्श्ववर्ती राजा कर्णराजके वशीभूत हुये। इन्होंने रूपमें विमुग्ध हो कदम्बराज जयकेशीकी कन्या मयानल्लदेवीसे विवाह किया। प्रथम पुत्र न होनेसे इन्होंने लक्ष्मीदेवीका ध्यान लगाया था। फिर लक्ष्मीके वरसे मयानल्लदेवी पुत्रवती हुयीं (१०९३ ई०)। वृद्धावस्थामें इन्होंने अपने पुत्र जयसिंहको राज्य सौंप वानप्रस्थ अवलम्बन किया।

कर्णरोग (सं० पु०) कर्णस्य कर्णजातो रोगः। कर्णव्याधि, कानकी बीमारी। यह २८ प्रकारका होता है—कर्णशूल, कर्णनाद, वाधिर्य, कर्णक्ष्वेड़, कर्णस्राव, कर्णकण्डु, कर्णगूथ, कर्णप्रतीनाह, जन्तुकर्ण, कर्णपाक, पूतिकर्ण, ४ प्रकार अर्श, ७ प्रकार अर्बुद, ४ प्रकार शोथ और २ प्रकार विद्रधि। (वैद्यक निघण्टु)

कर्णरोगप्रतिषेध (सं० पु०) कर्णरोगाणां प्रतिषेधः शमनोपायः यत्र, बहुव्री०। १ कर्णरोगचिकित्सा, कानकी बीमारीका इलाज। २ सुश्रुतसंहिताका एक अध्याय।

कर्णरोगविज्ञान (सं० क्ली०) कर्णगत व्याधिका निदान, कानमें होनेवाली बीमारीकी जांच।

कर्णल (सं० त्रि०) कर्णः कर्णशक्तिरस्त्यस्य, कर्ण-लच्। प्रशस्त श्रवणशक्तिविशिष्ट, अच्छी तरह सुन सकनेवाला, जिसके कान रहे।

कर्णलग्नस्कन्ध (सं० पु०) स्कन्धस्थितिभेद, कन्धे के रहनेकी एक हालत। नृत्यमें स्कन्धको सरल बना और उठा कर्णके निकट लानेसे यह स्थिति हो जाती है।

कर्णलता (सं० स्त्री०) कर्णस्य लता इव, उपमि०। कर्णपाली, कानकी लौ।

कर्णलतिका (सं० स्त्री०) कर्णस्य लता इव, कर्ण-लता स्वार्थे कन्-टाप् अत इत्वम्। कर्णपाली, कानकी लौ। (Lobe of the ear)

कर्णवंश (सं० पु०) कर्णः कर्णस्थितिवत् वंशो यत्र, बहुव्री०। मञ्च, बांसका ऊंचा ठाट।

कर्णवत् (सं० त्रि०) कर्णः प्रशस्तेन अस्यास्ति, कर्ण-मतुप् मस्य वः। १ दीर्घकर्णविशिष्ट, बड़े कानवाला। २ कर्णयुक्त, कानवाला। ३ कोमलशाखा वा कीलक विशिष्ट, किल्ले या कीलवाला। ४ अरित्रयुक्त, जिसके पतवार रहे।

कर्णवर्जित (सं० पु०) कर्णेन श्रवणेन्द्रियेण वर्जितः हीनः। १ सर्प, सांप। इसके पृथक् कर्णेन्द्रिय नहीं होता। (त्रि०) २ कर्णहीन, कनकटा। ३ वधिर, बहरा।

कर्णवश (सं० पु०) मत्स्यविशेष, एक मछली। यह वृत्त, गोल, कृष्ण और शल्कवान् होता है। मांस दीपन, पाचन, पथ्य, हृद्य और बलपुष्टिकर है।

कर्णवालिस—भारतके एक भूतपूर्व गवरनर-जनरल। १७३८ ई०को ३१वीं दिसम्बरको इन्होंने जन्म लिया। नाम चार्लस कर्णवालिस था। यही कर्णवालिस प्रदेशके द्वितीय आर्ल और प्रथम मार्क्विस बने। पिताके रहते कर्णवालिस लार्ड ब्रम कहाते थे। १७६२ ई०को इनके पिता मरे। पितृपदके अधि-कारी होनेपर यह इङ्गलेण्डेश्वरके विशेष प्रियपात्र हुये। शासनके कार्यमें इन्हें सर्वतोमुखी क्षमता और स्वाधीन मत प्रकाश करनेकी शक्ति थी। जब अमे-रिका-वासियोंने स्वाधीनताके लिये युद्ध किया, तब इन्होंने अति उत्साह तथा विशेष कौशलके साथ न्यूयार्क, वर्जिनिया, कामडेन, ग्वाइफर्ड, कमफर्ट प्रभृति स्थानको जीत लिया। किन्तु इयर्क नदीके तीर इयर्क हो नामक नगरके युद्धमें फरासीसी और अमेरिका-वासी द्वारा एक बार आक्रान्त होनेपर हार कर शत्रुके हाथ सदल इन्हें आत्म समर्पण करना पड़ा। (१७८१ ई०) इन्हींके पराजयसे अंगरेज़ ढीले हुये। १७८२ ई० को अंगरेज़ोंने सन्धि कर कर्णवालिसको छोड़ाया था। राजाके प्रियपात्र रहनेसे पराजय पाते भी यह विशेष तिरस्कृत न हुये।

१७८६ ई०को लार्ड कर्णवालिस भारतके गवर-नर जनरल बनाये गये और उसी वर्ष सितम्बर मास कलकत्ते आ पहुंचे। यह शान्तस्वभाव, गम्भीर-बुद्धि, सुविचारक्षम, लोकप्रिय, महान् हृदय और लोकहितैषी थे। इनके आते समय भारतमें युद्ध विग्र-हादि कुछ न रहा। किन्तु वारन हेष्टिङ्गसके शासन कालकी दुर्नीतिसे देश भरा पड़ा था। अत्याचार अविचारसे आपामर साधारण घबरा गये और अने-कानेक देशी राजा विध्वस्त हुये। सुतरां ऐसी अवस्थामें लार्ड कर्णवालिस आ और स्वीय स्वभावके गुणसे नाना हितकर कार्य उठा भारतीय प्रजाके विशेष प्रिय बने। उस समय बड़े बड़े अंगरेज कर्मचारी तथा सैनिक इस देशके लोगोंसे वाणिज्य व्यवसाय चलाते और राजा-वोंके निकट उपढौकन पाते थे। सैनिक नानाविध उपायसे पुरस्कार ले लेते। शान्तिरक्षाके लिये कितना ही सैन्य रखा जाता था। लार्ड कर्णवालिसने यह सकल कुप्रथा उठायो। इन्होंने सैनिक और अन्य-विध कर्मचारीके लिये वेतनका प्रबन्ध बांधा था।

लखनऊके नवाबसे जो सन्धि हुयी, उसमें अनेक अनीति और असङ्गत रीति रही। इन्होंने पुनर्वार उक्त विषयको विवेचना लगायी और यह बात ठहरायी—सीमान्त प्रदेशमें सैन्यव्ययके लिये नवाब प्रतिवर्ष ७४ लाखके बदले ५० लाख ही रुपये देंगे। फिर उनसे दूसरे विषयपर लिया जानेवाला सब रुपया बन्द कर दिया गया। नवाबको अपने राज्यमें स्वाधीन भावसे शासनकार्य चलानेकी क्षमता मिली।

पहले हैदराबाद राज्यमें निजामसे गण्टूर सर-

कारके अंगरेजोंके अधीन रहनेको बात ठहरी थी। बहुत दिन तक अधिकार न पाने पर १७८८ ई०को इन्होंने कप्तान कनवेको दूतस्वरूप भेज दिया। किन्तु निज़ामने कुछ न सुना। लार्ड कर्णवालिसने अन्तको युद्धका भय देखा सैन्य प्रेरण किया। निज़ामने शान्त भावसे वश्यता मानी और टीपू सुलतानके पाससे कितना ही राज्य छोड़ा लेनेको अंगरेज़ोंसे सहायता मांगी। फिर उन्होंने टीपूको डरानेके लिये एक कुरान भेज कहलाया था—'प्रभूत विक्रम अंगरेज़ोंसे विवाद आवश्यक नहीं जंचता। एक धर्मावलम्बी रहते हम दोनोंके विवाद मिटानेको दूसरेको मध्यस्थता मानना क्या अच्छा है!' टीपूने उत्तर दिया, 'यदि आप अपनी कन्यासे हमारा विवाह कर दें, तो हम भी आपको बात मान लें।' निज़ाम इस पर बहुत बिगड़े थे। फिर उभयका युद्ध रुक न सका। मसूलीपट्टनको सन्धिके अनुसार अंगरेज़ निज़ाम पक्षमें टीपूसे लड़नेपर स्वीकृत हुये। टीपूके साथ विवादका दूसरा भी कारण था। मङ्गलूरके सन्धिपत्रानुसार त्रिवाङ्कोड़ अंगरेज़ोंका रक्षित राज्य निर्दिष्ट हुवा। त्रिवाङ्कोड़के राजाने ओलन्दाजोंसे करङ्गानूर और आयकोटा नामक दो नगर खरीदे। टीपूने यह क्रय न माना और कोचिनराजका पक्ष ले त्रिवाङ्कोड़से युद्ध ठाना था। लार्ड कर्णवालिसने त्रिवाङ्कोड़के साहाय्यार्थ परिकर बांधा।

युद्ध होने लगा। १७८९ ई०को जनरल आवरने उपकूलस्थ काननका एक प्रदेश अधिकार किया। प्रथम महिसुरयुद्ध इसासे बन्द हो गया। द्वितीय बार (१७९१ ई०) लार्ड कर्णवालिस स्वयं सेनापति बन लड़ने चले। इस युद्धमें टीपू हारे थे। किन्तु इन्हें भी खाद्यके अभावसे सम्पूर्ण जय न मिला और ससैन्य पीछे लौटना पड़ा। अन्तको मराठोंके साहाय्यसे फिर युद्ध चला। टीपूने वाध्य हो सन्धि कर ली।

महिसुरमें क्षतकार्य हो इन्होंने शासनविधिके संस्कारपर मन लगाया। उस समय कर लेनेका प्रबन्ध बहुत विशृङ्खल था। अकबरने पैमायश करा भूमिका जो कर ठहराया, वही बराबर चला आया। कर लेनेवाले कार्य वंशानुक्रम चला नाना प्रकार अत्याचार देखाते थे। लार्ड कर्णवालिस इन सब विषयोंका अनुसन्धान लेने लगे। अन्तको तालुकदारोंसे इन्होंने एक नियम किया था। यह दशसाला बन्दोबस्त कहाता है। किन्तु इस नियममें भी असुविधा देख लार्ड कर्णवालिसने ज़मीन्दारोंको चिरकालके लिये भूस्वामित्व दिया और गवरनमेण्टके साथ करका प्रबन्ध किया। यही चिरस्थायी बन्दोबस्त कहाता है। १७९३ ई०की २२वीं मार्चको यह बन्दोबस्त हुआ था।

पहले विचारक और तहसीलदार या कलेक्टरका काम एक ही व्यक्ति करता था। इन्होंने इन दोनों कार्यपर दो स्वतन्त्र व्यक्ति रखनेकी व्यवस्था बांधी। लार्ड कर्णवालिसने ही ज़िले ज़िले दीवानी अदालत खोली थी। फिर दीवानी अदालतकी अपील सुननेको दूसरी चार अदालतें बनीं। अपीलकी अदालतोंके विचार जांचनेका भार कलकत्तेको सदर दीवानी अदालतपर आया। फिर निज़ामतको अदालतके आइनकानून भी बहुत कुछ बदल गये।

१७९३ ई०के अक्तोबर मास यह स्वदेशको चले थे। इनके पीछे दश-साला और चिरस्थायी बन्दोबस्तको प्रथा स्थिर करनेवाले सर जान शोरने भारतके शासनका भार उठाया।

देशमें जाकर लार्ड कर्णवालिसने महासम्मान और मार्किस उपाधि पाया था। १७९८ ई०को यह आयर्लेण्डके शासनकर्ता बने। वहां भी लार्ड कर्णवालिस शान्त भावसे विद्रोहादि मिटाने पर लोकप्रिय हो गये। १८०१ ई०को राजदूत बन यह फ्रान्स (फरासीस) पहुंचे थे। इन्हींको मध्यस्थतासे एमिन्सको सन्धि स्थापित हुयी।

१८०५ ई०को यह फिर भारतके राजप्रतिनिधि बने थे। यहां अगस्त मास पहुंचते ही लार्ड कर्णवालिस एक दल सैन्यके अधिनायक हो पश्चिमोत्तर प्रदेशको चले और अक्तोबर मास गाज़ीपुर पीड़ित पड़े। उसी मासकी ५वीं तारीखको इनका मृत्यु हुवा। ग़ाज़ीपुरमें लार्ड कर्णवालिसकी कब्र बनी है।

कर्णविट् (सं० स्त्री०) कर्णस्य कर्णं जाता वा विट्। कर्णमल, कानका मैल।

"वसाशुक्रमसृङ्मज्जामूत्रविड्घ्राणकर्णविट्।
श्लेष्माश्रु दूषिका स्वेदो द्वादशैते नृणां मलाः॥" (मनु)

कर्णविट्क (सं॰ त्रि॰) कर्णविट्विशिष्ट, जिसके खूंट रहे।

कर्णविद्रधि (सं॰ पु॰) कर्णस्रोतोगत स्फोटक, कानका भीतरी फोड़ा। यह दोषज और आगन्तुज—द्विविध होता है।

कर्णविधि (सं॰ पु॰) कर्णस्वेदनादि, कानमें तेल वगैरह डालनेका तरीका।

कर्णविवर (सं॰ क्ली॰) कर्णच्छिद्र, कानका छेद।

कर्णवेध (सं॰ पु॰) कर्णयोः, कर्णस्य वा वेधः, ६-तत्। संस्कारविशेष, कनछेदन। इसमें शास्त्रोक्त विधानके अनुसार कान छेदना पड़ते हैं। जन्मके मासवे ६ठें, ७वें, ८वें, १२वें या १६वें महीने, बुध, बृहस्पति, शुक्र वा सोमवार, द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी, षष्ठी, सप्तमी, द्वादशी अथवा त्रयोदशीको ब्राह्मण तथा वैश्यका रौप्य, क्षत्रियका स्वर्ण और शूद्रका लौहशलाका द्वारा कर्णवेध किया जाता है। जन्ममास, चैत्र एवं पौष, युग्म-वत्सर, हरिके शयनकाल, दूषित सूर्य, क्षयपक्ष, जन्मनक्षत्र, दिवसके पूर्व भाग और रात्रिकालमें कर्णवेध करना न चाहिये। (मदनरत्न) उत्तरायण सूर्यका समय कर्णवेधके लिये अच्छा है। दक्षिणायनमें यह संस्कार करना न चाहिये। (गर्ग) एक पिताके दो पुत्रका कर्णवेध संस्कार न होते पुनर्वार पुत्रोत्पत्तिकी सम्भावना आनेसे दोनोंमें शुद्र वर्षवालेका कर्णवेध कर्तव्य है। ऐसे समय ज्येष्ठ कनिष्ठका विचार आवश्यक नहीं। कारण कर्णवेधरहित तीन पुत्र हो जानेसे 'कर्णयट्क' दोष लगता, जो अतीव कुत्सित ठहरता है। (मलमासतत्त्व) ब्राह्मणके कर्णमें अङ्गुष्ठके यव प्रमाण प्रशस्त छिद्र रहना चाहिये।

"अङ्गुष्ठमात्रसुषिरौ कर्णौ न भवतो यदि।
तस्मै श्राद्धं न दातव्यं दत्तं चेदासुरं भवेत्॥" (निर्णयसिन्धु)

कर्णमें अङ्गुष्ठके यव प्रमाण छिद्र न रहते कोयी कैसे श्राद्धका अधिकारी हो सकता है। उसके करनेसे श्राद्ध असुरका भोज्य बन जाता है।

"कर्णरन्ध्रे रवेश्छाया न विशेदग्रजन्मनः।
तं दृष्ट्वा विलयं यान्ति पुण्यौघाश्च पुरातनाः॥" (हेमाद्रिधृत देवलवचन)

जिस ब्राह्मणके कर्णरन्ध्रमें सूर्यका किरण नहीं घुसता, उसको देखनेसे प्राचीन पुण्यशील व्यक्ति भी नरक पहुंचता है। कर्णव्यधविधि देखो।

कर्णवेधनिका (सं॰ स्त्री॰) विध्यते ऽनया, कर्ण-विध करणे ल्युट् स्वार्थे कन्-टाप् अत इत्वम्। १ वारिकर्णवेधनास्त्र, हाथीके कान छेदनेका औज़ार। २ कर्णवेधनास्त्र, कान छेदनेका औज़ार।

कर्णवेधनी (सं॰ स्त्री॰) विध्यते ऽनया, कर्ण-विध करणे ल्युट्-ङीप्। कर्णवेधकी सूची, कान छेदनेकी सूयी।

कर्णवेष्ट (सं॰ पु॰) कर्णौ वेष्टयति, कर्ण-वेष्ट-अच्। १ कुण्डल, बाली, पात। २ द्वापर युगके एक राजा। (भारत, आदि ६७ अ॰)

कर्णवेष्टक (सं॰ क्ली॰) कर्णौ वेष्टयति, कर्ण-वेष्ट-ण्वुल्। १ कुण्डल, बाला। २ शिरस्त्राणका प्रालम्ब, टोपीका दामन। इससे कान बांधे जाते हैं।

कर्णवेष्टकीय (सं॰ त्रि॰) कर्णवेष्टक-ढञ्। कर्णवेष्टक सम्बन्धीय, बाले या टोपीके दामनसे सरोकार रखनेवाला।

कर्णवेष्टन (सं॰ क्ली॰) कर्णौ वेष्ट्यते ऽनेन, कर्ण-वेष्ट-ल्युट्। १ कुण्डल, बाला। २ शिरस्त्राणका प्रालम्ब, टोपीका दामन। ३ कर्णका वेष्टन, कान लपेटनेका काम।

कर्णव्यध (सं॰ पु॰) कर्णवेधन, कनछेदन।

कर्णव्यधविधि (सं॰ पु॰) कर्णव्यधस्य कर्णवेधस्य विधिः, ६-तत्। १ कर्णवेधका नियम, कनछेदनका तरीका। २ रक्षाभूषणको बालकके कर्णवेधका सुश्रुतोक्त नियम। षष्ठ वा सप्तम मास, प्रशस्त तिथि करण मुहूर्त तथा नक्षत्रयुक्त दिवस मङ्गल कार्य एवं स्वस्तिवाचन कर धात्रीके क्रोड़में बालकको बैठाना और विविध क्रीड़ाद्रव्य द्वारा सान्त्वना दिलाना चाहिये। फिर भिषक् वामहस्त द्वारा खींचकर पकड़ और सूर्य किरणमें दैवकृत छिद्र लक्ष्यकर दक्षिण हस्त सूक्ष्म सूचीसे सरल भाव पर कान छेदता है। पुत्रका दक्षिण और कन्याका वाम कर्ण छेदा जाता है। वेधके बाद

उसमें रूयीकी बत्ती बनाकर डलाना और अपक्व तैल लगाना चाहिये। अधिक रुधिर गिरने या वेदना बढ़नेसे अन्य स्थानका वेध समझते हैं। यथारीति कर्णवेध होनेसे किसीप्रकार उपद्रव उठनेकी आशङ्का नहीं आती। किन्तु अज्ञ भिषक् द्वारा कोयी दूसरी शिरा छिद जानेसे विविध उपद्रव उठते हैं। कालिका शिरा विद्ध होनेसे ज्वर, दाह, शोथ और दुःख बढ़ता है। फिर मर्मरिका वेधसे वेदना, ज्वर एवं ग्रन्थि और लोहितिका वेधमें मन्यास्तम्भ, अपतानक, शिरोग्रह और कर्णशूलरोग लगता है।

कष्टकर जिह्मा, प्रशस्त सूचीके वेध, गाढ़तर वर्ती प्रवेश अथवा दोषके प्रकोपसे वेदना तथा शोथ होने पर यष्टिमधु, एरण्डमूल, मञ्जिष्ठा, यव एवं तिल बांट और मधु घृत डाल प्रलेप चढ़ाते हैं। इस प्रलेपसे अच्छा हो जानेपर फिर पूर्वोक्त नियमसे कर्णवेध करना पड़ता है। छिद्र बढ़ानेको तीन दिन पीछे क्रमशः स्थूलवर्ती डाल तैलसे सेंक देना चाहिये। (सुश्रुत)

कर्णशष्कुली (सं° स्त्री°) कर्णयोः कर्णस्य वा शष्कुली इव, उपमि°। १ कर्णगोलक, कानका परदा। (Auricle or external ear)

कर्णशिरीष (सं° पु°) कर्णगतः शिरीषः, मध्यपद-लो°। कर्णपर अलङ्कारवत् धारण किया हुवा शिरीष पुष्प, जो सिरिसका फूल कानपर जेवरकी तरह रखा हो। प्रवादानुसार कानमें फूल खोंसना न चाहिये।

कर्णशूल (सं° पु°) कर्णस्य शूलः शूलवत् यन्त्रणा-प्रदो रोगः। कर्णस्रोतोगत रोगविशेष, कानका दर्द। दूषित कफ, पित्त एवं रक्तसे पथ रुकते वायु कर्णमें चारो ओर चलता और अत्यन्त वेदना उत्पन्न करता है। इसी पीड़ाका नाम कर्णशूल है। कर्णशूल कष्ट-साध्य होता है। कपित्थ, निम्बुक एवं आर्द्रकका रस अथवा शुण्ठी, मधु, सैन्धव तथा तैल वा रसुन, आर्द्रक, शोभाञ्जना, रक्त शोभाञ्जनाके मूल और कदलीका रस किञ्चित् उष्ण कर कानमें डालनेसे कर्णशूल निवारित होता है। केवल समुद्रफेनको भी कूटपीस कानमें भरा करते हैं। गोमूत्र, हस्तिमूत्र, उष्ट्रमूत्र अथवा गर्दभमूत्र उष्णकर कर्णपूरण करनेसे कर्णशूल मिट जाता है। अर्कपत्रके पुटमें जला सेहुण्डपत्रका उष्ण रस कर्णमें डालनेसे उक्त रोग आरोग्य होता है। फिर घी लगा अर्कका पक्वपत्र अग्नि वा रौद्रमें तपाने और हाथसे दबा कानमें रस टपकानेसे भी कर्णशूल घटता है। (चक्रदत्त)

कर्णशूली (सं° त्रि°) कर्णशूलो ऽस्यास्ति, कर्णशूल-इन्। कर्णशूलविशिष्ट, जिसके कानमें दर्द रहे।

कर्णशेखर (सं° पु°) शालवृक्ष, सालका पेड़।

कर्णशोथ (सं° पु°) कर्णस्रोतोगत रोगविशेष, कानकी सूजन। इस रोगसे कर्णमें अर्बुद और अर्श उत्पन्न होते हैं। (माधवनिदान) फिर कर्णशोथसे कान बहने और रोगी बहरा पड़ने लगता है। (वाभट)

कर्णशोथक, कर्णशोथ देखो।

कर्णशोभन (सं° त्रि°) कर्णं शोभयति, कर्ण-शुभ-णिच्-ल्युट्। कर्णभूषण, कानका गहना।

कर्णश्रव (सं° त्रि°) कर्णेन श्रवः श्रवणयोग्यः शब्दो यत्र, कर्ण-श्रु-अच्, बहुव्री°। श्रवणके योग्य, सुन पड़ने लायक।

"कर्णश्रवे ऽनिले रात्रौ दिवापांशुसमूहने।" (मनु)

कर्णसंस्राव (सं° पु°) कर्णस्य कर्णयो वा संस्रावः पूयशोणितादेः निस्रावणं यत्र रोगे, बहुव्री°। कर्ण-स्रोतोगत रोगविशेष, कानकी एक बीमारी। मस्तकमें कोई आघात लगने, जलमें डूब पड़ने अथवा आभ्य-न्तरिक कोई विद्रधि पकनेसे वायुके कर्णद्वार द्वारा पूय बहानेपर कर्णसंस्रावरोग समझा जाता है। (माधवनिदान)

जामुन, सेमर, कंगई, मौलसिरी और बेरीकी छालका चूर्ण कैथेके रसमें मिला शहदके साथ कानमें डालनेसे कर्णसंस्राव रोग अच्छा हो जाता है। अथवा पुटपाकसे सिद्ध हाथीकी विष्ठाका रस निकालते और तैल तथा सैन्धव मिला कर्णसंस्राव रोकनेको कानमें डालते हैं। (चक्रदत्त)

कर्णसमीप (सं° पु°) शङ्खदेश, कनपटी, गुलगुली।

कर्णसुवर्ण—भारतवर्षका एक प्राचीन जनपद। प्रसिद्ध चीनपरिव्राजक युएन-चुयङ्गने 'किए-लो-न-सु-फ-न-न' नामसे जिस जनपदका वृत्तान्त लिपिबद्ध किया,पाश्चात्य

पुरातत्त्वविद्‌ने उसीका नाम 'कर्णसुवर्ण' रख लिया है। उक्त चीन-परिव्राजकके वर्णनानुसार—यह जनपद दैर्घ्य-प्रस्थमें प्रायः १४०० या १५०० लि (१२५ कोससे अधिक) है। इसका राजधानी कोयी २० लि (डेढ़कोस) लगती है। यहां बहुत लोग रहते हैं। सभी शान्त, शिष्ट और सम्पत्तिशाली हैं। निम्नभूमि उर्वरा है। नियमित कृषिकार्य चलता है। नानाविध महार्घ और उपादेय कुसुमभूषणसे यह जनपद अलङ्कृत है। जलवायु मनोरम है। अधिवासी विद्योत्साही देख पड़ते हैं। (उस समय) यहां दश सङ्घाराम बने, जिनमें २००० बौद्ध यति बसे हैं। सभी सम्मतीय हीनयानमतावलम्बी हैं। नगरके पार्श्व रक्तविटि (लो-तो-वेइ-चि) नामक एक सङ्घाराम खड़ा है। इसका शालादेश सुविस्तृत और प्राकार अति उच्च है। पहले यहां कोयी बौद्ध न था। राजाके आदेशसे एक श्रमण आये। उनकी ज्ञानगर्भ कथामें मुग्ध हो राजाने बौद्ध धर्म ग्रहण किया। उसी समयसे यहां बौद्ध धर्मका आदर बढ़ गया। इसी सङ्घारामसे अनतिदूर अशोक राजाने एक स्तूप बनाया था।

यह कर्णसुवर्ण जनपद कहां था? इसके वर्तमान स्थान पर गड़बड़ पड़ता है। किसी-किसीके मतानुसार मुर्शिदाबादके ६ कोस उत्तर 'कुरुसोनका-गड़' नामक प्राचीन नगर कर्णसुवर्ण, हो सकता है। (J. As. Soc. Bengal. Vol. XXII. 281ff. J. R. As. (n. s.) Vol. VI. 248. Ind Ant. Vol. VII. 197.) फिर कोयी भागलपुरके निकटस्थ कर्णगड़को कर्णसुवर्ण समझता है। (Beal's Record, Vol. II. p. 20) वस्तुतः कर्णसुवर्णका प्रकृत स्थान आज भी ठीक नहीं ठहरा। किन्तु चीन-परिव्राजककी वर्णना देखते यह जनपद ताम्रलिप्तसे ७०० लि (प्रायः ५० कोससे अधिक) उत्तर-पश्चिम अवस्थित है। वर्तमान राढ़ और मयूरभञ्ज पूर्व कर्णसुवर्ण राज्यका अंश था।

कर्णसू (सं० स्त्री०) कर्ण-सू-क्विप्। कर्णकी जननी कुन्ती।

कर्णसूची (सं० स्त्री०) कर्णवेधनार्थं सूची, मध्यपदलो०। कर्णवेध करनेकी सूची, कान छेदनेकी सलाई।

कर्णस्फूटी (सं० स्त्री०) कीटविशेष, एक कीड़ा।

कर्णस्फोटा (सं० स्त्री०) कर्णस्य स्फोटेव स्फोटा विदारणं यस्याः। लताविशेष, एक बेल। इसका संस्कृत पर्याय—श्रुतिस्फोटा, त्रिपुटा, कृष्णतण्डुला, चित्रपर्णी, कोपलता, चन्द्रिका, और अर्धचन्द्रिका है। राजनिघण्टुके मतसे यह कटु, तिक्त, शीतल और सर्व प्रकार विषरोग, ग्रहदोष, भूतादिबाधा तथा पीड़ानाशक होती है।

कर्णस्राव (सं० पु०) कर्णस्य कर्णयोर्वा स्रावः पूयादि-निःसरणम्, ६-तत्। कर्णरोगविशेष, कान या कानोंसे पीब वगैरह बहनेकी बीमारी। कर्णसंस्राव देखो।

कर्णस्रोतोभव (सं० पु०) कर्णस्रोतसो विष्णुकर्णविवरात् भवति, कर्णस्रोतस्-भू-अच्। १ मधु नामक असुर। २ कैटभ नामक असुर। कैटभ देखो।

कर्णहीन (सं० पु०) १ सर्प, सांप। सांपके कान नहीं होते। (भारत, अनु० ६६ अ०) (त्रि०) २ बधिर, बहरा, जिसे सुन न पड़े।

कर्णाकर्णि (सं० अव्य०) कर्णे कर्णे गृहीत्वा प्रवृत्तं कथनम्, व्यतिहारे इच् पूर्वस्य दीर्घश्च। कर्णसे कर्ण पर्यन्त, कानों कान, कानाफूसीसे।

"कर्णाकर्णि हि कपयः कथयन्ति च तत्कथाम्।" (रामायण ६।२१।२९)

कर्णाख्य (सं० पु०) श्वेतझिण्टी, सफ़ेद झाड़।

कर्णाञ्जलि (सं० पु०) कर्णः अञ्जलिरिव, उपमि०। कर्णशष्कुली, कानका छेद। अञ्जलिके द्रव्यग्रहणकी भांति यह शब्दग्रहणकी योग्यता रखता है। इसीसे अञ्जलिके साथ उपमा दी गयी है।

कर्णाट (सं० पु०) दाक्षिणात्यका एक प्राचीन जनपद। शक्तिसङ्गमतन्त्रमें लिखा—

"रामनाथं समारभ्य श्रीरङ्गान्तं शिवेश्वरि।
कर्णाटदेशो देवेशि साम्राज्यभोगदायकः॥"

रामनाथसे लेकर श्रीरङ्गकी सीमा तक साम्राज्यभोगदायक कर्णाटदेश है।

रामनाथका वर्तमान नाम रामनाद है। वह भारतके दक्षिण समुद्रके निकट अवस्थित है। श्रीरङ्ग त्रिशिरापल्लीके निकट कावेरी और कोलरुण नदीके मध्य पड़ता है। ऐसा होते शक्तिसङ्गमतन्त्रके मतानुसार

भारतका सर्वदक्षिण अंश रामेश्वरसे कावेरी नदी पर्यन्त कर्णाट देश ठहरता है। किन्तु महाभारत, मार्कण्डेयपुराण और वृहत्संहितामें कर्णाट अवन्ति, दशपुर, महाराष्ट्र तथा चित्रकूटके साथ उक्त है। यथा

"अवन्तयो दाशपुरास्तथैवा कर्णिनी जनः।
महाराष्ट्राः सकर्णाटा गोनर्दा चित्रकूटकाः॥" (मार्कण्डेयपु॰ ५८४०)
"कर्णाटमहाटविचित्रकूटः।" (वृहत्संहिता १४।१३)

शक्तिसङ्गमतन्त्रमें भी एक स्थानपर कहा है—

"मार्जारतीर्थं राजेन्द्रं कोलापुरनिवासिनी।
तावद्देशो महाराष्ट्रः कर्णाटस्वामिगोचरः॥"

यहां महाराष्ट्रके निकट कर्णाटस्वामीका उल्लेख मिलता है।

एतद्भिन्न कर्णाटके राजावोंके खोदित शिला-लेखमें पढ़ते, कि वह वर्तमान महिसुरके उत्तरांशसे विजयपुर पर्यन्त समुदाय भूभागमें राजत्व रखते थे। सम्भवतः इसी भूखण्डको महाभारत, मार्कण्डेयपुराण और वृहत्संहितामें कर्णाट कहा है। आजकल कितने ही लोग कनाड़ा और कर्णाटिक प्रदेशको कर्णाट समझते हैं। किन्तु यह उनका भ्रम है। हम जिसे कर्णाटिक कहते, उसमें कोई प्राचीन कर्णाटराज रहते न थे। मुसलमानोंके आनेसे महिसुरका दक्षिण अंश कर्णाटिक कहाया है। कर्णाटिक देखो। श्रीमद्भागवतमें दक्षिण कर्णाटका नाम है। यह स्थान कोङ्क, वेङ्कट और कूटक नामक जनपदके साथ उक्त है। (भागवत ५।६।८) वर्तमान कर्णाटिकका कावेरीकूलस्थ स्थान उक्त दक्षिणकर्णाट हो सकता है।

कनाड़ा कर्णाट शब्दका ही अपभ्रंश है। किन्तु कनाड़ा प्राचीन कर्णाट राज्यके भीतर नहीं पड़ता। मुसलमानोंके महिसुरके दक्षिणांशको कर्णाटिक कहनेकी तरह अंगरेजोंने भी गोवाके दक्षिणस्थित समुद्र-कूलवर्ती विस्तीर्ण भूभागका नाम कानाड़ा रख लिया। प्राचीन काल समुद्रकूलवर्ती उक्त विस्तीर्ण भूभाग सह्याद्रिखण्डके अन्तर्भुक्त था। कानाड़ा देखो।

कर्णाटप्रदेशमें चालुक्य, चेर, गङ्ग, पल्लव और कलचुरि वंशने राजत्व किया। चालुक्य प्रभृति प्रत्येक शब्द देखो। ई॰ दशम शताब्दको कर्णाटका दक्षिणांश चोल राजावोंके हाथ लगा। उस समय उत्तर अंशमें कलचुरी वंश राजत्व रखता था।

वल्लालदेव महिसुरके तोन्दरमें जाकर रहे। उस समय वह और उनके वंशधर विजयनगरके कलचुरी राजाको कर देते थे। कलचुरीके अधःपतनसे वल्लालवंशका अभ्युदय हुवा। १३३६ ई॰को वल्लालवंशने प्रबल हो तुङ्गभद्राके दक्षिण कर्णाट प्रदेश अधिकार किया। १५६५ ई॰ पर्यन्त उसका प्रभाव अक्षुण्ण रहा। मुसलमानोंसे हार वह प्रथम पेन्नाकोंडा, फिर चन्द्रगिरिमें जाकर बसे। उनकी एक शाखा आन-गुण्डीमें भी थी। उसी समय कर्णाटिक नाम निकला। प्राचीन कर्णाटसे कर्णाटिकको स्वतन्त्र देखानेके लिये एकको 'कर्णाटपयान-घाट' अर्थात् कर्णाटको निम्न भूमि और उसके उत्तर पार्वतीय स्थानको 'कर्णाट बालाघाट' कहते थे।

मुसलमानोंने विजयनगरके हिन्दू राजा भगा कर्णाटको दो भागमें बांट लिया—कर्णाटिक हैदराबाद या गोलकुण्डा और कर्णाटिक बीजापुर। फिर उभय विभाग पयानघाट और बालाघाट दो विभागमें विभक्त हुये।

व्युत्पत्ति—भारतके संस्कृतज्ञ पण्डित कर्णाट शब्दको कर्ण-अट्-अच् सकन्ध्वादि व्युत्पत्ति लगाते हैं। किन्तु शब्दशास्त्रविद् पण्डितोंके कथनानुसार द्राविड़ी कर्णाडु (कर् कृष्ण+नाडु स्थान) अर्थात् कृष्णप्रदेश वा कृष्णकार्पासोत्पादक क्षेत्रसे कर्णाट बना है। मार्कण्डेय-पुराण, महाभारत और वराहमिहिरकी वृहत्संहिता पढ़नेसे कर्णाट नाम बहु प्राचीन मालूम पड़ता है।

कर्णाट शब्द स्थानवाचक होते भी, बहु दिनसे स्वतन्त्र जाति और भाषाका बोधक है।

कर्णाट—द्राविड़ ब्राह्मणोंकी एक श्रेणी। भारतके उत्तरांचलमें पञ्चगौड़ कहनेसे जैसे कान्यकुब्ज, सारस्वत, गौड़, मैथिल तथा उत्कल, वैसेही दाक्षिणात्यमें द्राविड़ शब्दसे महाराष्ट्र, तैलङ्ग, द्राविड़, कर्णाट और गुर्जर ब्राह्मण समझ पड़ते हैं।

द्राविड़ ब्राह्मणोंकी ४र्थ श्रेणी कर्णाट है। यह

अपर द्राविड़ोंके निकट आभिजात्य और मर्यादामें कुछ हीन हैं। अपर श्रेणीके ब्राह्मण इन्हें अपनी कन्या नहीं देते। किन्तु खाना पीना एक ही में चलता है।

कनाड़ा वा कर्णाटिक प्रदेशमें यह रहते हैं। कनाड़ेके सकल अधिवासी प्रायः लिङ्गायत् है। सम्मान प्रदानकी बात छोड़ वह समय समय इनकी निन्दा उड़ाया करते हैं। फिर भी किसी कर्णाटके उनके घर अतिथि होनेपर आदर अभ्यर्थनाकी परिसीमा नहीं रहती। वह कायमन-वाक्यसे सेवा उठा उसको यथेष्ट सन्तुष्ट करते हैं।

कर्णाट इस प्रान्तके ब्राह्मणोंकी भांति यजमान द्वारा परिपोषित न होते जीविकानिर्वाहके लिये स्व स्व कर्म छोड़ नानाप्रकार कार्य चलाते हैं। किसी किसीको पेटकी जलनसे खेती भी करना पड़ती है।

यह ऋक् अथवा यजुर्वेदी होते हैं। इनकी प्रधानतः अष्ट शाखा हैं—१ वैग, २ क्कात, ३ श्रीवेलरी, ४ वर्गीनार, ५ कन्दाव, ६ कर्णाटक, ७ महिसुर-कर्णाटक और ८ श्रीरनाद (श्रीनाथ)। वासस्थानानुसार कर्णाट ब्राह्मणोंके भिन्न भिन्न नाम मिलते हैं—

गोत्र	उपाधि	कुल
कश्यप	आदकर्णाटक	महिसुर।
गौतम	कर्णकङ्ग	बयङ्गलुर।
भरद्वाज	सुकिंनारु	शृङ्गेरी।
वशिष्ठ	मयलनारु	श्रीरङ्गपत्तन।
विश्वामित्र	कर्णकम्मुलु	देवन्दहाली।
शाण्डिल्य	सुकिंनारु	होसुरवागलोरु।
गर्ग	नवीन कर्णाटक	मागदी।
अङ्गिरा	पेरीचरण	सुलूबागलु।
वत्स	देशस्थ	मालोरु।
भरद्वाज	हलकर्णाट	सूर्यपुरम्।
उपमन्यु	प्राचीनकर्णाटक	श्यामराजनगरम्।
काश्यप	पेरीचरण	कुरक।
शाण्डिल्य	प्राचीनकर्णाटक	हागलवारी।
गौतम	सुकिंनारु	चित्रदुर्ग।
भरद्वाज	सुकिंनारु	शिवमगी।

सिवा इसके कुटी, नञ्जमगुरु प्रभृति दूसरे भी कई घर हैं।

कर्णाट ब्राह्मण उत्तर एवं दक्षिण कनाड़ा, तुलुव, मलवार, कोचिन और महिसुरमें रहते हैं। इनकी संख्या १० लाखसे अधिक है। यह देहके गठनकी सुश्री और आकृतिसे उत्तराञ्चलके ब्राह्मणोंकी भांति लगते हैं।

कर्णाट (सं० पु०) रागविशेष। यह मेघरागका द्वितीय पुत्र है। इसको रात्रिके प्रथम प्रहर गाते हैं। कर्णाटको स्त्री कर्णाटी, रङ्गनाथी, मलावारी, मल्लिका और श्रीरङ्गी हैं।

कर्णाटक—१ दाक्षिणात्यकी एक भाषा। यह प्रधानतः तीन भागमें विभक्त हैं—तेलगु (तैलङ्ग), तामिल (द्राविड़ी) और कर्णाटक (कर्णाटी)। तेलगु उत्तर, तामिल दक्षिण और कर्णाटक भाषा मन्द्राजके पश्चिमांशसे पश्चिमोपकूल पर्यन्त समस्त प्रदेशमें प्रचलित है। यही तीन दाक्षिणात्यकी प्रधान भाषा हैं। इनमें कानाड़ा, दक्षिण महाराष्ट्र, महिसुर, निज़ाम राज्यके पश्चिमांश और विदरमें कर्णाटक भाषाका अधिक चलन है। नीलगिरिमें रहनेवाली बड़गजाति भी शायद प्राचीन कर्णाटी भाषा ही बोलती है। प्राचीन कर्णाटीको आजकल 'हलकनड़' कहते हैं। महाराष्ट्र और महिसुरमें जो खोदित शिलाफलक मिले, उनमें अनेक प्राचीन कर्णाटी अक्षरसे लिखे हैं।

मन्द्राज वा बम्बई प्रेसिडेन्सीके सिविलियन और अन्यान्य गवरमेण्ट कर्मचारीको यह सकल देशीय भाषा सीखना पड़ती हैं। इनकी शिक्षा देनेको प्रबन्ध बांधते समय कर्णाटी भाषाके सम्बन्धमें अनेक विषय संग्रह किये और लिखे गये। इसीसे ई० सप्तम शताब्दको केशवपण्डितने 'गणरत्नदर्पण' नामक एक धातु सम्बन्धीय पुस्तक बनाया, जो इस भाषका मूलव्याकरण कहाया है।

कर्णाटी भाषा संस्कृतादिकी भांति वाम दिकसे दक्षिणको लिखी जाती है। इसके शब्द लिखनेमें जिस जिस वर्ण वा युक्ताक्षरका प्रयोजन पड़ता, वह पास ही पास बनता है। दो शब्दों वा पदोंके मध्य आवश्यक छेद डालनेकी न तो कोयी व्यवस्था और न वाक्य वा वाक्यांशके पीछे किसी चिह्नका व्यवहार है। कर्णाटी वर्णमालामें सब ५३ अक्षर होते हैं। उनमें १६ स्वर,

२ अर्धस्वर और ३८ व्यञ्जन हैं। किन्तु विशुद्ध कर्णाटीके ४७ ही वर्ण रहते हैं। बाकी ९ वर्ण संस्कृत शब्दोंका उच्चारण निकालनेको बने हैं। संस्कृतादि भाषाकी भांति कर्णाटीमें भी यथेष्ट भिन्नरूप युक्ताक्षर विद्यमान हैं।

इसके समुदय शब्द पांच श्रेणीमें विभक्त हैं—१म मूल कर्णाटी, २य कर्णाटी प्रत्ययादि युक्त संस्कृत, ३य संस्कृत-परिवर्तित, ४र्थ अपभ्रंश एवं अपभाषा और ५म अन्यान्य भाषाके शब्द। फिर कर्णाटी भाषामें विशेष्य शब्दके चार भाग हैं—वस्तुवाचक, विशिष्ट, क्रियावाचक और यौगिक। इसमें देवता तथा मनुष्यको पुंलिङ्ग, देवी और मानवीको स्त्रीलिङ्ग और समस्त पशुपक्षी कीटपतङ्गादि एवं अचेतन उद्भिद् पदार्थको क्लीवलिङ्ग माना है। वचन दो ही हैं—एकवचन और बहुवचन। सर्वनामको ८ भागमें बांटा है—व्यक्तिवाचक, पूरणवाचक, अनिश्चयात्मक, संख्यावाचक, स्थानवाचक, समयपरिमाणवाचक और प्रश्नसूचक। क्रिया सकर्मक और द्विकर्मक होती है। काल आठ प्रकारका है। द्वितीय पुरुषके अनुज्ञा-कालका रूप ही धातुका मूलरूप रहता है।

इसमें उपसर्गादि अव्यय, क्रियाविशेषण, समुच्चयादि अव्यय और विस्मयादि अव्यय भी होते हैं। किन्तु भाषामें जो विशेषत्व रहता, उसको लिखकर देखानेका कोई उपाय नहीं ठहरता। शून्यके योगसे दशगुणोत्तर संख्या समझी जाती है।

कर्णाटी भाषाके सम्बन्धमें विशेष विवरण समझनेको Dr. Mc Kerrell's Grammar of the Carnataka language और Caldwell's Dravidian Grammar देखना आवश्यक है।

२ नेपालका एक राजवंश। पार्वतीय वंशावली पढ़नेसे समझ पड़ा, कि कर्णाटक राजवोंने नेपाली संवत् ९से २२८ (८९० से ११०९ ई०) तक २१९ वर्ष राजत्व किया था। निम्नलिखित नेपालाधिप कर्णाटकोंका नाम मिलता है—

नाम	राज्यकाल
१ नान्यदेव	५० वर्ष।
२ गङ्गदेव (नान्यपुत्र)	४१ वर्ष।
३ नरसिंहदेव (गङ्गके पुत्र)	३१ „
४ शक्तिदेव (नरसिंहके पुत्र)	३९ „
५ रामसिंहदेव (शक्तिके पुत्र)	५८ „
६ हरिदेव।	मिथिला देखो।

कर्णाटकदेश, कर्णाट देखो।

कर्णाटक भट्ट—एक प्राचीन संस्कृत कवि। (सुभाषितावली)

कर्णाटक भाषा (सं० स्त्री०) कर्णाटदेशकी भाषा।

कर्णाटदेव—संस्कृतके एक प्राचीन कवि। (सूक्तिकर्णामृत)

कर्णाटदेश, कर्णाट देखो।

कर्णाटशिखर (सं० क्ली०) महाराष्ट्र प्रदेशस्थ चित्रकूटादि पर्वतका चूड़ादेश।

कर्णाटिक—मन्द्राजप्रान्तका एक प्रदेश। कुमारी अन्तरीपसे उत्तर सरकार-पर्यन्त पूर्वघाट और करमण्डल उपकूल अर्थात् समस्त तामिल प्रदेशका भ्रमक्रमसे युरोपीयोंने यह नाम रखा है। कर्णाटिक कहनेसे कर्णाट सम्बन्धीयका बोध होता है। किन्तु उक्त विस्तीर्ण भूखण्ड प्राचीन कर्णाट राज्यके अन्तर्गत न रहा। कर्णाट देखो। वरं इसके उत्तरांश त्रिचनापल्ली और कावेरी नदीका उपकूलस्थ भूमिखण्ड किसी समय दक्षिण कर्णाट कहाता था। आजकल अंगरेज जिसे कर्णाटिक बताते, वर्तमान आर्कीट (अरकोडु), मदुरा और तञ्जोर राज्य उसीके अन्तर्गत आते हैं।

पलासी-युद्धके समय कर्णाटिकमें अंगरेज कई बार लड़े थे। इसीसे दाक्षिणात्यमें अंगरेजोंके प्रभुत्वकी भित्ति दृढ़ पड़ गयी। नीचे उक्त युद्धका विवरण देते हैं—

जिस समय क्लाइव कलकत्तेके अंगरेजोंकी विपद् सुन एडमिरल वाटसनके साथ बङ्गालकी ओर बढ़े, उसी समय (अप्रेल १७५९ ई०) कप्तान कालियड नामक मन्द्राजके एक अंगरेज-सेनानी बाकी राजस्व लेनेको मदुरापर चढ़े। कप्तान कालियड त्रिचनापल्लीके शासनकर्ता थे। उनके मदुरा जीतनेको त्रिचनापल्ली छोड़ते ही अंगरेजोंके तदानीन्तन शत्रु फरासीसियोंने त्रिचनापल्ली आक्रमण करनेको एक दल सैन्य भेज दिया। फरासीसी सैन्यने त्रिचनापल्ली पहुंच अंगरेजोंका दुर्ग अधिकार किया था। कप्तान कालियाड यह संवाद सुनते ही त्रिचनापल्लीकी ओर लौट पड़े।

मदुराके युद्धमें उनका पराजय हुवा। किन्तु उन्होंने त्रिचनापल्ली पहुंचते ही फरासीसी सैन्यको उखाड़ डाला। फरासीसी सैन्याध्यक्षने हार कर त्रिचनापल्ली अंगरेज़ोंको सौंपी। इसी बीच वन्दीवास नामक स्थानके शासनकर्ताने अंगरेज़ोंको राजस्व देना अस्वीकार किया। करनल आलडार क्रन उनके विरुद्ध चढ़े और नगर घेर पड़े थे। किन्तु फरासीसी वन्दीवासके शासनकर्ताका पक्ष ले अंगरेज़ोंसे लड़नेको अग्रसर हुये, जिससे कप्तान आलडार क्रुन अपना अवरोध उठा चलते बने। फिर मराठोंने वहांके नवाबसे जा राजस्वकी चौथका बाकी ४ लाख रुपया मांगा था। किन्तु नवाब उस समय इतना रुपया कहां पाते। वह नाना अनुनय विनय करने लगे। अन्तको महाराष्ट्रीय साढ़े चार लाख रुपयेमें समस्त ऋण निबटानेपर सम्मत हुये। उस समय पठान-नवाब दाक्षिणात्यके सूबेदार और मराठा-नायक मुरारी रावकी अधीनता अधिक मानते न थे। सुतरां उन्होंने अंगरेज़ोंसे कहला भेजा—हम मराठोंके विरुद्ध आपको साहाय्य देनेपर प्रस्तुत हैं। किन्तु अंगरेज उनसे वैसी सन्धि स्थापन कर न सके। कारण उस समय महाराष्ट्र अंगरेज़ोंसे सदय व्यवहार रखते थे। इसी प्रकार एक मास बीतनेपर दूसरे मास (जून १७५७ ई०) कप्तान कालियडने फिर मदुरापर चढ़नेको उद्योग लगाया। युद्धमें अंगरेज़ोंकी विस्तर क्षति हुयी और प्रथम आक्रमणसे कोई बात न बनी। किन्तु कालियड उतनी क्षति उठा भी युद्धसे क्षान्त न हुये और ९वीं अगस्तको नगरमें घुस पड़े। फिर उन्होंने शासनकर्तासे १७००००) रु० बाकी राजस्व पाया था। इसके पीछे भी अंगरेज़ मदुरा राज्यके क्षुद्र क्षुद्र दुर्ग आक्रमण करते रहे। किन्तु किसी पक्षपर जय पराजय स्थिर न हुवा।

इसी समय फिर युरोपमें अंगरेज़-फरासीसी लड़ पड़े। फरासीसियोंने काउण्ट डि-लाली नामक एक-जन विख्यात सैनिकको सेनाका नायक बना एक दल नौ-सेनाके साथ भारत भेजा। लालीके साथ मिलका भी एक सहस्र आईरिश सैन्य था। १७५८ ई०के अप्रेल मास वह सबको अपने साथ ले भारत आ पहुंचे। उन्होंने आते ही अंगरेज़ोंका सेण्ट-डेविड दुर्ग आक्रमण किया था। एडमिरल प्रिमेन्सकी अधीनस्थ अङ्गरेज सेनाने उन्हें रोकनेको किया, किन्तु उसका कोई फल न हुवा। लालीने दुर्ग अधिकार कर मन्द्राजपर चढ़ना चाहा था। किन्तु आवश्यक अर्थ न मिलनेसे वह सङ्कल्प जैसेका तैसा ही बना रहा। फिर अर्थ संग्रहके लिये उन्होंने तञ्जोरराज-प्रदत्त ५६ लाख रुपयेका तमस्सुक चुकानेको दौड़ धूप लगायी, किन्तु उसमें भी कोई सिद्धि न पायी। तञ्जोरके राजाने अंगरेज़ोंकी मन्त्रणामें पड़ रुपया देनेपर वृथा विलम्ब डाला था। इसी अवकाशमें अंगरेज़ोंकी नौ-सेना आ पहुंची। लालीने बाध्य हो सेण्ट-डेविड दुर्गका अवरोध छोड़ा था। लालीने त्रिवेलूरका एक प्राचीन हिन्दू-मन्दिर तोड़ पूजक ब्राह्मणोंको तोपसे उड़ा दिया। इसी समय फरासीसी सेनानी बुसी निजाम राज्यमें महासमादरसे रहते थे। लालीने उन्हें बोला भेजा। बुसीके लालीके निकट पहुंचते ही उत्तर-सरकारके फरासीसी अधिकारमें गड़बड़ पड़ा था। विशाखपत्तनके राजा आनन्दराजने फरासीसी अधिकार आक्रमण किया। किन्तु भविष्यत्में फरासीसी आक्रमणसे राज्यरक्षाकी चिन्तापर वह घबरा उठे। अन्तको अन्य उपाय न देख उन्होंने बङ्गालसे क्लाइवका साहाय्य मांगा था। क्लाइवने आवश्यक सन्धि ठहरा उत्तर-सरकारसे फरासीसियोंको भगानेके लिये करनल फोर्डको २ हज़ार सिपाही, ५०० गोरे और ६ तोपोंके साथ राजमहेन्द्रीको ओर भेजा। राहमें फरासीसी सेनानी कनफलाङ्गने उतनेही सैन्यके साथ उन्हें हरा सब तोपें छीन लीं। किन्तु फोर्ड उससे दुःखित न हो कनफलाङ्गके लौटते ही पीछे दौड़ पड़े। राजमहेन्द्री जा उन्होंने वहां किसीको पाया न था। सुतरां वह ससैन्य मछलीपत्तनकी ओर बढ़े। बीचमें अनेक स्थल पर आनन्दराजने बाधा डालनेकी चेष्टा लगायी थी। किन्तु अन्तको (छठीं मार्च १७५८ ई०) फोर्ड अपने दलके साथ मछलीपत्तन पहुंच गये। कनफलाङ्गने निजामसे साहाय्य मांगा। निजामने भी साहाय्य देना स्वीकार किया। इधर फोर्डके

गोरे सिपाही बाकी वेतन और मछलीपत्तनकी लूटका अंश न पानेसे बिगड़ पड़े। किन्तु निज़ामकी फौज दश कोस दूर रह जाते सुन वह निरस्त हुये। फौड मछलीपत्तन दुर्ग अधिकार कर बैठे। निज़ाम फरासीसी फौज आनेकी राह देखते थे। फरासीसी रणतरी कूलपर आयी। किन्तु फौज उतरनेकी खबर किसीने न पायी। निज़ामने फरासीसियोंसे चिढ़ अपना स्वार्थ बनानेको अंगरेजोंके साथ सन्धि कर ली। उसमें अंगरेजोंको चिरकाल चार लाख रुपये आयके उपयुक्त भूसम्पत्ति सह मछलीपत्तन नगर मिलने, भविष्यत्‌में कृष्णा नदीके उत्तर फरासीसियोंकी कोई कोठी न रहने या चलने और सूबेदारको अपने काममें कोयी फरासीसी न रखनेकी बात ठहरी।

लाली सेण्ट डेविडका अवरोध छोड़ चल दिये। अंगरेजोंके आडमिरल पोकोक और फरासीसियोंके काउण्ट डि आर्स करमण्डल उपकूलमें स्वस्व नौसेनाके साथ उपस्थित थे। पोकोकने अपनी ओरसे दो बार आर्सको आक्रमण किया। आर्स डर कर पुंदिचेरी भाग गये। फिर वहां लालीसे फटकारे जानेपर उन्हें मरिच शहरकी राह लेना पड़ी। लालीका बल इससे घटा था। किन्तु कर्णाटिकके नवाब चांद साहबका मृत्यु हुवा। फरासीसी उनके ज्येष्ठपुत्र राजा साहबको कर्णाटिकका नवाब मान गद्दीपर बैठानेकी चेष्टामें लगे। लाली इससे व्यस्त हुये। मुहम्मद अली आर्कौटके शासनकर्ता थे। उन्हें हस्तगत करनेको लालीने प्रतारणापूर्वक कहा—१००००) रु० में हम आर्कौट लेनेको सम्मत हैं। मुहम्मद अली उसीमें मान गये। लालीने छलसे घुस नगर दखल किया। आर्कौट लेने पीछे वह चिङ्गलिपट दुर्ग पानेके आयोजनमें लगे। किन्तु अंगरेज मन्द्राजके निकट फरासीसी राज्य कहां होने देते थे। उन्होंने चिङ्गलिपट दुर्ग सैन्यादि भेज सुरक्षित किया। लालीने मन्द्राज अधिकार कर सकनेको यथेष्ट धन न पाया। फिर भी वह साहसपूर्वक सिर्फ ९४ हज़ार रुपयेके सहारे दिसम्बर मास मन्द्राज घेरनेको आगे बढ़े। मन्द्राज यह आक्रमण सहनेको प्रस्तुत था। किन्तु सैन्यसंख्या अधिक न रही। ९ सप्ताह फरासीसी सेनाका अवरोध चला। १७५९ ई०की १५वीं फरवरीको मन्द्राज जाता जाता देखा गया। किन्तु उसी समय अंगरेजोंकी नौसेना आ पहुंची। फरासीसी भी खाद्यादिके अभावसे आर्कौटको लौट पड़े।

अङ्गरेजोंको समुद्रपथसे खाद्य और सैन्यका साहाय्य मिलता था। किन्तु फरासीसी पुंदिचेरीसे कोई साहाय्य न पानेपर बिलकुल बैठ रहे। १०वीं सितम्बरको फरासीसी नौ-सेनाके कुछ अंशको विनकमलीके निकट आते ही अङ्गरेज सेनानी पोकोकने छत्रभङ्ग किया। फिर फरासीसी नौ-सेनाका एक दल काउण्ट आर्सके अधीन चार लाख रुपयेके रत्नादि और सैन्यादि ले पहुंचा, किन्तु भारतवर्षमें उतरनेका आदेश न पाते अन्यत्र चला गया। इसी बीच बन्दीवास अङ्गरेजोंने आक्रमण किया और १७६० ई०को कुटने फरासीसियोंसे छेन लिया। फरासीसी यहींसे हारने लगे। बन्दीवासके युद्धमें बुसि बन्दी बने थे। कुटने फिर आर्कौट जीत अन्य स्थान अधिकार किये। फरासीसी कुछ भी बिगाड़ न सके। मार्च मासके मध्य उपकूल पर कालिकट और पुंदिचेरीको छोड़ फरासीसीयोंका दूसरा कोयी अधिकार न रहा। लाली अर्थ वा सैन्यसाहाय्य न पा महा व्यतिव्यस्त हुये और अन्तको महिसुरके हैदर अलीसे मदद मांगने लगे। हैदर अली स्वीकृत हुये, किन्तु हठात् किसी कारण वश शीघ्र स्वराज्यको ससैन्य चल दिये। सुतरां फरासीसियोंका कोयी उपकार न उठा। इधर मेजर मनसनने फरासिसियोंको सम्पूर्ण रूप हराया था। किन्तु लालीने हठात् ४थी सितम्बरको अङ्गरेजोंका शिविर आक्रमणकर मनसनको गुरुतर रूपसे आहत किया, किन्तु कुटसे सम्पूर्ण पराजित होना पड़ा। कुटने फिर पुन्दिचेरीको घेरा था। क्रमशः दुर्गमें खाद्यका अभाव आया। दो दिनसे अधिक खाद्य न चलते देख लालीने दुर्ग छोड़ मन्द्राजके राजा साहबके निकट आश्रय पकड़ा।

इसी प्रकार फरासीसी प्रादुर्भाव भारतसे उठा था। कर्णाटिकके मध्यका केवल तियागर और गिञ्जि नामक

स्थान फरासीसियोंके अधिकारमें रह गया। कुछ दिन पीछे अङ्गरेजोंके यह भी हस्तगत हुवा।

कर्णाटिका (सं० स्त्री०) कर्णाटी स्वार्थे कन्-टाप् ह्रस्वः। कर्णाटी देखो।

कर्णाटी (सं० स्त्री०) कर्णाट-ङीप्। १ कोई रागिनी। यह मालव राग वा कर्णाटकी स्त्री है। इसके गानेका समय रात्रिके द्वितीय प्रहरकी द्वितीय घटिका है। २ हंसपदीक्षुप, एक बेल। ३ कर्णाटदेशकी स्त्री। ४ अनुप्रास विशेष। शब्दालङ्कारमें कवर्गका अनुप्रास कर्णाटी कहाता है। ५ कर्णाटकी भाषा।

कर्णाट्ट (सं० क्ली०) कर्णः तिर्यग्रेखाकारवान् इव अट्टम्। गृहविशेष, किसी किस्मका मकान्। यह तिर्यक्-यानकी भांति पाषाणादि फैलाकर बनाया जाता है।

"विभिदुस्ते भविष्यमान् कर्णाट्टशिखराणि च।" (भारत, वन, २६५ अ०)

कर्णादेश (सं० पु०) कर्णालङ्कार विशेष, कानका एक गहना।

कर्णानुज (सं० पु०) कर्णस्य अनुजः, कर्ण-अनु-जन्-ड। कर्णके छोटे भाई युधिष्ठिर।

कर्णान्तिक (सं० त्रि०) कर्णसमीपस्थ, कानके पास पड़नेवाला।

कर्णान्दु (सं० क्ली०) कर्णस्य आन्दुरिव। १ कर्ण-पाली, कानकी लौ। २ उत्त्चिसिका, बाली।

कर्णान्दू (सं० स्त्री०) कर्णान्दु-ऊङ्। १ कर्णपाली, कानकी लौ। २ मुरकी, बाली।

कर्णाभरण (सं० क्ली०) कर्णस्य कर्णे वा आभरणम्। कर्णालङ्कार, कानका गहना।

कर्णाभरणक (सं० पु०) कर्णाभरणमिव पुष्पैः कायति प्रकाशते, कर्णाभरण-कै-क। आरगवध वृक्ष, अमलतासका पेड़।

कर्णारा (सं० स्त्री०) कर्णः अर्यते विध्यते अनया, कर्ण-ऋ-घञ्-टाप्। कर्णवेधनी, कान छेदनेकी सलायी।

कर्णारि (सं० पु०) कर्णस्य अरिः ६-तत्। १ कर्णके शत्रु अर्जुन। २ अर्जुनवृक्ष। ३ नदीसर्जवृक्ष, एक पेड़।

कर्णार्पण (सं० क्ली०) कर्णस्य कर्णयोर्वा अर्पणं। श्रुतियोग्यविषयमें कर्णका अर्पण, कानकी लगाई।

कर्णार्बुद (सं० पु०) कर्णस्रोतोगत रोग विशेष, कानका फोड़ा या मस्सा।

कर्णार्श, कर्णार्बुद देखो।

कर्णालङ्कार (सं० पु०) कर्णं अलंक्रियते येन, कर्ण-अलं-कृ-घञ्। कर्णभूषण, कानका गहना।

कर्णालङ्कृति (सं० स्त्री०) कर्णयोरलङ्कृतिरलङ्करणम्, ६-तत्। कर्णभूषण, कानका गहना। २ कर्णशोभा, कानकी सजावट।

कर्णालंक्रिया (सं० स्त्री०) कर्णयोरलंक्रिया अलङ्करणम्, ६-तत्। कर्णशोभा, कानकी सजावट।

कर्णास्फाल (सं० पु०) कर्णयोरास्फालः आस्फालनम्। हस्तिप्रभृतिका कर्णसञ्चालन, हाथी वगैरहके कानकी फटकार।

कर्णि (सं० पु०) कर्ण-इन्। १ शर विशेष, किसी किस्मका तीर। भावे इन्। २ भेदकार्य, छेदाई।

कर्णिक (सं० पु०) १ गणिकारिका, कोई पेड़। २ पद्मकोष, कंवलकी खोल। ३ सन्निपातज्वरविशेष, एक बुखार। इसमें दोषत्रयसे तीव्र ज्वर आता और कर्णके मूलपर शोथ चढ़ जाता है। फिर कण्ठ रुकता, कानसे सुन नहीं पड़ता, श्वास चढ़ता, प्रलाप बढ़ता, प्रस्वेद चलता, मोह लगता और देह जल उठता है। (भावप्रकाश)

कर्णिका (सं० स्त्री०) कर्ण-इकन्-टाप्। कर्णललाटात् कनलङ्कारे। पा ४।३।६५। १ कर्णभूषण विशेष, कानका एक जेवर। इसका संस्कृत पर्याय—तालपत्र, ताड़ङ्क और दन्तपत्र है। २ करिशुण्डाग्रभागरूपाङ्गुलि, हाथीकी सूंड़के अगले हिस्सेकी उंगलीजैसी चीज। ३ पद्मबीजकोष, कंवलका छत्ता। ४ हस्तकी मध्यम अङ्गुलि, हाथके बीचकी उंगली। ५ क्रमुकादिच्छटांश, डण्ठल। ६ लेखनी, कलम। ७ अग्निमन्थवृक्ष। ८ अजशृङ्गी, मेढ़ासींगी। ९ अप्सरो विशेष, एक परी। "मेनका सहजन्या च कर्णिका पुञ्जिकस्थला।" (भारत, आदि १२३।६१) १० सेवती, सफेद गुलाब। इसका संस्कृत पर्याय—शतपत्री, तरुणी, चारुकेशरा, महाकुमारी, गन्धाढ्या, लक्षपुष्पा और अतिमञ्जुला है। भावप्रकाशके मतसे यह आह्लादकर, शीतल, संग्राही, शुक्रवर्धक, लघु,

त्रिदोष तथा रक्तनाशक, वर्णकार, तिक्त, कटु और परिपाककारक होती है। ११ योनिरोगविशेष, औरतोंके पेशाबकी जगह होनेवाली एक बीमारी। इससे योनिपर कर्णिकाकार मांसग्रन्थि पड़ जाता है। प्रसवसे पूर्व अनुपयुक्त समय जोरमें कांखनेपर गर्भके द्वारा वायु रुक श्लेष्मा तथा रक्तमें मिलता, जिससे यह रोग लगता है। (चरक)

इस रोगमें सर्वप्रकार कफनाशक औषध व्यवस्थेय है। कुष्ठ, पिप्पली, अर्कवृक्षकी कोमल शाखा अर्थात् अग्रभाग और सैन्धव लवण छागके मूत्रमें पीस बत्ती बनाने और योनिमें प्रविष्टकर लगानेसे कर्णिकारोग निवारित होता है। (चक्रदत्त)

१२ दारुणपीड़ा, दर्द-शदीद।

कर्णिकाचल (सं० पु०) कर्णिकायां स्थितः अचलः। सुमेरु पर्वत। "यस्या नाभ्यामवस्थितः पर्वतः सौवर्णः कुलगिरिराजो मेरुद्वीपायामसमुन्नाहः कर्णिकाभूतः कुवलयकमलस्य।" (भागवत ५।१६।७)

कर्णिकाद्रि (सं० पु०) कर्णिकायां स्थितःअद्रिः। सुमेरुपर्वत।

कर्णिकापर्वत, कर्णिकाचल देखो।

कर्णिकार (सं० पु०-क्ली०) कर्णिं भेदनं करोति, कर्णि-कृ-अण्। १ वृक्षविशेष, कनियार, कनकचम्पा। इसका संस्कृत पर्याय—द्रुमोत्पल, परिव्याध और वृचोत्पल है। २ कर्णिकारपुष्प, कनकचम्पाका फूल। "वर्णप्रकर्षे सति कर्णिकारम्।" (कुमारस०) ३ आरग्वध विशेष, छोटा अमलतास। इसका संस्कृत पर्याय—राजतरु, प्रग्रह, कृतमालक, सुफल, चक्र, परिव्याध, व्याधिरिपु, पित्तबीजक और लघ्वारग्वध है। यह एक विशाल वृक्ष है। फल दीर्घ और आरग्वध सदृश होता है। इसका गूदा जुलाबमें लगता है। राजनिघण्टुके मतानुसार कर्णिकार सारक, तिक्त, कटु, उष्ण और कफ, शूल, उदरकृमि, मेह, व्रण तथा गुल्मनाशक है।

कर्णिकारक, कर्णिकार देखो।

कर्णिकारप्रिय (सं० पु०) शिव। शिवको कर्णिकार अत्यन्त प्रिय है।

कर्णिकारिका (सं० स्त्री०) हरिद्रावृक्ष, हल्दीका पेड़।

कर्णिकी (सं० पु०) कर्णिका शुण्डाग्राङ्गुलिः अस्यास्ति, कर्णिका-इनि। हस्ती, सूंड़की उंगली रखनेवाला हाथी।

कर्णिन (सं० त्रि०) विवृद्धकर्ण, बड़े कानोंवाला।

कर्णिनी (सं० स्त्री०) योनिरोगविशेष, औरतोंके पेशाबकी जगह होनेवाली एक बीमारी। (Disease of the uterus or Polypus uteri)। कर्णिका देखो।

कर्णिल (सं० त्रि०) कर्णं प्राशस्त्येन अस्यास्ति, कर्ण-इलच्। तुन्दादिभ्य इलच्। ५।२।११७। दीर्घकर्ण,बड़े कानोंवाला।

कर्णिशर (सं० पु०) शरविशेष, किसी किस्मका तीर।

कर्णी (सं० पु०) कर्णौ पक्षौ अस्त्यस्य, कर्ण-इनि। १ सप्तवर्ष पर्वतके मध्य पर्वत विशेष, एक पहाड़।

"हिमवान् हेमकूटश्च निषधो मेरुरेव च।
चैत्रः कर्णी च शृङ्गी च सप्तैते वर्षपर्वताः॥" (हारावली)

२ बाणविशेष, किसी किस्मका तीर।

"करोति कर्णिनी यस्तु यस्तु खड्गादि क्लरम्।
प्रयान्ति ते विशसने नरके भृश दारुणे॥" (विष्णुपु० २।६।१६)
'कर्णिनी बाणविशेषान्।' (श्रीधर)

३ आरग्वधवृक्ष, अमलतासका पेड़। ४ गणिकारिका, कोई पेड़। ५ कर्णपार्श्व, कनपटी। ६ कर्णधार, मांझी, मल्लाह। (त्रि०) ७ प्रशस्तकर्ण, बड़े कानोंवाला। ८ कर्णयुक्त, जिसके कान रहे। ९ कानमें कोई चीज़ रखे हुवा। १० ढीली लटकती चीज़वाला, दामनदार। ११ ग्रन्थियुक्त, गंठीला। १२ पतवारवाला।

कर्णी (सं० स्त्री०) कर्ण-ङीप्। १ बाणविशेष, किसी किस्मका तीर। २ मूलदेवकी माता। मूलदेव देखो।

कर्णीमान् (सं० पु०) कर्णो बाणविशेषाकारः फलो ऽस्त्यस्य, कर्णिन्-मतुप्, संज्ञायां दीर्घः। आरग्वध, अमलतास।

कर्णीरथ (सं० पु०) कर्णः सामीप्यात् स्कन्धः अस्यास्ति वाहनत्वेन, कर्ण-इनि; कर्णी चासौ रथश्चेति दीर्घश्च, कर्मधा०। १ क्रीड़ारथ, खेलनेकी गाड़ी। २ मनुष्यके वहन करने योग्य रथ, आदमीके चला सकने लायक, गाड़ी। ३ स्त्रीवहनार्थ वस्त्राच्छादित यान विशेष, परदेदार डोली। इसका संस्कृत पर्याय—प्रवहण, ड्यन, प्रहरण और डयन है।

कर्णीवान्, कर्णीमान् देखो।

कर्णीसुत (सं० पु०) कर्ण्याः सुतः, ६-तत्। मूलदेव, चौर-शास्त्रकार।

कर्णेचुरचुरा (सं० स्त्री०) कर्णे चुरचुरा मन्त्रणाकथनम्, निपातनात् सिद्धम्। पात्रे समितादयश्च। पा २।१।४८। गुप्त-मन्त्रणा, कानाफूसी।

कर्णेजप (सं० त्रि०) कर्णे जपति अपकार्य्यं यथातथा अनुचितं प्रबोधयति कर्णे लगित्वा परापकारं वदति वा, अलुक्समा०। १ गोपनमें उचित विषय पर परामर्शदाता, छिपकर वाजिब सलाह देनेवाला। २ परके अनिष्ट विषयका मन्त्रदाता, चुगलखोर। इसका संस्कृत पर्याय—सूचक, पिशुन, दुर्जन और खल है। इनमें कर्णेजप एवं सूचक दूसरेका अप-कार बताता और पिशुन, दुर्जन तथा खल परस्पर भेद लगाता है।

कर्णेजपमन्त्र (सं० पु०) विषनाशन मन्त्रविशेष, ज़हर उतारनेका एक मन्त्र। उक्त मन्त्र यह है—

"ओं हर हर नीलग्रीवश्वेताङ्गसङ्गजटायमस्थितखखेन्दुरूक् तैमन्नवपाय विषसुपर्णहर उपस हर हर हर हर नास्ति विषं नास्ति विषं नास्ति विषं उच्छिरे उच्छिरे उच्छिरे।" (अत्रिसंहिता)

इस मन्त्रको बार बार पढ़ तालुमुख शीतल जलसे छह बार सींचनेपर विष उतर जाता है।

कर्णेटिरटिरा (सं० स्त्री०) गुप्तपरामर्श, कानफूसी।

कर्णेन्दु (सं० पु०) कर्णयोः कर्णे वा इन्दुरिव, उपमि०। अर्धचन्द्राकार कर्णालङ्कारविशेष, कानका एक गहना।

कर्णेन्द्रिय (सं० पु०) श्रोत्रेन्द्रिय, कानका कल्ल।

कर्णोत्पल (सं० क्ली०) कर्णस्थितमुत्पलम्, मध्य-पदलो०। कर्णस्थित पद्म, कानका कंवल। २ एक प्राचीन कवि।

कर्णोपकर्णिका (सं० स्त्री०) कर्णादुपकर्णौ ऽस्त्यस्य, कर्णोपकर्ण-ठन् टाप् अत इत्वम्। १ कानाफूसी करने-वाली स्त्री।

कर्णोर्ण (सं० क्ली०) कर्णरोम, कानका बाल। (पु०) कर्णे ऊर्णाधिकं लोम यस्य, बहुव्री०। २ मृग-विशेष, एक हिरन।

"कर्णोर्णं कपदश्वासं निकृष्ट' कृतमालिभिः।" (भागवत ३।६।२०)

कर्ण्णोर्णा (सं० स्त्री०) कर्णोर्ण देखो।

कर्ण्य (सं० त्रि०) कर्णे भवः, कर्ण-यत्। शरीरावयवाच्च। पा ४।३।५५। १ कर्णसे उत्पन्न, कानसे पैदा। २ कर्णके योग्य, कानके लायक। कर्मणि यत्। ३ भेदके योग्य, छेदने काबिल।

कर्त (सं० पु०) कर्त भावे अप्। १ भेद, काट।

"वध्युङ् नियम्य यतयो यमकर्तहेतिं जह्युः स्वराडिव निपानखनि-त्रमिन्द्रः।" (भागवत २।७।४८) 'कर्तो भेदः तन्निराजो ऽस्वतः।' (श्रीधर)

(वे०) २ गर्त, गढ़ा। (त्रि०) कर्तयति भिनत्ति, कर्त-अच्। ३ भेदक, तोड़ने-फोड़ने या चीरने-फाड़नेवाला।

कर्तन (सं० क्ली०) कृत् भावे ल्युट्। १ छेदन, काट-छांट। २ कताई, सूत कातनेका काम। ३ शिथिल करनेका काम। करणे ल्युट्। ४ काटनेका अस्त्र, तराशनेका औज़ार। कर्तरि ल्यु। ५ छेदकारक, काटनेवाला।

कर्तनी (सं० स्त्री०) कर्तन-ङीप्। १ कृपाणी, कटारी। २ श्मश्रुकर्तनोपयुक्त अस्त्र, बाल काटने लायक औज़ार। क्षुरे, कैंची वगैरहको कर्तनी कहते हैं।

कर्तब्र, करतब देखो।

कर्तरि (सं० स्त्री०) कृत्-इन्। काटनेका अस्त्र, तराशनेका औज़ार। कर्तरी देखो।

कर्तरि-अञ्चित (सं० क्ली०) नृत्यभेद, किसी किस्मका नाच। यह एक उत्प्लुत करण है। इसमें नर्तक करण-स्वस्तिकके सहारे उछलता है।

कर्तरिका (सं० स्त्री०) कर्तरी स्वार्थे कन्-टाप् ह्रस्व। कर्तरी देखो।

कर्तरि-लोहिड़ी (सं० स्त्री०) नृत्योत्प्लुतकरण विशेष, किसी किस्मका नाच। इसमें पहले करण-स्वस्तिक लगाते, फिर उसे खोलते समय उछलकर तिरछे पड़ जाते हैं।

कर्तरी (सं० स्त्री०) कृन्तति, कृत-अर-ङीष्; यद्वा कर्तं राति, कर्त-रा-क। १ कृपाणी, काती, सोनेके पत्तर काटनेका एक औज़ार। २ श्मश्रुकर्तनोपयुक्त अस्त्र, बाल काटने लायक औज़ार, छुरा कैंची वगैरह। ३ क्षुद्र करवाल, कटारी। ४ वाद्यविशेष, एक बाजा। ५ योगविशेष। ज्योतिषशास्त्रमें लिखा—चन्द्र अथवा

लग्न क्रूर अर्थात् प्रथम, तृतीय, पञ्चम, सप्तम, नवम और एकादश राशिके मध्य आनेसे कर्तरी योग होता है। यह रोग कन्याको मार डालता है।

कर्तरीय (सं० पु०) वृक्षविशेष, एक पेड़। इस वृक्षका वल्कल, सार और निर्यास विषमय होता है। २ त्वक्-सार-निर्यास-विषभेद, छाल झीर और दूधका ज़हर।

"वत्सनाभकर्कतरीयसौरीयककरघाटकरम्भनन्दनवराटकानि सप्त त्वक्सारनिर्यासविषाणि।" (सुश्रुत)

कर्तरीयुग (सं० क्ली०) सिम्भुवारद्वय, संभालूका जोड़ा।

कर्तव्य (सं० त्रि०) कर्तुं योग्यम्, कृ योग्यार्थे तव्यः। १ करनेके उपयुक्त, किये जाने लायक़।

"हीनसेवा न कर्तव्या कर्तव्यो महदाश्रयः।" (हितोपदेश)

२ लगाया जानेवाला। ३ फेरा जानेवाला। ४ दिया जानेवाला। (क्ली०) ५ कार्य, फ़र्ज़, करने लायक़ काम। ६ छेद्य, काटने लायक़ चीज़।

कर्तव्यता (सं० स्त्री०) कर्तव्यस्य भावः, कर्तव्य-तल्-टाप्। १ विधेयता, वजूब, ज़रूरत। २ औचित्य, मौज़ूनियत, दुरुस्ती। ३ उपयुक्त उपाय, माकूल तदबीर।

कर्तव्यविमूढ़ (सं० त्रि०) अपना कर्तव्य न देखने-वाला, जिसे अपना फ़र्ज़ न सूझ पड़े।

कर्तव्याकर्तव्य (सं० क्ली०) करने एवं न करने योग्य कार्य, भला-बुरा काम।

कर्ता (सं० पु०) करोति सृजति सम्पादयति वा, कृ-तृच्। ण्वुल्तृचौ। पा ३।१।१३३। १ ब्रह्मा। २ कर्मसम्पादक, काम बनानेवाला। यह कर्ता चार प्रकारका होता है—१ हेतुकर्ता, २ प्रयोजककर्ता, ३ अनुमन्ता-कर्ता और ४ गृहीताकर्ता।

न्यायमतानुसार क्रियाकृति जिसमें समवाय सम्बन्धसे रहती उसीको विद्वन्मण्डली कर्ता कहती है। वेदान्तपरिभाषामें उपादानविषयक अपरोक्षज्ञान-चिकीर्षा तथा कृतिमानको कर्ता माना है। फिर भामतीके मतानुसार इतर कारक द्वारा प्रेरित न होते सकल कारकका प्रयोजक (प्रेरक) कर्ता है।

गुणके अनुसार कर्ता त्रिविध होता है—सात्विक, राजस और तामस। मुक्तसङ्ग, निरहङ्कारी, धैर्यशाली, उत्साही और सिद्धि तथा असिद्धिमें निर्विकार रहनेवाला पुरुष सात्विक कर्ता है। रागी, कर्मफला-काङ्क्षी, लुब्ध, हिंस्र, अशुचि और हर्षशोकादियुक्त पुरुष राजस कर्ता कहलाता है। फिर आत्मज्ञानके लाभमें निश्चेष्ट, शठ, प्रतारक, अलस, विषभोजी, दीर्घसूत्री और स्वल्पप्रकृति पुरुषको तामस कर्ता कहते हैं।

३ प्रभु, मालिक। ४ अध्यक्ष, अफ़सर। ५ महादेव।

"क्रोधहा क्रोधकृत् कर्ता विश्ववाहुर्महीधरः।" (भारत १३।१४९।७७)

६ व्याकरणका एक कारक, फ़ायल। क्रियाके करनेवालेको कर्ता कहते हैं। यह हिन्दी भाषा तथा संस्कृतादिमें सर्व प्रथम कारक माना गया है। इसका चिह्न 'ने' है। जैसे—रामने रावणको मारा। यहां मारनेकी क्रिया रामद्वारा सम्पादित हुयी। इसीसे राम कर्ता कारक ठहरा और उसमें 'ने' चिह्न लगा। किन्तु अकर्मक क्रिया रहते कर्तामें कोई चिह्न लगाया नहीं जाता। जैसे—रावण मर गया। अंगरेजीमें इसे नमिनेटिव केस (Nominative case) कहते हैं।

कर्ताभजा (कर्ताभजनी)—बङ्गालका एक उपासक सम्प्रदाय। इस सम्प्रदायके लोगोंकी व्याख्याके अनुसार वही कर्ताभजनी हो सकता, जो कर्ता अर्थात् परमेश्वरका पूर्ण रूपसे भजन करता है। कर्ताभजनी सम्प्रदायके प्रवर्त्तक, प्रथम मतप्रतिष्ठाता और प्रचारक औलिया-चांद थे। इस सम्प्रदायवाले उनको एकवाक्यसे ईश्वरका अवतार मानते हैं। प्रवादानुसार माधवेन्द्रपुरी नामक एक बालक गोपीनाथ-विग्रहके श्रीमन्दिरमें एक दिन अतिथि हुये। उन्होंने वैकालिक जलपानका क्षीर पीना चाहा था। भक्तवत्सल गोपीनाथने भोगके थालसे एक कटोरा क्षीर चोरा रखा और पीछे पूजकोंसे उन्हें देनेको कहा। इसी घटनाके पीछे शचीनन्दन श्रीचैतन्य-देव गोपीनाथके मन्दिरसे अप्रकट हो अलक्ष्य सन्यासीके वेश आनोरपुरी परगनेके बोला-दुबलो नामक स्थानमें पहुंच कुछ समय तक प्रच्छन्न भावसे रहे। पीछे वह उलाग्राम गये और महादेव-तंबोलीको भीटमें बालक वेश देख पड़े। महादेवके कोई सन्तान न था। उन्होंने उक्त अज्ञातकुलशील बालकको पा पुत्रनिर्विशेषसे पालन किया। बारह वत्सरकाल औलिया-चांद महादेव-

तंबोलीके घर रहे। इसके उसको छोड़ कुछ दिन किसी गन्धवणिक्के पास भी वह टिके थे। फिर औलिया-चांद एक मुसल्मानके भवन डेढ़ वर्ष ठहरे। वहांसे चलने पर बङ्गालके पूर्वांशमें कोई कोई स्थान कुछ दिन घूम फिर २७ वत्सर वयःक्रमके समय बेजड़ा नामक ग्राममें वह जा रहे। उक्त ग्राममें २२ शिष्य उनके अनुचर बने। फिर औलिया-चांद चाकदहके निकट परारी नामक स्थानमें बहुत दिन टिके और १६९१ शाकको बयालमें मर गये। आठ प्रधान शिष्योंने उनको कब्या उसी स्थान पर गाड़ देहको परारी ग्राममें ले लाकर समाहित किया।

कहते—मराठोंके हङ्गामेमें किसी सैन्याध्यक्षने औलिया-चांदको बेगार पकड़ा था। किन्तु वह विदेशीके निकट चन्द्रहाटी घाटसे अपने कमण्डलुमें गङ्गाको डाल जलशून्य पङ्किल गङ्गागर्भ पार कर गये। उनके कमण्डलुका गङ्गाजल आज भी घोषपाड़ेमें पालोंके घर रखा है। कर्ताभजनी विश्वास लाते, कि उस जलसे लोग सकल अभिलाष और मोक्ष पाते हैं।

औलिया-चांदके २२ शिष्योंमें रामशरणपाल एक सद्गोप जातीय गृहस्थ थे। उन्होंने इस मतको फैलाया है। औलियाचांद अतिदीर्घकाय और आजानुलम्बित बाहु रहे। वह फलमूल वा लतापत्र ही खाकर अपना जीवन चलाते थे। उन्होंने अन्धको नयन, पङ्गुको चरण, अपुत्रको पुत्र, दरिद्रको धन तथा मृतको जीवन दे अपने मतावलम्बियोंको विमोहित किया और बहुतसे लोगोंको अनुयायी बना लिया। उनके प्रसादसे रामशरण भी अलौकिक शक्तिसम्पन्न हुये।

रामशरणके मरनेपर उनके पुत्र रामदुलालने इस मतकी बड़ी उन्नति की। वह फ़ारसी खूब पढ़े थे। उन्होंने सब लोगोंके समझने योग्य सात-आठ सौ गीत सामान्य भाषामें बनाये। उनमें कोयी प्राचीन हिन्दू शास्त्रानुगत, कोयी मुसलमान सूफी सम्प्रदायसिद्ध और कोयी गीतरचयिताका अभिप्रेत है। कर्ताभजनी रामदुलालके उक्त गीतोंको शास्त्र समझते हैं। प्रति शुक्रवारको प्रातः और सायंकाल जो समाज लगाते, उसमें लोग वही गीत गाते हैं। रामदुलालके समय अनेक धनी, मानी और ज्ञानी व्यक्तियोंने यह मत अवलम्बन किया था। १८३१ ई०के चैत्र मासकी कृष्ण-एकादशीको उन्होंने इस लोकसे अवसर लिया।

पीछे रामदुलालकी पत्नी सरस्वतीने 'कर्तामा' और 'सती मा' के नाम गद्दी पर बैठ इस सम्प्रदायकी श्रीवृद्धि की।

कर्ता-भजनी सम्प्रदायके बीजमन्त्रका मूलसूत्र 'गुरु सत्य' है। यही सबको पहले सिखाया जाता है। फिर निम्नलिखित मन्त्र तीन बार सुनाते हैं—

"कर्ता औलिया महाप्रभु। तुम हमारे और हम तुम्हारे हैं। तुम्हारे ही सुखसे हम चलते हैं। हम तुमसे तिलार्ध भी अलग नहीं। हम तुम्हारे ही साथ हैं। दोहाई महाप्रभु।"

कर्ता-भजनियोंके मतमें परस्त्रीगमन, परद्रव्यहरण, परहत्यासाधन, मिथ्याकथन, वृथाभाष और प्रलापभाषका निषेध औलिया-चांदकी आज्ञा है। इनमें जातिविचार नहीं होता। मनुष्य मनुष्यका सेव्य और पूज्य है। दूसरे देवदेवीकी उपासना आवश्यक नहीं।

कर्ताभजनियोंके कथनानुसार पृथिवीका दूसरा सर्वप्रकार धर्म समस्त अनुमान और स्वीय धर्म सत्य प्रधान है। ज्ञानसाधन द्वारा मनुष्य अपने इष्टदेवको प्रत्यक्ष कर सकता है। किन्तु प्रत्यक्षकरण क्रिया सबसे नहीं बनती। घोषपाड़ेमें महन्तकी गद्दी है। फाल्गुनकी पूर्णिमाको दोलका मेला लगता है। फिर रथयात्रा प्रभृति दूसरे भी महोत्सव होते हैं।

कर्तार (हिं० पु०) १ कर्ता, करनेवाला। यह संस्कृत 'कर्तृ' शब्दको प्रथमा विभक्तिका बहुवचन है। किन्तु हिन्दीमें एकवचनकी ही भांति आता है। २ विधाता, परमेश्वर, दुनियाको बनानेवाला।

कर्तित (सं० त्रि०) कर्त-क्त-इच्। कर्तन किया हुआ, कटा, छंटा, जो काटा गया हो।

कर्तिष्यत् (सं० त्रि०) कर्तन करनेकी इच्छा रखनेवाला, जो काटना चाहता हो।

कर्तिष्यमाण, कर्तिष्यत् देखो।

कर्तुकाम (सं० त्रि०) कर्तुं कामः अभिलाषो यस्य, बहुव्री०। करनेका इच्छुक, जो करना चाहता हो।

कर्तृ, कर्ता देखो।

कर्तृक (सं० त्रि०) प्रतिहस्त, प्रतिनिधि, कारगुज़ार, करनेवाला।

कर्तृका (सं० स्त्री०) कृन्तति छिनत्ति, कृत्-तृच्-स्वल्पार्थे कन्-टाप्। क्षुद्रखड्ग, कटारी।

"हास्ययुक्तां विनेत्राञ्च कपालकर्तृकाकराम्।" (तन्त्रसार, श्यामाध्यान)

कर्तृत्व (सं० क्ली०) कर्तुर्भावः, कर्तृ-त्व। कर्ताका धर्म, कारगुज़ारी, करनेवालेकी मालूमियत।

"न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।" (गीता ५।१४)

कर्तृपुर (सं० क्ली०) नगरविशेष, एक शहर। यह भारतके उत्तरपूर्व अञ्चलमें अवस्थित है। समुद्रगुप्तने यह स्थान जय किया था। समुद्रगुप्त देखो।

कर्तृवाचक, कर्तृवाच्य देखो।

कर्तृवाची, कर्तृवाच्य देखो।

कर्तृवाच्य (सं० पु०) कर्ता वाच्यो यत्र, बहुव्री०। क्रियापद द्वारा कर्ताको लक्षित करनेवाला वाक्य, जिस जुमलेमें फ़ेलसे फ़ायलको समझ सकें। (Active voice) इसमें कर्ता प्रधान रहता और कर्ममें 'को' चिह्न लगता है जैसे—रामने रावणको मारा। प्रत्येक क्रियाका प्रकृत रूप कर्तृवाच्य ही होता है। जैसे—लिखना, पढ़ना, लड़ना, हंसना, खेलना, कूदना। किन्तु कर्मवाच्यमें प्रधान क्रिया भूतकालमें आती और उसमें 'जाना' क्रिया पीछे जोड़ दी जाती है। जैसे—लिखा या पढ़ा जाना। फिर कर्तृवाच्यसे कर्मवाच्य बनानेमें कर्मको कर्ता और कर्ताको करण ठहराते हैं। जैसे—'रामने रावणको मारा' कर्तृवाच्यका 'रावण रामसे मारा गया' कर्मवाच्य हुवा।

कर्तृवाच्यक्रिया (सं० स्त्री०) कर्तृवाच्य देखो।

कर्तृस्थ (सं० त्रि०) कर्तरि कर्तृसम्पादनयोग्ये तिष्ठति, कर्तृ-स्था-ड। कर्तृस्थानीय, कर्ताका प्रतिनिधि, करनेवालेकी जगह रहनेवाला।

कर्तृस्थक्रियक (सं० त्रि०) कर्तामें अपने कार्यको लगानेवाला, जो अपना काम फ़ायलसे रखता हो।

कर्तृस्थभावक (सं० त्रि०) कर्तामें अपना भाव रखनेवाला।

कर्त्तृका (सं० स्त्री०) क्षुद्रखड्ग, कटारी, शिकारीकी छुरी।

कर्त्त्रिका, कर्त्तिका देखो।

कर्त्री (सं० स्त्री०) कतरनी, कैंची।

कर्त्य (सं० त्रि०) कर्तन किया जानेवाला, जो कटनेवाला हो।

कर्त्री (सं० स्त्री०) करोति या, कृ-तृच्-ङीप्। १ कार्यसम्पादन-कारिणी, काम बनानेवाली। २ प्रभुपत्नी, मालिककी बीवी।

कर्त्व (सं० क्ली०) कृ-त्वन्। कृत्यार्थे तवैकेन् केन्यत्वनः। पा ३।४।१४। घृत, घी।

कर्द (सं० पु०) कर्द-अच्। कर्दम, कीचड़।

कर्दङ्ग—पञ्जाबके कांगड़ा ज़िलेका मध्यवर्ती एक ग्राम। यह भागनदीके वामकूलपर अवस्थित है। कर्दङ्गमें अच्छे अच्छे मकान् बने हैं।

कर्दट (सं० पु०) कर्द कर्दमं अटति कारणत्वेन प्राप्नोति, कर्द-अट्-अच्। १ पङ्क, कीचड़। २ करहाट, कंवलकी जड़। ३ मृणाल, कंवलकी डण्डी। ४ जलजतृणमात्र, पनिहा घास। (त्रि०) ५ पङ्कर, कीचड़में चलनेवाला।

कर्दन (सं० क्ली०) कर्दते, कर्द भावे ल्युट्। कुक्षिशब्द, पेटकी आवाज़, गुड़गुड़ाहट।

कर्दम (सं० पु०-क्ली०) कर्द-अम। कलिकर्योरमः। उण् ४।८४। १ पङ्क, कीचड़, चहला। इसका संस्कृत पर्याय—निषद्वर, जम्बाल, पङ्क और शाद है। राजवल्लभके मतसे कर्दम शीतल, रूक्ष और विषरोग, वेदना, दाह तथा शोथनाशक होता है। २ स्वायम्भुव मन्वन्तरके प्रजापति विशेष। इनके पिताका नाम कीर्तिमान् और पुत्रका नाम अनङ्ग था। (भारत, शान्ति) यह ब्रह्माकी छायासे उत्पन्न हुये। फिर इन्होंने सरस्वतीतीर विन्दुसरतीर्थमें दश सहस्र वत्सर तपस्या की। स्वायम्भुवमनुकी कन्या देवहुति इनकी पत्नी थीं। पुत्रका नाम कपिलदेव रहा। इनके कलादि नव कन्या भी थीं। कपिल और कला देखो। ३ पाप, गुनाह। ४ छाया, परछाहीं। "वेदेषु कर्दमः शब्दश्छायायां वर्तते स्फुटम्।" (ब्रह्मवै० ब्रह्म० २२ अ०) ५ नागविशेष, एक सांप। "कर्दमश्च महानागो नागश्च बहुमूलकः।" (भारत १।३५।१६) ६ मृत्तिका, मट्टी। ७ मल, कूड़ा। ७ प्रजापति पुलहके एक पुत्र।

८ गन्धराल। ९ मांस, गोश्त। १० वयोदशविध कन्दविषमें एक विष। कन्दविष देखो। ११ वर्त्म कर्दमाख्य नेत्ररोग, आंखको एक बीमारी। वर्त्म कर्दम देखो। (त्रि०) १२ कर्दमयुक्त, कीचड़से भरा हुवा।

कर्दम—१ विन्ध्यपार्श्वके अन्तर्गत एक ग्राम। २ काशी प्रदेशके मध्यका एक ग्राम। (भ० ब्रह्मख०)

कर्दमक (सं० पु०) कर्दमे कायति प्रकाशते, कर्दम-कै-क। १ धान्यविशेष, एक अनाज। शालि देखो। २ पङ्क, कीचड़। ३ राजिमत् सर्पविशेष, एक सांप। सर्प देखो। ४ अन्न, अनाज।

कर्दमराज (सं० पु०) काश्मीरके एक राजा। इनके पिताका नाम क्षेत्र या क्षेमगुप्त था। (राजत०)

कर्दमविसर्प (सं० पु०) विसर्परोगभेद, किसी किस्मका कोढ़। माधवनिदानके मतमें यह कफपित्त ज्वरसे स्तम्भ, निद्रा, तन्द्रा, शिरोरुक्, अङ्गावसाद, विक्षेप, प्रलाप, अरोचक, भ्रम, मूर्छा, अग्निहानि, अस्थि-भेद, पिपासेन्द्रियका गौरव बढ़ाता, और पीत, लोहित, पाण्डुर, स्निग्ध, असित, मलिन, शोफवान्, गुरु तथा गम्भीरपाक देखाता है। अवगम्भो विसर्पको कर्दम कहते हैं।

कर्दमाटक (सं० पु०) कर्दमो मलादिः अत्यते निक्षिप्यते यत्र; कर्दमस्य मलादेः आटो निक्षेपोऽत्र इति वा। विष्ठादि फेंकनेका स्थान, गूगीवर डालनेकी जगह।

कर्दमित (सं० त्रि०) कर्दम-इतच्। कर्दमरूपमें परिणत, कीचड़ बना हुवा, मैला।

कर्दमिनी (सं० स्त्री०) कर्दमानां देशः, कर्दम-इनि-ङीप्। प्रचुर कर्दमयुक्त देश, कीचड़का मुल्क।

कर्दमिल (सं० क्लो०) कर्दम-इनि। तुन्दधृष्टर्जिवलि-शिरट्य् पयफक् स्निग्ध्यककठ्को इगोइपादित्वादि। पा ४।२।८०। जनपदविशेष, एक मुल्क।

"एतत् कर्दमिलं नाम भरतस्याभिषेचनम्।" (भारत, वन)

कर्द्रमो (सं० स्त्री०) गुग्गुलवृक्ष, गन्धराजका पेड़।

कर्नफूली, कर्णफुली देखो।

कर्नैल, करनैल देखो।

कर्नैता (हिं० पु०) अश्वविशेष, किसी रंगका घोड़ा।

कर्पट (सं० पु०) कीर्यते क्षिप्यते, कृ-विच्; कर् चासौ पटश्चेति। १ जीर्णवस्त्र, पुराना कपड़ा, चिथड़ा, गूदड़, लत्ता। इसका संस्कृत पर्याय—लक्तक और नक्तक है। २ पर्वतविशेष, एक पहाड़। यह नाभि-मण्डलसे पूर्व और मध्यकूटसे दक्षिण अवस्थित है। यहां गमन रहते हैं। (कालिकापुराण ८१ अ०) ३ मलिन वस्त्र, मैला कपड़ा। ४ वस्त्रखण्ड, कपड़ेका टुकड़ा। ५ कषाय रक्तवस्त्र, भूरा लाल कपड़ा।

कर्पटक, कर्पट देखो।

कर्पटधारी (सं० पु०) कर्पटं धरति, कर्पट-धृ-णिनि। मलिन जीर्णवस्त्रखण्डधारी भिक्षुक, फटापुराना कपड़ा पहननेवाला फ़क़ीर।

कर्पटिक (सं० त्रि०) कर्पटा ऽस्त्यस्य, कर्पट-ठन्। कर्पटधारी, फटापुराना कपड़ा पहननेवाला।

कर्पटिनी (सं० स्त्री०) कर्पटिन्-ङीप्। कर्पटधारिणी, फटापुराना कपड़ा पहननेवाली।

कर्पटी (सं० त्रि०) कर्पटो ऽस्त्यस्य, कर्पट-इनि। कर्पटधारी, फटा पुराना कपड़ा पहननेवाला।

कर्पण (सं० पु०) कृप-ल्युट्। लौहशस्त्रविशेष, सांग।

"चापचक्रकणपकर्पणप्रासपट्टिशहलनोमरादि प्रहरणजातमनुगृह्णानः।"
(दशकुमार)

कर्पर (सं० पु०) कृप् बाहुलकात् अरन् लत्वाभावः। १ कपाल, खोपड़ा। २ अस्त्रभेद, एक हथियार। ३ कटाह, कड़ाह। ४ उदुम्बरवृक्ष, गूलरका पेड़। ५ कच्छपके पृष्ठका आवरण, कछुवेकी हड्डी। ६ खर्पर, खपड़ा। ७ ज्वालातप्तकपाल, गर्म खप्पर। ८ कपोल, गाल। ९ शर्करा, चीनी।

कर्परांश (सं० पु०) कर्परस्य अंशः, ६-तत्। मृत्-कपालखण्ड, मट्टीके खपड़ेका टुकड़ा।

कर्पराल (सं० पु०) कर्पर इव अलति पर्याप्नोति, कर्पर-अल्-अच्। अक्षोटवृक्ष, अखरोटका पेड़। यह पहाड़ी पीलू है।

कर्पराशी (सं० पु०) कर्परे अश्नोति, कर्पर-अश-णिनि। वटुकभैरव।

"श्मशानवासी मांसाशी कर्पराशी महामखः।" (वटुकस्तव)

कर्परिका (सं० स्त्री०) कर्परी स्वार्थे कन्-टाप् ह्रस्वः। कर्परी देखो।

कर्परिकातुत्थ (सं॰ क्ली॰) कर्परिकेव तुत्थम्। १ तुत्थविशेष, एक तूतिया।

कर्परी (सं॰ स्त्री॰) कृप् बाहुलकात् अरट् लत्वाभावः ङीप्। क्वाथोद्भव तुत्थ, खपरिया, दारुहल्दीके काढ़ेका तूतिया। इसका संस्कृत पर्याय—दार्विका और तुत्थाञ्जन है।

कर्पास (सं॰ पु॰-क्ली॰) क-पास। कः पासः। उण्। ५।४५। कर्पास वृक्ष, कपासका पौदा। कार्पास देखो।

कर्पासक, कार्पास देखो।

कर्पासफल (सं॰ क्ली॰) कर्पासस्य फलम् ६-तत्। कार्पासवीज, बिनौला, कपासका बीज। यह स्तन्यवर्धक, वृष्य, स्निग्ध, गुरु और कफकारक है। (भावप्रकाश)

कर्पासी (सं॰ स्त्री॰) कर्पासजातित्वात् गौरादित्वात् वा ङीष्। कर्पास वृक्ष, कपासका पेड़। इसका संस्कृत पर्याय—कार्पासी, तुण्डिकेरी और समुद्रान्ता है। भावमिश्रने इसे लघु, ईषत् उष्णवीर्य, मधुररस और वायुनाशक कहा है। कर्पासीका पत्र वायुनाशक, रक्त तथा मूत्रवर्धक और कर्णपीड़ा, कर्णनाद और पूयस्राव शान्तिकारक है।

कर्पूर (सं॰ पु॰-क्ली॰) कृप्-ऊर। खर्जिपिञ्जादिभ्य ऊरोलचौ। उण् ४।९०। सुगन्धित द्रव्यविशेष, एक खुशबूदार चीज। इसे फारसीमें काफूर, हिन्दीमें कपूर, तामिलमें करुपूरम, सिंहलीमें कपूरु और अंगरेजी भाषामें काम्फर (Camphor) कहते हैं। इसका संस्कृत पर्याय—घनसार, चन्द्रसंज्ञ, सिताभ्र, हिमवालुका, हिमकर, शीतप्रभ, सिताभ, घनसारक, सितकर, शीत, शशाङ्क, शीला, शीतांशु, शाम्भव, शुभ्रांशु, स्फटिकाभ, क्षारमिहिका, ताराभ्र, चन्द्रार्क, चन्द्र, लोकतुषार, गौर, कुमुद, इन्दु, हिमाह्वय, चन्द्रभस्म, वेधक और रेणुसारक है। कर्पूर त्रयोदश प्रकार होता है,—पोतास, भीमसेन, सितकर, शङ्करवास, पांशु, पिञ्ज, अब्दसार, हिमवालुक, जूतिका, तुषार, हिम, शीतल और पत्रिकाख्य। भावप्रकाशके मतसे यह शीतल, वृष्य, चक्षुःहितकर, लेखन, लघु, सुगन्धि, मधुर, तिक्तरस, और कफ, पित्त, विषदोष, दाह, तृष्णा, मुखविरसता, मेदः तथा दुर्गन्धनाशक है। चीना कपूर कफनाशक, तिक्तरस और कुष्ठ, कण्डु तथा वमिनिवारक होता है।

यह उद्भिद्‌जात, दृढ़ीभूत, गन्धयुक्त और चञ्चल उद्वायुगुणविशिष्ट (उड़ जानेवाला) एक श्वेत पदार्थ है। रसायनशास्त्रज्ञ इसे उद्भिद्‌के उद्वायुगुणयुक्त तैलकी द्वितीय अवस्था बताते हैं। नानाप्रकार उद्भिद्‌से ही कपूर मिलता है।

कपूरका इतिहास—इस बात पर बड़ा गड़बड़ पड़ा—किस समयसे कपूर मानव जातिके व्यवहारमें लगा और गुणागुण निर्णय हो सका। युरोपीय पण्डितोंके निर्णयानुसार ई॰ षष्ठ शताब्दसे प्राचीन ग्रन्थोंमें इसका उल्लेख मिलता है। इस्रमीतके हिम्दा राजवंशीय अमरु केस नामक किसी राजपुत्रने षष्ठ शताब्द अरबीमें एक कविता लिखी थी। उसमें कपूरका उल्लेख आया है।

किन्तु हमारी समझमें उससे बहु पूर्व भारतवासियोंको इसका सन्धान लगा था। सुश्रुत, चरक, वाभट, हारीत प्रभृति प्राचीन आयुर्वेदप्रचारक कपूरका नाम और गुणागुण पर्यन्त लिख गये हैं।

इशाक-इबन्-आमन् नामक किसी अरबी चिकित्सक और इबन् खुर्दद्बा नामक एक अरबी भौगोलिकने ई॰ षष्ठ शताब्दको लिखा था—'मलय प्रायोद्वीपसे कपूर बाहर भेजा जाता है।' फिर ई॰ त्रयोदश शताब्दको प्रसिद्ध भ्रमणकारी मार्कपोलोने लिखा,—'फनसूर नामक स्थानमें सर्वोत्कृष्ट कपूर उत्पन्न होता है।' फनसूर स्थान सुमात्रा द्वीपके मध्य है। आजकल, वहांका कपूर 'बरस' कहाता है। पहले युरोपमें इसे कोई जानता न था। चीनसे यह युरोपमें पहुंचा। इसी प्रकार १५६३ ई॰से युरोपीयोंको इसका सन्धान मिला।

प्राचीन काल भारतवर्षके लोग कपूरको पक्व और अपक्व दो भागमें बांटते थे।

डाक्टर उदयचन्द्रके कथनानुसार पक्व कपूर (Cinnamomum Camphora) किसी चीनदेशीय वृक्षके काष्ठसे निकलता और रौद्रके तापमें पकता है। अपक्व कपूरको उत्पत्ति बोरनियो द्वीपके एक वृक्ष-

स्कन्ध (Dryobalanops aromatica)से है। यही कपूर सर्वोत्कृष्ट होता है। हिन्दीमें इसे 'भीमसेनी कपूर' कहते हैं। दाक्षिणात्यमें चार प्रकारका कपूर चलता है—कैसरी, सूरती, चीना और बटाई।

युरोपीय डाक्टरोंने स्थान और गुणभेदसे इसे चार श्रेणीमें विभक्त किया है—प्रथम फारमोसा या चीन-जापानका कपूर है। फारमोसा द्वीप और चीनके मध्य राज्यमें 'काम्फर लरेल' (Cinnamonum Camphora) नामक एक वृक्ष होता है। भारतमें खदिर वृक्षसे जैसे खैर निकलता, वैसे ही उक्त वृक्ष-काष्ठके कुचले निर्यासमे स्वच्छ काचके सदृश कपूर उतरता है। फिर उसका सार ले लिया जाता है। उक्त वृक्षका कपूरमात्र चीनमें कपूर कहाता है। पहले विलायत और भारतमें यह कपूर बहुत बिकता था। किन्तु अब इसकी आमदनी कम पड़ गयी।

जापानमें उक्त वृक्ष अधिक उत्पन्न होता है। समुद्रका शीतल वायु उसके लिये अति उपकारी है। सतसुमा और बङ्गो जिलेमें कपूरका काम चलता है।

द्वितीयको भीमसेनी कपूर कहते हैं। इसका प्रकृत नाम 'बरस' है। सुमात्रा द्वीपके बरस नामक स्थानमें शाल सदृश एक वृक्ष (Dryobalanops aromatica) होता है। इसके काष्ठमें काचके समान एक प्रकार पदार्थ जम जाता है। खदिरमें खैर और चन्दनमें अगुरुकी तरह काष्ठके अभ्यन्तर तथा वृक्षके हृदयमें भीमसेनी कपूर देख पड़ता है। उक्त वृक्ष जितना बड़ा लगता, कपूर भी उतना ही अधिक निकलता है। किन्तु लोग उसे बहुत बढ़ने नहीं देते। कपूरके लोभसे शतशत वृक्ष काट डाले जाते हैं। ७।८ वर्षका वृक्ष न होनेसे कपूर कम मिलता है।

ओलन्दाज-अधिकृत सुमात्रा-द्वीपके उत्तर-पश्चिम उपकूल अयार-वान्नीसे बरस और सिङ्केल नामक नगर पर्यन्त समुदाय स्थान, बोरनियो द्वीपके उत्तरांश और लेबुयानद्वीपमें कपूरका वृक्ष होता है।

तृतीयका नाम नगैया कपूर है। अंगरेज इसे ब्लूमिया काम्फर (Blumea Camphor) कहते हैं। चीन देशके कान्टन नगरमें यह कपूर बनता है। इसका वृक्ष बहुत बड़ा होता है। इस जातिका वृक्ष हिमालयके पूर्वांचल, खसिया गिरि, चट्टग्राम, पेगू, ब्रह्म और चीनके दक्षिणांशमें उपजता है। किन्तु ब्रह्मदेशमें ही इसकी अधिक उत्पत्ति है। ब्रह्मदेशीय कपूरवृक्षके विषयमें किसीने कहा है,—यदि सब वृक्षोंसे कपूर निकलने पाये, तो पृथिवीके अर्धांशका कार्य बन जाये।

डाक्टर डाइमकको बम्बई अञ्चलमें उक्त जातीय एक प्रकार कपूरोत्पादक वृक्ष मिला था। बम्बईवाले कण्डु (खुजली) मिटानेको उसे व्यवहार करते हैं।

चतुर्थको सुगन्धि द्रव्यमें पड़नेवाला कपूर कहते हैं। यह नाना जातीय वृक्षसे उत्पन्न होता है। इसे तम्बाकूका पत्ता, किंवा आंशिक परिमाणमें थिमस (Thymus) तेलका सार टपका निकालते या पाचुली वृक्षसे बनाते हैं। शेषोक्त वृक्षसे निकलनेवाला कपूर अनेक स्थानमें 'पाचुली कपूर' कहाता है। नारङ्गीसे जो कपूर बनता, उसका अंगरेजीमें नेरोली काम्फर (Neroli Camphor) नाम पड़ता है। बङ्गालमें भी एक वृक्ष (Nimnophila gratioloides)से कपूर निकलता है। भारतवर्षमें लाखों रुपयेका कपूर आता जाता है।

देशीय वैद्य इसे कामोद्दीपक और मुसलमान कामशक्तिह्रासकारक बताते हैं। हिन्दू और मुसलमान दोनोंके मतानुसार चक्षुकी प्रदाह अवस्थामें पलक पर कपूर लगानेसे विशेष फल मिलता है।

श्वासरोग अधिक बढ़नेपर कपूर और हिङ्गु चार चार ग्रेन गोली बनाकर २।३ घण्टे पीछे खिलानेसे बड़ा उपकार होता है। इसीके साथ छातीपर तारपीनका तेल मलना चाहिये। पुरातन वातरोगमें ५ ग्रेन कपूर १ ग्रेन अफीमके साथ सोते समय खिलानेसे पसीना निकलता और व्यथाका लाघव लगता है। कपूर और हिङ्गु एकत्र खिलानेसे हृद्रोग दूर होता है।

बालककाल लड़कोंको खांसी आनेपर एक लत्तेमें कपूर लगा और तपा रात्रिकाल वक्षपर रखनेसे बड़ा लाभ पहुंचता है।

शुक्रदोष और शुक्रक्षय प्रभृति रोगमें रात्रिकाल सोते समय ४ ग्रेन कपूरके साथ आध ग्रेन अफीम

देनेसे रोगका प्रतिकार पड़ता है। मेहादि रोगमें लिङ्गोच्छ्वास घटते उक्त औषधके साथ अफीम अधिक देनेऔर लिङ्गपर कर्पूरका लिनिमेण्ट लगा लेनेसे आशु फल मिलता है।

स्त्रियोंके जरायुमें इसी प्रकार नाना रोगके कारण प्रदाह उठने पर अवस्थानुसार ४।६ ग्रेनकी मात्रामें कपूरकी एक एक गोली बना दिनको २।३ बार खिलानेसे विशेष उपकार होता है। किन्तु ऐसे स्थलमें रोगिणीका अन्त्र खाली रखना पड़ेगा।

प्रसवकाल पीड़ा उठते कपूर और कालोमेल पांच-पांच ग्रेन मधु डाल दो गोली बनाते और एक खिलाते हैं। इससे बड़ा लाभ पहुंचता है। कोई एक घण्टे पीछे जुलाब भी देना पड़ता है।

पीनस रोगमें कपूरका वाष्प बड़ा उपकार करता है। फिर स्नायुशूलमें ३।४ ग्रेन कपूर आध ग्रेन वेलो-डोनाके साथ लगानेसे अधिक लाभ होता है।

हैजेमें कभी कपूर उपकारी और कभी अनुपकारी है। गर्भवतीको अधिक मात्रामें कर्पूर खिलानेसे गर्भस्राव होता है।

वस्त्रादिमें कपूर डाल रखनेसे कीड़ा नहीं लगता। भारतवर्षमें यह पूज्य द्रव्य समझा जाता है। प्रत्येक देवदेवीकी आरती इससे हुवा करती है। फिर सुगन्धके लिये पञ्चामृत और पक्वान्नमें भी यह पड़ता है।

कर्पूर—संस्कृतके एक प्राचीन विद्वान् ग्रन्थकार। यह गजमल्लके पिता और मेघदूत-टीकाकार कल्याणमल्लके पितामह थे।

कर्पूरक (सं० पु०) कर्पूर इव कायति प्रकाशते; कर्पूर-कै-क। १ कर्बूरक, कच्ची हल्दी। २ कर्चूरक, कचूर।

कर्पूर कवि—संस्कृतके एक प्राचीन कवि। भोजप्रबन्धमें इनका उल्लेख है।

कर्पूरखण्ड (सं० पु०) कर्पूरस्य खण्डः, ६-तत्। कपूरका खण्ड, कपूरका डला।

कर्पूरगौर (सं० त्रि०) कर्पूरवत् गौरः शुभ्रः। कर्पूरकी भांति शुभ्रवर्ण, कपूरकी तरह गोरा।

कर्पूरगौरी (सं० स्त्री०) एक रागिणी। इसमें ज्योतिः, खम्बावती, जयतश्री, टङ्क और बराटीके स्वर लगते हैं।

कर्पूरतिलक (सं० पु०) कर्पूर इव शुक्लं तिलकं ललाटचिह्नं यस्य, बहुव्री०। हस्तिविशेष, एक हाथी।

कर्पूरतुलसी (सं० स्त्री०) कर्पूरगन्धिका तुलसी, कपूरकी तरह महकनेवाली तुलसी।

कर्पूरतैल (सं० क्ली०) कर्पूरस्य तैलमिव स्नेहः। कर्पूरस्नेह, कपूरका तेल। इसका संस्कृत पर्याय—हिमतैल और सुधांशुतैल है। यह कटु, उष्ण, दन्त-दार्ढ्यकर और वात, कफ, पित्त तथा पामहर होता है। (राजनिघण्टु)

कर्पूरनालिका (सं० स्त्री०) पक्वान्नविशेष, एक मिठायी। मोयन मिली मैदाकी एक लम्बी नली बना लवङ्ग, मरिच, कर्पूर और शर्करा भरते हैं। फिर मुख बन्द कर घृतमें भूननेसे कर्पूरनालिका बनती है। यह शरीरवर्धक, बलकारक, सुमिष्ट, गुरु, पित्त तथा वायुनाशक, रुचिजनक और दीप्ताग्नि मानवके लिये अत्यन्त लाभदायक है। (भावप्रकाश) हिन्दीमें इसे कपूरकी गोझिया कह सकते हैं।

कर्पूरमणि (सं० पु०) कर्पूरवर्णो मणिः। पाषाण-भेद, कपूरकी तरह एक सफेद पत्थर। यह तिक्त, कटु, उष्ण और व्रण तथा त्वक् एवं वातदोषनाशक होता है। (राजनिघण्टु)

कर्पूररस (सं० पु०) १ अतिसाराधिकारका रसविशेष, दस्तकी एक दवा। यह हिङ्गुल, अहिफेन, मुस्तक, इन्द्रयव, जातीफल और कर्पूर यत्नसे घोटनेपर बनता है। दो गुञ्जापरिमित वटिका जलसे बांधी जाती है। (भैषज्यरत्नावली) २ रसकर्पूर, रसकपूर। इसमें प्रथम सामान्य रूपसे पारद शोधा जाता है। शुद्ध पारदके परिमित गैरिक, पुष्टिका, स्फटिका, सैन्धव, वल्मीक, क्षारलवण और भाण्डरञ्जक मृत्तिका एक प्रहर घोंटते हैं। फिर उक्त चूर्णके साथ शुद्ध पारद एक हांडीमें रख ऊपर दूसरी हांडी लगा मट्टीसे द्वार बन्द करना पड़ता है। क्रमशः तीन बार मट्टीका लेप सूखनेपर हांडी अग्निमें फूंकी जाती है। चार दिन बराबर आंच देने पीछे पांचवें दिन हांडी अङ्गार पर रहती है। अन्तको अति सावधानतासे ऊपरकी हांडी खोलते हैं। उसमें कर्पूरकी भांति जो पारद लग जाता, वही

कर्पूररस वा रसकर्पूर कहाता है। कुसुम, चन्दन, कस्तूरी तथा कुङ्कुमयुक्त रसकर्पूर सेवन करनेसे फिरङ्ग रोग हटता और अग्नि एवं बलवीर्य बढ़ता है। (भावप्र०)

कर्पूररस (सं० क्ली०) सरोवर विशेष, एक तालाब।

कर्पूरहरिद्रा (सं० स्त्री०) स्वनामख्यात द्रव्य, कपूर-हलदी। यह शीतल, वातल, मधुर, तिक्त और पित्त तथा सर्वकण्डूघ्न होती है।

कर्पूरा (सं०स्त्री०) कृप-ऊर-टाप्। तरटी,आमा हलदी।

कर्पूरादितैल (सं० क्ली०) तैलविशेष, एक तेल। कपूर, भल्लातक, शङ्खचूर्ण, यवक्षार तथा मनःशिला चार चार तोले तेलमें भली भांति पका २० तोले हरिताल मिलानेसे यह बनता है। इसके प्रयोगसे सकल योनिरोग आरोग्य होते हैं।

कर्पूराश्मा (सं० पु०) उपरत्नविशेष, एक कीमती पत्थर। २ स्फटिक, बिल्लौरी पत्थर।

कर्पूरिल (सं० त्रि०) कर्पूरो ऽस्यास्ति, कर्पूर काशा-दित्वात् इल्। काशादिभ्यः... पा ४।२।८०। कर्पूर-युक्त, काफूरी, कपूरी।

कर्फर (सं० पु०) कीर्यते क्षिप्यते, कृ-क्विप्, फल्यते फल फलस्य रः; कीर्यमाणः फलः प्रतिबिम्बो यत्र, बहुव्री०। दर्पण, आयीना।

कर्ब (सं० पु०) मूषिक, चूहा।

कर्बर (सं० पु०-क्ली०) १ पुण्ड्रकेक्षु, पौंड़ा। २ स्वर्ण, सोना। ३ धुस्तूरवृक्ष, धतूरेका पौदा। ४ व्याघ्र, बाघ।

कर्बरी (सं० स्त्री०) १ शृगाली, मादा गीदड़। २ व्याघ्री, बाघन।

कर्बु (सं० त्रि०) मिश्रितवर्ण, कबरा, धब्बेदार।

कर्बुदार (सं० पु०) कर्बुरिव कर्बुः सन् वा श्लेष्माणं मलं वा दारयति, कर्बु-दृ-णिच्-अच्। १ कोविदारवृक्ष, लसौड़ेका पेड़। २ श्वेतकाञ्चन, सफ़ेद कचनार। यह ग्राही और रक्तपित्तमें हितकर है। (राजनिघण्टु) ३ नीलझिण्टी, तेंदू। इसीसे आवनूस निकलता है।

कर्बुदारक (सं० पु०) कर्बुदारवत् कायति, कर्बुदार-कै-क यद्वा कर्बुरिव श्लेष्माणं दारयति, कर्बु-दृ-णिच्-ण्वुल्। श्लेष्मान्तक वृक्ष, बालतेका पेड़।

कर्बुर (सं० पु०-क्ली०) कर्बति गर्वति अस्मात् अनेन वा, कर्ब दर्पे उरच्। मद्गुरादयश्च। उण् १।४२। १ स्वर्ग, विहिश्त। २ धुस्तूरवृक्ष, धतूरेका पौदा। ३ गन्धशटी, कचूर। ४ आमहरिद्रा, कच्ची हलदी। ५ जल, पानी। ६ राक्षस। ७ पाप, गुनाह। ८ नदीजात निष्पाव धान्य, जड़हन धान। ९ स्वर्ण, सोना। १० हरिताल, हरताल। (त्रि०) ११ नानावर्ण, कबरा।

कर्बुरक (सं० पु०) १ आमहरिद्रा, कच्ची हलदी। २ गन्धशटी, कचूर। ३ निष्पावधान्य, जड़हन धान।

कर्बुरफल (सं० पु०) कर्बुरं चित्रवर्णं फलं यस्य, बहुव्री०। साकुरुण्डवृक्ष, एक पेड़।

कर्बुरा (सं० स्त्री०) कर्बुर-टाप्। १ कृष्णतुलसी। २ बर्बरी। ३ सविष जलौका भेद, एक जहरीली जोंक। ४ पाटलावृक्ष, पाड़रीका पेड़।

कर्बुरित (सं० त्रि०) कर्बुरो ऽस्य जातः, कर्बुर-इतच्। चित्रित, चितकबरा।

कर्बुरी (सं० स्त्री०) कर्बुर गौरादित्वात् ङीष्। दुर्गा।

कर्बूर (सं० पु०-क्ली०) कर्बति गर्वं प्राप्नोति यस्मात्, कर्ब-ऊर्। १ स्वर्ण, सोना। २ हरिताल। ३ शठी, कचूर। ४ राक्षस। ५ द्राविड़क,कच्ची हलदी। ६ नाना-वर्ण, चितकबरा रंग।

कर्बूरक (सं० पु०) कर्बूर स्वार्थे कन्। १ हरिद्राभ वृक्ष। २ कृष्ण हरिद्रा, काली हलदी। ३ कर्पूरहरिद्रा, आमाहलदी।

कर्बूरित (सं० त्रि०) कर्बूरोऽस्य सञ्जातः, कर्बूर-इतच्। नानावर्णविशिष्ट, चितकबरा।

कर्म (सं० पु० क्ली०) कृ कर्मणि मनिन् अर्धर्चादि। कार्य, काम। जो किया जाता, वह कर्म कहाता है। वैयाकरण पण्डित कहते हैं,—

"तत्क्रियानाश्रयत्वे सति तत्क्रियाजन्यफलशालित्वं कर्मत्वम्।"

जो क्रियाका आश्रय न होते भी क्रियाजन्य फल-विशिष्ट रहता, वही क्रियाका कर्म ठहरता है। जैसे—वह भोजन बनाता है। यहां कर्तृसमवेत पाकक्रियाका अनाश्रय भोजन पाकजन्य विक्लित्ति रूप फलविशिष्ट होता है। इसीसे उक्त भोजन कर्म लक्षणका लक्ष्य लगता है। यह कर्म तीन प्रकारका है—निर्वर्त्य, विकार्य और प्राप्य। जो अविद्यमान वस्तु उत्पत्ति

द्वारा प्रकाश पाता, वह निर्वर्त्य कहाता है। जैसे—वह चटाई बनाता है। यहां चटाई पहले न रही, पीछे उत्पत्ति द्वारा आत्मलाभकर प्रकाशित हुयी। सुतरां चटाईको निर्वर्त्य कर्म कहते हैं। जो वस्तु पहले सत् रहते पीछे अवस्थान्तर पाता, वह विकार्य कहाता है। जैसे—वह चावल सिझाता है। यहां चावल पहले सत् रहा, पीछे केवलमात्र अवस्थान्तरको प्राप्त हुवा। इसलिये चावल विकार्य कर्म समझा गया। फिर विकार्य कर्म द्विविध है—प्रकृति-नाश-सम्भूत और गुणान्तरोत्पत्ति द्वारा नामान्तरविशिष्ट। जैसे—वह काष्ठको भस्म करता है। यहां काष्ठ जलने पर भस्म बननेसे प्रकृतिनाशसम्भूत कर्मका उदाहरण ठहरा। 'सुवर्णको कुण्डल बनाता है' स्थलमें सुवर्णसे गुणान्तरविशिष्ट कुण्डलको उत्पत्ति हुयी और गुणान्तरोत्पत्तिसे सुवर्णको ही कुण्डल संज्ञा पड़ी। इसीसे यह गुणान्तरोत्पत्ति द्वारा नामान्तर-विशिष्ट कर्मका उदाहरण है। फिर निर्वर्त्य और विकार्य भिन्न कर्म प्राप्य है। जैसे—वह सूर्यको देखता है।

मीमांसक दो प्रकारका कर्म बताते हैं—अर्थकर्म और गुणकर्म। जिस कर्मसे किसी प्रकारका अदृष्ट उठता, उसे विद्वान् अर्थकर्म कहता है। जैसे अग्निहोत्र याग। यह यज्ञ करनेसे याज्ञिकके आत्मामें स्वर्गजनक अदृष्ट जगता और उसी अदृष्टसे पीछे यज्ञकर्ताको स्वर्ग मिलता है। फिर जिस कर्मसे वस्तु संस्कृत बनता, उसका नाम गुणकर्म पड़ता है। जैसे वह व्रीहि प्रोक्षण करता है। यहां प्रोक्षणनेसे व्रीहि संस्कृत होता है। इसीसे प्रोक्षण गुणकर्म है।

अर्थकर्म नित्य, नैमित्तिक और काम्य भेदसे तीन प्रकार है। जिसको न करनेसे पाप पड़ता, वह नित्य कर्म ठहरता है। अग्निहोत्रादि यज्ञ न करनेसे ब्राह्मणको पाप लगता है। इसीसे अग्निहोत्र प्रभृति ब्राह्मणका नित्यकर्म है। किसी निमित्तके उपलक्ष्य किया जानेवाला कर्म नैमित्तिक कहाता है। गोवधादि पापक्षयार्थ प्रायश्चित्त गोवधादि निमित्तके उपलक्ष्य किया जाता है। इसीसे यह नैमित्तिक कर्मके मध्य परिगणित है। नित्य तथा नैमित्तिक कम न करनेसे पाप लगने और करनेसे कोई फल न मिलनेका मत कोई कोई पण्डित मानते हैं। किन्तु वास्तविक उक्त विषय अमूलक है। कारण नित्य और नैमित्तिक कर्मसे पापक्षय होनेका मत स्मृतिमें कहा है,—

"नित्यनैमित्तिकैरेव कुर्वाणो दुरितक्षयम्।" (मीमांसा-परिभाषा)

फलकी कामनासे किया जानेवाला कर्म काम्य कहाता है। जैसे—कारीरि याग। यह वृष्टि कामनाशील पुरुष द्वारा अनुष्ठित होता है। इसीसे इसको काम्य कहते हैं। काम्य कर्म तीन प्रकारका होता है—ऐहिक फलक, आमुष्मिक फलक और ऐहिकामुष्मिक-फलक। जिस कर्मसे इहलोकमें फल मिलता, उसका नाम ऐहिक पड़ता है। इहलोकमें वृष्टिरूप फल देने कारण कारीरियाग ऐहिकफलक है। परलोकमें फलोत्पादक कर्म आमुष्मिकफलक होता है। अग्निहोत्रादि याग इहकाल किसीको स्वर्गप्रदान नहीं करता। उसका फल परकालको ही मिलता है। सुतरां अग्निहोत्रयाग आमुष्मिकफलक है। इहकाल और परकाल फलप्रद कर्म ऐहिकामुष्मिक-फलक होता है।

बोधायनाचार्य ज्ञानसहकारसे इस कर्मको मुक्तिका कारण बताते हैं। किन्तु अद्वैतवादी शङ्कराचार्यका दूसरा मत है। उनके कथनानुसार ब्रह्म भिन्न सकल विषय मिथ्या है। जब चित्तक्षेत्रमें एकमात्र ब्रह्म सत्य होनेका ज्ञान उठता, तब ज्ञानी पुरुष कर्म तथा तत्साधनको मिथ्या समझता और परब्रह्मसे पृथक् अपना अस्तित्व भी स्वीकार नहीं करता। सुतरां कर्मकर्ता और साधनके मिथ्यात्व प्रयुक्त ज्ञानके समय कर्म रहनेकी सम्भावना कैसी। इसीसे ज्ञान-सहकारसे कर्म मुक्तिका कारण हो नहीं सकता। केवल मात्र ज्ञान ही मुक्तिका कारण है। फलाकाङ्क्षा परित्यागपूर्वक कर्म करनेसे चित्त परिशुद्ध होकर अद्वितीय ब्रह्मके तत्त्वज्ञानको क्षमता आती है। फिर विशुद्ध चित्तमें कूटस्थ ब्रह्मका प्रतिबिम्ब पड़नेसे मुक्ति मिल जाती है।

जैन-मतसे कर्म दो प्रकारका होता है—घाति और अघाति। मुक्तिके लिये विघ्नकर कर्म घाति कहाता.

है। फिर घाति कर्म चार प्रकारका है—ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और आन्तर्य। तत्त्वज्ञान द्वारा मुक्ति न मिलनेका ज्ञान ज्ञानावरणीय कर्म है। आर्हत दर्शन पढ़नेसे मुक्ति न होनेका ज्ञान दर्शनावरणीय कर्म कहाता है। शास्त्रमें मुक्तिके परस्पर विरुद्ध अनेक पथ प्रदर्शित हुये हैं। किन्तु उनमें मुक्तिके प्रकृत कारणका अनवधारण मोहनीय कर्म है। मोक्षके पथमें प्रवृत्तिका विघ्न डालनेवाला कर्म आन्तर्य कहाता है। फिर अघाति कर्म भी चार प्रकारका है—वेदनीय, नामिक, गोत्रिक और आयुष्क। ईश्वरतत्त्वको अपना ज्ञातव्य माननेवाला अभिमान वेदनीय कर्म है। अमुक नामविशिष्ट होनेका अभिमान नामिक कर्म कहाता है। अमुक वंशमें जन्म ग्रहण करनेका अभिमान गोत्रिक कर्म है। फिर शरीररक्षाके लिये किया जानेवाला कर्म आयुष्क माना गया है। उक्त चारो प्रकारका कर्म मुक्तिके लिये विघ्नकरी न रहनेसे अघाति कहाता है।

नैयायिक क्रियाको कर्म बताते और उसके पांच विभाग लगाते हैं। यथा—उत्क्षेपण, अवक्षेपण, आकुञ्चन, प्रसारण और गमन। जिस क्रिया द्वारा कोयी चीज़ उठायी जाती, वह उत्क्षेपण कहाती है। अधोदेशको किसी वस्तुका संयोग करानेवाली क्रिया अवक्षेपण है। जिस क्रिया द्वारा प्रस्फुटित वस्तु मुद्रित पड़ती, उसे विदग्धमण्डली आकुञ्चन कहती है। मुद्रित वस्तुको प्रस्फुटित करनेवाली क्रिया प्रसारण है। गमनक्रिया द्वारा एक स्थानसे अन्य स्थान पहुंचते है। फिर गमन पांच प्रकारका होता है—भ्रमण, रेचन, स्पन्दन, ऊर्ध्वज्वलन और तिर्यग्गमन। यथा—

"उत्क्षेपणं ततोऽवक्षेपणमाकुञ्चनं तथा।
प्रसारणञ्च गमनं कर्माण्येतानि पञ्च च॥
भ्रमणं रेचनं स्पन्दनोर्ध्वज्वलनमेव च।
तिर्यग्गमनमप्यत्र गमनादेव लभ्यते॥" (भाषापरिच्छेद ६)

पूर्वमीमांसक ज्ञान अपेक्षा कर्मका प्राधान्य स्वीकार करते, किन्तु वेदान्तिक कहते—'कर्मसे ज्ञान श्रेष्ठ है। कारण ज्ञान न होनेसे मुक्ति कैसे मिल सकती है?'

उक्त मतवैषम्य मिटानेको महायोगेश्वर श्रीकृष्णने भगवद्गीतामें अतिचमत्कार महोत्कृष्ट मत देखाया और दुर्ज्ञेय कर्मतत्त्व अति मनोहर तथा विस्तारित रूपसे सुबोधगम्य बना बताया है।

गीताके तृतीयाध्यायसे षष्ठाध्याय तक, तथा त्रयोदशाध्यायमें कर्मसम्बन्धीय अनेक विषय और अन्यान्याध्यायमें कर्मसङ्क्रान्त कोयी न कोई महत् प्रसङ्ग विवृत है। किन्तु तृतीय अध्याय केवल कर्मात्मक है। इसीसे उसको कर्मयोगाध्याय कहते हैं। श्रीकृष्णके मतसे शारीरिक व्यापारका नाम कर्म है। कर्मका अभाव अकर्म कहाता है। फिर कर्म शास्त्रविहित और अकर्म शास्त्रनिषिद्ध होता है। सिवा इसके कर्मसे अकर्म और अकर्मसे कर्म भी बन सकता है। कर्मका विभाग नाना प्रकार है। वैषयिक विविध सुखाभिलाष, तृप्ति वा स्वर्गादि पुण्यफलप्राप्तिकी कामनासे किया जानेवाला कर्म काम्य कहाता है। वैषयिक कामना न रख अहंज्ञान परित्यागपूर्वक सर्वव्यापक ईश्वरकी एक मात्र सत्ताके ज्ञानसे अनन्यचित्त उसको भक्तिमें उसीके प्रीत्यर्थ जो कर्म करते, उसे निष्काम कहते हैं। फिर चित्तशुद्धिके लिये नियमित कर्म नित्यकर्म है। शरीर, वाक्य, मन प्रभृतिका प्रवर्तक पञ्चविध कारण शरीर, कर्ता (अर्थात् चित्त एवं अहङ्कार), चक्षु, कर्ण, इन्द्रियादि, प्राणादिके विविध वायुका व्यापार और चक्षुकर्णादिका आनुकूल्यकारी सूर्यवायु इत्यादि है। ईश्वरकी ही सत्तामें दुर्ज्ञेय मायाकी सत्ता रहती है। सत्व, रजः और तमः त्रिविध गुण मायासे निकला है। पृथिव्यादिमें ऐसा कोई सत्व नहीं, जो त्रिगुणसे मुक्त हो। सुतरां सभी त्रिगुणके प्रादुर्भावभेदसे भिन्न भिन्न कर्म करते और कर्मके सात्विक, राजसिक तथा तामसिक त्रिविध विभाग बनते हैं। विशेष कर्मके विशेष विशेष फल और पापपुण्यादिका नियन्ता ईश्वर नहीं। प्राकृतिक अलङ्घनीय नियमसे वह हुवा करता है। अहंभाव अर्थात् कर्तृत्वाभिमानशून्य, आत्मीयके प्रति स्नेह तथा शत्रुके प्रति द्वेषवर्जित और फलाकाङ्क्षा-रहित हो जो नित्य कर्म किया जाता, वह सात्विक कहाता है। फलाकाङ्क्षा और अहङ्कारसे अतिशय आयासमें होनेवाला कर्म राजसिक है। अपनी भविष्यत् शुभाशुभसे

चित्त बिगाड़, परहिंसा विचार और निज सामर्थ्य पर दृष्टि न डाल किये जानेवाले कर्मका नाम तामसिक है। ज्ञान, बुद्धि, धृति, श्रद्धा और कर्ताका भी सत्त्वानुरूप त्रिविध लक्षण दर्शित हुवा है। फिर यज्ञ, तपः, दान और आहारके भी इसी प्रकार तीन तीन भेद कहे हैं। कर्मका रूपभेद इन्हीं सबपर निर्भर करता है।

श्रीकृष्णने ज्ञान तथा कर्म उभयकी प्रशंसाकर ज्ञानकी महोत्कर्षता देखायी है। उन्होंने कहा,—'जो व्यक्ति प्रकृत ज्ञानी, आत्मतत्त्वज्ञ तथा आत्माके प्रसाद आत्मक्रियासे ही आत्मामें सन्तुष्ट रहता, उसको अपने लिये कर्मका कोई प्रयोजन नहीं पड़ता। फिर कर्म करनेसे न तो उसे कोई इष्ट और न करनेसे न कोई प्रत्यवाय (पाप) लगता है।' किन्तु इस उक्ति अनुयायी कर्मकाण्डवालो अकर्तव्यताकी आशङ्का मिटानेको भिन्न भिन्न प्रकार भिन्न भिन्न अध्यायमें श्रीकृष्णने सर्वदा स्वतंत्र्य उपदेश दिया और सांख्य, योग तथा पूर्वमीमांसाके आपाततः विरोध मतका सामञ्जस्य किया है। कर्म बन्धनस्वरूप अर्थात् मुक्तिके लाभका बाधक कहा गया है। इसीसे सांख्य-मनीषियोंने दोषावह देख कर्मका त्याग ठहराया है। फिर भी मीमांसकोंके मतानुसार यज्ञ, दान और तपस्याको कभी छोड़ना न चाहिये। उक्त उभय मत मानते महाविरोध पड़ जाता है। किन्तु प्रकृत पक्षमें कोयी विरोध नहीं। कारण देहधारी मात्रको अशेषरूप कर्म त्यागकी क्षमता कहां! कर्मको छोड़ कोई क्षणकाल भी टिक नहीं सकता। इच्छाके विरुद्ध प्रकृतिका गुण मनुष्यको कर्मरत बनाता है। दर्शन, श्रवण, स्पर्श, घ्राण तथा भोजन पांच ज्ञानेन्द्रियके और गमन, आलाप, स्वप्न, निश्वास, मलमूत्रादित्याग, नेत्र उन्मीलन एवं निमीलन पांच कर्मेन्द्रियके कर्म हैं। यह इन्द्रियोंको स्वतः प्राकृतिक नियमसे करना पड़ते हैं। इच्छा इनको रोक नहीं सकती। अभ्यासके बल कर्मेन्द्रिय (वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपस्थ)को संयम करते भी जिसके मनमें लालसा बनी रहती, उसे विद्वन्मण्डली कपटाचारी कहती है। त्याग भी सत्त्वानुरूप त्रिधा भेदात्मक है। आसक्ति और कर्मफल परित्यागपूर्वक केवल कर्तव्य-बोधसे कार्यका अनुष्ठान सात्त्विक त्याग है। ऐसा त्यागी सत्त्वगुणसम्पन्न मेधावी और संशयविरहित होता है। वह दुःखावह विषयसे द्वेष और सुखावह विषयसे अनुराग नहीं रखता। फलतः उसीको कर्मफलत्यागी कह सकते हैं। दुःखावह विषय कायक्लेशके भयसे छोड़ना राजसिक त्याग है। फिर मोहवशतः नित्य कर्म न करना तामसिक त्याग कहाता है। इस स्थानपर उभय मतके सामञ्जस्यसे श्रीकृष्णने कहा—पण्डितोंने काम्यकर्मके त्यागको संन्यास और सकल प्रकार कर्मफल छोड़नेको त्याग बताया है। यज्ञ, दान और तपस्या छोड़ना न चाहिये। यह कार्य विवेकियोंकी चित्तशुद्धिका कारण हैं। निश्चयरूपसे आसक्ति और कर्मफलको छोड़ यह समस्त कार्य करना ही श्रेष्ठ है। कर्मका त्याग कभी कर्तव्य नहीं ठहरता। ज्ञानयोग श्रेष्ठ है। फिर ज्ञानभित्तिस्थापित भक्ति-उद्भावित शान्ति उससे भी श्रेष्ठ होती है। किन्तु विधेय कर्मारम्भ भिन्न जब ज्ञानलाभमें व्याघात आता, तब तत्तत् कर्म वर्जन की अपेक्षा साधन अवश्य लगाया जाता है। ज्ञानोपदेशसे मानस-वृत्तिकी प्रकृत चालना द्वारा और अभ्यासके बल इन्द्रिय वशीभूतकर आसक्ति परित्यागपूर्वक जो व्यक्ति कर्मका अनुष्ठान उठाता, वही श्रेष्ठ कहाता है। आसक्ति त्यागपूर्वक ईश्वरके उद्देश न किया जानेवाला कर्म बन्धन है। ईश्वरके उद्देश कृत कर्म प्रकृत यज्ञ कहाता है। नाना कामना-सिद्धिके लिये जो कर्म और वैदिक क्रियाकलाप चलता, उससे मन केवल कर्मकी सिद्धि पर ही टिका रहता और ईश्वरसे विमुख पड़ता है। फिर नाना मनुष्य नाना प्रकृतिस्थ होते हैं। ऐसी अवस्थामें जैसे बालकको लड्डूका लोभ देखा विद्याकी शिक्षामें लगाते, वैसे ही कर्मफलकी आशासे क्रियाकलापादि वला धर्मके सोपानका एक निम्न अङ्ग बताते हैं। "सहयज्ञाः प्रजाःसृष्ट्वा" आदि श्लोकमें श्रीकृष्णने यही भाव व्यक्त किया है। जैसे अग्नि प्रथम धूमाच्छन्न रहता, वैसेही सकल कर्मके प्रारम्भमें दोष देख पड़ता है। किन्तु परित्याग न कर कर्मको धैर्यावलम्बनपूर्वक चलाना चाहिये। अन्तमें

सिद्ध व्यक्तिको किसी क्रियाकलापका प्रयोजन नहीं लगता। किन्तु कर्मकी सिद्धि चाहनेवालेको उसका प्रयोजन बना रहता है। फिर इतर पुरुष श्रेष्ठके कार्यका अनुगामी होता है। इससे सिद्ध पुरुष जनहितार्थं तत्तत् कर्म कर सकता है। सिद्धिके सर्वोच्च सोपान पर चढ़ने अर्थात् ईश्वरके तत्त्वमें भक्ति-निविष्ट रहनेको कर्मफलत्यागी बन निष्काम साधन करना आवश्यक है। इसी प्रकार कर्ममें प्रवृत्तिके लिये निम्नश्रेणीके लोगोंको सकाम कर्म भी करना चाहिये। किन्तु निम्न श्रेणीके लोगोंको सतत आचार्य उपदेश देनेके लिये तत्त्वज्ञानकी शिक्षाका प्रयोजन पड़ता है। कर्मके मुख्य उद्देश्य ईश्वरज्ञान और ईश्वरभक्तिकी चित्तशुद्धिको भूल केवल कर्मपरायण हो जीवनयात्रा निर्वाह करना वृथा है।

ईश्वरमें सर्व कर्म समर्पण करने अर्थात् यज्ञ, तपस्या, दान तथा अन्यान्य सत्कार्यसे उसीका स्मरण, उसीकी महिमाका कीर्त्तन और उसीकी विभूतिका दर्शन रखनेसे मोक्षलाभ होता है। ईश्वरका विश्वरूप और उसीकी सौम्यमूर्ति देखना चाहिये। फिर ज्ञानी कर्मनिष्ठ अहंभावको छोड़ सोऽहंभाव पकड़ता है। किन्तु ऐसी परासिद्धि साधकको मिलना दुर्लभ है। इसलिये केवलमात्र ईश्वरपरायण हो व्यवसायात्मिका बुद्धि खोजना पड़ती है। फिर उसमें कृतकार्य न होते भी कोयी क्षति नहीं आती। यह धर्म जितना सधता, उतना ही कल्याणकर रहता है। वैषयिक अकिञ्चित्कर सुख और सिद्धि न मिलते भी दुःख कैसे होगा! क्योंकि इसप्रकार कर्मसमर्पण द्वारा ईश्वरमय बननेपर पवित्र सुखकी इयत्ता नहीं रहती। फिर अनिर्वचनीय आनन्द मिलने लगता है। इस जन्ममें योगभ्रष्ट हो जाते अर्थात् चरम सिद्धि न पाते कियत् परिमाण कार्यके बल परजन्म उस कर्मके साधनमें अधिक सामर्थ्य आता है। कोई अनेक जन्मान्तर और कोई पूर्वार्जित कर्मके बल शीघ्र सिद्ध हो जाता है। द्रव्य यज्ञादि यावतीय कर्ममें ईश्वर-परायणतास्वरूप ज्ञान ही श्रेष्ठ है। ज्ञानयज्ञका प्रधान फल ऐहिक भाव प्राप्त होना है। उसमें सर्वभूतके प्रति समदृष्टि और सौहार्द्य परिगणित है। सुतरां जो सर्वभूतके हितमें रत रहता, शत्रु मित्र पर समान प्रीति तथा दया रखता और स्वीय इष्टानिष्ट भूल सर्वकर्म ईश्वरको समर्पण करता, उसीको विद्वान् परम योगी कहता है।

इस जगत्में भला बुरा कर्म कौन नहीं समझता! किन्तु लोग ऐहिक स्वार्थसिद्धिके लिये अनुचित कर्म किया करते हैं। ऐसी अवस्थामें आवश्यक है—कोई महापुरुष शुभ कर्मका लाभ और अशुभ कर्मका दोष देखाता रहे। भारतवर्ष कर्मक्षेत्र है। यहां क्या किसी वयमें बुरा कर्म करना न चाहिये।

कर्मकर (सं॰ त्रि॰) कर्म करोति भृत्येन, कर्मन्-कृ-ट। कर्मणि भृतौ। पा ३।२।२२। १ वेतन पर कार्य करनेवाला, नौकर, मजदूर। इसका संस्कृत पर्याय—भृतक, भृतिभुक्, वैतनिक, वेतनोपजीवी, भरण्यभुक् और कर्मण्यभुक् है। २ कर्मकारक, काम करनेवाला।

"शिष्यान्ते वासिभृतकाधस्तुर्यस्त्वधिकर्मकृत्। एते कर्मकरा ज्ञेयाः।"
(मिताक्षरा)

(पु॰) कर्म हिंसां करोति, कृ हेत्वादौ ट। ३ यम।

कर्मकरी (सं॰ स्त्री॰) कर्मन्-कृ-ट, ङीप्। १ दासी, बांदी। २ मूर्वालता, मरूलकी बेल। ३ बिम्बिका लता, एक बेल।

कर्मकर्ता (सं॰ पु॰) कर्मणः कर्ता सम्पादकः, ६-तत्। १ कार्यकारक, काम करनेवाला। कर्मैव कर्ता। २ व्याकरणोक्त वाच्य विशेष (Passive voice)। इसमें कर्तृत्वकी विवक्षासे कर्म ही कर्ता होता है।

"क्रियमाणन्तु यत् कर्म स्वयमेव प्रसिध्यति।
सुकरैः स्वैर्गुणैः कर्तृ कर्मकर्तेति तद्विदुः॥" (व्याकरणकारिका)

कर्ताका कर्म अपने निज गुणसे स्वतः सम्पन्न होने पर कर्मकर्ता कहाता है। किन्तु ऐसे स्थलपर हिन्दीमें कर्ताका प्रकृत चिह्न 'ने' कभी नहीं लगता।

कर्मकर्तृता (सं॰ स्त्री॰) कर्मका कर्तृत्व, मफलकी कारगुजारी। जैसे—रोटी बनती है। यहां रोटी अपने आप बन नहीं सकती। उसका बनानेवाला कोयी अवश्य रहता है। इसलिये रोटी कर्म ठहरते भी कर्तृत्वको प्राप्त होती है।

कर्मकाण्ड (सं॰ क्ली॰) कर्मणां कर्तव्यताप्रतिपादकं

काण्डम्, मध्यपदलो०। १ कर्मका कर्तव्यता-प्रतिपादक वेदांश। कर्म देखो। २ धर्मसम्बन्धीय कर्म यज्ञादि।

कर्मकाण्डी (सं० पु०) १ यज्ञादि कर्म विधिवत् करनेवाला, जो कर्म का कर्तव्यताप्रतिपादक वेदांश पढ़ा हो।

कर्मकार (सं० त्रि०) कर्म करोति भृतिं विना इति शेषः। १ वेतन व्यतिरेक कार्यकारक, वेगार, जो विना उजरत काम करता हो। २ कार्यकारक, काम बनानेवाला। (पु०) ३ वृष, बैल। ४ जातिविशेष, लोहार। लोहार देखो। यह विश्वकर्माके औरस और शूद्राके गर्भसे उत्पन्न हुवा है।

"हरिणाचि कटाचेण आत्मानमवलोकय।
नहि खड्गो विजानाति कर्मकारं स्वकारणम्॥" (उद्भट)

कर्मकारक (सं० त्रि०) कर्म-कृ-ण्वुल्। १ कार्यकारक, काम करनेवाला। (पु०) व्याकरणोक्त कारक विशेष। कर्म देखो।

कर्मकारी (सं० त्रि०) कर्म करोति, कर्म-कृ-णिनि। कर्मकारक, काम करनेवाला।

"तां विदित्वा सुचरितैं गूढैः सत् कर्मकारिभिः।" (मनु ८।२६१)

कर्मकार्मुक (सं०पु०-क्ली०) सुदृढ़ चाप, बढ़िया कमान्।

कर्मकीलक (सं० पु०) कर्मणा कीलक इव वस्त्रचालनादिना गृहस्थानां मानरचाकपाटकीलकस्वरूपः। रजक, धोबी।

कर्मकुशल (सं० त्रि०) कर्मणि कुशलः, ७-तत्। कर्ममें निपुण, काममें होशियार।

कर्मकृत् (सं० त्रि०) कर्म करोति, कर्मन्-कृ-क्विप्। कर्मकारक, काम करनेवाला।

"कर्मापि विविधं ज्ञेयमशुभं शुभमेव च।
अशुभं दासकर्मोक्तं शुभं कर्मकृतां स्मृतम्॥" (मिताचरा)

कर्मकृतवान् (सं० पु०) धर्मसम्बन्धीय कृत्य करानेवाला।

कर्मकृत्य (सं० क्ली०) व्यवसाय, उत्साह, फुरती।

कर्मक्षम (सं० त्रि०) कर्मणि क्षमः समर्थः, ७-तत्। कर्म करनेको समर्थ, काम कर सकनेवाला।

"आत्मकर्मक्षमं देहं चात्रो धर्म इवाश्रितः।" (रघु)

कर्मक्षेत्र (सं० क्ली०) कर्मणां क्रियानुष्ठानानां क्षेत्रम्, ६-तत्। १ कर्म करनेकी भूमि, काम बनानेकी जगह। २ भारतवर्ष। इस स्थानपर कर्म करनेसे फलानुसार अन्यान्य वर्षमें जन्म मिलता है।

"अत्रापि भारतमेव वर्षं कर्मक्षेत्रम्। अन्यान्यष्टवर्षाणि स्वर्गिणां पुण्यशेषोपभोगस्थानानि भौमस्वर्गपादानि व्यपदिशन्ति।" (भागवत ५।१७।११)

कथित वर्षसमूहके मध्य भारतवर्ष ही कर्मक्षेत्र है। अन्यान्य अष्ट वर्ष स्वर्गवासियोंके अवशिष्ट पुण्यभोगका स्थान होते हैं। इसीसे उनको भौमस्वर्ग कहते हैं।

कर्मग्रन्थि (सं०पु०) कर्मणां ग्रन्थिवन्धनमस्मात्, बहुव्री०। अज्ञानजन्य वासनारूप दोष। यही वासना सकल प्रवृत्ति और वन्धनका हेतु है।

कर्मघात (सं० पु०) कर्मका विनाश, काम छोड़ बैठनेकी हालत।

कर्मचण्डाल (सं० पु०) कर्मणा चण्डाल इव। १ असूयक, हिंसक, मारकाट करनेवाला। २ पिशुन, खल, चुगलखोर। ३ कृतघ्न, एहसान-फरामोश। ४ अत्यन्त क्रोधी, निहायत गु,स्सावर।

"असूयकः पिशुनश्च कृतघ्नो दीर्घरोषकः।
चत्वारः कर्मचण्डाला जन्मतश्चापि पञ्चमः॥" (वशिष्ठ)

५ राहु।

"उत्तिष्ठ गम्यतां रौद्री त्यज्यतां चन्द्रसङ्गमः।
कर्मचण्डाल योगीन्द्र मम पापक्षयं कुरु॥" (ग्रहयज्ञोक्ति राहु-मन्त्र)

कर्मचन्द्र (सं० पु०) १ मालव देशके एक राजा। हिन्दीमें कर्मचन्द्र भाग्यको कहते हैं।

कर्मचारी (सं० त्रि०) कर्मणि चरति, कर्म-चर्-णिनि। वेतन पर कार्य करनेवाला, जो तनखाह पर काम करता हो।

कर्मचित् (सं० त्रि०) कर्म-चि भूते क्विप्। १ कृतकर्म, किया हुवा काम। (वै०) २ कर्म द्वारा सञ्चित, कामसे बना हुवा।

"कर्ममयान् कर्मचितस्ते कर्मणा ह्येव चीयन्ते। कर्मणा चीयन्ते।" (शतपथब्रा० १०।५।३।८)

कर्मचित (व० त्रि०) कर्मणा चितः, कर्म-चि-क्त। कर्मनिष्पाद्य, कर्म द्वारा सम्पादन किया जानेवाला।

"तद्यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयते एवमेवामुत्र पुण्यचितः।" (वेदान्त०)

कर्मचेष्टा (सं० स्त्री०) कर्मणि चेष्टा, ७-तत्। क्रियाके अनुष्ठानका उद्योग, कामकी कोशिश।

"आत्मजन्या भवेदिच्छा इच्छाजन्या भवेत् कृतिः।
कृतिजन्या भवेच्चेष्टा चेष्टाजन्या क्रिया भवेत्॥" (मनु)

कर्मचोदना (सं० त्रि०) कर्मणि कर्मावबोधने चोदना विधिः। १ कर्मविषयमें प्रेरणाकारक विधि। कर्म चोद्यते प्रवर्तते अनया, अ-टाप्। २ कर्ममें प्रवृत्तिका हेतु।

"ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना।" (गीता)

३ कर्मविधि।

"चोदना चोपदेशय विशिष्टकार्यबाधिनः इत्यनेन उक्त लक्षणं त्रिगुणात्मकः ज्ञानादित्रयमवलम्ब्य कर्मविधिः प्रवर्तते।" (श्रीधरस्वामी)

कर्मज (सं० पु०) कर्मणः कर्मजन्यादृष्टाज्जायते, कर्म-जन-ड। १ कर्मफलजन्य रोगादि। यह रोग शास्त्रानुसार निर्णीत औषधप्रयोगसे भी नहीं दबता। केवल कर्मके क्षयसे ही इसकी शान्ति होती है। २ जन्मपरिग्रह। कायिक, वाचिक और मानसिक कर्मविशेषके फलसे योनिविशेषमें जन्म लेना पड़ता है। ३ पापपुण्यादि। ४ क्रियाजन्य संयोगविभागादि। ५ वेगनामक संस्कार। "मूर्त्तमात्रे तु वेगः स्यात् कर्मजो वेगजः क्वचित्।" (भाषापरि०) ६ वटवृक्ष। कर्मणो जातः विषभोगवासनावशात् क्रमशो मलिनीयमानवृत्तिभिर्जात इत्यर्थः। ७ कलियुग। (त्रि०) ८ क्रियाजात, कामसे बना हुआ।

"तथा दहति वेदज्ञः कर्मजं दोषमात्मनः।" (मनु १२।१०)

कर्मजगुण (सं० पु०) कर्मणो जायते यो गुणः, कर्मधा०। क्रियाजन्य संयोग, विभाग और वेग गुण।

"संयोगश्च विभागश्च वेगश्चैते तु कर्मजाः।" (भाषापरि०)

कर्मजित् (सं० पु०) १ जरासन्धवंशीय मगधके एक नृपति। २ उड़ीसेके कोई राजा। इन्होंने ७८ से १४३ ई० तक राजत्व किया।

कर्मज्ञ (सं० त्रि०) कर्म जानाति, कर्मन्-ज्ञा-क। कर्मबोधक, हिताहित और समय देख कर्म विशेष करनेका ज्ञान रखनेवाला।

कर्मठ (सं० त्रि०) कर्मणि घटते, कर्मन्-अठच्। कर्मणि घटोऽठच्। पा ५।२।३५। १ कर्मकुशल, काममें होशियार।

"शातामयस्तस्य ततो व्यतानीत्। स कर्मठः कर्मसुतानुबन्धि॥" (भट्टि १।११)

कर्मणा (सं० अव्य०) कर्मसे, क्रिया द्वारा, कामके साथ।

कर्मणिवाच्य (सं० पु०) व्याकरणोक्त वाच्यविशेष। इस वाच्यमें कर्मकर्ता बन जाता है। फिर वचन और पुरुष भी कर्मपदका ही निर्दिष्ट होता है।

कर्मण्य (सं० स्त्री०) कर्मणि साधुः, कर्मन्-यत्। १ कर्मयोग्य, काम कर सकनेवाला। २ कर्म विशेषमें आवश्यक, किसी कामके लिये जरूरी। ३ कर्मकुशल, काम करनेमें होशियार।

कर्मण्यता (सं० स्त्री०) कर्मण्यस्य भावः। कर्मकुशलता, तत्परता, मुस्तैदी।

कर्मण्यभुक् (सं० त्रि०) कर्मण्यं वेतनं भुङ्क्ते, कर्मण्यभुज-क्विप्। वेतनोपजीवी, नौकर।

कर्मण्या (सं० स्त्री०) कर्मणा सम्पाद्यते, कर्मन्-यत्-टाप्। १ वेतन, तनखाह। २ मूल्य, कीमत।

कर्मतः (सं० अव्य०) कार्यानुसार, कामके मुवाफ़िक़।

कर्मत्याग (सं० पु०) कर्मणः त्यागः, ६-तत्। १ वैतनिक कर्मका त्याग, नौकरीका इस्तेफा। २ सांसारिक कर्मका त्याग, दुनयावी काम छोड़ बैठनेकी हालत।

कर्मत्व (सं० क्ली०) कर्मकी स्थिति, फल अदा करनेकी हालत।

कर्मदक्ष (सं० त्रि०) कर्मणि दक्षः, ७-तत्। कर्ममें पटु, काम करनेमें होशियार।

कर्मदुष्ट (सं० त्रि०) कर्मणा दुष्टः, ३-तत्। १ कर्म विशेषसे पतित, किसी कामसे गिरा हुआ। २ पापी, गुनाहगार।

कर्मदेव (वै० पु०) कर्मणा देवः प्राप्तदेवभावः। देवविशेष। अष्टवसु, एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य, इन्द्र और प्रजापति—तेंतीस कर्मदेव हैं। अग्निहोत्रादि वैदिक कर्मके फलसे इन्हें देवलोक मिला है। इनमें इन्द्र प्रभु और वृहस्पति आचार्य हैं। देवयोनिमें जन्म लेनेवालेको आजानदेव कहते हैं।

कर्मदेवी (सं० स्त्री०) मेवाड़के राजा समरसिंहकी पत्नी। इनके पुत्रका नाम राहुप था। समरसिंह देखो।

कर्मदेवता (सं० स्त्री०) कर्मदेव, यज्ञादि कर्मसे बने हुये देव।

कर्मदोष (सं० पु०) कर्मैव दोषः कर्म हेतुर्दोषो वा।

१ दुष्ट कर्म, पापजनक हिंसादि, गुनाह, इज़ाबका काम। २ कर्मजन्य पापादि,कामका इज़ाब। ३ कर्म विषयक दोष, गलती, भूल। ४ कर्मके मूल कारणस्वरूप मिथ्याज्ञानकी वासनाका दोष, बुरा चालचलन।

कर्मधारय (सं० पु०) व्याकरणोक्त समानाधिकरण पदघटित समास विशेष। समानाधिकरणस्तत्पुरुषः कर्मधारयः। पा १।२।४२। इसमें विशेषण और विशेष्यका समान अधिकरण होता है। जैसे—रक्तलता। हिन्दीमें यह समास नहीं लगता, क्योंकि विशेषण और विशेष्य अलग रहता है। फिर संस्कृतकी भांति विशेषणमें विभक्ति भी लगायी नहीं जाती।

कर्मध्वंश (सं०पु०) कर्मणो ध्वंशः, ६-तत्। कर्मक्षति, मज़्दूरी कामके फ़ायदेका नुक़सान, नाउम्मेदी।

कर्मना (हिं०) कर्मणा देखो।

कर्मनाम (सं० क्ली०) क्रियासे बना हुवा नाम, इस्मफ़ायल।

कर्मनाशा (सं० स्त्री०) कर्म नाशयति, कर्मन्-नश-णिच्-अण्-टाप्। एक प्रसिद्ध नदी। यह (अक्षा० २४° ३८´ ३०´ ३०´´ उ० तथा देशा० ८३° ४१´ ३०´´ पू०) विहार प्रदेशस्थ शाहाबाद ज़िलेके कैमोर पर्वतसे निकली है। इसने उत्तरपश्चिम मुख पहुंच दरिहार ग्रामके निकट शाहाबाद और मिर्ज़ापुर ज़िले दोनों ओर रख विहार एवं युक्तप्रदेशको स्वतन्त्र कर दिया है। फिर चौसा ग्रामके निकट यह गङ्गा नदीसे जा मिली है। इसकी दो शाखा हैं—धर्मावती और दुर्गावती। पर्वत पर जहां कर्मनाशा बहती, वहां नदीगर्भकी भूमि प्रस्तरमय पड़ती है। किन्तु मृत्तिका मिलनेसे नदीगर्भ कर्दमयुक्त और गभीर रहता है। माघ फाल्गुन मास यह नदी सूख जाती है। किन्तु वर्षाकाल इसके वेगका कोयी ठिकाना नहीं। उस समय अल्प जलमें भी उतरना कठिन पड़ता है। द्रव्य सामग्रीसे भरी बड़ी नौका अनायास इस पर चला करती हैं। मिर्ज़ापुर ज़िलेके छानपाथर नामक स्थानमें यह नदी १०० फीट नीचे गिरती है। अधिक वृष्टिके समय उक्त जलप्रपात अतिसुन्दर देख पड़ता है। अनेक लोगोंके कथनानुसार इस नदीको छूनेसे महापाप लगता है। कारण रावणके प्रस्रावसे इसकी उत्पत्ति है। रावण देखो। किसी किसीके मतानुसार सूर्यवंशीय त्रिशङ्कु राजाने ब्रह्महत्याका पाप किया था। वह अपना पाप छोड़ाने पृथिवीकी यावतीय पुण्यतोया नदीका जल लाये और उसमें नहा ब्रह्महत्याके पापसे छूट पाये। आजकल जो कर्मनाशा बहती, उसको विद्वमण्डली त्रिशङ्कु-राजाका गात्रधौत अपवित्र जल कहती है। फिर कोई उस समयसे अपवित्र बताता, जिस समय युक्त-प्रदेशका निष्ठावान् प्राचीन ब्राह्मण इसको पार कर कीकट अथवा वङ्गदेश आता न था। किन्तु नदीकूलके अधिवासी कर्मनाशाको अपवित्र नहीं समझते और जलसे सायंसन्ध्याकार्य किया करते हैं। भविष्य ब्रह्मखण्डके लेखानुसार गङ्गा और कर्मनाशाके सङ्गममें नहानेसे अशेष पुण्य मिलता है—

"भागीरथ्या समं तत्र कर्मनाशा नदी द्विजः।
मङ्गतिं पुण्यदां प्राप्ता लोकतारणहेतवे॥" (१५।४०)

उक्त ब्रह्मखण्डमें ही लिखा, कि कर्मनाशाके कूल पर ताड़का राक्षसीका वन था।

कर्मनिबन्ध (सं० पु०) कर्मका आवश्यक फल, कामका ज़रूरी नतीजा।

कर्मनिर्हार (सं० पु०) असत्कर्म वा फलका दूरीकरण, बुरे काम या उसके नतीजेका हटाव।

कर्मनिष्ठ (सं० त्रि०) कर्मणि निष्ठा यस्य, बहुव्री०। यागादि कर्मासक्त, नित्य नैमित्तिक कर्म करनेवाला।

"ज्ञाननिष्ठा द्विजाः केचित् तपोनिष्ठास्तथापरे।
तपःस्वाध्यायनिष्ठाय कर्मनिष्ठास्तथा परे॥" (मनु)

कर्मनिष्ठा (सं० स्त्री०) कर्मणि निष्ठा आसक्तिः, ७-तत्। कर्ममें आसक्ति, काममें लगे रहनेकी हालत।

कर्मन्द—भिक्षुसूत्रकार एक ऋषि।

कर्मन्दी (सं० पु०) कर्मन्देन भिक्षुसूत्रकारकेन ऋषिविशेषेण प्रोक्तं भिक्षुसूत्रमधीते, कर्मन्द-इनि। कर्मन्द-कृशाश्वादिनिः। पा ४।३।१११। भिक्षु, सन्यासी।

कर्मन्यास (सं० पु०) कर्मणां विहितकर्मणां विधिना न्यासः त्यागः। १ कर्मत्याग, सन्यास। २ कर्मफलत्याग, कामके नतीजेको छोड़ देनेकी हालत।

कर्मपञ्चम (सं॰ पु॰) एक रागिणी। यह ललित, हिन्दोल, वसन्त और देशकारके योगसे बनती है।

कर्मपञ्चमी (सं॰ स्त्री॰) कर्मपञ्चम देखो।

कर्मपथ (सं॰ पु॰) कर्मणां पन्थाः, कर्मन्-पथिन्-अच्। कर्मपद्धति, कामकी राह। यह दशप्रकार है। इसके परित्यागका उपदेश दिया गया है,—

"कायेन त्रिविधं कर्म वाचा चापि चतुर्विधम्।
मनसा त्रिविधञ्चैव दशकर्मपथांस्त्यजेत्॥
प्राणातिपातः स्तैन्यञ्च परदारमथापि वा।
त्रीणि पापानि कायेन सर्वतः परिवर्जयेत्॥
असत्प्रलापं पारुष्यं पैशुन्यमनृतं तथा।
चत्वारि वाचा राजेन्द्र न जल्पेन्नानुचिन्तयेत्।
अनभिध्या परस्वेषु सर्वसत्त्वेषु सौहृदम्॥
कर्मणां फलमस्तीति त्रिविधं मनसा चरेत्॥" (महाभारत)

त्रिविध कायिक, चतुर्विध वाचिक और त्रिविध मानसिक—दश कर्मपथ परित्याग करना चाहिये। प्राणनाश, चौर्य और परदारगमन तीन प्रकारके कायिक कर्म सर्वतोभावसे छोड़ने योग्य हैं। असत्, कर्कश, निष्ठुर और मिथ्यावाक्य यह चार प्रकारके वाक्य बोलना अच्छा नहीं। परसम्पत्तिसे निस्पृह रह, सर्व जीव पर सौहार्द रख और कर्मके फलमें विश्वासकर चलना उचित है।

कर्मपद्धति (सं॰ स्त्री॰) कर्मणां पद्धतिः, ६-तत्। कर्मकी प्रणाली, काम करनेका कायदा।

कर्मपाक (सं॰ पु॰) कर्मणः धर्माधर्ममूलकस्य पाकः परिणामः, ६-तत्। धर्माधर्मका सुखदुःखादि रूप परिणाम, भलायी बुरायीसे आराम और तकलीफ़ मिलनेका नतीजा। कर्मविपाक देखो।

कर्मपुरुष (सं॰ पु॰) जीव, जानवर।

कर्मप्रधानक्रिया (सं॰स्त्री॰) क्रियाविशेष, एक फ़ेल। इसमें कर्म ही प्रधान रहता और कर्ताके समान पड़ता है। फिर क्रियाका लिङ्ग और वचन भी उसी कर्ता बने कर्मके अनुसार लगता है।

कर्मप्रधान वाक्य (सं॰ क्ली॰) वाक्यविशेष, एक जुमला। इसमें कर्म कर्ताके स्थानपर रहता है।

कर्मप्रवचनीय (सं॰ पु॰) कर्मप्रोक्तवान्, कर्मन्-प्रवच-अनीयर्। कर्मप्रवचनीयाः। १।४।८३। पाणिनि-व्याकरणोक्त संज्ञाविशेष।

कर्मफल (सं॰ क्ली॰) कर्मणः जीवकृत शुभाशुभरूपस्य फलं परिणामः। १ शुभाशुभ कर्मका सुखदुःख भोगरूप परिणाम, भले बुरे कामसे आराम और तकलीफ़ मिलनेका नतीजा। २ सुख, आराम। ३ दुःख, तकलीफ़। ४ कर्मरङ्ग फल, कमरख।

कर्मफलोदय (सं॰ पु॰) कर्मके परिणामका विकाश, कामके नतीजेका उठान।

कर्मबन्ध (सं॰ पु॰) कर्मणा बन्धः शरीरसम्बन्धः, ३-तत्। १ कर्मके अदृष्टसे परजन्मका बन्धन, कामकी गांठ। इसीसे जीव सुखदुःख भोगता है। (त्रि॰) कर्मबन्धं बन्धनसाधनं यस्य, बहुव्री॰। २ कर्मके बन्धनका कारण रखनेवाला, जो कामकी गांठ रखता हो।

कर्मबन्धन (सं॰ क्ली॰) कर्मणा बन्धनं कर्म एव बन्धनं वा। १ कर्मसे जन्मग्रहण, कामसे पैदा होनेकी हालत। २ कर्मका बन्धन, कामकी गांठ।

कर्मभू (सं॰ स्त्री॰) कर्मणः कर्मणि उचिता वा भूः, ६ वा ७-तत्। १ कृष्ट भूमि, जोती हुयी ज़मीन्। २ भारतवर्ष।

"तत्रापि भारतं श्रेष्ठं जम्बुद्वीपे महामुने।
यतो हि कर्मभूरेषा ह्यतोऽन्या भोगभूमयः॥"

कर्मभूमि (सं॰ स्त्री॰) कर्मणः पुण्यजनक यज्ञादि रूपक्रियायाः भूमिः, ६-तत्। १ आर्यावर्त, विन्ध्याचल और हिमालयके बीचका देश।

"भारतैरावतानि विदेहाश्च कुरून् विना।
वर्षाणि कर्मभूम्यः स्युः शेषाणि फलभूमयः॥" (हेमचन्द्र)

कुरुको छोड़ भारत, ऐरावत और विदेह कर्मभूमि है। बाकी वर्ष भोगभूमि कहाते हैं।

२ भारतवर्ष, हिन्दुस्तान।

"उत्तरं यत् समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।
वर्षं तद् भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः॥
नवयोजनसाहस्रो विस्तारोऽस्य महामुने।
कर्मभूमिरियं स्वर्गमपवर्गञ्च गच्छताम्॥" (विष्णुपु॰ २।३।१२)

समुद्रसे उत्तर और हिमाद्रिसे दक्षिण पड़नेवाले

वर्षका नाम भारत है। यहां भारती सन्तति होती है। विस्तार नौ हज़ार योजन है। इसीको कर्म-भूमि कहते हैं। यहां पुण्यकर्म करनेसे स्वर्ग अप-वर्ग मिलता है।

कर्मभोग (सं॰ पु॰) कर्मणः कर्मजन्य सुखदुःखादे-र्भोगः, ६-तत्। कर्मफलानुसार सुखदुःखादिका भोग, कामके नतीजेसे आराम तकलीफ़ मिलनेकी हालत।

कर्ममन्त्री (सं॰ पु॰) कर्म मन्त्रयति, कर्मन्-मन्त्र-णिच्-णिनि। कर्मके सम्बन्धमें मन्त्रणादाता, कामकी सलाह देनेवाला।

कर्ममय (सं॰ त्रि॰) कर्मसे बना हुवा, काममें निकलनेवाला।

कर्ममार्ग (सं॰ पु॰) १ कर्मका नियम, कामका तरीक़। २ भित्ति प्रभृति तोड़नेको दस्यु द्वारा व्यवहार किया जानेवाला एक शब्द, दीवार वगैरहमें सेंध लगनेको एक इयारेका लफ़ज़।

कर्ममीमांसा (सं॰ स्त्री॰) कर्मणि मीमांसा। कर्म सम्बन्धमें निश्चयकारक शास्त्रविशेष। मीमांसा देखो।

कर्ममूल (सं॰ क्ली॰) कर्मणो मूलमिव मूलमस्य यद्वा कर्मणि यज्ञादि क्रियाजन्य सत्कर्मार्थं मूलं यस्य। १ कुश। २ शरखण।

कर्मयुग (सं॰ क्ली॰) कृणाति छिनत्ति अन्योऽन्यं यत्र, कृ-मनिन्; कर्म हिंसाप्रधानं युगम्, कर्मधारय। हिंसाप्रधान कलियुग।

कर्मयोग (सं॰ पु॰) कर्मसु योगस्तत् कौशलम्, ७-तत्। १ चित्तशुद्धिजनक वैदिक कर्म।

"अथैव क्रियायोगो ज्ञानयोगस्य साधकः।
कर्मयोगं विना ज्ञानं कस्यचिन्नैव दृश्यते॥" (मलमासतत्त्व)

कर्मयोगको ही क्रियायोग कहते हैं। विना इसके किसीको ज्ञान प्राप्त नहीं होता। कर्म देखो।
२ परिश्रम, मेहनत। ३ यज्ञादिसे सम्बन्ध।

कर्मयोगी (सं॰ पु॰) कर्म योगो ऽस्यास्ति, कर्म-योग-इनि। कर्मयोगमें रत, ईश्वरकी प्राप्तिके अभिलाष यज्ञ ध्यानादि वैदिक कर्म करनेवाला।

कर्मयोनि (सं॰ पु॰) कर्मणो योनिः आदिकारणम्, ६-तत्। कर्मका मूलकारण, कामका असली सबब।

कर्मर (सं॰ पु॰) कर्म हिंसां राति, कर्मन्-रा-क। कर्मरङ्ग, कमरख।

कर्मरक (सं॰ पु॰) कर्मर स्वार्थे कन्। कर्मरङ्ग, कमरख।

कर्मरङ्ग (सं॰ पु॰ क्ली॰) कर्मणि हिंसायै रज्यते रोगादिजनकत्वादिति भावः, कर्मन्-रञ्ज-घञ्। स्वनामख्यात वृक्ष, कमरखका पेड़। (Averrhoa carambola) इसका संस्कृत पर्याय—शिराल, वृहदम्ल, रुजाकर, कर्मार, कर्मरक, पीतफल, कर्मर, मुद्गरक, मुद्गर, धाराफल और कर्मारक है। मराठीमें इसे करमल, तामिलमें तमर्तमृखरम्, तेलगुमें तमर्तचेतु, मलयमें बलिङ्गबिङ्ग मनिस, ब्रह्मीमें जुंगया और पोर्तुगीज़ भाषामें करम्बोल कहते हैं।

कर्मरङ्ग अम्ल, उष्ण, वायुनाशक, तीक्ष्ण, कटुपाकी और अम्लपित्तकारक होता है। इसका पक्वफल मधुर, अम्लरस और बल, पुष्टि तथा रुचिकारक है। (राजनि॰)

भावप्रकाशके मतसे यह शीतल, मलबद्धकारक और कफ एवं वायुनाशक होता है।

कर्मरङ्ग दो प्रकारका होता है—मिष्ट और अम्ल। किन्तु पक्व अम्ल फल ही लोगोंको अच्छा लगता है। कारण खानेमें यह अधिक सुखरोचक है। वृक्ष १४से २६ फीट तक बढ़ता है। युरोपीयोंके मतानु-सार यह प्रथम भारत-महासागरके मलक्का द्वीपमें उत्पन्न होता था। वहांसे कर्मरङ्ग सिंहल गया और सिंहलसे भारत आ पहुंचा। किन्तु हमारी विवेचनामें यह बात ठीक नहीं। बहु प्राचीन कालसे कर्मरङ्ग भारतमें उपजता, जिसका प्रमाण रामा-यणमें मिलता है। आजकल भारतमें प्रायः सर्वत्र यह वृक्ष होता है।

कर्मराष्ट्र—दाक्षिणात्यका एक प्राचीन उपविभाग। (Ind. Ant. VII. 189.)

कर्मरी (सं॰ स्त्री॰) कर्म भैषज्योपयोगक्रियां राति ददाति, कर्म-र-क गौरादित्वात् ङीष्। वंशलोचना।

कर्मरेख (सं॰ पु॰) कर्मकी रेखा, मत्थेका लिखा, होनहार।

कर्मर्षि (सं॰ पु॰) अथर्ववेदी एक प्राचीन ऋषि।

कर्मवचन (सं० क्ली०) कर्मवाक्य, बौद्धमतानुयायी क्रियाकाण्ड।

कर्मवज्र (सं० पु०) कर्म श्रौताद्यनुष्ठानं वज्रमिव यस्य, बहुव्री०। शूद्र। शूद्रको श्रौतादि अनुष्ठान वज्रकी भांति कठोर लगता है।

कर्मवत् (सं० त्रि०) कर्म अस्यस्ति, कर्म-मतुप् मस्य वः। कर्मविशिष्ट, कामकाजी।

कर्मवश (सं० त्रि०) कर्मणो वशः, ६ तत्। १ कर्मके अधीन, कामका मारा। (पु०) पूर्वजन्मके कर्मका अवश्यम्भावी फल, कामका ज़रूरी नतीजा। यह शब्द हिन्दीमें क्रियाविशेषणकी भांति भी आता है। किन्तु उस अवस्थामें करणकारकका चिह्न 'से' छिपा रहता है।

कर्मवशिता (सं० स्त्री०) कर्मवशिनो भावः, कर्म-वशिन् तल्-टाप्। कर्माधीनका भाव, काममें दबे रहनेकी हालत। यह बोधिसत्वका एक गुण है।

कर्मवशी (सं० पु०) कर्मणो वशः वश्यता अस्यास्ति, कर्म-वश-इनि। कर्माधीन, कामका मारा।

कर्मवश्यता (सं० स्त्री०) कर्मणो वश्यता अधीनता, ६-तत्। कर्मकी अधीनता, कामका दबाव।

कर्मवाच्यक्रिया, कर्मप्रधानक्रिया देखो।

कर्मवाटी (सं० स्त्री०) कर्मणां शास्त्रोक्त तिथि-निमित्तीभूतक्रियाणां चन्द्रकलाक्रियाणां वा वाटीव। तिथि, चान्द्र मासका तीसवां विभाग।

कर्मवाद (सं० पु०) मीमांसाशास्त्र। इसमें कर्मकी ही प्रधानता स्वीकृत हुयी है।

कर्मवादी (सं० पु०) मीमांसक, कर्मको सर्वप्रधान स्वीकार करनेवाला।

कर्मवान्, कर्मवत् देखो।

कर्मविघ्न (सं० पु०) कर्मका अन्तराय, कामकी मुज़ाहिमत या अड़।

कर्मविधि (सं० पु०) कर्मणो विधिः नियमः, ६-तत्। कर्मका नियम, कामका क़ायदा।

कर्मविपर्यय (सं० पु०) १ कार्यका अनुक्रम, कामका सिलसिला। २ कर्मका व्यतिक्रम, कामका उलट फेर।

कर्मविपाक (सं० पु०) कर्मणः धर्माधर्ममूलकस्य विपाकः परिणामः, ६-तत्। शुभाशुभ कर्मका फल, भले बुरे कामका नतीजा। मुक्ति, स्वर्ग, परजन्ममें ऐश्वर्यादिका उपकरण वा सुख प्रभृति शुभकर्मका और रोग तथा नरकादि अशुभ कर्मका फलभोग है। हमारे शास्त्रके मतसे अधर्मके न्यूनाधिक्य अनुसार प्रथम नरक-भोग कर पीछे पापयोनि विशेषमें उत्पत्ति होती है। गरुड़पुराणमें कैसे पापसे कैसी योनिमें जन्म लेनेकी बात लिखी है—पतित व्यक्तिका दानग्रहण करनेसे नरकान्त-पर पापी कृमि, उपाध्यायको मारने-पीटनेसे कुक्कुर, गुरु-पत्नी वा गुरुद्रव्यके लोभसे गर्दभ, माता प्रभृति अन्य गुरुजनको आक्रमण करनेसे शारिका, माता पिताको यन्त्रणा देनेसे कच्छप, प्रभुदत्त आहार छोड़ अन्य द्रव्य खानेसे वानर, गच्छित धन मारनेसे कृमि, किसीके गुणमें दोष लगानेसे राक्षस, विश्वासघातकतासे मत्स्य, यव धान्य प्रभृति शस्य चोरानेसे इन्दुर, परस्त्रीगमनसे व्याघ्र वृक प्रभृति, भ्रातृजायाहरणसे कोकिल, गुरु प्रभृतिके पत्नी-हरणसे शूकर, यज्ञदानविवाह प्रभृतिमें विघ्न डालनेसे कृमि, देवता पितृलोक एवं ब्राह्मणको न दे भोजन कर-नेसे वायस, ज्येष्ठ भ्राताकी अवमानना करनेसे क्रौञ्च, शूद्र हो ब्राह्मणी गमन करनेसे कृमि, ब्राह्मणी-गर्भसे पुत्र निकालते काष्ठनाशक कीट, कृतघ्नतासे कृमिकीट पतङ्ग वा वृश्चिक, शस्त्रहीन व्यक्तिको मारनेसे खर, स्त्री तथा शिशुवध करनेसे कृमि, किसीका भोज्यवस्तु चोरानेसे मक्षिका, अन्नहरण करनेसे विड़ाल, तिल-हरणसे मूषिक, घृत हरणसे नकुल, मद्गुर मत्स्य हरणसे काक, मधु हरणसे मशक, पिष्टक हरणसे पिपीलिका, जल हरणसे वायस, कांस्य हरणसे हारीत वा कपोत, स्वर्णभाण्ड चोरानेसे कृमि, वस्त्रादि हरणसे क्रौञ्च, अग्निहरणसे वक, वर्णक एवं शाक पत्रादि चोरानेसे मयूर, रक्तवस्त्र हरणसे चकोर, सुगन्धि वस्तु चोरानेसे छछूंदर, वंश हरणसे शशक, मयूरका पुच्छ चोरानेसे षण्ड, काष्ठहरणसे काष्ठकीट, फल चोरानेसे चातक और गृहहरण करनेसे रौरवादि नरक भोग कर गुल्म लता वृक्षादि रूपमें जन्म लेना पड़ता है। गो सुवर्णादि हरणसे भी ऐसा ही फल मिलता है। फिर मनुष्य विद्या चोरानेसे बहुनरक भोग पीछे मूक और इन्धनशून्य अग्निमें आहुति डालनेसे मन्दाग्नि हो जन्म लेता है। (गरुड़पु० २२८ अ०)

पापकार्य विशेषसे इहजन्म वा परजन्ममें रोग-विशेष भी भोगना पड़ता है। शातातप ऋषिने जिस पापसे जिस रोगका विधान किया, नीचे वह लिख दिया है। पापसे जो रोग लगता, उसका प्रायश्चित्त करना पड़ता है। प्रायश्चित्त न करनेसे वही रोग परजन्ममें भी मनुष्यको कष्ट देता है। महापातकसे सात, उपपातकसे पांच और पापसे तीन जन्म तक रोग पीछा नहीं छोड़ता। महापातक, उपपातक और पातकके प्रायश्चित्तका भी न्यूनाधिक्य रहता है। महापातकमें पूर्ण, उपपातकमें अर्ध और पातकमें षष्ठांश प्रायश्चित्त करना पड़ता है। फिर अतिपातकमें दानादि साधारण विधान द्वारा मुक्त हो सकते हैं।

पाप	रोग	प्रायश्चित्त
छागहत्या	अधिकाङ्ग	विधियुक्त छागदान।
अश्वहत्या	वक्रमुख	शतपल चन्दन दान।
मेषहत्या	पाण्डुरोग	ब्राह्मणको एक पल कस्तूरी दान।
उष्ट्रहत्या	विकृतस्वर	कर्पूरक फलदान।
काकहत्या	कर्णहीनता	कृष्णवर्ण गोदान।
खरहत्या	कर्कशलोम	तीन मुद्रा परिमित स्वर्णप्रकृति दान।
हस्तिहत्या	सर्वकार्यमें असिद्धि	मन्दिर बना गणेशमूर्ति प्रतिष्ठा अथवा कुलत्थ शाक तथा पिष्टक द्वारा गणसमूहका शान्ति विधान और एक लक्ष गणेशमन्त्र जप।
तरक्षुहत्या	केकराक्षि	गुडमयी धेनुका दान।
गोहत्या	कुष्ठ	पञ्च पल्लव संयुक्त, पञ्चवर्ण विशिष्ट, रक्तचन्दनलिप्त, रक्तपुष्प एवं रक्तवस्त्र आच्छादित एक रक्तकुम्भ दक्षिण दिक् स्थापित कर, तिलचूर्ण-पूर्ण ताम्रपात्र उसपर रख उसमें १०८ माषा परिमित स्वर्णकी यममूर्ति बना पुरुषसूक्त मन्त्रसे पूजा और उससे अपने पापकी शान्ति प्रार्थना करना चाहिये। इसके पीछे सामवेदी ब्राह्मण कलस सामपरायण करेंगे। फिर दश भाग सर्षप द्वारा पात्र मालयका अभिसेचन होता है। अन्तको निम्नलिखित मन्त्र द्वारा यम-मूर्ति विसर्जन कर भक्तिपूर्वक आचार्यको निवेदन करना चाहिये,— "यमोऽपि महिषारूढो दण्डपाणि-र्भयानकः। दक्षिणाशा पतिर्देवो मम पापं व्यपोहतु॥"
महिषहत्या	कृष्णगुल्म	१०८ माषा स्वर्णकी प्रकृतिका दान।
मार्जारहत्या	हस्तमुख पीतवर्ण	१०८ माषा परिमित स्वर्णके बने पारावतका दान।
बकहत्या	दीर्घनासिका	शुक्लवर्ण गोदान।
शुकशारिकाहत्या	स्खलितवाक्य	ब्राह्मणको दक्षिणा सहित कोई शास्त्रग्रन्थ दान।
शूकरहत्या	दन्तुर	दक्षिणा सहित घृतकुम्भदान।
शृगालहत्या	पदशून्यता	एकपल परिमित स्वर्ण अश्वदान।
हरिणहत्या	खञ्ज	एकपल परिमित स्वर्ण अश्वदान।
पितृहत्या	चेतनानाश	३० प्राजापत्य बना एक पणपरिमित स्वर्णकी नौका पर ताम्रपात्रमें रौप्यमय कुम्भ रख १०८ माषा परिमित स्वर्णका विष्णुविग्रह गढ़ पट्टवस्त्र पहना यथा विधि पूजा करना चाहिये। पीछे यह समस्त द्रव्य ब्राह्मणको देते हैं।
मातृहत्या	अन्ध	पितृहत्याका ही प्रायश्चित्त इसमें भी करना पड़ता है।
भ्रातृहत्या	मूक	चान्द्रायण व्रत कर 'सरस्वति जगन्मातः शब्दब्रह्मादिदेवते। दुष्कर्मकरणात् पापात् पाहि मां परमेश्वरि॥' मन्त्र पढ़ पञ्च परिमित स्वर्ण सह ब्राह्मणको पुस्तक दे।
स्त्रीहत्या	अतीसार	१० अश्वत्थ वृक्ष रोपण, शर्करा तथा धेनुदान और शत ब्राह्मणभोजन।
बालकहत्या	मृतवत्सा	ब्राह्मणको विवाहदान, हरिवंश श्रवण, महारुद्रका जप, अयुत संख्यक दूर्वा आहुति दे दक्षिणाछल १०८ माषा परिमित ११ खण्ड स्वर्ण अथवा ११ पल स्वर्ण ११ ब्राह्मणको देना चाहिये। फिर अन्यान्य ब्राह्मणको भी दक्षिणा दान करना कर्तव्य है। अवशेषमें आचार्य वरुणदैवतमन्त्र द्वारा

पाप	रोग	प्रायश्चित्त
		दम्पतीको स्नान कराता है। यजमान आचार्यको वस्त्र अलङ्कार प्रभृति प्रदान करे।
राजहत्या	क्षयरोग	गो, भूमि, स्वर्ण, मिष्टान्न, जल, वस्त्र, घृतधेनु और तिलधेनु दान।
ब्रह्महत्या	पाण्डुकुष्ठ	चारों ओर पञ्चपल्लव एवं पञ्चवर्ण संयुक्त कलस रख मध्य कलस पर रौप्यनिर्मित अष्टदल पद्म लगा उसके ऊपर १० तोले स्वर्णनिर्मित दशहस्त चतुर्मुख देव स्थापन करे। द्वादश दिन पर्यन्त ब्रह्मचारी ब्राह्मणको कलसस्थ देवकी पूजा, वेदपाठ, होम प्रभृति प्रत्यह सम्पादन करना चाहिये। पीछे सब द्रव्य आचार्यको देना पड़ता है।
वैश्यहत्या	रक्तार्बुद	४ प्राजापत्य व्रत सप्त धान्योत्सर्ग।
शूद्रहत्या	दण्डापतानक	१ प्राजापत्य व्रत दक्षिणाके साथ एक धेनुदान।
वंशनाश	कुष्ठ और निर्वंश	शत प्राजापत्य व्रत ब्राह्मणको भूमि तथा दक्षिणादान और भारत श्रवण।
अभक्ष्य भोजन	उदरकृमि	भीष्मपञ्चकका उपवास।
अस्पृश्यस्पृष्ट अन्नभोजन	उदरकृमि	त्रिरात्र उपवास।
गर्भपात	यकृत, प्लीहा, और जलोदर	तीन पल परिमित स्वर्ण रौप्य तथा ताम्रयुक्त जल एवं धेनु दान।
दावाग्निदाता	रक्तातिसार	जलपान तथा वटवृक्ष रोपण करना चाहिये।
दुष्टवचन	खण्डित	दुग्ध पूर्ण घटद्वय तथा दो पल रौप्य ब्राह्मणको दान।
उत्तम रहते मन्द अन्नदान	मन्दाग्नि	तीन प्राजापत्य व्रत १०० ब्राह्मण खिलाना चाहिये।
धूर्तता	अपस्मार	ब्रह्मकूर्चमयी धेनुका दान।
परनिन्दा	खल्ली	काञ्चनसह धेनुदान।
अन्यके भोजनमें विघ्नदान	अजीर्ण	यथाविधि लक्ष होम कर्तव्य है।
अन्यको दुःखदान	शूल	अन्नदान और रुद्रका जप करना चाहिये।
अन्यको उपहास	काना	स्वर्ण सह गाभीदान
नृशंसता	श्वासकास	सहस्र पल घृत दान।
प्रतिमाभङ्ग	अप्रतिष्ठ	तीन वत्सर पर्यन्त अश्वत्थ सींच विघ्नराजकी पूजा करे।
मद्यपान	रक्तपित्त	स्वर्ण सह एक लोटे घृत वा आधे लोटे मधुदान।
पथनाश	पादरोग	अश्वदान।
रजस्वला-स्पृष्ट अन्न भोजन	कृमि	त्रिरात्र गोमूत्र तथा यावभोजन।
विषदान	छर्दिरोग	दश दुग्धवती गाभी दान करना चाहिये।
सभामें पक्षपातिता	पक्षाघात	सत्यवादी ब्राह्मणको ३ निष्क (३२४ माषा) स्वर्णदान।
सुरापान	श्यावदन्त	प्राजापत्य व्रत आचरण कर ७ तोला शर्करादान, महारुद्रका जप, उसके दशांश तिलसे होम और वरुण मन्त्र द्वारा अभिषेक।
देवालय और जलमें मलमूत्रत्याग	गुदरोग	एक मास काल देवता पूजा और १ प्राजापत्य तथा २ गाभी दान।
अगम्यागमन	मूत्रमण्डल	कार्पास भार एवं कांस दोह संयुक्त सवत्सा तिलपक्षिपरिमित स्वर्ण धेनुदान। दानकाल यह मन्त्र पढ़ना पड़ेगा—"सुरभी वैष्णवी माता मम पापं व्यपोहतु।"
अश्वयोनि गमन	गुदस्तम्भ	दो मास काल प्रति दिन सहस्र संख्यक स्नान।
अपक्व अन्नहरण	हीनदीप्ति	दो निष्क (२१६ माषा) स्वर्णसे अश्विनीकुमार बना दान करना चाहिये।
इक्षुविकार हरण	गुल्मोदर	गुड़ तथा वेणु दान
ऊर्णाकम्बलादि तथा लोमजात द्रव्य हरण	लोमश	१०८ माषा परिमित स्वर्णसे अग्निमूर्ति बना पूजा करना चाहिये, पीछे वह मूर्ति और कम्बलदान करे।
औषध हरण	सूर्यावर्त	एकमास काल सूर्यार्घ्य और काञ्चन दान।
कन्दमूल हरण	क्षुद्रहस्त	यथाशक्ति देवालय और उद्यान निर्माण करना चाहिये।

पाप	रोग	प्रायश्चित्त
कांस्यहरण	पुण्डरीक	ब्राह्मणको अलङ्कृत कर शतपल कांस्य देना उचित है।
गुरुपत्नीगमन	मूत्रकृच्छ्र	नील मालायुक्त एवं नीलवस्त्र-आच्छादित घट पश्चिम ओर रख उस पर ताम्रपात्रमें छह निष्क स्वर्णनिर्मित वरुणमूर्ति पुरुषसूक्तसे पूजना चाहिये। फिर सामवेदी ब्राह्मणको उसी समय सामवेद पढ़ना उचित है। पीछे २० निष्क परिमित स्वर्णपुत्तलिका 'निष्पापोऽहं' कहके ब्राह्मणको और उक्त वरुणमूर्ति आचार्यको प्रदान करना चाहिये। वरुणमूर्ति देते समय यह मन्त्र पढ़ना पड़ता है,—"यादसामधिपो देवो विश्वेशामधिपो वरः। संसारनीकर्णधारो वरुणः पावनो ऽस्तु मे ॥"
चण्डालीगमन	हीनमुष्कता	मातृगामीकी भांति प्रायश्चित्त करना चाहिये।
तपस्विनीप्रसङ्ग	प्रमेह	एक मास रुद्रका जप और यथाशक्ति स्वर्णदान।
तपस्विनीसङ्गम	अश्मरी	मधु, धेनु और स्वर्णसह शत द्रोणपरिमित तिलदान।
ताम्बूलहरण	श्वेतोष्ठता	दक्षिणा सह उत्तम प्रवालद्वय देना चाहिये।
ताम्रहरण	औदुम्बर कुष्ठ	प्राजापत्य व्रत और शतपल परि-मित ताम्रदान।
तैलहरण	कण्डु प्रभृति	उपवासी रह ब्राह्मणको दो कोटि तैलदान करे।
त्रपु (सीसा) हरण	नेत्ररोग	उपवास रख यथाविधि ब्राह्मणको घृत और धेनु देना चाहिये।
दधिहरण	मत्तता	ब्राह्मणको दधि और धेनुदान।
काष्ठहरण	हस्तस्वेद	ब्राह्मणको दो पल कुङ्कुम दान।
दीक्षिता स्त्रीगमन	दुष्टरक्तजन्य नेत्ररोग	दो प्राजापत्य करना चाहिये।
दुग्धहरण	बहुमूत्र	ब्राह्मणको यथाविधि दुग्ध धेनुदान।
देवताहरण	विविध ज्वर	ज्वरमें रुद्र, महाज्वरमें महारुद्र, रौद्रज्वरमें अतिरौद्र और वैष्णवज्वरमें महारुद्र तथा अतिरौद्रका जप करे।

पाप	रोग	प्रायश्चित्त
नानाविध द्रव्यहरण	ग्रहणी	यथाशक्ति अन्न, वस्त्र और स्वर्णदान।
पक्वान्न हरण	जिह्वारोग	लक्ष बार गायत्री जप और तिल-द्वारा उसका दशांश हवन।
पट्टसूत्रहरण	लोमशून्यता	धेनुदान।
पशुयोनिगमन	मूत्राघात	दो तिलपात्र दान।
पितृष्वसागमन	दक्षिणभागमें व्रण	यथाशक्ति छागदान।
पुत्रवधूगमन	कृष्णकुष्ठ	कन्यागमनके प्रायश्चित्तसे आधा प्रायश्चित्त और घृतयुक्त तिलद्वारा दशांश होम करना चाहिये।
फलहरण	अङ्गुलिव्रण	ब्राह्मणको अयुतसंख्यक नाना-विध फलदान।
भ्रातृजायागमन	गुल्म और कुष्ठ	कन्यागमनके प्रायश्चित्तसे आधा प्रायश्चित्त और घृतयुक्त तिलसे दशांश होम कर्तव्य है।
मधुहरण	नेत्ररोग	उपवासी रह मधु और धेनुदान करना चाहिये।
मातुलानीगमन	कुब्जता	कृष्णमृगचर्म दान।
मातृगमन	लिङ्गहीनता	उत्तर दिक् कृष्णमालायुक्त कुम्भ वस्त्रावृत रख उसके ऊपर कांस्यपात्रमें छह निष्क परिमित स्वर्णनिर्मित नरवाहन कुबेरकी मूर्ति स्थापनकर पुरुषसूक्तसे यज्ञ करे। अथर्ववेदवित् ब्राह्मण उसी समय अथर्ववेदोक्त कार्य करता रहे। अन्तको विंशति निष्क परिमित स्वर्णकी पुत्तली ब्राह्मणको 'निष्पापोऽहं' कहकर और उक्त कुबेरमूर्ति ब्राह्मणको दे डाले। कुबेरकी मूर्ति देते समय यह मन्त्र पढ़ना चाहिये,—"निधी-नामधिपो देवः शङ्करस्य प्रियः सखा। सौम्याधिपतिः श्रीमान् मम पापं व्यपोहतु ॥"
मातृष्वसागमन	सर्वाङ्गव्रण	दास दान और अगम्यागमनका प्रायश्चित्त करे।
मृतभार्यागमन	मृतभार्या	एक ब्राह्मणको विवाह दे।
रक्तवस्त्र और प्रवालहरण	वातरक्त	मणि और वस्त्रसह महिषी दान।
लौहहरण	चित्रिताङ्ग	एकदिन उपवास रख शतपल लौह दान करे।

पाप	रोग	प्रायश्चित्त
वस्त्रहरण	कुष्ठ	निष्क परिमित स्वर्णनिर्मित प्रजापति और १ जोड़ा वस्त्र दे।
विद्यापुस्तक हरण	मूकता	ब्राह्मणको दक्षिणा सह न्याय इतिहास प्रभृतिका दान।
ब्राह्मणका रत्नहरण	अनपत्यता	महारुद्रजपादि, पलाशके काष्ठसे दशांश होम और मनुवल्लाका प्रायश्चित्तोक्त प्रायश्चित्त।
ब्राह्मणका स्वर्णहरण	कुलघ्नता	तीन चान्द्रायण कर सौ अशरफी देना चाहिये।
शाक हरण	नील लोचन	ब्राह्मणको दो महानीलमणि दान।
शक्तिहरण	पाण्डुकेश	उपवास रख शतपल शक्तिदान करे।
सुगन्धि द्रव्यहरण	अङ्गदौर्गन्ध्य	लक्ष पद्मद्वारा अग्निमें होम करे।
सगोत्र स्त्रीगमन	भगन्दर	महिषी दान।
स्वजाति स्त्रीगमन	हृदयव्रण	दो प्राजापत्य करे।
स्वकन्यागमन	रक्तकुष्ठ	पूर्वदिक् पीतमाल्य तथा पीतवस्त्र आच्छादित कलस रख उसके ऊपर स्वर्णपात्रमें ६ निष्क परिमित स्वर्णनिर्मित वासव मूर्ति स्थापन कर पुरुषसूक्त द्वारा यज्ञ करे। इस बीच ऋक्, यजुः एवं साम तीनों वेदके अनुसार चलना चाहिये। पूजाके अन्त 'निष्पापोऽहं' कह कर ब्राह्मणको सुवर्ण निर्मित शत पुत्तली और आचार्यको वासवमूर्ति दे। मूर्ति देनेका मन्त्र यह है—"देवानामधिपो देवो वज्री विष्णुनिकेतनः। शतयज्ञः सहस्राक्षः पापं मम निकृन्ततु॥"
	मृत्यु	
अनध्यायमें अध्ययन	वज्राघातसे	विद्यादान।
अस्पृ गौ	अश्वसंसर्गसे	वेदपारायणता।
कारहत्ति	वृक वा वृषदंशक	यथाशक्ति स्वर्णदान।
कुमतिदान	विषप्रयोगसे	देवयुक्त भूमिदान।
कुमारीगमन	व्याघ्रादिसे	परकन्याकी विवाह दान।
यज्ञच्छेदन और निकृन्तन	कृमिसे	ब्राह्मणको गोधूम मात्र दान।
यज्ञनिन्दा वा देवनिन्दा	शस्त्रसे	दक्षिणा सह महिषी दान।

पाप	मृत्यु	प्रायश्चित्त
गुरुहत्या	शय्यासे	निष्क परिमित स्वर्णनिर्मित पात्रमें विष्णु अधिष्ठान युक्त और तुलसीपत्र भूषित शय्या दान।
दक्षिणाहरण	दावाग्नि वा वृक्षाघातसे	घरमें सभा लगना चाहिये।
विद्रोह	विवाह-संस्कारहीन अवस्थामें मरण	कुमारको विवाह दान।
ब्राह्मणनिन्दा	प्रस्तराघातसे	वत्सा दुग्धवती गाभी दान।
ब्राह्मणका वस्त्रहरण	अनपत्यावस्थामें	९० कृच्छ्रव्रतोंका आचरण।
सञ्चित धनहरण	कुक्कुराघातसे	व्याघ्रादि इसकी तरह प्रायश्चित्त।
राजहत्या	गजाघातसे	चार निष्क परिमित स्वर्णनिर्मित हस्तिदान।
पशुहत्या	चोरहस्त मृत्यु	धेनुदान।
जालादि द्वारा पशु पक्षी धारण	वनमध्य शूकराघातसे मृत्यु	व्याघ्रादि इसकी तरह प्रायश्चित्त।
अहङ्कार	अशुचि अवस्थामें मृत्यु	दो निष्क स्वर्णज हरिदान।
मद्यविक्रय	गिरनेसे मृत्यु	षोडश प्राजापत्य कर्तव्य है।
मित्रभेद	शत्रु हस्त मृत्यु	वृषदान।
यज्ञहानि	अग्निदग्ध	यथाशक्ति पादुका दान।
राजकुमार हत्या	राजहस्त मृत्यु	स्वर्णमय पुरुष दान।
राजहस्ति हत्या	वृक्षाघातसे	स्वर्णसह स्वर्णवृक्ष दान।
लौहहरण	अतीसार रोगसे	संयत भावमें लक्ष संख्यक गायत्री जप।
विषदान	सर्पाघात	नाग बलिदान और स्वर्णदान।
शिवनिन्दा	शृङ्गाघात	वस्त्रसह वृषदान।
शास्त्रहरण	वमनरोग वा अस्पृश्य स्पर्शसे मृत्यु	शास्त्रग्रन्थदान।
खलता	नौका आघात	उपकरण सह अन्नदान।
सेतुभेद	जलमग्न	तीन निष्कपरिमित स्वर्णमय वरुणदान।
दर्पसहित कार्य	शाकिनी प्रभृतिके आवेश	यथोचित रुद्र नाम जप।
हिंसा	उद्बन्धनमें	दुग्धवती गाभीदान।
	अश्वाघात	तीन निष्क परिमित स्वर्णदान।
	वानराघात	स्वर्णनिर्मित वानर दान।
	विसूचिका रोग	१०० ब्राह्मण भोजन।
	कण्ठकवल	तिल धेनुदान।
	क्षयरोग	८ कृच्छ्रव्रत आचरण करना चाहिये।

भगतिका साधारण प्रायश्चित्त—फल एवं सम धान्यपर पञ्चपल्लव तथा सर्वौषधिसंयुक्त कृष्णवस्त्र आच्छादित अकालमूल कलस रख उसके ऊपर निष्कपरिमित स्वर्णनिर्मित महिषारूढ़ चतुर्भुज दण्डहस्त और स्वर्णकुण्डलधारी प्रेतरूपी पुरुष स्थापनकर पूजना चाहिये। प्रत्यह पुरुषसूक्त तथा दुग्धसे कलसमें तर्पण और षड़ङ्गरुद्र नाम जप करे। यमसूक्त द्वारा यमपूजा प्रभृति, आत्मविशुद्धिके लिये गायत्रीजप और ग्रहशान्तिपूर्वक दशांश तिलहोमकर ब्राह्मणको तिलोदक दान करते हैं।

"इमं तिलमयं पिण्डं मधुसर्पिःसमन्वितम्।
ददामि तस्मै प्रेताय यः पीड़ां कुरुते मम॥"

उक्त मन्त्र द्वारा मधु तथा शर्करामिश्रित कृष्ण तिल-पिण्ड प्रेतरूपको दे यजमान प्रेतके उद्देश तिलपात्र-संयुक्त द्वादश कृष्ण कलस और विष्णुके उद्देश एक कलस प्रदान करे। आचार्य वरायुधधारी वरुणदैवतका मन्त्र पढ़ और कलसमें जल लेकर दम्पतीको अभिषेक करें। यजमान उन्हें दक्षिणा दे और नारायणवलि कर ले। नारायणवलि देखो।

उक्त प्रायश्चित्त द्वारा प्रेत प्रेतत्वसे छूट पुत्रपौत्रादिको आरोग्य सम्पद् देता है।

प्रायश्चित्तके ग्रहणका अनुष्ठान—४, ५, ८ वा १० संख्यक ब्राह्मण बैठा उनके आज्ञानुसार, प्रायश्चित्तका उपक्रम लगाना पड़ता है। इसके पीछे विष्णुकी पूजा एवं कामनाके अनुसार सङ्कल्पकर ब्राह्मणोंको यथाशक्ति धेनु, वस्त्र, अलङ्कार तथा दक्षिणा दे साष्टाङ्गप्रणामपूर्वक प्रायश्चित्त समापनकर ब्राह्मणको पूजे और अन्तको ब्राह्मण खिला बन्धुगणके साथ स्वयं भोजन करे।

दानका साधारण विधि——केवलमात्र गोदानका विधान रहते सुशीला सवत्सा दुग्धवती गाभी, वृषदानमें शुक्लवस्त्र तथा काञ्चन सह वृष, भूमिदानमें दश निवर्तन परिमित भूमि, स्वर्णदानमें शतनिष्क अथवा पञ्चाशत् निष्क स्वर्ण, अश्वदानमें उपकरणसह सुशील अश्व, महिषदानमें स्वर्णायुधयुक्त महिषी, गजमहादानमें सुवर्ण फल सहित गज, देवताके अर्चनमें लक्ष मन्त्र द्वारा पुष्पदाम, ब्राह्मण-भोजनमें सहस्र ब्राह्मणोंको मिष्टान्न दान, रुद्रजपमें लक्षसंख्यक पुष्पद्वारा शिवपूजा चढ़ा एकादश रुद्र नामका जप, घृत, गुग्गुल सह तद्दशांश होम तथा वरुण मन्त्रसे अभिषेक, धान्यदानमें ७६८ मन धान्य और वस्त्रदानमें कर्पूरमिश्रित पट्टवस्त्रद्वय देना पड़ता है।

विविध पुराणके मतसे भी निम्नोक्त रोग निम्नोक्त पापसे उत्पन्न होता है,—

१ क्लीवता—निरपराधिनी पतिव्रता युवती स्त्रीको छोड़ने, किसीका अण्डकोष छेदने अथवा ऋतुस्नाता स्त्रीसे सहवास न करनेपर मनुष्य नपुंसक हो जन्म लेता है।

२ अल्प वयसमें ही सन्तान नाश—तृष्णार्त जीवके जलपानमें बाधा डालनेवालेका सन्तान अल्पायुः होता है।

३ दरिद्रता—जो व्यक्ति प्रभूत धनवान् होते भी धर्मनिन्दक रहता और देवता, अग्नि, ब्राह्मण तथा दरिद्रको कुछ दान नहीं करता, वह मृत्युके पीछे विविध नरक यन्त्रणा भोग अतिदरिद्र बन जन्म लेता और जीर्णवस्त्र पहन निरतिशय क्लेशसे जीवन बिता देता है।

४ वियोग—दुष्ट, दुराचार, दुष्टबुद्धि और स्नेहभेदकारी व्यक्ति परजन्ममें वियोग यन्त्रणा उठाता है।

५ नेत्ररोग—गृहस्थका दीप चोराने, सती परनारीके प्रति सकाम दृष्टि लगाने अथवा दूसरेका सम्भोग देख ललचानेसे काना या अन्धा होकर जन्म लेना पड़ता है।

६ कुब्जता—देवता प्रतिमा, ब्राह्मण, गुरु, श्रेष्ठ व्यक्ति, ब्रह्मचारी और तपस्वीको देख अभिवादन न करनेसे मृत्युके पीछे श्मशान वृक्ष बन बहुकाल बिताने पर कुब्ज रूप जन्म होता है।

७ खञ्ज और छिन्नपादता—जूता या खड़ाऊ चोरानेसे बहुविध नरकयन्त्रणाके पीछे खञ्ज वा छिन्नपाद होकर मनुष्य जन्मग्रहण करता है।

८ छिन्नहस्तता और छिन्नपादता—पिता, माता, गुरु वा वृद्धको ताड़ना देनेसे विविध यमयन्त्रणा भोग छिन्नहस्त वा छिन्नपद होकर जन्म लेते हैं।

९ छिन्न नासिकता—श्रुतिस्मृतिकी कथामें विघ्न

डालने या देवनिन्दा करनेसे मृत्युके पीछे नैऋत एवं पश्चिम दिक्‌स्थित पिङ्गला नामक नगरमें पिशाचोंके साथ बहुकाल रह मनुष्य छिन्न नासिक होकर जन्म लाभ करता है।

१० छिन्नकर्णता—मिथ्या अपवाद द्वारा किसीको सतानेसे छिन्नकर्ण होना पड़ता है।

११ हस्तपदहीनता—उभय सैन्यके दारुण संग्राम-स्थलमें स्वीय प्रभुको छोड़ भगानेसे मृत्युके पीछे दुःसह नरक भोग मनुष्य हस्तपद हीन होकर जन्म लेता है।

१२ पक्षाघात—अस्त्र लेकर निरस्त्र शत्रुको मारनेसे बहुजन्म पशुयोनि पानेपर मनुष्य जन्ममें पक्षाघात रोग लगता है।

१३ वैधव्य—जो स्त्री यौवनके गर्व स्वीय अनुगत पतिको विरूप बता दिवसमें निन्दा करती, रात्रिको उसकी शय्या नहीं छूती और पतिकी आज्ञासे अत्यन्त रुष्ट रहती, वह परजन्ममें वैधव्य यन्त्रणा सहती है।

१४ वन्ध्यता—पिपासार्त वत्सके जलपानमें बाधा लगाने, दक्षिणाशून्य व्रत उठाने, मिष्टफलादि देवताको निवेदन न कर खाने और किसीको मैथुनका उद्योगी देख उसकानेसे वन्ध्यता आती है।

१५ गर्भस्राव—जो स्त्री हिंसावश सपत्नी वा अन्य नारीका सन्तान दुष्ट औषध वा दुष्ट मन्त्रादिसे मार डालती, वह नरकान्तमें मनुष्ययोनि पा किसी अन्य पुण्यफलसे ऐश्वर्यशालिनी होते भी गर्भस्रावकी पीड़ा उठाती है।

१६ मृतभार्यता—ज्येष्ठ भ्राता अविवाहित रहते कनिष्ठ विवाह करनेपर मृतभार्य होता है। सप्तमी तिथिको तैल छूनेसे भी ज्येष्ठा स्त्री मर जाती है।

१७ बहुपुत्रता और अपुत्रता—गायके मुखसे भोज्य वस्तु खींच दूर फेंकने पर मृत्युके पीछे तीन मन्वन्तर काल निर्जन मरुभूमिमें रह परजन्मको बहुपुत्रक वा अपुत्रक होना पड़ता है।

१८ दौर्भाग्य—तृतीया तिथिको तैल छूनेसे दौर्भाग्य आता है।

१९ सापत्न्य—जो स्त्री मिथ्यावाक्य प्रयोग द्वारा विवाद बढ़ाती और परस्पर स्नेह वैषम्य लगाती, वह परजन्ममें सपत्नीसे सतायी जाती है।

२० जात्यन्तर—अपवित्र अन्न यति प्रभृति भिक्षुकको देनेसे जात्यन्तरमें जन्म होता है।

२१ मूकता—किसी नृत्यगीतादिकारीको सनेसे परजन्ममें मूकता आती है।

२२ गद्‌गद्‌वाक्य—जिगीषासे जो व्यक्ति विवाद बढ़ाता अथवा मूर्खतासे गुरुकी निन्दा उड़ाता, वह मृत्युके पीछे बहुविध यन्त्रणा उठा परजन्ममें गद्‌गद्‌-भाषी बन जाता है।

२३ मुखरोग—पितृनिन्दा, गुरुनिन्दा एवं देव-निन्दाकारी, मिथ्यावादी और अभक्ष्यभक्षक व्यक्ति नरकान्तमें जन्म ले मुखरोगाक्रान्त होता है।

२४ कर्णरोग—असम्बन्ध प्रलापका पापवाक्य सुननेसे परजन्ममें कर्णरोग लगता है।

२५ दुर्गन्धगात्रता—सुगन्धि द्रव्य चोरानेसे मनुष्य मूत्र तथा विष्ठायुक्त नरक भोग परजन्ममें दुर्गन्धगात्र होता है।

२६ दारिद्र्य और विरूपता—दानकार्यमें विघ्न डालनेसे परजन्म दरिद्र और विरूप बनना पड़ता है।

२७ खिन्नपादपाणिता—लवण चोरानेसे मृत्युके पीछे क्षाराब्धि नामक नरककी यन्त्रणा उठा परजन्ममें हस्तपद खेदयुक्त रहते हैं।

२८ दाहज्वर—अग्नि द्वारा गृह, ग्राम, क्षेत्र प्रभृति जलानेसे प्राणान्तको रौरव नरक भोग परजन्ममें मनुष्य दाहज्वरका कष्ट उठाता है।

२९ अग्निमान्द्य—ब्राह्मणके पाककाल विघ्न डालनेसे कल्मष नामक नरक भोग परजन्ममें अग्निमान्द्य रोगग्रस्त होते हैं।

३० अजीर्ण—पाक बना पाकाग्नि जलसे बुझानेपर अजीर्ण रोग लगता है।

३१ अतीसार—यज्ञाग्नि बिगाड़ने और दान किया या चोरीसे दूसरेका छाग मार डालनेसे नरकान्तमें तीन वत्सर मत्स्ययोनि हो मनुष्ययोनिमें अतीसार रोगका दुःख उठाना पड़ता है।

३२ अरुची—जो धनलाभसे दान, भोजन, हव्यकव्य

समस्त परित्याग कर केवलमात्र अर्थ जोड़ता, जो गो तथा भूमि दबा बैठता, जो निठुर पड़ता और जो सरल एवं सच्चरित्र युवती भार्याको छोड़ता, वह व्यक्ति नरकान्तमें ग्रहणीरोगग्रस्त हो जन्म लेता तथा पशु द्रव्य धन प्रभृतिसे मुंह मोड़ता है।

३३ पाण्डु—परभार्या वा नीच जातिकी स्त्रीसे सङ्गत होनेपर बहुकाल पर्यन्त विविध यमदण्ड झेल मनुष्यजन्ममें पाण्डुरोगग्रस्त और क्षीणचेता रहते हैं।

३४ कामला—अन्नादि चोरानेसे जीवनान्तमें त्रिविध नरकभोग अष्टादशवर्ष पर्यन्त काककङ्क प्रभृति तिर्यक् योनि पाते और मनुष्यजन्ममें कामला रोगका कष्ट उठाते हैं।

३५ कास—कर्मभेदके अनुसार पांचो प्रकारका कास उत्पन्न होता है। १ अतिकठोर मिथ्यावाक्यसे किसीको सतानेपर पित्तप्रबल कासरोग लगता है। २ ब्राह्मणका स्थान विनाश करनेसे वातजन्य कास आता है। ३ जलाशय ध्वंस करनेसे श्लेष्मजन्य कास उठता है। ४ ब्रह्मा, विष्णु और शिवको विभिन्न माननेसे सन्निपातजन्य कास होता है। ५ यज्ञको छोड़ पशु मार कर खानेसे सर्वदोषजन्य कासरोगका क्लेश उठाना पड़ता है।

३६ श्वासकास—यह रोग भी कर्मविशेषसे महा, ऊर्ध्व, छिन्न, तमक और क्षुद्र भेदमें पांच प्रकारसे होता है। १ यज्ञ व्यतीत श्वासरोधपूर्वक पशुको मार मांस खानेसे महाश्वास चलता है। २ पुराणकथाके समय दूसरी बात छेड़नेसे ऊर्ध्वश्वास उठता है। ३ निषिद्ध दान लेनेसे छिन्नश्वास आता है। ४ शास्त्रार्थमें वृथा दोष लगानेसे तमकश्वास बढ़ता है। ५ पाककालको विघ्न डालनेसे क्षुद्रश्वासरोग होता है।

३७ यक्ष्मा—विप्रहत्या, गच्छितधनहरण, वृत्तिच्छेद, प्रजापीड़न तथा गुरुद्रोह करनेसे जीवनान्तमें विविध दुःसह यन्त्रणा उठा कुछ कालतक कृमियोनिमें रहना और मनुष्य जन्म मिलनेपर यक्ष्मारोगका दुःख सहना पड़ता है।

३८ रक्तपित्त—अत्यन्त दुर्व्यवहार, परद्रव्य अभिलाष, परभार्या कामना और पितृव्यवधू गमन करनेसे रक्तपित्त रोगाक्रान्त होते हैं।

३९ गुल्म—एकाकी मिष्ट वस्तु भोजन तथा नीचजातीय स्त्री-गमन करनेसे जीवनान्तमें कृमिपूयपूर्ण काकोल नामक नरकभोग मनुष्य ४ वत्सर पिपीलिकायोनिमें रहता और मानवयोनिमें गुल्मरोगका क्लेश सहता है।

४० शूल—निरपराध किसीको शूल मारने अथवा शूलसम कष्टदायक वाक्य कह डालने और दम्पतीमें स्नेहभेद निकालनेसे ४ मन्वन्तर यमयन्त्रणा उठानेपर पक्षियोनिमें वियोगका दुःख होता है। फिर मनुष्य जन्ममें शूलरोग लग जाता है।

४१ अर्शोरोग—साध्वी ऋतुस्नाता स्त्रीसे सहवास न रखने और आत्महत्या, भ्रूणहत्या वा गोहत्या करनेपर ३५१८००००० वत्सर नरक भोग मनुष्यजन्ममें अर्शोरोग होता है।

४२ भगन्दर—आचार्यकी भार्याके साथ गमन अथवा स्त्री, बालक तथा वृद्धका धन हरण करनेसे नरकान्तमें फिर जन्म ले मनुष्य भगन्दररोगका दुःख उठाता है।

४३ छर्दि—गोके मुखसे कोयी वस्तु खींच फेंक देनेपर परजन्ममें वायुजन्य छर्दिरोग होता है। फिर पितृलोकको तर्पण न कर स्वयं जल पीनेसे पित्तजन्य छर्दिरोग लगता है।

४४ हिक्का—किसी योगीकी तपस्या बिगाड़नेसे हिक्कारोग होता है।

४५ अरोचक—पिता, माता और अतिथिको अन्न न दे स्वयं खा लेनेसे परजन्मपर हीन जातिमें उत्पन्न हो अरोचक रोगका कष्ट उठाते हैं।

४६ स्वरभङ्ग—गानकी समाप्ति न आते गायकको बाधा पहुंचानेसे जन्मान्तरमें स्वरभङ्ग रोगग्रस्त होना पड़ता है।

४७ अतितृष्णा—तृषित गोसमूहके जलपानमें बाधा डालने अथवा जल निकालनेसे असंख्यकाल मरुभूमिपर कीटयोनि रह मनुष्यजन्म पा कर अतितृष्णा लगती है।

४८ विस्फोट—चण्डालके जलाशयमें नहाने और जल पी जानेसे नरकान्तको विस्फोट रोग होता है।

४९ भ्रम और मूर्च्छा—जो कुटिल व्यक्ति समालस

पर लोगोंको भ्रान्तिमें डाल अन्य प्रकार कथा कहने लगता, उसे नरकान्तको भ्रम वा मूर्च्छा रोगाक्रान्त हो जन्म लेना पड़ता है।

५० हृद्रोग—लोभ वा द्वेषसे किसीको सताने या मर्मान्तिक वेदना पहुंचाने पर परजन्ममें हृद्रोग उठता है।

५१ आमवात—यज्ञकी दक्षिणा अथवा उत्सर्ग किया हुआ वस्तु ब्राह्मणको न देने और अधर्माचरणसे धन कमा जोड़ लेने पर जन्मान्तरमें आमवात सताता है।

५२ सर्वाङ्गवातव्याधि—सुरा पीकर हठात् स्त्री-सहवासके लिये जो चल जाने अथवा परस्त्रीका वस्त्र चोरानेसे नरकान्तको तिर्यक्योनि घूम मनुष्यजन्ममें सर्वाङ्गगत वातरोग लगता है।

५३ तुन्दरोग—ब्राह्मणका घट चोरा लेने अथवा यज्ञकाल सङ्कल्पकर दक्षिणादि न देनेसे मेद सञ्चित होकर तुन्द अर्थात् स्थौल्य रोग उठता है।

५४ अम्लपित्त—लोभसे निषिद्ध द्रव्य खानेपर जीवनान्तको काक, कुक्कुर और गृध्र योनि पाकर परजन्ममें मनुष्य देह धारण करना और अम्लपित्त रोग झेलना पड़ता है।

५५ शोथोदर—लोभ, मोह वा द्वेषसे अधर्माचरण करनेपर नरकान्तमें जन्म ले मनुष्य शोथोदरी होता है।

५६ जलोदर—ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरको भिन्न समझनेसे जन्मान्तरमें जलोदर रोग लगता है।

५७ शोथ—विना अपराध वैद्य प्रभृतिसे किसीको मारनेपर जन्मान्तरमें शोथरोग उठता है।

५८ मूत्रकृच्छ्र—विधवागमन वा मद्यपान करनेसे नरकान्तमें जन्म ले मूत्रकृच्छ्र रोग भोग करते हैं।

५९ मूत्राघात—दम्पतीके मैथुनमें विघ्न डालनेसे जन्मान्तरको मूत्राघात रोग होता है।

६० अश्मरी—अप्रीति वा क्रोधसे ऋतुस्नाता स्त्रीके पास न जानेपर मृत्युके पीछे पूयशोणितपूर्ण नरक भोग परजन्मको अश्मरी रोग दौड़ता है।

६१ मेह—कर्मानुसार विंशति प्रकार मेह होता है। १ शूकरयोनिमें मैथुन करनेसे उदक मेह चलता है। २ मातृगमनसे मधुमेहकी उत्पत्ति है। ३ रजकी-के गमनसे क्षार मेह हो जाता है। ४ सतीत्वहरणसे सान्द्रमेह पड़ता है। ५ रोगिणीगमनसे साक्षिष्ठमेह बढ़ता है। ६ मित्रस्त्रीके गमनसे शुक्रमेह बहता है। ७ चतुष्पदगमनसे सिकतामेह आने लगता है। ८ स्वर्णहरणसे चीरमेह निकलता है। ९ सुरापानसे सितमेह उठता है। १० ऋतुमतीगमनसे कालमेह होता है। ११ रजस्वलागमनसे रक्तमेह चलता है। १२ नीचजातीय स्त्रीगमनसे मज्जमेह आता है। १३ विधवासङ्गमसे हस्तमेह उठता है। १४ ब्राह्मणी-गमनसे हस्तिमेह उभरता है। १५ अक्षतयोनिगमनसे हारिद्रमेह भड़कता है। फिर माता, भगिनी, कन्या, स्वस्रू, अक्षतयोनि, भ्रातृजाया, मातुलानी, गुरुपत्नी, राजपत्नी, मित्रपत्नी प्रभृति अन्यान्य कुटुम्बिनीके गमन-से जीवनान्तको ज्वलन्त लौहखण्ड भक्षण प्रभृति बहु-विध यमयन्त्रणा उठा पांच वत्सर शूकरयोनि, दश वत्सर कुक्कुरयोनि, तीन मास पिपीलिकायोनि तथा एक वत्सर वृश्चिकयोनिमें उत्पन्न हो गोजन्म लेना और सर्वशेष मनुष्य बन अनेकप्रकार मेहरोग झेलना पड़ता है।

६२ पुंस्त्वनाश—धर्मपत्नीको छोड़ अन्य स्त्रीके साथ सम्भोग करनेसे पुंस्त्व नष्ट होता है।

६३ मुष्कवृद्धि—लुब्धकके साथ मित्रताकर सर्वदा वनमें व्याधकी भांति मृगादि मार घूमनेसे नरकान्तको पुनर्जन्म पानेपर मुष्कवृद्धिरोग लगता है।

६४ उन्माद—वैष्णव, पितामाता तथा ब्राह्मण प्रभृति सम्मानार्ह व्यक्तिको न पूजने, अथवा निन्दा करने, किंवा ब्राह्मण गुरु प्रभृतिके प्रति दण्डाचरण रखने और उनको स्मृतिभ्रमकारी कोयी द्रव्य देनेसे जन्मान्तरमें उन्माद आता है।

६५ अपस्मार—कोप बढ़ने, उपकारीके निकट अकृतज्ञ बनने, अधम मानवके साथ ब्राह्मणका ग्रास रोक रखने अथवा रज्जु द्वारा गोमुख जकड़नेसे नर-कान्तमें व्याल, व्याघ्र और शूकरयोनि भोग मनुष्य होनेपर अपस्मार रोग झेलना पड़ता है।

६६ अस्थिशूलादि—छागी, तिलधेनु, लौहवर्म, तिलाजिन, गज, सालुक, मधु, तैल, लवण एवं महा-दान लेने किंवा कामवश अधर्माचरण पूर्वक मैथुन

करने अथवा परस्त्री तथा गो प्रभृति पर रेत: डालने, ब्राह्मण वा राजाका द्रव्य चोराने और आश्रित व्यक्ति वा विवाहिता पत्नीको छोड़नेसे हस्ती, व्याघ्र, सिंह, नखी, वा दस्यु के हाथ मृत्यु होता है। मरने पीछे बहुकाल क्लेशजनक योनि घूम मनुष्यजन्ममें अस्थि-शूलादि रोग लग जाता है।

६७ मूत्रकृमि—विना मन्त्र अग्निमें घृत डालनेसे नरकान्तको मनुष्य जन्म ले मूत्रकृमि रोगसे आक्रान्त होते हैं।

६८ विद्रधि—फल अपहरण करनेसे नरकान्तमें वानरजन्म मिलता है। फिर मनुष्यजन्ममें विद्रधि रोग उठता है।

६९ अपची और वातग्रन्थि—विशाल वृक्ष, पर्वत, नदीतीर, वल्मीकाग्र, गोष्ठस्थल, गोगृह वा देवालयमें, मूत्रत्याग और निष्ठीवनादि निक्षेप करनेसे बहुविध नरक यन्त्रणा उठा परजन्मको अपची तथा ग्रन्थिरोग भोगते हैं।

७० शिरोरोग—तीर्थस्थानमें विहित कार्यादि और गुरु ब्राह्मण प्रभृतिको देख प्रणाम न करनेसे नरकान्तपर दश वत्सर भल्लुकयोनि तथा तीन वर्ष मेषयोनि भोग मनुष्य जन्म मिलते शिरोरोगाक्रान्त होना पड़ता है।

७१ नेत्रहीनता—परस्त्रीके प्रति कुटिल दृष्टि डालने अथवा गुरु वा ब्राह्मणके चक्षुमें आघात मारनेसे प्राणान्तको विविध नरकयन्त्रणा उठा जन्मान्तरमें नेत्रहीन रहते हैं।

७२ रात्रन्धता—कामबुद्धिसे परस्त्रीके प्रति दृष्टि डालने, नग्न स्त्रीको देखने किंवा गोहिंसा तथा विप्र हिंसा दर्शन करनेसे रात्रन्ध, दृष्टिक्षीणता, दिवान्धता और अर्बुददृष्टिरोग लगता है।

७३ दृष्टिक्षीणता—उदय, अस्त और मध्य समय सूर्यके प्रति दृष्टि चलाने अथवा अशुचि अवस्थामें सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, ब्राह्मण, अग्नि एवं गोको और देखनेसे परजन्मको दृष्टिक्षीणतारोग होता है।

७४ विषमाक्षिता और विरूपाक्षिता—पुत्रीके प्रति जार दृष्टि लगानेसे मनुष्य परजन्ममें विरूपाक्षी होता है। पुरुष परस्त्री और स्त्री परपुरुषको कुटिल भावसे देखनेपर परजन्ममें विषमाक्षिरोग लगता है।

७५ गलगण्ड और गण्डमाला—गुरुपत्नीका कण्ठ देखनेसे नरकान्तमें गलगण्ड वा गण्डमाला रोग उठता है।

७६ नासारोग—कामाविष्ट चित्तसे ब्राह्मणकर्म परित्यागपूर्वक सुगन्धि कुसुमादि ब्राह्मण देवता प्रभृतिको न दे स्वयं आघ्राण करनेपर परजन्ममें नासारोग होता है।

७७ *दुग्धहीनता—अपर बालकके लिये दुग्ध चाहते* भी जो स्त्री उसको नहीं देती, वह प्राणान्तमें ४ वत्सर सर्पिणी और ४ वर्ष कच्छपी रह पीछे मनुष्यजन्म लेनेपर दुग्धहीन निकलती है।

७८ *स्तनविस्फोट—अन्य पुरुषको* जो स्त्री स्वीय स्तन देखाती, वह नरकान्तको पुनर्जन्म ले स्तनविस्फोट रोगसे दुःख पाती है।

७९ वेश्यात्व—स्वामीके मरनेपर जो स्त्री परपुरुषसे दृष्टि लगाती, प्राणान्तको वह तप्त लौहमय पुरुष आलिङ्गन प्रभृति यमयन्त्रणा उठा परजन्ममें वेश्या बन जाती है।

८० वाधिर्य—धर्मविस्तारसे सुख फेर पितामाता, ब्राह्मण और तीर्थ प्रभृतिकी निन्दा उड़ानेसे परजन्ममें वाधिर्य रोग लगता अर्थात् कुछ सुन नहीं पड़ता।

८१ श्लेष्मरोग—नित्य क्रियासे बहिर्भूत हो भोजन करने पर प्राणान्तको काष्ठोपजीवी और वायस जन्म ले परजन्ममें श्लेष्मरोगाक्रान्त होते हैं।

८२ हस्तशूल—सन्ध्यादिविहीन ब्राह्मण जीवनान्तको एक वत्सरकाल कङ्क और पारावतयोनि भोग मनुष्यजन्म होने पर हस्तशूल रोगकी वेदना उठाता हैं।

८३ योनिरोग—जो स्त्री रमणकाल पतिको सन्तोष नहीं पहुंचाती अथवा अन्यका भोज्य वस्तु चोराती, वह १४ वत्सर उष्ट्रयोनि भोग मनुष्य-जन्ममें योनि-रोगका दुःख पाती है।

८४ प्रदर—क्षुधार्त पतिको न खिला जो स्त्री आगे खाती, किंवा वृथा पशुहत्या लगाती अथवा भोज्य वस्तु चोराती, प्राणान्तको वह मत्स्यपानीय नरक भोग दश

वत्सर वायसयोनि और शुकयोनिमें रह मनुष्यजन्म होने-से प्रदर रोगकी यन्त्रणा उठाती है। (शातातपीय कर्मविपाक)

कर्मविशेष (सं० पु०) कर्मणो विशेषः अन्यस्मात् पार्थक्यम्, ६-तत्। साधारण कार्यसे विभिन्न कार्य, मामूली कामसे निराला काम।

कर्मबीज (सं० क्ली०) कर्मणो बीजं मूलकारणम्, ६-तत्। कर्मका मूल कारण, कामका असली सबब।

कर्मव्यतिहार (सं० पु०) कर्मणा व्यतिहारः, ३ तत्। परस्पर एक जातीय कार्य करनेकी स्थिति, जिस हालतमें एक ही तरहका काम साथ-साथ करें।

कर्मशाला (सं० स्त्री०) कर्मणः शिल्पादेः शाला, ६-तत्। शिल्पादि कार्यका गृह, कारखाना।

कर्मशील (सं० त्रि०) कर्मशीलं कर्मकरणरूपस्वभावो यस्य, बहुव्री० कर्मशीलयति वा। १ कर्म करनेके ही स्वभाववाला, जो नतीजेकी ओर न देख दिलसे काम करता हो। २ उद्योगी, कोशिश करनेवाला।

कर्मशुचि (सं० त्रि०) कर्मसु शुचिः, ७ तत्। पवित्र-कर्मा, साफ काम करनेवाला।

कर्मशुद्ध (सं० स्त्री०) कर्मसु शुद्धः, ७-तत्। पवित्र-कर्मा, साफ काम करनेवाला।

कर्मशूर (सं० त्रि०) कर्मणि शूरः दक्षः। १ कार्य-कारक, मेहनती, मुस्तैदीके साथ काम करनेवाला। २ कार्यदक्ष, होशियार, कामगर।

कर्मशौच (सं० क्ली०) कर्मसु शौचं दोषहीनता। कर्म विषयमें निर्दोषता, कामकी सफाई।

कर्मश्रेष्ठ (सं० पु०) १ पुलहके पुत्रविशेष। इनकी माताका नाम गति था। (भागवत ४।१।३१)

कर्मष (सं० क्ली०) कर्म शुभकर्म स्यति नाशयति, कर्म-सो-क निपातनात् षत्वम्। कल्मष, पाप, गुनाह।

कर्मस (सं० पु०) पुलहके एक पुत्र। इनकी माताका नाम क्षमा था।

कर्मसङ्ग (सं० पु०) कर्मणि सङ्ग आसक्तिः, कर्मन्-सन्ज-घञ्। कर्ममें आसक्ति, काममें लगी रहनेकी हालत।

कर्मसंग्रह (सं० पु०) कर्मणः संग्रहः, ६-तत्। कर्म समुदाय, कामका हुजूम।

कर्मसचिव (सं०पु०) कर्मसु सचिवः सहायः। कार्यमें साहाय्य देनेवाला, जो काममें मदद पहुंचाता हो।

कर्मसन्न्यास (सं० पु०) कर्मणः स्वरूपतः फलतो वा सन्न्यासस्त्यागः, ६-तत्। १ कर्मत्याग, काम छोड़ बैठनेकी हालत। २ कर्मफलत्याग, कामका नतीजा न देखनेकी हालत।

कर्मसन्न्यासिक (सं० पु०) कर्मणां सन्न्यासोऽस्त्यस्य, कर्मन्-सन्न्यास-ठन्। प्रव्रज्यायुक्त भिक्षुक, दुनयावी काम न करनेवाला फकीर।

कर्मसन्न्यासी (सं० पु०) कर्मसन्न्यासोऽस्त्यस्य, कर्मन्-सन्न्यास-इनि। १ यथा-विधान कर्मत्यागी भिक्षुक, कायदेसे दुनयावी काम छोड़नेवाला फकीर। २ कर्म-फलत्यागी, कामका नतीजा न देखनेवाला।

कर्मसमाधि (सं० क्ली०) कर्मणः समाधिः परि-समाप्तिः। १ कर्मका शेष, कामका अखीर। २ मुक्ति, छुटकारा।

कर्मसम्भव (सं० त्रि०) कर्मणः सम्भव उत्पत्तिर्यस्य, बहुव्री०। १ कर्मजात, कामसे निकला हुवा। (पु०) २ कर्मकी उत्पत्ति, कामका निकास।

कर्मसाक्षी (सं० पु०) कर्मणां साक्षी प्रत्यक्षकारी, ६-तत्। १ कर्मको प्रत्यक्ष करनेवाला सूर्य, आफ़ताब। २ चन्द्र, चांद। ३ यम। ४ काल। ५ पृथिवी, ज़मीन्। ६ जल, पानी। ७ तेजः, आग। ८ वायु, हवा। ९ आकाश, आसमान।

"सूर्यः सोमो यमो कालो महाभूतानि पञ्च च।
एते शुभाशुभस्येह कर्मणो नव साक्षिणः॥" (वैदिक क्रियापद्धति)

सूर्य, सोम, यम, काल और पञ्च महाभूत शुभाशुभ कर्मके साक्षी हैं।

कर्मसाधक (सं० त्रि०) कर्म साधयति निष्पादयति, कर्म-साध-ण्वुल्। कार्यनिष्पादक, काम बनानेवाला।

कर्मसाधन (सं० क्ली०) कर्मणः साधनं सम्पादनम्, ६-तत्। १ कार्यकी सिद्धि, कामकी तकमील। २ यज्ञादिके लिये आवश्यक द्रव्य, किसी मज़हबी कामकी ज़रूरी चीज़।

कर्मसिद्धि (सं० स्त्री०) कर्मणः सिद्धिः, ६-तत्। कर्मके इष्ट वा अनिष्ट फलकी प्राप्ति, कामयाबी।

कर्मसूत्र (सं० क्ली०) कर्म एव सूत्रम्। कर्मरूप सूत्र, कामका सिलसिला।

कर्मस्थ (सं० त्रि०) कर्मणि तिष्ठति, कर्मन्-स्था-क। कर्ममें नियुक्त, काममें रहनेवाला।

कर्मस्थक्रियक (सं० त्रि०) विषयमें अपने कर्मको रखनेवाला (धातु), जो (मसदर) अपना काम मुद्देमें रखता हो।

कर्मस्थभावक (सं० त्रि०) अपना भाव कर्ममें रखनेवाला (धातु), जिस (मसदर) की हालत मुद्देमें रहे।

कर्मस्थान (सं० क्ली०) कर्मणः स्थानम्, ६-तत्। १ कर्मक्षेत्र, कारखाना, कामकी जगह। २ ज्योतिषशास्त्रोक्त जन्म अवधि दशमस्थान।

कर्महीन (सं० त्रि०) १ शुभकर्म न करनेवाला, जो अच्छा काम करता न हो। २ मन्दभाग्य, कमबख्त, अभागा।

कर्महेतु (सं० त्रि०) कर्मसे उत्पन्न, कामसे निकलनेवाला।

कर्मा—१ भक्तिमती पतिपुत्रहीना कोई ब्राह्मणकन्या।

करमाबाई देखो।

२ युक्तप्रदेशके इलाहाबाद जिलेकी करछाना तहसीलका एक नगर। यह प्रयागसे ६ कोस दक्षिण अवस्थित है। यहां मङ्गल तथा शुक्रवारको बाजार लगता, जिसमें पश्वादि, शस्य, तुला और धातुका पात्र प्रभृति बिकता है।

कर्माक्षम (सं० त्रि०) कर्मसु अक्षमः असमर्थः, ७-तत्। कार्य करनेमें असमर्थ, निकम्मा, काम न कर सकनेवाला।

कर्माङ्ग (सं० क्ली०) कर्मणो अङ्गम्, ६-तत्। विहित यज्ञादि कर्मका अङ्ग, कामका हिस्सा।

कर्माजीव (सं० पु०) कर्मणा आजीवः जीवनम्, ३-तत्। शिल्पादि कार्यसे जीवनयापन, कामके सहारे जिन्दगीका बसर।

कर्मात्मा (सं० पु०) कर्मणा आत्मा आत्मभावो यस्य, बहुव्री०। १ प्राणी, जानवर।

"तस्मिन् स्वपिति तु स्वस्थे कर्मात्मानः शरीरिणः।" (मनु)

(त्रि०) कर्मणि आत्मा मनो यस्य। २ कर्मासक्तचित्त, काममें दिलको लगानेवाला।

कर्मादान (सं० पु०) जैनशास्त्रानुसार व्यापारविशेष। यह १५ प्रकारका होता है—१ इङ्गालाकर्म, २ वनकर्म, ३ साकटकर्म, ४ भाडीकर्म, ५ स्फोटिककर्म, ६ दन्तकुवाणिज्य, ७ लाक्षाकुवाणिज्य, ८ रसकुवाणिज्य, ९ केशकुवाणिज्य, १० विषकुवाणिज्य, ११ यन्त्रपीड़न, १२ निर्लाञ्छन, १३ दावाग्निदानकर्म १४ शोषणकर्म और १५ असती पालन। श्रावकको कर्मादान करना न चाहिये।

कर्मादि (सं० पु०) कर्मण आदिः, ६-तत्। कार्यका आरम्भकाल, कामका आगाज।

कर्माधिकार (सं० पु०) कर्मका स्वत्व, कामका हक।

कर्माधिकारी (सं० पु०) कर्मणि अधिकारोऽस्यास्य, कर्मन्-अधिकार-इनि। कर्मका अधिकार रखनेवाला, जिसे कामका इख्तियार रहे।

कर्माध्यक्ष (सं० पु०) कर्मसु अध्यक्षः, ७-तत्। कार्यका अध्यक्ष, जो काम करनेवालेका काम जांचता हो।

कर्मानुबन्ध (सं० पु०) कर्मणः अनुबन्धः संयोगः लेशो वा, ६-तत्। कर्मका संयोग, कामका लगाव।

कर्मानुबन्धी (सं० त्रि०) कर्मका संयोग रखनेवाला, काममें लगा हुवा।

कर्मानुरूप (सं० त्रि०) कर्मणः अनुरूपः, ६-तत्। १ कर्मसदृश, कामसे मिलताजुलता। २ कर्मोपयोगी, कामके लिये अच्छा।

कर्मानुरूपतः (सं० अव्य०) कर्मके अनुसार, कामके मुताबिक।

कर्मानुष्ठान (सं० क्ली०) कर्मणः अनुष्ठानम् ६-तत्। कर्मका अनुष्ठान, कामका इनसिराम।

कर्मानुसार (सं० पु०) कर्म अनुसरति, कर्मन्-अनु-सृ-घञ्। कर्मका फल, कामका मिलाव।

कर्मानुसारतः (सं० अव्य०) कर्मके फलसे, कामके मिलावमें।

कर्मान्त (सं० पु०) कर्मणः जीवकृत सुकृत-दुष्कृतक्रियायाः यद्वा कर्मणः कृषिकार्यस्य तत् फलस्य धान्यादिसंग्रहरूपक्रियायाः अन्तो यत्र, बहुव्री०। १ कर्मस्थान, कामकी जगह। २ कर्मका अन्त,

कामका अञ्जाम। ३ कार्यप्रबन्ध, कामका इन्तिज़ाम। ४ कृष्टभूमि, जोता हुवा खेत।

"अहन्यहन्यवेचेत कर्मान्तान् वाहनानि।" (मनु ८।४१९)

कर्मान्तर (सं० क्ली०) कर्मणः अन्तरं तस्मादन्य इत्यर्थः, ६-तत्। १ कार्यान्तर, दूसरा काम। २ यज्ञादि धर्म कार्यके मध्यका अवकाश, कामके बीचकी छुट्टी। ३ प्रायश्चित्त, कफ़ारा।

कर्मान्तिक (सं० पु०) कर्म अन्तिके समीपे यस्य, बहुव्री०। १ कर्मकारक, कामकाजी। (त्रि०) २ अन्तिम, आख़िरी।

कर्मार (सं० पु०) कर्म लौहनिर्माणादि कार्यं गच्छति प्राप्नोति, कर्मन्-ऋ-अण्। १ कर्मकार, लोहार।

"कर्मारस्य निषादस्य रङ्गावतारकस्य च।" (मनु ४।२१५)

२ वंश, बांस। ३ कर्मरङ्ग, कमरख

कर्मार—काठियावाड़के झालावाड़ विभागका एक क्षुद्र राज्य। इसकी भूमिका परिमाण ३ मील मात्र है। यहां एक सामन्त रहते हैं। वर्षमें ७६६५) रु० राज्यका आय है। इसमें २१०) रु० अंगरेज सरकार और कोयी ५०) रु० जूनागढ़के नवाबको राजस्वस्वरूप देना पड़ता है।

कर्मारक (सं० पु०) कर्मार स्वार्थे कन्। १ कर्मार, लोहार। २ कर्मरङ्ग वृक्ष, कमरख। (त्रि०) ३ कर्मप्राप्त, काम पाये हुवा।

कर्मारम्भ (सं० पु०) कर्मका आरम्भ, कामका आग़ाज़।

कर्मार्ह (सं० पु०) कर्म अर्हति, कर्मन्-अर्ह-अण्। १ मनुष्य, आदमी। (त्रि०) २ कर्मके योग्य, काम कर सकनेवाला।

कर्माल—१ बम्बईप्रान्तके शोलापुर ज़िलेका एक उपविभाग। यह अक्षा० १७° ५७′ तथा १८° ३२′ उ० और देशा० ७४° ५२′ एवं ७५° ३१′ पू०के मध्य अवस्थित है। भूमिका परिमाण ७६६ वर्ग मील आता है।

इस उपविभागमें कोयी १२२ ग्राम और ८२०० गृह होंगे। पश्चिमको भीमा और पूर्वको सीना नदी प्रवाहित है। कर्मालका अर्ध भाग उर्वर एवं कृष्णवर्ण और अपरार्ध रक्तवर्ण तथा रेतीला है। यहां एक दीवानी और दो फ़ौजदारीकी अदालतें हैं। पुलिसके तीन थानें लगते हैं। नानाप्रकार शस्य, माष, शण, सर्षप और अपरापर द्रव्य उत्पन्न होता है। सोनारीमें प्रति वर्ष मेला लगता है।

२ कर्माल उपविभागका प्रधान नगर। यह अक्षा० १८° २४′ उ० और देशा० ७५° १४′ २०″ पू० पर अवस्थित है। शोलापुरसे कर्माल ६९ मील उत्तर-पश्चिम पड़ता है। नगरका क्षेत्रफल १८८ एकर है।

पहले कर्मालमें निम्बालकर मण्डलेश्वरोंका आधिपत्य था। उन्होंने एक सुन्दर दुर्ग बनाया। आजकल उसमें अंगरेज कर्मचारियोंका कार्यालय खुला है। दुर्ग प्रायः चौथायी वर्गमील विस्तृत है। उसमें १०० गृह बने हैं। किसी समय यहां बड़ा वाणिज्य व्यवसाय था। पूना, अहमदाबाद, शोलापुर, बारसी प्रभृति स्थानसे अनेक द्रव्यसामग्रियां आती-जाती थीं। किन्तु आजकल वह बात नहीं रही। फिर भी पशु, शस्य, तैल, वस्त्रादिका बड़ा बाज़ार लगता है। देशी कपड़ा बुननेके कयी करघे चलते हैं। वार्षिक मेला ४ दिन रहता है। यहां विद्यालय, औषधालय, डाकघर और पाठागार विद्यमान है।

कर्माविधायक (सं० त्रि०) कर्मणः अविधायकः, ६-तत्। कार्यको विधान करनेवाला, जो काम बताता हो।

कर्माशय (सं० पु०) कर्मणामाशयः, ६-तत्। कर्मके धर्माधर्मका गुण, कामकी भलाई बुराईका वस्फ़।

कर्मिक (सं० त्रि०) कर्म अस्त्यस्य, कर्म-ठक्। कर्मविशिष्ट, कामकाजी।

कर्मिष्ठ (सं० त्रि०) अतिशयेन कर्मी, कर्मिन्-इष्ठन्। इनो लुक्। अतिशय कार्यकारक, काममें लगा रहनेवाला।

कर्मिष्ठता (सं० क्ली०) कर्मिष्ठस्य भावः, कर्मिष्ठ-तल्-टाप्। अतिशय कार्यकारिता, काममें लगी रहनेकी हालत।

कर्मी (सं० पु०) कर्म अस्यास्ति, कर्म-इनि। १ कर्मविशिष्ट, कामकाजी। २ फलकी आकाङ्क्षासे यज्ञादि कार्य करनेवाला।

कर्मीर (सं० त्रि०) कर्म-ईरन्। चित्रित, चितकबरा।
कर्मीरक (सं० पु०) शाखोट वृक्ष, सहोरैका पेड़।
कर्मेन्द्रिय (सं० क्ली०) कर्मणां सम्पादनाय कर्मार्थं वा इन्द्रियम्, मध्यपदलो०। वाक्यादि कर्म सम्पादक पञ्चेन्द्रिय, काम करनेवाला रुक्न। वाक्, हस्त, पद, गुह्य और उपस्थ पांच कर्मेन्द्रिय होते हैं। यथाक्रम इनका कार्य उच्चारण, आदानादि, गमनादि, उत्सर्ग और आनन्द है। फिर अधिष्ठातृदेवता वह्नि, इन्द्र, उपेन्द्र, मित्र और ब्रह्मा हैं। इन्द्रिय देखो।
कर्मोदार (सं० पु०) उदार कर्म, इज्जतका काम।
कर्मोद्युक्त (सं०त्रि०) कर्मणि उद्युक्तः, ७-तत्। कर्मका उद्योग लगानेवाला, जो खूब काम करता हो।
कर्मोद्योग (० पु०) कर्मका उद्योग, कामकी कोशिश।
कर्रा (हिं० पु०) १ तन्तुवायके सूत्रप्रसारणका कार्य, जुलाहोंके सूतको फैलाताननेका काम। (त्रि०) २ कठोर, कड़ा। ३ कठिन, सख्त।
कर्राना (हिं० क्रि०) कठोर पड़ना, सख्त बनना।
कर्री (हिं० स्त्री०) १ वृक्षविशेष, एक पौदा। यह देहरादून तथा अवधके वन और दक्षिणात्यमें होता है। इसका पत्र अति दीर्घ रहता और मार्च मास झड़ता है। फल जून मास पका करता है। कर्रीके पत्ते पशुको खिलाये जाते हैं।
कर्व (सं० पु०) किरति विक्षिपति चित्तं विषयेषु, कृ-व। कृगृशृदृभ्यो वः। उण् १।१५५। १ काम, ख्वाहिश, प्यार। २ इन्दुर, चूहा।
कर्वट (सं० पु०-क्ली०) कर्व-अटन्। दो शत ग्रामके मध्यका सुन्दर स्थान, दो सौ गांवके बीचकी अच्छी जगह। २ शतग्रामवासियोंके क्रयविक्रयका स्थान, जिस शहरमें सौ गांवके लोग जाकर लेनदेन करें। ३ चारो ओर समग्राम, चौकोर गांव। ४ चतुर्दिक् समान गृहस्थान विशेष, चौकोर बराबर घरकी जगह। ५ नगर स्थान, छोटे शहर।
कर्वट—बङ्गालके दक्षिणका एक प्राचीन जनपद। मार्कण्डेयपुराणमें इसका नाम कर्वटासन लिखा है।

"ताम्रलिप्तञ्च राजानं कर्वटाधिपतिं तथा।
सुह्मानामधिपञ्चैव ये च सागरवासिनः॥" (भारत २।३०।२२)

कर्वटक (सं० पु० क्ली०) कर्वट स्वार्थे कन्। १ कर्वट, मण्डी, शहर। २ पर्वतका उत्सङ्ग, पहाड़का उतार।
कर्वटी (सं० स्त्री०) कर्वट-ङीष्। नदीविशेष, एक दरया। (रामायण)
कर्वर (सं० क्ली०) कृ-वरच् वा कृ विक्षेपे ष्वरच्। कृगृशृदृचतिभ्यः ष्वरच्। उण् ३।१२३। १ व्याघ्र, बाघ। २ राक्षस। ३ पाप। ४ कर्म, काम। ५ औषधविशेष, एक दवा।
कर्वरी (सं० स्त्री०) कर्वर-ङीष्। १ उमा, पार्वती। २ व्याघ्री, बाघन। ३ हिङ्गुपत्री, एक घास। ४ राक्षसी।
कर्वायत नगर—मन्द्राजके उत्तर अरूकाडु (अर्काट) ज़िलेकी एक बड़ी ज़मीन्दारी। यह अक्षा० १३° ४′ तथा १३° ३६′ ३०″ उ० और देशा० ७९° १७′ एवं ७९° ५३′ पू०के मध्य अवस्थित है। भूमिका परिमाण ६८० वर्गमील लगता है। लोकसंख्या प्रायः तीन लाख है। इसके उत्तर चन्द्रगिरि, पूर्व कालहस्ती तथा चेङ्गलपट, दक्षिण वालाजापेट और पश्चिम चित्तूर पड़ता है। कर्वायत नगरमें पार्वत्य भूमि अधिक है। मन्द्राजरेलवे यहां चलती है। नगरी पर्वतसे काठ काटकर मन्द्राज भेजते हैं। सौमें साठ भाग भूमि कृषिके योग्य नहीं। शेषके अर्धांशमें हल चलता है। नील बहुत होता है। कृषक परिश्रमी और बुद्धिमान् हैं। पुत्तूर और तिरुत्तानीमें सब-मजिष्ट्रेट रहते हैं। पटनिर्माण प्रधान शिल्पकर्म है। इस स्थानको किसी किसीने बम्मराज कहा है। प्रथम कर्णाटिक-युद्धके समय बम्मराज नामक एक पलिगार राजत्व करते थे। कर्वायत नगरका पेशकश वा स्थायी कर प्रायः २७०७३५) रु० है।

इस भूभागके प्रधान नगरको भी कर्वायत नगर ही कहते हैं। यह पुत्तूरसे ७ मील पश्चिम अवस्थित है। कर्वायतनगर पहले ८ फीट उच्च प्राचीरसे सुरक्षित था। दक्षिण और पश्चिम एक-एक तोरणद्वार रहा। आजकल वह बात नहीं, केवल भग्नावशेष पड़ा है।
कर्वुदार (सं०पु०) कर्वं दारयति, कर्व-दृ-णिच्-अण्। कोविदार वृक्ष, कचनारका पेड़।
कर्वुर (सं० पु०) कर्वति हिनस्ति, कर्व-उरच्।

१ श्वेतवर्ण, सफेद रंग। २ राक्षस, आदमखोर। ३ चित्रवर्ण, चितकबरा रंग। ४ शटी, कचूर।

कर्वूर (सं० पु०) कर्व-ऊर्। १ राक्षस, आदमखोर। २ शठी, कचूर।

कर्व्वक—भारतके दक्षिणपश्चिमका एक जैनशास्त्रोक्त जनपद। (जैनहरिवंश ११।७४)

कर्शन (सं० क्ली) कृश-ल्युट्। कृशकरण, दुबला बनानेका काम।

कर्शफ (वै० पु०) राक्षस, पिशाच, प्रेत, शैतान।

कर्शित (सं० त्रि०) कृश-णिच्-क्त। कृशीकृत, दुबलाया हुआ।

कर्श्य (सं० पु०) कृश-यत्। कर्चूर, कचूर।

कर्ष (सं० पु०-क्ली०) कृष पचाद्यच् कर्मणि करणे वा घञ्। १ सोलह माशा परिमाण, १६० रत्तीकी एक तौल। २ तोलकद्वयात्मक परिमाणादिमान, दो तोलेकी एक तौल। ३ दशमाषाकी एक तौल। ४ धरणद्वयात्मक व्रीह्यादिमान, ८० रत्तीकी एक तौल। ५ विभीतकवृक्ष, बहेड़ेका पेड़। ६ सुवर्ण, सोना। ७ आकर्षण, कशिश। ८ कर्षण, जोताई। ९ हलरेखा, बाहन, लीक। १० विलेखन, खसोट।

कर्षक (सं० त्रि०) कर्षति भूमिम्, कृष-ण्वुल्। १ कृषिजीवी, किसान। इसका संस्कृत पर्याय क्षेत्राजीव, कृषिक, कृषीवल और कार्षक है। २ आकर्षणकारी, खींचनेवाला। ३ सुन्दर, खूबसूरत। (पु०) ४ अयस्कान्तमणि, मिक्नातीस।

कर्षण (सं० क्ली०) कृष भावे ल्युट्। १ कृषिकार्य, जोताई। लाङ्गल प्रभृति द्वारा भूमिखननको ठेठ हिन्दीमें खेती कहते हैं। २ आकर्षण, कशिश, खसोट। ३ शोषण, सुखाव। ४ पीड़न, दबाव।

"शरीरकर्षणात् प्राणाः क्षीयन्ते प्राणिनां यथा।
तथा राज्ञामपि प्राणाः क्षीयन्ते राष्ट्रकर्षणात्॥" (मनु ७।११२)

शरीरकर्षणसे प्राणियोंके प्राणकी भांति राष्ट्रकर्षणसे राजाके प्राण क्षीण होते हैं। ५ प्रसरण, बढ़ाव, फैलाव।

कर्षणि (सं० स्त्री०) कृष-अनि। १ असती, छिनाल। २ अतसीवृक्ष, अलसीका पेड़।

कर्षणी (सं० स्त्री०) कर्षण गौरादित्वात् ङीष्। १ क्षीरिणीक्षुप, खिरनीका पौदा। २ श्वेतवचा, सफेद बच।

कर्षणीय (सं० त्रि०) कर्षण छ। १ कर्षणके योग्य, खींचने लायक। २ कर्षण किया जानेवाला, जिसे खींचना पड़े।

कर्षणीया (सं० स्त्री०) काशवृक्षका बीज।

कर्षफल (सं० पु०) कर्षं कर्षमात्रं फलं यस्य, बहुव्री०। १ विभीतक वृक्ष, बहेड़ेका पेड़। इसका संस्कृत पर्याय—विभीतक, अक्ष, कलिद्रुम, भूतवास और कलियुगालय है। बहेड़ा देखो।

२ भल्लातक वृक्ष, भेलावेंका पेड़।

कर्षफला (सं० स्त्री०) कर्षफल-टाप्। आमलक वृक्ष, आंवलेका पेड़। आमलकी देखो।

कर्षयत् (सं० त्रि०) १ आकर्षण करते हुवा, जो खींच रहा हो। २ मोह लेनेवाला, जो फरेफ्ता बना रहा हो। ३ पीड़न करनेवाला, जो सता रहा हो।

कर्षापण (सं० पु०) कर्षेण आपण्यते क्रीयते, कर्ष-आ-पण-अच्। कर्षपरिमित मूल्यसे क्रय किया जानेवाला द्रव्य।

कर्षार्ध (सं० क्ली०) कर्षस्य अर्धम्, ६-तत्। तोलकपरिमाण, तोला।

कर्षिका (सं० स्त्री०) काशबीज।

कर्षिणी (सं० स्त्री०) कृष-णिनि-ङीप्। १ क्षीरिणीवृक्ष, खिरनीका पेड़। २ वल्गा, लगामका दहाना। इसका संस्कृत पर्याय—खलीन, कवीय और कविका है। ३ मनोहारिणी, दिलको फरेफ्ता करनेवाली।

"आमकालमधुगन्धकर्षिणीः प्राणभूमिरचनाः प्रियसखः।" (रघु १९।११)

कर्षित (सं० त्रि०) कृष-णिच्-क्त। १ आकर्षित, खींचा हुवा। २ जोता हुवा। ३ पीड़ित, सताया हुवा।

कर्षी (सं० त्रि०) कृष-णिनि। १ आकर्षक, खींचनेवाला। २ जोतनेवाला। ३ मनोहर, दिलकश।

कर्षु (सं० पु०) १ करीषाग्नि, जङ्गली कण्डेको आग। २ जीविका, पेश सखी।

कर्षू (सं० पु०) कृष-ऊ। कृषिचमितनिधनिसर्जिखर्जिभ्य ऊः।

कृष् शब्द। १ कृषि, खेती। २ जीविका, रोज़गार। ३ करीषाग्नि, सूखे गोबरकी आग। (स्त्री०) ४ कृत्रिम क्षुद्र जलाशय, छोटा बनाया हुवा तालाब। ५ नदीमात्र, दरया। ६ इष्टिखात, पक्का गड्ढा। इसमें यज्ञीय अग्नि स्थापन करते हैं। ७ नहर।

कर्षूखेद (सं० पु०) खेदविशेष, किसी किस्मका पसेव। स्थानको देख एक गड्ढा खोद लेते और उसे दीप्त अधूम अङ्गारसे पूर देते हैं। फिर उस पर पलंग बिछाकर सोनेसे पसीना आता और शरीर हलका पड़ जाता है। (सुश्रुत)

कर्हि (सं० अव्य०) किम्-र्हिल् कादेश:। अनद्यतने र्हिलन्यतरस्याम्। पा ५।३।२१। किस समय, कब।

कर्हिचित् (सं० अव्य०) कर्हि च चित्, द्वन्द्व। किसी समय, कभी न कभी।

कल (सं० पु०-क्ली०) कड़ति माद्यति अनेन, कड़-घञ् डलयोरेकत्वम्। हलश्च। पा ३।३।१२१। १ शुक्र, वीर्य। २ शालवृक्ष, सालका पेड़। ३ बदरीगुल्म, बेरका झाड़। ४ मधुरास्फुट ध्वनि, मीठी और समझ न पड़नेवाली आवाज़। ५ चार मात्राका अवकाश। (त्रि०) ६ अजीर्ण, कच्चा। ७ अव्यक्त, समझ न पड़नेवाला। ८ मधुर वा निम्नस्वरयुक्त, मीठी या नीची आवाज़वाला। ९ दुर्बल, कमजोर।

कल (हिं० स्त्री०) १ स्वस्थता, सेहत, आराम। २ सुख, चैन। ३ सन्तोष, तसल्ली। ४ आगामी दिवस, आनेवाला दिन। ५ गत दिवस, गया हुवा दिन। ६ भविष्यत् काल, आयिन्दा वक्त। ७ पार्श्व, पहलू, ओर। ८ अङ्ग, पुरजा। ९ कला, ढङ्ग। १० यन्त्र, औज़ार। ११ बन्दूकका घोड़ा। (वि०) १२ काला, स्याह। यह शब्द विशेष्यके पहले यौगिक रूपसे आता है। यथा—कलमुंहा।

कलइया (हिं० स्त्री०) १ कलाबाज़ी, कलैया। २ करती, काट कूट, तोड़मरोड़।

कलई (अ० स्त्री०) १ रङ्ग, रांगा। २ रङ्गलेपन, रांगेकी पोत। यह बरतनपर कसाव न लगनेको चढ़ायी जाती है। ३ वर्णक, रंग, वारनिश। ४ आवरण, चमक, दिखाव। ५ चूर्णखण्ड, चूना।

कलईगर (फ़ा० पु०) रङ्गलेपन चढ़ानेवाला, जो कलई करता हो।

कलईदार (फ़ा० वि०) रङ्गलेपनविशिष्ट, कलई किया हुवा।

कलक (सं० पु०) कलते, कल्-खुल् स्वार्थे कन्। १ शकुलमत्स्य, एक मछली। २ वेतसवृक्ष, बेंतका पेड़, किलक।

कलक (अ० पु०) १ दुःख, रञ्ज, सोच। २ व्याकुलता, घबराहट।

कलक (हिं० पु०) कल्क, चूरन। कल्क देखो।

कलकण्ठ (सं० पु०) कलप्रधान: कण्ठो यस्य। १ कोकिल, कोयल। २ हंस। ३ पारावत, कबूतर। ४ शुकपक्षी, तोता। ५ कलध्वनि, मीठी आवाज़। (त्रि०) ६ कलध्वनिकारी, मीठी आवाज़ निकालनेवाला।

कलकत्ता—भारतका सर्वप्रधान नगर। यह अक्षा० २२° २४′ उ० और देशा० ८८° २४′ पू०में भागीरथी नदीके पूर्व तट पर अवस्थित है। इसकी भूमिका परिमाण २७२६७ एकर और लोकसंख्या प्राय: १० लाख है। पहले यह भारतकी राजधानी रहा। किन्तु १९१२ ई०के दिसम्बर मास राजधानी दिल्ली चली गयी।

इतिहास—१५९६ ई०को सम्राट् अकबरके प्रधान सचिव अबुलफज़लके बनाये आईन-इ-अकबरी ग्रन्थमें कलकत्तेका प्रथम ऐतिहासिक उल्लेख मिलता है। इससे पूर्व अन्य किसी ऐतिहासिक अथवा प्रामाणिक ग्रन्थमें कलकत्तेका नाम नहीं आया। अकबरके राजस्व-सचिव टोडरमलकी बनायी तालिका बङ्गदेशको कई भागों या सरकारोंमें बांटती है। कलकत्ता सातगांव सरकारमें रहा, कलकत्ते, बारबाकपुर और बकुया तीनों महालोंसे २३४०५) रु० राजस्वस्वरूप बादशाही कोषमें जमा होता था।

आईन-इ-अकबरी बननेके पीछे और बङ्गदेशसे युरोपीयोंका संस्रव लगनेसे पहले किसी मुसलमान-इतिहास-लेखकके विरचित पुस्तकमें कलकत्ता शब्द देख नहीं पड़ता। किन्तु बङ्गकवि कविकङ्कण मुकुन्द-

राम चक्रवर्तीके चण्डीमङ्गलमें कलकत्तेका उल्लेख है। सम्भवत: १४६६ शाकको सम्राट् अकबरके सिंहासनारूढ़ होनेसे बारह वर्ष पहले उक्त ग्रन्थ बना था। वणिक् धनपति और उनके पुत्र श्रीमन्त सौदागरके समुद्रयात्राकी कलकत्ते पहुंचनेकी कथा है। अतएव अकबरसे भी अनेक पूर्व कलकत्ता वर्तमान था। किन्तु नाममें कुछ गड़गड़ पड़ता है। आईन-इ-अकबरीमें कलकत्ता महालके ग्रामोंका नाम नहीं। फिर उसी समयके संस्कृत ग्रन्थकारोंने कलकत्तेको किलकिला लिखा है। मगधाधिप वैजलराजकी सभाके पण्डित कविरामने 'दिग्विजयप्रकाश' नामक पुस्तकमें किलकिलाका विवरण दिया है। उनके मतसे भी किलकिलामें अनेक ग्राम लगते थे। नीचे कविरामका विवरण उद्धृत है,—

'पश्चिम सरस्वती और पूर्व यमुना नदीके मध्य २१ योजन परिमित किलकिला भूमि है। यह दो भागमें विभक्त है। दानगली नदीसे पश्चिम गङ्गाके निकट शाड़ेश्वरी देवी विराजती हैं। यहां उपवास करनेपर कुष्ठादि दारुण रोग देवीकी कृपासे आरोग्य होते हैं। माहेश और खड़्गदाह (खड़दा) ग्रामके मध्य दीर्घगङ्गा (बूढ़ी गङ्गा)के निकट कुलपाल नामक राजा रहते थे। किसी किसीके कथनानुसार गङ्गा नदी किनारे अनूपदेश-समूहके मध्य श्रेष्ठतम वासभूमि है। वहां कदली, पृश्निपर्णी, पूगफल (सुपारी) प्रभृति वृक्ष उत्पन्न होते हैं। पीठमालातन्त्रके मतसे भागीरथी-तीर सती देवीके शरीरसे वामहस्तकी अङ्गुलि गिर पड़ी थी। काली देवीके प्रसादसे किलकिलावासी धन-धान्यवान् रहते हैं। सकल प्रकार शस्यादि उपजनेसे लोग इसे रत्नदेश कहा करते हैं। यहां सकल वर्णके लोग नियत रूपसे बसते हैं। किलकिला अव्यय शब्द है। लोग नानाप्रकार इसका अर्थ लगाते हैं। स्थानीय देशवासियोंके मतसे समुद्र मथते समय कूर्मपृष्ठस्थित सुन्दर पर्वतके भारसे घबरा दैत्योंके मोहनको अनन्त देवने निश्वास छोड़ा था। उसी निश्वासका कल्लोल जहां तक पहुंचा, वहां तक किलकिला देश हुवा। सती देवीके बलसे महाबलवान् कुलपाल और देश-पालका नाम भागीरथीके पश्चिम तीर चला था। कुल-पालके दो पुत्र रहे—हरिपाल और अहिपाल। ज्येष्ठ हरिपालने सिङ्गुरसे पश्चिम अपने नामपर इष्टापूर्तयुक्त एक महाग्राम स्थापन किया। फिर वहां ब्राह्मण, तन्तुवाय और साङ्गायि बसा वह राजा बने। अहिपाल माहेशमें त्रिवेणीके निकट चक्रद्वीप (चाकदा) और डमुरद्वीप (डमुरद)के मध्य जाकर बसे। अहिपालके तीन पुत्र थे—क्षतध्वज, विभाण्ड और महाबल केशिध्वज। वह किलकिलासे पश्चिम योजनान्तर सप्त-ग्रामके मध्य राजा हो वैद्य जातिको पालने लगे। क्षत-ध्वजके पुत्र महाबल विरसि सुगन्धि नामक ग्राममें रहते थे। विभाण्ड पूर्वपारको वाण राजाके मन्त्री हुये। उनके वंशधर जङ्गलमें वास करते थे। ...... यशोरराज प्रतापादित्य भागीरथीके उभय पार्श्वस्थ देश समूहके राजा रहे। राजा केशिध्वजने चान्दोल-में नाना स्थानसे कायस्थ बोला राजत्व चलाया। आज कल ब्राह्मी नदीतीर केशिध्वजके वंशोद्भव कायस्थ राजा हैं। शिवपुर और बालुक (बाली) ग्रामके मध्य तथा भद्रेश्वरके निकट श्रीरामपुरमें ब्राह्मण रहते हैं। हुगलीके निकट वंशवाटी (बांसवेड़िया) प्रभृति ग्राम हैं। यहां खलापि नदी दामोदरसे निकल गङ्गामें आ गिरी है। खलशानि ग्राममें धीवर राजाका राजत्व है। आजकल गङ्गा और यमुना नदीके मध्य पाटलिग्राम कायस्थ अधिवा-सियोंके अधीन है। गोविन्दपुरादि ग्राम, भट्टपल्लिक, काली देवीके निकटस्थ शृगालदाह (सियालदा) और सारपल्लिमें भी कायस्थोंका शासन चलता है। सब मिलाकर ३००० ग्राम किलकिलामें लगते हैं। विश्वसारतन्त्रके प्रथम पटलमें किलकिलास्थ शिव-लिङ्गका विषय निरूपित है। इसी तन्त्रके मतसे किलकिला देशान्तर्गत नवद्वीप नगरके ब्राह्मणवंशमें शचीसुत (चैतन्यदेव) और खड़्गद ग्रामस्थ हाड़ायि पण्डितके घर नित्यानन्द जन्म लेंगे।'*

* "पश्चिमे सरस्वतीसीमा पूर्वे कालिन्दिका मता।
एकविंशतियोजनं च मितो किलकिलाभिधः॥ ६६२

फिर भी अकबरके पीछे अंगरेजोंके पदार्पण करते समय कलकत्तेकी अवस्था अत्यन्त हीन थी। क्षितीश-वंशावलिचरितमें इसका प्रमाण मिलता है। नदिया-वाले राजा कृष्णचन्द्रके समय कलकत्ता उनकी जमीन्दारीमें लगता था। वह बङ्गालके सूबेदार नवाब अली-वर्दीखान्के विशेष प्रियपात्र रहे। उनके ऊपर पितृपितामहकी देय राजस्वका दश लाख रुपया बाकी था। उन्होंने यह रुपया माफ् करनेके लिये नवाबसे बार बार कहा। किन्तु किसी प्रकार वह कृतकार्य

किलकिलाभूमिमध्ये हि देशो नृपशेखर।
दाननदीसरित्तीरे पश्चिमपार्श्वं विराजते ॥ ६६४
यत्र याड़ेश्वरीदेवी गङ्गायाश्चैव सन्निधौ।
कुष्ठादिगुरुरोगाणां विनाशश्चापवाचतः ॥ ६६५
माहेशखड़दहाख्यग्रामयोरन्तरे महान्।
दीर्घगङ्गा समीपे च राजा हि कुलपालकः ॥ ६६६
केचिद्वदन्ति भूपाल वार्त्ताभूमिर्नदीतटे।
अनूपानाञ्च देशानां मध्ये श्रेष्ठतमः स्मृतः ॥ ६६७
अनेकस्वददोर्घाः तथा लाङ्गुलिमुखाः।
तथा क्षुद्रवृक्षाणां बाहुल्यं तत्र जायते ॥ ६६८
पीठमाहात्म्यग्रन्थे सतीदेव्याः शरीरतः।
वामभुजाङ्गुलिपातो जातो भागीरथीतटे ॥ ६६९
कालीदेव्याः प्रसादेन किलकिलादेशवासिनः।
द्रविणैः पूरिता नित्यं स्थापिताश्चिरकालतः ॥ ६७०
अन्यदेशस्थ गायन्ति सर्वशस्य वर्णनात्।
प्रायशो वर्णभेदानां वासो हि सर्वदा भुवि ॥ ६७१
सम्भाव्य भूमिं लोका हि धनानां सन्ततो नृप।
भागीरथ्याश्चोभयपार्श्वे त्रियोजनप्रमाणतः ॥ ६७२
किलकिलाव्ययशब्दश्च बह्वर्थेषु वर्त्तते।
यथा कथञ्चिदुत्पत्तिः करणीया हि साधुभिः ॥ ६७३
समुद्रमन्थनारम्भे कूर्मपृष्ठे च मन्दरः।
भारतोऽस्थिदेवश्च देव्यानां मोहनाय च ॥ ६७४
कूर्मनिश्वासो जायेत मन्दरधारणश्रमात्।
तेन कल्लोलबहुलं जायते यदवधि नृप ॥ ६७५
तदवधिः किलकिलादेशो गीयते देशवासिभिः।
किलकिलासम्पत्तिर्वसति निश्चयेनैव यत्र च ॥ ६७६
कामधान्यशयनं तत्र किलकिला विश्रुता भुवि।
सतीदेव्या वरेणैव भीमभुजबलयुतकः ॥ ६७७
कुलपालो देशपालो विख्यातः पश्चिमे तटे।
कुलपालस्य द्वौ पुत्रौ हरिपालोऽहिपालको ॥ ६७८
जीवः सिन्धुरपश्चिमे स्वनामवसतिं कृतः।
हरिपालो महायामो हरवापिसमन्वितः ॥ ६७९
हरिपालो हि तत्रैव तनुवायस्य गोष्ठिषु।
राजा बभूव भिन्नेषु साङ्गापि संमतेषु च ॥ ६८०
अहिपालो माहेशे च राज्यं त्यक्त्वा च पश्चिमे।
त्रिवेणीसन्निधाने च चक्रद्वीपस्य सन्निधौ।
डमुरदीपमध्ये च वसतिं कृतवान् मुदा ॥ ६८१
अहिपालस्य त्रयः पुत्राः वैवर्णोपितृमु जज्ञिरे।
कृतध्वजो विभाण्डश्च केशिध्वजो महाबलः ॥ ६८२
पश्चिमे योजनान्ते च मन्नग्रामस्य मध्यतः।
नृपो भूत्वा देवशालिं...पपाल ह ॥ ६८३
कृतध्वजस्य तनयौ विरञ्चिरंशको बलिः।
सुगन्धिग्राममध्ये च चकार वसतिं मुदा ॥ ६८४
विभाण्डो बाणमन्त्री च पूर्वपारे स्थितः स च।
जगदले महाग्रामे यस्य वंशोऽपि वर्त्तते ॥ ६८५
प्रतापादित्यभूपस्य यशोरभूमिपस्य च।
गङ्गाश्रमस्थलो राजन् इदानीं वर्त्तते नृप ॥ ६८६
केशिध्वजो महाग्रामे चान्दोल...मिथंदके।
कायस्थान् बहुधान् नीत्वा राज्यत्वञ्च चकार ह ॥ ६८७
तस्य वंशेषु चौतुष्का ब्राह्मीसरित्तटे नृप।
तेषां कायस्थजातीनामिदानीमस्ति शासनम् ॥ ६८८
शिवपुरं समारभ्य वालुको हि द्विजास्पदः।
श्रीरामादिपुरं दिव्यं भद्रेश्वरस्य सन्निधौ ॥ ६८९
वंशवाटी प्रभृतयो हुगलीमाप्य वर्त्तते।
अत्रापि तटिनी नित्यं वहते वालुकान्तरे ॥ ६९०
दामोदरादागता च गङ्गां मिलति सादरम्।
खलग्रामिमहाग्रामे यत्र राजा च धीवरः ॥ ६९१
गङ्गायमुनयोर्मध्ये पाटलिग्रामवासिनाम्।
कायस्थानां शासनञ्च वर्त्तते अधुना नृप ॥ ६९२
गोविन्दादिपुरं सर्वं तथा हि भद्रपल्लिकम्।
कालीदेव्याः समीपे च शृगालदाहादिकं नृप ॥ ६९३
सारपल्लिं महाग्रामं कायस्थानाञ्च शासनम्।
ग्रामाणां विस्तरश्च किलकिलायाश्च वर्त्तते ॥ ६९४
विश्वसारमहातन्त्रे पटले प्रथमेऽपि च।
निरूपणं शृणिनय किलकिलाविषयस्य च ॥ ६९५
ततः खिलकिलादेशे नवद्वीपजनालये।
तत्र द्विजकुले सार्धं कवीभावी यशोसुतः ॥ ६९६
ततः किलकिलादेशे ...ग्राममध्यत...।
...तीरे नित्यानन्दो भविष्यति ॥" ६९७

(दिग्विजयप्रकाश, किलकिलाविवरण)

न हुये। एकदा नवाब जलपथसे नौकापर चढ़ कलकत्तेकी ओर आते थे। भागीरथीतीरके अन्यान्य ग्राम छोड़ अवशेष उनकी तरणी कलकत्तेके पास पहुंची। उस समय यहां एक अतिसामान्य पल्ली थी। दक्षिणांश बिलकुल जलसे भरा जङ्गल रहा। सिर्फ़ उत्तरांशमें गङ्गा किनारे कुछ लोग बसते थे। मुरशिदाबाद और कलकत्तेके बीच भागीरथीके पूर्व-तट पर किसी ग्राम वा नगरके निकट ऐसा वन न रहा। इसीसे सुचतुर कृष्णचन्द्रने अपनी ज़मींन्दारीकी दुरवस्था नवाबको देखानेके लिये इस प्रदेशमें प्रवेश करने पर आग्रह लगाया। नवाब अलीवर्दी राजाका एकान्त अनुरोध टार न सके और जमीन्दारीकी अवस्था अपनी आंखों देखनेको निकल पड़े। लोकालयको छोड़ वह जितनी दूर आगे चले, उतनी दूर सिवा अरण्यके दूसरे दृश्य देखनेको न मिले। फिर राजा कृष्णचन्द्रकी शिक्षाके अनुसार नवाबके साथी परस्पर कहने लगे—यहां व्याघ्र आदि हिंस्रकका भय है। राजाने भी समय पा सजल नयन और कातर वचनसे निवेदन किया—"धर्मावतार! मेरे सौभाग्यसे कृपापूर्वक विशेष कष्ट उठा आप यहां तक आये हैं। इसलिये कुछ दूर अभी चले चलिये। फिर इस जमीन्दारीकी अवस्था देखनेमें कुछ रह न जायेगा।" नवाबने उत्तर दिया,—'अब आगे जाना आवश्यक नहीं। आज तुम अपने पितृपितामहके ऋणसे मुक्त हुये।' इससे हम सहजमें ही समझ सकते—उस समय कलकत्तेकी अवस्था कैसी थी। -

कलकत्ते में अंगरेजोंका आगमन, तत्कालीन मुग़ल और आनुषङ्गिक इतिहास।—अंगरेज़ोंकी पहली कोठी बालेश्वरके निकट पिप्पलीमें बनी थी। फिर कई तरहका गड़बड़ पड़नेसे अंगरेज कुछ दिन अपना वाणिज्य बङ्गालमें फैला न सके। उस समय सूरतमें भी अंगरेजोंकी एक कोठी रही। उसके अधीन 'होपवेल' जहाज़ चलता था। मिष्टर ग्रेब्रियेल बौटन इस जहाज़के शस्त्रचिकित्सक रहे। उन्होंने १६४४ ई०को सम्राट् शाहजहान्‌की एक कन्याका दुरारोग्य क्षत आरोग्य करनेके पुरस्कारमें एक सनद पायी। उसमें अंगरेजोंको दिल्लीके साम्राज्यमें सर्वत्र विना शुल्क वाणिज्य चलाने और बङ्गदेशमें इच्छानुसार सकल स्थल पर कोठी बनानेका आदेश था। इसीसे अंगरेजोंने नवाब शायस्ता खान्‌के समय हुगलीमें कोठी बना हुगली, पटना, बालेश्वर, कासिम बज़ार, ढाका प्रभृति स्थानमें विपुल उत्साहसे बहु विस्तृत वाणिज्य आरम्भ किया। उस समय बङ्गालकी प्रति कोठीमें एक एनसाइन और २० रक्षी सैन्यको छोड़ दूसरा कोयी सामरिक बल न था। किन्तु अल्प दिनमें ही अंगरेजवणिक् वाणिज्यसे प्रबल पड़ गये, जिससे बङ्गालके नवाब कुछ क्रुद्ध हुये। उन्होंने छल बलसे अंगरेज़ी वणिक्-दलको शासनमें रखनेकी नानाविध चेष्टा की थी। अन्तको अंगरेज़ नवाबके अत्याचारसे अत्यन्त पीड़ित हुये। वह सम्राट्‌की सनदको न देख नाना प्रकार अंगरेज़ोंसे शुल्क लेने लगे। अंगरेज़ वणिकोंका प्राण नाकमें था। उन्होंने कोर्ट अव डिरेक्टरको इस विषयकी सूचना दी। डिरेक्टरोंने इङ्गलैण्डके राजाकी अनुमतिसे अपनी वाणिज्यतरी दो बेड़ों (Fleet)में बांट एकको सूरत और दूसरेको गङ्गाके मुहाने भेजा था। गङ्गाके मुहाने आनेवाले बेड़ेमें ६०० युरोपीय शिक्षित सेना रही।

डाइरेक्टरोंने कम्पनीके गुमाश्ते जब चारनकको लिख भेजा,—'बङ्गालके सब अंगरेज़ इस प्रकार प्रस्तुत रहें, कि बालेश्वरमें बेड़ा पहुंचते ही जहाज़ पर चढ़ सकें।' फिर जहाज़ी बेड़ेके अध्यक्षको आदेश था,—'बालेश्वरसे सब अंगरेजोंको जहाज़पर चढ़ा चट्टग्राम नगर आक्रमण करो और वहां आत्मरक्षणोपयोगी दुर्गादि बना सतर्कतासे रहो।'

जहाजी बेड़ा आनेमें कुछ विलम्ब लगा। अक्तोबर मास बेड़ेके पहुंचनेका संवाद मिलनेपर जब-चारनकने शीघ्र अध्यक्षको लिखा था,—आप सदल हुगलीके नीचे आ जाइये। उन्होंने स्वयं भी हुगलीकी कोठीके अधीन एक पोर्तगीज़ पदाति दल प्रस्तुत किया था। नवाब शायस्ता खान्‌ने इस संवादसे डरकर सन्धिकी बात ठहरायी।

नवाब सन्धिका प्रस्ताव उठाते भी भविष्यत्‌में युद्ध

होनेकी आशङ्का पर सूबेदारोंकी चारो ओर सैन्य संग्रह करने लगे। यह सैन्यदल फौजदारके अधीन रहनेको हुगली भेजा गया। इधर सन्धिकी बात चलती ही थी। किन्तु १६८६ ई०की २८ वीं अक्तोबरको हुगलीके बाज़ारमें अंगरेज़ पचीस कई सैनिकोंसे नवावके कुछ सैनिक लड़ पड़े। इसमें तीन अंगरेज मरे थे। फिर एक क्षुद्र युद्ध होने लगा। कई घण्टे लड़ने पीछे नवावके सिपाही विशृङ्खलता वश अंगरेजोंसे हारे। सर्व प्रथम अङ्गरेज़ इसी युद्धमें नवावसे लड़े थे। फिर अङ्गरेजोंने हुगली नगर आक्रमण किया। जहाजी बेड़ेके अध्यक्ष आडमिरल निकलसन जहाजसे नगरपर गोले मारने लगे। इससे हुगलीके कोई ५०० घर गिरे थे। अंगरेजोंने नगर लूटनेको आग्रह प्रकाश किया, किन्तु जब-चारनकने रोक दिया। अन्तको लूटने न देने कारण डाइरेक्टरोंने जब-चारनकका तिरस्कार किया था। उन्होंने कहा—यदि अङ्गरेजोंको आप नगर लूटने देते, तो नवावके सिपाही और देशी लोग हमारा प्रभाव समझ लेते।*

अङ्गरेज़ जीतकर युद्धसे हट गये। फौजदारने डर कर सन्धिका प्रस्ताव उठाया था। सन्धि होनेपर स्थिर हुवा,—जब तक सम्राट्के निकटसे नया फरमान् न निकलेगा, तब तक पहली सनदके अनुसार अङ्गरेजोंका वाणिज्य चलेगा और नवावको क्षतिपूरणके लिये ४६ लाख रुपया देना पड़ेगा। सन्धि करने पीछे मुसलमान भीतर ही भीतर युद्धका आयोजन लगाने लगे। नवावने ढाका, मालदह, पटना और कासिम-बाजारकी कोठियां लूट अङ्गरेजोंको बन्दी बनाया था। फिर १६८६ ई०के दिसम्बर मास नवावने सैन्य जुटा हुगलीको भेज दिया।

अङ्गरेजोंने यह सैन्य संग्रह देख परामर्श किया—हुगलीमें रह इस प्रकार नित्य उत्पीड़ित और क्षतिग्रस्त होनेसे बड़ी कोठी उठा लेना युक्तिसङ्गत है। अन्तको हुगलीसे कई कोस दक्षिण गङ्गाके पूर्व पार सूतानूटी जाना ठहर गया। यह स्थान अनेक कारणसे सुविधाजनक देख पड़ा। उस समय गङ्गाके पश्चिम-तीर चन्दननगरमें फरासीसी और चुंचुड़ामें ओलन्दाज कोठी चला समुद्रके नैकट्य वश अपना वाणिज्यव्यवसाय बढ़ाये थे। इसीसे अङ्गरेजोंने भी सोचा,—गङ्गाके दक्षिण किसी स्थल पर वाणिज्यकी प्रधान कोठी बना समुद्रसे आने-जानेकी सुविधा लगनेपर हमारा वाणिज्य भी अधिक चलेगा। वाणिज्यका केन्द्र होते भी सागरसे दूर पड़ने पर हुगली विदेशीय वाणिज्यके लिये विशेष लाभदायक न थी। नवावी अत्याचार, वाणिज्यतरीके गमनागमनकी विशेष असुविधा और मराठोंके आक्रमणसे मुक्त रहनेके लिये अङ्गरेजोंने एकबारगी ही गङ्गाका पश्चिम कूल छोड़ना चाहा।†

सूतानूटी स्थानको अङ्गरेज़ बहुत पहलेसे जानते थे। वङ्गोपसागरसे हुगली जाते-आते समय गङ्गाके उभय कूलस्थ सकल स्थान अङ्गरेजोंने खूब देखे-सुने। हुगली छोड़नेका परामर्श स्थिर होते स्थानानुसन्धानके समय उन्हें वाणिज्यकी बड़ी कोठी चलानेको सूतानुटी सबसे बढ़कर स्थान समझ पड़ा।

प्रथमतः हुगलीके फौजदारसे सर्वदा सङ्घर्ष न रहनेकी बात थी। द्वितीय भागीरथीका गर्भ दिन दिन मृत्तिकासे पूरते जाता था। उससे कुछ समय पीछे हुगलीके नीचे जहाज़ लग न सकते। सूतानुटीमें वह आशङ्का बिलकुल न थी। तृतीय फरासीसियोंसे अङ्गरेजोंकी शत्रुता बढ़ी। चन्दननगरसे बड़ी बड़ी वाणिज्यतरी हुगली ले जानेमें विषम भय था। चुंचुड़ा और चन्दननगरसे दक्षिण पड़ते सूतानुटीमें उस भयकी सम्भावना न रही। चतुर्थ समुद्र निकट था। पञ्चम गङ्गा नदीके पूर्व पार रहते सूतानुटीमें मराठोंके उपद्रवका भय न लगा। षष्ठ जहाजमें ही पण्य द्रव्य चढ़ाया उतारा जा सकता था। सप्तम—गङ्गाको आ न सकनेवाले जहाज़ वङ्गोपसागरमें ही लङ्गर डाल

* Vide (a) Stewart's History of Bengal, (b) Broom's History of the Rise and Progress of the Bengal Army and (c) Cook's Monthly Mail and Indian Advertiser, Vol. I, or VIII.

† Vide "Some Observations and Remarks on a late publication entitled Travels in Europe, Asia and Africa" by J. Price.

रखनेसे साविध्य वश कोयी असुविधा देख न पड़ी। अष्टम—गङ्गा पूर्ववङ्गकी अन्यान्य नदीकी भांति वन्य और प्रबल कहां। नवम—सूतानुटीके निकट अनेक बहु जनाकीर्ण ग्राम थे। सुतरां व्यवसाय और वस-वासकी सुविधा रही। दशम—सूतानुटीमें उस समय तन्तुवाय बहुत बसते थे। वह वस्त्र बुनने और सूत्र प्रस्तुत करनेमें विशेष पारदर्शी रहे। सुतरां उन्हें कोठीके अधीन रख वस्त्र व्यवसाय खोल सकते भी विशेष लाभ उठानेकी आशा थी।

१६८६ ई०की २० वीं दिसम्बरको जब-चारनकने हुगली छोड़ी। वह अपने समस्त वाणिज्य द्रव्य और यावतीय कर्मचारी ले सूतानुटी पहुंचे। जिस स्थान पर जब-चारनक प्रथम उतरे, उसको सूतानुटी कहते थे।* उस समय सूतानुटीमें तुला, सूत्र और वस्त्रका बाज़ार लगता था। बाजारके सामने ही अङ्गरेजोंके उतरनेका घाट रहा। कम्पनीके अमुद्रित पत्रादिमें एक मानचित्र है। उसमें सूतानुटीका स्थल निर्दिष्ट है। सम्भवत: सूतानुटी वर्तमान आहीरीटोलेके उत्तर चम्पातले और रथतले घाटके निकट थी। फिर भी सूतानुटी घाटका यथार्थ अवस्थान आजकल नगरके पूर्वांशमें पड़ गया है। प्रवादके अनुसार सूतानुटीका घाट और हाट वर्तमान बड़े-बाज़ारके सेठ-बसाकोंके यत्नसे बना था।† उस समय सूतानुटी और उसके दक्षिणवर्ती कलकत्ते तथा गोविन्दपुर ग्राममें उनका वास रहा।

जब-चारनक सूतानुटीमें* पहुंच घाटसे कुछ दक्षिण एक वृहत् निम्ब वृक्षके नीचे झोपड़े डाल रहने लगे। उक्त निम्ब वृक्षके नामसे ही वर्तमान 'नीमतल्ला' नाम निकला है। १८८३ ई०को आनन्दमयीके मन्दिर निकट अभिदाहसे गिरनेवाला प्राचीन निम्बवृक्ष जब-चारनकके समय का नहीं। कारण उस समय नीम-तलेकी भूमि गङ्गाके गर्भमें डूबी थी।

१६८७ ई०के फरवरी मास जब-चारनकको संवाद मिला,—'नवाब शायस्ताखान्के सेनापति अब्दुल समदखान् बहु संख्यक अश्वारोही सैन्य ले हुगली पहुंचे हैं। बङ्गालसे अङ्गरेजोंको निकाल देना ही उनका उद्देश्य है।' इससे उन्हें सूतानुटीमें भी रहना युक्तिसङ्गत देख न पड़ा। कारण बङ्गालके नवाबसे लड़ने योग्य स न्यबल न था। फिर उस प्रकार अरक्षित

* Vide Map attached to the Selections from Unpublished Records of Government.

† सेट बसाक कहते—कई शताब्द पूर्व बङ्गालके प्रधान वाणिज्यकेन्द्र सप्तग्रामके नीचे सरस्वती नदीका (आजकल आन्दूल, मङ्गियाड़ी और रानगङ्गाके नीचेसे आकर जो नदी गङ्गामें मिल जाती, वह सरस्वती कहाती थी। त्रिवेणीके नीचे सरस्वतीका कुछ अंश विद्यमान है। किन्तु आदि-गङ्गाकी भांति सरस्वती भी बिगड़ गयी है। आदिगङ्गा स्थान स्थान पर पूर जानेसे 'चौवगङ्गा' और 'बोसगङ्गा' नामक पुष्करणी भावमें परिणत हुयी है। इसी प्रकार माकड़दह, जनाई प्रभृति ग्रामके नीचे सरस्वती नदीके पुरातन गर्भविशिष्ट सरोवर और चिह्न देख पड़ते हैं।) स्रोत-घट जानेसे हुगली शहर बङ्गालका सबसे बड़ा वाणिज्यस्थान बन गया था। उस समय सेठोंके एक बसाकोंके चार आदिपुरुष सूता-नुटीके दक्षिण गोविन्दपुर ग्राममें जाकर रहे। बसाकोंके कथनानुसार युरोपीयोंके साथ वाणिज्य करनेके लोभसे ही वह गोविन्दपुरमें रहने लगे। किन्तु यह बात ठीक समझ नहीं पड़ती। कारण वाणिज्यके लिये उन्हें केन्द्र हुगली या उसके निकटवर्ती स्थानको जाना था। इतनी दूर आना आवश्यक न रहा। फिर सेठके वंशधर अपने आदिपुरुष मुकुन्दरामसे १७श पुरुष, कालिदास बसाकके वंशधर १६श पुरुष और अन्य तीन बसाकोंके वंशधर १५श पुरुष अधस्तन थे। यह वंशावली देखनेसे समझ पड़ता,—उक्त आदिपुरुषोंके जाते समय (ई० पञ्चदश शताब्द) सप्तग्रामकी अवस्था अधिक बिगड़ी न थी। उस समय भी सप्तग्राम बङ्गालका प्रधान वाणिज्य स्थान था। इससे स्वदेशमें किसी विशेष कारण वश उत्पीड़ित और विरक्त हो वह आत्मीय बान्धवोंसे दूर रहनेके लिये ही गोविन्दपुर गये। क्योंकि उस समय कलकत्तेके प्रसिद्ध वाणिज्यस्थान रहनेका कोई प्रमाण नहीं मिलता। ई० १५ शताब्दकी वाणिज्यकी आशासे उनका गोविन्द-पुर जाना कैसे ठहर सकता है।

*इसके ठहरानेका कोई लिखित प्रमाण नहीं मिलता—सूतानुटीका नाम युरोपीयोंको कितने दिनसे अवगत था। वालेण्टिन नामक किसी ओलन्दाज साहबने १६५६ ई०को एक मानचित्र बनाया। उसमें सूता-नुटीके स्थल पर "चिड़ानुटी" (Chittanuttee) नाम पड़ा है। फिर करनेल यूलने 'इण्डिया हाउस'के कागजपत्र देखते समय कई बहुत पुरानी चिट्ठियां पायीं। उनमें एक सूतानुटीसे १६८६ ई०की २१ वीं दिसम्बरको लिखी गई थी। उनके पुस्तकसे भी समझ पड़ता—अङ्ग-रेजोंको १६८६ ई०से पहले सूतानुटी स्थान मालूम रहा। यूल साहबने कहा—१६७५ ई०के 'इङ्गलिश पाइलट और प्राचीन समुद्रयात्रियोंके मानचित्र'में सूतानुटीका उल्लेख लगा है।

स्थान भी बृहत् युद्धके उपयोगी न ठहरा। इसीसे वह सदल सुतानुटी छोड़ गङ्गानदीके मुहानेको हिजलीकी ओर चल पड़े। राहमें उन्होंने गङ्गाके पश्चिम कूल पर सुतानुटीसे ५ कोस दक्षिण 'टाना' नामक स्थानका दुर्ग अधिकार किया। फिर वह जितने ही दक्षिणको आगे बढ़े, उतने ही नदीतीरस्थ मुसलमानी लवण और शस्यके गोले लूटने लगे। नदीके गर्भमें मुसलमानोंकी जो नावें देख पड़ीं, वह भी पकड़ जहाजोंके साथ बालेश्वर भेजी गयीं। फिर देशीय वणिकोंकी ४० नावें उन्होंने आग लगाकर जला डालीं।

उस समय हिजली एक द्वीपकी भांति थी। पश्चिम दिक् एक क्षुद्र खाड़ी थी। सुतरां हिजली पहुंचनेके लिये नौकाको छोड़ दूसरी कोई राह न रही। फिर हिजलीमें कोई रहता भी न था। चारो ओर वनमें व्याघ्र भरे थे। प्रकृत पक्षमें नवाबका अत्याचार रोकनेको ही अङ्गरेजोंने उक्त स्थान मनोनीत किया।

जब-चारनकने हिजलीमें सदल उतर वन कटाया और चारों ओर तोपोंका मुरचा लगाया था। वह सब जहाज गङ्गाके ऊपर छोड़ मुहानेको रोक बैठे। किन्तु इसका फल उलटा हुवा। हिजलीमें एक विन्दु भी पानोपयोगी परिष्कार जल मिलता न था। दूसरे दक्षिण पवनसे समस्त अङ्गरेज सैन्य पीड़ित हुवा और जलाभावसे अधिकांश मृत्युके मुख पड़ा। जो लोग बचे, वह पीड़ासे ऐसे डरे कि जीवनकी आश छोड़ चले। शुभ अदृष्टके क्रमसे नवाब शायस्ता-खान्ने उसी समय सन्धिका प्रस्ताव उठाया। चारनकने दुष्टमन सन्धि जोड़ी थी। सन्धिसे अङ्गरेजोंको सब कोठिया वापस मिलीं। समुद्रसे ४० कोस उत्तर गङ्गाके पश्चिम कूल 'उलूबेड़िया'में डक और गोला बनानेकी अनुमति हुयी थी। अङ्गरेजोंका वाणिज्य विना शुल्क चलने लगा। केवल मुसलमानोंकी छीनी नौकायें लौटाना पड़ीं। नवाबके हठात् सन्धि करनेका कारण था। हुगलीमें जहाजी बेड़ा लेकर जानेवाले आडमिरल निकोलसनको इङ्गलैण्डसे मुसलमानोंकी समस्त नौकायें अधिकार करनेका आदेश मिला था। नवाबने यह संवाद सुन शीघ्र सन्धि ठहरा ली।

फिर जब चारनक उलूबेड़ियामें डक बनाने लगे। पीड़ित सिपाहियों और अङ्गरेजोंको उन्होंने सुतानुटी भेज दिया। वह जाकर कोठीमें रहे थे। उसी समय मलबरमें अङ्गरेजों और मुगलोंका युद्ध हुवा। सुतरां शायस्ताखान्के मनमें फिर अङ्गरेजोंको सतानेकी बात उठी। उन्होंने आदेश दिया था,—'सब अङ्गरेज सुतानुटीसे हुगली चले जायें। उनके गड़बड़से बाजार बिगड़ गया है। इसके लिये यथेष्ट रुपया देना पड़ेगा। सिपाही अङ्गरेजोंका,यथा सर्वस्व लूट सकते हैं।' चारनककी अवस्था अच्छी न थी। उन्हें युद्ध चलाने या रुपया पहुंचानेमें असुविधा लगी। इसीसे उनके आदेशानुसार कोठीवाले दो अङ्गरेज नवाबको रिझा बुझा उक्त अत्याचार निवारणके लिये ढाके पहुंच गये।

फिर निकोलसनकी अकृतकार्यतासे बिगड़ इङ्गलैण्डके डिरेक्टरोंने कपतान हिदको ६४ तोपों और १६० अङ्गरेज सिपाहियोंके साथ बङ्गाल भेजा। उन्हें आदेश था—उपयुक्त नियमसे युद्ध कर अङ्गरेजोंका वाणिज्य बङ्गालमें चलावो, अथवा सब अङ्गरेज सिपाहियों और कोठीवालोंको मन्द्राज पहुंचा चटगांव पर आक्रमण लगावो।

१६८६ ई०के अक्तोबर मास हिद सुतानुटी आये। इधर चारनकने दो कोठीवाल अङ्गरेजोंको नवाबके निकट ढाके भेज कह दिया था,—यदि नवाब कुछ बात सुनें, तो आप उनसे सूतानुटी और निकटवर्ती भूमि खरीद आवासादि बनानेकी अनुमति ग्रहण करें। हिदने यहां नवाबके अत्याचारकी कथा सुनी। वह उद्धतस्वभाव थे। उन्होंने उसी क्षण चारनकका मत न मिलते भी स्थिर रूपसे लड़नेकी प्रतिज्ञा की। हिद सब कोठीवालों और लोगोंको साथ ले बालेश्वरको ओर चल दिये। बालेश्वरके शासनकर्ताने सन्धि करना चाहा। किन्तु उन्होंने किसी बात पर कर्णपात न किया। शासनकर्ताने बालेश्वरकी कोठीके दो अङ्गरेजोंको जमानतके लिये बन्दी किया था। उस समय नवाबके निकट ढाके दो पहले भेजे जानेवालों, दूसरी कोठियोंके दो कोठीवालों और बालेश्वरके उक्त दो बन्दियोंको छोड़ बाकी सब अङ्गरेज

छिदके जहाजोंमें रहे। उक्त ६ लोगोंके प्राणकी आशङ्का रहते भी छिदने सैन्य सामन्त बढ़ा बालेश्वर आक्रमण किया। बालेश्वर आक्रमणके दिन ही ढाकेवाले दूतने आकर संवाद दिया—नवाबकी फौज अङ्गरेजोंके अधीन आराकान अधिकार करेगी। छिद चट्टग्राम लेनेकी सम्भावना देख उक्त प्रस्तावमें सम्मत हुये। १६८८ ई०को १३ वीं दिसम्बरको वह बालेश्वर छोड़ चट्टग्रामकी ओर चले थे। चट्टग्राम सुरक्षित देख आराकानके राजाको हस्तगत कर उन्होंने कार्योद्धारकी चेष्टा लगायी। किन्तु राजाके उत्तर देनेमें विलम्ब हुवा। इससे छिदने चट्टग्राम आक्रमण करनेको ठहरायी। उन्होंने पूर्वोक्त छुटे लोग बङ्गालमें ही छोड़ अन्य सकलको मन्द्राज पहुंचाने लिये १३ वीं फरवरीको यात्रा की।

औरङ्गजेबने इस संवादसे बिगड़ देशसे अङ्गरेजोंको निकालनेका आदेश दिया था। फिर नाना अत्याचार हुये। शायस्ता-खान्ने हद्ध वयसमें आगरे जाकर प्राण छोड़ा। अलवर्दी-खान्के पुत्र इब्राहीम-खान् नवाब बने। वह बड़े दयालु थे। उन्होंने नवाब होते ही सब बन्दी अङ्गरेजोंको छोड़ दिया और सम्राट्का आदेश मंगा बंगदेशमें अङ्गरेज लानेके लिये चारनकको पत्र लिखा।

१६९० ई०की २४वीं० अगस्तको अङ्गरेज सूतानुटीमें आकर स्थायी रूपसे रहने लगे। बादशाही कोषमें वात्सरिक ३०००) रु० जमा दे पूर्वकी भांति बङ्गालके नाना स्थानोंमें कोठी बनाने और व्यवसाय वाणिज्य चलानेको (१६९१ ई०, हिजरी १००२) जब चारनकने नवाब इब्राहीम खान्से सम्राट्का दिया आदेश पाया। अङ्गरेजोंको सूतानुटीमें उपनिवेश स्थापन करनेकी अनुमति मिलते भी दुर्गकी बनानेकी आज्ञा न हुयी।* फिर १६९२ ई०की १०वीं० जनवरीको चारनक मर गये। डिरेक्टरोंने आज्ञा रखी थी,—चारनकके जीवनकाल पर्यन्त बङ्गालमें मन्द्राजसे पृथक् व्यवसाय कार्य चलेगा, किन्तु उनके मरनेपर फिर फोर्ट सेण्ट जार्ज (मन्द्राज)के अधीन रहेगा।*

चारनकके मरनेपर बङ्गाल पुनर्वार मन्द्राजके अधीन हुवा और उनका पद इलिस साहबको मिला। किन्तु इलिस कमिसारीजेनरल और सुपरवाइजर सर जे गोल्डसबरोको सन्तुष्ट कर न सके। इसलिये उनके पद पर ढाकेकी कोठीके अध्यक्ष आयार साहब नियुक्त हुये।

१६९५ ई०को डिरेक्टरोंके आज्ञानुसार सूतानुटी बङ्गालके प्रधान एजेण्टका वासस्थान ठहरायी गयी। उस वर्ष सूतानुटीमें २०००) रु० शुल्क लगा था।

१६९६ ई०में एक घटना वश युरोपीय वणिकोंकी विशेष सुविधा हुयी। शोभासिंह नामक वर्धमानके किसी तालुकदारने उक्त स्थानके राजाको मार उड़ीसेवाले पठान सरदारके साहाय्यसे बङ्गालवाले सूबेदारके विपक्षमें विद्रोहका अनल भड़काया था। यह राजद्रोह दबानेको यशोरके फौजदार नूरुल्ला पर भार पड़ा। किन्तु वह भीरुता वश हुगलीके किलेसे भाग गये। विद्रोहियोंने सुविधा देख हुगली अधिकार किया। शोभासिंहने बङ्गालके अधीश्वर बननेको भी बड़ा उद्योग लगाया था। इसी सुयोगमें अङ्गरेज, ओलन्दाज, फरासीसी प्रभृति युरोपीय वणिकोंको अपने उपनिवेश सुरक्षित रखनेके लिये नवाबकी अनुमति मिली। फलतः कलकत्तेमें अङ्गरेजोंका दुर्ग बनने लगा। इङ्गलैण्डके तत्कालीन राजा विलियमके नामसे दुर्ग खड़ा किया गया।†

उपरोक्त घटनासे सम्राट् औरङ्गजेब बङ्गालके सूबेदार इब्राहीम खान्पर असन्तुष्ट हुये। उन्होंने उनके लड़के आजिम-उस-शानको बङ्गालका सूबेदार बनाकर भेजा था। १६९८ ई०को अङ्गरेज वणिकोंने मुद्रा तथा विविध उपढौकनादि प्रदानपूर्वक प्रीति बढ़ा आजिम-उस-शानसे सूतानुटी, कलकत्ता और गोविन्दपुर तीन ग्राम क्रय किये।

* Broom's History of the Rise and Progress of the Bengal Army, Vol. I, p. 24.

* Vide Bruce's Annals of the East India Coy. Vol. III, p. 143-4.

† Vide Historical and Topographical Sketch of Calcutta, by James Rainey.

उक्त तीनों ग्राम क्रय करनेका विशेष कारण रहा। उस समय अङ्गरेज़ सूतानुटीमें अपना वाणिज्य स्थान जमानेको आयोजन लगाते, किन्तु उपयोगी भूमि पाते न थे। जमीन्दारको महसूल दे बहु विस्तृत व्यवसाय फैलानेमें असुविधा पड़ी। फिर नवाबकी आज्ञा न होनेसे भूमि कैसे खरीदी जाती! इसलिये अङ्गरेज़ लोभी अज़ीम-उस्-शानको अर्थसे मिला कार्योद्धारको चेष्टामें लगे। उस समय अज़ीम वर्धमानमें थे। ओलन्दाजोंने भी अङ्गरेजोंकी भांति विना शुल्क वाणिज्य चलानेकी आशासे उनके पास दूत भेजा। अङ्गरेजोंने उसीका प्रतिवाद, भूमिक्रय और क्षतिपूरणादिका प्रबन्ध करको मिष्टर वेल्स नामक एक विचक्षण कर्मचारी रवाना किया।

१६९८ ई०के जनवरी मास वेल्स अज़ीमके शिविरमें पहुंचे और जुलाई मासके मध्य ही नानाविध अर्थ दे अपना कार्य बना सके। अनुमतिपत्र उसी समय सूतानुटी भेजा गया। किन्तु सूतानुटी, कलकत्ते और गोविन्दपुरके* जमीन्दार उसमें दीवान्‌की सही न देख विक्रयसे असम्मत हुये। अन्तको १७०० ई०के जनवरी मास अङ्गरेज़ दीवान्‌से अनुमतिपत्र ले आये। फिर जमीन्दार कोई आपत्ति उठा न सके।

विवारली साहबके लेखानुसार इस तीनों स्थानोंकी विस्तृति नदी (भागीरथी) किनारे तीन मील लम्बी और एक मील चौड़ी होगी।* किन्तु बोल्टने कहा—'यह समस्त स्थान दैर्घ्य प्रस्थमें डेढ़ मीलसे अधिक नहीं।'† इसका वार्षिक कर ११८४) रु० बङ्गालके नवाबको देना पड़ता था। किन्तु नवाब अज़ीम-उस्-शानने उसे अपने आयत्तमें लगा लिया।‡ फिर क्रयसम्बन्धीय सनद पानेपर सूतानुटीके प्रधान वणिक प्रतिनिधिने लन्दननगरके कोर्ट-अव-डाइरेक्टरको समाचार दिया। उन्होंने प्रत्युत्तरमें कलकत्तेको प्रेसिडेन्सी बना प्रबन्ध बांधा,—प्रेसिडेण्टको २००) रु० मासिक वेतन और १००) मासिक भत्ता मिलेगा। उनके अधीन एक सभा रहेगी। सभामें चार सभ्य बैठेंगे। परामर्श आदि दे वह प्रेसिडेण्टको साहाय्य करेंगे। सभ्योंमें प्रथम हिसाब करनेवाला (Acconntant), द्वितीय गुदामका रक्षक (Warehouse keeper), तृतीय सामुद्रिक कोषाध्यक्ष (Marine-purser) और चतुर्थ राजस्व-ग्राहक (Receiver of Revenues) होगा।

आयार साहबके विलायत जाने पर बियार्ड साहब कोठीके प्रधान हुये। १६९९ ई०को जब बङ्गाल एक विभिन्न प्रेसिडेन्सी बना, तब जोहन बियार्ड साहबको ही प्रेसिडेण्टका पद मिला था। किन्तु अल्प दिनमें ही सर चार्लस आयार विलायतसे प्रेसिडेण्ट हो वापस आ गये। उस समय बियार्ड साहबको हिसाब करनेवालेके द्वितीय पद पर जाना पड़ा। फिर हालसी वाणिज्यद्रव्यादि (गुदाम)के रक्षक, हवाइट सामुद्रिक कोषाध्यक्ष और राफसेलडन राजस्व-ग्राहक थे। किन्तु आयार साहबके कार्यग्रहण न करनेसे बियार्ड साहब ही प्रेसिडेण्ट बने रहे।§

* सूतानुटीसे दक्षिण कलकत्ता और कलकत्तेसे दक्षिण गोविन्दपुर दो ग्राम गङ्गातीर रहे। आइन-इ-अकबरीमें जहां सातगांव सरकारमें कलकत्ता महाल मिलता, वहां सूतानुटी या गोविन्दपुरका नाम देख नहीं पड़ता। किन्तु कलकत्तेके साथ एक बन्धनीमें बारिकपुर और बकुया नाम* दूसरे दो महालोंका उल्लेख आया है। यह निरूपित नहीं—बारिकपुर और बकुया क्या सूतानुटी या गोविन्दपुरके ही परिवर्तित नाम हैं। पहले ओलन्दाज वालिण्टाइन साहबके मानचित्रकी बात कही जा चुकी है। उसमें गोविन्दपुरके स्थान पर गोकर्णपुर लिखा है। उस सिवा आईन-इ-अकबरीके दूसरा प्राचीन ग्रन्थ भविष्य ब्रह्मखण्ड है। उस ब्रह्मखण्डमें गोविन्दपुरका नाम देख पड़ता है—

"ताम्रलिप्तप्रदेशे च वर्गभीमा विराजते।
गोविन्दपुरप्रान्ते च काली सुरधनीतटे॥"

इसमें स्पष्ट लिखा—यह गोविन्दपुर भागीरथीके तीरका ही गोविन्दपुर है।

एतद्भिन्न चार्ल्स यूलके बनाये और छपाये (१७०५ ई०) 'इङ्गलिश पाइलट' प्राचीन समुद्र यात्रियोंका मानचित्र' नामक पत्रकमें सूतानुटीके पार्श्व पर गोविन्दपुर नाम लिखा है।

* Vide Report on the Census of the Town of Calcutta taken on the 2nd April 1876, by Beverly, C. S.

† Vide Bolt's Consideration on Indian Affairs, 2 ed. 1772. I. 60.

‡ Vide Orme, Vol. II. p. 17.

§ History of the Rise and Progress of the Bengal Army, by Arthur Broome, I. 31.

इससे पहले जो सकल पत्र आदि लण्डनके कोर्ट अव डिरेक्टर्सको अथवा अन्यत्र लिखा गया, उस पर 'सूतानुटी' नाम पड़ा था।* फिर 'प्रेसिडेन्सी अव फोर्ट विलियम' लिखने लगे। शेषोक्त नाम अद्यापि चल रहा है। किन्तु यह निर्णय करना कठिन है—सूतानुटी, कलकत्ता और गोविन्दपुर तीनों ग्राम कलकत्ता नामसे कब अभिहित हुये। किसी किसीके मतमें ई० १७ वें शताब्दकी कलकत्ता नाम निकला था। किन्तु यह मत भ्रमात्मक है। क्योंकि १७०१ ई०को दो विसम्वादी अङ्गरेज वणिक्-समितियों (अर्थात् इङ्गलिश कम्पनी और ईष्ट इण्डिया कम्पनी)के सम्मिलित होनेको सनद बनी, उस पर सूतानुटी लिखी गयी। कलकत्तेका नाम कहीं नहीं मिलता। फिर भी उपरोक्त तीनों ग्राम इसी प्रकार सन्निवेशित हुये। टालीनाले (तत्कालीन गोविन्दपुरकी खाड़ी या आदिगङ्गा)से आरम्भ कर वर्तमान किले तक गोविन्दपुर रहा। यह ग्राम कुछ कच्चे मकानोंका समष्टिमात्र था। मध्यभाग वनसे परिपूर्ण रहा।

उत्तर चितपुरका नाला, (मराठा खात), पश्चिम भागीरथी, दक्षिण वर्तमान टकसाल तथा बड़ा बाजार और पूर्व कार्नवालिसका कुछ अंश एवं सरक्युलर रोडका थोड़ा पश्चिमांश सूतानुटी नामसे प्रसिद्ध था।† गोविन्दपुर और सूतानुटीके मध्यवर्ती स्थानको कलकत्ता कहते थे। ठीक ठीक निर्णय किया नहीं जाता, भागीरथी-तीरसे पूर्व किस स्थान तक कलकत्ता विस्तृत था। बड़ा बाजार, पथरिया गिर्जा, पोष्ट-आफिस, कष्टम हाउस प्रभृति स्थान डिही कलकत्तेमें रहे। फलतः उक्त तीनों ग्राम और कई सामान्य पल्लियां मिल कर यह "सौधमयी नगरी" (City of Palaces) बनी है।

१७०२ ई०को जान बियार्ड साहबने "सम्मिलित पूर्वभारत वणिक्समिति" (United Company of Merchants trading in the East India)की वङ्गीय सभाके सभापति हुये। फोर्ट विलियम प्रेसिडेन्सी इलाकेका कार्यसमूह चलानेको उनके अधीन आठ कमिशनर रखे गये। इस विसम्वादी वणिक्समितिके सम्मिलनसे उक्त दोनों कम्पनियोंके कर्मचारियोंका विवाद न घटा।

इङ्गलैण्डके राजाने सम्राट् अकबरके निकट सर विलियम निवासको दूतस्वरूप भेजा था, किन्तु उनका कार्य निष्फल हुवा। सम्राट्ने अपने राज्यके मध्य समस्त युरोपीयोंको बन्दी बनानेको आज्ञा निकाली थी। पटना और राजमहलका अङ्गरेज उपनिवेश लूटा गया। फिर कलकत्तेको लूटनेके लिये भी हुगलीके फौजदारने अङ्गरेजोंको भय देखाया था। किन्तु बियार्ड साहबने कलकत्तेको उत्तमरूपसे सुरक्षित कर फौजदारके भयप्रदर्शनको उपेक्षा की। फौजदारने भी अवस्थाको समझ बूझ विशेष गड़बड़ डाला न था।

१७०६ ई०को प्रेसिडेण्ट बियार्ड साहब मर गये। उनके पदपर दोनों कम्पनियोंका हिसाब साफ़ करनेको हेजेस और सेलडन साहब नियुक्त हुये। उस समय बहुत सी तोपोंके साथ १२० युरोपीय सिपाही फोर्ट विलियमको रक्षा करते थे। कलकत्तेकी अवस्था दिन दिन सुधरनेपर निर्विघ्न व्यवसाय वाणिज्य चलानेको चारो ओरसे लोग आकर रहने लगे। महानगरी कलकत्तेका इसी प्रकार प्रथम अवयव बना।

औरङ्गजेबको सनदसे ठहरा था—वार्षिक ३०००) रु० देनेपर अङ्गरेजोंको सर्वप्रकार शुल्कसे अव्याहति मिलेगी। किन्तु नवाब सुरशिद-कुली-खान्ने अन्यान्य व्यवसायियोंकी भांति अंगरेजोंसे भी सैकड़े पीछे २॥) रु० शुल्क लेनेको आज्ञा दी। कलकत्तेके तत्कालीन गवरनर हेजेस साहबने अङ्गरेजोंके प्रति यथा व्यवहारके प्रतिविधानकी आशासे दूत भेजनेके लिये १७१३ ई०को कोर्ट-अव-डिरेक्टर्स से अनुमति ली। उक्त दौत्य-कार्यको जोहन-सर्मन तथा एडवर्ड ष्टिफेनसन नामक दो अभिज्ञ कोठीवाल, खोजा सरहद्द दुभाषिया और डाक्टर

* Historical Notices concerning Calcutta in the days of Job Charnok (in Indian and Colonial Magazine)

† सूतानुटीके प्राचीन चिह्न से समझते, कि बागबाजार, दुर्गाकुड़िया, सिमुलिया प्रभृति कई स्वतन्त्र ग्राम उसकी सीमाके बाहर थे।

विलियम हामिल्टन नियुक्त हुये। १७१५ ई०के प्रारम्भकाल दूत लोग कलकत्तेसे युरोपजात बहुमूल्य विविध द्रव्यादिका उपढौकन ले ८वीं जुलाईके दिन दिल्ली पहुंचे।*

उस समय सम्राट् फरुखसियारके साथ अजित्सिंह नामक राजपूत राजाकी कन्याका विवाह था। किन्तु सम्राट् ऐसे पीड़ित हुये कि राजकीय चिकित्सक यथासाध्य चेष्टा लगाते भी रोगको दबा न सके। फलतः विवाह रुक गया। फिर खान्-दौरान्के अनुरोधसे सम्राट्ने समागत अङ्गरेज दूतदलके डाक्टर हामिल्टन साहबको अपनी चिकित्सा करनेकी अनुमति दी। सौभाग्य-क्रमसे उन्होंने विलक्षण विज्ञतासे साथ अति अल्प कालमें ही सम्राट्का रोग आरोग्य किया। इस घटनासे हामिल्टन साहब सम्राट्के विशेष प्रियपात्र बने। रोगसे मुक्ति लाभ करने पीछे सम्राट्ने राजकीय वदान्यताका यथेष्ट परिचय दे प्रतिज्ञा की थी,—हामिल्टन साहब जो मांगेंगे, वह यथासाध्य पावेंगे। हामिल्टन साहबने भी बाउटनकी भांति अपना स्वार्थ और लाभाभिलाष सम्पूर्ण रूपसे छोड़ जिसमें दौत्यकार्यको आये अङ्गरेजोंका मनोरथ पूर्ण पड़ता, उसीको प्रार्थना किया। सम्राट् उनका वैसा निःस्वार्थभाव देख चमत्कृत और सन्तुष्ट हुये। उन्होंने प्रतिज्ञापूर्वक कहा था,—विवाहकार्य सुसम्पन्न होने पर आपकी प्रार्थना विशेष रूपसे सोच समझ अपने साम्राज्यकी मर्यादाके उपयुक्त देनेमें हम उठा न रखेंगे। रोगशान्तिके पीछे ही विवाह सुसम्पन्न हुवा। किन्तु १७१६ ई०से पहले अङ्गरेज अपना आवेदनपत्र सम्राट्के समीप पहुंचा न सके। फिर विलक्षण उत्कोचके साहाय्यसे अङ्गरेज-दूतोंका उद्देश्य सफल हुवा। १७१७ ई०के समय (हिजरी ११२९) बङ्गाल, विहार और उड़ीसेमें वाणिज्य चलानेके लिये ईष्ट-इण्डिया कम्पनीको सम्राट् फरुखसियारसे सनद मिली थी। तद्द्वारा कम्पनीका पूर्वप्राप्त अधिकार बढ़ गया। अङ्गरेजोंने वाणिज्य द्रव्यादिकी नौकावोंके अनुसन्धानसे अव्याहति और मुर्शिदाबादकी टकसालमें तीन दिन कम्पनीका रुपया ढालनेकी अनुमति पायी। सूतानुटी, कलकत्ते और गोविन्दपुरके लिये अङ्गरेजोंको कोई ११९५) रु० वात्सरिक देना पड़ता था। फिर ८१२१॥) रु० अधिक प्रति वर्ष बादशाही कोषमें भरना स्वीकार कर उक्त ग्रामत्रयके सन्निकट दक्षिणको भागीरथीके उभय पार पांच कोसके बीच उन्हें ३८ ग्राम मोल लेनेका आदेश मिला।*

सम्राट्से इस प्रकार सनद ले आनेमें नवाब मुर्शिद-कुली-खान् अङ्गरेजों पर बहुत बिगड़े थे। ग्राम खरीदनेको सम्राट्की आज्ञा अवज्ञा कर प्रकाश्यमें किसी प्रकार शत्रुताचरणका साहस न देखाते भी गुप्त भावसे उक्त ग्रामोंके जमीन्दारोंको उन्होंने धमका दिया। नवाब कुलीखान्ने चुपके कहा था,—कितना ही अधिक मूल्य मिलते भी यदि कोई जमीन्दार अङ्गरेजोंके हाथ अपनी भूमि बेचेगा, तो वह हमारे कोपका प्रभाव देखेगा। उन्होंने अपने मनमें सोचा—यह सकल स्थान हाथ लगनेसे भागीरथी सम्पूर्ण रूपसे अङ्गरेजोंके आयत्ताधीन हो जायेगी और इच्छानुसार उभय पार दुर्गादि बननेपर उनकी शक्ति वृद्धि पायेगी।†

बोल्ट साहबके कथनानुसार सम्राट्ने उक्त ३८ ग्राम अङ्गरेजोंको दे न डाले थे। उन्हें उपयुक्त मूल्य दे केवल क्रय करनेको आज्ञा रही। जमीन्दार ग्राम बेचनेको सम्मत न हुये, किन्तु अङ्गरेजोंने ग्रामको अनेकोंसे प्रतारणा अथवा बलपूर्वक ग्रहण किये।‡

कपतान हामिल्टन १७१० ई०को कलकत्ते आये

* Stewart's History of Bengal, p. 395-6; Auber, Vol. I. p. 16.

* Appendix C, History of the Rise and Progress of the Bengal Army by Capt. A. Broome and East Indian Records, Book No. 593.

† Broome's Rise and Progress of the Bengal Army, Vol. I. p. 36.

‡ Bolt's Consideration on Indian Affairs, 1772, App. p. I. note.

थे। उन्होंने लिखा,—'नदी किनारे दक्षिण गोविन्दपुर और उत्तर वराहनगरमें कम्पनीके उपनिवेशका एक सीमाचिह्न रहा। इन दोनों चिह्नोंका व्यवधान तीन कोस होगा। भूमिकी ओर धापे या खोने विल तक सीमा थी।' फलतः निर्णय कर नहीं सकते—उस समय कलकत्तेकी प्रकृत सीमा क्या रही।

१७८२ ई०को भास्कर-पण्डितके परिचालनाधीन मराठे उड़ीसेसे मेदिनीपुर तथा वर्धमानकी राह राजमहलतक नगर एवं पल्लीग्राम समस्त लूटने लगे। फिर उन्होंने कलकत्तेके सन्निकट भागीरथीके अपर पार टाना किला छीन हुगली लूटी। उस समय भागीरथीके पश्चिमपारवाले अधिवासियोंने कलकत्तेमें आ आश्रय लिया था। मराठोंके आक्रमणसे रक्षा करनेको अङ्गरेजोंने पूर्व पार रहते भी कलकत्तेको चारो ओर किलेको एक गहरी खाई खोदनेके लिये नवाब अलीवर्दी खान्से अनुमति मंगायी। सूतानुटीके उत्तर अंशसे गोविन्दपुरके दक्षिण अंश पर्यन्त खाई खोदनेकी बात थी। छह मासमें डेढ़ कोस (तीन मील) भूमि खुदी। किन्तु अलीवर्दीके अध्यवसायसे मराठे कलकत्तेसे ३० कोस दूर ही रहे। इस लिये खाई खोदना रुक गया। इस खाईको "मराठा खात" (Mahratta Ditch) कहते हैं। श्यामबाज़ारके निकट दमदमे जाते समय इस खात (खाई)का स्थान मिलता है। अर्मी साहबके मतानुसार अधिवासियोंके ही अनुरोध और व्ययसे यह खाई खोदी गयी।*

हलवेल साहबका कहना है—१७५२ ई०को भी सिमुलिया, मलङ्गा, मिर्जापुर (कलकत्तेके एक महल्ले) और हुगलकुड़ियामें कुल ३०५० बीघे भूमि थी। यह चारो स्थान उपनिवेशकी सीमामें न रहते कम्पनीने खरीदनेकी विशेष चेष्टा लगायी, किन्तु अधिकारियोंकी किसी प्रकार सम्मति न पायी।† सुतरां यह कई स्थान कलकत्तेकी सीमासे बाहर थे। किन्तु बनियापोखर, पटलडांगा, टांगरा और अनन्द मिलकर २८८ बीघे भूमि कलकत्तेके अंशमें परिणत रही। दो वर्ष पीछे अर्थात् १७५४ ई०को हलवेल साहबने कम्पनीके लिये रसिक मल्लिक और नवायम मल्लिकसे २२८१) रु० मूल्यमें सिमुलिया खरीद ली।*

१७५६ ई०को सिराजुद्दौलाने कलकत्ता आक्रमण और अधिकार किया था। उस समय उनके आदेशसे (अल्पकालके लिये) इसका नाम 'अलीनगर' रखा गया। फिर अन्धकूपहत्या हुयी। दूसरे वर्ष ही जनवरी मास क्लाइव और वाटसनने कलकत्ता ले लिया। उमीचन्द, अन्धकूप और क्लाइव शब्द देखो। १७५७ ई० की ९वीं फरवरीको सिराजुद्दौलासे सन्धि चली। सन्धिमें ठहर गया,—"कम्पनीको सनदसे मिले सब ग्रामोंका अधिकार देना पड़ेगा और बेचनेमें जमीन्दारोंको कोई वक्तव्य न रहेगा।"

पलासी युद्धके पीछे नवाब मीरजाफर नये सूबेदार हुये। उन्होंने किसी सन्धि द्वारा अङ्गरेजोंको कलकत्तेका मौरूसी जमीन्दार बना दिया।†

पलासी और मीरजाफर देखो।

उस सन्धि द्वारा मध्यस्थित भागको छोड़ मीरजाफरने कम्पनीको कलकत्तेकी सीमासे बाहर ११०० हस्त परिमित भूमि सौंपी थी। फिर उन्होंने कलकत्तेसे दक्षिण कुलपी तक कम्पनीको जमीन्दारी ठहरायी। मीरजाफरकी आज्ञा थी—इस अंशके समस्त कर्मचारी कम्पनीके अधीन रहेंगे और दूसरे जमीन्दारोंकी भांति अङ्गरेज़ भी राजस्व दे देंगे।‡

दूसरे वर्ष १७८५ ई०के दिसम्बर मास फर्दसवालातसे तालुक या जागीरकी तौर पर कलकत्ता कम्पनीके हाथ आया। अर्थात् अङ्गरेज़ वणिकोंने अपनी कोठी सुरक्षित रखनेका अधिकार पाया। बन्दरोंकी देखभाल भी उन्हींके अधीन रहनेसे मीरजाफरने ८८३६) रु० रिहा कर कम्पनीको कलकत्ता,

* Orme's History of India, Vol. II. p. 15.

† Holwell's Indian Tracts, 2nd ed. 1764. p. 140.

* Selections from the Unpublished Records of the Government, p. 56.

† Bolt's Indian Affairs, p. 81.

‡ Rise, Progress and State of the English Government in Bengal, by Harry Vereilest, 1772. App. p. 154

पाइकाम, मानपुर तथा अमीराबाद चार परगनोंके बीच २० मौजे और दो बाजार दे डाले। फौजदारीका काम भी अङ्गरेज ही करते थे। मौजोंके नाम यह हैं,—१ गोविन्दपुर, २ मिर्जापुर, ३ चौरङ्गी, ४ धलन्द, ५ जिलेकोलन्द, ६ बेलेडांगा, ७ आनहाटी ८ सियालदह, ९ बाहरबिर्जी, १० किसपुर पाड़ा, ११ बाहर श्रीरामपुर, १२ सूतानुटी, १३ हुगलकुड़िया, १४ शिमला, १५ माखन्द, १६ आड़िङ्गी, १७, डिही कलकत्ता, १८ दक्षिण पाइकपाड़ा, १९ श्रीरामपुर और २० मलङ्गा खालसेका मध्यवर्ती गणेशपुर। दोनों बाजार—१ सूतानुटी बाजार और २ गोविन्दपुर बाजार थे।

उपरोक्त ग्रामसे कई मराठा-खातकी सीमामें और कई उससे १२०० हाथके बीच रहे। किन्तु उस समय लोग साधारण बातचीतमें मराठा-खातको ही कलकत्तेकी सीमा ठहराते थे। फिर भी कम्पनीके २४ परगना लेते समय मराठा-खातसे बाहर पड़नेवाले उक्त स्थान कलकत्तेकी ही सीमामें रहे। उक्त सकल स्थान और दूसरी कितनी ही भूमिको कलकत्ते तथा २४ परगनेसे विभिन्न रख डिही पञ्चान्नग्राम बनाया गया। आजकल जो ग्राम कलकत्ते शहरके महल्ले समझे जाते,वही पहले डिही पञ्चान्नग्राम कहाते थे। १८५७ ई०को २१वें आईनके अनुसार पञ्चान्नग्रामकी समस्त भूमि कलकत्तेमें लगा ली गयी। फिर उसका अति सामान्य अंश छूटा था।* इसके समझनेका कोई उपाय नहीं—किस समय कलकत्ते और पञ्चान्नग्रामके मध्य सीमा निर्धारित हुयी। किन्तु प्रश्न उठनेपर १७९४ ई०को १० वीं सितम्बरको गवरनर जनरलने व्यवस्थापक-सभासे एक आईन† निकाल घोषणापत्र द्वारा कलकत्तेकी सीमा ठहरायी थी। संक्षेपमें उसका मर्म नीचे उद्धृत है,—

उत्तर सीमा—भागीरथीके पश्चिम तीर बागबाजारवाले खालके मुखसे पुराने पावड़ेके मिल बाजार हो कर दमदमे जानेकी राह पोल (श्यामबाजार पोल)के पाददेश पर्यन्त। पूर्व सीमा—मराठा खातके पश्चिम किनारे अथवा उसके पार्श्वस्थ मार्गके पूर्व किनारे होकर हावसी-बगानके उत्तरकोणसे उक्त खातके दक्षिण किनारेके पूर्वमुख, वहांसे खातके उत्तर किनारे पश्चिम मुख, उक्त स्थानसे खातके पश्चिम एवं बैठकखाना राहके पूर्व किनारे दक्षिण ओर मराठा खातकी शेष सीमा होकर राजा रामलोचन बाजारके कोने अथवा नारायण चाटुर्यो सड़ककी ठीक विपरीत ओर बेलेघाटाकी सड़क जाने तक। फिर मिर्जापुरके बीच बैठकखाना सड़कके पूर्व किनारे होकर और पोर्तुगीजोंके गोरस्तानको पूर्वदिक् छोड़ बैठकखानेके प्राचीन सुविख्यात वृक्ष तक, अर्थात बहूबाजाररोड और बैठकखाना बाजारकी विपरीत ओर सड़कके दोनों पार्श्व बैठकखाना राहके पूर्व किनारेसे गोपीबाबूके बाजार और वहांसे सीधे चल उक्त राहकी पश्चिम मोड़ तक। वहां डिही श्रीरामपुर पूर्व तथा दक्षिण पूर्व छोड़ कुछ दूर आगे बढ़ने पर पूर्व सीमा शेष हुयी है। कलकत्ते शहरकी प्रोटेष्टाण्टोंका तत्कालीन गोरस्तान, चौरङ्गी और डिही बिर्जी इसी सीमाके अन्तर्भूत थी। दक्षिण सीमा—उक्त स्थानसे वाम दिक् घूम डिही बिर्जीके अन्तर्गत बनियापोखर या एंचिड़यापोखर सीमारेखाके मध्य छोड़ पश्चिमाभिमुख चौरङ्गीके बड़े मार्गसे विपरीतदिक् रसापागला सड़कसे लेकर पुलिस थाने और साधारण अस्पतालके मध्य मामूली सड़ककी दक्षिण ओर थोड़ी दूर चल पुनर्वार पश्चिममुख साधारण अस्पताल, पागलागारद तथा डिही भवानीपुरके अस्पतालका गोरस्तान छोड़ अलीपुरके पाददेश पर्यन्त। यहांसे अलीपुर पुलकी दक्षिण होकर टाली नाले (आदिगङ्गा)की उत्तरलरेखाके चिह्न तक। फिर क्रमान्वयसे आगे बढ़ खिदिरपुरके पुल होकर बेहनशा डक छोड़ आदिगङ्गाके मुख तक (जहां भागीरथीसे आदिगङ्गा मिली है)। उक्त स्थानसे ठीक सामने चल नदीके अपर वा पश्चिम पार मेजर किडवाले बागके दक्षिण-पूर्वकोण (उक्त बाग और शिवपुरको छोड़) पर

* Census Report of Calcutta, 1876 by Mr. Beverly.
† 159th Section Cap. 52 of the Act passed in the 33 year of His Majesty's reign.

दक्षिण सीमा-का अन्त है। पश्चिम सीमा—प्रेषोक्त स्थानसे लगाकर भागीरथीके पश्चिम तीर निम्न जल-रेखाके चिह्न हो क्रमशः रामकृष्णपुर, हावड़ा और सलकियाघाट छोड़ चितपुरवाले पुलके निकट (नदीके पश्चिम तीर) पूर्वोक्त जाफरपुरमें कर्नेल रावर्टसनके बागके उत्तर कोण होकर शेष हुयी है।

पूर्वकथित विधि (Act 56)के अनुसार स्थानीय गवरनमेण्ट सीमा बदलनेको सक्षम थी। किन्तु कलकत्तेकी सीमामें फिर कुछ हेरफेर न हुवा। किन्तु मालूम नहीं—किस समय कलकत्ते और पञ्चान्नग्राम उभयकी सीमा ठहरायी गयी। १७९४ ई०को घोषणा-पत्र निकलनेसे इस सीमाके सम्बन्धमें कुछ गड़बड़ पड़ा। क्योंकि उसमें पूर्व सीमाके लिये लिखा था—जहां तक मराठा खात देख पड़ता, वहीं कलकत्तेकी सीमाका अन्त मिलता है।* किन्तु न तो यह खात सम्पूर्ण खोदा गया और न मछुवाबाजार सड़कके दक्षिण इसका कोई चिह्न देख पड़ा। यहांसे आगे सरकुलर रोड (उस समय इसको बैठकखाना रोड कहते थे) और सरकुलर रोडसे आदिगङ्गाके दक्षिण तक सीमा लगी है। स्पष्ट समझ नहीं सकते १७९४ ई०को कहां तक पूर्वदक्षिण सीमा रही। १७५७ ई०को कलकत्तेका जो मानचित्र बना, उसकी नापमें सम्भवतः भ्रम था। अथवा कलकत्तेकी सीमा उस समय सम्पूर्ण भिन्न थी। उक्त मानचित्रमें एसप्लेनेडकी भूमिका परिमाण असली नापसे बिलकुल आधा लगा है। फिर १८३८ ई०को 'फीवर हसपिटाल कमिटी'के समक्ष साक्ष्यप्रदानमें डाक्टर निकोलसन साहबने कहा था,—'३० वत्सर पूर्व साधारण तथा सामरिक अस्पतालसे आध मील दक्षिण एक स्तम्भ प्रोथित था। उसमें लिखा रहा—यहां फोर्ट विलियमका एसप्लेनेड-शेष हुवा है।'† फलतः यह निर्णय करना अतीव सुकठिन है—किस समय कलकत्तेकी क्या सीमा थी।

आदिगङ्गा और भागीरथी-सङ्गमके मुख पर एक सेतु है। वह मारक्विस अव-हेष्टिङ्गसके शासन काल साधारण चन्देसे बना था। इसीसे उसका नाम 'हेष्टिङ्गस ब्रिज' पड़ा। खिदिरपुरसे उक्त सेतु पार-कर कुलीबाजार जाना पड़ता है। यहां गवरनमेण्टकी कमसरियटके गुदाम हैं। १७७५ ई०की ५ वीं अगस्तको ब्राह्मण-वंशके महाराज नन्दकुमारने यहीं फांसी पायी थी। नन्दकुमार देखो।

वर्तमान अलीपुरके सेतुसे थोड़ी दूर दो वृक्ष रहे। उन्हींके नीचे वारेन हेष्टिङ्गस और सर फिलिप फ्रान-सिसका द्वन्द्वयुद्ध हुवा। अलीपुरके सामरिक अस्पताल-में पहले सदर दीवानी या अपीलकी अदालत लगती थी। बड़ी अदालतसे मिल जानेपर उक्त भवनमें सामरिक अस्पताल (Military Hospital) हो गया। भवनसे पूर्व नगरके सामने पागला गारद और साधा-रण चिकित्सालय (General Hospital) रहा। शेषोक्त भवन पहले किसी धनीका बाग था। पीछे १८८३ ई०को गवरनमेण्टने उसे मोल ले साधारण चिकित्सालय स्थापन किया।

उक्त चिकित्सालयसे कुछ पूर्वदिक् आनेपर चौरङ्गी नामक मार्ग है। यह चितपुरसे कालीघाट तक विस्तृत है। पहले यात्री चितपुरमें चित्रेश्वरीका दर्शन कर कालीघाट जाते थे। चौरङ्गीसे पश्चिम किलेका मैदान और पूर्व सम्भ्रान्त अङ्गरेजोंके रहनेका स्थान है। पूर्व-कालको यह स्थान और मैदान निविड़ वनसे आच्छन्न था। वन्य वराह व्याघ्र प्रभृति हिंस्रक जन्तु इसमें भरे रहे। वनके मध्य दुर्दान्त डाकुवोंका अड्डा था। अस्त्रशस्त्र न लेकर इस पथमें चलना कठिन रहा। किसी किसीके कथनानुसार उस समय यहां गोरक्ष-नाथके एक शिष्य वास करते थे। उनका नाम चौरङ्गी हठयोगी रहा। इसीसे लोग इस राहको चौरङ्गी कहते हैं। परन्तु चौरङ्गी नाम अधिक दिनका प्राचीन समझ नहीं पड़ता। १७५८-५९ ई०को नवाब मीरजाफरके पुत्र मीरनने एक सनद दी थी। उसके एक पत्रमें सबसे पहले चौरङ्गी मौजेका नाम लिखा गया। उस समय यह स्थान कुछ परगने कलकत्ते और कुछ परगने पाइ-

* Selections from the Calcutta Gazette, Vol. II by W. S. Seton Karr, C. S. p. 129.

† Census Report of Calcutta, 1876, by H. Beverly, Esqr C. S. p. 34.

कानमें लगता था। १७५७ ई०को यहां वन परिष्कार होने लगा। चौरङ्गीकी वर्तमान समस्त सौधमाला आधुनिक है। तत्सामयिक आपजान साहबका मानचित्र देखतेही समझ सकते—१७९४ ई०को यहां कुल २४ मकान् थे। उस समय यहां (वर्तमान मिडलटन रो नामक गलीके 'लोरेटो हाउस' नामक मकानमें) सर इलाइजा इम्पी रहे। उनके मकानके निकट पुष्करिणी (झील) थी। यह झील पूरते समय साङ्घातिक विशूचिका रोगका सूत्रपात हुवा। इसीसे वर्तमान 'मिडलटन रो' नामक मार्ग कुछ दिन 'कालरा ष्ट्रीट' या विशूचिकामार्ग (हैजे की राह) कहा गया। यह समस्त स्थान इम्पीके उद्यानमें रहे।

कलकत्ता नामकी उत्पत्ति।

कलकत्ते नामके सम्बन्ध पर लोग अनेक कथा कहा करते हैं। उनमें दो एक बात हम सुनाते हैं।

१ प्रवाद है—सर्व प्रथम एक अङ्गरेज यहां आये थे। उन्होंने किसी दूसरेको न देख एक कृषकसे इस स्थानका नाम पूछा। वह अङ्गरेजी बोली समझ न सका। उसने अपने मनमें सोचा—साहबने मेरे धान्यके विषयमें प्रश्न किया। इसीसे वह कह उठा—'कल काटा' अर्थात् कल धान्य काटा था। बस साहबने इस स्थानका नाम 'क्याल क्याटा' ठहरा लिया।

२ लङ्ग साहबके कथनानुसार सम्भवतः मराठा खात अर्थात् 'खाल काटा'से कलकत्ता नाम निकला है।

३ किसी किसी विचक्षण अङ्गरेजके मतमें 'कलिचूण'से कलकत्ता नामकी उत्पत्ति है।

४ कोई कालीघाट शब्दको कलकत्ते नामका आदिरूप बताता है।

ऊपर लिखी सब बातें हमारी विवेचनामें युक्तियुक्त वा प्रामाणिक मानी जा नहीं सकतीं।

अङ्गरेजोंके आगमन और मराठा-खातके खननसे पहले कलकत्ता विद्यमान था। क्योंकि यह बात अबुल फजलके आईन-इ-अकबरी ग्रन्थमें देख पड़ती है। सुतरां 'काल काटा' प्रवाद और खाल काटा'से कलकत्ता नाम बनाना अत्यन्त उष्ण मस्तिष्कको कथा है।

कालीघाट शब्दसे भी कलकत्ता नाम नहीं निकला। क्योंकि भारतीय नाना स्थानके प्राचीन तथा आधुनिक जनपद नगरादिका नाम मनोयोगपूर्वक देखनेसे समझा जा सकता—कालीके स्थानमें 'कल' और घाटके स्थानमें 'कत्ता'की तरह अपभ्रंश वा नाम परिवर्तन कभी नहीं पड़ता। विशेषतः कालीघाटके स्थानमें कलकत्ता बनना शब्द शास्त्रके नियमसे सम्पूर्ण बहिर्भूत है। भारतमें जिस स्थानके नामसे पहले 'काली' शब्द आता, वह भारतवासियों क्या मुसलमानोंके द्वारा भी विभिन्न बोला नहीं जाता। सुतरां यह अयौक्तिक सिद्धान्त एककाल ही छोड़ना उचित जंचता, कि कालीघाट नामसे 'कलकत्ता' बनता है। कालीघाट देखो।

इस नगरको देहाती बङ्गाली 'कोल्काता' और हिन्दुस्थानी 'कलकत्ता' कहते हैं। बंगला भाषामें 'कलिकाता' लिखते भी 'कोलिकाता' बोला जाता है। हमारे एक विश्वस्त बन्धुने 'कोल्का हाता' या 'कोलिका हाता' नामसे 'कलकत्ता'की उत्पत्ति मानी है। उनके अनुमानानुसार प्राचीन कालको कोल अथवा कोलि जातिके लोग यहां नदी किनारे रहते थे। सम्भवतः उन्हींके वास करनेसे कोल्काता या कोलिकाता नाम पड़ा गया। संस्कृत, प्राकृत, पालि और द्राविड़ भाषामें 'कोल' शब्दका अर्थ शूकर मिलता है। फिर सुन्दरवनमें परिणत रहते समय कलकत्ता भी विस्तर शूकरोंसे भरा था। अनुमानमें उसी समयसे इस स्थानका नाम 'कोल्काता' चला है। अकबरके समय (सम्भवतः उसके भी पूर्व) कलकत्ता महालके प्रान्तवर्ती नीच लोग शूकर पकड़नेका व्यवसाय करते थे। वराहनगर* इस व्यवसायका प्रधान स्थल था। ओलन्दाजों और फरासीसियोंकी ईष्ट इण्डिया कम्पनीका इतिहास पढ़नेसे अनेक स्थलमें इस बातका प्रमाण मिलता है। फिर भी निःसन्देह कहा जा नहीं सकता—शूकर अथवा

* वराहनगर नाम आधुनिक नहीं। प्राचीन ओलन्दाजों तथा फरासीसियोंके पुस्तक और अकबर बादशाहके समसामयिक कवि माधवाचार्यके चण्डीग्रन्थमें वराहनगरका उल्लेख विद्यमान है।

कोल जातिके नामसे कलकत्ता शब्द निकलता है। इसलिये अब विवेचना करना चाहिये—कैसे कलकत्ता नाम पड़ा था।

आजकल बङ्गाली कलिकाता और हिन्दुस्थानी कलकत्ता कहा करते हैं। किन्तु आजकल इस बात पर बड़ा सन्देह है—अकबरके समयमें एवं अङ्गरेजोंके आनेसे पहले इस स्थानको क्या प्रकृतरूप कलिकाता अथवा कलकत्ता कहते थे? हम पूर्व बतला चुके—आईन-इ-अकबरीमें 'कलकत्ते महाल' और कविकङ्कणके मुद्रित चण्डीग्रन्थमें 'कलिकाता' नामका उल्लेख मिला है। किन्तु दूसरा विषम विभ्राट् यह उपस्थित हुवा—एशियाटिक सोसाइटीके प्रथम प्रकाशित आईन-इ-अकबरी ग्रन्थमें सातगांव सरकारके बीच कलकत्ता महालके उल्लेखसे नीचे 'कलुता', 'कलना', 'तलपा' आदि पाठान्तर पड़ा है। फिर मुद्रित पुस्तकमें रहते भी कविकङ्कण-रचित चण्डीमङ्गलकी कई प्राचीन पोथियोंमें 'कलिकाता' नाम नहीं मिलता। सिवा इसके अकबरके समसामयिक कवि माधवाचार्यके चण्डी ग्रन्थमें धनपति एवं श्रीमन्तकी समुद्रयात्राके वर्णनकाल वराहनगर, चितपुर, कालीघाट प्रभृति पार्श्वस्थ स्थानोंका उल्लेख आया है। किन्तु कलकत्ता नाम उसमें भी देख नहीं पड़ता। ईष्ट-इण्डिया-कम्पनीके पत्रादि ढूंढनेसे सर्व प्रथम १६८८ ई०को १६वीं अगस्तको कलकत्ता (Calcutta) नामका उल्लेख मिलता है। इसलिये बड़ा सन्देह उपस्थित हुवा है—ई० १६ वें शताब्दसे पूर्व 'कलिकाता' या 'कलकत्ता' नाम वर्तमान था या नहीं। कारण ओलन्दाज वालेण्टाइनके मानचित्रमें प्राचीन कलकत्ता ग्रामके उभय पार्श्वस्थ चिट्टानुटी (वा सूतानुटी) और गोवर्णपुर (वा गोविन्दपुर)का उल्लेख पड़ा है। किन्तु कलकत्तेका नाम कहीं नहीं। फिरभी दूसरे स्थान पर वालेण्टाइनने किसी कलकत्ता (Calcuta) ग्रामकी बात लिखी है। करनेल यूल साहब उक्त स्थानको 'खोलखाली' अनुमान करते हैं। कम्पनीके समय किसी अतिप्राचीन समुद्रयात्रीके मानचित्रमें 'कलकला'के स्थान पर कलकत्ता (Calcutta) लिखा देख पड़ता है। फिर टामस किचेन नामक किसी भौगोलिकने कलकत्ता (Calcutta) की जगह 'कलकला' (Culcula) नाम व्यवहार किया है। यूलके कलकलाको 'खोलखाली' मानते भी आनुषङ्गिक प्रमाणसे समझ पड़ता—किसी समय कलकत्तेको कोई कोई 'कलकला' भी कहता था। वास्तविक १६८८ ई०से पहले किसी पत्रादिमें स्पष्टतः कलकत्तेका उल्लेख नहीं आया। फिर १६५६ ई०के ओलन्दाज मानचित्रमें सूतानुटी और गोविन्दपुरका नाम मिलते भी कलकत्ता छिपा है। हां एक स्थल पर उसमें 'कलकला' नाम लिखा है। इससे अनुमान किया जा सकता कि कलकत्तेका प्राचीन नाम 'कलकला' था।

राजा राधाकान्तदेवने अपनी शैशवावस्थाकी वृन्दावनधाममें एक बंगला पदावली बनायी थी। उन्होंने अपनी मुद्रित पदावलीके मुखपत्रमें 'कलिकाता' स्थान पर 'किलकिला' नाम दिया है। इससे समझ पड़ता; कि राजा राधाकान्तको कलकत्तेका अपर नाम किलकिला अवश्य अवगत था। राजा प्रतापादित्यके समसामयिक कविरामने अपने बनाये दिग्विजयप्रकाशमें 'किलकिला' भूमिका विवरण लिखा है। उसे हम पहले ही यथास्थान वर्णन कर चुके हैं। इसमें सन्देह नहीं, कि उक्त भूमि ही आईन-इ-अकबरीका 'महाल कलकत्ता'* रही। यह असम्भव कैसे हो सकता, कि उसी किलकिलाको बिगाड़ कर ओलन्दाज भौगोलिकने 'कलकला' लिखा था। कविरामके दिग्विजय प्रकाशमें एक स्थल पर किलकिलाका वर्णन मिलता है। उससे किलकिला भूमिके अन्तर्गत किलकिला नामक ग्राम भी समझ सकते हैं,—

"किलकिला दक्षिणांशे योजनत्रयव्यापये।
सहस्रधारा गङ्गा हि जाता च कलिकीटके॥"

(किलकिला विवरण १६७ श्लो०)

उक्त किलकिला प्राचीन कलकत्ता ग्राम ही मालूम

* यह वर्तमान शहर कलकत्ता ही नहीं सकता। कारण अकबरसे बहुत पीछे ईष्ट इण्डिया कम्पनीके प्रथम उपनिवेश बसाते समय कलकत्ता एक सामान्य ग्राम कहाता था।

होता है। सम्भवत: किलकिला ही कलकत्तेका अति प्राचीन नाम है। किलकिलाके अपभ्रंशसे ही आईन-इ-अकबरी प्रभृति ग्रन्थमें कल्‌कता, कलूता, कलूना, कल्‌कत्ता, कलकत्ता, कलिकता आदि शब्दकी उत्पत्ति है। मालूम पड़ता, कि भाषासे लिखे भिन्न भिन्न आईन इ-अकबरी ग्रन्थमें पाठान्तर चलता है। सुतरां किलाकिला शब्द भाषान्तरसे लिखते कल्‌कता, कलकता, कलकत्ता हो सकता है।

गोविन्दपुर नामकी उत्पत्ति।

कलकत्तेके भूतपूर्व कलक्टर होलवेल साहबके मतमें गोविन्दराम मित्रके नामसे गोविन्दपुर बना है। फिर बड़े बाज़ारके सेठ बसाकोंके कथनानुसार यहां उनके इष्टदेव गोविन्दजीका मन्दिर था। उसीसे इस स्थानका नाम गोविन्दपुर पड़ गया। यह दोनों मत विशेष युक्तिसङ्गत मालूम नहीं होते। प्रथमत: गोविन्दराम मित्रके बहुत पहले गोविन्दपुर नाम विद्यमान था। द्वितीयत: यदि गोविन्दजीके नामसे गोविन्दपुर निकलता, तो सकल प्राचीन ग्रन्थोंमें गोविन्द-पुरके साथ गोविन्दजीका उल्लेख अवश्य मिलता। कविराम विरचित दिग्‌विजयप्रकाश नामक ग्रन्थमें गोविन्दपुरके नामकरण सम्बन्ध पर जो विवरण मिला, उसे नीचे लिखा है,—

"इदानीं नृपशार्दूल चरभूमौ कथा शृणु।
कालीदेव्या: सन्निधौ च गङ्गायां प्राचके तटे॥ १०५२
गोविन्ददत्तो राजा च कलिवेदाब्दछद्मगो।
सिन्धुसङ्गमतीर्थयात्राकरणार्थं समागत:॥ १०५३
गोविन्ददत्तभूपालं तीर्थात् प्रत्यागतं शुभम्।
कालीदेवी स्वप्नच्छलो नौकायामनुवाच ह॥ १०५४
अकर्पणीपुरीं राजन् आगच्छ हि ममाज्ञत:।
वादरं रसा पृथिव्याञ्च छेदयित्वा वृक्षादिकम्॥ १०५५
पुरं.........महतीं मत्प्रकाशत:।
प्राप्स्यसि शुभं भूपाल ते कल्याणं न चेदपि॥ १०५६
कालीदेव्या वचो श्रुत्वा गङ्गायाश्च तटान्तरे।
वसतिं भूयसीं तत्र चकार हि मुदान्वित:॥ १०५७
पारीन्द्र ग्रामात सर्वाणि द्रविणानि महीपति:।
आनयित्वा च वसतिं कृतवान् सुरसरित्तटे॥ १०५८
लाङ्गुली त्रिस्कन्धयुत: देव्या: पृष्ठे च वर्तते।
यदादेशेन तस्या वै.........॥ १०५९
आज्ञा तेनैव भूपेन मृत्तिकाभ्यन्तरे निधि।
काञ्चनरूपं पूरितायालभ्या देवासुरैरपि॥ १०६१
रौप्य द्रविणान्येव प्राप्य गोविन्दभूपति:।
चतु:षष्टिसंख्याकैश्च वलिभि: पूजनं कृतम्॥ १०६१
गोवृद्ध्या वित्तवृद्ध्या तेजोवृद्ध्या हि भूमिप।
वभूव गोविन्ददत्तो वर्द्धिष्ठप्रवरो महान्॥ १०६२
भागीरथीपूर्वतटे पुरीवर्धनहेतवे।
वास्तुयागं द्विजान् नीत्वा चकार वासहेतवे॥"१०६३

हे नृपश्रेष्ठ! अब चरभूमिकी कथा सुनिये। काली देवीके निकट गङ्गाके पूर्व तट पर ४४०० कल्यब्दको *सिन्धुसङ्गम (गङ्गासागर)* तीर्थ यात्रा करने गोविन्द-दत्त राजा आये थे। वह सकुशल तीर्थसे लौट पड़े। फिर स्वप्नके छलसे काली देवीने उन्हें नौकामें ही आदेश दिया,—"हे राजन्। मेरी आज्ञासे तुम अकर्पणपुरीको चलो और बादररसा पृथिवीमें वृक्षादिक काटा मेरे निकट एक बड़ी पुरी स्थापन करो। नहीं तो तुम्हारा अमङ्गल होगा।" काली देवीकी बात मान राजाने गङ्गातटके अन्तर पर बड़ी बसती बनायी। पारीन्द्र ग्रामसे सब धनरत्न मंगा सुरसरित्‌के तटपर लोग बसाये गये। देवीके पृष्ठ पर दो हल रखे थे। उनके आदेशसे हलोंके नीचे खोदने पर मृत्तिकाके अभ्यन्तरमें काञ्चनका ढेर देख पड़ा, जो देवों और असुरोंको भी अलभ्य था। भूरि भूरि द्रव्य पानेसे प्रसन्न हो गोविन्द भूपने चतु:षष्टि वलि द्वारा पूजन किया। गोत्र, वित्त और तेज बढ़नेसे गोविन्ददत्त महान् वर्धिष्ठ प्रवर भूमिप बन गये। फिर उन्होंने पुरीके वर्धन हेतु भागीरथीके पूर्व तट पर ब्राह्मणोंको बोलाकर वास्तुयाग किया।'

कविरामकी उक्त वर्णनासे समझ पड़ा, कि राजा गोविन्ददत्तसे इस स्थानका नाम 'गोविन्दपुर' चला था।

सूतानुटी।

पहले सूतानुटीके सम्बन्धमें बहुत सी बातें कह चुके हैं। यहां अङ्गरेजोंके आनेसे पहले तन्तुवाय (जुलाहे) सूतका गोला (नुटी वा लुटी) बना (उस समयकी *सूतानुटीके)* बाज़ारमें (*वर्तमान* हटखोलेके पास) बेचते थे। इसी बाज़ारका नाम सूतानुटीका हाट रहा। बाज़ारके सामनेही सूतानुटी घाट था। यहां

अङ्गरेज़ वणिक् उतर तन्तुवायोंसे सूत (वा सूतकी नुटी अर्थात् गोली) क्रय करते रहे। इसी बाजारके पार्श्वमें दूसरा बड़ा बाज़ार था। मालूम पड़ता,—युरोपीय वणिकोंने सूतानुटीहाटके निकटवर्ती समुदाय स्थानका नाम सूतानुटी रखा है। कारण अङ्गरेजों अथवा अपरापर युरोपीयोंके आगमनसे पहले किसी देशीय पत्रमें 'सूतानुटी' नाम नहीं मिलता। अङ्गरेजोंके अधिकार कालसे १७७८ ई० पर्यन्त यह स्थान ईष्ट इण्डिया कम्पनीके अधिकारमें रहा, फिर उसी वर्षकी १६वीं जनवरीको नवापाड़े मौजेके परिवर्तनमें महाराज नवकृष्णके हाथ लगा। ईष्ट इण्डिया कम्पनीने महाराज नवकृष्णको जो पत्र (सनद) दिया, उसमें इन कई स्थानोंका नाम लिखा है,—१ महाल सूतानुटी (२३३७ बीघा), २ हाट सूतानुटी, ३ बाज़ार सूतानुटी, ४ सूबा बाज़ार, ५ चार्लस बाज़ार, ६ बाग़बाजार (१०० बीघा) और ७ डुगलकुड़िया (२९७) बीघा। इसके लिये महाराज नवकृष्णको प्रतिवर्ष १२३७) रु० और कुछ आने महसूल लगता था।* आज भी शोभाबाज़ारके राजवंशीय उक्त स्थानोंको तालुकदारीका स्वत्व भोग करते हैं।

विद्यालय—कलकत्तेमें ४ सरकारी (गवरनमेण्ट), ५ मिशनरी और लोगोंके यत्नसे स्थापित ५ देशीय कालेज (विद्यालय) विद्यमान हैं। डाक्टरी (चिकित्साविद्या) सिखानेको मेडिकलकालेज, कार्माइकेलकालेज तथा काम्बेल मेडिकल स्कूल और शिल्पशिक्षाके लिये आर्ट स्कूल वा शिल्पविद्यालय (Government School of Art) खुला है। सिवा इसके ३०० अपर विद्यालय चलते हैं। इनमें १५५ बालकों और १४५ विद्यालय बालिकाओंके लिये है। फिर ८२ में बालकोंको अङ्गरेज़ी तथा ७२ में बंगला और १२० विद्यालयोंमें बालिकाओंको बंगला पढ़ाई जाती है। पुरुषों और स्त्रियोंको शिक्षकता सिखानेके लिये ३ नार्मल स्कूल भी विद्यमान हैं। इधर हिन्दुस्थानी बालक श्रीविशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालयमें संस्कृत, हिन्दी और अङ्गरेज़ी पढ़ते हैं।

अस्पताल—कलकत्तामें ८ बड़े अस्पताल खुले हैं, मेडिकल कालेज अस्पताल, मेयो अस्पताल, काम्बेल अस्पताल, स्थानीय पुलिस अस्पताल, बेलगछिया अस्पताल और स्त्रियोंका डफारिन तथा ईडेन अस्पताल। हरीसनरोडपर मारवाड़ियोंका भगवान्दास बागला अस्पताल विद्यमान है।

धर्मसमाज—कलकत्तेमें नाना जातियोंके रहनेसे अनेक धर्मसमाज देख पड़ते हैं। हिन्दुओं, मुसलमानों और ईसाइयोंके धर्मसमाज छोड़ ५६ हरिसभा और ३ ब्राह्मसमाज भी हैं। कार्णवालिस ष्ट्रीटपर आर्यसमाज लगता है।

जल—बङ्गालके अपर स्थानोंकी भांति यहां पुष्करिणी (तालाब)का जल किसीको पीना नहीं पड़ता। म्युनिसिपालिटी कलका जल सर्वत्र पहुंचाती है। यह जल पलता नामक स्थानसे आता और कारखानेमें अच्छी तरह शोधित हो नलसे चारो ओर जाता है। आजकल प्रायः प्रत्येक गृहमें कमसे कम जलकी एक एक कल लगी है। फिर साधारणको सुविधाके लिये राहकी मोड़ों पर भी बड़ी कल खड़ी की गयी है। बीच बीच स्नानागार बने हैं। पहले हिन्दुस्थानी लोग कलकत्तेमें आकर बीमार पड़ जाते थे। किन्तु कलका पानी पीनेको मिलनेसे अब वह बात नहीं रही। अनेक धर्मप्राण पुरुषों और विधवा स्त्रियोंके व्यवहारमें अपवित्र होनेसे कलका जल काम आता है। इसलिये उन्हें भागीरथीका जल मंगाकर पीना पड़ता है। किन्तु भागीरथीका जल समुद्रकी लहर आनेसे खार लगता और साधारणतः स्वास्थ्यके लिये ठीक नहीं पड़ता। प्रातःकालसे सायंकाल पर्यन्त भागीरथीके तट पर स्नान करनेवालोंकी भीड़ रहती है।

गैस और बिजली—सन्ध्या समय सेही कलकत्तेको

---

* कलकत्ते, गोविन्दपुर और सूतानुटीके प्राचीन भौगोलिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं वाणिज्यघटित विषय समझनेके उपायको विशेष चेष्टाके साथ अवलम्बन करना चाहिये। सदर बोर्ड, कलकत्ते या चौबीस परगनेकी कलक्टरी, मन्द्राजके पुराने दफ्तरों, विलायतकी इण्डिया आफिस लाइब्रेरी और ब्रिटिश म्युजियम (अङ्गरेजी अजायब घर)में पुरातन पत्र (कागज़) विद्यमान हैं। उन्हें ढूंढनेसे अनेक ऐतिहासिक तत्त्व प्रकाशित हो सकते हैं।

बड़ी बड़ी राहों और छोटीमोटी गलियोंमें बिजली तथा गैसकी रोशनी होती है। इसलिये दिनकी भांति रातको चलने फिरनेमें कोई कष्ट नहीं पड़ता। फिर बिजलीसे ट्राम, आटा पीसनेकी चक्की और छापेकी कल भी चलती है। घर घर बिजलीके पङ्खे लगे हैं।

ड्रेन—कुछ दिन पहले कलकत्तेकी राहोंके इधर उधर गन्दा नाला था। किन्तु अब वह बात नहीं रही। प्रायः सर्वत्र भूमिके भीतर ड्रेन चलता है। सब जगहका मैला उसमें गिर धावेके बिल पहुंचा करता है। कलकत्तेके रहनेवालोंको नालेका दुर्गन्ध भोगना नहीं पड़ता।

बन्दर और व्यवसाय—कलकत्ता बन्दर भागीरथी किनारे ५ कोस विस्तृत है। १८७० ई०से पोर्ट कमिश्नरोंका तत्त्वावधान चलता है। १८७१ ई०को २२ लाख रुपये खर्चकर कलकत्तेसे हावड़े तक वर्तमान बड़ा पुल बना था। पोर्टकमिशनर ही इसकी देख भाल रखते हैं। फिर पोर्ट कमिश्नरोंका प्रधानकार्य भागीरथी किनारे जहाज, नाव तथा माल रखनेकी जेटी एवं गुदाम बनाना, नदी पर रोशनी कराना और नौकादिका अनिष्ट बचाना है। कलकत्तेका वाणिज्य जहाज और रेलसे नाना देशोंके साथ होता है। प्रति वर्ष करोड़ों रुपयेका माल आया जाया करता है। मारवाड़ियोंने इसमें पड़ अपनी अच्छी उन्नति देखायी है। यहां पाट (सन)का बड़ा कारबार है।

कलकत्तेमें अजायब घर, चिड़ियाखाना, बोटानिकल गार्डन और सेठ दुलीचन्द तथा राय बदरीदास बहादुरका उद्यान देखने योग्य है। सन्ध्याको एडन गार्डन (लेडी बाग)में बेण्ड बाजा बजता है।

कलकना (हिं० क्रि०) १ चीत्कार करना, चिल्लाना। २ दुःख करना, रञ्ज मानना।

कलकफल (सं० पु०) दाड़िमवृक्ष, अनारका पेड़।

कलकल (सं० पु०) कलादपि कलः, कलशब्दे अच्; कलः प्रकारः, प्रकारार्थे द्वित्वं वा। १ कोलाहल, शोर, हल्ला। २ सर्जनिर्यास, लोबान, धूना। ३ शिव। ४ जलप्रपातध्वनि, झरनेकी आवाज। ५ विवाद, चकचक, झगड़ा।

कलकल (हिं स्त्री०) कण्डु, खुजली, कसाहट।

कलकलवान् (सं०त्रि०) कलकलो ऽस्यास्ति, कल-कल-मतुप् मस्य वः। कलकलविशिष्ट,चकचक लगानेवाला।

कलकली (हिं० स्त्री०) क्रोध, गुस्सा।

कलकानि (हिं० स्त्री०) कोलाहल, शोर, हल्ला।

कलकि, कलकी (हिं०) कल्कि देखो।

कलकोट (सं० पु०) कलप्रधानः कोटः, मध्यपदलो०। सङ्केतका ग्रामविशेष, गालेका एक ग्राम।

कलकुणिका (सं० स्त्री०) कलं कूजयति उच्चारयति, कल-कूज-णवुल्-टाप् अत इत्वम्। मधुरध्वनिकारिणी, मीठी आवाज निकालनेवाली। २ विलासिनी, फाहिशा, छिनाल।

कलकूजिका, कलकुणिका देखो।

कलकूट (सं० पु०) क्षत्रिय जाति विशेष तथा उसके रहनेका देश।

कलकूणिका, कलकुणिका देखो।

कलक्टर (अं० पु० = Collector) १ संग्राहक, जमा करनेवाला, बटोरु। २ करग्राहक, उगाहनेवाला, जो तहसील करता हो। ३ जिलेदार, जिलेका बड़ा हाकिम। यह मालगुजारी वसूल कराता और मालके मुकद्दमे भी निबटाता है।

कलक्टरी (हिं० स्त्री०) १ जिलेदारी, कलक्टरका ओहदा। २ मालके मुकद्दमेकी अदालत। (वि०) ३ कलक्टर-सम्बन्धीय, कलक्टरके मुतालिक।

कलगट (हिं० पु०) तबर, कुल्हाड़ा।

कलगा (हिं० पु०) वृक्षविशेष, एक पेड़। इसे मुर्गकेश और जटाधारी भी कहते हैं। कलगेका फूल मुर्गेकी चोटी-जैसा लाल और चपटा लगता है। मरसेसे यह मिलता है। वर्षा ऋतु इसकी उत्पत्तिका समय है। आश्विन वा कार्तिक मास कलगा फूलता है।

कलगी (तु० स्त्री०) १ बहुमूल्य पालक, कीमती पर। यह राजावोंकी पगड़ीमें लगती है। कभी कभी इसमें मोती भी पिरो देते हैं। शुतुरमुर्ग वगैरह चिड़ियोंके

खूबसूरत परोंकी ही कलगी होती है। २ शिरोभूषण-विशेष, मर्दोंका एक गहना। यह मुक्ता और सुवर्णसे प्रस्तुत होती है। ३ पक्षियोंकी उच्च शिखा, चिड़ियोंकी ऊंची चोटी। ४ प्रासादशिखर, ऊंची इमारतकी चोटी। ५ किसी क़िस्मकी लावनी। इसकी गानेवाला कलगीबाज़ कहलाता है।

कलघण्टिका (सं॰ स्त्री॰) कृष्णसारिका, काली बेल।

कलघोष (सं॰ पु॰) कलो मधुरो घोषो ध्वनिर्यस्य, बहुव्री॰। कोकिल, कोयल।

कलङ्क (सं॰ पु॰) कल् चासौ अङ्कश्चेति, कल-क्विप् कर्मधा॰। १ चिह्न, निशान्, धब्बा। २ अपवाद, बदनामी। ३ दोष, ऐब। ४ लौहमल, लोहेका कीट। ५ क्रोड़, गोद। ६ मत्स्यभेद, एक मछली।

कलङ्ककर (सं॰त्रि॰) कलङ्कं करोति जनयति, कलङ्क-कृ-ट। १ कलङ्कजनक, बदनामी लानेवाला। २ चिह्न लगानेवाला, जो निशान् डालता हो।

कलङ्ककला (सं॰ स्त्री॰) चन्द्रकी छायामें रहनेवाली कला, चांदका अंधेरा हिस्सा।

कलङ्कधर (सं॰ पु॰) चन्द्र, चांद।

कलङ्कमय (सं॰ त्रि॰) १ चिह्नित, धब्बेदार। २ अपवाद-विशिष्ट, बदनाम।

कलङ्कष (सं॰ पु॰) करेण कषति हिनस्ति, कल-कष-खच्-मुम्। सिंह, पञ्जेसे मारनेवाला शेर।

कलङ्कषा (सं॰ स्त्री॰) कलङ्कष-टाप्। करताल, हथेलियोंकी आवाज़।

कलङ्कहृत् (सं॰ पु॰) कलङ्कं हरति नाशयति, कलङ्क-हृ-क्विप्। कलङ्क मिटानेवाले शिव।

कलङ्काङ्क (सं॰ पु॰) चन्द्रका असित चिह्न, चांदका काला धब्बा।

कलङ्कित (सं॰ त्रि॰) कलङ्को ऽस्य जातः, कलङ्क-इतच्। १ चिह्नयुक्त, धब्बेदार। २ कलङ्कविशिष्ट, बदनाम।

कलङ्की (सं॰ त्रि॰) कलङ्को ऽस्त्यस्य, कलङ्क-इनि। १ कलङ्कित, बदनाम। २ चिह्नयुक्त, धब्बेदार। ३ लौहमलयुक्त, जङ्ग लगा हुवा। (पु॰) ४ चन्द्र, चांद।

कलङ्की (हिं॰) कल्कि देखो।

कलङ्कुर (सं॰पु॰) कं जलं लङ्कयति गमयति भ्रामयति इत्यर्थः, क-लकि-णिच्-उरच्। आवर्त, गिरदाब, पानीका भंवर।

कलङ्गड़ा (हिं॰ पु॰) १ कलिङ्ग, कलींदा, तरबूज़। २ सङ्गीत भेद, एक गाना।

कलङ्गा (हिं॰ पु॰) १ यन्त्रविशेष, लोहेकी एक छेनी। इससे ठठेरे थाल पर नक़्क़ाशी करते हैं। २ छीपियोंका एक ठप्पा। इसमें अठारह फूल पड़ते हैं। ३ तृण-विशेष, एक पौदा। कलगा देखो।

कलङ्गी (हिं॰) कलगी देखो।

कलचिड़ी (हिं॰ स्त्री॰) पक्षिविशेष, एक चिड़िया। इसका उदर कृष्णवर्ण, पृष्ठ धूसर और चञ्चु लोहित होता है। यह मधुर ध्वनिसे बोलती है।

कलचुरि—भारतवर्षका एक प्राचीन राजवंश। चेदि, डाहलमण्डल और कर्णाटमें किसी समय कलचुरियोंने प्रबल प्रतापसे राजत्व किया था। कर्णाट और चेदि देखो। भारतवर्षके नाना स्थानोंसे इनके खोदित शिलालेख और ताम्रशासन निकले हैं।

शिलालेखों और ताम्रशासनोंमें कालचुरी वा कलचुरी नाम मिलता है। किसी किसी प्रत्नतत्त्ववित्‌के मतानुसार इस वंशके राजा शिलाफलकोंमें 'कलत्सुरि' वा 'कलचूर्य' नामसे भी अभिहित हुये हैं।

गुप्तराजावोंके पूर्वप्रताप खोने और हीनबल तथा हीनावस्थ होनेपर कलचुरि कालञ्जर जीत अपना आधिपत्य फैलाने लगे। ३०० ई॰को नर्मदातटस्थ डाहलमण्डल जीत पहले इन्होंने छत्तीसगढ़ और पीछे कर्णाट राज्य क्रमान्वयसे अधिकार करनेको उद्योग किया।

उस समय कलचुरि-वंशीय गोदावरीके तीरपर क्षुद्र क्षुद्र राज्य जमा राजत्व रखते थे। इनमें कोई करद राजा, कोई सामन्त और कोई मण्डलेश्वर बना। किन्तु चेदि (वर्तमान बुंदेलखण्ड और बघेलखण्ड)के राजावोंने राजचक्रवर्ती उपाधि लिया और पार्श्ववर्ती तथा अपरापर-नरेशोंको अपने वश किया।

कल्याणका चालुक्य-वंश प्रबल पड़नेपर दक्षिणा-पथमें कलचुरि राजावोंका पूर्वतेज घट गया। ई॰ षष्ठ

शताब्दको (५६७-६१० ई०) चालुक्यराज मङ्गलीशने किसी किसी कलचुरि राजाको हरा करद बनाया था।

फिर भी डाहल और कर्णाटके उत्तरांशमें इस वंशके राजावोंने ई० द्वादश शताब्द पर्यन्त निर्विवाद राजत्व चलाया। डाहलमण्डल देखो।

इस वंशने प्रायः नौ सौ वर्षकाल उत्तर त्रैपुर वा चेदि, पश्चिम भेलसा (विदिशा), पूर्व छत्तीसगढ़ और दक्षिण गोदावरीतट पर्यन्त विस्तीर्ण भूमिखण्ड उपभोग किया।

यह सब शैव वा शक्तिके सेवक थे। चेदिवाले कलचुरिराज कर्णदेवके अनुशासनमें सुवर्ण वृषभध्वज और चतुर्हस्तपरिशोभिता हस्तिपरिवृता कमलाकी मूर्ति अङ्कित है। इनके पुत्र गाङ्गेयदेवकी स्वर्णमुद्रामें भी चतुर्हस्ता पार्वतीमूर्ति मिलती है।

देशावली नामक संस्कृतग्रन्थमें 'करचुलि' राजपूतोंका नाम लिखा है,—

"चौहानश्च दीक्षितश्च रैकीवारस्ततः परम्।
कारचुलिः परिहारो भार्ग्वे वास्यो नृपोत्तमः॥
वाघेलो वयसो भूपः कछ्वा राजपुत्रकाः।
राठौरो रणयुद्धश्च राणाख्यश्चदुर्जयः॥
विशेषः प्रबलो युद्धे वादशाः परिकीर्तिताः।" (रघुवंश-विवरण)

यह करचुलि राजपूत किसी समय बघेलखण्ड (प्राचीन चेदिराज्य)में रहे। रेवासे ५ कोस उत्तर-पूर्व अनेक सम्भ्रान्त राजपूत वास करते और अपनेको 'कारचुलि राजपूत' कहते हैं। यह बताते,—"हम हैहय वंशीय सहस्रार्जुनके वंशधर हैं। हमारे पूर्वपुरुष रायपुर-रतनपुरसे आकर इस अञ्चलमें बसे थे।"

करचुलि वा कारचुलि राजपूत ही सम्भवतः प्राचीन शिलालिपिवर्णित कलचुरि वा कालचुरि होंगे। प्रत्नतत्त्वविद् फ्लीटने इन्हीं कलचुरिवंशीयोंको आर्जुनायन माना है। (Fleets' Inscriptionum Indicarum, Vol. III. p. 10) किन्तु इस स्थल पर हम फ्लीट साहबका मत कैसे युक्तिसङ्गत कह सकते हैं! कार्तवीर्यार्जुनके वंशधर हैहय नामसे परिचित हैं। वह किसी पुराण वा प्राचीन ग्रन्थमें आर्जुनायन लिखे नहीं गये। किसी किसी पुराण, बृहत्संहिता तथा पाणिनिके गणादिगणमें आर्जुनायन शब्द एक जनपद और उसी जनपदवासीके लिये आया है। वराहमिहिरने उक्त जनपदको भारतके उत्तरपश्चिम अञ्चलमें अवस्थित अपरापर जनपदोंके साथ उल्लेख किया है। उनका मत माननेसे आर्जुनायन पाणिनि-गणोक्त अश्व (अश्वक) जनपदके निकट पड़ता है। आर्यावर्त तथा आर्जुनायन देखो। वर्तमान जलालाबाद जाते समय उक्त स्थानको लोग 'आर्जुन' कहा करते हैं। प्राचीन कालको उसी प्रदेश और तज्जनपदवासीका नाम आर्जुनायन था। कलचुरिवंश समुद्रगुप्तके अनुशासन-स्तम्भका वर्णित आर्जुनायन हो नहीं सकता।

पूर्वकालको कलचुरिराज एक स्वतन्त्र संवत् व्यवहार करते थे। इनके अनुशासन तथा खोदित-शिलाफलकमें उक्त संवत् व्यवहृत हुवा है।

कलचुरि संवत्का प्रारम्भकाल निर्णय करना सुकठिन है। प्रत्नतत्त्वविद् कनिङ्गामके मतमें कलचुरिराजकटक कालञ्जर अधिकारके समयसे उक्त संवत् चला है। वह २४९-५० ई०को उसका आरम्भकाल बताते हैं। फिर अध्यापक किलहोर्नके मतानुसार २४८-२४९को उक्त संवत् चलाया गया। (Cunningham's Indian Eras, p. 60; Archæological Survey of India, Vol. IX. p. 9; Academy, December 1887, p. 394; R. Sewell's Sketch of the Dynasties of Southern India, p. 286.)

कलछा (हिं० पु०) वृहदाकार चमस, बड़ा चम्मच।

कलछी (हिं० स्त्री०) क्षुद्रचमस, छोटा चम्मच।

कलकुल (हिं० स्त्री०) खजाका, करछी। यह लोहे या पीतलको होती है। लम्बी डण्डीके सिर पर हथेली जैसा एक चौड़ा हिस्सा लगा रहता है। यह तरकारी टालने या पूरी कचौरी निकालनेमें काम आती है।

कलकुला (हिं० पु०) १ वृहदाकार चमस विशेष, बड़ी कलकुल। २ चबेना भूननेकी एक छड़। यह लोहेका होता है। इसके सिरेपर एक कटोरा लगा देते हैं। भड़भूंजे चबेना या बहुरी भूनते समय भाड़में

गरम बालू इसमें भरकर निकालते और खपड़ेमें डालते हैं।

कलकुली (हिं० स्त्री०) लौह वा पित्तलपात्रविशेष, लोहे या पीतलका एक बरतन। कलकुल देखो।

कलज (सं० पु०) कुक्कुट, मुरगा।

कलजात (सं० पु०) कलमशालि, कलमी धान।

कलजिब्भा (हिं० त्रि०) १ कृष्णवर्ण जिह्वाविशिष्ट, काली जीभवाला। २ अनिष्ट विषयका सत्यवक्ता, जिसके मुंहसे निकली बुरी बात झूठ न ठहरे।

कलजीहा (हिं० वि०) १ कलजिब्भा। कलजिब्भा देखो। (पु०) हस्तिविशेष, काली जीभका हाथी। यह दूषित होता है।

कलझंवां (हिं० वि०) श्यामवर्ण, सांवला।

कलञ्ज (सं० पु०) कं लञ्जयति, क-लजि-अण्। १ विषाक्तहत मृग वा पक्षी, जहरीले हथियारसे मारा हुवा जानवर या परिन्द। २ ताम्रकूट, तम्बाकू। ३ परिमाणविशेष, एक तौल। यह १० पलका होता है। ४ वेत्रलता, बेंतकी बेल। (क्ली०) ५ विषाक्तहत मृगपक्षीमांस, जहरीले हथियारसे मारे हुये जानवर या परिन्दका गोश्त।

कलञ्जाधिकरण (सं० क्ली०) पञ्चावयव न्यायविशेष, एक मन्तिक। इसमें 'कलञ्ज न खाना चाहिये' प्रभृति वाक्य अवलम्बन किये जाते हैं।

कलट (सं० क्ली०) कं जलं लटति आप्नोति, क-लट-अच्। तृणादि निर्मित गृहाच्छादन, छप्पर। इसका संस्कृत नामान्तर कुटल है।

कलटोरा (हिं० पु०) कपोतविशेष, एक कबूतर। इसका समग्र शरीर श्वेत और चञ्चु कृष्णवर्ण होता है।

कलट्टर, कलक्टर देखो।

कलण्डर (अं० पु० = Calendar) पञ्जिका, तकवीम, पत्रा।

कलत (सं० त्रि०) अकेश, गञ्जा, जिसके सरपर बाल न जमें।

कलता (सं० स्त्री०) कलस्य भावः, कल-तल्-टाप्। अव्यक्त मधुरता, खुशनवायी, समझमें न आनेवाली आवाज़की मिठास।

कलतूलिका (सं० स्त्री०) कं सुखं विषयलेन लाति गृह्णाति कलं कामं तूलयति पूरयति, कल-तूल-ण्वुल्-टाप् अत इत्वम्। १ इच्छावती, ख्वाहिश रखनेवाली। २ कामुकी, छिनाल। इसका संस्कृत पर्याय—वाञ्छिनी और लञ्जिका है।

कलत्र (सं० क्ली०) गड़ सेचने अत्रन् गकारस्य ककारः। गड़ादेय कः। उण् ३।१०६। १ स्त्री, औरत। २ भार्या, बीबी। ३ नितम्ब, चूतड़। ४ भग। ५ दुर्गस्थान, क़िला।

कलत्रवान् (सं० पु०) कलत्रमस्यास्ति, कलत्र-मतुप् मस्य वः। सस्त्रीक, जोड़वाला।

कलत्री (सं० पु०) कलत्रमस्यस्य, कलत्र-इनि। कलत्रवान् देखो।

कलदार (हिं० वि०) १ यन्त्रविशिष्ट, पेंचदार। (पु०) २ अङ्गरेज़ी रुपया।

कलदुमा (हिं० वि०) १ कृष्णवर्णपुच्छविशिष्ट, काली पूंछ वाला। (पु०) २ कपोतविशेष, एक कबूतर। इसका पुच्छ कृष्णवर्ण होता है।

कलधूत (सं० क्ली०) कलेन अवयवेन धूतं शुद्धम्, ३-तत्। १ रौप्य, चांदी। (त्रि०) कलेन अव्यक्त-मधुरध्वनिना धूतं मनोरमम्। २ अव्यक्त मधुरस्वर युक्त, समझ न पड़नेवाली मीठी आवाजसे भरा हुवा।

कलधौत (सं० क्ली०) कलेन अवयवेन धूतं शुद्धम्। १ स्वर्ण, सोना। २ रौप्य, चांदी।

"अधिरात्रि यत्र निपतन्नमीलितां कलधौतधौतशिखवेश्मनां रुची।" (माघ)

३ अव्यक्त मधुर ध्वनि, मीठी मीठी बोली।

कलध्वनि (सं० पु०) कलः अस्फुटमधुरः ध्वनिर्यस्य, बहुव्री०। १ कपोत, कबूतर। २ कोकिल, कोयल। ३ मयूर, मोर। ४ अव्यक्त मधुर स्वर, मीठी मीठी बोली।

"अप्सरोगणसङ्गीतकलध्वनिनिनादिते।" (महानिर्वाणतं०)

कलन (सं० क्ली०) कल्यते लक्ष्यते दूष्यते वा, कल-ल्युट्। १ चिह्न, धब्बा। २ दोष, ऐब। कल्यते शुक्र-शोणिताभ्यां अन्योऽन्यं मिश्र्यते। ३ गर्भमें मिश्रित शुक्रशोणितका प्रथम विकार, हमलमें मिले मनी और खूनकी पहली बनावट। कलल देखो। ४ गर्भवेष्टन,

कमलका लिपटाव। ५ एकमासिक गर्भ, एक महीनेका कमल।

"कलनं त्वेकरात्रेण पञ्चरात्रेण बुद्बुदम्।
दशाहेन तु कर्कन्धूः पेश्यण्डं वा ततः परम्॥" (भागवत ३।३१।२)

६ ग्रहण, लेवायी। ७ ग्रास, कौर। ८ ज्ञान, समझ, पहचान।

"लोकानामन्तकृत् कालः कालोऽन्यः कलनात्मकः।" (सूर्यसिद्धान्त)
'कलनात्मकः ज्ञानविषयस्वरूपः ज्ञातुं शक्य इत्यर्थः।' (रङ्गनाथ)

(पु०) कं जलं नमति, क-ला-क; कम: सन् नमति, कल-नम-ड। ९ वेतस, वेंत।

कलना (सं० स्त्री०) कल भावे युच्-टाप्। १ वशीभूतता, तावेदारी।

"करालं यत्त्वैडं कवलितवतः कालकलना।" (आनन्दलहरी)

२ जल्पना, कहासुनी, कलकल। ३ चवमोचन।

"पिच्छावचूडा कवनामिवोरः।" (माघ)

कलनाद (सं० पु०) कलो नादोऽस्य, बहुव्री०। १ कलहंस। २ कलध्वनि, मीठी मीठी बोली। (त्रि०) ३ कलध्वनियुक्त, गानेवाला।

कलन्तक (सं० पु०) पक्षिविशेष, किसी किस्मकी चिड़िया।

कलन्दक (सं० पु०) १ गोत्रप्रवरमुनिविशेष, किसी ऋषिका नाम। २ कलन्तक, एक चिड़िया।

कलन्दर (सं० पु०) कलं शास्त्रविहितं वाक्यं शिष्टाचारं वा दृणाति, कल-दृ-खच्-मुम्। वर्णसङ्करजाति विशेष, एक दोगली क़ौम। लेट पुरुषके औरस और तीवर स्त्रीके गर्भसे कलन्दर निकले हैं।

क़लन्दर (अ० पु०) मुसलमान साधुविशेष, किसी किस्मका फ़क़ीर। यह संसारसे विरक्त रहते हैं। २ मदारी। यह भालू और बान्दर नचाते हैं।

कलन्दर देखो।

कलन्दर, कलन्दर देखो।

कलन्दरा (अ० पु०) १ वस्त्रविशेष, एक कपड़ा। यह रूयी, रेशम और टसरसे बनता है। २ कांटा, खूंटी। यह खीमेमें कपड़ा या रेशम लपेट कोई चीज़ टांगनेके लिये लगाया जाता है।

कलन्दरी (हिं० स्त्री०) कलन्दर लगा हुवा खीमा, खूंटीदार छोलदारी।

कलन्दिका (सं० स्त्री०) कलं कामं सर्वाभीष्टं ददाति, कल-दा-क संज्ञायां कन्-टाप् अत इत्वम् पृषोदरादित्वात् मुम् च। सर्वविद्या, इल्म, सब काम निकालने वाली समझ।

कलन्धु (सं० पु०) कलायाः मात्राया धन्धुरिव, शकन्ध्वादित्वादलोपः। वोलीयाक, एक सब्जी।

कलप (हिं० पु०) १ कलफ़, कपड़े पर चढ़ाया जानेवाला एक लेप। २ खिजाब, बाल काले करनेका रोग़न। ३ कल्प। कल्प देखो।

कलपत्तर (हिं० पु०) वृक्षविशेष, एक पेड़। यह शिमले और जौनसारमें अधिक उपजता है। इसका काठ श्वेतवर्ण तथा सुदृढ़ रहता और गृहनिर्माण एवं कृषिके यन्त्रादिमें लगता है।

कलपना (हिं० क्रि०) १ दुःख करना, बिलपना, रह रहके रोना। २ कलप चढ़ाना, इसतिरी लगाना। ३ कल्पना करना, अन्दाज़ लगाना।

कलपना (हिं०) कल्पना देखो।

कलपनी (हिं०) कल्पना देखो।

कलपाना (हिं० क्रि०) दुःख देखाना, तरसाना, रुलाना।

कलपून (हिं० पु०) वृक्षविशेष, एक पेड़। यह वृक्ष उत्तर एवं पूर्व बङ्गालमें उपजता और सतत हरित रहता है। काठ रक्तवर्ण तथा सुदृढ़ निकलता, बहुमूल्य पड़ता और गृहके निर्माण कार्यमें लगता है।

कलपोटिया (हिं० स्त्री०) पक्षिविशेष, एक चिड़िया। इसका पोटा कृष्णवर्ण होता है।

कलप्पा (हिं० पु०) द्रव्यविशेष, एक चीज़। यह कठोर तथा श्वेत वर्ण रहता और कभी कभी नारिकेलके अभ्यन्तरमें मिलता है। चीना लोग इसे बहुमूल्य समझते और 'नारियलका मोती' कहते हैं।

कलफ़ (हिं० पु०) तण्डुल वा आरारोटका तरल लेप, चावल या आरारोटकी पतली लेयी। इसे माड़ी भी कहते हैं। यह वस्त्रका आस्तरण कठिन तथा समान बनानेमें लगता है। २ मुखका कृष्णवर्ण चिह्न, झांई, चेहरेका कालापन।

कलफा (हिं० स्त्री०) देशीय दारचीनीकी त्वक् या छाल। यह मलवरमें उत्पन्न होती है। चीनकी दार चीनीको सुलभ बनानेके लिये इसे मिला देते हैं।

कलब (हिं० पु०) एक रंग। यह टेसूके फूल उबालकर बनाया जाता है। फिर इसमें कत्था, लोध और चूना डाल अगरई रंग तैयार करते हैं।

कलबल (हिं० पु०) १ उद्योगउपाय, जोड़ तोड़, दांवपेंच। (स्त्री०) २ कोलाहल, हल्ला-गुल्ला। (वि०) ३ अस्पष्ट, साफ़ समझ न पड़नेवाला।

कलबीर (हिं० पु०) वृक्षविशेष, एक पेड़। यह हिमालय पर उत्पन्न होता है। इसका मूल रेशम पर पीत वर्ण चढ़ानेमें लगता है। कलबीर भांगके पौदेसे मिलता-जुलता रहता है।

कलबूत (हिं० पु०) १ उपष्टम्भ, कालबुद, सांचा। २ जूता सीनेका ढांचा। यह काष्ठमय होता है। ३ चौगोशिया या अठगोशिया टोपी बनानेका ढांचा। यह मट्टी, लकड़ी या टीनका होता है। इसे गोलम्बर और कालिब भी कहते हैं।

कलभ (सं० पु०) कलेन करेण शुण्डेन, भाति कल-भा-क यद्वा कल-अभच्। कृशृशलिकलिगर्दिभ्योऽभच्। उण् ३।१२२। १ पञ्चवर्षपर्यन्त करिशावक, पांचवर्ष तक हाथीका बच्चा। इसका संस्कृत पर्याय—करिशावक, व्याल और दुर्दान्त है। २ हस्ति मात्र, हाथी। "मुदा रमन्ते कलभा विकस्वरैः।" (माघ) ३ उष्ट्र, ऊंट। ४ धुस्तूरवृक्ष, धतूरेका पेड़।

कलभवल्लभ (सं० पु०) कलभस्य हस्तिशावकस्य वल्लभः प्रियः, ६-तत्। पीलुवृक्ष, पीलूका पेड़। इसे हथीका बच्चा बड़ी रुचिसे खाता है।

कलभवल्लभा (सं० स्त्री०) पिकी, कोकिला।

कलभाषण (सं० क्ली०) बालालाप, बच्चोंकी यावागोयी या बातचीत।

कलभी (सं० स्त्री०) कं जलं आश्रयतया लभते, क-लभ-अच् गौरादित्वात् ङीष्। चञ्चु क्षुप, चेंचका पौदा।

कलभैरव (सं० पु०) कलं भैरवञ्च, कर्मधा०। १ भयङ्कर अव्यक्त शब्द, समझ न पड़नेवाली खौफ़नाक आवाज़। "दध्मदुरस्तं दितेः कलभैरवः।" (माघ) २ ताप्ती और नर्मदा नदीके मध्यवर्ती पर्वतका एक गभीर कन्दर या नाला।

कलम (सं० पु०) कलयति मधुरं जनयति, कल-णिच्-अम। कलिकर्द्योरमः। उण् ४।८४। १ लेखनी, लिखनेका औज़ार। इसका संस्कृत पर्याय—लेखनी, वर्णतुली और अक्षरतुलिका है। २ शालिधान्य विशेष, किसी क़िस्मका धान। राजवल्लभके मतसे यह कषायरस, चक्षुके लिये हितकर और रक्त दोष तथा त्रिदोषनाशक होता है। काश्मीरमें इसे महातण्डुल कहते हैं। ४ वाद्ययन्त्रविशेष, एक बाजा। आकारमें लेखनीसे मिलनेके कारण ही यह कलम कहलाता है। ईरान, अफ़गानिस्तान और यूनान प्रभृति देशमें इसका नाम कलम ही चलता है। एक मुख कलमको भांति कर्तित और अपर मुख अन्यान्य वंशोकी भांति अनावद्ध रहता है। दैर्घ्य अपेक्षाकृत अल्प लगता है। तारके रन्ध्र सात होते हैं। कलम सरल भावसे बजाया जाता है। फूंकनेको जगह सहनायीको भांति एक छोटा नल लगता है।

कलम (अ० पु०-स्त्री०) १ लेखनी, लिखनेका एक औज़ार। यह सरकण्डेकी छड़ काट कर बनायी जाती है। अंगरेज़ी क़लम लकड़ीके दस्तेमें लोहेकी जीभ लगानेसे तैयार होती है। २ वृक्षकी एक शाखा, पेड़की कोयी डाल। यह काट कर दूसरी जगह लगायी या दूसरे पेड़में मिलायी जाती है। ३ कलमी पौदा। ४ धान्यविशेष, जड़हन। इसे पहले किसी खेतमें बो देते, फिर उखाड़ कर दूसरी जगह लगा लेते हैं। ५ कनपटीके बाल। यह बनानेमें छोड़ दिये जाते हैं। ६ वाद्यविशेष, किसी क़िस्मकी बांसुरी। इसमें सात छिद्र रहते हैं। ७ यन्त्रविशेष, बालोंकी कूची। यह चित्र बनाने या रंग चढ़ानेके काम आती है। ८ काचखण्डविशेष, शीशेका एक टुकड़ा। यह लम्बी रहती और झाड़में लगती है। ९ शोरे नौसादर वग़ैरहका जमा हुवा लम्बा टुकड़ा। यह रवादार होता है। १० फुलझड़ी। ११ कारुकार्यका यन्त्रविशेष, बारीक नक़ाशी करनेका एक औज़ार। इसे सोनार या सङ्गतराश व्यवहार करते हैं। १२ अक्षर

खोदनेका यन्त्रविशेष, हरफ़ खोदनेका एक औज़ार। इससे मुहर बनती है। १३ काटने, खोदने और नक़ाशी करनेका यन्त्रमात्र या कोई औज़ार।

कलमक, कलमक्क देखो।

कलमकार (फ़ा॰ पु॰) १ चित्रकार, मुसव्वर। यह क़लमसे तसवीरमें रंग भरता है। २ लेखनीसे कारुकार्य करनेवाला, जो कलमसे कोयी दस्तकारी करता हो। ३ वस्त्रविशेष, एक बाफ़ता कपड़ा। इसमें तरह तरहके बेल बूटे रहते हैं।

कलमकारी (फ़ा॰ स्त्री॰) लेखनीका कारुकार्य, कलमकी कारीगरी।

कलमकीली (हिं॰ स्त्री॰) मल्लयुद्धकौशलविशेष, कुश्तीका एक पेंच। इसमें खेलाड़ी अपने दाहने हाथका पञ्जा दूसरेके बायें पञ्जेसे फंसाता और अपना दाहना हाथ खींच उसका बायां हाथ अपनी गरदन पर लाता है। फिर खेलाड़ी अपनी दाहनी कोहिनी उसकी बायीं कलाई पर पहुंचा और नीचेको दबा उसे चित मारता है।

कलमक्क (फ़ा॰ पु॰) किसी क़िस्मका अङ्गूर। यह बलूचिस्तानमें अधिक उत्पन्न होता है।

कलमख (हिं॰) कल्मष देखो।

क़लमतराश (फ़ा॰ पु॰) १ क़लम बनानेका चाक़ू, तेज़ छुरी। २ अरहरकी खूंटी। यह कहारों और हाथीवानोंकी बोली है।

क़लमदान (फ़ा॰ पु॰) सम्पुटविशेष, क़लम वग़ैरह रखनेका एक छोटा सन्दूक़। यह पतला और लम्बा होता है। इसमें क़लम, दवात, चाक़ू वग़ैरह रखनेको खाने बने रहते हैं।

कलमना (हिं॰ क्रि॰) कलम काटना, टुकड़े उड़ाना।

कलमरिया (पोर्त॰ स्त्री॰) वायुके प्रवाहका प्रतिबन्ध, हवाका रुकाव।

कलमलना (हिं॰ क्रि॰) सङ्कुचित स्थानमें अङ्ग इतस्ततः हिलाना डुलाना, कुलबुलाना।

कलमलाना, कलमलना देखो।

कलमा (सं॰ स्त्री॰) शालिधान्य, एक धान।

कलमा (अ॰ पु॰) १ वाक्य, जुमला। २ मुसलमानोंके धर्मका मूलमन्त्र।

कलमाष (हिं॰) कल्माष देखो।

कलमी (हिं॰) कलम्बी देखो।

कलमी (फ़ा॰ वि॰) १ लिखित, लिखा हुवा। २ कलमसे पैदा, जो डाल काट कर लगानेसे उपजा हो। ३ कलम या रवा रखनेवाला।

कलमी शोरा (हिं॰ पु॰) रवेदार शोरा। कलमी शोरा भिगो देने और मैल उतार लेनेपर जमाकर बनाया जाता है। यह मामूली शोरेसे अच्छा रहता है।

कलमुहां (हिं॰ वि॰) काले मुंहवाला। २ कलङ्कित, बदनाम।

कलमोत्तम (सं॰ पु॰) कलमेभ्यः कलमेषु वा उत्तमः। सुगन्धशालि, एक खुशबूदार धान।

कलमोत्तमा (सं॰ स्त्री॰) कलमोत्तम देखो।

कलम्ब (सं॰ पु॰) कल्यते क्षिप्यते शत्रुं प्रति, कल-अम्बच्। १ शर, तीर। २ शाकनालिका, सागकी डण्ठल। ३ कदम्ब वृक्ष, कदमका पेड़। ४ सर्षप, सरसों। ५ धाराकदम्ब, हलदू।

कलम्ब (Colombo) सिंहलका एक जनाकीर्ण नगर। यह आजकल सिंहलकी राजधानी है। सिंहलवासियोंके प्राचीन पुस्तकमें इसका नाम 'कूलम्' (समुद्रतट) लिखा है। १५०५ ई॰को पहले यहां पोर्तगीज़ आये थे। फिर १७९६ ई॰को अङ्गरेजोंने इसे अधिकार किया। कलम्बमें सागर उपसागरके निकट हिन्दुवोंके बहुतसे देवमन्दिर बने हैं।

कलम्बक (सं॰) कलम्ब देखो।

कलम्बकुलक (सं॰ क्लो॰) एक तीर्थ। (ब्रह्मोत्तरख)

कलम्बशालि (सं॰ पु॰) शालिधान्यविशेष, जड़हन।

कलम्बिक (सं॰ पु॰) पक्षिविशेष, एक चिड़िया।

कलम्बिका (सं॰ स्त्री॰) कलम्ब-टाप् अत इत्वम्। १ कलम्बीशाक, करेमू। कलम्बीव कायते प्रकाशते, कलम्बी-कै-क-टाप् ह्रस्वश्च पृषोदरादित्वात् इत्वः। २ ग्रीवापश्चान्नाड़ी, गरदनकी पिछली रग। इसका अपर संस्कृत नाम मन्या है।

कलम्बियन (अं॰ पु॰) मुद्रणयन्त्रविशेष, छापेकी

एक कल। इसमें दो लङ्गर लगते हैं—एक ऊपर और एक नीचे। ऊपरी लङ्गर पक्षी (चिड़िया)के आकारका रहता है। इसमें कमानी नहीं चढ़ती। कलम्बियनको हिन्दीमें चिड़ियाकल कहते हैं।

कलम्बी (सं० स्त्री०) के जले लम्बते, लबि संसने अच् ङीष्। १ जलज लताविशेष, करेमू। इसका संस्कृत पर्याय—कडम्बी, कलम्बू और कलम्बिका है। (Convolvulus repens) राजवल्लभने इसे मधुर एवं कषायरस, गुरु और स्तन्यदुग्ध, शुक्र तथा श्लेष्मकारक कहा है। २ उपोदकीलता, पोय।

कलम्बु (सं० स्त्री०) के जले लम्बते, क-लम्ब-उण्। कलम्बीशाक, करेमू।

कलम्बुका, कलम्बी देखो।

कलम्बुट (सं० क्ली०) के जले लम्बते भासते, क-लम्ब-उटन्। १ हैयङ्गवीन, ताजे दूधका घी। २ नवनीत, मक्खन।

कलम्बू (सं० स्त्री०) के जले लम्बते, लम्ब बाहुलकात् ऊङ्। कलम्बीशाक, करेमू।

कलयष्म (सं० पु०) सर्जरस, धूना।

कलरव (सं० पु०) कलः मधुरास्फुटो रवः ध्वनिर्यस्य, बहुव्री०। १ कपोत, कबूतर। "शीर्णप्रासादोपरि जिगीषुरिव कलरवः क्वणति" (आर्यासप्तशती ५८१) २ कोकिल, कोयल। ३ वनकपोत,जङ्गली कबूतर। ४ कलध्वनि,मीठी आवाज़।

कलरिन (हिं० स्त्री०) जलौका लगानेवाली स्त्री, जो औरत जोंक लगाती हो। इसे कञ्जड़िन भी कहते हैं।

कलल (सं० पु०-क्ली०) कल्यते वेष्टयते ऽनेन, कल वृषादिभ्यः कलच्। १ जरायु, गर्भवेष्टनचर्म, हमलके लपेटकी झिल्ली। २ शुक्र और शोणितका प्रथम विकार। गर्भके प्रथम मास कलल उठता है। ऋतुस्नाता स्त्रीके स्वप्नमें मैथुन आचरण करनेसे गर्भ रह जाता है। किन्तु उस गर्भमें अस्थि प्रभृति पैठक गुण नहीं होता। इसीसे कललमात्र निकल पड़ता है। (सुश्रुत)

कललज (सं०पु०) कललमिव जायते, कल-जन-ड। १ राल, धूना। २ गर्भ, हमल।

कललजोद्भव (सं० पु०) कललजस्य उद्भवः उद्भवति यस्मात्, ६-तत्। शालवृक्ष, साखूका पेड़।

कलवरिया (हिं० स्त्री०) मद्यपणागार, कलवारकी दुकान।

कलवार (हिं० पु०) जातिविशेष, एक कौम। यह हिन्दुस्थान और बिहारके बनियोंसे उत्पन्न हैं। कलवार शराबका व्यवसाय करते हैं। कोई कोई समझता, कि खदिर बनानेवाली 'खैरवार' नामक वन्य जातिसे कलवार शब्द निकला है। फिर कोई 'कलवाला' शब्दसे कलवार नामकी उत्पत्ति बताता है। किन्तु इन बातोंमें कोई समीचीन मालूम नहीं पड़ती।

इस जातिके लोग प्रधानतः छह श्रेणियोंमें विभक्त हैं,—बनौधिया, बियाहुतिया या भोजपुरी, देशवार, जैसवाल, अयोध्याबासी, खालसा और खरिदहा। सिवा इसके कलवारोंमें बहुतसे मुसलमान भी हैं। उन्हें 'रांघी' या 'कलाल' कहते हैं। बनौधिये मुसलमान कलालोंको रायबरेलीके रहनेवाले बताते हैं।

इस जातिमें विधवाविवाह प्रचलित है। बियाहुतियोंके कथनानुसार पहले विधवाविवाह प्रचलित न था, किन्तु पीछे होने लगा। फिर यह स्वजातिकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें कहते—आदि पुरुषसे सब कलवार निकले हैं। आदि पुरुषके दो पत्नी रहीं। 'बियाही' और 'सगाई'। बियाही पत्नीके गर्भजात सन्तान बियाहुत और सगाई पत्नीके गर्भजात सन्तान अन्यान्य नामसे परिचित हैं। बियाहुत मद्यका व्यवसाय, मद्यपान और अपने हाथसे गोदोहन या वृषभका "अण्डच्छेद" नहीं करते। यह केवल ताड़ीका काम चलाते हैं। खरिदहा अपनी श्रेणीका नामकरण गाजीपुर ज़िलाके किसी ग्रामपर ठहराते हैं। उन्हें बियाहुतोंकी भांति निजहस्त गोदोहन और वृषभके अण्डच्छेदनसे अलग रहते भी मद्यपान वा मद्य व्यवसायमें कोई आपत्ति नहीं। दूसरे कलवार जैसवालोंको जारजवंश पुकारते हैं। किसी कलवारके 'जैसिया' नाम्नी एक उपपत्नी रही। उसीके गर्भजात सन्तानोंसे जैसवार निकले हैं। किन्तु जैसवारोंके कथनानुसार 'जैसपुर' नामक ग्रामसे इस श्रेणीका नामकरण

हुवा है। इसी प्रकार पूर्वोक्त कई निषिद्ध विषयोंके तारतम्यसे अन्यान्य श्रेणियोंका विभाग कल्पना किया जाता है। बियाहुत और खरिदहा अपने वंश, मातामहको गोष्ठी, पितृमातामहको गोष्ठी वा पितामहके मातामहकी गोष्ठीमें विवाह नहीं करते। यही चाल जेसवारोंमें भी देख पड़ती है।

बियाहुत तथा खरिदहा ५से १४, जेसवार ५से १०, और बनौधिये ७से १४ वत्सर तक कन्याको विवाह देते हैं। किन्तु कन्याकी अपेक्षा वरका वयस कयी वत्सर अधिक रहना आवश्यक है। पुरुषका विवाह सब श्रेणियोंमें ८से १४ वर्ष तक हो जाता है। विवाहमें हिन्दुस्थानी बनियोंकी रीति रहती है। "सिन्दूरदान"के पीछे विवाह सम्पर्ण होता है।

विवाहसे पहले 'घर देखो' 'वर देखो' और 'पानबांटी' तीन कुलाचार हैं। केवल बनौधियेंमें यह तीनों आचार देख नहीं पड़ते। वरके पिताको मर्यादाकी रक्षाके लिये कुछ नक़द रुपया देना पड़ता है। इस प्रथाको 'तिलक' कहते हैं। २१) रु०से अधिक तिलक नहीं चढ़ता। कलवार एकसे चार तक विवाह कर सकते हैं। प्रथमा पत्नीके वन्ध्या होने पर ही ऐसा परन्यन्तर पड़ता है। सभी श्रेणियोंमें विधवाविवाह चलता है। व्यभिचारिणी होनेसे यह पत्नीको छोड़ देते हैं।

धर्म—प्रायः कलवार वैष्णव होते है। फिर भी अन्यान्य ग्रामदेवतावोंकी पूजा किया करते हैं। बियाहुत और खरिदहा श्रावण शुक्लके दो सोमवारोंको शोखानामक देवतापर चावल और दूध चढ़ाते हैं। फिर उसी समय (श्रावण शुक्ल) बुध तथा बृहस्पतिवारके दिन 'काली' एवं 'बन्दी'की छागल तथा मिष्टान्न और मङ्गल वारके दिन 'गौरैया' देवताको स्तन्यपायी शूकर शावक एवं मद्य उत्सर्ग किया जाता है। श्रावण शुक्ल शनिवारके दिन जेसवार 'पांचपीर' पर और भाद्र कृष्ण एकादशी तथा माघ शुक्ला एकादशी एवं त्रयोदशीको बनौधिये 'ब्रह्मदेव' पर पिष्टक एवं मिष्टान्न चढ़ाते हैं। उक्त सकल निवेदित द्रव्य कलवार स्वयं भोजन करते हैं। केवल उत्सर्गित स्तन्यपायी शूकरशावक खाया नहीं—मृत्तिकामें गाड़ा जाता है। पांचपीरोंका प्रसाद मुसलमानोंको भी बांट देते हैं।

पूजादि और पौरोहित्यादिका कार्य एक श्रेणीके ब्राह्मण करते हैं। बनौधियोंके पुरोहित कनौजिये ब्राह्मणोंकी भांति सम्मानार्ह हैं। कलवार शवको जलाते हैं। त्रयोदश दिन श्राद्ध होता है। बनौधिये ७म वर्षसे न्यून मृत सन्तानका शव गाड़ देते हैं।

जीविका और अवस्था—शराब बनानेका व्यवसाय ही इनकी मूल जीविका है। बनौधियों, देशवारों और खालसावोंको छोड़ अन्यान्य श्रेणीके कलवार दूसरा व्यवसाय भी चलाते हैं। अधिकांश कृषिकार्य किया करते हैं। वाणिज्यादि चलानेवाले लोगोंको ही कलवारोंमें सम्भ्रम मिलता है। छोटे-नागपुरमें भक्त श्रेणीके कलवार व्यवसाय करनेसे समधिक सम्भ्रान्त हैं। किन्तु उनमें विलासिता देख नहीं पड़ती। सामान्य मजदूरोंकी भांति वह भी खाते पीते हैं।

यह अनाचरणीय हैं। ब्राह्मणादि कलवारोंका स्पृष्ट जल व्यवहार नहीं करते। आजकल अधिक लोग खेतीबारीमें लगे रहते हैं। कारण गवरनमेण्टने इनका जातिगत व्यवसाय अपने हाथमें ले लिया है।

सर्वापेक्षा चम्पारन और मुजफ़्फ़रपुर ज़िलेमें कलवार अधिक रहते हैं।

कलविङ्क (सं० पु०) कलं मधुरास्फुटं वङ्कते रौति, कल-वकि-अच् पृषोदरादित्वात् अत इत्वम्। १ चटकपक्षी, गौरवा। इसका संस्कृत पर्याय—कुलिङ्क और कालकण्टक है। भावप्रकाशने कलविङ्कको शीतल, स्निग्ध, स्वादु, शुक्र एवं कफकारक और सन्निपातनाशक कहा है। गृहचटक अतिशय शुक्रकारक है। २ कलिङ्गक वृक्ष, कलौंदेका पेड़। ३ कलङ्क, धब्बा। ४ श्वेतचामर, सफ़ेद चंवर। ५ त्वष्टाके पुत्र विश्वरूपका एक मस्तक। भागवतमें लिखा है,—

किसी समय इन्द्रने ऐश्वर्यके मदमें मत्त हो सुराचार्य बृहस्पतिकी अवमानना की थी। इससे बृहस्पति अन्तर्हित हुये। फिर असुरोंने देवतावोंको बहुत सताया। ब्रह्माने त्वष्टपुत्र विश्वरूपको पौरोहित्यमें

लगा असुर संग्राममें उतरनेके लिये उपदेश दिया। देवगण भी तदनुसार उन्हें पुरोहित बना कार्य सम्पादन करने लगे। किन्तु विश्वरूप पितामह-वंशके प्रति स्वाभाविक स्नेहवशतः छिपकर असुरोंको यज्ञ भाग दे देते थे। क्रमशः इन्द्रको यह बात अवगत हुयी। उन्होंने क्रोधमें विश्वरूपके मस्तक काट डाले। उनके तीन मस्तक थे,—कपिञ्जर, कलविङ्क और तित्तिर। जिस मुखसे वह सुरापान करते, उसे कलविङ्क कहते थे। (८१९ अ०) ६ तीर्थविशेष। ७ पारावत, कबूतर। ८ ग्रामचटक, गांवका गौरवा। ९ कृष्णचटक, काला गौरवा।

कलविङ्कविनोद (सं० पु०) नृत्यकी एक चाल, नाचका एक ढंग। इसमें मस्तकपर दोनों हाथ ले जाकर घुमाये जाते हैं। फिर उन्हें पसली पर लगाकर नीचे ऊपर चलाते हैं।

कलश (सं० पु०) कलं मधुराव्यक्तशब्दं शवति जलपूरणसमये प्राप्नोति, कल-शु गतौ ड। जलाधारविशेष, घड़ा। इसका संस्कृत पर्याय—घट, कुट, निप, कलस, कलसि, कलसी, कलशि, कलशी, कुम्भ और करीर है। तन्त्रसारोक्त कलावतीके दीक्षा-प्रकरणमें कलशका परिमाण इस प्रकार लिखा है,—"कलश व्यासमें ४० अङ्गुलि और उच्चतामें सोलह अङ्गुलि रहना चाहिये। मुख आठ अङ्गुलि होता है। फिर ३६ अङ्गुलि विस्तार और उच्चताविशिष्ट कलशको कुम्भ कहते हैं। यह सोलह या बारह अङ्गुलिसे कम रहना चाहिये।" २ द्रोणपरिमाण, ८ सेरकी तौल।

कलशदिर् (वै० पु०) कलशस्य दीर्दरणम्, कलश-दृ भावे क्विप्। याज्ञिक कलश विदारण, पूजाके घटकी तोड़ फोड़।

कलशपोतक (सं० पु०) सर्पविशेष, किसी नागका नाम।

"आर्यकश्चीपकश्चैव नागः कलशपोतकः।" (भारत, आदि ३६ अ०)

कलशि (सं० स्त्री०) कलं शरीरमालिन्यं शशति नाशयति, कल-शो-इनि। १ पृश्निपर्णी, पिठवन। कल-शृ-ङि। २ घट, घड़ा।

"कलशिमुदधिगुर्वीं बल्लवा लोडयन्ति" (माघ)

कलशी (सं० स्त्री०) कलशि-ङीप्। १ जलपात्रविशेष, गगरी। २ पृश्निपर्णी, पिठवन। ३ तीर्थविशेष।

कलशीकण्ठ (सं० त्रि०) कलश्याः कण्ठ इव कण्ठः अस्य, बहुव्री०। १ कलशीके कण्ठकी भांति कण्ठयुक्त, सुराहीदार गरदनवाला। (पु०) २ ऋषिविशेष।

कलशीपदी (सं० स्त्री०) कलशीको भांति पद रखनेवाली, जिसके घड़े-जैसा पैर रहे।

कलशीमुख (सं० पु०) वाद्ययन्त्र विशेष, एक बाजा। इसका मुख कलशीकी भांति होता है।

कलशीसुत (सं० पु०) कलश्याः सुत इव कलशीतः उत्पन्नत्वात्। अगस्त्य मुनि। अगस्त्य देखो।

कलशोदर (सं०पु०) कलश इव उदरमस्य, बहुव्री०। १ दानवविशेष। (हरिवंश २४० अ०) (त्रि०) कलशकी भांति उदरविशिष्ट, जिसके घड़े-जैसा पेट रहे।

कलस (सं० पु०) केन जलेन लसति शोभते, क-लस्-अच्। १ कलश, घड़ा। २ द्रोण परिमाण, ८ सेरकी तौल। ३ कुम्भ। कालिकापुराणमें लिखा है,—अमृतसङ्ग्रहको देवासुरके सागर मथते समय विश्वकर्माने देवोंकी कलासे जो घट पृथक् पृथक् बनाये थे। इसीसे घटका नाम कलस पड़ा। निर्वाणतन्त्रमें भी कहा है,—

"कलां कलां गृहीत्वा तु देवानां विश्वकर्मणा।
निर्मितो ऽयं स वै यस्मात् कलसस्तेन कथ्यते॥"

४ नागविशेष, एक सांप। (महाभारत) ५ मन्दिरका शिखरमण्डल, इमारतकी चोटीका कंगूरा। ६ काश्मीरके एक राजा। इनका अपर नाम रणादित्य था। यह तुक्कके पुत्र रहे। ९८५ शकके श्रावण मास तुक्कने इन्हें राजा बनाया। राजा होते ही यह पिताको कुटिल दृष्टिसे देखने लगे। फिर इन्होंने तुक्क पर बड़ा अत्याचार किया था। किन्तु मन्त्री उक्त अत्याचार सह न सके। अन्ततः प्रधान मन्त्री हलधरने पिताको सिंहासन पर बैठाया। फिर कलस पिताके अधीन रहने लगे। भण्ड लम्पट इनके सहचर थे। क्रमशः उनके सहवाससे चरित्र इतना बिगड़ा, कि इन्होंने अपनी भगिनी और तनयाका सतीत्व नष्ट किया। वृद्ध राजा इनके आचरणसे अत्यन्त व्यथित

हुये और समस्त धनरत्न बांट राज्य छोड़ कर चल दिये। फिर यह पिताको मारनेकी खोजमें लगे थे। किन्तु अपनी माताके कातर वाक्यसे इन्होंने उक्त दुरभिसन्धि छोड़ी। उन्होंने मनके दुःखसे आत्मघात किया। यह भी कुछ दिन अपनी लीला देखा मर गये। इनके पीछे उत्कर्ष काश्मीरके राजा हुये।

(राजतरङ्गिणी, ७म तरङ्ग)

कलसक्षेत्र—कर्णाटकके अन्तर्गत एक पवित्र तीर्थ स्थान।

(स्कन्दपुराणीय कलसक्षेत्रमाहात्म्य)

कलसरी (हिं० स्त्री०) १ पक्षिविशेष, एक चिड़िया। इसका शिर कृष्णवर्ण रहता है। २ मल्लयुद्धकौशल विशेष, कुश्तीका एक पेंच। इसमें खिलाड़ी अपनी जोड़को नीचे दबा मुखकी ओर बैठ जाता और अपना दाहना हाथ उसकी बांहमें डाल पीठ पर लाता है। फिर उसके दूसरे हाथकी कलाई पकड़ बांयी ओर ज़ोर लगाना और उलटाना पड़ता है।

कलसा (हिं०) कलस देखो।

कलसि (सं० पु०) केन जलेन लसति, क-लस्-इन्। १ पृश्निपर्णी, पिठवन। २ जलपात्रविशेष, गगरी।

कलसिरी (हिं० स्त्री०) विवाद करनेवाली स्त्री, झगड़ालू औरत। कलसरी देखो।

कलसी (सं० स्त्री०) कलस-ङीप्। १ कलस, घड़ा। २ पृश्निपर्णी, पिठवन। ३ शिखर, कंगूरा।

कलसीक (सं०क्ली०) कलसी स्वार्थे कन्। कलस, घड़ा।

"अवलम्बित कर्णशष्कुली कलसीकं रचयन्नवोचत।" (नैषध २।८)

कलसीसुत (सं० पु०) कलस्यां जातः सुतः, मध्यपदलो०। कलसीसे उत्पन्न होनेवाले अगस्त्य मुनि।

कलसोदधि (सं० पु०) कलस इव उदधिः-मन्थनाधारत्वात्। समुद्र। मन्थनका आधार होनेसे समुद्रकी उपमा कलससे दी गयी है।

कलसोदरी (सं० स्त्री०) कलस इव उदरं यस्याः, बहुव्री०। कलसकी भांति उदर रखनेवाली स्त्री, जिस औरतके घड़ेकी तरह पेट रहे।

कलस्वन (सं० त्रि०) मनोहर शब्द करनेवाला, जो दिलकश आवाज़ लगाता हो।

कलस्वर (सं० पु०) कलश्चासौ स्वरश्चेति, कर्मधा०) कलरव, मधुर अव्यक्त शब्द, गानेकी मीठी और बारीक आवाज़।

कलह (सं० पु०-क्ली०) कलं कामं हन्ति अत्र, कल-हन् अधिकरणे ड। १ विवाद, झगड़ा। इसका संस्कृत पर्याय—युद्ध, आयोधन, जन्य, प्रधन, प्रविदारण, मृध, आस्कन्दन, संख्या, समीक, साम्परायिक, समर, अनीक, रण, विग्रह, सम्प्रहार, अभिसम्पात, कलि, संस्फोट, संयुग, अभ्यामर्द, समाघात, संग्राम, अभ्यागम, आहव, समुदाय, संयत्, समिति, आजि, समित्, युध, प्रमीक, साम्परायक, संस्फेट और युत् है। २ पथ, राह। ३ खड्गकोष, तलवारका म्यान। ४ प्रतारण, झिड़की। ५ छल, धोका। ६ मुष्टी।

कलहंस (सं० पु०) कलेन मधुरास्फुटध्वनिना विशिष्टो हंसः, मध्यपदलो०। १ कादम्ब, एक हंस। इसका संस्कृत पर्याय—कादम्ब, कलनाद और मरालक है। २ राजहंस। "कुन्दावदाताः कलहंसमालाः प्रतीयिरे श्रोत्रसुखैर्निनादैः।" (भट्टि) ३ पीतवर्ण हंस, पीला हंस। ४ जलकुक्कुट, मुर्गाबी। ५ राजश्रेष्ठ, बड़ा राजा। ६ परमात्मा। ७ ब्रह्म। ८ ब्राह्मण। ९ एक रागिणी। यह मधु, शङ्करविजय और आभीरीके योगसे निकलता है। १० छन्दोविशेष। यह अतिजगतीके अन्तर्भूत और त्रयोदश अक्षरविशिष्ट होता है। इस छन्दमें १म, २य, ४र्थ, ६ष्ठ, ७म, ८म, १०म एवं ११श अक्षर लघु और ३य, ५म, ९म, १२श तथा १३श अक्षर गुरु लगता है।

उदाहरण नीचे देखिये—

"यमुना विहार कुतुके कलहंसो व्रजकामिनी कमलिनी कृतकेलिः।
जनचित्तहारिकलकण्ठनिनादः प्रमदं तनोतु तव नन्दतनूजः॥"

(छन्दोमञ्जरी)

कोई कोई इसको 'सिंहनाद' भी कहता है।

कलहंसक (सं० क्ली०) अरोचकाधिकारका कवलमात्र, भोजन अच्छा न लगने पर दवाके पानीका कुल्ला।

कलहकार (सं० त्रि०) कलहं करोति, कलह-कृ-खुल्। विवादकारी, झगड़ालू।

"इत्थं कलहकारोऽसौ शब्दकारः पपात खम्।" (भट्टि)

कलहकारक, कलहकार देखो।

कलहकारी (सं० त्रि०) कलह कृ-णिनि। विवाद-कारक, झगड़ालू।

कलहकारी (सं० स्त्री०) विक्रमचण्डकी स्त्री।

कलहनाशन (सं० पु०) कलहं नाशयति, कलह-नश-णिच्-ल्यु। १ कुटज वृक्ष। २ पूति करञ्ज, करञ्जू। ३ कलह मिटानेवाला, जो झगड़ा निबटाता हो।

कलहनी (हिं०) कलहिनी देखो।

कलहन्तरिता (हिं०) कलहान्तरिता देखो।

कलहप्रिय (सं० पु०) कलहः प्रियो यस्य, बहुव्री०। १ नारद। नारदको कलह बहुत अच्छा लगता है। (त्रि०) २ विवादप्रिय, झगड़ेसे खुश रहनेवाला।

कलहप्रिया (सं० स्त्री०) कलहस्य कलहे वा प्रिया, ६ वा ७-तत्। शारिका, मैना।

कलहर—मध्यप्रदेशवासी एक वणिक जाति। कलहर अधिकांश दुकानदार हैं। मध्यप्रदेशमें इनकी संख्या अधिक देख पड़ती है। अकेले बेनगङ्गा प्रदेशमें ही ३ लाखसे अधिक कलहर रहते हैं। यह जाति प्रधानतः तीन शाखामें विभक्त है—सिहोरा, परदेशी और जैन कलहर। सिहोरे पहले बुन्देलखण्डमें रहते थे। फिर वहांसे आकर यह मध्यप्रदेशमें बसे। पहले सिहोरे अपनेको अमर बनिया कहते थे।

परदेशी ही मध्यप्रदेशके आदि कलहर हैं। यह कहते हैं—हम भारतके उत्तराञ्चलसे आकर मध्य प्रदेशमें बसे हैं। जैन कलहर समाजच्युत और धर्मभ्रष्ट होनेसे दूसरे कलहरोंमें छोटे समझे जाते हैं।

कलहाकुला (सं० स्त्री०) शारिका, मैना।

कलहान्तरिता (सं०स्त्री०) कलहात् अन्तरिता पश्चात् परितापमाप्ता इति शेषः। नायिका विशेष, एक औरत। इसका लक्षण यह है—

> "चाटुकारमपि प्राणनाथं रोषादपास्य या।
> पश्चात्तापमवाप्नोति कलहान्तरिता तु सा॥" (साहित्यदर्पण)

जो नायिका प्रथम अनुरोधकारी नायककी क्रोधसे छोड़ पीछे पछताती, वह कलाहान्तरिता कहाती है। उदाहरण यथा—

> "'नो चाटुश्रवणं कृतं न च दृशा हारो ऽन्तिके वीक्षितः
> कान्तस्य प्रियहेतवे निजसखीवाचोऽपि दूरीकृताः।
> पादान्ते विनिपत्य तत्क्षणमसौ गच्छन्मया मूढया
> पाणिभ्यामवरुध्य हन्त सहसा कण्ठे कथं नार्पितः॥" (साहित्यदर्पण)
> 'प्यारेकी बात सुनी नहिं कान सों हार परो न समीप निहारी।
> मानी कही न सखीगनकी कछु पांव परो नहिं कन्त संभारी॥
> राम अधीन भई उलटी मति काम बनी निज हाथ बिगारी।
> काहे न दौरि भुजान सों रोकिके फूलनको हरवा गर डारो॥ १॥'

भ्रान्ति, सन्ताप, सम्मोह, विश्वास, ज्वर और प्रलापादि कलहान्तरिताकी क्रिया है। (रसमञ्जरी)

कलहापहृत (सं० त्रि०) कलहेन अपहृतम्। विवादसे अपहृत, झगड़ेसे लिया हुवा।

कलहास (सं० पु०) हासविशेष, एक हंसी। मधुर एवं अस्फुट ध्वनियुक्त हासको कलहास कहते हैं।

कलहिनी (सं० स्त्री०) १ शनिकी पत्नी। २ विवाद करनेवाली स्त्री, झगड़ालू औरत।

कलही (सं० त्रि०) कलह-इनि। कलहयुक्त, झगड़ालू।

कलहु—गणितोक्त ऊर्ध्व संख्याविशेष, हिसाबकी खास बड़ी अहद। इसका प्रधान नाम 'करफु' है।

कला (सं० स्त्री०) कलयति वृद्धितो धनं सञ्चिनोति, कल-अच्-टाप्। १ मूलधनवृद्धि, सूद, व्याज। २ शिल्पादि, कारीगरी वगैरह। ३ अंश, हिस्सा। ४ तीस काष्ठा परिमित समय। ५ उभय धातुके मिश्रणस्थानका अवकाश, दो धातुओंके मिलनेकी जगहका मौका। इसीके द्वारा रस रक्तादि धातु पृथक् रह सकते हैं। ६ स्त्रीका रजः। ७ नौका, नाव। ८ कपट, फरेब। ९ राशिके अंशका एक भाग। राशिका ३० वां अंश भाग और भागका ६० वां खण्ड कला कहलाता है।

> "विकलानां कला षष्ट्या तत् षष्ट्या भाग उच्यते।
> तत् त्रिंशता भवेद्राशिर्भगणो द्वादशैव ते॥" (सूर्यसिद्धान्त)

१० चन्द्रका षोडश भाग। इनका नाम अमृता, मानदा, पूषा, तुष्टि, पुष्टि, रति, धृति, शशिनी, चन्द्रिका, कान्ति, ज्योत्स्ना, श्री, प्रीतिरङ्गा, पूर्णा, पूर्णामृता और स्वरजा है। चन्द्रकी यह कलायें अग्नि प्रभृति देव क्रम-क्रम पीते हैं। इसीसे दिन दिन घटने पर अमावस्या होती है। अग्निके प्रथम, सूर्यके द्वितीय, विश्वेदेवाके तृतीय, वरुणके चतुर्थ, वषट्कारके पञ्चम,

इन्द्रके षष्ठ, देवर्षिके सप्तम, अजैकपादके अष्टम, यमके नवम, वायुके दशम, उमाके एकादश, पितृलोकके द्वादश, कुवेरके त्रयोदश, पशुपतिके चतुर्दश और प्रजापतिके पञ्चदश कला पीने पर षोड़श कला जलमें घुस कर ओषधिके शरीरपर पहुंचती है। गो सकलके जल तथा ओषधि प्रविष्ट कला पीने पर अमृत खरूप क्षीर होकर निकलती है। इस क्षीरजात घृतको मन्त्रपूत बना अग्निमें आहुति देनेसे चन्द्र फिर दिन दिन आप्यायित होते हैं।

११ सूर्यका द्वादश भाग। इनका नाम तपिनी, तापिनी, धूम्रा, मरीचि, ज्वालिनी, रुचि, सुषम्ना, भोगदा, विश्वा, बोधिनी, धारिणी और चमा है।

१२ अग्नि-मण्डलका दशम भाग। इन्हें धूम्रा, अर्चि, उष्मा, ज्वलिनी, ज्वालिनी, विस्फुलिङ्गनी, सुश्री, सुरूपा, कपिला और हव्यकव्यवहा कहते हैं।

१३ चतुःषष्टि (६४) कला। शिवतन्त्रमें इन सकल कलावोंका नाम मिलता है, यथा—गीतवाद्य, नृत्य, नाट्य, चित्र, भूषण, निर्माण, तण्डुल तथा कुसुमादिसे पूजाके उपहारकी सज्जा, पुष्पशय्या, दन्तवसन-अङ्गराग, मणिभूमिकाका कर्म, शय्यारचना, उदकवाद्य, चित्रायोग, मालाग्रन्थन, चूड़ानिर्माण, वेशभूषाकरण, कर्णपत्रभङ्ग, गन्धलेपन, भूषणयोजना, इन्द्रजाल, कौमारयोग, हस्तलाघव, विविध शाकपूपादि भक्ष्य प्रस्तुतकरण, पानकरस-रागासवादि योजना, सूचीवापकर्म, सूतक्रीड़ा, प्रहेलिका, प्रतिमाला, दुर्व्वचक योग, पुस्तक पाठ, नाटिका एवं आख्यायिका दर्शन, काव्य समस्यापूरण, पट्टिकावेत्रवाणविकल्प, तर्ककर्म, तक्षण, वास्तुविद्या, रौप्यरत्नादि परीक्षा, धातुवाद, मणिरागज्ञान, आकरज्ञान, वृक्षायुर्वेद योग, मेष कुक्कुट एवं लावक युद्धविधि, शुकशारिका प्रलापन, उत्सादन, केशमार्जन कौशल, अक्षर मुष्टिका कथन, म्लेच्छित कविकल्प, देशभाषाज्ञान, पुष्पशकटिका निमित्तज्ञान, यन्त्रमातृका, धारणमातृका, सम्पाट्य, मानसी काव्य क्रिया, क्रियाविकल्प, छलितक योग, अभिधान-कोष-छन्दोज्ञान, वस्त्रगोपन, द्यूतविशेष, आकर्षण क्रीड़ा, बालक्रीड़नक, वैनायिकी विद्याज्ञान, वैजयिकी विद्याज्ञान और वैतालिकी विद्याज्ञान। किसी किसी पुस्तकमें सूचीवाप कर्म तथा सूत्र क्रीड़ाको एक पद बना वीणाडमरुक वाद्य अधिक सन्निवेश और वैतालिकीके स्थान पर वैयासिकी पाठ देख पड़ता है। १४ जिह्वा, जीभ।

"कलां पराङ्मुखीं कृत्वा त्रिपथे परियोजयेत्।" (हठयोगदीपिका)

१५ शिव। १६ लेश। १७ अल्प समय। १८ विभूति। १९ सामर्थ्य, ताकत। २० संख्या, शुमार। २१ शौर्यादि गुण, बहादुरी वगैरह सिफत। २२ फलन। २३ विभीषणकी ज्येष्ठा कन्या। यह मरीचिकी पत्नी थीं। २४ जीव देहस्थ षोड़शकला। इन्हें प्राण, श्रद्धा, व्योम, वायु, जल, पृथिवी, इन्द्रिय, मन, अन्न, वीर्य, तपः, मन्त्र, कर्म, लोक और नाम कहते हैं। २५ मात्रायुक्त एक लघु वर्ण।

"षड़्विषमेऽष्टौ समे कलास्ताश्च समे स्युर्नो निरन्तराः।
न समात्र पराश्रिता कला वैतालीयेऽन्ते रलौ गुरुः॥" (वृत्तरत्नाकर)

२६ ठाट, बनाव। २७ कदली, केला। पहले भारतमें केलाकी नाव बना जलपथसे आते-जाते थे। बड़े बड़े केलेके वृक्ष काट बांससे बंधने पर यह नाव बनती है।

कलाई (हिं० स्त्री०) १ कलाची, पहुंचा। हथेलीके ऊपरी जोड़को कलाई कहते हैं। पुरुषके रक्षा बांधने और स्त्रीके चूड़ी चढ़ानेका स्थान कलाई ही है। कवितामें यह शब्द प्रायः आता है। २ व्यायामविशेष, एक कसरत। इसे दो मनुष्य मिलकर करते हैं। एक दूसरेकी कलाई बलपूर्वक पकड़ता और दूसरा अपनी कलाई घुमा उंगलियोंके सहारे उसकी कलाईपर चढ़ाया करता है। ३ कलायी, पूला। ४ पूजा। यह पार्वत्य प्रदेशमें फसल आने पर होती है। फसल काटनेसे पहले दश-बारह बालका पूला बांधकर कुल देवताको अर्पण करते हैं। ५ कुकरी, सूतकी लच्छी। ६ कलावा। यह हाथीके कण्ठमें बंधती है। पावक इसीमें पद डाल हाथीको हांकते हैं। ७ मलान, पंडुई। ८ माष, उड़द।

कलाकन्द—प्रतिजगती नामक छन्दका एक भेद।

कलाकन्द (फा० पु०) मिष्टद्रव्य विशेष, किसी किस्मकी बरफी। यह खोया और मिश्री मिलाकर बनाया जाता है।

कलाकर (हिं० पु०) वृक्षविशेष, एक पेड़। (Unona longiflora) यह अशोककी भांति देखनेमें अति सुन्दर लगता है। इसे देवदारी भी कहते हैं। कलाकर भारतवर्ष और यवद्वीपमें उत्पन्न होता है। किन्तु मन्द्राजमें इसकी उपज अधिक है। दाक्षिणात्यमें अशोक न होनेसे लोग कलाकरको ही अशोक कहा करते हैं।

कलाकुल (सं० क्ली०) विष, ज़हर।

कलाकुशल (सं० त्रि०) कलायां गीतादि चतुःषष्टि-कलाविषये कुशलः निपुणः, ७-तत्। गीतादि चौंसठ कलामें निपुण, हुनरमन्द, नाचने गानेमें होशियार।

कलाकूल, कलाकुल देखो।

कलाकेलि (सं० पु०) कलाभिः केलिः विलासो कलासु केलिर्वा यस्य, बहुव्री०। १ कन्दर्प, कामदेव। (त्रि०) २ विलासी, मौजी।

कलाकौशल (सं० क्ली०) कलाका चातुर्य, हुनरकी सफ़ायी।

कलाक्षेत्र—कामरूपका एक प्राचीन तीर्थ। (योगिनीतन्त्र)

कलाङ्कुर (सं० पु०) १ सारसपक्षी। २ चौरशास्त्र-प्रवर्तक कर्णीसुत। ३ कंसासुर।

कलाङ्गल (सं० पु०) अस्त्रविशेष, एक हथियार।

कलाङ्कुलि (सं० पु०) शालि धान्यविशेष, किसी किस्मका धान।

कलाचिक (सं० पु०) दर्वी, चमचा।

कलाचिका (सं०स्त्री०) कलां अचति गच्छति प्राप्नोति वा, कला-अक्-अण् स्वार्थे कन्-टाप् अत इत्वम्। १ प्रकोष्ठ, कलाई। कूर्पर (कुहनी)से मणिबन्ध (पहुंचे) पर्यन्त हस्तभागको कलाचिका वा प्रकोष्ठ कहते हैं। २ अश्वके जानुका मध्यम भाग, घोड़ेके घुटनेका अगला हिस्सा।

कलाची (सं०स्त्री०) कला-अच-अण्-ङीप्। कलाचिका देखो।

कलाजङ्ग (हिं० पु०) मल्लयुद्धका कौशल विशेष, कुश्तीका एक पेंच। इसमें खेलाड़ीके सामने जब दूसरा पहलवान् दक्षिण पद भारी बढ़ाता, तब वह अपना वाम हस्त नीचेसे उसके दक्षिण हस्त पर जमाता है। फिर खेलाड़ी वाम जानु भूमि पर लगा दक्षिण हस्तसे उसकी दक्षिण जङ्घा पकड़ता और शिरको उसके दक्षिण पार्श्वसे निकाल वाम हस्तसे उसका दक्षिण हस्त खींचने लगता है। अन्तको दक्षिण हस्तसे विपक्षकी जङ्घा उठा वाम दिक् उसे गिराते हैं। कलाजङ्गसे वठक कट जाती है।

कलाजाजी (सं० स्त्री०) कलाये जायते, कला-जन-ड-टाप्। कलौंजी, मंगरैला।

कलाटक (सं० पु०) गरुड़शालि, एक धान।

कलाटीन (सं० पु०) खञ्जन पक्षी, सफेद खड़रैचा।

कलाद (सं० पु०) कलां रहस्यदत्त स्वर्णादीनां अंशं आदत्ते गृह्णाति, कला-आ-दा-क। स्वर्णकार, सोनार।

कलादक (सं० पु०) कलां रहस्यदत्त-स्वर्णादीनां अंशं अत्ति गोपयति, कला-अद्-ण्वुल्। स्वर्णकार, सोनार।

कलादगी—१ बम्बई प्रदेशके दक्षिण विभागका एक ज़िला। यह अक्षा० १५° ५०´ से १७° २७´ उ० और देशा० ७५° ३१´ से ७६° ३१´ पू० तक अवस्थित है। क्षेत्रफल ५७५७ वर्ग मील लगता है। कलादगीके उत्तरांशमें भीमा नदी बीजापुरके पार्श्वसे निकल गयी है। इससे शोलापुर ज़िला और अकलकोट राज्य बीजापुरसे पृथक् पड़ा है। दक्षिणको मालप्रभा नदी, पूर्व एवं दक्षिणपूर्व निज़ामका राज्य और पश्चिम मुधोलराज्य, जामखण्डी तथा जाठ है।

यह स्थान प्राचीन दण्डकारण्यके अन्तर्गत है। कलादगीके निर्जन अरण्यमें धर्मप्राण हिन्दुओंके देखनेकी बहुत सी चीजें हैं। अपूर्व प्रस्तरखचित पौराणिक दृश्य इधर उधर पड़े हैं। किन्तु इन सबके निर्माताको समझनेका कोई उपाय नहीं। कलादगी ज़िलेमें ऐवल्ली, बादामी, बागलकोट, धूलखेड़, गलगली, हिपर्गी और महाकूट प्रधान है। उक्त सकल स्थानोंको लोग पुण्य तीर्थ समझते हैं। देवों, ऋषियों और सिद्धोंकी लीलाके प्रसङ्गसे माहात्म्य सूचित हुवा है।

बादामी देखो।

ठीक लगाना कठिन है—अब वन काट कर बसती

डाली गयी थी। फिर भी प्रमाण मिला, कि सुदूर विगतकाल पर कलादगीमें नगर स्थापित हुवा। ई०के २रे शताब्दमें टलेमिने यहांकी बादामी, कलकेरी और इन्दी नामक नगरोंका उल्लेख किया है। इन तीनोंमें बादामी वा वातापीपुरी नामक स्थान ही अतिप्राचीन है। पल्लव राजावोंने दुर्भेद्य दुर्ग बना निरापद प्रबल प्रतापसे राजत्व रखा था। ई०के ६ठे शताब्दमें चालुक्य राजा १म पुलिकेशीने पल्लवोंको हटा बादामी अधिकार किया। पुलिकेशीके पीछे ७६० ई० तक चालुक्योंका राज्य चला। फिर राष्ट्रकूट राजा हुये। ९७३ ई०में राष्ट्रकूटवंश गिर जानेसे कलचुरि और होयशाल बल्लाल वंशकी ठहरी। उन्होंने ११९० ई० तक राज्य किया। अनन्तर कलादगीमें देवगिरिके यादवोंका शासन लगा। उस समय देवगिरि (वर्तमान दौलताबाद) नगरमें यादव राजावोंकी राजधानी रही। १२९४ ई०को अलाउद्दीन्ने देवगिरिपर आक्रमण किया। यादववंशीय रामचन्द्र देवगिरिके राजा थे। उन्होंने मुसलमानोंके आक्रमणसे घबरा दिल्लीके अधीश्वरकी अधीनता मानी। ई०के १५वें शताब्द यूसफ् आदिल शाहने दक्षिणापथमें एक स्वाधीन राज्य जमाया। बीजापुर उसकी राजधानी बन गया। बिजापुर देखो।

पहले कलादगीके अनेक बौद्धस्तूप चीन-परिव्राजक यवङ्ग चुयाङ्गने आकर देखे थे। उन्होंने इस राज्यको ६००० लि (कोई साढ़े चार सौ कोस) विस्तृत लिखा है।

इस ज़िलेमें भीमा, कृष्णा, घोन, घाटप्रभा और मालप्रभा नदी प्रवाहित है। सिवा इनके और भी कितनी ही क्षुद्र स्रोतस्वती विद्यमान हैं। घोनका जल बहुत खारी, किन्तु दूसरी नदियोंका मीठा है।

कलादगीमें लोहा, स्लेट (तख्तीका पत्थर), कालापत्थर, चूना, लाल बिल्लौर प्रभृति खनिज द्रव्य उत्पन्न होते हैं।

कृषिमें ज्वार, बाजरा, गेहूं और कपासकी उपज अधिक है। फिर अण्डे, अलसी, तिल और कुसुमकी भी कोई कमी नहीं। वसन्तके आगममें कुसुमका सुनहला फूल खिल जाता है।

वनमें व्याघ्र, शूकर, वृक (भेड़िये), शृगाल और हरिण रहते हैं।

जलवायु अत्यन्त मन्द नहीं। फिर भी यथाकालको वृष्टि बन्द रहनेसे अच्छा शस्य कम उपजता, जिससे दुर्भिक्ष पड़ता है। १३९६ ई०से १४०६ ई० तक बहुवर्षव्यापी दुर्भिक्ष लगा था। उससे कलादगी एककाल ही उत्सन्न हुवा। दूसरे भी कई दुर्भिक्ष पड़े। १७९१ ई०में अन्नके अभावसे सैकड़ों नरनारियोंने प्राण छोड़ा। इस अकालको लोग कङ्कालरूपी महामारी कहते हैं। वास्तविक अकालमें मरे असंख्य स्त्रीपुरुषोंका कङ्काल भूगर्भ खोदते समय आज भी मिलता है।

कलाधर (सं० पु०) कलाः धरति, कला-धृ-अच्। १ चन्द्र, चांद। २ चतुःषष्टिकलाभिज्ञ व्यक्ति, चौंसठ कला जाननेवाला। ३ शिव। ४ छन्दोविशेष। यह दण्डकका भेद है। इसके प्रत्येक चरणमें १५ गुरु और १५ लघुके पीछे एक गुरु लगता है।

कलाविक (सं० पु०) कुक्कुट, मुरगा।

कलानक (सं० पु०) शिवके एक अनुचर।

कलानाथ (सं० पु०) १ चन्द्र, चांद। २ गन्धर्वविशेष। इन्होंने सोमेश्वरसे सङ्गीत सीखा था।

कलानिधि (सं० पु०) कलाः निधीयन्ते ऽस्मिन्, कला-नि-धा-कि। १ चन्द्र, चांद। २ चतुःषष्टि कलाभिज्ञ व्यक्ति, हुनरमन्द।

कलानुनादी (सं० पु०) कलं अनुनदति, कल-अनु-नद्-णिनि। १ शब्द निकालते निकालते गमनकारी, बोलते बोलते चलनेवाला। २ भ्रमर, भौंरा। ३ कलविङ्क, गौरवा। ४ चटक, चिड़ा। ५ कपिञ्जल, एक चिड़िया। ६ चातक, पपीहा।

कलान्तर (सं० क्ली०) अन्या कला अंशः, मयूरव्यंसकादित्वात् समासः। १ लाभवृद्धि, सूद, व्याज। २ चन्द्रकी अन्य कला।

"पुपोष लावण्यमयान् विशेषान् ज्योत्स्नान्तराणीव कलान्तराणि।" (कुमार १।२५)

कलान्यास (सं० पु०) कलानां न्यासः, ६-तत्। तन्त्रोक्त न्यासविशेष। शिष्यके शरीरपर कलान्यास करना चाहिये। पादतलसे जानुतक 'ओं निवृत्त्यै नमः',

जानुसे नाभितक 'ओं प्रतिष्ठायै नमः', नाभिसे कण्ठदेश तक 'ओं विद्यायै नमः', कण्ठसे ललाट तक 'ओं शान्त्यै नमः' और ललाटसे ब्रह्मरन्ध्र तक 'ओं शान्त्यतीतायै नमः' मन्त्र द्वारा न्यास कर पुनर्वार उक्त सकल मन्त्र द्वारा ब्रह्मरन्ध्रसे यथाक्रम पदतल तक लौट आते हैं।

कलावत (हिं॰) कलावान् देखो।

कलाप (सं॰ पु॰) कालां मात्रां आप्नोति, कला-आप्-अण्, कला आप्यते अनेन, कला-आप्-घञ्-वा। ह्रस्व। पा ३।३।१। १ समूह, ढेर। २ मयूरपुच्छ, मोरकी पूछ। ३ मेखला, चन्द्रहार। ४ अलङ्कार, जेवर।

"कण्ठस्य तस्याः स्तनबन्धुरस्य मुक्ताकलापस्य च निस्तलस्य।" (कुमार)

५ तूण, तरकश। ६ चन्द्र, चांद। ७ चतुर, होशियार आदमी। ८ व्याकरण विशेष। कलाप-व्याकरणका अपर नाम कुमार और कातन्त्र है। कलापचन्द्र नामक संस्कृत ग्रन्थमें इस व्याकरणकी उत्पत्तिके सम्बन्ध पर लिखा है,—

राजा शालिवाहन किसी महिषोके साथ जलक्रीड़ा करते थे। जलके सेचनसे रानीने रतिके रसमें सुध बुध भूल राजाको कहा,—'मोदकं देहि देव' अर्थात् हे देव। मुझपर पानी मत डालो। मूर्खता वश राजाने उक्त स्वरघटित पद न समझ रानीको एक मोदक (लड्डू) दिया था। इससे बुद्धिमती रानीने यह कर निन्दा उड़ायी—मेरे पति होते भी राजा मूर्ख हैं। शालिवाहनने भार्याकी सब बात शर्ववर्मा गुरुसे कही थी। फिर शर्ववर्माने उनकी शिक्षाके लिये कातन्त्र (कलाप-व्याकरण) बनाया। कातन्त्र वा कलापकी रचनाके सम्बन्धमें एक किम्बदन्ती है।

शर्ववर्मासे शालिवाहनको व्युत्पन्न बनानेके लिये प्रतिश्रुत हो कुमारकी आराधना लगायी थी। भगवान् कार्तिकेय आराधनासे प्रीत हो अपने व्याकरण ज्ञानके आविर्भावको 'सिद्धो वर्णसमाम्नायः' पद्यपादरूप सूत्र उन्हें प्रदान किया। कुमारसे व्याकरणका प्रथम सूत्र मिलने पर इसका दूसरा नाम 'कुमारव्याकरण' पड़ गया।

दूसरी किम्बदन्ती यह है,—शर्ववर्माने शालिवाहनके निकट प्रतिज्ञा कर कुमारकी आराधना उठायी थी। कुमार मयूर पर चढ़ उनके समक्ष आविर्भूत हुये। शर्ववर्माने मयूरके कलापदेश पर 'सिद्धो वर्णसमाम्नायः' सूत्र लिखा देखा था। यह देखते ही उनके मनमें व्याकरणका पूर्ण ज्ञान आ गया।

शर्ववर्माने उक्त सूत्रको प्रथम लगा स्वतन्त्र व्याकरण बनाया है। मयूरके कलापमें प्रथम सूत्र लिखा रहनेसे इस व्याकरणका नाम कलाप पड़ा।

कलाप-टीकाकारोंके मतानुसार शर्ववर्माने ईषत् तन्त्र अर्थात् अल्पसूत्रमें यह व्याकरण प्रणयन किया था। इसीसे इसका नाम कातन्त्र हुवा।*

भारतमें कलाप नाम प्रसिद्ध है। वैयाकरण पाणिनिसे नीचे इसीकी श्रेष्ठता मानते हैं। वास्तविक केवल कलाप व्याकरणको आद्योपान्त मन लगाकर पढ़नेसे विद्यार्थी पण्डित हो सकता है।

शर्ववर्माने कलापमें तीन अंशोंके सूत्र बनाये हैं,—सन्धि, चतुष्टय और आख्यात। उन्होंने कृत्सूत्र प्रणयन नहीं किये।

दुर्गासिंहने कलापकी वृत्ति बनायी थी। उनकी वृत्ति न लगनेसे कलापव्याकरण सम्पूर्ण और साधारणके लिये सुबोधगम्य कैसे होता। दुर्गासिंहने अपनी वृत्तिमें असाधारण पाण्डित्यका परिचय दिया है। वास्तविक उसको देख चमत्कृत होना पड़ता है।

दुर्गासिंह देखो।

कलाप व्याकरणकी अनेक टीकायें भारतमें प्रचलित हैं। उनमें श्रीपति-रचित कलापवृत्तिटीका, त्रिलोचनकृत पञ्जिका, कविराजकृत कलापवृत्ति टीका, हरिरामकृत व्याख्यासार, रघुनाथशिरोमणि रचित व्याख्या, कातन्त्रचन्द्रिका और लघुवृत्ति प्रसिद्ध हैं।

---

* (१) "कातन्त्रश्चेति तनि कुटुम्बधारणे चुरादिविपन्नः। तन्त्रान्ते व्युत्पाद्यन्ते शब्दा अनेनेति स्वरवृद्ध्यगमिग्रहामल् (कलाप ४।५।४१) इति करणेऽल् प्रत्ययः। स चानेकार्थत्वाद्धातूनां व्युत्पादनेऽपि वर्तते। तेन तन्त्रमिह सूत्रमुच्यते। ईषत् तन्त्रं कातन्त्रम्। कुशब्दस्य तन्त्रशब्दे परे। का त्वीषदर्थेऽच इति ईषदर्थे कादेशः।" (त्रिलोचनकृत कातन्त्रपञ्जिका) (२) "ईषत्तन्त्रं कातन्त्रम्। ईषच्छब्दोऽल्पार्थवाचकः।" (कविराज तथा कातन्त्रचन्द्रिका)

९ ग्रामविशेष, एक गांव। (भागवत ९।१२।६) १० अस्त्र विशेष, एक हथियार। (भारत ४।५।२८) ११ वाण, तीर। १२ धेनु, गाय। १३ व्यापार, काम।

"दवदहनज्वाला कलापायते।" (साहित्यदर्पण)

कलापक (सं० पु०-क्लो०) कलाप संज्ञायां कन्। १ हस्तीका गलबन्ध, हाथीका गेलावां। स्वार्थे-कन्। २ कलाप। कलाप देखो।

यस्मिन् काले मयूराः कलापिनो भवन्ति सकलापि तस्मिन् काले देयं ऋणम्, कलापिन्-वुन्। ३ ऋषि-विशेष। ४ कविताविशेष, किसी क़िस्मकी शायरी। चार प्रकारकी कविता एकत्र मिल जानेसे कलापक कहाता है,—

"छन्दोबद्धपदं पद्यं तेनैकेन च मुक्तकम्।
द्वाभ्यान्तु युग्मकं सन्दानितकं त्रिभिरिष्यते।
कलापकं चतुर्भिश्च पञ्चभिः कुलकं मतम्।" (साहित्यद० ६।५५८)

सन्दानितकका नामान्तर विशेषक है। किसी किसी ग्रन्थमें 'त्रिभिः श्लोकैर्विशेषकम्' पाठ मिलता है।

कलापग्राम (सं० पु०) कलापनामको ग्रामः, मध्यपद-लो०। ग्रामविशेष, एक गांव। महाभारतमें लिखा—कलापग्राम हिमालयके उत्तर बसा है।

"हिमवन्तमतिक्रम्य कलापग्राममाविशत्।" (भविष्य ब्रह्मखण्ड ११।२१)

कलापच्छन्द (सं० पु०) मुक्ताका एक आभूषण, मोतियोंका एक गहना। इसमें मोतियोंकी चौबीस लड़ियां लगती हैं।

कलापटी (हिं० स्त्री०) नौकाकी पटरियोंमें शण प्रभृतिका प्रवेशनकार्य, जहाज़की पटरियोंमें सन् वग़ैरहका ठूंसा जाना। यह शब्द पोर्तगीज़ 'कल-फेटर'का अपभ्रंश है।

कलापद्वीप (सं० पु०) कलापः तन्नामको ग्रामः द्वीप इव, उपमितस०। कलापग्राम, एक पुराना बसती। कलापद्वीपमें सोमवंशीय देवर्षि और सूर्यवंशीय सुदर्शन—दो ऋषि तपस्या करते हैं। कलियुगके अन्तमें यही दोनों ऋषि चन्द्र और सूर्यवंश पुनः चलावेंगे। (भागवत)

कलापशिरा (सं० पु०) एक मुनि।

कलापा (सं० स्त्री०) पञ्चहारके तीन कारणका स्थान।

कलापानुसारी (सं० पु०) कलापव्याकरणका मतानुयायी।

कलापिनी (सं० स्त्री०) कलापश्चन्द्रः अस्त्यस्याम्, कलाप-इनि-ङीप्। १ रात्रि, रात। २ नागरमुस्ता, नागरमोथा। ३ मयूरी, मोरनी।

कलापी (सं० पु०) कलापो ऽस्त्यस्य, कलाप-इनि। १ अश्वत्थ वृक्ष, पीपलका पेड़। २ मयूर, मोर। ३ कोकिल, कोयल। ४ तूण वाणादिधारी, तरकश तीर वग़ैरह रखनेवाला। ५ कलाप व्याकरणा-ध्यायी। ६ वैशम्पायनके एक छात्र। ७ मयूरके पक्ष फैलाकर नाचनेका समय।

कलापूर (सं० पु०-क्लो०) वाद्ययन्त्रविशेष, एक बाजा।

कलापूर्ण (सं० पु०) कलाभिः पूर्णः, ३-तत्। १ चन्द्र, चांद। २ चतुःषष्टि कलाभिज्ञ, हुनरमन्द। ३ अंश-मात्रसे परिपूर्ण, एक हिस्सेसे भरा हुवा।

कलाबतून (तु० पु०) १ स्वर्ण वा रौप्यमय सूत्र, सोने या चांदीका तार। यह रेशमपर चढ़ाकर लपेटा जाता है। २ कलाबतूनका फीता। यह बत्तीसे पतला रहता और कपड़ेके किनारे पर टंकता है।

कलाबतूनी (तु० वि०) स्वर्ण रौप्य प्रभृतिके सूत्रसे निर्मित, कलाबत्तूमें तैयार किया हुवा।

कलाबत्तू (हिं०) कलाबतून देखो।

कलावान् (हिं० वि०) नटक्रियाकारक, कला खाने-वाला, जो सफ़ाईसे उछलता कूदता हो।

कलावाज़ी (हिं० स्त्री०) १ नटविद्या, उछलने कूदनेका हुनर, ढेकली। २ नृत्यादि, नाच वग़ैरह।

कलावोन (हिं० पु०) वृक्षविशेष, एक पेड़। यह श्रीहट्ट, चट्टग्राम और ब्रह्मदेशमें उपजता है। ऊंचाई ४०।५० फीट रहती है। फलका बीज सुंगरा चावल या कलौंची कहाता है। इसका तेल चर्मरोग पर चलता है।

कलाभृत् (सं० पु०) कलां बिभर्ति, कला-भृ-क्विप् तुगागमश्च। १ चन्द्र, चांद। २ गीतादि कलाभिज्ञ, हुनरमन्द।

क़लाम (अ० पु०) १ वाक्य, जुमला। २ कथन, बात। ३ प्रतिज्ञा, वादा। ४ वक्तव्य, एतराज़।

कलामक (सं॰ पु॰) कलाम-कन् पृषोदरादित्वात् साधुः। कलमधान्य, जड़हन।

कलामोचा (हिं॰ पु॰) धान्यविशेष, किसी किस्मका धान। यह प्रधानतः बङ्गालमें होता है।

कलाम्बि, कलाम्बिका देखो।

कलाम्बिका (सं॰ स्त्री॰) कला अर्थः विक्रीयते प्रयुज्यते अस्याम्, कला-वि-कै-क-टाप् पृषोदरादित्वात् मुम्। १ ऋणदान, कर्ज देनेकी हालत। २ वृद्धि-जीविका, सूदखोरी।

कलाय (सं॰ पु॰) कलां अयते, कला-अय-अण्। शिम्बीधान्यविशेष, मटर। (Pisum sativum) इसका संस्कृत पर्याय—सतीलक, हरेणु, खण्डिक, त्रिपुट, अतिवर्तुल, सुखण्डचणक, शमन, नीलक, कण्ठी, सतील, हरेणुक, सतीन और सतीनक है। भाव-प्रकाशके मतसे यह मधुररस, पाकमें मधुर, रुच और वायुवर्धक होता है।

कलायका शाक ईषत् कषाययुक्त, मधुररस, रुक्ष, भेदक और वायुप्रकोपक है। (राजनिघण्टु)

कलायक (सं॰ पु॰) कलमशालि, जड़हन। यह किञ्चित् कषाय, मधुर, रक्तप्रशान्तिजनक, वल्य, ईषत् वातल, पित्तघ्न और सुश्रसमानरूप होता है। (भविष्यसंहिता)

कलायका (सं॰ स्त्री॰) १ मत्स्याची, मकरिया। २ गण्डदूर्वा, पानीपर होनेवाली एक दूब।

कलायखञ्ज (सं॰ पु॰) वायुरोगभेद, वायकी एक बीमारी। इस रोगसे मनुष्य गमनारम्भमें खञ्जकी भांति लड़खड़ाने लगता है। कारण उसकी सन्धिका प्रवन्ध ढीला पड़ जाता है। (सुश्रुत) खञ्ज और पङ्गुकी भांति इसकी भी चिकित्सा करना चाहिये। कलायखञ्ज रोगमें तेल लगानेसे बड़ा उपकार होता है।

कलायखण्ड, कलायखञ्ज देखो।

कलायन (सं॰ पु॰) कलानां नृत्यगीतादीनां अयनं प्राप्तिर्यत्र, बहुव्री॰। नर्तक, तलवारकी धारपर नाचनेवाला।

कलायशाक (सं॰ क्ली॰) शाकविशेष, मटरका साग। यह भेदक, लघु और त्रिदोषको जीतनेवाला है। (भावप्रकाश)

कलायसूप (सं॰ पु॰) कलायकृत यूष, मटरका झोल या रसा। यह लघु, ग्राही, सुशीतल, रुच्य और पित्त, अरोचक तथा कफनाशक होता है। (वैद्यकनिघण्टु)

कलाया (सं॰ स्त्री॰) कलाय-टाप्। १ गण्डदूर्वा, पानीपर होनेवाली एक दूब। गण्डदूर्वा देखो। २ श्वेत-दूर्वा, सफेद दूब। ३ कृष्णचणक, काला चना।

कलार (हिं॰ पु॰) कल्यपाल, कलवार।

कलारुहा (सं॰ स्त्री॰) स्वर्णकेतकी वृक्ष, पीला केवड़ा।

कलाल (हिं॰ पु॰) कल्यपाल, शराब बेचनेवाला कलवार।

कलालाप (सं॰ पु॰) कलं मधुरास्फुटं आलपति, कल-आ-लप्-अण्। १ भ्रमर, गूंजनेवाला भौंरा। कर्मधा॰। २ मधुर आलाप, मीठी बोली। (त्रि॰) ३ मधुर आलापकारी, गूंजनेवाला।

कलावती (सं॰ स्त्री॰) कलाः सङ्गीतादयः सन्ति अस्याम्, कला-मतुप् ङीप् मस्य वः बहुव्री॰। १ तुम्बुरु नामक गन्धर्वकी वीणा। २ द्रुमिल राजाकी पत्नी। ३ राधिकाकी माता। ४ अप्सरोविशेष, कोई परी। ५ गङ्गा। "कूर्मयाना कलावती।" (काशी २९ ४०) ६ दीक्षा विशेष। तन्त्रसारमें इसका नियम लिखा है,—शिष्यको उपवासी रह नित्यक्रिया समापनपूर्वक प्रथम स्वस्तिवाचनके साथ सङ्कल्प करना चाहिये। गुरु आचमन ले द्वारदेशमें सामान्य अर्घ्यदानपूर्वक द्वारको पूजें। फिर उन्हें दक्षिणपद आगे बढ़ा द्वारको वाम शाखा छू और दक्षिण अङ्ग सिकोड़ मण्डपमें प्रवेश करना चाहिये। वहां गुरु नैऋत दिक्में वास्तुपुरुष और ब्रह्माको पूजते हैं। इसके पीछे उन्हें दिव्य मन्त्रसे आकाशकी ओर देख दिव्य विघ्न, अस्त्र मन्त्र एवं जल द्वारा अन्तरीक्ष्य विघ्न और वाम पार्ष्णिके आघात द्वारा भौम विघ्न हटाना पड़ता है। तण्डुलादि द्रव्य अस्त्रमन्त्रसे अभिमन्त्रित कर गुरु फेंकते हैं। फिर गुरुको आसनशुद्धि, स्वस्तिकक्रम, विघ्नोत्सादन, पञ्च गव्य प्रभृति द्वारा मण्डपशोधन करना और दक्षिण पूजा द्रव्य, वाम सुवासित जलपूर्ण कुम्भ तथा पृष्ठ-देशको वस्त्र प्रक्षालनके लिये एक पात्र रखना पड़ता है। इसके पीछे सर्वदिक् घृतका प्रदीप जला पुटा-

न्यासपूर्वक वाम ओर गुरु, परमगुरु एवं परापर, दक्षिण गणेश और मध्यमें इष्टदेवताको वह प्रणाम करते हैं। अस्त्रमन्त्र एवं गन्धपुष्प द्वारा दोनों हाथ संशोधन करने पीछे उन्हें ऊर्ध्व दिक् तीन तालि और दशदिक् तुड़िसे बांधना चाहिये। फिर गुरु वह्नि, वीज तथा जलसे वह्निके आकारको सींच भूतशुद्धि करते हैं। इसके पीछे मातृकान्यास, प्राणायाम, पीठन्यास, अङ्गादिन्यास और मन्त्रन्यास होता है। फिर गुरुको मुद्रा देखा ध्यान, मानसपूजा और अर्घ्य-स्थापन करना चाहिये। इसके पीछे अर्घ्यपात्रसे किञ्चित् जल प्रोक्षणीपात्रमें डाल उसी जलसे आत्मा और पूजाके उपकरणको गुरु तीन बार सींचते हैं। पीठमन्त्रसे शरीरमें धर्मादिकी पूजा की जाती है। फिर हृत्पद्मके पूर्व आदि केशरोंमें पीठशक्ति पूज मध्यमें पीठपूजा होती है। हृदयमें मूल देवताको पूजा नैवेद्य व्यतीत केवल गन्धादि द्वारा करते हैं। इसके पीछे मस्तक, हृदय, मूलाधार, पद प्रभृति सब अङ्गोंमें मूलमन्त्रसे पांच पुष्पाञ्जलियां दे यथाशक्ति मन्त्र जप समापन करना चाहिये।

यह समस्त कार्य प्रोक्षणीपात्रके जलसे सम्पादित होता है। फिर प्रोक्षणीका जल बदल वहिःपूजा आरम्भ करते हैं। प्रथम शारदोक्त सर्वतोभद्रमण्डलके आदिका अन्यतम मण्डल विधान कर घट रखना चाहिये। मण्डलकी पूजाके पीछे कर्णिका धान्य पूर्ण कर तण्डुल फैलाते हैं। फिर तण्डुलोंपर कुश विस्तार-पूर्वक आतपतण्डुल संयुक्त कुशासन-विन्यास किया जाता है। इसके पीछे मण्डलमें पीठोक्त देवता और प्रादक्षिण्यसे वह्निकी दशकलाको विन्यास कर पूजना पड़ता है। फिर अस्त्र मन्त्रसे प्रक्षालन, चन्दन, अगुरु एवं कर्पूरसे धूपदान और त्रिगुण सूत्रसे वेष्टन कर स्वर्ण आदिसे रचित कुम्भको पूजते हैं। इसके पीछे कुम्भमें विष्टर, आतपतण्डुल एवं नवरत्न डाल और प्रणव उच्चारणपूर्वक कुम्भ तथा पीठका एकत्र पीठ-स्थापन करना पड़ता है। फिर कुम्भको चारो दिक् घेर सूर्यकी द्वादश कलाका स्थापनपूर्वक पूजते हैं। इसके पीछे आत्माके भेदसे मातृकामन्त्र प्रतिलोम भावमें जप, देवता बुद्धि पर वटादि वृक्ष किंवा पञ्चाम्र वल्कलके कषाय, तीर्थजल अथवा सुवासित कषाय द्वारा कुम्भ भरना चाहिये। चन्द्रकी अमृत आदि षोड़शकलाको प्रादक्षिण्यसे जलमें चिन्ता तथा मन्त्र द्वारा पूजा कर और एक शङ्ख वटादि वृक्षके कषाय प्रभृतिसे भर अष्ट गन्धद्रव्यसे विलोड़ित करते हैं। उसमें आवाहनपूर्वक सकल कलाओंकी पूजा होती है। प्रथम अग्निकी दश कला पूजी जाती हैं। प्रतिलोम भावसे मूल मन्त्रका जप और मनही मन मन्त्र-देवताका ध्यान करते हैं। फिर प्राणप्रतिष्ठापूर्वक प्रत्येकको पूजना पड़ता है। इसके पीछे सूर्यकी तपिनी आदि द्वादश और चन्द्रकी अमृत आदि षोड़श कलाको आवाहन कर पृथक् पृथक् पूजते हैं। परिशेषको पचास कलाको पूजा करना पड़ती है। सृष्टि आदि कवर्ग एवं चवर्ग दश, जरादि टवर्ग तथा तवर्ग दश, तीक्ष्णादि पवर्ग एवं यवर्ग दश, पीतादि शवर्ग पञ्च और निवृत्यादि अवर्ग षोड़श कलाओंकी पूजना चाहिये। समर्थ होनेसे प्रत्येकको आवाहन कर पाद्य-आदिसे पूजा करना उचित है। फिर कलामय शङ्खका क्वाथ कुम्भमें डालते हैं। कुम्भका मुख अश्वत्थ, पनस एवं आम्रपल्लव इन्द्रवल्लीसे लपेट कल्पद्रुम बुद्धिसे आच्छादन करना चाहिये। फिर कल्पवृक्षफल बुद्धिसे उक्त मुखपर फल, आतप और चषक रखना पड़ता है। इसके पीछे निर्मल पट्टवस्त्रद्वयसे कुम्भको वेष्टन और मूल मन्त्रसे कुम्भकी मूर्ति कल्पन कर यथोक्तरूप देवताके ध्यानपूर्वक आवाहनादि उपचारसे पूजा करते हैं। देवताके अङ्गमें अङ्गन्यास, धेनु एवं परमी-करणमुद्रा प्रदर्शन, प्राणप्रतिष्ठा और षोड़शोपचार पूजा समापन होनेपर १००८ वा १०८ बार मन्त्र जपा जाता है।

फिर मन्त्रके दश संस्कार समापन कर गुरुको शिष्यके नेत्रद्वय मन्त्र और वस्त्रसे बांधना चाहिये। पुष्प द्वारा उसकी अञ्जलि भर स्वयं मन्त्र पाठपूर्वक देवताको प्रीतिके लिये गुरु कलसमें उक्त पुष्पाञ्जलि चढ़ाते हैं। इसके पीछे नेत्रका बन्धन खोल शिष्यको कुशासनपर बैठाना चाहिये। सकृत पूजाके क्रमानु-

सार भूतशुद्धि आदि विधानकर शिष्यके देहपर मन्त्रोक्त न्यास करना पड़ता है। कुम्भस्थ देवताको पञ्चोपचारसे पुनर्वार पूज अलङ्कृत शिष्यको अन्य आसनपर बैठाते हैं। कुम्भके कल्पवृक्षरूप सकल पल्लव शिष्यके मस्तकपर रख मन ही मन मातृका जपपूर्वक वशिष्ठ-संहितोक्त अभिषेकके मन्त्रसे कुम्भका जल शिष्यके शरीरपर सेचन करना चाहिये। शिष्य अवशिष्ट जलसे आचमन ले वस्त्रद्वय परिवर्तनपूर्वक गुरुके समीप उपवेशन करता है। फिर गुरु शिष्यसंक्रान्त और आत्मदेवताको एक समझ गन्धादि द्वारा पूजते हैं।

इसके पीछे मन्त्रसे शिष्यकी शिखा बांध शिष्यके शरीरमें कलान्यास और मस्तकपर हाथ रख १०८ वार मन्त्र जप कर 'मैं अमुक मन्त्र तुम्हें सुनाता हूं' कहते हुये शिष्यके हाथपर जलदान करना पड़ता है। शिष्यको भी 'ददस्व' कहकर जल लेना चाहिये। फिर गुरु ऋष्यादियुक्त मन्त्र द्विजातिके दक्षिण कर्णमें तीन वार तथा वाम कर्णमें एकवार और स्त्री वा शूद्रके वाम कर्णमें तीन वार एवं दक्षिण कर्णमें एक वार सुनाते हैं। मन्त्रग्रहण पीछे शिष्यको गुरुके चरणपर गिर जाना और गुरुको उसे मन्त्र द्वारा उठाना चाहिये। शिष्य उठकर उक्त मन्त्र १०८ वार जपता और कुश, तिल एवं जल ले गुरुको स्वर्णखण्ड दक्षिणा तथा दीक्षाके अङ्गकी समस्त सामग्री प्रदान करता है। अन्यान्य ब्राह्मणोंको भी यथाशक्ति दान दे परितुष्ट करना पड़ता है। गुरु मन्त्रदानके पीछे अपनी शक्तिकी रक्षाके लिये १००८ वा १०८ वार मन्त्र जपते हैं। अन्तमें ब्राह्मणोंको मिष्टान्न आदि खिला शिष्य भोजन करता है। कारण दीक्षाके दिन गुरु और शिष्य दोनोंको उपवास निषिद्ध है।

कलावन्त (हिं०) कलावान् देखो।

कलावा (हिं० पु०) १ सूत्रविशेष, सूतका एक लच्छा। यह टेकुवेमें लिपटा रहता है। २ मङ्गलसूत्र, राखीका लच्छा। इसका सूत्र रक्तपीत रहता है। इसे मङ्गल कार्यमें हस्त तथा कलस प्रभृति पर लपेट देते हैं। ३ हस्तीके कण्ठका एक सूत्र। इसमें कयी लड़ें रहती हैं। महावत कलावेमें अपना पैर डाल हाथीको हांकता है। ४ हस्तिकण्ठ, हाथीकी गरदन।

कलावान् (सं० पु०) कलाः सन्त्यत्र, कला-मतुप् मस्य वः। १ सङ्गीतविद्यावित्, कलावत। २ चन्द्र, चांद। ३ नट, कलाबाजी करनेवाला। (त्रि०) ४ कलाविशिष्ट, हुनरमन्द।

कलाविक (सं० पु०) कलं आविकायति विशेषेण रौति, कल-आ-वि-कै-क। कलाधिक, मुरगा।

कलाविकल (सं० पु०) कलया कामावेशेन विकलः, ३-तत्। चटक, चिड़ा। चटक देखो।

कलाविधितन्त्र (सं० क्लो०) एक तन्त्रशास्त्र।

कलास (सं० पु०) वाद्यविशेष, एक बाजा। यह अतिप्राचीन समयमें बजाया और चमड़ेसे मढ़ाया जाता था।

कलासारतन्त्र (सं० क्लो०) एक तन्त्रशास्त्र।

कलासी (हिं० स्त्री०) रेखाविशेष, एक सतर। दो तख्तोंके जोड़की लकीरको कलासी कहते हैं।

कलाहक (सं० पु०) कलं आहन्ति, कल-आ-हन्-ड संज्ञायां कन्। काहल नामक वाद्ययन्त्र, एक बाजा।

कलि (सं० पु०) कलते कलेराश्रयत्वेन वर्तते, १ विभीतक वृक्ष, बहेड़ेका पेड़। नलराजाके निर्यातनको किसी समय कलिने विभीतक वृक्षका अवलम्ब लिया था, इसीसे उसका नाम कलि पड़ गया। (वामनपु० २० अ०) कलते स्पर्धते। २ शूर, वीर, बहादुर। कलन्त स्पर्धमाना आपन्ते। ३ विवाद, झगड़ा। ४ युद्ध, लड़ायी। कलयति पापेन जड़यति। ५ युगविशेष, एक ज़माना। चतुर्थ युगको कलि कहते हैं। कल्किपुराणमें कलियुगकी उत्पत्ति-कथा इस प्रकारसे लिखी है,—

प्रलयके अन्तमें लोकपितामह ब्रह्माने पृष्ठदेशसे पापमय मलिन घोर अधर्मकी सृष्टि की थी। अधर्मने अपनी मार्जारलोचना मिथ्या नाम्नी पत्नीके गर्भसे 'दम्भ' नामक पुत्र उत्पादन किया। फिर दम्भने माया नाम्नी स्वीय भगिनीके गर्भसे 'लोभ' नामक पुत्र और 'निकृति' नाम्नी कन्याको निकाला था। इन्हीं भ्राता भगिनीसे क्रोधने जन्म लिया। क्रोधके औरस

और उसकी भगिनीके गर्भसे कलि उत्पन्न हुवा। उसका रूप तैलसंयुक्त अञ्जनकी भांति कृष्णवर्ण, मुख कराल, जिह्वा लोल, उदर काककी तरह और सर्वाङ्गमें पूतिगन्ध था। ऐसी ही भयानक मूर्तिके साथ वाम हस्त द्वारा उपस्थ धारण किये कलिने जन्म लिया और जन्म लेते ही स्त्री, मद्य, द्यूत, सुवर्ण प्रभृतिमें आसक्त हो गया। कलिके औरस और उसकी भगिनी दुरुक्तिके गर्भसे 'भय' नामक पुत्र तथा 'मृत्यु' नाम्नी कन्याकी उत्पत्ति हुयी। (कल्कि १ अ०)

कलियुगका लक्षण—जिस समय सर्वदा मिथ्या, तन्द्रा, निद्रा, हिंसा, विषादन, शोक, मोह, हीनता प्रभृतिका प्रभाव रहेगा, उसीका नाम कलिकाल पड़ेगा।

इस युगमें मनुष्य कामी और कटुभाषी होंगे। सकल जनपद दस्युपीड़ित रहेंगे। चारो वेद पाषण्डसे दूषित बन जायेंगे। राजा प्रजापीड़न करेंगे। ब्राह्मण शिश्न और उदरपरायण बनेंगे। ब्राह्मणबालक व्रतशून्य और अशुचि निकलेंगे। भिक्षु परिवारपोषक देख पड़ेंगे। तपस्वी ग्राममें टिकेंगे। न्यायी अर्थलोलुप ठहरेंगे। फिर मनुष्यमात्र क्षुद्रकाय, अधिक भोजनशील और चौर्य माया प्रभृतिमें समधिक साहसी होंगे।

कलिकालमें भृत्य प्रभुको और तपस्वी व्रतको त्याग करेंगे। शूद्र तपोवेशके उपजीवी बन प्रतिग्रह लेंगे। सब मनुष्य उद्विग्न, अनलङ्कार एवं पिशाचतुल्य हो अस्नात अवस्थामें भोजन करते भी अग्नि, देवता, अतिथि प्रभृतिको पूजेंगे। पिण्डोदक क्रिया लोप हो जावेगी। सकल ही स्त्रीरत और शूद्रसम बनेंगे। स्त्रियां अल्पभाग्य, अधिक सन्तानवती और स्वपतिकी अवज्ञाकारिणी निकलेंगी। कोयी विष्णुकी पूजा न करेगा। किन्तु कलिकालमें एक भलाई रहेगी, कि कृष्णनाम कीर्तन करनेसे ही मानवको मुक्ति मिलेगी। (गरुड़पु० ११० अ०)

ब्रह्मासतन्त्रमें भी कलियुगका लक्षण कहा है,—इस युगमें वेदिकी भिक्षा, पौराणिकी भिक्षा और पापपुण्यको वेदसम्मत परीक्षा लोप हो जायेगी। स्थान स्थान पर गङ्गा छिन्नभिन्न देख पड़ेंगी। राजा म्लेच्छजातीय और धनलोलुप बनेंगे। स्त्रियां अतिशय दुर्दान्त, कर्कश, कलहरत और पतिनिन्दक निकलेंगी। पृथिवी अल्प शस्य उत्पादन करेगी। मेघ अधिक न बरसेंगे। वृक्षोंमें स्वल्प फल लगेंगे। भ्राता, आत्मीय, अमात्य प्रभृति सामान्य मात्र धनके लिये परस्पर लड़ेंगे। मद्य पीने और मांस खानेमें कोई न हिचकेगा। सबकी निन्दा होगी। पापियोंको दण्ड न मिलेगा।

माघी पूर्णिमाको शुक्रवारके दिन कलियुगकी उत्पत्ति हुयी थी। इसका आयुःकाल चार लाख बत्तीस हजार (४३२०००) वत्सर है। आर्यभटके मतमें कलियुग १५७७९१७५० दिन रहता है।

श्रीमद्भागवतमें वर्णित है,—कलिमें मनुष्योंका ५० वर्ष परमायु होगा। कलिके दोषसे देहियोंका देह क्षीण पड़ जायेगा। वर्णाश्रमाचारी लोगोंका धर्मपथ बिगड़ेगा। धार्मिक पाषण्डप्राय बनेंगे। राजा दस्युप्राय निकलेंगे। मनुष्य चौर्य, मिथ्या, वृथाहिंसा आदि नाना वृत्तियां पकड़ेंगे। ब्राह्मण आदिवर्ण शूद्रप्राय ठहरेंगे। गो छागलप्राय रहेंगी। बन्धु यानप्राय होंगे। मेघ विद्युत्प्राय देख पड़ेंगे। औषधिका गुण घटेगा। पर्वत नीचेको झुकेंगे। गृह शून्यप्राय और धर्मरहित बनेंगे। लोग दुःसहचेष्टित देख पड़ेंगे। फिर धर्मके परित्राणको सत्वगुणसे भगवान् कल्कि अवतीर्ण होंगे। आप (परीक्षित)के जन्मसे महानन्दके राज्याभिषेक पर्यन्त ११५० वर्ष बीतेंगे। सप्त नक्षत्रात्मक सप्तर्षि मण्डलके मध्य उदयके समय दो नक्षत्ररूप ऋषि आकाशमें प्रथम उदित होते देख पड़ते हैं। उन दोनोंके बीच समदेशपर अवस्थित अश्विनी आदि नक्षत्र रातको रहते हैं। उनमें एक एकसे मिल सप्तर्षि मनुष्य परिमाणके सौ सौ वत्सर अवस्थिति करते हैं। वह सकल ऋषि अब आप (परीक्षित)के समयमें मघाको पकड़े हुये हैं। सप्तर्षिमण्डलके मघानक्षत्रमें घूमनेसे कलिकी प्रवृत्तिके १२०० वर्ष बीतेंगे। फिर सन्ध्या अतिक्रान्त होगी। जिस समयसे सप्तर्षिमण्डल मघा छोड़ पूर्वाषाढ़ाको चलेगा, उस समय अर्थात् नन्दाभिषेक तक कलि अतिशय बढ़ेगा। जिस दिन कृष्णका बैकुण्ठ जाना हुवा, उसी दिनसे कलियुग लगा

है। दिव्य परिमाणसे सहस्र वत्सर पीछे चतुर्थ कलि बीतनेपर पुनर्बार सत्ययुग आरम्भ होगा।

(भागवत १२श स्कन्ध, २ अ०, १०-२८ श्लो०)

इस युगमें धर्म एक पाद और अधर्म तीन पाद है। मनुष्यके आयुका परिमाण १०८ वत्सर और देहका प्रमाण अपने अपने हाथसे साढ़े तीन हाथ पड़ता है। अवतार श्रीकृष्ण हैं। युगके शेषको दशम अवतार कल्कि उत्पन्न हो पापियोंका विनाश साधन करेंगे। ब्राह्मण निरग्नि, असगतप्राण और भोजनपात्रके अनियम बन जायेंगे। कलियुगका विशेष धर्म दान है। संहिता प्रभृतिमें लिखा है,—

"तपःपरं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते।
द्वापरे यज्ञमेवाहु दानमेकं कलौ युगे॥" (मनुसंहिता)

सत्ययुगमें तपस्या, त्रेतायुगमें ज्ञान, द्वापरमें यज्ञ और कलियुगमें दानमात्र विशेष धर्म है।

"तपःपरं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते।
द्वापरे यज्ञमेवाहुः कलौ दानं दया दमः॥" (महाभारत)

सत्ययुगमें तपस्या, त्रेतायुगमें ज्ञान, द्वापरमें यज्ञ और कलियुगमें दान, दया तथा दम विशेष धर्म है।

"त्रयीधर्मः कृतयुगे ज्ञानं त्रेतायुगे स्मृतम्।
द्वापरे चाध्वरः प्रोक्तः कलौ दानं दया दमः॥" (वृहस्पति)

सत्ययुगमें वैदिक धर्म, त्रेतामें ज्ञान, द्वापरमें यज्ञ और कलिमें दान, दया तथा दम विशेष धर्म है।

इसी प्रकार लिङ्गपुराण, अग्निपुराण प्रभृतिमें भी एकवाक्यसे दानका विषय अनुमोदित है।

कलियुगकी संहिताके निश्चय सम्बन्धमें पराशरने लिखा है,—

"कृते तु मानवो धर्मस्त्रेतायां गौतमः स्मृतः।
द्वापरे शङ्खलिखितौ कलौ पाराशरः स्मृतः॥"

सत्ययुगमें मनुसंहिता, त्रेतामें गौतम, द्वापरमें शङ्ख तथा लिखित और कलियुगमें पाराशरसंहिता धर्मशास्त्र है।

कलिके दोषकी शान्तिको लिङ्गपुराण, वृहन्नारदीय, महाभारत और शिवपुराणमें शिवपूजाका उपदेश दिया है। फिर स्कन्दपुराणमें एकमात्र शङ्कर ही कलियुगके देवता कहे गये हैं।

"ब्रह्मा कृतयुगे देवः त्रेतायां भगवान् रविः।
द्वापरे भगवान् विष्णुः कलौ देवो महेश्वरः॥" (स्कन्दपुराण)

सत्ययुगमें ब्रह्मा, त्रेतामें सूर्य, द्वापरमें विष्णु और कलिमें महेश्वर देवता हैं।

अन्यान्य स्थलोंमें कालिका और गोपालको कलिका जाग्रत देव माना है:—

"कलौ जागर्ति गोपालः कलौ जागर्ति कालिका।"

काशीवास, गङ्गास्नान प्रभृति कलिकालमें मुक्तिका उपाय है,—

"नान्यत् पश्यामि जन्तूनां मुक्त्वा वाराणसीं पुरीम्।
सर्वपापप्रशमनं प्रायश्चित्तं कलौ युगे॥
ये विप्रास्तां पुरीं प्राप्य न मुञ्चन्ति कदाचन।
विजित्य कलिजान् दोषान् यान्ति तत् परमं पदम्॥" (स्कन्दपुराण)

कलियुगमें वाराणसीपुरीको छोड़ जीवोंका सर्व पापनाशक प्रायश्चित्त दूसरा नहीं। जो ब्राह्मण इस पुरीमें आकर सर्वदा बना रहता, वह कलिज पापसे छूट परम पद पा सकता है। गङ्गास्नानके सम्बन्धमें लिखा है—

"कृते सर्वाणि तीर्थानि त्रेतायां पुष्करं स्मृतम्।
द्वापरे तु कुरुक्षेत्रं कलौ गङ्गैव केवलम्॥" (भविष्यपुराण)

सत्ययुगमें समुदाय तीर्थ, त्रेतामें पुष्कर, द्वापरमें कुरुक्षेत्र और कलियुगमें एकमात्र गङ्गा ही को तीर्थ समझना चाहिये।

"गीता गङ्गा तथा भिक्षुः कपिलाश्वत्थसेवनम्।
वासरं पद्मनाभस्य सममं न कलौ युगे॥" (महाभारत)

गीता, गङ्गा, भिक्षुक, कपिला, अश्वत्थ वृक्ष (पीपरका पेड़) और हरिवासरकी सेवा को छोड़ कलियुगमें सक्षम धर्मकार्य नहीं होता।

हरिनामकीर्तनके माहात्म्य सम्बन्धपर कहा है,—

"ये ऽहर्निशं जगद्धातुर्वासुदेवस्य कीर्तनं।
कुर्वन्ति तान् नरव्याघ्र न कलिर्बाधते नरान्॥
चक्रायुधस्य नामानि सदा सर्वत्र कीर्तयेत्।
नाशौचं कीर्तने तस्य स पवित्रकरो यतः॥
अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तमश्लोकनाम यत्।
सङ्कीर्तितमघं पुंसो दहेदेधो यथानलः॥" (विष्णुधर्मोत्तर)

जो दिन रात जगद्स्रष्टा वासुदेवका कीर्तन करता,

हे नरश्रेष्ठ! उसे कलि किसी प्रकार की बाधा नहीं पहुंचाता। सर्वदा सकल स्थानों पर चक्रपाणिका नाम लेना चाहिये। इसमें अशौचकी विवेचना आवश्यक नहीं। क्योंकि नामकीर्तन ही पवित्रकारक है। ज्ञान वा अज्ञानवश हरिनामकीर्तन करनेसे पुरुषके सकल पाप अग्निसे काष्ठराशिकी भांति जल जाते हैं।

"गोविन्दनाम्ना यः कश्चिन्नरो भवति भूतले।
कीर्तनादेव तस्यापि पापं याति सहस्रधा॥" (स्कन्दपुराण)

गोविन्द नामयुक्त किसी मनुष्यको पुकारनेसे भी सहस्र पाप विनष्ट होते हैं। महानिर्वाणतन्त्रमें लिखते हैं,—

"मध्यामेध्यविचाराणां न शुद्धिः श्रौतकर्मणा।
न संहिताद्यैः स्मृतिभिरिष्टसिद्धिर्नृणां भवेत्॥ ६॥
विना ह्यागममार्गेण कलौ नास्ति गतिः प्रिये॥ ७॥
श्रुतिस्मृतिपुराणानि मयैवोक्तं पुरा शिवे।
आगमोक्तविधानेन कलौ देवान् यजेत सुधीः॥ ८॥" (२य उल्लास)

पवित्रापवित्र विचारहीन ब्राह्मण आदि वर्णोंकी शुद्धि वेदोक्त कर्म द्वारा न होगी। पुराण, संहिता और स्मृतिसेभी मनुष्य अपनी इष्टसिद्धि न पावेंगे। कलि-कालमें आगमोक्त विधानसे देवताओंकी पूजा करना चाहिये।

"पशुभावः कलौ नास्ति दिव्यभावोऽपि दुर्लभः।
वीरसाधनकर्माणि प्रत्यक्षाणि कलौ युगे॥ १८॥
कुलाचारं विना देवि कलौ सिद्धिर्न जायते॥" (४ र्थ उल्लास)

कलियुगमें पशुभाव नहीं होता। फिर देवभाव भी दुर्लभ है। इस युगमें वीरसाधन प्रत्यक्ष फलदायक है। हे देवि! कलियुगमें कुलाचारको छोड़ दूसरे उपायसे सिद्धि मिल नहीं सकती।

महानिर्वाणतन्त्रमें यह भी लिखा है,—जो इन्द्रियों-को जीत कुलाचारका अनुष्ठान करेगा, जो दयाशील रहेगा, जो गुरुकी सेवामें तत्पर, पितामाताके प्रति भक्तिमान्, अपनी पत्नीमें अनुरक्त, सत्यव्रत, सत्यनिष्ठ एवं सत्यधर्मपरायण हो 'कुलसाधन' कोही सत्य सम-झेगा, जो हिंसा, मात्सर्य, दम्भ तथा द्वेष न रखेगा और जो कुलाचारके अनुसार स्नान, दान, तपस्या, तीर्थदर्शन, व्रत, तर्पण, गर्भाधान, पितृश्राद्ध प्रभृति करेगा, उसको कलि पीड़ा पहुंचा न सकेगा। कलिके दोषोंमें एक प्रधान गुण यह निकलता, कि कीर्तिकोंके सङ्कल्प मात्रसे श्रेय फल मिलता है। कलिका तारक ब्रह्मनाम है—

"हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥"

बृहन्नारदीयमें निम्नोक्त सकल कार्य कलिके लिये निषिद्ध कहे हैं,—समुद्रकी यात्रा, कमण्डलुका धारण, असवर्ण कन्याका विवाह, देवरसे पुत्रका उत्पादन, मधुपर्कसे पशुका वध, श्राद्धमें मांसका दान, वानप्रस्था-श्रम, अक्षता होते भी दत्तकन्याका पुनर्वार दान, दीर्घ काल पर्यन्त ब्रह्मचर्य, नरमेध, अश्वमेध, महाप्रस्थान-गमन, गोमेध यज्ञ, आततायी रहते भी ब्राह्मणकी हिंसा, सुराग्रहण, अग्निहोत्रकी हवनीमें भी लेहली-ढ़ाका ग्रहण, (चाटचूट) वृत्त एवं स्वाध्याय सापेक्ष अशौच, सङ्कोच, मरणके अन्तमें प्रायश्चित्तका विधान, संसर्गका दोष लगते भी चौर्य प्रभृति दोषोंसे मुक्तिलाभ, दत्तक तथा औरसको छोड़ अन्य पुत्रका ग्रहण, गुरु एवं स्त्रीका परित्याग, दूसरेके लिये आत्मत्याग, उच्छिष्ट-का वर्जन, दास गोपाल आदिके अन्नका भोजन, गृहस्थके लिये अतिदूर तीर्थकी सेवा, गुरुस्त्रीमें शिष्यकी गुरुवत् वृत्ति, द्विजातियोंकी आपद्वृत्ति, अश्वस्तनिकता, ब्राह्मणका प्रवास, मुखसे अग्निधमन, (आग सुलगाना) बलात्कारादि दोषदुष्ट स्त्रीका ग्रहण, सर्वजातिसे यतिका भिक्षाग्रहण, ब्राह्मणादिके लिये शूद्रादिका पाक, पर्वतके उच्च स्थानसे गिर अथवा अग्निमें पड़ प्राणका त्याग प्रभृति।

युधिष्ठिर, हरिश्चन्द्र, मुनिचन्द्र, तेजःशेखर, विक्र-मादित्य, विक्रमसेन, लाउसेन, बल्लालसेन, देवपाल, भूपाल एवं महीपाल-कई कलियुगके प्रधान राजा और युधिष्ठिर, विक्रमादित्य, शालिवाहन, विजय, नागार्जुन तथा बलि छह राजचक्रवर्ती शककारक हैं*। शक देखो।

६ देवगन्धर्वविशेष। कश्यपके औरस और दक्ष-

---

*"युधिष्ठिरो विक्रमशालिवाहनौ धराधिनाथो विजयाभिनन्दनः।
इमेऽनु नागार्जुनमेदिनीपतिर्बलिः क्रमात् षट् शककारकाः कलौ॥"
(ज्योतिर्विदाभरण)

कन्याके गर्भसे इन्होंने जन्म लिया था। ७ एक अति प्राचीन ऋषि। इनका नाम ऋक्संहितामें मिलता है। ८ सङ्गीतका अन्तरा। ९ शिव। १० वैष्णवोंका एक तिलक। इसकी आकृति पुष्पकी कलिकाकी भांति रहती है। फिर आदि तथा अन्त सूक्ष्म और मध्य स्थूल होता है। अति सुन्दर देख पड़नेसे इसे 'रसकलि' कहते हैं।

(स्त्री०) ११ कलिका, फूलकी कली।

कलिक (सं० पु०) कलो मन्दगम्भीरो ध्वनिरस्त्यस्य, कल मत्वर्थे ठन्। १ क्रौञ्चपक्षी, कराकुल या पनकुकड़ी चिड़िया। २ वंशधान्यभेद, बांसमें होनेवाला एक चावल।

कलिकर्म (सं० क्ली०) युद्ध, लड़ाई।

कलिका (सं० स्त्री०) कलिरिव स्वार्थे कन्—टाप्। १ कली, गुञ्चा। इसका संस्कृत पर्याय—पुष्पकोरक, कलि और कली है।

"मुग्धामजातरजसां कलिकामकाले।
व्यर्थं कदर्थयसि किं नवमालिकायाः॥" (साहित्यदर्पण)

२ वीणाका मूलदेश, बीन या सितारको जड़का हिस्सा। ३ रचनाविशेष, एक बनाव। तालवाले पदसमूहका नाम कला है। कलायुक्त रहनेसे ही इस रचनाको कलिका कहते हैं। कलिका छह प्रकारकी होती है,—चण्डवृत्त, द्विगादि गणवृत्त, त्रिभङ्गीवृत्त, मध्य, मिश्र और केवल। चण्डवृत्तमें दशप्रकार संयुक्त वर्ण रहते हैं। मधुर, श्लिष्ट, विश्लिष्ट, शिथिल एवं ह्रादि संयुक्त वर्ण ह्रस्व तथा दीर्घ भेदसे भिन्न हुवा करते हैं। ह्रस्व तथा मधुर संयोगसे शङ्कर, अङ्कुश और किङ्करको उत्पत्ति है। श्लिष्ट संयोगसे दर्प, कर्पर और सर्प वर्ण निकलते हैं। विश्लिष्टके संयोगसे भक्त, कल्याण और चित्त बनते हैं। शिथिल संयोगसे पथ्य, कश्यप और वश्य उठा करते हैं। फिर ह्रादि संयोगसे मह्य, गुह्य, सह्य और प्रसह्य पाये जाते हैं। कोई कोई गर्ह्यादि शब्दको ही ह्रादि संयुक्त बताता है। दीर्घसंयोगसे तुङ्ग, अङ्ग, कार्पास, वाक्य, वैश्य और वाह्लीक प्राप्त होते हैं। चण्डवृत्तमें द्वादशसे चतुःषष्टि पर्यन्त कलाका नियम है। इसमें न्यूनाधिक कर नहीं सकते। चण्डवृत्त दो प्रकारका होता है—नख और विशिख। फिर नख बीस प्रकारका है। वर्धित, वीरभद्र, समग्र, अच्युत, उत्पल, तुरङ्ग श्रीगुणरतिमातङ्गखेलित और तिलक। नौ प्रकारको छोड़ अन्य भेदका नाम प्रायः देखनेमें नहीं आता। विशिख पांच प्रकारका होता है—पद्म, कुन्द, चम्पक, वञ्जुल और वकुल। फिर पद्म छह प्रकारका है—पङ्केरुह, सितकञ्ज, पाण्डूत्पल, इन्दीवर, अरुणाम्भोज और कल्हार। वकुल दो प्रकारका होता है—भासुर और मङ्गल। इसी भांति चण्डवृत्त बीस प्रकार बनता है। द्विगादिगणवृत्त पांच प्रकारका है—कोटक, गुच्छ, सम्फुल्ल, कुसुम और गन्ध। त्रिभङ्गी वृत्त दण्डक और विदग्ध भेदसे दो प्रकारका होता है। मिश्रकलिका गद्यसम्पृक्ता और समविभक्तिका भेदसे दो प्रकार है। केवला भी दो प्रकारकी है—अक्षरमयी और सर्वलघ्वी। ४ छन्दोविशेष।

"प्रथममपरचरणसमुत्थं श्रयति स यदि लक्ष्म। इतरदितरगदितमपि यदि च तुर्यं चरण युगलकमविकृतमपरमिति कलिका सा॥" (वृत्तरत्नाकर ४ अ०)

प्रथम, द्वितीय एवं चतुर्थ एकरूप लक्षणाक्रान्त और तृतीय चरण अविकृत रहनेसे कलिका छन्द बनता है।

५ कला, चन्द्रके ज्योतिका अंश।

"तदन्ते कलिका यथाक्रमात्ताविपयः स्मृताः।" (सिद्धान्तशिरोमणि)

६ वृश्चिकाली, बिछुआ। ७ शरपुङ्खा, सरफोंका। ८ ह्रस्वनीलिका, काली झाड़ी। ९ पुष्पविशेष, एक फूल। १० वाद्यविशेष, एक बाजा। इस पर चर्म चढ़ता था। ११ कलाजाजी, मंगरेला।

कलिकाता (सं० स्त्री०) कलकत्ता देखो।

कलिकापूर्व (सं० क्ली०) कलिकया अंशेन जन्यं अपूर्वम्। कर्मविशेष, एक काम। यह कर्म पूर्वजन्मके कर्मसे कोयी सम्बन्ध नहीं रखता और भावी फल उत्पादन करता है। जैसे दर्श और पौर्णमास यागका अङ्ग आग्नेयादि यागसे अपूर्व होता है। इसे चरम भी कहते हैं।

"अङ्गप्रधानान्यतरवहुकर्मसाध्य स्वर्गादिफलजनकापूर्वोत्पत्तौ तत्तत् प्रत्येककर्मजन्यमदृष्टम्।" (स्मृति)

कलिकार (सं० पु०) कलिं कलहं करोति, कलि-

क्ष-अण्। १ धूम्याट पक्षी, एक चिड़िया। इसकी पूंछ कांटे-जैसी होती है। २ पीतमस्तकपक्षी, पीले सरकी चिड़िया। कलिं स्वकण्टकैरनिष्टं करोति। ३ पूतिकरञ्ज, करील। ४ जलपिप्पली, पनिहा पीपल। ५ नारद।

कलिकारक (सं० पु०) कलिं स्वकण्टकैरनिष्टं करोति, कलि-क्ष-णिच्-ण्वुल्। १ पूतिकरञ्ज, करील। २ लटा करञ्ज। कलिं कलहं करोति। ३ नारद। (त्रि०) ४ कलहकारक, झगड़ालू।

कलिकारिका, कलिकारी देखो।

कलिकारी (सं० स्त्री०) कलिं गर्भपाताद्यनिष्टं करोति, कलि-क्ष-अण्-ङीष्। लाङ्गली वृक्ष, कलिहारीका पेड़। इसका संस्कृत पर्याय—लाङ्गली, हलिनी, गर्भपातनी, दीप्ता, विशल्या, अग्निमुखी, नक्ता, इन्द्रपुष्पिका, विद्युज्ज्वाला, अग्निजिह्वा, व्रणहृत्, पुष्पसौरभा, स्वर्णपुष्पा और वह्निशिखा है। राजनिघण्टुके मतसे यह कटु, उष्ण, कफ तथा वायुनाशक, गर्भस्थ शल्य अर्थात् मृतगर्भनिष्क्रामक और सारक होती है।

कलिकाल (सं० पु०) कलिरेव कालः। कलियुग। कलि देखो।

कलिङ्ग (सं० पु०-क्ली०) कलि-गम-ड। १ इन्द्रयव। २ पूतिकरञ्ज, करील। के मस्तके लिङ्गं चिह्नमस्य। ३ धूम्याट। ४ कुटज वृक्ष। ५ शिरीषवृक्ष, सिरिसका पेड़। ६ अश्वत्थवृक्ष, पीपरका पेड़। ७ जल पदार्थ ८ कोई अति प्राचीन राजा। दीर्घतमाके औरस और वलिकी पत्नी सुदेष्णाके गर्भसे इन्होंने जन्म लिया था। ९ भारतवर्षका एक जनपद। देखना चाहिये—यह जनपद कहां है।

महाभारतमें लिखा, युधिष्ठिरने गङ्गासागरसङ्गम पर पहुंच पञ्चशत नदीमें स्नान किया था। फिर वह भाइयोंके साथ समुद्रतीरसे कलिङ्गदेशमें जा उतरे। उस समय लोमशने कहा—महाराज! इसी समस्त प्रदेशका नाम कलिङ्ग है। यहां स्रोतस्वती वैतरणी बहती है। भगवान् धर्मने देवगणका आश्रय ले यज्ञानुष्ठान किया था। यज्ञके समय भगवान् रुद्रके पशुको पकड़ कर अपना बताने पर देवगणने कहा—हे भगवन्! परस्व ग्रहण करना बड़ा अन्याय है। आपको धर्मसाधन यज्ञका भाग समस्त आत्मसात् करना न चाहिये। फिर सब उनकी स्तुति करने लगे। वाग द्वारा अपना सम्मान बढ़ने पर रुद्र पशुको छोड़ देवयान पर चढ़े और स्वस्थानको चल दिये। इस विषयमें एक किम्वदन्ती है। देवगणने भयसे भीत हो सर्वोत्कृष्ट रसपूर्ण एक भाग रुद्रको दिया था। हे युधिष्ठिर! यह गाथा कीर्तनपूर्वक इस स्थानमें स्नान करनेसे स्वर्गका पथ प्रत्यक्ष होता है। फिर पाण्डवोंने द्रौपदीके साथ वैतरणीमें उतर पितृगणका तर्पण किया। इसके पीछे युधिष्ठिर कृतस्वस्त्ययन हो सागरके निकट पहुंचे और लोमशका आदेश प्रतिपालन पूर्वक महेन्द्र पर्वत पर रात भर ठहरे।*

* "स सागरं समासाद्य गङ्गायाः सङ्गमे नृप।
नदीशतानां पञ्चानां मध्ये चक्रे समाप्लवम्॥
ततः समुद्रतीरेण जगाम वसुधाधिपः।
भ्रातृभिः सहितो वीरः कलिङ्गान् प्रति भारत॥
लोमश उवाच।
एते कलिङ्गाः कौन्तेय यत्र वैतरणी नदी।
यत्रायजत धर्मोऽपि देवाञ्छरणमेत्य वै॥
ऋषिभिः समुपायुक्तं यज्ञियं गिरिशोभितम्।
उत्तरं तीरमेतद्धि सततं द्विजसेवितम्॥
समानं देवयानेन पथा स्वर्गमुपेयुषः।
अत्र वै ऋषयोऽन्ये च पुरा क्रतुभिरीजिरे॥
अत्रैव रुद्रो राजेन्द्र पशुमादत्तवान् मखे।
पशुमादाय राजेन्द्र भागोऽयमिति चाब्रवीत्॥
हृते पशौ तदा देवास्तमूचुर्भरतर्षभ।
मा परस्वमभिद्रोग्धा मा धर्मान् सकलान् वशीः॥
ततः कल्याणरूपाभिर्वाग्भिस्ते रुद्रमस्तुवन्।
इष्ट्या चैनं तर्पयित्वा मानयाञ्चक्रिरे तदा॥
ततः स पशुमुत्सृज्य देवयानेन जग्मिवान्।
अत्रानुवंशो रुद्रस्य तं निबोध युधिष्ठिर॥
अयातयामं सर्वेभ्यो भागेभ्यो भागमुत्तमम्।
देवाः सङ्कल्पयामासुर्भयाद्रुद्रस्य शाश्वतम्॥
ततो वैतरणीं सर्वे पाण्डवा द्रौपदी तथा।
अवतीर्य महाभागास्तर्पयाञ्चक्रिरे पितॄन्॥
ततः कृतस्वस्त्ययनो महात्मा युधिष्ठिरः सागरमभ्यगच्छत्।
कृत्वा च तत् शासनमस्य सर्वं महेन्द्रमासाद्य निशामुवास॥"
(महाभारत, वनपर्व, ११४ अ०)

कालिदासने कहा है,—

"स तीर्त्वा कपिशां सैन्यैर्बद्धद्विरदसेतुभिः ।
उत्कलादर्शितपथः कलिङ्गाभिमुखो ययौ ॥" (रघुवंश)

रघु हाथियोंका सेतु बांध कपिशा नदी उतरे और उत्कलदेशवासी राजावोंके साहाय्यसे पथको देख कलिङ्गकी ओर चल पड़े ।

शक्तिसङ्गमतन्त्रके मतमें—

"जगन्नाथात् पूर्वभागात् कृष्णातीरान्तगं शिवे ।
कलिङ्गदेशः संप्रोक्तो वाममार्गपरायणः ॥
कलिङ्गदेशमारभ्य पञ्चाष्टयोजनं शिवे ।
दक्षिणस्यां महेशानि कालिङ्गः परिकीर्तितः ॥"

जगन्नाथके पूर्व भागसे कृष्णानदीके तीर तक कलिङ्ग देश है। इस स्थानके लोग वाममार्गपरायण होते है। फिर कलिङ्गदेशसे दक्षिण ५८ योजन पर्यन्त कालिङ्ग कहाता है ।

कविरामने अपने दिग्विजयप्रकाशमें बताया है,—

"औड्रदेशादुत्तरे च कलिङ्गो विश्रुतो भुवि ।
तद्राज्यं भीमकेशस्य सर्वलोकेषु विश्रुतम् ॥" (१८१)

औड्र देशसे उत्तर प्रसिद्ध कलिङ्ग देश है। वहां लोकप्रसिद्ध भीमकेश राज्य करते हैं ।

यह हमारे देशका प्राचीन मत हुआ। अब देखना चाहिये—प्राचीन ग्रीक और रोमक ऐतिहासिकोंने कलिङ्गके सम्बन्धमें क्या कहा है। प्लिनिने तीन कलिङ्गों का उल्लेख किया है,—१ कलिङ्गी, २ मोदोगलिङ्गम् और ३ मक्काकलिङ्गी। इनमें कलिङ्गी, मण्डि एवं मल्लिके बीच और मालेयास पर्वतके निकट अवस्थित है। (Pliny, Hist. Nat. VI. 2I)

सब लोग पूछ सकते—मण्डि और मल्लि किसे कहते हैं। फिर मालेयास पर्वत ही कहां है। मण्डिलोग आजकल मुण्डा कहाते और छोटे-नागपुरके दक्षिण अंशमें पाये जाते हैं। (Campbell's Ethnology of India, pp. 150-I) इनसे अनतिदूर उड़ीसेके पार्वत्यप्रदेशमें कन्ध नामक असभ्य रहते हैं। यही असभ्य प्लिनिवर्णित मल्लि मालूम होते हैं। यह अपनेको कभी कभी मल्लाव या माल भी कहा करते हैं।

मालेयास पर्वत हमारा पुराणोक्त "माल्यवान्" है। प्लिनि दूसरे स्थानमें लिखते, कि मालेयास् पर्वत पर मोनिदे और शयरी रहते थे। इसका भूरि भूरि प्रमाण मिला—अति पूर्व कालसे उड़ीसेके पार्वतीय प्रदेशमें शवर लोगोंका वास रहा । पुराणकी वर्णनाके अनुसार नीलाचलके निकट ही शवरागार था । वहां शङ्ख-चक्र-गदाधर विष्णुकी मूर्ति विराजमान थी ।

"नीलाचलं लिखन्तं खं पश्यतां पापनाशनम्
अव्यद्भुतं निवसति साक्षात्तनुभृतो हरेः ॥
उपत्यकायामारूढः समन्तान्मार्गयन् द्विजः ।
ददर्श शवरागारैर्वेष्टितं परितो द्विजाः ॥
चैवस्य दीपस्थानं यत् ख्यातं शवरदीपकम् ॥
ददर्श विष्णुभक्तांस्तान् शङ्खचक्रगदाधरान् ।
ततो विश्वावसुर्नाम शवरः पतिताङ्गकः ॥" (स्कान्दपुराण)

अतएव प्लिनि-वर्णित 'शयरी' पुराणकथित शवरसे भिन्न दूसरे नहीं ठहरते। आजकल उड़ीसेके अन्तर्गत पाललहरा राज्यके मध्यवर्ती एक उच्चगिरि शृङ्गको मालय (माल्यगिरि) कहते हैं। सम्भवतः पूर्वकालमें उक्त राज्यकी समस्त गिरिमालाका नाम माल्यगिरि रहा । यही गिरिमाला 'मालेयास' नामसे प्लिनि द्वारा वर्णित हुयी है। इसे पुराणोक्त माल्यगिरि माननेमें कोई दोष नहीं लगता। सुतरां समझ पड़ा, कि प्लिनिने उड़ीसेके पश्चिमांशको कलिङ्ग अनुमान किया था ।

दूसरा मोदोगलिङ्गम् है। हमारे प्रत्नतत्त्वविद् राजेन्द्रलालने इसे मध्य-कलिङ्ग लिखा है। फिर विख्यात फरासीसी पण्डित सेण्टमार्टिन इस स्थानके सम्बन्धमें बताते, कि मनुस्मृतिमें मद नामक एक प्रकारके असभ्य लोगोंका नाम पाते हैं। वह आन्ध्रोंके साथ वर्णित हुये हैं।* प्लिनिने उन्हें गङ्गाके द्वद्वीपका वासी बताया है। गलिङ्ग सम्भवतः कलिङ्ग शब्दका रूपान्तर मात्र है। गङ्गाके 'व' द्वीपमें रहनेवाले मदगलिङ्ग कहाते थे। हमारी समझमें उक्त दोनों मत सङ्गत मालूम नहीं पड़ते । तैलगु भाषामें मोदोगलिङ्ग शब्द मिलता है। तैलङ्गियोंके उच्चार-

* मनुसंहितामें वह वैदेहिक जातिसमुत्पन्न मेद और अन्ध्र नामसे अभिहित हुये हैं। (मनु १० । ३६) मद नाम अशुद्ध है ।

यानुसार यह शब्द 'मुदुगलिङ्ग' कहा जाता है। तेलगु भाषामें मुदुका अर्थ तीन है। सुतरां 'मोदोगलिङ्ग' वा 'मुदुकलिङ्गका' संस्कृत नाम त्रिकलिङ्ग मानना युक्तिसङ्गत है।
(Caldwell's Dravidian grammar, Intro. p. 32.)

त्रिकलिङ्ग * जनपदका नाम दक्षिण देशके ५म, ८म एवं १०म शताब्दके शिलालेखों और ताम्रशासनोंमें मिलता है। टलेमिने इसे त्रिगलिपटन या त्रिलिङ्गन लिखा है। (Ptolemy's Geog. Bk. vii. ch, 23) दक्षिणापथके तामिल शिलालेखोंमें यह 'तैलिङ्ग' नामसे कलिङ्गदेशके साथ उक्त हुवा है। (Archaeological Survey of Southern India, Vol. IV. p. 61.) स्कन्दपुराणमें 'त्रिलिङ्ग' नामक जनपदका उल्लेख विद्यमान है,—

" नरेन्द्रनीलदेशे च लक्षमेकञ्च पादकम्।
त्रिलङ्गदेशे च तथा लक्षः प्रोक्तः सपादकः॥" (कुमारिकाखण्ड ३७ अ०)

शक्तिसङ्गमतन्त्रमें यही "तैलङ्ग" नामसे वर्णित है,-

"श्रीशैलन्तु समारभ्य चोलेशान् मध्यभागतः।
तैलङ्गदेशो देवेशि ध्यानाध्ययनतत्परः॥"

त्रिकलिङ्ग वा तैलङ्गका वर्तमान नाम तेलिङ्ग या तेलिङ्गन है। यह जनपद मन्द्राजके उत्तर पलिकट नामक स्थानसे लेकर उत्तर गञ्जाम और पश्चिममें त्रिपति, बेल्लारि, करनूल, विदर तथा चन्दा तक विस्तृत है। यहां तैलङ्ग (तिलङ्गी) या तेलगु-भाषी हिन्दू रहते हैं।

तीसरा मक्कोकलिङ्गी संस्कृत मघकलिङ्गका रूपान्तर है। प्राचीन भारतवासी वर्तमान आराकान प्रदेशको मघद्वीप और उसके अधिवासियोंको मघ कहते थे। किसी किसीने मघद्वीपवासियोंको ही प्लिनि-कथित मक्कोकलिङ्गी माना है।

* किसी किसी प्रत्नतत्त्वविद्‌के मतमें त्रिकलिङ्ग कहनेसे तीन कलिङ्ग समझ पड़ते हैं अर्थात् कलिङ्ग, मध्यकलिङ्ग और उत्कलिङ्ग। उत्कलिङ्गसे ही अपभ्रंशमें उत्कल नाम निकला है। (Indian Antiquary, V. 59.) किन्तु यह मत सङ्गत नहीं जंचता। कारण महाभारत, हरिवंश आदिमें उत्कल शब्द आया है। फिर किसी प्राचीन ग्रन्थमें उत्कलिङ्ग नाम देख नहीं पड़ता।

ई०के ७म शताब्द चीनपरिव्राजक युयेनचुयङ्ग कलिङ्ग देशमें आये थे। उन्होंने लिखा है—कोङ्ग-उ-तो से नौ कोसकी अपेक्षा अधिक (१४०० या १५०० लि) चलने पर हम कलिङ्ग (कि-लिङ्ग-किय) देशमें पहुंचे। (Si-yu-ki, BK. x.)

अब देखना चाहिये—कोङ्गउतो देश कहां है। कनिङ्गाम साहबके मतमें उसीका नाम गञ्जाम है। (Cunningham's Ancient Geography of India p. 513.) विख्यात चीन-भाषाविद् स्तानिसला जुलेंने 'कोङ्ग-उ-तो' शब्दका संस्कृत नाम 'कोनयोध' स्थिर किया है।* किन्तु हमारी विवेचनामें, 'कोन्-योध' नहीं, कोङ्गोद होना अधिक सङ्गत है। सामान्य भूखण्डके अधिपति रहते भी कोङ्गोदराजका प्रताप कुछ कम न था। कोङ्गोदराज्यकी भूमि यथेष्ट उर्वरा है। प्रचुर परिमाणसे धान्य उत्पन्न होता है। युयेनचुयाङ्के मतमें कोङ्गोदसे १०० कोस चलने पर कलिङ्गदेश मिलता है। ऐसा होते गञ्जाम प्रदेश ही कलिङ्गदेश ठहरता है। फिर भी चीन परिव्राजकने गञ्जामसे कलिङ्गका आरम्भ होना माना है। यही बात हमें भी अधिक युक्तिसङ्गत समझ पड़ती है। इससे महाकवि कालिदासकी वर्णनासे सम्पूर्ण सामञ्जस्य आता है। चीनपरिव्राजकने कलिङ्गदेशकी भूमिका परिमाण प्रायः २५७ कोस (५००० लि) लिखा है। अकबरके राजत्वकालमें कलिङ्ग दण्डपत् उड़ीसेके अन्तर्गत एक सरकार था। उस समय यह स्थान २७ महलोंमें विभक्त था।

(आईन-अकबरी)

इस प्राचीन विषयको छोड़ दीजिये। अब नवीन प्रत्नतत्त्वविदों का मत देखना आवश्यक है। कोलब्रुक साहबके मतमें गोदावरी नदीके तटका प्रदेश कलिङ्ग कहाता था।†

कनिङ्गामके कथनानुसार युयेनचुयङ्के समयमें कलिङ्गराज्य गञ्जामके दक्षिणपश्चिम १४००से १५०० लि अर्थात् २३३ से २५० मील दूर अवस्थित था। उस

* Julien's 'Hiowen Jhsang', III. 91.
† Colebrooke's, Essays, Vol. II. p. 179.

समय इसका क्षेत्रफल प्रायः ८३३ मील रहा। चतुःसीमा उक्त न होते भी यह राज्य पश्चिममें अन्ध्र और दक्षिणमें धनकटक राज्यसे मिला था। प्रान्तकी सीमा दक्षिणपश्चिम गोदावरी और उत्तरपश्चिमकी इन्द्रावती नदीकी शाखा गश्चिलियासे आगे न रही। यह विस्तीर्ण भूमिखण्ड महेन्द्रपर्वत द्वारा समाकीर्ण था। शिलालिपिवित् हुल्टसके मतमें कलिङ्ग गोदावरी और महानदीके मध्य पड़ता है।*

हमारे मतसे महाभारत और हरिवंशके समय कलिङ्गराज्य वर्तमान वैतरणी नदीके तटप्रदेशसे लेकर दक्षिणमें गोदावरी नदी तक विस्तृत था।† मेदिनीपुर, उड़ीसा, गञ्जाम और सरकार कलिङ्ग राज्यमें हो रहा। उत्कलराजके बढ़ जाने पर उड़ीसा कलिङ्गसे निकल पड़ा। उत्कल देखो। फिर केवल गञ्जाम और सरकार कलिङ्गमें रह गया। ई०के १०म तथा ११श शताब्दमें चालुक्य राजावोंके प्रबल प्रतापसे कलिङ्गराज्य उत्तरको उत्कल और दक्षिणको चोलमण्डल तक फैला था। उस समय तैलङ्ग पर्यन्त कलिङ्गराज्यके अन्तर्भुक्त रहा। मुसलमानोंके चढ़ते कलिङ्गराज्यकी भूमिका परिमाण बहुत घट गया। उत्कल और तैलङ्ग स्वतन्त्र हुवा। महेन्द्रपर्वतके उपरिस्थित सामान्य भूभागको लोग कलिङ्ग कहने लगे। वस्तुतः उस समय कलिङ्ग नामके लोपको बारी आयी थी। आजकलके वर्तमान मानचित्रमें भी कलिङ्ग राज्यका कोई उल्लेख नहीं। केवल समुद्रतटस्थ कलिङ्गपत्तन और गोदावरीके मुहानेका करिङ्गनगर मानो कलिङ्ग राज्यके चिह्नमात्रका स्मरण दिलाता है।

महाभारत आदिमें कलिङ्गके दो प्रधान नगरोंका उल्लेख है— मणिपुर और राजपुर। बौद्धशास्त्रमें कलिङ्गके दन्तपुर और कुम्भवती नामक दो प्राचीन नगरोंका नाम मिलता है। फिर जैनियोंके हरिवंशमें काञ्चननगर लिखा है। प्राचीन शिलालेखोंमें कलिङ्गनगर, पिष्टपुर, वेङ्गीपुर प्रभृति कई दूसरे भी प्राचीन नगर देख पड़ते हैं।

यह निर्णय करना कठिन लगता, किस समय कलिङ्ग जनपद संस्थापित हुवा। महाभारतके मतमें दीर्घतमाके पुत्र कलिङ्गने अपने नामपर यह जनपद बसाया था—

"अङ्गो वङ्गः कलिङ्गश्च पुण्ड्रः सुह्मश्च ते सुताः।
तेषां देशाः समाख्याताः स्वनामप्रथिता भुवि॥
कलिङ्गविषयश्चैव कलिङ्गस्य च स स्मृतः।" (महाभारत, आदि, १०४।४९)

महाभारतको देखते कलिङ्गराज्यका स्थापन काल वैदिक लगता है। दीर्घतमा देखो।

वास्तविक यह जनपद अति प्राचीन है। वैदिक ग्रन्थोंमें न सही--रामायणादिमें इसका उल्लेख मिलता है।*
(रामायण, किष्किन्धा, ४१ अ०)

पूर्वकालमें यहांके क्षत्रिय विलक्षण क्षमताशाली थे। कुरुक्षेत्रमें युद्धके समय कलिङ्गराज महावीर श्रुतायु दुर्योधनकी ओर पाण्डवोंसे लड़े। भीमके हाथसे वह और उनके पुत्र शक्रदेव तथा केतुमान् मारे गये। (भीष्मपर्व)

दाथावंश, महावंश प्रभृति प्राचीन बौद्ध ग्रन्थमें लिखा, कि बुद्धका निर्वाण होने पर कलिङ्गके तत्कालीन राजाने बुद्धका दन्त ले जाकर अपने राज्यमें डाला था। उन्होंने जहां वह दन्त रखा, वहां दन्तपुर नामक नगर बस गया। दन्तपुर देखो।

कलिङ्गक (सं० पु०-क्ली०) कलिङ्ग इव कायति, कलिङ्ग संज्ञायां कन् कलिङ्ग-कै-क इति वा। १ इन्द्रयव। २ प्लक्षवृक्ष, पाकरका पेड़। ३ कुटजवृक्ष, कुटकीका पेड़। ४ शिरीषवृक्ष, सिरिसका पेड़। ५ पूतिकरञ्ज, करौल। ६ पक्षिविशेष, एक चिड़िया। ७ तरम्बुज, तरबूज, कलौंदा। यह मधुर, शीतल, वृष्य,

* E. Hultzsch's South Indian Inscriptions, p. 63.

† हरिवंशमें लिखा है,—"अङ्गाय कलिङ्गास्ताम्रलिप्तकाः।"
(२२८ अ० ५५ श्लो०)

इस स्थलमें ताम्रलिप्त (वर्तमान 'तमलुकके) साथ कलिङ्ग एक होनेसे दोनों सन्निकटस्थ जनपद समझ पड़ते हैं। टलेमिने भी गङ्गासागरके निकट कलिङ्ग राज्य बताया है। Indian Antiquary Vol. XIII p. 363.

* रामायणमें एक दूसरे कलिङ्गका नाम है। वह गोमती और अयोध्याके मध्यवर्ती किसी स्थानमें रहा। (रामायण, अयोध्या, ७१ अ०)

वल्य, पित्तदाहघ्न, सन्तर्पण और वीर्यकर होता है। (राजनिघण्टु) ८ चातक, पपीहा। ९ विभीतक वृक्ष, बहेड़ेका पेड़।

कलिङ्गज (सं० पु०) इन्द्रयव।

कलिङ्गड़ा (हिं० पु०) कलिङ्ग, एक राग। यह दीपक रागका पञ्चम पुत्र है। रात्रिके चतुर्थ प्रहर इस रागको गाते हैं। कलिङ्गड़ेमें सातो स्वर लगते हैं। इसका स्वरपाठ इस प्रकार चलता है—म ग ऋ स स ऋ ग म प ध नि सा।

कलिङ्गड़ी (सं० स्त्री०) दुर्गा।

कलिङ्गद्रु (सं० पु०) कुटजवृक्ष, कुटकीका पेड़।

कलिङ्गयव (सं० पु०) इन्द्रयव।

कलिङ्गबीज (सं० क्लो०) इन्द्रयव।

कलिङ्गशुण्ठी (सं० स्त्री०) कलिङ्गदेशकी शुण्ठी, एक सोंठ। यह तिक्त, बलकर, अग्निदीपन, अजीर्णहर और बालकातिसारघ्न होती है। फिर यवक्षार मिलाकर खिलानेसे कलिङ्गशुण्ठी गर्भिणीकी वान्ति दूर कर देती है। (अत्रिसंहिता)

कलिङ्गा (सं० स्त्री०) काय सुखाय लिङ्गमस्याः, कलिङ्ग-टाप् बहुव्री०। १ नारी। २ त्रिवृता, तेवरी। ३ कर्कटशृङ्गी, ककड़ासींगी। ४ सुन्दर स्त्री, खूबसूरत औरत। ५ भोजराजकी पत्नी। यह दुष्मन्तकी माता थीं। (नृसिंह पुराण २८। १८)

कलिङ्गादिकषाय (सं० पु०) कलिङ्ग, पटोलपत्र और कटुरोहिणीका पाचन। यह पित्तज्वरको दूर करता है। (चक्रदत्त)

कलिङ्गाद्यगुड़िका (सं० स्त्री०) ज्वरातिसार रोगका एक औषध, बोखारके दस्तोंकी एक दवा। कलिङ्ग (इन्द्रयव), विल्व, जम्बू, आम्र, कपित्थ, रसाञ्जन, लाक्षा, हरिद्रा, ह्रीवेर, कट्फल, शुकनासिका (शोणाकत्वक्), लोध्र, मोचरस, शङ्ख, धातकी और वटशुङ्गक (बरगदकी बो) बराबर बराबर तण्डुलोदकसे रगड़ बटी बनाते और छायामें सुखाते हैं। तण्डुलोदक अष्टगुण जलमें चावल धोनेसे होता है। इस गुड़िकाके सेवनसे ज्वरातिसार, शूल, अतिसार और रक्तदोष निवारित होता है। (परिभाषाप्रदीप)

कलिङ्गिका (सं० स्त्री०) कलिङ्गगङ्गा, कामरूपकी एक नदी। (कालिकापुराण)

कलिञ्ज (सं० पु०) कं वायुं लञ्जति तिरस्करोति रोधनेन इति शेषः, क-लजि-अण् निपातनात् साधुः। १ कट, चटाई। इसका अपर संस्कृत नाम क्लिञ्ज है। २ कुलिञ्जन, कुलींजन।

कलिञ्जम (सं० पु०) वृक्षविशेष, एक पेड़।

कलित (सं० त्रि०) कल-क्त। १ विदित, ज़ाहिर। २ प्राप्त, मिला हुवा। ३ भेदित, अलग किया हुवा। ४ गणित, गिना हुवा। ५ उपार्जित, कमाया हुवा। ६ अनुगत, दबाया हुवा। ७ आश्रित, सहारा पकड़े हुवा। ८ विचारित, समझा हुवा। ९ बद्ध, बंधा हुवा। १० उक्त, कहा हुवा। ११ गृहीत, लिया हुवा। १२ धृत, पकड़ा हुवा।

"करकलितकपालः कुण्डली दण्डपाणिः।" (भैरवध्यान)

(क्लो०) भावे क्त। १३ ज्ञान, समझ।

कलितरु (सं० पु०) विभीतक वृक्ष, बहेड़ेका पेड़।

कलिद्रु, कलिद्रुम देखो।

कलिद्रुम (सं० पु०) कलिना आश्रितो द्रुमः, मध्य-पदलो०। १ सरल देवदारु, सीधा देवदार। २ भल्लातक वृक्ष, भिलावेंका पेड़। ३ विभीतक वृक्ष, बहेड़ेका पेड़।

कलिनाथ (सं०पु०) कलेः कलिरेव वा नाथः। १ कलियुगके प्रभु, कल्कि। २ मुनिविशेष। इन्होंने एक गन्धर्ववेद प्रणयन किया था।

कलिन्द (सं० पु०) कलिं ददाति द्यति वा, कलि-दा दो वा खच्-मुम्। १ सूर्य, सूरज। २ विभीतक वृक्ष, बहेड़ेका पेड़। ३ पर्वत विशेष, एक पहाड़। इसी पर्वतसे यमुना नदी निकली हैं। (रामायण, किष्किन्ध्या ४० स०)

कलिन्दक (सं० पु०) १ कर्कारु, पेठा, विलायती कुम्हड़ा। २ तरम्बुज, तरबूज़, कलींदा।

कलिन्दकन्या (सं० स्त्री०) कलिन्दस्य पर्वत विशेषस्य कन्या इव। यमुना नदी।

"कलिन्दकन्या मथुरां गतापि गङ्गोर्मिसंसक्त जलेव भाति।" (रघुवंश)

कलिन्दजा, कलिन्दशैलजा देखो।

कलिन्दनन्दिनी (सं०स्त्री०) कलिन्दं नन्दयति, कलिन्द-

नन्द-णिनि-ङीप्। यमुना नदी।

कलिन्दशैलजा (सं० स्त्री०) कलिन्दशैलात् जायते कलिन्द-शैल-जन-ड-टाप्। यमुना नदी।

कलिन्दशैलजाता, कलिन्दशैलजा देखो।

कलिन्दिका (सं०स्त्री०) कलिं द्यति नाशयति, कलि-दो-खच्-मुम् स्वार्थे कन्-टाप् अत इत्वम्। सर्वविद्या, हिकमत।

कलिन्दी (हिं) कालिन्दी देखो।

कलिपुर (सं०क्ली०) १ पद्मराग मणिकी एक पुरातन खनि, मानिककी एक पुरानी खान। २ पद्मराग मणि भेद, किसी किस्मका मानिक। इसे लोग मध्यम समझते थे।

कलिप्रद (सं० पु०) मद्यशाला, शराबखाना।

कलिप्रिय (सं० पु०) कलिः कलहः प्रियो यस्य, बहुव्री०। १ कलहप्रिय नारद मुनि। "कलिप्रियस्य प्रियविग्रहर्षः।" (रघुवंश) २ वानर, बन्दर। ३ विभीतकवृक्ष, बहेड़ेका पेड़। (त्रि०) ४ दुष्टप्रकृति, बदमिज़ाज, झगड़ालू।

कलिफल (सं० क्ली०) विभीतक फल, बहेड़ा।

कलिम (सं० पु०) शिरीष वृक्ष, सिरिसका पेड़।

कलिमल (सं० क्ली०) पाप, गुनाह।

कलिमार, कलिमारक देखो।

कलिमारक (सं० पु०) कलिना स्वदेहस्थ कण्टकेन मारयति, कलि-मृ-णिच्-ण्वुल्। १ पूतिकरञ्ज, करील। २ कण्टकवान् करञ्ज, कंटीला करौंदा।

कलिमाल, कलिमालक देखो।

कलिमालक (सं० पु०) कलीनां कण्टकानां माला यत्र, कलि-माला-क। पूतिकरञ्ज, करील।

कलिमाल्य (सं० पु०) कलीनां माल्यं यत्र, बहुव्री०। पूतिकरञ्ज, करील।

कलिया (अ० पु०) घृतपक्व मांस, घीमें भूना हुवा गोश्त। इसमें मसालेदार झोल रहता है।

कलियाना (हिं० क्रि०) १ कली आना, गुञ्चा फूटना। २ पक्ष आना, नये पर निकलना।

कलियारी (हिं० स्त्री०) कलिहारी, एक ज़हरीला पौदा। इसका हिन्दी पर्याय—करियारी, करिहारी, लांगुली और कुलहारी है। इसे बंगलामें उलट-कम्बल, सन्थालीमें सिरिक समनो, पञ्जाबीमें मुलिम, दक्षिणीमें नातका बछनाग, मराठीमें करियानाग, मार-वाड़ीमें इनदई, तामिलमें कलेप्पै कडिगङ्ग, तैलगुमें कलप्पागड्डा, मलयमें वेनतोनी, ब्रह्मीमें सिमदोन और सिंहलीमें नेयङ्गल कहते हैं। (Gloriosa superba)

यह एक विशाल ओषधि है। करियारी अपने पत्तोंकी नोकके सहारे ऊपरको चढ़ती है। भारत, ब्रह्म और सिंहलके वनमें यह स्वभावतः उत्पन्न होती है। वर्षा ऋतुके समय इसमें सुन्दर और सुदीर्घ पुष्प आता है। पत्र पतले और नोकदार होते हैं। मूल ग्रन्थिविशिष्ट रहता है। पुष्प झड़ने पर मिर्च-जैसा फल लगता है। पक्व फलके अन्तर्गत बीज होता है। इसका मूल विषाक्त है।

करियारीकी जड़को भारतीय वैद्य और मुसल-मानी हकीम औषधमें व्यवहार करते हैं। बिच्छू और कनखजूरेके काटने पर इसका पुलटिस चढ़ता है।

कलियुग (सं० क्ली०) कलिरेव युगम्। चतुर्थ युग। कलि देखो।

कलियुगाद्या (सं० स्त्री०) कलियुगस्य आद्या आद्य-तिथिः, ६-तत्। माघी पूर्णिमा, माहकी पूरनमासी। इसी तिथिको कलियुग लगा था।

कलियुगालय, कलितरु देखो।

कलियुगावास, कलितरु देखो।

कलियुगी (सं०त्रि०) १ कलियुगमें उत्पन्न होनेवाला। २ पापी, बुरा।

कलिल (सं० त्रि०) कल्यते मिश्र्यते, कलि-इलच्। सलिकल्यनिमहिभडिभण्डीत्यादि। उण्। १। ५५। १ मिश्रित, मिला हुवा। २ गहन, घना। ३ आच्छन्न, भरा हुवा। (क्ली०) ४ समूह, ढेर।

"यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति।" (गीता २। ५२)

कलिवर्ज्य (सं० त्रि०) कलियुगमें न करने योग्य, जिसे वर्तमान युगमें बचाना पड़े। अश्वमेधादि यज्ञ, देवरादिसे नियोग, सन्न्यास, मांस-पिण्डदान प्रभृति कर्म अन्य युगमें कर्तव्य रहते भी कलिमें वर्ज्य है।

कलिवल्लभ—चालुक्यराज ध्रुवका एक नाम।

कलिविक्रम—दक्षिणापथके एक प्राचीन चालुक्य राजा। इनका अपर नाम त्रिभुवनमल्ल वा विक्रमादित्य (४र्थ) था। यह आहवमल्लके पुत्र रहे। इनके राजत्वका काल संवत् ९९७—१०४८ था।

कलिविष्णुवर्धन—पूर्व चालुक्यराज विजयादित्य नरेन्द्र मृगराजके पुत्र। इन्होंने डेढ़ वर्ष राजत्व किया।

कलिवृक्ष (सं० पुं०) कलेराश्रयरूपो वृक्षः, मध्यपद-लो०। विभीतक वृक्ष, बहेड़ेका पेड़।

कलिसंश्रय (सं० पु०) कलेः संश्रयः आवेशः, ६-तत्। १ शरीरमें कलिका प्रवेश, पापमें पड़नेकी हालत। २ कलिकी आकृति, गुनाहकी सूरत।

कलिहारी (सं० स्त्री०) कलिं हरति, कलि हृ-अण्-ङीष्। लाङ्गली, करियारी। करियारी देखो।

कली (सं० स्त्री०) कलि-ङीप्। कलिका, गुञ्चा।

कली (हिं० स्त्री०) १ अक्षतयोनि कन्या, बाकरा। २ पक्षीका नया पर। ३ वस्त्रविशेष, एक कपड़ा। यह तिकोनी कटती और अंगरखे, कुरते, पायजामे वगैरहमें लगती है। ४ हुक्केके नीचेका हिस्सा। इसमें गड़गड़ा लगता और पानी रहता है। ५ वैष्णवों का एक तिलक। ६ कलई, पत्थर या सीपका फूंका हुवा टुकड़ा। इसीसे चूना बनता है।

कलींदा (हिं० पु०) तरम्बुज, तरबूज़।

कलील (अ० वि०) अल्प, थोड़ा, कम।

कलीसिया (हिं० स्त्री०) ईसाइयों या यहूदियोंकी धर्ममण्डली। यह यूनानी 'इकलीसिया' शब्द का अपभ्रंश है।

कलु (सं० पु०) गरुड़शालि, किसी किस्मका धान।

कलु—आसामके गारो पर्वतकी एक नदी। यह तुरा नामक स्थानसे निकल ब्रह्मपुत्र नदमें जा गिरी है।

कलुक (सं० पु०) वाद्यविशेष, एक बाजा।

कलुका (सं० स्त्री०) १ शुण्डा, शराबखाना। २ उल्का, उत्पात, शहाब-साकिब, टूटता तारा।

कलुख (हिं०) कलुष देखो।

कलुखाई (हिं०) कलुषता देखो।

कलुखी (हिं०) कलुषी देखो।

कलुवावीर (हिं० पु०) देवताविशेष। इनको दोहाई सावरी मन्त्रमें लगती है। यह जादू टोनेके प्रधान देव हैं।

कलुष (सं० क्ली०) कं सुखं लुषति हिनस्ति, क-लुष्-अण् कल-उषच् वा। पुनश्चिकलिभ्य उपच्। उण् ४। ७५। १ पाप, गुनाह। २ मलिनता, मैलापन। "विगत-कलुषमम्भः श्यामपङ्का धरित्री।" (ऋतुसंहार) (पु०) कस्य जलस्य लुषः हिंसक आविलकारकः, क-लुष-क। ३ महिष, भैंसा। ४ मण्डलिसर्प। ५ क्रोध, गुस्सा। (त्रि०) ६ बद्ध, बंधा हुवा, जो बहता न हो। ७ निन्दित, बदनाम, खराब। ८ कषायित, कसैला। ९ दुःखित, अफ़सुर्दा। १० क्षुब्ध, घबराया हुवा। ११ असमर्थ, नाताक़त।

"भारावबोधकलुषा दयितेव रात्रौ।" (रघु ५।६४)

कलुषता (सं० स्त्री०) १ मलिनता, मलापन। २ अन्ध-कार, अंधेरा। ३ क्षुब्धता, घबराहट।

कलुषमञ्जरी (सं० स्त्री०) जिङ्गिनी, मजीठ।

कलुषयोनि (सं० त्रि०) वर्णसङ्कर, दुतुख़्मीहराम, दोग़ला।

कलुषित (सं० त्रि०) कलुषमस्य सञ्जातः, कलुष-इतच्। १ पापयुक्त, गुनाहगार। २ दूषित, खराब। ३ मलिन, मैला। ४ कषायित, कसैला। ५ बद्ध, बंधा हुवा। ६ दुःखित, रञ्जीदा। ७ क्षुब्ध, घबराया हुवा। ८ असमर्थ, नाताक़त।

कलुषी (सं० त्रि०) कलुषमस्यास्ति, कलुष-इनि। १ पापी, गुनाह करनेवाला। २ मलिन, मैला रहने-वाला।

कलूटा (हिं० वि०) अत्यन्त कृष्णवर्ण, निहायत काला।

कलूना (हिं० पु०) स्थूल धान्य विशेष, एक मोटा धान। यह पञ्जाबमें होता है।

कलूतर (सं० पु०) देशविशेष, एक मुल्क।

कलेऊ (हिं० पु०) १ भोजन विशेष, एक खाना। यह लघु रहता और प्रातःकाल जलपानके समय चलता है। २ विवाह होते समय वरका एक भोजन। यह पाणिग्रहण होनेके तीसरे और चौथे दिन सन्ध्या समय किया जाता है। विवाहमें प्रथम दिवस पाणि-ग्रहण होता है। दूसरे दिन रात को कच्ची रसोयी खाने वरपक्षीय लोग जाते हैं। तीसरे और चौथे

दिन तीसरे पहर कोयी पांच बजे कन्यापक्षीय जनवासे (जहां वरपक्षीय ठहरते हैं) में बरात ल्यौटने आते हैं। जब बरात ल्यौट जाती, तब कन्यापक्षीय मण्डली वरको भोजन करनेके लिये बोलाती है। इसीका नाम कलेऊ है। कलेऊमें सिवा शक्कर और पूरीके दूसरी चीज़ नहीं खिलाते। वरके साथ सहबोला भी कलेऊ करने जाता है।

कलेजई (हिं० पु०) १ वर्णकविशेष, एक रंग। यह छिबुले, हरे कसीस और मजीठ या पतङ्गके योगसे बनता है। इसका अपर नाम सुनौटिया रंग है। (वि०) २ सुनौटिया।

कलेजा (हिं०पु०) १ वक्षःस्थलान्तर्गत अवयव विशेष, छातीका एक भीतरी हिस्सा। यकृत् देखो। २ वक्षःस्थल, सीना, छाती। ३ साहस, हिम्मत।

कलेटा (हिं० पु०) अजविशेष, एक बकरा। इसकी ऊनसे कम्बल बनते हैं।

कलेवर (सं० क्ली०) कले शुक्रे वरं श्रेष्ठम्, देहोत्पत्तिहेतुकत्वात् पवित्रम्, अलुक् समा०। शरीर, जिस्म, चोला।

कलेस (हिं०) क्लेश देखो।

कलैया (हिं०स्त्री०) १ कला, उलट-पुलट। २ ताड़ना, उत्पीड़न, मारपीट।

कलोईबोड़ा (हिं० पु०) सर्पविशेष, अजगरकी भांति एक बड़ा सांप। यह बङ्गालमें होता है।

कलोड्व (सं० पु०) कलमशालि, जड़हन।

कलोपनता (सं० स्त्री०) मूर्छनाविशेष, एक इजफ़।

"मध्यमे स्युः सौवीरी हारियाश्वा ततः परम्।
स्यात् कलोपनता शुद्धमध्या मार्गी च पौरवी॥
हृष्यका सप्तमी प्रोक्ता मूर्छनेत्यभिधा इमाः।" (सङ्गीतदर्पण)

मध्यम ग्रामकी सात मूर्छना होती हैं,—सौवीरी, हारियाश्वा, कलोपनता, शुद्धमध्या, मार्गी, पौरवी और हृष्यका। कलोपनता मध्यम ग्रामकी तृतीय मूर्छनाका नाम है।

कलोर (हिं० वि०) बेब्यायी, जो ब्यायी न हो। यह शब्द गायके ही लिये आता है।

कलोल (हिं०) कल्लोल देखो।

कलोलना (हिं०क्रि०) कल्लोल करना, खेलना-कूदना।

कलौंस (हिं० वि०) १ कृष्णवर्ण विशिष्ट, कालापन लिये हुये। (पु०) २ कृष्णवर्ण, कालापन। ३ कलङ्क, धब्बा।

कलौंजी (हिं० स्त्री०) १ कृष्णजीरक, काला जीरा। इसे बङ्गलामें सुगरैला, काश्मीरीमें तुख़्म गन्दन, अफ़ग़ानीमें सियाह दारू, मराठीमें कालेंजिरे, तामिलमें कारुनशिरोगम्, तेलगुमें नल्ल जिलकर, कनाड़ीमें काड़ी जिड़गी, मलयमें कारुन चीरकम्, ब्राह्मीमें समोनने, सिंहलीमें कलुदुरु, अरबीमें कमूनअसवद और फारसी में सियाहदाना कहते हैं। (higella sativa) किन्तु कालेजीरो कलौंजीसे भिन्न वस्तु है।

यह दक्षिण यूरोपमें स्वभावतः उत्पन्न होती है। दक्षिण भारत और नेपालकी तरायीमें इसे नदी किनारे मार्गशीर्ष वा पौष मासमें बोते हैं। वालुकामय भूमि कलौंजीके लिये अच्छी रहती है। वृक्ष डेढ़ या दो हाथ उच्च होता है। पुष्प झड़ जानेसे कोयी तीन अङ्गुलि परिमित कली निकलती हैं। उनमें कृष्णवर्ण कण भरे रहते हैं। कणका आस्वाद सबल, तीक्ष्ण और सुगन्धि होता है। लोग कलौंजीको तरकारीमें डाल कर खाते हैं। इससे दो प्रकारका तैल निकलता है—एक कृष्णवर्ण, सुगन्धि एवं वायु परिमाणशील और दूसरा स्वच्छ तथा एरण्डतैल सदृश। प्रथमोक्त तैलसे सुन्दर नीलवर्ण प्रतिबिम्ब फूटता है। कलौंजी सुगन्धित, वायुनाशक, अग्निदीपन और पाचक होती है। यह अग्निमान्द्य, अरुचि, ज्वर और ग्रहणी प्रभृति रोगोंमें औषधकी भांति व्यवहार की जाती है। कलौंजीके सेवनसे दुग्ध भी अधिक उतरता है। मुसलमान हकीमोंके मतानुसार कलौंजी उत्तेजक, कृशताकारक, परिपाकशील, शोधन, और मूत्रवर्धक है। कलौंजी कणसदृश बीज कपड़ेमें रखने को नहीं लगता

२ एक तरकारी। यह करेले, परवल, भिण्डी, बैंगन वगैरहका बीचसे चीर और नमक, मिर्च, खटाई, धनिया प्रभृति द्रव्य भर कर बनायी जाती है। इसे भरगल भी कहते हैं।

कलौंथी (हिं० स्त्री०) कुलत्थ, मुंगरा चावल।

कल्क (सं॰पु॰) कल्-क। कृदाधारार्चकलिभ्यः कः। उण् ३।४०। १ शिलापिष्ट द्रव्य, पत्थर पर पीसी हुयी चीज़। शुष्क वा जलमिश्रित द्रव्यमात्र पत्थर पर पीसनेसे कल्क कहाता है। इसका संस्कृत पर्याय—पिष्ट, विनीय, आवाय और प्रक्षेप है। हिन्दीमें इसे चूरन और बुकनी या बुकनू कहते हैं। एक प्रहरसे अधिक काल रहने पर कल्क द्रव्यका वीर्य घट जाता है। २ रसपिष्ट द्रव्य, पानीमें पीसी हुयी चीज़। ३ मध्वादिपेषित द्रव्य, शहद वग़ैरहमें पीसी हुयी चीज़। इसमें प्रधान द्रव्य एक कर्ष और मधु, घृत वा तैल द्विगुण पड़ता है। फिर सिता वा गुड़ द्विगुण और द्रव चतुर्गुण डालते हैं। (परिभाषा प्रदीप) ३ घृत तैलादिका शेष, घी तेल वग़ैरहका बचा हुवा हिस्सा। ४ दम्भ, घमण्ड। ५ विभीतकवृक्ष, बहेड़ेका पेड़। ६ विष्टा, मैला। ७ किट्ट, ८ पाप, गुनाह। ९ द्रव्यमात्रका चूर्ण, किसी चीज़की बुकनी। १० कर्णमल, कानका मैल। तुरुष्क नामक गन्ध द्रव्य, लोबान। ११ प्रतारणा, फटकार। १२ अवलेह, चटनी। १३ करिदन्त हाथी दांत। (त्रि॰) कलयति पापं आचरति। १४ पापात्मा, पापी गुनाहगार।

कल्कन (सं॰ क्ली॰) कल्कं शाठ्यं करोति, कल्क-णिच् भावे ल्युट्। १ शठताचरण, फरेब, धोकेबाज़ी। २ विवाद, झगड़ा।

कल्कि (सं॰ पु॰) कल्कं पापं हार्य्यतया अस्ति अस्य, इन्। भगवान् नारायणके दश अवतारोंमें दशम वा शेष अवतार। भूमण्डलमें कलिका चारो पाद वा पूर्ण अधिकार आने अर्थात् समुदय मानवोंके एक वर्ण हो जाने और विष्णुका नाम भुलानेसे भगवान् कल्कि नामसे अवतीर्ण होंगे। वह कलिको निपीड़ित कर पृथिवीसे भगावेंगे; म्लेच्छकुलको मिटा सत्यमें चलावेंगे।

(महाभारत, भागवत, विष्णु, गरुड़, नारसिंह इत्यादि)

सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि—चार युगोंको पृथिवी पर अधिकार मिला करता है। इन्हीं चारो युगोंके समष्टि कालको 'दिव्ययुग' कहते हैं। ७१ दिव्ययुगोंमें एक मन्वन्तर होता है। आजकल ७म मनु वैवस्वतका अधिकार चलता है। वैवस्वत अधिकारके ७१ दिव्ययुगोंमें अष्टाविंशति दिव्ययुगका वर्तमान कलियुग है। इससे पहले स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत और चाक्षुष नामक छह मन्वन्तर बीत चुके हैं। इन मन्वन्तरोंमें इकहत्तर इकहत्तरके हिसाबसे ४२६ दिव्य युग हुये। प्रत्येक दिव्ययुगमें एक एक कलियुग निकला है। वर्तमान वैवस्वत मनुके २७ दिव्य युग और उसीके साथ २७ कलियुग भी हैं। वर्तमान श्वेतवराहकल्पमें कुल ४५३ कलियुग बीते हैं। प्रत्येक कलिकी शेष अवस्थामें नारायणने कल्किमूर्ति परिग्रह करते ४५३ बार कल्किलीला हुयी है। फिर वर्तमान कलियुगके अन्तमें भी एक बार कल्कि अवतार लेंगे। प्रत्येक मन्वन्तरमें नारायणके अवतारादि समान होते हैं यह किसीभी पुराणसे स्पष्ट समझ नहीं सकते। सुतरां कौन निश्चय कर सकता है कि विगत मन्वन्तरों वा कलियुगोंमें कल्कि अवतार हुआ था या नहीं। भगवान्‌की कल्कि लीलाके सम्बन्धमें कल्किपुराणकारने लिखा है,—

कल्किका शेषपाद आते ही स्वाध्याय, स्वधा, स्वाहा, वषट् एवं ओङ्कार अन्तर्हित हुवा, सुतरां देवों का आहारादि भी रुक गया। उस समय वह समवेत हुये और दीना, क्षीणा, तथा मलिना धरणीको आगे कर अत्यन्त हताश मनसे ब्रह्मलोक जा पहुंचे। विषण्ण मन ब्रह्मलोकमें उपनीत होते उन्होंने सनक, सनन्द, सनातनादि एवं सिद्धगण द्वारा स्तूयमान लोकपितामह ब्रह्माको सुखोपविष्ट देख अवनत मस्तक प्रणामपूर्वक अवस्थान किया था। पितामहने उनसे सादर बैठने को कह कुशल पूछा। फिर देवोंने कलिके दोषसे जो धर्मनाश हुवा, वह सब यथायथ बता दिया। ब्रह्माने देवोंकी अवस्था देख आश्वास प्रदानपूर्वक कहा था,—चलिये, विष्णुको रिझावुझा तुम्हारा अभीष्ट सिद्ध करेंगे। ब्रह्मा देवोंके समभिव्याहारसे विष्णुके निकट गये। विष्णुको स्तव आदिसे सन्तुष्टकर उन्होंने देवोंकी प्रार्थना बतायी थी। नारायण विधिके मुखसे कलिका विवरण सुन कहने लगे—विभो! हम आपके अभिप्रायानुसार शम्भलग्राममें विष्णुयशाके औरस और सुमतिके गर्भसे जन्म लेंगे। हमारे तीन ज्येष्ठ भ्राता

होंगे। हम उन्हीं तीनों भार्यायोंके साथ कलि क्षय करेंगे। हमारी प्रियतमा लक्ष्मी पद्मा नाम पर सिंहल देशमें वृहद्रथकी पत्नी कौमुदीके गर्भसे जन्मग्रहण करेंगी। देवगण! तुम भी भूमण्डलमें अपने अपने अंशसे अवतार लो। हम तुम्हारे साहाय्यसे देवापि और मरु नामक दो राजावोंको पृथिवीके राज्य पर बैठा सत्ययुग तथा धर्म चलावेंगे। विष्णुकी यह बात सुन ब्रह्मा देवोंके साथ लौट पड़े।

देवोंको विदाकर भगवान्‌ने शम्भलग्राममें विष्णुयशाके औरस और सुमतिके गर्भसे जन्म लिया। इससे पहले कवि, प्राज्ञ और सुमन्त्रक नामसे विष्णुयशाके तीन पुत्र हो चुके थे। यथाकाल वैशाख मासकी शुक्ला द्वादशीके दिन भगवान्‌ने अवतार लिया। इस बार भी वह कृष्णावतारकी भांति भूमिष्ठ होते ही चतुर्भुज देख पड़े। महाषष्ठी धात्री बनी थीं। भगवती अम्बिकाने नाभिच्छेदन किया। भागीरथीने गर्भका क्लेद निकाला था। सावित्री देवीने नहलाया-धुलाया था। पृथिवी देवीने दूध पिलाया था। षोड़शमातृकाने आशीर्वाद दिया। ब्रह्मा स्वर्गसे भगवान्‌को चतुर्भुज मूर्तिमें अवतीर्ण होते देख बहुत घबरा गये। उन्होंने पवनको सूतिकागृहमें भेजा था। पवनने जाकर भगवान्‌के कानमें कहा—प्रभो! आपकी चतुर्भुज मूर्तिका दर्शनलाभ देवतावोंको भी दुर्लभ है, सुतरां इस मूर्तिको छिपा मनुष्यमूर्ति धारण कीजिये। भगवान् पवनके मुखसे ब्रह्माका अभिप्राय समझ उसी क्षण द्विभुज मानव शिशु बन गये। विष्णुयशा एकाएक पुत्रका रूपान्तर देख विस्मित हुये। किन्तु विष्णुकी मायामें मोहित हो उन्होंने पूर्वदृष्ट रूपको भ्रम ठहरा लिया।

भगवान्‌के जन्म ग्रहणसे शम्भलग्रामका पापताप अन्तर्हित हुवा था। अधिवासी मङ्गलानुष्ठान करने लगे। पुत्रको क्रमशः प्राप्तवय देख विष्णुयशाने वेदविद् ब्राह्मण बुला नामकरणका आयोजन उठाया था। नामकरणके दिन परशुराम, कृपाचार्य, अश्वत्थामा और व्यासदेव भिक्षुकका रूप बना शिशुरूपी हरिको देखने गये। विष्णुयशाने अदृष्टपूर्व सूर्यसम तेजस्वी चारो अतिथियोंको रोमाञ्चितकलेवर हो संवर्धनाकी। सुखसे बैठने पर पिलक्रोड़स्थ बालककी देखते ही उन्होंने समझ लिया, कि भगवान्‌ने कलिकल्कविनाशके लिये वह रूप परिग्रह किया था। वह बालकका 'कल्कि' नाम ठहरा और जातकर्म तथा नामकरणादि संस्कार करा प्रसन्न मन विदा हुये। फिर गर्ग, भर्ग, विशाल प्रभृति नामोंसे देवता कल्किकी ज्ञातिमें अवतार लेने लगे।

उस समय शम्भलग्रामके निकटस्थ प्रदेशमें विशाखयूप नामक नरपति राजत्व करते थे। वह ब्राह्मणोंके प्रतिपालक रहे। कुछ काल पीछे कल्किका वयस उपनयनके योग्य होने पर विष्णुयशाने कहा,—वत्स! हम तुम्हारा यज्ञसूत्ररूप प्रधान संस्कार सम्पन्न करेंगे, फिर तुम्हें चतुर्वेद पढ़ना पड़ेगा। कल्किने यह बात सुन पूछा, वेद, सावित्री, यज्ञसूत्र, ब्राह्मण, दशविध संस्कार, विष्णुपूजा प्रभृतिका अर्थ क्या था। फिर वह प्रश्न करने लगे,—जो ब्राह्मण सत्पथ पर चल हरिके प्रिय बनते और त्रिलोकका अभीष्ट तथा निखिल भुवनका उद्धार साधन करते, वह कहां मिलते हैं। विष्णुयशाने इस प्रश्नके उत्तरमें कलिके अत्याचारकी कथा सुनायी। पिताके मुखसे कलिका संवाद पाकर कल्कि मानो जाग उठे। उनके मनमें कलिके निग्रहका अभिलाष उत्पन्न हुवा था। पीछे यथानियम उपनयन शेष होनेपर वह गुरुकुलमें रहनेको चल दिये।

उस समय परशुराम महेन्द्र पर्वतपर वास करते थे। उन्होंने कल्किको आते देख आश्रममें लाकर अपना परिचय दिया। और फिर वह कहने लगे, 'हम तुम्हें पढ़ावेंगे। भृगुवंशमें जमदग्निके औरससे हमारा जन्म है। वेदवेदाङ्गके तत्त्व और धनुर्विद्यामें हम पारदर्शी हैं। हमने समुदय पृथिवी निःक्षत्रियकर ब्राह्मणोंको दक्षिणा दी है। आजकल तपश्चरणके लिये इसी महेन्द्रपर्वत पर रहते हैं। तुम हमें गुरु समझो और अभिलषित शास्त्र अभ्यास करो। कल्कि परशुरामकी बात सुन पुलकित हुये और प्रणाम कर उनके निकट रहे। उन्होंने अतः-

षष्टि कला साङ्गवेद और धनुर्वेद पढ़ दक्षिणा देना चाहा था। परशुरामने दक्षिणा की बात सुन कर कहा,—ब्राह्मणकुमार! भगवान् ब्रह्माने विष्णु-से कलिनिग्रहके निमित्त प्रार्थना की थी। विष्णुने वही प्रार्थना पूर्ण करने को अवतार लिया है। तुम वही पूर्णब्रह्मरूपी हरि हो। तुमने हमसे विद्या पढ़ी है। आगे तुम शिवसे अस्त्र तथा सर्वज्ञ शुक पक्षी और सिंहलदेशकी राजकन्या पद्मानाम्नी लक्ष्मी पावोगे। फिर तुम्हारे हाथसे धर्महीन नृपतियोंका विनाश, कलिका निग्रह और स्वधर्मका संस्थापन किया जायेगा। तुम अन्तमें मरु और देवापिको पृथिवीके राज्यपर अभिषिक्त कर गोलोक पहुंचोगे। तुम्हारे इस साधुकार्यके अनुष्ठानसे हम परम प्रसन्न होंगे। यही हमारी दक्षिणा है।' कल्किने गुरु-देवसे आज्ञा ले विश्वोदकेश्वर नामक शिवमन्दिरमें पहुंच महादेवकी पूजा और स्तुति की। स्तवसे तुष्ट हो देवादिदेव पार्वतीके साथ आविर्भूत हुये और वर देकर कहने लगे,—'तुमने जो स्तव बनाकर पढ़ा, वही सब पढ़ने वालेका सर्वाभीष्ट सिद्ध होगा। यह द्रुतगामी बहुरूपी गरुड़के अंशसे सम्भूत अश्व और यह सर्वज्ञ शुक तुम्हें देते हैं। आजसे मानव तुम्हें सर्वविध शास्त्रमें निपुण, वेदपारदर्शी और सर्वभूत-विजयी समझेंगे। यह महाप्रभाशाली रत्नखचित मुष्टिविशिष्ट कराल करवाल ग्रहण करो। इसीसे पृथिवीका भार हरण करना पड़ेगा।' यह कह कर महादेव अन्तर्हित हुये। कल्कि भी हर पार्वतीको प्रणाम कर शिवदत्त वस्तु उठा अश्व पर चढ़े और अपने घरको लौट जाये। विष्णुयशा पुत्रके मुखसे अवगत हो इधर उधर उस समस्त कथाकी आलो-चना करने लगे। क्रमशः राजा विशाखयूपको खबर लगी। विशाखयूप सुनते ही समझ गये, कि यथार्थ विष्णु अवतीर्ण हुये थे। कारण जिस समय कल्किने जन्म लिया, उसी समयसे उनकी राजधानी माहिष्मती नगरीमें याग, दान, तपस्या और व्रतका अनुष्ठान होने लगा। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य आदि अपना दुराचरण छोड़ते थे। इससे

कल्कि अवतार।

विशाखयूप भी स्वयं धर्माचरण अवलम्बन पूर्वक विशुद्ध हृदयसे प्रजापालन करने लगे। कल्किने उपयुक्त समय देख खड्ग तथा धनुर्वाण लिया और अश्वपर चढ़ माहिष्मतीपुरको ओर गमन किया। उनके दो भ्राता और गर्ग भर्गादि ज्ञातिगण भी पीछे पीछे चले। विशाखयूप कल्किको आते सुन आगे बढ़े थे। उन्होंने पुरोद्वार पर पहुंच देवता-परिवृत उच्चैःश्रवारोही इन्द्रकी भांति स्वजनवेष्टित कल्किको दण्डायमान देखा। विशाखयूपने अवनत हो कल्किको प्रणाम किया था। कल्किने भी प्रसन्न दृष्टिसे उनकी ओर देख दिया। भगवान्‌की कृपादृष्टि प्राप्तकर विशाखयूप उसी दिनसे पुण्यात्मा वैष्णव बन गये।

कल्कि राजाके साथ रहने लगे। फिर उन्होंने संक्षेपमें आश्रमधर्मका निर्देश लगा कहा था,—'हमारे अंशवाले कलिके पापसे भ्रष्टाचार बने, किन्तु अब हमसे आ मिले हैं। तुम राजसूय और अश्वमेध यज्ञ कर हमारी उपासना उठावो। हमीं परमलोक और हमीं सनातन धर्म हैं। काल, स्वभाव और संस्कार हमारा अनुगामी है। हम चन्द्रवंशीय देवापि तथा सूर्यवंशीय मरुको धर्मराज्य पर संस्थापित और सत्य युग प्रवर्तित कर गोलोक चले जायेंगे। विशाख-यूपने यह बात सुन कल्किसे वैष्णव धर्मका प्रश्न पूछा।

कल्किने कलिकलुषविनाशके लिये विशाखयूपको सभामें सृष्टिसे आरम्भ कर विराट्मूर्ति, ब्रह्मा, माया, देवदानव-मानव-स्थावर जङ्गम आदिकी उत्पत्ति, वेदमाहात्म्य, ब्राह्मणमहिमा, अपने अवतारकी आवश्यकता प्रभृति सब बातें बतायी थीं। सन्ध्याकाल विशाखयूपके स्थानान्तर जाते शिवदत्त शुक इतस्ततः विचरण कर कल्किके निकट आ पहुंचे। कल्किने शुकसे कहा,—शुक! कहो, तुम किस देशसे क्या आहार कर आये हो; तुम्हारा मङ्गल तो है? शुकने उत्तर दिया,—'देव! सागरके मध्य सिंहल नामक एक द्वीप है। वहांके नृपति बृहद्रथ कहाते हैं। कौमुदी नाम्नी उनकी पत्नीके गर्भसे एक कन्या हुयी है। उसका नाम पद्मावती त्रिलोकदुर्लभा है। उनका चरित्र अतीव रमणीय है। रूपसे मन्मथ भी पागल बन जाता है। पद्मावतीने हर पार्वतीकी उपासनाकर वर पाया है, कोई मनुष्यराजपुत्र पद्मावतीके उपयुक्त नहीं। इस जगत्में जो मानव वा देव असुर नाग गन्धर्व प्रभृति पद्माको कामभावसे निरीक्षण वा अभिलाष करेगा, वह तत्क्षण स्वीय पुरुषजन्मको वयसानुरूप स्त्रीत्व भावको पहुंचेगा। एकमात्र नारायण ही उनके स्वामी हैं। पद्मा महादेवसे यह वर लाभ कर परम हृष्ट हो इतने दिनसे नारायणकी राह देख रही है। सम्प्रति उनके पिता स्वयम्बरका आयोजन लगाया हैं। नृपतिका उद्देश है, स्वयम्बरकी सभामें श्रीकृष्णने जैसे रुक्मिणीको ग्रहण किया, वैसे ही नारायण पद्माको भी ग्रहण करेंगे। फिर स्वयम्बरकी सभामें जो सकल नृपति पहुंचे, वह पद्माको काम भावसे देखते ही स्वस्व वयसके अनुरूप विपुलनितम्बा, स्तनयुगशालिनी और सुमध्यमा रमणी बन गये। जिसने जैसी रमणीको चाहा, उसने वैसा ही रूप पाया था। वह हास्यविलासव्यसन भी निपुणतासे देखने लगी। फिर नृपति लोग प्रसन्नतासे पद्माकी सहचरियोंमें मिल गये। मैं विवाह देखनेको एक निकटस्थ वृक्षपर बैठा था। किन्तु यह व्यापार उठते मैं अत्यन्त दुःखित हुवा। पद्मा भी रोने लगीं। मैंने उनका विलाप सुना है। वह श्रीहरिकी चिन्तामें अतिकातर हैं। मैं अधिक अपेक्षा कर न सकनेपर पद्मावतीको उसी अवस्थामें छोड़ तुम्हें संवाद देने आया हूं।

कल्किने शुकको पद्मावती लक्ष्मीकी वैसी अवस्था बताते देख आश्वास दिलानेके लिये यथोपयुक्त उपदेश प्रदान पूर्वक फिर सिंहल भेजा था। शुक सिंहल पहुंच गये और पद्मावतीको आश्वास देने लगे। उनके मुखसे शिवोक्त विष्णुपूजाकी पद्धति, भगवान्‌के देहकी वर्णना और श्रीचरणसे केश पर्यन्त प्रति अङ्गका ध्यान सुन शुकने संवाद दिया, कि समुद्रके अपरपार शम्भलग्राममें विष्णुने कल्कि अवतार लिया है। पद्माने कल्किका संवाद सुन शुकको रत्नालङ्कारसे सजाया, भगवान्‌को बुला लानेके लिये दूत बनाया और कह सुनाया,—देखो, जो कहना है, कहोगे। तुमसे अविदित कुछ भी नहीं है। यह दूसरी कौन बात कह सकती हूं। कल्कि अपने मनुष्यजन्ममें स्त्रीप्राप्तिकी आशाङ्कासे सिंहल चाहे न आयें, किन्तु आप श्रीचरणमें हमारा प्रणाम अवश्य पहुंचावें। कल्किसे कह दीजियेगा, कि पद्माके अदृष्ट दोषसे शिवका वर अभिशाप बन गया। शुक उनसे विदा हो कल्किके निकट पहुंचे। कल्कि पद्माकी कथा सुन शिवदत्त अश्वपर चढ़े और शुकको सङ्ग ले तन्मयचित्तसे त्वरितपद सिंहलकी ओर चल पड़े। कल्कि यथाकाल राजधानी कारुमती नगरमें पहुंचे थे। नगरके प्रान्तभागमें मनोहर सरोवर देख उन्होंने शुकसे कहा,—"इस स्थानपर स्नान करना पड़ेगा।" शुक उनका उद्देश देख पद्मावतीके सन्निधानको चल दिये। कल्किने सरोवरके तीर पर अवस्थान किया। शुकने जाकर पद्मावतीको भगवान्‌के आगमनका संवाद दिया था। पद्मावती सुनते ही सरोवरस्नानके छलसे सहचरी सङ्ग ले कल्किके दर्शनको चल खड़ी हुयीं। उनके आनेका समाचार पा गृहविपिनोंमें जो सकल पुरुष रहे, वह भयसे भागने लगे। उनकी कामिनियां पुण्यकार्यका अनुष्ठान करतीं, जिसमें पतिलोक स्त्रीत्वको न पहुंचें। पद्मावती सहचारियोंके साथ सरोवरके सोपानपर जा उतरीं। उस समय भगवान्

कल्कि कदम्बतरुके मूलदेशपर सोते थे। पद्मावती यथाकाल स्नान समापन कर उसी तरुके मूलपर जा पहुंचीं और कल्किका रूपलावण्य देख मोहित हुयीं। उन्होंने शुकसे महापुरुषकी निद्रा न भङ्ग करने और उनके जग कर स्त्रीत्व प्राप्त होनेसे डर लगनेको कहा था। वैसा होते उनकी क्या दशा होती। महादेवका वर पद्माके लिये शाप था। कल्कि मन ही मन उनका अभिप्राय समझ जाग उठे। उन्होंने मधुर प्रेमसम्भाषणसे पद्मावतीको मनाया था। पद्मावती कल्किदेवके मधुर वचन सुन तथा पुरुषत्व अचत रहते देख सातिशय आनन्दित हुयीं और लज्जा नम्रमुखमें प्रेम-गद्गद स्वरसे भगवान् कल्किको स्तव द्वारा रिझा घर लौट पड़ीं। उन्होंने पितासे घरमें भगवान् कल्किदेवके आगमनकी वार्ता कही थी। वृहद्रथने नगरमें श्रीहरिको पदार्पण करते सुन नानाविध नृत्य, गीत, वाद्यादिका आयोजन उठाया। फिर वह पात्रों, मित्रों, परिजनों और ब्राह्मणों आदिके साथ कल्किदेवको लेने चल दिये। पुरोहित पूजाका उपकरण उठा पीछे रहे। राजाने सरोवरके तीर कल्किको देख स्तवपूजादि द्वारा रिझाया था। पुरीमें आनेपर कल्किका पद्मावतीके साथ विवाह हुवा। स्त्रीत्व प्राप्त राजा कल्किका स्तव करने लगे और प्रसन्न होने पर उनके आदेशानुसार रेवा नदी में नहा अपना अपना पुरुष देह पा गये। फिर उन्होंने दश अवतारोंका नामोल्लेख और भगवान् कल्किका स्तव कर स्वस्व देशको प्रस्थानका उपक्रम लगाया। पुरुषोत्तम कल्किने उस समय उन्हें वर्णाश्रमधर्म, वैदिक अनुशासनादि और प्रवृत्तिमार्ग तथा निवृत्तिमार्गका पथिकोचित कार्य बताया था। नृपति वह बातें सुन पुलकित हुये और पूछने लगे,—'देव! किस कारणसे स्त्री और पुरुष भेदमें सृष्टि पड़ती है? सुख, दुःख और जरा कहांसे है? किसके आदेश और किस उद्देश्यसे यह विहित हैं? आज तक इन सकल विषयोंका यथार्थतत्त्व विवेचित नहीं हुवा। फिर इनसे जो विषय भिन्न पड़ता, वह समझ पर नहीं चढ़ता। तुम अनुग्रह कर हमसे कहो।' कल्किदेवने यह प्रश्न सुन अगस्त्य मुनिको स्मरण किया। वे वहां पहुंचे थे। कल्किने राजावोंका प्रश्न बता सदुत्तर देने को कहा। मुनिवर अगस्त्यने अपने पूर्व जन्मका वृत्तान्त सुना राजावोंके सकल प्रश्नोंका उत्तर दिया। राजा फिर अपने अपने घर लौट गये। राजावोंके स्वराज्यको जाते भगवान् कल्किने भी अपने राज्य को प्रत्यागमन करनेका सङ्कल्प किया। देवराज इन्द्रने भगवानका अभिप्राय समझ विश्वकर्मासे शम्भलग्राममें उनके लिये स्वस्ति प्रभृति नानाविध भवन बनवाये थे। यथाकाल पद्मावतीको साथ ले धूमधामसे कल्कि शम्भलग्रामको ओर चल दिये।

वह सब लोग शम्भल ग्राम पहुंचे थे। कल्कि और पद्मावतीने जाकर जनक-जननीको प्रणाम किया। फिर वह वस्तुवोंके समभिव्याहारसे नगरमें गये और विश्वकर्माके बनाये भवनमें रहने लगे। उसी समय कल्किके भ्राता कविने स्वपत्नी कामकलाके गर्भसे वृहत्कीर्ति तथा वृहद्बाहु, प्राज्ञने अपनी पत्नी सन्नतिके गर्भसे यज्ञ एवं विज्ञ और सुमन्त्रकने शालिनीके गर्भसे शासन तथा वेगवान् नामक पुत्र उत्पादन किये।

कुछ दिन बीतने पर विष्णुयशाने अश्वमेधयज्ञ करना चाहा था। कल्कि पिताकी इच्छा देख धनरत्न संग्रह करनेको दिग्विजयके लिये चले गये।

कल्कि स्वजनोंको लेकर ससैन्य प्रथमतः कीकट देशमें जा उतरे। कीकटदेशमें उस समय सब एकाकार रहा। स्त्री, धन वा अन्न आदि लेनेमें कोयी अपना पराया देखता न था। वहां जिन नामक एक राजा रहे। वह कल्किका आते सुन दो अक्षौहिणी सैन्य लेकर लड़ने चले।

प्रथम युद्धमें जिन राजकी बौद्धसेना हारकर भागी थी। फिर कल्कि और जिन दोनों लड़ने लगे। कल्कि शराघातसे मूर्छित हुये थे। जिन राजाने अचेतन कल्किका देह उठा ले जाना चाहा। किन्तु वह विश्वम्भर देह उठाये उठा न था। उसी बीच विशाखयूपने निकटस्थ हो गदाघातसे जिनको हटाया और कल्किको लाकर अपने रथ-

पर बैठाया। रथपर चढ़ते ही कल्कि जाग पड़े। फिर वह मुहूर्त मध्य जिनके सम्मुख पहुंचे थे। मल्ल-युद्धमें द्रुत कल्किने उन्हें कटि तोड़ तोड़ मार डाला। जिनके भ्राता शुद्धोदन भ्रातृघातीसे प्रतिशोध लेने गये थे। किन्तु कल्किके ज्येष्ठभ्राता कविने उनसे लड़ने लगे। शुद्धोदन और कविमें बड़ी गदायें चलीं। शुद्धोदनने कविको किसी प्रकार दबा न सकनेपर माया देवीका स्मरण किया। माया देवी सिंहध्वज रथपर चढ़ सैन्यके पुरोभागमें जा खड़ी हुईं। मायाके आते ही कल्किका सैन्य अकर्मण्य बना था। बौद्धसेना जयध्वनिके साथ आगे बढ़ी। किन्तु कारण समझनेपर कल्कि स्वयं मायाके सम्मुख जा पहुंचे। माया देखते ही विष्णुके शरीरमें समा गयीं। मायाको न देख बौद्ध-सेना घबरायी थी। अन्तको युद्ध होने लगा। क्रमशः शुद्धोदन, काकाच, करोपरोमा प्रभृति बौद्धनायक खेत रहे। अनेक लोग भागे थे। फिर बौद्धपत्नियां लड़ने पहुचीं। कल्किने उन्हें अबलाजनसुलभ अक्षतिल समझा युद्धसे निवृत्त होनेको कहा। रमणियोंने उनकी बात न सुन पतिके शोकमें अस्त्र छोड़े थे। किन्तु अस्त्रोंने शत्रुके प्रति न चल मूर्ति परिग्रह पूर्वक उनसे कह दिया,—जिन भगवान्की शक्तिके आश्रयसे हम शत्रुवोंको ध्वंस करते, यह वही भगवान् हरि देख पड़ते हैं। भगवान्ने प्रह्लादके लिये जिस समय नृसिंह मूर्ति बनायी थी, उस समय भी हरिके गात्रमें आघात मारने को हमारी कुछ चलने न पायी। अब हम क्या कर सकेंगे। बौद्धकामिनियां वह बात सुन विस्मित हुयीं। और अवशेषको हरिके शरण गयीं। कल्किने उन्हें भक्तियोगका उपदेश दिया था। फिर उन्होंने भी क्रमशः मुक्ति पायी।

कल्किने कीकटसे चक्रतीर्थको जा सदल शास्त्र-विहित विधानके अनुसार स्नान आदि किया था। एक दिन वहां भगवान्से वालखिल्य नामक मुनियोंने विषण्ण वदन जाकर कहा,—कुम्भकर्णके निकुम्भ नामक एक पुत्र रहा। उसके कुथोदरी नाम्नी एक कन्या है। कालकञ्ज नामक किसी राक्षससे विवाह हुवा। उनके विकञ्ज नामक एक सन्तान विद्यमान है। आपाततः कुथोदरी हिमालय पर्वतपर मस्तक लगा और निषध पर्वतपर दोनों पैर फैला सो गयी है। हिमालयकी एक उपत्यकामें बैठ विकञ्ज स्तन्यपान करता है। उसी राक्षसीके निश्वास पवनसे प्रतिहत और विवश हो हम आपके शरण आये हैं। आपसे हमें चिरकाल राक्षसी-भीतिने उबारा है। इसबारभी आप कृपापूर्वक हमारा दुःख मिटा दीजिये।

कल्कि मुनियोंकी बात सुन हिमालयकी उपत्यका पर पहुंचे थे। उन्होंने वहां एक दुग्धमयी नदी अति खरस्रोतसे बहते देखीं। पूछने पर खबर लगी, कि वह कुथोदरीके एक स्तनकी दुग्धधारा रही। विकञ्ज एकही स्तन पीता था। उससे अपर स्तनकी दुग्ध धारा नदी बनकर बह चली। समघटिका पीछे अपर स्तन बदलते वह नदी सूख जाती और दूसरी ओर नदीकी दुग्धधारा बहती दीखती थी। फिर कल्कि कुथोदरीके भीषण आकारकी चिन्तामें पड़े और उसके अभिमुखको चल गये। उन्होंने जाकर देखा, कि राक्षसीका कर्ण पर्वतगह्वरके भ्रमसे सिंहोंका आश्रय और लोमकूप पुत्रपौत्रादि सह हस्तियोंके सुखसे रहने को निकेतन बना था। कल्किने राक्षसीको देख शर छोड़ा। राक्षसी शरविद्ध होते गभीर गर्जन करने लगी। वह शब्द सुन कल्किकी सेना मूर्छित हुयी। फिर राक्षसीके श्वास लेते ही हस्ती, अश्व, रथ और पदातिके साथ कल्कि नासापथमें जाने लगे। उसने निकट पाकर सबको खा डाला।

भगवान् कल्कि ससैन्य राक्षसीके उदरमें पहुचे थे। उससे जगत्संसार डर गया। फिर वह राक्षसीका उदर वायाग्नि जला और करवालसे उड़ा बाहर निकले। सैन्य लोग भी योनिरन्ध्र कर्ण, नासारंध्र प्रभृति स्थानोंसे निकल पड़े। कुथोदरी पञ्चत्वको पहुंची। विकञ्ज जननीको मरते देख निरायुध हाथ-से कल्किसेना मारने लगा। कल्किने पञ्चवर्षीय भीषण राक्षस शिशुको ब्रह्म अस्त्रसे यमालय भेज दिया।

दूसरे दिन असंख्य ऋषि मुनि गङ्गाका स्तव पढ़ते पढ़ते कल्किको देखने गये। उनमें अत्रि, अङ्गिरा,

वशिष्ठ, गालव, भृगु, पाराशर, नारद, दुर्वासा, देवल, कण्व, अश्वत्थामा, परशुराम, कृपाचार्य, त्रित, वेदप्रमिति महर्षि रहे। उनके साथ मरु और देवापि नामक दो राजर्षिभी आये थे। कल्कि के परिचय पूछने पर मरुने कहा,—'सूर्यवंशोद्भूत अग्निवर्णका पौत्र और शास्त्रका पुत्र हूं। व्यासदेवके मुखसे कल्कि अवतारकी कथा सुन दर्शन करनेको यहां चला आया। देवापिने अपनेको चन्द्रवंशीय प्रतीपकरका पुत्र बताया। वह शान्तनुको राज्य सौंप कलापग्राममें तपस्या करते थे; व्यासके मुखसे कल्किका संवाद सुन देखनेको पहुंच गये।

उनका परिचय पाकर भगवान् कल्किको पूर्वकथा स्मरण पड़ी। उभयको आश्वास दे उन्होंने कहा,—'मरु! प्रजापीड़क तथा प्राणिहिंसक म्लेच्छोंको मार तुम्हें अयोध्याके और पुक्कादिका उच्छेद साधन कर देवापिको हस्तिनापुरके सिंहासनपर बैठावेंगे। तुम अस्त्र शस्त्र ज्ञातविद्य हो। अब योद्धवेशमें रथपर चढ़ हमारे साथ चलो। मरु! तुम विशाखयूपकी सुन्दरी रुचिराङ्गी कन्याको पत्नी बनावो और देवापि तुम भी रुचिराश्व नृपतिकी कन्या शान्ताको विवाह कर लावो।' कल्किके यह बात कहते ही आकाशसे अस्त्र-शस्त्र सज्जित दो रथ उतर पड़े। उससे सबको विस्मय लगा था। कल्किने कहा,—"तुम दोनों लोकपालनार्थ सूर्य, चन्द्र, इन्द्र, यम और कुवेरके अंशसे धराधामपर अवतीर्ण हुये हो। तुम्हारे ही लिये इन्द्रके आदेशसे विश्वकर्माने यह रथ बनाये हैं। तुम इनपर चढ़कर हमारे पीछे पीछे चलो।' उनकी इस बातपर पुष्पवृष्टि होने लगी।

उसी समय सनक सदृश एक तेजःपुञ्ज ब्रह्मचारी जा पहुंचे। कल्किने पाद्यादि द्वारा उनकी पूजा कर परिचय पूछा। ब्रह्मचारीने कहा,—'कमलापते! मैं आपका आदेशवह सत्ययुग हूं। आपका आविर्भाव और प्रभाव देखानेको यहां आ पहुंचा हूं।' सत्ययुग यह कह कल्किका स्तव करने लगे। फिर वह उनके अनुगामी बने थे। महर्षियोंने अपने अपने स्थानको प्रस्थान किया।

उसके पीछे कल्कि विशासन राज्यपर पर चढ़े। विशाखयूप, देवापि और मरु उनके पीछे थे। धर्म भी उसी समय वृद्ध ब्राह्मणवेशमें कल्किके निकट अपना परिचय पा उनको आश्वास दिया था। कीकट बौद्धोंके विदलित होनेकी बात सुन धर्म आल्हादित हुये और सिद्धाश्रम अपने परिजनोंको छोड़ कल्किके पीछे चल दिये।

कल्कि खश, काम्बोज, शवर, बर्बर प्रभृतिको दबानेके लिये कलिकी पुरीके अभिमुख हुये।

कलिकी पुरी अत्यन्त भीषण थी। उसे देखते ही लोग कांपने लगते। सर्वदा भूत, सारमेय, काक, उलूक और शृगाल वहां देख पड़ते थे। गोमांसका पूतिगन्ध सर्वत्र परिपूर्ण रहा। कामिनियां द्यूत, विवाद प्रभृति विषयोंमें अनुरक्त थीं। फिर वही वहां कर्त्री रहीं। अन्य प्रभुकी बात चलती न थी।

कलिने कल्किदेवको लड़ने आते सुन स्वीय परिजन बुला लिये। फिर वह पेचकाच्य रथपर चढ़ विशासन नगरके बाहर जाकर लड़नेको प्रस्तुत हुये। कल्किने ससैन्य रणक्षेत्र पहुंच धर्मसे कलि, ऋतसे दम्भ, प्रसादसे लोभ, अभयसे क्रोध, सुखसे भय, हर्षसे व्याधि, प्रश्रयसे ग्लानि और स्मृतिसे जराको लड़ाया था। अन्यान्य प्रतिद्वन्द्वियोंमें भी उन्होंने युद्ध घोषणा करायी। क्रमक्रम विषम युद्ध उठा था। आकाशमें देवता देखने गये। मरु राजा खशों काम्बोजों, देवापि चीनावों बर्बरों और विशाखयूप पुलिन्दों चण्डालोंसे लड़ने लगे। कलिके काक और विकाक नामक दो दानव सेनापति थे। वह वृकासुरके पौत्र और शकुनिके पुत्र रहे। दोनों देखनेमें एक रूप थे। ब्रह्मासे वर पा वह देवतावोंसे अजेय रहे। उन दोनों वीरोंके गदाहस्त रणमें कतरनेसे मृत्यु भी डर कर भागते थे। कल्किदेव स्वयं काक और विकाकके प्रतिद्वन्द्वी बने। युद्धमें अस्त्रोंकी झड़ाझड़ी और वीरोंकी कड़ाकड़ीसे पृथिवी थरथराने लगी। अवशेषको कलिके अनुचर पराजित हो नाना देशोंमें चले गये। कलि स्वयं हारने पर स्त्रीस्वामिक भवनमें घुसा था। पेचकाख्य रथ पर

हुवा। धर्मभ्रष्ट खश चण्डालादि भी मरु देवापि तथा विशाखयूपसे भागे थे।

कोक और विकोकसे कल्किदेव लड़े। मधुकैटभका युद्ध भक मारता था। कल्कि उनके अस्त्राघातसे अत्यन्त पीड़ित हुये। उन्होंने क्रुद्ध हो विकोकका शिर काट डाला। किन्तु कोकके मृतदेहको ओर देखते ही वह जी उठा और फिर दोनों भाइयोंका जोड़ा कल्किपर टूट पड़ा। कल्किने कई बार दोनोंका शिर काटा था। किन्तु एकके देखते ही दूसरा जीवित हुवा। शेषमें कल्किने अपने अश्वको उनपर छोड़ दिया। कामगामी अश्वके खुरप्रहारसे दानव बार बार मूर्छित होने लगे। फिर भी उन्हें मरते न देख कल्कि चिन्तामें पड़ गये। ब्रह्माने उस समय रणमें पहुंच कर कहा,—'विभो! यह दानव अस्त्रशस्त्रसे अवध्य हैं। हमने इन्हें एकको मरते दूसरेके देखनेसे फिर जीउठनेका वरदान दिया था। सुतरां आप वह उपाय करें, जिससे दोनों साथ ही मरें।' कल्किने उक्त रहस्य समझ गदाको हाथसे डाला और दोनोंके एक काल वज्रमुष्टि मारा था। दोनों विदीर्ण मस्तक हो पञ्चत्वको पहुंच गये और एक दूसरेका मृतदेह देख न सके। देवता और मनुष्य सब उनके मरनेसे परम प्रीत हुये! सिद्धचारणादि कल्किको सराहने लगे। कल्किपुरमें उन्होंने रण जीता था।

कल्कि उसके पीछे भल्लाटनगरको शय्याकर्णोंसे लड़ने चले। भल्लाटनगरके राजा शशिध्वज अति तथ्यपरायण और योगियोंमें अग्रगण्य थे। भगवान् कल्किको लड़ने आते सुन वहभी प्रीति और भक्ति सहकारसे सैन्य सजाकर प्रस्तुत हुये। उनकी विष्णुपरायणा सुशान्ता पत्नीने स्वामीको जगत्पतिसे युद्धोद्यत देख कहा था,—नाथ! भगवान्के कोमल शरीरपर आप कैसे अस्त्र छोड़ेंगे। उन्होंने उत्तर दिया,—'प्रिये! रणस्थलमें गुरु शिष्यको और उपास्य उपासकको बेलाग मार सकता है। युद्धमें यदि बचेंगे, तो जैसेके तैसे राजा बनेही रहेंगे। और साथ ही कल्किको जीतनेसे लोग हमारी प्रशंसा करेंगे। नहीं तो युद्धमें मरनेसे स्वर्गप्राप्त होना तो निश्चित ही है।

सुतरां हमें दोनों ओर लाभ ही लाभ देख पड़ता है। वह ईश्वर और हम सेवकाधम हैं। कल्कि हमसे जो सेवा कराना चाहेंगे, उसके लिये वे हमें अप्रस्तुत न पायेंगे। सुतरां प्रभु जब हमसे लड़ने आये हैं, तब हमने भी अपने अस्त्रशस्त्र उठाये हैं। उनकी इच्छाके अनुसार हम कार्य करनेको बाध्य हैं।' रानीने यह सुनकर उत्तर दिया,—'हरिके सेवक कभी कामनालिप्त नहीं होते। सुतरां स्वर्ग वा यशकी कामनासे आपका लड़ना असम्भव है। फिर आप जब कोयी कामना नहीं रखते, तब वह भी क्या दे सकते हैं! सुतरां हमें आप लोगोंका यह युद्धोद्यम मोहकी लीलामात्र मालूम पड़ता है।' इसी प्रकार कथनोपकथनके पीछे शशिध्वज हरिनाम स्मरण और हरिध्यान कर हरिसे लड़ने चले। शय्याकर्ण लोग अस्त्र उठा उनके साथ हुये! राजकुमार सूर्यकेतु भी परम वैष्णव और अस्त्रविदोंमें श्रेष्ठ थे। युद्ध आरम्भ हुवा। विशाखयूपसे शशिध्वज, मरुसे सूर्यकेतु और देवापिसे बृहत्केतु लड़ने लगे। कल्किसैन्य विध्वस्त हुवा था। सूर्यके युद्धमें मूर्छित होते ही सारथि मरुको ले भागा। बृहत्केतु देवापिसे हार गये। उनके क्रोड़में निष्पेषित होने लगे। परन्तु इतनेमें ही सूर्यकेतु साहाय्यके लिये पहुंचे और उन्होंने मुष्टिके आघातसे गिरा देवापिके भुजबन्धनसे अपने भ्राताको छोड़ा लिया। शशिध्वज विशाखयूपको हरा कल्कि-सम्मुखीन हुये।

शशिध्वजने कल्किसे कहा,—पुण्डरीकाक्ष! आइये और हमारे हृदयपर प्रहार लगाइये, नतुवा हमारे भयसे हमारे अन्धकार हृदयमें छिप जाइये। यदि आप हमें यवु समझें, तो निर्विवाद प्रहार करें; जिससे हम अनायास शिव अथवा विष्णुलोकको चले।

कल्कि यह बात सुन मनही मन सन्तुष्ट हुये और ऊपरसे शशिध्वज पर बाण वर्षण करने लगे। दोनोंमें महायुद्ध हुवा। दोनों दिव्य अस्त्र चलाते थे। शेषको कल्किके मुष्ट्याघातसे शशिध्वज मुहूर्त मात्र अचैतन्य रहे। फिर उन्होंने भी उठकर कल्किके मुष्टि मारा था। कल्कि उस आघातसे छिन्नमूल कदलीकी भांति अचेतन हो गिर पड़े। धर्म एवं

सत्ययुगके साथ कलिकको उठानेके लिये शशिध्वज निकट पहुंचे थे। वह धर्म तथा सत्ययुगको अपने दोनों कक्षोंमें दबा और कल्किको वक्षस्थलसे लगा अपनी पुरी चले गये। उनने घरमें पहुंच रानीको सखियोंके साथ हरिगुण गाते पाया था। राजा उनसे कहने लगे,—'प्रिये! भगवान् कल्कि मूर्छाछलसे हमारे वक्षस्थलमें लग तुम्हारी भक्ति देखने आये हैं। फिर हमारे दोनों कक्षोंमें धर्म और सत्ययुग हैं। इन को यथोचित अर्चना कीजिये।' सुशान्ता सबको प्रणामकर और हरिप्रेमसे विह्वल बन नाचने गाने लगीं। स्तवसे तुष्ट हो कल्किने सुप्तोत्थितकी भांति ईषत् लज्जितमुखसे सुशान्ताका परिचय पूछा। उन्होंने अपनेको दासी बताया था। धर्म और सत्ययुग सुशान्ताकी हरिभक्ति सराहने लगे। कल्कीने कहा यथार्थ तुम्होंने हमको जीत लिया। शेषको उन्होंने शशिध्वजकी कन्या रमाका पाणिग्रहण किया। फिर कल्किके सहचर राजावोंने शशिध्वजसे उस अपूर्व भक्तिकी कथा पूछी। उन्होंने परिचय देकर जिस प्रकार हरिभक्ति पायी, उसी प्रकार सब बात खोलकर बतायी थी।

उसके पीछे कथाप्रसङ्गमें शशिध्वजने भक्ति एवं वासनातत्त्व देखा दिया और द्विविद तथा जाम्बवान्की भांति मरणकी प्रार्थना की। राजावोंने उन दोनों वानरोंका वृत्तान्त सुनना चाहा था। राजाने सब बताकर कहा,—'हमीं कृष्णावतारमें सत्यभामाके पिता सत्राजित् थे।' इसके बाद कल्कि श्वशुर शशिध्वजको सान्त्वना दे चल दिये और ससैन्य काञ्चनपुरी पहुंच गये। वह पुरी गिरिदुर्गसे वेष्टित और सर्पजालसे रक्षित थी। कल्कि विविध बाणों द्वारा विषाक्त छटा पुरीमें घुसे। पुरीके मध्य सुन्दर प्रासाद हरिचन्दन वृक्षसे वेष्टित और मणिकाञ्चनसे अलङ्कृत थे। किन्तु मनुष्योंका कोई सम्पर्क न रहा। केवल नागकन्या चारो ओर घूमती फिरती थीं। कल्कि पुरीमें घुसते हिचकिचाने लगे। उसी समय देववाणी हुयी,—'आप अकेले ही प्रवेश कीजिये। इस पुरीमें एक विषकन्या है। उसके देखते आपको छोड़ सब मर जावेंगे।' फिर वह केवल शुकको पकड़ और अश्वपर चढ़ काञ्चनपुरीमें खड्गहस्त घुसे थे। विषकन्या एक स्थानपर देख पड़ी। कन्याने कहा,—'मेरे तुल्य हतभागिनी विषनेत्रा कामिनी दूसरी नहीं। आप कौन हैं?' कल्किने उससे विषनेत्रा होनेका कारण पूछा। उसने उत्तर दिया मैं गन्धर्वराज चित्रग्रीवकी भार्या सुलोचना हूं। एक दिन मैं पतिके साथ गन्धमादन कुञ्जवनमें रसालाप करती थी। उसी समय नद्य मुनिका कदर्य कलेवर देख मुझे बड़ी हंसी आयी। मुनिने क्रोधवश विषनेत्रा होनेका अभिशाप दिया था। आज आपके दर्शनसे मेरे शापका अन्त हुवा। अब मैं स्वामीके पास जाती हूं।'

विषकन्या स्वर्गको चली गयी। कल्किने उक्त पुरीके अधीश्वर अमर्षको राज्यपर अभिषिक्त किया। फिर उन्होंने मरुको अयोध्या, सूर्यकेतुको मथुरा, देवापिको वारणावत, अरिस्थल, वृकस्थल, कामन्दक एवं हस्तिना, कविप्रभृति भाइयोंको शैक्ष, पौण्ड्र आदि, ज्ञातिवर्गको कीकट प्रभृति और विशाखयूपको कोक तथा कलाप राज्य दिया था। फिर सब शम्भल लौट गये। पृथिवीपर धर्म और सत्ययुगका अधिकार प्रवर्तित हुवा।

कुछ दिन बीतने पर विष्णुयशाने यज्ञ करनेको पुत्रसे कहा था। कल्किने उनके आदेशसे राजसूय, वाजपेय और अश्वमेधयज्ञ सम्पन्न किया। कृप, राम, वशिष्ठ, व्यास, धौम्य, अकृतव्रण, अश्वत्थामा, मधुच्छन्दा और मन्दपाल प्रभृति महर्षि उन सकल यज्ञोंमें उपस्थित थे। कल्किने यज्ञान्तमें गङ्गायमुनाके सङ्गमस्थलपर ब्राह्मणोंको खिलाया पिलाया। पीछे सब लोग शम्भल लौट गये।

समय पाकर परशुराम कल्किके भवन पहुंचे। उसी बीच कल्किके पद्मावती-गर्भजात जय और विजय दो पुत्र हुये थे। रमाके कोयी बालक न रहा। उन्होंने परशुरामको देख अपना अभिलाष कहा। परशुरामने रमासे रुक्मिणीव्रत कराया था। व्रतके प्रभावसे रमाने मेघमाल और बलाहक नामक दो पुत्र पाये। कल्कि पत्नीपुत्रके साथ सहासुखसे दिन बिताते थे। फिर ब्रह्मादि देवतावोंने उनसे स्वर्ग जानेको अनुरोध किया। कल्किने पुत्र तथा प्रजावर्गको कहा अपने

स्वर्गगमनका संवाद सुनाया था। वह सब शोकार्त्त हुये। कल्कि राजत्व छोड़ दोनों पत्नियोंके साथ हिमालय प्रदेशमें गङ्गा किनारे पहुंचे थे। वहां उन्होंने अपने आपको स्मरण किया। फिर चतुर्भुज मूर्तिमें परिवर्तित हो वह गोलोक गये। पद्मा और रमाने अनलमें देह छोड़ पतिलोक पाया था। पृथिवी पर सत्ययुगका प्रभाव अक्षुस रहा। देवापि और मरु राज्य शासन करने लगे। कल्किपुराण देखो।

भागवतमें कल्कि भगवान्‌का बयोविंश अवतार कहा है। (भागवत १।३।२४—२५)

जैनियोंमें भी कल्कि अवतारकी कथा सुन पड़ती है। वह कहते हैं—महावीरके निर्वाण पानेके पीछे प्रति सहस्र वर्ष कल्कि होता है और वह जैनधर्मके विरुद्ध मत स्थापन करते हैं। (जैन हरिवंश)

कल्किपुराण—एक अतिरिक्त उपपुराण। यह अष्टादश उपपुराणोंसे बाहर है। इसमें तीन अंश लगे हैं। प्रथम एवं द्वितीयमें सात सात चौदह और तृतीयांशमें इक्कीस सब पैंतीस अध्याय हैं। इनमें क्रमान्वयसे शुकमार्कण्डेयका संवाद, अधर्मके वंशका कीर्तन, कलिका विवरण, पृथिवी तथा देवगणका ब्रह्मलोकको गमन, ब्रह्मवाक्यानुसार शम्भलस्थ ब्राह्मण विष्णुयशाके गृहमें सुमतिके गर्भसे विष्णु एवं उनके अंशभूत तीन ज्येष्ठ सहोदरके जन्मका विवरण, कल्कि-विष्णुयशाका संवाद, कल्किका उपनयन, परशुरामसे कल्किका साक्षात्, उनसे वेदाध्ययन, अस्त्रशस्त्रशिक्षा, कल्किका शिवाराधन, इरपावतीके समक्ष कल्किका शिवस्तव पाठ, शिवसे अश्व, खड्ग, शुक, अस्त्रादि एवं वरका लाभ, शम्भलको प्रत्यागमन, बन्धुगणसे वरका कीर्तन, नरपति विशाखयूपकी सभामें कल्किका संक्षेपसे वर्णाश्रमधर्मकथन, शुकका आगमन, शुककल्किसंवाद, सिंहलका वर्णन, पद्माका चरित, शिवसे पद्माका वरलाभ, पद्माके स्वयम्वरका आयोजन, स्वयम्वरकी सभामें आगत राजाओंका स्त्रीभाव, पद्माका विषाद, शुकको दूतरूपसे प्रेरण, शुकपद्मा-संवाद, पद्माका विष्णु-पूजन, पदादिसे केशान्त पर्यन्त विष्णुके प्रत्येक अङ्गका वर्णन तथा ध्यान, शुकको अलङ्कार दान, शुकका प्रत्यागमन, पद्माके उद्देश; कल्कि एवं शुकका सिंहलगमन, स्नानके छल सरोवरमें पद्माका अभिसार, पद्माका जल कौतूहल, कल्कि तथा पद्माका मिलन, बृहद्रथका संवर्धन, कल्कि-पद्मा-विवाह, कल्किके दर्शनसे स्त्रीत्व प्राप्त राजाओंका पुंस्त्वलाभ एवं कल्किस्तव, वर्णाश्रम धर्मपर कल्किका उपदेश, राजाओंका प्रश्न, अनन्त मुनिका आगमन, अनन्तका पूर्व वृत्तान्त कथन, शिवका स्तव, पिताके मृत्युपर अनन्तका मायादर्शन और वैराग्यावलम्बन, अनन्तका मोक्ष, राजाओंका प्रत्यागमन, कल्कि पद्माका शम्भलको प्रस्थान, विश्वकर्माका विधान, ज्ञातिवर्गका वंशवर्धन, विष्णुयशाका यज्ञाभिलाष, कल्किका स्वजनोंके साथ दिग्विजयको गमन, जिनराजका वध, बौद्धोंका निग्रह, मायाका अन्तर्धान, बौद्ध-रमणियोंका युद्धोद्योग, अस्त्र देवतादिका आविर्भाव, ज्ञानके योगका कथन, मुनियोंका आगमन, कुथोदरीका वृत्तान्त, सपुत्रा कुथोदरीका वध, हरिद्वारको कल्किका गमन, मुनियोंका साक्षात्, मरु एवं देवापिका मिलन, उभयके परिचयसूत्रसे सूर्यवंश तथा चन्द्रवंशका कीर्तन, मरुका रामचरितश्रवण, मरु एवं देवापिके साथ कल्किको युद्धार्थगमन, धर्म तथा सत्ययुगका मिलन, कोक विकोकका विनाश, भल्लाटमें गमन, शय्याकर्णोंका युद्ध, युद्धान्तसे शशिध्वजका विष्णुभक्तिकीर्तन, रणस्थलमें शशिध्वज कर्तृक कल्किधर्म एवं सत्ययुगका पराजय, उनको उठा शशिध्वजका अपनी पुरीमें प्रवेश, सुशान्ता कर्तृक स्तव, कल्किके साथ रमाका विवाह, शशिध्वजके पूर्वजन्मका विवरण, द्विविद एवं जाम्बवान्‌का वर्णन, स्यमन्तकोपाख्यान, शशिध्वजका मोक्ष, विषकन्याका मोचन, राजाओंको राज्यदान, पुत्रादिका अभिषेक, मायास्तव, शम्भलमें यज्ञादिका अनुष्ठान, नारदसे विष्णुयशाका भक्तिलाभ, धर्म एवं सत्ययुगका अधिकार, रुक्मिणीव्रत, कल्किका विहार, पुत्रपौत्रादिका वर्णन, ब्रह्मकल्कि-संवाद, विष्णुका वैकुण्ठगमन, पद्माकथाका शेष, शुकदेवका प्रस्थान, मुनिगणोक्त गङ्गास्तव, पुराणका विवरण और पुराणके श्रवणका फल लिखा है।

कल्किपुराणको लोग द्वैपायन प्रणीत बताते हैं। किन्तु कोई कोई इस बातको नहीं मानते। कारण वेदव्यासप्रणीत सकल पुराण और उपपुराण नामक अन्यान्य ग्रन्थोंमें इसका नाम नहीं मिलता! एतद्भिन्न कल्किपुराणके मध्यही तृतीयांशके एकविंश अध्यायमें एक स्थलपर लिखा है,—'सकल पुराणाभिज्ञ लोमहर्षणनन्दन सूत वेदव्यासके शिष्य थे। हम उन्हें प्रणाम करते हैं।' यदि यह पुराण वेदव्यासरचित रहता, तो उनकी लेखनीसे स्वशिष्यके प्रति प्रणामज्ञापक श्लोक लिखा देख न पड़ता। फिर कल्किपुराणमें वेदव्यासकी रचना होनेका प्रमाण कहां है? प्रथम अंशके शौनकादि ऋषियोंके प्रश्नानुसार इस पुराणकी व्याख्याका अनुक्रम लगाया हैं। पुराणोत्पत्ति निरूपण करते समय उन्होंने कहा, 'पुराकालको नारदके पूछनेपर ब्रह्माने यह उपाख्यान सुनाया था। नारदने व्यासदेवके निकट व्याख्या की। फिर वेदव्यासने स्वपुत्र ब्रह्मरात (शुकदेव?)को यह विवरण बताया था। ब्रह्मरातने अभिमन्युके पुत्र विष्णुरात (परीक्षित?)की सभामें यह कथा कीर्तन की; किन्तु कथा शेष न हुयी। विष्णुरात स्वर्गको चले गये। मार्कण्डेय आदि महर्षियोंने शुकदेवसे अनुरोधकर शेष पर्यन्त कथा सुनी थी। उनके मुखसे सुना हुवा विषय हम विवृत करेंगे। इसमें अष्टादश सहस्र श्लोक विद्यमान हैं।' किन्तु तृतीयांशके शेष अध्यायमें ग्रन्थके उपसंहारकालमें उग्रश्रवाके मुखसे ही भिन्नरूप वर्णना मिलती है,—'निरतिशय पापी लोग भी इस पुराणके प्रभावसे अभीष्ट लाभ कर सकते हैं। इस कल्किपुराणके छह सहस्र एकशत श्लोकोंमें सकल शास्त्रोंका अर्थ और तत्त्व संगृहीत हुवा है। प्रलयावसानमें श्रीहरिके मुखसे यह कल्किपुराण निकला है। इस पुराणसे चतुर्वर्ग मिलते हैं। भगवान् वेदव्यासने ब्राह्मणजन्म परिग्रह किया था। उन्होंने ही धरातलपर अवतीर्ण हो परम विस्मयकर भगवान् कल्किके प्रभावकी यह वर्णना सुनायी है।' पूर्वोद्धृत दोनों अंश देख श्लोक संख्याके सम्बन्धपर भी विभिन्न रूप कथन मिलता है।

कल्किपुराणमें पुराणोपपुराण-वर्णित सकल विषयोंकी बहुल वर्णना नहीं। लेखक इस सम्बन्धमें जो कथायें लिखते, उनको देखते ही समझा जा सकता है कि वह सकल अंश केवल पुराणके लक्षणकी रक्षा करनेके लिये ही ग्रन्थमें लगाये गये हैं। रघुवंश, नैषध, कुमार प्रभृति महाकाव्योंमें जैसे किसी एक व्यक्ति या विषयकी वर्णना चलती है, इसमें भी वैसे ही एक मात्र कल्किचरित्रकी कथा मिलती है। कल्किपुराणमें शृङ्गार, शान्ति एवं वीररस विशेष देखाया, अन्यान्य रसोंका भाव अविस्पष्ट रूपसे झलकाया और पुराणादिकी भांति पुनरुक्तिदोष वा अनर्थक अव्यय शब्दोंका प्रयोग नहीं लगाया है। इन सकल कारणोंसे इसको एक सुन्दर महाकाव्य कहना अधिक युक्तिसङ्गत है। इसकी रचनाप्रणाली पुराणोंकी भांति रसहीन नहीं। कल्किपुराणकी भाषाको भी प्राचीन कहनेमें सन्देह है।

इसमें कलियुगके शेष पादकी वर्णना लिखी है। उसके अनुसार कलिप्रभावसे समस्त पृथिवी एकवर्ण होनेपर भगवान् कल्कि रूपसे जन्म ले कलिको हटावेंगे और सत्ययुग चलावेंगे। सूक्ष्म भावसे मनोयोग पूर्वक विचार कर देखनेसे कल्किके समय पृथिवीकी वर्णित अवस्था शेषपादकी नहीं—प्रथमपादकी घटना समझ पड़ती है। कल्किके साथ मायावादी बौद्धोंका युद्ध जिस अंशमें लिखते हैं, वह अंश निविष्ट चित्तसे पढ़नेपर सहजमें ही समझ सकते हैं कि वह वर्णना भारतमें बौद्ध धर्म वर्द्धन समयकी ठहरती है। यही बात कल्कि शब्दमें उद्धृत श्लोकसे भी प्रतिपन्न होती है। अनुमानसे कल्किपुराणकार उस समयके मालूम पड़ते, जिस समय बौद्ध धर्मकी प्रबलता घटनेसे ब्राह्मणधर्मके तत्त्व कुछ कुछ ऊपर उठते थे। उस समय उनकी आंखोंमें भारतकी जो दुर्दशा समायी, उन्होंने वही लिख कल्किके शेषपादकी अवस्था बतायी।

कल्किपुराणमें जिन स्थानों (माहिष्मती, शम्भल, कीकट, सिंहल, पाण्ड्य, सौम्य, सुराष्ट्र, पुलिन्द, मगध, मध्यकर्णाट, अन्ध्र, ओड्र, कलिङ्ग, अङ्ग, वङ्ग, काङ्ग, कलापक, द्वारका, मथुरा, वारणावत, अरिस्थल, वृकस्थल, माकन्द, हस्तिनापुरी, चोल, बर्बर, कर्वट,

मल्लाट, काञ्चनपुरी प्रभृतिके नाम लिखे हैं, उनमें अधिकांश प्राचीन पौराणिक देख पड़ते हैं।

कल्किपुराणकारने मरु और देवापिको पाण्डवोंसे ऊर्ध्वतन चतुर्थ पुरुष शान्तनुका भ्राता कहा है। अन्यान्य पुराणोंकी कथा देखते युधिष्ठिरादिने कलिके प्रारम्भमें ६५३ वर्ष राजत्व किया था। सुतरां उनसे ऊर्ध्वतन चतुर्थ पुरुष कैसे बहु परवर्ती कलिके शेष पादमें आ सकते हैं। मरु और देवापिमें भी सात पुरुषोंका पार्थक्य पड़ता है। फिर कल्कि अवतारके पीछे सत्ययुगका आरम्भ लिखा है। यदि कल्किदेवने देवापि और मरुको पृथिवीका राज्य सौंप सत्ययुगका प्रारम्भ किया ऐसा स्वीकार करें तो वे सत्ययुगके प्रथम राजा ठहरते हैं। किन्तु अन्य किसी पुराणमें यह कथा नहीं मिलती। कल्कि देखो।

इतिहासको छोड़ पुराणकथाकी भांति यथार्थ समझ और भक्तिके साथ विश्वास करें तो इसका वर्णित विषय भविष्यत्‌में होनेकी बात है। किन्तु कल्कि पुराणकी वर्णना पढ़नेसे वैसा मालूम नहीं पड़ता। इसमें जो कुछ लिखा है, उससे अतीत कालकी घटनाका ही ज्ञान होता है।

उग्रश्रवा ऋषिने पूछनेपर कहा था,—'शुकदेवकी अनुमति क्रमसे हमने उस पुण्याश्रममें सकल भविष्य घटना सुनी थी। इस स्थल पर हम वही शुभकर भागवतधर्म कीर्तन करते हैं। उग्रश्रवाके ही मुखसे भविष्यत् कालकी बोधक एक बात निकली है। दूसरे स्थलपर कहीं कुछ दिखलाई नहीं पड़ता। भविष्यत् कालकी बतायी जाते भी यह कथा वैसी मालूम नहीं पड़ती। किन्तु महाभारत, भागवत, विष्णुपुराण, नारसिंह पुराण प्रभृतिमें कल्कि अवतारकी जो कथा लिखी, उसमें सर्वत्र भविष्यत्‌काल-बोधक क्रिया लगी है। सुतरां समझ सकते हैं, कि उत्तर कालको कल्कि अवतार होनेमें कोई सन्देह नहीं। फिर भी कल्किपुराणमें संक्षेपसे अनेक गभीर भावमयी सत्‌कथावोंकी आलोचना लगी है। पाठ करनेसे आनन्द आता है। इन्हीं कारणोंसे कल्किपुराणको 'अनुभागवत' कहते हैं। हमने जो तर्क ऊपर दिखाये, वह सुने सुनाये हैं। भगवान्‌की लीला अपार है। कौन कह सकता है भविष्यत्‌में क्या होगा? दूसरे त्रिकालदर्शी महर्षिका कथनोपकथन समझना भी कुछ सरल नहीं। ऐसी अवस्थामें कल्किपुराणका उल्लिखित विषय भक्तिसहकारसे मान लेना ही अच्छा है।

कल्कफल (सं० पु०) कल्कस्य विभीतकस्य फलमिव फलं यस्य, मध्यपदलो०। दाड़िमवृक्ष, अनारका पेड़। दाड़िम देखो।

कल्करोध्र (सं० पु०) पट्टिकारोध्र, लाल लोध।

कल्किधर्म, कल्कि शब्द देखो।

कल्किप्रादुर्भाव (सं० पु०) कल्के: दशमावतारस्य प्रादुर्भाव: उत्पत्ति:। कल्कि अवतारकी उत्पत्ति।

कल्कि राज—एक प्राचीन राजा। गुप्त राजवंशके पीछे इन्द्रपुरमें इन्होंने ४१ वर्ष राजत्व किया। (जैन हरिवंश) इनके भ्राता राजा अजितञ्जय थे। (जैन उत्तर पुराण)

कल्किवृक्ष (सं०पु०) विभीतक वृक्ष, बहेड़ेका पेड़।

कल्की (सं० पु०) कल्क: पापं नाशतया अस्त्यस्य, कल्क-इनि। १ कल्कि अवतार। (त्रि०) २ पापी, मलीन, गुनाहगार, मैला।

कल्प (सं० पु०) कल्प्यते विधीयते असौ, क्लृप-कर्मणि घञ्। १ विधि, तरीका।

"एष वै प्रथम: कल्प: प्रदाने हव्यकव्ययो:।" (मनु ३। १४७)

कल्पति सृष्टं नाशं वा अनु-क्लृप-णिच्। २ प्रलय, कयामत। ससन्धियुक्त चतुर्दश मनु द्वारा प्रलय काल निर्णीत होता है।

"ससन्धयस्ते मनव: कल्पे ज्ञेयाश्चतुर्दश।
कृतप्रमाण: कल्पादौ सन्धि: पञ्चदश स्मृत:॥" (सूर्यसिद्धान्त)

कल्प्यते क्षमिष्यामि समर्थो भवति अत्र। ३ ब्रह्माका दिन। देवतावोंके दो सहस्र युगोंमें ब्रह्माका एक दिन (कल्प) और तीस कल्पोंमें एक मास होता है। उनके संस्कृत नाम—श्वेतवाराह, नीललोहित, वामदेव, गाथान्तर, रौरव, प्राण, बृहत्‌कल्प, कन्दर्प, सत्य, ईशान, ध्यान, सारस्वत, उदान, गरुड़, कौर्म, (ब्रह्माकी पौर्णमासी), नारसिंह, समाधि, आग्नेय, विष्णुज, सौर, सोम, भावन, सुप्तमाली, वैकुण्ठ, आर्चिष, वल्मी-

कल्प, वैराज, गौरीकल्प, महेश्वर और पितृकल्प (ब्रह्माकी अमावस्या) हैं। इसी प्रकार बारह मासमें ब्रह्माका एक वत्सर बीतता है। उनका आयुकाल शत वत्सर है। अभी ब्रह्माके पचास वर्ष अतीत हुये हैं। एक पञ्चशतवर्षीय श्वेतवाराहकल्प चल रहा है। चैत्र मासकी शुक्ल प्रतिपद्से प्रथम कल्प लगा है,

"चैत्रे मासि जगत् ब्रह्मा ससर्ज प्रथमेऽहनि।
शुक्लपक्षे समग्रन्तु तदा सूर्योदये सति।
प्रवर्तयामास तदा कालस्य गणनामपि॥" (ब्राह्मपुराण)

चैत्रमासके शुक्ल पक्षीय प्रथम दिनको सूर्योदय होने पर ब्रह्माने समग्र जगत् बनाया और उसी समयसे कालकी गणनाको चलाया है।*

एकसप्तति (७१) महायुगोंमें एक मन्वन्तर पड़ता है। सत्ययुगके परिमाणसे मन्वन्तरकी सन्धि निकलती है। प्रत्येक मन्वन्तर बीतने पर जलप्लावन होता है। फिर प्रत्येक कल्पमें सन्धिके साथ चतुर्दश (१४) मन्वन्तर रहते अर्थात् सन्धिवाले चतुर्दश मन्वन्तरोंको ही एक कल्प कहते हैं। एक सत्ययुगके परिमाण पर ऐसे ही कल्पादिमें पञ्चदश (१५) सन्धियां मानी जाती हैं।

	देवमान	सौरमान।
आदिसन्धि	४८००	१७२८०८
एकसप्तति महायुग	८५२०००	३०६७२००००
एकसन्धि	४८०३०	१७२८००
एक मन्वन्तर	८५६८००	७०८४४८०००
चतुर्दश मन्वन्तर	११९९५२००	४३१८२७२०००
कल्प	१२००००००	४३२००००००००

सहस्र (१०००) महायुगोंमें एक कल्प होता है। प्रति कल्पके अवसानमें सर्वभूतोंका विनाश अर्थात् प्रलय पड़ता है। एक कल्पमें ब्रह्माका एकदिन ठहरता और उनकी रात्रिका परिमाण भी वैसा ही लगता है। पूर्वकथित अहोरात्रोंकी संख्यासे एकशत (१००) वत्सरकाल ब्रह्माका आयु है। आज तक ब्रह्माकी आयुका अर्द्धकाल (५० वत्सर) बीता है। वर्तमान कल्पके आरम्भमें ब्रह्माके अवशिष्ट आयु (५० वत्सर) का प्रथम दिवस देखना पड़ेगा। वर्तमान कल्पमें भी छह मन्वन्तरोंके साथ सात सन्धियां अतीत हुई हैं। आज कल वैवस्वत नामक, सप्तम मनुका काल चलता है। फिर वैवस्वत मनुके भी सप्तविंशति (२७) युग चुके हैं। इस अष्टाविंश (२८ वें) युगके सत्य, त्रेता और द्वापरकाल गत गया, कलियुग लगा है।

(सूर्य सिद्धान्त, मध्याधिकार २१-२२)

४ विकल्प। ५ न्याय। ६ कल्पवृक्ष। ८ शास्त्रविशेष। इस शास्त्रमें षड़ङ्गवेदके अन्तर्गत यागक्रियादिका उपदेश दिया गया है। ८ व्याकरणका एक प्रत्यय। ईषद् ऊन अर्थमें यह प्रत्यय पड़ता है।

"ते परस्परमासन्ना देवकल्पा महर्षय:।" (भारत ।।१२।५)

९ सङ्कल्प, इरादा। १० पक्ष। ११ अभिप्राय, मतलब। १२ वेदका एक विधि।

कल्पक (सं॰ पु॰) कल्पयति क्षौरकर्मादिना वेशं रचयति, क्लृप्-णिच्-ण्वुल्। १ नापित, नायी।

---

* प्राणादि स्थूल कालका नाम मूर्तकाल त्रुट्यादि परमाणु सदृश सूक्ष्मकालका नाम अमूर्तकाल है। सुस्थ शरीरमें निश्वास प्रश्वास लेनेमें जो काल लगता, उसे विद्वान् प्राण कहते हैं। अर्थात् दश गुरु अक्षरोंके उच्चारणका काल प्राण है। यह अंगरेजी ४ सेकण्डोंकी बराबर पड़ता है। ऐसेही ६ प्राणोंमें १ विनाड़ी और ६० विनाड़ियोंमें १ नाड़ी (दण्ड) होती है। ६० दण्डोंका १ नाक्षत्र अहोरात्र और ३० नाक्षत्र अहोरात्रोंका १ नाक्षत्र मास माना है। एक सूर्योदयसे दूसरे सूर्योदय तक १ सावन अहोरात्र और ३० सावन अहोरात्रोंमें १ सावन मास पड़ता है। एक तिथिसे दूसरी तिथि तक चान्द्र अहोरात्र रहता है। ३० चान्द्र अहोरात्रोंका एक चान्द्रमास ठहरता है। सूर्यके एक राशि संक्रमणसे दूसरे राशि संक्रमण पर्यन्त सौरमास चलता है। इसी प्रकार द्वादश मासोंमें एक वर्ष बीतता है। एक सौर वत्सरमें देवतावोंका एक अहोरात्र होता है। देवतावोंके दिनमें असुरोंकी रात्रि और देवतावोंकी रात्रिमें असुरोंका दिन है। ऐसे ही ३६० अहोरात्रोंमें देवतावों और असुरोंका एक एक वत्सर लगता है। देवतावोंके १२००० वत्सरोंमें एक महायुग (चतुर्युग) आता है। महायुगमें ४३२०००० सौर वत्सर बीतते हैं। सन्ध्या (प्रतियुगकी आदिसन्धि) एवं सन्ध्यांशका (प्रति युगकी अन्त सन्धि)के साथ चार युग जाते और धर्मपादकी व्यवस्था अर्थात् सत्ययुगमें चार पाद, त्रेतायुगमें तीनपाद, द्वापरमें दो पाद तथा कलिमें एक पादके अनुसार युगका परिमाण ठहराते हैं। महायुगके वत्सरोंको दश भाग और लब्ध भागफलको चार गुण करनेसे जो काल आता, वही सत्ययुगका परिमाण कहता है। फिर उक्त लब्ध भागफलके त्रिगुणसे त्रेता, द्विगुणसे द्वापर और एकगुणसे कलियुगका काल मिलता है। प्रति युगका आदि एवं अन्त षष्ठांश ही सन्ध्या तथा सन्ध्यांश है।

२ कर्चूर, कचूर। कल्पयति गद्यपद्यादिकमुद्भाव्य रचयति। ३ ग्रन्थकर्ता, किताब बनानेवाला। ४ संस्कार, रस्म। (त्रि०) ५ रचक, बनानेवाला। ६ आरोपक, लगानेवाला।

कल्पकातरु, कल्पतरु देखो।

कल्पकार (सं० पु०) कल्पं कल्पसूत्रं करोति, कल्प-कृ-अण्। १ कल्पसूत्रकारक आश्वलायनादि। कल्पं वेशं करोति। २ नापित, नायी। (त्रि०) ३ वेश-कारक, रूप बनानेवाला। ४ छेदक, छेदनेवाला।

कल्पकारक (सं०पु०) कल्प-कृ-ण्वुल्। कल्पकार देखो।

कल्पक्षय (सं०पु०) कल्पस्य सृष्टेः क्षयो यत्र, बहुव्री०। प्रलय, कयामत, संसारका नाश।

"कल्पक्षये पुनस्ते तु प्रविशन्ति परं पदम्।" (विष्णुपुराण)

कल्पगा (सं० स्त्री०) गङ्गा नदी।

कल्पतरु (सं० पु०) कल्पश्चासौ तरुश्चेति, कर्मधा० अथवा कल्पस्य तरुः राहोः शिरः इत्यादिवत्, ६-तत्। १ देवलोकका वृक्षविशेष, विहिश्तका एक पेड़। यह वृक्ष मांगनेसे सकलपदार्थ देता है।

"निगमकल्पतरोर्गलितं फलम्।" (भागवत १।१।३)

२ स्मृतिशास्त्रविशेष। ३ शारीरकसूत्रभाष्यपर भामती टीकाकी एक व्याख्या। ४ उदारपुरुष, सखी, मुंहमांगी चीज़ देनेवाला। ५ क्रमुकवृक्ष, सुपारीका पेड़। ६ रसविशेष, एक कुश्ता। रस (पारद), गन्ध (गन्धक), विष (वत्सनाभ) और ताम्रको समभाग पीस क्रमशः पांच दिन तक पांच बार गोरो-चनाकी भावना लगती हैं। अन्तको निर्गुण्डीके रसमें सात दिन घोट लेने और फिर आर्द्रकके रसकी तीन भावना देनेसे यह औषध प्रस्तुत होता है। इसकी वटी सर्षप समान बना छायामें सुखाते हैं। जीर्णज्वर और विषमज्वरमें २१ वटी खिलायी जाती हैं। इसके सेवन समय रोगीको कजुची पिप्पलीका उष्ण जल पिलाना, शर्करा तथा दधि खिलाना और नहलाना चाहिये। (भैषज्यरत्नावली)

कल्पद्रु (सं० पु०) कल्पश्चासौ द्रुश्चेति, कर्मधा०। १ कल्पतरु, स्वर्गका एक पेड़। २ क्षुद्रारग्वध वृक्ष, छोटे अमलतासका पेड़। ३ केशवप्रणीत एक शब्दकोश।

कल्पद्रुम (सं० पु०) कल्पश्चासौ द्रुमश्चेति, कर्मधा०। १ कल्पवृक्ष। २ छोटा अमलतास। ३ स्मृतिशास्त्र विशेष। ४ तन्त्रशास्त्र विशेष।

कल्पन (सं० क्ली०) क्लृप भावे ल्युट्। १ छेदन, काट छांट। २ रचना, बनाव। ३ विधान, ठहराव। ४ आरोप, लगाव। ५ अप्रकृत विषयका उद्भावन, अन्दाज़।

कल्पना (सं० स्त्री०) क्लृप्-णिच् भावे युच्-टाप्। १ हस्तिसज्जा, सवारीके लिये हाथीकी सजावट। २ अनुमान, अन्दाज़। ४ रचना, बनावट। ५ अर्थापत्तिरूप प्रमाण विशेष, एक सुबूत। इसमें होनेवाली बातोंका हवाला रहता है। ६ नूतन विषयका उद्भावन, नयी बातका निकास। काव्य, उपन्यास और चित्र आदि कल्पनासे ही बनते हैं।

कल्पनाकाल (सं० त्रि०) कल्पनायाः काल इव कालो यस्य, बहुव्री०। सङ्कल्पकी भांति शीघ्र विनाशी, मन-सूबेकी तरह जल्द बिगड़ जानेवाला। यह शब्द अस्थिर पदार्थका विशेषण है।

कल्पनाथ (हिं० पु०) वृक्षविशेष, एक पेड़। (Justicia paniciculata)

कल्पनाशक्ति (सं० स्त्री०) कल्पनायाः नवोद्भावनस्य शक्तिः, ६-तत्। नूतन विषयके उद्भावनकी शक्ति, नयी बात निकालनेकी ताकत।

कल्पनी (सं० स्त्री०) कल्पयति केशादीन् छिनत्ति अनया, क्लृप च्छेदने ल्युट्-ङीप्। कतनी, कैंची।

कल्पनीय (सं० त्रि०) कल्पनाय हितम्, कल्पन-ठञ्। १ कल्पनाके उपयोगी, अन्दाज़के लायक। २ छेद्य, काटने का बिल। ३ विधानके उपयुक्त, ठहराने लायक। ४ आरोपणके उपयोगी, लगाने का बिल।

कल्पपादप (सं० पु०) कल्पयति सर्वकामं सम्पाद-यति कल्पः, कल्पश्चासौ पादपश्चेति, कर्मधा०। १ कल्प-तरु, स्वर्गका एक पेड़। "यथा न चमी इक्षितकल्पपादपः।" (नैषध १।१५) २ विभीतकवृक्ष, बहेड़ेका पेड़।

कल्पपादपदान (सं॰ क्लो॰) कल्पपादपस्य सुवर्णनिर्मितपादपाकृतेर्दानम्। महादानविशेष, सोनेके पेड़का बड़ा दान। बल्लालसेन विरचित दानसागर नामक ग्रन्थमें कल्पपादप दानका विधान इसप्रकार वर्णित है,—

"कल्पपादपदान देनेकी इच्छा रखनेसे यजमानको तुलापुरुष दानकी भांति पुख्याद वचन तथा लोकेशका आवाहन कराना और ऋत्विक्, मण्डप, सम्भार, भूषण एवं आच्छादान जुटाना पड़ता है। शक्तिके अनुसार तीनसे एक सहस्रपल पर्यन्त स्वर्णके अर्धांशका नाना फलयुक्त और पांच शाखाविशिष्ट वृक्ष बनाते हैं। वह नाना वस्त्र और अलङ्कारसे सजाया जाता है। फिर १ प्रस्थ गुड़पर शुक्लवस्त्रके दो टुकड़े डाल तल-देशमें ब्रह्मा, विष्णु, शिव एवं सूर्यकी प्रतिमा लगाते और स्वर्णके अपर अर्धांशसे १ दूसरा वृक्ष तथा ४ मूर्ति बनाते हैं। सन्तान वृक्षके नीचे रति और कन्दर्पकी मूर्ति गुड़में रखना पड़ती है। यह वृक्ष १ प्रस्थ पूर्व, घृतपर लक्ष्मी सह मन्दार वृक्ष दक्षिण, जीरकपर सावित्री सह पारिभद्र वृक्ष पश्चिम और तिलपर सुरभिसह हरिचन्दन वृक्ष उत्तरको रहता है। प्रत्येक वृक्षको शुक्ल वस्त्रके दो दो टुकड़ोंसे आच्छादन करते हैं। फिर प्रत्येक वृक्षके पार्श्वपर दो-दोके हिसाब ८ पूर्ण कलस रखे जाते हैं। कलसपर इक्षु दण्ड और फलादि लगा कोषेय वस्त्र ओढ़ाना पड़ता है। पूर्ण कलसके पार्श्व देशमें पादुका, उपनात्, छत्र, चामर, आसन, भाजन और दीप रखते हैं। फिर मन्त्र विशेषसे तीन बार प्रदक्षिण करते दो तीन पुष्पाञ्जलि देनेपर शास्त्रोक्त विधानसे कल्पपादप दान होता है। दानके अन्तमें अधिक दान करनेपर विस्मित न हो सकल प्रकार शठता देखानेसे दूर रहना चाहिये। इस महादानसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता, सर्वपाप कटता और शतकल्प स्वर्गमें रह यजमान राजाधिराज हो जन्म ग्रहण करता है। फिर नारायणबलयुक्त, नारायण-परायण और नारायणकथा भक्त रहनेसे वह नारायणलोक पाता है।

कल्पपाल (सं॰ पु॰) कल्पं सुराविधानकल्पं पालयति, कल्प-पाल-णिच्-अण्। १ शौण्डिक, कलवार, शराब बनानेवाला।

कल्पभव (सं॰ पु॰) देवता विशेष। जैन मतानुसार यह वैमानिक होते हैं। जैन मतानुसार ये सोलह हैं—सौधर्म, ऐशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लान्तव, कापि, शुक्र, महाशुक्र, शतार, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण, अच्युत। श्वेताम्बर जैनके मतसे कल्पभव बारह हैं,—अच्युत, आनत, आरण, ईशान, कालान्तक, प्रणत, ब्रह्मा, माहेन्द्र, शुक्र, सनत्कुमार, सहस्रार और सौधर्म। जैन बताते—तीर्थङ्करोंके जन्मादि संस्कारोंमें कल्पभव आते हैं।

कल्पमहीरुह (सं॰ पु॰) कल्पश्चासौ महीरुहश्चेति, कर्मधा॰। कल्पवृक्ष, एक पेड़।

कल्पलता (सं॰ स्त्री॰) कल्पवृक्ष।

कल्पलतादान (सं॰ क्लो॰) कल्पलतायाः यथाविध सुवर्णनिर्मिताया लताया दानम्, ६-तत्। महादानविशेष। दानसागरमें इस दानका विधि निम्नोक्त रूपसे लिखा है।—

शक्तिके अनुसार पांचसे हजार पल पर्यन्त परिमित स्वर्णकी दश लतायें बनावे और उनमें फल, पुष्प, पत्र, पक्षी, विद्याधर, किन्नर, मिथुन, सिद्ध तथा मुक्ताहार लगावे। फिर नानाविध विचित्र वस्त्रोंसे उन्हें आच्छादन करे। लतावोंके निम्नदेशमें रखनेके लिये ब्रह्मादि दश प्रतिमायें बनाना पड़ती हैं। लतारोपणके लिये लवण, गुड़, हरिद्रा, तण्डुल, घृत, क्षीर, शर्करा, तिल एवं नवनीत और पार्श्वमें स्थण्डिलके लिये दश धेनु, दश कुम्भ तथा दश जोड़ा वस्त्र संग्रह करना चाहिये। व्रतके पूर्व दिन हविष्य भोजन, निवेदन, सङ्कल्पवाक्य प्रभृति किये जाते हैं। दूसरे दिन गुरु, पुरोहित, यजमान और जापक उपवासी रहते हैं। पुरोहित प्रधान वेदीमें लिखित चक्रपर पूर्वादि आठ दिशावोंमें आठ और लतामण्डपमें दो लतायें रखते हैं। दोनोंके निम्नदेशमें लवणसे हंसारूढ़ा ब्राह्मी और अनन्तशक्तिकी मूर्ति स्थापित होती है। आठ दिशावों को दूसरी आठ लतावोंके नीचे पूर्वदिक्से यथाक्रम आरम्भ कर गुड़ पर स्वर्णासन कुलिशायुधहस्ता माहेन्द्री, हरिद्रा पर

स्रुवहस्ता छागारूढ़ा आग्नेयी, तण्डुल पर गदापाणि महिषारूढ़ा याम्या, छत्रपर खड्गपाणि नराकृढ़ा नैऋती, क्षीर पर नागपाशहस्ता सर्पस्था वारुणी, शर्करा पर मृगासना तपाकिनी, तिल पर सौम्या और नवनीत पर शूलहस्ता वृषासना माहेश्वरी मूर्ति रूपसे बैठती है। प्रत्येक मूर्ति मुकुटयुक्त, क्रोड़ देशमें पुत्रविशिष्ट और प्रसन्नवदना चाहिये। लतावोंके पार्श्वमें दश धेनु, दश पूर्ण कुम्भ और दश जोड़ा वस्त्र रखते हैं। फिर मङ्गल गीत गाये, वाद्य बजाये और वन्दियों द्वारा स्तुतिपाठ सुनाये जाते हैं। उसी समय कुण्डके निकटस्थ चार कुम्भोदकसे यजमानको स्नान कराना चाहिये। स्नानके अन्तमें यजमान शुक्लवस्त्र, अलङ्कार और माल्यादि पहनते हैं। उन्हें लतासमूहका तीन बार प्रदक्षिण करते करते मन्त्रपाठपूर्वक तीन पुष्पाञ्जलियां देना पड़ती हैं। यथाविध कल्पलतादान कर दक्षिणा बांटी जाती है। अन्तको दरिद्र अनाथ प्रभृतिका सन्तोषसाधन और ब्राह्मणादिका भोजनकार्य सम्पादन करना चाहिये।

कल्पलतिका (सं० स्त्री०) कल्पवृक्ष।

कल्पवर्ष (सं० पु०) उग्रसेनभ्राता देवकके पुत्र।

(भागवत ९।२४।२५)

कल्पवल्ली (सं० स्त्री०) कल्पलता, तूबा।

कल्पवायु (सं० पु०) प्रलयकालमें प्रवाहित होनेवाला वायु, कयामतके वक्त चलनेवाली हवा।

कल्पवास (सं० पु०) वासविशेष, एक रहायश। माघ मासमें गङ्गातट पर सङ्गमके साथ रहनेको कल्पवास कहते हैं।

कल्पविटपी, कल्पवृक्ष देखो।

कल्पविधि (सं० पु०) व्यवहारिक आज्ञा पालन करनेका एक नियम।

कल्पवृक्ष (सं० पु०) कल्पतरु, तुबा। यह समुद्रके मन्थनसमय निकला था। कल्पान्ततक कल्पवृक्ष बना रहता है। चौदह रत्नोंमें यह भी एक रत्न है। कोई कोई गोरख इमलीको भी कल्पवृक्ष कहते हैं। २ विभीतक वृक्ष, बहेड़ेका पेड़।

कल्पशाखी, कल्पवृक्ष देखो।

कल्पसूत्र (सं० क्लो०) कल्पस्य वैदिककर्मानुष्ठानस्य प्रतिपादकं सूत्रम्। वैदिक कर्मविधायक ग्रन्थ। यह ग्रन्थ आश्वलायन आपस्तम्ब प्रभृतिने बनाये हैं।

वेद और सूत्रग्रन्थ देखो।

"अश्वमेधः संवृत्तः कल्पसूत्रेण ब्राह्मणैः।
चतुर्थोमगृहस्तस्य प्रथमं परिकल्पितम्॥" (रामायण १।१४।४२)

२ जैनियोंका एक धर्मग्रन्थ। भद्रबाहुस्वामीने इस ग्रन्थका प्रचार किया था। जैन देखो।

कल्पहिंसा (सं० स्त्री०) जैन मतानुसार हिंसाविशेष, पञ्चसूना, चूल्हा जलने, सिलपर मसाला पिसने, झाड़ू लगने, ओखलीमें मूसर चलने और घड़ेमें पानी भरा रहनेसे कीड़ोंका मारा जाना।

कल्पा (सं० स्त्री०) श्वेतजातीवृक्ष, सफेद चमेलीका पेड़। २ मधु, शराब।

कल्पातीत (सं० पु०) कल्पः कल्पकालः अतीतो यस्य कल्पः सृष्टिः अतीतः अतिक्रान्तो येन वा, बहुव्री०। कल्पकालकी अपेक्षा अधिक दिन रहनेवाले देवताविशेष, जो फरिश्ता कयामतसे भी ज्यादा दिन जी सकता हो। कभी न मरनेवाले देवताको कल्पातीत कहते हैं। जैन मतानुसार वैमानिक देव दो तरहके होते हैं कल्पोपपन्न और कल्पातीत। सौधर्मसे लेकर अच्युत स्वर्गपटल पर्यन्तके विमानोंमें हीनाधिक विभूतिके अनुसार इन्द्र प्रतीन्द्र आदि की कल्पना है इस लिये वे तो कल्पोपपन्न कहलाते हैं और जहां यह कल्पना नहीं है सब समान विभूतिके धारक होनेसे अपनेको इन्द्र (अहमिन्द्र) समझते हैं उनको कल्पातीत कहते हैं। यह सब मिलाकर चौदह होते हैं। इनमें नौ ग्रैवेयक और पांच अनुत्तर हैं।

कल्पादि (सं० पु०) कल्पस्य सृष्टेः आदिः प्रथमः कालः, ६-तत्। सृष्टिका आरम्भकाल, दुनियाकी इब्तिदा।

कल्पानुपद (सं० पु०) सामवेदके अन्तर्गत एक ग्रन्थ।

कल्पान्त (सं० पु०) कल्पस्य अन्तो यत्र, बहुव्री०। १ प्रलय, कयामत। २ ब्रह्माके दिनका अन्त।

"उपवासरतायै व यदी कल्पान्तवासिनः।" (रामायण ४।१।४)

कल्पान्तर (सं क्रि०) कल्पादन्तरम्, ५-तत। अपर कल्प, दुनियाकी दूसरी पैदायश।

कल्पान्तस्थायी (सं० त्रि०) कल्पान्तपर्यन्तं तिष्ठति, कल्पान्त-स्था-णिनि। प्रलयकाल पर्यन्त वर्तमान रहनेवाला, जो क़यामत तक टिक सकता हो।

कल्पिक (सं० त्रि०) उपयुक्त, क़ाबिल।

कल्पित (सं० पु०) कल्प्यते सज्जीक्रियते असौ, कल्प-णिच् कर्मणि क्त। १ सज्जितहस्ती, लड़ाईकेलिये सजा हुवा हाथी। (त्रि०) २ रचित, बनाया हुवा।

"ब्रह्मादि स्तम्बपर्यन्तं मायया कल्पितं जगत्।" (महानिर्वाण)

३ उद्भावित, फ़र्ज़ी, माना हुवा। ४ सम्पादित, ठीक किया हुवा। ५ सज्जित, सजा हुवा। ६ दत्त, दिया हुवा। ७ आरोपित, लगाया हुवा। ८ अवधारित, सोचा हुवा। ९ कृत्रिम विषय सत्यकी भांति स्थिरीकृत, ग़ुलसकी तरह ठहराया हुवा।

कल्पितार्घ, कल्पितार्घ्य देखो।

कल्पितार्घ्य (सं० त्रि०) कल्पितं दत्तं अर्घ्यं यस्मै। अर्घ्य दिया हुवा, जो अर्घ पा चुका हो।

कल्पितोपमा (सं० स्त्री०) अभूतोपमा, अन्दाज़ी मिसाल। इसमें प्रकृत उपमान न मिलनेसे कल्पना लगती है।

कल्पी (सं० त्रि०) कल्पयति, क्लृप-णिच्-णिनि। १ रचनाकारक, बनानेवाला। २ आरोपक, लगानेवाला। ३ वेशकारक, सुधारनेवाला। (पु०) ४ नापित, नाई।

कल्प्य (सं० त्रि०) क्लृप-णिच्-यत्। १ रचनीय, बनाने लायक़। २ आरोप्य, अच्छा हो सकनेवाला। ३ अनुष्ठेय, किया जानेवाला। ४ विधेय, मानने लायक़।

कल्म (सं० क्ली०) रलयोरैक्यात्। कर्म, काम।

कल्मलि (सं० पु०) कलयति अपगमयति मलम्, पृषोदरादित्वात् साधुः। तेजः, रोशनी।

कल्मलीक (सं० क्ली०) कल्मलि देखो।

कल्मलीक (सं० पु०) कल्मलीकमस्यास्ति, कल्मलीक इनि। १ रुद्र। (त्रि०) २ तेजोयुक्त, चमकदार।

कल्मष (सं० क्ली०) कर्म शुभकर्म स्यति नाशयति, पृषोदरादित्वात् साधुः। १ पाप, गुनाह। २ हस्तिपुच्छ, हाथीकी पूछ। ३ मलिनता, मैलापन। ४ हथेली। (पु०) ५ नरक विशेष, एक दोज़ख़। ६ मास विशेष, एक महीना। जिस मास अश्व नक्षत्रको मङ्गलवार वा शनिवार आता, वह कल्मष कहाता और मनोदुःख देखाता है। (दीपिका) (त्रि०) ७ मलिन, गन्दा, मैला।

कल्मषध्वंसकारी (सं० त्रि०) १ पाप वा तिमिरनाशक, गुनाह या अंधेरेको दूर करनेवाला। २ पापकर्मसे बचानेवाला, जो जुर्म करने न देता हो।

कल्माष (सं० पु०) कलयति, कल्-क्विप्; माषयति, स्वभासा अभिभवति, अन्यवर्णान्, माष-णिच्-अच्; कल् चासौ माषश्चेति, कर्मधा०। १ चित्रवर्ण, चितकबरा रंग। २ कृष्णवर्ण, सांवला रंग। ३ राक्षस, आदमख़ोर। ४ गन्धशालि, खुशबूदार चावल। ५ सर्पविशेष, एक सांप। ६ अग्निविशेष, एक आग। ७ सूर्यके एक अनुचर। ८ पूर्व जन्मके शाक्यमुनि। (त्रि०) ९ चित्रवर्ण विशिष्ट, चितकबरा। १० कृष्णबिन्दुयुक्त, काले धब्बेवाला।

कल्माषकण्ठ (सं० पु०) कल्माषः कृष्णवर्णः कण्ठो यस्य, बहुव्री०। नीलकण्ठ, शिव।

कल्माषग्रीव (सं० त्रि०) कल्माषा कृष्णवर्णा ग्रीवा यस्य, बहुव्री०। १ कृष्णवर्ण ग्रीवावाला, जिसके काली गर्दन रहे। (पु०) कल्माषा ग्रीवा सामीप्यात् कण्ठो यस्य। २ महादेव।

कल्माषता (सं० स्त्री०) कल्माषस्य भावः, कल्माष-तल्। १ चित्रवर्णता, चितकबरापन। २ कृष्णपाण्डुरवर्णता, कालापन, स्याही।

"राघवं भावमापन्नं पादे कल्माषतां गतः।" (भागवत ९।९।२१)

कल्माषपाद (सं०पु०) कल्माषौ कृष्णवर्णौ पादौ यस्य, बहुव्री०। सौदास राजा। यह मलसखा राजा ऋतुपर्णके वंशीय थे। किसी समय सौदासने मृगयाको निकल एक राक्षस मारा था। उसका भ्राता वैर निर्यातन उपायके अनुसन्धानको मायासे राजाके घर का पाचक वेशसे रहने लगा। एक दिन राजगुरु वशिष्ठ भोजन करने पहुंचे। उसने नरमांस खानेको वशिष्ठ भोजन करने पहुंचे। उसने नरमांस खानेको रखा। वशिष्ठने वह मांस देख राजाका दुर्व्यवहार समझ लिया और अभिशाप दिया,—सौदास तुम

राक्षस होगी। विना अपराध अभिशाप पा राजाने भी गुरुको प्रतिशाप देनेके लिये जल उठाया। किन्तु राजमहिषी मदयन्तीने द्रुतपद उपस्थित हो राजाको रोका। राजाने वह जल अपनेही पैर पर डाला था। इससे दोनों पैर काले पड़ गये और लोग उन्हें कल्माषपाद कहने लगे। (भागवत ९।९ अ०)

कल्मषाङ्घ्रि कल्माषपाद देखो।

कल्माषाङ्घ्रिक (सं० पु०) कल्माषौ कृष्णवर्णौ अङ्घ्री यस्य, कल्माषाङ्घ्रि-कन्। कल्माषपाद देखो।

कल्माषी (सं० स्त्री०) कल्माष-ङीष्। १ चित्रवर्णा स्त्री, काली या सांवली औरत। २ कृष्णवर्णा यमुना, कालिन्दी नदी। "कल्माषीतीरसंस्थस्य गतसत्वं शिष्यतां भगोः।" (भारत, सभा ७६ अ०)

कल्मेश्वर—मध्यप्रदेशके नागपुर ज़िलेका एक नगर। यह नागपुर शहरसे ७ कोस पश्चिम पड़ता है। यहां कुनवीकी जमीन्दारी है। वह नगरके मध्य एक दुर्गमें रहते हैं। दिल्लीसे किसी हिन्दू मनसबदारने आकर यह दुर्ग बनाया था। कल्मेश्वरमें धान्य, तेल और देशीय वस्त्रका व्यवसाय चलता है। यहांकी जमीन्में अफीम, ऊख और तमाखू होती है।

कल्य (सं० क्लो०) कलयति आगमयति, कल कर्मणि यत्। १ प्रातःकाल, सवेरा, भोर। कलयति मिष्टतां सम्पादयति, कल्-यक्। २ मधु, शहद। ३ सुरा, शराब। ४ कल्याणवाक्य, मुबारकबादी, बधाई। ५ शुभाकाङ्क्षा, खैरख्वाही। ६ शुभ समाचार, अच्छी खबर। (त्रि०) ७ सज्ज, प्रस्तुत, तैयार। ८ नीरोग, चङ्गा, जो बीमार न हो। ९ वाक्श्रुतिरहित, बौरा और बहरा, जो कह सुन न सकता हो। १० दक्ष, होशियार, चालाक। ११ माङ्गलिक, खुशगवार। १२ शिक्षाप्रद, नसीहत, अङ्गेज।

कल्यजग्धि (सं० स्त्री०) कल्ये प्रातः जग्धि भोजनम्, ७-तत्। १ प्रातःकालका भोजन, सवेरेका नाश्ता। २ प्रातःकालका भोज्य, सवेरेके खानेकी चीज़।

कल्यत्व (सं० क्लो०) कल्यस्य नीरोगस्य भावः, कल्य-त्व। आरोग्य, आराम, बीमारीसे छुटकारा।

कल्यद्रुम (सं०पु०) विभीतक वृक्ष, बहेड़ेका पेड़।

कल्यपाल (सं० पु०) कल्यं मधु मद्यं पालयति, कल्य-पाल-अण्। शौण्डिक, कलवार, शराब टपकानेवाला।

कल्यपालक (सं० पु०) कल्यं पालयति, कल्य-ण्वुल्। कल्यपाल देखो।

कल्यवर्त (सं० पु०) कल्ये प्रातः वर्तते जीव्यते अनेन, कल्य वृत-णिच्-अप्। १ प्रातराश, सवेरेका नाश्ता। २ लघुभोजन, हलका खाना। (क्लो०) ३ तुच्छ वस्तु, मामूली चीज़।

कल्या (सं० स्त्री०) कलयति मादयति, कल-णिच्-यक्-टाप्। १ मद्य, शराब। २ हरीतकी, हर। ३ कल्याणवाक्य, मुबारकबादी।

कल्याङ्ग (सं० पु०) पर्पटक्षुप, दमन पापड़ेका पेड़।

कल्याण (सं० पु०-क्लो०) कल्ये प्रातः अण्यते शब्द्यते, कल्य-अण्-घञ्। अकर्तरि च। पा ३।३।१९। १ मङ्गल, भलायी। इसका संस्कृत पर्याय—श्व, श्रेयस्, शिव, भद्र, शुभ, भावुक, भविक, भव्य, कुशल, क्षेम और शस्त है। २ अक्षय स्वर्ग। ३ रागविशेष। इस रागमें ध, नि, सा-ऋ, ग, म और प क्रमसे स्वर लगाये जाते हैं। दश दण्ड रात्रि बीतनेसे यह राग गाया जाता है। इसकी ठाटपर राजधानी, कल्याण, विरारी, ऐरावत और कोकिल कल्याण प्रभृति रागिणियां चलती हैं। कल्याणके पुत्र हिमाल, वल्लभ, वीर, जङ्गाल, कलिङ्गरा, पुलिन्द और गुरुसागर हैं। ४ राजविशेष, एक राजा। वह 'भट्टश्री कल्याण' नामसे ख्यात थे। ५ 'गीतगङ्गा' नामक पुस्तकके प्रणेता। (त्रि०) ६ कल्याणयुक्त, भला।

कल्याण—बम्बई प्रान्तके थाना जिलेका एक उपविभाग और नगर। इस उपविभागका परिमाणफल २७८ वर्ग मील है। कल्याणसे उत्तर उलहास तथा भातशा नदी, पूर्व शाहपुर एवं मुरबाद, दक्षिण करजत तथा पनवेल और पश्चिम पारसिक पर्वतमाला है। उत्पन्न द्रव्योंमें धान्य, माष और सर्षपादि प्रधान हैं। सन अत्यन्त होता है। कल्याण प्रायः त्रिकोणाकार है। पश्चिमांशमें प्रशस्त समतल भूमि आयी है। फिर पूर्व और दक्षिणमें पर्वतमालाका अंशसमूह परिव्याप्त है। यहां वैशाख-ज्येष्ठ मासमें पूर्वदिक्‌से वायु बहता

है।' स्थान बहुत ही अस्वास्थ्यकर है। शीतकालमें ज्वरका कुछ प्रादुर्भाव बढ़ते भी अच्छा रहता है। एक दीवानी अदालत और एक थाना है। फौजदारोकी दो कचेहरियां लगती हैं। कल्याण नगर इस प्रदेशका प्रधान स्थान है। यह अक्षा० १९° १४″ उ० और देशा० ७३° १०′ पू० पर अवस्थित है। नगरमें बन्दर विद्यमान है। चावल छांटनेका काम बहुत होता है। मुसलमानोंके अधिकार समय कल्याणमें ११ मसजिदें बनी थीं। चतुर्दिक् प्राचीरसे वेष्टित नगरमें प्रवेश करनेकेलिये चार द्वार थे।

कल्याण अतिप्राचीन है। नाना स्थानोंके ई० प्रथम, पञ्चम तथा षष्ठ शताब्दके खोदित शिलालेखों में भी इसका नाम मिलता है। पेरिप्लासके मतसे ई० द्वितीय शताब्दको दाक्षिणात्यमें कल्याण नामक एक प्रधान राज्य था। कसमस इण्डिकोप्लुष्टेसकी वर्णनासे समझ पड़ता है,कि ई० षष्ठ शताब्दमें भारतकी वाणिज्यप्रधान पांच नगरियोंमें कल्याण एकतम और वस्त्र पित्तल प्रभृतिका विस्तृत व्यवसाय केन्द्र रहा। ई० चतुर्दश शताब्दको मुसलमानोंने जिलेका सदरथाना बना इसका नाम इसलामाबाद रखा। पोर्तगीजोंने १५३६ ई०को कल्याणपर अधिकार किया था। किन्तु उन्होंने इसकी रक्षा रखनेका कोई प्रबन्ध न बांधा। फिर १५७० ई०को वह इसका उपकण्ठ लूट यथेष्ट धन बल ले गये। पीछे यह प्रदेश अहमद नगर राज्यमें लगा। १६३६ ई०को बीजापुरके राजाने प्रबल हो इसे अधिकारमें किया। १६४८ ई०को शिवाजीके सेनापति आवाजी सोमदेवने कल्याणपर आक्रमण कर शासनकर्ताको बन्दी बनाया। १६६० ई०को मुसलमानोंने इसे शिवाजीके हाथसे छुड़ाया, किन्तु १६६२ ई०को फिर गंवाया। १६७८ ई०को शिवाजीने अंगरेजोंको यहां कोठी बनानेका आदेश दिया था। १७८० ई०को मराठोंका साहाय्य न मिलनेसे अंगरेजोंने यह प्रदेश अधिकार किया। उसी समयसे कल्याण अंगरेजोंके अधीन है।

प्राचीन इतिहास—इसका जो प्राचीन इतिहास मिला, वह अधिकांश कर्णाटकके खोदित लेखोंसे निकला है। करनेल मेकेञ्जी साहबने संस्कृतपुस्तकोंका संक्षिप्त इतिहास लिपिबद्ध किया है। उसमें 'मदराज बमराज वंशावली' लगी है। वह तिरुपती पर्वतके निकटवर्ती नारायणपुर वा नारायणवरम् नामक स्थानके अधिपतियों या प्राचीन कर्वेती नगरके मह राजवंशीय राजावोंका वंशविवरण कीर्तन करती है। तोन्दमान चक्रवर्तीके एक वंशीय धनञ्जय चोल थे। उन्हीं चोलराजपुत्रसे उक्त वंशको उत्पत्ति है। धनञ्जयके वंशमें नारायणराज नामक किसी व्यक्तिने जन्म लिया। उन्हीं नारायणराजने नारायणवरम् वा कल्याणपत्तन स्थापित किया था। कल्याण पत्तन प्राचीन कल्याण वा आधुनिक नारायणवरम् नदीपर अवस्थित है।

कर्णाटिक खोदित शिलालेखोंसे जो प्रमाण मिले उन्हे देख समझ सके हैं—एक समय गोदावरी और कृष्णानदीके अन्तर्गत भूभागमें चालुक्य राजा अतिशय प्रबल पराक्रान्त पड़े थे। उस समय कोङ्कण, कल्याण, वनवासी प्रभृति राज्योंपर उनका अधिकार फैला था। कल्याण बहुत समृद्धिशाली और विख्यात था। चालुक्य राजा शिलालेखोंमें अपना कल्याण वा कल्याणपुरके 'चालुक्य राजा' कहकर परिचय दे गये हैं। कोङ्कणप्रदेशमें चित्रराज नामक एक महामण्डलेश्वर नृपति (९४६ शक) थे। उनको प्रदत्त ताम्रके सम्बन्धमें मतामत देते समय अध्यापक लासेनने कहा है,—'इसकी लिखी शिलाहार जाति काफिरिस्तानकी उत्तरस्थ काफिर जातीय "शिलार" जातिको छोड़ अन्य जाति हो नहीं सकती।' किन्तु दाक्षिणात्यमें एक शिलात् जाति थी। वह लोग पहले मान्यखेटीय राष्ट्रकूटोंके पीछे कल्याणवाले चालुक्योंके अधीन हुये। उस समय शिलाहारोंके ही शासनमें कोङ्कण प्रदेश, बेलगांव और सतारेका मध्यवर्ती समुदय स्थान था। शिलारोंके पराजयके बाद उक्त सकल प्रदेश कल्याणके अधीन हुवा।

दाक्षिणात्यके चालुक्य राजावोंमें कलिविक्रम विक्रमादित्य त्रिभुवनमल्लदेवकी महिमाका एक काव्य है। विह्लण नामक कविने उसे बनाया था। काव्यका नाम 'विक्रमाङ्कचरित' है। उसके मतसे विक्रमा-

दित्यका राजत्व काल शक ९८७—१०४८ ठहरता है। विक्रमके पिता २य आहवमल्ल कल्याणनगरीके प्रतिष्ठाता थे। (Ind. Ant. Vol. I. p. 209.) कल्याणप्रदेश विक्रमादित्य महाराजको अतिप्रिय रहा। वह नाना स्थानोंसे युद्ध जीत यहीं आकर ठहरते थे।

कल्याण उपाध्याय—बालतन्त्र नामक संस्कृत ग्रन्थके प्रणेता। यह महीधरके पुत्र और रामदासके पौत्र थे। अहिच्छत्र नगर इनका जन्मस्थान रहा। इन्होंने ६४४ शकको श्रावणपूर्णिमाको रविवारके दिन अपना बालतन्त्र समाप्त किया था।

कल्याणक (सं॰क्ली॰) कल्याण स्वार्थे कन्। १ कल्याण, भलाई। (पु॰) २ पर्पटक, दमनपापड़ा। (त्रि॰) ३ कल्याणयुक्त, भला, अच्छा।

कल्याणकगुड़ (सं॰ पु॰) ग्रहणीरोगका वैद्यकोक्त औषधविशेष, दस्तोंको बीमारीमें दी जानेवाली एक द्रव्य। आमलकीका रस २ सेर और इक्षु गुड़ ६ सेर एकत्र पाक करे। पाक प्रायः समाप्त होने पर पिप्पलीमूल, जीरक, चव्य, मरिच, पिप्पली, शुण्ठी, गज, पिप्पली, हवुषा, अजमोदा, विड़ङ्ग, सैन्धव, हरीतकी, आमलकी, विभीतक, यमानी, पाठा, चित्रक एवं धान्यकका चूर्ण आठ-आठ तोले, त्रिवृत्चूर्ण १ सेर और तैल १ सेर डाल अवलेह बना लेते हैं। यह अवलेह आठ तोले इलायची और तेजपत्रका चूर्ण मिला कर खानेसे ग्रहणी, श्वास, कास, स्वरभेद, शोथ, मन्दाग्नि, पुरुषत्वहानि और वन्ध्यादोष निवारित होता है। इसे त्रिवृत्के तैलमें तलकर देना चाहिये। (चक्रदत्त)

कल्याणकघृत (सं॰ क्ली॰) वैद्यकोक्त घृत औषधविशेष, दवाका एक घी। विड़ङ्ग, त्रिफला, मुस्तक, मञ्जिष्ठा, दाड़िमत्वक्, उत्पल, प्रियङ्गु, एला, एलवालुक, रक्तचन्दन, देवदारु, वेणामूल, कुष्ठ, हरिद्रा, शालपर्णी, चक्राकुल्या, अनन्तमूल, श्यामा, रेणुका, त्रिवृत्, दन्ती, वचा, तालीशपत्र और मालतीमूल प्रत्येकका कल्क दो-दो तोले, घृत ३२ पल तथा जल १६ शरावक एकत्र पाक करनेसे यह घृत बनता है। इसके सेवनसे विषमज्वर, श्वास, गुल्म, उन्माद, विषरोग, अलक्ष्मीग्रह, रक्षोदोष, अग्निमान्द्य, अपस्मार, शुक्रहीनता, वन्ध्यादोष, चक्षुरोग और शुक्रमार्गका दोषसमूह छूट आयुर्वृद्धि होती है। (सुश्रुत) इसी घृतको द्विगुण जल और चतुर्गुण दुग्ध डाल कर पकानेसे क्षीरकल्याण कहते हैं। (सारकौमुदी) फिर दाहरोग पर महत्कल्याणक घृत चलता है। यथा घृत ४ शरावक, शतमूलिका रस १६ शरावक, दुग्ध १६ शरावक और जीरक, बला, मञ्जिष्ठा, अश्वगन्धा, हरिद्रा, काकोली, क्षीरकाकोली, यष्टिमधु, मेदा, महामेदा, ऋद्धि वृद्धि तथा देवदारुका कल्क आठ-आठ तोले एकत्र पाककरनेसे महत्कल्याणकघृत प्रस्तुत होता है। (रत्नाकर)

कल्याणकर (सं॰ त्रि॰) माङ्गलिक, भलाई करनेवाला।

कल्याणकामोद (सं॰ पु॰) मिश्ररोगविशेष, एक मिलावरी राग। ईमन और कामोद मिलनेसे यह बनता है। इसे प्रथम प्रहरमें गाते हैं।

कल्याणकार, कल्याणकारक देखो।

कल्याणकारक (सं॰ त्रि॰) कल्याणप्रद, भलाई करनेवाला।

कल्याणकृत् (सं॰ त्रि॰) कल्याण-कृ-क्विप्। १ कल्याणकारक, भलाई करनेवाला। २ शास्त्रविहित कार्यकारक, भला काम करनेवाला।

कल्याणकोट—सिन्धुप्रदेशवाले ठाठानगरके पार्श्वका एक प्राचीन गिरिदुर्ग। आजकल इसे तुग़लकाबाद कहते हैं।

कल्याणगुड़, कल्याणकगुड़ देखो।

कल्याणघृत, कल्याणकघृत देखो।

कल्याणचन्द्र (सं॰ पु॰) एक ज्योतिःशास्त्रकार। यह ई॰ १२ वें शताब्दमें विद्यमान थे।

कल्याणचार (सं॰ त्रि॰) १ शुभमार्ग अवलम्बन करने वाला, जो अच्छी राह चलता हो। २ भाग्यशाली, किस्मती।

कल्याणधर्मा, कल्याणधर्मी देखो।

कल्याणधर्मी, (सं॰ त्रि॰) कल्याणो मङ्गलमयो धर्मोऽस्यास्ति, कल्याण-धर्म-इनि। मङ्गलकर धर्मविशिष्ट, नेक, अच्छा।

कल्याणनट (सं॰ पु॰) मिश्ररागविशेष, एक मिलावटी राग। यह कल्याण और नटके संयोगसे बनता है।

कल्याणपञ्चमीक (सं॰ पु॰) मास पक्षविशेष, महीनेका एक पाख। जिस पक्षकी पञ्चमी कल्याणकारक रहती, उसकी संज्ञा कल्याणपञ्चमीक पड़ती है।

कल्याणपुर—१ युक्तप्रदेशके फतेहपुर जिलेकी एक तहसील। यह गङ्गा और यमुना नदीके बीच अवस्थित है। इसमें २१८ ग्राम लगते हैं। भूमिका परिमाण २८७ वर्ग मील है।

२ काश्मीरका एक प्राचीन नगर। ६६७ शकमें कल्याणदेवीने यह नगर बसाया था।

३ दाक्षिणात्यके कल्याण प्रदेशका प्राचीन राजधानी। चालुक्य राजावोंके शिलालेखोंमें यह स्थान प्रसिद्ध है। कल्याण देखो।

४ युक्तप्रदेशके कानपुर जिलेका एक ग्राम। यह कानपुर शहरसे कोई ६ मील पश्चिम पड़ता है। यहां पुलिसका थाना और बम्बई-बरोदा-मध्यभारत तथा राजपूतना-मालवा-रेलवेका ष्टेशन विद्यमान है। फिर बिठूर (ब्रह्मावर्त)से कानपुरकी सूबेदार साहबकी रेल भी उक्त ष्टेशनसे जाती है। थानेके पास एक पक्का तलाव और महादेव तथा देवीका मन्दिर है।

कल्याणभार्य (सं॰ पु॰) पुरुषविशेष, एक मर्द। स्त्रीके मरने पर फिर विवाह होनेकी बात उठनेसे पुरुषको 'कल्याणभार्य' कहते हैं।

कल्याणमल—युक्तप्रदेशके प्रान्त हरदोई जिलेका एक परगना। इसका प्राचीन नाम रुथौलिया है। प्रवादानुसार रामचन्द्र रावणको मार लङ्कासे लौटते समय यहां रथसे उतरे थे। फिर उन्होंने रावणवधजनित पापक्षालनके लिये 'हत्याहरण' नामक पवित्र कुण्डमें स्नान किया। पांचसौ वर्ष पहले यह स्थान ठठेरोंके अधिकारमें था। पीछे वैसवार राजपूत-कुलोद्भव राजकुमारने ठठेरोंको भगा ८४ ग्रामों पर राजत्व चलाया। उन्होंने रुथौलिया नगरमें एक दुर्ग बनाया था। उसका भग्नावशेष आजभी देख पड़ता है। नागमल नामक किसी नायकने प्रभुको मार (किसीके मतसे बलप्रयोग पूर्वक) यह स्थान छीन लिया। आजभी नागमलवंशीय शकरवार राजपूत ६२ ग्रामका उपभोग करते हैं।

इस परगनेका परिमाण ६३. वर्गमील है। उसमें ३१ वर्गमील पर कृषि कार्य होता है। यहांकी भूमि बहुत अच्छी नहीं। हत्याहरणकुण्डके निकट प्रति वर्ष भाद्रमासमें मेला लगता है। उसमें न्यूनाधिक पन्द्रह हजार आदमी इकट्ठा होते हैं। इस परगनेमें कल्याण नामक ग्राम ही प्रधान है।

कल्याणमल्ल (सं॰ पु॰) १ अनङ्गरङ्ग नामक ग्रन्थके प्रणेता। २ गजमल्लके पुत्र। इन्होंने मेघदूतकी मालती नामी टीका बनायी थी।

कल्याणमित्र (सं॰ क्ली॰) कल्याणस्य धर्मस्य मित्रमिव। १ महर्षि सुतपाके पुत्र। इनका नाम लेनेसे नष्ट द्रव्य मिलता और वज्रका भय भगता है। (ब्रह्मवैवर्तपुराण)

२ धर्मका सङ्गी, नेक सलाह देनेवाला।

कल्याणयोग (सं॰ पु॰) कल्याणकरो योगः, मध्यपदलो॰। ज्योतिःशास्त्रोक्त यात्राका एक योग। वृहस्पति केन्द्रस्थल (लग्नसे १म, ४र्थ, ७म और १०म) और सूर्य त्रिकोण (५म और ९म) अथवा १०म वा ११म स्थानमें रहनेसे यह योग आता है। इस योगमें यात्रा करनेसे मङ्गल हुवा करता है।

कल्याणलेह (सं॰ पु॰) अवलेहविशेष, एक चटनी। हरिद्रा, वचा, कुष्ठ, पिप्पली, शुण्ठी, जीरक, अजमोदा (यमानी), यष्टी मधु, मधुकपुष्प और सैन्धवको समभाग बारीक चूर्ण प्रत्यह २१ दिन घीमें सानकर चाटनेसे वातव्याधि, हिक्का और श्वासरोग आरोग्य होता है। (चक्रदत्त)

कल्याणवचन (सं॰ क्ली॰) कल्याणं मङ्गलमयं वचनम्, कर्मधा॰। मङ्गल वाक्य, भली बात।

कल्याणवर्मा (सं॰ पु॰) १ कोई प्रसिद्ध ज्योतिर्विद्। इन्होंने सारावली नामक एक ज्योतिष बनाया था। २ काश्मीरवाले राजा वृहस्पतिके एक मातुल (मामा)। इन्होंने वृहस्पतिकी शैशवावस्थामें कुछ दिन ब्राह्मणोंके साथ राजकार्य चलाया था। फिर कल्याणवर्माने 'कल्याणस्वामी केशव' नामक विष्णुकी एक मूर्ति प्रतिष्ठित की। (राजतरङ्गिणी ४।६८६)

कल्याणवाचन (सं० क्लो०) कल्याणस्य वाचनं उच्चारणम्, ६-तत्। शास्त्रविहित कर्मसमूहके प्रथम ब्राह्मणसे पढ़ाया जानेवाला एक मन्त्र। यजमानको शास्त्रविहित कर्म आरम्भ करते समय 'ॐ स्वः कर्तव्येऽस्मिन् कर्मणि कल्याणं भवन्तोऽधिब्रुवन्तु' मन्त्रसे प्रार्थना करना चाहिये। इस पर ब्राह्मण 'ॐ कल्याणम्' मन्त्र तीन बार पढ़ता है। फिर उसे निम्नलिखित मन्त्रसे कल्याणवाचन करना पड़ता है,—

"यों पृथिव्यामुद्धृतायान्तु यत्कल्याणं पुराकृतम्।
ऋषिभिः सिद्धगन्धर्वैस्तत् कल्याणं सदास्तु नः॥"

कल्याणवादी (सं० त्रि०) कल्याणं वदति, कल्याण-वद-णिनि। कल्याणवक्ता, भलाईकी बात कहनेवाला।

कल्याणविनोद, कल्याणभट देखो।

कल्याणवीज (सं० पु०) कल्याणं वीजं यस्य, बहुव्री०। १ मसूरवृक्ष, मसूरको दालका पेड़। मसूर देखो। (६-तत्) २ मङ्गलका कारण, भलाईका सबब।

कल्याणवर्मा (सं० पु०) वराहमिहिरकृत वृहत् संहिताके एक टीकाकार।

कल्याणसिंह—बीकानेरके एक राजा। यह राजा जीतसिंहके पुत्र थे। १६०३ वत्में कल्याणसिंह राज्याभिषिक्त हुये। २७ वर्ष इन्होंने राजत्व किया था।

कल्याणसुन्दराभ्र (सं० क्लो०) राजयक्ष्माका एक रस। ८ तोले जारित अभ्रको आमलकी, मुस्तक, वृहती, शतमूली, इक्षु, विल्वपत्र, अग्निमन्थ, बाला, वासक, कण्टकारी, श्योणाक, पाटलि तथा बलाके ११ पल रसमें पृथक् मर्दन कर गुञ्जा समान वटी बनानेसे यह औषध प्रस्तुत होता है।

कल्याणाचार (सं० पु०) कल्याणकरः आचारः, मध्यपदलो०। १ मङ्गलकर आचरण, भला चाल चलन। (त्रि०) २ मङ्गलकरकार्य करनेवाला, जो अच्छी चाल चलता हो।

कल्याणाचारी (सं० त्रि०) कल्याणाचारं अस्त्यस्य, कल्याणाचार-इनि। मङ्गलमय आचारणयुक्त, अच्छी चाल चलनेवाला।

कल्याणाभिजनन (सं० क्लो०) कल्याणकरं अभिजननम्, कर्मधा०। १ मङ्गलकर जन्म, नेक पैदायश। (त्रि०) २ मङ्गलकर जन्म लेनेवाला, जो अच्छे वक्त पैदा हुवा हो।

कल्याणालय (सं० त्रि०) कल्याणस्य आलयः, ६-तत्। १ मङ्गलका आश्रय, नेकीका ठिकाना। (पु०) २ परमेश्वर।

कल्याणासद (सं० त्रि०) कल्याणस्य आसदः, ६-तत्। १ मङ्गलका पात्र, भलाईका घर। (पु०) २ जगदीश्वर।

कल्याणिका (सं० स्त्री०) कल्याण संज्ञायां कन्-टाप् अत इत्वम्। मनःशिला। मनःशिला देखो।

कल्याणिनी (सं० स्त्री०) कल्याणं अस्त्यस्याः, कल्याण-इनि-ङीप्। १ बला। बला देखो। २ कल्याणविशिष्टा स्त्री, भली औरत।

कल्याणी (सं० त्रि०) कल्याणमस्यास्ति, कल्याण-इनि। कल्याणयुक्त, नेक, भला।

कल्याणी (सं० स्त्री०) कल्याण-ङीप्। १ माषपर्णी। २ गाभी, गाय। "उपस्थितेयं कल्याणी नाम्नि कीर्तित एव यत्।" (रघु १।८७) ३ राल-वृक्ष, रालका पेड़। ४ सर्ज वृक्ष, धूनेका पेड़। ५ प्रयागकी एक प्रसिद्ध देवी।

कल्याणीय (सं० त्रि०) कल्याण-ढक्। कल्याणके योग्य, मङ्गलमय, नेक, भलाई करसकनेवाला।

कल्याण्यादि (सं० पु०) पाणिनि-व्याकरणका एक गण। कल्याण्यादीनामिनङ् च। पा ४।१।१२६। इसमें कल्याणी, सुभगा, दुर्भगा, बन्धकी, अनुदृष्टि, अनुसृष्टि, जरती, बलीवर्दी, ज्येष्ठा, कनिष्ठा, मध्यमा और परस्त्री शब्द अन्तर्भूत है। ढक् प्रत्ययके अन्तमें उक्त शब्दके नियोगसे इनङ् आदेश होता है।

कल्यान (हिं०) कल्याण देखो।

कल्यापाल, कल्यपाल देखो।

कल्यापालक, कल्यपाल देखो।

कल्लप (सं० क्लो०) मणिबन्ध, कलाई।

कल्ल (सं० त्रि०) कल्लते शब्दं न गृह्णाति, कल्ल-अच्। वधिर, बहरा, जिसे कानसे सुन न पड़े।

कल्लट (सं० पु०) स्पन्दसर्वस्व और स्पन्दसूत्र-विवरण नामक ग्रन्थके प्रणेता। काश्मीर इनका जन्मस्थान था। पाश्चात्य पण्डित इन्हें ई० ९वें शताब्दके व्यक्ति मानते हैं। किन्तु हमारी विवेचनामें कल्लट

ई० ८वें शताब्दमें विद्यमान रहे। कारण उस समय काश्मीरमें कल्लट नामक एक शैव राजा राजत्व करते थे। सम्भवतः स्पन्दसर्वस्वकारने उक्त राजाके नामसे ही अपना ग्रन्थ निकाला होगा। स्पन्दसूत्रके वार्तिककार भास्करभट्टके मतानुसार वसुगुप्तने कल्लटको शिवसूत्र बताया था। फिर इन्होंने स्पन्दसूत्रको कारिकाके साथ उसे जनसमाजमें प्रचार किया। कल्लटने स्पन्दसूत्रको एक लघुवृत्ति भी बनायी थी। शैवदर्शन देखो।

कल्लत्व (सं० स्त्री०) कल्लस्य भावः, कल्ल-त्व। १ स्वरभेद, आवाज़का फ़र्क़। २ बाधिर्य, बहरापन, सुन न पड़नेकी हालत।

कल्लन—दक्षिणापथकी एक असभ्य कृष्णवर्ण जाति। तामिल, तेलगु (तिलङ्गी) प्रभृति भाषाके अनुसार 'कल्लन'का एक अर्थ चोर या डाकू है। सम्भवतः पूर्वकालमें छिपकर माल मारने डाका डालनेसे यह नाम निकला होगा। मदुराराज्यमें इस जातिका वास है। किसी समय कल्लन लोग बल्लालोंसे कुछ स्थान छीन स्वाधीन भावमें रहते थे। अंगरेजोंके आनेसे पहले यह जाति मदुरा और निकटस्थ राज्यमें बड़ा उत्पात उठाती थी। १८०१ ई०को मदुरा अंगरेजोंके अधिकारमें आयी। फिर इन लोगोंका वह प्रभाव और दौरात्म्य घटने लगा। फिर भी उद्धत स्वभाव, अतुल साहस और शरीरका तेज आज भी वैसा ही बना है।

कल्लन जातिके विवाहकी पद्धति अति चमत्कारक है। एक रमणी अनायास दो-से दश तक पति ग्रहण कर सकती है। किन्तु एक एक जोड़े पति रखना पड़ता है; जोड़ा फूटनेसे काम बिगड़ता है। इनकी सन्तान अपनेको छह,आठ या दश लोगोंके नहीं—आठ और दो, छह और दो या चार और दोके पुत्र बताते हैं। अनेक पिता रहते भी कोई गड़बड़ नहीं होती। कारण सन्तान सबके समझे जाते हैं। फिर सबको उन्हें पालना पड़ता है।

कल्लन अपने पुत्रोंको शैशवकालसे ही चौर्यवृत्ति सिखाते हैं। इस कार्यमें जो जितना परिपक्व पड़ता, उसे स्वजातिके निकट उतना ही आदर और सम्मान मिलता है। यह शिवकी पूजा करते हैं। किसीके मरनेपर शव जलाया या भूमिमें गड़ाया जाता है।

कल्लमूक (सं० त्रि०) बधिर एवं मूक, जो कह सुन न सकता हो।

कल्लर (हिं० पु०) १ कल्ल, खारी मट्टी। २ रेह, नोना। ३ अनुर्वरा भूमि, ऊसर।

कल्ला (हिं० पु०) १ अङ्कुर, किल्ला। २ कुहर, कुवां, गढ़ा। यह भीट पर पान सींचनेको खोदा जाता है। ३ कपोलके अभ्यन्तरका अंश, जबड़ा। ४ विवाद, झगड़ा। ५ शरीरका स्थानविशेष, जिस्मका एक हिस्सा। जबड़ेके नीचे गलेतक कल्ला रहता है।

कल्लांच ((हिं० वि०) १ दुष्ट, लुच्चा। २ दरिद्र, कङ्गाल। यह तुर्कीके 'कल्लाच' शब्दका रूपान्तर मात्र है।

कल्लातोड़ (हिं० वि०) प्रबल, जोरावर, जो बराबरी कर सकता हो।

कल्लादराज़ (फा० वि०) कर्कशवादी, मुंहजोर, कड़ी बात कहनेवाला।

कल्लादराज़ी (फा० स्त्री०) कठोर वचन, मुंहजोरी, कड़ी बात।

कल्लाना (हिं० क्रि०) खुजलाने अथवा जलनेसे चर्ममें असह्य पीड़ा होना, चमड़ा जलना।

कल्लि (सं० अव्य०) आगामी दिवसको, कल।

कल्लिनाथ (सं० पु०) एक प्रसिद्ध सङ्गीतशास्त्ररचयिता।

कल्लू (हिं० पु०) कृष्णवर्णविशिष्ट, काले रंगवाला। यह शब्द प्रायः काले आदमियों या कुत्तोंका नाम होता है।

कल्लोल (सं० पु०) कल्ल वाहुलकात् ओलच्। १ महा तरङ्ग, बड़ा लहर। २ हर्ष, खुशी। ३ शत्रु, दुश्मन। (त्रि०) ४ शत्रुता रखनेवाला, जो दुश्मनी मानता है।

कल्लोलित (सं० त्रि०) कल्लोलोऽस्य संजातः, कल्लोल-इतच्। तरङ्गयुक्त, लहर लेनेवाला।

कल्लोलिनी (सं० स्त्री०) कल्लोलोऽस्त्यस्याः, कल्लोल-इनि-ङीप्। नदी, दरया।

कल्लोलिनीवल्लभ (सं० पु०) कल्लोलिनीनां नदीनां वल्लभ इव। समुद्र, बहर।

कल्ल (सं० पु०) द्वारप्रान्त विशेष, दरवाजेका एक किनारा। वास्तु वा भवन निर्माणशिल्पके अनुसार यह तीक्ष्णाग्र रहता है।

कल्ह (हिं०) कल्हि देखो।

कल्हक (हिं० स्त्री०) पक्षिविशेष, एक चिड़िया। यह कपोतके समान होती है। इसका वर्ण दृष्टककी भांति लोहित होता है। फिर कण्ठ कृष्णवर्ण, वक्ष श्वेत और पट रक्तवर्ण रहते हैं।

कल्हण (सं० पु०) राजतरङ्गिणी नामक प्रसिद्ध संस्कृत इतिहासके रचयिता। यह काश्मीरवाले प्रधान राजमन्त्री चम्पक प्रभुके पुत्र रहे। राजतरङ्गिणीसे समझते हैं, कि कल्हण ४२२४ सप्तर्षि वा लौकिकाब्द और १०७० शक (११८८ ई०)को जीवित थे।* इनकी राजतरङ्गिणी भारतवासियोंके आदरका बड़ा धन और भारतीय पुरातत्त्वविदोंका अमूल्य वस्तु हैं। पहले साधारण विश्वास करते, कि भारतवासी अपने प्राचीन इतिहास लिखनेको आवश्यक न समझते थे। कल्हणने यह अपवाद मिटा दिया है। इन्होंने महाराज युधिष्ठिरके समकालीन गोनन्दसे आरम्भकर अपने समसामयिक सिंहदेवके राज्यकाल पर्यन्त काश्मीरका इतिहास लिखा। इनकी राजतरङ्गिणी पढ़नेसे काश्मीरके प्राचीन राजावोंकी वंशावली, सङ्क्षिप्त जीवनी, राज्यकालको विवरणी और काश्मीर तथा उसके निकटस्थ जनपदकी अवस्था समझ पड़ती है। राजतरङ्गिणीकी रचना-प्रणाली भी अधिक कवित्व और शब्दलालित्यसे पूर्ण है।

कल्हर, कह्लार देखो।

कल्हरना (हिं० क्रि०) १ ईषत् तैल वा घृतमें भुनना, थोड़े घी या तेलसे कड़ाहीमें सिंकना। २ दुःखसे उठने न पाना, पड़े पड़े चिल्लाना।

कल्हार (सं० क्ली०) कुमुद, बघोला, कोकावेली।

कल्हारना (हिं० क्रि०) ईषत् घृत वा तैलमें तलना, थोड़े घी या तेलमें गर्म कड़ाहीमें किसी चीजको उलटना-पुलटना।

कल्होरा—सिन्धु प्रदेशकी बलची मुसलमान जाति। यह लोग अपनेको अब्बासका वंशधर बताते हैं।

कवक (सं० पु०-क्ली०) कवते आच्छादयति विस्तारयति वा, कव-अच् संज्ञायां कन्। १ छत्राक, कुकुरमुत्ता। यह अखाद्य समझा जाता है। "लशुनं गृञ्जनञ्चैव पलाण्डुं कवकानि च।" (मनु) लहसुन, गाजर, प्याज और कुकुरमुत्ता खाना न चाहिये। २ कवल, ग्रास, लुकमा, कौर।

कवच (सं० पु०-क्ली०) कु-अच्। कातत्यजिवनयचन्दिभ्यः ऋणादि। उण् ४।२। अथवा कं देहं वञ्चति विपक्षास्त्राणि वञ्चयित्वा रक्षति, क-वञ्च-अच्; कं वातं वञ्चति वा। १ सन्नाह, जिरह। इसका संस्कृत पर्याय—तनुत्र, वर्म, दंशन, उरश्छद, कङ्कटक, जगर, जागर, अजगव, कटक, योग, सन्नाह और कञ्चुक है।

स्वर्ण, रौप्य, ताम्र और लौह कई धातुसे कवच बनता है। इसको छोड़ काष्ठ, चर्म और वल्कल द्वारा भी कवच प्रस्तुत होता है। उक्त द्रव्योंमें उत्तरोत्तर द्रव्यसे बना कवच अधिक गुणयुक्त है। ऋक्संहिता पढ़नेसे समझ पड़ता है, कि वैदिक कालमें स्वर्णनिर्मित कवच ही चलता था। शरीरका आवरक, लघु, दृढ़ और दुर्भेद्य कवच साधारण होता है। छिद्रयुक्त, अतिशय भार वा सूक्ष्म और सहजभेद्य कवच निकृष्ट है। कवचको श्वेत, पीत, रक्त और कृष्ण कई प्रकार रंगते हैं। आजकल युद्धमें प्रायः कवच पहना नहीं जाता। फिर भी गत युरोपीय युद्धमें इसकी उपयोगिता प्रदर्शित हुयी थी।

२ शरीररक्षाके लिये देवताका एक मन्त्र। पहले मन्त्रविशेषसे उद्दिष्ट देवताकी पूजा कर कवच पढ़ते हैं। फिर भूर्जपत्र पर कवचको लिख और स्वर्ण, रौप्य वा ताम्रसे मढ़ कण्ठ अथवा दक्षिण बाहुमें धारण करते हैं। तान्त्रिक मन्त्र 'हुं' (हुङ्कार)को भी कवच कहते हैं।

३ पर्पटक, दमन पापड़ा। ४ गर्दभाण्डवृक्ष, पाक-

* "लौकिकेऽब्दे चतुर्विंशे शककालस्य साम्प्रतम्।
सप्तत्यभ्यधिकं यातं सहस्रं परिवत्सराः।" (राजतरङ्गिणी १।५२)

रका पेड़। ५ त्वक्, दारचीनी। ६ भूर्जपत्र, भोज-पत्र। ७ नन्दीवृक्ष, वेलिया पीपर। ८ डिण्डिमवाद्य, डङ्का, नक्कारा। ९ प्राचीन जातिभेद। कोष देखो।

कवचपत्र (सं० क्ली०) कवचलेखनसाधनं पत्रमिव पत्रं वल्कलं यस्य, बहुव्री०। भूर्जपत्र, भोजपत्र।

कवचपाश (वै० पु०) कवच व वर्मबन्ध, जिरह बांधनेका पट्टा। (काठक संहिता)

कवचहर (सं०पु०) कवचं हरति तेन वयसा, कवच-हृ अच्। १ कवच हरणका उद्यम करनेके उपयुक्त वयस्क बालक, लड़का, बच्चा। (त्रि०) २ कवचधारी, जिरह पहननेवाला। ३ कवचका यन्त्र धारण करनेवाला, जो तावीज पहने हो। ३ कूर्पासकधारी, मिरजाई पहने हुवा।

कवचित (सं० त्रि०) कवचं सञ्जातमस्य, कवच-इतच्। कवचयुक्त, जिरह पहने हुवा।

कवची (सं० त्रि०) कवचं अस्त्यस्य, कवच-इनि। १ वर्मयुक्त, जिरह पहने हुवा। (पु०) २ धृतराष्ट्रके एक पुत्र। (महाभारत १।११७।११) शिव, महादेव।

कवचीयन्त्र (सं० क्ली०) औषधके पाकार्थ यन्त्रविशेष, दवा पकानेका एक थाला। किसी दृढ़ काचकूपी (शीशी) का यह बनता है। कूपी न तो अतिक्षुद्र और अतिदीर्घ रहना चाहिये। पहले इसे कर्द-माक्त (भीगे) वस्त्रसे अच्छीतरह लपेट पीछे मृदु मृत्तिकाका लेप चढ़ाते हैं। फिर धूममें कूपी सुखायी जाती है। यन्त्रको इसमें औषध रख मुख बन्द कर देते हैं। इसी प्रकार कठिन और दृढ़ अग्निमें पक सकनेवाली कूपीका नाम कवचीयन्त्र है। (भावप्रकाश)

कवटी (सं० स्त्री०) कौति शब्दायते, कु-अटन् ङीप्। कवाट, किवाड़ी।

कवड़ (सं० पु०) केन जलेन वलते चलति, क-वल-अच् लड़योरैक्यम्। १ ग्रास, लुकमा, कौर। २ गण्डूष, कुल्ला।

कवड़ग्रह (सं० पु०) कर्ष, २ तोलेकी तौल।

कवती (सं० स्त्री०) कशब्द मस्त्यस्य, क-मतुप-ङीप् मस्य वः। 'कयानश्चित्र' इत्यादि ऋक्-विशेष, जो ऋचा 'क' से शुरु हो।

कवत्नु (वै० त्रि०) १ स्वार्थपर, मतलबी। २ मन्द-कर्म, बुरा काम करनेवाला।

"पुष्यति न रेवान् कवत्नवे।" (ऋक् ७।३२।९)

कवन (सं० क्ली०) कौति शब्दायते, कु-ल्युट्। १ जल-पानी। (पु०) २ शृङ्गीके एक पुत्र।

कवन (हिं०) कौन देखो।

कवन्तक (सं० पु०) व्यक्तिविशेष, किसी आदमीका नाम। पाणिनिने इनका उल्लेख किया है।

कवन्ध कबन्ध देखो।

कवपथ (सं० पु०) कु पथ, कोः कवादेशः। पथि च छन्दसि। पा ६।३।१०८। मन्दपथ, बुरा रास्ता।

कवयि, कवयी देखो।

कवयी (सं० स्त्री०) कात् जलात् वयते गच्छति, क-वय-इन् ङीप्। मत्स्यविशेष, कुम्भा मछली। इसका संस्कृत पर्याय—कविकापुच्छ और चक्रपृष्ठी है। (Coius coloius) अन्यान्य मत्स्यको अपेक्षा यह जलशून्य स्थानमें अधिक काल जी सकती है। इसके तालवृक्षपर चढ़नेका प्रवाद सुन पड़ता है। वस्तुतः यह कर्णदेशस्थ कण्टकके सहारे उच्चस्थान पर पहुंच जाती है। फिर भूमिपर भी कवयी बहुत दूर तक चला करती है। बङ्गालके यशोर और फरिदपुर जिलेमें यह हस्तदाकार देख पड़ती है। वैद्यक मतसे कवयी मधुर, स्निग्ध, कषाय, रुच्य, लघु, ईषत् पित्तकर और वातघ्न होती है।

कवर (सं० पु०-क्ली०) के मस्तके वरं शोभमानत्वात् श्रेष्ठम्। १ केशपाश, जुल्फ। २ कवरी, वनतुलसी। कु-अरम्। कोवरन्। उण्। ५।१५४। ३ पाठक, व्याख्यान दाता। ४ लवण, नमक। ५ अम्ल, खटाई। (त्रि०) ६ मसृक्त, गुच्छेदार। ७ खचित, जड़ाऊ। ८ चित्र वर्ण, चितकबरा।

"हष्टं वनितनितकलापभरानयत्वात्।
व्याकीर्णमालकवरां कवरीं तरुण्याः॥" (माघ ५।१८)

कवर (हिं०) कौर देखो।

कवर (अं० पु० = Cover) १ आच्छादन, पोशिश, गिलाफ। २ कोष, ढकना। ३ लिफाफा, चिट्ठी। ४ पट्ठा, दफ्ती।

कवरकी (सं० स्त्री०) कवरं केशपाशं किरति विकिरति यत्र, कवर-कृ-ङ-ङीष्। कारागारवद्धस्त्री, कैदमें पड़ी हुई औरत। अपने केशपाशको बांध न सकनेसे कारागारमें पड़ी स्त्री कवरकी कहाती है।

कवरना, कौरना देखो।

कवरपुच्छी (सं० स्त्री०) कवरं चित्रवर्णं पुच्छं अस्याः, ६-तत्। १ मयूरी, मोरनी। २ विचित्रपुच्छविशिष्टा, चितकवरी पुच्छवाली (चिड़िया वगैरह:)

कवरा, कवरी देखो।

कवरी (सं० स्त्री०) कं शिरः वृणोति आच्छादयति, क-वृ-अच्-ङीप् अथवा कु-अरन्-ङीष्। १ केशविन्यास, ज़ुल्फ़। इसका संस्कृत पर्याय—केशवेश, कवर और केशगर्भक है। २ ववैरा, ववई। ३ वनतुलसी। ४ कर्पूरक वृक्ष, ववूलका पेड़। ५ रक्त करवीर, लाल कनेर। ६ मनःशिला। ७ हिङ्गुपत्री, हींगकी पत्ती।

कवरीक (सं० पु०) सुगन्ध पत्रवृक्ष विशेष, एक पेड़। इसकी पत्ती खशबूदार होती है।

कवरीकला (सं० स्त्री०) मनःशिला।

कवरीकूटक (सं० पु०) कवरी, ववई।

कवरीभर, कवरीभार देखो।

कवरीभार (सं० पु०) कवर्याः भार आधिक्यम्, ६-तत्। १ स्थूल कवरी, बड़ी ज़ुल्फ। २ कवरीका भारत्व, ज़ुल्फका बोझ।

कवरीभृत् (सं० त्रि०) कवरीं बिभर्ति, कवरी-भृ-क्विप्। कवरीधारी, ज़ुल्फोंवाला।

कवर्ग (सं० पु०) ककारादि पञ्च वर्णसमूह, कसे ङ तक पांच अक्षर। क, ख, ग, घ और ङ पांचो अक्षरोंका नाम कवर्ग है। यह कण्ठ स्थानसे उच्चारित होता है।

कवर्गीय (सं० त्रि०) कवर्गात् भवः, कवर्ग-छ। कवर्गसे उत्पन्न, जो क, ख, ग, घ और ङ अक्षरसे निकला हो।

कवर्धा—मध्यप्रदेशके विलासपुर जिलेका एक क्षुद्र राज्य। यह अक्षा० २१° ५१´से २२° २९´ उ० और देशा० ८१° १´से ८१° ४०´ पू० तक अवस्थित है। क्षेत्रफल ८८७ वर्ग मील लगता है। कोई ३८९ ग्राम इस राज्यके अन्तर्गत हैं।

कवर्धके पश्चिम अंशमें चिलपी गिरिश्रेणी है। राज्यमें वह स्थान उत्कृष्ट समझा जाता है। यहां रुयी, धान और गेहूंकी उपज अच्छी है। जङ्गलमें लाख, महुवा और कई तरहका गेहूं पाते हैं।

राज्यका प्रधान नगर कवर्धा। अक्षा० २२° १´ उ० और देशा० ८१° १५´ पू० पर बसा है। कार्पास और लाक्षाका व्यवसाय ही प्रधान है। कबीरपन्थी सम्प्रदायके प्रधान यहां रहते हैं।

कवल (सं० पु०) केन जलेन वलते चलति, क-वल-अच्। १ ग्रास, कौर।

"व्यसृजन् कवलाग्रासा गावो वत्सान् न पाययन्।" (रामायण २।४१।८)

२ गण्डूष ग्रहण, कुल्ली। कवलका वही मात्रा आती, जो सुखसे मुखमें चल जाती है। गण्डूष देखो। ३ चिलिचिमत्स्य, एक मछली।

कवल (हिं० पु०) १ कोण, किनारा। २ पक्षिविशेष, एक चिड़िया। ३ अश्व विशेष, किसी किस्मका घोड़ा। ४ प्रतिज्ञा, कौल।

कवलग्रह (सं० पु०) कर्ष परिमाण, कोई एक तोले की तौल। २ कवलका ग्रहण, कुल्ली लेनेका काम। यह चार प्रकारका होता है—स्नेही, प्रसादी, शोधी और रोपण। वातमें स्निग्धोष्ण द्रव्यसे स्नेही, पित्तमें स्वादु, शीत द्रव्यसे प्रसादी, कफमें कटु-अम्ल-लवण-रुक्ष-उष्ण द्रव्यसे शोधी और व्रणमें कषाय-तिक्त-मधुर-कटु-उष्ण द्रव्यसे रोपण ग्रहण किया जाता है। (सुश्रुत) कवलग्रह लेनेसे भोजन अच्छा लगता, कफ घटता और तृषा, तोष, वैरस्य तथा दन्तचालका दोष मिटता है। (वैद्यकनिघण्टु)

कवलप्रस्थ (सं० पु०) कवलस्य प्रस्थः, ६-तत्। १ कवलयोग्य परिमाण विशेष, कुल्लीके लायक एक नाप।

कवलिका (सं० स्त्री०) व्रणवन्धनार्थं उदुम्बरादिवल्कल, ज़ख्म बांधनेके लिये गूलर वगैरहकी छाल।

कवलित (सं० त्रि०) कवलं करोति, कवल-णिच

कर्मणि क्त। १ भुक्त, खाया हुवा। २ ग्रस्त, निगला हुवा। ३ अधिकृत, किया हुवा।

कवली (सं० स्त्री०) वदरी वृक्ष, वेदी।

कवलीकृत (सं० त्रि०) अकवलं कवलं कृतम्, कवल-च्वि-कृ-क्त। कवलित, कौर बनाकर खाया हुवा।

कवष् (वै० त्रि०) कु-असुन् छान्दसत्वात् षत्वम्। छिद्रयुक्त, जिसमें छेद रहे।

कवष (वै० त्रि०) कु-असच्। १ सच्छिद्र (कपाटादि) छेददार (किवाड़ा वगैरह)। (पु०) २ प्राचीन ऋषि-विशेष। इनके पिताका नाम इलूष था। माता दासी रहीं। ऋक्संहिताके दशम मण्डलमें इनके बनाये मन्त्र विद्यमान हैं। एक समय सारस्वत प्रदेशमें कतिपय ऋषि यज्ञ करते थे। इन्होंने उनकी पंक्तिमें बैठ भोजन करना चाहा। किन्तु उन्होंने इन्हें दासीका पुत्र बता निकाला था। इससे यह क्रुद्ध हो वहांसे चल दिये। फिर इन्होंने तपस्या कर अनेक मन्त्र बनाये थे। उक्त मन्त्रोंको सुन देवगण प्रसन्न हुये। इससे ऋषि प्रार्थना करने लगे और यह उनकी पंक्तिमें लिये गये। (ऐतरेयब्राह्मण) ३ धर्मशास्त्रके रचयिता।

कवस (सं०पु०) कु-अस्। सन्नाह, जिरह। २ कण्टक-गुल्म, कंटीला झाड़।

कवाग्नि (सं० पु०) कु अल्पो अग्निः, कोः कवादेशः। अल्प अग्नि, थोड़ी आग।

कवाट (सं० क्ली०) कलं शब्दं अटति, कु भावे अप्-अट् अच्; कं वातं वटति वारयति वा, क वट्-अण् कपाट, शब्द करने या वायुको रोक रखनेवाला किवाड़।

"मोचद्वारकवाटपाटनकरो काशीपुराधीश्वरी।" (अन्नदास्तव)

कवाटक (सं० क्ली०) कवाट स्वार्थे कन्। कवाट, किवाड़।

कवाटघ्न (सं० पु०) कवाटं हन्ति शक्त्या, कवाट-हन्-टक्। शक्तौ हस्तिकवाटयोः। पा ३।२।५४। तस्कर विशेष, किवाड़तोड़ डालनेवाला डाकू।

कवाटचक्र, कवाटवक्र देखो।

कवाटवक्र (सं० क्ली०) कवाटं वक्रं यस्मात्, ५-तत्। स्वनामख्यात वृक्ष, एक पेड़।

कवाटी (सं० स्त्री०) कवाट अल्पार्थे ङीप्। क्षुद्र कपाट, किवाड़ी।

कवाम (अ० पु०) १ पक्वगाढ़ रस विशेष, पक्वाकर शहद-जैसा बनाया हुवा रस, क़िमाम। २शोरा, चाशनी।

क़वायद (अ० पु०) १ व्यवस्थायें, तरीके। २ व्याक-रणके नियम। ३ लड़ाईकी तालीमके तरीके। सेनामें योद्धावोंकी श्रेणियां अग्रभाग एवं पश्चाद्-भागमें नियमानुसार लगायी जाती हैं। सेनाध्यक्ष शिक्षाके शब्द उच्चारण करते हैं। साङ्केतिक वाद्य प्रभृति भी बजते हैं। इस पर सैनिक अपना कार्य करने लगते हैं। उनके अग्रगमन, पश्चात्चलन, मुद्रापरिवर्तन, शस्त्र सज्जीकरण, उत्तोलन, प्रहार, आक्रमण, रक्षा, शयन और उपवेशन आदिका नाम क़वायद है।

यह शब्द 'क़ायदे'का बहुवचन है। हिन्दीमें इसे स्त्रीलिङ्ग भी मानते हैं।

कवार (सं० पु०-क्ली०) कं जलं आश्रयत्वेन वृणोति, क-वृ-अण्। १ पद्म, कंवल। २ पक्षिविशेष, एक चिड़िया। इसका चञ्चु अतिदीर्घ होता है।

कवारि (सं० पु०) कुत्सितो ऽरिः, कोः कवादेशः। कुत्सित शत्रु, पाजी दुश्मन।

कवासख (सं० त्रि०) कुत्सितस्य सखा, कुसखा-टच्, कोः कवादेशः। कुत्सित सहायविशिष्ट, खुदगर्ज़।

कवि (सं० पु०) कवते श्लोकान् ग्रथते वर्णयति वा, कव्-इन्। १ कवितागान प्रभृति रचयिता, शायर, छन्द बनानेवाला। २ वाल्मीकि। ३ शुक्र। ४ पण्डित। ५ ऋषिविशेष। यह भृगुके पुत्र और शुक्राचार्यके पिता थे। ६ सूर्य, सूरज। ७ कल्कि देवके ज्येष्ठ भ्राता। ८ ब्रह्मा। ९ चाक्षुषमनु और वैराज प्रजा-पतिकी कन्याके एक पुत्र।

"कन्यायां भरतश्रेष्ठ वैराजस्य प्रजापतेः।
जज्ञः पूरुः शतद्युम्नस्तपस्वी सत्यवाक् कविः॥" (हरिवंश २ अ०)

(त्रि०) १० क्रान्तदर्शी, औलिया। ११ मेधावी, अक्लमन्द। (सं० स्त्री०) कु-अच्-इ। अत इः। उण् ४।१३८। १२ खलीन, लगाम।

कवि-यवद्वीपकी प्राचीन भाषा। ब्रह्म, श्याम,

पेगू प्रभृतिमें जैसे पालि भाषा बौद्ध पीठस्थानोंके शिला-लेखोंमें खोदित देख पड़ती, वैसेही आजतक न चलते भी बालि आदि द्वीपोंके शिलालेखों और धर्मपुस्तकों में यह मिला करती है। यवद्वीपमें कवि शब्दका अर्थ रहस्य वा आख्यायिका लगाते हैं। सम्भवतः प्राचीनकालको इस भाषामें रहस्य और आख्यायिका बननेसे ही 'कवि' नाम पड़ा है। फिर कितनों ही के अनुमानमें संस्कृत काव्य शब्दसे 'कवि' की उत्पत्ति है।

किसी किसी शब्दशास्त्रविद्के मतमें यह यवद्वीपको देशीय भाषा नहीं, किसी समयमें भिन्न देशसे आकर वहां चली होगी। वस्तुतः भारतीय दक्षिण देशकी भाषावोंमें इसके अनेक मेल देख पड़ते हैं। किन्तु यवद्वीपको यवानीभाषासे यह अधिक मिलती है। इसलिये कवि भाषा भिन्न देशीय समझी जा नहीं सकती। पुरानी हिन्दीसे जैसे नयी हिन्दी कम मिलती, वैसे ही प्राचीन कविभाषासे भी नवीन यवानी पृथक् लगती है। फिर प्राचीन हिन्दीके व्यवहारानुसार जिस प्रकार अनेक अप्रचलित शब्द सहजमें लोगोंको समझ नहीं पड़ते, उसी प्रकार कवि भाषाके अनेक शब्द वर्तमान यवद्वीपके प्रधान प्रधान पण्डितोंको छोड़ साधारणके लिये कठिन जंचते हैं। यवद्वीपका प्राचीन इतिहास जाननेको कवि भाषा सीखना चाहिये। यवद्वीपमें मुसलमानोंके आनेसे पहले बौद्धों और हिन्दुवोंका राज्य था। उनका विवरण इस भाषाके लिखित प्राचीन शिलालेखोंमें मिलता है। यव और बालिके धर्मग्रन्थ व्यतीत रामायण, महाभारत, ब्रह्माण्डपुराण प्रभृति प्राचीन संस्कृत पुस्तक यवभाषामें अनुवादित हुये हैं। इस भाषाका लिखित 'ब्रातयुद्द' अर्थात् भारतयुद्ध नामक ग्रन्थ सर्व प्रधान है। इस ग्रन्थको दया नामक प्रदेशीय राजा जयवयके आदेशसे आम्पुसुदा नामक किसी व्यक्तिने बनाया था। जयवयको कुरुसेनापति शल्यकी कथा बहुत अच्छी लगती थी। उन्हीं की मनस्तुष्टिके लिये कुरुपाण्डवका युद्ध अवलम्बन कर १११८ शकमें "ब्रातयुद्द" (भारतयुद्ध) लिखा गया।

कविक (सं॰ क्ली॰) कवि स्वार्थे कन्। १ खलीन, लगाम। २ कवि, शायर।

कविक (हिं॰ पु॰) वृक्षविशेष, एक पेड़। यह मलय प्रायोद्वीपमें उपजता है। फल गोल और सरस होते हैं। आज कल यह वङ्गदेश, दक्षिणभारत और ब्रह्मदेशमें भी लगाया जाता है। कविकका अपर नाम मलका जामरूल है।

कविकङ्कण (मुकुन्दराम चक्रवर्ती)—बङ्गालके एक प्रसिद्ध और प्रधान प्राचीन कवि, चण्डीमङ्गलप्रणेता।

कविकण्ठहार (सं॰ पु॰) कवीनां कण्ठहार इव आदरणीय इत्यर्थः। १ कवियोंका उपाधि विशेष, शायरोंका एक खिताब। २ सुप्रसिद्ध अलङ्कार ग्रन्थ।

कविकर्णपुर, प्रसिद्ध वैष्णव ग्रन्थकार। यह काञ्चनपल्ली (कांचड़ापाड़ा) ग्रामवाले परम वैष्णव शिवानन्द सेनके पुत्र थे। इनका प्रकृत नाम परमानन्द रहा। इन्होंने संस्कृत भाषामें चैतन्यचरित महाकाव्य, आनन्दचम्पू और चैतन्यचन्द्रोदय नाटक प्रणयन किया। काञ्चनपल्ली देखो।

कविका (सं॰ स्त्री॰) कवि स्वार्थे कन्-टाप्। १ खलीन, लगाम। २ कविका पुष्प वृक्ष, एक फूलदार पेड़। ३ मत्स्यविशेष, एक मछली। कवी देखो।

कविक्रतु (वै॰ त्रि॰) ज्ञानवान्, समझदार।

कविचन्द्र, १ कविकर्णपुरके पुत्र और कविवल्लभके पिता। यह एक प्रसिद्ध पण्डित थे। इनके बनाये काव्यचन्द्रिका, धातुचन्द्रिका, रत्नावली, रामचन्द्रचम्पू, शान्तिचन्द्रिका, सरलहरी और स्तवावली नामक ग्रन्थ विद्यमान हैं। २ बङ्गालके भाषा रामायण, भागवतादि रचयिता एक प्राचीन कवि।

कविच्छद (सं॰ त्रि॰) कविः शब्दः छद आवरणवस्त्रमिव यस्य, बहुव्री॰। पण्डित, समझदार।

कविज्येष्ठ (सं॰ पु॰) सब कवियोंसे बड़े, वाल्मीकि।

कविञ्जक (सं॰ पु॰) पक्षिविशेष, एक चिड़िया।

कवितम (सं॰ त्रि॰) अयमेषामतिशयेन कविः, कवि-तमप्। अतिशय ज्ञानवान्; निहायत समझदार।

कवितर (सं॰ त्रि॰) अपेक्षाकृत बुद्धिमान्, ज्यादा समझदार।

कविता (सं॰ स्त्री॰) कवेर्भावः, कवि-तल्-टाप्। काव्य, शायरी, तुकबन्दी।

कवितायी (हिं०) कविता देखो।

कवितावेदी (सं० त्रि०) कवितां वेत्ति, कविता-विद्-णिनि। कविताज्ञ, शायरी समझनेवाला, जो कवितायी जानता हो।

कविद्ध (सं० त्रि०) ज्ञानवान्, अक्लमन्द।

कवित्त (हिं० पु०) छन्दोविशेष। यह दण्डकके अन्तर्गत है। इसमें चार पाद और प्रत्येक पादमें इकतीस-इकतीस अक्षर लगाते हैं। यह मनहरन और घनाक्षरी भी कहाता है। कवित्तका अन्तिम वर्ण गुरु रहता, अन्य वर्णोंकेलिये गुरु लघुका कोई नियम नहीं चलता। उदाहरण नीचे लिखा है,—

"तालन पै ताल पै तमालन पै मालन पै, वृन्दावन वीथिन विहार बंशीवट पै। कहै पदमाकर अखण्ड रासमण्डल पै, मण्डित उमण्ड महा कालिंदीके तट पै॥ छत पर छान पर छज्जन छटान पर ललित लतान पर लाडिलीकी लट पै। आयी भल छायी यह शरद जौन्हाई जोहि पायी छवि आज ही कन्हाईके मुकट पै॥" (पदमाकर)

कवित्थ (सं० पु०) कपित्थ वृक्ष, कैथका पेड़।

कवित्व (सं० क्ली०) कवेर्भावः, कवि-त्व। १ कविता रचनाकी शक्ति, शायरी करनेका माद्दा। २ ज्ञान, समझदारी।

कवित्वन (वै० क्ली०) १ स्तुति, तारीफ़। २ ज्ञान, समझ।

कविनासा (हिं०) कर्मनाशा देखो।

कविपुत्र (सं० पु०) कवेः भृगुपुत्रस्य पुत्रः, ६-तत्। १ शुक्राचार्य। २ भार्गव ऋषि।

"भृगोः पुत्रः कविर्विद्वान्।" (महाभारत, आदि ६६ अ०)

कविप्रशस्त (वै० त्रि०) कवियों द्वारा अत्यन्त प्रशंसित, शायरोंसे बड़ा नाम पाये हुवा।

कविभूषण (सं० पु०) कवीनां भूषणमिव। १ उपाधि-विशेष, एक खिताब। २ कविचन्द्रके पुत्र।

कविय (सं० क्ली०) कं सुखं भजति, क-भज-क, भोजस्थाने वि आदेशः। खलीन, लगाम।

कविरञ्जन, बङ्गालके एक विख्यात शाक्त कवि। रामप्रसाद देखो।

कविरथ (सं० पु०) एक राजा। इनके पिताका नाम चित्ररथ था।

कविराज (सं० पु०) कवीनां राजा श्रेष्ठः, कवि-राजन्-टच्। १ कविश्रेष्ठ, बड़ा शायर। २ भाट, कवित्त कहनेवाली एक जाति। ३ बङ्गदेशीय वैद्योंका उपाधि।

कविराज, एक कवि। इन्होंने 'राघवपाण्डवीय' काव्य बनाया था। पाश्चात्य मतसे यह ई० १०म शताब्दमें विद्यमान रहे।

कविराजी (हिं० स्त्री०) १ बङ्गदेशीय वैद्यक चिकित्सा, हकीमी। (त्रि०) २ कविराजसम्बन्धीय, हकीमके मुताल्लिक।

कविराजी, एक उपासक सम्प्रदाय। रूप कविराजने यह सम्प्रदाय चलाया था। गुरुने रूपसे ब्रह्मचारिणी रमणीके हाथका भोजन ग्रहण करनेको रोका था। इसीसे उन्होंने एक दिन ब्रह्मचारिणी गुरुपत्नीके हाथसे भोजन न किया। गुरुने यह सुनकर उनकी तीन कण्ठियोंमें दो कण्ठियो छीन लीं। फिर रूप बची हुयी एक कण्ठी लेकर भागे थे। उन्हींसेसे अनेक वैष्णव उनके मतानुयायी हुये। इसीसे लोग इस सम्प्रदायवालों को कविराजी कहते हैं। कविराजी अन्य वैष्णवोंके घरमें न तो विवाह और न किसी दूसरेका बनाया भोजन करते हैं। यह प्रायः सभी सदाचारी होते हैं। कोई कोई कविराजियोंको ही 'अष्टदायक' कहते हैं।

कविराम, दिग्विजयप्रकाश नामक संस्कृत ग्रन्थके रचयिता। कह नहीं सकते, यह किस राजाकी सभाके पण्डित थे। इनका ग्रन्थ पढ़नेसे समझते, कि कविराम यशोरवाले राजा प्रतापादित्यके समसामयिक रहे। कविरामके दिग्विजयप्रकाशमें भारतवर्षका तत्-कालीन भूवृत्तान्त और प्रवाद लिखा है।

२ विहारमें डोम जातिके भाईको भी कविराम कहते हैं।

कविरामायण (सं० पु०) कविना कवितया कविषु काव्येषु वा रामः अयनं आश्रयो यस्य, बहुव्री०। कवितासे रामका आश्रय रखनेवाले वाल्मीकि मुनि।

कविराय (हिं० पु०) कविराज, भाट।

कविल (सं० त्रि०) कु कव वा वर्णने इलच्। १ स्तोता, तारीफ़ करनेवाला। २ शब्दकारक, आवाज़ देनेवाला।

कविलास (हिं॰ पु॰) १ कैलास, महादेवके रहनेका पहाड़। २ स्वर्ग, बिहिश्त।

कविलासिका (सं॰ स्त्री॰) कं सुखं विलासयति उद्दीपयति, क-वि-लस-णिच्-ण्वुल्-टाप् अत इत्वम्। वीणाविशेष, किसी किस्मका तम्बूर।

कविवर (सं॰ त्रि॰) कविषु वरः श्रेष्ठः। कविश्रेष्ठ, शायरोंमें बड़ा।

कविवल्लभ (सं॰ पु॰) काव्यादर्श वा काव्यनिर्णय नामक स्मृतिसंग्रहके रचयिता। इनका अपर नाम आदित्यसूरि था। विश्वेश्वर आचार्यने इन्हें शिक्षा दी थी।

कविवृध् (वै॰ त्रि॰) कवियोंको बढ़ानेवाला।

कविवेदी (सं॰ त्रि॰) कविं कवित्वं वेत्ति, कविविद्-णिनि। १ काव्यवेत्ता, शायरी समझनेवाला। २ कवि, शायर।

कविशस्त (सं॰ त्रि॰) कविषु शस्तः ख्यातः, ७-तत्। कवियोंमें विख्यात, शायरोंमें मशहूर।

कविशेखर (सं॰ पु॰) १ साधनमुक्तावली नामक संस्कृत ग्रन्थके प्रणेता। २ सङ्गीत तालविशेष।

कवी (सं॰ स्त्री॰) कवि-ङीष्। खलीन, लगाम।

कवीठ (हिं॰ पु॰) कपीष्ट, कैथा।

कवीन्द्र आचार्य (सरस्वती) कविचन्द्रोदय और पद-चन्द्रिका नामक संस्कृत ग्रन्थके रचयिता।

कवीन्द्रनारायण (शर्मा) एकाक्षचन्द्रिका और विरला-माश्वास नामक संस्कृत ग्रन्थके रचयिता। इन्होंने उक्त दोनों ग्रन्थ उत्कलराज भलावुकेशरीके समयमें बनाये थे।

कवीय (सं॰ क्ली॰) कवि स्वार्थे छ। खलीन, लगाम।

कवीयत् (सं॰ त्रि॰) कविरिव आचरति, कविं स्तोतारं इच्छति वा, कवीय-शतृ। १ कविसदृश, शायरके बराबर। २ अपनी प्रशंसा इच्छुक, जो अपनी तारीफ़ चाहता हो।

कवीयान् (सं॰ त्रि॰) अयमनयोरतिशयेन कवि, कवि-ईयसुन्। द्विवचनविभज्योपपदेतरबीयसुनौ। पा ५।३।५७। उभय कवियोंमें श्रेष्ठ, दोनों शायरोंमें बड़ा।

कवुल, ज्योतिषका एक योग।

कवेरा (हिं॰ पु॰) ग्रामीण, देहाती, गंवार।

कवेल (सं॰ क्ली॰) कं जलं विलति स्तृणाति, क-विल-अच्। १ उत्पल, नीला कंवल।

कवेला (हिं॰ पु॰) भ्रमणका कीलक, चक्करकी कील। वह दिग्दर्शनयन्त्र (कुतुबनुमा) की सूची लगाती है। २ काकशावक, कौवेका बच्चा।

कवोड़चक्र, कपाटचक्र देखो।

कवोष्ण (सं॰ क्ली॰) कुत्सितं ईषत् उष्णम्, कर्मधा॰ कोः कवादेशः। ईषत् उष्णस्पर्श, थोड़ी गर्मी। (त्रि॰) २ ईषत् उष्णस्पर्शयुक्त, कुछ गर्म।

"अतुपदं दुर्लभं मत्वानूनमावर्जितं मया।
पयः पूर्वैः सनिश्वासैः कवोष्णमुपभुज्यते॥" (रघु १।६७)

कव्य (वै॰ त्रि॰) कवि यत्। (वसुधयष्ठ्लोककविधेमवर्चस्-निष्कै बल उक्थजनपूर्वनवसूरमर्तयविष्ठ इत्येतेभ्यश्छन्दसि स्वार्थे यत्। काशिका ५।४।३०) १ स्तवकारी, तारीफ़ करनेवाला। (सायण) (पु॰) २ वेदोक्त पितृलोक विशेष।

"मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभिः।" (ऋक्संहिता १०।१४।३)

३ चतुर्थ मन्वन्तरके सप्तर्षियोंमें एक ऋषि।

(क्ली) कूयते दीयते पितृभ्यः यत् अन्नादिकम्, कु॰-अच्-यत्। अचो यत्। पा ३।१।९७। पितृलोक विशेषके उद्देश्यसे दिया जानेवाला अन्न।

कव्य पदार्थ श्रोत्रिय ब्राह्मणको दान न करनेसे निष्फल हो जाता है। मनुसंहितामें लिखते हैं कि विद्वान् ब्राह्मणको कव्य खिलानेसे अनेक पुण्यज फल मिलते हैं। किन्तु अमन्त्रज्ञ बहु ब्राह्मणोंको भोजन करानेसे भी वह लाभ नहीं निकलता। दूसरे अमन्त्रज्ञ ब्राह्मण जितने ग्रास लेता, पितृलोकके मुखमें उतने ही उत्तप्त लोहेके गोले छोड़ देता है। अतएव प्रथम ही परीक्षाके साथ ज्ञाननिष्ठ ब्राह्मणको कव्य भोजन कराना चाहिये। वेदतत्त्वविद् ब्राह्मणोंमें ज्ञाननिष्ठ, तपोनिष्ठ, तपःस्वाध्यायनिष्ठ और कर्मनिष्ठ भेदसे चार श्रेणियां होती हैं। हव्यके भोजनमें चारो श्रेणियोंका विधान है। किन्तु कव्यके भोजनमें एक मात्र ज्ञान-निष्ठ ब्राह्मणको ही अधिकार है।

"ज्ञाननिष्ठाः द्विजाः केचित् तपोनिष्ठास्तथापरे।
तपःस्वाध्यायनिष्ठाश्च कर्मनिष्ठास्तथापरे॥

"नामनिर्दिष्टेषु कव्यानि प्रतिष्ठाप्यानि यत्नतः।
हव्यानि तु यथान्यायं सर्वेष्वेव चतुर्ष्वपि॥" (मनु १ अ०)

ऐसे ब्राह्मणका अभाव होनेसे मातामह, मातुल, भागिनेय, श्वशुर, गुरु, दौहित्र, जामाता, बन्धु पुरोहित वा यजमानको कव्य दे देना चाहिये। मनुके मतसे वेदज्ञ रहते भी निम्नोक्त ब्राह्मणको कव्य खिलाना निषिद्ध है,—चिकित्सक, देवल, कन्याविक्रेता, दुकानदार, चौर्यादि दोषोंसे पतित, क्लीब, नास्तिक, जटाधारी, दुर्बल, प्रतारक, राजाके प्रेष्य, कुनख, श्यावदन्त, गुरुके प्रतिरोधी, अग्नित्यागी, राजयक्ष्मी, पशुपालक, ब्रह्मद्वेषी अभिनेता, शूद्रापति, विधवाके गर्भजात, काने, वेतन ग्रहणपूर्वक अध्यापना करनेवाले, शूद्रके शिष्य, दुष्टवादी, माता पिता एवं गुरुके अकारणपरित्यागी, गृहदाहक, विषदाता, कुण्डाशभोजी, सोमविक्रेता, समुद्रयात्री, अविवाहित, अग्रजके वर्तमान रहते विवाहकारी, जारज, बन्दी, तैलिक, कुटकारक, पितासे विवादकारी, मद्यप, पापरोगी, दाम्भिक, रसविक्रेता, धनु तथा शरनिर्माता, दिधिषूपति, मित्रद्रोही, द्यूतवृत्ति, पुत्राचार्य, अपस्माररोगी, गण्डमालारोगी, श्वित्ररोगी, खल, उन्मत्त, अन्ध, वेदनिन्दक, ज्योतिषी, व्यवसायी, पक्षिपोषक, युद्धशास्त्रके आचार्य, स्थपति, दूत, वृक्षारोपक कुक्कुरकेसे क्रीड़ाशील, श्येनपक्षिजीवी, कन्यादूषक, हिंस्र, शूद्रवृत्ति, गणयागकारी, आचारहीन, कृषिजीवी, श्लीपदरोगी, और सज्जननिन्दित।

कव्यता (वै० स्त्री०) १ स्तुति, तारीफ। २ ज्ञान, समझ।

कव्यवाड़, कव्यवाल देखो।

कव्यवाल (सं० पु०) कव्यं वल्यते दीयते अस्मै, कव्य-वल-घञ्। १ पितृगणविशेष।

"कव्यवाली ऽनलः सोमो यमश्चैवार्यमा तथा।
अग्निष्वात्ता बर्हिषदः सोमपाः पितृदेवताः॥" (ब्रह्माण्डपुराण)

२ अग्नि, आग। अग्निमुखमें ही पितृगणके उद्देशसे दान किया जाता है।

कव्यवाह (सं० पु०) कव्यं वहति, कव्य-वह-विह। अग्नि, आग। इसमें पितृगणके उद्देशसे कव्य डाला जाता है।

कव्यवाह (सं० पु०) कव्यं वहति प्रापयति पितृनिति शेषः, कव्य वह-अण्। अग्नि, पितरोंको कव्य पहुंचानेवाली आग।

कव्यवाहन (वै० पु०) कव्यं वहति, कव्य-वह-ल्युट्। कव्यपुरीषपुरीष्येषु ञ्युट्। पा ३। २। ६५। १ अग्नि, पितरोंको कव्य पहुंचानेवाली आग।

"अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा।" (शुक्ल यजुः २। २९)

यजुर्वेदके मतमें अग्नि तीन प्रकारका होता है,—हव्यवाहन, कव्यवाहन और सहरक्षा। देवगणका हव्यवाहन, पितृगणका कव्यवाहन और असुरगणका अग्नि सहरक्षा कहाता है। (तैत्तिरीयसंहिता २। ५। ८। ६।)

कश (सं० पु०) कशति शब्दायते ताड़यति वा, कश-अच्। १ अश्वादिताड़िनी, चाबुक, कोड़ा। यह चर्म, वस्त्र, बेंत प्रभृति द्वारा प्रस्तुत होता है।

"स राजा तं कशेन अताड़यत्।" (महाभारत ३।१२६ अ:)

२ क्षुद्र पशु विशेष, एक छोटा जानवर।

कश (फा० स्त्री०) १ आकर्षण, खींच। २ दम, फूंक।

कशकु (सं० पु०) गवेधुक, कसी, एक पौदा।

कशकोल (फा० पु०) कपाल, खप्पर। इन्हें भिक्षुक अपने हाथमें रखते हैं।

कशमकश (फा० स्त्री०) १ आकर्षण, खींचखांच। २ समारोह, रेलपेल। ३ असमञ्जस, आगा पीछा।

कशस् (सं० क्ली०) कशति नीचं गच्छति, कश-असुन्। जल, नीचे रहनेवाला पानी।

कशा (सं० स्त्री०) कश टाप्। १ अश्वादिताड़िनी, चाबुक, कोड़ा। "जघान कशया मोहात् तदा राघवनन्दिनम्।" (भारत १। १७७। १०) २ मांसरोहिणी, एक खुशबूदार पेड़। ३ रज्जु, रस्सी।

कशाई—१ नदी विशेष, एक दरया। यह बङ्गालके मेदिनीपुर जिलेमें प्रवाहित है। पढ़े लिखे लोग इसे कंशवती कहते हैं। किन्तु कालिदासने अपने रघुवंशमें कपिशानदीके नामसे इसका परिचय दिया है।

कशाईफुलिया—पश्चिम बङ्गालकी एक बागदी जाति। यह कसाई नदीमें नौका चलाते और मत्स्य मार खाते हैं। चौदह प्रकारके बागदियोंमें कशाईफुलिया अपनेको श्रेष्ठ बताते हैं।

कशाघात (सं॰ पु॰) कशेन कशया वा आघातः, ३-तत्। कशाका आघात, चाबुककी मार।

कशात्रय (सं॰ क्लो॰) कशानां कशाघातानां त्रयम्, बहुव्री॰। तीन प्रकारका कशाघात, तीन तरहसे चाबुककी मार। यह मृदु, मध्य और निष्ठुर होता है। अश्वोंको साधारण दण्ड देते समय मृदु आघात लगाते हैं। किन्तु उपवेशन, निद्रा, स्खलन, दुष्ट-चेष्टा, अश्विनी (घोड़ी) देखनेका औत्सुक्य, गर्वित ह्रेषारव (ज़ोरकी हिनहिनाहट), त्रास, दुरुत्थान, विमार्गगमन, भय, शिक्षात्याग, चित्तभ्रम प्रभृति अपराधोंमें मध्य और निष्ठुर आघात देना पड़ता है। अपराध विशेषमें आघातका स्थान भी पृथक् है। त्रास एवं भयमें गलदेश, शिक्षात्याग तथा चित्तविभ्रममें अधर, गर्वित ह्रेषारव एवं अश्विनी देखनेके औत्सुक्यमें बाहु तथा स्कन्धदेश, उपवेशन एवं निद्रामें कटिदेश, दुर्व्यवहार तथा विमार्ग प्रधानमें मुख, स्खलन एवं दुरुत्थानमें जघन और क्रुद्ध प्रकृतिमें सर्वस्थानपर कशा मारते हैं।

कशारि (सं॰ स्त्री॰) यज्ञकी एक वेदी। यह यज्ञस्थलमें उत्तर दिक् रहती है।

कशार्ह (सं॰ त्रि॰) कशां अर्हति, कशा-अर्ह-अण्। कश्य, चाबुक लगाने लायक। कशावत देखो।

कशावान् (सं॰ त्रि॰) कशा लिये हुवा, जो चाबुक रखता हो।

कशिक (सं॰ पु॰) कशति हिनस्ति सर्वम्, कश बाहुलकात् इक। नकुल, सांपको मार डालनेवाला नेवला।

कशिकपाद (सं॰ त्रि॰) कशिकस्य पादाविव पादौ यस्य, बहुव्री॰। हस्त्यादित्वात् नान्त्यलोपः। पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः। पा। ५।४।१३८। नकुलकी भांति पदविशिष्ट (जन्तु), नेवलेकी तरह पैरवाला (जानवर)।

कशिका (सं॰ स्त्री॰) चर्मकशा, चमड़ेका चाबुक।

कशिपु (सं॰ पु॰) कशति दुःखं कश्यते वा, मृगय्वादित्वात् नियातनात् साधुः। १ अन्न, अनाज। २ आच्छादन, कपड़ा। ३ भक्त, भात। ४ शय्या, पलंग। ५ आसन विशेष, एक बैठक।

"सत्यां क्षितौ किं कशिपोः प्रयासैः।" (भागवत २।२।४)

कशिपूपबर्हण (वै॰ क्लो॰) उपाधान वस्त्र, तकियेका गिलाफ़।

कशिश (फ़ा॰ स्त्री॰) आकर्षण, खींच।

कशीका (वै॰ स्त्री॰) कश बाहुलकात् ईकन्-टाप्। प्रसूता नकुली, ब्याई हुई नेवली।

कशीदया (भा॰ पु॰) मल्लयुद्धका कूटोपायविशेष, कुश्तीका एक पेंच। इसमें खिलाड़ी अपनी जोड़की गर्दनपर हाथ रख वाम पदसे उसका दक्षिण पद अपनी ओर खींच लेता और उसे दक्षिण करसे पकड़ गिरा देता है।

कशीदा (फ़ा॰ पु॰) सूचिकर्म विशेष, कढ़ाव। इसमें वस्त्रपर सूचीं तथा सूत्रसे नानाप्रकार कृत्रिम पत्रपुष्प बनाते हैं।

कशेरक (सं॰ पु॰) एक पक्ष। (भारत २।१॰ अ॰)

कशेरु (सं॰ पु॰-क्लो॰) के देहे शीर्यते, क-शॄ-उ एरङ्गादेशश्च। केशेरङ्घ्याश्च। उण् १।८०। १ पृष्ठास्थि, रीढ़, पीठकी बड़ी हड्डी। कं जलं वातं वा शृणाति। २ स्वनामख्यात तृणविशेष, कसेरु। इसका संस्कृत पर्याय—कशेरुक, कसेरु, कसेरुक और कशेरुक है। हिन्दीमें कसेरु, बंगलामें केशुर, मराठीमें कचेर, पञ्जाबीमें दिला और तेलगु (तिलङ्गी)में गुन्द-तुङ्ग गड्डी कहते हैं। (Sripus dubius)

कशेरु एक प्रकारकी घास है। यह समग्र भारतमें सरोवरों और नदियोंके किनारे उत्पन्न होता है। इसका ग्रन्थिल मूल जातिफल (जायफल) सदृश रहता और ऊपरसे कृष्णवर्ण देख पड़ता है। यह सङ्कोचनशील है। ग्रहणी और विशूचिका रोगमें देशीय वैद्य इसे औषधकी भांति व्यवहार करते हैं। यह रोग न लगनेके लिये भी चबाया जाता है।

शीतकालमें कशेरु खोद कर खाया करते हैं। इसके ऊपरका छिलका छील डाला जाता है। कोई कोई कसेरुको उबालकर भी खाता है। बंगालमें यह देवतावों पर चढ़ता है। कशेरु खानेमें मधुर और शीतल है। यह दो प्रकारका होता है—राजकसेरुक और चिचोड़। बड़े कशेरुको राजकशेरुक

और मुक्ताकृति कन्दको चिञ्चोड़ कहते हैं। दोनों प्रकारका कशेरु शीत, मधुर, तुवर (कषाय), गुरु, पित्तशोणित दाहघ्न और आंखकी बीमारी दूर करनेवाला होता है। (भावप्रकाश)

सिङ्गापुरका कशेरु बहुत बड़ा निकलता है। कहीं कहीं इसे ठण्डाईमें भी घोंट कर पीते हैं।

२ भारतवर्षका एक विभाग।

"भारतस्यास्य वर्षस्य नवभेदान्निशामय।
इन्द्रद्वीपः कशेरुश्च ताम्रवर्णो गभस्तिमान्।
नागद्वीपस्तथा सौम्यो गान्धर्वस्त्वथ वारुणः॥" (विष्णुपुराण)

कशेरुक, कशेरु देखो।

कशेरुका (सं० स्त्री०) कशेरुक-टाप्। १ पृष्ठास्थि, रीढ़, पीठकी बड़ी हड्डी। २ कशेरु, कसेरु।

कशेरुमान् (सं० पु०) यवनराजविशेष, एक राजा।

"इन्द्रद्युम्नो हतः कोपाद् यवनश्च कशेरुमान्।" (हरिवंश १६ अ०)

२ भारतवर्षका एक खण्ड।

कशेरुस् (सं० क्लो०) कशेरु, कसेरु।

कशेरू (सं० स्त्री०) क-शॄ-उ एरङ् चान्तादेशः। १ तृणकन्दविशेष, कसेरु। २ विश्वकर्माकी चतुर्दशी कन्या। नरकासुरने हस्तिरूपसे इन्हें हरण किया था। (हरिवंश, १२१ अ०)

कशरुक, कशेरु देखो।

कशेरुका, कशेरु देखो।

कशोक (सं० त्रि०) कश ताड़ने बाहुलकात् ओक। १ हिंसक, मार डालनेवाला। (पु०) २ राक्षसादि, शैतान वगैरह।

कश्चन (सं० अव्य०) किम्-चन इति मुग्धबोधः। कोई, एक न एक यह अनिर्दिष्टवाचक है। पाणिनिने इसे पृथक् शब्द माना है।

कश्चित् (सं० अव्य०) किम्-चित् इति मुग्धबोधः। कोई, एक न एक। यह अनिर्दिष्टवाचक है। पाणिनिके मतमें 'कश्चित्' शब्द पृथक् ठहरता है।

"कश्चित् कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारप्रमत्तः।" (मेघदूत)

कश्ती, किश्ती देखो।

कश्मल (सं० क्ली०) कश-कल-मुट्। क्रुटिकशिकौतिभ्यः प्रत्ययस्य मुट्। उण् १। १०८। १ मूर्छा, गश, एकाएक बेहोश हो जानेकी हालत। २ मोह, कमजोरी। ३ पाप, गुनाह। (त्रि०) ४ मलिन, गन्दा। ५ दुराचार, बदकाम। ६ पापी, गुनाहगार।

कश्मश (वै० क्ली०) वेदे पृषोदरादित्वात् लस्य शः।

कश्मल देखो।

कश्मीर (सं०पु०) कश-ईरन् मुडागमश्च। कशेर्मुट् च। उण् ४। ३१। काश्मीर जनपद। काश्मीर देखो।

कश्मीरज (सं० क्ली०) कश्मीरे जायते, कश्मीर-जन-ड। कुङ्कुमविशेष, ज़ाफ़रान्, केसर। कुङ्कुम देखो।

कश्मीरजन्म (सं० क्ली०) कश्मीरे जन्म यस्य, बहुव्री०। कुङ्कुम, केसर।

कश्मीरी (हिं० वि०) १ कश्मीरसम्बन्धीय, कश्मीरके मुताल्लिक। (स्त्री०) २ कश्मीर देशकी भाषा या बोली। ३ लेह विशेष, एक चटनी। आर्द्रकको छील छुद्र छुद्र खण्ड करते हैं। फिर उनमें पीस कर मरिच, कङ्कोल, काश्मीरज (केसर), ऐला, जावित्री, लौंग और जीरक पीसकर मिलाना पड़ता है। अन्तको लवण, सिरका और शर्करा डालनेसे कश्मीरी-चटनी तैयार हो जाती है। (पु०) ४ कश्मीर देशका अधिवासी यानी रहनेवाला। ५ काश्मीरका अश्व यानी घोड़ा।

कश्य (सं० पु०-क्ली०) कशां अर्हति, कशा-य। दण्डादिभ्यो यः। पा ५।१।६६। १ अश्व, घोड़ा। २ अश्वका मध्यदेश, घोड़ेका पुट्ठा। ३ मद्य, शराब। (त्रि०) कशाघातके योग्य, कोड़ा खाने लायक।

कश्यप (सं० पु०) कश्यं सोमरसादिजनितं मद्यं पिबति, कश्य-प-क। १ कोई ऋषि। ब्रह्माके मानस-पुत्र मरीचिके औरस और कलाके गर्भसे इनका जन्म हुवा था। मार्कण्डेयपुराणके मतानुसार कश्य अर्थात् सोमरसके मद्यसे इनकी उत्पत्ति है, उसीसे कश्यप नाम पड़ गया।

"ब्रह्मणस्तनयो योऽभूत् मरीचिरिति विश्रुतः।
कश्यपस्तस्य पुत्रो ऽभूत् कश्यपानात् स कश्यपः॥"
(मार्कण्डेयपुराण १०८। ३)

शुक्ल यजुर्वेद प्रभृति वैदिक संहिताओंके मतमें हिरण्यगर्भ ब्रह्मसे कश्यपने जन्म लिया था।

"हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका यासु जातः कश्यपो यास्विन्द्रः ॥"

(तैत्तिरीयसंहिता ५।६।१।१)

कश्यप एक प्रजापति थे। साम, यजुः और अथर्वसंहितामें इन्हें इन्द्र चन्द्र प्रभृति देवोंमें एक माना है। (साम १।१।२।४, शुक्लयजुः ३।६२, अथर्व १३।३।१०)

कात्यायनने अपनी वेदानुक्रमणिकामें लिखा है कि कश्यप ऋक्संहितावाले कई सूक्तोंके ऋषि थे। श्रीमद्भागवतमें देखते हैं कि कश्यप ऋषिने दक्षकी १७ कन्यावोंसे विवाह किया। उनके गर्भसे १७ जातियां उत्पन्न हुयीं,—१ अदितिसे देव, २ दितिसे दैत्य, ३ दनुसे दानव, ४ काष्ठासे अश्वादि, ५ अरिष्टासे गन्धर्व, ६ सुरसासे राक्षस, ७ इलासे वृक्ष, ८ मुनिसे अप्सरायें, ९ क्रोधवशासे सर्प, १० ताम्रासे श्येन गृध्र प्रभृति, ११ सुरभिसे गोमहिषादि, १२ सरमासे श्वापद, १३ तिमिसे जलजन्तु, १४ विनतासे गरुड़, एवं अरुण, १५ कद्रुसे नर, १६ पतङ्गीसे पतङ्ग और १६ यामिनिसे शलभ। किन्तु महाभारत और अन्यान्य पुराण प्रभृति में कश्यपकी त्रयोदश भार्यायें लिखी हैं। मार्कण्डेय-पुराणके मतसे उनके नाम थे,—१ अदिति, २ दिति, ३ दनु, ४ विनता, ५ खसा, ६ कद्रु, ७ मुनि, ८ क्रोधा, ९ अरिष्टा, १० इरा, ११ ताम्रा, १२ इला और १३ प्रधा।

(मार्कण्डेयपुराण १०८ अ०)

पश्यतीति पश्यः, सर्वज्ञः पश्य एव पश्यकः आद्यन्ताक्षरविपर्ययात् सिध्यति यद्वा कश्यं मद्यानं अविद्यामित्यर्थः पिबति नाशयति अथवा कश्यं विज्ञानघनं पाति रक्षति स्वात्मनीति शेषः। २ परब्रह्म।

"तदेव ब्रह्म या आख्या एतस्य पाता हर्ता प्रजानां गोप्ता नामहं कश्यपोऽहं योऽयमात्मनमीक्षा गान्धर्वि।" (तापनिश्रुति २।११)

३ कच्छप, कछुवा। ४ मृगविशेष, एक हिरन। ५ मत्स्यविशेष, एक मछली। (त्रि०) ६ श्यावदन्त, बड़दन्ता।

कश्यपनन्दन (सं० पु०) कश्यपस्य नन्दनः पुत्रः, ६-तत्। १ कश्यपके पुत्र गरुड़। २ देव, असुर आदि।

कश्यपपुर (सं० क्लो०) कश्यपस्य पुरम्, ६-तत्। वर्तमान काश्मीरका यह नाम रखा था। कश्यपपुरको ही हेरोदोतसने 'कस्पतुरस्' और टलेमिने 'कश्पीरा' लिखा है।

कश्यपसंहिता (सं० स्त्री०) कश्यपस्य संहिता, ६-तत्। कश्यपप्रणीत एक धर्मशास्त्र।

कश्यपस्मृति, कश्यप संहिता देखो।

कष (सं० पु०) कषति अत्र अनेन वा, कष-अच् यद्वा-कष-घ निपातनात् साधुः। गोचरसञ्चरवहव्रजव्यजापणनिगमाश्च। पा ३।३।११९। १ कष्टिप्रस्तर, कसौटी। इसपर स्वर्ण राप्य घिसकर जांचते हैं। कषका संस्कृत पर्याय—शान और निकस है। २ घर्षण, घिसाव। (त्रि०) घर्षण करनेवाला, जो घिसता या रगड़ता हो।

कषण (सं० त्रि०) कष्यते विस्वाद्यते, कष कर्मणि ल्युट्। १ अपक्व, कच्चा। (पु०) कषति अत्र। २ कष्टिप्रस्तर, कसौटी। (क्लो०) भावे ल्युट्। ३ घर्षण, खुजलाहट, रगड़।

"कषणकम्पनिरस्तमहाहिभिः क्षणविमत्तमतङ्गजवर्जितैः" (भारवि ५।४७)

कषपाषाण (सं० पु०) कषश्चासौ पाषाणश्चेति, कर्मधा०। स्वर्णमणि, कसौटी।

कषा (सं० स्त्री०) कष्यते ताड्यते अनया, कष बाहुलकात् करणे अप्-टाप्। कशा, चाबुक।

कषाघात (सं० पु०) कशाका आघात, चाबुककी मार, उधड़े।

कषाकु (सं० पु०) कष—आकु। १ सूर्य, आफताब। २ अग्नि, आतिश, आग।

कषापुत्र (सं० पु०) निकषात्मज, एक राक्षस।

कषाय (सं० पु० क्लो०) कषति कण्ठम्, कष—आय। १ रसविशेष, कसैलापन। इसका संस्कृत पर्याय—तुवर, कवर और तूवर है। सुश्रुतके मतानुसार आस्वादनसे मुखको सुखाने, जिह्वाको ठहराने, कण्ठको बद्ध बनाने और हृदयको खुरच पीड़ा पहुंचानेवाला रस कषाय कहाता है। पृथिवी वायुगुणबहुल होनेसे यह उपजता है। पूगफल आदि खानेसे इसका आस्वाद मिलता है। कषाय रस मलग्राहक, व्रणरोपक, स्तम्भन, शोधन, लेखन, शोषक, पीड़ादायक, क्लेशनाशक और वायुवर्धक है। इसके अतिरिक्त व्यवहारसे पीड़ा, मुखशोष, उदराध्मान, वाक्यग्रह (वात

करते तक आनेकी हालत) मन्यास्तम्भ (गला अकड़ जानेकी हालत), गात्रस्फुरण, स्रोतप्रवरोध, श्यावत्व (भूरापन), शुक्रनाश, आकुञ्चन, आक्षेपण प्रभृति वायुविकार बढ़ते हैं।

२ क्वाथ, पाचन, जोशांदा, औटी, काढ़ा। इसका अपर संस्कृत नाम निर्यूह है। इसके पांच भेद हैं—स्वरस, कल्क, क्वथित, शृत और फाण्ट। स्वरस, कल्क, क्वथित, शृत और फाण्ट देखो।

३ निर्यास, गोंद। ४ विलेपन, लुपड़ाव।

"कषायापिं तो लोध्रकषायरूचे गोरोचनाच पत्रितान्तगौरे।" (कुमारसम्भव)

५ अङ्गराग, उबटन। ६ श्योनाकवृक्ष, सोनापान। ७ कपित्थवृक्ष, कैथेका पेड़। ८ महासर्जवृक्ष, धूनेका बड़ा पेड़। ९ मण्डलिसर्प, एक सांप। १० राग, आसक्ति, लगाव। ११ कलियुग, बुरा ज़माना। निर्विकल्प समाधिका एक विघ्न। बाह्य विषयसे छूट अखण्ड वस्तु ग्रहणमें लगते भी जो राग आदि संस्कार उठ मनको स्तब्ध और अखण्ड वस्तु ग्रहणसे पृथक् रखते, उन्हें कषाय कहते हैं। १२ लोहितवर्ण, लालरंग। (त्रि०) १४ कषायरसविशिष्ट, कसेला। १५ सुरभि, खुशबूदार।

"प्रत्यग्रेषु स्फुटितकमलामोदमैत्रीकषाय:" (मेघदूत)

१६ लोहित, सुर्ख, लाल। १७ रक्तपीत मिश्रित, लाल-पीला। १८ अपटु, नावाकिफ़। १९ सुश्राव्य, अच्छीतरह सुन पड़नेवाला, जो कानमें खटकता न हो। २० रञ्जित, रंगदार। २१ आसक्त, संसारलिप्त, फंसा हुवा। जैनशास्त्रमें लिखा है,—

"कषं संसारकान्तारमयं ते यान्ति ये जना:।
ते कषाया: क्रोधमानमायालोभ: इति श्रुत:॥" (लोकप्रकाश ३।४०९)

जैनशास्त्रमें 'कषाय'के ऊपर बहुत विचार किया है। क्रोध, मान, माया, लोभका नाम ही कषाय है। इसके उत्तरोत्तर भेदोंका बड़ी ही सूक्ष्मताके साथ दिग्दर्शन कराया गया है। गोम्मटसार (जीवकांड)में कषाय शब्दको दो तरहसे निरुक्ति लिखी है। जैसे—

सुहदुक्खसुबहुसस्सं कम्मक्खेत्तं कसेदि जीवस्स।
संसारदूरमेरं तेण कसाओत्ति णं बेंति॥ २८१॥

अर्थात् जीवके सुख दुख आदि अनेक प्रकारके धान्यको उत्पन्न करनेवाले, तथा जिसकी संसाररूपी मर्यादा अत्यन्त दूर है ऐसे कर्मरूपी क्षेत्र (खेत)का जो कर्षण करता है उसे कषाय कहते हैं। दूसरी प्रकार कष् धातुसे भी इसकी व्युत्पत्ति बतलाते हैं—

सम्मत्तदेससयलचरित्तजहक्खादचरणपरिणामे।
घादन्ति वा कषाया चउसोलअसंखलोगमिदा॥ २८२

जीवके सम्यक्त्व, देशसंयम, सकलसंयम और यथाख्यात चारित्ररूपी शुद्ध परिणामों को जो कषे—न होने दे उसको कषाय कहते हैं। इसके अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और सञ्ज्वलन ये चार भेद है इन चारमें प्रत्येकके क्रोध, मान, माया, लोभ ये चार चार भेद है इसतरह सोलह हो जाते है। फिर इनके भी उत्तरोत्तर असंख्याते भेद है। कषाय की विशेष व्याख्या करने लिये जैन धर्ममें अनेक शास्त्र है। सबसे बड़ा कषायप्राभृत है। गोम्मटसारमें भी इसका अनेक व्याख्यान है।

कषायकृत् (सं० पु०) कषायं कषायरागं करोति, कषाय-कृ-क्विप् तुगागम:। १ रक्तलोध्र, लाल-लोध। इसको लाल रंगनेमें लगती है। (त्रि०) २ कषायप्रस्तुतकारी, काढ़ा बनानेवाला।

कषायचित्र (सं० त्रि०) लोहितवर्ण द्वारा रञ्जित, फीके सुर्ख रंगसे बनाया हुवा।

कषायजल (सं० क्ली०) जलविशेष, एक पानी। प्लक्ष (पाकर), अश्वत्थ (पीपर) और वटके सिद्ध जलको कषायजल कहते हैं।

कषायता (सं० स्त्री०) कषायस्य भाव:, कषाय-तल्-टाप्। कषायका धर्म, कसेलापन।

कषायदन्त (सं० पु०) मूषिक विशेष, किसी किस्मका चूहा। इसका शुक्र जहां गिरता, वहां शोथ, कोथ आदि उठता है। (सुश्रुत)

कषायदशन, कषायदन्त देखो।

कषायनित्य (सं० त्रि०) नित्य अतिमात्र कषायरससेवी, रोज़ हदसे ज़्यादा कसैली चीज़ खानेवाला।

कषायपाक (सं० पु०) द्रव्य विशेषके क्वाथको प्रस्तुत प्रणाली, किसी चीज़के जोशांदा बनानेका तरीका।

जिन सकल क्वाथोंमें जलका परिमाण नहीं लिखते, उनमें आर्द्र द्रव्य रहनेसे अष्ट गुण और शुष्क द्रव्य रहनेसे षोड़श गुण जलसे सिद्ध कर चतुर्थांश अवशिष्ट रखते हैं।

कषायपाण (सं॰ पु॰) कषायः पानं यस्य, बहुव्री॰ णत्वम्। पानन्देशे। पा ८।४।८ गान्धार जाति।

कषाय प्राभृत—एक जैन शास्त्र। इसमें जीवको संसारमें भ्रमण करानेवाली कषायों का वर्णन है।

कषायफल (सं॰ क्ली॰) पूगफल, सुपारी।

कषाय मार्गणा—जैन शास्त्रमें संसारी जीवोंकी विशेष अवस्था बतलानेके लिये १४ मार्गणा लिखी हैं। उनमें की एक मार्गणा।

कषाययावनाल (सं॰ पु॰) कषायः रक्तवर्णः यावनालः, कर्मधा॰। तुवर यावनाल धान्य, कसैली जुवार।

कषाययोनि (सं॰ स्त्री॰) कषायाधिकरण, कसैलेपनकी बुनयाद। यह पांच प्रकारकी होती है,—मधुर कषाय, कटुकषाय, तिक्तकषाय और कषायकषाय। (चरक)

कषायरस (सं॰ पु॰) रसविशेष, एक ज़ायका। कषाय देखो।

कषायवर्ग (सं॰ पु॰) कषायाणां कषायरसयुक्तद्रव्याणां वर्गः समूहः, ६ तत्। कषायरस द्रव्यगुण, कसैली चीज़ोंका जखीरा। त्रिफला, शल्लकी, जम्बू, आम्र, वकुल, तिन्दुकफल, न्यग्रोध आदि, अम्बष्ठादि, प्रियङ्गु आदि, लोध्रादि, शालसारादि, कतकशाक, पाषाणभेदक, वनस्पतिफल, कुरवक, कोविदारक, जीवन्ती, चिल्ली, पलङ्की, सुनिषण्ण आदि, नीवारकादि और मुद्ग आदि द्रव्य कषायवर्गमें पड़ती हैं। (सुश्रुत)

कषायवासिक (सं॰ पु॰) सुश्रुतोक्त कीट विशेष, एक ज़हरीला कीड़ा। यह कीट सौम्य होनेसे श्लेष्मप्रकोपक है। इसका मूत्र विषाक्त निकलता है।

कषायवृक्ष (सं॰ पु॰) वटामलकादि कषायत्वक् फलवृक्ष, वरगद आंवला वगैरह कसैली छालके फलवाला वृक्ष।

कषायस्कन्ध (सं॰ पु॰) प्रियङ्गु आदि कषाय द्रव्यकृत आस्थापन विशेष, एक कसैली दवा।

कषाया (सं॰ स्त्री॰) कष-आय-टाप्। १ क्षुद्र दुरालभा, छोटा जवासा। (Small sort of Hedysarum) इसका संस्कृत पर्याय—यास, यवसा, दुष्पर्श, धन्वयास, दुरालभा, समुद्रान्ता, रोदिनी, गान्धारी, कच्छुरा, अनन्ता, हरविग्रहा और दुरभिग्रहा है। भावप्रकाशके मतमें यह मधुर, तिक्त एवं कषायरस, सारक, शीतल, लघु और कफ, मेद, मत्तता, भ्रम, पित्त, रक्त, कुष्ठ, कास, तृष्णा, विसर्प, वातरक्त, वमि तथा ज्वरनाशक है। दुरालभा देखो।

कषायान्वित (सं॰ त्रि॰) कषाय-रसविशिष्ट, कसैला।

कषायित (सं॰ त्रि॰) कषायः रक्तपीतादिवर्णः सञ्जातो ऽस्य, कषाय-इतच्। १ रक्तादि वर्णकृत, लाल रंगा हुवा।

"अमुनैव कषायितस्तनी सुभगेन प्रियगात्रभस्मना।" (कुमारसम्भव ४।३४)

कषायी (सं॰ पु॰) कषायो विद्यते ऽस्य, कषाय-इनि। १ शालवृक्ष। २ लकुचवृक्ष, लुकाटका पेड़। ३ खर्जूरी वृक्ष, खजूरका पेड़। ४ सर्जवृक्ष, धूनेका पेड़। ५ शाकवृक्ष, सागौनका पेड़। ६ क्षुद्रपनस, छोटा कटहल। (त्रि॰) ७ कषायविशिष्ट, गोंददार। ८ कषायान्वित, कसैला। ९ संसारासक्त, दुनियाकी बातोंमें उलझा हुवा।

कषायीकृत (सं॰ त्रि॰) अकषायः कषायः कृतः, कषाय-च्वि-कृ-क्त। कषायवर्ण हुवा, जो सुर्ख किया गया हो।

कषायीकृतलोचन (सं॰ त्रि॰) कषायवर्ण चक्षु बनाये हुवा, जो आंखें लाल कर चुका हो।

कषायीभूत (सं॰ त्रि॰) अकषायः कषायो भूतः, कषाय-च्वि-भू-क्त। रक्त वर्ण बना हुवा, जो लाल पड़ गया हो।

कषि (सं॰ त्रि॰) कषति हिनस्ति, कष-इ। खनिकषिघषिरवि इत्यादि। उण् ४।१२९। हिंसक, नुकसान पहुंचानेवाला।

कषिका (सं॰ स्त्री॰ पक्षिजाति, कोई चिड़िया।

कषित (सं॰ त्रि॰) कष-क्त। परीक्षित, कसा हुवा, जो चोट खा चुका हो।

कषीका (सं॰ स्त्री॰) कषति, कष-ईकन्-टाप्। कषिदूषिभ्यामीकन्। उण् ४।१६। १ पक्षि जाति, चिड़िया। कषत्यनया। २ खन्ता।

कषेरुका (सं० स्त्री०) कष-एरक्—उ संज्ञायां कन् टाप्। १ पृष्ठास्थि, रीढ़। २ कशेरु, कसेरु।

कष्कष (वे०पु०) कष इति अव्यक्त शब्दमुच्चार्य्य कषति, कष-कष्-अच्। विषधर कृमिविशेष, एक ज़हरीला कीड़ा।

"येवाषास: कष्कषास एजत्का: शिपवित्नुका:।
दृष्टश्च हन्यतां कृमिरुतादृष्टश्च हन्यताम्॥" (अथर्ववेद ५। २३।७)

कष्ट (सं० त्रि०) कष्यते ऽसौ, कष कर्मणि क्त नेट्। कृच्छ्रगहनयो: कष:। पा ७।२।२२। १ पीड़ायुक्त, पुरदर्द, दुखनेवाला। २ गहन, मुश्किल। ३ पीड़ाकारक, तकलीफ़ देनेवाला। ४ कष्टसाध्य, बहुत खराब। ५ कुत्सित, बुरा। (क्ली०) कष भावे क्त। ६ पीड़ा-मात्र, कोई दर्द या बीमारी। इसका संस्कृत पर्याय—पीड़ा, बाधा, व्यथा, दु:ख, अमानस्य, प्रसूतिज, कृच्छ्र, कलाकल, अर्ति, आर्ति, पीड़न, बाधन, आमानस्य, विबाधन, विहेठन, विधानक, पीड़ित, क्राथ और अभ्यम है। अर्थ-प्रतीति व्यवहित (अलग) होनेसे कष्ट वा क्लिष्टता दोष कहलाता है,—

"क्लिष्टत्वमर्थप्रतीतेर्व्यवहितत्वम्।" (साहित्यदर्पण ७ प०)

इसका उदाहरण 'क्षीरोदजावसतिजन्मभुव: प्रसन्ना:' वाक्यमें मिलता है। उक्त वाक्य 'जल प्रसन्न है' अर्थमें प्रयोग किया गया है। किन्तु सहजमें उसके समझनेका कोई उपाय देख नहीं पड़ता। क्षीरोदजा लक्ष्मी, उनकी वसति पद्म और पद्मका जन्म-स्थान जल है। अतएव यहां पर क्लिष्टत्व वा कष्टदोष लगता है।

(अव्य) ७ हन्त! हाय!

कष्टकर (सं०त्रि०) कष्टं करोति, कष्ट-कृ-ट। १ पीड़ा-जनक, दर्द पैदा करनेवाला। २ दु:खजनक, तकलीफ़ देनेवाला।

कष्टकल्पना (सं० स्त्री०) कष्टेन कल्पना, ३-तत्। कठोर अनुमान, कड़ी अन्दाज़। जिसे देख स्थिर करनेमें कष्ट पड़ता और जो सहजमें कल्पनापर नहीं चढ़ता, उसे विद्वान् कष्टकल्पना कहता है।

कष्टकल्पित (सं० त्रि०) कष्टेन कल्पितं रचितम्। कष्टसे बना हुवा, जो मुश्किलसे ठीक किया गया हो।

कष्टकारक (सं० त्रि०) कष्टकार स्वार्थे कन्, कष्ट-कृ-ण्वुल् वा कष्टस्य कारक:, ६-तत्। दु:खका कारण बननेवाला, जो तकलीफ़का सबब ठहरता हो। (पु०) २ संसार, दुनिया।

कष्टजीवी (सं० त्रि०) कष्टेन जीवति, कष्ट-जीव-इनि। १ कष्टसे जीविका निर्वाह करनेवाला, जो मुश्किलसे काम चलता हो। २ अनेक भोग कर बचनेवाला, जो मुश्किलसे बचा हो। १ पक्षिजाति, चिड़िया।

कष्टतपस् (सं० पु०) कष्टं कष्टकरं तपो यस्य, बहुव्री०। कठिन तपस्या करनेवाला, जो इसतिफ़गारके मुताबिक अमल करता हो।

कष्टतर (सं० त्रि०) अपेक्ष पीड़ायुक्त, ज्यादा तक-लीफ देनेवाला।

कष्टद (सं० त्रि०) कष्टं ददाति कष्ट-दा-क। कष्ट-दायक, तकलीफ़ पहुंचानेवाला।

कष्टरिपु (सं०त्रि०) कष्ट: कष्टसाध्यो रिपु:, कर्मधा०। कष्टसे पराजय किया जानेवाला शत्रु, जो दुश्मन मुश-किलसे हारता हो।

"प्राज्ञं कुलीनं शूरञ्च दक्षं दातारमेव च।
कृतज्ञं धृतिमन्तञ्च कष्टमाहुररिं बुध:॥" (मनुसंहिता)

विद्वान्, कुलीन, वीर, दक्ष, दाता, कृतज्ञ और धर्यशाली शत्रुको पण्डित कष्टरिपु कहते हैं।

कष्टलभ्य (सं० त्रि०) कष्टेन लभ्यम्, ३-तत्। कष्टसे मिलनेवाला, जो मुश्किलसे हाथ आता हो।

कष्टश्रित (सं० त्रि०) कष्टं श्रितं आश्रितं येन, बहुव्री०। १ कष्टपानेवाला, जो तकलीफ़में हो। २ कठोर व्रत-कारक, कड़े इसतिफ़गारको अमलमें लानेवाला।

कष्टश्रोत्रिय—वङ्गदेशके श्रोत्रिय ब्राह्मणोंका एक विभाग। श्रोत्रिय देखो।

कष्टसह (सं० त्रि०) कष्टं सहते, कष्ट-सह-अच्। कष्टसहिष्णु, तकलीफ़ उठा सकनेवाला।

कष्टसाध्य (सं० त्रि०) कष्टेन साध्यम्, ३-तत्। १ कष्टसे आरोग्य होनेवाला, जो मुश्किलसे अच्छा हो। २ कष्टसे पराजय किया जानेवाला, जो मुश्किलसे हारता हो।

कष्टस्थान (सं० क्ली०) कष्टं कष्टकरं स्थानम्, कर्मधा०।

दुःखजनक स्थान, खराब जगह, तकलीफ़ देनेवाला मुकाम।

कष्टहरण पर्वत—विहार प्रान्तके मुङ्गेर जिलेका एक पाहाड़।

कष्टहरणी (सं० स्त्री०) कीकटदेशको एक नदी। (भविष्य ब्रह्मखण्ड २१।४०) २ अङ्गदेशमें देवीकर्णके निकट प्रतिष्ठित देवीकी एक मूर्ति। (देशावली ४४।१९६) यह मुङ्गेरके निकट वर्तमान थी।

कष्टागत ((सं० त्रि०) कष्टसे आया हुवा, जो मुश्किलसे पहुंचा हो।

कष्टि (सं० स्त्री०) कष भावे क्ति। १ परीक्षा, जांच, कसायी। अधिकरणे क्ति। २ स्वर्णमणि, कसौटी, कसनेका पत्थर। ३ पीड़ा, दर्द, बीमारी।

कष्टो (हिं० स्त्री०) प्रसवका कष्ट उठानेवाली।

कष्टीर (सं० क्ली०) रङ्ग, रांगा।

कस (सं० पु०) कसति विकषति स्वर्णादिरत्न,कस-अच्। १ स्वर्णमणि, कसौटी, सोना-चांदी कसनेका पत्थर।

कस (हिं० पु०) १ खड्गका स्थितिस्थापकत्व, तलवारकी लचक। इससे तलवारकी तेज़ी पहचानी जाती है। २ शक्ति, ताक़त। वश, क़ाबू। कुश्तीका एक पेंच, यह 'कसकी गोदी' कहाता है। ३ अवरोध, रोक। ४ कषाय, अर्क। ५ सार, निचोड़। (स्त्री०) ६ बन्धनरज्जु, कसनेकी रस्सी। (क्रि० वि०) ७ किस प्रकार,कैसे।

कसई, कषी देखो।

कसक (हिं० स्त्री०) १ पीड़ा विशेष, एक दर्द। २ कोई आघात आने और अच्छा हो जानेसे यह धीरे धीरे उठा करती है। ३ कसलकी चमक। ४ पुरातन वैर, पुरानी दुश्मनी। ५ सहानुभूति, हमदर्दी। ६ अभिलाष, हौसला।

कसकना (हिं० क्रि०) १ पीड़ा करना, दुखना, चमकना, रह रहके दर्द उठना। २ अप्रिय लगना, बुरा मालूम पड़ना।

कसका (सं० स्त्री०) कासमर्द, कसौंदी।

कसकुट (हिं० पु०) मिश्रधातु विशेष, एक मिलावटी फ़लज़। इसमें तांबा और जस्ता बराबर बराबर पड़ता है। कसकुटसे लोटे, कटोरे, आबख़ोरे वगैरः बरतन बनते हैं। किन्तु इसके पात्रमें अम्ल द्रव्य रखनेसे बिगड़कर विषाक्त हो जाता है। कसकटका दूसरा नाम भरत है।

कसगर (हिं० पु०) जाति विशेष, कासागर कौम। यह मुसलमान होते हैं। इनका काम मट्टीके छोटे छोटे बरतन बनाना है।

कसन (सं० पु०) कसति हिनस्ति, कस-ल्यु। कस, कास, खांसी। २ वेदना विशेष, एक दर्द।

कसन (हिं० स्त्री०) १ बन्धन, बंधाई, कसाई। २ बन्धनकी रीति, कसनेका तरीका। ३ बन्धनरज्जु, कसनेकी रस्सी। वधी, तङ्ग, पट्टी।

कसनई (हिं० स्त्री०) पक्षि विशेष, एक चिड़िया। इसका पक्ष कृष्णवर्ण, वक्षःस्थल एवं पृष्ठदेश पाटल और चञ्चु रक्तवर्ण होता है।

कसनमर्दन (सं० पु०) कासमर्दवृक्ष, कसौंदीका पेड़।

कसना (सं० स्त्री०) कृच्छ्रसाध्य लूता विशेष, एक ज़हरीली मकड़ी। लूता देखो।

कसना (हिं० क्रि०) १ बन्धन करते समय रज्जु आदि दृढ़तापूर्वक खींचना, ज़ोरसे तानना, जकड़ना। २ निष्कर्ष लगाना, दबाना। ३ बन्धन करना, बैठना, ठिकाने पहुंचाना। ४ सज्जित करना, (हाथी-घोड़ा) सजाना। ६ भरना, ठूंसना। ७ खिंचना, तनना। ८ तङ्ग पड़ना, कड़ा रहना। ९ दबना, फुटना। १० प्रस्तुत या तैयार होना। ११ भर जाना। १२ घिसना, रगड़ना। १३ परीक्षा करना, परखना। १४ औटना, गढ़ियाना। १५ लचाना, नवना। १६ परिपाक करना, तलना। १७ कष्ट देना, तकलीफ़ पहुंचाना। (पु०) १८ बन्धन, बंधना। १९ गिलाफ़, खोल। २० कृमि विशेष, एक ज़हरीला कीड़ा।

कसनि (हिं० स्त्री०) बन्धन, बंधाई, खींच।

कसनी (हिं० स्त्री०) १ रज्जु, रस्सी। २ गिलाफ़, खोल। ३ कञ्चुकी, चोली। ४ स्वर्णमणि, कसौटी। ५ परीक्षा, जांच। ६ हथौड़ी। ७ काषायकल्प, कसावका चढ़ाव।

कसनोत्पाटन (सं॰ पु॰) कसनं कासरोगं उत्पाटयति, कसन-उत्-पट-णिच्-ल्युट्। वासक वृक्ष, अड़ूसेका पेड़।

कसयत (हिं॰ पु॰) १ अम्बुप्रसाद-भेद, काला कूट। २ अम्बुप्रसाद वृक्ष, कूटका पेड़।

कसब (अ॰ पु॰) १ वाणिज्य, तिजारत, कामकाज। २ परिश्रम, मेहनत। ३ व्यवसाय, पेशा। ४ व्यभिचार, छिनाला।

कसबल (हिं॰ पु॰) १ पराक्रम, ज़ोर, ताक़त। २ साहस, हिम्मत।

कसबा (अ॰ पु॰) महाग्राम, बड़ा गांव। यह शहरसे छोटा और गांवसे बड़ा होता है।

कसबोती (हिं॰ वि॰) महाग्राम सम्बन्धीय, बड़े गांववाला।

कसबिन (हिं॰ स्त्री॰) १ वेश्या, रण्डी, देहाती पतुरिया। २ व्यभिचारिणी, छिनाल।

कसबी, कसबिन देखो।

क़सम (अ॰ स्त्री॰) शपथ, किरिया, सौगन्द।

कसमसाना (हिं॰ क्रि॰) १ हिलना डुलना, उसकना, आराम न मिलना। २ ऊब उठना, घबरा जाना। ३ हिचकना, हिम्मत न पड़ना।

कसमसाहट (हिं॰ स्त्री॰) उकताया, घबराहट।

कसमसी (हिं॰ स्त्री॰) कसमसाहट, कुलबुलाहट।

कसर (सं॰ स्त्री॰) १ त्रुटि, कमी। २ बैर, दुश्मनी। हानि, नुकसान, घटी। ४ दोष, ऐब।

कसर (हिं॰ पु॰) वृक्षविशेष, कुसुमका पौदा।

कसरत (अ॰ स्त्री॰) १ व्यायाम, मेहनत। २ अधिकता, बहुतायत, बढ़ती।

कसरती (हिं॰ वि॰) परिश्रमी, मेहनती, कसरत करनेवाला।

कसरवानी, विहारके बनियोंकी एक शाखा। कसरवानी बनिये ८६ श्रेणियोंमें विभक्त हैं। उनमें प्रधान प्रधान यह हैं,—सरीला, बगेला, कथौतिया, पावकहेला, चालाबिया, चौसवार, मालहाटिया, लौंगझराझरी, सोनचड़ा, पेकदाढ़ी, सौनाल, तारसी और तिरुसिया।

यह अपनी अपनी श्रेणी या पांच पीढ़ीके सम्बन्धमें विवाह करते हैं। इनमें बाल्यविवाह प्रचलित है। पुरुष बहु विवाह भी कर सकते हैं। विधवाविवाहमें यह कोई दोष नहीं देखते। कसरवानी प्रायः वैष्णव होते हैं। विष्णु व्यतीत ग्रामदेवता 'बन्नी' और 'सुखा शम्भूनाथ'की भी पूजा की जाती है। अधिकांश दुकानदारीका काम चलाते हैं। कुछ लोग खेतोंमें भी लगे हैं। तेली या मुसलमान्के हाथ यह कभी गाय नहीं बेचते।

कसरहट्टा (हिं॰ पु॰) हट्टविशेष, कसेरोंका बाजार। इसमें पात्र बना और बिका करते हैं।

कसर्णील (वै॰ पु॰) सर्पविशेष, एक सांप। (अथर्वसंहिता १०।४।५)

कसली (हिं॰ स्त्री॰) खनित्र भेद, किसी किस्मका फावड़ा। यह क्षुद्र और सूक्ष्माग्रविशिष्ट होती है।

कसवाना (हिं॰ स्त्री॰) कसाना, कसनेका काम दूसरेसे कराना।

कसवार (हिं॰ पु॰) इक्षुभेद, किसी किस्मकी ऊख। यह प्रायः डेढ़ इञ्च सान्द्र (मोटा) होता है। त्वक् धूसरवर्ण और कठोर निकलती है। सारभागमें रस भरा रहता और तन्तु कम पड़ता है।

कसहंड (हिं॰ पु॰) कांस्यपात्रका छिन्न भिन्न अंश, कांसेके टूटेफूटे बरतनोंका हिस्सा।

कसहंडा (हिं॰ पु॰) कांस्य वा पित्तल पात्रभेद, कांसे या पीतलका एक बरतन। यह प्रशस्त होता है। उत्सवादिके समय कसहंडेमें पानी भरकर रखा जाता है।

कसहंडी (हिं॰ स्त्री॰) कसहंडा देखो।

कसा (सं॰ स्त्री॰) कसति ताड़यति, कष-अच्-टाप्। अश्वादि ताड़िनी, चाबुक, कोड़ा।

कसाई (हिं॰ पु॰) १ घातक, मारनेवाला। २ गोघातक, कस्साब, बूचड़। (वि॰) ३ निर्दय, बेदर्द।

कसाना (हिं॰ क्रि॰) १ कषायरसविशिष्ट होना, कसैलापन आना, बिगड़ जाना। २ कषायित लगना, कसैला मालुम पड़ना। ३ कसवाना, सजवाना।

कसाम्बु (सं॰ क्ली॰) पितृलोकको कव्यदानके समय दिया जानेवाला जल।

कसार (हिं॰ पु॰) खाद्यविशेष, पंजीरी। घीमें भुना और चीनी मिला आटा कसार कहता है।

कसाला (हिं॰ पु॰) १ क्लेश, तकलीफ़। २ परिश्रम, मेहनत। ३ अनुभेद, एक खटायी। कसमें स्वर्णकार अलङ्कारादि परिष्कार करते हैं।

कसाव (हिं॰ पु॰) १ कषायता, कसैलापन। २ आकर्षण, खिंचाव।

कसावट (हिं॰ स्त्री॰) आकर्षण, खींचतान।

कसावड़ा (हिं॰ पु॰) गोघातक, कसाई।

कसिपु (सं॰ पु॰) कशति शास्ति दुःखम्, निपातनात् सिद्धम्। अन्न, चावल, भात्।

कसिया (हिं॰ स्त्री॰) पक्षिविशेष, एक चिड़िया। यह धूसरवर्ण होता और राजपूताने तथा पञ्जाबको छोड़ भारतवर्षमें सर्वत्र मिलती है। इसका कुलाय (घोंसला) वृक्षको उच्च शाखा पर बनता है। अण्ड पीताभ होते हैं।

कसियाना (हिं॰ क्लि॰) कषायित हो जाना, कसाना। खट्टी चीज़ तांबे या पीतलके बरतनमें रखनेसे कसाने लगती हैं।

कसी (हिं॰ स्त्री॰) १ रज्जु भेद, एक रस्सी। इससे भूमि नापी जाती है। दैर्घ्य प्रायः दो पद (सवा ४९ इञ्च) पड़ता है। २ हलका अग्रभाग, फाल। ३ अवेधुक वृक्ष, एक पौधा।

प्राचीन कालको इसका चरु वैदिक यज्ञमें लगता था। कसी कृषिका एक द्रव्य रही। वर्तमानमें इसकी कृषि बन्द हो गयी है। फिर भी मध्य-प्रदेश, सिकिम, आसाम और ब्रह्मदेशके जङ्गली लोग कसी लगाते हैं। यह भारत, ब्रह्म, मलय, चीन, जापान प्रभृति देशोंमें वन्य अवस्था पर पायी जाती है। कसी कई प्रकार की होती है। दो भेद प्रधान हैं, श्वेतवर्ण और कृष्णवर्ण। वर्षा ऋतु इसकी उत्पत्तिका समय है। मूलसे कई बार शाखायें फूटती हैं। फल गोल, सुदीर्घ और एक ओर तीक्ष्णाग्र रहते हैं। त्वक् कठिन और चिक्कण होती है। श्वेत सारकी रोटी बनती है। फल भून कर सारको मक्काकी भांति खाते भी हैं। फिर अपक्व सारके टुकड़े भातमें भी पड़ते हैं। यह स्वास्थ्यकर और सुस्वादु होती है। जापान आदि देशोंमें कसीसे मद्य प्रस्तुत किया जाता है। बीजको औषधमें डालते हैं। दानोंको माला बनती है। नेपालके थारू लोग कसीके बीज टोकरोंको झालरोंमें टांकते हैं।

कसियाड़ी, बङ्गाल प्रान्तके मेदिनीपुर जिलेको तमलुक तहसीलका एक ग्राम। यह अक्षा॰ २२° ७' २५" उ॰ और देशा॰ ८७° १६' २०" पू॰ पर अवस्थित है। कसियाड़ी वाणिज्यप्रधान स्थान है। यहां तसरको कृषि होती है। तसरके व्यवसायसे ही कसियाड़ी विख्यात है।

कसीदा (हिं॰) कशीदा देखो।

कसीदा (अ॰ पु॰) कविताविशेष, किसी किस्मको शायरी। यह उर्दू या पारसीमें बनाया जाता है। इसमें व्यक्तिविशेषको स्तुति या निन्दा रहती है। कसीदेमें कमसे कम १७ पंक्तियां पड़ती हैं।

कसीस (हिं॰) काशीश देखो।

कसून (हिं॰ पु॰) अश्वभेद, सुलेमानी घोड़ा। इसकी आंखें कच्ची होती हैं।

कसूमर (हिं॰ पु॰) कुसुम्भ, कुसुम।

कसूर (अ॰ पु॰) अपराध, खता, चूक।

कसूरमन्द (फा॰ वि॰) अपराधी, खतावार।

कसूरवार कसूरमन्द देखो।

कसेरहट्टा (हिं॰ पु॰) कसेरोंका बाज़ार, कसरहट्टा।

कसेरा (हिं॰ पु॰) युक्तप्रदेश और विहारके वनियोंकी एक जाति। यह कांसे और फूल वगैरहके वर्तन बनाकर बेचते हैं।

कसेरु (पु॰ स्त्री॰) कशेरु देखो।

कसेरुका (सं॰ स्त्री॰) कशेरु देखो।

कसेरू (हिं॰) कशेरु देखो।

कसैया (हिं॰ पु॰) १ मजबूत बांधनेवाला, जो कस देता है। २ परीक्षक, जांचनेवाला। ३ गोघातक, कसाई।

कसैला (हिं॰ वि॰) कषायरस विशिष्ट, कसानेवाला, जो जीभको ऐंठता या सिकोड़ता है। कषाय द्रव्य जलमें पाक करनेसे कथा वर्ण बनता है।

कसूर, पञ्जाब प्रान्तके लाहोर जिलेकी अपनी तहसील और प्रधान नगर। यह अक्षा० ३१° ६′ ४६″ उ० और देशा० ७४° ३०′ ३१″ पू० पर अवस्थित है। लाहोर नगरसे कसूर ३४ मील दक्षिणपूर्व फीरोजपुरकी सड़क पर पड़ता है। पहले सिन्धु नदके पूर्वसे पठान लोग आकर यहां बसे थे। १७६३ और १७७० ई० को सिखोंने आक्रमण मार कुछ दिनके लिये पठानोंको दबाया, किन्तु १७९४ ई० को उन्होंने फिर अपना पूर्वाधिकार पाया। अनन्तर १८०७ ई० में नवाब कुतब-उद्-दीन खान्‌को रणजित्‌सिंहने हरा कसूर लाहारसे मिला दिया। यहां घोड़ेका साज़सामान बनता है। किसी डिपटी कमिश्नरकी प्रतिष्ठित शिल्पशालामें नमदे और कालीन तैयार होते हैं। सिन्धु, पञ्जाब, दिल्ली रेलवेकी रायविन्द-फीरोजपुर शाखा इसे लाहोर और फीरोजपुरसे मिलाती है। अतिरिक्त असिष्टण्ट कमिश्नरकी कचहरी, तहसीली, पुलिसका थाना, पाठागार, औषधालय और डाक बंगला विद्यमान है। देशीय द्रव्योंके व्यवसायका कसूर केन्द्रस्थल है। बड़ी सड़कें पक्की बनी हैं। पानी निकलनेका बड़ा सुभीता है। लोगोंके कथनानुसार मर्यादा पुरुषोत्तमके पुत्र कुशने कसूर बसाया था।

कसेरा (हिं० पु०) कांस्यकार, कांसेकी चीज़ें बनाने और बेचनेवाला। यह एक वणिक् जाति है। संस्कृत पर्याय कंसकार, कंसवणिक् और कांस्यकार है। इस जातिकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें मतका भेद लक्षित होता है। ब्रह्मवैवर्तपुराणके ब्रह्मखण्डमें लिखा है,—

किसी समय विश्वकर्मा स्वर्गकी वेश्या घृताचीको देख कामके शरसे पीड़ित हुये। उस समय घृताची कामदेवके निकट जाती थीं। विश्वकर्माने अपना अभिलाष उनको बता कर कहा, 'हे सुन्दरी! हमने कामदेवसे कामशास्त्र पढ़ा है। हमारी इच्छा पूर्ण कीजिये। हम आपको विविध अलङ्कार देंगे।' घृताची बोल उठीं, 'देखो! आप कामदेवसे कामशास्त्र सीखनेकी बात कहते हैं। इस समय हम उन्हीं कामदेवके चित्तरञ्जनको जा रही हैं। आज हम तुम्हारे गुरु कामदेवकी पत्नीके स्थानमें हैं। ऐसे स्थल पर हमारी कामना करनेसे आपको गुरुपत्नीके गमनका महापातक लगेगा। हम किसी प्रकार आज आपके प्रस्तावमें सम्मत हो नहीं सकतीं।' विश्वकर्माने घृताचीको बातसे अत्यन्त घबरा शाप दिया था, 'तूने मेरा मनोरथ पूर्ण न किया। अब मेरे अमोघ शापके प्रभावसे मर्त्यलोकमें शूद्राके गर्भसे तुझे जन्म लेना पड़ेगा।' फिर घृताचीने भी विश्वकर्माको शापित किया 'तू भी मेरे शापसे स्वर्ग छोड़ नरलोकमें जाकर उत्पन्न होगा।' घृताची नरलोकमें शूद्राके गर्भसे जन्म ले मदनगोपकी पत्नी बनीं। उधर विश्वकर्मा किसी ब्राह्मणके घर उत्पन्न हुये। घटनावश मदनगोपकी स्त्रीसे ब्राह्मणरूपी विश्वकर्माने सहवास किया था। उससे नौ पुत्रोंने जन्म लिया। उन्हीं नौ पुत्रोंसे मालाकार, कर्मकार, कांसकार (कसेरा) प्रभृति नौ जातियां चली हैं। मालाकार, कर्मकार शङ्खकार, तन्तुवाय, कुम्भकार, और कांसकार (कसेरा) कह जातियां प्रधान हैं।* बृहद्धर्मपुराणके मतमें ब्राह्मणके औरस और वैश्याके गर्भसे अम्बष्ठ, गन्धवणिक्, शङ्खकार और कांसकार (कसेरा) जाति निकली है।†

भार्गवराम विरचित जातिमालामें लिखा है,

"गान्धिकः शाङ्खिकश्चैव कांसिको मणिकारकः।
सुवर्णवणिकश्चैव पञ्चैते वणिजः स्मृताः॥"

वणिक् अर्थात् बनिया जाति पांच प्रकारकी है—गन्धवणिक, शङ्खवणिक, कंसवणिक (कसेरा) मणिकार और सुवर्णवणिक।' गन्धवणिकके औरस तथा शङ्खवणिक्‌की कन्याके गर्भसे ताम्र और कांस्य उपजीवी कंसवणिक (कसेरा) जाति उत्पन्न हुयी है।

भार्गवरामके मतानुसार वित्तासक्रम पर अपर

---

* "विश्वकर्मा च शूद्रायां वीर्याधानं चकार सः।
ततो बभूवुः पुत्राश्च नवैते शिल्पकारिणः॥
मालाकार-कर्मकार-शङ्खकार-कुविन्दकाः।
कुम्भकारः कंसकारः षडेते शिल्पिनां वराः॥"
(ब्रह्मवैवर्तपुराण, ब्रह्मखण्ड, १०।१९-२०)

† "वैश्यायां ब्राह्मणाज्जातः अम्बष्ठो गान्धिको वणिक्।
कंसकारशङ्खकारौ ब्राह्मणात् संबभूवतुः॥" (बृहद्धर्मपुराण)

जातियोंके संस्रवमें कंसवणिक (कसेरे)से निम्न लिखित जातियां निकली हैं,—

"शाङ्खिकात् कांसिकन्यायां मणिकारश्च जायते।
कांस्यकाराच्च माणिक्यां सुवर्णजीविको भवेत्॥
मणिपुत्र्यां कांस्यकारात् गोपालस्य च सम्भवः।
गोपालात् कांस्यपुत्र्यां हि तैलिकाम्बूलिकावुभौ॥" (जातिमाला)

शङ्खवणिक्के औरस एवं कंसवणिककी कन्याके गर्भसे मणिकार, कंसवणिकके औरस तथा मणिकारकी कन्याके गर्भसे सुवर्णवणिक, सुवर्णवणिककी कन्याके गर्भ एवं कांस्यकारके औरससे गोपाल और गोपालके औरस तथा कंसवणिककी कन्याके गर्भसे तेली तंबोली हुये हैं।

किन्तु कसेरे अपनेको प्रकृत वैश्यजाति बतलाते हैं। वास्तविक शिल्पियों और वणिकोंमें इनका सम्मान कुछ कम नहीं। यह यज्ञोपवीत व्यवहार करते हैं। उपाधिके भेदसे कसेरोंमें सात शाखायें हैं,--१ पुरविहा, २ पछेहां, ३ गोरखपुरी, ४ तङ्क, ५ तांचरा, ६ भरिहा और ७ गोलर।

उक्त शाखाओंमें परस्पर आदान प्रदान और आहार व्यवहार प्रचलित नहीं। मिर्जापुरमें कसेरे अधिक देख पड़ते है। वहां यह कांसेके पात्र प्रभृति प्रस्तुत कर दूर देशान्तरको विकनेके लिये भेजते हैं।

विहार अञ्चलके कसेरे हिन्दुस्थानी कसेरोंकी भांति पदमर्यादा पा न सकते भी ठठेरे वगैरह दूसरे बनियोंसे कुल और शीलमें श्रेष्ठ हैं। ठठेरे इन्हींके बनाये द्रव्य पर खोदायी करते हैं। ठठेरा देखो।

विहारके कसेरोंमें अनेक गोत्र चलते हैं,—बनौधिया, बसैया, चौखर्गा, चौधरा, हरिहरना, लकड़महोलिया, मकुवा, महोलिया, मोहरिया, सुलरिया और सुघट। यह अपने गोत्रमें विवाह कर नहीं सकते। फिर कन्याका विवाह बाल्यकालमें ही करना पड़ता है। कभी कभी कन्याका वयस कुछ अधिक हो जाता और ऋतुमती बनने पीछे उसे पतिका सुख देखाता है। स्त्री रुग्ना, मृतवत्सा, मूढ़गर्भा अथवा वन्ध्या होने पर पुरुष स्वतन्त्र पत्नीको वरण कर सकता है। विधवायें मनमें आनेसे 'सगाई' प्रथाके अनुसार अपना विवाह गभीर रात्रिको अन्धकार गृहमें होता है। उसमें केवल विधवायें ही जातीं, सधवायें अपवित्र समझ देखने नहीं पातीं। पुरुष सिन्दूर चढ़ा विधवाको अपने पत्नीत्वमें ग्रहण करता है। भोज, आमोद प्रमोद और शास्त्रके धर्मकर्मका अभाव रहता है। समाजमें इन्हें सत्शूद्र कहते हैं। ब्राह्मण इनके हाथका पानी पी सकते हैं।

वङ्गदेशके कसेरोंमें पद, घर और गोत्र प्रचलित हैं,—पद—कुण्डू, प्रमाणिक, दास, दां, पाल, नन्दन, दे इत्यादि। घर—सप्तग्रामी, मुर्शिदाबादी, मौता, मैती।

गोत्र—शङ्ख ऋषि, शाण्डिल्य, सप्तर्षि, ऋषिकेश, दधि ऋषि।

विवाहादि कार्यपर इन्हें विषम दायमें गिरना पड़ता है। सब घरोंको निमन्त्रण देना आवश्यक है। भोजका बड़ा आयोजन होता है। इसीसे गरीब कसेरे एक ही साथ ८।९ कन्याओंका विवाह कर डालते हैं। बङ्गाली कसेरोंमें विधवाविवाह नहीं चलता। सौर भाद्रमासके ३० वें दिन विश्वकर्माकी पूजा होती है। उस दिवसको कोयी कसेरा यन्त्रादि नहीं छूता।

बम्बईके कसेरे अपनेको कार्तिवारी वंशीय क्षत्रिय सेनापतिके औरस और क्षत्रियाणीके गर्भसे उत्पन्न बताते हैं। शूद्रोंकी अपेक्षा यह कुल, शील और मानमें बहुत श्रेष्ठ हैं।

कसैलापन (हिं० पु०) कषायरस, बाकपन।

कसैली (हिं० स्त्री०) पूगफल, सुपारी।

कसोरा (हिं० पु०) कटोरा, प्याला।

कसौंजा (हिं० पु०) कासमर्द भेद, एक पौदा। यह वर्षा ऋतुमें उपजता और तीन चार हाथ ऊंचे उठता है। पत्रक एक सुषिर (सींके)में परस्पर सम्मुखीन आते और प्रशस्त तथा तीक्ष्णाग्र देखाते हैं। शीतकाल इसके फूलनेका समय है। फल छह-सात अङ्गुलि दीर्घ एवं समान होते हैं। बीज एक दिक् तीक्ष्णाग्र रहते हैं। रक्तवर्ण कसौंजा सतत हरित् वृक्ष है। पत्र और पुष्प रक्ताभ होते हैं। यह कटु, उष्ण और कफ, वात तथा काम नाशक है। लोग इसका शाक भी बनाते

हैं। रक्तवर्ण कसौंजीके पत्र और वीज अर्शोरोगमें औषधकी भांति व्यवहृत होते हैं।

कसौंजी (हिं० स्त्री०) कसौंजा देखो।

कसौंदा, कसौंजा देखो।

कसौंदी (हिं० स्त्री०) कसौंजा देखो।

कसौटी (हिं० स्त्री०) स्वर्णमणि, चांदीसोना कसनेका पत्थर। यह काली होती है। शालग्राम कसौटीके बनते हैं। लोग इसके खरल भी तैयार करते हैं। २ परीक्षा, जांच।

कसौली—पञ्जाबके शिमला ज़िलेका एक सैन्यवास (छावनी) और निरामय स्थान। यह एक पर्वतके शिखर (अक्षा० ३०° ५३´ १३´´ उ० तथा देशा० ७६°०´ ५२´´ पू०)पर अवस्थित है। कालिकाकी उपत्यका नीचे देख पड़ती है। कसाली अम्बालेसे ४५ मील उत्तर और शिमलेसे ३२ मील दक्षिण-पश्चिम लगती है। १८४४-४५ ई०को देशीय राज्य वीजासे भूमि ले यहां छावनी डाली गयी थी। उस समयसे बराबर कसौलीमें अंगरेज सिपाही रहते हैं। पर्वत समुद्रतलसे ६३२२ फीट ऊंचा है। इससे दक्षिणपश्चिम समभूमि और उत्तर हिमालयका दृश्य अत्यन्त मनोहर लगता है। यहां कुक्कुट और शृगाल आदिके विषकी चिकित्सा होती है।

कस्कादि (सं०पु०) पाणिनि व्याकरणोक्त गण विशेष। इसमें विसर्गस्थानपर नित्य 'स' होता है। कस्कादिके शब्द यह हैं,—कस्क, कौतस्कुत, भ्रातुष्पुत्र, शुनस्कर्ण, सद्यस्काल, सद्यस्की, साद्यस्क, कांस्कान्, सर्पिष्कुण्डिका, धनुष्कपाल, बर्हिष्पल, यजुष्पात्र, अयस्कान्त, तमस्काण्ड, अयस्काण्ड, मेदस्पिण्ड, भास्कर, अहस्कर और आकृतिगण। (पा० ८। ३। ४८)

कस्तम्भी (सं० स्त्री०) कं शिरोऽग्रभागं स्तभ्नाति, क-स्तम्भ-अण्-ङीष्। शकटका अधः पतन रोकनेकी एक अवष्टम्भ, गाड़ीके बांसकी थूनी।

कस्तरी (हिं० स्त्री०) दुग्धपात्रभेद, एक बरतन। इसमें दूध पकाकर रखा जाता है। मुख विस्तृत रहता है। फारसीमें इसे 'कसा' और साधारण हिन्दीमें 'दूधहंडी' कहते हैं।

कस्तीर (सं० क्ली०) पिच्चट, रांगा। इसका संस्कृत पर्याय—पुत्रपिच्चट, मृदङ्ग, वङ्ग, रङ्ग, त्रपुः, स्वर्णज, नागजीवन, गुरुपत्र, चक्र, तमर, नागज, आलीनक और सिंहल है। रङ्ग देखो।

कस्तीर्य (सं० क्ली०) रङ्ग, रांगा।

कस्तुरिका (सं० त्रि०) कस्तूरी स्वार्थे कन्-टाप्-पृषोदरादित्वात् साधुः। कस्तूरिका मृग, एक हिरन। इसकी तोंदीसे कस्तूरी निकलती है। कस्तूरिकामृग देखो। २ कस्तूरी, मुश्क।

कस्तूरमल्लिका, कस्तूरीमल्लिका देखो।

कस्तूरा (हिं० पु०) १ कस्तूरी, मुश्क। २ सन्धिभेद, एक जोड़। यह जहाज़ी तख्तोंमें पड़ता है। ३ शुक्तिभेद, एक सांप। इसमें मोती रहता है। ४ पक्षि-विशेष, एक चिड़िया। यह धूसरवर्ण होता है। पद तथा चञ्चुका वर्ण पीत लगता और उदर श्वेताभ रहता है। कस्तूरा पार्वत्य प्रदेशमें काश्मीरसे आसाम तक मिलता है। इसकी बोली सुननेमें अच्छी लगती है। ५ द्रव्य विशेष, एक चीज़। इसे पोर्टब्लेयरके पर्वतोंकी शिलाओंसे खुरच-खुरच निकालते हैं। कस्तूरा अत्यन्त मूल्यवान् होता है। इसे दुग्धके साथ २ रत्ती सेवन करते हैं। लोग इसे अबाबील पक्षीके मुखका फेन समझते हैं।

कस्तूरिक (सं० पु०) करवीर वृक्ष, कनेरका पेड़।

कस्तूरिका (सं० स्त्री०) कस्तूरी स्वार्थे कन्-टाप् पृषोदरादित्वात् ह्रस्वः। कस्तूरी, मुश्क।

कस्तरिकाण्डज, कस्तूरीकाण्डज देखो।

कस्तूरिकामृग (सं० पु०) एक प्रकार हरिण, मुश्की हिरन। तलपेटके निकट नाभिमें कस्तूरी सञ्चित रहने और शरीरसे कस्तूरिका गन्ध निकलनेसे ही इसको कस्तूरिकामृग कहते हैं। संस्कृत पर्याय—कस्तूरीमृग, गन्धवाह और गन्धमृग है। भारतवर्षमें अति पूर्वकालसे यह मृग परिचित और समादृत है। प्राचीन शास्त्रकारोंने पांच प्रकारके मृग कहे हैं। कस्तूरिका मृग 'पार्थिवमृग'के अन्तर्गत है।

"पृथिव्यप्वायुगगनास्तेजोऽधिकास्तु पञ्चधा।
विद्यात्त मैं भेदास्तु समस्ता मृगजातयः॥

ये गन्धिनः चीणशरीरकर्णास्ते पार्थिवा गन्धमृगाः प्रदिष्टाः ॥"
(युक्तिकल्पतरु)

मृगजाति एक प्रकार नहीं। पार्थिवमृग, जलमृग वायुमृग, गगनमृग और तेजोमृग पांच भेद विद्यमान है। जिस मृगका शरीर एवं कर्ण चीण तथा गन्ध-विशिष्ट देखाता, वह पार्थिव गन्धमृग कहाता है। मृग देखो। इसी गन्धमृगका अपर नाम कस्तूरिका-मृग है। कस्तूरिकामृग रोमन्थक (पागुर करनेवाले) चतुष्पद पशुवोंमें परिगणित हैं। यह साधारण हरि-णोंकी भांति नहीं होता। दूसरे हरिणोंके बड़े बड़े सींग रहते है। किन्तु इसके वह देख नहीं पड़ते। फिर भी गति हावभाव बिलकुल हरिणोंकी ही भांति है। इसीसे यह विभिन्न जातीय हरिण कहाता है। हरिणोंकी भांति चक्षुके मूलमें इसके अश्रुच्छिद्र नहीं होते। इसकी छोड़ ऊपरी चौंहसे गालके दोनों पार्श्वोंमें इसके दो गजदन्त दो-तीन अङ्गुलि बाहर निकल आते हैं। लोमस्पर्श करनेसे हंसपुच्छके पालकोंकी भांति कर्कश लगते हैं। कस्तूरी होनेके लिये इसका इतना आदर है। कस्तूरी नामक सुगन्धि द्रव्य बहु दिनसे भारतवर्षमें प्रचलित है।

"कस्तूरिकामृगविमर्दं सुगन्धि रेति।" (माघ)

पहले भारतवर्षमें तीन जगह तीन प्रकारका कस्तूरिकामृग मिलता था। स्थानभेदसे कस्तूरीका भी तारतम्य रहा। काश्मीरपण्डित नरहरिके विर-चित निघण्टुराज नामक ग्रन्थमें लिखा है,—

"कपिला पिङ्गला कृष्णा कस्तूरी त्रिविधा मता।
नेपालेऽपि काश्मीरके कामरूपेऽपि जायते ॥
कामरूपोद्भवा श्रेष्ठा नैपाली मध्यमा भवेत्।
काश्मीरदेशसम्भवा कस्तूरी ह्यधमा स्मृता ॥"

नेपाल, काश्मीर तथा कामरूप तीन प्रदेशोंमें कपिला, पिङ्गला एवं कृष्णा तीन प्रकारकी कस्तूरी उत्पन्न होती है। कामरूपकी सर्वोत्कृष्ट एवं कृष्ण-वर्ण, नेपालकी मध्यम तथा नीलवर्ण और काश्मीरकी कस्तूरी अधम एवं कपिलवर्ण रहती है। उक्त प्रमाण द्वारा समझ पड़ता—पूर्वकालमें कामरूप, नेपाल और काश्मीरमें भिन्नप्रकारका कस्तूरीमृग रहता था। प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथके मतमें हिमालय-प्रदेश ही इस जातीय मृगका प्रधान वासस्थान है,—

"मृगनाभिः कस्तूरी तद्गन्धि कस्तूरीमृगाधिष्ठानादित्युक्तं
तेन हिमाद्रावपि तन्मृगस्य सञ्चारो ऽस्तीति गम्यते।"
(कुमारसम्भवके ऊपर मल्लिनाथकृत टीका १। ५४)

यह मृग ग्रीष्मकालमें समुद्रसे ८००० फीट ऊंचे स्थान पर साइबेरियां, मध्य एशिया एवं हिमालय प्रदेशमें टङ्किणमें और आसाममें देख पड़ता है। सकल स्थानोंकी अपेक्षा तिब्बत देशीय कस्तूरिका-मृग अधिक आदरणीय है। इसे तिब्बतमें 'ला' एवं 'लव', काश्मीरमें 'रौस', कुनावरमें 'बेना', हिन्दुस्थानमें 'कस्तूरा', महाराष्ट्रमें 'पेशौरी' और ईरानमें 'मुश्क' कहते हैं। इसका अंगरेजी वैज्ञानिक नाम मुस्चस् मस्चिफेरस (Moschus moschiferus) है।

यह ढाई फीटसे अधिक बड़ा नहीं होता। चर्म कृष्णवर्ण रहता है। बीच-बीच लाल और पीले दाग पड़ जाते हैं। गलदेश पीताभ लगता है। लेज (पुच्छ) कोई एक इञ्च दीर्घ देखाता है। स्त्रीपुरुष दोनोंके पुच्छ पर दो वक्षर पर्यन्त लोम और निम्न भागमें पश्म रहता है। बढ़नेपर पुरुषका लोम या पश्म उड़ जाता है। वयःप्राप्त पुरुषके केवल नाभिसे ही कस्तूरी निकलती है।
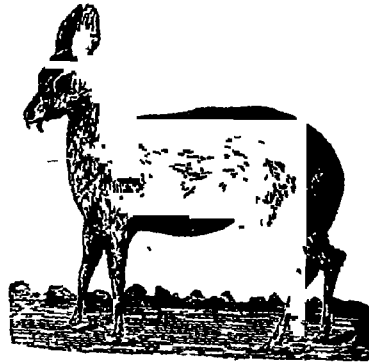
कस्तूरिका मृग।

यह अति भीरु, निरीह, लाजुक और निर्जनप्रिय है। निविड़ अरण्य और मानवके अगम्य उपत्यका प्रदेशमें इसके विचरणकी भूमि रहती है। शिकारी बड़े कष्टसे धर पकड़ कर सकते हैं। किसी प्रकार

पकड़ सकते; वह इसका नाभि काट लेते और अधिक मूल्य पर व्यवसायियोंके हाथ बेच देते हैं।

कस्तूरिकामृगका नाभि (musk-bag) कबूतरके छोटे अण्डेकी भांति होता है। आकार वृक्कसे मिलता है। प्रसिद्ध भ्रमणकारी टामार्णिआरने ७६७१ नाभि संग्रह किये थे।

यह पर्वतजात सामान्य तृण खा जीवन धारण करता है। चारो पैर अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं। दूरसे जङ्घादिका भेद समझ नहीं पड़ता। इसीसे लोग कहते, कि कस्तूरिकामृगके घंटने नहीं रहते।

भारत महासागरीय द्वीपोंमें इसकी भांति दूसरे भी कितने हो क्षुद्र पशु हैं। किन्तु उनके नाभिसे कस्तूरी नहीं निकलती। सुमात्रा तथा यवद्वीपमें उक्त क्षुद्र अर्धहस्तपरिमित हिरणको कहीं 'सेन्नोटन' और कहीं 'नेपू' कहते हैं। अंगरेजी वैज्ञानिक नाम ट्रागुलस् जवनिकस् (Tragulas Javanicus) है।
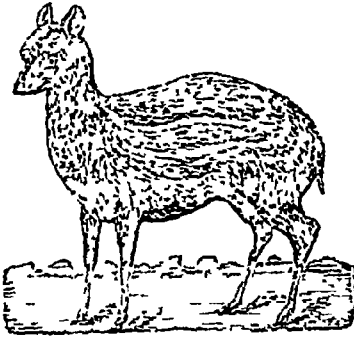
कस्तूरी मृगसदृश हरिण।

यह यवद्वीप-वासियोंको अत्यन्त प्रिय लगता और पालनेसे बहुत हिलता है।

कस्तूरी (सं० स्त्री०) कसति गन्धो ऽस्याः, कस्-उर-तुट्-ङीप् पृषोदरादित्वात् साधुः। सुगन्धि द्रव्यविशेष, मुश्क, एक खुशबूदार चीज। कस्तूरिका मृग देखो। इसका संस्कृत पर्याय—मृगनाभि, मृगमद, मृग, मृगी, नाभि, मद, वातामोद, योजनगन्धिका, मदनी, गन्धकेलिका, वेधमुख्या, मार्जारी, सुभगा, बहुगन्धदा, सहस्रवेधी, श्यामा, कामान्धा, मृगाण्डजा, कुरङ्गनाभि, ललिता, श्यामला, मोदिनी, कस्तूरिका, कस्तुरिका, नाभी, लता, योजनगन्धा, मार्ग, गन्धबोधिका, कामाङ्गी, धूपसच्चारी, मिश्रा और गन्धपिशाचिका है। कस्तूरी-मृगके नाभि (एक छोटी थैलीके आकारमें) रहता है। उसीमें कस्तूरी उत्पन्न होती है। इसीसे लोग इसे मृगनाभि (नाफा) कहते हैं। अरबी और फारसी मुश्क, बंगला, तामिल तथा तेलगु कस्तुर, यव एवं मलय-में दिदेश, सिंहली सत्ता, ब्रह्मी दो, चीना शिह्शिअङ्ग, रूसी मुसकस, इटालीय मुसचिओ, जर्मन विसम्, पोर्तगीज् अल मिस्कार, पोलन्दाज मस्क, डेनमार्की दिसमेर, फरासीसी मस्क और अंगरेजी नाम मास्क है। मृग-नाभि कुछ उग्र होती है। आस्वाद कटु लगता है। मुखमें कस्तूरी डालनेसे विपुल सद्गन्ध निकलता है।

प्राचीन संस्कृत ग्रन्थोंमें भूरि भूरि प्रमाण मिलता कि भारतवर्षमें बहु पूर्वकालसे मृगनाभिका आदर है। प्राचीन वैद्यक मतसे कामरूप, नेपाल और काश्मीर तीन देशोंमें कस्तूरी उत्पन्न होती है। कामरूपकी कस्तूरी सर्वोत्कृष्ट और कृष्णवर्ण रहती है। फिर नेपालकी मध्यम एवं नीलवर्ण और काश्मीरकी कस्तूरी अधम तथा कपिलवर्ण ठहरती है। यह पांच श्रेणियोंमें विभक्त है—खरिका, तिलका, कुलत्था, पिण्डा और नायिका। (भावप्रकाश) राजवल्लभके मतसे कस्तूरी सुगन्धि, तिक्त, चक्षुके लिये हितकर, और मुखरोग, किलास, कफ, दौर्गन्ध्य, वस्यदोष, अलक्ष्मी, मल, रक्तपित्त तथा छर्दिनाशक है। दूसरे भावप्रकाशमें इसे कटु, क्षार, उष्ण, शुक्रजनक, गुरु और शीत तथा शोषनाशक भी कहा है।

पहले युरोपके लोग कस्तूरीका विषय समझते न थे। ई० ८म शताब्दको अरबी इसे युरोप ले गये। अरबी और ईरानी कस्तूरीको मुश्क कहते हैं। इसी 'मुश्क'से लाटिन मुसकस (Muschus) और अंगरेजी मास्क (Musk) शब्द निकला है।

युरोपीय चिकित्सकोंके मतसे यह उत्तेजक और आक्षेपजनक है। श्वासकाश (१०से १५ ग्रेन), काश (१ ग्रेन दिनको ३।४ वार), मृगीरोग, ताण्डवरोग, धनुष्टङ्कार, स्त्रियोंके प्रसवकालीन आवेग, हिष्टिरिया, मोहकर एवं तान्त्रिक ज्वर (Pneumonia), फुसफुसके प्रदाह (२४-३० ग्रेन) और वातरोगमें कस्तूरी विशेष

उपकारी है। बालकोंके आक्षेपरोगमें अधिक आक्षेप होनेसे १·५ ग्रेन कस्तूरी पिचकारीसे लगानेमें फल मिलता है।

आजकल तीन प्रकारकी कस्तूरी प्रचलित है—तिब्बती, रूसी और चीना। तिब्बती सर्वोत्कृष्ट, चीना मध्यम और रूसी अधम होती है। रूस देशीय मृगकी कस्तूरी उत्कृष्ट नहीं रहती। व्यवसायी रूस देशीय मृगकी नाभिमें लगा देते हैं। इससे रूस देशीय कस्तूरीका गन्ध बहुत कुछ बदल जाता है।

मृगनाभि अधिक मूल्यमें बिकती है। प्रत्येक नाभिका मूल्य १५) या १७) रु० है। इसीसे व्यवसायी मांस और रक्त मिला और कृत्रिम चर्म लेप लगा इसे बेचते हैं। किन्तु मृगनाभिकी परीक्षा बहुत सीधी है। कृत्रिम मृगनाभि अग्निमें डालनेसे दुर्गन्ध उठता है। किन्तु प्रकृत कस्तूरीमें यह बात नहीं होती है।

कस्तूरिया (हिं० पु०) १ कस्तूरिकामृग। (वि०) २ कस्तूरी मिश्रित, मुश्की। ३ कस्तूरी सदृश वर्ण विशिष्ट, जो मुश्क रंग रखता हो।

कस्तूरिक, कस्तूरिक देखो।

कस्तूरीकाण्डज (सं० पु०) मृगनाभि, मुश्क।

कस्तूरीतिलक (सं० क्ली०) कस्तूर्यास्तिलकम्, ६-तत्। कस्तूरीका तिलक, मुश्कका टीका।

"कस्तूरीतिलकं ललाटपटले" (विष्णुस्तव)

कस्तूरीभैरवरस (सं० पु०) रसविशेष, एक कुश्ता। हिङ्गुल, विष, टङ्क (सोहागा), जातीकोषफल (जायफल), मरिच, पिप्पली और कस्तूरी बराबर बराबर जलमें घोटनेसे यह औषध प्रस्तुत होता है। मात्राका परिमाण २ रत्ती है। इसके सेवनसे शीताङ्ग सन्निपात दूर होता है। (भैषज्यरत्नावली) बृहत् कस्तूरीभैरवरस बनानेका विधि यह है—कस्तूरी, कर्पूर, ताम्र, धातकी, शूकशिम्बी, रौप्य, स्वर्ण, मुक्ता, प्रवाल, लौह, पाठा, विडङ्ग, मुस्तक, शुण्ठी, बाला, हरिताल, अभ्र और आमलकी समभाग अर्कपत्रके रसमें घोटनेसे यह रस प्रस्तुत होता है। इसे १ रत्ती आर्द्रकके रसमें सेवन करनेसे विषमज्वर छूटता है। (रसरत्नाकर)

कस्तूरीमल्लिका (सं० स्त्री०) कस्तूरी गन्धयुक्ता मल्लिका मध्यपदलो०। १ मृगनाभि, हिरनका नाफा। २ मल्लिकापुष्पभेद, किसी किस्मकी चमेली। यह मृगमदवासा होती है। कस्तूरीमल्लिका दो प्रकारकी मिलती है—एक लता सदृश और दूसरी एरण्डवृक्षके समान। दोनोंमें फलफूल आते हैं। पुष्प और फलके बीजमें सद्गन्ध रहता है। केश मलनेके मसालेमें इसका बीज डाला जाता है।

कस्तूरीमृग, कस्तूरिकामृग देखो।

कस्तूरीमोदक (सं० पु०) मोदकभेद, किसी किस्मका लड्डू। कस्तूरी, प्रियङ्गु, कण्टकारी, दोनो जीरक, त्रिफला, पक्वकदलीफल, खर्जूर, कृष्णतिलक तथा कोकिलाक्षका बीज समभाग और सबके बराबर शर्करा डाल सद्वैद्य इस चूर्णको मन्द मन्द अग्निसे धात्रीरस, दुग्ध एवं कुष्माण्डरसमें पाक करे। मोदक अक्षपरिमित बनता है। इस मोदकको खानेसे प्रमेह रोग आरोग्य होता है। (रसेन्द्रसारसंग्रह)

कस्तूरीवल्लिका (सं० स्त्री०) कस्तूरीगन्धयुक्ता वल्लिका, मध्यपदलो०। लताकस्तूरी, एक खुशबूदार बेल। भावप्रकाशके मतसे यह मधुर एवं तिक्त रस, शीतल, लघु, चक्षुके लिये हितकर, भेदक और तृष्णा, वस्तिरोग, मुखरोग तथा श्लेष्मनाशक होती है।

कस्तूरीहरिण, कस्तूरिकामृग देखो।

क़स्द (अ० पु०) प्रतिज्ञा, सङ्कल्प, इरादा।

कस्मल (सं० क्ली०) कस-क्मल-मुट्, निपातनात् अस्य सत्वम्। १ सन्त्रास, घबराहट। २ मोह, गश।

कस्मात् (सं० अव्य०) किस कारणसे, किसलिये, क्यों।

कस्य (हिं० क्ली०) सुरा, शराब।

कस्वर (सं० त्रि०) कस्-वरच्। १ गमनशील, चलता हुवा चालू। २ हिंसक, खूंखार।

क़स्सरी (हिं० स्त्री०) आकर्षण, खींचतान। यह शब्द लङ्गर खींचने या तानने के अर्थमें आता है।

कस्सा (हिं० पु०) बर्बरकल्क, बबूलकी छाल। इसमें रंगनेके लिये चमड़ा भिगोया जाता है। २ मद्यभेद, सुरा, एक शराब। यह बर्बूरकी लकड़से प्रस्तुत होता है।

कस्साचना (हिं० स्त्री०) दुबिया मटर, लोबिया।

कस्साब (अ० पु०) गोघातक, कसाई।

कस्सी (हिं० स्त्री०) १ खनित्रभेद, एक फावड़ा। यह छोटी रहती और मालियोंके काममें लगती है। २ मानविशेष, एक नाप। यह दो पद परिमित रहती और भूमि नापनेमें चलती हैं।

कहं (हिं० प्र०) १ को। (क्रि० वि०) २ कहां।

कहकहा (अ० पु०) अट्टहास, ठट्ठा, खिलखिलाहट।

कहकहा दीवार (फा० स्त्री०) १ प्राचीर विशेष, एक ऊंची दीवार। चीनके राजा सीहवाङ्गतीने चीनके उत्तर ई०से पूर्व ३य शताब्दके अन्तमें फकिन, कुआङ्ग तुङ्ग और कुआंसी नामक मोङ्गलोंका आक्रमण निवारण करनेके लिये इसे बनाया था। यह १५०० मील दीर्घ, २० से २५ फीट तक उच्च और इतनी ही प्रशस्त है। सौ-सौ गजके अन्तर पर वप्र (बुर्ज) विद्यमान हैं। चीन देखो। २ कठिन अवरोध, कड़ी रोक।

कहगिल (हिं० स्त्री०) गारा, फेनिया, घास मिली हुयी गीली मट्टी। यह शब्द फ़ारसी भाषाके काह (घास) और गिल (मट्टी)का समाहार है।

कहत (अ० पु०) दुर्भिक्ष, अकाल, अनाजकी कमी।

कहतरी (हिं० स्त्री०) कस्तरी, लङ्गर उठायी।

कहता (हिं० पु०) कथनकार, कहनेवाला।

कहतूत (हिं० स्त्री०) प्रसिद्ध वार्ता, मशहूर बात।

कहन (हिं० पु०-स्त्री०) १ कथन, बोलचाल। २ वचन, बात। ३ लोकोक्ति, मसल, कहतूत। ४ कविता, शायरी। ५ भाषण भाव, बोलनेका तौर।

कहना (हिं० क्रि०) १ बोलना, बताना, समझाना। २ उद्घाटित करना, खोलना। ३ संवाद सुनाना, खबर पहुंचाना। ४ बोलाना, नाम लेना। ५ सिखाना पढ़ाना, देखाना-सुनाना। ६ लम्बी लेना, धोका देना। ७ अयोग्य बोलना, कह बैठना। ८ कविता बनाना, शायरी सजाना। (पु०) ९ अनुरोध, तरगीब, समझाव।

कहनावत (हिं० स्त्री०) १ किंवदन्ती, मसल, कहावत। २ कथन, कहासुनी।

कहर (अ० पु०) १ आपद्, आफत, अनहोनी। (वि०) २ भयङ्कर, खौफनाक।

कहरना, कराहना देखो।

कहय (सं० पु०) कस्य सूर्यस्य हयः अश्वः। सूर्यका अश्व या घोड़ा। सूर्यके सातो अश्वोंका वर्ण हरित है।

कहरवा (हिं० पु०) १ सङ्गीततालविशेष, गाने-बजानेका एक ठहराव। इसमें पांच मात्रायें लगती हैं,—चार पूरी और दो आधी। आघात चार पड़ते हैं। चाल है—धागि टेते नागधिन धा। २ गीतविशेष, दादरा। यह नाचगानेके पीछे होता है। ३ नृत्यभेद, एक नाच। यह सवेरे मिलजुलकर किया जाता है। ४ कहार, पानी भरनेवाला।

कहरुवा (फा० पु०) १ निर्यासभेद, एक गोंद। यह ब्रह्मदेशकी खनियोंसे निकलता है। वर्ण पीत है। इसे औषधोंमें व्यवहार करते हैं। चीनमें कहरुवा गला मालकी गुटिका और सुहनाल बनाते हैं। इस रंग भी चढ़ता है। वस्त्र प्रभृति पर रगड़ निकट रखनेसे यह तृणादिको यह चुम्बक भांति आकर्षण करता हैं। २ सर्जवृक्ष, धूनेका पेड़। इसीके गोंदको धूप या राल कहते हैं। यह सततहरित् वृक्ष है। पश्चिमघाटके पर्वतोंमें इसकी अधिक उत्पत्ति है। दूसरा नाम सफेद डामर है। तारपीनके तेलमें इसे घोल रंग चढ़ाते हैं। कहरुवेकी मालाभी उत्तम होती है। उत्तर-भारतमें स्त्रियां इसे तेलमें उबाल गोंद बना लेती और उसी गोंदसे चिपका मस्तक पर टिकली देती हैं। कषाय प्रभृति प्रस्तुत करनेमें भी यह कहीं कहीं व्यवहृत होता है।

कहरुवा, कहरुवा देखो।

कहल (हिं० पु०-स्त्री०) १ ऊष्मा, गरमी, उमस। २ ताप, बुखार, तकलीफ।

कहलना (हिं० क्रि०) व्याकुल होना, घबराना।

कहलवाना (हिं० क्रि०) १ कहाना, कहनेका काम दूसरेसे कराना। २ कहलवाना, घबरवाना।

कहलाना (हिं० क्रि०) १ कहाना, कहनेका काम दूसरेसे कराना। २ नाम पाना, कहा जाना। ३ दहलाना। ४ संवाद पहुंचाना, संदेसा देना।

कहवा (अ० पु०) एक पेड़का बीज, काफी (Coffee)। अंगरेजी वैज्ञानिक नाम कफिया अरेबिका (Coffea arabica) है। इसे बंगलामें कापि, गुजरातीमें

कपि, मराठीमें कफ्फी, मारवाड़ीमें कफि, तामिलमें कपिकोत्तई, तैलगुमें क्रपिवित्तुलु, मलयमें कोपि, कनाड़ीमें कापिवीज, फारसीमें वुन, ब्रह्मीमें काफिसि और सिंहलीमें कापिकोत्ता कहते हैं।

अधिकांश ग्रन्थकार कहवेको अविसीनिया, सोदान और गोनिया तथा मोजम्बिकके पूर्व समुद्रतटका वृक्ष मानते हैं। अरबमें किसीने इसे उत्पन्न होते नहीं देखा।

कहवा एक क्षुद्र वृक्ष है। इसमें शाखायें वहुत होती हैं। यह १५ से २० फीट तक बढ़ता है। वल्कल श्वेताभ और पुष्प श्वेतवर्ण रहता है। फल पकनेपर लाल पड़ जाता और छोटे शाहदाने की भांति देखाता है। फलमें दो वीज परस्पर चिपटे रहते हैं। यही वीज निकालनेसे वुन कहलाते और वाजारमें वेचे जाते हैं। वीजोंको भूनने और पीसनेसे दुकानका कहवा तैयार होता है।

दाक्षिणात्यको इसको कृषि अधिक है। कहवे और कयीको एक ही प्रकारको भूमिमें लगाते हैं। इसे पानी बराबर मिलना चाहिये। उष्ण प्रदेशमें यह बहुत पनपता है। निविड़ मेघ ठीक नहीं पड़ता और प्रवल वायु लगनेसे पुष्प झड़ता, जिसमें आधा कहवा निकलता है। विशेष उष्णता और ग्रीष्म रहनेसे छाया आवश्यक आती और प्रवल वायु चलनेसे वृक्षोंकी आड़ लगायी जाती है। निम्नप्रदेशको भूमिमें उपयुक्त आर्द्रता न रहनेसे अच्छो फसल कम होती है।

ई० १५वें शताब्दको शेष शहावुद्दीन इसी अदन ले गये थे। यमनसे यह मक्के, कायरो, दामासकस, अलेप्पा और कुस्तुनतुनिये पहुंचा। सबसे पहले १५५४ ई०को कुस्तुनतुनियामें ही कहवेको दुकान खुली थी। १५७३ ई०का अलेप्पोमें रानवोल्फ नामक यूरोपीयको इसका नाम सुन पड़ा।

मुसलमानोंमें कहवा पीनेका वड़ा आदर वढ़ा। मसजिदोंसे भी अधिक लोग कहवेकी दुकानोंमें देख पड़ने थे। इससे मौलवियोंने बिगड़ इसका पर कड़ा महसूल बांधा। ग्रेट ब्रटेनमें यह १६५२ ई०को पहुंचा। किन्तु १६७५ ई०का २य चार्लसने इसकी दुकानें वन्द करा दीं। उनका कहना था—कहवेकी दुकानों पर वदमाश इकट्ठा होते हैं।

ई० १७वें शताब्दके अन्त कहवेको कृषि बढ़ी। भारत, सिंहल, यवद्वीप, जमैका और ब्रेजिलमें यह लगाया जाने लगा। १६९० ई०से पहले यह अरवमें ही होता था। आजकल कोष्टा, रिका, गाटेमाला, ग्रेनेजु,येला, गिआना, पेरू, वोलिविया, क्यूबा, पोर्टोरिको और पश्चिम-भारतीय द्वीपपुञ्जमें भी कहवा खूब उपजता है। कहते दो शताब्द पूर्व मक्केसे वावा वूदन कहवेके ७ वीज महिसुर लाये थे।

इसकी भूमि उत्तम और आर्द्र रहना चाहिये। यह रक्तवर्ण एवं कृष्णवर्ण भूमिमें अधिक पनपता है। प्रवल वायु लगनेसे इसे वड़ी हानि पहुंचाती है। भूमि ढालू रहना चाहिये। सींचनेकी सुविधा पड़ना अच्छा है। भूमिको १८से २४ इञ्च तक गहरी जोत घास फूस निकाल डालते है। एकड़ पीछे ५०से ८०मन तक खाद पड़ती है। पानी निकलनेकी राह क्यारियों रखी जाती है। वीजोंको ६ कतारोंमें वोना चाहिये। प्रत्येक कतार ८ इञ्च पृथक् और २ इञ्च गभीर रहती है। वीज एक एक इञ्च दूर डाले जाते हैं। सवेरे और सन्ध्याकाल सिंचायी होती है। वीज उत्तम रहनेसे फसल भी अच्छी निकलती है। दो चार पत्तियां निकलनेसे वृक्षोंको खोद दूसरी जगह लगाते हैं। जल भरा रहनेसे जड़ें सड़ जाती हैं। एक एकर भूमिमें १०३७से अधिक वृक्ष न रहना चाहिये। गोवरकी खाद अच्छी होती है डालियां बढ़नेसे थोड़ी थोड़ी काट देते हैं। ५ फीटसे अधिक इसका वढ़ना खराब है। इसके साथ दूसरी चीज लगा नहीं सकते। इसकी कृषिका समय मई या जून मास है। दूसरे वर्ष मार्च मासमें पुष्प आते और अक्तोवर मास फसल काटनेका प्रवन्ध लगाते हैं। फूल नवम्बरसे जनवरी तक पका करते हैं। पके फलको शीघ्र तोड़ लेना और रक्तवर्ण फल गिरा देना चाहिये।

साधारणतः देशीय लोग फलोंको धूपमें सुखा ओखलीमें कूट पछोड़ कर वीज निकालते हैं। किन्तु यह रीति अधिक लाभकर देख नहीं पड़ती। अंगरेज

लोग कलमें डाल बीजोंका गूदा छोड़ाते हैं। कलका नाम डिस्क-पलपर (disc pulpar) है। इसमें गूदेसे बीज छूट अलग जा पड़ता है। फिर बीजको हौज़में डाल १२ घण्टे धोते हैं। धुलहुवा बीज धूपमें सुखाया जाता है। सूखनेकी भूमिपर मोटी चटायी बिछा देते हैं। सूखते समय कहवेको लौटते रहना चाहिये।

भारतवर्षमें जितना अधिक और उत्तम कहवा उपजता, उतना किसी दूसरे अंगरेजी अधिकारमें देख नहीं पड़ता। किन्तु इसमें अनेक रोग लग जाते हैं। यथा,—पत्तियोंका पीला और काला पड़ना, पत्तियों, फूलों और फलोंका चिपचिपा उठना और कीड़ा लगना। टिड्डियां भी इसको बड़ी हानि पहुंचाती हैं। कहवेकी पत्तियां भी उबाल कर पीनेसे अच्छी लगती हैं। गूदेमें चीनी रहती है। अरबमें लोग गूदेका अर्क तैयार करते हैं। कहवेमें तेल भी होता है।

यह उत्तेजक है। इसके सेवनसे थकावट दूर हो जाती हैं। शिरःपीड़ाका यह उत्तम औषध है। काशश्वास रोगमें भी इससे लाभ होता है। विशूचिका और ग्रहणीरोग इसके सेवनसे दब जाता है। कहवा ज्वर पर भी चलता है। पीनेसे मूत्रकृच्छ्र और वातरक्त रोग नहीं लगता।

कहवाना (हिं० क्रि०) कहलाना, कहाना।

कहवैया (हिं० वि०) कथनकार, कहनेवाला।

कहा (हिं० पु०) १ कथना, बातचीत। (क्रि०वि०) २ कैसे, किस प्रकार। (सर्व०) ३ क्या। (वि०) ४ कौन। ५ कथित।

कहां (हिं० क्रि० वि०) १ कुत्र, किस जगह। (पु०) २ शब्दविशेष, एक आवाज़। सद्योजात शिशुके शब्द करने या रोकनेको 'कहां कहां' कहते हैं।

कहाना (हिं० क्रि०) कहलाना, कहा जाना।

कहानी (हिं० स्त्री०) १ कथा, किस्सा। २ मिथ्या वचन, झूठी बात।

कहार (हिं० पु०) जातिविशेष, एक कौम। यह लोग पानी भरते और डोली लेकर चलते समय अनेक प्रकारके साङ्केतिक शब्द व्यवहार करते हैं। बेहारमें कहार लोग जरासन्धका वंशीय कहलाता है।

कहारा (हिं० पु०) टोकरा, दौरी, झौवा।

कहाल (हिं० पु०) वाद्यविशेष, एक बाजा।

कहावत (हिं० स्त्री०) १ लोकोक्ति, मसल, चलती बात। २ कथित विषय, कहां हुयी बात।

कहासुना (हिं० पु०) अनुचित वचन, गैरवाजिब बात, भूल चूक।

कहासुनी (हिं० स्त्री०) वादविवाद, लगाई झगड़ा।

कहाह (सं० पु०) १ महिष, भैंसा। २ कटाह, कड़ाह।

कहिक (सं० पु०) कहोड़-ठक्। एक ऋषि।

कहिया (हिं० क्रि० वि०) १ किस समय, कब। (पु०) २ यन्त्रविशेष, एक औजार। कलईगर इससे रांग रख जोड़ लगाते हैं। यह एक प्रकारका लौह दण्ड है। इसमें मुष्टि रहता है। एक किनारा काकचञ्चुकी भांति कुटिल होता है।

कहीं (हिं० क्रि० वि०) १ किसी स्थान पर, दूसरी जगह। २ नहीं। इस अर्थमें यह प्रश्न रूपसे आता है। ३ यदि, अगर। ४ अतिशय बहुत, बहुत।

कहुं, कहीं देखो।

कहूं, कहीं देखो।

कहूय (सं० पु०) कः सूर्यः ह्वयो यस्य, ह्वे-कप् बहुव्री०। सूर्यकी आह्वान करनेवाले एक ऋषि।

कहोड़ (सं० पु०) एक ऋषि। यह उद्दालकके शिष्य और अष्टावक्रके पिता थे।

कह्लक, कल्हार देखो।

कह्लण (सं० पु०) कल्हण, राजतरङ्गिणीके प्रणेता।

कल्हण देखो।

कह्लार (सं० क्ली०) कस्य जलस्य हार इव के जले ह्लादते वा, क-ह्लाद पचाद्यच्, पृषोदरादित्वात् साधुः। १ श्वेत उत्पल, अघवल, कोकाबेली। (Nymphæa edulis) यह भारतके नाना स्थानोंपर जलमें उत्पन्न होता है। कल्हार शीतल, ग्राही, विष्टम्भी, गुरु और रुच है। (भावप्रकाश) २ ईषत् श्वेत रक्तकमल, कुछ सफेदी लिये लाल कंवल। ३ कमलसाधारण, कोई कंवल।

कल्हाराद्यघृत (सं० क्ली०) घृतविशेष, एक घी।

कल्हार, उत्पल, पद्म, कुमुद और मधुयष्टिकाको जलमें पकाने तथा घृतके साथ कल्क लगानेसे यह प्रस्तुत होता है। इसके खानेसे यावतीय हृद्रोग आरोग्य होते हैं। (रसरत्नाकर)

कह्व (सं० पु०) के जले ह्वयति क शब्दायते स्पर्धते वा, क-ह्वे-क। वक, बगला।

का (सं० अव्य०) १ काकका शब्द, कौवेकी आवाज। (त्रि०) का पथ्यक्षयोः। पा ६।३।१०४। २ मन्द, खराब।

का (हिं० प्रत्य०) १ सम्बन्धीय, वाला। यह षष्ठीका चिन्ह है। इसे अधिकारी अधिकृत, आधार आधेय, कार्य कारण, कर्ट कर्म प्रभृति अनेक भाव देखनेको दो शब्दोंके बीच लगाते हैं। स्त्रीलिङ्गमें 'का' का रूप बदलकर 'की' हो जाता है। (सर्व) २ क्या।

"का वर्षा जब कृषी सुखाने।
समय चूकि पुनि कह पछिताने॥" (तुलसी)

काई (हिं० स्त्री०) तृण विशेष, एक घास। यह जल तथा शीतल स्थल पर उपजती और सूक्ष्म लगती है। इसका वर्ण और आकार विभिन्न होता है। शिला और भूमिपर पड़नेवाली काई सूक्ष्म सूत्रसदृश हरिद्वर्ण रहती है। किन्तु जलपर फैलनेवालीमें गोलाकार सूक्ष्म पत्रक और पुष्प आते हैं। वस्तुतः यह एक प्रकारका मल है। काई उबल कर तरल पदार्थों पर आ जाती है। २ मण्ड, फेन, मांड। ३ मल, मैल। ४ अयोमल, मोरचा।

काज (हिं० स्त्री०) १ यष्टिविशेष, कामी, एक छोटी खूंटी। यह पाटेमें बरडोंके सिरेपर लगायी जाती है। (सर्व०) २ कोई। ३ कुछ। (क्रि० वि०) ४ कभी। (पु०) ५ काक, कौवा।

काइयां (हिं० वि०) धूर्त, चालाक, अपने मतलबका पक्का।

काईं (हिं० अव्य०) १ क्यों, किस लिये। (सर्व०) २ किसे, किसको। ३ क्या।

कांक (हिं० पु०) शस्यविशेष, एक अनाज। इसे कंगनी भी कहते हैं।

कांकड़ा (हिं० पु०) कार्पासबीज, बिनौला।

कांकर (हिं० पु०) कंकर, कंकड़।

कांकरी (हिं० स्त्री०) क्षुद्र कर्कट, छोटा कांकड़, बजरी।

कांकां (हिं० पु०) काकका शब्द, कौवेकी बोली।

कांकुन, कांकुनी, कंगनी देखो।

कांख (हिं०) कच देखो।

कांखना (हिं० क्रि०) १ पीड़ित अवस्थामें दुःखसूचक शब्द उच्चारण करना, कराहना। २ मूत्रपुरीषोत्सर्गार्थ उदरके वायुको पीड़न करना, आंतपर ज़ोर देना।

कांखासोती (हिं० स्त्री०) वस्त्रपरिधानभेद, दुपट्टा रखनेका एक तरीका। इसमें दुपट्टा बायें कंधे और पीठ पर होता और दाहिनी बगलके नीचे पहुंचता, फिर बांये कन्धे पर आ चढ़ता है।

कांखी (हिं०) कांची देखो।

कांगड़ा (हिं० पु०) कङ्कपक्षी, एक चिड़िया। यह धूसरवर्ण होता है। इसका वक्षःस्थल श्वेत, गलदेश रक्त और शिखाका वर्ण कृष्ण रहता है।

कांगड़ा—पञ्जाब प्रान्तका एक ज़िला। यह अक्षा० ३१° २०′ से ३३° उ० और देशा० ७५° ५८′ से ७८° ३५′ पू० तक अवस्थित है। भूमिका परिमाण ८०६८ वर्ग मील है। इसमें प्रायः साढ़ेसात लाख आदमी रहते हैं।

कांगड़ा सर्वत्र अत्युच्च गिरिमालासे परिवेष्टित है। सकल गिरि समुद्रकी समतलको अपेक्षा ८३७से १५८५ फीट पर्यन्त उच्च हैं। धवलाधारगिरि कांगड़ेके उत्तर सीमारूपसे खड़ा है। उसीके आगे बड़ा बङ्गाहल मिलता, चढ़ता है। गिरिमालासे परिवेष्टित और समाकीर्ण रहते भी इसमें स्थान स्थान पर ग्राम तथा कृषिक्षेत्र विद्यमान हैं।

उत्तर सीमापर हिमालय पर्वत कांगड़ेको तिब्बतके वक्षुजनपद और चीन साम्राज्यकी सीमासे पृथक् किया है। दक्षिण पूर्वको बसहर, मण्डी, बिलासपुर प्रभृति पार्वतीय राज्य हैं। दक्षिणपश्चिम होशियारपुर ज़िला तथा उत्तरपश्चिम चाकी नदी गुरुदासपुर और चम्बा राज्यको काटती है। कांगड़ा ज़िलेमें पांच तहसीलें हैं, कूलू, कांगड़ा, हमीरपुर, डेरा और नूरपुर। कांगड़ा तहसील मध्यस्थलमें लगती है।

धवलाधार-गिरिने बङ्गाहल प्रान्तको दो भागोंमें

बांटा है। उत्तरार्धको बड़ा बङ्गाहल और दक्षिणार्धको छोटा बङ्गाहल कहते हैं। बड़े बङ्गाहलमें कुलूके मध्य स्थलपर बड़ा बङ्गाहल पहाड़ है। यह दैर्घ्यमें पन्द्रह मील और उच्चतामें १७००० हजार फीट पड़ता है। इसमें एक सामान्य ग्राम है। उसमें कोई ८००० कुनैत रहते हैं। एक वर्ष दारुण तुषारपातसे लोगोंके बहुतसे घर बह गये। इसी गिरिका अत्युच्च शृङ्ग फोड़ इरावती नदी निकली है।

छोटे बङ्गाहलके बीचमें १००० फीट ऊंचा एक गिरिशृङ्ग है। उसने इस स्थानको दो भागोंमें बांटा है। निम्नांशमें १८।२० ग्रामविद्यमान हैं। सकल ग्रामोंमें केवल कुनैत और दावी रहते हैं।

बङ्गाहल तालुकके कुछ अंशका नाम बीर बङ्गाहल है। इस स्थानका प्राकृतिक सौन्दर्य मनोहर है।

कांगड़ा जिलेके बीच तीन गिरि श्रेणियां समभावसे निकली हैं। इन्हीं गिरिश्रेणियोंसे विपाशा, चन्द्रभागा, क्षिति और इरावती नदी निकली है।

पुरातत्त्व और इतिहास—भारत और पुराणादिमें कुलिन्द और कुलूत नामक पार्वतीय जातिका नाम लिखा है। वही यहांके प्राचीन अधिवासी थे। उस समय कांगड़ा कुछ कुलूत और कुछ कुलिन्द (कुनिन्द) जनपदमें रहा। आजकल कुलूत तथा कुलिन्द जातिको कुलू और कुनैत कहते हैं। कुलूत और कुलिन्द देखो।

कुलूत और कुलिन्द लोगोंको हरा राजपूतोंने यह स्थान अधिकार किया। उन्होंने यह पार्वतीय भूभाग विभागकर बहुकाल राजत्व चलाया। वह अपनेको कुरुपाण्डवके समकालीन जालन्धरका कतोच राजवंश बताते थे। मुसलमानोंके आक्रमणसे उक्त कतोच-राजकुमारोंने कांगड़ेको गिरिदुर्गमें आश्रय लिया। उनका विपुल राज्य क्षुद्र क्षुद्र अंशोंमें बंट गया। उस समयभी यहांके नगरकोटवाले भारतीय देवमन्दिर विशेष प्रसिद्ध थे। ऐसा ऐश्वर्य पञ्जाबके किसी दूसरे देवमन्दिरोंमें न रहा। भारतीय लोगोंने देवमूर्तिको बड़ी श्रद्धा भक्ति करते थे। १००९ ई०को महमूद गजनवीने कांगड़ेके मन्दिरोंकी बड़ाई सुनीं। उनका लोभ और विद्वेष बढ़ गया। वह पेशावरके चैवाभिमुख ससैन्य आये थे। भारतीय राजावोंसे बाधा देनेको यथा साध्य चेष्टा लगायी, किन्तु कोई बात बन न पायी। महमूदने कांगड़ेका दुर्ग अधिकार कर देवमूर्तियोंके साथ स्वर्ण, रौप्य, मणिमाणिक्य प्रभृति बहुमूल्य धन लूटा था। कोई ३५ वर्ष पीछे राजपूतोंने कांगड़ेका दुर्ग छीन फिर राजपूतोंने बड़े समारोहके देवमूर्ति प्रतिष्ठा किया था।

कुछ दिन कोई गड़बड़ न पड़ा। १३६० ई०को फीरोजशाह तुगलक कांगड़ेकी ओर लड़ने आये। कांगड़ेके राजावोंने उनकी वश्यता माननेसे अपना राज्य तो पाया, किन्तु पवित्र देवमूर्तियोंको गंवाया था। मुसलमानोंने देवमूर्तियां लूट मक्के भेज दीं।

१५५६ ई०को अकबर बादशाहने कांगड़ेका दुर्ग अधिकार किया। उसी समयसे यह पार्वतीय भूभाग दिल्लीके साम्राज्यमें मिल गया, केवल दुर्गम मरुमय स्थान देशी सरदारोंके हाथ रहा। राजपूतोंने दो बार विद्रोही हो कांगड़ा दुर्गके उद्धारकी चेष्टा लगायी थी। जहांगीर दोनों बार (१६१५ और १६२८ ई०) कतोच राजकुमारोंको शासन करने आये थे। अन्तको वेश-सरदार कर देनेपर सम्मत हुये।

जहांगीरने प्राकृतिक सौन्दर्यसे मोहित हो यहां रहनेके लिये ग्रीष्मभवन बनानेको आदेश किया था। आज भी कांगड़ेके गगेरी ग्राममें उक्त ग्रीष्मभवनका चिह्न देख पड़ता है।

दिल्लीके मुसलमान बादशाह कांगड़ेके सरदारोंको उपेक्षा करते न थे। सब लोग विशेष सम्मानार्ह रहे। पदके अनुसार मर्यादा मिलती थी। १६४६ ई०को नूरपुरके राजा जगत्‌चन्द्र शाहजहान्‌के आदेशसे १४००० सैन्यका अधिनेतृपद पाया। उन्होंने उसी सैन्यके साहाय्यसे बलख और बदखशान्‌के ओजबेकोंको हराया था।

१६६१ ई०को औरंगजेबके राजत्वकाल जगत्‌चन्द्रके पौत्र मान्धाता कुछ दिनके लिये सुदूरवर्ती बामियान और गारबन्दके शासनकर्ता बने। २० वर्ष पीछे उन्होंने दो हजारी मनसबदारका पद पाया था।

१७५८ ई०को कांगड़ेके राजा घमण्डचन्द जालन्धर

और इरावती तथा शतद्रु नदीके मध्यवर्ती प्रदेशमें शासनकर्ता बनाये गये।

दिल्लीके बादशाहोंका पूर्व पराक्रम विलुप्त होनेसे राज्यमें एक प्रकारकी अराजकता आई थी। उसी समय प्रायः १७५२ ई०को राजपूत-सरदार स्वाधीन हो कांगड़ेका अधिकांश उपभोग करने लगे। केवल भग्न दुर्ग अहमद शाह दुरानीके आयत्तमें रहा। १७७४ ई०को जयसिंह नामक किसी सिख सरदारने कौशल-क्रमसे कांगड़ेका दुर्ग अधिकार किया, किन्तु १७८५ ई०को कांगड़ेका राजपूत-सरदार संसारचन्द्रको सौंप दिया। इतने दिन पीछे कांगड़ेका दुर्ग फिर कतोच-राजवंशके हस्तगत हुआ। कतोचराज संसारचन्द्र अपने पूर्वपुरुषोंकी भांति स्वाधीन भावसे राजत्व चलाने लगे। पार्वतीय प्रदेशस्थ नाना स्थानोंके सरदारोंने उन्हें कर दिया। दिग्विजयको निकलते समय सब सरदार सैन्य ले संसारचन्द्रके अनुवर्ती बनते थे। वर्षमें एक एक बार प्रत्येक सरदार राजदर्शनको आने पर बाध्य रहा। संसारचन्द्रने २० वर्ष प्रबल प्रतापसे राजत्व चलाया। सम्भ्रम और यशमें यह सब कतोच राजाओंसे श्रेष्ठ थे। १८०५ ई०को संसारचन्द्र और विलासपुरके राजाने शतद्रु और घर्घरा नदी-मध्यवर्ती प्रदेशके गोरखा-सरदारोंसे साहाय्य मांगा था। गोरखा शतद्रु नदी पार आये। वह महलमोरी नामक स्थानमें (१८०६ ई०) कतोच-राजपूतों पर टूट पड़े। बाहु-बलके प्रभावसे राजपूतोंने हार पीठ दिखायी। गोरखा-सरदार कांगड़े राज्यमें घुस दारुण अत्याचार मचाने लगे। कांगड़ा रक्तके स्रोतमें डूबा था। नगर, ग्राम, उपवन, सुन्दर राजप्रासाद प्रभृति सब उजड़ गये। उस समय कांगड़ा राज्य श्मशान और मरुभूमिके समान था। कतोच-राजकुमारोंने प्राण छोड़ गिरिकी गुहामें आश्रय पाया। ऐसा लोमहर्षण-काण्ड क्या कोयी कभी भूल सकता है। कांगड़ेके प्रत्येक ग्राम एवं प्रत्येक नगरमें लोगोंके हृदय पर वह भीषण व्यापार खटकता है।

तीन वत्सर अत्याचार देखने पीछे संसारचन्द्रने महाराज रणजित सिंहसे साहाय्य मांगा। १८०९ ई०को रणजितसिंहने गोरखाओंके विपक्ष युद्धकी घोषणा लगायी थी। भीषण समर आरम्भ हुवा। बड़े कष्टमें रणजित्को जय मिला। गोरखा शतद्रु उतर गये। प्रथम उन्होंने समस्त कांगड़ा राज्य संसार-चन्द्रको सौंप दिया, केवल कांगड़ेका दुर्ग और ६६ ग्रामोंका कर सैन्यव्ययके निर्वाहको अपने हाथ रख लिया। पीछे रणजित् धीरे धीरे पहाड़ी सरदारोंके अधीनस्थ स्थान अपने समयमें मिलाने लगे। १८२४ ई०को संसारचन्द्र मरे। उनके पुत्र अनिरुद्धचन्द्र राजा बने थे। अनिरुद्धचन्द्रने केवल चार वर्ष राजत्व किया। रणजित् सिंहने अपने मन्त्री ध्यानसिंहके पुत्रसे अनिरुद्धकी भगिनीका विवाह ठहराया। कतोच राजकुमारने इससे अपनेको अपमानित होते देख राज्य छोड़ा और हरिद्वारको ओर मुंह मोड़ा। उसी समय समस्त कांगड़ा महाराज रणजित्सिंहके राज्यमें मिल गया। १८४५ ई०को प्रथम सिख-युद्ध होने पर अंगरेजोंने कांगड़ा अधिकार किया। १८४५ ई०को मूल-तानी विद्रोहके पीछे यहांके पहाड़ी सरदारोंने विद्रोह बढ़ानेकी चेष्टा चलायी थी, किन्तु कुछ सिद्धि न पायी। फिर सिपाही-विद्रोहके समय सूचना मिली कि कांगड़े-में सामान्य विद्रोहकी आग भड़की है। उस समय छह विद्रोही सरदारोंको फांसी दी गयी। आज तक फिर कांगड़ेमें कोयी अशान्ति न फैली।

इस जिलेके प्रधान नगरका भी नाम कांगड़ा है। यह अक्षा० ३२° ५४´ १३´´ उ० और देशा० ७६° १७´ ४६´´ पू० पर अवस्थित है। पहले यह नगर नगर-कोट नामसे विख्यात था। कांगड़ा-बाणगङ्गा और विशाखा नदीसङ्गमके निकट पर्वत बसा है। इस नगरमें एक बहुप्राचीन दुर्ग है। भवानी और भवानी-पतिका पूर्वनिर्मित मन्दिर सुन्दर है। कांगड़ेमें जड़ाव और सोनेका काम अच्छा बनता है।

कांगड़ेके लोग साहसी, बलशाली, सरल और स्वाधीनचेता हैं। राजपूत अधिक देख पड़ते हैं।

यहां चिकित्सकोंका एक दल रहता, जो नक-कटोंको अच्छा कर सकता है। अकबर साहब-उद्-दीन एक चिकित्सक थे। उन्होंने नाक बनानेकी

चिकित्सा निकाली। अकबर बादशाहने गुणकीशलसे सन्तुष्ट हो उन्हें कांगड़ेका कुछ स्थान जागीर दिया था।

इस जिलेमें स्वर्ण, रौप्य, लौह, ताम्र, रसाञ्जन, हीरक, मर्मर प्रभृति नानाप्रकार बहु मूल्य द्रव्य उत्पन्न होते हैं।

उद्भिज्ज और पण्यद्रव्यमें यव, गेहूं, चना, शण, कार्पास, इक्षु, तमाखू, चाय, मधु, लवण, और धान्य प्रधान है।

कांगड़ी (हिं० स्त्री०) सन्तप्त क्षुद्र पात्र विशेष, एक छोटी अंगेठी। काश्मीरके अधिवासी शीतसे परित्राण पानेको इसे कण्ठमें बांध वक्ष:स्थलपर लटका लेते हैं। यह अङ्ग रके काठसे प्रस्तुत होती है। कांगड़ीके भीतर मृत्तिका चढ़ा देते हैं।

कांगरू, कंगारू देखो।

कांग्रेस (अं० स्त्री०=Congress) सभा, परिषद्, मुल्कोंका प्रदेशोंका जलसा। इसमें विभिन्न प्रदेशोंके प्रतिनिधि एकत्र हो राजनीतिक विषयोंपर अपना अपना मन्तव्य प्रकाश करते हैं। संयुक्त अमेरिकाकी राजसभा भी कांग्रेस ही कहाती है। भारतमें प्रति वर्ष जातीय कांग्रेस (National Congress) होती है।

कांच (हिं० स्त्री०) १ लांग, धोतीका एक छोर। यह दोनों टांगोंके बीचसे निकाल कमरपर खोंसी जाती है। २ गुदावर्त, गुदाका भीतरी भाग। कभी कभी जोरसे कांखनेपर यह बाहर निकल आती है।

(पु०) ३ मिश्र धातुविशेष, एक मिलावटी धात। यह बालुका और चारको अग्निमें गलानेसे प्रस्तुत होता है। इसमें काञ्चण, पात्र, दर्पण प्रभृति अनेक द्रव्य बनते हैं। काच देखो।

कांचरी (हिं० स्त्री०) कञ्चुलिका, सांपकी केंचुल।

कांचली, कांचरी देखो।

कांचा, कच्चा देखो।

कांचू (हिं० पु०) १ कञ्चुलिका, केंचुल। (वि०) २ कांचका रोगी, जिसके कांच निकल पड़े।

कांछना, काछना देखो।

कांछा (हिं० पु०) १ कांच, कमरमें पीछे खोंसा जानेवाला धोतीका किनारा। २ लंगोटा, चिट। (स्त्री०) ३ आकांक्षा, ख्वाहिश।

कांजी (हिं० स्त्री०) १ काञ्जिक, एक रस। यह खट्टी रहती और कई प्रकारसे बनती है। इसमें अचार और बड़ा भी भिगोया जाता है। कांजी बनानेके चार विधि नीचे लिखते हैं—

१ चावलका माड़ किसी मृत्पात्रमें दो-तीन दिन रख लवणादि डालनेसे यह तैयार होती है।

२ राई पीसकर पानीमें घोल दी जाती है। फिर लवङ्ग, जीरक, शुण्ठी प्रभृति पीसकर मिला उसको मृत्पात्रमें रख छोड़ते हैं। खट्टी होनेसे पहले बड़ा और अचार भी डाल दिया जाता है।

३ दहीका पानी राई और नमक मिलकर रखनेसे उठनेपर कांजी कहाता है।

४ शर्करा और निम्बूकका रस अथवा सिरका मिलाकर पकाया और किमाम बनाया जाता है।

मट्ठे, दही या फटे दूधके पानीको भी कांजी कहते हैं। काञ्जिक देखो। २ कारागारका गृहविशेष, कैद खानेकी एक कोठरी। इसमें कैदियोंको मांड पिलाया जाता है।

कांजीवरम् (हिं०) काञ्चीपुर देखो।

कांजी हाउस (अं० पु०=Kine-house) पशुशाला विशेष, मवेशीखाना। इसमें कृषि आदिको क्षतिग्रस्त करनेवाले पशु सरकार रखती है। फिर प्रभु दण्ड स्वरूप कुछ पैसा रुपया दे उन्हें छोड़ता है। जिनकी कृषिकी हानि पहुंचाते, वह पशुवोंको पकड़ कांजी-हाउसमें हांक आते हैं।

कांट (हिं०) कण्टक देखो।

कांटा (हिं० पु०) १ कण्टक, खूंट। यह तीक्ष्णाग्र अङ्कुर होता है। कतिपय वृक्षोंकी शाखोंपर सूचीकी भांति कांटा निकलता और पुष्ट होनेपर कठिन पड़ता है। २ पदकण्टक, पैरका खूंट। यह मोर, मुर्गे, तीतर बगैरह नर चिड़ियोंके पैरमें निकलता है। लड़ाईमें उक्त पक्षी इसीसे प्रहार करते हैं। कांटेका दूसरा नाम खांग है। ३ गलरोग विशेष, गलेकी एक बीमारी। यह पक्षियोंके गलदेशमें उत्पन्न होता

है। इससे बहुधा पक्षी मर जाते हैं। पालतू पक्षियोंका कांटा निकाल डालते हैं। ४ मुखरोगविशेष, मुंहकी एक बीमारी। इससे मुखमें तीक्ष्णाग्र और पिड़कायें पड़ जाती है। ५ लौहकीलक, लोहेकी कील। ६ कंटिया, मछली मारनेकी चीज। गीला आटा लपेट इसको पानीमें डाल देते हैं। धोकेसे खा जाने पर यह मछलीके मुखमें अटकता और निकाले नहीं निकलता। फिर शिकारी कांटेसे लगी मोटे डोरेकी बन्सीके सहारे खींच मछलीको ऊपर खींच लेता है। ७ यन्त्रविशेष, एक आजार। यह लोहेकी झुकी हुयी कीलोंका एक गुच्छा है। इससे कुयेंमें गिरे लोटे, गगरे वग़ैरह निकाले जाते हैं। ८ तीक्ष्णाग्र वस्तुमात्र, कोई नुकीली चीज़। ८ ग्रन्थनयन्त्र विशेष, गूंथनेका एक औज़ार। यह लोहेकी एक टेढ़ी कील है। पटवे इसमें धागा डाल गूंथनेका काम बनाते हैं। १० लौहसूचीभेद, लोहेकी एक सूयी। यह तुलादण्डके पृष्ठदेशपर लगती है। इससे तराज़ूके दोनों पलड़ोंकी बराबरी मालूम होती है। ११ लौह तुलाभेद, लोहेकी एक तराज़ू। इसकी डांड़ीमें कांटा लगा रहता है। १२ नासालङ्कारविशेष, लौंग, कील, नाकका एक ज़ेवर। १३ खाद्य सम्बन्धीय यन्त्रविशेष, खानेका एक आजार, इससे उठा उठा अंगरेज रोटी वग़ैरह खाते हैं। १४ काष्ठयन्त्रविशेष, वैसाखी, पांचा। इससे कृषक तृणादि बटोरते हैं। १५ सूचिविशेष, सूजा। १६ घटिका सूचि, घड़ीकी सूयी। १७ गणितमें गुणनफलकी शुद्धाशुद्धपरीक्षा, ज़रबकी जांच। इसमें दो रेखायें आरपार बनायी जाती हैं। फिर गुण्यके अङ्क एकत्र संयुक्त कर ९से भाग लगाते हैं। शेष अङ्क एक रेखाकी किसी सीमापर रखते हैं। इसी प्रकार गुणकके भी अङ्क जोड़ और नौसे तोड़कर शेष अङ्क रेखाके दूसरे प्रान्त पर रखा जाता है। यह संमुखीन उभय अङ्क गुणन और ९से विभागकर शेष अङ्कको दूसरी रेखाके एक अवसान पर लगाते हैं। फिर गुणनफलके अङ्क जोड़ने और ९से तोड़ने पर यदि शेष अङ्क पूर्वोक्त अङ्कसे मिल जाता, तो गुणनफल शुद्ध समझा जाता है। १८ गणितसम्बन्धीय शुद्धाशुद्ध परीक्षाकी क्रिया, हिसाब जांचनेकी तरकीब। १९ मल्लयुद्धविशेष, किसी किस्मकी कुश्ती। इसमें पहलवान् भिड़कर नहीं लड़ते, दूर होसे काट छांट करते है। २० अनुर्वरा भूमिविशेष, एक ऊसर। यह यमुना किनारे मिलता है। कांटेमें कोयी चीज़ उत्पन्न नहीं होती। २१ किसी किस्मका बेलबूटा। यह दरीमें नोकदार निकाला जाता है। २२ अग्निक्रीड़ाविशेष, एक आतशबाज़ी। २३ मछलीका कांटा। २४ दुःखदायी पुरुष, तकलीफ़ देनेवाला आदमी।

कांटादार (हिं० वि०) कण्टकान्वित, कंटीला।

कांटी (हिं० स्त्री०) १ क्षुद्र कीलक, छोटी कील। २ क्षुद्रतुलाभेद, एक छोटी तराज़। इसके दण्डपर सूचि लगती है। कर्मकारादि कांटीसे काम लेते हैं। ३ कंटिया, अंकुड़ी। ४ यन्त्रविशेष, एक औज़ार। यह किनारे पर लोहेकी अंकुड़ी लगी एक लकड़ी है। इससे सर्प पकड़े जाते हैं। ५ बेड़ी, कैदियोंके पैरमें डाले जानेवाले लोहेके कड़े। ६ किसी किस्मकी सूयी। यह धुनि जाने पीछे झिल्लीमें लिपटी रहती है। २ बालकोंकी एक क्रीड़ा, लङ्गड़ लगानेका खेल।

कांटेदार, कांटादार देखो।

कांठा (हिं० पु०) १ कण्ठ, गला। २ चिह्न विशेष, एक निशान। यह शुकपक्षीके गलप्रान्त पर मण्डलाकार पड़ जाता है। ३ उपकण्ठ, किनारा। ४ पार्श्व, बग़ल। ५ काष्ठदण्डविशेष, एक लकड़ी। यह एक बित्ते लम्बी और पतली होती है। इस पर तन्तुवाय बाना बुननेको रेशम चढ़ाते हैं। बादलेका ताना कांठेसे ही बुना जाता है।

कांड़ना (हिं० क्रि०) १ कण्डन करना, रौंद डालना। २ कूटना, छुरना। ३ मारना-पीटना, लतियाना।

कांडली (हिं० स्त्री०) कायफ, कुलफा, लोनी।

कांड़ा (हिं० पु०) १ वृक्षरोग विशेष, पेड़ोंकी एक बीमारी। इससे वृक्षोंके काष्ठमें कीटादि लग जाते है। २ काष्ठकीट, लकड़ीका कीड़ा। ३ दन्तकीट, दांतोंमें लगनेवाला कीड़ा।

कांड़ी (हिं० स्त्री०) १ उदूखलगर्त, ओखलीका गड्ढा। इसमें डालकर मुषलसे अन्न कूटा जाता है। २ सिमेंभू

गड़ा हुवा काष्ठ वा प्रस्तरखण्ड, जमीनमें गड़ा हुवा लकड़ी या पत्थरका टुकड़ा। इसमें अन्न कूटनेको गर्त रहता है। ३ हस्तिरोगविशेष, हाथीकी एक बीमारी। इससे पैरके तलवेमें एक बड़ा व्रण पड़ जाता और हाथी चलने फिरनेमें बड़ा कष्ट पाता है। व्रणमें क्षुद्र क्षुद्र कृमि होते हैं। ४ काष्ठदण्डभेद, लकड़ीका दण्डा। इससे गुरुभार द्रव्योंको चढ़ाते, उतारते और हटाते हैं। ५ लक्कड़की डांड़ी। यह मुड़े हुये अंकुड़ों पर रहती है। ६ वंश वा काष्ठखण्ड विशेष, बांस या लकड़ीका एक लट्ठा। यह पतला तथा सीधा रहता और मकानके छज्जोंमें लगता है। इससे दूसरे काम भी निकलते हैं। ४ काण्ड, लट्ठा। ५ रहठा, अरहरकी सूखी लकड़ी। ६ दियासलाई। ७ मत्स्यसमूह, मछलियोंकी टोली।

कांथरि (हिं०) कन्या देखो।

कांदना (हिं० क्रि०) रोदन करना, चीख मारना, फूट फूट रोना।

कांदव (हिं० पु०) कर्दम, कीचड़।

कांदा (हिं० पु०) १ कन्दली, एक पौदा। यह प्याजकी भांति ग्रन्थिविशिष्ट होता है। पत्रक प्याजसे कुछ प्रशस्त रहते हैं। कांदा सरोवरोंके निकट उपजता है। वर्षाका जल मिलनेसे पत्र निकलते हैं। पुष्प श्वेतवर्ण रहते हैं। उन पर रक्तवर्ण पांच-छह खड़ी रेखायें पड़ जाती हैं। रेखावोंके प्रान्त भागपर अर्धचन्द्राकार पीतवर्ण चिन्ह होते हैं। कांदेके डलेसे माड़ी बनती है। इसका अपर नाम कंदरी वा कंदली है। २ प्याज।

कांदू (हिं० पु०) कंदोयी, बनियोंकी एक जाति। यह हलवाईका काम करते हैं।

कांदो, कांदव देखो।

कांध (हिं० पु०) १ स्कन्ध, कन्धा। २ कोल्हूका एक हिस्सा। यह पतला रहता और जाठमें मुण्डीके ऊपर पड़ता है।

कांधना (हिं० क्रि०) १ कन्धे या शिर पर रखना, उठाना। २ नाधना, मचाना। ३ स्वीकार करना, मानना। ४ भार सहन करना, बोझ उठाना।

कांधर (हिं० पु०) कृष्ण, कान्हा।

कांधा (हिं०पु०) १ स्कन्ध, कान्धा। २ कृष्ण, कान्हा।

कांधी (हिं० स्त्री०) स्कन्ध, कांध।

कांप (हिं० स्त्री०) १ तीली, पतली छड़। यह बांस या किसी दूसरी चीजकी रहती और लचानेसे झुक पड़ती है। २ कनकौवेकी पतली तीली। यह कमानकी तरह झुका कर कनकौवेके ऊपरी हिस्सेपर लगायी जाती है। कनकौवा कचियानेसे इसमें कन्ना बंधता है। ३ शूकरका कांटा या खांग। ४ हस्तिदन्त, हाथीदांत। ५ कर्णालङ्कार विशेष; कानका एक जेवर, यह सादी और जड़ाऊ दो तरहकी होती है। कांप सोनेकी रहती और पत्रकके आकारमें बनती है। स्त्रियां एक साथ पांच-पांच सात-सात कांपें अपने कानोंमें डाल लेती हैं। यह धक्का लगनेसे हिल उठती हैं। ६ कान-फूल। ७ कलईका चूना। ८ कंपकंपी।

कांपना (हिं० क्रि०) कम्पित होना, थरथराना। २ भय करना, डरना।

कांपिल्ल (हिं०) काम्पिल्य देखो।

कांयकांय (हिं०स्त्री०) काकका शब्द, कौवेकी बोली।

कांव कांव (पु०) कांय कांय देखो।

कांवर (हिं० स्त्री०) १ बहंगी, बांसका मोटा फट्टा। इसके दोनों किनारे द्रव्यादि रखनेको छींके लगा देते हैं। २ यात्रियोंके गङ्गाजल ले जानेका यन्त्र। यह एक टप्पा होता है। किनारों पर बांसकी दो टोकरियां बांध दी जाती हैं।

कांवरा (हिं० वि०) उद्विग्न, घबराया हुवा।

कांवरि, कांवर देखो।

कांवरिया (हिं० पु०) कांवर ले जानेवाला।

कांवरू (हिं०पु०) १ कामरूप। कामरूप देखो। २ कामल रोग, एक बीमारी।

कांवारथी (हिं० पु०) एक तीर्थयात्री। यह अपनी कामनाके लिये कांवर ले तीर्थयात्रा करता है।

कांस्य (वै० पु०) कंसे भवः, कंस बाहुलकात् इन्, वेदे पृषोदरादित्वात् सस्य सत्वम्। कांस्य, कांसेका प्याला। कांस्यनील, कांस्यनील देखो।

कांस (हिं०) काश देखो।

कांस (सं० त्रि०) कंसो देशभेदो ऽभिजनो ऽस्य, कंस-अण्। सिन्धुतक्षशिलादिभ्योऽणञौ। पा ४। ३। ९३। कंसाधिष्ठित भोजदेशीय, कंस देशमें पैदा होनेवाले।

कांसपात्र (सं० क्ली०) आढ़क परिमाण, ४०९६ माशेकी तौल।

कांसा (हिं० पु०) १ कांस्य, कसकुट, भरत। यह तांबे और जस्तेसे मिलकर बनता है। २ कासा, भीख मांगनेका खप्पर।

कांसागर (हिं०) कांसकार देखो।

कांसिका (सं० स्त्री०) मुद्गपर्णी, मोठ अनाज।

कांसी (सं० स्त्री०) १ सौराष्ट्रमृत्तिका। २ कांस्यधातु।

कांसी (हिं० स्त्री०) १ धान्यरोगविशेष, धानके पौदेकी एक बीमारी। २ कांस्य, कांसा। ३ कनिष्ठा, सबसे छोटी औरत। ४ कामरोग, खांसी। कांसीय, कांस देखो।

कांसुला (हिं०पु०) यन्त्रविशेष, एक औज़ार, कंसुला। यह कांस्य धातुका एक चतुष्कोण खण्ड होता है। इसकी चारो ओर गोलाकार गर्त बनाये जाते हैं। स्वर्णकार कंसुले पर रौप्य वा स्वर्णके पत्र रख कटोरा घुण्डी तैयार करते हैं।

कांस्टेबिल (अं० पु०—Constable) दण्डधर, राजपुरुष, गुरैत, चौकीदार, पुलिसका सिपाही। पुलिसके सिपाहियोंका जमादार 'हेड कांस्टेबिल' और चन्द-रोज़का चौकीदार 'स्पेशल कांस्टेबिल' कहलाता है।

कांस्य (सं० क्ली०) कंसाय पानपात्राय हितं कंसीयं तस्य विकारः, कंसीय-यञ् छलोपः। कंसीय परशव्ययोर्यञ्लौ लुक्च। पा। ४। ३। १६८। कंसमेव इति स्वार्थे यञ् वा। १ पानपात्र, कटोरा, प्याला। २ ताम्र और रङ्गका उपधातु, कांसा, कसकुट, तांबे और जस्तेको मिला कर बनाया हुवा एक उपधातु। इसका संस्कृत पर्याय कंस, कंसास्थि, ताम्रार्ध, सौराष्ट्रक, घोष, कांसीय, वह्निलोहक, दीप्तिलोह, घोरपुष्प, दीप्तिकांस्य और कास्य है। राजनिघण्टुके मतसे यह तिक्त, उष्ण, रुच, कषाय, लघु, अग्निदीपक, पाचक, स्रोतःसमूह तथा चक्षुके लिये हितकारक, रुचिकारक और वायु एवं कफरोगनाशक होता है। राजवल्लभने इसे अम्लरस, विशद, लेखन, सारक और पित्तनाशक भी कहा है। सुखबोधके मतमें यह देहकी दृढ़ता और आयु बढ़ाता है। इसका शोधन मारण प्रभृति ताम्रकी भांति किया जाता है। किसी किसीने इसके शोधन और मारणका विधि स्वतन्त्र भी माना है। शोधनके लिये कांस्यके पतले पतले पत्र अग्निमें खूब तपाये और तीन तीन बार तैल, तक्र, काञ्जिक, गोमूत्र तथा कुलत्थमें बुझाये जाते हैं। मारणमें कांस्यके क्षुद्र पत्रोंपर अर्कक्षीरसे गन्धक पीस गाढ़ लेपन चढ़ाते और मूषापुटमें उन्हें रख गजपुटसे पकाते हैं। (भावप्रकाश) ३ वाद्यविशेष, घड़ियाल। ४ मानविशेष, एक तौल। (त्रि०) ५ ताम्ररङ्ग उपधातुसे सम्बन्ध रखनेवाला, भरतिया।

कांस्यक (सं० क्ली०) कांस्य देखो।

कांस्यार (सं०पु०) कंस्यं तत् पात्रं करोति, कांस्य-कृ-अण्। कांसकार, कसेरा। कसेरा देखो।

कांस्यज (सं० त्रि०) कांस्याज्जायते, कांस्य-जन-ड। कांस्य धातु द्वारा प्रस्तुत; कांसेका बना हुवा।

कांस्यताल (सं० पु०) कांस्येन निर्मितः तालः, मध्यपदलो०। १ करताल। २ मंजीरा।

कांस्यदोहनी (सं० स्त्री०) कसोरी, कांसेकी दुदुहंडी।

कांस्यनील (सं० पु०) कांस्येन कृतः नीलः, मध्यपदलो०। नीलतुत्थ, तूतिया, नीलाथोथा। इसका संस्कृत पर्याय भूषातुत्थ, हेमतार और वितुन्नक है।

कांस्यभाजन (सं० क्ली०) ताम्र और रङ्गका उपधातु, कांसा।

कांस्यमय (सं० त्रि०) कांस्यसे बना या भरा हुवा, जो कांसेसे बना या भरा हो।

कांस्यमल (सं० क्ली०) ताम्रकिट्ट, जङ्गार, तांबेका कसाक।

कांस्यमाक्षिक (सं० क्ली०) धातु द्रव्यविशेष, किसी किस्मका चकमक।

कांस्याभ (सं० त्रि०) कांस्यसदृश आभाविशिष्ट, कांसेकी तरह चमकनेवाला।

कांस्यालु, कांसालु देखो।

काक (हिं० पु०) १ वृक्ष विशेषकी वाह्यत्वक्, अधारा, कागकी छाल। यह मृदु रहता और दबानेसे कुछ

रबरकी तरह लचता है। इससे बोतलमें लगानेको गट्टा बनाते हैं। पिधान, डाट, काग।

यह शब्द अंगरेजी 'कार्क' (Cork) का अपभ्रंश है।

काक (सं० क्ली०) कु ईषत् कं जलम्, को कादेशः। १ ईषत् जल, थोड़ा पानी। काकस्य समूहः। २ काक-सकल, कौवोंका झुण्ड। ३ सुरतबन्धविशेष।

काकपद देखो।

(पु०) कायति शब्दायते, कै-कन्। इण्भीका पाशल्यतिमर्चिभ्यः कन्। उण् ३। ४३। ४ पक्षिविशेष, कौवा, एक चिड़िया। इसका संस्कृत पर्याय—करट, अरिष्ट, बलिपुष्ट, सकृत्-प्रज, ध्वाङ्क्ष, आत्मघोष, परभृत्, बलिभुक्, वायस, वातजव, बल, दीर्घायु, सूचक, कृष्ण, ग्रामीण, पिशुन, कटखादक, द्विक, काग, काण, धूलिजंघ, निमित्तकृत्, कौशिकारि, चिरायु, सुखर, खर, महालोल, चिर-जीवी, चलाचल, करटक, नागवीरक, गूढ़मैथुन, लम्पटाक, श्रावक और रतज्वर है।

पृथिवीके उत्तरांशमें प्रायः सर्वत्र काक देख पड़ता है। फिर भारतवर्षमें सकल स्थानोंपर यह मिलता है। हिन्दुस्थानमें इसे कौवा, काग और कागला कहते हैं। काककी श्रेणीका विभाग नाना प्रकार है। टैदेशिक शाकुनशास्त्रवेत्ताओंके मतमें काक 'करविडी' (Corvidæ) विभागका अन्तर्गत 'करविनी' (Corvinæ) श्रेणीयुक्त 'करवस्' (Corvus) जातीय होता है। 'करवस' जातीय पक्षियोंका नासारन्ध्र कपालके बिलकुल नीचे नहीं पड़ता, ऊर्ध्व चञ्चुके प्रायः मध्य-स्थलमें नासाके १२।१४ लोम (चञ्चुकी ओर पार्श्वपर तीक्ष्ण लोमकी भांति आकारविशिष्ट कामल अथच सूक्ष्म पालक)से आवृत रहता है। यही इस जातिका विशेष चिन्ह है। फिर चञ्चु दीर्घ, कठिन, गुरु और सरल होता है। ऊर्ध्व चञ्चुकी उच्चता कुछ अधिक लगती है। पक्षका क्रम सूक्ष्म और दीर्घ रहता है। प्रथम पर छोटा होता है। किन्तु द्वितीय पर प्रथमकी अपेक्षा बड़ा पड़ता है। फिर तृतीय और चतुर्थ पर सबसे बड़ा निकलता है। पञ्चमसे क्रमशः पर छोटे पड़ते जाते हैं। पुच्छ मध्यविध रहता है। पुच्छका अग्रभाग अधिकांश गोलाकार होता है। पैर दृढ़ लगता है। ग्रन्थि सरल रहते हैं। पैरका पाता मध्यविध लगता है। क्षुद्र अङ्गुलियां प्रायः समान आती हैं। नख तीक्ष्ण और खुर वक्र होते हैं। यह शाखा-प्रशाखोंपर बैठ और भूमिपर भी चल सकता है।

१ देशी कौवा—हिन्दुस्थानमें जो कौवे साधारणतः देख पड़ते, उन्हें 'काग' 'कौवा', 'कागला' प्रभृति कहते हैं। ठीक नाम देशी कौवा है। इनका कपाल, मस्तक एवं मुखमण्डल चिक्कण कृष्णवर्ण, घाड़, गल-देश, पृष्ठ, वक्षःस्थल तथा उदर पांशुवर्ण, पुच्छ एवं मुखमण्डल चिक्कण कृष्णवर्ण, और गलदेशका पालक (पर) विरल रहता है। कृष्णवर्ण पालकोंमें पिङ्गल और हरित् वर्णकी चिक्कणता झलकती है। यह १५से १७।१८ इञ्च दीर्घ होते हैं। पुच्छका पालक ७ इञ्च, पक्ष ११ इञ्च और पद २ इञ्च रहता है। पाश्चात्यपण्डितोंके मतमें इनका नाम 'करवस् स्प्लेण्डेन्स' (C. Splendens) अर्थात् साधारण काक है। अंगरेज इन्हें 'भारतीय साधारण' कौवा कहते हैं। संज्ञास्थलसे यह 'ग्राम्यकाक' कहला सकते हैं। हिमा-लयकी पादमूलसे सिंहल पर्यन्त सर्वत्र यह काक देख पड़ते हैं। सिकिममें इसका अभाव है। नेपाल और काश्मीरमें यह कम मिलते हैं। भारतवर्षके भिन्न भिन्न स्थानोंमें जलवायुके गुणसे इनका वर्णव्यत्यय पड़ता है। सिन्धु, राजपूताना प्रभृति शुष्क प्रदेशोंमें इनके नातिकृष्ण रंगवाले पर प्रायः सादे रहते हैं। फिर सिंहलद्वीप और दाक्षिणात्यके समुद्रोपकूलमें इनके पालक (पर) गाढ़ कृष्णवर्ण होते हैं।

काकके स्वजातीयोंमें परस्पर बन्धुता देख पड़ती है नगर, ग्राम और बहुजनाकीर्ण स्थानमें यह अधिक संख्यासे दल बांध एकत्र रहते हैं। उक्त सकल स्थानोंके निकटवर्ती किसी बृहत् वृक्षपर प्रायः १००।२०० देशी मिल कर रात बिताते हैं। केवल गर्भके समय कोई घोंसला बनाता। अण्डे देनेसे केवल स्त्री पुरुष दो ही कौवे घोंसलेमें घुसते हैं। दूसरे सबके सब वृक्ष पर ही रह रात काटते हैं। सन्ध्याकालको सूर्यास्तके पीछे ही १०।२० मील दूरसे कौवे दल बांध आते और रात्रिको दो तीन दण्ड पर्यन्त अपने-सोनेका स्थान

ठहरानेके लिये वृक्षको डालोंपर कांकां मचाते हैं। दूसरे दिन सवेरे प्रायः दो दण्ड रात्रि रहते फिर अपना वही धुनि लगा यह इधर उधर चक्कर लगाते और अन्तको सूर्य निकलनेसे आश्रय छोड़ चारो ओर उड़ जाते हैं। उड़ते समय कौवे तीनसे तीस चालीस तक एकत्र एक टिकको चलते हैं। आहारकी चेष्टाको अधिक दूर जानेवाले ही सवेरे सवेरे निकलते हैं। निकट रहनेवाले वृक्षपर बैठ अनेक क्षण आलाप लगाया वा पर बनाया करते हैं।

यह मनुष्यके खाद्यावशेषसे ही प्रायः जीविका चलाते हैं। कौवे जिस ग्राम वा नगरके निकट ठहरते, उसमें घर घरके भोजन बनने और उच्छिष्ट फिकनेसे अवगत रहते हैं। फिर समय देख यह वहां जा पहुंचते हैं। सभी कौवे यह बातें समझते हैं। किन्तु सबके सब एक ही स्थानपर धावा नहीं मारते। कुछ इसी प्रकार लोकालयोंमें आते, कुछ नदी किनारे कर्कट भेक एवं क्षुद्र मत्स्य वा कीटादि पकड़ने जाते, कुछ मैदानमें पहुंच गवादिके शरीर जात कीट अथवा शस्यकी कणायें खाते, कुछ मृत जन्तुका शरीर ढूंढने को पैर बढ़ाते और कुछ कदली, वट, आम्र प्रभृतिके फलित वृक्षों पर दृष्टि लगाते हैं। वर्षाकालमें सन्ध्या या सवेरे पतिङ्गे उड़नेसे यह फूले नहीं समाते। दलके दल कौवे आ उन्हें पकड़ पकड़ खाते हैं। ग्रीष्मकालमें इन्हें बड़ा कष्ट मिलता है। प्रति दिन आठ दश घड़ी धूप चढ़ते ही ग्रीष्मसे घबरा अट्टालिकादि वृक्षादिकी छायामें बैठे कौवे हांफा करते है। रौद्र कम पड़नेसे यह फिर घूमने निकलते हैं। प्रत्यह चुगनेको चलते समय कौवे राहमें दल बांधते आते हैं। घूम फिर एक एक अट्टालिकाको छत या क्षुद्र वृक्षादिपर बैठ जाते और अपने दलके आवासकी ओर चलते समय साथही दौड़ लगाते हैं।

वैशाख और भाद्रके मध्य कौवे अण्डे देते हैं। एक एक वृक्ष पर अधिकसे अधिक तीन कौवे घोंसला बनाते हैं। खर पतवारसे ही इनका घोंसला तैयार हो जाता है। किन्तु कलकत्तेवाले कौवोंके घासलोंमें टीनके टुकड़े और तारभी मिलते हैं। यह एक साथ चार अण्डे देते हैं। अण्डे कुछ हरे रहते और उनपर भूरे भूरे दाग पड़ते हैं। अण्डेका रंग बहुत सुन्दर लगता है। कोकिल स्वयं घोंसला नहीं बनाता, कौवेके घोंसले हीमें अण्डे देनेका ढंग लगाता है। बोलना सीखते ही कोकिलके शावकको काकी ठोकर मार घोंसलेसे भगा देती है। ईश्वरकी महिमा अपार है। जब तक कोकिलका शावक उड़ नहीं सकता, तब तक उसे बोलना भी कठिन पड़ता है। सुतरां काकी उसे स्वीय सन्तानके निर्विशेषसे पालती है। काक उसको अनेक दिनों आहार दिया करते हैं।

काक अतिद्रुत उड़ सकता है। बड़ी चील कभी कभी मुखस्थित आहार छीननेके लिये कौवेको खदेड़ती है। उस समय यह जिस तेजीसे भगता, उसे देख विस्मित होना पड़ता है।

काक अतिचतुर और बुद्धिमान् है। इसकी धूर्तताके सम्बन्धमें यथेष्ट गल्प चलते हैं। यह बहुत निर्भीक रहता है। मनुष्यके भोजन करते और निकट ही बिड़ाल बैठा रहते भी कुछ लक्ष्य न कर काक खिड़कीसे घुस पड़ता और पात्रसे अन्न उठा चलते बनता है। यह लोगोंके सामने कूद कूद भूमि पर फिरता, बिन्दुमात्र भी भय नहीं करता। किन्तु किसीके एक दृष्टि ताक लगाते काक उसी क्षण भाग खड़ा होता है। यह अत्यन्त सन्दिग्धचित्त है। सामान्य भयकी सम्भावना रहते भी कौवा उस ओर कम जाता है।

काक स्वजातीयका मृतदेह देखने या बन्दूककी आवाज सुननेसे महाकोलाहल उठा एकत्र होते हैं। फिर यह उस स्थानको विरक्त कर डालते हैं। जब तक कोई शेष फल नहीं देखाता, तब तक कौवोंका दल वहां आता जाता है।

इसका परिहास बहुत प्रिय है। दो-तीन काक मिल चिल्ल, शकुनि वा अन्यान्य पक्षीको पुच्छ पकड़-कर घसीटते घसीटते घबरा देते हैं। उसके विरक्त हो उड़ जाने या चत्कार मारनेसे महा आनन्दमें यह कांकां करने लगते हैं। इसी प्रकार काक बिड़ालके मुखसे आहार भी निकाल लेते हैं।

यह दुष्ट दरिद्रोंके लिये अति अनिष्टकर है। कभी कभी कौवा फूसके छप्पर या झोपड़ेमें खाद्यादि छिपा रखता है। आवश्यक स्थान न पाते यह अधिकांश तृणादि खींच घर तक उलट देता है।

यह कारचोटियेसे बहुत घबराता है। उसे देखते ही काक स्थान छोड़ भागता है। वह भी इसके पीछे पड़ जाता है।

भारतवासियोंके नवान्न पर्वपर काकका बड़ा आदर होता है। प्रत्येक गृहस्थ 'नवान्न' ले घरकी छतपर चढ़ता और इसको आने बोलाया करता है। किन्तु उस दिन काकका आना कठिन पड़ता है। क्योंकि यह सर्वत्र भोज्य मिलनेसे तृप्त रहता है।

२ (क) गङ्गापारी कौवा—'करवस' जातिमें सबसे बड़ा होता है। भारतवर्षके उत्तराञ्चलमें यह अधिक देख पड़ता है। इसीसे हिन्दूस्थानी इसे 'गङ्गापारी' कौवा कहते है। सिन्धु, राजपूताना प्रभृति कई देशोंमें यह ग्रीष्मकालको नहीं रहता। शरत्के प्रथम यह आता और वसन्तके पश्चात् ही अफगानस्तान, काश्मीर प्रभृति शीतप्रधान देशोंको चला जाता है। हिमालय प्रदेशमें १४००० फीट ऊंचे यह मिलता, दूसरे पार्वत्य प्रदेशमें देख नहीं पड़ता। बङ्गाल, युक्त प्रदेश और पञ्जाबमें भी यह होता है। गात्र गाढ़ नील आभायुक्त चिक्कण कृष्णवर्ण रहता है। गलदेशके पालक दीर्घ और विरल होते हैं। ऊपरी ओंठ (टोंट)-का अग्रभाग कुछ वक्र लगता है। ऊर्ध्व चञ्चुकी उच्चता अधिक पड़ती है। पक्ष १५ इञ्च और देह २५से २७ इञ्चतक दीर्घ होता है। चञ्चुके उभय पार्श्वोंमें गड्ढा रहता है। चञ्चु और पदद्वय घोर कृष्ण वर्ण होता है। ऊर्ध्व चञ्चुका अग्रभाग कुछ वक्र रहता है। इसे बङ्गाली 'डोम काग' अंगरेज 'रावेन' (Raven), स्काच 'कर्बी' ग्रीनलवासी 'क्रप', दिनमार 'रैन', जर्मन 'क्रोलक्रेड', फरासीसी 'करबो', इटालीय 'क्रवो', रोमक 'करवस्', स्पेनीय 'एल कुइवर्वो', पश्चिम भारतीय द्वीपवासी 'कप कप गिड', और एसकुइमाने 'तुलुआक' कहते हैं। वैदेशिक शाकुनशास्त्रमें इसको करवस् कोराक्स (Corvus Corax) लिखते हैं।

हिमालय और युरोपमें रहनेवाला डोमकाक अधिक भीरु होता है। यह कभी लोकालयमें जाना नहीं चाहता। किन्तु भारतके अन्यान्य स्थानोंका डोम-काक देशी कौवेको भांति निर्भीक रहता और ग्रामोंमें इच्छानुसार आया जाया करता है। यह अति द्वन्द्वप्रिय है। डोमकाक लड़ते लड़ते इतना उन्मत्त पड़ता, कि दोमें एक न एक अवश्य मरता है। सिन्धु-प्रदेशमें प्रति वर्ष शरत्कालको जब इनका दल आता, तब अनेकोंको मृत्यु घर दबाता है। इससे लोग अनुमान लगाते कि डोम काक स्वभावसुलभ द्वन्द्व-प्रियताके कारण ही मर जाते है। सिन्धुप्रदेशवाले जातिगत कण्ठस्वरसे भिन्न घण्टेके ध्वनिकी भांति एक प्रकार शब्द निकाल सकते हैं। युक्तप्रदेशमें यह घास फूससे मैदान या दलके जङ्गलमें बड़े बड़े वृक्षोंकी शिखाओंपर घोंसले बनाते हैं। इसके चार-पांच अण्डे होते हैं। प्रायः पौष माससे फाल्गुन तक यह अण्डे देते हैं। अण्डे हरित् आभायुक्त तरल नील वर्ण होते हैं। उनपर काले सटमैले, बैंगनी और लाल रङ्गके धब्बे पड़ जाते हैं।

(ख) भूटानका डोमकाक—हिमालयके ऊर्ध्व-तम प्रदेश, काश्मीर, कुमायूं राज्य और तिब्बतमें एक प्रकारका २८ इञ्च दीर्घ काक होता है। इसका पक्ष १९ इञ्च बढ़ता है। ऊर्ध्व चञ्चुके मूलकी उच्चता अधिक रहती और पूंछ भी दीर्घ लगती है। अन्यान्य अवयव साधारण देशीय काककी भांति होते हैं। दो चार वैदेशिक शाकुनशास्त्रविद् इसे एक स्वतन्त्र जाति मान 'करवस् टिबेटेनास्' (Corvus Tibetanus) नामसे अभिधान करते हैं। किन्तु आकारकी सामान्य दीर्घता छोड़ इसमें कोई अन्य विभिन्नता देख नहीं पड़ती। इसीसे बहुतसे लोग तिब्बती कौवेको देशीयोंमें गिनते हैं।

युरोपीय शाकुनशास्त्रविद् कहते कि डोमकाक (Raven) मनुष्योंके कण्ठस्वरका अतिसुन्दर अनुकरण कर सकते हैं।

(ग) पाटलचूड़ (गुलाबी चोटीवाला) काक—मरुप्रदेशमें होता है। इसका कपाल और मस्तक

पाटलाभ (गुलाबी) पिङ्गलवर्ण रहता है। थोड़ेसे अंशमें बैंगनी रंगकी चिक्कणता झलकती है। ऊपरी स्तरके पालक चिक्कण एवं कृष्णवर्ण और निम्न स्थानीय पाटलाभ पिङ्गलवर्ण लगते हैं। पिङ्गलवर्ण पालकोंका प्रान्तभाग रक्ताभ होता है। चञ्चुका पुट काला पड़ता है। दोनों पद भी काले ही रहते हैं। दैर्घ्य २२ इञ्च है। सिन्धुप्रदेशके याकूबाबाद और लारखानेके मरुप्रदेशमें शीतकालमें भी यह देख पड़ता है। पञ्जाबी डोमकाक (C. corax)से इसके गात्रका वर्ण भिन्न लगता है। दूसरा पार्थक्य गलदेशके पालकोंकी क्षुद्र आकृति और देहके परिमाणकी लघुता है। इसका वैज्ञानिक नाम 'करवस् अम्ब्रिनस्' (C. Umbrinus) अर्थात् पाटलचूड़ काक है। यह भारतके युक्तप्रदेशसे मिसर और एशियाके पश्चिम तथा दक्षिणस्थ देश तक सकल स्थानोंमें मिलता है।

२ कौड़ियाला कौवाको उत्तर-भारतीय 'डांड' या 'डाल कौवा', दक्षिणमें 'धेरी कौवा', तेलङ्ग 'काकी', तामिल 'काका', लेपचा 'उलकफो', भूटानी 'उलक' और अनेक अंगरेज़ 'रावेन' (Raven) कहते हैं। किन्तु शाकुनतत्त्वज्ञ अंगरेज़ पण्डितोंने इसका नाम 'इण्डियन कर्बी' (Indian Corby) रखा है। इसकी श्रेणीके कई भेद हैं। उनमें कुछ नीचे लिखते हैं।

(क) गलित मांसभुक्—भारतीय कौड़ियाले कौवेके ऊपरी पर चिकने और खूब काले होते हैं। किन्तु नीचेवाले अधिक कृष्णवर्ण नहीं रहते। पुच्छके पालकोंका संस्थान ईषत् गोलाकार लगता है। पक्ष विशेष दीर्घ पड़ता और प्रायः पुच्छके अन्ततक विस्तृत रहता है। चञ्चुका पुट सरल बैठता है। उच्च चञ्चुका सम्मुखस्थ भाग उच्च और अग्रभाग वक्र होता है। गलदेश (थाड़) और चञ्चुपार्श्वद्वयके पालकोंमें चिक्कणता कम झलकती है। इस स्थानके पालक कचौके पालेकी भांति लगते हैं। उनमें खूंटी (डांठि) देख नहीं पड़ती। कण्ठ, पद और अङ्गुलिका वर्ण काला होता है। यह १८ इञ्च दीर्घ रहता है। पक्षका ग्यारहसे चौदह, पुच्छका सात, पैरकी खूंटीका दोसे अधिक और कण्ठका दैर्घ्य ढाई इञ्च है।

इसको अंगरेजी शाकुनशास्त्रमें 'करवस माक्रोरिंहिंकुस' (C. macrorhynchus) अथवा 'करवस कलमिनाटस्' (C. culminatus) लिखते हैं। यह भारतवर्षके वनों, पर्वतों, लोकालयों प्रभृति सकल स्थानोंमें रहते हैं। पूर्व उपद्वीप और भारतीय द्वीपश्रेणीमें भी इनकी कोई कमी नहीं। ग्रामकाककी भांति अगण्य न रहते भी अन्यान्य जातीयोंकी अपेक्षा यह संख्यामें अधिक बैठते हैं। लोकालयकी अपेक्षा इन्हें वन अथवा पर्वतमें रहना अच्छा लगता है। यह प्रधानतः मृत जन्तुका मांसादि खाते हैं। इसीसे अंगरेज़ इन्हें 'कर्बी' वा 'कैरियन' अर्थात् 'गलितमांसभुक्' (सड़ा गोश्त खानेवाले) कहते हैं। यह भी अण्डे देते समय किसी दुर्गम वनमें निरुपद्रव वृक्षपर घोंसला बनाते हैं। घोंसला सूखी घास, पत्ते और बालसे कोमल तथा उष्ण कर लिया जाता है। एक बारमें तीन-चार अण्डे होते हैं। अण्डा हलका हरा रहता और उसपर भूरा भूरा दाग पड़ता है। वैशाखसे श्रावण मासके मध्य तक अण्डे देनेका समय है। इनके भी घोंसलोंमें कोयल अपने अण्डे रख देती है। यह बड़े अनिष्टकारी हैं। छोटे छोटे मुरगी, कबूतरके बच्चे और चिड़े पकड़ ले भागते हैं। बकरीका छोटा बच्चा भी इनके चञ्चुपुटाघातसे मृत्युमुखमें पड़ता है। दूसरे पक्षियोंका घोसला या अण्डा तोड़ते देख इनको 'राजकाक' खदेड़ता हैं। अनेक अंगरेज़ इन्हें 'जङ्गल-क्रो' (Jungle crow) कहते हैं।

(ख) युरोपीय 'कारियनक्रो' (Carrian crow) बिलकुल भारतीय गलित मांसभुक्की भांति होता है। केवल उसके गात्रका वर्ण घोर कृष्ण और कपोल (गाल)का पालक मृदु नहीं रहता। सर्वशरीर चिक्कण लगता है। पुच्छका पालक आठ, पक्ष बारह चौदह और कण्ठ तीन इञ्च बढ़ता। केवल भारत और काश्मीरमें यह काक देख पड़ता है। इस जातीय पक्षीका आदि वासस्थान साइबेरियाके पूर्वांशमें इनसीनदीसे प्रशान्त-महासागर पर्यन्त हैं। उस स्थानसे दक्षिण काश्मीर और पश्चिम इङ्गलैण्ड पर्यन्त समस्त देशमें यह रहते हैं। इन्हें अंग-

रेजी शाकुनशास्त्रमें 'करवस् कोरोन' (C. Corune) कहते हैं।

(ग) काश्मीरमें दूसरी तरहका एक काक होता है। यह परिमाणमें गलित मांसभुक्से क्षुद्र लगता है। गात्रका वर्ण अन्धकारकी भांति काला रहता है। यह अतिद्रुत उड़ सकता है। चीलसे इसका विषम विवाद है। यह भी गलित मांस खाता है। काश्मीर, शिमला, और दुगसायी उपत्यकामें इसे देखते हैं। यह पार्वतीय काक (पहाड़ी कौवा) नामसे विख्यात है। अंगरेजी शाकुनशास्त्रमें इसे डांक काक और ग्राम्य काक मध्यवर्ती काक 'करवस् इण्टरमेडियस्' (C. intermedius) कहते हैं।

(घ) सूक्ष्मचञ्चु—मात्र नीलमिश्रित कृष्णवर्ण होता है। मस्तक, स्कन्ध, पृष्ठ, उदर और चञ्चुका वर्ण अपेक्षाकृत तरल रहता है। कपाल गाढ़ कृष्णवर्ण लगता है। इसका दैर्घ्य १८ इञ्च है। पक्ष साढ़े बारह, पुच्छ सात, चञ्चुपुट ढाई इञ्च दीर्घ बैठता है। किन्तु चञ्चुपुट पौन इञ्चसे ज्यादा मोटा नहीं होता। अंगरेजी शाकुनशास्त्रमें इसका नाम 'करवस टेनुइरोसट्रिस्' रखा है।

एतद्भिन्न चीनदेशीय 'करवस् पेकटोरालिस' (C. pectoralis) और यवद्वीप 'करवस एङ्का' (C. enca) भी डांडकाक जातीय हैं। यवद्वीपका 'करवस एङ्का' सूक्ष्मचञ्चु काकसे मिलता, किन्तु क्षुद्रकाय रहता है। चीन देशीय 'पेकटोरालिस' भारतीय डांड़काककी जातीय होता है।

ब्रह्मदेशीय ग्राम्यकाक—इसका कपाल, मस्तक, चिबुक और कण्ठ चिक्कण कृष्ण होता है। स्कन्ध (घाड़) और चक्षुपार्श्व तरल पिङ्गलवर्ण रहता है। कर्णावरक और निम्न देशके पालक पिङ्गलाभ मिश्रित कृष्णवर्ण देख पड़ते हैं। पक्ष, पुच्छ और अवशिष्ट पालक चिक्कण कृष्णवर्ण लगते हैं। इसके कृष्णवर्ण पालकोंसे मयूरकण्ठकी भांति नील और हरिद्वर्ण-मिश्रित आभा निकलती है। स्वभाव बिलकुल भारतीय ग्राम्यकाकसे मिलता है। समस्त ब्रह्मदेशसे दक्षिण मरगुई और पश्चिम आसामसे मणिपुरके पूर्वाञ्चल तक यह रहता, अन्यत्र देख नहीं पड़ता। इसका ब्रह्मदेशीय नाम 'किगियान' है। वैदेशिक शाकुनशास्त्रमें 'करवस् इनसोलेन्स' (C. insolens) लिखते हैं।

५ चोटियाला कौवा—इसके मस्तकपर काकातूवाकी भांति चोटी रहती है। मस्तक, स्कन्ध, गलदेश, वक्षःस्थलका ऊर्ध्वभाग, पक्ष, पुच्छ और वस्ति चिक्कण देखते हैं। अवशिष्ट पालक गङ्गाकी बालू जैसे धूसर होते हैं। ऊपरी पालक कृष्णवर्ण और नीचेवाले पाटल लगते हैं। पैर, कण्ठ और उंगलीका रंग काला रहता है। दैर्घ्य १८ इञ्च है। पुच्छ साढ़े सात, पक्ष साढ़े बारह, पदकी खूंटी दो और चञ्चुका दैर्घ्य दो इञ्च है। साधारण अंगरेजीमें इसे 'हुडेड क्रो' (Hooded Crow) कहते हैं। अंगरेजी शाकुनशास्त्रसम्मत नाम 'करवस् कारनिक्स' (C. Cornix) है। इसकी तीन श्रेणियां होती हैं। आकृतिका प्रभेद स्पष्ट देख पड़ता है। एक दूसरेको सहजमें ही पहचान सकते हैं। सच्चा चोटियाला कौवा (True Corvus Cornix) पारस्योपसागरके उपकूलसे पश्चिम युरोप पर्यन्त मिलता है। कृष्णवर्ण पक्षको छोड़ इसके दूसरे पालक पांशुल धूसर होते हैं। एक जातीय 'करवस केपेलेनास' (C Capellanus) पारस्य-उपसागरके उपकूल और मेसोपोटेमिया प्रदेशमें रहता हैं। इसके पर सफेद और कलम काले होते हैं। शीत आकार वर्णादिकी बात पहले ही बता चुके हैं। शीत कालमें यह पञ्जाबके उत्तरपश्चिम कोण, हजारा प्रदेश और गिलगिट प्रान्तमें देख पड़ता है। इसका स्वभावादि मांसभुक् काककी भांति होता है। किन्तु यह शस्य मिलनेकी आशासे इसे दल बांध मैदानमें घूमना पड़ता है। भारतवर्षमें न तो यह घोंसला बनाता और न अण्डे ही देता है। साइबेरियामें चोटियाला गलित मांसभुकोंके साथ सहवासादि रख सन्तान उत्पादन करता है। यह वर्णसङ्कर काक इस देशमें देख नहीं पड़ता।

६ काश्मीर प्रदेश, पश्चिम एशिया और युरोपमें एक प्रकारका कोढ़ियाला कौवा होता है। अंगरेजी शाकुनशास्त्रके मतसे यह भिन्न श्रेणीभुक्त है। इसके

सब अवयवोंका वर्ण काला रहता है। मस्तक, स्कन्ध, और निम्न देशके पालकोंमें नीलवर्णकी चिक्कणता तथा पाटलकी आभा झलकती है। परिमाण दण्डकाकसे मिलता है। इतरविशेष सामान्य है। अंगरेजीमें इसे 'रुक' (Rook) कहते हैं। शाकुन शास्त्रका वैज्ञानिक नाम 'करवस् फ्रुगिलेगस' (C. Frugilegus) है। पांच मास बीतते ही इसके शावककी नासाका लोम (Nasal bristles) गिर जाता हैं। फिर दो मास पीछे मुखके सम्मुख भाग अर्थात् चञ्चुके मूलमें बिलकुल पालक नहीं रहते। यह भारतवर्षमें कहां रहता या सन्तानोत्पादन करता है। इसे शस्यभोजी देखते हैं। यह चुगनेके लिये दलदल मैदानमें घूमता और नदीस्रोत तथा जलाशयमें कीटादि ढूंढ़ता है।

७। काश्मीरमें भी एक क्षुद्राकार दण्डकाक होता है। इसे क्षुद्रचञ्चु दण्डकाक कहते हैं। मस्तक तथा कपाल चिक्कण कृष्णवर्ण और स्कन्ध गाढ़ धूसरवर्ण रहता है। मस्तकका पार्श्व एवं गलदेश तरल धूसरवर्ण होता है। प्रायः आधे गलदेशमें सफेद धारियां पड़ जाती हैं। स्वरका पालक और पुच्छ सुचिक्कण नीलाभ कृष्णवर्ण लगता है। परका कलम भूरा होता है। गलदेशका निम्नभाग कृष्णवर्ण रहता है। अन्यान्य पालक भी स्लेटकी भांति वर्णविशिष्ट देख पड़ते हैं। दीर्घता १३ इञ्च है। पुच्छ साढ़े पांच, पच नौ, पैरकी खूंटी डेढ़ और चोंच डेढ़ इञ्च है। अंगरेजीमें इसे 'जाकड' (Jackdaw) कहते हैं। शाकुनशास्त्रके अनुसार वैज्ञानिक, नाम 'करवस मोनेडुला' (C. monedula) है। भारतके मध्य काश्मीर और उत्तर पञ्जावमें यह देख पड़ता है। शीतकालमें अम्बाला प्रदेशस्थ पर्वतके निकट भी इसे पाते हैं। काश्मीरमें यह पुरातन अट्टालिकाओं और छतोंपर घोंसला लगा रहता है। इसका अण्डा ४से ६ इञ्चतक दीर्घ होता है।

८ श्वेतकाक—काककी भांति अविकल आकारका एक पक्षी है। इसका समस्त मस्तक काकातूवाकी भांति सफेद रहता है। पदद्वय, चक्षु एवं चञ्चु एवं चञ्चुका आकार भी काकातूवेसे मिलता है। इसे सफेद कौवा कहते हैं।

काकके सम्बन्धमें कई प्रवाद सुन पड़ते हैं। उनमें कुछ नीचे लिखे जाते हैं,—

(१) कौवे दो आंखसे देख नहीं सकते। कारण एक दिन राम और सीता उभय वनमें घूमते थे। इन्द्रके पुत्र जयन्त सीताका रूप देख मोहित हुये और काकरूपसे उनका वक्षोवसन खींच ले गये। नखाघात लगते सीताके स्तनसे रक्त गिरा था। रामने यह देख बाण छोड़ा। वह काकके चक्षुमें जाकर लगा था। उसी दिनसे कौवोंकी एक आंख फूटी है।

(२) किसी गृहस्थके मकानपर बैठ एक काकके दूसरेका गात्र कांट निकालते या मस्तकस्थित पालक संवारते सधवापुत्रसम्भाविता वधू वा कन्याके देख पानेसे उसी मासके ऋतुस्नान पीछे उक्त वधू वा कन्या गर्भिणी हो जाती है।

(३) काकका पालक छूनेसे पूर्वधर्म विनष्ट होता है। बहुतसे लोग इसी विश्वास पर पर छूकर सवस्त्र नहा डालते हैं।

(४) काक सिवा झड़के दूसरे समय नहीं मरता।

(५) काक जब सवेरे उठ बोलता और उड़ता किन्तु आहार ग्रहण नहीं करता, तब शुभ उद्देशसे चलनेपर मङ्गल रहता है।

(६) पक्षियोंमें काक चण्डालजातीय है। यह शवका देह परिष्कार करता है।

(७) काकका मांस तिक्त रहता और किसी पशुपक्षीके खाद्यमें नहीं लगता। स्वार्थपरताकी तुलनामें कहा जाता है काक सबका मांस खाता, किन्तु उसका मांस किसी काम नहीं आता। काकचरित देखो।

मदनपालके मतसे इसका मांस लघु, अग्निदीपक, बृंहण, बलकारक, आयु एवं चक्षुके लिये हितकर और क्षत तथा क्षयरोगनाशक है।

५ एक कपर्दकका चतुर्थांश। ६ द्वीपविशेष, एक टापू। ७ तिलकविशेष। ८ शिरोऽवक्षालन। (त्रि०) ९ कुत्सित भावसे गमनकारी, खराब तौर पर चलनेवाला। १० अतिदुष्ट, बड़ा बदमाश।

काककङ्गु (सं० स्त्री०) काकप्रिया कङ्गुः मध्यलो०। धान्यविशेष, चीना। 'चीनकस्तु काककङ्गुः' (हेम ४।२४४)

काककण्टक (सं० पु०) जलचर पक्षिविशेष, पानीकी एक चिड़िया।

काककर्कटी (सं० स्त्री०) खर्जूरी वृक्ष, खजूरका पेड़।

काककला (सं० स्त्री०) काकस्य कला अवयव इव अवयवो यस्याः, मध्यपदलो०। काकजङ्घावृक्ष, एक पेड़।

काककुड्मल (सं० क्ली०) नीलपद्म, आसमानी कंवल।

काककुष्ठ (सं० क्ली०) कङ्कुष्ठ, दवामें पड़नेवाली एक मट्टी।

काककूर्ममृगाखु (सं० पु०) कौवा कछुवा, हिरन और चूहा।

काकघ्नी (सं०स्त्री०) काकं हन्ति, काक-हन्-ट ङीष्। महाकरञ्जवृक्ष, बड़े करौंदेका पेड़।

काकचरित्र (सं० क्ली०) काकस्य चरित्रं वर्णितं यत्र, बहुव्री०। शाकुनशास्त्रका अंशविशेष, वसन्तशकुनीका एक हिस्सा। इसमें यही उपदेश लिखते काकके शब्द विशेष चेष्टादिसे कैसे लाभालाभ मालूम कर सकते हैं। वसन्त राजप्रणीत शाकुन शास्त्रमें कहा है—

काक पांच श्रेणियोंमें बांटा है,—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अन्त्यज। वर्ण, स्वर और स्वभावसे यह भेद पहचान लेते हैं। जो परिमाणमें बृहत् कृष्णवर्ण, दीर्घ, विशाल मस्तकयुक्त और गम्भीरस्वर रहते, उन्हें विप्रजाति कहते हैं। मिश्रवर्ण, पिङ्गल अथवा नील चक्षु, तीक्ष्णरव और अतिशय बलवान् काक क्षत्रिय-जाति हैं। पाण्डु वा नीलवर्ण, श्वेत अथवा नीलचक्षु और शब्द अल्परुद्ध वैश्यजाति होते हैं। भस्मकी भांति वर्णविशिष्ट, कृशशरीर, अधिकांश ककार शब्द युक्त, और चञ्चल स्वभाव शूद्रजाति माने गये हैं। रूक्ष, अथवा सूक्ष्म मुख, दीप्तिविशिष्ट स्कन्धदेश, शब्द एवं बुद्धिवृत्ति स्थिर और अल्प आशङ्कावाले अन्त्यज कहाते हैं। द्रोण नामक कृष्णवर्ण विप्रकाक श्रेष्ठ होता है। अभावमें जिनका कण्ठदेश श्यामवर्ण लगता, उनका लक्षणादि देखना पड़ता है। अद्भुत दर्शन होनेसे श्वेतकाक ग्राह्य नहीं ठहरता। विप्रकाक प्रश्न करने पर परिष्कार उत्तर देता है। क्षत्रियकाक विप्रकाककी अपेक्षा अल्प रहता है। वैश्यकाक अधिवेशन और शूद्रकाक पूजार्चन पानेसे बोलता है। किन्तु अन्त्यज काक सर्वदा समस्त प्रश्न लगाया करता है। इन पांचों काकोंके शब्दसे उसी समय, तीन दिन, सप्ताह वा एक पक्षमें फल अवश्य मिल जाता है।

शान्त और प्रदीप्त भावमें बोलना शुभप्रद है। किन्तु रौद्र स्वरविशिष्ट शब्द प्रशस्त नहीं होता। मधुर स्वर ही सर्वत्र अच्छा है। प्रदीप्त भाव अथच परुषस्वरसे बोलनेपर कार्य बनकर भी बिगड़ जाता है। किन्तु प्रदीप्त अथच शान्तभावसे शब्द करते सिद्धि मिलती है। यदि काक शान्त एवं प्रदीप्त भावसे एक बार बाहर बोल भीतर आता और फिर वैसा ही शब्द सुनाता, तो समस्त विघ्न विनष्ट हो कार्य बन जाता है। प्रथम दीप्त और पश्चात् शान्त शब्द निकालनेसे कार्य बिगड़कर बनता है।

सूर्योदयके समय पूर्वदिक् किसी निर्दोष स्थानमें सम्मुख बैठकर काकके बोलनेसे चिन्तित कार्य निकलता और स्त्रीरत्नादि मिलत े। अग्निकोणमें बैठ शब्द करनेसे शत्रुनाश, भयनाश और स्त्रीलाभ होता है। दक्षिण दिक्में परुष स्वरसे शब्द करनेपर अति दुःख, रोग वा मृत्यु आता, किन्तु मधुरस्वर रहते कार्य बन जाता और स्त्रीलाभ देखाता है। नैर्ऋत और सहसा बोल उठनेपर क्रूर कार्य लग जाता, दूत आता और मनुष्य मध्यम सिद्धि पाता है। पश्चिम दिक्में शब्द करनेसे वृष्टि पड़ती, राजपुरुषको अवायी ठहरती और स्त्रीसे लड़ायी चलती है। वायुकोणमें बोलनेसे वाञ्छित वस्त्र, अन्न एवं यान मिलता, किन्तु पहला आजीवन बिगड़ता, अतिथि आ पहुंचता और अपनेको स्वदेशसे विदेश जाना पड़ता है। उत्तरदिक्में शब्द करनेपर दुःख, सर्पका भय, दारिद्र्य, धनका नाश और प्रियव्यक्तिलाभ होता है। ईशान दिक्में बोलनेसे अन्त्यज आते, रोगके कारण उठते देखाते प्रिय वस्तु मिल जाते और पीड़ाका आधिक्यमें रहते मृत्यु पाते हैं। ब्रह्मदेश अर्थात् ऊर्ध्व दिक्को मधुर स्वरसे शब्द करने पर वाञ्छित अर्थ, प्रचुर अनुग्रह और धन मिलता है।

प्रथम प्रहरके समय पूर्व दिक्को काक बोलनेसे चिन्तित कार्य बनता, अभीष्ट व्यक्ति आ पड़ता और विनष्ट विषय मिला करता है। अग्निकोणमें सवेरे शब्द करनेसे स्त्रीलाभ और शत्रुनाश होता है। दक्षिण दिक्को प्रातःकाल बोलनेसे स्त्री, सुख और प्रियसङ्ग पाते हैं। नैऋत दिक्में पहले पहर टेर लगानेसे प्रियपत्नी, मिष्टान्न सामग्री और चिन्तित विषयकी सिद्धि मिलती है। पश्चिम ओर पुकारनेसे पूज्य जन आते और मेघ बरसने लग जाते हैं। वायुकोणमें बोलने शुभ, राजप्रसाद और पथिक देख पड़ता है। उत्तर कोणको टेर उठानेपर भय, चोर, शोक, सुख अथवा धन लाभका संवाद मिलता है। ईशानकोणसे शब्द आने पर प्रिय व्यक्तिके साथ आलाप, अग्निका त्रास, और बहुतसे लोगोंका साथ होता है। ब्रह्मदेशमें बोलनेसे सुख एवं कामभोग, सम्मान, सम्पद्, धन और सिद्धि पाते हैं।

द्वितीय प्रहर पूर्वदिक्में काकका शब्द सुननेसे कोई पथिक आता, चोरका भय देखता और व्याकुलता तथा अतिशय आशङ्काका वेग बढ़ जाता है। अग्निकोणमें बोलना प्रियव्यक्तिके आगमनसंवाद और स्त्रीलाभका सूचक है। दक्षिणके शब्दसे पानी पड़ता, अतिशय भय बढ़ता और प्रिय व्यक्ति आ पहुंचता है। नैऋतमें दो पहरको काक बोलनेसे प्राणभय, स्त्री एवं भोज्यलाभ और यावतीय रोगका नाश होता है। पश्चिममें पुकारनेसे स्त्री मिलती, सम्पद् बढ़ती और कुवृष्टि पड़ती है। वायुकोणमें बोलनेसे ध्वज तथा चोर सङ्ग, दूतका आगमन, और स्त्री मांस तथा अन्नलाभ होता है। उत्तरको रम्य रव निकालनेसे स्वगण एवं दुष्ट व्यक्ति आता और जयलाभ देखाता, किन्तु अरम्य स्वर रहते चोरभय बढ़ जाता है। ईशानमें उच्च भावसे बोलने पर चोर तथा अग्निका भय समाता और विरुद्ध वाक्य सुनाता, किन्तु अरुच लगने पर गुरुआगमन एवं जयलाभ देखाता है। ब्रह्मप्रदेशमें दिनके द्वितीय प्रहर सुशब्दसे राजप्रसाद तथा मिष्टान्न मिलता, किन्तु कुशब्दसे चोरभय लगता है।

तृतीय प्रहरको पूर्वदिक्में काकके रूक्ष शब्द निकालते सम्पद् बढ़ती तथा चोरभीति आ पड़ती, किन्तु रम्य ध्वनि रहनेसे राजाको अवाधी ठहरती और जयप्राप्ति एवं कार्यसिद्धि लगती है। इसी प्रकार अग्निकोणमें विरुद्ध शब्दसे अग्निभय, कलह, असुख संवाद तथा यात्राकी विफलता और विशुद्ध स्वरसे जयादि संवाद पाते हैं। दक्षिण दिक् बोलनेसे शीघ्र ही रोग लगता, आप्त व्यक्ति आ पड़ता और क्षुद्र कार्य बनता है। नैऋत दिक्को शब्द करनेसे मेघागम, मिष्टान्न लाभ, शत्रुनाश, शूद्रागमन, प्रभुके विरुद्ध संवाद श्रवण और यात्रामें कार्यनाश होता है। पश्चिमको टेर लगानेसे नष्टधन मिलता, दूर पथ चलना पड़ता, सुहृद् व्यक्ति आ पहुंचता, अभीष्ट जयादिका संवाद लगता, स्त्रीलाभ ठहरता और यात्रामें कार्य बनता है। वायुकोणमें बोलनेसे दुर्दिनवार्ता, अपहृत वस्तुका लाभ, सन्तोषकर संवाद, उत्तम स्त्रीलाभ और यात्रा होता है। उत्तर दिक् शब्द कर उठनेपर कार्य बनता, अर्थ मिलता, भोज्यवृद्धिका शुभ संवाद सुन पड़ता और गमन तथा वेश्यसमागम रहता है। ईशान दिक्के सुशब्दसे भोज्य एवं जय मिलता, किन्तु कुशब्दसे हानि तथा कलह उठाना पड़ता है। ब्रह्मदिक्को बोलनेसे तिलतण्डुल एवं ताम्बूलयुक्त भोज्यलाभ होता है।

चतुर्थ प्रहर—पूर्व दिक्को काक बोलनेसे अर्थलाभ, राजपूजा, अभय, सम्पद्वृद्धि और रोग तथा अग्निकोणसे शब्द आनेपर भय, रोग, मृत्यु और शिष्टागम, दक्षिण दिक् पुकारनेसे तस्कर तथा शत्रुका भय बढ़ता, शिष्टजन आ पहुंचता और रोग एवं मृत्यु देख पड़ता है। नैऋतको टेरसे अतिवृद्धि, अभीष्टसिद्धि और पथमें चोरके साथ युद्ध होता है। पश्चिममें पुकारनेसे ब्राह्मणका आगमन, अर्थ लाभ, स्त्री एवं जयलाभ, वर्षण, यात्रामें मनोरथ पूरण और राजप्रसाद होता है। वायुकोणमें बोलनेसे प्रियपत्नीका आगमन, सप्ताहके मध्य प्रवास और सत्वर प्रत्यागमन है। उत्तरको शब्द कर उठने पर पथिक आता, ताम्बूल पाया जाता, कुशल संवाद सुनाता, वेश्यसेवन मिलते देखाता, अश्वादि पर आरोहण लगता और विरुद्ध यात्रासे रोगी प्राय गंवाता है। ईशान दिक्को शब्द सुन पड़ते

स्वर्णका संवाद आता और रोग नष्ट हो जाता है। शान्तदिक्में बोलनेसे मध्यम वार्ता और मध्यम सिद्धि होती है।

दिक् और प्रहरादिके अनुसार सकल शुभाशुभ विमिश्रभावसे कहा है। इसमें दीप्तशब्दको अशुभ और शान्त शब्दको शुभकर समझना चाहिये। दूसरे दीप्तदिक्का रव शान्त दिक्को प्रधारित होनेसे अधिक फलप्रद है। दीप्तदिक्को बैठ उसी ओर देखते देखते बोलना अच्छा नहीं होता। दीप्त दिक्में रह प्रदीप्त दिक्को देखते देखते शब्द करना भी दुष्ट है। दीप्त दिक्में बैठ प्रशान्त दिक्को घूम बोलनेसे तुच्छ और दुष्टफल मिलता है। शाखा पर रह शान्त-दिक्को देखते देखते रूक्ष शब्द निकालनेसे अल्प अनिष्ट होता है। शान्त दिक्को दृष्टि डालते डालते शान्त स्वरसे बोलना अल्प अभीष्टप्रद है। शान्त दिक्में रह दीप्त दिक् देखते देखते शब्द करना शीघ्र अभीष्टप्रद होता है। इसी प्रकार मनुष्योंको काकोंका आकार, प्रकार, भाव और रव विभाग कर दिवारात्रमें चारो प्रहरोंका शुभाशुभ देखना चाहिये।

काल और स्थान विशेषमें काकका गृह निर्माण देखकर भी शुभाशुभ निरूपित होता है।

वैशाख मासको निरुपद्रव वृक्षमें गृहनिर्माण करनेसे देशका मङ्गल और कुत्सित, शुष्क वा कण्टक-युक्त वृक्षमें घोंसला लगानेसे दुर्भिक्ष होता है। प्रशस्त वृक्षकी पूर्व शाखा पर घर बांधते पानी बरसता, शकुन-प्रसाद मिलता, नीरोग रहता और विषय हाथ लगता है। अग्निकोणकी शाखासे वृष्टि, भय, कलह वा पाप, दुर्भिक्ष एवं शत्रु द्वारा देश नाश और पशुओंको पीड़ा है। दक्षिण शाखासे अल्प वृष्टिपात, अन्ननाश और शत्रु विरोध होता है। नैऋत शाखा पर घोंसला लगानेसे वर्षाकालको अल्प जल बरसता, मनुष्यको रोग अधु तथा और भय रहता, दुर्भिक्ष पड़ता और युद्ध चलता है। पश्चिम शाखासे वृष्टि, नीरोग, मङ्गल, सुभिक्ष, सम्पद और आनन्द है। वायु-कोणस्थ शाखापर घोंसला रहनेसे अत्यन्त वायु आता, मेघ अल्प जल बरसता, मूषिकोंका उपद्रव बढ़ जाता, शस्य नसाता और दोनों और महाविरोध देखाता है। उत्तर शाखा पर सोनेसे वर्षाकालको परिमित वृष्टि, मङ्गल, सुभिक्ष, सुख, नीरोग, सम्पद्-वृद्धि और समृद्धि है। ईशानदिक्स्थ शाखापर रहनेसे अल्प जल बर-सता, शत्रु बढ़ता, प्रजावर्गका उत्सर्ग पड़ता, बान्धव कलह लगाने लगता और जनसमूह मर्यादाशून्य बनता है। वृक्षके अग्रभागमें अति वृष्टि, मध्यदेशमें मध्यमरूप वृष्टि और निम्न देशमें रहनेसे अनावृष्टि होती है। भूमिमें कोष बनानेसे अवृष्टि और रोगादि भयकी वृद्धि है। शुष्क वृक्षपर बसनेसे विग्रह और अन्ननाश है। प्राचीरके रन्ध्रमें काक रहनेसे प्रभूत भय लगता है। निम्नप्रदेश, तरुकोटर, वाल्मीक-रन्ध्र और लतामें सो जानेसे पीड़ा, अवृष्टि और देशके नियमकी शून्यता रहती है।

अण्डप्रसवके अनुसार शुभाशुभका निर्णय—एकको वारुण, दोको अग्नि, तीनको वायु और चार अण्डे देनेको ऐन्द्र कहते हैं। वारुणसे पृथिवीमें शस्य बहुल बढ़ता, अग्निसे मन्द वर्षण पड़ता तथा रोपित बीजमें अङ्कुर नहीं उठता, वायुसे शस्य उत्पन्न होते भी सूखते सूखते शलभ प्रभृति कीटोंका भक्षण बनता और ऐन्द्र अण्ड प्रसव करनेसे मङ्गल, सुभिक्ष, सुख और कार्य निकलता है।

काकके शब्द चेष्टादिसे यात्राकालीन शुभाशुभका निर्णय—काकों-को दधि और अन्नयुक्त पूजा चढ़ा यात्राके समय प्रवासी निम्नोक्त मन्त्रपाठपूर्वक नमस्कार करते हैं,—

"भुङ्क्ष्व बलिं पक्षिषु मन्त्रपूतं त्वं प्राणिषु प्राणिषु वर्यचक्षुः।
गुप्तेन च.स्त्रीं भजसे नमोऽस्तु तुभ्यं खगेन्द्राय सकलप्रजाय॥"

नमस्कारके पीछे अपना कार्य सोच सिद्धिकी कामनासे काक दर्शन करना पड़ता है। उस समय यदि यह वामदिक्से मधुर शब्द कर दक्षिण ओर चला आता, तो सर्वार्थ सिद्ध हो जाता और प्रत्यागमन देखाता है। फिर वाम दिक्से घूम लौट आने पर भी अभीष्ट कार्य बनता, मङ्गल लगता और शीघ्र प्रत्यागमन पड़ता है। वामदिक्में अनुलोम लगाते अर्थात् ऊपरसे नीचे आते समय मधुर रव निकालने पर प्रयोजन सिद्ध होता है। वाम और दक्षिण उभय

दिक् उक्त प्रकारसे ही शब्द करने पर कुछ कार्य बनते और कुछ बिगड़ते भी हैं। पृष्ठदेशको मधुर स्वरसे बोलते बोलते पहुंचनेपर मङ्गल होता है। शब्द करते करते आगे आने, पहुंचकर हर्ष देखाने अथवा पद द्वारा मत्था खुजलानेसे अभिष्ट सिद्ध होता है। हाथी बांधनेके खूंटे पर बैठ कर हाथी बोलनेसे हाथी मिलता और हाथीपर राजल भी चलता है। अश्वके बन्धनस्तम्भ पर बैठकर पुकारनेसे वाहन एवं भूमिका लाभ होता है। ध्वजसे विजय, कूपसे नष्टवस्तु एवं जयका लाभ, नदीतीरसे कार्य सिद्धि, पूर्ण घटसे धनलाभ, प्रासादसे धान्य राशि और हर्म्यपृष्ठ एवं शस्यतृणपूर्ण भूमिपर अवस्थित हो बोलनेसे धनलाभ है। फिर युग्म शब्द निकालनेसे भी धन मिल जाता है। पृष्ठदेश वा सम्मुखको गोमय अथवा वटादि वृक्ष पर बैठ कर विष्ठासुख बोलनेसे अभिलषित भोजन पान लाभ होता है। फिर मुखमें अन्नादि, विष्ठा, फल, मूल, पुष्प वा मत्स्य देख पड़ते भी मिष्टान्न भोजन पाते हैं। नारीशिरस्थ पूर्ण घट पर चढ़ कर पुकारनेसे स्त्री एवं धन लाभ है। शय्यापर बैठ कर बोलनेसे सुजन समागम होता है। सामने गोपृष्ठ, वृक्ष, दूर्वा वा गोमय पर चञ्चु रगड़ते अथवा अन्यको आहार प्रदान करते देखनेसे विचित्र भोज्य मिलता है। धान्य, यव, दधि वा घृत देख बोल उठनेसे धन पाते हैं। मुखमें हरिद्वर्ण तृण ले सम्मुख आनेसे लाभ रहता है। मनोरम अङ्कुर, पत्र, पुष्प, फल तथा छायायुक्त वृक्षपर शब्द करनेसे कार्यसिद्धि होती है। वृक्षके शिखरदेशमें प्रशान्त भावसे शब्द करने पर स्त्रीसङ्ग गठता है। धान्यादि राशिपर रव लगानेसे धनलाभ है। गोपृष्ठ पर बैठकर बोलनेसे गो एवं स्त्रीको पाते हैं। हस्तिशिशुके पृष्ठपर शब्द करनेसे मङ्गल होने लगता है। इसी प्रकार गर्दभके पृष्ठसे शत्रु भय तथा वध, शूकरके पृष्ठसे वध, घन पङ्कयुक्त शूकरसे धन लाभ, महिषके पृष्ठसे सद्योज्वर, मृतके शरीरसे मृत्यु, शून्यकलससे कार्यक्षति और काष्ठ पर अवस्थित हो शब्द करनेसे कलह है। दक्षिण दिक्में बोल चलते, सम्मुखसे मृत्यु, शून्यकलससे कार्यक्षति और काष्ठपर अवस्थित हो शब्द करनेसे कलह है। दक्षिण दिक्में बोल चलते, सम्मुखसे आ पड़ते अथवा पश्चात् दिक् शब्द सुनाते सुनाते विपरीत भावसे गमन करते रक्तपात होता है। वाम और दक्षिण क्रमसे उभय दिक् शब्द करनेपर अनर्थ रहता है। वाम दिक्को विपरीत भावसे जानेपर विघ्न पड़ता है। पश्चात् दिक्से बोलते दक्षिण ओर गमन करनेपर रक्तपात होता है। लतादि ले प्रदक्षिण लगानेपर सर्पभय रहता है। गोपुच्छ और वल्मीक पर बैठ बोलनेसे सर्पदर्शन होता है। अङ्गार, चिता और अस्थिपर अवस्थानकर शब्द निकालनेसे मृत्यु आती है। कर चर्वण कर बोलनेसे हानि और पीडा है। पृष्ठदेशको निष्ठुर शब्द करनेसे मृत्यु होती है। शून्यमुख फैलाये रहनेसे अमङ्गल लगता है। पराङ्मुख होते रक्तपात वा बन्धन होता हैं। परस्पर लड़नेसे वध है। पराङ्मुख हो शुष्क वृक्ष पर रहनेसे रोग लगता है। तिक्त वृक्ष पर अवस्थान करनेसे कलह और कार्यनाश होता है। कण्टकयुक्त वृक्ष पर पक्ष द्वय कंपा रुक्ष शब्द करने पर मृत्यु आती है। भग्न शाखापर रहनेसे वध है। लतावेष्टित स्थान पर अवस्थित होते बन्धन पड़ता है। कण्टकयुक्त रम्य वृक्षपर बैठते कलह कार्य सिद्धि हैं। आच्छन्न वृक्षपर रहनेसे रक्तपात होता है। विष्ठा, आवर्जना, मृत्तिका, तृण, काष्ठ, कूप और भस्मादि पर बैठनेसे कार्य बिगड़ जाता है। काकके मुखमें लता, रज्जु, केश, शुष्क काष्ठ, चर्म, अस्थि, जीर्णवस्त्र वल्कल, अङ्गार तथा रक्तोपल आदि देखनेसे पुत्रक्षय, पाप समागम, पथ एवं आलयमें महत्भय, रोग, बन्धन, वध और सर्वधनापहरण प्रभृति होता है। मुखको ऊपर उठा चञ्चल पक्षसे कर्कश शब्द निकालनेसे मृत्यु आता है। एक पैर सिकोड़ और सूर्यको ओर मुख मोड़ दीप्त स्वरसे बोलने अथवा काष्ठादि फोड़नेपर युद्धादिमें अनर्थ रहता है। चञ्चुसे पुच्छदेश खुजला शब्द करने पर मृत्यु होती है। एक पैरसे बैठते बन्धन है। मस्तक पर विष्ठा वा गोमय डाल देनेसे यात्राकारी बन्धनमें पड़ता है। अस्थि फेंकनेसे मृत्यु होती है। ऊर्ध्व दिक् बोलनेसे स्त्रीदोष लगता

है। मनुष्य, हस्ती वा अश्वके मस्तक पर बैठ शब्द निकालनेसे मृत्यु आती है। नदीतीर वा वनमध्य घूमते घूमते कर्कश भावसे बोलनेपर व्याघ्रभय होता है। पीड़ित वा दुश्चेष्ट काक देखनेसे अमङ्गल है। मनुष्य वा अश्वके मस्तक और रथपर देख पड़नेसे सैन्यवध होता है। सैन्यके संमुखसे आनेपर पराजय है। मांस न रहते भी गृध्र एवं कङ्कके साथ शिविरमें प्रवेश करनेपर शत्रु युद्धमें आती बड़ी लड़ाई और चले जाते सन्धि होती है। छिन्न ध्वज पर चढ़ समुद्यत शत्रुसैन्यकी ओर देखते रहने अथवा वटादि चीरिवृक्ष पर बैठ शब्द करनेसे युद्धमें जय मिलता है। एतद्‌भिन्न दिक् और प्रहरके अनुसार भी यात्राकालको काक शब्दका कथित शुभाशुभ देखते हैं।

काककी चेष्टाविशेषसे शुभाशुभका निरूपण—अकारण बहुतसे काक एकत्र बोलनेसे ग्राममें अन्न नाश होता है। चक्राकृति हो काकोंके शब्द करनेसे ग्राम घेरा जाता है। वाम और दक्षिण दिक् काकसमूह घूमनेसे ग्राममें भय लगता है। रात्रिकालको शब्द करनेसे लोगोंका विनाश होता है। चरण और चञ्चुसे लोगों पर चोट करनेसे शत्रु बढ़ते हैं। नहा कर धूलिमें लोटते बोलनेसे वृष्टि होती है। इस प्रकार अन्य जलजन्तुवों और स्थलजन्तुवोंके विपरीत देखाने अर्थात् जलचरोंके स्थल पर आने और स्थलचरके जलमें जानेसे वर्षाकालको पानी बरसता और दूसरे समय भय बढ़ता है। मध्याह्न काल किसीके गृह पर बैठ काकके शब्द करनेसे चोर उसका धन चोराता अथवा कोई अन्य प्रमाद आता है। अदृष्ट भावमें तृणपूर्ण मुखसे बोलने पर अग्निभय लगता अथवा स्वस्थानमें रहते प्रवासमें चलते भी तीन दिनके मध्य विविध दुःख उठाना पड़ता है। भूमिपर बोलनेसे भूमि मिलती है। जलमें रहते शब्द करनेसे विघ्न पड़ता है। प्रस्तर पर बोलनेसे कार्य नष्ट होता है। (स्वस्थानमें रहते या प्रवासको चलते भी मनुष्यको इस शब्दका प्रभाव अनुभव करना पड़ता है) द्वारदेशमें रुधिर लिप्त शब्द करनेसे शिशु मरता है। पक्ष हिलाते हिलाते फिर फिरानेसे गृहका अमङ्गल है। ऊर्ध्व दिक् पक्ष उठा कड़ा बोल बोलनेसे प्रलय होता है। क्रुद्ध होकर अपर काक पर चढ़ते शब्द करनेसे रोग द्वारा मृत्यु आती है। काकवर्ग का द्रव्य नष्ट वा अपहृत होनेसे विनाश और लाभ है।

रोग विनाशका प्रश्न करनेपर काकके सुरव लगाते शीघ्र रोग छूट जाता और शान्त प्रदेशमें किरकिराते रोगके नाशमें विलम्ब देखाता है। पूछने पर शान्त दिक्‌को पकड़ धीरेसे बोलनेपर शुभ और विपरीत पड़ने पर अशुभ है। कुम्भ पर शब्द करनेसे गर्भिणी पुत्रोत्पादन करती है। कण्टकयुक्त शाखा लेकर उड़नेसे राजा आता है। अन्नादि विष्ठा, और मांस प्रभृतिसे पूर्ण मुख काक अभीष्ट फल देता है। ऐसा काक तन्त्रादिमें सिद्धि तथा वाणिज्यादिमें लाभ प्रद और विवाहादिमें प्रशस्त है। अश्वादि वाहन पर अवस्थित होनेसे इष्ट सिद्धि है। छत्रादि पर बैठनेसे तदनुरूप द्रव्य मिलता है। प्राचीर पर चढ़नेसे वधू आती है। मनोरम वृक्षपर अवस्थान करनेसे मनोज्ञ विषयका लाभ है। गृहकी ओर घूम कुलकुल ध्वनि निकालनेसे पथिक आता और सर्व कार्य बन जाता है। काकमैथुन वा श्वेतकाक देखनेसे पृथिवी पर महाभय लगता और उत्पात उठता है। ऐसे अद्भुत दर्शनसे उद्वेग, विद्वेष, भय, प्रवास, धनक्षय, व्याधिभय, प्रहार, बुद्धिनाश, व्याकुलत्व और प्रमाद होता है। इस दुःख राशिकी शान्तिके लिये देखते ही सवस्त्र नहाना, ब्राह्मणोंको वस्त्र दिलाना, कुछ न खाना, भूमि पर सो एक सप्ताह हविष्यान्नसे जीवन चलाना और स्त्रीके पास न जाना चाहिये। सातो दिन अकाकघाती व्रत रहता है। फिर प्रभात होते नहा धो शान्तिविधान और यथाशक्ति गुणी ब्राह्मणोंको धन दान करते हैं। यह अद्भुत दर्शन जहां मिलता वहां अवर्षण, दुर्भिक्ष, उपसर्ग, चोर, अग्नि तथा शत्रु भय और धर्म नाश आ पहुंचता है। इसकी शान्तिके लिये राजाको शान्तिक और पौष्टिक कर्म कर ब्राह्मणोंको अन्न, गो, भूमि तथा धन देना और एक वर्ष युद्धका नाम न लेना चाहिये।

स्वर विशेषसे शुभाशुभका निर्णय—'कर्रां' से मङ्गल, 'केकां'

से अभिलषित भोजन एवं यान लाभ, 'कूं कूं' से अर्थ प्राप्ति, 'क्रं क्रं' से स्वर्णलाभ, 'केंकें' से सुन्दरी स्त्रीप्राप्ति, 'कां कां' से यात्रासिद्धि, 'क्रौं कौं' से शुभलाभ और 'कुंकुं' शब्दसे प्रिय सङ्गम है। 'क्रां क्रूं' 'क्रां' एवं 'क्रां क्रां' युद्धजनक और 'क्रां क्रां क्रौं कौं कुं क्रूं' तथा 'क्रौं कुकुकु' मृत्यु लाता, 'क्रौं क्रौं' इष्टार्थ घटाता, 'जल जल' अग्नि लगाता, 'को कौं' तथा 'को कों' काष्ठ कटाता, 'कों' सर्वदा विफल देखाता, 'क' मित्र मिलाता, 'काका' हानि पहुंचाता, 'कु कुं' युद्ध लड़ाता, 'के के', 'का कुटि' एवं 'किं टिकिं' परदोष बनाता, 'कां कां कां' महत् युद्धका समाचार सुनाता, 'कां' वाहन बढ़ाता और 'कु कु कु' शब्द हर्ष दिलाता है। श्रान्त, दीन और उत्साहहीन काक दीर्घ 'का' बोलनेसे कार्य नाशक है। 'वक वक' से भोजन मिलता और 'कलि कलि' से रसनेन्द्रियग्राह्य द्रव्य दूर रहता है। (उच्च स्वरसे बोलनेपर विदेशी व्यक्ति आता है) 'शवशव' से मृत्यु, 'कणकण' से कलह 'कुलु कुलु' से प्रिय व्यक्तिका आगमन और 'कट कट' से अन्न एवं दधि भोजन होता है। इसी प्रकार कई प्रदीप्त और शान्त स्वरोंसे शुभाशुभ देख पड़ता है।

वलि अर्थात् अभीष्ट आहारादि पानेसे काक नित्य ही हितकी कहता है। प्राचीन मुनियोंने काकवलि प्रदानका जो नियम रखा, उसे हमने नीचे लिखा है,—

दक्षिणको छोड़ अन्यान्य और वटादि चीरी वृक्षके आश्रयसे बहु काकोंके एकत्र रहनेके स्थलपर निवृत्त दिनमें पहुंच कर वलि पिण्डके लिये निमन्त्रण देना पड़ता है। दूसरे दिन प्रातःकाल उक्त वृक्षका निम्न देश झाड़ पोंछ गोमयसे लीपते हैं। फिर वहां वेदी बना ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य, इन्द्र, अग्नि, वैवस्वत, राक्षस, वरुण, वायु, कुवेर, शम्भु और अष्ट लोकपालकी पूजा की जाती है। पूजाके समय प्रणव और नमः शब्द युक्त पृथक् पृथक् नाम लेते हैं। अर्घ्य, आसन, आलेपन, पुष्प, धूप, नैवेद्य, दीप, तण्डुल और दक्षिणा पूजाका उपकरण है। पूजान्तपर तन्निविष्ट काकोंको मन्त्रपाठपूर्वक आह्वान कर दधि पिण्ड युक्त वलि निम्नलिखित मन्त्र पढ़ते पढ़ते देना चाहिये,—

"इन्द्राय यमाय वरुणाय धनदाय भूतवायसाय वलिं गृह्णातु मे स्वाहा।"

उक्त समस्त कार्यके अन्तको वहांसे हट निभृत देशमें निश्चल भावसे खड़े हो काकोंकी विशेष चेष्टासे शुभाशुभ देखते हैं। पूर्वदिक्से खाना आरम्भ करते सुख और धन बढ़ता है। अग्निकोणसे भोजन आरम्भ होते आग लगती है। दक्षिण दिक्से खाते अर्थ नाश है। नैऋतसे कार्य हानि होती है। पश्चिमसे अभीष्ट सिद्धि है। वायु दिक्से अल्प जल बरसता है। उत्तरसे सुख, आरोग्य और कार्य सिद्धि है। फिर ईशान दिक्से काकोंके वलि खाते अभीष्ट मिल जाता है। चारों ओरसे वलि बिलकुल विलुप्त होनेपर शत्रु और अशुभ दोनों पड़नेकी सम्भावना है। भोजन न करनेसे भयकी आशङ्का उठती है।

चीरीवृक्ष, उपवन, चतुष्पथ, नदीतीर एवं देवालय प्रभृति स्थानों पर भूतदिन (चौदश) तथा अष्टमी तिथिको अर्धसिद्ध गोधूम वा चणक हैं। एतद्भिन्न दूसरे प्रकार भी पिण्डदानकी व्यवस्था है। नारदादिने तीन पिण्ड देनेकी बात कही है।

शुभ दिनको चतुर्थ प्रहरके समय पूर्वोक्त स्थान पर पिण्डत्रय खानेके लिये काकोंको सयत्न निमन्त्रण देते हैं। दूसरे दिन प्रातःकाल भूमि लेप पोछ पूर्वकथित मन्त्र द्वारा ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, वरुण, लोकपाल और काकको यथाक्रम दध्योदन, आड़वातण्डुल, पुष्प धूप प्रभृतिसे पूजते हैं। फिर पूर्वादि दिक्के अनुसार प्रथम पिण्डमें स्वर्ण, द्वितीयमें रौप्य और तृतीयमें लौह लगा अवशिष्ट द्रव्यसे वलि प्रदानके उपयुक्त पिण्ड बनाना चाहिये। वलि भोजन करनेके लिये निम्नोक्त मन्त्रसे काक बोलाये जाते हैं,—

"ॐ हिलि टिलि विलि काकचण्डालाय स्वाहा।
ॐ ब्रह्मर्षि विश्राय काकचण्डालाय स्वाहा॥"

काकके सुवर्णयुक्त पिण्ड भोजन करनेसे उत्तम कार्य होता है। फिर रौप्य युक्त खानेसे मध्यम और लौहयुक्त लेनेसे अधम समझते हैं।

विवाद, वाणिज्य, विवाह, दृष्टि, सङ्कट, धन, कृषि, भोग, राग, संग्राम, सेवा, राजकार्य और देशके

सम्बन्धमें शुभाशुभ देखनेको उक्त प्रकारसे बलिप्रदान कर समझते हैं,—

काकके शिशुको ले अनुकूल चेष्टा लगाने और दक्षिण पर तथा ग्रीवा उठा बोलते बोलते मनोज्ञ स्थान वा मनोज्ञ वृक्ष पर जानेसे शुभ और अभीष्टकी सिद्धि होती है। इससे विपरीत चेष्टामें उलटा फल मिलता है। प्रधान शिशुको लेकर शान्तदिक् चलनेसे पूर्ण लाभ होता है। किन्तु पिण्डके साथ प्रदीप्त-दिक्को प्रस्थान करनेसे कार्य प्रथम बनते भी पीछे बिलकुल बिगड़ जाते हैं। द्वितीय पिण्ड उठा शान्त दिक्को जानेसे शुभ रहता और कार्यका फल विलम्बमें मिलता है। जघन्य पिण्डके साथ प्रदीप्त दिक्को चलनेसे कार्य भी जघन्य होता है।

पिण्डाष्टक दानकी व्यवस्था—शुभदिनमें सायंकाल बलि भोजनके लिये काकोंको निमन्त्रण देना चाहिये। दूसरे दिन प्रातःकाल समस्त उपकरणके साथ किसी निर्जन देशस्थ तरुके तलपर पहुंच भूमिको मृत्तिका गोमय प्रभृतिसे परिष्कृत और पञ्च गव्यसे परिशुद्ध करते हैं। फिर सौम्य उपहार दे कुलदेवताकी पूजा घृत एवं दधिमिश्रित आठ पिण्ड पूर्वादि क्रममें आठों दिक् इन्द्र, वह्नि, भव, नैर्ऋत, विष्णु, ब्रह्मा, कुबेर, सर्वेश्वर और काकको देते हैं। प्रत्येकका नाम ले प्रणव एवं नमः शब्दयुक्त मन्त्र, तथा अर्घ्य, आसन, आलेपन, पुष्प, धूप, नैवेद्य, दीप, आतप और दक्षिणादिसे पूजा करते हैं। पूजाका मन्त्र नीचे लिखा है,—

"ॐ नमः खगपतये गरुड़ाय द्रोणाय परिराजाय स्वाहा।

द्रोणादकासनं पिण्डं गृह्णात्वमशङ्कितः।

यथादृष्टं निमित्तञ्च कथयस्वाद्य मे स्फुटम्॥"

पिण्डदानके पीछे वहांसे खिसक किसी निभृत स्थानमें खड़े हो काकचेष्टा देखना चाहिये। प्रथम पिण्ड लेनेसे कार्य सिद्ध होता है। द्वितीयसे उद्वेग शोक, यात्राको विफलता, हानि वा कलह, तृतीयसे रोग, आपद, भय एवं मृत्यु, चतुर्थसे युद्धमें जय, पञ्चम सहजमें अभीष्टसिद्धि, षष्ठसे प्रवास तथा विफलता, सप्तमसे असिद्धि और अष्टम पिण्ड ग्रहण करनेसे सन्ताप, शोक एवं यात्राकी विफलता है। यदि काक पिण्डको बिलकुल नहीं खाता अथवा चञ्चुसे फेंक जाता, तो सर्वकार्यमें अमङ्गल आता या गहरा युद्ध देखाता है।

काकचिञ्चा (सं॰ स्त्री॰) काकवर्णं चिञ्चा प्रान्तभागः फले यस्याः, पृषोदरादित्वात् साधुः। १ गुञ्जा, घुंघची। गुञ्जा देखो। २ रक्तगुञ्जा, लाल घुंघची।

काक चिञ्चि, काकचिञ्चा देखो।

काकचिञ्चिक (सं॰ क्ली॰) काकचिञ्चावृक्ष, घुंघचीका पेड़।

काकचिञ्ची (सं॰ स्त्री॰) काकचिञ्चि-ङीप्। गुञ्जा, घुंघची।

काकच्छद (सं॰ पु॰) काकस्य छदः पक्षः इव छदो यस्य, मध्यपदलो॰। १ खञ्जनपक्षी, खड़रैचा। २ चाषपक्षी, नीलकण्ठ। ३ कौवेका पर।

काकच्छर्दि (सं॰ पु॰) काकच्छद बाहुलकात् इच्। काकच्छद देखो।

काकच्छर्दि, काकच्छर देखो।

काकजंघा (सं॰ स्त्री॰) काकस्य जंघेव जंघा आकृति र्यस्याः, मध्यपदलो॰। १ स्वनामख्यातवृक्ष, एक पेड़। इसका संस्कृत पर्याय—काकाङ्गी, काकाक्षी, काकनासिका, कपीवल, ध्वाङ्क्षजंघा, काकाह्व, सुलोमशा, पारावतपदी, दासी और नदीकान्ता है। राजनिघण्टुके मतमें यह तिक्त, उष्ण और व्रण, कफ, बधिरता, अजीर्ण, जीर्णज्वर तथा विषमज्वरनाशक होती है। लङ्कानाथके कथनानुसार काकजंघा ज्वर, कण्डु, विषमज्वर और क्रिमिको दूर करती है।

पुष्यानक्षत्रमें इसका मूल उखाड़ रक्त सूत्रसे गले या हाथमें बांधनेसे एक दिनके अन्तरसे आनेवाला ज्वर (एकातरा) छूट जाता है।

कोई कोई इसे मसी या चकसेनी भी कहते है। काकजंघाका नाम तैलगुमें सुरपदि (ढिबिकि वैलमा) हैं। अंगरेजी उद्भिज शास्त्रमें ल्याहिरटा (Leea hirta) लिखते हैं। यह ४।५ हाथ बढ़ता है। काण्ड-सन्धिका मध्यभाग काकजंघाकी भांति उन्नत रहता है। इसी स्थानसे पत्र निकलते हैं। काकजंघाके

पत्र आध हाथ दीर्घ और ४ अङ्गुलि प्रशस्त होते हैं। उनका अग्रभाग सूक्ष्म तथा बहु शिरायुक्त लोमश और किञ्चित खरस्पर्श लगता है। फल गुच्छेदार होता है। उसका ऊपरी वर्तुल प्रदेश कुछ निम्न पड़ता है। काकजंघाकी पुरानी मोटी गांठमें एक कीड़ा भी रहता है। वह बच्चोंकी पसली चमकनेसे औषधकी भांति व्यवहार किया जाता है।

भारतमें नाना स्थानोंपर काकजंघा उत्पन्न होती है। विशेषतः वङ्गदेशीय यशोर अञ्चलके नदीकूलवर्ती वनमें यह बहुत देख पड़ती है।

२ गुञ्जा, घुंघची। ३ मुद्गपर्णी लता, मुगौन।

काकजम्बु (सं० स्त्री०) काकवर्णं जम्बुः। १ भूमिजम्बुवृक्ष, जङ्गली जामनका पेड़। (Ardisia humilis) इसे बंगलामें वनजाम, मलयमें बोंसी, उड़ियामें कुदना, तेलगुमें कोंदमयार काकी नारेदु, नागपुरीमें कततेना, महिसुरीमें बोदिनागिड्डा, अङ्गरेजीमें ग्वेञ्ज मौप और सिंहलीमें बजूदन कहते हैं।

यह एक छोटी झाड़ी है। भारतमें काकजम्बु प्रायः सर्वत्र पायी जाती है। किन्तु उत्तर-भारत और सिंहलमें यह नहीं होती। इसके फलोंके रक्तवर्ण रससे अच्छा पीला रंग निकलता है। काष्ठ धूसरवर्ण एवं ईषत् कठिन आता और जलाया जाता है। वैद्यक-निघण्टुके मतसे यह कषाय, अम्ल, गुरु, पाकमें मधुर, वीर्य-पुष्टि-बलकारक और दाह, श्रम तथा अतीसारनाशक है।

२ नागरङ्गवृक्ष, नारङ्गीका पेड़।

काकजम्बू (सं० स्त्री०) कं जलं अकति आश्रयत्वेन गृह्णाति, क-अक-अण्-टाप्; काका चासौ जम्बू चेति, कर्मधा०। जलजात जम्बु विशेष, पानीमें पैदा होनेवाली एक जामन। इसका संस्कृत पर्याय—काकफला, नादेयी, काकवल्लभा, भृङ्गेष्टा, काकनीला, धाङ्क्षजम्बु और धनप्रिया है। काकजम्बु देखो।

काकजात (सं० पु०) काकेन जातः प्रतिपालेन वर्धित इत्यर्थः। १ काकपुष्ट, कोकिल, कौवेसे परवरिश पायी हुई कोयल। (त्रि०) २ काकसे उत्पन्न, कौवेसे पैदा।

काकजानुका (सं० स्त्री०) काकजंघा, मसी, चकसेनी।

काकड़ा (हिं० पु०) १ वृक्षविशेष, एक पेड़। यह सुलेमान और हिमालय पर्वत पर होता है। कूमायूंमें इसे अधिक देखते हैं। शीतकालमें इसके पत्र झड़ते हैं। काष्ठ पीताभ धूसरवर्ण होता है। इससे चिष्टर (कुरसी), मञ्च (मेज), शय्या (पलंग) प्रभृति बनाते हैं। पत्र पशुओंको खिलाये जाते हैं। काकड़ेके बांदे 'काकड़ासींगी' कहलाते हैं। कर्कटशृङ्गी देखो।

काकड़ासींगी (हिं० स्त्री०) कर्कटशृङ्गी, एक पीला बांदा। यह काकड़े पेड़में लगता है। काकड़ा देखो। इससे दूसरी चीजोंपर रंग चढ़ाते और चमड़ा सिझाते हैं। लौहचूर्णमें मिला देनेसे काकड़ासींगी काली पड़ जाती है। इसका आस्वाद कषाय है। कर्कटशृङ्गी देखो

काकडुम्बुर (सं० पु०) कृष्णडुम्बुर, काला गूलर। यह छोटा होता है।

काकण (सं० क्ली०) कु ईषत् कणति निमीलति, कु-कण्-अच्, कोः कादेशः। १ गुञ्जा, घुंघची। काकड़मिव आकृतिरस्यास्ति कृष्णरक्तचिह्नितत्वात्। २ कुष्ठविशेष, काले और लाल धब्बेवाला जुज़ाम या कोढ़। (Leprosy with black and red spots)

गुञ्जाकी भांति वर्णविशिष्ट, अपाक (न पकनेवाले) और वेदनायुक्त कुष्ठको 'काकण' कहते हैं। यह कुष्ठ त्रिदोषसे उत्पन्न होता है। सुतरां इसमें त्रिदोषके लक्षण देख पड़ते हैं। काकण असाध्य कुष्ठ है।

काकणक (सं० क्ली०) काकण स्वार्थे कन्। काकण कुष्ठ, घुंघची-जैसा कोढ़।

काकणघ्नवटी (सं० स्त्री०) कुष्ठघ्न औषध, जुज़ाम या कोढ़की एक दवा। लौहभस्म, विष, चित्रकका मूल, कटुका, त्रिफला, त्रिकटु और त्रिमद (विडङ्ग, मुस्त तथा चित्रक) समभाग ले पीस डालते हैं। फिर इस चूर्णको पथ्या (हर), निम्ब, विडङ्ग, वासक और अमृता (गुर्च)के क्वाथसे भावना दे गोलियां बना लेते हैं। भावनाके लिये अष्टावशेष क्वाथ कहा है। एक मास यह औषध खानेसे काकणकुष्ठ अच्छा हो जाता है। (रसरत्नाकर)

काकणन्तिका (सं० स्त्री०) कु ईषत् कणन्ती निमी-

न्ती, काकपन्ती-कन्-टाप्, कोः कदादेशः। १ गुञ्जा, लाल घुंघची। २ रक्तकम्बल वृक्ष, लाल बघोलेका पेड़।

काकपन्ती (सं० स्त्री०) कु-कप-अल्ट ङीप्।

काकपन्तिका देखो।

काकपान्तक (सं० पु०) सिन्दूर।

काकपी (सं० स्त्री०) काकप-ङीप्। १ गुञ्जा, घुंघची। २ कुष्ठविशेष, किसी क़िस्मका जुज़ाम।

काकप देखो।

काकपञ्जा (सं० स्त्री०) काकनासा, सफेद छोटी घुंघची।

काकतन्द्रा (सं० स्त्री०) काकस्य तन्द्रेव तन्द्रा मध्य-पदलो०। १ काककी तन्द्राकी भांति अति सतर्क भावमें तन्द्रा, कौवेकी काहिली-जैसी निद्रायत होशियारीमें सुस्ती। २ काककी तन्द्रा, कौवेकी काहिली।

काकता (सं० स्त्री०) काकस्य भावः, काक-तल्-टाप्। १ काकका धर्म, कौवेका फ़र्ज़। २ काकका स्वभाव, कौवेकी आदत, कौवापन।

काकतालीय (सं० क्ली०) काकतालमधिकृत्य उपदिष्टम्, काक-ताल-छ। समासाच्च तद्विषयात्। पा ५।३।१०६। न्याय विशेष, एक मन्तिक़। सुपक्व ताल अपने आप गिरते समय यदि काक वृक्षपर आकर बैठ जाता, तो कहा जाता कि काक ही ताल गिराता है। इसी प्रकार कोई काम स्वतः सिद्ध होते यदि किसीका हाथ लगता, तो वह उसीका किया ठहरता है। ऐसी ही घटनामें काकतालीय न्याय होता है।

"तदिदं काकतालीयं वैरमासादितं त्वया।" (रामायण ३।४५।१०)

(त्रि०) २ आकस्मिक, दैवायत्त, नागहानी, इत्तिफ़ाकी। (अव्य०) ३ अकस्मात्, इत्तिफ़ाकसे, अचानक।

काकतालीय न्याय, काकतालीय देखो।

काकतालीयवत् (सं० अव्य०) अकस्मात्, इत्तिफ़ाकसे अचानक।

काकतालुकी (सं० त्रि०) काकवत् तालुरस्यास्ति, काक-तालुक-इनि। वन्दोपतापगर्ह्यात् प्राणिस्थादिनिः। पा ५।२।१२८। काककी भांति तालुविशिष्ट, कौवेकी तरह तालू रखनेवाला, खराब, बुरा।

काकतिक्तका, काकतिक्ता देखो।

काकतिक्ता (सं० स्त्री०) काकमांसवत् तिक्ता, मध्य-पदलो०। १ लताकरञ्ज, बेलदार करौंदा। २ काक-जंघा, मसी, चकसेनी। ३ श्वेत गुञ्जा, सफेद घुंघची।

काकतिन्दु, काकतिन्दुक देखो।

काकतिन्दुक (सं०पु०) कं जलं अकति, क-अक-अण्; काकश्चासौ तिन्दुकश्चेति, कर्मधा० यद्वा काकवर्णस्तिन्दुकः काकप्रियो वा तिन्दुकः, मध्यपदलो०। तिन्दुक-विशेष, किसी क़िस्मका आबनूस। (*Diospyros tomentosa*)

इसे भारतके विभिन्न प्रदेशोंमें अन्दुली, तिनाई इलिन्द, पेड़ा इलिन्द, तोगरिके, कौलचे, उलिन्द या उलिमिरा कहते हैं। यह मध्य आकारका वृक्ष है। काकतिन्दुक दाक्षिणात्यमें उड़ीसे तक मिलता है। सूरत और नासिकमें यह अधिक देख पड़ता है। इसे गोदावरी वनका झाड़ कहते हैं। बालाघाट पर्वत और मन्द्राजमें भी यह पाया जाता है। इसका फल गोल बड़े मटरकी भांति होता है। पकनेपर लोग इसे खाते हैं। यह अति सुरस निकलता है। काठ कठिन, स्थायी और सुन्दर वर्णविशिष्ट रहता है। यह अनेक कार्योंके लिये उपयोगी है।

काकतिन्दुकका संस्कृत पर्याय—काकेन्दु, कुलक, काकपीलुक, काकपीलु, काकाण्ड, काकस्फूर्ज, काकाह्व और काकबीजक है। राजनिघण्टुके मतसे यह गुरु, कषाय, अम्ल, वातविकारघ्न और मधुर होता है। इसका पक्व फल मधुर, किञ्चित् कफकारक और वमि तथा पित्तनाशक है।

काकतीयरुद्र (सं० पु०) नागपुरके एक प्राचीन राजा।

काकतुण्ड (सं० पु०) काकतुण्डस्य इव वर्णो ऽस्यस्य, काकतुण्ड-अच्। १ कृष्ण अगुरु, काला अगर। २ जल-पक्षिविशेष, पानीकी एक चिड़िया। ३ ग्रीवोर्ध्वगत काकतुण्डाकार सन्धि, जिस्म का एक जोड़। यह हनुद्वय (दोनों जबड़ों) की सन्धि है।

काकतुण्डफला (सं० स्त्री०) काकतुण्डमिव फल-मस्याः बहुव्री०। काकनासिका, सफेद घुंघची।

काकतुण्डा, काकतुण्डिका देखो।

काकतुण्डिका (सं० स्त्री०) काकतुण्डस्येव वर्णः

फलाग्रे यस्याः, काकतुण्ड-ठन्-टाप्। १ श्वेतगुञ्जा, सफेद घुंघची। २ महाश्वेतकाकमाची, बहुत सफेद केवैया। काकचिञ्चा, घुंघची।

काकतुण्डी (सं० स्त्री०) काकं ईषत् दुःखं तुण्डते नाशयति, तुडिङ् वधे अण्-ङीष्। राजपित्तल, किसी किस्मकी पीतल। काकतुण्डस्येव आकृतिर्यस्याः। २ खनामख्यात लता, कौवाटोंटी। इसका संस्कृत पर्याय—काकादनी, काकपीलु, काकशिम्बी, रक्तला, ध्वाङ्क्षादनी, वक्रशल्या, दुर्मोहा, वायसादनी, ध्वाङ्क्षनखी, वायसी, काकदन्तिका और ध्वांचदन्ती है। राजनिघण्टुके मतसे यह कटु, उष्ण, तिक्त, द्रव, रसायन, वायुदोषनाशक, रुचिकारक और पलित स्तम्भक (बालोंकी सफेदी रोकनेवाली) होती है। ३ गुञ्जा, घुंघची। ४ लघुरक्त काकमाची, छोटी लाल केवैया।

काकतुल्य (सं० त्रि०) काकस्य तुल्यम्, ६-तत्। काकके समान, कौवेके बराबर, चालाक।

काकतीय (काकत्य)—दक्षिणापथका एक प्राचीन राजवंश। इस वंशवाले प्रथम कल्याणके चालुक्य राजाओंद्वारा शासित रहे। पाश्चात्य पुरातत्त्वविदोंके मतमें ई० एकादश शताब्दके शेष भागसे इस वंशका अभ्युदय हुआ।

इस राजवंशमें जिन जिन राजाओंके नाम मिलते, उनमें काकतिप्रलय प्रधान हैं। कहीं कहीं ऐसी बातें सुन पड़ती हैं कि प्रलय राजाकी पटरानी काकती देवीकी पूजा करती थीं। राजाभी पत्नीके पीछे चल काकती देवीके उपासक बने। इसीसे उन्होंने अपना नाम काकतिप्रलय रख लिया। घटनाक्रमसे राजाने एक शिवलिङ्ग पाया। सम्भवतः वह पारस पत्थर था। उस प्रस्तरके गुणसे राजाको विस्तर धन मिला। पत्थर बहुत भारी था। किसीमें उसको हिलानेका सामर्थ्य न था। इसीसे प्रलयराजको अनमकोण्ड छोड़ ९९० शक (१०६८ ई०)में उक्त शिवलिङ्ग मिलनेके स्थान पर नया नगर बसाना पड़ा। प्रथम काकतिप्रलय चालुक्य राजाओंके अधःपतनसे स्वाधीन हुए। पुत्रजन्म लेने पर दैवज्ञोंने राजासे कहा था, यह पितृघाती होगा। दैवज्ञोंकी बातसे वह पुत्रको वनमें छोड़ आये। किसी व्यक्तिने पाकर उसे पुत्रकी भांति पाला पोसा। वयोप्राप्त होनेपर वह पारसलिङ्गका रक्षक बना। घटनाक्रमसे किसी रातको प्रलयराज मन्दिरमें देवदर्शन करने गये। साथमें नौकर चाकर कोई न था। राजकुमार राजाको गुप्तभावसे आते देख सोचने लगे, सम्भवतः चोर आता है। फिर उनसे रहा न गया। उन्होंने तलवार आघात लगाया था। प्रलयराज धरा पर गिर पड़े। अन्तमें उन्हें मालूम हुआ कि वह उसी पुत्रको कार्य था, जिसको मातृक्रोड़से निकाल अपनी रक्षाके लिये वनमें छोड़ा। उन्होंने देखा अदृष्टका लेख नहीं मिटती। पुत्रका क्या दोष था। पुत्रके हाथ उन्हें मरना रहा। अन्तिम काल पर राजाने पुत्रको अपना राज्य दे डाला।

काकतिप्रलयके पुत्रका नाम रुद्रदेव था। उन्होंने पितृहत्यारूप महापातकके प्रायश्चित्तमें सहस्र शिवमन्दिर बनवाये। उनके बाहुबलसे कटक और बलनादके राजाने वश्यता मानी थी। किन्तु कनिष्ठभ्राता महादेवने विद्रोही हो युद्धमें उनको हराया और राजसिंहासन पाया। रुद्रदेव मारे गये। कुछ दिन पीछे महादेवगिरिके राजासे लड़ने चले और युद्धमें कट मरे। उनके पीछे रुद्रदेवके ज्येष्ठपुत्र गणपतिदेव राजा हुए। उन्होंने देवगिरिके रामराजासे युद्धमें पितृव्यके मृत्युका बदला लिया था। राम राजाको कर देना पड़ा। उन्होंने अपनी कन्या प्रदान कर गणपति देवका आनुगत्य माना था। गणपतिदेवने पल्लिगारोंके यत्नसे वलनाद, नेल्लूर प्रभृति प्रदेश अधिकार किये। वह बड़े जैनविद्वेषी थे। उन्होंने तोड़ फोड़ असंख्य जैनमन्दिरोंके स्थान पर शिवलिङ्ग लगवा दिये। फिर गणपतिदेवने अनेक नगर पत्तन बसाये। राजधानीका नाम 'एकशिलानगर' रखा गया और चारो ओर प्राचीर बना। उनके राजत्व कालमें अनेक तैलङ्ग कवियोंने जन्म लिया था। मन्त्री गोपराजके यत्नसे नियोगी ब्राह्मण मामूली मोहरिर बनाये गये। वैदिक ब्राह्मणोंने इस नियमका घोर प्रतिवाद किया था। किन्तु राजमन्त्रीका आदेश कोई टाल न सका।

गणपतिदेवके कोई पुत्र न था। उनकी एक मात्र कन्या उमाकदेवीसे राज महेन्द्रीके राजकुमार चालुक्यतिलक वीरभद्रका विवाह हुआ। मृत्युसमय गणपतिने दौहित्रका भी जन्म न था। सुतरां उनकी पत्नी रुद्रयादेवीने अभिषिक्त हो २८ वर्ष राजत्व रखा। फिर वयोप्राप्त होने पर उमाकदेवीके पुत्र प्रतापरुद्र-देवको मातामह गणपतिदेवका सिंहासन मिल गया। प्रतापरुद्रदेव ही वरङ्गलके अन्तिम स्वाधीन थे। उन्होंने गोदावरीसे सेतुबन्ध-रामेश्वर पर्यन्त अप्रतिहत प्रभावसे राजत्व चलाया। सुननेमें आता है कि उनके प्रबल प्रतापसे घबरा कटकके राजाने दिल्लीमें बादशाहसे साहाय्य मांगा था। मुसलमानोंका इतिहास पढ़नेपर समझ पड़ता है कि १३२३ ई०को प्रतापरुद्र उनसे पराजित हुए और पकड़ कर दिल्ली भेजे गये। कुछ दिन पीछे प्रतापरुद्र स्वाधीनता लाभ कर वरङ्गलको लौटे थे। किन्तु फिर वह अधिक दिन इहलोकमें न रहे। मरनेपर उनके पुत्र वीरभद्र राजा बने। उनके समय मुसलमानोंके आक्रमणसे वरङ्गल राजधानी भस्मीभूत हुई। वीरभद्रने वरङ्गल छोड़ कोण्डवीड़ नामक स्थानमें एक नूतन नगर बसाया था। उसी समय वरङ्गलके काकत्य (काकतेय) राजवंशका राजत्व जाता रहा। कोण्डवीड़ देखो।

काकदन्त (सं० पु०) काकस्य दन्तः। काकका दन्त, कौवेका दांत। कौवेके दांत नहीं होते। इसीसे असम्भव विषयको काकदन्त कहते हैं। शशविषाण, कूर्मलोम, और वन्ध्यापुत्रकी भांति यह भी निरर्थक वाक्य है।

काकदन्तकि (सं० पु०) प्राचीन क्षत्रियजातिविशेष।

काकदन्तकीय (सं० पु०) काकदन्तकि क्षत्रियोंके एक राजा।

काकदन्तगवेषण (सं० पु०) काकस्य दन्ताः सन्ति न वा इति संशये तत्र वर्णभेदस्य संख्याविशेषस्य च गवेषणमिव अनर्थकः प्रयत्नो यत्र। अकारण अन्वेषणबोधक न्याय-विशेष, बेफायदा खोजमें पड़नेका एक लौकिक न्याय।

काकके दन्त रहने या न रहनेका सन्देह, निश्चित होनेसे पहले वर्ण और संख्या पर बात बढ़ाना अनर्थक है। यह न्याय अनर्थक वितण्डाके स्थल पर लगता है।

काकदन्तिका (सं० स्त्री०) १ काकादनी लता, मकोइ या लाल घुंघची। २ दन्तीवृक्ष, दांतीका पेड़। ३ रक्त-काकमाची, लालकेवैया

काकद्रुम (सं० पु०) वृक्ष विशेष, एक पेड़। (Dalbergia rimosa) श्रीहट्ट (सिलहट)में इसे काकद्रुम कहते हैं। यह झाड़दार पेड़ है। काकद्रुम पूर्व हिमालयके उष्ण प्रदेशमें ४००० फीट ऊंचा होता है। खसिया पर्वत, श्रीहट्ट और आसाममें इसे अधिक देखते हैं। यमुनासे पश्चिम सिवालिक प्रान्त और हिमालयके बहिर्भागमें भी यह पाया जाता है। मङ्गलोर (बङ्गलोर)में इसकी कृषि होती है।

काकध्वज (सं० पु०) काकं इंधनत्वं आर्थं ध्वज इव यस्य। वाडवाग्नि, समुद्रकी भीतरकी आग। वाडवाग्नि देखो। २ और्व ऋषि।

काकनन्ती (सं० स्त्री०) कु ईषत् कनन्ती निमीलन्ती, कोः कादेशः। काकपन्तिका, घुंघची।

काकनामा (सं० पु०) काकस्य नाम इव नाम यस्य, मध्यपदलो०। वकवृक्ष, अगस्तिका पेड़। काकरीय देखो

काकनामा काकनामा देखो।

काकनाम्र (सं० पु०) काकस्य नासाया वर्ण इव फलं यस्य। विकण्टक वृक्ष, गोखुरीका पेड़।

काकनासा (सं० स्त्री०) काकस्य नासा इव फलमस्याः। १ महाश्वेत काकमाची, कौवाटोंटी। (Solanum indicum) यह मधुर, शीतल, पित्तघ्न, रसायन, दार्ढ्य-कर और विशेषतः पलितघ्न होता है। (राजनिघण्टु) भावप्रकाशमें इसे कषाय, उष्ण, रस एवं पाकमें कटु, कफघ्न, वान्तिकर, तिक्त और शोथ, अर्श, श्वित्र तथा कुष्ठनाशक कहा है।

काकनासिका (सं० स्त्री०) काकनासा स्वार्थे कन् टाप् अत इत्वम्। १ रक्तत्रिवृत्, लाल निसोत। २ काक-जंघा, चकसेनी।

काकनिद्रा (सं० स्त्री०) काकस्य निद्रा इव निद्रा, मध्यपदलो०। काककी निद्रा-जैसी अतिसतर्क निद्रा, कौवेकी तरह होशियारीके साथ सोना।

काकनीला (सं० स्त्री०) काक इव नीला। काकजम्बु वृक्ष, जङ्गली जामनका पेड़।

काकन्ती (सं० स्त्री०) कृष्णशीम्बी, काली सेम।

काकन्दक (सं० त्रि०) काकन्दी देशे भवः, काकन्दी-वुञ्। रोपधेतोः प्राचाम्। पा। ४।२।१२३। काकन्दी देश-वासी, काकन्दी मुल्कका रहनेवाला।

काकन्दि (सं० पु०) क्षत्रिय जातिविशेष।

काकन्दी (सं० स्त्री०) काकन्दि-ङीष्। १ देशविशेष, कोई मुल्क। २ चिञ्चा, इमली।

काकन्दीय (सं० त्रि०) काकन्दी-छ। काकन्दी देश-वासी, काकन्दी मुल्कका रहनेवाला। २ काकन्दि क्षत्रियोंका राजा।

काकपक्ष (सं० पु०) काकस्य पक्ष इव आकारो ऽस्त्यस्य, काक-पक्ष-अच्। १ मस्तकके उभय पार्श्व केशरचना, शिरकी दोनों ओर बालोंका बनाव। इसका संस्कृत पर्याय—शिखण्डक और शिखण्डि है। पूर्व समयमें बालकोंके मस्तक पर ऐसी ही केश-रचनाका व्यवहार था,—

"कौशिकेन स किल क्षितीश्वरो राममध्वरविघातशान्तये।
काकपक्षधरमेत्य याचितस्तेजसां हि न वयः समीक्ष्यते॥" (रघु ११।१)

२ कर्णके उभय पार्श्व केशरचनाविशेष, कानोंकी दोनों ओर बालोंका बनाव, पट्टा, जुल्फ।

"काकपक्ष शिर सोहत नीके।
गुच्छा बिच बिच कुसुमकलीके॥" (तुलसी)

काकपक्षयुक्त (सं० त्रि०) काकपक्षेण केशसंस्कार-विशेषेण युक्तः, ३-तत्। १ शिखण्डकयुक्त, जुल्फोंवाला। २ कानोंके पास पट्टे रखाये हुआ।

काकपद (सं० पु०) काकपद इव आकारो ऽस्त्यस्य, काक-पद-अच्। १ रतिबन्ध विशेष।

"पादौ स्त्री स्कन्धयुग्मस्थौ विपुला लिङ्गं भगे लघु।
कामयेत् कामुको कामी बन्धः काकपदो मतः॥" (रतिमञ्जरी)

(क्ली०) काकस्य पदं पदपरिमाणम्। २ काकके पदकी भांति परिमाण, कौवेके पैरकी तरह नाप। स्मृतिशास्त्रमें इसी परिमाणसे शिखा रखनेकी व्यवस्था है। ३ कपालसे शिरपर्यन्त मुण्डन। काकपदवत् आकृतिरस्त्यस्य। ४ चिह्न विशेष, एक निशान्। (‸ वा ^) पुस्तकमें लिखित विषयकी अपेक्षा स्थान स्थान पर कुछ अधिक भी मिला देना पड़ता है। ऐसे अवसर पर यह चिह्न लगता है। इस चिह्नके नीचे ऊपर जो लिखते उसे उक्त विषयमें ही संलग्न समझते हैं। काकपद छूटे हुये लेखको पूरा करनेमें व्यवहृत होता है।

काकपर्णी (सं० स्त्री०) काक इव कृष्णपर्णः यस्याः, काकपर्ण-ङीष्। मुद्गपर्णी, मोठ। मुद्गपर्णी देखो।

काकपीलु (सं० पु०) काकप्रियः पीलुः। १ काक-तिन्दुक, कुचिला। काकादनीलता, कौवाटोंटी। ३ श्वेतगुञ्जा, सफेद घुंघची। ४ रक्त गुञ्जा, लाल घुंघची।

काकपीलुक (सं० पु०) काकपीलु संज्ञायां कन्। काकपीलु देखो।

काकपुच्छ (सं० पु०) काकस्य पुच्छ इव पुच्छो यस्य, मध्यपदलो०। कोकिल, कोयल।

काकपुष्ट (सं० पु०) काकेन पुष्टः, ३-तत्। कोकिल, कोयल। कोकिली अपने अण्डेको पोस नहीं सकती। इसीसे वह काकके घोंसलेमें जा उसके अण्डे फेंक अपने अण्डे रख आती है। काक उन्हें अपने अण्डे समझ सेवा करता है। अण्डे फूटने पीछे भी जबतक सम्पूर्ण रीत्या पक्ष नहीं जाते, तबतक कोकिलके शावक मुश्-किलसे पहचाने जाते हैं। सुतरां काकभी उनका पालन करता रहता है। काककर्तृक प्रतिपालित होनेसे ही कोकिल 'काकपुष्ट' कहाता है।

काकपुष्प (सं० क्ली०) काकवत् कृष्णं पुष्पं यस्य, बहुव्री०। १ ग्रन्थिपर्ण, एक खुशबूदार चीज। २ सुगन्धतृण, खुशबूदार घास।

काकपेय (सं० त्रि०) काकैरनतकन्धरैः पीयते, काक-पा-यत्। कृत्ये ऽधिकार्थवचने। पा २।१।३३। काकके पान करने योग्य, जिसे कौवा पी सके।

काकप्राणा (सं० क्ली०) १ काकनासा, कौवाटोंटी। २ महाश्वेतकाकमाची, बड़ी सफेद केवैया।

काकफल (सं० पु०) काकप्रियं फलमस्य, मध्य-पदलो०। १ निम्बवृक्ष, नीमका पेड़। निम्ब देखो। २ काकजम्बु, कठजामन।

काकफला (सं० स्त्री०) काकप्रियं फलमस्याः, मध्यपदलो०। काकजम्बु, जङ्गली जामन।

काकवन्ध्या (सं० स्त्री०) काकीव वन्ध्या, पुंवद्भावः। एकमात्रप्रसवा भार्या, एक ही बच्चा पैदा करनेवाली औरत। काकी केवल एक बार प्रसव करती है, इसीसे जो स्त्री एक ही प्रसवसे वन्ध्या हो जाती, वह काकवन्ध्या कहाती है।

काकबलि (सं० पु०) काकेभ्यो देयो बलिरन्नादिकम् मध्यपदलो०। काकको दिया जानेवाला अन्नादि। प्रथम काकको पाद्यादि दे निम्नोक्त मन्त्रसे पूजते हैं,—

"ॐ यमद्वारावस्थित-नानादिग्देशीयवायसेभ्यो नमः।"

फिर इस मन्त्रसे प्रार्थना की जाती है।

"ॐ काक त्वं यमदूतोऽसि गृहाण बलिमुत्तमं।
यमलोकगतं मे तं समाप्याययितुमर्हसि॥"

इस प्रार्थना पर पिण्डदान वा मन्त्रपाठ करना पड़ता है—

"(ओं) काकाय काकपुरुषाय वायसाय महात्मने।
अवपिण्डं प्रयच्छामि कथ्यतां धर्मराजनि॥"

आह्निकतत्त्वमें पिण्डदानका दूसरा मन्त्र कहा है,—

"ऐन्द्रावारुणवायव्याः सौम्या वै नैऋताश्च ये।
वायसः प्रतिगृह्णन्तु भूमौ पिण्डं मयार्पितम्॥
ॐ काकेभ्यो नमः।"

उक्त मन्त्रसे दान पिण्डपर जल छिड़कना पड़ता है।

काकभण्डी (सं० स्त्री०) श्वेतगुञ्जा, सफेद घुंघची।

काकभाण्डी (सं० स्त्री०) काकस्य दैश्यज्वलस्य मुखस्यावरूपस्य भाण्डी क्षुद्रभाण्डमिव, उपमि०। १ महाकरञ्ज, बड़ा करौंदा। २ लघु रक्तमाचिका, छोटी लाल कौवाटोंटी।

काकभीरु (सं० पु०) काकात् भीरुर्भयशीलः, ५-तत्। पेचक, कौवेसे डरनेवाला उल्लू। पेचक देखो।

काकभुशुण्डि (सं० पु०) एक ब्राह्मण। यह रामके सच्चे भक्त रहे। लोमशके शापसे इन्हें काक होना पड़ा था। काकभुशुण्डिने रामकी कथा गरुड़से कही है।

काकमद्गु (सं० पु०) काक इव कृष्णो मद्गुर्जलचर पक्षिविशेषः। दात्यूह, पानीकी मुरगी या कुकड़ी।

"हृत्वा हत्वा तु दुर्बुद्धिः काकमद्गुः प्रजायते॥" (भारत, १३।१११।१२१)

काकम° (सं० पु०) काकं मृद्नाति, काक-मृद्-अण्। महाकालता। किसी किस्मकी कड़वी लाकी। यह कौवेको मार डालता है।

काकमर्दक, काकमर्द देखो।

काकमांस (सं० क्ली०) वायसमांस, कौवेका गोश्त।

काकमाचिका (सं० स्त्री०) काकमाची स्वार्थे कन्-टाप् ह्रस्वः। काकमाची देखो।

काकमाची (सं० स्त्री०) काकान् मचते, मचि-अण्-ङीष् पृषोदरादित्वात् नलोपः। स्वनामख्यात पत्रशाक विशेष, एक छोटा पेड़। इसका संस्कृत पर्याय—वायसी, ध्वाङ्क्षमाची, वायसाह्वा, सर्वतिक्ता, बहुफला, कटुफला, रसायनी, गुच्छफला, काकमाता, स्वादुपाका, सुन्दरी, तिक्तिका और बहुतिक्ता है।

हिन्दीमें काकमाचीको केवैया या मकोय, बंगलामें काकते या मकुनी, मराठीमें कमुनी या घाटी और तामिलमें मनीकनली कहते हैं। (Solanum nigram)

यह शाकप्रधान क्षुद्र वृक्ष है। भारत और सिंहलमें ७००० फीट ऊंचे इसे सर्वत्र पाते हैं।

भारतके अनेक विभागोंमें इसके पत्र और मृदु अङ्कुर पालककी भांति उबालकर खाये जाते हैं। सुपक्व गुटिकायें बालकोंके खानेमें आतीं और कोई असर नहीं देखातीं।

राजनिघण्टु तथा राजवल्लभके मतमें यह कटु, तिक्त, उष्ण, हृष्य, रसायन, रोचक, भेदक, और कफ, शूल, अर्शोरोग, शोथ, कुष्ठ एवं कण्डूनाशक है। भावप्रकाशमें इसे ज्वर, मेह, नेत्ररोग, हिक्का, वमि और हृद्रोग मिटानेवाली भी कहा है। यकृत् बढ़नेपर डेढ़ पाव काकमाचीके रस प्रयोगसे विशेष उपकार होता है। शोथरोगमें भी इसके पत्रका क्वाथ अथवा रस दिनमें तीनबार एक-एक ड्राम पिलाया जा सकता है।

काकमाची श्वेत रक्त भेदसे दो प्रकारकी होती है। श्वेतको श्वेता तथा महाश्वेता और रक्तको लघुरक्त काकमाची कहते हैं। श्वेत काकमाची मधुर, रसायन, शीत, कषाय, कटु, तिक्त, उष्ण, अग्निप्रद, तनुदार्ढ्यकर और कफ, शोथ, अर्श, पलित, पित्त,

तथा श्वेतकुष्ठनाशक है। महाश्वेत काकमाची तुवर, उष्ण, रसायन, कटु, तिक्त, रुचिकर, और वात, कुष्ठ, पाण्डु, प्रमेह, कफ, छर्दि, क्रमि, ज्वर एवं पलितघ्न होती है। रक्त काकमाची जीवत्, वात एवं कफकर, हृद्य रसायन और पित्त तथा त्रिदोषनाशक है।

काकमाचीतैल (सं० क्लो०) स्वनामख्यात पक्वशाकका तेल, मकोयका तेल। मनःशिला, शोमराजी बीज, सिन्दूर तथा गन्धकके डाल चार पल कटुतेल काकमाचीके रसमें पकाते हैं। इस तेलको १ शाण (४ मासे) लगानेसे अरूंषिका (सरकी खुजली) अच्छी हो जाती है। (रसरत्नाकर)

काकमाता (सं० स्त्री०) काकस्य मातेव पोषिका तत् फलप्रियत्वात्। काकमाची क्षुप, मकोयका पौदा।

काकमुख (सं० त्रि०) काकस्य मुखमिव मुखं यस्य, बहुव्री०। काकवत् मुखविशिष्ट, जो कौवेकी तरह मुंह रखता हो। (पु०) २ पुराणोक्त जातिविशेष। यह सम्भवतः महानदीके उपकूलमें रहते थे।

काकमुद्गा (सं०स्त्री०) काकेन वैफल्येन मुदं गच्छति, काक-मुद्-गम-ड-टाप्। मुद्गपर्णी, मोट। मुद्गपर्णी देखो।

काकमृग (सं० पु०) वायस एवं हरिण, कौवा और हिरन।

काकम्बीर (वै० पु०) वृक्षविशेष, किसी पेड़का नाम।

काकयव (सं० पु०) काकवत् निर्गुणो यवः। शस्यहीन धान्य, खोखला धान। इसमें चावल नहीं होता।

"तथैव पाण्डवाः सर्वे तथा काकयवा इव।" (महाभारत)

काकयान (सं० क्ली०) कोङ्कणदेशख्यात हासानाम वृक्षविशेष, एक पेड़।

काकर—बम्बई प्रान्तके शिकारपुर जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २६° ५८´ उ० और देशा० ६७° ४४´ पू० पर अवस्थित है। भूमिका परिमाण ५९८ वर्ग मील है। इसमें ११ थाने और फौजदारीकी २ अदालतें हैं। मालगुजारीमें गवरनमेण्टको १८६२१०) रु० मिलता है। लोकसंख्या प्रायः पचास हजार है।

काकरव (सं० पु०) भीरुपुरुष, डरपोक आदमी। जो व्यक्ति काकवत् भयभीत हो कोलाहल करता है उसको 'काकरव' कहते हैं।

काकराला (ककराला)—युक्तप्रदेशके बुदाऊं जिलेकी दातागञ्ज तहसीलका एक नगर। यह बुदाऊं नगरसे छह कोस दूर है। यहां भारतीयोंके देवमन्दिर और मुसलमानोंकी मसजिदें विद्यमान हैं। सिपाही विद्रोहके समय बलवाइयोंने ककराला जलाया था। १८७५ ई०के अपरेल मासमें अंगरेज सेनानायक जनरल पेंगो विद्रोहियोंका शासन करने आये। किन्तु कुछ मुसलमानों (जालियों)ने उन्हें मार डाला। आखिर उनके सैन्यसमूहने विद्रोहियोंको सम्पूर्णरूपसे हराया था। लोकसंख्या प्रायः छह हजार है। भारतीयोंसे मुसलमान अधिक मिलते हैं।

ककरासींगी (हिं०) कर्कटशृङ्गी देखो।

काकरिपु (सं० पु०) उलूक, कौवेका शत्रु, उल्लू।

काकरी (हिं०) कर्कटी देखो।

काकरुक, काकरुक देखो।

काकरुत, (सं० क्लो०) काकस्य रुतम्, ६-तत्। काकरव, कौवेकी बोली। काकचरित्र देखो।

काकरुहा (सं० स्त्री०) काक इव रोहति मूलशून्यतया वृक्षाद्यवलम्बनेन जायते, काक-रुह-क-टाप् यद्वा काकपुरीषात् रोहति उत्पद्यते वृक्षोपरि इत्यर्थः। वृन्दावच, बांदा, कौवेकी तरह चढ़ने यानी जड़ न रहनेसे पेड़ वगैरहके सहारे उपजने या कौवेके मैलेसे निकलनेवाली बेल।

काकरूक (सं० त्रि०) कु कुत्सितं करोति, कु-कृ-ऊक कोः कादेशः। १ स्त्रीवशीभूत, औरतका तावेदार। २ नग्न, नङ्गा। ३ भीरु, डरपोक। ४ निःस्व, गरीब। (पु०) ५ दम्भ, धोका। काकेन लूयते क्रियते, काक-लू कर्मणि क्विप् संज्ञायां कन् तस्य रः। पेचक, कौवेसे मारा जानेवाला उल्लू।

काकरेजा (हिं० पु०) १ वस्त्रविशेष, एक कपड़ा। यह काकरेजी होता है। २ वर्णभेद, एक रंग। यह काकरेजी रहता है।

काकरेजी (फा० पु०) १ वर्णभेद, कोकची, एक रंग। यह लाल-काला होता है। कपड़ेको आलके रंगमें बोर कोहारकी स्याहीसे रंगने पर काकरेजी निकलता है। (वि०) २ वर्णविशेष-युक्त, कोकची, काकलाला।

काकल (सं० क्लो०) ईषत् कलो यस्मात्, कोः कादेशः। १ कण्ठमणि, गलेका जौहर। (पु०) का इत्येवं कलो यस्य बहुव्री०। २ द्रोणकाक, जङ्गली, पहाड़ी या काला कौवा। यह 'का का' करता है।

काकलक (सं० पु०) काकल-कप्। १ कण्ठमणि, गलेका जौहर। २ कण्ठका उन्नत देश, सांस लेनेवाली नली (हलकूम, नरकसी) का सिरा। ३ षष्टिक धान्यविशेष, साठीधान।

काकलि (सं० स्त्री०) कल-इन् कलिः, कुईषत् कलिः कोः कादेशः। १ सूक्ष्म मधुरास्फुटध्वनि, समझमें न आनेवाली बारीक मीठी आवाज़।

"दूती काकलिगीतस्य तद्दीपा निनदस्य च।" (कथासरित्सागर)

२ अप्सरो विशेष, एक परी।

काकली (सं० स्त्री०) काकलि-ङीप्। १ सूक्ष्म मधुर अस्फुट ध्वनि, समझ न पड़नेवाली बारीक मीठी आवाज़। "क्रीड़त्कोकिलकाकलीकलकलैरुद्गीर्णकर्णज्वराः।" (उत्तरचरित, २ अ०)

२ यन्त्रविशेष, एक बाजा। इसका स्वर नीचा रहता है। काकली बजानेसे मालूम पड़ता है कि कौन निद्रामें अचेतन रहता और कौन जगता है। हिन्दीमें सेंधकी सबरी, साठी धान और घुंघचीकोभी काकली कहते हैं। ३ रत्नविशेष, एक जवाहर।

काकलीक (सं० पु०-क्लो०) अस्फुट मधुरध्वनि, मीठी मीठी आवाज़।

काकलीद्राक्षा (सं० स्त्री०) काकलीव सूक्ष्मा द्राक्षा, मध्यपदलो०। द्राक्षाविशेष, किशमिश। इसका संस्कृत पर्याय—जम्बूका, फलोत्तमा, लघुद्राक्षा निर्बीजा, सुवृत्ता और रसाधिका है। राजनिघण्टुके मतमें काकलीद्राक्षा मधुर, अम्ल, रसाल, रुचिकारक, शीतल, श्वास तथा क्षुत्कासनाशक और जलसमूहको प्रिया है। किशमिश देखो।

काकलीनिषाद (सं० पु०) विकृत स्वर विशेष, एक आवाज़। यह कुमुद्वती श्रुतिसे चलता है। काकली निषादमें चार श्रुति गाते हैं।

काकलीरव (सं० पु०) काकली मधुरास्फुटो रवो यस्य, बहुव्री०। १ कोकिल, मीठी मीठी आवाज़ लगानेवाली कोयल। कर्मधा०। २ सूक्ष्म और मधुर अस्फुट ध्वनि, मीठी मीठी आवाज़।

काकवत् (सं० अव्य०) काकको भांति, कौवेकी तरह।

काकवर्ण (सं० पु०) सुनिकवंशीय एक राजा। यह शिशुनागके पुत्र थे। (विष्णुपुराण ४।२४।२)

काकवर्तक (सं० पु०) वायस तथा वर्तक, कौवा और बटेर।

काकवर्मा (सं० पु०) नेपालके एक सोमवंशीय राजा। इनके पिताका नाम मनाथ था।

काकवल्लभा (सं० स्त्री०) काकस्य वल्लभा प्रिया। काकजम्बू, कौवेको अच्छी लगनेवाली वनजामुन।

काकवल्लरी (सं० स्त्री०) काकप्रिया वल्लरी, मध्यपदलो०। १ स्वर्णवल्ली, एक सुनहली बेल। २ पीतकाञ्चन, पीले फूलका कचनार।

काकविष्ठा (सं० स्त्री०) काकमल, कौवेका मैला।

काकवृन्ता (सं० स्त्री०) रक्त कुलत्थक, लाल कुरथी।

काकव्याघ्रगोमायु (सं० पु०) वायस, व्याघ्र तथा शृगाल, कौवा, बाघ और गीदड़।

काकशब्द (सं० पु०) काकरव, कौवेकी बोली।

काकशालि (सं० पु०) कृष्ण शालिधान्य, किसी किस्मका धान।

काकशिम्बी (सं० स्त्री०) काकप्रिया शिम्बी, मध्यपदलो०। १ काकतुण्डी, कौवा ठोंटी। २ रक्तगुञ्जा, लाल घुंघची।

काकशीर्ष (सं० पु०) काकः शीर्षे अग्रेऽस्य, बहुव्री०। वकवृक्ष, अगस्तका पेड़।

काकसादी (सं० पु०) १ अशुभलक्षणाख्य, ऐबी घोड़ा। २ आग्नेय।

काकसेन (हिं० पु०) कार्यनिरीक्षक विशेष, जहाज़के मजदूरोंकी निगरानी करनेवाला एक जमादार। यह अंगरेजीके 'काक्सवेन' शब्दका अपभ्रंश है।

काकस्त्री (सं० स्त्री०) काकस्त्रीव नामसादृश्यात्। वकपुष्पवृक्ष, अगस्तके फूलका पेड़।

काकस्फूर्ज (सं० पु०) काक-स्फूर्ज-अच्। काकतिन्दुक वृक्ष, एक पेड़। काकतिन्दुक देखो।

काकस्वर (सं० पु०) काकस्य इव स्वरो यस्य, बहुव्री०।

काकवत् स्वर निकालनेवाला, जो कौवेकी तरह बोलता हो। ६-तत्। २ काकरव, कौवेकी बोली।

काका (सं० स्त्री०) काकवत् आकारोऽस्त्यस्य, काक-अच्-टाप। १ काकनासा, कौवाठोंटी। २ काकोली-वृक्ष, एक पेड़। ३ काकजङ्घा, मसी। ४ दृक्तिका-लता, घुंघची। ५ मलपूवृक्ष, निर्मलीका पेड़। ६ काकमाची, केवैया। ७ काकोदुम्बरिका, कठगूलर।

काका (हिं० पु०) पिताका भ्राता, बापका भाई, चाचा।

काकाकौवा (हिं० पु०) शुकविशेष, काकातुवा, बड़ा तोता।

काकाक्षि (सं० क्ली०) काकस्य अक्षिः चक्षुः, ६-तत्। काकका चक्षु, कौवेकी आंख।

काकाक्षिगोलकन्याय (सं० पु०) काकस्य अक्षि-गोलकमिव न्यायः, उपमि०। न्यायविशेष, एक मन्तिक। काकका एक मात्र चक्षु जैसे उभय अक्षिके गोलकका कार्य चलाता है, वैसे ही एकमें दो विषयोंका सम्बन्ध रहनेसे 'काकाक्षिगोलकन्याय' कहलाता है।

काकाङ्गा (सं० स्त्री०) काकस्य अङ्गं जंघेव आकारो यस्याः, बहुव्री०। १ काकजंघा, चकसेनी। २ काक नासा, कौवाठोंटी।

काकाङ्गी, काकाङ्गा देखो।

काकाञ्ची (सं० स्त्री०) काकं अञ्चति प्राप्नोति, काक-अञ्च्-अण्-ङीप्। काकजंघावृक्ष, मसी, कौवेकी जांघ-जैसा पेड़।

काकाण्ड (सं० पु०) काकस्य अण्ड इव फलं यस्य, बहुव्री०। १ महानिम्ब, बड़ी नीम। २ काकतिन्दुक वृक्ष, एक पेड़। ६-तत्। ३ काकका अण्डा, कौवेका अण्डा।

काकाण्डक (सं० पु०) काकस्य अण्डः, काकाण्ड स्वार्थे कन् पुंवद्भावः; ६-तत्। १ काकका अण्ड, कौवेका अण्डा। "केचित् हरिद्राभक्षाः काकाण्डकनिभास्तथा।" (भारत, वन) २ लूताभेद, किसी किस्मका मकड़ा।

काकाण्डा (सं० स्त्री०) काकस्य अण्डइव बीजमस्याः, बहुव्री०। १ कोलशिम्बी, कोचकी फली। २ महा-ज्योतिष्मती लता, रतनजोत। ३ लूता विशेष। लूता देखो।

काकाण्डातुषिक—बङ्गालमें मेदिनीपुरको ब्राह्मणभूमिका एक ग्राम। यहां 'काकाण्डातुषिक' नामक एक जाग्रत देवता विद्यमान हैं।

काकाण्डी, काकाण्डा देखो।

काकाण्डोला (सं० क्ली०) काकाण्डं ओरति तत् सादृश्यं बीजं प्राप्नोति, काक-उर्-अच्-टाप्, रस्य लत्वम्। कोलशिम्बी, कोचकी फली। २ चटमी, इव्व-उल्-कलकल, कनफटिया।

काकातुवा (हिं० पु०) पक्षिविशेष, एक चिड़िया। वर्तमान शाकुनतत्त्वविदोंके मतमें यह शुक जातीय पक्षी है। सिर्फ भेद यही है कि काकातुवा तोतेसे आकारमें बड़ा पाया जाता है। मस्तकपर खूब बिखरे पक्षकी भांति शिखा रहती है। पुच्छ बहुत बड़ा होता है। अंगरेजीमें इसे 'कोकातू' (Cockatoo) कहते हैं। शाकुनशास्त्रमें यह पक्षीवंश 'काकातुइना' (Cacatuina) माना गया है। काकातुवा शब्द अंगरेजी 'कोकातू'का अपभ्रंश है।

प्रकृत काकातुवेका पालक (पर) श्वेतवर्ण होता है। किन्तु किसी किसीका श्वेतवर्ण पालक अल्प रक्त वर्ण वा अपर वर्ण मिश्रित रहता है। भारतवर्षके दक्षिणाञ्चल और अष्ट्रेलिया द्वीपमें दो प्रकारका काला काकातुवा मिलता है। अंगरेजी शाकुनशास्त्रमें एकको 'केलिप्टोरिङ्कस' (Calyptorhynchus) और दूसरेको 'मायिक्रोग्लोसस' (Microglossus) कहते हैं। शेषोक्त काला काकातुवा खूब बड़ा होता है। न्यूगिनीमें यह पाया जाता है। इसकी जिह्वा कण्ट-कान्वित रहती है। उससे सुलभतया यह खाद्य द्रव्यादि उठा सकता है।

भारत महासागरके द्वीपपुञ्ज और अष्ट्रेलियामें इसकी संख्या सबसे अधिक है। काकातुवा फल, मूल बीज और स्वेदज कीटादि खा अपनी जीविका चलाता है। यह पालनेसे खूब हिल जाता और सिखानेसे तोतेकी तरह बातचीत करता है। काकातुवा अपनी चोटी इतस्ततः चला सकता है। इसका शब्द मधुर नहीं होता।

काकादनक (सं० पु०) काकादनी देखो।

काकादनी (सं० स्त्री०) काकैरद्यते भुज्यते ऽसौ, काक-अद् कर्मणि ल्युट् ङीप्। १ रक्तगुञ्जा, लाल घुंघची। २ श्वेतगुञ्जा, सफ़ेद घुंघची। ३ रक्त काकमाची, लाल मकोय। ४ काकतिन्दुका, कौवा ठोंठी। ५ कण्टकपालीलता। इसका संस्कृत पर्याय—हिंस्रा, रक्षनखी, तुण्डी, काला, अहिंस्रा, कटुका, पाणि, कापाल और कुलिक है। सुश्रुतमें संक्षेपतः इसे कफशमनी कहा है।

काकानन्ती (सं० स्त्री०) रक्तगुञ्जा, घुंघची।

काकाम्र (सं० पु०) समष्ठीलक्षुप, ककुंवा।

काकायु (सं० पु०) काकस्य आयुर्यस्मात्, बहुव्री०। स्वर्णवल्लीलता, एक सुनहली बेल।

काकार (सं० त्रि०) कं जलं आकिरति, क-आ-कृ अण्। जल-स्रावकार, पानी फैलानेवाला।

काकारि (सं० पु०) काकः अरिर्यस्य, बहुव्री०। पेचक, कौवेका दुश्मन उल्लू।

काकाल (सं० पु०) का इति शब्दं कलति रौति, का-कल्-अण्। १ द्रोणकाक, पहाड़ी कौवा। २ वत्सनाभविष, वच्छनाग, एक ज़हरीली चीज़।

काकावलि (सं० स्त्री०) काकानां अवलिः श्रेणी, ६-तत्। श्रेणीबद्ध बहुसंख्यक काक, कौवेका झुण्ड।

काकास्या (सं० स्त्री०) महाश्वेत काकमाची, सफेद मकोय।

काकाह्वा (सं० स्त्री०) काकमाची, मकोय।

काकिणा—बङ्गालके रङ्गपुर ज़िलेका एक गण्डग्राम। यह त्रिस्रोता नदीके वामकूलपर अवस्थित है। इस अञ्चलके विज्ञ लोग 'काकिणा' शब्दको 'काञ्चन'का अपभ्रंश मानते हैं। यह ग्राम अधिक प्राचीन नहीं। फिर भी एक प्रधान जमीन्दार यहां रहते हैं। बाज़ार लगा करता हैं। ऊख, तमाखू और सन बाहर बिकनेको भेजते हैं।

काकिणिका (सं० स्त्री०) काकिणी स्वार्थे कन् ह्रस्वश्च। पणका चतुर्थांश, पांच गण्डा कौड़ी।

काकिणी (सं० स्त्री०) ककते गणनाकाले चञ्चली भवति, काक-णिनि-ङीप् पृषोदरादित्वात् नस्य णः। १ पणका चतुर्थांश, पांच गण्डा कौड़ी। २ एक-वराटिका, एक कौड़ी। ३ मानदण्ड, नापकी छड़। ४ रक्तिका, घुंघची। माषाका चतुर्थांश, मासेका चौथा हिस्सा।

काकिणीक (सं० त्रि०) एक काकिणीके मूल्यवाला, जो कीमतमें पांच गण्डे कौड़ियोंके बराबर हो।

काकिनी (सं० स्त्री०) काकिणी, पांच गण्डा कौड़ी।

"ईश्वरा भूरिदानेन यल्लभन्ते फलं किल।
दरिद्रस्तच्च काकिन्या प्राप्नुयादिति न श्रुतिः॥" (पञ्चतन्त्र)

काकिल (सं० पु०) कु-ईषत् किरति, कु-कृ क-कोः कादेशः रस्य लत्वम्। कण्ठमणि, गलेका जवाहिर।

काकी (सं० स्त्री०) काकस्य स्त्री। १ वायसी, मादा कौवा। २ श्वेतकाकमाची, सफेद मकोय। ३ काकोली, एक बूटी। ४ कश्यपकी एक कन्या। इन्होंने ताम्राके गर्भसे जन्म लिया। काकीहीसे सब काक उत्पन्न हुये हैं। ५ चाची।

काकी (हिं० स्त्री०) पितृव्यकी पत्नी, बापके भाईकी औरत, चाची, चची।

काकीय (सं० त्रि०) काकस्य इदम्, काक-छ। काकसम्बन्धीय, कौवेके मुताल्लिक़।

काकु (सं० स्त्री०) काक-उण्। १ शोकभयादि द्वारा स्वरका विकार, खौफ़ गुस्से तकलीफ वगैरहमें आवाज़की तबदीली। २ विरुद्ध अर्थबोधक स्वर विशेष, उलटा मतलब ज़ाहिर करनेवाली आवाज़।

"भिन्नकण्ठध्वनिर्धीरैः काकुरित्यभिधीयते।" (साहित्यदर्पण ४२३)

३ दैन्योक्ति, गिड़गिड़ाहट। ४ जिह्वा, जीभ। ६ उल्लाप, ज़ोरकी बात।

काकुत्स्थ (सं० पु०) ककुत्स्थस्य नृपतेरपत्यं पुमान्, ककुत्स्थ-अण्। १ ककुत्स्थ राजाका वंशज। इस शब्दसे अनेनस, अज, दशरथ, राम और लक्ष्मणका बोध होता है। २ पुरञ्जय राजा। स्वार्थे अण्। ३ ककुत्स्थ नृपति।

काकुत्स्थवर्मा—प्रकाशिका और वनवासीके एक प्राचीन कदम्ब राजा। इनके पुत्रका नाम शान्तिवर्मा था।

कदम्ब देखो।

काकुद (स्त्री०) काकुद देखो।

काकुद (सं० क्ली०) काकुं ददाति, काकु-दा-क। तालु, काग, तालू।

काकुदी (सं॰पु॰) ककुदावर्तमें महादोषान्वित अश्व, एक ऐबी घोड़ा। इसके तालूमें बड़ा दोष होता है।

काकुद्र (सं॰ त्रि॰) उद्गाता। (ऐतरेयब्राह्मण ७।१)

काकुन (हिं॰ स्त्री॰) एक अनाज। यह चिड़ियोंको बहुत खिलायी जाती है।

काकुभ् (स्त्री॰) काकुद देखो।

काकुभ (सं॰ त्रि॰) ककुभ इदम्, क-कुभ्-अञ्। १ ककुभ् छन्दोग्रथित गाथादि। २ दिक् सम्बन्धीय। ३ ककुभ वंशजात।

काकुभबार्हत (सं॰ पु॰) एक प्रगाथ। यह ककुभसे आरम्भ हो बृहतीपर जाकर पूरा होता है।

काकुम (सं॰पु॰) नकुलभेद, किसी किस्मका नेवला। यह तातार देशके शीतल अंशोंमें होता है। इसका चर्म अति श्वेत वर्ण, मृदु तथा उष्ण रहता और पोस्तीनमें लगता है।

काकुरुत (सं॰ क्ली॰) विकृत शब्द, बिगड़ी आवाज़।

काकुल (फ़ा॰ स्त्री॰) केशपाश, ज़ुल्फ़, कानोंके नीचे लटकनेवाले बड़े बड़े बाल।

काकुलीमृग (सं॰ पु॰) चतुर्विध विलेशय मृग, मांद (कुहर)में रहनेवाला चार तरहका हिरन।

काकुवाद (सं॰ पु॰) काका दैन्यस्वरेण वादम्, ३-तत्। दीन स्वरमें उक्ति, गिड़गिड़ा कर कही हुई बात।

काकूक्ति (सं॰ स्त्री॰) काकुवाद देखो।

काकूपुर—(काकपुर) युक्तप्रदेशके कानपुर जिलेका एक प्राचीन नगर। यह कानपुर शहरसे १० कोस उत्तर-पश्चिम पड़ता है। बौद्ध राजाओंके समय काकूपुर अवध प्रदेशका प्रधान नगर कहाता था। किसी किसी प्रत्नतत्त्वविद्के मतसे यही काकूपुर भोट देशके बौद्ध ग्रन्थोंमें 'वागुद' नामसे लिखा गया है। काकपुर और विठूरके बीच 'पञ्चक्रोशी उत्पलारण्य' नामक पवित्र स्थान विद्यमान है। आजकल यहां 'छत्रपुर' नामक दुर्गका भग्नावशेष पड़ा है। इस दुर्गको कोई ८२० वर्ष पहले चन्देल राजा छत्रपालने बनवाया था। काकूपुरमें चीरेश्वर महादेव और अश्वत्थामाके नामसे दो बड़े मन्दिर खड़े हैं। प्रतिवर्ष देवताके उत्सव उपलक्षमें मेला लगता है।

काकेक्षि, काकेक्ष देखो।

काकेक्षु (सं॰ पु॰) काकं ईषज्जलं यत्र तादृश इक्षुः। १ इक्षुगन्ध तृण, जखकी तरह लम्बी एक खुशबूदार घास। २ खागड़, खगरा। ३ कासतृण, कांस। ४ कोकिलाक्षक्षुप, तालमखानेका झाड़।

काकेन्दु (सं॰ पु॰) काकस्य इन्दुरिव आह्लादकत्वात्, ६-तत्। १ कुलिक वृक्ष, आबनूस, तेंदू। २ कटुतिन्दुक, कुचिला।

काकेन्दुक, काकेन्दु देखो।

काकेन्दुकी, काकेन्दु देखो।

काकेष्ट (सं॰ पु॰) काकस्य इष्टः, ६-तत्। निम्बवृक्ष, नीमका पेड़। निम्ब देखो।

काकेष्टा (सं॰ स्त्री॰) १ रेणुका, गिदं। २ काकमाची, मकोय।

काकोचिक (सं॰ पु॰) कु ईषत् कोची सङ्कोची। कुकच-णिनि स्वार्थे कन् को कादेशः। मत्स्यविशेष, किसी किस्मकी मछली।

काकोची (सं॰स्त्री॰) काकोच-ङीष्। काकोचिक देखो।

काकोडुम्बर (सं॰ पु॰) काकप्रियः उडुम्बरः, मध्यपदलो॰। काकोडुम्बरिका देखो।

काकोडुम्बरिका (सं॰ स्त्री॰) काकोडुम्बर स्वार्थे कन्-टाप् अत इत्वम्। स्वनामख्यात वृक्ष, कठगूलर। इसका संस्कृत पर्याय—फल्गुफला, पत्रजो, राजिका, क्षुद्रदुम्बरिका, फल्गुवाटिका, फल्गुनी, काकोडुम्बर, फलवाटिका, बहुफला, कुष्ठघ्नो, अजाजो, चित्रभेषजा, और झाड़ चनाली है। इसे बंगलामें काकडुमुर, हिन्दीमें गवला, पञ्जाबीमें देगर, मराठीमें घेटू, मारवाड़ीमें बरबल, गुजरातीमें जङ्गली अञ्जीर, तैलगुमें कारसन और अरबीमें तिनै-बरी कहते हैं। (Ficus Hispidia)

यह एक मंझोला पेड़ या झाड़ है। काकोडुम्बरिका चेनाबसे पूर्व बाह्य हिमालय, बङ्गाल, मध्य एवं दक्षिण भारत, ब्रह्मदेश और आन्दामानद्वीपपुञ्जमें होती है। मलक्का, सिंहल, चीन और अष्ट्रेलियामें भी यह मिलती है।

काकोडुम्बरिकाकी छालका सूत्र पटलिका बांधनेमें व्यवहार किया जाता है। फल छोटा होता है, जिसपर

सफेद रूयां उठता है। यह एक प्रकारका खाद्य है। पत्तियां काटकर पशुवोंको खिलाई जाती हैं। काठसे कोई बड़ा काम नहीं निकलता। यह प्राचीर फाड़कर उठ आती और भवनको मिट्टीमें मिला देती है।

राजनिघण्टुके मतसे काकोडुम्बरिका कषायरस, शीतल, व्रणनाशक, गर्भरक्षाके लिये हितकारक और स्तन्यदुग्धवर्धक है। एतद्व्यतीत भावप्रकाशमें इसे कफ, पित्त, श्वित्र, कुष्ठ, चर्म, पाण्डु और कामला-नाशक कहा है।

काकोदर (सं० पु०) कु कुत्सितं अकति, कु-अक्-अच् कः कादेशः, काकं वक्रगमनकारि उदरं यस्य वा, बहुव्री०। सर्प, सांप।

काकोडुम्बरिका, काकोडुम्बरिका देखो।

काकोडुम्बरिकाफल (सं० क्ली०) अञ्जीर, कठगूलर।

काकनालक (सं० पु०) प्लवजातीय पक्षी, जोड़ेके साथ रहनेवाला परिन्द।

काकोर—युक्तप्रदेशके लखनऊ जिलेका एक नगर। यह अक्षा० २६° ५१′ ५५″ उ० और देशा० ८०° ४८′ ४५″ पू० पर अवस्थित हैं। काकोर नगर अति प्राचीन समझा जाता है। पहले यहां भारजातिके लोग रहते थे। आजकल लखनऊके वकीलों और मुख्तारोंको काकोरमें रहना बहुत अच्छा लगता है। यहां बहुतसे मुसलमान पीरोंके गोरस्थान मौजूद है। काकोरका बाज़ार सप्ताहमें दो बार लगता है।

काकोल (सं० पु०-क्ली०) कु कुत्सितं तीव्रतरं यथा स्यात्तथा कलति पीड़यति, कु-कुल-अच् कोः कादेशः। १ कृष्णवर्णस्थावर विषभेद, पेड़से पैदा होनेवाला काले रंगका एक ज़हर। इसका संस्कृत पर्याय—उग्रतेजः, कृष्णच्छवि, महाविष, गरल, क्ष्वेड़, वत्सनाभ, प्रदीपन, शौल्किकेय, ब्रह्मपुत्र और विष है। २ द्रोणकाक, पहाड़ कौवा। ३ सर्प, सांप। ४ वन्य शूकर, जङ्गली सूअर। ५ कुम्भकार, कुम्हार। ६ काकल नामक ओषधि विशेष, एक बूटी। (क्ली०) काकैः उल्यायते भक्ष्यते अत्र, पृषोदरादित्वात् साधुः। ७ नरक विशेष, एक दोज़ख़। इसमें कौवे पापीको नोच नोच खाते हैं।

काकोली (सं० स्त्री०) काकोल-ङीष्। १ कन्दविशेष, एक कन्द। यह क्षीरकाकोलीके भांति लगती और कुछ अधिक कृष्णवर्ण होती है। इसका संस्कृत पर्याय—मधुरा, काकी, कालिका, वायसोली, वरा, ध्वाङ्क्षिका, वरा, शुक्ला, धीरा, मेदुरा, ध्वाङ्क्षक, स्वादुमांसी, वयःस्था, जीवनी, शुक्लक्षीरा, पयस्विनी, पयस्या और शतपाकु है। राजनिघण्टुके मतसे काकोली—मधुर रस, शीतल, कफ एवं शुक्रवर्धक और क्षयरोग, पित्त, वातव्याधि, रक्तदोष, दाह तथा ज्वरनाशक होती है। यह नेपाल वा मरङ्गसे आती है। २ क्षीरकाकोली। ३ फलघृत, एक पकाया हुवा घी। फलघृत देखो।

काकोलीद्वय (सं० क्ली०) काकोलीका जोड़ा, दोनो काकोली। काकोली और क्षीरकाकोलीको काकलीद्वय कहते हैं।

काकोलूकिका (सं० स्त्री०) काकोलूक-वुन्-टाप्। द्वन्द्वाद् वुन् वैरमैथुनिकयोः। पा ४। ३। १२५। काक और पेचककी स्वाभाविक शत्रुता, कौवे और उल्लूकी जानी दुश्मनी।

काकोल्यादि (सं० पु०) तन्नामकौषधद्रव्यगण, काकोली वगैरह, जड़ी बूटियोंका ज़खीरा। इसमें काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, मेदा, महामेदा, गुलञ्च, कर्कटशृङ्गी, वंशलोचन, चीरी, पद्मक, प्रपौण्डरीक, ऋद्धि, वृद्धि, मृद्विका, जीवन्ती और मधुका काकोल्यादि द्रव्य है। इसका गुण रक्तपित्त तथा वायुनाशक और शुक्र, आयुः, स्तन्य एवं श्लेष्मवर्धक हैं। (सुश्रुत) कर्ण वंधकी आकृति विशेष।

काकोष्ट, काकोष्ठक देखो।

काकोष्ठक (सं० पु०) काकस्य ओष्ठ इव कायति प्रकाशते, काक-ओष्ठ-कै-क। मांस शून्य सूक्ष्म अग्रभाग और रक्तविशिष्ट कर्ण पाली। निर्मांसश्चिमाग्रास्त्र शोणितपालिः काकौष्ठपालिरिति (सुश्रुत १६ अ)

काकौष्ठक, काकोष्ठक देखो।

काच (सं० पु०) कुत्सितं अच्चं यत्र, कोः कादेशः। का पथ्यक्षयोः। पा ६। ३। १०४। १ कटाक्ष, नज़ारा, तिरछी नज़र। कर्मधा०। २ कुत्सितचक्षु, बुरी आंख।

काक्षतव (सं० क्ली०) कक्षतुका फल।

काक्षसेनि (सं० पु०) अभिप्रतारीका नामान्तर।

काची (सं० स्त्री०) कचे कच्छे भवः कच्छ-अण्-ङीप्।

तब मवः। पा ४।१।५३। १ सौराष्ट्रमृत्तिका, एक खुशबूदार मट्टी। २ फड़हर, तोर।

काचीरी (सं० स्त्री०) वंशलोचना भेद, किसी किस्मका वंशलोचन।

काचीव (सं० पु०) कु ईषत् जीवति, जीव-क्विप् कोः कादेशः। ग्रीभाक्लवृक्ष, एक पेड़। २ गौतम ऋषिके एक पुत्र। यह औशीनरी नाम्नी शूद्राणीके गर्भसे उत्पन्न हुये।

"शूद्रायां गौतमो यत्र महात्मा संशितव्रतः।
औशीनर्यामजनयत् काचीवाद्यान् सुतान् मुनिः॥" (भारत, सभा)

काचीवक, काचीव देखो।

काचीवत्, काचीवत देखो।

काचीवत (सं० पु०) कचीवतो मनोरपत्यं पुमान्, कचीवत्-अण्। १ कचीवत् ऋषि सम्बन्धीय।

काचीवती (सं० स्त्री०) काचीवत-ङीप्। व्युषिताश्वकी स्त्री। इनका नाम भद्रा था।

काचीवान् (सं० पु०) १ दीर्घतमाऋषिके शूद्रागर्भजात एक पुत्र। २ चण्डकौशिकके पिता गौतम। ३ कोई राजा। (भारत, आदि १ अ०)

काग, काक देखो।

कागज (पारसीक शब्द) "कागज" क्या चीज है,—यह किसी को समझानेकी जरूरत नहीं। पृथिवीमें ऐसे देश बहुत ही कम हैं, जहां कागज नहीं। भिन्न भिन्न देशोंमें इसके नाम भी भिन्न भिन्न हैं। जैसे,—

उत्तर-भारत और पारस्यमें	कागज।
आरबमें	कर्त्तास्।
तामिलमें	वरक।
डेन्मार्कमें	पेपिर।
फ्रांस और जर्मनीमें	पेपियार।
इटाली और प्राचीन लाटिनमें	कार्ट वा कार्टा।
पर्त्तुगीज और स्पेनमें	पेपेल।
रूषियामें	बुमाड्नी।
इंगलैंडमें	पेपर।

अप्राचीन तान्त्रिक संस्कृत ग्रंथोंमें 'कागद' नाम भी मिलता है। आजकल भी आगरा, एटा आदि ग्रामोंमें 'कागद' नाम प्रचलित है।

अब सब देशोंमें, प्रधानतः लिखनकार्यमें कागजका व्यवहार होता है। यह कागज भी आजकल प्रधानतः नाना प्रकारके वाष्पीय यंत्रोंकी सहायतासे यूरोप, अमेरिका और एसियामें बनते हैं; किन्तु अब भी एसियाके दक्षिण और पूर्व प्रदेशसमूहमें हाथोंसे यथेष्ट परिमाणमें कागज तैयार होता है। यह कागज दुर्मूल्य है और विशेष विशेष कार्योंमें व्यवहृत होते हैं। भारतवर्षमें विशेषतः जैनियोंके प्राचीन (हस्तलिखित) शास्त्र इसी कागजमें लिखे जाते थे; और अब भी लिखे जाते हैं। भारत, पूर्व-उपद्वीप, चीन, जापान, पारस्य आदि देशोंमें ही ऐसे हाथके बने हुए कागजका अधिक आदर पाया जाता है।

भारतवर्षमें बंगाल, बिहार, भुटान, नेपाल, अहमदाबाद, सूरत, धारवाड़, कोल्हापुर, औरंगाबाद, और दौलताबादमें ऐसा (हाथसे बनाया हुआ) कागज यथेष्ट प्रस्तुत होता है। औरंगाबादका कागज सबसे उत्कृष्ट गिना जाता है। देशीय रजवाड़ोंमें इसी कागजका अधिक आदर है। यह कागज सब कागजों की अपेक्षा मसृण, चिक्कण और सुदृढ़ होता है। इसके बाद दौलताबादके "बहादुरखानि" और "भाधागरि" कागज समधिक आदरणीय होते हैं। इन कागजोंमें बनाते वक्त इसके मण्ड पर स्वर्णका सूक्ष्म पात मिला देते हैं, फिर कागज बनने पर उसमें (कागजके) सर्वत्र वह स्वर्णका सूक्ष्मांश फैल जाता है; जिससे देखनेमें अति चमत्कार शोभा देता है,—इस कागजका नाम "आफशानि कागज" है। देशीय राजन्यगण इस कागज (आफशानि) पर राजकीय कार्यादि करते हैं। इन हाथसे बने हुए कागजों पर दलील, सनद, आदि लिखे जाते हैं।

जिसके ऊपर लिखा जाता है, उसे संस्कृतमें "पत्र" कहते हैं। हिन्दी भाषामें (प्रचलित भाषामें) 'पत्र' वा "पत्ते" कहनेसे जो अर्थ ज्ञात होता है, संस्कृतमें "पत्र" शब्दका यथार्थ अर्थ वही है। किस लिए अक्षर, पत्र और लिखन प्रणालीकी उत्पत्ति हुई, इस विषयमें एक कौतूहलजनक होने पर भी

समूलक प्रमाण रघुनन्दनके 'ज्योतिस्तत्त्व' में देखनेमें आया है,—

"षाण्मासिके तु समये भ्रांतिः संजायते यतः।
धात्राक्षराणि सृष्टानि पत्रारूढ़ान्यतः पुरा॥"

अर्थात् छह मास बीतने पर भ्रम उपस्थित होते देख विधाताने पूर्व कालमें अक्षरकी सृष्टि की और वे पत्र पर लिखे गये। छह मासके बाद अधिकांश बातोंमें ही भूल हो जाती है, यह ठीक है।

जगत्‌की उन्नतिका इतिहास पर्यालोचना करने पर समझ सकते हैं कि, पहिले ही कागजके ऊपर स्याही और कलमसे लिखने की प्रथा प्रचलित नहीं हुई। कागज आविष्कृत होनेसे पहिले किस पर लिखा जाता था, किससे कागज हुआ, पहिले किस देशमें कागजकी सृष्टि हुई और कौन कौनसी द्रव्यसे कैसे अब कागज बनता है, यह यथाक्रमसे वर्णन किया जाता है।

१। कागज बननेसे पहिले कौन कौन सामग्री लेख्यरूपसे व्यवहृत होती थी? यह बतलाते हैं।

(क) पत्थर और काठ--सबसे पहिले काठ और पत्थर ही लेख्यरूपसे व्यवहृत होता था। अति प्राचीन कालमें काठ और पत्थर पर अक्षरादि खोद कर रक्षितव्य विषय लिखे जाते थे। कालदीया प्रदेशमें प्राचीन समाधिस्तम्भके और मिशर देशके पिरामिडके ऊपर खोदित अस्पष्ट अक्षरमाला ही इसका प्राचीनतम निदर्शन है।

(ख) इष्टक—कालदीयगण इष्टक (ईंट) के ऊपर अपना ज्योतिषिक पर्यवेक्षणादिका फलाफल उत्कीर्ण कर रखते थे। इस प्रकारकी लिपि विशिष्ट इष्टक अब किसी किसी यूरोपीय अजायबघरमें संरक्षित हैं।

(ग) सीसा—प्राचीन कालमें सीसेके ऊपर दलील आदि खोद कर रखनेकी प्रथा थी। कहा जाता है कि, हिसियड की "ग्रन्थावली और उनका समय" नामक पुस्तक एक बड़ी सीसेकी टेबिल पर खोदी गई थी और बहुत दिनोंतक मेसिसके मन्दिरमें रक्षित थी। सीसेकी पत्ती, हथौड़ासे पीटकर पतली कर लेख्यरूपमें व्यवहृत होती थी। रोमनगरमें ऐसे सीसा पर खुदी हुई एक पुस्तक मिली है। उसका आकार ४ इञ्च लम्बा और ३ इञ्च चौड़ा है। यह प्राचीन मिसरीय अस्पष्ट अक्षरोंमें लिखित है।

(घ) पीतलआदि—रोमनगरमें साधारण प्रस्तर आदिका फलाफल उस समय पीतल आदिमें खोदा जाता था। प्राचीन रोमीय सैनिकगण युद्धक्षेत्रमें पीतलकी म्यान (तलवार रखनेकी)में अपना "इच्छा-पत्र" (Wills) लिख रखते थे। १२ धारोंकी कानून (Laws of 12 tables) पित्तल पर खोदी गई थी। रोमक सम्राट् भेस्पेसीयानके राजत्वकालमें जब अग्निदाहसे राजधानी जल गई थी, तब करीब ३००० (तीन हजार) पीतलकी पात नष्ट हो गई थी; इन सब पातोंमें बहुत प्रयोजनीय कानून (नियम) और दलीलादि भस्मीभूत हो गये। सिरोग्राके प्राचीन मठमें डा० बुकाननको ६ (छै) धातुफलक मिले थे। वे धातु विमिश्रित थे। ६ धातुफलकोंमें करीब ११ पृष्ठ थे। यह त्रिकोणाकार अक्षरमें लिखित थे। कोचीनके यहूदियोंके पास और भी ऐसे कई एक धातुफलक हैं।

(ङ) काठ—सोलनके कानून काठके ऊपर खोदित हैं;—इस काष्टमय कानून-पुस्तक का नाम "अक्सोनस्"(Axones) है। उनमेंसे कितने ही कानून पत्थर पर भी खुदे हुए हैं। इन प्रस्तर-लिपिका नाम ग्रीक भाषामें "किरबिस्" (Kyrbies) है। होमरके समयसे पहिले की तालिका-पुस्तक भी (ग्रोमका) काठ पर खोदी जाती थीं। बकस नीबूके पेड़का काठ और हाथीके दांत ही इन सब कार्योंमें अधिक व्यवहृत होते थे। तब इन सब काठोंके ऊपर मोम लगा कर सींक (सोना, चांदी, पीतल, लोहा वा तांबेकी पैनी सलाई) को गड़ा गड़ा कर लिखनेकी प्रणाली प्रचलित थी। इन सब लिखे हुए काठके टुकड़ोंको बांध कर रखनेसे जो पुस्तकें बनती थीं, उनको "कडेक्स" (codex) अर्थात् पोथी कहते थे। इन काठोंके ऊपर कभी कभी खड़ियामिट्टी से भी लिखा जाता था। बंगाल और उत्तर-पश्चिम-प्रदेशोंमें

अब भी छोटे छोटे दूकानदारोंकी दुकान पर ऐसी वस्तु देखनेमें आती हैं। ये लोग ६—८ इञ्चके ३ काठके टुकड़े एकत्र रस्सोमें पिरो लेते हैं; और उस रस्सीके छोरमें एक लोहेकी कील बांध रखते हैं। उन टुकड़ों पर मोम और कालोंच मिला कर लगा देते हैं। खरीद बिक्री करते करते यदि उधार देनेका या और कोई हिसाब आ पड़ता है; तो ये उन टुकड़ों पर उसी कीलसे लिख लेते हैं। बंगाल प्रांतको छोड़कर प्राय: सारे हिन्दुस्थानमें विशेषत: मारवाड़ और युक्तप्रान्तमें काठकी पट्टियों (१ फुट+१॥०) पर खड़ियामिट्टी घोल कर सरपते (सेंटा) की कलमसे लिखा करते हैं। यह सेंटा उन प्रान्तोंमें घासकी तरह अपने आपही उपजता है। सिलेट और पेन्सिलका उन प्रान्तोंमें बहुत ही कम प्रचार है, वहांके मदर्सोंमें भी यही "पट्टी" काममें लायी जाती है। पहिले जमानेमें ऐसे काठोंके टुकड़ों पर चिट्ठी लिख कर रस्सीसे बांध कर, गांठके ऊपर मुहर लगा देते थे। सलोमन-पुस्तकालयमें २ फुट ६६ इञ्च काठके तख्तापर ऐसा लिखा हुआ मौजूद है। चीनमें भी काठके तख्ते लिखनेके काममें आते हैं।

(च) पत्ता—प्राचीन कालमें अधिकांश जातियां पेड़ोंके पत्तोंको लेख्यरूपसे व्यवहारमें लाती थीं। आफ्रिकाके मिसरीयोंने सबसे पहिले ताड़पत्र पर लिखना सीखा था। सिराक्युसके जज लोग 'जलपाइ' वृक्षके पत्ते पर निर्व्वासन-दण्डके आसामियोंके नाम लिखते थे। भारतवर्षमें, सिंहलमें और ब्रह्मदेशमें ताड़-पत्रका अधिक व्यवहार होता है। ब्रह्मदेशमें उत्तम पुस्तकें हाथीके दांतकी पत्तियों पर लिखी जाती थीं। हाथीके दांतकी पत्तियां पहिले काली रंगली जाती थीं और फिर उसपर सोनेको या चांदीको 'हिल' से अक्षर लिखे जाते थे। उड़िया और सिंहलीय लोग "तालिपत" वृक्षके पत्ते व्यवहार करते हैं; यह पत्ते बहुत चौड़े और पतले होते हैं। इसके ऊपर अक्षरोंको स्पष्ट करनेके लिये उस पर लोहेकी सींकसे लिख कर फिर उस पर कोयलेका चूरा घिस कर पोंछ देते थे। अब भी सिंहलमें 'तालिपत' और भारतमें 'ताड़-पत्र' का बहुत कुछ व्यवहार किया जाता है। दक्षिण (श्रवणबेलगोला आदि)में ताड़-पत्र पर शास्त्र लिखनेका बहुतही प्रचार था और अब भी है। जैनबद्री मूड़बद्री नगरमें "जयधवल-महाधवल" नामक ताड़पत्र पर लिखे हुए दिगम्बर जैनियोंके महान् ग्रंथ अब भी मौजूद हैं। आराके जैनसिद्धान्त-भवनमें भी बहुतसे ग्रन्थ ताड़-पत्रोंमें लिखे हुए मौजूद हैं। नेपालमें महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्रीजीने जितने हस्तलिखित ग्रन्थ देखे हैं, उनमेंसे ईस्वीके ६ष्ठ शतकको पोथी सबसे प्राचीन गिनी जाती है। परंतु दक्षिणके उपर्युक्त ग्रन्थों (जयधवल-महाधवल) परसे निश्चय किया जाता है कि, भारतमें ताड़-पत्रों पर लिखनेकी प्रथा बहुत दिनोंसे चली आती है।

(छ) वृक्षवल्कल—पेड़ोंकी छाल भी किसी समय पृथिवीके सर्वत्र लिखनेके काममें लाई जाती थी। पहिले कालदीयगण पेड़ोंकी भीतरी छालको "लेबर" (Leber) कहते थे और उसको लिखनेके काममें लाते थे। इसी 'लेबर'से ही अब 'लेबर' शब्दसे पुस्तकका ज्ञान होता है। ब्रह्मदेशमें बांस की खपच्च पर पवित्र पुस्तकें लिखी जाती थीं। सुमात्राद्वीपमें बुट्टाजाति अब भी एक तरहके पेड़की भीतरी छाल पर लिखा करती हैं। ये लोग इस छालको लंबी लंबी चीर कर चौखूटी घरी करके रखते हैं। रजन या टार्पिन-तैलके इस जातीय एक प्रकारके वृक्षके रसमें इक्षुरस मिला कर स्याही बनाते हैं। साधारणत: व्यवहारके लिए ये लोग बांसके गांठमें लगी हुई खोल (असिफलक) पर भी लिखा करते हैं। वोड्लियन लाइब्रेरीमें मेक्सिको देशके अस्पष्ट सांकेतिक अक्षरोंमें लिखी हुई एक पुस्तक है, उसके अक्षर-समूह भी वल्कलके ऊपर लिखे हैं। भारतके मलबार उपकूल-वासी अब भी प्रधानत: वल्कलके ऊपर लिखा करते हैं।

(ज) रेशमीवस्त्रखंड—प्लिनि कहते हैं कि, रेशमी वस्त्रके ऊपर लिखना पहिले अप्रसिद्ध व्यक्तियोंमें प्रचलित था। इन रेशमी वस्त्र पर लिखित पुस्तका-दिमें मजिष्ट्रेट लोगोंके नाम और साधारणको

दलील आदि लिखी जाती थीं। मिसरके लोग भी ऐसी पुस्तकों पर रक्षितव्य विषय लिख रखते थे।

(भ) पशुचर्म—एक समयमें कहीं कहीं लोग पशुओंके चमड़े पर भी लिखा करते थे। जोन जाति पुस्तकको "डेफ्टेरी" (Defteræ) वा चर्म (?) कहती थी। "बिब्लस" (Biblos) पेड़ जब दुष्प्राप्य हो उठा तब लोग बकरी और भेड़ोंकी खाल पर लिखते रहे। ईस्वीके ५म शतकमें 'क्नस्टांटिनोपल'में जो भीषण अग्निकांड हुआ था, तब एक जातिके सर्पके पेट का चमड़ा जल गया था। उसी सर्प-चर्म पर ग्रीकका महाकाव्य "इलियाड" और "ओडेसि" सोनेके अक्षरोंमें लिखा गया था। यह हिंसक लिखन-प्रणाली अब कहीं भी नहीं रही।

(ञ) पार्चमेंट और विलाम्—बकरी और भेड़ की छालकी रीति अनुसार ऐसा बना लिया करते हैं; जिसमें "छापा" हो सके। ऐसे बने हुए चमड़ेका नाम 'पार्चमेंट' है। सूक्ष्म और अच्छा पार्चमेंट विलाम् कहलाता है। विलाम् चमड़ेसे नहीं बनता; अकाल-प्रसूत या दुग्धपायी गोवत्सके चर्मसे बनता है। पहिले यहूदी लोग इस पर कानूनादि लिखा करते थे। पारसी लोग इस पर स्वदेशप्रचलित गल्प वा इतिहास लिखते थे। दलीलादि लिखनेमें यह अब भी व्यवहृत होता है। डेसडेन लाइब्रेरीमें हुमापचीके चमड़े पर लिखी हुई एक मेक्सिको-पञ्जिका और भियेना-लाइब्रेरीमें एक पुस्तक है।

(ट) बना हुआ चमड़ा (लोम छील कर, घोंट कर साफ किया चमड़ा; जो आजकल भारतमें भी खूब व्यवहार किया जाता है।)—ऐसे चमड़े पर आरबी लोग अधिक लिखते थे।

२। कागजकी उत्पत्ति—पहिले ही एकदम अंशुमान पदार्थके 'मण्ड'से कागज बनानेकी प्रणाली उद्भावित नहीं हुई। पहिले तृण और वृक्षादिका अंशविशेषसे कागजवत् एक प्रकारका पदार्थ बनता था। इसमें विदेशीय ऐतिहासिकोंके मतसे "पेपिरस" (Pepirus Antiquorum) वा बाइबेलके मतसे "बुलरस" (Bulrush) नामक तृणके जड़से बने हुए कागज सबसे प्राचीन हैं। इससे जो कागज बनता था, उसको "पेपिरस पेपर" और संक्षेपमें "पेपिरि" कहते थे। नेब साइन कृत Exodus नामक ग्रंथमें देखा जाता है कि, ईस्वी १४०० वर्ष पहिले भी पेपिरिका बहुत प्रचार था; और ईस्वीके ३०० वर्ष बाद भी इस पेपिरिके व्यवहारका उल्लेख मिलता है।

यह तृण शरकी भांति जलाशय-भूमि पर उत्पन्न होता है। मिसरदेशमें, सिरियामें और सिसिलिद्वीपमें यह तृण उत्पन्न होते हैं। सिरीयामें इसको 'बेबिर' (Babeer), ग्रीकमें 'बिबलोस' (Biblos) और उद्भिद्‌शास्त्रमें पाश्चात्य मनीषिगण 'साइपेरस सिरिया-कास' (Cyperus Syriacus) कहते हैं। यह करीब ८ फुटसे लेकर १२ फुट तक लंबा होता है। इसके पत्ते शरके पत्तों सरीखे नहीं होते, बंगाल प्रांतके "झाउ" वृक्षके पत्तेकी भांति इस तृणके अग्रभागमें ८ पत्ते होते हैं। इसके सर्वाङ्गमें पत्ते नहीं होते और न शरकी भांति इसमें गांठे ही होती हैं। इसका वर्ण सबुज होता है; पर जो अंश कीचमें रहता है, वह सफेद होता है। इस सफेद अंशकी खाल बहुत ही पतली होती है; और १८।२० परत भी होती हैं। इन परियोंको सावधानीसे खोल कर चौड़ाईकी ओर जोड़ देनेसे ही कागज बन जाता था। उन छालोंके जोड़नेके लिए उस समय शिरीष वा अन्य कोई वैसी ही वस्तु काममें लाई जाती थी। 'पेपिरस' घासकी जड़ मनुष्यके हाथके समान मोटी होती है, अतः जितनी गोलाई उसकी होती है, उतनी ही कागज़ की भी चौड़ाई होती है। यह छाल जितनी भीतरकी होगी उतनी ही पतली होगी, इसलिए तब मोटा पतला सब तरहका 'पेपिरि' बनता था। जो 'पेपिरि' सबसे अधिक पतला होता था, उसको ग्रीक लोग 'हैरिटिका' कहते थे, कारण कि—इस तरहका 'पेपिरि' सिर्फ मिसरीय याजकगण ही व्यवहारमें लाते थे, अन्य साधारण वा विदेशीय वणिक् इसे खरीद नहीं सकते थे। मिसरीय याजकगण इस पर धर्मकथा लिख कर विक्रय करते थे। इस समयमें केवल मिसरीय लोग ही 'पेपिरि' बना जानते थे, अतः ग्रीक

लोग वैसा सुन्दर 'पेपिरि' नहीं बना सकते थे। रोमकगण भी इसी लिए 'हेरिटिका पेपिरि' नहीं पाते थे; परन्तु पीछेसे इन लोगोंने वैसा बना लिया था। रोमकसम्राट् अगस्तासके समयमें रोमकगण मिसर देशसे याजकोंके लिखे हुए 'हेरिटिका' खरीद लाते थे और एक प्रकार की औषधिसे उसके अक्षर मिटा कर अपने व्यवहारमें लाया करते थे, यह औषाध भी रोमवासियोंने बनाई थी। इस कागजका नाम, रोमवासियोंने अपने सम्राटके नामानुसार; "अगस्तास" कागज रक्खा। उससे नीचे दर्जेके 'पेपिरि'का नाम, वहांकी रानीके नामानुसार, 'लेभियाना' पड़ा। पीछेसे जब इन लोगोंको 'पेपिरि' बनाना आ गया; तब उक्त दो श्रेणिके सिवा 'ऐम्फिथियेटिका' 'फेनियाना' 'एम्पोरटिका' 'क्रमिया' आदि नामके भिन्न भिन्न दामोंके पेपिरि बनाने लगे थे। प्लिनिके इतिहास पढ़नेसे समझ सकते हैं कि, ग्रीस या रोमके सर्वसाधारणका विश्वास था कि, पेपिरि बनानेके लिए, मिसर देशीय नील नदके पानीकी अत्यन्त ही आवश्यकता है, क्योंकि नीलनदके पानीमें स्वभावतः एक प्रकारका गोंदसा मिला हुआ है, उससे पेपिर जोड़नेमें अधिक सहायता मिलती है। पेपिरिकी छाल एक टेबिल पर समान भावसे सजा कर उस पर नीलनदके पानीके छींटे दे कर, कुछ देर तक घाममें सुखा लेनेसे ही पेपिरि बनता था; परन्तु यह ठीक नहीं था। पेपिरिकी छालको भिगोनेसे ही, उसमें एक प्रकारका गोंदसा निकलता था और उसे घाममें सुखा लेने ही वह सूख कर जुड़ जाता था।

इसके बाद कैसे, किस रीतिसे अंशुमान् पदार्थको 'मंड' बनाके कागज बनानेकी तरकीब निकाली गई, यह जाननेका उपाय नहीं है। हां, खोजीगणोंका अनुमान है कि, जैसे बरैंया, भौंरा और मौहारके छत्ते देखनेमें बहुत कुछ कागजसे हैं और वह वृक्ष आदिसे ही उत्पन्न होते हैं। उक्त बरैंया आदि जिस प्रकार वृक्षांश विशेषको तरल बनाकर थोड़ा थोड़ा मुंहमें लेकर बड़े बड़े छत्ते बना लेते हैं, इसी प्रकार ही शायद कागज बनाया जाता था। अंग्रेज ऐतिहासिकोंने स्थिर किया है कि, करीब ईस्वी सन् ८५में चीनके लोगोंने ही अंशुमान् पदार्थसे सबसे पहिले कागज बनाया था।

कन्फूचिके समयमें चीनवासी बांसके भीतरी छालके ऊपर तीक्ष्ण लेखनी द्वारा लिखा करते थे। फिर इन लोगोंने बांसकी ही छाल, रुई, रेशम और अन्यान्य वृक्षोंकी छालसे 'मंड' बनाके कागज बनाना सीखा था। हैनवंशीय होटि नामक चीनसम्राट्के राजत्वकालमें कई एक वृक्षोंकी छाल, मछली पकड़नेके पुराने जालके टुकड़े, सन, और रेशम एकसाथ उबाल कर 'मंड' बनाते थे और इसी मंडसे ही कागज बनता था। कागज बनानेके लिए पहिले जो कुछ यंत्र आदि बनाये गये थे, अब उसीकी उन्नति करके उन्हीं यंत्रोंसे उत्तमोत्तम कागज बनाये जाते हैं। अब चीनदेशमें नानाप्रकारके कागज बनते हैं। इस देशमें हो-चि नामक घास या फूस इतना अधिक उत्पन्न होता है कि, ये लोग उसीसे सबका दाह करते हैं।

जो कुछ भी हो, इंगलैंडीय ऐतिहासिक कागजकी उत्पत्तिमें चीनको ही प्रथम उपाधि दें या और किसीको; परन्तु ग्रीक इतिहाससे यथार्थ बात जानी जा सकती है। पञ्जाब-विजयी ग्रीकसम्राट् अलेकजन्दरके सेनापति नियरखुस लिख गये हैं कि, उस समय उनने भारतवर्षमें उत्तम, नरम, चिकने और मजबूत एक तरहके 'रुईके' वस्तुके ऊपर कलमसे लेन देनका हिसाब लिखनेका बहुत प्रचार देखा है। यह शायद तुलात वा तुलाट अथवा तुलट कागजकी भांतिका होगा। माकिदनराजने खृष्ट-जन्मसे ३२६ वर्ष पहिले भारतपर आक्रमण किया था, इसलिए उसके बहुत पहिलेसे भारतमें तुलाटके भांतिका कागजका प्रचार था,—यह निश्चित बात है। बहुतोंकी धारणा है कि विलायती कागज वा आधुनिक मिलोंके कागज पर हड़ताल फेर देनेसे ही तुलट कागज बन जाता है; पर वास्तवमें ऐसा नहीं है। पहिले मालदह जिलेमें यह तुलट कागज बहुत ही ज्यादा बनता था। देश विदेशोंमें भी इसका बहुत कुछ आदर होता था। इसीलिए माल-

इससे नानाप्रकारका तुलट कागज देशविदेशोंमें रवाना होता था। उस समय अंग्रेजोंनेही चीनके किसी एक तरहके कागजका नाम "India proof" रक्खा था। मालूम होता है कि, वह कागज पहिले चीन देशमें उत्पन्न नहीं होता था; सबसे पहिले भारतवर्षसे ही यह कागज चीन देशमें पहुंचा हो। क्योंकि अगर ऐसा नहीं होता तो इसका ऐसा नाम ही क्यों पड़ता? और चीनके साथ भारतका अन्तर्वाणिज्य पहिले प्रचलित था, इसका प्रमाण यथेष्ट है। चार-पांच सौ वर्ष पहिले मालदहमें इस कागजका व्यवसाय खूब ही विस्तृत था और किसी एक श्रेणीके लोगोंकी यही उपजीविका थी। अब भी अनेक पुराने जमींदारोंके घरमें साटिनकी भांति उज्ज्वल और नरम एकतरहके कागजपर बादशाही सनद, छाड़ इत्यादि देखनेमें आते हैं। यह सब पुरातन देशी कागज गौड़में बनते थे। हमने तुलट कागज पर लिखी हुई कह सात सौ वर्षकी प्राचीन पोथी देखी है। भारतवर्षमें मुसलमान भी कागजका व्यापार करते थे। मुसलमान, तांतियोंको जैसे "जुलाह" तथा मत्स्यजीवियोंको "नेकारी" आदि कहते थे, वैसेही इन कागजके व्यवसायियोंको "कागजी" कहते थे। अब भी कागजी मुसलमान लोग ढाका प्रान्तमें "कागज" बनाकर ही जीविका निर्वाह करते हैं। कलकत्तेकी अन्तर्जातीय प्रदर्शनी (ई० १८८३—८४) में कई प्रकारके पट सनके कागज, ढाका मुंशीगंजके 'मेघू कागजी'के बने हुए एक तरहके कागज, शाहाबाद सासेरामसे ४ तरहके देशी कागज, बरहमपुर-कणहोलि (मुजफ्फरपुर) से दो तरहके देशी कागज, और भूटानसे एक तरहके वृक्षको छालका कागज आया था। भुटिया कागजमें कोड़े नहीं लगते। यही कागज सुन्दर और नरम होता है—ऐसा प्रसिद्ध है।

पहिले पारस्य देशमें कठिन वृक्ष-छालसे एकतरहका कागज बनता था। उस छालका नाम तुस, वा तुज है। पहिलेके पारसीलोग इस तुजको चमड़ेके साथ मिलाकर कागज बनाते थे। ये लोग इस कागजको खूब व्यवहारमें लाते थे और उनसे पञ्जाब आदि उत्तर-भारतमें भी यह कागज आता था।

मुसलमान-धर्मप्रवर्त्तक मुहम्मदकी कुछ पुस्तकें भेसोंकी कन्धेकी हड्डियोंकी पत्तियों पर लिखी गई थी।

३।—विलायती कागजका इतिहास—

पहिले कहा जा चुका है कि, चीनवासियोंने ही, ईस्वीके पूर्व्व समयमें कागज बनानेके लिए; सन, रेशम और फटे वस्त्रोंसे 'मंड' बनानेकी तरकीब निकाली थी। आरबीय लोगोंने इसे चीनसे सीख कर ७०६ ईस्वीमें समरकंट शहरमें पहिले कारखाना खोला था। इनसे फिर यह कागज ईस्वी १२वीं शतकके पहिले यूरोपमें प्रचारित हुआ। इसी समयमें ही सबसे पहिले स्पेन देशमें रुईसे कागज बनानेका एक कारखाना खुला था। ११५० ई०में भेलेन्सिया प्रदेशके प्राचीन नगर कजेटिभा नगरके कारखानेके कागजकी सबसे अधिक प्रसिद्धि हो गई। यह कागज पूर्व्व और पश्चिममें सब देशमें जाया करता था। क्रमशः भेलिन्सिया और टलेडो प्रदेशके खृष्टानोंने कागजके कारखानोंकी विशेष उन्नति की। ईस्वीय १२वीं शतकके अन्तके समयमें यूरोपमें सर्वत्र रुईके बने हुए कागज व्यवहृत होते थे। उसी कागज पर लिखी हुई एक दलील उत्तर सिरोया प्रदेशके गस नगरके एक मैदानमें सुरक्षित है। यह दलील रोमकसम्राट् द्वितीय फ्रेडारिकका आदेश-पत्र है। इसमें १२४२ ईस्वीकी तारीख लिखी हुई है। अवशेषमें १४ वीं शतकमें सन और रेशमसे अधिक कागज बन निकले और ये रुईके कागजसे अधिक व्यवहृत होने लगे। तब रुईके कागजसे सनका कागज ज्यादा मजबूत बनता था। उस समय सन आदिसे जो कागज बनता था, वर्त्तमान प्रणालीकी भांति तब सन धोकर सफेद नहीं किया जाता था, सिर्फ उसका मैल धो दिया जाता था। ये सब कागज जहां हैं, वहां आज तक भी खूब मजबूत और समान उज्ज्वल हैं;—देखते ही इनकी प्रशंसा करनी पड़ती है। १४वीं शताब्दीमें इंगलैंड, फ्रांस, इटाली और स्पेनमें

सन, रेशमादिके कागजके कारखाने खूब ही खुले थे। जर्मनके नुरेंबर्गनगरमें ई० १३७० में और इङ्गलैंडमें हार्टफोर्डसायरके ष्टेभेनेज नगरमें सबसे पहिले कागजके कारखाने स्थापित हुए थे। इन्हीं लोगोंने कुछ पहिले वस्तोरभाइल कागज ढालनेका बुना हुआ सांचा बनाया था। इसी सांचेको व्यवहार करते करते फरासियोंने इसको और भी उन्नति की ओर इसके नतीजेमें उन्हीं सांचोंमें उस समय "वैल्लम्" (Vellum) कागज बनते थे। इसी समयमें सन, रेशमादि उबाल कर कूटनेके लिए कैंची और कूटनी-कल इङ्गलैंडमें बनी थी। ई० १७९८में फ्रांसमें मुसोंडिडोने सर्वप्रकारके तन्तुओंसे ही कागज बनानेकी तरकीब निकाली थी। मुसोंडिडोने इस तरकीबका ई० १८०१में इङ्गलैंडमें प्रचार किया। ई० १८०४में फड्रिनियार कम्पनीको इसका कंट्राक्ट मिला; इस कम्पनीके सिवा दूसरा कोई ऐसा कागज नहीं बना पाता था। आखिरमें दूसरोंने इनसे भी उत्तमोत्तम कल-कारखाने खोले; जिससे इस कम्पनीको घाटा पड़ा। रूसियाके राजकोषसे तब इसने १ लाखसे कुछ अधिक कर्ज लिया था। ७५ वर्षकी उमरमें फुड्रिनियार नामक एक कर्मचारी अपनी एकमात्र कन्याको साथ लेकर यह रुपये वसूल करनेके लिए इङ्गलैंड आये। ऐसी दशामें लोगोंने ब्रिटिश गवर्नमेंट से यह आवेदन किया कि, जब यह कम्पनी चालू थी; तब इससे गवर्णमेंटको करीब ५ लाख रुपयेकी आमदनी थी, इस लिये इस समय सरकारको कुछ दया करनी चाहिये। पार्लियामेंटमें इस आवेदन पर विचार किया गया कि सरकारकी तरफसे सिर्फ ७००० पाउंड दिया जा सकता है। यह सुन कर अन्यान्य कागजवालें चंदा करके और भी कुछ रुपये देनेको तैयार हुए परन्तु इसी बीचमें उक्त कम्पनीके मालिकोंके एकमात्र वंशधर ८९ वर्षकी उमरमें इहलोक त्याग गये। इनकी दो कन्याओंको, बहुत कोशिश करने पर; राजकोषसे थोड़ी बहुत मासिक वृत्ति मिलने लगी।

आजकल चिट्ठीके कागजोंमें और फुलिस्कोप कागजोंमें जैसी पानीकी लकीरें सी रहती हैं; पहिले विलायतके सब ही कागजोंमें वैसी पानीकी लकीरें रहा करती थीं। यह चिन्ह भिन्न भिन्न व्यवसायियोंका भिन्न भिन्न प्रकारका होता था। हिसाबमें वा दलील आदिमें जाल तो नहीं किया गया—इसकी परीक्षा उसी जलीय चिह्न द्वारा हुआ करती थी। पहिले जमानेमें सबसे पुराना जलीय चिह्न, फ्लैंडार्स नगरमें जो कागज बनता था; उसमें हाथका पंजा होता था, इस पंजेके बीचकी अंगुलीसे एक तारकाविशिष्ट शलाका बाहिर होती थी। इस कागज पर तब साधारण पत्र व्यवहारका काम चलता था। भिनसके एक अजायबघरमें ऐसे कागज पर लिखी हुई एक चिट्ठी मौजूद है, यह चिट्ठी २० जुलाई १५०२ ईस्वीमें इंगलैंडके राजा सप्तम हेनर फ्रांसिस्को कैपेलोसीने लिखी थी। यह पञ्जा-मार्का कागज "हाथ-कागज" (Hand-paper) कहाता था। और एक प्रकारके चिट्ठीके कागज (Note-paper) में उस समय सरावके ग्लासका चिन्ह रहता था; पर फिर इसको बदल कर ढालके ऊपर राजचिन्ह (Royal arms) रक्खा गया। डांकघरके कागज (Post paper) में उस समयके डाकियाका 'शिंगा' और ढालके ऊपर राजमुकुटका चिन्ह रहता था। नकल करनेके कागज (copy paper) में फरासी जातीय पुष्पका चिन्ह रहता था। डेमी कागजमें फरासी-पुष्प और ढालके ऊपर राजमुकुटका, रायल कागजमें टेढ़ा मार्या हाथका और कैप (cap) कागजमें घुड़सवारकी टोपी (jokey cap) की भांति काई वस्तुका चिन्ह रहता था। इस कैप कागज पर सेक्सपीयरकी ग्रंथावली सबसे पहिले छपी थी। आर्कियलजियाके मतसे, १६६९ सालमें फुलिस्कोप कागज चला था प्रथम चार्लसने अपना खजाना खाली देख कर कुछ व्यवसायियोंको इस फुलिस्कोप कागजका कंट्राक्ट दे दिया था। सरकारी कामोंमें यही कागज लगता था। पहिले इस कागजमें राजचिन्ह रहता था; परन्तु क्रमवेलके राजत्वमें इसके स्थानमें "गधेकी टोपी" (Foolscap) और एक घंटेका चिन्ह रक्खा गया। फिर जब राज्यका शासन भार रेम्प

पार्लियामेंट (Rump poarliament)के हाथमें आया तब यह चिन्ह उठा दिया गया था ; पर आज तक भी उसका और पार्लियामेंटकी रोकड़ बही आदिका नाम "फुलिस्कोप" ही है।

बहुतसे विलायती कागज नीले रंगके होते हैं। इसप्रकार कागज रंगे जानेकी पहिले एक आकस्मिक घटना घट चुकी है। मि० बुरेनूस नामक एक कागज व्यवसायी १७९० खृष्टाब्दमें अपनी स्त्रीके साथ एकदिन अपने कारखानेमें गया। कारखानेका कार्यादि देखते हुए ये दोनों घूम रहे थे, अचानक ही स्त्रीके हाथसे एक नील रंगकी पुड़िया कागजके 'मंड'के ऊपर गिर पड़ी ; जिससे वह रंग उसी समय 'मंड'में मिल गया फिर उस 'मंड'से जो कागज बना वह नील रंगका बना। इस कागजका खूब आदर हुआ। बुरेनूसकी स्त्रीने भी नीले रंगकी पार्टि (Cake) बेचकर यथेष्ट लाभ उठाया।

ईस्वीसन् १६९५में स्कोटलेंडमें कागज बनाना शुरु हुआ। एडिनबरा नगरमें इसके लिए सभा हुई थी। इस सभामें जो कुछ नियमादि स्थिर किये गए थे, वे आज तक भी वृटिश मिउजियममें विद्यमान हैं। उस समय सबसे ज्यादा सूक्ष्म (पतले) कागज स्पेन देशीय एक प्रकारके घास (Eapart Alfa, Lygeum Sparteum) से बनता था।

इसी तरह खृष्टीय ११वीं शताब्दीके अन्तके समयसे लेकर १९वीं शताब्दीके पूर्वार्द्धकालके मध्यमें यूरोपीय कागज बननेके लिए जो चीजें व्यवहारमें लाई गई हैं और प्रत्येक चीज सबसे पहिले किस किस सालमें किस किसने व्यवहार की है, इसकी एक तालिका नीचे लिखी जाती है ;—

द्रव्य	ईस्वीसन्	सबसे पहिले व्यवहार करनेवाले
रुई, सन, रेशम, पशम	१६८२	ब्लाडन (Bladen)
चमड़ा	१७८०	हूपर (Hooper)
धानका पूला, कांटेके पेड़	८००	कूप्स (Koops)
लकड़ी	१८०१	कूप्स (Koops)
पेड़की छाल, सूखी घास	१८००	कूप्स (Koops)
पशुविष्टा	१८०५	जोंस् (Gones)
शैवाल (पोखरकी काई)	१८२४	नोस्बिट् (Nesbitt)
'रप'वृक्ष	१८२५	दिला-गर्द Dela-Gorde
बाल, रोम	१८३३	विलियमस् (wiliiams)
घृतकुमारी, केलेके पेड़का खोपटा	१८३८	बेरि (Birry)
मूंगकी डांठरा	१८३८	डि'हरकोर्ट D'Harcourt
ईखकी छोई	१८३८	बेरि (Birry)
पेड़के पत्ते, पेड़की जड़	१८३८	बेलमेन (Balmane)
जौकी भुसी और डंठल, मटरका डंठल	१८३८	डि'हारकोर्ट (D'Harcourt)
'गटापर्चा'	१८४६	हैनक (Honoak)
पट-सन	१८४६	केलमार्ट (Calvart)
नारियलकी जटा	१८५२	निउटन (Neuton)
भुसी, 'करात'का गुड़	१८५२	विल्किन्सन् (Wilkinson)
तमाखूका डंठल	१८५२	ऐडकक् (Adocock)
तृणादि	१८५२	ष्टिफ (Stiff)
नारियलकी खोल	१८५४	डियापर (Diaper)
बादामके छुक्कल	१८५४	कुपलेंड (oupland)
जलज तृण	१८५५	आरचर (Archer)

इनके सिवा और भी नाना प्रकारकी वस्तुओंसे कागज बन सकता है ; पर सब चीजोंसे कागज बनानेसे व्यापार चल सकता है, ऐसा नहीं। इस विषयमें चीनवासियोंने सबसे अधिक संख्यामें भिन्न भिन्न उपादानोंमेंसे कागज बनाया था और बनाते हैं। चीनराज्यके प्रत्येक विभागमें, प्रत्येक जिलेमें भिन्न भिन्न उपादानोंसे कागज बनते हैं। पहिले कह चुके हैं कि, चीनवासी हो-सि नामक कागजसे व्यवहार करते हैं। पि-सूके नामक कागज तूँतियाके पेड़की

-छालसे बनता है; यह कागज चीनमें घावकी लिंट (Lint) वा पट्टीके काममें आता है, फटे लत्तेकी जगह भी यह कागज काममें आता है। कियांसिमें पियाउ-सिन् नामका एक तरहका कागज होता है। इस कागजमें पुड़िया बांधी जाती है। होयासिन् नामके कागजमें सिर्फ दवाईयोंकी पुड़िया बांधी जाती है। कियांसि प्रदेशमें होयांपियान् नामक कागजसे हो-सि कागजकी भांति व्यवहार किया जाता है। ता-से और चं-से नामके कागज हिसाबकी बही-खातोंके लिए बनता है। म-पियेन और लियेनसि नामके सुन्दर और पतले कागज, लिखन मुद्रणादि करनेके लिए तथा चित्रादि बैठानेके लिए और कोह-लियेनसि नामके पीले रंगके पतले कागज औषधालयोंमें चूर्ण-औषधियोंकी पुड़िया बांधनेके काममें आता था। त्स-सियेन नामके चिकने कागज पर पत्रादि लिखे जाते थे। इनके सिवा और भी एक प्रकारका रंगीला कागज बहुत सस्ते दामोंमें बिकता है, इसके कुछ कागजों पर ७ और कुछ पर ८ लाल रंगकी रेखाएं (लम्बाईमें) रहती हैं।

ये सब कागज ही भिन्न भिन्न उपदानोंसे बनता है। फो-कियेन प्रदेशमें खूब कच्चे बांस से, चि-कियां प्रदेशमें धानके पूलासे; और कियां-नान प्रदेशमें फटो-पुरानी रेशमसे कागज बनता है। इनमेंसे रेशमका कागज कीमती, आदरणीय और देखनेमें खूबसूरत होता है। कागज स्याही न सोक सके, इसके लिए ये लोग उस पर शिरीषका एक पदार्थ लगाते थे। यह देखनेमें मोमकी 'पटपटी' की भांतिका होता है। मछलीके कांटोंको खब अच्छी तरह धोकर, उसके तैलांशको नष्ट करके उन्हें नियमानुसार फिटकिरीके साथ मिला कर रख देते हैं; जिससे दोनों गलकर तरल हो जाते हैं, फिर चोमटीसे एक कागज उठा कर उसमें डुबा कर घाममें वा आगके सामने रखकर उसे सुखा लेते हैं। ये लोग और भी एक भांतिका कड़ा कागज बनाते हैं, वह आधा इञ्च मोटा होता है। यह कागज सहजमें आग लगते ही जल नहीं सकता। ये लोग "भारत" नामका एक प्रकारका कागज (India-papsr) बनाते हैं, इस पर अति सूक्ष्म शिल्प खोदित होता है और बहुत ही बढ़िया छपाई होती है। चीनमें नौका या घरकी छतमें छेद हो जाने पर, उसमें तेलाक्त कागज ठूंस कर उस पर दागराजी कर दी जाती है। पहिले जिन जिन कड़े कागजोंका उल्लेख किया है, उनसे ये लोग नौका वा जहाजके पालमें थेगरा लगाते हैं; और दूकानदार लोग इससे चीज-वस्तु बांधनेके लिये सुतली बना लेते हैं। चीनमें नित्य प्रति कागजका इतना खर्च है कि, वह लिखा नहीं जा सकता। इससे सुलभ वाणिज्य चीनमें और दूसरा नहीं है। चीनवासियोंको पूला, भूसी, रुई, सन, कच्चे बांस, रेशम इत्यादि जो कुछ मिलता है, उसीमें से ये लोग कागज बनाया करते हैं। चीनके कागजों पर मोम लगाया जाता है, इसीसे वे देखनेमें खूब चिकने होते हैं। कागज पर मोम लगानेसे पहिले, उनको पत्थरसे घिस लिया जाता है। चीनमें विदेशीय कागज बहुत कम टिकते हैं। देशीय कागज ऐसे नियमसे बनाया जाता है कि, अकस्मात् नष्ट न होनेसे वह जल्दी नष्ट नहीं होता। इस लिये वहां लिखने पढ़नेके काममें, देशीय कागज ही व्यवहार किये जाते हैं। विदेशी कागज पर शिरीष लगानेसे वह ज्यादा दिन तक नहीं ठहरता।

चीनवासी खूब आसानीके साथ बांससे कागज बनाते हैं। खूब कच्चे बासोंको पहिले पानीमें डाल देते हैं; जब बांसोंमें अच्छी तरह पानी भिद जाता है, तब उनको चीर कर चूनाके पानीमें डाल देते हैं। इससे यह कीचकी तरह नरम हो जाता है; फिर कूटा जाता है। कूटते जब वह 'मंड' बन जाता है, तब पानीमें उबाला जाता है। इस प्रकार उबाले जाने पर सांचेमें ढाल कर आवश्यकतानुसार पतले और मोटे कागज बनाये जाते हैं। इस कागजसे लिखने और पुड़िया बांधनेके सिवा और भी एक काम लिया जाता है। ईंट-खोलामें ईंट बनते समय मिट्टीमें इस कागजको कूट कर मिला दिया करते हैं। बांसका कागज खूब पतले और साफ होते हैं। चीन वासियोंने ईस्वी सन् ५०में इस कागजको सबसे पहिले

बनाया था। कोई कोई कहते हैं कि, इससे भी पहिले चीनमें बांसके कागजका प्रचार था। चीनमें एक एक प्रदेशमें एक एक चीजसे प्रधानतः कागज बनाया जाता है। कहीं सनसे, कहीं कच्चे बांससे, कहीं तूंतछालसे, कहीं धानके पूलासे और कहीं गेंहूके पूलासे प्रधानतः बहुत कागज बनाये जाते है। रेशमको 'गुटी' से पार्चमेंटकी भांतिका एक तरहका कागज होता है, इसको चीन लोग लो-श्रोयेन-ही कहते है। यह अत्यन्त कोमल होता है; और इस पर खुदाई करके लिखा जा सकता है। एक प्रदेशमें 'को-चा' वा 'चा' नामक एक प्रकारके वृक्षसे यथेष्ट कागज उत्पन्न होता है। ये लोग उस समयका सा कागज अब भी बनाया करते हैं। चीनवासी चीन या वृक्ष देशी तूंत-छा (Bronssonetia papyrifera pepermulderry) से कागज बनानेमें पहिले डालियोंके १-१ हाथ लम्बे टुकरे कर उन्हें खारे पानीमें उबाल लेते हैं। इस प्रकार उबाल लेनेसे भीतरी छाल पृथक हो जाती है। फिर उस छालको पृथक करके घाममें सुखा लेते हैं। इस तरह जब पर्याप्त रूपसे छाल एकत्र हो जाती है, तब उसे ३—४ दिन तक पानीमें डाल कर नरम बनाते हैं। और बचे हुए अंशसे बाहर निकाली हुई छालको फेंक देते हैं। सबसे पीछे बाहर निकली हुई छालको फेंक कर; जो कुछ बाकी बचती है, उसको उबालते हैं। जब तक यह उबाली जाती है; तब तक एक बटनेसे उसे घोंटा करते हैं। फिर नाना प्रकारके यंत्रोंकी सहायतासे इसे 'मंड' (लूंड) बना लेते हैं; और कूट कर इसे धो लेते है। फिर इसमें भातका माड़ मिला कर सांचेमें ढाल कर इसका कागज बनाते हैं। बांसके कागजसे इसमें अधिक यत्न करना पड़ता है। फिर इनको रखते समय, प्रत्यक कागज पर एक एक तिनका रख कर रखते है। बादमें फिर एक एक ताव घाममें सुखाया जाता है। यह कागज खूब नरम और पतले होते हैं, इसमें दोनों तरफ नहीं लिखा जा सकता। ये लोग कभी कभी इसके दो ताव चिरिंचसे एक साथ जोड़ लेते हैं। ऐसा जोड़ देते हैं कि, कोई समझ नहीं सकता कि, यह एक है या दो।

जापानमें ऐसे कागज बनाते समय, ये लोग (जापानी) छालकी खारीपानीमें न उबाल कर छाई (खाख)के पानीमें पात्रके मुंहको ढककर उबालते हैं। जब डालीके दोनों किनारेकी छाल आधइञ्चके करीब गल जाती है; तब उसे उतार लेते हैं; और ठंडा होनेपर उसके बक्कल छुड़ाकर ३-४ घंटे पानीमें डाल रखते हैं। इसी समय ये लोग ऊपरकी काली छालको छुरीसे छील देते हैं। फिर मोटी छाल और पतली छालको अलग अलग कर लेते हैं। इसके बाद फिर इन बक्कलोंको उबालते हैं; और एक लकड़ीसे घेंटा करते हैं। इस प्रकार जब यह 'मंड' (लूंड़) बन जाता है। तब इसमें भातका मंड़ तथा अन्यान्य वस्तुएं मिला कर; चटाई पर ढाल कर कागज बनाया जाता है। और बने हुए कागजोंको सम्हाल कर रखते समय प्रत्येक कागजके नीचे एक एक तृण रख देते हैं; फिर उसपर वजनदार चीज रख कर उसका पानी निकाल देते हैं। इसको घाममें सुखा लेनेसे ही कागज बन जाता है। इसके अंशुओंके अनुसार यह कागज फाड़ा जाता है। इसको घरी करके रखनेसे उस घरीका दाग नहीं होता; और यूरूपीय कागजसे यह खूब मजबूत भी होता है। बाजारमें जो चीनके पंखे बिकते हैं; वे इसी कागजके बने हुए हैं। इस कागजके द्वारा घरकी भीत भी बनाई जाती है पुड़िया बंधनेके काममें भी यह आता है। वहांके बहुतसे लोग रूमालकी जगह इस कागजको काममें लाते हैं वास्तवमें यह कागज होता ही ऐसा है कि; इसको देखते ही कपड़ेका भ्रम हो जाता है। कारण, यह कपड़ेकी भांति कोमल और सर्वत्र एकसा होता है तथा इसमें भांज भी नहीं पड़ती वहांके लोग इस कागज पर लाखका काम करके टोपी बनाते हैं और तोलियां, टेबिलका आस्तरण, पहिरनेकी फतूही आदि भी बनाते हैं।

जापानमें प्रधानतः "मोरस पेपिरिफेरा सेटाइभा (Morus Papyrifera Sativa) वा 'कागजके पेड़

की छालोंसे कागज बनता है जापानवासी इसको "कादजी" कहते हैं; इसमें भातका माड़ "ओरेणि" (Oreni) मिलाकर खूबसूरत और मजबूत बनाते हैं और भी एक प्रकारके उसी जातीय वृक्षके छालसे कागज बनाते हैं, इस श्रेणीके वृक्षको वहां "कादज" या "कादजिरा" कहते हैं। इस कागजमें खूब अच्छी छपाई आती है। यह "कादजिरा" इतना मजबूत होता है कि इससे रस्सा भ बनाये जाते हैं सिरिगा प्रदेशके सिरिगान नगरमें एक तरहका कागज बनता है जो बिलकुल रेशमसा जान पड़ता है। हाथमें लेकर देखनेसे भी इसमें रेशमका भ्रम होता है। बहुतोंका अनुमान है कि जापानी "कागज" शब्दसे ईरानियोंने कागज शब्द बनाया है।

समरकंदमें सबसे ज्यादा पतला रेशमी कागज बनता है। चीनके कागजसे भी इसका अधिक आदर होता है। सबसे पहिले चीनवासियोंने ही रेशमसे कागज बनाया था यहांसे भारतवर्षमें भारतसे पारस्य में पारस्यसे आरबमें आरबसे ग्रीसमें और ग्रीससे प्राचीन रोमक राज्यमें रेशमी कागज बनानेकी परिपाटी चली है।

भारतवर्षमें केवल नेपालमें ही बांससे कागज बनता है। नेपालवासी बांसोंको काटकर काठकी ओखलीमें कूट कूट कर 'मंड' बनाते हैं फिर पानीमें धो कर साफ करके, नाना उपायोंसे उसे रेशमके ऊपर ढाल कर सुखा लेते हैं। इसको पत्थरकी बटनियासे घिस घिस कर बराबर करते हैं। यह कागज बहुत कड़ा होता है; और टेढ़ा नहीं फटता, सीधा ही फटता है। यह कागज "फिल्टार" (Filter) करनेके लिए सबसे अच्छा है, क्योंकि यह पानीमें भीग जानेसे मुरझाता नहीं; और न जल्दी नष्ट ही होता है। "नेपाली कागज" नामका भी एक तरहका कागज होता है। यह महादेव का-फूल (Daphne canaabina) नामक वृक्षके बक्कलसे बनाया जाता है। ईस्वी सन् १८५१ की प्रदर्शिनीमें इसी बक्कलसे बना हुआ एक बड़ा कागज दिखाया गया था, दर्शकोंने इसे देख कर बड़ा आश्चर्य किया था। इसकी बनाने की तरकीब जापानके तूंत-छालके कागज सरीखी ही है, सिर्फ फरक इतना ही है कि, ये लोग डालीको उबाल कर सिर्फ भीतरी छालको ही उबालते हैं। यह कागज कभी कभी कौड़ी से घिस कर भी बराबर किया जाता है। यद्यपि यह कागज 'नेपाली-कागज' कहलाता है; पर वास्तवमें यह नेपालमें नहीं बनता। भोट राज्यमें और हिमालय प्रदेशमें ही इस वृक्षके बहुतसे जंगल है, और वहीं पर यह कागज बनता हैं। भुटिया लोक इस वृक्षकी लकड़ी जलाया करते है। १८२९ ईस्वीसे पहिले इस काठके ईंटके आकारके कुछ टुकड़े इङ्गलैंडमें परीक्षार्थ भेजे गये थे। वहां इसके द्वारा हाथोंसे जैसा कागज बना, उसके सम्बन्धमें एक मुद्रकका कहना है कि, इस कागज पर जैसी सूक्ष्मसे सूक्ष्म छपाई हो सकती है; वैसी किसी अंग्रेजी कागज पर नहीं हो सकती। यह चीन देशीय "इंडिया-पेपर"के समान गुणविशिष्ट होता था। नेपालमें ऐसे कागज पर लिखी हुई कुछ प्राचीन पोथियां मौजूद हैं, सुनते हैं ये बहुत ही प्राचीन हैं। इन पोथियोंको देख कर बहुतसे अनुमान करते हैं कि, चीन देशसे प्राय- ७००वर्ष पहिले भुटिया लोगोंने यह कागज बनाना सीखा है। "महादेव का-फूल" छोटा कंटक-वृक्ष मात्र है, देखनेमें बहुतसा विलायती लरेलकी भांतिका होता है। यह दो वर्ष तक जीता है; और जाड़ेमें इसके पत्ते नहीं झरते। इसका फल विषाक्त होता है। यह वृक्ष कई तरह होता हैं, पर सबसे कागज बनता है। कुछ वृक्षांके फूल सफेद होते है; और कुछका रंग थोड़ा मटीला और बैंगनी रंग मिला हुआ सफेद सा होता है। बहुतोंका विश्वास है कि, हिमालयके नीचेके लोग नेपाली कागजमें हड़ताल मिलाते हैं; पर यह बिलकुल गलत है, क्योंकि नेपालमें वैसा विष कोई बेच नहीं सकता; और छिपाकर बेचने पर भी उसे विशेष दंड दिया जाता है। "महादेवका फूल"का वृक्ष भी थोड़ा विषैला होता है; पर कागज बन जाने पर उसमें विष नहीं रहता, क्योंकि देखा गया है कि इसमें भी कीड़े लगते हैं। यह सूखने पर बड़ा कड़ा हो जाता है; सूखी चीजों

की पुड़िया बांधनेके लिए भी अच्छा होता है। कलकत्तेके अजायब घरमें ऐसा एक मौजूद है; जो लम्बाईमें ५० फुट और चौड़ाईमें २५ फुट मापका है।

भूटान वासी अपने यहांके "डिया" नामके एक तरहके वृक्षकी छालसे कागज बनाते हैं। ये लोग उक्त वृक्षकी छालको लम्बी लम्बी चीर कर, लकड़ीको खाकके साथ उबालते हैं, फिर पत्थरके ऊपर रख कर काठके मुद्गरसे कूट कूट कर "मंड" बनाते हैं। बादमें जापानियोंकी तरह कागज बनाते हैं। इससे साटिन और रेशम बुनी जा सकती है। चीनदेशमें यह उसी रूपसे ही व्यवहृत होता है।

ब्रह्मदेशमें एक भांतिकी लतासे कागज बनता है। यह पेष्ट बोर्डकी तरह मोटा और कड़ा होता है। इस कागज पर रंग चढ़ा कर, इस पर सिलेट-पेन्सिलकी भांतिकी एक तरहके फीके पीले रंगके पत्थरकी पेन्सिलसे लिखते हैं।

श्याम देशमें एक प्रकारके वल्कलसे २ तरहके कागज बनते हैं,—१ सफेद और २रे काले रंगके। जिस वृक्षकी छालसे यह बनाये जाते हैं, उस वृक्षका नाम है—"पिलकल्लोई"। यह अच्छा कागज नहीं होता; और बनता भी अच्छा नहीं।

पहिले ही कह चुके हैं कि भारतवर्षमें भी हाथसे कागज नहीं बनते। यहां पुराने बोरा, फटे कपड़े, पुराने कागज और अंशुमान वृक्षादिसे कागज बनते हैं। पहिले इन सबको पानीमें भिगो कर चूनेको चूर मिला कर कूटते हैं। फिर 'मंड' को धो कर चूनाके पानीमें सड़ाते हैं, ४-५ दिन बाद वह पानी बदल दिया जाता है। इसी तरह दो-तीन बार पानी बदल कर अच्छी तरह सड़ा कर फिर उसे सांचेमें ढाल कर सुखा लेते हैं। कागज सूख जाने पर भातके मांड़से घोंट कर सुखाया जाता है; फिर दो-चार दिन दबा रक्खा जाता है; बादमें सेला-पत्थरसे घिस कर चिकना किया जाता है।

१८ वीं शताब्दीके प्रारम्भमें यूरुपमें रुई और सन से प्रधानतः कागज बनाये जाते थे; फटे पुराने कपड़े और रेशमसे नहीं। अब प्रधान रूपसे फटे पुराने कपड़े और रेशमसे बनाये जाते हैं, क्योंकि इनका सहजमें और कम खर्चमें 'मंड' बन जाता है इसी उद्देश्यकी सिद्धिके लिये आज कल यूरुपमें नाना स्थानोंसे फटे पुराने वस्त्रादिकी आमदनी होती है।

मादागास्कार द्वीपमें "आवो" नामके वृक्षकी छालसे एक प्रकारका कागज बनता है। यह कागज भी भूटानके "डिया" नामक वृक्षकी छालके कागजकी तरह बनाया जाता है। इसमें भातका मांड़ दिया जाता है; इस लिए यह कागज स्याही नहीं सोकता।

रुईके कागजका इतिहास।—यूरोपीय विद्वानोंके मतसे, बुखेरिया प्रदेशमें खृष्टीय ७वीं शताब्दीके अन्तके समयमें अथवा १०वीं शताब्दीके प्रारम्भमें सबसे पहिले "बाम्बिकिनी" (Bombycinnee) नामक रुईका कागज बना था। आरबीयगण कहते हैं कि, जुसुफ् आमरा नामकी व्यक्तिने ही सबसे पहिले ऐसा कागज बनाया था। परन्तु हमारी समझसे इससे पहिले भी तुलाट या रुईका कागज भारतवर्षमें प्रचलित था। इसका प्रमाण माकिदनवीर सिकन्दरके सेनापति नियार्कसके "तुलाचापड़ान" के हिसाबके उल्लेखसे मिलता है। आरवियोंने कागज बनानेकी प्रणाली पारसियोंसे सीखी; और इन्हीं लोगोंने सबसे पहिले आफ्रिकाके अन्तर्गत सेवटा नगरमें, फिर स्पेन देशमें कन्सटिन्सा द्वलेन्सिया और टलेडो नगरमें रुईके कागजका कारखाना खोला था यूरोपवासी १२वीं शताब्दीमें पूर्व-यूरोप और सिसिलि द्वीपमें रुईके कागज बनाते थे। कागज बनानेके योग्य, वस्तुओंके अभावसे ही रुईके कागजका आविर्भाव हुआ था। इस कागजके बननेसे क्रमशः पेपिरि कागज उठ गया था। १३वीं शताब्दीसे रुईका कागज खूब ही व्यवहृत होने लगा। यह पहिले खृ॰ पू॰ १ली शताब्दीसे खृष्टीय ८मी शताब्दीमें चीन और भारत, क्रमशः पारस्य, आरब, ग्रीस, अष्ट्रीया (मिनिसिया) और जर्मन तक फैल गया। तब इसका नाम था ग्रीक पार्चमेण्ट; उस समय ग्रीक लोग इसे "बम्बरकिनि" कहते थे; क्योंकि ग्रीक भाषामें रुईके वृक्षको "बम्बिक्स" कहते हैं। प्राचीन लाटिन लोग इसे "चार्टा बम्बिसिना"(Charta

Bombycina) बीचमें लेखकगण "चार्टा गसिपेना" वा "एक्स्‌जीलीना" (Charta Gossipena or xglina) और स्पेनिके लोग "पार्गामिनो डि पानो" (Pergamino di panno) कहते थे। डामास्कसमें जो कागज बनता था, वह अच्छा बनता था ; इसलिए उसको "चार्टा डामास्कोन" (Charta Damascena) और बहुत से "चार्टा कटोनिया" (Charta Gotonia) एवं अन्समें "चार्टा सेरिका" (Charta Serica) कहते थे। क्योंकि, चीनके शेरिका प्रदेशसे ही पहिले पहल रुई आमदनी होती थी। उसके बाद क्रमशः उन्नति हुई है।

रुईके कागजके बाद रेशमसे कागज बनना शुरू हुआ। प्लिनिकी वर्णना पढ़नेसे मालूम होता है कि, रेशमी वस्त्रके एक टुकड़ेको नाना उपायोंसे बनाकर उसी पर लिखनेकी रिवाज भी थी, इसको "लिबिलिण्टाइ" (Libitintie) कहते थे। आजकल रेशम पर चित्र बनानेके लिए, चित्रकर रेशमको पहिले जिस प्रकार बना लेते हैं ; उस समय भी रेशम पर लिखनेके लिए ऐसा करते थे। १३०८ ईस्वीमें सबसे पहिले यूरोपमें जर्मनियोंने रेशमसे कागज बनाया था। कोई कोई इटालियोंको प्रथम निर्माता कहते हैं। यूरोपियनोंने चीनवासियोंसे यह सीखा था। कोई कोई कहते हैं कि, ईस्वीकी १२वीं शताब्दीमें भी यूरोपमें रेशमी कागज था।

कागजकी मिलें और व्यापार इत्यादि—अब यूरोपके सर्वत्र, एसिया और अमेरिकाके अनेकानेक स्थानों पर साधारणतः वाष्पीय यन्त्रोंकी सहायतासे तरह तरहका कारखानोंमें कागज बनता है। इस समय कूटना, पीसना, 'मंड' बनाना, धोना, सांचेमें डालना, सुखाना, चिकना बनाना, मापके अनुसार काटना-इत्यादि सबही काम कल या मशीनोंसे होता है। आजकल यूरोप, अमेरिका आदि सर्वत्र फटे पुराने कपड़ेसे ही प्रधानतया कागज बनाया जाता है। बहुतसे मिल वालोंका कहना है कि, रुई सरीखी चीजों (वस्त्रादि) से जैसा 'मंड' बनता है, वैसा ही आधुनिक मिलोंमें अच्छी तरह बन सकता है ; पर कच्ची रुई (अर्थात् सूत वा वस्त्रादिके सिवा दूसरी अवस्थामें) से जो 'मंड' बनाया जाता है, वह सहजमें व्यवहृत नहीं हो सकता। समय समय पर, तरह तरहके मनुष्योंने तरह तरहकी चीजोंसे कागज बनाया है ; सहजमें और कम खर्चमें अधिक कागज बनानेकी आशासे लोग घास, पूला, पत्ते इत्यादिसे कागज बनानेकी तरकीब निकाल रहे हैं ; पर आज तक रुई और रेशमके वस्त्रोंके कागजकी भांतिके कागज किसी दूसरी वस्तुसे नहीं बन सके। हां, बराबर प्रयत्न करने पर भविष्यमें कैसा फल हो यह नहीं कहा जा सकता। क्योंकि, पेपिरस वक्कल खृष्ट जन्मके बाद भी प्रायः १२ सौ वर्ष तक चला था ; और रुई रेशमके कागजकी उमर तो अभी १२५० वर्षकी ही हुई है। लन्दनमें ईस्वी सन् १८००में धानके पूलासे कागज बनता था। उस समय मार्कुइस आफ् सल्-वारिने इङ्गलैंडके राजा तृतीय जर्ज्जको एक पुस्तक उपहारमें दी थी ; जिसका कागज धानके पूलासे बना हुआ था। और जिस जिस चीजोंसे कागज बन सकता था, उन सबका जितना विवरण उस समय मिला था, उसीका इतिहास उस पुस्तकमें मुद्रित था। धानके पूलासे बनाया हुआ कागज आज कल यूरोपमें सर्वत्र प्रचलित है ; और यथेष्ट बनता भी है। एकबार शिल्पसमितिमें भारतवर्षके कुछ तृणोंकी परीक्षा की गई थी, इसमें स्थिर किया गया था कि, सब तृणोंसे ही कागज बन सकता है ; पर इनमेंसे धानका पूला ही सबसे अच्छा है। १७७२ ई०में जर्मन भाषामें, एक पुस्तक लिखी गई थी ; जिसमें भिन्न भिन्न ६० प्रकारके स्वतन्त्र द्रव्योंसे बने हुए कागज थे।

अफ्रिकामें एस्पार्टा (Esparta) तृण और एडान्‌सोनिया (Adansonia) वृक्षके वक्कलके सिवा "डिस्" घास (Diss-grass) से भी कागज बनाया जाता है, पर यह सहज-प्राप्य नहीं। आलजिरिया प्रदेशमें एक प्रकारका छोटा ताड़ होता है, इससे भी कागज बन सकता है ; पर यह भी दुष्प्राप्य है और इसमें तेल रहता है, इस लिए कागज भी अच्छा नहीं बनता। दक्षिण-अफ्रिकामें नदीके बहावको रोक कर एक

प्रकारके वृक्ष एकत्रित किये जाते हैं ; जो कि "पामेट" (Palmeta) नामसे प्रसिद्ध है। ये वृक्ष आठ-दश फुट लंबे होते हैं ; और इससे भी कागज बन सकते हैं।

आज कल विनौले (कपासके बीज) की भुसीसे कागज बनते हैं। बहुतोंका कहना है कि, इसका कागज बहुत अच्छा होता है। पहिले स्पेन देशीय एस्पार्टोके सम्बन्धमें जो कहा है, उनमें "मेरोकोया टेनासिसामर" (Merochoa Tenaeissamr) और "लिगियाम् स्पार्टम्" (Lygeum Spartum) जातीय घास भी अच्छी होती है, यह घास भूमध्यसागरके किनारे पर ही अधिक होती है।

भारतवर्षके बाबूला वृक्षकी भीतरकी छालसे भी बहुत अच्छे कागज बन सकते हैं।

रूषिया राज्यमें "पीरो" नामके वृक्षसे कागज बनता है।

कागज पर रंग चढ़ाना।—इङ्गलैंडमें सबसे पहिले जैसा रंगीन कागज चला था, उसका उल्लेख पहिले कर चुके हैं। पहिलेसे साधारणतः कागजका रंग सफेद होता आया है ; और उसके ऊपर काली स्याही से लिखनेकी रीति चली आई है। कागज बननेसे पहिले जब चमड़े पर लिखा जाता था, तब भैंस वगैरहके चमड़े पर पीला, नीला आदि रंग चढ़ा कर उस पर सुनहरी या रुपैरी हिरूफसे लिखा जाता था। रोमकगण हाथीके दांतकी पत्तियों पर लाल रंगकी मोम लगाते थे। बहुत जगह सिन्दूरसे लिखनेका खूब प्रचार था। ग्रीकके राज वंशमें प्रायः सब ही लिखा-पढ़ी लालरंगसे होती थी। भारतवर्षमें चन्दन, लालरंग और सिन्दूरसे मन्त्रादि लिखनेकी प्रथा बहुत प्राचीन समयसे चली आई है।

बंगालमें और भारतके अन्यान्य स्थानोंमें बालकोंको पहिले पहल "खिल्लम खड़ी" नामक एक प्रकारके नरम पत्थरके टूकड़ेसे जमीन पर लिखना सिखाया जाता है ; फिर क्रमशः ताड़पत्र पर, केलेके पत्ते पर ; और आखिरमें कागज पर लिखते हैं। इससे भारतकी लेख्य वस्तुका क्रमविकास स्पष्ट झलक जाता है। भारतवर्षमें प्राचीन कालमें जितनी लेख्य वस्तुएं थीं, उनमेंसे ताड़-पत्र, केलेके पत्ते, वट-पत्र, तेरेट-पत्र, भुर्ज-पत्र, तूलात् वा तूलट-कागज, पत्थर और धातु-फलक आदि ही प्रधान हैं। अब भी ताड़-पत्रका व्यवहार है। मन्त्रादिका 'गंडा' बांधनेके लिए अब भी भूर्ज पत्र काममें आता है। केलेके पत्ते भी अब तक गावोंकी पाठशालाओंमें लिखनेके काममें लाये जाते हैं। केलेका पत्ता जल्दी सूख कर नष्ट हो जाता है, इसी लिए इस पर कोई रक्षितव्य विषय नहीं लिखा जाता। इस विषयकी बंगालमें एक कहावत है कि,—
"लिखे दिलाम कलार पाते, मैंसे बेड़ाग् पथे पथे"—
अर्थात्, केलेके पत्ते पर लिखा दिया है ; इस लिए लिखना न लिखना बराबर है। तेरेटपत्र पर लिखित पोथियां अब भी यथे मिलती हैं। यह ताड़-पत्रकी भांतिका ही होता है ; पर उससे कुछ पतला और चौड़ाईमें बड़ा होता है। यह ताड़-पत्रकी अपेक्षा अधिक स्थायी होता है। वट वृक्षके पत्तेका अब बिल्कुल व्यवहार नहीं है। धातुफलक और पत्थर पर अब सिद्ध मन्दिरादिमें शिलालिपि खोदी जाती है। तामेकी चद्दर पर जैनियोंका सिद्ध-यन्त्र भी खोदा जाता है। यन्त्र परम पूज्य होता है ; और जैन विवाह पद्धतिसे जो विवाह होता है, उसमें इस यन्त्रकी स्थापना करके पूजा की जाती है। यह यन्त्र प्रायः करके सब ही दि० जैन मन्दिरोंमें प्रतिमाके पास विराजमान रहता है ; और इसमें सिद्ध भगवान (अष्ट कर्मोंसे मुक्त) की स्थापना करके अष्ट द्रव्योंसे पूजा की जाती है। तान्त्रिक उपासक लोग तामे, सोने और चांदीमें खोदित देवताओंके यन्त्र मन्त्रादिकी पूजा आदि करते हैं। तूलात् वा तूलट कागजका भी यथेष्ट प्रचार है। पहिले इस कागज पर गोंद, इमलीके चियांकी चूर ; और हड़ताल लगा कर घोंट कर रंग चढ़ाया जाता था, कोई भातका माड़ भी लगाता था। इससे न तो कीड़े लगते थे और न कागज स्याही सोखता था। जिस कागजमें माड़ लगता था, उस पर संस्कृतकी पुस्तक नहीं लिखी जाती थीं।

मुसलमानोंके जमानेमें भारतमें कई तरहके

कागज बनते थे, जिनमेंसे (१) सर्वसाधारणके लायक कागज, (२) अमीर उमरावोंके कागज और (३) घुटे हुये कागज ही प्रधान हैं। घुटा हुआ कागज भी तीन तरहका था।

१ सफेद।—सिर्फ कुड़िया घुड़ियासे घिस कर चिकना किया हुआ।

२रा जरफ़सान—सुनहला और रुपहला ; अर्थात् दाक्षिणात्यके "अफ़सानी" कागजकी भांतिका।

३रा, टिकलीदार—जिसमें छोटी छोटी सुनहली और रुपहली टिकली लगी रहती हैं। यह मर्यादाके अनुसार भिन्न भिन्न रूपसे व्यवहृत होता था।

यह कागज चौड़ाईकी तरफ लम्बा होता था। इन कागजों पर विषय लिखे जानेके बाद, फिर इनको मोड़कर ऊपरसे एक वैसे ही कागजका टुकड़ा लपेट दिया जाता था। ऐसे कागजके टुकड़ेका नाम "कमरबन्द" था। फिर मखमलकी थैलीमें रखकर, उसे मखमलसे या ज़रीसे बांध कर रख दिया करते थे।

काश्मीरमें एक तरहका पुराना देशी कागज देखा जाता है। यह कागज देखनेमें सफेद न होनेपर भी ऐसा चिकना कागज भारतमें बहुत कम ही है। सुना गया है कि, ऐसा कागज काश्मीरमें बहुत दिन पहिलेसे बनता आया है।

आज तक परीक्षा करके जिन जिन उद्भिज्ज वस्तुओंसे कागज बनाया गया, उनके नाम नीचे लिखे जाते हैं;—

इससे पहिले मिलों में सनकी (परित्यक्त) जड़से कागज बनाया जाता था, परन्तु आज कल मिलोंमें सन की जड़ से बोरे बनाये जाते हैं, इस लिये उसका मूल्य बढ़ गया है। इसी कारण सन की जड़से आज कल कागज नहीं बनाये जाते।

साबुई या बबुई घास ही कागजकी मिलों में कागज बनानेके लिये अधिक काम में लाई जाती है। छह लाख या सात लाख मन के करीब यह उत्पन्न होती है। यह घास १।) या १।) मन मिलती है।

'नल' और मूंजसे भी कागज बनाया जा सकता है, परन्तु इससे किफायत नहीं हो सकती। क्योंकि यह घास अधिक पैदा नहीं होती; और इसका मूल्य भी अधिक होता है।

कहीं कहीं बांस से भी कागज बनाया जाता है। इसदेश में बांस द्वारा कागज बनाने की कल अभी तक स्थापित नहीं हुई है। आसाम और ब्रह्म देश के जंगलों में यथेष्ट बांस उत्पन्न होते हैं। बांसों की कटाई, रेलका किराया, मजदूरोंकी मजदूरी आदि जोड़ कर हिसाब लगाने पर १) या १।) मन से कम नहीं पड़ेगा। जर्मनी में सिर्फ धान के पूलों से कागज बनाया जाता है।

हाल ही में कृषि तत्वविद् श्रीयुक्त निवारणचन्द्र, चौधरी ने गवेषणा पूर्ण यह मन्तव्य प्रकाशित किया है कि, 'सन,-काटी' से कागज बन सकता है। उन्होंने रासायनिक परीक्षा करके देखा है कि 'सन काटी से सैकड़ा पीछे ६० भाग कागज तैयार करनेके सूत्र होते हैं। उनके परीक्षा फल से जाना गया है कि—

सनकाटी से	सैकड़ा पीछे	६०	भाग सूत्र
बांस से	"	४१	" "
सबुई बाबुई घाससे	"	३८	" "
नल से	"	३७	" "
धान के पूला से	"	३३	" "

सनकाटी आजकल सिर्फ जलाने के काम में आती और गांवों में कम कीमत में मिलती है। ।) या ।) आने मन इसका भाव है। श्रीयुत निवारणचन्द्र ने हिसाब करके दिखाया है कि बंगाल, बिहार, उड़ीसा प्रदेश की सनकाटियों से १साल में साढ़े पांच करोड़ मन कागजके सूत्र बन सकते हैं। भारतवर्ष के लिये सिर्फ २५, पचीस लाख मन कागज-सूत्रकी जरूरत है। बाकी के सूत्र वा बने हुए कागज विदेशों में भेजने से देश को आर्थिक लाभ और गरीबों का कल्याण हो सकता है।

काग़ज़ात (अ० पु०) पत्रादि, बहुतसे काग़ज़। यह शब्द काग़ज़ का बहुवचन है।

काग़ज़ी (अ० वि०) १ पत्रक-सम्बन्धीय, काग़ज़के मुताल्लिक। २ पत्रकनिर्मित, कागजसे बना हुआ। ३ सूक्ष्म त्वक्-विशिष्ट, बहुत पतले छिल्केवाला। (पु०) ४

पत्रक विक्रेता, कागज फरोख्त करने वाला। ५ श्वेत वर्ण कपोत, सफेद कबूतर। सूक्ष्मजलौकाको 'कागजी जोंक' और सूक्ष्मत्वक् विशिष्ट निम्बुक को 'कागजी नीबू' कहते हैं। कागजी बादामका भी छिलका बहुत पतला होता है। हिन्दी में जिस वस्तुके पहले 'कागजी' शब्द लगता, वह अति उत्तम रहता है।

कागद (हिं० पु०) पत्रक, कागज।

काग भुसुण्ड, काक भुसुण्डि (हिं०) काकभुशुण्डि देखो।

कागर (हिं० पु०) १ पत्रक, कागज। २ पक्ष, पर।

कागरी (हिं० वि०) तुच्छ, हकीर, ओछा।

कागल—बम्बई प्रदेशके कोल्हापुर राज्यका एक क्षुद्र राज्य। यह अक्षा० १६° २८' उ० और देशा० ७४° २०' ३०" पू० पर अवस्थित है। इसकी भूमि का परिमाण १२९ वर्ग मील है। प्रति वर्ष २०००) रु० कर लगता है। वर्तमान सामन्त राजाके पूर्व पुरुष सखाराम राव सेंधिया के एक कर्मचारी थे। १८०० ई० को उन्हें कोल्हापुर राज्यके निकट कागलकी सनद मिली। राजा साहब ९ तोपोंकी सलामी पाते हैं। इस राज्यके नगर का नाम भी कागल ही है। दूधगङ्गा और वेदगङ्गा दो नदी हैं।

कागान—पञ्जाब प्रदेशके हजारा जिलेकी एक उपत्यका। दक्षिणांश-व्यतीत इसके तीनों ओर काश्मीर राज्य लगा है। भूमि का परिमाण ८०० वर्गमील और दैर्घ्य ६० मील तथा प्रस्थ १५ मील है। कागानके शृङ्ग प्रायः १७०००फीट ऊंचे पड़ते हैं। यह हिमालयके अन्तर्निविष्ट है। इसमें २२अरराय हैं। वनमें अच्छी अच्छी लकड़ी होती है। मनुष्य अधिक नहीं। कहीं कहीं दो चार घरों में लोग रहते हैं। कागान नामक ग्राम अक्षा० ३४°४६' ४५" उ० और देशान्तर ७५° ३४' १५" पर अवस्थित है।

कागावासी (हिं० स्त्री०) प्रातःकाल पी जानेवाली विजया, कौवे बोलनेके समय छनने वाली भांग।

कागारि (सं० पु०) कागस्य अरिः कागः अरिर्वा यस्य। पेचक, उल्लू।

कागारोल (हिं० पु०) काकरव, कौवोंका शोर, हुल्लड़।

कागिया (हिं० स्त्री०) मेषी विशेष, एक तरहकी भेड़। यह तिब्बत में होती है। इसका सिर बड़ा और पर छोटा रहता है। मांसका आस्वाद सुप्रसिद्ध है। कागिया मांसके लिये ही पाली और मारी जाती है (पु०) २ कृमिविशेष, एक कीड़ा। यह बाजरेको बिगाड़ता है।

कागौर (हिं० पु०) काकवलि, कौवेको दिया जानेवाला कौर। इसे श्राद्धादि के समय कव्यसे निकाल कर काकको खिलाते हैं। काकबलि देखो।

काग्नि (सं०पु०) ईषत् अग्निः। अल्प अग्नि, थोड़ी आग।

काङ्कायन (सं०पु०) एक मुनि। इन्होंने चरकसंहिता प्रणेता अग्निवेश ऋषि के साथ भरद्वाज-पुनर्वसु, से आयुर्वेद पढ़ा था। चरक संहिता देखनेसे इनकी बनाई संहिता का भी पता लगता है। किन्तु वह देखने में नहीं आती।

काङ्कायनमोदक, (सं०पु०) मोदक विशेष, किसी किस्म का लड्डू। यह हरीतकी ५ पल, जीरक १ पल, मरिच १ पल, पिप्पली १ पल, पिप्पलीमूल २ पल, चविका १ पल, चित्रकमूल ४ पल, शुण्ठी ५ पल, यवक्षार २ पल, भल्लातक ८ पल तथा शुड़कन्द १६ पल (खांड) और उक्त सर्व चूर्ण से द्विगुण गुड़ डालने से बनता है। इसके सेवन से अर्शोरोग अच्छा हो जाता है।

काङ्क्षणीय (सं०त्रि०) इच्छा के योग्य, चाहने लायक।

काङ्क्षा (सं० स्त्री०) काङ्क्षि-अटाप्। आकांक्षा, इच्छा।

काङ्क्षित (सं०त्रि०) कांक्षि-क्त। १ अभिलषित, चाहा जानेवाला। (क्ली०) २ इच्छा, ख्वाहिश।

कांक्षिता, (सं०स्त्री) अभिलाष, चाह।

काङ्क्षी (सं० त्रि०) काङ्क्षतीति, काङ्क्षि-णिनि। अभिलाषी, चाहनेवाला।

कांचीक (सं० पु०) कङ्कपक्षी, एक चिड़िया।

काङ्कयम,—मन्द्राज प्रान्तके कोयम्बतूर जिले का एक ग्राम।

यह धारापुर तहसीलके अन्तर्गत अक्षा० ११° १' उ० और देशा० ७७° ३६' पू० पर अवस्थित है। प्राचीन नाम कोङ्गु है। सम्भवतः पूर्व कालको दाक्षिणात्यके कोङ्गु राजा यहां राजस्व रखते होंगे।

काङ्गा (सं० स्त्री०) कुत्सितं अंगं यस्याः, काङ्ग टाप् बहुव्री०। वचा, वच।

काङ्गुक (सं० क्ली०) षष्टिक धान्यविशेष, किसी किस्मका धान। यह रस एवं पाकमें मधुर, वातपित्तशमन और शालिवद् गुण होता है। (सुश्रुत)

काच (सं० क्ली०) कच्यते बध्यते अनेन कच-घञ् न कुत्वम्। १ मोम। २ लाख या चपड़ा। ३ काचलवण। (पु०) ४ शिक्य। ५ मणि विशेष। ६ नेत्र रोगविशेष, मोतियाबिंद लिङ्गनाश और नीलिका ये दो इसके नामान्तर हैं। तिमिर रोगकी पहिली अवस्था में जब केवल चन्द्र, सूर्य्य, नक्षत्र, विद्युत् और उज्ज्वल रत्न आदि ही दिखाई देते हैं, उसी अवस्थाका नाम 'काच' या लिङ्गनाश रोग है।

शङ्खनाभि, बहेड़ाकी मींगी, हरीतकी, मनःशिला, पीपल, मिरच, कुठ, और वच,—इन सब चीजोंका समान रीतिसे एकत्र करके बकरी के दूधके साथ पीसना चाहिये। फिर मटर की बराबर गोलियां बना कर उन्हें सुखा लेना चाहिये। इसके बाद इन गोलियों को पानी में घिस कर आंखों में लगाना चाहिये। इस अञ्जन से काच, तिमिर, पटलरोग, मांसवृद्धि अर्वुद और रात्र्यन्ध आदि रोग नष्ट हो जाते हैं। ७ समुद्र शुम का नामान्तर। ८ मृत्तिका विशेष। इसका दूसरा संस्कृत नाम क्षार है। राजवल्लभ के मत से इसका गुण—क्षाररस, उष्णवीर्य्य और अञ्जनद्वारा दृष्टि-प्रसन्नता कारक है।

काच भङ्गप्रवण स्वच्छ वस्तु है। युरोपकी सर्व्व प्रधान व्यवहार्य्य वस्तु यही है। हमारे देशमें जिस प्रकार कांसे, पीतल, पत्थर आदि के वर्त्तन व्यवहार में आते हैं, उसीप्रकार इस (कांच)के वर्त्तन यूरोपमें व्यवहृत होते हैं। इसी लिए इसदेश की अपेक्षा यूरोप में काच अधिक तैयार होता है और इस शिल्प की उन्नति भी खूब हुई। यूरोप में काच इतना अधिक तैयार होता है कि, उससे देश का अभाव पूरा कर विदेशोंमें वाणिज्यके लिये भी भेजा जाता है। भारतमें भी यूरोप से काच आता है। कांचसे बोतल, शीशी, कांच की चादर, पोत, कृत्रिम मोती, तरह तरहके बर्त्तन, झाड़, लालटेन, फानूस और नाना प्रकार की विल्लौरी चीजें, चूड़ी, बाला, बाली आदि अलङ्कार बनते हैं और नाना देशोंमें भेजे जाते हैं। यूरोपकी कांच की चीजें हमारे अकेले भारतमें ही प्रत्येक वर्ष में २५—२६ लाख रुपये की आती हैं; जिनमें १० लाख के तो मोती आदि आते हैं।

बालुकिन और क्षार से कांच बनता है। भारत में इन दोनों चीजोंका अभाव नहीं है। साधारण बालु में ही यथेष्ठ बालुकिन प्राप्त हो सकता है; और क्षार नाना तरहकी वस्तुओं से संग्रह किया जा सकता है। अच्छा कांच बनाने के लिये बालुकिन की जगह चूल्हे की जली हुई मिट्टी (Fire-clay)का चूर काममें लाया जा सकता है, भारतमें उसका भी अभाव नहीं है। इतनी सुविधा होने पर भी भारत में आज तक कांचके व्यापार की उन्नति न हुई। यहां आज कल जैसा काच बनता है, उससे एक तो चूड़ियां और दूसरी जघन्य श्रेणी की कच्ची शीशियां या कुप्पियों के सिवा और कुछ भी नहीं बनाया जा सकता। इस देश के कांच बनाने वाले क्षार अधिक काम में लाते हैं, इसी लिये कांच अच्छा या साफ नहीं बनता। कभी कभी ये लोग क्षार इतना अधिक डाल देते हैं कि कांच तक नुन-खरा हो जाता है। इसके बाद जैसी भट्ठी में कांच गलाया जाता है, वह भी ठीक काम के काबिल नहीं। कारण उसमें आवश्यकतानुसार उत्ताप नहीं पैदा होता और जो कुछ होता भी है, वह बराबर एकसा नहीं रहता। क्योंकि इस देश की भट्ठी में अग्नि प्रज्वलित रखनेके लिए धौंकनी से हवा दी जाती है। इसीलिए धौंकनी की हवा के अनुसार आग का तेज सर्व्वदा घटता बढ़ता रहता है। फिर ऐसी हवासे गले हुए कांच में कुछ अंश पतला और कुछ अंश गाढ़ा हो जाता है, इसलिए साफ भी नहीं होता। देशी काचमें विशुद्ध क्षारके बदले सज्जीमिट्टी काममें लाई जाती है। इससे काच अच्छा नहीं बनता। क्योंकि इसमें ज्यादा-तर कड़े अंगारकी क्षार (crude carbonate of soda) कुछ उद्भिज्ज क्षार (potash) सैकड़ा पीछे ६०—७० भाग चूना, ३०—४० भाग कुछ पीले रंग की बालू,

बहुत थोड़ा कोआर्टज, फेल्स्पार और लोहा आदि रहता है। परन्तु यूरोप में कांच की बोतलों के लिये जो चीजें काममें लाई जाती हैं, उनमें सेकड़ा पीछे ५८ भाग बालू, गन्धक चार, (Sulphate of soda) २९ भाग, चूना ११॥ भाग और उद्भिज्जाङ्गार १॥भाग रहता है। गन्धक चार से सैकड़ा पीछे ४५ भाग चार रहता है। और काच मण्ड में सैकड़ा पीछे २९ भागमें १२ भाग मात्र यह चार पड़ता है; किन्तु सज्जीमिट्टी से जो अङ्गार चार मिलता है, उसमें ३०—४० भाग चार रहता है, इसी लिए भारतके कांच में और यूरोप के कांचमें चार-परिमाण करीब २२ और १२ भाग हो जाता है।

इस देश में कांच पर रंग चढ़ाने के लिए लोहा, तांबा और सम्बलचार (arsenic) काम में आते हैं। पञ्जाबमें कांच बनानेके कारखाने हैं। वहां जिस बालू से कांच बनता है, वह स्वभावतः कांच सरीखी चिक नी और चार विशिष्ट होती है। उस देश में इस बालू को रेह कहते हैं। यह जिस जमीन में रहती है, वह जमीन खेती के काम में नहीं आती। बहुत जगह यह हवासे अपने आप जम कर कांच सरीखी हो जाती है। इस जमी हुई बालूका रंग विलायती शिशियों की तरह कुछ नीलापन को लिए हुए रहता है। इससे बहुत उत्तम सफेद वर्ण का कांच बनता है।

फीरोजाबाद (जिला-आगरा) में भी आज कल कांच के कारखाने बहुत हैं। इन में चूड़ियां बहुत बनती हैं।

चीन में भारत की अपेक्षा कांच के कारखाने अधिक समुन्नत हैं।

कांच के भिन्न भिन्न भाषाओं में नाम लिखे जाते हैं। कांच को अरबी में खियज, फारसी में—भिट्रे, हिन्दी बंगला में 'कांच'। इटालीमें 'भेट्रो, लाटिनमें—भेट्रास, रूसियामें—'ष्टेक्लो', स्पेनमें—'भिट्रो', तामिल में 'कन्नाति', तैलङ्गमें 'आङ्गामु' और उर्दू में 'शीशा' कहते हैं।

रसायन-तत्त्वके मतानुसार कांचमें निम्नलिखित चीजें रहती हैं—

बालुकिन (Silica), उद्भिज्जचार (Potash = Pearl ash और wood ash), सोडा (Soda, Sulphate of soda, carbonate of soda) बेराइटा (Baryta) ष्ट्रन्सिया (Strontia), चूना (Lime) और फिटकिरी (Alumina)।

अस्थिजचार (bone-ash) से एक प्रकारका कांच बनता है; जिसे अंग्रेज लोग बोन ग्लास (boneglass) कहते हैं।

कांच का आपेक्षिक वजन करीब २'७३२ है। जर्मनीके बने हुए आँगलोंमे लगाने के कांचोंमें चिकनी बालू १०० भाग, उद्भिज्ज चार ५० भाग, खड़ियामिट्टी २५ या ३० भाग, और शोरा २ भाग रहता है।

फरासीसीयोंके (परकोलाके दर्पणके) कांचका आपे- क्षिक वजन २'४८८ है। इसका रंग कुछ नीलापन को लिए हुए होता है। भिनसीके दर्पणका कांच कुछ पीले रंग का होता है।

बोहिमिया का कांच स्वच्छतामें सबसे अच्छा होता है। इसका आपेक्षिक वजन २'३९६ है।

विलायती "क्राउन" कांच बोहिमियाके कांचकी तुलना करता है। इसका आपेक्षिक वजन २'४८७ है

स्फटिक कांच (crystal glass) का आपेक्षिक वजन २'९ से ३'२५५ तक होता हैं। इसमें सीसेका कुछ अंश रहता है। इसका विशेष कोई वर्ण नहीं। इसमें १०० भाग बालू, ३० या ४० भाग उद्भिज्जचार, ६० या ७० भाग मिनियाम, ४ भाग सुहागा, ३ भाग शोरा, १५ भाग सम्बल चाराम्ल इत्यादि हैं। लण्डनके क्राष्टेल ग्लाससे वैज्ञानिक यंत्रादि बनते हैं।

दीवास कांच (Flint glass) सबसे परिशुद्ध चीजों से बनता है। इसमें १०० भाग बालू, ५० भाग उद्भिज्ज चार, १०० भाग मिनियाम और बाकी स्फटिक की भांति की कोई वस्तु रहती है। चुनिया-काच (Ruby glass) एक प्रकार खूबसूरत स्वर्ण प्रभामय कांच है। यह परिमाण करके बनाया जाता है और बनते समय इसके "मण्ड" में स्वर्णद्रावक मिला दिया जाता है। यह कांच जब बनता है, तब इसमें कोई भी रंग नहीं रहता। बाद में फारेनहीटके

८३५ डिग्रि उत्तापसे गरम करने पर खासा सुवो सरीखा रक्तवर्ण हो जाता है।

मीना–कांच (Enamel glass) भी एक तरह का खूबसूरत और चिकना काच होता है।

काच-मणि—संस्कृत शास्त्रोंके अनुसार कांच एक मणि माना जाता है।

"आकरे पद्मरागाणां जन्म काचमणेः कुतः।"

कांच और स्फटिक एकही चीज है—

"काच-स्फटिक- पात्रेषु"

स्फटिक मणिके सम्बन्धमें संस्कृतग्रन्थोंमें लिखा है—

"हिमालये सिंहले च विन्ध्याटवीतटे तथा।
स्फटिकं जायते चैव नानारूपं समप्रभम् ॥
हिमाद्रौ चन्द्रसंकाशं स्फटिकं तद्द्विधा भवेत्।
सूर्य्यकान्तञ्च तत्रैकं चन्द्रकान्तं तथा परम् ॥
सूर्य्यांशु स्पर्शमात्रे च वह्निं वमति यत्क्षणात्।
सूर्य्यकान्तं तदाख्यातं स्फटिकं रत्नवेदिभिः ॥
पूर्णेन्दुकरसंस्पर्शादमृतं स्रवति क्षणात्।
चन्द्रकान्तं तदाख्यातं दुर्लभं तत् कलौ युगे ॥"

हिमालय, सिंहल और विन्ध्यारण्यमें स्फटिक मणि उपजता है। हिमालयमें यह दो प्रकार का होता है। उसमें एक सूर्य सदृश रहता है, जो सूर्यके किरण स्पर्शसे अग्नि उगलता है। इसीका नाम सूर्य्य-कान्त है। दूसरा चन्द्र सदृश होता है। यह चन्द्रके स्पर्शसे अमृत उद्गीरण करता है। किन्तु कलियुगमें यह नहीं मिलता। इसको चन्द्रकान्त कहते हैं।

सूर्य्यकान्त मणि आतशी शीशेकी भांति गुण-विशिष्ट होता है।

काचक (सं० पु०) काच स्वार्थे कन्। १ काच, शीशा, पत्थर। २ काचलवण, रेह।

काचकूपी (सं० स्त्री०) काचनिर्मिता कूपी। शीशी, बोतल।

काचघटी (सं० स्त्री०) काचनिर्मिता घटी अल्प घटः, मध्यपदलो०। कांचका गिलास।

काचज (सं० पु०) काचलवण, रेह।

काचतिन्तिड़ी (सं० स्त्री०) आमतिन्तिड़ी, कची इमली।

काचतिलक (सं० क्ली०) काचलवण, रेह

काचन, काचनक देखो

काचनक, (सं० क्ली) काच्यते लेखो निबध्यते अनेन, कच-णिच् ल्युट् स्वार्थे कन्। पत्र वा पुस्तक बांधनेका उपकरण, पोथी लपेटनेका डोरा या फीता।

काचनकी (सं०पु०) काचनकं अस्त्यस्य, काचनक-इनि। पत्र पुस्तकादि, पोथी पत्रा। इसका संस्कृत पर्याय— वर्णदूत, स्वस्तिमुख, लेख, वाचिक, हारक और तालक है।

काचभव (सं० पु०) काचलवण, रेह।

काचभाजन (सं० क्ली०) काचनिर्मितं भाजनम्। काचका पात्र, शीशेका बर्तन।

काचमणि (सं० पु०) काचवत् मणिः काच एव मणिर्वा। १ काचकी भांति अल्प उज्ज्वल मणि, जो जवाहिर शीशेकी तरह चमकता हो। २ काच, शीशा।

काचमल (सं० क्ली०) काचस्य चारमृत्तिकाया मलमिव। काचलवण, शोरा।

काचमालिका (सं० स्त्री०) मद्य, शराब।

काचर (सं० त्रि०) कु ईषत् चरति दीप्त्या दूरं गच्छति, कु-चर-अच्, कोः कादेशः। पीतवर्ण, पीला।

काचरू—पूर्ववङ्गकी एक कायस्थ जाति। इन लोगोंका गोत्र शालिमन, काश्यप तथा पाराशर और उपाधि दे, दत्त एवं दास है। पूर्ववङ्ग और फरीदपुरके मदारा-पुरमें यह अधिक रहते हैं

काचलवण (सं० क्ली०) काचात् चारमृत्तिकातः जातं लवणम्। लवण विशेष, सांचर नोन। इसका संस्कृत पर्याय—नील, काचोद्भव, काचं, नीलक, काचसम्भव, काचसौवर्चल, कृष्णलवण, पाक्ज, काचोत्थ, हृयगंध, कालवण, कुरुविन्द, काचमल और कृत्रिम है। राजनिघण्टुके मतसे यह ईषत् चार, रुचिकारक, अग्निवर्धक, पित्तवृद्धि एवं दाहकारक और कफ, वायु, गुल्म तथा शूलनाशक होता है।

काचवकयंत्र (सं०क्ली०) काचनिर्मितं वकयंत्रम्, मध्यपद-लोपी कर्मधा०। काचनिर्मितयंत्र विशेष, अर्कवगैरह उतारनेको शीशेका बना हुआ एक टोंटीदार बरतन। वकयंत्र देखो।

काचविन्दु (सं० पु०) नेत्ररोग विशेष, आंखकी एक बीमारी। काच देखो।

काचसम्भव (सं॰ क्लो॰) काचः सम्भवः उत्पत्तिस्थानमस्य, बहुव्री॰। काचलवण, कालानमक।

काचसौवर्चल (सं॰ क्लो॰) काचस्थानिकं सौवर्चलम्, मध्यपदलोपी कर्मधा॰। काचलवण, कालानमक।

काचस्थाली (सं॰स्त्री॰) काचस्य स्थालीव, उपमितसमा॰। १ पाटलावृक्ष, पाड़रीका पेड़। इसका संस्कृत पर्याय पाटलि, पाटला, अमोघा, मधुदूती, फलेरुहा, कृष्ण-वृन्ता, कुवेराची, कालस्थाली और ताम्रपुष्पी है। भावप्रकाशके मतसे यह कषाय एवं तिक्तरस, ईषदुष्ण-वीर्य्य और वायु, पित्त, श्लेष्मा, अरुचि, श्वास, शोथ, रक्तवमि, हिक्का तथा तृष्णा नाशक होती है। इसका पुष्प कषाय, मधुररस, शीतवीर्य्य, हृदयग्राही, कण्ठ-शोधक और कफ, रक्तदोष, पित्त तथा अतिसारघ्न है। फल हिक्का और रक्तपित्तको दूर करता है। २ काचपात्र।

काचा, (सं॰ स्त्री॰) १ काच-मणि, बिल्लौरी पत्थर। २ अश्वके दन्तकी शुभ्र रेखा, घोड़ेके दांतकी सफेद लकीर। यह पन्द्रहवे सत्रह वर्षकी अवस्था तक घोड़ेके दांतोंमें सरसोंकी तरह पड़ जाती है।

काचाक्ष, (सं॰ पु॰) काच इव अक्षि यस्य, बहुव्री॰। १ वृहद्बक, बड़ा बगला। २ पद्मकन्द, कमलकी जड़।

काचाह्वा, (सं॰ स्त्री॰) हरिद्रा, हलदी।

काचिघ, (सं॰ पु॰) कचते दीप्यते, बाहुलकात् इन्; काचिं- कान्तिं हन्ति गच्छति, काचि-हन्-ड-पृषोदरा-दित्वात् हस्य घः। १ काञ्चन, सोना। २ मूषिक, चूहा। ३ शिम्बी-धान्यविशेष, एक धान।

काचिच्चिक (सं॰ पु॰) काकचिञ्चा, घुंघची।

काचित्—(सं॰ अव्य॰) कोई भी अनिर्दिष्ट-स्त्री।

काचित (सं॰त्रि॰) कच्यते बध्यते असौ, कच-णिच-क्त। शिक्यारोपित, शिकहरमें रखा हुआ।

काचिम, (सं॰ पु॰) कच-णिच-इमन्। देवकुलोद्भव वृक्ष, पाक पेड़।

काचिलिम्दि, काचिचिक देखो।

काचुया—बङ्गालके खुलना जिलेका एक गांव। यह भैरव और मधुमती नदीके सङ्गम स्थानपर बागेरहाट से तीन कोस पूर्व अवस्थित है। यहां पुलिसका थाना और बड़ाबाजार मौजूद है। १७८२ ई॰को हेङ्केल साहेबने यह बाजार लगाया था। ग्रामके मध्य एक नाला निकला, जिससे यह दो भागमें बंट गया है। आने जानेके लिए पुल बंधा है। यहां इक्षु (ऊख) बहुत होती है।

काचूक (सं॰पु॰) काच बाहुलकात् ऊकञ्। १ कुक्कुट, मुरगा। २ चक्रवाक, चकवा।

काच्छ (सं॰ त्रि॰) कच्छस्थानीय, नदीके किनारेका।

काच्छप (सं॰ त्रि॰) कच्छपसम्बन्धीय, कछूयेका।

काच्छिम (सं॰ त्रि॰) परिष्कार, साफ।

काछ (हिं॰पु॰) १ जङ्घाका उपरि भाग, जांघका ऊपरी हिस्सा। २ काछा, लांग। ३ रूपका भराव।

काछना (हिं॰ क्रि॰) १ खोंसना, लगाना। २ शृंगार करना, बनाना।

काछनी, (हिं॰स्त्री॰) एक प्रकार की धोती। यह कस और ऊपर चढ़ा कर पहनी जाती है। २ परिधेय वस्त्र-विशेष, जांघियेके उपर पहना जानेवाला कपड़ा। यह घांघरेकी तरह रहती और चुनट पड़ती है। रामलीला और कृष्णलीलामें पुरुषमात्र प्रायः काछनी पहनते हैं।

काछा (हिं॰ पु॰) लांग, उठी धोती।

काछी—युक्त प्रान्तकी एक कृषक जाति। यह लोग प्रायः खेत जोतते—बोते और भाजी तरकारी बाजारमें बेचते हैं। युक्त प्रान्तके काछी ७ श्रेणियोंमें विभक्त हैं—कनौजिया, हरदिया, सिंगौरिया, जौन-पुरिया, मगहिया, जरेठा और कछवाह। इन ७ श्रेणियोंमें परस्पर आदान-प्रदान और पान भोजनादि प्रचलित नहीं। सातो श्रेणियोंमें कनौजिये सर्वापेक्षा सम्मानार्ह और कछवाह सबसे छोटे समझे जाते हैं। किन्तु कछवाह कहते कि वही सर्वापेक्षा सम्मानार्ह और कनौजिये सबसे छोटे होते हैं। कनौजसे काशी तक कनौजिये, पूर्व अवधमें हरदिये, अवधके दक्षिण-पश्चिमांशमें सिंगौरिये, बनौधेमें जौनपुरिये, मगहिये और जरेठे विहारमें तथा कछवाह व्रज एवं जयपुरादि स्थानोंमें मिलते हैं। इन सात श्रेणियोंको छोड़ काछियोंमें दूसरी भी ३ श्रेणी चलती हैं,—धाकड़,

मुखसेन और सचन। यह विहारमें अधिकांश देख पड़ते हैं।

ललितपुरके काछियोंमें पूर्वोक्त ७ या १० श्रेणी नहीं होतीं। वह कछाह, सलोरिया, हरदिया और अम्बर—चार श्रेणियोंमें बंटे हैं।

झांसीके काछी अपनेको कछवाह बताते हैं। वह कछवाह राजपूतोंसे उपजे और उनके पूर्वपुरुष नरवर प्रदेशसे उस अञ्चलमें पहुंचे थे।

काछी जातिकी श्रेणीके नाम अनुधावण करनेसे समझ पड़ता—यह अपनी वासभूमिके अनुसार भिन्न भिन्न श्रेणीमें बंटे हैं कनौजिया—कन्नौज या कान्य-कुब्ज, हरदिया—हरदियागच्छ, सिंगौरिया—सिंगौर (इलाहाबादसे २५ मील उत्तर गङ्गाके पश्चिमकूल पर अवस्थित है। यह रामायणोक्त निषादराज्य की "शृङ्गवेर पुरी" है), जौनपुरिया—जौनपुर, मगहिया मगध, कछवाह—कच्छ और मुखसेन सङ्किया (रामायणोक्त "साङ्काश्य"। काली नदीके तीर मैनपुरी और फरुखाबादके बीच आज भी इसका भग्नावशेष विद्यमान है) से निकला है।

अनेक स्थलोंमें इन्हें कोरी और मुराई भी कहते हैं। यह कृषिकर्ममें अति पटु होते और अति परिष्कार परिस्कृत रूपसे उत्तमोत्तम शस्यादि फल उत्पादन कर सकते हैं।

आगरा अञ्चलमें कछवाह काछियोंकी ही संख्या अधिक है। दाक्षिणात्यमें यह जाति यथेष्ट है। यह कुरमी जातिकी सदृश पदवीमें गण्य हैं। बम्बई प्रदेशमें यह फलमूल और तरकारी वेचते तो हैं, किन्तु साधारण लोगोंके लिये नहीं। देशसेवाके लिये यह मत्ये पर चीजोंको वेचते फिरते हैं। दाक्षिणात्यमें इनके बीच केवल मात्र २ श्रेणियोंका भद है—बंदेला और नरवरी।

राजपूतानेके धौलपुर प्रदेशमें ही काछी जाति यथेष्ट देख पड़ती है।

काज (हिं॰पु॰) १ कार्य्य, काम। २ व्यवसाय, रोजगार। ३ प्रयोजन, मतलब। ४ विवाह, शादी। ५ छिद्रविशेष, बटन लगाने का छेद।

काजर (हिं॰ पु॰) कज्जल, आंखमें लगनेवाली दीयेके धुयेंकी कालिख। इसको सरवे या परई पर पार लेते हैं।

काजर—मुसलमानोंकी एक जाति। पारस्य का वर्त्तमान राजवंश इसी जातिका है। जिस समय सुफवी वंशीय प्रथम सम्राट् शाह इस्माइलने शिया मतको पारस्यके राजकीय मतरूपमें फैलाया, उस समय ७ तुर्की जातियां उनको पृष्ठपोषक थीं। काजर उन्हीं सात जातियोंमें एक हैं। किसी समय प्राचीन हिरकौनिया (वर्त्तमान मसन्दरान) राज्यमें काजरोंने महा प्रतिष्ठा पायी थी। १५०० ई॰से पहले इस जातिकी बात सुन नहीं पड़ती। उक्त समयके एक हस्तलिखित ग्रन्थमें "पिरिकी काजर" नामक किसी जातिका उल्लेख है। जिससे पहले किसी भी साहित्यमें "काजर" जातिका नाम नहीं आया। अस्तराबाद और मसन्दरान प्रदेशमें यह अधिक संख्यक रहते हैं। राजपूतोंकी भांति यह केवल युद्धव्यवसायी होते हैं। इसी जातिके सम्भूत आगा मुहम्मद खां १८९४ ई॰को प्रथम सम्राट् हुये और अस्तराबादके निकट रहे। (यह एक सामान्य सैनिकके पुत्र थे और किसी समय नादिर शाहकी सभासे निकाले गये थे) नादिरके एक भतीजेने इन्हें बाल्यकालमें खोजा बना डाला था। यह लोभी और पराक्रम प्रिय थे। इनके पीछे इनके भ्रातुष्पुत्र फतेह अली—(१८९८ई॰) सम्राट् बने। उन्हींके समयमें रूस और पारस्यका युद्ध हुवा। करनेल मेकग्रिगरके मतसे तैमूर बादशाह ८०३ हिजरको काजर वहां ले गये थे। इनमें जोकरीबास और आसोगावास दो श्रेणी और प्रत्येक श्रेणीमें वंश भेद हैं। जियाडोगलु नामक काजर-जातीय एक वंश रूसी अरमेनियाके गाजी प्रदेशमें जाकर रहा है। अजदानल वंशीय १म तमास शाहके समय यह मार्व प्रदेश पहुंचे थे। किन्तु बुखारेवाले खां साहबके अधीन उजबाक वंशीयोंने उन्हें निकाला और अवशिष्ट अनेकोंको समूल विनष्ट कर डाला।

काजरी (हिं॰ स्त्री॰) एक गाय। इसकी आंखके किनारे काला काला घेरा रहता है।

काजल (सं० क्लो०) कुत्सितं जलम्, कोः कादेशः। कुत्सित जल, खराब पानी।

काजल (हिं०) कज्जल देखो।

काजलवास—एक मुसलमान जाति। यह शिया सम्प्रदाय भुक्त हैं। ईरानका तबरीज, शीराज, मशीद और किरमान नगर इनकी जन्मभूमि है। यह अश्वपालन, मेषपालन और कृषिकार्यसे अपनी जीविका चलाते हैं। काजलवास विलक्षण साहसी, दुर्दान्त और युद्धप्रिय होते हैं। यह पारस्यवीर नादिर शाहको विपुल वाहिनीमें भरती किये गये थे। नादिर शाहका वध होने पर इन्होंने अहमद शाहसे मिल काबुल जीता। अहमद शाह जब मर गये, तब यह काबुलके निकटवर्ती चान्दोल ग्राममें रहने लगे। इनकी संख्या कोयी डेढ़ लाख है। यह सुन्नीसम्प्रदाय वाले दुरानी सरदारोंके घोर शत्रु हैं। अफगान सरदार काजलवासोंसे डरा करते हैं।

काजाक (कज़ाक) मध्य एशियाको घूमनेवाली एक जाति। युरोपमें इन्हें कोसाक कहते हैं। यह मध्य एशियाके उत्तर विभागस्थ मरु प्रदेशमें प्रधानतः रहते हैं। तुर्कोंकी तरह इनमें नानाविध श्रेणी, शाखा और वंशविभाग हैं। युरोपमें यह वृहत्, मध्य और क्षुद्रदलमें विभक्त हैं। किन्तु ऐसा विभाग मध्य एशियामें नहीं होता। भ्रमणप्रियता और युद्धप्रियताके लिये अति दूरवासी भिन्न भिन्न श्रेणियोंके लोग आ मिलते हैं। एम्बा नदी, आराल ह्रद और बलकाश तथा आलातौ ह्रदके तीर यह अधिक संख्यक देख पड़ते हैं। किन्तु इतने दूरवर्ती होते भी सर्वदा सकल प्रदेशोंमें घूमते रहनेसे इनमें भाषाका विशेष पार्थक्य नहीं पड़ता।

ट्रान्सकासियाना प्रदेशमें तोकेल या तियोकेल सुलतान नामक किसी व्यक्तिके अधीन इन्होंने प्रथम अभ्युत्थान किया था। १५३४ ई०को (९४१ हिजरी) जकसरतेश नदीके तीर यह बहुत दुर्दान्त बन गये। सुलतान तोकेलने मास्को नगरको रूस-सम्राट् केडोरके निकट अनेक बार दूत भेजा था। यह युद्धप्रिय लोग विश्वास रखते कि "यद तदाई" (दैवशक्ति सम्पन्न प्रस्तरखण्ड) पत्थर रोग छोड़ाता, युद्धमें जय दिलाता और भूत भगाता है।

१६ वें शताब्दको तातार सेनादलके मध्य सम्मुख भागमें रह कज़ाक ही लड़ते थे। रूस उस समय क्षुद्र क्षुद्र राज्योंमें विभक्त था। इन्होंने उसी समय सुविधा देख प्रायः समस्त रूस-राज्यको विपर्यस्त कर डाला और अष्ट्राकानतक अधिकार किया। अन्तको प्रचण्ड वीर इवान (Ivan the terrible) ने इन्हें रूसी-सीमासे बाहर भगा दिया। यह परास्त हो समरकन्द, बोखारा और खीवाको चले आये। यहां भी यह दुर्दमनीय हो गये। फिर रूसका अधिकार यहांतक आ जानेसे इन्होंने नाम मात्र रूसकी अधीनता स्वीकार की। काजन प्रदेशमें लक्षाधिक कज़ाक रहते हैं।

इनमें भिन्न श्रेणीको भिन्न मसजिद, भिन्न कबर और डेरा डालनेकी जगह रहती है। इनमें अनेक धनी वणिक् और अनेक सम्मानार्ह विद्वान् भी हैं। रूसका कोई कानून यह नहीं मानते। भाषा और आचार व्यवहारमें यह वृहत जातिसे विशेष पृथक् नहीं होते। इनकी स्त्रियों और शिशुओंके गात्रका वर्ण युरोपीयोंसे मिलता, केवल सूर्यके उत्तापसे अपेक्षाकृत काला पड़ जाता है। इनका मस्तक दीर्घ, पगड़ी कोणाकार, चक्षु बादाम जैसे तथा औज्ज्वल्य-विशिष्ट, हनु उच्च, नाक चपटी, प्रशस्त ललाट, ओष्ठ वृहत् और मूछ थोड़ी होता है। इनके मतमें काल्मू नयाजकोंकी स्त्रियां ही सुन्दरी हैं। यह ग्रीष्मकालमें कल्पक नामक पगड़ी और शीतकालमें तुमक नामक टोपी पहनते हैं। इन्हें सामुद्रिक शास्त्र, फलित ज्योतिष और भूतादिके आह्वान प्रभृतिपर विश्वास है। उक्त शास्त्रोंकी बहुल आलोचना हुवा करती है।

१८१२ से १८१६ ई० तक इनमेंसे कितने ही उपयुक्त लोगोंको लेकर रूस-सम्राट्ने ८० सेनादल प्रस्तुत किये थे।

युरोपीय कज़ाक देखनेमें सुपुरुष, आतिथेय और सम्मानार्ह हैं। विवाहित स्त्रियां मस्तकपर एक रात्रि कालोचित रेशमी टोपी लगातीं और अपने गात्रमें एक रूमाल बांध लेती हैं।

काजी—मुसलमान समाजका विचारपति। जहां मुसलमानोंका राजत्व रहता, वहीं काजीसमाजनीति, धर्मनीति, फौजदारी और दीवानी विधिके अनुसार विचार करता है। भारतका राज्य मुसलमान राजावोंके अधीन रहते समय काजी लोग विचारक पदपर अभिषिक्त थे। हिन्दुस्थानमें भी अनेक काजी विचार करते रहे। लोगोंके कथनानुसार उनमें पक्षपात और स्वेच्छाचारिताका कुछ प्राबल्य था। आजकल अंगरेजाधिकृत भारतसाम्राज्यके मध्य काजी मुसलमानोंके विवाह कालमें उपस्थित हो विवाहके बन्धनको दृढ़ किया करते हैं। किन्तु तुर्किस्तान, अरब और ईरानमें यह आजकल भी विचारक हैं। हां देशभेदसे इनकी मर्यादाका कुछ तारतम्य रहता है। तुर्किस्तानमें विचारककी पूर्ण क्षमता रहते भी यह मुफ्तीके अधीन होते हैं। तुर्किस्तानके खलीफा हारुन् अल रसीदके समयसे काजियोंके हाथमें विचारका भार अर्पित हुवा है। सर्वप्रथम काजीका नाम अबू यूसुफ था। सब देशोंकी अपेक्षा अरब राज्यमें काजियोंकी क्षमता अधिक है। यदि प्रजा किसी कारण देशके अधिपति पर अभियोग लगाती, तो प्रबल पराक्रान्त मस्कटके अधिपतिको उपस्थिति भी काजीके समक्ष अनिवार्य आती है। ईरानके प्रत्येक नगरमें काजी रहते हैं। फिर प्रत्येक शेख-उल-इसलामके अधीन होता है।

काजी अजीम खां—एक मुसलमान चिकित्सक। यह उमराव भी थे। १५५१ ई० को आगरा नगरमें यमुनाके तीर इन्होंने एक सुन्दर उद्यान बनवाया था। उस उद्यानका पूर्व-सौन्दर्य अब देख नहीं पड़ता, अधिकांश बिगड़ गया है। जो बचा है, उसे आज भी "हकीमका बाग" कहते हैं।

काजी अहमद—एक विख्यात ऐतिहासिक। इनका पूरा नाम काजी अहमद बिन मुहम्मद अलगफ्फारी था। इन्होंने नुसख-ए-जेहन-आरा नामक एक इतिहास लिखा। इस ग्रन्थमें मुसलमान-राज्यके स्थापनसे ९७२ हिजरी तक विख्य घटनावली लिखी है। काजी अहमद पदव्रजसे (पैदल) ईरानसे मक्का दर्शन करने गये थे। वहां से लौटने पर सिन्धु प्रदेशके देवाल नामक ग्राममें इनकी मृत्यु हुयी। (१५६७ ई०)।

काजू (हिं० पु०) वृक्षविशेष, एक पेड़। इसे बङ्गालमें हिजली बादाम, बम्बईमें काजुकलिया, तामिलमें मुन्दिरी, तेलङ्गमें जिदीमेमिदी, कनाड़ेमें केम्पु, मलयमें परनकिमाव कुरु और ब्रह्मदेशमें थीनोह कहते हैं। (Anacardium occidentale)

यह वृक्ष ३०से ४० फीटतक ऊंचा होता है। काजू दक्षिण अमेरिकासे भारतवर्षमें आया है। आजकल यह भारत, चट्टग्राम, टनासरिम तथा आन्दामान द्वीपपुञ्जके समुद्रतटके वन और दक्षिण भारतमें बहुत होता है। 'काजू' दक्षिण अमेरिकाके 'अकाजाऊ' शब्दका अपभ्रंश है।

इसकी छालसे पीला या लाल गोंद निकलता, जो पानीमें कम घुलता है। कीड़े इससे भागते हैं।

छालको गोदनेसे एक प्रकारका रस बहने लगता है। इससे चिह्न डालनेकी पक्की रोशनाई बनती है। देशी कारीगर काजूका रस लगा कर धातकी चीज़ जोड़ते हैं।

छाल रंगनेके काममें लग सकती है। आन्दामानवासी काजूके बीजकी छालका तेल मछली पकड़नेके जाल रंगनेमें व्यवहार करते हैं। गोवामें इसे 'डोक' कहते हैं। वहां यह नावों और जालोंमें रालकी भांति लगता है। काजूका तेल दो प्रकार निकलता है—गुठलीके छिलके और मींगीसे। मींगीका तेल कुछ पीला, मुलायम, ताकतवर और बादामके तेलकी तरह होता है। जैतूनका तेल इसकी बराबरी कर नहीं सकता। किन्तु भारतवर्षमें मींगी बहुत खायी जाती है। गुठलीके छिलकेका तेल काला, कड़वा और फफोले डालनेवाला है। लकड़ीमें इसे चुपड़ देनेसे दीमक नहीं लगती।

औषधमें काजूका तेल कोढ़, नासूर, गुमड़ी और छालेपर लगता है। मींगी खानेसे रक्त सुधरता और अङ्गकी पीड़ाका प्रकोप दबता है। गुठलीके छिलकेका तेल लगानेसे पैरका फटना बन्द हो जाता है।

भूनकर खानेसे इसकी मींगी बहुत अच्छी लगती है।

काजूकी लकड़ी लाल, कुछ कुछ कड़ी और दानेदार होती है। ब्रह्मदेशवासी इसे सन्दूक तथा नाव बनानेमें लगाते हैं।

काजूत (सं० पु०) क्षुपविशेष, एक झाड़। महाराष्ट्र देशमें इसे 'जांवी' कहते हैं। यह मधुर, उष्ण, लघु, धातुवृद्धिकर और वात, कफ, गुल्मोदर, ज्वर, क्रिमि, व्रण, अग्निमान्द्य, कुष्ठ, श्वेतकुष्ठ, संग्रहणी और अर्शोनाशक होता है।

काजूभोजू (हिं० वि०) देखाऊ, कार्य्यमें न आनेवाला।

काञ्चज (सं० क्ली०) काचलवण, सोंचर नोन।

काञ्चन (सं० पु० क्ली०) काञ्चते दीप्यते, कचि-ल्यु। १ स्वर्ण, सोना। २ पुन्नागपुष्प, सुलतानी चम्पा। ३ पद्मकेशर, कंवलकी धल। ४ धन, दौलत। ५ नागकेशरका पुष्प। ६ दीप्ति, चमक। ७ बन्धन, बंधाव। ८ उदुम्बर, गूलर। ९ धुस्तूर, धतूरा। १० सम्पत्ति, जायदाद। ११ पुरुरवा वंशीय भीमके एक पुत्र।

"भीमस्तु विजयस्याथ काञ्चनो होत्रकस्तथा।" (भागवत ९।१५।२)

१२ पञ्चम बुद्ध। १३ नारायणके एक पुत्र। १४ धनञ्जय-विजय नामक ग्रन्थके प्रणेता। १५ वृक्षविशेष, कचनारका पेड़। इसका पुष्प पीत, रक्त और श्वेत भेदसे त्रिविध है। रक्त पुष्पका संस्कृत पर्याय—रक्तपुष्प, कोविदार, युग्मपत्र एवं कुण्डल और श्वेतका पर्याय—काञ्चनाल, कर्बुदार तथा पाकारि है। भावप्रकाशके मतसे यह शीतल, ग्राही, कषाय, श्लेष्मपित्त, क्रिमि, कुष्ठ, गुदभ्रंश तथा गण्डमाला रोगनाशक होता है। १६ हरिताल।

काञ्चनक (सं० क्ली०) काञ्चन संज्ञायां कन्। १ हरिताल। २ धान्यविशेष, एक धान। ३ काञ्चन वृक्ष, कचनार।

काञ्चनकदली (सं० स्त्री०) काञ्चनवर्णा कदली, मध्यपदलोपी कर्मधा०। १ चम्पा केला। २ कदलीविशेष, एक केला।

काञ्चनकन्दर (सं० पु०) काञ्चनस्य कन्दरः, ६-तत्। स्वर्णकी खनि, सोनेकी खान।

काञ्चनकारिणी (सं० स्त्री०) काञ्चनं बहुमूल्येन बन्धनं करोति, काञ्चन-कृ-णिनि-ङीप्। शतमूली, सतावर।

काञ्चनचीरी (सं० स्त्री०) काञ्चनमिव चीरमस्याः, बहुव्री०। १ स्वर्णचीरिणी क्षुप, एक प्रकारकी खिरनी। २ चीरिणी, खिरनी। ३ यवतिक्ता, एक बूटी। इसका दुग्ध पीत और पत्र वृहत् होता है। ४ कटुक, किसी किस्मकी गेरू।

काञ्चनगिरि (सं० पु०) काञ्चनमयो गिरिः। १ सुमेरु पर्वत। २ स्वर्णनिर्मित कृत्रिम पर्वत, सोनेका बनाया हुवा पहाड़। यह दान करनेके लिये बनता है।

काञ्चनगुड़िका (सं० स्त्री०) औषध विशेष, एक दवा। त्रिफला प्रत्येक एक एक तोलेके हिसाबसे ३ तोला, त्रिकटु प्रत्येक दो दो तोलेके हिसाबसे ६ तोला, रक्तकाञ्चन (लाल कचनार) की छाल १२ तोला और सबके बराबर गुग्गुल डाल गोली बनानेसे यह औषध प्रस्तुत होता है। इसके सेवनसे गण्डमाला और गलगण्ड रोग दब जाता है। (रत्नाकर)

काञ्चनगैरिक (सं० क्ली०) सुवर्णगैरिक धातु, सोना मिट्टी।

कांचनचक्र (सं० क्ली०) बौद्धशास्त्रके मतसे पृथिवीका मध्यभाग (दिव्यावदान १९।८।८)

काञ्चनचय (सं० क्ली०) काञ्चनस्य चयः राशिः, ६तत्। स्वर्णराशि, सोनेका ढेर।

काञ्चनजङ्घा—पूर्व हिमालयका एक अत्युच्च शृङ्ग। यह सिकिम और नेपालकी प्रान्तीय सीमामें अक्षा० २७° ४२' ५'' और देशा० ८८° ११' २६'' पू० पर अवस्थित है। धवलगिरिको छोड़ इतना बड़ा शृङ्ग जगत्में दूसरा नहीं। यह २८१७६ फीट ऊंचा है। यह शृङ्ग गोस्वामीस्थानसे ६५ कोस पूर्व रहते मानो नेपालकी पूर्व सीमाको बचाता है। यह निरवच्छिन्न तुषारावृत रहता है। सूर्योदयकाल दूरसे ठीक काञ्चनकी भांति देख पड़ते यह शृङ्ग 'काञ्चनजङ्घा', 'काञ्चनजिह्व', 'काञ्चनशृङ्ग' और किसी किसी संस्कृत पुस्तकमें 'काञ्चनाद्रि' नामसे अभिहित है।

काञ्चनपत्रिका (सं० स्त्री०) कृष्णमुषली, कालीमूसर।

काञ्चनपल्ली—बङ्गाल प्रान्तके चौबीस परगनेका एक

गण्डग्राम (कसबा)। यह कलकत्तेसे १४ कोस उत्तर अवस्थित है। यहां पूर्ववङ्ग रेलवेका एक अड्डा है। पहले इस ग्राममें बहुसंख्यक पण्डित और विचक्षण चिकित्सक रहते थे। यहां कृष्णका श्रीमन्दिर, भोगमन्दिर तथा दोलमन्दिर बना और नित्यसेवाके निर्वाहकी कृष्णवाटी नामक गांव लगा है। चैतन्य-चन्द्रोदय नाटकके रचयिता पुरीगोस्वामीकी यह जन्मभूमि है। यहां रथयात्रा बड़े समारोहसे होती थी।

काञ्चनपुर (सं० क्ली०) कलिङ्ग राज्यका एक नगर। (जैनहरिवंश २४।११)

काञ्चनपुष्पक (सं० क्ली०) काञ्चनमिव पीतं पुष्पं यस्य, काञ्चनपुष्प-कप्। आहुल्य-क्षुप, तगर। आहुल्य देखो।

काञ्चनपुष्पिका (सं० स्त्री०) पीतजाती, पीली चमेली।

काञ्चनपुष्पी (सं० स्त्री०) काञ्चनमिव पुष्पं यस्याः, ङीप्। गणिकारिका, अरनी।

काञ्चनप्रभ (सं० पु०) १ ऐलवंशीय एक राजा। (त्रि०) २ स्वर्णकी भांति प्रभाविशिष्ट, सोनेकी तरह चमकनेवाला।

काञ्चनभू (सं० स्त्री०) काञ्चनमयी भूः, मध्यपदलोपी कर्मधा०। १ स्वर्णमय स्थान, सोनेकी जगह। २ स्वर्णरेणु, सोनेका बुरादा।

काञ्चनभूषा (सं० स्त्री०) स्वर्णगैरिक, सोनामाटी।

काञ्चनमय (सं० त्रि०) काञ्चनस्य विकारः, काञ्चन-मयट्। मयट् वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोः। पा ४।३।१४३। स्वर्णनिर्मित, सोनेका बना हुवा।

काञ्चनमाक्षिक (सं० पु०) स्वर्णमाक्षिक, सोनामाखी।

काञ्चनमाला (सं० स्त्री०) १ अशोक राजाके पुत्र कुनालकी पत्नी। २ स्वर्णश्रेणी, सोनेका लड़। ३ काञ्चनवृक्षकी श्रेणी, कचनारकी कतार।

काञ्चनमोहनरस (सं० पु०) रसविशेष, एक दवा। रससिन्दूर, ताम्रभस्म एवं स्वर्णभस्म समभाग अर्क (मदार) तथा वज्री (थूहर) के दुग्धमें दिन भर घोंटनेसे यह रस प्रस्तुत होता है। गोली एक रत्तीकी बनती है। काञ्चनमोहन रसके सेवनसे गुल्म रोग आरोग्य होता है। (रसरत्नाकर)

काञ्चनरस (सं० क्ली०) हरितालविशेष, किसी किस्मका हरताल। गोदन्त देखो।

काञ्चनवप्र (सं० पु०) काञ्चनमयो वप्रः, मध्यपदलोपी कर्मधा०। १ स्वर्णनिर्मित प्राचीर, सोनेकी दीवार। २ सुमेरु पर्वतका सानुदेश।

काञ्चनवर्मा (सं० पु०) एक प्राचीन राजा। हिरण्यवर्मा देखो।

काञ्चनष्ठीवी (सं० पु०) सृञ्जय राजाके पुत्र। (महाभारत, शान्ति ३०-३१)

काञ्चनसन्धि (सं० पु०) काञ्चनवत् दुर्भेद्यः सन्धिः। सुदृढ़ सन्धि, मजबूत सुलह।

काञ्चनसन्निभ (सं० त्रि०) स्वर्णवत् सुन्दर, सोनेकी तरह चमकीला।

काञ्चनसूप (सं० पु०) काञ्चन नामक द्विदलधान्य-साधित सूप, एक दाल। यह सरसोंके तेलमें कल्हार कर बनाया जाता है।

काञ्चना (सं० स्त्री०) महीरात्रकी राजधानी। इसका अपर नाम स्वर्णभूमि है।

काञ्चनाक्ष (सं० पु०) एक दानव। (हरिवंश २४० अ०)

काञ्चनाक्षी (सं० स्त्री०) सरस्वती नदी।

काञ्चनाङ्ग (सं० त्रि०) काञ्चनवत् सुन्दरं अङ्गं यस्य, बहुव्री०। १ स्वर्णवत् सुन्दर अङ्गविशिष्ट, सोनेकी तरह चमकीले जिस्मवाला। (क्ली०) २ स्वर्णनिर्मित अवयव, सोनेका बना हुवा बदन।

कांचनाभिधानसन्धि (सं० पु०) कांचनसन्धि, दोनों तर्फ बराबर शर्तों पर होनेवाली सुलह।

कांचनाभ्ररस (सं० पु०) रसविशेष, एक दवा। रस-सिन्दूर, मुक्ताभस्म, लौह, अभ्रक, प्रवाल, हरीतकी, रौप्य, मृगनाभि और मनःशिला दो दो तोले जलमें घोंटनेसे यह रस प्रस्तुत होता है। इसे बिन्दुमात्र अनुपानके अनुसार सेवन करनेसे सर्वोपद्रवसंयुक्त नानारोग दब जाते हैं। क्षय, काम और श्लेष्मपित्त पर यह बड़ा गुण देखाता है। (रसेन्द्रसारसंग्रह) बृहत् कांचनाभ्र रस बनानेका विधि यह है—स्वर्णभस्म, रससिन्दूर, मुक्ताभस्म, लौहभस्म, अभ्रभस्म, प्रवालभस्म वैक्रान्तभस्म, रौप्य, ताम्र, वङ्ग, कस्तूरी, लवङ्ग, जाति-

कोष और एलवालुक दो दो तोले छृतकुमारी तथा केशराजके रस एवं अजाक्षीरमें तीन तीन दिन घोंटते हैं। मात्रा चार रत्ती है। यह रस भी अनुपानके अनुसार सर्वरोग दूर करता है।

काञ्चनार (सं० पु०) काञ्चनं तद्वर्णं ऋच्छति पुष्पैः काञ्चन-ऋ-अण्। रक्तकाञ्चनवृक्ष, लाल कचनार। यह कषाय, संग्राही, व्रणरोपण, दीपन और कफ, वात तथा मूत्रकृच्छ्र नाशक होता है। (राज निघण्टु) २ श्वेतकाञ्चन वृक्ष, सफेद कचनार।

कांचनारक (सं० पु०) कांचनार स्वार्थे कन्। काञ्चनार देखो।

काञ्चनारगुग्गुलु (सं० पु०) औषध विशेष, एक दवा। कचनारकी छालका चूर्ण ५ पल, शुण्ठी, पीपल एवं मरिचका चूर्ण एक-एक पल, हरीतकी, आमलकी तथा विभीतकका चूर्ण चार-चार तोला, वरुणकी छालका चूर्ण २ तोला, गुड़त्वक्, पत्रक (तेजपात) एवं एलाका चूर्ण एक एक तोला और सब चूर्णके बराबर गुग्गुलु डाल एकत्र मर्दन करनेसे यह औषध प्रस्तुत होता है। इसके सेवनसे गण्डमाला, गलगण्ड और अर्बुदादि रोग नष्ट होता है। मात्रा आध तोले तक है। (भावप्रकाश)

काञ्चनाल (सं० पु०) काञ्चनं कांचनवर्णं अलति, काञ्चन-अल्-अण्। १ श्वेतकांचन वृक्ष, सफेद कचनारका पेड़। २ आरग्वध वृक्ष, अमिलतास।

कांचनाह्वय (सं० पु०) कांचनं स्वर्णं आह्वयते स्पर्धते स्वभासा इति शेषः कांचन-आ-ह्वे-क। १ नागकेशर वृक्ष। २ पद्मकेशर।

कांचनिका (सं० स्त्री०) गणिकारी पुष्पवृक्ष, अरनी।

कांचनी (सं० स्त्री०) कच्यते दीप्यते अनया, काचि-ल्युट्-ङीप्। १ हरिद्रा, हलदी। २ गोरोचना। ३ स्वर्णक्षीरी, खिरनी। हिन्दीमें 'कांचनी' नर्तकी और गायिकाको कहते हैं।

कांचनी—गोस्वामी सम्प्रदायविशेष। यह लोग नृत्य गीत द्वारा जीविका निर्वाह करते और गैरिक वस्त्र पहनते हैं। आचार-व्यवहार साधारण गोसाइयोंसे मिलता है। आवश्यक आनेसे यह विवाह कर सकते हैं। मरने पर इनके शवको समाधि देते या नदीके जलमें बहाते हैं।

कांचनीय (सं० त्रि०) स्वर्णजात, सोनेका बना हुआ।

कांचनीया (सं० स्त्री०) १ हरिताल। २ गोरोचना।

कांचि (सं० स्त्री०) काचि-इन्। १ रसना, करधनी। २ दाक्षिणात्यके द्राविड़ राज्यकी राजधानी। कांचीपुर देखो।

कांचिक (सं० क्ली०) कांचि संज्ञायां कन्। कांजिक, कांजी।

कांची (सं० स्त्री०) कांचि-ङीष्। १ रसना, करधनी। इसका संस्कृत पर्याय—मेखला, सप्तकी, रसना, सारसन, कांचि, कक्षा, कक्ष्या, ससका, सारसन, रसन और बंधन है। इन पर्यायोंमें किसी किसीके मतानुसार विभिन्नता रहती है। एक लड़वाली यष्टिको कांची कहते हैं। फिर आठ लड़वाली मेखला, सोलह लड़वाली रसना और पचीस लड़वाली करधनी कलाप कहलाती है। २ द्राविड़ राज्यका राजधानी। ३ गुञ्जा, घुंघची।

कांचीनगर (सं० क्ली०) कांचीपुर देखो।

कांचीपद (सं० क्ली०) काञ्च्याः पदं स्थानम्, ६ तत्। जघनदेश, नितम्ब, करधनी बांधने की जगह।

कांचीपुर—मन्द्राज प्रान्तस्थ चेंगलपट जिलेके कांचीपुरम् तालुकका एक प्रसिद्ध नगर। यह अक्षा० १२° ४९' ४५" उ० और देशान्तर ७९° ४५' पू० पर अवस्थित है। भूपरिमाण ५८५८ एकर है। यहां न्यायालय, कारागार, चिकित्सालय और विद्यालय विद्यमान है।

पुरातत्त्व—कांचीपुर अति प्राचीन नगर है। महाभारतमें उल्लेख मिलता है,

"अजयत् पह्लवान् पुण्ड्रान् प्रयत्नाद्द्रविडान्धकान्।
शकतयासजत् काचीन् मरुतांश्चैव पार्थतः॥" (महाभारत, आदि, १०८।३४)

अनेक महात्माओंके मतसे महाभारतमें कांची नामका उल्लेख रहते भी केवल उसी प्रमाण पर निर्भर कर इसको महाभारतका समकालीन अति प्राचीन नगर कह नहीं सकते। तामिल भाषाके "कांचीपुर स्थलपुराण"में लिखा कि प्रसिद्ध चोलराज कुलोत्तुङ्गने कांचीपुर नगर स्थापन किया था। तद्-

पुत्र भदखी तोण्डीरके समय इसकी विशेष समृद्धि हुई। पाश्चात्य पुराविद् फार्गुसनने उक्तमत समर्थनकर लिखा है,—"पहले यह स्थान जंगलसे परिवृत था। उस समय यहां असभ्य कुरुम्बर रहते थे। ई०११वें या १२वें शताब्द भदखी चक्रवर्तीने यह नगर पत्तन किया। (Fergusson's History of Indian and Eastern Architecture.)

उक्त उभय मत समीचीन नहीं समझ पड़ते। वास्तविक यह कांचीपुर अति प्राचीन नगर है। प्राचीन शिलालिपि और प्राचीन संस्कृत पुस्तक पढ़नेसे अनायास उपलब्धि आती, कि चोल राजाओंके अभ्युदयसे बहुत पहले कांचीपुरमें दक्षिणापथके प्रबल पराक्रान्त नृपतियोंकी राजधानी स्थापित हुई थी। आजकल यह जैसा क्षुद्र नगर है, पूर्वकालको वैसा न था। उस समय कांचीपुर एक विस्तीर्ण जनपदमें विभक्त था। स्कन्दपुराणके कुमारिकाखण्डमें लिखा है—

"ग्रामाणां नवलक्षञ्च काञ्चीपुरे प्रकीर्तितम्।" (३७ अ०)

महाभारतके समय कांचीपुर सम्भवतः कलिङ्गके क्षत्रिय राजाओंके अधीन था। उस समय भी यह स्थान द्राविड़ राज्यके अन्तर्गत न हुआ था। यही बात महाभारतमें द्राविड़ और कांचीके स्वतन्त्र उल्लेखसे अनुमित होती है। फिर दक्षिणापथके पाण्ड्य राजाओंने इसे अधिकार किया।

पाण्ड्य राजावोंके पीछे ही कांचीपुर पल्लव राजावोंके हाथ लगा। किसी समय पल्लव राजावोंने द्राविड़ और दक्षिणापथका अधिकांश जीत इसी कांचीपुरमें राजधानी स्थापित की थी। बौद्ध और जैन धर्म प्रबल पड़ते भी तत्कालीन कांचीपुरके पल्लवराज हिन्दू धर्मावलम्बी रहे। खृष्टीय ४र्थ और ५म शताब्दकी शिलालिपि उक्त विषयका साक्ष्य देती है। उक्त शिलालिपि पढ़नेसे समझ पड़ता, कि उस समय और उससे पहले कांचीपुरमें जैन धर्म भी विशेष प्रबल था। तत्कालीन पल्लव राजावोंने वेदज्ञ ब्राह्मणोंको अनुशासन द्वारा जो ग्राम दिये, उन सकल स्थानोंमें ब्राह्मणोंके अव्यवहित पूर्व जैनोंके अधिकार रहे। सम्भवतः हिन्दू राजावोंने जैनोंको निकाल उन स्थानोंमें ब्राह्मणोंको रखा था। (Indian Antiquary, VIII. 281.)

बौद्धगण अनुमान खृष्टीय ३य शताब्दको काशीसे जा कांचीपुरमें रहे थे। पाण्ड्य राजावोंके समय यहां जैनधर्म प्रबल हो गया और जैन राजावोंने अधिकांश बौद्ध अधिवासियोंको भगा दिया। (Wilson's Mackenzie Collection, p. 40-41.)

शिलालिपिके अनुसार सिंहविष्णु ही कांचीपुरके प्रथम पल्लवराज थे, जो खृष्टीय ४र्थ शताब्दको राजत्व कर गये। वह वैष्णव थे। अनेक लोग अनुमान करते, कि उन्हींके समय विष्णुकांचीके वरदराजस्वामी आविर्भूत हुये थे।

खृष्टीय ६ष्ठ शताब्दको पुलिकेशी (२य) ने एकबार पल्लवराज पर आक्रमण किया। ५०७ शकमें खोदित पुलिकेशीकी शिलालिपि पढ़नेसे समझते कि पल्लवराज उनसे हार कांचीपुरके प्राकारमें छिप रहे थे।

"अक्रान्तात्मबलोन्नतिमबलरजःसुच्छन्नकाञ्चीपुरः।
प्राकारान्तरितप्रतापमकरोद्यः पल्लवानाम्पतिम्॥"

(५०७ शके खोदित ऐहोल शिलालिपि।)

खृष्टीय ७म शताब्दको चीन-परिव्राजक हुएन-सुयाङ्ग कांचीपुर (कि-एन-चि-पु-लो) आये थे। उस समय यह द्राविड़ राज्यकी राजधानी था। विस्तृति प्रायः २॥ कोस रही। बौद्ध, निर्ग्रन्थ और हिन्दू तीन दल प्रबल थे। १०० बौद्ध सङ्घाराम और ८०देवमन्दिर रहे। कांचीपुर धर्मपाल बोधिसत्वका जन्मस्थान है। इसीसे बौद्ध इस स्थानको पुण्यभूमि समझते और नाना देशोंसे बौद्ध यात्री यहां आ पंहुचते थे।

अनेक लोगोंके अनुमानसे चीन-परिव्राजकके आगमनकाल यहां बौद्धराज राजत्व करते थे। किन्तु यह बात ठीक नहीं। खृष्टीय ७म शताब्दकी शिलालिपि पढ़नेसे समझ पड़ता कि उस समय भी कांचीपुरमें वैष्णव धर्मावलम्बी पल्लव राजावोंका राजत्व था।

पूर्वतन पल्लव राजाओंके वैष्णव होते भी खृष्टीय ८म शताब्दकी शिलालिपिमें कांचीपुराधिप नरसिंहवर्माने अपनेको शैव वा महेश्वरोपासक लिखा है। सम्भवतः उसी समय यहां शैवधर्म प्रबल हुवा था।

खृष्टीय ८म शताब्दको चोलराज कुलोत्तुङ्गने * कांचीपुर अधिकार किया। तत्पुत्र अदण्डी चक्रवर्तीके समय कांचीपुर तोण्डीरमण्डलको राजधानी हुवा।

खृष्टीय १०म और ११श शताब्दके मध्य चालुक्य राजावोंने कांचीपुर लेनेको चेष्टा की थी। विह्लण कवि विरचित विक्रमाङ्कचरित पुस्तक पढ़नेसे समझ पड़ता कि चालुक्यराज आहवमल्लने (१०४०-६९ ई०) चोलराजधानी कांचीको आक्रमण किया। वह युद्धमें जय पाते भी चोल राजावोंको स्ववशमें ला न सके। उनके आदेश-क्रमसे तत्पुत्र विक्रमादित्य चालुक्य कई वार कांचीपर चढ़े।

(विह्लणकृत विक्रमाङ्कचरित ३।६१, ६६।२२-२८)

मालूम पड़ता कि उसी समय कांचीका कोई कोई अंश पल्लव राजवोंके भी अधिकारमें था। कारण शिल्पलिपि और विह्लणका ग्रन्थ पढ़नेसे समझ पड़ता कि विक्रमादित्यके पुत्र विनयादित्यसे कांचीके त्रैराज्य पल्लवकी विपुलवाहिनी आक्रान्त और पर्यदस्त हुयी।

१०७४ शकको एक शिल्पलिपिमें खोदित है कि उस समय (खृष्टीय १२श शताब्द) काकत्यराज रुद्रदेव कांचीपुर शासन करते थे। (Ind. Antiquary, XI. 19.)

१५श शताब्दके मध्यकाल उत्कलके केशरीवंशीय एक राजाने कांचीपुर लूटा था। फिर १४७७ ई०को वहमानी वंशीय मुसलमानराज मुहम्मदने कांचीपुर जीत अपना अधिकार जमाया। इसी प्रकार यह कुछ काल वहमानियोंके शासनाधीन रहा। उसके पीछे विजयनगरके राजा नरसिंह रायने वहमानियोंके हाथसे इसे छोड़ाया। उन्होंने वीरवसन्त रायको कांचीपुरमें शासनकर्त्ताके पद पर बैठाया। नरसिंह रायके पुत्र कृष्णदेव राय १५०८ ई० को राज्याभिषिक्त हुये थे। वह १५१५ ई०को यहां आये। उन्होंने कांचीपुरके विख्यात शतस्तम्भ और कई शिवमन्दिरका संस्कार कराया था। १४३८ शकके खोदित अनुशासनपत्र पढ़नेसे समझते कि कृष्णदेव रायने कांचीपुरके प्रसिद्ध वरदराज स्वामीके मन्दिर व्ययको ११ सौ रुपये आयके विशरा, तिरुप्य, कदाह, उपंथगाल और गोविन्दवदी प्रभृति अनेक ग्राम प्रदान किये।

१६४४ ई० को विजयनगर यवन-कवलित होने पर कांचीपुर गोलकुण्डावाले मुसलमान राजाके हाथ लगा। कुछ दिन पीछे यह अरकाटमें शामिल हुवा। १७५१ ई०को लार्ड क्लाइवने फरासीसियोंके हाथसे कांचीपुर अधिकार किया था। किन्तु उसी वर्ष राजा साहबको छोड़ देना पड़ा। १७५७ ई०को फरासीसियोंने यह स्थान आक्रमण कर आग लगायी थी। दूसरे वर्ष अंगरेजी सैन्य कांचीपुर छोड़ मन्द्राजमें फरासीसियों पर चढ़ा। किन्तु फिर लौटकर फरासीसियोंके अवरोधसे इसे उद्धार किया। कांचीपुरसे अदर पुल्ललूर स्थानपर अंगरेजों और मुसलमानोंमें एक घोरतर युद्ध हुवा था। उसमें हैदरअलीने (१७६० ई०) जनरल वेलीके सैन्यव्यूहको कैद किया।

कांचीपुर एक प्राचीन महातीर्थ है। भारतवर्षकी जो सात पुण्यनगरी दर्शन करनेसे जीव अनायास सिद्धि पा सकता, उनमें इसका भी नाम मिलता है,—

"अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता सिद्धिदायिका॥"

तोड़लतन्त्रके मतसे यही तीर्थ विश्वरूप महादेवका कटिदेश है,—

"नाभिमूले महेशानि अयोध्यापुरी संस्थिता।
काञ्चीपीठं कटिदेशे चौहट्टं पृष्ठदेशके॥"

(तोड़लतन्त्र, ८म उल्लास)

केवल तीर्थ ही नहीं, कांची महापीठस्थान है। कुब्जिकातन्त्रके मतसे यहां, कनककांची देवी विराजती हैं,—

"काञ्च्यां कनककाञ्चीखादवन्त्यामतिपावनी।"

(कुब्जिकातन्त्र ७म पटल)।

कांचीपुर नगर दो भागमें विभक्त है—विष्णुकांची और शिवकांची। शिवकांचीमें शिवमन्दिर और विष्णुकांचीमें विष्णु मन्दिर अवस्थित है। इन

* फार्गुसन प्रभृति पाश्चात्य पुराविदोंके मतसे खृष्टीय ११श वा १२श शताब्दके मध्य कुलोत्तुङ्ग चोलराजका राजत्वकाल रहा। किन्तु दाक्षिणात्यके प्रसिद्ध वृहदीश्वरमाहात्म्य नामक पुस्तक देखते खृष्टीय ८म शताब्दको वह यहां राजत्व करते थे।

दोनों स्थानोंके दर्शनीय वस्तुवोंके मध्य शिवकांचीस्थित 'एकाम्रनाथ' नामक महादेवका आदिलिङ्ग, भगवती कामाक्षी देवीकी मूर्ति, भगवान् शङ्कराचार्यकी प्रतिमा एवं समाधिस्थल तथा कम्पानदी तीर्थ और विष्णुकांचीस्थित 'श्रीवरदराजस्वामी' नामक भगवान् विष्णुकी मूर्ति, उत्सङ्गमूर्ति, वेगवतीधारा तीर्थ, रवितीर्थ, सोमतीर्थ, मङ्गलतीर्थ, बुधतीर्थ, वृहस्पतितीर्थ, शुक्रतीर्थ एवं शनितीर्थ प्रभृति प्रधान है। इसके अतिरिक्त कांचीके निकट केदारेश्वर और वालुकारण्य दो पुण्यस्थान भी हैं। (उक्त तीर्थोंका विवरण शिवकांचीमाहात्म्य, कामाक्षीविलास, केदारेश्वर-माहात्म्य प्रभृति संस्कृत ग्रन्थोंमें देखना चाहिये।)

दक्षिण देशीय स्मार्तोंके मतसे शिवकांची वाराणसी तुल्य है। इस स्थानके उत्पत्ति-विषय पर स्कन्दपुराणमें लिखा, कि महादेवने पार्वतीसे पुण्य तीर्थकी बात करते करते कहा था,—"वाराणसी रामेश्वर, श्रीक्षेत्र आदि पुण्यक्षेत्रोंसे कांचीपुर उत्कृष्ट है। यहां जो लोग रहते, जो दर्शन करते या इसका विषय सुनते अथवा इसका विषय मनमें रखते एवं आन्दोलन करते और जो पशु पक्षी यहां बसते, वह भी मुक्ति लाभ करते हैं। इस नगरके मध्यस्थलमें समस्त शास्त्रको आम्रके वृक्षरूपमें रख और अपने लिङ्गरूप एकाम्रनाथ नामसे अभिहित हो हम रहा करते हैं। इस कांचीपुरमें वास करते नर सर्व पापसे मुक्त हो जाते हैं। कांचीपुर चारो ओर पंचयोजन विस्तृत है। इसके मध्य पूर्व-पश्चिम एवं उत्तर-दक्षिण ढाई कोस हम सर्वदा विराजमान रहेंगे। फिर प्रलयके समय हम इसको अपने त्रिशूल पर रक्खेंगे। अतएव इसका कभी विनाश नहीं। इसको हमारी ही आकृति समझना चाहिए।"

आर्यावर्तके लोग जैसे जीवनके शेष भागमें काशी जा रहते तथा काशीमें मर सकनेपर शिवत्व प्राप्तिका विश्वास रखते, वैसे ही दाक्षिणात्यवाले भी कांचीमें रहने और कांचीमें मरनेसे अपनी मुक्ति समझते हैं।

दाक्षिणात्यके नाना स्थानोंमें महादेवकी पांच भौतिक मूर्ति हैं। कांचीपुरका "एकाम्रनाथ लिङ्ग" उनमें क्षितिमूर्ति होनेसे ही मृत्तिकासे गठित है। सुतरां अन्यान्य देवालयकी भांति यहां जलाभिषेक नहीं होता।

एकाम्रनाथका मन्दिर दाक्षिणात्यमें अति विख्यात और देखनेमें भी अति सुन्दर तथा पुरातन है। यह मन्दिर किसी समय एकबारगी ही न बना था। इसकी वृद्धि क्रम क्रम हुई है। इस मन्दिरकी दीवारें परस्पर सरल भावसे नहीं बनीं और वर भी परस्पर समकोण नहीं। अनेक लोगोंके अनुमानमें इसका मूल स्थान चोल राजावोंने बनवाया था, फिर विजय-नगरके राजा कृष्णरायने गोपुर निर्माण कराया। इस मन्दिरके प्राङ्गणमें एक पुरातन आम्रवृक्ष है। वृक्षका वयस ३१४ शत वत्सर होगा। दक्षिणके लोग इस आम्रवृक्षको अनादि और सर्वशास्त्ररूपी मानते हैं। इसकी चार शाखावोंमें पृथक् २ मिष्ट, कटु, तिक्त और अम्ल चार प्रकारके आम्र होते हैं। फल खाने-वाले इस विषयका साक्ष्य दिया करते हैं। देव-सेवकोंके कथनानुसार पहले इस आम्रवृक्षसे प्रत्यह एक पका आम गिरता, जिसका भोग एकाम्रनाथको लगता था। अनेक लोगोंके कथनानुसार इसीसे लिङ्गका नाम 'एकाम्रनाथ' पड़ा है। किन्तु आजकल प्रत्यह आम्र नहीं मिलता।

कामाक्षी देवीके उत्पत्ति-सम्बन्ध पर स्कन्दपुराणमें लिखा है—किसी समय पार्वती देवीने कौतुकच्छलसे पीछे जा महादेवके चक्षु मूद लिये थे। इसीसे विश्व संसार अन्धकारमय हो गया। कारण सूर्यचन्द्र-वह्निरूपी नयनत्रय ढक जानेसे प्रकाश किस प्रकार होता? इससे भगवतीको पाप लगा। उसी पापके प्रायश्चित्तको महादेवके आदेशसे उन्हें मर्त्यलोक आना पड़ा। एकाम्रनाथके मन्दिरप्राङ्गण-स्थित कम्पा-नदी नामक तीर्थमें कामाक्षी देवीरूपसे छह मास तपस्या करनेपर महादेवने उन्हें फिर ग्रहण किया। तदवधि कामाक्षीमूर्ति स्वतंत्र मन्दिरमें प्रतिष्ठित है। फाल्गुन मासके पंचदश दिन बराबर एकाम्रनाथका वार्षिक महोत्सव होता है। उसके दशम दिवस रात्रिको

कामाची देवीकी भोगमूर्तिके* साथ एकाम्रनाथकी भोगमूर्ति मिलायी जाती है।

कामाची देवीका मन्दिर कुछ छोटा है। इसीके प्राङ्गणमें भगवान् शङ्कराचार्यका समाधि है। इसी समाधि पर उनकी प्रस्तरमयी मूर्ति प्रतिष्ठित है।

शिवकांचीमें अनेक शिवलिङ्ग हैं। इनके सम्बन्धमें एक प्रवाद है—किसी समय एकाम्रनाथने एक मुष्टि बालुका छोड़ी थी। उससे बालुकाके जितने कण गिरे, वह प्रत्येक शिवलिङ्ग बन गये।

एकाम्रनाथकी पूजाको १४००) रु० आयके कई ग्राम लगे हैं। ८०५) रु० नकद कलक्टरीसे आता है।

इस मन्दिरमें प्रत्यह वेदपाठ और वेदगान होता है। उत्सवके समय भोगमूर्तिको रत्नालङ्कारसे सजा वाहक ब्राह्मण अपने स्कन्ध पर ले जाते हैं। पीछे दूसरे ब्राह्मण वेद गाते चलते हैं। फाल्गुन मास रथोत्सव होता है। उस समय विस्तर यात्री आते हैं।

यह देवालय कर्णाटक युद्धके समय सेनावास या अस्पतालकी भांति व्यवहृत होता था। द्वार पर उसी युद्धके एक गोलेका चिन्ह आज भी देख पड़ता है।

उक्त शिवमन्दिरसे २ कोस दूर विष्णुकांची है। यहीं वरदराज स्वामीका प्रसिद्ध मन्दिर बना है। स्कन्दपुराणमें वरदराज स्वामीके उत्पत्ति-सम्बन्ध पर इस प्रकार लिखा है,—"किसी समय ब्रह्माने अश्वमेध यज्ञ किया था। कांचीपुरमें यज्ञस्थल निरूपित हुवा। यज्ञभूमिका उत्तर द्वार नारायण, पश्चिम द्वार विरञ्चि-पुर, दक्षिण द्वार चिङ्गलिपट्ट और पूर्व द्वार महावली पुर था। सरस्वती देवीने ब्रह्माके यज्ञकी बात न सुनी। नारदने ब्रह्मलोक जा उनको संवाद दिया था। उनको इससे बड़ा क्रोध हुवा कि ब्रह्माने उनसे न कह यज्ञ करना आरम्भ किया। वह यज्ञस्थल बहानेको नदी बन गयीं। ब्रह्माने यह सुन विष्णुसे साहाय्य मांगा था। विष्णुके आकर गति रोकने पर सरस्वती अन्तःसलिला होकर बहने लगीं। विष्णु फिर नग्न रूपसे एदोचोरी नामक स्थान पर नदीके सामने जा पड़े। तब सरस्वती देवीने लज्जासे अधोमुखी हो अपना पूर्व सङ्कल्प परित्याग किया था। इधर यथासमय यज्ञीय अश्वमांसकी आहुति दी गयी। भगवान् विष्णु, वही हुत मांस खाते खाते यज्ञीय अग्निसे आविर्भूत हुये। विष्णुके दर्शनसे ब्रह्माकी मनस्कामना सिद्ध हुयी। समागत ऋषियों और ऋत्विकोंने विष्णुसे उसी स्थान पर रहनेकी प्रार्थना की थी। नारायण उनकी प्रार्थनासे सन्तुष्ट हो कांचीपुरमें श्रीवरदराज स्वामीके नामसे रहने लगे।

सुननेमें आया कि ११श शताब्दको कांचीपुरके शासन-कर्ता गंजागोपाल रावने विष्णुमन्दिर प्रतिष्ठा किया था। पहले वह अपुत्रक रहे। वरदराजकी कृपासे उनके पुत्रसन्तान हुवा। इसीसे उन्होंने एक शिवमन्दिर तोड़वा उसीकी ईंटोंसे एक वृहत् विष्णु-मन्दिर निर्माण कराया और उसमें वरदराज स्वामीको ला बिठाया। इसी विष्णुमन्दिरसे यह स्थान विष्णु-कांची कहाता है।

विष्णुमन्दिरके देवीभवनके एक स्तम्भपर १७३२ शककी एक शिल्पलिपिमें लिखा कि—लोलनतम्बनी-मल्ल नामक कोई व्यक्ति उदैय्यर पलेयमसे वरदराजकी मूर्ति विष्णुकांची ले गया था। विष्णुमन्दिरके द्वितीय प्रकोष्ठमें कृष्णराय निर्मित प्रसिद्ध शतस्तम्भ-मण्डप विद्यमान है। एक पत्थरको काटकर यह मण्डप बनाया गया है। इसके निकट दूसरे भी कई मण्डप हैं। उनमें वाहनमण्डप और कल्याण-मण्डप ही श्रेष्ठ है। इस मन्दिरको देवसेवाके लिये ३०००) रु० आयका एक ग्राम लगा है। फिर मन्द्राज गवरनमेण्ट भी ८८६१) रु० वार्षिक देती है। यह मन्दिर अतिसमृद्धिशाली है। इसकी केवल मणिमुक्ताका मूल्य दो लाख रुपयेसे अधिक होगा। लार्ड क्लाईवने ३६६१) रु० मूल्यका एक कण्ठाभरण चढ़ाया था। वैशाख मास १० दिन बराबर इसका महोत्सव हुवा करता है। उस समय यहां प्रायः पचास हजार यात्री आते हैं।

कांचीपुरी (सं० स्त्री०) काञ्चीपुर देखो।

---

* दाक्षिणात्यके प्रायः प्रत्येक विग्रहकी दो मूर्ति होती हैं। मूलमूर्ति मन्दिरमें प्रतिष्ठित रहती है और भोगमूर्ति उत्सवादिमें नगरयात्राको बनती है। भोगमूर्ति ही अलङ्कारादिसे सजायी जाती है।

काञ्चीप्रस्थ (सं० क्ली०) काञ्चीपुर देखो।

काञ्जिक (सं० क्ली०) कु कुत्सिता अञ्जिका प्रकाशो यस्य, कु-अञ्ज-ण्वुल्-टाप् अत इत्वं कोः कादेशः। धान्याम्ल, कांजी। अन्नमें जल डाल सड़ानेसे जब खट्टा पड़ जाता, तब वही जल 'काञ्जिक' कहाता है। इसका संस्कृत पर्याय—आरनाल, सौवीर, कुल्माष, अभिषुत, अवन्तिसोम, धान्याम्ल, कुञ्जल, कुल्मास, कुल्माषाभिषुत, काञ्जीक, काञ्जिका, कञ्जिक, काञ्जी, भक्तवारो, धान्यमूल, धान्ययोनि, तुषाम्बु, रसाम्ल, महारस, तुषोदक, शुक्त, चुक्र, धातुघ्न, उन्नाह, रक्षोघ्न, कुण्डगोलक, सुवीराम्ल, वीर, अभिषव और अम्लसारक है।

राजवल्लभके मतसे यह भेदक, तीक्ष्ण, उष्ण, स्पर्शशीतल, श्रम एवं क्लान्तिनाशक, अग्निवर्धक और पित्त, रुचि तथा वस्तिशुद्धिकारक है। फिर राजनिघण्टु देखते इसे अङ्गपर मलनेसे वायु, शोथ, पित्त, ज्वर, दाह, मूर्च्छा, शूल, आध्मान और विबन्ध रोग विनष्ट होता है।

काञ्जिकवटक (सं० पु०) खाद्यद्रव्य विशेष, कांजी बड़ा। मट्टीका एक नूतन पात्र कटु तैल लगा निर्मल जलसे भरते हैं। फिर उसमें राई सरसों, जीरा, नमक, हींग और हलदीके चूर्ण साथ कुछ बड़े भिगो तीन दिन तक मुख बांध रख छोड़ते हैं। यही बड़े जब खट्टे पड़ जाते, तब 'काञ्जिकवटक' कहाते हैं। यह रुचि एवं कफकारक और शूल, अजीर्ण, दाह तथा वायुनाशक है।

काञ्जिकषट्पदघृत (सं० क्ली०) घृत विशेष, एक घी। घृत ४ शरावक, काञ्जिक १६ शरावक और हिङ्गु, शुण्ठी, पिप्पली, मरिच, चव्य तथा सैन्धवलवणका कल्क एक एक पल एकत्र पकानेसे यह औषध प्रस्तुत होता है। काञ्जिकषट्पदघृत आमवातके लिये हितकर है। (चक्रपाणिदत्त)

काञ्जिका (सं० स्त्री०) कुत्सिता अञ्जिका यस्याः, टाप्। १ लघुजीवन्ती। २ पलाशी लता। ३ काञ्जिक, कांजी।

काञ्जितैल (सं० क्ली०) काञ्जिक विशेष, एक कांजी। इसे मलनेसे वात बढ़ता, दाह उठता, गात्र शिथिल पड़ता और केश पकने लगता है। किन्तु खानेमें कोई दोष नहीं। (राजनिघण्टु)

काञ्जिपत्रिका (सं० स्त्री०) क्षुद्रदन्ती क्षुप, छोटी दांती।

काञ्जी (सं० स्त्री०) कं जलं अनक्ति, क-अनूज-अण् ङीप्। १ महाद्रोणपुष्पी, एक फूलदार पेड़। २ काञ्जिक, कांजी। ३ भार्गी, एक ओषधि।

काञ्जीक (सं० क्ली०) काञ्जिक, कांजी।

काट (सं० पु०) कं जलं अट्यते अत्र, क-अट-घञ्। १ कूप, कूवां। २ विषमपथ, नीची-ऊंची राह।

काट (हिं० पु०-स्त्री०) १ छेदन, कटाई। २ कर्तन, तराश। ३ आहत स्थान, कटी हुयी जगह। ४ पीड़ा, दर्द। ५ छल, धोका। ६ मल्लयुद्धका कौशल विशेष, पेंचपर लगनेवाला पेंच। ७ काउं, चिट्ठी लिखनेका एक कागज़। ८ ताशके खेलमें तुरुपका रंग। इससे दूसरे सब रंग कट जाते हैं। ९ मल, कीट।

काटकी (हिं० स्त्री०) यष्टिविशेष, एक छड़ी। इससे मदारी तमाशा देखाते और बकरे, बन्दर तथा भालू नचाते हैं।

काटन (हिं० स्त्री०) खण्डविशेष, एक टुकड़ा। यह निरर्थक होनेसे छोड़ दिया जाता है।

काटना (हिं० क्रि०) १ कर्तन करना, तीक्ष्ण अस्त्रसे खण्ड उतारना, टुकड़े उड़ाना। २ रगड़ना, पीसना। ३ चर्मपर आघात लगाना, चमड़ा उड़ाना। ४ छांटना, ब्योंतना। ५ मिटाना, छोड़ाना। ६ व्यतीत करना, बिता देना। ७ गमन करना, चलना। ८ अधर्मसे धनोपार्जन करना, चोरीसे रुपया कमाना। ९ रद्द करना, छेंकना। १० प्रस्तुत करना, बनाना। ११ निकालना, ले जाना। १२ खींचना, तैयार करना। १३ बांटना, भाग लगाना। १४ तराश लेना। १५ सफायीसे फेंटना। १६ उठाना, भोगना। १७ दांत मारना, डस लेना। १८ लगाना, फाड़ना। १९ पार करना। २० आना, देख पड़ना। २१ मारना, उड़ाना। २२ खण्डित करना, साबित होने न देना। २३ चोराना। २४ अलग करना, तोड़ना। २५ सहन न होना, सह न जाना। २६ झाड़ना, साफ करना।

काटवेम (सं० पु०) कालिदास-प्रणीत शकुन्तला नाटकके एक टीकाकार।

काटव्य (सं० क्लो०) कटोर्भावः, कटु-ष्यञ्। १ कटुता, कड़वापन, कड़वाई। २ कार्कश्य, करकसपन।

काटाखाल—दक्षिण कछारवाली धवलेश्वरी नदीकी एक शाखा। कहते बहुत पहले कछारके किसी राजाने इस नदीसे नहर निकाल बाराक नदीमें जा मिलाई थी। फिर उन्होंने सङ्गम स्थानपर एक बांध बंधाया। आजकल बारहो मास इसमें जल रहता और स्रोत बहता है।

काटाल—बङ्गालके मालदह जिलेका एक कंटीला जङ्गल। यह भूभाग पूर्व और उत्तरपूर्वांशमें विस्तृत है। उत्तरपूर्व और दक्षिणपूर्वको काटाल महानदीका चर-भूमिसे दीनाजपुरकी सीमातक चला गया है। इसका प्रकृत गठन अति अद्भुत है। बड़ा वृक्ष वा गहन वन कहीं देख नहीं पड़ता। केवल कंटीली झाड़ियां चारो ओर लगी हैं। पहले यहां बहुत लोग रहते थे। पुष्करिणी और अट्टालिका भग्नावशेष आज भी इसकी प्राचीन समृद्धिका साक्ष्य देता है। प्रसिद्ध पाण्डुया नगर इसी वनमें बना था। काटालमें कई खाड़ी और नदियां हैं। यहां केवल असभ्य लोग रहते हैं। उनमें अनेक शिकार करते और मछली खा अपना पेट भरते हैं। कुछ कुछ सन्थाल अब आ और घर बना बसने लगे हैं।

काटुक्य (सं० क्लो०) कटुकस्य भावः, कटुक-ष्यञ्। कटुता, कड़ुवाहट।

काटू (हिं० पु०) १ कर्तन करनेवाला, जो काटता हो। २ भयानक, खौफ़नाक, काट खानेवाला।

काटोया—बङ्गाल प्रान्तके वर्धमान जिलेका एक नगर। यह भागीरथीके पश्चिम तीर अक्षा० २३° ३७´ उ० और देशा० ८८° १०´ पू० पर अवस्थित है। यहां केशव भारतीने चैतन्यदेवको संन्यासकी दीक्षा दी थी। गौराङ्ग देवका मन्दिर अभी बना है। मुसलमान नवाबोंके समय यह नगर बहुत बढ़ा। १७४२ ई० को महाराष्ट्र राज-मंत्री भास्करपंथ बङ्गविजयके लिये थोड़े दिन यहीं आकर ठहरे थे। १७२३ ई०को कासिमअली ने उनसे युद्ध किया। अधिवासियोंमें तन्तुवाय (जुलाहे) वर्धिष्ठ हैं। पीतल और कांसेका व्यवसाय बहुत होता है।

काट्य (सं० त्रि०) काटे विषममार्गे कूपे वा भवः, काट-यत्। १ विषममार्गजात, बेढब राहसे निकला हुवा। २ कूपजात, कुवेंसे पैदा। (पु०) ३ रुद्र विशेष।

काठ (सं० पु०) काठ्यते तङ्ग्यते, कठ-घञ्। १ पाषाण, पत्थर। (त्रि०) काठस्य इदम्, कठ-अण्। २ कठसम्बन्धीय, कठका लिखा हुवा।

काठ (हिं०पु०) १ काष्ठ, लकड़ी। २ ईंधन, जलानेकी लकड़ी। ३ शहतीर, तख्ता। ४ बेड़ी, कलन्दरा।

काठक (सं० क्लो०) कठानां धर्म आम्नायः समूहो वा कठ-वुञ्। १ कठ शाखाध्यायीका धर्म। २ कठ शाखाध्यायीका शास्त्र। ३ कठ शाखाध्यायीका समूह।

काठड़ा (हिं० पु०) कठौता, काठकी बड़ी परात।

काठवनिया—विहारके वणिकोंकी एक श्रेणी। इनमें अधिकांश वैष्णव होते हैं। मैथिल ब्राह्मण इनका पौरोहित्य करते हैं। हिन्दू शास्त्रोक्त देवदेवियोंके अतिरिक्त यह सोखा शम्भुनाथ और सत्यनारायण नामक ग्राम्य देवताको पूजते हैं। अपर वणिकोंके मध्य कन्या और वर उभय पक्षमें सप्तपुरुषका सम्बन्ध रहते भी विरुद्ध पड़ते विवाह रुक जाता है। किन्तु इनमें वैसी कोई बाधा नहीं लगती। यह बाल्यकालमें कन्याका विवाह करते और एक पत्नी रहते अपर पत्नी ला सकते हैं। इनमें विधवाविवाह प्रचलित है। फिर भी विधवा पूर्वपतिके कनिष्ठ सहोदर अथवा सम्पर्कीय कनिष्ठ भ्रातासे विवाह करनेको सक्षम नहीं। कोई गुरुतर अपराध प्रमाणित होते स्वामी पंचायतकी अनुमतिसे पत्नी परित्याग कर सकता है। इस प्रकार परित्यक्त स्त्रियोंका फिर विवाह नहीं होता। यह शवदाह करते और अशौचान्त ३१ दिन श्राद्धका नियम रखते हैं। सामान्य व्यवसाय और कृषिकार्य्य इनकी उपजीविका है।

काठवेल (सं० स्त्री०) लताविशेष, एक बेल। यह भारतके युक्त प्रान्त, अफ़गानिस्तान और फारसमें उपजती है। इसका फल इन्द्रायणकी भांति कटु होता है। बीजसे तेल निकालते हैं। कहीं कहीं काठ-

खेल औषधमें इन्द्रायणके अभावसे डाल दी जाती है। इसका अपर नाम 'कारित' है।

काठमाण्डू—स्वाधीन नेपाल राज्यकी राजधानी। वाघमती और विष्णुमती नदीके सङ्गम स्थलपर नागार्जुन गिरि अवस्थित है। इसी गिरिके पाददेशसे आध कोस दूर उपत्यकाके पश्चिमांशमें काठमाण्डू नगर है। इसका प्राचीन नाम 'मञ्जुपत्तन' है। देशीय लोगोंके विश्वासानुसार पूर्वकालको मञ्जुश्री नामक किसी बुद्धने यह नगर स्थापन किया था। राजधानीकी भूमि चतुरस्र वा त्रिकोण अथवा वृत्त अर्धवृत्त कोई नियमित आकार विशिष्ट नहीं। हिन्दू इसका आकार देवीके खड्गकी भांति बताते हैं। फिर बौद्ध निवासी इसके आकारको मञ्जुश्री नामक नगरस्थापयिताकी तलवारसे मिलाते हैं। इस कल्पित खड्गका मुष्टि नगरकी दक्षिण ओर वाघमती तथा विष्णुमतीका सङ्गमस्थल और नगरको उत्तर ओर 'तिम्माले' नामक उपकण्ठ स्थान इसका सूक्ष्म अग्रभाग है। मञ्जुश्रीकी तलवारकी मूठमें जैसे एक खण्ड वस्त्र छत्राकार वेष्टित रहता, उक्त तिम्माले जनपद भी वैसे ही देख पड़ता है।

प्रकृत पक्षमें प्रायः ७२३ ई०को काठमाण्डू गुणकामदेव द्वारा प्रतिष्ठित हुवा था। नगर उत्तर-दक्षिणको ही अधिक दीर्घ, कोई आध कोस होगा। इसे काठमाण्डू बहुत दिनसे नहीं कहते। १५९६ ई०को राजा लक्ष्मणसिंह मल्लने नगरके मध्य संन्यासियोंके लिये एक काष्ठमय वृहत् मन्दिर वा साधुमण्डप निर्माण कराया। यह मन्दिर आज भी बना और इसी कार्यमें लगा है। इसी काष्ठमण्डपसे 'काठमाण्डू' नाम निकला है। पहले यह नगर प्राचीर वेष्टित था। प्राचीरके गात्रमें बीच बीच सुन्दर तोरण रहे। आजकल स्थान स्थान पर प्राचीरका भग्नावशेष मात्र मिलता, किन्तु अधिकांश स्थलमें कोई चिह्नतक देख नहीं पड़ता। ३२ तोरण विद्यमान रहते भी कवाटका अभाव है।

काठमाण्डू क्षुद्र क्षुद्र ३२पल्लियों या टोलोंमें विभक्त है। उनमें आसमान, इन्द्रचक, काठमाण्डू टोला, लवणटोला और राजभवनका निकटवर्ती स्थान ही अधिक प्रसिद्ध है।

नगरके मध्यभागमें दरबार या राजभवन अवस्थित है। यह देखनेमें अधिक सुन्दर न होते भी बहुत बड़ा है। इसका कोई कोई अंश बहुत प्राचीन ब्रह्मदेशीय मन्दिरादिके आकारका बना है। इस प्रासादके मोटे मोटे उत्कीर्ण शिल्प देखनेमें बहुत अच्छे लगते हैं। प्रासादके मध्यका दरबार बने २० वर्ष हुये। राजभवनका आकार कुछ कुछ चतुरस्र और उत्तर ओर नगरमुखको उन्मुक्त है। इस ओर अत्युच्च 'तलिजू' नामक मन्दिर अवस्थित है। दक्षिण और शेष भागमें मल्लखण्डह, 'वसन्तपुर' नामक अट्टालिका और नूतन दीर्घ सभागृह (दरबार) है। पूर्वमें उद्यान और अश्वशाला विद्यमान है। पश्चिममें प्रधान तोरणद्वार है। इसके सम्मुख नगरका प्रधान पथ निकला है। पथके पार्श्वमें हिन्दुओंके अनेक मन्दिर हैं। सभागृहके उत्तर-पश्चिम 'कोट' वा युद्धविग्रहादिका मल्लणागार है। इसी गृहसे १८४६ ई०को भीषण नरहत्याका आदेश निकला था। राजभवनके पश्चिम कचहरी अदालत और सम्मुख अनेक सुन्दर देवमन्दिर हैं। इन मन्दिरोंमें अनेक अति उच्च और बहुतल विशिष्ट हैं। मन्दिरोंका उत्कीर्ण कारु, चित्र और स्वर्णादि वर्णके मुलम्मेका काम बहुत अच्छा है। अनेकोंके समस्त द्वारों पर पीतल या तांबेका मुलम्मा चढ़ा है। मन्दिरोंके कारनिसमें बहुतसी पतली घण्टियां लटकती हैं। कुछ जोरसे हवा चलने पर सब घण्टियां टन टन बजते अति मधुर शब्द होने लगता है। इन मन्दिरोंमें कईके द्वारोंपर प्रस्तरके सिंहादिकी मूर्ति उभय ओर स्थापित हैं।

अनेक सरदारोंने आजकल शहरमें सुन्दर सुन्दर अट्टालिका बनवा शोभा बढ़ायी है।

इस नगरमें एक प्रकार दूसरे मन्दिर भी देख पड़ते, जो स्तम्भपर गुम्बज रख बने हैं। इस श्रेणीके मन्दिर विशेष कारुकार्य न रहते भी देखनेमें बहुत परिष्कार और परिच्छन्न हैं। पूर्वोक्त तलेजू मन्दिर देखनेमें ब्रह्मदेशीय मन्दिरसे मिलता और

मन्दिरोंमें सर्वापेक्षा उच्च लगता है। लोगोंके कथनानुसार १५४९ ई० को राजा महेन्द्रमल्लने यह मन्दिर बनवाया था। अनेक मन्दिरोंके सम्मुख उनके प्रतिष्ठाता प्राचीन राजावोंकी प्रस्तरमूर्ति स्थापित हैं। यह मूर्तियां प्रायः मन्दिरकी ओर घुटने लगा हाथ जोड़े बैठी हैं। उनके मस्तक पर राजसम्मानसूचक धातुनिर्मित सर्पफणा परिशोभित है। फणापर एक क्षुद्र पक्षी बैठा है। राजभवनसे कुछ दूर एक मन्दिरमें एक बड़ा घण्टा लगा और दूसरे दो मन्दिरोंमें एक एक बड़ा दमामा रखा है। समस्त मन्दिरोंमें नानाविध हिन्दू देवदेवीकी मूर्ति विद्यमान हैं।

राजभवनसे २०० गज दूर अर्ध-युरोपीय प्रणालीसे निर्मित 'कोट' नामक अट्टालिका है। जहां यह स्थान बना, वहीं सार जङ्गबहादुरकी (१८४६ ई०) अभ्युदयमूलक भीषण नरहत्या हुयी। राज्यके समस्त सम्भ्रान्त और क्षमताशाली लोग उस समय मर मिटे थे।

यहां कई क्षुद्र मन्दिर हैं। वह एक ही प्रस्तर-खण्डसे निर्मित हैं। उनकी देवमूर्ति एक हस्त प्राय दीर्घ हैं। अनेक मन्दिरोंमें मेष, हंस, छाग और महिषादिका वलिदान होता है।

नगरके पथादि अप्रशस्त और अपरिष्कार हैं। प्रत्येक पथके किनारे नावदान होता, जो कभी परिष्कार नहीं किया जाता। नगरका मैला जमीन्में खाद डालनेके लिये खर्च होता है। गृह प्रायः चतुरस्र, अभ्यन्तर चक्राकार और पथका द्वार अप्रशस्त रहता है। बीचमें चौड़ा चबूतरा बनाते हैं।

उत्तरपूर्वके सिंहद्वार होकर नगरसे निकले पर दक्षिण ओर 'रानीपोखरी' नामक वृहत् दीर्घिका मिलती है। इसके चारो ओर प्राचीर वेष्टित है। दीर्घिकाके मध्यस्थलमें एक मन्दिर है। इसके पश्चिम होकर इष्टकानिर्मित सेतु द्वारा मन्दिरमें प्रवेश करना पड़ता है। मन्दिरके दक्षिण एक वृहत् प्रस्तरके हस्ती-पृष्ठ पर राजा प्रतापमल्लकी मूर्ति उत्कीर्ण है। यही राजा उक्त मन्दिर और दीर्घिकाके निर्माता थे। कुछ दक्षिण ओर आगे बढ़कर बकाइन (Cape lilac) वृक्षकी कतारके बीचसे एक राह नगरसे मैदानमें जा मिली है। पहले इस मैदानमें जङ्गबहादुरकी तलवार लिये मूर्ति ३० फीट ऊंचे स्तम्भ पर रखी थी। पीछेको वह बाघमती नदीके तीर एक प्रासादमें स्थानान्तरित हुयी। इस मैदानकी पश्चिम ओर प्राचीन सेनापति भीमसेन थापाका 'दवंरा' नामक २५० फीट ऊंचा प्रस्तर-स्तम्भ है। इस स्तम्भकी गठनप्रणाली अति सुन्दर है। इन सेनापतिका दूसरा भी वृहदाकार स्तम्भ था, जो १८३३ ई० के भूमिकम्पमें भूमिसात् हो गया। यह स्तम्भ १८५६ ई० को वज्राघातसे टूटा था। १८६९ ई०को इसकी अच्छी मरम्मत हुयी। इसके अभ्यन्तरमें एक गोलाकार सीढ़ी है। इस स्तम्भपर चढ़नेसे नगरकी शोभा अच्छी तरह देख पड़ती थी।

इससे कुछ दक्षिण पुरातन अस्त्रागार है। मैदानके पूर्व पुराना तोपखाना है। यहां बारूद तोप वगैरह तैयार करते हैं। आजकल नगरसे दक्षिण ४ मील दूर तुकू नामक नदीके तीर एक कारखाना खुला है। वहां तोपें बनायी जाती हैं।

इस पथमें पूर्वमुख घूम एक मील चलने पर ठाटपटली नामक स्थान मिलता है। यहां बाघमती तीर अवस्थित जङ्गबहादुरका महल है। इस महलके सामने बाघमतीका मनोहर सेतु उतरते पत्तन नामक स्थान आता है।

काठमाण्डूके रेसीडेण्टका स्थान नगरको उत्तर ओर एक मील दूर है। जगह अच्छी है। लोगोंके कथनानुसार भूतोंका उपद्रव रहनेसे रसीडण्टके वासके लिये यह स्थान मनोनीत हुवा है।

मन्त्री रणदीप सिंह नगरके उत्तर पूर्व पार्श्व एक वृहत् प्रासादमें रहते थे। काठमाण्डूमें १२००० पदातिसैन्य है। पुरानी चालकी २५० बन्दूकें रहती हैं। काठमाण्डू किसी विशेष व्यवसायके लिये प्रसिद्ध नहीं।

काठशाठी (सं० पु०) कठशाठेन प्रोक्तं अधीयते, कठशाठ-णिनि। कठशाठ-कथित शास्त्राध्यायी।

काठिन (सं०क्ली०) कठिनस्य भावः, कठिन-अण्। १ दृढ़ता, कड़ापन। (पु०) २ खर्जूरवृक्ष, खजूरका पेड़।

काठिन्य (सं० क्लो०) कठिनस्य भावः, कठिन-ष्यञ्। १ कठिनता, कड़ापन। २ निष्ठुरता, बेरहमी।

"काठिन्यस्य परीक्षार्थं मङ्‌ कर्मकृतामपि।"

(राजतरङ्गिणी ४।१४४)

काठिन्यफल (सं० पु०) काठिन्यं फले यस्य, बहुव्री०। कपित्थवृक्ष, कैथेका पेड़।

काठियावाड़ (सौराष्ट्र) बम्बई प्रान्तका एक प्रायोद्वीप। यह अक्षा० २०° ४१' एवं २३° ८' उ० और देशा० ६८° ५६' तथा ७२° २०' पू० के मध्य अवस्थित है। काठियावाड़ गुजरातका पश्चिमांश है। यह प्रायोद्वीप २२० मील लम्बा और १६५ मील चौड़ा है। क्षेत्रफल कोई २३४४५ वर्गमील होगा। लोकसंख्या २५ लाखसे अधिक है। इसमें १२४५ वर्गमील भूमिपर गायकवाड़ राज्य करते, १२९८ वर्ग मील अहमदाबाद जिलेके अधीन पड़ते, २० वर्गमील पोर्तगीज़ राज्यमें लगते और २०८८२ वर्गमील पर अन्यान्य देशी राजा अपना प्रभुत्व रखते हैं। इन राजावोंके राज्यकी एक एजेंसी १८२२ ई०में बनी। काठियावाड़ एजेंसी ४ प्रान्तमें विभक्त है—झालावाड़, हालार, सोराठ और गोहेलवाड़। इस एजेन्सीके अधीन राज्य १८६३ ई० से ७ श्रेणियोंमें निबद्ध हैं। प्रथमके ८, द्वितीयके ६, तृतीयके ८, चतुर्थके ९, पंचमके १६, षष्ठके ३० और सप्तम श्रेणीके ५ राज्य हैं।

काठियावाड़ प्रायोद्वीप वर्गाकार है। यह अरब सागरमें कच्छ और गुजरात समुद्र तटके मध्य विद्यमान है। इसके आकार प्रकारसे समझ पड़ता कि पहले यह अग्निउद्गीरण करनेवाले द्वीपोंका एक समूह था। उत्तरीय तटपर रानका उथला जल और पूर्वको लवणाक्त भूमि है। ई० १३ वें और १४वें शताब्दको काठियोंने कच्छसे आ यहां आश्रय लिया और १५ वें शताब्दको इसे अधिकार किया।

पर्वत निम्नश्रेणीके हैं। झालावाड़के पश्चिम ठांगा और माण्डव तथा हालारके कुछ क्षुद्र पर्वतोंको छोड़ इस देशका उत्तरीय विभाग चपटा है। किन्तु दक्षिणमें गोधासे गीर पर्वत बराबर गिरनार तक चला गया है।

भादर प्रधान नदी है। यह माण्डव पर्वतसे निकल बरड़ामें नवी बन्दरके समीप समुद्रमें जा गिरी है। इसकी धाराका परिमाण ११० मील है। नदीके दोनों ओर खेती होती है। दूसरी नदी आजे, माछू, भोगाव और शतरंजी हैं। शतरंजीका वन्य दृश्य सुप्रसिद्ध है।

हंसस्थाल, भावनगर, सुन्दरी, ववलियाली और धोलेरा लवणाक्त जलसे खात हैं।

जयामण्डलके उत्तर-पूर्व कोणपर बेयत बन्दर है। पिराम, चांच, थाल, डिक्क, बेयत और चांक प्रधान द्वीपोंमें गण्य हैं। नव और भेडस छोटे छोटे झील हैं। दक्षिण-पश्चिम कोणपर खाराघोड़ नामक लवणागार है। पारबन्दरका पत्थर अच्छा होता है। काष्ठ बहुमूल्य नहीं। नारियल और जंगली खजूर बहुत है। पहले काठियावाड़में सिंह सवत्र देख पड़ते थे, किन्तु अब गीर वनके अतिरिक्त दूसरे स्थानमें नहीं मिलते। काठियावाड़का जलवायु प्रसन्नताकारक और स्वास्थ्यकर हैं। दक्षिण भागमें तप्त वायु अधिक चलता है। काठियावाड़में पित्तप्रकोपसे ज्वर आ जाता है। जूनागढ़ और राजकोटमें वृष्टि अधिक होती है।

पूर्वतन समय काठियावाड़में ब्राह्मणोंने अपना प्रभाव बहुत बढ़ाया था। जूनागढ़ और गिरनारके बीच अशोककी शिलालिपि (२६५-२३१ पूर्व खृष्टाब्द) मिलती है। ष्ट्राबोने सारओसटोस (Saraostos) सम्भवतः सौराष्ट्रको ही लिखा है। ऐसा होनेसे सेल्यूकस राजावोंने खृष्टपूर्वाब्द १९०—१४४को काठियावाड़ जीता था। अलेकसेन्द्राके वणिक् भी ई० १म तथा २य शताब्दको इससे परिचित थे। किन्तु उन्होंने जिन स्थानोंके नाम लिखे, उनके मिलानेमें विद्वान् उलझ पड़े हैं।

काठियावाड़का प्राचीन इतिहास बहुत कम मिलता है। सम्भवतः क्रमागत मयूर, यूनानी और क्षत्रप इसके अधिपति रहे। फिर गुप्तोंने सेनापतियों द्वारा यहां थोड़े दिन राज्य किया। सेनापतियोंने राजा हो अपने प्रधानोंको वल्लभी नगरमें (भावनगर से १८ मील दूर) रखा था। गुप्त साम्राज्यका पतन होनेसे वल्लभी राजावोंने अपना अधिकार कच्छ तक बढ़ाया और ४७० तथा ५२० ई० को काठियावाड़में

प्रभुत्व चलानेवाले मेरोंको नीचा देखाया। गुप्तसेनापति भट्टारक वल्लभी राजवंशके प्रतिष्ठाता थे। २य ध्रुवसेनके समय (६३२—४० ई०) चीन-परिव्राजक हिउएन चिअङ्ग वल्लभी (व-ल-पी) और सौराष्ट्र (सु-ल-च) आये। वह लिखते हैं,—"यहांके अधिवासी सामान्य हैं। वह लिखना पढ़ना नहीं जानते, किन्तु समुद्र निकट रहनेसे उन्हें लाभ है। वह व्यवसाय और विनिमयमें लगे रहते हैं। उनकी संख्या अधिक है। वह धनी हैं। बौद्ध परिव्राजकोंके अनेक विहार विद्यमान हैं।"

विदित नहीं वल्लभीका पतन कैसे हुवा। सम्भवतः सिन्धुसे मुसलमानोंने आकर इसे दबाया था। फिर राजधानी अनहिलवाड़ उठ गयी (७४६-१२९८ ई०)। उस समय अनेक सामन्त राजा बने। काठियावाड़के पश्चिम जेठवासोंका बल बहुत बढ़ा था। ११९४ ई०को मुसलमानोंने अनहिलवाड़ लूटपाट १२९८ई०को अपने राज्यमें जोड़ा। अनहिलवाड़के राजावोंने झालावोंको उत्तर काठियावाड़में बसाया था। गुहेल (अब पूर्व काठियावाड़में रहनेवाले) १३ वें शताब्दको उत्तरसे मुसलमानोंके सामने हटते आये और अपने लिये नये स्थान अनहिलवाड़के पतनसे जीत पाये। कच्छकी राह पश्चिमसे जाड़ेजावों और काठियोंका आगमन हुवा था। १०२६ ई० को महमूद-गजनवी द्वारा दक्षिण काठियावाड़में सामनाथकी लूट खसोट और ११९४ ई० को अनहिलवाड़का विजय काठियावाड़के मुसलमानी आक्रमणोंकी प्रस्तावना था। १३२४ ई०को जाफर खान् ने सोमनाथका मन्दिर तोड़ा। वह गुजरातके प्रथम मुसलमान राजा थे। उन्होंने १२९६ से १५३५ ई० तक प्रभुताके साथ राज्य किया। १५७२ ई० को अकबरने गुजरात जीता था। काठियावाड़के सरदार अहमदनगरके राजावोंके नीचे रहे। उन्होंने व्यवसाय बढ़ा मांगरोल, वरावाल, डिउ, गोघे और कस्बे बन्दरकी उन्नति की।

कोई १५०९ ई० को समुद्र तट पर पोर्तगीजोंका भय बढ़ा था। हुमायूंके बेटे बाबरसे हार बहादुर डिउमें जा छिपे। फिर पोर्तगीजोंको एक कारखाना बनानेके लिये उन्होंने आज्ञा दी थी। उस कारखानेको पोर्तगीजोंने किलेमें बदल डाला। १५३७ ०को उन्होंने छलसे बहादुरके प्राण लिये थे। आज भी डिउके द्वीप और दुर्गमें पोर्तगीजोंका अधिकार है। १५७२ ई०को अकबरके विजय करने पीछे दिल्लीसे राजप्रतिनिधि या काठियावाड़ शासन करते थे। फिर उनके स्थान पर महाराष्ट्र आये। महाराष्ट्र १७०५ ई०को गुजरात पहुंचे और १७३० ई० तक पूर्ण रूपसे राजा बन बैठे। फिर ५० वर्ष तक काठियावाड़में छोटी छोटी लड़ाइयां होती रहीं। १८ वें शताब्दके अन्तिम भागमें बड़ोदाके गायकवाड़ अपने और अपने प्रभु पेशवाके लिये कर एकत्र करनेको प्रति वर्ष सेना भेजते थे। पश्चिम और उत्तर गुजरातके राजा उनके अधीन थे। १८०३ ई०को निर्बल राजावोंने बड़ोदाके रसीडण्टसे प्रार्थना की कि वह उनको रक्षा करते। राजा अपना राज्य ईष्ट इण्डिया कम्पनीको देनेपर राजी थे। १८०७ ई०को सन्धिके अनुसार काठियावाड़के राजा कर देते हैं। अंगरेज सरकार करका रुपया वसूल करती और बड़ोदाको भरती है। १८१८ ई०के सतारा-आदेशके अनुसार काठियावाड़में अंगरेजोंको पेशवाका स्वत्व मिला था। पत्थर काटकर बनी हुई बौद्धोंको गुफा और मन्दिर जूनागढ़में विद्यमान हैं। शतरंजा पर्वत और गिरनार पर जैनोंके मन्दिर खड़े हैं। कुमल्लोमें कितने ही प्राचीन स्थानोंका ध्वंसावशेष देखते हैं।

काठियावाड़के बहुतसे आदमी बम्बई और अहमदनगरमें रहते हैं। समुद्र तटके मुसलमान दक्षिण अफरीका तथा नेटाल जाते हैं। लोगोंमें हिन्दुवोंकी संख्या अधिक है। भूमि दो प्रकारकी है—लाल और काली। लालमें उपज कम होती है। काली और उपजाऊ भूमिको 'कामपाल' कहते हैं।

भादर नदीकी बगलमें महुवा और लिलियाके पास बहुत उत्तम स्थान है। यहां उत्तम फल और शाक होता है। गन्नेकी उपज अधिक है। चोरवाड़का पान प्रसिद्ध है। झालावाड़के उत्तरीय और पूर्वीय प्रान्तमें रूई बहुत उपजती है। हालारमें ज्वार,

बाजरा और गेहूं अधिक होता है। लिमवडी और काठियावाड़के पूर्वीय समुद्र तटकी भूमिमें खाद डालना नहीं पड़ती। हलदी और मूंग बहुत होती है। सींचके लिये कई तालाव बनाये गये हैं।

काठियावाड़में घोड़े बहुत अच्छे होते हैं। गीरकी गाय भैंसे बड़ी दूध देनेवाली हैं। भेड़ोंका ऊन, रूई और अनाज बाहर भेजा जाता है।

गीरमें १५०० वर्गमीलका जंगल है। वांकानेर और पंचालमें जंगलके लिये भूमि निर्धारित की गई है। भावनगर, मोरवी, गोंडाल और मानावडारमें बबूल लगा है। भावनगरमें छोहारे और आमके बाग़ बनाये गये हैं।

काठियावाड़में पत्थर अच्छा होता है। प्रधान धातु लोहा है। पहले वरडा और खमभालियामें लोहा गलाया जाता था। पोरवन्दरके निकट जो पत्थर निकलता, वह मकान बनानेके लिये बम्बईमें बहुत बिकता है। नवानगरके पास कच्छकी खाड़ीसे अच्छा मोती निकलता है। कुछ मोती भेराई और चांचके पास जूनागढ़ और भावनगरमें भी मिलते हैं। मांगरोल और सोलमें कुछ लाल मूंगा होता है।

काठियावाड़का देश धनी है। रूईका कपड़ा, चीनी और गुड़ बाहरसे मंगाते हैं। सड़कें भी कई बना ली गयी हैं। १८६५ ई०को यहां कोई सड़क न थी।

१८८० ई० को देशी राज्योंके व्ययसे यहां रेल चली। बम्बई-बड़ोदा-मध्यभारत-रेलवेकी कम्पनी १८६२ ई०को पहले पहल काठियावाड़में रेल ले गयी थी।

१८१४-१५ ई० को यहां बड़े बड़े लाखों चूहे निकल पड़े थे। उन्होंने फसलको बड़ी हानि पहुंचायी। १८६६-१६०२ ई०को काठियावाड़में घोर दुर्भिक्ष पड़ा था।

१८२२ ई०से बम्बई गवरनमेण्टके अधीन पोलिटिकल एजण्ट काठियावाड़ शासन करने लगे। १९०३ ई०को उन्हें गवरनरके एजण्टका पद मिला। यहां सैकड़ों अस्पताल खुले हैं।

काठी (हिं० स्त्री०) १ पर्य्याणविशेष, एक तरहका जीन। इसमें काष्ठ लगता है। २ डीलडौल, ढांचा। ३ दियासलायी। ४ काठका म्यान। (वि०) ५ काठियावाड़ सम्बन्धीय।

काठू (हिं० पु०) वृक्षविशेष, एक पौदा। यह कूटूसे मिलता है। हिमालयके अल्प शीत स्थानमें इसकी कृषि की जाती है। काठूका शाक भी बनता है।

काठेरणि (सं० पु०) एक ऋषि।

काठेरणीय (सं० वि०) काठेरणेरिदम्, काठेरणि-छ। काठेरणि ऋषि सम्बन्धीय।

काठों (हिं० पु०) धान्यविशेष, किसी किस्मका धान। यह पञ्जाबमें उपजता है।

काठोडुम्बर (सं० पु०) काष्ठडुम्बरिका, कठगूलर।

काड (अं० पु० = Cod) मत्स्यविशेष, एक मछली। यह उत्तर-समुद्रमें रहता और न्यूफाउण्डलैण्डके किनारे अधिक मिलता है। अमेरिकाके युक्तराज्यमें अटलाण्टिक महासागरके तीर भी एक प्रकारका 'काड' होता है। यह मत्स्य तीन वर्षमें बढ़ कर पूरा निकलता है। इसका दैर्घ्य ६ फीट और परिमाण ६ से ८ सेर तक रहता है। काडका मांस बलकारक है। इसके कलेजेका तेल (Cod liver oil) निर्बल मनुष्योंको खिलाते हैं।

काढना (हिं० क्रि०) १ खींचना, निकालना। २ प्रकाश करना, देखाना। ३ चित्रकारी करना, बेलबूटा बनाना। ४ ऋण लेना, कर्ज करना। ५ पकाना, उतारना, छानना।

काढ़ा (हिं० पु०) क्काथ; जोशांदा, उबाली हुयी दवा।

काण (सं० पु०) कणति एक चक्षुर्निमीलति, कण-अच्। १ काक, कौवा। (त्रि०) २ एक चक्षुविशिष्ट, काना, जिसके एक ही आंख रहे।

काणकपोत (सं० पु०) कपोतभेद, एक कबूतर। यह कषाय, स्वादुलवण और गुरु होता है। (सुश्रुत)

काणत्व (सं० क्ली०) काण होनेका भाव, कानापन।

काणभाग (सं० पु०) त्रिभाग, चार हिस्सेमें तीन हिस्सा।

काणभूति (सं० पु०) पिशाचरूपी एक यक्ष। यह कुवेरके एक अनुचर रहे। नाम सुप्रतीक था। स्थूल-

शिरा नामक किसी राक्षसके साथ इनका बन्धुत्व रहा। कुवेरने उसका साथ छोड़नेको कहा। किन्तु यह बन्धुत्वके अनुरोधसे उसका साथ छोड़ न सके। इसीसे कुवेरके अभिशाप वश इन्हें पिशाच योनिमें उत्पन्न हो काणभूति नामसे विन्ध्याटवी पर कुछ दिन रहना पड़ा। फिर दीर्घजङ्घ नामक अपने भ्राताकी चेष्टा पर पुष्पदन्तके मुखसे इन्होंने महादेव-कथित वृहत्-कथा सुनी और माल्यवान्के निकट उसे प्रकाश करने पर पिशाचयोनिसे मुक्ति मिली। (कथासरित्-सागर)

काणा (सं॰ स्त्री॰) १ काकोली, एक जड़ी बूटी। २ काकिनी, घुंघची। ३ पिप्पली, पीपल।

काणाद (सं॰ त्रि॰) कणादस्य इदम्, कणाद-अण्। १ कणादप्रणीत (शास्त्र)। इसे वैशेषिक वा औलूक्य कहते हैं। कणाद देखो।

२ कणाद-सम्बन्धीय।

काणादामोदर—बङ्गाल प्रान्तके हुगली ज़िलेकी एक नदी। पहले यह दामोदर नदीकी एक शाखा थी। किन्तु आजकल इसने दामोदरको छोड़ दिया है। इसीका निम्नांश काणसोना कहलाता है।

काणानदी—बङ्गालके हुगली ज़िलेकी एक नदी। पहले यह दामोदरका प्रधान भाग थी। किन्तु अब क्षुद्रस्रोत व्यतीत और कुछ भी नहीं। वर्धमानके दक्षिण सलीमाबादके पास वर्तमान दामोदरसे यह पृथक् हुई, फिर दक्षिणाभिमुख जा घिया नदीसे मिली और कुन्ती नदीके नामसे नईसरायके निकट भागीरथीमें गिरी है। इसी नदीमें दामोदरका जल आ पहुंचता है।

काणुक (सं॰ त्रि॰) काण इंसो उकञ्। १ कान्त, कमनीय, चाहने लायक। २ आक्रान्त, दवाया हुआ। ३ पूर्ण, भरापूरा। काणूक देखो।

काणूक (सं॰ पु॰) कणति शब्दायते, कण-उकण् मकनिभ्यामूकोकणौ। उण् ४। ३९।

१ वायस, कौवा। २ कुक्कुट, मुरगा। ३ हंसभेद। ४ करट, एक पक्षी।

काणेय (सं॰ पु॰) काणायाः अपत्यं पुमान्, काणा ढक। १ एक चक्षुहीनाका पुत्र कानी औरतका लड़का। २ काकशावक, कौवेका बच्चा। (त्रि॰) २ काण, काना।

काणेयविध (सं॰ क्लो॰) काणेयानां विषयो देशः, काणेय-विधल। भौरिक्याद्यैष, कार्यादिभ्यो विधल् भक्तलौ। पा ४। २। ५४।

काणेयोंका विषय वा देश।

काणेर (सं॰ पु॰) काणायाः अपत्यं पुमान्, काणा-ढ्रक्। चुद्राभ्यो वा। पा। ४।१।१३१।

१ एकनेत्र स्त्रीका पुत्र, कानीका लड़का। २ काकशावक, कौवेका बच्चा। (त्रि॰) ३ काण, काना।

काणेली (सं॰ स्त्री॰) १ अविवाहिता कन्या, वेब्याही लड़की। २ व्यभिचारिणी, छिनाल।

काणेलीमात (सं॰ पु॰) काणेलीमाता यस्य, वहुव्री॰ १ अविवाहिता स्त्रीके गर्भसे उत्पन्न पुत्र, वेब्याही औरतका लड़का। २ व्यभिचारिणीका पुत्र, छिनालका लड़का।

काण्टकमर्दनिक (सं॰ त्रि॰) कण्टकमर्दनेन निर्वृत्तम्, कण्टकमर्दन-ठक्। निर्वृत्ते ऽक्षद्यूतादिभ्यः। पा ४।४।१९।

कण्टक वा शत्रु मर्दन द्वारा सम्पादित, जो कांटों या दुश्मनोंके कुचलनेसे हासिल हो।

काण्टकार (सं॰ त्रि॰) कण्टकारस्य अवयवो विकारो वा, कण्टकार-अञ्। प्राणिरजतादिभ्योऽञ्। पा ४।३।१५४।

कण्टकारके काष्ठसे निर्मित, जो किसी कंटीले पेड़की लकड़ीसे बना हो।

काण्ठेविद्धि (सं॰ पु॰) कण्ठेविद्धस्य ऋषेः अपत्यं पुमान्, कण्ठेविद्ध-इञ्। कण्ठेविद्ध नामक ऋषिके पुत्र।

काण्ड (सं॰ पु॰ क्ली॰) कणि-ड दीर्घश्च। १ दण्ड, छड़। २ नाल, डाल। ३ वाण, तीर। ४ शरहच, रमसर। ५ अश्व, घोड़ा। ६ कई एक जातीय वस्तुका एकत्र समावेश, ढेर। ७ परिच्छेद, बाब। ८ अवसर, मौका। ९ प्रस्ताव। १० जल, पानी। ११ तृणादिका गुच्छ, घासका गुच्छा। १२ तरुप्रकाण्ड, पेड़का तना। १३ निर्जनस्थान, सूनी जगह। १४ श्लाघा, चापलूसी। १५ व्यापार, काम। १६ पर्व। १७ हस्त, बोंड़ी। १८ अक्षोट वृक्ष, एक पेड़। १९ एक सन्धिके निकटसे अन्य सन्धि पर्यन्त दीर्घ अस्थि, लम्बी हड्डी। २० विभाग, महकमा। २१ गुप्तस्थान, पोशीदा जगह।

काण्डक (सं॰ पु॰) बालुककर्कटी, एक ककड़ी।

काण्डकटुक (सं० पु०) काण्डे लतायां कटुकः, ७-तत्। कारवेल्लक, करेला। कारवेल्ल देखो

काण्डकण्ट (सं० पु०) १ अपामार्ग क्षुप, लटजीरेका पेड़। २ श्वेतापामार्ग, सफेद लटजीरा।

काण्डकण्टक, काण्डकण्ट देखो।

काण्डकाण्डक, काण्डकाण्डक देखो।

काण्डका (सं० स्त्री०) १ करालत्रिपुटा, किसी किस्मका धान। २ वालुकीकर्कटी, एक ककड़ी। ३ अलाबु, लौकी।

काण्डकाण्डक (सं० पु०) काण्डस्य शरवृक्षस्य, काण्डमिव काण्डं यस्य, काण्डकाण्ड-कप्। १ काशतृण। २ बदरी वृक्ष, बेरका पेड़।

काण्डकार (सं० क्ली०) काण्डं स्कन्धं किरति दीर्घतया उत्क्षिपति, काण्ड-कृ-अण्। १ गुवाक, सुपारी। (पु०) काण्डं बाणं करोति। २ बाणनिर्माता, तीर बनानेवाला।

काण्डकीर, काण्डकार देखो।

काण्डकीलक (सं० पु०) काण्डे स्कन्धे कीलमिव यस्य, काण्डकील-कप्। लोध्रद्रुम, लोधका पेड़।

काण्डकुण्ड (सं० पु०) एक ऋषि।

काण्डखेट (सं० त्रि०) अधम, खराब।

काण्डगुड़, काण्डगुण्ड देखो।

काण्डगुण्ड (सं० पु०) काण्डेन गुच्छेन गुण्डयति वेष्टयति भूमिम्, काण्डगुण्डि-अण्। १ गुण्डवृक्ष, एक पेड़। २ त्रिधारातृण, एक घास।

काण्डगोचर (सं० पु०) काण्डस्य बाणस्य गोचर इव गोचरो यस्य, मध्यपदलोपी कर्मधा०। नाराच नामक एक लौहमय अस्त्र, लोहेका तीर।

काण्डग्रह (सं० पु०) काण्डस्य विषयस्य प्रकरणस्य वा ग्रहः ज्ञानम्। काण्डज्ञान, उपस्थित प्रकरण वा विषयमात्रके अर्थका बोध।

काण्डग्रहरहित (सं० त्रि०) काण्डग्रहेण रहितः हीनः, ३-तत्। काण्डज्ञानशून्य, जो कोई भी बात समझता न हो।

काण्डचारी (सं० पु०) काण्डे तरुशाखायां चरति, काण्ड-चर-णिनि। वृक्षकी शाखापर विचरण करनेवाला पक्षी, जो चिड़िया पेड़की डाल पर घूमती हो।

काण्डचित्रा (सं० स्त्री०) सर्पजातिभेद, किसी किस्मका सांप।

काण्डज्ञान (सं० क्ली०) काण्डस्य प्रकरणस्य विषयस्य वा ज्ञानम्, ६-तत्। १ विषयज्ञान, बातकी समझ। २ प्रकरणबोध, सिलसिलेका इल्म। ३ साधारण ज्ञान, मामूली समझ।

काण्डणी (सं० स्त्री०) काण्डेन स्तम्बेन नीयतेऽसौ, काण्ड-नी-क्विप्-ङीप् णत्वम्। सूक्ष्मपर्णी लता, एक बेल।

काण्डतिक्त (सं० पु०) काण्डे स्कन्धे तिक्तः, ७-तत्। किराततिक्त, चिरायता।

काण्डतिक्तक (सं० पु०) काण्डतिक्त स्वार्थे कन्। चिरायता।

काण्डधार (सं० पु०) काण्डं धारयति अत्र, काण्ड-धृ-णिच्-अच्। १ देशविशेष, एक मुल्क। (त्रि०) स अभिजनोऽस्य, काण्डधार-अञ्।

सिन्धुतक्षशिलादिभ्यो ऽणञौ। पा ४।३।९३।

२ काण्डधार देशवासी, काण्डधार मुल्कका रहनेवाला।

काण्डनी (सं० स्त्री०) १ रामदूती, एक बेल। २ नागवल्लीलता, पानकी बेल।

काण्डनील (सं० पु०) काण्डे स्कन्धे नीलः कीटवत्त्वात्। लोध्र, लोध।

काण्डपट (सं० पु०) काण्डे काष्ठादिनिर्मितस्तम्भे स्थितः पटः, मध्यपदलोपी कर्मधा०। यवनिका, परदा।

काण्डपटक, काण्डपट देखो।

काण्डपतित (सं० पु०) नागराजविशेष, सांपोंके एक राजा।

काण्डपात (सं० पु०) बाणका पतन वा गमन, तीरका गिराव या उड़ान।

काण्डपुङ्खा (सं० स्त्री०) काण्डस्य बाणस्य पुङ्ख इव पुङ्खो यस्याः। शरपुङ्खा, सरफोंका।

काण्डपुष्प (सं० क्ली०) काण्डात् स्कन्धं व्याप्य पुष्पं यस्य, बहुव्रो०। द्रोणपुष्प, चौना।

काण्डपृष्ठ (सं० पु०) काण्डः बाणः पृष्ठे यस्य, बहुव्रो०। १ शस्त्राजीव, व्याध, शिकारी। २ वेश्यापति। (क्लो०)

काण्डं तरुस्कन्ध इव स्थूलं पृष्ठं यस्य। ३ स्थूलपृष्ठधनुः, मोटी पीठवाली कमान। ४ महावीर कर्णका धनु।

कांडभग्न (सं० क्ली०) काण्डे अस्थिखण्डे भग्नम्, ७ तत्। अस्थिभङ्गविशेष, हड्डियोंका टूटाव। यह बारह प्रकारका होता है।

कांडभङ्ग (सं० पु०) अस्थिभङ्ग, हड्डीकी टूट।

कांडमध्या (सं० स्त्री०) काण्डवल्ली, एक वेल।

काण्डमय (सं० त्रि०) वेंतका बना हुवा।

काण्डरुहा (सं० स्त्री०) काण्डात् छिन्नस्कन्धात् रोहति, काण्ड-रुह-क-टाप्। कटुकी, कुटकी।

काण्डर्षि (सं० पु०) काण्डस्य वेदविभागस्य ऋषिः यद्वा कांडेषु, एकजातीयक्रियादिसमवायेषु ऋषि विचारकः। किसी देवकाण्डके अध्यापक एक मुनि। पूर्व मीमांसाशास्त्रके प्रणयनसे क्रियाकांडके विचारक जैमिनि, उत्तर मीमांसारूप वेदान्तशास्त्रके प्रणयनसे ज्ञानकाण्डके विचारक वेदव्यास और भक्तिशास्त्रके प्रणयनसे भक्तिकाण्डके विचारक शांडिल्य ऋषि 'काण्डर्षि' कहाते हैं।

कांडलाव (सं० त्रि०) काण्डं लुनाति, काण्ड-लु-अण्। वृक्षस्कन्धका छेदनकारक, पेड़की डाल काटनेवाला।

कांडवल्ली (सं० स्त्री०) कारवेल्लीलता, छोटे करेलेकी वेल। यह दो प्रकारकी होती है—त्रिधारा और चतुर्धारा। यह कटु, तिक्त उष्ण, सर, पित्तल और कफ, गुल्म, लूता, दुष्टव्रण, प्लीहोदर, अग्निमान्द्य, शूल, वात तथा मलस्तम्भ नाशक है। त्रिधारा सर, लघु, अग्निदीपन, रुच, उष्ण, मधुर और वात, क्रमि, अर्श तथा कफनाशन होती है। चतुर्धारा अति उष्ण और भूतोपद्रव, शूल, आध्मान, वात, तिमिर, वातरक्त और अपस्मार नाशक है। (वैद्यकनिघण्टु)

काण्डवान् (सं० पु०) काण्डः शरः प्रहरणतया अस्त्यस्य, कांड-मतुप् मस्य वः। कांडीर, तीरन्दाज।

काण्डवारिणी (सं० स्त्री०) काण्डान् संग्रामापतितान् वाणान् वारयति स्मरणादेव इति शेषः, काण्ड-वृ-णिच्-णिनि-ङीप्। दुर्गा।

"महाकालघटाटोपसंयुगे शरवाजिनाम्।
स्मरणाद्वारयते बाणान् तेन सा काण्डवारिणी।" (देवीपुराण ४५ अ०)

काण्डवीणा (सं० स्त्री०) काण्ड इव स्थूला वीणा, मध्यपदलोपी कर्मधा०। चंडालवीणा, वेंतोंका बना एक बाजा।

काण्डशाखा (सं० स्त्री०) १ महिषवल्ली, एक वेल। २ सोमवल्ली, एक लता।

काण्डसन्धि (सं० पु०) काण्डस्य स्कन्धस्य सन्धिः मिलनस्थानम्, ६-तत्। ग्रन्थि, गांठ।

काण्डस्पृष्ठ (सं० त्रि०) स्पृष्टं गृहीतं काण्डं येन, निष्ठान्तत्वात् परनिपातः। शस्त्राजीव, हथियारके सहारे अपना काम चलानेवाला।

कांडहिता (सं० स्त्री०) लोध्रत्वच, लोधका पेड़।

कांडहीन (सं० क्ली०) कांडेन स्कन्धेन हीनम्, ३ तत्। १ भद्रमुस्ता, एक प्रकारका मोथा। (पु०) २ लोध्र, लोध।

कांडा (सं० स्त्री०) मुषली, मूसर।

कांडानुक्रम (सं० पु०) कांडस्य अनुक्रमः। तैत्तिरीय संहिताकी कांडसमूहका सूचीपत्र।

कांडानुक्रमणिका (सं० स्त्री०) कांडस्य अनुक्रमणिका। तैत्तिरीय संहिताका सूचीपत्र।

कांडानुक्रमणी (सं० स्त्री०) कांडस्य अनुक्रमणी अनुक्रमणम्। तैत्तिरीय संहिताका सूचीपत्र।

कांडारोपण (सं० क्ली०) एक माङ्गल्य क्रिया। देवमूर्तिके चारो ओर चार कांड (तीर) काट कर लगानेसे यह क्रिया सम्पन्न होती है।

कांडाल, काण्डोल देखो।

कांडिक (सं० पु०) काण्डिका देखो

कांडिका (सं० स्त्री०) कांडः गुच्छः बाहुल्येन अस्यास्ति, कांड-ठन्-टाप्। १ लङ्का नामक धान्यविशेष, एक अनाज। २ अलाबु, लौकी। ३ पञ्चाङ्गीलता, एक वेल।

कांडिनी (सं० स्त्री०) हरित गुंडीलता, एक वेल।

कांडी (सं० त्रि०) कांडः गुल्मः प्राशस्त्येन अस्त्यस्य, कांड-इनि। प्रशस्त गुल्मयुक्त।

काण्डी—सिंहलकी मध्यवर्ती काण्डी नामक अधित्यकाका प्रधान नगर। यह अक्षा० ७° १७´ उ० और देशा० ८०° ४८´ पू० पर अवस्थित है।

काण्डीका प्राचीन नाम श्रीवर्धनपुर है। पूर्व-कालको सिंहलके राजा यहीं राजत्व करते थे। १८१५ ई० को मगदा-महा-नवेरा नामक स्थानमें राज विक्रमराज सिंहके साथ अंगरेजोंका एक युद्ध हुवा। उस युद्धमें सिंहलके राजा पराजित और वन्दी हुये। फिर अंगरेजोंने काण्डी अधिकार किया था। तबसे काण्डी अंगरेजोंके अधिकारमें है।

यहां काण्ड्य जातिका वास है। यह पहाड़ पर रहते हैं। सब बलवान्, स्थूलकाय और साहसी हैं। अधिकांश प्राय बौद्ध धर्मावलम्बी हैं। फिर भी अंगरेजोंके आने पीछे किसी किसीने ईसाई धर्म अवलम्बन किया है। पहले इनमें बहुविवाह यथेष्ट प्रचलित था। ५।७ भ्राता एक स्त्रीका पाणिग्रहण कर सकते थे। सन्तान उक्त भ्रातवोंमें ज्येष्ठको ही पिता सम्बोधन करते थे। पुरुष अपनी मनोमत बहु स्त्री ग्रहण कर सकता था। ऐसा प्राय: पुरुषके प्रति स्त्रीका अनुराग होनेसे होता था। स्त्री यदि पतिको ले अपने पिटगृहमें रहे, तो अपर भ्राताकी भांति पितृसम्पत्ति पर अधिकार मिले। किन्तु पतिको अपने पूर्व विषयका आश्रय छोड़ आना पड़ता है। फिर यदि स्त्री जाकर स्वामीके गृहमें रहे, तो उसका पितृसम्पत्ति पर कोई अधिकार नहीं; किन्तु पतिपर उसका कर्तृत्व चलता है। १८५६ ई० से अंगरेज गवरनमेण्ट काण्ड्य जातिकी कुप्रथा उठानेको चेष्टित हुयी है। आज भी स्त्रीपुरुष मत होनेसे परस्पर विवाह बन्धन छेदन कर सकते हैं। किन्तु यदि विवाह-भङ्गके ८ मास मध्य स्त्रीके पुत्रादि हो, तो पूर्व पति उस पुत्रको लेता और उसका भरण पोषण करता है। सिंहल देखो।

काण्डीर (सं०पु०) काण्ड: स्तम्ब: अस्त्यस्य, कांड-ईरन्। काण्डाण्डादीरन्नीरचौ। पा ५।२।१११।
१ अपामार्ग, चिटचिरा। २ कारवल्ली लता, करैलेकी बेल। इसका संस्कृत पर्याय—काण्डकटुक नासा-संवेदन, पटु, अग्रकांड, स्रोमवल्ली, कारवल्ली और सुकाण्डिका है। राजनिघण्टुके मतसे यह कटु, तिक्त, उष्ण, सारक और दुष्टव्रण, लूताविष, गुल्म, उदर, प्लीहा, शूल तथा मन्दाग्नि विनाशक होता है।

काण्डीरा (सं०स्त्री०) काण्डीर-टाप्। १ मञ्जिष्ठा, मजीठ। २ कारवेल्लक, करेला। ३ अमृतस्रवा, एक बेल।

काण्डीरी (सं० स्त्री०) काण्डीर-ङीष्। काण्डीरा देखो।

काण्डेक्षु (सं० पु०) काण्डे इक्षुरिव। १ श्वेत इक्षु, सफेद ऊख। भावप्रकाशके मतसे यह वातप्रकोपन होता है। २ कृष्ण इक्षु, काली ऊख। ३ काशतृणभेद, एक लम्बी घास। ४ कोकिलाक्षवृक्ष, तालमखानेका पेड़।

काण्डेरी (सं० स्त्री०) काण्डं बाणाकारं पुष्पं ईर्ते प्राप्नोति, काण्ड-ईर-अण्-ङीष्। नागदन्ती वृक्ष। नागदन्ती देखो।

काण्डेरुहा (सं० स्त्री०) काण्डे रोहति, काण्डे-रुह-क-टाप्। कटुकी, कुटकी।

काण्डोल (सं० पु०) कण्डोल स्वार्थे अण्। १ वांसका टोकरा। २ उष्ट्र, ऊट।

काण्व (सं० पु०) कण्वस्य अपत्यं पुमान्, कण्व-अण्। १ कण्व ऋषिके पुत्र। २ कण्ववंशीयके छात्र। ३ यजुर्वेदकी एक शाखा। ४ कण्वदृष्ट सामवेद। (त्रि०) ५ काण्वसम्बन्धीय।

काण्वक (सं० क्ली०) कण्वेन दृष्टं साम, कण्व-वुञ्। कण्वदृष्ट सामविशेष।

काण्वशाखी (सं० पु०) वेदकी काण्वशाखाका अनुयायी।

काण्वायन (सं० पु०) कण्व-अण्-फक्। १ कण्व-वंशीय वेदोक्त प्राचीन ऋषि। २ श्रौत और गृह्यसूत्रके रचयिता एक ऋषि। ३ कण्ववंशीय राजा। किसी समय यह वंश भारतवर्षमें राजत्व रखता था। ब्रह्माण्ड, विष्णु, मत्स्य तथा भागवत पुराणके मतसे—कण्ववंशीय महामति वसुदेवने शुङ्गवंशीय शेष नृपति देवभूमिको मार राज्य पालन किया।

ब्रह्माण्डपुराणमें कहा है,—

"पार्थिवो वसुदेवस्तु साम्यादुत्पाद्यनिर्नं नृपम्।
देवभूमिं ततोऽन्यस्य शुङ्गेषु भविता नृप: ॥
भविष्यति समा राजा नव काण्वायनस्तु स:।
भूमिमित्र: सुतस्तस्य चतुर्दश भविष्यति ॥
भविता द्वादश समा तस्मान्नारायणो नृप:।
सुशर्मा तत् सुतश्चापि भविष्यति समा दश ॥

चत्वारः शुङ्गभृत्यास्ते नृपाः कारावायना द्विजाः।
भाव्याः प्रणतसामन्ताश्चत्वारिंशच्च पञ्च च॥
तेषां पर्यायकाले तु नृपोऽन्ध्रोऽपि भविष्यति।
कारावायन मात्योऽन्त्य सुशर्माणं प्रसह्य तम्॥"

मत्स्यपुराणमें भी लिखा है,—

"अमात्यो वसुदेवस्तु प्रसह्य ह्यवनीं नृपः॥ ३१
देवभूमिमथोत्साद्य शौङ्गस्तु भविता नृपः।
भविष्यति समा राजा नव कारावायनो नृपः॥ ३२
भूमिमित्र सुतस्तस्य चतुर्दश भविष्यति।
नारायणः सुतस्तस्य भविता द्वादशैव तु॥ ३३
सुशर्मा तत् सुतश्चापि भविष्यति दशैव तु।
इत्येते शुङ्गभृत्यास्तु स्मृताः कारावायना नृपाः॥ ३४
चत्वारिंशत्पञ्च चैव भोक्ष्यन्तीमां वसुन्धराम्।
एते प्रणत सामन्ता भविष्या धार्मिकाश्च ये।
येषां पर्यायकाले तु भूमिरान्ध्रान् गमिष्यति॥" ३५

(मत्स्यपुराण २७२ अ०)

उक्त ब्रह्माण्ड और मत्स्यपुराणके वचनानुसार समझते कि वसुदेव प्रथम शुङ्गराज देवभूमि * के अमात्य थे। पीछे उन्होंने अपने प्रभुको मार राज्य लिया। उनके वंशीय राजा 'शुङ्गभृत्य' नामसे भी प्रसिद्ध हुये। ब्रह्माण्ड, मत्स्य और विष्णुपुराणके मतसे कारावायन राजावोंका राजत्वकाल सब मिलाकर ४५ वर्ष था। उसमें वसुदेवने ८, वसुदेवके पुत्र भूमिमित्र वा भूतिमित्रने १४, भूमिमित्रके पुत्र नारायणने १२ और नारायणके पुत्र सुशर्माने १० वर्ष मात्र राज्यशासन किया। किन्तु श्रीमद्भागवतको देखते कारावयंशीय राजावोंका राज्य ३४५ वर्ष चला था। यथा,—

"शुङ्गं हत्वा देवभूतिं कराबोऽमात्यस्तु कामिनम्।
स्वयं करिष्यते राज्यं वसुदेवो महामतिः॥ १९
तस्य पुत्रस्तु भूमित्रस्तस्य नारायणः सुतः।
कारावायना इमे भूमिं चत्वारिंशच्च पञ्च च॥
शतानि त्रीणि भोक्ष्यन्ति वर्षाणाञ्च कलौ युगे॥" २०

(भागवत, १२ स्क० १ अ०)

पाश्चात्य पुराविदोंने कारावायन राजावोंका शासनकाल इस प्रकार स्थिर किया है,—

वसुदेव	खृष्टपूर्वाब्द	७६ से ६१
भूमिमित्र	"	६१ से ५३
नारायण	"	५३ से ४१
सुशर्मा	"	४१ से ३१

(R. Sewells Dynaties of Southern India, p.7)

सुशर्माको मार उनके किसी अन्ध्रजातीय भृत्यने राज्य लिया था।†

कारावीपुत्र (सं० पु०) करावस्य अपत्यं पुमान् काराव्यः स्त्रियां ङीप् यलोपः कारावी; काराव्याः पुत्रः ६-तत्। करावयंशीय एक ऋषि।

कारावीय (सं० त्रि०) कारावस्य इदम्, काराव-छः करावयंशीयोंसे सम्बन्ध रखनेवाला।

काराव्य (सं० पु०) करावस्य अपत्यं पुमान्, कराव-यञ्। १ करावपुत्र। २ करावयंशीय। ३ कराव सम्बन्धीय।

काराव्यायन (सं० पु०) काराव्य-फक्।

यञिञोश्च। पा ४।१।१०१।

करावयंशीय।

कात् (सं० अव्य०) कुत्सितं अतति अनेन, कु-अत क्विप् कोः का-देशः। तिरस्कार, फटकार।

"यन्मदैश्वर्यमत्तेन गुरुः सदसि कात्कृतः।" (भागवत ६।७।८)

कात (हिं० पु०) १ अस्त्रविशेष, एक कैंची। इससे भेड़ोंके बाल कतरे जाते हैं। २ मुरगेका कांटा।

कातना (हिं० क्रि०) कार्पाससे सूत्र प्रस्तुत करना, रूईसे सूत बनाना। कातनेका यंत्र रहंटा कहाता है।

कातंत्र (सं० क्ली०) कु ईषत् तंत्रं अस्य, कोः कादेशः। कलाप व्याकरण। शर्ववर्मा इसके सङ्कलनकर्ता थे। बृहत् कथासारमें इस व्याकरणके सङ्कलन सम्बन्धपर लिखा है,—एक समय कार्तिकेयने शर्ववर्माके प्रति अनुग्रह कर दर्शन दिया। कुमारको कृपासे शर्ववर्माके मुखमें सरस्वतीका आविर्भाव हो गया। फिर कार्तिकेयने उन्हीं मुखसे 'सिद्धोवर्णसमाम्नायः' सूत्र उच्चारण

* भागवत और विष्णुपुराणके मतसे 'देवभूति' नाम था।

† उस अन्ध्रभृत्यका नाम ब्रह्माण्डपुराणके मतसे 'सिन्धुक' था। किन्तु मत्स्यपुराणमें 'शिशुक', विष्णुपुराणमें 'शिप्रक' और भागवतमें 'वृषल' लिखा है।

किया था। शर्मवर्मा भी सुनते ही उसका परवर्ती सूत्र पढ़ने लगी। कार्तिकेयने इससे सन्तुष्ट हो शर्मवर्माको उक्त व्याकरणप्रणयन करनेके लिए आदेश दिया और 'कातंत्र' तथा 'कलाप' नाम निर्देश किया। कलाप देखो। त्रिलोचनदासने 'कातंत्रपञ्जिका' नाम्नी एक टीका बनाई है।

कातर (सं० पु०) कं जलं आतरति, क-आ-तृ-अच्। १ मत्स्यविशेष, एक मछली। यह मधुर, गुरु और त्रिदोषघ्न होता है। राजनिघण्टु।

२ एक ऋषि। (त्रि०) ३ व्याकुल, घबराया हुआ। ४ भीत, डरा हुआ। ५ विवश, लाचार। ६ चञ्चल, डावांडोल।

कातर (हिं० पु०) १ जबड़ा। (स्त्री०) २ कोल्हूका तख्ता। यह कोल्हूकी कमरमें लगता और चारो ओर चला करता है। कोल्हू पेरनेवाला इसी पर बैठ कर बैल हांकता है।

कातरता (सं० स्त्री०) कातरस्य भावः, कातर-तल्। १ व्याकुलता, घबराहट। २ भीरुता, डरपोकपन।

कातराचार (सं० पु०) नृत्यका एक हस्तक, नाचकी एक चाल।

कातरायण (सं० पु०) कातरस्य ऋषेरपत्यं पुमान्, कातर-फक्। कातर ऋषिके पुत्रादि।

कातरोक्ति (सं० स्त्री०) कातरस्य उक्तिः, ६-तत्। कातर व्यक्तिका वाक्य, डरपोककी बात।

कातर्य (सं० क्ली०) कातरस्य भावः, कातर ष्यञ्। कातरता, डरपोकपन।

कातल (सं० पु०) कातर एव रस्य लः। १ मत्स्यविशेष, एक मछली। २ एक ऋषि।

कातलायन (सं० पु०) कातलस्य ऋषेरपत्यं पुमान्, कातल-फक्। १ कातल ऋषिके पुत्रादि। २ मत्स्यविशेषका बच्चा।

काता (हिं० पु०) १ चाकू, छुरा। इससे बांस काटते या छीलते हैं। २ सूत, डोरा।

कातावारी (हिं० स्त्री०) जहाजकी एक कांडी। यह पतली रहती और जहाजमें बेंड़ी धरनोंपर लगती हैं। इसी पर तख्ते जड़ते हैं।

काति (सं० स्त्री०) १ स्तव, तारीफ। (त्रि०) २ अभिलाषी, ख्वाहिशमन्द।

कातिक (हिं०) कार्तिक देखो।

कातिकी (हिं० स्त्री०) कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा, कार्तिक सुदी पूरनमासी, कतकी। कार्तिकी देखो।

कातिब (अ० पु०) लिपिकार, लिखनेवाला।

कातिल (अ० पु०) हन्ता, मार डालनेवाला।

काती (हिं० स्त्री०) १ कैंची, कतरनी। २ चाकू, छुरी। ३ छोटी तलवार।

कातीय (सं० त्रि०) कात्यायनस्य इदम्, कात्यायन-छ फको वा लुक्। १ कात्यायन-सम्बन्धीय। (पु०) २ कात्यायनके छात्र।

कातु (सं० पु०) कं जलं अतति सातत्येन गच्छति, क-अत-उन्। कूप, कूवां।

कातृण (सं० क्ली०) कु कुत्सितं क्षुद्रं वा तृणं कोः कादेशः। १ रोहिषतृण, एक खुशबूदार घास।

कातोली (सं० स्त्री०) कोहलसुरा, एक शराब। यव, माष आदिके पिष्टसे उत्थित सुरा 'कातोली' कहाती है।

कात्कृत (सं० त्रि०) अपमानित, बेइज्जत किया हुआ।

कात्त्रेय (सं० त्रि०) कत्त्रेरिदम्, कत्त्रि-ढकञ्।

कत्त्र्यादिभ्यो ढकञ्। पा ४।२।९५।

कत्त्रि-सम्बन्धीय, तीन छोटी चीजोंसे सम्बन्ध रखनेवाला।

कात्यक (सं० पु०) कत्य-वुन् स्वार्थे अञ्। अग्नि-विशेष। (निरुक्त ७।१४)

कात्य (सं० पु०) कतस्य ऋषेर्गोत्रापत्यम्, कत-यञ्। कात्यायन ऋषि।

कात्यायन (सं० पु०) कतस्य गोत्रापत्यम्, कत-यञ्-फक्। १ अति प्राचीन ऋषिविशेष। यजुर्वेदीय तैत्तिरीय आरण्यक (१३।४।२२), सांख्यायन आरण्यक (८।१०), आश्वलायन श्रौतसूत्र (१२।१३।१५), रामायण एवं पाणिनिकी अष्टाध्यायी (४।१।१८) में भी इनका नाम मिलता है। यह कात्यायन गोत्र-प्रवर्तक समझे पड़ते हैं। स्कन्दका नागरखण्ड, १०८।१६ देखो।

२ धर्मशास्त्रकारक एक मुनि। धर्मग्रन्थके पाठसे

कई कात्यायनोंका परिचय पाते हैं। उनमें विश्वामित्र-वंशीय, गोभिलपुत्र और सोमदत्तके पुत्र वररुचि कात्यायन ही प्रधान हैं। १म विश्वामित्र-वंशीय कात्यायन मुनिने 'कात्यायनश्रौतसूत्र', 'कात्यायन-गृह्यसूत्र', और 'प्रतिज्ञासूत्र' बनाया था। कात्यायन श्रौतसूत्रको कोई कोई 'कातीयश्रौतसूत्र' कहता है।

कात्यायन श्रौतसूत्रके १म अध्यायकी १म कण्डिकामें यह विषय लिखित हैं,—वेदवेदाङ्गाध्यायी सपत्नीक द्विज और रथकारका अग्निस्थापनादि कार्यमें अधिकार; अङ्गहीन, क्लीव, पतित और शूद्रका अधिकार, निषाद एवं सूत्रधरका गावेधुक नामक चरुमें अधिकार, व्रतलङ्घनकारियोंका गर्दभयज्ञ नामक प्रायश्चित्तमें अधिकार, गावेधुक चरु तथा व्रतलङ्घनकारियोंके प्रायश्चित्तरूप गर्दभयज्ञको लौकिकाग्निमें कर्तव्यता, गर्दभयज्ञमें कपालपर घृतदान न कर भूमि ही पर घृतदानका विधि, अग्निमें शुद्धिकारक होम न कर जलमें करनेका विधान, अन्यान्य आधारका अग्निमें ही करनेका विधि, गर्दभके शिश्नदेशसे प्राशित्रप्रदान; यज्ञसमूह, विहार-विषय, गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्निमें कर्तव्य वैदिक कर्म, आवसथ्य अर्थात्—गृह्यसम्बन्धीय लौकिक अग्निमें स्मृतिविहित कर्तव्य और मांसपाकके निषेधकी व्यवस्था। २य कण्डिकामें देवतागणके उद्देशसे द्रव्यत्यागरूप याग, यागलक्षण, अमावस्या और पौर्णमासी आदि शब्दका अर्थबोधक एक त्याग, उसका प्राधान्य, इस प्रकरणपठित अन्वाधानसे ब्राह्मणोंकी दक्षिणा पर्यन्त कर्मसमूहकी अङ्गता, इसीप्रकार प्रयाज तथा पूर्वाघार प्रभृति होमविधि, उसका अङ्गसमूह, होममें दण्डायमान हो वषट्कार-प्रदान, यजति शब्दका अर्थ, उपविष्ट हो स्वाहाकार प्रदान, जुहोति शब्दका अर्थ, समुदाय कर्ममें ब्राह्मणका पौरहित्यविधि, क्षत्रियवैश्यगणको यज्ञशिष्ट हविर्भोजनमें निषेधके लिये पौरहित्यमें निषेध, फललाभमें अभिलाषी होते काम्यकर्मकी अवश्य कर्तव्यता, अग्निहोत्रादि नित्यकर्मकी अवश्यकर्तव्यता, न करनेपर उसके दोषका विधान, दीक्षित व्यक्तिका सत्यवाक्य, भूमितलमें शयन तथा ब्रह्मचर्यादि नियमकी अवश्य-कर्तव्यता, इच्छानुसार अनुष्ठान न करते गृहदाह एवं धनहानि प्रभृति कारणसे प्रायश्चित्तकी अवश्य-कर्तव्यता, यथाशक्ति नित्य कर्मसमूहका प्रतिपालन, काम्य कर्मका सर्वाङ्गरूपसे प्रतिपालन और कामना रहते भी काम्यकर्मका अनुष्ठान न करते जब वैदिक अङ्गसमुदाय सम्पन्न करनेकी सामर्थ्य हो; तभी करनेका विधि। ३य कण्डिकामें—ऋक्, यजुः, साम और प्रैष भेदसे चार प्रकार मन्त्र, ऋक् प्रभृतिका लक्षण, यजुके जिस परिमित पद उच्चारण करते पदसमूहकी आकाङ्क्षा शून्य हो, कर्मकालमें उसी परिमित वाक्यका प्रयोगविधि, जहां पठित पदसमूह द्वारा यजुः आकाङ्क्षा शून्य न हो, वहीं यथायोग्य पद अध्याहार कर अथवा पूर्व पठितपद संयुक्त कर आकाङ्क्षाशून्य करनेका विधान, कर्मके आरम्भमें मन्त्र-प्रयोगविधि, यजुर्वेदीय मन्त्रसमूह ऐसे स्वरमें जिसमें अन्य सुन न सके और ऋग्वेद एवं प्रैष मन्त्र उच्चैःस्वरसे प्रयोग करनेका नियम, बर्हिःशब्दका कुशजाति-मात्र अर्थ, सात्त्विक ब्राह्मणकी होमग्रहादि और वसुधारा होम प्रभृतिमें संख्याका कोई नियम न रहते जिस परिमित संख्यामें कार्यसिद्धि हो वही ग्रहण करनेका विधि, इध्मबर्हिर्बन्धनके लिये संनहन और विषम संख्या तृणमुष्टिका वह नियम, (संनहनमें भेद, यथा—

१ उत्तरदिक्‌को बर्हिर्भागमें अग्रभाग स्थापनपूर्वक वरमाकी भांति दृढ़ रूपसे बन्धनकर बाहर मूलदेशमें ग्रन्थि गोपनकर रखना चाहिये। इसको प्रागग्रसंनहन कहते हैं। २ पूर्वदिक्‌को बर्हिर्भागमें अग्रभाग स्थापनपूर्वक पहलेकी भांति बन्धनकर मूलदेशमें ग्रन्थि छिपानेसे उदगग्र संनहन होता है।) १८ या २१ हाथके पलाश काष्ठखण्डको इध्म कहते हैं। किन्तु पलाशके अभावमें वैंकतकाष्ठ, वैंकतके अभावमें गम्भिकारी, गम्भिकारीके अभावमें वंश, वंशके अभावमें यज्ञडुमुर और यज्ञडुमुरके अभावमें खदिर काष्ठ ग्रहण करनेका विधि, तीन इध्मकाष्ठ द्वारा परिधिपरिमाणकी व्यवस्था, अग्निसन्दीपनमन्त्रकी वृद्धिके अनुसार इध्मकाष्ठकी

वृद्धिका नियम रहते भी विशेषदिष्ट कार्यमें अग्नि-सन्दीपनमन्त्रका ह्रास आते इध्मकाष्ठके ह्रास-विधिका अभाव, अग्निप्रणयनके लिये पूर्वोक्त इध्म काष्ठकी संख्या अपेक्षा अधिकसंख्यक इध्मकी आवश्यकता, इ कापशुयज्ञमें २८ हाथ परिमित पूर्वोक्त काष्ठ द्वारा इध्म करनेका विधि और यह इध्म तीन प्रकार संनहन नामक बन्धनविशेष द्वारा बांधनेकी प्रणाली, अमावस्या और पौर्णमासीको वेदकरण, सूत्रोक्त 'आङ्' शब्दका अभिविधि तथा प्रतिज्ञा अर्थ, सर्वविध कर्ममें अनुरक्त होते भी गार्हपत्यके अनुसार आहवनीय तथा दक्षिणाग्निमें उद्धारकी आवश्यकता, किन्तु अन्य कार्यके लिये उद्धार होते पीछे दूसरे आगन्तुक कार्यके लिये उद्धारकी अनावश्यकता, (क्योंकि जिस कार्यके लिये उद्धार किया जाता, वह समाप्त होते अग्नि फिर लौकिकत्वको पहुंचता है। इसीसे दर्श प्रभृत्ति कार्यमें उद्धृत अग्निसे अग्नि-होत्र होम सम्पादित होता है। किन्तु लौकिक हो जानेसे फिर इस अग्निमें आहवनादि कार्य कर नहीं सकते।) जहां पौर्णमासादि कार्यमें पृथक् तंत्रोक्त बहुविध यज्ञका नियम होता, वहां प्रतियज्ञमें पृथक् पृथक् अग्नि उद्धार कर सम्पादन करनेका नियम, खदिरकाष्ठनिर्मित द्रव्यादि कहीं अनुक्त होते भी वहां उसकी कल्पता, स्रुव, स्रग, स्रुक्, जुहू प्रभृति होम-साधन द्रव्यका लक्षण, यज्ञकार्यमें सबके आने जानेको प्रणीत और उत्कर व्यतीत पथविधान और उत्तर-वेदिकाकार्यमें चात्वाल एवं उत्करके अन्तरालका पथनियम। ४र्थ कण्डिकामें—विहित द्रव्यका अभाव होनेसे काम्यकर्मके आरम्भका निषेध, नित्यकार्य-समूहमें प्रधान द्रव्यका अभाव होते भी प्रतिनिधि द्रव्यसे उसके अनुष्ठानका विधि, काम्यकार्यमें समुदाय अङ्ग संगृहीत होनेसे कार्य आरम्भ करनेका विधि, फिर भी आरंभके पीछे किसी प्रधान द्रव्यका अभाव होनेसे प्रतिनिधि द्रव्य द्वारा उसका समापन एवं असमाप्त कार्यके त्यागका निषेध, नित्यकार्य आरम्भके पहले या पीछे प्रतिनिधि द्रव्यका आयोजन करते, किन्तु काम्यकार्यको अवश्यकर्तव्यता न रहते प्रतिनिधि द्रव्य द्वारा आरम्भ किया नहीं जाता; इतना ही उभयका भेदकथन एवं ज्योतिष्टोम दीक्षितगणके शरीर धारणार्थ पयःपान प्रभृति व्रतमें भी प्रतिनिधि विधान है। इस प्रतिनिधिमें अनेक विशेष नियम निर्दिष्ट हैं। द्रव्यके अभावमें तत्सदृश अन्य द्रव्यकी कल्पना की जाती है। दैवात् वह द्रव्य भी नष्ट होनेसे उसकी भांति अन्य प्रतिनिधि न मिलते प्रधान द्रव्यजातीय द्रव्य द्वारा प्रतिनिधि कल्पना करना चाहिये। जैसे व्रीहिके अभावमें नीवार द्वारा कार्य आरम्भ करते दैवात् जो नीवार नष्ट हो गया, तो नीवार जातीय अन्य द्रव्यकी कल्पना न कर व्रीहिकी ही कल्पना करना पड़ेगी। इसी प्रकार जहां कृष्ण व्रीहिका अभाव होगा, वहां उसका प्रतिनिधि शुक्ल व्रीहि माना जायेगा। किन्तु कृष्ण नीवारकी कल्पना कर नहीं सकते। फिर जहां पुंवत्सयुक्त गौके दुग्ध द्वारा विधान है, वहां उसके न मिलनेसे स्त्रीवत्सयुक्त गोका दुग्ध प्रदान करना चाहिये। किन्तु पुंवत्सयुक्त मेषी प्रभृतिका दुग्ध प्रदान करनेसे काम न चलेगा। इसी प्रकार समुदाय द्रव्यका प्रतिनिधि विवेचना करना उचित है। ५म कण्डिकामें श्रुतिपाठ, मन्त्रपाठ एवं अर्थसिद्धिके क्रमानुसार पदार्थके अनुष्ठानका क्रम है। जहां पाठक्रम और अर्थसिद्धिक्रम उभयका विरोध आयेगा, वहां पाठक्रम उपेक्षा कर अर्थसिद्धि-क्रम लिया जायेगा और जहां श्रुतिपाठ तथा मन्त्रपाठ उभयका विरोध दिखायेगा, वहां श्रुतिपाठक्रम छोड़ मन्त्रपाठसे कार्य चलाया जायेगा। फिर बहु प्रधान द्रव्यका एकत्र प्रयोग विधान रहते किसी प्रकारके क्रम-विभागकी व्यवस्था न कर समुदयके प्रयोग करनेका नियम है। ६ष्ठ कण्डिकामें अवत्तहविः* नष्ट होनेसे अन्यहविः द्वारा कार्यसम्पादन, अग्न्यादि देवता, मन्त्र एवं प्रयाज अनुयाज† प्रभृति क्रियासमूहके प्रतिनिधिका निषेध, दृष्टार्थ अववात प्रभृति क्रिया-समूहके प्रतिनिधिका विधान, किसी विहित वस्तुके

* आहुति प्रदानार्थ गृहीत हविको अवत्तहविः कहते हैं।

† यज्ञविशेषको प्रयाज और अनुयाज कहते हैं।

सद्दश होते भी निषिद्ध वस्तुके प्रतिनिधित्वका निषेध, त्याग तथा वपन प्रभृति एवं संस्कार कर्ममें यजमानके प्रतिनिधित्वका अभाव, किन्तु पात्रग्रहण, हविर्दर्शन, अग्निस्थापन, व्यूहन और वेदवन्धनादि गुणकर्ममें यजमानके प्रतिनिधित्वका विधि, पत्नीके अभावमें भी हविर्दर्शन, अन्वारम्भ और उपाञ्जन * प्रभृति गुणकर्ममें प्रतिनिधिकल्पना, यजमानकर्मके साथ सम्बन्धवशत: प्रतिनिधिरूपसे कल्पित व्यक्तिके भी दीक्षादि यजमानधर्मका सम्पादनविधि, ब्राह्मणका ही यज्ञाधिकार, क्षत्रियवैश्यका अनधिकार, ब्राह्मण होते भी एक कल्प ब्राह्मणका अधिकार, किन्तु विभिन्न कल्पका नहीं, क्षत्रिय तथा वैश्यका गृहपतित्व अधिकार रहते भी यज्ञमें अधिकार नहीं। सहस्र वत्सर साध्य यज्ञ मनुष्यसाध्य है। क्योंकि यहां संवत्सर शब्दका सहस्र दिन मात्र लक्षणविधि है। इस कण्डिकामें जहां एकही फलकी कामनासे एक वाक्य द्वारा बहुसंख्यक प्रधान कार्यका विधान है, वहां समुदाय कार्यका एकत्र प्रयोग होता है। देश, काल, फल और कर्मादि समान रहते प्रधान कार्य-समूहका आशु उपयोगी आधार, प्रयाज और आज्य भाग पृथक् पृथक् न कर एकत्र करनेका नियम है। किन्तु देश, काल वा तन्त्रभेद पड़नेसे एकत्र कर्तव्य नहीं। एक द्रव्यमें अनेक कर्मका विधान रहनेसे प्रत्येक क्रियामें मन्त्रपाठ न कर केवल एक बार ही करनेका विधि है। किन्तु हविर्ग्रहण, कुशच्छेद, कुशस्तरण और आज्यग्रहण कार्यमें प्रत्येक वार मन्त्र पढ़ना पड़ता है। आज्यग्रहण कार्यमें तीन वार मन्त्र पढ़ते और अवशिष्ट वार मौनी रहते हैं। दीक्षित व्यक्तिके अनेक दुःस्वप्नदर्शनमें एकवारमात्र मन्त्रपाठ विधि है। एक नदीके अनेक प्रवाह उत्तीर्ण होनेसे एक वार मन्त्र पढ़ते हैं। अनेक वृष्टिधाराका संयोग होते भी वर्षणकालमें एक ही वार मन्त्र पढ़ा जाता है। एक ही समय अनेक अमङ्गल दर्शनसे एकवार मात्र सूर्योपस्थापन करते हैं। विश्रामपूर्वक पुनः पुनः गमन करते समय अभीष्ट दर्शन करनेसे एकवार मात्र मन्त्रपाठ होता है। एक रात्रिके मध्य वारंवार निद्रादि कालको अमङ्गल देखनेसे वारंवार मन्त्र पढ़ना पड़ेगा। ऐसे समय एकवार मन्त्र पढ़नेसे काम नहीं चलता। अप्रधानकालीन अङ्ग एकवार मात्र होता है, उसका प्रतिधान बदलना नहीं पड़ता। आधानादि कार्यमें केवल यजमान ही नहीं, समुदाय पुरुष कर्त्ता हैं। फिर भी देवताके उद्देशसे द्रव्यत्याग प्रभृति आत्मकर्मसमूह यजमानको ही करना और पुरुषयोनि मन्त्रसमूह जपना चाहिये। वपन अभ्यञ्जनादि संस्कार यजमानका ही है। किसी किसी स्थलमें यह संस्कार पुरोहितका भी होता है। इन सकल कार्योंको छोड़ अन्य कार्य विशेष विधान रहते यजमानको ही करना पड़ेगा। जैसे— यजमान वसुधारा होम करेगा और पात्र सकल ग्रहण करेगा। तद्भिन्न कार्य पुरोहित प्रभृतिका है। जैसे अध्वर्युका आध्वर्यव कार्य, होताका होत्रकार्य और उद्गाताका उद्गात्र कार्य। समुदाय कार्य यज्ञोपवीतधारीको करना पड़ता है। फिर समस्त कार्य पूर्वदिक् वा उत्तरदिकस्थ कर सम्पादन करनेका नियम है। परिस्तरण एवं पर्युक्षणादि कार्य प्रदक्षिण क्रमसे और पितृकार्य अपसव्य क्रमसे अर्थात् दक्षिणसे क्रमानुसार वाम ओरको करनेका नियम है। देवकार्यमें जहां पुनरावृत्ति करते, पैत्र कार्यमें वहां एकही वार निबटते हैं। पैत्रकर्ममें दक्षिणदिक् प्रशस्त है। देवकर्ममें जो पूर्वदिकको स्थापन करना पड़ता, पैत्रकर्ममें वह समुदाय दक्षिणदिकको स्थापन करना उचित रहता है। प्रधान द्रव्य विनष्ट होनेसे निकटस्थ अङ्गसमूहके साथ उसको पुनरावृत्ति करना चाहिये। इस काण्डकामें विकल्प विधिस्थल पर एकही द्रव्यद्वारा कार्य सम्पादन करना उचित है। अदृष्ट बहु विषय विहित रहते समुदायको ग्रहण करना चाहिये। यज्ञकालमें मन्त्रसमूह एक श्रुति स्वरसे प्रयोग करते हैं, संहितास्वर वा ब्राह्मणस्वरसे प्रयोग कर्तव्य नहीं। किन्तु सुब्रह्मण्य, साम, जप, न्युङ्ख और यजमान मन्त्र एक श्रुतिसे प्रयोग न कर संहितासे मिलते स्वरमें ही प्रयोग करना चाहिये।

* गोमयादि द्वारा लेपन।

आधानमें विहित दक्षिणाभेदका विकल्प कर्तव्य है, किन्तु समुच्चय नहीं। अनेक साधनकार्यमें अवघ्नादि कार्यका समुच्चय करना पड़ता है। सर्वत्र गार्हपत्य तथा आहवनीय कार्यमें प्रदक्षिण कर अपसव्य एवं अपसव्य कर प्रदक्षिण करते हैं। विहारको उत्तरदिक् समुदाय कार्य किया जाता है। सुतरां ब्रह्म और यजमानका आसन विहारको दक्षिणदिक् कर्तव्य है। आसनद्वयके मध्य प्रथमतः यजमान एक आसन पर वेदिके मध्य पदका अग्रभाग संस्थापन कर बैठे, फिर ब्रह्मको बैठना चाहिये। व्यक्तिविशेषका आदेश न रहते अध्वर्युको यजुर्विहित कर्म सम्पादन करना कर्तव्य है, आदेश रहनेसे अन्य किया जाता है। हविःपात्रस्थ द्रव्यसमूह जैसे पर पर संगृहीत होता, प्रदान कालमें वैसे ही वह सकल द्रव्य पूर्व पूर्व लेना चाहिये। प्रतापनादि अग्निसाध्य संस्कार गार्हपत्य अग्निमें सम्पादन करते हैं। समुदाय कार्यमें ही हविः प्रदान गार्हपत्य वा आहवनीयमें कर्तव्य है। संस्कार-शून्य घृतमात्रको आज्य शब्दका अर्थ समझना चाहिये। घृत शब्दसे गव्यघृत लिया जाता है। द्रव्यविशेष कथित न रहनेसे सर्वत्र ही घृतद्वारा होम कर्तव्य है, किन्तु विशेष द्रव्यका विधान होनेसे उसी द्रव्य द्वारा होम करते हैं। चात्वालसे * बर्हिःस्थ पुरीष ग्रहण करना चाहिये। पृथक् आदेश न रहते आहवनीय यज्ञमें ही समुदाय याग कर्तव्य है। किन्तु आदेशको विभिन्नता आते आदेशानुसार याग करना पड़ता है। ऐसा आदेश न होते एक वार मात्र गृहीत द्रव्य द्वारा होम करते हैं। आदेश रहनेसे आदेशानुसार किया जाता है। ९म कण्डिकामें—सकल स्थल पर व्रीहि वा यव हविःरूप कल्पना करते हैं। उभयके निधानस्थल पर विधानानुसार कहीं पहले यव पीछे व्रीहि और कहीं पहले व्रीहि पीछे यव देना चाहिये। किन्तु आपस्तम्बके मतसे सर्वदा केवल व्रीहि ग्राह्य है। द्विविध ग्रहणका विधान रहनेसे प्रथम वार पुरोडाश चरुके मध्यदेशसे वक्रभावमें एक अङ्गुष्ठ-परिमित ग्रहण है। द्वितीय वार हविःके पूर्वभागसे ऐसे ही नियममें ग्रहण करना पड़ता है। जमदग्नि प्रभृति पर्वसमूहमें तीन वार हविः ग्रहण कर्तव्य है। उसमें प्रथम वार मध्यदेशसे, द्वितीय वार पूर्वभागसे और तृतीय वार पश्चाद्भागसे लेते हैं। जहां आज्यभाग पत्नीसंयाज, उपांशुयाज और अग्निहोत्रादि होममें चार वार ग्रहणका विधि है, वहां जमदग्नि प्रभृतिका पांच वार ग्रहण किया जाता है। दधि दुग्धका भी अवदान स्रुव द्वारा अङ्गुष्ठपर्व परिमित ग्रहण करना पड़ता है। पुरोडाशादि हविःके अवदानसे प्रथम आज्य एक वार ले अन्य हविः ग्रहण करना चाहिये। शेष वार फिर आज्य लिया जाता है। स्विष्टकृत् होममें हविर्ग्रहणके प्रधान अवदानकी अपेक्षा एक वार घटा देते हैं। उपस्ताका कार्य एक वार करते हैं। उपरि देशमें अभिघारण दो वार कर्तव्य है। अवदेय और अवदान हविःका प्रत्यभिघारण करना पड़ता है। एक कपाल पुरोडाश सर्वस्थानमें आहुति देना चाहिये। "अग्नये अनुब्रोहि" को भांति वाक्यसे चतुर्थी विभक्त्यन्त देवतापद द्वारा अनुवचन करना पड़ता है। आश्रावणके पीछे जहां मैत्रावरुणका अनुसन्धान करते, वहां भी चतुर्थी विभक्त्यन्त देवतापद रखते हैं। किन्तु आश्रावणके पीछे जहां मैत्रावरुणका अनुसन्धान नहीं करना पड़ता, वहां द्वितीयान्त देवता-पद प्रयोग करना चाहिये। प्रैषसम्बन्धी अनुवचनस्थलमें द्रव्यके उत्तर षष्ठी होती है। किन्तु दो प्रैषोंका सम्बन्ध रहनेसे षष्ठी नहीं लगती। जहां ऐसे प्रयोगका विधान रहता कि नाम ग्रहणपूर्वक इन्हें यजन करो, वहां इन्हें पदके परिवर्तमें उन्हीं उन्हीं नामोंका प्रयोग करना चाहिये। वषट्कारके साथ आहुतिप्रदानस्थल पर वेदीके दक्षिण भागमें उत्तर-पूर्व वा ईशान मुख अवस्थित हो वषट्कारके पीछे वा वषट्कारके साथ आहुति देते हैं। इन सकल स्थलोंपर घृतमिश्रित हविः देना पड़ता है। उसका नियम है—प्रथम घृतआहुति, मध्यमें हविःकी आहुति और पीछे फिर घृतको आहुति प्रदान करना चाहिये। अथवा घृत और हविः एकत्र ही प्रदान करना पड़ता है। १०म कण्डिकामें

* उत्तरवेदी प्रस्तुतकरणार्थ मिट्टी खोद कर बनाया हुआ गर्त।

—'आग्नेयो अष्टकपालो भवति' इत्यादि स्थल पर लट् विभक्ति विधिलिङ् बोधक समझी जायेगी। कर्तव्य कर्मके उपकरणका द्रव्यसमूह प्रथम कल्पना कर कर्मदेशस्थानमें स्थापित करना चाहिये। सर्वत्र ही उत्तर दिक्को होम और पूर्व दिक्को ग्रीवाविन्यासयुक्त चर्मका आस्तरण प्रदान करते हैं। हविःसमूहके मध्य जो सकल द्रव्य पश्चात् पठित है, वह देश कालके अनुसार पश्चात् ही प्रदान करना पड़ता है। ग्रहणादि कार्य पूर्वपठित रहनेसे पूर्व और परपठित रहनेसे पर ही ग्रहण करते हैं। ऐसे ही अधिश्रयणादि कार्य पूर्वपठित रहनेसे दक्षिण दिक् और परपठित रहनेसे उत्तर दिक् स्थापन करना चाहिये। स्थाली, स्रुव और घृत दक्षिण हस्तसे गृहीत होने पर वाम हस्त द्वारा वेदका उपग्रहण किया जाता है। किन्तु उपभृत् प्रभृति द्वितीय द्रव्यका ग्रहणविधि रहनेसे वेदका उपग्रहण नहीं करते। घृत व्यतीत अन्य द्रव्य द्वारा याग करते स्फ्रनका उपग्रहण करना चाहिये। वेद वस्त्रादि द्वितीय द्रव्य न रहते कुश द्वारा उपग्रहण करना पड़ता है। स्रुक् ग्रहण करते समय स्रुक् और जुहू उभय हस्त द्वारा ले उपभृत्के उपरि देशमें स्थापन करते हैं। इसके स्थापनकालमें परस्पर स्पर्शसे शब्द निकलना उचित नहीं। विश्वजित् न्यायके अनुसार सकल स्थल पर फलस्वरूप स्वर्ग कल्पित होता है। एक ही कार्यमें वेदविहित वैकल्पिक अङ्गसमूहके मध्य अधिकाङ्ग अनुष्ठित होनेसे फल भी अधिक मिलता है। इसी प्रकार षड् दक्षिणापक्षकी अपेक्षा द्वादश और चतुर्विंशति दक्षिणापक्षका फल अधिक है। यजमानसम्बन्धी दान, अन्वारम्भ, वरण और व्रतप्रमाण ग्रहण करते हैं। अर्थात् दानविधि, सत्यवाक्य तथा अधःशयनादि व्रत यजमानका कर्तव्य है और अग्नि, स्वर, वेदि गृह प्रभृतिका परिमाण यजमानके इच्छानुसार ही स्थिर करना पड़ता है। प्रोक्षित यूप, छिन्न कुश, अवहत व्रीहि, पिष्ट तण्डुल, दोहनजात दुग्ध और दग्ध इष्टकादिसे विहित सकल कार्य सम्पादन करना चाहिये। रौद्रमन्त्र, रक्षोदेवतमन्त्र, असुरदेवतमन्त्र और प्रैषमन्त्र उच्चारण कर उक्त देवतासम्बन्धीय कार्य सम्पादनपूर्वक आत्मस्पर्श तथा हस्त द्वारा जलस्पर्श करते हैं।

उक्त समस्त कार्यका उपयोगी विधान प्रथमाध्यायमें कथित है।

द्वितीय अध्यायमें ८ कण्डिका हैं। उसकी १म कण्डिकामें यह वृत्तान्त वर्णित है,—पौर्णमास यज्ञकाल, उसमें अग्निका अन्वाधान, अध्वर्यु और यजमानका अधिकार, उसके विधानकी प्रणाली, दीक्षाके अन्तमें दीक्षित धर्मसमुदाय, दिवामैथुन और मांसपरिवर्जन, शिखा पर्यन्त केशपरित्याग, व्रतकालानुसार सपत्नीक यजमानको मद्य मांस लवण वर्जित हविष्यान्न हविके साथ भोजनका विधि, सत्य वाक्यप्रयोग, रात्रिकालको पूर्वविहित विहारस्थानमें अग्निहोत्र होम, सायंकालको भोजनकी इच्छा होनेसे होमके पीछे अधिक रात्रि न चढ़ते ही नीवार प्रभृति वन्य ओषधिके अन्न और वन्य वृक्षके फलका भोजन, आहवनीय गृह और गार्हपत्य गृहमें शय्या व्यतीत अधःशयनविधि, ब्रह्मचर्य आचरणविधान, (यह नियम सपत्नीक यजमानका ही समझना पड़ेगा) पौर्णमासको अन्वाधानादि कार्य समापन होनेसे दो दिन या एक दिनमें कार्यभेदका विधि (यह प्रातःकाल ही सम्पादन करना पड़ता है।)। २य कण्डिकामें अग्नि होमके पीछे ब्रह्मवरण विधि और उसका प्रकार है। ३य कण्डिकामें ब्रह्मसदनसे आत्मस्पर्श पर्यन्त कर्मसमूहके अनुष्ठान, प्रकार और मन्त्रादिका कीर्तन है।

३य अध्यायमें ८ कण्डिका हैं। उसमें होतृसदनसे पौर्णमास समाप्ति पर्यन्त कर्तव्य कार्यसमूहका अनुष्ठानप्रकार और मन्त्रादि वर्णित है।

४र्थ अध्यायमें १५ कण्डिका हैं। उसकी १म, २य और ३य कण्डिकामें दर्शयोगके पूर्वपिण्ड तथा पितृ-यज्ञके अनुष्ठानका प्रकार और मन्त्रादिका कथन है। द्रव्य देवतायुक्त आख्यातप्रत्ययान्त कर्म शब्द और वेद-बोधित याग शब्दका अर्थ है। समुदाय यज्ञ और अग्नीषोमीय पशुमें दर्शपौर्णमास यागधर्मका अति-देश है। वैश्वदेव, वरुणप्रघास, साकमेध और शुना-सीर नामक चतुः पर्वमय चातुर्मास्यके प्रथम वैश्वदेव-

पर्वमें दर्शपौर्णं धर्मका कथन है। अपर तीन पर्वमें त्रिविध वह्नि: प्रस्तारादि औपदेशिक धर्मविधान है। चातुर्मास्य वरुणप्रघासादि पर्वत्रयमें वैश्वदेव पर्व-धर्मका विधान है। किन्तु मारुत्यादिमें ऐसा विधान नहीं। सौमिक स्थानकी अपेक्षा वारुण प्राघासिक स्थानमें धर्म हुवा करता है। ऐसा सन्देह उपस्थित होनेसे कि कर्त्ता करेंगे, लौकिकाग्नि ही लेना चाहिये। दर्श और पौर्णमासमें आग्नेयादि छह प्रधान याग हैं। एक देवतायुक्त वैकृत कर्मसमुदायमें आग्नेय धर्मका विधान है। अनेक देवतायुक्त कर्ममें अग्निषोमीय धर्मविधि है। द्रव्य सामान्यमें धर्मप्रवृत्ति है। देवता गुणके उपांशुत्व प्रभृतिकी साम्य अवस्थामें धर्मप्रवृत्ति है। द्रव्य देवता उभयका साम्य विरोध रहते द्रव्यकी समानतासे धर्म होता है, किन्तु देवताके सामान्यमें नहीं। गोमें दुग्धका धर्म होता है, किन्तु दधिका नहीं। इसी लिये चातुर्मास्य प्रभृतिमें परि-वासित शाखा द्वारा पवित्र बन्धनके पीछे वत्स दूरीभूत और दोहन चतुष्टय प्राप्त होता है। पयमें दधिका धर्म नहीं, दुग्धका धर्म होता है। द्रव्य समूहमें स्थाना-पत्तिका धर्म रहता है। प्राकृत स्थानयुक्त द्रव्यका जो स्थानीय धर्मके साथ विरोध पड़ता, स्थानप्राप्त द्रव्यमें वह विरोध लग नहीं सकता। जिस विकृतिसे प्राकृत द्रव्य देवतास्थानमें अन्य द्रव्य देवतादिविहित होता, उस स्थानमें प्राकृत मन्त्रका ऊह नहीं आता। विकृतिमें वचनविशेषसे प्राकृत धर्म नहीं होता। अर्थलोप और प्रयोजनलोपसे प्राकृत धर्म नहीं पाते। विकृतिमें विरोध हेतु प्राकृत धर्मसमूहकी प्रवृत्ति नहीं पड़ती। प्रकृतिसे जो पदार्थरूपमें विहित है, पदार्थकी अप्रवृत्तिसे विकृतिसे उसकी अप्रवृत्ति होती है। जहां पदार्थ-जात द्रव्य कहीं कर्मान्तरसाधनके लिये विहित हुवा है, उसमें दूसरेका अभाव रहते भी पदार्थजात द्रव्यका सद्भाव होता है। समुदाय द्रव्यका सद्य: समयविधि है। ४र्थ कण्डिकामें प्रजा, पशु, अन्न और यश: कामादिका कार्यदाक्षायण यज्ञ, मंत्र एवं पौर्णमासके देव तथा द्रव्यभेद वर्णनपूर्वक उनका विधान है। ५म कण्डिकामें उपांशु शब्दका अर्थकथन और उसमें द्रव्यदेवतादिका वर्णन है। ६ष्ठ कण्डिकामें व्रीहि और यवका पाककालमें आग्रयण नामक कर्म कर्तव्य है। शरत् वसन्त प्रभृति काल, द्रव्यदेवतादिका मंत्रविधान और उसका प्रकार है। दर्शपौर्णमास यज्ञके पीछे आग्र-यणादिका यथाप्रवृत्ति कार्यविधि है, किन्तु इस यज्ञके पूर्व विहित नहीं। दर्शपौर्णमासका उत्सर्ग होनेपर अग्नि-होत्रमें आहुतिका विधि एवं आग्रयण विधानप्रकार है। दीक्षितका विशेष विधि है। संवत्सर एवं उपसत्‌आदि यज्ञमें आग्रयणविशेष कहा है। संवत्सर और सुती प्रभृतिमें द्रव्यविशेषका विधान है। श्यामाक आग्रयण-का विधानप्रकार है। ७म कण्डिकामें अग्नि, आधेय कर्म, काल, देवता और मंत्रका विधान प्रकारादि कथित है। ८म, ९म और १०म कण्डिकामें आधानके अङ्ग कर्मसमूहका विधान एवं मंत्रादिकथन है। ११श कण्डिकामें पुनर्वार आधानसे धननाश प्रभृति निमित्त-कथन है। उसका विधानप्रकार है। १२श कण्डिकामें केवलमात्र अग्निहोत्राङ्ग वात्सप्रका उपस्थानप्रकार है। १३श, १४श और १५श कण्डिकामें अग्निहोत्रके काल, द्रव्य, देवता, विधान तथा मंत्रादि कामनाभेदानुसार अवस्था भेदयुक्त अग्निमें होमकी कर्तव्यता है। कामनाभेदके होममें द्रव्यभेदका विधि है। ऐसे ऐसे द्रव्यसमूहद्वारा प्रत्यह संवत्सर होम करने पर तदनुसार कामनासिद्धि होनेकी बात है। अग्निहोत्र होम एवं सर्वविध यज्ञमें गार्हपत्य आगारके दक्षिण द्वारसे प्रवेश-का विधि है। सर्वदा यजमानको स्वयं ही होम करना उचित है, कार्यवशत: यजमान अशक्त होते यजमान-नियुक्त अध्वर्यु भी कर सकता है। किन्तु दर्श और पौर्णमासीमें सर्वदा स्वयं होम करना चाहिये। प्रवासमें और सूतकादि अशौचमें विशेष नियम है।

५म अध्यायमें १३ कण्डिका हैं। उनके मध्य १म और २य कण्डिकामें चातुर्मास्य* यज्ञान्तर्गत वैश्वदेव यागका पर्वकाल एवं उसके द्रव्य और देवताप्रयोगा-दिका वर्णन है। ३य, ४र्थ और ५म कण्डिकामें वरुण-प्राघासका रूप और उसका पर्वकाल, द्रव्य, देवता एवं

* वैश्वदेव, शुनासीर, वरुणप्राघास और साकमेध यागचतुष्टय-स्वरूप चातुर्मास्य याग है। इस यागचतुष्टयको कभी कभी पर्व कहते हैं।

मन्त्रविधानादि है। ६ष्ठ कण्डिकामें साकमेधका रूप और उसके पर्वकाल, द्रव्य, देवता तथा मन्त्रादिका विधान है। ७म कण्डिकामें द्विहविषक क्रीड़िनीयमें इष्टिका कालविधान एवं तदीय द्रव्य, देवता और मन्त्रादिका कथन है। ८म एवं ९म कण्डिकामें पितेष्टिके काल, द्रव्य, देवता और मन्त्रादिका कथन है। १०म कण्डिकामें त्र्यम्बक होमका कालविधान और द्रव्य, देवता एवं मन्त्रादिका नियम है। ११श कण्डिकामें चातुर्मास्य यज्ञान्तर्गत पर्वविशेषात्मक सुनासीरीयके काल, द्रव्य, देवता और मन्त्रादिका कथन है। सूतकादिमें भी चातुर्मास्यका पुनर्वार आरम्भ है। चातुर्मास्य त्रिविध है—ऐष्टिक, पाशुक और सौमिक। इस त्रिविध चातुर्मास्यके द्रव्य, देवता और मन्त्रका विधानादि है। १२श एवं १३श कण्डिकामें मित्रविन्देष्टि और उसके द्रव्य, देवता तथा मंत्रका विधान है।

६ष्ठ अध्यायमें १० कण्डिका हैं। उनमें निरूढ़, पशुबन्धयाग और उसके काल, द्रव्य, देवता तथा मंत्रका विधानादि कथित है।

७म अध्यायमें ९ कण्डिका हैं। उनमें ज्योतिष्टोम यज्ञके काल, द्रव्य, देवता और मंत्रादिका विधान है। फिर ज्योतिष्टोमके पूर्वानुष्ठेय सोमयज्ञके भी द्रव्य देवतादिका विधान है।

८म अध्यायमें ९ कण्डिका हैं। उसकी १म एवं २य कण्डिकामें आतिथ्यकर्म, उसके द्रव्य, देवता औरमंत्रादिका विधान है। ३य कण्डिकामें औपवसथ्यके काल, द्रव्य, देवता और मंत्रादिका विधान है। ४र्थ, ५म, ६ष्ठ, ७म, ८म और ९म कण्डिकामें ऐसा ही विधानादि कथित है।

९म अध्यायमें १४ कण्डिका हैं। १म कण्डिकामें सौत्यकर्म और उसके काल, द्रव्य, देवता एवं मंत्रका विधानादि है। अपर कण्डिकाओंमें प्रातःसवनका द्रव्य, देवता और मंत्रविधानादि कथित है।

१०म अध्यायमें ९ कण्डिका हैं। उसकी समुदाय कण्डिकाओंमें प्रायः अध्याय शेष पर्यन्त मध्यन्दिन सवन और तृतीय सवनके द्रव्य, देवता और मंत्रका विधान है। [अध्याय] शेषमें ज्योतिष्टोम यागमें सोमोत्तर कर्तव्य [अत्यग्निष्टोम;] उक्थ्य, षोडश, वाजपेय, अतिरात्र, आप्तयाम और ज्योतिष्टोम यागमें सोमोत्तर कर्तव्य, सोमका ज्योतिष्टोमविधान और उसमें आध्वर्यव-विधान प्रकार है।

११श अध्यायमें १ही कण्डिका है। उसमें ज्योतिष्टोमका अङ्ग ब्रह्मविधान है।

१२श अध्यायमें ६ कण्डिका हैं। उनमें द्वादशाह यज्ञका विधान है। एकादशाह प्रभृति यज्ञमें ज्योतिष्टोम धर्मका अतिदेश है। किसीके कथनानुसार उसमें अग्निष्टुत धर्मका अतिदेश वर्णित है। सत्ररूप और अहीनरूप भेदसे द्वादशाह दो प्रकारका है। इन उभय रूपोंका लिङ्गप्रदर्शन है। आद्यन्तमें अतिरात्र रहनेसे सत्र और केवल अन्तमें अतिरात्र रहनेसे अहीन होता है। सत्रयागमें यजमान सह षोड़श ऋत्विक्का कर्त्तृत्व रहनेसे सकलका यजमानत्व है। सुतरां सकलको फलप्राप्तिका अधिकार होनेसे इस कार्यमें दक्षिणाका अभाव है। षोड़श ऋत्विक्में यजमानत्वका अतिदेश रहनेसे सप्तदश व्यक्तिका दीक्षादि यजमान धर्मनिर्देश है। गृहपतिका अन्वारम्भविधि है। यज्ञसम्पादनके लिये पात्रप्रहणादि कार्यमें एकमात्र जनका ही कर्त्तृत्व है। तत्कर्तृक सम्पादित होनेपर सकलका सम्पादित होता है। गार्हपत्य और आहवनीय अङ्गारप्रासन है। अध्याय-समाप्ति पर्यन्त तदीय द्रव्य, देवता, मंत्र, दीक्षा और कालका विधानादि निरूपित हुवा है।

१३श अध्यायमें ८ कण्डिका हैं। उसकी प्रथम कण्डिकामें गवामयन यज्ञका प्रकार और उसमें द्वादशाह यज्ञधर्मका अतिदेश है। २य, ३य और ४र्थ कण्डिकामें द्वादशाह धर्मके द्रव्य, देवता और मंत्रका विधानादि वर्णित है।

१४श अध्यायमें ३ कण्डिका हैं। उनमें ज्योतिष्टोम संस्थाभेद, वाजपेय यज्ञके काल, द्रव्य, देवता और मंत्रका विधानादि कथित है।

१५श अध्यायमें १० कण्डिका हैं। समुदाय कण्डिकामें राजसूय यज्ञ, उसमें क्षत्रिय जातिका

अधिकार, वाजपेय यज्ञ करने पर राजसूयकी अनावश्यकता और राजसूयके द्रव्य, देवता एवं मंत्रका विधानादि वर्णित है।

१६श अध्यायमें ८ कण्डिका हैं। उनमें १म कण्डिकामें पञ्चचितिक खलविशेषस्थित अग्नि-विधानका प्रकार है। चयनरूपाङ्ग विशिष्टाग्निकी सोमाङ्गता कही है। उसमें इच्छानुसार अधिकार है। फिर भी केवलमात्र महाव्रत नामक स्तोत्रसाध्य सोमयागमें पञ्चचितिक खलका नियम है। अन्यत्र इच्छानुसार विकल्प है। २य, ३य और ४र्थ कण्डिकामें उखा (यज्ञादिका पात्रविशेष) निर्माण-प्रकार है। ५म कण्डिकामें अग्निचयनप्रकार एवं उसमें देवता और मंत्रादिका विधान है। ६ष्ठ कण्डिकामें पञ्च अग्निविशेषका चयनप्रकार है। ७म कण्डिकामें तत्-सम्बन्धीय प्रायश्चित्त होमविधान है। ८म कण्डिकामें पूर्वोक्त अग्निचयनका प्रकार-भेद एवं उसके काल, द्रव्य, देवता और मंत्रादिका कथन है।

१७श अध्यायमें १२ कण्डिका हैं। समुदाय कण्डिकामें प्रायश्चित्तान्त कर्मके परवर्ती कर्तव्यका विधान और उसका भेद, द्रव्य, देवता तथा मंत्रादि कथित हैं।

१८श अध्यायमें ६ कण्डिका हैं। उनमें शत-रुद्रीय होम, उसके अङ्गकर्म, द्रव्य, देवता और मंत्रादिका विधान है। ६ष्ठ कण्डिकाके शेषभागमें अग्निचयनकारी पुरुषका नियम कथित है।

१९श अध्यायमें ७ कण्डिका हैं। उनमें सौत्रा-मणि यागका विधान है। इस यज्ञमें धनाभिलाषी ब्राह्मणका अधिकार है। सोमयज्ञकारी साग्निक ब्राह्मणोंको सोमयज्ञके पीछे इसको कर्तव्यता है। सोमातिपूत अर्थात् मुख, नासिका, कर्ण, गुह्य प्रभृति छिद्र द्वारा पीत सोम निकालनेवाले और सोमवामी अर्थात् पीत सोम मुखसे वमन करनेवालेका इस यज्ञमें अधिकार है। शत्रु कर्तृक स्वराज्यसे बहिष्कृत राजाका पुनर्वार राज्य प्राप्तिके लिये इसमें अधिकार है। पशुके अभावमें पशु पानेकी कामनासे वैश्यको भी इसमें अधिकार है। चार रात्रमें इस यज्ञके सम्पादनका विधि है। इस यज्ञको अङ्गस्वरूप सुराप्रस्तुतप्रणाली और इस यज्ञका द्रव्य, देवता तथा मंत्रादि कथित है।

२०श अध्यायमें ८ कण्डिका हैं। समस्त कण्डिकाओंमें यज्ञका विधान है। इसमें अभिषिक्त क्षत्रिय राजाका ही एकमात्र अधिकार है। ब्राह्मण और वैश्यका अनधिकार है। तीन रात्रमें इसका सम्पादन-नियम है। इस यज्ञके फलसे समुदाय अभीष्टसिद्धिकी कथा और यज्ञका काल, द्रव्य, देवता तथा मंत्रादि कथित है।

२१श अध्यायमें ८ कण्डिका हैं। उनमें १म कण्डिकामें नरमेधयज्ञका विधि है। सर्वजीवसे उत्कर्षकामी पुरुषका अधिकार है। पांच रात्रमें इसका सम्पादनविधि है। इसमें एकविंशति दीक्षा-नियम है। ब्राह्मण और क्षत्रियको अधिकार है। वैश्यको अनधिकार है। इस यज्ञके द्रव्य, देवता और मंत्रादिका विधान विहित है। ३य कण्डिकामें सर्वविषय अभिलाषी व्यक्तिके सर्वमेधयज्ञका विधान है। दस रात्रमें उसका सम्पादनविधि है। ३य और ४र्थ कण्डिकामें मनुष्य, अश्व, गो, मेष और छाग पञ्च पशुका वधविधि है। प्रोषित वा मृत पिताका संवत्सर अतीत होनेसे पितृमेधयज्ञका विधान और उसके नक्षत्रादि काल, द्रव्य, देवता तथा मंत्रका भी विधान वर्णित है।

२२श अध्यायमें ११ कण्डिका हैं। उसकी प्रथम कण्डिकामें यजुर्वेदीय आधानादि, पितृमेध पर्यन्त कर्मविधि और सामवेदीय एकाहसाध्य यागविधि कथित है। इस सम्बन्धकी कई परिभाषा भी लिखी हैं। यथा—विभिन्नसंस्थ कथित न रहनेसे यज्ञ अग्निष्टोमसंस्थ हुआ करता है। धेनुमात्रदक्षिणा-देय भूर्नामक एकाह और ज्योतिर्नामक एकाहमें कोई संस्थ कहा न जानेसे उभय अग्निष्टोमसंस्थ होते हैं। गो और आयुः नामक एकाह उक्थ्य-संस्थ हैं। अभिजित् और विश्वजित् अग्निष्टोमसंस्थ हैं। ज्येष्ठपुत्रके विभागयोग्य द्रव्य एवं भूमि और

दास व्यतीत पदार्थको सर्वस्वपदार्थ कहते हैं। किसी किसीके मतानुसार धारण भ्रमणादिके लिये भूमि और शुश्रूषाके लिये दास आवश्यक है; इन उभय द्रव्योंको छोड़ सुवर्णादि अन्य समुदाय द्रव्य सर्वस्व है। पुरुषमेध यज्ञमें गर्भदासके दानका विधान और भूमिके एकदेशपरित्यागमें धारणकी सम्भावना है, इसलिये अपने मतमें भी उभय द्रव्य व्यतीत अन्य समुदाय सर्वस्व होता है। किन्तु अवभृथ-स्नानविहित वत्सच्छवि और दोचाका उपयोगी द्रव्यसमूह सर्वस्वके मध्य परिगणित नहीं। वस्तुतः सहस्र अपेक्षा अधिकसंख्यक द्रव्य ही सर्वस्व कहाता और वही दक्षिणा माना जाता है। विश्वजित् यज्ञमें द्वादशरात्रि प्रभृति नियमकी विभिन्नता है। अभि-जित् सम्पन्न होनेपर विश्वजित्का अनुष्ठान किया जाता है अथवा अभिजित् और विश्वजित्का एकदा अनुष्ठान कर्तव्य है। किन्तु एक ही समय उभय कार्य्य करने पर देवयजनस्थानका विशेष नियम है, उसमें षोड़श ऋत्विक्का कार्य बाहुल्यप्रयुक्त अन्यतम ऋत्विक् द्वारा अन्यत्र सम्पादन करना पड़ता है। किन्तु वहिर्वेदिक कर्मसमूह उभयका एक रूप है। केवल अन्तर्वेदिक कर्ममें ही उभयका विभिन्नता पड़ती है। उभय कार्य एक ही समय करते भी अभिजित्का एक एक अङ्ग सम्पादन कर विश्वजित्का एक एक अङ्ग सम्पादन करते हैं। सर्वजित् नामक एकाह महाव्रत नामक सामस्तवसाध्य है। इस यज्ञमें संवत्सरदीक्षा, सप्ताहका स्नान और तीन या छह उपसद् विहित हैं। अर्थात् संवत्सर दीक्षाके पीछे सप्तम दिवस स्नान करना और उसके अनन्तर सप्ताह अतीत होने पर यज्ञानुष्ठान कर तीन या छह उपसद् करना चाहिये। यह यज्ञ भी अग्निष्टोमसंस्थ है। उक्त समस्त विषय १म कण्डिकामें कथित हैं।

२य कण्डिकामें सर्वजित् यज्ञकी दक्षिणाका भेद और उसका विधानादि है। इस यज्ञकी उक्थ्य-संस्थता है। कथित अभिजित् प्रभृतिका नामान्तर है। यथा—अभिजित्का नाम ज्योतिः, विश्वजित्का नाम विश्वज्योतिः और सर्वजित्का नाम सर्वज्योतिः है। इस समुदायकी दक्षिणाका भेद विधानादि है। चतुर्थ उक्थ्यसंस्थका विरावसम्मित नाम है। साद्यस्क्र नामक छह यज्ञका विधान है। उसका प्रदर्शन उत्तरोत्तर किया है। यथा—प्रथम साद्यस्क्रमें स्वर्गकाम, पशुकाम एवं आढ्य-विशिष्ट पुरुषोंका अधिकार है। द्वितीय साद्यस्क्रमें दीर्घव्याधियाक्रान्त एवं प्रतिष्ठा और अन्नाभिलाषियोंका अधिकार है। अनुक्री नामक तृतीय साद्यस्क्रमें कर्महीन और कर्म-निवृत्तिप्रार्थियोंका अधिकार है। विश्वजिच्छिल्प नामक चतुर्थ साद्यस्क्रमें दक्षिणाभेद, सर्वस्व प्रतिनिधि-दक्षिणा विधान और सर्वस्व प्रतिनिधि द्रव्यसमूहका वर्णन है। यथा—धेनु, वृष, सीर, धान्य, पश्वादि परिमाणोपयोगी स्वर्ण तथा रौप्य, दास, दासी, मिथुन उपकरणके साथ महानस, अश्वादि यानारोहण और गृहशय्या। अतएव सर्वस्व पद द्वारा इस समस्तका ही ग्रहण कर्तव्य है। श्येन नामक पञ्चम साद्यस्क्रमें वैरनिर्यातनकामका अधिकार, उसकी दक्षिणा, अनुष्ठान, मन्त्र और देवतादि कथन है। फिर एकत्रिक नामक षष्ठ साद्यस्क्रका विधान है। दीक्षा अपेक्षा सद्यः क्रियमाणताके लिये इनकी साद्यस्क्रसंज्ञा है। व्रात्यस्तोम नामक चतुर्विध एकाहयागका विधान है। तीन पुरुष पर्यन्त पतित सावित्रीककी व्रात्य कहते हैं। इस दोषकी शान्तिके लिये इनका अनुष्ठान और लौकिक अग्निमें इनका होमविधि है। इनके मध्य प्रथम व्रात्यस्तोममें नृत्यगीतकारी व्रात्यका अधिकार है। द्वितीय उक्थ्यसंस्थमें निन्दित व्यक्तिका अधिकार है। तृतीयमें कनिष्ठका अधिकार है। इसमें गृहपति बना कार्य सम्पादन करना पड़ता है। चतुर्थमें अल्पसन्ततिस्थविर ज्येष्ठका अधिकार है। अर्थात् ऐसे ज्येष्ठको गृहपति बना यह कार्य सम्पादन करना पड़ता है। इन सकल कार्योंका दीक्षा-विधानादि और व्रात्यस्तोम सम्पादनकारियोंके व्यवहारका विधि है। परिशेषको ब्रह्मवर्चस, वीर्य, अन्न एवं प्रतिष्ठादि अभिलाषी और स्वीय पवित्रता-प्रार्थी व्यक्तिके अग्निष्टोमसंस्थ अग्निष्टुत् नामक एकाहयागकी कर्तव्यता है।

५म कण्डिकामें अग्निष्टुत्‌के द्रव्य, देवता और मंत्रविधानादिका वर्णन है। त्रिवृत्‌स्तोम नामक अग्निष्टोमसंस्थके चतुर्विध यज्ञका विधान है। उनके मध्य अनिरुक्त प्रातःसवन प्रथम है। उसका नाम इषु यज्ञ है। स्वर्गादि अभिलाषी किंवा ग्रामादि अभिलाषीका उसमें अधिकार है। उसके द्रव्य, देवता और मंत्रका विधानादि है। वृहस्पतिसवन द्वितीय है। राजाके साथ ब्राह्मणका (धर्मस्थापक रूपसे अङ्गीकार किये जानेवाले ब्राह्मणका) उसमें अधिकार है। तृतीयका नाम इषु है। यह श्येनकी भांति किया जाता है। किन्तु भेद इतना ही है कि यह सद्य अनुष्ठेय नहीं होता। मातृकामनासे इसका अनुष्ठान करना पड़ता है।

६ष्ठ कण्डिकामें सर्वस्वार नामक चतुर्थ एकाह यज्ञ है। जीवनाभिलाषी और मृत्युकामनाकारी उभयका इसमें अधिकार है। सिवाय इसकी दक्षिणा है। इस यज्ञके द्रव्य, देवता और मंत्रका विधानादि है। ऋत्विक् अपोहनीय नामक त्रिविध यज्ञका विधान है। उनमें प्रथमका नाम सर्वस्तोम है। द्वादशाहिक छन्दोमत्रयके मध्य उक्थ्यसंस्थ उत्तम दिन द्वय पृथक् कर द्वितीय और तृतीय ऋत्विक् अपोहनीय सम्पादन करना पड़ता है। वाचस्तोम चतुर्विध है। छान्दोग्यमें इनका विशेष विधि लिखा है। परिशेषको त्रिवृत्, पञ्चदश, सप्तदश, एकविंश, त्रिनव और त्रयस्त्रिंश नामक छह एकाह पृष्ठ्यस्तोम-विश्वकका विधान कथित है।

७म कण्डिकामें उनके विधानप्रकार, मंत्र, देवता प्रभृतिका कथन है। अग्न्याधेय, पुनराधेय, अग्नि-होम, दर्शपौर्णमास, दाक्षायण और अयन नामक प्रतिकर्ममें सोमयुक्त छह यज्ञ और उनका विधानादि कथित है। ८म कण्डिकामें सप्तदशस्तोमक पांच यज्ञका विधान है। उनमें ग्रामाभिलाषी व्यक्तिका उपहव्य नामक अनिरुक्त यज्ञविधान और मिथ्याभिशस्त व्यक्तिका भी इस यज्ञमें अधिकारविधि है। उसकी दक्षिणाका विधानादि है। दुर्गाभिलाषी व्यक्तिका ऋतपेय एवं उसका विधान प्रकार और देवता तथा मंत्रादिका विषय कथित है। ९म कण्डिकामें पशु-काम और वैश्यकामका वैश्यस्तोम है। उसका विधानादि है। उक्थ्यसंस्थ तीव्रसुत् नामक यज्ञ है। तीव्रसुत्‌में सोमका अतिदेश रहते भी विशेष विधान है। उसमें सोमाभिपूत स्वराज्यभ्रष्ट राजाका एवं दीर्घव्याधिशान्ति, ग्राम, प्रजा और पशुकामना-कारीका अधिकार है तथा उसका विधानादि कथित है। १०म कण्डिकामें राज्यप्रार्थी क्षत्रियका राट् नामक यज्ञ है। उसका विधानादि कहा है। उक्त यज्ञकी अग्निष्टोमसंस्थता है। ऋषभकी भांति ऐन्द्राग्न्येष्टिकी कालव्यता है। अन्नादि प्रार्थी व्यक्तिका विराट् नामक यज्ञ है। ऐन्द्राग्न्येष्टिकी भांति आद्यन्तमें आग्नेय पशुसंयुक्त कर इसकी भी कर्तव्यता है। पुत्रार्थीका उपसद नामक एकाह है। उसका विधानादि कहा है। उक्थ्यसंस्थ पुनस्तोम नामक एकाह है। उसमें प्रतिग्रह दोषशान्ति प्रार्थीका अधिकार है। उसका दक्षिणादि है। पशुकाम व्यक्तिका चतुष्टोम नामक और उद्भिद्‌बलभिद् नामक एकाहद्वय है। दर्श-पौर्णमासकी भांति मिलित उभयकी फलसाधकता है। इषुयज्ञ और उसका विधानादि है। उद्भिद्‌यज्ञके पीछे उसी दिनसे अर्धमास, एक मास अथवा संवत्सर पर्यन्त प्रत्यह इषु यज्ञका अनुष्ठानविधि है। उसका विधानादि है। पूजाभिलाषी व्यक्तिके अपचिति नामक दो यज्ञोंका विधान है। उनमें राजा वा द्विजातिका अधिकार है। उनका विधानादि है। उभय यज्ञके मध्य प्रथम यज्ञका नाम पञ्चोति और द्वितीय यज्ञका नाम ज्योतिः है। यह उभय यज्ञ भी सर्वजित्‌की भांति दीक्षायुक्त हैं। इनका दक्षिणादि विधि है। ऋषभ और गोषव नामक दो यज्ञोंका विधान है। उनके मध्य अग्निष्टोमसंस्थ ऋषभमें राजाका अधिकार है और उसका दक्षिणाभेद विधि है। उक्थ्यसंस्थ गोषवमें अयुत गो दक्षिणा और वैश्य वा अन्य जातिका उसमें अधिकार है। उसका विधानादि है। मरुत्‌स्तोम नामक यज्ञविधि है। उसमें एकत्रित भ्रातृसमूह और वस्तुसमूहका अधिकार है। वैश्यस्तोम निर्दिष्ट दक्षिणा-का ही उसके दक्षिणारूपसे निर्देश है। ऐन्द्राग्नकुलाय

नामक यज्ञविधि है। पुत्रार्थी और पशुप्रार्थी यजमानका उसमें अधिकार है। गोकुल दक्षिणा है। उसमें दो भ्राता वा दो सखाका अधिकार है, समूहका अधिकार नहीं। राजकर्तव्य उक्थ्यसंस्थ इन्द्रस्तोमका विधान है। पुरोहित प्रार्थीका इन्द्राग्नीस्तोम नामक यज्ञविधि है। सायुज्य अभिलाषी राजा और पुरोहितका इसमें अधिकार है। उभयका एकत्र वा पृथक् भावसे अधिकार है। ऐसे अधिकारका भेद-विधि है। पशुकाम यजमानके अग्निष्टोमसंस्थ विधान नामक यज्ञद्वयका विधान है। उसमें अभिचारकाम वा पशुकामका अधिकार है। पशुकाम यजमानका वत्स तथा दुग्धयुक्त बृहत् गो और अभिचार कामका तीस गो दक्षिणाविधि है। अभिचारकामके संदंश और वज्र नामक दो यज्ञोंका विधान है। द्वन्द्वसोम-भावसे उभय यज्ञोंकी कर्तव्यता है। उभयके मध्य वज्रका षोड़शिसंस्थ रूपभेद-कथन है। संदंश द्वारा राजाका अभिचार करना चाहिये, देशका नहीं और वज्र द्वारा देशका अभिचार करना चाहिये, राजाका नहीं। उक्त रूपसे विधान कथित है। मतान्तरमें उभयका विपरीत भावसे विधान है। अभिचार द्वारा राजादिका उपशम वा मारण सम्पादन कर ज्योतिष्टोम यज्ञद्वारा आत्मशुद्धिका विधान है। इसी प्रकार सामवेदविहित एकाह निर्दिष्ट है।

२३श अध्यायमें ५ कण्डिका हैं। उसकी १म कण्डिकामें अहीन नामक यज्ञसमूहका द्वादश उपसद् एवं एकमासमें उसका समापनविधि है। सूत्योपसद्का विशेष उपदेश है। दीक्षाके भेदका विधि है। यथा सौत्यदिन और उपसद्समूहके दिन गिन दीक्षानियम है। दो रात्रिसे द्वादश दिन पर्यन्त सम्पादन योग्य याग अहीन कहाता है। अन्यके मतमें पाठ हेतु अतिरात्रको भी अहीनसंज्ञता है। द्वयहादिमें द्वादश-दशरात्रादिकी प्रवृत्तिको गौणता कहते हैं। द्वादश-दिन कर्तव्य दशरात्रका द्व्यहादिमें कर्तव्यता है। द्विरात्रि प्रभृतिमें सहस्र दक्षिणा है। चार रात्रि प्रभृतिमें अधिक दक्षिणादान पर प्रत्यह समभागसे दानविधि है। परिशेषको अवशिष्ट समुदायका दान है। त्रयोदश अतिरात्रका विधान है। यथा—षोड़शिग्रहरहित चार प्रथम अतिरात्र हैं। उनके मध्य प्रजातिकामका नव सप्तदश नामक प्रथम अतिरात्र है। ज्येष्ठ भ्रातृविशिष्टा स्त्रीके ज्येष्ठपुत्रका कर्तव्य विषुवत् नामक द्वितीय अतिरात्र है। जिसके भ्रातृव्य रहता, उसका गो नामक तृतीय अतिरात्र है। स्वर्गकाम वा आरोग्यकाम यजमानका आयुः नामक चतुर्थ अतिरात्र है। धनाभिलाषीका ज्योतिष्टोम नामक पञ्चम अतिरात्र है। पशुकामका विश्वजित् नामक षष्ठ अतिरात्र है। ब्रह्मतेजः-प्रार्थीका त्रिवृत् नामक सप्तम अतिरात्र है। वीर्यकाम यजमानका पञ्चदश नामक अष्टम अतिरात्र है। अन्नादि-अभिलाषी यजमानका सप्तदश नामक नवम अतिरात्र है। प्रतिष्ठाकाम यजमानका एकविंश नामक दशम अतिरात्र है। ग्रामपशुका ध्वंस होनेसे पुनर्वार उसकी प्राप्तिके लिये आप्तोर्याम नामक एकादश-अतिरात्र है। भ्रातृव्यवान्का अभिजित् नामक द्वादश अतिरात्र है। ऐश्वर्यप्रार्थीका सर्वस्तोम नामक त्रयोदश अतिरात्र है। इसी प्रकार त्रयोदश प्रकार अतिरात्रका विषय कहा है।

२य कण्डिकामें दो सूत्रोंसे तीन अहीनका विधि है। उनके मध्य द्वितीय और तृतीय अहीनके षोड़शिग्रहरहित दो अतिरात्र हैं। तीन अहीनके आङ्गिरस, चैत्ररथ और कापिवन तीन नाम कहे हैं। द्वितीय द्विरात्रिके उक्थ्य पूर्व ताण्ड्य ग्रन्थका मतभेद है। पार्ष्टिक अग्निष्टोमके स्थानमें उक्थ्य निर्देश है। संस्थभेदमात्र ही उसका धर्म है। पुत्रयोग्य होते भी जो पुत्रहीनकी भांति रहता, उसीका आङ्गिरसमें अधिकार है। पुत्रार्थी यजमानका चैत्ररथमें अधिकार है। स्वर्गकाम वा पशुकाम यजमानका कापिवनमें अधिकार है। त्रिसूत्रीके गर्ग, वैद, छन्दोम, अन्तर्वसु और पराक नामक पांच अहीन यज्ञोंका विधान है। उनके मध्य वैद त्रिरात्रिसाध्य एवं त्रिवृत्स्तोमयुक्त अपर समुदाय अतिरात्रसाध्य है। इस पञ्चभेद यज्ञमें संस्थभेदका कथन है। इस समुदायमें राज्य-कामका अधिकार है। फिर अन्तर्वसुमें पशुकामका-

चार पराकमें स्वर्गकामका अधिकार है। उक्त मात्र भेदका कथन है। अत्रिचतुर्वीर, जामदग्न्य, वशिष्ठ-संसर्प और विश्वामित्र नामक चार चार दिनसाध्य यज्ञका विधान है। उनके मध्य जामदग्न्य यज्ञमें पुष्टिकाम व्यक्तिका अधिकार है। उसमें विंशति दीक्षा एवं इन चार यज्ञमें पुरोडाशविशिष्ट उपसद्‌का विधान कथित है। ३य कण्डिकामें उसके विधानका प्रकारादि है। ४र्थ कण्डिकामें पञ्चदिन साध्य तीन अहीनका विधान है। उनके मध्य प्रथम अहीनका नाम देवपञ्चाह है। द्वितीयका नाम पञ्चशारदीय है। इन उभय अहीनके विधानादिका कथन है। तृतीय पञ्चाहका व्रतवत् नाम कथन है। इस त्रिविध पञ्चाह यज्ञमें ज्योतिर्गौ, महाव्रत और गौरायु नामक तीन एकाह यज्ञका विधि है। सर्वजित्‌की भांति इसमें दीक्षानियम और उसका विधानादि निर्दिष्ट है। ५म कण्डिकामें छह दिन साध्य तीन अहीनका विधि है। तीन अहीनके ऋतुषड़ह, पृष्ठ्यावलम्ब और त्रिकद्रुक तीन नाम कहे हैं। इस त्रिविध यज्ञमें स्तोमविधानादि है। सप्ताहसाध्य सात अहीनका विधान है। उनके मध्य चारका उत्तम महाव्रत है। इन चारके मध्य तृतीयमें पशुकामका अधिकार है। पञ्चम अहीनका नाम इन्द्रसप्ताह है। इस पञ्चम सप्ताहमें द्वितीय एकाहसे आरम्भकर छह एकाह एवं सुत्याह समुदायका विधान है। इस सप्ताह समुदायके प्रत्येक सप्ताहमें ज्योतिः, गौः, आयुः, अभिजित् और सर्वजित् छह महाव्रतकी कर्तव्यता है। इसी प्रकार समुदाय दिनसाध्य यज्ञमें महाव्रतका विधान है। उत्तम सर्वस्तोमका विधान है। उसके शेष दिनको ज्योतिः, गौः, आयुः, अभिजित्, विश्वजित् और सर्वजित् महाव्रतविशिष्ट सर्वस्तोम अतिरात्र है। जनक सप्तरात्र नामक षष्ठ सप्ताह है। उसका विधानादि है। उत्तम सप्तम सप्ताहमें बृहद्रथन्तर सामयुक्त पुष्टिका विधान है। इस समुदायकी पुष्टिस्तोम संज्ञा है। इसी प्रकार सप्त-सप्ताह अहीनका विधान कहा है। उसके पीछे उसका विधानादि है। अष्टसुत्य अहीनमें पार्ष्टिक षड़हके पीछे महाव्रत कर्तव्य है। नवरात्रमें त्रिकद्रु, ज्योतिः, गौः, और आयुः नामक महाव्रतका विधान है। उसका प्रकारान्तर है। उसका विधानादि है। चार दशरात्रका विधि है। प्रतिष्ठाकामनाकारी व्यक्तिका त्रिककुप् नामक प्रथम दशरात्र है। अभि-चारकारीका कौसुरुविन्द नामक द्वितीय दशरात्र है। पूर्वदशरात्र नामक तृतीय दशरात्र है। पशुकाम व्यक्तिका छन्दोह नामक चतुर्थ दशरात्र है। उसका विधानादि है। पौण्डरीक नामक एकादशरात्र एवं उसका विधानादि कथित है।

२४श अध्यायमें ७ कण्डिका हैं। उसकी १म कण्डिकामें द्वादशरात्रसे एक दिन बढ़ा चत्वारिंशत् रात्र पर्यन्त यज्ञविधि है। उसमें जिस क्रमसे जो दिन उपदिष्ट हैं, वह दिन उसी प्रकार समझना पड़ते हैं। आवापिकसमूहका अन्यक्रम और औपदेशिक समूहका उपदेशक्रम लिया जाता है। उपदिष्ट दिन व्यतिरिक्त अन्यदिन समूहका आवाप-क्रम कथन है। यथा—यज्ञ अपूर्ण होनेसे दशरात्र आवाप रहता है। यह पहले नहीं, पीछे होता है। छह पार्ष्टिक अह और चार छन्दोम अह मिलाकर दशरात्र आता है। अथवा पृष्ठ्य षड़ह, तीन छन्दोम और अविवाक्यके समुदायका नाम दशरात्र है। यह दशरात्र समुदाय दिनके अन्तमें मानना पड़ेगा। दशरात्रके पीछे एकाह विषयमें प्रकृतिविहित समुदायसे महाव्रत होता है। यज्ञ संख्यापूरणके लिये दशरात्र पीछे एकाह व्यतीत महाव्रत पड़ता है। महाव्रत व्यतीत अन्यकार्यसमूह आवापके पीछे और दशरात्रके पहले करते हैं। जहां षड़ह व्यतीत यज्ञसंख्यापूरण नहीं होता, वहां षड़ह पूरणके लिये अभिप्लवका व्यवहार चलता है। अभिप्लवसे पहले पञ्चाह समुदाय भी पञ्चाह व्यतीत संख्यापूरण न पड़नेसे अनुष्ठित होता है। त्र्यह व्यतीत संख्या-पूरण न होनेसे त्र्यह विषयमें ज्योतिः, गौः और आयुःका विधान है। उक्त तीनोंको त्रिकद्रुका कहते हैं। चतुरह व्यतीत यज्ञसंख्या पूरण न होनेसे चतुरह विषयमें ज्योतिः प्रभृति तीन और महाव्रतका अनुष्ठान

कर पूरण कर्तव्य है। इसह व्यतीत संख्यापूरण न होनेसे इसह विषयमें गौ: और आयु: पूरण हुवा करता है। यज्ञके आरम्भमें अतिरात्र कर्तव्य है। प्रायणीय और उदयनीयके मध्य आवापस्थान करना पड़ता है। जो आवाप करनेका विधि है, उसके अतिरात्रद्वय मध्य करणका विधान है। आवापसमूहके समवाय द्वारा जहां यज्ञ पूरण होता, वहां जो जो अनुष्ठान अल्प आता वही प्रथम किया जाता है। दो त्रयोदशरात्र यज्ञका विधि है। इसमें पृष्ठ्य सम्पादित होनेसे सर्वस्तोमनामक अतिरात्रका विधान है। अर्थात् समुदाय यज्ञमें द्वादशाह धर्मका विधान है। सुतरां इसमें भी द्वादशरात्र समूह सम्पादन और सर्वस्तोम अतिरात्रका अनुष्ठान करना चाहिये। ऐसा करनेसे त्रयोदशरात्रका पूरण होता है। इसका क्रम है। यथा—प्रथम दिन प्रायणीय अतिरात्र होता है। द्वितीय दिनसे छह दिन पर्यन्त पृष्ठ्य षड़ह करते हैं। अष्टमदिन सर्वस्तोम अतिरात्र होता है। नवम दिनसे चार दिन तक चार छन्दोम चलते हैं। त्रयोदश दिन उदयनीय अतिरात्र किया जाता है। द्वितीय त्रयोदशरात्रमें दशरात्रके पीछे महाव्रत करना पड़ता है। इसी प्रकार भेद कथित है। सत्रार्थ तृतीय त्रयोदशरात्रके गवामयनकी भांति सन्तरण-प्रकार है। चतुर्दशरात्रमें तीन यज्ञका विधान है। उनके विधानका प्रकारादि है। उसके मध्य शेष चतुर्दशरात्रमें विवाहोदकतल्पसंशयित गणका अधिकार है। पञ्चदशरात्रको चार यज्ञोंका विधान है। उनका विधान प्रकारादि एवं सप्तदशरात्रमें, अष्टादशरात्रमें, एकोनविंशरात्रमें और विंशतिरात्रमें इसी प्रकार आवापनपूरण कथित है। ३य कण्डिकामें षोड़शरात्र प्रभृति चारमें आवाप प्रकार है। उसके मध्य षोड़शरात्रको प्रायणीयके पीछे पञ्चाह है। अष्टादशरात्रमें प्रायणीयके पीछे षड़ह है। एकोनविंशरात्रमें प्रायणीयके पीछे षड़ह एवं दशरात्रके पीछे व्रत है। इसी प्रकार आवाप उक्तिके द्वारा विधान प्रकार है। एकविंशतिरात्रमें दो अतिरात्र हैं। उनमें आवाप प्रकार और उसका विधानादि है। अन्नादिकाम व्रात्यके द्वाविंशति रात्रका विधान है। उसके विधानका प्रकारादि हैं। प्रतिष्ठाकामके त्रयोविंशतिरात्रका विधान है। प्रजाकाम और पशुकाम व्रात्यके चतुर्विंशतिरात्रका विधान है। यह द्विविध है। उनमें प्रथमका विधानादि और द्वितीयका संसद नाम तथा उसका विधानादि कथित है। अन्नादिकामके पञ्चविंशतिरात्रका विधि है। प्रतिष्ठाकामके षड़विंशतिरात्रका विधान है। धनकामके सप्तविंशतिरात्रका विधि है। प्रजाकाम तथा पशुकामके अष्टाविंशतिरात्र एवं द्वात्रिंशत्रात्रका विधि है। इस समुदायका क्रमश: विधान है। एकोनत्रिंशत्रात्र, त्रिंशत्रात्र, एकत्रिंशत्रात्र एवं द्वात्रिंशत्रात्रका विधानादि है। त्रयस्त्रिंशत्रात्रका विविध भेद है। उसके विधानका प्रकार है। चतुस्त्रिंशत्रात्रावधि चत्वारिंशत्रात्रि पर्यन्त सप्तयज्ञका आवापक्रमानुसार पूरणविधि है। उसका विशेष नियम है। यथा—अन्नादिकामके चतुस्त्रिंशत्रात्र, प्रतिष्ठाकामके षट्त्रिंशत्रात्र, ऐश्वर्यकामके सप्तत्रिंशत्रात्र, प्रजाकाम एवं पशुकामके अष्टात्रिंशत्रात्र और चत्वारिंशत्रात्र यज्ञका विधान है। एकोनपञ्चाशत् रात्रसाध्य सत्र यज्ञका विधान है। उनके मध्य प्रथमका नाम विधृति है। उसका विधानादि है। द्वितीयका नाम यमातिरात्र है। उसका विधानादि है। तृतीयका नाम अञ्जनाभ्यञ्जनीय है। विद्वानोंके मध्य अपनी ख्यातिके आकाङ्क्षियोंका इसमें अधिकार है। इसका विधानादि है। चतुर्थका नाम संवत्सरमित है। उसका विधानादि है। ३य कण्डिकामें इसके साहस्रकी प्रसङ्गाधीन पुत्रार्थियोंके कर्तव्य एकषष्टिरात्रका विधान है। सविताके उद्देशसे पञ्चम ककुभका विधि है। उसका विधानादि है। उसमें पुत्रार्थीका अधिकार है। षष्ठ और सप्तमका सामान्य विधान है। शतरात्रका विधानादि और इस विधानमें विकल्पविवरण कथित है। ४र्थ कण्डिकामें सवन सम्बन्ध प्रभृति होमका विधानादि है। संवत्सर प्रभृति यज्ञमें गवामयन धर्मका अतिदेश है। आदित्यगणके अयन नामक यज्ञका विधानादि है। आदित्यगणके अयनकी भांति आङ्गिरसोंका अयनविधि है। उसका

विशेष नियम है। दृतिवातवान्‌के अयन नामक यज्ञका विधानादि है। कुण्डपायिगणके अयन नामक यज्ञका कालविधानादि है। इस यज्ञमें मुत्या स्थान-समूह पर सोम और उपनहन प्रभृतिका विशेष विधि है। सर्पसत्र नामक यज्ञका भेद विधानादि और उसमें गवामयन धर्मका अतिदेश कथित है। ५म कण्डिकामें तापश्चित नामक यज्ञका विधानादि है। महातापश्चित यज्ञका विधानादि है। क्षुल्लक तापश्चित यज्ञका विधानादि है। त्रिसंवत्सर यज्ञका विधानादि है। महासत्र नामक यज्ञका विधानादि है। द्वादश वत्सरसाध्य प्रजापतिसत्र नामक यज्ञका विधानादि है। षट्‌त्रिंशत् वत्सरसाध्य शक्त्यानामयन नामक यज्ञका विधानादि है। शतवत्सरसाध्य साध्यानामयन नामक यज्ञका विधानादि है। सहस्रवत्सरसाध्य विश्वसृजामयन नामक यज्ञका विधानादि है। (गौणवृत्ति अनुसार यह यज्ञ सहस्र-दिनसाध्य समझना चाहिये) सारस्वत यज्ञसमूहका विधानादि है। यातृसत्र नामक यज्ञविधि है। शतसंख्यक प्रथमगर्भिणी वत्सतरी और एक वृष सहस्र संख्या पूरणको इस यज्ञमें वनमें छोड़नेका विधि है। सारस्वत यज्ञका दीक्षाकाल और देशादि विधान है। (यथा—चैत्र शुक्ल सप्तमी तिथिको सरस्वती विनशन नामक स्थानमें दीक्षा कर्तव्य है। सरस्वती नाम्नी जो नदी बहती है, उसका पूर्व और पश्चिम भाग मनुष्यको देख पड़ता है। किन्तु मध्यभाग भूमिमें निमग्न रहनेसे किसीके दृष्टिगोचर नहीं होता। इसी स्थानको सरस्वती-विनशन कहते हैं। इसमें दीक्षा विधानादिका प्रकार है।) ६ष्ठ कण्डिकामें उसका अङ्ग विधानादि है। सरस्वती और दृषद्वतीके सङ्गमस्थलपर उसका विधानादि है। प्लक्षस्रवण नामक सरस्वतीके उत्पत्तिस्थानपर अग्नयेकामाय नामक यज्ञका विधि है। इस यज्ञमें कारपच नामक एक देशमें यजमानका अवभृथस्नानविधि है। यज्ञशेषमें उदवसनीयकी कर्तव्यता है। पृष्ठशमनीयशून्य तीन सारस्वत यज्ञका विधान है। पूर्वोक्त सहस्र यज्ञ पूरण न होते गृहपति वा समुदाय भी मर जानेसे यह यज्ञ समापनका विधि है। सहस्र पूरण होते भी यह यज्ञ समापन करना पड़ता है। गृहपतिका मृत्यु होनेसे आयुः नामक अतिरात्र यज्ञकर और द्रव्यसमूह नष्ट होनेसे विश्वजित् नामक यज्ञकर समापन करनेका विभिन्न विधि है। उभय घटनाओंमें ज्योतिष्टोम द्वारा समापनरूप अन्य मतका कथन है। इसी प्रकार प्रथम सारस्वत कहा है। द्वितीय सारस्वत दृतिवात-वान्‌के अयनकी भांति कर्तव्य है। उसका विधानादि है। उसमें तिथिको चयवृद्धिका भी विशेष विधान है। शुक्लकृष्णपक्षका विशेष विधानादि है। तृतीय सारस्वतमें विश्वजित् और अभिजित् विधानादि है। उसमें ऋत्विक् अथवा आचार्यके दार्षद्वत नामक यज्ञकी कर्तव्यता है। इस यज्ञमें एक वर्षके लिये वनमें गो सकल परित्याग करना चाहिये। द्वितीय वत्सर उन्हें निर्जल स्थानमें रखा करनेका विधि है। इसी वर्ष सरस्वती तीर नैतन्धवा नामक जो सकल प्राचीन ग्राम हैं, उनमें अग्न्याधानका आरम्भविधि और कुरुक्षेत्रमें परीणत् नामक स्थलपर अन्वारम्भ-विधि है। उसके पीछे तृतीय वत्सर परीणत् नामक स्थलपर ही दर्शपौर्णमासान्त कार्यको कर्तव्यता है। दृषद्वती तीरसे आ यमुनामें अवभृथ स्नान और उसी स्थान पर मन्त्रपाठका विशेष विधान कहा है। ७म कण्डिकामें चैत्र वा वैशाखमासकी शुक्लपञ्चमीको तुरायण नामक सारस्वत यज्ञकी कर्तव्यता है। उसको दीक्षाका विधानादि है। यह यज्ञ एक वत्सरसाध्य है। उसमें वर्ष पर्यन्त कर्तव्यका उपदेश है। दार्ष-द्वतकी भांति अनियत अवभृथस्नानविधि है। भरत-द्वादशाह प्रभृति द्वादशाह भेद कथन है। उसका विधानादि और उत्सर्पिसमूहमें गवामयनका विकल्प-विधान विहित है।

२५श अध्यायमें १४ कण्डिका हैं। उनमें अङ्ग-वैगुण्य दोषके उपशमको प्रायश्चित्तका विधान है। (प्रायश्चित्त शब्दका अर्थ है। यथा—प्रपूर्वक आय धातुके उत्तर घञ् प्रत्यय लगानेसे प्राय पद निष्पन्न होता है। उसका अर्थ विधि अतिक्रमके लिये दाय है। चित धातुके उत्तर भावमें क्त प्रत्यय लगानेसे

चित्त पद निष्पन्न होता है। धातुसमूहका विविध अर्थ विहित रहनेसे उसका अर्थ सन्धान है। प्रायका अर्थात् विधि अतिक्रमके लिये दोषका चित्त अर्थात् सन्धान अर्थ आता है। इस वाक्यमें पाणिनि व्याकरणोक्त 'प्रायस्य चिति चित्तयोः' एवं 'पारस्कर प्रभृति' सूत्र द्वारा मध्यमें 'सुट्' आदेशपूर्वक यह पद निष्पन्न हुवा है। सर्वकार्यके अन्तमें अथवा निमित्तकालमें प्रायश्चित्तकी कर्तव्यता है।) प्रायश्चित्त विशेषका आदेश न रहनेसे सर्वत्र महाव्याहृति होमरूप प्रायश्चित्तका विधि है। विशेष आदेश अनुसार ही प्रायश्चित्त करना पड़ता है। यथा—"प्रणीताः स्रवा अभिमृशेत्" यजुः श्रुतिद्वारा प्रणीताभिमर्षणरूप प्रायश्चित्त विहित होनेसे यही कर्तव्य है।) ऋग्वेदोक्त हौत्रिक कर्म उपघात होनेसे गार्हपत्य अग्निमें 'भूः' स्वाहा बोल अग्निदैवत होम करना चाहिये। इसमें कर्ताका विशेष आदेश न रहनेसे ब्रह्मको ही करना उचित है। ब्रह्मवरणके पूर्व निमित्त उपस्थित होनेसे ब्रह्मवरणके पर्व ही व्याहृतिहोमका अन्य अपर ब्रह्मवरण कर उसके द्वारा कराते हैं। जिस अग्निहोत्रादिमें ब्रह्मवरणका विधि न हो, वह स्वयं कर्तव्य है। कालाहुति द्वारा सोममें इसका समुच्चय करना पड़ता है। यजुर्वेदोक्त कर्मका उपघात होनेसे "भुवः स्वाहा" कह होम करते हैं। वह भी पूर्वकी भांति ब्रह्मका ही कर्तव्य है। सोमके आग्नीध्रीय अग्निमें "भुवः स्वाहा" कह होम करना पड़ता है। इतनी ही पूर्वके साथ इसकी विभिन्नता है। इसका देवता वायु है। सामवेद विहित कर्मका उपघात होनेसे आहवनीय अग्निमें "स्वः स्वाहा" कह होम करना चाहिये। इसका देवता सूर्य है। सर्ववेदोक्त कर्मका उपघात होनेसे तीन वार पृथक् पृथक् "भूर्भुवः स्वः स्वाहा" वाक्य द्वारा एवं एक वार समुदाय मिलित वाक्य द्वारा चार बार होम करते हैं। "अयाश्चाग्ने" इत्यादि पञ्च ऋक् द्वारा प्रत्येक ऋक् पर आहवनीय अग्निमें पञ्च आहुतिरूप सर्वप्रायश्चित्त नामक होम करना चाहिये। स्मृतिविहित अज्ञात कर्ममें पृथक् भावसे चार महाव्याहृति होम करते हैं।

(जैसे—यज्ञोपवीतधारी व्यक्ति शिखा बांध पवित्र दक्षिण हस्त द्वारा कर्म करता है। इस नियमस्थलमें यज्ञोपवीतधारणादि स्मृतिविहित कर्म है। इसमें किसी प्रकार उपघात होनेसे व्यस्त और मिलित चार महाव्याहृति होमरूप प्रायश्चित्त कर्तव्य है।) उसके पीछे यजुर्वेदोक्त सर्वप्रायश्चित्त नामक पूर्वोक्त पञ्च ऋक्वेदीय आहुतिरूप प्रायश्चित्त समुदाय ज्ञात वा अज्ञात कारणसे करनेका विधि है। (किन्तु इसमें सम्प्रदाय भेद है। यथा—गार्हपत्यमें भूः, दक्षिणाग्निमें भुवः, आहवनीय अग्निमें स्वः, एवं सर्वप्रायश्चित्त नामक पञ्च आहुतिरूप प्रायश्चित्त होममें भूर्भुवः स्वः कहा है।) उसके पीछे कर्मविशेषके अनुसार प्रायश्चित्त-विधान कहा है। इस अध्यायकी ७म कण्डिकामें ८म सूत्र पर्यन्त उक्त समस्त विषय वर्णित है। उसके आगे ९म सूत्रसे कर्मसमाप्तिके पूर्व यजमानका मृत्यु होनेसे कर्मसमाप्ति उसी समय हो जाती है। एक ऐसा पक्ष है। दूसरे पक्षमें ऋत्विक् प्रभृति अवशिष्ट भाग समाप्त करते हैं। उसमें कर्मसमाप्ति पर्यन्त उत्तर क्रियाविशेषका विधान विहित है। ८म कण्डिकामें उपकृत पशुके पलायन प्रभृति पर प्रायश्चित्तके भेदका कथन है। उसके आगे मन्त्ययाग-पद्धति है। ९म कण्डिकामें अस्थिके सञ्चयका प्रकार आदि है। १०म कण्डिकामें यज्ञविशेष करनेके लिये उद्यम करनेके पीछे वह किया न जानेसे विश्वजित् नामक अतिरात्र यज्ञ करनेका विधि है। यज्ञ आदिके लिये दीक्षा करनेसे यदि दैवात् वा किसी मनुष्यके लिये वह दीक्षा अपर्वक्रत रहे वा स्वामीका यज्ञ समापन न करे और इस प्रकार बुद्धि उपस्थित हो जाये, तो सोमयुक्त साधारण धान्य घृतादि सर्वस्व दक्षिणाके साथ विश्वजित् नामक अतिरात्र यज्ञ करना चाहिये। अध्वर्यु प्रभृतिका दैवात् स्व स्व कार्य क्रिया न जानेसे अदक्षिणाभावमें ही कर्म समापन कर पुनर्वार अन्यको वरणपूर्वक याग आरम्भ करनेका विधि है। उसमें दिनके भेदका विशेष नियम है। दीक्षित व्यक्तिकी पत्नी यदि रजस्वला हो, तो दीक्षारूप-शकुनिधान कर रक्तस्राव पर्यन्त वालुकामें अवस्थान-

करना चाहिये। मुत्या वर्तमान रहते सिकतामें उपवेशन करते हैं। प्रातःकाल और सायंकाल वेदीके निकट सिकता पर बैठते हैं। चतुर्थ दिवस गोमूत्रमिश्रित जल द्वारा स्मृतिविहित स्नान कर वस्त्र परिधानपूर्वक साव्रिपातिक कार्य करना चाहिये। आरातृउपकारक कर्म कर्तव्य नहीं। (दीक्षणीय भूमि उल्लेखन प्रभृति कार्यको आरातृउपकारक कार्य कहते हैं।) पत्नी प्रसूता होनेसे दश रात्रिके पीछे स्नान करना चाहिये। मतान्तरमें गर्भिणीकी दीक्षाका निषेध है। किन्तु "अयज्ञियाः गर्भाः" श्रुतिके अनुसार गर्भवतीको भी दीक्षामें अधिकार है। कात्यायनका यही मत है। दीक्षित व्यक्तिके दुःस्वप्नादि दर्शन प्रभृतिमें प्रायश्चित्तका विशेष विधि है। चमसके पान और अपान सम्बन्धमें प्रायश्चित्तका विधान है। सोमके ऊपर मेघ बरसनेसे भक्ष्याभक्ष्य नियमपूर्वक उसमें प्रायश्चित्तका विधि है। चमसके दोषविषयमें और द्रोणकलसके दोषविषयमें प्रायश्चित्तका विधान है। अग्निभेदनमें होमभेद प्रायश्चित्त है। ११श कण्डिकामें सोमका अपहरण होनेसे अव्यक्त रक्तिमायुक्त पुष्प और तृण सोमकार्यमें निधान कर अभिषव करनेका विधि है। बहुकालीन खदिर वृक्ष लताको भांति अङ्कुरित होनेसे श्येनहृत कहाता है। श्येनहृत एवं श्यामा (सोम-सदृश पूतिका नामक एक लता), अरुण वर्ण दूर्वा, अव्यक्त रक्तिमायुक्त दूर्वा, हरित्वर्ण कुश अथवा अशुष्क कुश—सकल द्रव्यमें पूर्व पूर्व द्रव्यका अभाव आनेसे पर पर द्रव्य प्रतिनिधान कर अभिषव करनेका नियम है। उसमें गोदान प्रायश्चित्त कर उक्त द्रव्य द्वारा यज्ञ समापन कर्तव्य है। अवभृथ पीछे पुनर्वार उसमें यज्ञविधि है। सोमकलसके भेदानुसार सामपाठके प्रायश्चित्तका विधान है। अभिषवण कर्ममें प्रस्तुत परिमित सोमरस प्राप्त होनेसे जलादि द्वारा उसे बड़ा कलस पूर्ण कर द्रोणकलसकी पूर्णता सम्पादन करना पड़ता है। सोम पीछे मिलने पर जो द्रव्य मिल सके, उसे ही का पुनर्वार यज्ञ करनेका विधि है। उसमें गोदान प्रायश्चित्त करनेका नियम है। १२श कण्डिकामें सोमका आधिक्य होनेसे आद्य प्रभृति सवनविशेषके अनुसार प्रायश्चित्तके भेदका विधान है। दीक्षित व्यक्तिके रोग लगनेसे द्रोणकलसमें जो शुण्ठिपिप्पली प्रभृति वपन किया जाये, उसके मध्य जो द्रव्य लेनेकी इच्छा हो वही लेकर चिकित्सकको उसकी चिकित्सा करना चाहिये; किन्तु तद्व्यतीत अन्य द्रव्यद्वारा चिकित्सा विधेय नहीं। उसका विधानादि है। ज्वरयुक्त व्यक्तिके लिये भी पूर्वोक्त देशमें अवस्थानकाल पर्यन्त रोगकी शान्तिका विधान है, अन्यत्र नहीं। प्रातःसवनमें उसके मन्त्रविशेष द्वारा अभिषेकका प्रकार है। सवनके पीछे दीक्षित व्यक्तिको समुदाय ऋत्विक् स्पर्श करते हैं। उसमें यजमानके मन्त्रभेद द्वारा स्पर्शका विधि है। दीक्षित व्यक्तिका मृत्यु होनेसे उसको जलाने पीछे उसका अस्थिसमूह कृष्णमृगके चर्ममें बांध मृत व्यक्तिकी पत्नीको स्वीय कर्म और पतिका कर्म सम्पादन करना चाहिये। पत्नीका मृत्यु होनेसे उसके नेदिष्ठी भ्रातादि दीक्षित हो यज्ञ समापन करते हैं। इसी प्रकार मतान्तर मिलता है। किन्तु किसीके मतमें मृत्यु होनेसे यज्ञका भी समापन होता है। उभय पक्षपर उसमें प्रायश्चित्तका विधानादि है। १३श कण्डिकामें उखाभरणके दिन यजमानका मृत्यु होनेसे विशेष प्रायश्चित्तका विधान है। यज्ञकी दीक्षाके मध्य ही मृत्यु होनेसे उक्त सोमादि कार्यके लिये दीक्षित व्यक्तिको कर्मफल होता है। किन्तु मतान्तरमें कहा है—दीक्षित व्यक्तिके भ्राता प्रभृतिको ही प्रकृत यज्ञफल मिलता है। स्वकीय अग्निमें स्वकीय द्रव्य द्वारा साग्निक नेदिष्ठी पुत्रादिकर्तृक साग्निचित्यादि यज्ञ अनुष्ठित होनेसे नेदिष्ठीको ही फलप्राप्ति होती है। किन्तु प्रकृत यज्ञफल यजमान पाता है। उसमें उपदीक्षी व्यक्तिको नखच्छेदनके दिनसे द्वादश दिन पर्यन्त साव्रिपातिक करना चाहिये। यदि नेदिष्ठी अहिताग्नि न हो, तो यज्ञकारी व्यक्तिको ही अग्निमें कार्य करना पड़ता है। उसमें वैश्वानरनिर्वाप नामक प्रायश्चित्तका विधान है। १४श कण्डिकामें एक राजाके अधीन दो यजमान यदि पर्वत वा नदी प्रभृतिके व्यवधानशून्य समान देशमें यज्ञ करें, तो

उसमें सोमसंसव होता है। फिर यदि परस्पर विरोधी दो यजमान इसी प्रकार एक स्थानपर यज्ञके लिये सोमका अभिषव करें, तो मिश्रित भावमें कार्य्य करनेके लिये उसको संसव कहते हैं। उसमें समुदाय कर्म्म सत्वर सम्पादन करना उचित है। देशकाल भिन्न होनेसे, पर्वतादिका व्यवधान रहनेसे और परस्पर अविरोधी होनेसे वह संसव नहीं होता। इसी प्रकार भेदका कथन है। संसवविषयमें अपनी भांति मृत्युकामनाकारी होत्रादिकके कर्त्तव्य कर्म्मविशेषका विधान है। यथा—होताके मृत्युकामनाकारी होता, अध्वर्युके मृत्युप्रार्थी अध्वर्यु और यजमानके मरणाकाङ्क्षी यजमानको वही कर्म्म सम्पादन करना चाहिये। यह यज्ञ परस्पर द्वेष रहनेसे ऐसे देशमें अनुष्ठित होता जहां रथपर बैठ एक दिनमें जा सकें। परस्पर द्वेष न रहने अथवा उक्त नियमकी अपेक्षा देशका दूरत्व पड़नेसे अनुष्ठान असम्भव है। पूर्वोक्त होता प्रभृतिके मध्य एक जनमात्र कर्म्मका अनुष्ठान करनेसे अथवा एक जन मरनेसे स्व स्व यज्ञमध्यवर्ती अध्वर्यु प्रभृति अवशिष्ट कर्म्म सम्पादन करेंगे। उसमें अन्य वरणकी अपेक्षा करना नहीं पड़ती। सोमादि जल जानेसे प्रतिनिधि द्रव्य द्वारा कर्म्म समापन करना चाहिये। पञ्च गोदान कर यह यज्ञ समापन करनेका विधि है। द्वादश रात्रिके पूर्व यह दोष आनेसे पुनर्वार यज्ञारम्भ और परिशेषको पञ्च गोदान दक्षिणामात्र प्रायश्चित्त करना चाहिये। इसी प्रकार मतान्तरका विधान है। ब्रह्माका ही विहित कर्ममें अधिकार रहने और विशेष आदेश न मिलनेसे समुदाय प्रायश्चित्त होममें ब्रह्माका अधिकार है और ब्रह्मशून्य अग्निहोत्रादि कार्य्यमें यजमानके ही अधिकारका विधि कहा है।

२६श अध्यायमें ६ कण्डिका हैं। इन समस्त कण्डिकाओंमें प्रवर्ग्यका उपयोगी महावीरसन्तरण कर्म्म प्रतिपादित है। (यथा—मृत्पिण्ड, वल्मीकलोष्ट्र, शूकरकर्त्तृक उत्पाटित मृत्तिका, पूतिका नामक लताविशेष और गवेधुक नामक जलसन्निहित महारण्यजात शुक्लफलविशेष—समस्त द्रव्य सञ्चयपूर्वक पूर्वदिक् वा उत्तरदिक् रख कृष्णमृगचर्म और कुद्दालको उत्तरदिक् रखना चाहिये।) उक्त समस्तके ग्रहण और निधानका मन्त्रकथन है। इसमें कुम्भकारकर्त्तृक भाण्डादि निर्म्माणकी उपयोगी एवं अति चिक्कण मृत्तिका ग्रहण करना पड़ती है। ऐसी मृत्तिका कृष्णमृगचर्मकी उत्तरदिक् रखना चाहिये। उसकी दक्षिणदिक् वल्मीकलोष्ट्र रखते हैं। समचतुष्कोण भूभागकी पूर्वदिक्में द्वार और सात वार भूसंस्कार कर उसके ऊपर वालुका आच्छादनपूर्वक उसमें पञ्च अरत्नि अर्थात् प्रायः पांच हाथ परिमित मृगचर्म डाल उसके ऊपर उपकरणसमूह रख देना चाहिये। उल्लेखन, जलद्वारा अभिषिञ्चन और सन्तार द्वारा संसर्गविषयमें मन्त्रसमूहका कथन है। उसके अनन्तर अध्वर्युका गवेधुक और छागदुग्ध पृथक् भावसे रख वल्मीकलोष्ट्रादिके साथ मृत्पिण्ड मिलाना चाहिये। उसके पीछे महावीर कर्त्तव्य है। उसका स्वरूप है। (यथा—परिमाणमें एक प्रादेश अर्थात् अर्ध हस्त और मध्यदेश उलूखलकी भांति सङ्कुचित् रहता है। उपरिभागमें तीन अङ्गुलिपरिमित स्थानके अनन्तर ही यह सङ्कुचित मेखला लगाना पड़ती है।) महावीर निष्पन्न होनेसे "मखस्य शिरः" मन्त्र पाठपूर्वक उसके स्पर्शका विधि है। किसीके मतमें इस मन्त्र द्वारा उसका ग्रहण है। इसी प्रकार अपर दो महावीरका विधान है। अभिमर्शनके पीछे समुदायको भूमिमें निहत करनेका विधि है। स्रुक्के मुखकी भांति आकृतिविशिष्ट, रौहिण कपाल एवं वक्ष्यमाण पुरोडाशकपालकी भांति गोलाकार दोहनपात्रद्वय भूमिमें स्थापनकर अवशिष्ट मृत्तिका प्रायश्चित्तके लिये निहत करना चाहिये। "मखाय त्वेति" मन्त्र पाठपूर्वक गवेधुकसमूह चूर्णकर अश्वपुरीष द्वारा प्रदीप्त दक्षिणाग्निसे "अश्वस्य त्वेति" मन्त्र पाठपूर्वक इस मृत्तिकामें धूपदान करते हैं। उखाकी भांति प्रदाहन आदिका विधि है। चतुष्कोण अवट बना उसमें अपण अर्थात् पाकसाधन काष्ठादि बिछा उसके ऊपर तीन महावीर वक्रभावसे रखने पड़ेंगे। पीछे उसके ऊपर पुनर्वार इस काष्ठका आच्छादन डाल दक्षिणाग्नि द्वारा जलाना चाहिये। दग्ध होने पर फिर

यह सब छागदुग्धसे सींचना पड़ेगा। २य कण्डिकामें महावीरके विधान पीछे प्रवर्ग्यके आचरणका विधान है। गार्हपत्यके पूर्व प्रागग्रकुशसमूह फैला उस पर पात्रसमूहके स्थापनका विधि है। प्रोक्षणी संस्कृत और उत्थित कर ब्रह्मको अनुज्ञाका करण है। होत्रादिका प्रेरण है। गृहके पूर्वद्वारसे स्थूणा और मयूख निकाल गृहको दक्षिणदिक् जहां बैठ होता निखात स्थूणा और मयूख देख सके, वहीं उसके निखात करनेका विधि है। गार्हपत्य और आहवनीयमें उत्तरदिक् खरनिवाप है। दक्षिणदिक् भित्तिलग्नभावसे उच्छ्रिष्ट खरनिवापकी कर्तव्यता है। आहवनीयकी पूर्वदिक् सम्राड़ासन्दी आहरण कर दक्षिणदिक् प्राचीग्रहण होता है। उत्तरदिक् राजासन्दी और कृष्णाजिन आस्तरण कर उसमें महावीर निधान अथवा उसके द्वारा आच्छादन करना चाहिये। अध्वर्यु वा अन्य कोई स्थूणादि निष्कासन करेगा। पीछे विहित सिकताके मध्य महावीरका प्रवेशन कहा है। ३य कण्डिकामें प्रस्तोताका प्रेरण है। पत्नीशिरःका आच्छादन है। आज्यसंस्कारके काल ग्रहण जला सिकताके मध्य स्थापनका विधि है। उक्त सकल सुक्प्रस्रवमें संस्कृत घृतपूर्ण महावीरका निधान है। महावीरके ऊपर प्रादेशधारक मन्त्रका पाठ है। दक्षिणदिक् यजमानके उत्तान पाणिका निधान है। उत्तरदिक् प्रादेशका निधान है। महावीरकी चतुर्दिक् भस्मक्षेप कर परिश्रयणका विधि और महावीरके आच्छादनका विधि कथित है। ४र्थ कण्डिकामें आच्छादनके समय प्रस्तोताका प्रेषण है। महावीरकी चतुर्दिक् कृष्णाजिन निर्मित व्यजन द्वारा व्यजन करनेका विधि है। व्यजनके समय वाम और दक्षिणभावसे तीन वार प्रदक्षिणका विधान है। तेजः प्रदीप्त होनेसे उसमें सौ तोले घृत डाल महावीरके सींचनेका विधि है। उसी समय प्रतिप्रस्थाताके चरुपाकका विधि है। पाकशेष पर चरुके स्थापनका नियम है। प्रस्तोताका प्रेषण है। यजमानके साथ ऋत्विकोंका परिक्रमण है। प्रस्तोता व्यतीत अपर पञ्च ऋत्विक्के उपस्थानका विधि है। प्रस्तोताके साथ छहो छन्दोगोंके परिक्रमणका विधि है। पत्नीके शिरका आच्छादन खोल उसके द्वारा महावीरमोक्षणविधि है। परिश्रेषको रौहिण आहुति-का विषय कथित है। ५म कण्डिकामें धर्मधुक् बन्धनके लिये रज्जु और उसके पद बन्धनको सन्दान ग्रहणपूर्वक गार्हपत्यमें जा मन्त्र एवं उपांशु नाम उच्चारणपूर्वक उच्चैःस्वरसे तीन वार उसके आह्वानका विधि है। प्रस्तोताका प्रेषण है। मन्त्रपाठके अनु-सार समागत गोको उक्त रज्जु द्वारा स्थूणामें बांध और सन्दान द्वारा उसके पद बन्धन कर "धर्माय दीष्वेति" मन्त्र पढ़ वत्सको स्तनपानसे विरत करना चाहिये। विहित मन्त्रपाठपूर्वक पिन्वन नामक पात्र-विशेषमें उसके दोहनका विधि है। स्तनालम्भनका विधि है। ऐसे ही मयूखमें छाग बांध प्रतिप्रस्थाता उसको दोहन करेगा। प्रतिप्रस्थाताके प्रेषणका विधि है। गोके निकटसे अध्वर्युके उत्थानका नियम है। परीशासद्वयके ग्रहणका विधि है। परीशासद्वय द्वारा महावीर ग्रहण एवं उन्हे उत्क्षिप्तकर पुनर्वार उन्हें ग्रहण करनेका नियम है। दुग्धरूप धर्मके निम्न-देशमें उपयमनीका स्थापन है। उपयमनी द्वारा गृहीत महावीर पर छागदुग्ध सेचन कर निर्वाचित करने और गोदुग्ध अपनयन करनेका विधि है। ६ष्ठ कण्डिकामें आहवनीयमें जा वातनाम जपका विधि है। उपनयनीमें पतित दुग्ध वा घृतका सिञ्चनविधि है। जपके पीछे प्रस्तोताके प्रेषणका विधि है। वषट्कारके साथ मन्त्रपाठपूर्वक होमका विधि है। तीन वार महावीर उत्कम्पन करनेका नियम है। वषट्कारयुक्त मन्त्रपाठ-पूर्वक पुनर्वार होमका विधि है। हुतावशिष्ट द्रव्यका ब्रह्मानुमन्त्रण है। यजमानकर्तृक धर्मका अनुक्रमण है। अतितप्तके लिये पात्रमें उच्छलित धर्मके लेशसमूहका अनुमन्त्रण है। ईशानदिक्को गमन कर सिकताके मध्य अध्वर्यु कर्तृक महावीरके निधानका विधि है। निम्नस्थ धर्मके मध्य शकल डाल आहुति दानपूर्वक प्रथम परिधिमें विकङ्कत शकलसमूह निधान करनेका विधि है। ऐसे ही तीन वार आहुति दे अवशिष्ट शकल दक्षिणदिक् कुशमें प्रवेश करा देना चाहिये। अहुत सप्तम शकल महावीरस्थ घृतादि द्वारा

लिप्त कर प्रतिप्रस्थाताको देते हैं। उसके पीछे द्वितीय रौहिणके होमका विधि है। मध्यम परिधिमें निहत पञ्च विकङ्कत शकल आहवनीयमें आहुति देना चाहिये। उपयमनीस्थ घर्माज्य अग्निहोत्रके विधानानुसार आहुति दे समुदाय ऋत्विक् प्रभृति भक्षण करते हैं। खरमें उच्छिष्ट धौत कर उपयमनीको निधान करना पड़ता है। इसी समय उपस्थित पञ्च शकल आहवनीयमें प्रहार किये जाते हैं। उसके पीछे धेनुको तृण जल देनेका विधि है। समुदाय पात्रसमूह आसन्दा करनेका विधि है। खर, स्थूणा, मयूख, कृष्णाजिन, अभ्रि, उपयम और आसन्दीके एक बार आसादन और प्रोक्षणका विधि कथित है। ७म कण्डिकामें उपसदके पीछे प्रवर्ग्य उत्सादनका प्रकार है। अवभृथकी भांति अध्वर्युकर्तृक सामगानके लिये प्रस्तोताका प्रेषण है। अवभृथकी भांति देशगति और निधन है। सामगानके पीछे सकलके उत्सादन देशमें अर्थात् महावीरादि पात्रके त्यागदेशमें गमनका विधि है। उस स्थानमें यज्ञ अग्निचितिशून्य होनेसे सकलके उत्तर वेदिमें गमनका विधि है। किन्तु यज्ञ अग्निचितियुक्त रहनेसे परिस्यन्दमें जाना पड़ता है। उक्त उत्सादन देश वा उत्तर वेदि परिषेक कर उत्तर कार्यको कर्तव्यता है। अध्वर्युको उत्तर वेदिमें प्रथम महावीर और सर्वदिक्में अपर दो महावीर निधन करना चाहिये। वहीं उपयमा अर्थात् महावीरादिकी निर्माणावशेष मृत्तिका स्थापन करना पड़ती है। महावीरादिकी चारो ओर परीशासद्वय निधान करते हैं। नीचे और बाह्य देशमें रौहिणी एवं हरणी नामक स्रुक्द्वय निधान करना चाहिये। रौहिणीकी उत्तरदिक् अग्नि तथा दक्षिणदिक् आसन्दी और अभ्रिकी उत्तरदिक् धवित्र अर्थात् कृष्णाजिन निर्मित अजन समूहमें निधान करते हैं। उसके पीछे परिधि, उपयमनी, रज्जु, सन्दान, वेद, पिन्वन, स्थूणा, मयूख, रौहिण, कपाल, धृष्टि, स्रुव, मुञ्जकुट, खर, उच्छिष्ट खर प्रभृति निधानका विधि है। दुग्ध द्वारा महावीरादि सब पात्रके गर्तपूरणका विधि है। पत्नीके साथ सकलके चात्वाल मार्जनका विधि है। उसके पीछे ब्रह्म प्रभृतिको याज्ञिक द्रव्यसमूहके प्रदानका विधि है। महावीर भङ्ग होनेसे यथाकाल प्रायश्चित्त करनेका विधान है। दश प्रायश्चित्तका प्रकारादि है। प्रवर्ग्यके चरणका विधि है। उसमें पूर्णाहुति होमका प्रकार है। स्रियमाण महावीर भग्न होनेसे उसके प्रायश्चित्तका नियम है। प्रवर्ग्यके अधिकारीका निर्देश है। हुतशेष द्रव्यके भक्षणका विधि है। प्रवर्ग्यचरणके आद्यन्तमें शान्तिकाध्यायके पाठका विधि है। इन दोनों अध्यायोंके मध्य १म अध्याय द्वारपिधानके पीछे और २य अध्याय आसन्दामें पात्र निधानके पीछे पढ़ना पड़ता है।

कात्यायनसूत्रमें उक्त समस्त विषय अति विस्तृत भावसे वर्णित है।

निम्नलिखित व्यक्तिने कात्यायनश्रौतसूत्रका भाष्य बनाया है,—

१ अनन्त, २ कर्क, ३ कल्याणोपाध्याय, ४ गङ्गाधर, ५ गदाधर, ६ गर्ग, ७ पितृभूति, ८ भर्तृयज्ञ, ९ महादेव, १० मिश्राग्निहोत्री, ११ श्रीधर, १२ हरिहर। याज्ञिकदेवने श्रौतसूत्रपद्धति और पद्मनाभने कात्यायनसूत्रपद्धति नामसे स्वतन्त्र पद्धति रचना की है।

२ गोभिलके पुत्र कात्यायन। इन्होंने स्मृतिसंग्रह और छन्दोपरिशिष्ट वा कर्मप्रदीप रचना किया है। किसी किसीके अनुमानमें श्रौतसूत्रकार कात्यायन और स्मृतिप्रणेता कात्यायन उभय अभिन्न व्यक्ति थे। किन्तु उभयकी रचनाप्रणाली देख वैसा बोध नहीं होता।

हरिवंशमें विश्वामित्रवंशीय कतिके पुत्र कात्यायनोंका * नाम मिलता है। फिर इसी विश्वामित्र वंशमें

---

* "विश्वामित्रस्य च सुता देवरातादयः स्मृताः।
विख्यातास्त्रिषु लोकेषु तेषां नामानि मे शृणु॥
देवश्रवाः कतिश्चैव यस्मात् कात्यायनाः स्मृताः।
शालावत्यां हिरण्याक्षो रेणोर्जज्ञेऽथ रेणुमान्॥
साङ्कृतिर्गालवश्चैव मुद्गलश्चेति विश्रुताः।
मधुच्छन्दो नयश्चैव देवलश्च तथाऽष्टकः॥
कच्छपो हारितश्चैव विश्वामित्रस्य ते सुताः।
तेषां ख्यातानि गोत्राणि कौशिकानां महात्मनाम्॥
पाणिनो बभ्रवश्चैव ध्यानजप्यास्तथैव च।
देवला वैश्वश्चैव याज्ञवल्क्याघमर्षणाः॥
औदुम्बरा ह्यभिष्णातास्तारकायनचुञ्चुलाः।" (हरिवंश २७ अ०)

वेदशाखाप्रवर्तक साङ्कृति, गालव, मुद्गल, मधुच्छन्दा, देवल, अष्टक, कश्यप, हारित, पाणिनि, वभ्रु, ध्यानजप्य, देवरात, शालङ्कायन, वास्कल, वेणु, याज्ञवल्क्य, अघमर्षण, औडुम्बर, तारकायन प्रभृति आविर्भूत हुये। उनमें याज्ञवल्क्यने शुक्लयजुः अर्थात् वाजसनेयी शाखा का प्रचार किया। श्रौतसूत्रकार कात्यायन उक्त वाजसनेयी शाखाके अनुवर्तक थे। इसी कारण समझते हैं कि विश्वामित्रवंशीय (याज्ञवल्क्यके अनुवर्ती) कात्यायन ऋषि ही कात्यायनश्रौतसूत्रके रचयिता थे।

स्मृतिकार कात्यायन गोभिलके पुत्र थे। * कात्यायनके कर्मप्रदीप नामक स्मृति ग्रन्थमें निम्नलिखित सकल विषय आया है,—

यज्ञोपवीत, आचमन, मातृगण, आभ्युदयिकश्राद्ध, उक्तश्राद्धाङ्गका कृत्य, परिवेदनदोष, उसका प्रतिप्रसव, स्थण्डिलरेखा, अग्न्याधान, अरणिविधि, अग्न्युद्धार, स्रुवादिलक्षण, सायंप्रातर्होमकाल, होमेतिकर्तव्यता, स्नानादिक्रिया, सन्ध्योपासना, तर्पण, पञ्चयज्ञप्रकरण, दक्षिणादिदान, आज्यस्थाल्यादि, अमावास्या श्राद्धकाल, श्राद्धभोक्तृकथन, कर्षु विधि, दर्शपौर्णमासहोमकालादि, प्रवासियोंका पूर्वकृत्य, स्त्रीकर्तव्यकर्म, दाम्पत्यसन्निकर्ष कृत्यादि, प्रेतकार्य, शोकोपनोदन, पर्णनरदाहादि, अशौचमें वर्जनद्रव्यादि, षोड़शश्राद्धादि, होमीयविशेष, चरु, गो अश्वयज्ञादि काल, नरयज्ञकाल, अन्वाहार्य नाम एवं विधि, अज्ञातादिसंज्ञा और नाना विधि।

गृह्यसंग्रहमें ब्राह्मणोंका दशविध संस्कार और वास्तुक्रियादि लिखा है।

४ कात्यायन वररुचि। अनेक लोग इन्हींको पाणिनिसूत्रका वार्तिककार बताते हैं। सोमदेव भट्टविरचित कथासरित्सागरमें लिखा है,—"पुष्पदन्त नामक महादेवके एक अनुचरने गौरीकलङ्क अभिशप्त हो मर्त्यलोक आ वत्सराजधानी कौशाम्बी नगरीमें सोमदत्त नामक ब्राह्मणके औरससे जन्म ग्रहण किया था। वही कात्यायन वररुचिके नामसे विख्यात हुये। उनके जन्मकाल आकाशवाणी सुन पड़ी थी, 'यह बालक श्रुतिधर होगा और वर्ष पण्डितके निकट समस्त विद्या लाभ करेगा। व्याकरण शास्त्रमें इसकी असाधारण व्युत्पत्ति होगी और वर अर्थात् श्रेष्ठ विषयमें रुचि बढ़नेसे वररुचि * नाम पड़ेगा।' वयोवृद्धिके साथ वह असीम बुद्धि और धीशक्तिसम्पन्न हो गये। एक दिन उन्होंने किसी नाटकका अभिनय देख माताके निकट वही नाटक समस्त आद्योपान्त आवृत्ति किया और उपनयनके पूर्व व्याड़िके मुखसे प्रातिशाख्य सुन उसे समस्त कण्ठस्थ कर लिया था। कात्यायनने अवशेषको वर्षका शिष्यत्व ग्रहण कर नाना शास्त्रमें पाण्डित्य लाभ किया, यहां तक कि उन्होंने व्याकरणिक तर्कमें पाणिनिको भी घबरा दिया। अब शेषमें महादेवके अनुग्रहसे पाणिनिने जय पाया। कात्यायनने महादेवकी क्रोधशान्तिके निमित्त पाणिनिव्याकरण पढ़ उसको सम्पूर्ण और संशोधित किया था। परिशेषको वह मगधराज योगानन्दके मन्त्रिपदपर नियुक्त हुए।

हेमचन्द्र, मेदिनी और त्रिकाण्डशेष अभिधानमें कात्यायनका एक नाम वररुचि † लिखा है।

अध्यापक मोक्षमूलरके मतमें भी वार्तिककार कात्यायन वररुचि और प्राकृतप्रकाश नामक

---

*"अथातो गोभिलोक्तानामन्येषां चैव कर्मणाम्।
असष्टानां विधं सम्यग् दर्शयिष्ये प्रदीपवत्॥" (कर्मप्रदीप १।१)

यहां टीकाकारोंने गोभिलको कात्यायनका पिता माना है। गृह्यसंग्रहमें भी ऐसा ही परिचय मिलता है। यथा—

"पुनरुक्तमतिक्रान्तं यच्च सिंहावलोकितम्।
गोभिले चैव दृश्यन्ति न ते श्राम्यन्ति गोभिलम्॥
गोभिलाचार्यपुत्रस्य योऽधीते संग्रहं पुमान्।
सर्वकर्मसुसंमूढ़ः परां सिद्धिमवाप्नुयात्॥"

(गृह्यसंग्रह २। २४-२५)

*"एकश्रुतिधरो बालो विद्यां वर्षादवाप्स्यति।
किञ्च व्याकरणं लोके प्रतिष्ठां प्रापयिष्यति॥
नाम्ना वररुचिश्चासौ यद्यदस्मै हि रोचते।
यद्यद् वरं भवेत् किञ्चिदित्युक्त्वा वागुपारमत्।"

(सोमदेवकृत कथासरित्सागर)

† हेमचन्द्रकृत अनेकार्थसंग्रह ३।११६, मेदिनी नान्त १७५ और त्रिकाण्डशेष २।६।२५।

व्याकरणकार वररुचि दोनो एक ही व्यक्ति थे। सम्भवतः उन्होंने इण्डिया हाउसके पुस्तकालयको सर्वानुक्रमणीमें "अत्र शौनकादिमतसंदृष्टोतुवररुचेरनुक्रमणिका" वचन पढ़ उक्त मत प्रकाशित किया है। वास्तवमें कात्यायन वररुचि एवं प्राकृतप्रकाश नामक प्राकृत व्याकरणके रचयिता दोनों एक व्यक्ति नहीं थे। प्राकृतप्रकाशकार वररुचि वासवदत्ताप्रणेता सुबन्धुके मातुल थे। पुराविदोंके मतमें यह वररुचि हर्षविक्रमादित्यके समसामयिक अर्थात् खृष्टीय ६ष्ठ शताब्दके लोग रहे। (Hall's Vasavadatta, preface, p. 6.) किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि पाणिनिके वार्तिककार उसके बहुशत वर्ष पूर्व विद्यमान थे। सोमदेवने व्याड़ि, पाणिनि और कात्यायन तीनोंको समसामयिक लिखा है। किन्तु युक्तिपूर्वक पाणिनिसूत्र और कात्यायनका वार्तिक देखनेसे उभय व्यक्तिको समसामयिक मान नहीं सकते।

एक तो, पाणिनिके समय जिस प्रकार शब्दशास्त्रका नियम प्रचलित था, वह वार्तिकरचनाके समय अनेक अप्रचलित हो गया। जैसे, "अद्ड्डतरादिभ्यः पञ्चभ्यः। (पा ७।१।२५) अर्थात् डतर और डतम प्रत्ययान्त एवं अन्य, अन्यतर तथा अन्यतम पांच सर्वनाम शब्दोंके उत्तर क्लीवलिङ्गमें प्रथमा और द्वितीयाके एकवचनमें 'अदड्' होगा। यथा—कतरत् कतमत् इत्यादि। फिर पाणिनिने दूसरा विशेष विधि बढ़ाया— "नेतराच्छन्दसि।" (पा ७।१।२६)

अर्थात् वेदमें इतर शब्दके क्लीवलिङ्गपर प्रथमा और द्वितीयाके एकवचनमें अदड् न होगा, 'इतरद्' पदके परिवर्तनमें "इतरम्" लगेगा।

कात्यायनने इस विशेष विधिके वार्तिकमें उक्त सूत्रका संशोधनकर लिखा है,—

"इतराच्छन्दसि प्रतिषेधे एकतरात् सर्वत्र।" (वार्तिक)

इसी वार्तिकका पक्ष समर्थन कर काशिकाकारने कहा है,—

"एकतराच्छन्दसि भाषायाञ्च सर्वत्र प्रतिषेध इष्यते।"

अर्थात् क्या वैदिकप्रक्रिया और क्या साधारण व्यवहार्य भाषामें सर्वत्र "एकतरम्" पद व्यवहार होगा। एतद्भिन्न पा० ८।४।१५ सूत्रमें भी कात्यायनने प्रतिषेध किया है।

दूसरे, पाणिनिके समय कोई कोई शब्द जैसा अर्थप्रकाशक था, कात्यायनके समय वैसा न रहा। जैसे—

"आश्चर्यमनित्ये।" (पा ६।१।१४७)

यहां पाणिनिने आश्चर्य शब्दका अर्थ अनित्य ग्रहण किया है। किन्तु कात्यायनने "अद्भुत इति वक्तव्यम्।" अर्थात् आश्चर्य शब्दका अर्थ अद्भुत माना है। इसी प्रकार ४।२।१२९, ७।३।६९ प्रभृति कई स्थलमें पाणिनि और कात्यायनके अर्थकी विभिन्नता लक्षित होती है।

तीसरे, पाणिनिके समय अधिकांश शब्द* और शब्दार्थ जैसा प्रचलित था, कात्यायनके समय वैसा न रहा। यथा—

पाणिनिधृत शब्द	अर्थ
उत्सञ्जन (१।३।३६)	ऊर्ध्वक्षेपण
उपसंवाद (३।४।८)	पणबन्ध, शपथकरण।
उपाजेकृ, अन्वाजेकृ (१।४।७३)	बलाधान।
ऋषि (४।४।९६)	वेद।
कणेहत्य (१।४।६६)	श्रद्धाप्रतिघात।
निवचनेकृ (१।४।७६)	मौन।
प्रत्यवसान (१।४।५२)	भोजन।
मनोहत्य (१।४।६६)	श्रद्धाप्रतिघात।
स्वकरण (१।३।५६)	स्वीकार, विवाह।
होता (५।१।१३५)	ऋत्विक्।

कथित युक्ति और प्रयोगके अनुसार (कथासरित्सागरमें उल्लिखित होते भी) पाणिनि और कात्यायनको समसामयिक कैसे मान सकते हैं? इस पक्षमें कोई संशय नहीं कि कात्यायनके बहुपूर्व पाणिनि आविर्भूत हुये थे। वार्तिक आद्योपान्त मनोनिवेशपूर्वक पढ़नेसे समझ सकते हैं कि पाणिनि व्याकरण अति प्राचीन ग्रन्थ है। कात्यायनके समय उपयुक्त वृत्ति

* कथित शब्दोंसे दो एक किसी किसी कोषमें शब्दनिर्णयार्थ उद्धृत होते भी भट्टिकाव्य व्यतीत दूसरे प्राचीन लौकिक काव्य ग्रन्थादिमें कहीं देख नहीं पड़ता। शब्दप्रयोगके भाण्डार दिखानेके लिये ही केवल भट्टिकाव्यमें उद्धृत हुए हैं।

अथवा वार्तिकके अभावमें अनेक लोग उसे समझ न सकते थे। सुतरां उक्त महाग्रन्थके लुप्त होनेका उपक्रम लगा। कात्यायनने उक्त लुप्तरत्नको उद्धार करनेके लिये अशेष परिश्रम, असाधारण पाण्डित्य और अभिज्ञताके प्रभावसे अपना वार्तिकपाठ प्रणयन किया था। महाभाष्यमें पतञ्जलिने भी लिखा है,—

"पुराकल्प एतदासीत्। संस्कारोत्तरकालं ब्राह्मणा व्याकरणं स्माधीयते तेभ्यस्तत्तत् स्थानकरणनादानुप्रदानज्ञेभ्यो वैदिकाः शब्दा उपदिश्यन्ते तदद्यत्वे न तथा।

वेदमधीत्य त्वरिता व[क्ता]रो भवन्ति। वेदान्नो वैदिकाः शब्दाः सिद्धा लोकाच्च लौकिका अनर्थकं व्याकरणमिति। तेभ्य एवं विप्रतिपन्नबुद्धिभ्यो ऽध्येतृभ्यः सुहृत् भूत्वा आचार्य इदं शास्त्रमन्वाचष्टे। इमानि प्रयोजनान्यध्येयं व्याकरणमिति।" (महाभाष्य १। १। १ आह्निक)

अर्थात् पहिले उपनयन होनेके पीछे ब्राह्मण वेद पढ़ते थे। वह उसके अनुसार स्वरप्रक्रिया और वैदिक शब्दका उपदेश लाभ करते थे। किन्तु आज-कल वैसा नहीं होता। लोग वेद पढ़ कर ही वक्ता बन बैठते और कहते कि वेदसे वैदिक शब्द तथा लौकिक व्यवहारसे लौकिक शब्दनिकलते हैं, जिससे व्याकरण पाठ आवश्यक नहीं समझते। आचार्य कात्यायनने इन्हीं सकल विप्रतिपन्नबुद्धि अध्ययनकारियोंके बन्धु हो व्याकरण सिखानेके लिये नाना प्रयोजनोंको बतलाते हुये (पाणिनिके अनुवर्ती बन) अपना वार्तिक शास्त्र प्रकाश किया था।

किसी किसी लेखकके मतानुसार कात्यायनने विशेष भावसे पाणिनिको समालोचना और पाणिनिका दोष दिखानेके लिये ही वार्तिककी रचना की है। किन्तु समग्र वार्तिक और महाभाष्य पढ़नेवाले कहा करते हैं—कात्यायन पाणिनिके उद्धारकर्ता थे। वास्तविक, नागाजीभट्टने "वार्तिक" शब्दकी विवृतिमें लिखा है,—

"वार्तिकमिति। सूत्रे ऽनुक्तदुरुक्तचिन्ताकरत्वं वार्तिकत्वम्"।

वार्तिक वही है, जिसमें सकल अनुक्त और दुरुक्त विषय आलोचित हो। पाणिनिके सूत्रमें जो बात नहीं कही अथवा जो बात अस्पष्ट भावसे उक्त हुयी और समझ न पड़ी, उसे ही बोधगम्य बनाना वार्तिकका काम है।

पहले ही लिख चुके हैं—एक ऐसा समय आया था, जब पाणिनिका व्याकरण साधारण लोगोंने समझ न पाया था। आर्षसूत्र लुप्त होनेका उपक्रम आ पहुंचा था। पाणिनिके अनेक सूत्रोंमें आर्षपद्धति और आर्ष शब्द पड़े, जिन्हें कात्यायनके समय लोगोंने अप्रचलित अभिप्राय अथवा शब्द शास्त्रकी रीतिके विरुद्ध समझा। उसी समय कात्यायनने साधारण लोगोंको समझानेके लिये आवश्यक विवेचना कर पाणिनिसूत्रका वार्तिक बनाया। कात्यायनने अपने वार्तिकके प्रारम्भमें ही लिखा है,—

"सिद्धे शब्दार्थसम्बन्धे। लोकतो ऽर्थप्रयुक्ते शास्त्रेण धर्मनियमो यथा लौकिकवैदिकेषु। समानायामर्थावगतौ शब्देन चापशब्देन च शब्देनैवार्थो ऽभिधेय इति नियमः। तत्र ज्ञानपूर्वके प्रयोगे धर्मः। न चेदानीमाचार्याः सूत्राणि कृत्वा निवर्तयन्ति वृत्तिसमवायार्थो ऽनुबन्धकरणार्थश्च वर्णानामुपदेशः। शास्त्र प्रवृत्तिफलको वर्णानां क्रमेण निवेशो वृत्तिसमवायः"।

शब्दके साथ शब्दगत अर्थका सम्बन्ध लोकमें प्रसिद्ध है। इस लोकप्रसिद्ध अर्थका प्रयोग होते भी शास्त्र द्वारा शब्दके वेदविहित धर्मके नियमानुसार अर्थ निर्णीत होता है। शब्द और अपशब्द उभय द्वारा समान अर्थ ही समझ पड़ता है। फिर भी ऐसा नियम है कि शब्द द्वारा अर्थप्रकाश करना चाहिये।

ज्ञानपूर्वक शब्दप्रयोग करनेसे धर्म होता है। पाणिनि प्रभृति आचार्यने सूत्रको बना निवर्तित नहीं किया। (अर्थात् आचार्योंने ज्ञानके प्रभाव अथवा योगके बल जो सूत्र उद्भावन किये, वह ईश्वरादिष्ट वेदवाक्यकी भांति अनर्थक नहीं। सुतरां साधारण लोगोंको समझमें न आनेसे उन्हें भ्रान्त कैसे कह सकते हैं।)

वृत्तिसमवाय और अनुबन्धकरणके लिये वर्णका उपदेश दिया गया है। शास्त्रमें प्रवृत्तिके निमित्त एकके पीछे दूसरी वर्णयोजनाको वृत्तिसमवाय कहते हैं।

कात्यायनका वार्तिक पढ़नेसे समझ सकते हैं,—(१) उन्होंने अधिकांश स्थानोंमें पाणिनिसूत्रके अनुवर्ती बन यथाविधि अर्थप्रकाश किया है। (२) किसी किसी स्थल पर नाना तर्कवितर्क और समालोचना निकाल पाणिनिसूत्रके संरक्षणमें यथेष्ट चेष्टा की है। (३) किसी

किसी स्थल पर सूत्र परिवर्तन किया है। (४) फिर स्थलविशेष पर पाणिनिके सूत्रका दोष देखा उसका प्रतिषेध किया है। (५) अनेक स्थल पर परिशिष्ट लगा दिया है।

पतञ्जलिने अपने महाभाष्यमें वार्तिकपाठ उद्धृत कर उसका भाष्य बनाया है।

पाणिनि और पतञ्जलि देखो।

इन्हीं कात्यायनने वेदकी सर्वानुक्रमणी और प्रातिशाख्यको प्रणयन किया है। प्रातिशाख्य और सर्वानुक्रमणी देखो।

यह पतञ्जलिके बहुत पूर्ववर्ती और पाणिनिके परवर्ती थे।

५ एक बौद्ध आचार्य। इन्होंने अभिधर्मज्ञान-प्रस्थान नामक बौद्धशास्त्र रचना किया है। नेपाली बौद्धग्रन्थके पाठसे समझते हैं कि यह बुद्धनिर्वाणके ४०० वर्ष पीछे प्रादुर्भूत हुये।

६ जैनोंके एक प्रधान और प्राचीन स्थविर।

कात्यायनवीणा (सं० स्त्री०) कात्यायनेन आविष्कृता वीणा, मध्यपदलो०। कात्यायन-सृष्ट शततन्त्री वीणा।

कात्यायनी (सं० स्त्री०) कात्यायन-ङीप्। १ दुर्गा। महिषासुर द्वारा अत्यन्त उत्पीड़ित हो उसके विनाश-साधनको ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरने अपने अपने देहसे यह मूर्ति बनायी थी। महर्षि कात्यायनके सर्वप्रथम इनकी अर्चना करनेसे ही यह कात्यायनी कहायीं। इन्होंने आश्विनकी कृष्णचतुर्दशीको जन्म लिया और शुक्लसप्तमी, अष्टमी तथा नवमी—तीन दिन कात्यायन ऋषिकी पूजा ग्रहण कर दशमीको महिषासुर मारा था। २ कषायवस्त्रपरिधाना प्रौढ़वयस्का विधवा, गेरुहे कपड़े पहने हुयी अधेड़ बेवा औरत। ३ कषाय वस्त्र, गेरुवा कपड़ा। ४ कात्यायन ऋषिकी पत्नी। ५ याज्ञवल्क्यकी द्वितीय पत्नी।

कात्यायनीतन्त्र (सं० क्लो०) तन्त्रविशेष। इसमें शिवने कात्यायनीपूजाके मन्त्रादि कहे हैं।

कात्यायनीपुत्र (सं० पु०) कात्यायन्याः पुत्रः, ६-तत्। १ कार्तिकेय। २ एक प्रसिद्ध बौद्धाचार्य। यह बुद्धके चार सौ वर्ष पीछे आविर्भूत हुये।

कात्यायनीय (सं० त्रि०) १ कात्यायन-प्रणीत, कात्यायनका बनाया हुवा। (पु०) २ कात्यायनके छात्र।

कात्यायनीव्रत (सं० क्लो०) कात्यायन्याः व्रतम्, ६-तत्। कात्यायनी देवीके उद्देश्यसे किया जानेवाला एक व्रत। वृन्दावनमें गोपियां श्रीकृष्णको स्वामीरूपसे पानेके लिये उषाकाल यमुनामें नहा और बालुकाकी प्रतिमूर्ति बना भगवती कात्यायनीकी पूजा करती थीं।

काथक (सं० पु०) कथकस्य अपत्यं पुमान् कथक-अण्। १ कथकके पुत्र। (त्रि०) २ कथकवंशीय। ३ कथक सम्बन्धीय।

काथक्य (सं० पु०) कथकस्य गोत्रापत्यम् कथक-यञ्। कथक ऋषिवंशीय पुत्र।

काथक्यायन (सं० पु०) कथकस्य गोत्रापत्यम् कथक-यञ्-फक्। कथक-वंशीय पुत्र।

काथञ्चित्क (सं० त्रि०) कथञ्चित् ठक्।

विनयादिभ्यष्ठक्। (पा ५।४।३४)

किसी प्रकार सम्पादन किया हुवा, जो मुश्किलसे बना हो।

काथरी (हिं० स्त्री०) कन्था, कथरी।

काथिक (सं० त्रि०) कथायां साधुः, कथा-ठक्। कथादिभ्यष्ठक्। पा ४।४।१०२। १ कथारचनाके विषयमें सुनिपुण, अच्छी अच्छी कहानी बनानेवाला। २ कथा-सम्बन्धीय, कहानीसे सरोकार रखनेवाला।

कादम्ब (सं० पु० क्लो०) कदम्बे समूहे भवः, कदम्ब-अण्। १ कलहंस। इसका मांस शीतल, भेदक, शुक्रकारक और वायु, रक्त तथा पित्तनाशक है। (राजवल्लभ) कदम्ब-स्वार्थे अण्। २ कदम्ब-वृक्ष, कदमका पेड़। ३ कदम्ब पुष्प, कदमका फूल। ४ इक्षु, ऊख। ५ वाण, तीर। ६ दाक्षिणात्यका एक प्राचीन राजवंश। कदम्ब देखो। ८ पुष्पविषविशेष, एक जहरीला फूल। (त्रि०) ८ कदम्ब-सम्बन्धीय।

कादम्बक (सं० पु०) कदम्बस्वार्थे कन्। वाण, तीर।

कादम्बकर (सं० पु०) कदम्बवृक्ष, कदमका पेड़।

कादम्बर (सं० पु० क्लो०) कादम्बं कदम्बोद्भवं रसं

जाति गृह्णाति, कादम्ब-ल-क लस्य रः। १ कदम्ब-पुष्पोत्थ मद्य, कदमके फूलकी शराब। २ शीधु मद्य, एक शराब। यह मधुर और पित्त एवं भ्रम तथा मदघ्न होता है। (राजनिघण्टु) ३ दधिसार, दहीकी मलाई। ४ इक्षुजात गुड़ादि, ऊखसे बना हुवा गुड़ वगैरह। ५ बलराम।

कादम्बरी (सं० स्त्री०) कु कुत्सितवर्णं नीलवर्णं अम्बरं वस्त्रं यस्य कोः कदादेशः, कदम्बरो बलरामः तस्य प्रिया, कदम्बर-अण्-ङीप्। १ मद्य, शराब। २ कोकिला, कोयल। ३ सरस्वती। ४ शारिकापक्षिणी, टुइयां। ५ कदम्बपुष्पोत्थ मद्य, कदमके फूलकी शराब। ६ सपुष्पक कदम्बके तरुकोटरका वृष्टिजल, फूले हुये कदमकी खोखमें पड़ा बरसातका पानी। ७ बाणभट्ट-विरचित कथाकी नायिका। यह हंस नामक गन्धर्व-राज और चन्द्रकिरणसे उत्पन्न अप्सरोकुलजात गौरीकी कन्या थी। बाणभट्ट देखो।

कादम्बरीबीज (सं० क्लो०) कादम्बर्याः बीजम्, ६-तत्। सुराबीज, खमीर।

कादम्बर्य (सं० पु०) कादम्बर्यै हितम्, कादम्बरी-यत्। १ धाराकदम्ब। २ कदम्बवृक्ष, कदमका पेड़। (क्लो०) ३ पद्म, कंवल।

कादम्बा (सं० स्त्री०) कादम्ब इव आचरति, कादम्ब-क्विप्-अच्-टाप्। कदम्बपुष्पीलता, एक बेल। इसमें कदम्बकी भांति पुष्प आते हैं।

कादम्बिक (सं० त्रि०) भोज्यद्रव्यकारक, खानेकी चीज बनानेवाला।

कादम्बिनी (सं० स्त्री०) कादम्बाः कलहंसाः सन्ति अस्याम्, कादम्ब-इनि-ङीप। मेघमाला, घटा।

कादर (हिं०) कातर देखो।

कादर—भागलपुर और सन्थालपरगनेकी एक जाति। दाक्षिणात्यके अनमलय पर्वत और कोयम्बतूर जिलेमें भी "कादर" नामक एक जाति रहती है। अनेक लोग अनुमानसे इन दोनों जातियोंको एक ही श्रेणीका समझते हैं।

कादर कृषि और मत्स्यधारण कर प्रधानतः जीविका चलाते हैं। अनेक लोग मज़दूरी भी कर खाते हैं। किसीके मतमें कादर भुइयां जातिसे निकले हैं। इनमें दो श्रेणी विभाग हैं—कादर और नैया। नैया नामक एक स्वतंत्र जाति भी है। कादर नैयोंसे कोई सम्बन्ध नहीं रखते।

कादरोंमें अनेक गोत्र होते हैं। सकल गोत्रोंमें परस्पर आदान प्रदान नहीं होता। इनमें बाड़े, बारिक, दर्वे, हजारी, कम्पती, कापड़ी, मन्दर, मांझी, मरैया, मरीक, मिर्दाह, नैया, रावत और रिखियासन कई गोत्र हैं। बाड़े गोत्रवाले मिर्दाह, कम्पती और रावत गोत्रको छोड़ दूसरे किसी गोत्रमें विवाह नहीं करते। कम्पती केवल बारिक, कापड़ी, मरीक, दर्वे, मांझी और बाड़े गोत्रसे विवाह सम्बन्ध जोड़ते हैं। मरीक गोत्र बारिक, कापड़ी, मांझी, मन्दर और नैया गोत्रोंमें विवाह करता है। फिर मिर्दाहोंका दर्वे, मांझी, कम्पती, और बाड़े गोत्रवालोंमें और नैयोंका केवल मरीकों, हजारियों, कम्पतियों और बारिकियोंमें विवाह होता है। यह मातुलकन्या वा पितृव्यकन्यासे विवाह नहीं करते। मातृपर्यायमें ३ और पुरुष तथा पितृपर्यायमें ७ पुरुष छोड़ विवाह होता है।

इनमें बालिका और वयस्का दोनों कन्यावोंका विवाह होता है। फिर भी बालिकाकालमें विवाह होना प्रशस्त समझा जाता है। छोटे हिन्दुवोंकी चालसे विवाह होता है। सिन्दूरदान ही विवाहका प्रधान कार्य्य है। ग्रामका नापित इनका पौरोहित्य करता है। स्त्रीके सन्तान न होनेसे यह दूसरा विवाह करते हैं। विधवा सगाईकी प्रथाके अनुसार निषिद्धगोत्र और पुरुषादिको छोड़ विवाह कर सकती हैं। स्त्रीको स्वामी-कर्तृक परित्यक्त होनेपर सगाईकी प्रथाके अनुसार पुनर्विवाह करनेका अधिकार है। सगाईवाला विवाह घरसे बाहर अन्तःपुरके पीछे खुली जगहमें और शुभ विवाह घरकी चबूतरे पर होता है।

यह शवको जला और उसका भस्म उठा मृत्युके दूसरे दिन समाहित करते हैं। त्रयोदश दिनको मृतके उद्देशसे बलि दिया जाता है। फिर मृत्युके दिनसे *कुछ मास पीछे इसी प्रकार बलि देते हैं। इनमें* वार्षिक श्राद्धादि नहीं होता।

हिन्दुवोंमें यह बहुत छोटे समझे जाते हैं। डोमों और हाड़ियोंको छोड़ दूसरी कोई जाति इनका छुवा पानी नहीं पीती। कादर भुइयों और कहारोंका अन्न खा लेते हैं, किन्तु वह लोग इनका अन्न ग्रहण नहीं करते। यह लोग गोमांस, शूकरमांस, मुरगा तथा चूहा खाते और मद्यादि भी पी जाते हैं। कभी कभी काते और कुल्हाड़ीकी पूजा होती है।

कादर हिन्दू होते भी अपर असभ्य जातियोंकी भांति कुसंस्काराच्छन्न हैं। इनमें कितने ही लोग विश्वास करते कि कुछ विशेष शक्तिसम्पन्न अपदेवता उनको चारोओर रहते हैं। उन देवताओंमें अनेक इनके पूर्वपुरुषोंके आत्मा होते हैं। दूसरे लोगोंके विश्वासानुसार अपदेवता कहीं नहीं, फिर भी नदी पर्वतादिसे शक्ति उद्भूत होती है। उसकी कोई मूर्ति वा प्रतिमा मानी नहीं जाती। कहीं थोड़ीसी रंगी मृत्तिका और कहीं एक खण्ड सिन्दूरलेपित प्रस्तर खण्डमात्र भगवान्‌के उद्देशसे मार्गके मध्य प्रतिष्ठित रहता है। उक्त सकल प्रतिष्ठित देवतावोंमें कारुदानो, हर्दियादानो, सिमरादानो, पहाड़दानो, मोहन, दूया, लिलू, परदोना इत्यादि प्रधान हैं। इनके मतमें लोग समझ नहीं सकते उक्त अपदेवता कौन कौन शक्ति रखते हैं। कादरोंके कथनानुसार उक्त सकल अपदेवतावोंकी पूजामें अवहेला करनेसे देशमें नाना अमङ्गल होते हैं। पूजाके समय यह लोग शूकरशावक, छागल, कबूतर, और मुरगा काट कर चढ़ाते हैं। शस्यकी शिखा और घृतादिका उत्सर्ग किया जाता है। इनके देवता जहां स्थापित रहते, उन कुञ्जोंको सरना कहते हैं। नापित ही इनके पुरोहित हैं। उपासक पूजाका द्रव्य खाते हैं। यह अपनेको हिन्दू बताते और परमेश्वर महादेव, विष्णु प्रभृति नामोंपर विश्वास लाते हैं।

दाक्षिणात्यके कादर पर्वत विभागमें वास करते हैं। वह पुलियार और मालय आवसार जातिपर प्रभुत्व चलाते हैं। कभी कभी तोप और युद्ध सज्जादि वहन करते भी दासादिके कार्यसे अलग रहते हैं। पल्ले-दार कहनेसे बुरा मानते हैं। वह बड़े विश्वासी, सत्य-वादी और वाध्य होते हैं। कुञ्चित केशोंका बंधाव रहता है। वनसे हरिद्रा, अदरक, मधु, मोम इलायची, रीठा, माजूफल इत्यादि संग्रह कर चावल और तम्बाकूके साथ बदलते हैं। यह अंगरेजी जंगलसे जो चीज लाते, उसका महसूल नहीं चुकाते। कोचिन-राजके अधिकृत वनभागसे इलायची संग्रह करनेके लिये केवल वार्षिक १००) रु० राजस्व देते हैं। कादर वनमें पथ प्रदर्शकका कार्य करते हैं, किन्तु कभी बोझ नहीं ढोते।

कादलेय (सं० त्रि०) कदलेन निर्वृत्तम्, कदल-ढञ्। कदल निर्मित, केलेका बना हुवा।

कादा (हिं० पु०) जहाज़की एक पटरी। यह शहतीरों और कड़ियोंके नीचे लगती है।

कादाचित्क (सं० त्रि०) कदाचित् भवम्, कदाचित्-ठञ्। समय पर होनेवाला, जो कभी कभी हो।

कादाचित्कता (सं० स्त्री०) कादाचित्कस्य भावः, कादाचित्क-तल्-टाप्। कदाचित् उत्पत्ति।

कादिपुर—अवध प्रदेशके सुलतानपुर जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २५° ५८′ ३०″ से २६° २३′ उ० और देशा० ८२° ८′ से ८२° ४४′ पू० तक अवस्थित है। इसके उत्तर अकबरपुर तहसील, पूर्व आज़मगढ़ जिला, दक्षिण पट्टी तहसील और पश्चिम सुलतानपुर तहसील है। भूमिका परिमाण ४३९ वर्गमील है। यहां सुलतानपुर और जौनपुरकी सड़क आ मिली है। राजकुमार ज़मिन्दार हैं। ब्राह्मण बहुत रहते हैं। तहसीलको छोड़ थाना और स्कूल भी है। एक देहाती बंक खुला है। बाज़ार बहुत छोटा है। भूमि समान-गुणविशिष्ट है। नाले चारो ओर लगे हैं। बड़ी नदी पर पुल बंधा है।

कादियान—बोरनियो द्वीपवासी एक अनार्य जाति। आजकल इस जातिने मुसलमान धर्म ग्रहण कर लिया है। कादियान ही—बोरनियो द्वीपके आदिम अधिवासी हैं। यह सरल और शान्तिप्रिय हैं। इनकी स्त्रियां अधिक सुश्री होती हैं।

कादिर—१ शेख अब्दुल क़ादिरका उपनाम। आजम-गीरके पुत्र शाहज़ादे मुहम्मद अकबरने इन्हें अपना

मुंशी बनाया था। इन्होंने एक दीवान् लिखा है। २ वजीर खान्का उपनाम। यह आगरेके निवासी रहे। आलमगीर और उनके दोनों उत्तराधिकारी इन्हें बहुत चाहते थे। १७२४ ई०में इनकी मृत्यु हुई। इन्होंने एक दीवान बनाया है। ३ बदाऊंवाले अब्दुल कादिरका उपनाम। इन्हें लोग कादिरी भी कहते थे।

कादिर (सं० क्लो०) खदिरसार।

कादिर अली—एक मुसलमान पीर। प्रायः सन् ५२७ हिजरीको सीजीखानमें इन्होंने जन्मग्रहण किया था। उसके पीछे कुतब-उद्-दीनके राज्यकालमें यह अजमेर गये। वहां सैयद हुसेन मशीदीकी कन्यासे इनका विवाह हुवा। ६२८ ई० को यह मर गये। १०२७ हिजरीमें जहांगीर बादशाहने इनकी कब्रके पास एक सुन्दर मसजिद् बनवायी थी। इनके स्मरणार्थ नगरमें भी एक मसजिद है। मोपला मुसलमान कादिर अलीको बड़ी श्रद्धाभक्ति करते हैं। ११ वां जमाद-उल्-अखीर इनके उत्सवका दिन है।

कादिरगञ्ज—युक्तप्रान्तके एटा जिलेका एक गांव। यहां कंकड़के बने एक प्राचीन दुर्गका ध्वंसावशेष विद्यमान है। कादिरगञ्जमें अरबी भाषाकी एक शिलालिपि निकली थी। उसमें लिखा है,—यहां सन् ११०४ हिजरीको आलमगीरके राज्यकालमें शुजात खानकी दरगाह बनी थी।

कादिरशाह—मालवके एक बादशाह। सम्राट् हुमायूंने मालवो अधिकार कर अपने अफसरोंके हाथ छोड़ दिया था। किन्तु उनके आगरे वापिस जाते ही पूर्वतन खिलजी राज्यके एक पदाधिकारी मुल्लू खान्ने बारह मास दिल्लीके अफसरोंसे लड़ नर्मदा और मेलसा नगरके बीचका समस्त देश अधिकृत किया तथा अपना उपाधि कादिरशाह रख लिया। इन्होंने १५४२ ई० तक राज्य चलाया था। पीछे शेरशाहने मालव अधिकार किया और इनके मन्त्री एवं सम्बन्धी शुजा खान्को राज्य सौंप दिया।

कादिरी—१ शाहजहांके ज्येष्ठ पुत्र शाहजादे दाराशिकोहका उपनाम। २ बदाऊंके अब्दुल कादिरका उपनाम। (अ० स्त्री०) ३ चोली।

कादीहाटी—बङ्गालके चौबीसपरगनेका एक नगर। यह अक्षा० २२° ३९′ १०″ उ० और देशा० ८८° २९′ ४८″ पू० पर अवस्थित है। साधारण लोग इसे केदिटो कहते हैं। यहां प्रायः ५००० आदमी रहते हैं। विद्यालय और डाकघरको छोड़ कादीहाटीमें अनेक सम्भ्रान्त लोगोंके घर भी बने हैं।

काद्रवेय (सं० पु०) कद्रोरपत्यं पुमान्, कद्रु-ठक्। स्त्रयादिभ्यय। पा ४।१।१२१। १ कद्रुके पुत्र। शेष, अनन्त, वासुकि, तक्षक, भुजङ्गम और कुलिक 'काद्रवेय' कहाते हैं।*

२ अर्बुद। ३ कासर्पोर।

कान (हिं० पु०) १ कर्ण, गोश। कर्ण देखो। २ श्रवणशक्ति, सुननेकी ताकत। ३ कन्ना, लकड़ीका एक टुकड़ा। इसे हलके आगे कूंड़ चौड़ा करनेको बांधते हैं। ४ स्वर्णालङ्कार विशेष, एक गहना। इसे कानमें पहनते हैं। ५ भद्दा काना। ६ कनेव, चारपायीका टेढ़ापन। ७ पसंगा। ८ रंजकदानी, पियाली। (स्त्री०) कानि देखो।

कानक (सं० क्ली०) कनकं फलमिव उग्रं फलं अस्त्यस्य, कनक-अण्। १ जैपालबीज, जायफल। राजवल्लभके मतानुसार यह तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, सारक और उत्क्लेदकारक है। २ धुस्तूरबीज, धतूरेका बीज। (त्रि०) ३ कनक सम्बन्धीय, सोनेका बना हुवा।

कानकचूर्ण (सं० क्ली०) औषधविशेष, एक दवा। गृहधूम, यवक्षार, त्रिकटु, पाठा, रसाञ्जन, चव्य, त्रिफला, जारित लौह और चित्रक बराबर बराबर कूटपीस कर छाननेसे यह बनता है। इसे मधुके साथ मुखमें रखनेसे मुखरोग आरोग्य होते हैं। (सारकौमुदी)

कानगी (हिं० पु०) वृक्षविशेष, एक पेड़। यह कोङ्कण देशमें होता है। इसका तेल पीला रहता और दवा बनाने तथा जलानेमें लगता है। फल जायफलसे मिलता है।

* "शेषोऽनन्तो वासुकिश्च तक्षकश्च भुजङ्गमः।
कूर्मश्च कुलिकश्चैव काद्रवेयाः प्रकीर्तिताः॥"
(महाभारत १।६५।४१)

कानड़गौड़ (सं० पु०) कानड़ा और गौड़से उत्पन्न एक राग।

कानड़नट (सं० पु०) कानड़ा और नटके संयोगसे निकला एक राग।

कानड़ा (सं० स्त्री०) एक रागिणी। इसका स्वरग्राम नि सा ऋ ग म प ध है। ११से १५ दण्ड रात्रि चढ़ते यह गायी जाती है। भिन्न भिन्न राग-रागिणीसे मिलने पर १८ प्रकारके मिश्रकानड़ाकी उत्पत्ति होती है,—१ दरबारी कानड़ा, २ नायकी कानड़ा, ३ सुद्रा कानड़ा ४ काशिकी कानड़ा, ५ वागेश्री कानड़ा, ६ नट कानड़ा, ७ काफी कानड़ा, ८ कोलाहल कानड़ा, ९ मङ्गल कानड़ा, १० श्याम कानड़ा, ११ टङ्क कानड़ा, १२ नागध्वनि कानड़ा, १३ अड़ाना, १४ शाहाना, १५ सूहा कानड़ा, १६ सुघर कानड़ा, १७ हुसेनी कानड़ा और १८ मियांकी जयजयन्ती।

कानड़ा (हिं० वि०) १ काण, काना। २ चम्पो रानीका घर। यह सात समुन्दर खेलमें होता है।

कानद (सं० पु०) धीमरणके पुत्र।

कानन (सं० क्ली०) कं जलं अननं जीवनं अस्य, बहुव्री० यद्वा कानयति दीपयति, कन-णिच्-ल्युट्। १ वन, जंगल। कस्य ब्रह्मणः आननम्। २ ब्रह्माका मुख। ३ गृह, घर।

काननचन्द्र—टिकारीके एक विख्यात राजा।

(देयावली ५५। २। २)

काननाग्नि (सं० पु०) काननाज्जातोऽग्निः, मध्य-पदलो०। दावानल, जंगलमें लगनेवाली आग।

काननारि (सं० पु०) काननस्य अरिरिव, उपमित समा०। शमीवृक्ष, कुमतिया पेड़। इसकी मध्यस्थित शाखा रगड़नेसे अग्नि प्रज्वलित हो कभी कभी समग्र वन जला डालता है। इसीसे इसको 'काननारि' (जङ्गलका दुश्मन) कहते हैं।

काननौका (सं० पु०) काननं ओकः स्थानमस्य, बहुव्री०। १ वनवासी, जङ्गलमें रहनेवाला। २ कपि, बन्दर। ३ वानर, बन्दर।

कानपुर—युक्तप्रदेशका एक जिला और नगर। यह जिला अक्षा० २५° २६' से २६° ५८' उ० और देशा० ७९° ३१' से ८०° ३४' पू० तक अवस्थित है। कानपुर इलाहाबाद विभागके पश्चिमांशमें पड़ता है। इसके उत्तरपूर्व गङ्गानदी, पश्चिम फरुखाबाद तथा इटावा, दक्षिणपश्चिम यमुना और पूर्व फतेहपुर है। इस जिलेका सदर मुकाम कानपुर नगर है।

कानपुर जिला गङ्गा-यमुनाके अन्तर्गत सुविख्यात दोआब प्रदेशका मध्यवर्ती है। इस जिलेमें गङ्गा और यमुनाको छोड़ दूसरी भी अनेक क्षुद्र क्षुद्र नदी हैं। साधारणतः भूमिका भाग दक्षिण-पश्चिमके अभिमुख ढालू पड़ता है। चार प्रधान क्षुद्र नदियोंसे कानपुर जिला चार प्रधान भागोंमें विभक्त है। गङ्गाकी उपनदी ईशानने उत्तर दिक् एक खण्ड त्रिकोणाकार भूमिको बांट दिया है। मध्यमें पाण्डु (पाण्डव) और रिन्द दो नदियोंसे दूसरे दो विभाग बने हैं। फिर अवशिष्ट भूखण्डके मध्य यमुनाकी उपनदी सेंगुर वर्तमान है। इन सकल नदियोंका तोड़ फोड़ बहुत अधिक विस्तृत और गम्भीर है। कानपुर जिलाके मध्य गङ्गा यमुनामें वर्षाके समय बड़ी बड़ी नौका आ-जा सकती हैं, किन्तु अन्य समय क्षुद्र क्षुद्र नौका व्यतीत बड़ी नौकाओंका चलना कठिन है। क्षुद्र क्षुद्र नदी ग्रीष्मकालमें प्रायः सूख जाती हैं। १८५७ई० तक कानपुर नगरके नीचे आने-जानेको गङ्गापर नावका पुल बंधा था। फिर अवध-रुहेलखण्ड रेलपथके लिये गङ्गापर पक्का पुल बना। आजकल बी० एन० डबल्यू० आर० ने भी अपना दूसरा पक्का पुल बनवा लिया है।

कानपुर जिलेकी भूमि स्वभावतः शुष्क है, किन्तु अब गङ्गासे नहर निकलनेके कारण अधिक उर्वरा और शस्यशालिनी बन गई है। इस नहरकी शाखाप्रशाखा-से छोड़ समस्त जिलेमें जल पहुंचानेका प्रबन्ध बंधा है। इस जिलेमें कई झील हैं। सिकन्दरा परगनेमें सोना झील है; यह सिकन्दरेसे मोमिनोपुर तक चली गई है। सोना झील यमुनासे दो मील दूर है। यमुना आजकल जहां जैसे जितनी झुक झुक कर बही है, यह झील भी ठीक उसके समानान्तर भावमें वैसे ही घूम घूम कर चली है। इसीसे कोई कोई सोना झील को यमुना नदीका प्राचीन गर्भ समझते हैं। किन्तु

आज भी इस सम्बन्धमें कोई प्रमाण वा प्रतिवाद नहीं मिलता। इसी प्रकार रसूलाबाद और शिवराजपुरमें २५ मील विस्तृत स्रोत है। उसे भी लोग प्राचीन नदी का गर्भ मानते हैं। इस जिलेमें जंगल न होते भी स्थान स्थान पर भूमि पड़ी है। पतित भूमिमें किंशुक (ढाक) वृक्ष ही अधिक विद्यमान है। कानपुर जिलेमें चीता, बाघ, नीलगाय, हरिण, लोमड़ी, शृगाल, शूकर इत्यादिको छोड़ अन्य कोई वन्य जन्तु देख नहीं पड़ता।

इस जिलेमें युक्तप्रान्तके सब जातिवाले हिन्दू, सकल श्रेणीके मुसलमान और यूरोपीय रहते हैं। ग्रामका सामाजिक बन्धन अन्तर्वेदके अन्यान्य स्थानोंकी भांति है। जमींदार ही प्रथम गण्य हैं। प्रधानतः ब्राह्मण और राजपूत ही जमींदार होते हैं; उसके पीछे साबिक् अधिवासियोंके वंशधर कृषक हैं। यह जमींदारोंकी जमीन वंशानुक्रमसे मौरूसी तौरपर जोतते हैं। फिर बनियां और दुकान्दार हैं। इसी प्रकार दूसरे किसान, नाई, लोहार, कुम्हार इत्यादि रहते हैं।

कानपुर जिलेमें खेती बारीका विशेष प्रभेद देख नहीं पड़ता। दोआबके अन्यान्य स्थलोंमें जैसी प्रणालीसे कृषिकार्य चलता, यहां भी वैसे ही हुवा करता है। कानपुरमें दो बड़ी फसलें होती हैं। शरत्‌कालमें होनेवाली फसलको खरीफ और वसन्त कालमें होनेवाली फसलको रबी कहते हैं। ज्येष्ठकी प्रथम वृष्टिमें खरीफ़ बोते हैं। इस फसलमें धान, मकई, बाजरा, ज्वार, कापास, नील इत्यादि होता है। इसका अधिकांश आश्विन मासमें पक जाता है। धान शीघ्र शीघ्र पकनेसे भाद्रमें भी काट लेते हैं, किन्तु कपास फाल्गुन व्यतीत हुनेके लायक नहीं होती। रबी आश्विनमें बोई और चैत्र वैशाखमें काटी जाती है। इस जिलेका प्रधान खाद्य गेहूं है। आज कल कानपुरमें कपास बहुत बोते हैं। कारण इससे लाभ बहुत होता है। यहां खेतीकार लोग एक प्रकार स्वच्छन्द संसारयात्रा चलाते हैं। किन्तु चमार, काछी, कुरमी प्रभृति कृषक श्रेणी बहुत दरिद्र हैं। इसीसे कानपुरकी दरिद्रता अति प्रसिद्ध है। उत्तरांचलमें ज्वार तथा गेहूं और दक्षिणांचलमें बाजरा अधिक उपजता है। बिल्हौर, रसूलाबाद और शिवराजपुरके दक्षिणांशमें धान्य होता है। शिवराजपुरके उत्तरांशमें नील ही प्रधान है। सकल क्षेत्र गङ्गाकी नहर, कूप, पुष्करिणी, गड्ढे, झील इत्यादिसे सींच आबाद किये जाते हैं। कानपुरमें अनावृष्टिका भय अधिक रहता है, सुतरां दुर्भिक्ष भी यथेष्ट ठहरता है। प्रधानतः इस जिलेके पश्चिमांशमें दुर्भिक्षके भयसे लोग घबराया करते हैं। कानपुरमें कई दुर्भिक्ष पड़े और उनसे लाखों लोग और जानवर मरे हैं।

कानपुरसे गल्ला, कपास और नीलका बीज बाहर भेजते हैं। यहां जो नील उपजता, उससे केवल बीज ही संग्रहीत होता है, वह बीज विहार प्रदेशमें अधिक बिकता है। कानपुर नगरमें घोड़ेका साज, जूता, पोटमाण्टो इत्यादि चमड़ेका द्रव्यादि यथेष्ट और उत्कृष्ट रूपसे प्रस्तुत होता है। चमड़ेके कई कारखाने खुले हैं।

कानपुरके पुतलीघरोंमें रूईका कपड़ा भी बनता है। बहुतसे तम्बू और डेरे तैयार किये जाते हैं। कानपुरके पुराने किलेमें गवरनमेण्टने अपना चमड़ेका कारखाना खोल रखा है। उसमें सैन्यका व्यवहार्य द्रव्यादि बनता है। सरकारी आटेकी कल भी है। इसमें सैन्यके लिये आटा, सत्तू इत्यादि तैयार करते हैं। रेलपथ, नदी, नहर, पक्की और कच्ची सड़क प्रभृति नानाविध पथ यथेष्ट है। आर्यावर्तका प्रधान मार्ग ग्राण्ड-ट्राङ्करोड गङ्गाके समान्तराल इस जिलेमें प्रायः ६८ मील विस्तृत है।

यहां एक कलेक्टर मजिष्ट्रेट, दो ज्वाइण्ट मजिष्ट्रेट, एक असिष्टण्ट और दो डिपटी मजिष्ट्रेट रहते हैं। सकल प्रकारके राजस्वका पूरा परिमाण ३८०२८६०) रु० है। पुलिस, टेलीग्राफ, विद्यालय इत्यादि सुविधाके अनुसार विद्यमान हैं।

कानपुर जिलेमें चार प्रधान नगर हैं। उनसे प्रत्येकमें ५ हजारसे अधिक लोग रहते हैं। प्रधान नगर कानपुरमें कोई ८७१७०, बिठूरमें ७१७३,

बिल्हौरमें ५१४३ और अकबरपुरमें ८३४८ लोगोंका वास है।

कानपुर नगर गङ्गानदीके दक्षिण कूल पर अवस्थित है। प्रयागके त्रिवेणीसङ्गमसे १३० मील ऊपर यह नगर पड़ता है। युक्तप्रदेशमें कानपुर चतुर्थ नगर है। समुद्रपृष्ठसे यह ५०० फीट ऊपर है। यहां सेनानिवास (छावनी), अदालत, ष्टेशन इत्यादि विद्यमान हैं। सेनानिवास और अदालत गङ्गा किनारे है। पूर्वांशमें देशीय अश्वारोही सेनानिवास और कवायद परेड़की जमीन है। कवायद परेड़की जमीनसे पश्चिम युरोपीय पदातिकी वारीक और सेण्टजान गिरजा है। इसके मध्य गङ्गा किनारे मेमोरियल गिरजा है (यह १८५७ ई०को सिपाही-विद्रोहके स्मरणार्थ बना था)। नगरके उत्तरांशमें साधारण कवायदपरेड़की जमीन है इसके सम्मुख गङ्गातीर म्युनिसिपल गार्डेन है। इस उद्यानमें एक कूप था। आज कल उसी कूप पर एक स्तम्भ बनाया और उसकी चारों ओर प्राचीरका घेरा लगाया गया है। इस स्तम्भ पर एक स्वर्गविद्याधरीकी मूर्ति है। स्तम्भके गात्रमें अंगरेजीसे लिखा है,— "विठूरके विद्रोही नाना धुन्धुपन्थके दलने १८५७ ई०की १५वीं जुलाईको इसी स्थानके निकट अनेक युरोपियों विशेषतः युरोपीय स्त्रियों और शिशुवोंको अन्यायरूपसे मार इस कूपमें डाल दिया था।" इस उद्यानकी रक्षाके लिये गवरनमेण्टका वार्षिक ५०००) रु० खर्च होता है। उक्त विद्रोहमें जो निहत हुये, वह इसी उद्यानके दक्षिण और पश्चिमांशमें गड़े हैं।

कानपुर नगर प्राचीन नहीं। इस लिये यहां दर्शनीय अट्टालिका, प्रासाद और मन्दिरादि कम हैं। १७६४ ई० को बक्सर और १७६५ ई०को कोड़ेके युद्धमें शुजा-उद्-दौला (अवधके नवाबवजीर) पराजित होनेपर यह नगर बना। नवाब अंगरेजोंसे सन्धि कर फतेहगढ़ और कानपुरमें सैन्य रखने पर स्वीकृत हुये थे। १७७८ ई०को वर्तमान स्थान नवाधिकृत स्थानकी प्रान्तसीमाके सेनानिवासको निरूपित होनेसे इस नगरकी नींव पड़ी। १८०१ ई०को अंगरेजोंने अवधके नवाबसे इसकी चारो ओरका स्थान पाया था। उस समयसे कानपुर एक जिला और प्रधान नगर गिना जाता है। १८५७ ई०के सिपाही विद्रोहको छोड़ दूसरी कोई ऐतिहासिक घटना यहां नहीं हुई।

मुसलमानोंके अधीन यह जिला अनेक परगनोंमें विभक्त था। उस समय कानपुर इलाहाबाद और आगरेमें लगता था। ११९४ ई० को साहब उद्-दीन गोरीने दोआब अधिकार किया, उसीके साथ कानपुर भी उनके हाथ लगा। औरंगजेबके समय यहां दो एक सामान्य मसजिदें बनीं थी। मुगल सम्राटोंकी दुर्दशाके समय १७३६ ई०को यह अंश महाराष्ट्रोंके अधिकारमें गया। अवधके नवाबसे सन्धि होने पीछे अंगरेजी सेनाने प्रथमतः बेलगांव (बिल्वग्राम) और फिर कानपुरमें आ अवस्थान किया।

सिपाहीविद्रोहके समय कई दिन तक समस्त जिलेमें विद्रोहानल जला था। मेरठमें विद्रोह आरम्भ होने पीछे ही नानासाहबको कानपुरके धनागारकी रक्षाका भार सौंपा गया। जूनमासके प्रथम यहां चारो ओर किले और गड्ढे बना समस्त युरोपीय बैठे थे। ६ठीं जूनको कानपुरका देशीय द्वितीय अश्वारोही दल तथा प्रथम पदातिदलने बिगड़ जेल तोड़ा, धनागार लूटा और आफिस आदिको गिरा डाला। उसके पीछे विद्रोही दिल्लीके अभिमुख चले गये। उसी समय ५३ एवं ५४ संख्यक सैन्यदल विद्रोही हुवा। नानासाहबने विद्रोहियोंसे मिल उनके साहाय्यसे युरोपियोंके आवास आक्रमणपूर्वक तीन सप्ताह अवरोध किये थे। वेलीगारदसे अंगरेज (केवल सात सौ या एक हजार ही लोग होंगे) धूपमें खड़े हो लड़ने लगे। विद्रोहियोंका आक्रमण तीनबार वृथा हुवा था। शेषको अधिकांश अंगरेज मारे गये। विद्रोही उन्हें परास्त कर उन्मत्त भावसे स्त्रियां और शिशुवोंको भी मारने लगे। २६वीं जूनको नानासाहबने हतावशिष्ट अंगरेजोंकी रक्षा करनेमें प्रतिश्रुत हो सबको लेकर कानपुरके सतीचौराघाटमें नौका पर बैठाया था। नौका इलाहाबादको खुलनेके पहले तीरस्थ विद्रोही सिपाही गोली चला आरोहियोंको गिराने लगे। दो नौकावोंने भागनेकी चेष्टा की थी। किन्तु सिपाहियोंने

दोनों किनारेसे गोली चला एकको डुबा दिया। यहांसे कई लोग कूद फांद शिवराजपुर भाग गये थे। सिपाहियोंने वहांसे भी ४ आदमी छोड़ सबको पकड़ मार डाला। नौकामें जितनी स्त्रियां और शिशु थे, सब सवादाकी कोठीमें आवद्ध किये गये। पीछे जब कानपुरके बहिर्देशमें हावलककी तोपका प्रथम शब्द सुना, तब सिपाहियोंने उक्त सकल स्त्रियों और शिशुओंको टुकड़े टुकड़े उड़ा दिया था। प्रायः दो सौ प्राणी विनष्ट हुये होंगे; जहां यह व्यापार हुवा, वहां मेमोरियल कूप और स्तम्भ बना है।

१५ वीं जुलाईको हावलकने पाण्डु नदीके तीर और अवङ्गरमें युद्ध किया था। उसके दूसरे ही दिन कानपुर अधिकृत हो गया।

२७वीं नवम्बरको ग्वालियर और अवधके विद्रोहियोंने आपसमें मिल कानपुर आक्रमणपूर्वक नगर अधिकार किया था। दूसरे दिन सन्ध्याकाल लार्ड क्लाइडने आ फिर आक्रमण किया और ६ठीं दिसम्बरको विद्रोहियोंको नगरसे भगा उनका तोप रहंकला सब छीन लिया। जनरल वोयालपोलने अकबरपुर, रसूलाबाद और डेरापुर उद्धार किया था। १८५८ ई०के मई मास कालपी उद्धार होनेसे कानपुरमें शान्ति स्थापित हुई।

कानफरेन्स (अ० स्त्री० Conference) १ समाज, मजलिस। २ मन्त्रणा, सलाह।

कानलक (सं० त्रि०) कनल-वुञ्। कनल नामक व्यक्ति द्वारा निर्मित, कनलका बनाया हुवा।

कानष्टेबिल (अ० पु० Constable) दण्डधर, चौकीदार, पुलिसका सिपाही। पुलिसके जमादारको 'हेड कानष्टेबिल' कहते हैं।

काना (हिं० वि०) १ काण, एक आंखवाला। २ कृमि कीटादि द्वारा विदारित, कीड़ा लगा हुवा। ३ वक्र, टेढ़ा, जो बराबर न हो। (पु०) ४ आकारकी मात्रा (ा)। यह व्यञ्जनवर्णमें लगता है।

कानाकानी (हिं० स्त्री०) गुप्तकथन, कानाफूसी।

कानाटीटी (हिं० स्त्री०) तृणविशेष, एक घास।

कानाड़ा—दाक्षिणात्यके पश्चिम उपकूलका एक प्रदेश। इसके उत्तर बम्बई प्रान्तका बेलगांव जिला, दक्षिण मन्द्राज प्रदेशका मलबार जिला, पूर्व बम्बई प्रान्तका धारवाड़ जिला, महिसुर राज्य एवं कुर्ग, पश्चिम अरब-सागर तथा भारत महासागर और उत्तरपश्चिम कोण गोया प्रदेश है। प्रेसिडेन्सी विभागके समय कानाड़ा दो भागमें बांटा गया था। उससे उत्तरांश बम्बई प्रेसिडेन्सी और दक्षिणांश मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके विभागमें पड़ा।

उत्तर कानाड़ा अक्षा० १३° ५२′ एवं १५° ३२′ उ० और देशा० ७४° ४′ तथा ७५° ५′ के मध्य अवस्थित है। उसका प्रधान नगर और बन्दर करवर है। उत्तर कानाड़ाके मध्य पश्चिमघाट पर्वतका सह्याद्रिखण्ड उत्तरदक्षिण विस्तृत है। उसकी उच्चता २५०० से ३००० फीट तक है। सह्याद्रि उभय पार्श्व भूमिको एक दिक् उच्च और अपर दिक् निम्न है। उच्च भूभागका नाम बालाघाट है। परिमाण प्रायः ३००० वर्गमील है। अनेक क्षुद्र और बृहत् नदियोंका मुखभाग रहनेसे उपकूल भागकी रेखा बहुत छिन्न भिन्न हो गई है। (नदीका मुखप्रशस्त होनेसे) समुद्रकी खाड़ी देशके मध्य दूरतक विस्तृत है। उपकूलके उत्तरपश्चिम कोण करवर अन्तरीप है। समुद्रतीरकी भूमि प्रायः बालुकामय है, बीच बीच पहाड़ भी हैं। आगे नारियलके पेड़से भरा जंगल और उसके आगे अप्रशस्त धान्यक्षेत्र है। उक्त निम्नभूमिका विस्तार कहीं १५ मीलसे अधिक नहीं। फिर कहीं कहीं वह ५ही मील पड़ता है। उसी भूभागके पार्श्व प्रायः ३००।४०० फीट उच्च पर्वत है। पर्वतमालाके मध्य हजार फीट ऊंचे जंगलसे भरे शिखर भी खड़े हैं। शिखरोंमें बीच बीच उत्तम कर्षित धान्यक्षेत्र और उद्यानशोभित अट्टालिका हैं। बालाघाटकी उपजाऊ जमीन् २५०० फीट तक ऊंची है। नदीतीरवर्ती कुछ स्थानोंको छोड़ यह जंगलसे भरी और गिरी है। नदीके तीर सामान्य ग्राम और क्षुद्र शस्यक्षेत्र वर्तमान हैं।

सह्याद्रिके उभय पार्श्व नदी हैं। उनसे कुछ पश्चिम मुख अरब-सागर और कुछ पूर्व मुख वङ्गोप-

सागरमें जा गिरी हैं। पूर्वांशकी नदीमें तुङ्गभद्राकी उपनदी वर्धा उल्लेखयोग्य है। पश्चिमांशकी नदीमें उत्तर कालीनदी, बीचों बीच गङ्गावली एवं तद्रि और दक्षिण शिरावती प्रसिद्ध हैं। शिरावतीका जलराशि होनावाड़ नगरके ३५ मील ऊपर ८२५ फीट उच्च पर्वतसे भीषणवेगमें गिरता है। वही विख्यात गारसप्पा प्रपात है। पर्वतमें अधिकांश ग्रेनाइट पत्थर है। फिर अनेकोंके मूलदेशमें लेटिराइट है। करवर और होनावाड़के निकट पार्वत्य प्रदेशसे लेटिराइट प्रस्तर संगृहीत हो गृहादिके निर्माणमें लगता है। उक्त प्रदेशके स्थान स्थान पर लौहखनि है। कुमपतासे १८ मील दूर जान उपत्यकामें चूनेका पत्थर मिलता है।

उत्तर कानाड़ाके वनविभागमें सकल प्रकार वृक्ष उत्पन्न होते हैं। उनमें सागवन, पियासाल प्रभृति अधिक देख पड़ते हैं। वहां गवरनमेंटके वनविभागसे लकड़ी कटती है। कृषकोंको वनसे विना व्यय जलानेके लिये काठ, खादके लिये पत्ता और गृह-निर्माणके लिये बांस, खूंटा वगैरह मिल जाता है। पहले उत्तर कानाड़ेकी लकड़ी गुजरात और बम्बई जाकर बिकती थी। आजकल उसे बेंचनेको करवर ले जाते हैं।

दक्षिण कानाड़ा अक्षा० १२° ७′ एवं १३° ५८′ उ० और देशा० ७४° ३४′ तथा ७५° ४५′ पू०के मध्य अवस्थित है। वह मन्द्राज प्रेसिडेन्सीमें लगता है। प्रधान नगर मङ्गलूर (मंगरोल या बंगलोर) है।

उक्त प्रदेशका प्राकृतिक दृश्य अति सुन्दर है। नदी अनेक होनेसे देश शस्यपूर्ण रहता है। वन नाना वृक्षादिसे भरा है। नारियलके बाग वगैरह काफी हैं।

उसके उपकूलभागमें (विस्तारमें ५ से १५ मील तक) उत्तर दक्षिण सब जगह लोग रहते हैं। आबादी कुछ घनी है। भूभाग लेटराइट प्रस्तरसे पूर्ण और समुद्रपृष्ठ पर ४०७ से ६०० फीट तक उच्च है। उसके आगे ही पश्चिमघाटकी क्षुद्र शिखरमाला है। जमालाबादका पर्वत (बेलतंगड़ीके निकट) और गर्दभकर्ण पर्वत सर्वापेक्षा विख्यात है। उक्त प्रदेशमें पश्चिम घाट ३००० से ६००० फीट तक ऊंचा है। पूर्वांशमें उसीको एक प्रकारको सीमा मान सकते हैं। उसमें अनेक गिरिवर्त्म हैं। उनमें सम्पजी, अगुम्बी, चरमाडी, हैदरगढ़ी या हुसेनगढ़ी, मंजराबाद तथा कलूर प्रभृति कुर्ग और महिसुरके मध्य अवस्थित हैं। मंगलोरसे उक्त गिरिपथ तक शकटगमनोपयोगी मार्ग है।

दक्षिण-कानाड़ेकी कोई नदी १०० मीलसे अधिक विस्तृत नहीं। फिर सब नदियां पश्चिम घाटसे निकली हैं। उनके मध्य ग्रीष्मकालको भी अनेकोंमें नौका-गमन कर सकती है। नदियोंमें नेत्रवती, गुरपुर, गङ्गोली और चन्द्रगिरि वा पयस्विनी ही प्रधान है। कारकल नामक स्थानमें एक क्षुद्र और सुन्दर ह्रद है। फिर कुण्डपुरमें निर्मल जलका अपेक्षाकृत वृहत् ह्रद भरा है।

वहां मृत्तिकाके सुन्दर द्र ादि बनते हैं। बहुतसे लोग कलमें उस मृत्तिकासे गण और ईंट तैयार करते हैं। फिर वहां चीनी मट्टीकी भांति एक प्रकारकी श्वेतवर्ण उज्ज्वल मसृण मृत्तिका भी मिलती है। मिजार नामक स्थानमें स्वर्ण, सुब्रह्मण्य एवं केम्फल नामक स्थानमें दाड़िम-बीजाकार क्षुद्र पुष्पक-मणि और उदियी तथा उप्पारंगड़ी तालुकके मध्य लौहकी खनि है। लोहा निकालनेका कोई प्रबन्ध नहीं।

दक्षिण कानाड़ेकी अधिकांश भूमि अधिवासियोंके अधिकारमें है। गवरनमेण्टके अधीन केवल पश्चिम-घाटकी निकटवर्ती वनभूमिका कुछ अंश है। उक्त वनमें नाना प्रकार काष्ठ,वंश, एला, वन्य आरारोट, खदिर, दालचीनी, (छाल और तैल), गोंद, राल और तरह तरहका रंग उपजता है। मधु, मोम और अन्यान्य द्रव्यादि पहाड़ी लोग (मलयकुदो) संग्रह करते हैं। वहांसे प्रतिवर्ष प्रायः डेढ़ लाखका चन्दनतैल बनकर बाहर जाता है। महिसुरसे चन्दन काष्ठ आता है। किन्तु उसका तेल केवल दक्षिण कानाड़ामें ही बनाया जाता है।

असलमें तो कानाड़ा नामका कोई स्वतंत्र देश

नहीं है। पहले उसकी चतुःसीमा बता चुके हैं। उसके दक्षिणके कितने ही अंशका नाम मलयालम् (मलय) है। फिर मध्यांश तुलुव और उत्तरका कुछ अंश कर्णाट कहाता है। अनेकोंके कथनानुसार कानाड़ा कर्णाट देशका नामान्तर है। किन्तु यह बात ठीक नहीं। कर्णाट देखो।

दक्षिण कानाड़ेके उदीपी परगनेका उत्तर पर्यन्त भूभाग प्राचीन केरल राज्यके अन्तर्गत है। कहा जाता है कि परशुरामके क्षत्रियविनाशके पीछे पाण्ड्य राजावोंने जा उक्त स्थान पर अधिकार किया था। १२५२ ई० तक पाण्ड्यराज प्रबल रहे। फिर १३३८ ई०को वह विजय-नगरराजके अधिकारमें गया। १५६८ ई०को तालि-कोटके युद्धमें विजयनगरराजका पराक्रम खर्व हुवा और बदनूरके सरदारने स्वाधीनता पा बदनूर राज्य स्थापन किया। उन्होंने कानाड़ेके हनर नामक स्थानसे नीलेश्वर पर्यन्त अधिकार किया था। पीछे चेरकल-राजके साथ ईष्टइण्डिया कम्पनीका बन्दोबस्त हुवा। उस समय उक्त प्रदेश शक्रराज्य कानाड़ाके नामसे लिखा जाता था। कानाड़ाका उत्तरांश तुलुव प्रदेशके अन्तर्गत रहा। १६१से ७१४ ई० तक वह कदम्ब राजावोंके अधिकारमें था। कदम्ब देखो।

फिर ७१४से १३३५ ई० तक कानाड़ेका उत्तरांश बल्लालवंशके अधीन रहा। बल्लाल देखो।

१७६३ ई०को हैदरअलीने बदनूरके अधिकार काल कानाड़ाके मध्य मङ्गलोर बासवुर लेनेके पीछे मलवार और समस्त जिला अधिकार किया। दो वर्ष पीछे अंगरेज सैन्यने हनर और मङ्गलोर जा छुड़ाया था। किन्तु अल्प दिन पीछे ही टीपू सुलतानने पुनरधिकार किया। उसके पीछे १७८३-८४ ई०को टीपूसे अंग-रेजोंका दक्षिण कानाड़ेमें महायुद्ध हुवा। अवशेष १७९९ ई० को वह सम्पूर्ण रूपसे अंगरेजोंके अधिकारमें पहुंच गया।

१८३८ ई०को कुर्गराजके साम्राज्यग्रहणके समय अमर और सुलिय प्रदेशके लोगोंने स्व स्व प्रदेश अंग-रेज राज्यभुक्त करनेकी प्रार्थना की थी। १८३७ ई०को हटिशराज उनके प्रस्ताव पर स्वीकृत हुए। समग्र मगनिस जिला दक्षिण कानाड़ाके पुत्तुर विभागसे मिलाया गया। उसी वर्ष कल्याणाप्पा सुबराय नामक किसी सरदारने कुर्गराजके पतनसे अंगरेजोंके विरुद्ध अस्त्र धारण किया। पुत्तुरसे मङ्गलोर पर्यन्त विद्रोह फैला था। उसके पीछे विद्रोही शासित होने पर कानाड़ा प्रदेश दो भागोंमें बंट बम्बई और मन्द्राज प्रेसीडेन्सीमें मिल गया। दक्षिण कानाड़ाका प्रधान नगर मङ्गलोर, बन्तवाल और उदीपी है। उसमें प्रधानतः हिन्दू, पोर्तगीज, फरासीसी, अरब और अनार्य लोग रहते हैं। हिन्दुवोंमें ब्राह्मणोंकी संख्या अधिक है। वह सारस्वत और कोङ्कणी नामक दो समाजोंमें विभक्त हैं। द्राविड़ोंसे बहुत ब्राह्मण शिवली कहाते हैं।

उक्त देशके अरब मोपला कहाते हैं। अनार्य लोगोंमें मलयकुदिराह प्रधान हैं। वह जिस प्रणालीसे कृषिकार्य करते, उसे 'कुमारी' प्रणाली कहते हैं।

उत्तर कानाड़ाके मध्य हिन्दुवोंमें सुपारीके व्यव-सायी हारिक ब्राह्मण ही विख्यात हैं। मुसलमानोंमें नाविक अरब वणिकोंके प्रतिनिधि कहाते हैं। किन्तु वह अल्प संख्यक मिलते हैं। अफरीकासे आनीत पोर्तगीजोंकी क्रीत दासियोंके गर्भजात मुसलमान सीदी नामसे आख्यात हैं। उनकी आकृति इस समय भी बहुत कुछ काफिरोंसे मिलती है।

कानाफूसी (हिं० स्त्री०) गुप्तकथन, धीरेसे कही जानेवाली बात।

कानाबाती (हिं० स्त्री०) १ गुप्तकथन, कानाफूसी। २ बालक हंसानेका एक कार्य। बालकके कर्णमें 'कानाबाती कानाबाती कू' कहते 'कू' शब्द जोरसे बोलते हैं। इससे बालक हंसने लगता है।

कानाबिज (हिं० पु०) वस्त्रविशेष, एक कपड़ा। यह सौंकियेसे मिलता-जुलता रहता है।

कानि (हिं०स्त्री०) १ मर्यादा, इज्जत। २ शिक्षा, सीख।

कानिद (हिं० पु०) बांसकी कमची। इससे खरादते समय हीरा पन्ना दबाया जाता है।

कानिष्ठिक (सं० क्ली०) कनिष्ठिका इव, कनिष्ठिका-अण्। शर्करादिभ्योऽण्। पा ५।३।१०७। कनिष्ठिका सदृश।

कानिष्ठिनेय (सं० पु०) कनिष्ठाया अपत्यं पुमान्, कनिष्ठा-ढक्-इनङ् आदेशश्च। कल्याण्यादीनामिनङ्। पा ४।१।१२६। कनिष्ठाका पुत्र।

कानी (हिं० स्त्री०) १ एक चक्षुवाली स्त्री, जिस औरतके एक ही आंख रहे। २ कनिष्ठा, सबसे छोटी हाथकी उंगली।

कानीत (सं० पु०) कनीतस्य अपत्यं पुमान्। कनीत नामक ऋषिके पुत्र, पृथुश्रवा।

कानीन (सं० पु०) कन्यायाः जातः, कन्या-अण् कनीन आदेशश्च। कन्यायाः कनीनच। पा ४।१।११६।

१ अविवाहिता कन्याका पुत्र, वेव्याही लड़कीका लड़का। २ कर्ण राजा। ३ व्यासदेव। ४ अग्निवेश्य। ५ लोध्रवृक्ष, लोध। (त्रि०) ६ चक्षुके लिये हितकर, आंखकी पुतलीको फ़ायदा पहुंचानेवाला औषध।

कानीयस (सं० त्रि०) कनीयसः इदम्। कनिष्ठ-सम्बन्धीय, शुमारमें कम।

कानून (अ० पु०) व्यवस्था, आईन, मुल्कमें अमन-चैन रखनेका क़ायदा।

क़ानूनगो (अ० पु०) राजस्व विभागका एक कर्म-चारी, कोई माली अफसर। यह पटवारियोंके काग़ज़ देखता भालता है। कानूनगो दो प्रकारका है— गिरदावर और रजिष्ट्रार। गिरदावर घूम घूम पट-वारियोंका काम देखा करता है। रजिष्ट्रारके दफ़तरमें पटवारियोंके पुराने काग़ज़ पहुंचाये जाते हैं।

क़ानूनगोई (अ०स्त्री०) क़ानूनगोका काम या ओहदा। मुसलमानोंके राजत्वकालमें जो राजकर्मचारी भूसम्पत्तिके ज्ञातव्य विषय नवाबके निकट पहुंचाते, वही यह पद पाते थे। आईन-अकबरी पढ़नेसे समझ पड़ता है कि उस समय प्रत्येक सरकारमें एक कानूनगो और उसके अधीन प्रत्येक महलमें एक पटवारी रहता था। चतुःसीमा, विभाग, विक्रय और हस्तान्तरकरण प्रभृति भूसम्पत्ति-सम्बन्धीय कोई कार्य आवश्यक आनेसे पहले कानूनगोसे कहना या उसके आदेश ले कार्य करना पड़ता था। भूमिसम्पर्कीय किसी विषयपर तर्क उठनेसे कानूनगो मीमांसा कर देता था।

कानूनदां (फा० पु०) १ व्यवस्था समझनेवाला, जो कानून जानता हो। २ व्यवस्था झाड़नेवाला, जो कानून छांटता हो।

कानूनिया (हिं०) कानूनदां देखो।

कानूनी (अ० वि०) १ व्यवस्था जाननेवाला, जो कानून समझता हो। २ व्यवस्था-सम्बन्धीय, कानूनके मुताबिक़। ३ नियमानुकूल, कायदेके मुताबिक़। ४ हठी, हुज्जती।

कानूम—पञ्जाबकी कुनावर उपविभागका प्रधान नगर। यह समुद्रतलसे ८३०० फीट ऊंचे पर्वत पर अक्षा० ३१° ४' उ० और देशा० ७८° ३०' पू० में अवस्थित है। यहां एक प्रसिद्ध बौद्ध मठ है। उसमें भोटदेशीय विस्तर बौद्धग्रन्थ संरक्षित हैं। कानूम लाधकवाले प्रधान लामाके अधीन है। कम्बलका व्यवसाय अधिक चलता है।

कान्त (सं० पु० क्ली०) कनते दीप्यते, कन कर्तरि क्त। १ कुङ्कुम, रोरी। २ कान्तलौह, एक लोहा। ३ श्रीकण्ठ। ४ चन्द्र, चांद। ५ स्वामी, खाविन्द। ६ चन्द्रकान्त, सूर्यकान्त और अयस्कान्त मणि, आतशी शीशा वगैरह। ७ नन्दीवृक्ष, एक पेड़। ८ वसन्त ऋतु, मौसम-बहार। ९ विष्णु। १० शिव। ११ कार्तिकेय। १२ कामदेव। १३ चक्रवाक, चकवा। १४ वर्षा, बरसात। १५ हिज्जलवृक्ष, एक पेड़। १६ प्रियतम, प्यारा। (त्रि) १७ मनोरम, खूबसूरत। १८ अभि-लषित, चाहा हुवा।

कान्त—युक्त प्रदेशके शाहजहांपुर जिलेका एक गण्ड-ग्राम (कसबा)। यह शाहजहांपुर शहरसे साढ़े चार कोस दक्षिण जलालाबादको राह किनारे अक्षा० २७° ४८' २०" उ० और देशा० ७९° ४९' ४५" पू० पर अवस्थित है।

यह नगर अति प्राचीन है। शाहजहांपुर बसनेसे पहले कान्त अत्यन्त समृद्धिशाली था। प्राचीन अट्टा-लिका और दुर्गादिके ध्वंसावशिष्ट स्तूप प्रभृति देखनेसे इसका कितना ही पूर्व परिचय मिलता है। आजकल यहां पुलिसका थाना, डाकखाना और सराय मौजूद है। यह जनपद महाभारतोक्त 'कान्ति' (भीष्म ९।४०) और पाश्चात्य भौगोलिक टलेमि-वर्णित 'क्तिडिया' समझ पड़ता है।

कान्तता (सं० स्त्री०) कान्तस्य भावः कान्त-तल् टाप्। १ सौन्दर्य, खूबसूरती। २ स्वामित्व, खाविन्दी।

कान्तत्व (सं० क्ली०) कान्तस्य भावः, कान्त-त्व। १ मनोहारिता, खूबसूरती। २ स्वामित्व, खाविन्दी।

कान्तनगर—वङ्गाल प्रदेशके दीनाजपुर जिलेका एक गण्डग्राम (क़सबा)। यह वीरगञ्ज थानेमें लगता है। दीनाजपुर शहरसे कान्तनगर ६ कोस दूर है।

दुर्गादिके ध्वंसावशेषसे स्पष्ट समझ पड़ता कि उक्त स्थान किसी समय विशेष समृद्धिशाली था। अनेक लोगोंके विश्वासानुसार स्तूपाकार ध्वंसावशेष विराटराज्यका दुर्ग रहा। वह उक्त दुर्गमें वास भी करते थे। पाण्डव अज्ञातवासके समय यहां आये थे।*

कान्तनगरकी चारो ओर पड़े हुए विस्तीर्ण भूभागका नाम उत्तर-गोगृह है। प्रवादानुसार कान्तनगरकी धापा नदीके पूर्वतीर और कचाई नदीके उभय तीर विराटराजका गोधन चरता था। उक्त गोचारणभूमि किसी समय अत्युच्च प्राकारसे वेष्टित थी। आजकल वृक्ष लतादिसे उक्त सकल स्थान ढक गया है, इसीसे उस प्राचीन प्राकारका चिह्न पर्यन्त पा नहीं सकते।
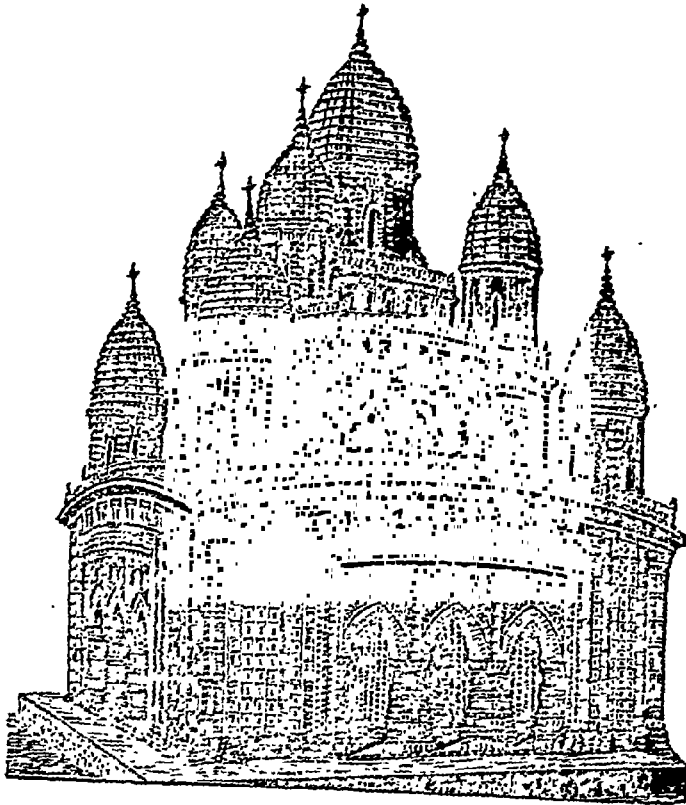
कान्त मन्दिर।

कान्तनगरका कान्त-मन्दिर अति प्रसिद्ध है। ऐसा सुन्दर और विचित्र मन्दिर वङ्गदेशमें दूसरा नहीं। राजा प्राणनाथ दिल्लीसे कान्त नामक विष्णुविग्रह लाये थे। उक्त कान्तविग्रह प्रतिष्ठा करनेके लिये ही सुप्रसिद्ध कान्तमन्दिर बना। १७०४ ई०को इस मन्दिरका निर्माण कार्य लगा और कोई १७२४ई०को यह महत् कार्य सुसम्पन्न हुवा था। राजा प्राणनाथने इस मन्दिरके निर्माणार्थ लाखों रुपये खर्च किये। यह मन्दिर वङ्गाल देशके स्थपति और शिल्पी लोगोंका गौरवप्रकाशक है।

* यहांके अधिवासी कहा करते हैं कि दीनाजपुरका अधिकांश स्थान ही प्राचीन मत्स्यप्रदेश है। किन्तु महाभारतादि पढ़नेपर किसी क्रमसे उस अञ्चलमें मत्स्यदेशका अवस्थान निर्णीत हो नहीं सकता। मत्स्यदेश वा विराटराज्य युक्तप्रदेश है।

कान्तनगरका यह पवित्र देवमन्दिर देखनेसे समझ पड़ता है, कि अंगरेजोंके आनेसे पहले बङ्गालके दीन शिल्पियोंने स्थापत्य और शिल्पविद्यामें कितना उन्नतिलाभ किया था। यह नवरत्न मन्दिर है। मन्दिरकी चूड़ाके विष्णुचक्रसे पाददेश पर्यन्त सुगठित सुचित्रित और कारुकार्य-सुशोभित है। इस मन्दिरमें बिलकुल पत्थरका लगाव नहीं, भित्तिसे चूड़ा पर्यन्त समस्त इष्टक-निर्मित है। मन्दिरके गात्रमें इष्टक खोद बहुसंख्यक देवदेवी मूर्ति-गठित हैं। देवदेवीकी मूर्ति देखनेसे यह भी समझ सकते हैं कि प्राय: दो सौ वर्ष पूर्व बङ्गाल देशमें रीति, पद्धति और वस्त्रादि कैसे प्रचलित थे। हम कह सकते हैं कि ऐसा इष्टकनिर्मित एवं इष्टकखोदित कारुकार्यविशिष्ट मन्दिर दूसरा कहीं नहीं है।

कान्तनगरसे थोड़ी दूर सनका नामक स्थान है। प्रवादानुसार विख्यात वणिक् चांदसौदागरने वहां मट्टीका एक किला बनवाया था।

कान्तपक्षी (सं० पु०) कान्तस्य कार्तिकेयस्य पक्षी, ६-तत,-यद्वा कान्त: मनोहर: पक्षो ऽस्यास्ति, कान्त-पक्ष-इनि। मयूर, मोर।

कान्तपाषाण (सं० पु०) चुम्बक नामक प्रस्तर, सङ्ग-मिक्नातीस। यह शीत, लेखन (खुजली पैदा करनेवाला) और विषदोष, मेद, पाण्डु, क्षय, कण्डु, मोह तथा मूर्छानाशक है। (वैद्यकनिघण्टु) इसके शोधनका विधि यह है—कान्तपाषाणको पीस महिषी-दुग्ध तथा गव्य घृतमें पकाते हैं। पका कर यह लवण क्षार और शोभाञ्जनमें डाला जाता है। फिर दोला-यन्त्रमें महिषीक्षीरादिसे दो बार पकाते हैं। अन्तको अम्लरससे रौद्रमें एक दिन भावना दी जाती है। (रसेन्द्रसारसंग्रह)

कान्तपुष्प (सं० पु०) कान्तानि मनोरमाणि पुष्पाण्यस्य, बहुव्री०। कोविदारवृक्ष, लाल कचनार।

कान्तबाबू—कासिमबाजार राज परिवारके प्रतिष्ठाता। इनका प्रकृत नाम कृष्णकान्त नन्दी था। जातिके यह तेली थे। प्रथम कान्तबाबू सामान्य मोदीका व्यवसाय करते थे। इसीसे अनेक लोग इन्हें 'कान्तमोदी' कहते हैं। वारन हेष्टिङ्गसके कासिमबाजारमें ईष्टइण्डिया कम्पनीके अधीन काम करते शेराज-उद्-दौलाने वहांके अंगरेजोंको पकड़ वध करनेका आदेश निकाला था। उसी घोर संकटके समय इन्होंने वारेनहेष्टिङ्गसको अपनी दुकानमें निरापद स्थान पर बैठा मरनेसे बचाया। फिर हेष्टिङ्गस गवरनर जनरल होकर आये। किन्तु वह कान्त बाबूका महा उपकार भूले न थे। प्रथमत: उन्होंने इन्हें अपना दीवान बनाया। कुछ दिन पीछे कान्त बाबूने कम्पनीसे गाजीपुर और आजमगढ़ जिलेके अन्तर्गत (दूहा विहार) परगना जागीर पाया। इनके पुत्र लोकनाथको भी राजा बहादुरका उपाधि मिला था। ११८५ ई०के पौषमासमें कान्तबाबूका मृत्यु हुवा। यह हेष्टिङ्गसका दाहना हाथ थे। कान्तबाबूके द्वारा ही उनका सब काम चलता था। प्रयोजन होनेसे यह उनको रुपये उधार लाकर देते थे। हेष्टिङ्गसके साथ ही साथ कान्तबाबू रहते थे। एक बार हेष्टिङ्गसने इनके लिये काशीकी राजमाताको भी डांटा डपटा था। (कान्तबाबूके चरित्र सम्बन्धमें Beveridge's The Trial of Nanda kumar, p. 234-45, 367-401. देखो।)

कान्तलक (सं० पु०) कान्तं लक्यते आस्वाद्यते, कान्त-लक कर्मणि क:। १ नन्दीवृक्ष, एक पेड़। २ तुन्नवृक्ष, तुनका पेड़।

कान्तलोह (सं० क्ली०) कान्तं लोह श्रेष्ठत्वात् कमनीयं लोहम्। १ अयस्कान्त, ईसात। २ लौह विशेष, एक लोहा। कान्तलोह उसीको कहते, जिसके पात्रमें जल रख कर तैलविन्दु डालनेसे तैल इतस्तत: न चले, जिसके स्पर्शसे हिङ्गु स्वीय गन्ध परित्याग करे, नीमका क्वाथ भी जिसमें मधुर आस्वाद दे, जिसमें दुग्ध पकानेसे वालुकाराशिकी भांति जमे और जिसके पात्रमें चना भिगानेसे कृष्णवर्ण देख पड़े। इस लौहसे वैद्यशास्त्रोक्त अनेक औषध प्रस्तुत होते हैं। औषध प्रयोग करनेके लिये जारण मारण प्रभृति कई कार्य आवश्यक हैं। लौहशब्द देखो।

इसके निरुत्थीकरणसम्बन्ध पर रसेन्द्रसारसंग्रहमें ऐसा उपदेश लिखा है,—"शुद्ध पारद १ भाग, गन्धक २ भाग, और उभयके समपरिमाण लौहचूर्ण एकत्र

घृतकुमारीके रसमें दो प्रहर घोंट ताम्रके पात्रमें छोटी छोटी गोली बना रखना चाहिये। फिर यह गोलियां दो पहर एरण्डपत्र द्वारा आच्छादित रखनेसे उष्ण हो जायेंगी। उस समय इन्हें धान्यराशिके मध्य तीन दिन तक रख चूर्ण कर लेते हैं। यह चूर्ण कपड़ेसे छान जलमें डालनेसे उतरा आयेगा।

कान्तलौह (सं०क्ली०) कान्तं मनोरमं लौहम्, कर्मधा०। कान्तलौह, ईसपात। कान्तलौह देखो।

कान्ता (सं० स्त्री०) काम्यते असौ, कम-णिच्-क्त-टाप्। १ पत्नी, बीबी। २ सुन्दर स्त्री, खूबसूरत औरत। ३ प्रियङ्गु, एक खुशबूदार बेल। ४ स्थूलेला, बड़ी इलायची। ५ रेणुका, बालू। ६ नागरमुस्ता, नागरमोथा। ७ त्रिसन्धिपुष्प वृक्ष, एक फूलदार पेड़। ८ श्वेत दूर्वा, सफेद दूब। ९ वाराहीकन्द, एक लता। १० आकाशवल्ली, एक बेल। ११ मूषिकपर्णी, एक बूटी।

कान्ताई—बिहार प्रान्तके मुजफ्फरपुर जिलेका एक ग्राम। यह मुजफ्फरपुरसे ४ कोस दूर अक्षा० २६° १५´ उ० और देशा० ८५° २०´ ३०´´ पू० पर अवस्थित है। यहां नीलका व्यवसाय अधिक होता है।

कान्ताङ्घ्रिदोहद (सं० पु०) कान्ताया अङ्घ्रिणा चरणस्पर्शेन दोहदः पुष्पोद्गमो यस्य, बहुव्री०। अशोक वृक्ष।

कान्ताचरणदोहद, अशोक देखो।

कान्तायस (सं० क्ली०) अय एव, आयसम् स्वार्थे अण्; कान्तं आयसम्, कर्मधा०। १ चुम्बक लौह, मक्नातीस। २ कान्तलौह, एक तरहका लोहा।

कान्तार (सं० पु० क्ली०) कस्य सुखस्य अन्तं ऋच्छति गच्छति कान्ता मनोज्ञं ऋच्छति वा, कान्त-ऋ-अण्। १ वन, जङ्गल। २ पद्मविशेष, किसी किस्मका कंवल। ३ कोविदार वृक्ष, कचनारका पेड़। ४ वंश, बांस। ५ महावन, बड़ा जङ्गल। ६ दुर्गम पथ, मुश्किल राह। ७ गर्त, गड्ढा। ८ छिद्र, छेद। ९ दुर्भिक्ष, कहत। १० आरग्वधवृक्ष, अमलतासका पेड़। ११ औपसर्गिक रोग, छोटी बीमारी। १२ साधारण इक्षु, ऊख। १३ रक्तेक्षु विशेष, कतौरा। भावप्रकाशके मतसे यह गुरु, सारक और शरीरको स्थूलता, शुक्र तथा श्लेष्मावृद्धिकारक है।

कान्तारक (सं० पु०) कान्तार स्वार्थे कन्। रक्तेक्षुविशेष, कतौरा।

कान्तारग (सं० त्रि०) कान्तारं गच्छति, कान्तार-गम-ड। वनको गमन करनेवाला, जो जङ्गलको जाता हो।

कान्तारपथ (सं० पु०) कान्तारावृतः पन्थाः, मध्यपदलो०। वनमार्ग, जङ्गली राह।

कान्तारपथिक (सं० त्रि०) कान्तारपथेन आहृतम्, कान्तार पथ-ठञ्। "वाहप्रकरणे वारिजङ्गलस्थलकान्तारपूर्वपदादुपसंख्यानम्। पा ५।१।७७—वार्तिक १। १ वनपथद्वारा आहृत, जङ्गली राहसे लाया हुवा। २ वनपथसे गमनकारी, जङ्गली राह जानेवाला।

कान्तारवासिनी (सं० स्त्री०) कान्तारे वासोऽस्त्यस्याः, कान्तर-वास-इनि-ङीप्। १ दुर्गा। २ वनवासिनी, जङ्गलमें रहनेवाली औरत।

कान्तारि (सं० पु०) कान्तारी देखो।

कान्तारिका, कान्तारी देखो।

कान्तारी (सं० स्त्री०) कान्तार-ङीप्। १ मक्षिका विशेष, एक प्रकारकी मक्खी। मक्षिका देखो। २ इक्षुविशेष, कतौरा।

कान्तारेक्षु (सं० पु०) इक्षुविशेष, कतौरा।

कान्तालक (सं० पु०) नन्दीवृक्ष, एक पेड़।

कान्ति (सं० स्त्री०) कम् भावे क्तिन्। १ दीप्ति, चमक। २ शोभा, खूबसूरती। इसका संस्कृत पर्याय—शोभा, द्युति, दीप्ति, छवि, आभा, भासा, भा और अभिख्या है। ३ स्त्री-शोभा, औरतकी खूबसूरती।

"रूपयौवनलालित्य भोगाद्यैरङ्गभूषणम्।
शोभा प्रोक्ता सैव कान्तिर्मन्मथाप्यायिता द्युतिः" ॥ (साहित्यदर्पण ३)

रूप तथा यौवनके लालित्य और अलङ्कारादिसे होनेवाले सौन्दर्यकी शोभा कहते हैं। यही शोभा कामचेष्टा-विशिष्ट रहनेसे 'कांति' कहाती है। ४ इच्छा, ख्वाहिश। ५ कामशक्ति विशेष। ६ दुर्गा। ७ गङ्गा। ८ चन्द्रकी एक कला। ९ चन्द्रकी एक स्त्री। ९ वाराहीकन्द, एक लता। महासर्जवृक्ष, बोबानका पेड़।

कान्तिक (सं० क्लो०) कान्त्या कान्ति आख्यया कायति आह्वयते, कान्ति-कै-क। कान्तलौह, एक लोहा।

कान्तिकर (सं० क्लो०) कान्तिं करोति, कान्तिकृ-ख। कान्तिवर्धक, खूबसूरती बढ़ानेवाला।

कान्तिद (सं० क्लो०) कान्तिं द्यति नाशयति कान्ति-दा-क। १ पित्त, सफरा, जर्द-आब। २ घृत, घी। (त्रि०) कांतिं ददाति, कांति-दा-क। २ शोभावर्धक, खूबसूरती बढ़ानेवाला।

कांतिदा (सं०स्त्री०) कांतिद-टाप्। सोमराजी, बकुची।

कांतिदायक (सं०क्लो०) कांतिं ददाति, कांति-दा-ख़ुल्। १ कालीयक, चन्दनवृक्ष। (त्रि०) २ शोभादायक, रौनकबख्श।

कान्तिनगरी (सं० स्त्री०) काञ्चीनगरी, काञ्जीवरम्।

कान्तिपुर (सं० क्लो०) १ नेपालके अन्तर्गत एक नगर। आजकल नेपालकी राजधानी काठमांडू है। पहले उसीको कान्तिपुर कहते थे। नेपालके राजाओंकी वंशावली देखनेसे मालूम होता है कि, राजा लक्ष्मीनरसिंह मल्लने नेपाली-संवत् ७१५ (१५९५ ई०)को गोरक्षनाथकी पूजाके लिये एक वृहत् काष्ठमण्डप बनाया था। तदनन्तर कान्तिपुरका नाम काठमांडू पड़ गया। स्कन्दपुराणके कुमारिका-खण्डमें लिखा है, कि कान्तिपुरमें नव लक्ष ग्राम थे। २ ग्वालियर राज्यका एक नगर। उसका वर्तमान नाम काटवार है। अश्विन् नदीके तीर वह अवस्थित है। प्रभासखण्डके मतसे वहां जनप्रिय नामक देव विराजते हैं।

कान्तिभृत् (सं० त्रि०) कान्तिं बिभर्ति, कान्ति-भृ-क्विप्। १ कान्तिविशिष्ट, रौनकदार। (पु०) २ चन्द्र, चांद।

कान्तिमती—काञ्चीपुरके चोल राजा सोमेश्वरकी कन्या और पांचाराज उग्रपांड्यकी पट्टमहिषी।

कांतिमत्ता (सं० स्त्री०) कांतिमतो भावः, कांतिमत्-तल्-टाप्। कांतिविशिष्टता, रौनकदारी।

कांतिमान् (सं० पु०) कांतिः प्रशस्त्येन अस्त्यस्य, कांति-मतुप्। १ चन्द्र, चांद। २ कामदेव। (त्रि०) ३ कांतियुक्त, रौनकदार।

कांतिवृक्ष (सं० पु०) महासर्जवृक्ष, लोबानका पेड़।

कांतिहर (सं० त्रि०) कांतिं हरति नाशयति, कांति-हृ-ख। कांतिनाशक, रौनक घटानेवाला।

कांतीनगरी (सं० स्त्री०) कान्तिपुर देखो।

कांतोत्पीड़ा (सं० स्त्री०) छन्दोविशेष। इसमें बारह बारह मात्राके चार चरण होते हैं।

कांतीली (सं० स्त्री०) कुष्माण्डकी सुरा, कुम्हड़ेकी शराब।

कान्यक (सं० त्रि०) वर्णु नदसमीपस्थकन्यात् जातः, कन्या-वुक्। वर्णौवुक्। पा ४। २। १०३। वर्णु नद समीपस्थ कन्याजात, वर्णुनदीके पासकी एक जगहका।

कान्यक्य (सं० पु०) कान्यकस्य ऋषेः गोत्रापत्यम्, कान्यक-यञ्। कान्यक ऋषिके वंशीय।

कान्यक्यायन (सं० पु०) कान्यकस्य ऋषेः गोत्रापत्यम् कान्यक-यञ्-फक्। कान्यक ऋषिके वंशीय।

कान्थिक (सं० त्रि०) कन्थायां जातः, कन्था-ठक्। कन्थायाष्ठक्। ४। २। १०२। कन्थाजात, कथरीमें पैदा हुवा।

कान्द (सं० त्रि०) कन्दस्य इदम्, कन्द-अण्। १ कन्द-सम्बन्धीय, डलेके मुताल्लिक। २ कन्दजात, डलेसे पैदा। (क्लो०) ३ पक्वान्नविशेष, एक मिठाई।

कान्दर्प (सं० पु०) कन्दर्पस्य अपत्यं पुमान्, कन्दर्प-अञ्। १ कन्दर्पके पुत्र, अनिरुद्ध। (त्रि०) २ कन्दर्प-सम्बन्धीय।

कान्दर्पिक (सं० क्लो०) कन्दर्पाय कन्दर्पवृद्धये प्रयोजनमस्य, कन्दर्प-ठक्। वाजीकरण, ताकत बढ़ानेवाली चीज़।

कान्दव (सं० क्लो०) कन्दौ संस्कृतं भक्ष्यम्, कन्दु-अण्। पिष्टकादि भोज्य वस्तु, रोटी पूरीकी तरह कड़ाहो या तवे पर भूनी या सेकी हुई खानेकी चीज़।

कांदविक (सं० त्रि०) कांदवं पण्यं अस्य, कांदव-ठक्। तदस्य पण्यम्। पा ४। ४। ५१। १ पिष्टकविक्रेता, पूरी मिठाई बेचनेवाला। (पु०) २ हलवाई, कंदोई।

कांदाविष (सं० क्लो०) कांदविष कांदत्वात् दीर्घः। विषभेद, किसी तरहका जहर।

कान्दाहार (कंधार) १ अफगानस्तानका एक प्रदेश। इण्टर प्रभृति पाश्चात्य पण्डितोंके मतसे, कन्धार

अलेकसन्दर या सिकन्दर शब्दका अपभ्रंश है। मकदूनियाके प्रसिद्ध वीर अलेकसन्दर (सिकन्दर)ने अपने नामसे वहां एक नगर स्थापित किया था। उन्हींके नामानुसार उक्त नगरका भी नामकरण हुआ। किन्तु यह बात समीचीन नहीं जान पड़ती। ऋग्वेद (१।१२६।७) एवं अथर्ववेद (५।२२।१४)में गन्धारि और ऐतरेयब्राह्मण (७।३४), शतपथब्राह्मण (८।१।४।१०), छान्दोग्योपनिषत् (६।१४।१), अथर्व-परिशिष्ट (५६), रामायण (४।४३।२४), महाभारत, हरिवंश तथा पाणिनिसूत्रमें गन्धार वा गान्धार जनपदका उल्लेख है। महाभारत, विष्णुपुराण और वराहमिहिरकी बृहत्संहिताके अनुसार वह जनपद सिन्धुनदके पश्चिम अवस्थित जान पड़ता है।

ऋक्संहितामें लिखा है,—

"सर्वाहमस्मि रोमशा गन्धारीणामिवाविका।" (ऋक् १।१२६.७)

हम गान्धार देशीय मेषीकी भांति लोमपूर्णा और पूर्णावयवा हैं। आज भी अफगानस्थानमें लोमश मेष देख पड़ता है। एतद्व्यतीत ऋक्संहितामें गान्धारदेशीय कुभा नदीका उल्लेख है। जिस समय अलेकसन्दरका गमन उस अञ्चलमें हुवा, उस समयके यूनानियोंने उक्त नदीका नाम 'कोफिन' और 'कोफेस' लिखा है। आजकल उसे काबुल कहते हैं।

उक्त प्रमाण द्वारा समझ सकते हैं कि अलेकसन्दरके आनेसे बहुपूर्व संस्कृत शास्त्रमें गान्धार कहानेवाले राज्यका ही अपभ्रंश कान्दाहार है। कान्दाहार प्रदेश आजकल पूर्वकालकी भांति विस्तीर्ण नहीं है। फिर भी चीनपरिव्राजक फाहियान, सुङ्गयुन और युएन-चुयाङ्ग प्रभृतिके समय वह जनपद वर्तमान पेशावर और काबुल तक विस्तृत था। गान्धार देखो।

वर्तमान कान्दाहार प्रदेश खिलात-ए-घिलजाईके ५ कोस दक्षिणसे लेकर उत्तरमें हजारा प्रदेश, दक्षिणमें बलूचिस्तानके सीमान्त और पश्चिममें हेलमन्द तक विस्तृत है।

इस प्रदेशमें शाहमकसूद, गुलकी, खकरेज और गानते नामक कई गिरिमालाएं हैं। फिर हेलमन्द, तरनक, अरगन्दाब, दोरी, अर्गस्तान और कदनाई नदी प्रवाहित हैं।

प्रधान नगर—कान्दाहार, फरा, खिलात-ए-घिल-जाई और मारूफ हैं। वहां करीब चार लाख आदमी रहते हैं। उनमें अधिकांश दुरानी जाति है। फारसी और घिलजाई जातिकी भी कमी नहीं। आय प्रायः २१ लाख रुपये है।

२ अफगानस्थानके अन्तर्गत कान्दाहार प्रदेशका प्रधान नगर। वह अक्षा० ३१° ३७´ ३० और देशा० ६५° ३०´ पू० पर अरगन्दाब तथा तरनक नदीके मध्य काबुलसे ३८० मील दक्षिणपूर्व अवस्थित है।

वर्तमान कन्धार नगर बहुत अधिक दिनका निर्मित नहीं है। आधुनिक नगर अरगन्दाब नदीकी वाम दिक् पर अवस्थित है। किन्तु वह बिलकुल तीरवर्ती नहीं। नदी और नगरके मध्य एक पर्वत-श्रेणी है। उस पर्वतमालाके मध्य एक स्थानमें विच्छेद रहनेसे नदीतीरके साथ नगरका संयोग हो गया है। प्राचीन कान्दाहार नगर वर्तमान नगरसे ४ मील पश्चिम चेहलजिनाक पर्वतके मूल पर अवस्थित था। उसकी तीनों ओर समतल क्षेत्र और चौथी ओर उच्च दुरारोह पर्वत था। इसीसे लोग उसे अजेय समझते थे। किन्तु नादिर शाहने बहुत दिन अवरोधके पीछे नगर अधिकार कर वह विश्वास दूर किया। फिर प्राचीन नगरसे दक्षिणपूर्व दो मील दूर चतुर्दिक् पर्वत वनादिशून्य परिष्कृत समतल भूमि पर दूसरा नगर निर्मित हुवा और उसका नाम नादिराबाद रखा गया। किन्तु अहमदशाह अब्दालीने नादिराबादको भी गिरा कर १७४१ ई०में वर्तमान कान्दाहार नगर स्थापन किया था। प्राचीन कान्दाहारका बहुविस्तृत ध्वंसावशेष देख कर विस्मित होना पड़ता है।

प्राचीन कालावधि कान्दाहार नगर विख्यात वाणिज्य केन्द्र गिना जाता था। उस नगरमें हेरात, गोर, सीस्तान (पारस्य), काबुल और भारतवर्षसे पांच बड़ी बड़ी राहें गई हैं। फिर उक्त सकल स्थानोंका पण्य वहांके बाजारमें पहुंचाता और बिकता है। वह पहले अलेकसन्दरके और पीछे उनके सेनापति

सिजिस्तानके अधीन रहा। उस समयका इतिहास विशेष नहीं मिलता। उसके पीछे पारद और सासान वंशीयोंने उसे अपने अधीन किया। किन्तु उनके समयका भी विवरण विदित नहीं। फिर हिजरी सन्‌की प्रथमावस्थामें मुसलमान धर्मप्रचारक मुहम्मदके वंशधर वहां आये। ८६५ ई० को याकूब बिन-लिस नामक 'साफोरी' वंशके प्रतिष्ठाताने उस पर अधिकार किया। सासानवंशीयोंने उनके हाथसे उसे छीन लिया। फिर गजनवी वंशीयोंने सासानोंको कान्दाहारसे भगाया था। पीछे गोरी वंशीयोंने गजनवियोंको खदेड़ वहां अपना अधिकार जमाया। उनके अनन्तर कान्दाहार सेलजुकीयोंके हाथ लगा। अवशेषमें ११५३ ई० को तुर्कोंने कान्दाहार पहुंच नगर अधिकार किया था। फिर कई वर्ष पीछे वह गयास्-उद्दीन मुहम्मद गोरीके हस्तगत हुवा। १२१० ई० को खीरिजमके सुलतान अलाउद्दीन मुहम्मदने वह स्थान अधिकार किया था। १२२२ ई० को उनके पुत्र जहानगीर खान्‌ने उन्हें वहांसे निकाल भगाया। फिर मलिक कुर्तवंशीयोंके हाथ जहान्‌गीर खान्‌के उत्तराधिकारी दूरीभूत हुये। कुछ दिन पीछे मलिक कुर्तीय स्थानीय सरदारोंसे हार और नगर छोड़ भाग गये। अवशेषमें १३८८ ई० को तैमूरलङ्गने सरदारोंके हाथसे कान्दाहार छीना था। १४६८ ई० तक वहां तैमूरके वंशीयोंका अधिकार रहा। फिर अबू सैयदके मरनेसे कान्दाहार और कतिपय पार्श्ववर्ती स्थान स्वाधीन हो गये। १५१२ ई० को भारतके मुगल राज्यस्थापयिता बाबरने शाहबेग नामक स्वाधीन राजाको हरा उसे भारतके राज्यमें मिला लिया। कुछ दिन पीछे पारसिकों (ईरानियों) ने वह स्थान अधिकार किया। इसी प्रकार एक बार पारस्य (ईरान) और दूसरी बार भारतकी अधीनता स्वीकार करते करते कान्दाहारकी राजलक्ष्मी कुछ दिन अस्थिर रही। अवशेषमें १६२० ई० को फिर ईरानियोंने उसे अधिकार किया था। १५३७ ई० को नादिरशाहने दश लाख फौजके साथ १८ मास अवरोध कर कान्दाहार जीता। १८३४ ई० को शाहशुजा कान्दाहार पर चढ़े, किन्तु परास्त हो लौट पड़े। फिर सादोजाइयोंने उसे जीतनेकी चेष्टा की थी। १८३८ ई० को शाहशुजा फिर अंगरेजोंका साहाय्य ले कान्दाहारमें घुसे। उन्होंने सिन्धु नदीके तीरवर्ती सैन्यसाहाय्यसे २०वीं अपरेलको उसे जीता और नगरमध्यस्थ अहमदशाहके समाधिमन्दिरमें ८वीं मईको राजपद पर अभिषिक्त पाया। उसके पीछे उनका सैन्यदल समुदाय अफगानस्थान अधिकार करनेके लिये काबुल और गजनीकी ओर अग्रसर हुआ। सैन्यका कुछ अंश कान्दाहारमें शुजाके पास रह गया था। उसी समय दुरानियोंने विद्रोही हो सादोजाई जातीय अकबर खान् और सफदरजङ्गके अधीन कान्दाहार आक्रमण किया। अवशेषमें १८४३ ई० को नाना युद्धविग्रहादिके पीछे सफदर जङ्गने उसे जीता था। किन्तु अति अल्प दिन पीछे ही कोहनदिल खान्‌ने उन्हें वहांसे भगा दिया। कोहनदिल अति अत्याचारी था। १८५५ ई० को कोहनदिल खान्‌की मृत्यु हुई। उनके पुत्र मुहम्मद सादिक्‌ने पितृत्यक्त सम्पत्तिको लूट लिया और पितृव्य रहीमदिल खान् पर अत्याचार किया, इसीसे रहीमदिल खान्‌ने अफगानस्थानके अमीर दोस्तमुहम्मदको साहाय्य भेजनेको लिखा था। दोस्त-मुहम्मद खान्‌ने जा नगर अधिकार किया और अपने पुत्र गुलाम हैदरको शासनकर्ताके पद पर रख दिया। गुलाम हैदरके पीछे शेर अली प्रथम कान्दाहारके शासनकर्ता रहे, फिर वह काबुल चले गये। उन्होंने अपने भ्राता अमीन खान्‌को काबुलसे शासनकर्ता बना वहां भेजा था। अमीन खान्‌ने शेर अलीके विरुद्ध अस्त्र धारण किये और १८६५ ई० को काज-बाजके युद्धमें मारे गये। अमीनके कनिष्ठ मुहम्मद शरीफने एक बार वृथा चेष्टा की, आखिर उन्होंने अधीनता स्वीकार की। अजीम खान् नामक शेर अलीके वैमित्रेय भ्राताने विद्रोही बन १८६७ ई० को खिलाति-ए-घिलजाई नामक स्थानमें शेर अलीको हरा दिया। उसके पीछे शेर अलीके पुत्र याकूब खान्‌ने पितराज्य उद्धार किया।

उसी समय अफगानस्थानके साथ इङ्गलैण्डका मनोमालिन्य बढ़नेके कारण १८७८ ई०को कोटासे सर डोनाल्ड ष्टुयार्टने एकदल सैन्य ले अफगानस्थान राज्यमें प्रवेश किया। सैफ-उद्-दीन नामक सेनापतिने तख्तीकुल नामक स्थानमें उन्हें रोका था। किन्तु वह हार गये। १८७९ ई० को कान्दाहार अंगरेजोंके अधीन हुआ।

शेर अलीके मरने पीछे याकूब खान्ने गण्डमक नामक स्थानमें अंगरेजोंसे सन्धि की थी। उससे युद्धादि बंद हो गया। सन्धिके अनुसार कान्दाहार छोड़ पिशिनमें जानेके लिये अंगरेजोंको आदेश मिला। उसी बीचमें सर लुई केभागनारी काबुलके दरबारमें सदल निहत हुये। सुतरां अंगरेजोंने फिर कान्दाहार अधिकार किया और कान्दाहारको रक्षाके लिये खिलात-ए-घिलजाई नामक स्थान भी ले लिया। १८८० ई०को बम्बईसे मेजर जेनरल प्रिमरोजके पहुंचने पर सर ष्टुयार्ट ससैन्य लौटे थे। सरदार शेर अली खान् अंगरेजोंके अधीन कान्दाहारके 'वाली' नियुक्त हुये। सरदार मुहम्मद अयूब खान्ने उससे विगड़ युद्धघोषणा की थी। अंगरेज सेनानी बारोने पथमें बाधा डाली। किन्तु उनका सैन्यदल एकबारगी ही मारा गया। अयूब खान् कान्दाहारका पथ मुक्त पा अग्रसर हुये। उसी बीच अबदुर रहमान खान् अंगरेज गवर्णमेण्टके साथ प्रबन्ध कर अमीर बन बैठे। उससे पहले सर राबर्टस कान्दाहारके उद्धारको नूतन सैन्य ले आगे बढ़े थे।

सर राबर्टसके पहुंचने पर बाबावाली कोटाल और गण्डी-मूला-साहबदाद नामक स्थानमें अयूबके साथ भीषण युद्ध हुआ। युद्धमें अयूबका सर्वस्व गया था। उनका सैन्य, शिविर, तोप, बन्दूक, बारूद, सब सामान् दुश्मनके हाथ लगा। अवशेषमें १८८१ ई० को अपरेल मास कान्दाहार प्रदेशमें शान्ति स्थापन कर सर राबर्टस कोटा लौट आये। फिर अमीर अबदुर-रहमानने मुहम्मद इक्राम खान् नामक किसी षोड़शवर्षीय बालकको सरदार शमस-उद्-दीन खान्के अधीन कान्दाहारका शासनकर्ता नियुक्त किया।

अयूब खान् हिरातमें भाग कर रहे थे। वहां वह जमशीदी जातिके अधिपति खौय खसुरको मार स्वयं अधिनेता बने और अमीरके विरुद्ध अग्रसर हुये। उन्होंने भाड़ा कुरेज नामक स्थानमें अमीरके सैन्यको हरा कर कान्दाहार दखल किया था। फिर अमीरने स्वयं सैन्यके साथ आगे बढ़ धीरे धीरे अयूबको रसद और तोप छीन ली। अयूब फिर हिरातको भागे। किन्तु सरदार अबदुल कुद्दूस खान्ने उसी बीच हिरात अधिकार कर लिया था। इस लिये अयूबको पारस्य-राजके शरणागत हो वास करना पड़ा।

इसके बाद अमीरने गुलाम हैदर खान्के अधीन ७००० शिक्षित सैन्य भेज कान्दाहारकी रक्षा की। १८८२ ई०को सरदार नूर मुहम्मद खान् शासन कार्यमें नियुक्त हुये।

कान्दाहार नगर देखनेमें आयताकार और साढ़े तीन मील विस्तृत है। उसके चारो ओर उपरोध और गढ़े हैं। मख्खू (गढ़ा) २४ फीट गभीर है। उपरोध और गर्तके पीछे रौद्रदग्ध मृण्मय प्राचीर है। उसमें इष्टक या प्रस्तर नहीं लगा। उसे रौद्रमें सुखा पत्थरकी तरह कड़ा बना दिया है। वह पश्चिम दिक्में १९६७ गज, पूर्वमें १८१० गज, दक्षिणमें १३४५ गज और उत्तरमें ११६४ गज लम्बा है। नगरमें ६ फाटक हैं। पूर्वको द्वारदुरानी तथा काबुल द्वार दक्षिणको शिकारपुर द्वार पश्चिमको हेरात एवं तोपखाना द्वार और उत्तरको ईदगाह द्वार है। छहो द्वारोंसे नगरको ६ बड़ी राहें गयी हैं। मध्यस्थलमें शिकारपुर द्वार और काबुल द्वारको राह जहां मिली है, वहां चारसू मसजिद खड़ी है। उसके गुम्बजका व्यास ५० गज है। राहें ४० गज चौड़ी हैं। शहरके उत्तर किला है। उसीके निकट तोपखानेका मैदान है। मैदानके पश्चिम अहमदशाह दुरानीकी कबर है। वह अति उच्च अट्टालिका है। नगरके प्रत्येक द्वार और प्रत्येक मार्गसे उसका गुम्बज देख पड़ता है। उसकी चारो ओर अहमदशाहके वंशधरोंकी दूसरी भी छोटी छोटी १२ कबरें हैं।

कान्दाहारका वाणिज्य बिलकुल ईरानियोंके

हाथमें है। कान्दाहारमें रेशम और ऊनके कपड़े बहुत बनते हैं। लाखकी खेती भी अधिक होती है। मेवाकी कोई कमी नहीं। शुष्क फल यहांका प्रधान खाद्य है।

कान्दाहारी बेगम—बादशाह शाहजहान्‌की प्रथमा महिषी। वह पारस्यराज इस्माइल शाह (१म) के वंशोद्भव सुलतान मिर्जाशफीकी कन्या थीं। सम्राट् अकबरने पारस्यराज शाह अब्बासको कान्दाहारका शासनभार सौंपा था। किन्तु उन्होंने वह कार्य सुलतान हुसेन मिर्जाके हस्त अर्पण किया। हुसेन मिर्जाके मरने पर उनके पुत्र मुजफ्फर हुसेनको कान्दाहारका शासनभार मिला था। वह १५९२ ई० को तीन भ्राता साथ ले अकबरकी सभामें पहुंचे। अकबरने उनकी सम्बर्धना कर पांच हजारीका पद और सम्भल नामक स्थान जागीर दी थी। कान्दाहारी बेगम उनकी भगिनी थीं। १६१० ई० को उन सुन्दरी रमणीके साथ युवराज खुरम (शाहजहान्) का विवाह हुआ। आगरेके कंधारीबाग नामक उद्यानमें कान्दाहारी बेगमको समाधि दिया गया। उनका समाधिमन्दिर अति सुन्दर है। आजकल वह भरतपुरराजके अधिकारमें है।

कांदि—बङ्गाल प्रान्तके मुर्शिदाबाद जिलेका उपविभाग। उसका परिमाणफल ३८९ वर्ग मील है। उसमें कांदि, भरतपुर और खड़गांव तीन थाने लगते हैं। वीरभूमसे मयूराक्षी नदी आकर जहां मुर्शिदाबाद जिलेमें घुसी है वहीं कांदि नगरी बसी है। पायकपाड़ेके राजाओंका वहां आदिवास है। उक्त राजवंशके आदिपुरुष गङ्गागोविन्द सिंहने कान्दिमें ही जन्म लिया था। उन्होंने २० लाख रुपये लगा अपनी माताका श्राद्ध किया और अभ्यागतोंको ब्राह्मण वाहकोंसे डाक बैठा हाथों हाथ जगन्नाथसे ताजा प्रसाद मंगा खिला दिया।

कान्दिग्भूत (सं० त्रि०) कां दिशं गच्छामि, इत्याकुलीभूतः, कान्दिश-भूत। १ पलायित, ढूंढे राह न पानेवाला, भगोड़ा। २ भीत, डरा हुआ।

"न कथंचित् भयात्तस्मात् विमुक्तो ब्राह्मणस्तदा।
कान्दिग्भूतो जीवितार्थी प्रदुद्रावोत्तरां दिशम्।" (भारत, शान्ति, १६९ अ०)

कान्दिशीक (सं० पु०) 'कां दिशं यामि' इत्येवं वादिनो अ॰ ठक् प्रत्ययेन पृषोदरादित्वात् सिद्धं। यद्वा कदि वैक्लव्ये भावे इन्, कन्दि वैक्लव्यं; शीक सेचने भावे घञ्, शीकः अश्रुपातः; कन्दिश शीकश्च तौ विद्यते अस्य कदिशीक-अण्। भय देखकर पलायनकारी, डरसे भगनेवाला।

कान्दू (कान्डु) बङ्गाल और विहार प्रान्तवासी एक जाति। कहीं कहीं उसे भड़भूजा, भुरजी आदि भी कहते हैं। शस्यकण्डन ही इस जातिकी प्रधान उपजीविका थी।

कान्यकुब्ज (सं० क्ली०) कन्याः कुब्जाः यत्र, कन्यकुब्ज स्वार्थे अण्। १ देशविशेष, एकमुल्क। हिन्दीमें इसे कनौज कहते हैं। संस्कृत पर्याय—महोदय, कन्याकुब्ज गाधिपुर, कौश और कुशस्थल है। रामायणमें लिखा है कि राजर्षि कुशनाभके औरस और घृताची अप्सराके गर्भसे १०० कन्याओंने जन्म लिया था। उनका रूप-यौवन देख वायुदेव कामातुर हुये। किन्तु विना पिताकी आज्ञाके कन्याने उनसे सहवास करना स्वीकार न किया। इसपर वायुदेवने उन्हें शाप दे कुबड़ी बना दिया। पिताने प्रसन्न हो अपनी कन्याओंका विवाह काम्पिल्य नगरके राजा ब्रह्मदत्तसे किया था। उनके स्पर्शसे कन्याओंकी कुब्जता मिट गई। २ ब्राह्मण-जातिविशेष। कनौजिया देखो।

कान्यकुब्जी (सं० स्त्री०) कान्यकुब्ज-ङीप्। कान्यकुब्ज देशकी स्त्री।

कान्यजा (सं० स्त्री०) कात् जलात् अन्यस्मिन् जायते क-अन्य-जन्-ड-टाप्। नलीनामक गन्धद्रव्य, एक खुशबूदार चीज।

कान्ह (हिं० पु०) श्रीकृष्ण।

कान्हड़ा— कानड़ा देखो।

कान्हड़ी (हिं०) कर्णाटी देखो।

कान्हम (हिं० पु०) कृष्णवर्ण भूमि, काली मिट्टी की जमीन। यह भड़ौंचकी ओर होती है। इसमें कपास बहुत उपजती और पनपती है।

कान्हमी (हिं० स्त्री०) कर्पासविशेष, एक कपास। यह भड़ौंचकी ओर कान्हम भूमिमें उपजती है।

कान्हर (हिं० पु०) १ बीलच्य। २ कोल्हूकी एक लकड़ी। यह कातरके छोरपर लगता और टेढ़ा मेढ़ा रहता है। इसके दोनों प्रान्त निकल पड़ते हैं। कान्हर कोल्हूकी कमरके पास चारों ओर घूमा करता है।

कान्हरा—कानड़ा देखो।

काप—बङ्गालके वारेन्द्र ब्राह्मणोंकी एक कुल-श्रेणी।

कापटव (सं० पु०) कापटोर्गोत्रापत्यम्, कापटू-अण्। कापट ऋषिके वंशीय। (क्लो०) कुत्सितः पटुः तस्य भावः, कापटु भावे अण्। २ निन्दित पाटुता, बुरी चालाकी।

कापटवक, कापटव देखो।

कापटिक (सं० पु०) कपटेन चरति, कपट-ठक्। १ छात्र, विद्यार्थी। २ अन्यका मर्मज्ञ, दूसरेका भेद जाननेवाला। ३ प्रतारक, धोकेबाज।

कापट्य (सं० क्ली०) कपटस्य भावः कार्यम्वा, कपट ष्यञ्। १ कपटता, चालाकी। २ प्रतारणा, धोकेका काम।

कापड़ी (हिं०पु०) जातिविशेष, एक कौम। गुजरातमें कपड़े बेचनेवालोंको कापड़ी कहते हैं।

कापथ (सं० पु०-क्ली०) कुत्सितः पन्थाः, कु पथिन्-अच् कोः कादेशः। (कापथ्यक्षयोः। पा ६।३।१०४।)

१ कुत्सित पथ, ख़राब राह। इसका संस्कृत पर्याय—व्यध्व, दुरध्व, विपथ, कदध्वा, कुपथ, असत्-पथ और कुत्सितवर्त्म है। २ उशीर, खस। ३ एक दानव।

कापर (हिं० पु०) वस्त्र, कपड़ा।

कापरगादि—बङ्गाल प्रान्तके सिंहभूम जिलेकी एक गिरिमाला। उसका शृङ्ग समुद्रपृष्ठसे १३९८ फीट ऊंचा है। यह गिरिमाला दक्षिणपूर्वाभिमुख चल मयूरभञ्जकी उत्तर सीमाके मेघाशनि पर्वतसे जा मिली है। उसके ऊपर पत्थरमें तांबा निकलता है। पहले कुछ साहब लोग वहां तांबा तैयार करते थे। किन्तु अधिक व्यय लगनेसे १८६८ ई० को उन्होंने वह कार्य छोड़ दिया।

कापरप्लेट (अं० पु० = Copper plate.) ताम्रपट्ट, तांबेकी चद्दर। यह मुद्रण-यन्त्रालयमें काम आता है। इस पर अक्षर खोदे जाते हैं। अक्षरों पर स्याही लगा पोंछ डालनेसे खुदे अक्षरोंके सिवा दूसरा स्थान स्वच्छ निकल आता है। इसी प्रकार कापरप्लेट प्रेसपर चढ़ा कागज़ छापा जाता है। चित्र आदि छापनेको तेजाबसे काम लेते हैं। जिस प्रेसमें कापर-प्लेट छपता है, उसका नाम 'कापरप्लेट प्रेस' पड़ता है।

कापा (वै० स्त्री०) कं सुखं आप्यते अनया, क-आप-घञ्-टाप्। वन्दियोंका प्रातःकालीन स्तुतिपाठ।

"प्रातर्जरेथे जरणेव कापया।" (ऋक् १०।४०।३)

'प्रातः प्रबोधकस्य वन्दिनोवाणी यथा।' (भाष्य)

कापाटिक (सं० क्ली०) कपाटिक एव, कपाटिक स्वार्थे अण्। क्षुद्र कपाट, छोटा किवाड़ा।

कापाल (सं० पु०-क्ली०) कपालमेव, कपाल स्वार्थे अण्। १ अष्टादश कुष्ठान्तर्गत वातिककुष्ठ, एक कोढ़। (कपाल देखो।) २ कण्टकलता, वायबिडंग। ३ कपालका अस्थि, खोपड़ीको हड्डी। ४ कर्कटीभेद, एक ककड़ी। ५ किसी शैव सम्प्रदायका अनुयायी। ६ अस्त्रविशेष, एक हथियार। ७ सन्धिभेद, एक सुलह। इसमें विपक्षी तुल्य स्वल्प मानते हैं। (त्रि०) ८ कपाल-सम्बन्धीय, सरके मुताल्लिक।

कापाला (सं० स्त्री०) रक्तत्रिसन्धिका, लाल फूलोंका एक पेड़।

कापालि (सं० पु०-स्त्री०) अहिंस्रा, कौवाटोंटी।

कापालिक (सं० पु०) कपालेन नरकपालेन चरति, कपाल-ठक्। १ जातिविशेष, एक कौम। वह वङ्गदेशमें मिलती है। २ वामाचारी, एक तान्त्रिक साधु। वह शैवमतावलम्बी होते हैं। मांस खाना और मद्य पीना उन्हें अनुचित नहीं मालूम पड़ता। कापालिक अपने हाथमें मनुष्यका कपाल रखते और भैरव वा शक्तिको बलि अर्पण करते हैं। ३ कुष्ठरोग विशेष, एक तरहका कोढ़। कपालकुष्ठ देखो।

कापालिका (सं० स्त्री०) वाद्यविशेष, एक बाजा। पहले यह मुखसे बजायी जाती थी।

कापाली (सं० स्त्री०) कापाल-ङीष्। १ विडङ्ग। २ कण्टकपाली, कौवाटोंटी।

कापाली (सं० पु०) कपालं धार्यत्वेन अस्त्यस्य, कपाल इनि। १ शिव। २ वासुदेवके एक पुत्र। ३ एक जाति। पूर्ववङ्गमें एक प्रकारके जुलाहे रहते हैं। किसीके मतमें लोहारके औरस और तेलीकी कन्याके गर्भसे वह उत्पन्न हुये हैं। फिर कोई मछुवेके औरस और ब्राह्मणीके गर्भसे कापालियोंका जन्म बताता है। वह अपने पूर्वपुरुषोंको युक्तप्रदेशसे आये कहते हैं। दूसरा प्रवाद यों है—"आदिशूरके समय कापाली शूद्र समझे जाते थे। कान्यकुब्ज देशसे पांच ब्राह्मण और कायस्थ आये। आदिशूरने कापालियोंसे उनके पैर धोनेको कहा। किन्तु कापालियोंने उनका आदेश माना न था। इसीसे गौड़राजने उन्हें समाजको नीच श्रेणीमें गिन लिया।"

उनमें अधिकांश वैष्णव हैं। विवाह शास्त्रानुसार होता है। प्रथम स्त्री वन्ध्या होनेसे द्वितीय स्त्री ग्रहण कर सकते हैं। आत्मीयकी मृत्यु होने पर ३० दिन अशौचके पीछे ३१ वें दिन श्राद्ध किया जाता है।

कापिक (सं० पु०) कपिरेव ठक्। अङ्गुल्यादिभ्यष्ठक्। पा ५।३।१०८। १ कपि, वानर। (त्रि०) २ कपिवत् आचरण करनेवाला, जो बन्दरकी तरह पेश आता या देखा जाता हो।

कापिकेच्छ (सं० पु०) कोकिलाक्ष क्षुप, ताल मखानेका पेड़।

कापिञ्जल (सं० पु०) कपिञ्जलस्य अपत्यं पुमान्, कपिञ्जल-अण्। कपिञ्जलके पुत्र।

कापिञ्जलादि (सं० पु०) कपिञ्जलान् तन्मांसानि अत्ति, कपिञ्जल-अद्-अण्-इञ्। चातक तथा तित्तिर पक्षीका मांसभक्षक, जो पपीहे और तीतरका गोश्त खाता हो।

कापिञ्जलाद्य (सं० पु०) कापिञ्जलादेरपत्यं पुमान्, कापिञ्जलादि-ण्य। कुर्वादिभ्यो ण्यः। पा ४।१।१५१। कापिञ्जलादिका पुत्र, पपीहे और तीतरके गोश्त खानेवालेका बेटा।

कापित्थ (सं० क्ली०) कपित्थस्य विकारः, कपित्थ-अञ्। अनुदात्तादेश्च। पा ४।३।१४०। १ कपित्थ द्वारा निर्मित वस्तु, कैथेकी चीज। २ कपित्थफल, कैथा।

कापित्थक (सं० क्ली०) देशविशेष, एक मुल्क। (वृहत् संहिता) वर्तमान उत्तर भारतके सङ्किश नामक नगरको चारो ओरका स्थान 'कापित्थक' कहाता है।

सङ्किश और उज्जाशा देखो।

कापिल (सं० पु०) कपिलेन प्रोक्तं शास्त्रं वेत्ति अधीते वा, कपिल-अण्। १ सांख्यशास्त्रवेत्ता। कपिलमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः। २ कपिल मुनिके मतानुसार लिखित एक उपपुराण। ३ पिङ्गलवर्ण, भूरा रंग। ४ कपिलवर्णाके पुत्र। (त्रि०) ५ कपिल-सम्बन्धीय। ६ पिङ्गल, भूरा।

कापिलिक (सं० पु०) कपिलिकाया अपत्यं पुमान्, कपिलिका-अण्। कपिलवर्णाके पुत्र।

कापिलेय (सं० पु०) कपिलाया अपत्यं पुमान्, कपिला-ढक्। कपिल मुनिके एक शिष्य। कपिला नाम्नी किसी ब्राह्मणीका स्तनपान करनेसे वह 'कापिलेय' कहाये हैं। (भारत, शान्ति, २१८ अ०)

कापिल्य (सं० त्रि०) कपिलेन निर्वृत्तम्, कपिल-ण्य। कपिलनिर्मित, कपिलका बनाया हुवा।

कापिवन (सं० क्ली०) दो दिनमें होनेवाला एक प्राचीन यज्ञ।

"आङ्गिरस चैत्ररथ कापिवनाः।" (कात्यायन, २३।४३)

कापिश (सं० क्ली०) कपिशा माधवी तत्पुष्पात् जातम्, कपिशा-अण्। १ द्राक्षामद्यविशेष, माधवीके फूलोंकी शराब। २ मद्यमात्र, कोई शराब।

कापिशायन (सं० क्ली०) कापिश्या जातम्, कापिशी-ष्फक्। कापिश्याः ष्फक्। पा ४।२।९९। १ मद्य, शराब। २ मधु, शहद। ३ देवता। ४ कापिशी जनपदमें रहनेवाला। (त्रि०) ५ द्राक्षानिर्मित, दाखका बना हुवा।

कापिशायनी (सं० स्त्री०) द्राक्षा, दाख।

कापिशी (सं० स्त्री०) प्राचीन जनपदविशेष, एक पुरानी बसती। पाणिनिने अपने सूत्रमें उसका उल्लेख किया है। (४।२।९९) हिउयेनसियाङ्गने उस जनपदका नाम 'कि-प-पि-शि' लिखा है। उक्त चीन परिव्राजकके समय भी कापिशी जनपद क्षत्रिय राजाके अधीन रहा। उस समय यहां निर्ग्रन्थ, पाशुपत, कापालिक,

देवोपासक और बहुत बौद्ध वास करते थे। उसका विस्तार ४००० लि (करीब १३३ कोस) था। (Beal's Buddhist Record I, 54-58 देखो)

पाश्चात्य प्राचीन भौगोलिक टलेमिने उसका नाम 'कपिशा', प्लिनिने 'कपिशिन्' और सलिनासने 'कफसा' लिखा है।

कनिंहाम साहबके मतसे उक्त प्राचीन जनपद काफरस्तान घोरबन्ध और पञ्जशिर पर्यन्त विस्तृत था। चीन-परिव्राजककी वर्णनासे समझ पड़ा, कि वर्तमान बन्नू (पाणिनि-कथित वर्णु) उपत्यका प्रदेश अवधि कापिशी क्षत्रिय राजाका अधिकार रहा।

प्लिनिने उसकी राजधानी 'कपिस्सा' बतायी है। उसका वर्तमान नाम कुसान अथवा ओपियान है।

कापिशेय (सं० पु०) कपिशाया अपत्यं पुमान्, कपिशा-ढक्। पिशाच, शैतान्।

कापिष्ठल (सं० पु०) कपिष्ठलस्य इदम्, कपिष्ठल-अण्। १ प्राचीन जनपद विशेष, एक पुरानी बसती। बृहत्-संहितामें वह 'कापिष्ठल' नामसे उक्त है। फिर प्राचीन ग्रीक भौगोलिक एरियानने उसे 'कम्बिस्थली' लिखा है। वह पञ्जाबके अन्तर्गत कुरुक्षेत्रका मध्यवर्ती है। वर्तमान नाम कइथल है। वहां अञ्जनामन्दिर प्रसिद्ध है। २ गोत्रभेद।

(स्कान्दे नागर १०७।२२)

कापिष्ठलि (सं० पु०) कपिष्ठलस्य गोत्रापत्यम्, कपिष्ठल-इञ्। कपिष्ठल ऋषिके वंशीय।

कापी (सं० स्त्री०) १ नदी विशेष, कोई दरिया। २ स्त्रीविशेष, एक तरहकी औरत।

कापी (अं० स्त्री०=Copy) १ प्रतिलेख, नकल। यह शब्द अंगरेजी Copyका अपभ्रंश है। (हिं०) २ गड़ारी, घिरनी।

कापी-राइट (अं० पु०=Copy right) मुद्रणस्वामित्व, हक़ तसनीफ़ या मुसन्निफ़ी। उक्त स्वत्व राजविधिके अनुसार ग्रन्थकार वा प्रकाशकको मिलता है। विना अनुमति लिये दूसरा व्यक्ति किसी ग्रन्थकार वा प्रकाशककी कोई पुस्तक छपा नहीं सकता।

कापु—मन्द्राज प्रान्तकी एक जाति। उसे स्थान-विशेषमें कापलु, रेड्डी या नायडू भी कहते हैं। नेल्लूर, कड़पा, करनूल और समस्त तैलङ्ग देशमें कापु लोग रहते हैं। उनकी उपजीविका प्रधानतः कृषिकार्य ही है। किन्तु कोई कोई व्यवसाय भी चलाते हैं। वह चतुर, साहसी और कार्यक्षम होते हैं। कापु जाति १३ शाखाओंमें विभक्त हैं। १ आरे, २ कानिदे, ३ चक्कुटी, ४ देसूरि, ५ नेराटु, ६ पण्टा, ७ पाकानटी, ८ पेदाकान्ति, ९ पक्के, १० मोटाति, ११ रत्तु, १२ येराप और १३ रेलामा कापलु।

कापुरुष (सं० पु०) कुः पुरुषः कोः कादेशः। विभाषा पुरुषे। पा। ६।३।१०६। निन्दित पुरुष, खराब आदमी।

कापुरुषता (सं० स्त्री०) कापुरुषस्य भावः, कापुरुष-तल्। १ निन्दित पुरुषका कार्य, खराब आदमीका काम। २ भीरुता, निकम्मापन।

कापुरुषत्व (सं० क्ली०) कापुरुष-त्व (तस्य भावस्त्वतलौ। पा०। ५।१।११९) निन्दित पुरुषका कार्य। कापुरुषता देखो।

कापुरुष्य (सं० क्ली०) कापुरुषस्य भावः, कापुरुष-ष्यञ्। कापुरुषता, निकम्मापन।

कापेय (सं० त्रि०) कपेर्भावः कार्यं वा, कपि-ढक्। १ कपिसम्बन्धीय, बन्दरके मुताल्लिक़। २ अङ्गिरा ऋषिके वंशमें उत्पन्न। (पु०) ३ शौनक ऋषि। (क्ली०) ४ वानर जाति, बन्दरोंकी क़ौम। ५ वानरके कार्य, बन्दरकी चाल।

कापोत (सं० पु० क्ली०) कपोतानां समूहः, कपोत-अण्। १ कपोतसमूह, कबूतरोंका झुण्ड। २ सौवीराञ्जन, सुरमा। ३ सर्जिक्षार, सज्जीखार। ४ रुचक-लवण, काला नमक। ५ कपोत वर्ण, भूरारङ्ग (त्रि०) ६ कपोत-सम्बन्धीय, कबूतरके मुताल्लिक़। ७ कपोत-वर्णविशिष्ट, भूरा।

कापोतक (सं० त्रि०) कपोताः सन्ति अस्याम् कपोत छ-कुक् च तत्र भवः अण् छस्य लुक्। कपोतविशिष्ट देशजात, कबूतरोंसे भरे मुल्कमें रहनेवाला।

कापोतपाक्य (सं० पु०) कपोतानां पाकः डिम्बः, तस्य समूहः, कपोतपाक-ष्य। कपोतके डिम्ब, कबूतरोंके अंडोंका समूह। २ कपोतपाकोंका राजा।

कापोतवक्रक (सं० पु०) कपोतवङ्का, एक बूटी।

काপोताञ्जन (सं० क्ली०) कपोतं तत् भञ्जनञ्चेति, कर्मधा०। सौवीराञ्जन, सुरमा।

कापोति (सं० त्रि०) कपोतस्य इदम्, कपोत-इञ्। कपोत सम्बन्धीय, कबूतरके मुताल्लिक।

काप्य (सं० पु०) कपेर्गोत्रापत्यम् कपि-यञ्। १ कपि ऋषिके वंशीय, आङ्गिरस। २ वानर वंशीय, बन्दरसे पैदा होनेवाला। (क्ली०) ३ पाप, गुनाह।

काप्यकर (सं० पु०) कुत्सितं आप्यं काप्यं पापं करोति, काप्य-कृ-ट। १ स्वकृत पाप प्रकाश करनेवाला, जो अपना किया हुआ गुनाह कह डालता हो। (त्रि०) २ पापकारक, गुनाहगार।

काप्यकार (सं० पु०) काप्यं करोति, काप्य-कृ-अण्। १ पाप करके प्रकाश करनेवाला, जो गुनाह करके कह डालता हो। २ पापकी स्वीकृति, गुनाहको तसलीम। ३ पापकारक, गुनाहगार।

काप्यायनी (सं० स्त्री०) कपेर्गोत्रापत्यम्, कपि-यञ् फक्-ङीष्। कपिवंशीया, कपिके वंशकी औरत।

काफरी (हिं० स्त्री०) किसी किस्मका मिर्चा। इसका आकार चपटा गोल और वर्ण पीत होता है।

काफल (सं० पु०) कुत्सितं फलं यस्य, कोः कादेशः। कटफल वृक्ष, कायफल।

क़ाफ़िया (अ०पु०) अनुप्रास, तुक। अनुप्रास जोड़नेको काफियाबन्दो कहते हैं।

काफिर (फा० वि०) १ मूर्तिपूजक, बुतपरस्त। २ नास्तिक, ईश्वरको न माननेवाला। ३ निर्दय, बेरहम। ४ दुष्ट, पाजी। ५ काफिरस्तानका रहनेवाला। (पु०) ६ अफरीका का एक मुल्क।

काफिर—एक जाति। अफरीकाके दक्षिणस्थ काफेरिया नामक स्थानके अधिवासी ही काफिर हैं। किन्तु सूदानके दक्षिणदिग्वर्ती समुदाय अफरीकावासी भी उसी नामसे पुकारे जाते हैं। आजकल अधिकांश स्थानोंमें वह देख पड़ते हैं।

भारतवर्षमें भी काफिर हैं। उन्हें साधारणतः हबशी कहते हैं। यह स्थिर कर नहीं सकते काफिर किस समय कैसे इस देशमें आ पहुंचे थे। फिर भी अनुमान आता, जिस समय अरबके साथ भारतका वाणिज्य रहा, उसी समय अरबोंके साथ काफिरोंका यहां आगमन हुवा। अफगानों, मुगलों और तुर्कोंके साथ भी अनेक आये हैं। काफिर यहां आ और क्रमशः विशेष प्रश्रय पा शेषको किसी किसी स्थानमें राजा तक हो गये हैं।

आजकल उत्तर कनाड़ेके दाक्षिणो जिलेके पार्वत्य प्रदेशमें काफिरोंका वास अधिक है। बम्बई उपकूलके जंजीरा नामक स्थानमें 'हबशी' या "सीदी" जातीय राजा हैं। वह राजवंश अबसीनियाके काफिरोंसे उत्पन्न है। खृष्टीय १८श शताब्द पर्यन्त अबसीनियाके काफिर भारत-उपकूलमें जलदस्युका व्यवसाय उठा निकटवर्ती सागरमें घूमा करते थे। खृष्टीय १५श और १६श शताब्दको विजयपुरमें आदिल शाही तथा निजामशाही वंश राजत्व करता था। उसके अधीन काफिर पुररक्षी सैन्यश्रेणीमें नियुक्त रहे। सिन्धु प्रदेशमें तालपुरके अमीर एक दल काफिरोंका सैन्य रखते हैं। कर्णाटकके नवाबके पास भी काफिर दास रहते हैं। कर्णाट केलास और मेकरान नामक स्थानमें बहुत काफिर हैं। फिर निजाम राज्यमें निजामके नियमित सैन्यके मध्य उनकी संख्या कुछ अधिक है। भारतके अन्य प्रदेशोंमें भी मुसलमानोंके साथ काफिर फैल पड़े। पहले मुसलमान नवाबोंके अधीन वह पुररक्षी सैन्यदलमें नियुक्त रहते थे। नगरादिकी शांति रक्षा उनके हाथमें थी। उनकी रमणियां भी नवाबोंके अन्तःपुरमें दासी थीं। नवाबोंके अनुकरणसे हिन्दू जमींन्दार और राजा पुररक्षाको काफिर नियुक्त करते थे। बोध होता कि काफिरोंको बड़े विश्वासी, प्रभुभक्त और बलिष्ट समझ कर ही उस कार्यका भार दिया जाता था।

पूर्व-भारतीय द्वीपपुञ्ज और दक्षिण एशियाके अन्यान्य स्थलमें भी काफिरोंका वास है। काफिर वहांके उपनिवेशी नहीं। वह सकल स्थान उनकी आदिम वासभूमि है। उक्त स्थान अफरीकाके काफिरोंकी वासभूमिके साथ समसूत्रपातमें रहनेसे उन दोनोंके मध्य देशगत पार्थक्यके सिवा अन्य कोई विभिन्नता देख नहीं पड़ती। इसीसे दोनों स्थानोंके लोग काफिर माने जाते हैं।

टलेमिके पुस्तकपाठसे समझ पड़ता कि उन्हें उनका विवरण ज्ञात था। उनके "अरिया खेरसनेशास" "याबाडस इन्सुडलि" और "इथियोपिस इकथियो-अजि"में सुमात्रा, यवद्वीप एवं नव गिनीकी पपूया जातिका विवरण भरा है। उसे ही रामायणोक्त राक्षस जाति अनुमान करते हैं।

प्राचीनकाल भारतवर्षके दाक्षिणात्यमें वाणिज्य करनेको मिसरीय वणिकोंके साथ अफरीकाके पूर्वाञ्चलवाले लोग अरब और अफरीका उभय स्थानोंसे यहां आते थे। पाश्चात्य ऐतिहासिकोंके मतमें वैसा व्यवसायवाणिज्य प्रायः तीन हजार वर्ष रहा। उस समय यही नहीं कि उक्त सकल देशोंके लोग केवल पण्य ले पोतारोहण द्वारा इस देशमें आते और क्रय विक्रय कर बन्दरसे चले जाते थे, किन्तु अनेक वणिकरूपसे इस देशमें रहने भी लगते थे। उक्त सकल स्थायी वणिक् सिंहलमें "मुसरजाति" और दाक्षिणात्यमें "मोपला" वा "लब्बाई" नामसे ख्यात हुए। किसी किसीके कथनानुसार दाक्षिणात्यमें आर्योंका अधिकार विस्तृत होनेसे पहिले ही काफिर रहने लगे थे। उक्त मत समर्थनके लिये बताते हैं—,

"दाक्षिणात्यके अधिवासियोंसे आर्यजातिका जितना पार्थक्य आजकल देख पड़ता है, उतना भारतमें किसी दूसरे स्थानपर नहीं मिलता। फिर दाक्षिणात्यकी सकल भाषा संस्कृतसे सम्पूर्ण भिन्न है। दाक्षिणात्यके अधिवासियोंमें कितनों होका आकृतिगत सौसादृश्य अधिकांश ईरानियोंकी भांति, कितनों होका समितीय ईरानियोंकी भांति, कितनों होका अष्ट्रेलियोंकी भांति और कितनों होका मलय पपूयोंकी भांति है। फिर निम्नश्रेणीके लोगोंमें अधिकांशकी आकृति अफरीकावासियोंसे मिलती है। उक्त लोगोंके मतानुसार विन्ध्य एवं घाटपर्वतके पूर्व प्रान्तवर्ती असभ्यजातिकी आकृति अधिकतर उत्तर भारतीय आर्यजातिकी आकृतिसे सौसादृश्य रखती है। किन्तु घाटपर्वतके पश्चिमाञ्चलवासी मलय द्वीपकी जाकून जातिकी भांति होते हैं। जाकून जातियोंके साथ अफरीकावासियोंका अधिक सादृश्य है।

पूर्व भारतीय द्वीपावलीमें प्रधानतः चार जातिका वास है—(१) विशुद्ध मलय जाति, (२) मलय उपद्वीपवासी खर्वाकार काफिर या सेमांजाति, (३) फिलिपाइन द्वीपकी क्षुद्राकार काफिर जाति और (४) नवगिनीकी वृहत्काय काफिर या पपूया जाति। एतद्भिन्न नवगिनी और मलयद्वीपके मध्यवर्ती कई द्वीपोंमें उनकी मध्यवर्ती एक जातिके लोग देख पड़ते हैं। उन्हें मलयकी काफिर जाति कह सकते हैं। सिलिविस और लम्बक द्वीपके पूर्व जो सकल द्वीप हैं, उनके अधिवासी साधारणतः अष्ट्रेलियावासियोंकी भांति होते हैं। उक्त पार्थक्य देख अनेक लोग अनुमान करते हैं कि एशियाके दक्षिणांशके साथ पूर्व भारतीय द्वीपपुञ्जके पश्चिमभागस्थ द्वीप अति प्राचीन कालमें संलग्न थे और कालक्रममें प्राकृतिक परिवर्तनसे विच्छिन्न हो गये। *

अफरीकामें जितने काफिर रहते हैं, अनुमानतः उनकी संख्या दो करोड़से अधिक नहीं। इस पूरी संख्यामें काफिरियावासी काफिर और हटेण्टट भी रख लिये गये हैं।

लोहितसागरके पूर्वकूल, पारस्योपसागरके तीर और मलय उपद्वीपमें काफिरोंकी संख्या अधिकसे अधिक ५० लाख होगी। किन्तु वङ्गोपसागरके आन्दामान द्वीपसे पूर्व दिक्की द्वीपावलीमें जिन जिन जातीय लोगोंको साधारणतः काफिर कहते हैं, उनके मध्यमें न्यूनकल्पसे १२ आकृतिगत श्रेणी-विभाग हैं। उन १२ श्रेणीगत पार्थक्योंको देख ज्ञात होता है—उनमें कितने ही साढ़े तीन हाथ या चार हाथ तक और कितने ही साढ़े चार हाथ तक लम्बे निकलते हैं।

* यह अनुमान केवल लोगोंके आकृतिगत सौसादृश्य पर निर्भर नहीं करता। सुमात्रा, बोर्णियो, यव, बालि आदि द्वीपकी परस्पर मध्यवर्ती प्रणाली और एशियाके प्रधान भूखण्डकी मध्यवर्ती प्रणाली कहीं भी १५० । २०० हाथसे अधिक गभीर नहीं। किन्तु सिलिविस द्वीपके पूर्वांशकी प्रणाली और समुद्रांश अनेक स्थलमें ४०० हाथकी अपेक्षा भी गभीर है। एतद्भिन्न एशियाके दक्षिणांशके उत्पन्न फल मूल इत्यादि आरण्य जन्तु और प्राचीन ध्वंसावशेषादिके साथ इन सकल द्वीपोंके उक्त समस्त विषयोंका सम्पूर्ण ऐक्य देख पड़ता है।

उनके मध्यमें अपेक्षाकृत कई विख्यात श्रेणियोंकी बात कहते हैं।

आन्दामान द्वीपके मीनकपी काफिर—मालूम पड़ता है कि मनुष्य श्रेणीमें उनकी अपेक्षा असभ्य जाति दूसरी कम मिलेगी। उनके वासस्थानकी स्थिरता नहीं, परिधेय वस्त्रादि नहीं और उन्हें यह भी ज्ञान नहीं जीविकाके लिये किस प्रकार कार्य करना पड़ेगा। मीनकपी लोगोंके साथ मिलना तो चाहते हैं, किन्तु अनिष्टप्रिय होते हैं। नरमांस नहीं खाते भी वह शूकरमांस, मत्स्य प्रभृति भक्षण करते हैं। मीनकपी जङ्गली फल एवं मूल तोड़कर और झील तथा पुष्करिणीसे मत्स्य पकड़कर खा जाते हैं। वह धनुर्वाण ले वन वन और पुष्करिणी पुष्करिणी घूमते फिरते हैं। बांसकी खपाचसे मछली पकड़नेका कांटा वह लोग बना लेते हैं। वह वस्त्र नहीं रखते और नङ्गे रहनेमें कोई लज्जा नहीं करते। मीनकपी क्षुद्रकाय होते हैं। उनका मस्तक छोटा और तालु चपटा रहता है। वह अपना सर्वाङ्ग कांचसे खरोंच खरोंचकर शरीरकी शोभा सम्पादन करते हैं। बाहुमूल तथा कण्ठमूलसे मणिवन्ध एवं कटिदेश पर्यन्त अङ्गकी चारो ओर गोलाकार खरोंचके दागोंसे मीनकपी अति विश्री और भयानक लगते हैं। किन्तु वह उसीको अपनी प्रधान शोभा समझते हैं। किसी विषय पर सन्तोष प्रकट करते समय मीनकपी दक्षिण हस्तमें तालुके निम्न भागपर धीरे धीरे दन्ताघात कर वाम स्कन्धेपर एक थप्पड़ लगाते हैं। सईस घोड़ेका बदन मलते वक्त जैसे ठपक देते हैं, वैसे ही शब्द निकाल वह चुम्मा लेते हैं। परस्पर कथोपकथन करते समय मीनकपी ऐसा गड़बड़ उच्चारण करते हैं, मानो चूं चूं कर ही मनोभाव प्रकाश करते हों। किन्तु वास्तवमें यह बात ठीक नहीं। उड़ियोंकी भांति उनकी उच्चारण-प्रणाली अति द्रुत और अस्पष्ट होती है। उनकी नाचना बहुत अच्छा लगता है। नाचते समय वह दोनों हात मस्तककी ओर उठा सङ्गीतके ताल ताल पर कूदते फांदते हैं। फिर नृत्यमें कभी मीनकपी मस्तक घुमाते और कभी समस्त शरीर सम्मुखकी ओर झुका जाते हैं। इसी प्रकार मीनकपी सङ्गीत और नृत्यके ताल ताल पर नानारूप अङ्गभङ्गी किया करते हैं।

सेमां, विला—आन्दामान द्वीपके पूर्व मलय उपद्वीपके अन्तर्गत केदा, पेराक, पाहाङ्ग और त्रिङ्गानु प्रदेशमें जो काफिर रहते हैं, उन्हें मलयके लोग "सेमां" तथा "विला" कहते हैं। उनका वर्ण कृष्ण, केश ऊर्णसदृश और गठनादि अफरीकावासियोंकी भांति खर्वाकार होता है। पूर्णवयस्क पुरुषकी उच्चता तीन हाथसे अधिक नहीं बैठती। उनके भी निर्दिष्ट वासस्थान और कृषिकार्यका अभाव है। उनमें अधिकांश घूम घूम कर वनका उत्पन्नादि संग्रह करते हैं और उसे ही मलयजातीयोंके निकट व्यवहार्य द्रव्यादिसे बदलते हैं। वह शिकार मारते और शिकारमें पाये पशु-पक्षी वा उसका चर्म पालकादि विनिमय कर खाद्यादि लाते हैं।

क्रियान नदीकी उपनदी इजानके तीरवर्ती स्थानमें "सेमां बुकित्" नामक श्रेणीके काफिर रहते हैं। वह पूर्णवयसमें सवा तीन हाथ होते हैं। उनका मस्तक क्षुद्र, मस्तकका सम्मुखभाग कुछ कोणाकार उच्च, और पश्चाद्भाग वर्तुलाकार तथा मध्यांशकी अपेक्षा अप्रशस्त होता है। मलयजातीयोंसे सेमां बुकितोंका मुखमण्डल साधारणत: अप्रशस्त, भ्रूदेश उच्च, नयनकोटर अति गम्भीर, नासिका नीची और छोटी एवं नासिकाका अग्रभाग सूक्ष्म तथा उठा हुआ होता है। आंखका परदा पीला, पक्ष्म घन-दीर्घ-कुञ्चित, हनुदेश एवं मुखविवर प्रशस्त और होंठ मोटा तथा छोटा रहता है। भ्रू तथा नासिकाके अग्रभाग और छिद्रकी उच्चता समान होती है। उनका उदर बहुत रहते भी शरीर अपेक्षाकृत क्षीण लगता है। वह वानरकी भांति उदरको घटा बढ़ा सकते हैं। गात्रका चर्म साधारणत: कोमल और चिक्कण होता है।

त्रिङ्गानुकी सोमाङ्ग नामक श्रेणी केदादियोंकी भांति कुछ तरलवर्ण है। वह लोग सेमाङ्ग बुकितोंकी भांति मसृण घोर कृष्णवर्ण नहीं होते। उनके बाल ऊनसे नहीं मिलते, टेढ़े टेढ़े और घटोत्कचकी भांति ऊंचे रहते हैं। माड़वारियोंकी भांति खूब घनी मोटी मूछ रहती है। मस्तककी बनावट मलयों या काफिरोंकी

भांति नहीं होती, अधिकतर पापुयावोंसे मिलती है। उनका स्वर परिष्कार तथा कोमल लगता, किन्तु अनुनासिक रहता है। वह कपाल और कपोलमें गोदना गोदाते हैं। दक्षिण कर्ण छिदा कर बड़ा छेद रखते हैं और सम्मुखभागमें बालोंका एक गोलाकार गुच्छा छोड़ समस्त मस्तक मुण्डन करते हैं। पेराकके नदीकूलवर्ती सेमाङ्ग "सेमातिङ्ग पाय" कहाते हैं। वह समुद्रतीरसे पर्वतके ऊपर तक सकल स्थानमें रहते हैं। किन्तु वुक्षित वन और पार्वत्य स्थान भिन्न जलके उपकूलभाग वा नदीतीरको नहीं जाते। फिर "सकि" श्रेणीके लोग पार्वत्य प्रदेशसे नीचे उतरना कब जानते हैं। केदा और पेराकके सेमाङ्गोंकी भाषामें दो शब्दोंके योगज शब्द छोड़ अन्य कोई बड़ी कथा वा समासवाक्य नहीं। जिन सकल स्थानोंमें सेमाङ्ग लोग रहते हैं, उनमें मलयजातीय नहीं मिलते।

पापुया श्रेणीके काफिर—फ्लोरिस, सुम्बव वा चन्दना, अदेनारा, सलर, लम्बटा, वताव, ओम्बे, ओयेउर, रत्ती, सर्वत्ति, बव्बर, तिमर, तिमरलाउत, खाराट, नव कालिडोनिया, नव आयर्लैण्ड, आटाह्वायटी पलिनेसिया, फिजी, मालक्कस, नवगिनी, पोपो, वासन्दा, किड्डीप, अम्बयना, सालवत्ती प्रभृति पूर्वांशकी द्वीपावलीमें वास करते हैं। जिन सकल द्वीपोंमें उस जातिके काफिर रहते हैं, उन्हें मलयके लोग "तानापापुया" (पापुया जातिके वासस्थान) कहते हैं। बाल घूंघरवाले होनेसे ही उनका नाम "पापुया" पड़ा है। क्योंकि मलय भाषामें टेढ़े बालोंको "पुया-पुया" कहते हैं। पुया-पुया शब्दसे पापुया शब्द निकला है। उनकी आकृति बिलकुल काफिरोंसे मिलती है। नासिका प्रशस्त होती है। ओंठ मोटा और बड़ा रहता है। कपाल दबा हुआ होता है। रङ्ग मटमैला लगता है। अक्षिगोलकका चतुर्थांश सफेद होता है। वह दक्षिणपूर्व एशियाके अन्यान्य काफिरोंसे पूर्णगठित और बलिष्ठ हैं। पापुया लोग उत्साही, अध्यवसायी और परिश्रमी होते हैं। उन सब गुणोंसे किसी समय उनको सभ्यदेशमें दासकी भांति अधिक बेचते थे और लोग भी आग्रहसहकारसे ले लेते थे। उनकी मानसिक वृत्ति मलयजातिकी अपेक्षा हीन न रहते भी बहुत चञ्चल होती है। इसीसे वह स्वाधीन भावमें रह नहीं सकते। मलयजातिके साथ विवादमें इसी कारण पापुया हार जाते हैं।

वह नवगिनी तथा उसके निकटवर्ती द्वीपमें समुद्रके उपकूलपर वास और अन्यान्य स्थलोंमें पार्वत्य-प्रदेशपर अवस्थान करते हैं। बहुतसे द्वीपोंमें तो उनकी संख्या बिलकुल घट गई है। सिराम और गिलोलो द्वीपमें वह कभी कभी मुश्किलसे देख पड़ते हैं। बहुतोंका अनुमान है कि, काल पाकर पापुया पृथिवीसे उठ जायेंगे, क्योंकि शिकारके भूखे अपेक्षाकृत ताम्रवर्ण जातीय लोग उनको अधिक मारते हैं। किन्तु यह भ्रम है। कारण जहां जहां आजकल युरोपीय सभ्यता फैलती, वहां वहां उन्हें परस्पर दिन दिन मिलजुल कर रहनेकी शिक्षा मिलती जाती है। सिराम और गिलोलो द्वीपमें रहनेवाले अत्याचारसे उत्पीड़ित हो अतिशय भीरु बन गये हैं। वह किसी सभ्य जातिके साथ एक दम ही बैठते उठते नहीं। अपरिचित वा भिन्न जातिके लोगोंको देख जंगलमें भाग छिप जाते हैं। माइसल नामक वृहत् द्वीपमें उस जातिको छोड़ अन्य कोई जाति नहीं रहती। केवल उपकूल भागमें एक प्रकारकी मिश्र वा सङ्करजाति देख पड़ती है। उसकी भी आकृति प्रकृति उनसे बहुत कुछ मिलती है। उक्त सङ्करजाति नाविकतामें विशेष पारदर्शी होती है। वह युरोपीयोंसे सदय व्यवहार करती है। मागीबनमें पापुया जातिके लोग देख पड़ते हैं। किन्तु उसके निकटवर्ती जेबु द्वीपमें वह बिलकुल नहीं पाये जाते। यह भी सुननेमें नहीं आता किसी समय वहां पापुयावोंका वास था। नवगिनि, कि, अरु, माइसल, सालवत्ति प्रभृति द्वीपोंमें उस जातिके लोग रहते हैं और वही श्रेणी फिजी द्वीप तक विस्तृत है। उनके बाल बड़े और बहुत टेढ़े होते हैं। पूर्णवयस्कोंके मस्तकपर उसी प्रकारके बाल खूब बढ़ कर टापीकी भांति बन जाते हैं। उन्हें देखते ही बाल अच्छे भी लगते हैं। उनको

दाढ़ीके बाल भी वैसे ही टेढ़े होते हैं। दोनों हाथ, पैर और छातीमें भी कुछ वैसे ही बाल रहते हैं। उच्चतामें वह मलय जातिकी अपेक्षा दीर्घ, प्रायः युरोपीयांकी भांति होते हैं। पदद्वय दीर्घ रहते हैं। मुखमण्डल दीर्घाकार, कपाल चपटा, नासाछिद्र प्रशस्त, मुखविवर बड़ा और ओष्ठ मोटा तथा भारी होता है। वह कामकाज और बातचीतमें बड़े दृढ़प्रतिज्ञ होते हैं। वह लोग चिल्ला कर और खूब जोरसे हंस हंस कर तथा उछल कूद कर आनन्द प्रकाश करते हैं। वह खड्ग, द्वार, नौका और तैजस आदिको खोद कर चित्र बनाते हैं। अपनी अपनी प्रियसन्तान पर पापुया बहुत क्रुद्ध रहते हैं। वह श्रेणी कभी सामाजिक बन्धनमें पड़ रह न सकेगी। समझमें ऐसा आता कि काल पाकर युरोपीय सभ्यता फैलनेसे उस युद्धप्रिय जातिका लोप होगा। वह बड़े विलासी होते हैं।

लुइसत्काय पापुया आकृतिमें श्रेष्ठ और बलादिमें विख्यात हैं। उनका विस्तृत स्कन्ध और गभीर वक्षस्थल प्रीतिकर देख पड़ता है। काफिर जातिका साधारण दोष पदद्वयकी क्षीणता और अपूर्णता है। पापुयाओंमें भी उसका अभाव नहीं। स्वाधीन पापुया जाति बड़ी प्रतिहिंसापरायण और उद्धतस्वभाव है। नव गिनिके उत्तरपूर्व प्रान्तमें वह रहते हैं। पापुया अपने देशमें अन्य किसी जातिको निरापद बसने नहीं देते। निहायत परेशान करके भी भगा न सकनेसे अपना स्थान छोड़ अभ्यन्तरभागमें पार्वत्य प्रदेश पर वह चले जाते हैं। पापुया गोदना नहीं गोदाते। किन्तु जङ्घ, वक्ष और पृष्ठ पर एक प्रकारके प्रलेपसे चमड़ेको उभार वह कड़ा कड़ा आबला बना लेना अच्छा समझते हैं। कभी कभी यत्न कर पापुया उसे एक अंगुल तक ऊंचा उठा देते हैं।

फ्लोरिस और नवगिनि प्रभृति द्वीपोंमें काफिर ही बसते हैं। नवगिनिके पापुया भिन्न भिन्न श्रेणीके साथ परस्पर युद्धमें लिप्त रहते हैं। उस युद्धमें विपक्ष पक्षका मस्तक काट न सकनेसे कोई पक्ष निरस्त नहीं होता। नवगिनिके काफिर एक काष्ठमयी प्रतिमाको उपासना करते हैं। उस देवताका नाम "कारवर" है। प्रतिमा १८ इञ्च उच्च रहती है। प्रत्येक घटनाको वह उस देवताके निकट प्रकाश करते हैं। उनकी विधवायें स्वामीके गृहमें रहती हैं। अन्यान्य स्थानोंके काफिरोंकी अपेक्षा नवगिनिके पापुया सभ्य हैं। किन्तु अधिकांश अति सामान्य पर्णकुटीरमें रहते हैं और शिकार या स्वभावजात फलमूलसे जीविका निर्वाह करते हैं। उपकूलभागके पापुया अपेक्षाकृत सभ्य हैं। वह ऊंचे खम्भोंपर खत्तोंकी भांति मड़े घर बांध रहते हैं।

डोरी द्वीपमें पापुयाओंको "म्याइफोर" कहते हैं। वह साढ़े तीन हाथ दीर्घ होते हैं। जातिसुलभ कुञ्चित केशोंको माइफोर स्त्रियोंकी भांति बढ़ाकर रखते हैं। उन बालोंके कारण वह अधिक भयानक लगते हैं। पुरुष शिरमें एक कंघी खोंस रखते हैं, किन्तु स्त्रियां वैसा नहीं करतीं। उनकी दाढ़ीके लोम कुञ्चित, कपाल उच्च एवं अप्रशस्त, चक्षुद्वय बड़े, वर्ण काला, नाक चपटी और ओष्ठ मोटे होते हैं। किन्तु दांत बिलकुल मोतीकी भांति रहते हैं। पुरुष अङ्गिर्योंस की भांति एक प्रकारका छोटा कपड़ा पहनते हैं। वह कपड़ा "मार" नामक वृक्षकी छालसे बनता है। उनकी स्त्रियां नीले रंगके सूतका वस्त्र परिधान करती हैं। वह घुंटनेके नीचे नहीं पहुंचता। उरुआदिमें वह गोदना गोदाते हैं। वह गोदना अधिक दिन नहीं रहता। गोदना गुदाते समय मछलीके कांटेसे जहां गोदना बनाना चाहते हैं, वहां रक्त निकाल कर भूषा लगा देते हैं। वह समुद्रगमनमें अतिशय पारदर्शी होते हैं। नौकाके चालन, सन्तरण और समुद्रमें डुबकी मार समुद्रके गर्भपर कर्मादि करनेमें उनकी बराबर निपुण और कोई नहीं होता। वह वृक्षकी पेड़ी खोद अपनी नौका प्रस्तुत करते हैं। मछई, धान और मिलनेसे शूकर मांस भी खा जाते हैं। वह चौर्य-वृत्तिको सर्वापेक्षा दुष्ट और गुरुतर अपराध समझते हैं। माइफोर दाम्पत्य-दोषवर्जित हैं। विवाह एक ही बार होता है।

वह द्वीपमें स्थान स्थान पर परिष्कार बहुपूर्ण दृढ़ढ़ और दुर्गम जंगल है। वहांके लोग मकान

और पश्चिमेशीय काफिरोंकी मध्यवर्ती जाति हैं। अष्ट्रेलीयांके साथ ही उनकी आकृति प्रकृति और व्यवहारका सादृश्य अधिक है। पुरुष जांघ तक तुनकी बुनी चटाई या कपड़ा पहनते हैं और दुपट्टा व्यवहार करते हैं। वह क्रोधनस्वभाव नहीं होते। किन्तु पुरुषों वा स्त्रियोंसे तिरस्कृत होने पर हठात् बिगड़ उठते हैं। स्त्रियां तुनकी बुनी चटाईका एक खण्ड सम्मुख और एक खण्ड पश्चात् दिक् लटका लेती हैं। उनमें कितने ही मुसलमान और कितने ही ईसाई हैं। ओलन्दाजोंने अम्बयना द्वीपमें ईसाई धर्म प्रचार कर देशके प्राय: प्रधान प्रधान लोगोंको ईसाई बना डाला है। अरु द्वीपके पापुया अपने अपने गृहको धातुफलक और हस्तिदन्त द्वारा सजाते हैं। हस्तीके मर जानेसे वह दन्त संग्रह करते हैं।

कि-द्वीपके काफिर मुसलमान होते भी शूकरमांस खाते हैं। उनकी स्त्रियोंमें भी अवरोधप्रथा नहीं। बालक बालिका बड़ी आमोदप्रिय होती हैं और पूर्णवयस्क भी प्राय: सकल विषयोंमें गड़बड़ करते हैं। इस द्वीपमें दो जातिके लोगोंका वास है। उनमें पापुया नारिकेलका तैल, नौका और काष्ठका गमला बनाते हैं। उनकी बनाई बड़ी बड़ी नावोंमें २०से ३० टन तक बोझ लाद सकते हैं। उनमें किसी प्रकारकी मुद्राका चलन नहीं। समस्त क्रय विक्रय विनिमयसे सम्पन्न होता है। वह पेड़की छाल या सूतका कपड़ा पहनते हैं। वहांकी दूसरी जाति वान्दाद्वीपके मुसलमानोंकी हैं। वह वहांसे भगाये जाने पर यहां आकर बसे हैं। वह सूतका कपड़ा पहनते हैं। वह मलयजातीय मालूम होते हैं। किन्तु आजकल उक्त जातिकी सन्तानपरम्पराके परस्पर संमिश्रणसे एक स्वतन्त्र मध्यवर्ती जाति बन गयी है।

सेरम द्वीप मलक्कास द्वीपपुञ्जके मध्य सर्वापेक्षा बृहत् है। वहां गिलोलो द्वीपवासी अधिवासियोंके साथ पापुयाओंका अति निकट सादृश्य है। उनके पुरुषका पूर्ण गठन होता है। किन्तु देह कर्कश रहता है। स्त्रियोंकी आकृति मलयजातिकी अपेक्षा अप्रीतिकर है। उस द्वीपके अधिवासी पापुया "आलफारो" नामसे ख्यात हैं। वह मस्तककी वाम दिक्के बाल बांधते हैं। बालोंके मध्य एक अंगुल मोटा सूआ रखते हैं। सूआका अग्रभाग और पाददेश लाल रंगा रहता है। वह प्राय: नग्न और अलङ्कारवर्जित होते हैं। केवल पुरुष घास या रूपकी बाली बजुल्ला और पोत या छोटे छोटे एक फलकी माला पहनते हैं। स्त्रियां बाल नहीं बांधतीं। किन्तु उक्त समस्त अलङ्कार वह भी परिधान करती हैं। वह अपेक्षाकृत दीर्घच्छन्द होते हैं।

सिलिबिस द्वीपके काफिर मलय द्वीपवासी और काफिर जातिकी मध्यवर्ती श्रेणी समझ पड़ते हैं। वह मलय जातिकी भांति सभ्य होते हैं। उनका नाम "बुगि" है।

फिलिपाइन द्वीपमें पश्चमकी भांति बालवाले काफिरोंकी संख्या अधिक है। अफरीकावासियोंकी अपेक्षा उनके गात्रका वर्ण कुछ तरल कृष्ण रहता है। स्पेनीय उन्हें "क्षुद्रकाय काफिर" कहते हैं। क्योंकि तीन हाथसे अधिक दीर्घ नहीं होते। उनका जातिगत नाम "इटा" वा "आएटा" है। उस द्वीपपुञ्जके पानाग, निग्रोस, समर, लेयटी, मसबेत, बोहल और सेबू द्वीपके मध्य उस जातिके लोग देख पड़ते हैं। अन्यान्य द्वीपोंमें विशुद्ध इटा श्रेणीके काफिर नहीं मिलते। सेबुद्वीपमें एक भी इटा श्रेणीका काफिर कहां है।

गिनि द्वीपके पापुयाओंकी नाक चपटी होती है। होंठ मोटा, चक्षु कोटरगत और रंग बादामी रहता है। अनेकोंके अनुमानसे नवगिनिकी पापुया जाति और मलय जातिके मिश्रणसे वह जाति उत्पन्न हुई है। उनके बाल भी पापुयाओंसे नहीं मिलते। अष्ट्रेलिया, नवकालिडोनिया, फिजु प्रभृति द्वीपोंमें जो सकल पापुया काफिर देख पड़ते, वह पश्चिमेशिय पापुया काफिरोंके संमिश्रणसे उत्पन्न वा मध्यवर्ती जाति ठहरते हैं।

फिजी द्वीपके पापुया ही पापुया श्रेणीके काफिरोंकी पूर्णमूर्ति हैं। वह कथावार्तामें भद्र और व्यवहारमें भद्र होते हैं। किन्तु नवगिनि; नव-

कालिडोनिया और फिजीके पापुया नरमांसभुक् हैं। फिजीद्वीपके पापुया अफरोकाके हटेण्टटोंकी भांति चूड़ाकार केश बांधते हैं, सानोंकी भांति करोटी (खोपड़ी) अप्रशस्त होती है। नवगिनिके पापुया धार्मिकता, गुरुजनभक्ति और आतिथेयताके लिये विख्यात हैं। प्राय: सकल स्थलेमें काफिर स्त्रियोंके मध्य व्यभिचारदोष देख नहीं पड़ता।

काफिरस्थान—भारतवर्षको उत्तरपश्चिम सीमा और हिन्दूकुश पर्वतके मध्यका एक प्रदेश। उसकी पश्चिम सीमा अफगानस्तानको अलीशाङ्ग नदी है। पूर्वसीमा कुनार नदी हो सकती है। उस स्थानके अधिवासी काफिर या सियाहपोश कहलाते हैं। १८८३ ई०से पहिले कोई अंगरेज उस प्रदेशमें प्रवेश न कर सका था। सुतरां उसके पहले उसका जो विवरण सुनते, उसपर प्रकृत पक्षमें आस्था कैसे ला सकते हैं। प्राचीन अंगरेज ऐतिहासिकोंने उस स्थानके सम्बन्धमें जो कुछ लिखा, उसका अधिकांश पार्श्ववर्ती मुसलमानोंसे संग्रह किया था। किन्तु अब सुनते समझते कि मुसलमान उस प्रदेशमें सहज ही घुस नहीं सकते या घुसना पसन्द नहीं करते। कारण काफिरोंसे उनकी चिर शत्रुता है। कोई काफिर यदि अपने जीवनमें किसी उपायसे एक भी मुसलमानको मार नहीं सकता, तो वह स्वजाति, स्वश्रेणी और स्ववंशमें अपदार्थ एवं हेय रहता है। सुतरां इधर उधर मुसलमानोंसे उस प्रदेश या उस जातिका विवरण ठीक ठीक कैसे मिला होगा।

वहां सियाहपोश नामक एक जाति रहती है। कोई कोई सियाहपोश जातिके सम्बन्धमें कहता कि वह पारस्यको गबर जातिको भांति आचार-व्यवहार-विशिष्ट किसी अरबी जातिसे उत्पन्न है। कोई उसे अलेकसन्दरके ग्रीक सैन्यको औरसोत्पन्न बताते हैं। फिर किसीके अनुमानमें मुसलमानोंका मत फैलनेसे पहले भारतवर्षसे जो लोग पर्वतादिमें रहनेको समतल प्रदेशसे निकाले गये, सियाहपोश उन्हींको एक शाखा है।

काफिरोंकी भाषाके साथ अरबी, फारसी या तुर्की भाषाका विन्दुमात्र भी सादृश्य नहीं। हां, संस्कृतके साथ उसकी यथेष्ट घनिष्ठता आती है। इसी कारण आधुनिक ऐतिहासिक अरबों या अफगानोंकी भांति उन्हें बिलकुल स्वतन्त्र जाति नहीं मानते। वह भारतीय जातिके ही अन्तर्गत हैं। केवल देशभेदसे काफिर स्वतन्त्र हो गये हैं।

१८८३ ई०के पूर्व वहांका जो विवरण मिला, उससे समझ पड़ा कि उस देशमें कतार, गम्बीर, देलहुलज, अरनस, दुशुरम, अमीशेज, पश्गिल, वैगल प्रभृति जनपद विद्यमान हैं। १८८३ ई०को मिष्टर डबल्यू मक्नेयार नामक अंगरेज ही सम्भवत: सर्वप्रथम उस प्रदेशमें जा सके थे। उन्होंने वहांकी लोक संख्या अनुमानसे ६ लाख स्थिर की। प्रति ग्राममें १००से ६०० तक लोग रहते हैं।

उनके दैनिक आचार व्यवहार और आकृति प्रकृतिके सम्बन्धमें नानारूप विभिन्न मत मिलते हैं। किसी किसीके कथनानुसार सियाहपोश देखनेमें बलिष्ठ, दृढ़गठित एवं साहसी रहते भी स्वभावमें सम्पूर्ण विपरीत अर्थात् अलस, विलासी तथा सर्वदा मद्यपायी होते हैं। अफगानस्तानमें अनेक पकड़े काफिर बसते हैं। उनका शरीर दृढ़ समझ पड़ता है। उनमें युरोपीय गठनके लोग ही अधिक हैं। कृष्णाक्षों और पिङ्गलाक्षोंकी भी काई कमी नहीं। उन्हें आसन बांधकर बैठना कठिन लगता है। काफिर कुरसी पर ही सुविधासे बैठ सकते हैं। उनकी स्त्रियां रूपवती और बुद्धिमती होती हैं। वर्ण रक्तोज्ज्वल श्वेत है। अनेकोंके कथनानुसार अतिरिक्त मद्यपान करनेसे वह रक्तवर्ण हो गये हैं। यदि उनसे पूछा जाय उन्हें कैसा पानाहार अच्छा लगता है, तो वह शीघ्र कह उठेंगे—प्रतिदिन एक मटका शराब चाहिये। एक मटकेमें प्राय: पंद्रह सेर शराब आती है।

मक्नेयारका विवरण पढ़नेसे समझते कि काफिरस्थानके लोग सुपुरुष, साहसी और कृषिजीवी हैं। उनकी स्त्रियां बागका काम करती हैं। नृत्यगीतमें वह बहुत अनुरक्त रहते हैं। प्राय: प्रति सन्ध्या नृत्यगीतादिमें बीतती है। उनमें बालकवृद्ध या युवतिवृद्ध-

जनित रक्तपात नहीं होता। मुसलमानोंसे इनका सर्पनकुल सम्बन्ध है। एक दूसरेको देखते ही युद्ध छिड़ जाता है। अंगरेजोंके साथ इनका कोई विवाद नहीं। इनमें दासत्वप्रथा और दासव्यवसाय विद्यमान है। किन्तु समझ पड़ता है कि वह शीघ्र ही छूट जायगा। यह प्रायः बहु विवाह नहीं करते। स्त्रीको व्यभिचार दोषमें सामान्य दण्ड मिलता है, किन्तु पुरुष को बहुतसा गोमेषादि जुर्माना देना पड़ता है। यह शवको सन्दूकमें बन्द कर रख छोड़ते हैं। एक मात्र अद्वितीय देवता "इम्ब्र" (क्या इन्द्र) पूज्य हैं। इम्ब्रका मन्दिर होता है। उक्त मन्दिरमें पवित्र प्रस्तरमूर्ति स्थापित रहती है। पुरोहित आकर पूजा करते हैं। यह धनुर्बाणधारी हैं। गोमेषादि ही इनका मूल्यवान् वस्तु है। यही जिसके अधिक रहता है, वही धनी ठहरता है। इनमें १८ लोग सरदार हैं।

यह लोग परस्पर शपथ उठा बन्धुताके सूत्रमें बंध जाते हैं। किसीके साथ सूत्रकी सन्धि टूटनेसे पहले एक तीर भेजा जाता है। यह बड़े अतिथिभक्त हैं। यदि कोई अतिथि इनके घर आता, तो स्वयं गृहकर्ता उसकी परिचर्या उठाता है। फिर यदि कोई दूसरा उस अतिथिको उठा अपने घर ले जाता, तो उभयके मध्य विषम विवाद देखनेमें आता है। यहां तक कि रक्तपात होने लगता है। स्त्रियोंके यथेच्छाभ्रमणमें कुछ बाधा नहीं, अवगुण्ठन नहीं। किन्तु उन पुरुषोंके साथ पानभोजन करने कम पाती हैं। प्रति ग्राममें स्त्रियोंके प्रसवको स्वतन्त्र भवन रहते हैं। इनके आपसमें विवाद होनेके पीछे मिटते समय विवादियोंके मध्य एक आदमी दूसरेका स्तन और दूसरा स्तन चूमनेवालेका मस्तक चुम्बन करता है। इसी प्रकार विवाद मिट जाता है। काफिर अपने सन्तानको विक्रय नहीं करते। किन्तु कष्टमें पड़नेसे प्रतिवासीके सन्तानको चोरीसे बेच लेते हैं। किसी किसीके कथनानुसार यह व्यापार व्यवहारके मध्य गण्य है। इसीसे चित्रालके सरदार विक्रयार्थ बालक-बालिकाओं पर कर लगा देते हैं। किसी मुसलमान जाति पर युद्धयात्रा करते समय जितने दिन तक आयोजन उपायादि निर्धारित नहीं होता, उतने दिन कोई पुरुष अपने घर जाने नहीं पाता। दिवारात्रि मन्त्रणागृहमें रहना और वहीं पानभोजन शयनादि करना पड़ता है। जिस स्थानमें आक्रमण करना ठहराते, दिनके समय सब वहीं पहुंच दो दो तीन तीन आदमी झाड़ियोंमें छिप जाते हैं। फिर जैसे ही निकटसे मुसलमान निकलते, वैसेही उनपर टूट मारने लगते हैं। प्रति दिन सन्ध्याकाल स्व स्व कार्यका विवरण बता आमोद प्रमोद करते हैं। मुसलमान भी ऐसे ही काफिरस्थानमें घुस बालक-बालिका चुरा लाते हैं।

यह चक्कीमें गेहूं, यव प्रभृतिको पीस आटेकी रोटी बनाते हैं। रोटीको लौहकटाह (तवे) पर सेंक खाया करते हैं। यह गृहपालित पशुका भी मांस खाते हैं। काफिर एक ही वारमें गला काट पशुहत्या करते हैं। यदि दो हाथ मारनेका प्रयोजन आता, तो वह मांस अपवित्र समझ छोड़ दिया जाता है। फिर काफिर वारिजातिके मध्य पारिया श्रेणीको बोला उसे दे देते हैं।

यह अंगूरसे शराब बनाते हैं। अंगूरके वर्णभेदसे मद्यका वर्ण दो प्रकार होता है। बालक वर्षमें सकल समय मद्य पीने नहीं पाते। मुगल-सम्राट् बाबरने लिखा है कि काफिर अपने गलेमें मद्यपूर्ण "किज़" नामक चमड़ेकी कुप्पी लटका रखते हैं। उन्होंने यह भी कहा कि वह जलके बदले मद्य पान करते हैं।

इनका साहाय्य न मिलनेसे काफिरस्थानमें घुसनेको कोई कैसे साहस कर सकता है।

काफिरस्थान देखनेमें अतिसुन्दर देश है। यह निबिड़ वृक्षमालामें प्रकृतिका रम्य उपवन समझ पड़ता है। प्रान्त भागमें महावन है। काफिरस्थान प्रधानतः तीन उपत्यकाओंमें विभक्त है। इन्हीं तीन उपत्यकाओंसे यहांको तीन प्रधान जातियोंका नामकरण हुवा है—रामगल, बेगल और वासगल। इनमें बेगल सर्वापेक्षा पराक्रान्त और उनकी उपत्यका भी सर्वापेक्षा वृहत् है। काफिर या सियाहपोश इनका जातीय नाम नहीं। पार्श्ववर्ती मुसलमान इन्हें इस नामसे अभिहित करते हैं। मुसलमान धर्मपर

विश्वास न करनेसे ही यह काफिर कहाते हैं। फिर अधिक संख्यावाले वेगलोंका कृष्ण वर्ण छागचर्मका परिच्छद पहनने से ही सियाहपोश नाम है। इसीसे सबके सब सियाहपोश नामसे पुकारे जाते हैं। रामगल वा वासगल काले चमड़ेका परिच्छद नहीं पहनते। वह उसके बदले सूतके कपड़ेकी पोशाक बनाते हैं। उक्त तीनों जातियोंकी भाषा स्वतन्त्र है।

यह भूत प्रेतमें विश्वास रखते हैं। काफिरोंके मतानुसार जो कुछ दुःख कष्ट मिलता, वह सब भूत प्रेतादिके कारण ही पड़ता है। इनके पानका मद्य मद्यप्रस्तुत-प्रणालीके नियमानुसार नहीं बनता। वह खालिस अंगूरका ताज़ा रस होता है।

परस्पर युद्ध विग्रहादिके पीछे पराजित लोगोंकी स्त्रियां बन्दी बन दासोंकी भांति बिकती हैं। स्त्रियोंमें लज्जा, शीलता वा धर्मभाव नहीं देखते। इनके समाजमें उसे विशेष दोष कब गिनते हैं। कारण पूर्व ही लिख चुके कि ऐसे दोषमें उभय पक्ष कैसी सामान्य शान्ति रखते हैं।

यह अंगरेज अफगान या तुर्क किसीके अधीन नहीं सम्पूर्ण स्वाधीन हैं। सिन्धु और अकसस नदीके मध्य समस्त गिरिवर्त्ममें इनका अक्षुण्ण प्रताप है। हिमालय पर्वतके शेष प्रान्तसे अकसस नदीके तीरवर्ती बदख़्शान पार्वत्य प्रदेश पर्यन्त और हिन्दूकुश पर्वत-मालामें यह अधिकार रखते हैं। काबुल नदीके उत्पत्ति स्थलपर पड़नेवाले सकल गिरिवर्त्म भी इन्हींके अधीन हैं।

यह देखनेमें सुपुरुष होते भी दीर्घच्छन्द नहीं। इनमें दूसरी जो क्षुद्र क्षुद्र जाति हैं, उनमें दारामरी जाति अपनेको ताजक मतावलम्बी और अति प्राचीन बताती है। लम्पाक (लमघान) नामक स्थानकी भाषाके साथ इनकी भाषा और अफगानोंके आकारके साथ इनके आकारका सौसादृश्य है।

सेवया (शिवा ?) नामक स्थानके वामपार्श्वमें कुगुनी नामक एक जाति है। इसके लोग अपेक्षाकृत संख्यामें अधिक हैं। विशुद्ध काफिर इन्हें "मिश्वा" अर्थात् वर्णसंकर कहते हैं। क्योंकि यह काफिर और अफगान उभय जातिकी कन्याका पाणिग्रहण और काफिरस्थानमें निर्भय प्रवेश करते हैं। यह प्रधानतः पथप्रदर्शकका काम चलाते हैं। कुन्द पर्वतमें ही इनका अधिक वास है। कुगुनो अफगानोंको अपेक्षा क्षुद्रकाय होते हैं। इनको आकृति भी अपेक्षाकृत कोमलतापूर्ण रहती है। यह मुसलमान धर्मावलम्बी हैं। किन्तु इनमें स्त्रियोंके अवरोधकी प्रथा नहीं।

इस प्रदेशको अरत उपत्यका ७३०० फीट दीर्घ है। अञ्जलिक-इयालिक नामक गिरिपथका दृश्य परम रमणीय है। कुन्द पर्वतके शिखरपर एक क्षुद्र ह्रद है। प्रवादानुसार इसी ह्रदके तीर नूहको नौकाका भग्ना-वशेष प्रस्तरीभूत हो गया था, फिर निम्न उपत्यकामें उसीसे नूहके पिताका समाधिस्थल बना है।

काफिला (अ० पु०) यात्रियोंका समूह, मुसा-फिरोंका झुण्ड। काफिलाके लोग तीर्थ या व्यापार करने मिल-जुलके निकलते हैं।

काफी (अ० वि०) १ पर्याप्त, पूरा, कम न ज्यादा, नपा तुला। (पु०) २ रागविशेष। इसमें कोमल गन्धार लगता है। काफीके कई भेद हैं,—काफी कान्हड़ा, काफी टोड़ी, काफी होली इत्यादि। यह राग प्रायः जल्द जल्द गाया जाता है।

काफी—(हिं० स्त्री०) क़हवा, बुन।

काफी—(अं० = Coffee) क़हवा, एक प्रकारका रक्तवर्ण क्षुद्र फल। इसे तोड़, भून कर और बुकनी बना चायकी भांति दूधके साथ बहुतसे लोग प्रत्यह पान करते हैं। इसके भिन्न भिन्न नाम यह हैं,—

हिन्दी	बुन, कहवा, काफी।
बङ्गला	काफि, काफि, कावा।
गुजराती	बुन्द, काफी।
बम्बैया	कव, बुन, काफी।
दक्षिणी	बुन्द, तखेम-कैवे।
महाराष्ट्री	कन, बन्द।
तामिल	काफि कोटाइ।
तैलङ्गी	काफि बित्तुलु।
करनाटी	बोन्द बीज।
अरबी	बुन, कहवा।

फारसी ... ... कहवा।
अरबी ... ... कापउत।
सिंहली ... ... कोपि-अत्ता।
अंगरेजी ... ... काफी (Coffee)
फरासीसी ... ... काफि (Café)
जर्मनी ... ... कफ्फी (Kaffee)
वैज्ञानिक ... ... कफिया एराविका (Coffea Arabica)

इसका पेड़ १५ से २० फीट तक ऊंचा होता है। इसमें बहु संख्यक शाखा प्रशाखा रहती हैं, किन्तु वह अधिक नहीं बढ़तीं। इसके पेड़की छाल सजना पेड़की छालकी भांति कुछ श्वेत वर्ण होती है। नारङ्गीके आकारका सफेद फूल निकलता है। फूल क्षुद्र वकुल-फलकी भांति आते हैं और पकनेपर लाल हो जाते हैं। प्रति फलमें केवल दो बीज होते हैं। बीज निकाल कर फल वेचे जाते हैं। फिर सूखे फलोंको भून कर और बुकनी बना लेनेसे पीनेका कहवा प्रस्तुत होता है।

अनेकोंके अनुमानमें इसके अरबी "कहवा" नामसे प्रथमतः मद्य समझा जाता था। किन्तु आजकल उससे काफीका बोध होता है। फिर किसीके अनु-मानसे यह शब्द अवसीनिया (अफरीका)के अन्तर्गत काफा प्रदेशके नामसे विगड़कर बना है। इसके हिन्दी नाम "बुन" से वृक्ष तथा फल और "कहवा" नामसे काफीकी बुकनीका बोध होता है।

इस फलका आदिनिवास अफरीकाके अन्तर्गत अवसीनिया, सूदान, गिनी, और मोजाम्बिक प्रदेशका उपकूल है। उक्त सकल स्थलोंमें यह वृक्ष अपने आप वनमें उपजता है। अरबदेशमें यह इस प्रकार नहीं होता। फिर भी कह नहीं सकते कि अरबके दुर्गम मध्यप्रदेशमें यह है या नहीं।

काफीके अनेक श्रेणी-विभाग हैं। उनसे भारत-वर्षमें ७ प्रकारकी काफी मिलती है।

१ अरबी काफी। (*Coffea Arabica*) भारतके नाना स्थानोंमें इस काफीकी यथेष्ट कृषि होती है।

२ बङ्गालकी काफी। (Coffea Bengalensis) कुमायूंसे मिश्मी तक, युक्तप्रदेश, बङ्गाल, आसाम, श्रीहट्ट, चट्टग्राम और तेनासारिम प्रदेशमें यह उप-जती है। इसका फल ईषत् आयताकार होता है। चट्टग्राममें इसे "हरीया" फल कहते हैं।

३ सुगन्धि काफी। (Coffea Fragrans) यह श्रीहट्ट और तेनासारिम प्रदेशमें मिलती है। फल उक्त दोनों जातिकी भांति होता है।

४ आसामी काफी। (Coffea Jenkinisii) आसामके खसिया पर्वतमें उपजती है। फल ईषत् डिम्बाकार लगता है।

५ खसिया काफी। (Coffea Khasiana) खसिया और जयन्ती पहाड़ो पर होती है। इसके फल केवल चौथाई इञ्च मोटे पड़ते हैं। बीज टेढ़े वेरकी भांति होते हैं।

६ त्रिवाङ्कुड़की काफी (Coffea Travancorensis) त्रिवाङ्कुड़में होती है। फल लम्बाईमें छोटा और चौड़ाईमें बड़ा रहता है।

७ मलवारी काफी। (Coffea Wightiana) दाक्षिणात्यके पश्चिमांशमें उपजती है। इस फलका आकार त्रिवाङ्कुड़के फलकी भांति होता, किन्तु एक तरफ बहुत दबका रहता है।

प्रथम श्रेणीको छोड़ कर दूसरी सकल श्रेणियोंकी काफी कम उत्पन्न होती है। दाक्षिणात्यके लोग ही अधिक काफी पीते हैं और उधर ही इसकी खेती अधिक की जाती है। दाक्षिणात्यमें आजकल इतनी काफी उपजती है कि विदेशमें भी जाकर विकती है।

१५° उत्तर और १५° दक्षिण अक्षांशके बीचमें काफी भली भांति उपजती है। फिर ३६° उत्तर और ३०° दक्षिण अक्षांशके मध्यम प्रदेशमें इसकी उत्पत्ति साधारण है। कपासकी खेती जैसी जमीनमें की जाती है, वैसी ही जमीन इसकी खेतीके लिये भी आवश्यक होती है। इसकी झाड़ी देखनेमें अति मनोहर आती है। इसीसे अनेक लोग इसे उद्यानकी शोभाके लिये लगाते हैं। जहां फारेनहीटके तापमानमें ६०°से ८०° पर्यन्त उष्णता मिलती है, वहीं यह उपजती है। मासमें एकबार वृष्टि होना और वर्षमें १५ इञ्चसे अधिक जल न पड़ना, इसकी उत्तम उत्पत्तिका

सहायक है। काफीकी कृषिमें बड़ा यत्न करना पड़ता है। अतिशय मेघ चढ़ना वा अतिवेगसे वायु चलना, इसके लिए अशुभ है। जोरसे हवा चलने पर काफीके फूल झड़ जाते हैं और फल नहीं लगते, सुतरां कृषक प्रायः आधे शस्यकी क्षति उठाता है। अत्यन्त ग्रीष्म होनेसे वृक्षके लिये छाया आवश्यक है। समुद्रके उपकूलमें काफी अच्छी नहीं होती। अफरीकाके अन्तर्गत अवसीनियाके साथ समसूत्रपातसे भारतमें पड़नेवाले स्थानोंमें यह भली भांति उपजती है। विशेषतः नीलगिरि उपत्यकामें काफी की उत्पत्ति अच्छी है।

अवसीनियामें इसके फलको "बुन" कहते हैं। प्राचीनकालमें मिसर और सिरीयामें यह नाम प्रचलित था। उस समय सिरीयाके रहनेवाले इसके बीजको केवे (Cave) कहते थे और पका कर खाते थे। अरबी ग्रन्थादिकी आलोचनाके अनुसार शेख शहाबुद्दीन धभानी नामक किसी व्यक्तिने अफरीकाके उपकूलमें काफीका व्यापार देख कर सर्व प्रथम अदनबन्दरमें एक दुकान खोली थी। १४७० ई०को वह मर गये। सुतरां १५वीं शताब्दीके मध्यभागमें काफी अरबमें पहिले आई। १५७१ ई०को यह यमन, मक्का, कायरो, दामास्कस, अलेपो और कुनस्तुनियामें फैली थी। १५५४ ई०को कुनस्तुनियामें सर्वप्रथम काफीका एक पानागार स्थापित हुआ। १५७३ ई०को अलेपो शहरमें रनडल्फ नामक किसी युरोपीयनने इसका प्रथम परिचय पाया। फिर कह नहीं सकते कि भारतमें काफी कैसे आयी। अनेकोंके कथनानुसार बाबा बूदन नामक एक मुसलमान सन्यासी मक्केसे लौटते समय ७ बीज लेकर महिसुर पहुंचे थे। दक्षिण भारतमें उक्त मतपर बड़ा विश्वास करते हैं। इसीसे उसका समस्त अमूलक होना ध्यानमें नहीं आता। १५७६ से १५९०ई० तक लिनसोटेन (Jan Huygen van Linschoten) नामक एक ओलन्दाज इस देशमें घूमनेको आये थे। वह अपने भ्रमणवृत्तान्तमें मलवार उपकूलके समस्त उत्पन्न द्रव्योंकी वर्णना कर गये हैं। किन्तु उसमें काफीका नाम नहीं मिलता। उनके समसामयिक लेखकोंके पुस्तकमें मिसरियोंके बुन फलका क्वाथ खानेकी बात देखते हैं। इससे अनुमान होता है कि भारतवर्षमें आते समय लिनसोटेनने काफीकी बात नहीं सुनी। डाक्टर फोयालिचने विलायतमें "हाउस-अव-कामन्स"के समक्ष साक्ष्य देते समय कहा था —"कलकत्तेके कम्पनी बागमें जो काफी होती है, उसको छोड़ हमने दूसरी कोई काफी नहीं पी।" उसके पीछे मिलनेवाला विवरण भी १९वीं शताब्दीका विवरण है। सिंहलमें पोर्तगीजोंके दौरात्म्यसे पहले अरबोंने इसे प्रथम प्रचार किया था।

पूर्व भारतीय द्वीपपुञ्जोंमें १६९० ई० के अन्तमें गवर्णर वान हूरनने (Van Hoorne) अरब वणिकोंसे बीज संग्रह कर यवद्वीपके बटेविया नगरमें लगाये थे। उनसे जो पेड़ उगे उनका एक पौदा हालैण्ड पहुंचाया गया। फिर हालैंडके वृक्षोंका एक पौदा १७१८ई०को सुरिनाम नामक स्थानमें आया था। इसके दश वर्ष पीछे आमष्टरडमके काफीबागसे एक पौदा १४वें लुईको उपढौकन दिया गया, फिर उसका पौदा पश्चिम भारतीय द्वीपपुञ्जमें रोपित हुआ। इससे नूतन महाद्वीपमें काफीकी खेती फैल पड़ी। अमेरिका और यूरोपकी काफी-कृषिका मूल यवद्वीप है। किन्तु आजकल अमेरिकाकी भांति पृथिवीके दूसरे स्थानमें कहीं काफी नहीं उपजती। अकेले ब्रेज़िलमें ही पांच करोड़ तीन लाख पौदोंसे यत्नके साथ फल संग्रह किया जाता है। फिर कोष्टारिका, गोयाटिमाला, वेनजुइला, गोयाना, पेरू, बलिविया, जामेका, किउवा, पोर्टारिका, अन्यान्य पश्चिम भारतीय द्वीप, अष्ट्रेलियाके मध्य क्विन्सलेण्ड, पूर्वभारतीय द्वीपावलीके मध्य सुमात्रा, बोरनियो, मलयउपद्वीप, श्यामदेश, सिंगापुर प्रभृति प्रणालीके मध्यगत द्वीपविभाग और फिजी द्वीपमें इसकी खेती होती है। ब्रेजिल और यवद्वीपकी भांति आबाद ज़मीन् दूसरी जगह नहीं। उसके पीछे भारतवर्ष और सिंहलद्वीपकी आबाद ज़मीन् उल्लेख योग्य है।

अरब देशमें इस प्रथाके फैलनेसे मुसलमान धर्मयाजक काफीपानके विरुद्ध उठे थे। कारण मसजिद और

दरगाहकी अपेक्षा काफी-पानागारमें लोगोंकी आसक्ति चतुर्गुण बढ़ गई थी। पानासक्ति घटानेके लिये इस पर बहुत शुल्क स्थापित हुवा। ग्रेटब्रटेनमें चायकी पहली दुकान खुलनेसे पहिले (१६५७ ई०) काफी पानागार बना था (१६५२ ई०)। डि, एडवार्डस नामक एक तुर्कस्थानका अंगरेज बणिक् काफी पीनेमें इतना अभ्यस्त हो गया कि, देश जाते समय उसे प्यास्कोया रोसी नामक एक ग्रीक नौकर प्रत्यह काफी बना देनेके लिये अपने साथ रखना पड़ा। उसके बन्धुओंको भी क्रमशः काफीपानका अभ्यास पड़ गया। अवशेषमें बन्धुबान्धवोंका नित्य उपद्रव न सह सकनेके कारण उसने रोसीको करनहिलवाले सेण्टमाइकेलके थाली नामक स्थानमें प्रकाश्य रूपसे काफीका पानागार खुलवा दिया। क्रमशः व्यवहार बढ़नेसे पानागारोंकी संख्या भी बढ़ी। २य चार्लसने (१६७५ ई०) पानागारोंमें लोगोंकी भीड़ देख इसका व्यवहार घटानेको राजादेश विधिबद्ध किया था। फ्रांसमें १६४० ई०को काफीका व्यवहार चला और १६६८ ई०को पारिस नगरमें प्रथम पानागार खुला। उसके बाद युरोपमें सर्वत्र-इसका व्यवहार बहुत बढ़ा गया था। अवशेषमें १८४७ ई०को चायका व्यवसाय और व्यवहार अधिकतर बढ़ जानेसे काफीका आदर घटा। ब्रह्मदेशमें काफीकी खेती होती है, पर बीजका अभाव है। दिन दिन इसके पीनेकी चाह बढ़ रही है।

भारतके दाक्षिणात्यमें काफीकी खेती खूब होती है। १८८३। ८४। ८५ ई०को तीन वर्ष दाक्षिणात्यमें प्रायः १८६५०० एकर भूमिपर काफी बोई गई थी। उसमें महिसुरकी ८२१०० एकर भूमिमें ७११०००० पाउण्ड, मन्द्राजकी ५५१०० एकर भूमिमें १३१६०००० पाउण्ड, त्रिबाङ्कुड़की ४८०० एकर भूमिमें ८२०००० पाउण्ड और कोचीनकी २२०० एकर भूमिमें ८३०००० पाउण्ड काफी उत्पन्न हुई।

इसके सम्बन्धमें बावाबूदनकी बात लिख चुके हैं—भारतवर्षमें सर्व प्रथम काफी कैसे आई थी। महिसुरमें प्रवाद है कि दो शताब्दी हुयी मक्कासे लौटते समय वह कई एक फल और ७ बीज लाये थे। महिसुरमें वह जिस पर्वत शिखरपर रहते थे, आज कल लोग उनके नामानुसार उसको "बाबा बूदनगिरि" कहते हैं। उक्त शिखर पर उन्होंने अपने कुटीरको बगलमें उन्हीं ७ बीजोंसे वृक्ष उपजाये थे। क्रमशः उस पर्वतमें काफीके अनेक वृक्ष हो गये। फिर १६७० वर्ष बीतने पर दूसरे भी निकटवर्ती कई स्थानोंमें इसकी खेती बढ़ी। शेषको आज प्रायः ४० वर्षसे अंगरेजोंकी इस ओर दृष्टि पड़नेसे काफीकी खेती भली भांति की जाती है। मि० क्यानन नामक किसी अंगरेजने सर्वप्रथम बाबा-बूदनगिरिके दक्षिण एक ऊंची ज़मीन् पर काफी बोयी थी।

अंगरेजाधिकृत देशोंके मध्य भारतवर्षमें ही सर्वापेक्षा उत्तम सुगन्धि काफी बहुपरिमाणसे उत्पन्न होती है। काफीकी पत्ती उपयुक्त नियमसे बना लेनेपर चायकी भांति काममें लायी या चायमें मिलायी जा सकती है। सुमात्रामें पाडाङ्ग नामक स्थानके लोग काफीकी पत्ती चायकी भांति बना प्रतिदिन पान करते हैं। चायकी भांति इसमें भी क्लेशहर श्रान्तिनाशक गुण होता है।

काफीके फलके छिलकेमें एक प्रकारका तेल रहता है। किन्तु इस तेलके निकालनेकी प्रणाली अभी अवलम्बित नहीं हुई।

अमेरिकामें काफीका अर्क उत्तेजक और बलकारक औषधकी भांति काममें आता है। किन्तु इङ्गलैंडमें इसका चलन नहीं। सुरासार शरीरमें जैसा कार्य उत्पादन करता, यह भी वैसा ही प्रभाव रखता है। काफी चायकी अपेक्षा सारक है। यह कोष्ठबद्ध नहीं करती। फिर भी अधिक परिमाणमें काफी पीनेसे दस्त कम उतरता है।

टाइफिड-ज्वरमें फरासी नौसेनाके मध्य रोगीको दो दो घण्टे पीछे दो चम्मच काफी पिला बीच बीचमें क्लारेट या बराण्डी मद्य सेवन कराते हैं। इससे यथेष्ट उपकार होता है। काफी पीनेसे फरासीसियोंमें मूत्रस्थलीके अश्मरी रोगका आतिशय्य घट गया है। तुर्कस्थानमें काफी पीनेसे वातकी पीड़ा नहीं रही है। तुर्क प्रत्यह काफी पीते हैं। यही उनका

प्रियतम पानीय है। सविराम ज्वरमें कुनैनकी भांति कच्ची काफी खिलाते हैं। किन्तु इससे उतना फल नहीं होता। भुनी काफीसे गलित जीवशरीर वा वृक्षादिका दुर्गन्ध दूर हो जाता और दूषित वायुकी संक्रामकताका दोष नहीं आता है। मन्द्राज और गञ्जामके अस्पतालमें प्रत्यह काफीकी बुकनी जला वायुका दूषित अंश नष्ट करते हैं। अरबोंके कथनानुसार काफीमें कामेच्छानिवारक गुण है। घरके आंगन या खुले मैदानमें काफी जलानेसे हवा साफ होती है। उक्त मत अनेक विज्ञ चिकित्सकोंका अनुमोदित है। इससे अफीमका विष भी नष्ट होता है।

लाइबेरियाकी काफी (Liberian Coffee) अफरीकाके पश्चिम उपकूल पर लाइबेरिया, अङ्गोला, गोलङ्गो, अलटो प्रभृति स्थानोंमें उत्पन्न होती है। इसका वृक्ष अरबीके काफी वृक्षसे दृढ़ और फल तथा पत्र दीर्घ रहता है। जिस समय काफी वृक्षका सिंहलमें अनुसन्धान हुआ, उस समय इस श्रेणीकी काफीका वृत्तान्त युरोपीयोंने प्रथम जाना। इस श्रेणीकी काफीमें शायद अधिक कीड़ा नहीं लगता।

लिखकर काफीकी खेतीका उपाय बताना कठिन है। कारण अपनी आंखों इसकी खेती या बाग़ न देखनेसे कैसे समझ सकते हैं। अरबी काफीके वृक्षमें नानारूप पीड़ा उठ खड़ी होती है। आबहवा और खेती बारीके दोषसे ही अधिकांश पीड़ा उपजती है। खेतीके दोषमें कंकड़से पौदा टूट जाता है। पत्तीमें पीली धूल निकल आती है। फिर पत्ती काली पड़ और सिकुड़ जाती है। काफीमें कीड़ा और मक्खी लगनेका डर रहता है। इसको छोड़ टिड्डी, चूहा, गिलहरी, गीदड़ वगैरह भी इसे बहुत बिगाड़ते है। शृगालोंके अत्याचारसे जो फल गिर जाते वह संग्रह किये जानेपर "शृगाल काफी" (गीदड़ काफी) कहाते हैं।

काफ़ी—१ मिर्जा अला उद्-दौलाका उपनाम। बादशाह अकबरके समय इनकी समृद्धि रही। २ मुरादाबादके एक मुसलमान कवि। इनका यथोचित नाम किफ़ायत अली था। इन्होंने 'बहार खुल्द' नामक ग्रन्थ लिखा।

काफूर (अ० पु०) कर्पूर, कपूर। कर्पूर देखो।

काफ़ूर मलिक—दिल्लीवाले बादशाह अला उद्-दीन खिलजीके एक प्रिय कञ्चुकी। इन्हें बादशाहने अपना वज़ीर बनाया था। बादशाहके मरने पर इन्होंने एक व्यक्ति ग्वालियर, उनके पुत्र खिज़िर ख़ान् और शादी ख़ान्की आंखें निकालने भेजा था। दारुण रूपसे यह कर्म सम्पन्न किया गया। फिर काफूर मलिकने बादशाहके कनिष्ठ पुत्र शहाबुद्-दीन्को सिंहासन पर बैठाया और स्वयं राज्यका कार्य चलाया था। किन्तु १३१७ ई०के जनवरी मास सम्राट्के मरने पर इनका वध हुवा। अलाउद्-दीन्के तीसरे लड़के पीछे सिंहासन पर बैठ गये।

काफ़ूरी (अ० वि०) १ कर्पूरजात, कपूरसे बना हुवा। २ कर्पूरवर्ण विशिष्ट, कपूरका रङ्ग रखनेवाला। (पु०) ३ वर्णविशेष, कपूरी रङ्ग। इसमें हरित् आभा रहती है (कपूरके दीपकको 'काफ़ूरी शमा' कहते हैं।

काब (अ० स्त्री०) पात्र विशेष, चीना मट्टीकी बड़ी रकाबी।

काब—पारस्य उपसागरके किनारे रहनेवाली एक अरब जाति। उत्तरमें शाम्तरसे रामहरमुज और पूर्वमें वेवेहनसे हिन्दियन तक यह जाति बसती है। इसकी राजधानी मुहमेरा है। काब लोगोंकी वासभूमिके मध्य बहु शाखाविशिष्ट ताब नदी बहती है। अरबी भौगोलिक इस नदीको दोरक कहते हैं। ई० के १८वें शताब्द काबोंने कई अंगरेजी जहाज आक्रमण किये थे। उसी सूत्रमें इनसे युद्ध चल पड़ा। फिर अलीरज़ा पाशाने मुहमेरा नगर अधिकार किया। १८५७ ई०से पारस्य युद्धके बाद उक्त नगर भारत गवरनमेण्टके अधीन हुवा।

कावर (सं० पु०) कुत्सितो बन्धः कोः कादेशः पृषोदरादित्वात् सिद्धम्। कुत्सित बन्ध, बुरा फन्दा।

काबर (हिं० वि०) १ कर्वुर, कबरा। (पु०) भूमिविशेष, दोमट, रेत मिली हुई ज़मीन्। ३ पक्षिविशेष, एक जङ्गली मैना।

काबला (हिं० पु०) मोटी रस्सी, जहाजका रस्सा या जञ्जीर। यह शब्द अंगरेजीके 'केबिल' (Cable)का अपभ्रंश है। ढेबरी कसे जानेवाले बड़े पेच या बालटूको भी 'काबला' कहते हैं।

काबा—१ एक जाति। इस जातिके लोग भारतके पश्चिम गुजरातके उत्तरकच्छ उपसागरके उपकूल पर महाराष्ट्र राज्यमें रहते थे। आज कल इनको बात अधिक सुन नहीं पड़ती।

२ मुसलमानोंका एक परिच्छद। यह चपकनकी भांति रहता, केवल वक्षस्थल पर अर्धांश कटता है। इसके भीतर सूतका कपड़ा पहनते हैं। उस कपड़े पर वक्षस्थलमें ज़रीका या कोई दूसरा काम रहता है। काबेके कटे अंशसे वह देख पड़ता है। काबेका व्यवहार पहले बहुत था, किन्तु अब घट गया है।

३ समचतुष्कोण आकृति, बराबर चौकोर शक्ल।

४ मुसलमानोंका एक पवित्र गृह। यह अरब देशके मक्का नगरमें प्रायः चतुष्कोण एक भवन है। इसे मुसलमान एक पवित्र तीर्थ मानते हैं। यह उत्तर पश्चिमसे दक्षिण पूर्व तक २४ हाथ लम्बा, २३ हाथ चौड़ा और २७ हाथ ऊंचा है। पूर्व दिक्‌को इसका द्वार है। द्वारके निकट रौप्यासन पर कृष्ण-वर्णका एक प्रस्तर रखा है। यात्री मक्का पहुंचते ही हस्तमुख प्रक्षालन वा स्नानादि कर मसजिदमें जाते हैं। पहले कृष्णवर्णका प्रस्तर चूम पीछे काबाको चारो ओर प्रदक्षिण लगाना पड़ता है। काबाको दक्षिण रख तीन बार जल्द जल्द और चार बार धीरे धीरे प्रदक्षिण कर काबाको वाम ओर रखते परिभ्रमण शेष करते हैं। काबाके निकट एक प्रस्तर पर इब्राहीमका पदचिन्ह है। प्रदक्षिणके पीछे यात्री इसी प्रस्तरके निकट जा मन्त्र पढ़ते हैं। उसके पीछे कृष्ण प्रस्तरको फिर चूम चले आते हैं। अरबी परिवारवर्गके मध्य पुत्रसन्तानको उत्पन्न होनेके ४० दिन पीछे काबेमें ले जानेको प्रथा है। यहां लाकर उस पर मन्त्रादि पढ़े जाते हैं। उसके पीछे लड़केको घर लाने पर नापित आकर गण्डदेशमें क्षुरसे चक्षुके कोणसे मुखके कोण पर्यन्त समान्तरालमें तीन दाग बना देता है।

अति प्राचीन कालसे काबा अरबोंका तीर्थस्थान गिना जाता है। कथनानुसार आदमके समय एक प्रस्तरमूर्ति स्वर्गसे गिरी थी। क्रमशः इसमें ३६० मूर्ति प्रतिष्ठित हुयीं। मुहम्मदके धर्मप्रचारसे इसका गौरव कितना ही बिगड़ गया। भारतमें खलीफा उमरके वंशीय करनाटकके नवाबोंने इस काबेमें चढ़नेके लिये एक स्वर्णसोपान प्रदान किया था। १६२७ई०को काबेका गौरव फिर प्रतिष्ठित हुवा।

काबाइज—एक जाति। पारस्यके पूर्व और पश्चिम कुर्द लोग रहते हैं। कबाइज उन्हींके अन्तर्गत हैं।

काबाबशकरा (सं० स्त्री०) कबाब चीनी।

काबालखेल—एक जाति। काश्मीर प्रान्तमें बन्नूके निकट वजीरी लोग रहते हैं। बड़े सम्प्रदायों और वजीरियोंमें कावाल खेल होते हैं। इनको तीन श्रेणी हैं,—मियामी, सेफाली और विपाली। इनमें हजारों बलवान् योद्धा पाये जाते हैं। १८५० और १८५४ई०को इन्होंने भारतके प्रान्तभागमें अंगरेजोंका अधिकार रहते भी २० बार लूट मार की थी। अंग-रेजोंने इन्हें कई बार मारा और घेरा है।

काबिज़ (अ० वि०) अधिकारप्राप्त, कब्जा रखने वाला।

क़ाबिल (अ० वि०) १ योग्य, लायक़। २ विद्वान्, समझदार।

काबिल खान् (कबलाई कृआन्) एक विख्यात मुगल सम्राट्। यह चङ्गेज़् खान्‌के प्रपौत्र और तातार-राज मङ्गूके भ्राता थे। १२५९ई०को इन्हें भाइसल प्राप्त हुवा। यही चीन राज्यमें युईन वंशके प्रतिष्ठाता थे। १२६०ई०को यह असंख्य दल बल साथ ले चीन राज्यमें घुसे। फिर इन्होंने तातारोंको हरा उत्तर चीनपर अधिकार किया था। १२७५ई०को इन्होंने सङ्ग वंश निर्मूल कर दक्षिण चीन जीता था। इसी समय यह उत्तरमें उत्तर महासागरसे दक्षिणमें मलक्का प्रणाली और पूर्वमें कोरियासे पश्चिममें एशिया माइनर पर्यन्त समुदय भूखण्डके एकाधिपति थे। दूसरे मुगल सम्राटोंकी भांति यह अत्याचारी और प्रजापीड़क न थे। सुशासनके गुणसे चीनवासी आज इनकी प्रशंसा करते थे। १२९४ई०को इन्होंने इहलोक छोड़ दिया।

काबिलीयत (अ० स्त्री०) १ योग्यता, लियाकत, पहुंच। २ विद्वत्ता, समझदारी।

काबिस (हिं० पु०) कपिशवर्ण, एक रंग। इसमें मट्टीके कच्चे बरतन रङ्ग कर आवा लगानेसे लाल निकल आते और चमकीले दिखाते हैं। काबिस बनानेमें सोंठ, मट्टी, रेह, आमकी छाल और बबूल तथा बांसकी पत्ती घोल कर डालते हैं। २ मृत्तिकाविशेष, एक मिट्टी। यह रक्तवर्ण होता है। जल मिलानेसे इसमें लस आ जाती है।

काबी (हिं० स्त्री०) मल्लयुद्धका एक हस्तलाघव, कुश्तीका कोई पेंच। इसमें एक पहलवान् दूसरेके पीछे जा एक हाथसे उसके जांघियेका पिछोटा पकड़ लेता और दूसरे हाथसे पैर खींच कर पटक देता है।

काबुक (फा० स्त्री०) कबूतरोंका दरबा।

काबुल—१ अफगानस्थानका एक जिला। इसके पश्चिम कोहबाबा, उत्तर हिन्दूकुश पर्वत, उत्तर पूर्व पञ्चसरा नदी, पूर्व सुलेमान पर्वतश्रेणी, दक्षिण सफेदकोह तथा गजनी और पश्चिम हजारा प्रदेश है।

काबुलका अधिकांशस्थल पर्वतसे परिपूर्ण है। इसकी अनेक उपत्यका उर्वरा हैं। इन उपत्यकावोंमें बड़े बड़े वृक्ष होते हैं। उनके कड़ी और बरगे बनते हैं। कोहिस्थान और कुरममें अच्छा अच्छा काष्ठ उपजता है। काबुलके नानास्थानोंमें मेवेके बाग हैं। कोहदामन और इस्तालीफ उपत्यकामें बाग बहुत हैं। बाग देखनेमें अति मनोरम हैं। लोगर और घोरबन्द नामक प्रदेशमें पशुचारणका स्थान है। यहां पश्वादिका आहार भी अधिक मिलता है। यहां गेहूं और यव यथेष्ट उत्पन्न होता है। किन्तु उसे केवल दरिद्र लोग व्यवहार करते हैं। सब सम्पन्न लोग मांस अधिक खाते हैं। गजनीसे नानाविध शस्य यहां आता है। उत्तर बदख्शान्, जलालाबाद, लामघन और कुनारसे चावलकी आमदनी होती है। इस जिलेमें स्थान स्थान पर शस्यादि अधिक उपजता है। रामयान और हजारेसे घी आता है। यहां द्रव्यादिका महर्घ्य नहीं। ग्रीष्मके समय लोग अधिकांश खीमेमें रहते हैं। प्रस्तर और इष्टकनिर्मित घर भी हैं। घरोंकी छत भारतवर्षकी भांति समतल होती है। गो और मेष ही यहां धन गिना जाता है। उत्तरमें तुर्कस्थान और दक्षिणमें भारतवर्षके साथ वाणिज्य होता है। तुर्कस्थानके साथका ही वाणिज्य अधिक चलता है। ग्राम छोटे बड़े नाना प्रकारके हैं। एक एक ग्राममें सौ-डेढ़ सौ घरोंकी बसती है। ग्रामके भीतर बीच बीच छोटे किले बने हैं। जल अनेक स्थानोंमें मिलता है। उपत्यकामें प्रायः बैलगाड़ी चलती है। वहिर्वाणिज्यमें उष्ट्र, अश्व और अश्वतर व्यवहृत होते हैं। तुर्कस्थानमें रूसियोंने शुल्क बढ़ाया था, इस लिये वहांका वाणिज्य कुछ घट गया। पहले भारतसे कपड़ा और चाय भेजते थे। किन्तु यह काम भी बन्द हो गया। इससे उसके शुल्ककी आमदनीमें घटी आई है।

काबुलके प्रादेशिक शासनकर्ताको हाकिम कहते हैं। १८८२ ई०को अमीर शेर अली खान्के भ्राता सरदार अहमद खान् यहांके हाकिम थे। काबुलका आय प्रायः अठारह लाख रुपया है। अफगानस्थानके अन्यान्य प्रदेशकी अपेक्षा काबुलकी सैन्य-संख्या कुछ अधिक है। यहांकी राहें भी खराब नहीं। इसका बहुत प्रमाण मिलता है कि पहले काबुलमें हिन्दू राजावोंका अधिकार था।

२ उक्त काबुल जिलेका प्रधान नगर। यह अक्षा० ३४° ३´ उ० एवं देशा० ६८° १८´ पू० में काबुल और नगर नामक दो नदीके सङ्गमस्थल पर अवस्थित है। काबुल गजनीसे ८८, खिलात-ए-गिलजाईसे २२८ और पेशावरसे १८५ मील दूर है। लोकसंख्या डेढ़ लाखसे कम है। यहां तापमानयन्त्र ३०° डिगरी उतरता और १०५° डिगरी चढ़ता है।

कोह ताकतशाह और कोह खोजासफर नामक दो गिरिश्रेणी मिलनेसे कोणकी भांति बननेवाला स्थान ही समतल है। उसी स्थानपर काबुल नगर अवस्थित है। यह चारोदिक् डेढ़ कोससे अधिक न निकलेगा। प्रधान दुर्ग बालाहिसार नगरके दक्षिण पूर्व भागमें खड़ा है। पहले काबुलके चारो ओर इष्टकका प्राचीर था। किन्तु आजकल

स्थान स्थान पर उसका भग्नावशेष देख पड़ता है। नगरका अधिकांश स्थान वृक्षवाटिकासे परिपूर्ण है। बस्ती ५००० घरसे अधिक नहीं। नगरमें आने जानेके लिये पहले सात फाटक थे। आजकल लाहौरी और सरदार नामक दो ही ईंटके फाटक देख पड़ते हैं। लोगोंके घर अधिकांश कच्ची ईंट और मट्टीसे बने हैं। नगर कई महल्लोंमें विभक्त है। फिर महल्ले कूचोंमें बटे हैं। कूचे प्राचीरसे वेष्टित हैं। युद्ध विग्रहके समय प्राचीरोंकी मरम्मत होती है। उस समय एक एक कूचा दुर्गकी भांति देख पड़ता है। प्रवेशके लिये कूचेमें सिर्फ एक फाटक रहता है। ऐसी आत्मरक्षाके व्यवहारको कूचाबन्दी कहते हैं। भीतरकी राहें अत्यन्त सङ्कीर्ण हैं। नगरमें अनेक बाजार हैं। उनमें दो प्रधान हैं। वह दोनों प्रायः समान्तरालमें अवस्थित हैं। एकका नाम शोरबाजार और दूसरेका नाम लाहोरी बाजार है। नगरको दक्षिण ओर शोरबाजारमें चहार-छाता नामक एक इमारत हैं। यह देखनेमें बहुत सुन्दर है। बाजारमें यह देखने लायक चीज़ है। इसके छत्ते चित्र-विचित्र बने हैं। अली मरदान खानने यह इमारत बनवायी थी। नगरके बाहर बाबर और तैमूर शाहका समाधिस्थान है। यह दोनों चीजें भी देखने लायक हैं। काबुलके शासनकर्ता खुद अमीर हैं। पहले बालाहिसारमें ही राजभवन था। आजकल अमीर नगरके मध्य अन्य स्थानमें रहते हैं। नगरमें एक विद्यालय है। विदेशी वणिकों या व्यवसायियोंके रहनेको यहां १४।१५ सराय हैं। इन्हें कारवान्-सराय कहते हैं। साधारण लोगोंके नहानेको स्नानागार हैं। उन्हें हम्माम कहते हैं। हम्माममें गर्म पानी रहता है। ग्रीष्मके समय चारो ओरसे वणिक् आते हैं। क्रयविक्रय अधिकांश दलालोंके द्वारा सम्पन्न होता है। नगरमें स्थान स्थान पर कूप हैं। किन्तु उनका जल कुछ भारी होता है। नदीका जल बहुत अच्छा है।

नगरमें जानेके लिये कई पुल हैं। उनमें किश्तीका पुल प्रधान है। कई नावें जोड़कर नावका पुल बना है। पक्के पुल भी कई हैं। अनेक स्थानों पर नदीमें जल कम रहनेसे सेतुकी आवश्यकता नहीं पड़ती।

तैमूर शाहने काबुलमें अफगानस्थानकी राजधानी स्थापित की थी। उस समय तक सादुजाई वंशीय राजा ही काबुलमें रहते थे। सादुजाई वंशका पतन होने पर यह नगर दोस्तमुहम्मदके हाथ लगा। अंगरेजोंके राज करते समय काबुलमें बहुत युद्धविग्रह हुवा। अफगानस्थान देखो।

१८३९ ई० की ७वीं अगस्तके दिन अंगरेजोंने ससैन्य शाहशुजाको काबुल भेजा था। अंगरेजोंका सैन्यदल दो वर्ष वहां रहा। फिर १८४१ई० की २री नवम्बरके दिन काबुलके सिपाहियोंने विद्रोही हो अमीर शाहशुजाको मार डाला। दोस्त मुहम्मदके पुत्र अकबरखान्ने फिर अंगरेजोंसे सन्धि करना चाहा था। सन्धि होनेकी बात इस मर्म पर चली थी कि अंगरेजोंको काबुल छोड़ना पड़ेगा। सर विलियम माकनाटन सन्धिकी बात चीत करने गये थे। किन्तु वह पिस्तौलसे मारे गये। उनके साथ ट्रेवर, मैकेञ्जी और लारेन्स साहब थे। गिलजाई सिपाहियोंने ट्रेवरको भी मार डाला। दूसरे साहब बांध लिये गये। शेषमें स्थिर हुवा कि अंगरेजोंको रुपया पैसा सब देना और उन्हें सिर्फ ६ तोपें ले लौटना पड़ेगा। १८४२ई०की ६ठीं जनवरीको अंगरेजो सेना लौटने लगी। ४५०० सिपाही और १२००० नौकर सख्त ठण्डो बरफको तोड़ते वापस आते थे। इस दलके मध्य केवल डाकर ब्राइडन सशरीर जलालाबाद पहुंचे। बन्दी हुये ९५ लोग भी अवशेषमें आ गये। १८४२ई० को १५वीं सितम्बरको अंगरेजो सेना ले कप्तान पोलकने काबुल पहुंच बालाहिसार दखल किया था। १२वीं अक्तोबर तक अंगरेज नगर पर अधिकार किये रहे। माकनाटन साहबको हत्याके पीछे उनका देह बाजारमें लटकाया गया था। इसके बदलेमें अंगरेजोंने चहार-छाता बाजार तोपोंसे उड़ा दिया।

१८७९ई०के मई मास गण्डामकमें याकूब खान्के साथ अंगरेजोंकी सन्धि हुई। उससे काबुलमें अंग-

रेजोंके एक रसीडण्ट रहनेकी बात ठहरी। सर लूइस रसीडण्ट बन काबुल गये। उस समय भी अफगान बिलकुल शान्त न थे। ३री सितम्बरको दिन को सर लूइस ससैन्य छलपूर्वक मारे गये। उस समय कुरम उपत्यकामें सर फ्रेडरिक राबर्ट अंगरेजी सेना लिये अपेक्षा करते थे। अंगरेज गवरनमेंण्टने उन्हें काबुल जानेकी अनुमति दी। राबर्टने ससैन्य प्रस्थान किया था। रास्तेमें नाना विघ्न बाधाओंका अतिक्रम करना पड़ा। ८वीं अक्तोबरको उन्होंने काबुल पर अधिकार किया था। अंगरेज सैन्यने बालाहिसार, किला और राजभवनका अधिकांश तोड़ डाला। अमीर याकूब खान्ने पदत्याग किया। अंगरेज काबुल अधिकार किये रहे। अफगानोंने सोचा था कि अंगरेज लौट जावेंगे। किन्तु उन्हें बैठा देख सब लोग असन्तुष्ट हो गये। थोड़े दिन पीछे अफगानोंने काबुल और बालाहिसार दखल किया। २३वीं सितम्बरको शेरपुरमें एक युद्ध हुआ। उसमें अंगरेज ही जीते थे। किन्तु उन्हें शेरपुरमें अवरुद्ध हो रहना पड़ा। २३वीं दिसम्बरको वहां ५० हजार अफगान सेनाने पहुंच अंगरेजों पर आक्रमण किया था। किन्तु वह पराजित हुई। दूसरे दिन अधिकतर अंगरेज-सेना पहुंच गई। काबुल फिर अंगरेजोंके हस्तगत हुवा। उसके पीछे ३ मास तक कोई उपद्रव न उठा। २२वीं जुलाईको अबदुररहमान काबुलके अमीर मनोनीत हुये। अगस्त मासमें अंगरेज सेना लौट आई। अमीर अबदुररहमानके शासनसे शान्ति स्थापित हुई। १८८१ई०को याकूब खान्ने आक्रमण किया था। किन्तु यह पराजित हो हिरातकी राह पारस्यकी ओर चले गये। उसी वर्ष अमीरने एक बार काबुल छोड़ दिया था। फिर बादक और कोहिस्थानके लोग विद्रोही हुये। किन्तु धीरे धीरे शांति हो गई। १८८४ई०को रूस-सैन्य मार्व पर अधिकार कर अफगानस्थानकी सीमामें जा पहुंची थी। अंगरेजोंने रूस और अफगानस्थानकी सीमा स्थिर करनेके लिये ४० कर्मचारी और ४०० सिपाही भेज दिये। १८८५ ई०को भारतके गवरनर जेनरल लार्ड डफरिनने रावलपिण्डीमें एक दरबार किया था। अमीर उसमें निमन्त्रित हुए। मार्च मासके शेषमें अमीर अबदुर रहमान वहां आए थे। एकपक्ष तक रह वह वापस गए।

आजसे कोई तीन वर्ष पहिले भूतपूर्व अमीरको सोतेमें किसीने मार डाला था। उनके पीछे कनिष्ठ पुत्र अमान-उल्ला खान्को काबुलका राजपद प्राप्त हुवा, किन्तु उन्होंने अंगरेजोंके विरुद्ध युद्ध घोषणा की। कितनी ही खून खराबीके पीछे युद्ध बन्द हुवा। फिर अफगानोंका एक दूतदल सन्धि करने भारत आया, भारतसे भी अंगरेजोंका दूत-दल काबुल सन्धिकी बातचीत करने गया। गत २८वीं फरवरीको काबुल और रूससे भी एक सन्धि हुयी है। कहते हैं उस सन्धिके अनुसार अमीरने रूसी बोलशेविकोंको भारत पर आक्रमण करनेके लिये अफगानस्तानकी राह सेना ले जानेका अधिकार दे दिया है। काबुलकी समस्या आजकल बहुत टेढ़ी पड़ गयी है।

३ अफगानस्तानकी एक नदी। इसी नदीके तीर काबुल नगरी है। ऋगवेदमें यह नदी कुभा नामसे कही गयी है। कुभा देखो।

काबुली (हिं० स्त्री०) कुभासम्बन्धीय, काबुलके मुतालिक्।

काबुली बबूल (हिं० पु०) वृक्ष विशेष, एक तरहका बबूल। यह भारतमें प्रायः सर्वत्र मिलता और सरोकी तरह सीधा चलता है। इसे राम बबूल भी कहते हैं।

काबुली मस्तगी (फा० स्त्री०) निर्यास विशेष, एक गोंद। यह रूमी मस्तगीसे मिलती और उसकी जगह काममें आती भी है। वृक्ष बम्बई प्रान्त और उत्तर भारतमें होता है। इसे 'बम्बईकी मस्तगी' भी कहते हैं।

क़ाबू (तु० पु०) १ पकड़, पञ्जा, पहुंच। २ अधिकार, इख़तियार।

काम (सं० क्ली०) कामाय हितम्, कम्-अण्। १ शुक्र, वीर्य। २ यथेष्ट, वाजिब बात। ३ वाञ्छा, ख़ाहिश। ४ स्वीकारवाक्य, इक़रारिया जुमला। ५ अनुमति, सलाह। (पु०) काम्यते असौ कम्।

६ इच्छा, चाह। ७ सङ्गमेच्छा, मिलनेकी ख्वाहिश। ८ वर, शौहर।

"सन्तानकामाय तथेति कामं
राज्ञे प्रतिशुश्राव पयस्विनी सा।" (रघुवंश)

९ महादेव। १० विष्णु। ११ बलदेव। १२ कामदेव। कामदेव देखो। १३ ककार अक्षर। १४ तृष्णा, लालच। इस सम्बन्ध पर भगवद्गीतामें लिखा है,—

"ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात् संजायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते॥" (२।६२)

प्रथमतः विषयचिन्ता करते करते उसमें आसक्ति उत्पन्न होती है। फिर उसी विषयमें काम अर्थात् तृष्णाका बल बढ़ता है। उसके पीछे वही काम किसी कारण प्रतिहत होने पर क्रोध आ जाता है।

इसी कामके सम्बन्ध पर भगवद्गीताके शङ्कर-भाष्यमें भी कहा है,—"जो शत्रु हो कर भी समुदाय प्राणिवर्गको स्ववशमें रख सकता, उसीका नाम काम पड़ता है। कामही सब अनर्थोंका मूल है। यही किसी कारणसे प्रतिहत होने पर क्रोध रूपमें परिणत हो प्राणियोंको कर्त्तव्याकर्त्तव्य विषयमें विचारहीन बनाता है। सुतरां उस समय वह पापाचारी हो जाते हैं। इस लिये प्राणिमात्रको उस विषयमें यत्न करना चाहिये, जिसमें दुरात्मा काम चित्तसे दूर रहे।"

१५ चन्द्रवंशीय माङ्गल्य राजपुत्र। इनके पुत्र शङ्कु थे। (सह्याद्रिखण्ड १।२०।१५)

१६ महिसुरके एक मान्तरराज। कादम्बराज विजयादित्यदेवके साथ इनकी भगिनी चट्टलादेवीका विवाह हुवा था। ११४९ ई०को यह विद्यमान रहे।

१७ ब्रटिश ब्रह्मके थयेतमयो जिलेका एक विभाग। यह अक्षा० १९° ४९´ से १९° ५´ उ०, और देशा० ९४° ४५´ से ९५° १४´ २०´´ पू० तक अवस्थित है। इसके उत्तर थयेत तथा मिङ्गदून, पूर्व इरावदी, दक्षिण पदौङ्ग और पश्चिम आराकान-योमा है। भूमिका परिमाण ५७५ वर्गमील है।

पहले यह स्थान मयठुगीके अधीन था। १७८२ ई० को मयठुगी इलाकेमें १४२ ग्राम थे। पहले डिहिदारोंकी भांति मयठुगीर भी क्षमताशाली थे। सकल विषयोंमें कर्तृत्व चलते भी वह किसीके जीवन-मरणमें हस्तक्षेप कर न सकते थे। फिर उन्हें स्वर्ण-छत्र व्यवहार करनेकी भी क्षमता न रही।

पहले ब्रह्मराज कामसे ८५७०) रु० कर पाते थे। आजकल इसकी मालगुजारी कुल ७४८८० रु० है। लोक-संख्या कोई साढ़े पैंतीस हजार होगी।

इस विभागका प्रधान नगर काम है। यह इरावदी नदीके दक्षिण पार्श्व अक्षा० १९° १´ उ० और देशा० ९५° १०´ पू०के मध्य अवस्थित है। इस नगरके बीचसे 'मदे' नामक एक स्रोत बहता है। थोड़ी दूर पर मतून नदी प्रवाहित है।

इस नगरमें अनेक बौद्ध देवालय और आश्रम हैं। पहले इसका नाम "महाग्राम" था। यही बौद्ध शास्त्रमें महाग्राम और पाश्चात्य प्राचीन भौगोलिक टलेमि कर्तृक माग्राम (Magrama) नामसे उक्त हुवा है। ब्रह्मराज अलम्प्राने इसका नाम काम रखा। लोकसंख्या दो हजारसे कम है।

१८ राजपूतानेके कमान परगनेका प्रधान नगर। यह भरतपुर राज्यके अधीन है। काम भरतपुर राज्यकी उत्तर-पूर्व सीमा पर अवस्थित है। पहले यह स्थान जयपुर राज्यके अधीन था। राजा कामसेनने इसकी श्रीवृद्धि कर अपने नामसे परिचित किया।

यह नगर अतिप्राचीन है। किंवदन्तीके अनुसार भगवान् श्रीकृष्णकी यहां कुछ काल अवस्थिति रही। बौद्ध राजावोंके समय भी यह स्थान प्रसिद्ध हुवा। आज भी यहां विस्तर बौद्ध-कीर्तिका ध्वंसावशेष पड़ा है। उसमें शतस्तम्भ देखनेकी चीज़ है। इस मन्दिरमें बुद्धमूर्ति खोदित है। १७८२ ई०को यह स्थान सेनापति पेरों कर्तृक रणजित् सिंहके अधिकारभुक्त हुवा। यहांसे भरतपुर तक धातुवर्त्म चला गया है।

काम (हिं० पु०) १ कर्म, कार्य। २ कठिन कार्य, मुश्किल बात। ३ उद्देश्य, मतलब। ४ सम्बन्ध, सरोकार। ५ व्यवहार, इस्तेमाल। ६ व्यवसाय, रोज़गार। ७ रचना, कारीगरी।

कामकला (सं० स्त्री०) कामस्य कला प्रिया, ६-तत्। १ कामदेवकी पत्नी रति। २ चन्द्रकी षोड़श कला। ३ तन्त्रोक्त विद्याविशेष। पुण्यानन्द-प्रणीत कामकला-विलास नामक तन्त्रग्रन्थमें इनका विषय वर्णित है। तन्त्रशास्त्र स्वभावतः गुह्य रहनेसे अर्थ स्पष्ट समझ नहीं पड़ता। इस लिये कामकलाविद्याके मूलश्लोक हो उद्धृत किये जाते हैं,—

"सकलभुवनोदयस्थितिलयमयलीलाविनोदनोद्युक्तः
अन्तर्लीनविमर्शः पातु महेशः प्रकाशमात्रतनुः॥
सा जयति शक्तिराद्या निजसुखमयनित्यनिरुपमाकारा।
भाविचराचरबीजं शिवरूपविमर्शनिर्मलादर्शः॥
स्फुटशिवशक्तिसमागमबीजाङ्कुररूपिणी पराशक्तिः।
अणुतररूपानुत्तरविमर्शलिपिलक्ष्यविग्रहा भाति॥
परशिवरविकरनिकरे प्रतिफलति विमर्शदर्पणे विशदे।
प्रतिरुचिरुचिरे कुड्ये चित्तमये निविशते महाबिन्दुः॥
चित्तमयोऽहंकारः सुव्यक्ताहार्णसमरसाकारः।
शिवशक्तिमिथुनपिण्डः कवलीकृतभुवनमण्डलो जयति॥
सितशोणबिन्दुयुगलं विविक्तशिवशक्ति सङ्कुचत्प्रसरम्।
वागर्थसृष्टिहेतु परस्परानुप्रविष्टविस्पष्टम्॥
बिन्दुरहङ्कारात्मा रविरेतन्मिथुनसमरसाकारः।
कामः कमनीयतया कला च दहनेन्दुविग्रहौ बिन्दू॥
इति कामकलाविद्या देवीचक्रक्रमात्मिका सेयम्।
विदिता येन स मुक्तो भवति महात्रिपुरसुन्दरीरूपः॥
स्फुटिताद्रक्ताद्बिन्दो र्नादमयाङ्कुरो रवोऽव्यक्तः।
तस्मात् गगनसमीरणदहनोदकभूमिवर्णसम्भूतिः॥
अथ विशदादपि बिन्दोर्गगनानिलवह्निवारिभूमिगणैः।
एतत् पञ्चकविकृतिर्जगदिदमथायनादपर्यन्तम्॥
बिन्दुत्रितयं यद्वद्दत्तविहीनं परस्परम् तद्वत्।
विद्यादैवतयोरपि न भेदधीरस्ति वेद्यवेदकयोः॥
वागर्थौ नित्ययुतौ परस्परं शक्तिशिवमयावेतौ।
सृष्टिस्थितिलयभेदौ त्रिधा विभक्तौ त्रिबीजरूपेण॥
माता मानं मेयं बिन्दुत्रयभिन्नबीजरूपाणि।
धामत्रयपीठत्रयशक्तित्रयभेदभावितान्यपि च॥
तेषु क्रमेण लिङ्गत्रितयं तद्वच्च मातृकात्रितयम्।
इत्थं त्रितयतुरीया तुरीयपीठादिभेदिनी विद्या॥
शब्दस्पर्शौ रूपं रसगन्धौ चेति भूतसूक्ष्माणि।
व्यापकमाद्यं व्याप्यं तूत्तरमेवं क्रमेण पञ्चदश॥
पञ्चदशाक्षररूपा नित्या देवा हि भौतिकाभिमता।
नित्याः शब्दादिगुणप्रभेदभिन्ना यथाक्रमं व्याप्ताः॥
नित्यास्तिथ्याकारास्तिथयः शिवशक्तिसमरसाकाराः।
दिवसनिशात्मपक्षाः शीवर्णाऽस्तेऽपि तद्द्वयीरूपाः॥
अव्यक्तबिन्दुत्रयसमष्टिभेदैर्विभावितकारा।
षट्त्रिंशत् तत्त्वात्मा तत्त्वातीता च केवला विद्या॥
विद्यापि तादृगात्मा सूक्ष्मा सा त्रिपुरसुन्दरी देवी।
विद्यात्मकयोरत्यन्ताभेदमामनन्त्यार्याः॥
या शान्तरीश्वरूपा परा महेशी त्रिमात्रिता सैव।
स्पष्टा पश्यन्त्यादित्रिमातृकात्मा चक्रतां याता॥
चक्रस्यापि महेश्या न भेदलेशो विभाव्यते विबुधैः।
अनयोः सूक्ष्माकारा परैव सा स्थूलमूर्त्यैव भिदा॥
मध्ये चक्रस्य स्यात् परामयं बिन्दुतत्त्वमेवेदम्।
उच्छूनं तच्च यदा त्रिकोणरूपेण परिणतं चक्रम्॥
एतत् पश्यन्त्यादि त्रितयमिदानीं त्रिबीजरूपं च।
वामा ज्येष्ठा रौद्री चाम्बिका चतुत्तरागमूताः स्युः॥
इच्छा-ज्ञान-क्रिया-शान्तार्या सर्वोत्तरावयवाः।
व्यस्ताव्यस्ततदर्णत्रयमिदमेकादशात्मपश्यन्ती॥
एवं कामकलात्मा त्रिबिन्दुतत्त्वस्वरूपवर्णमयी।
सेयं त्रिकोणरूपं याता त्रिगुणस्वरूपिणी माता॥
एका परा तदन्या वामादिव्यष्टिमातृघटात्मा।
तेन नवात्मा जाता माता सा मध्यमाभिधानाभ्याम्॥
द्विविधा हि मध्यमा सा सूक्ष्मस्थूलाकृति स्थिता सूक्ष्मा।
नवनादमयी स्थूला नववर्गात्मा च भूतलिप्यारूपा॥
आद्या कारणमन्या कार्यं त्वनयोर्यतस्ततो हेतोः।
सैवेदं नहि भेदस्तादात्म्यं हेतु हेतुमद्भावेऽत्र॥
श ष स ह वर्णमयं तदष्टकोणं मध्यकोणविस्तारम्।
नवकोणं मध्यं चेतसि विद्वोपशोभिते द्वयके॥
तच्छायाश्रितवर्णितं दशारचक्रद्वयात्मना विततम्।
क च ट त वर्ग चतुष्टयविशदसविस्पष्टकोणविस्तारम्॥
एतच्चक्रचतुष्टयप्रमाणसतं दशार-परिणामः।
ह्रादिस्वरनवक चतुर्दशवर्णमयं चतुर्दशारमिदम्॥
परया पश्यन्त्यापि च मध्यमया स्थूलवर्णरूपिण्या।
एतानिरेकपश्चागदक्षरात्मा च वैखरी जाता॥
कादिभिरष्टभिरुपचितमष्टदलाब्जञ्च वैखरीवर्गैः।
स्वरगणसमुदितमेवदष्टदलाम्बोरुहञ्च सचिन्तयन्॥
बिन्दुत्रयमयतेजस्त्रितयविकाराय तानि वृत्तानि।
भूबिम्बत्रयमेतत् पश्यन्त्यादि त्रिमातृविश्रान्तिः॥
क्रमशः पदविक्षेपः क्रमोदयत्वेन कथ्यते द्वेधा।
आवरणं गुरुपंक्तिद्वयमिदमन्यापदाम्बुजाक्षरम्॥
सेयं परा महेशी चक्राकारेण परिणता तदा।
तद्देहावयवानां परिणतिरावरणदेवताः सर्वाः॥
आसीना बिन्दुमये चक्रे सा त्रिपुरसुन्दरी देवी।
कामेश्वराङ्कनिलया कलया चन्द्रस्य कलितोत्तंसा॥

पाशाङ्कुशेक्षुचापप्रसूनशरपञ्चकालङ्कृतस्वकरा :
बालारुणारुणाङ्गी शशिमाणिक्यमकुटाञ्चितशिरस्का ॥
अग्नियुग्मं गुणभेदादास्ते बिन्दुत्रयात्मके चक्रे ।
कामेश्वरीनिमेषप्रसुखरूपत्रयात्मना विततम् ॥
वसुकोणनिवासिन्यो यासां संध्यारुणावशिन्याद्याः ।
पुर्यष्टकमेवेदं शब्दमयी: सच्चिदात्मनो देव्याः ॥
सविषयशब्दधराः सर्वज्ञादि-स्वरूपमापन्नाः ।
अन्तर्दशारनिलया लसन्ति शरदिन्दुसुन्दराकाराः ॥
तद्वाह्यदशारकोणे योगिन्यः सर्वसिद्धिदाः पूर्वाः ।
देवीधी कर्मेन्द्रियविषयमया विश्वदेवमुख्याद्याः ।
भुवनारचक्रभवना देवीमनुकरणविवरपश्चकुरणाः ।
संध्यासवर्णवसनाः सचिन्त्याः सम्प्रदाययोगिन्यः ॥
अव्यक्तमहदहङ्कृतितन्मात्राः स्त्रीकृताङ्गनाकाराः ।
द्विरदच्छदस्मरारीर्जि अवन्ति गुप्ततरयोगिनीसंज्ञाः ॥
भूतानीन्द्रियदशकं मनश्च देव्या विकारषोडशकम् ।
कामाकर्षिण्यादिस्वरूपतः षोडशारमध्यास्ते ॥
मुद्राश्रिखण्डयासह सन्निभाम्यः समुच्छ्रिताः सर्वाः ।
आदिमहोग्रट्ठवासा भासा बालार्ककान्तिभिः सदृशाः ॥
आधारनवकमस्या नवचक्रत्वेन परिणतं येन ।
नवनादशक्तयोऽपि च मुद्राकारेण परिणतायक्रे ॥
अस्यास्तत्त्वादिसकलाकारं नमष्टकं स्वपम् ।
माद्यादिनामरूपं मध्यमभूमिम्नामितदध्यास्ते ॥
अणिमादिम तयोऽस्याः स्त्रीकृतकमनीयकामिनीरूपाः ।
विद्यान्तरफलभूता गुणभावे मान्त्यमूनि केसमगाः ॥
परमानन्दानुभवः परमगुरुनिर्विशेषविद्याप्ता ।
स पुनः क्रमेण शिवः कामेशत्वं ययौ विमर्शांशात् ॥
आसीनः श्रीपीठं कलयुगकाशी गुरुः शिवो विद्याम् ।
तस्यै ददौ स्वगकल्पे कामेश्वर्यै विमर्शरूपिण्यै ॥
साप्येव मिश्रसंज्ञान् स्वानेशान् जीवमध्यबालाख्यान् ।
चित्प्राणविषयमूर्त्तस्थितागुणादिकारणाविशुद्धम् ॥
वीजमितथाधिपतीन् परीक्ष्य विद्यां प्रकाशयामास ।
एतैरोघमितथामनुष्यदीतुं गुरुक्रमो विहितः ॥”

भावार्थ—आदिसृष्टिका कारण शिव और शक्ति दो विन्दुस्वरूप हैं। इन दोनों विन्दुमें शिवरूप विन्दु श्वेतवर्ण और शक्तिरूप विन्दु रक्तवर्ण है। शिव-विन्दुसे जब शक्तिविन्दु मिलता, तब उभय विन्दुके संयोगका काम नाम पड़ता है। दोनों विन्दु नाना कला और नाद रखते हैं। इन शिवशक्ति विन्दुसे छत्तीस अक्षर, समुदाय भाषा एवं पञ्च भूतादि यावतीय पदार्थकी सृष्टि होती है। अकार अक्षरसे शिव और हकार अक्षरसे शक्तिका बोध है। इसीलिये शिवविन्दु, शक्तिविन्दु और नाद तीनोंके संमिश्रणसे “अहं”कारकी उत्पत्ति हुवा करती है। इसीको कामकला कहते और इसी शक्तिका नाम त्रिपुरा-सुन्दरी रखते हैं। उक्त तीनों विन्दु एक त्रिकोण-चक्रके मध्यस्थित हैं। सुतरां त्रिपुरासुन्दरी उसी चक्रके मध्य अवस्थान करती हैं। फिर उसके कोण-समूहमें सिद्धिप्रदा योगिनियोंका अधिष्ठान है। इन त्रिपुरासुन्दरीका बालारुणकी भांति अरुण वर्ण है। मस्तकमें चन्द्रकला है। चन्द्र, सूर्य और अग्नि चक्षुत्रय हैं। पाश, अङ्कुश, इक्षु, धनुः और पञ्चशर हस्तमें प्रतिष्ठित हैं। कोष्ठद्वयमें अव्यक्त, महत्, अहङ्कार और पञ्चतन्मात्र गुप्ततर योगिनीसमूह है। फिर मध्यमें पञ्चभूत, दश इन्द्रिय, मन और षोड़श विकार अवस्थित हैं।

यह कामकलाविद्या अवगत हो सकनेसे त्रिपुरा-सुन्दरीत्व मिलता है। किन्तु गुरुके उपदेश व्यतीत केवल शास्त्रपाठसे इसमें कभी ज्ञानलाभ नहीं होता। इसके ४६ मूलतत्त्व हैं। यथा—

१ शिव, २ शक्ति, ३ सदाशिव, ४ ईश्वर, ५ शुद्ध-विद्या, ६ माया, ७ कला, ८ विद्या, ९ राग, १० काल, ११ नियति, १२ पुरुष, १३ प्रकृति, १४ अहङ्कार, १५ बुद्धि, १६ मनः, १७ श्रोत्र, १८ त्वक्, १९ नेत्र, २० जिह्वा, २१ घ्राण, २२ पाद, २३ पाणि, २४ पायु, २५ उपस्थ, २६ शब्द, २७ स्पर्श, २८ रूप, २९ रस, ३० गन्ध, ३१ आकाश, ३२ वायु, ३३ तेजः, ३४ अप्, ३५ पृथिवी इत्यादि।

कामकलाख्यरस (सं॰ पु॰) वाजीकरणौषध, ताकतकी एक दवा। मृतसूताभ्रक और स्वर्णको अश्वगन्धा एवं गुड़ूचीके रस और मुसली तथा कदलीकन्दके द्रवमें घोंटते हैं। मृतसूताभ्रक एवं स्वर्णको धीमी धीमी आंचमें पका फिर उक्त द्रवोंसे मर्दन करना चाहिये। इसी प्रकार बारबार घोंटते और पकाते आठ पुट लगाते हैं। शाल्मलीजात निर्यासके साथ चार माषा सेवन करनेसे यह बलवीर्य बढ़ाता है। (रसरत्नाकर)

कामकलावटी (सं॰ स्त्री॰) औषधविशेष, एक दवा।

अङ्कोलका मूल, त्रिफला, गुडूची, मरिच हरिद्रा, सप्तच्छदा, सुरामांसी एवं कुष्ठ दो दो तोले, त्रिड़ङ्ग, मुस्तक, कृष्णलवण, तालक, तथा टंकण चार चार तोले और शोधित गुग्गुलु चौंतीस तोले एकत्र घीमें घोंटनेसे यह बनती है। चार माशा इसको सेवन करनेसे वातरक्त रोग आरोग्य होता है। (रसरत्नाकर)

कामकलाविलास (सं० पु०) कामकलायाः विलासः सम्यक् विवरणं यत्र, बहुव्री०। एक तन्त्रशास्त्र। इसमें कामकला विद्याका विषय विशेष रूपसे वर्णित है। इसके प्रणेता पुण्यानन्द और टीकाकार नटनानन्द थे। [कामकला देखो]

कामकाज (हिं० पु०) कर्मकार्य, कारवार, दौड़धूप।

कामकाजी (हिं० पु०) व्यवसायी, कारवारी।

कामकाति (सं० त्रि०) कामपरा कातिः शब्दो यस्य, काम-कै शब्दे क्तिन् बहुव्री०। काम शब्दयुक्त, अपनी ख्वाहिश ज़ाहिर करनेवाला।

कामकान्ता (सं० स्त्री०) राजनेपाली, नेपालकी मनःशिला।

कामकाम (सं० त्रि०) कामं कामयते, काम्-कम्-णिच्-अण्। अभीष्टप्रार्थी, ख्वाहिश की हुयी चीज़ मांगनेवाला।

कामकामी (सं०त्रि०) कामं कामयते, कम्-णिच्-णिनि। अभीष्टप्रार्थी, मुराद मांगनेवाला।

"आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत् कामाः यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी॥"
(भगवद्गीता)

कामकार (सं० त्रि०) कामं करोति, काम-कृ-अण्। १ काम्यकार्यका निष्पादक, ख्वाहिशके मुताबिक चलनेवाला। (पु०) २ फलाभिसन्धि, ख्वाहिशकी चाल।

कामकाली (सं० स्त्री०) जलपक्षिविशेष, एक दरयायी चिड़िया।

कामकूट (सं० पु०) काम एव कूटं प्रधानं यस्य, बहुव्री०। १ वेश्याप्रिय, रण्डीबाज़। २ वेश्याविभ्रम, रण्डीबाजी। ३ कामराज नामक श्रीविद्याका एक मन्त्र। यह तीन प्रकारका होता है,—कामकूट, कामकेलि और कामक्रीड़ा। यथा १म कामकूट,—

"शिवचन्द्रस्ततः पश्चात् कली शक्तिं वह्नि च
मायाक्षरेण संयुक्तं नादविन्दुकलान्वितम्।
प्रथमं कामराजस्य कूटं परमदुर्लभम्॥" (रुद्रयामलीय)

२य कामकूट,—

"शिवविश्वयुतं कामो हंसः शक्रस्ततःपरम्।
महामाया ततः पश्चात् स्वप्रभ्रतीति कथ्यते॥" (रुद्रयामलीय)

३य कामकूट,—

"मदनं शिवबीजञ्च वायुबीजं ततःपरम्।
इन्द्रबीजं ततः पश्चात् महामायां समुद्धरेत्॥ (रुद्रयामलीय)

कामकृत् (सं० त्रि०) कामेन करोति, काम-कृ-क्विप्। १ यथेच्छकारक, मर्ज़ीके मुवाफिक चलनेवाला। २ अभीष्ट सम्पादक, अपनी मुराद पूरी करनेवाला। (पु०) ३ विष्णु।

"कामहा कामकृत् कान्तः कामः कामप्रदः प्रभुः।" (विष्णुसहस्रनाम)

कामकेलि (सं० त्रि०) कामे तद्धेतुकरतौ केलिर्यस्य, बहुव्री०। १ लम्पट, ऐयाश, छिनरा। (पु०) कामनिमित्ता केलिः, मध्यपदलो०। २ सुरत, छिनाला।

कामक्रीड़ा (सं० स्त्री०) कामेन क्रीड़ा, ३-तत्। १ सुरत, ऐयाशी। २ पञ्चदशाक्षरी एक छन्द।

"माः पञ्च सुर्यस्यां सा कामक्रीड़ा संज्ञा ज्ञेया।" (वृत्तरत्नाकरटीका)

जिस छन्दमें पांच मगण अर्थात् पन्द्रहो वर्ण गुरु रहते, उसे 'कामक्रीड़ा' कहते हैं।

कामखड्गदला (सं० स्त्री०) कामं कमनीयं खड्गमिव दलं पत्रं यस्याः, बहुव्री०। सुवर्णकेतकी, पीला केवड़ा।

कामग (सं० त्रि०) कामेन वाञ्छया इच्छया यथेच्छं देशं गच्छति, काम-गम-ड। १ इच्छानुसार चलनेवाला, जो अपनी ख़ुशीसे आता-जाता हो। २ लम्पट, रण्डीबाज़, छिनरा। (पु०) ३ कन्दर्प, कामदेव।

कामगति (सं० त्रि०) कामं यथेच्छं गतिर्यस्य, बहुव्री०। १ इच्छानुसार चलनेवाला, जो मर्ज़ीके मुताबिक आता-जाता हो। २ यथेच्छ देशको गमनकारक, मनमानी जगहको जानेवाला। ३ लम्पट, रण्डीबाज़।

कामगम (सं० त्रि०) कामं यथेच्छं गच्छति, काम-गम-अच्। कामगति देखो।

कामगा (सं० स्त्री०) कामेन अनुरागेण गच्छति, काम-गम-ड-टाप्। १ कोकिला, कोयल। २ यथेच्छ-पुरुषगामिनी, छिनाल।

"पारश्यकारिणता स्त्रैणा: मदं च कामगादिका:।
सुरापा आमत्यागिन्यो नार्यो नोदकमालना:॥" (याज्ञवल्क्य)

कामगामी (सं० त्रि०) कामं यथेच्छं योनिविचारं अकृत्वैव गच्छति इत्यर्थ:, काम-गम-णिनि। योनि-विचारशून्य हो यथेच्छ भावसे स्त्रीगमन करनेवाला, रण्डीबाज़, छिनरा। २ कामचारी, ख़ाहिशके मुवाफ़िक़ चलनेवाला।

कामगार (हिं० पु०) राज्यप्रबन्धकर्ता, कामदार।

कामगिरि (सं० पु०) कामप्रधानो गिरि:, मध्यपदलो०। १ कामरूपका एक पर्वत। (कालिकापुराण) २ दाक्षिणात्यका एक पर्वत।

"कामगिरिं समारभ्य द्वारकान्तं महेश्वरि।" (शक्तिसङ्गमतन्त्र)

कामगुण (सं० पु०) कामकृतो गुण:, मध्यपदलो०। १ अनुराग, मुहब्बत। २ विषय, ऐश। ३ भोग, मज़ा।

कामङ्गामी (सं० त्रि०) कामं यथेच्छं गच्छति, कामम्-गम-णिनि। कामगामी देखो।

कामचर (सं० त्रि०) कामेन चरति, काम-चर-ट। स्वेच्छाचारी, मर्ज़ीके मुवाफ़िक़ सब जगह घूमनेवाला।

"तां नारद: कामचर: कदाचित्।" (कुमारसम्भव)

कामचरण (सं० क्लो०) कामं यथेच्छं चरणं विचरणम्, कर्मधा०। यथेच्छभावसे विचरण, मनमानी चलफिर।

कामचरत्व (सं० क्लो०) कामचरस्य भाव:, कामचर-त्व। कामचरका कार्य, मनमानी चलफिर।

कामचलाऊ (हिं० वि०) किसी न किसी प्रकार कार्य निकाल देनेवाला, जो काम चला देता हो।

कामचार (सं० त्रि०) कामेन स्वेच्छया चरति, काम-चर-घञ्। १ यथेच्छभावसे विचरणकारक, मर्ज़ीके मुवाफ़िक़ घूमने फिरनेवाला। २ यथेच्छभावसे पशु-चरानेवाला, जो मर्ज़ीके मुवाफ़िक़ मवेशी चराता हो।

कामचारिणी (सं० स्त्री०) सुगन्ध लताविशेष, एक खुशबूदार बेल।

कामचारी (सं० त्रि०) १ कामेन स्वेच्छया चरति, काम-चर-णिनि। कामुक, ऐयाश, छिनरा। २ यथेच्छचारी, मर्ज़ीके मुवाफ़िक़ चलनेवाला। (पु०) ३ गरुड़। ४ कलविङ्क, एक चिड़िया।

कामज (सं० त्रि०) कामात् जायते, काम-जन-ड। १ अभिलाषजात, ख़ाहिशसे पैदा। कामज व्यसन दश प्रकारका होता है,—

"मृगयाक्षो दिवास्वप्न: परीवाद: स्त्रियो मद:।
तौर्यत्रिकं वृथाट्या च कामजो दशको गण:॥" (मनुसंहिता)

मृगया (शिकार), द्यूतक्रीड़ा, दिवानिद्रा, परनिन्दा, स्त्रीसम्भोग, मद्यपान, नृत्य, गीत, वाद्य और वृथापर्यटन दश कामज व्यसन हैं। इनमें मद्यपान, द्यूतक्रीड़ा, स्त्रीसम्भोग और मृगया चार उत्तरोत्तर अधिक कष्टदायक होते हैं। कामज व्यसनमें आसक्त होने पर धर्म और अर्थलाभसे वञ्चित रहना पड़ता है। इसलिये इनको सर्वदा छोड़ना चाहिये। २ कामजात, मुहब्बतसे पैदा। (पु०) ३ कामदेवके पुत्र, अनिरुद्ध।

कामज्वर (सं० पु०) कामजश्चासौ ज्वरश्चेति, कर्मधा०। कामजन्य ज्वर, एक बोखार। कामरिपुके आधिक्यसे यह ज्वर आता है। वैद्यशास्त्रके मतसे इसका लक्षण,—

"कामजे चित्तविभ्रंशस्तन्द्रालस्यमभोजनम्।" (माधवनिदान)

मनकी विकलता, तन्द्रा, आलस्य और अभोजन है। भावप्रकाशके मतानुसार आश्वासवाक्य, अभीष्ट वस्तुके लाभ, वायुके उपशमकारक कार्य और हृष्ट रहनेके उपायसे यह ज्वर छूट जाता है। क्रोधसे भी इस ज्वरका उपशम होता है।

कामजननी (सं० स्त्री०) नागवल्ली, पानकी बेल।

कामजनि (सं० पु०) कामस्य जनिरुत्पत्ति: अस्मात्, बहुव्री०। १ कोकिल, कोयल। (त्रि०) २ सुगन्धि, खुशबूदार।

कामजा (सं० स्त्री०) वृक्षविशेष, एक झाड़। यह कर्णाटक देशमें प्रसिद्ध है। इसका बीज भी 'कामजा' कहाता है। वैद्यकनिघण्टु इसे मधुर, बल्य, कामवृद्धिकर, इन्द्रियवृत्तिकर और वृष्य बताता है। राजनिघण्टुके मतसे इसके बीजमें भी उक्त गुण होता है।

कामजान (सं० पु०) कामं जनयति, काम-जन-णिच्-अच् निपातनात् न ह्रस्व:। अथवा कामजं कन्दर्पभावं आनयति, कामज-आ-नी-ड। कोकिल, कोयल।

कामजित् (सं० पु०) कामं जयति, काम-जि-क्विप्। १ महादेव। २ कार्तिकेय। ३ जिनदेव।

कामज्येष्ठ (सं० त्रि०) कामको बड़ा समझनेवाला, जो ख़ाहिशका पाबन्द हो।

कामज्वर, कामजलर देखो।

कामठ (सं० त्रि०) कमठस्य इदम् कमठ-अण्। १ कच्छपसम्बन्धीय, कछुवेसे सरोकार रखनेवाला। २ कमण्डलु-सम्बन्धीय।

कामठक (सं० पु०) सर्पविशेष, एक सांप। धृतराष्ट्र नामक नागवंशमें इसने जन्म लिया था। फिर जनमेजय राजाके सर्पयज्ञमें यह मारा गया। (महाभारत आदि०)

कामठा—मध्यप्रदेशस्थ भण्डारा जिलेके तिरोरा विभागको एक जमीन्दारी। भूमिका परिमाण २८१ वर्गमील है। लोकसंख्या ७५ हजारसे अधिक है। कोई सवा सौ गांवोंसे तेरह हजारसे अधिक घर बने हैं। प्रायः सौ वर्षसे ऊपर हुये नागपुरके राजाके अधीन यह कुनबी वंशकी एक जमीन्दारी रही। किन्तु राजाके विपक्षमें विद्रोहाचरणसे उनके हाथसे निकाल यह किसी लोदी वंशीयको दी गयी। वह मालगुजारी दे इसे भोग करते हैं। इसमें कामठा नामक एक ग्राम भी है। वह अक्षा० २१° ३१′ और देशा० ८०° २१′ पू० पर अवस्थित है। लोकसंख्या डेढ़ हजारसे अधिक है। अधिवासी खेतीबारी करते हैं। कामठाके सरदार या जमीन्दार यहीं रहते हैं। उनके घर चारो ओर प्राचीर और गड़से वेष्टित हैं।

कामठी—मध्यप्रदेशके नागपुर जिलेका एक प्रधान नगर। यह अक्षा० २१° १२′ ३०″ उ० और देशा० ७९° १४′ ३०″ पू० पर अवस्थित है। यहां सेना-निवास (छावनी) है। कामठी नागपुर शहरसे उत्तर-पूर्व साढ़े चार कोस पड़ती है। लोकसंख्या पचास हजारसे अधिक है। यहां देशी विदेशी वस्त्र और लवण पश्वादिका क्रय-विक्रय होता है। अस्का व्यवसाय प्रायः माड़वारी महाजनोंके हाथ है। यहां वंशीलाल अबीरचंदकी बनवायी एक सुन्दर पक्की पुष्करिणी और उससे लगा एक मन्दिर तथा उद्यान है। कनहान नदीपर सेतु बंधा है। उसके ऊपर नागपुर और छत्तीसगढ़की रेल-गाड़ी चलती है। रेलका एक ष्टेशन भी है। औषधालय, विद्यालय और अतिथियोंके लिये धर्मशाला बनी है। यहां ४६० कूप देख पड़ते हैं।

कामड़िया (हिं० पु०) चमार-साधुसम्प्रदायविशेष। यह साधु राजपूतानेमें रहते हैं। रामदेवकी वाणी गाना और भिक्षा मांग कर अपनी जीविका चलाना इनका काम है।

कामण्डलव (सं० त्रि०) कमण्डलोर्भावः, कमण्डलु-अण् बहुव्री०। १ कमण्डलु सम्बन्धीय। (क्ली०) २ कमण्डलुका कार्य, कुम्हारका पेशा।

कामण्डलेय (सं० त्रि०) कमण्डल्वोरिदम्, कमण्डलु-ढ उवर्णस्य लोपः ढस्य एय। ढेलोपोऽकद्र्वाः। पा ६।४।१४७। आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्। पा ७।१।२। कमण्डलु-सम्बन्धीय।

कामतरु (सं० पु०) कामं यथेच्छं जातस्तरुः, मध्यपदलो०। १ वन्दाक वृक्ष, बांदा। यह पेड़ों पर आप ही आप उत्पन्न होता है। २ कल्पवृक्ष।

कामता—युक्तप्रान्तके बांदा जिलेका एक ग्राम। यह चित्रकूट पर्वतके निकट अवस्थित है। कामदगिरिके नाम पर इसे कामता कहते हैं।

कामतापुर—कोचविहार प्रान्तका एक ध्वंसावशिष्ट प्राचीन नगर। कामरूपके राजा नीलध्वज इसके स्थापयिता थे। यह नगर कामरूपके कामपीठमें अवस्थित है। जब कामरूपका राज्य पश्चिममें करतोया नदी तक विस्तृत था, तब यह नगर उस राज्यकी राजधानी रहा। उस समय इसकी शोभासमृद्धि जैसी थी, उसका चिह्नमात्र भी अब नहीं। आजकल यह एक क्षुद्र ग्रामकी अपेक्षा भी हीनावस्थामें हो गया है। भग्नावशेषके मध्य दुर्ग, राजप्रासाद, सरोवर, उद्यान, देवालय इत्यादि सकल विषयोंका ध्वंसावशेष है। इसके पश्चिम लालबाजार नामक एक छोटा शहर है। युरोपीय साधारणतः इसे लालबाजार ही कहते हैं।

पहले कामतापुर धरला नदीके पश्चिम तट पर अवस्थित था। किन्तु आजकल धरला प्राचीन स्थान छोड़ कितना ही पूर्वको हट गयी है। इसलिये यह उससे बहुत दूर पड़ता है। धरलाका प्राचीन गभीर विस्तृत स्थान आज भी कामतापुरके पूर्व खाली पड़ा है। उस स्थानको देखनेसे मालूम होता है कि पहले धरला आजकलकी अपेक्षा बहुत विस्तृत और

प्रबल नदी थी। कामतापुरके बीच इस समय भी एक क्षुद्र नदी प्रवाहित है। इसको "शिङ्गीमारी" * (शृङ्गीमारी वा सिंहमारी) कहते हैं। इस क्षुद्र नदीने प्राचीन नगर दो भागोंमें बांट दिया है। पूर्व खण्डसे पश्चिम खण्ड छोटा है। जहां शिङ्गीमारी नगरमें घुसी या जहां नगरसे निकली है, वहीं वहीं अधिकांश स्थान स्रोतके प्रवाहसे विनष्ट हो गया है।

नगर बहुत कुछ आयताकार है। परिधि प्रायः १९ मील होगा। उसके मध्य पूर्वको ही ५ मील धरलाका पुराना कोट उत्तर-पश्चिमसे दक्षिणपूर्व कोणके अभिमुख पड़ता है। नगर अपर तीनों दिक् मर्त्तिकाद्द तथा मृण्मय वृहत् प्राकारसे परिवेष्टित है। खाई दो हैं—एक नगरकी चारो ओर, और दूसरी नगरके अभ्यन्तरमें दुर्गके चारो ओर। ऐसा जान पड़ता है कि—दुर्गकी खाईको मिट्टी खोद दुर्गके मुरचे बनाये गये हैं। फिर नगरकी खाईकी मिट्टी निकाल खाईके बाहर ढालू पुश्ता बांधा है। यह पुश्ता और दुर्गका मुर्चा आजकल अधिकांश स्थलोंमें टूट गया है। नगरकी खाई और दुर्गका मुरचा ही उक्त कारणसे अति वृहत् और विस्तृत था। नगरकी खाईके आगे ही इसकी तीनों ओर नगर रक्षार्थ मुरचे हैं। पूर्वको धरला नदीको ओर कोई मुरचा नहीं। दुर्गकी खाईका विस्तार आजकल कहीं कम कहीं ज्यादा है। इसके किनारे पर आजकल खेती बारी होने लगी है। इसीसे खेतमें जलसंग्रहके लिये दुर्गकी खाई काट कर नाना स्थानोंमें मैदानसे मिला दी गयी है। दुर्गके मुरचोंका तलभाग प्रायः १३० फीट विस्तृत और २०। ३० फीट ऊंचा होगा। किन्तु देखते ही इसके अधिक उच्च रहनेकी प्रतीति होती है। कालक्रमसे शिखरदेशकी मृत्तिका छूट मूलदेशमें आ लगनेसे तलदेशको वस्तृति कुछ बढ़ गयी है। किन्तु इसके समझनेका कोई उपाय नहीं—पहले आयतन कितना बड़ा था? मुरचे नीचेसे ऊपर तक मिट्टीके बने हैं। भली भांति समझ पड़ता है कि बाहरी और इष्टकका आवरण था। नगरकी खाईका विस्तार इस समय भी २५० फीट है। किन्तु अब ठीक अनुमान कर नहीं सकते—गभीरता कितनी थी। कारण खाई बहुत भर आयी है। बाहरका पुश्ता देखनेसे मालूम होता है कि गभीरता भी बहुत सामान्य न होगी। नगरमें तीन तोरण वर्तमान हैं। फिर शिङ्गीमारीके पश्चिम पूर्व एक तोरण रहनेका अनुमान लगाते हैं। सम्भवतः इस तोरणके पास ही मुसलमानोंका डेरा था। ऐसा अनुमान करनेका कारण यह है कि यहां भी वैसी ही रक्षणोपयोगी व्यवस्था देख पड़ती है, जैसी अन्यान्य तोरोंके निकट खाई और मुरचोंमें मिलती हैं। एतद्भिन्न यहां एक तोरण रहनेका दूसरा प्रमाण भी है। इस स्थानसे एक पुरातन प्रशस्त राह बराबर उत्तरको ओर नगरके मध्य कोषागार नामक अट्टालिकाके भग्नावशेष तक चली गयी है। फिर वहां यह कुछ टेढ़ी पड़ दक्षिणमुख घोड़ाघाट पहुंची है। इस राह पर दूसरे भी साधारण कार्योंके चिह्न देख पड़ते हैं। यह राह नगरके बहिर्देशमें सौदल दीघीके तीरसे घोड़ाघाटको ओर गयी है। नगरसे दीघीतक राह प्रायः ३मील है। इसके भी उभय पार्श्व पर कई अट्टालिकाओंका भग्नावशेष है। इस देशके लोगोंके कथनानुसार नगरसे सौदल दीघी तक पथिपार्श्वस्थ भग्न अट्टालिकायें मुगलोंने बनवायी थीं। किन्तु यह उनका भ्रम मालूम होता है। इसके मध्य एक इष्टकस्तूपके ऊपर दो ओर दूसरे इष्टकस्तूप पर चार ग्रानाइट पत्थरके असम्पूर्ण एवं सौष्ठवशून्य स्तम्भ हैं। हिन्दूराजाओंके समय यहां बहुत अट्टालिकायें थीं। अवरोधके समय मुसलमानोंने उन अट्टालिकाओंपर अधिकार कर वास किया था। फिर उनकी दुर्दशा भी मुसलमानोंके हाथसे हुई जिस स्थानमें एक तोरण रहनेका अनुमान किया जाता है, उस स्थान और शिङ्गीमारी नदीके दो मील पश्चिम एक भग्नप्राय: तोरण मिला है। प्रस्तर-निर्मित स्तम्भादि रहनेसे इस तोरणका नाम "शिलाद्वार" है। यह सकल स्तम्भप्रस्तर सौष्ठव-शून्य हैं। और किसी प्रकार कारुकार्यविशिष्ट नहीं। शिलाद्वारसे दो मील पश्चिम दूसरा भी तोरण

* बहुतसे लोग अभी मतलबसे इसका नाम शृङ्गीमारी बताते हैं। फिर दूसरोंके कथनानुसार सिंहमन्दसे सिंहमारी बना है।

है। इसको "वाघद्वार" कहते हैं। इस तोरणके शिखरदेशमें एक व्याघ्रमूर्ति थी। नगरके उत्तरांशमें धरला नदीके प्राचीन स्थानके मुखसे पश्चिम प्रायः एक मील दूर "होकोद्वार" नामक तोरण है। कामरूप जिलेमें कई असभ्य लोगोंके नाम सुन पड़ते हैं। उनमें होको भी एक असभ्य जाति होगी। इसीसे होको नामक किसी असभ्य जातिके नामानुसार सम्भवतः तोरणका नाम भी रक्खा गया है। यह सकल तोरण इष्टकनिर्मित थे। इनके निकट नानाविध रक्षणोपयोगी उपाय थे। आज भी उन सबका भग्नावशेष पड़ा है। होकोद्वारके बहिर्देशमें राहके वामपार्श्व और शिल्लीमारीके पूर्व एक क्षुद्र दुर्ग है। यह प्रायः एक वर्गमील जमीन् पर बना है। इस दुर्गको "पात्रका गढ़" कहते हैं। कारण इसमें पात्र अर्थात् प्रधान मन्त्री रहते थे। इसकी गठनप्रणाली और व्यवस्थादि नगर-दुर्गकी भांति अधिक उत्कृष्ट नहीं। फिर भी यह इस प्रकार निर्मित हुवा है, कि नगर दुर्गसे ही इसकी रक्षाका कार्य अनायास चल सकता है। इस दुर्गसे कुछ उत्तर एक क्षेत्रके मध्य राजाका स्नानागार था। इसकी चारो ओर आजकल तम्बाकूकी खेती होती है। क्षेत्रके एक स्थानको आज भी "शीतलवास" कहते हैं। किन्तु यहां किसी प्रकारकी अट्टालिकाका चिह्न नहीं। यहां गमलेकी भांति पत्थरका एक पात्र विद्यमान है। वह ग्रानाइट पत्थर खोदकर बनाया गया है। इसका किनारा ६ इंच मोटा है। मुखका विस्तार साढ़े ६॥ फीट और गभीरता साढ़े तीन फीट है। इसके अभ्यन्तरमें पत्थरकी एक शिड्डी जैसी बनी है सम्भवतः उसीके सहारे इसमें उतरते थे। पत्थरके बाहर इस प्रकार चढ़नेका कोई उपाय नहीं। इसीसे अनुमान होता है कि पत्थर भूमिमें गड़ा था। फिर इसका किनारा स्नानभूमिके मध्यभागसे समपृष्ठ था। इस स्नानागारका क्षेत्र देखनेसे स्पष्ट समझते हैं कि स्नानागार और शीतलवास दोनों एक सुन्दर छायाशीतल मनोरम उद्यानके मध्य थे। कालक्रमसे उद्यानके वृक्षादि विनष्ट हो गये हैं। अथवा कृषिकार्यके लिये सकल वृक्षादि काट भूभाग बनाया गया है।

नगरके मध्य प्रधान स्थान दुर्ग और राजप्रासाद है। यह प्रायः नगरके मध्यस्थलमें अवस्थित है। इसकी चारो ओर ६० फीट विस्तृत एक खाई है। दुर्ग पूर्वपश्चिम १८६० फीट और उत्तर-दक्षिण १८८० फीट विस्तृत है। खाईके बाहर दुर्गका सुरक्षा और खाईके भीतर इष्टक-प्राचीर है। उत्तर और दक्षिण दिक् खाईके तीरसे यह प्राचीर लगा है। फिर पूर्व-पश्चिम प्राचीरकी बगलमें-चौड़ा ढालू पोश्ता है। दुर्गके सुरक्षोंके बाहर दक्षिणपूर्व कोणमें कई क्षुद्र पुष्करिणी और एक वृहत् तड़ाग है। अपर तीनों ओर दुर्गके मध्यविस्तारमें प्रायः २०० गज भूमि मट्टीके सुरक्षेसे वेष्टित है। यह वेष्टितस्थान तीन भागोंमें विभक्त है। सम्भवतः यह स्थान राजान्तःपुर रहा। इसके बाहर कई क्षुद्र पुष्करिणी हैं। किन्तु निकटमें अट्टालिकाका कोई चिह्न नहीं मिलता। दुर्गके अभ्यन्तरमें इष्टक-प्राचीरके मध्य उत्तरांशपर वृहत् स्तूप है। यह ३० फीट उच्च है। इसका शिखरदेश ३६० फीट विस्तृत और चतुष्कोणाकार है। इस स्तूपके दक्षिण-पश्चिम कोणमें एक क्षुद्र अथच गभीर पुष्करिणी है। इसीसे स्तूपका यह अंश आज भी नहीं बिगड़ा। इसकी चारो ओर इष्टककी टट्टी थी। किन्तु आजकल पुष्करिणीके तीरको छोड़ दूसरी किसी तरफ नहीं है। इसके निकट दूसरी भी कई क्षुद्र पुष्करिणी हैं। इनको देखते ही जान पड़ता है कि दुर्गकी रक्षा करनेको पुष्करिणी खोदी गयीं थीं। फिर उसी मृत्तिकाकी राशिसे यह स्तूप निर्मित हुवा। इस स्तूपका अभ्यन्तर इष्टकगठित नहीं, केवल बालू और मिट्टीसे भरा है। इस स्तूपके ऊपर उत्तर एवं दक्षिणभागमें ईंटोंसे बंधे १० फीट चौड़े दो कूप हैं। दोनों कूपोंका तलदेश तक बंधा है। स्तूपके ऊपर पूर्व-पश्चिम दो स्थान हैं। देखनेसे सहजमें ही समझ सकते हैं कि पहले वहां अट्टालिका थी। पूर्वको तरफ इसी ढेरपर वेदीकी भांति क्षुद्र चतुष्कोणाकार एक स्थान है। अनेकोंके अनुमानमें यहां कामतेश्वरीका प्राचीन मन्दिर था। यह अनुमान बहुत कुछ सत्य है। इस वेदीके पश्चिम दूसरा भी भग्नावशेष है। लोगोंके कथनानुसार वहां

राजभवन था। किन्तु यह असम्भव है। ऐसे क्षुद्र स्थानमें राजभवन बन नहीं सकता। सम्भवतः यह देवीका उत्सवमञ्च था। नीलकी कोठीके लिये यहांसे ईंटे संग्रहीत हुयी थीं। वह अति सुगठित रहीं। किन्तु यहां जो ईंटें आज भी इधर उधर पड़ीं हैं, वह भारतवर्षको साधारण ईंटोंसे कुछ विलक्षण नहीं। ढेरकी दक्षिण दिक् मध्यस्थलसे एक इष्टक-प्राचीर दुर्गप्राचीर तक उत्तर-दक्षिण विस्तृत है। इस प्राचीरकी पूर्व ओर कई इष्टकस्तूप हैं। सम्भवतः इन सकल स्थानोंमें दरवार लगता और सरकारी काम चलता था। इसी ओर ढेरके पूर्वगात्रमें उसीकी बराबर दीर्घ एक दीर्घिका है। कथनानुसार राजा इस दीर्घिकामें कई कुम्भीर पालकर रखते थे। इस दीर्घिकाके उत्तर-पूर्व कोणमें दूसरा क्षुद्र ढेर है। इस ढेरकी चारों ओर दीर्घिकासे एक नहर निकाल घुमा दी गयी है। इस क्षुद्र ढेरमें भी बहुत ईंटें पड़ी हैं। इससे यहां देवमन्दिर होनेका अनुमान करते हैं। कुम्भीर दीर्घिकासे बिलकुल पूर्व दूसरा एक ढेर है। लोगोंके कथनानुसार इस पर अस्त्रागार था। बड़े ढेरके पश्चिम दक्षिण और मध्य प्राचीरके पश्चिम जो खण्ड पड़ता है, वह प्राचीरके पूर्वखण्डकी अपेक्षा छोटा लगता है। सम्भवतः यहां राजाका भवन रहा। इसीके बिलकुल उत्तर अन्तःपुर था। अन्तःपुरकी पूर्व किनारे बड़ा ढेर है। पश्चिम ओर मिट्टीका मुरचा है। दक्षिण और उत्तरमें ईंटका प्राचीर है। इसके मध्यस्थलमें एक स्तूप है। अनुमानमें यह स्तूप अन्तःपुरस्थ कोई देवालय था। इस स्तूपके निकट दो पुष्करिणी हैं। सम्भवतः यही दोनों स्त्रियोंके व्यवहारार्थ पत्थरसे बंधी थीं। बड़े ढेरके दक्षिण-पश्चिम कोणकी पुष्करिणीके तीर पर दूसरे मन्दिरका भग्नावशेष है। अन्तःपुरके निकट इन दोनों पुष्करिणियोंमें और पूर्वोक्त बड़े ढेर पर (जिस स्थानमें कामतेश्वरीके मन्दिर रहनेका अनुमान किया गया था, वहां भी) प्रस्तरादिके भग्नखण्ड मिलते हैं। यहां ८ फीट लम्बा १८ इञ्च व्यासविशिष्ट धूसरवर्णके ग्रानाइट पत्थरके स्तम्भका एक खण्ड पड़ा है। इसका अग्रभाग अठपहल और मूलदेश चौकोर है। लोगोंके कथनानुसार यह स्तम्भका अंश नहीं, नीलाम्बर नामक नृपतिके अयोगोलकका खण्डमात्र है। प्रवादानुसार इस दुर्गको विश्वकर्मा और नगरके वहिर्देशका मुरचा नगराधिष्ठात्री कामतेश्वरी देवीने अपने हाथ बनाया था। पूर्वदिक्में धरलाके तीर कामतेश्वरी-निर्मित मुरचा नहीं। कथनानुसार इसके निर्माण-समय राजाको देवीके आदेशसे एकादिक्रमसे चार दिन उपवास रखना था। किन्तु तीन दिन बीत जाने पर राजा फिर क्षुधा सह न सके और चतुर्थ दिन आहार करने लगे। उस समय देवीने भी तीन ही ओरका मुरचा बांधा था। इस लिये चौथी ओरका मुरचा बंध न सका। धरलाके तीरसे बाघद्वार तक एक प्रशस्त पथ है। राजप्रासादके भग्नावशेषसे एक मील दूर शिङ्गीमारी नदीकी वर्तमान खाड़ी है। इसके निकट दूसरी भी क्षुद्र खाड़ी है। उसके ऊपर बाघद्वारके सम्मुख कुछ दूर ईंटका मेहरावदार पुल है। इसी पुल पर होकर उक्त धरला बाघद्वारको राह है। बाघद्वारके निकट एक प्रस्तरमय स्थान है। लोग उसे गौरीपट्ट कहते हैं। इसका शिवलिङ्गांश टूट गया है। हहदाकार शिवलिङ्ग पर मन्दिर था। आजकल उसका चिह्नमात्र मिलता है। निकट ही एक पुष्करिणी है। वह पूर्वपश्चिम ३०० फीट दीर्घ और उत्तर-दक्षिण २०० फ़ीट विस्तीर्ण है। दोनों ओर दो घाट बने हैं। निकट ही कई उत्कीर्ण मूर्तिविशिष्ट हहदाकार प्रस्तर हैं। उनसे एकमें अर्धनागिनीमूर्ति और दूसरेमें वैष्णव-वैष्णवीमूर्ति खुदी है।

आसामकी बुरुञ्जी पढ़नेसे समझते हैं कि ई० १४श शताब्दके प्रथम भाग कामरूपमें नीलध्वज नामक एक राजा थे। उनके सम्बन्धमें कई प्रवाद हैं—बगुड़ा जिलेवाले ब्राह्मणके एक गोरक्षक रहा। वह गोरक्षक बड़ा दुष्ट था, दूसरेका अनिष्ट करना उसे अच्छा लगता था। प्रतिदिन दूसरेके खेतमें गो आदि छोड़ वह स्वयं सोया करता था। प्रत्यह शस्यकी ऐसी हानि देख सबने ब्राह्मणसे उसके भृत्यके दुर्व्यवहारको बात कही। ब्राह्मणने एक दिन स्वयं उक्त विषयका

अनुभव करनेका मैदान जा देखा कि उसका गोरक्षक एक पेड़के नीचे पड़ा सोता है और एक सर्प फणा फैला उसके मुखको धूप रोक रहा है। ब्राह्मण सर्प देख कर डरा और द्रुतपद भागने लगा। उसी समय सर्प मनुष्य आते देख सरक गया। ब्राह्मणने पास जा कर देखा कि उसके पदतलमें अष्टदल पद्म, त्रिशूल, ऊर्ध्वरेखा प्रभृति राजलक्षण है। यह देख ब्राह्मण उसे जगा कर घर ले गया और किसी प्रकारका नीचकर्म करनेको निषेध किया। अवशेषको एक दिन ब्राह्मणने उससे बुलाकर प्रतिज्ञा करा ली—किसी दिन राजा होने पर वह उनको मन्त्री बनायेगा। कालक्रमसे कामरूपराज धर्मपालके तदानीन्तन वंशधर दुर्बल पड़ गये। फिर वही गोपालक उनको मार स्वयं नीलध्वज नामसे राजा हुवा और अपने राज्यका "ब्राह्मणराज्य" नाम रख प्रतिपालक ब्राह्मणको मन्त्री बनाया। दूसरे प्रवादके अनुसार किसी ब्राह्मणके घर एक दासी थी। उसीके गर्भसे एक पुत्रसन्तान हुवा। ब्राह्मणने उसे गोरक्षामें नियुक्त किया। कालक्रमसे उक्त रूपसे वही गोरक्षक नीलध्वज हुवा। फिर कोई कहता है कि गोरक्षक असुर (असभ्य जातीय) था। अन्तत: राजा नीलध्वजने मिथिलासे ब्राह्मण और कायस्थ ले आकर कामरूपमें बसाये थे। फिर "कामतापुर" * नामसे उन्होंने एक नगर भी बसाया। नीलध्वजने इस नगरमें राजधानी स्थापन कर "कामतेश्वर" उपाधि ग्रहणपूर्वक अपनेको "सप्तकुट्र" नामसे प्रचारित किया था।

नीलध्वजके पीछे उनके पुत्र चक्रध्वज और चक्रध्वजके पीछे उनके पुत्र नीलाम्बर राजा हुये। नीलाम्बरने ही घोड़ाघाटके गढ़ और अनेक कीर्तिको स्थापन किया। एकबार नीलाम्बरराजके मन्त्रिपुत्र राजरानी पर आसक्त हुये। राजाने उन्हें मार और उनका मांस पका मन्त्रीको खिलाया था। मन्त्रीके खा चुकने पर राजाने उन्हें पुत्रमुण्ड देखाया और समस्त विवरण बताया। मन्त्री लघु पाप पर गुरु दण्ड देख पतित राजसंसर्ग परित्याग पूर्वक गङ्गाके स्नानच्छलसे कामरूप छोड़ चल दिये। फिर उन्होंने गङ्गास्नान कर प्रतिशोध लेनेको गौड़ेश्वर हुसेन शाह नवाबसे साहाय्य मांगा था। नवाबने राज्यकी अवस्था समझ बूझ कर बहु सैन्य सह कामरूपकी यात्रा की। घोर युद्ध होते भी कामतेश्वर पराजित न हुये। इसीसे नवाब नगर घेर बैठ गये। अवरोध १२ वर्ष पर्यन्त रहा। मुसलमानोंने इस दीर्घकालके मध्य नगरके बाहर्भागमें अनेक कीर्ति विनष्ट कर अपने रहने योग्य अट्टालिका और पुष्करिणी तक बनवा लीं। अवशेषमें उन्होंने कौशल अवलम्बन किया था। राजाको यह सम्वाद भेजा गया—मुसलमान अवरोध छोड़ चले जायेंगे, किन्तु जानेसे पहले मुसलमानोंकी रमणी रानीसे साक्षात् करना चाहती हैं। नीलाम्बर प्रस्ताव पर सम्मत हुये। किन्तु मुसलमानोंने दोलामें स्त्रियोंको न भेज सशस्त्र योद्धा रवाना किये। उन्होंने भीतर पहुंच नगर अधिकार किया और राजाको बांध लिया। किसीके कथनानुसार बन्दी राजा गौड़को प्रेरित हुये और किसीके कथनानुसार वह मार डाले गये। फिर कोई कहता है कि राजा प्राण बचा भागे थे। अन्तत: नगर मुसलमानोंने अधिकार किया। १४२० शकको कामतापुरमें मुसलमानोंकी जयपताका उड़ी थी। आज वही नगर भग्नस्तूप मात्रमें परिणत है, जिसने ४००सौ वर्ष पूर्व एककाल मुसलमानोंका द्वादश वार्षिक अवरोध अनायास सह लिया। कालकी विचित्र महिमा है!

"गुरुजनकथाचरित्र" नामक आसामके ग्रन्थमें लिखा है,—कामतापुरमें दुर्लभनारायण नामक एक राजा थे। उनके साथ गौड़ेश्वर धर्मनारायणका एक भीषण युद्ध हुवा। दुर्लभनारायणको ही कोई कामरूपके राजा धर्मपालका और कोई "जितारि"का वंशीय बताते हैं। अन्तत: युद्धमें अनेक लोग मारे गये। फिर दोनों राजाओंने रातको स्वप्न देख दूसरे दिन सख्यता-स्थापन-पूर्वक सन्धि कर ली।

---

* नीलध्वजने सम्भवत: १२५०।६० शकाब्दको कामतापुर पत्तन किया था। किन्तु किसी किसीके अनुमानमें कामतापुर नामक एक क्षुद्र नगर पहलेसे ही रहा। नीलध्वज उसी नगरका विस्तार बढ़ा और दुर्गादि बना केवल राजधानी वहां ले गये। १२२०।३० शकमें भी इस नगरका नामोल्लेख मिलता है।

इसके पीछे गौड़ेश्वरने कामरूपकी अवस्था देख राजा दुर्लभनारायणके पास सात ब्राह्मण और सात कायस्थ भेजे थे। इन्हीं चौदह मनुष्योंमें प्रधान १२ आदमियोंको राजा दुर्लभनारायणने "बारभूँया" आख्या दी। कामरूप देखो। बारभूँया ही सम्भवतः गौड़ेश्वरके सेनापति थे। दुर्लभनारायणने उनके साहाय्यसे भोट-राजका विद्रोह दबाया था। कालक्रममें कामरूपके मध्य कोचजातिकी संख्या और प्रभाव बढ़नेसे राजा दुर्लभ-नारायण कुछ श्रीभ्रष्ट हो गये। फिर आदि भूयांवोंके मरनेसे वह अधिक उत्कण्ठित हुये। कुछ दिन पीछे कोचोंके मध्य हाजो नामक किसी सरदारको प्रधानत्व मिला। वह क्रमशः अपना अधिकार बढ़ाने लगा। और अवशेषमें घोड़ाघाटको छोड़ आसाम प्रदेशका राजा बन बैठा। इसके हीरा और जीरा दो कन्या भिन्न अन्य कोई सन्तान न थी। दोनों कन्यावोंके अविवाहितावस्थामें अति अल्प दिनके आगे पीछे दो सन्तान हुये। जीराके सन्तानका नाम शिशु और हीराके सन्तानका नाम विशु था। हाजोराजकुमारी कन्यावोंके पुत्र होते देख महा चिन्तान्वित हुये। उसी समय देववाणी सुन पड़ी थी—यह दोनों पुत्र देवदेव महादेवके औरससे उत्पन्न हुये हैं। किसी किसीके कथनानुसार हरिया नामक किसी मेच जातीय सर-दारसे हीराका विवाह हुवा था, किन्तु उसके औरससे उत्पन्न नहीं। अन्तको यह दोनों सन्तान विशेष पराक्रमी हुये। इन्होंने अपना नाम "विश्वसिंह" और "शिवसिंह" रखा तथा अपनेको शिववंशीय एवं स्वश्रेणीके लोगोंको "राजवंशीय" बता प्रचार किया। क्रमशः विश्वसिंह नाना देश (बुकनीके मतमें १४२०से ३० शकके मध्य) कामतापुर अधिकार कर राजा हुये और श्रीहट्टसे वैदिक ब्राह्मण ला "कामरूपी ब्राह्मण" आख्या दे स्वराज्यमें बसा दिये। इन्होंने बौद्धधर्म बढ़ते समय लुप्तप्राय कामाख्यापीठका उद्धार किया था।

कामतापुर कितने दिनका है? बुकनीके मतसे राजा नीलध्वज कामतापुरके स्थापयिता नहीं, संस्कार-कर्ता और राजधानीकर्ता मात्र थे। ग्रन्थके अनुसार राजा नीलध्वजने १२५०—६० शकको (१३२८—३८ ई०) यहां राजधानी स्थापित की। उक्त ग्रन्थको ही देखते १४२० शकमें (१४९८ ई०) हुसेन शाहने कामतापुर अधिकार किया था। १२ वर्ष अवरोधके पीछे नगर अधिकृत हुवा। सुतरां १४०८ शकको (१४८६ ई०) हुसेन शाहने प्रथम नगर पर आक्रमण किया। उस समय नीलध्वजके पौत्र नीलाम्बर कामतापुरके सिंहासन पर अधिष्ठित थे। सुतरां नीलध्वजके समयसे नीलाम्बरको राज्यकाल-समाप्तिके मध्य प्रायः १५०।१६० वर्ष व्यतीत हुये। फिर नीलध्वजवंशीय राजा-वोंने प्रत्येक न्यूनाधिक ५५ वर्ष राजत्व किया। पूर्व-भारतके इतिहास-लेखक मिष्टर मण्टगोमारी मार्टिन साहबने इस सम्बन्धमें जो कालसंख्या निर्देश की है, उसके साथ इसका मेल नहीं। उनके कथनानुसार १४९६ ई०को (१४१८ शक) हुसेन शाहने और १५२३ ई० को (१४४५ शक) अव्यवहित परवर्ती गौड़राज नसरत शाहने राज्यारोहण किया था। सुतरां हुसेन शाहका राजत्वकाल २७ वर्ष रहता है। २७ वर्षसे नगरावरोधके १२ वर्ष (मार्टिन साहब इसे नहीं मानते। वह इस बातको अतिशयोक्ति समझ छोड़ देना चाहते हैं। फिर वह स्वयं भी अवरोधकालकी कोई संख्या नहीं बताते।) निकाल डालने पर १५ वर्ष बचते हैं। फिर विश्वसिंहके कामतापुरका अधि-कारकाल बुकनीके मतमें १४२० और १४३० शकके (१४९८ और १५०८ ई०) मध्य था। मिष्टर मार्टिनने विश्वसिंहके कामतापुर अधिकार की कोई बात नहीं लिखी। उक्त कालसंख्याके अनुसार हुसेन शाहने स्वीय राज्यारोहणके कालसे (मार्टिनके मतमें १४९६ ई० या १४१८ शक) प्रायः ७० वर्ष पीछे (बुकनीके मतमें १४०८ शक या १४८७ ई०) कामता-पुर पर आक्रमण किया था। किन्तु मार्टिनके मतसे उनके राजत्वकालका परिमाण केवल २७ वर्ष था। फिर बुकनीके मतसे कामतापुरका आक्रमण-काल १४०८ शक या १४८६ ई० रहा। किन्तु मार्टिनके मतसे उक्त समय (१४९६+१५) १५११ ई० (१४४३ शक) या उससे दो-चार वर्ष पूर्व था। कारण बुकनीके मतसे विश्वसिंहके कामतापुरका

अधिकारकाल विवेचना करनेसे समझ पड़ता है कि कुछ दिन कामतापुरमें मुसलमानोंका अधिकार रहा।

कामतापुर नामका कारण क्या है? बुरञ्जीके मतसे नीलध्वज इसके स्थापयिता नहीं। किन्तु उनके द्वारा संस्कृत होनेसे इसका प्राचीन नाम मौजूद रहा। क्योंकि बुरञ्जी पढ़नेसे १२२० शकमें भी इसका नाम मिलता है। किन्तु इसके मूल स्थापयिताका नाम बुरञ्जीमें नहीं लिखा है। इस नगरमें शिङ्गीमारीके तीरवर्ती गोसाईनीमारी नामक स्थानपर कामतेश्वरी देवी हैं। अनेकोंके मतानुसार इन्हीं देवीके नाम पर नगरका नामकरण हुवा है। कामतापुरके दुर्गमें भग्नावशेषके विवरणस्थल पर कामतेश्वरी देवीका उल्लेख किया गया है। दुर्गमें उत्तरांशके वृहत् स्तूप पर इनके प्राचीन मन्दिरका भग्नावशेष है। इन देवीके सम्बन्धमें एक प्रवाद है,—"प्राग्ज्योतिष्पुराधिपति भगदत्तको शिवके वरसे एक कवच मिला था। महाभारतके युद्धमें भगदत्तके मरने पर यह कवच हस्तिनापुरमें ही रहा। शेषको उक्त नीलध्वजके पुत्र चक्रध्वजने एक दिन स्वप्नमें देख और स्वप्ननिर्दिष्ट उपायसे कवच आहरण कर दुर्गके मध्य मन्दिर निर्माण पूर्वक स्थापन किया। उन्हें स्वप्नमें ही कवचकी पूजा-पद्धति और अधिष्ठात्री देवीकी मूर्ति अवगत हुयी थी। उन्होंने उसीके अनुसार देवीकी प्रतिमा बनवा उसके मध्य कवच रख दिया। पहले इसके निकट बलि होता था। अवशेषको मुसलमानोंके हाथ देवीकी प्रतिमा विनष्ट होने पर कवच एक पुष्करिणीमें छिप गया। उसके पीछे विश्वसिंह-वंशीय विहारके चतुर्थ राजा प्राणनारायणके अधिकारकालमें भूना नामक एक धीवरने उस स्थान पर एक पुष्करिणीमें मत्स्य पकड़नेको जाल डाला, जहां शिङ्गीमारी नदीने नगरमें प्रवेश किया है। किन्तु वह जाल इतना भारी समझ पड़ा कि किसी प्रकार उठ न सका। अवशेषको धीवरने राजाके निकट सम्वाद भेजा। राजा प्राणनारायण कवचका व्यापार जानते और उसके लिये उत्सुक भी थे। उक्त सम्वाद सुन वह उल्लसित हुये। उन्होंने ब्राह्मणोंसे परामर्श कर हाथी पर चढ़ा एक ब्राह्मण भेजा था। ब्राह्मणको वहां जाने पर डुबकी लगानेसे जालमें कवच मिल गया। उन्होंने हस्तस्थित एक रेशमी थैलीमें डाल उसे हाथीकी पीठ पर रखा और हाथीको उसकी इच्छाके अनुसार चलने दिया। हाथी शिङ्गीमारीके तीरसे जाने लगा। अवशेषको जहां नदीने प्राचीन नगरकी सीमाको छोड़ा है, उसीके निकट गोसाईंनीमारी नामक स्थान पर वह खड़ा हो गया; फिर किसी प्रकार वहांसे न हटा। ब्राह्मणोंने स्थिर किया कि देवी वहांसे जाना चाहती न थीं। इसीसे राजाने वहां मन्दिर बनवा दिया। प्रथमतः विश्वसिंहके आनीत वैदिक ब्राह्मणोंमें एक पूजक नियुक्त हुवा था। किन्तु देवीने स्वप्नमें मैथिली ब्राह्मणोंके मध्य पूजक नियुक्त करनेकी आदेश दिया। कारण वही पहले देवीको पूजा करते थे। इसी प्रकार एक मैथिली ब्राह्मण पूजक बनाये गये। कुछ दिन बीतने पर उन्होंने राजासे कहा—'देवीके आदेशसे हमें प्रत्यह रात्रिको मन्दिरमें चक्षु बांधकर जाना पड़ता है। हम वहां तबला बजाते हैं। देवी एक सुन्दरीके वेशमें नग्न होकर ताल ताल पर नाचती हैं। किन्तु देवीके निषेधसे हमने उन्हें कभी इस प्रकार आंखसे नहीं देखा।' यह बात सुन राजाको कौतूहल उत्पन्न हुवा। वह उसी रात्रिको मन्दिर जा दरवाजेकी सांससे झांकने लगे। देवी अन्तर्यामिनी हैं। उन्होंने राजाको देखते ही नृत्य बन्द कर शाप दिया,—अतःपर यदि वर्तमान नारायणवंशीय कोई राजा किसी दिन या रातको मन्दिरकी सीमामें आवेगा, तो उसी समय वह मर जायेगा। उस दिनसे आज तक उनके वंशीय मन्दिरकी सीमाके मध्य प्रवेश नहीं करते। किन्तु सेवाका प्रबन्ध लगा दिया जाता है। यह मन्दिर आज भी बना है। मन्दिर इष्टकनिर्मित है। गठनप्रणाली मुसलमानी चालकी है। मन्दिरकी चारो ओर पुष्पोद्यान है। प्रतिमा नूतन है। निर्मित प्रतिमाके गर्भमें उक्त कवच रखा है। मन्दिरके मध्य एक प्रस्तरफलक पर वासुदेवकी मूर्ति उत्कीर्ण है। कथनानुसार यह प्रस्तरखण्ड प्राचीन नगरके भग्नावशेषसे मिलता है। प्रवादानुसार अर्ब पाने पर पलक

यात्रियोंको प्रतिमाके गर्भसे कवच निकाल कर देखा देते हैं। किन्तु यह कार्य बहुत छिप कर किया जाता है।

कामतापुरके ध्वंसावशेषमें आजकल कृष्णकाय भालुकका आवास बना है।

आईन-अकबरीमें भी कामतापुरका उल्लेख है। मार्टिन साहब मालदहसे हस्तलिखित एक प्राचीन पुस्तक लाये थे। उसमें बंगदेशका विवरण लिखा है। उसके लेखानुसार नसरत शाहके अव्यवहित पूर्ववर्ती हुसेन शाहने कामतापुरेश्वर हरपनारायणको मार उनका राज्य जीता। हरपनारायण सदा लक्ष्मीमान् राजके पौत्र और मालिकाङ्गराजके पुत्र थे।

कामताल (सं॰ पु॰) कामं तालयति प्रतिष्ठापयति, काम-तल्-णिच्-अण्। कोकिल, कोयल।

कामतिथि (सं॰ स्त्री॰) कामस्य पूजार्थं प्रशस्ता तिथिः, मध्यपदलो॰। त्रयोदशी, तेरस। इसी तिथिको कामदेवकी पूजा करते हैं।

कामद (सं॰ त्रि॰) कामं अभिलाषं ददाति, काम-दा-क। १ कामदाता, मुराद पूरी करनेवाला। (पु॰) कामं द्यति स्वसौन्दर्येण अवखण्डयति ऊर्ध्वरेतस्त्वात् नाशयति वा, काम-दो-क। २ कार्त्तिकेय।

कामदगिरि (सं॰ पु॰) चित्रकूट पर्वत। चित्रकूट देखो।

कामदमणि (सं॰ पु॰) चिन्तामणि।

कामदमिनी (सं॰ स्त्री॰) कामस्य दमः उपशमः अस्त्यस्याः, काम-दम-इनि। कामरिपुको वशीभूत करनेवाली स्त्री, जो औरत अपनी ख्वाहिश दबा चुकी हो।

कामदर्शन (सं॰ त्रि॰) कामं मनोज्ञं दर्शनं यस्य, बहुव्री॰। सुन्दर, खूबसूरत।

कामदहन (सं॰ पु॰) शिव।

कामदा (सं॰ स्त्री॰) कामं अभीष्टं ददाति, काम-दा-क-टाप्। १ कामधेनु। २ नागवल्ली लता, पान। ३ हरीतकी, हर। ४ एक देवी। महिरावण इन्हें पूजता था। ५ छन्दो विशेष। इसमें दश अक्षर रहते और क्रमानुसार रगण, यगण तथा जगण लगते हैं।

कामदानी (हिं॰ स्त्री॰) १ कृत्रिम पुष्पादि, बेलबूटा। यह बादलेके तार या सलमेसितारेसे बनती है। २ वस्त्रविशेष, एक कपड़ा। इसपर सलमेसितारेके फूल निकाले जाते हैं।

कामदार (हिं॰ पु॰) १ राज्यप्रबन्धकारी, रियासतका इन्तिज़ाम करनेवाला। राजपूताने और मालवेके राज्योंमें कामदार रहते हैं। (वि॰) कलाबत्तूके बेल-बूटोंवाला।

कामदीपकरस (सं॰ पु॰) वाजीकरणका एक औषध, ताकतकी कोई दवा। श्वेतपुनर्नवाका मूल, मोच रस, पारा और गन्धक बराबर शाल्मलीकी छालके रसमें मिलाकर गोली बांधनेसे यह प्रस्तुत होता है। इसका नाम चाण्डालिकयोग है। एक गोली दो पल दूधके साथ खानेसे बहुत बलवीर्य बढ़ता है। (रसरत्नाकर)

कामदुघ (सं॰ त्रि॰) कामं दोग्धि, काम-दुह-क्त हस्य घः। अभीष्टसम्पादक, मुराद पूरी करनेवाला।

कामदुघा (सं॰ स्त्री॰) काम-दुह-टाप्। कामधेनु। कामधेनु देखो।

कामदुह् (सं॰ त्रि॰) काम-दुह-क्विप्। अभीष्टप्रद, ख्वाहिश पूरी करनेवाला।

कामदुहा, कामदुघा देखो।

कामदूता (सं॰ स्त्री॰) मनःशिला।

कामदूति, कामदूती देखो।

कामदूतिका (सं॰ स्त्री॰) कामस्य दूतिका इव उद्दीपकत्वात्। नागदन्ती, हाथीसूंड।

कामदूती (सं॰ स्त्री॰) कामस्य दूतीव, उपमित-समा॰। १ मनःशिला। २ पाटलवृक्ष, परवलकी बेल। ३ कोकिला, कोयल।

कामदेव (सं॰ पु॰) काम एव देवः। १ कन्दर्प। इसका संस्कृत नामान्तर—मदन, मन्मथ, मार, प्रद्युम्न, मीनकेतन, कन्दर्प, दर्पक, अनङ्ग, पञ्चशर, स्मर, शम्बरारि, मनसिज, कुसुमेषु, अनन्यज, पुष्पधन्वा, रतिपति, मकरध्वज, आत्मभू, ब्रह्मसू और विश्वकेतु है। शास्त्रकार कामदेवके पचास भेद बताते हैं,—१ काम, २ कामद, ३ कान्त, ४ कान्तिमान्, ५ कामग, ६ कामचर, ७ कामी, ८ कामुक, ९ कामवर्धन,

१० राम, ११ रम, १२ रमण, १३ रतिनाथ, १४ रतिप्रिय, १५ रात्रिनाथ, १६ रमाकान्त, १७ रममाण, १८ निशाचर, १९ नन्दक, २० नन्दन, २१ नन्दी, २२ नन्दयिता, २३ पञ्चबाण, २४ रतिसख, २५ पुष्पधन्वा, २६ महाधनु, २७ भ्रामक, २८ भ्रमण, २९ भ्रममाण, ३० भ्रम, ३१ भ्रान्त, ३२ भ्रामक, ३३ भृङ्ग, ३४ भ्रान्तचार, ३५ भ्रमावह, ३६ मोहन, ३७ मोहक, ३८ मोह, ३९ मोहवर्धन, ४० मदन, ४१ मन्मथ, ४२ मातङ्ग, ४३ भृङ्गनायक, ४४ गायन, ४५ गीतिज, ४६ नर्तक, ४७ खेलक, ४८ उन्मत्तोन्मत्तक, ४९ विलास और ५० लोभवर्धन।

निम्नलिखित कई स्थान कन्दर्पके माने गये हैं,—

"पादे गुल्फे तथोरौ च भगे नाभौ कुचे हृदि।
कक्षे कण्ठे च ओष्ठे च गण्डे नेत्रे श्रुतावपि॥
ललाटे शीर्षकेशेषु कामस्थानं तिथिक्रमात्।
दक्षे पुंसां स्त्रिया वामे शुक्लकृष्णे विपर्ययः॥
पादाङ्गुष्ठे प्रतिपदि द्वितीयायाञ्च गुल्फके।
ऊरुदेशे तृतीयायां चतुर्थ्यां भगदेशतः॥
नाभिस्थाने च पञ्चम्यां षष्ठ्यान्तु कुचमण्डले।
सप्तम्यां हृदये चैव अष्टम्यां कक्षदेशतः॥
नवम्यां कण्ठदेशे च दशम्यां ओष्ठदेशतः।
एकादश्यां गण्डदेशे द्वादश्यां नयने तथा॥
श्रवणे च त्रयोदश्यां चतुर्दश्यां ललाटके।
पौर्णमास्यां शिखायाञ्च ज्ञातव्यञ्च इति क्रमात्॥"

(स्मरदीपिका)

पदद्वय, गुल्फद्वय, ऊरुद्वय, भग, नाभि, कुचद्वय, हृदय, कक्ष, कण्ठ, ओष्ठ, गण्ड, चक्षु, कर्ण, ललाट, मस्तक और केशमें तिथिके अनुसार कामदेवका अधिष्ठान होता है। शुक्लपक्षमें पुरुषके दक्षिण अङ्ग एवं स्त्रीके वाम अङ्ग और कृष्णपक्षमें पुरुषके वाम अङ्ग तथा स्त्रीके दक्षिण अङ्गकी क्रमानुसार उक्त स्थान समूहका विपर्यय पड़ता है। प्रतिपद् तिथिको पदके अङ्गुष्ठ, द्वितीयाको गुल्फ, तृतीयाको ऊरुदेश, चतुर्थीको भग, पञ्चमीको नाभि, षष्ठीको कुचमण्डल, सप्तमीको हृदय, अष्टमीको कक्ष, नवमीको कण्ठ, दशमीको ओष्ठ, एकादशीको गण्ड, द्वादशीको चक्षु, त्रयोदशीको कर्ण, चतुर्दशीको ललाट और पूर्णिमाको मस्तकमें कामदेव रहता है।

कामदेवकी ध्येयमूर्ति इस प्रकार कही है,—

"कामदेवस्तु कर्तव्यः शङ्खपद्मविभूषणः।
चापबाणकरश्चैव मदाकुञ्चितलोचनः॥
रतिः प्रीतिस्तथा शक्तिर्भार्यास्य तासामुज्ज्वला।
चतस्रस्तस्य कर्तव्याः पत्न्यो रूपमनोहराः॥
चत्वारश्च करास्तस्य कार्या भार्यास्तनोपमाः।
केतुश्च मकरः कार्यः पञ्चबाणमुखो महान्॥"

(हेमाद्रिधृत विष्णुधर्मोत्तर)

कामदेव शङ्ख, पद्म, धनुः और बाण धारण करते हैं। मदके कारण चक्षु ईषत् कुञ्चित हैं। केतु मकर है। पञ्च बाण हैं। रति, प्रीति, शक्ति और उज्ज्वला नाम्नी चार स्त्री हैं।

वेदमें कामकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें कहा है,—

"कामो जज्ञे प्रथमो नैनं देवा आपुः।" (ऋक् १०।१२९।४)

सर्वप्रथम मनके ऊपर कामका आविर्भाव आता है। सुतरां उसीसे पहले उत्पत्तिका कारण निकला है।

कालिकापुराणमें भी लिखा है,—

ब्रह्माने दक्ष प्रभृति मानस पुत्रोंकी सृष्टि की थी। उसी समय सन्ध्या नाम्नी एक रूपवती कन्याभी उत्पन्न हुयी। उस मनोरम कन्याको देख ब्रह्माके हृदयमें चिन्ता उठी—'यह जगत्का कौन कार्य करेगी।' इसीसे परम रमणीय मूर्ति कामदेवका जन्म हुआ। ब्रह्माने उन्हें जगत्के नरनारीसमूहको मुग्ध करनेके लिये आदेश दे पुष्पधनुः और पुष्पशर प्रदान किया। कामदेवने यह देखना चाहा कि उस पुष्पवाण द्वारा कार्य सिद्धि होगी या नहीं। इसीसे उन्होंने परीक्षाके लिये समीपस्थ ब्रह्मा, दक्षादि ऋषि और सन्ध्या पर बाणाघात किया। उससे सकल कामपीड़ित हो गये। उसी समय महादेव वहां आ पहुंचे। उन्होंने कन्याके प्रति ब्रह्माका कामभाव देख उपहास किया था। ब्रह्माने उस उपहाससे अत्यन्त लज्जित हो कामका वेग रोका। फिर उन्होंने कामको अत्यन्त क्रुद्ध हो अभिशाप दिया था—तू हरके कोपानलसे जल जावेगा। कामदेवने अकारण इस प्रकार अभिशप्त हो ब्रह्माके अनुग्रहकी प्रार्थना की। उस समय ब्रह्माने भी कामदेवका वैसा अपराध न देख यह कह कर आश्वस्त

किया कि वह फिर शरीर पायेगा और दक्षकी देहजात रति नाम्नी सुन्दरी रमणीको कामदेवकी पत्नी बना दिया। (कालिकापुराण १अ०)

इधर सन्ध्या यह सोच अत्यन्त दुःखित हुयीं कि पिता तथा भ्राता उन्हें चाहते थे और अपना दूषित देह छोड़नेको तपस्या करने लगीं। कठोर तपस्यासे प्रीत हो भगवान्‌ने उनसे वर मांगनेको कहा। सन्ध्याने प्रथमतः अन्य कोई वर न मांग यही चाहा था कि प्राणी उपजते हो सकाम न हों। भगवान्‌ने उनकी इस प्रार्थनाके अनुसार शैशव, कौमार, यौवन एवं वार्धक्य चार भागमें वयःक्रम बांट तृतीय भाग अर्थात् यौवनको कामोत्पत्तिके कालरूपमें निर्देश किया और कौमारका शेष समय भी उसीके भीतर लगा दिया। (कालिकापुराण १८अ०) इसीसे प्राणियोंके उत्पन्न होते ही कामभाव प्रकाशित नहीं होता।

देव तारकासुरके उत्पीड़नसे अत्यन्त व्यतिव्यस्त हुये थे। उसी समय इन्द्रके आदेशसे कामदेवको शिवका ध्यान भङ्ग करने जाना और कुछ दिनके लिये अङ्गहीन होना पड़ा। शिवपुराणमें इसकी आख्यायिका इस प्रकार वर्णित है,—"महादेवी सतीने दक्षके यज्ञमें देह छोड़ा था। उसके पीछे महादेव कठोर जितेन्द्रियता अवलम्बनपूर्वक महायोगमें निमग्न हुये। उसी समय तारकासुरने देवसमूहके प्रति अत्यन्त उत्पीड़न आरम्भ किया। देव व्यतिव्यस्त हो उसके वधसाधनका उपाय सोचने लगे। इन्द्रादि देवगणने स्वयं कोई उपाय निश्चय न कर सकने पर ब्रह्मासे परामर्श मांगा था। ब्रह्माने उनसे कहा,—'महादेवके वीर्य व्यतीत तारकासुरका निधन न होगा। महेश्वरी सती हिमालयके गृहमें पुनर्जन्म ले महादेवकी शुश्रूषाको सर्वदा उनके निकट रही हैं। इस समय महादेवका योग तोड़ उनको पार्वतीके प्रति अभिलाषी कर सकने पर महादेवके औरससे महावीर कुमार जन्मग्रहण कर तारकासुरका निधनसाधन करेंगे। देवगणने उसी परामर्शके अनुसार कामदेवको महादेवका ध्यान छुड़ाने पर नियुक्त किया था। आज्ञा पाते ही कामदेव रति एवं वसन्तके साथ अभियान पूर्वक महादेवका योग तोड़ने पहुंचे और पुष्पधनुः पर पुष्पबाण चढ़ा महादेवको लक्ष्यकर फेंकने लगे। महादेवने कन्दर्पबाणसे आहत होते ही क्रोधके साथ उन पर अपनी दृष्टि डाली थी। फिर महादेवके ललाटसे प्रदीप्त अग्निशिखाने निकल कन्दर्पमूर्तिको बिलकुल जला दिया।" दूसरे जन्ममें कामदेव ही श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्नरूपसे आविर्भूत हुये। हरिवंशमें कामदेवके जन्मका विवरण इस प्रकार वर्णित है,—"श्रीकृष्णके औरस और रुक्मिणीके गर्भसे प्रद्युम्नका जन्म हुवा था। जन्मके पीछे सातवीं रातको शम्बरासुरने मायाके बल उन्हें सूतिकागृहसे हरण कर स्वीय पत्नी मायावतीको दे दिया। मायावतीके कोई शिशु न था। वह प्रद्युम्नको पा कर अत्यन्त आह्लादित हुयीं। फिर शिशुके अङ्गप्रत्यङ्ग आदि विशेष रूपसे लक्ष्य कर मायावतीने समझा कि वही शिशु उनका प्रियतम स्वामी कन्दर्प था। उनको यह भी स्मरण आया कि हरके कोपानलसे जलनेके पीछे देवगणने वैसे ही उन्हें पुनर्वार पतिको प्राप्तिका विषय बतला दिया था। सुतरां वह मातृवत् शिशुका पालन न कर सकीं। उन्होंने धात्रीके हाथ उसे सौंपा था। फिर रसायन आदिके प्रयोगसे सत्वर वर्धित कर मायावती उससे मिल गयीं। प्रद्युम्न भी वैष्णव अस्त्रसे शम्बरासुरको मार पत्नीके साथ पितृगृह लौट आये। कहनेको शम्बरासुरकी पत्नी होते भी वस्तुतः मायावती उसकी पत्नी न थीं। कन्दर्पकी पत्नी रति पुनर्वार पतिप्राप्तिकी कामनासे देवगणके आदेशानुसार मायाबलसे शम्बरासुरकी पत्नी बन कर रहती थीं।" (हरिवंश १६१ अ०)

महाभारत और विष्णुपुराणमें कामदेव धर्मके पुत्र माने गये हैं,—

"श्रद्धा कामं चला दर्पं नियमं धृतिरात्मजम्।
सन्तोषञ्च तथा तुष्टिर्लोभं पुष्टिरसूयत॥
मेधा श्रुतं क्रिया दण्डं नयं विनयमेव च।
बोधं बुद्धि स्तथा लज्जा विनयं वपुरात्मजम्॥
व्यवसायं प्रजज्ञे वै क्षेमं शान्तिरसूयत।
सुखं सिद्धिर्यशः कीर्तिरित्येते धर्मसूनवः॥"

(हरिवंश, १म२६-२८)

तेरह धर्मपत्नियोंके मध्य श्रद्धाने काम, चलाने दर्प,

धृतिने नियम, तुष्टिने सन्तोष, पुष्टिने लोभ, मेधाने श्रुत, क्रियाने दण्ड, नय एवं विनय, वपुने व्यवसाय, शान्तिने श्रम, सिद्धिने सुख और कीर्तिने यश: नामक पुत्र प्रसव किया। यह सभी धर्मके पुत्र कहलाते हैं।

भागवतके मतसे कामदेव ब्रह्माके पुत्र हैं,—

"हृदि कामो भ्रुवोः क्रोधो लोभश्चाधरदच्छदात्।"

ब्रह्माके हृदयसे काम, भ्रू द्वयसे क्रोध और अधरोष्ठसे लोभकी उत्पत्ति हुयी है।

भागवतके ही अन्यस्थलमें फिर कामदेवको सङ्कल्पका पुत्र कहा है,—

"सङ्कल्पायास्तु सङ्कल्पः कामः सङ्कल्पजः स्मृतः।" (भागवत ६।६।१०)

ब्रह्माकी कन्या सङ्कल्पाके पुत्र सङ्कल्प हैं। सङ्कल्पसे ही कामकी उत्पत्ति हुयी है।

यजुर्वेदमें भी कामका उल्लेख मिलता है। उसमें कामको ही दाता और ग्रहीता माना है,—

"कोदात् कस्मा अदात् कामोदात् कामायादात्।
कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामैतत्ते॥" (शुक्ल यजुः ७।४८)

यह प्रश्न होने पर कि—किसने दान किया और किसको दान दिया है, उत्तर होगा कि कामने दान किया और कामको ही दान दिया है। क्योंकि काम ही दाता और काम ही प्रतिग्रहीता है। अतएव हे काम! यह द्रव्य तुम्हारा ही है।

२ गोपकपुरीके एक राजा कदम्बराज। इनकी महिषीका नाम केतलादेवी था। यह विख्यात वीर थे। इन्होंने बाहुके बल मलय, कोङ्कण और सह्याद्रि जीता था। शिलालेखके अनुसार कामदेवने ११८१ ई० से १२०४ ई० तक राजत्व किया। ३ भट्टनारायणके पुत्र। भट्टनारायण देखो। ४ परमेश्वर। ५ महादेव। ६ कोई कवि। ७ कोई राजा। इनकी राजधानी जयन्तीपुरमें थी। यह "राघवपाण्डवीय" प्रणेता कविराज नामक कविके प्रतिपालक थे। ८ प्रायश्चित्त-पद्धति नामक स्मृतिग्रन्थके प्रणेता।

९ "सत्कृत्यमुक्तावली" प्रणेता रघुनाथके प्रतिपालक।

१० "चतुर्वर्गचिन्तामणि" प्रणेता हेमाद्रिके पिता। इनके पिताका नाम वासुदेव और पितामहका नाम वामन था।

११ कोई प्राचीन ज्योतिर्वित्।

१२ "कर्मप्रदीपिका" "पारस्करपद्धति" "पारस्करगृह्यपरिशिष्टपद्धति" प्रभृति ग्रंथ बनानेवाले। इनके पिताका नाम गोपाल था।

कामदेव कविवल्लभ—चण्डीके एक प्राचीन टीकाकार।

कामदेवघृत (सं० क्ली०) घृतविशेष, एक घी। अश्वगन्धा १०० पल, गोक्षुर ५० पल और शतावरी, भूमिकुष्माण्ड, शालपर्णी, बला, गुलेचीन, अश्वत्थकी शुङ्गा, पद्मबीज, पुनर्नवा, गाम्भारीफल तथा माषबीज प्रत्येक दश दश पल २५६ शरावक जलमें पका कर ६४ शरावक जल शेष रहनेसे उतार कर छान लेना चाहिये। फिर पुण्ड्रकेक्षुरस १६ शरावक, दुग्ध १६ शरावक, और जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवन्ती, मधुक, ऋद्धि, वृद्धि, द्राक्षा, पद्मकाष्ठ, कुष्ठ, पिप्पली रक्तचन्दन, बालक, नागकेशर, शुक्लशिम्बीबीज, नीलोत्पल, श्यामा तथा अनन्तमूलका कल्क दो-दो तोला एवं शर्करा २ पल उक्त क्वाथमें डाल यह घृत यथारीति पकाते और बनाते हैं। इसको व्यवहार करनेसे रक्तपित्त, क्षत, कामला, वातरक्त, हलीमक, पाण्डु, विवर्णता, स्वरभेद, मूत्रकृच्छ्र, वक्षोदाह और पार्श्वशूल आदि रोग निवारित होते हैं। (चक्रदत्त)

कामदेव मीमांसक (दीक्षित)—'प्रायश्चित्तपद्धतिके प्रणेता।

कामदोही (सं० त्रि०) कामं दोग्धि, काम-दुह-णिनि। अभीष्टप्रद, मुराद पूरी करनेवाला।

कामधर (सं० पु०) काम इति संज्ञां धरति धारयति वा, काम-धृ-अच्। कामरूपदेशीय मत्स्यध्वज नामक पर्वतस्थित सरोवरविशेष, एक तालाब। यह सरोवर एक तीर्थ माना गया है। इसमें स्नान और जलपान करने पर समुदाय पापसे छूट मुक्ति पाते और शिवलोक जाते हैं। (कालिकापुराण)

कामधरण (सं० क्ली०) अभिलाषप्राप्ति, मुरादका हसूल।

कामधेनु (सं० स्त्री०) कामप्रतिपादिका धेनुः,

मध्यपदलोपी कर्मधा०। गो विशेष, एक गाय। इस गायसे इच्छानुसार जो वस्तु मांगते, वही पाते हैं।

अग्निपुराणमें कामधेनुका दान महापुण्य माना गया है। दानविधि पर भी उसमें इस प्रकार लिखा है,—'कार्त्तिक मासको शुक्ल एकादशीको उपवास कर चार दिन तक लक्ष्मीके साथ नारायणकी पूजा करना पड़ती है। फिर पञ्चम दिन प्रातःकाल स्नानकर शुक्ल वस्त्र, शुक्ल माल्य और शुक्ल अनुलेपन धारण करते हैं। दानकी भूमिको मृगके चर्म, तिलके प्रस्थ और स्वर्ण आदिसे सजा सवत्सा कामधेनु वहां लायी जाती है। धेनुके शृङ्ग और खुर स्वर्णसे मढ़ा समस्त गात्रमें शुक्ल वस्त्र लपेट देते हैं। अनन्तर यथाविधि मन्त्रादिसे गायकी पूज नारायणके उद्देश दान होता है।'

२ दानके लिये स्वर्णनिर्मित धेनुविशेष, देनेको सोनेकी गाय।

दान-सागरमें स्वर्णनिर्मित कामधेनुके दानका विधि लिखा है,—'शक्तिके अनुसार तीन पलसे अधिक सहस्रपल तक स्वर्ण द्वारा सवत्सा कामधेनु बना रत्नसे विभूषित करना चाहिये। सहस्र पल उत्कृष्ट, पांच सौ पल मध्यम और ढाई सौ पल सुवर्ण अधम विधि है। अत्यन्त असमर्थके लिये तीन पलसे अधिक सुवर्णका भी विधान है। तुलापुरुष कथित समयके मध्य किसी दिन दानका काल निर्दिष्ट कर उसके पूर्व दिन गुरु, पुरोहित, यजमान और जापक चारो लोग हविष्य-भोजनादि कर निवेदन एवं सङ्कल्प कर रखते हैं। दूसरे दिन यजमानको गोविन्दादिकी आराधना, मधुपर्कका दान और ब्राह्मणोंकी अनुमतिका ग्रहण करना चाहिये। उसी दिन गुरु, पुरोहित और जापकको उपवास करना पड़ता है। उसके परदिन अग्निस्थापनादि कार्य समापनपूर्वक पुरोहित प्रधान वेदीके मध्यस्थलमें लिखित चक्र पर मृगचर्म एवं गुड़प्रस्थ यथाक्रम स्थापन कर उसके ऊपर कौषेय वस्त्रद्वारा आच्छादित सवत्सा धेनुको खड़ा करते हैं। धेनुके पार्श्वदेशमें आठ पूर्ण कुम्भ, अष्टादश प्रकार धान्य, नानाविध फल, रत्न, इक्षुदण्ड, कांस्यपात्र, पट्टवस्त्र, ताम्रनिर्मित दोहनपात्र, प्रदीप, आतपत्र तथा पादुकाद्वय और धेनुके सम्मुखभागमें मधुरादि छह रस, हरिद्रा, पुष्प आदि विविध पूजा द्रव्य जीरक, धान्यक एवं शर्करा रखते हैं। फिर मङ्गलगीत वाद्य तथा स्तुतिपाठके साथ यज्ञकुण्डके समीपस्थ चार कुम्भोंके जल द्वारा यजमानको स्नान कराया जाता है। स्नानके अन्तमें यजमान शुक्ल वस्त्र परिधान कर शुक्ल माल्य एवं विविध अलङ्कारधारणपूर्वक कुशहस्तसे पुष्पाञ्जलि ले कामधेनुको प्रदक्षिणपूर्वक पूज गुरुको प्रदान करता है। परिशेषमें गुरु पुरोहित और याचकको दक्षिणा तथा अतिथि ब्राह्मणोंको अर्थ दे दानका व्रत समापन करना पड़ता है।'

३ स्वर्गधेनु सुरभिकी एक दोहिता धेनु। इसकी उत्पत्तिका विवरण इस प्रकार लिखा है,—'गोसमूह-की आदिप्रसूति सुरभि दक्षकी कन्या थीं। प्रजापति कश्यपके औरससे उनके गर्भमें रोहिणीका जन्म हुवा। रोहिणीने ही तपोनिधि शूरसेन नामक वसुके औरससे सर्वलक्षणसम्पन्ना कामधेनुको प्रसव किया था। काम-धेनुका वर्ण श्वेत है। चतुर्वेद चतुष्पदस्वरूप हैं। चारो स्तनोंसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष निकला करते हैं। शिवके वाहन वृषने कामधेनुके गर्भसे ही जन्म लिया था। यौवनमें कामधेनुकी लावण्यश्री अधिकतर बढ़ी। इसीसे कोई कामुक वेताल उनको देख कामातुर हुवा और स्वयं वृषकी मूर्ति बना उनके साथ भोग किया। इस सङ्गमके फलसे एक विशाल काय वृष निकला था। उसने अपनी तपस्याके बल महादेवका वाहनत्व लाभ किया।'

(कालिकापुराण ९१ अ०)

४ कामधेनुकी कुलजाता नन्दिनी [वा] शबला नाम्नी वशिष्ठकी एक धेनु। कामधेनुके लिये ही वशिष्ठके साथ विश्वामित्रका भयंकर विवाद उठा था। उसी विवादके फलसे विश्वामित्रने क्षत्रिय जाति होते भी ब्रह्मर्षि बननेका लिये उद्योग किया। रामायणमें लिखा है,—'किसी समय राजा विश्वामित्रने बहु सैन्य एवं अमात्य परिवार प्रभृतिके साथ वशिष्ठ ऋषिके निकट आतिथ्य ग्रहण किया था। वशिष्ठने कामधेनुसे सकल उत्तमोत्तम प्रचुर द्रव्यादि ले उनका सत्कार उठाया।

विश्वामित्र राजा होते भी उक्त समस्त द्रव्य देख चमत्कृत हुये। उन्होंने देखा कि कामधेनुसे वैसा असाधारण ऐश्वर्य भोग किया जा सकता था। इसीसे विश्वामित्रने शत सहस्र दुग्धवती गायोंके बदले वशिष्ठसे कामधेनु मांगी। किन्तु वशिष्ठने धेनु देना स्वीकार न किया। उस समय विश्वामित्रने हरण करनेके लिये सैन्यको आदेश दिया था। सैन्यने कामधेनुको खोल ले जानेका उद्योग किया। नन्दिनी यह सोच कर अत्यन्त दुःखित हुयीं कि वशिष्ठने उनको छोड़ दिया था। फिर वह अपने बलसे बहु सैन्यको मार वशिष्ठके निकट आ पहुंचीं। उन्होंने वशिष्ठसे पूछा था,—'आपने क्या हमें परित्याग किया है? नतुवा विश्वामित्रके सिपाही हमें क्यों लिये जाते हैं?' वशिष्ठने उत्तर दिया, 'नहीं हमने तुम्हें परित्याग नहीं किया है। तथा फिर हम कभी तुम्हें परित्याग न करेंगे। अतएव तुम शत शत महावीर सैन्य सृष्टि कर विश्वामित्रको पराजित करो।' वशिष्ठकी आज्ञा पाते ही नन्दिनीने योनिदेशसे यवन, पुरीषसे शक और रोमकूपसे म्लेच्छ, हारीत तथा किरात सैन्य निकाले थे। उन्होंने विश्वामित्रको समुदाय सैन्यका विनाश कर पराजित किया। विश्वामित्रके पुत्र इससे बहुत क्रुद्ध हुये और (एकबारगी ही सौ पुत्र) वशिष्ठके ऊपर झपट पड़े। वशिष्ठने क्रोधके साथ एक ही हुङ्कारसे उनको जला डाला। इस अपमानके पीछे विश्वामित्रने राजशक्तिकी अपेक्षा तपस्याकी शक्तिको बड़ा माना था। वह राजकार्य छोड़ कठोर तपस्यामें लग गये। उसी तपस्याके फलसे उन्होंने ब्रह्मर्षिकी भांति क्षमताशाली बन ब्रह्मर्षि नाम पाया था।'

(रामायण, अरण्य, ५१ अ०)

कामधेनुतन्त्र (सं० क्ली०) कामधेनुरिव सर्वाभीष्टप्रदं तन्त्रम्। शिवप्रोक्त एक तन्त्र।

कामधेन्वी—रामात वा निमात सम्प्रदायभुक्त वैष्णव। इनमें अधिकांश भिक्षुक रहते हैं। कामधेनु नामक भिक्षायन्त्र व्यवहार करनेसे ही कामधेन्वी नाम पड़ा। कामधेनुयन्त्र बेंगीकी भांति होता है। उसको दोनों ओर दो तखते लगे रहते हैं। एक ओरका तखता गायके आकारका होता है। दूसरी ओरके तखतेमें हनूमान्‌की मूर्ति रहती है। यह लोग सवेरे और शाम दोनों समय उक्त यन्त्रको पूजा तथा आरती करते हैं। कामधेन्वी कामधेनुयन्त्र कन्धे पर रख भिक्षा मांगने निकलते हैं। यह किसीके द्वार पर खड़े नहीं रहते, 'धनुषधारी राम धनुषधारी राम, कहते राह राह घूमा करते हैं। गृही यह नाम सुन इच्छानुसार कामधेनुपात्रमें भिक्षा डाल देते हैं।

कामध्वंसी (सं० पु०) कामं कन्दर्पं ध्वंसयति, काम-ध्वन्स्-णिच्-णिनि। कामको ध्वंस करनेवाले शिव।

कामध्वज (सं० पु०) मत्स्य, मछली। कामदेवकी पताका मछली है।

कामन (सं० त्रि०) कामयतीति, कम-णिङ्-युच्। १ कामुक, चाहनेवाला। (क्ली०) भावे युच्। २ अभिलाष, ख़ाहिश।

कामना (सं० स्त्री०) कामन-टाप्। १ इच्छा, ख़ाहिश। २ वन्दाक, बांदा।

कामनाशक (सं० पु०) कामं कन्दर्पं नाशयति, काम-नश्-णिच्-ण्वुल्। १ महादेव। (त्रि०) २ कामशक्तिनाशक।

कामनीड़ा (सं० स्त्री) कस्तूरिका, मुश्क।

कामनीयक (सं० क्ली०) कमनीयस्य भावः, कमनीय-वुञ्। रमणीयता, ख़ूबसूरती।

कामन्दकि (सं० पु०) कमन्दकस्य अपत्यं पुमान्, कमन्दक-इञ्। एक नीतिशास्त्र-प्रणेता। इनके बनाये ग्रन्थका नाम कामन्दकीय नीतिशास्त्र है। वह १९ अध्यायमें विभक्त और महाभारतकी भांति प्राचीनकाल-रचित है। बहुत पहले उक्त नीतिशास्त्र वालि प्रभृति द्वीपमें नीति बना था। वहां महाभारतकी भांति वह कविभाषामें अनुवादित भी हुवा। उसके यवद्वीप पहुंचनेका समय निर्धारित नहीं। कोई अनुमान करता, कि महाभारतके ही समकाल वह भी पहुंचा होगा। महाभारत देखो। उसकी चार टीका मिलती हैं। एक टीकाका नाम उपाध्याय-निरपेक्ष है। बाकी तीनमें एक जयराम, दूसरी आत्माराम और तीसरी वरदाराजकी बनायी है।

कामन्दकीय (सं० क्लो०) कामन्दकेरिदम्, कामन्दकि-छ। इहाद्य:। पा ४। २। ११४। कामन्दकि-प्रणीत एक नीतिशास्त्र।

कामन्धमी (सं० पु०) कामं यथेष्टं धमति, काम-ध्मा-णिनि वाहुलकात् धमादेश: निपातनात् मुमि साधु:। कांस्यकार, कसेरा।

कामपति (सं० स्त्री०) काम: पतिर्यस्या:, विकल्पत्वात् न ङीप्। १ रति, कामदेवकी स्त्री (पु०) २ चन्द्रवंशीय पृथुकुलजात एक राजपुत्र। इन्होंने पुत्रेष्टि याग किया था (सह्याद्रिखण्ड १। ३०। २१)

कामपत्नी (सं० स्त्री०) कामस्य पत्नी, ६-तत्। रति, कामदेवकी स्त्री।

कामपर्णिका, कामपर्णी देखो।

कामपर्णी (सं० स्त्री०) माहुल्यक्षुप, एक पेड़।

कामपाल (सं० पु०) कामान् पालयति, काम-पाल-अण्। १ बलदेव। २ विष्णु।

"कामहा कामपालश्च कामी कान्त: कृतागम:" (विष्णुसहस्रनाम)

३ महादेव। ४ चन्द्रवंशीय इन्दुमण्डन राजाके पुत्र। इनके पुत्रका नाम सलिल था। (सह्याद्रि० ११३०।२१) ५ एकवीरा देवीभक्त गौतम कुलज जलपालवंशके एक राजा। (सह्याद्रिखण्ड ११।११६-१७) ६ कुमारिकाभक्त चम्पणक कुलज दत्तराजके पुत्र। इनके पुत्रका नाम सुदर्शन था। (सह्याद्रिखण्ड ११३११४०) ७ महाराजचूत, एक बढ़िया आम।

कामपीठ (सं० पु०—क्ली०) कूपादिके उपरिभागका बद्धस्थान, कुवेंके ऊपर बंधी हुयी जगह।

कामपीड़ित (सं० त्रि०) कामेन कन्दर्पपीड़या पीड़ित:, ३-तत्। सङ्गमेच्छुक, शहवतकी ख्वाहिश रखनेवाला।

कामपूर (सं० त्रि०) कामं अभीष्टं पूरयति, काम-पूर-णिच्-अण्। १ अभीष्टप्रद, मुराद पूरी करनेवाला। २ परमेश्वर।

कामप्र (सं० त्रि०) कामं पिपर्ति काम-पृ-क। अभीष्टप्रद, ख्वाहिश पूरी करनेवाला।

कामप्रद (सं० पु०) कामं कामजरतिभेदं प्रददाति, काम-प्र-दा-क। १ रतिबन्धविशेष, एक डौला।

"द्वौ पादौ स्कन्धसंस्थौ विपुलाविर्मे भगौ तथा।
कामयेत् कामुक: मौका बन्ध: कामप्रदो हि स:॥" (अरदीपिका)

कामानां सर्वपुरुषार्थानां प्रद:, ६-तत्। २ विष्णु। (त्रि०) ३ अभीष्टप्रद, मुराद पूरी करनेवाला।

कामप्रवेदन (सं० क्ली०) कामस्य अभिलाषस्य प्रवेदनं आविष्करणम्, ६-तत्। अभिलाष प्रकाश, ख्वाहिशका इज़हार।

कामप्रश्न (सं० पु०) कामं यथेष्टं प्रश्न:। यथेच्छ प्रश्न, मनमाना सवाल।

कामप्रस्थ (सं० पु०-क्ली०) कामस्य कामगिरे: प्रस्थ:, (मालादीनाच पा ६।२।८८) आदिवर्ण उदात्त:, ६-तत्। १ कामगिरिका सानुदेश, काम पहाड़की ऊंची हमवार ज़मीन्। २ एक नगर।

कामप्रस्थीय (सं० त्रि०) कामप्रस्थे भव:, कामप्रस्थ-छ। कामगिरिके सानुदेशमें उत्पन्न, काम पहाड़की ऊंची हमवार ज़मीन्का पैदा।

कामप्रि (सं० त्रि०) कामं पिपर्ति, काम-पृ-कि। अभीष्टपूरक, ख्वाहिश पूरी करनेवाला।

कामप्रियकरी (सं० स्त्री०) अश्वगन्धा, असगंध।

कामफल (सं० पु०) कामं यथेष्टं फलमस्य, बहुव्री०। महाराजाम्र, एक बढ़िया आम।

कामबख्श—बादशाह आलमगीरके कनिष्ठ पुत्र। यह शाहज़ादे बड़े अभिमानी और निर्दय रहे। इनके पिताने इन्हें दक्षिणका राज्य सौंपा था। किन्तु इन्होंने ज्येष्ठ भ्राता बहादुर शाहका संरक्षण स्वीकार न किया और अपने नामका सिक्का चला दिया। इसीसे वह एक बड़ी सेना ले इनसे लड़ने चले। हैदराबादके निकट युद्ध हुवा था। युद्धमें यह हार गये। घोर-रूपसे आहत होने पर १७०८ ई० के फरवरी या मार्च मास इनका प्राण छूटा था। इनकी माताका नाम उदयपुरी-महल रहा। १६६७ ई० को २५वों फर-वरीको कामबख्श शाहज़ादेने जन्म लिया था।

कामम् (सं० अव्य०) कम-णिङ्-अमु। १ यथेष्ट, मर्ज़ीके मुआफ़िक़। २ अनुमतिसे, मञ्जूरीके साथ। ३ स्वच्छन्द, खुशीसे। ४ अच्छा, बहुत अच्छा। ५ माना, हुवा। ६ नि:सन्देह, बेशक।

काममञ्जरी (सं० स्त्री०) दण्डिप्रणीत दशकुमार-चरितकी एक नायिका।

कामसय (सं० त्रि०) कामस्य विकारः, काम-मयट्। मयड्वैतयोर्भाषायां अभक्ष्याच्छादनयोः। पा ४।३।१४३। कामविकार, ख़्वाहिशसे भरा हुवा।

काममर्दन (सं० पु०) कामं कन्दर्पं मर्दयति नाशयति, काम-मृद्-ल्यु। कामको मर्दन करनेवाले महादेव।

काममहोलुप (सं० पु०) सद्वैद्य, अच्छा हकीम।

काममहोलुभ, काममहोलुप देखो।

काममह (सं० पु०) कामस्य मह उत्सवो यत्र, बहुव्री०। कामदेवके उद्देश उत्सवका दिन। चैत्री पूर्णिमा इस उत्सवका निर्दिष्ट समय है।

काममालिका (सं० स्त्री०) मद्यविशेष, एक शराब।

काममाली (सं० पु०) गणेश।

काममुद्रा (सं० स्त्री०) तन्त्रशास्त्रोक्त एक मुद्रा।

काममूढ़ (सं० त्रि०) कामेन मूढः, ३-तत्। कामको पीड़ासे हित और अहितकी विवेचना न रखनेवाला, जो शहवतके जोरसे अन्धा बन गया हो।

काममूत (वै० त्रि०) कामेन मूतः मूर्च्छितः, काम-मव-क्त छान्दसत्वात् इट् अभावः जट्च। १ काममूर्छित, शहवतसे गश खाये हुवा। २ अत्यन्त कामपीड़ित, शहवतके जोरसे बड़ी तकलीफ़ पाये हुवा।

काममोदी (सं० स्त्री०) कस्तूरी, मुश्क।

काममोहित (सं० त्रि०) कामेन कामजरत्या मोहितः, ३-तत्। १ कामकी पीड़ासे हित और अहितका ज्ञान न रखनेवाला, शहवतके जोरसे अन्धा बना हुवा। २ सुरतासक्त, शहवत-परस्त।

"मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥" (रामायण)

कामयमान (सं० त्रि०) काम-णिङ्-शानच्। कामुक, ख़्वाहिशमन्द।

कामयान (सं० त्रि०) काम-णिङ्-शानच् मुगभावः आगमशास्त्रस्य अनित्यत्वात्। कामुक, ख़्वाहिशमन्द।

कामायाना (सं० स्त्री०) गर्भिणी, हामिला, जिसके पेटमें लड़का रहे।

कामयाब (फ़ा० वि०) सफल, मतोबा पाये हुवा।

कामयाबी (फ़ा० स्त्री०) सफलता, मक़सदवरी, बालबाला।

कामयिता (सं० त्रि०) कामयते, काम-णिच्-तृच्। कामुक, चाहनेवाला।

कामरस (सं० पु०) कामः कामजरत्यादिरेव रसः। सुरतादि, शहवत वगैरह।

कामरसिक (सं० त्रि०) कामे कामजरत्यादौ रसिकः सुनिपुणः, ७-तत्। सुरतादि विषयमें सुनिपुण, शहवतपरस्त।

कामराज—१ कालिकाभक्त कौण्डिन्य मुनिकुलोद्भव श्रीधरराजके पुत्र। इनके पुत्र मातुल थे। (राजादिबन्ध १।३।१।११) २ केवल्य-दीपिका-प्रणेता हेमाद्रिके प्रतिपालक। ३ गोपालचम्पू-प्रणेता जीवराजके पितामह। इनके पुत्र अर्थात् जीवराजके पिताका नाम व्रजराज था। फिर इनके पिताको श्यामराज कहते थे।

कामराज दीक्षित—काव्येन्दुप्रकाश, शृङ्गारकलिकाकाव्य प्रभृतिके प्रणेता।

कामरान् मिर्ज़ा—बादशाह बाबर शाहके २य पुत्र और बादशाह हुमायूंके भ्राता। १५३० ई० को सिंहासनारूढ़ होने पर हुमायूंने इन्हें काबुल, कन्दहार, ग़ज़नी और पञ्जाबका राज्य सौंपा था। किन्तु १५५३ ई० को काबुलमें हुमायूंने इनकी आंखें नश्तरसे छेदवा कर निकलवा लीं। कारण इन्होंने राज्यका प्रबन्ध बिगाड़ बड़ा गड़बड़ किया था। आंखोंमें नीबूका रस और नमक पड़ते समय इन्होंने कहा—'हे परमेश्वर। मैंने इस संसारमें जो पाप कमाया, उसका यथेष्ट फल पाया है। अब परलोकमें मेरे ऊपर कृपादृष्टि रखिये।' अन्तमें इन्हें मक्के जानेको आज्ञा मिली थी। वहां यह तीन वर्ष रहे और १५५६ ई० को अपनी मौत मरे। इनके तीन कन्या और अबुल क़ासिम मिर्ज़ा नामक एक पुत्र चार सन्तान रहे। १५६५ ई० को अकबरकी आज्ञासे अबुल क़ासिम मिर्ज़ा ग्वालियरके किलेमें कैद किये और मारे गये।

कामरिपु (सं० पु०) १ शरीरका छह रिपुके मध्य प्रथम रिपु। अभिलाष और स्त्रीसम्भोगादि इसका कार्य है। २ शिव।

कामरी (हिं० स्त्री०) कम्बल, कमरी।

कामवचि (सं० स्त्री०) अस्त्रविशेष, एक हथियार। विश्वामित्रने इसे रामचन्द्रको अस्त्रके अस्त्र विफल करनेके लिये दिया था।

कामरु (हिं०) कामरूप देखो।

कामरूप (सं० त्रि०) कामं मनोज्ञं रूपं यस्य, बहुव्री० १ मनोज्ञ रूपविशिष्ट, खूबसूरत। २ इच्छानुसार विविध रूपधारी, मर्ज़ीके मुवाफिक़ तरह तरहकी सूरत बनानेवाला।

"कामरूपः कामगमः कामवीर्यो विहङ्गमः।" (महाभारत)

कामरूप—वर्तमान आसाम प्रदेशका एक विस्तृत जिला। यह अक्षा० २५° ४४′ से २६° ५३′ उ० और देशा० ९०° ४०′ से ९२° १२′ पू०के मध्य ब्रह्मपुत्रके उभय पार पर अवस्थित है। इसके उत्तर भूटान, पूर्व दरङ्ग एवं नौगांव जिला, दक्षिण खसिया पहाड़ और पश्चिम ग्वालपाड़ा जिला है। कामरूपका बड़ा शहर गौहाटी है।

इस जिलेका प्राकृतिक दृश्य अति मनोहर है। भूमि बहुत उर्वरा है। ब्रह्मपुत्रके तीरका स्थान नीचा रहनेसे वर्षाकालमें डूब जाता है। वहां धान्य और सर्षप अपर्याप्त उत्पन्न होता है। शर, वंश प्रभृति स्वभावतः अधिक निकलता है। ब्रह्मपुत्रके तीरसे आगे उत्तर भूटान और दक्षिण खसिया पहाड़ तक भूमि क्रमशः उच्च एवं समतल है। ब्रह्मपुत्रके दक्षिण इस जिलेमें बहुतसे छोटे छोटे पहाड़ हैं। उनमें एक एक दो हज़ारसे तीन हज़ार फीट तक ऊंचा है। उक्त पर्वतोंके पार्श्वदेशमें चायके बाग़ हैं।

ब्रह्मपुत्र ही कामरूपकी प्रधान नदी है। बहुतसी नदी और उपनदी ब्रह्मपुत्रमें गिरी हैं। उनमें उत्तर दिक्से मानस, चावलखोया तथा बरनदी और दक्षिण दिक्से कुलसी नदी आयी है।

ब्रह्मपुत्रके मध्य कई क्षुद्र क्षुद्र द्वीप हैं, इसकी संख्या नहीं।—ब्रह्मपुत्रमें रेत पड़नेसे कितने क्षुद्र द्वीप बनते और बिगड़ते हैं।

कामरूपके पर्वतोंसे कई क्षुद्र नदी निकली हैं। ग्रीष्मकाल प्रायः उनमें जल नहीं रहता। फिर भी वह भीतर भीतर बहा करती हैं।

यहां नाला या नहर नहीं। किन्तु शस्यकी रक्षाके लिये बीच बीच सामान्य बांध मौजूद हैं।

इस भूभागमें प्रायः १३० वर्गमील जंगल है। इस जङ्गलसे भी गवरनमेण्टको यथेष्ट आय होता है। इसमें कुलसी नदीके तीरका वनविभाग प्रधान है। जिस जिस वनसे रुपया आता, उसमें बड़द्वार, दिमरुया, पश्चान, मयरापुर और बरश्वे नामक वन उल्लेखयोग्य दिखाता है।

वनमें साखू, शीशम, तुन, सूम, नाहर प्रभृति वृक्ष यथेष्ट उपजते हैं। उनसे खूब कीमती कड़ियां, बरगे और तख्ते बनाते हैं। कालुङ्ग, कछारी, गारो, मिकिर और खासी प्रभृति असभ्य लोग वनसे लाख, मोम, तन्तु, गोंद वग़ैरह एकट्ठा कर अपनी जीविका चलाते हैं। उत्तरांचलमें भूटान पहाड़के पास गोचारणका बड़ा मैदान है। वहां नानाविध वृक्ष उपजते हैं।*

जीवजन्तुमें हस्ती, गैंडा, नानाजातीय व्याघ्र, महिष, हरिण, वन्य शूकर, नाना प्रकार सर्प और नानाप्रकार पक्षी देख पड़ते हैं। मत्स्य भी यहां नाना प्रकार होते हैं। उनमें रोह, चित्तो और पवी नामक मत्स्य ही अधिक है।†

---

* यहांके योगिनीतन्त्रमें उक्त द्रव्यादिका उल्लेख मिलता है। यथा,—

"द्राक्षादीफलविल्वानि बदरामलकानि च।
खर्जुरं पनसञ्चैव तथा तालफलानि च।
दाडिमं कदलीञ्चैव ....
लकुचं मधुकं शुक्तं तथा पूगफलानि च।
यस्य फलं विशालञ्च तस्य शाकं प्ररोहकम्।
वास्तूकस्य च शाकञ्च पालङ्कस्य मम प्रिये।
बिल्वयानि प्रियाण्याम्रान् तथा च तिन्तिडीफलः
कुष्माण्डं पार्वतीयञ्च तथा चारण्यसम्भवम्।
कदलं बीजपूरञ्च रामञ्च पीतकन्तथा।
सोमधान्यं हङ्हान्यं रक्तशालिकमेव च।
राजधान्यं षष्टिकञ्च देवधान्यकन्तथा।
चणकं कोद्रवञ्चैव ....:
चारञ्च लोचचीरञ्च वर्द्धञ्च मात्रिकोद्भवम्।"

† "वर्णनाच प्रवक्ष्यामि वन्यानां वासवासिनाम्।

पुरातत्त्वको देखते कामरूप अति प्राचीन जनपद है। महाभारतके समय यह स्थान किरातपति भगदत्तके अधीन था। उस समय लोग इसे परशुरामका लौहित्यतीर्थ मानते थे।

पुराण और तन्त्रमें कामरूप महापीठस्थान माना गया है। गरुड़पुराणमें लिखा है,—

"कामरूपं महातीर्थं कामाख्या तत्र तिष्ठति।" (गरुड़पुराण, ८१।१६)

राधातन्त्रके २०वें पटलमें कहा है,—

"कामरूपं महेशानि ब्रह्मणो मुखमुच्यते।"

हे भगवति! यह कामरूप ब्रह्माका मुख माना जाता है।

स्कन्दपुराणका प्रभासखण्ड (७९ अ०) देखते इस स्थानमें शुभङ्कर लिङ्ग विद्यमान है।

नीलतन्त्र और वृहन्नीलतन्त्रके मतसे इस महातीर्थमें योगनिद्रा सर्वदा विराजती हैं।

पूर्वकालको कामरूपका आयतन इस समयकी अपेक्षा अधिक विस्तृत था। कुमारिकाखण्डमें लिखा है,—

"कामरूपे च ग्रामाणां नवलक्षाः प्रकीर्तिताः।" (१० अ०)

वर्तमान आसाम, कोचविहार, जलपाईगोड़ी और रङ्गपुर कामरूपके अन्तर्गत था। योगिनीतन्त्रमें प्राचीन कामरूपकी चतुःसीमा इस प्रकार वर्णित है,—

"करतोयां समाश्रित्य यावद्दिक्करवासिनी।
उत्तरस्यां कञ्जगिरिः करतोयान्तु पश्चिमे॥
तीर्थश्रेष्ठा दिक्षुनदी पूर्वस्यां गिरिकन्यके।
दक्षिणे ब्रह्मपुत्रस्य लाक्षायाः सङ्गमावधि॥
कामरूप इति ख्यातः सर्वशास्त्रेषु निश्चितः॥०॥"

"त्रिंशत् योजनविस्तीर्णं दीर्घेण शतयोजनम्।
कामरूपं विजानीहि त्रिकोणाकारमुत्तमम्॥
ईशाने चैव केदारो वायव्यां गजशासनः।
दक्षिणे सङ्गमे देवी लाक्षायाः ब्रह्मरेतसः॥
त्रिकोणमेव जानीहि सुरासुरनमस्कृतम्।"

करतोयासे दिक्करवासिनी तक कामरूप विस्तृत है। इसकी उत्तरसीमामें कञ्जगिरि, पश्चिम करतोया नदी, पूर्वसीमामें तीर्थश्रेष्ठ दिक्षु नदी और दक्षिण ब्रह्मपुत्र नद तथा लाक्षा नदीका सङ्गमस्थल है। यह सीमा निर्देश समुदाय शास्त्रका अनुमोदित है। यह सुरासुर-पूजित कामरूप त्रिकोणाकार है। इसका दैर्घ्य एक शत योजन और विस्तार तीस योजन है। कामरूपके ईशानकोणमें केदार, वायुकोणमें गजशासन और दक्षिणमें ब्रह्मरेता तथा लाक्षाका सङ्गमस्थल है।

कालिकापुराणमें भी लिखा है,—

"करतोया सत्यगङ्गा पूर्वभागावधिश्रिता।
यावल्ललितकान्तास्ति तावद्देशं पुरं तदा॥"

(कालिकापुराण, ३८।१२१ अ०)

करतोया नामक सत्यगङ्गासे पूर्वदिक् ललितकान्ता पर्यन्त यह पुर विस्तृत है। (ललितकान्ता दिक्करवासिनीके निकट है।)

बुरञ्जीके मतसे भी कामरूपकी उत्तर सीमा कञ्जगिरि वा भूटानका पार्वत्य प्रदेश है। इसके पूर्व महाचीन वा चीन-साम्राज्य, दक्षिण लाक्षा नदी (यह नदी ब्रह्मपुत्रसे पृथक् हो बङ्गदेशके सीमारूपसे प्रवाहित है।) और पश्चिम करतोया नदी है।*

येन यान्युपयोग्यानि गव्यं देवि पयोमृतम्।
मार्गं मात्स्यं तथा छागं शालनं शाशकं तथा।
माहिषं वर्जयेन्मांसं क्षीरं दधिघृतस्ततः।
पक्षिणाञ्च प्रवक्ष्यामि ये भक्ष्या मम प्रिये।
हारितश्च मयूरश्च नारकं वर्तकस्तथा।
कपिञ्जश्चैव चाशश्च काककुक्कुटको भिरः।
वन्यकुक्कुटकश्चैव शशारिश्च कपोतकः।
तित्तिरः कुलिकश्चैव रक्तपुच्छश्च टिट्टिभः।
क्षणमत्स्याशनश्चैव पक्षीणाञ्च विशिष्यते।
चित्रमत्स्यं रोहितश्च महाशल्कश्च राजिवम्।"

(योगिनीतन्त्र, ९।८ पटल)

* रङ्गपुरवासी लोगोंके विश्वासानुसार देवीगंजके निम्नभागमें प्राचीन तिस्ता (त्रिस्रोता) नदीमें पाथराज नामकी एक छोटी नदी मिली है। वही करतोया नदीका पुराना गर्त है। फिर पाथराज भी कामरूपके अन्तर्गत मानी गयी है। (Martin's Eastern India, Vol. III. p. 361-63.) करतोया देखो।

इधर वर्तमान आसाम प्रदेशके पूर्वप्रान्तमें सदियाके निकट कामरूपपुत्र नामकी एक नदी बहती है। उसे भी कामरूपकी पूर्व सीमा बतानेवाली कहना पड़ेगा। (Journey from Upper Assam towards Hookhoom etc. by W. Griffith; see Selection of papers regarding the Hill Tracts between Assam and Burma, p. 126.)

योगिनीतन्त्रके मतसे विस्तृत कामरूप राज्य नवयोनि-पीठमें विभक्त है,—

"उपपीठिय पीठिय उपपीठश्च पीठकम्।
सिद्धपीठं महापीठं ब्रह्मपीठं तदन्तरम्॥
विष्णुपीठं महादेवि रुद्रपीठं तदन्तरम्।
नवयोनिरितिख्याता चतुर्दिक्षु समन्ततः॥"

फिर योगिनीतन्त्रमें सौमारपीठ, श्रीपीठ, रत्नपीठ और कामपीठ इत्यादिका नाम मिलता है।

सिवा इसके योगिनीतन्त्रमें दूसरे भी कई क्षुद्र क्षुद्र पीठों और उपपीठांका उल्लेख है,—

"उड्डीयानस्य देवेशि प्रादुर्भावः कृते युगे।
पुण्यशैलस्य सम्भूतिस्त्रेतायुगस्यचेऽभवत्॥
द्वापरे नालशैलस्य कामाख्यस्य कलौ युगे।
घोरस्य कलिपापस्य विनाशाय महेश्वरि॥
प्रतिवर्षं तत्र पीठमुपपीठं युगं युगम्।
वर्षं वर्षं महाशैवं पुण्यारण्यं वर्षं वयम्॥
प्रति पीठे महादेवः प्रति पीठे चतुर्भुजः।
प्रति पीठे स्थिता गङ्गा पार्वती प्रतिपीठके॥
प्रति पीठं प्रतिक्षेत्रं पुण्यारण्यन्तु पीठके।
कलौ गृहात् सुदूरे च तीर्थवृद्धिः प्रजायते॥
किन्तु तीर्थानि वै सन्ति भावनाशिञ्चिरिष्यते।
प्रति पीठे पृथग्धर्म आचारश्च पृथक् पृथक्॥
देशे देशे कुलाचारो भवन्त्यानि हेतुभिः।
पृथक् पूजा पृथक् मन्त्रो मन्त्रं च तीरपीठकम्॥
भद्रपीठं दाक्षिणात्ये मध्यदेशस्य पार्वति।
जालन्धरन्तु पाश्चात्ये पूर्णपीठन्तु पूर्वतः॥
ऐशान्यां पूर्वभागे च कामरूप विजानीहि।
जालन्धरन्तु वायव्ये कोल्लापुरन्तु उत्तरे॥
ईशाने चैव विहारं महेन्द्र उत्तरे स्थितम्।
श्रीहट्टमपि पूर्वे च उपपीठान्यथा शृणु॥
नौकायामेन देवेशि अष्टषष्टिस्तु योजनैः।
प्रस्तारे ओड्रपीठस्य आयामेति शृणु भवेत्॥
शकटाकारकं पीठं चतुष्कोणं सपीठकम्।
चतुर्द्वारसमायुक्तं वायुविम्बे न चिह्नितम्॥
तीर्थकोटिद्वययुतं विन्ध्यभद्रकपीठकम्।
यत्र सोमेश्वरं लिङ्गमादिपीठं तथापरम्॥
कामधेनुश्च यत्रैव यत्र चक्रेश्वरो हरः।
क्षेत्रं विरजसंज्ञश्च एकाम्रं तदनन्तरम्॥
भास्करस्य महाक्षेत्रं यत्र नातङ्गशङ्करः।
कुशस्थली महापुण्या दन्तकस्य वनन्तथा॥
सुमन्तश्च तथारण्यं शिवयूपश्च पर्वतः।
पश्चिमे बिन्दुकारण्यं उत्तरे तु गयाशिरः॥
दक्षिणे चन्द्रभागा च ओड्रपीठं वरानने।
त्रिंशद्योजनविस्तीर्णमायामे शतयोजनम्॥
यत्र कामेश्वरी देवी योनिमुद्रास्वरूपिणी।
भूगोलपीठकं नाम यत्र वै गोलोकेश्वरः॥
घर्घपीठं महापीठं यत्र कामेश्वरो हरः।
अविमुक्तं महाक्षेत्रं हंसप्रपतनं तथा॥
प्रभयूपस्तु यत्रैव यत्र श्रेतवटः स्थितः।
कुरुक्षेत्रन्तु तत्रैव यत्र मायाख्यमा नदी॥
अयोध्यारण्यकं पुण्यं धर्मारण्यं तथा परम्।
कृपात्मकं महारण्यं यत्र पातालशङ्करः॥
गण्डकी च नदी पूर्वे विष्णुयूपश्च पश्चिमे।
दक्षिणे वृषभं लिङ्गं उत्तरे कदलीवनम्॥
एतन्मध्यतमं पीठं चापाकारं मनोरमे।
अनाहतं तथा पद्मं रक्तवर्णं विभावयेत्॥
एकादशशतायामं योजनानां तथा नव।
षडीत्यष्टौ च प्रस्तारे त्रिकोणं पीठमुत्तमम्॥
प्रवरं पीठकं तत्र पीठञ्चाशोकमेव च।
सीतायाश्च महाक्षेत्रं अगस्त्याश्रमं तथा॥
हरस्य परमं क्षेत्रं क्षेत्रमवधमिदं प्रिये।
माधवारण्यकं चैव हरस्यारण्यकं तथा॥
अरण्यञ्चैव भर्गस्य शतद्वारण्यकं त्रयम्।
उत्तरे ब्रह्मक्षेत्रञ्च दक्षिणे सागरावधि॥
पूर्वं तोदयकूटञ्च पश्चिमं श्रीपर्वतं प्रिये।
एतन्मध्यतमं पीठं पुण्याख्यं नाम नामतः॥
पादात् पादान्तरं यावन्मध्य उत्तरयान्तरम्।
शिवरात्रौ च गमनं सौरमासेन मासकम्॥
कामरूपं विजानीयात् षट्कोणाष्टगर्भकम्।
तत्पुण्यं तत्समं वेद्यं नवव्यूहं त्रिमण्डलम्॥
पर्वतैर्दशभिर्युक्तं वेदिमध्यं प्रकीर्त्तितम्।
मध्यपीठं महापीठं यत्र कामेश्वरी भवेत्॥
तत्र पीठे हि देवेशि यत्र चम्पावती नदी।
कन्याश्रमं महाक्षेत्रं यत्र रुद्रपदद्वयम्॥
एकाम्रकं परं क्षेत्रं यत्र नागाख्यशङ्करः।
मानसं क्षेत्रकञ्चैव यत्र विश्वेश्वरो हरः॥
नाटकारण्यकञ्चैव चम्पकारण्यकन्तथा।
पिच्छिला वा दक्षिणतो गौतमस्य महावनम्॥"

(योगिनीतन्त्र, २१ पटल)

'हे देवि! त्रेतायुगके पूर्ववर्ती सत्ययुगमें उड्डयान नामक पुण्यशैलका प्रादुर्भाव हुवा था। उसके

पीछे द्वापर युगमें जालशैल और कलियुगमें कलिपाप-विनाशक कामाख्य पर्वत देख पड़ा। हे महेश्वरि! प्रत्येक वर्षमें तुम्हारे पीठ, उपपीठ, तीन महाक्षेत्र और तीन महारण्य विराजित हैं। फिर प्रत्येक पीठमें महादेव, चतुर्भुज विष्णु, गङ्गा और पार्वतीका अधिष्ठान है। प्रत्येक पीठ और प्रत्येक क्षेत्रमें एक एक पुण्यारण्य अवस्थित है।

'कलिकालमें गृहसे दूरवर्ती स्थान मात्र पर तीर्थ-बुद्धि रहती है। किन्तु जहां भावनाकी सिद्धि आती, वही भूमि तीर्थ मानी जाती है। प्रत्येक पीठमें धर्म और आचार पृथक् पृथक् है। देशभेदके अनुसार कुलका आचार भी पृथक् होता है। इसलिये प्रत्येक पीठका पूजन और मन्त्र स्वतन्त्र है। हे पार्वति! मर्त्यभूमिमें तीरपीठ, दाक्षिणात्य देशमें भद्रपीठ, पाश्चात्य देशमें जालन्धर और पूर्व दिक्में पूर्वपीठ है।

'ईशान और पूर्वभागमें कामरूप है। इसके वायुकोणमें जालन्धर, उत्तरमें कोल्वापुर, महेन्द्रके किञ्चित् उत्तर ईशानदिक्में विहार और पूर्वमें श्रीहट्ट है। हे देवेश्वरि! अतःपर उपपीठका विवरण श्रवण करो। ओड्रपीठ ६८ योजन विस्तृत है। शकटाकार पीठ चतुष्कोण, चार द्वारयुक्त और वायुविम्ब चिन्हित है। सिन्धुभद्रक पीठमें दो कोटि तीर्थ हैं। फिर उक्त स्थानमें सोमेश्वरलिङ्ग अवस्थित है। विरज नामक क्षेत्र और एकाम्रक्षेत्रमें कामधेनु तथा चक्रेश्वर शिवका अवस्थान है। भास्कर नामक महाक्षेत्रमें मातङ्ग महादेव, पवित्र कुशस्थली, दन्तकवन और सुमन्तवन है। इस क्षेत्रके पूर्व शिवयूप, पश्चिम धेनु-कारण्य, उत्तर गयाशिरः और दक्षिण चन्द्रभागा तथा ओड्रपीठ है। हे वरानने! इसका दैर्घ्य शत योजन और विस्तार तीस योजन है। जहां योनिमुद्रारूपिणी कामेश्वरी देवी, भूगोलपीठ, गोलोकेश्वर, धर्मपीठ, महापीठ, कामेश्वर शिव, अविमुक्त एवं हंसप्रपतन क्षेत्र, ब्रह्मयूप, श्वेतवट, कुरुक्षेत्र, मायाख्या नदी, पवित्र अयोध्यारण्य, धर्मारण्य, कथात्मक नामक महारण्य तथा पातालशङ्करका अवस्थान है और जिसके पूर्व गण्डकी नदी, पश्चिम विष्णुयूप, दक्षिण वृषभलिङ्ग एवं उत्तर कदलीवन है; उसीका मध्यवर्ती धनुराकार पीठ पद्म तथा रक्तवर्ण है। यह पीठ त्रिकोणाकार है। इसका दैर्घ्य १०८ योजन और विस्तार ८८ योजन है। इस पीठस्थलमें भी महादेवका क्षेत्र है। यह क्षेत्र-त्रय और माधवारण्य, महादेवारण्य एवं भर्गारण्य अरण्यत्रय वर्तमान है। इस पीठके उत्तर ब्रह्मक्षेत्र, दक्षिण समुद्र, पूर्व उदयकूट और पश्चिम श्रीपर्वत है। इसीके मध्यवर्ती पीठका नाम पुण्यपीठ है। काम-रूपके मध्यस्थलमें षट्कोण, नवव्यूह और त्रिमण्डलयुक्त पवित्रतम एकवेदी है। फिर यहां दश पर्वत अवस्थित हैं। मध्यपीठ नामक महापीठस्थलमें कामेश्वर महादेव और चम्पावती नदी हैं। कन्याश्रम नामक महाक्षेत्रमें रुद्रदेवका पदद्वय है। एकाम्रक्षेत्रमें नागाङ्क-शङ्कर हैं। मानसक्षेत्रमें विश्वेश्वर, नाटकारण्य और चम्पकारण्यका अवस्थान है। गौतमके दक्षिण भागमें पिच्छिला और महावर्म है।

प्राचीन कामरूप प्रदेशके समस्त उत्तरांशका नाम सौमार है। योगिनीतन्त्रमें इस प्रकार चतुःसीमा निर्दिष्ट है,—

"पूर्वे स्वर्णनदीं यावत् करतोया च पश्चिमे।
दक्षिणे मन्दशैलश्च उत्तरे विहगाचलः॥
प्रस्तारे चैव व्यासार्धं योजनानाञ्च पञ्चकम्।
आयुतत्रयश्च विस्तीर्णः पञ्चोद्रवं तथा दश॥
अष्टकोणञ्च सौमारं यत्र दिक्करवासिनी।
तस्मिन् वसति सा देवी स्नानात् ध्यानाद्भवोऽपि वा॥
तेऽपि देव्याः प्रसादेन स्थितिं गच्छन्ति नान्यथा।
अथोदयो नवं पीठं सौमाराख्यां तु कथ्यते॥
वसत्यत्रयं प्रत्यक्षं यत्र दिक्करवासिनी।
दिक्करस्य च वायव्ये गोलपीठं सुदुर्लभम्॥
यत्र कामेश्वरी देवी योनिमुद्रास्वरूपिणी।
पारिजातं महार्घ्यं यत्रादित्यस्तु शङ्करः॥
कौवे यस्य पुरं चैवं तथा चालरकण्टकम्।
आरण्यमाग्निनश्चैव गौतमारण्यकं शिवम्॥"

'सौमारकी चतुःसीमामें पूर्व स्वर्णनदी (वर्तमान स्वर्णश्री), पश्चिम करतोया, दक्षिण मन्दशैल और उत्तर विहगाचल है।

'अष्टकोण सौमार और दिक्करवासिनीके स्थलमें

महादेवी अवस्थान करती हैं। फिर उक्त स्थलमें देवीके अनुग्रहसे पीठादि भी अवस्थित हैं। अतःपर नवपीठका विषय कथित है। दिक्करवासिनीमें अजय नामक प्रत्यक्ष पीठ और दिक्करके वायुकोणमें दुलर्भ नीलपीठ है। इसी स्थान पर योनिमुद्रारूपिणी कामेश्वरी देवीका अवस्थान है। आदित्यशंकरको अवस्थितिके स्थलका नाम महाक्षेत्र पारिजात और अपर पीठका नाम कौपियपुर, अमरकण्टक, आरण्य, आश्विन, गौतमारण्य और शिवनाथारण्य है।'

सौमारके अंशविशेषका नाम सौमारपीठ है। यह आसामके उत्तर-पूर्व भागमें अवस्थित है। इसकी चतुःसीमा इस प्रकार निर्धारित है,—

"अरण्यं शिवनाथस्य ग्रणु पीठावधि प्रिये।
पूर्वे सौरशिलारण्यं पश्चिमे स्वर्णदी प्रभा॥
दक्षिणे ब्रह्मयूपश्च उत्तरे मानसं सरः।
एतन्मध्यगतं पीठं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्॥
सौमाराख्यं महापीठं षट्कोणञ्च त्रिमण्डलम्।
सहस्रयोजनव्यासं ह्यतास्रञ्च पञ्चमम्॥" (योगिनीतन्त्र, २।१)

हे प्रिये! इस शिवनाथके अरण्यको चतुःसीमाका निर्देश श्रवण करो। इसके पूर्व सौरशिलारण्य, पश्चिम स्वर्णदी, दक्षिण ब्रह्मयूप और उत्तर मानससरोवर है। इसीके मध्यस्थलमें भुक्तिमुक्तिप्रद षट्कोण और त्रिमण्डल सौमार नामक महापीठ है। इस पीठका परिमाण सहस्र योजन व्यास है। इसको पञ्चम ह्यतास्र भी कहते हैं।

आसामको बुरञ्जोके मतानुसार भैरवीसे दिकराई नदी तक सौमारपीठ है।

श्रीपीठको चतुःसीमा इस प्रकार है,—

"वाराही प्रथमं पीठं द्वितीयं कोलपीठकम्।
कुमारक्षेत्रं प्रथमं द्वितीयं नन्दनाह्वयम्॥
तृतीयं शाश्वतीक्षेत्रं मातङ्गं प्रथमं वनम्।
सिद्धारण्यं द्वितीयञ्च तृतीयं विपुलं वनम्॥
कोटिकोटियुतं लिङ्गं कोटिकोटिगणैर्युतम्।
पद्मतीर्थं भवेत् पूर्वे पश्चिमे धनदा नदी॥
पद्माख्या दक्षिणे चैव उत्तरे कुरुवकाननम्।
एतन्मध्यगतं देवि श्रीपीठं नाम नामतः॥"

(योगिनीतन्त्र, २।१ पटल)

प्रथम पीठका नाम वाराही और द्वितीयका नाम कोलपीठ है। प्रथम क्षेत्रको कुमार क्षेत्र, द्वितीयको नन्दन और तृतीयको शाश्वती क्षेत्र कहते हैं। प्रथम वन मातङ्ग, द्वितीय सिद्धारण्य और तृतीय विपुलवन कहलाता है। यह वन कोटि कोटि लिङ्गयुक्त और कोटि कोटि गणाधिष्ठित है। पूर्व सीमापर पद्मतीर्थ, पश्चिम धनदा नदी, दक्षिण पद्मा और उत्तर कुरुवका वन है। इसीके मध्यस्थलमें श्रीपीठ अवस्थित है।

रत्नपीठका वर्तमान नाम कोचविहार है। सम्भवतः कामतेश्वरी देवीके यहां रहनेसे रत्नपीठ नाम पड़ा है। आसामकी बुरञ्जीके मतमें स्वर्णकोषी नदीसे रूपिका नदी तक रत्नपीठ है। योगिनीतन्त्रमें लिखा है,—

"रत्नपीठे तु पङ्कस्तं लौहित्या चैव उत्तरे॥"

आसामकी बुरञ्जीके मतमें करतोया और स्वर्णकोषी नदीका मध्यवर्तीस्थान कामपीठ है। किन्तु योगिनीतन्त्रमें कामपीठका अपर नाम योगिनीपीठ लिखा है। योगिनीपीठका वर्तमान नाम कामाख्या है। कामगिरिके ऊपर अवस्थित होनेसे उक्त पीठका नाम कामपीठ पड़ा होगा। यथा,—

"योनिपीठं कामगिरौ कामाख्या तत्र देवता।" (तन्त्रचूड़ामणि, पीठमाला)

कामाख्या देखो।

कामाख्यासे कुछ दूर योगिनीतन्त्रोक्त उग्रपीठ और ब्रह्मपीठ है। यथा,—

"ब्रह्ममुखाग्रं पीठं उग्रतारांधिदेवतम्।
तत् पीठं विविधं प्रोक्तं गुप्तं व्यक्तं महेश्वरि॥
गनोमवयुद्रावङ्गो देवीशिखरमुत्तमम्।
तन्मध्येपमिति ख्यातं पीठं परमदुर्लभम्॥
सिद्धिकाली ब्रह्मरूपा देवता भुवनेश्वरी।
नियमेनच या काली घोरदैत्यविनाशिनी॥"

(योगिनीतन्त्र, १।११)

बुरञ्जीमें स्वर्णपीठ नामक एक पीठका उल्लेख है। किन्तु कालिकापुराण और योगिनीतन्त्रमें स्वर्णपीठका नाम नहीं मिलता। कालिदासने अपने रघुवंशमें इसीको "हेमपीठ" लिखा है,—

"तमीशः कामरूपाणामत्याखण्डलविक्रमम्।
भेजे भिन्नकटैर्नागैरन्यानुपरुरोध यैः॥ ८३
कामरूपेश्वरस्तस्य हेमपीठाधिदेवताम्।
रत्नपुष्पोपहारेण छायामानर्च पादयोः॥ ८४ (रघुवंश ४र्थ सर्ग)

फिर कामरूपेश्वर अन्य भूपालोंके आक्रमणसे लब्ध-प्रतिष्ठ प्रभिन्नगण्ड सब हाथी ले कर इन्द्रविजयी रघुके शरणापन्न हुये और सुवर्णपीठके अधिदेवता स्वरूप उनके चरणकमल पर रत्नरूप पुष्पोपहार प्रदान किये।

आसामको बुरञ्जीके मतमें रूपिका वा रूपही नदीसे भैरवी वा भरली नदी तक स्वर्णपीठ है।

कालिकापुराणके मतानुसार कामदेवको महादेवके क्रोधानलसे भस्मीभूत होनेके पीछे इसी स्थानमें महादेवकी कृपासे स्वरूप प्राप्त हुवा था। इसीसे इसका नाम कामरूप पड़ गया। (कालिकापुराण, ५१ अ०) पहले ब्रह्माने यहीं रह नक्षत्रोंकी सृष्टि की थी। इसीसे कामरूपका प्राचीन नाम प्राग्ज्योतिष है।

"अत्रैव हि स्थितो ब्रह्मा प्राङ्नक्षत्रं ससर्ज ह।
ततः प्राग्ज्योतिषाख्येयं पुरी शक्रपुरी समा॥"
(कालिकापुराण, ३७ अ०)

कामरूप अति प्राचीन तीर्थ है, यह पहले ही लिख चुके हैं। कालिकापुराणमें कामरूपतीर्थका विवरण इस प्रकार लिखा है,—

'पूर्वकालको महापीठ कामरूपकी नदीमें नहा, जल पी और तथाकार देवता पूज अनेक लोग स्वर्ग जाते थे। फिर किसीने निर्वाणमुक्ति और किसीने शिवत्वको प्राप्त किया। पार्वतीके भयसे यमराज इन लोगोंमें किसीको न तो स्वर्ग जानेसे रोक सके और न अपने घर ले जा सके। प्रथमतः उन्होंने कई बार यमदूतोंको भेजा। किन्तु शिवके दूतोंने यमदूतोंको लोगोंके निकट जाने न दिया। सुतरां यमराजका कर्तव्यकार्य एक प्रकार बन्द हो गया। उन्होंने फिर विधाताके निकट पहुंच कर कहा,—हे विधाता! मनुष्य कामरूपमें नहा, जल पी और देवता आदि पूज मृत्युके पीछे कामाख्यादेवी वा शिवके पार्श्वचर हो जाते हैं। वहां अपना अधिकार न रहनेसे हम उन्हें किसी प्रकार बाधा नहीं पहुंचा सकते। इसीसे हमारा काम बन्द हो गया है। अब इस सम्बन्धमें किसी उचित उपायका अवलम्बन बहुत आवश्यक है। पितामह ब्रह्मा यह कथा सुन यमको साथ ले विष्णुके निकट पहुंचे और उनको उक्त समस्त कथा विष्णुसे कहने लगे। विष्णु भी सब बातें सुन यम और ब्रह्मा दोनोंको साथ ले शिवके निकट उपस्थित हुये। महादेवने सत्कारपूर्वक अभ्यर्थना कर उनसे आनेका कारण पूछा था। विष्णुने कहा,—कामरूप समस्त देवता, सकल तीर्थ और सकल क्षेत्र द्वारा परिवृत है। इसकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्थान दूसरा कोई नहीं। सुतरां उस पीठमें मरनेसे सबको स्वर्ग वा आपका पार्श्वचरत्व मिलता है। फिर वहांके लोगों पर यमराजका कोई अधिकार नहीं रहता। यमका भय छूट जानेसे उक्त पीठका नियम भी बिगड़ सकता है। इसलिये कोई ऐसा उपाय करना चाहिये, जिसमें यमका अधिकार पूर्ववत् अक्षुण्ण रहे।

'महादेवने विष्णुवाक्य पालन करने पर स्वीकृत हो उन्हें विदा किया। फिर महादेव अपने गणोंके साथ कामरूपमें आ पहुंचे। कामरूपमें आते ही उन्होंने देवी उग्रतारा और अपने गणोंसे कहा,—'सत्वर यहांसे सब लोगोंको भगा दो।'

'शिवकी आज्ञा पाते ही महादेवी उग्रतारा और गणसमूहने समुदाय लोगोंको भगाना आरम्भ किया। क्रमशः उन्होंने कामरूपके अन्यान्य लोगोंको दूरीभूत कर वशिष्ठको निकालनेकी चेष्टा की थी। इससे वशिष्ठने बहुत क्रुद्ध हो उग्रताराको अभिशाप दिया,—'हे वामे! हम मुनि हैं। फिर भी तुम हमें भगानेके लिये चेष्टा कर रहे हो। इसलिये तुम मातृगणके साथ वाम अर्थात् वेदविरुद्ध भावसे पूजित होगो। तुम्हारे प्रमथगण मदमत्त चित्तसे म्लेच्छकी भांति घूमते फिरते हैं। इसलिये वह म्लेच्छरूपसे इस कामरूपमें वास करेंगे। हम शम-दम-गुणविशिष्ट, वेदपारग और तपोनिरत मुनि हैं। फिर भी महादेवने विवेचनाशून्य हो म्लेच्छकी भांति हमें भगानेको कहा है। इसलिये वह भी म्लेच्छकी भांति भस्म और अस्थि धारण कर इस कामरूपमें रहेंगे। फिर यह कामरूप-क्षेत्र अद्यावधि म्लेच्छपरिवृत होगा। जबतक स्वयं विष्णु यहां न आयेंगे, तब तक इसमें यही भाव दिखायेंगे। कामरूपके माहात्म्यप्रकाशक सकल तन्त्र विरल हो जायेंगे। फिर भी जो पण्डित विरलप्रचार

कामरूपतन्त्र समझेंगे, उन्हें यथाकाल सम्पूर्ण फल मिलेंगे।

'यह अभिशाप दे वशिष्ठके अन्तर्हित होते ही कामरूपके प्रमथगण म्लेच्छ बन गये। उग्रतारा वामा हुयीं। महादेव म्लेच्छवत् फिरने लगे। कामरूप-माहात्म्य-प्रकाशक सकल तन्त्र विरलप्रचार हुये। सुतरां अल्पकालके मध्य कामरूप वेदमन्त्रहीन और चतुर्वर्णशून्य बन गया। फिर कामरूपपीठमें विष्णुका आगमन हुवा। इससे कामरूपका शाप छूट गया। फिर वह सम्पूर्ण फल देने लगा। किन्तु देवता और मनुष्य पूर्ववत् उसका माहात्म्य समझ न सके। उसी समय ब्रह्माने सब कुण्ड और नदी छिपानेके लिये शान्तनुपत्नी अमोघाके गर्भसे एक जलमय पुत्र उत्पादन किया था। उस पुत्रने परशुराम* द्वारा अध्यक्ष भावमें अवतारित हो समुदाय कामरूपको जलमें डुबा दिया। सुतरां अन्यान्य तीर्थ गुप्त हो गये।

'जो अन्य किसी तीर्थका विषय न समझ केवल ब्रह्मपुत्रका ही अस्तित्व जानते और उसमें नहाते हैं, वह केवल मात्र ब्रह्मपुत्रके स्नानसे ही सकल फल पाते हैं। फिर जो ब्रह्मपुत्रमें समस्त तीर्थोंका गुप्त भाव समझ कर नहाते हैं वे लोग समस्त तीर्थोंके स्नानका फललाभ करते हैं।' (कालिकापुराण ८१ अ०)

उक्त विवरणके पाठसे समझते हैं कि किसी समय कामरूपमें बहुत तीर्थ थे। वास्तविक आज भी कामरूपके नानास्थानोंमें पर्यटन करनेसे देखते हैं कि कामरूपके अनेक तीर्थ और अनेक पवित्र स्थान ब्रह्मपुत्रके गर्भमें दबे हैं। ब्रह्मपुत्र कामरूपके प्राचीन गौरवके साथ ही हिन्दुवोंकी सकल प्राचीन कीर्तियां भी खा गया है। योगिनीतन्त्रमें लिखा है,—

"देवीक्षेत्रं कामरूपं विद्यतेऽन्यं न तत्समम्।
अन्यत्र विरला देवी कामरूपे गृहे गृहे॥"

कामरूप देवीक्षेत्र है। ऐसा स्थान दूसरा देख नहीं पड़ता। अन्यत्र देवीका दर्शनलाभ सुकठिन है। किन्तु कामरूपमें घर घर देवी विराजती हैं।

योगिनीतन्त्रके पाठसे भी कामरूप तीर्थका ऐसा ही परिचय मिलता है,—'महापीठ कामरूप अति गुह्य तीर्थ है। यहां महादेव पार्वतीके साथ नियत अवस्थान करते हैं। इस पीठमें शत नदी और कोटि-लिङ्ग अवस्थित हैं। वायुकूटकी अन्तिम सीमा पर धनुर्हस्त परिमित वायुरूपी चन्द्रका अवस्थान है। वायुगिरिकी पूर्व ओर चन्द्रकूट शैल, मध्यभागमें गोदन्त और चन्द्रशैलके मध्यस्थलमें इन्द्रशैलसे कुछ दक्षिण एवं चन्द्रशैलके कुछ उत्तर चन्द्रकुण्ड नामक सरोवर है। इस सरोवरके दक्षिणदिक्‌भागमें चार धनु परिमित मानसतीर्थ है। मानसकी दक्षिणदिक् २८ धनु परिमित अमृततीर्थ है। उसके दक्षिण भागमें दश धनु परिमित ऋणमोचन नामक सरोवर है। अश्वक्रान्त पर्वतके दक्षिण और अग्निकोणांशमें अश्व-क्रान्ता नामक सरोवर भरा है। चन्द्रशैलसे गिरनेवाले निर्झरको जाह्नवी और इन्द्रशैलसे निकलनेवाले निर्झरको सरस्वती कहते हैं। वर्षाकाल अश्वक्रान्ता तीर्थमें दोनों निर्झर मिल जाते हैं। इस लिये वह प्रयागतीर्थके तुल्य माना जाता है।

'इन तीर्थोंमें स्नान, दान और पूजादि कार्य करनेसे विविध पुण्यफल मिलता है। विशेषतः प्रयागतीर्थके तुल्य माना जानेसे अश्वक्रान्ता तीर्थमें मस्तक मुण्डनादि कार्यका भी विधान है। इससे इहलोकमें यावतीय सुखसम्भोग और परलोकमें स्वर्गलाभ होता है।'

(योगिनीतन्त्र २। ३य पटल)

'अश्वतीर्थकी किञ्चित् पश्चिम आर आठ धनु-परिमित स्थानमें सिद्धकुण्ड है। इस तीर्थके पश्चिम सदके निकट ६४ धनु-परिमित स्थानमें ब्रह्मसरः तीर्थ है। इन्द्रकूटके उत्तर ८० धनु-परिमित रामक्षेत्र है। यहां भी एक कुण्ड विद्यमान है। रामतीर्थके ८ धनु दूरवर्ती पूर्वदिक्‌भागमें सीतातीर्थ है। सीतातीर्थके दक्षिण १० धनुपरिमित विजयतीर्थ है। यहां विजय नामक शिवलिङ्ग अवस्थित है। इसीके निकट योगतीर्थ है। वहां योगीश नामक शिवलिङ्ग अधि-

* वर्तमान आसामके उत्तरपूर्व मत्स्यवासियोंमें प्रवाद है कि परशुरामने अपनी कुठारसे उक्त स्थानमें ब्रह्मपुत्रका अवतरण किया था। अद्यापि उस स्थानका नाम "ऋषिकुठार" है। वह एक पवित्र तीर्थ है। सदियाके उत्तरपूर्व ब्रह्मकुण्डके निकट ऋषिकुठार अवस्थित है।

छित है। उसके निकट २२ धनु परिमित मुक्ति-तीर्थ है। मुक्तितीर्थसे बहुत दूर हस्तकुण्ड है। इन्द्रशैलके दक्षिण १२ धनु परिमित सूर्यतीर्थ है। यहां सूर्यदेव अदृश्य मूर्तिमें अवस्थान करते हैं। रामक्षेत्रके मध्य दो दुर्गकूप और एक ब्रह्मयूप देखते हैं। इन्द्रकूटमें मणिनाथ नामक महादेव अवस्थित हैं। सोमतीर्थकी शेष सीमा पर ५ धनुपरिमित नागतीर्थ है। चन्द्रशैलके उत्तर ६४ धनुपरिमित एक पर्वत अवस्थित है, उसके जलाशयका नाम गयाकुण्ड और तीरकी भूमिका नाम क्षेत्र है। पूर्वमें लोहित्य और उत्तरमें ब्रह्मयोनि पर्यन्त विस्तृत २२ धनुपरिमित स्थानको गयाशीर्ष वा गयातीर्थ कहते हैं।

'इन समुदाय तीर्थोंमें स्नान, दान, पूजा एवं प्रदक्षिण और गयातीर्थमें श्राद्धादि कार्य करनेसे अक्षय पुण्य मिलता है।' (योगिनीतन्त्र, २। ४र्थ पटल)

'सोमशैलकी ईशानदिक् मणिशैल है। मणि-शैलके किञ्चित पूर्वांश ईशानकोणमें ७ धनु दूर वाराणसी नामक कुण्ड है। इस कुण्डका दैर्घ्य २२ धनु है। इसकी दक्षिण दिक् ५ धनु दूर २२ धनुपरिमित मणिकर्णिका नामक कुण्ड है। मणिशैलकी ईशान कोणमें मङ्गला नदी है। फिर दक्षिण दिक् कामेश्वरी, पश्चिम हयग्रीव, उत्तर कमललिङ्ग और पूर्व विरजा है। इस चतुःसीमाके मध्यस्थलमें तीन कोस परिमित स्थानका नाम मणिपीठ है। मानशैलके वायुकोणमें वराहपर्वत है। उसके पूर्व-दक्षिण भागमें नर-नारायण सरोवर है। इसके वायुकोणमें ८ धनुदूर वैनायक तीर्थ और १०० धनुपरिमित दीर्घ प्रभासतीर्थ है। प्रभासतीर्थके वायुकोणमें बिन्दुसरः है। नाटका-चलके पूर्वभागमें मातङ्ग नामक पर्वत और अग्नि कोणमें हयाचल है। इस तीर्थकी शिवका अन्तर्गृह कहते हैं। हयाचलके पूर्व और ईशानदिक्भागमें भस्माचल है। इसकी उत्तर ओर उर्वशी नामक तीर्थ है। उर्वशी तीर्थके पूर्व ओर सूर्यतीर्थ है। उससे ५ धनु दूरवर्ती पूर्व दिक्में कामाख्या सरोवर है। मदन तीर्थकी दक्षिण ओर गङ्गासरोवर तीर्थ है। गङ्गातीर्थसे ८ धनु दूरवर्ती दक्षिण दिक्में आगस्त्यतीर्थ है। इस आगस्त्य तीर्थके किञ्चित् पश्चिमांशमें अग्निकोण पर २१ धनुपरिमित स्थानमें वासव नामक तीर्थ है। इसकी पश्चिम ओर अनतिदूरवर्ती ७ धनुपरिमित स्थानमें रम्भातीर्थ है। उसकी ३० धनुपरिमित दूरवर्ती पश्चिम दिक्में रुक्मिणी कुण्ड है। इस कुण्डके वायु-कोणमें ८ धनुपरिमित स्थान पर पिङ्गतीर्थ है। उक्त भस्मशैलके अग्निकोणमें ८ धनु दूर पिशाचमोचन तीर्थ है। यहां कपर्दीश्वर नामक शिवलिङ्ग अवस्थित है। भस्मकूटके वायुकोणमें कपालमोचन तीर्थ है। यहां कपालेश्वर नामक शिवलिङ्ग अधिष्ठित है। कपालमोचनसे ५ धनु दूरवर्ती उत्तरको कपिला-तीर्थ है। इस स्थानमें वृषभध्वज नामक शिवलिङ्गका अवस्थान है। इस शिवलिङ्गके पश्चिमभागमें २२ धनु परिमित मातङ्गक्षेत्र है। मन्दर पर्वतकी ईशान ओर १६ धनु-परिमित चक्रतीर्थ है। चक्रतीर्थके पश्चिम नन्दन पर्वत है। इसका परिमाण ६२ धनु है। यहां बुद्धरूपी जनार्दनदेव अवस्थित हैं। मन्दर शैलके उत्तरांशमें ईशान कोणपर विरजातीर्थ है। गजशैलके दक्षिण-पश्चिम भागमें शौभलिङ्ग है। चक्रतीर्थके अग्निकोणमें २ धनु परिमित स्थान पर शौभलिङ्गतीर्थ है। इसीके निकट शुक्राचार्य-स्थापित शुक्रेश्वर नामक शिवलिङ्ग अधिष्ठित है।

'इन तीर्थोंमें स्नान, दान, पूजा, प्रदक्षिण और स्नान विशेषके समय श्राद्धादि करनेसे विशेष पुण्यलाभ होता है।' (योगिनीतन्त्र २।५म पटल)

'लोहित्यसे दक्षिण दिक् जाते वायुकोण पर कोल-पर्वत है। कोलपर्वतकी पश्चिम ओर पाण्डुनाथ हैं। उनके वायुकोणमें ब्रह्मकुण्ड नामक १२ धनु विस्तृत सरोवर है। इस सरोवरसे अनतिदूर दक्षिण दिक् धन्वन्तर कूल पर्यन्त विस्तृत विष्णुकुण्ड है। विष्णु-कुण्डके दक्षिणांशमें नैऋतकोणपर ११ धनुपरिमित शिवकुण्ड है। इसीके निकटवर्ती स्थानमें पाण्डुशैल है। पाण्डुशैलके ५ धनुदूरवर्ती नैऋतकोणमें पादपद्म-चिह्नित धर्मक्षेत्र है। फिर इसी शैलसे ५ धनु दूरवर्ती पूर्वदिक्में खड्गाकृति शिला है। यह

शिला लक्ष्मी नामसे अभिहित होती है। इससे अनतिदूर दक्षिणदिक्‌में ८ धनुपरिमित कोलक्षेत्र है। इसी स्थान पर अश्वत्थके मूलमें विष्णुकी पाषाण-मूर्ति विराजित है। ब्रह्मकुण्डके निकट श्रीकुण्ड नामक २ धनुपरिमित सरोवर है। उसकी पूर्व ओर २२ धनु दूरवर्ती स्थानमें कनखल नामक तीर्थ है। उसके दक्षिणदिक्‌भागमें मनोहर पर्वतके ऊपर ४ धनु-परिमित चम्पकेश्वरकी मूर्ति विराजित है। इस मूर्तिकी पूर्व ओर ८ धनुपरिमित पुष्करतीर्थ है। पुष्करकी नैऋत ओर किञ्चित् वामभागमें २८ धनु-परिमित बदरिकाश्रमतीर्थ है। यहां विभाण्डक नामक शिवलिङ्ग अधिष्ठित है। पुष्करके पूर्वभागमें कुमार नामक सरोवर है। यहां स्थाणु नामक महादेव हैं। उक्त चम्पकेश्वरके नामानुसार ६२ धनुपरिमित स्थानमें एक वन है। वह चम्पकवनके नामसे प्रसिद्ध है। नीलकूटकी पूर्व ओर दुर्गाकूपसे ३ धनु दूर आम्रातकेश्वर नामक महादेव हैं। आम्रातकेश्वरकी दक्षिण ओर ८ धनु दूरवर्ती स्थानमें कृष्णवर्ण गजाकार गणदेवकी मूर्ति है। उसकी पूर्व ओर १ धनु दूर त्रिविक्रमकी मूर्ति विराजती है। इस मूर्तिसे १ धनु दूरवर्ती स्थानमें ४० हस्तपरिमित सौभाग्य सरोवर है। यह कामाख्या देवीका क्रीड़ा सरोवर कहाता है। इसीकी ईशान ओर लौहित्य सरोवर, अग्निकुण्ड और यामलसरोवर है। सौभाग्य-सरोवरसे ५ हस्त दूरवर्ती नैऋत दिक्‌में गङ्गासर: है। इसके उपरिभागमें अगस्त्यकुण्ड है। इस कुण्डकी पूर्व और कृष्णशिलाकी पश्चिम ओर वराहतीर्थ है। इसके अग्निकोणमें कम्बल नामक शिवकी मूर्ति अधिष्ठित है। अनन्तकुण्डकी पश्चिम ओर असि नदी है। उससे पश्चिम वरुणा नदी बही है।

'यह सकल स्थान श्रेष्ठ तीर्थ गिने जाते हैं। यहां यथाविधान पूजादि कार्य करनेसे अनन्त पुण्य होता है।' (योगिनीतन्त्र, १।६ पटल)

'मानसतीर्थ नाम्नी महानदीकी उत्तर ओर २ धनु दूरवर्ती स्थानमें प्रेतशिला है। वासुदेवसे १८ धनु दूर पश्चिम ओर पञ्चकोण उत्तरतीर्थ है। कोटि-लिङ्गसे दक्षिण चतुष्कोण शिवमूर्तिका नाम दक्षिण-मानस है। कामनाथसे ७ धनु दूर पश्चिम ओर दीर्घेश्वरी देवी हैं। कामेश्वरदेवकी उत्तर ओर १२ हस्त दूरवर्ती स्थानमें कामसरोवर है। कम्बलदेवकी दक्षिण ओर ८ धनु दूरवर्ती स्थानमें कोटीश्वरी देवी हैं। लोकचक्षु देवीसे २ धनु दूरवर्ती स्थानमें तीन धारा हैं। उनमें मध्यधारा सरस्वती, दक्षिण धारा वरुणा और उत्तर धारा यमुना कहाती है। त्रिधाराके सङ्गमस्थल पर आकाशगङ्गा हैं। उनकी उत्तर ओर अनतिदूर शुक्लवर्ण वासुदेवकी मूर्ति है। कामेश्वरके पश्चाद्भागमें सिद्धेश्वरकी मूर्ति है। उनके निकटवर्ती स्थानमें छायारुद्र हैं। विन्ध्याचलके निकटवर्ती स्थानमें विन्ध्येश्वरी शिला है। उसकी पूर्व-उत्तर ओर १०० धनु दूर आकाशगङ्गाका चिह्न मिलता है। इसके दक्षिणभागमें सुरदीर्घिका शिला है। यह शिला ललिताकान्ता कहाती है। इस स्थानमें नन्दि-रूपी अश्वत्थ और उसके मूलदेशमें कूर्माकृति शिला है। इससे अनतिदूर व्यासतीर्थ और व्यासेश्वर-देवका अवस्थान है। व्यासतीर्थसे २० धनु दूर पूर्व ओर हस्तिरूपिणी देवीमूर्ति है। इसीकी पूर्व ओर अनतिदूर ९ हस्त परिमित भुवनेश्वरकी मूर्ति है। उसके वायुकोण पर अगस्त्याश्रममें गङ्गाधरकी मूर्ति है। गङ्गाधरको अनतिदूरस्थ उज्ज्वल श्वेतशिलाका नाम जल्पीश है। उसकी पश्चिम ओर सदाशिव-मूर्ति है। सदाशिवके निकटवर्ती स्थानमें ही गोविन्द पर्वतस्थित गोविन्दकी मूर्ति है। उसकी पूर्व ओर ९ धनु परिमित रक्तवर्ण शिलाका नाम शरणेशी है। उच्च शिवाचलमें प्रकटा नाम्नी महादेवी हैं। विन्ध्या-चलकी उत्तर ओर ९ धनु दूरवर्ती स्थानमें महालक्ष्मी हैं। श्रीपर्वतमें श्रीकुण्ड नामक तीर्थ है। गौतमाश्रममें वृषभध्वज नामक शिवकी मूर्ति और हंसतीर्थ सरोवर है। पाण्डुकूटसे निकलनेवाली धाराका नाम नर्मदा नदी है। शिव और विष्णुमूर्तिके मध्यवर्ती स्थानसे जो धारा आती, वह महानदी कहाती है। नितम्ब और घन उभयकी मध्यवर्ती धारा मङ्गला नामसे विख्यात है। विल्वश्री पर्वतके सीमादेशसे निःसृत

धाराको सरस्वती कहते हैं। मतङ्ग पर्वतकी धारा भी नर्मदा नामसे पुकारी जाती है। कामकुण्डकी धाराका नाम कामगङ्गा है। कामाख्याकी धारा गङ्गा कहाती है। नीलकुण्डकी धाराको उर्वशी कहते हैं। व्यासकुण्डकी धारा सुभद्रा नामसे अभिहित है। ब्रह्मशैलकी धाराका नाम चन्द्रभागा है। सोमकुण्डकी धारा उर्वशी नामसे प्रसिद्ध है। यमशैलकी धाराको वैतरणी और भण्डीशकी धाराको गोदावरी कहते हैं। धर्मारण्यके मध्य रामह्रद नामक तीर्थ है। उससे ३० धनु दूर उत्तर ओर कोटिलिङ्ग है। इसी लिङ्गके सम्मुख भागमें ब्रह्मयोनि है।

'वराह और कामके मध्यवर्ती स्थानमें अपुनर्भव क्षेत्र तथा अपुनर्भव नामक ८ धनुपरिमित सरोवर है। उसके उत्तर तीर भद्रकाश पर्वत है। इसी पर्वतमें पीतवित्ता और शोणच्युति शिला है। उसके ५ धनु दूरवर्ती स्थानमें भववीथी नामक क्षेत्र है। अपुनर्भवकी पूर्व ओर ६ धनु दूर ७ धनु विस्तृत वाराणसीकुण्ड है। उसकी पूर्व दिक् ५ धनु दीर्घ मार्कण्डेय ह्रद है। ह्रदके उत्तर तीर मार्कण्डेश्वर शिव हैं। गोकर्णसे अनतिदूर ब्रह्मसरः नामक कुण्ड है। उसकी पश्चिम दिक् शैलरूपी वराहदेव हैं। गोकर्णकी ईशान दिक् ३ धनु दूरवर्ती स्थान पर मदन पर्वत है। वहां केदार नामक महादेवकी मूर्ति विराजित है। केदारकी पश्चिम दिक् ब्रह्मवटवृक्ष है। केदारकी उत्तर दिक् ३ धनु दूरवर्ती पौण्ड्रक नगरमें कमलाक्ष महादेव हैं। ब्रह्मवट नामक कल्पवृक्षसे २ धनु दूर दक्षिणदिक्को छत्रकोर पर्वत है। इसीके मध्यदेशमें मन्दार नामक उन्नत गिरि है। छत्रकोरकी पूर्व ओर मधुरिपुनामक विष्णुकी मूर्ति है। इसी पर्वतकी उत्तर दिक् २० धनु दूर कपिलाश्रम है। वहां कपिलेश्वर देवता हैं। कपिलाश्रमकी पूर्व दिक् ११ धनु दूर पिशाचमोचन तीर्थ है। यहां कालभैरव देवता हैं। व्याघ्रेश्वरदेवकी ईशान दिक् १० धनु दूर क्षान्तिवासेश्वर हैं। मदन पर्वतकी ईशान दिक् ३ धनु दूर वाणेश्वर, समपातालभेदक और वज्रहत लिङ्ग हैं। वाणेश्वरके वायुकोणमें गरुड़लिङ्ग है। उसकी पश्चिम दिक् विष्णुका मन्दिर है। मणिकूटकी उत्तर दिक् वल्लभा नदी है। मणिकूटकी पूर्व दिक् अनतिदूर विष्णुका पुष्करतीर्थ है।

'यथाविधान इन तीर्थोंमें स्नान, दान, पूजा, प्रदक्षिण आदि कार्य करनेसे अक्षय पुण्य लाभ होता है।'

(योगिनीतन्त्र २। ७—८ पटल)

कालिकापुराण और योगिनीतन्त्रके पाठसे कामरूपके प्राचीन भूवृत्तान्तका बहुत परिचय मिलता है।

कालिकापुराणके मतानुसार कामरूपमें निम्नलिखित पर्वत विद्यमान हैं,—

१ चन्द्रगिरि, २ सुरस, ३ नील, ४ क्षान्तिवास, ५ सुतीक्ष्ण, ६ विभ्राट्, ७ शुभाचल, ८ धवल, ९ गन्धमादन, १० गोशान्त, ११ मणिकूट, १२ मदन, १३ दर्पण, १४ रोहण, १५ अग्निमान्, १६ कंसकर, १७ वायुकूट, १८ दुर्गाशैल, १९ चन्द्रकूट, २० आनन्द वा भस्माचल, २१ मत्स्यध्वज, २२ काम, २३ सुकान्तक, २४ रत्नकूट, २५ पाण्डुनाथ, २६ चित्रवह, २७ ब्रह्मगिरि, २८ कण्ट, २९ वराह, ३० अर्वाक्, ३१ कज्जल, ३२ दुर्जयगिरि, ३३ भीमक, ३४ सन्ध्याचल, ३५ भगवान्, ३६ शृङ्गाट, ३७ नाटक, ३८ हेम, ३९ भद्रकाश, ४० नन्दन। इनको छोड़ योगिनीतन्त्रमें निम्नलिखित पर्वत भी कहे हैं,—४१ मन्दशैल, ४२ विहगाचल, ४३, सप्तर्षिचल, ४४ ब्रह्मयूप, ४५ विन्ध्याचल, ४६ मानशैल, ४७ शिवयूप, ४८ इन्द्रशैल, ४९ श्रीशैल, ५० मतङ्ग, ५१ हास्याचल, ५२ कोलपर्वत, ५३ हस्तिकर्ण, ५४ विकर्णक, ५५ अमाचल, ५६ द्युमन्त, ५७ कनक, ५८ नीललोहित, ५९ गन्धर्व, ६० पिशाच, ६१ आदित्य, ६२ भल्लातक, ६३ धनद, ६४ महौघ, ६५ जनक, ६६ नल, ६७ मण्डल, ६८ यम, ६९ गोविन्द, ७० विश्वश्री, ७१ भण्डीश, ७२ छत्रक, ७३ परिपात, ७४ पूर्णशैल इत्यादि।

कालिकापुराणमें कामरूपकी निम्नलिखित नदियोंका नाम मिलता है,—

१ सुवर्णमानस, २ जटोद्भवा, ३ त्रिस्रोता, ४ सितप्रभा, ५ नवतोया, ६ योगदा, ७ महानदी, ८ बहु-

रोका, ८ करतोया, १० ह्रषप्रदा, ११ चन्द्रिका, १२ फेणिला, १३ शतानन्दा, १४ सुमदना, १५ भैरवगङ्गा, १६ देवगङ्गा, १७ भद्रा, १८ पुनर्भू, १९ मानसा, २० भैरवी, २१ वर्णाशा, २२ कुसुममालिनी, २३ चीरोदा, २४ नीला, २५ शिवाचण्डी वा चण्डिका, २६ सिद्धविस्रोता, २७ ह्रदेविका, २८ भट्टारिका, २९ दिक्करिका, ३० स्वर्णवहा, ३१ सुवर्णश्री, ३२ कामा, ३३ सोमासना, ३४ हयोदका, ३५ श्वेतगङ्गा, ३६ कनखला, ३७ सीता, ३८ सुमङ्गला, ३९ शाश्वती, ४० कलिङ्गिका, ४१ ह्यमान, ४२ कपिलगङ्गिका, ४३ दमनिका, ४४ हंसा, ४५ कान्ता, ४६ ललिता, ४७ संध्या, ४८ दीपवती, ४९ भगद नद।

एतद्भिन्न योगिनीतन्त्रमें दूसरी भी कई नदियोंका नाम लिखा है,— ५० चम्पावती, ५१ मानस, ५२ पिच्छिला, ५३ स्वर्णदी, ५४ हीरिका, ५५ धनदा, ५६ पलाश्या, ५७ मङ्गला, ५८ धवला, ५९ कपिला, ६० सरस्वती, ६१ जाह्नवी, ६२ दिक्षु इत्यादि।

सुवर्णमानस, जटोद्भवा और त्रिस्रोता तीनों नदियां जलपाईगुड़ी जिलेमें प्रवाहित हैं। सुवर्णमानसका वर्तमान नाम स्वर्णकोशी है। चलती बोलीमें सानकोशी कहते हैं। यह नदी भोटानके पर्वतसे निकल ब्रह्मपुत्रमें आ मिली है। जटोद्भवा नदी भोटानके पर्वत पर उत्पन्न हो जटोदा नामसे जलपाईगुड़ी जिले और कोचविहार राज्यके मध्य हो कर ब्रह्मपुत्रमें गिरी है। त्रिस्रोताका वर्तमान नाम तिस्ता है। इसके प्राचीन गर्भमें बहुत परिवर्तन हुआ है। आजकल यह सिकिमके पहाड़से निकल जलपाईगुड़ी और रङ्गपुर जिलेके मध्य हो कर ब्रह्मपुत्रमें आ मिली है। इस नदीसे अनतिदूर फ़कीरगञ्जके मध्य जलपाईगुड़ी नगरसे प्रायः डेढ़कोस दूर जल्पीश नामक पुण्यपीठ है। कालिकापुराणमें कहा है,—

"तवच्च कामरूपस्य वायव्यां त्रिपुरान्तकः।
आत्मनो लिङ्गमतुलं जल्पीशाख्यं व्यदर्शयत्॥"

कामरूपके वायुकोणमें महादेवने जल्पीश नामक अपना अतुल लिङ्ग दिखाया है।

"वरदाभयहस्तोऽयं विमलकुन्दसन्निभः।
तत्पुरुषस्य तु मन्त्रैश्च पूजयेदेनमुत्तमम्॥
एष पुण्यकरः पीठो जल्पीशस्य महात्मनः।
एतमुत्थाला नरो याति शङ्करस्यालयं प्रति॥"
(कालिकापुराण, ७७ अ०)

यह जल्पीश नामक महादेव वरदाभयहस्त और कुन्दतुल्य श्वेतवर्ण हैं। इन्हें तत्पुरुषकी भांति पूजना चाहिये। जल्पीशका विषय जिसे अच्छी तरह मालूम हो जाता, वह शिवलोक पाता है।

कालिकापुराणके मतमें नन्दीने महादेवको आराधना कर यहीं सशरीर गाणपत्य पाया था।

जल्पीशदेवका मन्दिर प्रथम जल्पेश्वर नामक किसी राजाने बनवाया था। मुसलमानोंने प्राचीन मन्दिर तोड़ डाला। उसके पीछे कोचविहारके प्राणनारायणने (कोई २२५ वर्ष हुये) वर्तमान मन्दिर निर्माण कराया। आज कल मन्दिर पहिलेकासा सुन्दर नहीं रहा, जीर्ण अवस्थामें पड़ा है। न मालूम कब वह भूमिसात् हो जावेगा। पहिले यहां बहुतसे यात्री आते थे। किन्तु अब वह समय नहीं है।

जल्पीशपीठसे अनतिदूर तलमा नदीके पास प्राचीन पृथुराजके नगरका ध्वंसावशेष पड़ा है। किसी समय यहां पृथुराजका राजभवन, दुर्गपरिखादि था। आज भी उसका निदर्शन देख पड़ता है। यह प्राचीन स्थान प्रत्नतत्त्वानुसन्धायियोंके देखने योग्य है।

इसके निकट कई क्षुद्र क्षुद्र नदी हैं। वही कालिकापुराणमें लिखी गई सितप्रभा और नवतोया समझ पड़ती हैं।

इससे थोड़ी दूर पाटगञ्ज नामक स्थानमें पाटेश्वरी देवीका प्रसिद्ध मन्दिर है। कोई कोई पाटेश्वरी देवीको ही कालिकापुराणमें उल्लिखित सिद्धेश्वरी मानता है।

भैरवी नदीका वर्तमान नाम भरली है। यह अकालानिके देशसे निकल ब्रह्मपुत्रमें पतित हुयी है।

वर्णाशा वर्तमान कामरूप जिलेसे उत्पन्न हो योगीघोपके निकट ब्रह्मपुत्रमें मिली है।

ह्रदेविका कामरूपमें प्रवाहित कुकुड़ी नदी है।

दिक्करिकाका वर्तमान नाम दिकराई है। यह नदी अका पहाड़से निकल दरङ्ग जिलेके मध्य हो कर ब्रह्मपुत्रमें आ गिरी है।

स्वर्णवहा वा सुवर्णश्री नदीका वर्तमान नाम सुवर्णसिरी या सोवनसिरी है। यह नदी लखीमपुर जिलेसे प्रवाहित हो ब्रह्मपुत्रमें मिली है। कामा लखीमपुर जिलेकी वर्तमान कारानदी है। यह भी ब्रह्मपुत्रमें मिल गयी है।

सोमासनाका वर्तमान नाम सिसी है। यह लखीमपुर जिलेमें प्रवाहित है।

श्वेतगङ्गा वर्तमान सदियाके निकट प्रवाहित दिकराइ नदी है। इसीके निकट दिक्करवासिनीका प्राचीन मन्दिर है।

दिव्य यमुनाको आजकल केवल यमुना कहते हैं। यह नदी नागापहाड़से निकली है।

दमनिका उक्त यमुना नदीके पूर्व प्रवाहित है। आजकल यह दिमोना नामसे प्रसिद्ध है।

कलिङ्गिका नौगांव जिलेकी कलङ्ग नदी है। यह ब्रह्मपुत्रमें पतित हुयी है।

कपिलगङ्गिका वा कपिलाको आजकल कपिली कहते हैं। यह जयन्ती पहाड़से निकल ब्रह्मपुत्रमें गिरी है।

वृहद्गङ्गा दरङ्ग जिलेकी बड़गङ्ग नदी है।

दीपवती दरङ्ग जिलेकी दीपोता नदी है।

दिक्षुनदीका वर्तमान नाम दीखू है। यह शिवसागरके निकट ब्रह्मपुत्रमें मिली है। योगिनीतन्त्रके मतमें यही नदी प्राचीन कामरूपकी पूर्व सीमा थी।

चम्पावती ग्वालपाड़े जिलेमें प्रवाहित वर्तमान चम्पामती नदी है। इसके दक्षिणांशका नाम गदाधर है।

मानसा ग्वालपाड़े जिलेकी मानहा नदी है।

पिच्छिला दरङ्ग जिलेकी पिछला नदी है। यह विश्वनाथके निकट ब्रह्मपुत्रमें गिरी है।

झीरिका नदीका वर्तमान नाम झिलिक है। यह शिवसागर जिलेसे वह लखीमपुर जिलेके मध्य हो कर ब्रह्मपुत्रमें मिली है।

धनदा आजकल धनेश्वरी कहाती है। यह नागा पहाड़से निकल ब्रह्मपुत्रमें पतित हुयी है। यही श्रीपीठकी पश्चिम सीमा है।

इतिहास

आसामकी बुरञ्जीमें लिखा है कि—महीरङ्ग नामक एक दानव कामरूपके अति प्राचीन राजा थे। इस बातका कोई विशेष विवरण नहीं मिलता—वह दानव कौन थे और कैसे या किस तरह उनके शासनमें कामरूप आया।

महीरङ्गवंशके पीछे नरकासुर कामरूपके राजपद पर प्रतिष्ठित हुये। कालिकापुराणके ३६वें से लेकर ४०वें अध्याय तक यह सम्यक् रूपसे विवृत है—नरकासुर कौन थे और कैसे कामरूपके राजपद पर बैठे। (उनके विशेष विवरणमें लिखा कि भगवान् विष्णुकी कृपासे उन्हें कामरूपका राजत्व मिला।) नरकासुरकी कीर्ति अद्यापि कामरूपमें देख पड़ती है। नरकासुर और कामाख्याके सम्पर्कमें निम्नलिखित कई किंवदन्ती प्रचलित हैं,—

नरकासुरने किसी समय स्वीय आसुरिक दर्पमें उन्मत्त हो भगवती कामाख्यासे विवाह करनेका प्रस्ताव उठाया था। उस समय भगवती कामाख्याका मन्दिरादि बना न था। अति सामान्य भावसे अरण्यके मध्य पीठस्थानमात्र था। नरकका प्रस्ताव सुन भगवतीने कहा,—'यदि आप एक रातमें हमारा मन्दिर, मार्ग, पुष्करिणी इत्यादि समस्त निर्माण कर सकें तो हम आपको पति बना सकती हैं। नरकने उसी समय विश्वकर्माको बुला उनके साहाय्यसे रात्रि-समाप्त होनेसे पहिले ही प्रायः समस्त कार्य सम्पन्न करा दिया। भगवतीने देखा,—'महाविपद् आ पड़ी। अब हमें असुरकी भार्या बनना पड़ेगा।' इस प्रकार चिन्ताकर उन्होंने एक मायारूपी कुक्कुट बनाया। नरकके कार्यसमाप्त होनेसे कुछ पहिले ही वह अपना प्रातःकालीन ध्वनि सुनाने लगा। कुक्कुटध्वनि होते ही भगवतीने नरकसे कहा,—'कार्यशेष होनेसे पहले ही कुक्कुट बोलने लगा। रात्रि बीत गई। प्रभात हुवा। हम आपको वरण करने पर प्रस्तुत नहीं हो सकती।' भगवतीके वाक्यसे क्रोधान्ध हो नरकने उस कुक्कुटको मार डाला था। कुक्कुटके मारे जानेका स्थान आजकल भी "कुकुराकटाचकी" नामसे प्रसिद्ध

है। सबसे पहिले नरकासुरने ही उक्त समय भगवती कामाख्याका मन्दिर बनवाया था।

रामायणके समय कामरूप (प्राग्ज्योतिषपुर)के शासनकर्ता नरकासुर थे। सीताको ढूंढनेके लिये सुग्रीवने वानरादि सब देशों और दिशाओंमें भेजे थे। एक वानर कामरूपमें भी आ पहुंचा। वानरराज सुग्रीवने उस समय कामरूपका ऐसा परिचय दिया था—

"योजनानि चतुःषष्टिर्वराहो नाम पर्वतः।
सुवर्णशृङ्गः सुमहानगाधे वरुणालये ॥ २०
तत्र प्राग्ज्योतिषं नाम जातरूपमयं पुरम्।
तस्मिन् वसति दुष्टात्मा नरको नाम दानवः ॥२१"

(किष्किन्धाकाण्ड, ४२ सर्ग)

वर्तमान गौहाटीमें नरककी राजधानी थी।* गौहाटीके पश्चिम-दक्षिण पार्श्व नीलाचलके निकट नरकासुर नामक क्षुद्र पर्वत भी है।

नरकासुरके पीछे भगवान् श्रीकृष्णने उनके पुत्र भगदत्तको कामरूपके सिंहासन पर बैठाया था। पूर्वदिक् चीनदेश और दक्षिण समुद्र पर्यन्त भगदत्तने स्वीय शासन विस्तार किया। महाभारतके सभापर्वमें अर्जुनके दिग्विजय पर भगदत्तका विषय इस प्रकार लिखित है,—

"स किरातैश्च चीनैश्च वृतः प्राग्ज्योतिषोऽभवत्।
अन्यैश्च बहुभिर्योधैः सागरानूपवासिभिः ॥"

उन्होंने किरात, चीन, और समुद्रतीरवर्ती राजाओंसे परिवृत हो अर्जुनके साथ युद्ध किया था।

कुरुक्षेत्रमें युद्धके समय भी भगदत्तने चीन और किरातकी सेनासे दुर्योधनको साहाय्य दिया था। अनेक स्थलमें नरकको म्लेच्छ, कामरूपेश्वरको म्लेच्छोंका अधिप और कामरूपके अन्तर्वर्ती देशोंको म्लेच्छदेश लिखा गया है। प्रकृत कामरूपदेशका भी किसी किसी ग्रन्थमें म्लेच्छदेश नाम मिलता है। इसका कारण कामरूप तीर्थविवरणके प्रारम्भमें ही बता दिया है।

* गौहाटीका ही प्राचीन नाम प्राग्ज्योतिषपुर था।
"प्राग्ज्योतिषपुरं ख्यातं कामाख्यायोनिमण्डलम्।"
(योगिनीतन्त्र, १।१२ पटल)

योगिनीतन्त्रमें कामरूपके राजविवरण पर इस प्रकार भविष्यद्वाणी लिखी है—

"कमतापुरभूपस्य राज्यनाशो यदा भवेत्।
तद्दिनात् परमेशानि म्लेच्छभावः प्रवर्त्तते ॥
ततोऽतीव दुराचारो कामरूपे भविष्यति।
सदा युद्धं महामाये सदा दुःखमेव च ॥
देवदानवगन्धर्वाः सदा पीडापरायणाः।
कुपूर्वकुचटाचन्द्रे गते शाके शिवानिशाम् ॥
सौमारैश्च कुवाचैश्च यवनैश्च समुद्भवम्।
भविष्यति कामपृष्ठे बहुसैन्यसमाकुलम् ॥
ततो शची च सौमारं जित्वा यवन-ईप्सितम्।
वर्षमेवाकरोद्राज्यं मकारादिर्महीपतिः ॥
तत्पश्चाद्ध्रं समासाद्य कुवाचः सौमरराज्यभाक्।
वर्षान्ते यवनं जित्वा सौमारो राज्यनायकः ॥
कुमारीचन्द्रकाशीन्दौ गते शाके महेश्वरि।
कामरूपे मणेः पुष्प योगं सम्भविष्यति ॥
कामरूपे तथा राज्यं द्वादशाब्दं महेश्वरि।
कुवाचसङ्गतो भूत्वा यवनश्च करिष्यति ॥
षड्वर्षं पञ्चमासादिस्ततः शरीरमिच्छति।
शासितव्यं कामरूपं सौमारैश्च कुवाचकैः ॥
यवनस्य कुवाचस्य सौमारस्य तथा ध्रुवः।
कामरूपाधिपो देवि शापमध्येन चाण्डकः ॥
एवमेव बहुविधं वर्षां तत्परमीश्वरि।
क्रियते तत्कारकरं प्रत्यक्षं परमेश्वरि ॥
वशिष्ठस्य तपस्याद्वावग्निः शाम्यति कामिनि।
भविष्यन्ति च तरवः शालाख्यपर्वतोपरि ॥
स्वर्गद्वारे शिलापाते चैके वैपुरसन्निधौ।
कामाख्याया मठे भग्ने चर्चया तद्वदन्नम: ॥
ब्रह्मपुत्रस्य देवेशि सूक्ष्मधारा तु तत्पथ।
षोडशाब्दे गते शाके भूमहीरिपुपुच्छके ॥
विगतो भविता नूनं सौमारकामपृष्ठयोः।
यत्नाधं तत्र संपूज्य उत्तराकालकोषयोः ॥
गमिष्यन्ति च राजानः सर्वं युद्धविशारदाः।
कुवाचैर्यवनैश्चान्द्रैश्च दुष्टं न्यस्तमाकुले: ॥
विभिन्नैः खड्गैः समाकीर्णं महायुद्धं भविष्यति
अश्वमुण्डैर्नरमुण्डैर्गजमुण्डैर्विशेषतः ॥
लौहित्यो रक्तपूर्णश्च भविष्यति न संशयः।
तदैव परमा माया योगिनीगणवन्दिता ॥
कामाख्या वर्णकङ्काला बलिहस्ता हसन्मुखी।
लोलजिह्वा मुण्डमाला दिग्वस्त्रा परमाश्रिता ॥
पर्वतायं समाश्रित्य रक्तपानं करिष्यति।
ततः कुवाचो यवनं जित्वा सौम्यविनाशितः ॥

करतोयानदीं यावत् करिष्यति महद्भयम्।
दशाहं तत्र संस्थाय यास्यन्ति पुनरालयम्॥
ततो विप्रो नृपो भूत्वा कामरूपनिवासिनः।
करिष्यति जनान् देवी जपपूजादितत्परान्॥
एवं वर्षत्रयं राज्यं कृत्वा दण्डी द्विजो नृपः।
भविष्यति महामाये योनिमण्डलसन्निधौ॥
ततो द्वादशदृष्टो नाभिः कल्पते पूर्वभूमिपः।
ईशानीमागतः कामानेकच्छत्रं करिष्यति॥
तद्राज्यं सकलं देवि धर्मेण पालयिष्यति।
तत्पत्नी श्यामवर्णा स्यात् सदाराधितपार्वती॥
सवितं तनयं साध्वी राजानं राजपुत्रकम्।
तज्जन्मदिवसाद्देवि यावत् स्याद्द्वादशं दिनम्॥
तावत् स्वर्णाचली स्वर्णसम्पिराविर्भविष्यति।
तेनैव धनिनः सर्वे कामरूपनिवासिनः।
भविष्यन्ति तदैव स्यात् वशिष्ठशापमोचनम्॥"
(योगिनीतन्त्र, १।१९ पटल)

किसी समय कामरूपराज (नरक) मन्दबुद्धि होंगे। उसी समय उनका राज्य मिट जावेगा। तदवधि कामरूपमें ब्रह्मशाप होनेसे नियत दुर्व्यवहार और युद्धादि बढ़ेगा। फिर देवदानव गन्धर्व प्रभृति भी पीड़ादायक बन जावेंगे।

१३११ शक(?)में सौमारों, कुवाचों और यवनोंका विपुल युद्ध उपस्थित होगा। इस युद्धमें मकारादि कुवाच जय पा एक वर्ष राज्यशासन करेंगे, फिर १३१८ शक(?)में सौमार कामरूप अधिकार कर बारह वर्ष राज्य चलावेंगे। इसी प्रकार शापकालके मध्य यवन, * कुवाच, सौमार † और प्लव शासनकर्ता बनेंगे। एतद्व्यतीत दूसरे भी कई लक्षणादि संघटित होंगे। वशिष्ठ ऋषिका तपोदावानल शान्त होनेसे पर्वत पर शाल वृक्ष उपजेंगे। उसी समय शिलाके पातसे कामाख्याका मठ टूट जावेगा। फिर ब्रह्मपुत्रका सङ्गम होनेसे उर्वशीकी जलधारा घटेगी। इस घटनादिके पीछे सोलह वर्ष बीतने पर १६११ शक(?)में सौमार और कामपीठमें एक युद्ध होगा। छह मास उक्त स्थानमें युद्ध होनेके पीछे समस्त योद्धा उत्तराकान्तकोणमें पहुंच भयङ्कर संग्राम करेंगे। इस युद्धमें कुवाच, यवन और चान्द्र त्रिविध म्लेच्छ सैन्यमें बहुसंख्यक सैन्य तथा अश्व गजादि मरनेसे युद्धस्थल रक्तप्लावित हो जायेगा। दिगम्बरी मुण्डमाला विभूषित

* योगिनीतन्त्रमें यवन और शकजातिकी उत्पत्तिके सम्बन्ध पर इस प्रकार लिखा है,—"कौरवयुद्धमें शाल्वपुत्र बाह्लीकोंके मरनेसे उनका वंश बिलकुल मिट गया। उसी समय कौशिं नाम्नी कोई बाह्लीकरमणी विश्वनाथके मुक्तिमण्डपमें रह विश्वेश्वरकी तपस्या करती थीं। अलिपुत्र बाणासुर उस समय महाकाल रूपसे द्वारोंकी रक्षा करते थे। वह कौशिंका सौन्दर्य देख, कामसुग्ध हुये। फिर उन्होंने उनसे सङ्ग किया था। उससे महाश्व नामक महाबलशाली एक पुत्र उत्पन्न हुआ। फिर महादेवने उन्हें शाल्वराज्य कामरूप दे 'शक' अर्थात् 'जाओ' कह बिदा किया था। इसीसे वह शकनामसे अभिहित हुये।

त्रेतायुगमें बाहु नामक धर्मपरायण एक राजा थे। उन्होंने सप्तद्वीपके मध्य समस्त पितृशत्रुओंको हरा समग्र पृथिवीमें एकाधिपत्य स्थापित किया। दुर्भाग्यवश इस कार्यके करनेसे उनके मनमें अहङ्कार उपस्थित हुआ और उसी अपराध पर राजलक्ष्मीने उन्हें छोड़ दिया। फिर हैहय और तालजङ्घ दो राजाओंने उन्हें हरा राज्य अधिकार किया था। वह सपरिवार वनको भाग थोड़े दिन पीछे मर गये। क्रमसे उनके पुत्र सगरने वयःप्राप्त हो पितृशत्रु हैहय और तालजङ्घ पर आक्रमण किया। उन्होंने हार मान वशिष्ठका आश्रय लिया था। सगर भी वशिष्ठके निकट जाकर बोले,—'हमने इन दोनों पितृशत्रुओंके शिरकाटनेकी प्रतिज्ञा की है। उधर आप आश्रय दे इन्हें मारनेसे रोकते हैं। उभय कार्य हमको पालनीय हैं। सुतरां बतलाइये—हम क्या करें।' वशिष्ठने कहा,—'शास्त्रमें शिरश्छेद और शिरोमुण्डन एकरूप माना गया है। अतएव आप इनको शिर मुंड़वा देशसे भगा दो। इससे उभय दिक् रक्षा होगी।' सगरने वशिष्ठके वाक्यानुसार उनको मस्तक मुण्डन करा निकाला था। फिर वह सुपेश मुनिके निकट पहुंच उनके उपदेशानुसार तपस्या करने लगे। किन्तु उस समय वह अत्यन्त म्लेच्छाचार बन गये और तदवधि यवन नामसे ख्यात हुये। फिर भी उन्होंने तपोबलसे महादेवको रिझाया और कलियुगमें राजा होनेका वर पाया। (योगिनीतन्त्र, ११६ पटल)

† किसी समय इन्द्र कौशाम्बीके साथ नृत्यगीत दर्शन करते थे। उस समय नर्तकियोंके मध्य काञ्चती नाम्नी अप्सराका हावभाव देख कौशाम्बीका मन विचलित हुआ। इसीसे इन्द्रने उन्हें मानवी होनेका अभिशाप दिया था। काञ्चती यथासमय कौरववधू बन कर हुयीं। फिर कुरुक्षेत्रमें जब शत शत कौरवरमणी प्राणत्याग करने लगीं, तब वह चन्द्रचूड़ पर्वतके अति उच्च शिखर पर चढ़ गयीं। वहीं उन्हें ऋतुकाल हुआ था। इससे वह अत्यन्त कामपीड़ित हुयीं। उसी समय इन्द्रने उस पथसे जाते जाते देख उनसे सम्भोग किया था। उससे अरिन्दम नामक पापाचारी एक पुत्र उत्पन्न हुआ। फिर भी इन्द्रके अनुग्रहसे वह पुत्र कामरूपका राजा बन गया। अरिन्दमके ही वंशधर सौमार नामसे प्रसिद्ध हैं। (योगिनीतन्त्र, २।१५ पटल)

श्यामवर्णा कामाख्या देवी सहास्यमुख लोलजिह्वा विस्तारपूर्वक योगिनियोंके साथ पर्वतके शिखर पर चढ़ कर रणका शोणित पान करेंगी। कुवाच (कोच) इस युद्धमें जीत दश दिन वास कर स्वदेशको लौट जायेंगे। इसके पीछे कामरूपदेशमें ब्राह्मण राजा होंगे। राज्यमें वह प्रजादिको पूजा और जप प्रभृति कार्यमें लगा देंगे। इसी प्रकार वह तीन वर्ष राजशासन करेंगे। फिर ब्राह्मणराजा योनिमण्डलके निकटवर्ती स्थानमें वासस्थान ठहरा क्रम क्रमसे एकच्छत्री राजा बन बैठेंगे। इन राजाका पत्नी श्यामवर्णा होंगी। पति और पत्नी दोनों सर्वदा पार्वतीकी आराधनामें रह यथाकाल सवित नामक एक पुत्र लाभ करेंगे। इस पुत्रके जन्मसे बारह दिन पर्यन्त स्वर्णाचल पर्वतसे स्वर्णमणिका आविर्भाव होगा। उससे कामरूपवासी सब धनी बन जायेंगे। फिर इसी समय वशिष्ठ ऋषिका अभिशाप छूटेगा।

१६श शताब्दके आरम्भमें कोचविहार राजवंशके मूलपुरुष शिववंशीय विश्वसिंहने अराजकता हटायी थी। कोचवंशसम्भूत हाजो नामक किसी व्यक्तिके हीरा और जीरा नामकी दो परमसुन्दरी कन्या रहीं। कामरूप अराजक होते समय कोच निकटवर्ती अन्यान्य इतर लोगोंको वशीभूत कर कुछ पराक्रान्त बन गये थे। पराक्रममें कोचोंके मध्य हाजो अग्रणी रहे। प्रवादानुसार महादेवके औरससे हीराके गर्भमें शिशु वा शिवसिंहने और जीराके गर्भमें विशु वा विश्वसिंहने जन्म लिया था।* कामतापुर देखो। ई० १६वें शताब्दके प्रारम्भ पर ही विश्वसिंहने कोचविहारमें राजत्व किया। विश्वसिंहने मुसलमानों द्वारा विध्वस्त कामतापुर राज्य छुड़ा लिया था। आधुनिक बुरञ्जीके मतमें उन्होंने १४२०।३० शक (१४९८।१५०८ ई०) के मध्य कामरूप अधिकार किया। उससे पहले कामरूपमें थोड़े दिन मुसलमानोंका राजत्व रहा। हुसेनशाहके पुत्र शासनकर्ता थे। किन्तु उस समय कोचोंका बड़ा उत्पात रहनेसे हुसेनशाहके पुत्र नसरत शाह कामरूप छोड़ने पर वाध्य हुये। विश्वसिंहने उसी सुयोगमें अवशिष्ट मुसलमानोंको भगा राज्य अधिकार किया था। उन्होंने अति पराक्रमके साथ १५२८ ई० तक राजत्व चलाया। उन्हींके राजत्वकालमें लुप्त कामाख्यापीठका उद्धारसाधन किया गया था। फिर कामाख्याके अनुवर्ती अनेक पीठस्थान आविष्कृत भी हुये। कोचविहारके प्रकृतपक्षमें राजा होते भी कामरूप उस समय विश्वसिंहके शासनाधीन था। कामरूपकी सीमा कोचविहार तक फैली हुई थी। विश्वसिंहके समय अहोमोंने उजनिखण्ड पर आक्रमण किया। विश्वसिंहने सैन्य भेज आक्रमण हटाया था। किन्तु उनके सैन्यदलके उक्त स्थान छोड़ते ही फिर अहोमोंने उत्पात उठाया। सुतरां विश्वसिंहने वाध्य हो उनसे सन्धि की थी। उसी समय राङ्गलुगड़ कामरूप और विहार राज्यकी पूर्वसीमा माना गया।

विश्वसिंहने डिमरुया प्रभृति स्थानोंके सकल क्षमताशाली विख्यात लोगोंको वशीभूत कर लिया था। फिर उन्होंने कपास, तांबे, रांगे, सीसे, रुपे, सोने, चांदी, लोहे, कांच, मिट्टी, नमक वगैरह पर कर लगा राज्यका आय बढ़ाया। उन्हींके समय भोटानवाले सर्वदा उपद्रव उठाया करते थे। उस समय भोटानमें देवराज राजा थे। विश्वसिंहने उनके साथ सन्धि की। राज्यके सीमान्त-प्रदेशमें शान्ति रक्षाके लिये विश्वसिंहके सिपाही नियुक्त थे।

विश्वसिंहके १८ सन्तान रहे। उनमें नरनारायण सर्वज्येष्ठ थे। उनको ही सिंहासन मिला। उनके परवर्ती कनिष्ठ भ्राता चिलाराय वा शुक्लध्वज राज्यके दीवान या सेनापति बने। नरनारायणने शङ्करदेवके* भ्राता रामरायकी कन्या कमलप्रिया आयीसे विवाह किया था। किसी किसीके कथनानुसार शुक्लध्वजका

* आसामी भाषामें रामसरस्वती पण्डितका लिखा एक ग्रन्थ है। उसको देखनेसे मालूम पड़ता है कि हरिदास नामक किसी आदमीके औरस और हीराके गर्भसे विशु वा विश्वसिंहका जन्म हुवा। रामसरस्वती महाराज नरनारायणकी सभाके पंडित थे।

* उक्त शङ्करदेव गौराङ्गदेवके समसामयिक थे। वह भूञावंशीय रहे, समसामयिक, कामरूपमें वैष्णवधर्म प्रचार किया था। बङ्गालके गौराङ्गदेवकी भांति वह भी कामरूपमें विष्णुका अवतार माने जाते हैं।

कमलप्रियासे विवाह हुवा। विवाहके स्थानको आज भी "रामरायका कोठी" कहते हैं। ग्वालपाड़ा जिलेके शुल्ला परगनेमें उक्त स्थान विद्यमान है। वहां मेला भी लगता है। कमलनारायण नामक किसी दूसरे कुमारने भी भाटान और आसामके मध्य ब्रह्मपुत्रके उत्तर किनारे एक बांध बांधा था। उस बांधका नाम "गोसाईं कमलकी आलि" है। लखीमपुर और जलपाईगुड़ीके मध्य अनेक स्थलोंमें उसके चिह्न आज भी वर्तमान हैं। उस समय सजन वा सुजन ग्राममें पण्डित रामखान् भूंया नामक एक राजा थे। उन्होंने चुपके चुपके विद्रोहकी आग सुलगायी। किन्तु अन्तको भय देख उन्हें भागना पड़ा।

आसामकी बुरञ्जी और अन्यान्य इतिहासके मतानुसार विश्वसिंहके बड़े पुत्र नरनारायण और छोटे शुक्लध्वज वा चिलाराय थे। किन्तु रामसरस्वती पण्डित-प्रणीत ग्रन्थमें लिखा है,—

विश्वसिंहके अशोसिंह नामक एक पुत्र थे। अशोसिंह अल्प वयसमें लोकान्तर प्राप्त हुये। उनकी कन्याके गर्भसे (ठीक नहीं किसके औरससे) अपुत्रक विश्वसिंह राजाके परम सुन्दर रूपवान् एक दौहित्रका जन्म हुवा। पण्डितोंने उसका नाम नारायण रख दिया।

उक्त नारायण और उनके भ्राता शुक्लध्वज (चिलाराय) का नाम कामरूपमें सविशेष प्रसिद्ध है। महाराज नरनारायण अधिक बलशाली थे। उन्होंने विदेशियोंके हाथसे सम्पूर्णरूप उद्धार कर कामरूपकी बहुत उन्नति की। महाराज नरनारायणका दूसरा नाम मल्लदेव वा मल्लनारायण था। उनके समय पुरुषोत्तम विद्यावागीशने संस्कृत रत्नमाला व्याकरण बनाया।* वह आजकल आसाममें प्रचलित है।

हिन्दूधर्मविद्वेषी विख्यात कालापहाड़ † १५६४ या १५६६ ई० को भगवती कामाख्या देवीका मन्दिर तोड़ने गया था। कोचविहारमें उस समय महाराज नरनारायण राजा थे। कालापहाड़के पराक्रमसे सन्त्रस्त हो उन्होंने सन्धि की। कालापहाड़ भगवतीका मन्दिर तोड़ और पीठस्थानवर्ती सुन्दर सुन्दर अन्यान्य प्रतिमूर्ति बिगाड़ स्वदेशको लौट गया। महाराजने अपने भ्राताके साथ भगवतीके मन्दिरादिका पुनः संस्कार किया। कमसे कम बारह वर्षमें उक्त जीर्ण संस्कारका कार्य सुसम्पन्न हुवा था। कामाख्या मन्दिरको वर्तमान (चलन्ता) मूर्ति (जो साधारणतः सरकायी जाती है) महाराज नरनारायणकी बनायी है। वर्तमान मन्दिरके मध्यभागमें ही महाराज नरनारायण और उनके भ्राता शुक्लध्वजकी प्रस्तर खोदित सुन्दर दो प्रतिमूर्तियां अद्यापि वर्तमान हैं।

महाराज नरनारायण और शुक्लध्वज महामायाके परम भक्त थे। भगवती भी उन पर यथेष्ट अनुग्रह रखती थीं। महाराज कोचविहारसे विप्र ब्राह्मण ले जाकर भगवतीको पूजा आदि निर्वाह करते थे। केन्दुकलाई नामक कामाख्याके एक पुजारी ब्राह्मण, महाराज नरनारायण और शुक्लध्वजके सम्बन्ध पर कामरूपमें अद्यापि निम्नलिखित जनप्रवाद प्रचलित है—सन्ध्याको केन्दुकलाईके आरति करते समय भगवती मुग्ध हो घण्टा वाद्यके ताल ताल पर नृत्य करती थीं। महाराज नरनारायणने यह सुन केन्दुकलाईसे भगवतीकी चैतन्य मूर्ति देखनेका उपाय पूछा। उन्होंने कहा कि घण्टा बजते समय सन्ध्याको किसी रन्ध्रसे देखने पर उन्हें भगवतीकी चैतन्य मूर्तिका दर्शन होगा। महाराजने उक्त परामर्शके अनुसार एक दिन जाकर भगवतीको देखा था। दैवात् भगवतीको यह बात मालूम हो गयी। उन्होंने केन्दुकलाईका शिर काट महाराज नरनारायणको शाप दिया,—'भविष्यत्‌में तुम और तुम्हारे वंशका कोई भी हमारा दर्शन कर न सकेगा। मन्दिरकी ओर देखनेसे शिरश्छेद होगा।' उक्त शापके भयसे आज भी कोचविहार, बिजनी, दरङ्ग इत्यादि शिववंशी राजपरिवार कामाख्याके मन्दिरकी ओर प्रायः जाते

* "श्रीमल्लदेवस्य गुणैकसिन्धोर्महीमहेन्द्रस्य यथा निदेशम्।
यत्नात् प्रयोगोत्तमरत्नमाला वितन्यते श्रीपुरुषोत्तमेन॥" (रत्नमाला)
आधुनिक बुरञ्जीके मतमें १४९० शकको रत्नमाला बनी थी।

† कामरूप अञ्चलमें कालापाहाड़को "पोरासुठार" "पोराकुठार" और "कालासुठान" भी कहते हैं।

-जाते आंख नहीं उठाता। किसी कार्यवश कामाख्याकी ओर गमन करते समय कपड़ेसे मुंह छिपा लेते हैं।

मृत्युके पीछे विश्वसिंहका राज्य नरनारायण और शुक्लध्वज दोनों पुत्रोंके मध्य बंटा था। नरनारायणको स्वर्णकोषीके पश्चिम तीर और शुक्लध्वजको उसके पूर्व तीरका समस्त राज्य मिला। शुक्लध्वजके अंशमें ही ब्रह्मपुत्रके उभय तीरका भूभाग पड़ा। सुतरां कामरूपमें भी उन्हींका अधिकार था।

शुक्लध्वजके पीछे उनके पुत्र रघुदेवनारायण राजा हुये। उनके दो पुत्रोंमें ज्येष्ठ परीक्षित् थे। कनिष्ठका नाम ज्ञात नहीं। उन्हें जायगीरकी भांति दरङ्ग प्रदेश मिला था। उनके वंशधर आज भी आसामी राजाओंके अधीन उक्त प्रदेश अधिकार करते हैं। परीक्षित्ने समग्र राज्यके अधीश्वर हो गिलाझाड़ नामक स्थानमें प्रासाद बनाया। वहां राजप्रासादका भग्नावशेष आज भी देख पड़ता है। प्रासादके निकट ही १८ दुर्ग भी बने थे। उनकी सभामें नित्य ७०० वेदपारग ब्राह्मण उपस्थित रहते थे। फिर उक्त नगरमें ही ब्राह्मणोंका आवास था। परीक्षित्के ही समयमें ढाकेके मुसलमान शासनकर्ताने मुगलसम्राट्के प्रतिनिधित्वमें राजस्व मांगा था। फिर उन्होंने सताना भी शुरू किया। परीक्षित्ने भीत हो मन्त्रियोंसे परामर्श लिया था। फिर वह सम्राट्के पास भागते गये। वहां सम्राट्ने उन्हें दरबारमें सादर ग्रहण किया। ढाकेके नवाब पर आदेश हुवा कि परीक्षित् जितना रुपया राजस्वमें दें उतना ही वह ले लें, कोई दिरुक्ति न करें। राजाने लौट कर सरल मनसे नवाबको दो करोड़ रुपये देने कहा। उनके मन्त्रीने यह सुन मुसलमानोंके असङ्गत अर्थलोभकी बात बतायी। इससे वह महाभीत हो गये। शेषको परामर्श करने पर स्थिर हुवा कि एक बार वह फिर सम्राट्के दरबारमें जा भ्रम संशोधन कर आते। चलते समय मन्त्री भी साथ हो गये। किन्तु दुर्भाग्यक्रमसे जाते समय पटनेमें (किसीके मतानुसार राजप्रासादमें) राजा परीक्षित् मर गये। इसी सुयोगमें नवाबको फौजने प्रतिश्रुत अर्थके लोभसे राज्य पर अधिकार कर लिया। परीक्षित्के मन्त्री अनेक कष्टसे सम्राट्के दरबारमें पहुंचे थे। उन्होंने जा कर समस्त विवरण निवेदन किया। सम्राट्ने उन्हें कानूनगोके पद पर नियुक्त कर विदा किया था। उस समय यह राज्य चार सरकारोंमें बंट गया—ब्रह्मपुत्रक उत्तर उत्तरकूल या ढेंकेरी सरकार, दक्षिण दक्षिणकूल, पश्चिम बङ्गाल सरकार और गोहाटीके साथ कामरूप सरकार। परीक्षित्का आद्यराज्य दरङ्ग उन्हींके अंशमें रहा। परीक्षित्के पुत्र चन्द्रनारायणने एक बड़ी जमीन्दारी भी पायी थी। वह जमीन्दारी आज भी उनके वंशीय भोगते हैं। प्राचीन मन्त्री (नये कानूनगो)को भी उनके लिये बहुतसी जमीन्दारी मिली। उक्त घटना प्रायः १६०३ ई०में हुयी थी। एक मुसलमान फौजदार नियुक्त हो रांगामाटी नामक स्थानमें रहने लगे। फिर राजा मानसिंहके बङ्गाल-बिहारके नवाब होते समय इस देशको विशेष उन्नति हुयी। औरङ्गजेबके समय मीरजुमला सैन्यदल ले आसाम जय करने आये थे। उनके पीछे कामरूपराज्यके उक्त अंशसे कामरूप, उत्तरकूल और दक्षिणकूल सरकारका कुछ भाग आसामवाले राजावोंके अधिकारमें चला गया। उक्त घटनाके ७० वर्ष पीछे रांगामाटीकी फौजदारी उठ घोड़ाघाटमें स्थापित हुयी।

मीरजुमलाके आक्रमणके पीछे आसामके राजावोंने हिन्दूधर्म ग्रहण किया था। फिर वह नाममात्र फौजदारकी अधीनता मान राजत्व करने लगे।

नरनारायण और शुक्लध्वज उभयके मध्य राज्यविभागकी बात पहले लिख चुके हैं। किन्तु शुक्लध्वजके जीवित कालमें राज्यविभाग हुवा न था। शुक्लध्वजके मरनेके पीछे नारायण अपुत्रक थे। इसीसे उन्होंने शुक्लध्वजके पुत्र रघुदेव नारायणको पोष्यपुत्र मान ग्रहण किया। उसके कुछ दिन पीछे उनके एक पुत्र हुवा। रघुदेवको उससे भविष्यत्में राज्यप्राप्तिकी आशा न रही। इससे वह भीतर ही भीतर विद्रोहाचरणमें प्रवृत्त हुये। अन्तमें

नारायणको सब बात मालूम हो गयी। फिर रघुदेव भाग कर पूर्वाञ्चलके मटुवोंसे मिले और उनका सैन्य ले ज्येष्ठभ्राताके राज्य आक्रमणार्थ आ पहुंचे। नारायण भी स्वराज्य रक्षणार्थ ससैन्य अग्रसर हुये। स्वर्णकोषी नदीके पूर्व पार रघुदेव और पश्चिम पार नारायणकी छावनी पड़ी थी। नारायण स्वयं अश्वारोही सैन्य ले आगे बढ़े। रघुदेव भीत हो ससैन्य भागे थे। नारायणने आक्षेप कर कहा,—"दुःख है कि-हम राज्य देनेके लिये ही आये थे। किन्तु वह बात न हुयी। इस लिये यह नदी ही अब दोनों राज्य सीमा रहेगी।" आधुनिक आसामको बुरञ्जीके मतमें उक्त घटना १५०२ शकको हुयी थी। रघुदेवके राज्यकी सीमा पश्चिम स्वर्णकोषी एवं पूर्व दिकराई और नारायणके राज्यकी सीमा पूर्व स्वर्णकोषी पश्चिम करतोया थी। रघुदेवने ग्वालपाड़े जिलेके जोयार परगनेमें आधुनिक गौरीपुर नगरसे १० मील दूर गदाधरनदीके तीर नगर स्थापन किया था।

शुक्लध्वजके जीते समय कामाख्याका मन्दिर फिरसे बना था। मन्दिर समाप्त होनेमें १० वर्ष लगे। किसी पश्चिमी हिन्दुस्थानीने उसे बनाया था। मन्दिरके पूर्व द्वारके सम्मुख उक्त केन्दुकलाई पुरोहितके छिन्न मुण्डकी प्रतिमूर्ति वर्तमान है। शुक्लध्वजके जीवित कालमें नरनारायण एक बार शनिग्रस्त हुये थे। ज्योतिषियोंने गणना कर उक्त कथा कह दी। फिर नरनारायणने शुक्लध्वजको राज्यका प्रतिनिधि बना तीर्थयात्रा की थी। प्रायः एक वर्ष पीछे वह लौटे। उक्त भ्रमणके समय आसामराज्यके श्वेतहस्ती पर उनको लोभ बढ़ा। शुक्लध्वजको यह खबर लग गयी। वह भ्राताकी तृप्तिके लिये आसामराजको युद्धमें परास्त कर हाथी ले आये थे। अनेकोंके कथनानुसार उक्त घटनासे ही उनका नाम "शुक्लध्वज" हुवा।

आधुनिक बुरञ्जीके मतमें १५०६ शकको नरनारायण मरे थे। फिर उनके पुत्र लक्ष्मीनारायणको राज्य मिला। स्वर्णकोषीसे महानन्दा और सरकार घोड़ाघाट तथा भोटानके दक्षिणस्थ पार्वत्य प्रदेश तक समस्त भूभाग उनके राज्यके अन्तर्भूत था। उक्त राज्य पश्चिमोत्तरसे दक्षिणपूर्व तक ८० मील दीर्घ और पूर्वोत्तरसे दक्षिणपश्चिम तक ६० मील विस्तृत रहा। उत्तर पश्चिममें ककटा सीमान्त प्रदेश शिवसिंह (उक्त हीरा और जीराके मध्य जीराके पुत्र) के सन्तानोंको दिया गया। लक्ष्मीनारायण अपने राज्यको पहलेसे ही "विहार" कहते थे। कारण शिव हीरा और जीराके साथ विहार करते थे। किन्तु मध्यदेशके वर्तमान विहार (पटना) प्रदेशसे स्वतंत्रता दिखानेके लिये "कोचविहार" नाम रक्खा गया।

आईन-अकबरीके अनुसार लक्ष्मीनारायणने अकबरकी वश्यता मानी थी। उनके समय राज्यकी सीमा उत्तरमें तिब्बत, दक्षिणमें घोड़ाघाट, पश्चिममें त्रिहुत और पूर्वमें ब्रह्मपुत्र थी। भूमिका परिमाणफल दैर्घ्यमें प्रायः २०० कोस रहा। उनके ४००० अश्वारोही सैन्य, २ लाख पदाति, ७०० हस्ती और १००० जहाज थे। फिर आईन-अकबरीमें लक्ष्मीनारायणके पिताका नाम शुक्लगोस्वामी लिखा है। शुक्लगोस्वामी नहीं, उनके कनिष्ठ भ्राता बालगोस्वामी राजा थे। उन्होंने विवाह न किया था। इससे उनके सन्तान कोई न था। बालगोस्वामी अति सुविज्ञ राजा थे। उन्होंने अपने भ्रातुष्पुत्र पाटकुमारको राज्याधिकारी ठहराया। शुक्लगोस्वामीने दूसरा विवाह किया था। उसीसे लक्ष्मीनारायणका जन्म हुवा। पाटकुमार विद्रोही बने थे। उसी समय मानसिंह बङ्गालेके नवाव रहे। लक्ष्मीनारायणने मानसिंहसे सम्राट्के निकट परिचित होनेकी प्रार्थना की। किन्तु मानसिंहने वह बात न सुनी। मानसिंहने उनकी एक कन्याका पाणिग्रहण किया था। बालगोस्वामीने १५७८ ई० को एक बार बङ्गालके नवाबकी अधीनता मान दरवारमें ५४ हाथियोंके साथ विस्तर उपढौकन दिया। लक्ष्मीनारायण १५८६ ई०में राजत्व करते थे।

ताजक-जहांगीरीके अनुसार लक्ष्मीनारायणने १६१८ई०को गुजरातकी राजसभामें ५०० अशरफी नज़र भेजी थीं।

बादशाहनामेको देखते जहांगीरके समय परीक्षित्

नारायण कोचहाजो प्रदेशमें और लक्ष्मीनारायण कोचविहारमें राजत्व करते थे। पादशाहनामा लक्ष्मीनारायणको परीक्षितके पितामहका सहोदर बतलाता है। जहांगीरके राजत्वके ८म वर्ष सुसङ्गके राजा रघुनाथने परीक्षितके विरुद्ध दरबारमें अभियोग लगाया कि उन्होंने उनके परिवारवर्गका अवरोध किया था। शेख अला-उद्-दीन फतेहपुरी इसलाम् खान् उस समय बङ्गालके नवाब रहे। उन्होंने मकराम खान्‌को कोचहाजो जीतने भेजा था। लक्ष्मीनारायणने मुसलमानोंके पक्ष पर योग दिया। युद्धमें पराजित हो परीक्षित्‌ने आत्मसमर्पण किया था। फिर उनके भ्राता बलदेवने अहोमराज स्वर्गदेवका आश्रय लिया। उसके पीछे परीक्षित् सम्राट्‌के आदेशानुसार दिल्ली भेजे गये और मकराम खान् हाजोके शासनकर्ता नियुक्त हुये।

बलदेव आसामराजकी सहायतासे हाजोके उद्धारार्थ यत्न करने लगे। अहोमराज स्वीय अधीनता स्वीकार करा उनका साहाय्य करने पर प्रतिश्रुत हुये। मकरामखान् उसी समय शासनकर्तृत्वसे हटे थे। उनके स्थान पर कोई नूतन शासनकर्ता आनेवाला था। इसी अवसरमें सुयोग देख बलदेवने दरङ्ग अधिकार किया। उस समय इस देशमें बङ्गालके नवाबकी ओरसे हाथीखेदाकी रक्षा करनेको जागीरदार पायक रहते थे। कासिम खान्‌ने बङ्गालके नवाब रहते समय बहुत दिन तक हाथियोंकी आमदनी न पायी थी। उन्होंने हाथीखेदाके सरदारोंको उपस्थित होनेका आदेश दिया। उपस्थित होने पर नवाबने उन्हें बन्दी बनाया। उनमें सन्तोष और जयरामने भाग कर आसामराज स्वर्गदेवका आश्रय लिया था। फिर इसलाम खान् नवाब हुये। उस समय पाण्डुके अत्याचारी थानेदार शत्रुजित् बलदेवसे मिल गये। उन्होंने उनको हाजोके शासनकर्ताके विरुद्ध युद्ध करनेके लिये गोपनमें परामर्श दिया था। बलदेव कोचों और आसामियोंका सैन्य ले युद्ध करनेको उपस्थित हुये। १६३६ ई० को इसलाम खान्‌ने यह बात सुनी। उन्होंने कई मनसबदारोंको १००० सवार, १००० बन्दूकवाले पैदल, १० बराव नामक नौका, २०० कोशा* नौका और बहुसंख्यक जलबाह नौकाके साथ भेजा था। श्रीघाट और पाण्डुके निकट महायुद्ध हुवा। उभय पक्षमें मरते और घायल होते भी युद्ध चलता रहा। इसलाम खान्‌ने फिर द्विगुण सैन्य भेज दिया। किन्तु उसी समय फिर पायकोंने बलदेवका पक्ष लिया था। इससे मुसलमानी सेनाको रसद बन्द हो गयी। इसलामखान्‌ने संवाद सुन रसद भेजी। किन्तु उसके पहुंचनेमें विलम्ब लगा था। उसी समय बलदेव ससैन्य श्रीघाट और पाण्डु छोड़ हाजोके अभिमुख चले गये। फिर उन्होंने राज्य अवरोध कर रसद पहुंचनेकी राह रोकी थी। हाजोके शासनकर्ता अब्द-उस्-सलामको स्वीय भ्राताके (यही प्रधान सेनापति बन ढाकेसे आये थे) साथ विपक्ष शिविरमें सन्धिका प्रस्ताव करनेके लिये जाना पड़ा। किन्तु वह सदल बांध कर आसाम भेजे गये। उनके भ्राता सैयदने बलपूर्वक शत्रुशिविरसे निकलनेकी चेष्टा की थी। किन्तु विफल होने पर वह सदल मारे गये। उसके पीछे मीर अली सेनापति हुये। इसी बीचमें ब्रह्मपुत्रके उत्तरकूल राजा चन्द्रनारायण पर मुसलमानोंने आक्रमण किया। चन्द्रनारायण भीत हो दक्षिणकूलके परगने सोलामारीको भागे थे। सोलामारीके जमीन्दार चन्द्रनारायणके भयसे मुसलमानोंमें जा मिले। मुसलमान उसके पीछे गुप्तशत्रु शत्रुजित्‌के अनुसन्धान करनेको धुबड़ी पहुंचे थे।

शत्रुजित् राय भूषणवाले जमीन्दार (राजा) मुकुन्दरायके पुत्र थे। सम्राट् जहांगीरके समय शेख अला-उद्-दीन बङ्गालके शासनकर्ता रहे। उस समय उन्होंने मुकुन्दरायके ही अधीन एक दल सैन्य भेज एक बार हाजोप्रदेश पर अधिकार किया था। मुकुन्दराय युद्धमें जीतने पर पाण्डु और गौहाटीके थानेदार बने। उसी सुयोगमें आसामियोंके साथ

* उक्त सकल हहदाकार नौका जलयुद्धमें युद्धपोतकी भांति व्यवहृत होती थी। कोशा नौकामें एक मस्तूल लगता है। फिर उसमें डांड़ बहुत रहते हैं। उक्त नौकाके साहाय्यसे लोग बड़ी बड़ी युद्धकी नौका (बड़ी होनेसे डांड़के सहारे न चलनेवाली नावें) खींच ले जाते थे।

उनका सौहार्द स्थापित हुवा। फिर उन्होंने भूषणेके जमीन्दारकी भांति आसाम और कामरूपप्रदेशके अनेक प्रधान व्यक्तियोंके साथ बन्धुता बढ़ाई। शेख अल्ला-उद्-दीनके पीछे होनेवाले सब नवाबोंने उन्हें दरबारमें जानेके लिये कई बार आदेश किया था। किन्तु न तो वह कभी उपस्थित हुये न नियमित पेश-कश ही भेजी। नवाब इसलाम खान्ने देखा कि मुकुन्दरायका दरबारमें पहुंचना कभी सम्भव न था। इसलिये उन्होंने उनके पुत्र शत्रुजित्को बुला भेजा। शत्रुजित् गये। उन्होंने दरबारमें यथारीति नवाबकी वश्यता दिखलाई थी। उस समय नवाब हाजोके विरुद्धमें सैन्य भेज रहे थे। उन्होंने शत्रुजित्को भी उसी सैन्यके साथ भेज दिया। किन्तु शत्रुजित् आसामराज एवं राजा बलदेवसे बन्धुता मान चुपके चुपके गूढ़ संवाद और दूसरे जमींदारोंको उनसे मिलनेके लिये उत्साह देने लगे। अन्तमें नवाबकी सेनाने धुबड़ी पहुंचतेही शत्रुजित्को बांध लिया और जहांगीरनगर भेज दिया। वहां विचार होने पर शत्रुजित्को प्राणदण्ड मिला था।

अबद-उस् सलामके विनष्ट होने पर कोचों और आसामियोंकी सेना १२००० पदाति तथा बहुसंख्यक कोसा नौका ले:बनाश नदीकी राह ब्रह्मपुत्रके तीर योगीघोपा (योगीगुहा) नामक पर्वत पर पहुंच गयी। उक्त पर्वतके नीचे ही ब्रह्मपुत्रका बनाश-सङ्गम है। आसामी वहां एक सुदृढ़ दुर्ग बना नवाबके सैन्यकी प्रतीक्षा करने लगे। फिर उक्त दुर्गके बिलकुल सामने ब्रह्मपुत्रके दूसरे तटपर भी हीरापुर नामक स्थानमें वैसाही एक और दूसरा दुर्ग बना था। योगीगुहाके दुर्गमें ३००० और हीरापुरके दुर्गमें अवशिष्ट ८००० सैन्य रहा। नवाबका सैन्य धुबड़ी छोड़ खान्पुर नदीकी राह ब्रह्मपुत्र पार हुवा। फिर वह जङ्गल काट और मार्ग बना योगीगुहाकी ओर बढ़ा था। नवाब-सैन्यके प्रधान सेनापति और सेनानीके अधीन ३००० पथरकलावाले सिपाही थे। क्रमशः राहमें दोनों दल सम्मुखीन हुये। आसामी प्रथम आक्रमणसे ६ कोस हटे थे। दूसरे दिन नवाबके सैन्यने योगीगुहाके दुर्ग पर आक्रमण किया। फिर ठीक उसी समय जमान् खान् दक्षिणकूलके चन्द्रनारायणको ध्वंस कर ससैन्य जा मिले। इसीसे बलदेव नूतन और वर्धित सैन्यका वेग सह न सके। वह ससैन्य दुर्ग छोड़ भागे थे। दुर्ग अधिकार कर नवाबका सैन्य चन्दनकोटको चला गया। राहमें बड़नगरके जमींदार उत्तमनारायणका पत्रवाहक एक पत्र ले कर पहुंचा। उसमें लिखा था,—"बलदेवने वृहद् सैन्यदलके साथ बड़नगर पर आक्रमण किया है। किन्तु उत्तमनारायण उन्हें बाधा न पहुंचा सकनेके कारण नवाबके सैन्यमें मिलनेको आशासे खुण्टाघाट गये हैं।" मुहम्मद् जमान् खान्ने कुछ सैन्य ले उसी समय बलदेवके विरुद्ध बड़नगरकी यात्रा की। राहमें उत्तमनारायण मिल गये। नवाबके सैन्यका अवशिष्ट अंश चन्दनकोट पहुंचा था। नवाब जमान् खान्ने पोमारी नदी पार हो बलदेवके एक क्षुद्र दुर्ग पर अधिकार किया। फिर वह अग्रसर होने लगे। बलदेवने देखा कि जमान् खान् प्रायः जा पहुंचे थे। उसी समय उन्होंने बड़नगर छोड़ चवी नामक स्थानको गमन किया। वहां बलदेव पर्वतके किनारे किनारे कई एक दुर्ग बना कर बैठ गये। जमान् खान्ने भी इससे लौट विष्णुपुरके जंगलमें स्कन्धावार स्थापन किया था। फिर उन्होंने वर्षा अतीत होनेपर बलदेव पर आक्रमण करना ठहरा लिया। उसी समय बलदेवने विष्णुपुरसे डेढ़ कोस दूर कालापानी नदीके तीरपर रहनेवाले विपक्षियोंका रक्षिदल छिन्न भिन्न कर डाला। पाण्डु और ओबाटसे उसी समय उनका भी नूतन सैन्य आ पहुंचा था। उन्होंने बीचबीचमें रातको आक्रमण मार नवाबके सैन्यको व्यतिव्यस्त कर दिया। वर्षा बीत गयी। आसाम-राजके जामाता बलदेवसे जा मिले थे। उसके पीछे १६३७ई० को ३१ वीं अगस्तकी रातके समय बलदेवने विपक्षियोंके दो क्षुद्र दुर्ग अधिकार कर लिये। किन्तु दूसरे दिन सवेरे जमान् खान्ने हठात् कितने ही सैन्यके साथ बलदेव पर आक्रमण मारा था। उनके कुछ सिपाही बलदेवसे सामने लड़ते रहे। फिर अवशिष्ट सैन्यके साथ उन्होंने बलदेवके रक्षित स्थानोंपर

आक्रमण किया। उस समय उनमें वैसा सैन्य न था। इसीसे वह एक एक कर विपक्षीके हाथ जा लगी। अनेक सेनापति मरे थे। फिर बहु सैन्य भी क्षय हुवा। कितनी ही बन्दूकों, तोपों और दूसरे हथियारोंकी हानि हुयी थी। किन्तु बलदेवको सम्पूर्ण पराजित होते न देख नवाबका सैन्य उसी दिन रातको विष्णुपुरके जङ्गलमें भाग गया। उसके पीछे नवम्बर मासमें चन्दनकोटसे नूतन सैन्यने जा तीन तरफसे बलदेव पर आक्रमण किया था। उस समय बलदेव या आसामराजका सैन्य पहुंचा न था। इसीसे विपक्षके भीषण आक्रमणमें बलदेवका अल्पसंख्यक सैन्य ठहर न सका। वह शीघ्र ही रण छोड़ भागा था। बलदेवने स्वयं दरङ्गकी राह पकड़ी। आसामराजके जामाता बन्दी बन गये। हतावशिष्ट सैन्यदल शीघाट और पाण्डुकी ओर भागा। वहां आसामराज ससैन्य रसद वगैरह लिये उपस्थित थे। नवाबका सैन्य एक बार उन पर आक्रमण करने गया। अभय पर्वत, शीघाट और पाण्डुमें भीषण युद्ध हुवा। आसामराज परास्त हो स्वराज्य लौट गये। कोचहाजो प्रदेश मुसलमानोंके अधिकारमें हो गया। आसामप्रान्तमें कलङ्ग नदी और ब्रह्मपुत्रके मध्य काजली दुर्ग अधिकार कर मुसलमान चान्त हुये। उधर एक दल सैन्यने दरङ्ग जा बलदेवको भगाया था। बलदेवने अवशेषको आसाममें शुम शिङ्गी नामक स्थानमें आश्रय लिया। अन्तिम अवस्थामें दो पुत्रोंके साथ उन्होंने वहीं स्वर्गलाभ किया। इसी युद्धमें कामरूप सम्पूर्ण मुसलमानोंके अधीन हो गया।

उपरि-उक्त घटना पादशाह-नामेसे ली गयी है। किन्तु बुरञ्जी या मिष्टर मार्टिनके ग्रन्थमें बलदेवका नाम नहीं मिलता। परीक्षित् नारायणके चन्द्रनारायण* पुत्रकी बात भी किसी ग्रन्थमें देख नहीं पड़ती।

नरनारायणके पीछे होनेवाले सब राजावोंका विषय कोचविहारके इतिहासमें लिखा जावेगा।

कोचविहार देखो।

* फारसी पादशाहनामाके मतमें राजा चन्द्रनारायण परीक्षित्के पुत्र थे।

आसामकी बुरञ्जीको देखते शुक्लध्वजके पुत्र रघुदेवने राजा हो नगर संस्कार और हयग्रीव-माधवका मन्दिर निर्माण कराया। उनके पिताने आसामके अहोम राजावोंको युद्धमें परास्त कर अपने शासनाधीन रखा था। किन्तु रघुदेव वह कर न सके। उन्होंने आसामके अहोमराजको मङ्गलदेवी नाम्नी निज कन्या दे निरापद राजत्व किया। आधुनिक बुरञ्जीके मतमें १५१५ शकको रघुदेव राजा हुये थे। रघुदेवने गदाधर तीर जो नगर बनाया, उसका चलित नाम गिलाझाड़ या गिलाविजय है। (यहां गिला गेलहा या चियन इक्षका वन यथेष्ट था।)

रघुदेवके पुत्र परीक्षित्-नारायणके जो मन्त्री दिल्लीके बादशाहके पाससे कानूनगो हो कर आये थे, उनका नाम कवीन्द्र बड़ुवा था। रांगामाटीके वर्तमान जमींदार उन्हीं कवीन्द्र बड़ुवाके वंशधर हैं।

पटनामें परीक्षित्की मृत्यु हुयी। उनका राज्य मुसलमानोंके हाथ पड़ते भी मानहानदीके पश्चिमसे स्वर्णकोषीके पूर्व पर्यन्त उनके पुत्र विजितनारायणके अधीन रहा। वह मुसलमानोंके नीचे करद राजा बने थे। इसी प्रकार मानहानदीके पूर्वसे दिकराई तक परीक्षित्के भ्राता बलितनारायण भी करद राजा हुये। बिजनीके राजा विजितनारायण और दरङ्गके राजा बलितनारायणके सन्तान हैं। सम्भवत: विजितनारायणने ही विजितनगर या बिजनी स्थापन किया था। पहले वह मुसलमानोंको करमें अर्थ देते थे। फिर करस्वरूप हाथी देनेका नियम हुवा। शेषको अंगरेजोंके अधीन अर्थ देनेका नियम पुन: बंध गया है।

मुसलमानोंके अधिकारसे कामरूप समस्त परिवर्तित हो गया। देशका आचार व्यवहार, भूमिका प्रबन्ध और राज्यप्रणाली बङ्गदेशकी भांति दीखने लगी।

बलितनारायण जिस भागके राजा हुये, कामतापुरका राजवंश मिटनेसे वह स्थान उतने दिनों तक एक प्रकार अराजक बन गया था। शेषमें चपलीवरादि भूंयांवोंने वह देश कितना ही सुशासित किया। किन्तु वह बात भी अधिक दिन न चली। मुसलमान राज्य जीत कर लूट मार करते थे। सुतरां उनके समय

देशमें शान्ति स्थापित होना दूरकी बात थी, अधिक अशान्ति बढ़ गयी। भोट और कछारके अधिवासी दोनों ही उक्त प्रान्तमें महा उपद्रव मचाते थे। फिर भी वलितनारायण दरङ्ग नगरमें राजधानी बना देशके शासन पर मनोयोगी हुये। किन्तु आसामराजका उपद्रव न घटा। पीछे उनकी भ्रातुष्पुत्रीका विवाह होनेसे आसामराजके साथ उनकी मित्रता हो गयी।* स्वर्गनारायणने नूतन पत्नीके नाम पर नगरकी स्थापना और एक नदीका नामकरण किया। वलितनारायणकी धर्मशीलता तथा सद्व्यवहारसे प्रीत हो उन्होंने उन्हें 'धर्मनारायण' उपाधि दिया और उनके कनिष्ठ भ्राता गजनारायणको वेलतलाका राजा बनाया। वेलतलाके राजा उक्त गजनारायणके वंशधर हैं। आधुनिक बुरञ्जीके मतमें १६३८ शककी वलितनारायणने स्वर्गलाभ किया और उनके पुत्र महेन्द्रनारायणको सिंहासन मिला। महेन्द्रनारायणने ब्राह्मणोंको बहुतसी निष्कर भूमि दी थी। उन्होंने १९ वर्ष निरापद यथेष्ट शान्तिसे राजत्व कर १६४३ शकको परलोक गमन किया। फिर उनके पुत्र चन्द्रनारायण राजा हुये। चन्द्रनारायणका राज्यकाल १७ वर्ष रहा। पीछे तत्पुत्र सूर्यनारायण राजा बने। आधुलिक बुरञ्जीके मतमें उनके समय १६८२ ई०को मन्सूर खान् नामक किसी मुसलमान सेनापतिने उक्त देश पर आक्रमण किया था। उस युद्धमें सूर्यनारायण बांध कर दिल्ली भेजे गये। राहसे सूर्यनारायण किसी प्रकार भाग आये। किन्तु वह लज्जासे फिर सिंहासन पर न बैठे। सूर्यनारायणके बन्दी होते समय उनके भ्राता इन्द्रनारायण पांच वर्षके थे। मन्त्रियोंने मिल कर उन्हें राजा बनाया। किन्तु मन्त्रियोंमें परस्पर विवाद उठनेसे आसामके अहोमराजने कामरूप पर्यन्त अधिकार कर लिया था। फिर भी वलितनारायणका वंश बिलकुल मिटा न था। उनके वंशीय दरङ्गके सिंहासन पर प्रतिष्ठित रहे। फिर इन्द्रनारायणके पीछे आदित्यनारायणने सिंहासनाधिरोहण किया। उनके समय राज्यकी सीमा उत्तरमें गोसाईं-कमलकी आलि, दक्षिणमें ब्रह्मपुत्र, पूर्वमें धनशिरी और पश्चिममें बड़नदी निरूपित हुयी। उसीके मध्य क्रियदंश भाग कर आदित्यके भ्राता मधुनारायण राजा बने। आदित्यके मरने पर ध्वजनारायणको सिंहासन मिला। उनके समय दरङ्ग राज्य सम्पूर्णरूपसे अहोमके अधीन हो गया। सूर्यनारायणके धीरनारायण नामक एक पुत्र थे। (आधुनिक बुरञ्जी मतमें १७४४ शक।) उन्होंने ध्वजनारायणको मार राज्य लिया। किन्तु वह तीन वर्ष ही राज्य कर डिमरुयाकी ओर भाग गये। उनके पीछे महत्नारायण बड़े पराक्रमी हुये। वह दोनों भाई एकत्र राजा बने थे। उनके पीछे (१७९८ई०) कीर्तिनारायणके पुत्रने राज्य पाया। उनके समय दरङ्गके राजावोंका पराक्रम बिलकुल खर्व हो गया।

वलितनारायणके समयसे इन्द्रनारायणके समय पर्यन्त वही कामरूप पर शासन करते रहे। मध्य मध्य मुसलमानोंके आक्रमणमें भी उक्त वंशका ही प्राधान्य था। इन्द्रनारायणके समय कामरूपमें अहोमका अधिकार हुवा। किन्तु ध्वजनारायणके समयमें ही कामरूपकी स्वाधीनता मिटी थी। उनके पीछे कीर्तिनारायणके पुत्रके समयसे दरङ्ग राज्यका नाम उठ गया।

विजनीके राजवंशका इतिहास आलोचना करनेसे समझते हैं कि महाराज विश्वसिंहके दो पुत्र रहे। ज्येष्ठ नरनारायण भूप करतोया तथा विहारके मध्य और कनिष्ठ शुक्लध्वज भूप विहारसे टिकराई तक राज्य करते थे। शुक्लध्वजके पुत्र रघुदेवनारायण रहे। रघुदेवके तीन पुत्र थे। उनमें ज्येष्ठ परीक्षित्‌नारायण विजनीके, मध्यम वलितनारायण दरङ्गके और कनिष्ठ गजनारायण बेलतलाके राजा हुये। ज्येष्ठ परीक्षित्‌नारायणको दिल्लीके सम्राट्‌ने खिलअत दी थी। देशको दिल्लीसे लौटते समय उन्होंने राह-

* पहले कह चुके हैं कि परीक्षित्‌नारायणने आसामराजके आक्रमणसे अव्याहति पानेके लिये स्वर्गनारायणको मङ्गलदेवी नाम्नी कन्या प्रदान की थी। इससे समझ सकते कि परीक्षित्‌नारायणके राजत्वकालमें ही वलितनारायण उक्त प्रदेश पर शासन करते थे। पीछे मामाके मरने पर उन्होंने स्वाधीन हो मुसलमान शासनकर्तासे निज राज्य पृथक् कर लिया।

पर राजमहलमें स्वर्गलाभ किया। उनके साथ जो मन्त्री या दीवान् थे, वह कामरूपके कानन्गो हुये। परीक्षित्‌के चन्द्रनारायण नामक एक पुत्र थे। उन्हींके वंशसे बिजनीके राजाओंकी उत्पत्ति है।

बख्तियारके सहयोगी मिनहाजुद्दीनने तबकात-इ-नासिरी नामक अपने इतिहासमें लिखा है,—"लक्ष्मणावती अधिकारके कई वर्ष पीछे (सम्भवतः ६०१ हिजरीको) बख्तियार तिब्बत और तुर्कस्थान जीतनेको अग्रसर हुये। तिब्बत और लक्ष्मणावतीके मध्यवर्ती भूभागमें उस समय कोंच, मेछ तथा तिहारु (वर्तमान थारू) नामक तीन प्रधान जातिका वास था। कोंचों और मेचोंका एक सरदार (तबकात-इ-नासिरीमें इस सरदारका नाम मेचोंका "अली" लिखा है) बख्तियारसे हार गया। फिर उसने मुसलमान धर्मग्रहण किया था। वही पथप्रदर्शक बन बख्तियारको ससैन्य वर्धनकोटकी राह बाघमतीके तीर ले गया। उस स्थानसे वह दश दिनमें पार्वत्य प्रदेशके किसी बीससे भी अधिक मेहराबवाले प्रस्तर-सेतुके निकट पहुंचे थे। उस सेतुकी रक्षाके लिये बख्तियार एक दल सैन्य छोड़ आगे बढ़े। सेतु पार होने पर कामरूपके रायने किसी विश्वासी व्यक्तिको भेज कहला भेजा कि उस समय तिब्बत पर आक्रमण करना युक्तिसङ्गत न था। उस समय लौट कर अधिक सैन्य संग्रह करना उचित था। फिर उन्होंने भी स्वीकार किया कि आगामी वर्ष वह अपना सैन्यदल ले उक्त देश जीतनेका प्रयास उठावेंगे। बख्तियारने किन्तु उक्त प्रस्ताव ग्राह्य न किया। उसके पीछे वह १६ वें दिन तिब्बत पहुंचे। वहां युद्धादिके पीछे अपने सैन्यमें कुछ गड़बड़ हो जानेसे लौटनेको बाध्य हुये। उनके लौटनेका मार्ग कामरूप और त्रिहुतके मध्य तीस गिरिवर्त्मका एकतम था। फिर १५ दिन अनाहार अविश्रान्त चल उक्त सेतुके निकट आने पर उन्हें उसके दो मेहराब टूटे मिले। सेतु रक्षाके लिये नियुक्त सैन्यदलमें दो नायकोंके मध्य विवाद बढ़ा था। इसीसे वह मुख्यकार्य छोड़ चलते बने। फिर कामरूपके हिन्दुवोंने उसे तोड़ा था। पार जानेका उपाय न देख बख्तियारने ससैन्य एक देवमन्दिरमें आश्रय लिया। फिर उन्होंने बेड़ा बांध कर पार होनेके लिये काष्ठादिके संग्रह करनेकी चेष्टा की। कामरूपके राय उक्त संवाद सुन ससैन्य वहां गये। उन्होंने मन्दिरको चारो ओर तीक्ष्णमुख वंशदण्ड गाड़ और उनमें बरगेबन्दी डाल मुसलमानोंके सैन्यका निर्यांणपथ रोकना चाहा। बख्तियारका सैन्य विपद् देख एक ओर तोड़ कर निकला और बिलकुल नदीतीर पहुंचा था। कामरूपका सैन्य पीछे लगा। फिर प्रत्येकने प्राणभयसे घोड़ेके साथ नदीमें कूद कर पार जानेकी चेष्टा की। किन्तु नदीके मध्यस्थलमें पहुंच प्रायः सब डूब मरे। केवल बख्तियार और कुछ थोड़े लोग अति कष्टसे प्राण बचा दूसरे पार आये। उक्त कोंच-सरदार अलीने जा कर उन्हें उठाया और दोनाजपुरके देवकोटमें पहुंचाया।" बङ्गालवाली एशियाटिक सोसाइटीकी पत्रिकामें २० खण्डके २८१ पृष्ठ पर डाल्टन साहबने सिलहाको नामक सेतुको वर्णना इस प्रकार लिखी है,—"यह सेतु पश्चिम कामरूपमें गोहाटी पहुंचनेकी एक पुरानी ऊंची राहके बीच खड़ा है। सम्भवतः इसी सेतुसे बख्तियार खिलजी (मतान्तरसे बख्तियारके पुत्र मुहम्मद खिलजी) तातारके अश्वारोही ले गोहाटीमें घुसे थे। कारण, यह गोहाटीके उत्तर-पश्चिम प्रान्तकी गिरिमालासे अति निकट अवस्थित है। इस पर्वत पर आज भी नगरप्रवेशके मार्ग और पथरक्षणोपयोगी वहिर्दुर्गके भग्नावशेषादि देख पड़ते हैं। किन्तु इसको विश्वास करनेका यथेष्ट कारण मिलता है कि वह महम्मद-इ-बख्तियार खिलजीके तिब्बत-पथका सिलहाकोवाला हहत् प्रस्तर-सेतु हो नहीं सकता।

उसके पीछे गौड़के नवाब गयास-उद्-दीन (१२११-१७ ई०) कामरूप जीतने गये। कामरूपसे सदिया नामक स्थान पर्यन्त उन्होंने जय किया और कर लिया था। किन्तु सदियाकी पूर्वओर पहुंच वह परास्त हुये। १२५७-५८ ई०को गौड़के सेनापति मलिक ऐबकने कामरूप पर आक्रमण किया था। उन्होंने वहां एक मसजिद बनवायी। किन्तु वह युद्धमें जयलाभ न कर सके। वर्षासे देश जलमें डूब जाने पर उनको यथेष्ट सैन्यहानि हुयी। अन्तको वह महा

दुरवस्थामें पड़ कर गौड़ लौटे। फिर १२५८ ई०को गौड़के नवाब तुगलक खान् स्वयं कामरूप पर चढ़े थे। कामरूपराजने उन्हें बांध कर मार डाला। यह निरूपित करना दुःसाध्य है, उस समय कामरूपमें कौन राजा थे। कामरूप जिलेमें "वेदरगड़" नामक एक पुरातन गढ़ है। प्रवादानुसार १२०४ से १२५८ ई० बीच कोई मुसलमान-सेनापति कामरूप पर आक्रमण करने गये थे। उनके हाथसे देशकी रक्षा करनेके लिये फेंगुवा नामक राजाने वह गढ़ बनवाया। परन्तु उसके पहले वेदध्वनने उक्त गढ़ स्थापित किया था। फेंगुवाके पीछे फिर मुसलमान वहां न पहुंचे। एक बार राजा नीलाम्बरके समय गौड़के नवाब हुसेनशाहने (१४९८-१५०६ ई०) १२ वत्सर अवरोध करनेके पीछे कामरूप पर अधिकार किया था। हुसेन शाह कामतापुर जीत कर स्वीयपुत्र नसरत शाहको प्रतिनिधि बना बङ्गालको लौटे। नसरत शाह कोचविहार-राजवंशके आदि-पुरुष विश्वसिंहसे हारकर भागे थे। फिर कामरूपके सौमारखण्ड (वर्तमान आसाम)में चहुंमुङ्ग वा स्वर्ग-नारायण राजा हुये। (१४९७-१५३९ई०) उस समय तुरबक नामक किसी पठान-सेनापतिने काम-रूपके अन्तर्गत उजाई देश पर आक्रमण किया। आसाममें कलियाबर नामक स्थान पर युद्ध हुवा। युद्धमें तुरबक जीते थे। किन्तु स्वर्गनारायणके प्रधान मन्त्री कनचेंगने उनके विरुद्ध युद्धयात्रा की। वह तुरबकको पराजित कर करतोयाके अपर पार भगा गये थे।* फिर विश्वसिंहके पुत्र नरनारायणके समय कालयवनने कामरूपमें गौहाटी तक पहुंचकर अनेक देवालय नष्ट किये। परीक्षितनारायणके मरने पर ढाकाके नवाबने कामरूपके अन्तर्गत हाजोप्रदेश (परीक्षितका राज्य) ले लिया था। मुसलमान सेनापति मकरम खान् रांगा-माटीमें रह उक्त प्रदेश पर शासन करने लगे। फिर वड़टेनोलक्ष्मी नामक कोई व्यक्ति रांगामाटी गया था। उसके पीछे सैयद अबू बकर नामक एक व्यक्ति आसाम जीतने गये। तेजपुरके निकट भरलीमें युद्ध हुवा। युद्धमें अबूबकर मारे गये। उस समय कामरूपका अधिकांश अहोम राजाके, कुछ अंश रांगामाटीवाले मुसलमान शासनकर्ताके और कुछ अंश राजा दरंगके अधीन था। कुछ दिन पीछे मिर्जाबाद नामक रांगा-माटीके किसी शासनकर्ताने अहोम राजावोंके हाथसे गौहाटी निकाल लेनेका यत्न किया। किन्तु वह बन न पड़ा। शेषको उनके परवर्ती बहरामबेग उसमें कृत-कार्य हुये। फिर क्रमशः मिर्जा रमन खान्, अबदुल-इसलाम शाह, इसलाम खान्, शेख बहराम खान्, शेख समस्ती खान्, मकदूम इसलाम और महो-उद्-दोन रांगामाटीके शासनकर्ता बने। उसी बीच मोमाई-तामूली वड़वड़ुवा नामक किसी आसामी सेनापतिने एक बार अत्यल्प दिनके लिये गौहाटीको उद्धार किया था। किन्तु वह फिर छोड़नेको बाध्य हुये। फिर मिर्जा जैन-उल-आबदीन, इसफन्नर खान्, नवाब नूर-उल्ला अनवर खान्, मिर्जा हुसेन खान्, जारी मियान्, सैयद हुसेन, सैयद कुतुब, नाखुदा, प्रभृति कई लोगोंने कुल २६ वर्ष कामरूप पर शासन किया। उक्त शासन-कर्तावोंमें कोई हाजो, कोई रांगामाटी, और कोई गौहाटीमें रहता था। शेषको उस समय समस्त कामरूप जिला एक प्रकार मुसलमानोंके अधीन था। बिजनीका राज्य और ग्वालपाड़ा जिला भी मुसल-मानोंके ही हाथ था। केवल दरङ्ग-राज स्वाधीन रहे। किन्तु वह भी मुसलमानोंका प्रभुत्व मानते थे। १६५४ ई०को जयध्वज सिंह वा चुतामला रङ्गपुरमें अहोम-सिंहासन पर बैठे। उनके किसी सेनापतिने गौहाटी अधिकार किया। १६६२ ई०को मीर जुमला कोचविहार जीतने गये। गौहाटीके पूर्व उजाई गड़गांव तक उनका अधिकार हुवा। फिर मीर जुमला स्वयं पीड़ित हुये। उनके सैन्यमें भी

* इससे पहले इस प्रबन्धके किसी स्थल पर कामतापुरके विवरणमें नसरत शाहके हाथसे विश्वसिंह द्वारा कामतापुर वा कामरूपराज्यके उद्धार होनेकी बात लिखी जा चुकी है। फिर यहां देखते हैं कि अहोम राजा स्वर्गनारायणके मन्त्री कनचेंग करतोया तक तुरबकके पीछे लगे थे। पक्षान्तर पर तुरबक नामक किसी पठान सेनापतिके कामरूप जीतनेकी बात भारतवर्ष या बङ्गालके दूसरे इतिहासोंमें नहीं मिलती। यह विषय पर्यालोचना करनेसे समझ पड़ता है कि तुरबकके कामरूप आक्रमणकी कथा प्रवादमात्र है। क्योंकि विश्वसिंहके कोचविहार और कामतापुरमें रहते तुरबकके अनुसरणको कनचेंग क्यों चलते?

विद्रोह होनेकी सूचना मिली थी। इसीसे वह राजा जयध्वजसे सन्धि कर लौट गये। मजूम खान् अधिकृत प्रदेशमें शासनकर्ता रहे। उनके पीछे रसीद खान् और सैयदफीरोज खान् उक्त प्रदेशके शासनकर्ता हुये। अहोमराज चक्रध्वज सिंहके निकट राजस्व वसूल करनेके लिये उनका दूत गया था। उन्होंने उसे अपमान कर निकाल दिया और गौहाटी पर्यन्त स्थान अधिकार किया। दिल्लीश्वरने क्रुद्ध हो १६६८ ई० के समय राजा रामसिंहको भेजा था। रामसिंहने जा गौहाटी पर अधिकार किया। फिर वह उत्तरकी अभिमुख अग्रसर हुये। उस समय कामरूपके सीमान्तस्थानमें बड़फूकन उपाधिधारी कोई शासनकर्ता रहते थे। १६२७ ई०को स्वर्गनारायणने उस पदकी सृष्टि की थी। वह सीमान्तस्थानमें रह अहोम राज्यका विदेशीय आक्रमण रोकते थे। राजा चक्रध्वजके समय लाछित बड़फूकन रहे। वह उक्त मोमाई-तामूली फूकनके पुत्र थे। लाछित बड़फूकनने राजा रामसिंहको गर्वित वचनसे कहला भेजा कि १६६२ ई०को मीरजुमला रणमें हार अहोमराजसे सन्धि कर गये थे। उस समय अहोमराज न तो दिल्ली-सम्राट्के अधीनस्थ रहे और न उन्हें राजस्व देनेको प्रस्तुत थे। लाछित बड़फूकनका सदर्प वाक्य सुन मुसलमानोंका सैन्य युद्धको अग्रसर हुवा। १६६८ ई० को औरंगजेबकी सेनाके साथ कामरूपके शासनकर्ता लाछित बड़फूकनका घोरतर संग्राम सारावाट नामक स्थानमें पड़ा। उस संग्राममें मुसलमानसैन्य पराभूत हो भागा। अहोम-सैन्यने मानहा नदी तक उसका पीछा किया। उसी समयसे मानहा नदी अहोमराज्यकी पश्चिम सीमा मानी गयी। अहोमराजने नदीतीर पर छायीरात नामक स्थानमें एकदल सैन्य रखा था। १६०१ शकमें अर्थात् १६७९ ई० को दिल्लीसे फिर सैन्य गया। उस समय अहोम-शासनकर्ता भीतस्वभाव शोला बड़फूकन थे। उन्होंने कलियाबर पर्यन्त देश मुसलमानोंको दे सन्धि की। उसके पीछे १६०८ शकको सन्दिकी बड़फूकनने निरुपद्रव गौहाटीका उद्धार किया। फिर दूसरे वर्ष मंजूर खान् नामके एक नवाब युद्ध करने गये थे। गौहाटीके निकट शुक्रेश्वरके इट-खोलेमें भयानक युद्ध हुवा। उस युद्धमें पराभूत हो मुसलमान रांगामाटी, हाजो, गोहाटी और कामरूपकी सीमा तक छोड़ कर भागने पर बाध्य हुये। कामरूप सम्पूर्णरूपसे अहोमराजके अधिकारमें पड़ गया। फिर दिल्लीके बादशाह हीनप्रभ हुये। बङ्गालमें अंगरेजों, ओलन्दाजों, फरासीसियों, पोर्तगीजों प्रभृति सुदूर युरोपवासियोंका उपद्रव बढ़ा था। इसीसे नवाबोंको भी कामरूपकी बात सोचनेका समय वा अवकाश न मिला। अहोमराज निरुपद्रव कामरूप भोगने लगे। शोला बड़फूकनके सन्धिपत्रमें कामरूप राज्यका नाम लिखा था। उस सन्धिपत्रको अहोम-राजने अग्राह्य किया। इसीसे कामरूप राज्यका नाम लोप हो गया और वह आसामका अन्तर्गत प्रदेश बना।

आसाम देशके राजका अहोम नाम है। अनेकोंके अनुमानमें वह शान वंशके लोग हैं। वह आसामकी पूर्ववर्ती पर्वतमाला अतिक्रम कर ई० त्रयोदश शताब्दके प्रारम्भमें ब्रह्म और श्यामदेशसे सौमारपीठ राजत्व करने पहुंचे थे। फिर आसामका राज्य स्थापित हुवा। दूसरा समकक्ष न माना जानेसे उक्त राज्यका नाम 'असम' पड़ा था। कालक्रमसे स के स्थानमें ह लग जानेसे लोग अहम वा अहोम कहने लगे। अब उसका परिणत नाम आसाम है। पूर्वकाल अहोम लोग हिन्दू न थे। वह चोमदेव नामक देवताको पूजते रहे। राजत्व स्थापनके कुछ काल पीछे उन्होंने हिन्दूधर्म ग्रहण किया और अपनेको स्वर्गके राजा इन्द्रका वंशोद्भव बता दिया। पहले ही लिख चुके हैं कि योगिनीतन्त्रमें वह इन्द्र-वंशोद्भव "सौमार" नामसे अभिहित हैं।

११५१ शकाब्द (१२२९ ई०) को चुकाफा नामक कोई प्रतापशाली व्यक्ति ससैन्य पूर्वदिक्से अग्रसर हुये थे। फिर उन्होंने आदिम निवासी कुटियावां और बराहियोंको जीत आसामके पूर्वभागमें राज्य स्थापन किया। पीछे उनके बारह पुत्र क्रमसे राजा

हुये। उन्होंने अपने राजत्वविस्तार और किसी किसी आदिम निवासी जातिके साथ युद्ध करनेको छोड़ दूसरा कोई योग्य कार्य न किया। फिर १४१८ शकको चुडुंगमुंग राजा या हिन्दू बने और स्वर्ग-नारायण नामसे ख्यात हुये। वह भी कोई कीर्ति छोड़ न गये। पीछे उनके पुत्र और पौत्र राजा हुये। उन्होंने भी लिखने योग्य कोई कार्य न किया। फिर १५३३ शकको चुचेंगफाने राज्य पाया था। हिन्दू मतसे उनका नाम बुद्धिस्वर्गनारायण वा प्रताप सिंह रखा गया। उन्होंने उक्त देशमें दुर्गोत्तम और स्वर्ण एवं रौप्यकी मुद्राका प्रचार किया। उन्हींके शासनकाल १५४८ शकको कामरूपके शासनकर्ताके आसाम आक्रमण करने पर युद्ध हुवा। उसमें सैयद मारे गये। गौहाटी आसामराजके हाथ लगी। उन्होंने बहुत मार्ग और घाट बनवा आसामकी उन्नति की थी। देवमन्दिर और ब्राह्मणके प्रति-पालनार्थ भूमि देनेकी गौरव उन्हींके समय वृद्धि हुयी। मरने पर उनके ज्येष्ठ और फिर कनिष्ठपुत्र सिंहासन पर बैठे। किन्तु वह दोनों अत्यन्त उपद्रवी थे। इसीसे मन्त्रियोंने उन्हें राज्यच्युत किया। उसके पीछे चुतमला या जयध्वज राजा हुये। वह पराक्रमी राजा रहे। उन्होंने आसामकी बहुत उन्नति की। १५७७ ई० को मीरजुमला और मंजूम खान् दोनोंने आसाम पर आक्रमण किया। आसामराज परास्त हो सन्धि करने पर बाध्य हुये। उनके मरने पर चुयंगरुंग या चक्रध्वज सिंहको राज्य मिला। उन्होंने सन्धिके अनुसार कर न दिया और बादशाहके दूतका अपमान किया। इस कारण बादशाह औरंगजेबकी आज्ञासे राजा रामसिंह आसाम पर चढ़े थे। किन्तु वह युद्धमें हार भागनेको बाध्य हुये। इसलिये कामरूप फिर आसामराजके हाथ लगा। राजधानी ऊपरी आसाममें थी। वहांसे दूरस्थ कामरूपका शासन-कार्य अच्छी तरह चलना कठिन था। उसीसे राजाने गौहाटीमें एक बड़फूकन अर्थात् अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया। उनके मन्त्रणागारका चिह्न अद्यापि वर्तमान है। पीछे उनके भ्राता चुन्यतफा या उदयादित्य राजा हुये। उनके मरने पर तद्भ्राता चुकलमफा या रामध्वज सिंहने सिंहासनारोहण किया। उनके पीछे होनेवाले चार राजावोंने हिन्दू-धर्म या हिन्दू नाम रखा न था। उनमें शेष राजा चुतयफा १६०१ शकको कामरूप प्रदेश मुसलमानोंके हाथ समर्पण करनेको बाध्य हुये। उनके मरने पर चुलिकफा या लराराजाको राज्य मिला। मन्त्रियोंने उन्हें सिंहासनसे हटा चासुफरोयवंशीय चुपातफा या गदाधर सिंहका अभिषेक किया था। वह हिन्दू न थे। हिन्दू और हिन्दूधर्म दोनोंसे उन्हें बड़ी घृणा रही। ब्राह्मणोंसे उनका विजातीय विद्वेष था। फिर उन्होंने अनेक ब्राह्मणोंको नगरसे निकाल भी दिया था। वह बलवान् और वृहत्काय पुरुष थे। मद्य-मांस विना रहना उनके लिये असम्भव था। भेक और गोमांस उनका प्रधान खाद्य रहा। वह कहते थे कि हिन्दूधर्म ही अहोम वंशके पतनका कारण होगा। वह हिन्दूधर्म मानते न थे। इसीकारण उन्होंने कोई हिन्दू देवमन्दिरकी प्रतिष्ठा न की। किन्तु गौहाटीके निकट ब्रह्मपुत्रमध्यस्थित भस्माचल पर्वत पर उमानन्द-शिवका मन्दिर उन्हींके राजत्वकालमें प्रतिष्ठित हुवा। वह अद्यापि वर्तमान है। उनके राजत्वकाल १६०५ शकको मुसलमानोंने फिर आसाम पर आक्रमण किया था। किन्तु युद्धमें हार कर वह आसाम छोड़ने पर बाध्य हुये। आसामराजने गौहाटीमें राजधानी स्थापन कर एक बड़फूकन भेजा था। उनके मरने पर ज्येष्ठपुत्र चुचरंगफा या रुद्रनाथ सिंह राजा हुये। उनके पिता जैसे हिन्दू और हिन्दूधर्म-विद्वेषी रहे, वह तैसे ही हिन्दूधर्मपरायण और ब्राह्मणभक्त बने। उन्होंने अनेक ब्राह्मणोंको भूमि दी और देव-मन्दिरोंकी स्थापना की। उन्हींके आदेशानुसार शिव-सागरके अन्तर्गत लामडांग नदी पर बना वृहत् और सुदृढ़ प्रस्तरमय सेतु अद्यापि विद्यमान है। उस पर अनेक हस्ती, अश्व और मनुष्य गमनागमन करते हैं। तद्भिन्न उनके स्थापित अनेक देवमन्दिर भी वर्तमान हैं। उन्होंने बङ्गालसे गायक और वाद्यकार ले जाकर अपने देशमें बंगला गीत-वाद्यका प्रचलन बढ़ाया था।

वह गङ्गा नदीको निज देशान्तर्गत करनेके अभिप्रायसे बङ्गदेश पर चढ़नेको ससैन्य युद्धयात्रापूर्वक गौहाटीमें उपस्थित हुये। किन्तु दुर्भाग्यवश वहां उनको रोग लग गया। फिर कालके कराल कवलमें पड़नेसे उनका अभिलाष सिद्ध न हुवा। उनके पुत्र सुतनफा या शिवनाथ सिंहको सिंहासनका अधिकार मिला था। आसामके समस्त देवोत्तर, ब्रह्मोत्तर वा अन्यप्रकार निष्कर भूमिमें अधिकांश उन्हींका प्रदत्त है। उनकी पट्टमहिषी फूलेश्वरी वा प्रथमेश्वरीके आदेशानुसार गौरीसागर नामक सुहृद् पुष्करिणी बनी और उसके पार एक शिवमन्दिरकी स्थापना हुयी। उनके मरने पर महाराजने उनकी भगिनी द्रौपदी वा अम्बिकाको विवाह कर पट्टमहिषी बनाया था। उन्होंने अपनी जेष्ठाके आदेशसे शिवसागर जिलेकी दिखु नदीके उत्तर पार किञ्चिदधिक चार सौ बीघे भूमिमें शिवसागर नाम्नी एक पुष्करिणी खोदा उसके तीर शिव, दुर्गा तथा विष्णुके तीन वृहत् मन्दिरोंकी प्रतिष्ठा की और देवसेवाके लिये बहुत सी भूमि दी। उक्त तीनों मन्दिर और पुष्करिणी आज भी विद्यमान हैं। उसी पुष्करिणीके नामानुसार उक्त देशका नाम शिवसागर पड़ा है। फिर उसीके तीर वर्तमान समुदाय राजकार्यालय और अंगरेज राजकर्मचारियोंके निवासस्थल स्थापित हैं। राजा शिवनाथ सिंहके मरने पर उनके भ्राता प्रमत्त सिंह वा सुचेनफाने सिंहासन अधिकार किया। शिवसागर जिलेके अन्तर्गत दिखु नदीके दक्षिण पार रंगघर (रङ्गशाला) नाम्नी द्वितल अट्टालिका उन्हींकी बनायी है। उन्होंने हस्ती, व्याघ्र, महिष प्रभृति पशुवोंका युद्ध देखनेके लिये उसे बनाया था। उनके पीछे उनके भ्राता सुराम्फा या राजेश्वर सिंह सिंहासनाधिरूढ़ हुये। उन्होंने तदानीन्तन राजप्रासादके परिवर्तमें शिवसागरकी दिखु नदीके उत्तर पार "गड़गांव" नामक वृहत् और वितल भवन बनाया था। कुछ समय वहां रहनेके बाद वह असन्तुष्ट हुये। फिर उक्त नदीके अपर पार रंगघरके पास उन्होंने अति वृहत् और सप्ततल राजप्रासाद बनवाया। उसका नाम रंगपुर रख गया। उसके निकट शिवसागरकी भांति वृहत् "जयसागर" नाम्नी पुष्करिणी उन्हींकी प्रतिष्ठित है। फिर तीरस्थ शिवमन्दिर भी उन्होंने स्थापित किये थे। उनके पीछे उनके भ्राता सुन्येओफा वा लक्ष्मीनाथ सिंह अभिषिक्त हुये। उन्होंने भी कतिपय देवमन्दिर स्थापित किये थे। उनमें कामरूपके अन्तर्गत मणिपर्वत पर अश्वक्रान्तका देवालय प्रधान है। उनके मरने पर उनके जेष्ठपुत्र सुहितपांगफा या गौरीनाथ सिंह सिंहासनाधिष्ठित हुये। उनके राजत्वकालकी प्रधान घटना डिब्रूगढ़के निकटस्थ हिन्दूधर्ममें दीक्षित मटक, मोयामरीया या मरान नामक आदिम निवासी लोगोंको विद्रोहिता है। वह दो बार विरोधी हुये। प्रथम बार तो राजाने उन्हें दमन किया, किन्तु दूसरी बार दबा न सकनेसे भागना पड़ा। उन्होंने कलकत्ते दूत भेज अंगरेज गवरनमेण्टसे साहाय्य मांगा था। उससे लार्ड कारनवालिसके आदेशानुसार कप्तान वेलस और लेफ्टिनेण्ट मेग्रेगर कितने ही देशीय सैन्यके साथ आसाम पहुंचे। उन्होंने विद्रोह दबा देशमें शान्तिको स्थापना किया था। राजाके भागने पर विद्रोहियोंने अतीव निष्ठुर भावसे असंख्य निराश्रय प्रजाको मार डाला। उसीसे उन्हें मरान कहते हैं। विद्रोह-शान्तिके पीछे गौरीनाथने रंगपुर नगर छोड़ शिवसागरके अन्तर्गत जाड़हाट नामक स्थानमें नगर स्थापन किया। उसी स्थान पर वह कालग्रासमें पतित हुये। उनके पीछे कामरूपीय वंशके कमलेश्वर सिंहने राज्य पाया था। यहां यह बता देना भी उचित है कि हिन्दू धर्ममें दीक्षित होनेके समयसे अहोम राजा अपरापर अहोमोंकी भांति अपने सन्तानोंका हिन्दू नाम रखते थे। फिर उनमें राजा होनेवाले अभिषेकके समय अहोम शास्त्रानुयायी कोई कार्य कर अहोम नाम ग्रहण करते थे। किन्तु उक्त कार्य अतीव व्ययसाध्य था। इसी कारण कमलेश्वर उसको कर न सके। उनके अहोम नाम न पानेका यही कारण है। उनके पीछे न तो किसी राजाने उक्त कार्य किया और न उसको अहोम नाम ही मिला। उन्होंने पश्चिमाञ्चलसे बहुतसे

लोगोंको ले जा कर सैनिक कार्यमें लगाया और पथरकलेको चलाया। उनके परलोक पहुंचने पीछे भ्राता चन्द्रकान्त सिंह राजा हुये। उनके राजत्व-कालमें मन्त्रियोंमें विरोध उठा था। फिर गौहाटीके राजप्रतिनिधि बड़फूकन ब्रह्मराज्यमें पहुंचे और कितने ही सैन्यके साथ लौट पड़े। उन्होंने राज-धानीमें उपस्थित हो विपक्षियोंको दमनपूर्वक राजाको स्वायत्त किया और अपने ऊपर राज्यके शासनका भार लिया। ब्रह्मदेशीय सैन्य पीछे लौट गया।

उक्त सैन्यकी स्वदेशयात्राके पीछे बड़फूकनके किसी किसी विपक्षने राजमाताको प्रणोदित किया और उन्होंने उनका शिर काट लिया। उनके मरनेके बाद उनके विपक्ष प्रधान राजमन्त्री रुचिनाथ बूढ़ा-गोसाईंने अपरापर प्रधान राजपुरुषोंसे मिल चन्द्रकान्त सिंहको राज्यसे हटा पुरन्दर सिंहको अभि-षेक किया था। उसके पीछे ब्रह्मदेशीय सैन्य आसाम पर चढ़ा। युद्धमें परास्त हो पुरन्दर सिंह भागे थे। ब्रह्मदेशीयोंने फिर चन्द्रकान्त सिंहको राज्य दे प्रस्थान किया। अनन्तर ब्रह्मदेशीय राजाने चन्द्रकान्त सिंहके निकट बन्धुताके भावसे कितने ही सैन्यके साथ एक दूत भेजा था। किन्तु मन्त्रियोंने उनका अभिप्राय न समझ अवरोध किया। उससे ब्रह्म-देशियोंने अपमानित और क्रुद्ध हो युद्धकी घोषणा की। आसामियोंका सैन्य युद्धमें परास्त हुवा। राजाने फिर पलायन किया था। उसके पीछे ब्रह्मदेशसे अधिक सैन्य भेजा गया। उसने आसाम-वासियोंको अत्यन्त सताया। धन और प्राणकी विशेष हानि हुयी थी। बहु कष्टके पीछे आसामका सौभाग्योदय हुवा। अंगरेज गवरनमेण्टने दुर्दान्त और निदारुण ब्रह्मवासियोंको निकाल कर आसाम अधिकार किया था। १८२५ ई०को २री फरवरीको आसामको दुःख रात्रिका अन्त हुआ। प्रजा असह्य यातनासे छूटी थी। ६०० वर्ष राज्य भोग कर अहोमवंश सिंहासन च्युत हुवा।

अहोम वंशके राजावोंकी तालिका नीचे दी जाती है,—

नाम	राज्यभोगकाल
१ चुकाफा	१२२९—१२६८ ई०
२ उनके पुत्र चुतेउफा	१२६८—१२८१ „
३ „ चुबिनफा	१२८१—१२९३ „
४ „ चुखांगफा	१२९३—१३३२ „
५ „ चुखरांगफा	१३३२—१३६४ „
६ उनके भ्राता चुतुफा	१३६४—१३७६ „
अराजक	१३७६—१३८० „
७ त्याओखामती चुतुफाके भ्राता	१३८०—१३८९ „
अराजक	१३८९—१३९७ „
८ चुडांगफा, त्याओखामतीके पुत्र	१३९७—१४०७ „
९ उनके पुत्र चुजांगफा	१४०७—१४२२ „
१० „ चुफाकफा	१४२२—१४३९ „
११ „ चुचेनफा	१४३९—१४८८ „
१२ „ चुहेनफा	१४८८—१४९३ „
१३ „ चुपिम्फा	१४९३—१४९७ „
१४ „ चुहुंगमुंग वा स्वर्गनारायण	१४९७—१५३९ „
१५ „ चुक्लेनमुंग या गड़गायां राजा	१५३९—१५५२ „
१६ „ चुखामफा या खोड़ा राजा	१५५२—१६०३ „
१७ „ चुचेंगफा या बुढ़ा स्वर्ग नारायण वा प्रतापसिंह	१६०३—१६४१ „
१८ „ चुरामफा वा भगा राजा	१६४१—१६४४ „
१९ „ चुत्विंगफा वा नड़िया राजा	१६४४—१६४८ „
२० „ चुतामला वा जयध्वज सिंह भगानिया राजा	१६४८—१६६३ „
२१ „ चारिंगिया वंशके चुपंगमुंग वा चक्रध्वजसिंह	१६६३—१६७० „
२२ उनके भ्राता चुन्यातफा वा उदयादित्य	१६७०—१६७३ „

नाम	राज्यभोगकाल
२३ उनके भ्राता चुक्लामफा वा रामध्वज	१६७३—१६७५ ,,
२४ चासुरुङरीया वंशके चुड्डंग राजा	१६७५ ,, (१ मास १५ दिन)
२५ तुंगखंगिया वंशके गोवर राजा	१६७५ ,, (२० दिन)
२६ दिहिंगिया वंशके चुजिनफा	१६७५—१६७७ ,,
२७ तुंगखुंगिया वंशके चुदैफा	१६७८—१६७९ ,,
२८ चासुरुङरीया वंशके चुलिकफा वा लरा राजा	१६७९—१६८१ ,,
२९ चासुरुङरीया वंशके गदापाणि वा गदाधर सिंह वा चुपातफा	१६८१—१६९६ ,,
३० उनके पुत्र लाई वा चुखरुंगफा वा रुद्रसिंह	१६९६—१७१४ ,,
३१ चुतानफा वा शिवसिंह	१७१४—१७४४ ,,
३२ उनके भ्राता चुचेनफा वा प्रमत्तसिंह	१७४४—१७५१ ,,
३३ ,, चुरामफा वा राजेश्वरसिंह	१७५१—१७६९ ,,
३४ ,, चुन्येओफा वा लक्ष्मीसिंह	१७६९—१७८० ,,
३५ ,, चुहितपांगफा वा गौरीनाथ सिंह	१७८०—१७९५ ,,
३६ चुक्लिंगफा या कमलेश्वर सिंह	१७९५—१८१० ,,
३७ उनके भ्राता चन्द्रकान्तसिंह	१८१०—१८१८ ,,
३८ ,, पुरन्दर सिंह	१८१८—१८१९ ,,
पुनः चन्द्रकान्त सिंह	१८१९—१८२१ ,,
३९ तुंगखंगिया वंशके योगेश्वर सिंह	१८२१—१८२४ ,,

१८२५ ई०को कामरूपमें अंगरेजोंका अधिकार हुवा।

अहोमोंकी आजकल अतीव दैन्यावस्था है। उन्होंने निज धर्मके साथ भाषा भी छोड़ दी है, वे सम्पूर्ण भावसे हिन्दू बन गये हैं। पहले देवमन्दिरों और राजप्रासादोंका विवरण दिया गया है। उनमें प्रायः सब वर्तमान हैं। किन्तु उनकी अवस्था अति हीन है। उनका अधिकांश शिवसागर जिलेमें है। तेजपुर और नौगांव उक्त स्थान कुछ कम हैं। कामरूप जिलेमें आसामवाले राजावोंके स्थापित अनेक देव-मन्दिर देख पड़ते हैं। किन्तु कामाख्याका मन्दिर आसामके राजावोंने बनाया न था। जिस समय कामरूप कोचविहारके अन्तर्गत था, उसी समय कोच-विहारके राजा नरनारायणने उसे निर्माण कियो। आसामके राजावोंने पुराने मन्दिरको केवल सुधराया था। कामाख्या देखो।

आसामके राजावोंकी राजधानी शिवसागर जिलेमें रही। इसीसे कारण दूसरे किसी स्थानमें राजभवन नहीं है।

उक्त समयके पीछे कामरूपको कोई विशेष उल्लेख-योग्य घटना नहीं मिलती। केवल ई० अष्टादश शताब्दके शेषभागमें कामरूपके रहनेवाले हरदत्त और वीरदत्त नामक दो भाइयोंने अहोम-राजावोंके विरुद्ध विद्रोहभाव अवलम्बन किया। हरदत्तके पद्मकुमारी नाम्नी एक परम रूपवती कन्या थी। सम्भवतः पद्मकुमारी ही हरदत्त और वीरदत्तके द्रोहका प्रधान कारण थी। अहोम-राजाके प्रतिनिधि कलिया-भोमोरा बड़-फूकनके साथ हरदत्त वीरदत्तका युद्ध हुवा। युद्धमें हरदत्त हार गये। कलिया-भोमोरा बड़-फूकनके किसी कुमेदान नामक सेनापतिने पद्मकुमारीको हस्तगत किया। प्रवादानुसार पद्मकुमारीके हस्त और पदमें पद्मका चिह्न था। पद्मचिह्न ही उनके पद्मकुमारी नामका मूलकारण रहा। अद्यापि कामरूपमें ग्राम्य सङ्गीत द्वारा हरदत्तका द्रोह और पद्मकुमारीका विवरण गाया जाता है।

राजा रुद्रसिंह स्वर्गदेव नदीयावाले कृष्णराम न्यायवागीश नामक किसी भट्टाचार्यके निकट दीक्षित हुये। भट्टाचार्यमें बहुत अलौकिक क्षमता थी। उसीसे आपामर साधारण सब लोग उन्हें देवीका पुत्र मान

विश्वास और भक्ति करते थे। रुद्रसिंहके पुत्र शिवसिंहने भी सपरिवार उनसे मन्त्र लिया। शिवसिंह स्वर्गदेव सपरिवार भट्टाचार्य महाशयके उपास्य देवी-मन्त्रमें दीक्षित हुये। किसी समय शिवसिंहको छत्रभङ्ग दोष लगा था। ज्योतिषी पण्डितों और मन्त्रियोंने परामर्श किया। फिर वह शिवसिंहकी प्रथमा पत्नी रानी फूलेश्वरीको सिंहासन पर बैठा कर राजकार्य चलाने लगे। उसी प्रकार शिवसिंहके दीर्घ राजत्वमें उनकी चार महिषी-फूलेश्वरी, प्रमत्तेश्वरी, द्रौपदी, वा अम्बिका और अनादेवी या सर्वेश्वरीने बारी बारी सिंहासनाधिरोहण किया। फूलेश्वरी देवीके प्रति विशेष भक्तिमती थीं। एक वर्ष दुर्गोत्सवके समय उन्होंने मोयामरियाके महन्त और अन्यान्य स्थानके कई महन्त निमन्त्रण दे कर बुलाये थे। फिर उन्होंने भगवतीका प्रसादित सिन्दूर, रक्तचन्दन और बलिका रक्तादि छिड़क उन्हें लाञ्छित किया। दूसरोंकी अपेक्षा मोयामारीवाले महन्तके हृदय पर उक्त व्यवहारसे दारुण आघात लगा था। उन्होंने सब शिष्योंको बुलाकर कहा,—"इसका प्रतिशोध लेना आवश्यक है। उसके लिये प्राणपणसे चेष्टा करनी पड़ेगी।" कालक्रमसे वह भी सिद्ध हो गया। १७५१ ई०को राजेश्वर राजा बने। उनकी अन्तिम दशामें मोयामारीके महन्तने शिष्योंको एकत्र कर शिवसिंह राजाके पत्नीकृत अपमानका प्रतिशोध लेनेके लिये सबसे साहाय्य मांगा। शिष्य भी गुरुके अपमानका बदला लेनेको प्रतिज्ञाबद्ध हुये। उसके पीछे लक्ष्मीसिंहको राज्य मिला। राजा रुद्रसिंहके अन्तिम समयमें उन्होंने जन्म लिया था। आकृतिगत सौसादृश्य न रहनेसे राजा रुद्रसिंह उन्हें अपना पुत्र न मानते थे। उसीसे राज्यके अन्यान्य प्रधान लोगोंमें भी उनका वैसा आदर न रहा। फिर राजाके कुलगुरु पर्वतिया गोसाईं भी उन्हें दीक्षा देने पर असम्मत हुये। लक्ष्मीसिंहने स्वीय विद्यागुरु रमानन्द भट्टाचार्य नामक किसी अध्यापकको दीक्षागुरु बना लिया। बाल्यकालमें उन्हींसे राजाने शिवकी पूजा सीखी थी। फिर उन्होंने दीक्षा भी शिवमन्त्रकी ही ली। राजगुरु होनेसे रमानन्दने बहुत प्रतिपत्ति पायी थी। फिर वह पहुमरिया गोसाईं नामसे आख्यात हुये। उनकी वैसी पदमर्यादासे अन्यान्य महन्त बहुत चिढ़े थे। विशेषतः मोयामारीके महन्त कटु वचन प्रयोग करनेसे राजाके विरागभाजन हो गये। उसी वर्ष आश्विन मासमें स्वर्गदेव नौका पर भ्रमणार्थ बाहर निकले थे। साथ ही स्वतन्त्र नौकामें बड़बड़ुवा रहे। मोयामारीके महन्तने साक्षात् कर क्षमा मांगी थी। किन्तु बड़बड़ुवाने महन्तको यथेष्ट विद्रूप किया। महन्तने उससे अपना अतिशय अपमान समझा था। उनके मनमें पूर्व अपमान भी दूना भड़क उठा। उन्होंने बुला कर भीतर ही भीतर शिष्योंको दलबद्ध किया। फिर महन्तने रुद्रसिंह स्वर्गदेवके किसी ताड़ित राजवंशीयको दलपति होनेके लिये बुलाया था। नाहरखोरा और राघमरान दो व्यक्ति सेनापति बने। विद्रोहमें योग देनेवाले छुरा, कुल्हाड़ा, कमान, कांता, बरछा प्रभृति अस्त्रोंसे सज्जित थे। प्रायः नौ हजार आदमी अग्रहायणके प्रथम ही रङ्गपुरकी ओर चल खड़े हुये। प्रवादानुसार महन्तने अन्यायसे लक्ष्मीसिंहको राजा बनानेके लिये उक्त युद्धयात्रा की थी।

मोयामरियाके लोगोंका उक्त उद्योग देख भूपाई बड़ गोसाईं, बूढ़े गोसाईं कीर्तिचन्द्र बड़बड़ुवा प्रभृति मन्त्रियोंने भी परामर्श कर एक दल सैन्य भेजा था। युद्धमें राजसैन्य हार गया। मोयामरियाके सैन्यदलने नगर पर अधिकार कर राजा, सेनापति और बड़बड़ुवा प्रभृति मन्त्रियोंको बांध लिया। राजा जयसागरके निकट बन्दी रहे और गोसाईं, बूढ़े गोसाईं प्रभृति प्रधान प्रधान लोग मारे गये। फिर मोयामरियावालोंने कीर्तिचन्द्रको सूली दे उनके पुत्रोंको बध किया। खोरामरानके पुत्र रमाकान्त राजा हुये। उक्त घटना अग्रहायणकी थी। किन्तु चैत्र मासमें लक्ष्मीकान्तके पक्षसे कुंये, गर्गा, घनश्याम प्रभृति कई लोगोंने साजिश कर रमाकान्तका दासत्व स्वीकार किया। उनके कौशलसे रमाकान्त, मोयामरीयाके सेनापति प्रभृतिने अपने प्राण गंवाये। उसके पीछे लक्ष्मीसिंह राजा बने। लक्ष्मी-

सिंहने घनश्यामको बूढ़ागोसाईंके पद पर बैठाया था। लक्ष्मीसिंहके पीछे लोकनाथ गोसाई देवके गौरीनाथ-नामसे राजा हुये। उन्होंने राज्यमध्यस्थ समस्त मोया-मरीयाके लोगोंको मार डालना चाहा। उससे उन सबने साजिश कर १७८२ ई०के वैशाखमासमें आग लगा शिवसागर नामक राजप्रासाद जला डाला। प्रधान सेनापति उक्तकार्यमें बाधा न पहुंचा सकनेके कारण गौहाटी भाग गये। बूढ़े गोसाईंने मोयामरीयावालोंको पकड़ बुलाया था। फिर उन्होंने दोषी निर्दोष न देख सबको मरवा डाला। सुतरां मोयामरीयाके दूसरे सब आदमी उत्तेजित हो गये। वह गुरुवाक्य और गुरु-कार्यको साक्षात् ईश्वरका आदेश तथा कार्य समझते थे। उसीसे उन्होंने उक्त विद्रोहको धर्मविद्रोह मान लिया। चुपके चुपके मोयामरीया-मइन्तके प्रत्येक शिष्यको संवाद दिया गया था। फिर सभी लोग युद्ध करनेको दृढ़प्रतिज्ञ हुये।

उसी बीच घनश्याम मर गये। उनके सुयोग्य पुत्र पूर्णानन्द बूढ़ा गोसाईं बने। उन्होंने विद्रोह-व्यापार देख सोचा कि सामान्य शास्ति देनेसे ही वह रुक सकता था। फिर उन्होंने मोयमरीयाके कई लोगोंको पकड़ मृदु शास्ति दे कठिन आदेश कर मुक्त किया। किन्तु उससे फल विपरीत निकला। विद्रोहियोंने राजाको दुर्बल समझ पूर्ण उत्साहसे दश सहस्र सैन्य संग्रह किया। एक दल नगराभिमुख चला था। बूढ़ा गोसाईंने उन्हें बाधा देनेको सैन्य भेजा, किन्तु परास्त होना पड़ा। राज्यके मध्य हलचल मच गयी। प्रजा हताश हुयी। राजा नगर छोड़ भागे थे। किन्तु सेनापति चारो ओर क़िलेबन्दी कर नगरमें ही रहे। अन्तको जयसागरके निकट विषम युद्ध हुवा। उस युद्धमें भी राजकीय सैन्य हार गया। भरतसिंह नामक विपक्षके सेनापति राजा बने। राजा गौरी-नाथ कछार और जयन्ती राजसे साहाय्य ले उक्त विद्रोह दबाना चाहते थे। किन्तु उन्होंने कहला भेजा कि स्वदेशकी रक्षाके लिये आवश्यकसे अधिक सैन्य उनके पास न था। गौरीनाथ विद्रोहदलके भयसे गौहाटी भाग गये। वहां उन्होंने बड़फूकनसे परामर्श ले कितना ही सैन्य संग्रहपूर्वक बूढ़ा गोसाईंके सहायतार्थ भेजा था। किन्तु पथमें विद्रोहियोंने बाधा डाल उसे मार डाला।

उसी समय ग्वालपाड़ेमें रस नामक कोई अंगरेज लवणका व्यवसाय करते थे। गौरीनाथ निरुपाय हो साहबको विशेष पुरस्कार देनेकी आशा दे उनके द्वारा वृटिश गवरनमेण्टका साहाय्य पानेके लिये आयोजन करने लगे। साहबने ७०० बरकन्दाज दिये थे। बरकन्दाजोंकी फौजने नौगांवके विद्रोहियोंको जा भगाया, किन्तु उत्तराभिमुख जाते समय जोड़हाटके निकट शत्रु के हाथ सब बरकन्दाज मारे गये। कुछ दिन पीछे मणिपुरराज ५०० अश्वारोही और ४०० पदाति ले गौरीनाथके साहाय्यार्थ उपस्थित हुये। वह सैन्यदल भी युद्धमें हारा था। प्राय: १५०० योद्धा मृत्युमुखमें पड़नेसे मणिपुरीसैन्य स्वदेश लौट गया। विपद् अकेले नहीं चलती। उधर कृष्णनारायणने अपने भ्राता दरङ्गराज विष्णुनारायणको निकाल राज्य अधिकार किया था। फिर उन्होंने गौरीनाथकी दुर्दशा देख हिन्दुस्थानी साधु-संन्यासियोंसे सैन्यसंग्रह कर कामरूप पर चढ़ाई की। पुन: पुन: पराजित होते देख कामरूपके लोग अहोमोंसे घृणा करने लगे। फिर गौहाटी नगरसे उनका वास भी लोगोंने उठा दिया। उसी सूत्रसे उनके मध्य कोई कोई कृष्णनारायणका पक्षपाती बना था।

गौरीनाथने चारो दिक् विपद् देख गौहाटीके विका मजुमदार, दत्तराम खावंन्द और दरङ्गके विताड़ित राजा विष्णुनारायणको वृटिश गवरनमेण्टसे साहाय्य मांगनेके लिये कलकत्ते भेजा। ग्वालपाड़ेके अंगरेज वणिक् रस साहबने कालविन वजेट कम्पनीके नाम एक चिट्ठी दी थी। उस समय कलकत्तेके गवरनर जनरल लार्ड कारनवालिस थे। वे राजा गौरी-नाथका आवेदनपत्र पाते भी प्रथमत: साहाय्य करने पर अस्वीकृत हुये। कारण आत्मविच्छेदसे एक पक्षका साहाय्य करना दूसरे राजाके पक्षमें राजनीतिविरुद्ध है। किन्तु अन्तमें उन्होंने राजा कृष्णनारायणको हिन्दु-स्थानी सैन्यके साथ कामरूप तोड़ते फोड़ते देखा।

वह हिन्दुस्थानी अंगरेजोंकी प्रजा थे। सुतरां उनको दवाना लाट साहवने अपना कर्तव्य समझा। उसीसे १७९२ ई०को कप्तान वेल्स साहब ससैन्य भेजे गये। उन्होंने वहां पहुंचते ही हिन्दुस्थानियोंको दवाना चाहा था।

उधर भरतसिंह राजा हो निष्ठुर भावसे शासन करते थे। सिपाहियोंको आदेश रहा,—"तुम जिस प्रकार हो, अहोमप्रजाको लूटो मारो।" इस साहवके वरकन्दाज और मणिपुरके सिपाही विनष्ट होनेसे उन्होंने अपना राज्य निष्कण्टक समझ लिया। उन्होंने गौहाटीके निकटस्थ कई स्थान अधिकार किये थे। राजा गौरीनाथ उक्त संवाद पा कुछ सैन्य ले उसी ओर चल पड़े। फिर कप्तान वेल्स साहब भी जा पहुंचे। राजाके मुखसे देशकी अवस्था सुन १७९२ ई०की २५वीं नवम्बरको उन्होंने गौहाटी प्रदेश उद्धार किया। मोयामरीया दल छिन्न भिन्न हो गया। गौरीनाथ गौहाटीमें ही रहे। कप्तान वेल्स ६ठीं दिसम्बरको लौहित्यके उत्तर कूल गये थे। मोयामरीयावालोंका पराजय सुन कृष्णनारायणका भी सैन्य भागा। कृष्ण-नारायणने कहा,—"हम गौरीनाथके विपक्षमें नहीं थे। मोयामरीया-विद्रोह निवारण करना हमारा भी उद्देश्य था। किन्तु गौरीनाथ यह वात समझ न सके। इसीसे उन्होंने हमें भी विद्रोही मान रखा है।" फिर कप्तान वेल्सने गौरीनाथ और कृष्णनारायणके मध्य सन्धि करा दी। सन्धिमें शर्त थी कृष्णनारायणको दरङ्ग, कुटिया तथा चाय-दोआबको आदमी देनेके वदले ५५०००) और भोट राज्यमें व्यवसाय करनेके लिये महसूलके हिसावमें ३०००) रु० देना पड़ेंगे। कप्तान वेलसने गौहाटीमें रह देखा कि गौरीनाथकी वुद्धि विवे-चना वड़ी न थी। फिर निष्कण्टक होते भी उनके द्वारा राज्य स्थापित होनेमें वड़ा सन्देह रहा। उन्होंने निम्नलिखित मर्मका पत्र कलकत्ता भेजा था,—"हम वह काम करके आना चाहते हैं, जिसमें राज्यका सुप्रबन्ध रहे। हमें बोध होता कि राजाके अन्याय्य आचरणसे ही कृष्णनारायण प्रभृति विद्रोही हुये थे।"

१७९३ ई०के मार्च मास कप्तान वेलसने प्रधान नगर आक्रमण करनेको पैर वढ़ाया। गौरीनाथ भी साथ थे। जिस दिन वह नगरके निकट पहुंचे, उसी दिन नगरकी अवस्था ज्ञात हो दूसरे दिन प्रातःकाल १२ सिपाही, १ जमादार, १ नायक और १ हवलदार कुल १५ आदमी नगरके निकट भेजे गये। राजा गौरीनाथ वह व्यापार देख विषण्ण हुये। उन्होंने यह सोच जयको आशा छोड़ी थी कि ५००० मोयामरीयावालोंके साथ उन मुष्टिमेय सिपाहियोंका युद्ध होगा। मोया-मरीयावाले चारो ओर घेर कर खड़े हो गये। उन्होंने सोचा कि उन्हीं कई सिपाहियोंके मारनेसे जय होगा। अन्तको सिपाही वीरभावसे गोली छोड़ने लगे। यथेष्ट मोयामरीयाके लोग मरे थे। उन्हीं कई सिपाहियोंने शत्रुपक्ष प्रायः निःशेष कर डाला। फिर कुछ अंगरेज सिपाहियोंने जा नगर अधिकार किया। उसके दूसरे दिन बूढ़ा गोसाईं गौरीनाथको नगरमें ले गये। १७९५ ई०के चैत्र मास कप्तान वेल्स नगरमें घुसे थे।

गौरीनाथ फिर जा कर सिंहासन पर वैठे। कप्तान साहबने वूढ़ा गोसाईं प्रभृति प्रधान कर्मचारियोंको बहुत उपदेश दिया और गवरनर जनरलका अभिप्राय समझा कर कहा,—"देशमें सुशासन रखनेके लिये कुछ वृटिश सैन्य यहां रहेगा और कामरूपकी आमदनीसे उस सैन्यदलका खर्च चलेगा।"

उधर लर्ड कारनवालिस स्वदेश गये। १७९४ ई०को सर जान शोर गवरनर हो कर आये थे। उन्होंने कप्तानको लौटनेका आदेश किया।

फिर १८१७ ई०को पुरन्दर सिंहने चन्द्रकान्तसिंह स्वर्गदेवको बन्दी बना कर राज्य लिया था। उसी समय बड़फुकनके लोगोंने ब्रह्मदेशके अधीश्वर भालुङ्ग मिङ्गि या किवया मिङ्गिसे जा कर उक्त विषयको सूचना की। उन्होंने साहाय्यार्थ ३०००० सैन्य भेजा था। ब्रह्म-सेनापतिके राज्यमें प्रवेश करने पर पुरन्दर सिंहने सैन्य भेज कर बाधा दी। युद्धमें पुरन्दर सिंहका सैन्य परास्त हुवा। पुरन्दर हार कर गौहाटी भाग गये। ब्रह्मसेनापतिने चन्द्रकान्तको राजा बना पुरन्दरको पकड़नेके लिये सैन्य भेजा था। पुरन्दरको

और बड़फूकनने युद्ध किया। किन्तु उनके भी हारने पर पुरन्दर भाग कर चिलमारीमें जा रहे। ब्रह्मसेनापति चन्द्रकान्तके रक्षार्थ २००० सैन्य छोड़ स्वदेश लौट गये। पुरन्दरने निरुपाय हो कलकत्ते जा १८१९ ई०के सितम्बर मास वृटिश गवरनमेण्टके निकट निम्नलिखित आवेदन किया था,—"यदि वृटिश गवरनमेण्ट सैन्य भेज कर हमारा राज्य उद्धार कर दे, तो हम उसके लिये व्यय देने और अवशेषको वृटिश गवरनमेण्टके अधीन करद राजा बननेके लिये प्रस्तुत हैं।" किन्तु वृटिश गवरनमेण्टने उक्त आवेदन न सुना।

उस समय कोचविहारमें मिष्टर स्काट कमिशनर थे। वह प्रतिपत्रमें गवरनमेण्टको देशकी अवस्था देखाते रहे। फिर ब्रह्मसेना रीतिके अनुसार देशमें घुस पड़ी। चन्द्रकान्तको नाममात्र राजा रख ब्रह्मसेनापति सर्वमय कर्ता बन बैठे। चन्द्रकान्त भी अन्तको उनके हाथसे देशोद्धार करनेकी चेष्टामें लगे। १८२० ई०को ब्रह्मसेनापति मिङ्गिमाहा देशकी अवस्था देखने गये थे। जयपुरके निकट एक गढ़ बनते देख उन्होंने कौशलसे वहांके बड़फूकनको मार डाला। चन्द्रकान्तने उससे भीत हो सोचा कि उस बार ब्रह्मसेनापतिने शत्रुरूपसे राज्यमें प्रवेश किया था। उसी विवेचनामें वह बूढ़ा गोसाईंको नगरके रक्षार्थ रख स्वयं गौहाटी भाग गये। मिङ्गिमाहाने वहां पहुंच कर चन्द्रकान्तको अभय दिया था। किन्तु उनके उसमें विश्वास न कर सकनेसे नगररक्षी सैन्यके साथ ब्रह्मसेनापतिका युद्ध हुवा। बूढ़ा गोसाईं हार गये। चन्द्रकान्त जोड़हाटकी ओर भागे थे।

मिङ्गिमाहा योगेश्वर नामक किसी कुमारको कहनेके लिये राजा बना स्वयं राज्यशासन करने लगे। उस समय राज्यमें प्रायः दश सहस्र ब्रह्मसेना उपस्थित थी। दरङ्गराज भी उसी समय ब्रह्मको अधीनता स्वीकार करने पर बाध्य हुये। उसके पीछे ब्रह्मसेनापतिके साथ चन्द्रकान्त और पुरन्दरका नाना स्थानोंमें युद्ध हुवा। उसी अवस्थामें ब्रह्मसेनापतिने वृटिश गवरनमेण्टको पत्र लिखा था कि वह किसी आसामी राजाका पक्ष ग्रहण न करे। किन्तु वृटिश गवरनमेण्टने उक्त आवेदन सुना न था। अथच उसने किसीकी सहायता न की।

उसी समय गारो प्रभृति असभ्य जातियोंको सभ्यता सिखाने और उनके देशमें वृटिश अधिकार फैलानेके लिये १८२२ ई०को १०वीं व्यवस्था निकली थी। कोचविहारके कमिशनर स्काट साहब उक्त आईन (व्यवस्था) का कार्य करनेको उत्तराञ्चलके एजण्ट हुये। उसी समय रङ्गपुरसे विच्छिन्न हो ग्वालपाड़ा एक स्वतन्त्र जिला बन गया। आसाममें उस समय ब्रह्म-अधिकार होनेसे ग्वालपाड़ेमें एकदल अंगरेजी सैन्य रहा। लेफटेनेण्ट डेविडसन साहब उक्त सैन्यदलके नायक थे। मिष्टर डेविडसन और मिष्टर स्काट आसामियोंसे बड़ा स्नेह रखते थे।

उधर महगड़के युद्धमें सम्पूर्ण परास्त हो चन्द्रकान्तने ग्वालपाड़े जा अंगरेजोंका आश्रय लिया। लेफटेनेण्ट डेविडसनको भय देखा ब्रह्मसेनापतिने निम्नलिखित पत्र भेजा था,—"ब्रह्मराज चाहते हैं कि कम्पनीके साथ मित्रता रहे और ब्रह्मसेना किसी प्रकार अंगरेजी सीमा अतिक्रम न करे। किन्तु चन्द्रकान्तने अंगरेजोंके अधिकारमें आश्रय लिया है। अतएव उन्हें पकड़नेके लिये आदेश देना आवश्यक है।" मिष्टर डेविडसनने उक्त पत्र मिष्टर स्काटके पास पहुंचा दिया। फिर स्काटने वही पत्र गवरनर जनरलके पास भेजा था। गवरनर जनरलने ढाकेके अंगरेजी सेनापतिको आदेश दिया कि मिष्टर स्काटको आवश्यक सैन्य मिल सकता है। ब्रह्मसेना यदि अंगरेजी सीमामें घुस आवे, तो वह बलपूर्वक भगायी जावे।

१८१७ ई०को कछारके राजा गोविन्दचन्द्रने गवरनमेण्टसे आवेदन किया कि मणिपुरको सीमा पर ब्रह्मसैन्यका आक्रमण हो सकता है। १८२० ई०को मणिपुरसे चौरजित् सिंह, मारजित् सिंह और गम्भीर सिंह नामक तीन राजकुमारोंने ब्रह्मके अत्याचारसे उत्पीड़ित हो कछार जा कर आश्रय लिया था। उसके पीछे गोविन्दचन्द्रके गृहविवादसे राज्यच्युत होने पर उक्त तीनों भ्राताओंमें कछारके सिंहासनके लिये बड़ी हलचल पड़ी। १८२३ ई०को चौरजित्

सिंहने वृटिश गवरनमेण्टको एक पत्र लिखा,—"मालूम पड़ता है कि ब्रह्मराज शीघ्र ही इस अञ्चल पर आक्रमण करनेवाले हैं। अतएव हम कछार राज्य अंगरेजोंको सौंपना चाहते हैं।" वृटिश गवरनमेण्ट उक्त प्रस्ताव पर सम्मत हो गयी। मारजित्‌सिंह पहले ही ब्रह्मके साहाय्यसे मणिपुर अधिकार कर वहां ब्रह्मके करद राजा बन बैठे थे।

वृटिश गवरनमेण्टको कछार राज्य हाथमें लेने पर संवाद मिला कि ब्रह्मवाले आसामसे कछार आक्रमणके उद्योगमें थे। मिष्टर स्काटने ब्रह्मसेनापतिको एक पत्र लिखा,—"कछारके साथ वृटिश गवरनमेण्टका सम्बन्ध है। आप इस प्रदेश पर आक्रमण न कीजिये।"

आसाम और कछारके मध्य क्षुद्र जयन्ती राज्य है। ब्रह्मसेनापतिने उक्त देशके राजाको भय देखा वशीभूत करना चाहा था। किन्तु जयन्तीराजने वश्यता न मानी। ब्रह्मसेनापति भी कछारकी अंगरेजी सेनाके भयसे हठात् उक्त राज्यको आक्रमण कर न सके।

उसके पीछे एक ही साथ आसाम और मणिपुर दोनों दिक्‌से आक्रमण करनेके लिये जयन्ती एवं कछारके प्रान्त तथा श्रीहट्टकी सीमा पर ब्रह्मसेना पहुंची थी। अंगरेजाधिकृत आराकान ब्रह्मवालोंने जीत लिया। १८२३ ई०को उन्होंने चट्टग्रामके निकटवर्ती शाहपुर नामक एक क्षुद्र द्वीप पर अधिकार किया था। लार्ड आमहर्ष्ट उस समय गवरनर जनरल थे। उन्होंने देखा कि ब्रह्मका अधिकार बङ्गालकी सीमा तक फैला था। फिर स्थिर रहनेसे बङ्गालके सीमान्त-प्रदेशमें मग अत्याचार करेंगे। १८२४ ई०को ब्रह्मसे युद्ध करना ठहर गया। गवरनर जनरलने ढाकासे ब्रिगेडियर मेकमरिनको ग्वालपाड़े जानेका आदेश दिया था। उधर लेफटिनेण्ट डेविडसनको आसाम प्रवेश करनेकी भी अनुमति मिली। मिष्टर स्काटने समस्त प्रबन्धका भार पाया था। १८२४ ई० को २८ वीं मार्चको ब्रिगेडियर मेकमरिनने विना युद्ध गौहाटी अधिकार कर लिया। ब्रह्मवाले अंगरेजोंका आगमन सुनते ही नगर छोड़ भाग गये। फिर ब्रिगेडियर मेकमरिन, कप्तान हरसबरा, लेफटिनेण्ट रिचार्डसन, करनल रिचार्डस प्रभृतिसे कलियाबर, नौगांव, रहा, मरासुख आदि स्थानोंपर कई बार युद्धमें ब्रह्मसेना परास्त हुयी। युद्धमें ब्रिगेडियरके मरनेसे करनल रिचार्डस प्रधान सेनापति बने थे। अन्तमें १८२४ ई०के मई मास आसाम प्रदेशमें अंगरेजोंका अधिकार हो गया। उसके पीछे जोड़हाट, जयन्ती, कछार, गौरीसागर प्रभृति स्थानोंमें शान्तिके रक्षार्थ क्षुद्र क्षुद्र युद्ध हुये। ब्रह्मके अधीनस्थ श्यामफूकन और बगली फूकनने ७०० सेनाके साथ आत्मसमर्पण किया था। योगेश्वरसिंह योगीघोपामें १८२५ ई०को परलोक गये। उनके वंशीय वृटिश गवरनमेण्टके वृत्तिभोगी बने।

१८२६ ई० को २४ वीं फरवरीको यण्डाबू शहरमें अंगरेजों और ब्रह्मवासियोंसे एक सन्धि हुयी। उसके अनुसार आराकान, मार्ताबान, तेनासरीम और आसाम अंगरेजोंको मिला था। स्काट साहब उक्त नवजित राज्यके कमिश्नर हुये। किन्तु वह उत्तरपूर्वाञ्चलमें गवरनर जनरलके एजण्ट एवं कमिश्नर तथा कोच-विहार, रङ्गपुर, मणिपुर एवं कछारके कमिश्नर और श्रीहट्टके जज थे। सुतरां एक आदमीके हाथमें उतने कार्योंकी सुविधा न पड़नेसे समस्त पूर्व-भारत निम्न और श्रेष्ठ खण्डमें विभक्त हुवा। उक्त खण्डद्वयकी उत्तरसीमा भरली और दक्षिणसीमा धनशिरी नदी थी। सीनियर वा श्रेष्ठ खण्डके मिष्टर स्काट और जूनियर वा निम्नखण्डके करनल रिचार्डस कमिश्नर हुये। किन्तु प्रधान कर्तृत्व स्काट साहबको ही मिला था। गौहाटी आसामकी राजधानी हुयी।

१८२५ ई० के अक्तोबर मास करनल रिचार्डसके पीछे करनल कूपर कमिश्नर बने थे। श्रेष्ठविभागमें अकेले कार्य चला न सकनेसे स्काट साहबने कप्तान एडम ह्वाइटको सहकारीरूपमें ग्रहण किया। स्काटसे आसाम प्रदेशकी यथेष्ट उन्नति हुयी। १८३१ ई०को चीरापुञ्जीमें वह मर गये। उनके पीछे टि, सि, रवार्टसन प्रधान कमिश्नर हुये।

उत्तरखण्डमें पुरन्दर सिंह राजा माने गये थे। उन्होंने वार्षिक ५०००० रु० कर देना अङ्गीकार किया। विश्वनाथ नामक स्थानमें एक पोलिटिकल एजण्ट रखे गये। १८३२।३३ ई०को कामरूप प्रदेश दरङ्ग, कामरूप और नौगांव तीन जिलोंमें विभक्त हुवा। उसमें एक स्वतन्त्र कलक्टर और मजिष्ट्रेटकी क्षमताके साथ एक प्रधान सहकारी कमिश्नर (Chief Assistant Commissioner) रखा गया। राबर्टसनके पीछे १८३४ ई०को जेनकिन्स साहब कमिश्नर हुये। उन्होंने जिले और मौजेका सीमाविभाग ठीक किया था। १८३५ ई० को उक्त प्रदेश बोर्ड अफ् रेविन्यूके अधीन गया। १८२६ ई० को जयन्तीराजने कम्पनीसे सन्धि कर अधीनता मानी थी। किन्तु १८३५ ई०में राजाको मासिक ५००) रु० वृत्ति दे जयन्ती प्रदेश कम्पनीके अधिकारमें लाया गया। १८३८ ई० को पुरन्दर सिंह नियमित कर दे न सके थे। इसीसे उन्हें राजच्युत कर तत्प्रदेश शिवसागर और लक्ष्मीपुर दो जिलोंमें बांटा गया। चन्द्रकान्त सिंह गौहाटीमें ५००) रु० वृत्ति पाते थे। किन्तु उस साल ही उन्होंने परलोक गमन किया। पुरन्दर सिंहको भी वृत्ति दे जोड़हाटमें रखनेकी बात उठी थी। किन्तु गर्वित पुरन्दरने वृत्ति न ली। उसी स्थान पर शुकाफा-वंशके हाथसे आसामका छत्रदण्ड अपहृत हुवा और आसाम वा प्राचीन कामरूप राज्य प्रकृत प्रस्तावसे अंगरेजोंके अधिकारमें गया।

उसके कुछ दिन पीछे १८३९ ई०को एक कमिश्नरके हाथ शासन और विचारका भार रहनेसे कार्यमें सुशृङ्खला न देख पड़ी। इसीसे एक सहकारी नियुक्त हुवा। उक्त सहकारी नियुक्त होनेसे एक पदका नाम जुडिशल कमिश्नर और दूसरेका नाम डेपुटी कमिश्नर रखा गया।

१८६० ई० को इनकमटेक्स प्रचलित होनेसे फूलगुड़ीके लोग भड़क उठे थे। असिष्टण्ट कमिश्नर लेफटनण्ट सिंगर गड़बड़ मिटाने गये, किन्तु निहत हुये। अन्तमें बड़े कौशलसे गड़बड़ थमने पर दोषियोंको उचित शास्ति मिली।

१८६१ ई० को कमिश्नर जेनकिन्सने स्वपदसे अवसर लिया था। फिर उसी पद पर कप्तान हपकिन्सन नियुक्त हुये। १८६६ ई० को गौहाटीमें जेनकिन्स मर गये।

१८६२ ई०को खसिया और जयन्ती पर्वतमें भयानक विद्रोह उठा था। फिर १८६४ ई०में भूटानका युद्ध लगा। अंगरेज जीत गये। १८६५ ई० को सिञ्चोला नामक स्थानमें सन्धि हुयी। उक्त सन्धिके अनुसार भूटानके दक्षिण कई स्थान अंगरेजोंका मिले थे। गारो और नागावोंके कई सरदारोंने अधीनता स्वीकार की। उनमें सभ्यता फैलानेके लिये उक्त प्रदेश दो जिलोंमें बांटा गया। १८६६ ई०को गारो पर्वतमें तुरा और नागा पर्वतमें सामागुटिंग राजधानी हुवा। उसी वर्ष कोचविहार और ग्वालपाड़ा आसामवाले कमिश्नरके हाथसे निकाल स्वतन्त्र कर दिया। १८७१ ई० को लेफटेनण्ट गवरनर सर जर्ज कामवेल उक्त देश देखने पहुंचे थे। उन्होंने वहांके विचारालयों और विद्यालयोंमें आसामी भाषा व्यवहार करनेका आदेश दिया।

१८७८ ई०को करनेल हपकिनसनने अवसर लिया था। फिर आसाम देश बङ्गालके लेफटेनण्ट गवरनरके हाथसे निकल एक प्रधान कमिश्नरको मिला। करनल किटिंग प्रथम चीफ कमिश्नर हुये। चीफ कमिश्नर बनने पर शिलङ्ग नगर राजधानी हुवा और ग्वालपाड़ा तथा गारो पर्वत फिर आसाममें चला गया। उसके पीछे कछार और श्रीहट्ट बङ्गप्रदेशसे स्वतन्त्र हो चीफ कमिश्नरके अधीन हुवा।

उसी वर्ष असिष्टण्ट कमिश्नर लेफटेनण्ट हलकाम्बने नागापर्वतकी पैमायश शुरू की थी। नोंसगांवमें पहुंचने पर कई नागावोंने विश्वासघातकतापूर्वक शिविरमें घुस उन्हें मार डाला। हलकाम्ब प्रभृति १९७ आदमियोंमें उसी दिन ८० लोग मारे गये। ५१ लोग आहत हुये थे। कुछ दिन पीछे उन नागावोंको उपयुक्त शास्ति मिली। करनल किटिंगके पीछे सर ष्टुवर्ट बेली और उनके पीछे मिष्टर एलियट आसामके चीफ कमिश्नर हुये। सर एलियटके

अनन्तर श्रोयार्ड फिजपट्रिक एवं वेष्टलेण्ड और उनके बाद क्लिनटन साहब चीफ कमिश्नर बने थे। उनके मणिपुरमें मारे जाने पर श्रोयार्ड साहबको चीफ कमिश्नरका पद मिला।

१८३५ ई०को सर्वप्रथम कामरूप (आसाम)में अंगरेजी विद्यालय खुला था। १८१७ई०को कोचविहारके कमिश्नर राबर्टसनने विचारसंक्रान्त कई देशीय व्यवहारसिद्ध नियम लगा दिये। उक्त नियमोंको 'आसामकी कायदेबन्दी' कहते हैं। १८१८ ई० को आसाममें एक दल ईसाई मिशनरीने प्रवेश किया। उसने प्रथम जयपुर फिर शिवसागरमें गिरजा-घर बनाया था। १८४६ई०को ईसाइयोंने आसामी भाषामें "अरुणोदय" नामक एक मासिक पत्र निकाला। १८४३ई०को दासत्वप्रथा रोकनेको कानून बना था। उसी वर्ष आसामकी प्रसिद्ध "चाय" कम्पनी भी गठित हुई। १७९३ई०को आसाममें प्रथम अहिफेनकी खेती की गई थी। अन्तमें १८३०ई०को गवरनमेण्टकी ओरसे साधारणके लिये वह बन्द हुई।

कामरूपमें ब्राह्मणोंके मध्य सतलोत सर्व श्रेष्ठ है। यहां बङ्गालियोंकी कौलीन्यप्रथा नहीं चलती। मिथिलावासी ब्राह्मणोंकी संख्या अधिक है। दैवज्ञ यहां विशेष सम्मानके पात्र हैं।

ब्राह्मण कायस्थ अपने हाथसे हल नहीं चलाते। कायस्थोंमें भूयांओंके कुछ घर विशेष विख्यात हैं।

कलिता कृषिप्रधान लोग है। वह जात्यंशमें श्रेष्ठ होते भी हलवाहनके दोषसे पतित हैं।

केवट आदिम जाति हैं। वह भी कृषक होते हैं। केवट कैवर्तो (मत्स्यजीवियों)के अन्तर्गत हैं। उनको छोड़ कोच, मेच, लालुंग, नट, नापित, पटवा, कुंभार, कलवार, धोबी, डोम प्रभृति भी रहते हैं।

पहले हिन्दू धर्म पीछे बौद्धधर्म यहां प्रबल रहा। समग्र भारतमें बौद्ध प्रभाव नष्ट करते शङ्कराचार्यके संस्कारका प्रभाव कामरूप पर भी पड़ा था। देवेश्वर नामक शूद्र राजा ही उसका मूल थे। दूसरे प्रदेशोंकी भांति बौद्धधर्म शीघ्र कामरूपसे दूर न हुवा। ई० ११श शताब्द भी यहां उसका प्रावल्य रहा। आज भी हाजोके हयग्रीवकी मूर्तिको बहुतसे लोग बुद्धदेवका प्रतिमूर्ति मानते हैं। योगिनी-तन्त्रमें भी कामरूपवासी बुद्धमूर्तिकी कथा लिखी है। पीछे शङ्करदेव और माधवदेव नामक दो व्यक्तियोंने वैष्णवधर्म प्रचार किया।

बारह भूंयांओंसे चण्डीवर शिरोमणिके वंशमें कुसुम्बर शिरोमणि भूयांके एक पुत्र हुआ था। उसका नाम शङ्कर भूँया-शिरोमणि वा श्रीशङ्करदेव था। उन्होंने वयःप्राप्त हो नाना तीर्थादि दर्शन कर कन्दली नामक किसी व्यक्तिसे संस्कृत भाषा पढ़ी। संस्कृत सीख कर शङ्करदेवने भागवतसे "कीर्तन दशम" नामक पुस्तकका अनुवाद और सङ्कलन किया था। (शङ्करदेव देखो) शङ्कर वैष्णव हो स्वदेशमें वैष्णवधर्म फैलाने लगे। उन्होंने देशीय भाषामें नानाविध ग्रन्थ और सङ्गीत बना धर्मप्रचारकी सुविधा तथा भाषाकी श्रीवृद्धि की। उससे कामरूपमें पौराणिक इतिवृत्तके अभिनयादि (खेल) चल पड़े। बाण्डुका नामक स्थानवाले दौबलगिरिके पुत्र माधवशङ्करने शिष्य हो गुरुको वैष्णवधर्मके प्रचारमें यथेष्ट साहाय्य किया था।

अहोमलोग उन्होंके उपदेशसे वैष्णव हुये। किन्तु उससे पूर्व अहोमोंने वैष्णवधर्मके प्रचारसे विरक्त हो शङ्करदेवके जामाता हरिको अति सामान्य अपराध पर प्राणदण्ड दिया और माधवदेवको बांध लिया था। शङ्कर उसी सूत्रसे अहोमका अधिकार छोड़ पाटबाउसी नामक स्थानमें जा कर रहे और माधव किसी उपायसे बच उनके साथ मिल गये। शाक्तों और अनाचारियोंने कई बार राजा नरनारायणके पास उनके विरुद्ध अभियोग पहुंचाया, किन्तु कोई फल न पाया था। दिन दिन बहुतसे लोगोंने वैष्णवधर्म ग्रहण किया। उसके पीछे राजाकी आस्था आनेसे कोचविहारमें भी उक्त धर्म प्रचारित हुवा। १४९० शकको शङ्करदेवने स्वर्गलाभ किया। आज भी कामरूप अञ्चलमें वह चैतन्यदेवकी भांति अवतार माने और बखाने जाते हैं।

शङ्करदेवके पीछे माधवदेवने उनके धर्मको जगा रखा था। माधवदेव "महापुरुषगुरु" नामसे विख्यात

हैं। उनके मतमें पूजादि आवश्यक नहीं, एकमात्र हरिनामकीर्तनसे ही सकल कामनायें सिद्ध हो सकती हैं। इसीसे सर्वत्र सङ्कीर्तन करनेके लिये सत्र वा धर्माश्रय वर्तमान हैं। उन सत्रोंमें अधिकारी और महन्त रहते हैं। उक्त सकल सत्रोंमें माधवदेव प्रतिष्ठित बड़पेटाका सत्र ही प्रधान है। महन्त बङ्गालके गुरुव्यवसायी गोस्वामियोंकी भांति शिष्योंके प्रदत्त अर्थसे जीविका चलाते हैं। उस प्रकार अर्थ न देनेसे शिष्य समाजच्युत होते हैं। माधवके पीछे बहुतसे ब्राह्मणोंने वैष्णव बन धर्मप्रचार किया था। उन्होंने माधवके धर्मसे कुछ भिन्न भावमें वैष्णवधर्म चलाया, जिससे उनका "बामुनिया" और माधवका मत "महापुरुषीय" कहलाता है। महापुरुषीयोंमें भी एक "ठकुरिया" शाखा होती है। शङ्करके माधव आदि शिष्योंने अनेकानेक ग्रन्थ और सङ्गीतादिकी रचना की। वैष्णव पौराणिक क्रियाकलाप पर उतने आस्थावान् नहीं होते। वैष्णव व्यतीत कामरूपमें तान्त्रिक मत भी प्रचलित है। अरौतिया वा पूर्णसेवाके नामसे उक्त देशमें आजकल एक मत चल पड़ा है। उक्त सम्प्रदायी जातिभेद नहीं मानते। उनमें सकल जातीय लोग एकत्र मद्यमांसादि खाते पीते हैं। उक्त सम्प्रदायकी उपासनामें भक्तिमाता नाम्नी किसी स्त्रीका प्रयोजन पड़ता है। वह सबकी पूज्य होती है। पूर्णसेवाचारी अपने धर्मको पूर्णरूपमें शङ्करदेवके प्रचारित धर्मसे मिलता जुलता बताते हैं। किन्तु वह वामाचारी और वैष्णव मतके मिश्रणसे बना है।

कामरूपके मुसलमान सुन्नी मतावलम्बी हैं। देहाती मुसलमान विषहरी प्रभृति हिन्दू देवताओंकी पूजा करते हैं। हाजी नामक स्थानमें "पोवा मक्का" नामक एक मुसलमानोंका तीर्थस्थान है। बौद्धाचारी लोग अब कामरूपमें देख नहीं पड़ते। किन्तु जैनधर्मके माननेवाले लोग अब भी वर्तमान हैं। पलाशबाड़ी, डिब्रूगढ़ आदि स्थानोंमें इनकी संख्या काफी है। वहां जैनमन्दिर भी हैं। जैनगण प्राय व्यापार करते हैं। छोटे छोटे बहुतसे गांवोंमें भी उन लोगोंकी दुकाने हैं।

आज कल नाना धर्मोंके लोग आसाममें वर्तमान हैं। ब्राह्मणादि वर्णोंके मध्य कन्याकी कुमारीकालमें वर ढूंढ़ कर विवाह करनेका नियम है। अन्य जातियोंमें उक्त नियम नहीं मिलता। ब्राह्मणोंमें विधवाविवाह प्रचलित नहीं, अन्य जातियोंमें होता है। गन्धर्वविवाहकी भांति एकप्रकार विवाह शूद्रादिके मध्य चलता है। कोई प्राप्तवयस्का विधवा अपने मातापिता वा अभिभावककी सम्मतिसे स्वीय समाजमें किसी व्यक्तिके साथ आहारादि और सहवास कर सकती है। उक्त स्त्रीके गर्भसे उत्पन्न सन्तानादि विवाहिताके गर्भजात सन्तानोंकी भांति पितामाताके धनाधिकारी और समाजमें गण्य होते हैं। किसी किसी स्थलमें वैसे दम्पतीको सधवा धान्यदूर्वासे आशीर्वाद करती हैं। एक प्रकारके स्वयम्बरकी प्रथा भी देख पड़ती है। कोई पुरुष वा स्त्री इच्छानुसार किसी स्त्री वा पुरुषके घरमें स्वामीस्त्रीरूपसे रह सकती है। उक्त सकल व्यवहारसे समाजमें कोई दोष नहीं लगता। हिन्दूधर्मके मतसे जिनका विवाह हो जाता है, उनमें स्वामीको छोड़ पत्यन्तर ग्रहण करनेका मार्ग नहीं दिखाता। किन्तु उक्त अन्य प्रथाओंके अनुसार वैसा होता है। कामरूपके लोगोंके मतमें शरीरको शुद्धि करनेके लिये ही विवाह आवश्यक है। इसी कारण विवाहके सम्बन्धमें उनका वैसा दृढ़ नियम नहीं। किसी किसी स्थलमें विधवाका विवाह अस्थिकी शुद्धिके लिये किसी पुस्तक, शिलाखण्ड वा कदलीवृक्षसे किया जाता है। कहीं दूसरे किसी पुरुषके साथ वैसेही अस्थिशुद्धिका विवाह होता है। अन्तमें उसे कुछ दक्षिणा देकर विदा करते हैं। फिर स्त्री पुरुषान्तर ग्रहण करती है।

कामरूपवासियोंमें आगन्तुकको आसन देनेका नियम नहीं। सब लोग भ्रमण करते समय अपना अपना आसन, तामका रन्धनपात्र और घट साथ रखते हैं। वह लोग धर्मके अनुसार पशुपक्षी और मत्स्य आहार करते हैं। दूसरेका क्या ज्ञातिका अन्न भी ले लिया जाता है। किसी किसी स्थल पर ग्राममें एक ही स्त्री रहती है। फिर उसीके हाथका रन्धन

सब लोग खाते हैं। उत्सवादिमें उसीको भोजन बनाना पड़ता है। अन्य स्थल पर बोका और सुलायम दो प्रकारका चावल जलमें भिगा दधि, गुड़, कदली प्रभृति मिला साधारणतः निमन्त्रणादिमें खाया जाता है। पान खानेकी चाल बहुत है।

चैत्र, आश्विन और पौषकी संक्रान्ति कामरूपियोंके प्रधान उत्सवका दिन है। उक्त तीनों पर्वोंको बिहु कहते हैं। उक्त पर्वोंमें पिताको प्रणाम करते और आत्मीय कुटुम्बादिसे मिलते हैं। फिर महा आड़म्बरके साथ पानभोजनादि होता है। चैत्रकी संक्रान्तिको सात दिन किसी प्रकाश्य स्थल पर स्त्रीपुरुष मिल नाचते-गाते हैं। उक्त नृत्यगीतमें अश्राव्य अवाच्य अश्लील गीत और अङ्गभङ्गी प्रदर्शित की जाती है। दुर्गोत्सव, होलिका, जन्माष्टमी और शङ्कर-माधवके मृताहकी तिथिको साधारण पर्व मानते हैं।

कामरूप जिलेके दक्षिण प्रान्तमें किसी स्थान पर प्रस्तरनिर्मित एक गृह है। प्रवादानुसार चांद सौदागरने उसे अपने लक्ष्मीन्द्र पुत्रके रहनेके लिये लोहेसे बनाया था। यह बात बहुत लोगोंको मालूम है बेहुलाके कौशल और नेता धोपानीकी कृपासे लक्ष्मीन्द्र कैसे जी उठे थे। धुबड़ीके निकट "नेता धोपानीका घाट" नामक एक घाट अभी वर्तमान है। किन्तु आज कल उसकी भग्नावस्था है। चांद सौदागर एक विख्यात वणिक् थे।

तेजपुरके निकट दूसरे भी कई प्रस्तर-गृहोंके भग्नावशेष है। प्रवादानुसार वह वाणराजकी कन्या ऊषाके प्रासाद हैं। फिर नौगांवके चंपानला पर्वतपर कई प्रस्तर-प्रासादोंका भग्नावशेष है। कहते हैं वह महाभारतोक्त हंसध्वजके प्रासादका भग्नावशेष है। डीमापुरमें वैसे ही भग्नावशेष महाभारतोक्त हिड़िम्बा नन्दन घटोत्कचकी राजधानीका भग्नावशेष माने जाते हैं। ग्वालपाड़ेके ढ़वड़ाघाट परगनेमें "श्रीसूर्यपर्वत" नामका एक पहाड़ है। वहां एक गोलाकार बृहत् प्रस्तरखण्ड पर घड़ीके निशानकी तरह कई रेखा हैं। किसी किसीके अनुमानसे एक समय वहां मानमन्दिर रहा।

किसी समय कामरूप प्रदेश इन्द्रजालकी विद्याके लिये प्रसिद्ध था। अनेक स्त्रियां इन्द्रजाल सीखती थीं। किन्तु आज कल अंगरेजी सभ्यतामें कामरूपकी वह प्राचीन विद्या विलुप्त है।

प्राचीन कामरूप या वर्तमान आसामराज्यके अन्यान्य आतव्य विवरणोंके सम्बन्धमें Hunter's Statistical Account of Assam, 2 vols; Dalton's Ethnology of Bengal; M'cosh's Topography of Assam; Robinson's Assam; M. Martin's Eastern India, vol. III; Journal of the Asiatic Society of Bengal, vol. XLI., XLII, Gait's Assam प्रभृति पुस्तक देखो।

कामरूपत्व (सं० क्लो०) सिद्धिविशेष, एक करामत। जैनशास्त्रके अनुसार यह कामादिसे निरपेक्ष रहने, मन्त्रसिद्धि करने पर या किसी देवके प्रसन्न होने पर मिलता है। इससे साधक मनमाना रूप बना सकता है।

कामरूपधर (सं० त्रि०) कामं यथेच्छं रूपं धरति धारयति, काम-रूप-धृ-अच्। इच्छानुसार विविधरूप-धारक, मनमानी सूरत बना लेनेवाला।

कामरूपपति (सं० पु०) 'शारदातिलक' नामक तंत्रके टीकाकार।

कामरूपिणी (सं० स्त्री०) कामं मनोज्ञं रूपं अस्यस्याः, काम-रूप-इनि-ङीप्। १ अश्वगन्धा, असगंध। २ सुन्दरी, खूबसूरत औरत। ३ इच्छानुसार विविधरूप धारण करनेवाली, जो मनमानी सूरत बना लेती हो।

कामरूपी (सं० पु०) कामं कमनीयं रूपं अस्यास्ति, काम-रूप-इनि। १ विद्याधर। २ जाहक जन्तु, खेखर, एक जानवर। ३ शूकर, सूवर। (त्रि) ४ इच्छानुसार विविधरूपधारी, मनमानी सूरत बना लेनेवाला।

"सर्वमाशु विचेतव्यं हरिभिः कामरूपिभिः।" (रामायण)

कामरूपोद्भवा (सं० स्त्री०) कृष्णकस्तूरी, काला मुश्क।

कामरेखा (सं० स्त्री०) कामानां कामव्यापाराणां रेखा चिह्नं लक्ष्यं वा यत्र, बहुव्री०। वेश्या, रण्डी, छिनाल।

कामल (सं० पु०) कम्-णिच्-कलच्। १ रोगविशेष, कंवलवाई। कामला देखो। २ वसन्तकाल, मौसम-बहार। ३ मरुदेश, रेगस्तान। (त्रि०) ४ कामुक, चाहनेवाला।

कामलकीरक (सं० त्रि०) कामलकीरकस्य इदम् कामल-कीरक-अण्। प्रज्ञोत्तरपदपत्तयादिकोपधादण्। पा ४।४।११०।
कामलकीरक नामक कीटसम्बन्धीय, एक कीड़ेके मुताल्लिक।

कामलता (सं० स्त्री०) कामस्य लता इव, उपमित-समा०। उपस्थ, शिश्न। २ लताविशेष, एक बेल।

कामला (सं० स्त्री०) काकल-टाप्। रोगविशेष, कंवल बाई। (A form of Jaundice) पाण्डुरोग अचिकित्सित रहने या पाण्डुरोगमें पित्तकर वस्तु आहारादि करनेसे विकृतपित्त रोगीका रक्त मांस बिगाड़ कर कामला रोग उत्पादन करता है। फिर प्रथमसे भी कामला रोग हुवा करता है। इस रोगमें चक्षु, चर्म, नख और मुखदेश हरिद्रावर्ण देख पड़ता है। मलमूत्र रक्त वा पीतवर्ण लगता है। सर्वशरीर स्वर्णभेकवर्ण बन जाता है। इन्द्रिय शक्तिहीन रहते हैं। दाह, अजीर्ण, दुर्बलता, अवसन्नता और अरुचिका वेग बढ़ता है। यह दो प्रकारकी होती है—कोष्ठाश्रया और शाखाश्रया। आमाशयादि आभ्यन्तरिक कोष्ठ समूहमें उत्पन्न होनेसे कोष्ठकामला वा कुम्भकामला और हस्त-पादादि स्थानमें निकलनेसे शाखाकामला कहलाती है। कुम्भकामलामें वमन, अरुचि, उत्क्लेश, ज्वर, क्लान्ति, श्वास और कास उपजता और मलभेद होनेसे रोगी मरता है। फिर उभयविध कामलामें मल-मूत्र कृष्ण एवं पीतवर्ण लगने अथवा मल, मूत्र तथा वमनमें रक्त पड़ने, शरीर शोथविशिष्ट एवं अवसन्न रहने और दाह, अरुचि, पिपासा, आनाह, तन्द्रा, मोह, बुद्धिनाश प्रभृति पड़नेसे भी रोगी बहुत दिन तक नहीं जीता।

वैद्यशास्त्रके मतसे इस रोगमें त्रिफला, गुलचीन, दारुहरिद्रा वा निम्बका क्वाथ मधुके साथ पीना चाहिये। द्रोणपुष्पवृक्षके पत्रका रस आंखमें लगाते हैं। गुलचीनको पत्ता पीस कर तक्रके साथ खानेसे भी लाभ होता है। आमलकी, लौहचूर्ण, शुण्ठी, पिप्पली, मरिच तथा हरिद्राचूर्ण, घृत, मधु और शर्करा मिला चाटना चाहिये। कुम्भकामलामें भी उक्त सकल औषध उपयोगी हैं। गोमूत्रके साथ शिलाजतु सेवन करनेसे अधिक लाभ होता है। विभीतक काष्ठसे मण्डूर जला आठ बार गोमूत्रमें डालने और मधुके साथ उसका चूर्ण चाटनेसे कुम्भकामला अच्छी हो जाती है। (भावप्रकाश)

गरुड़पुराणके मतानुसार इस रोगके निवारणार्थ मरिच और तिलपुष्प एकत्र पीस आंखमें लगाते हैं। फिर दुग्धके साथ अपामार्ग और गोक्षुरमूल पीनेसे भी कामलादि रोग अच्छे हो जाते हैं। इस औषधसे मुखरोग भी नहीं रहते।

कामलाची (सं० स्त्री०) कामले अक्षिणी यस्याः, कामला-कप्रच् ङीष्। आकर्षणकारक देवीमूर्तिविशेष।

"अनामारक्तमिश्रे च कामलाचीमनुं जपेत्।" (तन्त्रसार)

कामलायन (सं० पु०) कमलस्य अपत्यं पुमान्, कमल-चञ्-फक्। कामलके पुत्र, एक मुनि। इनका नाम उपकोसल था।

कामलायनि, कामलायन देखो।

कामलाव्याधिहन्त्री (सं० स्त्री०) नागदन्ती, हाथीसूंड।

कामलि (सं० पु०) वैशम्पायनके एक शिष्य।

कामलिका (सं० स्त्री०) कङ्गुधान्य, एक धान।

कामली (सं० त्रि०) कामलो रोगविशेषो ऽस्यास्ति, कामल-इनि। १ कामलारोगपीड़ित, कंवल बाईकी बीमारीसे तकलीफ उठानेवाला। (पु०) कमलेन वैशम्पायनस्य अन्तेवासिविशेषेण प्रोक्तं अधीयते। कलापि वैशम्पायनान्तेवासिभ्यश्च। पा ४।३।१०४। वैशम्पायनके शिष्यका बनाया हुवा शास्त्र पढ़नेवाला।

कामली (हिं० स्त्री०) क्षुद्र कम्बल, कमरी।

कामलेखा (सं० स्त्री०) कामानां कामव्यापाराणां लेखा चिह्नं लक्षणं यत्र, बहुव्री०। वेश्या, रण्डी।

कामलोक (सं० पु०) लोकविशेष, एक दुनिया। बौद्ध-मतानुसार यह एकादश प्रकारका होता है,—याम्य, तुषित, नरक, निर्माणरति, तिर्यक्लोक, प्रेतलोक, असुरलोक, त्रयस्त्रिंश, चातुर्महाराजिक, परनिर्मित-वशवर्ती और मनुष्यलोक।

कामलोल (सं० त्रि०) कामेन कन्दर्पपीड़या लोलः चञ्चलः, ३-तत्। कामकी पीड़ासे आकुल, शहवतके जोरसे घबड़ाया हुवा।

कामवती (सं० स्त्री०) कामः कमनीयता अस्त्यस्याः,

काम-मतुप्-ङीप् मस्य वः। १ दारुहरिद्रा। कामः कन्दर्पभावः अस्त्यस्याः। २ मैथुनका अभिलाष रखने-वाली, जिस औरतको शहवत चढ़ी हो।

कामवर (सं० त्रि०) कामादपि सौन्दर्येण वरः श्रेष्ठः १ अतिसुन्दर, निहायत खूबसूरत। (पु०) २ यथेच्छ वर, मनमानी बख्शिश।

कामवल्लभ (सं० पु०) कामः कमनीयः अतएव वल्लभः प्रियः, कर्मधा०। यद्वा कामस्य कन्दर्पस्य वल्लभः, ६-तत्। १ आम्रवृक्ष, आमका पेड़। आम्रका मुकुल कन्दर्पको बहुत प्यारा है। इसीसे कन्दर्पकी पूजामें आम्रमुकुल अवश्य लगता है। २ वसन्त, बहार। ३ सारस पक्षी।

कामवल्लभा (सं० स्त्री०) कामस्य कन्दर्पस्य वल्लभा प्रिया। १ रति। २ ज्योत्स्ना, चांदनी।

कामवश (सं० त्रि०) कामस्य वशः वशीभूतः, ६-तत्। कामरिपुके वशीभूत, जो शहवतके तावेमें रहता हो।

कामवश्य (सं० त्रि०) कामस्य वश्यः वश्यतामापन्नः, काम-वश-यक्। कन्दर्पपीड़ाके वशीभूत, जो शहवतके तावेमें हो।

कामवाण (सं० पु०) कामस्य कन्दर्पस्य वाणः शरः, ६-तत्। कन्दर्पका वाण, कामदेवका तीर। कामदेव पुष्पके पांच वाण रखते हैं।

"अरविन्दमशोकञ्च शिरीषं चूतमुत्पलम्।
पञ्चैतानि प्रकीर्त्तन्ते पञ्चवाणस्य सायकाः॥"

पद्म, अशोक, शिरीष, आम्र और उत्पल पांचों पुष्प कन्दर्पके पञ्चवाण हैं।

पांच प्रकारके कर्मानुसार कन्दर्पवाण अन्य नामों-से भी अभिहित हैं,—

"सम्मोहनोन्मादनौ च शोषणस्तापनस्तथा।
स्तम्भनश्चे ति कामस्य पञ्चवाणाः प्रकीर्त्तिताः॥"

सम्मोहन, उन्मादन, शोषण, तापन, और स्तम्भन पांच कामवाणोंके नाम हैं।

कामवाद (सं० पु०) कामं यथेच्छं वादः। यथेच्छ-प्रवाद, मनमानी बात।

कामवान् (सं० पु०) कामः अस्यास्ति, काम-मतुप् मस्य वः। १ अभिलाषयुक्त, ख्वाहिशमन्द। २ मैथु-नेच्छायुत, शहवतकी ख्वाहिश रखनेवाला।

कामवासी (सं० त्रि०) कामं यथेच्छं वसति, काम-वस-णिनि। इच्छानुसार नानास्थानमें अस्थिरभावसे वास करनेवाला, जो ख्वाहिशके मुवाफ़िक़ रहता हो।

कामविद्ध (सं० त्रि०) कामवाणेन विद्धः, ३-तत्। कन्दर्पवाणविद्ध, मैथुनकी इच्छासे आकुल।

कामविहन्ता (सं० पु०) कामस्य कन्दर्पस्य विशेषेण हन्ता नाशयिता, काम-वि-हन्-तृच्। १ महादेव। (त्रि०) २ कामरिपु जयकारी, कामदेवको जीत लेने-वाला।

कामवीर्य (सं० त्रि०) कामं पर्याप्तं वीर्यं यस्य, बहुव्री०। १ अपरिमित वीर्यशाली, खूब ताक़त रखनेवाला। (क्ली०) कामस्य वीर्यम्, ६-तत्। २ कन्दर्पकी शक्ति, कामदेवका बल।

कामवृक्ष (सं० पु०) कामं यथेच्छं जातो वृक्षः, मध्य-पदलो०। वन्दाक, बांदा।

कामवृत्त (सं० त्रि०) कामं यथेच्छं निरङ्कुशं वृत्तमस्य, बहुव्री०। यथेच्छाचारी, मनमानी चाल चलनेवाला।

कामवृत्ति (सं० स्त्री०) कामेन स्वेच्छया वृत्तिः, ३-तत्। १ स्वेच्छाचार, मनमानी चाल। २ कामरिपुका कार्य, कामदेवका काम। (त्रि०) कामतो वृत्तिरस्य, बहुव्री०। ३ यथेच्छाचारयुक्त, मनमौजी।

कामवृद्धि (सं० पु०-स्त्री०) कामस्य वृद्धिर्यस्मात्, बहुव्री० १. कामजा नामक महाक्षुप, एक बड़ा झाड़। कर्णाटक देशमें इसे 'कामज' कहते हैं। कारण कामवृद्धि सेवन करनेसे बलवीर्य बढ़ता है। इसका संस्कृत पर्याय—स्मरवृद्धिसंज्ञ, मनोजवृद्धि, मदनायुः, कन्दर्पजीव, जितेन्द्रियाह्व, कामेकजीव और जीवसंज्ञ है। राजनिघण्टुके मतसे यह मधुररस और बल, रुचि, कामशक्ति तथा इन्द्रियकी शक्ति बढ़ानेवाली है। २ कामरिपुकी वृद्धि, कामदेवकी बढ़ती।

कामवृन्ता (सं० स्त्री०) कामं कमनीयं वृन्तं यस्याः, बहुव्री०। पाटलवृक्ष, एक पेड़।

कामशक्ति (सं० स्त्री०) कामस्य शक्तिर्नायिकाभेदः, ६-तत्। कामदेवकी एक पत्नी। राघवभट्टने इस कामशक्तिके पचास विभाग किये हैं,—१ रति, २ प्रीति, ३ कामिनी, ४ मोहिनी, ५ कमलप्रिया, ६ विलासिनी,

७ कल्पलता, ८ श्यामला, ९ शुचिस्मिता, १० विस्मितानी, ११ विशालाक्षी, १२ लेलिहाना, १३ दिगम्बरा, १४ वामा, १५ कुब्जा, १६ घरा, १७ नित्या, १८ कल्याणी, १९ मोहिनी, २० सुलोचना, २१ सुलावण्या, २२ विमर्दिनी, २३ कलहप्रिया, २४ एकाक्षी, २५ सुमुखी, २६ नलिनी, २७ जटिला, २८ पापिनी, २९ शिवा, ३० सुधा, ३१ रसा, ३२ भ्रमा, ३३ चारुलोला, ३४ चञ्चला, ३५ दीर्घजिह्वा, ३६ रतिप्रिया, ३७ लोलाक्षी, ३८ भृङ्गिणी, ३९ पाटला, ४० मादिनी, ४१ माला, ४२ हंसिनी, ४३ विश्वतोमुखी, ४४ नन्दिनी, ४५ रञ्जिनी, ४६ कान्ति, ४७ कलकण्ठी, ४८ कृकोदरा, ४९ मेघश्यामा, और ५० रूपोन्मत्ता।

ध्यानके मन्त्रमें कामशक्ति इस प्रकार वर्णित है,—

"शक्तयः कुङ्कुमनिभाः सर्वाभरणभूषिताः।
नीलोत्पलकरा ध्येया त्रिलोकाकर्षणक्षमाः॥"

कामकी शक्ति कुङ्कुमकी भांति वर्णशाली, सर्वाङ्गमें अलङ्कार पहने, हाथमें नीलोत्पल लिये और त्रिलोकको खींच सकनेवाली हैं।

कामशर (सं० पु०) १ कन्दर्पबाण, कामदेवका तीर। कामस्य कन्दर्पस्य शर इव कामोद्दीपकत्वात्। २ आम्रवृक्ष, आमका पेड़।

कामशास्त्र (सं० क्ली०) कामस्य स्वर्गादेः प्रतिपादकं शास्त्रम्, मध्यपदलो०। १ अभीष्टसम्पादक शास्त्र, मुराद पूरा करनेवाला इल्म।

"अर्थशास्त्रमिदं प्रोक्तं धर्मशास्त्रमिदं महत्।
कामशास्त्रमिदं प्रोक्तं व्यासेनामितबुद्धिना॥"
(महाभारत, आदि, १।४)

२ रतिशास्त्र। रतिशास्त्र देखो।

कामसंयोग (सं० पु०) अभिलषित विषयकी प्राप्ति, मुरादकी तहसील।

कामसख (सं० पु०) कामस्य सखा, काम-सखि-टच्। १ वसन्तकाल, मौसम बहार। २ आम्रवृक्ष, आमका पेड़।

कामसखा (हिं०) कामसख देखो।

कामसुत (सं० पु०) कामस्य सुतः पुत्रः, ६-तत्। कन्दर्पपुत्र, अनिरुद्ध।

कामसू (सं० त्रि०) कामं अभीष्टं सूते, काम-सू-क्विप्। १ अभीष्टप्रद, मुराद पूरी करनेवाला। (पु०) २ श्रीकृष्ण। (स्त्री०) कामं प्रद्युम्नं सूते। ३ रुक्मिणी।

कामसूत्र (सं० क्ली०) कामस्य तद्व्यापारस्य प्रतिपादकं सूत्रम् मध्यपदलो०। कामव्यापारबोधक एक शास्त्र। इसे वैशम्पायनने बनाया है।

कामसेन (सं० पु०) कामवतीके एक राजा। कामकन्दला देखो।

कामसेना (सं० स्त्री०) निषिपतिकी पत्नी। ह्रु

कामस्तुति (सं० स्त्री०) कामस्य स्तुतिः ६-तत्। प्रतिग्रहकी शान्तिके लिये कामदेवकी स्तुतिका एक मन्त्र। यह मन्त्र प्रतिग्रहीताको पढ़ना पड़ता है,—

"कोऽदात् कस्मा अदात् कामोऽदात् कामायादात् कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामैतत्ते।" (शुक्लयजुः ७।४८)

स्मृतिशास्त्रमें भी प्रतिग्रहको दोषशान्तिके लिये निम्नलिखित मन्त्र पढ़नेको कहा है,—

"प्रतिग्रहजदोषस्य शान्त्यै कामस्तुतिं पठेत्।"

कामहा (सं० पु०) कामं कंदर्पं हतवान्, काम-हन्-क्विप्। १ महादेव। २ विष्णु।

कामहेतुक (सं० त्रि०) कामः हेतुर्यस्य, कामहेतुकन्। १ केवल अभिलाषजात, सिर्फ ख्वाहिशसे पैदा। २ कामरिपुसे उत्पन्न, कामदेवसे निकला हुवा।

कामा (हिं० स्त्री०) सुन्दरी, खूबसूरत औरत।

कामा (अ० पु० Comma) १ विराम, ठहराव। २ विरामका एक चिह्न, ठहरनेका एक निशान। यह समान अर्थवाचक दो शब्दों या वाक्योंके बीच आता है। कामा चिह्नका रूप यह , है।

कामाङ्ग (सं० पु०) कुमारिकाभक्त चम्पकमुनिकुलजात शृङ्गार राजाके पुत्र। इनके पुत्रका नाम पारिजात था। (सह्याद्रिखण्ड १।३१।४५)

कामाक्षी (सं० स्त्री०) कामं रमणीयं अक्षि यस्याः, काम-अक्षि-षच्-ङीष्। १ देवमूर्तिविशेष, एक देवता। २ तन्त्रोक्त कोई बीज।

कामाख्या (सं० स्त्री०) कामयते भक्तानां कामं पूरयतीति कामा आख्या यस्याः। १ देवीविशेष, एक देवता। इनके इस नाम सम्बन्ध पर यों लिखा है,—

भगवानुवाच—

"कामार्थं आगता यस्मान्मया सार्धं महागिरौ।
कामाख्या प्रोच्यते देवी नीलकूटे रहोगता॥"

कामदा कामिनी कामा कान्ता कामाङ्गदायिनी।
कामाङ्गनाशिनी यस्मात् कामाख्या तेन चोच्यते॥"
(कालिकापुराण)

भगवान्‌ने कहा—महादेवी कामाख्या अभिलाष पूरण करनेके लिये हमारे साथ नीलकूट गयी थीं। इसीसे कामाख्या नाम प्राप्त हुआ। वह कामदा, कामिनी, कामा, कान्ता, कामाङ्गदायिनी और कामाङ्गनाशिनी होनेसे "कामाख्या" कहायी हैं।

२ पीठस्थान विशेष। कामाख्यादेवी ही इस स्थानकी अधिष्ठात्री-देवता हैं। कालिका-पुराणमें इस पीठस्थानके सम्बन्ध पर लिखा है,—"दक्षके यज्ञमें सतीने प्राण छोड़ा था। महादेव उनका मृतदेह स्कन्ध पर रख बहुत दिन पर्यन्त इतस्ततः घूमते रहे। क्रमशः उस देहसे स्थान स्थान पर अवयव विशेष गिरा था। इसीसे इन सकल स्थानों पर एक एक पवित्र पीठ बन गया। परिशेषको कुब्जिका नामक पीठस्थानमें देवीका योनिमण्डल गिरा। उस समय महामाया योगनिद्रा भी महादेवमें लीन थीं। उन्होंने फिर अति उच्च पर्वतका रूप धारण कर पातालमें प्रवेश किया। यह व्यापार देख ब्रह्माने पर्वतरूपसे उन्हें पकड़ा था। विष्णु भी पृथिवी आक्रमण कर उनके निकट उपस्थित हुये। उक्त पर्वतत्रय शत शत योजन उन्नत थे, किन्तु देवीके आक्रमणसे अधोगत हो एक कोस परिमित उच्च रह गये। उनमें पूर्व दिक्‌का पर्वत ब्रह्मशैल है। उसे 'श्वेत' कहते हैं। वह सर्वापेक्षा अधिक उच्च है। पश्चिम दिक्‌का पर्वत वाराह नामक विष्णुशैल है। फिर उभयके मध्यदेशस्थित त्रिकोण उदूखलाकृति शैलका नाम नील है। वही महादेवका रूपान्तर है। एतद्भिन्न ईशान-दिक्‌के दीप्तिशाली पर्वतरूपी कूर्मका नाम 'मणिकर्ण' है। वायुकोणस्थित पर्वत 'मणिपर्वत' कहलाता है। उक्त पर्वत श्रीकृष्णका अति प्रियस्थान है। नैर्ऋतकोणस्थ पर्वतका नाम 'गन्धमादन' है। वह महादेवका प्रियस्थान है। ब्रह्मशक्ति-शिलाका पूर्वभागस्थित पर्वत भी महादेवका रूपान्तर है। उसे 'भस्माचल' कहते हैं।

इसी प्रकार पवित्र नीलकूट पर्वतस्थ कुब्जिकापीठमें देवी महेश्वरीने महादेवके साथ अवस्थान किया। उनका योनिमण्डल ही गिर कर प्रस्तर बन गया था। वही कामाख्यादेवीके नामसे विख्यात हुआ। मनुष्य उक्त शिलाके स्पर्शसे देवत्व पाते और शेष ब्रह्मलोक जाते हैं। उक्त स्थानका माहात्म्य अति अद्भुत है। उसमें लोह डाल देनेसे उसी समय भस्म हो जाता है।

उक्त योनिमण्डल २१ अङ्गुलि दीर्घ और १ वितस्ति (बालिश्त) वि॰ृत है। फिर वह सिन्दूर और कुङ्कुमादिसे लेपित है। देवी महामाया वहां प्रत्यह पञ्चकामिनीमूर्तिसे अवस्थान करती हैं। पञ्चमूर्तिके नाम—कामाख्या, त्रिपुरा, कामेश्वरी, सारदा और महोत्साहा हैं। देवीकी चारो ओर अष्ट योगिनी रहती हैं। उनके नाम—गुप्तकामा, श्रीकामा, विन्ध्यवासिनी, कटीश्वरी, वनस्था, पाददुर्गा, दीर्घेश्वरी और प्रकटा हैं। अपरापर तीर्थ भी वहां जलरूपसे अवस्थित हैं। विष्णु उसके तीर कमल नामसे अवस्थान करते हैं। देवीके अङ्गमें लक्ष्मी ललिता नामसे और सरस्वती मातङ्गी नामसे अवस्थित हैं। देवीके प्रियपुत्र गणदेव पर्वतके पूर्वभागमें द्वारदेश पर सिद्ध नामसे रहते हैं। कल्पवृक्ष और कल्पलता, तिन्तिड़ी तथा अपराजिता रूपसे वहां अवस्थित हैं। वाराहमूर्ति हरि पाण्डुनाथ नामसे परिचित हो रहे हैं। उन्होंने जहां मधु और कैटभासुरको मार गिराया, वहां निकट ही ब्रह्माने ब्रह्मकुण्ड बनाया है। उक्त ब्रह्मकुण्डके निकट गया और वाराणसीक्षेत्र योनिमण्डलतुल्य कुण्डरूपसे अवस्थित है। उसीके पास इन्द्र एवं अन्यान्य देवने महादेवकी सन्तुष्टिके लिये अमृतपूर्ण अमृतकुण्ड स्थापित किया था। उसके निकट कामेश्वर नामक महापुण्यतीर्थ कामकुण्ड है। सिद्धकुण्ड और कामकुण्डके मध्यभागमें केदार नामक क्षेत्र है। वह दैर्घ्यमें १४ व्याम बैठता है। उसे छायाछत्र भी कहते हैं। गुप्तकुण्डके मध्यदेशमें कामेश्वर पर्वतसे संलग्न शैलपुत्रीका नाम 'कामाख्या' है। कामेश्वर और कामाख्याके मध्यदेशमें कालरात्रि हैं। पीठस्थानमें दीर्घेश्वरी, सीमाभागमें प्रचण्डिका और

कामाख्याप्रस्तरके प्रान्तदेशमें कुष्माण्डी नाम्नी योगिनी रहती हैं। दक्षिण पीठमें कामेश्वरके अघोर नामक शिखरको परमार्थी, भैरव नामसे अभिहित करते हैं। उन्हीं भैरवके निकट चामुण्डा भैरवीका अवस्थान है। कामेश्वर और भैरवके मध्यवर्ती स्थानमें सुरापगा देवी हैं। सद्योजात नामक शिखरदेशमें आम्रातकेश्वर हैं। उसी स्थानमें योगरूपिणी दुर्गा नाम्नी नायिका हैं। फिर उक्त स्थानका अपक्व पत्रविशिष्ट लतावेष्टित आम्रातक वृक्ष ही कल्पलतावेष्टित कल्पवृक्ष है। उसी आम्रातक वृक्षके निकट स्वयं गङ्गा सिद्धगङ्गा नामसे अवस्थित हैं। उनके समीप आम्रातकक्षेत्र नामक पुष्करक्षेत्र है। ईशान दिक् तत्पुरुष नामक शिखरके उपरिभागमें भुवनेश्वर देवका पीठ है। उसके निकट कामधेनु नामसे सुरभिकी शिलामूर्ति है। मध्यदेशमें कोटिलिङ्ग नामक महाभैरवकी मूर्ति है। वह पांच मूर्ति द्वारा पांच भागमें विभक्त है। ब्रह्मपर्वतके ऊर्ध्वदेशमें भुवनेश्वरीके नाम पर महागौरीकी शिलामूर्ति है। जहां ब्रह्मा पर्वतरूपसे पर्वतरूपी महादेवके साथ मिलित हुये, वहां अपराजिता नामकी कल्पलता अवस्थित है। कामधेनुके निकट अग्निकोणमें योनिरूपा कामाख्याका पीठ है। उसी स्थान पर विन्ध्यवासिनी नामसे चण्डघण्टा, वनवासिनी नामसे स्कन्दमाता और कात्यायनी नामसे पाददुर्गा योगिनीका अवस्थान है। उक्त सकल योगिनी नीलशैलकी नैऋत दिक् अवस्थित हैं। पश्चिम द्वार पर हनूमान्पीठमें पाषाणरूपी नन्दीका अवस्थान है। (कालिकापुराण ६१ अ०)

देवीगीतामें भी कामाख्या-पीठस्थान सर्वोत्कृष्ट माना और लिखा गया है—

देवी कामाख्या प्रतिमास इस स्थानमें रजस्वला होती हैं।

(योगिनीतन्त्र, २।६ पटल' और कामरूप शब्द द्रष्टव्य है।)

कामाख्याकी कुमारी-पूजा भगवतीपूजाका विशेष अङ्ग है। कामाख्यामें अनेक ब्राह्मण-कुमारीका पूजाग्रहण एक व्यवसाय स्वरूप है। पूजा हो या न हो, कामाख्यादर्शनके लिये पहुंचते ही कुमारी यात्रीको घेर कर पकड़ेंगी और दक्षिणा मांगने लगेंगी। न्यूनाधिक २०० कुमारी सर्वदा कामाख्यामें रहती हैं। अनेक समय वह यात्रियोंको दक्षिणाके लिये व्यतिव्यस्त कर डालती हैं।

कामाख्याके भीतर न्यूनाधिक ५२ तीर्थस्थान अद्यापि वर्तमान हैं। किन्तु दुःख है कि उनमें अनेक दुर्गम अरण्यसे समावृत हैं। उक्त समस्त तीर्थोंके मध्य भगवती भुवनेश्वरी और दश महाविद्याका पीठस्थान ही समधिक प्रसिद्ध है।

कामाख्याके पूजादि निर्वाहको अहोम-राजाओंने अनेक भृत्य (पायक) और निष्कर भूमिका दान किया है। पायक कार्य विशेष पर भगवतीकी सेवामें लगे रहते हैं। फिर अंगरेज गवरनमेण्टने भी पूर्व नियमसे भगवतीकी पूजाके लिये प्रबन्ध बांध दिया है। प्रायः सकल देवालयोंमें पायक निष्कर भूमि पाते हैं, जो कामाख्या, केदार और माधवमें सर्वापेक्षा अधिक है।

कामाग्नि (सं० पु०) कामः अग्निरिव, उपमितसमा०। १ कामरूप अग्नि, खाहिशकी आग। २ कामरिपुका यन्त्रणा।

कामाग्निसन्दीपन (सं० क्लो०) कामाग्नीनां सन्दीपनम्, ६-तत्। कामोद्दीपक रसविशेष, ताक़तकी एक दवा। यह एक प्रकार मोदक है। पारा २ तोला, गन्धक २ तोला, अभ्र २ तोला, यवक्षार, सर्जिक्षार, चित्रक, पञ्चलवण, शटी, यमानी, वनयमानी, कीटमारी तथा तालीशपत्र एकत्र ४ तोला, जीरा, तेजपत्र, दारचीनी, बड़ी इलायची, छोटी इलायची, लवङ्ग एवं जातीफल एकत्र ६ तोला, देवदार, शुण्ठी, मरिच तथा पिप्पली एकत्र ८ तोला, धन्याक, यष्टीमधु, एवं कसेरु प्रत्येक दो-दो तोला, शतावरी, भूमिकुष्माण्ड, गजपिप्पली, बला, हस्तिकर्णपलाश, गोक्षुरबीज, बीजपत्रयुक्त इन्द्रयव बराबर-बराबर और सबके समान चीनी, घी तथा मधु छोड़ इस औषधका पाक करते हैं। पाक उतरने पर २ तोला कापूर डाल देते हैं। मोदक देखो। यह औषध द्रव्यसे भी द्रव्य है। इसे सेवन करनेसे मनुष्य सहस्र प्रमदाको रिझा और बलसे प्रमत्त नागाधिपको हरा सकता है। (भैषज्यरत्नावली।)

कामाङ्कुश (सं० पु०) कामे कामोद्दीपने अङ्कुश इव। १ नख, नाखून। २ शिश्न, उपस्थ। (त्रि०) ३ कामशान्तिकारक, खाहिशको ठण्डा करनेवाला।

कामाङ्ग (सं० पु०) कामं कामोद्दीपकं अङ्गं मुकुलं यस्य, बहुव्री०। १ महाराजचूत, एक बड़ा आम। २ आम्रवृक्ष, आमका पेड़। ३ श्येनपक्षी, बाज चिड़िया।

कामाङ्गनायकरस (सं० पु०) वाजीकरणौषध विशेष, ताक़तकी एक दवा। शुद्ध पारेके बराबर गन्धक डाल रक्त उत्पलके द्रवसे एक प्रहर घोंटते हैं। फिर पहलेसे आधा गन्धक मिलाने पर यह तैयार होता है। मात्रा ढाई रत्ती है। समूल इन्द्रयव, मुषली तथा शर्करा बराबर कूट पीस चूर्ण बनाते और इस रसको आधे पल गोदुग्ध एवं उक्त चूर्णके साथ खाते हैं। इसके सेवनसे मदनोदय होता है। (रसरत्नाकर)

कामाची (सं० स्त्री०) लघुकाकमाची, छोटी कौवाटोंटी।

कामाता (सं० स्त्री०) १ बन्दा, बांदा। २ काकमाची, कौवाटोंटी।

कामातुर (सं० त्रि०) कामेन आतुरः, ३-तत्। कामपीड़ित, चाहका मारा हुवा।

कामात्मज (सं० पु०) कामस्य आत्मजः पुत्रः, ६-तत्। कन्दर्पके आत्मज, अनिरुद्ध।

कामात्मता (सं० स्त्री०) कामप्रधानः आत्मा यस्य तस्य भावः, कामात्मन्-तल्। १ अनुरागप्रधानचित्तता, जोशदार तबीयत। २ कामाकुलचित्तता, चाहकी मारी हुयी तबीयत।

कामात्मा (सं० पु०) कामप्रधानः आत्मा यस्य, बहुव्री०। १ अनुरागी, चाहनेवाला। कामवशीभूत, प्यारमें पड़ा हुवा। ३ काममय, चाहसे भरा हुआ। ४ फलाभिलाषी, नतीजेका खाहिशमन्द।

कामाधिकार (सं० पु०) कामस्य अधिकारः, ६-तत्। १ कामरिपुका अधिकार, खाहिशका दौरदौरा। २ मानवाभिलाष-सम्बन्धीय शास्त्रका एक भाग।

कामाधिष्ठान (सं० क्ली०) कामस्य अधिष्ठानं स्थानम्, ६-तत्। कामका स्थान अर्थात् मन, खाहिशके रहनेकी जगह यानी दिल।

कामाधिष्ठित (सं० त्रि०) कामेन अधिष्ठितम्, ३-तत्। १ कन्दर्प द्वारा अधिकृत, प्यारसे जीता हुआ। (क्ली०) भावे क्त। २ कामाधिष्ठान, खाहिश या प्यारकी जगह।

कामानल (सं० पु०) काम एव अनलः, काम अनल इव वा। १ कामरूप अग्नि, खाहिशकी आग। २ कामकी तीव्र यातना, प्यारका गहरा दर्द।

कामानशन (सं० क्ली०) कामं अनशनं यत्र, बहुव्री०। १ इच्छापूर्वक अनाहार तपस्या। २ रागद्वेषादिरहित इन्द्रियगण द्वारा विषयका त्याग।

कामानुज (सं० पु०) कामका अनुज, क्रोध, गुस्सा, खाहिशका छोटा भाई।

कामान्ध (सं० पु०) कामेन कामोद्दीपनेन अन्धयति प्राणशून्यं करोति काम-अन्ध-णिच्-अच्। १ कोकिल, कोयल। (त्रि०) कामेन अन्धः। २ कामके वेगसे हिताहितका ज्ञान न रखनेवाला, जो खाहिशके जोशमें भलाबुरा समझता न हो।

कामान्धा (सं० स्त्री०) कामं यथेष्टं अन्धयति, कामान्ध-टाप्। १ कस्तूरी, मुश्क। (कामेन अन्धा) २ कामके वेगसे हिताहितका ज्ञान न रखनेवाली स्त्री, जो औरत खाहिशके जोशमें अन्धी पड़ गयी हो।

कामाभी (सं० त्रि०) १ इच्छाभागी, खाहिशके मुताबिक खानेवाला। २ आहार लाभकर्ता, खाना पानेवाला।

कामाभिकाम (सं० त्रि०) कामस्य अभिकामो यस्य, बहुव्री०। कामभोगेच्छु, शहवतपरस्त।

कामायु (सं० पु०) कामं यथेष्टं आयुर्यस्य, बहुव्री०। १ गृध्र, गीध। २ गरुड़।

कामायुध (सं० पु०) कामस्य आयुधमिव। १ महाराजचूत वृक्ष, बड़े आमका एक पेड़। (क्ली०) २ शिश्न, उपस्थ।

कामारण्य (सं० क्ली०) कामं शोभनं अरण्यम्, कर्मधा०। मनोहर वन, खूबसूरत जङ्गल। २ कन्दर्पवन, कामदेवका बाग़।

कामरथी (हिं०) कामार्थी देखो।

कामारि (सं० पु०) कामस्य अरिः शत्रुः, ६-तत्।

१ महादेव। २ विड्माक्षीक धातु, किसी किस्मका चकमक पत्थर।

कामार्त (सं० त्रि०) कामेन ऋतः पीड़ितः, ३-तत्। कामपीड़ित, शहवतका मारा हुवा।

कामार्थी (सं० त्रि०) कामं अर्थयति प्रार्थयते, काम-अर्थ-णिच्-णिनि। कामप्रार्थी, शहवत चाहनेवाला। २ अभीष्टप्रार्थी, मुरादमांगनेवाला।

कामालिका (सं० स्त्री०) कामं अलति भूषयति, काम-अल्-ण्वुल्-टाप् अत इत्वम्। मद्य, शराब।

कामालु (सं० पु०) कामं यथेष्टं अलति पुष्पविकाशेन पर्याप्नोति, काम-अल्-उण्। रक्तकाञ्चन, लाल-कचनार। (त्रि०) २ अत्यन्त कामुक, जो शहवतके लिये बड़ी खाहिश रखता हो।

कामावचर (सं० त्रि०) कामं यथेच्छं अवचरति, काम-अव-चर-अच्। १ स्वेच्छाचारी, मनमौजी। (पु०) २ बौद्धोंके एक देव।

कामावतार (सं० पु०) कामस्य अवतारः, ६-तत्। १ कामके अवतार, प्रद्युम्न। श्रीकृष्णके औरस और रुक्मिणीके गर्भसे इन्होंने जन्म लिया था। २ एक छन्द। इसमें छह छह मात्राके चार पाद होते हैं।

कामावशायिता (सं० स्त्री०) कामेन स्वेच्छया अवशाययति, स्वचित्ते पदार्थान् निश्चिनोति तस्य भावः, काम-अव-शी-णिच्-णिनि-तल्। सत्यसङ्कल्पता, खाहिशका सुधार।

कामावसाय (सं० पु०) कामेन स्वेच्छया अवसायः स्वचित्ते पदार्थानां स्थिरीकरणम्। इच्छानुसार अपने चित्तमें पदार्थसमूहका स्थिरीकरण, खाहिशका दवाव या सुधार।

कामावसायिता (सं० स्त्री०) कामावसायिनः सत्य-सङ्कल्पकारिणो भावः, कामावसायिन्-तल्। १ सत्य-सङ्कल्पता, खाहिशका दवाव। अणिमादि आठमें यह भी योगीका एक ऐश्वर्य है,—

"अणिमा लघिमा व्याप्तिः प्राकाम्यं गरिमा तथा।
ईशित्वञ्च वशित्वञ्च तथा कामावसायिता॥"

कामावसायित्व (सं० क्ली०) कामावसायिनो भावः, कामावसायिन्-त्व। सत्यसङ्कल्पता, खाहिशका दबाव।

कामावसायी (सं० त्रि०) कामान् स्वेच्छया अवसाययितुं शीलमस्य, काम-अव-सो-णिच्-णिनि। सत्यसङ्कल्प, खाहिशको दबानेवाला।

कामाशन (सं० क्ली०) कामं यथेच्छं पर्याप्तं वा अशनं भोजनम्, कर्मधा०। १ इच्छानुसार भोजन, मनमांगा खाना। २ पर्याप्त भोजन, काफी खुराक।

कामाश्रम (सं० पु०) कामः रमणीयः आश्रमः, कर्मधा०। रमणीय आश्रम, अच्छा ठिकाना या मुकाम।

कामाश्रमपद (सं० क्ली०) कामं मनोज्ञं आश्रमपदम्, कर्मधा०। रमणीय आश्रमस्थान, अच्छी जगह।

कामासक्त (सं० त्रि०) कामेन आसक्तः, ३-तत्। १ कामरिपुके वशीभूत, शहवतका ताबेदार। २ अभिलाषमात्रके वशीभूत, खाहिशका ताबेदार।

कामासक्ति (सं० स्त्री०) कामे आसक्तिर्लिप्सा, ७-तत्। कामरिपुके कार्यमात्रको इच्छा, शहवतकी खाहिश।

कामासन (सं० क्ली०) काममस्यति क्षिपति अनेन, काम-अस्-ल्युट्। आसनविशेष, एक बैठक। गरुड़ासन कर कनिष्ठाङ्गुलि भूमिमें लगानेसे यह आसन बन जाता है।

"अथ कामासनं वच्मि काममर्दनहेतुना।
गरुड़ासनमाकृत्य कनिष्ठायं स्पृशेद्भुवि॥" (रुद्रयामल)

कामाम्र (सं० पु०) राजाम्र, बड़ा आम।

कामि (सं० पु०) कामयते, कम-णिङ्-इण्। १ कामुक, शहवती। (स्त्री०) २ कन्दर्पपत्नी, रति।

कामिक (सं० पु०) काम अस्यास्ति, काम-ठन्। १ कारण्डव पक्षी, एक दरयायी चिड़िया। (कामाधिकारेण कृतो ग्रन्थः।) २ हेमाद्रि-प्रणीत एक ग्रन्थ। (त्रि०) ३ अभिलषित, चाहा हुवा। ४ अभिलाषप्राप्त, मुराद पाये हुवा।

कामिका (सं० स्त्री०) १ तकारका एक पौराणिक नाम। २ श्रावण कृष्णा एकादशी, सावन बदी ग्यारस।

कामिकी (सं० स्त्री०) कामिक-ङीप्। १ कारण्डव-पक्षिणी, एक दरयायी चिड़िया। २ कामनाका कार्यादि, खाहिशका काम।

"तत दृष्टि प्रकारमिं सस्य वै युवकामिकीम्।" (महाभारत, अनुशासन)

कामित (सं० त्रि०) कम-णिच्-क्त। १ अभिलषित, चाहा हुआ। २ प्रार्थित, मांगा हुआ। (क्लो०) ३ अभिलाष, ख्वाहिश।

कामिता (सं० स्त्री०) कामोऽस्त्यस्य तस्य भावः, काम-इनि-तल्-टाप्। १ कामुकता, मस्ती। २ अभिलाष, ख्वाहिश।

कामिनियां (हिं० स्त्री०) १ स्त्री, औरत। २ वृक्षविशेष, एक पेड़। यह सुमात्रा यव प्रभृति द्वीपमें उत्पन्न होती है। कामिनियां बहुत नहीं बढ़ती। इसको रालसे लोबान बनाते हैं।

कामिनी (सं० स्त्री०) कामः अतिशयेन 'अस्त्यस्या', काम-इनि-ङीप्। १ अतिशय कामयुक्ता स्त्री। २ स्त्रीमात्र, कोई औरत। ३ सुन्दरी, खूबसूरत औरत। ४ भीरु स्त्री, डरपोक औरत। ५ वन्दाक, बांदा। ६ दारुहरिद्रा। ७ मद्य, शराब। ८ कामदेवकी एक शक्ति। ९ एक रागिणी। १० वृक्षविशेष, एक पेड़। इसके काष्ठसे सुन्दर सुन्दर वस्तु बनते हैं। कामिनी पर नक्काशी अच्छी आती है।

कामिनीकान्त (सं० पु०) एक छन्द। इसमें छह छह मात्राके चार पाद होते हैं।

कामिनीदर्पघ्न (सं० पु०) ध्वजभङ्गका रसविशेष, नामर्दीकी एक दवा। पारद १ तोला और गन्धक १ तोला जला धुस्तूरबीजका चूर्ण १ तोला मिलाते तथा धुस्तूरतैलसे सबको घोंट डालते हैं। इस औषधके सेवनसे ध्वजभङ्ग (नामर्दी) मिट जाता है। (भैषज्यरत्नावली)

कामिनीपुष्प (सं० पु०) वृक्षविशेष, एक पेड़।

कामिनीप्रिया (सं० स्त्री०) मद्यसामान्य, मामूली शराब।

कामिनीमोहन (सं० पु०) एक छन्द। इसका अपर नाम स्त्रग्विणी है।

कामिनीश (सं० पु०) कामिन्याः कामिनीप्रियाञ्जनस्य ईशः साधकः। शोभाञ्जनवृक्ष, सजना।

कामिल (अ० वि०) १ पूर्ण, समूचा। २ योग्य, लायक।

कामी (सं० पु०) अतिशयेन कामयते, कम-णिङ्-णिनि। १ चक्रवाक, चकवा। २ कपोत, कबूतर। ३ चिड़ा। ४ चन्द्र, चांद। ५ ऋषभ नामक एक औषधि। ६ सारस पक्षी। ७ विष्णु।

"कामदेवः कामपालः कामी कान्तः क्रतागमः।" (महाभारत १३।१४९)

८ कामुक, प्यार करनेवाला। (त्रि०) ९ अभिलाषी, ख्वाहिश करनेवाला। १० प्रेमी, मुश्ताक।

कामी (हिं० स्त्री०) १ कमानी। २ कांसेकी ढली हुयी छड़। इससे सुठिया बनती है।

कामीकजीव (सं० पु०) कामजवृक्ष, एक पेड़।

कामीन (सं० पु०) कामं अनुगच्छति पृषोदरादित्वात् साधु; काम-ख। १ रामपूग, रामसुपारी। २ कामदेवका अनुगत। ३ कामुक, आशिक।

कामील, कामीन देखो।

कामुक (सं० त्रि०) कामयते कम-उकञ्। लषपतपदस्थाभूवृषहनकमगमशृभ्य उकञ्। पा ३।२।१५४। १ कामी, मुश्ताक। इसका संस्कृत पर्याय—कमिता, अनुक, कम्र, कामयिता, अभीक, कमन, कामन और अभिक है। २ अभिलाषी, ख्वाहिशमन्द। (पु०) ३ अशोकवृक्ष। ४ पुन्नागवृक्ष। ५ माधवीलता। ६ चटक। ७ चक्रवाक, चकवा। ८ कपोत, कबूतर।

कामुककान्ता (सं० स्त्री०) कामुकानां कान्ता प्रिया, ६-तत्। अतिमुक्तलता, माधवीलता।

कामुकता (सं० स्त्री०) कामुकस्य भावः, कामुक-तल्। अत्यन्त कामयुक्तका कार्यादि, आशिकी।

कामुकत्व (सं० क्लो०) कामुक-त्व। कामुकता देखो।

कामुका (सं० स्त्री०) कम-उकञ् टाप्। १ इच्छावती, ख्वाहिश रखनेवाली। २ भोगाभिलाषविशिष्टा, आरामकी ख्वाहिश रखनेवाली। ३ रमणेच्छायुक्ता, शहवतकी ख्वाहिश रखनेवाली। ४ रक्तमञ्जरी, अतिमुक्तकलता। ५ बक, बगला। ६ एक मातृकादोष। यह रोग बालकको जन्मके पीछे बारहवें दिन, मास वा वर्ष उठ खड़ा होता है। इसमें ज्वर चढ़नेसे रोगी हंसता, वस्त्रादि फेंकने लगता और वृथा बकवाद करता है। फिर श्वासप्रश्वासका वेग भी बढ़ जाता है।

कामुकायन (सं० पु०) कामुकस्य अपत्यं पुमान्, कामुक-फक्। नडादिभ्यः फक्। पा ४।१।९९। कामुकके पुत्र।

कामुकी (सं॰ स्त्री॰) कामुक-ङीष्। आगमपदकृष्णगोषे ति। पा ४।१।४२। सुषवल्ली, छिनाल। कामुका देखो।

कामुद्रा (सं॰ स्त्री॰) मुद्गपर्णी, मोट।

कामिष्णु (सं॰ त्रि॰) अभिलाषके पूरणार्थ उद्योग करनेवाला, जो ख्वाहिश पूरी करनेमें लगा हो।

कामेश्वर (सं॰ पु॰) कामानां ईश्वरः, ६-तत्। १ परमेश्वर। २ कुवेर।

कामेश्वरमोदक (सं॰ पु॰) औषधविशेष, एक दवा। आमलकी, सैन्धव, कुष्ठ, कट्फल, पिप्पली, शुण्ठी, यमानी, वनयमानी, यष्टिमधु, जीरक, धान्यक, कृष्ण-जीरक, शठी, कर्कटशृङ्गी, वचा, नागेश्वर, तालीश, एला, तालीशपत्र, गुड़त्वक्, मरिच, हरीतकी तथा विभीतकका चूर्ण समभाग और सवीज भूनी छुयी भांगका चूर्ण सबके बराबर डालते हैं। फिर उक्त सर्वचूर्णके समान चीनी छोड़ पाकयोग्य जलमें चाशनी बनाना चाहिये। पाक शेष होने पर किञ्चित् घृत एवं मधु और सुगन्धके लिये भूना तिल तथा कर्पूर पड़ता है। मोदक आध तोलेका बांधते हैं। इस औषधके सेवनसे संग्रहणी रोग शीघ्र आरोग्य होता है। (रसरत्नाकर)

वाजीकरण (ताक़त बढ़ाने) का कामेश्वर मोदक इस प्रकार बनता है,—कुष्ठ, गुड़ूची, मेथी, मोचरस, विदारी, मुषली, गोक्षुरवीज, इक्षुर, शतावरी, कशेरुक, यमानी, तालाङ्कुर, धान्यक, यष्टिमधु, नागबाला, तिला, मधुरिका, जातीफल, सैन्धव, भार्गी, कर्कटशृङ्गी, शुण्ठी, मरिच, पिप्पली, जीरक, कृष्णजीरक, चित्रक, गुड़त्वक्, तालीशपत्र, एला, नागकेशर, पुनर्नवा, गजपिप्पली, द्राक्षा, कट्फल, शुण्ठी, शाल्मली, त्रिफला और कपिभवका चूर्ण समभाग, सर्वचूर्णका चतुर्थांश अभ्र, और अभ्रसे आधा गन्धक पड़ता है। फिर इस चूर्णसमष्टिसे आधी भांग और सबसे दूनी चीनी डाल यह मोदक बनाया जाता है। मोदककी मात्रा १ तोला है। इसके सेवनसे बलवीर्य बढ़ता है। (भैषज्यरत्नावली)

कामेश्वररस (सं॰ पु॰) औषधविशेष, एक दवा। पारा १ पल, गन्धक १ पल, हरीतकी तथा चित्रक १ पल, मुस्तक डेढ़ पल, एला डेढ़ पल, पत्रक डेढ़ पल, त्रिकटु १ पल, पिप्पलीमूल १ पल, विष १ पल, नागकेसर १ कर्ष, एरण्ड १ पल और सबके बराबर गुड़ डाल धुस्तूररस या घीसे एक प्रहर घोंटने पर यह रस तैयार होता है। गोली बेरकी गुठलीके बराबर बनती है। रातको इसे सेवन करनेसे पाण्डु और शोथरोग आरोग्य होता है। (रसेन्द्रसारसंग्रह)

कामेश्वरी (सं॰ स्त्री॰) कामानां भोग्यविषयाणां प्रदायित्वेन ईश्वरी, ६-तत्। १ कोई भैरवी। २ कामाख्याकी पांच मूर्तिमें एक मूर्ति।

"कामाख्या त्रिपुरा चैव तथा कामेश्वरी शिवा।
शारदाथ महोत्साहा कामरूपगुणैर्युता॥" (कालिकापुराण ६१ अ॰)

कालिकापुराणमें कामेश्वरी मूर्तिको वर्णना इस प्रकार है,—कृष्णवर्ण, सुस्निग्ध कृष्णकेश, षण्मुख, द्वादश हस्त, अष्टादश चक्षु, प्रत्येक मस्तकमें अर्ध-चन्द्र, वक्षोदेशपर मणिमुक्तादि-निर्मित माला और दक्षिण-हस्त समूहमें पुस्तक, सिद्धसूत्र, पञ्चबाण, खड्ग, शक्ति तथा शूल है। वाम-हस्तसमूहमें अक्षमाला, महापद्म, कोदण्ड, अभय, चर्म और पिनाक है। ईशान, पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर और मध्य छहो ओर षण्मुख अवस्थित हैं। सकल मुख यथाक्रम शुक्ल, रक्त, पीत, हरित, कृष्ण और विचित्र वर्णविशिष्ट हैं। यह मुख पृथक् पृथक् देवीके मुख कहे गये हैं। शुक्ल माहेश्वरीका, रक्त कामाख्याका, पीत त्रिपुराका, हरित शारदाका, कृष्ण कामेश्वरीका और विचित्र मुख चण्डी देवीका है। प्रति मस्तक पर केश संयत हैं। परिधान विचित्रवस्त्र अथवा व्याघ्रचर्म है। सिंह पर श्वेत शव, श्वेतशव पर रक्तपद्म और रक्तपद्म पर देवी बैठी हैं। धर्म, अर्थ और कामसिद्धिके लिये इसी प्रकार कामे-श्वरी मूर्तिका ध्यान करना चाहिये।" (कालिकापुराण ६३ अ॰)

कामेष्ट (सं॰ पु॰) राजाम्रवृक्ष, एक बड़े आमका पेड़।

कामोद (सं॰ पु॰) एक रागिणी। बेलावली और गौड़के संयोगसे यह बनता है। ध नि स ऋ ग म प स्वरग्राम है। धैवत इसका वादी और पञ्चम संवादी है। करुण और हास्य रसके समय यह गाया जाता है। रात्रिका प्रथम अर्धप्रहर इसके गानेका समय है। यह

कई प्रकारका होता है, जैसे—सामन्त-कामोद, कल्याण-कामोद और तिलक-कामोद। कोई कोई इसे मालकोसका पुत्र भी मानते हैं।

कामोदक (सं० क्लो०) कामेन स्वेच्छया दत्तं उदकम्, मध्यपदलो०। मृतव्यक्तिके लिये इच्छानुसार दिया जानेवाला जल। चूड़ाकरणके पीछे मरनेवालोंको ही उदकक्रिया होती है। जो चूड़ाकरण होनेसे पहले मर जाते हैं, वह कभी जल नहीं पाते। किन्तु उनके लिये कामोदक छोड़ दिया जाता है। (लौगाचि)

कामोदकल्याण (सं० पु०) कामोद और कल्याणके संयोगसे बनी एक रागिणी। इसमें शुद्ध स्वर ही लगते हैं।

कामोदतिलक (सं० पु०) एक रागिणी। यह कामोद और तिलकके संयोगसे बनता है। धैवत स्वर इसमें नहीं लगता।

कामोदनट (सं० पु०) एक रागिणी। यह कामोद और नटके संयोगसे बनता है। कोई कोई इसे नट-नारायणका पुत्र बताते और दिनके दूसरे प्रहर भी गाते हैं।

कामोदसामन्त (सं० पु०) एक रागिणी। यह कामोद और सामन्त मिलनेसे बनता है। इसमें धैवत नहीं लगाते और रातके तीसरे प्रहर गाते हैं।

कामोदा (सं० स्त्री०) कुत्सितो मोदो यस्याः, बहुव्री०। एक रागिणी। यह कामोदकी स्त्री है। रात्रिके द्वितीय प्रहरकी द्वितीय घटिका इसके गानेका समय है। यह सुघराई और सोरठ मिलनेसे बनती है। इसका स्वरग्राम—स ऋ ग म प ध है।

कामोदी, कामोदा देखो।

कामोद्दीपक (सं० त्रि०) कामदेवको भड़कानेवाला, जो शहवतको बढ़ाता हो।

कामोद्दीपन (सं० क्लो०) कामदेवका उभार, शह-वतका जोश।

कामोपजीव (सं० पु०) कामवृद्धि नामक महाक्षुप, एक भाड़।

कामोपहत (सं० त्रि०) कन्दर्पके बाणोंसे व्याकुल, शहवतका मारा हुवा, जो मुहब्बतमें फंसा हो।

कामोपहतचित्ताङ्ग (सं० त्रि०) कामातुर, शहवती।

काम्पिल (सं० पु०) कम्पिलः नदीविशेषः तस्य अदूरे भवः, कम्पिल-अण्। काम्पिल्य नामक एक देश। हरिवंशके वर्णनानुसार यह देश पञ्चालका दक्षिणांश है।

काम्पिला (सं० स्त्री०) काम्पिल्य देशकी राजधानी।

काम्पिल्य (सं० पु०) काम्पिले जातः, कम्पिल-ष्यञ्। १ गुण्डारोचनी नामक सुगन्धद्रव्य, एक खुशबूदार चीज़। हिन्दीमें इसे कबीला या कमीला कहते हैं। यह रेचक, कटु, उष्ण वीर्य और कफ, पित्त, रक्तदोष, क्रमि, गुल्म, उदर, व्रण, प्रमेह, अनाह, विष तथा अश्मरी-रोगनाशक है। (भावप्रकाश) (कम्पिलाया अदूरे भवः, कम्पिला-ष्य) २ जनपद विशेष, एक मुल्क। वर्तमान नाम कम्पिल है।

"माकन्दीमथ गङ्गायास्तीरे जनपदायुताम्।
सोऽध्यवात्सीद्दीनमनाः काम्पिल्यञ्च पुरोत्तमम्॥" (महाभारत १।१३८)

काम्पिल्यक (सं० त्रि०) काम्पिल्ये जातः, काम्पिल्य-वुञ्। १ काम्पिल्यदेशजात, कम्पिल मुल्कका पैदा। (पु०) २ गुण्डारोचनी, कमीला।

काम्पिल्ल (सं० पु०) काम्पिल-अरम् निपातनात् साधुः। गुण्डारोचनी, कमीला। इसका संस्कृत पर्याय—कम्पिल्ल, कम्पील, कम्पिल और काम्पिल्य है।

काम्पिल्लक (सं० क्लो०) काम्पिल्ल-स्वार्थे-कन्। १ गुण्डा-रोचनिका, कमीला। २ काकमाची, कौवाटोंटी।

काम्पिल्लिका (सं० स्त्री०) काम्पिल्लक-टाप्। गुण्डा-रोचनिका, कमीला।

काम्पील (सं० पु०) काम्पिल-अण् निपातनात् साधुः। १ गुण्डारोचनिका, कमीला। २ काम्पिल्य नगर, एक शहर। ३ पलाशवृक्ष, ढाकका पेड़।

काम्पीलक (सं० पु०) काम्पील स्वार्थे कन्। काम्पील देखो।

काम्पीलवासी (सं० पु०) काम्पीले काम्पिल्यदेशे वासी-ऽस्यास्ति, काम्पीलवास-इनि। काम्पिल्यदेशवासी।

काम्बल (सं० पु०) कम्बलेन आवृतः, कम्बल-अण्। १ कम्बल द्वारा आवृत रथ, ऊनी कपड़ेसे लिपटी हुयी गाड़ी। (त्रि०) २ कम्बलसे आवृत, ऊनी कपड़ेसे घिरा हुवा।

काम्बलिक (सं० पु०) वैद्यशास्त्रोक्त यूषविशेष, किसी

किसका करायल। दहीको चांछ और खटाईसे मूग वगैरहका जो करायल बनाया जाता, वही 'काम्बलिक' कहलाता है। यह विशेष रुचिकारक होता है।

"दधिमस्त्वम्ल सिद्धस्तुयूषः काम्बलिकः स्मृतः।" (सुश्रुत)

काम्बविक (सं० पु०) काम्बुः शङ्ख भूषणत्वेन शिल्पमस्य, कम्बु-ठक्। शङ्खकार, कौड़ीके बने जेवर बेचनेवाला।

काम्बुका (सं० स्त्री०) कुत्सितं अम्बु यस्याः, कु-अम्बु कप्-टाप् कोः कादेशः। अश्वगन्धा, असगन्ध।

काम्बे—१ गुजरातके पश्चिमभागका एक देशी राज्य। यह अक्षा० २२° ९´ एवं २२° ४१´ उ० और देशा० ७२° २०´ तथा ७३° ५´ पू०के मध्य अवस्थित है। इसके पूर्व बड़ोदा राज्यका बड़साद एवं पितलाद प्रदेश, दक्षिण काम्बे उपसागर और पश्चिम साबरमती नदीके आगे ही अहमदाबादकी सीमा है। काम्बेकी सीमाके मध्य अंगरेज और बड़ोदावाले गाइकी वाड़के अधिकृत कई ग्राम हैं। इस प्रदेशकी पूर्वदिक् मही और पश्चिम दिक् साबरमती नदी बहती है। दोनों नदीयोंमें ज्वारभाटा आनेसे पानी कुछ खारा रहता है। काम्बेकी जमीन् भी लोनी है। नूतन कूप खोदनेसे अल्प दिनमें ही पानी खारा हो जाता है। उस जलको सावधानसे व्यवहार करना पड़ता, नहीं तो नासूर निकलता है। काम्बेकी भूमि समतल है। बीच बीचमें आम, इमली, नीम, वट प्रभृति वृक्षोंको श्रेणी देख पड़ती है। भूमिका परिमाण ३५० वर्गमील है। देशमें गुजराती और हिन्दी भाषा चलती है। हिन्दोमें इसे खम्भात् कहते हैं। कारण स्तम्भतीर्थ नामक महादेवका एक स्थान है। उसीसे खम्भात् नाम बना है।

लोगोंके कथनानुसार ई० ७वें शताब्दके शेषभागमें पारस्य देशसे पारसिक लोग कुछ जहाजोंपर जाते थे। तूफानसे उनमें कई जहाज् डूब गये। कुछ जहाज़ अति कष्टसे सांजिम प्रदेश पहुंचे थे। सांजिम प्रदेश सूरतसे २५ कोस दक्षिण है। पारसिकोंने वहां उतरनेकी राजासे अनुमति मांगी। राजाने कहा—यदि वह गुजराती भाषामें बात करना सीख लेते और गोमांस न खाते, तो उतरनेकी अनुमति पा जाते। इस बात पर स्वीकृत हो पारसिक वहां बहुत दिन रहे थे। फिर वह वहांसे उपकूलमें वाणिज्य करने लगे। क्रमसे पारसिक चारो ओर फैल काम्बे पहुंच गये। काम्बे स्थान उन्हें बहुत अच्छा लगा था। सुतरां वह दलके दल वहां जा कर उपस्थित हुये। उनको संख्या क्रमसे बढ़ने लगी। शेषको वहांके अधिवासियोंको अपेक्षा संख्या अधिक होनेसे उन्हींका कर्तृत्व आरम्भ हुवा। कुछ काल पीछे हिन्दुवोंने उन्हें युद्धमें परास्त कर देशसे निकाल दिया। युद्धमें अनेक पारसी मरे थे। ९९७ ई० को काम्बे ब्राह्मणोंके अधिकारमें पड़ा। उसी समयसे क्रमिक उन्नति होने लगी। १२९७ ई०को मुसलमानोंने काम्बे अधिकार किया। उस समय काम्बे भारतका एक समृद्धिशाली नगर समझा जाता था। मुसलमानोंके शासनमें काम्बे गुजरातके अन्तर्गत हुवा। ई० १५ वें शताब्दमें काम्बेकी अधिक उन्नति देख पड़ी। ई० १६ वें शताब्दसे उक्त प्रदेश वाणिज्यका प्रधान स्थान माना जाने लगा। महाराष्ट्रोंके राज्य बढ़ाते समय मुसलमानोंने प्राणपणसे अपने अधिकार बचाये थे। बेसिनकी सन्धिके पीछे काम्बे अंगरेजोंके हाथ लगा। आज कल अंगरेजोंके अधीन एक नवाब शासन करते हैं। उनको अंगरेजोंसे राज्य करनेके लिये सनद मिली है। प्रबन्धानुसार राज्यका भार उन्हींको वंशावलीमें रहेगा। वह अंगरेज गवरनमेण्टको कर देते हैं।

काम्बेमें कोई ३० विद्यालय हैं। अफीम, गेहूं, चावल, रूई, तम्बाकू और नील खूब उपजता है। नीलगाय, जंगली सूवर और हिरन बहुत हैं। काम्बे उपसागरमें वर्षा ऋतुके सिवा अन्य समय भली भांति जल नहीं रहता। काम्बे उपसागर देखो। वाणिज्यमें अधिक सुविधा इसी कारण नहीं रहती। मही और साबरमती उक्त उपसागरमें ही गिरती हैं। किन्तु उनका प्रवाह बराबर एक राहसे नहीं चलता। उसीसे नदीके मुखमें बड़े बड़े जहाजोंके जानेमें अड़चन पड़ती है। फिर भी वाणिज्य बुरा नहीं। शतरंजी, गलीचा, नमक, नील और खोदनेका पत्थर तैयार होता है। काम्बेमें कोई अच्छी राह नहीं। बैलगाड़ी,

ऊंट, घोड़ा वगैरहके जरिये माल-असबाब आता जाता है।

२ काम्बे राज्यका प्रधान नगर। वह मही नदीके सङ्गमस्थान पर अक्षा० २२° १८´३०´´ उ० और देशा० ७२° ४´ पू० में अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः ३६००० है। नगर अति प्राचीन है। पहले इस नगरके चारो ओर प्राचीर वेष्टित था। फिर लड़े पर तोप भी लगी रहती थी। किन्तु आज कल उसका भग्नावशेष मात्र लक्षित होता है। कथानुसार जारमनाख्यने वहां जन्म लिया था। वह प्राचीन द्राविड़के पाण्ड्यराजके दौत्यकार्यको रोम-सम्राट् अगस्तसके निकट भेजे गये। वहां आथेन्स नगरमें उन्होंने आग लगायी थी। फिर स्वेच्छाक्रमसे जारमनाख्य उसीमें जल मरे। प्रसिद्ध राजा विक्रमादित्यके भी उक्त स्थानमें जन्म लेनेका प्रवाद है। १२९३ ई० को मार्को पोलो नामक वेनिसके परिव्राजक उक्त नगर देखने गये थे। उन्होंने उसे भारतका एक बड़ा बन्दर और वाणिज्यस्थान बताया है। उनके विवरणमें काम्बेथ नामसे काम्बे नगरका उल्लेख है। वास्तविक वह भारतका प्रधान वाणिज्यस्थान था। किन्तु उपसागरका जल घट जानेसे अब वह समृद्धि देख नहीं पड़ती।

काम्बे उपसागर देखो।

काम्बेमें जैनोंके प्रकाण्ड मन्दिर थे। उन्हीं मन्दिरोंके स्तम्भ निकाल १२२५ ई० को मुहम्मद शाहने जामा मसजिद बनवायी। काम्बेकी प्राचीन कीर्तियोंका भग्नावशेष आज भी अनेक स्थलोंमें देख पड़ता है। एक मुसलमान नवाब वहां राजत्व करते हैं। वह अंगरेजोंके अधीन करद राजा हैं।

काम्बे उपसागर—खम्भातकी खाड़ी। उसके पश्चिम गुजरात और पूर्व बम्बई-प्रान्त है। समुद्रके मुहानेमें उसका परिसर केवल डेढ़ कोस है। किन्तु मुखसे उत्तर कांबे प्रदेश तक प्रायः ४० कोस निकलेगा। पूर्व दिक्से नर्मदा तथा ताप्ती, उत्तरसे साबरमती एवं मही और पश्चिम काठियावाड़से दो नदी जा उसमें गिरी हैं। उपसागरके मुखसे पश्चिम दिक् पोर्तगीजोंका अधिकृत दीउ नामक द्वीप और पूर्व दिक् सूरत नगर अवस्थित है। सूरत, काम्बे वगैरह बन्दर उसीके उपकूल पर हैं। फिर भी उसमें वाणिज्यका विषम अन्तराय उपस्थित है। प्रायः दो सौ वर्षसे जल क्रमशः घट रहा है। इसी कारण भाटेके समय उसमें जल कम पड़ जाता है। फिर ज्वारके समय विषम स्रोतका वेग बढ़ता है। काम्बेके निकट प्रायः ८ कोस तक भाटाके समय बिलकुल जल नहीं रहता। उस समय पार जाते ज्वार उठनेसे जीवनकी आशा छोड़ना पड़ती है। ज्वारके वेगसे जहाज तक टूट जाता है। जो नौका या जहाज् किसी ज्वारके उठते आ लगता, वह फिर ज्वार न चढ़नेसे कहां जा सकता है।

काम्बोज (सं० पु०) कम्बोजदेशे भवः, कम्बोज-अण्। १ कम्बोजदेशजात घोटक, एक घोड़ा। २ श्वेत खदिर, सफेद कत्था। ३ पुन्नागवृक्ष, एक पेड़। ४ कट्फल, कायफल। ५ वरुणवृक्ष, एक पेड़। (क्ली०) ६ पद्मकाष्ठ, एक लकड़ी। (त्रि०) ७ कम्बोजदेशजात, कम्बोज मुल्कका पैदा। कम्बोज देखो।

काम्बोज—यवनतुल्य एक म्लेच्छजाति। सगर राजाने इन्हें मस्तक मुण्डित करा देशसे निकाल दिया था। (हरिवंश)

काम्बोजक (सं० क्ली०) कम्बोजे भवः, कम्बोज-वुञ्। मनुष्यतत्स्थयोर्वुञ्। पा ४।२।१३४। कम्बोजदेशवासीका हास्यादि। (त्रि०) २ कम्बोजजात।

काम्बोजि, काम्बोजी देखो।

काम्बोजिका (सं० स्त्री०) श्वेतगुञ्जा, सफेद घुंघची।

काम्बोजी (सं० स्त्री०) काम्बोज-ङीप्। १ रक्तगुञ्जालता, लाल घुंघची। २ वल्वज खदिर, पापरी कत्था।

काम्भोजी (सं० स्त्री०) १ श्वेतगुञ्जा, सफेद घुंघची। २ वाकुची। ३ विट्खदिर। ४ माषपर्णी। ५ गन्धमुस्ता।

काम्य (सं० त्रि०) काम्यते, कम-णिच्-यत्। १ कामनीय, चाहने लायक। २ सुन्दर, खूबसूरत। ३ कामनायुक्त, ख्वाहिशमन्द। ४ कर्तव्य, करने-लायक।

"यत् किञ्चित् फलमुद्दिश्य यज्ञदानजपादिकम्।
क्रियते कायिकं यच्च तत्काम्यं परिकीर्तितम्॥" (मुग्ध० रा० टी०)

५ भोग्य, पढ़ने या उठाया जानेवाला। (क्ली॰) ६ अभीष्टकर्म, चाहा हुवा काम। (पु॰) ७ असन वृक्ष, एक पेड़।

काम्यक (सं॰ क्ली॰) १ वनविशेष, एक जङ्गल। २ सरोवरविशेष, एक तालाब। ३ काष्ठविशेष, एक काठ।

काम्यकर्म (सं॰ क्ली॰) काम्यञ्च तत् कर्म चेति, कर्मधा॰। स्वर्गादि-अभीष्टकामनासे किया जानेवाला एक कर्म, ज्योतिष्टोमादि, जो काम किसी मतलबसे किया जाता हो।

काम्यकवन (सं॰ क्ली॰) वनविशेष, एक जङ्गल। यह सरस्वती नदीके तीर अवस्थित था। पाण्डव बहुत दिन इस वनमें रहे।

काम्यगिर् (सं॰ स्त्री॰) मधुर शब्द, एक खुशगवार गीत।

काम्यता (सं॰ स्त्री॰) कामस्य भावः, काम्य-तल्। १ कमनीयता, खूबसूरती। २ भोग्यता, ऐश-आराम। ३ वाञ्छनीयता, चाह।

काम्यदान (सं॰ क्ली॰) काम्यञ्च तत् दानञ्चेति, कर्मधा॰। १ स्त्रीरत्न प्रभृति कमनीय वस्तुका दान, औरत दौलत वगैरह पसन्द आनेवाली चीजोंकी बख्शिश। २ पुत्र, ऐश्वर्य, जय प्रभृति मिलनेकी कामनासे किया जानेवाला दान।

"अपत्यविजयैश्वर्यस्वर्गार्थं यत् प्रदीयते।
दानं तत् काम्यमाख्यातं ऋषिभिर्धर्मचिन्तकैः॥" (गरुड़पुराण)

काम्यफल (सं॰ क्ली॰) काम्यस्य फलः, ६-तत्। काम्यकर्मका वाञ्छनीय फल, चाहा जानेवाला नतीजा।

काम्यमरण (सं॰ क्ली॰) काम्यं वाञ्छनीयं मरणम्, कर्मधा॰। वाञ्छनीय मरण, आत्महत्या।

काम्यव्रत (सं॰ क्ली॰) काम्यं काम्यफलप्रदं व्रतम्, मध्यपदलो॰। अभीष्टफलप्रद व्रत।

काम्या (सं॰ स्त्री॰) कम-णिङ् भावे क्यप्-टाप्। १ प्रियव्रतकी पत्नी। यह कर्दमकी कन्या रहीं। प्रियव्रत देखो। २ कामना, ख्वाहिश।

"अष्टैतान्यव्रतघ्नानि आपोमूलं फलं पयः।
हविर्ब्राह्मणकाम्या च गुरोर्वचनमौषधम्॥" (प्रात॰ बौधायन)

काम्याभिप्राय (सं॰ पु॰) काम्यः वाञ्छनीयः अभिप्रायः, कर्मधा॰। वाञ्छनीय अभिप्राय, मतलबकी बात।

काम्येष्टि (सं॰ स्त्री॰) कामनाविशेषार्थं अनुष्ठित यज्ञ, जो यज्ञ किसी मतलबसे किया जाता हो।

काम्योपासना (सं॰ स्त्री॰) काम्यया कामनासिद्धेच्छया उपासना, ३-तत्। कामनासिद्धिके अभिप्रायसे की जानेवाली उपासना, जो पूजा अपने मतलबसे की जाती हो।

काम्ल (सं॰ पु॰-क्ली॰) कु कुत्सितं ईषत् वा अम्ल, कोः कादेशः। १ कुत्सित अम्लरस, खराब खटाई। २ ईषत् अम्लरस, थोड़ी खटाई। (त्रि॰) ३ कुत्सित वा ईषत् अम्लरस युक्त, कम खट्टा।

काय (सं॰ क्ली॰) कः प्रजापतिर्देवता अस्य, क-अण् इदादेशश्च आदेर्वृद्धिः। कस्येत्। पा ४।२।२५। १ प्राजापत्यतीर्थ। कनिष्ठा अङ्गुलिके अधोभागका नाम प्राजापत्यतीर्थ है,—

"अङ्गुष्ठमूलस्य तले ब्राह्मं तीर्थं प्रचक्षते।
कायमङ्गुलिमूलेऽग्रे दैवं पित्र्यं तयोरधः॥" (मनु २।५८)

२ मनुष्यतीर्थ। ३ ब्रह्मतीर्थ। (कायति प्रकाशते, अच्) ४ मूर्ति, शरीर, जिस्म। शरीर देखो। ५ समूह, ढेर। ६ लक्ष्य, निशाना। ७ स्वभाव, आदत। ८ प्राजापत्य विवाह। ९ मूलधन, जमा। १० गृह, घर। ११ ब्रह्मा। १२ तरुप्रकाण्ड, तना। (त्रि॰) १३ प्रजापति सम्बन्धीय।

कायक (सं॰ त्रि॰) शारीरिक, जिसमानी, बदनके मुताल्लिक।

कायकारणकर्तृत्व (सं॰ क्ली॰) कायस्य शरीरस्य कारणे उत्पत्तिकारणे कर्तृत्वम्। शरीरोत्पत्तिकारक कारणकी सृष्टिके विषयका कर्तृत्व, जिस्मानी कामोंकी हरकत।

कायक्लेश (सं॰ पु॰) कायस्य क्लेशः, ६-तत्। शारीरिक परिश्रम, जिस्मानी मेहनत या तकलीफ।

कायचिकित्सा (सं॰ स्त्री॰) कायस्य चिकित्सा, ६-तत्। आयुर्वेदोक्त अष्टाङ्ग चिकित्साका एक अङ्ग, तमाम जिस्म पर असर डालनेवाली बीमारियोंका इलाज। इसमें ज्वर, उन्माद, कुष्ठ प्रभृति शरीरव्यापी रोगोंकी चिकित्सा है।

कायजा (अ॰ पु॰) वल्गारज्जु, लगामकी डोरी।

कायथ (हिं॰) कायस्थ देखो।

क़ायदा (अ० पु०) १ नियम, तरीका। २ रीति, दस्तूर। ३ व्यवस्था, कानून।

कायफर (हिं०) कायफल देखो।

कायफल (सं० क्लो०) कट्फल, एक पेड़। इसकी छाल औषधमें पड़ती है। हिमालयके उष्णप्रधान स्थानमें यह उत्पन्न होता है। आसामके खासिया पर्वत और ब्रह्मदेशमें भी इसकी उपज है।

कायबन्धन (सं० क्लो०) कायं बध्नाति, काय-बन्ध ल्यु। परिकर, कमरबन्द।

क़ायम (अ० वि०) १ स्थित, ठहरा हुवा। २ स्थापित, रखा हुवा। ३ निश्चित, ठहराया हुवा। ४ समान, बराबर।

क़ायम—क़ायम खान्‌का उपनाम। टोंकवाले नवाब वज़ीर मुहम्मद खान्‌के अधीन यह सेनानीके पद पर प्रतिष्ठित रहे। १८५३ ई० को इन्होंने उर्दू में एक दीवान् बनाया था।

क़ायमजङ्ग—फ़रुखाबादवाले नवाब मुहम्मद खान् बङ्गशके पुत्र। १७४३ ई० के जून मासमें इन्हें अपने पिताका उत्तराधिकार मिला था। इन्होंने वज़ीर नवाब सफ़दर जङ्गकी प्रेरणा पर रुहेलोंसे युद्ध ठाना। किन्तु पराजय होनेपर १७४९ ई० के नवम्बर मासमें उन्होंने इन्हें मार डाला था। फिर वज़ीर इनका राज्य दबा बैठे। इनके प्रधान कर्मचारी इलाहाबादको बन्दी बनाकर भेजे गये। किन्तु इनकी माताको १२ छोटे ज़िलोंके साथ फरुखाबाद नगर वंशके भरणपोषणके लिये मिला था। विजित देश वजीरके प्रतिनिधि राजा नवल रायके संरक्षणमें रहा। थोड़े दिन पीछे ही इनके भ्राता अहमद खान्‌ने युद्धमें राजा नवल रायको मार, देश पर अपना अधिकार जमा लिया था।

कायमनोवाक्य (सं० त्रि०) कायः मनः वाक्यञ्च यत्र, बहुव्री०। शरीर, मन और वाक्यसे होनेवाला, जो दिलोजान्‌से लगने पर बनता हो।

क़ायममुक़ाम (अ० वि०) स्थानापन्न, एवज़ी, जगह पर रहनेवाला।

कायमान (सं० क्लो०) कायस्य मानमिव मानमस्य, मध्यपदलो०। १ तृणकुटीर, फूसका झोपड़ा। २ देहपरिमाण, जिस्मकी नाप।

कायर (हिं०) कातर देखो।

कायरता (हिं०) कातरता देखो।

कायरूपसंयम (सं० पु०) पातञ्जल-कथित एक ध्यान। इसमें अपने रूपका संयम कहा है।

क़ायल (अ० वि०) यथार्थताको स्वीकार करनेवाला, जो झूठ निकलने पर अपनी बात पकड़ता न हो।

क़ायली (हिं० स्त्री०) १ ग्लानि, शर्म। २ सयानी।

कायवलन (सं० क्लो०) कायो वल्यते आच्छाद्यते अनेन, काय-वल-ल्युट्। कवच, बख़्तर।

कायव्य (सं०क्लो०) महाभारतोक्त एक दस्युराज। इनके जन्मका विवरण इस प्रकार दिया है, किसी निषादीके गर्भ और क्षत्रियके औरससे कायव्यका जन्म हुवा। यह दस्युदलाधिप बनते भी सर्वदा धर्म-कर्ममें लगे रहते थे। अनुचरोंके प्रति इनका आदेश रहा—तुम लोग ब्राह्मण, तपस्वी, भीरु, शिशु, स्त्री और युद्धसे भागे व्यक्तिको कभी मत मारो। यह स्वयं वनवासी, तपस्वी तथा ब्राह्मणको पूजते और मृगादि मार उन्हें पर्याप्त आहार देते थे। इसी प्रकार दस्युवृत्ति रखते भी कायव्यने सिद्धि पायी। (महाभारत, शान्ति, १३५ अ०)

कायव्यूह (सं० पु०) काये शरीरे व्यूहः वातादीनां त्वगादीनां सप्तधातूनाञ्च व्यूहनम्, ७-तत्। शरीरके वात, पित्त, श्लेष्मा, त्वक् प्रभृति सप्तधातुका विन्यास, वाह्यादिकसे आरम्भ करने पर यथाक्रम त्वक्, रक्त, मांस, स्नायु, अस्थि, मज्जा और शुक्र पाते हैं। वात, पित्त और श्लेष्मा शरीरके अभ्यन्तरमें पृथक् पृथक् स्थानपर अवस्थित हैं।

इन तीनों दोषोंकी अविकृत अवस्थाका स्थान इस प्रकार निर्दिष्ट है,—नितम्ब एवं गुह्यदेश वायुका, पक्वाशय (नितम्ब एवं गुह्यदेशके ऊपर और नाभिके नीचे पक्वाशय पड़ता है) तथा आमाशयके मध्य पित्तका और आमाशय श्लेष्माका स्थान है। संक्षेपमें प्राधान्यके अनुसार उक्त तीनों स्थान तीनों दोषोंके समझे गये हैं। (सुश्रुत)

प्रत्येक दोष पांच पांच भागोंमें विभक्त है। उक्त

स्थानोंको छोड़ तीनों दोष दूसरी जगह भी रहते हैं।

वायु, कफ, और पित्त शब्द देखो।

२ कर्मभोगके लिये योगियों द्वारा कल्पित कायसमूह। योगी कर्मत्यागके लिये कायव्यूह बनाते हैं।

"नाभिचक्रे कायव्यूहज्ञानम्।" (पातञ्जलसूत्र)

नाभिचक्रमें संयम रखनेसे योगी कायव्यूह समझ सकते हैं। फिर 'सङ्कल्पादेव तच्छ्रुतेः' शाण्डिल्यसूत्रके अनुसार योगी बहुविध फल भोगनेके लिये जो शरीर बनाते, उससे चित्तमें प्रत्येक इन्द्रिय और अङ्गकी कल्पना लगाते हैं।

कायसम्पद् (सं० स्त्री०) कायस्य सम्पद् ६-तत्। शरीरकी सम्पत्ति, जिस्मकी दौलत। रूप, लावण्य, बल और सुगठन प्रभृतिको 'कायसम्पद्' कहते हैं।

कायसौख्य (सं० क्ली०) शरीरसुख, जिस्मका आराम।

कायस्थ (सं० पु०) कायेषु सर्वभूतदेहेषु तिष्ठति, काय-स्था-क। १ अन्तर्यामी परमेश्वर।

"कायस्थोऽपि न कायस्थः कायस्थोऽपि न जायते।
कायस्थोऽपि न भुञ्जानः कायस्थोऽपि न बध्यते॥" (उत्तरगीता ११८)

२ जातिभेद। भारतवर्षके प्रधान प्रधान स्थानोंमें जो कायस्थ वास करते हैं, उनमेंसे सामाजिक और विशुद्ध कायस्थ मात्र अपनेको चित्रगुप्तके वंशधर बतलाते हैं। इनके सिवा और एक श्रेणीके सम्भ्रान्त और अल्पसंख्यक कायस्थ हैं, जो चान्द्रसेनीय प्रभु कहलाते हैं। जिन क्षत्रिय वंशधरोंने युद्धवृत्ति त्याग कर उक्त प्रभु कायस्थोंकी वृत्ति ग्रहण की वा उनके साथ सम्बन्ध जोड़ा, वे भी 'प्रभु' कहलाते हैं। चित्रगुप्त देव ही कायस्थ जातिके आदिपुरुष हैं। ऐसी दशामें सबसे पहिले चित्रगुप्तके विषयकी ही आलोचना करनी चाहिये।

चित्रगुप्तका परिचय।

हस्तलिखित भविष्यपुराणमें* लिखा है,—

"दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च।
स समाधिं समाधाय स्थितोऽभूत् कमलासने॥
स्थिते समाधौ सकलं यत्नं सं तदशालि ते।
तच्छरीरान्महाबाहुः श्यामः कमललोचनः॥
कम्बुग्रीवो गूढ़शिराः पूर्णचन्द्रनिभाननः।
लेखनीच्छेदनीहस्तो मसीभाजनसंयुतः॥
निःसृत्य दर्शने तस्थौ ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः।
उत्तमः सुविचित्राङ्गो ध्यानस्तिमितलोचनः॥
त्यक्त्वा समाधिं गाङ्गेय तं ददर्श पितामहः।
अधोर्ध्वं सन्निरीक्ष्याथ पुरुषञ्चाग्रतः स्थितम्॥
पप्रच्छ को भवानग्रे तिष्ठते पुरुषोत्तम।
इति पृष्टोऽब्रवीद्धीमान् ब्रह्माणं कमलोद्भवम्॥

पुरुष उवाच।

उत्पन्नो विधिना नाथ त्वच्छरीरान्न संशयः।
नामधेयं हि मे तात! कर्तुमर्हस्यतः परम्।
यथोचितञ्च यत्कार्य्यं तत् त्वं मामनुशासय॥

पुलस्त्य उवाच।

इत्याकर्ण्य ततो ब्रह्मा पुरुषं स्वशरीरजम्।
प्रहस्य प्रत्युवाचेदमानन्दितमतिः पुनः॥
स्थिरमाधाय मेधावी ध्यानस्थस्यापि सुन्दरः।

ब्रह्मोवाच।

मच्छरीरात् समुद्भूतस्तस्मात् कायस्थसंज्ञकः।
चित्रगुप्त इति नाम्ना वै ख्यातो भुवि भविष्यसि।
धर्माधर्मविवेकार्थं धर्मराजपुरे सदा॥
स्थितिर्भवतु ते वत्स! ममाज्ञां प्राप्य निश्चलाम्।
क्षत्रवर्णोचितो धर्मः पालनीयो यथाविधि॥
प्रजा सृजस्व भोः पुत्र भुवि भारसमाहितः।
तस्मै दत्त्वा वरं ब्रह्मा तत्रैवान्तरधीयत॥" (पद्मपु० उत्तरखण्ड)

ब्रह्माने जगत्की सृष्टि करनेके बाद स्थिरचित्तसे इन्द्रियोंको संयत कर ११०० वर्ष तपस्या की। उसी अवस्थामें ब्रह्माके शरीरसे श्यामवर्ण, पद्मलोचन, कम्बुग्रीव, गूढ़शिरा और परमसुन्दर एक पुरुष उत्पन्न हुआ। वह दावात-कलम ले कर ब्रह्माके सामने आ खड़ा हुआ। तब ब्रह्माने समाधिभङ्ग कर उसे नीचेसे ऊपर तक देख कर पूछा, तुम कौन हो? और मेरे सामने क्यों खड़े हो? उत्तरमें उस पुरुषने कहा,—"हे नाथ! मैं आपके शरीरसे ही उत्पन्न हुआ हूं।

* आजकलके छपे हुए भविष्यपुराणमें चित्रगुप्तके विषयमें ऐसी कोई बात न देख कर कोई कोई इस विवरणको प्रक्षिप्त बतलाते हैं; परन्तु नारदीय महापुराणके उपविभागखण्डमें भविष्यपुराणकी जो विस्तृत विषय-सूची है, उसमें कार्त्तिकी शुक्ला द्वितीयाके व्रतके प्रसंगमें चित्रगुप्तदेवकी पूजा और विस्तृत विवरणका आभास मिलता है। इसके सिवा कई स्थानोंसे ऐसी हस्तलिखित पुस्तकें भी मिली हैं; जिनमें भविष्यपुराणीय चित्रगुप्तके व्रतका विवरण पाया जाता है। सुप्रसिद्ध "वाचस्पत्याभिधान" और "शब्दकल्पद्रुम" महाकोषमें भी भविष्यपुराणके कथनमें उक्त चित्रगुप्तकी कथा उद्धृत है। अतएव जान पड़ता है कि, आजकलके छपे हुए भविष्यपुराणसे यह व्रतकथा निकाल दी गयी है।

आप मेरा नामकरण कीजिये ; और मेरे लिए कार्य दीजिये।"

भगवान् ब्रह्माने उसके मधुर वाक्योंको सुन कर बड़ी प्रसन्नतासे कहा ;—"हे वत्स ! मैंने स्थिरचित्त हो कर समाधि लगाई थी, उसी अवस्थामें तुम मेरे कायसे पैदा हुए, इसलिए तुम संसारमें कायस्थ नामसे प्रसिद्ध होगी और तुम्हारा नाम चित्रगुप्त हुआ। धर्माधर्मके विचार करनेके लिए यमराजके न्यायालयमें तुम्हारा स्थान निर्दिष्ट हुआ। तुम वहां क्षत्रिय धर्म पालन करना और पृथिवीमें बलिष्ठ प्रजा उत्पन्न करो।" ऐसा वर दे कर ब्रह्मा वहांसे अन्तर्धान हो गये। कमलाकर-भट्टोद्धृत बृहत्ब्रह्मखण्डमें भी लिखा है,—

"भवान् क्षत्रियवर्णश्च समस्थान-समुद्भवात्।
कायस्थः क्षत्रियः ख्यातो भवान् भुवि विराजते ॥
तदंशसम्भवा ये वै तेऽपि त्वत् समतां गताः।
तेषां लेख्यादिवृत्तिश्च क्षत्रियाः स्वतत्परा: ॥
संस्कारादीनि कर्माणि यानि क्षत्रियजातिषु।
तानि सर्वाणि कार्याणि मदाज्ञावशवर्त्तिनाः ॥
उक्त्वा प्रजापतिरिदं तत्रैवान्तर्दधे विभुः।
एवमुक्तश्चित्रगुप्तः प्रसन्नहृदयोऽभवत् ॥"

(Vyavasthá Darpana by Syámácharan Sarkar, 3rd. Ed. Part I, p. 664.)

ब्रह्माने कहा था कि, हे चित्रगुप्त ! समस्थान अर्थात् कायसे पैदा हुए हो ; इसलिए तुम भी क्षत्रियवर्ण हो। तुम पृथिवीमें कायस्थ-क्षत्रिय नामसे प्रसिद्ध होगी। तुम्हारे वंशधर कायस्थ भी तुम्हारे समान कायस्थ-क्षत्रिय गिने जायगी। उनकी लेख्यादि वृत्ति होगी और क्षत्रियकन्याके साथ उनका विवाह होगा। क्षत्रियोंमें जो जो संस्कार होते हैं, हमारी आज्ञानुसार उनको भी वे ही संस्कार करने होंगे।" इतना कह कर ब्रह्मा वहांसे अन्तर्धान हो गये ; और चित्रगुप्त उनके वचन सुन कर प्रसन्न हुए।

गरुड़पुराणमें और एक जगह लिखा है—

"प्रयाति चित्रनगरं चौचित्रो यत्र पार्थिवः।
यमस्यैवानुजः सौरियत्र राज्यं प्रशास्ति हि ॥" (उत्तरखण्ड १७ अ०)

फिर वह ऋषि चित्रनगरमें पहुंचे ; जहां चौचित्र,—यमके छोटे भाई—सौरि अर्थात् सूर्यके पुत्र राज्यशासन करते थे। उक्त गरुड़पुराणसे यह भी ज्ञात होता है कि, यही चित्रनगर पीछे 'चित्रगुप्तपुर' नामसे विख्यात हुआ है।

"चित्रगुप्तपुरं तत्र योजनानां तु विंशतिः।
कायस्थास्तत्र पश्यन्ति पापपुण्यानि सर्वशः ॥" (उत्तरखण्ड १८।२)

उस यमलोकमें (२० योजनमें विस्तृत) चित्रगुप्तपुर है। वहांके कायस्थ सबके पाप-पुण्यका विचार करते हैं।

देवीभागवतमें लिखा है ;—

"अस्याशायां यमपुरी तत्र दण्डधरो महान्।
स्वभटैर्वेष्टितो राजन् चित्रगुप्तपुरोगमैः।
निज शक्तियुतो भास्वत्तनयोऽस्ति यमो महान् ॥" (१२ स्क० १० अ०)

हे राजन् ! दक्षिण दिशामें यमपुरी है ; जहां चित्रगुप्त आदि अपने सुभटों सहित और अपनी समस्त शक्तियों सहित सूर्यके पुत्र यम विराजमान हैं।

गरुड़पुराणमें भी लिखा है,—

"वायुः सर्वगतः सृष्टः सूर्यस्तेजोविवर्द्धिमान्।
धर्मराजस्ततः सृष्टश्चित्रगुप्तेन संयुतः ॥
सृष्ट्वैवमादिकं सर्वं तपस्तेपे स पद्मजः ॥"

(गरुड़पुराण, प्रेतकल्प, १ अ०)

ब्रह्माने सबसे पहिले सर्वव्यापी वायुकी ; फिर तेजोमय सूर्यकी सृष्टि की थी। उसके बाद सूर्यसे चित्रगुप्त सहित धर्मराज (यमराज) की सृष्टि की। इस तरह आदि जगत्की सृष्टि करके ब्रह्मा तपस्यामें रत हुए।

स्कन्दपुराणके प्रभास-खण्डमें चित्रगुप्तको कायस्थ कहा गया है। और उनकी उत्पत्तिकी कथा इस प्रकार है,—

"मित्रो नाम पुरा देवि धर्मात्माऽभूद्धरातले ॥ २
कायस्थः सर्वभूतानां नित्यं प्रियहिते रतः।
तस्यापत्यं स्वयं यत्र ऋतुकालाभिगामिनः ॥ ३
पुत्रः परमतेजस्वी चित्रो नाम वरानने।
तथा चित्राभवत् कन्या रूपाढ्यामोन्नमण्डना ॥ ४
भार्या तु जावनावाश्च मित्रः पञ्चत्वमाप्तवान्।
अथ तस्य च सा भार्या सह तेनाग्निमाविशत् ॥ ५
अथ तौ बालकौ दीनावपिमिः परिपालितौ।
वृद्धिं गतौ महारण्ये बालावेव स्थितौ व्रते ॥ ६
प्रभासक्षेत्रमासाद्य तपः परममास्थितौ।
प्रतिष्ठाप्य महादेवं भास्करं वारितस्करम् ॥ ७

पूजयामास धर्मात्मा च धूपमाल्यानुलेपनैः ।
वसिष्ठकथितश्चैव चाष्टवर्षसमन्वितैः ॥ २०
एवंस्तु तपतस्तस्य चित्रस्य विमलात्मनः ।
तस्य तुष्टः सहस्रांशुः कालेन महता विभुः ॥ २१
अब्रवीद्वत्स भद्रं ते वरं वरय सुव्रत ।
सोऽब्रवीद्यदि मे तुष्टो भगवांस्तीव्रदीधितिः ॥ २२
प्रौढ़त्वं सर्वकार्येषु जायतां मा कथिच्चथा ।
तथेति प्रतिज्ञातं सूर्येण वरवर्णिनि ॥ २३
ततः सर्व्वज्ञतां प्राप्तश्चित्रो मित्रकुलोद्भवः ।
तं ज्ञात्वा धर्मराजस्तु बुद्धा च परया युतः ॥ २४
चिन्तयामास मेधावी लेखकोऽयं भवेत् यदि ।
ततो मे सर्वसिद्धिस्तु निश्चित परा भवेत् ॥ २५
एवं चिन्तयतस्तस्य धर्मराजस्य भामिनि ।
अग्नितीर्थं गतश्चित्र स्नानार्थं लवणाम्भसि ॥ २६
स तत्र प्रविशन्नेव नीतस्तु यमकिङ्करैः ।
सशरीरो महादेवि यमादेशपरायणैः ॥ २७
स चित्रगुप्तनामामूच्चित्रचारित्रलेखकः ॥"

(प्रभासखण्ड, १२२ अ०)

हे देवि! पहिले इसी भूमण्डलमें, सर्वभूतोंके प्रिय और उनके हितैषी 'मित्र' नामक एक कायस्थ थे। ऋतुकालमें स्त्रीके साथ सम्भोग करके उन्होंने चित्र नामका एक तेजस्वी पुत्र पैदा किया। मित्रके रूपवती एक कन्या भी हुई थी। पुत्र-पुत्रीके होते ही मित्र परलोक सिधारे, साथमें उनकी स्त्री भी चितामें जल कर मर गई। इनकी मृत्युके बाद असहाय पुत्र-पुत्री दोनोंका ऋषियोंके आश्रममें पालन-पोषण होने लगा; और वे दिन दूने रात चौगुने बढ़ने लगे। इन दोनोंने बालकपनमें ही व्रत आरम्भ किये; और प्रभासक्षेत्रमें गमन किया। वहां इन लोगोंने महादेव तथा सूर्यकी मूर्ति स्थापित की, और धूपमाल्यसे उनकी पूजा कर तपस्या करनी प्रारम्भ कर दी। इनकी तपस्यासे संतुष्ट हो कर सूर्य-देव वहां गये और चित्रसे कहने लगे,—

"हे सुव्रत! तुम्हारा मंगल हो; तुम हमसे वर मांगो।"

चित्रने कहा,—"हे भगवन्! आप अगर मुझसे सन्तुष्ट हुए हैं; तो मुझे यह वर दीजिये कि, मैं सब काममें दक्षता प्राप्त करूं।"

सूर्यदेवने "तथास्तु" कह कर उनको वर दिया और चित्रने सर्वज्ञता प्राप्त कर ली। चित्रको अपने समान क्षमतापन्न देख कर धर्मराज मन ही मन विचारने लगे,—"यदि यह बुद्धिमान् मेरा लेखक बन जाता तो मेरे सब काम सिद्ध हो जाते। हे भामिनि! एक दिन धर्मराजने, लवणसमुद्रमें नहाते हुए चित्रको अनुचरों द्वारा अपनी पुरीमें बुला लिया; और अपनी इच्छाकी पूर्ति की। यह चित्र ही "संसार-चरित्र"के लेखक हैं, और बादमें चित्रगुप्त नामसे प्रसिद्ध हुये हैं।

देवीपुराण (३८ अध्याय)-से मालूम होता है,—

"दनुजास्ते सुरान् सर्वानयोध्यन्त तदाहवे ॥
अथ भग्नांस्तदा दृष्ट्वा देवान् देवपतिर्महान् ।
उदयाद्रिसमं रुद्रं गजराजं समूपितम् ॥
सिन्दूरारुणरागाढ्यं घण्टाचामरमण्डितम् ।
चतुर्दन्तं सुरूपाढ्यं महावीरं महाबलम् ॥
गजोऽन्तुजं न्यस्य कालसर्पं इवाभवत् ।
अथ तत्र स्थितश्चेन्द्रं दृष्ट्वा ह्याग्नी महाबलः ।
छागराजं समारुह्य दीप्तशक्तिं व्यधावयत् ॥
त्वं दृष्ट्वा महिषं धर्मोदण्डपाणिर्महाबलः ।
आरूढ़श्चित्रगुप्तश्च कालकेतुसमन्वितः ॥
कृतान्तो निष्ठुर इव वज्रदण्डो महाबलः ।
पवनु निर्ऋतिर्मेघे पुरुषे च तदानुगः ॥
खड्गपाणिः सुरश्चाथ खड्गकृपाणनप्रभः ।
अङ्कुमैर्न्यं समादाय इन्द्रसैन्यं समागतः ।
वरुणो वारुणैर्योधैः कर्मगः पाशधारकः ।
कृष्णसारं समादाय भङ्गेन समीरणः ॥"

महावली बलासुर विष्णुके कौशलसे मारा गया था। इसलिये उसके पुत्र सुबलासुरने क्रोधान्ध हो कर देवों पर आक्रमण किया। उस समय दानव-गणके साथ देवोंका तुमुल युद्ध होने लगा। देव-राज इन्द्र देवताओंको हारते देख उदयाचल पर्वतके समान ऊंचे ऐरावत हाथी पर सवार हुए। इसके बाद पुरन्दरको ऐरावत पर सवार देख कर महाशक्तिमान् अग्निदेवने छागराज पर सवार हो कर प्रदीप्त शक्ति धारण की। उनको देखते ही महावली यमराजने और कृतान्तके समान कठोर वज्रदण्डधारी महाबल-पराक्रान्त चित्रगुप्तने कालकेतुके साथ महिष पर

आरोहण किया। इस प्रकार यमराजने अपने सुभटों और बहुतसी सेनाओंको साथ ले कर इन्द्रको युद्धमें सहायता की। पाशपाणि वरुणदेव भी मत्स्यपर सवार हो अपनी सेनाओंको साथ ले कर आ पहुंचे। इत्यादि।

श्रीहर्षके "नैषधचरित"में पाया जाता है,—दमयन्तीको स्वयम्बर-सभामें इन्द्रादि देवोंके साथ चित्रगुप्तदेव क्षत्रिय रूपमें आये थे। नैषधकारने उनका परिचय इस प्रकार दिया है,—

> "दृग्गोचरोऽभूदथ चित्रगुप्तः कायस्थ उच्चैर्गं च एतदीय।
> जर्वन्तु पत्रस्य मषीद एको मषीदंषस्त्रोपरि पत्रमन्यः।" (१४ सर्ग)

चित्रगुप्तके प्रार्थनामन्त्रमें यह भी मिलता है—

> "श्रिया सह समुत्पन्न समुद्र-मथनोद्भव।
> चित्रगुप्त महाबाहो ममाद्य वरदो भव॥"

उपर्युक्त भिन्न भिन्न पुराणोंसे यह प्रमाणित होता है कि, ब्रह्माके शरीरसे चित्रगुप्तकी उत्पत्ति है; और फिर कल्पभेदसे चन्द्र सूर्यादि देव जिस प्रकार नाना भाव और नाना रूपसे अवतीर्ण हुये हैं, वैसे ही चित्रगुप्त भी विभिन्न कल्पोंमें कभी सूर्यदेवके पुत्ररूपसे और कभी मित्रके पुत्ररूपसे अवतीर्ण हुए हैं। इन्द्र, चन्द्र, वायु और वरुणकी भांति वह भी देवक्षत्रिय-रूपसे देव-सैन्यमें रहते थे।

विरुद्धवादियोंका मत।

उपर्युक्त प्रमाणोंके रहते हुये भी विरुद्धवादी यह कहा करते हैं कि, चित्रगुप्तदेव चार वर्णोंकी सृष्टिके पीछे हुए हैं, इसलिये वे चार वर्णोंमें नहीं गिने जा सकते।

कमलाकरके—"यथं ध्यानस्थितस्यास्य सर्वकायाद्विनिर्गतः।" इत्यादि वचनके अनुसार चित्रगुप्त ब्रह्माके समस्त शरीरसे उत्पन्न हुए हैं और ब्रह्माको "क्षत्रवर्णोचित धर्म पालनीया यथाविधि—" इस उक्तिसे चित्रगुप्तका क्षत्रिय होना सिद्ध नहीं होता। "ब्रह्मकायोद्भवो यस्मात् कायस्थवर्ण उच्यते" इस युक्तिसे कायस्थ एक स्वतन्त्र वर्ण ही प्रतीत होते हैं।

इसके अतिरिक्त मन्वादि धर्मशास्त्रमें चित्रगुप्त अथवा कायस्थ जातिका तत्त्व निर्णीत नहीं हुवा है। किसी किसी स्मृति-शास्त्रमें चित्रगुप्त और कायस्थ नाम पाया जाता है। परन्तु इससे यह नहीं समझा जा सकता कायस्थ कौन जाति हैं?

पुराणकी—"धर्मराजस्याधिकारी चित्रगुप्तो बभूव ह।" इस उक्ति द्वारा यही सिद्ध होता है कि, चित्रगुप्त यमराजके लेखक थे। विष्णु, याज्ञवल्क्य, वृहत्पराशर इत्यादि स्मृति-शास्त्रोंसे और कायस्थोंके धर्माधिकरणमें भी उनके लेखक रहनेका प्रमाण मिलता है। औशनस धर्मशास्त्र, ब्रह्मवैवर्त्तपुराण, अग्निपुराण, याज्ञवल्क्यस्मृति और राजतरङ्गिणीमें जगह जगह कायस्थोंके प्रति कठोर उक्तियोंका प्रयोग पाया जाता है। विशेषतः अहल्या-कामधेनुके नवम वत्सोद्धृत भविष्यपुराणान्तर्गत कार्तिक-शुक्ल-द्वितीया-व्रत-कथा-सन्दर्भमें कहा है,—

> "एतस्मिन्नेव काले तु धर्मशर्म्मा द्विजोत्तमः।
> अपत्यार्थी च धातारमाराध्यमभजत्तदा॥
> परमेष्ठिप्रसादेन लब्ध्वा कन्यामिरावतीम्।
> चित्रगुप्तं च तां दत्वा विवाहमकरोत्तदा॥"

उपर्युक्त प्रमाणसे यही मालूम होता है कि, चित्रगुप्तका विवाह ब्राह्मण धर्मशर्माकी पुत्री इरावतीसे हुआ था। इसलिये प्रतिलोम विवाहसे उत्पन्न हुये कायस्थ कदापि श्रेष्ठवर्ण हो नहीं सकते। इसके अतिरिक्त शब्दकल्पद्रुमोद्धृत आचार-निर्णय-तन्त्रमें कहा है,—

> "आदौ प्रजापतेर्जाता मुखाद्विप्राः सदारकाः।' इत्यादि उपक्रमसे
> पादाच्छूद्र इय सम्भूतस्त्रिवर्णस्य च सेवकः।
> होमनामा सुतस्तस्य प्रदीपस्तस्य पुत्रकः।
> कायस्थस्तस्य पुत्रोऽभूत् बभूव लिपिकारकः।
> कायस्थस्य त्रयः पुत्रा विख्याता जगतीतले॥
> चित्रगुप्तश्चित्रसेनो विचित्रश्च तथैव च।
> चित्रगुप्तो गतः स्वर्गं विचित्रो नागसन्निधौ।
> चित्रसेनः पृथिव्यां वै इति शूद्रः प्रचक्षते॥
> वसुघोषो गुहो मित्रो दत्तः करण एव च।
> भृत्यश्चैव सप्तैते चित्रसेनसुता भुवि॥"

इत्यादि वचनोंसे और अग्निपुराणमें कही गई जाति-मालासे, चित्रगुप्त और उनके वंशधरोंको श्रेष्ठ वर्ण नहीं कह सकते। फिर कमलाकरके

शूद्रधर्मतत्त्वमें एक कायस्थकी उत्पत्ति इस प्रकार बतलाई गई है,—

"माहिष्यवनितासूनुर्वैदेहादयः प्रसूयते।
स कायस्थ इति प्रोक्तस्तस्य कर्म्म विधीयते॥
अक्षरं स्यायं माहिष्या वैश्याहिमाणो वैदेहः।
गोपानां देशजातानां लेखनं स समाचरेत्॥
गणकत्वं विचित्रञ्च बीजपाटी प्रभेदतः।
अधमः शूद्रजातिभ्यः पञ्च संस्कारवानसौ।
चातुर्वर्ण्यस्य सेवाहि लिपिविलेखनसाधनम्॥
शिखां यज्ञोपवीतञ्च कायस्थाद्यो विवर्ज्जयेत्॥"

'वैदेहके औरससे और माहिष्यपत्नीके गर्भसे जो उत्पन्न हुये हैं, वे कायस्थ हैं। देशीय लिपिका लिखना, गणना करना, शिल्पकार्य करना, बीज आदिका बोना, चार वर्णकी सेवा करना इत्यादि उनका कार्य बतलाया गया है। यह पांचो संस्कार अधम शूद्रजातिके करनेके हैं, इसलिये इनको चोटी, यज्ञोपवीत, गैरिकवस्त्र और देवताका अर्घ न रखना चाहिये।'

इसके अतिरिक्त शब्दकल्पद्रुमोद्धृत देवीवरके "उपविष्टा द्विजाः पञ्च तथैव शूद्रपञ्चकाः।" इस कथनसे यही प्रमाणित होता है कि, आदिशूरकी सभामें पञ्च ब्राह्मणोंके साथ आये हुये पञ्चकायस्थ आदि शूद्र ही ठहराये गये थे।

इसके सिवा वृहद्धर्मपुराणमेंभी लिखा है,—

"शूद्रायां वैश्यजातः करणो वर्णसङ्करः॥" (उत्तर १३ अ०)

इत्यादि प्रमाणसे किसी लोगोंका मत है कि वैश्यसे उत्पन्न वर्णसङ्कर करण भी कायस्थ थे।

विरुद्धमत-खण्डन।

विरुद्धवादी लोग चित्रगुप्तके वर्ण और धर्म सम्बन्धमें जिन युक्तियोंको दिखलाते हैं, उनके उत्तरमें हम पहिले ही कमलाकरधृत वृहद्ब्रह्मखण्डका प्रमाण उद्धृत कर चुके हैं कि, ब्रह्माने उत्पत्ति कालमें ही चित्रगुप्तसे कहा था—"तुम कायस्थ' जिस स्थलसे क्षत्रिय उत्पन्न हुए हैं उसी स्थानसे उत्पन्न होनेके कारण क्षत्रिय नामसे प्रसिद्ध होगे। तुम्हारे वंशके लोग भी तुम्हारे ही समान अर्थात् कायस्थ नामसे पुकारे जावेंगे। उन लोगोंका विवाह क्षत्रिय कन्याओंके साथ होगा। क्षत्रियवर्णके लिये जो संस्कारादि कर्म बतलाये हैं, उन सबको वे मेरी आज्ञाके अनुसार करेंगे।"

ब्रह्माके इस कथनसे चित्रगुप्त और उनके वंशधर कायस्थ क्षत्रिय हैं, इसमें कुछ भी सन्देह उपस्थित नहीं होता।

मिताक्षरामें कायस्थोंको राजवल्लभ, शूलपाणिकृत दीपकलिकामें राजसम्बन्धहेतु प्रभावशाली और अपरार्क-विरचित याज्ञवल्क्यनिबन्धमें कराधिकृत या कराधिकारी कहा गया है। कायस्थ सदासे राजाओंके प्रिय होते आये हैं। यह राजकार्यमें निपुण होते हैं, और कर वसूल करनेमें इनका मुख्यतः हाथ रहता है; इस लिये इन लोगोंके द्वारा प्रजाको अधिक पीड़ा पहुंच सकती है। अतः याज्ञवल्क्य और अग्निपुराणकार राजाओंको इन (कायस्थ) लोगोंके प्रति विशेष लक्ष्य रखनेका आदेश दे गये हैं।

कायस्थोंके हाथसे किसी किसी जगह प्रजा अधिक पीड़ित होती रही, इसी लिये औशनस-धर्मशास्त्रमें, ब्रह्मवैवर्तपुराणके जन्मखण्डमें और राजतरङ्गिणी ग्रन्थमें कायस्थोंकी निन्दा की गई है। लेकिन किसी भी शास्त्रमें कायस्थोंको हीनवर्ण नहीं कहा गया है। कमलाकरने जिन प्रतिलोमजात कायस्थोंका उल्लेख किया है, वह चित्रगुप्तके वंशधर कायस्थ नहीं हैं और न उनमें उस जगह लिखी गई बातें ही सङ्घटित होती हैं। ऐसा मालूम पड़ता है कि मेदनीपुरवासी आधुनिक 'काथ'-जातिका नाम संस्कृत भाषामें उन्हीं (कमलाकर)ने 'कायस्थ' रख दिया है। किन्तु चित्रगुप्तके वंशधर कायस्थोंको उन्होंने भी कायस्थ-क्षत्रिय कह कर परिचय दिया है। चित्रगुप्तने देवकन्या सुदक्षिणाके साथ विवाह किया था। "ब्राह्मणाःसोन्द्रियग्रामो देवाग्रीयेश-सुक्च मे। भोजनाद्य सदा तस्मादाहृति दीयते द्विजैः॥" इत्यादि पद्मपुराणके कथनानुसार ब्राह्मण जब चित्रगुप्तको देव मान कर पूजते थे, तब धर्मशर्माने अपनी कन्याका उनसे पाणिग्रहण कर दिया; तो इसमें दोष कौनसा हो गया? इसके सिवा उस समय यौनसृष्टि या सङ्करोत्पत्तिकी कोई चर्चा ही न थी; नहीं तो ब्राह्मण

ऋषिकन्या शर्मिष्ठाका विवाह क्षत्रिय राजा ययातिके साथ कभी नहीं हो सकता था। शब्द कल्पद्रुममें "आचारनिर्णयतन्त्र" और "अग्निपुराणीय जातिमाला" से जो प्रमाण लिये गये हैं, वह आधुनिक रचना है, इसमें कुछ भी संदेह नहीं। तन्त्रसार, महासिद्धि सारस्वत, आगमतत्त्वविलास, वाराहीतन्त्र और रुद्रयामलतन्त्रमें भिन्न भिन्न ५०। ६० तन्त्रोंका उल्लेख है। परन्तु उपर्युक्त किसी भी तन्त्रमें "आचारनिर्णयतन्त्र"का नाम तक नहीं आया है। भारतके नाना स्थानोंमें सैकड़ों तन्त्र-ग्रन्थोंका पता लगा है, परन्तु दूसरी जगह कहीं "आचारनिर्णयतन्त्र" की एक भी पोथी नहीं मिली। सिर्फ शब्दकल्पद्रुमके सङ्कलयिता राजा राधाकान्त देवके पुस्तकालयमें ही एक प्रति मिलती है। इस पुस्तकमें ७० श्लोक हैं। इसकी लिपि देखनेसे ही स्पष्ट मालूम हो जाता है कि, यह किसी आधुनिक लेखककी लिखी हुई है। यह पुस्तक किसी उद्देश्य-सिद्धिके लिये ही लिखी गई है ;—इस बातको वे ही हृदयङ्गम कर सकेंगे, जो इस पुस्तक को देख चुके हैं। अग्निपुराणीय जातिमालाके विषयमें भी ऐसा ही है। कलकत्तेकी एशियाटिक सोसाइटी और बम्बई आदि नाना-स्थानोंसे मूल अग्निपुराण प्रकाशित हुये हैं, पर उनमेंसे किसीमें शब्दकल्पद्रुममें कही गई अग्निपुराणीय जातिमालाका एक भी श्लोक नहीं मिलता। और की तो क्या, भारतसे जितने हस्तलिखित ग्रन्थ प्राप्त हुये हैं, उनकी विवरण-पुस्तिकामें भी इस जातिमालाका उल्लेख नहीं। बङ्गालके बाहर जो चित्रगुप्तके वंशके कायस्थ रहते हैं, उन्हें भी इस जातिमालाका पता न था। बङ्गालमें सिर्फ वसु, घोष आदि उपाधि धारियोंका वास है और इसके उल्लेखसे यह जातिमाला किसी बङ्गालीकी बनाई हुई और आधुनिक ही प्रतीत होती है। इसलिये 'आचारनिर्णय तन्त्र'की तरह यह जातिमाला भी किसी विशेष उद्देश्यसिद्धिके लिये हालमें बनाई गई है इसमें सन्देह नहीं। इसी तरह शब्दकल्पद्रुमोक्त 'कुलप्रदीप'के वचन भी प्राचीन-शास्त्र-सम्मत न होनेके कारण आधुनिक हैं ; और वह किसी विशेष उद्देश्यसिद्धिके लिए लिखे गये हैं, इस लिए वह भी त्याग करने योग्य हैं। 'शब्दकल्पद्रुम'में कही गई देवीवरकी उक्ति भी काल्पनिक है, क्योंकि देवीवरके मूल कुलग्रन्थमें कहीं भी ऐसे वचन नहीं हैं। उपरोक्त प्रमाणोंकी भांति "बृहद्धर्मपुराण"के वचन भी कायस्थोंके विषयमें ठीक नहीं जंचते। शब्दरत्नाकर अभिधानके—

"करणं साधने गात्रे पुमान् शूद्राविशोः सुते।
शूद्रे कायस्थभेदेऽपि क्लीबं करणमिन्द्रियम्॥"

इत्यादि प्रमाणसे करण कायस्थ और शूद्र-वैश्यासे उत्पन्न करण, सम्पूर्ण भिन्न प्रतीत होते हैं।

सान्धि-विग्रहिक।

कायस्थका अर्थ लेखक या राजाका लेखक है—इस बातको सब ही स्वीकार करते हैं। विष्णुस्मृति और बृहत्पराशरस्मृतिमें राजसभाके लेखकको ही कायस्थ कहा है। उक्त स्मृति और शुक्रनीतिसे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि, पहिले कायस्थ लोग ही हिन्दूराजाओंके समयमें सेना-विभागका हिसाब रखनेके लिए, कर वसूल करनेके लिए और विचारालयके कागजात लिखनेके लिए राजलेखक रूपसे रखे जाते थे। अर्थात् लिखनेका काम एकमात्र कायस्थोंके ही हाथमें था। पहिले हिन्दू-राजसभामें लिखनेके काममें कायस्थोंके सिवा दूसरे नहीं रखे जाते थे। इसी लिए कायस्थ या राजसभाके लेखक राज्यका साधनाङ्ग समझे जाते थे। मनुसंहिताके ८वें श्लोकके भाष्यमें मेधातिथिने ऐसा लिखा है :—

"राजाधराज्ञासनानिककायस्थहस्तलिखितान्येव प्रमाणी भवन्ति।"

अर्थात्—राजदत्त ब्रह्मोत्तर भूमि आदिका शासन, जो एक कायस्थके हाथका लिखा हुआ है, वही प्रमाणित है। मिताक्षरामें लिखा है,—

"सन्धिविग्रहकारी तु भवेद्यस्तस्य लेखकः।
स्वयं राज्ञा समादिष्टः स लिखेद्राजशासनम्॥"
(आचाराध्याय, ३१९ श्लोक)

जो व्यक्ति राजाका सन्धि-विग्रहकारी लेखक होगा, वह ही राजाके आदेशानुसार राजशासन लिखेगा।

अपरार्कके याज्ञवल्क्यनिबन्धमें भी व्यासके वचन ऐसे उद्धृत हैं,—

"राज्ञा तु स्वयमादिष्ट-सन्धिविग्रहलेखकः।
ताम्रपट्टे पटे वापि प्रलिखेद्राजशासनम्॥"

सन्धि-विग्रह-लेखक, स्वयं राजाकी आज्ञासे ताम्र-पट्ट या कपासके कागज पर राजशासन लिखेंगे। भारतवर्षके नाना स्थानोंसे ताम्रखण्डों पर लिखे हुए जितने शासन निकले हैं, उनके सन्धिविग्रहकारी लेखक "सान्धिविग्रहिक" नामसे प्रसिद्ध हुए हैं। पहिले सान्धिविग्रहिकका पद एकमात्र कायस्थोंको ही मिलता था। प्राचीन संस्कृत ग्रन्थोंमें सान्धिविग्रहिक, "सन्धिविग्रह-लेखक" (अपरार्क ३।८६, वीरमित्रोदय और क्षेमवर्द्धनयश्नी ६ठा अ०) "सन्धिविग्रहकायस्थ" (सोमदेवका कथा-सरित्सागर ४२।८१) और "सन्धिविग्रहाधि-करणाधिकृत" (Ind. Ant. VI p.10) नामसे प्रसिद्ध थे।

अग्निपुराणमें लिखा है :—

"सान्धिविग्रहिकः कार्यः षाड़्गुण्यादि विशारदः।" (२२०।१)

सान्धिविग्रहिक छह गुणोंमें विशारद होना चाहिये। वे षट्गुण कौन कौनसे हैं? मनुसंहिताके मतसे—

"सन्धिञ्च विग्रहञ्चैव यानमासनमेव च।
द्वैधीभावं संश्रयञ्च षड़्गुणांश्चिन्तयेत्सदा॥"

सन्धि, विग्रह, यान, आसन द्वैधीभाव और संश्रय इन छह गुणोंकी चिन्ता, गम्भीरतापूर्वक करना चाहिये। मनुसंहितामें और भी है,—

"मौलान् शास्त्रविदः शूरान् लब्धलक्षान् कुलोद्गतान्।
सचिवान् सप्तचाष्टौ वा प्रकुर्वीत परीक्षितान्॥
तैः सार्द्धं चिन्तयेन्नित्यं सामान्यं सन्धिविग्रहम्।" (७। ५४, ५६।)

सुप्रतिष्ठित वेदादि धर्मशास्त्रोंमें पारदर्शी, शूर और युद्धविद्यामें निपुण और कुलीन—ऐसे सात आठ मन्त्री, प्रत्येक राजाके पास रहने चाहिये। राजाओंको, सन्धिविग्रह आदिकी सलाह उन्हीं बुद्धिमान् सचिवोंसे लेनी चाहिये।

मिताक्षरामें विज्ञानेश्वरने लिखा है,—

"एवं मन्त्रिणः पूर्वं कृत्वा तैः सार्द्धं राज्ये सन्धिविग्रहादिलक्षणं कार्यं चिन्तयेत्। समस्तैर्व्यस्तैश्च अनन्तरं तेषामभिप्रायं ज्ञात्वा सकलशास्त्रार्थ-विचारकुशलेन ब्राह्मणेन पुरोहितेन सह कार्यं विचिन्त्य ततः स्वयं बुद्ध्या कार्यं चिन्तयेत्।"

मिताक्षराके उपर्युक्त वचनसे यह मालूम होता है कि, राजाके जो ७-८ मंत्री रहते थे, वे सब ही ब्राह्मण नहीं थे। क्यों कि; उसके बाद ब्राह्मणके साथ क्या क्या परामर्श करेंगे—यह भी लिखा है।

(याज्ञवल्क्य, १म अध्याय, ३१२वां श्लोक)

शुक्रनीतिमें स्पष्ट लिखा हुवा है,—

"पुरोधा च प्रतिनिधिः प्रधानसचिवस्तथा॥ ६९॥
मन्त्री च प्राड़्विवाकश्च पण्डितश्च सुमन्त्रकः।
अमात्यो दूत इत्येता राज्ञः प्रकृतयो दश॥ ७०॥
दश प्रोक्ता पुरोधाद्या ब्राह्मणाः सर्व एव ते।
अभावे क्षत्रिया योज्यास्तदभावे तथोरुजाः॥ ४१८॥
नैव शूद्रास्तु संयोज्याः गुणवन्तोऽपि पार्थिवैः।" (२य अध्याय)

पुरोहित, प्रतिनिधि, प्रधान, सचिव, मन्त्री, प्राड़्विवाक, पण्डित, सुमन्त्र, अमात्य और दूत ये दश व्यक्ति राजाकी प्रकृति हैं। उक्त पुरोहित आदि दशो लोग ब्राह्मण होने चाहिये, ब्राह्मणके अभावमें क्षत्रिय और क्षत्रियके अभावमें वैश्य भी नियुक्त हो सकेंगे। शूद्र गुणवान् होने पर भी राजा उक्त कार्योंके लिए नियुक्त न कर सकेंगे। उपरोक्त सात-आठ सचिवोंमें एक सान्धिविग्रहिक भी थे। शुक्रनीतिमें इन्हीं सान्धिविग्रहिकका "सचिव" नामसे उल्लेख किया गया है। यह सान्धिविग्रहिक सचिव शूद्र नहीं हो सकते—इस बातका भी शुक्रनीतिमें स्पष्ट प्रमाण मिलता है। हारीतस्मृतिसे यह साफ जाहिर होता है कि, सन्धि विग्रह आदि क्षत्रियोंका ही धर्म है।

"राज्यस्थः क्षत्रियश्चापि प्रजा धर्मं च पालयन्।
कुर्यादध्ययनं सम्यग्यजेद्यज्ञान् यथाविधि॥
नीतिशास्त्रार्थकुशलः सन्धिविग्रहतत्त्ववित्।
देवब्राह्मणभक्तश्च पितृकार्यपरस्तथा॥
धर्म्म्यं यजनं कार्यमधर्मपरिवर्ज्जनम्।
उत्तमां गतिमाप्नोति क्षत्रियोऽप्येवमाचरन्॥"

(हारीतस्मृति २य अ०)

इन प्रमाणोंसे जब यह सिद्ध हो गया कि, सन्धि-विग्रह आदि कार्य क्षत्रियोंका ही था, तब स्मृतिमें कहे गये सन्धिविग्रहकारी कायस्थ वा सान्धिविग्रहिक, क्षत्रियके सिवा दूसरी जाति नहीं हो सकते। ब्राह्मणोंके धर्मप्रतिष्ठापक गुप्तवंशीय सम्राटोंसे ले कर गोब्राह्मण-भक्त बङ्गालके सेनवंशीय राजाओंके समय तक जितने राजा हुए हैं, उनकी सभाओंमें

कायस्थ ही सान्धिविग्रहिकके पद पर नियुक्त रहे हैं। इस विषयमें एक पुरातत्त्वविद् ब्राह्मणने लिखा है,—

"It is a noticeable fact that the सन्धिविग्रही or minister of war and peace and the secretary, were always Kâyasthas or men of the writer-caste. This not only occurs in the Kataka plates, but in grants or inscriptions found in Ceylon and Central India." (Indian Antiquary, Vol. V. p. 57.)

संस्कृतज्ञ अंग्रेज विद्वानोंने सान्धिविग्रहिक शब्दका इस प्रकार अर्थ किया है,—

"A great officer for making treaties and declaring war. This officer or a subordinate, is deputed at the end of the grant, to give effect to it." (Journal of the Asiatic Society of Bengal, 1875. pt. I. p. 5)

"Secretary for foreign affairs."—(Tawney's Kathâsarit-Sâgar. Vol. IV. p. 383.)

कायस्थ या लेखक।

यदि कोई कहे, जो कायस्थ सान्धिविग्रहिक जैसे ऊंचे पद पर नियुक्त थे, वे या उनके वंशधर क्षत्रिय हो भी सकते हैं; परन्तु जो कायस्थ पटवारी मुहरिर आदिका काम करते थे, वे तो कमलाकरद्वारा कहे गये माहिष्या और वैदेहसे उत्पन्न हुए अधम शूद्र ही हैं। प्रकृत शास्त्रमें सामान्य पटवारी और मुहरिरोंके लिए कैसा स्थान था, हमें इस बातकी जांच करना जरूरी है।

शुक्रनीतिमें लिखा है—

"स्थास्नोर्दूरं नृपात्तिष्ठे दस्त्रपाताद्वहिः सदा ॥
सशस्त्रो दशहस्तं तु यथादिष्टं नृपप्रियाः।
पञ्चहस्तं वसेयुर्वै मन्त्रिणो लेखकाः सदा ॥" (२।२६६—७)

राजाको आग्नेय-अस्त्रसे और जहां अस्त्र गिरते हैं—ऐसे स्थानसे सदा दूर ही रहना चाहिये। राजासे दश हाथकी दूरी पर उनके प्रिय शस्त्रधारी, पांच हाथकी दूरी पर मन्त्री और उनके पास एक बगलमें लेखक रहेंगे।

शुक्रनीतिमें और एक जगह लिखा :

"नृपोऽधिकृतसभ्याश्च स्मृतिर्गणकलेखकौ।
हेमाग्न्यम्बु स्वपुरुषाः साधनाङ्गानि वै दश ॥
एतद्दशाङ्गकरणं यस्या मध्यस्थ पार्थिवः।
न्यायान्याये कृतमतिः सा सभाध्वरसन्निभः ॥" (४।५५७—८)

राजा, अध्यक्ष, सभ्य, स्मृति, गणक, लेखक, हेम, अग्नि, जल और सत्पुरुष—ये दस साधनाङ्ग हैं।

उपर्युक्त प्रमाणसे यह स्पष्ट विदित हो जाता है कि, जो लेखक राजाके ब्राह्मण-मन्त्रीके पास बैठते थे, और जो राजाके अङ्ग गिने जाते थे, वे कदापि शूद्र नहीं हो सकते।

अङ्गिरः स्मृतिमें कहा है,—

"शय्याग्रं शूद्रसम्पर्कं शूद्रेण च सहासनम्।
शूद्राद्ज्ञानागमं कश्चित् ज्वलन्तमपि पातयेत्" ॥ ४८ ॥

इस स्मृतिवचनके अनुसार जब शूद्रके साथ बैठना भी ब्राह्मणके लिये निषिद्ध है, तब हिन्दू-राजसभामें ब्राह्मण-मन्त्रीके पास जो लेखक या कायस्थ बैठते थे, वे अवश्य ही द्विजाति होने चाहिये।

अमरकोषमें भी लेखक शब्दका वर्ग क्षत्रिय बतलाया गया है और शुक्रनीतिमें भी स्पष्ट लिखा हुआ है,—

"ग्रामपो ब्राह्मणो योग्य; कायस्थो लेखकस्तथा।
शुल्कग्राही तु वैश्यो हि प्रतिहारश्च पादजः ॥" (२।४२०)

अर्थात् हिन्दू राजाओंके समयमें ग्रामोंका शासन ब्राह्मण करते थे, कायस्थ उनके सहकारी (लेखक, मुहरिर वा पटवारी) रहते थे, वैश्य कर वसूल करते थे और शूद्र नौकर (सेवक)का काम करते थे। शुक्रनीतिके उक्त वचनसे साफ जाहिर है कि, लेखक-कायस्थ ब्राह्मण नहीं, वैश्य नहीं और न शूद्र हैं। जब शास्त्रमें चार वर्णके सिवा पांचवां वर्ण ही नहीं माना गया, तब ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र वर्णके सिवा क्षत्रियवर्ण ही बच रहता है, इस लिए कायस्थ क्षत्रियवर्ण ही प्रमाणित होते हैं। कोई कोई कायस्थोंके लिए पांचवें वर्णकी कल्पना करता है। परन्तु मनु ही जब पांचवां वर्ण नहीं है ऐसा कह गये हैं, तब पांचवें वर्णकी कल्पना अग्राह्य और अशास्त्रीय है। दाक्षिणात्यमें जो जाति अस्पृश्य

और समाजसे बहिष्कृत होती है, वह 'पञ्चम' कहलाती है। कायस्थोंको ऐसा मानना बिल्कुल अनुचित है। कोई कोई छपी हुई 'व्याससंहिता'के "वणिक्किरातकायस्थ मालाकारकुटुम्बिनः।" इस वचनसे कायस्थोंको अन्त्यज कहता है। परन्तु यह श्लोक वास्तविक नहीं; बल्कि "वणिक् विराट-कायस्थ मालाकार-कुटुम्बिनः।" इत्यादि श्लोकका विकृत पाठ है, इस बातका अन्यत्र प्रमाण मिलेगा।

(कायस्थका वर्णनिर्णय ७ पृष्ठमें देखिये।)

अब पहिले कहे हुए पुराण और स्मृतिके प्रमाणों द्वारा कायस्थ क्षत्रियवर्ण ही ठहरते हैं। कोई कोई कहा करता है कि, स्कन्दपुराणमें रेणुकाके माहात्म्यसे दाल्भ्याश्रममें चान्द्रसेनी कायस्थोंकी उत्पत्तिकी कथामें—

"कायस्थ एष उत्पन्नो क्षत्रिण्यां क्षत्रियात् ततः।
रामाज्ञया स दाल्भ्येन क्षात्रधर्माद्वहिष्कृतः॥४४॥
दत्तकायस्थधर्मोऽस्मै चित्रगुप्तस्य यः स्मृतः।
प्राप्तकायस्थनामत्वाद्वंश्या क्षत्रिय भूभृताम्॥४५॥
तस्य भार्याङ्कता चित्रगुप्त-कायस्थवंशजा।
तद्वंशजाश्च कायस्थाः दाल्भ्यगोत्रास्ततोऽभवन्॥४६॥"

इन श्लोकोंके आधार पर कोई कोई कहता है कि, विशुद्ध क्षत्रिय चन्द्रसेन राजाके औरससे उत्पन्न होने पर भी जब उनके पुत्रको "क्षात्रधर्माद्वहिष्कृतः" कहा है, तब कायस्थ और क्षत्रिय एक नहीं हो सकते। इस विषय पर महापण्डित गागाभट्टने अपने "कायस्थ-धर्मप्रदीप"में ऐसा मत प्रकट किया है,—

"रामाज्ञया स दाल्भ्येन क्षात्रधर्माद्वहिष्कृतः" इति वचनविरोधः तत्र क्षात्रधर्मशब्दः शौर्यादिक्षत्रियसाधारणधर्मपरः न तु श्रौतस्मार्त्तयावद्धर्मपरः तथात्वे देवार्च्चनादि धर्माणामपि निषेधापत्तेः किन्तु तत्राश्रमे महाभाग इत्याद्युपक्रम्य कायस्थोत्पत्तिमुक्त्वा "दाल्भ्योपदिष्टमार्गे वै" इत्यादि यज्ञदानतपःशीलाश्चतीर्थरताः सदा" इत्युपसंहारे उपक्रमोपसंहाराभ्यामपि चान्द्रसेनीयकायस्थानां शुद्धक्षत्रियत्वं प्रतीयते।"

(गागाभट्टकृत कायस्थधर्मप्रदीप)

महामहोपाध्याय श्रीयुत बापुदेव शास्त्रीजी और महामहोपाध्याय कैलाशचन्द्र शिरोमणिजी जैसे प्रमुख विद्वान् भी गागाभट्टके उक्त वचनका समर्थन कर गये हैं।

सह्याद्रिखण्डके अमलकीग्रामके माहात्म्यमें सहस्रार्जुनवधके प्रसङ्गमें ६६वें अध्यायमें लिखा है,—

"चन्द्रसेनस्य राजर्षेर्भार्या सा दुःखिता सती॥६४॥
अपृच्छत् प्रणिपत्याथ रामं दाल्भ्यं च यत्नतः।
सुतोऽयं मम कायस्थो भविष्यति वचस्तव॥६५॥
धर्मोऽस्य को भवेद्ब्रह्मन् क्षात्रधर्माद्वहिष्कृतः।
श्रुत्वा तद्वचनं रामः पुनराह महामतिः॥६६॥

राम उवाच

क्षत्रियाणां हि संस्कारोऽध्ययनं यज्ञकर्म यत्।
तत्करिष्यति पुत्रस्ते प्रजापालनकर्मणि॥६७॥
नियतः चित्रगुप्तस्य स्वधर्मोऽस्य भविष्यति।
उपजीव्यं भवेद्भद्रे लिपि राजसु सत्तमे"॥६८॥

अर्थात्—'उस समय राजर्षि चन्द्रसेनकी भार्या दुःखित हो कर राम और दाल्भ्यको नमस्कार करके पूछने लगीं, 'आपके वचनानुसार मेरा यह शिशु (पुत्र) कायस्थ नामसे प्रसिद्ध होगा यह ठीक है; परन्तु हे ब्रह्मन्! यह पुत्र जब क्षात्रधर्मसे बहिष्कृत कर दिया गया है, तब इसका कौनसा धर्म होगा?'

महामुनि परशुराम उनके इस प्रश्नको सुन कर फिर कहने लगे,—'तुम्हारा पुत्र प्रजापालनमें रत रहेगा। क्षत्रियोंका जैसा संस्कार है, जैसा अध्ययन है और जैसा यज्ञकर्म है, तुम्हारे पुत्रका भी वही होगा। अर्थात् चित्रगुप्तके समान ही रहेगा। हे भद्रे! राजाओंके पास रह कर लेखनकार्यमें ही इसकी उपजीविका होगी।' इसके बाद उक्त पुराणमें स्पष्ट ही लिखा है,—

"कायस्थ एष उत्पन्न क्षत्रिण्यां क्षत्रियात्तथा।
रामाज्ञया स दाल्भ्येन क्षात्रधर्माद्वहिष्कृतः॥७२॥
ततः क्षत्रियसंस्कारात् वेदमध्यापयन् मुनिः।
ततः स्वधर्मनिष्ठोऽयं गार्हस्थ्ये संनियोजितः॥७३॥
उपजीव्यं तु तत्ते न चित्रगुप्तस्य यत्स्मृतम्।
दाल्भ्येन मुनिना तेन सुखिनो गोत्रजास्तव॥७४॥
भविष्यन्ति न सन्देहो यावच्चन्द्रदिवाकरौ।"

कायस्थ ऐसे ही क्षत्रियों द्वारा क्षत्रियाणियोंके गर्भसे उत्पन्न हुए हैं। परशुरामके आदेशानुसार वही कायस्थ क्षात्रधर्मसे बहिष्कृत होने पर भी दाल्भ्य मुनिने उन्हें क्षत्रिय संस्कारोंमें संस्कृत करके वेद अध्ययन कराया, फिर उन्हीं स्वधर्मनिष्ठ कायस्थों-को गार्हस्थ्य धर्म बतलाया। चित्रगुप्तकी उपजीविका ही उनकी उपजीविका हुई। दाल्भ्यमुनिने आशीर्वाद

दिया कि, जब तक चन्द्र और सूर्य रहेंगे, तब तक तुम्हारे वंशीय और तुम सुख भोग करते रहोगे।

उपर्युक्त प्रमाणोंसे यह स्पष्ट विदित होता है कि, चित्रगुप्तके वंशीय और चन्द्रसेनके वंशीय कायस्थ क्षत्रिय हैं।

चित्रगुप्तका वंश।

चित्रगुप्तकी उत्पत्तिके विषयमें सबसे पहिले जो पुराणके वचन उद्धृत किये गये हैं, उन वचनोंके साथ चित्रगुप्तके वंशका ऐसा परिचय मिलता है ;—

"चित्रगुप्तान्वये जाताः शृणु तान् कथयामि ते।
गौडाख्या माथुराश्चैव भटनागरसेनकाः॥
अहिष्ठानाः श्रीवास्तव्या शकसेनास्तथैव च।
कुशलाः सर्वशास्त्रेषु अम्बष्ठाद्या नराधिप॥
पुत्रान् वै स्थापयामास चित्रगुप्तो महीतले।
धर्माधर्मविवेकज्ञः चित्रगुप्तो महामतिः॥
भूयस्तान् बोधयामास सर्वसाधनमुत्तमम्।
पूजनं देवतानाञ्च पितृणां यज्ञसाधनम्॥
वर्णानां ब्राह्मणानां च सर्वं ह्यातिथिसेवनम्।
प्रजाभ्यः करमादाय धर्माधर्मविलोचनम्।
कर्तव्यं हि प्रयत्नेन पुत्राः स्वर्गस्य काम्यया॥"

अहल्याकामधेनुसे उद्धृत भविष्यपुराणमें भी लिखा है :—

"चित्रगुप्तेन सा कन्या चाष्टौ पुत्रानजीजनत्।
चारुःसुचारुश्चित्राख्यो मतिमान् हिमवांस्तथा।
चित्रचारुश्चारुणश्च तष्टमोऽतीन्द्रियस्तथा॥
द्वितीया देवकन्ये व दक्षिणा या विवाहिता।
तस्याः पुत्राश्चत्वारस्तेषां नामानि वै शृणु॥
भानुस्तथा विभानुश्च विश्वभानुश्च वीर्यवान्।
पुत्रा द्वादश विख्याता विचेरुस्ते महीतले॥
मथुरायां गतश्चारु माथुराख्यमितो गतः।
सुचारु गौड़देशे तु तेन गौडोऽभवन्नृपः॥
भट्टनदीं गतश्चित्रो भट्टनागरिकः स्मृतः।
श्रीवासनगरे भानुस्तस्माच्छ्रीवास्तवः स्मृतः॥
अम्बामाराध्य हिमवान् तेनाम्बष्ठ इति स्मृतः।
सभार्यो मतिमान् गत्वा सखसेनत्वमागतः॥
शूरसेनं विभानुश्च तेन सूर्यध्वजः स्मृतः।"

युक्तप्रदेशके कायस्थोंके "कुलग्रन्थ"में, वहांके समाजमें प्रचलित "पातालखण्ड"के कथनमें और चित्रगुप्तकी पूजापद्धतिमें गौड़, माथुर, भटनागर, सेनिक या शकसेन, अम्बष्ठ, श्रीवास्तव, अष्टान, करण, सूर्यध्वज, वाल्मीक, कुलश्रेष्ठ और निगम—ऐसे बारह भेद चित्रगुप्तज कायस्थोंके पाये जाते हैं। इन्हीं बारह श्रेणियोंके कायस्थोंसे इक्कीस प्रकारके कायस्थ हुए हैं—ऐसा उक्त "पातालखण्ड"में लिखा है। उनके भेद इस प्रकार किये गये हैं :—

१ सूर्यध्वज, २ चन्द्रहास, ३ शुरिचन्द्रार्द, ४ चन्द्रदेह, ५ रविदास, ६ रविरत्न, ७ रविधीर, ८ रविपूजक, ९ गम्भीर, १० प्रभु, ११ वल्लभ, १२ उदारहास रवि, १३ मधुमान्, १४ भद्र, १५ सुभद्र, १६ श्रीगौड़, १७ राजधाना, १८ अनिन्द, १९ सम्भ्रम, २० विश्वास, और २१ पद्मतत्त्वज्ञ। इन इक्कीस श्रेणियोंमें भी हर एकके बीस बीस भेद हैं। पश्चिमाञ्चलके कायस्थोंके कुलग्रन्थकी भांति बङ्गालके उत्तरराढ़ीय कायस्थोंके कुलग्रन्थमें भी लिखा है :—

"चित्रगुप्तः क्रियोपेतः सर्वशास्त्रेषु पूज्यते॥१६॥
सेनौ पुत्राष्टकाः पृथक् सर्वसम्पत्तिसंयुताः।
गौडाख्यो माथुरश्चैव सकुसेनः भट्टनागरः॥
अम्बष्ठश्च श्रीवास्तव्यः कर्णोपकर्ण उच्यते।"

कुलाचार्य पञ्चाननने अपनी "कुलकारिका"में ऐसा लिखा है :—

"वेदोत्तराष्टशताब्दे शाके कुम्भस्थभास्करे।
साध्याः सौकालीनश्चैव तथा मौद्गल्य एव च॥
काश्यपविश्वामित्रौ च पञ्चगोत्रक्रमेण वै।
अनादिवरसिंहश्च सोमघोषश्च सुधीरः॥
पुरुषोत्तमदासश्च देवदत्तो महामतिः।
सुधीराग्रगणश्च मित्रकुले सुदर्शनः॥
अयोध्यानिवासी सिंहो घोषश्चैव तथा पुनः।
१ नृदासौ दासः कोलाञ्चाद्राढमागतः॥
मायापुरीनिवासिनौ दत्तमित्रौ तथा गतौ।"
"नर्मदायास्तीरे पुरीं कर्णाखेति मनोहरम्॥
महैश्वर्यमयं सौरं विश्वकर्मेण निर्मितम्॥
तथा श्रीकर्ण सञ्जीवकमभवत् तत्पुरीश्वरः।
ततस्तेन पुरीं दत्त्वा धर्मराजपुरं ययौ॥
तद्वंशजो वसुमतीसिंहाख्यश्च नरेश्वरः।
तद्वंशजाः क्रमेणैव नानादेशान्तरं गताः॥
राधानूपालपुत्रश्च राधागोपालसंज्ञकः।
तस्मात्तनोऽनादिवरसिंहः ख्यातो महाबली॥

धार्मिकः सत्यवादी च जितेन्द्रिय सदाशयः ।
महाधनुर्धरो-वीरः कुलश्रेष्ठः कुलाधिपः ॥
राजकार्यपरिज्ञाता सर्वकार्यविशारदः ।"
"चित्रगुप्तान्वयो जातो विमान् उपकर्षकः ।
तस्यात्मजः सूर्यध्वजो घोषवंशप्रदीपतिः ॥
सूर्यदेवप्रसादेन सूर्याख्यो नगरं वसेत् ।
तद्वंशप्रकर्षेण नानादेशान्तरं गताः ॥
चन्द्रहासगिरी क्षेचित् चन्द्रहासगिरीश्वरः ।
मध्यदेशे त्वयोध्यायां चन्द्रात्सूर्यपदोद्भवः ।
तद्वंशजः श्रीसोमघोषः श्रीकर्णस्य कुलाग्रजः ॥"

इस विषयमें कुलानन्दने अपने उत्तरराढ़ीय 'कायस्थकारिका' नामके बङ्गला कुलग्रन्थमें जो कुछ लिखा है, उसका अक्षरशः अनुवाद नीचे दिया जाता है :—

"विधिने किया एक जन, कर्म लिखनेके लिए ।
चित्रगुप्त नाम उसका, हुआ फिर वह इस लिए ॥
कायस्थकी उत्पत्ति, हुई यमके समान ।
पापपुण्य लिखनेके, हेतु हुआ फिर विधान ॥
बादमें फिर हुए, उनके तीन जो लड़के ।
चित्रसेन चित्ररथ, नाम विचित्र उनके ॥
चित्रसेन स्वर्गमें गया विचित्र पातालमें ।
चित्ररथ मर्त्यमें आया, सेनी जो कहाता ॥
यमुना विभा करमें हरिषके अन्तरमें ।
सुखसे निवसे सेनि-पत्नीके मन्दिरमें ॥
यमुनाके गर्भसे हुए पैदा बहुत जन ।
जो गौड़, माथुर, भट, सकसेन श्रीकरण ॥
श्रीवास्तव, अहिष्ठान अम्बष्ट निगम ।
मुनिको पूजन सभामें गोत्रका लिखन ॥
तपोबलसे श्रेष्ठ बने श्रीकरण गण्य ।
उसमें अनेक गोत्र शोभते बहुमान्य ॥

* * * *

गौड़ (देश) के महाराज आदित्यशूर नाम ।
गङ्गाके समीप वास सिंहेश्वर ग्राम ॥
आदरसे बुलाते उन्हें, विप्र पञ्चजन ।
साथ उनके पञ्चगोत्र आये श्रीकरण ॥"

ध्रुवानन्दमिश्रकी "बङ्गजकायस्थकारिका"में भी ऐसा ही लिखा है :—

"चित्रदेवसुतावेतौ समासन् वै महाशयाः ।
तेषान् कल्पयामास काश्यपो जातकर्म च ॥
एकैव बहुधा भाति गोविन्दो गोत्रदेवता ।
तेषां मध्ये प्रवरस्य एकविंशतमः स्मृतः ॥
सूर्यध्वजो चन्द्रहासचन्द्रार्द्ध चन्द्रदेवकः ।
रविदासो रविरत्नो रविघोषश्च मौड़कः ॥
इति चाष्टसुता ख्याताः कुलानां पत्तयोऽभवन् ।
घोषः सूर्यध्वजाज्जातश्चन्द्रहासात्सुतस्तथा ॥
रविरत्नात् गुहश्चैव चन्द्रदेवात् मित्रकः ।
चन्द्रार्द्धात् करणो जातः रविदासाच्च दत्तकः ॥
सत्यं घयत्तु मौड़ाद्य कथ्यते ग्रन्थकारकैः ।
दासको नागनाथो च करणाच्च समुद्भवाः ।
मत्युञ्जय-सुतोजाताः देवसेनस्य पालितः ॥
सिंहश्चैव तथा ख्याताः एते पद्धतिकारकाः ।
मत्युञ्जय-कुलोद्भूतो नित्यानन्दो शपेश्वरः ॥
तत्रापि वंशे संजाताः सप्तशीतिः प्रकीर्त्तिताः ।
कुलाचारप्रभेदेन दिसप्तत्यचलाभवन् ॥"

इसके अतिरिक्त बंगालके दक्षिणराढ़ीय कुलग्रन्थमें भी वसु वंशको श्रीवास्तव और दत्त वंशको सकसेन कुलोद्भव कहा है। अतएव उपरोक्त कुलग्रन्थोंके प्रमाणोंसे यह निश्चय किया जाता है कि उत्तरराढ़ीय, दक्षिणराढ़ीय और बङ्गज—क्या कुलीन और क्या मौलिक सब ही—कायस्थ चित्रगुप्तके वंशधर हैं; भारतके भिन्न भिन्न देशोंको भिन्न भिन्न श्रेणीके कायस्थोंके "दायाद" हैं। अब यह देखना चाहिये कि उक्त भिन्न भिन्न श्रेणीके कायस्थोंका पूर्व परिचय कैसा और क्या है।

प्राचीन शिलालेख और ताम्रलिपियोंमें, श्रीवास्तवोंको वास्तव्य-वंशका बतलाया है। मध्य-प्रदेशके मह्लार नामक एक स्थानमें चेदिराज जाजल्ल-देवकी एक प्रशस्ति मिली है। उसमें श्रीवास्तव रत्नसिंहका ऐसा परिचय दिया है :—

"काश्यपीयाचयादीवनय-सिद्धान्तवेदिना ।
विपश्चिदिसिंहेन रत्नसिंहेन धीमता ॥२१
श्रीराघवांत्रिकमलात्मधराधिपे क-
लक्ष्मीदयप्रततशाखमहीरुहेन ।
वास्तव्यवंशकमलाकाभानुनेयं
नामेयते रचिता रुचिया प्रशस्तिः ।"

चेदिराजके शिलालेखमें उक्त रत्नसिंहके पुत्रोंका परिचय "नि:शेषागमशुद्धबोधविभव:" ऐसा मिलता है। मध्यप्रदेशके खजरि ग्रामसे मिले हुए, राजा हरिब्रह्मदेवके १४१० संवत्‌के शिलालेखमें यों लिखा है—

> "श्रीवास्तव्यान्वयेनैषा प्रशस्तिरमलाक्षरा।
> लिखिता रामदासेन पण्डिताधीश्वरेण च॥"

अजयगड़ दुर्गमें राजा भोजवर्म्माके समयकी (ई० बारहवीं शताब्दीके नागराक्षरोंमें लिखी हुई) दो बड़ी बड़ी शिला-लिपियां हैं, इन्हीं शिलालिपियोंसे श्रीवास्तव वंशका विस्तृत परिचय मिला है। इनमें सब ही 'ठक्कुर' उपाधिधारी थे। कोई सर्वाधिकारी था, कोई दुर्गाधिप था, कोई कोषाध्यक्ष था, और कोई प्रधानमन्त्रीके पद पर नियुक्त था। श्रावस्तीसे मिले हुए १२७६ संवत्‌के शिलालेखसे मालूम होता है कि, श्रीवास्तव वंश कर्कोटनागका रक्षा किया हुआ वंश है (Indian Antiquary, vol. XVII. p. 62)।

काश्मीरके श्रीनगरमें श्रीवास्तवोंका आदिस्थान है—ऐसा भी इतिहास पाया जाता है। राजतरङ्गिणीसे यह मालूम होता है कि, वहांके सब अधिकारोंमें कायस्थोंका हाथ था। इसके सिवा कर्कोटवंशीय कायस्थ राजाओंने काश्मीरमें २६० वर्षसे ज्यादा राज्य किया—इसका खासा प्रमाण मिलता है। इसी वंशके राजा जयादित्यके साथ गौड़के राजा जयन्तने (कुलग्रन्थमें जिनका आदिशूर नामसे उल्लेख है) अपनी लड़की कल्याणदेवी व्याही थी। तब हीसे गौड़ोंका श्रीवास्तवोंसे वैवाहिक सम्बन्ध चला जाता है। इन ही जयादित्यने पाणिनीय व्याकरणकी काशिकावृत्ति बनाई थी। इसमें उनके वेदपाठ करनेका भी पता लगता है। उस समय वे ही वेदपाठ करनेके अधिकारी होते थे, जिनके संस्कारादि द्विजोंके सदृश थे। ऐसी अवस्थामें जयादित्यके संस्कारादि द्विजोंकी भांति थे—इसमें सन्देह नहीं। श्रीवास्तव कायस्थोंके सिवा माथुर, भटनागर, शकसेन, निगम, गौड़ आदि विभिन्न श्रेणियोंके कायस्थ भी, ई० ४ थी शताब्दीसे लेकर १४वीं शताब्दी तक हिन्दू राजाओंके मन्त्री, सेनापति, कराधिकारी, प्रतिनिधि, राजपण्डित आदि ऊँचे पदों पर नियुक्त थे—इसका वर्णन शिलालिपि तथा ताम्रलिपियोंमें पाया जाता है। पहले शास्त्रीय प्रमाणोंसे यह बता चुके हैं कि, गौड़देशमें रहनेवाले कायस्थ गौड़-कायस्थ कहलाते हैं। संवत् ११६१ के शिलालेखसे मिला हुवा माथुर-कायस्थोंके उच्च राजकीय पद और विद्वत्ताका परिचय (Indian Antiquary, vol. XV. p. 201), १९१९ संवत्‌की भड़वाकी शिलालिपिमें मिला हुवा भट्टग्रामके वैदिक धर्मनिष्ठ सकसेन कायस्थ महीधर (उक्त शिलालेखके अनुवादकने इन्हीं महीधरका anointed sacrificer या अभिषिक्त-याज्ञिक कह कर परिचय दिया है), (Cunningham's Arch. Sur. Reports, vol. III p. 59), राजचक्रवर्ती यशोधर्माके मालवीय संवत् ५८९में लिखित मन्दशोरसे पाये गये शिलालेखसे 'राजस्थानीय' तथा महापण्डित नैगम वा निगम कायस्थ वंश (Fleet's Corpus Inscriptionum Indicurum, vol. III. p. 152), ग्वालियरसे मिली हुई ११५० संवत्‌की, राजा महीपाल देवकी शिलालिपिमें भट्टकायस्थ वा भटनागर वंशीय कायस्थ सूरि सोम और "शाब्दिक भदन्त" सूर्यध्वज श्रीभद्रका नाम—ये सब विशेष उल्लेखयोग्य हैं।

(Cordier—Catalogue du fonds Tibetan deb Bibliotheque Nationale, p. 67.)

ई० पहिली शताब्दीसे लेकर चौथी शताब्दी तक भारतके शासनकर्त्ता शकसेन वंशीय क्षत्रिय, गुप्त वंशीय सम्राटोंका आधिपत्य नष्ट हो जानेके बाद क्षत्रिय-कायस्थके नामसे प्रसिद्ध हुए—वटुभट्टके "देववंश" नामक संस्कृत-ग्रन्थसे इस बातका पता लगा है। श्रीकरण कायस्थोंमें, "शार्ङ्गधर-पद्धति" और "सङ्गीतरत्नाकर"के बनानेवाले शार्ङ्गदेवके पिता सोढ़लका नाम प्रसिद्ध है। ये देवगिरि-यादवराजके महासान्धिविग्रहिक थे। इनकी मृत्युके बाद इनके पद पर, अद्वितीय शास्त्रविशारद, "चतुर्वर्ग-चिन्तामणि"के प्रणेता हिमाद्रि नियुक्त हुए। गौड़-

देशमें कायस्थोंको उच्च पदाधिकार मिले थे। ई० ५वीं शताब्दीसे ले कर १३वीं शताब्दी तक गौड़देशके नाना स्थानोंमें ये ही कायस्थ राज्य कर गये हैं। इसके सिवा भारतके अन्यान्य देशोंमें भी गौड़-कायस्थ हिन्दू-राज-सभाओंमें ऊंचे ऊंचे पदों पर नियुक्त थे; और "मन्त्रायणी" "अशेषशास्त्रसारसुमति" "विद्वद्भिः वन्दित" "साहित्याम्बुधिवन्धु" इत्यादि इत्यादि पाण्डित्यसूचक विशेषणोंसे विभूषित किये जाते थे। यहांतक कि, बंगालके घोष, दत्त, नाग, आदित्य आदि उपाधिधारी कायस्थ ई० १० वीं और ११ वीं शताब्दीमें, कलिङ्ग और दक्षिण-कोशलके सोमवंशीय राजाओंको समाजोंमें "राणक", "महासान्धिविग्रहिक", "महाक्षपटलिक" जैसे ऊंचे ऊंचे पदोंके अधिकारी थे। यदि इनका संस्कार द्विजोंके सदृश न होता, तो धर्मनिष्ठ हिन्दू राजाओंकी सभाओंमें इनका स्थान कदापि इतना ऊंचा नहीं जा सकता था। त्रिकलिङ्गके अधिपति महाशिव ययातिराजकी ताम्रलिपिके उद्धारकने उस ताम्रलिपिके लेखनेवाले सान्धिविग्रहिक श्रीरुद्रदत्तके विषयमें ऐसा लिखा है:—

"It is also to be noted that Rudra Datta who was Bengali Kàyastha calls himself a Rànaka, which indicates a Kshatriya origin." (Journal of Behar & Orissa Research Society, 1917, March, p. 2)

यह पहिले ही कहा जा चुका है कि, गौड़-कायस्थोंके सिवा श्रीवास्तव, शकसेन, सूर्यध्वज, माथुर इत्यादि विभिन्न श्रेणियोंके कायस्थ भिन्न भिन्न समयमें युक्तप्रदेश आदि भारतके नाना स्थानोंसे जाकर गौड़देशमें रहने लगे थे। उनमें घोषवंशके सूर्यध्वज, वसुवंशके श्रीवास्तव, मित्रवंशके माथुर, और दत्तवंशके शकसेन, तथा सिंह, नाग, नाथ, दास आदि श्रीकरण श्रेणीके कायस्थ हैं। ये सब चित्रगुप्तके वंशके कायस्थ-क्षत्रिय हैं और द्विजोंकी भांति माने जाते हैं।

बङ्गीय कायस्थका सावित्रीत्यागका कारण।

ऊपर कहे हुए चित्रगुप्त वंशके कायस्थ जब द्विजोंकी भांति माने जाते थे; तब बङ्गीय कायस्थोंके यज्ञोपवीतके नष्ट होनेका कारण क्या है? बङ्गीय-कायस्थकुलग्रन्थमें लिखा है—

"महीपालाध्यात्मिकं ज्ञानं कायस्था विषमाजरा।
तत्प्रभृति सूचकवं गायत्रीं च तथा पुनः॥
सतीकाले गते चापि प्रागवाङ्कोचितोऽभवन्।
आगमोक्तविधानेन पूताः कायस्थसम्भवाः॥
तस्मात्ते विप्रभक्ताय विप्रांश्चकारितमेव।
तान्त्रिकास्ते समाख्याताः तन्त्राणामपि पारगाः॥"

वास्तवमें बौद्ध पालराजके शासनकालमें यहांके राजवल्लभ कायस्थ वैदिकाचार छोड़ कर बौद्ध तान्त्रिक हुए थे। वैदिकाचारके त्यागके साथ साथ उन्होंने वैदिक यज्ञोपवीत संस्कार भी छोड़ दिया था। वे कैसे तान्त्रिक थे या तन्त्रशास्त्रमें कैसे व्युत्पन्न थे, उसका यथेष्ट प्रमाण मौजूद है। बङ्गीय साहित्य-परिषद्से महामहोपाध्याय पं० हरप्रसाद शास्त्री महोदयने "हजार वर्षके पुराने बङ्गभाषाके बौद्ध गान और दोहे" प्रकाशित किये हैं। शास्त्री महाशयके लिखे हुए उक्त ग्रन्थके अन्तमें जो "बौद्धतान्त्रिक ग्रन्थकारसूची" प्रकाशित हुई है, उससे जाना जाता है कि, पाल राजाओंके समयमें कायस्थोंने सैकड़ों तान्त्रिक ग्रन्थोंकी रचना की थी। इन ग्रन्थकारोंमें बहुतसे उपाध्याय और महोपाध्याय उपाधिके धारक थे। उपर्युक्त सूचीसे यह भी जाना गया है कि, उनमें अट्ठारह ग्रन्थकार महोपाध्याय उपाधिके धारी थे। इनमेंसे गयाधर, जिनवर घोष, तथागत-रक्षित और कमलरक्षित—ये चार कायस्थ महोपाध्याय उपाधिसे विभूषित थे। इनके और अन्यान्य बहुतसे कायस्थपण्डितोंके बनाये हुए सैकड़ों तान्त्रिक ग्रन्थोंका पता लगता है। केवल बौद्ध तान्त्रिक कायस्थाचार्योंकी बात नहीं; बल्कि उस समय गौड़के हिन्दू समाजमें भी बहुतसे प्रसिद्ध प्रसिद्ध पण्डित मौजूद थे। उनमें राढ़ाधिप गुण-रत्नाभरण न्यायकन्दलीके कर्त्ता श्रीधरके आश्रयदाता पाण्डुदास, गौड़के राजा रामपालके मन्त्री "तत्त्वबोध मूर्ति" बोधिदेव और उनके पुत्र "प्रज्ञानवाचस्पति", कामरूपके राजा वैद्यदेव, गौड़ाधिप मदनपालके

सान्धिविग्रहिक वारेन्द्र कायस्थ प्रजापति नन्दी और उनके पुत्र 'रामचरित'-रचयिता 'कलिकालवाल्मीकि' सन्ध्याकर नन्दीका नाम विशेष उल्लेखयोग्य है। पाल राजाओंके समयमें बहुतसे कायस्थ बौद्ध-सङ्घके विहारमें प्रधान आचार्य भी हो गये थे।

ब्राह्मणोंके समान अधिकार होनेसे ही वे कायस्थ—ब्राह्मणोंके अभ्युदयके समयमें भी—ऐसे ऐसे ऊंचे पदोंके अधिकारी बने ; और इसी लिए ही ये वङ्गीय ब्राह्मणसमाजके विद्वेषभाजन हुए थे। वैदिक ब्राह्मणोंने इन सद्धर्मियों पर कैसे कैसे अत्याचार किये हैं, इसका पता 'शून्यपुराण'के अन्तर्गत 'निरञ्जनकी रुष्मा'से खूब अच्छा लगता है। इसके फलस्वरूप वङ्गालमें बौद्धोंका प्रभाव नष्ट हो गया और ब्राह्मणोंके प्रभावसे कायस्थोंको सच्छूद्रवत् बनना पड़ा। इससे कायस्थोंकी समाज-सम्बन्धी कोई हानि नहीं उठानी पड़ी, यही कुशल है। ब्राह्मणों नीचे कायस्थोंका ही स्थान था। और तो क्या ; अकबर बादशाहके समयमें वङ्गालमें अधिकतर कायस्थ ही राजा थे। लाखों सैनिक, हजारों घुड़सवार और सैकड़ों तोपें उनके आधिपत्यमें रक्षाके लिए रहा करती थीं। "आइन-इ-अकबरी"में इसका स्पष्ट प्रमाण मिलता है। अकबर बादशाहके दरबारमें कायस्थोंके क्षत्रियत्वके विषयमें बड़ा भारी आन्दोलन हुआ था। उस दरबारमें मधुसूदन सरस्वती जैसे प्रमुख विद्वानोंने भी कायस्थोंके क्षत्रियत्वके अनुकूलमें अपना मत प्रकट किया था। जहांगीर बादशाहके समयमें प्रकाशित "बयान ए कायस्थ" नामक पारसी ग्रन्थमें उनके मतोंका उल्लेख ही नहीं, वरन् उद्धृत किया गया है। किसी किसी पण्डितका यह कहना है कि, वङ्गालके प्रातःस्मरणीय श्रीरघुनन्दन ही जब वसु, घोष आदिको शूद्र निर्देश गये हैं ; तब वङ्गालके कायस्थ शूद्र ही समझे जावेंगे। परन्तु निरपेक्ष हो कर यदि रघुनन्दनके ग्रन्थ देखे जांय तो उनमें कहीं भी "कायस्थ" शब्द तक न मिलेगा। ऐसी दशामें उनके मतसे कायस्थ शूद्र हैं—यह कहना बिलकुल हास्यास्पद है। वसु और घोष उपाधि ब्राह्मणोंसे लेकर वङ्गालकी बहुतसी जातियोंमें पाया जाता है। ऐसी दशामें केवल रघुनन्दनोक्त वसु, घोष आदि शब्दोंसे वङ्गालके कोई कायस्थ शूद्र नहीं माने जा सकते। ई० १४वीं शताब्दीमें गौड़से कुछ कायस्थ-पण्डित राजा दुर्लभनारायणकी ओरसे कामता (कोचविहार)-में बुलाये गये थे। ये वहां "बारहभुंइया" कहलाये और पीछे इन्होंने वहां अपना आधिपत्य जमा लिया। इनके आचार-व्यवहार ब्राह्मणोंकी भांति ही थे। इन्हीं भुंइयाओंके अग्रणी शिरोमणि भुंइयां कायस्थ चण्डीवरके वंशमें (महाप्रभु चैतन्यदेवके पहिले) ई० १५ वीं शताब्दीको महापुरुष और अद्वितीय पण्डित श्रीशङ्करदेव आविर्भूत हुए। आसामके बीस लाख हिन्दू इनको भगवान्‌का अवतार मान कर पूजते थे और अब भी ऐसा ही है। कायस्थ-अवतार शङ्करदेवके प्रधान कायस्थ शिष्य माधवदेव भी उनकी तरह प्रचार कार्यमें दक्ष थे और इन्होंने "महापुरुषीय" सम्प्रदाय भी चलाया था। आसामके प्रधान प्रधान स्थानोंमें महापुरुषीयोंके शताधिक सत्र (पुण्यस्थान) वर्तमान हैं। उनमें कायस्थ सत्राधिकारी अब भी ब्राह्मण आदि सब वर्णोंके दीक्षागुरु और ब्राह्मणोंके सदृश संस्कारवाले देखनेमें आते हैं। उनके पूर्वज लोग गौड़वङ्गसे जा कर आसामवासी हुए थे। वङ्गीय कायस्थ पहिले द्विज कहलाते थे—इसका प्रमाण भी यही है। कृष्णदास कविराजके "श्रीचैतन्यचरितामृत"में गौड़के राजाके अमात्य केशव वसुका (ई० १५वीं शताब्दीमें) 'केशवछत्री' नामसे उल्लेख किया गया है। उत्तरराढ़ीय नन्दराम सिंह स्वयं (४०० वर्ष पहले) गोपीनाथकी पूजा करते थे। यह प्रथा ग्यारह पीढ़ियों तक चली आयी। इस वंशमें सर्वदा यज्ञकी प्रथा और प्रणवोच्चारणकी प्रथा प्रचलित रही है। शिष्य रक्षाकी प्रथा और पूजाकी प्रथा भी बराबर बनी रही है। वरियालकी तरफ "त्रैलोक्यनारायणकी पचाली" नामक पुस्तकका बहुत ही प्रचार है। इस पुस्तकमें लिखा है कि, चार सौ वर्ष पहिले जब चन्द्रद्वीपके राजाका वरियालमें आधिपत्य था, तब वहांके चांदसी ग्रामके निवासी वङ्गाली

कायस्थ हरिनारायण दास 'विद्यासागर' उपाधिसे विभूषित थे। दक्षिणराढ़ीय कायस्थ-समाजमें सुगन्धाकी चिकित्साके व्यवहारी जहांगीर बादशाहके चिकित्सक वसुवंशीय चिन्तामणि राय 'वैद्यराज' और रत्नमणि राय 'धन्वन्तरि' उपाधिसे अलङ्कृत थे। पीछे इसी वंशमें 'तपस्वी' 'सार्वभौम' 'वाचस्पति' 'वैद्यशेखर' 'कण्ठहार' 'वैद्यतिलक' 'वैद्यविशारद' 'वैद्यचूड़ामणि' 'तर्कतीर्थ' 'वैद्यरत्न' इत्यादि इत्यादि उपाधियोंके अधिकारी हो गये हैं। इनके रचे हुए बहुतसे वैद्यक ग्रन्थ भी मिले हैं।

दिनाजपुरके वर्त्तमान कायस्थ महाराजके समयसे ३०० वर्ष पहिले तक ब्रह्मोत्तरके दान-पत्रमें 'वर्म्मा' उपाधि देखनेमें आता है। इस वंशमें विजयादशमीके दिन चित्रगुप्तका नमस्कार-मन्त्र पढ़ कर पुरोहित जब इनके हाथमें तलवार देते हैं, तब ये उसे ग्रहण करते हैं; और फिर उसी तलवारसे केलेके पेड़को काटते हैं। यह प्रथा पहलेके क्षत्रियोंकी मृगयाका अनुकल्प है। बङ्गालके कायस्थ-समाजने तान्त्रिकताके प्रभावसे वैदिक गायत्री आदिके त्यागने पर भी गर्भाधान, कर्णवेध और चूड़ाकरण आदि द्विजोचित संस्कार पाले हैं, ऐसी हालतमें यहांके कायस्थ कभी शूद्रोंमें नहीं गिने जा सकते।

बङ्गालके अधिकांश सामाजिक कायस्थ चित्रगुप्तके सन्तान हैं, उनमें बराबर ये संस्कार चले आये हैं। और उनमें बहुतोंने तान्त्रिक आचारको ग्रहण नहीं किया है। वे बराबर वैदिक आचार पालन करते आये हैं—इसका आभास भी ग्रन्थोंमें मिलता है। इनके सन्तान बङ्गाल और युक्तप्रदेशमें अब भी रहते हैं और वे अब भी द्विजोंके सदृश संस्कारवाले हैं। बङ्गीय १२२४ संवत्‌के छपे हुए "कायस्थ-धर्म-निर्णय" नामक प्राचीन बङ्गला-ग्रन्थमें ऐसा लिखा है कि,—'गौड़ और बङ्गराज्यवासी दक्षिणराढ़ी, उत्तरराढ़ी और बङ्गज कायस्थ-सन्तानोंको आचारमें हिन्दुस्थानी कायस्थोंके आगापन व्यवहारमें दूषित होना पड़ता है। क्योंकि हिन्दुस्थानी कायस्थ मात्रका क्षत्रिय आचार, वेदवेदाङ्गपाठ, द्वादशाह अशौच, इत्यादि देख कर सन् १२१३ बङ्गाली वर्षको महाराज गोपीमोहन देव बहादुरकी सम्मतिसे तारिणीचरण मित्रज महाशयने अत्र-विवरणका आमूल सन्धान करके चित्रगुप्तवंशजात कायस्थ शूद्र नहीं, इस प्रकार प्रमाण पौराणिक पाने पर समाचारपत्रमें प्रचार किया था। उस काल नीमतलानिवासी दत्तज महाशय और वैकुण्ठवासी तारिणीचरण वसुज महाशयने अत्र विवरणका आमूल सन्धान करते केवल पौराणिक प्रमाणसे अवधारण किया, निश्चय न समझ चुपके रहे। पीछे उक्त वैकुण्ठवासी दत्तज महाशयके पुत्र गुणाकर श्रीयुक्त विश्वेश्वर दत्तज महाशय इलाहाबादसे फारसी अक्षरोंमें लिखा एक पुस्तक ले आये। जिसमें पद्म-पुराणोक्त चित्रगुप्त-सन्तान कायस्थ वंशका द्वादशाह अशौच और क्षत्रिय धर्म दृष्ट होता है।' कहना वृथा है कि उक्त फारसी अक्षरोंमें लिखित कायस्थप्रयान् नामक हस्तलिखित ग्रन्थ महाराज गोपीमोहन देवके पुत्र राजा राधाकान्त देवके पुस्तकालयमें अद्यापि विद्यमान है। राजा गोपीमोहन देव और राजा राजकृष्णदेव बहादुरके मध्य महाराज नवकृष्णकी विपुल सम्पत्तिके उत्तराधिकार पर कलकत्तेकी सुपरीम कोर्टमें जो मुकद्दमा चला, उसमें भी दोनोंने अपनेको शूद्र और वैश्यसे भिन्न उच्च वर्णकी भांति घोषणा की है। मेकनटन साहब कर्तृक १८२४ ई० को प्रकाशित उस मुकद्दमे की कैफियत पढ़नेसे सभी जान सकेंगे।*

अब बात आती है—राजा राधाकान्त देव बहादुरके पिता और पितृव्य अपनेको शूद्र वैश्यसे भिन्न उच्च वर्णकी भांति परिचित करते भी राजा राधाकान्त देवने अपने शब्दकल्पद्रुममें कायस्थोंके विषय पर अशास्त्रीय कथा क्यों लिखी है? जिस समय शब्द-कल्पद्रुम प्रकाशित होता था, उसी समय आन्दुलके राजा राजनारायण प्रधान प्रधान पण्डितोंका मत ले कर कायस्थ-समाजमें उपनयन-संस्कार प्रवर्तन पर अग्रसर हुये थे। राजा राधाकान्तके पिता राजा

* Consideration on the Hindu Law as it is current in Bengal, by Hon'ble Sir Francis W. Maghnaten, 1824.

गोपीमोहन १२११ सालको कायस्थोंका क्षत्रियत्व संवादपत्रमें घोषणा करते भी प्रकृत कोई कार्य कर न सके। उनके साथ आन्दुल-राजवंशकी बराबर सामाजिक प्रतिद्वन्द्विता रही। कहना वृथा है कि उस काल कलकत्तेके दक्षिणराढ़ीय कायस्थोंके मध्य १२ दल थे। दूसरे स्थानकी और क्या बात कहेंगे। राजा राधाकान्त देवके सुयोग्य दौहित्र स्वर्गीय आनन्दकृष्ण वसु महाशयसे सुना है कि उस सामाजिक प्रतिद्वन्द्विताके समय राजा राधाकान्त देवने आन्दुलके राजा राजनारायणका विरुद्ध पक्ष अवलम्बन किया था। उसी सुयोगमें उनके शब्दकल्पद्रुमके संश्लिष्ट पण्डितने 'आचारनिर्णयतन्त्र' और 'अग्निपुराणीय जातिमाला'की रचना कर कौशलसे शब्दकल्पद्रुमके मध्य प्रक्षिप्त किया, यह विचित्र नहीं। जो हो, राजा राधाकान्त देव बहादुर वृद्ध वयसमें अपना भ्रम समझ सके थे। शब्दकल्पद्रुमका वही भ्रम संशोधन करनेके लिये वह अपने सुयोग्य और सुपण्डित जामाता अमृतलाल मित्र और प्रिय दौहित्र पण्डितवर आनन्दकृष्ण वसु महोदय पर भार अर्पण कर गये। वह केवल मुखसे ही कह कर शान्त न हुये, अपने वृद्ध वयसवाले निज पौत्रके विवाहमें द्विजोचित कुशण्डिका करके पितृपुरुषोंका मुखोज्ज्वल कर गये हैं। यह बात उनके आत्मीय स्वजन सब जानते हैं। इतिहासमें भी यह बात लिखी है। *

राजा राधाकान्त देव थोड़े दिन अधिक जीनेसे क्षत्रियाचार प्रवर्तनमें उद्योगी बनते, सन्देह नहीं। जो हो, आन्दुलके राजा राजनारायणकी भांति स्वर्गीय राय मोहनलाल मित्र महाशय क्षत्रिय आचारके प्रचलनमें उद्योगी हुये थे। किन्तु उस समय संस्कृत भाषामें अशिक्षित शास्त्रज्ञानहीन स्वजातीयोंके निकट उपयुक्त सहानुभूति न मिलनेसे उनका महत् उद्देश सुसिद्ध हो न सका। जो हो, आन्दुलके राजा राजनारायण जो बीज बो गये हैं, वर्तमान कायस्थ-समाजमें संस्कृत शिक्षा-प्रसारके साथ क्रमसे वह फलफूलसे सुशोभित महीरुहमें परिणत होते आता है। आजकल वङ्गके उत्तरराढ़ीय, दक्षिणराढ़ीय, वङ्गज और वारेन्द्र इन चार श्रेणीके कायस्थोंके मध्य प्रायः लक्षाधिक कायस्थ-सन्तान द्विजोचित उपनयन-सम्पन्न हैं। उक्त चारों समाजोंके बहुकुलीन और मौलिक कायस्थ सन्तानोंने व्रात्य प्रायश्चित्तके अन्तमें उपवीत ग्रहण किया है एवं उनके मध्य त्रयोदशाहमें श्राद्धादि क्षत्रवर्णोचित आचार प्रचलित हुआ है। विशेषभावसे वङ्गके प्रधान प्रधान पण्डित भी इस स्थानके चित्रगुप्तवंशीय कायस्थोंको क्षत्रियवर्ण-सम्भूत समझते हैं। जब संस्कृत कालेजमें कायस्थ छात्र लिये जायेंगे या नहीं—बात उठी, उस समय संस्कृत कालेजके अध्यक्षरूप प्रातःस्मरणीय स्वर्गीय ईश्वरचन्द्र विद्यासागर महाशयने शिक्षा-विभागके डिरेक्टर महोदयको १८५१ ई० की २० वीं मार्चको लिखा था—"जब वैद्य कालेजमें पढ़ सकते हैं, तब कायस्थ क्यों न पढ़ सकेंगे? जब शूद्रजाति वैद्य और जब शोभाबाजारके राजा राधाकान्त देवके जामाता हिन्दू-स्कूलके छात्र अमृतलाल मित्रने संस्कृत कालेजमें पढ़नेका अधिकार पाया है, तब अन्यान्य कायस्थ क्यों पढ़ न सकेंगे? कायस्थ क्षत्रिय आन्दुलके राजा राजनारायण बहादुरने इसे प्रमाण करनेको प्रयास उठाया। कि कायस्थोंको संस्कृत कालेजमें लेना उचित है।" उसके पीछे संस्कृत कालेजके अध्यक्ष स्वर्गीय महामहोपाध्याय महेशचन्द्र न्यायरत्न महाशय बङ्गला विश्वकोषमें कायस्थ शब्द पढ़ तत्कालीन संस्कृत कालेजके स्मृति-अध्यापक स्वर्गीय मधुसूदन स्मृतिरत्न महाशयको कहा था—'कायस्थ-जाति क्षत्रियवर्ण है, यह हम अच्छी तरह समझ सके हैं।' उनके परवर्ती अध्यक्ष महामहोपाध्याय नीलमणि न्यायालङ्कार महाशयने कायस्थोंको क्षत्रियकी भांति स्वीकार किया है। (उनका बङ्गला इतिहास द्रष्टव्य) अतःपर महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री महाशय लिख गये हैं—वङ्गमें ब्राह्मण धर्मप्रतिष्ठाके लिये ही ब्राह्मणोंकी भांति कायस्थके प्रधान इस

* Ghose's Indian Chiefs, Rajas, and Zamindars, 1881, Vol. II. p. 30.

देशमें आये थे। अतएव बङ्गीय कायस्थसमाजका हिताचार लक्ष्य कर गत १३२३ सालके १९ आषाढ़को संस्कृत कालेजके अध्यक्ष महामहोपाध्याय डा: सतीशचन्द्र विद्याभूषणके सभापतित्वमें सकल अध्यापकोंकी एक विचारसभा हुयी। इस सभामें संस्कृत कालेजके टोल-विभागमें बङ्गीय कायस्थ छात्रोंके वेद अध्ययनका अधिकारसूचक सम्मतिपत्र प्रदत्त और वेदान्त पढ़ानेके लिये कायस्थ छात्र गृहीत हुये। बङ्गदेशीय दूसरे जो सकल प्रधान प्रधान अध्यापक हैं, उन्होंने इदानीन्तनकाल बङ्गदेशीय कायस्थोंके क्षत्रियत्व और उपनयन सम्बन्धमें व्यवस्था दी है। बङ्गदेशीय कायस्थ-सभासे प्रकाशित व्यवस्थापत्रमें उन सकल अध्यापकोंके नाम मुद्रित हुये हैं। केवल व्यवस्थापक पण्डित ही नहीं, परमहंसकल्प साधु महात्मा भी इस स्थानकी कायस्थ जातिका क्षत्रियवर्ण मानते हैं। कहनेसे क्या—काश्मीरके उत्तरप्रान्तवासी श्रीश्रीनारद बाबा बालानन्द स्वामी महाराज बङ्गकी कायस्थजातिको आह्वान कर उसका क्षत्रियवर्णत्व और उपवीत ग्रहणको आवश्यकता घोषणा कर गये हैं। ११ वर्ष हुये उन्होंने स्वयं दक्षिणराढ़ीय कुलीन कायस्थ वृद्ध श्रीयुक्त विहारीलाल वसु महाशयको उपवीत दान कर बङ्गके कायस्थोंको सम्मानित किया है। कुछ दिन हुये वारेन्द्र कायस्थ अध्यापक हेमचन्द्र सरकार महाशय और बङ्गज कायस्थ हेमचन्द्र घोषराय पुरीके शङ्कर-मठके प्रधान आचार्यके निकटसे उपवीत-संस्कार पाया था। स्वामी विवेकानन्द कायस्थ थे। वह अपनी जातिको विशुद्ध क्षत्रियको भांति प्रचार कर गये हैं। सुतरां सामाजिक बङ्गीय चित्रगुप्तवंशीय कायस्थ निःसन्देह द्विजवर्ण हैं, यह कहना ही वृथा है।

युक्तप्रदेश।

पञ्जावके पश्चिमप्रान्तसे विहारके पूर्वप्रान्त पर्यन्त सर्वत्र कायस्थ रहते हैं। वह सभी अपनेको चित्रगुप्तका वंशधर बताते और अपनी उत्पत्तिके सम्बन्धमें भविष्य-पुराण तथा पद्मपुराणके उपाख्यान सुनाते हैं। इसको छोड़ उनके उत्पत्ति-सम्बन्ध पर युक्तप्रदेशमें निम्न-लिखित प्रवाद भी प्रचलित है :—

सबसे पहले यमपुरमें १३ यम राजत्व करते थे। उन १३ लोगोंमें शेष यमका नाम चित्र रहा। उस समय किसी स्थानमें इसी एक नामके तीन व्यक्ति थे। उनमें एक राजा, एक ब्राह्मण और एक नापित था। राजाको काल पूरा होने पर ले जानेके लिये यमदूत आ पहुंचा। दूतने भ्रमक्रमसे राजाको छोड़ ब्राह्मण और नापितको ले जा कर वहां उपस्थित कर दिया। यम शीघ्र ही यह भ्रम समझ सके थे। ब्रह्मा भी यह संवाद सुन कर बहुत ही दुःखित हुये। ब्रह्मा इस लिये चिन्तित हो ध्यानस्थ हो गये, जिसमें वैसा फिर न हो सके। उस समय भी यौन सम्बन्धसे जीवको उत्पत्ति होती न थी। देवताके दुग्धसे जीव बनते रहे। ब्रह्माके ध्यानस्थ होनेसे सहस्र वत्सर ध्यानमें बीत गये। पीछे ब्रह्माने देखा कि उनके निकट एक श्यामवर्ण पुरुष उपस्थित था। उसके हाथमें मसि-पात्र और लेखनी थी। ब्रह्माने कहा—'तुम हमारी कायासे उत्पन्न और इसी कायामें स्थित हो। इस लिये तुम्हारा नाम 'कायस्थ' है।' उसके पीछे भी ब्रह्मा बोल उठे—'तुम गुप्तभावसे हमारे शरीरमें रहे हो। इस लिये हमने तुम्हारा नाम चित्रगुप्त रखा है।' चित्रगुप्त कोटनगर जा कर देवी चण्डिकाकी पूजा करने लगे। चण्डीने सन्तुष्ट हो उन्हें तीन वर दिये थे—१ तुम दूसरेके उपकारको तत्पर रहोगे, २ तुम अपने कार्यमें दृढ़चेता होगे और ३ तुम बहुत दिन जीवोगे। उक्त वर प्रदान कर देवी अन्तर्हित हुयीं। फिर ब्रह्माने चित्रगुप्तको यमपुरीका भार सौंपा और यौन सृष्टि आरम्भ करनेको आदेश दिया था। सूर्य, विष्णु, देवी भगवती, शिव तथा गणेश उनके उपास्य और ब्रह्मा इष्टदेव हुये। देवताओंने जब सुना—अब मानसी सृष्टि न होगी, तब धर्मशर्मा ऋषिने अपनी कन्या इरावतीके साथ चित्रगुप्तका विवाह कर देना चाहा। सूर्यके पुत्र मनुने भी अपनी सुन्दरी कन्या सुदक्षिणाके साथ चित्रगुप्तका विवाह करनेको आग्रह प्रकाश किया था। ब्रह्माने दोनोंकी प्रार्थना मान ली। इसी प्रकार चित्रगुप्तने दो कन्याओंका पाणि-ग्रहण किया। इरावतीके गर्भसे चित्रगुप्तके ८ पुत्र

उत्पन्न हुवे—चारु, सुचारु, चित्राख्य, मतिमान्, चित्रचारु, अरुण और अतीन्द्रिय। फिर सुदक्षिणाके गर्भसे भानु, विभानु, विश्वभानु और वीर्यभानु चार पुत्रने जन्म लिया। ब्रह्माने चित्रगुप्तके वंशकी वृद्धि होते देख एक दिन आनन्दसे कहा था—'हमने अपने बाहुसे मृत्युलोकके अधीश्वर रूपमें क्षत्रियोंकी सृष्टि की है। हमारी इच्छा है कि तुम्हारे पुत्र भी क्षत्रिय हों। उस समय चित्रगुप्त बोल उठे—'अधिकांश राजा नरकगामी होंगे। हम नहीं चाहते कि हमारे पुत्रोंके अदृष्टमें भी वही दुर्घटना आ पड़े। हमारी प्रार्थना है कि आप उनके लिये कोई दूसरी व्यवस्था कर दीजिये।' ब्रह्माने हंस कर उत्तर दिया—'अच्छा, आपके पुत्र असिके बदले लेखनी धारण करेंगे। चार जन्म वह इसी यमलोकमें रहेंगे। उसके पीछे इच्छा करनेसे वह देवलोकमें वास कर सकेंगे।' अनन्तर चित्रगुप्तके सन्तान इहलोक आ गये। उक्त बारह लोगोंमें चारु मथुरा गये और 'माथुर' नामसे गण्य हुवे। सुचारु गौड़में जा कर रहने लगे और उसीसे 'गौड़' कहे गये। चित्र भट्ट नदीके कूल पर जा कर रहनेसे 'भट्टनागरिक' नामसे गण्य हुवे। भानु 'श्रीवास' नामक स्थानमें जा कर रहे और 'श्रीवास्तव' नामसे ख्यात हुवे। हिमवान् देवी अम्बाकी आराधना करनेसे 'अम्बष्ठ', मतिमान् अपनी सखी अर्थात् भार्याके साथ चलनेसे 'सखिसेन' और विभानु 'सूरसेन' देशमें जाकर रहनेसे 'सूर्यध्वज'* कहे गये। यहां नरलोक विस्तार कर उन्होंने स्वर्गलोकको गमन किया।

यह समझ नहीं पड़ता कि ऐतिहासिकोंकी दृष्टिमें उक्त उपाख्यानका विशेष मूल्य है। फिर भी चित्रगुप्तके पुत्रोंकी भांति जिन कई लोगोंका नाम लिखा गया है, पश्चिमाञ्चलस्थ कायस्थोंके मध्य कोई कोई श्रेणी अपनेको उक्त किसी न किसी व्यक्तिका वंशधर बताती है।

* युक्तप्रदेशके कायस्थोंका उक्त विवरण अहल्या-कामधेनु-इत समय'हिसामें मिलता है। See Origin and Status of the Kayasthas, published by Hargovinda Sahaya, M.A., p. 13.

आजकल युक्तप्रदेशके कायस्थ प्रधानतः १२ श्रेणीमें विभक्त हैं—१ श्रीवास्तव्य वा श्रीवास्तव, २ भटनागर, ३ सकसेन, ४ अम्बष्ठ वा अमष्ठ, ५ ऐठान वा अष्ठान, ६ वाल्मीक, ७ माथुर, ८ सूर्यध्वज, ९ कुलश्रेष्ठ, १० करण, ११ गौड़ और १२ निगम। सिवा इसके उनाव जिलेके नामसे 'उनाई' एक पृथक् शाखा है।

श्रीवास्तव्य वा श्रीवास्तव कायस्थ—अपनेको चित्रगुप्तके पुत्र भानुका वंशधर बताते हैं। उनके पूर्व-पुरुष काश्मीरके श्रीनगरमें राजत्व करते थे। उसीसे 'श्रीवास्तव्य' आख्या हो गयी। उक्त कथा भी श्रीवास्तव कहा करते हैं। फिर किसीके मतमें श्रीवत्स विष्णुके उपासकोंको श्रीवास्तव कहते हैं। किन्तु कोई कोई युरोपीय पुराविद् अवध प्रदेशस्थ गोंड़ा जिलेकी श्रावस्ती नगरीसे श्रीवास्तव नामकी उत्पत्ति बताता है। किन्तु शेष दोनों मत कल्पनामूलक समझ पड़ते हैं।*

श्रीवास्तवोंमें दो शाखायें हैं—खर और दूसर। खर शाखा ही सत् वा श्रेष्ठ मानी जाती है। दूसर सम्मानमें बहुत छोटे हैं। एक प्रवाद है—अयोध्यामें जाकर जो बसे, वही 'खर' वा श्रेष्ठ और जो अन्य स्थानमें जा कर रहे, वह 'दूसर' हैं। फिर किसी किसीके कथनानुसार पहले इस प्रकार दो शाखायें न थीं। सम्राट् अकबरके ही समयसे उन दोनोंकी सृष्टि हुयी है। उस समय एक व्यक्तिने अति घृणाके साथ राजप्रदत्त उपहार त्याग किया था। उनका नाम 'अखोरी' अर्थात् धर्मपरायण हुवा। मांसस्पर्श न करनेसे ही अखोरी नाम हो सकता है।

इलाहाबादी और फतेहपुरी श्रीवास्तवोंमें निपसे-सवान और घोर बुद्धि सवान नामक दो कुल देख पड़ते हैं। युक्तप्रदेशमें श्रीवास्तवोंकी ही संख्या अधिक

* कारण युक्तप्रदेशके नाना स्थानोंसे जो सकल प्राचीन शिलालिपि आविष्कृत हुयी हैं, उनमें 'श्रीवास्तव्य' नाम ही मिलता है। 'श्रीवत्स' अथवा 'श्रावस्ती'से कभी यह शब्द निष्पन्न हो नहीं सकता। कल्हणकी राज-तरङ्गिणीसे इस बातका प्रमाण मिलता कि काश्मीरमें बहुकाल पूर्व कायस्थोंका यथेष्ट प्रभाव रहा। राजतरङ्गिणीमें श्रीवास्तव्यका भी उल्लेख है।

है। उनसे अयोध्या, काशी, इलाहाबाद, मिर्जापुर, गोरखपुर, प्रभृति स्थानोंमें ही लोग बहुत रहते हैं।

भटनागर—अपनेको चित्रगुप्तके पुत्र चित्रका सन्तान बताते हैं। उनमें कोई कहता कि पूर्वकाल भट-नदीके तीर रहनेसे ही उक्त नाम पड़ा है। फिर किसीके मतमें महमूद-गजनवी, तैमूर और हुमायूंके पुत्र कामराननें दुर्ग अधिकार करनेके लिये भटनगरमें प्राणपणसे युद्ध किया था। उसी इतिहास-प्रसिद्ध भटनगरमें जो लोग रहे, वह भटनागर नामसे विख्यात हुवे। उनमें दो श्रेणी हैं—भटनागर कदीम या पुराने और गौड़कायस्थोंसे मिल जानेवाले भटनागरी।

शकसेन—'सखिसेना'से ही अपने नामकी उत्पत्ति बताते हैं। उनके पूर्वपुरुषोंने वीरत्व दिखा श्रीनगरकी श्रीवास्तव्य राजावोंसे उक्त उपाधि पाया था। प्रकृत प्रस्तावसे जिन्होंने शक राजावोंके सेनाविभागमें क्षतित्व दिखाया, उन्हींका वंश 'शकसेन' कहाया। प्राचीन शिलालिपिमें 'शकसेनजातीय कायस्थ-ठक्कुर' नाम लिखा है।

शकसेनोंमें भी 'खरे' और 'दूसरे' दो कुल हैं। प्रवादानुसार उक्त श्रेणीके सोमदत्त नामक कोई व्यक्ति कुशके कोशाध्यक्ष थे। शकसेन कहते कि उन्हीं कुशने प्रीत हो सोमदत्तको खर अर्थात् सत् सम्बोधन किया था। उनके वंशधर इसीसे 'खरे' कहे जाते हैं। दूसरा गल्प भी है—अकबरके पिता हुमायूं जब ईरान भाग गये, तब उनके साथ कितने ही शकसेन भी रहे। ईरानमें उन्होंने १६ वर्ष व्यतीत किये। लौटने पर भारतवर्षके शकसेन उनके साथ भोजन करनेको सम्मत न हुवे। इसी प्रकार ईरानसे प्रत्यागत शकसेन और उनके वंशधर 'दूसरे' अर्थात् हेय समझे गये।

शकसेन अपनेको चित्रगुप्त-पुत्र मतिमान्‌का वंशधर बताते हैं। उनका अधिक वास इटावा जिलेमें है। कन्नौजके राजा जयचन्द्रके मरने पर शकसेन समरसिंहके अधीन इटावेमें जा कर बसे थे। उनके आदिपुरुष पुष्करदास और निर्मलदासने समरसिंहके निकट जागीरमें कई गांव और चौधरी पदको लाभ किया। उनके वंशधर समरसिंहके समयसे अंगरेजी अधिकार पर्यन्त पुरुषानुक्रममें इटावेकी कानूनगोई करते रहे।* इटावेके उक्त शकसेन कायस्थ वंशमें ही प्रसिद्ध वीर राजा नवलरायने जन्म लिया था। वह फरुखाबादवासे बङ्गस-नवाबके वजीर और प्रधान सेनापति रहे। उन्होंने अनेक स्थानमें युद्ध कर जो वीरत्व दिखाया, वह प्रशंसनीय कहाया है।† इटावेके भाट आज भी राजा नवलरायकी वीरगाथा गाया करते हैं।

अष्ठिठान—अपना परिचय चित्रगुप्तपुत्र विश्वभानुके नामसे दिया करते हैं। अष्ठिठान नाम कैसे बना है? उसके सम्बन्धमें एक गल्प सुनते हैं—वाराणसीमें बनार नामक एक विख्यात राजा रहे। उन्हें उक्त श्रेणीके पूर्वपुरुषोंने अष्टप्रकार मुक्ताका उपहार दिया था। उसीसे अष्टान (अष्ठिठान) नाम चल पड़ा। उनमें पूर्वी और पश्चिमी दो भेद हैं। पूर्वी जौनपुर तथा उसके निकटवर्ती स्थान और पश्चिमी लखनऊ एवं उसके आसपास वास करते हैं। उभय श्रेणियोंमें पान-भोजन प्रचलित नहीं।

अम्बष्ठ—अपनेको चित्रगुप्तके पुत्र हिमवान्‌का वंशधर बताते हैं। प्रवाद है—उनके पूर्वपुरुष गिरनार पर्वत पर जा कर रहे और वहां अम्बादेवीकी पूजा करने पर 'अम्बष्ठ' नामसे परिचित हुवे। स्कन्दपुराणीय सह्याद्रिखण्ड और विष्णुपुराणसे समझ पड़ता कि भारतके पश्चिमांशमें अम्बष्ठ नामक एक जनपद रहा। बहुत सम्भव है कि उसी स्थानके अधिवासी कायस्थ अम्बष्ठ नामसे ख्यात हुये। ग्रीक (यूनानी) ऐतिहासिक आरियानने उनका नाम अम्बष्ठो (Ambastae) लिखा है। अम्बष्ठ बहुतसे, बङ्गालमें भी जा कर रहने लगे हैं। उक्त प्रदेशके अम्बष्ठ कायस्थोंका आचार-व्यवहार ब्राह्मणोंसे मिलता है।

---

* Hume's Memorandum on the Castes of Etawa, p. 87.

† Journ. As. Soc. Bengal, Vol. XLVIII, pt. I. p. 50—66. नवलरायका विस्तृत विवरण द्रष्टव्य है।

वाल्मीक कायस्थ—चित्रगुप्तपुत्र विभानु वा वीर्यभानुके सन्तान कहाते हैं। विभानुके तपस्याकाल शरीरसे वल्मीक उत्पन्न हुवा था। इसीसे उन्हों और उनके वंशधरोंने 'वाल्मीक' नाम पाया।

उनमें तीन श्रेणी हैं। बम्बईसे आनेवाले 'बम्बैया', कच्छसे आनेवाले 'कच्छी', और सुराष्ट्रसे आनेवाले 'सोरठी' कहाते हैं। वाल्मीकोंमें कुछ कुछ दाक्षिणात्यका आचार-व्यवहार भी प्रचलित है।

माथुर—कायस्थोंका नाम मथुराके वाससे पड़ा है। वह अपनेको चित्रगुप्तके पुत्र चारुका वंशधर बताते हैं। उनमें भी तीन श्रेणियां देख पड़ती हैं—दहलवी, कच्छी और लचौली। दिल्लीमें रहनेवाले 'देहलवी', कच्छमें रहनेवाले 'कच्छी' और अजमेरमें रहनेवाले 'लचौली' नामसे परिचित हैं। लचौलियोंको पचौली भी कहते हैं। उनके कथनानुसार यादपुर वा मरुदेशमें पूर्वकालको पञ्चनामक एक राजा थे। उन्हींसे पचौली नाम निकला है। फिर किसीके मतमें पञ्चाल देशसे 'पञ्चाली' बना है।

सूर्यध्वज—अपना परिचय चित्रगुप्तपुत्र विभानुके नामसे देते हैं। उनका कहना है कि इक्ष्वाकुवंशीय राजा सूरसेनने यज्ञकाल विभानुको साहाय्य करनेसे 'सूर्यध्वज' उपाधि दिया था। उनका आचार-व्यवहार कुछ कुछ ब्राह्मणोंसे मिलता है।

कुलश्रेष्ठ—कायस्थ चित्रगुप्तपुत्र अतीन्द्रियके सन्तान हैं। उक्त श्रेणीके कायस्थ कहा करते कि जितेन्द्रिय (अतीन्द्रिय) परमधार्मिक रहे। वह प्रति वर्ष अपने भाइयोंको बुलाकर उनके पैर धो देते थे। उनका काल पूरा होने पर यमदूतोंने जा कर पूछा—'क्या आप अब स्वर्ग जाना चाहते हैं।' जितेन्द्रियने उत्तर दिया कि वह अविलम्ब स्वर्ग जाना चाहते थे। उसी समय स्वर्गसे विमान उतर पड़ा। जितेन्द्रिय विमान पर चढ़ कर अग्निलोक पहुंचे। अग्निलोकसे प्रजापतिलोक होते हुए ब्रह्मलोकमें जाकर उन्होंने अनन्त सुखभोग किया। अपना कुल उज्ज्वल करनेसे ही उनके वंशधरोंने 'कुलश्रेष्ठ' उपाधि पाया है। उनमें 'बरखेरा' और 'चखेरा' दो श्रेणियां हैं। उक्त दोनो श्रेणियोंमें पानाहार प्रचलित नहीं।

करण—कहते कि नर्मदातीर कर्णाग्नि नामक एक ग्राम है। उसी ग्राममें उनके पूर्वपुरुषोंके वास करनेसे 'करण' नाम पड़ा है। उनमें भी दो श्रेणियां हैं—गयावाल और तिरहुतिया। गयासे गयावाल और तिरहुतसे तिरहुतिया शाखाका नामकरण हुवा है। करण कायस्थ प्रायः उड़ीसामें ही रहते हैं।

गौड़—कायस्थ नाम गौड़देशको प्राचीन राजधानी गौड़से निकला है। वह कहते कि उनके पूर्वपुरुष भगदत्त कुरुक्षेत्रके महासमरमें निहत हुए थे। गौड़कायस्थोंमें ही कालसेन वा कामसेन नामक एक राजकुमार रहे। कायस्थोंमें आज भी उनकी पूजा होती है। कायस्थ-कन्याके विवाह-काल प्रदीपके कज्जलसे एक मूर्ति अङ्कित की जाती है। उसीको कालसेनकी मूर्ति मान लोग पूजा करते हैं। गौड़कायस्थ कहते और उनके कुरसीनामेमें भी पढ़ते कि गौड़ाधिप सेनराज उक्त कायस्थवंशीय ही थे। मुहम्मद-बख़्तियार तुर्कने कौशलक्रमसे लक्ष्मनियाके निकट बङ्गराज्य अधिकार किया था। इसीसे अनेक गौड़-कायस्थ युक्तप्रदेश भाग गये। हिमालयस्थ सुखेत, मन्दी प्रभृति स्थानके राजा आज भी अपनेको गौड़-राजवंशीय बताते हैं। प्रकृत प्रस्तावमें गौड़कायस्थवंशीय होते भी आजकल वह अपना परिचय गौड़राजपूतके नामसे देते हैं।* बलबन जब बङ्गाल पहुंचे, तब वहांके कायस्थ-राजा और जमीन्दार उनके अच्छे सहायक हुवे। उनके पुत्र नसीर-उद्-दीनने गौड़से बहुसंख्यक कायस्थोंको बुलाकर इलाहाबाद सूबेके अन्तर्गत निज़ामाबाद, भदोई, कोली, घाघी और विरियाकोट प्रभृति स्थानोंमें कानूनगोईका पद प्रदान किया था। उनके सभी वंशधर गौड़कायस्थ कहलाते हैं।

* Elliot's Races of the N. W. P. ed. by Beames, vol. II. p. 107; Sir Lepen Griffin's Panjab Rajahs; and Crook's Tribes and Castes of the N. W. P. Vol. III. p. 192.

वहांके भटनागरोंने गौड़ोंसे पहले ही मुसलमानी सरकारके अधीन कार्यको स्वीकार किया था। फिर मुसलमानोंके संस्रवसे गौड़कायस्थ भी उनमें मिल गये। भटनागर वाममार्गी रहे। उस समय उनके साथ सम्मिलित होने पर गौड़कायस्थ भी वाममार्गी बन गए और भैरवीचक्रमें पूजा करने लगे।

गौड़कायस्थोंने जब भटनागरोंको आहार करनेके लिये निमन्त्रण दिया, तब भटनागरोंने तो उनके घर जा कर खा लिया, किन्तु पीछे जब भटनागरोंने गौड़कायस्थोंको अपने घर खाने पीनेके लिए बुलाया, तब बहुत थोड़े लोगोंको छोड़ कर अधिकांश गौड़ोंने निमन्त्रणमें जानेसे अपना मुंह छिपाया; फिर जिन लोगोंने भटनागरोंके घरमें जा कर खाया था, उन्हें समाजच्युत भी ठहराया। इससे भटनागर बहुत चिढ़े थे। उस समय दिल्लीमें नसीर-उद्-दीन् सम्राट् रहे। गौड़ और भटनागर उभय श्रेणीके कायस्थ उनके अधीन कर्म करते थे। दिल्लीके भटनागरोंने जब सुना कि उनके ज्ञातिकुटुम्बके घर गौड़कायस्थोंने आहार किया न था, तब उन्होंने गौड़ोंके घर खानेवाले सकल भटनागरोंको समाजच्युत कर दिया। बात ठहर गयी—गौड़ जितने दिन उनके घरमें न खायेंगे, उतने दिन वह भी समाजमें मिलाये न जायेंगे। इस पर समाजच्युत भटनागरोंने मुसलमान-सम्राट्के निकट नालिश की थी। सम्राट्को गौड़कायस्थोंके अन्याय आचरणका परिचय मिला। उन्होंने दिल्लीमें रहनेवाले गौड़ों और भटनागरोंको एकत्र आहार करनेके लिये आदेश दिया था। उस समय वाध्य हो दिल्लीवासी अनेक गौड़ोंने भटनागरोंके घर जा कर खा लिया। किन्तु कई गौड़ भटनागरोंके घर जा कर खानेके भयसे दिल्ली छोड़ कर चले गए। उनमें एक पूर्णगर्भा रमणी रहीं। किसी ब्राह्मणके घर आश्रय लेने पर उनके एक पुत्र उत्पन्न हुवा। बड़ा होने पर उससे साथ ब्राह्मणने अपनी कन्याका विवाह कर दिया था। अपरापर गौड़ बदायूं जिलेमें जा कर रहने लगे।

भटनागरोंके घरमें भोजन करनेवाले गौड़कायस्थ गौड़भटनागरी नामसे ख्यात हुवे। जो बदायूं भाग गये थे, दिल्लीके भटनागरोंने उनके भी वृत्तान्त सम्राट्से कह दिये। बादशाहने उन्हें पकड़ बुलानेके लिये आदमी भेजे थे। उस समय उन्होंने ब्राह्मणोंका आश्रय लिया। राजपुरुष जब पकड़नेके लिये पहुंचे, तब ब्राह्मणोंने उन्हें अपना आत्मीय बताया था। किन्तु उससे राजपुरुषोंका विश्वास न हुवा। उस समय ब्राह्मणोंको गौड़कायस्थोंके साथ एक पात्रमें खाना पड़ा। इसी प्रकार गौड़कायस्थ वहां बच गये। अभियुक्तोंको निकाल न सकने पर बादशाहने विरक्त हो भटनागरोंका आवेदन अग्राह्य किया था। उसीके साथ दूसरे भटनागरोंने भी उन्हें समाजच्युत कर दिया। उक्त समाजच्युत भटनागर गौड़भटनागर और दूसरे (गौड़ोंका अन्न ग्रहण न करनेवाले) विशुद्ध भटनागर समझे गये। इसी प्रकार गौड़कायस्थ चार श्रेणियोंमें बंटे थे—१म आदि गौड़ हैं। वह बङ्गालके सीमान्तपर निजामाबाद, जौनपुर प्रभृति स्थानोंमें कानूनगोईका पद भोग करते थे। २य भटनागरोंके घर खानेवाले, ३य ब्राह्मणोंके घर आश्रय लेनेवाले और ४र्थ ब्राह्मणगृहमें पुत्रप्रसवकारिणी रमणीको समाजमें मिला लेनेवाले हैं। उक्त चारो श्रेणियोंमें पहले आदानप्रदान बन्द रहा। फिर बदायूंके गौड़ निजामाबादमें जा कर रहे और बदायूंके ब्राह्मण उनके पुरोहित बने। २य श्रेणीके गौड़ोंने ३य श्रेणीवालोंके साथ मिलनेकी चेष्टा की थी। पहले कोई फल न निकला। अवशेषको बदायूंके ब्राह्मणोंकी चेष्टासे छोड़ाछोड़ी मिट गई। यहां तक कि उभय श्रेणियोंमें विवाहके समय आदान-प्रदान चलने लगा। किन्तु ४र्थ श्रेणी बहुदिन कन्यादान करनेको सम्मत न हुई। अवशेषको ३य श्रेणीकी चेष्टासे ४र्थ श्रेणी भी दलमें मिल गयी। १म श्रेणी उक्त तीनों श्रेणियोंको कुलमें हीन समझ उतने दिन अलग रही थी। अन्ततः जब उसने देखा कि तीन श्रेणियां परस्पर मिली हैं, तब वह भी क्रम क्रम सबमें मिलकर एक हो गयी। आज कल चारो श्रेणियोंमें आदान-प्रदान चलता है। गौड़-

कायस्थोंकी शाखावोंका नाम खरे, दूसरे, वङ्गाली, दिल्लीवीमाली और बदायूंनी है।

क्या हिन्दू-राजत्व क्या मुसलमान-सरकार दोनों समय कायस्थ सान्धिविग्रहिक वा राजसभाख्य लेखकका पदभोग करते थे। उनमें अनेक संस्कृत ग्रन्थकार और सुपण्डित आविर्भूत हुवे। मुसल-मानोंके अधिकारमें पश्चिमके बहुतसे कायस्थोंने सैनिक-विभागका भी उच्च पद पाया था। उनमें अकबरके राजस्व-सचिव टोडरमल, महाराज नवलराय, पटनाके शासनकर्ता राजा रामनारायण प्रभृतिका नाम उल्लेखयोग्य है। आजकल भी कायस्थ वृटिश गवर्नमेण्टके अधीन क्या शिक्षा-विभाग क्या न्याय-विभाग (कचहरी-अदालत) सर्वत्र उच्च आसन और सम्मान लाभ करते आते हैं। आजकल युक्तप्रदेशके समस्त कायस्थ एकताके सूत्रमें आवद्ध होनेकी चेष्टा करते हैं। युक्तप्रदेशमें प्रायः साढ़े पांच लाख कायस्थोंका वास है।

राजपूताना।

राजपूतानेके कायस्थ प्रायः अपनेको राजधाना कहते हैं। बूंदीमें माथुर और भटनागर कायस्थोंका वास है। मारवाड़में कायस्थोंको 'पञ्चोली ठाकुर' कहा जाता है। राजपूतानेमें अजमेरी, रामसरी और केकरी तीन श्रेणियां मिलती हैं। उनमें सभी यज्ञसूत्र धारण करते हैं। फिर अखाद्य भोजन करनेवालोंका यज्ञसूत्र उतार डाला जाता है। वहां सभी कायस्थ अपनेको क्षत्रिय बतानेके लिये तैयार हैं।* उनका आचार-व्यवहार अधिकांश युक्तप्रदेशके कायस्थों-जैसा है। राजपूतानेके कायस्थोंमें बहुतोंने राजद्वारमें सैनिकवृत्तिको भी अवलम्बन किया है।

विहार।

विहारके कायस्थ अपनेको चित्रगुप्तका प्रकृत वंशधर बताते हैं। उनमें प्रवाद है—सत्ययुगमें जब सब देवता यज्ञ करने लगे, तब यम ब्रह्मासे बोल उठे—'पितामह! इन्द्रादि सकल दिक्पाल हैं। अथच उन्हें यज्ञादि करनेका समय मिल जाता है। किन्तु हमने ऐसा क्या अपराध किया है कि हम अपने कार्यभारको एक मुहूर्तके लिये भी छोड़ नहीं सकते। आप हमें यज्ञ करनेका उपाय बता दीजिये।' ब्रह्माने यमकी उक्त प्रार्थनाके अनुसार अपने शरीरसे चित्रगुप्तको उत्पन्न करके कहा था—'यह महाभाग पाप्राप्य करके तुम्हारे कर्मका अवसरकाल ठहरा देंगे और सबके कर्माकर्मको वर्णना करेंगे। उसके अनुसार तुम स्वर्ग-नरकादिकी व्यवस्था कर सकोगे।'

पश्चिमी कायस्थोंकी भांति विहारी कायस्थोंमें भी द्वादश शाखा हैं। उक्त द्वादश शाखावोंके आदि पुरुष चित्रगुप्तके वंशधर थे। विहारी कायस्थ आज भी उपवीत धारण करते हैं। कारण उनके कथना-नुसार चित्रगुप्तने सोपवीत जन्म लिया था। उनकी द्वादश शाखाका नाम है—अहिठाना, अम्बष्ठ, वाल्मीक, गौड़, कुलश्रेष्ठ, माथुर, निगम, शकसेन, श्रीवास्तव, सूर्यध्वज और करण। उक्त द्वादश शाखा-वोंमें अहिठानोंका आदिनिवास जौनपुर है। पटना और विहुत अञ्चलमें अम्बष्ठ शाखाके लोग ही अधिक देख पड़ते हैं। वाल्मीक शाखाका आदि वासस्थान गुजरात है। अम्बष्ठ, श्रीवास्तव और करण एक ही हुक्केसे तम्बाकू पिया करते हैं। करण और अम्बष्ठ ब्राह्मणप्रस्तुत अन्न एक जगह बैठकर खा सकते हैं।

निगम शाखाके कायस्थ विहारमें अधिक देख नहीं पड़ते। सूर्यध्वजोंके अधिदेवता सूर्य माने जाते हैं। माथुर, शकसेन, श्रीवास्तव और भटनागर अपनेको चित्रगुप्तकी प्रथमा पत्नीका गर्भजात वंश बताते हैं। विहारके गौड़ कायस्थोंको विश्वास है कि बङ्गालके सेन राजा उन्हींकी श्रेणीके अन्तर्गत रहे। श्रीवास्तव शाखाके दो श्रेणी विभाग हैं—खरे और दूसरे। खरे श्रेणीके लोग अन्यान्य श्रीवास्तवोंमें श्रेष्ठ होते हैं। वह अपनेको 'पांडे' बताते हैं। खरे और दूसरे लोगोंमें पाना-हार तथा आदान-प्रदान नहीं चलता। शकसेन शाखामें भी उसी तरह श्रेणी विभाग है। माथुर, भटनागर और शकसेन परस्पर एक दूसरेका अन्नव्यञ्जनादि ग्रहण करते हैं।

* Rajputana Gazetteer.

पूर्वोक्त द्वादश शाखाके लाला कायस्थोंको छोड़ दूसरे कई प्रकारके नीच कायस्थ भी होते हैं। किन्तु वह आप ही अपनेको कायस्थ बताते, अपर जातीय वा पूर्वोक्त द्वादश शाखाके कायस्थ उन्हें कायस्थ कहना नहीं चाहते। शारन जिलेके सेवन नगरमें कितने ही दरजी और कितने ही ठेकेदार भी कायस्थ-नामसे अपना परिचय देते हैं। किन्तु उनके साथ लाला कायस्थोंका कोई संस्रव नहीं। बहुतसे लोग अनुमान करते कि वह वस्तुत: कायस्थ हैं, फिर भी नीच कर्म ग्रहण करनेसे समाजच्युत हो एकवारगी ही भिन्न श्रेणी समझे जाते हैं। कारण आज भी जो लाला कायस्थ वंशानुक्रमसे गांवके पटवारी होते आये हैं, बहुतसे लोग उनके घर आदान-प्रदान करना नहीं चाहते। पटवारी, कानूनगो, अखौरी, पांडे वा बख्शी उपाधिधारी कायस्थ शतगुण धनी वा सत्-कर्मशाली होते भी सामाजिक मर्यादामें हीन समझे जाते हैं।

युक्तप्रदेश और विहारके कायस्थोंका धर्मकर्म प्राय: मिलता जुलता है। किन्तु देशभेदसे आचारमें भी कुछ प्रभेद पड़ गया है।

विहारी-कायस्थोंमें वैष्णव, शैव, शाक्त, कबीरपन्थी, नानकशाही प्रभृति हुवा करते हैं। उनमें शाक्तोंकी ही संख्या अधिक है। भ्रातृद्वितीयाके दिन वह चित्र-गुप्तकी पूजा करते हैं। श्रीपञ्चमी अर्थात् वसन्त पञ्चमीको दावात कलम पूजते हैं।

वङ्गदेश।

वङ्गालमें प्रधानत: चार श्रेणियोंके कायस्थोंका वास है। वह स्थानभेदसे उत्तरराढ़ीय, दक्षिण-राढ़ीय, वङ्गज और वारेन्द्र कहलाते हैं। उक्त चारो श्रेणियां अपना परिचय चित्रगुप्त-सन्तानके नामसे दिया करती हैं। उत्तरराढ़ीय कुलग्रन्थमें लिखा है—

"चित्रगुप्त: क्रियोपेत: सर्वशास्त्रेषु पूज्यते।
सेनो पुत्राष्टका: पृथ्व्यां सर्वसम्पत्तिसंयुता: ॥१५
गौड़ाख्यो माथुरश्चैव शकसेनो भट्टनागर:।
अम्बष्ठ श्रीवास्तव्य: कर्णोपकर्ण उच्यते ॥१६
पुत्राणामष्टकानाञ्च श्रेष्ठ: कर्ण: प्रकीर्तित:।
श्रीकर्ण इति संज्ञ: स: विख्यातो भुवि सर्वत: ॥१७
तस्य वंशे समुद्भूता: पञ्चविप्रा महात्मना:।
वात्स्यगोत्रे ऽनादिवर: सोम: सौकालिनेन च ॥१८
पुरुषोत्तमो मौद्गल्यो विश्वामित्र: सुदर्शन:।
काश्यपेन देवनामा इति ते कथिता मुदा ॥"१९
(घटककेशरीकी उत्तरराढ़ीय कुलदीपिका)

अर्थात् क्रियावान् चित्रगुप्त सर्वशास्त्रमें पूजित हुये थे। उनके वंशधर सेनो रहे। इस पृथिवी पर सेनोके सर्व-सम्पत्तिशाली आठ सन्तान हुवे। उनका नाम गौड़, माथुर, शकसेन, भटनागर, अम्बष्ठ, श्रीवास्तव्य, कर्ण और उपकर्ण था। आठोंमें कर्ण श्रेष्ठ रहे। उसीसे वह इस पृथिवी पर श्रीकर्ण नामसे विख्यात हुवे। उनके वंशमें पांच विप्र महात्मावोंने जन्मग्रहण किया था। पांचोंका नाम वात्स्यगोत्र अनादिवर, सौकालिन सोम, मौद्गल्य पुरुषोत्तम, विश्वामित्र सुदर्शन और काश्यप देव रहा।

उत्तरराढ़ीय-कुलाचार्य पञ्चाननकी कारिकामें कहा है—

"कर्णवंशभवे चित्रगुप्ता: पञ्चविप्रा महाजना:।
वात्स्यगोत्रोऽनादिवर: सोम: सौकालिनस्तथा ॥
पुरुषोत्तमो मौद्गल्य: विश्वामित्र: सुदर्शन:।
काश्यपो देवनामा च इति ते कथिता मुदा ॥
सूर्यवंशोद्भवौ चैतौ दत्तदासौ महाकृती।
चन्द्रवंशोद्भव: चैतौ मित्रकुले सुदर्शन: ॥"

श्रीकर्ण-वंशकी श्रेणिसे पांच महाजन आविर्भूत हुवे। उनमें वात्स्यगोत्र अनादिवर (सिंह), सौकालिन गोत्र सोम (घोष), मौद्गल्य गोत्र पुरुषोत्तम (दास), विश्वामित्र गोत्र सुदर्शन (मित्र), और काश्यप गोत्र देव (दत्त) थे। दत्त तथा दास सूर्यवंशीय और मित्रकुलमें सुदर्शन चन्द्र-वंशीय भी कहलाते हैं।

वङ्गजकायस्थकारिकामें लिखते हैं—

"चित्रदेवसुताद्याद्यो समासन् वै महाशया:।
तेषान्तु कल्पयामास काश्यपो जातकर्म च ॥
एकैव बहुधा भाति गोविन्दो गोवर्द्धनस्तथा।
तेषां मध्ये प्रवरस्य एकविंशतम: स्मृत: ॥
सूर्यध्वजो चन्द्रहासश्चन्द्रार्य चन्द्रदेवक:।
रविदासो रविरत्नो रविधीरश्च गौतक: ॥

इति चाष्टसुता: ख्याता: कुलानां पतयोऽभवन्।
एतेषाञ्च सुता: सर्वे देशाख्यायाश्च संज्ञिता: ॥
घोष: सूर्य्यध्वजाज्जातश्चन्द्रहासाद्वसुस्तथा।
रविरत्नात् गुहश्चैव चन्द्रदेहात्तु मित्रक: ॥
चन्द्रार्धात् करणो जात: रविदासाच्च दत्तक:।
मृत्युञ्जयस्तु गौड़ाच्च कथ्यन्ते ग्रन्थकारकै: ॥
दासको नागनाथौ च करणाच्च समुद्भवा:।
मृत्युञ्जयसुतो जात: देवसेनश्च पालित: ॥
सिंहश्चैव तथा ख्याता: एते पद्धतिकारका:।
मृत्युञ्जय-कुलोद्भूतो नित्यानन्दो नृपेश्वर: ॥
तस्यापि वंशे सञ्जाता: सप्ताशीति: प्रकीर्त्तिता:।
कुलाचारप्रभेदेन द्विसप्तत्यचलाभवन् ॥"

चित्रगुप्तदेवके आठ महाशय पुत्र हुवे थे। कश्यपने उनका जातकर्म किया। उनमें एक एकसे फिर बहुवंश (गोत्र) उत्पन्न हुवे। उनके मध्य २१ वंश ही प्रधान माने जाते हैं। उक्त एकविंशति वंशोंमें सूर्य्यध्वज, चन्द्रहास, चन्द्रार्ध, चन्द्रदेहक, रविदास, रविरत्न, रविधीर और गौड़क कुलपति गिने गए। उनका सन्ततिवर्ग देशनामसे भी आख्यात है। सूर्य्यध्वजसे घोष, चन्द्रहाससे वसु, रविरत्नसे गुह, चन्द्रदेहसे मित्र, चन्द्रार्धसे करण, रविदाससे दत्त और गौड़से मृत्युञ्जयकी उत्पत्ति है। फिर करणसे नाग, नाथ एवं दास और मृत्युञ्जयसे देव, सेन, पालित तथा सिंह नामक प्रसिद्ध पद्धतिकारकोंने जन्मलाभ किया। मृत्युञ्जयके वंशमें नित्यानन्द नामक एक नृपेश्वर आविर्भूत हुवे थे। उन्हींके वंशसे ८७ घर कायस्थ निकले। उनमें ७२ घर कुलाचारके प्रभेदसे 'अचला' कहलाते हैं।

उत्तरराढ़ीय कायस्थकारिकामें जिस प्रकार चित्रगुप्तसे विभिन्न शाखाके कायस्थोंकी उत्पत्ति वर्णित हुयी है, चित्रगुप्तकी पूजा और व्रतकथाके मध्य भी उसी प्रकार श्लोकश्रेणी देख पड़ी है—

"चित्रगुप्तान्वये जाता: शृणु तान् कथयामि वै।
गौड़ाख्या माथुराश्चैव भट्नागरश्सेनका: ॥
अहिष्ठाना: श्रीवास्तवा: ऐकसेनास्तथैव च।
कुशला: सर्वशास्त्रेषु अम्बष्ठाश्च नराधिप ॥"

उक्त श्लोक कुलग्रन्थके अनुरूप होते भी इस विषयमें घोरतर मतभेद विद्यमान है। बङ्गालके किसी किसी कुलग्रन्थमें सेनक वा सेनीको चित्रगुप्तका भ्राता और चित्रगुप्तव्रतकथा तथा पश्चिमाञ्चलके कायस्थकुल-परिचय-ग्रन्थसमूहमें उनको चित्रगुप्तका पुत्र बताया है। प्राचीन पुराणमें चित्रगुप्तका भ्रातृ-परिचय न रहने और अहल्याकामधेनुधृत यमसंहिता तथा युक्तप्रदेशीय कायस्थोंके कुलग्रन्थसमूहमें चित्रगुप्तसे विभिन्न श्रेणीके कायस्थोंकी उत्पत्ति विवृत होने पर हमने प्राचीन मतके अनुसार सेनी वा सेनकको चित्रगुप्तका पुत्र ही माना है। युक्तप्रदेशमें विभिन्न श्रेणीके जो सकल कायस्थ मिलते, उनके मध्य श्रीवास्तव, सक्सेन, करण, सूर्य्यध्वज, अम्बष्ठ, राजधाना और गौड़ कई श्रेणीके कायस्थ बङ्गाल पहुंचे थे। इनके वंशधर विभिन्न स्थानमें इस समय विभिन्न श्रेणीभुक्त हो गये हैं। सुतरां कुलग्रन्थके अनुसार वसु, घोष, मित्र, दत्त, सिंह प्रभृति उपाधिधारी कायस्थ भी युक्तप्रदेशीय श्रीवास्तव प्रभृति विभिन्न शाखाके ज्ञाति होते और युक्तप्रदेशके कायस्थोंकी भांति बङ्गालके घोष, वसु, मित्र प्रभृति विशुद्ध कायस्थवंशधर क्षत्रियवर्णके अन्तर्गत ठहरते हैं।*

मिथिला।

कर्णाटकवंशीय महाराज नान्यदेव ई० ११ शताब्दको मिथिला पदार्पण करते हुवे अपने साथ निज अमात्य कायस्थकुलभूषण श्रीधर तथा उनके १२ सम्बन्धियोंको लाये थे। वह जब समस्त मिथिलाके अधिपति हुये, तब उनके सचिव श्रीधर और उक्त १२ कुटुम्बी अन्य उच्च पद पर नियुक्त किये गये और उन्हें खानेपीनेके लिये बहुतसे गांव मिले। उस समयसे उक्त कायस्थ मिथिलामें ही रहने लगे। उसके पीछे मन्त्रिवर श्रीधर महोदयने अपने बहुतेरे बन्धु-बान्धवोंको धीरे धीरे मिथिला बुलाया और उन्हें जीविका दिला करके मिथिलामें ही बसाया था। कायस्थ चार बारको जा कर मिथिलामें बसे। प्रथम बार (जैसा पहले लिख चुके हैं) श्रीधर और

* बङ्गके जातीय इतिहास "राजन्यकाण्ड"में बङ्गदेशीय कायस्थोंका आदिपरिचय और इतिहास द्रष्टव्य है।

उनके १२ कुटुम्ब पहुंचे थे। फिर दूसरी बार बीस, तीसरी बार तीस और चौथी बार पचास कायस्थोंकी मण्डली मिथिला गयी। सारांश—कुल ११२ कायस्थ नान्यदेवको समय मिथिलामें जाकर रहे। अपने देशको न लौटने और मिथिलामें ही निवास ग्रहण करनेसे वह 'कर्णकायस्थ' नामसे अभिहित हुवे। राजा नान्यदेवके वंशज राजा हरिसिंह देवने जब मिथिलास्थ उच्च वर्णोंकी पञ्जी बनायी, तब कायस्थोंके वंशकी विवेचना करके शुद्धाचरण और उच्च पदानुग्रहणके क्रमसे उन्हें ४ श्रेणियोंमें विभक्त किया। नान्यदेवके साथ गये १२ कायस्थोंके वंशधरोंने पञ्जीप्रबन्धके मध्य प्रथम श्रेणीमें स्थान पाया था। द्वितीय श्रेणीमें उन २० कायस्थोंके वंशज रहे, जो त्रिहुत राज्य मिलने पर बुलाये गये। फिर तीसरी बारको गये ३० कायस्थोंके वंशज तृतीय श्रेणी और चौथी बारको पहुंचे अवशिष्ट कायस्थसन्तान चतुर्थ श्रेणीभुक्त हुवे।

उक्त कायस्थ मिथिलामें बस जाने पीछे अपने दूसरे भाइयोंकी भांति स्थानान्तरको नहीं गये। इसी लिये वह पुरानी मिथिलाकी सीमाके बाहर नहीं मिलते अर्थात् उसीके भीतर रहते हैं।

महाराज नान्यदेवके घरानेसे लेकर ओइनवार घरानेके मध्य समय तक मिथिलाके कायस्थ 'ठाकुर' कहलाते रहे। फिर किसी ओइनवार भूदेव-वंशावतंस महानुभावको कायस्थों और ब्राह्मणोंकी पदवीका सादृश्य असङ्गत लगा। इस लिये उन्होंने गम्भीर विचारायत्त हो कर कायस्थोंकी 'ठाकुर' पदवीको अनेकानेक पदवियोंमें विभक्त किया। जो जिस विषयमें निपुण देख पड़ा, वह उसी पदवीसे विभूषित हुवा। कायस्थोंने राजोपजीवी होनेसे सहर्ष नाना प्रकारकी उक्त पदवियोंको स्वीकार कर लिया।

आजकलके मैथिल पञ्जियार कहा करते कि कर्णाटकसे मिथिलावासी होने कारण मिथिलाके कायस्थ 'कर्णकायस्थ' कहलाते हैं। परन्तु हमें समसामयिक शिलालिपि वा ग्रन्थसे इसके समर्थनका कोई प्रमाण नहीं मिला। उलटे, कर्णाटक नान्यदेवके सहयोगी और प्रधान मन्त्री श्रीधर ठाकुर, जो वंशपञ्जी ग्रन्थमें कुलीन कर्णकायस्थोंके मध्य सबसे बड़े समझे गये हैं, अपनी शिलालिपिमें 'चत्रवङ्गालभानु' नामसे परिचित हुवे हैं। दरभङ्गा जिलेमें जबदी परगनेके बीच अन्धाड़ाठाढ़ी नामक एक ग्राम है। उसमें कमलादित्य मन्दिरके ध्वंसावशेषमें एक टूटी हुई विष्णुकी मूर्तिके पादपीठ पर निम्नलिखित शिलालेख उत्कीर्ण है—

> "ओं श्रीमन्नान्यपतिर्जेता गुणरत्नमहार्णवः।
> यत् कीर्त्योज्ज्वलितं विश्वं द्वितीयो चीरधी वरः॥
> मन्त्रिणा तस्य नान्यस्य चत्रवङ्गालभानुना।
> देवोऽयं कारितः श्रीमान् श्रीधरः श्रीधरेण च॥"

'जिनकी कीर्तिसे विश्व उज्ज्वलित अर्थात् व्याप्त है, जो दूसरे बृहस्पतिकी बराबर वर्णन करनेयोग्य हैं और जो गुणरूप रत्नके समुद्र हैं, वही श्रीमान् नान्यपति विजयी हों। उन्हीं नान्यदेवके मन्त्री वङ्गप्रकाशक्षत्रिय-सूर्यस्वरूप श्रीधरने उक्त श्रीधर नामक श्रीमान् देवमूर्ति प्रतिष्ठित की है।'

समसामयिक शिलालिपिमें श्रीधर ठाकुर 'चत्रवङ्गालभानु' लिखे गये हैं। ऐसी अवस्थामें निःसन्देह वह कायस्थ-क्षत्रिय और वङ्गवासी रहे। गौड़के सेनवंशीय कर्णाट-क्षत्रिय थे और नान्यदेव उन्हींके ज्ञाति थे। राढ़देशमें गङ्गातीर कर्णाटोंका एक प्रधान उपनिवेश रहा। सम्भवतः उसी स्थानसे नान्यदेव और श्रीधर ठाकुर अपने आत्मीय स्वजन ले करके मिथिला जीतनेको आगे बढ़े। बङ्गालके उत्तरराढ़ीय कायस्थोंके प्राचीन कुलग्रन्थमें उत्तरराढ़ीय कायस्थोंके पूर्वपुरुष 'श्रीकर्णवंशसम्भूत', 'श्रीकर्णवंशश्रेणीभुक्त' और 'श्रीकर्णके कुलानुग' कहलाये हैं। वङ्गदेशके प्रसङ्गमें उक्त प्राचीन कुलपञ्जीका प्रमाण उद्धृत हो चुका है। मालूम पड़ता कि राढ़ीय-कायस्थोंके आदिपुरुषोंको भांति श्रीधरदास और उनके कुटुम्बी 'कर्णकायस्थ' नामसे मैथिल-समाजमें परिचित हुये हैं। बङ्गालके कायस्थोंकी भांति मैथिल कायस्थ समाजमें भी दास, दत्त, सेन, कण्ठ, निधि, मल्लिक, लाभ, चौधरी, राउ इत्यादि पदवी

प्रचलित हैं। उनका कर्मकाण्ड मैथिल ब्राह्मणोंके ही सदृश होता है। किन्तु विवाह, श्राद्धादिकमें भिन्नता देख पड़ती है। मिथिल कायस्थोंमें प्राजापत्य-विवाह करते हैं।

उड़ीसा।

उड़ीसाके करण अपनेको विशुद्ध कायस्थ और चित्रगुप्तके वंशधर बताते हैं। इस बातके समझनेका कोई प्रकृष्ट उपाय नहीं—वह किस समय और किस प्रकार जा कर उड़ीसामें रहे। पुरीकी श्रीमन्दिरस्थ मादलापञ्जी और अन्यान्य विवरणसे समझ पड़ता कि उन्होंने मगधसे गङ्गवंशीय राजावोंके अभ्युदयसे बहुपूर्व उड़ीसा जा कर पूर्वतन राजावोंके अधीन कर्म स्वीकार किया था। गङ्गवंशीय राजावोंके पूर्ववर्ती कटक, सम्बलपुर प्रभृति स्थानोंसे आविष्कृत सोमवंशीय राजावोंके समय उत्कीर्ण ताम्रशासनसे समझते कि कलिङ्गाधिपति जनमेजय, ययाति, महाभवगुप्त प्रभृति राजावोंके अधीन कायस्थ महासान्धिविग्रहिकका कार्य करते थे। उनका 'घोष' 'दत्त' इत्यादि उपाधि था।* उक्त सकल उपाधि मागध वा विहारी कायस्थोंमें नहीं मिलते। किन्तु वङ्गीय कायस्थोंके मध्य वह सकल उपाधि प्रचलित हैं। इससे समझ सकते कि वङ्गदेशसे ही जा कर करणिक कायस्थ उड़ीसामें बसे थे। आजकल विशुद्ध करण भी अपनेको बङ्गालका ही कायस्थ बताते हैं। बल्लालसेनके समय कौलीन्य-प्रथा ग्रहण न करनेसे उन्हें देश छोड़ उड़ीसा जाना पड़ा। किन्तु हम पहले ही लिख चुके हैं कि बल्लालसेनसे बहु पूर्व उड़ीसामें 'घोष' और 'दत्त' उपाधिधारी कायस्थ विद्यमान थे।

करण कहते कि सबसे पहले उनके ढाई घर रहे। सम्भवतः उनके कथनका उद्देश यह है कि सर्वप्रथम उनकी संख्या अति अल्पमात्र रही। उक्त ढाई घरोंमें एकने 'आठगढ़'का वर्तमान राजवंश स्थापन किया था। वह पूर्वतन उत्कलराजके 'बेवर्ता' (व्यवहर्ता-मन्त्री) रहे। दूसरा घर पुरी जिलामें खुर्दाके राजाका दीवान है। अन्यान्य करण अवशिष्ट आधे घरमें समझे जाते हैं। इस समय तक आठगढ़के राजाका 'बेवर्तापट्टनायक' उपाधि विद्यमान है। करण खर, पुर और व्याज भेदसे अपनेको तीन श्रेणीयोंमें विभक्त करते हैं। उपर्युक्त आठगढ़-राजवंशीय 'खर' खुर्दाके दीवान्-वंशीय 'पुर' और अन्यान्य अपनेको 'व्याज' श्रेणीका कायस्थ कहते हैं। प्रथमोक्त दो श्रेणी तृतीय श्रेणीसे अपनेको विशेष कुलीन प्रकाश करते हैं। उन्हें उत्कल-प्रचलित सामाजिक रीतिके अनुसार ब्राह्मणोंसे नीचे और खण्डायतोंसे ऊपर मर्यादा मिलती है।

सम्प्रति करण कायस्थ कटक, पुरी एवं बालेश्वर तीन जिलों, समस्त गड़जात महालों और गञ्जाम तथा सम्बलपुर प्रभृति स्थानोंमें वास करते हैं। भिन्न भिन्न स्थानोंमें अवस्थिति करनेसे उनका आचार-व्यवहार तथा रीति-नीति भी बदल गई है। पुरी तथा कटक अञ्चलके करणोंसे भद्रख एवं बालेश्वर अञ्चलके करणोंका विवाह-सम्बन्ध नहीं होता। पुरी और खुर्दा अञ्चलके करण अपनेको सर्वश्रेष्ठ मानते हैं। उत्कलीय करण महान्ति, दास, नायक, मल्ल, पट्टनायक, कानूनगो और सेनापति प्रभृति उपाधि-भूषित हैं। उनमें कानूनगो और पट्टनायक उपाधि विशेष सम्मानसूचक होते हैं।

उत्कलीय करणोंमें कोई चैतन्यभक्त और कोई जगन्नाथके अतिवड़ी सम्प्रदाय-भुक्त हैं। चैतन्यदेवके उड़ीसा जानेसे आज तक उनमें अनेक वैष्णव कवियोंने जन्मग्रहण किया है। उनके मध्य कविवर 'बलराम दास' देशविख्यात हैं। उन्होंने उत्कल पद्यसमन्वित अनेक पौराणिक ग्रन्थ प्रणयन किये हैं। उड़ीसेके बहुतसे स्थानोंमें उड़ी करण वैष्णवोंका एक सम्प्रदाय है। उनमें कोई गौड़ीय, कोई अतिवड़ी और कोई रामानन्दी श्रेणीके अन्तर्गत है। उनका विवाह उसी श्रेणी किंवा कभी कभी करणोंके साथ हुआ करता है। वह मद्यमांस नहीं खाते।

* Journal Asiatic Society of Bengal, Vol. XLVI, part I, p. 177.

मध्यभारत।

मध्यप्रदेशके पूर्वतन अधिवासी कायस्थ अपनेको 'माथुर कायस्थ' और चित्रगुप्तके सन्तान बताते हैं। मुसलमान नवाबोंके आगमनकाल मध्यप्रदेशके अधिकांश ब्राह्मणोंने देश छोड़ दिया था। उस समय मुसलमानोंने कायस्थोंको फारसी भाषामें पारदर्शी, कार्यकुशल और चतुर देख नाना स्थानोंपर कानूनगोईका पद प्रदान किया। उनमें जात्यभिमान वा कुसंस्कार नहीं, प्रायः सब लोग लिख पढ़ सकते हैं। वह कहा करते हैं—'अक्षरोंकी सृष्टिके साथ साथ कायस्थोंकी भी सृष्टि हुई है। विधाताने लिखने-पढ़नेके लिये ही कायस्थोंको बनाया है।' इसीसे मध्यप्रदेशके अति सामान्य कायस्थ भी किसीके परिचारक कर्ममें नहीं लगे। दासत्व उनमें अति हेय कार्य समझा जाता है। वह अपना परिचय मसिजीवी क्षत्रियके नामसे दिया करते हैं। १०म वा ११श वर्षके मध्य ही पुत्रका मौञ्जी सम्पन्न होता है। मृतके उद्देश वह द्वादश दिन मात्र अशौच ग्रहण करते हैं। उनकी एक शाखा निजामके राज्यमें जाकर रहने लगी है। वहां उन्होंने हिन्दू और मुसलमान राजावोंके अधिकारमें अपनी कार्यदक्षताके गुणसे कितनी ही जागीर और इनाम पाया है।

मन्द्राज प्रेसिडेंसी।

मन्द्राज प्रान्तमें भी चित्रगुप्त और चान्द्रसेनीय प्रभु उभय श्रेणीके कायस्थोंका वास है। उनका आचार-व्यवहार और अनुष्ठानादि अधिकतर महाराष्ट्रीय कायस्थों-जैसा है। महाराष्ट्रकी भांति मन्द्राजके ब्राह्मणोंने भी अनेक बार कायस्थोंके साथ छेड़छाड़ की है। किन्तु महाराष्ट्र देशमें ब्राह्मणोंके अधिकारसे कोङ्कणस्थ ब्राह्मणोंको जो सुविधा हुई थी, तेलङ्ग ब्राह्मणोंको वह सुविधा लग न सकी। जहां वेदभाष्यकार सायणाचार्य प्रभृतिका जन्मस्थान है, वहां राजन्यवर्गने कायस्थोंको द्विजातिके मध्य गिना। वैदिक द्राविड़ ब्राह्मण उनका पौरोहित्य करते हैं। द्वादश वर्षके पूर्व ही मन्द्राजमें कायस्थोंका उपनयन सम्पन्न होता है। पितामाता अथवा निकट आत्मीयके मरनेसे १२ दिन मात्र अशौच ग्रहण करते हैं।

पाण्ड्य राजावोंके समय मन्द्राजके कायस्थ सिंहलद्वीप गये और सिंहलराज पराक्रम बाहु प्रभृतिसे उन्हें महासान्धिविग्रहिक पद मिले थे।

मन्द्राजके कायस्थ 'कायस्थलु' नामसे परिचित हैं। आज भी वह नाना स्थानोंमें कुलकरणी वा कानूनगोईके पद पर प्रतिष्ठित हैं। वह अपनेको क्षत्रिय वर्णान्तर्गत बताया करते हैं।* कुम्भकोणम् प्रभृति कई स्थानोंमें कायस्थ मठाध्यक्ष भी हैं।† यहां तक कि अंगरेजी अधिकारके राजकार्यमें वह ब्राह्मणोंके महाप्रतिद्वन्द्वी बन गये हैं।‡

गुजरात।

कायस्थोंकी १२ श्रेणियोंसे केवल तीन वाल्मीक, माथुर और भटनागर गुजरातमें मिलते हैं। गुजरातके दूसरे हिन्दुवोंसे अपना समाज पृथक् रखते भी उनमें परस्पर आदान-प्रदान और पानाहार प्रचलित नहीं।§

वाल्मीक कायस्थ प्रधानतः सूरतमें पाये जाते हैं। कहते हैं—काठियावाड़के वाला नगरमें प्रायः ई० १४श शताब्दको कायस्थ जाकर बसे थे। (रासमाला, १।२१५) किन्तु दक्षिण गुजरातमें उन्होंने प्रायः ई० १६श शताब्दका अधिवेशन किया, जब गुजरात मुगलसाम्राज्यमें मिल गया।¶ सम्राट् अकबरके प्रबन्धानुसार सूरतकी प्रतिष्ठा

* "It is not irrelevent, however, to state here that the whole of the third class, that of the writers, have a distinct strain of Kshatriya blood, not only in this (Madras) Presidency, but in Upper India, where they are stronger in number as well as in influence." Census Report of British India, 1881, Vol. III, p. xcix.

† Wilson's Mackenzie Collections, p. 615.

‡ Wilson's Castes, Vol. I, p. 66.

§ बङ्गालमें वाल्मीक भटनागर तथा माथुर परस्पर रोटी-बेटीका व्यवहार रखते हैं।

¶ कहते हैं—मुसलमान उन्हें अपने साथ गुजरात ले गये थे। (Malcolm's Central India, Vol. II, p. 165.

बढ़ी थी। राजकीय लेखक (मुतसद्दी) नगर और निकटस्थ जिलोंके शासक रहे। वह गुजरातवाले सूबेदारके अधीन न थे, दिल्लीको राजसभासे सीधा सम्बन्ध रखते थे। सूरतके अट्ठाईस विभागोंको मालगुजारी वही वसूल करते थे। १८८६ ई० तक अंगरेजी गांवोंमें और १८८५ ई० तक बड़ोदाके २८ गांवोंमें प्रधानतः कायस्थ ही मजुमदार रहे। उनका आकार-प्रकार ब्राह्मणोंसे मिलता है।

गुजराती कायस्थोंकी निराली बैठक मेलकशाला मकान (गृह) है। वहां समवयस्क लोग सन्ध्याको जा कर मिलते, हुक्का पीते, धार्मिक गीत सुनते या सुनाते और आमोद-प्रमोद करते हैं। उन्हें गानेका बड़ा शौक है और उनमें कुछ अच्छे अभिनेता भी हैं। प्रत्येक कुटुम्बको एक अधिष्ठात्री देवी होती हैं। औदीच्य ब्राह्मण पौरोहित्य करते हैं। अपने धार्मिक प्रधानों महाराष्ट्रोंके अतिरिक्त, जिन्हें विवाहके समय बुलाते हैं, वाल्मीक कायस्थ ब्राह्मणोंके प्रति विशेष सम्मान प्रदर्शन नहीं करते। दूसरे वैष्णवोंकी अपेक्षा महाराष्ट्रोंसे भी वह न्यून भेदभाव रखते हैं।

माथुर कायस्थ अहमदाबाद, बड़ोदा, दभोई, सूरत, राधनपुर और नड़िआदमें होते हैं। १५७३-१७५० ई० को मुगल-सूबेदारोंके साथ वह लेखक और दुभाषियेकी भांति गुजरात गये थे।

५० वा ६० वर्ष हुवे माथुर मांस भोजन करते थे। किन्तु अब वह निरामिषभोजी हैं। चैत्र और आश्विन मास पूजाके समय माथुर मांस और देशी सुरा देवीको समर्पण किया करते थे। किन्तु गुजरातके ब्राह्मणों और वैश्योंसे घनिष्ठ सम्बन्ध होने पर उन्होंने अपनी वह रीति छोड़ दी है। अब मांसके बदले श्वेत कुष्माण्ड और सुराके स्थानमें शरबत चढ़ाते हैं।

माथुरोंमें कोई रामानुजी, कोई वल्लभाचारी और कोई शैव हैं। प्रत्येक भवनमें एक कुलदेवी काली, दुर्गा वा अम्बा रहती हैं। माथुरोंके पूज्यदेव लालजी (बालरूप कृष्ण), गणपति वा महादेव हैं। स्त्री-पुरुष दोनों शिव, विष्णु और माताके मन्दिर दर्शन करनेको जाते हैं। संस्कारादिके समय कुलगुरु पौरोहित्य करते, जो औदीच्य, श्रीमाली वा पाराशर ब्राह्मण रहते हैं।

साधारण हिन्दू पर्वोंके अतिरिक्त माथुरोंमें दूसरे भी कई पुण्यदिन होते हैं। वह कार्तिक शुक्ला और चैत्र शुक्ला द्वितीयाके दिन चित्रगुप्त पूजन और भगिनी-कर्तृक प्रस्तुत खाद्य भोजन करते हैं।

भटनागर कायस्थ अहमदाबाद, बड़ोदा और अल्पसंख्यक सूरतमें देख पड़ते हैं। वाल्मीक और माथुर कायस्थोंकी भांति वह भी गुजरातको उत्तर-भारतसे गये, जहां आज भी उनकी संख्या अधिक है। भटनागर दूसरे कायस्थोंकी भांति अपनेको चित्रगुप्तका वंशधर बताते हैं। पद्मपुराणमें लिखा है कि चित्रगुप्तके १२ पुत्रोंमें एक पुत्र भट नामक साधुके साथ श्रीनगर संस्थापन करने भेजे गये थे, पीछे वही श्रीनगरके शासक हुवे। उन्हींसे भटनागर नाम निकला है। उनमें व्यास और दास दो श्रेणी हैं। इन दोनो श्रेणियोंमें व्यास ऊंचे समझे जाते हैं। पहले वह दासोंके हाथका बना भोजन ग्रहण न करते थे। व्यास दासोंकी कन्या ले लेते, परन्तु अपनी कन्या उन्हें कभी नहीं देते। आकृति, परिच्छद (पोशाक), भाषा, खाद्य, गृह और उपजीविकामें भटनागर, वाल्मीकों और माथुरोंसे मिलते हैं। वह वल्लभाचार्य सम्प्रदायभुक्त हैं। दशहरा और कार्तिक शुक्ला द्वितीया उनका विशेष पुण्याह है। उस दिन चित्रगुप्तके सम्मानार्थ एक गूढ़ छन्द लिखा और तलवारके साथ पूजा जाता है। उनका आचार-व्यवहार वाल्मीकोंकी अपेक्षा माथुरोंसे अधिक मिलता है। भटनागरोंका पौरोहित्य श्रीगौड़ ब्राह्मण करते हैं। उनमें कोई चौधरी या मुखिया नहीं होता।

बम्बई-प्रान्त।

बम्बई प्रदेशमें चान्द्रसेनी प्रभु, ध्रुव प्रभु, दमन प्रभु और ब्रह्मक्षत्रिय श्रेणीके कायस्थ रहते हैं।

दाक्षिणात्यमें बीस हजारसे अधिक चान्द्रसेनी प्रभुवोंका वास है। उनके मध्य बम्बई-प्रान्तके

अन्तर्गत कोङ्कण प्रदेशमें ही लोग अधिक देख पड़ते हैं। फिर थाना और कुलाबा जिलामें भी अधिकांश चान्द्रसेनी प्रभु पाये जाते हैं। केवल उक्त दोनों जिलोंमें ही वह बारह हजारसे कम न होंगे। खास बम्बई, जंजीरा, पूना, सितारा और अन्यान्य स्थानमें भी उनका वास है।

चान्द्रसेनी प्रभु कायस्थ अयोध्याके क्षत्रियराजा चन्द्रसेनकी सन्तति होनेका दावा करते हैं। स्कन्द-पुराणके रेणुकामाहात्म्यमें लिखा है—"परशुरामने क्षत्रिय-संहार की अपनी प्रतिज्ञा पूरण करनेके लिये सहस्रार्जुन और राजा चन्द्रसेनको मार डाला। परन्तु उन्होंने सुना, चन्द्रसेनकी महिषीने दाल्भ्य ऋषिका आश्रय लिया था और वह गर्भवती रहीं। परशुराम अपनी प्रतिज्ञा पालन करनेको उक्त ऋषिके निकट जा कर उपस्थित हुवे। ऋषिने परशुरामको आदर सत्कार कर कहा था—'आप अपने आगमनका अभिप्राय बतलाइये। आपका अभिलाष निश्चय पूर्ण किया जावेगा।' परशुरामने उत्तर दिया कि वह चन्द्रसेनकी महिषीकी खोजमें थे। ऋषि अविलम्ब उक्त महिलाको ले आये। परशुरामने अपने यज्ञकी सफलतामें प्रसन्न हो ऋषिको मुंहमांगा वर देने कहा था। ऋषिने अप्रसूत बालक मांगा। परशुराम उन्हें इस शर्त पर उक्त पुत्र देनेको प्रस्तुत हुवे कि उसे और उसके सन्तानको लेखक बनाया जाता, सैनिक नहीं। बालकका नाम सोमराज रखा गया। उन्हीं सोमराजके पुत्र विश्वनाथ, महादेव, भानु तथा लक्ष्मीधर और उनके वंशज 'कायस्थ-प्रभु' नामसे परिचित हुवे।"

पहले मुसलमानोंने कायस्थोंको कर्ममें लगाया था। पूनामें मुसलमानी नगर जुन्नारके निकट, जंजीराकी राजपुरी, थाना जिलेकी उत्तरसीमा पर, दामन, बड़ोदा और कल्याणमें कायस्थोंके उपनिवेश स्थापित हुवे। दामनवाले हबशी राजाके एक कायस्थ प्रभु प्रधान मन्त्री रहे। गायकवाड़के प्रधान मन्त्री रावजी अप्पाजी भी कायस्थोंके एक पृष्ठपोषक थे। कल्याणसे ही कायस्थ थाना जिलेमें आकर फैल पड़े हैं। शिवाजी (१६२७-१६८० ई०) कायस्थ प्रभुवोंसे बहुत प्रीत रहते थे। समय समय पर सतारा, कोल्हापुर, नागपुर और बड़ोदाकी अदालतोंमें कायस्थोंने बड़ा प्राधान्य पाया। पूनाके राव बहादुर रामचन्द्र सखाराम गुप्तके कथनानुसार शिवाजीने एक बार राजस्व-विभागके अपने समस्त ब्राह्मण निकाल करके उनके स्थान पर कायस्थ प्रभुवोंको रखा था। मोरपन्त पिङ्गले और नीलपन्त अपने दो ब्राह्मण अमात्यदाताओंके आपत्ति करने पर शिवजीने कहा—'स्मरण रखिये कि विना विवाद समस्त मुसलमानी स्थान, जो ब्राह्मणोंके अधिकारमें थे, छोड़ दिये गये हैं। परन्तु प्रभुवोंके अधिकृत स्थान लेनेमें बड़ी मुशकिल पड़ी थी। उनमें एक राजपुरी आज भी नहीं ली जा सकी है।'

बम्बई-प्रान्तके चान्द्रसेनी प्रभु ब्राह्मणोंके पीछे ही सामाजिक आसन पाते और अपनेको क्षत्रिय बताते हैं। उनमें २५ गोत्र और ४२ उपाधि हैं।

उक्त कायस्थ-प्रभुवोंका आचार-व्यवहार, भावगठन और परिच्छदादि सम्पूर्ण कोङ्कणस्थ ब्राह्मणों जैसा होता है। वह देखनेमें सुन्दर एवं परिष्कृत रहते और मस्तक पर चूड़ा तथा स्कन्ध पर यज्ञोपवीत रखते हैं। सकल कायस्थ-प्रभु यजन, अध्ययन और दान विविध वैदिक कर्मके अधिकारी हैं।* दशम वर्षके पूर्व वह पुत्रादिको उपनयन दिया करते हैं। उपनयनके समय यथाविधि ब्रह्मचर्य पालित होता है। एतद्भिन्न जातकर्म, नामकरण, कर्णवेध, दन्तोद्गम, चूड़ाकरण, निष्क्रामण, सीमन्तोन्नयन, विवाह, गर्भाधान, अन्त्येष्टि प्रभृति सकल संस्कार यथाविधि किये जाते हैं। विधवा-विवाह उनमें प्रचलित नहीं। विवाह और श्राद्ध पर वह क्षमतासे भी अधिक व्यय करनेमें कुण्ठित नहीं होते। उनके मध्य भागवत और वैष्णव मांस-भोजनसे दूर रहते हैं। शाक्त अपनेको 'देवीपुत्र' कहते और मद्यमांस ग्रहण करते हैं। देशस्थ ब्राह्मण ही उनके गुरु-पुरोहित हैं।

* Sherring's Tribes and Castes, Vol. II. p. 182 and Arthur Steel's Law and Custom of Hindu Castes, p. 94.

कायस्थप्रभुवोंमें जाताशौच और मृताशौच १२ दिन रहता है। त्रयोदश दिवस मृतोद्देशसे श्राद्ध किया जाता है। पेशवावोंके प्राधान्यकाल उनके जातिकुटुम्बवाले कोङ्कणस्थ ब्राह्मणोंने कायस्थ प्रभुवों पर यथेष्ट अत्याचार किया। उस समय वैदिक कर्म सम्पादनको ब्राह्मण पुरोहित न मिलनेसे कोई कोई अपने आप पौरोहित्य और होमादि वैदिक कर्म कर लेते थे। आज भी किसी किसीने उक्त वृत्ति नहीं छोड़ी। * यहां तक कि ब्राह्मणोंके उक्त प्रभावकाल जिन्होंने स्वधर्मरक्षाके लिये गुजरात, कच्छ प्रभृति दूर देशोंमें जा कर आश्रय लिया और उपयुक्त पुरोहितके अभावमें वाध्य हो अशास्त्रीय याजनकार्य ग्रहण किया था, आज भी उनके वंशधर पुरोहित, लेखक और शस्त्रजीवी बने हैं। † इसमें सन्देह नहीं कि ब्राह्मणोंके पीड़नसे व्यथित और हताश हो कर ही कायस्थ प्रभु वैसा कार्य करने पर वाध्य हुये थे। फिर उनके किसी किसी वंशधरने उक्त उच्च अधिकार परित्याग करना उचित न समझा।

दाक्षिणात्यके प्रभुवोंमें किसीकी अवस्था मन्द नहीं। दाक्षिणात्यमें वह आज भी देशपाण्ड्य तथा कुलकरणी बने हैं और महाराष्ट्रनृप-प्रदत्त जागीर भोग करते हैं।

कोङ्कणके अन्तर्गत दमन नामक स्थानमें जो चान्द्र-सेनीय प्रभु रहते, उन्हें और पत्तनप्रभुवाले चन्द्रवंशीय कामपतिके दमन नामक सन्तानके वंशधरोंको 'दमनप्रभु' कहते हैं। उनका आचार-व्यवहार और संस्कारादि समस्त चान्द्रसेनीय प्रभुवोंसे मिलता है। दमनश्रेणीमें चान्द्रसेनीय और पाठारीय उभय श्रेणीका मिलन देख पड़ता है।

चेउल, वसई, कुलावा, बम्बई, थाना, पूना प्रभृति जिलावोंमें पत्तन-प्रभुवोंका वास है। वह संख्यामें अति अल्प हैं। उनकी अल्प संख्याका कारण क्या है? कोई कोई समझता कि मुसलमानोंके आधिपत्यकाल उनमें अनेक चान्द्रसेनीय प्रभुवोंके साथ मिल गये थे। किन्तु आजकल पत्तनप्रभु चान्द्र-सेनीय प्रभुवोंका कोई सम्बन्ध स्वीकार नहीं करते। वह अपनेको विशुद्ध क्षत्रिय और चान्द्रसेनीयोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ बतलाते हैं। पेशवा अथवा कोङ्कणस्थ ब्राह्मणवंशीय प्रतिनिधियोंसे सतारेमें जिस समय चिटनवीसोंका दारुण विवाद चलता था, उसी समय अधिकांश पत्तनप्रभु ब्राह्मणोंके अत्याचारसे बचनेको स्वतन्त्र हो गये। फिर भी जो चान्द्रसेनीयोंके साथ गाढ़ मित्रता और कुटुम्बिताके सूत्रमें आवद्ध रहे, वह स्वतन्त्र हो न सके। उनके वंशधर आज भी चान्द्र-सेनीयोंके मध्य 'पाटने' उपाधि भोग करते हैं। यहां तक कि वह पत्तन-श्रेणीसे पृथक् हो गये हैं।

पत्तनप्रभुवोंकी मातृभाषा अनहलवाड़ा पत्तन (पाटन) के राजपूतोंकी भाषासे मिलती है। इस लिये बहुतसे लोगोंका विश्वास है कि उक्त राजपूतोंसे ही पत्तनप्रभुवोंका उद्भव और पाटन नगरसे उनका नाम-करण हुवा होगा। *

कोङ्कणस्थ ब्राह्मणों द्वारा प्रकृत क्षत्रिय स्वीकार न किये जाते भी वह बराबर यजन, अध्ययन एवं दान त्रिविध द्विजोचित कर्म सम्पादन और चान्द्रसेनीय कायस्थोंकी भांति सकल संस्कार पालन करते हैं। पत्तनप्रभु दशम वर्ष पुत्रको उपनयन देते और अशौचमें १२ दिन मात्र लेते हैं। आज भी कोङ्कणके नाना स्थानोंमें प्रभुलोग बहुतसी जागीर रखते और बड़े बड़े पद भोग करते हैं। †

महाराष्ट्रदेशमें ध्रुवप्रभु नामक एक श्रेणीके कायस्थ देख पड़ते हैं। वह अपनेको पुराणवर्णित उत्तानपादराजपुत्र ध्रुवका वंशधर कहते और पत्तन-प्रभुवोंका एकश्रेणीभुक्त समझते हैं। उनके प्रधान

* "It is certain that some have aspired to the priesthood, an office everywhere carefully retained by the Brahmans, and so to whisper the sacred formula, perform sacrificial rites, and to officiate at the Homa, or burnt-offering." (Sherring's Tribes and Castes, Vol. II.)

† Indian Antiquary, Vol. V, p. 171.

* Bombay Gazetteer, Vol. XVIII. Pt. I. p. 185.

† पत्तनप्रभुवोंके वर्तमान आचार-व्यवहार सम्बन्धका विस्तृत विवरण Bombay Gazetteer, Vol. XVIII, pt. I. (Poona), p. 193-255. और हिन्दी विश्वकोषके 'पत्तनप्रभु' शब्दमें द्रष्टव्य है।

व्यक्ति कहा करते हैं—'पहले हम लोगोंके साथ पत्तनीप्रभुवोंका विवाह सम्बन्ध प्रचलित था।' मध्यमें उन्होंने पत्तनीप्रभुवोंमें मिलनेकी चेष्टा की। पत्तनप्रभुवोंने उन्हें स्वजातीयकी भांति स्वीकार करते भी समाजमें ग्रहण किया न था। उनका आचार-व्यवहार और गठनादि पत्तनप्रभुवोंकी ही भांति लगता है। उनकी स्थिति भी मन्द नहीं। वह क्षत्रियोचित संस्कारादि सम्पादन करते और ब्राह्मण-व्यतीत अपर सकल जातिकी अपेक्षा अपनेको श्रेष्ठ समझते हैं। ब्राह्मणको छोड़ दूसरी किसी जातिके हाथ ध्रुवप्रभु आहार नहीं करते। अष्टमसे दशम वर्षके मध्य वह पुत्रको उपनयन देते हैं। द्वादश दिन मृताशौच ग्रहण किया जाता है। फिर त्रयोदश दिवस मृतके उद्देश श्राद्ध-क्रिया सम्पन्न होती है। उपनयन, विवाह और श्राद्ध तीनों संस्कार महा-समारोह और बहु व्ययसे किये जाते हैं। विधवा-विवाह वा बहुविवाह उनके मध्य प्रचलित नहीं।*

सिन्धु, गुजरात और महाराष्ट्रमें ब्रह्मक्षत्रिय नामक कायस्थ रहते हैं। सह्याद्रिखण्डमें सूर्यवंशीय और चन्द्रवंशीय प्रभु ही ब्रह्मक्षत्रिय नामसे वर्णित हुये हैं। अधिक सम्भव है कि अश्वपति एवं कामपतिके सन्तानोंमें जो पैठनपत्तन अथवा अनहल-वाड़पाटनमें रहते उन्हें "पत्तनप्रभु" और गुजरात, सिन्धु तथा कर्णाट प्रभृति स्थानोंमें जो रहते उन्हें "ब्रह्मक्षत्रिय" कहते हैं। कर्णाट और सिन्धु प्रदेशमें उक्त ब्रह्मक्षत्रिय किसी समय अति प्रबल पड़ गये थे। सिन्धु और कच्छ प्रदेशमें उन्होंने बहुकाल राजत्व किया। कच्छमें बहुसंख्यक ब्रह्मक्षत्रियोंका वास है। वहां ब्रह्मक्षत्रिय कहा करते हैं—"परशुरामकी परशु-धारासे जो क्षत्रिय आत्मरक्षा कर सके थे, हम उन्हींके वंशधर हैं। सिन्धुप्रदेशमें हमारे पूर्वपुरुषोंने बहु-काल राजत्व किया। विदेशी वर्वर लोगोंके हाथ राज्यच्युत और विताड़ित हो उन्होंने हिङ्गलाज-देवीका आश्रय लिया था। उन्हीं देवीने दया करके उनको कितने ही अधिकार प्रदान किये।"* गवर्न-मेण्टने स्वीकार किया है कि काठियावाड़ और कच्छ-प्रदेशमें शान्तिस्थापन तथा वृटिश शासनके प्रचारकाल उक्त ब्रह्मक्षत्रिय-वंशीय सुन्दरजी शिवाजीने कर्नेल वाकर प्रभृतिको यथेष्ट साहाय्य दिया था। पेशवावोंके समय कोई कोई प्रभु जा कर उनसे मिल गये। जहां प्रभु कायस्थोंका वास अधिक और ब्रह्मक्षत्रियोंकी संख्या अल्प है, वहां उभयश्रेणीके मध्य विवाह-सम्बन्ध हो जाता है।

षष्ठसे दशमवर्षके मध्य वह पुत्रका उपनयन करते हैं। उनके विवाहका आचारादि दाक्षिणात्यके ब्राह्मणोंकी भांति है। आत्मीय और सपिण्डके मरने पर दश दिनमात्र अशौच ग्रहण करके पीछे श्राद्ध-भोजादि करते हैं। अधिकांश स्थलोंमें ब्रह्मक्षत्रिय मसिजीवी और वणिक्का कर्म चलाते हैं। कहीं कहीं उन्हें पौरोहित्य करते भी देखा जाता है।

ब्रह्मक्षत्रिय देखनेमें अधिकांश गुजराती ब्राह्मणों-जैसे होते हैं। सकल ही सुश्री, परिष्कृत और शिक्षित हैं।

उपकायस्थ।

भारतवर्षमें सर्वत्र कितने ही उपकायस्थ मिलते हैं। कायस्थोंसे शूद्रकन्याके अवैध संयोगमें उक्त सकल उपकायस्थोंकी उत्पत्ति है। उनके साथ प्रकृत कायस्थोंका कोई सामाजिक संस्रव नहीं। फिर भी अनेक उपकायस्थ कायस्थोंके निन्दावाद और नीच-जातित्व प्रतिपादन करनेकी चेष्टामें लगे रहते हैं। उनकी अवस्था देख कर ही सम्भवतः औशनस धर्म-शास्त्रका वचन गठित और कमलाकर द्वारा सङ्कर-कायस्थोंकी व्यवस्था लिपिबद्ध हुयी है। थोड़ीसी आलोचना करनेसे समझ पड़ेगा—भारतवर्षीय प्रकृत कायस्थ-समाजके साथ उनका कोई सम्बन्ध नहीं।

* ध्रुवप्रभुवोंके जन्मसे मृत्यु पर्यन्त आचार-व्यवहारादिका विवरण Bombay Gazetteer, Vol. XVIII, pt. I. p. 185-192 में द्रष्टव्य है।

* Indian Antiquary, Vol. V. p. 171.

अन्य कारकके प्रवर्तनकारीको कर्तृकारक, क्रिया-निष्पादनके विषयमें अति निकटवर्ती कारणको करण, क्रियाके उद्दिष्ट व्यापारविशिष्टको कर्म, कर्तृकर्म व्यतीत अपर क्रियाधारणशील कारक (क्रियाके आधार) को अधिकरण, प्रेरण अनुमति प्रभृति व्यापारविशिष्टको सम्प्रदान और अवधि भावज्ञान-विशिष्टको अपादान कहते हैं।

कारक छह प्रकारका है—कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण। पाणिनिके मतमें कर्तृकारकका लक्षण है,—स्वतन्त्रः कर्ता। पा १।४।५४। अर्थात् क्रियामें स्वातन्त्र्यकी अवस्थापर विवक्षित कारक कर्ता कहाता है। उक्त होनेसे कर्तामें प्रथमा और अनुक्त रहनेसे तृतीया विभक्ति लगती है। उसको छोड़ अन्यत्र प्रथमा विभक्ति आती है। यथा,—प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा। पा २।३।४६। प्रातिपदिक अर्थमात्र, लिङ्गमात्र, परिमाणमात्र और संख्यामात्रमें प्रथमा विभक्ति होती है। दूसरे—सम्बोधने च। पा २।३।४७। अन्यको जिस शब्दसे अपने सम्मुखीन बनाया जाता, वह सम्बोधन कहाता है। उसमें भी प्रथमा विभक्ति ही लगती है। कर्तृकरणयोस्तृतीया। पा २।३।१८। अनुक्त कर्तृकारक और करणकारकमें तृतीया विभक्ति आती है।

कर्मका लक्षण है,—कर्तुरीप्सिततमं कर्म। पा १।४।४९। अर्थात् कर्ता क्रियासे जिस ईप्सिततम पदार्थको लेना चाहता, उसीका नाम कर्म है। तथायुक्तं चानीप्सितम्। पा १।४।५०। फिर क्रिया द्वारा ईप्सित पदार्थको भांति कोई अनीप्सित पदार्थ निष्पन्न होते भी उसकी कर्मसंज्ञा पड़ती है। अकथितं च। पा १।४।५१। अपादानादि द्वारा अविवक्षित कारक कर्मसंज्ञक होता है। गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणिकर्ता स णौ। पा १।४।५२। गति, बुद्धि और प्रत्यवसान अर्थमें अणिजन्त कालका कर्ता णिजन्तकालमें कर्म कहाता है। हृक्रोरन्यतरस्याम्। पा १।४।५३। हृ और कृ धातुके अणिजन्तकालका कर्ता णिजन्तकालमें विकल्पसे कर्मसंज्ञक होता है। अधिशीङ्स्थासां कर्म। पा १।४।४६। अधि पूर्वक शी, स्था और आस धातुके योगमें अधिकरणको कर्मसंज्ञा होती है। अभिनिविशश्च। पा १।४।४७। अभि और नि पूर्वक विश धातुके योगमें भी अधिकरणको कर्म कहते हैं। किसी किसी स्थलमें व्यभिचार दर्शनसे उक्त विधि विकल्प माना गया है। यथा—"पादे अभिनिविशः। उपान्वध्याङ्वसः॥" पा १।४।४८। उप, अनु, अधि और आङ् पूर्वक वस धातुको कर्मसंज्ञा है। क्रुधद्रुहोरुपसृष्टयोः कर्म। पा १।४।३८। उपसर्गविशिष्ट क्रुध और द्रुह धातुके प्रयोगमें जिसके प्रति क्रोध आता, वह कर्म कहाता है।

कर्म तीन प्रकारका है—निर्वर्त्य, विकार्य और प्राप्य। कर्मकारक उक्त होनेसे प्रथमा और अनुक्त कर्ममें द्वितीया विभक्ति लगती है। कर्मणि द्वितीया। पा २।३।२। अनुक्त कर्ममें द्वितीया विभक्ति आती है। उसको छोड़ अन्यान्य स्थलोंमें भी द्वितीया विभक्ति पड़ती है। यथा—अन्तरान्तरेण युक्ते। पा २।३।४। अन्तरा और अन्तरेण शब्दके योगमें द्वितीया विभक्ति लगती है। कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया। पा २।३।८। कर्म और प्रवचनीय संज्ञाविशिष्ट शब्दके योगमें द्वितीया विभक्ति लगाते हैं। प्रवचनीय देखो। कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे। पा २।३।५। कालवाचक एवं अध्ववाचक शब्दके साथ गुण, क्रिया और द्रव्यका निरन्तर सम्बन्ध समझ पड़नेसे भी द्वितीया आती है।

करणका लक्षण है—साधकतमं करणम्। पा १।४।४२। क्रियासिद्धिके विषयमें जो प्रधान उपकारक होता, उसीको करण कहा है। दिवः कर्म च। पा १।४।४३। दिव धातुके साधक कारकको कर्म और करण उभय संज्ञा होती हैं। कर्तृकरणयोस्तृतीया। पा २।३।१८। अनुक्त कर्तृकारक और करणमें तृतीया विभक्ति लगती है। उसके छोड़ अन्य स्थलोंमें भी तृतीया विभक्ति आती है। यथा,—अपवर्गे तृतीया। पा २।३।६। फलप्राप्तिकी सम्भावनासे काल और अध्ववाचक शब्दका निरन्तर सम्बन्ध होने पर तृतीया विभक्ति लगती है। सहयुक्तेऽप्रधाने। पा २।३।१९। सहार्थ शब्दके योगसे अप्रधान पदार्थमें तृतीया विभक्ति होती है। सहार्थ शब्दकी विवक्षा रहते भी तृतीया विभक्ति लगाते हैं। सह, साकं, सार्धं और समं सहार्थ शब्द हैं। येनाङ्गविकारः।

कायस्था (सं० स्त्री०) कायः तिष्ठति अनया, काय-स्था-क। १ हरीतकी, हड़। २ आमलकी, आंवला। ३ काकोली। ४ स्थूलैला, बड़ी इलायची। ५ सूक्ष्मैला, छोटी इलायची। ६ तुलसीवृक्ष। ७ सिन्दुवारवृक्ष, संभालूका पेड़। ८ कायस्थ-स्त्रीजाति।

कायस्थादिधूपन (सं० क्ली०) धूपनविशेष, एक बफारा। हरीतकी, रास्ना, कटुकी, गुडूची, गुग्गुलु, चोरक नामक गन्धद्रव्य, वाय्यालक, वचा तथा कुष्ठ बराबर बराबर डाल बफारा लेनेसे शीतज्वर छूट जाता है। फिर उक्त कल्कको यवचार, लवण तथा काञ्जिकके साथ यथाविधि पकाने और शरीरमें लगानेसे भी शीतज्वर शान्त होता है। (भावप्रकाश)

कायस्थाली (सं० स्त्री०) रक्तपाटल वृक्ष, लाल फूलका एक पेड़।

कायस्थिका (सं० स्त्री०) काकोली।

कायस्थैर्य (सं० क्ली०) कायस्य स्थैर्यम्, ६-तत्। १ रसायन औषधादि द्वारा शरीरको स्थिरता, मुकव्वी दवा खानेसे जिस्मकी मजबूती।

काया (हिं० स्त्री०) शरीर, जिस्म।

कायाकल्प (हिं० पु०) कायस्थैर्य, दवाके जोरसे पुराने जिस्मको नया बनानेकी तरकीब।

कायाकाशसम्बन्धसंयम (सं० पु०) काय और आकाशके सम्बन्धका संयम, जिस्म और आसमान्के लगावका जब्त। इससे आकाशमें लोग उड़ सकते हैं।

"कायाकाशयोः सम्बन्धसंयमात्
लघुतूलसमापत्तेश्चाकाशगमनम्।" (पातञ्जलसूत्र)

कायाग्नि (सं० पु०) कायस्थितो अग्निः, मध्यपदलो०। पाचकाग्नि, हज़म करनेकी ताक़त।

कायापलट (हिं० स्त्री०) १ कायपरिवर्तन, जिस्मकी तबदीली। २ घोर परिवर्तन, बड़ा हेरफेर।

कायिक (सं० त्रि०) कायेन निष्पादितः निर्वृत्तो वा, काय-ठक्। १ शरीर द्वारा निष्पादित, जिस्मसे किया हुवा। २ शरीर द्वारा उत्पन्न, जिस्मसे निकला हुवा। ३ शरीर सम्बन्धीय, जिसमानी।

कायिका (सं० स्त्री०) कायेन कायिकव्यापारेण निर्वृत्ता, काय-ठक्। वृषभ प्रभृतिके कायिक परिश्रमसे निष्पादित वृद्धि, बैल वगैरहकी मेहनतसे अदा किया जानेवाला सूद।

"दोह्यवाह्यकर्मयुता कायिका समुदाहृता।" (व्यास)

कायोढज (सं० पु०) पुत्रविशेष, एक बेटा। प्राजापत्य विवाहसे उत्पन्न होनेवाले पुत्रको कायोढज कहते हैं।

कायोत्सर्ग (सं० पु०) जैन अर्हत्की एक मूर्ति। यह वीतरागावस्थामें खड़ा रहता है।

कार (सं० पु०) कृ-घञ्। १ वध, क़त्ल। २ निश्चय, यक़ीन। (कं सुखं ऋच्छति अनेन, क-ऋ-घञ्) ३ स्वामी, मालिक। ४ तुषारपर्वत, बरफका पहाड़। ५ करने या बनानेवाला। कोई कर्मपद पूर्व रहनेसे 'कार' शब्द कर्ता अर्थमें आता है, जैसे—स्वर्णकार, कुम्भकार, कर्मकार इत्यादि। ६ क्रिया, काम। यौगिक अर्थमें ही इसका प्रयोग पड़ता है, जैसे—उपकार, चमत्कार। ७ अक्षरको बतानेवाला। यह भी यौगिक अर्थमें ही प्रयुक्त होता है, जैसे—अकार, ककार इत्यादि। ८ पूजाका उपकरण, बलि।

कार (फ़ा० पु०) कार्य, काम।

कारक (सं० क्ली०) क्रियाभिरन्वितं भाष्यमते करोति क्रियां निर्वर्तयति, कृ कर्तरि ण्वुल्। १ यमानी, कटेया। २ बदर, बेर। ३ वर्षोपलोद्भव जल, ओलेका पानी। ४ अवस्थाविशेष, हालत (Case)। क्रियाके साथ सम्बन्धविशिष्ट अथवा क्रिया निष्पादकको कारक कहते हैं। वैयाकरणभूषणके मतमें क्रियाजनक शक्तिविशिष्टमात्र कारकपदवाच्य है। द्रव्यादिमें उक्त शक्ति रहना असम्भव है। फिर भी शक्ति और शक्तिमान्का अभेद मानके द्रव्यादिमें कारकत्वका व्यवहार होता है। कारक शब्दका क्रियानिष्पादक अर्थ लगानेसे सकल कारक कर्तृकारक हो जाते हैं। किन्तु व्यापारके भेदानुसार उनका करणादि भेद मान लेना पड़ता है। मञ्जूषामें कारकका भेद लिखा है,—

"कर्तुः कारकान्तरप्रवर्तनव्यापारः। करणस्य क्रियाजनकाव्यवहित-व्यापारः। क्रियाफलेनोद्देश्यत्वरूपव्यापारश्च कर्मणः; कर्तृकर्मव्यवहित-क्रियाधारत्वव्यापारो अधिकरणस्य। ईरणानुमत्यादि व्यापारः सम्प्रदानस्य। अवधिभावोपगमव्यापारो ऽपादानस्येति।"

और आङ्‌ शब्दके योगमें पञ्चमी लगती है। पञ्चम्यपाङ्‌परिभिः। पा २।३।१०। अप, आङ्‌ और परि शब्दके योगमें पञ्चमी आती है। प्रतिनिधिप्रतिदाने च यस्मात्‌। पा २।३।११। प्रतिनिधि और प्रतिदान अर्थमें प्रति शब्दके प्रयोगसे पञ्चमी पड़ती है। अकर्तर्य्यृणे पञ्चमी। पा २।३।२४। कर्तृशून्य ऋण हेतुका स्वरूप होनेसे पञ्चमी आती है। विभाषा गुणेऽस्त्रियाम्‌। पा २।३।२५। अस्त्रीलिङ्ग गुणवाचक शब्द हेतुस्वरूप रहनेसे विकल्पमें पञ्चमी होती है। पृथग्विनानानाभिस्तृतीयान्यतरस्याम्‌। पा २।३।३२। पृथक्‌, विना और नाना शब्दके योगमें तृतीया, द्वितीया एवं पञ्चमी विभक्ति लगाते हैं। करणे च स्तोकाल्पकृच्छ्रकतिपयस्यासत्त्ववचनस्य। पा २।३।३३। अद्रव्यवाची स्तोक, अल्प, कृच्छ्र और कतिपय शब्दके उत्तर करणमें तृतीया तथा पञ्चमी विभक्ति पड़ती है। दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च। पा २।३।३५। दूर एवं समीपार्थ शब्दके उत्तर द्वितीया और पञ्चमी विभक्ति रखते हैं। पञ्चमी विभक्ते। पा २।३।४२। जिससे कुछ निकाल लिया जाता, उसमें पञ्चमी विभक्तिका प्रयोग आता है।

अधिकरणका लक्षण है,—आधारोऽधिकरणम्‌। पा १।४।४५। क्रियाके आधारस्वरूप कर्तृ कर्मके आधारको अधिकरण संज्ञा है। उसमें सप्तमी विभक्ति होती है। सप्तम्यधिकरणे च। पा २।३।३६। अधिकरण और दूर तथा निकटार्थ शब्दके योगमें सप्तमी लगती है। यस्य च भावेन भावलक्षणम्‌। पा २।३।३७। जिसकी क्रिया द्वारा क्रियान्तर लक्षित होता, उसमें सप्तमी आती है। षष्ठी चानादरे। पा २।३।३८। अनादर अर्थमें षष्ठी और सप्तमी विभक्ति होती है। स्वामीश्वराधिपतिदायादसाक्षिप्रतिभूप्रसूतैश्च। पा २।३।३९। स्वामी, ईश्वर, अधिपति, दायाद, साक्षी, प्रतिभू एवं प्रसूत शब्दके योगमें षष्ठी और सप्तमी विभक्ति लगती है। आयुक्तकुशलाभ्यां चासेवायाम्‌। पा २।३।४०। आयुक्त और कुशल शब्दके योगमें तादर्थ्य अर्थसे षष्ठी तथा सप्तमी विभक्ति होती है। यतश्च निर्धारणम्‌। पा २।३।४१। जाति, गुण, क्रिया और संज्ञा द्वारा एकदेश मात्र जिससे पृथक्‌ किया जाता, उसमें सप्तमी विभक्तिका प्रयोग आता है। साधुनिपुणाभ्यामर्चायाम् सप्तम्यप्रतेः। पा २।३।४३। साधु और निपुण शब्दके योगमें पूजा अर्थसे सप्तमी विभक्ति लगती है। किन्तु उसमें प्रति शब्दका प्रयोग नहीं होता। प्रसितोत्सुकाभ्यां तृतीया च। पा २।३।४४। प्रसित एवं उत्सुक शब्दयोगमें तृतीया तथा सप्तमी विभक्ति रखते हैं। नक्षत्रे च लुपि। पा २।३।४५। लुबन्त नक्षत्र शब्दमें अधिकरण अर्थ पर तृतीया और सप्तमी विभक्ति लगायी जाती है। सप्तमीपञ्चम्यौ कारकमध्ये। पा २।३।७। शक्तिद्वयका मध्यवर्ती जो कालवाचक एवं अध्ववाचक शब्द रहता, उसमें पञ्चमी और सप्तमीका प्रयोग पड़ता है। यस्मादधिकं यस्य चेश्वरवचनं तत्र सप्तमी। पा २।३।९। जो जिससे अधिक अथवा ईश्वर ठहरता, उसमें सप्तमीका प्रयोग लगता है। उसको छोड़ साधु वा असाधु शब्दके प्रयोग और कर्मपदयोगसे निमित्तवाचक शब्दमें भी सप्तमी विभक्ति होती है। यथा—

> "चर्मणि द्वीपिनं हन्ति दन्तयोर्हन्ति कुञ्जरम्‌;
> केशेषु चमरीं हन्ति सोम्नि पुष्कलको हतः॥"

उक्त सकल कारकोंके मध्य उभयकी प्राप्ति-सम्भावना रहनेसे परवर्ती कारक ही लगता है। यथा—

> "अपादान-सम्प्रदान करणाधारकर्मणाम्‌।
> कर्तुश्चोभयसम्प्राप्तौ परमेव प्रवर्तते॥"

सम्बन्धको कारकता नहीं होती। उसीसे वह कारकोंमें गिना भी नहीं जाता। सम्बन्ध अर्थमें और कारक व्यतीत अन्य अर्थमें षष्ठी विभक्ति होती है। षष्ठी शेषे। पा २।३।५०। कारक और प्रातिपदिक अर्थ व्यतिरिक्त स्वकीय स्वामिभावादि सम्बन्धका नाम शेष है। उसीमें षष्ठी विभक्ति होती है। उक्त कारक विभक्ति-समूहकी भांति अर्थ विशेषमें भी षष्ठी विभक्तिका विधान है। यथा—षष्ठी हेतुप्रयोगे। पा २।३।२६। हेतु शब्दके प्रयोगमें हेतुवाचक और हेतु शब्द उभय स्थल पर षष्ठी विभक्ति होती है। सर्वनाम्नस्तृतीया च। पा २।३।२७। हेतु शब्दके प्रयोगसे सर्वनाम शब्द और हेतु शब्दमें षष्ठी विभक्ति लगती है। षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन। पा २।३।३०। अतसुच्‌ अर्थमें कप्रत्ययान्त शब्दके योगसे षष्ठी विभक्ति होती है। एनपा द्वितीया। पा २।३।३१। एनप्‌ प्रत्ययान्त शब्दके योगमें द्वितीया और षष्ठी आती है। दूरान्तिकार्थैः षष्ठ्यन्यतरस्याम्‌।

पा २।३।२०। जिस विकृत अङ्ग द्वारा शरीरीका विकार देख पड़ता, उसी अङ्गविशेषमें तृतीयाका प्रयोग चलता है। इत्थम्भूतलक्षणे। पा २।३।२१। जिस चिह्न द्वारा कोई रूपान्तर लक्षित होता, उसमें तृतीया विभक्तिका प्रयोग पड़ता है। संज्ञोऽन्यतरस्यां कर्मणि। पा २।३।२२। संपूर्वक ज्ञा धातुके योगमें विकल्पसे तृतीया होती है। हेतौ। पा २।३।२३। फलसाधनयोग्य पदार्थमें तृतीया आती है।

सम्प्रदानका लक्षण है—कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्। पा १।४।३२। जिसके उद्देशसे दानकार्य सम्पादित होता, उसीको सम्प्रदान संज्ञा है। रुच्यर्थानां प्रीयमाणः। पा १।४।३३। रुचि अर्थबोधक धातुके प्रयोगमें प्रीयमाण अर्थात् प्रीतिवालेकी सम्प्रदान संज्ञा होती है। श्लाघह्नुङ्स्थाशपां ज्ञीप्स्यमानः। पा १।४।३४। श्लाघ, ह्नु, स्था और शप् धातुके प्रयोगमें उनके अर्थ अनुभवकारककी सम्प्रदान संज्ञा पड़ती है। धारेरुत्तमर्णः। पा १।४।३५। णिजन्त धृ धातुके प्रयोगमें उत्तमर्णकी सम्प्रदान संज्ञा होती है। स्पृहेरीप्सितः। पा १।४।३६। स्पृह धातुके प्रयोगमें अभीष्ट पदार्थकी सम्प्रदान संज्ञा है। क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः। पा १।४।३७। क्रोध, अपकार, ईर्ष्या और असूया अर्थके प्रयोगमें जिसके प्रति क्रोध आता, वही सम्प्रदान कहाता है। किन्तु उपसर्गविशिष्ट होनेसे उसे कर्म कहते हैं। राधीक्ष्योर्यस्य विप्रश्नः। पा १।४।३९। राध और ईक्ष धातुके प्रयोगमें जिसके सम्बन्ध पर शुभाशुभ प्रश्न किया जाता, वही सम्प्रदान कहाता है। प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः पूर्वस्य कर्ता। पा १।४।४०। प्रति और आङ् पूर्वक श्रु धातुके प्रयोगमें पूर्ववर्ती प्रवर्तन व्यापारका जो कर्ता रहता, उसका नाम सम्प्रदान पड़ता है। अनुप्रतिगृणश्च। पा १।४।४१। अनु और प्रति पूर्वक गृ धातुके प्रयोगमें प्रवर्तन-व्यापारके कर्ताको सम्प्रदान संज्ञा होती है। परिक्रयणे सम्प्रदानमन्यतरस्याम्। पा १।४।४४। जिसके द्वारा नियत कालके लिये अधिकार सधता, विकल्पसे उसका सम्प्रदान नाम पड़ता है। चतुर्थी सम्प्रदाने। पा २।३।१३। सम्प्रदान अर्थमें चतुर्थी विभक्ति होती है। अन्यान्य स्थलमें भी चतुर्थी विभक्तिका विधान है, यथा—क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः। पा २।३।१४। क्रिया-वाचक उपपदविशिष्ट अप्रयुक्त तुमन् अर्थके कर्ममें चतुर्थी लगती है। तुमर्थाच्च भाववचनात्। पा २।३।१५। तुमर्थ प्रयोगमें और भाववचनार्थमें विहित प्रत्ययके प्रयोगसे चतुर्थी आती है। नमः स्वस्ति स्वाहा स्वधालं वषड्योगाच्च। पा २।३।१६। स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलं और वषट् शब्दके योगमें चतुर्थी लगती है। मन्यकर्मण्यनादरे विभाषाऽप्राणिषु। पा २।३।१७। मन धातुके अनादर अर्थ गम्यमानमें प्राणिवर्जित अन्य कर्म पद पर विकल्पसे चतुर्थी विभक्ति लगाते हैं। फिर विकल्प पक्षमें द्वितीया विभक्ति आती है। गत्यर्थकर्मणि द्वितीयाचतुर्थ्यौ चेष्टायामनध्वनि। पा २।३।१२। गत्यर्थ धातुके कायकृत व्यापार अर्थमें अध्व भिन्न कर्मस्थल पर द्वितीया और चतुर्थी विभक्ति होती हैं। उसको छोड़ तादर्थ्य अर्थ, क्लृप धातुके अर्थ, सम्प्रदान अर्थ, उत्पातके द्वारा ज्ञापित विषय और हित शब्दके योगमें भी चतुर्थी विभक्ति लगती है।

अपादानका लक्षण है,—ध्रुवमपायेऽपादानम्। पा १।४।२४। विश्लेष विषयमें अवधीभूत कारककी अपादान संज्ञा होती है। भीत्रार्थानां भयहेतुः। पा १।४।२५। भयार्थ और रक्षार्थ धातुके प्रयोगमें भयहेतुकी अपादान संज्ञा ठहरती है। पराजेरसोढः। पा १।४।२६। परा पूर्वक जि धातुके प्रयोगमें असह्य अर्थकी अपादान संज्ञा है। वारणार्थानामीप्सितः। पा १।४।२७। वारणार्थ धातुके प्रयोगमें ईप्सित विषयकी अपादान संज्ञा लगाते हैं। अन्तर्धौ येनादर्शनमिच्छति। पा १।४।२८। व्यवधान रहते जिसके द्वारा अपने अदर्शनकी इच्छा की जाती, उसकी अपादान संज्ञा आती है। आख्यातोपयोगे। पा १।४।२९। यथारीति अध्ययन अर्थमें जो वक्ता रहता, उसका नाम अपादान पड़ता है। जनिकर्तुः प्रकृतिः। पा १।४।३०। जन धातुके प्रयोगमें उत्पत्तिकारणको अपादान संज्ञा होती है। भुवः प्रभवः पा १।४।३१। प्रपूर्वक भू धातुके प्रयोगमें उत्पत्ति कारणको अपादान संज्ञा है। अपादाने पञ्चमी। पा २।३।२८। अपादान कारकमें पञ्चमी विभक्ति लगती है। उसको छोड़ अन्य स्थलोंमें भी पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा—अन्यारादितरर्ते दिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते। पा २।३।२९। अन्य, आरात्, इतर, ऋते, दिक्, अञ्चूत्तर, आच्

प्रतिमूर्ति 'गुमटा' कहाती है। स्थानीय क्षुद्र पर्वत प्रायः ३० हाथ ऊंचा होगा। इसी पर्वतपर गोमट स्थापित हैं। यह मूर्ति १३४८ शकको बनी थी। जैनोंके अन्यान्य मन्दिर भी इसी पर्वत पर बने हैं। इस नगरमें एक प्रकाण्ड पर्वतखण्ड है। उसका तलदेश प्रशस्त है। ऊर्ध्व दिक्‌को पर्वतखण्ड क्रमशः सूक्ष्म पड़ गया है। नाम ध्वजस्तम्भ है। हिन्दुवोंके अनन्तदेवका मन्दिर देखने योग्य है। यहां चावलकी बड़ी आदृत है।

कारकविभक्ति (सं० स्त्री०) कारकशक्तिबोधिका विभक्तिः, मध्यपदलो०। कर्मादि कारकबोधक द्वितीया प्रभृति विभक्ति।

कारकहेतु (सं० पु०) प्रधान कारक, खास सबब।

कारकुचीय (सं० पु०) कारकुचि-छ। १ शाल्वदेश, एक मुल्क। यह हिन्दुस्थानके उत्तरपश्चिम हिमालय गिरिके प्रान्तभागमें अवस्थित है। २ शाल्वदेशवासी।

कारकुन (फा० पु०) १ स्थानापन्न, एवजी। २ प्रबन्धकर्ता, कारिंदा।

कारखाना (फा० पु०) १ कार्यालय, कामकी जगह। २ व्यवसाय, धन्धा। ३ दृश्य, तमाशा। ४ व्यापार, काम।

कारगर (फा० वि०) १ लाभकारक, मुफीद। २ प्रभावोत्पादक, असर डालनेवाला।

कारगुज़ार (फा० वि०) कर्तव्य पूरा करनेवाला, जो कामको अच्छी तरह करता हो।

कारगुज़ारी (फा० स्त्री०) १ कर्तव्यपालन, कामको अच्छी तरह करनेकी हालत। २ पाटव, होशियारी। ३ धर्मख्यता, काम करनेकी आदत।

कारचोब (फा० पु०) १ अड्डा, लकड़ीका कोई चौखटा। इस पर वस्त्र तान ज़रदोजी या कसीदा बनाते हैं। २ ज़रदोज़, कसीदेका काम बनानेवाला। ३ कसीदा या गुलकारी। यह ज़रीके तारोंसे लकड़ीके चौखटे पर निकाला जाता है।

कारचोबी (फा० स्त्री०) १ ज़रदोज़ी, कसीदा, गुलकारी। (वि०) २ कसीदेके मुताल्लिक।

कारज (सं० वि०) कारात् क्रियातो जायते, कार-जन-ड। १ क्रियाजात, फेलसे पैदा। (करजात् भवः करजस्य इदं वा, करज-अण्) २ नखजात, नाखूनसे निकला हुवा। ३ नखसम्बन्धीय, नाखूनके मुताल्लिक। (पु०) ४ गजशावक, बच्चा हाथी।

कारन (हिं) कार्य देखो।

कारञ्ज (सं० वि०) करञ्जस्य इदम्, करञ्ज-अण्। १ करञ्जफलजात, करौंदेके फलसे निकला। २ करञ्ज-सम्बन्धीय, करौंदेसे सरोकार रखनेवाला।

कारञ्जतैल (सं० क्ली०) करञ्जात् जातं तैलम्, मध्यपदलो०। करञ्जफलजात तेल, करौंदेका तेल। यह तीक्ष्ण, लघु, उष्णवीर्य, कटुरस, कटुपाक, भेदक और वायु, कफ, क्रमि, कुष्ठ, प्रमेह तथा शिरोरोगनाशक है। (सुश्रुत)

कारञ्जसुधा (सं० स्त्री०) करञ्जचूर्ण, करौंदेकी बुकनी। यह रुचिप्रद होती है। (वैद्यकनिघण्टु)

कारटा (हिं० पु०) करट, कौवा।

कारटून (अं० पु० Cartoon) हास्योत्पादक चित्र, हंसीकी तसवीर। यह कल्पित एवं उपहासपूर्ण रहता और गूढ़ रहस्य प्रकट करता है।

कारड (अं० पु० Card) १ पत्र, चिट्ठी, कागज़। २ क्रीड़ापत्र, ताश।

कारण (सं० पु०-क्ली०) कार्यते अनेन, क्र-णिच्-ल्युट्। १ हेतु, सबब। जिसके व्यतीत कार्य निष्पन्न नहीं होता, उसीका नाम कारण है। उसका संस्कृत पर्याय—हेतु, बीज, निमित्त और प्रत्यय है।

कार्यके अव्यवहित पूर्वक्षण कार्याधिकरणमें जिस वस्तुका अभाव उपलब्धि नहीं आता, वही वस्तु अन्यथा सिद्धिशून्य होनेसे कारण कहाता है। अन्यथासिद्धि देखो।

उदाहरणमें घटके प्रति मृत्तिका है। नैयायिकोंने समवायी, असमवायी और निमित्त भेदसे कारणके तीन प्रकार विभाग किये हैं। कार्य जिससे समवेत हो निकला करता, उसका नाम समवायी कारण पड़ता है। जिस प्रकार वस्त्रके प्रति तन्तु है। समवायी कारणसे समवेत कारणको असमवायी और उक्त कारणद्वयसे भिन्न कारणको निमित्त कारण कहते हैं। जैसे वस्त्रके प्रति तन्तुवाय होते हैं।

पा २।३।१८। दूर एवं समीपार्थ शब्दके योगमें षष्ठी और पञ्चमी विभक्ति लगाते हैं। ज्ञोऽविदर्थस्य करणे। पा २।३।५१। अज्ञानार्थ ज्ञा धातुको करण विवक्षामें षष्ठी होती है। अधीगर्थदयेशां कर्मणि। पा २।३।५२। स्मरणार्थ शब्दके योगमें और दय तथा ईश धातुके प्रयोगमें कर्म-विवक्षासे षष्ठी आती है। कृञः प्रतियत्ने। पा २।३।५३। कृ धातुके गुणान्तराधान अर्थमें कर्मविवक्षासे षष्ठी लगती है। रुजार्थानां भाववचनानामज्वरेः। पा २।३।५४। भाव-कर्तृविशिष्ट ज्वरभिन्न रोगार्थ धातुके प्रयोगमें कर्म-विवक्षासे षष्ठी होती है। आशिषि नाथः। पा २।३।५५। आशीर्वादार्थ नाथ धातुके प्रयोगमें कर्मविवक्षासे षष्ठी लगती है। जासि-नि-प्र-हण-नाट-क्राथ-पिषां हिंसायाम्। पा २।३।५६। हिंसार्थ जास, नि-प्रहन्, नाट, क्राथ और पिष धातुके प्रयोगमें कर्मविवक्षासे षष्ठी लगाते हैं। व्यवहृपणोः समर्थयोः। पा २।३।५७। वि और अव पूर्वक हृ एवं पण धातु प्रयोगमें कर्मविवक्षासे षष्ठी लगती है। दिवस्तदर्थस्य। पा २।३।५८। द्यूतार्थ वा क्रयविक्रय व्यवहारार्थ दिव धातुके प्रयोगमें कर्मविवक्षासे षष्ठी होती है। विभाषोपसर्गे। पा २।३।५९। उपसर्गयुक्त होते दिव धातुकी कर्मविवक्षामें विकल्पसे षष्ठी लगती है। प्रेष्यब्रुवोर्हविषो देवता सम्प्रदाने। पा २।३।६१। लोट् विभक्तिके मध्यमपुरुषके एकवचनान्त इष और ब्रू धातुके देवता सम्प्रदान अर्थमें हविष् शब्द कर्म होनेसे षष्ठी विभक्ति आती है। कृत्वोऽर्थप्रयोगे कालेऽधिकरणे। पा २।३।६४। 'कृत्वा' अर्थप्रयोगसे कालवाचक अधिकरणमें षष्ठी होती है। कर्तृकर्मणोः कृति। पा २।३।६५। कृत् प्रत्ययके योगसे कर्ता और कर्ममें षष्ठी होती है। उभयप्राप्तौ कर्मणि। पा २।३।६६। कर्ता और क उभय पर प्राप्तिको सम्भावना होनेसे कर्ममें ही षष्ठी लगेगी। क्तस्य च वर्तमाने। पा २।३।६७। वर्तमानार्थ क्त प्रत्ययके योगमें षष्ठी पड़ती है। अधिकरणवाचिनश्च। पा २।३।६८। अधिकरणवाचक क्त प्रत्ययके योगमें षष्ठी आती है। न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम्। पा २।३।६९। ल, उ, उक, अव्यय, निष्ठा, खलर्थ और तृन् प्रत्यययोगमें षष्ठी होती है। अकेनोर्भविष्यदाधमर्ण्ययोः। पा २।३।७०। भविष्यत् अर्थमें अक, भविष्यत् अर्थमें आधमर्ण्य और इन-प्रत्ययके योगमें षष्ठी नहीं लगती। कृत्यानां कर्तरि वा। पा २।३।७१। कृत् प्रत्ययके योगसे कर्तामें विकल्पसे षष्ठी आती है। तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयाऽन्यतरस्याम्। पा २।३।७२। तुल्य एवं उपमा शब्द व्यतीत अन्य तुल्यार्थ शब्दके योगमें विकल्पसे द्वितीया और षष्ठी होती है। फिर तुल्य और उपमा शब्दके प्रयोगमें नित्य षष्ठी लगती है। चतुर्थी चाशिष्यायुष्य-मद्र-भद्र-कुशल-सुखार्थहितैः। पा २।३।७३। आशीर्वाद, आयुष्य, मद्र, भद्र, कुशल और सुखार्थ शब्दके योगमें तथा हित शब्दके योगमें विकल्पसे चतुर्थी और षष्ठी होती है।

षष्ठी विभक्ति सम्बन्ध मात्र बता देती है। धात्वर्थके साथ सर्वप्रकार असङ्गत रहनेसे सम्बन्धकी कारकता नहीं होती। इसीसे कारकका प्रधान लक्षण है,—

"क्रियाप्रकारीभूतोऽर्थः कारकम्।"

क्रियाके साथ कर्तृकर्मादि भेदके अनुसार किसी प्रकारका सम्बन्ध रखनेवालेको ही कारक कहते हैं।

हिन्दीमें कर्ताका 'ने', कर्मका 'को', करणका 'से', सम्प्रदानका 'लिये', अपादानका 'से' और अधिकरण कारकका चिह्न 'में' या 'पर' है।

२ वर्षशिलाजात जल, ओलेका पानी। (त्रि०) ३ कर्ता, करनेवाला।

कारकदीपक (सं० क्लो०) कारकेन दीपकम्। दीपक अलङ्कारका एक भेद। इसमें कई क्रियावोंका एक ही कर्ता रहता है। दीपक देखो।

कारकर (सं० त्रि०) कारं करोति, कार-कृ-ट। क्रियाकारक, काम करनेवाला।

कारकरदा (फा० वि०) कार्य करनेमें अभ्यस्त, जिसे काम करनेका महावरा रहे।

कारकवान् (सं० पु०) कारकोऽस्त्यस्य, कारक-मतुप् मस्य वः। १ कारकविशिष्ट, मददगार। २ कर्तृयुक्त।

कारकल—मन्द्राजप्रान्तके दक्षिण कनाड़ा जिलेकी उदीपी तहसीलका एक नगर। यह अक्षा० १३° १२′ ४०″ उ० और देशा. ७५° १′ ५०″ पू० पर अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः साढ़े तीन हजार है। बहुत दिनतक वहां जैनोंका प्राधान्य रहा। जैन-मन्दिरोंका भग्नावशेष आज भी देख पड़ता है। गोमटराय नामक एक व्यक्ति राजत्व करते थे। उनकी प्रस्तरमयी एक

अणुपरिमाणसे उत्पन्न परिमाण अणुपरिमाणको अपेक्षा छोटा लग सकता है। जैसे महत् परिमाण जन्य परिमाणकारणीभूत परिमाणकी अपेक्षा महत्तर रहता, वैसे ही अणुपरिमाणजन्य परिमाण भी अणुतर ठहरता है।

साधारण और असाधारण भेदसे कारण दो प्रकारका होता है। ईश्वरेच्छा, काल, अदृष्ट, उद्योग और प्रागभाव कई साधारण अर्थात् समुदय कार्यके कारण हैं। उसीसे उन्हें साधारण कारण कहते हैं। फिर जो विशेष कार्योंके कारण देखाते, वह असाधारण कारण कहाते हैं। जैसे आम्रवृक्षके प्रति आम्रवीज हैं। आम्रवीज केवल आम्रवृक्षको उत्पत्तिके ही कारण हैं, कण्टकवृक्षकी उत्पत्तिके नहीं। सुतरां उक्त वीज उक्त वृक्षके असाधारण कारण सिद्ध हुये।

२ साधन, वसीला। यह नैयायिकोंका मत है। ३ कर्म, काम। ४ करण, कारखाई। ५ वध, क़तल। ६ आदि, मूल, शुरू, जड़। ७ प्रमाण, सबूत। ८ इन्द्रिय। ९ शरीर, जिस्म। १० हेतु, वजह। ११ उद्देश्य, मक़सद। १२ उत्तरविशेष, कोई जवाब। १३ मद्यपानविशेष, एक शराबखोर। तान्त्रिक तन्त्रानुसार पूजादि कर मद्यपान करते हैं। उसीका नाम कारण है। १४ कायस्थ, कायथ। १५ वाद्यविशेष, कोई बाजा। १६ गानविशेष, किसी क़िस्मका गाना। १७ विष्णु। १८ शिव।

कारणक (सं० क्लो०) कारणमेव, कारण स्वार्थे कन्। कारण, सबब। यह शब्द यौगिक पदके अन्तमें आता है।

कारणकारण (सं० क्लो०) कारणस्य कारणम्, ६-तत्। १ कारणका कारण, सबब-उल्-सबब। यह भी पांच प्रकारके अन्यथासिद्धमें पड़ता है। जैसे पुत्रके जन्म-विषयमें उसका पितामह है। पुत्रके जन्मका कारण पिता और पिताके जन्मका कारण पितामह होता है। सुतरां पितामह कारणका कारण ठहरते भी पुत्रके प्रति अन्यथासिद्ध है। २ परमेश्वर। ३ प्रयोजक, लगानेवाला।

"कारणकारणस्य प्रकारणत्वं इपि प्रयोजकत्वं यथोदक।" (मेदा०)

कारणगत (सं० त्रि०) कारणं गच्छति प्राप्नोति, कारण-गम-क्त। कारणस्थ, सबब पर मुनहसिर या मौक़ूफ़।

कारणगुण (सं० पु०) कारणस्य गुणः, ६-तत्। उपादान कारणका गुण, सबबका वस्फ़। यही कार्यके गुणका उत्पादक है,—

"कारणगुणाः कार्यगुणमारभन्ते।" (न्याय)

कारणका गुण ही कार्यके गुणको आरम्भ करता है। जैसे रूप कारणका शुक्ल कृष्ण प्रभृति वर्ण वस्त्र-रूप कार्यका भी शुक्ल कृष्णादि वर्ण उत्पादन करता है।

कारणगुणपूर्वकत्व (सं० क्लो०) कारणगुणः पूर्वं यस्य तस्य भावः, त्व। कारणकी गुणविशिष्टता, सबबके वस्फ़ रखनेकी हालत।

कारणगुणोत्पन्नगुणत्व (सं० क्लो०) कारणगुणेन उत्पन्नो यो गुणः तस्य भावः, त्व। कारणके गुणसे निकले गुणका धर्म, सबबके वस्फ़से पैदा वस्फ़का काम। न्यायशास्त्रमें इसका लक्षण इस प्रकार निर्दिष्ट है,—

"स्वाश्रयसमवायिमात्रसमवेतस्वसजातीयगुणजन्यवृत्तिः पृथक्त्वसंख्या-त्वातिरिक्ता भावनावृत्त्यन्या च या जातिस्तादृशजातिमत्त्वं तल्लक्षणम्।"

कारणगुणोद्भव (सं० पु०) कारणगुणेन उद्भवो यस्य, बहुव्री०। उपादान कारणके गुणसे उत्पन्न एक गुण।

कारणगुणोद्भवगुण (सं० पु०) कारणगुणोद्भवश्चासौ गुणश्चेति, कर्मधा०। कारणगुणजात गुण, सबबके वस्फ़से निकला वस्फ़। भाषापरिच्छेदमें कारणके गुणसे निकले गुण लिखे हैं,—रूप, रस, गन्ध, अपाकज स्पर्श, द्रवता, स्नेह, वेग, गुरुत्व, एकत्व, पृथक्त्व, परिमाण और स्थितिस्थापक संस्कार।

कारणजल (सं० क्लो०) कारणरूपं जलम्। ब्रह्माण्डको सृष्टिका कारणस्वरूप जल, दुनियाको पैदा करनेवाला पानी। भगवान्ने ब्रह्माण्डकी सृष्टिसे पूर्व केवल जल बनाया था। फिर उसमें वीज डालके ब्रह्माण्डको सृष्टि की।

"अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत्।" (मनु १।८)

कारणता (सं० स्त्री०) कारणस्य भावः, कारण-तल्। हेतुता, तसबीब, कारणका धर्म।

पातञ्जल-दर्शनमें कारण नौ प्रकारसे विभक्त है,—

"उत्पत्तिस्थित्यभिव्यक्तिविकारप्रत्ययाप्तयः ।
वियोगान्यत्वधृतयः कारणं नवधा स्मृतम् ॥"
(पातञ्जल २।२८ सूत्रभाष्य)

कारण नौ प्रकारका है—उत्पत्ति, स्थिति, अभिव्यक्ति (प्रकाश), विकार, ज्ञान, प्राप्ति, विच्छेद, अन्यत्व और धारण। कार्यके भेदसे उक्त नवविध कारणकी विभिन्नता देख पड़ती है। यथा—उत्पत्ति ज्ञानका कारण मन, शरीरकी स्थितिका कारण आहार, रूपकी अभिव्यक्तिका कारण आलोक, पचनीय वस्तुके विकारका कारण अग्नि, अग्निके प्रत्यय (ज्ञान) का कारण धूमज्ञान और विकारकी प्राप्तिका कारण योगाङ्गानुष्ठान है।

योगाङ्गका अनुष्ठान ही अशुद्धिके वियोगका कारण, वलयकारी सुवर्णकार कुण्डलरूप सुवर्णका अन्यत्व कारण और ईश्वर इस जगत् तथा इन्द्रिय-समूह शरीरकी धृतिका कारण है।

चार्वाकोंके कथनानुसार कारण नामका कोई पदार्थ नहीं होता। कारणके सम्बन्ध व्यतिरेक ही सब पदार्थ उत्पन्न होते हैं। वस्तुतः उसकी बात असङ्गत है। यदि कारणका अस्तित्व न रहते भी कार्यकी उत्पत्ति चलती, तो कार्यकी सर्वदा विद्यमानता उपलब्धि हो सकती है। जिस प्रकार मृत्तिकादि समुदय मिलनेसे घट बनता, उसी प्रकार उसके पूर्व भी घट बन सकता है। फिर कारणका अस्तित्व न माननेसे परचित्त-गत संशयादि दूर करनेके मनसे शब्दका प्रयोगादि भी निष्फल हो जायेगा। जिस वस्तुके न रहनेसे जिस वस्तुकी विद्यमानता लाभ करनेमें कठिनता उठाते किंवा जिस वस्तुके रहनेसे जिस वस्तुकी विद्यमानता पाते, पण्डित उस वस्तुको उसी वस्तुका कारण बताते हैं। मृत्तिकाका अभाव होनेसे घटकी विद्यमानता नहीं और मृत्तिका रहनेसे घटकी विद्यमानता होती है। उसीसे मृत्तिका घटका कारण ठहरती है। कारण न रहनेसे सब वस्तु नित्य हो सकते हैं। उसीसे चार्वाकोंको भी कारण नामक पदार्थ अवश्य मानना चाहिये। कणाद प्रभृति दार्शनिक परमाणुको सावयव जगत्का उपादान (समवायि-कारण) बताते हैं। उनके मतमें परमाणु सकल परस्पर संयुक्त होनेसे एक एक महदवयवी उत्पन्न होता है। किन्तु वैदान्तिक उसे नहीं मानते और कणादके मत पर दोष लगाते हैं—निरवयव परमाणुमें कभी ऐकदेशिक संयोग नहीं हो सकता। जिस वस्तुका कोई अवयव नहीं, उसका एकदेश होना असम्भव है। सुतरां उसमें आरोप्यावृत्ति (ऐकदेशिक) संयोग कैसे लग सकता है। उक्त सिद्धान्त ठहर जानेसे परमाणुके संयोगका होना असम्भव है। फिर परस्पर संयुक्त परमाणुसे महदवयवी कार्यको उत्पत्ति भी नहीं हो सकती। सुतरां कार्य समुदय अज्ञान द्वारा परब्रह्ममें कल्पित-जैसा मानना पड़ेगा। रज्जुमें सर्पको भांति ब्रह्ममें भी अज्ञान द्वारा कार्य-समूहकी कल्पना की जाती है। रज्जुविषयक ज्ञान द्वारा अज्ञानकी निवृत्ति होनेसे जैसे कल्पित सर्प देख नहीं पड़ता, वैसे ही ब्रह्मज्ञानसे तदीय अज्ञानकी निवृत्ति होनेसे समुदय जगत्का प्रपञ्च मिटा करता है। जगत्की कल्पनामें ब्रह्म अधिष्ठान है। उसीसे वैदान्तिक ब्रह्मको जगत्का उपादान (समवायी) बताते हैं।

सांख्यके मतमें सत्व-रजः-तमोगुणात्मिका प्रकृति ही मूल कारण है। उसमें भी वैदान्तिकोंके कथनानुसार चेतनका साहाय्य न मिलने पर अचेतन प्रकृतिसे कैसे कार्यकी उत्पत्ति हो सकती है। सुतरां सांख्यवादियोंका प्रकृति-कारणवाद भ्रममूलक अनुभूत होता है।

नैयायिक पारिमाण्डल्य (अणुपरिमाण) को कारण नहीं मानते। उनके मतानुसार परिमाणमात्र स्वसमान जातीय उत्कृष्ट परिमाणका कारण है। अर्थात् जिस परिमाणसे जो परिमाण उपजेगा, वही उत्पन्न परिमाण कारणीभूत परिमाणसे उत्कृष्टतर निकलेगा। जैसे तन्तुपरिमाणसे समुत्पन्न वस्त्रपरिमाण तन्तुपरिमाणकी अपेक्षा उत्कृष्टतर होता है। अणुपरिमाणको किसी परिमाणका कारण मानने पर

दिये।' तुल्यबल यथा,—'वादीने कहा—मैं पुरुषानुक्रमसे इस ज़मीन्‌को दखल करते आया हूं, इस लिये यह मेरी है।' प्रतिवादीने उत्तर दिया,—मैं भी पुरुषानुक्रमसे इस ज़मीन्‌को दखल करते आया हूं, इस लिये यह मेरी है। दुर्बल यथा,—वादीने कहा—मैं यह जमीन् पुरुषानुक्रमसे दखल करते आया हूं, इस लिये यह मेरी है। प्रतिवादीने उत्तर दिया,—मैं दश वर्षसे यह ज़मीन् दखल करते आया हूं, इस लिये यह मेरी है।' (व्यवहारतत्त्व)

कारणोपाधि (सं० पु०) ईश्वर।

कारण्डव (सं० पु०) कारण्डं वाति अथवा कारण्डस्य इदं कारण्डं तदाकारं वाति, कारण्ड-वा-क। आतोऽनुपसर्गे कः। पा ३।२।३। १ हंसविशेष, कोई बतक। २ दीर्घचरण कृष्णवर्ण पक्षी, लम्बे पैरवाली काली दरयायी चिड़िया।

कारण्डववती (सं० स्त्री०) कारण्डवः हंसविशेषः अस्ति अस्याम्, कारण्डव-मतुप्-ङीप् मस्य वः। नदीविशेष, एक दरया। इसमें हंस बहुत रहते हैं।

कारण्डव्यूह (सं० पु०) १ कोई बौद्ध। २ बौद्धोंका कोई शास्त्र।

कारतूस (हिं० पु०) टोंटा, एक लम्बी नली (Cartridge)। इसमें गोली छरा और बारूद भरते हैं। कारतूसको एक ओर टोपी लगती है।

कारन (हिं० पु०) १ कारण, सबब। (स्त्री०) २ करुणा, रहम।

कारनिस (अं० स्त्री० Cornice) प्राकारशीर्ष, सींका, कंगनी, कगर।

कारनी (हिं० पु०) १ ईश्वर, प्रेरक। २ भेदक, भेदिया।

कारन्धम (सं० पु०) करन्धमस्य अपत्यम्, करन्धम-अण्। १ करन्धम राजाके पुत्र, अवीक्षित् (करन्धमस्य गोत्रापत्यम्) २ करन्धमके पौत्र मरुत्त। (स्त्री०) ३ नारीतीर्थ विशेष, औरतोंका कोई तीर्थ। महाभारतमें उक्त तीर्थकी उत्पत्ति कथा लिखी है,—अर्जुनको तीर्थभ्रमणके समय तपस्वियोंने अगस्त्य, सौभद्र, पौलोम, कारन्धम और भारद्वाज पांच तीर्थ देखाये थे। अर्जुनने उन तीर्थोंको जनशून्य देख ऋषियोंसे इसका कारण पूछा। उन्होंने कहा कि इन पांचों तीर्थोंमें जलजन्तुका अत्यन्त डर था, उसीसे कोई उनमें उतरता न रहा। अर्जुन यह वाक्य सुनके एक तीर्थमें उतर पड़े। उसी समय जलजन्तुने उनका पाददेश पकड़ा था। किन्तु वह उससे न डरे। फिर उन्होंने बलप्रयोगसे कुम्भीरको तीरमें उत्तोलन किया। वह कुम्भीर तीरमें उत्थित होते ही सुन्दरी नारीकी मूर्ति बन गया। अर्जुनने वह देख नितान्त विस्मयसहकार उससे पूछा—वह कौन था, क्यों उस प्रकार कुम्भीरमूर्तिमें जलके मध्य रहता था। नारी उन्हें उत्तर देने लगीं कि वह अप्सरा थीं। किसी समय वह अपनी चार सखियोंके साथ इन्द्रालय जाती थीं। राहमें उन्होंने एक रूपवान् ब्राह्मण युवकको तपस्या करते देखा। फिर वह उनकी तपस्या भङ्ग करनेको नाचने-गाने लगीं। ब्राह्मणने उससे क्रुद्ध हो अभिशाप दिया था,—'तुम पांचो जलजन्तु बन चिरकाल जलमें विचरण करो।' उन्होंने उक्त अभिशाप सुनके रोते रोते उनसे क्षमा मांगी। उन्होंने कहा जब वह कुम्भीररूपसे किसी पुरुषको पकड़ेंगी, तभी शापमुक्त हो अपने पूर्व रूपको पहुंचेंगी। फिर वह जिन जलाशयोंमें जलजन्तुरूपसे रहेंगी, वह नारीतीर्थ नामसे पवित्र तीर्थकी ख्यातिलाभ करेंगे। ब्राह्मणके उक्त वाक्यसे कथञ्चित् आश्वस्त हो वह चिन्ता करती थीं—उन्हें कुम्भीररूप धारण कर कहां अवस्थान करना पड़ेगा, जहां मुक्तिकारक पुरुषका दर्शन मिलेगा। उसी समय देवर्षि नारदने वहां पहुंच उक्त पांचो स्थान उनको बताके कहा था कि अल्प दिनमें ही अर्जुन वहां पहुंच उनको मुक्त कर देंगे। उसी आशासे वह उक्त एक एक जलाशयमें रहती थीं। फिर नारीने कहा, जैसे अर्जुनके अनुग्रहसे उन्होंने मुक्ति पायी, वैसे ही वह उनकी चारो सखियोंको भी अनुग्रहपूर्वक मुक्त करके उपकृत करते। अर्जुनने तदनुसार क्रम क्रम दूसरे चार तीर्थोंसे सखियोंको मुक्त किया। (भारत, आदि २१७-२१)

कारन्धमी (सं० पु०) कर एव कारः तं धमति,

कारणत्व (सं० क्ली०) कारण-त्व। हेतुता, सबबीय, कारणका धर्म।

"कारणत्वं भवेत्तस्य।" (भाषापरिच्छेद)

कारणध्वंस (सं० पु०) कारणस्य ध्वंसः, ६-तत्। कारणका नाश, सबबका जुवाल। समवायी और असमवायी कारणका ध्वंस होनेसे कार्य भी मिट जाता है, परन्तु निमित्त कारणके ध्वंससे कार्यध्वंस नहीं आता।

कारणध्वंसक (सं० त्रि०) कारणं ध्वंसते नाशयति, कारण-ध्वंस-ण्वुल्। कारणध्वंसकारक, सबबको मिटानेवाला।

कारणध्वंसी (सं० त्रि०) कारणं ध्वंसते नाशयति, कारण-ध्वंस-णिनि। कारणनाशक, सबबको बरबाद करनेवाला।

कारणनाश (सं० पु०) कारणस्य नाशः, ६-तत्। कारणका विनाश, सबबकी बरबादी।

कारणनाशक (सं० त्रि०) कारणस्य नाशकः, कारण-नश्-णिच्-ण्वुल्। कारणको नाश करनेवाला, जो सबबको मिटाता हो।

कारणभूत (सं० त्रि०) कारणं भूयते येन, कारण-भू-क्त। कारणस्वरूप, बायस बना हुवा।

कारणमाला (सं० स्त्री०) अलङ्कारशास्त्रोक्त एक अर्थालङ्कार।

"परं परं प्रति यदा पूर्वपूर्वस्य हेतुता।
तदाकारणमाला स्यात्— ॥" (साहित्यदर्पण)
'पर पर के प्रति होत जहं पूर्व पूर्व को हेत।
कारणमाला नाम तहं चतुर सुपण्डित देत॥'

पूर्व पूर्व वाक्य अपने पर परवर्ती वाक्यका हेतु होनेसे कारणमाला अलङ्कार लगता है। जैसे—

"श्रुतं कृतधियां सङ्गात् जायते विनयः श्रुतात्।
लोकानुरागो विनयान्न किं लोकानुरागतः॥"
'पण्डितको सतसङ्ग किये श्रुतिशास्त्रको होत प्रकाश अपारा।
शास्त्रसौं त्यौं अभिमान मिटै उर आवति शान्ति भने कै प्रकारा॥
शान्त अधीन सुशान्तिके आवत लोगनको अनुराग पसारा।
लोगनके अनुरागसौं होत कहा न कहो भरुविश्व मंझारा॥'

यहां पण्डितोंका सङ्ग, शास्त्रज्ञान, विनय और लोकानुराग यथाक्रम अपने पर पर वाक्यका कारण रहनेसे कारणमाला अलङ्कार होता है।

कारणवादी (सं० पु०) कारणं वदति, कारण-वद्-णिनि। १ सकल विषयमें कारणको स्वीकार करनेवाला, जो सब बातोंमें सबबको मानता हो। २ मुद्दई, शिकायत करनेवाला।

कारणवारि (सं० क्ली०) कारणस्वरूपं वारि, मध्यपदलो०। ब्रह्माण्डकी सृष्टिका कारणस्वरूप एकार्णव जल, असली पानी।

कारणविहीन (सं० त्रि०) कारणरहित, बेसबब।

कारणशरीर (सं० क्ली०) कारणं अविद्या एव शरीरम्, कर्मधा०। सत्वप्रधान अज्ञान, रूहके रहनेकी जगह। सुषुप्तिकाल पर जो जीवगत अज्ञान अहङ्कारादि शरीरोत्पादक पदार्थके संस्कारमात्रमें अवशिष्ट रहता, वेदान्तमतसे उसीका नाम 'कारणशरीर' पड़ता है। इसका संस्कृत पर्याय—आनन्दमय कोष और सुषुप्ति है।

कारणा (सं० स्त्री०) कारयति हिंसयति, कृ-णिच्-युच्-टाप्। ण्यासश्रन्थो युच्। पा ३।३।१०७। १ यातना, तकलीफ। २ गाढ़ वेदना, गहरा दर्द। ३ नरकयन्त्रणा, दोज़ख़की तकलीफ।

कारणान्वित (सं० त्रि०) हेतुयुक्त, सबब रखनेवाला।

कारणाभाव (सं० पु०) कारणस्य अभावः, ६-तत्। कारणका अभाव, सबबकी अदममौजूदगी।

कारणिक (सं० त्रि०) करणैः कारणैर्वा चरति, करण वा कारण-ठक्। चरति। पा ४।४।८। १ परीक्षक, जांच करनेवाला। (करणस्य इदम्, करण-ठञ् -ठिठ् वा) २ करणसम्बन्धीय।

कारणोत्तर (सं० क्ली०) कारणेन उत्तरम्, ३-तत्। असामान्य उत्तर, ख़ास बहस। विचारस्थलमें वादीकी बात सत्य मानते भी जो उत्तर प्रतिकूल कारण देखा कर दिया जाता, वही 'कारणोत्तर' कहाता है। इसका संस्कृत नामान्तर प्रत्यवस्कन्दन है। कारणोत्तर तीन प्रकारका होता है—बलवत्, तुल्यबल और दुर्बल। बलवत् यथा,—वास्तविक मैंने आपसे सौ रुपये कर्ज लिये थे, किन्तु आपको वह दे

कारवाई (फा० स्त्री०) १ काय, काम। २ कार्यव्यता, कामका लगाव। ३ प्रयत्न, तदवीर।

कारव (सं० पु०) का इति रवो यस्य कुत्सितो रवो यस्य वा, बहुव्री०। काक, कौवा।

कारवल्ली (सं० स्त्री०) कारा दुःखस्तनो विस्तिता वल्ली यस्याः, बहुव्री०। १ क्षुद्र कारवेल्लक, करेला। यह तिक्त, उष्ण, दीपन, और कफ, वात, अरोचक तथा रक्तदोष नाशक है। (राजनिघण्टु) इसका फल हिम, भेदी, लघु, तिक्त, वातल और पित्त, रक्त, कामला, पाण्डु, कफ, मेह तथा कृमिको दूर करनेवाला होता है। (मदनपाल) २ कटुतुम्बी, करेला।

कारवां (फा० पु०) यात्रियोंका समूह, मुसाफिरोंका झुण्ड। यह एक देशसे दूसरे देशको जाता है। इसकी ठहरनेकी जगह 'कारवां सराय' कहाती है।

कारवाड़—बम्बई प्रान्तके अन्तर्गत उत्तर कनाड़ेका प्रधान नगर। यह अक्षा० १४° ५०' उ० और देशा० ७४° १४' पू० पर अवस्थित है। लोकसंख्या साढ़े तेरह हजारसे अधिक होगी। कारवाड़ एक बन्दर है। इस बन्दरके सामने उपसागरमें अनेक छोटे छोटे द्वीप हैं। उन्हें कस्तूरेकी दीपावली कहते हैं। उनमें एकका नाम देवगड़ है। देवगड़में एक आलोक-गृह बना है। समुद्रसे १४० हाथ ऊंचे उसकी अग्निशिखा प्रकाशित होती है। यह आलोक १२ कोससे देख पड़ता है। भटके हुए जहाज उक्त आलोक देख समझ सकते कि बन्दर दूर नहीं। तदनुसार उसी ओर जहाज परिचालित होते हैं।

कारवाड़के उपकूलसे ढाई कोस दक्षिण-पश्चिम समुद्रके गर्भमें अञ्जिद्वीप नामक एक छोटा द्वीप है। उसमें पोर्तगीजोंका उपनिवेश है। अति अल्प दिन हुये यह नगर बसा था। पहले वहां धीवरमात्र रहे। १८६२ ई० को कनाड़ेका उत्तरभाग बम्बई प्रान्तके अन्तर्गत हुवा। उसी समयसे कारवाड़की उन्नतिका आरम्भ है। आजकल उसकी म्युनिसिपलिटीके अधीन ८ ग्राम हैं।

पुराना कारवाड़ नये कारवाड़से डेढ़ कोस पूर्व काली नदीके तीर अवस्थित था। पहले वहां वाणिज्यका विलक्षण प्रादुर्भाव रहा और उक्त स्थान विजयपुरके अन्तर्गत था। कारवाड़के देशाई अर्थात् खजानेके तत्त्वावधायक विजयपुरके प्रधान कर्मचारी माने जाते थे। १६३८ ई० को वहां अंगरेजोंकी कार्टेन कम्पनीने वाणिज्य आरम्भ किया। उसके लोग बहुत अल्पकालमें प्रायः ५० हजार जुलाहे लगाके अच्छे अच्छे मुसलमानी कपड़े बनवा रमनी करते थे। इलायची, दालचीनी, सोंठ और दक्षाड़ी नामक नीले रंगका वस्त्र वहांसे बाहर भेजा जाता था। १६५६ ई० को महाराष्ट्राधिपति शिवाजीने वहांके अंगरेज वणिकोंसे ११२०) रु० शुल्क वसूल किया। फिर १६७३ ई० को कारवाड़के फौजदारने अंगरेजों की कोठी पर धावा मारा। दूसरे वत्सर उन्होंने नगर जलाया था, किन्तु अंगरेजी कारखानेको हाथ न लगाया। वरं अंगरेज अधिवासियोंके प्रति यत्न ही किया गया। उसके पीछे शिवाजीने भी अंगरेजोंको सताया न था। किन्तु स्थानीय प्रभुवोंके अत्याचारसे १६७६ ई० को अंगरेज अपनी कोठी उठा ले गये। तीन वर्ष पीछे फिर अंगरेजोंने कोठी खोल कार्य आरम्भ किया। दो वर्ष पीछे १६८४ ई० को एक विषम काण्ड हुवा। विलायती जहाजके विलायती नाविक हिन्दुवोंके मवेशी चोराने लगे। यह हिन्दुवोंसे सहा न गया। अंगरेजोंकी कोठी उठानेको हिन्दुवोंने चेष्टा की थी। सप्तदश शताब्दीके शेष भाग सोंठका अंगरेजी व्यवसाय कारवाड़से उठानेके लिये ओलन्दाज विशेष चेष्टित हुये, किन्तु कृतकार्य हो न सके। १६९७ ई० को महाराष्ट्रोंने कारवाड़में लूटमार करके अंगरेजोंका विशेष अनिष्ट किया था। १७१५ ई० को नगरका पुरातन दुर्ग गिरा राज्याधिपतिने सदाशिवगड़ नामक एक दुर्ग बनाया। फिर वह अंगरेजों पर अत्याचार करने लगे। उससे घबरा कर १७२० ई० को अंगरेजोंने अपनी कोठी उठा डाली। १७५० ई० को वह फिर जा पहुंचे। किन्तु दो वर्ष पीछे पोर्तगीजोंने रणतरी ला सदाशिवगड़ दखल किया था। उसके पीछे कारवाड़का वाणिज्य पूर्णरीतिसे उनके हाथों चला गया। इसीसे अंगरेजोंने अपना कारबार उठा दिया था।

कारधा-इति पृषोदरादित्वात् साधुः। १ कांस्यकार, कसेरा। २ धातुपरीक्षक, मादनयात जाननेवाला।

कारपचन (सं॰ पु॰) देशविशेष, एक मुल्क। यह यमुनाके निकट अवस्थित है।

कारपरदाज़ (फ़ा॰ वि॰) कर्मचारी, कारगुज़ार।

कारपरदाज़ी (फ़ा॰ स्त्री॰) कार्यकी सञ्चालना, कारगुज़ारी।

कारबन (अ॰ पु॰ Carbon) अङ्गार, कोयला। यह एक भौतिक पदार्थ है। प्रकृतपक्षमें कारबन कोई धातु नहीं। सम्पूर्ण सकरण मिश्रणमें यह अधिकांश पाया जाता है। कारबन दहनशील है। यह दग्ध काष्ठका अधोभाग बनाता और खनिज अङ्गारमें बहुत लग जाता है। अपनी विशुद्ध स्फटिकरूप घनीभूत स्थितिमें कारबन हीरा होता है। एक परिमाणशील स्फटिकमें यह समग्र विदित पदार्थसे कठिन है। कारबन सीसेमें अधिक पहुंच जाता, मृदु देखाता और पत्राकार आता है। आक्सिजिनके साथ मिलने पर यह कारबोनिक एसिड (कोयलेका तेज़ाब) और कारबोनिक आक्साइड (कोयलेका बुल्बबुलाव) बनाता है। हाइड्रोजेन (पानीकी हवा) के साथ इसका संयोग लगने पर कई पानीकी हवायें तैयार होती हैं। उनमें प्रकाश करनेकी एक असाधारण गेस (वायु) है।

कारबोनिक (अं॰ वि॰ Carbonic) अङ्गारसम्बन्धीय, कोयलेके मुताल्लिक। कोयलेके तेज़ाबको कारबोनिक एसिड (Carbonic-acid) और कोयलेके तेज़ाबकी हवाको कारबोनिक एसिड गेस (Carbonic-acid-gas) कहते हैं।

कारबोलिक (अं॰ वि॰ Carbolic) १ अङ्गारके सत्त्वरससे सम्बन्ध रखनेवाला, जो अलकतरेसे सरोकार रखता हो। (पु॰) २ पदार्थविशेष, एक चीज़। यह अलकतरेसे निकलता है। कारबोलिक फोड़ा फुनसी और खुजलीके कीड़े मार देता है। इससे तेल और साबुन भी बनाते हैं।

कारबोलिक एसिड (अ॰ पु॰ Carbolic-acid) तैलमय द्रवविशेष, एक तेलिया अर्क। यह वर्णविहीन रहता और खाया जानेसे मुखमें जलन उत्पन्न करता है। कारबोलिक एसिड अलकतरेसे बनाया जाता है।

कारभ (सं॰ त्रि॰) करभस्य इदम्, करभ-अण्। १ हस्तिशावक-सम्बन्धीय, हाथीके बच्चेके मुताल्लिक। २ उष्ट्रसम्बन्धीय, ऊंटसे सरोकार रखनेवाला।

कारभ (ऊंटका) दुग्ध रूक्ष, उष्णवीर्य, किञ्चित् लवण एवं स्वादुरस, लघु और शोथ, गुल्म, उदर, अर्श, कुष्ठ, क्रिमि तथा विषरोगनाशक है। ऊंटके दूधका दही ईषत् क्षाररस, गुरु, भेदकारक, पाकमें कटुरस और वायु, अर्श, क्रिमि तथा उदररोग पर हितकारक होता है। कारभ घृत पाकमें कटुरस, अग्निदीपक और कफ, वायु, कुष्ठ, गुल्म, उदर, शोथ, क्रिमि तथा विषरोगनाशक है। उष्ट्रका मूत्र शोथ, कुष्ठ, उदर, उन्माद, वायु, क्रिमि और अर्शोनाशक होता है। (सुश्रुत)

कारभू (सं॰ स्त्री॰) कर एव कारः तस्य भूः, ६-तत्। करकी भूमि, लगानकी ज़मीन्। जिस भूमि पर राजकर लगता, उसका नाम 'कारभू' पड़ता है।

कारमिहिका (सं॰ स्त्री॰) कारं जलसम्बन्धं मेहति, कार-मिह-क स्वार्थे कन्-टाप् अत इत्वं यद्वा कारस्य तुषारशैलस्य मिहिका नीहार इव, उपमि॰। कर्पूर, कपूर।

कारम्भा (सं॰ स्त्री॰) कु ईषत् रम्भा इव, कोः कादेशः। प्रियङ्गु, एक खुशबूदार बेल।

कारयत् (सं॰ त्रि॰) करनेकी शक्ति वा अधिकार देनेवाला, जो कराता हो।

कारयमाण (सं॰ त्रि॰) नियत कार्य करनेवाला, हुक्म बजानेवाला।

कारयितव्य (सं॰ त्रि॰) कृ-णिच्-तव्य। करानेके उपयुक्त, जो कराने लायक हो।

कारयितव्यदक्ष (सं॰ त्रि॰) किया जाने लायक, काम करनेमें होशियार।

कारयिता (सं॰ त्रि॰) कारयति, कृ-णिच्-तृच्। करानेवाला, दूसरेको काममें लगानेवाला।

कारयिष्णु (सं॰ त्रि॰) कृ-णिच्-इष्णुच्। कारयिता, करानेवाला।

कारवारि (सं० क्ली०) करकाजल, ओलेका पानी। यह विशद, गुरु, रुक्ष, स्थिर, घन, कफकारक, वातघ्न, अतिशीत और पित्तविनाशक होता है। (वैद्यकनिघण्टु)

कारवी (सं० स्त्री०) कारं अवति, कृ हिंसायां स्वार्थे णिच्-क्विप्-अव-अण्-ङीष्। १ मधुरिका, सौंफ। २ कृष्णजीरक, कालाजीरा। ३ तेजपत्र। ४ गुड़त्वक्। ५ शताह्वा, सतावर। ६ अजमोदा। ७ चन्द्रशूर। ८ मेथिका, मेथी। ९ सूक्ष्म कृष्णजीरक, पतला काला जीरा। १० हिङ्गुपत्री। ११ क्षुद्रकारवेल्ली, छोटो करेली। १२ स्त्रीजाति काक, मादा कौवा।

कारवीरेय (सं० त्रि०) कारवीरेण निर्वृत्तः, करवीर-ढञ् संख्यादित्वात्। करवीरसे उत्पन्न, कनेरसे निकला हुवा।

कारवेल्ल (सं० पु०-क्ली०) कारेण वातगमनेन वेल्लति चलति, कार-वेल्ल-अच्। १ स्वनामख्यात फलशाकलता, करेलेकी बेल। इसका संस्कृत पर्याय—कठिल्ल है। भावप्रकाशके मतसे यह शीतल, भेदक, लघु, तिक्तरस, और ज्वर, पित्त, कफ, रक्त, पाण्डु, मेह तथा कृमिरोग-नाशक होता है। २ क्षुद्र कारवेल्ल, छोटा करेला। इसका संस्कृत पर्याय—कठिल्लक, सुशवी, सुषवी, कण्डुर, काण्डकटुक, सुकाण्ड, उग्रकाण्ड, कठिल, नासासंवेदन और पटु है। राजवल्लभके मतानुसार इसका पुष्प धारक और कृमि तथा पित्तरोगमें हित-कारक है। फल रुचिकर और शुक्र, कफ तथा पित्त-नाशक है। करेला देखो।

कारवेल्लक (सं० पु०-क्ली०) कारवेल्ल एव स्वार्थे कन्। करेला।

कारवेल्लिका (सं० स्त्री०) कारवेल्लक-टाप् अत इत्वम्। क्षुद्र कारवेल्ल, छोटा करेला।

कारवेल्ली (सं० स्त्री०) कारवेल्ल अल्पार्थे ङीप्। क्षुद्र कारवेल्ल, करेली।

कारव्य (वै० त्रि०) कारु (गायक) सम्बन्धीय अथर्व-वेदका एक मन्त्र। कषायभेद, एक काढ़ा। कृष्णजीरक, कुष्ठ, एरण्डमूल, जयन्ती, शुण्ठी, गुडूची, दशमूल, शटी, कर्कटश्रृङ्गी, दुरालभा, भार्गी तथा पुनर्णवा आठ आठ रत्ति ३२ तोले गोमूत्रमें पकाने और ८ तोले शेष रहते उतारनेसे यह तैयार होता है। इसका सेवन अभिन्यासज्वरमें रोगीको आह्ला-दायक है। (भैषज्यरत्नावली)

कारसाज़ (फ़ा० वि०) कार्य संभालनेवाला, जो बिगड़ा काम बनाता हो।

कारसाज़ी (फ़ा० स्त्री०) १ कार्यसम्पादन, कामका संभाल। २ छल, फ़रेब, धोका।

कारस्कर (सं० पु०) कारं वधं करोति, कृ-ट। हेतु ताच्छील्यानुलोम्ये षु। पा ३।२।२०। १ कुपीलुवृक्ष, इसका संस्कृत पर्याय—किम्पाक, विषतिन्दु, कारद्रुम, रम्यफल, कुपीलु और कालकूट है। राजनिघण्टुके मतसे यह कटु, तिक्तरस, उष्णवीर्य और कुष्ठ, वायु, रक्त, कण्डु, कफ, अर्श तथा व्रणनाशक है। २ वृक्षसामान्य।

कारस्कराटिका (सं० स्त्री०) कारस्कर इव अटति, कारस्कर-अट्-ण्वुल्-टाप् अत इत्वम्। कर्णजलौका, कानसलाई।

कारस्तानी (फ़ा० स्त्री०) १ प्रयत्न, तदबीर। २ छल, धोका।

कारा (सं० स्त्री०) कीर्यते क्षिप्यते दण्डार्हो यस्याम्। कृ-अङ्, गुणः दीर्घत्वं निपातनात्। षिद्भिदादिभ्योऽङ्। पा ०।४।१६। १ कारागार, कैदखाना। इसका संस्कृत पर्याय—बन्धनालय और वधाङ्कक है। २ दूती। ३ वीणाका अधःस्थित वक्र काष्ठ सितारके नीचेकी टेढ़ी लकड़ी। ४ सुवर्णकारिका, सोनारिन। ५ बन्धन, कैद। ७ पीड़ा, तकलीफ़। ८ शब्द, आवाज़। ९ दुःख, दर्द।

कारा (हिं० वि०) कृष्णवर्ण, काला।

कारा—युक्तप्रान्तके इलाहाबाद जिलेकी सिराथू तह-सीलका एक नगर। वह अक्षा० २५° ४१′ ५५″ तथा देशा० ८१° २४′ २१″ पू० पर इलाहाबाद नगरसे २० कोस उत्तरपश्चिम गङ्गाके दक्षिण दिक् अवस्थित है। लोकसंख्या छह हजारसे अधिक है। युक्तप्रदेशके ९ प्रधान तीर्थोंमें एक यह भी है। वहां कालेश्वरका मन्दिर बना है। इसीसे उसका एक नाम काल नगर है। पुरातन ताम्रशासनमें कालखल नामसे

उसका उल्लेख है। फिर उसको कर्कोटक नगरभी कहते हैं। कथनानुसार विष्णुचक्रसे खण्डित हो सतीदेवीके करका एक अंश वहां गिरा था। मुसलमान परिव्राजक इब्न बतूताके ग्रन्थमें उक्त तीर्थकी बात लिखी गयी है। आषाढ़ मासकी कृष्ण पक्षमें प्रायः लक्षाधिक लोग कारा जा गङ्गास्नान करते हैं।

वहां एक अति पुरातन दुर्ग है। वह ठीक गङ्गा पर अवस्थित है। आजकल उसका भग्नदशा है। दुर्ग दैर्घ्य एवं प्रस्थमें प्रायः ६०० और ३५० हाथ होगा। संवत् १०८५ विक्रमाब्दके (१०३५ ई०) राजा यशोपालकी कितनी ही मुद्रा मिली हैं। सुतरां निर्देश करना दुःसाध्य है कि—दुर्ग फिर भी कितने दिनका पुराना है। किसी किसीके कथनानुसार कन्नौजके राजा जयचन्द्रने उसे बनाया था।

दुर्गमें निम्नभागके बाजार घाट पर एक मन्दिर देख पड़ता है। उसकी चारो ओर चबूतरा या दालान है। उसमें दुर्गाकी मस्तकशून्य एक मूर्ति पड़ी है। किसी स्थान पर एक शिवलिङ्ग और स्थानान्तरमें नन्दीकी मूर्ति है। सम्भवतः मुसलमानोंने ही उस मन्दिरकी वह दशा की होगी घाटके निकट एक कूप है। उसकी चारो ओर स्तम्भाकृति मीनार उठी है।

मुसलमानोंकी भी बहुतसी इमारतें वहां देख पड़ती हैं। उनमें खोजाका कबरस्तान, जामा मसजिद, शेख सुलतानका रोजा वगैरह प्रधान हैं। निकट ही दारानगरकी एक मसजिद और दो कबरस्तान, कचहरिया गांवके क़ुतुब आलमका रोजा और शाहजादपुरके बहादार खान्की मसजिद भी देखने योग्य है।

पहले उक्त नगर बहुत समृद्धिशाली और विस्तृत था। गङ्गाकी पश्चिम दिक् उसकी लंबाई एक कोस और चौड़ाई आध कोस रही। पुरातन नगरका भग्नावशेष आज भी देख पड़ता है। पूर्व उक्त स्थान पर युक्तप्रदेशका प्रधान नगर था। किन्तु सम्राट् अकबर इलाहाबादको प्रधान नगर उठा ले गये। उसीसे काराकी समृद्धि नष्ट हुई।

कारा नगर मुसलमानोंकी अनेक ऐतिहासिक घटनाओंके लिये भी प्रसिद्ध है। अवधके नवाब आसफ-उद्-दौलाने कारेके अच्छे अच्छे भवन तोड़े थे। फिर उन्हींका सामान ले जाकर नवाबने लखनऊमें अपनी इमारतें बनायीं।

कारामें बढ़िया कंबल बनता है। वहां नानाविध शस्यादि भी उत्पन्न होता है। कारेका काग़ज भी खराब नहीं। अयोध्या और फतेहपुरके साथ कपड़े कागज़ और घी अनाजका कारबार चलता है।

कारागार (सं० क्ली०) कारा एव आगारं कारायै बन्धनाय वा आगारम्। बन्धनगृह, कैदखाना।

कारागुप्त (सं० त्रि०) कारायां बन्धनागारे गुप्तः रुद्धः, ७-तत्। कारारुद्ध, कैदी।

कारागृह (सं० क्ली०) कारा एव गृहं कारायै बन्धनाय वा गृहम्। कारागार, कैदखाना, जेल।

कारागोला—बिहार प्रान्तके पुरनिया जिलेका एक गांव। यह अक्षा० २५° २३´ ३´´ उ० और देशा० ८७° ३०´ ५१´´ पू० पर अवस्थित है। उत्तरवङ्गमें रेल निकलनेसे पहले लोग कारागोलाकी राह ही दारजिलिङ्ग जाते थे। आजकल भी साहबगञ्ज और कारागोलाके बीच जहाज़ (स्टीमार) चलता है। किन्तु कारागोलाके सामने रेत पड़ जानेसे वर्षाकाल व्यतीत आरोहीको एक कोस दूर ही उतार देते हैं। वहां एक बड़ा मेला लगता है। पहले यही मेला भागलपुर जिलेके पीरपैंती स्थानमें होता था। फिर कुछ समय तक मेला पुरनियामें रहा, १८५१ ई० से कारागोलेमें लगने लगा। यहां दरभङ्गाके महाराजको कुछ बालुकामय भूमि पड़ी, जो मेलाका स्थान बनी है। १० दिन धूमधाम रहती है। कितनी ही दुकानें लगती हैं। नाना प्रकारके रेशमी-ऊनी तथा सूती-वस्त्र, लौहद्रव्य और प्रयोजनीय वस्तु बिकती हैं। नेपाली छुरी, भुजाली, झुकरी, बेत, चंवर, लाख और टट्टू लाते हैं। मेलेमें कोई तीस-चालीस हजार लोग आते होंगे।

काराधुनी (सं० स्त्री०) कारायाः शब्दस्य आधुनी

उत्पादिका, ६-तत्। शब्दोत्पादक शङ्ख प्रभृति, एक बाजा।

कारापथ (सं० पु०) देशविशेष, एक मुल्क। इस देशके शासनकर्ता लक्ष्मणपुत्र अङ्गद और चन्द्रकेतु थे।

"अङ्गदं चन्द्रकेतुञ्च लक्ष्मणोऽप्यात्मसम्भवम्।
शासनात् रघुनाथस्य चक्रे कारापथेश्वरौ॥" (रघुवंश १५।९०)

कारापाल (सं० पु०) कारां कारागारं पालयति रक्षति, कारा-पाल-अच्। कारागार-रक्षक, कैद-खानेका मुहाफिज़।

काराभू (सं० स्त्री०) काराये बन्धनाय भूः स्थानम्। बन्धनस्थान, कैदकी जगह।

कारायिका (सं० स्त्री०) कं जलं आराति विचरण-स्थानत्वेन गृह्णाति, क-आ-रा-ण्वुल्-टाप् इत्वञ्च। १ सारसी, मादा सारस। २ बलाका, मादा बगला।

कारावर (सं० पु०) चर्मकार जातिविशेष, एक चमार निषादके औरस और वैदेही स्त्रीके गर्भसे यह जाति उत्पन्न है।

"कारावरो निषादात्तु चर्मकारः प्रसूयते।" (मनु १०।३६)

कारावास (सं० पु०) कारायां वासः, ७-तत्। कारा-गृहमें बद्ध रहनेकी स्थिति, कैद।

कारावेश्म (सं० क्ली०) कारा एव काराय वा वेश्म गृहम्। कारागार, कैदखाना, जेल।

काराष्ट्र (सं० पु०) १ कराष्ट्रदेशीय ब्राह्मण। २ कराष्ट्र देश। महाभारतमें यह करहाटक नामसे उक्त है। वर्तमान नाम कराड़ है। कराड़ देखो।

कारि (सं० स्त्री०) क्रियते असौ, कृ-इञ्। विभाषाख्यान-परिप्रश्नयोरिञ्च। पा ३।३।११०। १ क्रिया, फेल, काम। (त्रि०) करोति, कृ-इञ्। कृञुदीर्घा कारुः। उण् ४।१२८। २ शिल्पी, कारीगर।

कारिक (सं० क्ली०) कारि स्वार्थे कन्। क्रिया, काम।

कारिक (हिं० स्त्री०) खरकूत, करघेकी एक चिकनी लकड़ी। यह तानेको ठीक करती है।

कारिक (अ० पु०) कुरक करनेवाला।

कारिकर (सं० त्रि०) कारिं क्रियां शिल्पकर्म इति यावत् करोति, कारि-कृ-ट। शिल्पकारक, कारीगर।

कारिकरी (सं० स्त्री०) कारिकर-ङीप्। शिल्प-कारिणी, कारीगर औरत।

कारिका (सं० स्त्री०) करोतीति, कृ-ण्वुल्-टाप् अत इत्वम्। १ अभिनेत्री, नटिनी। २ क्रिया, काम। ३ विवरण, तफसील। ४ श्लोक, शेर। ५ शिल्प, कारीगरी। ६ यातना, तकलीफ। ७ वृद्धि, सूद। ८ कष्टकारी, कटैया। ९ बहु अर्थबोधक अल्प अक्षर, विशिष्ट कविता, एक शायरी। इसमें थोड़ेसे बड़ा मतलब निकालते हैं। १० कर्त्री, करनेवाली। ११ मर्यादा, हद। १२ एक सङ्गीतकी रागिणी।

कारिकाल—करमण्डल उपकूलका फरासीसी उपनिवेश और नगर। तामिल भाषामें उसे 'कारिक्काल' अर्थात् मछलीका नाला कहते हैं। उसके उत्तरपश्चिम एवं दक्षिण तञ्जोर राज्य और पूर्व बङ्गोपसागर है। कारिकाल प्रदेशमें कोई ११० ग्राम विद्यमान हैं। लोकसंख्या ८१ हजारसे अधिक है। कावेरी नदी पांच मुख हो कर वहांसे सागरमें जा गिरी है। उक्त प्रदेशके प्रधान नगरका भी नाम कारिकाल है। वह अक्षा० १०° ५५′ १०″ उ० और देशा० ७९° ५२′ २०″ पू० पर समुद्रसे कोई पौन कोस दूर अवस्थित है। सिंहलद्वीपके साथ कारिकालका बारहो मास चावलका वाणिज्य चलता है। उसको छोड़ आण्डा-मान द्वीप और फरासीसके साथ भी वाणिज्य होता है। वहांसे नाना स्थानोंको भारतीय कुली भेजे जाते हैं। कारिकाल बन्दरमें एक आलोकगृह है। वह समुद्रसे २२ हाथ ऊपर स्थापित है।

१७३६ ई० को फरासीसियोंने कारिकाल जा एक दुर्ग निर्माण किया था। अल्पकाल पीछे ही राजासे फरासीसियोंका विवाद उपस्थित हुवा। १७४४ ई० को ५ वीं अपरेलको तञ्जोरराजने ससैन्य कारिकाल पर आक्रमण किया था। किन्तु १७४९ ई० को २१ वीं दिसम्बरको उन्होंने कारिकाल और तत्-संलग्न ८१ ग्राम फरासीसियोंको दे डाले। १७६० ई० को अंगरेज-सेनाने कारिकाल घेरा था। फरासी-सियोंने दश दिन अनवरत युद्ध किया अंतमें ५ वीं अपरेलको अंगरेजोंके हाथ आत्मसमर्पण किया। उसके पीछे फिर कारिकाल तीन बार अंगरेजोंके हाथ लगा। १८१७ ई० को १४ वीं जनवरीको उक्त स्थान सर्वदाके

लिये फरासीसियोंको सौंप दिया गया। आज भी वहां फरासीसियोंका अधिकार है। भारतमें उनका प्रधान स्थान पुन्दिचेरी है। उसीके गवरनरकी देख भालमें कारिकालका शासनकार्य निर्वाहित होता है। आज भी वहां फरासीसियोंकी साधारण-तन्त्र प्रथा प्रचलित है। म्युनिसिपाल कौन्सिलको छोड़ वहां एक दूसरी सभा भी है। उसे लोकल कौंसिल कहते हैं। उसमें नगरस्थ म्युनिसपलिटीके अधिकार व्यतीत दूसरे विषयोंकी भी आलोचना होती है। उसको छोड़ दूसरी भी एक सभा है। उसका नाम कौंसल जनरल (Consul General) है। पुन्दिचेरीमें उसका अधिवेशन होता है। उसमें भारतके प्रत्येक फरासीसी अधिकृत स्थानसे प्रतिनिधि भेजे जाते हैं। प्रतिनिधि अवश्य प्रजाके निर्वाचित होते हैं। उसको छोड़ फरासीसकी सेनेट और डिप्युटी सभामें एक एक भारतीय प्रतिनिधि रहता है। वह प्रतिनिधि भारतकी प्रजा द्वारा निर्वाचित होते हैं। कारिकालके वन-विभाग, पूर्त विभाग और शान्तिरक्षाके विभागमें एक एक कर्ता (Chief) रहता है। भारतीय अंगरेज गवरनमेण्टका भी एक अंगरेज प्रतिनिधि कारि-कालमें निवास करता है।

कारिख (हिं० स्त्री०) १ कालिमा, स्याही, कालापन। २ कज्जल, काजल। ३ कलङ्क, धब्बा।

कारिणी (सं० स्त्री०) करोति, कृ-णिनि-ङीप्। अपना कार्य निष्पादन करनेवाली स्त्री, जो औरत अपना काम कर डालती हो।

कारित (सं० त्रि०) कृ-णिच् कर्मणि क्त। १ अन्य द्वारा सम्पादित, कराया हुवा। (क्ली०) २ क्रिया-विशेष, मुताही-उल्-मुताही।

कारित (हिं० पु०) काठबेल।

कारिता (सं० स्त्री०) कारित-टाप्। अधिक वृद्धि; ज्यादा सूद।

"कायिकेन तु या वृद्धिरधिका समुदीरिता।
आपत्कालकृता नित्यं दातव्या सा तु कारिता॥" (विवा०सेतु)

आपत् कालमें ऋणी व्यक्ति जो अधिक सूद देना स्वीकार करता, उसीका नाम कारिता है।

कारितान्त (सं० त्रि०) अन्तमें कारित, क्रिया रखने-वाला, जिसके अखीरमें मुताही-उल्-मुताही रहे।

कारी (सं० पु०) करोति, कृ-णिनि। कारक, कर्ता, करनेवाला। यह यौगिक शब्दके अन्तमें आता है।

कारी (सं० स्त्री०) कृणाति हिनस्ति कण्टकैरिति शेषः, कृ-इञ्-ङीष्। स्वनामख्यात क्षुपविशेष, एक पेड़। यह कण्टकारी और शाकपर्णकारी भेदसे दो प्रकारकी होती है। इसका संस्कृत पर्याय—कारिका, कार्या, गिरिजा और कटुपत्रिका है। राजनिघण्टुके मतसे यह कपेली एवं मीठी, पित्तनाशक, अग्निवर्धक, मल-रोधक, रुचिकारक, कण्ठशोधक और भारी होती है।

कारी (फा० वि०) घातक, गहरा मर्मभेदी।

कारी (हिं०) काली देखो।

कारीगर (फा० पु०) १ शिल्पी, कारीगरी करनेवाला, जो हाथसे काम बनाता हो। (वि०) २ निपुण, हुनरमन्द।

कारीगरी (फा० स्त्री०) १ शिल्प, हाथका काम। २ रचना, बनावट।

कारीजीरी (हिं० स्त्री०) कृष्णजीरक, काली जीरी।

कारीर (सं० क्ली०) करीरस्य अवयवः, करीर-अण्। पलाशादिभ्यो वा। पा ४।३।१४१। १ करीर फल, करीलका फल। २ करीरपुष्प, करीलका फूल। करीलका फल कटु, ग्राही, उष्ण, रुचिप्रद, कफपित्तकर, किञ्चित् कषाय तथा वातनाशक है और पुष्प भेदी, कटुक, कफनाशक, पित्तकर, कषाय, रुचिकर, भक्ष्य एवं पथ्यद होता है। (वैद्यकनिघण्टु) (त्रि०) ३ वंशाङ्कुर निर्मित, बांसकी छड़का बना हुवा। ४ करीरफलसम्बन्धीय, करीलके फलसे सरोकार रखनेवाला।

कारीरी (सं० स्त्री०) कारं (कं जलं ऋच्छति, क-ऋ विच्) जलजमेघं ईरयति, कार-ईर्-अण्-ङीप्। दृष्टिके लिये किया जानेवाला एक यज्ञ।

कारीर्य (सं० क्ली०) करीरस्य अवयवः, करीर-ष्यञ्। १ कारीर, बांसकी डाल या खाक। (त्रि०) २ करीर-फलसम्बन्धीय, करीलके फलसे सरोकार रखनेवाला।

कारीष (सं० क्ली०) करीषाणां समूहः, करीष-अण्।

१ करीषसमूह, कण्डे या गोबरका ढेर। (त्रि०) २ करीषसे उत्पन्न होनेवाला जो गोबरसे निकला हो।

कारीषि (सं० पु०) १ व्यक्तिविशेष, कोई शख्स। २ वंशविशेष, एक खान्दान या घराना।

कारु (सं० पु०) करोति, कृ-उण्। (कृवापाजिमिस्वदिसाध्यशूभ्य उण्। उण् १।१।) १ विश्वकर्मा, (भावे उण्) २ शिल्प, कारीगरी। ३ शिल्पी, दस्तकार। ४ कवि, शायर, बड़ाई करनेवाला (त्रि०) ५ बनानेवाला। ६ भयावह, खौफनाक।

कारुक (सं० त्रि०) कारु स्वार्थे कन्। १ शिल्पी, काम बनानेवाला। (पु०) २ कर्मरङ्ग वृक्ष, कमरखका पेड़।

कारुककर्म (सं० क्ली०) सूपकार मर्म, बवर्चीपन।

कारुचौर (सं० पु०) कारुणा शिल्पेन चौरयति, कारु-चुर-अच्। सन्धिचौर, सेंध लगानेवाला चोर।

कारुज (सं० पु०) कं जलं आरुजति, का-आ-रुज क। १ करभ, हाथीका बच्चा। २ फेन, झाग। ३ वल्मीक, चींटीका टीला। ४ नागकेशर। ५ गैरिक, गेरू। (कारुतो जायते, कारु-जन-ड) ६ शिल्पिनिर्मित चित्र, कारीगरकी बनायी तसवीर। ७ शरीरमें स्वतः तिलकी भांति काला काला निकलनेवाला चिह्न।

तिलकालक देखो।

कारुणिक (सं० त्रि०) करुणायां शीलमस्य, करुणा-ठक्। दयालु, मेहरबान्।

कारुण्डिका (सं० स्त्री०) कारुण्डी स्वार्थे कन्-टाप्, ह्रस्व। जलौका, जोंक।

कारुण्डी (सं० स्त्री०) कुत्सिता ईषत् वा रुण्डी मूर्ध्वहीन इव कोः कादेशः। जलौका जोंक।

कारुण्य (सं० क्ली०) कारुणस्य भावः करुणा एव वा, करुणा-ष्यञ्। करुणा, मेहरबानी। स्वार्थ छोड़ दूसरेके दुःख निवारणकी इच्छाका नाम कारुण्य है।

कारुण्यसागर (सं० पु०) ज्वरातिसारका एक रस, बोखारके दस्तोंकी एक दवा। पारेका भस्म (भस्म न मिलनेसे शुद्ध पारा) १ तोला, गन्धक २ तोला तथा अभ्र २ तोला सर्षपतैलमें घोंट और भृङ्गराजके रसमें पीस प्रहर काल बालुका यन्त्र वा मृत्कर्पटसे पकाते हैं। फिर यवक्षार, सर्जिक्षार, सोहागा, विट, सैन्धव, सौवर, साम्भर, करकचलवण, त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपल), चीतेकी जड़, विष, जीरा और विड़ङ्ग सबका ५ तोला कल्क डालनेसे यह औषध बनता है।

(रसेन्द्रसारसंग्रह)

कारूप (सं० पु०) करूपस्य राजा। १ करूप देशके अधिपति, दन्तवक्र। (करूपोऽभिजन एषाम्) करूपदेशवासी। इस अर्थमें यह शब्द नित्य बहुवचनान्त रहता है। ३ मनुके पुत्र।

कारूपक (सं० त्रि०) कारूप-स्वार्थे कन्। १ करूपदेशवासी। (पु०) २ करूपदेशके राजा। सर कनिङ्गामके मतसे वर्तमान शाहाबाद जिला ही प्राचीन करूपदेश है।

कारून् (अ० पु०) १ हजरत मूसाके चचेरे भाता। यह बड़े धनी थे, परन्तु कभी खैरात न करते थे। इनके खजानेकी चाबियां चालीस खच्चरों पर चलती थीं। (वि०) २ कृपण, बखील अपार धनराशिका 'कारूनका खजाना' कहते हैं।

कारूमी (हिं० पु०) अश्वविशेष, किसी किस्मका घोड़ा।

कारूरा (अ० पु०) १ फुंकनी शीशी। इसमें रोगीका मूत्र रख वैद्यको देखाते हैं। २ मूत्र, पेशाब। ३ बारूदकी कुप्पी। यह जलाकर शत्रुपर चलायी जाती है।

कारूष (सं०पु०) करूषस्य राजा, करूष-अण्। १ करूष देशके राजा। २ करूषदेशवासी। ३ एक जाति। व्रात्य वैश्यकी सवर्ण स्त्रीसे यह जाति उत्पन्न हुयी हैं।

"वैश्यात् तु जायते व्रात्यात् सुधन्वाचार्य एव च।
कारूषश्च विजन्मा च मैत्रः सात्वत एव च॥" (मनु १०।२३)

कारूष्य (सं०पु०) करूषस्य राजा, करूष-ष्यञ्। १ करूषके राजा दन्तवक्र। (क्ली०) २ नैवमल, आंखका मैल।

कारेणव (सं० त्रि०) करेणोरिदम्, करेणु-अण्। हस्तिसम्बन्धीय, हाथीसे सरोकार रखनेवाला। हथिनीका दूध ईषत् कषाययुक्त मधुर रस, बलकारक और गुरुपाक है। हाथीका दधि—कषाययुक्त मधुर रस और मलबद्धकारक होता है। कारेणव-घृत मलमूत्ररोधक, तिक्तरस, अग्निकर, लघु और कफ, कुष्ठ, विषरोग तथा कृमिनाशक है। मूत्र ईषत् तिक्तयुक्त लवणरस, मादक, वायुनाशक, पित्तवर्धक और तीक्ष्ण है।

कारेणुपालि (सं॰ पु॰) करेणुपालस्य अपत्यम्, करेणु-पाल-इञ्। हस्तिपालकका पुत्र, महावतका लड़का।

कारो, काला देखो।

कारोंछ (हिं॰ स्त्री॰) १ कालिमा, स्याही। २ धूमकी कालिमा, धूयेंकी कालिख। ३ काला जाला।

कारोतर (सं॰ पु॰) १ सुरा छाननेकी साफी। २ सुरा-मण्ड, शराबका भाग।

कारोत्तम (सं॰ पु॰) कारेण सुरागालनेन उत्तमः। सुरामण्ड, शराबका भाग।

कारोत्तर (सं॰ पु॰) कारेण सुरागालनक्रियया उत्तरति, कार-उत्-तृ-अच्। १ सुरामण्ड, शराबका भाग। २ कूप, कूवां। ३ वंशादि निर्मित पात्र विशेष।

कारोबार (फा॰ पु॰) कामकाज, लेन देन।

कार्क (अं॰ पु॰ Cork) एक वृक्षकी त्वक्, किसी पेड़की छाल। इसका काठ अत्यन्त लघु होता है। इसकी डाट बनाकर बोतलमें लगाते हैं। यह स्पेन और पोर्तगालमें अधिक उत्पन्न होता है। वृक्ष ४० फीट तक बढ़ता है। त्वक्की स्थूलता २ इञ्च पर्यन्त रहती है। त्वक् उतार लेनेसे चार-छह वर्ष पीछे फिर निकल आती है। वृक्ष कोई डेढ़ सौ वर्ष जीता है।

कार्कट (सं॰ पु॰) कर्कटवृक्ष, कांकरोल।

कार्कटक, कार्कट देखो।

कार्कटेलव (सं॰ क्ली॰) कर्कटूनां निवासोऽत्र, कर्कटु-अञ्। चौरञ्। पा ४।२।७१। कर्कटु पक्षीका निवास-स्थल, एक चिड़ियेकी रहनेकी जगह।

कार्कण (सं॰ त्रि॰) क्रकणस्य इदम्, क्रकण-अञ्। १ क्रकणपक्षि सम्बन्धीय, एक चिड़ियेसे सरोकार रखनेवाला। २ कृमिसम्बन्धीय, कीड़ेसे ताल्लुक रखने-वाला। ३ देहस्थ वायुविशेष सम्बन्धीय, जिसका किसी हवासे सरोकार रखनेवाला। (पु॰) ४ वन-कुक्कुट, जंगली मुरगा।

कार्कन्धव (सं॰ त्रि॰) कर्कन्धूनां विकारः अवयवो वा, कर्कन्धु-अण्। बिल्वादिभ्योऽण्। पा ४।३।१३६। कर्कन्धु सम्बन्धीय, झड़बेरीसे सरोकार रखनेवाला।

कार्कलासेय (सं॰ त्रि॰) कृकलासस्य इदम्, कृकलास-ढक्। सखादिभ्यः। पा ४।२।१२१। कृकलास सम्बन्धीय, गिरगिटसे ताल्लुक रखनेवाला।

कार्कवाकव (सं॰ त्रि॰) कृकवाकोरिदम्, कृकवाकु-अण्। कुक्कुट सम्बन्धीय, मुरगेसे सरोकार रखनेवाला।

कार्कश्य (सं॰ क्ली॰) कर्कशस्य भावः, कर्कश-ष्यञ्। १ कर्कशता, कड़ीबोली। २ कठिनता, सख्ती। ३ निर्दयता, बेरहमी।

कार्कष (सं॰ पु॰) व्यक्तिविशेष, एक शख्स।

कार्कषायणि (सं॰ पु॰) कार्कषस्य अपत्यं पुमान्, कर्कष-फिञ्। कार्कषके पुत्र।

कार्कषि (सं॰ पु॰) कर्कष-फिञो विकल्पविधानात् इञ्। कार्कषके पुत्र।

कार्कारी (वै॰ त्रि॰) निजका आवाधकर।

"यमदूत मनसे इच्छ किं त्वा कार्कारियोऽत्रवीत्।"

कार्कीक (सं॰ त्रि॰) कर्कः शुक्लोऽश्वः स इव, कर्क-ईकक्। श्वेत अश्वतुल्य, सफेद घोड़ेकी मानिन्द।

कार्ड (अं॰ पु॰ Card) १ स्थूलपत्र, मोटा काग़ज़। २ खुली चिट्ठी। यह लिखा जाता है। ३ ताश, पत्ता।

कार्ण (सं॰ पु॰) कर्णस्य अपत्यं पुमान्, कर्ण-अण्। १ कर्णके पुत्र, वृषकेतु। (क्ली॰) २ कर्णमल, कानका मैल। (त्रि॰) ३ कर्णेन्द्रिय सम्बन्धी, कानसे ताल्लुक रखनेवाला।

कार्णग्राहिक (सं॰ पु॰) कर्णग्राहस्य अपत्यं पुमान्, कर्णग्राह-ठक्। रेवत्यादिभ्यष्ठक्। पा ४।१।१४६। नाविक पुत्र, मल्लाहका लड़का।

कार्णच्छिद्रक (सं॰ त्रि॰) कर्णच्छिद्रस्य इदम्, कर्ण-छिद्र अण् स्वार्थे कन्। कर्णच्छिद्रसम्बन्धीय, कानके छेदसे सरोकार रखनेवाला।

कार्णवेष्टकिक (सं॰ त्रि॰) कर्णवेष्टकाभ्यां सम्पादि कर्णालङ्काराभ्यां अवश्यं शोभते इत्यर्थः, कर्णवेष्टक-ठञ्। सम्पादिनि। पा ५।१।९९। कर्णवेष्टन अलङ्कार द्वारा शोभित होनेवाला, जो बाली वग़ैरह पहने हो।

कार्णश्रवस (वै॰ क्ली॰) सामभेद।

कार्णाटक (सं॰ पु॰) कर्णाटः अभिजनोऽस्य, कर्णाट-

अण् स्वार्थे कन्। १ कर्णाट देशवासी। (त्रि०) २ कर्णाट देशसम्बन्धीय।

कार्णाटभाषा (सं० स्त्री०) कार्णाटानां कर्णाटदेशीयानां भाषा, ६-तत्। कर्णाटदेशीयोंकी भाषा, एक बोली।

कार्णायनि (सं० त्रि०) कर्णेन निर्वृत्तम्, कर्ण-फिञ्।

कार्णि (सं० त्रि०) कर्ण-फिञ् विधानस्य विकल्पत्वात् इञ्। १ कर्ण द्वारा निष्पादित। २ कर्ण सम्बन्धीय।

कार्णिक (सं० त्रि०) कर्णस्य इदम्, कर्ण-ठञ्। कर्णसम्बन्धीय।

कार्त (सं० त्रि०) क्रतस्य इदम्। १ क्रत्प्रत्ययसे सम्बन्ध रखनेवाला। (क्ली०) क्रतमेव स्वार्थे अण्। २ सत्ययुग। क्रतः क्रत्प्रत्ययस्य व्याख्यानो ग्रन्थः, क्रत्-अण्। ३ क्रत् प्रत्ययकी व्याख्याका एक ग्रन्थ। (पु०) ४ धर्मनेत्रके पुत्र।

कार्तकौजपादि (सं० पु०) पाणिनि व्याकरणोक्त एक गण। द्वन्द्व समासयुक्त इस गणके सकल शब्दके पूर्वपदमें प्रकृतिस्वर लगता है। कार्तकौजपादयश्च। पा ६।२।३७। गण यथा—कार्तकौजपौ, सावर्णिमाण्डूकेयौ, अवन्त्यश्मकाः, पैलश्यापर्णेयाः, कपिश्यापर्णेयाः, शैतिकाक्षपाञ्चालेयाः, कटूकवाधूलेयाः, शाकलशुनकाः, शाकलशणकाः, शणकवाभ्रवाः, आर्चाभिमौद्गलाः, कुन्तिसुराष्ट्राः, तण्डवतण्डाः, अविमत्तकामविद्धाः, वाभ्रवशालङ्कायनाः, वाभ्रवदानच्युताः, कठकालापाः, कठकौथुमाः, कौथुमलौकाक्षाः, स्त्रीकुमारम्, मौद्गपैप्पलादाः, वत्सजरत्, सौश्रुतपार्थवाः, जरामृत्यू, याज्यानुवाक्ये।

कार्तयश (वै० क्ली०) सामभेद।

कार्तयुग (सं० पु) क्रतमेव कार्तः कार्तश्चासौ युगश्चेति कर्मधा०। सत्ययुग।

कार्तवीर्य (सं० पु०) क्रतवीर्यस्य अपत्यं पुमान्, क्रतवीर्य-अण्। १ चन्द्रवंशीय क्रतवीर्य राजाके पुत्र। इनका नामान्तर हैहय, दोःसहस्रभृत् और अर्जुन है। माहिष्मतीपुरी कार्तवीर्यकी राजधानी थी। उन्होंने दत्तात्रेयके योगबलसे युद्ध-समय सहस्र हस्त प्राप्तिका वर पा कर भुजबलसे ससागरा पृथिवी पर अधिकार किया था। लङ्कापति रावण दिग्विजयके समय उन्हींसे हार निगड़बद्ध हुये। पीछे रावणके पितामह पुलस्त्य मुनिने जाकर छुड़ा दिया। कार्तवीर्य जमदग्निके आश्रमसे सवत्सा धेनु चुरा लाये थे। उसीसे जमदग्निके पुत्र परशुरामने उन्हें मार डाला। (भारत, अनु० १५२ अ०) २ कोई चक्रवर्ती राजा। इनका दूसरा नाम सुभौम था।

कार्तवीर्यदीप (सं० पु०) कार्तवीर्योद्देशेन दीयमानो दीपः, मध्यपदलोपी कर्मधा०। कार्तवीर्यके उद्देशसे प्रदत्तदीप, जो दीया कार्तवीर्यके लिये दिया जाता हो। उड्डामरेश्वरतन्त्रमें उक्त दीप देनेकी विधि लिखी है। यथा—किसी शुद्ध स्थानको गोमयसे लीप उसके मध्यस्थलमें बिन्दुयुक्त त्रिकोणमण्डल बनाना चाहिये। मण्डलकी बहिर्दिक् कुङ्कुम एवं रक्तचन्दन मिश्रित तण्डुल द्वारा षट्कोण और मण्डलके मध्यदेशमें मूलमन्त्र लिखते हैं। मन्त्रके ऊपर घृतपूर्ण प्रदीप रख सङ्कल्प करनेकी विधि है। सङ्कल्पका मन्त्र यह है—

"कार्तवीर्य महाबाहो भक्तानामभयप्रद।
गृहाण दीपं मद्दत्तं कल्याणं कुरु सर्वदा॥
अनेन दीपदानेन कार्तवीर्यस्तु प्रीयताम्॥"

शुभफलकी कामनासे दीपदानकाल एक प्रदीप पश्चिममुख स्थापन करना चाहिये। फिर अभिचार कार्यमें तीन प्रदीप दक्षिण, उत्तर एवं पश्चिममुख और नष्ट वस्तु प्राप्तिकी कामना पर पांचसे ततोधिक विषम संख्यक प्रदीप रखते हैं। चतुर्वर्गका फल पानेको एक शत दीप और मारणके कार्यमें एक सहस्र या दश सहस्र दीपका दान विधेय है। चांदी, तांबा, लोहा, मट्टी, गेहूं, उड़द और मूंगके चूर्णसे सब दीप बनाना पड़ते हैं। स्वर्ण द्वारा प्रस्तुत करने पर कार्य सिद्धि होती है। रौप्यका दीप देनेसे जगत् वशीभूत हो जाता है। ताम्रके दीपसे शत्रुका भय छूटता है। कांस्य द्वारा निर्मित दीपसे हिंसाकार्य सम्पादित होता है। मारणके कार्यमें लौह द्वारा दीपनिर्माण करते हैं। उच्चाटनमें मृत्तिकाका दीप बनता है। गोधूमचूर्णका दीप देनेसे युद्धमें जयलाभ होता है। शत्रुमुख स्तम्भनके लिये माषका दीप दिया जाता है। सन्धिके कार्यमें नदीके उभयकूलकी मृत्तिकाका दीप

बनेता है। अथवा अन्य वस्तुका अभाव होनेसे सकल कार्योंमें केवल ताम्र द्वारा दीपपात्र निर्माण करते हैं। उक्त दीपमें कार्यानुसार एक, तीन, पांच या सात बत्तियां लगती हैं। अल्प कार्यमें अल्प और महत् कार्यमें अधिक संख्यक बत्तियां डालनेकी विधि है। कार्यविशेषमें सफेद, पीली, लाल, कुसुमी, काली और रंग रंगकी बत्तियां बनायी जाती हैं। अभावमें केवल सफेद सूतकी बत्तियोंसे काम चलाते हैं।

कार्तवीर्यके लिये इस प्रकार दीपदानकी विधि देख स्वतः सन्देह हो सकता है—वे उस प्रकार क्यों उपास्य हैं। कार्तवीर्य दत्तात्रेयसे योग लाभ कर अथवा चक्रावतार रूपसे जन्मग्रहण कर वैसी उपासनाके योग्य हुये हैं। उनके ध्यानमें चक्रावतारत्वका उल्लेख मिलता है। यथा—

"उद्यद्‌र्क सहस्र कान्तिरखिलक्षोणीधवैर्वन्दितो
हस्तानां शतपञ्चकेन च दधच्चापानिषूंस्तावता।
कण्ठे हाटकमालया परिवृतश्चक्रावतारो हरेः
पायात् स्यन्दनगोऽरुणाभवसनः श्रीकार्तवीर्यो नृपः॥"

कार्तवीर्यारि (सं॰ पु॰) कार्तवीर्यस्य अरिः शत्रुः, ६-तत्। कार्तवीर्यके शत्रु, परशुराम। कार्तवीर्यने जमदग्निके आश्रमसे होमधेनुको चुराया था। इसीसे जमदग्निके पुत्र परशुरामने इनको मार डाला।

कार्तवेश (सं॰ त्रि॰) कृतवेशस्य इदम्, कृतवेश-अण्। कृतवेशसम्बन्धीय।

कार्तस्वर (सं॰ क्ली॰) कृतस्वरे तदाख्य आकरविशेषे भवं अथवा कृताः पठिताः स्वरा येन सः कृतस्वरः सामगायकः तस्मै दक्षिणात्वेन देयम्, कृतस्वर-अण्। शैषे। पा ४।३।१२। १ स्वर्ण, सोना। "स तप्तकार्तस्वरभास्वराम्बरः।" (माघ १।२०) २ धुस्तूरफल, धतूरा।

कार्तान्तिक (सं॰ पु॰) कृतान्तं वेत्ति, कृतान्त-ठक्। क्रतूक्थादि सूत्रान्ताट्‌ठक्। पा ४।२।६०। ज्योतिर्विद्, नजूमी, होनहार बता देनेवाला।

कार्तायणि (सं॰ पु॰) कार्त्यस्य अपत्यम्, कार्त्य-फिञ् यलोपः। आपत्यस्य च। पा ६।४।१५१। कार्तीके पौत्र।

कार्ति (सं॰ पु॰) कृतके गोत्रापत्य।

कार्त्तिक (सं॰ पु॰) कृत्तिका नक्षत्रयुक्ता पौर्णमासी यत्र मासे, कृत्तिका-अण्। १ वैशाखादि द्वादशमासके मध्य सप्तम मास, कार्तिक, उसका संस्कृत पर्याय—बाहुल, ऊर्ज, कार्तिकिक और कौमुद है। वह चान्द्र और सौर भेदसे दो प्रकारका होता है। फिर चान्द्र-कार्तिक भी मुख्य और गौण भेदसे द्विविध है। सूर्य तुलाराशि पर जानेसे शुक्ल प्रतिपद्से आरम्भ कर अमावस्या पर्यन्त गिननेसे मुख्य चान्द्रकार्तिक और पूर्व कृष्ण प्रतिपद्से पूर्णिमा पर्यन्त गौण चान्द्रकार्तिक होता है। फिर सूर्यके तुला राशि पर अवस्थान करते सौर कार्तिक मास लिखा जाता है।

"मीनादिस्थो रविर्येषामारम्भः प्रथमक्षणे।
भवेद्येऽब्दे चान्द्रमासास्ते तथा द्वादश स्मृताः॥" (व्यास)

पूर्णिमा कृत्तिकानक्षत्रसे मिलनेके कारण ही उसका नाम कार्तिकमास पड़ा है। शास्त्रमें वह पुण्यमास माना गया है। उसीसे उक्त मासके आस्तिक धर्म-पिपासु व्यक्तियोंका कर्तव्य पुराणमें इस प्रकार कहा गया है,—

कार्तिकमें प्रत्यह अति प्रत्यूष गात्रोत्थान कर प्रातः स्नान करना विधेय है। निज शरीरको किसी प्रकार व्याधिग्रस्त करनेकी इच्छा न रखनेवाले लोगोंको कार्तिकमें अवश्य प्रातःस्नान करना चाहिये। फलतः उस मास उक्त समय पर स्नान करनेसे सबको स्वास्थ्य लाभ होता है। धर्मपिपासासे नहानेवालोंको निम्न-लिखित सङ्कल्प और मन्त्र पढ़ स्नान करना चाहिये।

सङ्कल्पवाक्य—

ओं तत्सत् अद्य कार्तिकमासि अमुकपक्षे अमुकतिथावारभ्य तुला-राशिस्थरविं यावत् प्रत्यहं अमुकगोत्रः श्रीअमुकदेवशर्मा श्रीविष्णुप्रीतिकामः प्रातःस्नानमहं करिष्ये।

स्नान मन्त्र—

"ओं कार्तिकेऽहं करिष्यामि प्रातःस्नानं जनार्दन।
प्रीत्यर्थं तव देवेश दामोदर मया सह॥"

उक्त मास प्रत्यह निशामुखको विष्णुगृह वा आकाशादिमें घृत तैलादि द्वारा प्रदीप देना कर्तव्य है। प्रदीप देते समय निम्नलिखित मन्त्र पढ़ना पड़ता है,—

"ओं दामोदराय नभसि तुलायां लोलया सह।
प्रदीपं ते प्रयच्छामि नमोऽनन्ताय वेधसे॥"

प्रदीप प्रदानसे विशेष फल कामना करनेवालोंको दीप दानके पूर्व स्नानवत् सङ्कल्प कर और तदनन्तर मन्त्र पढ़ दीप देना चाहिये।

कार्त्तिक मासमें कृष्णपक्षकी चतुर्दशी अर्थात् भूतचतुर्दशीके दिन स्नानान्तर यमतर्पण कर निम्न-लिखित मन्त्र पाठपूर्वक मस्तकोपरि अपामार्ग घुमाना पड़ता है,—

"शीतलोष्णसमायुक्तसकण्टकदलान्वितः।
हर पापमपामार्ग भ्राम्यमाणः पुनः पुनः॥"

उस दिन लोकाचारके हेतु चतुर्दश शाक भोजन करना विधेय है। शास्त्रोक्त शाकोंके नाम हैं—ओल, केमुक, वास्तुक, सर्षप, काल, निम्ब, जयन्ती, शालिञ्चो, हिलमोचिका, पटोल, पितपापरा, गुड़ूचो, भण्टाकी और सुनिषु। किन्तु लोग उक्त शाक संग्रह न कर जो पाते वही खा जाते हैं।

अनन्तर अमावस्याके दिन बालक, आतुर और वृद्ध व्यतिरेक सबको दिवाभोजन निषिद्ध है। उस दिन पार्वण श्राद्ध कर प्रदोषकालमें पितृगणके उद्देश उल्का-दान करना चाहिये। किसी कारण श्राद्ध न करते भी उल्कादान देना पड़ता है। फिर प्रदोषकालमें लक्ष्मी, नारायण और कुबेरकी पूजा करना आस्तिक धार्मिकोंका कर्तव्य है।

अनन्तर प्रभात अर्थात्, प्रतिपत् तिथिको अक्ष-क्रीड़ादि करना चाहिये। द्यूतक्रीड़ा शास्त्रनिषिद्ध होते भी उस दिन समस्त वर्षका शुभाशुभ जाननेको बहुत आवश्यक है। उस क्रीड़ामें जीतनेवालाका संवत्सर शुभ और हारनेवालेका संवत्सर अशुभ होता है। केवल उसी दिन क्रीड़ा करनेका कारण है—

"यो यो यादृग्भावेन तिष्ठत्यस्यां युधिष्ठिर।
हर्षदैन्यादिना तेन तस्य वर्षं प्रयाति हि॥"

जो व्यक्ति जिस भाव अर्थात् आनन्द वा असुखसे उस दिन काल बिताता, उसका संवत्सर उसी भावसे चला जाता है। अतएव उस विषयमें सबको सचेष्ट रहना आवश्यक है, जिसमें उक्त दिवस अनासुखसे अतिवाहित किया जा सके।

अनन्तर द्वितीया तिथि अर्थात् भ्रातृद्वितीयाके दिन दीर्घजीवनकी कामनासे भगिनीके हाथका भोजन करना विधेय है। उस दिन स्व स्व भगिनीको वस्त्राल-ङ्कारादि द्वारा सम्मान कर और उसके हाथका बना सादर एवं आनन्दपूर्वक भोजन करना बहुत आवश्यक है। भोजनके समय यमराज, चित्रगुप्त, यमदूत और यमुनाकी पूजा कर निम्नलिखित मन्त्रपाठ पढ़ गण्डूष ग्रहण कर खाना चाहिये। कनिष्ठ भगिनी होनेसे इस प्रकार मन्त्र पढ़ती है,—

"भ्रातस्तवानुजाताहं भुङ्क्ष्व भक्तमिदं शुभम्।
प्रीतये यमराजस्य यमुनाया विशेषतः॥"

भगिनी ज्येष्ठा रहनेसे "भ्रातस्तवानुजाताहं"के स्थानमें "भ्रातस्तवाग्रजाताहं" कह कर गण्डूष प्रदान करना चाहिये।

एतद्व्यतीत कार्त्तिक मासमें शुक्लपक्षकी नवमी तिथिको सोमवारके दिन त्रेतायुगकी उत्पत्ति होती है। उसीसे वह दिन अतिशय पुण्याह माना गया है। फिर कार्त्तिक मासके शुक्लपक्षकी एकादशीसे पूर्णिमा पर्यन्त पञ्चतिथिको बकपञ्चक कहते हैं। शास्त्रके कथनानुसार उन तिथियोंमें बक भी मत्स्य भक्षण नहीं करते। अतएव बकपञ्चकमें किसीको मांसादि खाना विधेय नहीं। एतद्व्यतीत भूत-चतुर्दशीके पीछे अमावस्याको कालीपूजा, शुक्ल नवमीको जगद्धात्री पूजा और संक्रान्तिके दिन कार्त्तिक पूजा होती है। पूजाकी पद्धति नानाविध है। उसीसे यहां उसका कोई उल्लेख नहीं किया गया।

कोष्ठीप्रदीपके मतसे कार्त्तिक मासमें जन्मलेने-वाले युद्धविशारद, व्यवसायपटु, नानाविध शिल्प-शास्त्रवित्, सुवक्ता और अतिशय सुन्दराकृति होते हैं।

गरुड़पुराणके मतानुसार कार्त्तिक मासमें विष्णुके लिये तुलसीदान कर्तव्य है। उससे बहुत गोदानका फल मिलता है। ब्रह्मपुराणके मतसे देवगृह, आकाश और मण्डपमें घृतादि द्वारा दीपदान करना चाहिये। उससे अक्षयपुण्य होता है। ब्रह्मपुराणके मतानुसार इस मासमें हविष्यान्न खानेसे विष्णुका पद मिलता है। हविष्य द्रव्य यह है,—अखिल हैमन्तिक धान्य,

मुद्ग, तिल, यव, कलाय, कङ्गुधान्य, नीवारधान्य, वास्तुक, हिलमोचिका शाक कालशाक, मूलक, सैन्धव एवं समुद्रलवण, गव्यदधि, गव्यघृत, मक्खन न निकाला हुआ दुग्ध, पनस, आम्र, हरीतकी, तिन्तिड़ी, जीरक, नागरङ्ग, पिप्पली, कदली, लवली, आंवला, इक्षु और गुड़। अतिरिक्त द्रव्य द्वारा हविष्यान्नकी व्यवस्था है। नारदीयपुराणके मतसे मत्स्य, कूर्म और अन्यान्य सकल जन्तुका मांस खाना निषिद्ध है। क्योंकि वैसा करनेसे चण्डालतुल्य बनना पड़ता है। महाभारतमें भी सर्वमांस परित्यागका विधान है। ब्रह्मपुराणके मतसे घोल, पटोल, कदम्ब और भण्टाकी भोजन करना निषिद्ध है। फिर कांस्यपात्रमें भी खाना न चाहिये। कार्तिक मासमें ही उत्थान एकादशी होती है। उस दिन हरि शय्या त्याग करते हैं। मनुष्योंको यथानियम उपवास कर श्रीहरिको अर्चना करना पड़ती है। पुराणके मतानुसार कार्तिक मासमें उक्त सब कार्य करनेसे पुण्य मिलता है। फिर उक्त कार्य प्रतिपालन न करनेसे नरकादि विविध यातनायें उठाना पड़ती हैं।

२ वर्ष विशेष, कोई साल। कृत्तिका वा रोहिणी नक्षत्रमें बृहस्पतिका उदय वा अस्त होनेसे कार्तिक वर्ष कहाता है। ३ कार्तिकेय।

"दृष्ट्वा तान् कृत्तिकाः सर्वाः मयविह्वलमानसाः।
कार्त्तिकं कथयामासुस्तं सर्वं ब्रह्मतेजसा॥" (ब्रह्मवै० वर्त पु०)

४ चरकादि चिकित्साशास्त्रके कोई संग्रहकार। ५ बम्बई प्रदेशकी एक जाति। इस जातिके लोग भेड़ आदि पशुओंको मार कर उनका मांस बेचते हैं। कसाईका काम करनेसे ये गांवके बाहर रहते हैं और हिन्दू इस जातिके लोगोंको नहीं छूते।

कार्त्तिकमहिमा (सं० पु०) कार्त्तिकस्य महिमा माहात्म्यम्, ६-तत्। १ कार्त्तिक मासका माहात्म्य। २ कार्त्तिकेय देवका माहात्म्य।

कार्त्तिकमाहात्म्य (सं० क्ली०) पद्मपुराणका एक अध्याय।

कार्त्तिकव्रत (सं० क्ली०) कार्त्तिके कर्तव्यं व्रतम्, मध्यपदलो०। कार्त्तिक मासमें किया जानेवाला प्रातःस्नानादि नियम।

कार्त्तिकशालि (सं० पु०) कार्त्तिके परिपक्वः शालिः, मध्यपदलो०। कार्त्तिक मासमें पकनेवाला धान्य, कतिकहा धान।

कार्त्तिकसिद्धान्त (सं० पु०) कार्तिकी पौर्णमासी अस्मिन् मासे, कार्त्तिक-ठक्। १ कार्त्तिक मास, कातिकका महीना। २ कार्त्तिकीयुक्त पक्ष, जिस पक्षभरमें कतिकी पड़े। ३ कार्त्तिक नामक एक वर्ष।

कार्त्तिकी (सं० स्त्री०) कार्त्तिकस्य इदम्, कार्त्तिक-अण्-ङीप्। १ देवशक्ति विशेष। कौमारी देवी। २ नवपत्रिकाकी जयन्तीस्थ एक देवी। ३ कृत्तिका नक्षत्रयुक्त पूर्णिमा, कतिकी। कार्त्तिकीको ब्रह्मावर्त (बिठूर)में गङ्गास्नानका बड़ा मेला लगता है।

कार्तिकेय (सं० पु०) कृत्तिकानामपत्यं पाल्यत्वेन इति शेषः, कृत्तिका-ढक्। स्त्रीभ्यो ढक्। पा ४।१।१२०। शिवपुत्र। पार्वतीके साथ खेलते समय शिवका वीर्य भूमि पर गिरा था। भूमिने अग्निमें और अग्निने फिर शरवनमें उसे निक्षेप किया। वहांसे कृत्तिकागणने उसे उठा पाला-पोसा। (ब्रह्मवैवर्तपु०)

कल्पविशेषमें कार्त्तिकेयने पुनर्वार अग्निपुत्ररूपसे जन्मग्रहण किया था। उसी समय अग्निके वीर्य और गङ्गाके गर्भसे उनका जन्म हुआ। उसके पीछे कृत्तिकागणने उन्हें प्रतिपालन किया। कृत्तिकागणके स्तनपान काल उनके छह मुख उत्पन्न हुये थे। फिर कृत्तिकागणके प्रतिपालित होनेसे ही वह कार्त्तिकेय नामसे विख्यात हुये हैं। (रामायण)

उभय जन्मोंका एक ही कारण समझा जाता है। दुर्दान्त तारकासुरके उत्पीड़नसे देव बहुत व्यतिव्यस्त हो गये थे। बहु चेष्टासे भी वह असुरको मार न सके। फिर उन्होंने ब्रह्मासे जाकर उसके निधनका उपाय पूछा। ब्रह्माने उनसे महादेवका ध्यान तोड़नेको कहा था। तदनुसार उन्होंने कन्दर्पके साहाय्यसे महादेवका ध्यान भङ्ग किया। कन्दर्पबाणविद्ध महादेवने पार्श्वस्थ पार्वतीके प्रति साभिलाष दृष्टि

डाली थी। उससे प्रथम कार्तिकेयका जन्म हुवा। फिर उन्होंने देवोंके सेनापति बन तारकासुरको मार डाला। दूसरे कल्पमें भी उसी प्रकार तारकासुरका उत्पीड़न बढ़ने पर ब्रह्माने देवोंसे अग्निकी आराधना करनेको कहा था! तदनुसार उन्होंने अग्निको सन्तुष्ट किया। अग्नि शुकरूप धारण कर अतिगोपनमें महादेवके समीप पहुंचे थे। किन्तु महादेव सब भेद समझ गये। उसीसे सुरत विघ्न समझ क्रुद्ध हो उन्होंने स्खलितवीर्य अग्नि पर फेंका था। अग्नि रुद्रका तेज धारण कर न सके। फिर उन्होंने उसे गङ्गामें डाल दिया। उसीसे कार्तिकेयने द्वितीय वार जन्म लिया था। उनका नामान्तर—महासेन, शरजन्मा, षड़ानन, पार्वतीनन्दन, स्कन्द, सेनानी, अग्निभू, गुह, बाहुलेय, तारकजित्, विशाख, शिखिवाहन, षाण्मातुर शक्तिधर, कुमार, क्रौञ्चदारण, आग्नेय, देवकीर्ति, अनेमेय, मयूरकेतु, धर्मात्मा, भूतेश, महिषादन, कामजित्, कामद, कान्त, सत्यवाक्, भुवनेश्वर, शिशु, शीघ्र, शुचि, चण्ड, दीप्तवर्ण, शुभानन, अमोघ, अनघ, रौद्र, प्रिय, चन्द्रानन, दीप्तशक्ति, प्रशान्तात्मा, भद्रकृत्, कूटमोहन, षष्ठीप्रिय, पवित्र, मातृवत्सल, कन्याभर्त्ता, विभक्त, स्वाहेय, रेवतीसुत, प्रभु, नेता, नैगमेय, सुदुश्चर, सुव्रत, ललित, बालक्रीड़नप्रिय, खचारी, ब्रह्मचारी, शूर, शरवणोद्भव, विश्वामित्रप्रिय, प्रियक, गाङ्ग, स्वामी, द्वादशलोचन, देवसेनाप्रिय, वासुदेवप्रिय, देवसेनापति, बालचय, कुक्कवाकुध्वज, महाबाहु, युद्धरङ्ग, शिखिध्वज, पावकात्मज, रुद्रसूनु, षड्गिरा और हितिजान्तक है।

कार्तिकेयदेवका ध्यान इस प्रकार है,—

"कार्तिकेयं महाभागं मयूरोपरि संस्थितम्।
तप्तकाञ्चनवर्णाभं शक्तिहस्तं वरप्रदम्॥
द्विभुजं शत्रुहन्तारं नानालङ्कारभूषितम्।
प्रसन्नवदनं देवं षड्सैनासमावृतम्॥"

महाभाग कार्तिकेय मयूर पर अवस्थित हैं। उनका वर्ण तप्त स्वर्णको भांति चमकता है। शक्ति हाथमें लिये हैं। वह वर देनेवाले हैं। मूर्ति द्विभुज है। शत्रुका नाश करते हैं। नाना अलङ्कार विभूषित हैं। मुख प्रसन्न है। समुदाय सेना चारों ओर खड़ी है। (कार्तिकपूजापद्धति)

अनेकोंके विश्वासानुसार कार्तिकेयका विवाह नहीं हुवा। वह चिरकाल अविवाहित अवस्थामें हैं। किन्तु वह भ्रममात्र है। उनकी पत्नी देवसेना हैं। देवसेनाको ही हम षष्ठी कहते हैं। सम्भवतः षष्ठीको पत्नी माननेसे ही अनेक हिन्दू पुत्रकी कामनासे कार्तिकेयका व्रत किया करते हैं। देवसेनाके अस्त्र और वाहनादि कार्तिकेयके समान हैं। मार्कण्डेयपुराणमें वर्णित है,—

"कौमारी शक्तिहस्ता च मयूरोपरि संस्थिता।
योद्धुमभ्याययौ तत्र अम्बिका गुहरूपिणी॥"

कुमारशक्ति कार्तिकेय सदृश मूर्ति धारण और शक्ति ग्रहण कर मयूरवाहनोपरि आरोहणपूर्वक दैत्योंसे युद्ध करने आयी।

कार्तिकेयपुर—युक्त प्रदेशमें कुमायुं जिलेके मध्य दानपुर परगनेकी हुजूर नामक तहसीलका एक नगर। आजकल उसे वैद्यनाथ वा बैजनाथ कहते हैं। वह अक्षा० २९° ५४´ २४´´ उ० और देशा० ७९° ३९´ २८´´ पू० पर अवस्थित है। वहां रांजुला नामक एक पुरातन दुर्ग है। उसमें एक कालीमन्दिर बना है। दूसरे भी कई पुरातन मन्दिर पड़े हैं। किन्तु उनमें कोई मूर्ति नहीं, उनमें आजकल शस्यादि रखा जाता है। चीन-परिव्राजक युएनचुयाङ्गकी वर्णनाके अनुसार ई० १७वें शताब्दमें वहां बौद्ध धर्म प्रचलित था। मन्दिरकी दीवारमें एक स्थानपर बुद्धदेवकी मूर्ति आज भी देख पड़ती है। उदयपाल देवकी खोदित प्रस्तरलिपिके दो खण्ड वहां वर्तमान हैं। उस पर क्रमागत जल पड़नेसे अक्षर मिट गये हैं। वहां ११२४ शकमें इन्द्रदेवद्वारा प्रदत्त एकखण्ड ताम्रलिपि आज भी पड़ी है। उसमें नीचे १४२१ शक लिखा है और गणेशकी एक मूर्ति है। उस मूर्तिके नीचे ११२५ और १२४४ शक भी बना है।

कार्तिकेयप्रसू (सं० स्त्री०) कार्तिकेयं प्रसूते या, कार्तिकेय-प्र-सू-क्विप्। दुर्गा, पार्वती। पार्वतीमें शिववीर्य पड़ते देवोंने विघ्न डाला था। उसीसे वह

भूमिमें गिर गया। फिर वह शरवनमें पहुंच गया, जिससे कार्त्तिकेयका जन्म हुवा। किन्तु वीर्यके पतन-विषयमें पार्वती ही मुख्य कारण थीं। इसीसे उन्होंने कार्त्तिकेयप्रसूके नामसे प्रसिद्धि लाभ की है।

कार्त्तिकोत्सव (सं० पु०) कार्त्तिक्यां कार्त्तिकी पौर्णमास्यां भवः उत्सवः। कार्त्तिकी पूर्णिमाको होनेवाला उत्सव, कतकीका जलसा।

कार्त्र्य (सं० पु०) कर्त्तुरपत्यम्, कर्तृ-ष्य। कर्त्ताके पुत्र।

कार्त्स्न (सं० क्लो०) कृत्स्नस्य भावः, कृत्स्न-अण्। १ समुदाय, कुल्लियत। २ सम्पूर्णता, खालिमा।

कार्त्स्न्य (सं० क्लो०) कृत्स्न-ष्यञ्। १ साकल्य, कुल्लियत। २ सम्पूर्णता।

कार्दम (सं० त्रि०) कर्दमेन रक्तम्, कर्दम-अण्। १ कर्दमयुक्त, कीचड़से भरा हुवा। २ प्रजापति कर्दम सम्बन्धीय।

कार्दमिक (सं० त्रि०) कर्दम-ठक्। कार्दम, कीचड़से भरा हुवा।

कार्पट (सं० पु०) कर्पट इव आकारो ऽस्यास्ति, कर्पट-अण्। १ जतु, लाह। २ कार्यप्रार्थी, उम्मेदवार। (कर्पट एव स्वार्थे अण्) ३ जीर्णवस्त्रखण्ड, चिथड़ा।

कार्पटगुप्तिका (सं० स्त्री०) कार्पटेन खण्डवस्त्रेण गुप्ता, कार्पटगुप्ता स्वार्थे कन्-टाप् अत इत्वम्। १ सट्वा। २ झोंझी।

कार्पटिक (सं० पु०) कार्पटं मन्त्रस्तत्त्वं वेत्ति कर्पटेन चरति वा, कार्पट-ठक्। १ मर्मवेदी, मतलबकी बात समझनेवाला। २ तीर्थयात्रासेवक।

कार्पण्य (सं० क्लो०) कृपणस्य भावः, कृपण-ष्यञ्। १ कृपणता, कंजूसी। २ दीनता, बुर्दबारी।

कार्पाण (वे० क्लो०) युद्ध, लड़ाई।

कार्पास (सं० पु०-क्लो०) कर्पास एव स्वार्थे अण्। १ कार्पास वृक्ष, कपासका पेड़। वैद्यकके मतमें इसकी पत्रादिसे सर्पविष निवारित होता है। चिकित्साका क्रम है—दंशन मात्र पर ही रोगीको कपासकी पत्तीका ढाई तोले रस पिलाना और क्षत स्थानको जलसे परिष्कार कर वही पत्तीका रस उस पर लगाना चाहिये। फिर उसी समय शरीरका कोई स्थान फूल जाय तो भी उस पर कपासकी पत्तीका रस ही लगाया जाता है।

कार्पास या रुई सूक्ष्म केशवत् अथच नर्म शुभ्र पदार्थ है। वह कार्पास नामक वृक्षके फूलमें होती है। कार्पास वृक्ष इस देशमें बहुत होते हैं। उक्त जातीय वृक्ष पृथिवीके उष्ण प्रदेशमें ही प्रायः देख पड़ता है। अंगरेज उद्भिद्तत्त्वविदोंने कार्पास वृक्षको Malvacae श्रेणीके अन्तर्गत रखा है। उसका अंगरेजी वैज्ञानिक नाम *Gossypium* है। कार्पासके कई प्रकार भेद हैं। यथा—

१ Gossypium arboreum—हिन्दीमें इसको *देवकपास या नुरमा, सन्थालीमें भोगकुसकोम या* बुदो कसकोम, बुंदेलखण्डीमें वोगली या नुरमा, युक्तप्रदेशीमें मनुवा, रधिया या नुरमा, पञ्जाबीमें कपास, मध्यप्रदेशमें मनुवा या देव, बम्बेयामें देवकपास, मराठीमें देवकपास, मद्रासीमें देवकपास, तामिलमें सेमपारुत्ती, तेलङ्गीमें पत्ती और ब्राह्मी भाषामें उसको नु-वा कहते हैं।

२ Gossypium herbaceum—हिन्दुस्थानमें रुई या कपास, बङ्गालमें तुला या कापास, पञ्जाबमें रुई, सिन्धुमें वोम, बम्बईमें कपास या रुई, गुजरातमें रु या कपास, दक्षिणमें कपास, तामिलमें वनपरुती या पारुत्ती, तेलङ्गमें पाउत्ती, पत्तुदी, परत्ती या परित्त, ब्रह्मदेशमें वाह या वा, अरबमें कुतम या उत्सूल और फारसमें उमको पम्बा कहते हैं।

३ भारतमें एक दूसरी कपास भी होती है। उसका अंगरेजी वैज्ञानिक नाम Gossypium barabaense है। भारतमें उसे अमरीकाकी रुई कहते हैं।

कार्पासका वृक्ष अपेक्षाकृत क्षुद्र होता है। पत्र कराकार वा हस्तसदृश रहते हैं। उसके देखनेसे मालूम पड़ता है मानो तीन पत्र एकत्र संलग्न हुये हैं। मध्यका अंश अपेक्षाकृत बड़ा होता है। डालसे स्वतन्त्र बोंड़ी निकलने पर पीला फूल लगता है। बोंड़ीके फटने पर भीतर रुई निकलती है। बोंड़ियां पत्तोंसे

ढकी रहती हैं। फूटनेके समय ढका अंश फैल जाता है। इसमें स्वतन्त्र फूल फूटते ही,कपास बीना जाता है। नहीं तो धूप या ओसमें वह बिगड़ जाता है। कार्पासके पुटसे वीज निकाल लेना पड़ता है।

स्थानभेदसे कार्पास वीजके बोनेका समय निर्दिष्ट है। प्रायः आश्विन और कार्तिक मास ही वपनका उत्तम समय है। खाक गोबर या ओरे अथवा तीनोंको एकत्र जलमें गला उसमें वीज भिगो देते हैं। एक दिन भिगोनेके पीछे वीज जलसे निकाल कर कुछ देर धूपमें सुखाते हैं। अधिक शुष्क करना भी निषिद्ध है। उसके पीछे अच्छी जोती जमीन्में एक या डेढ़ हाथके अन्तर ४।५ अंगुलि परिमाण गर्त खोद ३ ४ वीज डाल ऊपरसे कुछ मट्टी चढ़ा देते हैं। अल्प दिनमें ही अङ्कुर फूट आता है। अङ्कुरोंमें जो उत्कृष्ट होते, उनमें केवल दो उसी स्थान पर रख दूसरे निकाल कर स्थानान्तरमें लगाये जाते हैं। पौदा निकलने पर निरर्थक वृक्ष नष्ट करना पड़ता है। कार्पासका वीज फेंक देनेकी चीज नहीं। उसकी खलीसे अच्छी खाद बनती है। फिर बिनौला खिलानेसे गाय-भैंस दूध भी बहुत देती है। किसी जमीन्में बराबर २।३ वर्ष कार्पास उपजनेसे फिर उसमें अच्छी उपज नहीं होती। किन्तु बिनौलेकी खली खादकी तरह डालनेसे जमीनकी उर्वरताशक्ति कुछ बनी रहती है। कपासकी जमीन्में सब तरहकी खली खादकी भांति पड़ती है। खलीको अच्छी तरह चूर कर उसमें सूखी मट्टी बराबर मिला एक सप्ताह रख छोड़ना चाहिये। फिर उसे खेतमें डालनेसे अच्छा लाभ होता है। प्रायः प्रति बीघे मन या आधमन रूई उपजती है। किन्तु विशेष यत्न करने पर एक बीघेमें छह मन तक कपास निकल सकती है।

हिन्दुस्थानमें लाखों बीघे कपास बोयी जाती है। प्रति वर्ष उसकी बढ़ती होती है। नर्म और मनुआ दो तरहकी कपास यहां उपजती है। इलाहाबादकी राधिया कुछ अच्छी होती है। कुमायूं और गढ़वालमें पहाड़ी कपास लगायी जाती है। कानपुरके सरकारी खेतोंमें १८८१-८२ ई० को अमेरिकाकी कपास बोयी गयी थी। फल अच्छा निकला। ध्यानसे खेती करने पर हिन्दुस्थानमें अमेरिकाकी कपास खूब उपज सकती है।

कपास खरीफकी फसल है। वर्षा आरम्भ होनेसे पहले ही जमीन्को सींच कर कपास बो देते हैं। अक्तोबरसे जनवरी मास तक फसल तैयार होती है। किन्तु नर्म और रधिया कपास अपरेल और मई तक कोई ग्यारह महीने खड़ी रहती है। जमीन्में खाद देना पड़ती है।

प्रायः कपासके साथ अड़हर बो देते हैं। उससे कपासको धूप और ओस नहीं सताती। फिर कपासमें तिल, उड़द और मूंग भी डाल देते हैं। कपासके किनारे किनारे एरण्ड और पटसनकी गोट रहती है।

कपास बोनेके दोमास बादही फलने लगती है। जनवरी मासतक उसे बीना करते हैं। पाला पड़नेसे कपास मारी जाती है। अच्छे खेत तीन या चार दिन पीछे बीने जाते हैं। बिनाई सबेरेसे दोपहर तक होती है। कारण उस समय ओसकी तरी रहनेसे कपास निकालनेमें असुविधा नहीं पड़ती। जोरसे कपास निकालनेपर रूई खराब हो जाती है। प्रायः स्त्रियां कपास बीनती हैं, उन्हें अपनी अपनी बिनी कपासका ८ वां भाग या कुछ हीनाधिक मजदूरीको तौर पर मिलता है।

चरखोंमें कपास ओंट कर रूईसे बिनौलेको अलग करते हैं। अमेरिकाके दक्षिण राज्योंमें भी ऐसी ही चरखियां चलती हैं। परन्तु आजकल कलोंसे भी बिनौले निकाले जाते हैं।

पानी भरा रहनेसे कपासको बड़ी हानि पहुंचती है। इसी लिये कपासके खेतमें पानी ठहरने नहीं देते। फलियां खुल जाने पर भी वृष्टिसे अपार क्षति होती है। क्योंकि पानीमें भीज जानेसे रंग बिगड़ जाता है। और फूल सड़ने लगता है। कपासको पालेके पड़नेसे भी हानि पहुंचती है। कीड़ा और सूंड़ी लगनेसे भी कपासका सत्यानाश हो जाता है। प्रायः हिन्दुस्थानके खेतोंमें कपास बहुत कम उपजती है।

कभी कभी तो कृषकका खर्च भी वसूल नहीं होता। लेकिन अवध और बनारसकी तरफ उपज अच्छी रहती है।

वङ्ग तथा विहार देशके निम्नलिखित स्थानोंमें किस किस समय वृक्ष लगाते और किस किस समय कपास बीनते हैं इसकी तालिका नीचे लिखे प्रकार है—

	बोनेका समय	बीननेका समय
कटक	ज्येष्ठ, कार्तिक	आश्विन चैत्र
चट्टग्राम	वैशाख, ज्येष्ठ	अग्रहायण पौष
दरभङ्गा	कार्तिक, ज्येष्ठ	भाद्र
	आषाढ़	चैत्र, वैशाख
मानभूम	ज्येष्ठ, आषाढ़,	अग्रहायण, पौष
	अग्रहायण, पौष	चैत्र, वैशाख
मेदिनीपुर	ज्येष्ठ, आषाढ़,	आश्विन चैत्र
	कार्तिक	वैशाख, ज्येष्ठ
लोहारडागा	कार्तिक	वैशाख, ज्येष्ठ
	आषाढ़	अग्रहायण, पौष
सारन	आषाढ़	वैशाख, ज्येष्ठ
	माघ	भाद्र, आश्विन

वङ्गदेश और विहारके मध्य कटक, चट्टग्राम, दरभङ्गा, मेदिनीपुर, मानभूम, लोहारडांगा, सारन, त्रिपुरा, जलपाईगोड़ी प्रभृति स्थानोंमें ही अधिक परिमाणसे कपास उपजती है। पटना अञ्चलमें सिर्फ खाकी रंगकी कपास होती है। सन्यान्त देशके लोग उसे खड़ुआ कपास कहते हैं। और सफेद कपासको हरगा। सारनमें भागथा, भोचरी, फतुवा, कोकता प्रभृति नामोंकी कपास उपजती है। गङ्गाके अञ्चलमें वङ्गीय, राढ़ी, तोचार इन तीन प्रकारकी कपास, दरभङ्गा अञ्चलमें कोकटी भेरा और भागला यह तीन प्रकारकी कपास प्रचलित है। कटककी ओर अतुवा और हलदिया प्रसिद्ध है।

भारतमें कपासकी खपत पहले विलक्षण थी। आजकल उत्पन्न कार्पासका अधिकांश बाहर भेज दिया जाता है। बाहर भेजी जानेवाली कपासके अनेक नाम हैं। नीचे उनमें कुछ संक्षिप्त विवरण दिया गया है। अंगरेज महाजनोंके हाथ ही कपासकी रफतनी होती है। अतः कितने ही अंगरेजी नाम लिखे हैं।

धल्लेरा—बड़ोदा, कच्छ और काठियावाड़से रफतनी होती है। वह भावनगरी, मौवाई, बादवाङरी, वीरमगांवशाली, बेरावली, कच्छी आदि कई प्रकारकी रहती है।

वङ्गाली—वङ्गाल, पञ्जाब, युक्तप्रदेश, राजपूताना और मध्यभारतमें उपजती है।

अमरावती—के भी कई भेद हैं।

खानदेशी—खानदेशसे आती है।

उमरा—बरार प्रदेशमें होती है।

विलायती खानदेशी—अमरावती प्रभृति स्थानोंसे आती है।

वेष्टारनस—मन्द्राज, निजामराज्य और पश्चिम भारतकी कपास है।

धारवाड़ी—धारवाड़, विजयपुर और दक्षिण महाराष्ट्रमें उपजती है।

कुमता—विजयपुर, बेलगांव, कोल्हापुर और दक्षिण महाराष्ट्र प्रदेशकी कपास है।

भड़ोंची—बड़ोदा, भड़ोंच और सूरत प्रदेशसे प्राप्त होती है।

कोकनदी—लाल रंगकी होती है। वह मन्द्राजके अन्तर्गत कृष्णा जिले, नेल्लूर और गोदावरी प्रदेशमें उत्पन्न होती है।

त्रिनवल्ली—त्रिनवल्ली, कोयेम्बतूर, तञ्जोर प्रभृति स्थानोंसे आती है।

हींगनघाटी—मध्यप्रदेशमें उपजती और बम्बईसे रफतनी होती है।

सिन्धी—सिन्धुप्रदेशमें पैदा होती है।

आसामी—आसाममें उत्पन्न होती है।

कार्पासके असंख्य प्रकार भेद हैं। फिर भिन्न भिन्न स्थानोंमें भिन्न भिन्न प्रकारसे उत्पादन करनेकी रीति और प्रणाली प्रचलित होती है।

कार्पासका धागा जितना ही बड़ा रहेगा, उतना

ही हद निकलेगा। फिर वह जितना ही परिष्कृत होगा, उतना ही उत्कृष्ट ठहरेगा।

इस बातका निर्णय करना सरल नहीं—भारतवासी कबसे रूईका व्यवहार करते हैं। क्योंकि वेदमें भी उसका विवरण है,—

"मूषो न शिश्ना व्यदन्ति माध्यः, स्तोतारं ते शतक्रतो वित्तं मे अस्य रोदसी।" (ऋक्‌संहिता १। १०५। ८)

मूषिक जिस प्रकार सूत्र काट बिगाड़ता है, हे शतक्रतो! आपके स्तोता हम लोगोंको दुःख भी उसी प्रकार दंशन कर सताता है।

सायणने अपने भाष्यमें लिखा है कि भातका मांड़ रहनेसे तन्तुवायके सूत्रको मूसा प्रीतिपूर्वक खाता है। सुतरां यह स्वच्छन्द अनुमान कर सकते हैं कि उस समय कार्पाससे वस्त्रवयनकी प्रथाको आविष्कृत हुई थी। वयन देखो।

सूतको मांड़ लगा कठिन करनेकी व्यवस्था भी उस समय प्रचलित थी। वैसा न होनेसे मूषिकका उसके ऊपर उतना लाभ कैसे होता।

आश्वलायन-श्रौतसूत्र, ९। ४ और लाट्यायन-श्रौत सूत्र १। ६। १ प्रभृति वैदिक सूत्रमें कार्पास शब्दका स्पष्ट उल्लेख है।

कार्पासके व्यवहारकी कथा मनुसंहितामें भी देख पड़ती है,—

"कार्पासमुपवीतं स्याद्विप्रस्योर्द्ध्ववृतं त्रिवृत्।" (मनु, २। ४४)

ब्राह्मणका उपवीतसूत्र कार्पासके सूतसे प्रस्तुत होना आवश्यक है। इसीसे सम्भवतः मन्दिर और मठके निकट कार्पास वृक्ष रहता है।

"न कार्पासास्थि न तुषान् दीर्घमायुर्जिजीविषुः।" (मनु, ४।७८)

मनुके मतमें तूलाके बीज, तुष सकल द्रव्योंपर आरोहण करना न चाहिये।

"कार्पासकीटजोर्णानां द्विशफैकशफस्य च।
पक्षिगन्धौषधीनाञ्च रज्ज्वाश्चैव त्र्यहं पयः॥" (मनु, ११। १६८)

याज्ञवल्क्यसंहितामें इसप्रकार विधि है·

"शते दशपलावृद्धिरौर्णे कार्पाससौत्रिके।
मध्ये पञ्चपलावृद्धे सूक्ष्मे तु त्रिपला मता॥" (१। १८१)

ऊर्णा और स्थूल कार्पासके सूत्रको सैकड़े पीछे १० पल मांड़ डाल बढ़ाना चाहिये। फिर मंझोले कपड़ेमें ५ पल और सूक्ष्ममें ३ पल सैकड़े पीछे मांड़ पड़ता है।

"तन्तुवायो दशपलं दद्यादेकपलाधिकम्।
अतोऽन्यथा वर्त्तमानो दाप्यो द्वादशकं दमम्॥" (मनु ८। ३९७)

तन्तुवाय गृहस्थसे बुननेको १० पल सूत लेकर उसे मांड़ देनेके कारण ११ पल सूत देगा। यदि उससे न्यून देगा, तो (राजकर्त्तृक) द्वादश पण दण्ड होगा

भारतमें बहुकालसे प्रचलित होते भी पाश्चात्य देशमें कार्पासका व्यवहार वैसा न था। अच्छी प्रकार समझा जाता है कि भारतसे पश्चिममें क्रमशः फैल कर कार्पास व्यवहृत हुवा है।

सम्भवतः अरबी भाषाके "कतान" शब्दसे ही युरोपके इतालियोंने "कतोन" फरासीसियोंने "कोतान" और अंगरेजोंने "काटन" शब्द पाया होगा। किन्तु यह निःसन्देह है कि फारसीका "कुरपास" शब्द संस्कृतके कार्पास शब्दका अपभ्रंश है। ग्रीक "करपसन्" शब्दसे पाट या सनका बोध होता है। ग्रीक भौगोलिक हिरोदोतासने भारतके कार्पासविषय पर अपनी पुस्तकमें इसप्रकार लिखा है,—"वहां वन्य वृक्षके फलसे एक प्रकारका रूयां निकलता है। सौन्दर्यमें वह मेषके लोमसे भी उत्कृष्ट होता है। भारतवासी उससे परिधेय वस्त्र बनाते हैं"। थिओफ्रास्टस नामक किसी दूसरे भौगोलिकने भी वृक्ष देख कार्पासकी वर्णना लिखी है। अलेकसेन्द्रकी नौसेनाके अध्यक्ष नियार्कासने भारतवासियोंके परिधेयका उल्लेख इसप्रकार किया है,—"वह पेड़के रूयेंका वस्त्र बनाकर पहनते हैं। उससे पदका मध्यदेश पर्यन्त आवृत रहता है। फिर स्कन्धदेशमें एक चद्दर और मस्तकपर एक उष्णीष रखते हैं। यही उनका समस्त परिधेय है।" दो सहस्र वर्ष अतीत हो गये, किन्तु भारतवासियोंका परिधेय आज भी वही है। ई० प्रथम शताब्दमें कोई ग्रीक भ्रमणकारी अरबउपसागरसे भारतवर्षके भड़ोंच नगरमें वाणिज्य करने गये थे। वह अपनी पुस्तकमें लिखते हैं कि अरब भारतवर्षसे कार्पास ले जाकर लोहित सागरके उपकूल पर अदूली नामक स्थानमें व्यवसाय करते थे। क्रमशः वहांसे भारतके पातिपाक, अरियक और बारिगाजा (आधुनिक भड़ोंच) नगरके साथ वाणिज्य स्थापित हुवा।

भड़ौंचसे वहां कार्पासवस्त्र भेजा जाता था। पहले भारतके मसुलिया (आधुनिक मसलीपत्तन) नामक स्थानमें उत्कृष्ट कार्पासवस्त्र प्रस्तुत होता था। इसीसे मसलिन शब्द बना है। ढाकेका मसलिन् उस समय भी सर्वापेक्षा उत्कृष्ट गिना जाता था। गङ्गाके कूलमें प्रस्तुत होनेवाले वस्त्रको ग्रीक गाङ्गितिक कहते थे। चारो दिक् भारतके कार्पासवस्त्रका आदर देख पडता था। क्रमशः अरबसे पूर्वदिक् पारस्य और पश्चिमदिक् ग्रीस तथा रोमको कार्पासवस्त्र भेजा जाने लगा। पर इस ओर किसीने लक्ष्य न किया—क्या पदार्थ है। वस्त्र पहन कर ही लोग रहे। किन्तु क्रम क्रमसे तूलकी कृषि पर भी लक्ष्य पड़ा था। तूलकी कृषि धीरे धीरे भारतसे पारस्य, पारस्यसे अरब, अरबसे मिसर और मिसरसे अफरीकाके मध्यभाग तथा पश्चिम भागमें फैलने लगी। पारस्यसे तुरक और वहांसे यूरोपके दक्षिण विभागमें कार्पासके वृक्षकी कृषि चली थी। फिर यूरोपीय कार्पासजात तूलसे कागज तक बनाने लगे।

चीनके साथ भारतका बहु कालसे वाणिज्य चलता है। किन्तु चीनमें उस समय भी कार्पासवृक्षकी कृषिकी कोई चेष्टा न की गयी थी। ई० ६ठे शताब्दको ओटी नामक सम्राट्ने कार्पासवस्त्रका एक परिच्छद उपढौकनमें पाया था। वह उसका बड़ा आदर करते थे। ७वें शताब्दमें चीनावोंने सुना—किसी प्रकारके वृक्षसे कार्पास निकलता है। बहुत शोभामय होनेसे चीना कार्पासके वृक्षको उद्यानमें रखने लगे। किन्तु किसीने नियमानुसार कृषि न की। वह जाति रक्षणशील होती है, सहसा किसी प्रकारका परिवर्तन करना या नूतन सामग्री लेना नहीं चाहती, सुतरां चीनमें रूईका बहुत समय तक आदर न हुवा। क्रमशः वहां भी उसकी कृषि बढ़ने लगी। आज कल चीना कार्पासका आदर समझ गये हैं। क्या छोटे क्या बड़े सभी चीना कार्पासके वस्त्रका व्यवहार करते हैं। खूब समझा जाता है कि कार्पास भारतसे निकल यूरोप और अफरीका पहुंचा है। किन्तु अमेरिकामें भी कार्पास वृक्ष देख पडता है। कोलम्बसने आविष्कार करते समय अमेरिकामें कार्पासका व्यवहार पाया था। कौन कह सकता है—भारतसे वह अमेरिका गया या अमेरिकामें स्वभावतः उपजा अथवा अमेरिकाके लोगोंने स्वतः उसका गुण ग्रहण किया था। सम्भवतः अन्तिम अनुमान ही ठीक है।

अपने अभ्युत्थानके समय मुसलमानोंने कार्पासकी व्यवहार प्रणालीके सम्बन्धमें चारो दिक् ज्ञान फैलाया था। वही ज्ञान इटली और स्पेनमें फैल गया। क्रमशः ओलन्दाज स्वयं कार्पाससे वस्त्र प्रस्तुत करने लगे। अंगरेजोंने देख उनसे उन द्रव्योंका आदर करना सीखा था; फिर वह ओलन्दाजोंके अनुकरणमें कार्पासके वस्त्रादि बनाने लगे। ई० १६ वें शताब्दके शेष भागमें अंगरेजोंने तुर्किस्तानसे कार्पास मंगाना आरम्भ किया।

१६०० ई०में ईष्ट इण्डिया कम्पनीने रानी एलिजाबेथसे भारतमें वाणिज्य करनेकी अनुमति पायी थी। भारतसे अन्यान्य द्रव्योंके साथ इङ्गलेण्डको कार्पास और कार्पासनिर्मित वस्त्र भेजा जाने लगा।

कलिकाटसे कार्पास-वस्त्र आनेके कारण उक्त वस्त्रका नाम केलिको पड़ गया। कार्पासवस्त्रपर लगायी जानेवाली छाप केलिको-प्रिण्टिङ्ग कहाती थी।

कार्पासवस्त्रकी छींटका विलायतमें उस समय बड़ा समादर रहा। समादर ऐसा बढा कि विलायतके लोगोंने इङ्गलेण्डका ऊनी वस्त्र छोड़ कार्पासके वस्त्रका ही व्यवहार आरम्भ किया था।

विलायतके अज्ञ व्यक्ति ऊर्णा और तूलाका प्रभेद समझते न थे। उनके निकट सभी ऊर्णा थी। सुतरां वह कहने लगे,—"क्या कहीं पेड़ पर ऊन होती है। उसीको लेकर हमारे देशको ऊन बिगाड़ डाली।" १६७६ ई० में प्रथम इङ्गलेण्डमें कार्पासका वस्त्र बना था। १६७८ ई० में विलायतके व्यवसायियोंने देशके लोगोंके निकट दुःख प्रकाश करनेके लिये एक पुस्तक निकाला। पुस्तकका नाम "The ancient Trades decayed and repaired again" था। असन्तोष क्रमशः बढने लगा। गवरनमेंण्ट फिर स्थिर रह न सकी, १७०० ई० में एक कानून बना था। उसके आदेशानुसार अपने गार्हस्थ्य प्रयोजनके लिये अर्थात्

कामोंमें पोशाक या कढ़ाई किया हुआ द्रव्यादिके लिये कपासकी छींटका कपड़ा खरीदनेसे क्रेता वा विक्रेताको २०० पाउण्ड या २०००) रु० जुर्माना देना पड़ता था। किन्तु कार्पासके ऊपर लोगोंका इतना प्रेम रहा कि गोपनमें उसका व्यवहार चलने लगा। क्रमशः इङ्गलैण्डमें भारतीय वस्त्रपर छींटकी मोहर लगी और भारतके बने दोनों वस्त्रोंके प्रचारसे जनका आदर घटा था। फिर बत्ती बनानेके लिये कार्पासकी भांति दूसरी सामग्री नहीं मिलती। उसका साधारणको प्रयोजन भी पड़ता है। अन्ततः उसके लिये भी कार्पासका प्रयोजन हुवा। कानूनने उसे रोकना चाहा न था। पार्लियामेण्टमें इस सम्बन्ध पर बहुत तर्क चला कि भारतीय कार्पास इङ्गलैण्डके जनका अनिष्टसाधन करता है। १६२३ ई०की ८ वीं मार्चको पार्लियामेण्टने घोर-तर तर्क वितर्क कर स्थिर किया कि प्रति वर्ष अकेले कार्पासके लिये ही ८ लाख रुपया विलायतसे बाहर जाता है। वैसा अर्थनाश जातीय स्वार्थके लिये विशेष अनिष्टकर है। इतिहासकी वही कथा आजकल भारतमें प्रतिफलित है। मन साहब ईष्ट इण्डिया कम्पनीके एक डिरेक्टर थे। उन्होंने १६२१ ई० को हिसाब लगा कर देखा कि उस वर्ष ५०००० खण्ड कार्पास वस्त्र विलायत गया था। एक खण्ड खरीद जहाजसे लेजाने पर साढ़े तीन रुपया खर्च पड़ता, जो विलायतमें १०) रु० को बिकता था। उससे लाभ यथेष्ट रहा, कम्पनी उतना लाभ छोड़नेको प्रस्तुत न थी। आमदनीके साथ २ लाभका भाग भी बढ़ने लगा। १७०८ ई० को प्रसिद्ध पण्डित डिफो साहबने वीकली रिव्यू (Weekly Review) नामक पत्रमें लिखा था,—"भारतके साथ यह वाणिज्य बढ़नेसे जनका कारवार आधा बिगड़ गया। इङ्गलैण्डके अधिवासियोंका अर्धांश जलकी भांति अन्नहीन हुवा।"

१७२० ई० में दूसरा कानून निकला। उससे क्या इङ्गलैण्ड, क्या स्काटलैण्ड क्या आयरलैण्ड कहीं भी कोई व्यक्ति किसी प्रकारका कार्पासवस्त्र अङ्गपर परि-धान कर न सकता था। कार्पासवस्त्र पहननेसे ५) रु० जुरमानेकी सजा थी। फिर बिछौना, तकिया परदा या किसी दूसरे काममें सूती कपड़ा लगानेसे २०) रु० जुरमाना देना पड़ता था। किन्तु कानून बननेसे ही क्या हुवा, इङ्गलैण्डीय महिलाओंकी दृष्टि कार्पासकी ओर जा चुकी थी वेशभूषाका कानून उनके हाथमें था। १७३६ ई०में कानूनकी कठोरता लोगोंको घटाना पड़ी। पीछे कानून निकला था—"कपासके कपड़ेका ताना पाट (लिनेन) के सूतका रहनेसे इङ्गलैण्डमें कोई भी इच्छा करनेसे उसे बना सकेगा।" उसके पीछे ३५ वर्षके बीचमें वाट आर्करैट प्रभृति साहबोंने तरह तरहकी कलें निकालीं उनमें बहुविध सुलभ मूल्यसे उक्त वस्त्र बनने लगा। १७७४ ई० में इङ्गलैण्डमें कार्पासवस्त्र प्रस्तुत करनेके लिये व्यवस्था भी हुयी थी। फिर कलके कारखानोंमें वस्त्रवयनको कपासकी रूईका प्रयोजन पड़ा। उसीसे भारतके सर्वनाशका सूत्रपात हुवा था। भारतसे कार्पास वस्त्रके बदले कपासकी रूई इङ्गलैण्ड जाने लगी। कलके कारखानोंमें अधिक रूईकी जरूरत थी। भारतकी रूईके साथ साथ अमेरिकाकी रूई भी वहां पहुंचने लगी। १८ वें शताब्दके शेष और १९वें शता-ब्दके आदिमें अमेरिकाकी रूई मंगायी गयी। उसके पहले अमेरिकाकी रूई इङ्गलैण्ड जाती न थी। क्रमशः वह अधिक परिमाणमें वहां पहुंचने लगी।

ईष्ट इण्डिया कम्पनी भारतसे अधिक परिमा-णमें रूई भेजना चाहती थी। किन्तु अमेरिकाकी रूई अपेक्षाकृत उत्कृष्ट थी। उसीसे उसका आदर भी अधिक रहा। १७८८ ई० को कोर्ट आफ डिरे-क्टरने भारतके गवरनर-जेनरलको उत्कृष्ट रूई भेजनेके लिये पत्र लिखा था। उससे समझ पड़ा कि इङ्गलैण्डके बाजारमें अमेरिकाकी रूईके साथ भारतीय रूईकी विलक्षण प्रतिद्वन्द्विता लगी थी। उस द्वन्द्वमें कभी भारत और कभी अमेरिकाने जय लाभ किया। किन्तु अमेरिकाकी लंबे धागेवाली रूईका आदर और भारतकी छोटे धागेवाली रूईका अना-दर क्रमशः होने लगा। फिर भारतीय रूईमें मिला-वट रहनेसे अनादर अधिक बढ़ गया। किन्तु अङ्गरेज भारतमें अमेरिकाकी भांति अच्छी रूई

पैदा करनेको विशेष चेष्टित हुये। भारतमें कृषि एवं पुष्प समितिके सभ्यों और बहुतसे दूसरे लोगोंने इसके लिये बड़ी चेष्टा की थी। १८३० ई०में कलकत्ते-के निकट आखाडा नामक स्थानमें ५०० बीघे जमीन ले कपासकी खेती करायी गयी। तीन वर्ष पीछे देखने पर कोई विशेष फल न निकला। इसीसे वह परित्यक्त हुयी। १८३८ ई० में अमेरिकासे बीज और नये नये हलोंके साथ दश पारदर्शी लोग भारत बुलाये गये। उनसे तीन बम्बई, तीन मद्रास और चार आदमी बङ्गाल-में रहे। बहुत चेष्टा करते भी शेषको कोई स्थायी फल न मिला। फिर अमेरिकाकी रूईका बीज भारतके कृष-कोंको दिया गया। १८३२ ई० को अमेरिकामें युद्ध लगा था। उससे वहांकी रूई बाहर जा न सकी। अंगरेज भारतमें अमेरिकाकी भांति रूई पैदा करनेकी विशेष चेष्टा करने लगे। भारतकी रूई भी खूब खपी थी। १८३० ई० से पहले सिर्फ तीन करोड़की कपास विलायत जाती थी। किन्तु १८६६ ई० को ३७ करोड़की रूई भारतसे विलायत भेजी गयी। १८६७ ई को अमेरिका विसंवाद मिटा था। इसीके साथ भारतीय रूईकी रफतनी भी घट चली। ३रे वर्ष ८ करोड़ रुपयेसे भी कमकी रूई की रफतनी हुयी।

१८६३ ई० में एक बम्बई प्रदेश और एक मध्य-प्रदेशमें काटन-कमिश्नर नियुक्त हुवा था। उसी वर्ष बम्बैया रूईकी मिलावट निवारण करनेको कानून बना। शेषको विदेशीय बीज छोड़ यन्त्र द्वारा देशीय कार्पासकी उन्नति करनेकी चेष्टा हुयी। वह चेष्टा कुछ कुछ फलवती हुई थी। आज भी विलायतमें भारतकी रूईका यथेष्ट आदर है। नीचे तालिका दी जाती है कि १८७० ई० को इङ्गलेण्डमें किस किस देशसे कितनी रूईकी गांठ पहुंचीं।

अमेरिकासे १६६४०१०, भारतसे १०६३५४०, ब्रेजिलसे ४०२७६०, मिसरसे २१८८२०, और वेष्ट इण्डीज़ द्वीपपुञ्जसे ११२१०० गांठ। भारतकी रूईका सेर पीछे ॥ग्यारह आना मूल्य पड़ा था।

घट जाते भी आजकल इङ्गलेण्डमें भारतकी रूईका बहुत आदर है। इङ्गलेण्डको छोड़ भारतकी रूई अन्यान्य देशोंमें भी भेजी जाती है। १८८८-८९ ई०को इङ्गलेण्ड १७ लाख, इटाली ७ लाख, अष्ट्रिया ७ लाख, बेलजियम ८ लाख, फ्रान्स ५ लाख, चीन १ लाख, जर्मनी १ लाख ८० हजार और रूस डेढ़ लाखकी रूई भारतसे पहुंची थी। एतद्व्यतीत इङ्गलेण्डसे अन्यान्य देशोंमें उसे ले जाते हैं। चीनमें सर्वत्र कार्पास उपजता है। फिर भी वहां भारतीय रूईकी जरूरत पड़ती है। किन्तु युरोपमें महासमर हो जानेसे भारतकी रूईकी कम रफतनी होती है। दूसरे महात्मा गांधीने भारतमें बीस लाख चरखे चलानेका आदेश दिया है, इसीसे रूईका बाहर निकलना अब लोग अच्छा नहीं समझते।

बाहर भेजनेके लिये रूईकी गांठ बांधना पड़ती है। फिर आने जानेमें जहाजकी सुविधा असुविधा भी देखते हैं। नियत चेष्टा होती रहती है—जहाजकी थोड़ी जगहमें कैसे ज्यादा माल भर दिया जाय। जहाजके स्थानानुसार किराया भी ठहरता है। महा-जनोंको किराया देना पड़ता है। सुतरां समझनेको चेष्टा की जाती है—अल्प स्थानमें कितना अधिक माल लद सकेगा। इसी उद्देशसे रूईकी गांठ घटाने और उसमें ज्यादा माल लगानेकी चेष्टा हुवा करती है।

रूईके परिमाणानुसार गांठ घटती बढ़ती है। फिर जहाजके लिये रूईकी गांठ बहुत घटा दी जाती है। उसके भारतमें विलायती वाष्पीयकल प्रस्तुत हुयी है। उक्त कलकी संख्या दिन दिन बढ़ रही है। १८८९ ई० को भारतमें कोई ढाई सौ वैसी कलें थीं।

भारतकी रूई इङ्गलेण्ड जाती है उससे बहुतसी कलोंमें उस देशका प्रयोजन साधित होता है। फिर इङ्गलेण्ड देशके प्रयोजनसे अधिक कार्पासवस्त्र प्रस्तुत कर सकता है। शेषको कलका वस्त्रादि भारत भी भेजा जाता है। वह भारतमें आकर खपता है। क्रमशः मैनचेष्टरकी कलोंमें भारतीय लोगोंके परिधेय वस्त्रका अनुकरण होने लगा है। वह इङ्गलेण्डसे भारतको भेजा जाता है। सामान्य लोग अल्प मूल्यमें उसे खरीद व्यवहार करते हैं। उसीसे भारतीय तन्तुवायोंका व्यवसाय लोप होनेकी अवस्थामें आपड़ा है। व्यवसाय

मात्रमें प्रतिद्वन्द्विता रहती है। विलायतमें मजदूरी ज्यादा और भारतमें कम पड़ती है। फिर भारतसे रूई विलायत ले जाने और वहां कपड़ा बनाकर भारत पहुंचानेमें भी खर्च लगता है। भारतमें वस्त्र बुननेकी कल खड़ी करनेसे वह व्यय निवारित हो सकता है। इसी विवेचनासे इङ्गलेण्डके लोगोंने यहां भी कल खोलनेकी व्यवस्था की है। इससे समझ पड़ा कि इङ्गलेण्डसे कल लाने और उसके चलानेमें अन्ततः इङ्गलेण्डकी कलसे भारतकी कलमें बहुत अधिक व्यय लगा था, किन्तु उसके पीछे दूसरी सब सुविधा रहीं। १८५१ को एक समिति बनी थी। १८५४ ई० को प्रथमतः बम्बईमें कपड़ेकी कल खुली। उस समयसे अंगरेज व्यवसायी क्रमशः कलोंकी संख्या बढ़ा रहे हैं। आजकल बम्बई, इन्दौर, जबलपुर, हींगनघाट, नागपूर औरङ्गाबाद, हैदराबाद, कुलबर्गा, कानपुर, आगरा, कलकत्ता, मन्द्रास, बेल्लारी, कालिकट, कोयम्बतूर तूतकूड़ी, त्रिनवल्ली, त्रिवांकुर, मङ्गलोर और पुंदिचेरीमें कपड़ेकी कलें चलती हैं। उनमें कहीं सूत काता और कहीं कपड़ा बुना जाता है। प्रतिवर्ष लाखों मन रूई खर्च होती है। हजारों पुरुष, स्त्रियां, बालक और बालिकायें कामपर नियुक्त हैं।

कार्पास वृक्षसे रूई संग्रह कर परिष्कार की जाती है। रूईमें बीच बीच बहुतसे बीज लगे रहते हैं। उन्हें निकाल डालना आवश्यक है। इसीसे किसी समतल प्रस्तर खण्ड वा समतल स्थान पर रूई फैला देते हैं। उसपर एक हाथ लंबा लौहदण्ड रखा जाता है। फिर उसपर खड़े हो कर पैरसे मांड़ते हैं। उससे बीज नीचे गिरने पर ऊपर साफ रूई रह जाती है। रूई साफ करनेकी चरखी भी होती है। उसमें लोहे या लकड़ीके दो गोल डण्डे बराबर बराबर लगे रहते हैं। फिर घुमानेसे वह दोनों संलग्न भावमें घूमने लगते हैं। दाहने हाथसे मुठिया पकड़ चरखी चलायी और बायें हाथसे उन्हीं मिले हुए डण्डोंमें रूई लगायी जाती है। ऐसा करनेसे नीचेकी ओर बीज गिरते और आगे साफ रूईके गाले पड़ते हैं। अमेरिकामें इसके लिए सजिन नामक एक प्रकारकी कल भी बनी है। फिर किसी वस्त्रमें भरनेके लिए उक्त रूई पिञ्जारीसे साफ की जाती है। उसका नाम धनुही और कमान भी है। उसमें तांतका एक खिंचा रोदा चढ़ा रहता है। सामने रूई रख कमानको बायें हाथसे पकड़ते हैं। फिर रोदा रूईपर जमाया और उसपर एक छोटे मोटे डण्डेसे आघात लगाया जाता है। इससे रूई खूब साफ होती है।

पहले हिन्दुस्थानमें रूई हाथसे साफ की जाती थी। यह काम प्रायः स्त्रियां ही करतीं थी। रूई साफ होनेपर चरखेसे सूत कातते थे। पहले हिन्दुस्थानमें घर घर चरखा चलता था। गृहस्थ-रमणी गृहस्थालीका कर्म निबटा अवकाशके समय चरखे पर बैठ सूत कातती थीं। तकुवे पर सूतकी आंटी या पोनी जमी रहती थी। वस्त्रवयन तन्तुवाय लोगोंका कार्य था। वह गृहस्थोंके घरसे आंटी खरीद ले जाते थे। तन्तुवायकी स्त्रियां चावलका मांड़ लगा सूतको दृढ़ बनाती थीं। उसका नाम पीर है। तन्तुवाय उस सूतको तांतपर चढ़ा वस्त्रवयन करते थे। आज भी वैसा ही होता है। पहले देशके सब लोगोंका वस्त्र ऐसे ही बनता था। हिन्दुस्थानमें स्थान स्थानपर सुन्दर सुन्दर कार्पास-वस्त्र बनते थे, जिन्हें विदेशीय वणिक् समादरसे मोल ले धनोपार्जन करते थे। ढाकेमें सर्वापेक्षा उत्कृष्ट वस्त्र प्रस्तुत होता था। वैसा सूक्ष्म वस्त्र कहीं देख पड़ता न था। नीचे उनके कुछ नाम लिखते हैं,—

१ मलमल—आबरोयान्, तनजेब, समामल—सर्वापेक्षा उत्कृष्ट है। अबनम, खासा, भीना, सरकार आली, गङ्गाजल और तेरिन्दम द्वितीय श्रेणीमें परिगणित है। बाफता,—यथा हमाम, छिमटी, आन, जङ्गलखस और गुलबन्द तृतीय श्रेणीमें है।

२ डोरिया—डोराकाट, मसलिन (बारिक वस्त्र) राजकोट, डाकान, पादयाहदार, कुन्दोदार, कागजी, कलावात।

३ चारखाना—छींट मसलिन छह प्रकारकी थी।

यथा—नन्दनशाही, अनारदाना, कबूतरखोप, सकूत, बकादार और कुंडिदार।

४ आमदानी—अङ्गरेज इसको नेनसुख कहते थे। साधारण यह बूटेदार होती थी। यथा—सुबरन-बूटी, कृव्वाल, दुबलीजाल मेल, तिरछा। एतद्व्यतीत ढाकेकी धोती, ओढ़नी और साड़ी चिर-प्रसिद्ध है।

ढाकेके तन्तुवायोंने दिखाया और दिखाते भी हैं—रूईका धागा कितना बारीक बन सकता और उस धागेसे कैसा उमदा कपड़ा बुना जा सकता है। इसके सम्बन्धमें एक गल्प है। यह बात ऊपर लिखे नामोंको पढ़ते ही समझ पड़ती है कि मुसलमान बादशाहोंके समय इन वस्त्रोंका विशेष आदर रहा। कहते हैं कि औरङ्गजेबकी एक कन्या उनके निकट उक्त ढाकेके वस्त्र पहनकर पहुंची थी। पिताने उसे भर्त्सना दी कि वह लज्जाहीन है। उत्तरमें कन्याने कहा कि उसने सात तरहका कपड़ा पहना था। नवाब अलीवर्दी खान्‌के समय किसी जुलाहेने एक धोया कपड़ा घासपर सुखानेको डाला था। उसकी गाय वहां घास चरने गयी। गायने कपड़ेको घास समझ चबा लिया। सूक्ष्मताका इससे अधिक परिचय दूसरा क्या हो सक्ता है। उक्त सूक्ष्म वस्त्र प्रस्तुत करनेमें बड़ा समय लगता है। २० हाथ लम्बा और २ हाथ चौड़ा वैसा कपड़ा बुननेमें ५।६ मास बीत जाते हैं। तिसपर भी ग्रीष्मके समय बुननेका डौल नहीं बैठता। वर्षाकाल ही वैसे कार्पासवस्त्रके बुननेका उत्तम समय है। उसका मूल्य तीन चार सौ रुपयेसे कम नहीं लगता। जो स्त्रियां वैसा सूक्ष्म सूत कातती थीं, उनमें अनेक मरीं नहीं दो एक आज भी बनी हैं। आज उन वस्त्रोंका बिलकुल आदर नहीं होता। फिर आशा भी नहीं कभी उनका आदर होगा। आजकल विलायती कलके कपड़ेसे देश भर गया है। सौभाग्य-क्रमसे आज भी देशके कुछ लोग देशीय कार्पास-वस्त्र पहनते हैं। इसीसे हिन्दुस्थानमें स्थान स्थान पर देशी कपड़ा थोड़ा बहुत बनता जाता है। किन्तु सूत इङ्गलैण्डसे आता है। पहले इस देशमें वस्त्र बनाकर विदेश भेजते थे। आजकल सिर्फ रूईकी रफतनी होती है। सुतरां वस्त्रवयन करनेवालोंमें अनेक अन्नहीन और अन्यव्यवसाय-आश्रित हैं।

आसाममें आज भी देशी कार्पाससे देशी वस्त्र प्रस्तुत होता है। स्त्रियां ही सूत कातती और कपड़ा बुनती हैं। किन्तु वहां भी विलायती वस्त्रका आदर क्रमश: बढ़ रहा है। आसामियोंके बहुतसे कपड़े कपाससे बनते हैं।

युक्तप्रदेशके सिकन्दराबाद और बुलन्दशहरमें बहुत बारीक कपड़ा तैयार होता है। उसके किनारे जरीकी गोट लगती हैं। दुपट्टे और पगड़ीमें ही जरीको गोटका अधिक व्यवहार है। सिकन्दराबादके दुपट्टे बहुत अच्छे होते हैं। आजमगढ़का बना बारीक कपड़ा नेपालमें बहुत खपता है। अवधका शरबती, मलमल, यडी और तारन्दम सूक्ष्म वस्त्र प्रसिद्ध हैं। रायबरेली-के जई नामक स्थान, काशी और फैजाबादके टाण्डेमें अतिचमत्कारी सूक्ष्म वस्त्र प्रस्तुत होता है। किन्तु अवधके अध:पतनसे उक्त कारुकार्य भी बिगड़ गया है। रामपुरका कार्पासनिर्मित खेसा कलकत्तेकी प्रदर्शनी-में पुरस्कृत हुवा था। मुरादाबाद, प्रतापगढ़, कानपुर, ललितपुर, शाहपुर, सिसौली, अलीगढ़, झांसीके अन्तर्गत मऊ, आजमगढ़के अन्तर्गत मऊ, सहारनपुर, मेरठ, और आगरा अञ्चलमें नानाविध कार्पासवस्त्र बनता है। उसमें कितना ही आज भी विदेश भेजा जाता है। एतद्व्यतीत गाढ़ा, गजी और धोती जोड़ा युक्तप्रदेशके प्राय: सकल स्थानोंमें प्रस्तुत होता है। देशके सामान्य लोग अधिकांश वही वस्त्र व्यवहार करते हैं।

पञ्जाबप्रदेशके पूर्व्व एक प्रकारके मसलिनसे सुन्दर पगड़ी बनती थी। वह वस्त्र आजकल देख नहीं पड़ता। होशियारपुर, सिरसा, जालन्धर, लोधियाना, शाहपुर, गुरुदासपुर और पटियालेमें पगड़ीका कपड़ा बनता है, किन्तु वह पूर्वकी भांति उत्कृष्ट नहीं होता। रोहतकमें तंजेब नामक एक प्रकारका अपेक्षाकृत उत्कृष्ट मसलिन बनाया जाता है। जालन्धरमें घाट नामक मारकीनकी भांति मोटा कपड़ा होता है।

उसपर एक प्रकारका कारुकार्य रहता है। वह बुलबुल पक्षीकी आंखके आदर्श पर बुना जाता है, इसे "बुलबुल-चश्म" कहते हैं। आजकल इस शिल्पका लोप हो रहा है।

अब तो केवल खेस, लुंगी एवं सूसी नामक बारीक वस्त्र और दुसूती, गाढा तथा गजी नामक मोटा कपड़ा ही देख पड़ता है। राजपूतानेमें भी शेषोक्त चार प्रकारका वस्त्र बनता है। ग्वालियरके चांदेरी नामक स्थानमें उत्कृष्ट मसलिन तैयार होता है। इन्दोरका मसलिन भी बहुत खराब नहीं रहता। देवास राज्यके अन्तर्गत सारंगपुरमें धोती, साड़ी और पगड़ी प्रस्तुत होती है।

मध्यप्रदेशके नागपुर, भण्डारा और चांदा जिलेमें आज भी सूक्ष्म सूत कतता और उससे वस्त्र बनता है। १८६७ ई० को चांदा प्रदेशमें एक प्रदर्शनी हुयी। उसमें हाथका बना सूत देखाया गया था। वह सूत इतना बारीक रहा कि सिर्फ आध सेर सूत ५८ कोस लंबा निकला। नागपुरमें रुईका पेंच खुल जानेसे उक्त शिल्पका बहुत गौरव घट गया है। किन्तु पेंचका सूत आज भी उतना उत्कृष्ट नहीं होता। उससे कुछ कुछ गौरव हुवा है। देशी वस्त्र अधिक दिन टिकता है। इसीसे वहांके गरीब लोग विलायतीसे देशी वस्त्रका आदर अधिक करते हैं। होशङ्गाबादमें देशी वस्त्रका व्यवसाय बढ़ रहा है।

दाक्षिणात्यके हैदराबाद अञ्चल पर रायचूर जिलेमें खाकी रंगका मोटा कपड़ा और नन्देर जिलेमें बारीक मसलिन तैयार होता है। मन्द्राज प्रान्तके अरनी नामक स्थानका बारीक मसलिन अति उत्कृष्ट रहता है।

बम्बई प्रदेशमें विलायती वस्त्रका विशेष आदर बढ़ते भी गांव गांवमें रुईका देशी मोटा कपड़ा बनता है। सामान्य लोग मोटी साड़ी और पगड़ीका विशेष आदर करते है।

अनेक स्थानमें रुईके सूतमें रेशम या ऊन मिला तरह तरहका कपड़ा बनाते हैं। कहीं कहीं रुईके कपड़ेमें रेशमी किनारा लगाया जाता है। फिर कहीं रेशमी बेल बूटे, जरीके बेलबूटे और सूईका काम बनाते हैं। उसके अनेक नाम हैं—कारचोबी, कलाबत्तू, चिकन, कामदानी और जामदानी। जामदानी—करेला, तोड़ेदार, बूटीदार, और तिरछा आदि कई प्रकारकी होती है।

फूलदार रुईके नानाविध वस्त्र कलकत्तेके निकट बनाये जाते हैं। उनकी बिक्री बड़ेके बाजारमें अधिक होती है।

रुईके वस्त्रपर तरह तरहका रंग चढ़ाया जाता है। उसपर छाप भी कई प्रकारकी लगती है।

रुईका कपड़ा पहले अंगरेज कालीकटसे ले जाते थे। इसीसे उन्होंने उसको केलिको (Calico) नामसे अभिहित किया है। रंग देनेको केलिको-डाइङ्ग (Calico-dying) और छाप मार छींट बनानेको केलिको-प्रिण्टिङ्ग (Calico-printing) कहते हैं। किसी किसी कपड़ेपर सुनहली छाप पड़ती है। छाप लगानेसे तरह तरहकी छींट बनती है। छींटके कपड़ेसे रजाई, तकियेका गोलाफ, तोषक, पलंगपोश, जाजिम, शामियाना वगैरह तैयार होते हैं। रंगदार कपड़ेमें लाल बहुत अच्छी रहती है। फिर छापदार कपड़ेमें चुनरीका प्रचार अधिक है। इस देशमें रजक ही रुईका कपड़ा धोते हैं।

विलायती पेंचके प्रभावसे देशस्थ कार्पास-शिल्प क्रमशः लुप्त हो रहा है। सम्भावना ऐसी होने लगी है—जो शिल्प है वह भी काल पाकर न रहेगा। पहले कार्पासवस्त्र देशके प्रयोजनमें लग उद्वृत्त होनेपर विदेश भेजा जाता था। अब वह समय नहीं रहा। आजकल शिल्पी अन्नहीन हो गये हैं।

भावप्रकाशके मतमें कार्पासवृक्ष—लघु, ईषत् उष्ण-वीर्य, मधुररस और वायुनाशक हैं। उसका पत्र—वायुनाशक, रक्तकारक और मूत्रवर्धक होता है। बीज—स्तन्य-दुग्धवर्धक, शुक्रवर्धक, स्निग्ध, कफकारक और गुरु है।

(त्रि०) कर्पासस्य विकारः अवयवो वा, कर्पासी-अण्। बिल्वादिभोऽण्। पा ४।३।१३६। २ कार्पासजात, कपासी, कपासका बना हुवा। इसका संस्कृत पर्याय—फाल और बादर है।

"एकं वसनकार्पासमाविकं सदृ चाजिनं।" (भारत ३।५०।१३)

कार्पासक (सं० पु० क्ली०) कार्पास स्वार्थे कन्। कार्पास वृक्ष, कपासका पेड़। इसका संस्कृत पर्याय— कार्पास, कार्पासी, तुण्डकेरी और समुद्रान्ता है।

कार्पासकी (सं० स्त्री०) कार्पासी, कपास।

कार्पासतैल (सं० क्ली०) नाडीव्रणका तैलविशेष, कपासका तेल। तिलका तेल ४ शरावक, जल १६ शरावक और कार्पासमूल तथा हरिद्राका कल्क १ शरावक यथाविध पकानेसे यह तैल बनता है। (रत्नाकर)

कार्पासधेनु (सं० स्त्री०) कार्पासवस्त्रनिर्मिता धेनुः, मध्यपदलोपी कर्मधा०। दानके लिये कार्पासनिर्मित धेनु, कपासकी गाय। वराहपुराणमें इसके दानका विधि कही है। यथा,—"विषुवसंक्रान्तिको, युगाद्यके दिन और ग्रहपीड़ा, दुःस्वप्नदर्शन एवं अरिष्ट दर्शनादि अमङ्गल पड़नेसे पवित्र देवालय अथवा विशुद्ध गोचारण स्थलपर गोमय द्वारा दानस्थान लीपना चाहिये। फिर उसके ऊपर कुश तिल फैला देते हैं। उसके पीछे उक्त स्थानके मध्यस्थलमें धेनु स्थापनकर वस्त्र, माल्य, अनुलेपन, नैवेद्य और धूप दीपादिसे पूजा करना चाहिये। अनन्तर कुशहस्त दानमन्त्र पढ़ श्रद्धाके साथ कार्पासधेनु द्विजातिको देनी पड़ती है। वह ४ भार वस्त्र द्वारा निर्मित होनेसे उत्तम, २ भार वस्त्र द्वारा निर्मित होनेसे मध्यम, और १ भार वस्त्र द्वारा निर्मित होनेसे अधम गिनी जाती है। उक्त परिमाणके चतुर्थांश द्वारा वत्स बनाना पड़ता है। फिर कार्पास-धेनुके सकल दन्त नानाविध फल द्वारा, खुर रौप्य द्वारा और शृङ्ग स्वर्णद्वारा निर्माण करते हैं। उसका गर्भस्थल विविध रत्नसे पूर्ण किया जाता है। इस प्रकार यथाविधि धेनु दान करनेसे अन्तिम समय इन्द्रलोक मिलता है।"

कार्पासनासिका (सं० स्त्री०) कार्पासस्य नासिका इव, उपमि०। तर्कु, तकला, तकवा।

कार्पासपर्वत (सं० पु०) कार्पासवस्त्रनिर्मितः पर्वतः, मध्यप०। दानके निमित्त कार्पासवस्त्रनिर्मित पर्वत, रूईके कपड़ेका पहाड़। ब्रह्माण्डपुराणमें उसके दानका विधानादि इस प्रकार लिखा है,—"देवालय प्रभृति पवित्र स्थानका कियदंश गोमयसे लीप उसपर कुश और तिल फैला देना चाहिये। फिर उसके मध्य देशमें कार्पासवस्त्रनिर्मित पर्वत स्थापना कर यथाविधि पूजा समापनान्त कुशहस्त मन्त्रपाठपूर्वक द्विजातिको दान करते हैं। उक्त कार्पासवस्त्रराशि विंशति भार होनेसे उत्तम, दश भार होनेसे मध्यम और पञ्च भार होनेसे अधम गिना जाता है। उसमें विविध धान्य प्रभृति और नानाविध औषधि तथा रस सन्निविष्ट करते हैं। कार्पासपर्वत चारो दिक् स्वर्ण शिखर, विविध रत्न और नानाप्रकार भक्ष्यभोज्ययुक्त चार कुलाचल स्थापन कर दान करनेका विधि है। इस प्रकार दान करनेसे स्वीय वंश उद्धार होता है।"

कार्पाससौत्रिक (सं० त्रि०) कार्पाससूत्रेण निर्वृत्तः, कार्पाससूत्र-ठक्, द्विपदवृद्धिः। कार्पासके सूत्र द्वारा निर्मित, कपासके सूतका बना हुआ।

कार्पासास्थि (सं० क्ली०) कार्पासानां अस्थि, ६-तत्। कार्पासबीज, बिनौला।

कार्पासिक (सं० त्रि०) कार्पासाज्जातम्, कार्पास-ठक्। कार्पास द्वारा निर्मित, कपासका बना हुआ।

कार्पासिका (सं० स्त्री०) कार्पासी स्वार्थे कन्-टाप् पूर्वह्रस्वः। कार्पासी, कपास।

कार्पासी (सं० स्त्री०) कार्पास-जातित्वात् ङीष्। रक्तकार्पासक्षुप, लाल कपास। इसका संस्कृत पर्याय— बदरा, तुण्डिकेरी, समुद्रान्ता, सारिणी, वन्या, गुणा, गुड़ तुण्डकेरिका, मरुद्भवा, पिचु, और बादर है।

कार्म (सं० त्रि०) कर्मसु शीलं अस्य छत्रादित्वात् णः, निपातनात् साधुः। १ फलकी आकाङ्क्षा छोड़ कर्म-करनेवाला, जो नतीजा मिलनेकी ख्वाहिश न रख काम करता हो। २ कर्मशील, कामकाजी।

कार्मक, कार्मुक देखो।

कार्मण (सं० क्ली) कर्म एव, कर्म स्वार्थे अण्। तद्युक्तात् कर्मणोऽण्। पा ५।४।३६। १ मूलकर्म, जादू, टोना। औषधादिके मूलसे जो ताड़न, उच्चाटन, मारण, वशीकरण प्रभृति कार्य किया जाता, वही कार्मण कहाता है। २ मन्त्रतन्त्रादि योग। (त्रि०) कर्मसाधकत्वेन अस्त्यस्य, कर्मन्-अण्। ३ कर्मदक्ष, काममें होशियार।

कार्मणत्व (सं० क्ली०) जादू, टोना, मोहिनी।

कार्मणेयक (सं० पु०—क्ली०) जनपद विशेष, एक वसती।

कार्मणोन्माद (सं० पु०) उन्माद विशेष, एक पागलपन। यह रोग मन्त्रौषधिके प्रयोगसे हो जाता है। इसमें स्कन्ध एवं मस्तक गुरु लगता, नासिका, चक्षु, हस्त तथा पदमें दुःख उठता, वीर्य घटता और रोगी दुर्बल पड़ता है। फिर शरीरमें कोई सूई जैसी चुभाया करता है।

कार्मना (त्रि०) कार्मण देखो।

कार्मरी (सं० स्त्री०) वंशरोचना, वंशलोचन।

कार्मार (सं० पु०) कर्मार एव, कर्मार स्वार्थे अण्। १ कर्मकार, लोहार। (कर्मारस्य अपत्यम्) २ कर्मकारका पुत्र, लोहारका लड़का।

कार्मारक (सं० क्ली०) कर्मारेण कृतम्, कर्मार-वुञ्। कुलालादिभ्यो वुञ्। पा ४।३।११८। कर्मकारकृत कार्य, लोहारका बनाया काम।

कार्मार्य (सं० पु०) कार्मारस्य अपत्यम्, कर्मार-ष्यञ्। १ कर्मकारका पुत्र, लोहारका लड़का। (त्रि०) कर्मकारस्य इदम्। २ कर्मकारसम्बन्धीय, लोहारसे सरोकार रखनेवाला।

कार्मार्यायणि (सं० पु०) कर्मारस्य अपत्यम्, कर्मार-फिञ् निपातनात् कार्मार्यादेशः। कौशल्य कार्मार्याभ्याञ्च। पा ४।१।१५५। कर्मकारका पुत्र, लोहारका लड़का।

कार्मिक (सं० त्रि०) कर्मणा चित्रकर्मणा निर्वृत्तः। १ कर्ममें नियुक्त, काममें लगा हुवा। २ निर्मित, बनाया हुवा। ३ नाना वर्णके सूत्र द्वारा चित्रित किया हुवा, जिसमें रङ्ग रङ्गका सूत लगी। (क्ली०) ४ वस्त्र विशेष, एक कपड़ा। इसमें नानावर्णके सूत्रसे चक्र स्वस्तिकादि चिह्न बनाये जाते हैं। (मिताक्षरा)

"कार्मिके रोमबद्धे च त्रिंशद् भागक्षयो मतः।" (याज्ञवल्क्य २।१८३)

कार्मिकत्व (सं० क्ली०) कार्मिकस्य भावः, कार्मिक-यक्। पत्यन्त पुरोहितादिभ्यो यक्। पा ५।१।१२८। कर्मशीलता, परिश्रम, दौड़ धूप, मेहनत।

कार्मुक (सं० क्ली०) कर्मणे प्रभवति, कर्मण-उकञ्। कर्मण उकञ्। पा ५।१।१०३। १ धनुः, कमान्। २ एक औजार। यह धनुषके आकारका होता है। (पु०) कार्मुक धनुः साध्यत्वेन अस्त्यस्य, कार्मुक-अच्। ३ वंश, बांस। ४ श्वेत खदिर, सफेद खैर। ५ हिज्जलवृक्ष, एक पेड़। ६ महानिम्ब, बकायन। ७ चोबचीनी। ८ माधवीलता। ९ मेष प्रभृतिके मध्य नवम राशि। १० रुई धुननेका यन्त्र। (त्रि०) ११ कार्यक्षम, कामकाजी। १२ श्वेतखदिरसम्बन्धीय, सफेद खैरसे सरोकार रखनेवाला।

कार्मुकभृत् (सं० त्रि०) कार्मुकं बिभर्ति, कार्मुक-भृ-क्विप्। धनुर्धारी, कमान् बांधनेवाला।

कार्मुकासन (सं० क्ली०) आसन विशेष, एक बैठक। पद्मासन लगा दक्षिण हस्त द्वारा वामपदको और वाम हस्त द्वारा दक्षिण पदको दो अङ्गुलि पकड़े रहनेसे कार्मुकासन होता है। (रुद्रयामल)

कार्मुकी (सं० त्रि) कार्मुकं अस्यास्ति, कार्मुक-इनि। धनुर्धारी, कमान् बांधनेवाला।

कार्य (सं० क्ली०) क्रियते यद् तत्, कृ-ण्यत् तस्मै वृद्धिः। १ कर्म, काम। इसीको लक्ष्य कर कर्ता प्रवर्तित होता है। २ कर्तव्य, फर्ज। ३ हेतु, सबब। ४ प्रयोजन, मतलब। ५ ऋणादिका विवाद, कर्ज वगैरहका झगड़ा।

"नोत्पादयेत् स्वयं कार्यं राजा नाप्यस्य पूरुषः" (मनु ८।४३)
'कार्यं ऋणादिविवादम्।' (कुल्लूक)

६ अपूर्व। ७ उद्देश्य। ८ व्याकरणोक्त आदेशप्रत्यय। ९ आरोग्य, तनदुरुस्ती। १० व्यापार, धन्धा। ११ ज्योतिषशास्त्रोक्त जन्म लग्नसे दशम स्थान। (त्रि०) ११ करने योग्य, किया जानेवाला। १२ लगाया या चढ़ाया जानेवाला।

कार्यकर (सं० त्रि०) कार्यं करोति, कार्य-कृ-ट। कार्य निर्वाह करनेवाला, जो काम चलाता हो।

कार्यकर्ता (सं० पु०) कार्यं करोति, कार्य-कृ-तृच्। कार्यकारक, काम करनेवाला शख्स।

कार्यकारक (सं० पु०) कार्य-कृ-ण्वुल्। कार्यकर्ता, काम करनेवाला शख्स।

कार्यकारण (सं० क्ली०) कार्यञ्च कारणञ्च द्वयोः समाहारः। मिलित कार्य और कारण, नतीजा और सबब।

कार्यकारणता (सं० स्त्री०) कार्यकारणयोर्भावः, कार्यकारण-तल्। कार्य और कारण उभयका परस्परापेक्षी धर्म, नतीजे और सबब दोनोंकी हालत। जैसे घट दण्डका कार्य और दण्ड घटका कारण है। सुतरां घट और दण्डमें परस्परकी कार्यकारणताका धर्म अवस्थित है।

कार्यकारणभाव (सं० पु०) कार्यञ्च कारणञ्च तयोर्भावः, ६-तत्। कार्यकारणता, नतीजे और सबबकी मिली हुई हालत।

कार्यकारी (सं० पु०) कार्य-कृ-णिनि। कार्यकारक, काम करनेवाला।

कार्यकाल (सं० पु०) कार्याणां उपयुक्तः कालः, मध्यपदलो०। कार्यका उपयुक्त समय, कामका ठीक मौका।

कार्यकुशल (सं० त्रि०) कार्येषु कुशलः दक्षः ७-तत्। कार्यदक्ष, काममें होशियार।

कार्यक्षम (सं० त्रि०) कार्येषु क्षमः समर्थः, ७-तत्। कार्यसम्पादनमें क्षमतायुक्त, काम करनेमें होशियार।

कार्यगुरुता (सं० स्त्री०) कार्याणां गुरुता गौरवम्, ६-तत्। कार्यका गुरुत्व, कामकी बड़ी जरूरत।

कार्यगौरव (सं० क्ली०) कार्याणां गौरवम्, ६-तत्। कार्यगुरुता, कामकी जरूरत।

कार्यचिन्तक (सं० त्रि०) कार्यं चिन्तयति, कार्य-चिन्ति-ण्वुल्। १ कर्तव्य विषयकी चिन्ता करनेवाला, जो कामकी खबर रखता हो। २ पटु, होशियार।

कार्यचिन्ता (सं० स्त्री०) कार्यस्य कार्येषु वा चिन्ता, ६ वा ७-तत्। १ कार्यकी चिन्ता, कामकी फिक्र। २ कर्तव्य विषयकी चिन्ता, किये जानेवाले कामकी फिक्र।

कार्यच्युत (सं० त्रि०) कार्यात् च्युतः भ्रष्टः, ५-तत्। कार्यभ्रष्ट, जो कामसे अलग हो।

कार्यत्व (सं० क्ली०) कार्यस्य भावः, कार्य-त्व। कर्तव्यता, नतीजेकी हालत।

कार्यदर्शक (सं० त्रि०) कार्याणां दर्शकः, ६-तत्। १ कार्यका तत्त्वावधायक, कामका इन्तिजाम करनेवाला। २ कार्यका परीक्षक, काम देखनेवाला।

कार्यदर्शन (सं० क्ली०) कार्याणां दर्शनम्, ६-तत्। १ कार्यका तत्त्वावधान, कामका इन्तिजाम। २ कार्य-परीक्षा, कामकी जांच।

कार्यदर्शी (सं० त्रि०) कार्यं पश्यति इदं सम्यक् कृतं इदमसम्यगिति विवेचयति, कार्य-दृश-णिनि। तत्त्वावधायक, काम देखनेवाला।

कार्यद्वेष (सं० पु०) कार्ये कर्तव्यनिष्पादने द्वेष अनिच्छा, ७-तत्। १ आलस्य, सुस्ती। २ काम करनेकी अनिच्छा, काममें जी न लगनेकी हालत।

कार्यध्वनि, कार्यपुट देखो।

कार्यनिर्णय (सं० पु०) कार्यस्य निर्णयः स्थिरीकरणम्, ६-तत्। निश्चयरूपसे कामका स्थिरीकरण, किसी कामका फैसला।

कार्यनिर्वाहक (सं० त्रि०) कार्यं निर्वाहयति सम्पादयति, कार्य-निर्-वह-ण्वुल्। कार्यसम्पादक, काम चलानेवाला।

कार्यनिष्पत्ति (सं० स्त्री०) कार्यस्य निष्पत्तिः समाधानम्, ६-तत्। कार्यकी संपूर्णता, कामका खातिमा।

कार्यपञ्चक (सं० पु०) पञ्चकार्य, पांच काम। अनुग्रह, तिरोभाव, आदान, स्थिति और उद्भवको कार्यपंचक कहते हैं।

कार्यपटु (सं० त्रि०) कार्ये कार्यकरणे पटुः निपुणः, ७-तत्। कार्यकुशल, बड़ी होशियारीसे काम करनेवाला।

कार्यपुट (सं० पु०) कारि-अपुट-क। १ क्षपणक, एक बौद्धसंन्यासी। २ उन्मत्त पुरुष, पागल आदमी। ३ अनर्थकारक, बेफायदे काम करनेवाला।

कार्यप्रद्वेष (सं० पु०) कार्यं प्रद्वेष्टि अनेन, कार्य-प्र-द्विष करणे घञ्। १ आलस्य, सुस्ती। २ कार्य करनेमें अत्यन्त अनिच्छा, काममें दिल न लगनेकी हालत।

कार्यपात्र (सं० क्ली०) कार्येषु उपयोगि पात्रम्, मध्यपदलो०। कार्यमें आवश्यक पात्र।

कार्यप्रेष्य (सं० त्रि०) कार्येषु प्रेष्यः, ७-तत्। १ कार्यसम्पादनमें नियुक्त करने योग्य, काममें लगाने लायक। (पु०) २ दूत, हरकारा।

कार्यभाजन (सं० क्ली०) कार्येषु उपयोगि भाजनम्, मध्यपदलो०। कार्यपात्र, जो बराबर काममें लगा रहता हो।

कार्यभ्रष्ट (सं० त्रि०) कार्यात् भ्रष्टः, ५-तत्। कार्यच्युत, कामसे छूटा हुवा।

कार्यवत्ता (सं० स्त्री०) कार्यवतो भावः, कार्यवत्-तल्। कार्यविशिष्टता, काममें लगे रहनेकी हालत।

कार्यवत्त्व (सं० क्लो०) कार्यवत्-त्व। कार्यवत्ता, कामकाजीपन।

कार्यवश (सं० पु०) कार्यस्य वशः वश्यता। १ कार्यका अनुरोध, कामकी मातहती। (त्रि०) २ कार्यके वशीभूत, कामके मातहत।

कार्यवस्तु (सं० क्लो०) कार्यार्थं वस्तु, मध्यपदलो०। कार्यनिष्पादनके लिये आवश्यक द्रव्य, काम करनेकी जरूरी चीज़।

कार्यवान् (सं० पु०) कार्यमस्यास्ति, कार्य-मतुप् मस्य वः। कार्यविशिष्ट, काममें लगा हुवा।

कार्यविपत्ति (सं० स्त्री०) कार्येषु विपत्तिः, ७-तत्। कार्यके सम्पादनमें उपस्थित होनेवाली विपद्, जो आफ़त काम करनेमें पड़ जाती हो।

कार्यशब्दिक (सं० त्रि०) कार्यः शब्द इत्याह, कार्य-शब्द-ठक्। नैयायिक विशेष, एक मन्तिकी। यह शब्दको कार्य अर्थात् अनित्य मानते हैं। इसीसे इनका यह नाम पड़ा है।

कार्यशेष (सं० पु०) कार्यस्य शेषः, ६-तत्। १ आरब्ध कार्यकी निष्पत्ति, शुरू किये हुये कामका खातिमा। २ कार्यका अवशिष्ट अंश, कामका बाकी हिस्सा।

कार्यसन्देह (सं० पु०) कार्ये कार्यस्य निष्पत्ति-विषये सन्देहः, ७-तत्। कार्यकी निष्पत्तिमें अनिश्चयता, कामके पूरा होनेमें शक।

कार्यसम (सं० पु०) न्यायके मतानुसार चतुर्विंशति जातिके अन्तर्गत एक जाति। लक्षण इस प्रकार है,—

"प्रयत्नकार्यानेकत्वात् कार्यसमः।" (न्यायसूत्र, ५।१।३७)

प्रयत्न सम्पादनीय वस्तु अनेक हैं। इसीसे कार्यसम नामक कार्य विशेष जाति होती है। जैसे—

"शब्दोऽनित्यः प्रयत्नानन्तरीयकत्वात् इत्यादि।"

मीमांसक शब्दको नित्य मानते हैं। इसीसे उनके मतमें शब्दकी उत्पत्ति नहीं होती। किन्तु किसी वस्तुमें आघात लगने पर उस आघातसे शब्द प्रकाश मात्र पाता है। नैयायिक उस बातको स्वीकार नहीं करते। उनके कथनानुसार अनित्य होनेसे शब्दकी उत्पत्ति होती है। अनित्यताके सम्बन्धमें वह उक्त 'शब्दोऽनित्यः प्रयत्नानन्तरीयकत्वात्' अनुमान वाक्यको ही प्रमाण समझते हैं। मीमांसक उक्त अनुमान वाक्यमें यों आपत्ति लगाते हैं,—'इस अनुमानसे शब्दकी अनित्यता सिद्ध हो नहीं सकती। क्योंकि प्रयत्नसम्पादनीय वस्तु अनेक हैं। अर्थात् नित्य और जन्य सकल वस्तु प्रयत्न द्वारा आत्मलाभ करते हैं। सर्वदा एक भावमें अवस्थित रहते भी प्रयत्नद्वारा नित्य वस्तुकी उपलब्धि हो सकती है। जैसे यत्नपूर्वक वस्त्र उठा कर फेंक देनेसे वस्त्रद्वारा अनित्यताकी स्थिति स्थिर होना कठिन है। इसी दोषको वह "कार्यासम" या "कार्यविशेष" जाति कहते हैं।

कार्यसम प्रभृति जातिसमूह दोषदाताके स्वपक्षको घातिकारक हैं। इसीसे वह "असदुत्तर" और "स्वव्याघातक" उत्तर नामसे अभिहित होते हैं। जाति देखो।

कार्यसागर (सं० पु०) गुरु कार्य, बड़ा काम।

कार्यसाधक (सं० त्रि०) कार्यं साधयति, कार्य-साध-णिच्-ण्वुल्। कार्यसम्पादक, काम पूरा करनेवाला।

कार्यसाधन (सं० क्लो०) कार्यस्य साधनं निष्पादनम्, ६-तत्। कार्यसिद्धि, कामयाबी। २ कार्यनिष्पादन करनेका उपाय, काम पूरा करनेकी तरकीब।

कार्यसिद्धि (सं० स्त्री०) कार्यस्य सिद्धिः ६-तत्। १ कर्तव्य कर्मकी निष्पत्ति, कामयाबी। २ अभीष्टसिद्धि।

"चिरं प्रमथि कार्यसिद्धिरतुला यस्तं दुताये भवन्।" (तिथितत्त्व)

३ ज्योतिषोक्त एक सहम।

कार्यस्थान (सं० क्लो०) कार्यस्य स्थानम् ६-तत्। १ कार्य निष्पादन करनेका स्थान, कामकी जगह।

कार्या (सं० स्त्री०) क-ण्यत्-टाप्। कारोहक, एकपेड़।

कार्यहन्ता (सं० त्रि०) कार्य विनाश करनेवाला, जो काम बिगाड़ता हो।

कार्याकार्यविचार (सं० पु०) कार्यञ्च अकार्यञ्च तयोः विचारः ६-तत्। कर्तव्य और अकर्तव्यका विचार, करने और न करने लायक कामका ख्याल।

कार्याक्षम (सं॰ त्रि॰) कार्ये कार्यकरणे अक्षमः असमर्थः ७ तत्। कार्य करनेमें अपारग, जो काम करने लायक न हो।

कार्याधिकारी (सं॰ पु॰) पदाधिकारी, अफसर, कामका इख्तियार रखनेवाला।

कार्याधिप (सं॰ पु॰) कार्यस्य अधिपः, ६-तत्। १ कार्याध्यक्ष, कामका मालिक। २ ज्योतिषोक्त कार्य (दशम) स्थानका अधीश्वर।

कार्याधीश (सं॰ पु॰) कार्यस्य अधीशः अधिपतिः, ६-तत्। कार्याधिप, कामका मालिक।

कार्याध्यक्ष (सं॰ पु॰) कार्यस्य अध्यक्षः, ६-तत्। तत्त्वावधायक, अफसर, कामका मालिक।

कार्यानुरोध (सं॰ पु॰) कार्यस्य अनुरोधः ६-तत्। कार्यकी अवश्य कर्तव्यताका बन्धन, कामका तकाज़ा।

कार्यान्त (सं॰ पु॰) कार्यस्य अन्तः, ६-तत्। कार्यका शेष, कामका खातिमा।

कार्यान्तर (सं॰ क्ली॰) अन्यत् कार्यम् मयूरव्यंसकादिवत् समासः। अन्य कार्य, दूसरा काम।

कार्यान्वित (सं॰ त्रि॰) कार्येण कर्तव्येन अन्वितः युक्तः ३-तत्। १ कार्ययुक्त, काममें लगा हुआ। २ कार्यबोधक पदका प्रतिपाद्य अर्थ रखनेवाला।

कार्याब्धि (सं॰ पु॰) कार्यसागर, कामका ढेर।

कार्यारम्भ (सं॰ पु॰) कार्यस्य आरम्भः, ६-तत्। कार्यका प्रथम अनुष्ठान, कामका आगाज़।

कार्यार्थ (सं॰ पु॰) १ कार्यका प्रयोजन, कामका मतलब। २ प्रयोजन, मतलब। ३ कार्यप्राप्त होनेका आवेदन, कामपानेकी अर्जी। (अव्य॰) ४ कार्यके लिये, कामके वास्ते।

कार्यार्थसिद्धि (सं॰ स्त्री॰) कार्यार्थस्य कार्यप्रयोजनस्य सिद्धिः, ६-तत्। उद्देश्यसिद्धि, मतलब पर आनेकी हालत।

कार्यार्थी (सं॰ त्रि॰) कार्यस्य अर्थी, प्रार्थी, ६-तत्। १ कार्य करनेकी प्रार्थनाकारी, उम्मेदवार। पैरोकार, मुकद्दमेकी पैरवी करनेवाला।

कार्यालय (सं॰ पु॰) कार्यका स्थान, कारखाना, कामकी जगह।

कार्यिक (सं॰ त्रि॰) कार्य-वुन्। १ कार्यविशिष्ट, कामकाजी २ मुकद्दमा लड़नेवाला।

कार्यी (सं॰ त्रि) कार्यं अस्त्यस्य, कार्य-इनि। १ कार्ययुक्त, कामकाजी। २ कार्यप्रार्थी, उम्मेदवार। ३ कर्मयुक्त, अफ़ल रखनेवाला। ४ मुकद्दमा लड़नेवाला।

कार्येक्षण (सं॰ क्ली॰) कार्यदर्शन, कामकी देखभाल।

कार्येश (सं॰ पु॰) कार्याणां ईशः तत्त्वावधारणेन सम्पादकः ६-तत्। कार्याध्यक्ष, कामका मालिक।

कार्येश्वर, कार्येश देखो।

कार्यैक्य (सं॰ क्ली॰) कार्याणां ऐक्यम्, ६-तत्। एककार्यानुकूलता, कामकी बराबरी। न्यायमतसे छह प्रकारकी सङ्गतिमें यह भी एक सङ्गति मानी गयी है।

कार्योत्सुक (सं॰ त्रि॰) कार्ये कार्यसम्पादने उत्सुकः, ७ तत्। कार्यनिर्वाहमें व्यग्र, खुशीसे कामकरनेवाला।

कार्योद्धार (सं॰ पु॰) कार्यसम्पादन, कामका अमल।

कार्योद्यम (सं॰ पु॰) कार्ये उद्यमः चेष्टा, ७-तत्। कार्यसम्पादनकी चेष्टा, कामकी कोशिश।

कार्योद्युक्त (सं॰ त्रि॰) कार्येषु, उद्युक्त उद्यमशीलः ७-तत्। कार्यके साधनमें उद्यमविशिष्ट, काममें लगा हुआ।

कार्योद्योग (सं॰ पु॰) कार्यस्य उद्योगः, ६-तत्। कार्यके आरम्भकी चेष्टा, काम शुरु करनेकी कोशिश।

कार्लि—पर्वतकी एक गुहा। यह अक्षा॰ १८° ४५' २०" उ॰और देशा॰ ७३° ३१' १६" पू॰पर अवस्थित है। पूनासे बम्बई जानेके पथपर कोई आधी दूर पहुंचते ही दक्षिण भागकी समुद्रकी ओर थोड़ा चलकर पर्वतकी उपत्यकामें कार्लि गुहा देख पड़ती है। सह्याद्रिपर्वतसे कार्लि पहाड़ स्वतन्त्र भावमें अवस्थित है। वह लानौली ष्टेशनके अतिनिकट है।

इस गुहामें एक सुन्दर मन्दिर खोदित है। भारतमें पर्वतके भीतर खोदित नाना स्थानोंपर नाना प्रकारके मन्दिर विद्यमान हैं। किन्तु कार्लिकी भांति गठनवैचित्र किसीमें देख नहीं पड़ता। स्वभावतः यह बौद्धोंका बनाया है। निर्जनमें उपासना करनेके लिये बौद्धोंने पर्वतकी गुहाके भीतर इस चैत्यको बनाया था। इसकी गठनप्रणाली कुछ कुछ आजकलके गिरजेसे

मिलती है। गुहाके सम्मुख (आगे) सिंहद्वार है। सिंहद्वारकी दोनों दिक् दो स्तम्भोंके होनेका अनुमान किया जाता है। किन्तु आजकल उनमें एकमात्र वर्तमान है। इसकी निर्णय करनेका उपाय नहीं—दूसरे स्तम्भके स्थानमें एक छोटा प्रस्तर-मन्दिर बना था अथवा एक ही स्तम्भ बराबर रहा। स्तम्भ गोलाकार है। उस पर ३२ ढालू पल बने हैं। वह भूमिसे समभावसे ऊपर उठा है। स्तम्भके उपरि भागमें कारनिस या कगर है। कगरके ऊपर चारो ओर चार सिंहमूर्ति खोदित हैं। किसी किसीके अनुमानसे उक्त चारो मूर्तियां एक चक्र धारण करती थीं। सिंहद्वार पार होते ही दूसरा एक द्वार मिलता है। उसका विस्तार प्रायः ३४ हाथ होगा। उसके दोनों पार्श्व दो स्तम्भ हैं। दोनों स्तम्भ अष्टकोण वा अष्टपलविशिष्ट हैं। उनमें नीचे या ऊपर कोई कारुकार्य देख नहीं पड़ता। फिर भी उपरिभागपर दोनों स्तम्भोंसे दो प्रशस्त प्रस्तरफलक लगे हैं। उसके पीछे फिर कुछ ऊपरकी ओर एक कंगनी है। उससे चार स्तम्भाकृति कुछ नीचे उतर गयी हैं। उसके अनन्तर कुछ आगे बढ़ने पर मन्दिरमें प्रवेश करनेको तीन द्वार हैं। उनमें कई उन्मुक्त हैं, किसी प्रकारके कपाट नहीं लगे। तीनो द्वार एक कतारमें प्राचीरवत् प्रस्तर-खण्डसे संलग्न हैं। उक्त प्राचीर द्वारके मस्तक पर्यन्त समतल भावमें अवस्थित है। उसके उपरिभागमें शून्य है। उसी स्थानसे आलोक (रोशनी) मन्दिरमें पहुंचता है। शून्यके ऊपर बड़ी मेहराव है। मेहराव मन्दिरके प्रवेशद्वारसे शेष पर्यन्त विस्तृत है। उक्त
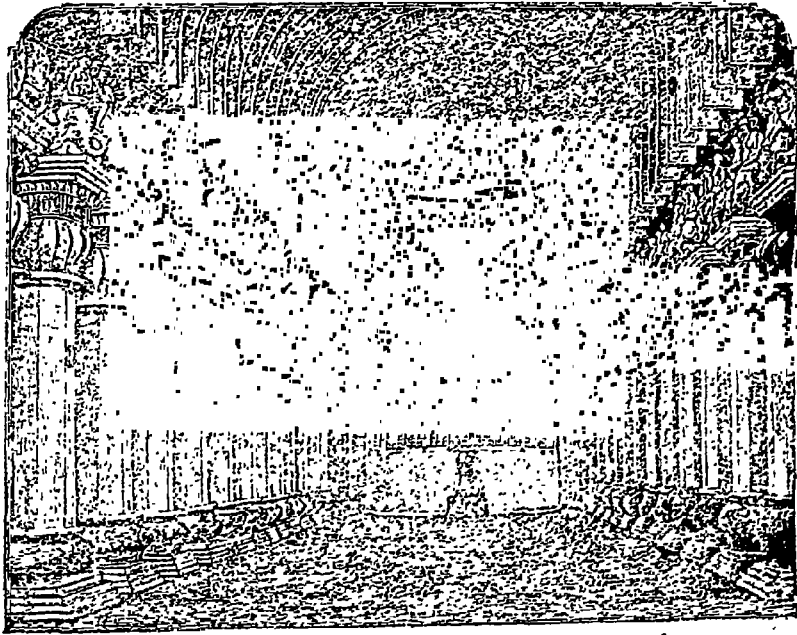
कार्लि।

द्वार पार होनेसे अभ्यन्तरकी अपूर्व शोभा देख कर मनमें एक अपूर्व भावका उदय होता है। कैसी शिल्प चातुरी! क्या असम्भव परिश्रम! दोनों पार्श्वपर दो बरामदे दोनों ओर चले गये हैं। मध्यस्थलमें नाट्य-मन्दिरका मण्डप है। प्रवेशद्वारको अपरदिक् गुम्बज-जैसा चैत्यका स्थान है। द्वारमें प्रवेशकर देखते हैं कि कतार बकतार स्तम्भश्रेणी दोनो पार्श्व दण्डायमान है। दोनो पार्श्वके स्तम्भोंके पीछे दोनों ओर बरामदा है, बरामदेसे मध्यस्थलको मन्दिरमें आनेके लिये दोनों पार्श्वके स्तम्भोंके मध्य स्थान विद्यमान है। भूमिके मध्यस्थलसे मेहरावके मध्यस्थान तक नापने पर सम्भवतः तीस हाथ अन्तर निकलेगा। एक ही स्तम्भको

वर्णना करना असम्भव है, उसको वर्णना कौन कर सकता है। क्या ही कारीगरी है। तलभागमें क्रमान्वयसे चार स्तवक हैं। उनकी लम्बाई धीरे धीरे घटती गयी है। उनमें कुछ गोलाकृति हैं। उनके ऊपर अष्ट पत्र हैं। पत्रोंपर स्तम्भोंके मस्तक हैं। उनपर कंगनी लगी है। कंगनी पर दोनों दिक् हस्तिमूर्ति है। हस्तिपृष्ठपर कहीं दो मानव, कहीं दो मानवी, कहीं एक मानव और कहीं एक मानवीकी मूर्ति है। स्तम्भश्रेणी पार होने पर एक गुम्बज जैसी आकृति देख पड़ेगी। उसके उपरिभागमें "+" इस चिन्हकी भांति एक पदार्थ और उसपर एक छत्र है। आजकल उक्त छत्रका कुछ अंश टूट गया है। गुम्बजके पश्चाद्भागमें अष्टपत्रविशिष्ट दूसरे सात स्तम्भ हैं। उनकी बनावट सीधी सादी है, विशेष कारुकार्ययुक्त नहीं। मन्दिरके द्वारदेशसे उक्त स्तम्भोंके मूलदेश पर्यन्त ८४ हाथ अन्तर होगी। प्रथममें दोनों दिक्के स्तम्भोंका मध्यस्थान साढ़े सोलह हाथ बैठेगा। बरामदावोंका परिसर अपेक्षाकृत छोटा है। ६ हाथसे अधिक नहीं। उक्त बड़ी मेहराबके पीछे ही काष्ठकी कड़ियां मेहराबसे संलग्न हैं। कड़ियोंकी कतार बंधी है। वह मेहराबकी एक ओरसे दूसरी ओर तक चली गयी है। कड़ियां हमारे घरकी तरह सरल भावसे अवस्थित नहीं। वह वक्र भावपर मेहराबसे मिल सरल भावपर शून्यमें अवस्थित हैं। उनका कोई आधार देख नहीं पड़ता। आजकल कोई निर्णय कर नहीं सकता—कैसे वह उस प्रकार संलग्न हुई हैं। न देखने पर वर्णनासे इस मन्दिरका सौन्दर्य कैसे अनुभूत हो सकता है। कौन कह सकता—वह चैत्य कितने दिनका पुराना है। बाहरके सिंहस्तम्भपर कोई खोदित अक्षर देख पड़ते हैं। लोगोंके कथनानुसार महाराज भूति वा देवभूतिने वह अक्षर खोदाये थे। पाश्चात्य मतमें भूति राजा ई० शताब्दसे ७८ वर्ष पूर्व राजत्व करते थे। उससे भी पूर्व मन्दिरका बनना असम्भव नहीं।

कार्शकेय (सं० पु०) कशकस्य ऋषेरपत्यम्, कशक-ढक्। कशक मुनिके पुत्र।

कार्शकेयीपुत्र (सं० पु०) कार्शकेय्याः पुत्रः, ६-तत्। कशक ऋषिके दौहित्र, यह एक आचार्य थे।

कार्शन (वै० त्रि०) मुक्ताविशिष्ट, मोतियोंवाला।

कार्शानव (सं० त्रि०) कृशानोरिदम्, कृशानु-अण्। कृशानुसम्बन्धीय, आतशी, गर्मी।

कार्शाश्वीय (सं० त्रि०) कृशाश्वेन निर्वृत्तम्, कृशाश्व-छण्। कृशाश्व द्वारा निष्पन्न।

कार्श्मरी (सं० स्त्री०) कार्श्म राति, कश-स्वार्थे णिच् भावे मनिन् रा-क-ङीष्। १ काशमारी। २ श्रीपर्णी। ३ गंभारीवृक्ष।

कार्श्मर्य (सं० पु०) गाम्भारीवृक्ष, एक पेड़।

कार्श्य (सं० पु०) कश स्वार्थे ष्यञ्। १ कर्चूरक, कचूर। २ गाम्भारीवृक्ष। ३ लकुचवृक्ष, लुकाटका पेड़। ४ क्षुद्रपर्णास। ५ शालवृक्ष। ६ शाकवृक्ष। (क्ली०) कृशस्य भावः, कृश-ष्यञ्। वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ्। पा ५।१।१२३। ७ कृशता, कमजोरी, दुबलापन। ८ कृशतारोग, कमजोरीकी बीमारी। इस रोगका कारण—वात, रूक्षान्नपान, लङ्घन, प्रमिताशन, शोक वेग, निद्राविनिग्रह, नित्यरोग, अरति, नित्य व्यायाम, भोजनकी अल्पता, भीति और धनादिका ध्वंस है। (भावप्रकाश)

कार्श्यहरलौह (सं० पु०) कृशताका एक औषध, कमजोरीकी कोई दवा। श्वेतपुनर्नवा, दन्तीमूल, अश्वगन्धामूल, त्रिफला, त्रिकटु, त्रिमद, शतमूली तथा श्वेतवेलेडा बराबर बराबर और सबके बराबर लौह, भीमराजके रसमें घोंटनेसे यह औषध बनता है। (रसेन्द्रसारसंग्रह)

कार्ष (सं० त्रि०) कृषिः शीलमस्य, कृषि-ण। छत्रादिभ्यो णः। पा ४।४।६२। कृषिकर्मकारक, काश्तकार, किसान।

कार्षक (सं० पु०) कार्ष स्वार्थे कन् अथवा कर्षति कृष-ण्वुल्। कर्षेर्द्विषोदीषाम्। उण् २।३८। कृषक, खेतिहर।

कार्षापण (सं० पु० क्ली०) कार्षस्य कार्षेण वा आपणः व्यवहारो यत्र, कार्षापण-अण्। १ षोडश पण, १६ कौड़ी या रत्ती। २ कर्षपरिमाण, १६ माषा। यह सोना तौलनेको १६ माशे, चांदी तौलनेको १६ पल और तांबा तौलनेको ८० रत्तीका रहता है। ३ धन दौलत, सोना चांदी। ४ कृषक, किसान।

कार्षापणक (सं० पु० क्लो०) कार्षापण स्वार्थे कन्। कार्षापण, एक तौल।

कार्षापणावर (सं० त्रि०) एक कार्षापणके मूल्यवाला, जिसमें कमसे कम १६ कौड़ियां लगी।

कार्षापणिक (सं० त्रि०) कार्षापणेन आहार्यम्, कार्षापण टिठन्। कार्षापणाद वा प्रतिय। पा ५।१।२५ (वार्तिक) कार्षापण द्वारा आहरणयोग्य, १६ कौड़ीमें आनेवाला।

कार्षि (सं० पु०) कर्षति, कर्षः स्वार्थे इञ्। १ अग्नि, आग। (स्त्री) २ आकर्षण, कशिश। ३ कर्षण, जोताई। (त्रि०) ३ कृषक, खेत जोतनेवाला। ४ अन्तर्गत मलनाशक, भीतरी मैल छुड़ानेवाला।

कार्षिक (सं० पु०) कर्ष स्वार्थे ठक्। १ कार्षापण, १६ कौड़ीका एक सिक्का। (कर्षः शीलमस्य) २ कृषक, किसान। (त्रि०) कर्षस्य अयम्। ३ कर्षपरिमित, सोलह मासेवाला। ४ कर्ष परिमित मूल्य द्वारा क्रय किया हुवा, जो १६ कौड़ीमें खरीदा गया हो।

कार्षीवण (वै० त्रि०) कृषक, किसान।

कार्ष्ट्य (सं० त्रि०) कृष्टस्य भावः कृष्ट-ष्यञ्। कृष्टता, जोताई।

कार्ष्ण (सं० त्रि०) कृष्णस्य इदम् कृष्ण-अण्। १ कृष्णमृग सम्बन्धीय, काले हिरनवाला। २ कृष्णद्वैपायन सम्बन्धीय। (कृष्णो देवता अस्य) ३ कृष्णभक्त। (क्लो०) ४ कृष्णमृगचर्म, काले हिरनका चमड़ा। (पु०) ५ कृष्णसार मृग, काला हिरन।

कार्ष्णा (सं० स्त्री०) लघु शतावरी, छोटी सतावर।

कार्ष्णाजिनि (सं० पु०) कृष्णाजिनस्य ऋषेरपत्यम् कृष्णाजिन-इञ्। १ कृष्णाजिन मुनिके पुत्र। २ आचार्य विशेष, एक उस्ताद। ३ जनैक विज्ञानविद्, कोई मुहक्किक, मीमांसासूत्र, ब्रह्मसूत्र और कात्यायनश्रौतसूत्रमें इनका नाम मिलता है। ४ कोई स्मृतिशास्त्रप्रणेता; टोडरमल्ल, हेमाद्रि, माधवाचार्य्य, रघुनन्दन प्रभृति स्मार्त पण्डितोंने इनका मत उद्धृत किया है।

कार्ष्णायन (सं० पु०) कृष्णस्य व्यासस्य गोत्रापत्यम् कृष्ण-फक्। १ व्यासवंशके ब्राह्मण। २ वाशिष्ठ, वशिष्ठवंशी।

कार्ष्णायस (सं० क्लो०) कृष्णस्य अयसो विकारः कृष्ण-अयस्-अण्। १ कृष्ण लौहनिर्मित द्रव्य, काले लोहेकी बनी हुयी चीज। २ लौह, लोहा। (त्रि०) ३ कृष्ण लौह निर्मित, काले लोहेका बना हुवा।

कार्ष्णि (सं० पु०) कृष्णस्य अपत्यम् कृष्ण-इञ्। १ कामदेव। २ गन्धर्वविशेष। ३ व्यासके पुत्र शुकदेव। ४ प्रद्युम्न।

कार्ष्णी (सं० स्त्री०) कार्ष्ण-ङीप्। शतावरी, सतावर।

कार्ष्ण्य (सं० क्लो०) कृष्णस्य भावः कृष्ण-ष्यञ्। कृष्णवर्णता, स्याही कालापन।

कार्ष्ण्यायस (सं० त्रि०) १ कृष्णायसनिर्मित, काले लोहेका बना। लौह, लोहा।

कार्ष्म (सं० क्लो०) कर्षति अत्र, कृष स्वार्थे णिच आधारे मनिन्। १ युद्ध, लड़ाई। भावे मनिन्। २ कर्षण, जोताई।

कार्ष्मरी (सं० स्त्री०) कार्ष्म कर्षणं राति ददाति, कार्ष्म-रा-ङीष्। श्रीपर्णी वृक्ष।

कार्ष्मर्य (सं० पु०) कार्ष्मर्या विकारः, कार्ष्मरी-यत्। श्रीपर्णीवृक्षका अवयव।

कार्ष्मर्यमय (सं० त्रि०) श्रीपर्णी वृक्ष द्वारा निर्मित। कार्ष्मर्य कार्ष्ण्य देखो।

कार्ष्य (सं० पु०) कृष्-क स्वार्थे ष्यञ्। शालवृक्ष।

कार्ष्यवन (सं० क्लो०) शाल वृक्षका वन।

कार्ष्ठ (सं० पु०) १ सर्जतरु, धूनेका पेड़। २ कृष्णसार मृग, काला हिरन।

काल (सं० क्लो०) कु ईषत् कृष्णत्वं लाति गृह्णाति, कु-ला-क, कोः कादेशः यद्वा धातुषु कुत्सितरूपतया कलति, कु-अल्-अच् कोः कादेशः। १ लौह, लोहा। २ कक्कोल, शीतलचीनी। ३ कालीयक नामक गन्धद्रव्य विशेष, एक खुसबूदार चीज। (त्रि०) कृष्ण वर्णविशिष्ट, काला। (पु०) ५ कृष्णवर्ण, काला रंग। ६ मृत्यु, मौत। ७ महाकाल। ८ शनिग्रह। ९ कासमर्द वृक्ष, कसौंदेका पेड़। १० रक्तचित्रक, लाल चीता। ११ धूना, राल, लोबान। १२ कोकिल, कोयल। १३ शिव। १४ विष्णु। १५ पर्वतविशेष, कोई पहाड़। कलयति आयुः कल-णिच् पचाद्यच् ततोऽण् यद्वा कलयति सर्वाणि भूतानि, कल-णिच्-अच्-अण्। १६ समय, वक्त। इसका अपर संस्कृत नाम दिष्ट और अनेहा है।

कालमें संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग और विभाग पांच गुण होते हैं। साधारण विभाग तीन प्रकार है,— भूत, भविष्यत् और वर्तमान। बीतजानेवालेको भूत, चलने वालेको वर्तमान और आनेवाले समयको भविष्यत् कहते हैं। किसी किसी शास्त्रमें कालके कई साधारण विभाग हैं। उनमें ज्योतिषशास्त्रोक्त विभागोंको ही हम सदा गिना करते हैं। एतद्भिन्न आयुर्वेदादि शास्त्रमें भी कालका विभाग निर्दिष्ट है। सुश्रुतसंहितामें कहा है, कि काल नित्य पदार्थ है। उसका आदि, मध्य और विनाश नहीं होता। सूर्यकी गतिके अनुसार कालको निमेष, काष्ठा, कला, मुहूर्त, अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर और युगमें बांटते हैं। लघु वर्ण बालनेमें जो समय लगता उसका नाम निमेष पड़ता है। १५ निमेषकी काष्ठा, ३० काष्ठाकी कला, २० कलाका मुहूर्त, ३० मुहूर्तका अहोरात्र, १५ अहोरात्रका पक्ष, २ पक्षका मास, २ मासका ऋतु, ३ ऋतुका अयन, २ अयनका वत्सर और १२ वत्सरका युग मानते हैं।

न्यायके मतमें काल विभु, अर्थात् अपरिच्छिन्न परिमाणविशिष्ट और ज्येष्ठत्व तथा कनिष्ठत्व ज्ञानका कारण एक पदार्थ है। वह अनुमान द्वारा सिद्ध होता है। अतीतत्व प्रभृति व्यवहारमें कालही एकमात्र उपयोगी है। काल न रहनेसे कैसे व्यवहार किया जा सकता कि वह अतीत, वह वर्तमान और वह भविष्यत् था। कोई कोई नैयायिक काल और दिक्को ईश्वरसे अभिन्न बताते हैं। न्यायके मतमें खण्डकाल और महाकाल भेदसे काल दो प्रकारका है। स्पन्दरूपी कालका नाम खण्डकाल है, फिर विभु और प्रलयकालमें भी विनष्ट न होनेवाले कालको महाकाल कहते हैं। क्षण, दण्ड, पल, विपल, दिन, मास और वत्सर प्रभृति व्यवहारमें खण्डकाल ही कारण होता है। क्योंकि सूर्यके परिस्पन्द अर्थात् गमन द्वारा हम मास और दिन प्रभृति व्यवहार करते हैं। महाकालमें संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग और विभाग पांच गुण हैं। कोई कोई नैयायिक जन्य पदार्थ मात्रको खण्डकाल बताते हैं। खण्डकालका अपर नाम कालोपाधि है। कालोपाधि चार प्रकारका होता है। १म कालोपाधि क्रियाजनित विभागको प्रागभावविशिष्ट क्रिया है। जैसे दो संयुक्त द्रव्यमें क्रियाजन्य उत्पन्न होनेसे परक्षण ही वह दोनों बंट जाते और विभागके प्रागभावका विनाश लाते हैं। उसके पीछे अन्य किसी देशादिके साथ उसके संयोग और प्रागभावका नाश होता है। पीछे क्रिया भी नष्ट हो जाती है। इस स्थल पर यही देखते हैं—जिस समय क्रिया उत्पन्न हुयी उसी समय वह विभाग प्रागभावविशिष्ट बन गयी। सुतरां उत्पत्तिकाल वह क्रिया प्रथम कालोपाधि है। पूर्वसंयोगविशिष्ट विभाग २य कालोपाधि कहलाता है। जैसे पूर्वोक्त स्थलपर क्रिया उत्पन्न होनेके परक्षण विभागकी उत्पत्ति हुयी। किन्तु उस समय संयोग बना रहा। उसके दूसरे क्षण वह विनष्ट हो जावेगा। सुतरां विभागकी उत्पत्तिके समय विभाग पूर्वसंयोगविशिष्ट रहा है। पूर्वसंयोग नाशविशिष्ट परवर्ती संयोगका प्रागभाव ३य कालोपाधि होता है। पूर्वोक्त स्थलपर पूर्वसंयोगके नाश समय परवर्ती संयोगका प्रागभाव है, सुतरां पूर्ववर्ती संयोगके नाशविशिष्ट परवर्ती संयोगका प्रागभाव उस समय ३य कालोपाधि कहलाता है। उत्तर संयोगविशिष्ट क्रिया ४र्थ कालोपाधि है। पूर्वोक्त स्थलपर जब उत्तर संयोग लगेगा, तब क्रिया उत्तर संयोगविशिष्ट होनेसे ४र्थ कालोपाधि बनेगा।

अथर्ववेदमें काल ही सर्वश्रेष्ठ कहा गया है,—

"कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः।
तमारोहन्ति कवयो विपश्चितस्तस्य चक्रा भुवनानि विश्वा ॥१॥
कालो भूमिमसृजत काले तपति सूर्यः।
काले ह विश्वा भूतानि काले चक्षुर्विपश्यति ॥६॥
काले मनः काले प्राणः काले नाम समाहितम्।
कालेन सर्वा नन्दन्त्यागतेन प्रजा इमाः ॥७॥

(अथर्वसंहिता, १९ काण्ड, ५३ सूक्त)

"काले यज्ञं समैरयं देवेभ्यो भागमक्षितम्।
काले गन्धर्वाप्सरसः काले लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥४॥
कालेऽयमङ्गिरा देवोऽथर्वा चाधितिष्ठतः।
इमं च लोकं परमं च लोकं पुण्यांश्च लोकान्विधृतीश्च पुण्याः।
सर्वांल्लोकानभिजित्य ब्रह्मणा कालः स ईयते परमो नु देवः ॥५॥"

(५४ सू.)

ब्रह्माण्डपुराणमें भी लिखा है,—

"सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि चारो कालके मुख हैं। सत्ययुग चार जिह्वाविशिष्ट श्वेतवर्ण, त्रेता त्रिजिह्वाविशिष्ट रक्तवर्ण, द्वापर युग द्विजिह्वाविशिष्ट रक्त पिङ्गलवर्ण एवं भयङ्कर; और कलि—पुनः पुनः लिह्यमान एकजिह्वायुक्त रक्तचक्षुर्विशिष्ट कृष्णवर्ण होता है। ब्रह्मा, विष्णु और यम तीनों कालके कलास्वरूप हैं। समुदाय चराचरमें कालके लिये असाध्य कुछ भी नहीं। काल ही सर्वभूत सृष्ट कर फिर क्रमशः संहार करता है।"

(ब्रह्माण्डपु० अनुषङ्ग, ३२ अ०)

कालक (सं० क्लो०) काल स्वार्थे कन् यद्वा कलयति मोदयति रक्ततां, कल-णिच्-ण्वुल्। १ कालशाक, नारी। कालशाक देखो। २ यकृत, गुरदा। (पु०) ३ जतुक, हंसली। ४ अलगर्द सर्प, पानीका एक सांप। ५ राक्षसविशेष, एक आदमखोर। ६ चक्षुका कृष्ण अंश, आंखकी पुतली। ७ बीजगणितोक्त अव्यक्त राशिकी एक संज्ञा। ८ जनपदविशेष, एक बसती। पतञ्जलिके महाभाष्य मतसे उक्त स्थान प्राचीन आर्यावर्तको पूर्वसीमा था। (पा २।४।१० महाभाष्य) ९ कोई प्रसिद्ध जैनसूरि। वह महावीरनिर्वाणके ४३५ वर्ष पीछे जीवित थे। किसीके मतानुसार उन्होंने पर्युषणापर्व बदला था। कालक ही गर्दभिल्लके ध्वंसके कारण थे। १० कोई जैनसिद्ध। पहले भाद्रपदकी शुक्लपञ्चमीको पर्युषणापर्व होता था। अनेक लोगोंके मतमें उन्होंने महावीर-निर्वाणके ९९३ वर्ष पीछे अर्थात् ५२३ विक्रम संवत्को पञ्चमीसे चतुर्थी-तिथिमें पर्वदिन स्थिर किया था। इनकेही मतानुसार श्वेताम्बर जैन पर्युषण पर्व मानते हैं। परन्तु दिगम्बर जैन अब भी वही महावीर स्वामी द्वारा उपदिष्ट शुक्ल पञ्चमीको ही पर्व प्रारंभ करते हैं। (त्रि०) ११ कालवर्णयुक्त, काला। १२ अनित्य वर्णविशिष्ट, कच्चे रंगवाला। १३ रक्तवर्ण, सुर्ख, लाल।

कालककुट (सं० पु०) गिलोड्य फलसक, गिलोटका पेड़।

कालकचु (सं० स्त्री०) काला कृष्णवर्णा कचुः, कर्मधा०। कचुभेद, काली घुइया।

कालकचूर्ण (सं० क्ली०) चूर्ण विशेष, एक बुकनी। गृहधूम, यवक्षार, पाठा, व्योष, रसाञ्जन, तेजोह्वा, त्रिफला, चित्रक और शुद्ध लौह बराबर बराबर कूट पीस क्षौद्रके साथ मुखमें रखनेसे दन्त, मुख तथा गलरोग विनष्ट होता है। (चक्रपाणिदत्त)

कालकञ्ज (सं० क्लो०) कालं कृष्णवर्णं कञ्जम्, कर्मधा०। १ नीलपद्म, काला कंवल। (पु०) २ कोई दानव।

कालकटङ्कट (सं० पु०) कालरूपः कटङ्कटः, मध्यपदलोपी कर्मधा०। शिव, महादेव।

"दैवतो पचतो साक्षी स्खलो कालकटङ्कटः।" (भारत, अनुशासन १७ अ०)

कालकण्टक (सं० त्रि०) कालः कृष्णवर्णः कण्टको ऽस्य, बहुव्री०। कृष्णवर्ण कण्टकयुक्त, काले-कांटेवाला। (पु०) कालकण्ठ देखो।

कालकण्टकरस (सं० पु०) रसविशेष, एक दवा। हीरकभस्म १ भाग, पारद २ भाग, अभ्र ३ भाग, स्वर्ण ४ भाग, ताम्र ५ भाग, और तीक्ष्ण लौहकिट्ट ६ भाग अश्मन्तगमें ३ दिन मर्दन करते हैं। फिर यवक्षार, सर्जिक्षार, सोहागा, और पञ्च लवण उक्त मर्दित द्रव्यके समान डाल ३ तीन दिन निर्गुण्डिकाके रसमें रगड़ा जाता है। सूखने पर चूर्ण बना अष्टमांश विषचूर्ण एवं सोहागेका फूला मिला कर १ दिन निबूके रसमें घोंटनेसे यह औषध प्रस्तुत होता है। मात्रा २ गुञ्जा है। आर्द्रकके रसमें यह खाया जाता है। इसके सेवनसे वातरोग आरोग्य होता है।

(रसेन्द्रचिन्तामणि ८ अ०)

कालकण्ठ (सं० पु०) कालः कृष्णवर्णः कण्ठो यस्य, बहुव्री०। १ शिव, महादेव। २ पीतशाल वृक्ष, असनेका पेड़। ३ मयूर, मोर। ४ खञ्जनपक्षी, खड़रैचा। ५ कलविङ्क, चिड़ा। ६ जलकुक्कुट, मुरगाबी। ७ कासमर्दवृक्ष, कसौंदी। ८ अम्बकाक, अंधा कौवा।

कालकण्ठक (सं० पु०) कालः कृष्णः कण्ठोऽस्य काल-कण्ठ-कप् कालकण्ठ स्वार्थे कन् वा। १ दात्यूह

पक्षी, एक चिड़िया। २ पीतशालवृक्ष, असनेका पेड़।

कालकन्द (सं० पु०) महाकन्द, बड़ा कन्द।

कालकन्दक (सं० पु०) कालः कन्द इव कायति प्रकाशते, काल-कन्द-कै-क यद्वा कालं कृष्णसर्पं कन्दति स्वरूपतया स्पर्धते, काल-कदि-अच् स्वार्थे कन्। जलसर्प पनिहा सांप।

कालकन्ध (सं० पु०) तमालका पेड़।

कालकन्या (सं० स्त्री०) जरा, बुढ़ापा।

कालकपुष्प (सं० पु०) कृष्णपुष्प, घण्टापाटलिका, काले फूलका वनपलास ढाक।

कालकरञ्ज (सं० पु०) काला करञ्जा।

कालकरण (सं० क्ली०) समयका स्थिरीकरण, वक्तका ठहराव।

कालकर्णिका (सं० स्त्री०) कालस्य कर्णिका इव, उपमित समा०। अलक्ष्मी, बदकिस्मती।

कालकर्णी (सं० स्त्री०) कालः कर्णोऽस्याः, काल-कर्ण-अच्-ङीप्। अलक्ष्मी, बदकिस्मती। अलक्ष्मी देखो।

कालकर्म (सं० क्ली०) कालं अनिष्टकारि कर्म, कर्मधा०। १ अनिष्टकारक कार्य, बुराई पैदा करनेवाला काम।

"येन योजितंसाल महता कालकर्मणा।" रामायण ६।७२

२ मृत्यु, मौत।

कालकलाय (सं० पु०) कालः कृष्णवर्णः कलायः, कर्मधा०। १ कृष्णकलाय, काला मटर। २ काला उड़द।

कालकल्प (सं० त्रि०) ईषत् समाप्तः कालः, काल-कल्पप्। यमतुल्य, मौतकी बराबरी करनेवाला।

कालकवि (सं० पु०) अग्नि, आग।

कालकवृक्षीय (सं० पु०) कालको वृक्षो यत्र देशे तत्र भवः, कालक-वृक्ष-छ। काकचरितज्ञ एक ऋषि।

कालकस्तूरी (सं० स्त्री०) कस्तूरी वृक्ष विशेष, एक पेड़। इसका बीज मलकर सूंघनेसे कस्तूरी की तरह महकता है।

कालका (सं० स्त्री०) काल एव स्वार्थे कन्-टाप्। १ कालकेयनामक असुरोंकी माता। २ पक्षिविशेष, एक चिड़िया। ३ दक्षमाता। ४ वैश्वानरकी कन्या।

कालकाक्ष (सं० पु०) असुरविशेष, एक राक्षस।

कालकाञ्ज (वै० पु०) १ वेदोक्त कालचिन्हयुक्त पशुभेद, काली नियानका एक जानवर। २ राशिभेद।

कालकार (सं० त्रि०) समय बतानेवाला, जो वक्त पैदा करता हो।

कालकारित (सं० त्रि०) समयपर किया हुवा, जो वक्तसे बना हो।

कालकार्मुक (सं० पु०) खरदूषणकी सेनाका एक अधिपति। इसे रामने मारा था। (रामायण)

कालकाष (सं० पु०) कालं कषयति नोदयति, काल-णिच्-कष-अण्। १ परमेश्वर। २ मन्द्राज प्रदेशस्थ टाङ्कवरका निकटवर्ती एक प्राचीन तीर्थस्थान।

कालकीर्ति (सं० पु०) एक राजा, यह असुर सुपर्णके समान थे।

कालकील (सं० पु०) कालं प्रकृतकालोपयुक्तं सुप्रसङ्गादिकं कीलयति आप्नोति, काल-कील-अण्। कोलाहल, हल्ला। किसी प्रसङ्गके समय कोलाहल उठनेसे वह प्रसङ्ग दब जाता और 'कालकील' कहलाता है।

कालकुण्ठ (सं० पु०) कालेन कालरूपिणा परमेश्वरेण कुण्ठ्यते असौ, काल-कुण्ठ कर्मणि घञ्। यम।

कालकुष्ठ (सं० क्ली०) कालात् कृष्णपर्वतात् कुष्यते, काल-कुष कर्मणि क्त। पार्वतीय मृत्तिकाविशेष, कङ्कुष्ठ पहाड़की मट्टी। कङ्कुष्ठ देखो।

कालकूट (सं० पु० क्ली०) कालस्य मृत्योः कूटं दूत इव उपमि० यद्वा कालं शिवमपि कूटयति अवसादयति, कालकूट-अच्। १ विषसामान्य, मामूली जहर। २ कौल, खून खराबी। ३ वत्सनाभ, बच्छनाग। ४ काक, कौवा। ५ गिरिविशेष, एक पहाड़। यह वर्तमान कालीगण्डक नदीके निकट अवस्थित है।

"कुरुभ्यः प्रस्थितास्ते तु मध्येन कुरुजाङ्गलम्।
रम्यं पद्मसरो गत्वा कालकूटमतीत्य च॥" (भारत २।२०।२६)

६ स्थावर विषविशेष, काला बच्छनाग। देवासुर युद्धके समय पृथुमाली नामक कोई असुर देवगण द्वारा मारा गया था। उसके रक्तसे अश्वत्थ वृक्षकी भांति एक वृक्ष उत्पन्न हुवा। उसी वृक्षके निर्यासका नाम काल-

कूट विष है। यह विष शृङ्गवेर, कोङ्कण और मलय पर्वतमें होता है। कालकूटको शोधित करनेके लिये प्रथम ३ दिन गोमूत्रमें भिगोकर रखते हैं। फिर रूपंपतैलमें जीर्ण वस्त्रखण्ड भिगो कुछ दिन बांधकर रखनेपर यह शुद्ध होता है। कालकूट प्राणनाशक, सर्वशरीरव्यापी, अग्निगुणबहुल, ओजः, रुक्षा, सन्धिबंधका शैथिल कारक, संयुक्त द्रव्यका गुणग्राहक और बुद्धिनाशक है। किन्तु विशुद्धि होनेसे कालकूटके उक्त सकल गुण घट जाते हैं। ऐसे भयङ्कर गुण रखते भी युक्तियुक्त रूपसे प्रयोग करनेपर यह रसायन और वायु, श्लेष्मा तथा सन्निपात दोषनाशक है। (भावप्रकाश) ७ मूलभेद, एक जड़। इसका वृक्ष सींगियाकी तरह रहता और सिकिम तथा भोटदेशमें मिलता है। इस पर छुद्र क्षुद्र गोलाकार चिह्न होते हैं।

कालकूटक (सं० पु० क्लो०) कालस्य कूटमिव कायति प्रकाशते, काल-कूट कै-क। १ कारस्कर वृक्ष, कुचिलेका पेड़। २ कारस्कर फल, कुचिला। ३ शिव, महादेव।

"ततो दुर्योधनः पापस्तद्भक्ष्ये कालकूटकम्।
विषं प्रक्षेपयामास भीमसेनजिघांसया॥" महाभारत १।१२८ अ०

कालकूटङ्कट (सं० पु०) कालः कालवर्णः कूटङ्कटः कर्मधा०। कालकटङ्कट, महादेव।

कालकूटरजोद्भव (सं० पु०) राल।

कालकूटि (सं० त्रि०) कलकूटे भवः, कलकूट-इञ्। साल्वावयवप्रत्यग्रथकलकूटाश्मकादिञ्। पा ४।१।१७३। कलकूटजात, कलकूट मुल्कमें पैदा होनेवाला।

कालकृत् (सं० पु०) कालं करोति उदयास्ताभ्यां कालस्य दण्डादि परिमाणं करोति इत्यर्थः, काल-कृ-क्विप् तुगागमः। १ सूर्य, आफताब। २ परमेश्वर।

कालकृत (सं० पु०) कालेन परमेश्वरेण कृतः सृष्टः यद्वा कालं कालपरिमाणं कृतः कर्ता काल-कृ कर्तरि क्त। १ सूर्य, सूरज। २ पापविशेष, एक गुनाह। इसके मिटानेका काल निर्दिष्ट होता है। (त्रि०) ३ कालजात, वक्तसे पैदा। ४ निर्दिष्ट, मुकरर। ५ कुछ समयके लिये रखा हुवा।

कालकेतु (सं० पु०) एक दैवीभक्त। इन्द्रपुत्र कौशाम्बर महादेवके अभिशापसे धर्मकेतु नामक व्याधके पुत्र हुये थे। उस समय उनका नाम कालकेतु पड़ा था। (कविकङ्कण चण्डी)

कालकेय (सं० पु०) कालकाया अपत्यम्, कालका-ढक्। एक दानव। वृत्रासुरके मरनेपर कालकेय समुद्रमें रहते और रात्रिकालको गुप्तभावसे देवगणका अनिष्ट साधन करते। फिर देवगणने उनमें कितनोंहीको मार डाला। अवशिष्ट कालकेय हिरण्यपुरमें जाकर ठहरे। पीछे अर्जुनने इन्हें भी निहत किया। (हरिवंश १०३-१०५ अ०)

कालकेशी (सं० स्त्री०) कालाः केश इव पत्रादिर्यस्याः कालकेश-ङीप्। १ नीली, छोटानील। २ कालकेशयुक्त स्त्री, काले बालोंवाली औरत। ३ काल-देवी।

कालकोटि (सं० स्त्री०) देशविशेष, एक मुल्क।

कालकोठ (सं० पु०) कन्दशाक विशेष, तरकारीका एक डला, इसे प्रायः लोग मनमारू कहते हैं।

कालकोठरी (हिं० स्त्री०) कारागारका स्थान विशेष, कैदखानेकी एक जगह। यह सङ्कीर्ण और अन्धकारमय होती है। इसमें अलग रहनेवाले कैदी रखे जाते हैं। २ कलकत्तेके फोर्टविलियमकी एक जगह। इसमें सिराजुद्दौलाने कितने ही अंगरेजोंको कैद किया था।

कालक्रम (सं० पु०) समयका प्रवाह, वक्तकी चाल।

कालक्रिया (सं० स्त्री०) काले यथाकाले निष्पन्ना अनुष्ठिता वा क्रिया, मध्यपदलो०। १ यथाकाल सम्पादित कार्य, वक्तसे किया हुवा काम। २ ऊर्ध्वदैहिक कार्य। ३ कालनिर्देश, वक्तका ठहराव। ४ सूर्यसिद्धान्तका एक अध्याय।

कालक्लीतक (सं० क्लो०) नोलीवृक्ष, नीलका पेड़।

कालक्षेप (सं० पु०) कालस्य क्षेपः ६-तत्। १ समयका अतिवाहन, वक्तकी बरबादी। २ कर्तव्य कार्यके समयका लङ्घन, देर।

"उत्पश्यामि द्रुतमपि सखे मत्प्रियार्थं यियासोः।
कालक्षेपं ककुभसुरभौ पर्वते पर्वते ते॥" (मेघदूत २१)

कालक्षेपण (सं० क्लो०) कालस्य क्षेपणं अतिवाहनम्, ६-तत्। कालक्षेप, वक्तका गुज़ार।

कालखञ्ज (सं० पु०) १ दानवविशेष। २ यकृत्, कलेजा।

कालखञ्जन (सं० क्लो०) कालेन कालान्तरेण खञ्जति विकृतिं गच्छति, काल-खञ्ज-ल्यु। यकृत्, कलेजा।

कालखण्ड (सं० क्लो०) कालं कृष्णवर्णं खण्डं मांसखण्डम्, कर्मधा०। १ यकृत्, कलेजा। २ कालप्रतिपादक एक ग्रन्थ। ३ यकृद्रोगभेद, कलेजेकी एक बीमारी।

कालगङ्गा (सं० स्त्री०) काली कृष्णवर्णा गङ्गा गङ्गावत् पवित्रकारिणी, कर्मधा०। १ यमुना नदी। २ सिंहलकी एक नदी।

कालगण्डिका (सं० स्त्री०) नदीविशेष, एक दरया। आजकल इसे कालीगण्डक कहते हैं।

कालगण्डेत (हिं० पु०) सर्पविशेष, काले गण्डेवाला सांप।

कालगन्ध (सं० पु०) कालः कृष्णवर्णः गन्धः गन्धवत् द्रव्यम्, कर्मधा०। १ काला अगुरु नामक औषध। २ कालसेग, थोड़ा कालापन। ३ काला चन्दन। ४ सर्पविशेष, किसी किस्मका सांप।

कालगति (सं० स्त्री०) समयका प्रवाह, वक्तकी चाल।

कालग्रन्थि (सं० पु०) कालस्य ग्रन्थिरिव, उपमित समा०। वत्सर, साल, वक्तकी गांठ।

कालग्रास (सं० पु०) कालस्य कृतान्तस्य ग्रासः, ६-तत्। मृत्यु, मौत, वक्तका कौर।

कालघट (सं० पु०) एक ब्राह्मण। जनमेजयके सर्पयज्ञमें यह भी पौरोहित्य कार्यपर नियुक्त थे। (भारत, आदि ५३ अ०)

कालघाती (सं० त्रि०) काले यथाकाले घातयति नाशयति णिनि। यथाकाल विनाशकारक, वक्तसे मारनेवाला।

कालङ्कृत (सं० पु०) कृतस्थितोऽपि अलङ्कृतः, कोः कादेशः। सुवर्णमुखी, सोनामुखी। २ कासमर्द, कसौंदी।

कालचक्र (सं० क्लो०) कालस्य कालगतेश्चक्रमिव, ६-तत्। १ कालरूप चक्र, वक्तका पहिया या फेर। चक्रकी भांति इसमें भी नेमि, नाभि और अरादि प्रकृति कल्पित हैं। मत्स्यपुराणके मतानुसार दिवाभागका पूर्वाह्ण, मध्याह्न एवं अपराह्ण तीन अंग तीनों नाभि, संवत्सर परिवत्सर प्रभृति पांच अर अर्थात् शलाका और छहो ऋतु कालचक्रके नेमि अर्थात् प्रान्तभाग हैं। दिवादि कालावयव नियत चक्रकी भांति घूमता है। इसीसे कालचक्रके साथ उपमित हुवा है। सुश्रुतमें लिखते हैं कि निमेषादि युग पर्यन्त कालावयव नियत घूमनेसे कुछ लोग कालचक्र कहा करते हैं। २ ज्योतिश्चक्र विशेष। ३ राजा लोगोंके विजयप्रद ८४ चक्रोंमें एक चक्र। चक्र देखो। ४ दानके लिये रौप्यनिर्मित एक चक्र। यह चक्र दान करनेसे अपमृत्युका भय नहीं रहता। ५ दण्ड विशेष। ६ भोटमें प्रचलित एक कालज्ञापक चक्र। (पु०) ७ अस्त्रविशेष, एक हथियार।

कालचिन्तक (सं० पु०) कालं चिन्तयति विचारयति, काल-चिन्ति-ण्वुल्। ज्योतिर्विद्, नजूमी, समयको विचारनेवाला।

कालचिह्न (सं० क्लो०) कालस्य मृत्योर्ज्ञापकं चिह्नम्, मध्यप०। मृत्युज्ञापक लक्षण विशेष, मौतकी अलामत। काशीखण्डमें उसके कई लक्षण लिखे हैं,—"जिसके दक्षिण नासापुटसे एक अहोरात्रकाल निश्वास चलता, वह तीन वर्षमें अवश्य मरता है। ऐसे ही दो अहोरात्र या तीन अहोरात्र चलनेसे डेढ़ वर्ष तक आयुःकाल रहता है। नासापुटद्वय परित्याग कर वायु यदि मुखसे आता जाता, तो मनुष्य तीन दिनमात्र जीवित देखाता है। इसी प्रकार सूर्य सप्तम राशिस्थ और चन्द्र जन्मनक्षत्रस्थ होनेसे अकस्मात् मृत्यु आता है। अकस्मात् किसी व्यक्तिको जो व्यक्ति कृष्ण वा पिङ्गलवर्णकी भांति समझता, वह दो वर्षमें मरता है। मल, मूत्र और शुक्र अथवा मल, मूत्र और क्षुत (खखार) एक साथ गिरनेसे एक वत्सरमात्र आयुःकाल रहता है। जो व्यक्ति आकाशमें इन्द्रनीलवर्ण सर्प सकल सञ्चरण करते देखता, वह छह मास जीताजागता है। फिर परिष्कार दिवसको सूर्यको विपरीत दिक् फूत्कार द्वारा छोड़ने पर यदि जलमें इन्द्रधनुः देख पड़ता, तो भी मनुष्य छह मासमें मरता है। अपनी जिह्वा, नासिकाका अग्रभाग, भ्रूद्वयका

मध्यस्थल और नेत्रज्योतिः देख न पड़नेसे अल्प दिनमें ही मृत्यु होता है। नीलादि वर्ण वा अम्लादि रस अन्यथाभावमें अनुभव करने अर्थात् वस्तुका प्रकृत वर्ण छोड़ अन्यवर्ण देख पड़ने और वस्तुका प्रकृत आस्वादन या अन्य आस्वाद मिलनेसे ६ मासके मध्य मृत्यु आजाता है। कण्ठ, ओष्ठ, जिह्वा और तालु प्रभृति स्थान निरन्तर सूखनेसे ६ मासमें मनुष्य मरता है। जिसका दन्त, नख और नेत्रकोण नीलवर्ण लगता, उसका भी आयुःकाल ६ माससे अधिक नहीं चलता। मैथुनकालमें मध्य और शेष समय छींक आनेसे ५ मासमें मृत्यु होता है। स्नानके पीछे प्रथम ही जिसका वक्षःस्थल और हस्तपद सूख जाता, वह व्यक्ति ३ मास मात्र जीवित रहता है। धूलि और कर्दमके मध्य जिसका पदचिह्न खण्डरूपसे उभरता, वह ५ मासके मध्य मरता है। देह निश्चल रहते भी जिसकी छाया हिलती डुलती, उसकी जीवितावस्था ४ मास तक चलती है। जिस व्यक्तिको प्रतिबिम्बमें अपना मुकुट और मस्तकादि देख नहीं पड़ता, वह उसी मास चल बसता है। बुद्धि भ्रान्त होना, वाक्य गिर जाना और रातको इन्द्रधनु, दो चन्द्र अथवा आकाश नक्षत्रशून्य, दिवाभागमें दो सूर्य, आकाशमें नक्षत्रसमूह, चारोदिक् एक ही समय इन्द्रधनु, पिशाच-नृत्य, एवं वृक्ष वा पर्वत पर गन्धर्व देखाना सब आशु मृत्युके लक्षण हैं। इनमें एक भी उपस्थित होनेसे एक मासके मध्य मृत्यु आता है। हस्त द्वारा कर्ण आवरित कर जो व्यक्ति किसी प्रकार शब्द सुन नहीं सकता, उसका जीवन जैसे-तैसे चलता है। स्थूल व्यक्ति हठात् कृश अथवा कृश व्यक्ति हठात् स्थूल हो जानेसे एक मासके मध्य मृत्यु पाता है। अपनी छाया दक्षिणदिक् अवस्थित होनेसे पांच दिनमें पञ्चत्व मिलता है। जो व्यक्ति स्वप्नमें अपनेको पिशाच, असुर, काक, भूत, प्रेत, कुक्कुर, गृद्ध्री, शृगाल, गर्दभ, शूकर, शरभ, उष्ट्र, वानर, श्येनपक्षी, अश्वतर वा वृक अभृति जन्तु द्वारा भक्षण वा आकर्षण किये जाते देख पाता, वह एक वर्ष पीछे मर जाता है। स्वप्नमें अपना शरीर गन्ध, पुष्प और रक्तवस्त्र द्वारा भूषित देखनेसे ८ मासके मध्य मृत्यु होता है। धूलिराशि, वल्मीक, यूप अथवा दण्ड पर आरोहण करते देख ६ मासमें मनुष्य प्राण छोड़ता है। फिर स्वप्नमें गर्दभ आरोहण कर भूषित शरीर दक्षिणदिक् जाने अथवा अपना मस्तक किंवा शरीर शुष्क काष्ठ एवं तृणयुक्त देख पानेसे भी आयुःकाल ६ मास रहता है। स्वप्नमें कृष्णवस्त्र पहने और लौह-दण्ड लिये कृष्णपुरुषको सम्मुख खड़ा देखनेसे ३ मासके मध्य मनुष्य मर जाता है। स्वप्नमें अतिकृष्ण-वर्णा कुमारी आलिङ्गन करनेसे एक मासके मध्य मृत्यु आता है। स्वप्नमें वानर पर चढ़ पूर्वदिक् गमन करते देखनेसे ५ दिनमें यमलोक यात्रा होती है। कृपण व्यक्तिका हठात् दाता और दाता व्यक्तिका हठात् कृपण हो जाना भी मृत्युका एक लक्षण है।"

(काशीखण्ड, ४१ अ०)

आयुर्वेदशास्त्रमें भी मृत्युके नानाप्रकार लक्षण निर्दिष्ट हैं। जैसे सुश्रुतमें—शरीरका आचार व्यवहार स्वाभाविक अपेक्षा अकारण विकृत हो जाना संक्षेपमें मृत्युका लक्षण कहा जाता है। जो व्यक्ति किसी प्रकारका शब्द न होते भी दिव्य शब्द सुनता और इसीप्रकार जैसे समुद्र मेघ प्रभृतिका शब्द न निकलते भी दिव्य शब्दसमूह सुन पड़ता एवं शब्द होते जो नहीं सुनता अथवा अन्य शब्दकी भांति उसे समझता अर्थात् विरक्तिकारक शब्दसे सन्तुष्ट तथा सुशब्दसे असन्तुष्ट रहता; उसका मृत्यु अतिशय निकट आ पहुंचता है। शीतल द्रव्य उष्ण एवं उष्ण द्रव्य शीतल लगने, शीतपीड़ित होते उष्णस्पर्शमें कष्ट पड़ने अथवा अत्यन्त उष्ण-गात्र रहते शीतसे कंपने, प्रहार वा अङ्गच्छेदन करनेसे किसी प्रकार वेदना न मालूम पड़ने, शरीरपर धूलि उड़ने, शरीरका वर्ण बदलने, या सर्व शरीरमें सूत जैसा पदार्थ निकलने, स्नानके पीछे अनुलेपनादि गात्रमें लगाते, नील मक्षिका आ जुटने और अकस्मात् सुगन्धि वातकर्म निकल चलनेसे भी मनुष्य मृत्युग्रासन्न माना जाता है। रससमूह जो व्यक्ति विपरीत भावसे आस्वादन करता और यथा-युक्त रससमूह जिसके लिये दोषवृद्धि कारक तथा

अवयवयुक्त रसमसमूह दीपशान्तिकारक एवं अग्निवृद्धिकारक रहता, वह अल्प दिन पीछे ही चल बसता है। सुगन्धि द्रव्य दुर्गन्ध जैसा लगने अथवा बिलकुल किसी वस्तुका गन्ध मालूम न पड़नेसे मृत्यु आसन्न समझा जायेगा। शीत, उष्ण कालकी अवस्था एवं दिक् प्रभृति विपरीत भावमें अनुभव करने, दिवाभागमें सकल ज्योतिष पदार्थ प्रज्वलित तथा रात्रिको सूर्यकिरण, दिनको चन्द्रकिरण, मेघशून्य समयमें विद्युत्, विद्युत्से वज्रपात, निर्मल आकाश अथवा प्रासाद प्रभृति स्थानमें मेघ, वायु एवं आकाशकी मूर्ति, पृथिवीको धूम, नीहार अथवा वस्त्रादि द्वारा अपनेको आवरित, लोकसमूहको प्रज्वलित अथवा जलप्लावित देखेगा, वह बहुत दिन नहीं जीवेगा। फिर आकाशमें नक्षत्रोंके साथ अरुन्धती, ध्रुव एवं आकाशगङ्गा, और ज्योत्स्ना, दर्पण तथा उष्ण जलमें अपना प्रतिबिम्ब न देख सकनेवाला अथवा विकृत एकाङ्गहीन अन्य प्राणी किंवा कुक्कुर, काक, कङ्क, गृध्र, प्रेत, यक्ष, राक्षस, पिशाच, सर्प, हस्ती वा भूतके प्रतिबिम्बकी भांति देखनेवाला भी शीघ्र ही मरता है। प्रज्वलितका वर्ण मयूरकण्ठकी भांति देखने अथवा अग्निमें धूम न देख पड़नेसे मृत्युका लक्षण समझा जाता है। एतद्भिन्न शरीरके अवयवका शुक्लांश कृष्णवर्ण, कृष्णांश शुक्लवर्ण, रक्तवर्णकी अन्यवर्णता, स्थिर पदार्थकी अस्थिरता, अस्थिर पदार्थकी स्थिरता, वृहत्वस्तुकी क्षुद्रता, क्षुद्र वस्तुका वृहत्त्व, दीर्घ ह्रस्व, ह्रस्व दीर्घ, निःसरणमें अनुपयुक्त वस्तुका निःसरण, निःसरणमें उपयुक्त वस्तुका अनिःसरण, अकस्मात् शरीरकी शीतलता, उष्णता, स्निग्धता, रूक्षता, स्तब्धता, विवर्णता, वा अवसन्नता, अङ्ग विशेषका स्वस्थानसे पतन, उत्क्षेप, चक्कर आना, निर्गत होना, प्रविष्ट होना, गुरुत्व वा लघुत्वकी उत्पत्ति, अकस्मात् रक्तवर्णका बिगाड़, शिरासमूहका प्रकाश, ललाट वा नासिकापर पिड़काकी उत्पत्ति, प्रातःकाल ललाटसे घर्म निकलना, नेत्ररोग व्यतीत चक्षुसे सर्वदा अश्रु निर्गत होना, मस्तकमें गोमय चूर्णकी भांति चूर्णपदार्थकी उत्पत्ति, भोजन न करनेपर भी मलमूत्रादिकी वृद्धि, भोजन करनेपर भी मलमूत्रका विनाश और स्तन, मुख, नख तथा अन्यान्य अवयवोंमें विवर्ण पुष्पका प्रादुर्भाव मालूम पड़नेसे शीघ्र मृत्यु आता है।"

कथित लक्षण नीरोग वा रोगी उभयके मृत्यु-लक्षण माने गये हैं। निम्नलिखित मृत्यु-लक्षण केवल रोगीके हैं,—"स्तनमूल, हृदय एवं वक्षोदेशमें शूल उठने, शरीरका मध्यस्थल अर्थात् छाती पीठ और कमर सूजने, हस्तपद सूखने, अथवा मध्यदेश सूखने और हाथ पाव सूजने, किंवा अर्धांश सूखने और अर्धांश सूजने और स्वर नष्ट, क्षीण, विकल वा विकृत पड़नेसे अविलम्ब मृत्यु होता है। मल, कफ एवं शुक्रका जलमें डूबना, चक्षुसे भिन्न वा विकृतरूप देख पड़ना, केशोंका तैलयुक्त मालूम होना, दुर्बल व्यक्तिको अरुचि तथा अतिसार रोग लगना, कासरोगीका तृष्णातुर होना, क्षीण व्यक्तिका वमन एवं अरुचिरोगयुक्त होना और फेन, पूय तथा रक्तमिश्रित वमन करना सभी मृत्युलक्षण है। एक ही समय शूल एवं स्वरभङ्ग रोगसे पीड़ित होने, हस्त, पद तथा मुखदेशमें शोथ उठने, क्षीण रहते, आहारमें रुचि न उपजने, पिण्डिका, स्कन्ध, हस्त तथा पद शिथिल पड़ने, ज्वरयुक्त कास रोग लगने, ज्वरकासरोग रहते पूर्वाह्णका भुक्तद्रव्य अपराह्णमें वमन करने और अपक्व अवस्थामें विरेचन होनेपर श्वासरोग उत्पन्न होकर रोगीको मार डालता है। छागलकी भांति आर्तनादकर भूमितल पर गिरनेवाले, शिथिल अण्डकोष तथा स्तब्ध वा नष्ट लिङ्ग रखनेवाले, गात्र सेचन करनेपर हृदयस्थ जलको प्रथम सुखानेकी शक्ति रखनेवाले, लोष्ट्रद्वारा लोष्ट्रका काष्ठसे काष्ठपर आघात लगानेवाले अथवा नखद्वारा तृण छेदन करनेवाले, अधरोष्ठ काटनेवाले, उत्तरोष्ठ चाटनेवाले, कर्ण वा केश पकड़ खींचनेवाले और देवता, ब्राह्मण, गुरु, सुहृद् एवं चिकित्सकसे द्वेष रखनेवालेका भी मृत्यु अति आसन्न होता है। जिसके समकालीन

ग्रह वक्रगामी वा मन्दस्थानगत हो जन्मनक्षत्रको सताते, जिसको हीरा, उल्का तथा अग्निद्वारा अभिभूत होते, जिसके गृह, द्वार, शय्या, आसन, यान, वाहन, मणि, रत्न प्रभृति सकल उपकरण कुलक्षणयुक्त होते, उसे अचिरात् मरते देखते हैं। शरीरकी प्रभा श्याम, लोहित, नील वा पीत वर्ण पड़ते मृत्यु निकटवर्ती समझा जाता है। जिसकी कान्ति और लज्जा विनष्ट देख पड़ती, अकस्मात् जिसके शरीरमें तेजः, ओजः, स्मृति तथा प्रभा उपस्थित होती, जिसका ओठ लटकने लगता, जिसका उत्तरोष्ठ ऊर्ध्वगत होता अथवा जिसके उभय ओष्ठ जामनकी भांति काले पड़ जाते, उसका जीवन अतिदुर्लभ है। सकल दन्त रक्तवर्ण श्यामवर्ण वा खञ्जनवर्ण होने, जिह्वा कृष्णवर्ण, स्तब्ध, अवलिप्त, शोथयुक्त वा कर्कश लगने, नासिका कुटिल फटीफटी तथा शुष्क पड़ने, स्वर अधिक प्रकाशित अथवा बद्ध हो जाने, चक्षुर्द्वय सङ्कुचित, स्तब्ध, रक्तवर्ण अथवा अश्रुयुक्त रहने, केश अपने आप उलझने, भ्रूद्वय झुकने और सकल अक्षिपक्ष्म गिरनेसे अविलम्ब मृत्यु होता है। जो मुखमें खाद्यवस्तु डालनेसे निगल नहीं सकता, जो अपना मस्तक धारण करनेमें असमर्थ रहता, जो एकाग्र दृष्टिकी भांति एक विषयमें चक्षु सन्निवेश करता अथवा मुग्धचित्त बनता, वह अवश्य मरता है। बलवान् वा दुर्बल व्यक्तिका बारबार मोहमें पड़ना भी मृत्यु लक्षण समझा जाता है। जो व्यक्ति सर्वदा उत्तान होकर सोता, पदद्वय विक्षेप वा प्रसारण करता, जिसका हस्त, पद एवं निश्वास शीतल पड़ जाता, जिसका श्वास छिन्न रहता और निःश्वास काकोच्छ्वासकी भांति लगता, वह अधिक दिन नहीं चलता। अविरत सोने, एकबारभी निद्रा भङ्ग न होने अथवा एकबारगीही निद्रा न पड़ने, बोलनेकी चेष्टा करनेमें मूर्च्छा आने, सर्वदा उद्गार देखाने, प्रेतके साथ बतलाने, विघात न होते भी रोमकूपद्वारा रक्त निकलने और वाताष्ठीला हृदयमें चढ़नेसे मृत्यु निकट आ पहुंचता है। किसी रोगके उपद्रव व्यतीत केवल शोथरोग (पुरुषके पदद्वयमें, स्त्रीके मुखदेशमें और पुरुष-स्त्री दोनोंके गुह्यदेशमें) लगनेसे ही प्राय विनिष्ट हो जाता है। श्वास अथवा कास रोगमें अतिसार, ज्वर, हिक्का, वमन, अण्डकोष एवं लिङ्गमें शोथ प्रभृति उपद्रव उठनेसे मृत्यु आता है। बलवान् रोगी भी स्वेद, दाह, हिक्का और श्वास प्रभृति उपद्रवयुक्त होनेसे नहीं बच सकता। जिस व्यक्तिकी जिह्वा श्यामवर्ण बन जाती, वामचक्षु कोटरगत होता, मुखसे पूतिगन्ध निकलता, अश्रुसे मुखमण्डल भर जाता, पदद्वयमें घर्म (पसीना) आता, चक्षु आकुल पड़ता, शरीरके सकल गुरु अवयव हठात् पतले पड़ जाते, जो पङ्क, मत्स्य, वसा, तैल और इनका गन्ध अनुभव कर नहीं सकता, मस्तकके जूंआ जिसके ललाटपर विचरण करते, जिसके हाथसे प्रदान करनेपर काक खाद्य नहीं खाते, जिसको किसी विषयमें सन्तुष्टि नहीं आती, उसका मृत्यु अति आसन्न है। क्षीण व्यक्तिकी क्षुधा तृष्णा रुचिकारक एवं हितजनक मिष्टान्न पानद्वारा निवारित न होने और एक ही काल आमाशय रोगमें शिरःशूल तथा दारुण कोष्ठशूल उठनेसे लोगोंका अचिरात् मृत्यु होता है।"

(सुश्रुत सूत्रस्थान ३०, ३१, ३२ अ०)

कालचोदित (सं० त्रि०) कालेन चोदितः प्रेरितः ३-तत्। यथाकाल बिना चेष्टाके उपस्थित, मौतका भेजा हुवा, जिसे समय या मृत्यु भेजे।

कालचोदितकर्मा (सं० त्रि०) भाग्यके प्रभावसे कर्म करनेवाला, जो किस्मतके जोरसे काम करता हो।

कालजानि (सं० स्त्री०) नदी विशेष, एक दरया। अलाईकुरी और दीमा नामक दो नदियां भूटानके पर्वतसे निकल जलपाईगोड़ी जिलेमें अलीपुर नामक स्थान पर आ मिली हैं। इसी सङ्गमपर उक्त दोनों नदियोंका नाम 'कालजानि' पड़ा है। यह नदी आगे चल कोचविहार राज्यको पूर्व और पहुंची और रङ्गपुरके निकट रघव नामक नदीमें जा गिरी है।

कालजुवारी (हिं० पु०) प्रसिद्ध द्यूतकार, नामी जुवाबाज, जो खूब जुवा खेलता हो।

कालजोषक (सं० त्रि०) काले यथाकाले जुषते भोजनादि इति शेषः, काल-जुष्-ण्वुल्। १ यथा समय

अल्प आहारादि द्वारा सन्तुष्ट, जो वक्त पर थोड़ा खाना पानेसे खुश रहता हो। (पु०) २ गोपविशेष।

कालज्ञ (सं० पु०) कालं उषादिसमयं जानाति, काल-ज्ञा-क। कुक्कुट, मुरगा। (त्रि०) २ उचित समयवेत्ता, ठीक वक्त समझनेवाला। ३ ज्योतिषी, नजूमी।

कालज्ञान (सं० क्ली०) कालो ज्ञायते अनेन, काल-ज्ञा करणे ल्युट्। १ ज्योतिषशास्त्र, नजूमा। (भावे ल्युट्) २ उपयुक्त समयका ज्ञान, ठीक वक्तकी पहचान। (कालो मृत्युर्ज्ञायते अनेन) ३ मृत्युबोधक चिह्न, मौतको बतानेवाला निशान्। ४ चिकित्साशास्त्रविशेष। इससे काल समझ पड़ता है। ५ रुग्विनश्चय-शास्त्रविशेष, बीमारी पहचाननेकी एक किताब, इसे शम्भूनाथने बनाया था।

कालञ्जर (सं० पु०) कालं जरयति काल-जॄ-णिच्-अच् बाहुलकात् मुम्। १ योगिचक्रमेलक। २ भैरव विशेष। (कालेन जीर्यति) ३ मेरुके उत्तरका एक पर्वत। (विष्णुपुराण २।२।२८) ४ नगर विशेष, एक शहर। कालिंजर देखो। ५ शिव। (त्रि०) ६ मृत्युनिवारक, मौतको हटानेवाला। ७ सङ्कल्प छोड़ सत्त्व गुणमात्रमें मनोनिवेशकारक।

"आहत्य सर्वसङ्कल्पान् सत्त्वे चित्तं निवेशयेत्।
सत्त्वे चित्तं समावेश्य ततः कालञ्जरो भवेत्॥" (भारत शांति २४ अ०)

कालञ्जरक (सं० त्रि०) कालञ्जर-वुञ्। धन्वादपि बहुवचनविषयात्। पा ४।२।१२५। कालञ्जर नामक जनपद सम्बन्धीय।

कालञ्जरा (सं० स्त्री०) कालं जरयति, कालम्-जॄ-णिच् अच्-टाप्, मुम्। चण्डिका, दुर्गा देवी।

कालञ्जरी (सं० स्त्री०) कालञ्जर-ङीप्। शिवपत्नी, चण्डी।

कालतम (सं० त्रि०) अयमेषामतिशयेन कालः कृष्णवर्णः, काल-तमप्। अतिशय कृष्णवर्ण, निहायत काला।

कालतर (सं० त्रि०) कालो अतिशेते कालीम् काली-तरप्। द्वितीयांशात् अतिशय्यमानात् (पा ५।३।५५। वार्तिक ६) कालीको अपेक्षा भी अधिक कृष्णवर्ण, ज्यादा काला।

कालता (सं० स्त्री०) कालस्य भावः काल-तल्। कालका भाव, बरवक्ती।

कालताल (सं० पु०) कालताय कृष्णत्वात् अलति पर्याप्नोति, कालता-अल्-अच्। तमाल वृक्ष।

कालतिन्दुक (सं० पु०) कालश्चासौ तिन्दुकश्चेति, कर्मधा०। कुपीलु वृक्ष, किसी किस्मका आबनूस।

कालतिल (सं० क्ली०) कालश्चासौ तिलश्च, कर्मधा०। कृष्ण तिल, काला तिल।

कालतीर्थ (सं० क्ली०) कोशलास्थित एक तीर्थ। इस तीर्थका जल स्पर्श करनेसे एकादश वृषके दानका फल मिलता है।

"कोशलान्तु समासाद्य कालतीर्थमुपस्पृशेत्।
वृषभैकादशफलं लभते नात्र संशयः॥" (भारत, वन ८५ अ०)

कालतुण्ड (सं० क्ली०) कृष्णागुरु, काला अगर।

कालतुलसी (सं० स्त्री०) काली तुलसी।

कालतुल्य (सं० त्रि०) मृत्युके समान, मौतकी बराबर, मार डालनेवाला।

कालतुष्टि (सं० स्त्री०) समयापेक्षी सन्तोष, वक्तकी कनात। सांख्यमें समय आनेसे स्वतः कार्यकी सिद्धि हो जानेका सिद्धान्त "कालतुष्टि" कहाता है।

कालतोयक (सं० पु०) प्राचीन जनपद विशेष, एक पुरानी बसती। महाभारत और ब्रह्माण्ड प्रभृति पुराणोंमें यह स्थान आभीर तथा अपरान्तादि जनपदके साथ उक्त हुवा है। टोलेमिने भी कोलक और एरियान् कोकल नामक जनपदकी बात लिखी है। (Ptolemy, Geog. VII. ch. I. p. 58; Arrian, Indika Sec. 21.) उक्त उभय नाम कालक वा कालतोयक शब्दके रूपान्तर समझ पड़ते हैं। कराची उपसागरके उपकूलमें कालकच्छ वा काकंच्छ नामक एक जिला है। इसी स्थानको पुराणोक्त कालतोयक जनपदका अंश मान सकते हैं।

कालत्रय (सं० क्ली०) कालस्त्रिरवयवः, कालःत्रिधा च। द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा। पा ५।२।४३। वर्तमान, भूत एवं भविष्य तीनों काल, हाजिर, माजी और आइन्दा जमाना।

कालत्रयज्ञ (सं० त्रि०) कालत्रयं जानाति, कालत्रय-ज्ञा-क। वर्तमान, भूत एवं भविष्य तीनों कालका विषय जाननेवाला, जो हाजिर, माजी और आइन्दा तीनों जमानेसे वाकिफ हो।

कालत्रयदर्शन (सं० क्ली०) कालत्रयस्य दर्शनं प्रत्यक्षवत् अवलोकनम्, ६-तत्। प्रत्यक्षकी भांति कालत्रयके विषयका अवलोकन, तीनों जमानेका देखाव।

कालत्रयदर्शी (सं० पु०) कालत्रयं पश्यति प्रत्यक्षवत् अवलोकयति, कालत्रय-दृश-णिनि। प्रत्यक्षकी भांति कालत्रयके विषयको अवलोकन करनेवाला, जो तीनों ज़मानेका हाल देखता हो।

कालत्रयवेदी (सं० त्रि०) कालत्रयं वेत्ति, कालत्रय-विद-णिनि। त्रिकालका विषय जाननेवाला, जो तीनों ज़मानेके हालसे वाकिफ़ हो।

कालदण्ड (सं० पु०) कालप्रापको दण्डः, मध्य-पदलो०। १ ज्योतिषोक्त वारादि योगविशेष। (काले यथाकाले प्राप्तो दण्डः, ७-तत्) २ यथासमय प्राप्त-दण्ड, वक्तसे मिली हुई सज़ा। (कालस्य दण्डः, ६ तत्।) ३ मृत्युदण्ड, मौतका चपेटा।

कालदन्तक (सं० पु०) कालो दन्तोऽस्य, काल-दन्त-कप्। १ सर्पविशेष, एक सांप। यह सर्प वासुकि वंशजात रहा और जनमेजयके यज्ञमें मारा गया। (त्रि०) २ कृष्णवर्ण दन्तयुक्त, काले दांतवाला।

कालदमनी (सं० स्त्री०) कालं मृत्युं दमयति नाशयति काल-दम-ल्यु-ङीप्। मृत्यु निवारिणी दुर्गा।

कालदानी—कुर्दिस्थानके हक्कारी जिलेका एक ईसायी सम्प्रदाय। इन्ही लोगोंके मुंहसे सुना जाता है कि सेण्ट टामस और उनके ७० शिष्योंमें २ लोगोंने मिलकर कालदानियोंको ईसायी बनाया था। यह अपर जातिसे पृथक् रह आज भी स्वाधीन भावमें वास करते हैं। कालदानी प्रजातन्त्रप्रिय हैं। पूर्वे यह लोग कालदी (Kaldi or Chaldæan) कहाते हैं। ईसायी होते समय इन्होंने जिस भावमें नूतन धर्म ग्रहण किया, आज भी उसी प्रकार उसे मानते हैं। कालदानियोंके प्रत्येक ग्राममें एक सामान्य गिरजा रहता है। प्रति रविवारको स्त्री पुरुष एकत्र हो उपासना और उपहारादि दान करते हैं। यह लोग प्रायः उपवासी रहते हैं। इनके यालक निरामिषाशी होते हैं। यह सर्वदा युद्धके लिये प्रस्तुत रहते हैं। केवल शत्रु ही नहीं—निरीह आगन्तुकके ऊपर भी अत्याचार किया जाता है। वान और टसर ह्रदके मध्य पूर्वमें आमदिया जिलेतक कालदानी प्रदेश विस्तृत है। इस प्रदेशमें धान्यचेत्रादि अल्प है। किन्तु पार्वत्य भूमिकी कमी नहीं है।

कालदोला (सं० स्त्री०) नीली वृक्ष, नीलका पेड़।

कालधर्म (सं० पु०) कालस्य धर्मः, ६-तत्। १ मृत्यु, मौत, समयका काम। २ समयका स्वभाव, वक्तकी चाल। शीत ग्रीष्मादि ऋतुके अनुसार शीतलता और उत्तापादि जो उपजता, उसीका नाम कालधर्म पड़ता है। ३ समयानुसार व्यवहार, वक्तका चलन।

कालधर्मा (सं० पु०) कालस्य धर्म इव धर्मोऽस्य, काल-धर्म-अनिच्। मृत्यु, मौत।

कालधारणा (सं० स्त्री०) कालस्य धारणा नियमावगतिः ६-तत्। १ समयनिर्धारण, वक्तका ठहराव। २ कालकी अवस्थाका ज्ञान, वक्तकी हालतका इल्म।

कालनगर—युक्तप्रान्तके इलाहाबाद जिलेका एक नगर, यह इलाहाबाद शहरसे २०कोस उत्तर-पश्चिम, गङ्गाके दक्षिणतीर अक्षा० २५° ४१´ ५५´´ उ० और देशा० ८१° २४´ २१´´ पू० पर अवस्थित है। आजकल इसे करा कहते हैं। यहां कालेश्वरका एक मन्दिर है। इसीसे इसको कालनगर कहते हैं।

कालनर (सं० पु०) १ अनुवंशीय एक राजा।

"अनोः सभानरश्चक्षुः परेक्षु श्च त्रयः सुताः।
समानरात् कालनरः सृञ्जयस्तत्सुतः स्मृतः" (भागवत ९।२३)

(कालः कालचक्रं राशिचक्रमित्यर्थः नर इव मेषादि)-२ द्वादश राशिका मस्तकादि अवयवयुक्त पुरुष।

कालना—वङ्गालके वर्धमान जिलेका एक महकुमा। यह अक्षा० २३° ७´ एवं २३° ३५´ ४५´´ उ० और देशा० ८७° ५८´ तथा ८८° २७´ ४५´´ पू० के मध्य अवस्थित है। लोकसंख्या कोइ ढाई लाख होगी। कालना महकुमामें ७०१ ग्राम विद्यमान हैं। पहले कालना पूर्वस्थली और मन्तेश्वर तीन स्वतन्त्र थाने थे। १८६१ ई०को वह तीनों कालना महकुमामें मिला दिये गये। इस विभागके लिये एक दीवानी और दो फौजदारी अदालतें हैं। इस विभागका प्रधान नगर भी कालना है। वह गङ्गाके दक्षिणकूल अक्षा० २३° १३´ २०´´ उ० और देशा० ८८° २४´ ३०´´ पू० पर अवस्थित है। लोक संख्या प्रायः डेढ़ हजार है। पहले लोग अधिक रहते थे। किन्तु स्वभावतः मलेरिया ज्वरसे आबादी घट गयी है। कालना एक प्रधान वाणिज्यस्थान है। यहांसे रेल-

को गाड़ इत्यादि कलकत्ते भेजनेमें जितना व्यय पड़ता नदोको राह उससे अल्प लगता है। इसीसे नावपर लदकर ही वहांसे द्रव्यादि कलकत्ते आते हैं। उसकी समृद्धि आज भी ह्रास न होनेका यही कारण है। दीनाजपुर और रङ्गपुरसे वहां चावल जाता है। १८३१ ई० को वर्धमानके महाराज तेजचन्द्र बहादुरने कालनासे वर्धमान पर्यन्त एक अच्छी सड़क बनवा दी थी। उसमें ४ कोसके अन्तर पर एक एक तालाब और डाकबंगला बना है। वह महाराजके गङ्गास्नानकी सुविधाके लिये तैयार किया गया था। मुसलमानोंके शासनकाल वहां एक दुर्ग रहा। उसका भग्नावशेष आज भी भागीरथीके तीर देखपड़ता है। दो पुरानी टूटी मसजिदें भी वहां गङ्गाके तीर वर्धमानराजके भवनमें १०८ शिवमन्दिर, अन्यान्य देवदेवीके मन्दिर, अतिथिशाला और समाधिस्थान हैं। समाधिस्थानमें पूर्वतन राजाओंका अस्थिपञ्जर रचित है। राजभवन अति मनोरम स्थान है। वहांका बाजार बहुत बड़ा है। सहस्राधिक इष्टकनिर्मित गृह देख पड़ते हैं।

कालनाग (सं० पु०) कालप्रापको नागः, मध्य-पदलो०। १ नियत मृत्युकर सर्पविशेष, काला सांप। इसके काटनेसे निश्चय मृत्यु होता है। २ नाग-जातिकी एक श्रेणी।

कालनागिनी (सं० स्त्री०) नियत मृत्युकारिणी सर्पिणी, काली नागिन।

कालनाथ (सं० पु०) कालस्य कालभैरवस्य नाथः, ६-तत्। १ महादेव।

"कालनाथाय कल्याय चयायोपचयाय च" (भारत, शान्ति २८६ अ०)

२ कातीय यजुर्वेदमञ्जरी नामक ग्रन्थकार। ३ काल-भैरव।

कालनाभ (सं० पु०) कालः कृष्णः नाभिरस्य, काल-नाभि संज्ञायां अच्। १ हिरण्याक्ष असुरका कोई पुत्र। (हरिवंश ३य) २ हिरण्यकशिपुका एक लड़का।

कालनिधि (सं० पु०) शिव, महादेव।

कालनियोग (सं० पु०) कालेन कृतो नियोगः, कालस्य नियोगो वा। १ दैवकी आज्ञा। २ कालकृत नियम, वक्तका कायदा।

कालनिरूपण (सं० पु०) कालस्य निरूपणं निर्धारणम्, ६-तत्। समयका निश्चयकरण, वक्तका ठहराव।

कालनिर्णय (सं० पु०) कालस्य निर्णयः निरूपणम्, ६-तत्। १ समयका निर्धारण, वक्तका ठहराव। २ माधवाचार्यप्रणीत कालमाधवीय नामक एक ग्रन्थ।

कालनिर्यास (सं० पु०) कालः कृष्णवर्णो निर्यासः कर्मधा०। गुग्गुलु, गूगुल।

कालनिर्वाह (सं० पु०) कालस्य निर्वाहः प्रतिवाहनं। समयका अतिवाहन, वक्तका निबाह।

कालनिशा (सं० स्त्री०) १ दीपमालिकाकी रात्रि, दीवालीकी रात। २ भयङ्कर रात्रि, अंधेरी रात।

कालनेत्र (सं० त्रि०) कालं मृत्युज्ञापकं कृष्णवर्णं वा नेत्रं यस्य बहुव्री०। १ मृत्युलक्षणयुक्त नेत्रविशिष्ट, आंखोंमें मौतकी अलामत रखनेवाला। २ कृष्णवर्ण चक्षुविशिष्ट, काली आंखवाला।

कालनेमि (सं० पु०) कालस्य मृत्योर्नेमिरिव, उपमि०। १ राक्षस विशेष, लङ्काधिपति रावणका मातुल। शक्ति-शेलके आघातसे लक्ष्मण आहत हुये थे। हनूमान् उनके लिये औषध लाने गन्धमादन गये; उधर कालनेमि रावणसे अर्धराज्य मिलनेका प्रलोभन पा छद्मवेशसे हनूमान्को विनष्ट करने पहुंचा था। वहां कुम्भीरा द्वारा विनाश साधनेके उद्देशसे उसने हनूमान्को कौशल क्रमसे किसी सरोवरमें नहाने भेज दिया। जलमें प्रवेश करते ही कुम्भीराने हनूमान् पर आक्रमण किया; किन्तु उन्होंने उसे मार डाला। हनूमान्के हाथ मारी जाने पर वह अभिशापसे छूट गयी। उसी समय उसने कृतज्ञ हृदयसे हनूमान्को कालनेमिकी कपटताकी बात बतायी थी। फिर उन्होंने अत्यन्त क्रुद्ध हो कालनेमिको मार डाला। (कृत्तिवासी रामायण)

२ दानवविशेष, कोई राक्षस। इस दानवका रूपादि इस प्रकार वर्णित है,—यह दानव हिरण्य-कशिपुका पुत्र था। शरीर मन्दारपर्वतको भांति वृहत् श्वेतवर्ण रहा। शत हस्त और शत मुख थे। केश धूम्रवर्ण रहे। श्मश्रु हरितवर्ण था। दन्त बहि-र्भाग पर्यन्त विस्तृत थे। कालनेमिने स्वीय प्रतापके

बल देवगणको हरा स्वर्गं अधिकार किया। फिर कालनेमिने स्वीय देह चार भागमें बांट देवगणकी भांति कार्य समुदाय चलाया था। विष्णुके हाथ मारे जाने पर कालनेमि परजन्ममें कंस रूपसे प्रादुर्भूत हुवा"।
(हरिवंश ४६—५५ अ०)

२ मालव देशीय कोई ब्राह्मण कुमार। इनके पिताका नाम यज्ञसोम था। पिताके मरने पर इन्होंने स्वीय भ्राताके साथ पाटलिपुत्र पहुंच देवशर्मा नामक किसी ब्राह्मणसे विद्या पढ़ी। ब्राह्मणने उक्त दोनों भ्रातावोंको अपनी दो कन्याये दी थीं। किसी समय कालनेमिने प्रतिवेशियोंको धनाढ्य देख ईर्षापरायण चित्तसे लक्ष्मीकी आराधना की। लक्ष्मीने आराधनासे सन्तुष्ट हो इन्हें विपुल धन और चक्रवर्ती पुत्र लाभका वर दिया था। किन्तु ईर्षापरवश हो आराधना करनेके कारण उन्होंने अभिशाप देकर कहा था,—'तुम चोरकी भांति मरोगे।' कालक्रमसे ब्राह्मणको धन पुत्रादि प्राप्त हो गया। किन्तु पुत्रशत्रु राजाने इन्हें चोरकी भांत मार डाला। (कथासरित्सागर)

कालनेमिरिपु (सं० पु०) कालनेमेः रिपुः, ६-तत्। १ कालनेमिके शत्रु विष्णु। २ हनूमान्।

कालनेमिहा (सं० पु०) कालनेमिं हतवान्, कालनेमि हन्-क्विप्। १ विष्णु। २ हनूमान्।

कालनेमी (सं० पु०) कालस्येव नेमिरस्तास्य, कालनेमि-इनि। कालनेमि, एक असुर।

कालनेम्यरि (सं० पु०) कालनेमेः अरिः शत्रु, ६-तत्। १ विष्णु। २ हनूमान्।

कालपक्व (सं० त्रि०) काले यथाकाले पक्वः, ७-तत्। यथासमय पक्व, अपने आप वक्त पर पकनेवाला।

कालपट्टी (हि० स्त्री०) भराव, ठूंसठांस। जहाजकी दरजमें सन वगैरह भरनेको 'कालपट्टी' कहते हैं। यह शब्द पार्तगीज 'कोलाफटो'का अपभ्रंश है।

कालपत्री (सं० स्त्री०) तालीशपत्र।

कालपथ (सं० पु०) विश्वामित्रके एक पुत्र।
(भारत, अनु० ४० अ०)

कालपरिवास (सं० पु०) ईषत् कालका ठहराव, थोड़ वक्तके लिये ठहरनेका काम।

कालपर्ण (सं० पु०) कालं कृष्णं पर्णं पत्रं यस्य, बहुव्री। तगरवृक्ष।

कालपर्णिका, कालपर्णी देखो।

कालपर्णी (सं० स्त्री) कालं कृष्णं पर्णमस्याः। १ कृष्ण तुलसी वृक्ष, काली तुलसी। २ श्यामालता, काली बेल।

कालपर्यय (सं० पु०) कालस्य पर्ययः वैपरीत्यम्, ६-तत्। कालकी विपरीत गति, वक्तका उलटफेर। शुभदायक कालकी अशुभदायकता और अशुभदायक कालकी शुभदायकता 'कालपर्यय' कहलाती है।

"मित्रणीका यथा राजन् दीपमालाय निर्गताः।
भवन्ति पुरुषव्याघ्र नाविकाः कालपर्यये॥" (महाभारत विराट ७०अ०)

कालपर्वत (सं० पु०) त्रिकूटके निकटका एक पर्वत।

"त्रिकूटं समतिक्रम्य कालपर्वतमेव च।
ददर्श मकरावासं गम्भीरोदं महोदधिम्"॥ (महाभारत,वन २७६अ०)

कालपात्रिक (सं० पु०) भिक्षुभेद, किसी किस्मके फकीर। यह कृष्ण वर्ण पात्र हाथमें ले भिक्षा मांगते हैं।

कालपालक (सं० क्ली०) कालं कृष्णवर्णं पालयति धारयति, काल-पाल-ण्वुल्। कंकुष्ठमृत्तिका, एक मट्टी।
कंकुष्ठ देखो।

कालपाश (सं० पु०) कालस्य पाशः रज्जुरिव कालस्य मृत्योर्यमस्य वा पाशः। १ समयका बन्धन रज्जुवत् आवद्धकारक अपरिवर्तनीय नियम, वक्तकी कैद। समयके इस नियम द्वारा भूत आवद्ध हो किसी प्रकार अन्यथा कर नहीं सकते। २ यमपाश, मौतका फन्दा। यथा समय इसी पाशरूप नियमसे आवद्ध हो लोगोंको यमालय जाना पड़ता है। ३ मृत्युपाश, फांसी।

कालपाशिक (सं० पु०) कालपाशस्य नेता, कालपाश-ठक्। हाथसे मारनेवाला, जल्लाद, फांसी देनेवाला।

कालपीलु (सं० पु०) कालः कृष्णवर्णः पीलुः, कर्मधा०। कृष्णवर्ण पीलु, स्याह आवनूस, काला तेंदू।

कालपीलुक (सं० पु०) कालपीलु स्वार्थे कन्।
कालपीलु देखो।

कालपुच्छ (सं० पु०) कालः पुच्छोऽस्य, बहुव्री०। १ मृगविशेष, एक जानवर। सुश्रुतने इस मृगको कूलचर जन्तुके अन्तर्भूत कहा है। कूलचर देखो २ कृष्णपटक, काला चिड़ा।

कालपुच्छक, कोकिलपुच्छ देखो।

कालपुरुष (सं० पु०) कालः कालचक्रं पुरुष इव उपमि०। १ यमसहाय। रामचन्द्रकी लीलाके अवसानमें देवगणके आदेशसे यह उनकी सभामें पहुंचे थे। फिर इन्होंने रामचन्द्रको निभृत स्थानपर कथनोपकथनमें नियुक्त किया। उसी समय द्वारस्थ दुर्वासाके अनुरोधसे लक्ष्मण वहां गये थे। रामचन्द्रने अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार लक्ष्मणका परित्याग किया। उसी शोकसे लक्ष्मणने सरयूजलमें अपना प्राण छोडा था। फिर रामादि अपर तीन भ्रातावोंने भी उसीप्रकार लीला परिवर्तन कर दी। (रामायण)

२ पुरुषकी भांति आकार विशेष, आदमीजैसी एक शकल। यह मनुष्यका शुभाशुभ गणना करनेके लिये जन्मलग्न प्रभृति द्वादश राशि द्वारा कल्पित पुरुषकी भांति बनाया जाता है। इस आकृतिमें मस्तकादि समुदाय अङ्ग-प्रत्यङ्ग चित्रित कर शुभाशुभ निर्दिष्ट होता है। इसके अनुसार लक्ष्य पुरुषके भी उसी उसी अङ्गमें शुभाशुभ पड़ा करता है।

(वृहज्जातक)

३ कालरूपेश्वरकी एक मूर्ति। यह दान करनेके लिये सुवर्णसे बनाया जाता है। भविष्यपुराणमें लिखा है कि उत्तम, मध्यम एवं अधम नियमके अनुसार उक्त मूर्ति एक शत, पञ्चाशत् वा पञ्चविंशति निष्क सुवर्णसे बनानेका विधि है। उसके दक्षिण हस्तमें खड्ग, वाम हस्तमें मांसपिण्ड, कुण्डलमें जवाकुसुम, परिधानमें रक्तवस्त्र और गलदेशमें पुष्पमाला तथा शङ्खमाला रखते हैं। फिर चतुर्दशी वा चतुर्थी तिथिको पवित्र दिन स्थिर कर यथाविधान पूजापूर्वक दक्षिणा एवं अलङ्कारादिके साथ वह ब्राह्मणको दिया जाता है। उस दानके फलसे व्याधिजन्य मृत्युभय छूटता है। फिर दानकारी विपुल ऐश्वर्यका अधिकारी और समुदाय विघ्नशून्य हो सकता है। अन्तको यथासमय देह त्याग करनेपर सूर्यलोकभेदपूर्वक परम पद मिलता है। पुण्यक्षयके पीछे वह व्यक्ति धार्मिक और राजा हो जन्म लेता है। ४ कृष्णवर्ण पुरुष, काला आदमी।

कालपुष्प (सं० क्ली०) कालं कृष्णं पुष्पं यस्य, बहुव्री०। कलायवृक्ष, मटरका पेड़। कलाय देखो।

कालपूग (सं० पु०) कालः कृष्णवर्णः पूगः गुवाकः, कर्मधा०। १ कृष्णवर्ण गुवाक, काली सुपारी। २ साधारण जन, मामूली लोग।

कालपृष्ठ (सं० क्ली०) कालं कृष्णं पृष्ठं यस्य बहुव्री०। १ कर्णका धनु। २ धनुमात्र, कोई कमान्। (पु०) ३ मृगविशेष, एक हिरन। ४ बकपक्षी, बूटीमार।

कालपेशिका (सं० स्त्री०) १ मञ्जिष्ठा, मंजीठ। २ कृष्णजीरक, काला जीरा। ३ श्यामालता, काली बेल।

कालपेशी (सं० स्त्री०) श्यामालता, काली बेल।

कालपेषी (सं० स्त्री०) पिष्यते इसौ, पिष् कर्मणि घञ्, कालश्चासौ पेषश्चेति, कालपेष-ङीष्। श्यामालता, काली बेल। इसका संस्कृत पर्याय—कालपेषी, महाश्यामा, सुभद्रा, उत्पलशारिवा, दीर्घमूला, पालिन्दी और मसूरविदला है। श्यामालता देखो।

कालप्रजा—जातिविशेष, एक कौम। कई कृष्णवर्ण जाति इसी नामसे पुकारी जाती हैं। भारतवाले पश्चिमघाट नामक पर्वतके निम्नप्रदेशमें इसका वास था। आजकल इस जातिके लोग वहांसे जा सूरतमें रहे हैं। यह कृष्णवर्ण खर्व अथच दृढ़काय और धनुर्वाणके व्यवहारमें सिद्धहस्त होते हैं। वनमें पशु मारना इनका प्रधान कार्य है। कृषि करना यह नहीं जानते और सामान्य शस्यसे ही अपनेको परितृप्त मानते हैं। इनके मन्दिर या पुरोहित कोई नहीं। यह किसी वृक्ष वा प्रस्तरखण्डको पूजते हैं। इनको चुडैलका बड़ा भय रहता है। किसी सन्तान, बैल वा कुक्कुटके मरने पर यह भयसे देश छोड़ भग जाते हैं।

कालप्रभात (सं० क्ली०) कालं कृष्णं प्रभातं यत्र, बहुव्री०। १ शरद् ऋतु। २ अनिष्टकारक प्रभात, बुरा दिन।

कालप्रमेह (सं० पु०) मज्जप्रमेह, पेशाबकी एक बीमारी। इसमें कृष्णवर्ण मूत्र उतरता है।

कालप्ररूढ़ (सं० त्रि०) कालेन प्ररूढ़ः परिपक्वः। यथाकाल उत्पन्न, वक्तसे निकला हुवा।

कालप्रवृत्ति (सं० स्त्री०) कालस्य प्रवृत्तिः आरम्भः, ६-तत्। समय कालके व्यवहारका आरम्भ। सन्ध्या-

नगरीमें चैत्र मासकी शुक्ल-प्रतिपत् तिथि तथा रवि-वारको सूर्य उदयके पीछे दिन, मास, वर्ष प्रभृति खण्डकी प्रवृत्ति पड़ी है। (सिद्धान्तशिरोमणि।)

कालप्रियनाथ—एक देवमूर्ति। वराहपुराणमें सूर्यकी एक मूर्तिका नाम 'कालप्रिय' लिखा है। यमुनाके दक्षिणस्थ प्रदेशमें सूर्यदेवकी यह मूर्ति पूजी जाती है। कालप्रियरूपसे सूर्यदेवका स्थापित किया हुवा शिवलिङ्ग 'कालप्रियनाथ' कहाता है। भवभूतिके 'मालतीमाधवका' प्रारम्भ पढ़नेसे समझ पड़ता है, कि कालप्रियनाथके उत्सव उपलक्षमें प्रथम मालतीमाधव अभिनीत हुवा। मालतीमाधवकी दुर्गमार्थबोधिनी नाम्नी टीकामें मानाङ्कने इनके सम्बन्धपर कोई बात नहीं लिखी। किन्तु जगद्धरने 'मालतीमाधव-टीका'में इन्हें तद्देशका प्रतिष्ठित और प्रसिद्ध देव माना है। नहीं कह सकते—आजकल कालप्रिय-नाथ कहां हैं?

कालप्रिया (सं० स्त्री०) अश्वगन्धा, असगन्ध।

कालबालन (सं० क्ली०) कवच, बखतर।

कालवलप्रवृत्त (सं० स्त्री०) आधिदैविक रोगमात्र, वक्तके जोरसे होनेवाली बीमारी। शीत, उष्ण, वात, वर्षा आदिके कारण लगनेवाले रोग भी दो प्रकारके होते हैं—व्यापन्नर्तुकृत और अव्यापन्नर्तुकृत। (सुश्रुत २४ अ०)

कालबंजर (हिं० पु०) पुरानी परती, बहुत दिन जोती-बोयी न जानेवाली जमीन्।

कालबाल (सं० पु०) कंकुष्ठ, एक मट्टी।

कालबालक, कालबाल देखो।

कालबूत (हिं० पु०) १ ढेना, कच्चा भराव। इससे मेह-राव बनाते हैं। २ काठका एक सांचा। इस पर चमार जूता सीते हैं। ३ यन्त्र विशेष, एक औजार। इससे रस्सी बटते हैं। यह काठका फंदा होता है। इसमें रस्सी डालनेके कई छेद रहते हैं। छेदमें डाल-कर बटनेसे रस्सी बराबर उतरती, मोटी या पतल नहीं पड़ती।

कालबेलिये (हिं० पु०) एक जाति। इसे सपेरे भी कहते हैं। सांप आदि विषैले जन्तुओंको पकड़कर यह खेल दिखलाती है। यही इसकी जीविका है।

कालभच (सं० पु०) महादेव, शिव।

कालभण्डो (सं० स्त्री०) श्वेतगुञ्जा, सफेद घुंघची।

कालभाण्डिका (सं० स्त्री०) कालभाये कृष्णप्रभाये अण्डति, काल-भा-अडि-ण्वुल्-टाप् इत्वञ्च। मञ्जिष्ठा, मंजीठ। इसका क्वाथ और निर्यास प्रभृति रक्तवर्ण आते भी प्रथमतः कृष्णवर्ण देखाता है। मञ्जिष्ठा देखो।

कालभृत् (सं० पु०) कालं बिभर्ति धारयति, काल-भृ क्विप्। सूर्य, आफताब, समयको धारण करनेवाला सूरज।

कालभैरव (सं० पु०) कालस्य भैरवं भयं यस्मात् काल-भीरु-अण्। काशीस्थ शिवके अंशजात एक भैरव। शिवतत्त्व न समझनेवाले ब्रह्माका पञ्चम मस्तक काटनेको महादेवद्वारा यह आविर्भूत हुये। काशीमें रहनेवाले दुष्कर्मकारीको दण्ड देना ही इनका प्रधान कार्य है। ब्रह्मा भी कन्यागमनका पाप कर काशी पहुंचे थे। इसीसे शिवको आज्ञा पाकर कालभैरवने उनका पञ्चम मस्तक काट डाला। (काशीखण्ड।) भारतके नाना स्थानोंमें कालभैरवकी मूर्ति पूजी जाती है।

कालम (अं० पु०—Column) १ पत्रभाग, कोठा। २ सैन्यभाग, पांत। ३ स्तम्भ, खम्भा।

कालमरिच (सं० क्ली०) कालं मरिचम्। कृष्णवर्ण मरिच, काली मिर्च।

कालमल्लिका (सं० स्त्री०) कृष्णार्जक, काली तुलसी।

कालमल्ली, कालमल्लिका देखो।

कालमसी (सं० स्त्री०) काली मसीव, पुंवद्भावः। काली नदी, एक दरया।

कालमहिमा (सं० पु०) कालस्य महिमा माहात्म्यम्, ६ तत्। १ समयका माहात्म्य, वक्तकी शान्। २ समयकी शक्ति, वक्तकी ताकत।

कालमाधवीय (सं० पु०) माधवस्य माधवाचार्यस्य अयम्, माधव-छ, कालप्रतिपादको माधवीयः माधवकृतो ग्रन्थः, मध्यपदलो०। माधवाचार्यप्रणीत कालज्ञान-बोधक एक स्मृतिग्रन्थ।

कालमान (सं० पु०) कालो मन्यते जनैरिति शेषः, काल-मन-घञ्। १ कृष्णपत्र क्षुद्र तुलसी। २ अब-

मञ्जिका, ववई। (क्ली०) कालस्य मानं परिमाणम्। ३ कालका परिमाण, वक्तकी तौल।

कालमानक, कालमान देखो।

कालमार, कालमाल देखो।

कालमारिष (सं० पु०) हृहत्पत्र तण्डुलीय शाक, बड़ीपत्तीकी चौराई।

कालमाल (सं० पु०) कालेन कृष्णवर्णेन मालः सम्बन्धोऽस्य, बहुव्री०। कृष्णतुलसी, काली तुलसी।

कालमालक, कालमाल देखो।

कालमाला (सं० स्त्री०) कृष्णार्जक, काली तुलसी।

कालमुख (सं० पु०) कालं मुखं यस्य, बहुव्री०। कृष्णमुख वानर विशेष, काले मुंहका एक बन्दर। (भारत, वन २८१ अ०)। (त्रि०) २ कृष्णवर्ण मुख वा अग्रभागयुक्त, कलमुंहा।

कालमुष्क, कालमुष्कक देखो।

कालमुष्कक (सं० पु०) कालो मुष्क इव कायति प्रकाशते, काल-मुष्क-कै-क। १ घण्टापाटलवृक्ष, मोखा। २ कृष्णपुष्पघण्टा, काले फूलको मोखा।

कालमूर्ति (सं० स्त्री०) कालस्य मूर्तिः, ६-तत्। १ यममूर्ति। २ मृत्युकारक जन्तुकी मूर्ति। ३ कालयम।

कालमूल (सं० पु०) कालं मूलं यस्य, बहुव्री०। रक्तचित्रक, लाल चीत। चित्रक देखो।

कालमेघ (सं० पु०) १ क्षुद्र वृक्षविशेष, एक छोटा पेड़। यह अत्यन्त तिक्त होता है। इसे महातीता और महाभांग भी कहते हैं। पत्र अधिकांश मरिचके पत्रसे मिलते हैं। वृक्षके शीर्षमें चपटा फल लगता है। अनेक वैद्य इसको ज्वरनाशक बताते हैं।

२ कोई विख्यात तामिल कवि। द्राविड़के लोग इन्हें 'कालमेकम्' कहते हैं। कविता विद्रूप एवं रूपकसे परिपूर्ण है। अधिकांश श्लोक द्व्यर्थमूलक हैं। यह दो दिनमें एक काव्य लिख सकते थे। कालमेघ सम्भवतः ई० के पञ्चदश शताब्दमें जीवित थे। ठीक नहीं कहा जा सकता—इनका प्रकृत नाम क्या रहा।

कालमेशिका (सं० स्त्री०) काल्मो मिश्यते कालोऽयं इति वध्यते जनैरिति शेषः काल मिश-क्षीष्-कन् टाप् ह्रस्वश्च। मञ्जिष्ठा, मंजीठ।

कालमेषी, कालमेषिका देखो।

कालमेषिका (सं० स्त्री०) कालं मिषति स्पर्धते स्वकाण्डेन, काल-मिष्-अण्-ङीप् स्वार्थे कन्-टाप् ह्रस्वत्वञ्च। १ श्यामा त्रिवृता, काली कटैया। २ मञ्जिष्ठा, मंजीठ। ३ कृष्णजीरक, काला जीरा। ४ त्रिवृता, कटैया। ५ वाकुची। ६ हरिद्रा, हलदी। ७ श्वेतजीरक, सफेद जीरा। ८ श्यामालता।

कालमेषी, कालमेषिका देखो।

कालमेही (सं० पु०) मेहरोग विशेष, जिरियांकी एक बीमारी।

कालयवन (सं० पु०) यवनोंका एक अधिपति। महादेवके नियमानुसार गार्ग्य ऋषिकी भार्याके गर्भसे इसका जन्म हुवा। उक्त ऋषिने मथुरावासियोंके प्रति जातक्रोध हो वैरनिर्यातनके निमित्त अतितप्त्र नामक स्थानमें द्वादश वत्सर लौहचूर्णमात्र भक्षण और नियम अवलम्बनपूर्वक रुद्रदेवकी प्रीतिके लिये तपस्या की थी। गार्ग्यके औरस और गोपाली नाम्नी अप्सराके गर्भसे कालयवनने जन्म लिया। यह राजधर्मज्ञ, राजोचित षड्गुणसे अलङ्कृत, विद्वान्, सत्यवादी जितेन्द्रिय, रणकुशल, शूर और सुमन्त्रिसहाय थे। मगधराज जरासन्धसे इनकी संप्रीति रही। यह जरासन्धके साथ मथुरा आक्रमण करने गये। उससे पहले श्रीकृष्णने मथुरावासियोंको द्वारका भेज दिया था। वह जानते थे कि कालयवन मथुरावासियोंद्वारा मारे जाने योग्य न थे। सुतरां श्रीकृष्ण कालयवनके सम्मुखसे भाग किसी पर्वतकी गुहामें घुसकर छिप रहे। उस गुहामें सूर्यवंशीय महाराज मुचुकुन्द रणके परिश्रमसे बहुत क्लान्त हो सोते थे। कालयवनने उसमें घुस कृष्ण समझ कर उनके लात मार दी। मुचुकुन्दकी कोप दृष्टिसे फिर यह विनष्ट हो गये। (हरिवंश ११५ अ०)

कालयाप (सं० पु०) कालस्य यापः अतिवाहनम्, ६-तत्। काल अतिवाहन, वक्तका गुजारा, टालमटोल।

कालयापन (सं० क्ली०) कालस्य यापनं अतिवाहनम्, ६-तत्। १ समयका बिताव, वक्तका कटाव। २ लोकयात्राका निर्वाह, गुजारा।

कालयुक्त (सं० पु०) कालेन युक्तः, ३-तत्। १ प्रभवादि षष्टि संवत्सरोंके अन्तर्गत ५२वां संवत्सर। (त्रि०) २ अपरिवर्तनीय कालनियमयुक्त, वक्तके कायदेसे मिला हुवा। ३ मृत्युयुक्त, मौतसे मिला हुवा।

कालयोग (सं० पु०) कालस्य योगः संयोगः, ६-तत्। १ समयका सम्बन्ध, वक्तका सिलसिला।

"महता कालयोगेन मक्तिं यास्यतेऽर्थवः।" (भारत, वन, १० अ०)

२ ज्योतिष-शास्त्रोक्त कालरूप एक योग।

कालयोगी (सं० पु०) काल एव योगः अस्यास्ति, कालयोग-इनि। शिव।

"कालयोगी महानादः सर्वकामश्चतुष्पथः।" (भारत, अनु०, १७ अ०)

(त्रि०) २ कालसम्बन्धीय, वक्तके मुताल्लिक।

कालयोधी (सं० पु०) काले यथाकाले योधः युद्धं कर्तव्यत्वेन अस्यास्ति, काल-योध-इनि। यथासमय युद्ध करनेवाला व्यक्ति, जो मखसूस वक्त पर लड़ता हो।

कालर (अं० पु० Collar) ग्रैवेय, पट्टा, कुरते वा कमीचमें गलेकी चारो ओर लगनेवाली उठी हुयी पट्टी।

कालराति (हिं०) कालरात्रि देखो।

कालरात्रि (सं० स्त्री०) कालरूपा सृष्टिसंहारभूता रात्रिः, मध्यप०। १ प्रलयरात्रि, कयामतकी रात। ब्रह्माकी रात्रिको कालरात्रि कहते हैं। उस समय समुदय संसार विनष्ट हो जाता है। केवलमात्र नारायण एकार्णवमें सोया करते हैं। इसीसे उस समयका नाम कालरात्रि है। २ मृत्यु सूचक रात्रि, मौतकी रात। अपने वा आत्मीय व्यक्तिके मृत्युकी रात्रि कालरात्रि कहाती है। ३ भयानक रात्रि, खौफनाक रात। ४ ज्योतिषशास्त्रसे क्रियाके अयोग्य रात्रि विशेष, खराब रात। उसमें समस्त रात्रिको ८ भाग करनेका नियम है। फिर वारके अनुसार प्रतिदिन आठ भागोंमें एक भाग कालरात्रि माना जाता है। यथा—रविवारकी रात्रिका षष्ठ भाग अर्थात् २० दण्डके पीछे ४ दण्ड, सोमवारको चतुर्थ भाग अर्थात् १२ दण्डके पीछे ४ दण्ड, मङ्गलवारको द्वितीय भाग अर्थात् ४ दण्ड, बुधवारको सप्तम भाग अर्थात् २४ दण्डके पीछे ४ दण्ड, वृहस्पतिवारको पञ्चम भाग अर्थात् १६ दण्डके पीछे ४ दण्ड, शुक्रवारको तृतीय भाग अर्थात् ८ दण्डके पीछे ४ दण्ड और शनिवारको प्रथम एवं शेष भाग अर्थात् प्रथम ४ दण्ड और शेषको ४ दण्ड कालरात्रि होती है। वह समुदाय कार्यारम्भमें परित्याज्य है। साधारणतः रात्रिपरिमाण ३२ दण्ड लगा यह हिसाब लिखा गया है। किन्तु रात्रिपरिमाण घटने बढ़नेसे भी इसे भाग कर उक्त नियमानुसार कालरात्रि मानी जाती है।

"रवौ षष्ठं विधौ वेदं कुजवारे द्वितीयकम्।
बुधे सप्त गुरौ पञ्च भृगुवारे तृतीयकम्।
शमावाद्यं तथा चान्त्यं रात्रौ कालं विवर्जयेत्॥" (दीपिका)

५ दुर्गा देवीकी एक मूर्ति।

"कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च दारुणा।" (मार्कण्डेयपु०, ८१ अ०)

६ दुर्गाकी कालरात्रि मूर्तिका प्रतिपादक एक मन्त्र। ७ दीपान्विता अमावस्या, दिवाली।

"दीपावली तु या प्रोक्ता कालरात्रिस्तु सा मता।" (आगम)

८ यमकी भगिनी। वही सर्वप्राणीका विनाश करती हैं। ९ भीमरथी, अत्यन्त वृद्धावस्था। मनुष्यके आयुमें ७७वें वर्ष पर ७वें मासके ७वें दिन पड़नेवाली रात कालरात्रि कहलाती है। उसके पीछे मनुष्य नित्य-नैमित्तिक कर्मसे छुटकारा पाता है।

कालरुद्र (सं० पु०) कालः कालरूपः सर्वसंहारको रुद्रः, कर्मधा०। कालाग्निरूप एक रुद्र।

"तेषु नः कालरुद्रस्तु नानास्त्रीगतसंस्थितः।
विविधद्रव्यविन्यासा कृतस्ते मेरुपृष्ठतः॥" (देवीपु०)

कालरूप (सं० त्रि०) प्रशस्तः कालः, काल-रूपप्। प्रशंसायां रूपप्। पा ५।३।६६। १ अत्यन्त कृष्णवर्ण, निहायत काला। २ कालसदृश, मौत-जैसा। ३ कृष्णवर्ण, काला।

कालरूपधृक् (सं० पु०) कालरूपं धृषति धारयति, कालरूप-धृष-क्विप्। १ यम। २ मृत्यु, मौत।

कालल (सं० त्रि०) कालः कालकं चिह्नभेदः अस्त्यस्य, काल-लच्। सिध्मादिभ्यश्च। पा ५।२।९७। कालचिह्नयुक्त, काले दागवाला।

काललवण (सं० क्ली०) कालं कृष्णवर्णं लवणम्, कर्मधा०। १ विट्लवण, कालानमक। भावप्रकाशके मतमें वह अग्निदीप्तिकारक, लघु, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य,

रूच, रुचिकारक, व्यवायी और विरस्य, आनाह, विष्टम्भ, हृदयवेदना, शरीरको रूक्षता तथा शूल-नाशक है। २ काचलवण, सोंचरनोन।

काललोचन (सं० पु०) एक दानव।

"प्रलम्बो नरको वातो खसनः काललोचनः।" (हरिवंश, २४ अ०)

काललौह (सं० क्लो०) कालश्च तत् लौहश्चेति, कर्मधा०। तीक्ष्ण लोह, तीखा लोहा। इसका संस्कृत पर्याय कृष्णायस, रुक्म, तीक्ष्ण और कालायस है। लौह देखो।

कालवङ्क (सं० पु०) क्षुपविशेष, एक झाड़। लोग इसे कालियाकड़ा कहते हैं।

कालवदन (सं० पु०) १ दैत्यविशेष। (त्रि०) २ कृष्णवर्ण सुखयुक्त, काले मुंहवाला।

कालवलन (सं० क्लो०) कलयति उपभुनक्ति विषयम्, कल-णिच्-अच् कालस्य कायस्य वलनं आवरणं वा, ६-तत्। वर्म, कवच, जिरह, बख़्तर।

कालवस्ति (सं० पु०) वर्षाके आदिमें वात प्रकृतिके उपशमनार्थ वस्ति, शुरु बरसातमें सफाईके वास्ते लगायी जानेवाली पिचकारी। यह पञ्चदशविध होता है। पहले एक स्नेहवस्ति लगता है। उसके पीछे एक निरूहवस्ति लगाते हैं। पुनः स्नेहवस्ति लगाया जाता है। उसके पीछे निरूहवस्ति चलता है। इसी प्रकार द्वादश वस्ति अन्यतर क्रमसे लगा अन्तमें तीन स्नेहवस्ति देते हैं। (चरक)

कालवाघ—पञ्जाब प्रदेशके बन्नु जिलेका एक नगर। यह अक्षा० ३२° ५७´ ५७´´ उ० और देशा० ७१° ३५´ ३७´´ पू० पर अवस्थित है। लोकसंख्या छह हज़ारसे कुछ अधिक है। वह अटकसे ५२ कोस दूर सिन्धु नदीके कूल पर एक लवणका पर्वत है। कालवाघ नगर उसी पर्वतके गात्रसे संलग्न है। उक्त पर्वत लवणमय है। खण्ड खण्ड काट कर बुकनी पीस लेनेसे ही उत्तम लवण बन जाता है। यहां मारीनामक स्थानमें लवण खोद कर निकाला जाता है। राशि राशि लवण काट जाते भी पर्वत कुछ घटता मालूम नहीं पड़ता। सिन्धुनदकी लूना नाम्नी एक शाखा नदी है। उसके पश्चिमभागमें एक स्थानपर छह लवणखात है। उसकी बाईं ओर नमकका गुदाम है। वहां लवण बिकता है। पर्वतमें लवणका एक एक प्रस्तर कहीं डेढ़ और कहीं १२ हाथ तक प्रशस्त है। वहां ३५ मन लवण काट लेनेमें सिर्फ एक रुपया देना पड़ता है। गुदाममें जानेसे मूल्य अधिक लगता है। निकट ही दूसरा पहाड़ भी है। उसमें फिटकरी भरी है। वहां फिटकरी साढ़े तीन रुपये मन बिकती है। कालवाघ नगरमें लोहेकी अच्छी चीजें बनती हैं। वहां म्युनिसिपालिटी, डाकबंगला, औषधालय, सराय और विद्यालय वर्तमान है।

कालवाचक (सं० त्रि०) कालप्रबोधक, वक्त बतानेवाला।

कालवाची (सं० त्रि०) समय बतानेवाला, जो वक्तको बताता हो।

कालवान् (सं० त्रि०) कालः कृष्णवर्णः अस्त्यस्य, काल-मतुप् मस्य वः। कृष्णवर्णविशिष्ट, काले रंगवाला।

कालवानर (सं० पु०) कृष्णमुख वानर, काले मुंहवाला बन्दर।

कालवार—बम्बई प्रेसिडेन्सीके अन्तर्गत काठियावाड़ प्रदेशका एक नगर। वह नवनगरसे १४ कोस दक्षिण-पूर्व अवस्थित है। कालवार नामक राजस्वविभागका एक महल भी है। कालवार नगर उसीका प्रधान स्थान है। नगर प्राचीर वेष्टित है। लोकसंख्या ढाई हजारसे कम है। १८७८ ई० को दुर्भिक्षके समय वहां कोई ३०० लोग मरे थे। वालाकाठी जातिकी बसती पास ही है। प्रवादानुसार वाला नामक किसी राजपूतने वहां जा काठी जातिकी किसी रमणीका पाणिग्रहण किया था। उसी परिणयके फलसे वाला-काठी लोग उत्पन्न हुये। शतवर्षपूर्व कालवारमें एक प्रकारका दङ्गडी नामक कार्पासवस्त्र बनता था। देशस्थ राजा उसका बड़ा समादर करते थे। किन्तु आजकल वह देख नहीं पड़ता।

कालवाहन (सं० पु०) महिष, भैंसा।

कालविक्रम (सं० पु०) कालस्य यमस्य समयस्य वा विक्रमः, ६-तत्। १ यमका विक्रम। २ मृत्युका विक्रम, मौतकी ताक़त। ३ समयका विक्रम, वक्तकी ताक़त।

कालविध्वंसन (सं० पु०) १ वैद्यक रसविशेष, एक दवा

शुद्ध पारद, स्वर्ण, रौप्य, ताम्र और हरिताल, समभाग मर्दनकर पाण्डु और आमय रोग नष्ट हो जाता है। (रसरत्नाकर)

(क्लो०) कालस्य विध्वंसनम्। २ समयनाश, वक्तकी बरबादी।

कालविध्वंसनरस, कालविध्वंस देखो।

कालविध्वंसी (सं० त्रि) कालं विध्वंसयति नाशयति, काल-वि-ध्वंस-णिच्-णिनि। समयनाशक, वक्त बरबाद करनेवाला।

कालविपाक (सं० पु०) समयकी परिपक्वता, वक्त पूरा होनेकी मियाद।

कालविप्रकर्ष (सं० पु०) कालस्य विप्रकर्षः दूरत्वम्, ६-तत्। समयकी दूरता, वक्तका बढ़ाव।

कालविषाणिका (सं० स्त्री०) काकोली और क्षीर काकोली।

कालवीजक (सं० पु०) महानिम्ब, बड़ी नीम।

कालवृक्ष, कालवृन्त देखो।

कालवृद्धि (सं० स्त्री) वृद्धिविशेष, एक सूद। प्रतिदिवस वा प्रति मासके हिसाबसे जो वृद्धि बढ़कर द्विगुण हो जाती, वही कालवृद्धि कहाती है।

"चक्रवृद्धिः कालवृद्धिः कारिता कायिका च या।" (मनु, ८।१५३)

कालवृन्त (सं० पु०) कालं वृन्तं यस्य, बहुव्रो०। कुलत्थ, कुलथी।

कालवृन्ता, कालवृन्तिका देखो।

कालवृन्ताक (सं० पु०) पेटिका, एक पेड़।

कालवृन्तिका (सं० स्त्री०) कालं वृन्तं यस्याः काल-वृन्त-ङीष् स्वार्थे कन्-टाप् ईकारस्य ह्रस्वत्वम्। रक्तपाटलवृक्ष। २ पेटिका पिटारी।

कालवृन्ती (सं० स्त्री०) कालवृन्त-ङीष्। पाटलावृक्ष, एक पेड़।

कालवेग (सं० पु०) नागविशेष, कोई नाग। वह वासुकिके पुत्र थे।

कालवेला (सं० स्त्री०) कालस्य वेला, ६-तत्। १ समस्त दिवारात्रिके मध्य क्रियाका अयोग्य समयविशेष, तमाम दिन और रातके बीच काम न करने लायक वक्त। दिनमान और रात्रिकाल उभयमें प्रत्येकको ८ आठ भागमें बांट वारके अनुसार एक वा दो भाग कालवेला मानते हैं। रविवारको दिनका पञ्चम एवं रात्रिका षष्ठ, सोमवारको दिनका द्वितीय तथा रात्रिका चतुर्थ, मङ्गलवारको दिनका षष्ठ एवं रात्रिको सप्तम, बुधवारको दिनका तृतीय तथा रात्रिका सप्तम, बृहस्पतिवारको दिनका सप्तम एवं रात्रिका पञ्चम, शुक्रको दिनका चतुर्थ तथा रात्रिका तृतीय और शनिवारको दिनरात्रि उभयका प्रथम एवं अष्टम भाग कालवेला है। (ज्योतिषदीपिका)

कालव्यापी (सं० त्रि०) कालं व्याप्नोति काल-वि-आप-णिनि। एकरूप बहुदिन स्थायी, एक ही तरह बहुत दिन चलनेवाला।

कालशम्बर (सं० पु०) एक दानव।

कालशाक (सं० क्ली) कालं कृष्णं शाकम्, कर्मधा०। १ शाकविशेष, करेमू, पटुवा। उसका संस्कृत पर्याय—नाड़िक, आद्यशाक और कालक है। भावप्रकाशके मतसे वह सारक, रुचिकारक, शीतल, पवित्र, वायु एवं बलवर्धक और कफ, शोथ तथा रक्त-पित्तनाशक है। २ तिक्तपूतिका। ३ कुलत्थ, कुलथी। ४ शर-पुङ्खा, सरफोंका। ५ तुलसी वृक्ष।

कालशालि (सं० पु०) कालः कृष्णः शालिः धान्यविशेषः,कर्मधा०। कृष्णशालि, काला धान, उस धान्यका चावल और भूसी दोनों काले होते हैं। सुश्रुतके मतानुसार वह कषाय, मधुररस, मधुरपाक, शीतवीर्य अल्प अभिष्यन्दी, मलवद्धकारक, लघु और षष्टिक धान्यके तुल्य गुणयुक्त है।

कालशिरा (सं० स्त्री०) काला कृष्णवर्णा शिरा, कर्मधा०। कृष्णवर्ण शिरा, काली रग।

कालशुद्धि (सं० स्त्री०) कालस्य शुद्धिः ६-तत्। शुद्धकाल, पाक वक्त। जिस समय समुदाय शुभ कर्म सम्पादन कर सकते, उसे कालशुद्धि कहते हैं।

कालशेय (सं० क्लो०) कलश्यां भवम्, कलशी-ढक्। १ पादजलसे त्रिभाग दधियुक्त तक्र, एक हिस्से पानी और तीन हिस्से दहीका बना मट्ठा। २ थाल, हरताल।

कालशैल (सं० पु०) कालः कृष्णवर्णः शैलः, कर्मधा०। पर्वतविशेष, एक पहाड़।

समीरवीर्य मैनाकं गिरिं च वद भारत।
समतीतोऽसि कौन्तेय कालमें वद पार्थिव" (भारत, वन, ११९अ)

कालसंरोध (सं० पु०) कालस्य संरोधः, ६-तत्। १ चिर काल अवस्थान, हमेशा मौजूदगी। २ दीर्घ समयका अतिवाहन, लम्बे वक्तका गुजारा।

कालसङ्कर्षा (सं० स्त्री०) कालेन सङ्कर्षति असौ, काल-सम-कृष-कर्मणि अच्। नववर्षीय कन्या, नौ सालकी लड़की।

"एकवर्षा भवेत् सन्ध्या द्विवर्षा च सरस्वती।
त्रिवर्षा च त्रिमूर्तिश्च चतुर्वर्षा तु कालिका॥
सुभगा पञ्चवर्षा च षड्वर्षा च उमा भवेत्
सप्तभिर्मालिनी साक्षात् अष्टवर्षा च कुब्जिका॥
नवभिः कालसङ्कर्षा दशभिश्चापराजिता।
एकादशे तु रुद्राणी द्वादशाब्दे तु भैरवी॥
त्रयोदशे महालक्ष्मीर्द्विःसप्ता पीठनायिका।
क्षेत्रज्ञा पञ्चदशभिः षोडशे चान्नदा मता॥" (अन्नदाकल्प)

अन्नदाकल्पमें कुमारीके वयःक्रम अनुसार नामका भेद निर्दिष्ट है। यथा एक वर्ष वयस्का सन्ध्या, दो वर्षकी सरस्वती, तीन वर्षकी त्रिमूर्ति, चार वर्षकी कालिका, पांच वर्षकी सुभगा, छह वर्षकी उमा, सात वर्षकी मालिनी, आठ वर्षकी कुब्जिका, नौ वर्षकी कालसङ्कर्षा, दश वर्षकी अपरा, ग्यारह वर्षकी रुद्राणी, बारह वर्षकी भैरवी, तेरह वर्षकी महालक्ष्मी, चौदह वर्षकी पीठनायिका, पन्द्रह वर्षकी क्षेत्रज्ञा, और सोलह वर्षकी कुमारी अन्नदा नामसे अभिहित होती है।

कालसदृश (सं० त्रि०) १ समयानुकूल, वक्तके मुवाफिक। २ मृत्युतुल्य, मौतके बराबर।

कालसम्पन्न (सं० त्रि०) कालेन काले वा सम्पन्नम्। १ काल-कर्तृक सम्पादित, वक्तका किया हुवा। २ यथाकाल निष्पन्न, जो वक्त पर बना हो।

कालसर्प (सं० पु०) कालः कृष्णः सर्पः, कर्मधा०। कृष्णसर्प, काला सांप। (Coluber naga) उसका संस्कृत पर्याय—अलगर्द और महाविष है। वह फणी सर्पोंके अन्तर्भूत है। उसका वर्ण अतिशय चिक्कण कृष्ण रहता और मस्तकमें फणापर पदचिह्न देख पड़ता है। जमीनके बिलोंमें ही वह प्रायः वास करता है। किन्तु कहीं कहीं कालसर्प लोकालयमें भी रहता देख पड़ता है। अन्यान्य सर्पोंकी अपेक्षा उसमें क्रोध अतिशय अधिक होता है। यदि कोई अत्याचार करता, तो कालसर्प बहुत दूरतक दौड़कर उसे डसता है। हिन्दुस्थानमें उसका बहुत प्रादुर्भाव है। वर्षाके समय रात चलनेमें विशेष सावधान रहना पड़ता है। किन्तु सौभाग्यकी बात है किसी प्रकारका अत्याचार न करनेसे वह कम काटता है। पदका शब्द सुनते ही कालसर्प दूर हट जाता है। किन्तु जब दैवयोगसे उसपर किसीका पैर पड़ जाता तो वह क्रुद्ध हो उसे काट खाता है।

कालसार (सं० क्ली०) कालः सारो यस्य, बहुव्री०। १ पीत चन्दन। कालीयक देखो। २ कृष्णसार नामक मृगविशेष, काला हिरन। ३ कृष्णागुरु, काला अगर। ४ तिन्दुक। ५ हरिताल। ६ काली तुलसी।

कृष्णसार देखो।

कालसाह्वय (सं० क्ली०) कालेन समानः आह्वयो यस्य, बहुव्री०। १ नरकविशेष, कोई दोजख। पुत्र विक्रय वा कन्यापण ग्रहण करनेसे उक्त नरकमें पड़ते हैं।

"यो मनुष्यः स्वकं पुत्रं विक्रीय धनमिच्छति।
कन्यां वा जीवितार्थाय यः शुल्केन प्रयच्छति॥
सप्तावरे महाघोरे निरये कालसाह्वये।
स्वेदं मूत्रं पुरीषञ्च तस्मिन् मूढः समश्नुते॥" (भारत, अनु, ४५अ)

कालसि—युक्त-प्रदेशको कालसि तहसीलकी प्रधान नगरी। वह अक्षा० ३०° ३२´ २०´´ उ० और देशा० ७७° ५२´ २५´´ पू० पर अवस्थित है। देहरादूनके पास जहां यमुना और तमसा नदी मिली हैं, उसीके अति निकट कालसि नगरी बसी है। नगरी अति पुरातन है। वहां एक प्रस्तर-खण्ड पर अशोक राजाकी शिलालेख खोदित है।

कालसिर (हिं० पु०) नौके कूपदण्डकी शिखा, जहाजके मस्तूलका सिरा।

कालसूक्त (सं० क्ली०) वैदिक सूक्तविशेष, वेदका एक सूक्त। उसमें कालकी वर्णना की गयी है।

कालसूत्र (सं० क्ली०) कालस्य यमस्य सूत्रमिव बन्धनहेतुत्वात्, उपमि०। १ नरकविशेष, कोई दोजख। उक्त नरक प्रतप्त ताम्रमय है। मनुसंहितामें वह एक-

विंशति महानरकोंके अन्तर्निविष्ट लिखा है। ब्रह्महत्या, शास्त्रके आचारका त्याग, कृपण राजाका दानग्रहण, श्राद्धमें भोजन कर शूद्रको उच्छिष्ट दान प्रभृति पाप करनेसे उक्त महानरक भोगना पड़ते हैं। २ मृत्युकारक सूत्र, मार डालनेवाला डोरा।

"पतिगोऽयं तथा यस्तः कालसूत्रेण लक्षितः।" (भारत, वनपर्व)

३ फांसीकी रस्सी।

कालसूत्रक, कालसूत्र देखो।

कालसूर्य (सं॰ क्लो॰) मृत्युकारक सूर्य, मौतका सूरज। वह कल्पान्तके समय निकलता है।

कालसेन (सं॰ पु॰) एक डोम। इसने राजा हरिश्चन्द्रको क्रय किया था।

कालस्कन्ध (सं॰ पु॰) कालः कृष्णः स्कन्धो यस्य, बहुव्री॰। १ तिन्दुक वृक्ष, तेंदूका पेड़। वह मधुर, बल्य, वृष्य, गुरु, धातुवृद्धिकर, शीत और श्रम, दाह, कफ, पित्तशोथ, विस्फोट एवं पित्तनाशक है। (वैद्यकनिघण्टु) २ विट्खदिर। ३ उदुम्बर वृक्ष, गूलरका पेड़। ४ जीवकद्रुम, दुपहरियाका पेड़। ५ तमालपत्रवृक्ष, तेजपातका पेड़। ६ कालताल, काला ताड़। ७ समयका अंश विशेष, वक्तका एक टुकड़ा।

कालस्कार (सं॰ पु॰) १ तिन्दुक वृक्ष, तेंदूका पेड़। २ तमालवृक्ष, तमालका पेड़।

कालस्थानी (सं॰ स्त्री॰) पाटल वृक्ष, एक पेड़।

कालस्वरूप (सं॰ त्रि॰) कालेन मृत्युना स्वरूपः सदृशः, ३-तत्। मृत्युतुल्य, मौतके बराबर।

कालहर (सं॰ पु॰) कालं मृत्युं हरति, काल-हृ-ट्च्। १ शिव, महादेव। २ कामरूपान्तर्गत शिवलिङ्ग विशेष, कामरूपका एक शिवलिङ्ग।

"तस्मात् पूर्वं भद्रकामः पर्वतस्तु त्रिकोणकः।
यत्र कालहरो नाम शिवलिङ्गं व्यवस्थितम्॥" (कालिकापु॰, ७८ अ॰)

(त्रि॰) ३ समयक्षेपक, वक्त बिगाड़नेवाला।

कालहन्दी (करौंद)—मध्यप्रदेशके सम्बलपुर जिलेकी एक जमीन्दारी। वह अक्षा॰ १९° ५′ उ॰ और देशा॰ २०° ३०′ पू॰में अवस्थित है। उससे उत्तर पाटना विभाग, पूर्व एवं दक्षिणभागमें जयपुर जमीन्दारी तथा मन्द्राजका विशाखपत्तन जिला, पश्चिम बिन्द्रा नवागढ़ और खरियार प्रदेश हैं। लोकसंख्या प्रायः साढ़े तीन हजार है। कालहन्दी प्रदेश पश्चिमघाटसे अव्यवहित पश्चिम दिक् पड़ता है।

कालहन्दीमें इन्द्रवती नदी उद्भूत हो गोदावरीसे जा मिली है। हत्ती और रैल नाम्नी दूसरी भी दो स्रोतस्वती उक्त प्रदेशसे निकल तेल नदमें गिरी हैं। फिर तेल, सान और रावल तीन नदी एकत्र हो उत्तरको बहती हुयी उड़ीसाकी महानदीमें पतित होती हैं। चारो ओर इसी प्रकार नदी और घाट पर्वत निकट रहनेसे कालहन्दीमें पानी बहुत पड़ता है। इसीसे उक्त स्थानकी भूमि विशेष उर्वरा है। उत्तर-पश्चिम भागमें सालवनकी लकड़ी उपजती है। चावल, दाल, अलसी, ऊख, रूई, ज्वार और गेहूं बहुत होता है। स्थान स्थान पर सप्ताहमें एक बार बाजार लगता है। प्रधान नगर भवानीपत्तनका बाजार ही सर्वापेक्षा बड़ा है। कालहन्दीका जलवायु अति उत्तम है।

कालहन्दीमें एक राजाका अधिकार है। वह अंगरेजोंको कर देते हैं। राजा प्रतापदेवको दिल्लीके दरबारमें "राजा बहादुर" उपाधि और अपने सम्मानार्थ ९ तोपोंकी सलामी मिली थी। १८८१ ई॰ को उनका मृत्यु हुवा। १८८४ ई॰ को उनके दत्तकपुत्र राजा रघुकिशोर देव राज्यके अधिपति बने थे। किन्तु उनके अप्राप्तवयस्क होनेसे राज्यका भार रानी पर पड़ा था। बालक राजा जबलपुरके राजकुमार कालेजमें पढ़नेको बैठाये गये। उक्त घटनाके पीछे भी कन्ध लोगोंने विद्रोही हो कुलता नामक ७०।८० हिन्दुवोंको मार कर उनके ग्राम लूटे थे। व्यापार गुरुतर देख अंगरेजोंने अपनी पुलिससेना भेज विद्रोहको दमन किया। बलवा करनेवाले लोगोंके सरदारोंको फांसी दी गयी। उसी दिनसे उक्त प्रदेशका शासनकार्य गवरनमेण्टने अपने हाथमें ले रखा है।

कालहस्ती—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीकी एक जमीन्दारी। उसका कुछ अंश आर्काट और कुछ अंश नेल्लोर जिलेमें अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः डेढ़ लाख है। ई॰ १५वें शताब्दको वेलमजातीय किसी पालिगारने

विजयनगरके राजासे उसे पाया था। पहले कालहस्ती पूर्वमें मन्द्राज एवं काञ्चीपुर और दक्षिणमें वन्दीवास तक विस्तृत थी। औरंगजेबकी दी हुई सनदमें देखते हैं कि कालहस्तीके पालिगार उस समय ५ हजार सैन्यके अधिनायक थे। १७९२ ई० को वह अंगरेजोंके हाथ लगी। १८०२ ई०को गवरनमेण्टने उसका चिरस्थायी प्रबन्ध किया था। जमीन्दारके वंशवाले एक व्यक्तिको अंगरेजोंने राजा और सी० एस० आई० (C. S. I.) का उपाधि दिया है। देशकी फसलका आधा हिस्सा प्रजा जमीन्दारको देती है। कालहस्तीकी मृत्तिका रक्तवर्ण और बालुका मिश्रित है। ताम्र और लौह वहां मिलता है। शीशेका कारखाना भी खुला है।

उक्त जमीन्दारीका प्रधान नगर कालहस्ती वा श्रीकोलस्ती है। वह अक्षा० १३° ४५´ २´´ उ० और देशा० ७९° ४४´ २९´´ पू० पर सुवर्णमुखी नदीके तीर मन्द्राज रेलकी उत्तर-पश्चिम शाखाके विपति ष्टेशनसे अतिनिकट अवस्थित है। लोकसंख्या प्रायः दश हजार है। नगरमें जमीन्दारका वासभवन बना है। वहां एक मजिष्ट्रेट भी रहता है। बाजार बहुत बड़ा है। निकटस्थ ग्राममें उत्तम वस्त्र प्रस्तुत होता है।

कालहस्ती एक तीर्थस्थान है। वहां अनेक देव-मन्दिर विद्यमान हैं। उनमें शिवमन्दिर ही प्रधान है। दक्षिणके आर्त ब्राह्मण कालहस्तीको द्वितीय वाराणसी बताते हैं। उक्त मन्दिर-विभाग नगरके नैऋत कोणमें पर्वतके निम्नभाग पर अवस्थित है। कालहस्तीके माहात्म्यमें लिखा है,—"ब्रह्माने तपस्या करनेको कैलास पर्वतके शृङ्गका एकांश यहां लाकर रखा था। उसीसे उसका नाम दक्षिणकैलास है। ब्रह्माने स्वयं इस मन्दिरका मूल स्थापन किया है।" चोल राजा और विजयनगरके कृष्णरायने उसका अपरापर अंश बनवा दिया। महादेवकी वायुमूर्ति वहां विराजित है। कथनानुसार एक सर्प और एक हस्ती उभय महादेवकी पूजा करते थे। सर्प अपने मस्तकका मणि महादेव पर चढ़ाता और हस्ती जलाभिषेक लगाता था। किसी दिन हस्तीके अभिषेचनका जल सर्पको छू गया। उसने क्रुद्ध हो हस्तीके शुण्डमें दांत मारा था। हस्तीने भी विषकी ज्वालासे अस्थिर हो सर्पको आघात किया। शेषको दोनोंने पञ्चत्व पाया था। दो परमभक्तोंकी वैसी अवस्था देख महादेवने उन्हें फिर जीवन प्रदान किया। फिर उन्होंने उभयको चिरस्मरणीय बनानेके लिये उनके नाम पर अपने मन्दिरका भी नाम "काल-हस्ती" रख दिया। (काल अर्थात् सर्प और हस्ती अर्थात् हाथी दोनों मिलकर कालहस्ती शब्द बना है।) तीर्थमाहात्म्यके मतसे कन्नापन नामक किसी व्याधने महादेवका अनुग्रह लाभ किया। वह पर्वतके ऊपर रहता था। किन्तु आहार करनेके पूर्व व्याध पर्वतसे उतरता और आहार्य द्रव्य महादेवका अर्पणकर स्वयं प्रसाद ग्रहण करता था। कुछ दिन पीछे उसके मनमें आया कि महादेवका एक चक्षु नष्ट हो गया। उसी धारणासे उसने अपना एक चक्षु नोच महादेवके नष्ट चक्षुपर लगा दिया। फिर कुछ काल उसे देख पड़ा कि देवदेवका दूसरा चक्षु भी बिगड़ा था। उसीसे उसने अपना दूसरा चक्षु भी निकाल महादेवके चक्षु पर लगा दिया। उस समय व्याधने अपना एक पैर महादेवके चक्षुके निकट रखा था। उसीसे आज भी महादेवके चक्षुमें उसका पदचिह्न देख पड़ता है। देवादिदेवने उसे सालोक्यमुक्ति प्रदान की। महादेवके निकट उसका एक स्वतन्त्र लिङ्ग विद्यमान है। महादेवके साथ उसकी भी पूजा होती है। मन्दिरके प्रवेशस्थान-पर हस्ती, सर्प और ऊर्णनाभिकी मूर्ति बनी है। दूसरे स्थानोंमें महादेवकी जो मूर्ति देख पड़ती, उससे कालहस्तिकी मूर्ति स्वतन्त्र लगती है। कालहस्तीकी मूर्तिका नाम वायुमूर्ति है। साधारणतः गोलाकार दण्डके तुल्य होती है। किन्तु उक्त वायुमूर्ति चतुष्कोण है। मन्दिरमें किसी ओर वायुके प्रवेशका पथ नहीं, किन्तु लिङ्गके मस्तकपर जो दीप लटकता, वह सर्वदा अल्प हिला करता है। गृहके अभ्यन्तरमें अन्यान्य अनेक दीप हैं। किन्तु दूसरा कोई उस प्रकार नहीं हिलता। सम्भवतः उसीसे उक्त लिङ्ग "वायुलिङ्ग" कहलाता है। महादेवके साथ पार्वती देवी भी हैं।

कालहस्तीमें उन्हें ज्ञानप्रसन्ना कहते हैं। कथनानुसार भगवान्‌ने उन्हें किसी समय अभिशाप दिया था। उसीसे उन्होंने नरयोनि पायी। उन्होंने तपस्याके बल मानवदेहमें महादेवको रिझाया था। महादेवने उन्हें मुक्ति दे ज्ञानप्रसन्ना नामसे अभिहित किया। तपस्याके समय दुर्गा नाम्नी कोई नारी पार्वतीकी सहगामिनी बनी थीं। महादेवके प्रसादसे उन्होंने भी देवत्वलाभ किया; उसीसे स्वतन्त्र मन्दिरमें दुर्गा देवी पूजी जाती हैं। भूत लगने या अपुत्रक रहनेसे ज्ञानप्रसन्ना देवीके सन्मुख भीगे कपड़ों अधोमुख लेट स्त्रियां देवीका ध्यान करती हैं, उसका नाम प्राणाचारव्रत है। जो जितनी देर ध्यान कर सकती, उसकी वासना भी उसी प्रकार फलवती होती है।

शिवमन्दिरसे दक्षिण पर्वतके पार्श्वमें भगवान् मणिकुण्डेश्वर स्वामीका मन्दिर है। किसी नारीने उक्त स्थान पर महादेवकी तपस्या की थी। महादेवने प्रसन्न हो उसके कर्णमें तारक मन्त्र प्रदान किया। उससे उसकी मुक्ति हो गयी उसीसे मुमुर्षु लोगोंको ले जाकर वहां दक्षिण पार्श्वपर सुला देते हैं। कालहस्तीके लोगोंको विश्वास है कि मृत्युकालमें पार्श्व बदल ऊपर कर्ण रख वामपार्श्व लेटनेसे दक्षिण कर्णसे आत्मा निकलता और मृत व्यक्ति चिरानन्द भोग करता है। मणिकुण्डेश्वरमन्दिरसे दक्षिण पर्वतके पाददेशमें ब्रह्माका मन्दिर है। उसके ऊपर नानाविध मूर्ति खोदित हैं। स्थानीय तीर्थमाहात्म्यके मतानुसार ब्रह्माने वहीं बैठकर तपस्या की थी। उक्त मन्दिरसे दक्षिण पर्वतकी उपत्यकामें एक प्रशस्त पुष्करिणी है। उसकी चारो ओर पत्थरसे घाट बंधे हैं। पुष्करणीके निकट भरद्वाज स्वामीकी मूर्ति है। उसीसे उक्त स्थान भरद्वाज मुनिका आश्रम कहाता है। माघमासको वहां १० दिन महोत्सव होता है। उसमें बहुतसे लोग इकट्ठा हो जाते हैं।

कालहानि (सं॰ स्त्री॰) कालस्य हानिः, ६-तत्। १ समयक्षति, बेफायदा वक्तकी बरबादी। २ समयका अभाव, वक्तकी तङ्गी।

कालहीन (सं॰ पु॰) कालेन कृष्णवर्णेन हीनः, ३-तत्। लोध्रवृक्ष, लोधका पेड़। लोध्र देखो।

कालहोरा (सं॰ स्त्री॰) काले कालभेदे होरा, ७-तत्। १ एक दिवारात्रिमें उदित द्वादश लग्नका अर्धांश। २ ढाई दण्ड परिमित काल, एक घंटे समय।

३ सिन्धुप्रदेशका एक मुसलमान राजवंश। १७४० ई॰को उक्त वंशका राजत्व आरम्भ हुवा था। कालहोरा और तालपुरवंश ही सिन्धुका शेष स्वाधीन वंश रहा। उनमें प्रथमवंशीय अपनेको पारस्यके अव्वासियोंका वंशीय और शेषोक्त धर्मप्रचारक मुहम्मदका वंशोद्भव बताते हैं। किन्तु वस्तुतः वंशवाले बालूचिस्तानके लोग हैं।

मुहम्मद कालहोराने रिन्द नामक किसी बालूचिके साहाय्यसे पंवारवंशीय राजपूत राजाको मार सिंहासन पर अधिकार किया था। खोदाबादमें उनकी कबर है। कबरके सामने कई गदा लटका करती हैं। लोगोंके कथनानुसार उन्होंने मृत्युकालको उस प्रकार गदा लटकानेका आदेश इसलिये दिया, जिसमें लोग देखते रहें कि उन्होंने कैसी सुगमतासे सिन्धु जीता था।

काला (सं॰ स्त्री॰) कालः वर्णः प्रशस्त्यास्याः, कालशब्द आदित्वात् अच्-टाप्। १ नीलिनी, नीलका पेड़। २ कालत्रिवृत्। ३ त्रिवृत्। ४ पिप्पली, पीपल। ५ नागवल्ला। ६ मञ्जिष्ठा, मंजीठ। ७ क्षुद्र कृष्ण जीरक, काली जीरी। ८ अहिंसा। ९ अश्वगन्धा, असगंध। १० पाटला। ११ दक्षकी एक कन्या।

"अदितिर्दितिर्दनुः काला दनायुः सिंहिका तथा।" (भारत १।६५ अ)

काला (हिं॰ वि॰) १ कृष्ण, स्याह, काजल या कोयलेके रंग जैसा। २ कलुषित, बुरा, खराब। ३ प्रचण्ड, जोरदार। (पु॰) कालसर्प, काला सांप।

कालांश (सं॰ पु॰) कालरूपो ऽंशः। ग्रहणका दर्शनोपयोगी अंशविशेष, ग्रहण देखने लायक एक हिस्सा।

कालाकन्द (हिं॰ पु॰) धान्य विशेष, किसी किस्मका धान। यह अग्रहायण मासमें काटा जाता है। इसका चावल सैकड़ों वर्ष रखते भी नहीं बिगड़ता।

कालाकलूटा (हिं॰ वि॰) अत्यन्त कृष्णवर्ण, निहायत

स्याह, बहुत काला। प्रायः यह शब्द मानव व्यवहारमें प्रयुक्त होता है।

कालाक्रष्ट (सं० त्रि०) कालेन मृत्युना आकृष्टः, ३-तत्। १ मृत्युकर्तृक आकृष्ट, मौतके पंजेमें पड़ा हुआ। २ समय द्वारा आनीत, वक्तसे निकला हुआ।

कालाचरिक (सं० पु०) काले यथायोग्यकाले अचरं वेत्ति, काल-अचर-ठक्। विद्यार्थी, तालिब इल्म, ठीक वक्त पर पढ़नेवाला।

कालाक्षरी, कालाचरिक देखो।

कालागरु, कालागुरु देखो।

कालागांडा (हिं० पु०) काली और मोटी ऊख

कालागुरु (सं० क्लो०) कालं कृष्णं अगुरु, कर्मधा०। कृष्ण अगुरु, काला अगर। कृष्णागुरु देखो।

"चकम्पे तीर्णलौहित्ये तस्मिन् प्राग् ज्योतिषेश्वरः।
तद्गजालानतां प्राप्तैः सह कालागुरुद्रुमैः॥" (रघु० ४।८१)

कालागेंड़ा, कालागांडा देखो।

कालाग्नि (सं० पु०) कालः सर्वसंहारकः अग्निः, कर्मधा०। १ प्रलयाग्नि, कयामतकी आग। २ प्रलयाग्निके अधिष्ठाता रुद्र। ३ पञ्चमुख रुद्राक्ष। उक्त रुद्राक्ष कालाग्निरुद्रको अतिप्रिय है। इसीसे उसे भी कालाग्नि कहते हैं। स्कन्दपुराणमें उसे सर्वपाप-नाशक बताया है,—

"पञ्चवक्त्रः स्वयं रुद्रः कालाग्निर्नाम नामतः।
अगम्यागमनाच्चैव अभक्ष्यस्य च भक्षणात्।
मुच्यते सर्वपापेभ्यः पञ्चवक्त्रस्य धारणात्॥"

पञ्चमुख रुद्राक्ष साक्षात् रुद्रदेवस्वरूप है। उसे कालाग्नि भी कहते हैं। उक्त रुद्राक्ष धारण करनेसे अगम्यागमन वा अभक्ष्य भक्षणके पापसे मुक्ति मिलती है।

कालाग्निभैरव (सं० पु०) ज्वरका एक रस, बुखार की कोई दवा। १ भाग पारद और १ गन्धकको कज्जल बना गोक्षुरके क्वाथसे भावना देना चाहिये। सूख जाने पर उसे पीस कर चूर्णके बराबर ताम्रचूर्ण, ताम्रचूर्णका अष्टांश विष, १ भाग हिङ्गुल २ भाग धुस्तूरबीज, ४ भाग हरिताल, ३ भाग मनःशिला, ३ भाग टङ्कण, ३ भाग खर्पर, २ भाग कैपास, ३ भाग स्वर्णमाक्षिक, १ भाग लौह और १ भाग बङ्ग डाल सबको अर्कक्षीरसे मर्दन करते हैं। फिर दशमूल और पञ्चमूलके क्वाथसे यथाक्रम एक प्रहर घोंटकर चने बराबर वटिका बनायी जाती हैं। (भैषज्यरत्नावली)

कालाग्निरस (सं० पु०) भगन्दरका रस विशेष, पोशीदा जगहके नालीदार जखमकी एक दवा। शुद्ध सूत गन्धक, मृतनाग, तुत्थक, जीरक और सैन्धव बराबर मिला तथा कोशातकीके द्रवमें पीस कर लगाने या खानेसे भगन्दर रोग नष्ट हो जाता है। (रसरत्नाकर)

कालाग्निरुद्र (सं० पु०) कालाग्नेः प्रलयाग्नेः अधिष्ठाता रुद्रः, मध्यप०, कालाग्निरिव रुद्रो वा, उपमि०। १ प्रलयाग्निके अधिष्ठातृ-देवता रुद्र। २ उक्त रुद्रके उपासक एक ऋषि। ३ यजुर्वेदीय एक उपनिषद्।

कालाग्निरुद्ररस (सं० पु०) १ कुष्ठाधिकारका एक रस, कोढ़की एक दवा। मरिच, अभ्र एवं तीक्ष्ण भस्म, माक्षिक और गन्धकको वन्ध्याकर्कोटकीके कन्दमें डाल मट्टीसे ऊपर छोप देते हैं; फिर भूधराख्य पुटमें एक दिन पका उसका चूर्ण बना लिया जाता है। इस चूर्णमें दशमांश विष मिलानेसे उक्त औषध प्रस्तुत होता है। मात्रा ३ माषमात्र है। उक्त कालाग्निरुद्र रस दश दिनमें विसर्पको नाश करता है। अनुपानमें पिप्पली और मधु मिलाना चाहिये। २ ज्वररोगका रसविशेष, बुखारकी एक दवा। मरीच और गन्धक तुल्य डाल पंच पित्तमें भावना देना चाहिये। फिर मायूर, मत्स्य, वाराह, छाग और माहिषजको एकदिन भावना लगती है। उक्त मायूरादि द्रव्योंको समस्त अथवा व्यस्तरूपसे भी ग्रहण कर सकते हैं। पीछे २ रति गरल डालनेसे कालाग्निरुद्ररस प्रस्तुत होता है। मात्रा दो गुञ्जाके बराबर कही है। स्नान पथ्य है। (रसरत्नाकर)

कालाङ्ग (सं० क्लो०) कालं कृष्णवर्णं अङ्गम्, कर्मधा०। १ कृष्णवर्ण देह, काला जिस्म। कालस्य कालपुरुषस्य अङ्गं ६-तत्। २ कालपुरुषका अङ्ग। (त्रि०) बहुव्री०। ३ कृष्णवर्ण देहविशिष्ट, काले जिस्मवाला।

कालाचोर (हिं० पु०) १ सुचतुर चोर, हुशियार चोर। २ कापुरुष, खराब आदमी।

कालाजाजी (सं० स्त्री०) कृष्णजीरक, काला जीरा।

कालाजिन (सं० क्लो०) कालस्य कृष्णमृगस्य अजिनम्,

६-तत्। १ कृष्णसार मृगका चर्म, काले हिरनका चमड़ा। कालं अजिनं यत्र, बहुव्री०। २ कृष्णाजिन-प्रधान देशविशेष, काले हिरनके रहनेका मुल्क। कूर्म प्रभृति पुराणके मतमें उक्त जनपद दक्षिण दिक्में अवस्थित है।

कालाजीरा (हिं० पु०) १ काला जाजो, मीठा जीरा। २ धान्यविशेष, एक धान। कालाकन्द देखो।

कालाञ्जन (सं० क्लो०) कालञ्च तत् अञ्जनञ्चेति, कर्मधा०। गाढ़ कृष्णवर्ण अञ्जन, खूब काला काजल।

"न चक्षुषोः कान्तिविशेषबुद्ध्या
कालाञ्जनं मङ्गलमित्युपात्तम्।" (कुमार ७। २०)

कालाञ्जनी (सं० स्त्री०) अज्यते अनया अञ्जनी, अञ्ज-करणे ल्युट्-ङीप्। काली कृष्णवर्णा अञ्जनी पुंवद्भावः, १ कृष्णकार्पासक्षुप, नरमा, बन कपास। उसका संस्कृत पर्याय—अञ्जनी, रेचनी, शिलाञ्जनी, नीला-ञ्जनी, कृष्णाभा, काली और कृष्णाञ्जनी है। वह कटु, उष्ण, अम्ल, आमकृमिघ्न, अपानावर्तशमन और जठरा-मयघ्न होती है। (राजनिघण्टु)

२ नीली, नील।

कालाढोकरा (हिं० पु०) वृक्षविशेष, एक पेड़। उसकी शाखाप्रशाखा नीचेको झुक जाती हैं। शीत-कालको पत्र ताम्रवर्ण धारण करते हैं। काठ सुदृढ़ और ईषत् कृष्णवर्णविशिष्ट रक्तवर्ण होता है। कालाढोकरा मालव, मध्यप्रदेश और राजपूतानेमें अधिक उपजता है।

कालाण्डज (सं० पु०) कालः कृष्णवर्णः अण्डजः पक्षी। कोकिल, कोयल, काली चिड़िया।

कालातिक्रम (सं० पु०) कालस्य अतिक्रमः लङ्घनम्, ६-तत्। समयलङ्घन, वक्त निकाल देनेका काम।

कालातिपात (सं० पु०) कालस्य अतिपातः अतिवाह-नम्, ६-तत्। समयक्षेपण, वक्तका निकास।

कालातिरेक (सं० पु०) कालस्य अतिरेकः अतिक्रमः ६-तत्। १ निर्दिष्ट समयका अतिक्रम, मुकरर किये हुये वक्तका टालमटोल। २ संवत्सरका अतिक्रम।

"कालातिरेके त्रिगुणं प्रायश्चित्तं समाचरेत्।" (प्रायश्चित्ततत्त्व)

कालातिल (हिं० पु०) कृष्णतिल, स्याह तिल।

कालातीत (सं० क्लो०) कालस्य अतीतं अत्ययः, अति-इण् भावे क्त। १ कालातिक्रम, वक्तका टल जाना।

"कालातीते कृथा सन्ध्या वन्ध्यास्त्रीमैथुनं यथा॥" (काशीखण्ड)

(त्रि०) अतीतः कालोऽस्य, निष्ठान्तत्वात् परनिपातः। २ विगत, गुजरा हुवा, जो अपना समय बिता चुका हो। (पु०) ३ न्यायशास्त्रके मतानुसार पञ्चविध हेत्वा-भासके अन्तर्गत हेत्वाभास विशेष, मुगालता, एक झूठी दलील। अतीतकाल शब्द द्वारा भी वह अभिहित होता है उसका न्यायसूत्रोक्त लक्षण इस प्रकार है,—

"कालात्ययापदिष्टः कालातीतः।" १ अ० २ आ० ५० सूत्र।

साधनकालके अभाव समय जो हेतु लगाया जाता, वह कालातीत कहाता है। अर्थात् जिसस्थानमें किसी पक्ष* पर साध्यको† अभावविषयक निश्चय ठहरता, उसी स्थानका हेतु कालातीत रहता है। यथा—"जलं वह्निमत् जलत्वात्।" अर्थात् जलमें आग है, क्योंकि वह जल है। यहां जलमें वह्निके अभाव विषयका निश्चयज्ञान है। सुतरां 'जलत्व' हेतु काला-तीत नामसे निर्दिष्ट होगा।

कालातीत शब्दके बदले बाधित शब्दका प्रयोग भी न्यायशास्त्रके अनेक स्थलोंमें देख पड़ता है।

कालात्मक (सं० क्लो०) कालेन कालस्वभावेन कृत आत्मा यस्य, काल-आत्मा-कन्। १ कालस्वभावजात, वक्त या किस्मत पर मुनहसिर।

"जङ्गमाः स्थावराश्चैव दिवि वा यदि वा भुवि।
सर्वे कालात्मकाः सर्वं कालात्मकमिदं जगत्॥" (भारत, अनु० १४०)

काल आत्मा अस्य। २ कालस्वरूप परमेश्वर।

कालात्यय (सं० पु०) कालस्य अत्ययः अतिक्रमणम्, ६-तत्। कालक्षेपण, वक्तकी बरबादी।

कालात्ययापदिष्ट (सं० पु०) कालात्ययेन अपदिष्टः। गौतम-सूत्रोक्त हेत्वाभासविशेष, एक झूठी दलील। कालातीत देखो।

* सिद्धिके उपयोगी साध्यका आधार पक्ष कहाता है। जैसे—"पर्वतो वह्निमान् धूमात्" अर्थात् पर्वत धूमसे वह्निमान् है। इस स्थानपर पर्वत पक्ष, वह्नि साध्य और धूम हेतु है।

† हेतु प्रभृति द्वारा जिसे प्रतिपादन करते, उसे साध्य कहते हैं।

कालादर्श (सं॰ पु॰) कालः शुभकर्मसम्पादककाल-विशेषः आदर्शस्तेऽव, काल-आ-दृश-णिच् आधारे अच् । १ समयका दर्पण, वक्तका आईना । २ स्मृतिग्रन्थविशेष ।

कालादाना (हिं॰ पु॰) १ लताविशेष, एक बेल । वह अति मनोहर होती है । पुष्प नीलवर्ण रहते हैं । पुष्प पतित होनेपर वृन्त आता जिसमें कृष्णवर्ण बीज देखाता है । निर्यास औषधमें पड़ता है । किन्तु बीज और निर्यास बहुत थोड़ी मात्रामें सेवन करते हैं । २ उक्त लताका बीज । वह बहुत रेचक होता है ।

कालादिक (सं॰ पु॰) वैशाख मास ।

कालाध्यक्ष (सं॰ पु॰) कालानां खण्डकालानां अध्यक्षः प्रवर्तकः, ६-तत् । १ सूर्य, सूरज ।
"कालाध्यक्षः प्रजाध्यक्षो विश्वकर्मा तमोनुदः ।" (भारत,वन, ३॰ अ॰)
२ समुदायकालप्रवर्तक परमेश्वर, वक्तका मालिक ।

कालानर (सं॰ पु॰) सभानरके एक पुत्र । कालानल देखो ।

कालानल (सं॰ पु॰) कालः सर्वसंहारकः अनलः-कर्मधा॰ । १ प्रलयाग्नि, कयामतकी आग । २ राज-विशेष, एक राजा । उसके पिताका नाम सभानर था । (हरिवंश ३१ अ॰)

कालानाग (हिं॰ पु॰) १ काल सर्प, काला सांप । २ कुटिल पुरुष, टेढ़ा आदमी ।

कालानुनादि (सं॰ पु॰) कल एव कालः अव्यक्तमधुरः सन् अनुनदति, काल-अनु-नद-णिनि । १ भ्रमर, भौंरा । २ चटक, चिरौंटा । ३ चातक, पपीहा । ४ वन-कुक्कुट, जंगली मुरगा ।

कालानुभावकता (सं॰ स्त्री॰) कालं अनुभवति, काल-अनु-भू-ण्वुल्, कालानुभावकस्य भावः, तल्-टाप् । समय अनुभव करनेकी शक्ति, जिस ताकतसे वक्त मालूम पड़े ।

कालानुशारिवा (सं॰ स्त्री॰) कालेन कृष्णवर्णेन अनु-कृता शारिवा, मध्यप॰ । १ कृष्ण-शारिवा, काली सता-वर । २ तगरपादिक, तगरमूल । ३ शीतली जटा ।

कालानुसारक (सं॰ पु॰) कालं कृष्णवर्णं मृगमदं अनुसरति गन्धेन इति शेषः, काल-अनु-सृ-ण्वुल् । १ तगर । २ पीतचन्दन । (वि॰) समयानुसारी, वक्तके मुवाफिक ।

कालानुसारि (सं॰ पु॰) कालं कृष्णवर्णं मृगमदं अनुसरति, काल-अनु-सृ-इञ् । १ शिंशपा वृक्ष । २ मूषिक, चूहा । ३ शैलज, एक खुशबूदार चीज । ५ अगुरु, अगर ।

कालानुसारिणी (सं॰ स्त्री॰) १ पिण्डीतगर । २ श्वेत शारिवा, सफेद सतावर । ३ कृष्णशारिवा, काली सतावर ।

कालानुशारिवा, कालानुशारिवा देखो ।

कालानुसारी, कालानुसारि देखो ।

कालानुसार्य (सं॰ क्ली॰) कालेन मृगमदेन अनु-स्रियते, काल-अनु-सृ-ण्यत् । ऋहलोर्ण्यत् । पा ३ । १ । १२४
१ शैलज, कोई खुशबूदार चीज । २ शिंशपा वृक्ष । ३ कृष्णचन्दन । ४ पीतचन्दन । ५ तगरपादिका । ६ तगर ।

कालानुसार्यक (सं॰ क्ली॰) कालानुसार्य स्वार्थे कन् । शैलज, एक खुशबूदार चीज ।

कालानुसार्या (सं॰ स्त्री॰) तगर ।

कालानोन (हिं॰ पु॰) काचलवण, काला नमक ।

कालान्तक (सं॰ पु॰) कालस्य आयुः-कालस्य अन्तकः नाशकः, ६-तत् । यम ।

कालान्तकयम (सं पु॰) कालान्तकश्चासौ यमश्चेति, कर्मधा॰ । १ आयुःकालविनाशक यम । २ प्रलयकारक यम ।

कालान्तकरस (सं॰ पु॰) १ कासाधिकारका रस-विशेष, खांसीकी एक दवा । हिङ्गुल, मरीच, त्रिकटु, टङ्कण और गन्धक समभाग जम्बीरका रस डाल याम मात्र मर्दन करनेसे उक्त औषध प्रस्तुत होता है । गुञ्जामात्र कालान्तकरस खिलानेसे कासरोग दब जाता है । २ यक्ष्माधिकारका रसविशेष, तपेदिककी एक दवा । लौहमयी मूषा ऊपरकी द्वादश अङ्गुल बनाते हैं । फिर स्वर्णवाराहीको सम गृहकन्याके रससे मर्दन कर याममात्र लशुनसे घोंट गोला बनाकर रख देना चाहिये । उसके पीछे पूर्वोक्त मूषामें चौथाई पारा और गन्धक निर्गुण्डीके रससे पीस कर डालते हैं । फिर मूषाको लौहचक्रसे आच्छादन कर वज्रयन्त्र-में उसको फूंकना चाहिये । इसीप्रकार अष्टपुट लोहे

होनेसे औषधको उतार पीस लेते हैं। पच गुञ्जा-परिमित कालान्तकरस खानेसे राजयक्ष्मा विनष्ट हो जाती है। अनुपान मृगाङ्कवत् है। (रसरत्नाकर)

कालान्तर (सं० क्ली०) अन्यः कालः (मयू' नि० सं०)। १ अन्य समय, दूसरा वक्त। २ उत्पत्तिका परवर्ती काल, पैदायशके पीछेका वक्त। (त्रि०) ३ समयान्तर-स्थायी, दूसरे वक्तमें पड़नेवाला।

कालान्तरक्षम (सं० त्रि०) कालान्तरको वहन कर सकनेवाला, जो देरका वक्त बरदाश्त कर सकता हो।

कालान्तरप्राणहरमर्म्म (सं० क्ली०) १ मर्म्मस्थानविशेष, जिस्मकी एक नाजुक जगह। जहां आघात लगनेसे पक्षान्त वा मासान्तमें प्राण निकलते, उसे कालान्तर प्राणहरमर्म कहते हैं। वह तेंतीस होते हैं। यथा—आठ वक्षमें (दो स्तनमूलमें, दो स्तनरोहितमें, दो अपलापमें और दो अपस्तम्भमें), पांच सीमन्तमें, चार तलहृदयमें, चार क्षिप्रमें, चार इन्द्रवस्तिमें, दो कटि-तरुणमें, दो पार्श्वमें, दो वृहतीमें और दो नितम्बमें। (सुश्रुत)

कालान्तरविष (सं० पु०) कालान्तरे दंशनात् अन्य-स्मिन् काले विषं यस्य, बहुव्री०। १ मूषिकादि जन्तु, चूहा वगैरह। २ लूतादि, मकड़ी वगैरह, जिन जन्तुवोंका विष पहले दष्ट स्थान पर मालूम न पड़ते भी पीछे देखा जाता, उन्हींका नाम कालान्तरविष आता है।

कालान्तरावृत्त (सं० त्रि०) कालान्तरे दीर्घसमयान्तरे आवृत्तं परावृत्तम्, ७-तत्। बहुकाल प्रत्यावृत्त, वक्तसे छिपाया गया।

कालान्तरावृत्ति (सं० स्त्री०) कालान्तरे आवृत्तिः प्रत्यावर्तनम्, ७-तत्। समयान्तरमें प्रत्यावर्तन, दूसरे वक्तकी वापसी।

कालाप (सं० पु०) कालः मृत्युः आप्यते यस्मात्, काल-आप्-घञ्। १ सर्प-फण, सांपका फन। २ राक्षस। कलापं तन्नामकं व्याकरणं वेत्ति अधीते वा, कलाप-अण्। ३ कलापव्याकरणवेत्ता। ४ कलापव्याकरण अध्ययनकारी। ५ एक ऋषि, उनका नाम अराड़ था। यह शाक्यमुनिके अध्यापक रहे।

"कुरुरो नै [illegible] कालापः कट एव च।" (भारत २।२४)

कालापक (सं० क्ली) कालापस्य कलापिना प्रोक्तस्य शाखाभेदस्य धर्मः आम्नायो वा, ६-तत्। १ कलापि-शाखानुसारी एक शास्त्र। २ कलाप-व्याकरणवेत्ता।

"कालापककालापक-दुर्गसिंहः।" (विद्वन्मोदतरङ्गिणी)

कालापहाड़ (हिं० पु०) अत्यन्त भयानक वस्तु, निहायत डरावनी चीज।

कालापहाड़—१ जौनपुरवाले नवाब बहलोल लोदीके भागिनेय और उनके पुत्र बारबक शाहके सेनापति। वह एक विख्यात वीर थे। कहते हैं किसी समय बारबक शाहने दिल्लीके सुलतान सिकन्दर लोदीके विपक्ष युद्धयात्रा की थी। युद्ध घोरतर हुवा। घटनाक्रमसे उस युद्धमें कालापहाड़ कैद किये और दिल्लीको भेजे गये। सिकन्दरने देखा कि कालापहाड़ म्लान-मुख पदव्रजसे उनके सम्मुख जा रहे थे। उन्होंने अविलम्ब अश्वसे उतर कालापहाड़को आलिङ्गन किया और कहा,—'आप हमारे पितृतुल्य हैं, हमें भी पुत्रतुल्य समझते रहिये। कालापहाड़ उस असम्भा-वित समादरको देख विस्मित हुये। उन्होंने सुलतानसे कहा, कि वह सुलतानके लिये जीवन पर्यन्त उत्सर्ग करनेको प्रस्तुत थे। फिर वह पहले जिनकी ओरसे लड़ने चले थे, उनके ही विरुद्ध हो गये। बारबक शाहके सिपाही कालपहाड़को आते देख भाग खड़े हुये।

'तारीख-जहान-लोदी' नामक फारसी इतिहासमें लिखा है कि ४९८ हिजरीको (१४९३ ई०) सिक-न्दरशाहने बारबकशाहको पकड़नेको लिये काला-पहाड़को अवधके अभिमुख भेजा था।

"तारीख शेरशाही" नामक मुसलमान इतिहास-के मतानुसार कालापहाड़को सुलतान बहलोलने अवध सरकार और दूसरे भी कई परगने जागीर दिये थे। मरनेके समय वह ३०० मन पक्का सोना और विस्तर अलङ्कार सम्पत्ति छोड़ गये। उनकी एक-मात्र कन्या फातिमा उत्तराधिकारिणी हुयी।

सुलतान इब्राहिमलोदीके राजत्वकी शेषावस्थामें वह मर गये। युक्त-प्रदेशमें कालापहड़का नाम विख्यात है। वह बड़े हिन्दूविद्वेषी और देवमूर्ति-चूर्णकारी थे।

२ मुर्शिदाबादके नवाब दाऊदके एक सेनापति। उनका प्रकृत ना 'राजू' था। कामरूप अञ्चलमें वह पोरासुठार, पोराकुठार, कालासुठान या कालयवन नामसे विख्यात हैं। बङ्गाल और उड़ीसेके जनप्रवादानुसार कालापहाड़ पहले ब्राह्मण थे। उन्होंने किसी नवाब-कन्याके प्रेममें फंस मुसलमान-धर्म ग्रहण किया। किन्तु अकबरनामे, तारीख दाऊदी प्रभृति मुसलमान इतिहासोंमें वह 'अफगान' बताये गये हैं।

कालापहाड़ पहले बङ्गालके नवाब सुलेमान करूरानी और पीछे दाऊदके सेनापति बने। उनकी भांति देवद्वेषी मुसलमान बङ्गालमें कभी देख न पड़ा था। देवमन्दिर भङ्ग, देवमूर्ति चूर्ण और अनेक प्रकार हिन्दुवोंकी लाञ्छना करना ही उनके जीवनका प्रधान लक्ष्य रहा।

पूर्व आसाम, पश्चिम काशी और दक्षिण उड़ीसाके मध्य उस समय हिन्दुवोंके जो विख्यात देवालय थे, वह कालापहाड़के हाथसे बच न सके। उनमें कोई भग्न, कोई अङ्गहीन और कोई भूमिसात् हो मानो अद्यापि कालापहाड़का दारुण अत्याचार घोषणा करता है। प्रवादानुसार कालापहाड़का नकारा बजते ही सकल देवमूर्ति कांप उठती थीं।

श्रीक्षेत्रकी मादली पञ्जीमें लिखा है (१४८१ शक),—"मुकुन्ददेवके राजत्वके अन्तिमकाल कालापहाड़ उड़ीसेमें घुसा था। मुकुन्ददेव उससे पराजित हुये। उसके पीछे मुकुन्ददेवके पुत्र गौड़िया-गोविन्दके राजा होने पर कालापहाड़ पुरी लूटने गया था। पण्डोंने जगन्नाथ देवकी मूर्ति उठा गड़ पारीकुदमें छिपा रखी। कालापहाड़को वह संवाद मिल गया। उसने पारीकुदसे जगन्नाथदेवको मंगा और अग्निसे जला समुद्रमें फेंक दिया। (जगन्नाथ, उत्कल प्रभृति शब्द देखो।) उसी पापसे कालापहाड़के हाथ पैर गले, जिससे वह मरे थे।" अकबरनामेके मतानुसार मुगल सेनापति मुनीमखान्के दाऊदको पकड़ने कटक पहुंचने पर कालापहाड़ और कई अफगान सरदारोंने काकसाल अधिकार किया था। किन्तु अल्पकालके मध्य ही कालापहाड़ कालीगङ्गाके तीर मुगल सिपाहियोंके साथ मारे गये। तारीख-दाऊदीके देखते ९८८ हिजरीको (१५८० ई०) उक्त घटना हुयी थी।

कालापान (हिं० पु०) ताम्रका हुक्म रंग।

कालापानी (हिं० पु०) १ निर्वासन, जलावतनी, देशनिकाला। २ आन्दामन, निकोबार प्रभृति द्वीप। ३ मद्य, शराब।

कालापोश (हिं० वि०) कृष्णवर्णवस्त्राच्छादित, काले कपड़े पहने हुवा।

कालाबाल (हिं० पु०) योनिदेशस्थ केश, पशम, झांट।

कालाभुजङ्ग (हिं० वि०) अत्यन्त कृष्णवर्ण, निहायत काला।

कालाभ्र (सं० पु०) कालः कृष्णवर्णः अभ्रः, कर्मधा०। १ जलयुक्त कालमेघ, बरसनेवाला काला बादल। २ कृष्णाभ्र, काला बादल।

कालाम (सं० पु०) अराड ऋषि। वह शाक्य मुनिके अध्यापक रहे।

कालामुख (सं० पु०) शैव सम्प्रदायविशेष।

कालामोहरा (हिं० पु०) विषवृक्ष विशेष, एक जहरीला पौदा। वह सौंगियासे मिलता अपनी जड़में विष रखता है।

कालाम्र (सं० पु०) काल आम्रो यत्र, बहुव्री०। द्वीपविशेष, एक टापू।

"कुरून् याल्यु यरान् और कालाम्रद्वीपमेव च।" (हरिवंश १२१)

कालाम्ल (सं० क्ली०) सक्तु, सत्तू।

कालायन (सं० त्रि०) कालेन निर्वृत्तम्, काल-फक्। समयजात, वक्तसे पैदा।

कालायनि (सं० पु०) वाष्कलिके एक शिष्य।

कालायनी (सं० स्त्री०) दुर्गा।

कालायस (सं० क्ली०) कालञ्च तत् अयश्चेति, काल-अयस्-टच्। (अन्'इत्याय: सरसां जातिस'ज्ञयो:। पा ५।४।९४।) १ कान्त लौह, कोई लोहा। २ लौह, लोहा। लौह देखो।

कालायसमय (सं० त्रि०) कालायस-मयट्। काललौह निर्मित, लोहे लोहेका बना हुवा।

कालावड़क (सं० पु०) वृक्षविशेष, एक पेड़।

कालावधि (सं० पु०) नियत समय, मुकरर वक्त।

कालाव्यवाय (सं० पु०) समयके अन्तरालका अभाव, वक्त के वक्फ़ेकी अदम मौजूदगी।

कालाशुद्धि (सं० स्त्री०) कालस्य. कर्मयोग्यसमयस्य अशुद्धिः, ६-तत्। ज्योतिषशास्त्रोक्त शुभकर्मका बाधक समय विशेष, रञ्ज या नापाक रस्मका वक्त।

अकाल देखो।

कालाशोक (सं० पु०) बौद्धराज विशेष, बौद्धोंके एक राजा।

कालाशौच (सं० क्ली०) कालव्यापि अशौचम्, मध्यप०। पितामाता प्रभृति महागुरुका मृत्यु होनेसे एक वत्सर पर्यन्त अशौच रहनेका विषय स्मृतिशास्त्रमें कथित है। उसीको कालाशौच कहते हैं। कालाशौचके समय कई कर्तव्योंके पालनका नियम निर्दिष्ट है।

कालासुखदास (हिं० पु०) अग्रहायण मासमें उत्पन्न होनेवाला धान्यविशेष, अगहनका एक धान।

कालासुहृत् (सं० पु०) असून् प्राणान् हरति, असु-हृ-क्विप असुहृत् प्राणनाशकः, कालश्चासौ असुहृत् चेति, कर्मधा०। १ प्राणनाशक, जान लेनेवाला। कालः भयानकः असुहृत् शत्रुः। २ भयङ्कर शत्रु, खतरनाक दुश्मन। कालस्य मृत्योः असुहृत् विनाशकः। ३ महादेव, शिव।

कालास्त्र (सं० क्ली०) सद्यघातक वाणविशेष, जानसे मार डालनेवाला तीर।

कालास्थाली (सं० स्त्री०) १ पाटला वृक्ष। २ मुष्कक, मोखा।

कालाङ्ग (सं० पु०) १ काकतुण्डी, घुंघची। २ काकतिन्दुक, कुचलेका पेड़।

कालि (हिं० क्रि० वि०) १ कल्ह, गये दिन। २ आगामी दिवस, आनेवाले दिन। ३ शीघ्र, जल्द।

कालिक (सं० पु०) काले वर्षाकाले चरति, काल-ठञ्, के जले अलति पर्याप्नोति वा, क-अल् बाहुलकात् इकन्। १ क्रौञ्चपक्षी, किसी क़िस्मका बगला। २ नागराज विशेष, नागोंके एक राजा। (क्ली०) ३ कृष्ण चन्दन। (त्रि०) ४ समयोचित, वक्तके मुवाफ़िक़। ५ कालसम्बन्धीय, वक्तके मुताल्लिक़। ६ दीर्घकालस्थायी, बहुत दिन चलनेवाला। इस अर्थमें 'कालिक' शब्द प्रायः समाससे लगता है। यथा मासकालिक, अकालिक इत्यादि।

कालिकता (सं० स्त्री०) समय, तिथि, ऋतु, वक्त, तारीख, मौसम।

कालिकसम्बन्ध (सं० पु०) कालिकविशेषणता नामस्वरूप सम्बन्धविशेष, कालानुयोगिक विभु भिन्न वस्तु प्रतियोगिक सम्बन्ध, वक्तका जोड़। भिन्न कालस्थित वस्तुद्वयके साथ उक्त सम्बन्ध नहीं लगता। किसी किसी नैयायिकने कालिकसम्बन्धको विभुप्रतियोगिक सम्बन्ध कहा है। विभु पदार्थ भी कालिकसम्बन्धसे कालमें ही रहता है। महाकाल और कालोपाधि समुदाय कालिकसम्बन्धमें वस्तुका अधिकरण होता है।

कालिका (सं० स्त्री०) कालो वर्णोऽस्त्यस्याः, काल-ठन् टाप्; यद्वा काल-ङीप् स्वार्थे कन्-टाप् ह्रस्वश्च। १ चण्डिका, काली। उनके नामकरण सम्बन्ध पर कालिकापुराणमें लिखा है,—"शुम्भ और निशुम्भ दैत्यके उत्पीड़नसे अत्यन्त पीड़ित हो इन्द्रादि देव हिमालय पर्वतमें गङ्गातीर्थके निकट पहुंच महामायाका स्तव करने लगे। महामायाने उनके स्तवसे सन्तुष्ट हो मातङ्गस्त्रीरूपमें वहां पहुंच कर पूछा—"तुम लोग किसकी आराधनाके लिये इस मातङ्ग आश्रममें आये हो?" देवीके पूछते ही उनके अङ्गसे एक देवीमूर्तिने आविर्भूत हो कहा कि 'देव शुम्भ और निशुम्भ दैत्यके अत्याचारसे उत्पीड़ित हो उनके निधनके उद्देश्यसे महामायाकी आराधना करने आये हैं' वह आविर्भूता देवी प्रथम कृष्णवर्णा रहीं। क्षण कालके पीछे उन्होंने फिर गौरवर्ण धारण किया। किन्तु कृष्णवर्णा प्रादुर्भूत होनेसे ही वह कालिका नामसे विख्यात हुयीं। वह उग्र भयसे रक्षा करती हैं, उसीसे पण्डित उन्हें उग्रतारा भी कहते हैं। उन्हींके प्रथम बीजका नाम तन्त्र है। मस्तकमें एकमात्र जटा रहनेसे उनका नाम एकजटा भी है। कालिकामूर्तिका ध्यान निम्नलिखित रीतिसे किया जाता है,—

"चतुर्भुजां कृष्णवर्णां मुण्डमालाविभूषिताम्।
खड्गं दक्षिणपाणिभ्यां बिभ्रतीन्दीवरं द्वयः॥
कर्त्री च खर्परं चैव क्रमाद्वामेन बिभ्रतीम्।
द्यां लिखन्तीं जटामेकां बिभ्रतीं शिरसा स्वयम्॥
मुण्डमालाधरां शीर्षे ग्रीवायामपि सर्वदा।
वक्षसा नागहारन्तु बिभ्रतीं रक्तलोचनाम्॥
कृष्णवस्त्रधरां कट्यां व्याघ्राजिनसमन्विताम्॥
वामपादं शवहृदि संस्थाप्य दक्षिणं पदम्।
विन्यस्य सिंहपृष्ठे तु लेलिहानामवं स्वयम्॥
साट्टहासमहाघोररावयुक्तातिभीषणा।
चिन्तनीयतारा सततं भक्तिमद्भिः सुखेप्सुभिः॥"

भक्तिमान् और सुखेप्सु लोगों द्वारा कृष्णवर्ण, चतुर्भुजा, दक्षिण हस्तद्वयके मध्य ऊर्ध्व हस्तमें खड्ग एवं अधोहस्तमें पद्म तथा वामहस्तद्वयके मध्य ऊर्ध्व हस्तमें कर्त्री (दांता) एवं अधोहस्तमें खर्परधारिणी गगनस्पर्शी एक जटायुक्ता, मस्तक तथा कण्ठदेशमें मुण्डमाला एवं वक्षःस्थलमें सर्पहारभूषिता, आरक्त-नयना, कृष्णवस्त्रपरिहिता, कटितटमें व्याघ्रचर्मयुक्ता, शवके हृदयपर वाम पद एवं सिंहपृष्ठपर दक्षिण पद-विन्यासपूर्वक अवस्थिता, आसवपानमें आसक्त, अट्टहासकारिणी और अतिभयङ्करा उग्रतारा सतत चिन्त्य हैं।

कालिका देवीके आठ योगिनी होती हैं। उनके नाम हैं,—महाकाली, रुद्राणी, उग्रा, भीमा, घोरा, भ्रामरी, महारात्रि और भैरवी। कालिकाके पूजाकाल उक्त अष्टयोगिनीकी भी पूजा करना पड़ती है।
(कालिकापुराण)

२ कृष्णता, स्याही, कालापन। ३ वृश्चिकपत्र, बिछुवा-की पत्ती। ४ क्रमशः देयवस्तुका मूल्य, किश्तबन्दी। ५ धूसरी, कित्सरी। ६ नूतनमेघ, घटा। ७ पटोलशाखा, परवलका डाल। ८ रोमावली, रूयां। ९ जटामांसी। १० स्त्रीजाति काक, मादा कौआ। ११ शृगाली, मादा गीदड़। १२ मेघश्रेणी, बादलको कतार। १३ स्वर्णदोष, सोनेका ऐब। १४ दुग्धकीट, दूधका कीड़ा। १५ मसी, स्याही। १६ काकोली नामक औषधविशेष। १७ श्यामापक्षी। १८ मद्य, शराब। १९ कुज्झटिका, कुहरा। २० हरीतकीविशेष, एक हर्रे। वह हिमालय पर्वत पर उपजती और तीन शिरा रखती है। गन्धयोग्य कार्यमें उक्त हरीतकी ही प्रशस्त है। २१ मासिक वृद्धि, माहवार सूद। २२ वयोनिरू-पक वाजिदन्ताग्र रेखाविशेष, उम्र बतलानेवाली घोड़े की दांतकी अगली रेखा। वह वक्र और कृष्ण होती है। क्रमानुसार षष्ठ, सप्तम वा अष्टम अब्दमें उक्त रेखा निकलती है। २३ कर्कटशृङ्गी, ककड़ासींगी। २४ यकृत्खण्ड, गुरदेका टुकड़ा। २५ कृष्णजीरक, काला जीरा। २६ वृश्चिकपत्र वृक्ष, बिछुवाका पौधा। २७ एला, इलायची। २८ सौराष्ट्रमृत्तिका। २९ कर्कटी-लता, ककड़ीकी बेल। ३० कालाशाक, एक काली सब्जी। ३१ नीलीवृक्ष, नीलका पेड़। ३२ कर्णस्रोत-विशेष, कानकी एक नस। ३३ काली पुतली। ३४ दक्ष-कन्या। ३५ लट, जुलफ। ३६ वृश्चिक, बिच्छू। ३७ चारवर्षकी कुमारी। ३८ योगिनीविशेष। ३९ वैश्वा-नरकी एक कन्या। ४० जैनमतानुसार चौथे अर्हतकी एक दासी। ४१ नदीविशेष, एक दरया। त्रिरात्रि उप-वासपूर्वक उक्त नदीमें स्नान करनेसे समुदाय पाप विनष्ट होते हैं,—

"कालिकासङ्गमे स्नात्वा कौशिक्यारुणयोर्यतः।
त्रिरात्रोपवितो विद्वान् सर्वपापैः प्रमुच्यते॥" (भारत, वन, ८४ अ)

कालिकाक्ष (सं० पु०) १ दानवविशेष, एक राक्षस। २ कृष्णचक्षुविशेष, काली आंखवाला।

कालिकापुराण (सं० क्लो०) कालिकाया माहात्म्यादि-प्रतिपादकं पुराणम्, मध्यप०। एक उपपुराण। उसमें कालिका देवीका माहात्म्यादि वर्णित है।

कालिकाख (सं० क्लो०) पर्वतविशेष, एक पहाड़।

कालिकाव्रत (सं० क्लो०) कालिकायाः प्रीत्यर्थं व्रतम्, मध्यप०। एक व्रत। अमावस्या तिथिको उसका अनु-ष्ठान करना पड़ता है। स्त्रियां उसको ग्रहण करती हैं। भविष्योत्तरपुराणमें उक्त व्रतको उत्पत्ति-कथा और अनुष्ठान प्रणाली लिखी है। यथा—"किसी समय देवराज इन्द्र सभास्थलमें अप्सरोगणका नृत्य देखते थे। उसी समय अन्यान्य देव नृत्यदर्शनसे सन्तुष्ट हो पुष्पवृष्टि करने लगे। इन्द्रने अपने निकटका एक पारिजात पुष्प उठा लिया और सूंघ कर किसी

ब्राह्मणको दे दिया। इसप्रकार इन्द्रके निकट अवज्ञात हो ब्राह्मणने उन्हें अभिशाप किया था,—'तुम विड़ाल-रूप ग्रहणकर अन्त्यज जातिके गृहमें रहोगे।' तदनुसार इन्द्र मार्जाररूपसे किसी व्याधके घरमें रहने लगे। उधर शचीने इन्द्रका कोई अनुसन्धान न पा आहार निद्राको छोड़ा था। उन्होंने देवोंसे उनका पता पूछा। देवोंने ध्यानके बल इन्द्रको मार्जाररूप अवस्थित देख शचीसे उनको मुक्तिके लिये उक्त शापदाता ब्राह्मणकी सेवा करनेको कहा था। शचीने यथाशक्ति परिचर्या द्वारा ब्राह्मणको परितुष्ट किया। उन्होंने इन्द्रका अपराध मार्जना कर उनकी मुक्तिके लिये शचीसे कालिका-व्रतका अनुष्ठान करनेको कहा। इसी प्रकार कालिका-व्रतकी उत्पत्ति हुयी। उसके अनुष्ठानकी प्रणाली नीचे लिखी है—शुद्ध कालको किसी कृष्ण-चतुर्दशीको सङ्कल्प कर दूसरे दिन अमावस्याको स्वयं रात्रिभोजन, वाम हस्त द्वारा भोजन एवं मत्स्य, पिष्टक, रक्तशाक और अम्ल भोजन परित्याग कर ६२ सधवा स्त्रियोंको खिलाना चाहिये। इसीप्रकार कुछ दिन व्रत आचरण पीछे किसी शुद्ध मङ्गलवारयुक्त अमावस्याको गृहके प्राङ्गणमें कदलीकाण्डसे गृह बना उसमें कालिका-मूर्ति स्थापन की जाती है। फिर अपराह्न, सन्ध्या अथवा रात्रिकालको यथाविधि पाद्य, अर्घ्य आचमनीय, गन्धपुष्प, धूप, दीप, तथा विविध नैवेद्य प्रभृति उप-करणसे देवीकी पूजा होती है। पूजा समाप्त होनेपर पिष्टक, सिद्धान्न, व्यञ्जन प्रभृति बलि किसी वनके मध्य देना चाहिये। इसप्रकार कालिकाव्रत करनेसे सत्वर कार्य सिद्धि होती है।"

कालिकामुख (सं० पु०) कालिकाया मुखमिव मुखं यस्य, बहुव्री०। एक राक्षस। (रामायण १।२८ अ०)

कालिकाशाक (सं० पु०) कालशाक, नाड़ी।

कालिकाश्रम (सं० क्ली०) कालिकाया आश्रमम्, ६-तत्। विपाशा नदीतीरस्थ एक तीर्थ। महाभारतमें लिखा है कि उक्त तीर्थमें तीन रात्रि ब्रह्मचारी और जितक्रोध रहने पर भवयन्त्रणासे मुक्ति मिलती है—

"कालिकाश्रममासाद्य विपाशायां कृतोदय:।
ब्रह्मचारी जितक्रोधस्त्रिरात्रं मुच्यते भवात्॥" (भारत, अनु, २५ अ०)

कालिकास्थि (सं० क्ली०) नेत्रास्थिविशेष, आंखकी एक हड्डी।

कालिकेय (सं० पु०) कोई असुर जाति। वह दक्षकी कन्या कालिकासे उत्पन्न हैं।

कालिख (हिं० स्त्री०) कालिमा, स्याही, कालौंछ। वह एक प्रकारकी बारीक बुकनी रहती है, जो धूयेंके जमनेसे वस्तुओंमें लगती है।

कालिगञ्ज—१ वङ्गदेशीय यशोहर प्रदेशके खुलने विभागका एक गण्ड ग्राम। वह अक्षा० २२°२७'१५" उ० और देशा० ८८° ४' पू० में यमुना एवं काकशियाली नदीके सङ्गमस्थल पर अवस्थित है। लोकसंख्या साढ़े पांच हजारसे अधिक है। वहां अच्छा बाज़ार लगता और खूब वाणिज्य चलता है। जानवरोंके सींगसे छड़ी बनानेका एक कारखाना भी है। २ वङ्गालके रंगपुर जिलेका एक ग्राम। वह ब्रह्मपुत्रके तीर अवस्थित है। आसाम आने जानेवालोंके ष्टीमर वहीं लगते हैं।

कालिङ्ग (सं० क्ली०) केन जलेन आलिङ्गतेऽसौ, क-आलिङ्गि कर्मणि घञ्। १ तरम्बुजविशेष, किसी किस्मका तरबूज। उसका संस्कृत पर्याय—कालिन्दक, कृष्णबीज और फलवर्तुल है। वह शीतल, मलरोधक, मधुररस, पाकमें मधुर, गुरु, विष्टम्भि, अभिष्यन्दकारक, कफ एवं वायुवर्धक और दृष्टिशक्ति, शुक्र तथा पित्त-नाशक होता है। पक्वफल पित्तवृद्धिकारक, उष्ण, क्षार और कफ एवं वायुनाशक है। पत्र तिक्त और रक्तस्थापक होता है। (पथ्यापथ्यविवेक) (पु०) २ भूमि-कर्कारु, एक कुम्हड़ा। ३ हस्ती, हाथी। ४ सर्प, सांप। ५ लौहविशेष, एक लोहा। ६ कूटज, एक पेड़। ७ इन्द्रयव। (त्रि०) ८ कलिङ्गदेशजात, कलिङ्ग मुल्कमें पैदा हुआ। ९ कलिङ्गदेशके राजा।

"प्रतिजग्राह कालिङ्ग: तमस्त्रैर्गजसाधन:।
पक्षच्छेदोद्यतं शक्रं शिलावर्षीव पर्वत:॥" (रघुवंश ४।४०)

कालिङ्गक, कालिङ्ग देखो।

कालिङ्गमान (सं० क्ली०) कालिङ्गदेशप्रचलित मान-भेद, कलिङ्ग मुल्ककी तोल। यथा—१२ सर्षपका यव, २ यवकी गुञ्जा, ३ गुञ्जाका वल्ल। ८ या ७ गुञ्जाका माष, और ४ माषका शाण होता है। (भावप्रकाश)

कालिङ्गिका (सं० स्त्री०) कालिङ्ग-ङीप् संज्ञायां कन्-टाप् अत इत्वम्। त्रिवृत्, निसोत।

कालिङ्गी (सं० स्त्री०) कालिङ्ग-ङीप्। १ राजककंटी, किसी प्रकारकी ककड़ी। २ कलिङ्गदेशीया स्त्री, कलिङ्ग मुल्ककी औरत। ३ एक नदी।

कालिज (अं० पु० College) १ विद्यालय, पाठशाला, बड़ा मदरसा। इसमें उच्च शिक्षा दी जाती है।

कालिज (हिं० पु०) पक्षिभेद, एक चकोर। वह हिमालयमें होता है।

कालिञ्जर (कालञ्जर)—युक्तप्रदेशके बांदा जिलेका (बुन्देलखण्डके अन्तर्गत) एक नगर। वह अक्षा० २५° १' उ० तथा देशा० ८०° ३२' ३५" पू० में बांदा नगरसे १६ कोस दक्षिण विन्ध्याचलके अन्तर्गत एक शाखा पर्वत पर अवस्थित है। पर्वतका दूसरा भी उच्च स्तर है। निम्नस्तरमें उक्त नगर स्थापित है। कालिञ्जर आध कोस विस्तृत और चारो ओर प्राचीरवेष्टित है। नगर भूमिसे ५३० हाथ ऊंचा होगा। लोकसंख्या ४ हजारसे कम है। तन्मध्य ब्राह्मण कुछ अधिक हैं, काछी लोग भी कम नहीं दीख पड़ते। वहां पुलिसका थाना, डाक बंगला, बाजार, विद्यालय और औषधालय विद्यमान है।

कालिञ्जर अति पुराकालसे महातीर्थ माना जाता है। रामायण (उत्तरका० ५८ स०), महाभारत (वन० ८५ अ०) हरिवंश (२१ अ०) और गरुड़, ब्रह्माण्ड, मत्स्य, पद्म प्रभृति पुराणमें उक्त महातीर्थका उल्लेख मिलता है।

पद्मपुराणीय कालञ्जर-माहात्म्यमें लिखा है,—

"अर्धयोजनविस्तीर्णं क्षत्रं चैव मम मन्दिरम्।
कालंजरेति विख्यातं मुक्तिदं शिवसन्निधौ॥
गङ्गायां दक्षिणे भागे कालञ्जर इति स्मृतः।
सर्वतीर्थफलं तत्र पुण्यञ्चैव ह्यनन्तकम्॥
कालंजर समं चैवं नास्ति ब्रह्माण्डगोलके॥" (१म अ०)

दो कोस विस्तृत वह क्षेत्र ही हमारा (शिवका) मन्दिर है। शिवसन्निधिप्रयुक्त वही कालञ्जर मुक्तिदायक कहाता है। गङ्गाके दक्षिण भागमें कालञ्जरक्षेत्र अवस्थित है। कालञ्जरके समान पवित्र क्षेत्र भूमण्डलमें दूसरा नहीं। वहां सकल तीर्थका फल और अनन्त पुण्य मिलता है।

मुसलमान इतिहास लेखक फरिश्तेके कथनानुसार ई० ७वें शताब्दको केदार नामक किसी व्यक्तिने कालिञ्जर स्थापन किया था। मुसलमानोंके इतिहासमें लिखा कि गजनी आक्रमण करनेको जाते समय कालिञ्जरके राजाने लाहोरके राजा जयपालको साहाय्य दिया। १००८ ई० को मुहम्मद गजनवीने जब ४थे वार भारत आक्रमण किया, तब आनन्दपालके साथ पेशावरक्षेत्रमें एक युद्ध हुवा। उसमें कालिञ्जरके राजा आनन्दपालको ओरसे लड़े थे। १०२१ ई०को कालिञ्जरराजने कन्नौजके राजाको पराजित किया। १०२२ ई०को महमूद गजनवी कालिञ्जर पर चढ़े थे, किन्तु अन्तको सन्धि करके लौट गये। १२०२ ई०को महम्मदगोरीके प्रतिनिधि कुतुब-उद्दीनने कालिञ्जर जीत वहां मसजिद आदिको निर्माण कराया। अल्प दिनके मध्य ही वह फिर हिन्दुवोंके अधिकारमें चला गया। १२५१ ई०को मालिक नसरत-उद्दीन् मुहम्मदने उसे जय किया था। किन्तु प्रस्तरलिपिके प्रमाणसे मालूम पड़ता है कि उसके पीछे फिर कालिञ्जर हिन्दुओंके हाथ लगा। १५३० ई० को सम्राट् हुमायूनने कालिञ्जर आक्रमण कर १२ वत्सर काल घेरा डाला था। हुमायूनके भारतसे चले जाने पर १५४५ ई० को सम्राट् शेरशाहने फिर कालिञ्जर अवरोध किया। २२ वीं मईको शेरशाहको तोपका गोला पहाड़से लग वापस जा उनके बारूदखानेमें गिरा था। उससे एक अग्निकाण्ड उपस्थित हुवा। शेरशाह पास ही थे। वह उसी अग्निकाण्डमें जल गये। उसीसे उनका मृत्यु भी हुवा। मृत्युयन्त्रणा भोग करते ही उनको संवाद मिला कि दुर्ग मुसलमानोंके हाथ लगा था। उन्होंने ईश्वरको धन्यवाद दिया और उसी समय उनका प्राणवायु निकल गया। २५वीं मईको शेरखान्के पुत्र जलालखान् नवाधिकृत कालिञ्जरमें पितृपद पर अभिषिक्त हुये। १५७० ई० को वह एक स्वतन्त्र सरकारके अधीन किया गया। उसके पीछे कालिञ्जर बीरबल राजाको जागीरकी भांति अर्पित हुवा। कुछ दिन पीछे उक्त स्थान बुन्देलोंके हाथ लगा था। बहुत दिन बुन्देलोंका वहां अधिकार रहा;

सरोवर खोदा गया है। पहाड़से उसमें दिनरात बूंद बूंद पानी टपका करता है। कोटतीर्थसे उसमें जल जाता है।

दुर्गके मध्य कोटतीर्थ नामक एक सरोवर है। कालंजरमाहात्म्यमें वही कोटीतीर्थ नामसे वर्णित हैं। कोटीतीर्थमें स्नान करनेसे कोटि जन्मका पाप छूटता है।* सरोवरमें उतरनेके लिये अप्रशस्त सोपानावली है। किन्तु उसमें सकल समय जल नहीं रहता। कोई बड़ी भारी वृष्टि हो जानेसे कुछ दिन जल देख पड़ता है। सरोवरकी चारो ओर नानाविध प्रस्तरखण्ड ग्रथित हैं। उनमें अनेक शिलालिपि उत्कीर्ण देख पड़ती हैं। लेख अनेक स्थानोंमें मिट गये। सुतरां आजतक उनका उद्धार नहीं हुआ। सरोवरके पार्श्वमें उपरिभागपर प्रस्तरभवन और अन्यान्य गृह बने हैं, वह अत्यन्त पुरातन समझ पड़ते हैं। स्थान स्थानपर संस्कार भी किया गया है। वहां भी बहुविध पुरातन खोदित लिपि देख पड़ती हैं। कोटीतीर्थसे परिमलकी बैठक और अमानसिंहका महल छोड़ दक्षिणपश्चिम नील-कण्ठ जानेका पथ है। पथमें एक फाटक लगा है। फाटक पार होनेसे प्रकृतिकी अपूर्व शोभा देख पड़ती है। पर्वत उच्चसे असमतल हो बिलकुल नीचेको झुक गया है। जहांतक दृष्टि जाती, वहांतक अपूर्व शोभा देखाती है। पहाड़के नीचेसे बांदा नौगांवकी राह देखने पर मनमें आता, मानो उपवीतका गुच्छ पड़ा देखाता है। अदूर ही श्यामल शस्यपूर्ण प्रशस्त भूखण्ड नील नभस्थलमें जाकर मिल गया है। बीच बीच छोटे छोटे पहाड़ हैं। कहीं निर्झरिणी और कहीं स्रोतस्वती सूर्यातपमें रौप्यमय हो झरझरा रही है। क्या ही सुन्दर प्रकृतिकी अपूर्व शोभा है। उपरि उक्त फाटक पार होनेसे उस पथमें दूसरा फाटक मिलता है। उससे आगे बढ़नेपर कवि तुलसीदास और जैन तीर्थङ्करकी प्रस्तरमूर्ति देख पड़ती है। वाम ओर पहाड़में दूसरी कई मूर्ति हैं। स्थान स्थानपर शिलालिपि उत्कीर्ण है। मुसलमानोंके शासनसमय वहां एक गृह बना था। कलईका काम होनेसे अनेक लेख अदृश्य हो गये हैं। कुछ दूर आगे जानेसे जटाशङ्कर, शिवसागर और तुङ्गभैरवकी मूर्ति है। वहां कई गुहा भी हैं। कई स्थानमें प्रस्तर पर कितना ही लिखा है। किन्तु उसका अल्प मात्र पढ़ा गया है। कहीं "चैत सुदी ९, सन् ११९२ संवत् नरसिंह रल्हनके पुत्रने वामदेवकी मूर्ति प्रतिष्ठित की है," कहीं "जेठ सुदी ९, ११९२ संवत् दीक्षित पृथोधर" और कहीं "श्रीकीर्तिवर्मा देव और सोमेश्वर देवगणको प्रणाम करते हैं" लिखा है। तुङ्गभैरवके एक स्थान पर "मदनवर्माके अनुचर सोह्लन, सोह्लनके पुत्र महाश्रणिक, उनके पुत्र वत्सराजने लक्ष्मीदेवीकी मूर्ति स्थापन की, कार्तिक सुदी सनीचर संवत् ११८८" लिखित है। इसीप्रकार दूसरा भी कितना ही लेख है। निकट ही नीलकण्ठका मन्दिर है। पहाड़के नीचेसे उस मन्दिरकी अपूर्व शोभा देख पड़ती है। वहां एक गुहा है। गुहाके सम्मुख अष्ट-कोण प्राङ्गणको चारो ओर प्रस्तरके स्तम्भ हैं। स्तम्भोंके निर्माण-कौशलमें अति चमत्कार दिखलाया गया है। उनके उपरिभागमें विष्णुकी एक चतुर्भुज मूर्ति स्थापित है। स्तम्भ अष्टकोण मण्डपकी अष्ट दिक् अवस्थित हैं। लोगोंके कथनानुसार उपरि उपरि स्तम्भोंकी सात श्रेणी रहीं, किन्तु आजकल एक मात्र देख पड़ती है। उक्त गुहाके अभ्यन्तरमें नीलकण्ठ महादेवकी मूर्ति है। गुहाके बाहर बहुविध शिल्प-कार्य होनेका प्रमाण मिलता है। किन्तु वह समस्त चूनेके काममें छिप गया है। प्रवेशद्वारके पार्श्वमें हरपार्वती और गङ्गायमुनाकी मूर्ति हैं। शिवलिङ्ग गाढ़ नीलवर्णके प्रस्तरसे निर्मित है। उसकी उच्चता तीन हस्त होगी। नीलकण्ठदेवके तीन चक्षु हैं। स्थान देखनेसे युगपत् भय और भक्तिरसका उद्रेक हो उठता है। उक्त नीलकण्ठ देव ही कालि-ञ्जरके अधिष्ठात्री देवता हैं। कहनेकी आवश्यकता

---

* "नीलकण्ठो यत्र देवो भैरवाः षड्विनायकाः।
कोटीतीर्थं यत्र तीर्थं मुक्तिस्तत्र न संशयः॥
कोटीतीर्थजले स्नात्वा पूजयित्वा महाशिवम्।
कोटीजन्मार्जितात् पापान्मुच्यते नात्र संशयः॥
कोटीतीर्थे च संगम्य मन्दाकिन्या लभेत् फलम्।"
(कालंजरमा० १।१०—१२)

नहीं—कितनी दूरसे हजारों लोग आ आ कर उनकी पूजा करते हैं। नीलकण्ठ-मन्दिरकी वाम ओर एक अप्रशस्त पथ है। उसमें बहुसंख्यक लिङ्गमूर्ति प्रतिष्ठित हैं। वह पथ नीलकण्ठका मन्दिर घेर अपर दिक्को जा निकला है। मन्दिरके स्तम्भोंके मध्य मध्य भूमिमें प्रस्तरखण्ड पर कितना ही लेख देख पड़ता है। फिर उसमें बहुत कुछ यात्रियों द्वारा खोदित है। बाहर स्थान स्थान पर भगवान्के दश अवतार, ब्रह्मा, हरपार्वती प्रभृतिकी अनेक मूर्ति भग्नावस्थामें इधर उधर पड़ी हैं। नीलकण्ठका मण्डप छोड़नेसे एक कुण्ड मिलता है। वह भी पहाड़ तोड़ कर बनाया गया है। उसका नाम स्वर्गारोहणकुण्ड* है। उसके दक्षिण पार्श्व पर्वतके कोणमें प्रकाण्ड कालभैरवकी मूर्ति है। वह कुण्डके जल पर खड़ी है। मूर्ति प्रायः १६ हस्त उच्च और ११ हस्त प्रशस्त है। नरमुण्डकी माला गलदेशमें दोदुल्यमान है। सर्पके कुण्डल हैं। हस्तमें सर्पके वलय पड़े हैं। गलेमें सर्पका हार है। अष्टादश हस्तमें अष्टादश अस्त्र हैं। उक्त भयानक मूर्तिके पार्श्वमें जल पर कालीकी एक मूर्ति खड़ी है। जल पर उक्त पर्वतके अभ्यन्तरमें उन दोनों मूर्तियोंको देखनेसे मनमें युगपत् भक्ति और भयका सञ्चार होता है। उक्त मूर्तिके आगे ही दूसरी गुहा है। वहां जाना दुःसाध्य है। पहले उक्त मूर्तिके निम्नभागमें एक द्वार था। उससे सिद्धगुहामें लोग जाते थे। उस स्थानसे किसी सुरंगकी राह देशीय राज्यके भीतर पहुंचते थे। अंगरेज राजपुरुषोंने वह राह बन्द कर दी है। दुर्गकी उत्तरदिक् प्राकारसे बाहर पर्वतके मध्यदेशमें १० हस्त दीर्घ और ६ हस्त उच्च एक क्षुद्र खण्डगिरि है। उसमें भी लिङ्गमूर्ति वर्तमान है। उसका नाम बालकाखण्डेश्वर है। उसके पार्श्वमें एक भारवाही मूर्ति है। वह भार लिये चली जाती है। बहंगीकी दोनों ओर दो कलसी गङ्गाजल है। उक्त भारवाहकके चित्रपर गुप्तवंशीय राजप्रदत्त शिलालिपि लगी है। पर्वतके पार्श्वमें समतल भूमि पर भी एक जगह वैसी ही मूर्ति और वैसी ही शिलालिपि है। उस स्थानका नाम सरवन है। कालिञ्जर पर्वतकी उत्तर ओर भूमिसे ४०।४५ हस्त ऊपर गङ्गासागर नामक एक सरोवर विद्यमान है। वह प्रायः १०० हस्त दीर्घ और ८० हस्त प्रशस्त है। उसकी तीन ओर सोपाना-वली समान चली गयी है। एक ओर उतरनेकी छोटी सिढ़ी और चारो ओर ऊंचा किनारा है। किनारे पर चढ़नेको भी सोपान बना है। वहां ८ हस्त उच्च अनन्तदेवकी मूर्ति देख पड़ती है।

वहां दूसरी भी देखनेकी बहुत चीजें हैं। उनमें चण्डीभवन, शिवक्षेत्र, रविक्षेत्र, मातङ्गवापिका, नारायणकुण्ड, चन्द्रस्थान और सौमित्रक्षेत्र प्रसिद्ध है।

पर्वतके अग्निकोणमें अद्यापि श्रीरामका चरण-चिह्न बना है।

"अग्निकोणे गिरिस्थश्च श्रीरामचरणद्वयम्।" (कालञ्जरमाहात्म्य ४।१०)

कालिदास (सं० पु०) काल्याः दासः, संज्ञायां ह्रस्वः। भारतके अति प्रसिद्ध महाकवि। लोगोंका विश्वास है कि विक्रमादित्यकी सभाके नवरत्नमें कालिदास भी एकरत्न रहे। उसके सम्बन्धपर नाना स्थानोंमें नाना प्रकार प्रवाद प्रचलित है। उनमें केवल एक प्रवाद हम नीचे लिखेंगे।*

किसी विदुषी कन्याने विद्यावलसे बहु पण्डितोंको हरा प्रतिज्ञा की थी,—'जिस पण्डितसे हम शास्त्रार्थमें हार जायेंगी, उसीको अपना पति बनायेंगी।' उनके पिता प्रतिज्ञाको सुन एक एक कर बहु पण्डित लाये थे। किन्तु कोई कन्याको पराजय कर न सका। इस प्रकार बार बार पण्डित-पालका

---

* कालञ्जरमाहात्म्यमें उक्त कुण्डका नाम स्वर्गवापी लिखा है। यथा— "नीलकण्ठसमीपे तु स्वर्गवाप्याः समाश्रयः। स्वर्गवाप्यां नरः स्नानाद्देवपक्षाश्च भवेत्॥" (४।१८-१९)

* मिथिलाके प्रवादानुसार कालिदास मिथिलावासी थे। (Journal. Asiatic Society of Bengal, Vol. XLVII. 1879 pt. I. p. 33.) इसी प्रकार दक्षिणदेशमें भी कई प्रवाद हैं। (See Indian Antiqnary. 1878.) नाना स्थानोंके प्रवाद पढ़नेसे मालूम पड़ता है—जहां किसी समय विख्यात पण्डित रहे, वहां लोग महाकवि कालिदासको स्वदेशीय और एक ग्रामवासी कहनेमें कुण्ठित न हुये। रंगपुरमें भी ऐसा ही प्रवाद चलता है। (Martin's Eastern India, III. p. 543.)

अनुसन्धान लगा उनके पिता बहुत विरक्त हो गये। सुतरां किसी गोमूर्खके साथ उस कन्याका विवाह करना एकान्त अभिप्रेत ठहरा। फिर वह चतुर्दिक् वैसे मूर्खको ढूंढ़ने लगे। किसी स्थान पर उन्होंने देखा एक व्यक्ति वृक्षमें आरोहण कर जिस शाखा पर स्वयं बैठा, उसीका मूलदेश काटता था। वह उससे बहुत सन्तुष्ट हुये और सोच गये,—'जो यह भी विवेचना नहीं कर सकता कि डाल कट जानेसे वह भी उसके साथ गिर पड़ेगा, उससे अधिक मूर्ख जगत्में कहां मिलेगा। अतएव यह उपयुक्त पात्र है।' सुतरां उन्होंने उसे कन्याके निकट ले जा कर उपस्थित किया। कन्याने उससे मौखिक प्रश्न न कर एक अङ्गुलिका संकेत दिखाया। वरने सम्भवतः उसकी अपेक्षा वीरता प्रदर्शन करनेको दो अङ्गुलि दिखा दीं। कन्याने फिर तीन अङ्गुलि देखायीं। उसके उत्तरमें वरने भी चार अङ्गुलि देखायी थीं। तब कन्याने उसे पांच अङ्गुलि देखायीं। वरने उन्हें प्रहारका सङ्केत समझ कन्याको मुष्टिका संकेत किया था। वरका उद्देश्य कुछ भी हो सकता था। किन्तु कन्याने वह सङ्केत देख अपनेको पराजित मान लिया; फिर अति आनन्दसे पिताने उसको कन्या सौंप दी। विवाहके पीछे वासर-गृहमें स्वामी और स्त्रीने आलाप आरम्भ किया। स्वामीके मुखसे ग्राम्यशब्द सुन वह चमत्कृत हुयीं। फिर उन्होंने उसे अत्यन्त तिरस्कारके साथ गृहसे निकाला था। मूर्ख कालिदास स्त्रीके निकट उस प्रकार तिरस्कृत हो प्राणत्यागकी इच्छासे सरस्वतीकुण्डमें कूद पड़े। किन्तु उनका प्राण छूटा न था। मूर्ख कालिदास कवि कालिदास बन गये। सरस्वतीकुण्डके माहात्म्य अनुसार अवगाहन मात्रसे ही सरस्वतीने समीपस्थ हो वर दिया था। कालिदास वर पाते ही फिर स्त्रीके निकट जा पहुंचे। उन्होंने स्त्रीको गृहका अर्गल बन्द करते देख द्वार खोलनेके लिये अनुरोध किया। स्त्री स्वर सुनते ही स्वामीका प्रत्यागमन समझ गयी थी। सुतरां उसने सहज ही द्वार न खोल प्रत्यागमनका कारण पूछा। कालिदासने उस पर उत्तर दिया,—"अस्ति कश्चित् वाग्विशेषः" अर्थात् उन्हें कुछ खास तौर पर कहना है। स्त्रीने फिर पूछा—'क्या विशेष कथन है'। कालिदासने द्वारदेश पर खड़े ही खड़े अस्ति, कश्चित् और वाग्विशेषः तीनों पदोंमेंसे एक एक पद पहले बोल तीन काव्य स्त्रीको सुना दिये। 'अस्ति' पदके अनुसार 'अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा' प्रथम श्लोकसे आरम्भ कर सप्तदश सर्ग कुमारसम्भव, 'कश्चित्' पदके अनुसार 'कश्चित् कान्ता-विरहगुरुणा स्वाधिकारप्रमत्तः' प्रथम श्लोकसे आरम्भ कर मेघदूत और 'वाग्विशेषः' पदका वाक् शब्द ग्रहण पूर्वक 'वागर्थाविव सम्पृक्तौ' प्रथम श्लोकसे आरम्भ कर रघुवंश उन्होंने प्रणयन किया। उन्होंने रघुवंश और कुमारसम्भव दो महाकाव्य, मेघदूत नाम खण्ड काव्य, अभिज्ञान शकुन्तला, विक्रमोर्वशी, मालविकाग्निमित्र तीन नाटक और शृङ्गारतिलक, श्रुतबोध, पुष्पबाण-विलास, ऋतुसंहार प्रभृति ग्रन्थ बनाये हैं।

आजकल विशेष प्रमाण द्वारा प्रतिपन्न हुवा है—विक्रमादित्यके सभास्थ जिन नवरत्नोंका नामोल्लेख मिलता, वह सब एक ही समयमें न रहे। शिलालिपि और प्राचीन ग्रन्थसे भी एकाधिक विक्रमादित्यका नाम निकला है। किन्तु यह निश्चय नहीं—कौनसे विक्रमादित्यकी सभामें कालिदास थे? फिर उक्त ग्रन्थोंका छन्दबन्धन, भाषा और कवितानैपुण्य देखते भी प्रथम छह ग्रन्थोंको छोड़ अपर पुस्तक महाकवि कालिदासके हस्तप्रसूत मालूम नहीं पड़ते। इनही कारणोंसे केवल प्रवाद पर निर्भर कर कालिदासकी जीवनी लिखी जा नहीं सकती।

कालिदासकी जीवनी लिखना और अम्बकार समुद्रमें कूद पड़ना एक बात है। उनके सम्बन्धमें विभिन्न लोगोंका विभिन्न मत मिलता है।

बल्लालविरचित भोजप्रबन्धके प्रमाणानुसार कालिदास उज्जयिनीनिवासी भोजराजके सभासद थे। उक्त भोजराजका राजत्वकाल ११०० ई० ठहरा है। (Journal Asiatique, Sept. 1844. p. 250.)

भोजप्रबन्धमें कालिदासके समसामयिक कई पण्डितोंका नाम मिलता है। यथा—कर्पूर, कलिङ्ग, कामदेव, कोकिल, गोपालदेव, तारेन्द्र, दामोदर,

धनपाल, प्रसन्नराघव-ग्रन्थकार, जयदेव, बाणभट्ट, भवभूति, भास्कर, मयूर, मल्लिनाथ, महेश्वर, माघ, मुकुन्द, रामेश्वर प्रभृति। वेदान्ताचार्यकृत विश्वगुणादर्श पढ़नेसे समझते हैं—किसी समय कालिदास, श्रीहर्ष और भवभूति भोजराजकी सभामें वर्तमान थे। किन्तु विशेष प्रमाण मिले हैं कि उक्त सकल पण्डित कालिदासके समकालीन न थे।

जयदेव, बाणभट्ट, भवभूति प्रभृति देखो।

बाणभट्टका हर्षचरित पढ़नेसे ही समझ सकते हैं कि कालिदास बाण और श्रीहर्षसे बहुपूर्व विद्यमान थे। ज्योतिर्विदाभरण नामक एक ज्योतिषग्रन्थ कालिदासका रचित माना जाता है। उसमें लिखा है,—"धन्वन्तरि, क्षपणक, अमरसिंह, शङ्कु, वेतालभट्ट, घटकर्पर, कालिदास, सुविख्यात वराहमिहिर और वररुचि विक्रमके नवरत्नोंमें हैं।* विक्रमने ९५ शक-नृपतियोंको मार कलियुगमें अपना अब्द चलाया। हमने (कालिदास) ३०६८ कलि शताब्दके वैशाख मासमें इस ग्रन्थकी रचना आरम्भ कर कार्तिकमासमें सम्पूर्ण किया।" फिर २०वें अध्यायके ४६वें श्लोकमें कहा है,—"आज भी काम्बोज, गौड़, आन्ध्र, मालव और सौराष्ट्र देशके लोग विख्यात वदान्यवर विक्रमका गुण गाते हैं।"

पूर्वकथित भोजप्रबन्ध और ज्योतिर्विदाभरणको कभी प्रामाणिक ग्रन्थ मान नहीं सकते। कारण १, इतिपूर्व लिख चुके हैं कि नवरत्न विभिन्न समयके लोग थे। २, रचनाप्रणाली आलोचना करनेसे ज्योतिर्विदाभरण कालिदासका करनिःसृत समझ नहीं पड़ता। ३, ज्योतिर्विदाभरणको शेषोक्त वर्णना पढ़नेसे अनुमान करते हैं कि उसके रचित होनेसे बहु पूर्व विक्रमादित्य विद्यमान थे। फिर ज्योतिर्विदाभरणके समय विक्रमाब्द और विक्रमसम्बन्धीय प्रवाद भी चारो ओर फैला था।

जर्मन पण्डित लासनके मतानुसार कालिदास ई० द्वितीय शताब्दको समुद्रगुप्तकी सभामें विद्यमान थे।* विलफोर्ड और प्रिन्सप साहबने लिखा है कि कालिदास प्रायः १४०० वर्ष पूर्व वर्तमान रहे। जर्मन पण्डित वेबरने ई० २यसे ४र्थ शताब्दके मध्य कालिदासका आविर्भावकाल निर्णय किया है।† पीछे जैकोबी साहबने कालिदासका ज्योतिषशब्द पकड़ ठहराया है कि कालिदासको ग्रीक ज्योतिषशास्त्रका ज्ञान था। उसके अनुसार वह ३५० ई० से पहलेके‡ लोग हो नहीं सकते। ज्योतिषी केर्ण, भाऊदाजी, मोक्षमूलर प्रभृतिके मतमें—कालिदासके आविर्भावका काल ई० षष्ठ शताब्द था¶।

हमारे वङ्गदेशीय पुरातत्त्वानुसन्धित्सुगणमें अक्षयकुमार दत्तके मतानुसार ई० ४र्थ शताब्दके मध्यभागके पीछे षष्ठ शताब्दके शेषभागके पहले और ऐतिहासिक रहस्यप्रणेताके मतमें ई० षष्ठ शताब्दको कालिदास विद्यमान थे। प्रधानतः देखते हैं कि अधिकांश पुराविदोंके मतमें कालिदास ई० षष्ठ शताब्दके लोग रहे। उनकी युक्ति यह है,—

उज्जयिनीराज हर्ष विक्रमादित्यने कवि मातृगुप्तके प्रति सन्तुष्ट हो उन्हें काश्मीर राज्य प्रदान किया था। फिर राजा विक्रमादित्य द्वारा कालिदासको अर्ध राज्य दिया जानेका भी प्रवाद है। कल्हण पण्डितने राजतरङ्गिणीमें राजा मातृगुप्तको कवि बनाया है। हर्षचरितके प्रारम्भमें प्रवरसेन और कालिदासका उल्लेख है। प्रवरसेनने वितस्ता नदी पर एक सुवृहत् सेतु निर्माण कराया था। कालिदासने उसी सेतुके उपलक्षमें "सेतुकाव्य" रचना किया। सेतुप्रबन्धके टीकाकार रामदासके भी मतमें कालिदासने सेतुबन्ध

* १००५ विक्रम संवत्‌की बोधगयाके अमरदेवकी शिलालिपिमें उक्त नवरत्नका उल्लेख है।

* Indische Alterthumskunde, II. p. 457, 1158-60.

† Weber's Sanskrit Literature, p. 204.

‡ Monatsberichte der Koniglick Preussischen Akademie der Wissenchaften zu Berlin, 1873, p. 554-558.

¶ Kern's Brihat Sanhitâ, p. 20, Bhâu Daji in the Journal of the Bombay Branch Roy. As. Soc, 1861, p. 19-30, 207-200; Max Müller's India what can it teach us, p. 320

लिखा था। राजतरङ्गिणीके मतानुसार मातृगुप्त और प्रवरसेन समकालीन थे। मातृगुप्त प्रवरसेनको काश्मीर राज्य दे काशीवासी हुये। राघवभट्टने शकुन्तलाकी टीकामें मातृगुप्ताचार्यके कतिपय अलङ्कार-श्लोक उद्धृत किये हैं। वह पढ़नेसे प्रधान कविके बनाये समझ पड़ते और कालिदासकी लेखनी-प्रसूत कहनेसे भी अच्छे लगते हैं। प्रवरसेन तोरमाणके पुत्र थे। वज्रेन्द्र-की कन्या अञ्जनाके गर्भसे उनका जन्म हुवा। पहले तोरमाणके भ्राता काश्मीरमें राजत्व करते थे। (उन्होंने तोरमाणको बन्दी बना दिया।) हिरण्य और तोरमाणके मरने पीछे प्रवरसेनको प्रथम अधिकार मिला न था। इस बात पर झगड़ा लगा—कौन राज्यका प्रकृत उत्तराधिकारी हो। उस समय उज्जयिनी-नाथ विक्रमादित्य (अपर नाम हर्ष) भारतवर्षके एकच्छत्र चक्रवर्ती थे। उन्होंने मातृगुप्तको काश्मीरका राज्य प्रदान किया। उक्त मातृगुप्त ही कालिदास थे। * मोक्षमूलरके मतमें तोरमाण ५०० ई० और प्रवरसेन ५५० ई० को विद्यमान रहे। † सुतरां कालिदास और विक्रमादित्यका विद्यमान रहना उसी समयके मध्य सम्भव था।

नहीं समझते उक्त मतोंमें कौन समीचीन है। मातृगुप्त और कालिदास दोनोंको एक ही व्यक्ति मान नहीं सकते। प्रथमत: किसी प्राचीन पुस्तकमें मातृगुप्त और कालिदास अभिन्न व्यक्ति नहीं लिखे गये हैं। राजतरङ्गिणीमें कवि मातृगुप्तके सम्बन्ध पर अनेक कथा लिखी हैं। किन्तु कल्हण पण्डितने उन्हें एक-बार भी कालिदास नहीं लिखा। क्षेमेन्द्र-विरचित औचित्यविचारचर्चा, सुभाषितावली और सूक्तिकर्णामृत ग्रन्थमें कालिदास तथा मातृगुप्तके भिन्न भिन्न श्लोक उद्धृत हुये हैं। उक्त पुस्तकसमूहसे भी मातृगुप्त और कालिदास परस्पर भिन्न व्यक्ति समझ पड़ते हैं।

* Dr. Bhau Daji, Journal of the Royal Asiatic Society of Bombay, Vol. VIII. p. 244 50.

† Max Müller's India, what can it teach us, p. 316. किन्तु शिलालिपि द्वारा तोरमाण ५०० ई० के कुछ पूर्ववर्ती और उनके पुत्र मिहिरकुल ५३३-५३४ ई० के पूर्ववर्ती समझ पड़ते हैं। (Fleet's Inscriptionum Indicarum, Vol. III, p. 10-11.)

कर्पूरमञ्जरीप्रणेता वासुदेवने अपने ग्रन्थमें मातृगुप्तको अलङ्कार-रचयिता बनाया है। सुन्दर मिश्रका नाट्यप्रदीप पढ़नेसे समझ सकते हैं कि मातृगुप्तने भरत-प्रणीत नाट्यशास्त्रकी विवृति बनायी थी। उक्त प्रमाणोंसे मातृगुप्त नामक एक स्वतन्त्र कविका होना स्पष्ट ही मालूम पड़ता है। अब देखना चाहिये—कालिदास, प्रवरसेन और हर्षविक्रमादित्यके समसामयिक थे या नहीं।

डाक्टर भाउदाजी प्रभृति पुराविदोंने प्रधानत: हर्षचरितमें प्रवरसेन और कालिदासका उल्लेख देख उभयको समसामयिक ठहराया है। श्लोक यही हैं,—

"कीर्त्तिः प्रवरसेनस्य प्रयाता कुमुदोज्ज्वला।
सागरस्य परं पारं कपिसेनेव सेतुना॥ १५॥
सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव॥ १६ *
निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु।
प्रीतिर्मधुरसार्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते॥ १७॥"

(किसी किसी मुद्रित पुस्तकमें "निसर्गसुरंगस्य कालिदासस्य सूक्तिषु" पाठ है।)

उपरि उक्त श्लोक द्वारा इसी विषयका परिचय मिलता कि प्रवरसेन और कालिदास दोनों प्रसिद्ध कवि थे। किन्तु स्पष्ट मालूम नहीं पड़ता—उभय समकालीन थे या नहीं। राजा रामदास विरचित रामसेतुप्रदीप नामक "सेतुबन्ध" की व्याख्याकी प्रस्तावनामें लिखा है—

"इह तावन्महाराजप्रवरसेननिमित्तं महाराजाधिराजविक्रमादित्येनाज्ञप्तो निखिलकविचक्रचूडामणिः कालिदासमहाशयः सेतुबन्धप्रबन्धं चिकीर्षुः।"

राजा प्रवरसेनके निमित्त विक्रमादित्यकी आज्ञासे कालिदासने सेतुबन्ध नामक प्रबन्ध रचना किया।

राजतरङ्गिणीमें लिखा है कि प्रवरसेनको काश्मीरका राज्य मिलनेसे पहले ही हर्षविक्रमादित्यका मृत्यु हुवा था। † (राजतरङ्गिणी ३। २८५—२९०)

सुतरां विक्रमादित्यके आदेशसे प्रवरसेनके निमित्त कालिदास द्वारा प्राकृतभाषामें "सेतुबन्ध" का लिखा

* भाउदाजी, मोक्षमूलर प्रभृति इस श्लोकको छोड़ गये हैं।

† "त्रिगर्तायां मृतं श्रुत्वा स प्रजाप्रभुं भूपतिः।
विक्रमादित्यमप्रणीत् कालधर्मसुपागतम्॥"
(राजतरङ्गिणी ३। २९०)

जाना सम्भवपर नहीं। रामदास ई० षोड़श शताब्द के लोग थे। रामदास देखो। उनके पूर्ववर्ती कुलनाथने अपने विरचित रावणवधकी* टीकाकी सूचनामें लिखा है,—

"श्रीचन्द्रचूड़चरणाम्बुरुहं प्रणम्य, देवीं प्रसाद्य च गिरं कुलनाथनाम्ना।
व्याख्यायते प्रवरसेननृपस्य सूक्तं सन्दे हनिर्मरदशास्यवधप्रबन्धम्॥"

इस स्थानमें कुलनाथने राजा प्रवरसेनको ही 'सेतुबन्ध' रचयिता लिखा है।

औचित्यविचारचर्चा, सूक्तिकर्णामृत प्रभृति ग्रन्थ पढ़नेसे समझते हैं कि प्रवरसेन एक प्रसिद्ध कवि थे। हर्षचरितके दो श्लोक मनोनिवेशपूर्वक आलोचना करनेसे बोध होता कि वाणभट्टसे पूर्व राजा प्रवरसेन 'सेतुकाव्य' और कालिदासने काव्य तथा नाटककी रचनासे प्रसिद्धि पायी थी।

अब स्थिर हो गया कि मातृगुप्त और कालिदास विभिन्न व्यक्ति थे। कालिदासने सेतुबन्ध बनाया न था। इस पक्षमें भी कोई विशेष प्रमाण नहीं कि वह प्रवरसेन अथवा हर्षविक्रमादित्यके समकालीन थे। प्रवरसेन और विक्रमादित्य देखो।

फिर कालिदास किस समय विद्यमान थे? बाणभट्ट, वाकपति, खण्डनखण्डखाद्यप्रणेता श्रीहर्ष, क्षेमेन्द्र, वामन, जयदेव प्रभृति अनेक प्राचीन कवियोंने कालिदासका नामोल्लेख किया है। ५५६ शकको प्रदत्त चौलुक्यराज पुलिकेशीके ताम्रशासनमें भी कालिदास और भारविका नाम मिलता है,—

"येनायोजितवेश्मस्थिरमर्थविधौ विवेकिना जिनवेश्म।
स विजयतां रविकीर्तिः कविताश्रितकालिदासभारविकीर्तिः॥"

सुप्रसिद्ध कुमारिलभट्टने तत्कृत तन्त्रवार्तिकमें कालिदासके शकुन्तलावर्णित "सतां हि सन्देहपदेषु" वचनको उद्धृत किया है।

एतद्भिन्न भोटदेशीय "तेंगुर" ग्रन्थमें कालिदासका नाम और यव तथा वालिद्वीपकी कविभाषामें रघुवंश तथा कुमारसम्भवका अनुवाद देख पड़ता है। पाश्चात्य पण्डितोंके मतमें हिन्दुवोंने ५०० ई० को† यवद्वीप जा उपनिवेश किया था। अतएव यह असम्भव नहीं मालूम पड़ता कि हिन्दुवोंके यवद्वीप जानेसे पहले कालिदास विद्यमान थे।

किसी किसी पाश्चात्य और देशीय पुराविद्के मतमें कालिदासके ग्रन्थमें होराशास्त्रीय कथा और उक्त शास्त्रके 'ग्रीक शब्द'का उल्लेख है। ग्रीकोंका होराशास्त्र ई० तृतीय शताब्दको सम्पूर्ण हुवा। अतएव उक्त शताब्दके पीछे भारतवासियोंने उक्त शास्त्र ग्रहण किया होगा।

जिस शास्त्रमें जातक, यात्रिक और विवाहलग्नादि निरूपित हुवा, वराहमिहिरने उसको ही 'होराशास्त्र' कहा है। प्राचीन ग्रन्थमें 'होरा' शब्द न देख पड़ते भी उक्त शास्त्रका प्रतिपाद्य कितना ही मूल विषय रामायण, महाभारतादि अतिप्राचीन ग्रन्थमें विवृत है। ज्योतिष, होरा, जातक प्रभृति शब्द देखो। सुतरां यह अस्वीकार किया जा नहीं सकता कि होराशास्त्रका प्रतिपाद्य मूल तत्व ग्रीक होराशास्त्र बननेसे बहुत पहले भारतवासी समझते थे।

वराहमिहिरने यवनाचार्योंके ग्रन्थसे होराशास्त्रीय कितना ही विषय संग्रह किया था। वराहमिहिर देखो। इसमें यवनाचार्य वा यवनेश्वरप्रणीत 'अष्टकवर्गविन्दुफल' 'ताजिक शास्त्र', 'नक्षत्रचूडामणि', 'मीनराजजातक', 'यवनसार', 'यवनहोरा', 'रमलामृत', 'लग्नचन्द्रिका', 'हृदयवनजातक', 'स्त्रीजातक' प्रभृति कई संस्कृत ग्रन्थ मिले हैं। वराहमिहिरने (बृहज्जातकमें) भट्टोत्पल, केशवार्क एवं मार्तण्डचिन्तामणिटीकामें विश्वनाथने यवनाचार्यके संस्कृत वचन उद्धृत किये हैं। एतद्भिन्न 'रोमकसिद्धान्त' नामक ज्योतिःशास्त्र संस्कृत भाषामें रचित प्राप्त होता है। शाकल्यसंहिता, हायनरत्न, ज्ञानभास्कर प्रभृति ग्रन्थमें और वराहमिहिर प्रभृति ज्योतिर्विदोंके बनाये पुस्तकमें रोमकाचार्यके संस्कृत वचन उद्धृत हुये हैं।

उपरि उक्त प्रमाण द्वारा बोध होता भारतवर्षीय ज्योतिर्विदोंने होराशास्त्रके किसी किसी विषयमें संस्कृत भाषामें लिखित यवन एवं रोमकाचार्यके ग्रन्थसे

* सेतुबन्धका अपर नाम रावणवध वा दशास्यवधप्रबन्ध है।
† Weber's Sanskrit Literature, p. 208.

साहाय्य लिया है। अथवा उन्होंने ग्रीक ग्रन्थ पढ़ होराशास्त्र लिखा होगा।* परन्तु यह ठीक नहीं जंचता प्रथमतः देखना चाहिये कालिदास प्रभृतिने 'यवन' शब्दमें किस देशके लोगों या किस जातिका उल्लेख किया है। कालिदासने रघुवंशमें लिखा है,—

"पारसीकांस्ततो जेतुं प्रतस्थे स्थलवर्त्मना।
यवनीमुखपद्मानां सेहे मधुमदं न सः॥
संग्रामस्तुमुलस्तस्य पाश्चात्यैरश्वसाधनैः।
शार्ङ्गकूजितविज्ञेयप्रतियोधे रजस्यभूत्॥ ६२॥
भल्लापवर्जितैस्तेषां शिरोभिः श्मश्रुलैर्महीम्।
अपनीतशिरस्त्राणाः शेषास्तं शरणं ययुः॥ ६४॥"

(रघु) पारसीकोंको जय करनेके लिये स्थलपथसे चले थे। वह यवनियोंके वदनकमलका मदराग सह न सके। फिर उन्हीं अश्वारोही (पारसीके) यवनोंके† साथ उनका घोरतर युद्ध हुवा। धूलिसे युद्धक्षेत्र भर गया था। उस समय धनुःके टङ्कार शब्दसे प्रतियोद्धा अनुमित होने लगे। महावीर रघुने यवनोंके श्मश्रु विराजित शिर भल्लास्त्रसे काट रणस्थल समाच्छन्न किया था। उस समय अवशिष्ट यवन मत्थेसे टोपी उतार उनके शरणापन्न हुये।

कालिदासने पारसीकोंको यवन और उनकी रमणियोंको यवनी लिखा है। रघुवंश व्यतीत महाभारतमें भी पारस्यके पार्श्ववर्ती वाह्लीकको रमणियोंको मद्यपानासक्त कहा गया है। यास्कके निरुक्त पाठसे समझ पड़ता है कि वाह्लीक देशके पूर्ववर्ती प्राचीन कम्बोजके लोग पहले संस्कृत भाषामें बातचीत करते थे। सकल पुराणोंके मतसे—भारतकी पश्चिम सीमा 'यवन' है। फिर महाभारतमें रोम नामक जनपद भारतके अन्तर्गत ठहराया गया है।‡ (भारत भीष्म, ९ अ०)

ऋग्वेदमें रुम नामक किसी व्यक्तिका उल्लेख है। अनेक लोग उससे रोमकी उत्पत्ति कल्पना करते हैं। सुतरां रोमकाचार्य और यवनाचार्य सुदूर ग्रीस वा वर्तमान रोमवासी समझ नहीं पड़ते।

पुरातन पारसीक यवनोंकी व्यवहृत प्राचीन जन्द भाषा (वैदिक) छन्दस् भाषाका रूपान्तर और अपभ्रंश है। जन्द देखो। प्राचीन अवस्ताके यस्न प्रभृति ग्रंथ, पढ़नेसे कुछ आभास मिलता है कि प्राचीन पारसीकोंको होराशास्त्रके मूल तत्त्वका ज्ञान था। पारसिक देखो।

सूर्यसिद्धान्तके मतानुसार सूर्यांशसम्भूत असुर मयने ज्योतिषशास्त्र प्रचार किया है। पाश्चात्य पण्डितोंने उसे ग्रीक ज्योतिषी तुरमय (Ptolemaios) माना है।* किन्तु हमारी विवेचनामें पारसिक अवस्ता-शास्त्रोक्त ज्योतिःप्रकाशक 'अहुरमजद' संस्कृत 'असुरमय' समझ पड़ते हैं। असहृत नहीं मालूम होता कि असुरमयके प्रथम ज्योतिःशास्त्रका उद्धारक होनेसे भारतवासियोंने कोई कोई विषय प्राचीन पारसिकों अथवा उनके निकटवर्ती यवनोंसे सीख लिया होगा।†

सुतरां ग्रीक होराशास्त्रके प्रमाणसे कालिदासको चतुर्थ शताब्दका परवर्ती व्यक्ति मान नहीं सकते।‡

कालिदासने शकुन्तलामें शरासन और वनपुष्पमालाधारिणी यवनियोंको मृगयाप्रिय हिन्दूराजाओंको सहचारिणी लिखा** है। यथा—

---

* यवनाचार्यके उक्त सकल ग्रन्थोंका यदि ग्रीकभाषामें अनुवाद होता, तो ग्रीकभाषामें उनका कोई मूल ग्रन्थ देख पड़ता। किन्तु आज तक किसीका मूल ग्रन्थ नहीं मिला।

† "पाश्चात्यैः यवनैः सह।" इति मल्लिनाथ।

‡ यूरोपीय रोम जनपद रोमुलस (Romulus) नामसे हुवा है। (७५३ खृ० पू०)। रोमुलस ट्रय-युद्धसे प्रत्यागत इनियसके वंशधर अधस्तन थे। किन्तु महाभारतमें रोमक और रोमन् जनपदका उल्लेख रहनेसे वह भिन्न जनपद जान पड़ता है।

* See Edicts of Asoka in Inscriptionum Indicarum, Vol. I. and Weber's Sanskrit Literature, p. 253.

† संस्कृत असुर, पारसिक 'अहुर' और मय "मजद" से मिलता है। फिर जिस प्रकार सिन्धुसे 'हिन्दु' और असुसे 'हस' बनता है, उसीप्रकार संस्कृत सौरसे होर बनता है। प्राचीन पारसिक सूर्यको पुंलिङ्ग मानते थे। किन्तु ग्रीकोंने होरा शास्त्रमें इसे स्त्रीलिङ्ग ठहराया। इसी प्रकार 'होरा' शब्द ग्रीक भाषामें स्त्रीलिङ्ग हो गया। (See English Cyclopædia—Science, Vol. I. p. 657.)

‡ कालिदासके कुमारसम्भवमें 'जामित्र' शब्दका उल्लेख है। बहुतसे लोग उक्त शब्दको ग्रीक होराशास्त्रोक्त 'डियामिट्रम्' या डियामिट्रनका अपभ्रंश समझते हैं किन्तु ग्रीक होराशास्त्र सम्पूर्ण होने और ईसाके जन्मसे बहु शताब्द पूर्व होमर प्रभृतिको बनाये ग्रन्थमें वह शब्द देख पड़ता है। सुतरां उस शब्द पर निर्भर कर कालिदासको तृतीय शताब्दका परवर्ती व्यक्ति कह नहीं सकते।

** किसी दूसरे संस्कृत नाटक वा काव्यमें हिन्दू राजाकी सहचारिणी धनुर्बाणधारिणी यवनियोंका ऐसा चित्र अङ्कित नहीं हुवा। एतद्द्वारा भी उपरि उक्त मत कुछ कुछ समर्थित होता है।

"एसो वाणासणहत्थाहिं जवणीहिं वणपुप्फमालाधारिणीहिं परिवुदो इदो एव्व आअच्छदि पिअवअस्सो।" अभिज्ञान-शकुन्तल, २४ प

पुराविदोंने उक्त चित्रको वाह्लीक-रमणीयोंका बताया है। भूरि भूरि प्रमाण मिलता है कि अतिप्राचीन कालसे वाह्लीकोंके साथ भारतवासियोंका सम्बन्ध रहा था, किन्तु ई० १म शताब्दको वह सम्बन्ध टूट गया। इस प्रकारकी स्थलमें असम्भव नहीं, जिससमय वाह्लीकोंके साथ भारतवासी हिन्दुओंका सम्बन्ध रहा, कालिदास उसी समयके लोग होंगे। नासिकसे ई० १म शताब्दकी एक शिलालिपि निकली है, उसमें शकारि नाम मिलता है, विक्रमादित्यका एक नाम शकारि भी था। भारतके नाना स्थानोंमें प्रवाद है कि कालिदास विक्रमादित्यके समकालीन रहे। यदि उक्त प्रवादका कोई अंश प्रकृत हो तो मानना पड़ेगा कि ई० प्रथम शताब्दको उक्त शकारिके राजत्वकालमें कालिदास विद्यमान थे। मेघदूतके २८ से ४३ श्लोक मनोयोगपूर्वक पढ़नेसे अनुमान कर सकते हैं कि वह उज्जयिनीके दशपुर (वर्त्तमान मन्दसौर) में रहनेवाले थे।

अनेक ग्रन्थोंमें कालिदासका नाम प्रचलित है। किन्तु उनमें सब पुस्तक महाकवि कालिदासके करनिःसृत मालूम नहीं पड़ते। प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथने रघुवंश, कुमारसम्भव और मेघदूत तीनकाव्य कालिदासके बनाये बताये हैं।*

नाटकके मध्य अभिज्ञान-शकुन्तला और विक्रमोर्वशी दोनों उन्हीके सुकर निर्गत हैं। कोई कोई मालविकाग्निमित्र नाटक और ऋतुसंहार नामक खण्ड काव्यको भी महाकवि कालिदासका बनाया मानते हैं। किन्तु अभिज्ञानशकुन्तल और मालविकाग्निमित्रकी रचना-प्रणाली मिलानेसे घोर सन्देह उठता है वह एक ही व्यक्तिके हस्तप्रसूत हैं या नहीं।

कालिदास संस्कृत साहित्यके जगत्‌में एक महाकवि हैं। मानवचरित्र-चित्रण, स्वभाववर्णन और सुमधुर छन्दोग्रथनमें उनके तुल्य कवि संस्कृत भाषामें वाल्मीकि व्यतीत किसी दूसरेने जन्म नहीं लिया। कालिदासने स्वरचित प्रत्येक ग्रन्थमें असाधारण कवित्वशक्तिका परिचय दे पाश्चात्य जगत्‌में भारतीय शेक्सपीयर पदलाभ किया है।

उपरि उक्त ग्रन्थ छोड़ 'अम्बास्तव', 'कालीस्तोत्र', 'काव्यनाटकालङ्कार', 'घटकर्पर', 'चण्डिकादण्डस्तोत्र', 'दुर्घटकाव्य', 'नलोदय', 'नवरत्नमाला', 'नानार्थकोष', 'पुष्पवाणविलास', 'प्रश्नोत्तरमाला', 'राक्षसकाव्य', 'लघुस्तव', 'विद्वद्विनोदकाव्य', 'वृत्तरत्नावली', 'वृन्दावनकाव्य', 'शृङ्गारतिलक', 'शृङ्गारसार', 'श्यामलादण्डक', 'श्रुतबोध', प्रभृति बहु ग्रन्थ कालिदासके नामसे ही प्रचलित हैं। किन्तु सन्देह नहीं कि उक्त पुस्तक विभिन्न व्यक्ति द्वारा विभिन्न समयमें बनाये गये हैं। सचराचर लोगोंको दृढ़ विश्वास है कि 'नलोदय' महाकवि कालिदास-विरचित है। किन्तु विशेष प्रमाण मिला है कि उस ग्रन्थको नारायणके पुत्र रविदेवने लिखा था।* उस ग्रन्थकी रामऋषिकृत प्राचीन टीकामें भी उक्त विषयका प्रमाण मिलता है।†

वलभद्र पुत्र कालिदास-प्रणीत 'कुण्डप्रबन्ध' और रामगोविन्दपुत्र कालिदास-विरचित 'त्रिपुरासुन्दरीस्तुतिटीका' ‡ भी प्रचलित है। ज्योतिर्विदाभरण, रत्नकोष, शुद्धिचन्द्रिका, गङ्गाष्टक, और मङ्गलाष्टक प्रभृति ग्रन्थ कालिदास नामधारी भिन्न भिन्न व्यक्तिलिखित हैं। इनको छोड़ कालिदासगणकविरचित 'शत्रुपराजय शास्त्रसार', अभिनवकालिदास § विरचित 'अभिनवभारतचम्पू' तथा 'भागवतचम्पू', काश्यप अभिनव कालिदासकृत 'शृङ्गारकोषभाण,' और नव कालिदासविरचित 'सारसंग्रहकाव्य' मिलता है।

* "माघनायकविः सोऽयं मन्दात्मानुशिष्टया ॥
व्याचष्टे कालिदासीयं काव्यत्रयमनाकुलम् ॥ ५ ॥
कालिदासो गिरां सारं कालिदासः सरस्वतीम् ।
चतुर्मुखो यथा साक्षाद्विदुर्नान्ये तु मादृशाः ॥" ६
(रघुवंश, मल्लिनाथकृत संजीवनी टीका।)

* R. G. Bhandarkar's Reports, Sanskrit Mss, (for 1883-4) p. 16.

† Prof. Peterson's 3rd Report on the Search for Sanskrit. Mss. p. 337.

‡ यह ग्रंथ १७५१ ई० को बना था।

§ नाथमाचार्यने अपने 'संक्षेप शङ्करजयमें अपना परिचय अभि० कालिदासके नामसे दिया है

कालिदास नामके हिन्दीमें भी कई कवि हो गये हैं। उनकी कविता हृदयग्राही और मनोरञ्जक है।

कालिदासकी ग्रन्थालोचना।

युवा कवि कालिदासको अपनी उम्मेदवारी एक ऐसा देशमें करना पड़ी थी, जो सुन्दर और पर्वत, खाड़ी, मैदान तथा छोटी नदियोंसे परिपूर्ण था। कालिदास ब्राह्मण थे। इसी कारण वह युद्ध और राजनीतिसे अपनेको अलग रखते थे। हां, देशके साहित्यसे सम्बन्ध रखनेवाले युद्धविग्रहमें वह सम्मिलित थे। उन्हें क्या लिखना था? पूर्वावस्था और प्रकृति दोनों ही सुन्दर होती हैं। प्रकृति पदार्थोंका वर्णन करना युवा कविके लिये सबसे अच्छी चीज है। कालिदासने अपनी उम्मेदवारी ऋतुसंहार लिखनेमें बितायी। वास्तवमें उन्हें ऋतुवर्णन लिखनेका प्रलोभन शिलाफलकोंने दिया था। कारण देशमें चारो ओर जो शिलाफलक मिलते थे, उनसे प्रत्येकमें ऋतुवर्णन वर्तमान था। उन्होंने अपने मनमें विचारा—यदि वह सम्पूर्ण ऋतुवोंका वर्णन एक साथ लिख सकते, तो देशका बड़ा उपकार करते। इसीसे कालिदासने ऋतुसंहार लिखनेका काम अपने हाथमें ले लिया। भाषा परिमार्जित नहीं है। उसमें पुनरुक्ति, व्याकरण-लेखन प्रणाली और भाव सम्बन्धी त्रुटियां बहुत हैं। अंगरेजी कवि टामसनने "सिजन्स" नामक ऋतुवर्णनका एक ग्रन्थ लिखा है। उक्त ग्रन्थ ऐतिहासिक घटनावोंसे परिपूर्ण हैं। फिर स्थान स्थान पर टामसेनने विभिन्न ऋतुवोंमें प्राचीन समयके दृश्य दिखानेकी चेष्टा की है। किन्तु कालिदासने अपने ग्रन्थ ऋतुसंहारमें कहीं इतिहासकी ओर ध्यान नहीं दिया है। उन्होंने ग्रीष्म ऋतुसे आरम्भ किया है। कारण उत्तरभारतमें ज्योतिषी वर्षाऋतुसे ही वर्षारम्भ करते हैं। यद्यपि उनकी प्रतिभा कवित्वपूर्ण और कुशाग्र थी, तथापि पूर्णरीतिसे परिमार्जित न थी, स्त्रीत्व वा प्रकृतिका सौन्दर्य उन्होंने भली भांति नहीं बताया। परन्तु उनका हृदय बहुत चुलबुला था। जहां दूसरे कुछ नहीं देखते, वहां उन्हें सुषमा देख पड़ती है। गहरी दृष्टिका पहला झाड़ कीड़ा, घास और धूल सबको बहा ले जाता है। कालिदासने उस चालको कविकी दृष्टिसे देखा है। नाले घूम घूम कर बहते हैं। कालिदासने उनकी सांप-जैसी चाल बड़े ध्यानसे देखी है, जो मेढ़कोंको डरा देता है। एक बात पक्की है। कालिदासकी आदि कविताका अनोखापन यह है कि उन्होंने स्त्रीसे अधिक प्रकृतिकी प्रशंसा की है।

फिर उन्होंने अपने देशके पुराण पढ़े, शिक्षा समाप्त की और अपना ध्यान रङ्गमञ्चपर लगा दिया। उनका दूसरा ग्रन्थ देशहितैषितापूर्ण एक नाटक है। विदिशा मालवका एक भाग है। कालिदासके प्रथम ऐतिहासिक ग्रन्थमें विदिशाका इतिहास परिपूर्ण है। मालवसे आगे वह भ्रमणको न गये थे। उन्होंने अग्निमित्रका इतिहास लिखा और नायिकाका नाम मालविका रखा है। उज्जैनका प्रद्योतवंश पतित हो गया था। मालवदेश मगधमें मिला लिया गया था। उसी समय अग्निमित्र ब्राह्मणके आधीन विदिशा राज्य स्थापनका वर्णन कर उन्होंने मालवके लोगोंको प्रसन्न करनेकी चेष्टा की हैं। वास्तवमें अशोकके बौद्धराज्यका पतन और ब्राह्मणसाम्राज्यका अभ्युदय युवा कवि कालिदासके लिये एक अच्छा विषय बन गया। इस ग्रंथमें भी कालिदासने प्रकृतिके सौन्दर्यको अधिक अपनाया है। उन्होंने प्रायः इसप्रकारके वाक्य लिखे हैं। 'फूलदार पेड़ोंकी डालियोंका हिलना झुलना देख नाचनेवाली लड़कियां लज्जामें आ जाती हैं।' अनन्तर उनके भ्रमणकी परिसीमा बढ़ती और "मेघदूत" में वह मालवसे आगे निकलते हैं। मालवकी पूर्व सीमासे वह उसकी चारो ओर घूमते, कई आवश्यक स्थान देख भाल पूर्वमें वह फिर उसमें पहुंचते और उत्तरमें उससे बहुत आगे निकल चलते हैं। किन्तु उनकी प्रीति अभी मानसिक है, वह अभी प्रकृतिकी बहुत प्रशंसा करते हैं। किन्तु उनकी भाषा बहुत परिमार्जित हो गयी है। और उनकी लेखनप्रणाली बहुत अधिक चित्तको आकर्षण कर लेती है।

उनकी कविताका भाव बदल जाता है। वस्तुओं और मानुषिक लालसावोंका वह अधिक विचार करते और मनुष्यके दुःखोंपर ध्यान नहीं देते। वह

अपने नायकोंके लिये वेद ढूंढ़ते और किसी दिव्य वा अर्धदिव्य पुरुषको अपने ग्रन्थका नायक चुनते हैं। उनका दूसरा नाटक विक्रमोर्वशी है। उसके दृश्य पृथिवीसे बदलकर आकाश पर पहुंच गये हैं। किन्तु उनका प्यार अभी उत्साह है और प्रकृतिकी प्रशंसा करना उनमें अभी कम नहीं पड़ा है।

उनकी कविता पर दूसरा परिवर्तन पड़ता है। वेदोंसे वह प्रसन्न नहीं होते। वह अधिक शुष्क और अधिक रूपाविहीन थे। इसलिये वह वेदोंको छोड़ देना चाहते हैं। वह अपनी उपासनामें प्रकाश खोजते और शैवमत अवलम्बन करते हैं। अब वह चाहते हैं कि अपने देवकी उचित प्रशंसा करें। उन्होंने पृथिवी और वायुके प्रत्येक द्रव्यको भली भांति समझ बूझ लिया है। अब उन्हें आकाशकी ओर ध्यान देना है। मेघदूतमें जहां उन्होंने अपनी कविता समाप्त की थी, वहींसे वह प्रारम्भ करते हैं। दृश्य इन्द्रपुरीसे ब्रह्मलोक और ब्रह्मलोकसे शिवलोकको पहुंचता है। उन्होंने कामदेवके भस्म होनेकी बात लिख सौन्दर्यका अच्छा वर्णन किया है। उसके पीछे उनकी प्रीति पारलौकिक हो गयी है।

पार्वती शिवसे मिलना चाहती हैं, शरीरसे नहीं—आत्मासे। देशके इतिहासमें ऐसी प्रीतिका भाव अज्ञात था। इसी अलौकिक प्रीतिके सहारे कालिदासने अपने इष्टदेवका गुणगान किया है।

पहले उन्होंने ऐहिक और पीछे पारलौकिक विषय लिखे हैं। पहली बात तो साधारण थी। उसका नैतिक उद्देश्य सन्देहपूर्ण था। फिर उनकी दूसरी बात लोगोंकी समझमें आती न थी। इसलिये उन्होंने अपनी हृद्धावस्थामें मानुषिक और दैवी भावोंके मिलानेकी चेष्टा कर दो ग्रन्थ लिखे, जिनकी प्रशंसा समग्र जगत् मुक्त-कण्ठसे करता है। उनका शकुन्तला नाटक ऐहिक और पारलौकिक भावोंका मिश्रण है। शकुन्तला पृथिवी और स्वर्ग दोनोंसे सम्बन्ध रखती है। कुमारसम्भव और शकुन्तलामें उनका स्त्री-सौन्दर्य विचार बहुत बदल गया है। कुमारसम्भवमें कामदेव महादेवका ध्यान डिगा न सके और पार्वतीके पीछे जाकर छिप रहे। इससे यही भाव निकलता है कि भौतिक सौन्दर्य दिव्य भावोंके सामने तुच्छ है। शकुन्तलामें भी वह स्वर्गके उस स्थानमें पहुंच गये हैं, जहां पृथिवीकी कामिनी जा नहीं सकती।

परन्तु उनका अन्तिम और विशाल ग्रन्थ रघुवंश है। उसमें उन्होंने ईश्वरके अवतारोंका वर्णन किया है। इसमें कालिदासने वाल्मीकिसे सामना किया है। किन्तु कालिदास उनसे बहुत आगे निकल गये हैं। वाल्मीकिने केवल रामका ही वर्णन किया है। परन्तु कालिदासने उनके पूर्वपुरुषोंका भी वर्णन कर कई दिव्य गुणोंका परिचय दिया है। दलीपमें अधीनता, रघुमें शक्ति, अजमें प्रेम, दशरथमें राजोचित गुण और राममें उक्त समग्र दिव्य गुणोंका पूरा आभास पाया जाता है। इसी क्रमसे कालिदासके समग्र ग्रंथ लिखे गये हैं। उनके देखनेसे मालूम होता है कि, कालिदासने अपने विचार धीरे धीरे बढ़ाये हैं। प्रकृत पदार्थोंके वर्णनसे आरम्भ कर उन्होंने अवतारोंका स्वरूप और ईश्वर तथा मनुष्यका सम्बन्ध दिखा दिया है।

अब यह विषय विचारणीय है—क्या उक्त सातो पुस्तक एकही ग्रंथकारके लिखे हैं। इसमें सन्देह नहीं कि—रघुवंश और कुमारसम्भव एक ही कविके बनाये हैं। कारण उक्त दोनों पुस्तकोंकी रचना मिलती जुलती है। फिर शकुन्तला भी उक्त दोनों पुस्तकोंके रचयिताकी ही लिखी है। कारण एकका सूक्ष्म भाव दूसरेमें बढ़ा दिया गया है। विक्रमोर्वशीके भी ४र्थ अध्यायका भाव मेघदूत और कुमारसम्भवमें विद्यमान है। ऋतुसंहार और मालविकाग्निमित्रके सम्बन्धमें समालोचकोंका मत नहीं मिलता। परन्तु ध्यानपूर्वक विक्रमोर्वशी, शकुन्तला और मालविकाग्निमित्र पढ़नेसे तीनों ग्रंथोंके भाव मिलते और तीनों ग्रंथ एक ही ग्रंथकारके लिखे मालूम पड़ते हैं। लोगोंका यह कहना कि मालविकाग्निमित्र किसी दूसरे कविका लिखा है, बिलकुल झूठ है। कारण कालिदासके भावोंका ऐसा अनुकरण दूसरा उस समय कर न सकता था।

जिन्हें लोग कालिदासका अनुकरण समझते, वह

उनको युवावस्थाके लिखे ग्रन्थ हैं। पीछे कालिदासने अपने भावों और विचारोंको अधिक सुधारा है। ऋतुसंहारकी भी बहुतसी बातें कालिदासके दूसरे ग्रन्थोंमें मिलती हैं। ऋतुसंहारमें उन्होंने कविने भारतके एक एक भागका वर्णन किया है। दूसरे ग्रन्थमें वह उससे बहुत आगे बढ़ गये हैं। परन्तु ऋतुसंहारमें उन्होंने जिस भावका बीज डाला, वही दूसरे ग्रन्थोंमें वृक्ष बन गया है। इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि कालिदास ऋतुवर्णन करने पर बड़ा प्रेम रखते थे।

मेघदूतमें वर्षा, शकुन्तलामें ग्रीष्म, विक्रमोर्वशीमें शीत, कुमारसम्भवमें वसन्त, मालविकाग्निमित्रमें राजोद्यानकी वसंत और रघुवंशमें षट्ऋतुवर्णन विद्यमान हैं। किन्तु ऋतुसंहारमें अवशिष्ट समग्र ग्रंथोंके वर्णनका बीज विद्यमान है। इससे यह विषय असन्दिग्ध है कि उक्त सातो ग्रंथ कालिदासके ही बनाये हैं।

कालिदासक (सं० पु०) कालिदास स्वार्थे कन्। कालिदास, भारतके महाकवि।

कालिदास त्रिवेदी—एक विख्यात हिन्दुस्थानी कवि। दाक्षिणात्यके गोलकुण्डमें अवस्थिति करते समय कालिदास त्रिवेदी औरंगजेब बादशाहके पास रहते थे। उसके पीछे वह जम्बू प्रदेशमें रघुवंशीय योगजित्सिंह नामक राजाके निकट चले गये। उनके पास रह उन्होंने 'वधूविनोद' बनाया था। १४२३ से १७१८ ई० तक जिन कवियोंने जन्म लिया, उनमें २१२ कवियोंके १००० छन्द एकत्र कर कालिदासने एक कविता-संग्रह प्रणयन किया। उक्त पुस्तकका नाम 'कालिदासहजारा' है। कालिदासहजारा पुस्तकको विशेष सुख्याति है। उनके पुत्र उदयनाथ त्रिवेदी और पौत्र दूलह त्रिवेदी दोनों ही ग्रंथकार रहे।

कालिनी (सं० स्त्री०) कालः शिरः अधिष्ठातृतया अथवा कालः आकाशस्थः पुरुषाकारो लुब्धकः सन्निकृष्टत्वेन अस्त्यस्याः, काल-इन-ङीप्। १ आर्द्रा नक्षत्र। कालयति प्रेरयति, काल-णिच्-णिनि। २ प्रेरणकारिणी, भेजनेवाली।

कालिन्द (सं० क्ली०) कालिं जलराशिं ददाति, कालि दा-क पृषोदरादित्वात् सुम्। कालिङ्ग, तरबूज, कर्मोटा।

कालिन्दक (सं० क्ली०) कालिन्द स्वार्थे कन्। तरबूज, कर्मोटा।

कालिन्दिका, कालिन्दी देखो।

कालिन्दी (सं० स्त्री०) कालिन्दात् कलिन्दाख्य-पर्वतात् तत्सन्निकृष्टदेशाद्वा जाता निःसृता वा, कलिन्द-अण्-ङीप्। १ यमुना नदी। २ श्रीकृष्णकी एक स्त्री। ३ असितकी स्त्री और सगरकी माता। ४ अरुण त्रिवृत्, निसोत। ५ श्वेतकिणोहि, एक ओषधी। ६ कोई असुरकन्या। ७ एक रागिणी।

कालिन्दी—उड़ीसेका एक वैष्णव सम्प्रदाय। कालिन्दी प्रायः कोरी-चमार नीच जाति होते हैं। वह कौपीन वगैरह पहने घरमें भी रहते हैं। विवाह आदि स्वजातिमें ही होता है। उक्त सम्प्रदाय कोरीचमार प्रभृति नीच जातिका गुरु है। वह शवको न जला मृत्तिकामें गाड़ देते हैं। फिर नौ दिन अशौच मान दशम दिवस श्राद्ध कर शुद्ध होते हैं। कालिन्दियोंके मठ पृथक् पृथक् हैं, महन्तोंके शिष्य अपने अपने मठमें अलग रहा करते हैं।

कालिन्दी—एक शाखा नदी। बङ्गदेशके खुलना जिलेमें यमुना नाम्नी नदी प्रवाहित है। कालिन्दी उसीकी शाखा नदी है। वह वसन्तपुरके निकट यमुनासे अलग हो सुन्दरवनमें रायमङ्गल नामक स्थान पर जा गिरी है। कालिन्दी सुगभीर है। कलकत्तेसे बड़ी बड़ी नौकायें उक्त नदीपथसे पूर्वाभिमुख गमन करती हैं।

कालिन्दीकर्षण (सं० पु०) कालिन्दीं कर्षति कालिन्दी-कृष कर्तरि ल्यु यद्वा कर्षतीति कर्षणः, कालिन्द्याः कर्षणः, ६-तत्। बलदेव। बलदेवके कालिन्दिकर्षणकी कथा हरिवंशमें इस प्रकार लिखी है,—किसी समय बलदेवने स्नान करनेके लिये यमुना नदीको बुलाया था। किन्तु वह स्त्रीस्वभावसुलभ भीरुतावशतः उनके समीप उपस्थित न हुयीं। बलदेव यमुनाके उस व्यवहार पर बहुत बिगड़े थे। फिर वह अपने अस्त्र हलसे उन्हें आकर्षण कर वृन्दावन लेगये। (हरिवंश, १०२ अ०)

कालिन्दीभेदन (सं० पु०) कालिन्दीं भिनत्ति, कालिन्दी-भिद् कर्तरि ल्यु, कालिन्द्या भेदनो वा बलराम।

कालिन्दीसू (सं॰ पु॰) कालिन्दीं यमुनां सूते। सूर्य, आफताब।

कलिन्दीसू (सं॰ स्त्री॰) कालिन्दीं यमुनां सूते, कालिन्दी-सू-क्विप्। यमुनाको माता, सूर्यकी पत्नी। संज्ञा।

कालिन्दीसोदर (सं॰ पु॰) कालिन्द्याः यमुनायाः सोदरः सहोदरः, ६-तत्। यम। यम और यमुनाने सूर्यकी पत्नी संज्ञाके गर्भसे जन्म ग्रहण किया था।

कालिम (अ॰ पु॰) १ संस्थान विशेष, एक ढांचा। वह पिष्टक वा काष्ठसे बनता और गोलाकार रहता है। कालिमपर धुली टोपियोंको भिगाकर चढ़ाते हैं। उससे सूखने पर वह कड़ी पड़ जाती हैं। २ शरीर, जिस्म।

कालिमा (सं॰ पु॰) कालस्य भावः, काल-इमनिच्। १ कृष्णवर्ण, स्याही, कालापन। २ मलिनता, मैल।

कालिम्मन्या (सं॰ स्त्री॰) आत्मानं कालीं मन्यते, काली-मन्-खश्-मुम् ह्रस्वश्च। १ अपनेको कृष्णवर्ण विवेचना करनेवाली स्त्री, जो औरत अपनेको स्याह खयाल करती हो। २ अपनेको कालीदेवी माननेवाली स्त्री।

कालिय (सं॰ पु॰) के जले आलीयते, क-आ-ली-क। १ सर्पविशेष, एक सांप। गरुड़का भक्ष्य वस्तु हरण करनेसे गरुड़के साथ उसका युद्ध हुवा था। कालिय उसमें हार गया फिर वह गरुड़के भयसे यमुनाह्रद-स्थित जलमें छिपकर रहने लगा। इसीसे उसको कालिय कहते हैं। २ कलियुग। (त्रि॰) ३ काल-सम्बन्धीय, वक्तके मुताल्लिक।

कालियक (सं॰ क्ली॰) १ कृष्ण अगुरु, काला अगर। २ पीतचन्दन। ३ दारु हरिद्रा। ४ मलेन्द्रीकाष्ठ, किसी किस्मका देवदारु। ५ शिलाजतु।

कालियदमन (सं॰ पु॰) कालियं दमयति, कालिय-दम-णिच्-ल्यु। १ श्रीकृष्ण। भागवतमें कालियदमनकी कथा इसप्रकार वर्णित है,—कालियसर्प यमुना नदीके जिस ह्रदमें रहा, उसका जल बहुत विषाक्त हो गया। किसी दिन श्रीकृष्ण गोपोंके साथ उसी ह्रदके निकट गोचारण करते थे। गोप और गोकुलको तृष्णा लगी। किन्तु उक्त ह्रदका जल पीतेही सबका जीवन विनष्ट हो गया। कृष्ण उक्त काण्ड देख तीरस्थ कदम्ब पर चढ़े और ह्रदमें कूद पड़े। उन्होंने युद्ध कर कालियकी फण तोड़ डाली थी। किन्तु उसका जीवन बच गया। फिर श्रीकृष्णने उसे समुद्रमें रहनेके लिये यमुनासे निर्वासित किया। (भागवत १०।१६) किन्तु कोई कोई कहता है कि राजा कंसने श्रीकृष्णसे कालिय-ह्रदके फूल मंगाये थे। श्रीकृष्ण यमुनामें कूद और उक्त नागको नाथ फूल लेगये। (क्ली॰) कालियस्य दमनम्, ६-तत्। २ कालिय सर्पके दौरात्म्यका निवारण। ३ श्रीकृष्ण लीलाका एक अभिनय।

कालियह्रद (सं॰ पु॰) कालियेन अधिष्ठितः ह्रदः मध्यप॰। कालिय सर्पके रहनेका ह्रद।

कालिया—बङ्गदेशस्थ यशोहर जिलेके कालिया परगने-का एक गांव। वहां अनेक कायस्थ और वैद्य रहते हैं। पूजाके समय नौ-वाइकोंमें स्पर्धाकी धूम पड़ जाती है।

कालियाचक—बङ्गालके मालदह जिलेका एक कसबा। वह अक्षा॰ २०° ५१′ १५″ उ॰ और देशा॰ ८८° ११′ पू॰ में गङ्गाके तीर अवस्थित है। पहले वहां नीलकी एक बड़ी कोठी थी।

कालियाबर—आसाम अञ्चलके नौगांव जिलेका एक ग्राम। वह ब्रह्मपुत्र नदी पर जिलेकी पूर्व ओर पड़ता है। ब्रह्मपुत्रमें आने जानेवाले जहाज कालियाबरमें ठहरते और यात्रियोंको ग्रहण करते हैं।

कालिल (सं॰ त्रि॰) कालः कृष्णवर्णः अस्यास्ति, काल इलच्। सीमादिपामादिपिच्छादिभ्यं श्चेलचः। पा ५।२।१००। कृष्णवर्णयुक्त, काले रंगवाला।

कालिष्ठ (सं॰ त्रि॰) अयमनयोरतिशयेन कालः, काल-इष्ठन्। उभयके मध्य अतिशय कृष्णवर्ण, दोमें ज्यादा काला।

काली (सं॰ पु॰) कालः कालरूपः खड्गः अस्त्यस्य, काल-इनि। १. परानन्दमत-सिद्ध परमेश्वर।

"कालिन् कालिमलध्वंसिन् ध्वंसयाशु मदापदः।"
(परानन्दके मतको ईश्वरप्रार्थना)

(त्रि॰) कालयति प्रेरयति, काल-णिच्-णिनि। २ प्रेरक, तहरीक देनेवाला, जो चलाता हो। (स्त्री॰) कालः कृष्णवर्णो ऽस्त्यस्याः काल-ङीप्। जानपदकुण्डगोणस्थलभाजनागकालेत्यादि। पा ४।१।४२।

३ शान्तनु राजाकी स्त्री। ४ भीमसेनकी एक पत्नी। ५ अग्निशिखा विशेष, आगकी एक लौ। ६ रात्रि, रात। ७ विद्युत्, बिजली। ८ निन्दा, बदनामी। ९ नूतन मेघसमूह, घटा। १० मसी, स्याही। ११ कृष्णवर्ण स्त्री, काली औरत। १२ कृष्णवर्ण, कालारंग। १३ चीरकीट, मट्टे का कीड़ा। १४ नीली, नील। १५ पाटल। १६ मञ्जिष्ठा, मंजीठ। १७ कृष्णवेत्र, काला बेंत। १८ कृष्ण कार्पास, काली कपास। १९ कृष्णजीरक, कालाजीरा। २० पृथ्वीका। २१ कृष्ण विद्युत्, काला बिजली। २२ वृश्चिकाली, बिछुवा। २३ कण्टकपाली।

काली (सं० स्त्री०) कालस्य शिवस्य पत्नी-ङीष्। कालिका देवीके ललाटसे आविर्भूता एक देवी। चण्ड वधके समय असुरोंसे लड़ते लड़ते क्रोध भरमें भगवती-मुख कृष्णवर्ण हो गया था। फिर उनके ललाट देशसे करालवदना असिपाश प्रभृति अस्त्रपाणि कालिका देवीका आविर्भाव हुवा। (मार्कण्डेयपु०, ८७।५)

कालिकापुराणमें उनका रूपादि इस प्रकार वर्णित है,—"नीलोत्पलकी भांति श्यामवर्ण है। चार हस्त हैं। दक्षिण हस्तद्वयमें खट्वाङ्ग एवं चन्द्रहास और वाम हस्तद्वयमें चर्म तथा पाश है। गलेमें मुण्डमाला पड़ी है। परिधानमें व्याघ्रचर्म विराजित है। अङ्ग कृश है। दन्त दीर्घ है। लोलजिह्वा अति भयङ्कर देख पड़ती है। चक्षु आरक्त हैं। काली भीम नाद कर रही हैं। वाहन कबन्ध है। मुख विस्तृत और कर्ण स्थूल हैं। उक्त देवी तारा और चामुण्डा नामसे भी अभिहित होती हैं। उनकी आठ योगिनियोंके नाम हैं,—त्रिपुरा, भीषणा, चण्डी, कर्त्री, हन्त्री, विधात्रिका, कराला, और शूलिनी। उक्त योगिनी भी देवीके साथ पूजित और अनुध्यात होती हैं। यावतीय देवीगणमें उन्हींकी पूजा करनेसे सर्व कामना सिद्धि मिलती है।" (कालिकापु० ६० अ०) काली दश महाविद्याओंके मध्य प्रथम महाविद्या है। यथा—

"काली तारा महाविद्या षोड़शी भुवनेश्वरी।
भैरवी छिन्नमस्ता च विद्या धूमावती तथा॥
बगला सिद्धविद्या च मातङ्गी कमलात्मिका।
एता दशमहाविद्या सिद्धविद्याः प्रकीर्त्तिताः॥" (तन्त्रसार)

काली, तारा, षोड़शी, भुवनेश्वरी, भैरवी, छिन्नमस्ता, धूमावती, बगला, मातङ्गी और कमला दश मूर्तिका नाम महाविद्या है। उन्हें सिद्धविद्या भी कहते हैं। सतीने दक्षयज्ञमें जाते समय बार बार शिवसे अनुमति मांगी थी। किन्तु महादेवने उन्हें किसी प्रकार अनुमति न दी। उसीसे सतीने उक्त दशमूर्ति बना और शिवको डरा अनुमति ग्रहण की। दशमहाविद्या देखो।

काली मूर्तिका ध्यान इस प्रकार है,—

"करालवदनां घोरां मुक्तकेशीं चतुर्भुजाम्।
कालिकां दक्षिणां दिव्यां मुण्डमालाविभूषिताम्॥
सद्यश्छिन्नशिरःखड्गवामाधोर्द्ध्वकराम्बुजाम्।
अभयं वरदञ्चैव दक्षिणोर्द्ध्वाधःपाणिकाम्॥
महामेघप्रभां श्यामां तथा चैव दिगम्बरीम्।
कण्ठावसक्तमुण्डालीगलद्रुधिरचर्च्चिताम्॥
कर्णावतंसतानीतशवयुग्मभयानकाम्।
घोरदंष्ट्रां करालास्यां पीनोन्नतपयोधराम्॥
शवानां करसङ्घातैः कृतकाञ्चीं हसन्मुखीम्।
सृक्कद्वयगलद्रक्तधाराविस्फुरिताननाम्॥
घोररावां महारौद्रीं श्मशानालयवासिनीम्।
बालार्कमण्डलाकारलोचनत्रितयान्विताम्॥
दन्तुरां दक्षिणव्यापिमुक्तालम्बिकचोच्चयाम्।
शवरूपमहादेवहृदयोपरि संस्थिताम्॥
शिवाभिर्घोररावाभिश्चतुर्दिक्षु समन्विताम्।
महाकालेन च समं विपरीतरतातुराम्॥
सुखप्रसन्नवदनां स्मेराननसरोरुहाम्।
एवं सञ्चिन्तयेत् कालीं सर्वकामार्थसिद्धिदाम्॥" (तन्त्रसार)

काली करालवदना, भयङ्करी, मुक्तकेशी, चतुर्भुज-विशिष्टा और मुण्डमालाभूषिता हैं। उनके अधोवाम हस्तमें सद्यः कर्त्तित मुण्ड एवं ऊर्ध्व वाम हस्तमें खड्ग और ऊर्ध्व दक्षिण हस्तमें अभय चिह्न तथा अधो दक्षिण हस्तमें वरदान भङ्गिमा है। वह महामेघकी भांति श्यामवर्णा उलङ्गिनी हैं। उनके कण्ठदेशमें मुण्डमाला है। उससे रक्तधारा विगलित हो रही है। कर्णद्वयमें कर्णभूषणके स्थल पर दो शव लम्बित हैं। वह भीमदशना, करालमुखी, पीनोन्नतस्तनी, शवगण-हस्तसमूहनिर्मित मेखलाधारिणी और हास्यमुखी हैं। उभय ओष्ठप्रान्तसे रक्तधारा गलित होती है। उसीसे उन्हें स्फुरितमुखी भी कहते हैं। काली भयङ्कर

शब्दकारिणी, भयङ्करमूर्ति, श्मशानवासिनी, अरुण-तुल्यलोचनत्रयविशिष्टा, करालदन्ता, दक्षिणाङ्गव्यापि-मुक्तकेशपाशयुक्ता, शवरूपिमहादेव-हृदयस्थिता, भय-ङ्करशब्दकारिशिवागणपरिवेष्टिता, महाकालके साथ विपरीत सङ्गममें आसक्ता और सुखप्रसन्नवदना हैं। इसीप्रकार सर्वकामार्थसिद्धिदायिनी कालीकी चिन्ता करना चाहिये।

महाकाली, दक्षिणाकाली, भद्रकाली, श्मशान-काली, गुह्यकाली और रक्षाकाली प्रभृति नामानुसार कालीमूर्तिके विविध भेद हैं। देवी मूलप्रकृति हैं। स्वल्पबुद्धि और दुर्बल मानवोंके उपासना कार्यमें सुविधा करनेके लिये तन्त्रादि शास्त्रमें उक्त प्रकृतिके काली, तारा प्रभृति नाम और रूप कल्पित हुये हैं। महानिर्वाणतन्त्रमें भी ऐसा ही लिखा है,—

> "उपासकानां कार्याय पुरैव कथितं प्रिये।
> गुणक्रियानुसारेण रूपं देव्याः प्रकल्पितम्॥"
>
> (महानिर्वाण, १३ उल्लास)

उपासकोंके कार्यके लिये ही गुणक्रियानुसार देवीका रूप कल्पित होता है।

आद्य शक्तिकी प्रधान मूर्ति काली हैं। शाक्तोंमें प्रायः दश आने लोग उक्त मूर्तिके उपासक हैं। भग-वतीकी जितनी मूर्ति हैं, उनमें दुर्गा और काली मूर्तिका बहुत प्रचार है। सहज ही निर्णय करना दुःसाध्य है—कितने समयसे उक्त मूर्तिकी कल्पना की गयी है। अनेक पाश्चात्य पण्डितों और तन्मतावलम्बी प्राच्य विद्वानोंके कथनानुसार कालीकी मूर्ति हिन्दूवों की मौलिक न थी, वह भारतके आदिम अधिवासी अनार्योंकी देवदेवीसे संगृहीत हुयी। नहीं समझ पड़ता वैसी कल्पनामें कोई फल है या नहीं। कारण अनेकानेक प्राचीन पुराणोंमें भगवतीकी उक्त मूर्तिका वर्णन मिलता है। फिर भी इतना मानना पड़ेगा कि तान्त्रिक युगमें ही उक्त मूर्तिकी उपासनाका नानाविध विधि नियम बना और चला है। तन्त्र की बात छोड़ आगे बढ़ देखना चाहिये—पुराणादि-में भगवतीकी कालीमूर्तिकी उत्पत्ति, पूजा, ध्यान इत्यादिके सम्बन्धमें क्या विवरण मिलता है।

पुराणोंमें मार्कण्डेय-पुराण अपेक्षाकृत प्राचीन गिना जाता है। जिस देवीमाहात्म्यके पढ़ने या सुनने-से इन्द्रके ऐश्वर्य तुल्य ऐश्वर्य भोग किया जाता, वह चण्डी नामक अपूर्व पुस्तक भी मार्कण्डेयपुराणके ही अन्तर्गत आता है। कालिका मूर्तिकी उत्पत्ति-कथा चण्डीमें दो स्थान पर कही है। प्रथम,—महिषासुरके वध पीछे देवता, शुम्भ—निशुम्भके अत्या-चारसे उत्पीड़ित हो देवीका स्तव करते थे। उसी समय भगवतीने जाह्नवीजलमें स्नानार्थ जानेके छलसे उनके निकट उपस्थित हो पूछा था—'तुम यहां क्यों आये हो, देवतावोंके उक्त प्रश्नका उत्तर देनेसे पहले ही भगवतीके शरीरसे शिवा अम्बिकाने निकल कर कहा 'दैत्यपतिकर्त्तृक निराकृत और तदीय भ्राता निशुम्भकर्त्तृक पराजित हो देवता हमारा स्तव करते हैं। अम्बिका भगवतीके शरीरकोषसे निकली थीं। इसीसे वह कौषिकी नामसे विख्यात हुयीं और हिमा-चलपर रहने लगी। कौषिकीकी उत्पत्तिके पीछे भगवतीने भी स्वीय गौरवर्ण छोड़ कृष्णवर्ण धारण किया था। इसीसे वह भी 'कालिका' * कहायीं और हिमाचलपर ही रहने लगीं। उक्त स्थल पर चण्डीमें नहीं लिखा उन कालिकाका क्या रूप था? फिर द्वितीय स्थल पर चण्डीमें काली मूर्तिकी कथा इस प्रकार लिखी है,—कौषिकीके हुङ्कारसे शुम्भके सेनापति धूम्रलोचन भस्मीभूत हुये। फिर शुम्भने चण्डमुण्ड नामक दो प्रचण्ड सेनापति बहु सैन्य दे कौषिकीको पकड़नेके लिये भेजे। चण्डमुण्ड सैन्यबल-परिवृत हो महादर्पसे देवीके निकट हिमाचल पर उपस्थित हुये। देवीने उनका दर्प देख ईषत् हास्य मात्र किया था। चण्डमुण्ड पहुंचते ही उन्हें पकड़ने को आगे बढ़े। पास जाने पर देवीने महाक्रोधसे उनकी ओर देखा था। क्रोधसे उनका मुखमण्डल काला पड़ गया। फिर उनकी भ्रुकुटिकुटिल * ललाट-से अति शीघ्र एक देवी निकली थीं। फिर वह असुरों

* मार्कण्डेय चण्डी—शुम्भदूत-संवाद, ८४—८८ श्लोक।

पर टूट प्रहार करने लगीं। वही देवी काली* हैं। उनका रूप चण्डीमें इस प्रकार बताया है,—

"काली करालवदना विनिष्क्रान्तासिपाशिनी।
विचित्रखट्वाङ्गधरा नरमालाविभूषणा॥
द्वीपिचर्मपरीधाना शुष्कमांसातिभैरवा।
अतिविस्तारवदना जिह्वाललनभीषणा।
निमग्ना रक्तनयना नादापूरितदिङ्मुखा॥"

काली—करालवदना (लम्बितमुण्डहस्ता), असि-पाशधारिणी विचित्रखट्वाङ्गधरा, नरमुण्डमाला-शोभिता, व्याघ्रचर्मपरिधाना, शुष्कमांसा, अति-भयानक मूर्ति, अतिविस्तृतमुखमण्डला, लोल-रसना, भीषणा, गाढ़रक्तनयना और हुङ्कार शब्दसे दिङ्मण्डल-परिपूर्णकारिणी हैं। कालीने युद्धमें चण्ड-मुण्डको मार कौषिकीको उनके दोनों मुण्ड उपहार दे कहा था,—'हमने चण्डमुण्ड नामक दो महापशु मारे हैं, अब युद्ध यज्ञमें शुम्भ-निशुम्भको तुम संहार करो।' कौषिकीने हंस कर कहा,-'चण्डमुण्डको तुमने मारा है। इसीसे तुम्हारा नाम चामुण्डा विख्यात होगा।'

प्रायः जो काली वा श्यामा मूर्ति देख पड़ती उस-के साथ उक्त मूर्तिकी सम्पूर्ण एकता नहीं लगती। फिर भी कुछ सादृश्य देख पड़ता है।

रक्तवीजके वधसमय उन्हीं कालीने जिह्वा निकाल और तदुपरि रक्तवीजका शरीर विनिर्गत समस्त रक्त डाल, पान किया था। कौषिकीके अस्त्रप्रहारसे रक्तवीज विनष्ट हुआ।

चण्डीमें कालीपूजाका कोई विधान नहीं मिलता शुम्भनिशुम्भके वध पीछे देवीने देवतावोंसे जो पूजा-पद्धति कही वह शारदीय महापूजाकी कथा थी।

देवीभागवतके ५म स्कन्धमें २३ अध्याय पर कौषकी-की उत्पत्तिके पीछे पार्वतीका शरीर कृष्णवर्ण पड़ने पर कालिका नामसे प्रसिद्ध होनेकी कथा लिखी है। किन्तु उनका नाम कालरात्रि बताया गया है। चण्डीकथित उक्त कालिकाका कोई कार्य नहीं मिलता, किन्तु देवी-भागवतमें लिखा कि धूम्रलोचनसे उनका घोर संग्राम हुवा था। फिर युद्धके पीछे उन्हींके हुङ्कार-से वह विनष्ट हो गया। वह बराबर कौषिकीके पार्श्वमें उपस्थित रहीं। देवीभागवतमें भी चण्डमुण्ड-वधके समय कौषिकीके कपालसे व्याघ्रचर्माम्बरा, क्रूरा, गजचर्मोत्तरीया, मुण्डमालाधरा, घोरा, शुष्क-वापीसमोदरा, खड्गपाशधरा, अतिभीषणा, खट्वाङ्ग धारिणी, विस्तीर्णवदना और लोलजिह्वा कालीकी उत्पत्ति कही है। वही काली चामुण्डा नामसे विख्यात हुयीं। उन्होंने रक्तवीजका रुधिर पीया था। एतद्भिन्न अन्यान्य पुराणोंमें भी काली, भद्रकाली, महाकाली, इत्यादि नाम आये हैं। किन्तु उत्पत्तिके सम्बन्धमें कोई विशेष विवरण नहीं मिलता।

शक्तिप्रधान कालीकी पूजा, ध्यान, कवचादि एवं तान्त्रिक रहस्यादि "श्यामा" शब्दमें और अन्यान्य विषय "दुर्गा" शब्दमें देखो।

कालीमूर्तिका रूप विचार कर देखनेसे समझ सकते कि वह महाकालका प्रणयिनी हैं, अनन्तकाल-रूपी शिव पदतलमें दलित हो रहे हैं। सर्वध्वंसकारिणी शक्तिज्ञापक असि हाथमें है। भूत, वर्तमान और भविष्यत् कालवाचक त्रिनयन हैं। इत्यादि।

(शवासनकी कथा श्यामा शब्दमें देखो।)

कालीअंकी (हिं० स्त्री०) हस्व क्षुपविशेष, एक झड़ी झाड़ी। उसके वृन्तमें सरल कण्टक निकलते हैं। पत्र प्रायः १२।१३ अङ्गुलि दीर्घ लगते हैं। उनका प्रान्तभाग दन्तुर रहता है। पुष्प पाटलवर्ण होते हैं। कालीअंकीके रक्तवर्ण फल पकनेसे काले पड़ जाते है, सिवा पंजाब और गुजरातके भारतवर्षमें समग्र स्थानोंपर उक्त वृक्ष मिलता है। उसे पुष्पके लिये लगाते हैं।

कालीक (सं० पु०) के जले अलति पर्याप्नोति प्रभवति इत्यर्थः, क-अल-इकन् पृषोदरादित्वात् दीर्घः। क्रौञ्च, वक, क्रिमी क्रिमका बगला।

कालीघटा (सं० स्त्री०) कृष्णवर्ण नूतन मेघश्रेणी, उठता हुवा काला बादल।

कालीघाट—एक पीठस्थान। वह कलकत्तेके दक्षिण-प्रान्तमें प्राचीन गङ्गाके किनार पर अक्षा० २२° ३१' ३०" उ० और देशा० ८८° २१' पू० पर अवस्थित है।

* मार्कण्डेयचण्डी—चण्डमुण्डवध, ५—८ श्लोक

कुब्जोलतन्त्र और शिवार्चनतन्त्रमें उक्त स्थान कालीघनामसे उक्त हुवा है। प्रवादानुसार वहां सतीका अङ्ग गिरा था। इसी कारण बहु दिनसे वह पीठस्थानके नामपर प्रसिद्ध है। भविष्य ब्रह्मखण्डमें लिखा है—

"गोविन्दपुरप्रान्ते च काली सुरधुनीतटे।"

पहले गङ्गाही पर कालीदेवी विराजती थीं। पुराकालको सागरयात्री हिन्दू वणिक् उसके निकट घाट पर उतर कालीपूजा करते थे। उस समयसे उक्त स्थान कालीघाटके नामसे विख्यात हुवा है। निगमकल्पकी पीठमालामें कालीघाटकी सीमा इस प्रकार निर्दिष्ट है-

"दक्षिणेश्वरमारभ्य यावच्च बहुलापुरी।
धनुराकारक्षेत्रञ्च योजनद्वयसंख्यकम्॥
त्रिकोणे त्रिगुणाकारं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम्॥
मध्ये च कालिकादेवी महाकाली प्रकीर्तिता।
नकुलेशः भैरवो यत्र यत्र गङ्गा विराजिता।
तत्पीठं कालीघं वमभेदोऽस्ति महेश्वर॥"

दक्षिणेश्वरसे बहुला पर्यन्त दो योजन-परिमित धनुराकार स्थान कालीक्षेत्र है, उसके मध्य एक कोण त्रिकोणाकार स्थानमें त्रिगुणात्मक ब्रह्मा, विष्णु, और महेश्वर एवं मध्यस्थलमें महाकाली नाम्नी काली देवी हैं।

पहले कालीघाटकी चारो ओर घना जङ्गल था। लोगोंकी वसती न रही। उसी वनके मध्य काली देवी सामान्य पर्णकुटीमें अवस्थान करती थीं। कापालिक और संन्यासी उन्हें पूजते थे। प्रथम कालीदेवी गुप्त भावसे रहती थीं। इसीसे कुब्जीलतन्त्रमें वह गुप्तकाली नामसे उक्त हुयी हैं।

खृष्टीय षोड़श शताब्दको लिखित (मानसिंहके बङ्गाल आनेसे पहले) कविरामके दिग्विजयप्रकाशमें कहा है—

"पीठमालातन्त्रयन्त्रे सतीदेव्याः शरीरतः।
वामाङ्गुल्यङ्गुलिपाते काली भागीरथीतटे॥ ६६९॥
कालीदेव्याः प्रसादेन किलकिलादेशवासिनः।
द्रविणैः पूरिता नित्यं भाविताश्चिरकालतः॥ ६७०॥
प्रतापादित्यभूपस्य यशोरसमिपस्य च।
गङ्गावासस्थली राजन् इदानीं वर्तते ध्रुव।
कायस्थानां शासनञ्च वर्तते ऽधुना ध्रुव।
गोपवन्द्रादिपुरं सर्वं तथाहि भट्टपल्लिकम्।
कालिन्द्याः समीपे च शृगालदाहादिकं नृप॥ ६७१॥

पीठमालातन्त्रके मतानुसार वहां भागीरथीके तीर सतीदेवीके शरीरसे वामहस्तको अङ्गुलि गिरी थी। कालीदेवीके प्रसादसे किलकिलादेशवासी चिरकाल धन धान्यवान् रहेंगे। आजकल भागीरथीके तीर यशोरराज प्रतापादित्यका गङ्गावासस्थल है। गोविन्दपुरादि ग्राम, भट्टपल्ली, और कालीदेवीके निकटस्थ शृगालदाह (सियालदह) कायस्थोंके शासनमें है।

बोध होता कि उस समय उक्त सकल स्थान यशोरराज प्रतापादित्यके अधिकारभुक्त थे। कलकत्ता देखो। प्रवाद है—प्रतापादित्यके चचा बसन्तराय कालीदेवीके तत्कालीन पुजारी भुवनेश्वर ब्रह्मचारीके शिष्य थे। उन्हींके यत्नसे एक क्षुद्र मन्दिर निर्मित हुवा।

उसी समयसे कालीघाटका गुह्यपीठ साधारणके समक्ष देख पड़ा। उक्त विषय कविकङ्कणका चण्डीमङ्गल और तत्पूर्ववर्ती भ्रकबरके समसामयिक त्रिवेणीनिवासी माधवाचार्यका चण्डीमाहात्म्य पढ़नेसे विदित होता है।

मालूम पड़ता है कि यशोरवाले कायस्थ राजावोंके समय वह स्थान देवोत्तर वा ब्रह्मोत्तर स्वरूप दिया गया था। कारण उनके परवर्ती कालसे उक्त स्थान अपुत्रक भुवनेश्वरके दौहित्रवंशीय हालदार बराबर देवोत्तरस्वरूप भोग करते जाते हैं। कालीघाटका वर्तमान कालीमन्दिर बड़िशावाले सावर्ण चौधरीवंशीय सन्तोषरायके व्ययसे १८०९ ई० (उनके मरनेसे ५।६ वर्ष पीछे) को बना था।

कालीघाटका नकुलेश्वर लिङ्ग प्रसिद्ध है। निगमकल्प प्रभृति दो-एक आधुनिक तन्त्रोंमें उसका उल्लेख मिलता है। पहले अति सामान्य कुटीरमें नकुलेश्वर लिङ्ग स्थापित था। १८५४ ई०को तारासिंह नामक किसी पञ्जाबी वणिक्ने प्रस्तरमय मठ निर्माण करा दिया।

कालीघाटमें काली एवं नकुलेश्वरको छोड़ श्यामराय तथा गोविन्दजीकी प्रतिमूर्ति भी सामान्य समझना न चाहिये। वह मूर्ति पहले गोविन्दपुरमें रही।

किन्तु वर्तमान फोर्ट-विलियम निर्मित होनेके समय वह कालीघाटमें स्थानान्तरित हुयी।

कालीघाट आजकल कलकत्ता म्युनिसपल्टीके अधीन एक गण्य नगर बन गया है। वहां बहुत लोग रहते हैं। बाज़ार, थाना, डाकघर, विद्यालय प्रभृति विद्यमान हैं।

कालीचरण—हिन्दीके एक सुकवि। यह कान्यकुब्ज ब्राह्मण गोवर्धनके तिवारी थे। इनके पितामहका नाम पण्डित रामबक्स और पिताका नाम पण्डित दुर्गाप्रसाद था। जन्म सं० १८३२ श्रावण कृष्ण सप्तमीको हुआ था। सं० १८७३ माघ शुक्ल चतुर्दशीको यह स्वर्ग सिधारे। कविताका उपनाम 'नवकृष्ण' या 'कृष्ण' रहा। कानपुर जिलेका मसवानपुर ग्राम इनका जन्मस्थान था। इनकी कविता बहुत अच्छी बनती थी। यथा—

"लहरें वन सीरसमीरनसों नव नीरनसों हहरें नहरें
नव कञ्ज कहूं पिक कोकिल औ मोरवा धुरवा धुनिमें कहरें॥
हरियारी भरे वर बागनमें लखु लोनी लवङ्गलता लहरें।
चहुं ओरनसे चपला छहरें, घनघोर घटा नभमें घहरें॥"

कालीची (सं० स्त्री०) काल्या यमभगिन्या चीयते इव, कालीचि बाहुलकात् ड ङीष्। यमविचारभूमि, यमराजकी इनसाफ करनेकी जगह।

कालीज़बान (हिं० स्त्री०) अशुभ भाषा, खराब बयान्। जिस जिह्वासे उच्चारित अशुभ विषय सत्य निकलते, उसे 'कालीज़बान' कहते हैं।

कालीजीरी (हिं० स्त्री०) क्षुद्रजीरक, छोटा जीरा। (Vernonia anthelmintica) उसका हिन्दी पर्याय सोमराज, बाकची, बुकची और वपची है। कालीजीरीको बङ्गालमें हाकुच, उड़ीसामें सोमराज, पंजाबमें कड़वी जीरी, बंबईमें कलेन जीरी, मारवाड़में रानाचजीरे, गुजरातमें कणवोजीरी, तामीलमें काट्टु श्रिरेगम, तेलगुमें विषकण्टकालु, कानारीमें काडु जिरिग, मलयमें काट्टु जिरिकम, सिंहलमें सन्निनायगम, अरबमें इत्रिलाल और फारसमें अतरीलाल कहते हैं।

कालीजीरी लंबी, मज़बूत और पत्तेदार होती है। भारतवर्ष, सिंहल और मलाक्कामें वह सब जगह पायी जाती है।

बीजसे एक प्रकारका तैल निकलता, जो जलामें पड़ता है। बेचनेके लिये कालीजीरीका तैल नहीं निकाला जाता।

वह श्वेतकुष्ठ और चर्मरोगका अव्यर्थ औषध है। कालीजीरी खाने और लगाने दोनों काममें आती है। उसके खानेसे अंतका कीड़ा मर जाता है। सांपके काटे घाव पर कालीजीरीका पुलटिस चढ़ता है। कालीजीरीके सेवनसे वार्धक्य दूर हो जाता है। किन्तु उसको बहुत थोड़ी मात्रामें खाना चाहिये। वृक्षको घरमें जलाने या उसकी बुकनी फर्श पर फैलानेसे मच्छड़ भागते हैं।

कालीजीरीका वृक्ष ८।९ हाथ बढ़ता है। पत्र गाढ़ हरित्वर्ण ५।६ अङ्गुली प्रशस्त और तीक्ष्णाग्र रहते हैं। उनका प्रान्तभाग दन्तुर होता है। कालीजीरी प्रायः वर्षाकालमें उपजती है। आश्विन कार्तिक मास उसके अग्रभाग पर जो गोलाकारवृन्तके गुच्छ निकलते हैं उनमें क्षुद्र क्षुद्र नीलोवर्णके पुष्प आते हैं। पुष्प पतित होनेपर वृन्त बढ़ने लगते हैं। वृन्त स्फुटित होनेसे धूसरवर्ण रोम निकलते हैं। कालीजीरी कटु एवं तिक्त होती है।

कालीतनय (सं० पु०) काल्याः यमुनाया यमभगिन्याः तनय इव, यमवाहनत्वात् इति भावः। यद्वा काली कालिकादेवीं इतः प्राप्तः सन् वलिदानाय आत्मदानं नयति प्रापयति, काली-इतः अतः काली तनो अच्। महिष, भैसा।

कालीदह (हिं० पु०) ह्रदविशेष, एक कुण्ड। वृन्दावनमें यमुनाके जिस ह्रदमें कालियानाग रहता, उसीको हिन्दीभाषाभाषी कालीदह कहते हैं।

कालीन (सं० त्रि०) काले भवः, काल-ख। कालजात उपपद व्यतीत कालीन शब्द प्रयुक्त नहीं होता। जैसे पूर्वकालीन, उत्तरकालीन प्रभृति।

कालीन (अ० पु०) कुथ, आस्तरण, फर्श, गलीचा। वह ऊन या सूतसे बुनकर तैयार किया जाता है। कालीन पर रंग रंगके बेलबूटे रहते हैं। उसका ताना

खड़े बल रहता यानी ऊपरसे नीचेको लटकता है। रंग बिरंगके तागे बानेमें जोड़ दिये जाते हैं। तागोंके किनारे कट जानेसे कालीन रूयेंदार मालूम पड़ता है। इसका कालीन प्रसिद्ध है। भारतवर्षके झांसी नगरमें भी अच्छे अच्छे कालीन बनते हैं। बादशाह अकबरने उत्तर-भारतमें इसके व्यवसायको उत्तेजना दी थी।

कालीनत्व (सं० क्लो०) कालीनस्य भावः, कालीन-त्व। कालवृत्तित्व, वक्त पर हाजिरी।

काली नदी—युक्त प्रान्तकी एक नदी। वह मुज़फ्फर नगरस्थ गङ्गाकी नहरके पूर्वभाग सराय नामक स्थानके वालुका-स्तूपके निकट निकली है। उत्पत्तिस्थानसे कुछ दूर तक उसे नागन कहते हैं। नागन अलक्षित भावसे वह बुलन्दशहरके पास जा बड़ी नदी बन गयी है। फिर काली नदी खुरजाके निकट दक्षिण-पूर्वाभिमुख चल कन्नौजमें गङ्गासे जा मिली है। बुलन्दशहरमें उस पर एक पक्का पुल बना है। सिवा उसके गढ़-मुक्तेश्वर जानेकी राह एक गुलावटीमें और तीन अलीगढ़ जिलेमें भी उसके पुल देख पड़ते हैं। उसे पूर्व काली नदी कहते हैं। वह दैर्घ्यमें १५५ कोस है। उसको छोड़ एक पश्चिम काली नदी भी है। वह शिवालिक पर्वतसे निकल सहारनपुर और मुजफ्फर नगरसे बहती हुयी हिन्दन नदीमें जा गिरी है। सङ्गमका स्थान अक्षा० २९° १९´ उ० और देशा० ७७° ४०´ पू० पर अवस्थित है। पश्चिम काली नदीका दैर्घ्य ३५ कोस होगा।

कालीपुराण (सं० क्लो०) एक उपपुराण। उसमें कालीविषयक विवरणादि वर्णित है।

कालीप्रसन्न—कलकत्ता-जोड़ासांकोके एक विख्यात जमीन्दार। उनका जन्म सिंहवंशमें हुवा था। उनके प्रपितामह शान्तिराम मुरशिदाबाद और पटनाके दीवान् थे। कालीप्रसन्नके पिताका नाम प्राणकृष्ण था।

वह संस्कृत, बंगला और अंगरेजी भाषामें बहुत निपुण थे। उन्होंने मूल संस्कृत महाभारतको बंगलामें अनुवाद करा बिनामूल्य वितरण किया, जिससे बड़ा यश हुवा। इसमें अपरिमित अर्थ लगा और श्रम पड़ा था। उनमें दानशीलताका भी बड़ा गुण रहा।

कालीप्रसाद—१ कोई ग्रन्थकार। उन्होंने कालीतत्त्वसुधासिन्धु और भक्तिदूती नामक दो संस्कृत ग्रन्थ बनाये थे। २ सारसंग्रह नामक वैद्यक ग्रन्थकार।

कालीफुलिया—पक्षिविशेष, किसी किस्मका बुलबुल।

कालीबावड़ी—मध्यभारतके धाराप्रदेशका एक क्षुद्र राज्य। कोई भूइयां उसके अधिकारी हैं। धर्मपुर परगनेके रक्षणावेक्षणको उन्हें धारा-दरबारसे १५००) रु० मिलता है। उस परगनेमें ५ गांव मौरूसी हैं। राजस्व भांति उन्हें प्रति वर्ष ५००) रु० देना पड़ता है। वीकानेरके भी १७ ग्राम उनके तत्त्वावधानमें हैं। उसके लिये उन्हें सेंधिया महाराजसे १५९) रु० मिलता है। भुइयोंके साथ उक्त सकल विषयोंकी जो लिखा पढ़ी हुयी, उसमें अंगरेज जामिन हैं।

कालीबेल (हिं० स्त्री०) लताविशेष, एक बेल। वह एक बृहत् लता है। उसके पत्र २।३ इञ्च दीर्घ होते हैं। फाल्गुन-चैत्र मास पत्रोंमें ईषत् हरितवर्ण क्षुद्र क्षुद्र पुष्प निकलते हैं। वैशाख-ज्येष्ठ मास फल लगनेका समय है। कालीबेल उत्तर-भारत, मध्यभारत और आसाम प्रभृति देशमें उत्पन्न होती है।

कालीमिट्टी (हिं० स्त्री०) चिक्कणमृत्तिका-विशेष, चिकनी मट्टी। वह बाल धोनेके काम आती है।

कालीमिर्च (हिं० स्त्री०) मरिच, गोलमिर्च। वह खट्टे मीठे दोनों प्रकारके मसालेमें पड़ती है। मरिच देखो।

कालीमिर्जा—एक हिन्दुस्थानी वैष्णव कवि। कृष्णानन्द व्यासके बनाये रागसागरोद्भव रागकल्पद्रुम नामक ग्रन्थमें उनकी कविता उद्धृत हुयी है।

कालीमुल्ला—दाक्षिणात्यवाले अहमदाबाद विदरके ब्राह्मणवंशीय शेष राजा। १५२७ ई० को उनके मन्त्री अमीर बरीदने उन्हें दूरीभूत कर स्वयं राज्य अधिकार किया था।

कालीय (सं० क्लो०) कालस्य कृष्णवर्णस्येदम्, कालस्थाने भवं वा, काल-छ। इत्यादयः। पा ४।२।१४४। १ कृष्णचन्दन। २ नागविशेष, एक सर्प। कालिय देखो।

कालीयक (सं० क्लो०) कालीय स्वार्थे-कन्, कालीयमिव कायति वा, कालीय-कै-क। १ पीतवर्ण सुगन्धि काष्ठ-विशेष, किसी किस्मका खुशबूदार पीला गुसख्वर।

इसका संस्कृत पर्याय—जायक, कालानुसार्य, कालेय, वर्णक और कान्तिदायक है। २ कृष्णचन्दन, काला सन्दल। उसे संस्कृतमें कालीय, कालिक और हरिप्रिय भी कहते हैं। (पु०) ३ दारुहरिद्राविशेष, एक दारुहलदी। ४ शैलज नामक गन्धद्रव्य। ५ कालिय नाग।

कालीयका (सं० स्त्री०) दारु हरिद्रा, दार हलदी।

कालीयकचोद (सं० पु०) कुङ्कुम, रोरी।

कालीयागुरु (सं० क्लो०) कृष्णागुरु-काला अगर।

कालीरसा (सं० स्त्री०) कदली वृक्ष, केलेका पेड़।

कालीसर (हिं० स्त्री०) लताविशेष, एक बेल। वह सिक्किम, आसाम, ब्रह्म आदि देशोंमें उत्पन्न होती है। पककसे नीलवर्णक निकलता है।

कालीशङ्कर भट्टाचार्य—एक प्रसिद्ध नैयायिक। उन्होंने जगदीश एवं मथुरानाथविरचित नव्य न्यायग्रन्थसमूह पर क्रोड़पत्र तथा टीकाको लिखा है। आजकल कालीशङ्करके निम्नलिखित ग्रंथ मिलते हैं,—अनुमानजागदीशीक्रोड़, अनुमितिक्रोड़, अनुमानमाथुरीक्रोड, अवच्छेदकत्वनिरुक्तिक्रोड़, असिद्धसिद्धान्तग्रन्थक्रोड़, असिद्धपूर्वपक्षक्रोड़, उदाहरणलक्षणक्रोड़, उपनयनक्रोड़, उपाधिपूर्वक्रोड़, उपाधिसिद्धान्तग्रंथक्रोड़, कूटघटितलक्षणक्रोड़, कूटाघटितलक्षणक्रोड़, तृतीयमिश्रलक्षणक्रोड़, पक्षतापूर्वपक्षग्रन्थक्रोड़, पक्षतासिद्धान्तग्रन्थक्रोड़, पक्षलक्षणीक्रोड़, परामर्शपूर्वपक्षग्रंथक्रोड़, पुच्छलक्षणक्रोड़, परामर्शसिद्धान्तग्रंथक्रोड़, प्रतिज्ञालक्षणक्रोड़, प्रथमचक्रवर्तिलक्षणक्रोड़, प्रथमनिश्चयलक्षणक्रोड़, बादसिद्धान्तग्रंथक्रोड़, विशेषनिरुक्तिक्रोड़, सत्प्रतिपक्षसिद्धान्तक्रोड़, सव्यभिचारपूर्वपक्षग्रंथक्रोड़, सामान्यनिरुक्तिक्रोड़, सिंहव्याघ्रक्रोड़, जागदीशीक्रोड़टीका, तर्कग्रंथटीका, माथुरीटीका।

कालीशीतला (हिं० स्त्री०) शीतला रोगविशेष, किसी किस्मको चेचक। उसमें कृष्णवर्ण व्रण निकलते, जो रोगीको बहुत खुजलाते हैं।

कालीसिन्धु—मध्यप्रदेशको एक नदी। वह विन्ध्य पर्वतसे निकल कादगांवके निकट चम्बलमें गिरी है।

कालीहर्र (हिं० स्त्री०) क्षुद्र हरीतकी, छोटी हर्र।

कालुघोष—एक बङ्गाली वीर, उन्होंने भरतपुर अवरोधके समय अंगरेजोंकी फौज बहुत मारी जाने पर जेनरलकी पोशाक पहन युद्ध किया था। समरमें विजयी होनेपर सरकारने उन्हें ३०००) रु० पुरस्कार दिया। वह अति धार्मिक, दयालु, उदार और वीर थे।

कालुराय—बङ्गालके एक ग्राम्य देवता। बङ्गालमें कालुराय और दक्षिणराय दो ग्राम्यदेवता पूजे जाते हैं। वह वनदेवता हैं। वनके निकट राह किनारे पेड़को जड़में मृण्मय देहशून्य मनुष्य मस्तक प्रतिष्ठित कर उनकी प्रतिमा कल्पना की जाती है। उस प्रतिमाके निकट मृण्मय व्याघ्र और कुम्भीरकी मूर्ति भी रहती है। पूजामें छाग और हंस बलि देते हैं।

रायमङ्गल और दक्षिणराय देखो।

कालुष्य (सं० क्लो०) कलुषस्य भावः, कलुष-ष्यञ्। १ कलुषता, मैल। २ असम्मति, निफाक।

कालू (हिं० स्त्री०) मत्स्यविशेष, सीपकी मछली, लोना कीड़ा।

कालूँ—बङ्गालकी तेली जाति। इस जातिमें कुछ लोग विद्वान भी हैं। साधु, सेठ आदि जातिके उपाधि होते हैं। कोई इन्हें क्षत्रिय, कोई वैश्य और कोई हीन शूद्र कहता है। आचार विचार अच्छा है।

कालूतर (सं० त्रि०) कलूतरे तन्नामकदेशविशेषे भवः, कलूतर-अण्। कच्छादिभ्य। पा ४।२।१३३। कलूतर देश जात, कलूतरके मुताल्लिक।

कालूपन्थी—एक धार्मिक सम्प्रदाय। एक समय काल नामक कोई कंहार रहा। उसने अपना पन्थ चलाया था, जिसका नाम कालूपंथ पड़ा। कालूपंथके अनुयायी ही कालूपंथी कहाते हैं। इस पंथमें प्रायः चमार, सैनी, गड़रिये आदि पाये जाते हैं। युक्त प्रदेशके मेरठ जिलेमें ३ लाख कालूपंथी रहते हैं।

कालेज (सं० त्रि०) नियत समय पर उत्पन्न वा उत्पादित, ठीक वक्त पर पैदा होने या किया जानेवाला।

कालेज (अं० पु०) कालिज देखो।

कालेय (सं० क्लो०) कं सुखं आलेयं आदेयं यस्मात्, बहुव्री०। १ कालीयक काष्ठ, एक पीली खुशबूदार लकड़ी। २ कुङ्कुम, रोरी। कलाये रक्तधारिस्थे हितम्

-ठक्। ३ यकृत्, दिल। ४ कृष्णचन्दन, काला सन्दल। ५ हरिचन्दन। (पु०) कालाया अपत्यम्। ६ दैत्य-विशेष, एक दानव। ७ दारुहरिद्रा, दारुहलदी। ८ कुक्कुर, कुत्ता। ९ कामला रोगभेद, आंखकी एक बीमारी। १० नीलकमल। ११ शिलाजतु।

कालेयक, कालेय देखो।

कालेश (सं० पु०) कालस्य ईश: प्रवर्तक:, ६-तत्। १ सूर्य, सूरज। २ शिव। ३ मकारवर्ण। ४ अनेक पद्धतिकार।

कालेश्वर (सं० पु०) कालस्य ईश्वर:, ६-तत्। १ सूर्य, आफताब। २ शिव। ३ मकारवर्ण। ४ वनभूमि-विशेष, एक जंगली जमीन्। वह पञ्जाबके पूर्वांशमें हिमालय पर अवस्थित है। उसीके मध्य अम्बालेका शालवन और यमुनाके दो बड़े नालोंका मुख विद्यमान् है।

कालोत्थ (सं० क्ली०) कमलबीज।

कालोत्तर (सं० क्ली०) सुरामण्ड, शराबका झाग।

कालोत्पादित (सं० त्रि०) यथासमयजात, वक्तपर पैदा किया जानेवाला।

कालोदक (सं० क्ली०) एक तीर्थ।

"कालोदकं नन्दिकुण्डं तथा चोत्तरमानसम्।" (महाभा० अनु० २८ अ०)

कालोदायी (सं० पु०) अनेक बौद्ध। वह शाक्यमुनिके शिष्य थे।

कालोपयुक्त (सं० त्रि०) काले यथाकाले उपयुक्त:, ७-तत्। यथासमय आवश्यक, वक्तके लायक।

कालोपाधि (सं० पु०) निमेष, लहमा। मूहर्त प्रभृति खण्डकालको कालोपाधि कहते हैं। काल देखो।

कालोप्त (सं० त्रि०) काले यथाकाले उप्त:, ७-तत्। उपयुक्त समयमें वपन किया हुवा, जो वक्त पर बोया गया हो।

कालोल (सं० पु०) १ द्रोणकाक, बड़ा कौवा। २ विष-भेद, एक जहर।

कालोल— बम्बई प्रान्तके सीमाश्रित पांचमहल जिलेका एक विभाग। उसके उत्तर गेधरा, पूर्व बाड़िया और दक्षिण तथा पश्चिम बड़ौदा है। उक्त विभागके उत्तर मेसरी, मध्य गोमा और दक्षिण करद नाम्नी नदी प्रवाहित है। कालोल नामक दूसरा विभाग भी उसकी साथ एकत्र अवस्थित है। दोनों विभागोंके लिये चार फौजदारी अदालतें और दो थाने हैं। तलातिया नामक एक जातीय कर्मचारी मालगुजारी देता और पुलिसका कार्य कर लेता है।

२ उक्त कालोल विभागका प्रधान नगर। वह अक्षा० २२° ३७´ उ० और देशा० ७३° ३१´ पू० पर अवस्थित है। उक्त स्थानके अधिकांश अधिवासी कुनबी हैं। लोकसंख्या प्रायः चार हजार है।

३ बम्बई प्रेसिडेन्सीके सीमाश्रित बड़ौदा राज्यका एक उपविभाग। लोकसंख्या ८८ हजारसे अधिक है। राजपूताना-मालवा रेलवे उसके भीतर चला गया है।

४ बड़ौदा राज्यके कालोल उपविभागका प्रधान नगर। वह अक्षा० २३° १५´ ३५´´ उ० और देशा० ७२° ३१´ पू० पर अवस्थित है। लोकसंख्या पांच हजारसे कुछ कम है। वहां एक डाकबंगला, एक स्कूल और एक डाकघर बना है। राजपूताना मालवा रेलवेका एक ष्टेशन भी विद्यमान है।

कालौंछ (हिं० स्त्री०) १ कृष्णवर्ण, स्याही, कालापन। २ धूयेंकी कालिख। ३ काला जाला।

काल्य (सं० पु०) कल्पे विधौ भव:, कल्प-अण्। तत्र भव:। पा ४।३।५३। १ हरिद्राविशेष, किसी किस्म की हलदी। २ गन्धशठी। ३ व्याघ्रनख, बाघका नाखून। (त्रि०) ४ कल्पसम्बन्धीय।

काल्पक, कल्प देखो।

काल्पनिक (सं० त्रि०) कल्पनाया आगत:, कल्पना-ठञ्। कल्पनाजात, अन्दाजसे निकला हुवा। २ कल्पित, माना-हुवा। किसी वस्तुमें अन्य वस्तुके आरोपको कल्पना कहते हैं। उसी प्रकारके आरोपित वस्तुका नाम काल्पनिक वा कल्पित है।

काल्पनिकता (सं० स्त्री०) काल्पनिकस्य भाव:, काल्प-निक-तल्‌टाप्। १ कल्पनाजातत्व। २ कल्पितत्व।

काल्पनिकी (सं० स्त्री०) काल्पनिक-ङीप्। १ कल्पना जाता। २ कल्पिता।

काल्पसूत्र (सं० त्रि०) कल्पसूत्रं वेत्ति अधीते वा, कल्प-सूत्र-इकन् निषेधे अण्। १ कल्पसूत्रवेत्ता। २ कल्प-सूत्र अध्ययनकारी।

कालिप—वङ्गालके चौबीस परगनेका एक ग्राम। वह कलकत्तेसे २४ कोस दक्षिण गङ्गाके दाहने कूल पर अवस्थित है। वहां वाणिज्य बहुत होता है। समुद्रसे कलकत्ते जाते समय जहाज वहीं लङ्गड़ डालते हैं।

कालिपक (सं० क्लि०) कल्पग्रन्थे भवः, कल्प-ठञ्। वेदाङ्ग कल्पग्रन्थोक्त विधानादि।

काल्पी (कालपी) युक्तप्रदेशके जालौन जिलेकी काल्पी तहसीलका प्रधान नगर। वह अक्षा० २६° ७′ ४६″ उ० और देशा० ७६° ४७′ २२″ पू० पर जालौन नगरसे १३ कोस पूर्व अवस्थित है। पुरानी कालपीके अग्निकोणमें नयी कालपी बनी है। नगर यमुना नदीके तीर पर्वतके मध्य बसा है। ऐतिहासिक फरिश्ताके मतानुसार खृष्टीय ३३०—४०० शताब्दके मध्य कन्नौजके वासुदेवने कालपीको स्थापन किया था। किन्तु स्थानीय लोग कहते कि कालियदेव राजा उसके स्थापयिता थे। ११९६ ई० को मुहम्मद घोरीके प्रतिनिधि कुतुबउद्-दीनने उसे जय किया। १४००ई० को कालपी मुहम्मदखानूकी हो गयी। जौनपुरके शरकीवंशीय मुसलमान नवाबोंमें इब्राहिम नामक किसी नृपतिने अधिकार करनेको अतिमात्र उत्सुक हो पञ्चदश शताब्दके प्रारम्भमें दो बार कालपी नगर आक्रमण किया था। किन्तु वह दोनोबार व्यर्थ मनोरथ हो लौट गये। १४३५ ई० को मालवराज होशङ्गने आक्रमण कर कालपीको अधिकार किया। १४४२ ई० को शरकी वंशीय महमूद राजाने होशङ्गसे कहला भेजा कि उन्होंने कालपीमें जिस प्रतिनिधिको रखा, वह मुसलमान धर्मके निषिद्ध आचरणमें लगा था। महमूदने उस प्रतिनिधिको शास्ति देनेके लिये होशङ्गसे अनुमति ली। तदनुसार महमूद शास्ति देनेके बहाने स्वयं कालपी अधिकार कर बैठे। शरकी वंशीय शेष राजा सुलतान हुसेनके साथ १४७७ ई० को दिल्लीके सम्राट्का एक युद्ध हुवा था। उसमें हुसनके हार जाने पर कालपी नगर शरकी वंशके हाथसे निकल दिल्ली सम्राट्के अधिकारमें गया। फिर सम्राट् इब्राहीमके समय १५१८ ई० को जलाल खान् जौनपुरके शासनकर्ता बनकर और कुछ दिन पीछे कालपीमें स्वयं स्वाधीन राजा हो ससैन्य आगरे सम्राट्का आक्रमण करने चले। अन्तको वह हार कर लौट भागे। किन्तु गोंडजातीय राजाने उन्हें पकड़ इब्राहीमको सौंपा था। उसके पीछे मुगल सम्राटोंके शासनकाल कालपीमें अनेक घटनायें हुईं। अकबर शाहकी टकसाल कालपीमें ही थी। वहां ताम्रमुद्रा (पैसे) प्रस्तुत होती थी। महाराष्ट्रोंने कालपीको अपना अड्डा बनाया। १८०३ ई० को नाना गोविन्द रावने कालपीको अधिकार किया था। किन्तु उसी वर्ष दिसम्बर मास वह अंगरेजोंके हाथमें चली गयी। फिर कम्पनीने राजा हिम्मत बहादुरको जो राज्य दिया, कालपी नगर उसीके मध्य पड़ा था। किन्तु अल्प दिनोंमें ही उक्त राजाके मर जानेसे १८०४ ई० को कालपीमें फिर अङ्गरेजोंका अधिकार हो गया। उसके पीछे एक बार गोविन्दरावको अङ्गरेजोंने कालपी सौंप दी। किन्तु उन्होंने उसके बदले दूसरे दो स्थान ले लिये, जिससे कालपी अङ्गरेजोंके ही हाथ रह गयी। बलवेके समय झांसीकी रानी, रायसाहब और बांदेके नवाबने वहां प्रायः १२००० विद्रोही सेनादल समवेत किया था। अङ्गरेज सेनापति सर ह्यू रोजने ससैन्य प्रतिकूल यात्रा कर कालपीमें उन्हें हरा दिया।

यमुना नदी पर कालपीके पुरातन दुर्गका भग्नावशेष देख पड़ता है। दुर्गका अधिकांश यमुनाके गर्भमें है। नदीसे दुर्गमें जानेका पथ नहीं। दुर्गमें महाराष्ट्रोंके शासन कालकी कई इमारतें देखनेको मिलती हैं। पश्चिममें बहुतसी कबरों और मसजिदोंके चिह्न विद्यमान हैं। उनके वायुकोणमें प्रभावतीका मन्दिर है। वहां एक बड़ा बाजार लगता है। वर्षाकालको उस बाजारमें बौद्ध और हिन्दुवोंके शासनकालकी मुद्रा बिकती है। पुरातन हर्म्यादिके मध्य मदार साहबकी कब्र, गफूरकी कब्र, चोरबीबीकी कब्र, बहादुर शहीदकी कब्र, और चौरासी गुम्बज देखने लायक हैं। फिर दूसरी एक कब्र पर प्रकाण्ड सिंहमूर्ति है। उपरि उक्त स्थानोंमें चौरासी गुम्बज नामक हर्म्य सर्वापेक्षा प्रधान है। उस गुम्बजमें पत्थर और चूनेका बहुत अच्छा काम बना है। उसमें अनेक प्रकारके बेलबूटे

कटे है। लोदीवंशीयोंके समय जिसप्रकारकी हर्म्य-प्रणाली प्रचलित थी, उसी गठनके साथ कालपीकी इमारतकी भी बराबरी देख पड़ती है। गुम्बज सम-चतुष्कोण है। उसकी एक दिक्, बाहरी ओरसे नापने पर ८२हाथ दीर्घ और ५३हाथ उच्च होगी। भीतरका स्थान शतरंजकी बिसात-जैसा है। एक एक ओर आठ आठके हिसाबसे सब ६४ स्तम्भ हैं। स्तम्भोंपर दोनों ओर ४९ ४९ कर ९८ मेहरावें लगी हैं। छत चारो ओर समतल है। मध्यस्थलमें गुम्बज बना है। चारो कोण पर चार छोटे छोटे दूसरे गुम्बज देखनेमें बहुत सुन्दर हैं। उसकी ओर दृष्टिपात करनेसे मनमें एक प्रकारका अपूर्व भाव उदय होता है। ठीक निर्णय किया जा नहीं सकता—उसका चौरासी गुम्बज नाम क्यों पड़ा? सम्भवतः चालीस गुम्बजसे चौरासी गुम्बज नाम पड़ गया होगा। वह आधुनिक नगरकी पश्चिमदिक् है। नूतन नगरकी पश्चिमदिक् गणेशगञ्ज और तार-नाथगञ्ज है। वहां विलक्षण व्यवसाय होता है। ओबाजार नामक स्थानमें सन् ९५३ हिजरीकी एक शिलालिपि देख पड़ती है। फिर पट्टी गलीके प्रवेश-द्वार पर सन् १०८१ हिजरीकी और शेख अब्दुल गफुरके कूपपर सम्राट् औरङ्गजेबके राजत्वके द्वादश वर्षकी एक लिपि अद्यापि विद्यमान है।

राजा वीरबलने कालपी नगरमें ही जन्म लिया था। वह जातिके ब्राह्मण थे। पहले उनका नाम महेश-दास था। वीरबल सम्राट् अकबरके दक्षिण हस्त थे।

कालपीकी लोकसंख्या आजकल प्रायः साढ़े चौदह हजार होगी। वर्षाकालको झांसी और कानपुर जानेके लिये पहले यमुना पर नौका का सेतु बनता था। बहुतसे खेवेके घाट भी हैं। उरई, हमीरपुर, बांदा, जालौन और झांसी जानेके लिये कई उत्तम पथ कालपीसे निकले हैं। वहांसे रूई, और अनाज कान-पुर, मिर्जापुर और कलकत्ते भेजा जाता है। नदीके राह भी अनेक पण्य द्रव्य आते जाते हैं। कालपीमें बढ़ियां मिसरी बनती है। कागजका कारखाना भी है। कालपीका कागज बहुत अच्छा होता है। पहले कालपीका कागज सुप्रसिद्ध था।

कानपुरसे बम्बईको ग्रेट इण्डियन पेनिनसुला रेलवे कालपी होकर गयी है। कालपी ष्टेशन भी है। यमुनापर पक्का पुल बंधा है।

कालपीमें एक अतिरिक्त सहकारी कमिश्नर रहता है। कई अदालतें, पुलिसके थाने, औषधालय और विद्यालय भी हैं।

कालमक—चीनतातारवासी इलिउथोंकी एक शाखा कालमक अपनेको वलोट कहते हैं। वह जंगर, तार्गत, चोसद और तारवेत चार जातियोंके मध्य बन्धुतामें आबद्ध हैं। १६७१ ई० को उन्होंने बलवान हो राज्य स्थापन किया था। प्रायः एक शताब्द काल उनका राजत्व चला। शेषको कालमक चीनावोंके अधीन हो गये। तुर्की खलीमक (अर्थात् पश्चात् परित्यक्त) वा मङ्गोलीय घोलऐमक (अग्निराशि) अथवा मङ्गोलीय कालमक (अर्थात् दुर्दान्त लोग) शब्दसे उनके नामकी उत्पत्ति है। युएन वंशका अधःपतन होनेसे एक दल गोबी मरुके दक्षिण गया और कोकनर ह्रद पर्यन्त फैल पड़ा। उसी वंशके कुछ वंशधर १६७१ ई० को महाकष्टसे चीन देशको लौटे थे। कालमक और उज-बक लोग एक मूल जातिसे उत्पन्न हैं। वासपरिवर्तन करनेसे वह कालमक कजाक और खरघिज जातिके साथ एक प्रकार मिल गये हैं। वह चार प्रधान शाखामें विभक्त हैं। यथा—१ खासकोट वा चोसद—वह युद्ध व्यवसायी हैं। उनकी संख्या प्रायः ६०००० है। वह कोकनर ह्रदके निकट रहते हैं। फिर उनमें कुछ लोग एशियास्थ रूसकी इटिश नदीके तीर जाकर बसे हैं। शेषको उनकी द्वितीय शाखा जङ्गेरामें मिल गयी है। उक्त जातीय दूसरा दल युरोपीय रूसके अस्त्रा-कान जिलेमें रहता है। २ जङ्गर—चीन राज्यके पश्चिम जुङ्गरिया राज्यमें उनका वासस्थान है। उसीके नाम-से वह ख्यात भी हो गये हैं। उनकी संख्या प्रायः २००० है। ३ डरेट, तागत या ढोसद। वह जुङ्गरिया छोड़ युरोपीय रूसको डन और इलि नदीके तीर जा कर रहे हैं। उनकी संख्या प्रायः १५००० है। वह आजकल डन कज्जाकोंके साथ प्रायः मिल गये हैं। ४ तार्गत—वह १६६० ई० को जुङ्गरिया छोड़ अस्त्रा

नदी तीर रहने लगी। उन्हें आज भी लोग "वलगावासी" काल्मक कहते हैं।

काल्मक भिन्न दूसरी किसी मङ्गोलीय वा तुर्क जातिके तुर्कस्थानवासियोंकी आकृति प्रकृतिसे उनका पूर्ण सौसादृश्य नहीं पड़ता। त्रयोदश शतवर्ष पूर्व जरनाण्डिसने हूण जातिकी वर्णना की थी। उसके साथ काल्मकोंका ही सम्पूर्ण सादृश्य देखा जाता है। किसी समय हूण दक्षिण युरोपमें फैल गये थे।

काल्मक—खर्वकाय, विस्तृत स्कन्ध, दीर्घ मस्तक, रक्ताभ गात्रवर्ण (नातिकृष्णवर्ण), अर्धमुदितनेत्र, सरल निम्नमुख-नासिक, प्रशस्तनासारन्ध्र और कुञ्चित एवं ऊर्ध्वकेश होते हैं। वह मुगल और मञ्चू लोगोंकी मूल जाति गिने जाते हैं। काल्मक भ्रमणशील, अश्वपृष्ठवासी और बहुत ही युद्धप्रिय हैं। वह साधारणतः यवके सत्तू पानीमें घोल कर खाते और कुमिश नामक एक प्रकार पानीय (घोटकीके सड़े दुग्धसे प्रस्तुत) पीते हैं। १८२८ ई० को रूसमें काल्मकोंकी शिक्षाके लिये विद्यालय प्रतिष्ठित हुये थे। उन विद्यालयोंकी शिक्षासे वह सभ्य और शिक्षित और ईसाई बन रहे हैं। किन्तु अनेक काल्मक आज भी बौद्ध ही हैं।

काल्य (सं० क्ली०) कल्यमेव स्वार्थे अण्, कलयति चेष्टां वा, कलि-यक् प्रज्ञादित्वात् अण्। १ प्रत्यूष, सवेरा। (त्रि०) २ प्रातःकाल कर्तव्य, सवेरे किया जानेवाला।

"प्रभाते काल्यमुत्थाय चक्रे गोदानमुत्तमम्।" (रामायण, २।३४)

काल्यक (सं० पु०) काले साधुः काल-यत् स्वार्थे कन्। आमहरिद्रा, कच्ची हलदी।

काल्या (सं० स्त्री०) कालः प्राप्तो ऽस्याः, काल-यत्-टाप्। १ गर्भग्रहणप्राप्तकाल रजस्वला गौ, उठी हुयी गाय, उसका अपर संस्कृत नाम उपसर्या है। २ प्रतिवत्सरप्रसवशीला गौ, हर साल ब्यानेवाली गाय।

काल्याणक (सं० क्ली०) कल्याणस्य भावः, कल्याण-वुञ्। द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यश्च। पा ५।१।१३३। कल्याणता, भलाईका भाव।

काल्याणिनेय (सं० पु०) कल्याण्या-अपत्यं कल्याणी ढक् इनङादेशश्च। कल्याण्यादीनामिनङ् च। पा ४।१।१२६। १ कल्याणीके पुत्र। (त्रि०) २ कल्याणीसे उत्पन्न।

काल्वालीकृत (वै० त्रि०) गंजा किया हुआ।

"काल्वालीकृता इव तर्हि पृथिव्यास नौषधय आसुर्न वनस्पतयः।" (पञ्च० २।१।३)

काल्हि (हिं०) कल देखो।

काव (सं० क्ली०) कविर्देवता ऽस्य, कवि-अण्। सामविशेष। उसके देवता कवि हैं।

कावचिक (सं० क्ली०) कवचिनां समूहः, कवचिन्-ठञ्। ठञ् कवचिनश्च। पा ४।२।४१। १ वर्मधारी योद्धगण, जिरह बखतर पहने हुये लोगोंका गिरोह। (त्रि०) २ कवचसम्बन्धीय, बखतरके मुतालिक।

कावट (सं० पु०) कर्वट, १०० गावोंका परगना या जिला।

कावड़ा—बङ्गालमें रहनेवाली एक जाति। कावड़ा चोरी करनेवाले कहाते हैं। परन्तु उनमें बहुतसे लोग खेती आदिके सहारे भी जीविका उपार्जन करते हैं।

कावर (हिं० पु०) १ अस्त्रविशेष, एक छोटा बरछा। वह जहाजकी गलहीमें बांध कर रखा जाता है। कावरसे ह्वेल आदिको मारते हैं।

कावरी (हिं० स्त्री०) मुद्दी, रस्सीका फंदा। वह दो ढीली रस्सियां बंटनेसे बनती है। जहाजमें उससे चीजें बांधी जाती हैं।

कावरुक (सं० पु०) १ पेचक, उल्लू। (त्रि०) २ भयानक, खौफनाक। ३ स्त्रीभक्त, जोरूका गुलाम।

कावली (हिं० स्त्री०) मत्स्यविशेष, किसी किस्मकी मछली वह दाक्षिणात्यकी नदीमें देख पड़ती है।

कावष (सं० क्ली०) सामविशेष।

कावषेय (सं० पु०) यजुर्वेदके एक ऋषि।

कावा (फा० पु०) चक्राकार भ्रमण, चक्कर, भांवर। घोड़ेके गलेकी रस्सी पकड़ एक आदमी खड़ा हो जाता और उसे काढनेके लिये अपनी चारो ओर घुमाता है। उसीको प्रायः कावा कहते हैं।

कावाद (सं० पु०) कु कुत्सितः ईषत् वा वादः, कोः कादेशः। वाक्यके द्वारा कलह, जबानी झगड़ा, चिकचिक।

कावार (सं० क्लो०) कं जलं आवृणोति, क-आ-वृ-अण्। शैवाल, सेवार।

कावारी (सं० स्त्री०) कावार-ङीष्। ह्रस्वादिच्छत्र, घासकी बनी छतरी। उसका संस्कृत पर्याय—जङ्गमकुटी और भ्रमत्कुटी है।

काविराज् (सं० स्त्री०) छन्दो विशेष, एक बहर। उसमें ८+१२+८ अक्षर होते हैं।

कावी (सं० स्त्री०) कवेरियम् कवि-ष्यञ्-ङीन्-यलोपः। शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन्। पा ४। १। ७३। कविसम्बन्धीया, शायरसे ताल्लुक रखनेवाली।

कावृक (सं० पु०) कुत्सितो वृक इव, ईषत् वृक इव वा, कोः कादेशः। १ कुक्कुट, मुरगा। २ चक्रवाक, चकवा। ३ पीतमस्तक पक्षी, पीली चोटीकी चिड़िया।

कावेर (सं० क्लो०) कस्य सूर्यस्येव आ ईषत् वेरं अङ्गं यस्य ज्योतिर्मयत्वात्। कुङ्कम, रोरी।

कावेरक (सं० पु०) रजत नाभिके गोत्रापत्य।

कावेरिका (सं० स्त्री०) कावेरी स्वार्थे कन्-टाप् ईकारस्य ह्रस्वत्वम्। कावेरी नदी।

कावेरी (सं० स्त्री०) कं जलमेव वेरं शरीरमस्याः, कवेर-अण्। तस्येदम्। पा ४। ३। १२०। १ दक्षिणापथकी एक महानदी, दक्खिनका एक बड़ा दरया। वह अक्षा० १२° २५′ उ० तथा देशा० ७५° ३४′ पू० पर कुरग राज्यमें पश्चिमघाटके ब्रह्मगिरिसे निकल दक्षिण-पूर्वाभिमुख महिसुर अधित्यका अतिक्रम कर मन्द्राज प्रदेशके मध्यसे बङ्गोपसागरमें जा गिरी है। कुरग राज्यमें कावेरीकी गति अति वक्रभावापन्न है। गर्भ प्रस्तरमय है। उभय तीर नाना वृक्षसमाकीर्ण हैं। कहनूर, कुम्भहोल, ककावे, मुत्तरेमुत्त, चिक्कहोल और सुवर्णवती नाम्नी कई उसकी शाखानदी हैं।

कावेरी नदी महिसुर राज्यमें अल्पही परिसरसे प्रवेश कर एकबारगी ही ३०० गजसे ४०० गज तक फैल गयी है। वहां खेती बारीके लिये उसके कई नाले हैं। नालोंके बीच बीच बांध भी करी हैं। उनमें बड़ा नाला प्रायः ३६ कोस विस्तृत है।

कावेरीके मध्य पुण्यतीर्थ शिवसमुद्र, श्रीरङ्गपत्तन और श्रीरङ्गम् द्वीप विद्यमान है। शिवसमुद्रके समीप कावेरी-प्रपात है। प्रायः १५० हाथ ऊंचेसे जल नीचेको उतरता है। वहां दृश्य मनोमुग्धकर है। शिवसमुद्रसे कावेरीके अपर पार पर्यन्त हिन्दू राजाओंके बनाये दो सुदृढ़ प्रस्तरसेतु हैं। यात्री उन्हीं सेतुसे शिवसमुद्रके दर्शनको जाते हैं।

महिसुरमें कावेरीकी कई शाखा हैं। यथा—हेमवती, लक्ष्मणतीर्थ, लोकपावनी, शिंशा, अर्कवती, सुवर्णवती या होन्नुहोला। वहां तञ्जोर और त्रिचनापल्लीके अभिमुख कई नाले निकल गये हैं। उनमें कालिदम (कोलरुण) नामक नाला ही प्रधान है।

मन्द्राज-विभागमें कावेरीकी निम्नलिखित कई शाखा हैं—भवानी, नोयेल, अमरावती।

रामायण, महाभारत प्रभृति प्राचीन ग्रन्थोंमें कावेरी पुण्यतोया मानी गयी है। हरिवंशके मतानुसार युवनाश्वके शापसे गङ्गाने शरीरार्धभागसे युवनाश्वकी कन्या बन जन्मग्रहण किया था। उन्हींका नाम कावेरी है। जह्नु मुनिने उनका पाणिग्रहण किया। कावेरीके ही गर्भसे जह्नुके सुनह नामक एक धार्मिक पुत्रने जन्म लिया। (हरिवंश,२७०) शरीरार्धभागसे जन्म लेनेके कारण कावेरी "अर्धगङ्गा" नामसे ख्यात हुयी हैं। स्कन्दपुराणीय कावेरीमाहात्म्यमें लिखा है,—

"ब्रह्मतनया विष्णु माया वा लोपामुद्राने पिताके आदेशसे कावेरी नामक किसी मुनिकी कन्या हो जन्मग्रहण किया था। फिर कावेरी मुनिके आनन्दवर्धन और मानवगणके पापमोचनको वह नदीरूपसे प्रवाहित हुयी।"

तलकावेरी और भागमण्डल नामक प्रथम सङ्गम स्थान पर अति प्राचीन देवमन्दिर हैं। कार्तिक मास सहस्र सहस्र तीर्थयात्री उक्त मन्दिर दर्शन और कावेरी-सलिलमें स्नान करनेको जाते हैं। दक्षिणापथके लोग कावेरीको "दक्षिणगङ्गा" कहते हैं।

हिन्दुस्थानमें जिस प्रकार निष्ठावान् हिन्दू गङ्गा-स्नान काल गङ्गास्तव पाठ करते, वैसे ही दाक्षिणात्यके लोग कावेरी नहाते "कावेरीस्तोत्र" पढ़ते हैं।

कावेरी-प्रवाहित-प्रदेशमें 'अश्वाक्रीडग' वा कावेरी

वाले ब्राह्मणोंका वास है। वही ब्राह्मण अथवा या कावेरीदेवीका पौरोहित्य करते हैं। वह सकल शाकान्नभोजी हैं। अपरापर कोड़ग ब्राह्मणोंके साथ उनके विवाहका आदान प्रदान नहीं होता।

कावेरीके प्रवल तरङ्गसे देश और शस्यको बचानेके लिये नाना स्थानोंमें हिन्दू राजावोंके बनाये पत्थरके बांध मौजूद हैं। उनमें श्रीरङ्गके निकट प्रधान बांध है। वह एक पत्थरसे बनाया गया है। बांध १०४० फीट दीर्घ और ४० से ६० फीट तक विस्तृत है। खृष्टीय ४ र्थ शताब्दसे पहले वह प्रस्तुत हुवा था। किन्तु आज भी उसे पुराना कह नहीं सकते।

पूजा कालको गङ्गा प्रभृति तीर्थ आवाहन करनेके मध्यमें कावेरी नदीका नाम अन्तर्निविष्ट है,—

"गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु॥" (तीर्थवाहन मंत्र)

कावेरीका जल स्वादु, श्रमघ्न, लघु, दीपन, दद्रु, कुष्ठघ्न और मेधा बुद्धि एवं रुचिप्रद है। (राजनिघण्टु)

कुत्सित' अपवित्रं शरीरं यस्याः। २ वेश्या, रण्डी। ३ हरिद्रा हलदी।

काव्य (सं० क्लो०) कवेरिदम्, कवेः कर्म भावो वा, कवि-ष्यञ्। १ कविताग्रन्थ, शायरीकी किताब। २ कुशल, क्षेम, खुशहाली। ३ बुद्धिमत्ता, अक्लमन्दी। ४ रसयुक्त वाक्य, मीठी बोली।

"काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यःपरनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे॥" (काव्यप्रकाश)

यशः, अर्थ, व्यवहारज्ञान, अमङ्गलविनाश, सद्यः परम निर्वृत्ति और कान्ता सकलके उपयुक्त उपदेश प्रयोगके निमित्त ही काव्य है।

"चतुर्वर्गफलप्राप्तिः सुखादल्पधियामपि।
काव्यादेव यतस्तेन तत्स्वरूपं निरूप्यते॥" (साहित्यदर्पण)

काव्यसे अल्प बुद्धि व्यक्ति भी अनायास धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप चतुर्वर्ग फल पाते हैं। अत एव काव्यका स्वरूप निरूपण करते हैं।

"काव्यं रसात्मकं वाक्यं दोषास्तस्यापकर्षकाः।
उत्कर्षहेतवः प्रोक्ता गुणालङ्काररीतयः॥" (साहित्यदर्पण)

रसात्मक वाक्य ही काव्य है। दोष उसका अपकर्षक होता है गुण, अलङ्कार और रीतिसे काव्यका उत्कर्ष बढ़ता है।

"आनन्दविशेषजनकवाक्यं काव्यम्।" (रसगङ्गाधर)

जिस वाक्यद्वारा मनमें विशेष आनन्द आता, वही काव्य कहाता है।

"कविवाङ्निर्मितिः काव्यम्। सा च मनोहरचमत्कारकारिणी रचना।" (कौस्तुभ)

मनोहर एवं चमत्कारकारिणी रचनाविशिष्ट कविवाक्य द्वारा जो बनता, उसे ही विद्वान् काव्य कहते हैं।

प्रथमतः वह उत्तम, मध्यम और अधम भेदसे तीन प्रकारका होता है। यथा—ध्वनि, गुणीभूतव्यङ्ग और चित्रकाव्य।

अतिशय व्यङ्गार्थ एवं वाच्यार्थ अपेक्षा ध्वनि अधिक रहनेसे उत्तम, गुणीभूत व्यङ्ग लगनेसे मध्यम और शब्दचित्र तथा वाच्यचित्र पड़ने एवं व्यंग्यार्थ-शून्य पड़नेसे अधम काव्य कहाता है।

उक्त काव्य प्रकारान्तरसे द्विविध है—महाकाव्य और खण्डकाव्य। महाकाव्यमें सर्गबन्धन आयेगा और एक देवता अथवा सद्वंशजात धीरोदात्त गुण-युक्त एक क्षत्रिय किंवा एकवंशीय सत्कुलजात बहुतर राजाको नायक बनाया जायेगा। शृङ्गार, वीर और शान्तके मध्य एक रस उसका अङ्गीभूत होगा। समस्त रस एवं समस्त नाटकसन्धि, इतिवृत्त अथवा अन्य सज्जनाश्रित चरित्र उसके अङ्ग हैं। महाकाव्यके वर्ग चार हैं। उनमें एक फल है। प्रथम नमस्कार, आशीर्वाद, वस्तुनिर्देश, खलनिन्दा अथवा सज्जन गुणानुकीर्तन करेंगे। सर्गके प्रथम एकविध वृत्तछन्दः द्वारा और सर्गके शेषभागमें अन्यविध वृत्त द्वारा रचना की जायगी। इस प्रकारके आठ सर्ग लग सकेंगे, जो न बहुत अल्प और न बहुत दीर्घ रहें। किसी किसी-के कथनानुसार नाना वृत्तछन्दः द्वारा सर्गरचना भी हो सकती है। उनमें प्रति सर्गके अन्तपर भावी सर्गकी कथा-सूचना रहेगी। सन्ध्या, सूर्य, चन्द्र, रात्रि, प्रदोष, अन्धकार, दिवस, प्रातः, मध्याह्न मृगया, पर्वत,

ऋतु, वन, सागर, सम्भोग, विप्रलम्भ, मुनि, स्वर्ग, पुर, यज्ञ, रणप्रयाण, विवाह, मन्त्र, पुत्रजन्मादि महाकाव्य-का वर्णनीय विषय है। इन सकलको यथायोग्य स्थानमें सन्निवेशित करना पड़ेगा।

साधारणतः काव्यमें दो प्रकारके भेद होते हैं। दृश्य और श्रव्य। जो काव्य अभिनयके उपयोगी रहते, उन्हें दृश्यकाव्य कहते हैं। यथा—नाटकादि। फिर जो काव्य केवल श्रवणके उपयोगी पाये जाते, वह श्रव्य कहाते हैं। दृश्यकाव्य—नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार, डिम, ईहामृग, अङ्क, वीथी और प्रहसन भेदसे दश प्रकार है। श्रव्यकाव्य गद्यपद्यभेदसे द्विविध होता है। पद्यकाव्यके दो भेद हैं—महाकाव्य और खण्डकाव्य। गद्यकाव्य भी कथा और आख्या-यिका भेदसे दो प्रकारका होता है। इसको छोड़ चम्पू, विरुद और करम्भक नामक तीन प्रकारका अन्यकाव्य मिलता है। (साहित्यदर्पण)

प्रायः समुदाय काव्य अतिश्रवणसुखकर, मनो-मुग्धकर और रसप्रकाशक होते हैं; इसीसे काव्य आ-लोचना करनेपर अन्य किसी शास्त्रकी आलोचनाकी इच्छा नहीं चलती। किसी उद्भट कविने कहा है—

"काव्येन हन्यते शास्त्रं काव्यं गीतेन हन्यते।
गीतञ्च स्त्रीविलासेन स्त्रीविलासो बुभुक्षया॥"

काव्यसे गीतशास्त्र, सङ्गीतसे काव्य, स्त्रीविलाससे सङ्गीत और बुभुक्षासे स्त्रीविलास विनष्ट हो जाता है। काव्यकलाप, अमरचन्द्रकृत काव्यकल्पलता, काव्यकाम-धेनु, तौतभट्टविरचित काव्यकौतुक, काव्यकौमुदी, काव्य-कौस्तुभ, कविचन्द्र एवं विद्यानिधिपुत्र न्यायवागीश-विरचित काव्यचन्द्रिका, रत्नपाणि, राजचूड़ामणि दीक्षित, और श्रीनिवास दीक्षितकृत काव्यदर्पण, कान्तिचन्द्र और गोविन्दरचित काव्यदीपिका, धनिक विरचित काव्यनिर्णय, काव्यपरिच्छेद, भारतीकवि, विश्वनाथ भट्टाचार्य और मम्मट भट्टकृत काव्यप्रकाश, राजानक आनन्दकविकृत काव्यप्रकाशनिदर्शन, गोविन्द भट्टकृत काव्यप्रदीप, श्रीनिवासरचित काव्य-सारसंग्रह, दण्डी तथा सोमेश्वररचित काव्यादर्श वाग्भट्टका काव्यानुशासन और काव्यालङ्कार, जिन-सेनाचार्यको अलंकारचिन्तामणि, रुद्रटका काव्या-लङ्कार, कुवलयानन्द, साहित्यदर्पण प्रभृति अलङ्कार-ग्रन्थमें काव्यका लक्षणादि और विस्तृत विवरण लिपिबद्ध हुवा है।

(पु०) कवेः भृगोरपत्यं पुमान्, कवि-ष्य यञ् वा। ३ शुक्राचार्य, उशना। पारसिकोंके प्राचीन अवस्ता ग्रन्थमें शुक्राचार्य 'कवउस्' नामसे वर्णित हुये हैं। ४ तामसमन्वन्तरीय एक ऋषि।

"ज्योतिर्धामापृथुः काव्यश्चैत्रोऽग्निर्वलकस्तथा।
पीवरश्च तथा ब्रह्मन् सप्त सप्तर्षयोऽभवन्॥" (मार्कण्डेयपु० ७४। ५९)

(त्रि०) ५ कवि या ऋषिके गुण रखनेवाला, जिसमें शायरको सिफत रहे। ६ कविता-सम्बन्धीय, शायरीके मुताल्लिक।

काव्यचौर (सं० पु०) काव्यस्य चौर इव। १ अन्य-रचित काव्य, अपना बतलानेवाला, जो दूसरेको बनायी शायरी अपनी बताता हो। २ चन्द्ररेणु।

काव्यता (सं० स्त्री०) काव्यस्य भावः काव्य-तल्। काव्यका लक्षणादि, शायरी बनानेकी शर्त।

काव्यदेवी (सं० स्त्री०) काश्मीरराज्ञी विशेष, काश्मीरकी एक रानी। उन्होंने काव्यदेवीश्वर नामक शिवलिङ्ग स्थापन किया था। (राजतरङ्गिणी ५। ४१)

काव्यमीमांसक (सं० पु०) काव्यस्य काव्यशास्त्रस्य मीमांसकः, ६-तत्। काव्यशास्त्रका मीमांसाकारक, इल्म फसाहतका उस्ताद।

काव्यरसिक (सं० त्रि०) काव्यस्य रसं वेत्ति, काव्य-रस-ठक्। काव्यवर्णित रसका अनुभवकारी, शायरीका शौकीन।

काव्यलिङ्ग (सं० क्ली०) अर्थालङ्कारविशेष। इसका साहित्यदर्पणोक्त लक्षण इस प्रकार है,—

"हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिङ्गम् दाहृतम्।"

हेतुका वाक्य और पदार्थत्व अर्थात् वाक्य वा पदार्थका हेतु रहनेसे काव्यलिङ्ग अलङ्कार होता है। यथा—

"यत्वन्नेत्रसमानकान्ति सलिले मग्नं तदिन्दीवरं
मेघैरन्तरितः प्रिये तव मुखच्छायानुकारी शशी।
येऽपि त्वद्गमनानुकारिगतयस्ते राजहंसा गता-
स्त्वत्सादृश्यविनोदमात्रमपि मे दैवेन न क्षम्यते॥"

हे प्रिये! तुम्हारे चक्षुकी कान्तिके सदृश कान्तियुत पङ्क जलमग्न हुवा है। तुम्हारे मुखके तुल्य चन्द्र मेघ द्वारा आवरित हुवा है एवं तुम्हारे गमनके अनुकारी गतिविशिष्ट राजहंस भी देशत्यागी हुये हैं। सुतरां वस्तु विशेषमें तुम्हारा सादृश्य देख कर जो हम सन्तुष्ट होंगे, विधाता उसे भी सह नहीं सकते।

इस स्थलपर शेष वाक्यके प्रतिपूर्व तीनों वाक्य हेतु हुये हैं। इसीसे वह काव्यलिङ्ग अलङ्कार है।

पदार्थगत काव्यलिङ्ग इस प्रकार होता है,—

"त्वद्वाजिराजिनिध्‌ तध लीपटलपङ्किलाम्।
न धत्ते शिरसा गङ्गां भूरिभारभिया हरः॥"

कोई किसी राजाको लक्ष्य कर कहता है, हे राजन्! तुम्हारे घोटकसमूहकर्तृक उत्थित धूलिराशि द्वारा गङ्गा पङ्किल हो गयी हैं। इसीसे महादेव उन्हें अधिक भार वहनके भयसे मस्तकपर धारण नहीं करते।

यहां परार्धश्लोकके प्रति पूर्वार्ध श्लोकका पद कारण है। इसीसे वह भी काव्यलिङ्ग अलङ्कार होता है।

काव्यशास्त्र (सं० क्ली०) काव्यं शास्त्रमिव उपदेशकत्वात्‌ काव्यरूप शास्त्र, काव्यसे बहुविध हितोपदेश मिलता है। इसीसे काव्यको भी शास्त्र कहा करते हैं,—

"काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्।" (उद्भट)

काव्यसुधा (सं० स्त्री०) काव्यं सुधा अमृतमिव, उपमि०। काव्यरूप अमृत। काव्य श्रवणसुखकर होता है। इसीसे उसकी तुलना अमृतसे करते हैं।

काव्यहास्य (सं० क्ली०) काव्येन काव्यश्रवणेन दर्शनेन वा हास्यं यत्र, बहुव्री०। प्रहसन, नकल। अधिकांश स्थलपर हास्यरसका वर्णन रहनेसे उसे सुन या उसका अभिनय देख अतिरिक्त हास्य करना पड़ता है। प्रहसन देखो।

काव्या (सं० स्त्री०) कव स्तुतिगाने बाहुलकात्‌ ण्यत्‌-टाप्‌। १ बुद्धि, प्रज्ञा। २ पूतना। वह मायाविनी विविध स्तुतिवाक्य एवं वेशविन्यास द्वारा नारियोंको मुग्ध कर उनसे शिशुग्रहणपूर्वक मार डालती थी। अन्तको कृष्णने उसका विनाश साधन किया। पूतना देखो।

काव्यायन (सं० पु०) काव्यस्य शुक्राचार्यस्य गोत्रापत्यम्‌ काव्य-फक्‌। शुक्राचार्यके पुत्र प्रभृति वंशधर।

काव्यार्थापत्ति (सं० स्त्री०) अर्थापत्ति नामक अलङ्कार।

काश (सं० पु०-क्ली०) काशते दीप्यते, काश-पचाद्यच्‌। १ तृणविशेष, कास। (Saccharum spontaueum) उसका संस्कृत पर्याय-इक्षुगन्धा, पोटगल, काश, काशी, काशा, वायसेक्षु, काण्डेक्षु, अमरपुष्पक, कामक, वनङ्गसक इक्ष्वारि, काकेक्षु, इक्षुर, इक्षुकाण्ड, शारद, सितपुष्पक, नादेय, दर्भपत्र, लेखुन, काण्डकाण्डक, और कच्छूलकारक है। भावप्रकाशके मतमें काश मधुर एवं तिक्तरस, पाकमें मधुर, शीतल और मेदकारक है। उससे मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, दाह, रक्तदोष, क्षय और पित्तसे उत्पन्न रोग नष्ट हो जाता है। राजनिघण्टु, और शब्दरत्नावली ने उसे रुचि, तृप्ति, बल एवं शुक्रकारक और श्रान्ति तथा कफनाशक एवं कण्ठकण्डुकारी लिखा है।

हिन्दुस्थानमें काशको कांस, कगर, कोस, कुस या कास, बङ्गालमें खागरा, युक्तप्रदेशमें कांसी, अवधमें रर, कुमायूंमें झांस, पंजाबमें सरकर, राजपूतानामें काशी, सिन्धुमें खान, मध्यप्रदेशमें पदर, मारवाड़में कगर, तेलगुमें रेल्लुगद्दि, और ब्रह्ममें येतकियाकिन कहते हैं। वह मोटी और बारहो महीने रहनेवाली घास है। काशकी जड़ें दूरतक रेंगते चली जाती हैं। भारतमें वह बहुत मिलता है। फिर हिमालयमें काश ६००० फीट ऊपर तक पाया जाता है। भूमिकी प्रकृतिके अनुसार उसकी उच्चतामें भी भेद पड़ता है। भीगी नीची जमीन् काशका घर है। वहां उसकी फूलती हुयी डालियां १२ फीट तक बढ़ती हैं। वर्षा ऋतु समाप्त होते ही काश फूलता है। हिन्दीके महाकवि तुलसीदासजीने लिखा है,—

"फूले काश सकल महि छायी। जनु वर्षा ऋतु प्रकट बुढ़ायी॥"

काशकी जड़ बहुत सुदृढ़ लगती है। उसे खेतोंसे निकालना कुछ सरल नहीं। कहते हैं कुछ दिनोंमें वह आप ही आप नष्ट हो जाता है।

काश अधिकतर छानी छप्परके काम आता है। उससे रस्सियां और चटाइयां भी तैयार होती हैं।

काशको भैंस बड़े चावसे खाती है। नया काश हाथियोंको भी खिलाया जाता है। झंग जिलेमें वह बहुत होता है। रोहतक जिलेमें घोड़ोंको काश

खिलाते हैं। वहां ऊंट और बकरे भी उससे सन्तुष्ट रहते हैं। किन्तु हिन्दुस्थानका काश इतना कड़ा होता है कि उसे पशु कभी नहीं खाता। काश अति पवित्र तृण है।

(पु०) केन जलेन कफात्मकेन इत्याशयः अश्नुते व्याप्यते इत, क-अश् अधिकरणे घञ्। २ चत, जखम, घाव। काशयति शब्दं करोति, काश-णिच् पचाद्यच्। ३ रोगविशेष, खांसीकी बीमारी।

"धूमोपघाताद्रजसस्तथैव व्यायामरूक्षान्ननिषेवणाच्च।
विमार्गगत्वाद्धि च भोजनस्य वेगावरोधात् क्षवथोस्तथैव॥" (सुश्रुत)

मुख नासिकादि द्वारा अतिरिक्त धूम वा धूलि प्रभृतिके प्रवेश, अपरिपक्व रसके ऊर्ध्व गमन, व्यायाम, रूक्ष द्रव्यभोजन, द्रुत भोजनादि दोषमें भुक्तद्रव्यके विपथ पर गमन, मलमूत्रादिके वेगधारण और छिक्काके वेगरोधादि सकल कारणसे वायु कुपित हो अन्यान्य समुदाय दोष कुपित कर देता है। उसीसे काश विशेषकी उत्पत्ति होती है।

"पूर्वरूपं भवेत्तेषां शूकपूर्णगलास्यता।
कण्ठे कण्डूश्च भोज्यानामवरोधश्च जायते॥" (चरक चि०)

काश रोग उत्पन्न होनेसे पहले बोध होता मानो गल और मुखके मध्य कोई शूक (अनाजका रेशा) परिपूर्ण है। सुतरां गलेमें सरसर होने लगता है। फिर भोजन करते समय ऐसी यातना मालूम पड़ती मानो भुक्तद्रव्य अटका हुआ है।

"अधः प्रतिहतो वायुरूर्ध्वस्रोतःसमाश्रितः।
उदानभावमापन्नः कण्ठे सक्तस्तथोरसि॥
आविश्य शिरसः खानि सर्वाणि प्रतिपूरयन्।
आभञ्जन्नाक्षिपन् देहं हनुमन्ये तथाक्षिणी॥
नेत्रे पृष्ठमुरःपार्श्वे निर्भुज्य स्तम्भयंस्ततः।
शुष्को वा सकफो वापि कासनात् कास उच्यते॥
प्रतिघातविशेषेण तस्य वायोः सरंहसः।
वेदनाशब्दवैशेष्यं कासानामुपजायते॥" (चरक)

निदान समूहद्वारा वायु अधोदिक् आ न सकनेसे ऊर्ध्व दिक् गमन करता है। सुतरां उदानता पाकर वह कण्ठ और वक्षःस्थलमें आसक्त हो जाता है। फिर वायु ऊर्ध्वदेहस्थ मुख, नासिका, कर्ण और चक्षु रूप छिद्र समूहमें घुस सकल छिद्र पूर्ण करता है। इसीसे वायु मुख द्वारसे विविध शब्दके साथ निर्गत होता है। उस समय रोगीका देह, हनुद्वय, मन्याद्वय, पृष्ठदेश, वक्षःस्थल, पार्श्वद्वय एवं नेत्रद्वय सङ्कुचित और हस्त पदादि आक्षिप्त हो जाता है। काशरोगमें कभी केवल वायुमात्र और कभी कफादि दोष भी उसके साथ निकलता है। वेगवान् वायु विविध भावमें प्रतिहत होनेसे नानाविध शब्द और वेदना हुआ करती है।

काशरोग कई प्रकारका है—वातज, पित्तज, श्लेष्मज, सन्निपातज, क्षतज और क्षयज।

"रूक्षशीतकषायाल्पप्रमितानशनं स्त्रियः।
वेगधारणमायासो वातकासप्रवर्तकाः॥
हृत्पार्श्वोरःशिरःशूलस्वरभेदकरो भृशम्।
शुष्कोरःकण्ठवक्त्रस्य हृष्टलोम्नः प्रताम्यतः॥
निर्घोषदैन्यस्तननदौर्बल्यक्षोभमोहकृत्।
शुष्कः कासः कफं शुष्कं कृच्छ्रान्मुक्त्वाल्पतां व्रजेत्॥
स्निग्धाम्ललवणोष्णैश्च भुक्तपीतैः प्रशाम्यति।
ऊर्ध्ववातस्य जीर्णेऽन्ने वेगवान् मारुतो भवेत्॥ (चरक)

रूक्ष, शीतल एवं कषाय द्रव्य भोजन, अल्पपरिमाण भोजन, उपवास, अतिरिक्त स्त्रीसहवास, मलमूत्रादिके वेगधारण और परिश्रमजनक कार्यसमूह द्वारा वायु कुपित होता है। उससे अन्यान्य दोष भी कुपित हो वातज काश उत्पादन करते हैं। उस काशमें हृदय, पार्श्वदेश, वक्षःस्थल और मस्तकमें वेदना होती है। स्वरभेद पड़ता है। बार बार वक्षः, कण्ठ और मुख सूख जाता है। रोमहर्ष होता है। मूर्छा आती है। कासका अत्यन्त शब्द उठता है। शरीरको ग्लानि लगती है। मुख शुष्क रहता है। दुर्बलता आती है। क्षोभ बढ़ता है। मोह पड़ता है। फिर शुष्क कास प्रभृतिका लक्षण झलकता है। खांसते खांसते अति अल्प परिमाणमें शुष्क कफ निकलनेसे कुछ उपशम समझ पड़ता है। किन्तु स्निग्ध द्रव्य, जल, लवण और उष्ण द्रव्य खानेसे उसका प्रकृत उपशम होता है। आहार जीर्ण होनेसे वातज काशका वेग बहुत बढ़ जाता है।

"कटुकोष्णविदाह्यम्लक्षाराणामतिसेवनम्।
पित्तकासकरं क्रोधः सन्तापश्चाग्निसूर्यजः॥

पीतनिष्ठीवनाक्षित्वं तिक्तास्यत्वं स्वरामयः ।
उरो धूमायनं तृष्णादाहमोहारुचिभ्रमाः ॥
प्रततं कासमानश्च ज्योतींषीव च पश्यति ।
श्लेष्माणं पित्तसंसृष्टं निष्ठीवति च पैत्तिके ॥" (चरक)

कटुरस, उष्णद्रव्य, अम्लपाकद्रव्य, अम्लरस एवं क्षार द्रव्य भोजन और क्रोध, अग्नि वा रौद्रताप प्रभृति कारणसे पित्त कुपित हो अन्यान्य दोषको भी कुपित कर देनेसे पित्तजकासकी उत्पत्ति होती है । उसमें दोनों चक्षु पीतवर्ण पड़ जाते हैं । मुखका आस्वाद तिक्त रहता है । स्वर भङ्ग होता है । वक्षःस्थलसे धूम निर्गमकी भांति यातना उठती है । तृष्णा लगती है । दाह बढ़ता है । अरुचि मालूम पड़ती है । भ्रम हो जाता है । खांसनेके समय मानो चक्षुसे ज्योतिः निकलता है । फिर पित्तमिश्रित पीतवर्ण श्लेष्मा गिरता है ।

"गुर्वभिष्यन्दिमधुरस्निग्धस्वप्नविचेष्टितैः ।
वृद्धः श्लेष्मानिलं रुद्ध्वा कफकासमुदीरयेत् ॥
मन्दाग्नित्वारुचिच्छर्दिपीनसोत्क्लेशगौरवैः ।
लोमहर्षास्यमाधुर्यक्लेदसंसदनैर्युतम् ॥
बहुलं मधुरं स्निग्धं घनं ष्ठीवत् कफं तथा ।
कासमानो ह्यरुग्वक्षः सम्पूर्णमिव मन्यते ॥ (चरक)

गुरुपाक द्रव्य, क्लेदकर द्रव्य, स्निग्ध एवं मधुर भोजन तथा दिवानिद्रा, अव्यायाम प्रभृति कारणसे श्लेष्मा बढ़ वायुका पथ रोकता है । उसीसे श्लेष्मज कासकी उत्पत्ति होती है । कफज कासमें अग्निमान्द्य, अरुचि, वमन, पीनस रोग और उत्क्लेश बढ़ता है । शरीरमें भार बोध होता है । रोम हर्षित रहते हैं । मुखमें मिष्ट आस्वाद मालूम पड़ता है । शरीर अवसन्न हो जाता है । फिर कासके साथ मधुर रसयुक्त, स्निग्ध और घन कफ बहु परिमाणमें निकलता है । वक्षःस्थल कफसे पूर्ण समझ पड़ता है । खांसनेमें कोई वेदना मालूम नहीं पड़ती ।

"अतिव्यवायभाराध्वयुद्धाश्वगजनिग्रहैः ।
रूक्षस्योरःक्षतं वायुर्गृहीत्वा कासमावहेत् ॥
स पूर्वं कासते शुष्कं ततः ष्ठीवेत् सशोणितम् ।
कण्ठेन रुजताऽत्यर्थं विरुग्णेनेव चोरसा ॥
सूचीभिरिव तीक्ष्णाभिस्तुद्यमानेन शूलिना ।
दुःखस्पर्शेन शूलेन भेदपीड़ाभितापिना ॥
पर्वभेदज्वरश्वासतृष्णावैस्वर्यपीड़ितः ।
पारावत इवाकूजन् कासवेगात् क्षतोद्भवात् ॥" (चरक)

अतिरिक्त मैथुन, भारवहन, पथपर्यटन, युद्ध, वेगवान् अश्व वा हस्तीको पकड़ उसके वेगरोध प्रभृति कार्य-द्वारा रूक्ष भोजनकारी व्यक्तिका वक्षःस्थल आहत होनेसे वायु कुपित हो क्षतज कास उत्पादन करता है । उक्त रोगमें प्रथमतः रोगीको सूखी खांसी आती है । पीछे कासके साथ रक्त निकलता है । तद्भिन्न कण्ठ और वक्षःस्थलमें वेदना उठती है । विशेषतः वक्षःस्थलमें सूचीवेधकी भांति यातना होती है । शूल, सन्ताप, सन्धिस्थानमें वेदना, ज्वर, श्वास, तृष्णा, स्वरभेद और पारावतके कूजनकी भांति शब्द प्रकाश पाता है ।

"विषमासात्म्यभोज्यातिव्यवायाद्वेगनिग्रहात् ।
घृणिनां शोचतां नृणां व्यापन्नेऽग्नौ त्रयो मलाः ॥
कुपिताः क्षयजं कासं कुर्युर्देहक्षयप्रदम् ।
दुर्गन्धं हरितं रक्तं ष्ठीवेत् पूयोपमं कफम् ॥
कासमानश्च हृदयं स्थानभ्रष्टं स मन्यते ।
अकस्मादुष्णशीतार्तो बह्वाशी दुर्बलः कृशः ॥
प्रसन्नः स्निग्धवदनः श्रीमद्दर्शनलोचनः ।
पाणिपादतलैः श्लक्ष्णैः सततं सन्नभूषकः ॥
ज्वरो मिश्राकृतिस्तस्य पार्श्वरुक्पीनसोऽरुचिः ।
भिन्नसंघातवर्चस्त्वं स्वरभेदोऽनिमित्ततः ।
इत्येष क्षयजः कासः क्षीणानां देहनाशनः ।
साध्यो बलवतां वा स्यात् याप्यस्त्वेवं क्षतोत्थितः ॥
नवौ कदाचित् सिध्येतामेतौ पादगुणान्वितौ ।
स्थविराणां जराकासः सर्वो याप्यः प्रकीर्तितः ॥" (चरक)

विषमभाव अर्थात् न्यूनाधिकरूप भोजन, अनभ्यस्त द्रव्य भोजन, अत्यन्त मैथुन, वेगवान् अश्व प्रभृतिके वेग संरोध आदि दुष्कर कार्य और घृणा तथा शोकवशतः अग्नि दूषित होनेसे वात, पित्त एवं कफ तीनों दोष कुपित हो क्षयज कास उत्पादन करते हैं । उक्त रोगमें देह क्षीण हो जाता है । हरितवर्ण वा रक्तवर्ण दुर्गन्धयुक्त और पूयकी भांति कफ निकलता है । खांसनेके समय बोध होता, मानो हृदयस्थान गिर पड़ता है । समय समय अकस्मात् उष्णस्पर्श वा शीत

भ्रमसे यातना मा ूम होती है। बहु भोजन करते भी रोगी दुर्बल और कृश रहता है। मुख प्रसन्न और स्निग्ध तथा चक्षु प्रियदर्शन लगता है। हस्त एवं पदतल मसृण पड़ जाता है। तृषा और हिंसा अधिक परिमाणमें आती है। द्विदोष वा त्रिदोषके कारण ज्वर, पार्श्ववेदना, पीनस और अरुचिका प्राबल्य होता है। कभी पतला और कभी कठिन मल निकलता है। स्वरभेद अकारण हुवा करता है।

उक्त पांच प्रकारके कासमें वातज, पित्तज और कफज साध्य है। क्षयकास स्वभावतः याप्य होता है। किन्तु क्षयज कास बहुत दुर्बल और क्षीण व्यक्तिके लिये प्राणघातक है। फिर बलवान् व्यक्तिके क्षयज कास उत्पन्न होते ही चिकित्सा करनेसे साध्य भी हुवा करता है।

एतद्भिन्न जराकास नामक एक प्रकार कास होता है। वह स्वभावतः ही याप्य है।

रूक्ष व्यक्तिको वायुजन्य कासमें प्रथमतः वायुनाशक द्रव्य समूह द्वारा सिद्ध वस्ति; और, यूष एवं मांस रसादिके साथ स्निग्ध पेय द्रव्य, स्निग्ध धूम, स्निग्ध अवलेह, स्नेहाभ्यङ्ग, स्नेह परिषेक और स्निग्ध स्वेद प्रदान करना चाहिये। उसके पीछे अन्यान्य औषधादि व्यवहार करना पड़ता है। मलबद्ध रहनेसे वस्तिकर्म, ऊर्ध्ववात होनेसे भोजनके पूर्व घृतपान, पित्त एवं कफसंयुक्त वातज कासमें स्नेह विरेचन देना पड़ता है।

पित्तजन्य कासके साथ कफका विशेष अनुबन्ध रहनेसे वमनकारक घृतपान द्वारा, किंवा मदनफल, गम्भारीफल एवं यष्टिमधुके क्वाथ जल द्वारा, अथवा भूमिकुष्माण्डरस, तथा इक्षुरसके साथ यष्टिमधु और मदनफलके कल्कपान द्वारा प्रथमतः वमन कराते हैं। वमनद्वारा दोष निःसारित होनेपर शीतल और मधुररसयुक्त पेयादि पिलाना चाहिये। उसके पीछे अन्यान्य औषधका व्यवहार कर्तव्य है। किन्तु कफका अनुबन्ध अल्प रहनेसे वमन न करा मधुररसके साथ त्रिवृत् चूर्ण द्वारा विरेचन कराना चाहिये। कफ रहनेसे तिक्त रसविशिष्ट द्रव्यके साथ त्रिवृत् चूर्णका प्रयोग आवश्यक है। कफ पतला रहनेसे स्निग्ध एवं शीतल भोज्यादि और कफ घन रहनेसे रूक्ष तथा शीतल भोज्यादि व्यवहार कराना चाहिये।

कफज कासमें रोगीको बलवान् रहनेसे प्रथमतः वमन करा शुद्ध करना उचित है। उसके पीछे कटुरसयुक्त, रूक्ष और उष्ण यवागु भृति सेवन करा अन्यान्य औषध व्यवहार कराना चाहिये।

क्षयज कासमें प्रथमतः शरीर तुष्टिकारक और अग्निदीप्तिकारक द्रव्यादि खिलाते हैं। दोष अधिक रहनेसे स्नेह द्रव्यके साथ मृदु विरेचन देना उचित है। उसके पीछे अन्यान्य औषध व्यवहार कराना चाहिये।

विल्व, श्योनाक, गाम्भारी, पाटला एवं गणिकारी पञ्चमूल, अथवा शालपर्णी, चक्रमर्द, बृहती, कण्टकारी तथा गोक्षुर पञ्चमूलका क्वाथ प्रस्तुत करा पिप्पलिचूर्ण प्रक्षेपके साथ पान करनेसे वातज कासका उपशम होता है॥ १॥

वाट्यालका, बृहती, कण्टकारी,—वासकलक और द्राक्षा समुदायका क्वाथ शर्करा तथा मधु मिलाकर पीनेसे पित्तज कास प्रशमित होता है॥ २॥

कुष्ठ, कट्फल, ब्राह्मणयष्टिका, शुण्ठी और पिप्पलीका क्वाथ पान करनेसे श्लेष्मज कास दब जाता है। तद्भिन्न श्वास और वक्षोवेदना भी निराकृत होती है॥ ३॥

श्लेष्मज कासके साथ पार्श्ववेदना, ज्वर और श्वास रोग रहनेसे विल्व, श्योनाक, गाम्भारी, पाटला, गणिकारी, शालपर्णी, चक्रमर्द, बृहती, कण्टकारी, तथा गोक्षुर दशमूलका क्वाथ पिप्पली चूर्णके साथ पान करना चाहिये॥ ४॥

कट्फल, गन्धतृण, ब्राह्मणयष्टिका, मुस्ता, धना, वचा, हरीतकी, कर्कटशृङ्गी, क्षेत्पापड़ा, शुण्ठी और देवदारु सकल द्रव्यका क्वाथ मधु एवं हिङ्गुके साथ पीनेसे वातश्लेष्मजन्य कास निवारित होता है। तद्भिन्न कण्ठरोग, क्षयरोग, शूल, श्वास, हिक्का और ज्वरादि उपद्रवको भी शान्ति देख पड़ती है॥ ५॥

कण्टकारिका क्वाथ पिप्पलीचूर्णके साथ पान करनेसे सर्वविध कासका उपशम होता है॥ ६॥

तालीशादि चूर्ण, मरिचादि समशकरचूर्ण

प्रभृति चूर्ण औषधसमूह सर्वविध कासरोगनिवारक है। (चक्रदत्त)

बृहत् रसेन्द्रगुड़िका, अमृतार्णवरस, पित्तकासान्तकरस, काससंहारभैरव, लक्ष्मीविलासरस, सर्वेश्वररस, शृङ्गाराभ्र, सार्वभौम, तरुणानन्दरस, महोदधिरस, जयागुड़िका, विजयगुड़िका, स्वच्छन्दभैरव, रसगुड़िका, रसेन्द्रगुड़िका, पुरन्दरवटी, कासान्तकरस, कासकुठार, चन्द्रामृतलौह, चन्द्रामृतरस, अमृतमञ्जरी, कासान्तक, बृहत्शृङ्गाराभ्र और नित्योदयरस प्रभृति औषध समूह कासरोगीकी विशेष अवस्था विवेचना कर प्रयोग करना पड़ता है। (रसेन्द्रसारसंग्रह)

अशोकवीज, अपामार्ग, विडङ्ग, सौवीराञ्जन, पद्मकाष्ठ और विट्‌लवणका चूर्ण घृतमें मिला रोगीके बलानुसार यथामात्रा लेहन करनेसे कासरोग प्रशमित होता है। उक्त अवलेह खानेके पीछे किञ्चित् छागदुग्ध पीना चाहिये। १।

विडङ्ग, शुण्ठी, रास्ना, पिप्पली, हिङ्गु, सैन्धव लवण, ब्राह्मणयष्टिका और यवक्षार समुदायका चूर्ण घृतके साथ यथामात्रा अवलेहन करनेसे कफसंयुक्त वात कास एवं श्वास, हिक्का तथा अग्निमान्द्य रोग अच्छा हो जाता है॥ २॥

दुरालभा, शुण्ठी, शठी, द्राक्षा, शर्करा और कर्कटशृङ्गीचूर्ण तैलके साथ अवलेहन करनेसे वातज कास चला जाता है॥ ३॥

दुरालभा, पिप्पली, मुस्ता, ब्राह्मणयष्टिका, कर्कटशृङ्गी और शुण्ठीका चूर्ण; अथवा पिप्पली तथा शुण्ठीका चूर्ण; किंवा ब्राह्मणयष्टिका एवं शुण्ठीका चूर्ण पुरातन गुड़ और तैलके साथ अवलेहन करनेसे वातज कास छूट जाता है॥ ४॥

चोपचीनी, आमलकी, मधु, द्राक्षा, चन्दन और नील सम्बुक पुष्प सकल द्रव्यका अवलेह कफसंयुक्त पित्तकासमें हितकर है॥ ५॥

उक्त अवलेह घृतके साथ चाटनेसे वायुसंयुक्त पित्तकास निवारित होता है॥ ६॥

५० किसमिस, ३० पिप्पली और आध पाव शर्करा सकल द्रव्यका अवलेह बना मधुके साथ लेहन करनेसे वायुसंयुक्त कासरोग अच्छा हो जाता है॥ ७॥

दालचीनी, इलायची, सोंठ, पीपल, मिर्च, किशमिश, पिपरामूल, कुष्ठ, खील, मोथा, शठी, रास्ना, आमलकी एवं हरीतकीका चूर्ण चीनी और मधुके साथ लेहन करनेसे कास तथा हृद्रोग प्रशमित होता है॥ ८॥

पीपल, पिपरामूल, सोंठ और बहेरा; अथवा मयूर एवं कुक्कुटपुच्छकी भूषा तथा यवक्षार, किंवा महाकाल (इन्द्रवारुणी) पिप्पलीमूल और त्रिपुटा चूर्ण मधुके साथ लेहन करनेसे कफज कास दब जाता है॥ ९॥

देवदारु, शठी, रास्ना, कर्कटशृङ्गी एवं दुरालभा, अथवा पिप्पली, शुण्ठी, मुस्ता, हरीतकी, आमलकी तथा शर्करा, किंवा खदिका (खाल), शर्करा, घृत, कर्कटशृङ्गी और आमलकी मधु एवं तैलके साथ लेहन करनेसे वायुसंयुक्त कफज कास निवारित होता है॥ १०॥ (वाभट० चिकित्सा० ३० अ०)

चित्रकमूल, पिप्पलीमूल, शुण्ठी, पिप्पली, मरिच, मुस्ता, दुरालभा, शठी, कुष्ठ, विल्वकर्णी, तुलसी, वचा, ब्राह्मणयष्टिका, गुलेचीन, रास्ना और कर्कटशृङ्गी प्रत्येकका चूर्ण २ तोला, कण्टकारी ६। सेर ३२ सेर जलमें क्वाथ कर ८ सेर रहने पर छान कर क्वाथमें गुड़ २॥ सेर तथा घृत २ सेर एकत्र पाक करना चाहिये। गाढ़ा पड़ जाने पर उसमें वंशलोचनचूर्ण आध सेर एवं पिप्पलीचूर्ण आध सेर डालते हैं। यह अवलेह व्यवहार करनेसे कास, हृद्रोग और गुल्मरोग अच्छा हो जाता है। (चरक चिकित्सा० १८ अ०)

सैन्धवलवण एवं पिप्पलीचूर्ण ईषदुष्ण जलके साथ किंवा शुण्ठीचूर्ण तथा शर्करा दधिकी मलाईके साथ सेवन करनेसे कासरोग आरोग्य होता है।१-२

वेरकी गुठलीकी मींगी दहीकी मलाईके पिप्पलका कल्क घृतमें तल कर सैन्धव लवणके साथ सेवन करनेसे भी कासरोग छूट जाता है। ३-४।

अदरकका रस २ तोला किञ्चित् मधुके साथ पान करनेसे श्लेष्मकास, श्वास, प्रतिश्याय और कफकी शान्ति होती है॥ ५॥

वासक पत्रका रस २ तोला किञ्चित् मधुके साथ पीने पर पित्तजन्य कास छूटता है। रक्तपित्त रोगमें भी यह योग उपकारी है। ६।

दुग्धपायी गोवत्सके गोवरका रस मधुके साथ पीनेसे वायुजन्य कास अच्छा होता है। ७।

शटी, वालक, बृहती और शुण्ठी सकल द्रव्य जलमें पेषण कर उससे छान शर्करा एवं घृतके साथ पीनेसे पित्तजन्य कास छूटता है। ८।

कण्टकारी, बृहती, भृङ्गराज, अश्वविष्ठा वा कृष्णतुलसीका रस पृथक् पृथक् मधुके साथ पान करनेसे श्लेष्मज कास अच्छा होता है। ९।

किंशुक पत्रके रसमें घृत पाक कर पीनेसे कफज कास निवारित होता है। १०।

स्वल्प कण्टकारीघृत, पिप्पल्यादिघृत, त्र्यूषणाद्यघृत, रास्नाघृत, बृहत्कण्टकारीघृत, द्विपञ्चमूल्यादिघृत, गुडूच्यादिघृत, कासमर्दादिघृत, दशमूलघृत, दशमूला घृत और दशमूलषट्पदघृत प्रभृति दोषके अनुसार व्यवहार करना पड़ता है। (चरक और चक्रदत्त)

अगस्त्यहरीतकी और च्यवनप्राशादि मोदक कास रोगमें व्यवहार करना चाहिये।

कासरोगमें वायु कफयुक्त होनेसे कफनाशक कार्य और वातश्लेष्मा पित्तयुक्त रहनेसे पित्तनाशक चिकित्सा करते हैं। वातश्लेष्मजन्य शुष्क कासमें स्निग्धक्रिया, आर्द्रकासमें रूक्ष क्रिया और पित्तयुक्त कफकासमें तिक्तसंयुक्त औषध प्रयोग करना उचित है।

कफज कासमें पित्तानुबन्ध, तमक श्वास उपस्थित होनेसे पित्तज कासकी चिकित्सा कर्तव्य है।

कासरोगमें वक्षःमध्य क्षत होनेसे दुग्धके साथ मधुसंयुक्त लाक्षा सेवन कराना चाहिये। उसमें दुग्ध और शर्कराके साथ शालितण्डुलका अन्न पथ्यकी भांति दिया जाता है।

पार्श्व और वस्तिदेशमें वेदना रहनेसे तथा अग्निबलवान् होनेसे मद्यके साथ लाक्षा व्यवहार कराना चाहिये पतला मलभेद होनेसे मुस्ता, आवर्तनी, विश्वकर्णी और कुटजके क्वाथके साथ लाक्षा सेवन कराना चाहिये।

लाक्षा त, मोम, गुलेचीन, वंशलोचन, अश्वगन्धा, अनन्तमूल, वाट्यालका, चक्रमर्द, काकोली, क्षीरकाकोली, पर्णी, माषपर्णी, जीवन्ती, यष्टिमधु, चन्दन और वंशलोचन सकल द्रव्यके साथ दुग्ध पाककर पिलाते हैं। कासघ्न, शृङ्गीविष गैंठेला, पद्मकेशर और चन्दनको मिलाकर दूध औटाकर भी पिलाया जाता है उससे वक्षःस्थलका क्षत आरोग्य होता है। रोगीको अग्निमान्द्य रहनेसे उक्त उभयविध दुग्ध पिलाना उचित नहीं।

कासरोगीको पर्वशूल वा अस्थिशूल होनेसे मौलफल, यष्टिमधु, किशमिश, वंशलोचन और पिप्पली सकल द्रव्य मधु एवं घृतके साथ चटाना चाहिये।

रक्त गिरनेसे पुनर्नवा, शर्करा और रक्तशालि तण्डुलका चूर्ण द्राक्षारस, दुग्ध एवं घृतके साथ सिद्ध कर पिलाते हैं। अथवा तण्डुलीयबीज, मौलफल, यष्टिमधु और दुग्ध एकत्र पाक कर पिलाना उचित है।

मुखादिके पथसे रक्तपित्तकी भांति रक्त निकलने पर रक्तपित्तकी भांति ही चिकित्सा चलती है।

कासरोगमें देह क्षीण होनेसे देशकाल बलाबल विवेचना कर मांस-भोजी जन्तुका मांसरस घृतमें सन्तलनपूर्वक पिप्पलीचूर्ण और मधु डाल पिलाना चाहिये। यह रक्तमांसवर्धक है।

उरःक्षत और शुक्र, बल एवं इन्द्रिय क्षीण होनेसे वटत्वक्, यज्ञडुमुरत्वक्, अश्वत्थत्वक्, पर्कटीत्वक्, शालत्वक्, प्रियङ्गुत्वक्, तालमाथी, जम्बुत्वक्, प्रियालत्वक्, पद्मकाष्ठ और अश्वकर्णत्वक्के साथ दुग्ध सिद्ध करते हैं। उससे जो घृत निकलता उसीके साथ शालितण्डुलका अन्न आहार करना पड़ता है।

कासरोगसे हृदय और पार्श्वमें वेदना रहने पर गुलेचीन, वंशलोचन, अश्वगन्धा, अनन्तमूल, वाट्यालका चक्रमर्द, काकोली, क्षीरकाकोली, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, जीवन्ती और यष्टिमधुके साथ पक्व घृत पिलाना चाहिये। अथवा ऐसा औषध प्रयोग किया जाता, जो पित्त और रक्तका विरोधी न हो वायुको दबाता है।

उरःक्षत रहनेसे यष्टिमधु एवं चक्रमर्दके क्वाथ और दुग्धिका, पिप्पली तथा वंशलोचनके कल्क साथ यथाविधान घृत पाक कर पान कराते हैं।

क्षयकासमें पित्त, कफ और धातु सकल क्षीण होनेसे कर्कटशृङ्गी, धात्र्यालका एवं चक्रमर्दके कल्क और दुग्धके साथ यथानियम घृत पाक कर सेवन कराना चाहिये। कासरोगमें मूत्रकी विवर्णता रहने अथवा कष्टसे मूत्र निकलनेपर भूमिकुष्माण्ड वा क्वदम्ब और तालशस्यके साथ घृत वा दुग्धपाक कर पिलाते हैं।

लिङ्ग, गुह्य, कटी एवं वंक्षण (कूलेके जोड़) में सूजन और वेदना रहनेसे लघु घृतमण्ड अथवा मिश्रित घृत तथा तैलकी पिचकारी लगाना चाहिये।

इलायची, दालचीनी और तेजपातका चूर्ण एक एक तोला, पपीलका चूर्ण ४ तोला तथा शक्कर, किशमिश, आलूफल और पिण्डखजूर आठ-आठ तोला सकल द्रव्यसे मधुके साथ वटिका बना सेवन करनेसे रक्तपित्त श्वास कास प्रभृति निवारित होता है।

(वाग्भट० चि० ३ अ०)

कासरोगके कारण मस्तकमें वेदना, नासा एवं मुखसे जलस्राव, हृदयमें भारबोध प्रभृति उपद्रव रहने पर धूमपान कराना पड़ता है। उक्त धूम मुखसे खींच फिर मुख द्वारा ही निकालते हैं। इस रोगमें शिरोविरेचक धूमपान कराने पर एक शराव (कटाहाकार पात्र) में औषध रख उसमें आग लगा दूसरे छेदवाले शरावसे ढांक सन्धिस्थल लेपन कर देना चाहिये। फिर एक छिद्रसे नल द्वारा धूमपान किया जाता है।

मनःशिला, हरिताल, यष्टिमधु, जटामांसी, मुस्ता और इङ्गुदीफल सकल द्रव्यका धूमपान करनेसे वक्षःस्थित श्लेष्म विच्छिन्न हो जाते सर्वविधि कासरोग छूटता है। इस धूमपानके पीछे ईषदुष्ण दुग्ध गुड़के साथ पीना चाहिये।

पुण्डरीयक, यष्टिमधु, घण्टारवा, मनःशिला, मरीच, पिप्पली, द्राक्षा, एला, और तुलसीमञ्जरी पीस एक टुकड़े पट्टवस्त्रमें लगा उसको घृताक्त करते हैं। इस वस्त्रखण्डसे वत्ती बना उसका धूमपान करनेसे भी कासरोगमें विशेष उपकार होता है। इस धूमपानके पीछे दुग्ध वा गुड़का शरबत पीते हैं। मनःशिला, इलायची, मरीच, यवक्षार, रसाञ्जन, नागरमोथा, वंशका नील, वेणामूल, हरिताल, अतसीबीज, लाक्षा और गन्धतृण सकल द्रव्य पूर्वकी भांति पट्टवस्त्रमें लगा उक्त नियमसे ही धूमपान करना चाहिये।

इङ्गुदीत्वक्, कण्टकारी, वृहती, तालमूली, मनःशिला, कार्पासबीज और अश्वगन्धा सकल द्रव्य पूर्वकी भांति नियमसे पट्टवस्त्रमें लगा धूमपान करना पड़ता है।

कासरोगीका वातदोष मिटने किन्तु कफ बढ़नेसे यदि वक्षःस्थल और मस्तकमें कुठाराघातकी भांति वेदना रहे, तो निम्न लिखित धूमपान कर्तव्य है,—

अश्वगन्धा, अनन्तमूल, धात्र्यालका और चक्रमर्द सकल द्रव्य पेषण कर पट्टवस्त्रमें लेपन करना चाहिये, फिर इस वस्त्रसे वत्ती बना उसका धूमपान करना पड़ता है, इस धूमपानके पीछे जीवनीयघृत पीते हैं।

मनःशिला, पलाश, वनयमानी, वंशलोचन और मुलहठीकी पूर्ववत् वत्ती बना धूमपान करना चाहिये। इस धूमपानके पीछे शक्करका पना, गुड़का शरबत या ऊखका रस पीते हैं।

मनःशिला और वटकी कच्ची जटा पेषण कर पूर्वकी भांति पट्टवस्त्रमें लेपन करना चाहिये। फिर उसमें घृत डाल उसकी वत्तीका धूमपान करते हैं। इस धूमपानके पीछे तित्तिरिमांसका रस (शोरवा) पीना चाहिये। स्वेद, विरेचन, वमन, धूमपान, समभाव भोजन, शालितण्डुल, गेहूं, श्यामाहणका चावल, यव, कोदोंधान कौंच (आत्मगुप्ता), माषकलाय, मुद्ग एवं कुलत्थ कलायका यूष; ग्राम्य, जलचर, अनूप तथा धन्वदेश जात मांस, मद्य, पुरातन घृत, छागदुग्ध, छागघृत, बथुवाका शाक, काकमाची शाक, बैगन, कच्चीमूली, कण्टकारी, काली कसौंदी, जीवन्ती तथा सुवर्चाशाक, द्राक्षा, कुन्दरु, मातुलुङ्ग, पद्ममूल, वासक, छोटी इलाइची, गोमूत्र, लहसुन, हरीतकी, सोंठ, पीपल, मरीच, उष्ण जल, मधु, खील, दिवानिद्रा और लघु भक्षपान कासरोगमें हितकर है।

तैलादि स्नेह द्रव्य, दुग्ध इक्षुरस, तथा गुड़जात

भक्ष्य समुदाय, पिचकारी, नस्य, रक्तमोक्षण, व्यायाम, दन्तघर्षण, रौद्रादि सन्ताप, दुष्टवायु, वनपथमें गमन, मल एवं मूत्र वमनादिका वेगधारण, मत्स्य, आलू प्रभृति कन्द, सर्षप, लौकी, पुदीना, दुष्ट जलपान तथा विरुद्ध, गुरुपाक और शीतल अन्नपानादि काशरोगमें अहितकर है। (पथ्यापथ्यसंग्रह)

एलोपाथीके मतमें—काडलिवर (मछलीके कलेजे-का) तैल ५से ६० बूंद तक ईषदुष्ण दुग्धके साथ पीने-से कास निवारण होता और रोगी बलवान् रहता है।

होमिओपाथीके मतमें—टिंचर ब्राइयोनिया कासका महौषध है। इसे ५से १० बूंद तक आध छटांक जलमें डाल सेवन करनेसे भयानक कास भी अच्छा हो जाता है।

अकरकरहा और बच सर्वदा मुखमें रखनेसे सामान्य कास छूटता है। सर्वदा गोंद चूसते रहनेसे भी कासमें बहुत उपकार देख पड़ता है।

यक्ष्मा, क्षयकास और क्षीणकास रोगीके अमङ्गलका कारण है। यक्ष्मा देखो।

४ छिक्का, छींक। ५ इन्दुरविशेष, एक चूहा। ६ ऋषिविशेष। काशिराजके पिता सुहोत्र।

काशक (सं० पु०) काशते दीप्यते, काश कर्तरि एवुल्। १ तृणविशेष, कांस नामकी घास। २ सुहोत्रके पुत्र। उनका अपर नाम काशि था।

"काशकस्य महासत्त्वस्तथा गृत्समतिर्नृपः।" (हरिवंश, ३२ अ०)

(त्रि०) ३ प्रकाशयुक्त, रौशन।

काशकृत्स्न (सं० पु०) एक ऋषि। वह भी एक आदि-शाब्दिक ऋषियोंके अन्तर्भूत थे।

"इन्द्रचन्द्रकाशकृत्स्नापिशलिशाकटायनाः।
पाणिन्यमरजैनेन्द्रा जयन्त्यष्टादिशाब्दिकाः॥" (कविकल्पद्रुम)

काशकृत्स्नक (सं० त्रि०) काशकृत्स्नेन निर्वृत्तम्, काशकृत्स्न-वुञ्। काशकृत्स्नकर्तृक निष्पादित।

काशकृत्स्नि (सं० पु०) काशकृत्स्नके गोत्रापत्य।

काशज (सं० त्रि०) काशे जायते, काश-जन्-ड। काशसे उत्पन्न।

काशनाशन (सं० पु०) कर्कटशृङ्गी, कक्कड़ा सींगी।

काशपरी (सं० स्त्री०) काशः परो यस्याः, ङीप्। काशाहत एक नदी।

काशपरेय (सं० त्रि०) काशपर्यां भवः, काशपरी-ढक्। काशपरी नदीसे उत्पन्न।

काशपुर—आसामके अन्तर्गत कछार जिलेका एक ग्राम। बराइल नामक गिरिश्रेणीको दक्षिण दिक् जो शाखा गयी, उसीके मध्य काशपुर अवस्थित है। किसी किसी प्राचीन ग्रन्थमें उक्त स्थानका नाम 'खस्र-पुर,' 'कुशपुर' या 'खासपुर' लिखा है। वहां कछार-के राजावोंका राजभवन था। उसका भग्नावशेष पड़ा है। कछारके राजावोंके समय वहां हिन्दूधर्म प्रबल था।

काशपुष्पक (सं० क्ली०) स्थावर विषान्तर्गत कन्दविष, एक जहरीला डला।

काशपौण्ड्र (सं० पु०) काशप्रधानः पौण्ड्रः, मध्यप०। एक जनपद।

"कोशलाः काशपौण्ड्राश्च कालिङ्गा मागधास्तथा।" (भारत, कर्ण, ४६ अ०)

काशफरी, काशपरी देखो।

काशफरेय, काशपरेय देखो।

का शब्द (सं० पु०) 'का' 'कोलाहल' 'का' का शोर।

काशमय (सं० त्रि०) काशेन प्रचुरस्तद्विकारो वा, काश-मयट्। १ अधिक काशविशिष्ट, कांससे भरा हुआ। काशतृणनिर्मित, कांसका बना हुवा।

"कृष्णकाशमयं बर्हिराजीयं भगवान् मनुः।" (भागवत, ३।२।१०)

काशमर्द (सं० पु०) काशं मृद्नाति उपशमयति, काश मृद्-अण्। क्षुद्र वृक्ष विशेष, कसौंदीका पेड़। उसका संस्कृत पर्याय—अरिमर्द, कासमर्द, कासारि, कास-मर्दक, काल, कनक, जरण और दीपन है। Cassia Sophora काशमर्दको हिन्दुस्थानमें बनार, कसौंदा, कसौंदी, या बासकी कसौंदी, बंगलामें कालकासुन्दा, दक्षिणमें जंगली तकाल, गुजरातमें कुवादिस, मार-वाड़में रनतांकल, तामिलमें पोन्ना-विराई, तेलगुमें पैदी तंगेडु, मलयमें पोन्नामतकर और सिंहलमें उरुतोर कहते हैं।

वह भारतमें निम्न हिमालयसे सिंहल और पनांग पर्यन्त सर्वत्र पाया जाता है। वृक्ष क्षुद्र और पुष्प हरिद्रावर्ण होता है। उससे दुर्गन्ध निकला

करता है। वृक्षका मूलदेश कठोर पड़ता है। शिखा अंशुयुक्त रहती हैं। पत्र क्षुद्र और सङ्कीर्ण होते हैं। कलियां छोटी, चौड़ी और अधिक फली लगती हैं। काशमर्दको एक झाड़ी समझना चाहिये। वर्षाकालको वह घासफूसमें स्वयं उपजता और अग्रहायण मास पुष्प निकालता है।

वैद्यक मतसे काशमर्द, रोचक, बलकारक, विषघ्न, रक्तदोष निवारक, मधुर, वातश्लेष्मनाशक, पाचक, कुष्ठविशोधक, पित्तघ्न, ग्राहक, लघु और उत्कृष्ट कासघ्न है।

हकीमोंके मतानुसार मिर्चके साथ उसकी शिखा पीस कर खिलानेसे सर्पदष्ट व्यक्ति आरोग्य होता है। चन्दनके साथ काशमर्द बांट कर लगानेसे दाद मिट जाता है।

कोई कोई उसका पत्र अञ्जनके साथ व्यवहार करते हैं। काशमर्दका पत्र सुखा उसको बुकनी मधुमें मिला कर दाद वा अन्यान्य क्षत पर लगायी जाती है। बहुमूत्ररोगमें उसको काश जलमें पका पिलाते हैं। कसौंदीको पत्तियां पशु और मनुष्य दोनों खाते हैं। उबालनेसे उसका दुर्गन्ध निकल जाता है।

काशमर्दन (सं० पु०) काशं मृद्नाति, काश-मृद कर्तरि ल्यु। काशमर्द, कसौंदी।

काशय (सं० पु०) काशिराजके पुत्र।

"काशेस्तु काशयो राजन्।" (हरिवंश, ३२ अ०)

काशा (सं० स्त्री०) काशते इति, काश-अच्-टाप्। कोर्श तृण, कांस। काश देखो।

काशाल्मलि (सं० स्त्री०) कुत्सिता शाल्मलिः, कोः कादेशः। कूटशाल्मली, एक रेशमी रुईका पेड़।

काशि (सं० स्त्री०) काश-इन्। १ काशी, बनारस। (पु०) २ काशीनगरोपलक्षित देशविशेष।

"अत ऊर्ध्वं जनपदान्निबोध गदतो मम।

बोधा मद्राः कलिङ्गाश्च काशयोऽपरकाशयः॥" (भारत, ६।९।४१)

३ मुष्टि, मूंठ। ४ सूर्य। सुहोत्रके एक पुत्र। यह धन्वन्तरिके पितामह थे। (त्रि०) ५ प्रकाशित, जाहिर।

काशिक (सं० त्रि०) काशेरिदं, काशिषु भवो वा, काशि-ठञ् छिद् वा। १ काशिसम्बन्धीय, बनारसके मुताल्लिक। २ काशिजात, बनारसका पैदा।

काशिकन्या (सं० स्त्री०) काशिवासिनी कन्या, मध्यप०। १ काशिवासिनी कुमारी, काशीमें रहनेवाली लड़की। काशीतीर्थमें काशीकन्याओंको पूजने और खिलानेका विधि है। २ काशिराजकन्या, काशीके राजाकी लड़की।

काशिकसूक्ष्म (सं० क्ली०) काशीका उत्तम तूल, काशीकी बढ़िया रुई।

काशिका (सं० स्त्री०) काशि स्वार्थे कन्-टाप्, यद्वा काशयति प्रकाशयति ज्ञानं भक्तानाम् काश-णिच्-ण्वुल्-टाप्। इत्वम्। १ काशी, बनारस। २ मनकी निवृत्ति देनेवाली परमशान्ति लाभकारिणी तीर्थश्रेष्ठ मणिकर्णिका और ज्ञानप्रवाह रूप निर्मल गङ्गाविशिष्ट अपनी बुद्धि।

"मनोनिवृत्तिः परमोपशान्तिः सा तीर्थवर्या मणिकर्णिका वै।

ज्ञानप्रवाहा विमला हि गङ्गा सा काशिकाऽहं निजबोधरूपः॥"

३ जयादित्य और वामनकृत पाणिनिकी एक वृत्ति।

काशिकाप्रिय (सं० पु०) काशिका प्रिया यस्य, काशिकायाः प्रियो वा। काशिराज दिवोदास।

काशिकावृत्ति (सं० स्त्री०) पाणिनि-व्याकरणकी व्याख्याका एक ग्रन्थ। किसीके मतानुसार जयादित्यने प्रथम ४ अध्याय और वामनने शेष ४ अध्याय बनाये हैं। फिर किसी किसी प्राचीन हस्तलिपिपर प्रथम ४ अध्यायकी पुष्पिकामें 'वामन-काशिका' लिखा है। किसी किसी हस्तलिपिकी समाप्ति-पुष्पिकामें "परमोपाध्यायवामनकृतायां काशिकायां वृत्तौ" लिखा देख पड़ता है।

भट्टोजिदीक्षित, रायमुकुट, माधवाचार्य प्रभृति वैयाकरणोंने काशिकासे जो विस्तर प्रमाण उठाये उनमें भी वही गड़बड़ है। अमरकोशमें 'शर्करा' शब्द साधनेके समय रायमुकुटने जयादित्यके नामसे (५।२।१०५ सूत्रको) काशिकावृत्ति उद्धृत की है। फिर 'पाक्र' शब्द साधते समय 'नागाच्च' वार्तिकसूत्रमें (पा ५।२।१०७) भाषावृत्तिकारके प्रवादसे उन्होंने जयादित्यका पक्ष समर्थन किया है।

भट्टोजिदीक्षितने पा ५।४।४२ सूत्रके वृत्तिकाल

जयादित्यका ओर पा ७।१।२० सूत्रकी वृत्तिकाल वामनका मत ग्रहण किया है। उसीप्रकार रायमुकुटने 'अप्सरस्' शब्द साधने काल पा ८।४।४८ सूत्र का वामनकाशिका उद्धृत की है। माधवाचार्यने धातुवृत्तिमें जयादित्य और वामनका मत ग्रहण किया है। तत्कर्तृक उद्धृत जयादित्यका मत पा २।२।५८ सूत्रकी और वामनका मत पा ८।२।३० सूत्रकी काशिकामें देख पड़ता है।

इसलिये भट्टोजिदीक्षित, रायमुकुट एवं माधवाचार्यके मतमें ३ से ५ अध्याय पर्यन्त जयादित्य और ७ से ८ अध्याय पर्यन्त वामनकर्तृक विरचित हैं।

राजतरङ्गिणीमें जयादित्य काश्मीरके एक विद्योत्साही राजा और वामन उन्हींके मन्त्री बताये गये हैं।

"देशान्तरादागमय्य व्याचक्षाणान् क्षमापतिः।
प्रावर्तयत विच्छिन्नं महाभाष्यं स्वमण्डले ॥ ४८८ ॥
क्षीराभिधाच्छब्दविद्योपाध्यायात् संभृतः श्रुतः।
बुधैः सह ययौ वृद्धिं स जयापीडपण्डितः ॥ ४८९ ॥
बहत्तया स्वक्रियाल्पत्वेन स्वीकृत्य वर्धितः।
भट्टोऽभूदुद्भटस्तस्य भूमिभर्तुः सभापतिः ॥ ४९४ ॥
स दामोदरगुप्ताख्यं कुट्टिनीमतकारिणम् ॥ ४९५ ॥
मनोरथः शङ्खदत्तश्चटकः सन्धिमांस्तथा।
बभूवुः कवयस्तस्य वामनाद्याश्च मन्त्रिणः ॥ ४९६ ॥"

(४र्थ तरङ्ग)

राजा जयादित्यने नाना देशसे बोला पण्डितोंको महाभाष्यके संग्रहमें लगाया। उन्होंने शब्दशास्त्रविद् क्षीरस्वामीके निकट * व्याकरण पढ़ा था। खुक्षिय प्रधान पण्डित और उद्भटभट्ट उनके सभापण्डित रहे। उन्होंने 'कुट्टिनीमत'-प्रणेता दामोदरगुप्तको प्रधान मन्त्रित्व प्रदान किया। मनोरथ, शङ्खदत्त, चटक, सन्धिमान् प्रभृति कवि उनकी सभा उज्ज्वल करते थे। वामन प्रभृति पण्डित उनके अमात्य रहे।

कायस्थराज जयापीडने ६६७ शकको सिंहासनारोहण किया था। काश्मीर और कायस्थ शब्द देखो।

अध्यापक मोक्षमूलरके मतमें—"काशिकाकार जयादित्य एक स्वतन्त्र व्यक्ति रहे। जो काश्मीरराज जयादित्यसे पूर्व विद्यमान थे। चीनपरिव्राजक इत्सिङ्गने ६९० ई० (६१२ शक) को चीन भाषाके 'दक्षिणसमुद्रयात्रा' पुस्तकमें जयादित्य-विरचित 'वृत्तिसूत्र' का उल्लेख किया है। यदि इत्सिङ्गका विवरण प्रकृत निकले तो ६६० ई० से पूर्व पाणिनिवृत्तिकार जयादित्य मरे थे।" *

निःसन्देह विश्वास नहीं आता उस स्थल पर चीनपरिव्राजकका विवरण कहांतक समाव और उनका प्रकृत आविर्भावकाल क्या था। इसप्रकारके स्थलमें राजतरङ्गिणी-वर्णित घटना पर निर्भर करनेसे नितान्त अन्याय समझ पड़ता है। फिर भी यदि काश्मीरराज जयापीडने काशिकावृत्तिको लिखा था, तो कह्लण पण्डितने उनका कोई उल्लेख क्यों नहीं किया? सम्भवतः राज्याभिषिक्त होनेसे पहले यौवनकालको जयादित्यने काशिकावृत्ति बनायी होगी। कारण राजा होनेसे पूर्व जयादित्यके सम्बन्धमें कह्लणने कोई बात नहीं लिखी। जयादित्य स्वयं एक वैयाकरण और महा पण्डित थे। उन्होंके समय महाभाष्यका पुनरुद्धार साधित हुवा। वामन उनके एक सचिव थे। उसी समय ललितादित्य-अमात्य लक्ष्मणके पुत्र हेलराजने वाक्यपदीयवृत्ति बनायी। जयादित्यके समयका काश्मीर-इतिहास पढ़नेसे समझ पड़ता कि वास्तविक उनके राजत्वकाल पाणिनिव्याकरण विशेष आदृत हुवा था।

जयादित्यने काशिकावृत्तिके प्रथम ५ अध्याय लिखे थे। पीछे उसके मन्त्री वामनने अवशिष्ट ३ अध्याय लिख ग्रन्थ सम्पूर्ण किया।

काशिकावृत्तिप्रकाशक पण्डित बालशास्त्रीने लिखा है,—"काशिकाके रचयिता जैन वा बौद्ध थे। इसीसे अमरकोषकी भांति काशिकाके प्रारम्भमें मङ्गलाचरण लिखा नहीं गया। काशिकाकारने अनेक स्थलमें पाणिनिसूत्रका परिवर्तन किया है। यदि वह ब्राह्मण रहते, तो कभी ऐसा कर न सकते। पा १।३।२६। सूत्रके नीङ् धातुका आत्मनेपदपर सम्मान अर्थमें काशिकाकारने 'चार्वाकमयमाने अर्थात् लोकायत-

* क्षीरस्वामी अमरकोषके एक प्रधान टीकाकार थे।

* Max Müller's India what can it teach us? pp. 342—346.

काठक सम्मानित' अर्थ लगाया है। इस स्थानपर (बालशास्त्रीके मतमें) चार्व (चार्वाक ?) लोकायत काठक सम्मानित हुए हैं। धर्मानुरागी स्वधर्म-प्रतिपाद्य ग्रन्थसे प्रमाण उद्धृत करते हैं, वह कभी चार्वाकमतपर नहीं चलते।"

काशिकाप्रकाशकका मत युक्तिसङ्गत समझ नहीं पड़ता। काशिकाकारने अनेक स्थलमें ब्राह्मण-शास्त्रसे प्रमाण सङ्ग्रह किया है। केवल एक स्थानपर 'चर्व' और 'लोकायत' शब्दका उल्लेख देख वृत्तिकारको जैन वा बौद्ध कैसे कह सकते हैं। पाणिनि, पतञ्जलि, चार्वाक और लोकायत शब्द देखो। जयादित्य एक परम धार्मिक हिन्दू रहे। राजतरङ्गिणीमें लिखा है कि उन्होंने विपुलकेशव नामक एक विष्णुमूर्तिको प्रतिष्ठित किया था *। वामन देखो। काशिकावृत्तिकी विभिन्न समयमें रचित कई टीका मिलती हैं उनमें निम्नलिखित टीका प्रसिद्ध हैं—उपमन्युविरचित 'तत्त्वविमर्शिनी', जिनेन्द्र-बुद्धिविरचित 'काशिकावृत्तिविवरणपञ्जिका', मैत्रेयरक्षितकृत 'तन्त्रप्रदीप', हरदत्तरचित 'पदमञ्जरी' इत्यादि।

काशिखण्ड (सं० क्लो०) स्कन्दपुराणका एक भाग।

काशिनगर (सं० क्लो०) काशिरेव नगरम्। काशी, बनारस सिटी।

काशिनाथ (सं० पु०) काशेः काशीतीर्थस्य नगरस्य वा नाथः, ६-तत्। १ महादेव। २ काशीके राजा दिवोदास प्रभृति।

काशिप (सं० पु०) काशिं काशीपुरीं काशिदेशं वा पाति रक्षति, काशि-पा-क। १ महादेव। २ काशीके राजा।

काशिपति (सं० पु०) काशेः पतिः, ६-तत्। १ महादेव। २ काशीके राजा। दिवोदास, धन्वन्तरि प्रभृति काशीके राजा। धन्वन्तरिने कई वैद्यकग्रन्थ बनाये हैं। वह आयुर्वेदकी शिक्षा भी देते थे।

काशिपुर (काशीपुर)—युक्तप्रदेशका एक नगर। वह अक्षा० २९° १३' उ० और देशा० ७८° ५९' ५९" पू० पर मुरादाबाद नगरसे १५ कोस दूर अवस्थित है। काशिपुरमें तहसील भी है, जो नैनीताल जिलेमें लगती है। उसकी पार्वत्यभूमि आर्द्र और अधिकांश जङ्गलसे भरी है। मध्य मध्य तृणपूर्ण प्रशस्त भूखण्ड हैं। स्थान स्थान पर शस्यादि भी उत्पन्न होता है। तहसीलका परिमाण १८८ वर्गमील है। किन्तु उसमें ८८ मील परिमित भूखण्डपर शस्य उपजता है। लोकसंख्या प्रायः ७५ हजार है। तहसीलमें १ फौजदारी अदालत और २ थाने हैं। काशिपुर नगर प्राचीन कालसे प्रसिद्ध है। उसका भग्नावशेष स्थान स्थान पर निकला है। लोकसंख्या प्रायः १५ हजार है। नैनीतालसे काशिपुर २२ कोश पड़ता है। वह एक महातीर्थ माना जाता है। १६३८ और १६७८ ई०के बीच काशीनाथ अधिकारी नामक किसी व्यक्तिने उक्त नगर स्थापन किया था। उन्हींके नामसे नगर भी काशिपुर कहाता है। पहले वहां ४ ग्राम रहे। उन्हींसे एकमें उज्जयिनी देवीका मन्दिर है। वर्तमान काशिपुरसे आध कोस पूर्व उज्जयिनीका पुरातन दुर्ग था। चीन-परिव्राजकके भ्रमण-वृत्तान्तमें गोविशन नगरकी कथाका उल्लेख है। प्रत्नतत्त्ववित् कनिङ्गम साहबके अनुमानसे वह काशिपुरमें ही अवस्थित था। आज भी वहां स्थान स्थान पर उपवन और सरोवर देख पड़ते हैं। एक सरोवरका नाम द्रोणसागर है। सम्भव है कि उसे द्रोणाचार्यके लिये पाण्डवने खोदा होगा। वह समचतुष्कोण है। एक एक ओर ४ सौ हाथ दीर्घ निकलेगा। बदरिकाश्रम तीर्थको जानेवाले उक्त सरोवरमें स्नान कर आगे बढ़ते हैं। सरोवरके कूल पर अनेक सतीस्तम्भ देख पड़ते हैं। फिर उसके पश्चिम कूल पर कई छोटे छोटे मन्दिर हैं। दुर्ग बहुत बड़ी बड़ी ईंटोंका बना है। ईंटे १५ इञ्च लम्बी, १८ इञ्च चौड़ी और २॥ इञ्च मोटी हैं। अति प्राचीन कालमें वैसी ईंटें बनती थीं, आजकल कहीं देख नहीं पड़तीं। दुर्ग पार्श्वस्थ भूमिसे प्रायः २० हाथ ऊंचे प्राचीर द्वारा वेष्टित है। आजकल

* "इति अर्भा जयापीडः प्रख्यातय निजां श्रियम्।
जयाह दीक्षा.भूभार' कालेन च सतां मतः॥
राजा सङ्ख्याणपुरकृत्यक विपुलकेशवम्।"
(राजतरङ्गिणी, ४। ४८३,४८४)

दुर्गका भग्नावशेष जंगलसे भरा है। पूर्वदिक् व्यतीत तीन तरफ खाई है। उत्तरपश्चिम और दक्षिणपश्चिम दोनों दिक् दो स्थानपर दो प्रवेशद्वारका चिह्न वर्तमान है। दुर्गसे ४०० हाथ पूर्व ज्वालादेवी वा उज्ज्यिनी देवीका मन्दिर है। छोटे छोटे मन्दिरमें नागनाथ भूतेश्वर, मुक्तेश्वर, और यज्ञेश्वरकी मूर्ति हैं। वह आधुनिक समझ पड़ती हैं। पुरातन मन्दिर प्रायः मृत्तिकास्तूप पर निर्मित हैं। उस प्रकारके अनेक स्तूप हैं। उनमें दुर्गको उत्तर दिक् प्राचीरके भीतर एक प्रकाण्ड स्तूप देख पड़ता है। उसे लोग 'भीमकी गदा' कहते हैं। ज्वालादेवीके मन्दिरकी पूर्वदिक्का स्तूप 'रामगिर गोसाईं'का टीला' कहाता है।

अष्टादश शताब्दके शेष भाग नन्दराम नामक एक व्यक्ति काशिपुरके शासनकर्ता रहे। उसी समय उन्होंने स्वाधीनताका अवलम्बन किया। उनके भ्रातृपुत्र शिवलालके राजत्वकाल काशिपुर अंगरेजोंके अधिकारमें गया। अंगरेजोंने काशिपुरके राजाको मजिष्ट्रेटकी क्षमता प्रदान कर रखी है।

काशिपुरमें एक दातव्य चिकित्सालय है। बहुसूतका मोटा कपड़ा बनता है, जो स्थानान्तरमें जाकर बिकता है।

काशिपुर—बङ्गालके २४ परगनेका एक गण्डग्राम। वह भागीरथीके तीर कलकत्तेके निकट अवस्थित है। काशिपुरमें गोलागोली बनानेका एक सरकारी कारखाना है। भगवती सर्वमङ्गला तथा चित्रेश्वरीका मन्दिर भी वहां बना है।

काशिपुरी (सं॰ स्त्री॰) काशिदेशीयपुरी, मध्यप॰ काशी, बनारस। (भारत अनुशा॰ १८ अ॰)

काशिप्रसाद घोष—कलकत्तेके एक विख्यात ग्रन्थकार। उनके पिताका शिवप्रसाद और पितामहका नाम तुलसीराम था। ईष्टइण्डिया कम्पनीके अधीन खजांची रह तुलसीरामने प्रचुर अर्थ उपार्जन किया।

१८०८ ई॰ को ५ वीं अगस्तको उन्होंने जन्म लिया था। १२ वर्षके वयसमें उनको अक्षरपरिचय मात्र हुवा। १८२१ ई॰ को वह हिन्दू कालेजमें पढ़ने बैठे। किन्तु ३ वर्षके मध्य ही उन्होंने अच्छी योग्यता प्राप्त की थी। १८२७ ई॰को उन्होंने एक अंगरेजी पद्य लिखा "The young poet's first attempt" फिर भारत-इतिहास (History of British India.) की उन्होंने बहुत अच्छी समालोचना अङ्गरेजीमें बनायी थी। वह गवरनमेंण्ट गजट और एशियाटिक जरनलमें प्रकाशित हुयी।

कालेज छोड़ समसामयिक पत्रमें अङ्गरेजीके पद्य लिखने लगे। उनको देख अङ्गरेज लोग भी मुग्ध हो जाते थे। १८२८ और १८३० ई॰ के मध्य ही उन्होंने अधिकांश पद्य बनाये। उनके "Hindu Festivals" नामक अङ्गरेजी काव्यमें दशहरा, झूलेकी झांकी, जन्माष्टमी, दुर्गापूजा, कोजागर-पूर्णिमा, श्यामापूजा, कार्तिकपूजा, रामयात्रा, श्रीपञ्चमी, दोलयात्रा और अक्षयतृतीयादिका इतिहास तथा उत्सव वर्णित है। कप्तान रिचार्डसनने उनकी बहुत प्रशंसा की है। मसेंयड एलियट नामक किसी अङ्गरेजने "Views from India and China." नामक पुस्तकमें काशिप्रसादको अङ्गरेजोंसे भी बढ़ कर कवि बताया है।

गद्यमें उन्होंने निम्नलिखित पुस्तक बनाये थे,—

1. Memory of Indian Dynasties containing (a)The Scindiah of Gwalior. (b) King of Lucknow. (c) The Holkar of Indore. (d) The Nawab of Hyrabad. (e) The Giakwar of Baroda. (f) The Bhonslah of Nagpore. (g) The Nawab of Bhopal.
2. Sketches of Runjeet Singh.
3. " of King of Oudh.
4. On Bengali poetry.
5. On Bengali works and writers.
6. The Vision—a tale. (उपन्यास)

१८४५। ४६ ई॰ को उन्होंने "The Hindu Intelligencer" नामक एक बड़ा साप्ताहिक पत्र प्रकाशित किया था। वह स्वयं उसके स्वत्वाधिकारी और सम्पादक रहे। १२ वर्ष तक उक्त पत्र निकलता रहा, किन्तु १८५८ ई॰ को बलवेके कारण संवादपत्रोंके विरुद्ध कानून बनजानेसे बन्द हो गया।

काशिप्रसाद साधारण हितकर कार्यमें भी सम्मिलित होते थे। वह आनरेरी-मजिष्ट्रेट और म्युनिसपालिटीके "जष्टिस अव दी पीस" रहे। १८७३ ई० को ११वीं नवम्बरको काशिप्रसादका मृत्यु हुवा।

काशिराज (सं० पु०) १ काशीके राजा। २ धन्वन्तरि।

काशिरामदेव—एक बङ्गाली ग्रन्थकार। उन्होंने बङ्गला पद्यमें महाभारत बनाया है। वह देव वा दास उपाधिधारी कायस्थ थे। उनके पिताका नाम कमलाकान्त रहा। वह इन्द्राणी प्रान्तके सिङ्गग्राममें रहते थे। उनके ग्रंथकी रचना-प्रणालीसे समझ पड़ता कि उन्होंने किसी पण्डित या कथकसे पूछ पूछ महाभारत लिखा है। कहते हैं १०७५ सनमें वह जीवित थे। उनकी जीवनीका विशेष विवरण विदित नहीं। २ तिथितत्वके एक टीकाकार।

काशिल (सं० त्रि०) १ काशतृणमय, कांससे भरा हुवा। २ काशनिर्मित, कांसका बना हुवा।

काशिष्णु (सं० त्रि०) काश बाहुलकात् इष्णुच्। प्रकाशशील। (भागवत, ४। ३०। ६०)

काशी (सं० स्त्री०) भारतवर्षके मध्य हिन्दुवोंका सर्वप्रधान तीर्थ। उसका संस्कृत पर्याय—वाराणसी, तीर्थकाशी, तपस्थली, काशिका, काशि, अविमुक्त, आनन्दवन, आनन्दकानन, अपुनर्भवभूमि, रुद्रावास, महाश्मशान और स्वर्गपुरी है। उक्त नामोंके मध्य काशी, अविमुक्त और वाराणसी हो समधिक प्राचीन है। हिन्दीमें प्रायः बनारस कहते हैं।

व्युत्पत्ति—शिवपुराणके मतानुसार—

"कर्मणां कर्षणात् सा वै काशीति परिकथ्यते।"(ज्ञानसंहिता, ४८। ४६)

वहां जीव शुभाशुभ कर्मसमुदाय क्षयकर मुक्ति पानेमें समर्थ होते हैं, इसीसे उसका नाम काशी है।

स्कन्दपुराणीय काशीखंडके मतमें—

"काशतेऽत्र यतो ज्योतिस्तदनाख्येयमीश्वर।
अतो नामा परं चास्तु काशीति प्रथितं विभो॥" (२६। ६७)

उसी वाक्यका अगोचर परम ज्योतिः उक्त क्षेत्रमें प्रकाशमान होनेसे काशी नाम विख्यात हुआ है।

लिङ्गपुराणमें लिखा है,—

"विमुक्तं न मया यस्मान्मोक्ष्यते वा कदाचन।
मम क्षेत्रमिदं तस्मादविमुक्तमिति स्मृतम्॥" (९२। ४५)

वह स्थानसे हमसे कभी विमुक्त नहीं अर्थात् हमने उसे न कभी छोड़ा न छोड़ते और न छोड़ेंगे। इसीसे वह अविमुक्त नामसे विख्यात है।

मत्स्यपुराणके मतसे—

"यत्र सन्निहितो नित्यमविमुक्ते निरन्तरम्।
तत्क्षेत्रं न मया मुक्तमविमुक्तं ततः स्मृतम्॥" (१८१। १५)

अविमुक्तक्षेत्रमें हमारा निरन्तर सान्निध्य है। उस क्षेत्रको हम कभी परित्याग नहीं करते। इसी हेतु वह अविमुक्त नामसे विख्यात हुवा है।

कूर्मपुराणमें कहा है,—

"भूर्लोके नैव संलग्नमन्तरीक्षे ममालयम्।
अविमुक्ता न पश्यन्ति मुक्ता पश्यन्ति चेतसा॥
श्मशानमेतद्विख्यातमविमुक्तमिति स्मृतम्॥" (३०। २६-२७)

अन्तरीक्षमें अवस्थित हमारा आलय स्वरूप वह क्षेत्र भूर्लोकके साथ कभी संलग्न नहीं। इसीसे वह अविमुक्त है अर्थात् संसार मायाबद्ध जीव उसे कभी देख नहीं सकते। किन्तु संसारके बन्धनसे विमुक्त महात्मा केवल मानस-चक्षुसे उसे देख सकते हैं। इसीसे वह अविमुक्तनामसे प्रसिद्ध है।

काशीमें प्रवाद है कि वरणार नामक कोई राजा वहां राजत्व करते थे। उन्हींके नामानुसार काशीका नाम वाराणसी पड़ा है।*

भूवृत्तान्त—शुक्लयजुर्वेदीय शतपथब्राह्मण और कौषीतकी-ब्राह्मणोपनिषदमें सर्व प्रथम 'काशी' शब्दका उल्लेख देख पड़ता है। (१) अति प्राचीन समयमें काशी एक विस्तृत जनपद और पवित्र यज्ञभूमि कहकर परिचित थी। कौषीतकी उप०, २।१।५।१ देखो।

रामायणके समय भी काशी एक विस्तीर्ण जनपद थी। (किष्किन्ध्या०, ४०। २२) उस समय रमणीय तोरण और प्राकारपरिशोभित प्रधान नगरी वाराणसी

---

* भविष्यपुराणीय ब्रह्मखण्ड नामक अनतिप्राचीन ग्रन्थमें भी काशीपति वरणारका विवरण मिलता है। (भविष्यब्रह्मखण्ड ५२। १०६—१२६ श्लोक) किन्तु उस ग्रन्थमें वरणासे वाराणसी होनेकी कथा नहीं लिखी। उन्होंने काशीपुरीमें 'वाराणसी नाम्नी एक देवीमूर्ति' प्रतिष्ठा की थी, अद्यापि वह मूर्ति काशीमें विराज करती है।

(१) "अतः काश्यो ऽग्नीनां दत्तम्।" १३। ५। ४। १८।
"यथा काशीनां भरतः सात्वतानिव।" शतपथब्राह्मण, १३। ५। ४। २१।

काशीराज्यकी राजधानी थी। (१) प्रतिष्ठान (प्रयाग) पर्यन्त काशी जनपदके अन्तर्भूत था। (२)

आजकल काशी कहनेसे ही वर्तमान वाराणसी वा बनारस नामक नगरका बोध होता है। किन्तु पूर्वोक्त प्राचीन शास्त्रादि द्वारा प्रमाणित होता कि पहले वह नगर बहदायतन था। चीनपरिव्राजक फाहियानके ग्रन्थपाठसे समझ पड़ता कि ई० पञ्चम शताब्दको काशी एक विस्तीर्ण जनपद और वाराणसी उसका प्रधान नगर कहलाता था।*

विष्णु प्रभृति प्राचीन पुराणमें वर्तमान काशी "काशीपुरी" और "वाराणसी" नामसे अभिहित हुयी है। (विष्णु पुराण ५। ३४। २९-४१)

पुराणादिमें काशीपुरीकी सीमा और परिमाण इसप्रकार निरूपित हुवा है—

> "द्वियोजनन्तु तत्क्षेत्रं पूर्वपश्चिमतः स्मृतम्।
> अर्धयोजनविस्तीर्णं तत्क्षेत्रं दक्षिणोत्तरम्॥
> वरणा हि नदी यावद् यावच्छुष्कनदी तु वै।
> भीष्मचण्डिकमारभ्य पर्वतेश्वरमन्तिके॥"
>
> (मत्स्यपुराण, १८३। ६१—६८)

वह क्षेत्र पूर्वपश्चिम दो योजन आयत, और उत्तर-दक्षिण अर्ध योजन विस्तृत है। वह वरणा नदीसे शुष्क नदी पर्यन्त और भीष्मचण्डिकसे आरम्भ कर पर्वतेश्वरके निकट पर्यन्त अवस्थित है।

फिर उसके आगे—

> "द्वियोजनमथोर्ध्वं च तत्क्षेत्रं पूर्वपश्चिमम्।
> अर्धयोजनविस्तीर्णं दक्षिणोत्तरतः स्मृतम्।
> वाराणसी नदी यावत् यावच्छुष्कनदी तु वै॥"
>
> (१८४। ३९—४०)

शिवपुराणकी सनत्कुमारसंहितामें कहा है—

> "क्षेत्रागतमनुद्रुत्य आकृष्या सह गङ्गया।
> वरणा नाम तत्रैव गङ्गासिय सरिद्वरा॥" (६५। १११)

वरणा और गङ्गासि (असि) नाम्नी दो नदी उस क्षेत्रको अलङ्कृत कर जाह्नवीसे मिल गयी हैं।

शिवपुराणकी ज्ञानसंहितामें लिखा है,—

> "तत्र तेजसः सारं पञ्चक्रोशात्मकं शुभम्।" (४९। ८)

वामनपुराणमें बताया है—

> "यो ऽसौ ब्रह्माण्डके पुण्ये मदंशप्रभवो ऽव्ययः।
> प्रयागे वसते नित्यं योगशायीति विश्रुतः॥
> चरणाद्दक्षिणात्तस्य विनिर्गता सरिद्वरा।
> विश्रुता वरणेत्येव सर्वपापहरा शुभा॥
> सव्यादन्या द्वितीया च असिरित्येव विश्रुता।
> ते उभे च सरिच्छ्रेष्ठे लोकपूज्ये च बभूवतुः॥
> तयोर्मध्ये तु यो देशस्तत्क्षेत्रं योगशायिनः।
> त्रैलोक्यप्रवरं तीर्थं सर्वपापप्रमोचनम्॥
> न तादृशं हि गगने न भूम्यां न रसातले।
> तत्रास्ति नगरी पुण्या ख्याता वाराणसी शुभा॥"
>
> (३। २४—२८)

इस पवित्र ब्रह्माण्डके मध्य प्रयागमें हमारे (विष्णुके) अंशजात अव्यय पुरुष योगशायी नामसे निरन्तर वास करते हैं। उन्हींके दक्षिण चरणसे सर्वपापप्रणाशिनी शुभङ्करी वरणा और वाम चरणसे असि नाम्नी विख्यात द्वितीय नदी निःसृत हुयी है। उक्त उभय नदी लोकमध्य पूजनीया हैं। इनके मध्यस्थलमें योगशायी महादेवका सर्व पापनाशन त्रिलोकके मध्य सर्वश्रेष्ठ तीर्थस्वरूप क्षेत्र है। सुविख्यात मोक्षदायिनी पुण्यमयी वाराणसी नगरी उसी स्थानमें विराजित है। वैसा स्थान, आकाश, पाताल वा भूमण्डल कहीं मिल नहीं सकता।

---

(१) "इ विसृज्य ततो रामो वयस्यमकुतोभयम्।
प्रतर्दनं काशिपतिं परिष्वज्येदमब्रवीत्॥
उद्योगश्च त्वया राजन् भरतेन कृतः सह॥
तद्गम्यतां काशेयपुरीं वाराणसीं प्रभ।
रमणीयां त्वया गुप्तां सुप्राकारां सुतोरणाम्॥"
(उत्तरकाण्ड, ४। १५—१७)

(२) "ततः कालेन महता दिष्टान्तमुपजग्मिवान्।
त्रिदिवं स गतो राजा ययातिर्नहुषात्मजः॥
पुरुश्चकार तद्राज्यं धर्मेण महतावृतः।
प्रतिष्ठाने पुरवरे काशिराज्ये महायशाः॥"
(उत्तरकाण्ड, ५९। १८—१९)

महाभारत, उद्योगपर्व, ११९ अ० और १२० अ० देखो।

* Fo-Kwo-Ki, Ch. XXXIV., translated by Laidley, p. 310,

काशीखण्डमें कहा है—

"असिश्च वरणा यत्र क्षेत्ररक्षाकृतौ कृते ॥
वाराणसीति विख्याता तदारभ्य महामुने ।
असेश्च वरणायाश्च सङ्गमं प्राप्य काशिका ॥" (३० । ६९-७०)

सत्ययुगमें जिस दिन काशीक्षेत्र रक्षा करनेके लिये असि और वरणा नदी निकली, हे मुनि ! उसी दिनसे काशिका वरणा और असि नदीका सङ्गम लाभ कर 'वाराणसी' नामसे विख्यात हुयी है।

किसी किसी पाश्चात्य पुराविद्के मतमें वरणा और असिके मध्य रहनेसे ही काशीपुरी वाराणसी नामसे प्रथित हुयी है। किन्तु यह मत नितान्त आधुनिक है*। किन्तु हमारी विवेचनामें काशी नितान्त आधुनिक नहीं ठहरती। पुराणकी कथा छोड़ उपनिषद्की बात मानते भी उक्त पौराणिक मत समधिक प्राचीन समझ पड़ता है। यथा,—

"अत्र हि जन्तोः प्राणेषु उत्क्रममाणेषु रुद्रस्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे, येनासावमृती भूत्वा मोक्षी भवति ; तस्मादविमुक्तमेव निषेवेत ; अविमुक्तं न विमुञ्चेत् एवमेवैतद् याज्ञवल्क्य।...सोऽविमुक्तः कस्मिन् प्रतिष्ठित इति । वरणायां नास्यां च मध्ये प्रतिष्ठित इति। का वै वरणा का च नाशीति। सर्वानिन्द्रियकृतान् दोषान् वारयतीति तेन वरणा भवतीति । सर्वानिन्द्रियकृतान् पापान् नाशयतीति तेन नाशी भवतीति।" (जावालोपनिषद् १—२)

इस स्थानपर जन्तुके मरण काल रुद्र "तारकब्रह्म" नाम कीर्तन करते हैं। जिस हेतु उसके द्वारा जीव अमृतत्व लाभकर मोक्ष प्राप्त होता है। अतएव इस अविमुक्तक्षेत्रमें वास करना एकान्त कर्तव्य है; अविमुक्तको कभी छोड़ना न चाहिये। हे याज्ञवल्क्य ! हमने जो कहा, उसे सत्य समझियेगा। वह अविमुक्त क्षेत्र कहां प्रतिष्ठित है ? वह वरणा और नाशी दो नदीके मध्य अवस्थित है। किसीको वरणा और किसी को नाशी कहते हैं ? समस्त इन्द्रियकृत दोषराशि निवारण करनेवालीको "वरणा" और समस्त इन्द्रियकृत पाप नाशकरनेवालीको "नाशी" कहते हैं।

जावालदीपिकामें नारायणने लिखा है—

"इमारं वरणायां नाश्यां चेति यथा स्कान्दे—
'असीवरणयोर्मध्ये पञ्चक्रोशं महत्तरम् ।
अमरा मरणमिच्छन्ति का कथा इतरे जनाः।'
वरणानाशीशब्दयोः प्रश्नमिनिमित्तं पृच्छति।"

बौद्धोंके आधिपत्यकाल शाक्यसिंहने उक्त वाराणसी प्रदेशके अन्तर्गत ऋषिपत्तन मृगदाव नामक स्थानमें जाकर धर्मोपदेश प्रदान किया था। (ललितविस्तर २५ अ०) यहां तक कि खृष्टीय षष्ठ शताब्दके शेष भाग चीनपरिव्राजक युयनचुयाङ्ग जब वाराणसीस्थ बौद्ध तीर्थ दर्शनको गये, तब वाराणसी-राज्य प्रायः ३३३ कोस (४००० लि) और वाराणसी नगरी डेढ़ कोस (१८-१९ लि) दीर्घ तथा प्रायः आधकोस (५। ६ लि) विस्तृत थी।

अकबर बादशाहके समय बनारस एक स्वतन्त्र सरकार रहा। आईनअकबरीमें लिखा है—"बनारस सरकारका परिमाण ३६८६९ बीघा है। ८ महल इस सरकारके अधीन हैं। प्रधान स्थान अफराद, बनारस नगर और उसका सन्निहित स्थान बियालिसी, पन्दरहा, कसवार, कतेहर, हरहूया हैं।"

आजकल भी बनारस एक स्वतन्त्र विभाग है। वह युक्तप्रदेशवाले लाटके अधीन है। एक कमिशनर उसपर तत्त्वावधान रखते हैं। भूमिका परिमाण १८३३७ वर्गमील है। आजमगढ़, मिर्जापुर, बनारस, गाजीपुर, गोरखपुर, बसती और बलिया जिला उस विभागके अन्तर्गत है। उनमें बनारस जिला ९९८ वर्गमील विस्तृत है। उक्त जिलेकी उत्तरसीमा गाजीपुर तथा जौनपुर, पूर्व शाहाबाद और दक्षिण एवं पश्चिम मिर्जापुर है। प्रधान नगर बनारस (काशीपुरी) है। आजकल उसका आयतन ३४४८ एकर मात्र है। वह अक्षा० २५° १८' ३१" उ० और देशा० ८३° १' ४" पू० पर अवस्थित है। उक्त नगर हिन्दू जातिके निकट सुपवित्र महापुण्यप्रद काशीतीर्थ नामसे परिचित है। युक्तप्रदेशमें बनारस सबसे बड़ा शहर है। अवध-रुहेलखण्ड रेलवेका ष्टेशन बना है।

* Rev. Starling's Sacred City of the Hindus, intro. by F. Hall, p. XVIII ; Fürher's Archæological Survey Repts; N. W. P. Vol. II, p. 196.

* चीन परिव्राजकोक्त पो-लो-नि-स=वाराणसी है। See Beal's Records of the Western Countries, Vol. II. p. 44 n.

पुरातत्व—विष्णु और ब्रह्माण्डपुराणके मतसे आयु-वंशीय सुहोत्रपुत्र काश (१) प्रथम राजा थे। उनके पुत्रका नाम काशिराज वा काश्य था। सम्भवतः काशिराज काश्यके नामानुसार ही उनका राज्य 'काशि' वा 'काशी' नामसे विख्यात हुवा है। काशिराजके बाद उनके पुत्र दीर्घतमाने राज्य किया। दीर्घतमाके धन्व नामक एक पुत्रने जन्म लिया था। उन्होंने बहुकाल तपस्या कर धन्वन्तरि पुत्र पाया था। (२) क्षत्रियराज धन्वन्तरिने महर्षि भरद्वाजके निकट शिक्षालाभ कर आयुर्वेदको आठ भागमें विभक्त किया। आयुर्वेदको विभक्त करनेसे ही वह वैद्य नामसे विख्यात हुये। काशिराज धन्वन्तरिके औरससे केतुमान्‌ने जन्म लिया।(३) महाभारतके अनुशासन पर्वमें राजा केतुमान् हर्यश्व नामसे अभिहित हुये हैं। सम्भवतः हर्यश्वके राजत्व काल वाराणसी नगरी बसी थी। (४) उसी समय यदु-वंशीय हैहयके पुत्रोंसे काशिराजके विवादका सूत्रपात हुवा। अवशेषमें हैहयके पुत्रोंने घोरतर युद्धकर हर्य-श्वको मार डाला। हर्यश्वके मरनेपर सुदेव काशीके सिंहासनपर बैठ राज्य पालन करते रहे। हैहय लोग फिर भी शान्त न हुये। उन्होंने पुनर्वार जाकर सुदेवको मार यथास्थान प्रस्थान किया। सुदेवके पुत्र महात्मा दिवोदासने(५)पितृराज्य पाया। उस समय काशीकी राजधानी वाराणसी गङ्गाके उत्तर और गोमतीके दक्षिण कूलपर स्थापित थी। दिवोदासने शत्रुके भयसे राजधानीको सुदृढ किया। (महाभारत अनुशासन, ३० अ०)

हरिवंश, पद्म मत्स्य और ब्रह्माण्डपुराणके मतसे दिवो-दासके पूर्व हैहयवंशीय राजा भद्रश्रेण्यने वाराणसीको अधिकार किया था। पीछे दिवोदासने उन्हें मार बहु-कष्टसे पितृराज्य छोड़ा लिया। उस समय निकुम्भके शाप और क्षेमक राक्षसके उत्पातसे महासमृद्धि-शालिनी वाराणसी हतश्री एवं जनशून्य हो गयी थी। उसीसे दिवोदास गोमतीतीर एक नगर बसा राजत्व करते रहे। * हैहय-वंशीय भद्रश्रेण्यके दुर्दम नामक एक पुत्र था। राजा दिवोदासने बालक समझ उसे छोड़ दिया। कालक्रमसे वही बालक हैहयवंशका उत्तराधिकार पा प्रबल पराक्रान्त हो गया। उसने दिवोदासको जीत वाराणसीको अधिकार किया।

दिवोदासके औरस और दृषद्वतीके गर्भसे प्रतर्दन † नामक एक महाबल बालकने जन्म लिया था। उसने राजा दुर्दमको युद्धमें जीत काशीराज्य अधिकार किया। कौषीतकी ब्राह्मण उपनिषत्‌में प्रतर्दन एक परम याज्ञिक राजा कहे गये हैं। वह रामचन्द्रके समसाम-यिक थे। रामायण उत्तर काण्ड ४।५५।१० प्रतर्दनके पुत्र वत्स रहे। उन्हें लोग ऋतध्वज और कुवलयाश्व कहते थे।‡ परमज्ञानशीला तत्त्वदर्शिनी मदालसा उसकी पत्नी रहीं। मदालसाके गर्भसे वत्सके अलर्क नामक पुत्रने जन्म लिया अलर्कके राजत्वकाल काशीराज्य अति विस्तृत था। उन्हीं महात्माने शापावसानमें क्षेमक नामक राक्षसको मार फिर वाराणसी नगरीको प्रतिष्ठित और परम रमणीय वेशमें सज्जित किया। अलर्कके पीछे पुत्रपरम्परामें सन्नति, सुनीथ, क्षेम, सुकेतु, धर्मकेतु, सत्यकेतु, विभु, सुविभु, सुकुमार, धृष्टकेतु (यह कुरु-क्षेत्रपर कुरुपाण्डव-युद्धमें उपस्थित थे) **, वेणुहोत्र, भर्ग और भार्गभूमि राजा हुये। वह सभी 'काश्य' वा 'काशेय' नामसे विख्यात हैं। परपृष्ठमें पुराणोक्त काशिराजोंकी एक तालिका दी गयी है—

(१) भागवतके मतानुसार सुहोत्रके पुत्र काश्य और काश्यके पुत्र काशि थे। (९।१७।३) किन्तु हरिवंश और ब्रह्माण्डपुराणके मतसे सुन-होत्रके पुत्र काश और उनके पुत्र काश्य थे।

(२) विष्णु (४।८।२।), भागवत (९।१७।५) और गरुड़ पुराण (१४२।१०)-के मतसे धन्वन्तरि दीर्घतमाके पुत्र थे। किन्तु हरिवंश (२९ अ०) और ब्रह्माण्डपुराणके मतसे दीर्घतमाके पुत्र धन्व और धन्वके पुत्र धन्वन्तरि थे।

(३) "तस्य गेहे समुत्पन्नो देवो धन्वन्तरिस्तदा।
काशिराजो महाराजः सर्वरोगप्रणाशनः॥ २१॥
आयुर्वेदं भरद्वाजश्चकार स भिषक्क्रियम्।
तमष्टधा पुनर्व्यस्य शिष्येभ्यः प्रत्यपादयत्॥ २२॥ (ब्रह्माण्डपुराण)
दैव्यो धन्वन्तरिस्तस्मात् केतुमांश्च तदात्मजः।" (गरुड़पुराण १४२।१

(४) हर्यश्वके कथाप्रसङ्गमें सर्व प्रथम वाराणसीका उल्लेख है।
(भारत अनु० ३० अ०)

(५) विष्णु, ब्रह्माण्ड, गरुड़ और भागवतके मतमें दिवोदास भीमरथके पुत्र थे।

* काशिराज दिवोदासका नाम ऋग्वेद और ऋग्वेदानुक्रमणिकामें देख पड़ता है। किन्तु सन्देह है—दोनों एक व्यक्ति थे या नहीं।

† महाभारतके मतानुसार दिवोदासके औरस और माधवीके गर्भसे प्रतर्दनका जन्म था (उद्योगपर्व ११९ अ०) ‡ मार्कण्डेयपुराणमें २० से २६ अध्याय पर्यन्त कुवलयाश्व-चरित है। उसके आगे ३० अध्यायमें अलर्क-चरित वर्णित हुवा है।

** "धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान्" (भगवद्गीता १।५)

पुरुरवा
|
आयु

नहुष → ययाति → यदु → सहस्रजित् → शतजित् → हैहय → धर्मनेत्र → कुन्ति (कीर्ति) → सञ्जय (साहष्जि) → महिष्मान → भद्रश्रेण्य → १० दुर्दम

क्षत्रवृद्ध → सुहोत्र → १ काश → २ काशिराज → ३ दीर्घतमा → ४ धन्व → ५ धन्वन्तरि → ६ केतुमान् (हर्यश्व) → ७ भीमरथ → ८ दिवोदास → ११ प्रतर्दन → १२ वत्स → १३ अलर्क → १४ सन्नति वा सन्तति → १५ सुनीथ → १६ क्षेम → १७ सुकेतु → १८ धर्मकेतु → १९ सत्यकेतु → २० विभु → २१ सुविभु → २२ सुकुमार → २३ धृष्टकेतु → २४ वेणुहोत्र → २५ भर्ग → * २६ भार्गभूमि
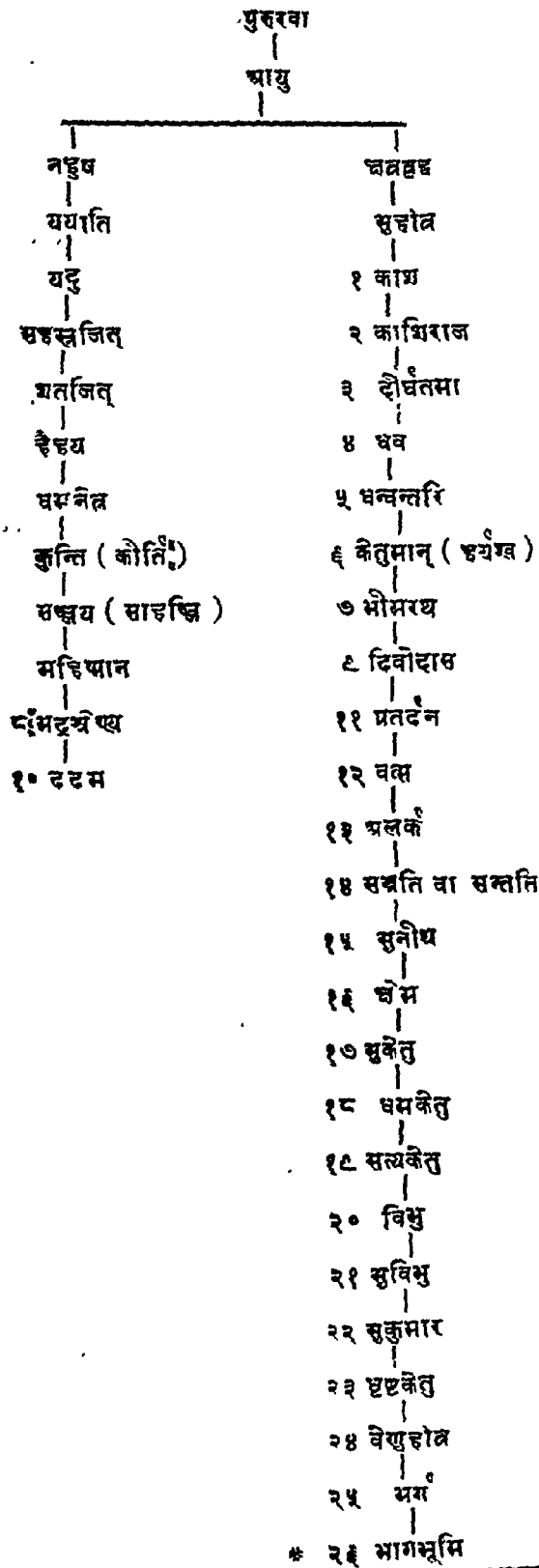
* काशीमें राजत्व करनेवाले राजावोंके पूर्व १। २ इत्यादि संख्या दी गयी है।

ब्रह्माण्डपुराणमें लिखा है कि काशवंशीय २४ राजाओंने राजत्व किया था * किन्तु इसका कोई विवरण नहीं मिलता भार्गभूमिके पीछे कौन राजा हुवा।

बुद्धदेवके समय वाराणसीमें देवदत्त नामक एक राजा रहे।

सम्भवतः बौद्धधर्म बढने पर काशीराज्य मगध-राजके हाथ लगा।

ब्रह्माण्डपुराणमें भी बताया है—

"अष्टाविंशच्छतं भाव्याः प्रद्योताः पञ्च ते सुताः।
हत्वा तेषां यशः कृत्स्नं शिशुनागो भविष्यति।
वाराणस्यां सुतं स्थाप्य संयास्यति गिरिव्रजम्।"

(उपोद्घातपाद. ३४ अ०)

अनन्तर प्रद्योतवंशीय पञ्चपुत्र एक सौ अट्ठतीस वर्ष राजत्व करेंगे। उसके पीछे शिशुनाग उनका निखिल यशः हरण पूर्वक राजा होंगे। वह वाराणसी राज्यमें स्वीय पुत्रको संस्थापित कर (मगध-राज्यस्थित) गिरिव्रजको चले जायेंगे।

बौद्ध ग्रन्थमें काशीराज ब्रह्मदत्तका नाम मिलता है। किन्तु यह मालूम करनेका उपाय नहीं किस समय उन्होंने राजत्व किया था। मगधराजगणके अधःपतनकाल काशीराज्य गुप्तराजगणके अधीन हुवा। उस राजवंशके मध्य केवल बालादित्यके पुत्र प्रकटादित्यका नाम मिलता है।† अनुमान ई० सप्तम शताब्दको वह काशीके राजासन पर आरूढ़ थे। उसके पीछे काशी सम्भवतः कनौजराजके शासनाधीन हुयी। ई० दशम शताब्दको कलचुरि और पाल-वंशीयोंने मिल कर कनौजराज्य आक्रमण किया था। उस समय काशीराज्य गौड़वाले पालवंशीय राजावोंके अधिकारभुक्त हुवा। काशीके पालवंशीय राजा सभी बौद्धधर्मावलम्बी थे। उनमें गौड़ाधिप महीपाल ही काशीके प्रथम पालवंशीय राजा रहे होंगे। वाराणसीके निकटवर्ती सारनाथमें महीपाल-

* "काशेयास्तु चतुर्विंशदष्टाविंशत् तु हैहयाः॥"

(मत्स्य २७२।१४)

† Fleet's Inscriptions of the Early Gupta Kings, p. 246.

राजकी १०१३ विक्रम संवत् (१०२६ ई०)-को प्रदत्त एक शिलालिपि मिली है।* महीपालके पीछे उनके पुत्र स्थिरपाल और वसन्तपालके (१०८३ ई० तक) राजत्वकाल भी काशी बौद्ध पालोंके अधिकारमें रही। ११९४ ई० को कनौजराज जयचन्द्रके पराभूत होने पर शहाबुद्दीन् गोरीने वाराणसीके अभिमुख यात्रा की। उन्होंने प्रायः सहस्राधिक हिन्दूमन्दिर तोड़ डाले।

अकबर बादशाहके समय मिर्जा चीन क्लीच बनारसके फौजदार थे। उस समय काशी इलाहाबाद सूबेके अधीन थी। औरङ्गजेबने वाराणसी बदल कर "मुहम्मदाबाद" नाम रखा था। उनके परवर्ती मुसल-मान ग्रन्थों और अवधके नवाबकी सनदोंमें वाराणसी-का नाम मुहम्मदाबाद मिलता है।

ई० सप्तदश शताब्दके शेष भाग अवधकी सूबेदारी अधीन रहते भी वाराणसी एक स्वतन्त्र राज्य कहलाती थी

दिल्लीके बादशाह मुहम्मद शाहने हिन्दुवोंके पवित्र-स्थान वाराणसीको हिन्दू राजावोंके ही अधीन रखना चाहा था। उसीके अनुसार उन्होंने १७३० ई० को वाराणसीसे पांच कोस दक्षिण अवस्थित गङ्गापुर ग्राम-के जमीन्दार मनसारामको 'राजा' उपाधि प्रदान किया। उनके पुत्र बलवन्त सिंह १७४० ई० को पितृ-राज्यके अधिकारी हो पुण्यभूमि वाराणसीके सिंहासन पर बैठे थे। १७४८ ई० को मुहम्मद शाह मर गये। उनके पुत्र अहमदशाहने सफदर जङ्गको वजीरका पद और अवध प्रदेश दिया था। उसी समय वारा-णसी अवध सूबेके अन्तर्गत हुयी। बलवन्त पर सफदर जङ्गकी दृष्टि पड़ी थी। उन्होंने बलवन्तका परिचय अवधके अधीन किसी सामान्य जमीन्दारकी भांति देनेकी चेष्टा की। उस समय बलवन्तने अपनी स्वाधीनता बचानेके लिये यथेष्ट क्षमताके साथ साहस दिखाया था। १७५३ ई० को सफदरजङ्गके मरने पर उनके पुत्र शुजा-उद्-दौला सूबेदार हुये। उन्होंने भी पिताके अनुवर्ती बन बलवन्तकी पदमर्यादा खर्व करने की विशेष चेष्टा चलायी थी। उसी समय बलवन्तने नवाबके करालकवलसे राज्य रक्षा करनेके लिये राम-नगरमें एक सुदृढ दुर्ग बनाया। उसके पीछे आलम-गीर बादशाहके राजत्व काल उनके पुत्र मुहम्मदअली विद्रोही हो अवधके सूबेदारसे मिल गये। उस समय मीरजाफर बङ्गालके नवाब थे। मुहम्मदअली और शुजा-उद्-दौलाने मीरजाफरको पदच्युत कर बङ्गाल अधिकार करनेके लिये पटनाके अभिमुख यात्रा की। १७५९ ई० को मीरजाफर अङ्गरेजी सैन्यके साहाय्य-से पटनाके क्षेत्रमें उपस्थित हुये। दूसरे वर्ष शुजा-उद्-दौलाने फिर बङ्ग विजयका उद्योग लगाया था। उस समय मीरजाफरने बलवन्तसिंहसे सहायता मांगी। राजा बलवन्तसिंहने सैन्य द्वारा उन्हें यथेष्ट सहायता दी थी। फिर बङ्गालके नवाब और बलवन्तसिंहकी सन्धि हो गयी। उसी सन्धिके अनुसार बङ्गेश्वर बल-वन्त सिंहकी स्वाधीनता बचानेको विपद्काल मदद करने पर प्रतिश्रुत हुये। १७६४ ई० को २६ वीं दिसम्बरको दिल्लीके बादशाह शाह आलमने ईष्ट-इण्डिया कम्पनीको वाराणसी राज्य प्रदान किया था।* शुजा-उद् दौलासे सन्धि होने पर १७६६ ई० को ईष्ट इण्डिया कम्पनीने वाराणसी राज्य अवधके नवाब-को सौंप दिया। उसी समय बलवन्तसिंह ब्रटिश गवरमेण्टके मित्रराजा कहलाने लगे। बीचमें शुजा-उद् दौलाने बलवन्तसिंहको हृतसर्वस्व करनेकी चेष्टा की थी। किन्तु ईष्ट इण्डिया कम्पनीके बलवन्त-सिंहका पक्ष लेने पर उनकी आशा पूर्ण न हुयी। १७७० ई० को २२ वीं अगस्तको बलवन्तसिंहका स्वर्गवास हुवा। उसके पीछे उनकी एक क्षत्रिया रमणी-के गर्भजात चेतसिंहने राजसिंहासन अधिकार किया। १७७३ ई० को ६ठीं सितम्बरको अवधके नवाबने चेतसिंहको एक सनद दी थी। १७७५ ई० को २१वीं मईसे वाराणसी ब्रटिश गवरमेण्टके अधीन हुयी। उसके अनुसार १७७६ ई० को १५ वीं मईको चेतसिंहने ब्रटिश गवरमेण्टसे फिर एक सनद पायी। उसी समय युरोपमें फरासीसी विप्लव हो गया। सनदके

* Indian Antiquary, Vol. XIV. p. 140.

* Aitchison's Treaties etc. ol p. 6.

अनुसार युद्धव्ययनिर्वाहार्थ गवरनर जनरल वारन हेष्टिङ्गसने चेतसिंहसे उनके देय वार्षिक करको छोड़ ५ लाख रुपया अधिक मांगा । प्रथम चेतसिंहने ५ लाख रुपया दिया था। द्वितीय वर्ष इसी प्रकार ५ लाख देनेका समय आने पर चेतसिंहने वृटिश गवरमेण्टसे कुछ मोहलत मांगी। उससे वारन हेष्टिङ्गस उनसे क्रुद्ध हो स्वयं काशी जा पहुंचे । चेतसिंह निरुपाय हो आत्मरक्षार्थ राजधानी छोड़ भाग गये । (१८१० ई० को ग्वालियरमें उनका मृत्यु हुवा ।) चेतसिंहके भाग जाने पर बलवन्तसिंहकी कन्याने वारन हेष्टिङ्गसको कहला भेजा कि वह बलवन्तसिंहकी एक मात्र कन्या हैं और उनका पुत्र (बलवन्तका दौहित्र) महीपनारायण ही राज्यका प्रकृत उत्तराधिकारी है। हेष्टिङ्गसने महीपनारायणको वाराणसीका प्रकृत राजा बना दिया। १७८१ ई० को १४वीं सितम्बरको महीपनारायणने वृटिश गवरमेण्टसे वाराणसी जमीन्दारीकी सनद पायी थी। राजा महीपनारायणके स्वर्गवासी होने पर महाराज उदितनारायणने पितृसिंहासन लाभ किया। १८३५ ई०को उदितनारायण भी स्वर्गगामी हुये । उनके भ्रातुष्पुत्र ईश्वरीप्रसादनारायण राजा बने थे। वह एक कवि और शिल्पी रहे। उनके स्वहस्तनिर्मित विविध हस्तिदन्तके कारुकार्य रामनगरके राजभवनमें विद्यमान हैं। १८८८ ई० को उन्होंने परलोक गमन किया । आजकल उनके पुत्र राजा प्रभुनारायण सिंह वाराणसीकी जमीन्दारीका स्वत्व भोग करते हैं।

तीर्थविवरण।

काशी वा वाराणसी नगरी बहुत प्राचीन कालसे हिन्दुवोंका अतिपवित्र तीर्थ कही जाती है। महाभारतमें लिखा है,—

"वाराणसी जा वृषभवाहन महादेवका अर्चन और कपिलाह्रदमें स्नान करनेसे राजसूय यज्ञका फल मिलता है। उसके पीछे अविमुक्ततीर्थ पहुंच देवादिदेव महादेवका दर्शन करनेसे ब्रह्महत्याजनित पाप छूट जाता और वहां प्राणत्याग करनेसे मोक्ष पाता है।" (उद्योगपर्व, ८४ अ०।) महाभारतके उक्त विवरण पाठसे वाराणसी और अविमुक्त दो स्वतन्त्र परस्पर निकटवर्ती तीर्थ समझ पड़ते हैं। शिव, मत्स्य, कूर्म, गरुड़ और लिङ्ग प्रभृति पुराणोंके मतमें काशीका ही अपर नाम अविमुक्त है। किन्तु महाभारतमें दो स्वतंत्र तीर्थ कहनेका कारण क्या है? काशीखण्डमें विश्वेश्वर और अविमुक्तेश्वर नामक स्वतन्त्र शिवलिङ्गका विवरण दिया है । सम्भवतः अविमुक्तेश्वर लिङ्गके विराज करनेका स्थान ही अविमुक्ततीर्थ नामसे ख्यात था। वस्तुतः अविमुक्ततीर्थ वाराणसीके ही अन्तर्गत है।

हरिवंशमें महादेवके वाराणसीगमनका विषय इस प्रकार लिखा गया है—

"राजर्षि दिवोदास महासमृद्धिशाली वाराणसी नगरी पाकर सुखसे वहां रहने लगे। उस समय देवादिदेव दारपरिग्रह कर श्वशुरालयमें वास करते थे । महादेवके आज्ञानुसार उनके पारिषद नाना उपायसे भगवती पार्वतीको रिझाने लगे। देवी पार्वती बहुत ही सुखी हुयीं। किन्तु उनकी जननी मेनकाको अच्छा न लगा। वह अनेक समय उभयकी निन्दा कर कहती थीं—'पार्वति ! तुम्हारे स्वामी पारिषदगणके सहित विचार-आचार-भ्रष्ट और दरिद्र हैं । उनमें कुछ भी शीलता देख नहीं पड़ती।' एक दिन स्वामीकी निन्दा सुन देवी पार्वती स्त्रीस्वभाववशतः क्रुद्ध हो गयीं। किन्तु उस समय मातासे मनका भाव छिपा ईषत् हंस पड़ीं। फिर उन्होंने महादेवके पास जाकर विषण्ण वदनसे कहा था—'देव। अब हम यहां न रहेंगी। हमें अपने भवन ले चलिये।' उस समय महादेवने एक वारी सकल लोककी निरीक्षण किया। अवशेषको पृथिवी पर ही वासस्थान निर्णय कर सिद्धक्षेत्र वाराणसी नगरीको चुना था। किन्तु उसे दिवोदास द्वारा अधिकृत सोच उन्होंने स्वीय पारिषद निकुम्भसे कहा—'वत्स। वाराणसीपुरी जाकर कौशल क्रमसे जनशून्य करो। किन्तु सावधान! महाराज दिवोदास अति पराक्रान्त हैं।'

"निकुम्भने वाराणसी नगर जा कण्डुक नामक किसी नापितको स्वप्नमें दर्शन दे कहा था—'देखो! तुम इस नगरीके प्रान्त भागमें कोई स्थान निर्दिष्ट कर हमारी प्रतिमूर्ति स्थापन करो। हम तुम्हारा भला

करेंगे।' रात्रियोगमें उक्त स्वप्न देख उसने दूसरे दिन महाराज दिवोदासको सब वृत्तान्त जा सुनाया। फिर उसने नगरके द्वारपर निकुम्भकी मूर्ति स्थापन कर उक्त विषय नगरको चारोदिक् घोषणा किया फिर महासमारोहसे गणपति निकुम्भकी पूजा होने लगी। गणेश्वर पुत्रार्थीको पुत्र, धनार्थीको धन, आयुप्रार्थीको आयु, यहां तक कि लोगोंको मुंह मांगा वरदान देते थे। किसी समय दिवोदासके आदेशसे महिषी सुयशाने विविध उपचारसे गणपतिकी पूजा और अंतमें पुत्रलाभका वर मांगा। उनके बार बार जाकर यथाविधि अर्चना पूर्वक पुत्र कामना करते भी निकुम्भने स्वीय अभिष्ट सिद्धिके निमित्त वरदान न दिया। उसी प्रकार दीर्घकाल निकल गया। निकुम्भके आचरणसे दिवोदास बिगड़े और कहने लगे—'यह भूत हमारे ही सिंहद्वारपर रहता है। नागरिकोंपर सन्तुष्ट हो शत शत वर देता, किन्तु किसलिये हमसे मुख फेर लेता है? हमने व्यग्र हो महिषीद्वारा पुत्र प्रार्थना किया, किन्तु, आश्चर्य! कृतघ्नने हमको वर प्रदान न किया। अतएव अब इसकी पूजा विधेय नहीं। विशेषतः हमारे अधिकारमें फिर वह किसी प्रकार पूजा न पावेगा। हम दुरात्माको स्थानभ्रष्ट कर देंगे।' ऐसा ही स्थिर कर राजा दिवोदासने गणपतिका वह स्थान तोड़ डाला। निकुम्भने आयतन टूटा देख राजाको अभिसम्पात किया—'तुमने निरपराध हमारा स्थान नष्ट किया है। इसलिये तुम्हारी यह पुरी निश्चय अभी शून्य हो जावेगी।' निकुम्भ उस प्रकार अभिशाप दे महादेवके निकट पहुंच गये। उधर निकुम्भके अभिशापसे वाराणसी जनशून्य हुयी। दिवोदासने गोमतीतीर राजधानी बनायी थी। फिर महादेव उसी शून्य वाराणसी नगरीमें आवास निर्माण कर देवीके साथ परम सुखसे विहार करने लगे। किन्तु वह स्थान देवीको प्रीतिकर न हुआ। अवशेषको उन्होंने महादेवसे कहा 'इस (जनशून्य) पुरीमें हम रह नहीं सकतीं।' महादेवने उत्तर दिया—'इस स्थानको हम नहीं छोड़ेंगे। यह हमारा अविमुक्तगृह है। हम कहीं दूसरी जगह नहीं जावेंगे। तुम्हारी इच्छा हो, चली जावो।' त्रिपुरान्तक महादेवने स्वयं वाराणसीको अविमुक्त कहा है। इसीसे वह अविमुक्त नामसे विख्यात हुयी है। वाराणसी इसी प्रकार अभिशप्त हो अविमुक्त कहलायी। वहां सर्वदेवनमस्कृत महेश्वर सत्य, त्रेता और द्वापर तीन युगमें देवीके साथ परम सुखसे वास करते हैं। कलियुग आनेसे वह अन्तर्हित हो जाती है। किन्तु महादेव उसको परित्याग नहीं करते।"*

काशीखण्डमें लिखा है—"देवदेव महादेव ब्रह्माके वाक्य प्रतिपालनको काशी छोड़ मन्दरपर्वत पर जा कर रहे थे। महादेवके गमन करने पर समस्त देव भी मन्दर पर्वत पर उपस्थित हुये। महादेव वहां जाकर तृप्त हो न सके, उनके मनमें काशीका विरह भड़क उठा। उस समय वाराणसी महाराज दिवोदासकी राजधानी थी। तपस्याके बलसे उन्होंने समस्त देवगणका रूप धारण किया था। इसलिये देव उनकी स्तुति और भजना करते थे। असुर भी सर्वदा उनके स्तवमें लगे रहते थे। उनके समान धार्मिक नृप उस समय कोई न था। दिवोदासका ही अपर नाम रिपुञ्जय था।†

"मन्दरपर्वतपर महादेवने काशीका विरह उपस्थित होनेपर देखा कि राजा दिवोदासको किसी प्रकार निकाल न सकनेसे वाराणसी लाभ होता न था। प्रथम उन्होंने ६४ योगिनीको काशी भेजा था। योगिनी काशी जाकर परमधार्मिक दिवोदासको स्वधर्मच्युत कर न सकीं। सुतरां उनके काशी जानेका उद्देश्य असफल हुवा। वह मणिकर्णिकाको सम्मुख रख काशीमें रहने लगीं।‡ कुछ दिन बीतने पर महादेवने देखा कि योगिनी लौटी न थीं। फिर उन्होंने अत्यन्त उत्कण्ठित हो सूर्यको भेजा। सूर्य काशी जाकर धार्मिक

---

* ब्रह्माण्डपुराणके उपोद्घातपादमें महादेवके वाराणसी आगमनका विषय ठीक इसी प्रकार लिखा है, किन्तु पुराणान्तरमें कुछ मतभेद लक्षित होता है। एकाम्रशब्दमें विस्तृत विवरण देखना चाहिये।

† काशीखण्डमें ४३से ५८ अध्यायके मध्य दिवोदास रिपुञ्जयको अनेक कथा लिखी है।

‡ यह स्थान आजकल चौसठ योगिनीका घाट कहाता है।

दिवोदासका कोई छिद्र निकाल न सके। वहां वह काशीकी मायामें विमुग्ध हो रहने लगे। योगिनीगण-की भांति सूर्य भी लौटे न थे। उस समय महादेवने अपने गणधरको पूर्वकी भांति उपदेश दे कर काशी भेजा। वह भी वहां जाकर काशीकी विमोहिनी शक्ति-से विमुग्ध हो गये और योगिनीगणकी भांति दिवोदा-सका अनिष्ट साधन कर न सके। इधर महादेवने उनका कोई संवाद न पा विशेषतः काशीके विरहसे अस्थिर हो गणेशको प्रेरण किया। गणपतिने काशी जा: वृद्ध दैवज्ञका वेश बनाया था। फिर वह काशीवासी-की भाग्यलिपि गणनाकर सबको विस्मयाभिभूत करने और यह कहते घूमने लगे कि काशीमें रहनेसे लोगों-को घोर अनिष्ट झेलना पड़ेगा। वृद्ध दैवज्ञकी बातसे काशीवासियोंको भय हुवा। फिर बहुतसे लोग काशी छोड़ने लगे। क्रमशः वृद्ध दैवज्ञकी अद्भुत गणना कथा दिवोदासके अन्तःपुरमें पहुंची थी। इसी प्रकार गण-पतिने राजाके अन्तःपुरमें प्रवेश लाभ किया। फिर वह भाग्यगणना द्वारा राजमहिलाके हृदयमें विश्वास उपजाने लगे। कपटी दैवज्ञने राज्ञीगणके मध्य क्रमशः महासम्मान लाभ किया था। राजमहिला असाक्षात्में राजासे उनके गुणकी बहुविध प्रशंसा करने लगीं। किसी दिन राजाने वृद्ध दैवज्ञको बोला बहुतसी बातें पूछी थीं। दैवज्ञरूपी गणपतिने नानाप्रकारसे राजा-को मनोमुग्ध कर कहा—'महाराज! उत्तर देशसे एक ब्राह्मण आपके निकट आवेंगे। वह जो कहें, आप उसे सर्वतोभावसे पालन करें। इससे आपके सकल विषय सिद्ध होंगे।'

"इधर मंदरासीन महादेवने गणनाथका विलम्ब देख विष्णुके प्रति साग्रह दृष्टिनिक्षेप किया था। फि उन्होंने अनेक कथा उपदेश कर उनसे कहा—'हे विष्णो! देखो अन्यान्य व्यक्तिकी भांति तुम भी काशीमें आचरण न करना।' विष्णु यथोचित उत्तर दे हृष्ट मनसे काशीको चलते हुये।

विष्णुने लक्ष्मीके साथ काशी जा काशिवासियोंको मायासे विमुग्ध किया था। उससे अधिकांश लोग स्वधर्मच्युत होने लगे। दूसरे दैवज्ञके उपदेशसे रिपु-ञ्जय दिवोदासको संसार-वैराग्य उपस्थित हुवा। वह उस ब्राह्मणको प्रतीक्षा करने लगे। अष्टादश दिवस विष्णु ब्राह्मणके वेशमें दिवोदासके समीप उपस्थित हुये। महाराज दिवोदासने अभिप्रेत ब्राह्मणके दर्शनसे परम आनन्द लाभ किया था। उन्होंने ब्राह्मणवरको सम्बोधन कर कहा—'हे द्विजोत्तम! बहुदिन राज्य-भारके वहनसे हम क्लान्त हो गये हैं। हमारे मनमें संसारवैराग्य उपस्थित हुवा है। आज आप हमसे जो कहेंगे, हम वही करेंगे।' ब्राह्मणरूपी विष्णुने राजा-को नाना प्रकार उपदेश दे कहा—'महाराज! यही एक बड़ा दोष है कि आपने विश्वनाथको काशीसे दूर कर दिया है। यदि इस महापापको शान्ति चाहें, तो आप काशीमें शिवलिङ्ग प्रतिष्ठा करें। एक शिव-लिङ्गकी प्रतिष्ठासे सहस्र अपराध विनष्ट होते हैं।' महाराज दिवोदासने ज्येष्ठ पुत्र समरञ्जयको राज्यमें अभिषिक्त कर संसारका संस्रव छोड़ा था। उन्होंने विष्णुके आदेशानुसार गङ्गाके पश्चिम तटपर एक शिवालय बनवा उसमें दिवोदासेश्वर नामक शिवलिङ्ग प्रतिष्ठा किया। सप्तम दिवस शिवदूतपरिवेष्टित ज्योति-र्मय रथ जाकर उपस्थित हुवा। महाराज रिपुञ्जय उस पर बैठ स्वर्गको चले गये। इसी प्रकार महात्मा दिवोदासका निर्वाण हुवा। उसके पीछे महादेव देवी पार्वतीके साथ फिर अपने प्रियक्षेत्र काशी-धाममें पहुंच गये।"

काशीखण्डके विवरण पाठसे ऐसा अनुमान किया जाता है कि प्रथमतः वहां ब्राह्मण्यधर्म प्रबल था। उस-के पीछे बुद्धदेवके अभ्युदय और बौद्ध राजाओंके आधिपत्यप्रभावमें वाराणसीसे हिन्दूधर्म एक बारगी ही विलुप्त हो गया, यहां तक कि वाराणसी धाम बौद्ध-तीर्थ कहलाने लगा। अवशेषको राजा रिपुञ्जयके राजत्वकाल शाक्त, शैव, सौर, गाणपत्य और वैष्णव क्रमशः प्रबल पड़ गये। वैष्णव द्वारा काशीसे बौद्धधर्म अथवा बौद्ध-आधिपत्य तिरोहित हुआ था। यह विषय प्रसङ्ग क्रमसे काशीखण्डमें लिखा कि काशिराज रिपुञ्जय दिवोदासके * समय काशीमें बौद्धधर्म प्रबल है। यथा—

* यह दिवोदास महाभारत और पुराणोक्त प्रतर्दनके पिता दिवोदास भिन्न थ

"तावद्‌ सौगतं रूपं विधाय श्रीपतिः स्वयम्‌ ।
अतीव सुन्दरतरं त्रैलोक्यस्यापि मोहनम्‌ ॥ ८० ॥
श्रीः परिव्राजिका जाता नितरां सुभगाकृतिः ।......
ततः श्रीवाच पुण्यात्मा पुण्यकीर्त्तिः स सौगतः ।
शिष्यं विनयकीर्त्तिं तं महाविनयभूषणम्‌ ॥ ८१ ॥
त्वया विनयकीर्त्ते यो धर्मः पृष्टः सनातनः ।
वच्म्यहमशेषेण शृणुष्व तं महामते ॥ ८२ ॥
अनादिसिद्धः संसारः कर्त्तृकर्मविवर्जितः ।
स्वयं प्रादुर्भवेदेष स्वयमेव विलीयते ॥ ८३ ॥
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं यावद्देहनिबन्धनम्‌ ।
आत्मैवैकेश्वरस्तत्र न द्वितीयस्तदीशिता ॥ ८४ ॥
देहो यथाऽस्मदादीनां स्वकालेन विलीयते ।
ब्रह्मादिमशकान्तानां स्वकालाल्लीयते तथा ॥ ८५ ॥
विचार्यमाणे देहेऽस्मिन्‌ किञ्चिदधिकं क्वचित्‌ ।
आहारो मैथुनं निद्रा भयं सर्वत्र यत्‌ समम्‌ ॥ ८६ ॥
ब्रह्मादिकीटकान्तानां तथा मरणतो भयम्‌ ॥ ९६ ॥
सर्वे समा भूतस्तुल्या यदि बुध्या विचार्यते ।
इदं निश्चित्य केनापि नो हिंस्यः कोऽपि कुत्रचित्‌ ॥ ९३ ॥
अहिंसा परमो धर्मः प्रोक्तः पूर्वसूरिभिः ।
तस्मान्न हिंसा कर्तव्या नरैर्नरकभीरुभिः ॥ ९७ ॥
हिंसको नरकं गच्छेत्‌ स्वर्गं गच्छेदहिंसकः ॥ ९८ ॥
सुखेषु भुज्यमानेषु यस्माद्देहविसर्जनम्‌ ।
अयमेव परो मोक्षो न मोक्षोऽन्यः क्वचित्‌ पुनः ॥ १०६ ॥
वासनासहितक्लेशसमुच्छेदे सति ध्रुवम्‌ ।
विज्ञानो परमो मोक्षो विज्ञेयस्तत्त्वचिन्तकैः ॥ १०७ ॥
प्रामाणिकी श्रुतिरियं प्रोच्यते वेदवादिभिः ।
न हिंस्यात्‌ सर्वभूतानि नान्या हिंसा प्रवर्तिका ॥ १०८ ॥
अग्निषोमीयमिति या श्रामिका साऽसतामिह ।
न सा प्रमाणं ज्ञातृणां पश्वालम्भनकारिका ॥ १०९ ॥"
(काशीखण्ड ५८ अ०)

भगवान्‌ श्रीपतिने परममोहन सौगत (बौद्ध) रूप और लक्ष्मी देवीने भी उसी समय परम मनोहर परिव्राजिका रूप धारण किया। ...पुण्यकीर्ति नामक बौद्ध परिव्राजकरूपधारी भगवान्‌ अपने प्रिय शिष्य विनयभूषण विनयकीर्तिको सम्बोधन कर इस प्रकार निज धर्म व्याख्या करने लगे—'हे विनयकीर्ते ! तुमने सनातन धर्म विषयक जो सकल प्रश्न किये, हम अशेष प्रकारसे उनका उत्तर देते हैं। तुम सुनो। यह संसार अनादि है। इसका कोई कर्ता नहीं। यह स्वयं उत्पन्न और विलीन होता है। ब्रह्मादि स्तम्ब पर्यन्त जितने देही हैं, एक अद्वितीय आत्मा ही उन सबका ईश्वर है। उससे स्वतन्त्र अन्य किसी स्रष्टाका अस्तित्व समझ नहीं पड़ता। हमारा यह देह जैसे कालवश विलीन होता, वैसे ही ब्रह्मादि देवगणसे मशक पर्यंत सकल प्राणियोंका देह स्व स्व निर्दिष्ट कालके अनुसार विलय पाता है। विचारपूर्वक देखनेसे जीवगणके देहमें परस्पर किसी प्रकार न्यूनाधिक्य नहीं आता। कारण सर्वत्र सबके देहमें आहार निद्रा और भय सम भावसे विद्यमान है। इनमें जिस प्रकार मरण भय रहता, उसी प्रकार ब्रह्मादि कीट पर्यन्त सकल देहधारीको मरना पड़ता है। बुद्धिपूर्वक विचार करनेसे यह स्थिर होता, कि सकल प्राणी समान हैं। सुतरां वही करना चाहिये, जिसमें किसी प्रकार प्राणिहिंसा न हो। पूर्वतन पण्डितोंने कहा है—"अहिंसा परम धर्म है।" इसी कारण नरकभीत पुरुषोंको कभी प्राणिहिंसा करना न चाहिये। हिंसाकारी भीषण नरकमें गमन करते हैं। अहिंसक व्यक्ति स्वर्ग पाते हैं। सुख भोग करते करते देह विसर्जनका नाम ही परम मोक्ष है। एतद्भिन्न अन्य कोई मोक्ष नहीं होता। वासनाके साथ पञ्चविध क्लेशका समुच्छेद होने पर विज्ञानका नाम ही यथार्थ मोक्ष है। तत्त्वज्ञानी व्यक्ति ऐसा ही निश्चय करते हैं। वेदवादी यह प्रामाणिक श्रुति कीर्तन करते हैं—'समस्त भूतगणको हिंसा करना न चाहिये' हिंसाप्रवर्तक कोई श्रुति प्रामाणिक नहीं। 'अग्निषोमीयमें पशुहत्या करना चाहिये' इत्यादि जो श्रुति हैं, वह केवल असाधुवोंको भ्रान्ति बढ़ानेको है। विद्वान्‌ पण्डित उसको प्रमाणकी भांति स्वीकार नहीं करते।' इत्यादि।

काशीखण्डमें काशीवासियोंको मोहित करनेके लिये विष्णुके बौद्धरूप परिग्रहकी कथा लिखी रहते वस्तुतः इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह रूपक वर्णना मात्र है। उक्त प्रस्तावसे इतना ही अनुमित होता किसी समयमें काशीमें बौद्धधर्मावलम्बियोंने प्रबल हो हिन्दूधर्मकी अवमानना की थी। सम्भवतः रिपुञ्जय दिवोदास भी प्रथम बौद्ध रहे। काशीखण्डमें लिखा है,—

"संसेविष्यामहे राजन्नसुराखां स्वयंमवे: ॥ २० ॥
वयं यतस्त्वद्विषये सुरावासोऽपि दुर्लभ: ।"

असुर यह कह कर उनका (राजा रिपुञ्जय दिवोदासका) स्तव करते थे, 'आपके राज्यमें देव लोग रह नहीं सकते। सुतरां हम स्व स्वविभवके अनुसार आपकी सेवा करेंगे।'

उक्त श्लोकसे यही अनुमित होता कि असुर अर्थात् देवविद्वेषी सर्वदा रिपुञ्जयके निकट रहते और देव अर्थात् देवभक्त ब्राह्मणादि उनके राज्यमें कम देख पड़ते थे। सम्भवत: हिन्दू धर्मके पुनरुत्थान समय काशीमें उक्त बौद्धराजा ही राजत्व करते थे और पीछे वही ब्राह्मणकर्तृक हिन्दूधर्ममें दीक्षित हुये। उन्हींके समयसे पवित्र वाराणसी धाममें फिर देवमन्दिर और देवमूर्तिकी स्थापना होने लगी। विष्णुपुराणमें भी एक स्थल पर लिखा है कि विष्णुने एक बार चक्र द्वारा वाराणसीको दग्ध किया था।

(विष्णुपुराण ५ अंश, ३४ अ०)

वाराणसीमें एक काल बौद्धधर्म प्रबल होनेके अद्यापि अनेक निदर्शन मिलते हैं। वाराणसीका पार्श्ववर्ती सारनाथ बौद्धोंका एक पवित्र तीर्थस्थान कहलाता है। ई० चतुर्थ शताब्दको चीन-परिव्राजक फाहि-यान और षष्ठ शताब्दके शेष भाग युअन चुयाङ्ग उक्त सारनाथ गये थे। उस समय भी वहां अनेक बौद्धकीर्तियां थीं। उनका ध्वंसावशेष अद्यापि वर्तमान है। सारनाथ देखो। काशीपुरीमें भी बौद्ध-कीर्तियोंका यत्सामान्य ध्वंसावशेष देख पड़ता है।

यह निर्णय करना कठिन है—किसी समय काशीमें हिन्दूधर्मका पुनरभ्युदय हुआ। ई० षष्ठ शताब्द के शेष भाग चीन-परिव्राजक युअन चुयाङ्गके जाते समय काशीमें हिन्दूधर्म प्रबल था। उन्होंने वाराणसीधाममें शताधिक देवमन्दिर और प्राय: दश सहस्र देव उपासक देखे थे।* स्रोत्रेवकी मादलापञ्जीके मत में उत्कलराज ययातिकेशरीने ८८६ शक को भुवनेश्वरका विख्यात शिवमन्दिर निर्माण कराया था। भुवनेश्वर वाराणसीके अनुकरण पर बना है। एकाम्र देखो। सुतरां यह अवश्य ही स्वीकार करना पड़ेगा कि उससे भी पहले काशीमें हिन्दूधर्मका पुनरुत्थान हुआ।

पतञ्जलिके महाभाष्यमें वाराणसीका उल्लेख है और इसका भी प्रमाण मिलता कि उस समय वहां शिवोपासना भी प्रचलित थी। पतञ्जलि देखो। सम्भवत: बौद्धराज अशोकके मरने पर और महाभाष्य बनते समय वाराणसीमें हिन्दूधर्म फिर बढ़ने लगा था।

हिन्दुवोंके निकट काशीको अपेक्षा पवित्र तीर्थ जगत्में दूसरा नहीं। प्राचीन मुनि ऋषि उक्त मुक्तिधाम काशीका माहात्म्य मुक्तकण्ठसे कीर्तन कर गये हैं।

मत्स्यपुराण निर्देश करता है—

"इदं गुह्यतमं क्षेत्रं सदा वाराणसी मम।
सर्वेषामेव भूतानां हेतुर्मोक्षस्य सर्वदा ॥" (१८०।४०)

हमारा यह वाराणसी क्षेत्र सर्वदा गुह्यतम है। यह नियत ही समस्त जीवगणके मोक्षलाभका हेतु है।

"विषयासक्तचित्तोऽपि त्यक्तधर्मरतिर्नर: ॥ ७१ ॥
इह क्षेत्रे मृत: सोऽपि संसारं न पुनर्विशेत् ॥"

धर्मके प्रति अनुराग परित्याग कर इन्द्रियभोग्य विषय एकान्त आसक्त चित्त होते भी यदि कोई वाराणसी क्षेत्रमें मरता, तो उसे संसारमें प्रवेश करना नहीं पड़ता और अवश्य मोक्ष मिलता है।

"अविमुक्तस्य कथितं मया ते गुह्यमुत्तमम् । ७५ ॥
अत: परतरं नास्ति सिद्धिगुह्यं महेश्वरि ! ॥"

हे देवि ! महेश्वरी ! हमने तुमसे अविमुक्तक्षेत्रका अतिशय गुह्य विषय कीर्तन किया है। फलत: इसको अपेक्षा सिद्धि विषयमें उत्कृष्टतर विषय संसारमें दूसरा नहीं।

"अकामो वा सकामो वा ह्यपि तिर्यग्गतोऽपि वा ।
अविमुक्ते त्यजन् प्राणान् मम लोके महीयते ॥" (१८१।११)

अकाम हो या सकाम हो अथवा तिर्यग्योनिजात हो हो, अविमुक्तक्षेत्रमें प्राणत्याग करनेसे वह निश्चय हमारे लोकमें (शिवलोकमें) पूजा पाता है।

* उस समय वाराणसीमें ३००० मात्र बौद्ध थे।

जिस प्रकार बढ़ता महादेव उसी प्रकार उक्त क्षेत्रमें उन्नमित होकर ऊपर उठा करते हैं। हिजवर! काशी महादेव त्रिशूलके अग्रभाग पर अवस्थित है। वह आकाश और भूमि पर अवस्थित नहीं, मूढ़ व्यक्ति कैसे समझ सकते हैं?

काशीखण्डमें कहते हैं,—

"क्षेत्रं पवित्रं हि यथाऽविमुक्तं नान्यत्तथा यच्छ्रुतिभिः प्रयुक्तम्।
न धर्मशास्त्रैर्न च तैः पुराणैः तस्माच्छरण्यं हि सदाऽविमुक्तम्॥
असीवाणेति जावालिरारुणेऽसिरिड़ा मता।
वरणा पिङ्गला नाड़ी तदन्तस्त्वविमुक्तकम्॥
सा सुषुम्ना परा नाड़ीत्रयं वाराणसी त्वसौ।
तदत्रोत्क्रमणे सर्वजन्तूनां हि श्रुतौ हरः॥
तारकं ब्रह्म व्याचष्टे तेन ब्रह्म भवन्ति हि।
एवं श्लोकौ भवत्येष आहुर्वै वेदवादिनः॥
नाविमुक्तसमं क्षेत्रं नाविमुक्तसमा गतिः।
नाविमुक्तसमं लिङ्गं सत्यं सत्यं पुनः पुनः॥" (५। २४—२८

अविमुक्त क्षेत्र जैसा पवित्र है, जगत्‌में कोई भी स्थान वैसा नहीं। यह नहीं कि वह केवल धर्मशास्त्र वा पुराण द्वारा प्रतिपादित हुवा है, किन्तु स्वयं श्रुति उसको प्रतिपादन करती है। अतएव सर्वदा अविमुक्त क्षेत्र आश्रय करना जीवोंका एकान्त कर्तव्य है।

सुप्रसिद्ध मुनिश्रेष्ठ जावालिने कहा है—'हे आरुणे! असि नदी इड़ा, वरणा नदी पिङ्गला और उभयके मध्यस्थित अविमुक्तक्षेत्र सुषुम्ना नाड़ी कहाता है। उक्त नाड़ीत्रयको ही वाराणसी कहते हैं। उक्त वाराणसीमें प्राणत्याग करनेसे भगवान् महादेव जीवके दक्षिण कर्णमें तारकब्रह्म नाम कीर्तन करते हैं। उससे जीव ब्रह्मकी स्वरूपता पाते हैं। इस विषयमें वेदज्ञ पण्डित श्लोक कीर्तन करते हैं—'अविमुक्तके समान सद्गतिदायक स्थान दूसरा नहीं। अविमुक्तस्थित शिवलिङ्गकी तुल्य अन्य शिवलिङ्ग कहीं नहीं। उक्त वाक्य निश्चय ही सत्य है। उसमें कोई सन्देह नहीं।'

"कलौ विश्वेश्वरो देवः कलौ वाराणसी पुरी।" (१२। २५)

कलिकालमें विश्वेश्वर ही एकमात्र देव और वाराणसी ही एक मात्र मोक्षपुरी है।

देवदेव विश्वेश्वर वाराणसीके अधिष्ठात्री देवता हैं। अतिप्राचीन कालसे हिन्दू विश्वेश्वररूपी भगवान्‌की आराधना करते आते हैं। मत्स्य, कूर्म, लिङ्ग और शिव प्रभृति पुराणमें विश्वेश्वरका माहात्म्य वर्णित हुवा है।

"पञ्चक्रोश्याः परं नान्यत् क्षेत्रञ्च भुवनत्रये।
अथवा पापिनां पापस्फोटनाय स्वयं हरः।
मर्त्यलोके शुभं क्षेत्रं समास्थाय स्थितः सदा।
यथा तथापि धन्येयं पञ्चक्रोशी मुनीश्वराः॥ ९४॥
यत्र विश्वेश्वरो देवो ह्यागत्य संस्थितः स्वयम्।
यद्दिनं हि समारभ्य हरः काश्यामुपागतः॥ ९५॥
तद्दिनं हि समारभ्य काशी श्रेष्ठतरा ह्यभूत्॥"

(शिवपुराण, ज्ञानसंहिता ४९ अ०)

हे मुनीन्द्र! पञ्चक्रोशीके तुल्य उत्कृष्ट स्थान त्रिभुवनके मध्य दूसरा नहीं। अथवा पापियोंके पाप विनाशको स्वयं महेश्वर मर्त्यलोकमें परमोत्कृष्ट स्थान स्थापनपूर्वक नियत अवस्थिति करते हैं। अतएव पञ्चक्रोशी त्रिलोकमें धन्य है। वहां स्वयं देवदेव विश्वेश्वर जाकर अवस्थित हुये हैं। जिस दिनसे महादेव काशी गये, उसी दिनसे वह अतिश्रेष्ठ हुयी है।

"न केवलं ब्रह्महत्या प्राकृता च निवर्तते।
प्राप्य विश्वेश्वरं देवं न स भूयोऽभिजायते॥"

(मत्स्यपुराण, १८२। १७)

वहां केवल ब्रह्महत्या ही नहीं, प्राक्तन पापपुण्यादि समस्त कर्म निवृत्त हो जाता है। देवदेव विश्वेश्वरको पाकर उक्त कर्म सकल पुनर्वार उत्पन्न हो नहीं सकता, सुतरां मोक्ष मिलता है।

चीन-परिव्राजक यूअन चुयाङ्गने वाराणसी जाकर शतहस्त उच्च ताम्रमय विश्वेश्वर लिङ्ग देखा था।*

आजकल वह शतहस्त उच्च ताम्रमय लिङ्ग कहां है? प्रायः तेरह सौ वर्ष पूर्व चीन परिव्राजकने जो शतहस्त उच्च ताम्रमय लिङ्ग देखा, आजकल उसका निदर्शन अथवा तत्परवर्ती किसी प्राचीन ग्रन्थमें उसका उल्लेख तक नहीं मिला। सम्भवतः

* La Vie de Hiouen Thsang par Stanislas Julien, p. 430.

शाहबउद्दीन गोरी जिस समय वाराणसी लुण्ठन करने गये, उसी समय वह पवित्र ताम्रलिङ्ग मुसलमान कर्तृक विचर्षित अथवा विध्वस्त किया गया होगा बोध होता हिन्दू राजावोंके समय जो लिङ्ग प्रतिष्ठित हुवा था; वही हमें देखनेको मिला।

आजकल विश्वेश्वरका स्वर्णकलस और स्वर्णचड़ा
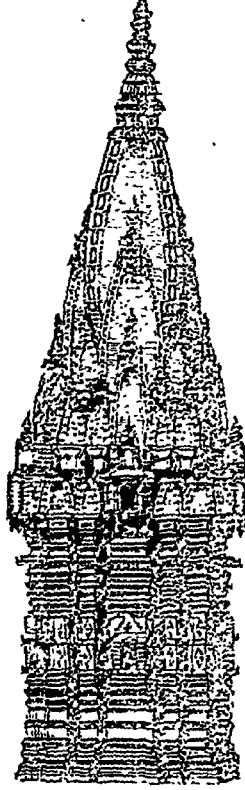
विश्वेश्वरका मन्दिर।

विलम्बित जो सुन्दर मन्दिर नयनगोचर होता, वह शताधिक वर्ष पूर्व बना है। आजकल विश्वेश्वरके मन्दिरसे अनतिदूर औरङ्गजेबकी जहां मसजिद देख पड़ती पहले वहीं विश्वेश्वरका सुवृहत् मन्दिर था। हिन्दूविद्वेषी औरंगजेबने उक्त मन्दिर नष्टकर मुसलमानोंकी मसजिद निर्माण कराई है। अनेक लोग कहते कि वह मन्दिर ही मसजिदके रूपमें परिणत हुवा है मुसलमानोंने उसमें सामान्य ही परिवर्तन किया है। मसजिदके पश्चिमभागमें आज भी हिन्दू देवालयका यथेष्ट परिचय मिलता, उसके निम्नतलमें बौद्ध गठनका विहारगृह देख पड़ता है। किसी किसीके अनुमानमें हिन्दुवोंने प्रबल हो बौद्धकीर्ति विलुप्त करनेको विहारके ऊपर ही देवालय बनाया था।

फिर कोई कहता औरंगजेबकी मसजिदसे अनतिदूर जहां आदि विश्वेश्वरका मन्दिर है, पूर्वको वहीं विश्वेश्वरका लिङ्ग प्रतिष्ठित था; उक्त मन्दिरके पार्श्वमें मुसलमानोंकी मसजिद बन जानेसे लिङ्ग स्थानान्तरित हुवा। उक्त आदिविश्वेश्वर मन्दिरके पार्श्वमें भी मसजिद है। किन्तु वह मसजिद सम्पूर्ण नहीं हुयी। वह मसजिद भी आदिविश्वेश्वरके मन्दिरका एकांश समझ पड़ती है। पूर्व जो मन्दिर था, उसको तोड़ उसीके पत्थरसे और उसीके नींवपर उक्त मसजिद बनी है। उसका कोई कोई अंश देखनेसे अति प्राचीन मालूम पड़ता है। किसीके मतमें वह प्राचीन बौद्धोंके समयकी निर्मित है।

विश्वेश्वरका वर्तमान मन्दिर समचतुरस्र प्राङ्गणपर

अवस्थित है। वह चूड़ा समेत ३४ हस्त ऊंचा है।

ठीक समझ नहीं पड़ता—किस महात्माने उक्त मन्दिर बनवाया है। महाराज रणजीत् सिंहने मन्दिर की मेहराव, चूड़ा और समुदाय कलसके तांवेपर सोना मढ़वा दिया है। सूर्यालोकमें दूरसे दर्शनकरने पर उसकी अपूर्व शोभासे नयन जल उठते हैं। स्वर्णोज्ज्वल चूड़ा पर त्रिशूल है। उसीके पार्श्वमें पताका उड़ती है।

विश्वेश्वर मन्दिरकी मेहरावके नीचे ८ बड़े घण्टे लटकते हैं। इनमें बड़ा घण्टा नेपालके राजाका दिया है। मन्दिरके उत्तर विश्वेश्वरकी सभा है। उस स्थान पर अनेक देवमूर्ति विराज करती हैं। उक्त पवित्र देवालयमें प्रवेश करनेसे मनमें अद्भुतरसका आविर्भाव होता है। आप देखेंगे कि भारतवर्षके सकल स्थानीय एवं सर्व जातीय हिन्दू भक्तिभावसे विश्वेश्वरके पवित्र लिङ्गदर्शनको उपस्थित हैं। भक्तोंके मुखसे निःसृत 'हर हर हर बंबम विश्वेश्वर' के रवसे मन्दिर प्रतिध्वनित होते हैं। कोई हाथ जोड़ देवादिदेव महादेवकी पूजा करता, कोई उदात्तादि स्वरसे वेद पढ़ता और कोई सुमधुर स्वरसे शिवस्तोत्र गान कर भक्तके हृदयमें विशुद्ध आनन्द भरता है। धन्य! भारतवर्षके नाना स्थानोंकी आबाल-वृद्ध-वनिताका समावेश! वैसा दृश्य किसी दूसरे स्थानपर देख नहीं पड़ता! भक्त हिन्दुओंकी प्रकृत छवि अद्यापि विश्वेश्वरगृहमें प्रकाशमान है! जिस समय विश्वेश्वर की सन्ध्या आरती होती और जिस समय वेदध्वनिसे हृदय हिलने लगता, उस समयका दृश्य कैसा अपार्थिव रहता है!

विश्वेश्वर मन्दिरसे अनतिदूर 'ज्ञानवापी' नामक पवित्र कूप है। शिवपुराणमें उक्त कूप "वापीजल" नामसे वर्णित हुवा है। * काशीखण्डमें लिखा है—

"रुद्ररूपी ईशानने त्रिशूल द्वारा स्थानीय भूमि खनन कर एक कूप निर्माण किया था। उस कुण्डसे पृथिवी अपेक्षा दशगुण जल निकला और उस जलसे भूमण्डल आहत हुवा। उस समय रुद्रमूर्ति ईशानदेवने सहस्र कलस जल भर ज्योतिर्मय विश्वेश्वररूपी महालिङ्ग को स्नान कराया था। भगवान् विश्वेश्वरने रुद्रके प्रति प्रसन्न हो निम्नलिखित वर दिया—जो शिव शब्दका अर्थ विचारते, वह उसका अर्थ "ज्ञान" बतलाते हैं। वही ज्ञान हमारी महिमासे यहां जलरूपमें द्रवीभूत हुवा है। इसलिये यह तीर्थ "ज्ञानोद" नामसे विख्यात होगा"। * इस तीर्थ स्पर्श करनेसे सर्वपाप दूरीभूत होते हैं। फिर इसके स्पर्श और आचमनसे अश्वमेध तथा राजसूय यज्ञका फल मिलता है। इसका नाम शिवतीर्थ है। फिर वही तीर्थ शुभज्ञानतीर्थ तारकतीर्थ और प्रकृत मोक्षतीर्थ भी कहाता है। इस तीर्थके जलसे शिवलिङ्गको स्नान कराने पर सर्वतीर्थका फल लाभ होता है। ज्ञानस्वरूप हमीं यहां द्रवमूर्ति बन जीवगणकी जड़ता विनाश और ज्ञान उपदेश करते हैं।"

(काशीखण्ड, ३३ अ०)

काशीखण्डके अन्यस्थलमें कहा है—"दण्डनायक इस ज्ञानवापीका जल दुर्वृत्तगणसे बचाते और सुभ्रम तथा विभ्रम नामक गणद्वय दुर्वृत्तगणको भ्रान्ति उपजाते हैं। महादेवकी अष्ट मूर्तिका जो विषय कहा, उक्त ज्ञानदायिनी ज्ञानवापी उन्हीं अष्ट मूर्तिमें अन्यतम जलमयी मूर्ति है। (३४ अ०)

प्रवादानुसार कालापहाड़के काशीको सकल देवमन्दिर तोड़ने जाते समय विश्वेश्वर उक्त ज्ञानवापीके मध्य छिपे थे। आज भी सहस्र सहस्र यात्री वहां देवको पूजा करने जाते हैं।

ज्ञानवापी पर एक कुछ ऊंची छत है। वह छत पत्थरके ४० खंभों पर खड़ी है। उसका गठन अति सुन्दर है। १८२८ ई० को ग्वालियर महाराज दौलत

---

* "अविमुक्ते परं देवं संसारोद्भवमोचनम्।
वापीजलन्तु तत्रस्थं देवदेवस्य सन्निधौ॥
अर्धं नाडूमेनास्य ततार्थां मानवा भुवि।
दुर्लभन्तु कलौ दिव्यैस्तज्जलं ह्यमृतोपमम्॥
तारणं सर्वजन्तूनां नानापापस्य नाशनम्।"
(शिवपुराण, सनत्कुमारसंहिता, ४१।२५—२८)

* "शिवं ज्ञानमिति ब्रूयुः शिवशब्दार्थचिन्तकाः।
तच्च ज्ञानं द्रवीभूतमिह मे महिमोदयात्॥
अतो ज्ञानोदनामैतत्तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्।"
(काशीखण्ड, ३०-३२-३३)

राव सेंधियाकी विधवा पत्नी बैजाबाईने उसे बनवा दिया था।

ज्ञानवापीके पूर्वमें पाल-राजप्रदत्त पांच हाथ ऊंची एक वृषभमूर्ति है। उसी स्थानपर है दराबादकी रानीका मन्दिर बना है। निकट ही बहुतसे पवित्र स्थान भी हैं।

वहां खड़े होकर उत्तर-पश्चिमदिक् दृष्टिपात करनेसे प्रथम ही ४० हस्त उच्च 'आदिविश्वेश्वरका' मन्दिर नयनगोचर होता है। उससे अदूर 'काशीकर्वट' नामक पवित्र कूप है। अनेक लोगोंके विश्वासानुसार जो डूब कर उक्त कर्वट उत्तीर्ण हो सकता, उसको पुनर्जन्म नहीं मिलता। इसी उद्देश्यसे मध्यमें दो एक व्यक्ति डूब मरते थे। इसीसे गवरनमेण्टने कूपका मुख बन्द कर दिया है। उसके पीछे काशीकर्वटके पण्डोंका विस्तर आवेदन होता है। आज कल प्रति सोमवारको एक बार उसका मुख खोल दिया जाता है।

शनैश्चरेश्वरके निकट अन्नपूर्णा देवीका मन्दिर है। हिन्दुओंके विश्वासानुसार काशीमें कोई अनाहार नहीं रहता। वह अन्नदायिनीदेवी अन्न दे दीन दरिद्र सबका दुःख दूर करती हैं। अन्नपूर्णा मन्दिर जानेके पथमें असंख्य दीन दरिद्र भिक्षार्थ बैठे रहते हैं। मन्दिरसे भिक्षा स्वरूप एक मुट्ठी मटर देनेकी प्रथा है। वहां सबको भिक्षा मिलती है। अन्नपूर्णाका मन्दिर प्रायः २०० वर्ष पहले पूनाके महाराष्ट्रराजने बनवाया था। मन्दिरस्थ नाना रत्नविभूषणा त्रैलोक्यमोहिनी अन्नपूर्णाकी पवित्र मूर्ति देख दर्शकका मन प्रकृत मोहित होता है। मन्दिरकी एक ओर सप्ताश्वयोजित रथोपरि सूर्यदेवकी मूर्ति विराज करती है। एतद्भिन्न गौरीशङ्कर, गणेश और हनुमान्की मूर्ति पृथक् पृथक् स्थानमें प्रतिष्ठित है।

शनैश्चरेश्वरमन्दिरके दक्षिण शुक्रेश्वरका क्षुद्र मन्दिर है। काशीखण्डके मतमें—'पुराकालको भृगुनन्दन शुक्रने उसी स्थान पर शिवलिङ्ग प्रतिष्ठा कर विश्वेश्वरकी आराधना की थी। उक्त शुक्रप्रतिष्ठित शुक्रेश्वरकी पूजा करनेसे मानव पुत्रवान्, सौभाग्यशाली और परम सुखी होता है। शुक्रेश्वरका भक्त शुक्रलोकमें वास करता है।" * (१६ अ०)

विश्वेश्वर मन्दिरसे प्रायः अर्ध क्रोश उत्तर कालभैरवका मन्दिर है। काशीखण्डमें लिखा है—"महादेवने ब्रह्माका गर्व खर्व करनेके लिये अपने कोपसे एक भैरवपुरुष बनाया था। वही पुरुष कालभैरव हैं। पूर्वको ब्रह्माके पञ्चमुख रहे। कालभैरवने उनका पञ्चम मस्तक छेदन किया। कालभैरव इस ब्रह्महत्याके पाप अपनयनको कापालिकव्रत अवलम्बन कर ब्रह्माका वही कपाल हाथमें ले पृथिवी पर घूमने लगे। उन्होंने बहु तीर्थ पर्यटन किये थे। किन्तु वह कपाल कहीं विमुक्त न हुवा। क्या आश्चर्य! काशीमें प्रवेश करते ही कालभैरवके हाथसे वह कपाल गिर पड़ा। ब्रह्महत्या भी क्षणके मध्य विनष्ट हुयी। 'जिस स्थान पर कपाल गिरा था, वही स्थान कपालमोचन तीर्थके नामसे विख्यात हुवा।' (कूर्मपुराण ३४।१८) उसके पीछे कालभैरवने कपालमोचन तीर्थको सम्मुख रख भक्तगणका पाप दूर करनेके लिये उसी स्थान पर अवस्थान किया। अग्रहायण मासकी कृष्णाष्टमीको उपवास कर कालभैरवके निकट रातको जागनेसे महापाप दूर होता है। कालभैरवकी पूजा करनेसे मनस्कामना सिद्ध होती है।"

(काशीखण्ड ३१ अ०)

कालभैरव वा भैरवनाथकी वर्तमान मूर्ति प्रस्तरसे गठित कृष्णाभ घोर नीलवर्ण है। उसके दोनों चक्षु रौप्यमय तथा अधिष्ठान स्वर्णमय है। पार्श्वमें उनके कुक्कुरकी मूर्ति है। भैरवनाथका मंदिर देखने योग्य है। मंदिरगात्र विविध वर्णसे अलङ्कृत एवं देवलीलासे चित्रित है। विशेषतः प्रवेशद्वारके वामपार्श्व दशावतारकी अतिसुन्दरमूर्ति अङ्कित हैं। मन्दिरकी चौखटमें दोनों पार्श्व द्वारपालेश्वरकी मूर्ति दण्डायमान है।

कालभैरवका वर्तमान मन्दिर प्रायः १२५ वर्ष पूर्व पूनाके बाजीरावने बनवाया था। मन्दिरके बहिर्भागमें भैरवनाथकी पूर्वतन मूर्ति रखी है। मन्दिरमें महादेव, गणेश और सूर्यनारायणकी मूर्ति विराज करती है। काशीमें शीतला देवीके ४ मन्दिर हैं। उनमें एक भैरव-

* शिवपुराणकी ज्ञानसंहिता (५०।६१) एवं सनत्कुमारसंहिता (७५।११३) और कूर्मपुराण (३४।१८)-में उक्त शुक्रेश्वर लिङ्गका उल्लेख है।

नाथ मन्दिरके निकट है। उक्त शीतला मन्दिरमें सप्तभगिनीकी मूर्ति है।

कालभैरवसे अनतिदूर दण्डपाणिका मन्दिर है। काशीखण्डके मतमें—"हरिकेश नामक एक यक्ष थे। बाल्यकालसे ही उनके हृदयमें शिवभक्ति उद्दीपित हुयी। वह सोते समय सर्वदा महादेवकी विभूति देखते थे। बालककाल ही वह गृह परित्याग कर वाराणसी गये और शि तपस्यामें प्रवृत्त हुये। बहु काल पीछे महादेवने सन्तुष्ट हो उन्हें यह वर दिया था—'हे यक्ष! तुम हमारे अत्यन्त प्रिय हो। तुम इस क्षेत्रके दण्डधर हो। आजसे तुम इस काशीके दुष्टशासक और शिष्टपालक बन कर अवस्थान करो। तुम दण्डपाणिके नामसे प्रसिद्ध होगे। हमारे संभ्रम और उद्‌भ्रम नामक गणद्वय सर्वदा तुम्हारे अनुगामी होकर रहेंगे। काशीवासियोंका अन्तिमकाल उपस्थित होनेसे तुम उनके गलेमें सुनील रेखा, हस्तमें सर्प वलय, भालमें लोचन, परिधानमें कृत्तिवास, मस्तकमें पिङ्गलवर्ण जटा, सर्वाङ्गमें विभूति, कपालमें चन्द्रकला और वाहनार्थ वृषभ प्रदान करोगे। तुम्हीं काशीवासियोंके अन्नदाता, प्राणदाता, ज्ञानदाता और मोक्षदाता होगे।' तदवधि दण्डपाणि महादेवके आदेशसे सम्यक्‌रूप वाराणसी शासन करते हैं।* काशीमें दण्डपाणिकी पूजा न करनेसे किसीको कैसे सुख मिलता है?"

(काशीखण्ड ३ अ०)

दण्डपाणिकी मूर्ति प्रायः ३ हस्त उच्च है। प्रति रवि और मङ्गलवारको यात्री दण्डपाणिकी पूजा करते हैं।

दण्डपाणि और भैरवनाथ मन्दिरके बीचोबीच नवग्रहका मन्दिर है। वहां रवि, सोम, मङ्गल, बुध, वृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतुकी मूर्ति पूजी जाती है।

कालभैरवसे अनतिदूर कालोदक वा कालकूप है। उस तीर्थमें स्नान करनेसे पितृगणका उद्धार होता है। (काशीखण्ड ३३। १९) उक्त कूप इस भावसे अवस्थित है कि मध्याह्नके समय सूर्यरश्मि ठीक उसके जल पर पड़ता है उस समय अनेक लोग अदृष्ट परीक्षार्थ कालकूप दर्शन करने जाते हैं। काशिवासियोंके विश्वासानुसार मध्याह्न काल जो व्यक्ति कूपके जलमें अपनी प्रतिमूर्ति देख नहीं सकता, वह ६ मासके मध्य निश्चय मरता है। कालोदकके निकट ही महाकाल और पञ्च पाण्डवकी मूर्ति है।

कालोदकसे अनतिदूर वृद्धकालेश्वरका वर्तमान मन्दिर है। काशीखण्डके मतानुसार—"दक्षिण देशके नन्दिवर्धन नामक ग्राममें वृद्धकाल राजा रहे। उन्होंने सहधर्मिणीके साथ काशी जा एक प्रासाद बनाया और उसमें शिवलिङ्ग स्थापन कराया। वही अनादि शिवलिङ्ग वृद्धकालेश्वर नामसे ख्यात है। वृद्धकालेश्वर महादेवकी सेवा करनेसे दरिद्रता, उपसर्ग, रोग पाप किंवा पापजनित फलभोग निवारित होता है।

(काशीखण्ड ३४ अ०)

वृद्धकालेश्वरका मन्दिर अति प्राचीन है।※ अनेकोंके मतानुसार काशीमें आजकल जितने शिवालय देख पड़ते, उन सबसे उक्त मन्दिर पुरातन मन्दिर है।

वृद्धकालेश्वरके मन्दिर मध्य दक्षेश्वर नामक स्वतन्त्र शिवलिङ्ग विद्यमान है। उक्त मन्दिरको छोड़ दक्षिणभागमें 'अल्पमृतेश्वर' शिवलिङ्ग है। भक्तके विश्वासानुसार अल्पमृतेश्वरलिङ्ग अल्पायु मानवको दीर्घायु प्रदान करता है। इसीसे विस्तर तीर्थयात्री उक्त लिङ्ग दर्शन और अर्चन करने जाते हैं।

किसी समय वृद्धकालेश्वरके दक्षिण पुराण-प्रसिद्ध कृत्तिवासेश्वरका मन्दिर था। काशीखण्डमें लिखा है—"महादेव द्वारा निहत होनेपर गजासुरका शरीर उक्त स्थानपर शिवलिङ्गरूपमें परिणत हुवा। शिवके गजासुरको कृत्ति अर्थात् चर्म परिधान करनेसे ही उक्त लिङ्ग कृत्तिवासेश्वर कहाता है। वह लिङ्ग काशीस्थ सकल लिङ्गसे श्रेष्ठ है। उत्तमरूपसे सप्तकोटि महारुद्रो जप करनेसे जो फल मिलता, काशीमें कृत्तिवासेश्वरकी पूजा करनेसे वही प्राप्त हो सकता है।" (काशीखण्ड ६८ अ०)

* काशीवासियोंके विश्वासानुसार कालभैरव ही पञ्चक्रोशी वाराणसीके शासनकर्ता वा कोतवाल हैं।

※ शिवपुराणमें भी वृद्धकालेश्वरका नाम मिलता है। (शिवपुराण, ज्ञानसंहिता ५०। ६१)

एक समय कृत्तिवासेश्वरका अति बृहत्प्रासाद था।

"कृत्तिवासेश्वरस्यैषा महाप्रासादनिर्मितिः।
यां दृष्ट्वापि नरो दूरात् कृत्तिवासः पदं लभेत्।
सर्वेषामपि लिङ्गानां मौलित्वं कृत्तिवाससः॥"

(काशीखण्ड, ३२। ६६—६७)

कृत्तिवासेश्वरका बृहत् प्रासाद नयनगोचर होता है। मानव दूरसे वह प्रासाद निरीक्षण करते ही कृत्तिवासत्व पा जाता है। वह मन्दिर सर्वापेक्षा श्रेष्ठ है।

कृत्तिवासेश्वरके उसी प्रासादका चिह्नमात्र भी नहीं रहा। आजकल उसका कियदंश आलमगीरी मसजिद कहाता है। हिन्दूविद्वेषी औरंगजेबके राजत्वकाल मुसलमानोंने कृत्तिवासेश्वर मन्दिर ध्वंस कर उसीके साजसामानसे १६५९ ई० को उक्त मसजिद बनायी थी।

आलमगीरी मसजिदके निकट ही रत्नेश्वरका पवित्र मन्दिर है। काशीखण्डमें कहा है—"कालभैरवके उत्तरभागमें गिरिराज हिमालय पार्वतीके लिये जो समुदाय रत्न लाये थे, वह सकल पुण्योपार्जित रत्नराशि रत्नेश्वरमें रख वह अपने गृह चले गये। काशीमें जितने लिङ्ग हैं उन सकलके मध्य यह लिङ्ग रत्नमूल है। इसीसे उसको रत्नेश्वर कहते हैं। देवी
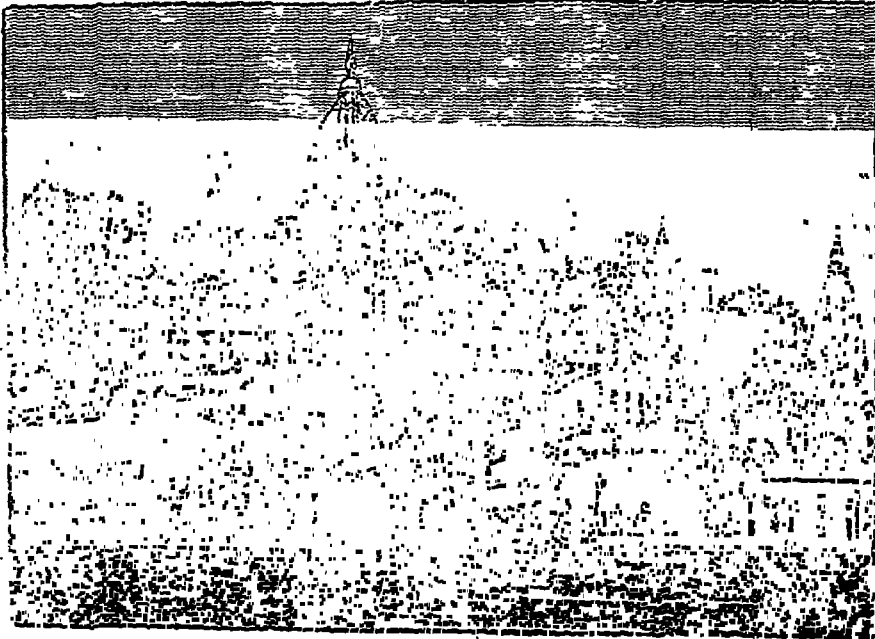
मणि कर्णिका-घाट।

पार्वतीके आदेशपर उनके पितृपरित्यक्त राशिकृत सुवर्णसे गण समूहने रत्नेश्वर प्रासाद निर्माण किया। जो व्यक्ति रत्नेश्वरको नमस्कार कर देशान्तर और कालग्रासमें पड़ता, वह शतकोटि कल्पमें भी स्वर्गच्युत हो नहीं सकता। उसी लिङ्गको पूर्वदिक् पार्वतीने दाक्षायणीश्वर नामक लिङ्ग प्रतिष्ठा किया था।"

(काशीखण्ड ६८ अ०)

प्रायः ८५ वर्ष पूर्व उक्त मन्दिरकी भित्तके खनन-काल मृत्तिकासे मणिरत्न निकले थे।

काशीकी मणिकर्णिका भी सामान्य तीर्थ नहीं। शिवपुराणकी ज्ञानसंहितामें लिखा है—

"ततश्च विष्णुना दृष्टा भद्रो किमेतदद्भुतम्।
इत्याश्चर्यं मदा दृष्टा शिरसः कम्पनं कृतम्।
ततश्च पतितः कर्णान्मणिश्च पुरतो प्रभोः॥
यत्रासौ पतितश्चैव तत्रासीन्मणिकर्णिका।" (४९। १०—१४)

तदनन्तर विष्णुने उसे देख कर मनमें कहा—अहो यह अतिशय अद्भुत व्यापार था। उक्त आश्चर्य देख

उन्होंने शिर:कम्पन किया था। उसमें उनके कर्णसे मणिभूषण प्रभुके आगे गिर पड़ा। मणि पतित होनेके स्थान पर ही मणिकर्णिका है।

"नास्ति गङ्गासमं तीर्थं वाराणस्यां विशेषतः।
तत्रापि मणिकर्णाख्यं तीर्थं विश्वेश्वरप्रियम्॥" (सौरपुराण ४। ८)

गङ्गासम तीर्थ नहीं। विशेषतः वाराणसीमें विश्वेश्वरप्रिय मणिकर्णिकाके तुल्य तीर्थ दूसरे स्थान पर देख नहीं पड़ता।

"संसारिचिन्तामणिरत्र यस्मात् तं तारकं सज्जनकर्णिकायाम्।
शिवोऽभिधत्ते सहसाऽन्तकाले तद्गीयतेऽसौ मणिकर्णिकेति॥
मुक्तिलक्ष्मीमहापीठमणिस्तच्चरणाब्जयोः।
कर्णिकेयं ततः प्राहुर्यां जना मणिकर्णिकाम्॥"

(काशीखण्ड ७। ७९—८०)

संसारी जीवोंके चिन्तामणि विश्वनाथ अन्तिमकाल साधुवोंके कर्णमें तारकब्रह्म उपदेश किया करते हैं। इसीसे उसका नाम मणिकर्णिका है। अथवा वह स्थान मुक्तिलक्ष्मीके महापीठका मणिस्वरूप और उनके चरणकमलका कर्णिका स्वरूप है। इसीसे मानव उसे 'मणिकर्णिका' कहते हैं।

"त्वदीयस्यास्य तपसो महोपचयदर्शनात्।
यन्मयान्दोलितो मौलिरहिश्रवणभूषणः॥
तदान्दोलनतः कर्णात् पपात मणिकर्णिका।
मणिभिः खचिता रम्या ततोऽस्तु मणिकर्णिका॥
चक्रपुष्करिणी तीर्थं पुराख्यातमिदं शुभम्।
त्वया चक्रेण खननाच्छङ्खचक्रगदाधर॥
मम कर्णात् पपातेयं यदा च मणिकर्णिका।
तदा प्रभृति लोकेऽत्र ख्यातास्तु मणिकर्णिका॥"

(काशीखण्ड २६। ६२—६५)

महादेवने कहा है—'हे विष्णो! तुम्हारी महातपस्या देख हमने विस्मयसे मस्तक हिलाया था। उसमें हमारे कर्णसे विचित्र मणिसमूहखचित मणिकर्णिका नामक कर्णभूषण यहां गिर पड़ा इसीसे इस स्थानका नाम मणिकर्णिका है। तुम्हारे चक्रद्वारा खनन करनेसे यह पवित्र तीर्थ पहले चक्रपुष्करिणी कहाता था। पीछे हमारी मणिकर्णिका गिरनेसे यह मणिकर्णिका नामसे ख्यात हुवा।

काशीमाहात्म्यमें लिखा है—कापिल वा सांख्ययोग अथवा बहुतर व्रतद्वारा जो गति नहीं मिलती, मोक्षभूमि मणिकर्णिका मानवगणको अनायास वही गति प्रदान करती है। ब्रह्मचारी भी अन्तिम काल मुक्तिके लिये मणिकर्णिकाका आश्रय ग्रहण करते हैं। वास्तविक सहस्र सहस्र यात्री मणिकर्णिकाका वारि स्पर्श करने आते हैं।

मणिकर्णिकाके घाट पर विष्णुकी 'चरणपादुका' हैं। प्रवाद है—यहां भगवान् विष्णुने महादेवका आराधन किया था। एक विस्तृत मर्मर पत्थर पर पदतलकी भांति दो चिह्न हैं। वह प्राय डेढ़ हाथ विस्तृत हैं। कार्तिक मास नाना स्थानोंसे यात्री उस चरणपादुकाकी पूजा करने जाते हैं। वरणासङ्गमके निकट भी उसी प्रकार पादुकाके चिह्न हैं। मणिकर्णिका घाट पर अनतिदूर सिद्धविनायकका प्राचीन मन्दिर है। उस मन्दिरमें सिद्धविनायक व्यतीत सिद्धि और बुद्धि देवीकी भी मूर्ति है।

सिद्धविनायकके निकट अमेठीके राजा द्वारा प्रतिष्ठित एक सुन्दर देवालय है। मणिकर्णिकाके समीप सेंधिया और नागपुरके राजाका बंधाया मनोहर घाट वर्तमान है।

मणिकर्णिकाके बिलकुल सामने तारकेश्वरका मन्दिर है। सौरपुराणमें लिखा है—

"अन्तिमकाल तारकेश्वर काशीवासियोंको तारक ब्रह्मका ज्ञान प्रदान करते हैं।" (६।८) गङ्गाके पश्चिम घाटपर दिवोदासेश्वरका मन्दिर है। काशीखण्डके मतसे काशीपति रिपुञ्जय दिवोदासने वहां एक शिवालय बनाया और उसमें दिवोदासेश्वर नाम शिवलिङ्ग प्रतिष्ठा कराया था। वह स्थान 'भूपालश्री' तीर्थ नामसे विख्यात है (५८।११-१२)। वर्तमान मन्दिर बहुत अधिक दिनका प्राचीन समझ नहीं पड़ता। मन्दिरमें दिवोदासेश्वर लिङ्ग व्यतीत 'विंशबाहुक' नाम्नी एक देवमूर्ति है, उसके २० हाथ हैं। मन्दिरकी प्रदक्षिणाके मध्य धर्मकूप नामक एक पवित्र तीर्थ है। किसी किसी पुराविद्के मतानुसार पहले वह बौद्धोंका तीर्थ था, पीछे हिन्दुवोंका बन गया। काशीखण्डके मतमें

उक्त स्थान पर पिण्डदान करनेसे पितृगणको ब्रह्मपद मिलता है। (काशीखण्ड ११ अ०) दिवोदासेश्वरमन्दिरको छोड़ कुछ आगे बढ़ने पर पार्श्वमें विशालाक्षी देवी-का मन्दिर नयनगोचर होता है। (काशीखण्ड ११। १७५)

विशालाक्षी मन्दिरके पीछे मीरघाट पर सिल-सिले वार अनेक मन्दिर देख पड़ते हैं। वहीं ललिता देवीके मन्दिर-निकट जलशायी विष्णुमन्दिर और राज-वल्लभ देवालय है। गङ्गावक्षसे उक्त सकल मन्दिरका दृश्य अति सुन्दर लगता है।

वाराणसीके उत्तर-पश्चिम कोणमें नागकूप नामक
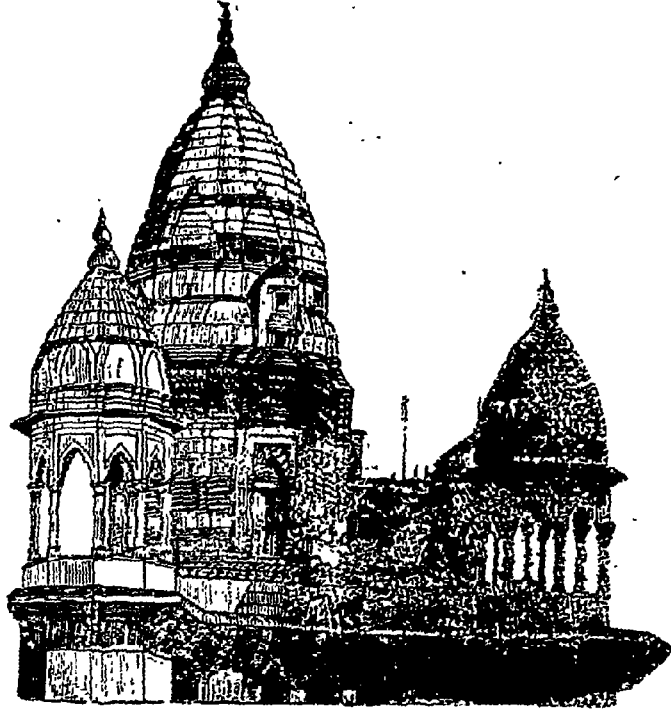
जलशायी विष्णुमन्दिर।

तीर्थ है। आजकल वह स्थान नागकुवां महल्ला कह-लाता है। वह अंश वाराणसीका प्राचीन भाग समझ पड़ता है। प्रायः १२५ वर्ष पूर्व किसी राजाने उक्त कूपको विस्तर व्ययमें पुनः संस्कार करा पत्थरसे बंधा दिया था। उसकी सिढ़ी पर एक स्थानमें २ नागमूर्ति और अपर स्थानमें एक शिवलिङ्ग देखते हैं। यहां नाग और नागेश्वरशिवकी पूजा होती है।

नागकूपसे थोड़ी दूर वागीश्वरी देवीका मन्दिर है। उसकी देवी मूर्ति अष्टधातुनिर्मित है। शिर पर बृहत् मुकुट शोभित है। वागीश्वरी देवी सिंहोपरि अवस्थित हैं। मन्दिर भी देखने योग्य है। उसके बरामदेमें नानावर्ण देवदेवीकी मूर्ति चित्रित हैं। मन्दिरके एक कोणमें अमेठी राजप्रदत्त पत्थरकी एक सिंहमूर्ति है। एतद्भिन्न राम, लक्ष्मण, सीता प्रभृति और नवग्रहकी मूर्ति भी हैं।

वागीश्वरीमन्दिरके निकट ही ज्वरहरेश्वरका और सिद्धेश्वरका मन्दिर है। अनेक लोगोंके विश्वासानु-सार ज्वरहरेश्वर महादेवकी पूजा करनेसे सर्वप्रकार ज्वर निवारित होता है। उसी प्रकार सिद्धेश्वर मानवकी मनस्कामना सिद्ध करते हैं।

उक्त मन्दिरोंमें शिल्पनैपुण्य तथा कारुकार्य अच्छा है।

वाराणसीमें दशाश्वमेधघाट भी एक महातीर्थ है। यहां शत शत मन्दिर बने हैं।

"साहाय्यं प्राप्य राजर्षेर्दिवोदासस्य पद्मभूः।
इयाज दशभिः काश्यामश्वमेधैः महामखैः॥
तीर्थं दशाश्वमेधाख्यं प्रथितं जगतीतले।......
पुरा रुद्रसरो नाम तत्तीर्थं कलशोद्भव।
दशाश्वमेधिकं पश्चाज्जातं विधिपरिग्रहात्॥"

(काशीखण्ड ५२। ६६—६८)

ब्रह्माने राजर्षि दिवोदासके सहायसे काशीमें दश अश्वमेध यज्ञ किये थे। तदवधि उनके यज्ञ करनेका स्थान दशाश्वमेधतीर्थ नामसे जगत्में विख्यात हुआ। पुराकालको उक्त तीर्थ रुद्रसरोवर कहाता था। ब्रह्माके यज्ञावधि उसका नाम दशाश्वमेध पड़ गया।

दशाश्वमेधमें ब्रह्माने दशाश्वमेधेश्वर नामक शिवलिङ्ग स्थापन किया था।

"तत्र स्नाता महाभागे भवन्ति नीरुजा नराः।
दशाश्वमेधानां फलं तत्र प्राप्नोति मानवः"॥

(मत्स्यपुराण, १८३। ७१)

उस (दशाश्वमेध) तीर्थमें स्नान करनेसे मानव रोगशून्य होते और दश अश्वमेधका फल भोगते हैं।

काशीखण्डमें लिखा है कि दशाश्वमेधतीर्थमें केवल मात्र तीन आहुति प्रदान करनेसे अग्निहोत्रयागका फल मिलता है। (काशीखण्ड ३३। १०८)

अद्यापि दशाश्वमेधेश्वर और ब्रह्मेश्वर नामक शिवमन्दिर बना है। काशीखण्डके मतमें उक्त उभय लिङ्ग ब्रह्माने प्रतिष्ठित किये थे। प्रथम लिङ्ग कृष्ण पाषाणमय और प्रायः ४ हाथ उच्च है। सम्मुख एक बृहदाकार वृषभ मूर्ति है। काशीमाहात्म्यके मतानुसार दशाश्वमेधमें स्नान कर दशाश्वमेधेश्वरके दर्शन करने पर मानव समस्त पातकसे मुक्ति पाता है। ज्येष्ठ मासकी प्रतिपद् और दशहराको विस्तर तीर्थयात्री एकत्र होते हैं। काशीखण्डके मतानुसार उक्त उभय दिन दशाश्वमेधमें स्नान करनेसे आजन्मकृत अथवा दशजन्मार्जित पाप कट जाता है। ब्रह्मेश्वरलिङ्ग दर्शन करनेसे भी मानव ब्रह्मलोक पाता है।

दशाश्वमेध-मन्दिरके निकट ही 'रुद्रसर' नामक तीर्थ है। काशीखण्डके कथनानुसार उक्त तीर्थमें स्नान करनेसे जन्मत्रयकृत पाप विनष्ट होता है।

दशाश्वमेध-घाटमें दशहरेश्वर प्रभृति अनेक देवमन्दिर हैं। एक ही साथ कतार कतार इतने पवित्र मन्दिर काशीमें अन्य किसी स्थान पर देख नहीं पड़ते।

दशाश्वमेधघाटके उत्तर मानमन्दिरघाटके निकट दाल्भ्येश्वर, सोमेश्वर, विष्णु, शीतला, वाराही देवी प्रभृतिके मन्दिर बने हैं।

वाराणसीसे पश्चिम नगरसीमाके बाहर पिशाचमोचन तीर्थ है। वह एक प्राचीन स्थान है। कूर्मपुराणमें भी उसका उल्लेख है। (पूर्वभाग, ३१। २) प्रायः काशीयात्री मात्र उक्त तीर्थके दर्शनको जाते हैं।

काशीमाहात्म्यमें कहा है:— किसी समय एक पिशाच बलपूर्वक काशी पहुंचा था। अपरापर देवता उसकी गति रोक न सके। शेषको कालभैरवने युद्ध कर पिशाचका मस्तक द्विखण्ड कर डाला। फिर भैरवनाथ पिशाचका मुण्ड ले विश्वेश्वरके निकट उपस्थित हुये। देहहान होते भी पिशाचकी जीवनशक्ति वा वाक्शक्ति गयी न थी। इसने विश्वेश्वरसे प्रार्थना की कि वह काशीसे हटाया न जाय। आशुतोषने उस की प्रार्थना ग्राह्य की। पिशाचने अवशेषको फिर कहा 'हे विश्वेश्वर! आप अनुमति दें जिसमें गयायात्री बिना मुझे प्रथम दर्शन किये गया यात्रा न कर सकें।' विश्वेश्वरने वही अनुमति दे डाली। तदनुसार अनेक यात्री प्रथम पिशाचमोचनका दर्शन कर पश्चात् गया जाते हैं। कालभैरवने उस तीर्थमें पिशाचका मुण्ड फेंका था। इसीसे उसका नाम पिशाचमोचन पड़ गया। वहां प्रतिवर्ष कई मेले होते हैं। उनमें 'लोटाभण्टा' मेला प्रधान है।

पिशाचमोचन घाट कुछ मीराबाई और कुछ गोपालदास साधुके द्वारा पत्थरसे बंधाया गया। घाटका दक्षिण प्रायः तीन शत वर्ष पूर्व राजा शिवशम्भर और उत्तर अंश प्रायः शताधिक वर्ष पूर्व राजा मुरलीधरने बनवाया था।

पिशाचमोचनको पूर्व और दो मन्दिर हैं। उनमें एक मीराबाईका प्रतिष्ठित है। मन्दिरकी चारो दिक् अनेक देवमूर्ति हैं। कहीं शिव, कहीं उन्हींके पार्श्वमें पिशाचका छिन्न मुण्ड, कहीं विष्णु, लक्ष्मी, सूर्य, गणेश, हनूमान् प्रभृतिकी मूर्ति शोभा पाती हैं।

इसके आगे सूर्यकुण्ड या साम्बादित्य है। काशीखण्डमें वर्णित है,—"विश्वेश्वरकी पश्चिमदिक् जाम्बवती-नन्दन साम्बने आदित्य देवकी उपासना की थी। वह कृष्णके अभिशापसे कुष्ठरोगाक्रान्त हुये। उक्त दारुण व्याधिसे मुक्ति लाभके लिये वह काशीमें जा एक कुण्ड निर्माण पूर्वक सूर्यकी आराधना कर शापसे छूटे। साम्बप्रतिष्ठित साम्बादित्य नामक सूर्यविग्रह भक्तगणको सर्वप्रकार सम्पद् प्रदान करता है। साम्बादित्यकी सेवा करनेसे स्त्री कभी विधवा नहीं होती। माघ मासमें रविवार पर शुक्लसप्तमीको साम्बकुण्डकी वात्सरिक यात्रा पड़ती है। उसदिन साम्बकुण्डमें स्नान कर साम्बादित्यकी पूजनेसे उत्कृष्ट रोगभी शान्त होता है।"

काशीखण्डोक्त साम्बकुण्डका ही वर्तमान नाम सूर्यकुण्ड है। सूर्यकुण्डके सम्मुख एक क्षुद्र मन्दिरमें अष्टाङ्ग भैरवकी मूर्ति है। हिन्दूविद्वेषी औरङ्गजेबने वह मूर्ति अङ्गहीन कर डाली थी।

उसी अञ्चलमें ध्रुवेश्वरका मन्दिर है। काशीखण्डके मतमें ध्रुवने यह शिवलिङ्ग प्रतिष्ठा किया था।

वाराणसी एहसानगञ्जमहल्लेमें विख्यात यागेश्वरका मन्दिर है। उस मन्दिरकी चारो ओर प्राचीर है। मन्दिरमें अनेक देवमूर्ति प्रतिष्ठित हुयी हैं। मन्दिरकी कारीगरी अच्छी और देखने योग्य है।

एहसानगंज महल्लेके सन्निहित काशीपुरा महल्लेमें काशी देवीका मन्दिर बना है। वही काशीकी अधिष्ठात्री देवी हैं। काशी देवीके मन्दिरसे अनतिदूर घण्टाकर्ण तालाब है। काशीखण्डके मतमें उसे 'घण्टाकर्णह्रद' कहते हैं। उस ह्रदके निकट चित्रघण्टेश्वरी विराज करती हैं। ह्रदके तीर घण्टाकर्ण नामक गणकर्तृक प्रतिष्ठित घण्टाकर्णेश्वर नामक शिवलिङ्ग है।

(काशीखण्ड ५३। ३२—३४)

घण्टाकर्ण ह्रदके तीर वेदव्यासेश्वरका मन्दिर है। उस मन्दिरमें वेदव्यासकी मूर्ति और तत्प्रतिष्ठित वेदव्यासेश्वरलिङ्ग विद्यमान है; श्रावण मासमें घण्टाकर्णह्रद और तन्निकटस्थ मन्दिरके दर्शनको विस्तर तीर्थयात्री आते हैं।

काशीदेवीके मन्दिरसे कुछ उत्तर भूतभैरव वा विषम भैरवका मन्दिर है। भूतभैरवकी मूर्ति अद्भुत है। वहां अपरापर देवमूर्ति भी हैं। उनमें अश्वत्थ वृक्ष के प्रकाण्डसे उत्थित वृहत् शिवलिङ्ग ही प्रधान है।

उसी महल्लेमें वारणपेश और जगन्नाथदेवका मन्दिर है। एक स्थानमें दोसतीकी प्रस्तरमूर्ति हैं। उभयने पतिका सहगमन किया था। सधवा स्त्री जा कर उक्त दो सती मूर्तिका पूजा करती हैं। वहां दूसरी भी अनेक अङ्गहीन पाषाणमूर्ति हैं। कालवश अथवा मुसलमान उत्पीड़नसे उन सकल देवमूर्तिकी वैसी दुर्दशा हुयी है। वहां प्राचीन शिल्पनैपुण्य देख चमत्कृत होना पड़ता है।

वाराणसीके मध्यस्थलमें त्रिलोचनका प्राचीन मन्दिर है। काशीमाहात्म्यमें लिखा है—"जिस समय शिव ध्यानमें निमग्न रहे, विष्णु प्रत्यह सहस्र पुष्पसे उनकी पूजा करते थे। एक दिन विष्णु शिवपूजामें निरत रहे। उसी समय शिवने उनका एक फूल उठा रखा। उसके पीछे विष्णुने पुष्पाञ्जलि देनेके समय एक एक कर ९९९ फूल देवोद्देशसे अर्पण किये। शेषको उन्होंने देखा कि एक फूल न था। किंकर्तव्यविमूढ़ होकर अवशेषको भगवान्‌ने अपना एक नेत्रकमल उत्सर्ग किया। कपोल देशपर वह नेत्र पड़ते ही शिवके तीन नेत्र हो गये और वह त्रिलोचन नामसे विख्यात हुये।"

त्रिलोचनका वर्तमान मन्दिर पूनाके नाथूवालाने बनवाया था, मन्दिर बहुत प्राचीन नहीं। किन्तु तत्स्थानीय सकल देवमूर्तिके आकृतिदर्शनसे वह अधिक प्राचीन—जैसा समझ पड़ता है। काशीखण्डके मतानुसार—'त्रिभुवनके मध्य वाराणसी पुरी ही सर्वापेक्षा श्रेष्ठ है। उस वाराणसीमें प्रणवेश्वर लिङ्ग और उससे भी उक्त त्रिलोचन लिङ्ग श्रेष्ठ है। महेश्वरने कलिकालमें त्रिलोचनकी महिमा छिपा रखी है।' (काशीखण्ड ७०।५,११८)

मन्दिरकी सीमामें प्रवेश करने पर विविध देवदेवी मूर्ति दर्शनसे नयन और मन आकृष्ट होता है। वहां दूसरे भी क्षुद्र क्षुद्र मन्दिर हैं। सर्वत्र प्रायः ५, १० वा २० से अधिक शिव और निकटही नन्दिमूर्ति
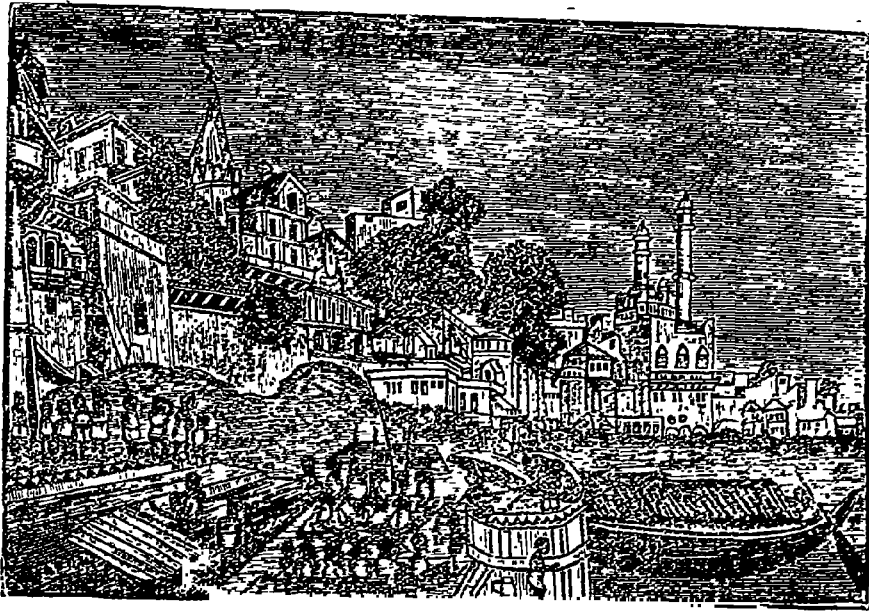
अग्नितीर्थ—अग्नीश्वर घाट।

देखते हैं। दक्षिणभागमें देवसभा है वही विख्यात कोटिलिङ्गेश्वरमूर्ति वर्तमान है। वह लिङ्ग २ हस्त उच्च है। लिङ्गका अङ्ग इस प्रकार गठित है कि देखते ही शत शत शिवलिङ्गका एकत्र अधिष्ठान समझ पड़ता है। मन्दिरके दक्षिण भागमें राजा अमार प्रतिष्ठित वाराणसी देवीकी मूर्ति है। एतद्भिन्न इधर उधर गणेश, सूर्य, शीतला, हनूमान् प्रभृतिकी मूर्ति भी दृष्टिगोचर होती हैं।

त्रिलोचन मन्दिरके द्वार सम्मुख युग्ममन्दिर है। वहां बाहरसे भीतर तक असंख्य देवमूर्ति विराज करती हैं। उनका दृश्य देखते ही विस्मित होना पड़ता है।

त्रिलोचन मन्दिरका बरामदा लाल रंगके आठ खंभोंपर स्थापित है। उसका पटल (छत) विविध चित्रसे चित्रित है। बरामदामें बड़ी घण्टा लटकती है। प्रवेशद्वारके पार्श्वदेशमें वृहत् श्वेत प्रस्तरकी एक वृषभमूर्ति है। वहां गणेशादि देवमूर्ति व्यतीत सिख गुरु नानकशाहकी प्रतिमा अङ्कित है। वहां नरक और मृत्यु नदीका दृश्य बहुत अनोखा है। वहां इस बातका सुन्दर चित्र देख पड़ता—पापी मानवगण किस प्रकार दण्ड पाता और काल नदीके परपार जानेको कैसे व्याकुल होता है। उक्त मन्दिरको छोड़ कुछ दूर पर त्रिलोचनघाट है। वहां भी शिल्प और कारुकार्य शोभित सुन्दर देवालय बना है। उक्त सकल देवालयके बाहर भीतर चारोदिक् अनेक शिवलिङ्ग रखे हैं।

त्रिलोचनघाटका प्राचीन नाम पिलपिलातीर्थ है। काशीखण्डमें कहा है—गङ्गाके सहित मिलित हो सरस्वती, यमुना और नर्मदा वहां वास करती हैं। उसी पिलपिला तीर्थमें जो व्यक्ति स्नानकर पिण्डश्राद्धादि करता, उसको फिर गयामें जानेका क्या प्रयोजन पड़ता है? पिलपिलातीर्थमें स्नानान्त पिण्डप्रदान कर त्रिविष्टपलिङ्ग दर्शन करनेसे कोटितीर्थ दर्शनका फल लाभ होता है। सरस्वती, यमुना और नर्मदा तीन पापविनाशिनी त्रिलोचनकी दक्षिणदिक् त्रिविष्टप लिङ्गको स्नान करानेके लिये समवेत हुयी हैं। उक्त नदीत्रयने अपने अपने नामसे एक शिवलिङ्ग प्रतिष्ठा किया है। त्रिविष्टपकी दक्षिणदिक् सरस्वतीश्वर, पश्चिमदिक् यमुनेश्वर और पूर्वदिक् सुखप्रद नर्मदेश्वर हैं। उक्त तीन लिङ्गके दर्शनसे महापुण्य मिलते हैं। (काशीखण्ड ५०।५—११)

अद्यापि त्रिलोचनके निकट त्रिलोचनघाटमें उक्त सकल प्रतिमा विराज करती हैं।

मङ्गलागौरीके दक्षिण चारघाट है। उसके आगे

रामघाट पड़ता है। वहां भी विस्तर देवालय हैं। रामघाटके दक्षिण जैनमन्दिरघाट है। वहां जैनमन्दिरमें पार्श्वनाथ प्रभृति जिनमूर्ति हैं। उसके दक्षिण प्राचीन अग्नितीर्थ (वर्तमान अग्नीश्वरघाट) है। अग्नितीर्थके तीर अग्नीश्वर मन्दिर व्यतीत दूसरे भी अनेक देवालय हैं।

त्रिलोचनघाटके निकट आदि महादेवका एक स्वतन्त्र मन्दिर है। उस मन्दिरमें प्राचीन व्यासासन देख पड़ता है। प्रवादानुसार उक्त आसन पर बैठ वेदव्यास वेदपाठ करते थे। वहां पाषाणमयी पार्वतीश्वरी की प्रतिमा है। पूर्वतन पार्वतीश्वरीका मन्दिर विनिष्ट हो गया था। गौरजी नामक एक विख्यात गुजराती ब्राह्मणने काशीखण्ड आनुपूर्विक पढ़ प्राचीन देवमूर्ति और तीर्थ सकलको उद्धार करनेको चेष्टा लगायी। उन्होंने प्राचीन पार्वतीश्वरीकी प्रतिमाका अनुसन्धान न पा उसके स्थानमें वर्तमान प्रतिमा प्रतिष्ठा की है।

पञ्चगङ्गाघाटका अपर नाम पञ्चनद वा धर्मनदतीर्थ है। काशीखण्डके मतमें—"धर्मनदमें धूतपापा, किरणा, सरस्वती, गङ्गा और यमुना पांच नदी जाकर मिली हैं। इसीसे उसका नाम पञ्चनद है। राजसूय और अश्वमेधके अवभृथकी अपेक्षा पञ्चनदतीर्थमें स्नान करनेसे शतगुण अधिक फल लाभ होता है।"

(काशीखण्ड, ५८। १११—११५)

आजकल केवल गङ्गानदी दृष्ट होती है। साधारण विश्वासके अनुसार दूसरी चारो नदी भूमिके मध्य अन्तःसलिला बहती हैं।

वहां मङ्गलागौरी और विन्दुमाधवका मन्दिर है। काशीखण्डके कथनानुसार—पञ्चनदतीर्थमें स्नान कर विन्दुमाधवको दर्शन करनेसे मनुष्य फिर कभी गर्भवासयन्त्रणा भोग नहीं करता। उसी प्रकार मङ्गलागौरीको अर्चना करनेसे वन्ध्या स्त्री भी पुत्र लाभ कर सकती है। (काशीखण्ड ५९। १२०—१२६)

उसी स्थान पर हिन्दूविद्वेषी औरङ्गजेबने पुरातन विन्दुमाधवका मन्दिर चूर्ण करा हिन्दूदेवालयको उच्चता खर्व करनेके लिये बहुत ऊंची मीनारसे सजी एक बड़ी मसजिद बनायी थी।

त्रिलोचनघाटसे पश्चिम कामेश्वर प्रभृति प्राचीन शिवलिङ्गके अनेक मन्दिर हैं। उक्त प्रायः सकल मंदिरका वर्ण लोहित और क्षुद्र क्षुद्र चूड़ा है। काशीखण्डके मतमें—देव कामेश्वर साधुगणकी कामना पूर्ण करते हैं। भक्तवांछा पूर्ण करनेके लिये भगवान् लिङ्गमें लीन हुए हैं। इसीसे स्वर्लीन नाम पड़ा है।"

(काशीखण्ड ६९। १२२—१२३)

उसीके निकट प्राचीन मत्स्योदरी तीर्थ था। शिवपुराणादिमें उक्त प्राचीन तीर्थका उल्लेख है। काशीखण्डके मतानुसार मत्स्योदरी तीर्थमें स्नान करनेसे मानव फिर गर्भयन्त्रणा भोग नहीं करता। उक्त तीर्थका आजकल चिह्नमात्र नहीं मिलता। प्रायः ८० वर्ष पूर्व किसी साहबने उसका लोप कर दिया था। पहले वहां अनेक तीर्थयात्री स्नान करने जाते थे। किन्तु तीर्थ लोपके साथ यात्रियोंकी संख्या भी घट गयी है।

काशीके बंगाली-टोलामें केदारेश्वरका मन्दिर है। काशीखण्डमें केदारेश्वरकी उत्पत्तिके सम्बन्ध पर लिखा है—"उज्जयिनीमें वशिष्ठ नामक एक ब्राह्मणतनय रहे। वह हिमालयस्थ केदारेश्वरके उद्देशसे यात्रा कर काशी पहुंचे। वहां उन्होंने प्रतिज्ञा की थी—'हम जब तक जीते रहेंगे, प्रति चैत्रमास केदारेश्वरके दर्शनको यात्रा करेंगे।' फिर उन्होंने ६१ बार केदारेश्वर दर्शन किया। बहुकाल पर वशिष्ठने पूर्ववत् केदारेश्वरके दर्शनार्थ सङ्कल्प किया, किन्तु अति वृद्ध देख सहचरगणने उन्हें जाने मना किया। तथापि वृद्धका उत्साह टूटा न था। उन्होंने स्थिर किया कि राहमें मरना भी अच्छा परन्तु केदारेश्वरके दर्शनको अवश्य चलेंगे। उनके आचरणसे केदारेश्वरने स्वप्नमें दर्शन दे कहा था—'हम तुम्हारे ऊपर सन्तुष्ट हुये हैं। वर मांगो।' ब्राह्मण कहने लगा—'यदि आप हमारे ऊपर प्रसन्न हुये हैं, तो हिमालयसे आकर यहां अवस्थान कीजिये।' भगवान्ने भक्तके प्रति सन्तुष्ट हो अपनी कलामात्र हिमशैलमें रख उक्त स्थान पर जाकर सम्पूर्ण भावसे हरपापह्रदमें अवस्थान किया। हिमालयकी अपेक्षा काशीमें केदारेश्वरका दर्शन करनेसे सात गुणा अधिक फल मिलता है। हिमालयकी भांति काशीमें भी गौरी
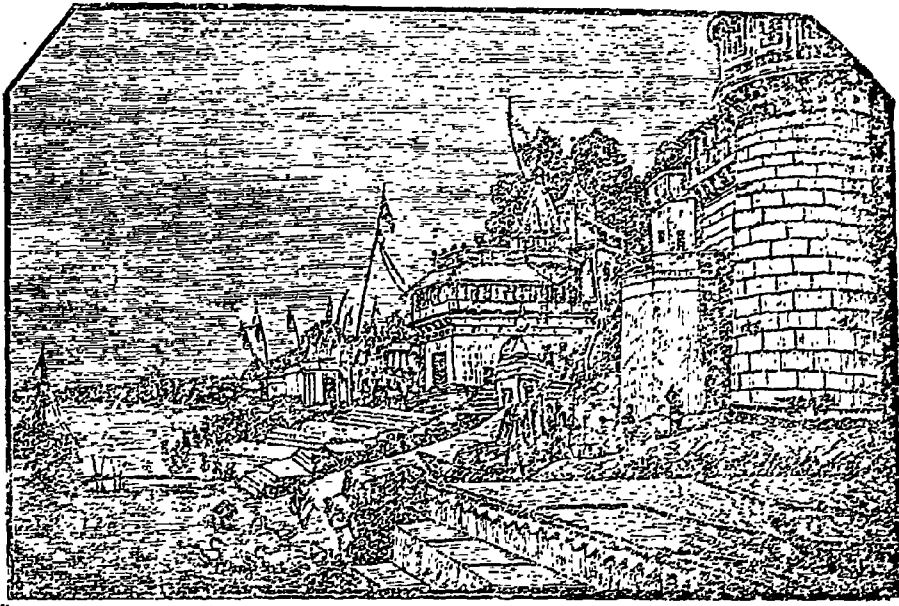
घोषला घाट।

कुण्ड, हंसतीर्थ और गङ्गा आदि वर्तमान हैं। पुरा-काल गौरीने उक्त महाह्रदमें स्नान किया था। उसी से "गौरीकुण्ड" नाम विख्यात हुआ। उसका अपर नाम मानसतीर्थ है। केदारकुण्डमें स्नान करनेवाले को केदारेश्वर मुक्ति प्रदान करते हैं।

(काशीखण्ड, ७७ अ०)

चार छोटे छोटे मन्दिरोंके मध्यस्थलमें गङ्गातीर पर केदारेश्वरका वृहत्‌मन्दिर अवस्थित है। मन्दिर-का बरामदा लाल और सफेद है। अनेक देवमूर्ति शोभा पा रही हैं। अनेक मूर्ति ऐसे सुन्दर भावसे बनी, कि देखनेमें जाती जैसी मालूम पड़ती हैं। केदा-रेश्वरकी मूर्ति व्यतीत वहां अन्नपूर्णा, लक्ष्मीनारायण, गणेश, भैरवनाथ प्रभृतिकी प्रतिमा भी हैं। मन्दिरके पूर्व प्राचीरसे गङ्गातीर अवधि पत्थरका घाट बंधा है। घाटकी सिढ़ीके एकपार्श्वमें एक वृहत् कूप है। काशी-खण्डमें उसका नाम हरपापह्रद वा गौरीकुण्ड लिखा है

केदारेश्वर मन्दिरसे उत्तर-पश्चिम थोड़ी दूर मान-सिंहउत्खात मानसरोवर नामक गम्भीर जलाशय है। उसकी चारो ओर प्रायः ५० मठ बने हैं। वहां राम लक्ष्मणका मन्दिर ही प्रधान है। उस मन्दिरकी सीमा-में एक स्थान पर दत्तात्रेयकी प्रतिमा है। एतद्भिन्न उक्त स्थान पर प्रायः सहस्राधिक देवप्रतिमा देख पड़ती हैं। अनतिदूर मानसिंह-प्रतिष्ठित मानेश्वर नामक शिवलिङ्गका मन्दिर भी है।

मानेश्वरके पश्चिम तिलभाण्डेश्वरका मन्दिर बना है। तिलभाण्डेश्वरकी प्रतिमा ३ हाथ ऊंची किन्तु १० हाथ चौड़ी है। साधारणके विश्वासानुसार उक्त प्रतिमा प्रत्यह तिल परिमाण बढ़ती है। इसीसे उस-को तिलभाण्डेश्वर कहते हैं। वह मन्दिर भी देखने-की चीज है। मन्दिरका कोई कोई अंश अति प्राचीन है। सुना जाता है कि चार सौ वर्ष पूर्व किसी राजाने उसे निर्माण कराया था। मन्दिरके निकट इधर उधर असंख्य देवप्रतिमा हैं। एक स्थान पर हस्तपद एवं शिरःशोभित एक वृहत् कृष्णवर्ण शिवप्रतिमा है। काशीमें सर्वत्र शिवलिङ्ग विद्यमान हैं। किन्तु वैसी बड़ी प्रतिमा एक भी देख नहीं पड़ती। एक समय उसके मन्दिर और बरामदेमें पक्का शिल्पकार्य था। छत और कारनिसमें भी अनेक प्रतिमा अङ्कित थीं। आजकल कालवश वैसा दृश्य नहीं रहा।

तिलभाण्डेश्वरके निकट एक स्थानमें अश्वत्थ वृक्ष-के तल पर एक भग्न प्रस्तरप्रतिमा रखी है। अनेक लोग उसे बौद्ध प्रतिमा अनुमान करते हैं। उसका नाम वीरभद्र है। उस प्रतिमामें शिल्पनपुण्यका जैसा परिचय मिलता, वैसा दूसरीमें देख नहीं पड़ता।

दशाश्वमेध और केदारनाथके मध्य अनेक स्थानों पर कई देखनेकी चीजें हैं उनमें आधुनिक होते भी स्वर्गीय आशुतोष-देवप्रतिष्ठित सुबृहत् दुलालेश्वर नामक शिवलिङ्ग और उनका मन्दिर उल्लेखयोग्य है।

संख्या कर नहीं सकते काशीमें कितनी दूसरी देव प्रतिमायें हैं। गङ्गाके तीर प्रति घाटमें देवालय देख पड़ते हैं। उनमें भवानीश्वरके दक्षिण एवं चक्र-पुष्करिणीके उत्तर सङ्कटाघाट, यमेश्वरघाट, घोषला-घाट और ओमठ उल्लेख योग्य है।

गङ्गाके तीर चौकीघाट पर रूक्मेश्वरका मन्दिर है। उसके निकट विस्तर नागप्रतिमा विराज करती हैं।

गलीमें घुसते ही दूरसे एक दोला देख पड़ती है। दोलाके आगे दशभुजा दुर्गाकी मूर्ति है। वह क्या ही सुन्दर और कैसी सुसज्जित है!

काशीकी दुर्गाबाड़ी अति प्रसिद्ध है। काशीखण्ड पाठसे समझते कि वहां दुर्गामूर्ति बहुत दिनसे प्रति-ष्ठित है। वर्तमान दुर्गामन्दिर रानी भवानीके व्ययसे बना था। मन्दिरका बरामदा उस समयके सूबेदारका बनाया है।

दुर्गाबाड़ीकी जनता देख आश्चर्यमें आना पड़ता है। इसकी कोई संख्या नहीं देश विदेशसे कितने तीर्थ-यात्री जाते हैं। प्रत्यह माता देवीके मन्दिरमें महोत्सव है। प्रत्यह देवी पार्वतीकी प्रीतिके निमित्त छागबलि होता है। प्रति मङ्गलवारको देवीके उद्देशसे मेला लगता है। प्रतिवर्ष श्रावण मासमें मङ्गलवारको बड़ा मेला होता है। इसकी संख्या नहीं—उस समय कितने तीर्थयात्री वहां जाते हैं?

मन्दिरका कारुकार्य और शिल्पनैपुण्य प्रशंसाके योग्य है। वहां नेपालराजप्रदत्त एक बड़ी घण्टा लट-कती है। दुर्गाबाड़ीकी प्राचीरसीमाके मध्य पवित्र दुर्गाकुण्ड है। दुर्गाकुण्डके पूर्व थोड़ी दूर कुरुक्षेत्रतलाव है। उक्त जलाशय भी रानी भवानीकी कीर्ति है।

इसी महल्लेमें प्रसिद्ध लोलार्ककुण्ड है। मत्स्य-पुराण (१८४।६५), कूर्मपुराण (३४।१७) और काशीखण्डमें उक्त पवित्र तीर्थका माहात्म्य कीर्तित हुआ है। काशीखण्डमें कहा है—

"काशीके दर्शनसे सूर्यका मन अतिशय लोल हुवा था। इसीसे सूर्यका नाम लोलार्क पड़ गया।

*दक्षिणदिक् असिसङ्गमके निकट लोलार्क (सूर्यमूर्ति) अवस्थित हैं। वह सर्वदा काशीवासीका मङ्गल किया करते हैं। अग्रहायण मासके रविवारको लोलार्ककी वार्षिकी यात्रा करनेसे मानव पापमुक्त होता है। लोलार्कसङ्गममें स्नान करनेसे अनन्तकालके लिये सत्-कर्म सिद्ध हो जाता है।" (काशीखण्ड ४६।४८-५०)

रानी अहल्याबाई, अमृतराय और मिथिलाधिपने लोलार्क कुण्डका संस्कार कराया था।

लोलार्क कुण्डकी चारो ओर गणेशादि नानाविध देवमूर्ति हैं। कुण्डके दक्षिण तीर भद्रेश्वरका मन्दिर बना है। भद्रेश्वरका लिङ्ग भी अति बृहत् है।

पुण्यधाम वाराणसीमें बहुत प्राचीन और अप्राचीन देवमूर्ति एवं पवित्र तीर्थ हैं। काशीखण्डमें काशीस्थ प्राचीन तीर्थका विवरण इस प्रकार दिया है—

"समस्त जगत्के मध्य वाराणसी पुरी अति पवित्र स्थान है। उसके भी मध्य गङ्गा और असिसङ्गम अति-शय पवित्रतर है। असिसङ्गमसे हयग्रीवतीर्थ अधिक-तर पुण्यप्रद है। वहां विष्णु हयग्रीव रूपसे अवस्थान करते हैं। उक्त हयग्रीवतीर्थसे भी गजतीर्थ अधिक पुण्य-प्रद है। वहां स्नान करनेसे गजदानका फल मिलता है। गजतीर्थसे कोकावराहतीर्थ पुण्यदायक है। वहां कोकावराह देवकी पूजा करनेसे फिर जन्म लेना नहीं पड़ता।

"दिलीपेश्वर महादेवके निकट दिलीपतीर्थ है। वह कोकावराह तीर्थसे श्रेष्ठतर है। सगरेश्वरके निकट सगर-तीर्थ है। वह दिलीपतीर्थसे भी श्रेष्ठतर है। सप्तसागर-तीर्थ, महोदधितीर्थ, कपिलेश्वरके चौरतीर्थ, केदारे-श्वरके निकट हंसतीर्थ, त्रिभुवनकेशवतीर्थ, गोव्याघ्रेश्वर तीर्थ, मान्धातृतीर्थ, मुचुकुन्दतीर्थ, पृथ्वीश्वरके निकट पृथुतीर्थ, परशुरामतीर्थ, बलभद्रतीर्थ, उसके निकट दिवोदासतीर्थ, भागीरथीतीर्थ भागीरथी, तटपर निष्पापे-श्वरलिङ्गके निकट हरपापतीर्थ, उसके आगे दशाश्व-

* "तस्यार्कस्य मनोलोलं यदासीत् काशिदर्शने।
अतो लोलार्क इत्याख्या काश्यां जाता विवस्वतः॥" (काशीखण्ड ४६।४६)

तीर्थ, वन्दीतीर्थ (यहां देवोंने दैत्यगणकर्तृक बन्दी होने पर भगवतीका स्तव किया था), प्रयागतीर्थ, श्रोणीवराहतीर्थ, कालेश्वरतीर्थ, अशोकतीर्थ, शुक्रतीर्थ, भवानीतीर्थ, सोमेश्वरके पुरोभागमें अवस्थित प्रभासतीर्थ, गरुड़तीर्थ, ब्रह्मेश्वरके पुरोभागमें ब्रह्मतीर्थ, वृद्धार्कतीर्थ, विधितीर्थ, नृसिंहतीर्थ चित्ररथेश्वरतीर्थ, धर्मेश्वरके निकट धर्मतीर्थ, विशालाक्षी देवीके निकट विशालतीर्थ, जरासन्धेश्वरके निकट जारासिन्धेश्वरतीर्थ, ललितादेवीके निकट ललितातीर्थ, गौतमतीर्थ, गङ्गाकेशवतीर्थ, अगस्त्यतीर्थ, योगिनीतीर्थ, त्रिसन्ध्यातीर्थ, नर्मदातीर्थ, अरुन्धतीतीर्थ, वशिष्ठतीर्थ, मार्कण्डेयतीर्थ, खुरकर्तरितीर्थ, भागीरथतीर्थ और वीरेश्वरके निकट वीरतीर्थ, उत्तरोत्तर श्रेष्ठ और अधिक पुण्यप्रद हैं।" (काशीखण्ड ८३ अध्याय)

"एतद्भिन्न पादोदकतीर्थ, क्षीराब्धितीर्थ, शङ्खतीर्थ, चक्रतीर्थ, गदातीर्थ, पद्मतीर्थ, महालक्ष्मीतीर्थ, गारुत्मततीर्थ, नारदतीर्थ, प्रह्लादतीर्थ, अम्बरीषतीर्थ, आदित्यकेशवतीर्थ, दत्तात्रेयतीर्थ, भार्गवतीर्थ, वामनतीर्थ, नरनारायणतीर्थ, विदारनरसिंहतीर्थ, यज्ञवराहतीर्थ, गोपीगोविन्दतीर्थ, शेषतीर्थ, शङ्खमाधवतीर्थ, नीलग्रीवतीर्थ, उद्दालकतीर्थ, सांख्यतीर्थ, स्वर्लीनतीर्थ, महिषासुरतीर्थ, बाणतीर्थ, गोपतारेश्वरतीर्थ, हिरण्यगर्भतीर्थ, प्रणवतीर्थ, पिशङ्गिलातीर्थ, नागेश्वरतीर्थ, कर्णादित्यतीर्थ, भैरवतीर्थ, खर्वनृसिंहतीर्थ, ज्ञानतीर्थ, मङ्गलतीर्थ, मयूखमालितीर्थ, मखतीर्थ, विन्दुतीर्थ, पिप्पलादतीर्थ, ताम्रवाराहतीर्थ, कालगङ्गातीर्थ, इन्द्रद्युम्नतीर्थ, रामतीर्थ, ऐक्ष्वाकतीर्थ मरुतीर्थ, मैत्रावरुणतीर्थ, अग्नितीर्थ, अङ्गारतीर्थ, कलसतीर्थ, चन्द्रतीर्थ, विघ्नेशतीर्थ, हरिश्चन्द्रतीर्थ, पर्वततीर्थ, कम्बलाश्वतरतीर्थ, सारस्वतीतीर्थ, उमातीर्थ, रुद्रावासतारकतीर्थ, ढुण्ढितीर्थ, ईशानतीर्थ, नन्दितीर्थ, (काशीखण्ड ८४ अ०) मन्दाकिनीतीर्थ, दुर्वासातीर्थ, ऋणमोचनतीर्थ, वैतरणीतीर्थ, पृथूदकतीर्थ, मेनकाकुण्ड, उर्वशीकुण्ड, ऐरावतकुण्ड, गन्धर्वकुण्ड, अप्सराकुण्ड, वृषेशतीर्थ, यक्षिणीकुण्ड, लक्ष्मीतीर्थ, पितृकुण्ड, ध्रुवतीर्थ, मानससरोवर, वासुकीह्रद, जानकीकुण्ड, प्रभृतितीर्थ पुण्यप्रद हैं।(काशीखण्ड ८४ अ०)

उक्त तीर्थमें कई आजकल विलुप्त हो गये हैं।

आजकल काशीमें जितने देवालय देख पड़ते, उनमें निम्नलिखित स्थान प्रधान ठहरते हैं—विश्वेश्वर, अन्नपूर्णा, ज्ञानेश्वर, आदिविश्वेश्वर, कोटीश्वर, ब्रह्मेश्वर, अगस्त्येश्वर, तिलभाण्डेश्वर, कुक्कुटेश्वर, सङ्गमेश्वर, स्वप्नेश्वर, हनूमतेश्वर, केदारेश्वर, श्मशानेश्वर, पापभक्षेश्वर, मध्यमेश्वर, रत्नेश्वर, माण्डेश्वर, वृद्धकालेश्वर, अल्पमृत्युहरेश्वर, वागीश्वर, सिद्धेश्वर, जम्बुकेश्वर, कण्डूकेश्वर, जैगीषव्येश्वर, व्याघ्रेश्वर, ज्येष्ठेश्वर, व्यासेश्वर, ओङ्कारेश्वर, कपर्दीश्वर, वैद्यनाथ, द्वारकानाथेश्वर, त्रिलोचनेश्वर, कामेश्वर, प्रह्लादेश्वर, वरणासङ्गमेश्वर,व आदिकेशवर, शूलटङ्केश्वर, तारकेश्वर, मणिकर्णिकेश्वर, आत्मवीरेश्वर, वृहस्पतीश्वर, वासुकीश्वर, हरिश्चन्द्रेश्वर, नागेश्वर, अग्नीश्वर, उपशान्तीश्वर, व्यङ्कटेश, गभस्तीश्वर, अमृतेश्वर, दुर्गा, सिद्धेश्वरी, सङ्कटादेवी, विन्दुवासिनी, राजराजेश्वरी, धूपचण्डी, कात्यायणी, पुष्कर, जगन्नाथ, विन्दुमाधव, लक्ष्मी, वाराही, ललिता, शीतला, वागीश्वरी, ढुण्ढिराज, बड़ेगणेश, कालभैरव, वटुकभैरव, दण्डपाणि, साक्षिविनायक, दुर्गविनायक, अर्कविनायक, चिन्तामणिविनायक, सप्तवर्णविनायक, सिद्धविनायक, दुण्ढविनायक, धर्मविनायक, रेणुकादेवी, चौसठयोगिनी, हनूमान्, वशिष्ठ और वामदेव।

उक्त देव और देवालय व्यतीत दूसरे भी शत शत लिङ्ग एवं देवमूर्तिका विवरण काशीखण्डमें वर्णित हुवा है। किन्तु आजकल उसके अधिकांशका सन्धान नहीं मिलता। मालूम पड़ता है कि मुसलमान उत्पीड़नसे अनेक देवालय और लिङ्ग विलुप्त हो गये हैं।

काशीस्थ तीर्थविवरणके सम्बन्धमें अविमुक्तोपनिषत्, मत्स्यपुराण (१८०—१८६ अ०), कूर्मपुराण (३०—३१ अ०), अग्निपुराण (११२ अ०), लिङ्गपुराण (९२ अ०), शिवपुराणमें ज्ञानसंहिता (४९-५१ अ०), विद्येश्वरसंहिता (१० अ०), सनत् कुमार संहिता (४१-४५ अ०) विष्णुपुराण (५। ३४ अ०) सौरपुराण (५-८ अ०), पद्मपुराणमें काशीमाहात्म्य, वायुपुराणमें आनन्दकाननमाहात्म्य, स्कान्दमें विश्वम्भपुरीमाहात्म्य एवं काशीखण्ड, ब्रह्मवैवर्तमें काशीरहस्य, नारायण भट्टकृत त्रिस्थलीसेतु, भट्टोजीविरचित त्रिस्थलीसेतुसारसंग्रह, रत्नधरकृत काशीमाहात्म्य, रघुनाथदासविरचित काशीमाहात्म्यकौमुदी, नन्दपण्डितविरचित काशीप्रकाश और लपारामका काशीमाहात्म्यसंग्रह द्रष्टव्य है।

काशीसे अदूर वर्तमान रामनगरमें व्यासकाशी है। हिन्दूवोंके विश्वासानुसार जैसे काशीमें मरनेसे मानव शिवत्व पाता वैसे ही व्यासकाशीमें शरीर छोड़नेसे गर्दभ बन जाता है। इसीसे अनेक लोग व्यासकाशीमें मरना नहीं चाहते।

काशीखण्डमें लिखा है—"वेदव्यास विष्णुसे विश्वेश्वरकी अपार महिमा सुन काशीमें वास करने लगे। वहां वह व्यासासन पर बैठ प्रत्यह शिष्यवर्गको काशीमहिमा सुनाते थे। किसी दिन महादेवने वेदव्यासकी परीक्षा लेनेके लिये भवानीको बुलाकर आदेश दिया—'अन्नपूर्णे! आज ऐसा कीजिये जिसमें वेदव्यासको कोई भिक्षा न दे।' सुतरां उस दिन वेदव्यासको किसीसे भिक्षा मिली न थी। जब नाना स्थान घूम वेदव्यासने देखा किसीने भिक्षा दी न थी तब उन्होंने अतिशय क्रुद्ध हो काशीवासीको अभिशाप दिया—'यहांके अधिवासी मुक्तिके गर्वसे भिक्षा नहीं देते अतएव इस काशीमें त्रैपुरुषी विद्या, त्रैपुरुष धन और त्रपुरुषी मुक्ति न होगी।' इसप्रकार अभिशाप दे उन्होंने आकाशकी ओर मनोदुःखसे आंख उठाकर देखा कि सूर्यदेव अस्ताचलको जाते थे। उससमय क्या करते। क्षोभसे भिक्षापात्र दूर फेंक व्यासदेव आश्रमकी ओर अग्रसर हुये। वह गृह जाते जाते एकके सन्मुख पहुंचे ही थे कि भवानीने प्राकृत स्त्रीवेशसे द्वारपर खड़े होकर कहा—'हे भगवन्! हमारे पति बिना अतिथि-सत्कार किये भोजन करना अनुचित समझते हैं। अब तक हमें कोई नहीं मिला। इसलिये आप अतिथि हों।' वेदव्यास उनके घरमें सशिष्य अतिथि हुये। उस समय भवानीने नाना प्रसङ्गमें उनसे पूछा था—'जो व्यक्ति अपने दुर्भाग्यक्रमसे स्वार्थलाभ कर न सकने पर क्रोधमें शाप देता, वह शाप किसको लगता है?' वेदव्यासने उत्तर दिया—'वह शाप उस अविवेचक शापदाताके ही प्रति होता है।' फिर गृहस्वामी भगवान् विश्वेश्वरने कहा—'जो व्यक्ति काशीकी समृद्धि देख नहीं सकता, उसे इस स्थानमें पाप लगता है। तुम अब इस स्थानमें रहनेके योग्य नहीं शीघ्र ही क्षेत्रसे बाहर निकल जावो।' वह बात सुन व्यासने कांपते कांपते गौरीका शरण ले कहा था कि 'प्रति अष्टमी और चतुर्दशी तिथिको उन्हें उक्त क्षेत्रमें प्रवेश करनेकी अनुमति मिले।' देवीके अनुरोधसे महादेवने वही स्वीकार कर लिया। उसी समयसे व्यास क्षेत्रके बाहर रह दिवारात्रि काशीको निरीक्षण और प्रति अष्टमी तथा चतुर्दशी तिथीको क्षेत्रमें प्रवेश करते हैं।" साधारण लोगोंके विश्वासानुसार रामनगरमें आज भी व्यासदेव अपेक्षा करते हैं। उन्होंने लोगोंकी मुक्तिके लिये वहां एक तीर्थ बनाया था। माघ मास उस तीर्थमें स्नान करनेसे मानव कभी गर्दभ जन्म नहीं पाता। नाना स्थानसे यात्री उस तीर्थमें स्नान करने जाते हैं।

रामनगरके दुर्गमध्य नदीकी ओर काशिराजप्रतिष्ठित वेदव्यासका मन्दिर बना है।

व्यासकाशीमें काशिराज-प्रतिष्ठित अन्य भी अनेक देवालय और देवप्रतिमा हैं। उनकी गठन-प्रणाली हिन्दू शिल्पकी परिचायक है।

मानमन्दिर—पुण्यधाम वाराणसी हिन्दूवोंका प्रधान तीर्थ है सही, किन्तु उसमें साधारण ज्ञानपिपासुके भी देखने योग्य अनेक वस्तु हैं। उनमें अम्बरपति मानसिंह-प्रतिष्ठित मानमंदिर स्वदेशी क्या विदेशी प्रधान २ ज्योतिर्विद्मात्रको अवलोकन करना चाहिये। उक्त मानमन्दिर भी इस बातका एक परिचायक है। किसी काल हिन्दूवोंने ज्योतिर्विद्यामें कहां तक उत्कर्ष लाभ किया था। अम्बरराजवंशीय सवाई जयसिंहने मानमन्दिरके मध्य नक्षत्रादिकी गति ठहरानेको जो सकल यन्त्र प्रस्तुत कराये उन्हें देख चमत्कृत होना पड़ता है। दिल्लीश्वर मुहम्मद शाहकी अनुमतिसे नाक्षत्रिक गति समुदय शुद्ध करनेकेलिये जयसिंहने प्राचीन आर्य ज्योतिषके साहाय्यसे 'जयप्रकाश' 'रामयन्त्र' और 'सम्राट्यन्त्र' नामसे तीन यन्त्र उद्भावन किये थे। शेषोक्त यन्त्रका व्यासार्ध प्रायः १२ हाथ होगा। राजा उक्त यन्त्रके बल पाश्चात्य-ज्योतिर्विद् हिपार्कास, टलमि प्रभृति प्रदर्शित युक्तियोंमें भ्रम प्रदर्शन कर सके एतद्भिन्न जयसिंहके आविष्कृत भित्तियन्त्र, चक्रयन्त्र प्रभृति दूसरे भी कई यन्त्र मानमन्दिरके मध्य विद्यमान हैं। जयसिंह देखो।

१६०० ई० को मानमन्दिर मानसिंह कर्तृक निर्मित हुआ था। किन्तु उसमें स्थान स्थान पर प्रस्तर-की भग्नावस्था देख शिल्पशास्त्रविद् स्वीकार करते हैं कि उसका कोई कोई अंश अधिक प्राचीन है। मानमंदिर-का शिल्पनैपुण्य उल्लेखयोग्य है। उसके सुन्दर वाता-यनकी गठण प्रणाली पर्यवेक्षण करनेसे निर्माताकी सुख्याति विना किये कैसे रह सकते हैं? आजकल वैसा बड़ा वातायन बहुत कम देख पड़ता है।

प्राचीन ध्वंसावशेष—उत्तर-पश्चिम कोण पर अलीपुर महल्लेमें बकरियाकुण्ड है। काशीखण्डमें वह वर्करी वा छागकुण्ड नामसे वर्णित हुवा है। कुण्ड दैर्घ्यमें ३६६ हाथ और प्रस्थमें १८३ हाथ है। कुण्डके उत्तर-पार्श्व एक ऊंचा टीला पड़ा है। उस पर प्रस्तरका भग्न प्रतिमा और मठके कलस प्रभृति मिलते हैं। वह सब बौद्ध मठके ध्वंसावशेष समझ पड़ते हैं। कुण्डको पूर्व ओर भी इष्टकका एक वृहत् स्तूप है। स्तूपके पूरब योगिवीर नामक स्थान है। वहां किसी योगीने सशरीर समाधि लाभ किया है। कुण्डके दक्षिण-पश्चिम एक दरगाह या मुसलमानोंका भजनालय है। वह भी किसी प्राचीन गृहकी भित्ति पर स्थापित है। दरगाहके पूरब (२५×१३ हाथ) तीन पंक्ति पाषाणस्तम्भ पर स्थापित एक क्षुद्र मसजिद है। वह मसजिद भी बहुत पुरानी है। उसकी गठनप्रणाली देख अनेक लोगोंने स्थिर किया है कि पीछे वह बौद्धोंकी रही। आधु-निक समयमें उसे मुसलमानोंने अपनी मसजिद बना लिया है। उसमें ७७७ हिजरी (१३७५ ई०) को खोदित फिरोजशाहकी शिलालिपि है। उसके निकट बौद्ध चैत्य भी दृष्ट होता है। अनेक लोग स्वीकार करते कि एक काल बकरियाकुण्डके पार्श्वमें बौद्ध-देवालय था।*

राजघाटके दुर्गमें भी बौद्ध-विहारका निदर्शन मिलता है। उस भग्नावशेष विहारका शिल्पनैपुण्य प्रशंसनीय है। उसका कारुकार्य और भास्करकार्य सांचीके बौद्ध-स्तूपसे मिलता है। वह विहार भी मुस-लमानोंके हाथसे बचा न था।

राजघाट दुर्गके उत्तर कबरस्थान, वरणासङ्गमके अधमपुर महल्ले, वाराणसीके तेलियाने, लाटभैरव नामके रास्ते, बत्तीस खंभे, अढ़ाई कंगूरेकी मसजिद और वरणाके पूर्व पार्श्व पंचक्रोशी राहके पास सोना तलावके निकट प्राज भी बौद्ध-चैत्य, विहार, स्तूप एवं प्रतिमाका भग्नावशेष देख पड़ता है।

अनेक लोग अनुमान करते कि भैरवकी लाट बौद्ध-राज अशोकने प्रतिष्ठित की थी।

व्यवसाय—ऐसा नहीं कि काशी केवल पुण्यक्षेत्र ही है। वहां नानादेशीय लोगोंका समागम रहनेसे व्यवसाय भी अच्छा चलता है। काशीमें चीनी, नील और शोरेका व्यवसाय प्रधान है। जौनपुर, बस्ती, गोरखपुर प्रभृति स्थानोंका सकल प्रकार उत्पन्न पण्यादि वहां आनीत और विक्रीत होता है। काशीके रेशमी कपड़े, शाल, जर दोजी, हीरा जवाहरात, और खिलौने प्रसिद्ध हैं। प्रधान प्रधान सभी हिन्दूराजावोंके वहां भवन अथवा छत्र हैं। हिन्दूराजा काशीमें भवन बना सकनेसे अपनेको धन्य समझते और समय समय पर वह वहां सपरिवार जा अवस्थिति करते हैं। सुतरां काशीमें राजभोगका भी अभाव नहीं। वहां दुर्ग, बारीक, विश्वविद्यालय, अनेक अन्यान्य विद्यालय, रेलवे स्टेशन, डाकघर, अदा-लत और विस्तर चतुष्पाठी विद्यमान हैं। पहले नाना स्थानसे द्विज काशी वेद पढ़ने जाते थे। आज कल भी लोग जाते हैं सही, किन्तु पूर्वकी भांति यत्न अब देख नहीं पड़ता। फिर भी अद्यापि वाराणसीधाम शास्त्र-चर्चाके लिये प्रसिद्ध है। कुछ दिन हुये हिन्दुवोंने काशीमें अपना बनारस विश्वविद्यालय खोला है। फिर काशीका "आज" नामक दैनिक समाचार-पत्र हिन्दीमें बहुत अच्छा निकलता है। बनारस देखो।

काशी जैनियोंका भी पवित्र तीर्थ है। चौथे काल-की आदिमें भगवान् ऋषभदेवने यह नगर बसाया था। सर्वप्रथम यहांके राजा अकंपन हुये। इनने अपनी पुत्री सुलोचनाका स्वयंवर कर महा यश प्राप्त किया था। यहां सातवें तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ और तेईसवें तीर्थ-

* Sherring's Sacred City of the Hindus, p. 273-287; J. A. S. Bengal, XXXV. p. 59 87; Furher's Archaeological Survey Lists N. W. P. Voli. 1. p. 199-202.

कर श्रीपार्श्वनाथका जन्म हुआ था। भदैनीघाट और भेलूपुरामें दोनों तीर्थंकरोंकी चरणपादुका तथा विशाल मंदिर हैं। भदैनीघाटका मन्दिर आरा-निवासी जमींदार प्रभुलालजीका बनवाया हुआ है। गंगाजीके किनारे यह विशाल मन्दिर अति मनोहर और सुदृढ़ है। नीचे पक्का घाट बंधा है, यह प्रभुघाटके नामसे बोला जाता है। यहां दिगंबर जैनोंकी तरफ से 'स्याद्वाद जैन महाविद्यालय' नामक एक उच्चश्रेणीका संस्कृत विद्यालय है। इसमें विना शुल्क शिक्षा दी जाती है। जैन लोगोंकी सहायतासे ही इसका सब काम चलता है।

इसके समीपही बाबू छेदीलालजीका बनाया हुआ
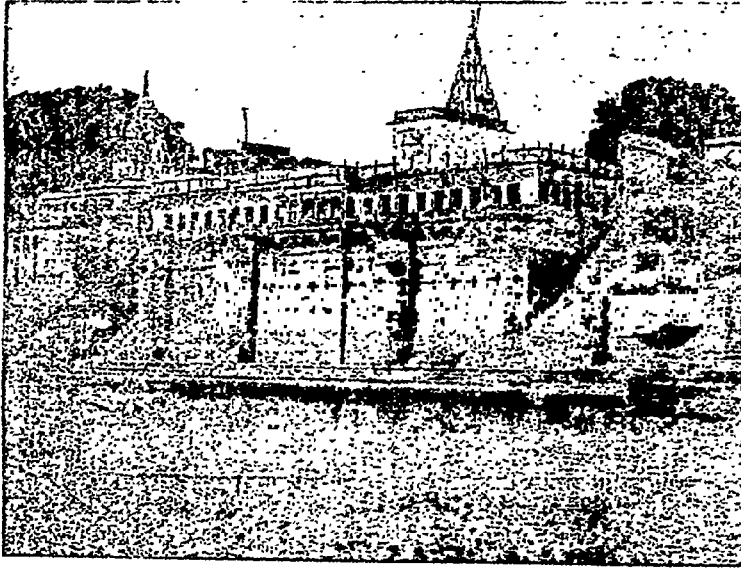
श्रीस्याद्वाद दि० जैन महाविद्यालय।

दूसरा जैन-मंदिर है। यह भी गंगा किनारे अति दृढ़ और विशाल है। यहांसे 'अहिंसा' नामक एक साप्ताहिक पत्र निकलता है। इसके सिवा भेलूपुरामें दो और मैदागिन पर एक जैन-मंदिर तथा विशाल धर्मशाला है। जैनियोंकी संख्या अल्प रहते भी यहां मंदिर काफी हैं। सुनते हैं इनमेंसे एक जैन-मंदिरमें स्फटिककी मूर्ति है। प्रायः हरसाल यात्री दर्शनके लिये आया करते हैं। इसी प्रकार श्वेताम्बर जैनोंके मंदिर और धर्मशाला भी अनेक हैं।

२ चित्शक्ति। ३ सुषुम्ना नाड़ी। (काशीमुक्तिविवेक।)
४ काशी देवीकी मूर्ति।

"विदितं माधवं ढुंढिं दण्डपाणिञ्च भैरवम्।
वन्दे काशीं गुहां गङ्गां भवानीं मणिकर्णिकाम्॥"

अल्पार्थे ङीष्। ५ क्षुद्र काशतृण, छोटा कास। ६ मुट्ठी। (निघण्टु) (त्रि०) ७ काशरोगी, खांसीका बीमार।

काशीकरवट (हिं० पु०) काशीस्थ करवट तीर्थ। यहां पुराने समय लोग आरेसे चीरे जाने पर अपनी मुक्ति समझते थे। आज कल सरकारने उसे बंद कर दिया है।

काशीकापदी—बम्बईके बारसी और शोलापुरकी एक जाति। काशीकापदी लोग भीख मांगते घूमा करते और बता नहीं सकते—उनका आदि निवास कहां था। वह आपसमें तेलगु और दूसरोंके साथ टूटी फूटी मराठी बोलते हैं। भीख मांगनेके अतिरिक्त काशीकापदी यज्ञोपवीत, रुद्राक्षकी माला, दर्पण आदि छोटे मोटे वस्तु भी बेंच लेते हैं। हिन्दू देवदेवी उनको मान्य हैं।

काशीदास—सम्यक्त्वकौमुदी छंदोबद्धके रचयिता जैनकवि।

काशीनाथ (सं० पु०) काश्याः नाथः, ६-तत्। १ शिव।

"काशं निकटगो यत्ना काशीनाथं समाश्रयेत् ।" (काशीखण्ड)

२ काशीके राजा। ३ एक वैद्यक ग्रंथकार। किसी किसी हस्तलिपिमें काशीराम, तथा काशीराज नामान्तर देख पड़ता है। उन्होंने अजीर्णमञ्जरी, 'काशीनाथी' रसकल्पलता और शार्ङ्गधर-संहिताकी 'गूढ़ार्थदीपिका'-नाम्नी टीका प्रणयन की है। ४ तैलङ्गदेशीय यज्ञमूर्त्ति-वंशोद्भव एक नैयायिक। उन्होंने 'प्रसिद्धग्रंथात्मिका' नाम्नी तत्त्वचिन्तामणिदीधितिकी व्याख्या प्रभृतिकी रचना किया है। ५ अमरकोषकी 'काशिका' नाम्नी टीकाके कर्त्ता। ६ सारस्वत-व्याकरणभाष्यकार और किरातार्जुनीय-टीकाकार। ७ ज्योतिःसंग्रह नामक ग्रंथकार। ८ प्रक्रियासार और शिशुबोधव्याकरण-रचयिता। ९ शीघ्रबोध, लग्नचन्द्रिका, प्रश्नदीपिका प्रभृति ग्रंथकार। १० यदुवंश-काव्यप्रणेता। ११ रामचरित-महाकाव्यरचयिता। १२ वेदान्त-परिभाषारचयिता। १३ वैराग्यपञ्चाशीति नामक वेदान्तिक ग्रंथकार। १४ शिवभक्तिसुधार्णव प्रणेता। १५ श्राद्धकल्पग्रन्थकार। १६ संवत्सर-प्रकरण नामक ज्योतिर्ग्रन्थकार। १७ संक्षिप्तकादम्बरी-रचयिता। १८ सूत्रपादवेदान्त-रचयिता। १९ अनन्तकेपुत्र और यज्ञेश्वरके भ्रातृष्पुत्र, उन्होंने धर्मसिन्धुसार, प्रायश्चित्तेन्दुशेखर, और वेदस्तुतिटीकाकी रचना किया है। १७९१ ई० को उक्त काशीनाथ वर्त्तमान थे।

काशीनाथ—नैनीताल जिलेके काशीपुर परगनेके एक भूतपूर्व शासक। ई० १६ वीं या १७ वीं शताब्दीमें वह विद्यमान थे। काशीनाथके ही नाम पर काशीपुर परगनेका नामकरण हुवा है।

काशीनाथ दीक्षित—१ सदाशिव दीक्षितके पुत्र। उन्होंने प्रयोगरत्न, रुद्रपद्धति, लक्षहोमपद्धति, श्राद्धप्रयोगपद्धति एवं कात्यायनीय ज्योतिष्टोमपद्धति की टीकाको प्रणयन किया है। २ षट्पञ्चाशिका नाम्नी ज्योतिर्ग्रन्थकार।

काशीनाथभट्ट—जयराम भट्टके पुत्र और अनन्तभट्टके शिष्य। उन्होंने अनेक संस्कृत ग्रन्थ रचना किये हैं। उनमें निम्नलिखित ग्रन्थ मिलते हैं—कौलगजमर्दन, गुरुपूजाक्रम, चण्डीपूजारसायन, मन्त्रचन्द्रिका, मन्त्रप्रदीप, गणेशार्चनदीपिका, ज्ञानार्णवतन्त्रकी गूढ़ार्थादर्श नामका टीका, चण्डीमाहात्म्यटीका, त्रिकूटारहस्यटीका, दक्षिणाचारदीपिका, पदार्थादर्श-कविचन्द्रोदयटीका, पुरश्चरणदीपिका, वटकार्चनदीपिका, सन्नमहोदधिकी 'मन्त्रमहोदधि-पदार्थादर्श' टीका और शारदातिलक-टीका। २ मुहूर्त्तमुक्तावली ज्योतिर्ग्रन्थरचयिता। ३ सर-विलियम जोन्सके एक शास्त्रवित् प्रसिद्ध पण्डित और शब्द-सन्दर्भ सिन्धु नामक संस्कृत ग्रंथकार।

काशीनाथ मिश्र—वैदेही-परिणय नामके संस्कृत काव्य-रचयिता।

काशीयात्रा (सं० स्त्री०) काश्यां काशीस्थतीर्थसमूहे यात्रा ७-तत्। काशीस्थ तीर्थसमूह दर्शनार्थ गमन यात्री जिस प्रकार काशीयात्रा करते उसके नियम काशीखण्डमें निर्दिष्ट है। प्रथम यात्रीयोंकी मणिकर्णिका-पुष्करिणीके जलमें स्नान कर देव, पितृ, ब्राह्मण और अर्थिगणको तृप्त करना चाहिये। पीछे आदित्य, द्रौपदी, दण्डपाणि और महेश्वरको प्रणाम कर ढुंढिराज जाते हैं। फिर ज्ञानवापीके जलसे आचमन कर नन्दिकेश्वरको पूजन करते हैं। उसके पीछे तारकेश्वर और महाकालेश्वरको पूजा कर फिर दण्डपाणिको पूजते हैं। उक्तप्रकारका यात्राका नाम पञ्चतीर्थ-यात्रा है। उसके पीछे वैश्वेश्वरी यात्रा करना चाहिये। यात्री प्रतिपत्से चतुर्दशी अथवा प्रति चतुर्दशीको चिसम-आयतनी यात्रा करते हैं। मत्स्योदरीमें स्नान कर प्रथम प्रणवेश्वर, तत्पर त्रिविष्टप, फिर महादेव, उसके पीछे यथाक्रम कृत्तिवास, रत्नेश्वर, चन्द्रेश्वर, केदारेश्वर, धर्मेश्वर, वीरेश्वर, कामेश्वर, विश्वकर्मेश्वर, मणिकर्णिकेश्वर, अविमुक्तेश्वर और शेषको विश्वेश्वर दर्शन कर पूजादि करना चाहिये। जो व्यक्ति काशीमें रह इसप्रकार यात्रा नहीं करता, उसको नाना विघ्न लगता है। विघ्नशान्तिके लिये अष्टायतनी नाम्नी दूसरी यात्रा करना चाहिये। उसमें यथाक्रम दक्षेश्वर, पार्वतीश्वर, पशुपतीश्वर, गङ्गेश्वर, नर्मदेश्वर, गभस्तीश्वर, सतीश्वर, और तारकेश्वर दर्शन करते हैं। यह यात्रा अष्टमी तिथिको कर्तव्य है। काशीवासियोंको एक दूसरी भी यात्रा करना चाहिये। प्रथम वरणामें नहा शैलेश्वर दर्शन करते हैं। फिर वरणासङ्गममें नहा सङ्गमेश्वरको

दर्शन कर स्वर्लीन तीर्थमें नहा स्वर्लीनेश्वर दर्शन करते हैं। तदनन्तर मन्दाकिनी-तीर्थमें नहा मध्यमेश्वर दर्शन करना चाहिये। फिर हिरण्यगर्भतीर्थमें स्नान कर हिरण्यगर्भेश्वर दर्शन करते हैं। फिर मणिकर्णिकामें स्नान कर ईशानेश्वर दर्शन करना चाहिये। अनन्तर यथाक्रम गोप्रेक्ष-तीर्थमें नहा गोप्रेक्षेश्वर, कापिलह्रदमें स्नानकर वृषभध्वज, उपशान्त-कूपमें नहा उपशान्त शिव, पञ्चचूड़ा ह्रदमें स्नान कर ज्येष्ठेश्वर, चतुःसमुद्र-कूपमें नहा महादेव, वापीजल स्पर्श एवं शुक्रकूपमें स्नान कर शुक्रेश्वर, दण्डखाततीर्थमें स्नानकर व्याघ्रेश्वर और शौनककुण्डमें नहा शौनकेश्वर तथा जम्बुकेश्वर लिङ्गकी पूजा करते हैं।

दूसरी एकादशायतनी नाम्नी यात्रा भी है। उसके लिये प्रथम अग्नीध्रकुण्डमें स्नान कर अग्नीध्रेश्वर दर्शन फिर यथाक्रम उर्वशीश्वर, नकुलीश्वर, आषाढ़ीश्वर, भारभूतेश्वर, लाङ्गलीश्वर, त्रिपुरान्तक, मनःप्रकाशकेश्वर, प्रीतिकेश्वर, मदालसेश्वर, और तिलपर्णेश्वर दर्शन करते हैं। यह यात्रा कर मानव रुद्रत्व पाता है।

शुक्लपक्षकी तृतीयाको गौरीयात्रा करना चाहिये। प्रथम गोप्रेक्षतीर्थमें स्नानकर मुखनिर्मालिकामें जाते हैं। उसके पीछे यथाक्रम ज्येष्ठावापीमें स्नान एवं ज्येष्ठा-गौरी पूजा, ज्ञानवापीमें स्नान तथा सौभाग्य-गौरीकी पूजा, शृङ्गारतीर्थमें स्नान एवं शृङ्गारगौरीकी पूजा, विशालगङ्गामें स्नान तथा विशालाक्षीकी पूजा, ललितातीर्थमें स्नान एवं ललितादेवीकी पूजा, भवानी तीर्थमें स्नान तथा भवानीदेवीकी पूजा, और विन्दुतीर्थमें स्नान एवं मङ्गला-गौरीकी पूजा करते हैं। शेषको महालक्ष्मी जाना चाहिये। इसीका नाम गौरी यात्रा है। प्रति चतुर्थीको गणेशयात्रा, मङ्गलवारको भैरवयात्रा, रविवार अथवा षष्ठी वा सप्तमीयुक्त रविवारको सूर्ययात्रा, अष्टमी वा नवमीको चण्डीयात्रा और प्रतिदिन अन्तर्गृहयात्रा करना चाहिये। अन्तर्गृहयात्रा इस प्रकार होती है—मणिकर्णिकामें स्नान कर मणिकर्णीश्वरको पूजते हैं। उसके पीछे यथाक्रम कम्बलेश्वर, अश्वतरेश्वर, वासुकीश्वर, पर्वतेश्वर, गङ्गाकेशव, ललितादेवी, जरासन्धेश्वर, सोमनाथ, वाराहेश्वर ब्रह्मेश्वर, अगस्त्येश्वर, कश्यपेश्वर, हरिकेशवनेश्वर, वैद्यनाथ, ध्रुवेश्वर, गोकर्णेश्वर, हाटकेश्वर, अस्थिक्षेपतड़ागमें कीकसेश्वर, भारतभूतेश्वर, चित्रगुप्तेश्वर, चित्रघण्ट, पशुपतीश्वर, पितामहेश्वर, कलसेश्वर, चन्द्रेश्वर, वीरेश्वर, विद्येश्वर, अग्नीश्वर, नागेश्वर, हरिश्चन्द्रेश्वर, चिन्तामणिविनायक, सर्वविघ्नहारी सेनाविनायक, वशिष्ठ, वामदेव, सीमाविनायक, करुणेश्वर, त्रिसन्ध्येश्वर, विशालाक्षी, धर्मेश्वर, विश्वबाहुक, आशाविनायक, वृद्धादित्य, चतुर्वक्त्रेश्वर, ब्राह्मीश्वर, मनःप्रकाशेश्वर, ईशानेश्वर, चण्डी, चण्डीश्वर, भवानी शङ्कर, ढुण्ढिराज, राजराजेश्वर, लाङ्गलीश्वर, नकुलीश्वर, परान्नेश्वर, परद्रव्येश्वर, प्रतिग्रहेश्वर, निष्कलङ्केश्वर, मार्कण्डेयेश्वर, अप्सरेश्वर और गङ्गेश्वरको पूजा कर ज्ञानवापीमें नहाना चाहिये। उसके पीछे नन्दिकेश्वर, तारकेश्वर, महाकालेश्वर, दण्डपाणि, महेश्वर, मोक्षेश्वर, वीरभद्रेश्वर अविमुक्तेश्वर, और पञ्चविनायकको प्रणाम कर विश्वेश्वरको गमन करते हैं। वहां निम्नलिखित मन्त्र उच्चारण किया जाता है—

"अन्तर्गृहस्य यात्रेयं यथावद्या मया कृता।
न्यूनातिरिक्तया शम्भुः प्रीयतामनया विभुः॥" (१००। ९९)

थोड़ी या बहुत जितनी सकी, मैंने यह अन्तर्गृह यात्राकी है। एतद्द्वारा महेश्वर मेरे प्रति प्रीत हो।

मन्त्रके पाठान्त क्षण काल मुक्तिमण्डपमें विश्राम कर निष्पाप हो घर जाना चाहिये।

(काशीखण्ड, १०० अ०)

काशीरहस्य (सं० क्ली०) काश्याः रहस्यम्, ६-तत्। १ काशीवासियोंका कर्तव्य आचारविशेष। २ काशी-माहात्म्य।

काशीराज (सं० पु०) काश्याः काशीप्रदेशस्य राजा, काशी-राजन्-टच्। राजाहः सखिभ्यष्टच्। पा ५।४।९१। १ दिवोदास। २ काशीका कोई अधिपति। ३ चिकित्साकौमुदी-प्रणेता। (ब्रह्मवैवर्तपुराण). ४ वीरसिंहके पिता खेटश्रव नामक ज्योतिर्ग्रंथकार।

काशीराम—रत्नप्रदीपनिघण्टु नामक वैद्यक कोषकार। २ (वाचस्पति)—राधावल्लभके पुत्र और रामकृष्णके पौत्र। इन्होंने रघुनन्दनके स्मृतितत्त्वकी टीका बनाई

हैं। उसमें उद्वाहतत्त्व, एकादशीतत्त्व, तिथितत्त्व, दायतत्त्व, प्रायश्चित्ततत्त्व, मलमासतत्त्व, शुद्धितत्त्व, और श्राद्धतत्त्वकी टीका भी मिलती हैं।

काशीराव—तुकाजीराव होलकरके एक लड़के। यह दुर्बलहृदयके मनुष्य थे। इनके भाई मल्हाररावने १७९७ ई० को पिताके मरनेपर इन्दौरके सिंहासन पर अधिकार करना चाहा था। काशीरावने दौलतराव सेंधियासे निवेदन किया। उन्होंने मल्हाररावको आक्रमण कर मार डाला। परन्तु यशवन्तराव इस विपद्से निकल भागे। १७९८ ई०को उन्होंने अमीर खान्‌के साहाय्यसे काशीरावकी सेनाको पराजय किया।

काशीश (सं० क्ली०) कुत्सितं ईषत् काशीशमिव, कोः कादेशः। १ उपधातुविशेष, कसीस (Sulphate of iron.) इसका संस्कृत पर्याय धातुकाशीश, कासीस, धातुकासीस, खेचर, धातुशेखर, केसर, हंसलोमश, शोधन, पांशुकाशीश और शुभ्र। यह धातुकाशीश और पुष्पकाशीशके भेदसे दो प्रकारका होता है। फिर इनमें भी धातुकाशीश हरित् और लोहित भेदसे और पुष्पकाशीश श्वेत और कृष्ण भेदसे दो दो प्रकारका होता है। भावप्रकाशके मतमें यह अम्ल, तिक्त, कषायरसविशिष्ट, उष्णवीर्य, वातश्लेष्मनाशक, केशका उपकारक, आंखोंकी खुजली, विषदोष, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी और श्वित्ररोगनाशक है। यह भृंगराजके रसमें भिगोकर शोधा जाता है। (हिराकस देखो) २ (पु०) काश्याः ईशः, ६-तत्। महादेव। ३ काशीदेशके राजा।

काशीशत्रितय (सं० क्ली०) काशीशधातु, काशीशपुष्प और काशीश।

काशीशाद्यतैल (सं० क्ली०) तैलविशेष, एक तैल। काशीश, अश्वगन्धा, लोध्र और गजपिप्पलीको तैलमें पाक करनेसे उक्त औषध प्रस्तुत होता है। इसके लगानेसे स्त्रीरोग निरोग हो जाता है। इसमें कल्कका चतुर्थांश तैल पड़ता है। (चक्रपाणिदत्त)

काशीश्वर (सं० पु०) काश्याः ईश्वरः, ६-तत्। १ महादेव। २ काशीदेशके राजा। ३ अर्थमञ्जरी नामक न्याय-ग्रन्थकार। ४ (भट्टाचार्य)—सुपद्मव्याकरणानुसार धातुपाठ, भूरिप्रयोगगणटीका, मुग्धबोधटीका और मुग्धबोधपरिशिष्ट प्रभृति ग्रन्थकार। ५ (शर्मा) धनश्यामके पुत्र और राघव पण्डितके पौत्र। उन्होंने १७३९ ई०को ज्ञानामृत नामक एक संस्कृत व्याकरणकी रचना की थी।

काशीसम्भूत (सं० पु०) पारद, पारा।

काशू (सं० स्त्री०) कश-णिच्-ऊ। १ शक्तिनामक अस्त्र, बरछी, भाला। २ विफलवाक्य, बेफायदा बात। ३ बुद्धि, अक्ल। ४ रोग, बीमारी।

काशूकार (सं० पु०) काशूं विफलवाचं करोति, काशू-कृ-अण्। गुवाकवृक्ष, सुपारीका पेड़।

काशूतरी (सं० स्त्री०) काशूनामक क्षुद्र अस्त्र, छोटी बरछी।

काशेय (सं० पु०) काश्यां भवः, काशी-ढक्; काशिः काशिनृपतिः गोत्रापत्यं वा। १ काशीराजवंशीय। काशीके प्रथम राजा काशवंशोद्भव। (त्रि०) २ काशीदेशजात।

काशेयी (सं० स्त्री०) काशेय-ङीप्। काशीराजकन्या।

"भरतः खलु काशेयीमुपयेमे सार्वसेनीम्" (भारत आदि ९५ अ०)

काश्त (फा० स्त्री०) कृषि, खेतीका एक हक। उसके अनुसार जमीन्दारको कुछ वार्षिक लगान देकर किसान उसकी जमीन जोत बो सकता है।

काश्तकार (फा० पु०) कृषक, किसान, खेतिहर। २ कृषकविशेष, किसी किस्मका किसान। वह जमीन्दारको कुछ वार्षिक कर दे उसकी जमीन पर कृषि करनेका स्वत्व पाता है।

काश्तकार पांच प्रकारके हैं—शरहमुऐयन, दखीलकार, गैर दखीलकार, साकितुल मालकियत और शिकमी। शरहमुऐयन सदा एक ही समान कर देते हैं। उनकी भूमिपर कर नहीं बढ़ सकता। फिर उनकी भूमि बेदखल भी नहीं होती। १२ वर्ष तक लगातार वही जमीन जोतनेसे काश्तकारको दखीलकारी स्वत्व मिल जाता है। फिर उसे कोई बेदखल कर नहीं सकता। गैर दखीलकार १२ वर्ष तक कोई जमीन् जोत बो नहीं सकते। किसी जमीन पर पहले जमीन्दारकी भांति सीर करनेवाले किसान साकितुल

मालकियत कहाते हैं। शिकमी दूसरे काश्तकारसे ज़मीन् ले कुछ समय तक जोतते-बोते हैं।

काश्तकारी (फा० स्त्री०) १ कृषि, खेती, किसानी। २ कृषकस्वत्व, काश्तकारका हक। ३-भूमिविशेष, एक ज़मीन्। इस पर कृषकको कृषि करनेका स्वत्व रहता है।

काश्मरी (सं० स्त्री०) काशते, काश-वनिप् रश्चान्तादेशः ङीप् पृषोदरादित्वात् वस्य मत्वम्। १ गम्भारी वृक्ष, गंभारका पेड़ (Gmelina arborea) इसका संस्कृत पर्याय—गाम्भारी, भद्रपर्णी, श्रीपर्णी, मधुपर्णिका, काश्मीरी, हीरा, काश्मर्य, पीतरोहिणी, कृष्णवृन्ता, मधुरसा, और महाकुसुमिका है। भावप्रकाशके मतमें वह मधुर, कषाय एवं तिक्त रस, उष्णवीर्य, गुरु, अग्निदीप्तिकारक, परिपाचक, भेदक और भ्रम, शोष, तृष्णा, आमशूल, अर्शः, विषदोष, दाह तथा ज्वरनाशक है। काश्मरीका फल शरीरवर्धक, शुक्रवर्धक, गुरु, केशोपकारक, रसायन, कषाय एवं अम्लरस, शीतल, स्निग्ध और वायु, पित्त, तृष्णा, रक्तदोष, क्षयरोग, मूत्राघात, दाह तथा वातरक्तरोगनाशक होता है।

हिन्दीमें इसे कुम्भार, गुम्भार, गमहार, गंभार, खम्भर, कंभार, कूमार, गंभारी, सेवन, शेवन, गमारी या खंभारी; बंगलामें गुमारी, उड़ियामें गंबरी, कोलमें कसमर, सन्थालीमें कसमार, आसामीमें गोमारी, नेपालीमें गंबरि, लेपचीमें नंबोन, कछारीमें गुमाई, गारोमें बोलको वक, गोंडीमें कुरसे, पंजाबीमें गुंहार, इजारीमें सेवन, कुरकूमें कास्समर, मध्यप्रदेशीयमें गुंभर, बम्बैयामें सेउन, तामिलमें गुमुदुटेकु, तैलगुमें गूमरटेक, कनाड़ीमें कुलि, मलयमें कुंबलु, मघोंमें रमनी, ब्रह्मीमें यमनई और सिंहलीमें अतदेम्मत कहते हैं।

काश्मरीका वृक्ष वृहत् भार पतनशील होता है कभी कभी वह ६० फीट तक ऊंचा हो जाता है। काश्मरी भारतवर्ष, ब्रह्मदेश तथा आन्दामान द्वीपमें सब जगह होती है। फाल्गुन मास फूल निकलता है। काष्ठका वर्ण मन्द पीताभ रहता है। वह बहुत हलका और कड़ा होता है; इसीसे उसे नानाकार्यमें व्यवहार करते हैं। उसके तख्तेसे तसवीरका चौखठ, नावकी छत, पालकीका हत्था आदि बनता है। बैशाखपत्तनमें प्राचीरको भित्ति और बम्बई प्रदेशमें हल कार्य, शकट, यान तथा पालकीमें लगता है। उस पर रङ्ग अच्छा आता और तरह तरहका असबाब बनाया जाता है।

सन्थाल काश्मरी काठके भस्म और फलको वर्णक की भांति व्यवहार करते हैं।

काश्मरीका फल गोंड और दूसरे पहाड़ी लोग खाते हैं। पत्तियां पशुवोंको खिलायी जाती हैं। हिरन और दूसरे जंगली जानवर उन्हें बड़े चावसे खाते हैं।

काश्मरीका मूल औषधमें पड़ता है। दशमूलमें इसका भी प्रयोग होता है। काश्मरीके पेड़में रेशमके कीड़े पाले जाते हैं।

२ कपिलद्राक्षा, काला दाख। ३ मृगनाभि, कस्तूरी। ४ पुष्करमूल। ५ गांभारी फल।

काश्मरीफल (सं० क्ली०) गाम्भारीफल-मज्जा, गंभारीके फलका गूदा।

काश्मर्य (सं० पु० क्ली०) काश्मरीति शब्दोऽस्त्यस्य, काश्मरी-यत्, यद्वा काश्मरी स्वार्थे ष्यञ्। गाम्भारी, गंभारी।

काश्मर्यफलक्काथ (सं० पु०) गांभारीफलकषाय, गंभारी फलका कांटा।

काश्मर्या (सं० स्त्री०) ह्रस्वगाम्भारी वृक्ष, छोटी गंभारीका पेड़।

काश्मर्याद्यपर्णिका, काश्मर्या देखो।

काश्मीर (सं० क्ली०) कश्मीरे काश्मीरे वा भवम् कश्मीर वा काश्मीर-अण्। कच्छादिभ्यश्च। पा ४।२।१३३। १ कुष्ठभेद, पुष्करमूल। २ कुङ्कुम, केशर। ३ कस्तूरी, मुश्क। ४ सोहागा। ५ काश्मीरका निवासी। (त्रि०) ६ काश्मीरजात, काश्मीरमें उपजने या होनेवाला। (पु०) ७ गाम्भारीवृक्ष, गंभारीका पेड़।

काश्मीर—भारतवर्षके उत्तर-पश्चिम कोणका सर्वोत्तर देश, एक मुल्क। वर्तमान काश्मीरराज्य अक्षा० ३२° १७' से ३६° ५८' ३०" और देशा० ७३° २६' से ८०° ३०' पू० पर अवस्थित है। उसका वर्तमान भूमिका परिमाण प्रायः ८०९०० वर्गमील है। लोकसंख्या लगभग २८ लाख होगी। जिसमें पुरुष साढ़े पंद्रह लाख और स्त्रियां साढ़े तेरह लाख होंगी।

वर्तमान सीमा—उत्तर सीमा हिमालय पर्वतके अन्तर्गत काराकोरम श्रेणी और काश्मीरके ही अधीनस्थ कई अर्ध स्वाधीन क्षुद्र राज्य हैं। दक्षिणकी ओर पंजाबके अन्तर्गत झेलम, गुजरात और स्यालकोट प्रभृति हैं। पश्चिम सीमा पर हजारा प्रदेश और रावलपिण्डी है। पूर्वमें तिब्बतका राज्य लगा है।

प्रदेश विभाग—काश्मीर राज्यमें आजकल जम्बु, काश्मीर उपत्यका, लदाख, बलतीस्तान, भद्रवार, कष्टवार, दर्दीस्तान, ले, तिलेल, सुरू, जास्कार, रूपस्पुख और दूसरे भी कई क्षुद्र क्षुद्र विभाग हैं।

भूमिभाग—साधारणत: देखनेपर काश्मीर राज्य पर्वतवेष्टित वितस्ताकी अववाहिका समझ पड़ता है। मध्यस्थलमें वितस्ता नदी शाखा प्रशाखा फैला वराहमूल गिरिवर्त्मसे पंजाब प्रदेशमें प्रवेश करती है। वितस्ता तीरवर्ती निम्न उपजाऊ भूमिको छोड़ एक उत्तम भूमि पर्वतमूलसे समतल भूमिकी ओर विस्तृत है। उसे कपीरास या उदारस कहते हैं। उक्त सकल भूमिका मैदान प्राय: उद्भिद्प्राणी-शरीर-जात और वालुका तथा कर्दम मिश्रित है। उक्त सकल उपजाऊ भूमिखण्डके मध्य प्राय: १०० से ३०० फीट गभीर नदीपथ है। साधारणत: उपजाऊ भूमिका एक ओर पर्वतमाला रहते भी किसी किसी स्थलपर चारो ओर निम्नभूमि ही है। उक्त सकल भूखण्डमें कृषि होती है। किन्तु जलकी सुविधा अधिक नहीं। वृष्टि न होनेसे नालो बना नदीसे जल लाना पड़ता है। पर्वतमूलकी ढालू भूमिमें चारणस्थान और देवदारुवन इत्यादि वर्तमान हैं। काश्मीरके दक्षिणांशमें ही लोग अधिक रहते हैं। कृष्णगङ्गा उपत्यकाके निम्नांश और सिन्धु अववाहिकासे वितस्ता तथा चन्द्रभागाकी अववाहिकाको स्वतन्त्र करनेवाली तुषारावृत पर्वतमालाकी चतुःपार्श्वस्थ भूमिमें भी लोगोंका अधिकतर वास है। उक्त प्रदेशकी पर्वतमाला देवदारुके वनसे आच्छादित है। मध्य मध्य कृषिके लिये उपयुक्त भूमि भी है। नदीतीर श्यामल शस्यक्षेत्रसे परिपूर्ण है। प्रत्येक ग्राममें सुन्दर सुन्दर पथ विद्यमान हैं।

पर्वतमाला—काश्मीरकी चतुर्दिकस्थ पर्वतमालाके शिखरका उपरिभाग तुषारमण्डित देख पड़ता है। वत्सरके मध्य प्राय: ८ मास काल बरफ चढ़ा रहता है। उत्तर पश्चिम प्रान्तमें वियाकी नामक तुषारावृत क्षेत्र प्राय: ३५ मील विस्तृत है। पञ्जाल पर्वतमालाके मध्य सर्वोच्च शिखरका नाम सूञ्जी है। वह १४९५२ फीट उच्च है। आहेरटाटोपा शिखरकी उच्चता १३०४२ फीट है। उत्तर दिक् हरमुख पर्वत १६०१५ फीट ऊंचा है। काश्मीर उपत्यकाके प्रान्तमें नङ्ग पर्वत वा दयरमूर समुद्रपृष्ठसे २६६२९ फीट उच्च उठा है। उक्त पर्वत काश्मीर उपत्यका और सिन्धु नदीके मध्य अवस्थित है। उसीके निकट शेर और मेर नामक दूसरे दो शिखर हैं। उनमें प्रथम २३४१० और द्वितीय २३२५० फीट उच्च है। दिक्के अनुसार उनके भिन्न भिन्न नाम हैं। पूर्वमें तुषारावृत पञ्जाल पर्वत, दक्षिणमें फतेपञ्जाल एवं बनिहाल प्रदेशका पञ्जाल पश्चिममें पीरपञ्जाल और उत्तर-पश्चिममें हरमुख तथा सोनामार्ग पर्वत कहते हैं।

दक्षिणदिक्‌में पर्वतमाला निम्न होनेसे शोभा ह्रस और अति सुन्दर है। उत्तरदिक् अपेक्षाकृत वन्य होते भी सौन्दर्यपूर्ण है। इधर अत्युच्च पर्वतमाला, विस्तृत तुषारक्षेत्र, पर्वतावरोही क्षुद्र तथा वृहत् नदी स्रोत और मध्य मध्य जलप्रपात दृष्टिगोचर होते हैं। इस अञ्चलमें कोई शिखर २००० फाटसे कम ऊंचा नहीं। काराकोरम पर्वतमालामें एक शिखर प्राय: २८२५० फीट ऊंच है।

युरोपके भ्रमणकारी काश्मीरके उक्त सकल पर्वतोंमें भ्रमण कर शोभाका वर्णन कर गये हैं। उन्होंने लिखा है कि वैसी शोभाधार प्राकृतिक छवि जगत्‌के दूसरे किसी स्थानमें सम्भवत: देख नहीं पड़ती। उक्त शैलशिखरके तलसे जितने ही ऊर्ध्व गमन करते, उतने ही ऋतुभेद तथा तदुपयोगी उद्भिज, शस्य और फलमूल आदि देख पड़ते हैं। फिर कहीं उक्त सकलका एकत्र समावेश है। उन पर्वतोंमें निरीह पार्वत्य लोग रहते हैं।

मार्ग या क्षेत्र—पीरपञ्जालको अपेक्षा निम्नतर पर्वतके कई शिखरदेश अधिक विस्तृत हैं। उन सकल स्थानोंमें

सुन्दर एवं मनोहर नानावर्णके पुष्प और सुदृश्य तृण उत्पन्न होते हैं। उन्हीं सकल स्थानोंको मार्ग वा क्षेत्र कहते हैं। गुलमार्ग और सोनामार्ग प्रभृति कई क्षेत्र अति सुन्दर हैं। उक्त सकल स्थानोंमें ग्रीष्मकालको झुण्डके झुण्ड टट्टू घोड़े चरा करते हैं। सोनामार्ग नामक स्थानमें श्रावण तथा भाद्र मास देशके बड़े आदमियों और युरोपीयोंको जाकर रहना बहुत अच्छा लगता है।

नदी—काश्मीर राज्यकी प्रधान नदी वितस्ता है। काश्मीर उपत्यकाकी पूर्व-दक्षिण सीमामें वह उत्पन्न हुयी है। वितस्ता देखो।

अनेकोंके मतमें वितस्ताका उत्पत्तिस्थान आजतक स्थिर नहीं हुवा। अंगरेज कहते हैं कि अर्पत, ब्रिङ् और सन्दरम् नाम्नी तीन भिन्न भिन्न क्षुद्र नदीके सम्मिलनसे वितस्ता उत्पन्न हुयी है। उसकी अनेक शाखा और उपनदी हैं। मुसलमान भौगोलिक कहते हैं कि काश्मीर उपत्यकाकी पूर्व दिक् सुप्रसिद्ध वीरनाग उत्स-से प्रायः अर्ध क्रोश दूर तीन उत्स विद्यमान हैं। उक्त तीनों उत्स परस्पर द्वादश अङ्गुलि दूरवर्ती हैं। मुसलमान उक्त परिमिति अर्थात् अङ्गुष्ठके अग्रभागसे तर्जनीके अग्रभाग पर्यन्त स्थानको वालिश्त या वित्ता कहते हैं। उसीसे उत्सका नाम भी वालिश्त या वित्ता है। फिर उससे निर्गत जलस्रोत वितस्ता कहलाता है। उक्त तीनों उत्सोंकी जलधारा क्रमशः जितनी हो नीचे उतरी. वीरनाग, अनन्तनाग, अच्छावल, कुक्कुरनाग, शायनाग प्रभृति उत्स सकलका जलप्रवाह निकल कर मिलनेसे उसकी अवयववृद्धि हुयी है।

वितस्ताने क्रमशः उत्तर-पूर्वमुख कियद्दूर चल उल्लर ह्रदमें प्रवेश किया है। उसके पीछे उसमें दक्षिणवाहिनी हो पश्चिम प्रान्तमें वरामूला नामक जनपदके मध्य भीषण वेगसे उपत्यकाको छोड़ा है। उपत्यकाके मध्य वितस्ताका अधिक प्रशान्त भाव है। किन्तु उपत्यकाके बाहर उसका जैसा भीषण वेग वैसी ही भयङ्करी मूर्ति है। उत्तर पूर्वसे इसलामाबादके निकट लिदार, पूर्वसे शादीपुरके सम्मुख सिन्धुनदी और सोपुर नगरकी निकट पोहरूनदी वितस्तासे पश्चिम तीर मिली है। फिर पूर्व तीर मुरहामके निकट अरामवियाड़ा एवं रामबुयात (रामच्युत) और श्रीनगरके निकट दूधगङ्गा वितस्तासे मिल गयी है। तिलैल उपत्यकामें देवई नामक स्थानपर कृष्णगङ्गा नाम्नी एक मध्यविध नदी निकली है। कृष्णगङ्गा अधिकतर उत्तर मुख पश्चिमदिक्‌को जाकर हठात् दक्षिणको घूम मुजफ्फराबादके बिलकुल नीचे वितस्तामें मिल गयी है। वर्दान उपत्यकासे मारु वर्दान नदी प्रवाहित हो दक्षिणमुख कष्टावार (कष्टवयाड़) नामक स्थानपर चन्द्रभागामें जा गिरी है। मारुवर्दान, कष्टावार और मद्रवार नामक स्थानद्वयके मध्यमें जा जम्बूके पश्चात् मिली है। उक्त सकल नदीयोंके मध्य एकमात्र वितस्तामें ही नौकादिका यातायात होता है। उसमें भी ६० मीलसे अधिक दूर तक नौका चल नहीं सकतीं।

सेतु—उपत्यकाके मध्य वितस्ता पर १२ सेतु हैं। सेतुको लोग 'कदल' कहते हैं। समस्त सेतु देवदारु काष्ठसे बने हैं।

अनेक स्थलमें फिर डोरीके सेतु भी हैं। जिस स्थानमें बहुदूर विस्तृत सेतुका प्रयोजन पड़ा, वहीं डोरीका सेतु बना है। वह दो प्रकारका होता है—चिका और झूला। सोचने या देखनेमें झूला बहुत भयानक समझ पड़ता है। किन्तु वास्तविक भयका कोई कारण नहीं बड़ी सरलतासे निरापद उसके ऊपर यातायात होता है। माल असबाब भी उस पारसे इस पार, इस पारसे उस पार पहुंचाया जाता है।

नाला—श्रीनगर और तन्निकटवर्ती प्रदेशमें कई नाले हैं। उसी स्थल पर उल्लोल वा उल्लारह्रद है। उसीके मध्यसे वितस्ता प्रवाहित है। उक्त ह्रदको पार करना कोई सीधी बात नहीं। इसीसे सोपुर और श्रीनगरके मध्य एक नाला निकाल गमनागमनकी सुविधा की गयी है। खेतीके सुभीतेके लिये भी यथेष्ट नाले निकाले गये हैं। उनमें वीरपुर जिलेका शाहकुल और इसलामाबादका नेन्दी तथा निम्बर नाला प्रधान है।

ह्रद—काश्मीरमें ह्रद यथेष्ट हैं। उपत्यका और पार्वत्य प्रदेशके नाना स्थानमें ह्रद देख पड़ते हैं। उप-

त्यकामें निम्नलिखित ४ ह्रद प्रधान हैं—१म उल्ल वा नागरिक ह्रद। वह भी श्रीनगरके उत्तरपूर्व कोणमें अर्धक्रोश दूर अवस्थित है। उसका दैर्घ्य ५ मील है। चूंट कोल नामक नाले द्वारा वह वितस्तासे मिला है। श्रीनगर राजभवनके बिलकुल सामने वह नाला जा ह्रदमें मिल गया है।

२रा अञ्चार ह्रद है। वह श्रीनगरके उत्तर अवस्थित है। नालमर खालसे वह जलके साथ संयुक्त है। नालमर नाला शादीपुरके पास सिन्धुनदसे जा मिला है।

३रा मानसबल ह्रद है। स्थलपथमें वह श्रीनगरसे ५ कोस और जलपथमें ८ कोस दूर वितस्ताके दक्षिण तीर अवस्थित है। काश्मीरमें उसके तुल्य रमणीय ह्रद दूसरा नहीं। उसका दैर्घ्य तीन मील और विस्तार डेढ़ मील है। मानसबल बहुत गभीर है। कल्हण और विल्हणने पवित्र मानसह्रदके नामसे उसका उल्लेख किया है।

४र्थ उल्लार ह्रद है। वह श्रीनगरके उत्तर पश्चिम स्थलपथसे ११ कोस और जलपथसे १५कोस दूर अवस्थित है। काश्मीर राज्यमें वही सर्वापेक्षा बृहत् ह्रद है। उत्तर दक्षिण दलदलको छोड़ उसका दैर्घ्य डेढ़ मील और दलदल समेत १० मील है। परिधि ३०मील पड़ता है। गम्भीरता ८हाथ और स्थान स्थान पर ११हाथ भी है। पूर्वदिक्‌को वितस्ता नदी उक्त ह्रदके मध्य प्रवाहित है। पार्वत्य ह्रदोंको भांति उसमें भी हठात् भीषण बाढ़ चढ़ जाती है। राजतरङ्गिणीमें उसका नाम "महापद्म" लिखा है। वहां महापद्मनागका वास था। पार्वत्य ह्रदके मध्य पीरपञ्जालका कंसनाग, लिदार उपत्यकाका शेषनाग और हरमुखका गङ्गाबलनाग तथा सर्वलनाग प्रधान है।

उत्स—काश्मीरकी पर्वतमालामें उत्सका अभाव नहीं। प्रायः सकल स्थानमें पर्वतगात्र भेदकर उत्स निकल पड़ा हैं। उक्त सकल उत्स अनेक अलौकिक घटनावोंसे परिपूर्ण हैं। उनमें वारनाग, अनन्तनाग, वायन, अच्छाबल, कुक्कुटनाग और वितबिखर अति रमणीय तथा कौतूहलजनक है।

खनिज—काश्मीरमें प्रायः सर्व स्थान पर लौह मिलता है। किन्तु उत्कृष्ट न होनेसे उसकी तोपें कम बनती हैं। कुटिहर जिलेमें हरपतनार ग्रामके निकट ताम्र पाया जाता है। प्राचीन काल उक्त स्थान पर खनिका कार्य चलता था, किन्तु बहु दिनसे बन्द हो गया। पीरपञ्जालमें काला सीसा (जिस धातुसे पेन्सिल बनती है) मिलता है। जम्बु पर्वतमें पत्थरका कोयला तथा सुर्मा और द्रास नदीको एक उपनदीमें गिगर वा गिल्गी नामक स्वर्णरेणु पाते हैं। वितस्ता नदीतीर टङ्गरट नामक स्थानके अधिवासी स्वर्णरेणु उद्धार करते हैं। चन्द्रभागाके तीर स्वर्ण एवं रौप्यमिश्रित उपल खण्ड मिलते हैं। गंधकका उत्स यथेष्ट है। कठिन गंधक भी स्थान स्थानपर पाया जाता है। काश्मीरको उपत्यका गंधकप्रधान उत्सपूर्ण हैं। इसीसे वहां मध्य मध्य भूमिकम्पका भीषण उत्पात हो जाता है। १८८५ ई० को भूमिकम्पसे काश्मीर राज्यके अनेक मनुष्य मरे और गृहादि गिरे थे।

पशुपक्षी—काश्मीरमें भल्लूक की संख्या बहुत है। पिङ्गल और रक्तवर्णके भल्लूक ही वहां अधिक हैं। वह उद्भिद्भोजी हैं, मांस अल्प परिमाणमें खाते और हिंस्रस्वभाव नहीं देखते। काला भल्लूक अन्य भल्लूकसे आकारमें क्षुद्र होते भी अपेक्षाकृत हिंस्र है। चीते सर्वत्र हैं। तिब्बत प्रदेशमें श्वेतव्याघ्र देख पड़ते हैं। बारहसिंगा हिरन पञ्जाल पर्वतमालाके उच्च अंशमें मिलता है। हिन्दू और मुसलमान दोनों उसका मांस खाते हैं। हिमालयका मांबर हरिण कृष्णवार प्रदेशस्थ पञ्जाल गिरिमें रहता है। चीत्कारकारी हरिण पञ्जाल पर्वत मालाके दक्षिण और पश्चिम ढालू प्रदेशमें होता है। कृष्णगङ्गा तथा वितस्ताकी मध्यवर्ती गिरिश्रेणीसे वरामूला पथके बाहर पीर पञ्जाल पर्यन्त एक प्रकार बृहत्काय छागल मिलता है। उसे मारखोर (सर्पभुक्) कहते हैं कस्तूरी मृग काश्मीरमें सर्वत्र है। वुजेकोह और थर नामक दो जातीय पार्वत्य छागल पञ्जाल पर्वतमें देख पड़ता है। भेड़िया, लोमड़ी, गीदड़ और बन्दर यथेष्ट हैं। हुम नामक एक जातीय वानर कृष्णगङ्गा उपत्यकामें अधिक मिलता है। वह प्रधा-

न्ततः पिङ्गल पक्षीका शिकार है। उद्बिडाल सकल नदी-में होते हैं। उनका चर्म बहुमूल्य बिकता है। कृष्य-वार प्रदेशमें स्याही (शश्की, खार पुश्त) रहती है। सरीसृप बहुत देख नहीं पड़ता। विषाक्त सर्प बहुत कम हैं। केवल मध्य मध्य दो एक गोह देखनेमें आ जाती है।

शिकरा, बाज, चील, शकुनि प्रभृति मांसाशी पक्षी यथेष्ट हैं। सुनाल, कश्चिज, कोकिला, कोयल, मैना प्रभृति सकल प्रकारके तोते, और कठफोड़ काश्मीर-में बहुत हैं। जलचर पक्षी नाना प्रकार हैं। वह अधि-कांश शरत् और शीतकालको उत्तरसे काश्मीर जाते और वसन्तके पूर्व लौट आते हैं। बुलबुल, सारस और बगले (बक) सर्वदा देख पड़ते हैं। काश्मीरके काक कुछ श्वेतवर्ण हैं। उनका स्वर बहुत कर्कश नहीं होता। गोसकल खर्वाकृति और कृष्णवर्ण हैं। उनका दुग्ध अति पुष्टिकर होता है। काश्मीरमें मच्छर, मक्खी और पिस्सूका बड़ा उपद्रव है। फिर श्रावण और भाद्र मासमें वह बहुत बढ़ जाता है।

कृषि और उद्भिद—काश्मीरकी भूमि अति उर्वरा है। जिस जिस स्थलमें बरफ नहीं गिरता, वहां भी स्वभाव जात शहतूत, अखरोट और बादाम काफी उपजता है। पाइन (देवदारु, चीड़) अन्य वृक्षके भांति उतना दृढ़ नहीं होता। किन्तु काश्मीरी उसीसे गृह और नौकादि प्रस्तुत करते हैं। उसका काष्ठ तैलाक्त होनेसे ज्वाला से जानेमें व्यवहृत होता है। पथिक रातको उस-की छोटी छोटी काष्ठिका जला पार्वत्य प्रदेशमें मशाल-का काम निकालते हैं। देवदारु, शाल प्रभृति बहु-मूल्य काठके पेड़ यथेष्ट हैं। काश्मीरसे बाहर उक्त काष्ठ भेजनेका निषेध है। धान्य प्रधान खाद्य है। काश्मीरमें भारतवर्षका सकल प्रकार शस्य और शाक उत्पन्न होता है। बैंगन लाल और गुलाबी उतरता है। फलमें सेव, नासपाती, बिही, गिलास, कोतरनल, गोमा, बगु, शहतूत, अंगूर, अखरोट, बादाम, आडू प्रभृति कई प्रकारके सुस्वादु फल उत्पन्न होते हैं। बादाम चार प्रकारका होता है। उनमें एकका छिलका कागजकी भांति पतला रहता है, इसीसे उसे कागजी बदाम कहते हैं। वह खानेमें अति सुस्वादु लगता है। अंगूर १८ प्रकारका होता है। उनमें साहबी और मुश्की अति उत्कृष्ट निकलता है। अपने देशके कुम्हड़े और कद्दूकी तरह काश्मीरमें अति हीना-वस्थ लोगोंके भी प्राङ्गणमें अंगूरके माचे गड़े रहते हैं। अंगूर अधिकतर प्रचुर और सुस्वादु होनेसे काश्मीरी गर्व कर कहते हैं—"यदि ईश्वरके मुख होता, तो हम उसे स्थानीय रोटी* और अंगूर खिला सन्तुष्ट कर सकते।" कृषिजात द्रव्यके मध्य काश्मीरका कुङ्कुम (केसर, जाफरान) अति उत्कृष्ट होता है। वहां यथेष्ट उत्पन्न होनेसे कुङ्कुमका नाम ही 'काश्मीर' है।

ऋतुपरिवर्तन—काश्मीरका ऋतुपरिवर्तन बहुत सुन्दर है। जलवायु, प्राकृतिक शोभा और पुष्टि एवं तृप्तिकर द्रव्यादिके लिये काश्मीर भूस्वर्ग कहाता है। वसन्ता-गममें जब बरफ गलने लगता तब शोभाका पार नहीं पड़ता। शीतके तुषारमण्डित वृक्षादि तुषारा-वरण छोड़ पल्लमुकुलसे भूषित हो जाते हैं। जिस ओर चक्षु घुमाइये, उसी ओर देखिये कि पत्रशून्य तरुवर पुष्पपरिच्छदसे आवृत हैं। (काश्मीरमें पहले फूल खिलता, फूल सूख जानेसे पत्ता निकलता है।) फिर जितने दिन शिशिर नहीं पड़ता, उतने दिन नवकुसुमित अथवा नवपल्लवित वृक्षलतासे वसन्त विराज करता अर्थात् वैशाखसे कार्तिक पर्यन्त सात मास वसन्तका अधिकार रहता है। शीतकालमें जिस परिमाणसे बरफ गिर जाता, उसीके अनुसार शीघ्र वा विलम्बसे वसन्त आता है। शीतमें अल्प बरफ गिरने-से चैत्रमासके पूर्व ही वह गल चुकता और वसन्तका समागम लगता है। फिर यदि अधिक बरफ पड़ता, तो समस्त चैत्रमास गला करता है। सुतरां वैशाख मास वसन्तागम होता है। कहते हैं कि एक समय जहांगीर बादशाह कार्यानुरोधसे वसन्तके प्रारम्भमें काश्मीर जा न सके। सुतरां उन्होंने काश्मीरके कर्म-चारियोंको लिख दिया—"ऐसा कीजिये जिसमें वसन्त

* काश्मीरी रोटीकी जितनी प्रशंसा करते वास्तविक उतनी अच्छी हम नहीं सकते। किन्तु मांसके नाना विध व्यञ्जन बनानेमें उनके तुल्य जगत्में कोई नहीं होता।

राज हमारे आगमनकी प्रतीक्षा करते रहें और हमारे पहुंचनेसे पहिले देख न पड़ें।" सुचतुर कर्मचारियोंने उनका उद्देश्य समझ चारो पार्श्वके पर्वतोंसे बरफ मंगा बादशाहकी क्रीड़ाका कानन ढांक रखा था। सुतरां अन्यत्र वसन्तका कार्य आरम्भ होते भी बादशाहके काननमें उसका प्रभाव न पड़ा। अन्तको जहांगीरके पहुंचने पर बरफ हटानेसे क्रीड़ाकाननमें वसन्त झलक उठा था।

काश्मीरमें नाना वर्णके मनोरम सुगन्ध पुष्प यथेष्ट हैं। सर्व प्रथम हरिद्राभ शुक्लवर्णका वेदमुष्क फूल खिलता है। जिस ओर देखिये, उसी ओर पुष्पका आस्तरण लगा हुवा मालूम पड़ेगा। काश्मीरमें फूलके गुलदस्तेके लिये विविध प्रकार पुष्प आहरणका कष्ट नहीं उठाते। सम्मुख जहां चाहते वहींसे दो एक हाथ जमीनके बीच प्राय: ७। ८ प्रकारके फूल पा जाते हैं। वैसाखमासके मध्यकाल बादाम फूलनेसे फिर एक नयी शोभा उमड पड़ती है। वह काश्मीरयोंके बड़े आनन्दका समय है। धनी, निर्धन, युवा, वृद्ध, सब लोग हजार दास्तान्‌का पिंजड़ा हाथमें उठा हरिपर्वत नामक स्थानको जाते और बादाम पेड़की शाखामें पिंजड़ेको लटका उष्णीष (तही) खोल देते हैं। हजारदास्तान् वसन्तवायु लगनेसे नाचते नाचते सुललित स्वरमें गाता रहता है। काश्मीरी भी भक्तिसूचक विभुगुण गान कर इतस्ततः घूमते हैं। ज्येष्ठ मासमें चमेली फूलती है। उसका वर्ण आकाशकी भांति होता है। सुतरां काश्मीरी उसे "हि आसमान्" कहते हैं उक्त पुष्प वसन्तकी विदाईका फूल है। उसके खिलनेसे ही वसन्तकी शोभा समाप्त हो जाती है। वैशाख बीतने पर चमेली खिलनेसे पहले पीछे कालानुसार क्रमशः फूल झरने और नवपल्लव निकलने लगते हैं। आषाढ़ मास फल आता है। शस्य परिपूर्ण हो जाता है। काश्मीरमें ग्रीष्मका लेश नहीं। जब ग्रीष्मके प्रभावसे हिन्दुस्थानमें लो घबराने लगता, तब वहां गात्र पर एक परिधेय वस्त्र रखना और रातको रजाई ओढ़ना पड़ता है।

श्रावणके प्रथम रौद्र कुछ बढ़ता है। किन्तु उसमें कभी लोग विवश नहीं होते। बड़ी गर्मी पड़नेसे शीघ्र स्वल्प वृष्टि हो जाती है। फिर पर्वतादि शीतलता धारण करते हैं। आश्चर्य नियम! वहां श्रावणमें मूषलधार वृष्टि नहीं होती। शीतकालमें बरफ गिरनेके समय झड़ लगती है। उसी समय शिलावृष्टि भी होती है। संवत्सरमें १८। २० इञ्चसे अधिक पानी नहीं बरसता। आश्विनमें फल कम पकता है। कार्तिकमें शीत आरम्भ होता है। वृक्ष सकल पत्रहीन हो जाते हैं। उसी समय श्रीनगरसे ६ कोस दूर पांद्रपुर क्षेत्रमें जाफरान (केसर) उत्पन्न होती है। वही काश्मीरके प्रति वत्सरकी शेष शोभा है। किसी फारसी कवितामें उक्त विषय भली भांति वर्णित हुवा है। यथा जाफरान खिलकर सबसे कहती है कि तुम काश्मीरका पथ छोड़ हिन्दुस्थानका पथ पकड़ो, यहांकी शोभा पूरी हो गयी। शीतकालको आते देख काश्मीरी आहारीय संग्रह करते हैं। उस समय वह समुदाय शाक (कद्दू तक) सुखाकर रख छोड़ते हैं। किसीके बरामदे किसीके जंगले और किसीकी नावमें सूत्र ग्रथित मिर्चोंकी बड़ी बड़ी माला सूखा करती हैं। उन्हें देखकर समझते कि दुःसह ऋतुको आते विचार काश्मीरी भी उपयुक्त आयोजन लगा रखते हैं। २०००० फीट ऊंचे काश्मीरमें चिरतुषार विराजित है। कार्तिक मास आते ही नीचे पार्वत्य स्थानमें बरफ-गिरने लगती है। किन्तु वह कार्तिकमें जमती नहीं, गल जाती है। पौष माससे नियमानुसार बरफका जमना शुरू होता है। बरफसे चतुर्दिक् रौप्यमण्डित हो जाती हैं। उक्त दृश्य देखनेमें भी बहुत रमणीय लगता है। किन्तु उस समय काश्मीरमें रहना बहु कष्टसाध्य हो जाता है। काश्मीरपति महाराज रणवीरसिंहके सुविज्ञ मन्त्री (१८८५ ई०) दिवान् कृपारामने स्वप्रणीत काश्मीर-इतिहासमें उक्त तुषारपातके सम्बन्धपर लिखा है—'पीरपर्वतपर जो क्षुद्र क्षुद्र श्वेतवर्ण कणिका पड़ी हैं, वह बरफ नहीं, आकाशने काश्मीरके मुखमें अमृतमात्र दान किया है।'

वास्तविक वहां तुषारपातसे जीवन संशय होता है। उसमें विधाताकी असीम करुणासे जिस प्रकार जीव

जगत् बचता, वह अमृतके सेवनका ही फल ठहरता है। शीतकालमें एकदण्डके लिये भी तुषारपात विश्राम नहीं लेता। उस पर मध्य मध्य झड़ और प्रबल वृष्टि पड़ती है। फिर भयङ्कर शिलापात भी होता है। कभी कभी एकादि क्रमसे एक मासके मध्य सूर्यका दर्शन नहीं मिलता। नदी ह्रदादि जम जाते हैं। कभी कभी कलसी वा अन्य पात्रादिका जल जम जानेसे पानी या जल पीनेको नहीं मिलता। काश्मीरवासी विलक्षण समझ सकते और सतर्क हो कुछ पूर्वसे गृहादिके मध्य दिवारात्रि अग्नि प्रज्वलित रख किसी प्रकार जलरक्षा और क्लेशादि निवारण करते हैं। शीतकाल पड़नेसे आबाल-वृद्ध-वनिता सबलोग छातीपर अंगरखेके नीचे एक करोसी व्यवहार करते हैं। करोसी मसालेकी हंडी जैसा अग्नि रखनेको मृण्मय पात्र है। वह चारो ओर बांसको खपाचसे बुनो रहती है। उसमें अग्निडाल छातीपर कपड़ेके भीतर लटका देते हैं। इसीसे काश्मीरियोंके वक्षःस्थलमें जलनेके दाग देख पड़ते हैं। वर्फ गिरनेसे कुछ दिन पहले शिशिर पड़ता है। उस समय प्रातःकाल बोध होता मानो रातको किसीने चारो ओर चूना बिछा दिया है। वर्फ गिरनेसे पहले शीत अति असह्य हो जाता है। किन्तु वर्फ पड़ जानेसे उक्त शैत्यके मध्य भी कुछ रमणीयता मालूम पड़ती है। जब अधिक वर्फ गिरती, तब तब प्रातःकाल उठ कर देखनेसे चारो ओर चांदी जैसी झलक उठती है। पर्वत, निष्पत्रवृक्ष, लता, गुल्म, गृह, छत, नौका, उच्चनीच भूमि, पथ, प्राङ्गण सभी मानो रौप्यमण्डित हो जाता है। घरकी छतसे शीशेका नल जैसे वर्फके नल लटका करते हैं।

शीतकालमें चाय और मांस ही काश्मीरवासियोंका प्रधान खाद्य है। शीतकालमें ही केवल कई प्रकारके जलचर पक्षी मिलते हैं। किसी किसी दिन कुछ परिष्कार होनेसे काश्मीरी जलाशय पर जा पक्षी मार लाते हैं। उस समय मृणाल भिन्न कोई शाक नहीं मिलता। काश्मीरी उसे 'नदरू' कहते और शीतकालमें रांध कर चखते हैं।

जलवायु—जगत्‌में यदि केवल स्वास्थ्यकर कोई स्थान है तो काश्मीर ही है। नदीका जल, ह्रदका जल इतना स्वच्छ रहता कि दश हाथ नीचे मछलीका खेल स्पष्ट देख पड़ता है। जल जैसा स्वच्छ वैसा ही सुस्वादु भी है। झरनोंका जल तो भैषज्यगुणविशिष्ट है। किसी किसी उत्समें केवल स्नान करनेसे ही कुष्ठ पर्यन्त आरोग्य हो जाता है। जल इतना शीतल है कि ज्येष्ठ आषाढ़ मास पीते भी दांत हिल उठता है। काश्मीरके लोग स्वप्नमें भी समझ नहीं सकते ग्रीष्म वा धूलि किसे कहते हैं? वायु अति निर्मल, शीतल और स्वास्थ्यकर है। किसी कविने कहा है—यदि कोई दग्ध जीव भी काश्मीर आवे, तो वह जीवित हो जावे; यहां तक कि अग्निदग्ध पक्षी भी अपने पर पावे और आकाशमें उड़ता देखावे। वास्तविक एक मुखसे कह नहीं सकते काश्मीरके जलवायुमें कितने गुण हैं। काश्मीरीके रहनेके गृहादि काष्ठसे निर्मित होते हैं। काश्मीरी भाषामें उन्हें "लड़ी" कहते हैं। वहां प्रायः भूमिकम्प होते हैं। इसीसे सब लोग लकड़ीके घर बनाते हैं।

किसी किसी घरकी भित्ति प्रस्तर वा इष्टक निर्मित होती है। किन्तु अधिकांशमें नींव लगती है। वर्फके लिये सब मकानोंकी छत दोनों ओर ढालू रहती है। छत पर पहले तख्ते और पीछे भुर्जपत्र बिछा मट्टीसे लीप देते हैं। वसन्तकाल उस मट्टी पर तृण जमजानेसे छत पूरी हो जाती है। उस प्रकारकी छत देखनेमें बहुत सुन्दर होती है। घर द्वितलसे पञ्चतल पर्यन्त बनता है, वह अङ्गरेजी भवनकी भांति देख पड़ता है। खिड़कीके किवाड़े दो प्रस्थ (दुतरफा) होते हैं। बहिर्देशके कपाटमें नाना प्रकार कारुकार्य और क्षुद्र क्षुद्र छिद्र रहते हैं। शीतके समय उक्त छिद्र कागजसे बन्द कर दिये जाते हैं। उससे हिम रुकता, किन्तु आलोक पहुंचा करता है। प्रत्येक भवनमें एक 'बोखारी' (धुवांकश) रहती है। बिना उसके शीतकालमें वास करना असाध्य है। किसी किसी घर विशेषतः धनियोंकी अट्टालिकाके सर्व निम्न तलमें हम्माम अर्थात् उष्ण स्नानागार होता है। उसमें किसी दिक्‌से वायु घुसने नहीं पाता। वहां उष्णताका तार-

तस्य विशिष्ट जल नाना पात्रमें रहता है। हम्मामसें आग जलानेसे ऊपरि और बगली घर भी गर्म पड़ जाता है।

श्रीनगरमें प्रत्येक भवनका प्रधान द्वार नदीके तीर पर है। प्रत्येक घरका घाट स्वतन्त्र है। उस घाटमें उतरनेका सोपान लगा है। प्रायः प्रत्येक अधिवासीकी एक नौका होती है। वह अपने घाटमें अटकी रहती है। काष्ठके भवन होनेसे काश्मीरमें प्रायः अग्निदाह होता है। भवनके सर्वोच्चस्थानमें जलानेका काष्ठ, रन्धनशालाका द्रव्यादि और भाण्डार रहता है।

नौका—नौका नाविकका घरद्वार है, दिवारात्रि वह नौकामें हो रहते हैं। अनेक लोगोंके भूमि पर गृहादि नहीं—पुत्रकलत्रके साथ वह नौकामें रहते हैं। काश्मीरमें बालिका, युवती और वृद्धा स्त्रियां भी निपुणताके साथ नौका चला सकती हैं। वहां अपने देशकी भांति नौका नहीं होता। 'शिकारी' या 'डोंगी' नामक नौका ही भ्रमणके पक्षमें सुविधाजनक है। शिकारी नौका साधारणतः २५ हाथ लम्बी, २। हाथ चौड़ी और १ फुट गहरी होती है। आरोहीके बैठनेका स्थान पतावरसे छाया रहता है। आवश्यकतानुसार उस छतको खोल डालते हैं। उक्त नौकाके चलानेका डांड़ 'चाप्पा' कहाता है। वह बड़े आड़ू जैसा होता है। शिकारीमें चाप्पा रखा नहीं रहता, हाथमें पकड़ चलाना पड़ता है। उस देशकी किसी नौकामें स्थूल भाग (पेटा) नहीं होता। पीछे एक आदमी बैठ चप्पेसे पेटेका काम चलाता है। आरोही की इच्छा और आवश्यकता देख शिकारी नौकामें तीनसे दश तक खेवट रखे जा सकते हैं। स्त्रियां वह नाव नहीं चलातीं।

डोंगी नामक नौका दूर भ्रमणके लिये उपयोगी है। उस नौकामें नाविक परिवारके साथ रहते हैं। उस प्रकारके नाविकको काश्मीरी भाषामें हांभी कहते हैं। डोंगी साधारणतः ४० हाथ दीर्घ, ४ हाथ विस्तृत और डेढ हाथ गभीर होती है। वह भी पतावरसे छायी जाती है। उक्त आवरणके शेषांशमें हांभी रहते हैं। स्त्रियां भी उसे चलाती हैं। काश्मीरी पण्डित उस पर चढ़ कर्मस्थानको यातायात करते हैं। उनका आहारादि नौकामें ही सम्पन्न होता है।

काश्मीरपतिकी कई सुदृश्य नौका हैं। आकारानुसार वह परिन्दा (पक्षी), चौकोरी (चतुष्कोण) और बग्गी (गाड़ी) कहलाती हैं। उनमें ५०से ८० आदमी तक चप्पा लेकर बैठ सकते हैं।

अधिवासी—हिन्दुवोंका राज्य होते भी काश्मीरमें मुसलमान अधिक हैं। यहांतक कि कितनेही हिन्दुवोंका (जो पण्डित कहाते हैं उनमें भी बहुतोंका) आचार व्यवहार बिगड़ मुसलमानों जैसा हो गया है। हिन्दू मुसलमानोंको छोड़ वहां बौद्ध भी बहुत हैं। काश्मीरी पुरुष गौरवर्ण, दृढ़काय और अङ्गसौष्ठवविशिष्ट हैं। वह चतुर, प्रखर बुद्धिशाली और आमोदप्रिय होते, किन्तु साहसी नहीं। रमणी परम सुन्दरी हैं। विशेषतः पण्डितोंकी स्त्रियां अनुपमरूपलावण्यवती होती हैं। भारतचन्द्रकी रूपसी विद्या और कालिदासकी शकुन्तला वहां प्रतिगृहकी प्रत्येक रमणीमें विद्यमान हैं। वे परकी परी यदि पृथिवी पर रहतीं अथवा अप्सरा यदि कविकी कल्पना नहीं ठहरतीं, तो वह काश्मीरमें ही मिलती हैं। धनी मुसलमानों और कृषकोंको छोड़ किसीके एकसे अधिक स्त्री देख नहीं पड़ती।

परिच्छद—पुरुषोंका परिच्छद कौपीन, अलखाल्लक (पेरहन) और उष्णीष है। क्या हिन्दू क्या मुसलमान सभी मस्तक मुण्डन करते हैं। हिन्दू शिखा रखते हैं। स्त्रियां साड़ी नहीं—केवल अंगरखा पहनती हैं। कोई कोई स्त्री मस्तकपर लाल टोपी लगाती है। केशको वेणी बना दो भागमें पृष्ठपर डाल देती हैं। पण्डिताइनोंमें कोई कोई कटीदेशमें अलखाल्लकके ऊपर चद्दर लपेट लेती हैं। वह थोड़ा ही गहना पहनती हैं। स्त्री पुरुष सभी काष्ठपादुका व्यवहार करते हैं।

सकल देशमें पुरुषों और स्त्रियोंके वेशको विभिन्नता है, किन्तु काश्मीरमें नहीं। परिच्छदादि देख जातिके बलवीर्यका परिचय मिलता है। काश्मीरी पुरुषके रमणीवेश-सम्बन्धपर इतिहासमें देखते कि दिल्लीके सम्राट् उक्त स्थान आक्रमण कर सैन्य पराजय

करते भी देशाधिकार कर न सकते थे। शेषको अकबरके अधिकार करने पर जहांगीरने परामर्श कर पुरुषोंको बलपूर्वक स्त्रीवेश धारण कराया। प्रथम प्रथम वह उक्त वेश विना युद्ध धारण करने पर स्वीकृत हुये न थे। किन्तु शेषको उन्होंने उसे स्वीकार किया। अत एव पुरुष परिच्छेदके साथ उन्होंने पुरुषोचित-साहस भी खो दिया है।

आचार-व्यवहार—काश्मीरी बहुत अपरिष्कार रहते हैं। उनका वस्त्रादि, गात्र और वासगृह साक्षात् नरक जैसा देख पड़ता है। शीतको छोड़ देते भी अन्य किसी समय वह वस्त्रादि नहीं धोते। क्या स्त्री क्या पुरुष सभी प्रकाश्य स्थलमें नग्न हो स्नान करते हैं। सुतरां स्नानके समय भी गात्रावरणको जल स्पर्श नहीं कराते। इसीसे उसपर इतना मैल जम जाता कि यथार्थ चुटकी लेनेसे मैल निकलता और झाड़नेसे पिस्सू तथा चिल्लरका ढेर लगता है। वह पथ, गृहाभ्यन्तर और प्राङ्गणमें मलमूत्र त्याग करते हैं। शीतकालमें घरसे बाहर निकलना दुःसाध्य होने पर वह ऐसा करते हैं। किन्तु अभ्यासक्रमसे अन्य समय भी वह उक्त व्यवहार छोड़ नहीं सकते। लोकालय इसीसे नरक बन जाता है। श्रीनगर, जम्बु प्रभृति राजधानीमें भी ऐसा ही हाल था। फिर भी आजकल राजनियमसे बहुत कुछ परिष्कृत हुवा है। राजकर्मचारी, विदेशी और पर्यटक (अर्थात् काश्मीरी भिन्न दूसरे सभी) इसीसे लोकालय छोड़ नदीतीर हश्वाटिकामें रहते हैं।

काश्मीरी बड़े झगड़ालू होते हैं। किसीके साथ किसीका विवाद उपस्थित होनेपर समस्त दिन अविश्रान्त रूपसे कलह करते हैं। फिर सन्ध्या पड़नेसे उभय पक्ष अपने अपने चबूतरे पर टोकरी औंधा सो रहते हैं। दूसरे दिन प्रत्यूषके समय वही टोकरी खोल नये सरसे झगड़ा किया करते हैं। इसी प्रकार एक दिन नहीं कई दिन झगड़ा चलता है। श्रीनगरके नीचे वितस्ता कुछ अप्रशस्त है। जिस समय इस पारके लोग उस पारके लोगोंसे झगड़ते, उस समय बड़ा कौतूहल मालूम होता है। इस प्रकारका झगड़ा लगनेसे उभय पक्ष एक दूसरेके उद्देश नानाविध कुत्सित खेल खेलते हैं। वह भले आदमीयोंके देखने योग्य नहीं होता। झगड़ेकी कथा वा अङ्गभङ्गी भी कोई भला आदमी देख या सुन नहीं सकता। साधारणतः काश्मीरी विनयी, मिष्टभाषी और परोपकारी होते हैं।

वह दोनों वेला आहार करते हैं। अन्न और मत्स्य उनका नित्य खाद्य है। उत्तप्त अन्नकी अपेक्षा कड़ा सूखा भात, नमक मिर्च मिला चरपरा कड़म शाक, कुछ मछली और एक प्याला चाय काश्मीरियोंके लिये अति उत्तम भोजन है। इसलिये जो महीनेमें दो रुपये कमाता, उसका भी समय सुखसे कट जाता है।

चाय वह नित्य पीते हैं। नस्य और चाय आगन्तुकके लिये अभ्यर्थनाकी सामग्री है। चाय बनानेके यन्त्रको "समावाट" कहते हैं। वह देखनेमें टीनके चोंगे जैसा होता है। समावाटकी उच्चता १४ इञ्च होती है उसका व्यास ढाई इञ्च बैठता है। अभ्यन्तर दोहरा होता है। मध्यस्थलमें अग्नि लगाना पड़ता है। उसके बाहर चाय ढालनेके लिये टोंटी-जैसा नल लगा रहता है। अग्निकी चारो ओर खाली जगहमें पानी भर देते हैं। पानी गर्म होनेसे चाय डाली जाती है। वह मीठी और नमकीन चाय पीते हैं। फूलनामक तिब्बतीय क्षार लवणस्वरूप व्यवहार करते हैं। उन्हें दो प्रकारकी चाय अच्छी है—पञ्जाबकी "सुरती" और लादाखकी "सजा"। कहीं जानेपर वह समावट कभी नहीं छोड़ते।

शिल्प—काश्मीरी शिल्पविद्यामें निपुण हैं। काश्मीरका दुशाला जगत् विख्यात है। श्रीनगरके निकट नौशेरा नामक स्थानमें कागज बनता है। वह सुचिक्कण और पार्चमेण्टकी भांति दृढ़ होता है। राजकीय व्यवहारके लिये सुवर्णमण्डित कारुकार्यविशिष्ट एक प्रकारका अति मनोहर कागज तैयार होता है। काश्मीरके जमा हुवे कागजके कारुकार्यविशिष्ट कलमदान, सन्दूक, पिटारा, रकावी प्रभृति भुवनविख्यात हैं। सोने चांदीका काम भी वह खूब करते हैं। गहनेका जैसा पेचदार नमूना दिया जाता, वह वैसाही (पहले कभी न बनाते भी या बनानेका

कौशल न जानते भी) अविकल काश्मीरियोंके हाथसे बनकर निकल आता है।

भाषा—काश्मीरकी प्रकृत भाषाका नाम "कासुर" है। वह संस्कृतका कुछ कुछ अपभ्रंश है। उस भाषामें अक्षर नहीं। सुतरां उसमें लिखित पुस्तकादिका भी अभाव है। देवनागरके टूटे फूटे शारदा अक्षर संस्कृत पुस्तकादि लिखनेमें व्यवहृत होते हैं उनमें कासुर भाषाके उच्चारणानुसार सकल कथा लिखी नहीं जा सकती। उनका "बूझच" (बूझा) और "बूझकिना" (बूझ ले कि ना) प्रयोग देख कासुर भाषा हठात् हिन्दी जैसी समझ पड़ती है। वह प्रत्येक कथामें "दापाछ" (कहते हैं) शब्द व्यवहार करते हैं। फिर प्रत्येक क्रियाके अन्तमें "च" लगा देते हैं। कासुर भाषामें सैकड़े पीछे २५ संस्कृत, ४० फारसी, १५ हिन्दी, १० अरबी और कई पहाड़ी वा तिब्बती शब्द रहते हैं।

काश्मीरके नाना स्थानोंमें प्रायः १२ विभिन्न भाषा प्रचलित हैं। पुञ्छ और जम्बू जिलेमें डोग्र तथा चिब्ब-ली भाषा व्यवहृत होती है। वह हिन्दी भाषासे अधिक पृथक् नहीं। पार्वत्य प्रदेशमें ५ विभिन्न भाषा चलती हैं। काश्मीर उपत्यकामें कासुर भाषाका प्रचार है। लदाख, वलतीस्तान, चम्पा प्रभृति स्थानोंमें दो प्रकारकी तिब्बतीय भाषा और उत्तर-पश्चिममें चार प्रकार की दरद भाषा बोली जाती है। अलबेरुनीकी वर्णनासे समझ पड़ता कि ई० एकादश शताब्दकी काश्मीरमें "सिद्धमातृका" नामक अक्षरोंका प्रचार था।

शिक्षा—राजकीय और वैषयिक समुदाय कार्य फारसी भाषामें सम्पन्न होते हैं। इससे प्रायः अनेक लोग फारसी पढ़ते हैं। काश्मीरी पण्डित संस्कृतकी शिक्षा ग्रहण करते हैं उसमें अनेक पण्डित विशेष व्युत्पन्न हैं। ज्योतिषशास्त्रमें भी बहुतसे लोगोंको अधिक अभिज्ञता है। काश्मीर महाराजके यत्नसे अनेक संस्कृत पाठशाला स्थापित हैं।

धर्म—काश्मीरके प्रायः सकल हिन्दू शाक्त हैं। सब लोग रीतके अनुसार पूजा और स्तवादि पाठ करते हैं। जो स्नान वा पूजादि नहीं करते, वह भी (हिन्दू बालक, स्त्री सब) प्रातःकाल उठते ही कपालसे पूर्व दिनका तिलक छोड़ा केसरका दीर्घ और स्थूल नया तिलक लगा लेते हैं। प्रतिदिन प्रातःकाल केवल एकबार तिलक धारण करते हैं। तिलक लगानेसे उनके कपालमें एक चिह्न पड़ जाता है। ब्राह्मण रीत्यनुसार वेदपाठ करते हैं।

किसी समय काश्मीरमें भी बौद्धधर्म विशेष प्रबल था। आज भी नाना स्थानोंमें बौद्ध-मठ और विहारादिका भग्नावशेष दृष्ट होता है। काश्मीरमें अनेक बौद्ध पण्डितोंने जन्म ग्रहण किया है। स्थान स्थानमें आज भी बौद्धधर्म प्रबल है॥

मुसलमानोंमें सुन्नी और शीया दो विभाग हैं। सुन्नियोंकी संख्या अधिक है। १८७२ ई० के शेषको एकबार किसी मसजिदके प्राचीर पर दोनों दलोंमें विवाद बढ़ा था। सुन्नियोंने शियावोंका गृहादि जला, इत्यादि लूट और रमणीकुलका सतीत्व मिटा राज्यके मध्य महाविप्लव मचा दिया। शेषको महाराजके कौशलसे सब शान्त हो गया।

पुरातत्त्व—पाश्चात्य पुराविद्के मतमें "कश्यपमीर"-से 'कश्मीर' नाम बना है। राजतरङ्गिणीमें लिखा है—

"पुरा सतीसरः कल्पारम्भात् प्रभृति भूरभूत्।
कुक्षौ हिमाद्रेरर्णोभिः पूर्णा मन्वन्तराणि षट्॥
अथ वैवस्वतीयेऽस्मिन् प्राप्ते मन्वन्तरे सुरान्।
द्रुहिणोपेन्द्ररुद्रादीनवतार्य प्रजासृजा॥
कश्यपेन तदन्तःस्थं घातयित्वा जलोद्भवम्।
निर्ममे तत् सरो भूमौ कश्मीरा इति मण्डलम्॥" (१। २५—२७)

पुराकाल सतीसरः कल्पारम्भसे भूमिमें परिणत हुवा। हिमाद्रिगर्भमें छह मन्वन्तर पर्यन्त जलपूर्ण रहा [उसी सतीसरमें जलोद्भवका (असुरका) वास था।] वैवस्वत मन्वन्तर उपस्थित होने पर प्रजापतिने कश्यप, द्रुहिण, उपेन्द्र और रुद्र प्रभृति देवगण अवतारित कर उनके द्वारा जलोद्भवको विनाश किया था। उसी सरोवर-भूमिमें कश्मीर मण्डल स्थापित हुआ।

नीलमतपुराणके मतमें प्रजापति कश्यप ही ब्रह्मा थे। उन्होंने विष्णु और शिवके सहायतासे जलोद्भवको मार सतीसरमें काश्मीर राज्य स्थापन किया। प्रथम नागराज नील काश्मीरका पालन करते थे।

काश्मीर अति पुराकालसे आर्य जातिका लीलानिकेतन है। आर्य देखो। शाङ्खायन-ब्राह्मणमें लिखा है।

'पथ्यास्वस्तिको ही उत्तरदिक् समझिये। पथ्यास्वस्ति ही वाक् हैं। उत्तरदिक्‌में ही वाक्य प्रज्ञात जैसा कीर्तित है। लोग भी उत्तरदिक्‌में भाषा सीखने जाते हैं। ऐसा प्रवाद है—जो लोग उत्तरदिक्‌से आते हैं, सब लोग यह कह उनका (उपदेश) सुननेकी इच्छा करते हैं, कि वह बोल रहे हैं। कारण उत्तरदिक् वाक्यको दिक्‌की भांति ख्यात है।'*

विनायकभट्टने शाङ्खायनभाष्यमें लिखा है—

'काश्मीरमें सरस्वती कीर्तित हुवा करती हैं। (सरस्वती ही वाक् हैं) सरस्वतीके प्रसादलाभको लोग उत्तरदिक् जाते हैं।'†

विनायकभट्टकी उक्तिसे समझ पाते कि अति पुराकाल लोग उत्तरदिक् भाषा सीखने जाते थे। सम्भवतः इसीसे काश्मीरका अपर नाम सरस्वती वा शारदा देश है।‡

महाभारतके समय भी काश्मीर एक तीर्थके समान प्रसिद्ध था। यथा—

> "काश्मीरेष्वेव नागस्य भवनं तक्षकस्य च।
> वितस्ताख्यमिति ख्यातं सर्वपापप्रमोचनम्॥ ९०
> तत्र स्नात्वा नरो नूनं वाजपेयमवाप्नुयात्।
> सर्वपापविशुद्धात्मा गच्छेच्च परमां गतिम्॥" ९१ (वन॰ ८२ अ॰)

काश्मीर देशमें तक्षकनागका भवन है। वहां वितस्ता नामक सर्वपापनाशन एक तीर्थ है। उसमें स्नान करनेसे नर वाजपेययागका फल पाते और सर्वपापसे छूट जाते हैं। सुतरां विशुद्ध हो जानेसे उन्हें परमगति मिलती है।

उस समय काश्मीर घोटकके* लिये प्रसिद्ध था। आजकल वह घोटक 'गुट' कहाता है।

वर्तमान काश्मीर राज्यका "जम्बु" भी महाभारतके समय पवित्र तीर्थ जैसा विख्यात था।

> "जम्बूमार्गं समाविश्य देवर्षिपितृसेवितम्।
> अश्वमेधमवाप्नोति सर्वकामसमन्वितः॥" ४० (वन, ८२ अ॰)

देवता, ऋषि और पितृकर्तृक निषेवित जम्बूमार्ग नामक तीर्थमें जानेसे अश्वमेधका फल मिलता और समस्त कामना परिपूर्ण हुवा करती हैं।

काश्मीरका इतिहास

हरिवंशमें काश्मीरपति गोनर्दका नाम मिलता है। राजतरङ्गिणीमें कह्लणने उन्हींको प्रथम राजा जैसा लिखा है। राजतरङ्गिणीमें स्थान स्थान पर "गोनन्द" और "गोनर्द" नाम आया है। काश्मीरके राजावोंमें तीन गोनन्दका नाम मिलनेसे प्रथम गोनन्द 'गोनन्द प्रथम' जैसे अभिहित हुये हैं।

राजतरङ्गिणीके मतमें प्रथम गोनन्द कलियुगसे पहले काश्मीरके सिंहासन पर अधिष्ठित थे। इसीसे वह युधिष्ठिरादिके समसामयिक ठहरते हैं। कारण कलिप्रविष्ट होनेसे युधिष्ठिरादिने स्वर्गारोहण किया था। गोनन्द मगधराज जरासंधके बन्धु रहे। उनका राज्य गङ्गाके उत्पत्तिस्थान कैलास पर्वतके मूल देश पर्यन्त विस्तृत था। जरासन्धने जब मथुरासे यदुवंशीयोंको भगाया, तब आहूत हो गोनन्दने एक दल सैन्यके साथ जरासन्धको साहाय्य पहुंचाया था। फिर उन्होंने यमुनातीर शिविर स्थापन कर पश्चिमदिक्‌को यदुवंशीयोंका पलायनपथ रोक दिया। युद्धकाल स्वपक्षसे लड़ जरासन्ध हारे थे। किन्तु गोनन्दके बलराम-से युद्ध कर विपक्ष सैन्यको विध्वस्त करते भी बहुक्षण पर्यन्त जय पराजय स्थिर न हुवा। अवशेषको वह बलरामके अस्त्राघातसे मारे गये।†

---

* 'पथ्यास्वस्तिरुदीचो' दिशं प्राजानात्। वाग् वै पथ्यास्वस्तिः। तस्मादुदीच्यां दिशि प्रज्ञाततरा वागुद्यते। उदञ्च उ एव यान्ति वाचं शिक्षितुम्। यो वा तत आगच्छति तस्य वा शुश्रूषन्ते इति स्माह। एषा हि वाचो दिक् प्रज्ञाता।" (७।६)

†"प्रज्ञाततरा वागुद्यते काश्मीरे सरस्वती कीर्त्यते। बदरिकाश्रमे वेदघोषः श्रूयते। वाचं शिक्षितुं सरस्वतीप्रसादार्थं उदञ्चो।"

‡ मतान्तरमें सतीका अंश गिरनेसे काश्मीरका अपर नाम शारदा पीठ है।

* 'काश्मीरीव तुरङ्गमः।" (महाभारत, विराटपर्व)

† हरिवंशमें लिखा है कि काश्मीरराज गोनर्दने जरासन्धको साहाय्य दिया और मथुरा नगरीके पश्चिम द्वारका अवरोधभार अपने ऊपर लिया था। यथा—"काश्मीरराजो गोनर्दो दरदाधिपतिर्नृपः।
दुर्योधनाश्रयेैव धार्तराष्ट्रा महाबलाः॥

प्रथम गोनन्दके मरने पर तत्पुत्र दामोदर काश्मीरके राजा हुये। वह बहुत अहङ्कारी थे। सुतरां पिताके मरनेसे राज्य पाकर भी दामोदर सुखी न हुये। राजतरङ्गिणीके मतमें उनके राजत्वकाल किसी गांधार राजकुमारीके स्वयम्बरोपलक्ष कृष्ण-बलराम बुलाये गये थे। दामोदरने यह बात सुन स्थिर किया कि पितृहन्ताके प्राणवधका वह सुयोग था, वैसा सुयोग त्याग करना उचित न रहा। इसी विवेचनामें उन्होंने बृहत् सैन्यदलके साथ पथिमध्य कृष्ण-बलरामका आक्रमण किया। युद्धमें कृष्णके चक्राघातसे दामोदर मारे गये।

महाभारतके पाठसे समझ पड़ता कि राजसूय-है यज्ञकाल अर्जुनने काश्मीर जय किया था।*

दामोदरके मृत्युकाल उनकी महिषी यशोमती गर्भिणी थीं। श्रीकृष्णके आदेशानुसार वही †सिंहासन पर बैठ गयीं। स्त्रीके राजा होनेकी बात सुन प्रधान अमात्यने आपत्ति डाली था। श्रीकृष्णने उन्हें उत्तर दिया—

"काश्मीरा पार्वती तत्र राजा ज्ञेयो हरांशजः।
नावज्ञेयो स दुष्टोऽपि विदुषा भूतिमिच्छता॥" (राजतरङ्गिणी)

काश्मीरकी रमणी पार्वती और काश्मीरके राजा महादेवका अंश है। दुःशील राजावोंसे भी पुण्यलाभेच्छु पण्डितोंको घृणा करना न चाहिये।

यथाकाल यशोमतीके गर्भसे सुलक्षणाक्रान्त बालकने जन्म लिया था। उसका नाम २य गोनर्द पड़ा। राजतरङ्गिणीके मतसे उन्हींके समय भारतयुद्ध हुवा था। वह शिशु थे। इसीसे कौरव पाण्डवमें किसीने उनको नहीं बुलाया।*

उनके पीछे ३५ राजा हुये। किन्तु वह सभी अधर्मी और दुर्दान्त थे। इसासे किसी इतिहास वा शास्त्रादिमें उनका नाम या बिन्दुमात्र भी विवरण नहीं मिलता।

फिर लव नामक एक राजा हुये। कहना कठिन है—वह प्रथम गोनन्दके वंशजात थे या नहीं। वह अनेक पार्श्ववर्ती राजावोंको स्ववशमें लाये। उन्होंने "लोलोर" नामसे एक नगर स्थापन किया था, किम्बदन्तीके अनुसार उसमें ८४ लाख पत्थरके मकान रहे। उन्होंने लोलारके अन्तर्गत लेवार नामक ग्राम ब्राह्मणोंको दिया था।

लवके पीछे उनके पुत्र कुशेशय राजा बने। उन्होंने ब्राह्मणोंको कुरुहार नामक ग्राम दान किया था।

कुशेशयके पीछे उनके पुत्र खगेन्द्र नरपति हुये। वह अतिसाहसी, नागद्वेषी और धीरबुद्धि थे। उन्होंने खागिपुर और खुनमुष ‡ नामक दो ग्राम संस्थापन किये।

"एते चान्ये च राजानो बलवन्तो महारथाः।
समन्वयुर्जरासन्धं विहिषन्तो जनार्दनम्॥" (हरिवंश ९१ अ०)

जरासन्धके प्रथमवार मथुराक्रमणको वर्णनामें उक्त श्लोक मिलते हैं। उसके पीछे जिस समय कृष्ण बलराम गोमन्त पर्वत पर रहे, उस समय भी मुख्य सकल मित्रराजके साथ उन्हें वध करने गये थे। जरासन्धके उक्त मित्रराजोंमें भी गोनर्दका नाम निकलता है। यथा—

"मद्रः कलिङ्गाधिपतिश्चेकितानः सवाह्लिकः।
काश्मीरराजो गोनर्दः करुषाधिपतिस्तथा॥
द्रुमः किम्पुरुषश्चैव पार्वतीयाश्च मालवाः।
पर्वतात्पश्चिमं पार्श्वं क्षिप्रमारोहयन्त्वमी॥" (हरिवंश, ९९ अ०)

हरिवंशमें इतना ही लिखा है, किन्तु बलरामके हाथ गोनर्दके मारे जानेकी कथा उसमें नहीं आयी।

* "ततः काश्मीरकान् वीरान् क्षत्रियान् क्षत्रियर्षभः।
व्यजयल्लोहितञ्चैव मण्डलैर्दशभिः सह॥ १७॥
ततस्त्रिगर्तान् कौन्तेयं दार्वान् कोकनदांस्तथा।
क्षत्रिया बहवो राजन्नुपावर्तन्त सर्वशः॥ १८॥
अभिसारीं ततो रम्यां विजिग्ये कुरुनन्दनः।
उरगावासिनञ्चैव रोचमानं रणेऽजयत्॥" १९॥
(महाभारत, सभापर्व २७ अ०)

* नीलमतपुराणमें भी इसी प्रकार लिखा है—

"दामोदरामिधस्तस्य सूनू राजाभवत् सुधीः॥ ......
अथोपरिन्द्रगान्धारविषयेऽभूत् स्वयम्वरः॥
तत्राहूताः समाजग्मू राजानो वीर्यशालिनः॥
तत्रागतं समाकर्ण्य वासुदेवं स्वयम्बरे।
जगाम माधवं योद्धुं चतुरङ्गबलान्वितः॥
याद्दशं वासुदेवस्य नरकेण महाभवत्।
ततः स वासुदेवेन युद्धे तच्चिन्निपातितः।
अन्तर्वत्नीं तस्य पत्नीं वासुदेवोऽभ्यषेचयत्।
भविष्यत्पुत्ररक्षार्थं तस्य देशस्य गौरवात्।
ततः सा सुषुवे पुत्रं बालं गोनन्दसंज्ञितम्।
बालभावात् पाण्डुसुतैर्नानीतः कौरवैर्न वा॥"

† वर्तमान नाम लुदहो या दमुमंडगीपाल है।

‡ खागिपुर वा खगेन्द्रपुरका वर्तमान नाम काकपुर है। वह वेश्य

खगेन्द्रके पीछे तत्पुत्र सुरेन्द्रने सिंहासनारोहण किया। सुरेन्द्र साहसी, निर्मलचरित्र और विनयी थे। उन्होंने दरद देशके निकट सौरक नामक नगर स्थापन और उसमें "नरेन्द्रभवन" नामक एक सुन्दर प्रासाद निर्माण किया। उनके कोई सन्तान न था।

महाराज सुरेन्द्रके परलोक जानेसे गोधर नामक कोई भिन्नवंशीय राजा बने। उन्होंने ब्राह्मणोंको हस्तिशाला नामक ग्राम दिया था।

गोधरके पीछे तत्पुत्र सुवर्ण राज्याभिषिक्त हुये। वह बड़े दानशील रहे। उन्होंने कराल नामक स्थानमें सुवर्णमणि नाम्ना खनन कराया था।

सुवर्णके पीछे तत्पुत्र जनकने राज्य पाया। उन्होंने विहार और जालोर नामक अग्रहार स्थापन किया था।

जनकके पीछे उनके पुत्र शचीनर पर राज्यभार पड़ा। वह उन्नतमना और क्षमावान् नरपति थे। उन्होंने समाङ्गसा और शशनार नामसे दो अग्रहार स्थापन किये। वह निःसन्तान रहे।

शचीनरके पीछे उनके पितृव्यपुत्र शकुनिप्रपौत्र अशोक राजा हुये। वह बौद्धधर्मावलम्बी थे। उन्होंने शुष्कलेत्र और वितस्तात्र नामक स्थानमें अनेक स्तूप निर्माण किये। वितस्तात्रपुरके अन्तर्गत धर्मारण्य विहारमें अशोकने एक अति उच्च चैत्य बनाया था। उसकी चूड़ा किसीको देख न पड़ती थी। प्राचीन श्रीनगरी* अशोक कर्तृक स्थापित है। कहते हैं कि उनके समय प्राचीन श्रीनगरमें ९६ लाख मकान थे। उन्होंने श्रीविजयेशदेवके * मन्दिरकी चतुर्दिक्का ध्वंसप्राय वहिःप्राकार तोड़वा नूतन निर्माण करा दिया। फिर अशोकने श्रीविजयेश देवके मन्दिर-प्राङ्गणमें "अशोकेश्वर" नामक एक प्रासाद भी बनाया था। उनके वृद्ध वयसमें म्लेच्छों (शकों वा ग्रीकों)-ने काश्मीर राज्य अधिकार किया। महाराज अशोकने शेष दशापर ईश्वरकी सेवामें अपना काल बिताया।

अशोकके पीछे तत्पुत्र जलोक राजा बने। वह बड़े शिवभक्त थे। उन्होंने पितृ-गृहीत बौद्धमत ग्रहण नहीं किया। जलोकने समुद्रतट पर्यन्त पीछे पड़ म्लेच्छ शत्रुवोंको देशसे निकाला था। शत्रुवोंका पराजय कर उन्होंने एक स्थल पर शिवाराधना किया। वह स्थल "उज्जटडिम्ब" नामसे प्रसिद्ध है। जलोकने वर्णाश्रमाचारको पुनः चलाया था। उनके समय काश्मीर राज्य धनधान्यशाली हो गया। उन्होंने राजकार्यकी सुशृङ्खला स्थापन कर कोषाध्यक्ष, प्रधान-सेनापति, दूत प्रभृति कर्मचारियोंका पद संस्थापन किया। जलोकने वारवल नामक आश्रम और उनकी पत्नी ईशानदेवीने तोरणद्वार तथा अन्यान्य स्थलमें मातृका मूर्तिकी प्रतिष्ठा कर बड़ा सुयश पाया था। महाराज जलोकसे सोदरतीर्थ भी प्रचारित हुवा। तीर्थयात्री वहां और अन्यान्य जगह जाते रहे। सोदरतीर्थकी नन्दीशमूर्तिकी भांति उन्होंने प्राचीन श्रीनगरमें ज्येष्ठरुद्र नामक शिवलिङ्ग प्रतिष्ठा किया और तत्सन्निहित स्थानका नाम सोदरतीर्थ रख लिया।† नन्दीक्षेत्रकी चतुर्दिक्का प्रस्तर-प्राचीर उन्होंने निर्माण कराया था। फिर जलोक द्वारा ही नन्दीक्षेत्रमें शिवभूतेश लिङ्ग स्थापित हुवा। भूतेश मन्दिरकी देवसेवाके लिये उन्होंने यथेष्ट अर्थ दिया था। कहा जाता है कि उन्होंने प्रथम एक बौद्धमठ नष्ट किया था। उसके पीछे जलोकने

नदीके वामतीर सखुल-मुशिमालसे ५ कोस दक्षिण अवस्थित है। यहां आज भी प्राचीन देवमन्दिर और पूर्व ध्वंसावशेष दृष्ट होता है।

खुनमुष (राजतरङ्गिणी १।९०)—बिह्लणके विक्रमाङ्कचरितमें खुनमुष 'खोनमुख' नामसे उक्त हुवा है। (विक्रमाङ्कचरित १८।७१) उसका वर्तमान नाम 'खुनमो' है। खुनमुष श्रीनगरसे ३ कोस उत्तर-पूर्व अवस्थित है। उसके निकट हर्षेश्वरतीर्थ और सुवर्णेश्वरीकुण्ड विद्यमान है।

खुनमोके निकट जेवन नामक एक क्षुद्र ग्राम है। बिह्लणने उसीका नाम 'जयवन' लिखा है।

* श्रीनगरी—वर्तमान श्रीनगरसे भिन्न थी। उसका दूसरा नाम पुराधिष्ठान था। वर्तमान पाण्ड्रेथन नामक ग्राममें ही प्राचीन श्रीनगरी बसी थी, पूर्वको उक्त नगरी सखुल-मुशिमालसे पान्ताशोक अर्थात् पद्मकूट पर्यन्त विस्तृत था।

* जिस स्थानपर विजयेशमन्दिर था, आजकल उसका नाम बिजब्रार है। वह बेहत नदीके वामतीर वर्तमान राजधानीसे साढ़ेबारह कोस दक्षिणपूर्व अवस्थित है।

† आज भी सखुल मुशिलाम पहाड़में ज्येष्ठरुद्र नामक शिवलिङ्ग और उससे कुछ दूर अशोक प्रतिष्ठित अशोकेश्वर मन्दिरका ध्वंसावशेष देख पड़ता है

एक बौद्धविहार निर्माण करा उसमें कृत्यादेवीकी मूर्तिको प्रतिष्ठा किया और विहारका "कृत्याश्रम" नाम रख दिया। चीरमोचनतीर्थमें महाराज जलौक और महिषी ईशानदेवीका मृत्यु हुवा।

महाराज जलौकके पश्चात् दामोदर (२य) राजा हुये। समझना कठिन है—वह अशोक वा गोधर-वंशसम्भूत थे या नहीं। दामोदर यथेष्ट अर्थशाली और शिवभक्तिपरायण थे। उन्होंने दामोदरसूद नामक पुर स्थापन कर उसमें यक्षगण द्वारा गुरुसेतु नामक सेतु निर्माण कराया था। वितस्ताके जलप्लावनसे देशरक्षाके लिये दामोदरने (यक्षोंकी सहायतासे) पत्थरका बांध बंधाया। एक दिन वह श्राद्धके उपलक्ष स्नान करने जाते थे। उसी समय कई क्षुधार्त ब्राह्मणोंने मार्गमें उनसे अन्न मांगा। किन्तु दामोदर (२ य) ने उनको प्रत्याख्यान किया था। उससे ब्राह्मणोंने उन्हें सर्प होनेको शाप दिया। किम्वदन्ती है कि गुरुसेतुके निकटस्थ जलाशयमें आज भी एक सर्प इतस्ततः घूमता फिरता है।

फिर काश्मीरके सिंहासन पर तीन तुरुष्क (तुर्क) नृपति बैठे थे। नहीं मालूम पड़ता उन्होंने कैसे राज्य लाभ किया। उनका नाम हुष्क (हुविष्क), जुष्क और कनिष्क थे। कनिष्क देखो। तीनोंने अपने अपने नाम पर तीन स्वतन्त्र नगर स्थापित किये—हुष्कपुर, जुष्कपुर और कनिष्कपुर।* जुष्कने जयस्वामीपुर नामक दूसरा नगर भी स्थापन किया था। शुष्कलेत्र नामक स्थानमें उन्होंने अनेक मठ निर्माण कराये। उनके समय बौद्धधर्म अतिशय विस्तृत था। राजतरङ्गिणीके मतमें बुद्ध शाक्यसिंहके समयसे उस काल पर्यन्त १५० वत्सर अतीत हुये थे। बोधिसत्व नागार्जुन उस समय ६ दिन काश्मीरमें उपस्थित रहे।

* हुष्कपुर, जुष्कपुर और कनिष्कपुरका वर्तमान नाम यथाक्रम 'उस्कार' 'शुकर' और 'कम्पुर' है। उस्कार—चीनपरिव्राजकोक्त 'हु-से-कि-लो' है। वह वर्तमान वरामूलकी पश्चात् वितस्ताके दक्षिणतीर अवस्थित है। काश्मीरी पण्डितोंको विश्वास है कि पूर्वकाल हुष्कपुर और वराहमूल एकत्र एक ही नगर था। हुष्कपुरमें काशिकावृत्तिटीकाकार जिनेन्द्रबुद्धि रहते थे। जुष्कपुर वा शुकर वर्तमान राजधानीसे ९ कोस उत्तर अवस्थित है।

उसके पीछे अभिमन्युने राज्य पाया। राजतरङ्गिणीमें इस बातका कुछ भी उल्लेख नहीं—वह कौन थे या कैसे राजा हुये। अभिमन्यु अजातशत्रु नृपति थे। कण्ठकौत्स (कण्टकोत्स) नामक ग्राम उन्होंने ब्राह्मणोंको दान किया। अभिमन्युने एक शिवमन्दिर प्रतिष्ठा कर उसके गात्र पर अपना नाम खुदा दिया था। उन्होंने स्वनामसे अभिमन्युपुर स्थापन किया। उन्हींके समय चन्द्राचार्य प्रमुख वैयाकरणिकने प्रतिपत्ति पायी थी। उन्होंने अभिमन्यु के आदेशानुसार उनके समयका इतिहास लिखा। उसी समय नागार्जुनके अधान बौद्धोंने प्रबल हो शिवोपासना और नीलपुराणोक्त नागनियमादि बिगाड़ अपना मत प्रचार किया था। नाग लोग उससे विद्रोही हो काश्मीर ध्वंस करनेके उद्देश पर्वतसे असंख्य तुषारशिला डालने लगे और अनेक अस्त्र ले बौद्धोंको मारने पर नियुक्त हुये। महाराज अभिमन्यु उसके निवारणका कोई उपाय न कर सकने पर "दार्वाभिसार" नामक स्थानको चले गये। शेषको कश्यपवंशीय चन्द्रदेव नामक एक ब्राह्मणने देवसहायतासे नाग और यक्ष विद्रोह मिटाया। महाराज अभिमन्युने ही पतञ्जलिका महाभाष्य प्रथम काश्मीरमें प्रचार किया था।

उसके पीछे गोनन्द (३य) सिंहासन पर बैठे। उल्लेख नहीं—वह कौन थे या किस प्रकार राज्याधिकारी हुये। उन्होंने नीलपुराणानुसार नियमादि स्थापन और दुष्ट बौद्धोंके अत्याचार निवारण किये। गोनन्द (३ य)-ने राज्यमें सुखशान्ति और प्रजाके धनधान्यकी वृद्धि की थी। राजतरङ्गिणीके मतसे उन्होंने ३५ वर्ष राजत्व किया।

उसके पीछे तत्पुत्र विभीषण (१म) ५३ वर्ष ६ मास काल राजा रहे। फिर इन्द्रजित् राजा हुये और उसके बाद उनके पुत्र रावणने राजा हो वटेश्वर शिवलिङ्ग स्थापन किया था। वह शिवलिङ्ग कल्हण पण्डितके समय पर्यन्त विद्यमान था। उस लिङ्गके गात्रमें बिन्दु तथा सूत्रके समान चिह्न बने थे। महाराज वटेश्वर देवके उद्देश अपना समस्त राज्य लगा दिया था।

इन्द्रजित् और रावण उभयने ३५ वर्ष ६ मास राजत्व किया। रावणके पीछे तत्पुत्र (२य) विभीषणने ३५ वर्ष ६ मास राज्य चलाया था।

विभीषण (२य) के पीछे उनके पुत्र नर वा किन्नर राजा हुये। वह बड़े अविवेचक राजा थे। विभीषण प्रजाके लिये जो करते, उसीसे उनके काम बिगड़ते थे। कोई बौद्ध उनकी महिषीको भगा ले गया। महाराज किन्नरने उसी क्रोधमें सहस्र सहस्र बौद्ध मठ ध्वंस किये और वह सकल स्थान ब्राह्मणोंको दे दिये। उन्होंने वितस्तातीर किन्नरपुर नामक एक नगर स्थापन किया था। महा शोभा और धनधान्यसे परिपूर्ण होनेके कारण अनेक लोग उस नूतन नगरमें जा कर रहने लगे।

किन्नरराजके पुत्र महायशा सिद्ध थे। उन्होंने ६० वर्ष राजत्व किया। फिर उनके पुत्र उत्पलाक्ष राजा हुये। उत्पलाक्षके पीछे उनके पुत्र हिरण्याक्ष सिंहासन पर बैठे। उन्होंने अपने नाम पर "हिरण्यपुर" नगर स्थापित किया था। फिर यथाक्रम हिरण्यकुल और उनके पुत्र वसुकुलने काश्मीरका आधिपत्य पाया। वसुकुलके पुत्र मिहिरकुल रहे वह अतिशय निर्दय और प्रजापीड़क थे। उन्होंने अपने नाम पर होला नामक स्थान पर 'मिहिरपुर' नगर पत्तन किया। सिवा इसके मिहिरकुलने ब्राह्मणोंको सहस्र ग्राम ब्रह्मोत्तर दे श्रीनगरीमें मिहिरेश्वर नामक मन्दिर बनाया और चन्द्रकुल्या नदीकी गतिको भी घुमाया था। वह असभ्य दारद और भाट (तिब्बतीय) लोगों पर बड़ा ही अनुग्रह रखते थे। मिहिरकुलके पीछे उनके पुत्र बकने सिंहासन लाभ किया। उनके द्वारा लवणोत्स नगर स्थापित हुवा। उन्होंने वकेश मन्दिर भी प्रतिष्ठा किया था। बकके पीछे क्रमान्वयसे क्षितिनन्द, वसुनन्द, नर और अक्ष राजा हुये। अक्षने विसुग्राम और अक्षवाल नामक विहार (?) बनवाया था। अक्षके पीछे उनके पुत्र गोपादित्यको सिंहासन मिला। उन्होंने सखोल, खागि, काहाडिग्राम, स्कन्दपुर, शमाङ्ग और आहिग्राम ब्राह्मणोंको दिया था। फिर गोपादित्यने आर्यदेशसे ब्राह्मण बुला उनको गोपाद्रिस्थ गोग्राम दान किया। उन्होंने ज्येष्ठेश्वर लिङ्गको प्रतिष्ठा भी की थी।* उनके सुशासनमें काश्मीरमें मानो सत्ययुगका आविर्भाव हुवा।

गोपादित्यके पीछे उनके पुत्र गोकर्णने राज्य पाया। उन्होंने गोकर्णेश्वर मन्दिर प्रतिष्ठा किया था। गोकर्णके पीछे उनके पुत्र नरेन्द्रादित्य (अपर नाम खिङ्खिल)-को पितृराज्य प्राप्त हुवा। उन्होंने कई मन्दिरों, भूतेश्वर नामक शिवलिङ्ग और अक्षयिणी देवीमूर्तिको स्थापन किया। उनके गुरु उग्रने उग्रेश नामक शिवमन्दिर और मातृचक्रको प्रतिष्ठा की थी। नरेन्द्रादित्यके पीछे उनके पुत्र युधिष्ठिर राजा हुये। उस समय मंत्रियोंने विद्रोही हो युधिष्ठिरको अगलिका दुर्गमें कैद कर रखा था। युधिष्ठिरके कैद होने पर मन्त्रियोंने प्रतापादित्य नामक शकारि-विक्रमादित्यके ज्ञातिको अभिषिक्त किया। उनके मरने पर जलौक और जलौकके पीछे तुञ्जीनने पितृसिंहासन पाया। तुञ्जीन और उनकी प्रियतमा महिषी द्वारा अनेक सत्कार्य हुये। उभयने तुङ्गेश्वर नामक शिवमन्दिर और कतिक नगर स्थापन किया था। रानी वाक्पुष्टाने कतीमुष और रामुष नामक दो अग्रहार दानमें दिये और एक बड़ा भारी अन्नसत्र खुलवाया। उस समय काश्मीरमें भयानक दुर्भिक्ष पड़ गया। दुर्भिक्षपीड़ित मनुष्य अन्नसत्रमें आश्रय और आहार पाते थे। अन्नसत्रमें ही रानी वाक्पुष्टा पतिके साथ मर गयीं। उसी सती-मन्दिरमें कह्लणके समय तक साधारणको अन्नदान मिलता रहा। तुञ्जीनके राजत्वकाल चन्द्रक नामक नाटककार विद्यमान थे।

उसके पीछे विजय नामक अन्यवंशीय एक राजा हुये। उन्होंने विजयेश्वर नामक शिवमन्दिरको चारो ओर नगर स्थापन किया था।

विजयके पीछे उनके पुत्र जयेन्द्र नरपति बने। उनके सन्धिमति नामक एक महाशैव मन्त्री थे। ऐश्वर्य

* गोपाद्रिका वर्तमान नाम 'तख्त' है। तख्तके पास गोपकार और ज्येठिर नामक स्थान है। यह दोनों स्थान कह्लणोक्त 'गोप' और 'ज्येष्ठेश्वर' समझते हैं।

और विद्याबुद्धि दर्शनसे भीत हो काश्मीरराजने उन्हें कैद किया। मन्त्री कैद किये जाते भी दुःखी न हुये वह सर्वदा शिवके प्रेममें आनन्दित रहते थे। १० वर्ष इसी प्रकार बीत गये। अपुत्रक अवस्थामें जयेन्द्रका मृत्यु हुवा।

कुछदिन अराजकता रहने पीछे सन्धिमतिने आर्य राज नामग्रहण पूर्वक काश्मीरवासियोंके यत्नसे सिंहासन पाया था। उन्होंने अनेक सत्कार्य किये प्रवाद है कि वह प्रत्यह सहस्र शिवलिङ्ग प्रतिष्ठा करते थे। ऐतिहासिक कह्लणके समय तक उक्त सकल पाषाणमय शिवलिङ्ग विद्यमान रहे। (राजतरङ्गिणी। २ १३३) राजा सन्धिमतिने शिवलिङ्गकी पूजाके व्ययनिर्वाहार्थ अनेक ग्राम दान किये थे। उन्होंने अपने नामपर सन्धीश्वर*, गुरुके नामपर ईशेश्वर और खेरा एवं भीमार्थ नामसे दूसरे भी कई सुवृहत् देवालयोंको प्रतिष्ठा की। उनके समय समस्त काश्मीर राज्य देवमन्दिर और प्रासादमण्डित हो गया। उन्होंने कुछदिन राज्यकर इष्टदेवको सेवामें समय अतिवाहित करनेके लिये राजसिंहासन छोड़ दिया।

इधर राजा युधिष्ठिरके प्रपौत्रने गान्धारराज गोपादित्यका आश्रय लिया था। उनके मेघवाहन नामक एक पुत्र हुवा। उसने प्राग्ज्योतिषकी राजकन्याको स्वयम्वरमें पाया था। कामरूपकी राजकुमारीको लेकर लौटनेपर काश्मीरके मन्त्रियोंने उन्हें आह्वान किया। मन्त्रियोंके यत्नसे युधिष्ठिरका वंश फिर काश्मीरके राजासन पर अभिषिक्त हुवा। मेघवाहनने अभिषेक-दिवससे प्राणिहिंसारोकनेको आदेश निकाला था। उन्होंने अपने नामपर मेघमठ, युष्टग्राम और मेघवाहन नामक अग्रहार स्थापन किया। उनकी रानियोंने अपने अपने नामपर भिक्षुकोंके रहनेको 'विहार' बनाये थे। उक्त विहारोंके नाम रहे—अमृतभवन, खादना, मस्मा और (यूकदेवी-प्रतिष्ठित) नड़वन विहार। रानी अमृतप्रभाके पिताके गुरुने लुनपा लो नामक नगरसे गमन कर लोस्तुनपा* नामक एक स्वतन्त्र स्तूप बनाया था। मेघवाहनके मरनेपर उनके पुत्र श्रेष्ठसेन (अपर नाम प्रवरसेन १म) राजा हुवे। पितामाताके बहुत कुछ बौद्धमतावलम्बी होते भी उन्होंने अपने नामपर प्रवरेश्वर नामक देवमन्दिर प्रतिष्ठाकर देवसेवाके लिये त्रिगर्त राज्य दान किया था।

श्रेष्ठसेनके मरनेपर उनके पुत्र हिरण्यने, कनिष्ठ सहोदर तोरमाणके साहाय्यसे राज्य चलाया। पहले काश्मीरमें जो मुद्रा प्रचलित रही, तोरमाणने उसके बदले (किसीका अनिष्ट न कर) स्वनामाङ्कित स्वर्णमुद्रा (अशरफी) प्रचार की। उक्त कार्यसे क्रुद्ध हो हिरण्यने उन्हें सस्त्रीक कारारुद्ध किया था। कारागारमें तोरमाणकी पत्नी गर्भवती हुयी और दशमास पूर्ण होने पर किसी उपायसे भाग गयी। उन्होंने एक कुम्भकारके गृहमें आश्रय लिया और वहां एक पुत्रको प्रसव किया। शेषको वह पुत्र बड़ा हुवा। उसके मातुल (इक्ष्वाकुवंशीय) जयेन्द्र किसी प्रकार सन्धान पा भगिनी और भागिनेयको स्वराज्यमें ले गये। हिरण्यकुल ३२ वर्ष २ मास राजत्व कर निःसन्तान अवस्था पर कालग्रासमें पतित हुये।

उस समय उज्जयिनीमें हर्षविक्रमादित्य राजत्व करते थे। राजतरङ्गिणीके मतसे उन्होंने शकों और म्लेच्छोंको हराया रहा। उनकी सभामें कविवर मातृगुप्त रहते थे। हर्षविक्रमने प्रथमतः कवि मातृगुप्तका कोई सम्मान नहीं किया। मातृगुप्त शयन स्वपनजागरणमें अनुचरकी भांति राजाके अनुगामी रहे। उनके रात्रिको निद्रित होनेपर रक्षिवर्गकी भांति कवि मातृगुप्त भी शयनागारके द्वारपर जगा करते थे। यथाकाल राजाने समझा कि वैसे असामान्य प्रतिभाशाली पण्डितकी उपेक्षा करना अच्छा न था। उसी समय

*तखते सुलेमान पर्वतपर सन्धीश्वर मन्दिरका भग्नावशेष विद्यमान है। सन्धिमतिके नामानुसार उक्त पर्वतका नाम 'सन्धिमान्' था। मुसलमानोंने उसके बदले 'सुलेमान' नाम रख लिया है।

† वर्तमान इसलामाबादके उत्तर-पूर्व २ कोस दूर भवनग्रामके पास भीमादेवीका गुहामन्दिर दृष्ट होता है।

* मुद्रित राजतरङ्गिणीमें 'लोस्तान्या' पाठ है। वह भ्रमपाठ समझकर छोड़ दिया गया है। (राजतरङ्गिणी ३। १०)

लो नगरका वर्तमान नाम 'ले' है। वह लादख या मध्य तिब्बतमें अवस्थित है। स्तुनपा तिब्बतीय शब्द है।

उन्हें स्मरण आया कि काश्मीर राज्य अराजक रहा। उन्हों ने मातृगुप्तको बुलाकर कहा था—"यह पत्र लेकर आप काश्मीरके शासनकर्ताके निकट चले जाइये। पथिमध्य इसे खोलकर कभी न पढ़ियेगा।" मातृगुप्त यथासमय काश्मीर पहुंचे। मन्त्रिवर्गने हर्षविक्रमादित्यका पत्र पा मातृगुप्तको काश्मीर राज्य पर अभिषिक्त किया था। उस समय उन्हों ने विक्रमादित्यको गुणग्राहिताको समझा और नानाविध उपढौकन तथा कवितादि उज्जयिनीको भेज दिया।

राजा मातृगुप्तने स्वराज्यमें पशुवध रोका था। उनकी सभामें 'हयग्रीववध' नामक काव्यप्रणेता कविवर मातृमेण्ठका अवस्थान रहा। राजा मातृगुप्तने "मातृगुप्तस्वामी" नामक विष्णुमूर्ति प्रतिष्ठाकर देवसेवाके लिये विस्तर अर्थ व्यय किया था। उनका राजत्व ४ वर्ष १ मास १ दिन रहा।

इधर तोरमाणके पुत्र प्रवरसेन (२य)-ने सुना कि उनके पितृ-पितामहके सिंहासनको किसी दूसरे व्यक्तिने अधिकार किया था। कुमार इस बातको सह न सके और काश्मीरको चल दिये। मंत्री उनके साहाय्यार्थ उपस्थित हुये थे। प्रवरसेन काश्मीरकी अवस्था देख कहने लगे—"निरपराधी मातृगुप्तका क्या दोष है? वर्तमान व्यवस्था करनेवाले विक्रमादित्यको ही हम इसका प्रतिफल देंगे।" उसके पीछे सैन्यसंग्रह कर प्रवरसेनने त्रिगर्त जीता था। फिर उन्होंने हर्षविक्रमके विरुद्ध उज्जयिनीके अभिमुख गमन किया। पथिमध्य समाचार मिला कि हर्षविक्रमादित्यका मृत्यु हुवा था। उससे बड़ी आशा मारी गयी। कुमार प्रवरसेनने खानाहार छोड़ दिया। दिवारात्रि क्षोभमें बीती थी।

उक्त मातृगुप्तको कवि कालिदास और हर्षविक्रमको संवताब्दप्रतिष्ठाता शकारि विक्रमादित्य मान अनेक लोग महाभ्रममें पड़ गये हैं। मातृगुप्तके सम्बन्धपर कितनी ही कथा राजतरङ्गिणीमें मिलती है। उनकी कविता, धार्मिकता और महानुभवताको कह्लणने मुक्त कण्ठसे सराहा भी है। किन्तु उन्होंने मातृगुप्तको कहीं कालिदासकी भांति नहीं लिखा। यदि मातृगुप्त कालिदास होते, तो प्रशंसा करते भी कह्लण उन्हें एक बार कालिदास न लिख देते? कालिदास देखो।

राजतरङ्गिणीमें हर्षविक्रमादित्यके शकदेश जय करनेकी बात लिखी है। किन्तु क्या निश्चय है कि उक्त शकदेशका जय, संवतब्दप्रतिष्ठाताके ही समय हुवा था?

कुमार प्रवरसेन काश्मीर लौटकर राज्य करने लगे। उन्होंने काश्मीरके चतुःपार्श्वस्थ राज्य जीत लिये थे।

हर्षविक्रमादित्यके पुत्र उज्जयिनीराज प्रतापशील व शिलादित्यने प्रवरसेनसे क्रमान्वय ७ बार हारते भी काश्मीरकी अधीनता न मानी। शेषको अष्टम बार युद्धमें जीवनसङ्कट देख स्वयं वशीभूत हो गये। कह्लणके कथनानुसार प्रतापशील शायद मयूरकी भांति नाच और बोल सकते थे। फिर प्रवरसेनने शायद उसीको देख उनका जीवन बचा और उन्हें स्वाधीन बना दिया। इसी प्रकार समस्त प्रतापान्वित राज्य जीत द्वितीय प्रवरसेन पितामहपुरमें रहने लगे। उन्होंने वितस्तातीर अपने नामपर मनोहर प्रवरपुर नामक नगर स्थापन और "जयस्वामी" नामसे शिवलिङ्ग तथा देवीमूर्तिको प्रतिष्ठा किया था। प्रवरसेनपुरके* निकट विनायक भीमस्वामीका मन्दिर रहा। उन्होंने वितस्तापर सर्वप्रथम नौसेतु प्रस्तुत कराया था। उनसे पूर्व किसीने काश्मीरमें नौसेतु नहीं बनाया। उक्त नौसेतुके उद्देश उन्होंने प्रसिद्ध सेतु काव्य वा 'दशास्यवधप्रबन्ध' प्रणयन किया था। उनके मातुल जयेन्द्रने 'जयेन्द्रविहार' नामसे बौद्धविहार बनाया। उनके मन्त्री और सिंहलके शासनकर्ता मोरकने 'मोरकभवन' नामक एक सुहृश्य प्रासाद निर्माण कराया था। महाराज प्रवरसेनके ललाटमें स्वभावतः शूलचिह्न अङ्कित रहा। उनकी महिषीका नाम रत्नप्रभा था।

प्रवरसेनके पीछे उनके पुत्र युधिष्ठिर (२य) राजा हुये। उन्होंने २१ वर्ष ३ मास राजत्व किया। उनके मन्त्री जयेन्द्रपुत्र वज्रेन्द्रने भवच्छेद नामक चैत्यादिसमाकीर्ण बौद्धग्राम स्थापन किया था। कुमारसेन

* प्रवरसेनपुर—वर्तमान श्रीनगर राजधानी है।

युधिष्ठिरके प्रधान मन्त्री रहे। उनकी महिषीका नाम पद्मावती था।

युधिष्ठिर (२य)-के मरने पर उनके पुत्र लक्ष्मण वा नरेन्द्रादित्य सिंहासन पर बैठे। उनकी महिषीका नाम विमलप्रभा था। वज्रेन्द्रके दो पुत्र वज्र और कनक राजमन्त्री रहे। नरेन्द्रादित्यने नरेन्द्रस्वामी* नामक शिवमन्दिर प्रतिष्ठा किया। उनका राज्यकाल १३ वत्सर था। उनने पुस्तकादि रखा करनेके लिये अपने नामपर एक भवन बना दिया।

नरेन्द्रादित्यके मरनेपर उनके कनिष्ठ भ्राता रणादित्य वा तुञ्जीनको राज्य मिला। उनके कपाल पर शङ्खचिह्न रहा। रणादित्यकी पटरानीका नाम रणरम्भा था। कह्लणने लिखा है—देवी भ्रमरवासिनी मनुष्य-देह धारण कर महारानी रणरम्भा बनी थीं। महाराजने दो मन्दिरोंमें हरि और हर मूर्तिको स्थापन किया। एतद्भिन्न उनने "रणस्वामी" और प्रद्युम्न पर्वत एवं सिंहरोत्सिका नामक स्थान पर पाशुपतमठ, रणपुरस्वामी नामक सूर्यमूर्ति तथा सेनमुखी देवीमूर्त्ति और उनकी पत्नी रणरम्भाने रणरम्भदेव नामक शिवलिङ्गकी प्रतिष्ठा की।† उनकी दूसरी महिषी अमृतप्रभाने रणेशके पार्श्वमें अमृतेश्वर नामक शिवलिङ्ग और मेघवाहन-पत्नीके नामानुसार निर्मित विहारमें बुद्धमूर्त्तिको स्थापन किया। महिषी रणरम्भाने रणादित्यको हाटकेश्वर शिवका मन्त्र सिखाया था।

रणादित्यके समय ब्रह्म नामक किसी सिद्धपुरुषने रणरम्भादेवीके नियोगानुसार "ब्रह्मसत्तम" नामक देवताको स्थापन किया।

रणादित्यके पीछे उनके पुत्र विक्रमादित्यको राज्य मिला। उन्होंने विक्रमेश्वर नामक शिवको स्थापन किया था। उनके दो मन्त्री रहे—ब्रह्मा और गलून। ब्रह्माने ब्रह्ममठ स्थापन और गुलूनकी पत्नी रत्नावलीने एक विहार निर्माण किया। विक्रमादित्यका राजत्व-काल ४२ वर्ष रहा।

विक्रमादित्यके पीछे उनके कनिष्ठ भ्राता बालादित्य राजा बने। उन्होंने पूर्वसागर पर्यन्त राज्य फैलाया और वहां जयस्तम्भ जमाया था। फिर उन्होंने बङ्गाला (बङ्गाला?) प्रदेश जीत वहां काश्मीरियोंके रहनेको कालम्बा नगर स्थापन किया। बालादित्यने मड़व राज्यमें बदर नामक ग्राम बसाया ब्राह्मणोंको रहनेके लिये दिया था। उनकी प्रियतमा महिषीने सर्व-अमङ्गलहर बिम्बेश्वर नामक शिवको स्थापन किया। बालादित्यके खङ्ग, शत्रुघ्न और मालव नामक तीन मन्त्री रहे। उन्होंने भी अनेक प्रासाद, मन्दिर और सेतु निर्माण कराये थे।

बालादित्यके अनङ्गलेखा नाम्नी एक कन्या थी। बालादित्यने उसे अश्वग्रीववंशीय दुर्लभवर्धन नामक एक सुपुरुष कायस्थ युवाके हाथ सम्प्रदान किया।*

दुर्लभवर्धन स्नीय बुद्धिमत्ता और नम्रतासे अल्पदिन-मध्य ही राज्यमें सब लोगोंके प्रिय बन गये। बुद्धिका प्राखर्य देख बालादित्यने उनका नाम 'प्रज्ञादित्य' रखा था। अनङ्गलेखा किन्तु मातापिताके आदरसे गर्वित हो स्वामीको अनादर करती।

३७ वर्ष ४ मास राजत्व कर बालादित्यके स्वर्ग-लाभ करने पर तृतीय गोनन्दका वंश भी लोप हो गया। मन्त्री खङ्गने उस समय सुविद्वान् देख कायस्थ दुर्लभवर्धनको राज्याभिषिक्त किया।

अनङ्गलेखाने अनङ्गभवन नामक एक विहार बनाया था। किसी ज्योतिषने मल्हण नामक राजकुमारको अल्पायु बताया। उसीसे महाराज दुर्लभवर्धनने विशोक-कोट पर्वत पर पुत्रके कल्याण-उद्देश चन्द्रग्राम नामक गांव ब्राह्मणोंको दान कर पुत्र द्वारा मल्हणस्वामी नामक शिवको स्थापन कराया था। फिर उन्होंने श्रीनगरमें दुर्लभस्वामी नामक विष्णुमूर्तिको प्रतिष्ठा किया। ३६ वत्सर राजत्वके पीछे दुर्लभवर्धनको स्वर्ग लाभ हुवा।

* वर्तमान पायेच्छ ग्राममें नरेन्द्रस्वामीका सुन्दर मन्दिर देख पड़ता है।

† वर्तमान इसलामाबादके पूर्व २ कोस दूर मावन नामक स्थानके उत्तर प्रान्तमें मार्तण्ड नामक सूर्य-मन्दिर है। उसे रणादित्यने ही प्रतिष्ठा किया था उक्त सूर्यमन्दिरके दोनो पार्श्व रणस्वामी और अमृतेश्वर शिवलिङ्ग आज भी विद्यमान है।

* कह्लणने दुर्लभवर्धन और उनके उत्तर पुरुषको कर्कोटनागवंशीय कायस्थ लिखा है। देखो।

दुर्लभवर्धनके राजत्वकाल चीन-परिव्राजक युएन-चुयाङ्ग काश्मीर गये थे। उनको वर्णनासे समझ पड़ता कि उस समय काश्मीरराज्य ५०० कोस (७००० लि)-से भी अधिक विस्तृत था।* वह जयेन्द्रविहारमें राजमातुल कर्टक आहूत हुवे थे।†

दुर्लभवर्धनके पीछे उनके पुत्र दुर्लभकने काश्मीरका राजत्व पाया। उन्होंने मातामहकी नामानुसार प्रतापादित्य नाम ग्रहण किया था।

प्रतापादित्यके प्रतापपुर स्थापन करने पर अनेक धनी वणिक् जाकर वहां रहने लगे। उनमें रोहितकवासी नोण नामक वणिक्ने नोणमठस्थापन कर रौहितक प्रदेशवासी ब्राह्मणोंको वासार्थ दान किया था। उस दानसे सन्तुष्ट हो महाराज प्रतापादित्यने वणिक्को निमन्त्रण दे अपने घर बुलाया। आमोद आह्लादसे वणिक् एक रात राजभवनमें रहे। प्रातःकाल महाराजने पूछा—"क्यों, रात सुखसे तो कटी?" वणिक्ने उत्तर दिया—"जो आलोक जलता था, उसने मंथा पकड़ लिया।" फिर प्रतापदित्य भी निमन्त्रित हुये। उन्होंने वणिक्के घर जाकर देखा कि एक मणिके आलोकसे वणिक का भवन आलोकित था। महाराज वह देख विस्मित हो गये और वणिकके आग्रहसे २।३ दिन वहां रहे।

इधर वणिक्की एक नर्तकी नरेन्द्रप्रभाको देख राजा मोहित हुये। नरेन्द्रप्रभा भी राजा पर मुग्ध हुयी थी। प्रतापादित्य घर गये, किन्तु नर्तकीको भूल न सके। परम्परामें वणिक्ने उभयका वृत्तान्त सुन वणिक्ने नरेन्द्रप्रभाको राजाके निकट भेजा और उन्होंने भी उसे रख लिया। उसके गर्भसे चन्द्रापीड़, तारापीड़ और अविमुक्तापीड़ नामक तीन महानुभव सद्गुणशाली पुत्रोंने जन्म ग्रहण किया था। वह पितृमातामह वंशकी रीतिके अनुसार यथाक्रम वज्रादित्य उदयादित्य और ललितादित्य नामसे विख्यात हुये। ५० वर्ष राजत्व कर प्रतापादित्यने स्वर्गको गमन किया।

प्रतापादित्यके मरने पर उनके पुत्र वज्रादित्य (चंद्रापीड़) राजा हुवे। उन्होंने त्रिभुवनस्वामी नामसे नारायणमूर्तिको स्थापन किया। उनकी पत्नी प्रकाशाने 'प्रकाशिका' विहार, राजगुरु मिहिरदत्तने गम्भीरस्वामी नामक विष्णु और नगराध्यक्ष ललितकने 'ललितस्वामी' नामक देवताको प्रतिष्ठा की। वज्रादित्य तारापीड़कर्टक नियुक्त किसी ब्राह्मणके अभिचार कार्यद्वारा मृत्युमुखमें पतित हुवे। उन महानुभव नृपतिने ८ वर्ष ८ मास राजत्व किया।

उनके पीछे कोपनस्वभाव तारापीड़ (उदयादित्य) सिंहासन पर बैठे। वह शत्रु दमन कर इतने गर्वित हुवे कि अन्तको देवतावोंके साथ भी स्पर्धा करने लगे। देवमहिमा प्रचार करनेवाले ब्राह्मणोंको राजा शास्ति देते थे। वह ४ वत्सर २४ दिन राजत्व कर किसी ब्राह्मणको अभिचारक्रिया द्वारा पञ्चत्वको प्राप्त हुवे।

तारापीड़के पीछे उनका कनिष्ठ सहोदर अविमुक्तापीड़ (ललितादित्य) राजा हुये। वह अतिपराक्रान्त नरपति रहे। उनका राजत्वकाल केवल देश जीतनेमें ही बीत गया।

पहले १८ मन्त्री राज्यके प्रधान प्रधान कार्य चलाते थे। ललितादित्यने उक्त १८ पदोंको घटा केवल ५ पद रख छोड़े—प्रधान शान्तिरक्षक, प्रधान सेनाध्यक्ष, प्रधान अश्वाध्यक्ष, प्रधान कोषाध्यक्ष और प्रधान विचारपति। युद्धमें ललितादित्यने कन्नौजके राजाको हराया था। (कान्यकुब्ज राज्य उस समय यमुनातीरसे कालिका नदी तक विस्तृत था।) उस समय यशोवर्माको सभामें कविवर वाक्पति और भवभूति विद्यमान थे। वह ललितादित्यके साथ काश्मीर चले गये। उसके पीछे ललितादित्यने कलिङ्ग, गौड़, दक्षिणाभिमुख कर्णाट प्रभृति स्थान जय किये। रट्टा नाम्नी एक कर्णाटी सुन्दरी उस समय दाक्षिणात्यमें साम्राज्य चलाती थीं। वह भी वशीभूत हो गयीं। भारतके समस्त प्रधान स्थान जीत ललितादित्यने कम्बोज, अश्ववदना रमणीसमाकुल भूखार, भोट और दरद प्रभृति देश जय किये। फिर काश्मीरमें पहुंच

* Beal's Records of Western Countries, Vol. I. 148.

† La Vie de Hiouen Thsang par Stanislas Julien, p. 92.

जालन्धर और लोहर प्रदेश सैन्यको पुरस्कारमें दिया। उनने जितने देश जीते थे, उनके प्रत्येक राज्यमें जयस्तम्भ स्थापित किया। उनने सुनिश्चितपुर, दर्पितपुर, परिहासपुर और फलपुर नगर निर्माण करा नाना प्रकार वासभवन और प्रमोदभवन सजाये थे। दिग्विजयकाल राजप्रतिनिधिने ललितादित्यके नामानुसार 'ललितादित्यपुर'* नगर स्थापन कराया। किन्तु उससे ललितादित्य उन पर अप्रसन्न हुवे। ललितादित्यने अनेक देवमन्दिर, देवमूर्ति और बौद्धस्तूप बनाये थे। उनने ललितापुरमें सूर्यमूर्ति, हुष्कपुरमें मुक्तास्वामी, परिहासपुरमें परिहासकेशव नाम्नी (८४ तोले) सोनेकी विष्णुमूर्ति, पाषाणमय स्वर्णनखशोभित महावाराहमूर्ति, गोवर्धनधर और बुद्धमूर्तिको प्रतिष्ठा किया। उनको महिषी कमलावतीने कमलाकेशव, प्रधान मन्त्री मित्रशर्माने मित्रेश्वर नामक शिवलिङ्ग और सामन्तराज कय्यने श्रीकय्यस्वामी नाम्नी विष्णुमूर्ति तथा 'कय्यविहार' नामक एक विहारको स्थापना की। उसी विहारमें रह सर्वज्ञमित्र नामक किसी बौद्धने योगबलसे बुद्धपद पाया था। उनके चङ्कुन नामक किसी दूसरे मन्त्रीने चङ्कुनविहार तथा स्तूप और सोनेकी बौद्ध प्रतिमाको प्रतिष्ठा किया। चक्रमर्दिका नाम्नी ललितादित्यकी एक प्रियतमाने चक्रपुर नामक नगर बसाया था।

ललितादित्य परिहासपुरमें अनाथाश्रम स्थापन कर नित्य लाख लोगोंके भोजनोपयोगी पात्र और खाद्यका संस्थान कर देते थे। फिर उनने मरुभूमिमें एक नगर बना श्रान्त पिपासितोंके जलपानकी सुविधा लगायी।

ललितादित्यने परिहासकेशव मन्दिरके पार्श्व पर स्वतन्त्र रौप्यमन्दिरमें रामस्वामा नामक विष्णुमूर्ति और महिषी चक्रमर्दिकाने चक्रेश्वरके पार्श्व पर लक्ष्मणस्वामी नामक दूसरी विष्णुमूर्तिको स्थापित किया। कह्लणने लिखा है—किसी समय गौड़राज ललितादित्यके निकट उपस्थित हुये थे। ललितादित्यने उनसे कहा कि श्रीपरिहासकेशवके अनुग्रहसे उनने उनका प्राणमात्र बचा दिया था। उसके पीछे त्रिगामी नामक स्थानपर किसी नरहन्ता द्वारा उनने उनको मरवा डाला। उस समय गौड़राज अति पराक्रान्त था। गौड़के कितने ही राजभक्त वीर काश्मीरराजके उक्त दुष्कार्यका प्रतिशोध लेनेकी आशामें सरस्वती दर्शनके छलसे काश्मीर पहुंच किसी दिन श्रीपरिहासकेशवका मन्दिर लूटनेको अग्रसर हुवे। ललितादित्य उस समय वहां न रहे। गौड़वासियोंके मन्दिर आक्रमण करनेका सन्धान पा ब्राह्मणोंने भीम कवाट बन्द कर दिये। विदेशियोंने पार्श्ववर्ती रामस्वामीके रौप्यमय मन्दिरको ही श्रीपरिहासकेशवका मन्दिर समझ ध्वंस और देवमूर्तिको विचूर्ण किया था। उसी समय काश्मीरी सैन्य पहुंच गया और उस मुष्टिमेय गौड़ीय सेनासे युद्ध होने लगा। सभी राजभक्त गौड़वासियोंने एक एक कर प्राणदान किया। धन्य राजभक्ति! गौड़ीयोंका किसी समय उतना साहस, उतना अध्यवसाय था! रामस्वामीके मन्दिरका भग्नावशेष भूमण्डलमें गौड़वासियोंकी विपुल यशोराशिकी घोषणा करता है।*

ललितादित्यने शेष अवस्थामें फिर उत्तरापथको युद्धयात्रा की थी। उसी युद्धयात्रामें उनका मृत्यु हुवा।

ललितादित्यके दो पुत्र थे—कुवलयापीड़ (कुवलयादित्य) और बत्रापोड़ (वज्रादित्य), महिषी कमलादेवीके गर्भजात ज्येष्ठ कुवलयादित्यको राज्य मिला। वह अतिशय दानशील थे। कुछदिन भ्रातृविद्रोहसे उनके राज्यमें महा विशृङ्खला रही। शेषको कुवलयापीड़का जय हुवा और वज्रापीड़को ज्येष्ठका अधीनत्व स्वीकार करना पड़ा। कुछ दिन पीछे कोई मंत्री विद्रोही हो उनके प्राण लेने पर उद्यत हुवे। महाराज कुवलयादित्यने उक्त विषयका संवाद पा मंत्रीको दलबलके साथ मारनेके लिये संकल्प किया था। किन्तु शेषको वह यह सोच राज्य परित्याग कर प्रव्रज्या अवलम्बनपूर्वक नन्दप्रस्रवण नामक स्थानमें रहने

* ललितादित्यपुरका वर्तमान नाम लतापुर है। आजकल वह सामान्य ग्राममात्र है। लतापुर सुदरसे डेढ कोस दक्षिण-पूर्व अवस्थित है।

* "अद्यापि दृश्यते शून्यं रामस्वामिपुरास्पदम्।
ब्रह्माण्डं गौडवीराणां सनाथं यशसा पुनः॥" (राजतरङ्गिणी, ४। ३३५)

लगे कि मनुष्यका जीवन क्षणविध्वंसी और पापका शास्ता जगदीश्वर ही है। उनने केवल १ वर्ष १५ दिन राजत्व किया। उनके वानप्रस्थ अवलम्बन करने पर पितृस्वसा मित्रशर्माने सस्त्रीक जलमें डूब प्राण छोड़ दिया था।

कुवलयादित्यके पीछे वज्रादित्य सिंहासन पर बैठे उन्होंने महिषी चक्रमर्दिकाकी गर्भसे जन्म लिया था। लोक उन्हें वप्पियक वा ललितादित्य भी कहते थे। वह निष्ठुर देवस्वापहारी (परिहासपुरादिकी अनेक देवोत्तर सम्पत्ति उन्होंने छीन ली थी), अतिशय अत्याचारी, स्त्रीविलासी और स्वेच्छाचारी थे। अतिमात्र स्त्रीसम्भोगके फल यक्ष्मारोगसे उनका मृत्यु हुवा। उनने ७ वर्ष राजत्व किया था।

वज्रादित्यके पीछे उनके पुत्र पृथिव्यापीड़ राजा हुये। उनकी माताका नाम मञ्जरिका था। उनने ४ वर्ष १ मास राजत्व किया।

पृथिव्यापीड़के पीछे उनकी विमाता मम्माके गर्भजात संग्रामपीड़ने राज्य पाया। उनका राजत्वकाल ७ वर्ष रहा।

संग्रामपीड़के मरने पर वप्पीय वा द्वितीय ललितादित्य (वज्रादित्य)-के कनिष्ठ पुत्र जयापीड़ सिंहासन पर बैठे। उनने प्रयागमें ९९९९९ अश्व ब्राह्मणको दान किये थे। उक्त दानके पीछे जयापीड़ने प्रयागमें स्वनामसे एक स्तम्भ बनाया और उसपर निम्नलिखित विषय खोदाया—जो हमारी भांति ब्राह्मणोंको लक्ष अश्व इस स्थान पर दे सकेगा, वह हमारे इस स्तम्भको मानो तोड़ डालेगा। काव्य देखो।

फिर जयापीड़ गौड़के अन्तर्गत पौण्ड्रवर्धनमें उपस्थित हुवे। वहां उनने गौड़राज जयन्तकी कन्या कल्याणदेवी और देवनर्तकी कमलाका पाणिग्रहण किया। प्रत्यागमनकाल राहमें वह कान्यकुब्ज जीत वहांका अतिमनोहर सिंहासन उठा ले गये। काश्मीरमें उपस्थित हो जयापीड़ने सुना कि उनके पूर्व श्यालक जज्जने राज्य अधिकार किया था। उनने राज्योद्धारके लिये युद्ध घोषणा की। पुष्कलेत्र नामक ग्राममें युद्ध हुवा। उसमें जज्ज मारे गये। जज्ज देखो।

जयापीड़ने राज्योद्धार कर शान्तिको स्थापन किया। महिषी कल्याणदेवीने पुष्कलेत्रकी युद्धभूमिमें कल्याणपुर नामक नगर बसाया था। जयापीड़ने स्वयं मल्हणपुर नामक नगर और उसमें केशवमूर्तिको स्थापन किया। कमलाने भी कमला नामक नगर बसाया। इस समय काश्मीरमें विद्याचर्चा बहुत थी। राजा जयापीड़ने पतञ्जलिके महाभाष्य और स्वरचित आगमका वृत्तिका प्रचार किया। (उनने स्वयं चीर नामक पण्डितके पास व्याकरण पढ़ा था।) उद्भटभट्ट, दामोदरगुप्त, मनोरथ, शङ्खदत्त, चटक और सन्धिमान नामक कवि उनकी सभामें विद्यमान थे। उद्भटभट्ट सभापण्डित रहे। उन्हें प्रतिदिन लक्ष स्वर्णमुद्रा (अशर्फी) मिलती थीं। दामोदरगुप्त प्रधानमन्त्री और कवि एवं वैयाकरण वामन उनके अन्यतम मन्त्री रहे।

जयापीड़ने पीछे जयपुर प्रभृति दूसरे भी कई नगर, जयदेवी नाम्नी देवीप्रतिमा, राम लक्ष्मण आदिकी मूर्ति और अनन्तशायी विष्णुमूर्तिको प्रतिष्ठा किया। कहा जाता है कि विष्णुने स्वप्नमें जलवेष्टित द्वारावतीपुरी निर्माण करनेको आदेश दिया था। जयापीड़ने वैसा हो एक नगर निर्माण कराया। वह कह्लणके समय अभ्यन्तर-जयपुरके नामसे विख्यात था।

उक्त स्थानमें भी जयदत्त नामक किसी कर्मचारीने एक बौद्धमठ और मथुराधीश्वर प्रमोदके जामाता आचने आचेश्वर नामक एक शिवलिङ्ग स्थापन किया।

उसके पीछे जयापीड़ दिग्विजयार्थ हिमालय पर चढ़े थे। वहां उनने विनयादित्य नाम ग्रहणपूर्वक पूर्व दिक्‌को विनयादित्यपुर नामक नगर स्थापित किया। उनने उक्त स्थानको पूर्वदिक् भीमसेनराज्य और नेपालराज्य नाना कौशलसे जीत लिया।

उसके पीछे जयापीड़ने स्त्रीराज्य जीत कर्णाका सिंहासन अधिकार किया। उनने युद्धादि व्ययके सुविधार्थ "चलगंज" नामसे सैन्यसमभिव्याहारी कोषागार निकाला था। जयापीड़ने कर्मपर्वत पर एक ताम्र खनिको आविष्कार कर ताम्र उत्तोलनपूर्वक उसके मूल्यसे अपने नामपर एकोनशतकोटि स्वर्णमुद्राको प्रस्तुत

कराया। शेष दशाको वह कायस्थ मन्त्रियोंके परा-मर्शसे युद्धलालसा छोड़ रमणी-विलासमें मत्त हो गये और ब्रह्मशापसे मृत्युमुखमें पतित हुये। उनकी जननी अमृतप्रभाने पुत्रकी सद्गतिके लिये अमृतकेशव नामसे हरिमूर्तिको प्रतिष्ठा किया।

जयापीड़के पीछे उनके पुत्र ललितापीड़ महिषी दुर्गाके प्रयत्नसे राजा हुये। वह बहुत कामासक्त रहे। उनने ब्राह्मणोंसे सुवर्णपार्श्व, फलपुर और लोचनोत्स नामक तीन स्थान छीन लिये। उनका राजत्वकाल द्वादश वर्ष मात्र था।

ललितापीड़के पीछे उनके वैमात्रेय (गौड़राज-कुमारी कल्याणदेवीके गर्भजात) संग्रामपीड़ (२य) ने पृथिव्यापीड़ नाम ग्रहण कर सात वर्ष राजत्व किया।

संग्रामपीड़के पीछे ललितापीड़के शिशुपुत्र बृहस्पति वा चिप्पटजयापीड़ राजा हुये। उनने ललितापीड़के औरस और जयादेवी नाम्नी रमणीके गर्भसे जन्म लिया था। जयादेवी अखुववासी कल्पपालकी कन्या रहीं। रूप देख ललितापीड़ उन्हें हरण कर ले गये थे। राजा बालक होनेसे पद्म, उत्पलक, कल्याण, मम्म और धर्म नामक मातुल राज्यका रक्षणावेक्षण करने लगे। वह भी सब अल्पवयस्क थे। सर्वज्येष्ठने पद्म प्रधान कर्मचारीका पद ग्रहण किया और सबने जयादेवीके आदेशानुसार काम लिया। जयादेवीने जयेश्वर देवताको प्रतिष्ठा किया था। बालक बृहस्पति वा चिप्पट जयापीड़ १२ वर्ष राजत्व कर मातुलोंके चक्रान्तसे अभिचार क्रिया पर मृत्युके मुखमें पतित हुये।

उसी समय राज्यमें विशृङ्खला पड़ गयी। जयादेवी-के भ्रातृपञ्चकने अपना प्रताप अक्षुण्ण रखनेके लिये भागिनेयको मार डाला। फिर किसीको नाममात्रका राजा बनानेके लिये वह घूमने लगे। किन्तु भाइयोंमें इस बात पर मतभेद हो गया;—किसको राजा बनाना चाहिये। उसी समय जयापीड़के दूसरे वैमात्रेय भ्राता (रानी मेघावलीके गर्भजात) त्रिभुवनापीड़के वंशीयों-में सर्वापेक्षा वयोज्येष्ठ होनेसे उत्तराधिकार-सूत्रमें राज्य पानेके अधिकारी थे। किन्तु पञ्चभ्राताके एक मत न होनेसे जयादेवीके साहाय्य उत्पलने उक्त त्रिभु-वनापीड़के पुत्र अजितापीड़को राज्य सौंप दिया।

अजितापीड़ राजा होनेपर भ्रातृपञ्चकको समान भावसे सन्तुष्टकर न सके थे। उससे बड़ा गड़बड़ पड़ गया। एकसे आलाप करने पर चार भाई चिढ़ने लगे। जो हुवा हो, उक्त पांचो लोगोंने देशमें अनेक सत्कार्य किये थे। उत्पलने उत्पलपुर नामक नगर तथा उत्पल-स्वामी नामक देवता, पद्मने पद्मपुर* नामक नगर एवं पद्मस्वामी देवता, पद्मकी पत्नी गुणदेवीने विजयेश्वर नामक स्थान तथा पद्मपुरमें एक एक देवता, धर्मने धर्मस्वामी नामक देवता, कल्याणवर्माने कल्याणस्वामी नामक विष्णुमूर्ति और मम्मने मम्मस्वामी नामक देवताको स्थापन किया। काश्मीरीय ८८ लौकिकाब्दको राजा बृहस्पतिका मृत्यु हुआ। बृहस्पतिके पीछे उनके मातुलोंने ३६ वर्ष अक्षुण्ण प्रतापसे राज्य चलाया था। उसके पीछे उत्पलसे मम्मका विषम युद्ध हुवा। उस भयानक युद्धमें शवराशिसे वितस्ताका जलप्रवाह रुक गया था। कवि शङ्कुकने अपने "भुवनाभ्युदय" काव्यमें उक्त युद्धका विशेष विवरण लिखा है। युद्धमें मम्मके पुत्र यशोवर्माने जय प्राप्तकर अजितापीड़को राज्यच्युत और संग्रामापीड़के पुत्र अनङ्गापीड़को राज्यस्थ किया।

अनङ्गापीड़ राजा तो हुवे, किन्तु उत्पलके मरने पर उनके पुत्र सुखवर्माने प्रतिशोध ले यशोवर्माको हराया और अनङ्गापीड़को राज्यच्युत कर अजितापीड़के पुत्र उत्पलापीड़को राज्यका अधिपति बनाया।

उत्पलापीड़के राजत्वकाल सान्धिविग्राहिक रत्नने यथेष्ट धनशाली हो रत्नस्वामी नामक देवताको स्थापन किया और विमलाश्व नामक स्थानके जमीन्दार लोग और दार्वाभिसारके विचारपति राजाकी भांति स्वाधीन बन गये।

उसी समयसे कायस्थ दुर्लभवर्धनका वंश लोप होने लगा। सुखवर्मा जिस समय सिंहासन पर बैठनेका आयोजन करते थे, उसी समय उनके बन्धु शूरने उन्हें मार डाला। शूर नामक प्रधान मन्त्रीने काश्मीरीय ३१ लौकिकाब्दको उत्पलापीड़को राज्यच्युत कर

* पद्मपुरका वर्तमान नाम पामपुर है। वह राजधानी श्रीनगरसे ३ कोस उत्तर-पूर्व बेहत् नदीके दक्षिण तीर अवस्थित है।

सुखवर्माके पुत्र अवन्तिवर्माको सिंहासन पर बैठाया था।

कर्कोटक (कायस्थ)-वंशमें उसी प्रकार १७ व्यक्ति राजा हुवे। उनने २७० वर्ष १ मास २० दिन राजत्व किया।

उत्पलवंशके प्रथम राजा अवन्तिवर्मा बहुत दानशील और प्रजाप्रिय थे। सकल मन्त्री उनके वाध्य रहे। उनके भ्राता और भ्रातुष्पुत्र अनेक बार युद्धमें प्रवृत्त हुवे, किन्तु सब हार गये। उनने स्वीय वैमात्रेय भ्राता सुरवर्माको यौवराज्यमें अभिषिक्त किया था। युवराज सुरवर्माने स्वाधूया और हस्तिकर्ण नामक दो ग्राम ब्राह्मणोंको दिये। उनने सुरवर्मस्वामी और गोकुल नामक दो देवताको स्थापन किया था। अवन्तिवर्माने भूगौरव नामक मठ बनाया और पञ्चहस्त नामक ग्राम ब्राह्मणोंको दिलाया। अवन्तिवर्माके दूसरे भ्राता समरने रामादि चतुष्टयकी मूर्ति और समरस्वामी देवताको प्रतिष्ठा किया। मन्त्रिवर शूरके दो भ्राता धीर और विभ्रमने अपने अपने नामसे देवमन्दिर बनाये थे। फिर शूरके महोदय नामक द्वारपालने महोदयस्वामी नामक देवताको प्रतिष्ठा किया। उसी मन्दिरमें रह रामल (रामजय) नामक तदानीन्तन अद्वितीय वैयाकरणिक छात्रोंको व्याकरण पढ़ाते थे। दूसरे मन्त्री प्रभाकरवर्माने प्रभाकरस्वामी नामक विष्णुमन्दिर निर्माण किया। कहा जाता है कि प्रभाकरके पास एक शुक पक्षी था। वह शुक अन्यान्य शुकोंसे मिल मुक्ता आहरण करता रहा। प्रभाकरने उक्त सकल शुकोंके स्मरणार्थ "शुकावली"-को रचना किया। मन्त्री शूर बहुत विद्योत्साही थे। अनन्तवर्माकी सभामें शूरको कृपासे उस समयके भुवनविख्यात मुक्ताकण, शिवस्वामी, आनन्दवर्धन और रत्नाकर प्रभृति ग्रन्थकार पण्डित प्रविष्ट हुवे थे। मन्त्री शूरने सुरेश्वरीका मन्दिर और उसमें हरगौरीका मूर्तिको स्थापन किया। उन्होंने सन्यासियोंके लिये शूरमठ नाम्नी अट्टालिका और शूरपुर* नामक नगर निर्माण कर क्रमवत्त प्रदेशका सुप्रसिद्ध दुन्दुभि ला शूरपुरमें रखा था। मन्त्री शूरके पुत्र रत्नवर्धनने सुरेश्वरीके मन्दिरमें भूतेश्वर नामक शिव तथा शूरमठके मध्य स्वतन्त्र मठ और उनकी पत्नी काव्यदेवीने भी काव्यदेवीश्वर नामक शिवकी प्रतिष्ठा किया। महाराज अवन्तिवर्मा वैष्णव रहे, किन्तु मंत्री शूरके लिये शैवधर्म पर भी आस्था प्रदर्शन करते थे। उन्होंने विश्वैकसार नामक स्थानमें अवन्तिपुर* नगर बसाया। उक्त स्थानमें अवन्तिवर्माने राज्यप्राप्तिसे पूर्व अवन्तिस्वामी और राजा होनेसे पीछे अवन्तीश्वर नामक देवताको प्रतिष्ठा किया। उनने अपना रौप्यमय स्नानपात्र तोड़ त्रिपुरेश्वर, भूतेश और विजयेश तीनों देवताका रौप्यपीठ बनवा दिया। उनके समय पण्डितवर श्रीकल्लट और सुय्य विद्यमान रहे। सुय्यने स्वीय बुद्धिके प्रभावसे वितस्ताके रुद्ध जल स्रोतका पथ खोल, नाला खोद, बांध जोड़ और सेतु बना देशके जलहीन स्थानमें जल पहुंचाया, जलमग्न स्थानको डूबनेसे बचाया, निम्नभूमिको उपयुक्त बनाया और नदीके पारापारका पथ सुगमतापूर्वक चलाया था। उनने जिस निम्नभूमिको जलप्लावनसे बचाया, उसने कुण्डल नाम पाया है। त्रिग्राम नामक स्थानसे सिन्धुनद पश्चिमाभिमुख और वितस्ता नदी पूर्वाभिमुख प्रवाहित है। किन्तु सुय्यने विनयस्वामी नामक स्थानमें दोनोंको मिला दिया। सिन्धु और वितस्ताका उक्त सङ्गम आज भी वर्तमान है। उसके एक पार्श्व फलपुर और अपर पार्श्व परिहासपुर है। फलपुरमें सङ्गमस्थल पर विष्णुस्वामीका मन्दिर और परिहासपुरमें सङ्गमस्थल पर विनयस्वामीका मन्दिर खड़ा है। फिर सङ्गमस्थल पर सुय्य-प्रतिष्ठित हृषीकेशका मन्दिर है। सुय्यने सुय्याकुण्डल नामक स्थान ब्राह्मणोंको दिया और सुय्यासेतु निर्माण किया। सुय्या नामक किसी चण्डाली ने शिशुकाल उनको पाला पोसा था। उसीसे सुय्यने उसके नामपर उक्त दो कार्य किये। महाराज अवन्तिवर्माने शेष दशाको पीड़ित हो त्रिपुरेशपर्वतके ज्येष्ठेश्वर मन्दिरमें रह नित्य भगवद्गीता सुनते सुनते

* शूरपुरका वर्तमान नाम सोपुर है। वह उत्तर ऊदके पश्चिम वेहत नदीको उत्तर कूल अवस्थित है।

* वेहत नदीके उत्तर तीर श्रीनगरसे ८ कोस दक्षिण प्राचीन अवन्तिपुरका ध्वंसावशेष और अवन्तिस्वामीके मन्दिरका सुवृहत् प्रस्तरनिर्मित मन्दिर दृष्ट होता है। आजकल अवन्तिपुरको "वन्तिपुर" कहते हैं।

आषाढ़ी शुक्ल-तृतीयाके दिन परलोक गमन किया। उस समय लौकिक अब्दके ५९ वत्सर बीते थे।*

अवन्तिवर्माके मरनेसे उत्पलवंशीय दूसरे भी बहुतसे लोग राज्यलाभार्थ उत्सुक हुवे। किन्तु राजाके पारिपार्श्विक सेनापति रत्नवर्धनने अवन्तिवर्माके पुत्र शङ्करवर्माको ही राजा बनाया था। मन्त्री कर्णपोविन्द पने उससे विद्वेषदरवश हो सूरवर्माके पुत्र सुखवर्माको यौवराज्य प्रदान किया। उसी कारण राजा और युवराज परस्पर शत्रु हो गये। शेषको नाना युद्ध होनेपर शङ्करवर्मा ही जीते थे। फिर उनने युद्धयात्राको निकल दार्वाभिसार, गुर्जर और त्रिगर्त जय किया। पथिमध्य थक्कीयकराजने वश्यता मानी थी। उनने भोज राजके कवलसे थक्कीयराजा उद्धारकर उनको दे डाला। पीछे उन्होंने दरद और तुरुष्कका मध्यवर्ती प्रायः समस्त भूमाग जीता था। उसके पीछे शङ्करवर्माने राजाका प्रत्यावर्तनकर पञ्चसत्र प्रदेशमें अपने नामपर शङ्करपुर† नगर और उसी नगरमें शङ्करगौरीश नामक शिवकी स्थापना की। उनने उदकपथके राजा श्रीलामीकी कन्या सुगन्धासे विवाह और उसके नामानुसार "सुगन्धेश" लिङ्ग स्थापन किया था। किसी नायकने उक्त मन्दिरद्वयके निकट एक सरस्वतीमन्दिर बनवा दिया। उसके पीछे हठात् दैवविड़म्बनासे शङ्करवर्माकी मति बिगड़ गयी। उनने छल बल कौशलसे स्वराज्यमें अत्याचार आरम्भ किया था। देवस्वापहरण, करवृद्धि, राजकर्मचारीके वेतन ह्रास इत्यादिसे देश विचलित हो गया। उनने पत्तन नामक एक नगर स्थापन कर मंत्री सुखराजके भागिनेयको द्वारपतिका पद दे वहां भेजा था। किन्तु विराणक नामक स्थानमें अपने ही दोषसे उनका मृत्यु हुवा। फिर शङ्करवर्माने विराणक नगर उत्सन्नकर उत्तरापथको युद्धयात्रा की और सिन्धुतीरवर्ती कई राज्य जीत उरश राज्यमें हुवे। वहां वह हठात् किसी व्याधके वाणसे आहत हो ७७ लौकिकाब्दको फाल्गुनी कृष्ण-सप्तमीके दिन पञ्चत्वको पहुंचे। मंत्री सुखराज नाना कौशलसे राजाका मृतदेह ६ दिन पीछे काश्मीरके अन्तर्गत वल्लाशक नामक स्थानपर ले गये। फिर वहां उनने उसका सत्कार किया था। रानी सुरेन्द्रवती, दूसरी रानी, वालाविनु तथा जयसिंह नामक २ विश्वासी अनुचर और लाड एवं वज्रसार नामक २ भृत्योंने राजाकी चितामें सहमरण किया।

शङ्करवर्माके पीछे उनके बालकपुत्र गोपालवर्माने माता सुगन्धाके अधीन राज्य पाया था। रानी सुगन्धा किन्तु उसी समय कोषाध्यक्ष प्रभाकर देवके साथ व्यभिचारमें लिप्त हुयीं। प्रभाकरने रानीसे कौशलपूर्वक राज्यके मध्य प्रधान प्रधान पद, धन, रत्न और नाना भूभागको ले लिया। उनने साहीराज्यके मध्य भाण्डारपुर नामक नगर स्थापनके लिये वहांके साहीको आदेश दिया था। किन्तु उनने उसको उपेक्षा किया। उसीसे प्रभाकरने उनको पदच्युत कर ललिय साहीके पुत्र तोरमाणसाहीको* उक्त पद दे डाला और देशका नाम बदल कमलक रख दिया। उसके पीछे प्रभाकरके अत्याचारसे राज्य अस्थिर हुवा था। महाराज गोपालने सब भेद क्रमशः समझा और एक दिन जाकर देखा कि कोषागार शून्य रहा। प्रभाकरने शास्ति मिलनेके भयपर स्वीय बन्धु रामदेवके साहाय्य और कौशलसे गोपालवर्माको जीवन्त जला डाला। गोपालवर्माने २ वत्सर मात्र राजत्व किया था। रामदेव भी अपना कार्य प्रकाशित होनेपर भयसे आत्महत्या की।

गोपालवर्माके पीछे उनके सहोदर सङ्कट केवल १० राजत्वकर मृत्युके मुखमें पतित हुवे।

सङ्कटवर्माके पीछे लोकानुरोधसे रानी सुगन्धाने राज्य ग्रहण किया था। कारण गोपालवर्माकी महिषी नन्दा उस समय गर्भवती रहीं। रानी सुगन्धाने पुत्रके

* अवंतिवर्माने जिस समय राज्य लाभ किया उस समय लौकिकाब्द ३१ था अतः इनका राजत्वकाल २७ साल दो मास और कुछ दिन सिद्ध होता है।

† शङ्करपुरका वर्तमान नाम पत्तन है। वह भी श्रीनगरसे ८ कोस पश्चिमोत्तरभागमें अवस्थित है। वहां आज भी पाषाणमय शिल्पनैपुण्यविशिष्ट प्राचीन २ शिवमन्दिर देख पड़ते हैं।

* तोरमाणसाहीकी शिलालिपि निकली है। See *Epigraphica Indica*, 1890, p. 238.

नामानुसार गोपालपुर नामक नगर, गोपालमठ नामक मठ और गोपालकेशव देवताको स्थापन किया। फिर महिषी नन्दाके एक सन्तान हुवा। किन्तु भूमिष्ठ होते ही वह मर गया। सुगन्धाने एकाङ्गोंकी सहायतासे दो वर्ष तक राज्य किया था। एकाङ्गजातीय सेनापति और तन्त्री-जातीय मन्त्री रहे। सुगन्धाने मन कष्ट पा कर किसी उपयुक्त व्यक्तिके हाथ राज्यभार डालनेके लिये मंत्रियोंको पात्रनिर्वाचनार्थ आदेश दिया था। शेषमें अवन्तिवर्माका वंश लोप होनेसे गर्गागर्भजात सुखवर्माके पुत्र निर्जितवर्माको रानी सुगन्धाने मनोनीत किया। निर्जितवर्मा दिनको सोते और रातको जागते थे। तंत्रियोंने इसीसे उनका पक्ष न लिया। कोषाध्यक्ष प्रभाकरके दुर्व्यवहारसे जो राजकर्मचारी विरक्त एवं पीड़ित रहे, उनने उस समय सुयोग देख रानी सुगन्धाको राज्यसे निकाल बाहर किया। वह हुष्कपुरमें जा कर रहने लगीं। किन्तु एकाङ्ग अल्प दिनके पीछे ही उन्हें फिर राज्य देनेके लिये बुलाने गये थे। काश्मीरीय ८९ लौकिक अब्दको उक्त घटना हुयी। तंत्रियोंने सुगन्धाके आगमनकी वार्ता सुन निर्जितवर्माके दशम वर्षीय पुत्र पार्थको राजा बनानेके अभिप्रायसे पथिमध्य रानी सुगन्धाके सैन्यदलसे लड़ किसी पुरातन जनशून्य विहारमें ९० लौकिकाब्दको रानीको मार डाला। फिर पार्थ राजा हुवे। अलस यथेच्छाचारी पिता उनके रक्षक बने थे। तंत्रियोंके मध्य भी क्रमशः आत्मविच्छेद पड़ गया। अपरापर अधीन राजा स्वाधीन होने लगे। मेरु नामक मंत्रीके सन्तानोंने ज्येष्ठ शङ्करवर्धनके अधीन रह सुगन्धादित्यसे बन्धुता जोड़ भीतर ही भीतर राज्यके कोषागारको लूटा था। उनहोंने श्रीमेरुवर्धन नामक विष्णुकी मूर्तिका स्थापन किया।

उसके पीछे ९३ लौकिक अब्दको राज्यमें भीषण दुर्भिक्ष पड़ा था। एक तो अराजक राज्य और दूसरे दुर्भिक्ष। सुतरां राज्य सम्पूर्ण विशृंखल हो गया। तंत्री राज्यके मध्य सबके ऊपर रहे। वह निर्जितवर्मा और पार्थ उभयके मध्य अपनी सुविधाके अनुसार कभी इसको और कभी उसको सिंहासन पर बैठा स्वयं राजत्व करने लगे। सुगन्धादित्य निर्जितवर्माको पत्नियोंमें रासलीला खेलते थे। वह सभी अपने अपने पुत्रको राजा बनानेके लिये सुगन्धादित्यको प्रचुर धन-रत्न देने और अपना अपना देह बेचने लगीं। मंत्री मेरुके पुत्रोंने राज्यमें प्राधान्य लाभकी आशासे भगिनी मृगावतीके साथ निर्जितवर्माका विवाह कर दिया। किन्तु मृगावती भी अन्तःपुरमें पहुंच सपत्नियोंका पथानुसरण कर सुगन्धादित्यकी अधीन बन गयीं। ९७ लौकिक अब्दको निर्जितवर्माका मृत्यु हुवा। एकाङ्गोंने उस समय बल प्रकाश कर निर्जितवर्माको वप्पटदेवीनाम्नी पत्नीके गर्भजात चक्रवर्माको राजा बना दिया। वप्पत राजाका रक्षणावेक्षण करने लगी। १० वर्ष उसी प्रकार बीते थे। ९८ लौकिक अब्दमें मंत्रियोंने चक्रवर्माको हटा मृगावतीके गर्भजात शूरवर्माको राज्य सौंपा। किन्तु उनके मातुल उनसे अनुकूल न रहे। उनने अन्यान्य तंत्रियोंसे मिल और पार्थसे बहु अर्थ उत्कोच ले भागिनेयको राजच्युत कर पार्थको राजा बनाया। उस समय पार्थ शाम्बवती नाम्नी किसी वेश्याको प्रणयिनी होनेसे सर्वदा अपने निकट रखते थे। उन्हीं शाम्बवतीने शाम्बेश्वरी नामक देवीमूर्तिको प्रतिष्ठा किया। ११श लौकिकाब्दको चक्रवर्माने उस समयकी रीतिके अनुसार तंत्रियोंको उत्कोच (घूंस, रिशवत) दे राज्य पाया था। किन्तु निर्दिता वश उनने मेरुवर्माके पुत्रोंको अधिक क्षमता दे डाली। उसीसे उन्होंने अपने २ नाम पर नाना स्थान अधिकार किये। उनके राजत्वमें मेरुवर्माके ज्येष्ठपुत्र शङ्करवर्धन प्रधान प्राड्विवाक् और शम्भुवर्धन प्रधान मंत्री थे। उसी वर्ष तन्त्रियोंको प्रतिश्रुत उत्कोचका रुपया चुका न सकने पर चक्रवर्माने भयसे मड़र नामक स्थानको पलायन किया। उस समय शङ्करवर्धनने राजा होनेकी आशासे शम्भुवर्धनको प्रबन्धादि करनेके लिये तंत्रियोंके निकट भेजा था। शम्भुने जाकर ज्येष्ठ भ्राताकी बात न कह अपने ही लिये प्रबन्ध कर लिया। इधर चक्रवर्माने श्रीढक नामक स्थानवासी डामरजातीय सरदार संग्रामसे मिल उसे सहायता करनेके लिये प्रतिश्रुत कराया था। संग्रामने

वियोंको पद्मपुर नामक स्थान पर भीषण युद्धमें हरा चक्रवर्माको राज्य सौंपा। युद्धमें चक्रवर्माके हाथ शङ्करवर्मा मारे गये। फिर शम्भुवर्धन सैन्य संग्रह करने लगे। किन्तु एकाङ्गोंके युद्धमें योग देनेसे चक्रवर्मा अनायास सिंहासन पर बैठे थे। भूभट नामक किसी सेनानीने शम्भुवर्धनको पकड़ राजाके समक्ष काट डाला।

चक्रवर्माने राजा हो बहुत कुछ शान्ति स्थापन की थी। उसी समय रङ्ग नामक कोई विदेशी डोम्ब गायक तिलोत्तमा जैसी सुन्दरी हंसी और नागलता नाम्नी दो कन्या ले राजसभामें गाने गया। दोनों सुन्दरियोंके रूपमें मोहित हो राजाने उन्हें ग्रहण किया था। हंसी प्रधान राज्ञी हुईं। उसी सम्पर्कसे शिक्षित हो डोम्ब राज्यमें प्रधान बन गये। फिर डोम्बों के कारण राज्यमें भयानक अत्याचार होने लगा। चक्रवर्माने शैव लोगोंके लिये चक्रमठ प्रतिष्ठा किया था। उसका निर्माण शेष होते न होते अन्तःपुरमें १६ लौकिकाब्दके समय डामरोंने राजाको मार डाला।

उसके पीछे शर्वट और अन्यान्य मंत्रीने पार्थपुत्र उन्मत्तावन्तिको राजा बनाया था। वह अत्यन्त अत्याचारी रहे। उन्होंने पितामाता एवं शिशु भ्राता भगिनी आदिको कई दिन अनाहार रख नाना यंत्रणा प्रदानपूर्वक काट डाला। प्रभागुप्त, शर्वट, छोज, कुमुद अमृताकर और प्रभागुप्तके पुत्र देवगुप्त उन्मत्तावन्तिके प्रिय और समधर्मा मंत्री थे। रक्क नामक कोई अतिशय साहसी वीरपुरुष सेनापति रहे। उनने डामर सरदारके घरके पास पद्मवनमें रक्कश्रीदेवीको अधिष्ठित देख बिलकुल उसी आदर्श पर रक्कजाया नाम्नी देवीको प्रतिष्ठा किया। काश्मीरीय १५श लौकिकाब्दको उन्मत्तावन्तिने पञ्चत्व पाया।

उसके पीछे राजान्तःपुरकी रमणियोंके चक्रान्तसे अज्ञातकुलशील कोई शिशु राजा हुवे। लोग उन्हें राजपुत्र शूरवर्मा कहते थे। काम्पनराज कमलवर्धन उस समय उच्छृङ्खल डामरोंको शासन कर मडव नामक स्थानमें रहते थे। उनने यह सुनते ही ससैन्य राजधानीको आक्रमण किया कि शिशुराज जयस्वामीके दर्शनको गये थे। तंत्री, एकाङ्गि प्रभृति सकल सैन्य दैववश हार गया। उसके पीछे उनने ब्राह्मणोंको बुला उपयुक्त राजनिर्वाचनका आदेश दिया था। उनने सोचा कि वही राजा बनाये जांयगे। किन्तु ब्राह्मणों ने लोकनिर्वाचनमें प्रवृत्त हो देखा कि उत्पलका वंशीय कोई न था। पिशाचकपुरके वीरदेव-पुत्र कामदेव मेरुवर्धनके घरमें शिक्षकता करते थे। उनके पुत्र प्रभाकर शङ्करवर्माके कोषाध्यक्ष रहे। उनने सुगन्धाके साथ तंत्रियोंके युद्धमें प्राणत्याग किया। प्रभाकरके पुत्र यशस्कर राज्यकी दुरवस्था देख स्वीय बन्धु फाल्गुनकके राज्यमें जा पहुंचे। वह किसी दिन स्वप्न देख स्वराज्यको लौटे थे। ब्राह्मणोंने उन्हें देखते ही राजपदमें वरण किया।

कल्यपालके वंशमें स्त्रियों, मंत्रियों और अज्ञातकुलशील बालकोंको छोड़ ८ राजा हुवे। काश्मीर राज्य उक्त वंशके हस्त ८४ वर्ष ४ मास रहा।

यशस्कर राजा हो कर सुख-शान्तिसे सुविचारपूर्वक राजत्व करने लगे। उनमें भी एक दोष था। वह लल्ला नाम्नी किसी नीचजातीय भ्रष्टा रमणीको प्राणकी अपेक्षा भी अधिक चाहते थे। उन्होंने उसीको पत्नियों प्रधानमें बनाया। यशस्करसे स्वपुत्र संग्रामदेवको छोड़ दिया था। अवशेषको वह उदरपीड़ासे आक्रान्त हुवे और स्वीय पितृव्यपुत्र रामदेवके बेटे वर्णटको राज्यमें अभिषिक्त कर चल बसे। किन्तु वर्णटने पीड़ित पितृव्यका कोई संवाद न लिया और अपना समय नवराज्यके आमोदमें लगा दिया था। यशस्कर भ्रातुष्पुत्रके उस व्यवहारसे मर्माहत हुवे। उनने मृत्युकाल संग्रामदेवको राज्य दे स्वप्रतिष्ठित यशस्कर स्वामी नामक अर्धनिर्मित देवालयमें कालयापन किया था। उसी मन्दिरमें पर्वगुप्त प्रभृति कई लोगोंने धनरत्न दास दासी हरण कर उन्हें एकाकी छोड़ दिया। २४ लौकिकाब्दकी भाद्रकृष्णतृतीयाको राजा तीन दिन अचिकित्सा और असहाय रह मृत्युके मुखमें पड़े। महिषी त्रैलोक्यदेवीने सहगमन किया था।

उसके पीछे पर्वगुप्त, भूभट प्रभृतिने शिशु संग्रामको

राजा और उनकी पितामहीको अभिभाविका बनाया। (पैर तिरछे रहनेसे लोग उन्हें वक्राङ्घ्रिसंग्राम कहते थे) काल पाकर पर्वगुप्तने वृद्धा राजमाता तथा अन्य पांच सहकारियोंको वध किया था। फिर वह राज्यके प्रधान बन बैठे, किन्तु राजा शिशु संग्राम ही रहे। एकाङ्गोंके भयसे हठात् वह उन्हें मार न सके थे। शेषको किसी दिन सैन्यदलके साथ रातके समय राजधानी पर आक्रमण किया। राजभक्त मंत्री रामवर्धन विनष्ट हो गये। पर्वगुप्त विलम्ब न कर उसी समय सिंहासन पर बैठे थे। वेलावित्त व्यक्तिने गलेकी माला पकड़ उन्हें भूमिपर निक्षेप किया। पर्वगुप्तने उठ किसी दूसरे घरमें जा वक्राङ्घ्रिसंग्रामको मार डाला।

२४ लौकिकाब्दके फाल्गुन मासकी कृष्णदशमीको पर्वगुप्त राजा हुवे। वह विशोकपर्वतके पार्श्ववर्ती जनपदराज दिविर अभिनवके पौत्र संग्रामगुप्तके पुत्र थे। पर्वगुप्तने स्कन्द मन्दिरके निकट पर्वगुप्तेश्वर नामसे देवताको प्रतिष्ठा किया। फिर यशस्करको किसी पत्नीके रूपमें मुग्ध हो उन्होंने यशस्कर स्वामीका मन्दिर सम्पूर्ण करा दिया। मन्दिर शेष होने पर राजमहिषी पापीके हाथमें न जानेसे ज्वलच्चिता पर चढ़ीं। पर्वगुप्त भी जलोदर रोगसे पीड़ित हो सुरेश्वरीके मन्दिरमें रह २६ लौकिकाब्दके भाद्रमासकी कृष्णत्रयोदशीको मर गये।

पर्वगुप्तके पीछे उनके पुत्र क्षेमगुप्तको राज्य मिला। वह भी अतिशय सुरापायी और आजन्म अत्याचारी थे। फाल्गुन और जिष्णु वंशीय वामनादि उन्हें सर्वदा पापमें उत्साह देते थे। द्यूतक्रीड़ा, रमणी और मद्यको कभी छोड़ते न थे। उसी समय यशस्करके मंत्री फाल्गुनभट्टने फाल्गुनस्वामी नामक देवताको प्रतिष्ठा किया। कम्पनराज वृद्ध रक्कने फिर डामर सरदारको मार डालनेके लिये जयेन्द्रविहारमें अग्नि लगाया था। डामर सरदार उसमें छिपे थे। रक्कने पतनोन्मुख विहारसे बुद्धमूर्तिको निकाल लिया और उसके प्रस्तरादिसे पथके पार्श्व राजाके नामसे क्षेमगौरीश्वर देवताको प्रतिष्ठित किया। लोहरदुर्गके शासनकर्ता सिंहराजने स्वकन्या दिद्दाको क्षेमगुप्तके साथ व्याहा था। दिद्दाके मातामह साही रहे। उनने क्षेमगुप्तसे धन ले भीमकेशव देवताको प्रतिष्ठा किया। द्वारपति फाल्गुनकन्या चन्द्रलेखा क्षेमगुप्तकी दूसरी महिषी थीं।

क्षेमगुप्त मृगयाप्रिय थे। वह शिकारके लिये दामोदरवन, लल्यान और शिमिक प्रभृति स्थानमें सर्वदा घूमा करते थे। उल्कामुखी-मृगयामें उनको बड़ा आमोद मिलता था। ३४ लौकिकाब्दके पौषमासकी कृष्णचतुर्दशीको रात्रिके समय वह शिकार करने गये थे। वहां किसी उल्कामुखीके मुखमें प्रज्वलित-उल्का देख भयसे उनको लूतामय ज्वर चढ़ा और उसी ज्वरमें उनका काल हुवा। वह हुष्कपुरके निकट वराहमन्दिरमें रहने लगे थे। उस स्थानमें उनने क्षेममठ और श्रीकण्ठ नामसे २ मन्दिर बनाये। फिर उसी मासके शुक्लपक्षको उनका मृत्यु हुवा। उनने ८ वत्सर राजत्व किया था।

क्षेमगुप्तके पीछे उनके शिशुपुत्र द्वितीय अभिमन्यु महिषी दिद्दाके तत्त्वावधानमें राजा हुये उसी वक्त लङ्केश्वर बाजारके निकट भयानक अग्निदाह आरम्भ होनेपर वर्धनस्वामीके मन्दिरसे भिक्षुकोंके पार्श्वपर्यन्त समस्त स्थान जल गया। क्षेमगुप्तके मरनेपर अन्यान्य रानी उनके साथ मर मिटीं। केवल दिद्दा नरवाहनके अनुरोध और रक्कके यत्नसे सहमृता न हुवीं। वह अल्पबुद्धिमती रहीं। उसीसे राजाकी अन्त्येष्टिक्रिया शेष होते न होते फाल्गुनादि मंत्रियोंने विद्रोहिता करनेकी चेष्टा लगायी। किन्तु शेषको विद्रोह आप ही बन्द हो गया। फाल्गुन राजधानी छोड़ पर्णोत्स नामक स्थानमें जा बसे। पर्वगुप्तने राजा होते समय भूभट और छोज नामक मंत्रीयोंके साथ अपनी दो कन्याओंका विवाह कर दिया था। उनके महिमा और पाटल नामक २ पुत्र हुवे। उस समय उनने भी राज्यलोभसे हिमकादि मंत्रियोंके साथ योगदान किया था। महिषी दिद्दाने वह बात सुन उनको राजप्रासादसे निकाल दिया। महिमाने स्वीय श्वशुर शक्तिसेनका आश्रय लिया था। परिहासपुरसे हिम्मक, मुकुल एवं एरामन्तक और ललितादित्यपुरसे अमृताकरके पुत्र उदयगुप्त तथा

यशोधर उनमें जा मिले। एकमात्र मंत्री नरवाहन महिषी दिद्दाके पक्षमें रहे। महिषीने शेषको ललितादित्यपुरके ब्राह्मणोंके साहाय्यसे सन्धिकर और यशोधरको कम्पन प्रदेश दे आशुविपद्से मुक्ति पायी अवशेषको महिमा अभिचारक्रियासे मारे गये। उसके पीछे कम्पनराज यशोधरसे साहीराज थक्कनका युद्ध हुवा। रक्कादिके परामर्शसे दिद्दाने दोष विवेचनापूर्वक यशोधरको कम्पनसे निकालना चाहा था। हुरामत्त, शुभधर प्रभृतिने पूर्व सन्धिको कथा स्मरण कर ससैन्य शूरमठके निकट राजसैन्यपर आक्रमण किया। सिंहद्वारपर एकाङ्ग सैन्यदल दुर्भेद्य प्राचीरकी भांति खड़ा हो लड़ने लगा, किन्तु पराजित होते होते राजकुलभट्टके ससैन्य युद्धमें पहुंच योग देनेसे राजसैन्य जीत गया। युद्धमें हिम्मक मरे और शुभधर, मुकुल, उदयगुप्त तथा यशोधर बन्दी हुवे। हुरामत्तने गयायात्री काश्मीरीयोंसे गयाली जो कर लेते थे उसे निवारण किया। रानीने उनको गलेसे पत्थर बांध वितस्तामें डुबा दिया। अवशेषको वह मंत्री नरवाहन की परामर्शसे निरापद राजप्रशासन करने लगी। नरवाहन राजानक पद पर अधिष्ठित हुवे। रानी नरवाहनको सम्पूर्ण हिताकाङ्क्षी समझ सर्वापेक्षा आदर करती थीं। किसी धूर्त कोषाध्यक्षने उसे सह न सकने पर कौशलसे उभयके मध्य मनोमालिन्य बढ़ा दिया। क्रमशः दिन दिन महिषी नरवाहनको प्रकाश्य रूपसे अपमान और घृणा करने लगीं। नरवाहनने शेषको घबड़ा कर आत्महत्या कर डाली। उसी समयसे रानी की निष्ठुरता बढ़ी थी। वह डामर सरदारको सपरिवार मार डालने पर प्रवृत्त हुयीं। मंत्री फाल्गुनको फिर कार्यभार मिला था। इधर कार्तिक मासकी शुक्ल तृतीयाको (४८ लौकिकाब्द) महाराज अभिमन्युने यक्ष्मारोगसे परलोक गमन किया।

उसके पीछे दिद्दाके अधीन उनके शिशु पौत्र (अभिमन्युके पुत्र) नन्दिगुप्त राजा हुवे। उसबार पुत्रशोकसे रानी चेती थीं। वह फिर प्रजाके हितकर कार्यमें रत हुयीं। उन्होंने अभिमन्यु पुर नगर, अभिमन्युस्वामी देवता, अपने नामसे दिद्दापुर नगर और दिद्दास्वामी देवताको स्थापन किया था। उसके बाद दिद्दाने स्वामीको स्वर्गकामनासे कङ्कणपुर नगर और "दिद्दास्वामी" नामक श्वेतप्रस्तरकी विष्णुमूर्तिको प्रतिष्ठा की। उन्होंने लोहरवासियों और काश्मीरीयोंके सुविधार्थ एक पान्थनिवास और पिछनामसे एक ब्राह्मणावास एवं सिंहस्वामी नामक देवताको स्थापन किया। वितस्ता और सिन्धुके सङ्गमस्थल पर दिद्दाने दूसरे भी कई देवता स्थापन किये थे। उन्होंने सब मिलाकर ६४ देवमूर्ति स्थापन की थीं। उनकी वल्गा नाम्नी वैवधिकजातीय किसी दासीने वल्गामठ नामक मठ स्थापन किया। एक वर्ष पीछे रानी दिद्दाका शोक दूर हुवा। वह फिर कुकर्ममें लग गयीं। उस बार उनने अग्रहायण मास (४९ लौकिकाब्द) अभिचारक्रियाके साहाय्यसे अपने शिशुपौत्र नन्दिगुप्तको मार उसके सहोदर त्रिभुवनगुप्तको राजा बनाया था। किन्तु २ वर्ष पीछे अग्रहायण मास को दिद्दाने उनको भी मार डाला। त्रिभुवनगुप्तके पीछे उनके दूसरे सहोदर भीमगुप्त राजा हुवे। किन्तु वह भी राक्षसी पितामहीके हाथ (५६ लौकिकाब्दको) मारे गये। उसी बीच मंत्रिवर फाल्गुन भी विनष्ट हुवे।

भीमगुप्तके बाद दिद्दा प्रकाश्य रूपसे सिंहासन पर बैठ गयीं। उनको कुप्रवृत्तिके साधनमें सम्मत न होनेसे अनेक व्यक्ति विनष्ट हुवे। शेषको उनके प्रिय उपपति तुङ्ग मंत्री बने थे। तुङ्ग स्वीय भ्रातृपञ्चकसे मिल राज्य हरणकी चेष्टामें घूमने लगे। रानी दिद्दाके भ्रातुष्पुत्र विग्रहराज तुङ्गको मार डालना चाहते थे। दिद्दाने वह बात समझ अर्थबलसे विग्रहराजको देशसे निकाला, कर्दमराजको मारा और तुङ्गके इच्छानुसार रक्कके पुत्र सुलक्षणादि मंत्रियोंको भी राजसभासे दूरीभूत किया। मंत्री फाल्गुनके मरनेपर राजपुरीराजविद्रोही हो गये। तुङ्गने उनको भी जीत 'राजपुरीराज' और डामरराज्य तथा कम्पन जयकर 'कम्पनराज' उपाधि ग्रहण किया था। उसके बाद दिद्दाने स्वीय भ्राता उदयराजके पुत्र संग्रामराजको युवराज बनाया। शेषको (८९ अब्द) भाद्रकी शुक्लाष्टमीके दिन दिद्दा मर गयीं।

इसप्रकार कण्टकवंशके दश व्यक्तियोंने राजा बन ६४ वर्ष और २३ दिन राज्य किया।

संग्रामराज क्षमापतिके नामसे सिंहासन पर बैठे थे। वह गम्भीर और प्रतापशाली राजा रहे। उनके समय भी तुङ्ग महाप्रतापशाली थे। सुतरां राज्यके अन्यान्यप्रधान प्रधान मंत्री और कर्मचारी तुङ्गका प्रताप खर्व करनेके लिये विद्रोही हो गये, किन्तु विद्रोहियोंमें अनेक व्यक्ति विनष्ट हुवे। तुङ्ग शेषको भद्रेश्वर नामक किसी कायस्थका साहाय्य ले विपदमें पड़े थे। उसी समय तुरुष्कराज हमीरने साही राज्य आक्रमण किया। त्रिलोचनपाल साहीने काश्मीरराजसे साहाय्य मांगा था। तुङ्ग ससैन्य साही राज्य जा पहुंचे। युद्धमें विपक्ष पराजित हो भागा था। किन्तु तुङ्गने त्रिलोचनके कथनानुसार पर्वतपार्श्वमें शिविर स्थापन न किया। उसीसे नूतन तुरुष्कसैन्यने जा पर्वतपार्श्वसे काश्मीरी सैन्यको छिन्न भिन्न कर दिया। तुङ्ग भाग कर राजाको लौटे थे। त्रिलोचनने हस्तिक नामक स्थानमें आश्रय लिया। साही राज्य चिरदिनके लिये हमीरके अधिकार में चला गया। तुङ्गके पुत्र कन्दर्पसिंह गर्वित और विलासी रहे। उसी समय विग्रहराज गोपनीय पत्र द्वारा तुङ्गवधके लिये भ्राताको पुनः २ अनुरोध करने लगे। राजा क्षमापति किन्तु हठात् वह कार्य कर न सके। अवशेषमें दवाब पड़नेसे किसी दिन मन्त्रणा का परामर्श करनेके छलसे उन्होंने मन्त्रगृहमें तुङ्गको बुलाया था। गृहमें प्रवेश करते ही शर्करक और अन्यान्य अनुचर तुङ्गपर टूट पड़े। तुङ्गके विनष्ट होने पर उनके पुत्र भी पकड कर मार डाले गये। उक्त घटनाके पीछे तुङ्गके भ्राता नाग कम्पनराज बने थे। कन्दर्पकी स्त्री नागके साथ भ्रष्टाचारमें रत हुयीं। विचित्रसिंह और भावसिंह नामक कंदर्पके दो पुत्रोंने स्व स्व माताके साथ राजपुरीको पलायन किया था। तुङ्गके मरनेके पीछे दरद, डामर और दिविर विद्रोही हो गये। क्षमापतिने स्वयं कोई प्रासाद वा मन्दिरादि बनाया न था। उनकी कन्या लोठिकाने एक अपने और एक माता तिलोत्तमाके नामसे मन्दिर प्रतिष्ठा किया। भद्रेश्वरने भी एक मठ बनाया था। श्रीलेखा नाम्नी महिषी संग्रामकर नामक (सुगन्धिसिंहके औरस और जयलक्ष्मीके गर्भसे उत्पन्न) तुङ्गके किसी भ्रातुष्पुत्रके साथ भ्रष्टा हो गयीं। ४ लौकिकाब्दको १ लो आषाढ़को राजा क्षमापतिने परलोक गमन किया।

क्षमापतिके पीछे उनके पुत्र श्रीलेखाके गर्भजात हरिराज राजा हुवे। वह अति सुशील प्रजारञ्जक राजा थे। हरिराज २२ दिन मात्र राजत्व कर शुक्ल अष्टमीको कालग्रासमें पड़े। कहते हैं कि श्रीलेखा पुत्रके निकट स्वीय भ्रष्टाचारके लिये तिरस्कृत हुयीं थीं। उसीसे अभिचारद्वारा उन्होंने उनको मार डाला।

उसके पीछे श्रीलेखाने स्वयं राजत्व करनेको अभिषेकका आयोजन लगाया था। उसी समय हरिराजके धात्रीपुत्र सागरने एकाङ्गोंसे मिल हरिराजके कनिष्ठ अनन्तदेवको राजा बना दिया। वृद्ध विग्रहराज शिशु भ्रातुष्पुत्रका राज्य हरण करनेके लिये लोहरसे वृहत् सैन्य ले काश्मीरमें प्रवेश कर लोठिकामन्दिरमें रहने लगे। श्रीलेखाने संवाद पानेपर एक दल सैन्य भेज मन्त्र विद्रोहियोंका विनाश किया था। उसके पीछे वंशनाश होनेसे अनन्तदेवके साहीराजपुत्र प्रियपाल बन गये। ज्येष्ठ रुद्रपाल दस्युदल तथा कायस्थगणको प्रतिपालन करते और राजाको आपातसुखकर मन्त्रणा देते थे। उन्होंने जालन्धरराज इन्दुचन्द्रकी अतिरूपवती ज्येष्ठा कन्या आशामतीके साथ अपना और उसकी कनिष्ठा सूर्यमतीके साथ अनन्तदेवका विवाह किया। श्रीलेखाने उसी समय अपने स्वामी और पुत्र (हरिराज) की स्वर्गकामनासे दो मन्दिर बनवाये थे। कम्पनराज त्रिभुवन डामरोंसे मिल विद्रोही हुवे। फिर उन्होंने काश्मीर आक्रमण किया। एकाङ्गोंके साहाय्यसे अनन्तदेवने उक्त विद्रोह दबाया और त्रिभुवनको भगाया था। उसके पीछे अनन्तदेवने स्वीय प्रियपाल ब्रह्मराजको कोषाध्यक्ष बनाया। किन्तु उन्होंने रुद्रपालकी प्रतिपत्ति देख हिंसासे पदत्यागपूर्वक पांच म्लेच्छराज, दरद और डामर लोगोंसे मिल दरदराजके सेनापतित्वमें काश्मीर आक्रमण किया था। रुद्रपाल और अनन्तदेव एकाङ्ग सैन्य ले वीरपुष्ठ

नामक स्थानपर युद्धार्थं उपस्थित हुवे। दूसरे दिन प्रातःकाल युद्धारम्भ होना ठहर गया। उसी बीच दरदराजने कोड़ापिण्डारक नामक नागरके आलयमें उत्पात मचाया था। उसीसे नागोंने समझा कि युद्ध आरम्भ हो गया। फिर नाग भी जा पहुंचे थे। शेषको वास्तविक काश्मीरके सैन्यसे युद्ध होने लगा। युद्धमें म्लेच्छराज और दरदराज मारे गये। रुद्रपालने मुकुटमण्डित दरदराजका मस्तक अनन्तदेवको उपहार दिया था। उद्यनवत्स नामक दरदराजके भ्राताने फिर अभिचारक्रियाके साहाय्यसे रुद्रपाल और उनके भ्रातावोंको विनष्ट किया। उसके पीछे रानी सूर्यमती या सुभटाने वितस्तातीर सुभटामठ नामक शिवमन्दिर बनाया। उसी मन्दिरके निकट रानीने स्वीय कनिष्ठ सहोदर आशाचन्द्र वा कल्लनके नामसे एक ग्राम भी स्थापन किया था। एतद्भिन्न उन्होंने स्वामीके नामसे अमरेश्वर, ज्येष्ठभ्राता शिल्लनके नामसे विजयेश्वर और त्रिशूल, वाणलिङ्ग प्रभृति शिव एवं मन्दिरकी प्रतिष्ठा की। कुछदिन पीछे उनके गर्भजात शिशुसन्तान राजराजका मृत्यु हुवा। फिर राजा और रानी दोनों राजभवन छोड़ सदाशिव-मन्दिरके निकट रहने लगे। उसी समयसे चिर दिनके लिये काश्मीरका पुरातन राजप्रासाद परित्यक्त हुवा। कारण तत्परवर्ती राजा भी उक्त मन्दिरके निकट ही जाकर रहे थे। उसी समय डक्कक नामक एक देशिक भांड़ने राजाका बड़ा प्रियपात्र होनेसे यथेष्ट धनरत्न लाभ किया। यहांतक कि उससे राजकोष शून्य प्रायः हो गया। रानी सूर्यमतीने वह बात देख राजकोषको अपने हाथमें ले अपरिमित व्यय निवारण किया था। त्रिगर्तदेशीय केशव ब्राह्मण उस समय प्रधान मन्त्री रहे। गौरीशतिलद्यालय नामक स्थानमें भूति नामक एक वैश्य थे। उनके तीन पुत्र रहे—हलधर, वज्र और वराह। हलधर रानी सूर्यमतीके अनुग्रहसे प्रधान मन्त्री बन गये। उन्होंने मन्त्री हो राज्यमें अनेक शुभ अनुष्ठान किये। हलधरने वितस्ता और सिन्धुके सङ्गमस्थल पर एक स्वर्ण-मन्दिर भी निर्माण कराया था। उनके कनिष्ठ भ्राता वराहके पुत्र बिम्ब अतिशय वीर थे। उन्होंने डामरों और खशोंको वशीभूत किया, किन्तु खशयुद्धमें स्वयं प्राण दे दिया। कुछ दिन पीछे स्त्रीके कहनेसे अनन्तदेवने स्वयं सिंहासन छोड़ स्वपुत्र कलस वा द्वितीय रणादित्यको राजा बनाया। मन्त्री हलधरने उक्त प्रस्तावमें बाधा डाली थी, किन्तु राजाने उनकी न सुनी। शेषमें उद्धत युवा रणादित्य पिताको और उसकी स्त्रियां रानी सूर्यमतीको सर्वथा ही अग्राह्य करने लगीं। रणादित्य अधीन राजावोंसे जैसा सम्मान पाते, पिताको भी वैसाही करनेका आदेश सुनाते थे। उस समय राजा और रानी उभयको चैतन्य हुवा। हलधरने कौशलपूर्वक फिर राज्यभार वृद्ध राजाको सौंपा था। उद्धत रणादित्य नाममात्रको राजा रह गये। उसी समय विग्रहराजके पुत्र क्षितिराजने राजा अनन्तके निकट जाकर कहा था—"हमारे निजपुत्र भुवनराज और पौत्र नीलने हमें राज्यसे निकाल दिया है। विग्रहराज जिन ब्राह्मणोंको समादर करते थे, उन्होंने उनके नामके कुक्कुर पाल उनके गलेमें यज्ञोपवीत डाला है। अतएव हम उनका मुख न देखेंगे। हम आपके शिशु पौत्रको अपने राज्यका उत्तराधिकारी बनाते हैं। आप उस राज्यका भार ग्रहण कीजिये।" उक्त कथा कह क्षितिधरने चक्रधरमें रह विष्णुसेवासे जीवनयापन किया। राजा अनन्तने तन्वङ्गराज नामक स्वीय पितृव्यपुत्रको क्षितिराजके राज्यमें पौत्रके पक्ष पर शासनकर्ता बनाया। उसी समय जिन्दुराज नामक किसी व्यक्तिने उच्छृङ्खल डामर और दरद लोगोंको दमन किया था। राजाने उसे कम्पनराज्यका राजा बना दिया। उसके बाद हलधर मर गये। उन्होंने मरते समय कहा था—"महाराज! कम्पनापति जिन्दुराज और कोषाध्यक्ष नागके पुत्र जयानन्दसे सावधान रहियेगा। हठात् परराज्यपर आक्रमण करना भी अच्छा नहीं।" उक्त परामर्शके अनुसार अनन्तने सुविधा देख जिन्दुराजको कारावद्ध किया। काल पाकर जयानन्द और साहीराजपुत्र विज्जपिय्यराज तथा आज नाममात्र राजा रणादित्यको केवल कुपथमें लगाने लगे। उसी समय उनके देवोपम गुरु अमरकण्ठके मरजानेसे उनके हतभाग्य पुत्र

प्रमोदकण्ठ गुरु हुवे। मंत्री हलधरके एक दुर्दान्त पुत्र कनक मिहुरोंके शिरोमणि थे। वह बलपूर्वक प्रजाकी रमणियोंको गृहसे अपने दलमें पकड़ ले जाते थे। उसी प्रकार उक्त दोनो सङ्गियोंका साथ पाकर रणादित्य यथारीति नरकके पथ पर अग्रसर हुवे। उन्होंने भी गुरु प्रमोदकण्ठकी भांति स्वाय भगिनी कलणा और कन्या नागाका सतीत्व हरण किया था। वृद्ध राजा और रानीने उक्त संवाद सुन कपाल पर कराघात कर राज्य परित्यागपूर्वक निर्जनमें रहने लगे। क्रमशः प्रजाको स्त्रीपुत्रके साथ घरमें रहना असम्भव हो गया। किसी दिन रणादित्य जिन्दुराजका पुत्रवधूपर आसक्त हो रात्रिके समय उसके घरमें घुस गये। शेषको चण्डालोंके हाथ प्रहारित हो मृतप्रायः अवस्थामें अपना परिचय दे वह भाग गये थे। वृद्धराज अनन्तदेव उस समय पुत्रकी दुराशाका चरमकाल उपस्थित देख ५५ लौकिकाब्दको विजयक्षेत्र नामक स्थानमें देवसेवासे कालयापन करने लगे। तन्वङ्गराज सूर्यवर्मा और डामरराज चीरने उनका अनुगमन किया। उसके बाद रणादित्य स्वाधीन हो गये। फिर उन्होंने जिन्दुराजको स्वाधीनता दे विजयक्षेत्र पर वृद्ध पितासे लड़ने भेजा था। राज्ञी सूर्यमतीने पुत्रको दुर्बुद्धिसे उन्हें भर्त्सना किया। भाग्यक्रमसे रणादित्य उस भर्त्सनासे निरस्त हुये, किन्तु उनके दुर्व्यवहार न गये। अवशेषको वृद्धराज अनन्तदेवने पीड़ित प्रजा और अनुचरगणके कर्कश वाक्यसे उत्तेजित हो पुत्रके हाथसे राज्यभार निकालनेका आयोजन लगाया था। उधर राज्ञी सूर्यमतीने स्वीय पौत्र हर्षको बुला भेजा। हर्षने जाकर पितामह पितामहीके चरणमें प्रणिपात किया। उक्त संवाद पा कलस और रणादित्य भीत हुवे। उनने पिता-माताके निकट दूत भेज कुछ अस्थिर मूर्ति धारण की थी। राज्ञीके अनुरोधसे वृद्ध अनन्त राज्यको लौटे किन्तु दो मास राज्यमें रह उन्होंने देखा कि गुणधर पुत्र उन्हें बन्दी बनावेंगे। वह अविलम्ब राज्य छोड़ जयेश्वर-मन्दिरमें रहने लगे। रणादित्यने रात्रिकाल अग्नि लगा वह देवालय जला डाला। अग्निदाहमें वृद्धराज, रानी और अनुचरवर्गके परिहित वस्त्र मात्र व्यतीत सब कुछ जल गया। राज्ञी अग्निमें जलने जाती थीं। किन्तु तन्वङ्गके पुत्रोंने उन्हें निवारण किया। शेषको वृद्ध राजा और रानी दोनों अनुचरोंके साथ अनावृत देह नदी पार हो किसी ओर चल दिये। उन्होंने एक मणिमयलिङ्ग तक्षराजके हाथ बेच सत्वर लक्ष मुद्रा संग्रह किया। और वनमें कुटीर बना अपना डेरा डाल दिया। देवमन्दिरको जल जानेपर महाराजने फिर बनवाना चाहा था। किन्तु रणादित्यने निषेधकर भेजा और उन्हें पर्णोत्स नामक स्थान चलेजानेको कहा। राज्ञी सूर्यमतीने भी स्वामीसे वही करनेको अनुरोध किया था। किन्तु वृद्धराज वृद्धकालमें देवस्थान छोड़नेसे कातर हुये। उसी बात पर स्त्रीपुरुषमें कलह पड़ गया। वृद्धराजने स्त्रीके कर्कश वाक्यसे और क्रोधवश शूलारोहणकी भांति गोपनमें अपने तलवार भोंक ली। उससे रक्तकी धारा बही थी। राजाने कहा कि उन्हें रक्तातिसार हुवा था। बाहरी लोगोंने उसीपर विश्वास किया। शेषको विजयेशदेवके सम्मुख काश्मीरीय ५७ लौकिकाब्दमें कार्तिकी पूर्णिमाके दिन महाराज अनन्तदेवने इहलोक छोड दिया। रानीने चितारोहणका उद्योग लगाया था। कलस संवाद मिलने पर ससैन्य जाकर उपस्थित हुवे। किन्तु कई अनुचरोंकी मिथ्याप्ररोचनामें मातासे न मिले। रानी उन्ही अनुचरोंको शाप दे चिता पर चढ़ गयीं।

पितामहीका धनरत्न मिलनेसे हर्षने पितासे विवाद लगाया था। रणादित्य वा कलस उस समय निर्धन रहे। सुतरां धनवान् पुत्रको वह कौशलसे अपने वशमें लाये। विधाताकी महिमा आश्चर्यसे भरी है। उसी समयसे महाराज हर्षने सत्पथ अवलम्बन किया, किन्तु एकबारगी ही वह अपना स्वभाव छोड़ न सके थे। उन्होंने क्रमशः त्रिपुरेश्वरका स्वर्णमन्दिर बनाया और कलसेश्वर एवं अनन्तेश्वर नामक देवताको स्थापन किया। वह तुरुष्कदेशीय कई युवती हरण कर लाये थे। वृद्ध वयसमें भी उनके ७० कामिनी रहीं। जिस विजयेश्वर मन्दिरको उन्होंने जलाया, उसे फिर न बनवाया था। केवल देवमूर्तिके ऊपर स्वर्णछत्र चढ़ाया गया।

उसके पीछे राजपुरीके राजा सहजपाल मर गये। उनके पुत्र संग्रामपाल राजा बने थे। किन्तु उनके पितृव्य मदनपालने राज्य आक्रमण करनेकी चेष्टा लगायी। संग्रामने स्वीय कनिष्ठा भगिनी और यश-राजको काश्मीर भेज साहाय्य मांगा था। जयानन्द हठात् मर गये। मृत्यु काल जयानन्दने बिज्जुके सम्बन्धमें राजाको सतर्क किया था। राजाने बिज्जुको धनी और क्षमताशाली देख कुछ न कहा। बिज्जु राजाके मनोभङ्गका कारण देख सतर्क होनेके लिये विदेशको चलते हुवे, किन्तु अल्प दिनके ही मध्य मर गये। जयानन्दके मरने पर जिन्दुराज भी चलते बने। इसी प्रकार सती सूर्यमतीका शाप फला था। जयानन्दके पीछे उनके वंशीय वामन प्रधान मन्त्री हुवे। राजा कलसने उस समय अवन्तिस्वामी देवताके कई देवोत्तर ग्राम छीन कलसगंज नामक धनागार स्थापन किया था। उसके पीछे मदनपालने द्वितीय वार राजपुरीमें विद्रोह उपस्थित किया। काश्मीरराजने वप्पट नामक सेनापतिसे उन्हें पकड़ मंगाया था। उसी समय वारहदेवके भ्राता कन्दर्प द्वारपति हुवे और मदनपाल कम्पनापति बने। फिर राजा कलसने नीलपुर-नरेश्वर कीर्तिराजकी कन्या भुवनमतीसे विवाह किया था। ६३ लौकिकाब्दको वल्लपुरके राजा कीर्ति, चम्पाके राजा आसट, वल्लापुरके राजा कलस, राजपुरीके राजा संग्राम, लोहरराज उत्कर्ष, उरशाराज सङ्गट, कान्दके राजा गम्भीरसिंह और कांष्ठवाटके राजा उत्तमराज काश्मीरमें जा उपस्थित हुवे। कन्दर्पने उसके पीछे स्थापिक नामक दुर्ग जीता था। राजा कलस नृत्यगीतके बड़े भक्त रहे। उन्होंने जयवनके निकट तीन पंक्ति देवमन्दिर और कलसपुर नामक नगरको स्थापन किया था। उसी समय युवराज हर्षने नाना देशकी भाषा और सर्वशास्त्रकी शिक्षा पायी। वह महापण्डित और कवित्वसम्पन्न होनेसे सबके अत्यन्त प्रिय पात्र बन गये। वह बड़े दानशील रहे। धर्म और विश्वावट्ट नामक दो मन्त्रियोंने अनेक दिन चेष्टा करने पर उक्त हर्षको भी पिताके विरुद्ध उत्तेजित किया था। उन्होंने विश्वावट्टके परामर्शानुसार किसी दिन पिताको विनाश करनेके अभिप्रायसे अपने आलयमें बुलाया। शेषको विश्वावट्टने ही राजा कलससे सब भेद बताया था। युवराज उक्त वृत्तान्त सुन उस दिन पिताके पास न गये। उसके पीछे हर्ष भी नम्र पड़े थे। किन्तु उभय पक्षके दूतोंकी गड़बड़में सदाशिव एवं सूर्यमती गौरीश-मन्दिरके निकट ६४ लौकिकाब्दको पौष मासको शुक्ल षष्ठीके दिन पितापुत्रका एक युद्ध हो गया। युद्धमें हर्ष बन्दी हुवे। हर्षको बन्दी होते सुन रानी भुवनमतीने आत्महत्या की थी। हर्ष बंधे पड़े रहे। उनके प्रिय भ्राता प्रयाग साथ ही थे। तुक्ककी पौत्री सुगला हर्षकी एक पत्नी रहीं। उनके रूपमें वृद्ध राजा कलस मोहित हो गये। दुष्टा सुगलाने भी श्वशुरकी प्रेमार्थिनी हो स्वामीको मन्त्री नोनकके साहाय्यसे विष दिलवा दिया, किन्तु प्रयागने भेद भाव समझ हर्षको वह खिलाया न था।

पापीकी पापेच्छा न घटी। राजा कलसने फिर दुष्कार्य आरम्भ किया था। उन्होंने सूर्यदेवकी ताम्रमूर्ति मन्दिरसे निकाल कर फेंक दी। सन्तानहीनका विषयादि राजाको प्राप्य मान वह धनिकोंके सन्तान मारने लगे। क्रमशः उनके भीषण प्रमेह रोग हुवा और नारकीय रक्त बह चला। उस समय पुत्रके हाथ राज्य दान करनेके लिये उन्होंने लोहरसे उत्कर्षको बुलाया था। शेषको मृत्यु काल समस्त धनरत्न वितरण कर मार्तण्डके सूर्यमन्दिरमें रहनेको वह चले गये। मरनेके समय उन्होंने हर्षको देखना चाहा था। किन्तु उत्कर्षके लोगोंने उन्हें जाने न दिया। वह बांधकर अलग रखे गये थे। उत्कर्षको बुलाकर कलसने कहा "दोनो भाई राज्य दो भागमें बांट लो" किन्तु समस्त कथा स्पष्ट कहते न कहते उनका वाक्य रुका था। ४९ वर्षके वयसमें ६५ लौकिकाब्दको अग्रहायण मासको शुक्ल-षष्ठीके दिन महाराज कलसने पञ्चत्व पाया। सम्मनिका प्रभृति ६ रानी और जयामती नाम्नी कोई प्रेयसी सहमृता हुवीं।

उत्कर्ष राजसिंहासन पर बैठे थे। हर्ष बन्दी ही रहे। पद्मश्री नाम्नी राज्ञीके गर्भजात विजयमल्ल प्रभृति भ्रातावोंके साथ उसी समय उत्कर्षका मनोविवाद

उपस्थित हुवा। जिस दिन महाराज कलसने राजधानीको त्याग किया, उसी दिन उत्कर्षके लोगोंने हर्षदेवको किसी स्वतन्त्र स्थानमें बांध दिया था। दूसरे दिन उन्होंने पिताके मरने और उत्कर्षके राजा बनने का संवाद सुना। पिताकी मृत्यु से उनका हृदय बहुत घबराया और अधीर हो उन्होंने रोना मचाया था। उसी समय उत्कर्षने वाद्यभाण्ड सह नगरमें प्रवेशकर उनके निकट लोगोंको भेज उन्हें स्नान करनेका अनुरोध किया। हर्षदेवने सोचा सम्भवतः उत्कर्ष उन्हें राजा बनानेवाले थे। किन्तु अनेक क्षण बीत गया उसका कोई लक्षण देख न पड़ा। अन्तको उन्होंने स्वयं आदमी भेज कहलाया था—"यदि आप चाहें तो हमें राज्यसे निकाल छोड़ दें और नहीं तो यदि हमें राज्यमें ही रखना चाहें तो हमारा प्राप्य राज्य हमें दे दें।" उत्कर्ष भी उन्हें राज्य सौंपनेकी आशा दे वृथा कालक्षय करने लगे।

उत्कर्षने राजा हो राजत्वके शासनादिका कोई प्रबन्ध बांधा न था। वह केवल इसी चेष्टामें लग गये कैसे कोषमें धन बढ़ेगा। उससे उन पर सब लोग विरक्त हुये। सुबुद्धि मन्त्री हर्षदेवको राजत्व देनेका परामर्श करते थे। उधर जयराज और विजयमल्लको उनका मासिक प्राप्य रीतिके अनुसार न मिला। विजयमल्लने स्वीय राजत्वको लौटनेका उद्योग लगाया था। उसी समय हर्षदेवने विजयमल्लसे अपनी मुक्तिकी बात बतायी। विजयमल्ल और जयराजने ज्येष्ठ भ्राताके लिये दुःखित हो सैन्य संग्रहपूर्वक राजधानीको आक्रमण किया था। उधर नोनक प्रभृति कुमन्त्रियोंके परामर्शसे उत्कर्षने हर्षदेवको मारनेके लिये कारागारमें कई सैनिक भेजे थे। उन्होंने वहां पहुंच हर्षदेवके सौजन्यमें मुग्ध हो पक्षावलम्बन किया। उसके पीछे उत्कर्षने शूर नामक मन्त्रीके हाथ राजदेशकी प्रतिभू स्वरूप वधज्ञापक अङ्गुरी न भेज भ्रमक्रमसे मुक्तिज्ञापक अङ्गुरी भेज दी थी। हर्षदेव मुक्त होनेपर उत्कर्षसे जा कर मिले। उस समय भी विजयमल्लसे नगरके बाहर युद्ध हो रहा था। उत्कर्षके अनुरोधसे हर्षदेव युद्ध निवारण करने गये। विजयमल्लने ज्येष्ठको मुक्त देख आनन्दसे उत्फुल्ल हो युद्ध रोक दिया। हर्षने फिर उत्कर्षके निकट जानेको प्रासादमें प्रवेश किया था। किन्तु मन्त्री विजयसिंहने उन्हें रोककर कहा—"क्या जान बूझ कर बेडी पैरोंमें डलवाते हैं? राजप्रासादमें जाकर एक बारगी ही सिंहासन अधिकार कीजिए।" उक्त कथा कह विजयसिंह उन्हें लेकर राजप्रासादके मध्य सिंहासनगृहमें उपस्थित हुवे। फिर उन्होंने हर्षदेवको सिंहासन पर बैठा अन्यान्य सुबुद्धि मन्त्रियोंको संवाद दिया था। उन्होंने जाकर हर्षदेवके अभिषेकका आयोजन किया। उधर विजयसिंहने स्वयं जा उत्कर्षको प्रहरिवेष्टित किसी घरमें रख छोड़ा। विजयमल्ल संवाद पाकर पहुंचे थे। नव भूपति हर्षदेव उनसे कहने लगे "भाई! तुम्हारे उद्योगसे ही हमने प्राण पाया और राज्य भी पाया है।" विजयमल्ल भ्रातृस्नेहमें मुग्ध हो गये।

कारागारमें नोनकने उत्कर्षसे मिल उन्हें स्वीय परामर्शसे कार्यकरनेको अनुयोग किया था। उत्कर्षने अनुयोगसे भग्नहृदय अन्य किसी गृहमें प्रवेश कर आत्महत्या की। सहजा और कय्या नाम्नी दो प्रेयसीने उनके साथ गमन किया था। लहर पर्वतमें उनकी दूसरी भी कई प्रियतमा उक्त संवाद सुनकर चितापर चढ़ गयीं। पर दिनमें शवदाह हुवा। किञ्चिदून २२ वर्ष वयसमें २४ दिन राजत्व कर उत्कर्ष परलोकको चले गये।

दूसरे दिन हर्षदेवने नोनक, शिल्हार, भट्ट, प्रशस्तकलस प्रभृतिको बुला कारागारमें डाला था। उनको बन्दी करनेके पीछे राज्यमें उसी दिन मानो शान्ति स्थापित हो गयी। विजयमल्ल हर्षदेवके दक्षिणहस्त हुवे। कन्दर्प द्वारपति, मदन कम्पनपति, वज्रपुत्र सुम प्रधानमन्त्री और सुमके कनिष्ठभ्राता जयराज राजानुचराध्यक्ष बने थे। प्रहस्त और कलसादि क्षमा प्रार्थना करनेसे पूर्वपदपर नियुक्त हुवे। केवल नोनकको सकल दुर्घटनाका मूल समझ फांसी दी गयी। कुछ दिन पीछे दुष्टके परामर्शमें पड़ विजयमल्लने राज्य हरण करनेकी आशासे दरद देशके डामरोंका

साहाय्य लिया और शीत बीतते ही युद्धको गमन किया था। किन्तु पथिमध्य गलित तुषारसे आच्छन्न हो स्वयं उन्होंने अपना प्राण छोड़ा।

हर्षने फिर सकल बाधा विपद्से मुक्त हो राज्यकी उन्नतिमें मन लगाया था। उन्होंने काश्मीरमें परिच्छदादिका-उत्कर्ष साधन और कर्णाटी मुद्राके आकारमें मुद्राका प्रचार किया। वह पण्डित-प्रतिपालक रहे। कलसके राजत्वकाल विल्हण नामक किसी पण्डितने काश्मीर छोड़ कर्णाट राज्यमें जाकर महा सम्मान और विद्यापति उपाधि पाया था। वह हर्षको गुणावली सुन शेषको सहायुब्ध हुवे। हर्षने काश्मीरकी राजधानी सुदृश्य वस्तुसमूहसे सजायी थी। उन्होंने एक प्रमोद उद्यान निर्माण करा उसमें पम्पा नामक सरोवर खुदाया और नाना देशविदेशके पक्षी संग्रह कर उसमें प्रतिपालनका प्रबन्ध लगाया। उनकी पत्नी साही राजकुमारी वसन्तलेखाने राजधानी और त्रिपुरेश्वरमें मठादि बनाये थे।

हर्षके समय भुवनराजने लोहर अधिकार करनेकी चेष्टा लगायी। वह सैन्य ले कोटा पहुंचे थे। किन्तु द्वारपति कन्दर्पके आगमनकी वार्ता सुन भुवनराज युद्धसे विरत हो गये। उसीसमय राजपुरीके राजा संग्राम विगड़े थे। कन्दर्प उस समय भी कोटामें ससैन्य उपस्थित थे। हर्षदेवने उसीसे दण्डनायकको सैन्य दे भेजा था, किन्तु वह भी लोहरके पथसे जाते जाते कोटामें सरोवरकी शोभा देख कुछ दिन वहां ठहर गये। कन्दर्प अपने विलम्बके लिये हर्षदेवके कोपभाजन हुवे। पीछे हर्षका अभिप्राय समझ उन्होंने प्रतिज्ञा की थी—"हम राजपुरी जीतकर हो अन्न ग्रहण करेंगे।" दण्डनायकके सैन्यदलसे कुसराज नामक किसी सेनानीने उनका अनुगमन किया। ३०० मात्र सैन्य ले कन्दर्प विपक्षके ३० हजार सैन्यसे युद्धमें प्रवृत्त हुवे। ३ प्रहर युद्ध होने पीछे राजपुरी हारे थे। कन्दर्पने उस युद्धमें अग्निमय नाराचास्त्र व्यवहार किया। उसके पीछे दण्डनायक युद्धस्थलपर जा विपक्ष पक्षका हतसैन्य देख भयभीत हो गये। जयी कन्दर्पने हंसकर उन्हें अभय दान दिया था। एक मासके मध्य कन्दर्प काश्मीरको लौटे। हर्षदेवने आनन्दमें सिंहासनसे उठ कन्दर्पकी सम्वर्धना की थी। दुष्ट मन्त्री कन्दर्पका वह सम्मान देख सिंहासनसे जल उठे। कन्दर्प उसके पीछे परिहासपुरके शासनकर्ता हुवे। कुसरामर्शसे हर्षदेवने उसी समय कन्दर्पको द्वारपतिके पदसे हटा लोहरराज पदपर बैठाया था। कन्दर्प सन्तुष्टचित्त वहां चले गये। मन्त्रियोंने देखा कि कन्दर्पने राजाके विरुद्ध कुछ कहा न था। उसीमें उन्होंने राजाको बताया कि कन्दर्प जाते समय उत्कर्षके पुत्रद्वयको अपने साथ ले गये थे। वह उनको ले कर स्वाधीन हो जाना चाहते थे हर्षदेवने हठात् उस मिथ्यावाक्य पर विश्वासकर असिधर और पट्टको भेज दिया। कन्दर्प उक्त संवाद सुनकर मर्माहत हुवे। किसी दिन वह चौपर खेल रहे थे। उसी समय असिधर पहुंच उन्हें बांधनेपर उद्यत हुवे। किन्तु वीर कन्दर्पके दृढ़ रूपसे पकड़ते ही उनका हाथ टूट गया असिधरने पलायन किया था। पट्ट फिर अग्रसर हुवे। कन्दर्पने कहा—"आप राजाके आत्मीय हैं। हम आपके विरुद्ध कुछ करना नहीं चाहते। आप दुर्ग अधिकार कीजिये। हम चलते हैं।" कन्दर्प काशी चले गये। कन्दर्पके चले जाने पर अन्यान्य मन्त्रियोंमें गड़बड़ पड़ गया। राज्यमें विशृङ्खला लगी थी। धम्मट जयराजको उत्तेजित कर स्वयं राज्याधिकारकी चेष्टा करने लगे। जयराज कलसके औरसजात तो थे, किन्तु वेश्यागर्भजात होनेसे धम्मटके परामर्शमें हर्षदेवको मारडालने पर स्वीकृत हो गये। प्रयाग नामक भृत्यके नाना कौशलसे राजाको सब बात मालूम हो गयी। वह जयराजको मार धम्मटके उच्छेदका उपाय ढूंढने लगे। शेषमें उन्होंने कलसराजके द्वारा उन्हें द्वन्द्वयुद्धमें विनाशकर उनके रिह्लण और सह्लण नामक पुत्रद्वयको अपने अधीन रखा। टुक्क प्रभृति धम्मटके भ्रातुष्पुत्र और उत्कर्ष एवं विजयमल्लके पुत्र हर्षदेवकर्तृक गोपनमें निहत हुवे।

हलधरके पौत्र लोष्ठधरके परामर्शसे हर्षदेवका मस्तिष्क बिगड़ा था। वह एक एक कर देवमन्दिर लूटने लगे। केवल राजधानी, श्रीरणस्वामी और

मातण्ड मन्दिरमें हर्षदेव कुछ कर न सके।

किसीदिन हर्षदेव कर्णाटराजकी परमासुन्दरी पत्नी चन्द्रलाकी छवि देख उनको प्राप्त करनेके लिये आकुल हो गये और राजसभामें कर्णाटराज्य ध्वंस करनेकी प्रतिज्ञा कर बैठे। कम्पनापति मदन उस कार्य में राजाको साहाय्य करने पर उद्यत हुवे। कारण उन्होंने वह तसवीर संग्रह की थी। फलतः वह कर्णाट जा न सके। उसके बाद वह पितृपथानुसार पितृव्य-पत्नी और पितृव्य-कन्यागणका सतीत्व हरण करने पर प्रवृत्त हुवे।

कुछदिन बाद राजपुरीके राजा संग्रामपालने कितना ही स्वाधीन भाव अवलम्बन किया था। उसीसे राजा हर्षदेवने स्वयं बहुतर सैन्य ले राजपुरीको जा घेरा था। थोड़े दिन बाद दुर्गमें खाद्यका अभाव हुवा। संग्रामपालने सन्धिका प्रस्ताव किया था। किन्तु हर्षदेव सम्मत न हुवे। शेषको संग्रामपालने दण्डनायकको उत्कोच दे अन्य भावसे काम निकाल लिया। दण्डनायकने तुरुष्क-सैन्यके आक्रमणका भय देखा, काश्मीर लौट गये।

उसके बाद हर्षदेव दरदोंके हाथसे दुग्धघात दुर्ग उद्धार करनेके लिये डामरपतिके साथ मिलकर दरदराजके विरुद्ध आगे बढ़े थे। पथिमध्य उन्होंने मंत्री चम्पकको मण्डलाधिपकी आख्या प्रदान की। दुग्धघातदुर्गमें प्रथम युद्ध हुवा था। उस समय तन्वङ्गके कनिष्ठ भ्राता गङ्गके पौत्र उच्चल और सुस्सलने अतिशय विक्रम प्रकाश किया। जो हो, उस युद्धमें काश्मीरराज हारे और सैन्य सामन्त छोड़ कई अनुचरोंके साथ ले भागे थे। उच्चल और सुस्सल अनेक कौशलसे छत्रभङ्ग सैन्यको विपत्समुद्रसे बचा ले गये। उसीसे उक्त दोनों भाइयोंके प्रति काश्मीरके प्रजावर्ग की भक्ति आवार्धित हुयी।

उसके पीछे हर्षदेवके कौशलसे कलसराज ठक्कुर, उदय और कम्पनापति मदन निहत हुवे।

उस समय (७५ लौकिकाब्द) काश्मीरमें भयानक दुर्भिक्ष पड़ा था। अन्न और स्वर्णमुद्राओंका मूल्य बढ़ गया। प्रतिदिन सैकड़ों लोग अनाहार मरने लगे। राजाने प्रजाका कष्ट देखा न था। फिर उसके ऊपर कायस्थ भी अत्याचार करने लगे। डामर विद्रोही हुवे। हर्षदेवने उन्हें समूल उच्छेद करनेके लिये मण्डलाधिप चम्पकको भेजा था। चम्पक लोहरसे ले कर समस्त डामर-राज्य लोकशून्य करने लगे। डामरवासी ब्राह्मण भी बचे न थे। शेषको जब वह क्रमराज्य (कामराज) पहुंचे, तब वहांके डामर हताश हो प्राण छोड़ युद्धमें प्रवृत्त हुवे। उस युद्धमें हार मण्डलाधिप कुछ कुछ रुक गये।

उधर लक्ष्मीधर नामक किसी व्यक्तिके घरके निकट मल्लपुत्र सुस्सल रहते थे। लक्ष्मीधरको आकृति बिलकुल वानरके सदृश रही। उसीसे उनकी स्त्री उन्हें देख न सकती थी। सुस्सलका कार्तिक निन्दितरूप देख वह रमणी पागल हो गयी। लक्ष्मीधर इर्ष्यासे राजाको पुनः पुनः अनुरोध करने लगे—"आपने अपने जब अनन्तर समताशाली आत्मीयोंको मार डाला है, तब किसी दिन सिंहासन ले सकनेवाले उच्चल और सुस्सलको क्यों बचा रखा है?" चक्रला नाम्नी किसी वेश्याको उक्त संवाद मिला था। उसने सब वृत्तान्त उच्चल और सुस्सलसे जाकर कहा। दर्शनपाल नामक उनके किसी बन्धुने भी उक्त विषय समर्थन किया था। उसीसे रात को ही तीन अनुचर ले उभय भ्राता काश्मीर छोड़ गये। (७६ लौकिकाब्द, अग्रहायण)

उच्चलने* संग्रामपालका आश्रय लिया था, उत्कोच ले भ्रातृद्वयके वध करनेकी चेष्टा लगायी। उच्चलको उक्त संवाद मिल गया। उन्होंने राजपुरी छोड़ पलायन किया था। संग्रामने सुना कि शिकार भागा था। वह उसी समय ससैन्य उनके अनुसन्धानको चलते दिये। शेषको किसी स्थान पर उच्चलने युद्ध करनेकी ठानी थी। उस समय खशराजने उन्हें सन्धिको छलना कर बुला लिया। उच्चलने भी वीरदर्पसे संग्रामके सम्मुख जा कहा था—"अब लोग देखें जिस वंशकी एक शाखा स्त्रीके अनुग्रहसे काश्मीर आज भी राजत्व रखती, उस वंशकी दूसरी शाखाको बाहुबलसे राज्य मिलता है या नहीं।"

* उच्चलने संग्रामपालको सम्मुख अपना वंशका इस प्रकार परिचय दिया था

उसके पीछे उच्चलके राजपुरी परित्याग करनेसे युद्ध हुवा। उस युद्धमें षाट्टदेव प्रभृति डामरोंने उनका पक्ष लिया था। युद्धमें लोष्टावट्ट प्रभृति मारे गये। उच्चल हारे थे। किन्तु ५।६ मास बीतते न बीतते फिर वृहत् सैन्यदल संग्रह कर वह क्रमराज्यके पथसे काश्मीरको अग्रसर हुवे। लोहरराज कपिल उच्चलके भयसे भागे थे। पर्णोत्स नामक स्थानमें लड़ाई हुई। राजसैन्य हार कर भगा था। उसके पीछे उच्चलने द्वारपति सुज्जक को बांध लिया। हर्षदेव भीत हो गये। उधर उच्चलने मण्डलराज चम्पकको मार क्रमराज्य अधिकार किया था। हर्षदेवने पट्टको वृहत् सैन्यदलके साथ भेज दिया। किन्तु पट्ट पथमें विलम्ब लगाने लगे। हर्षदेवने फिर तिलकराजको भेजा था। उन्होंने भी पट्टके साथ योग दिया। पीछे दण्डनायक भेजे गये। उन्होंने भी वैसा ही किया था।

* विजयराज गुङ्ग और गुङ्ग नामक तुक्कके दूसरे भ्राता थे। वह सब कलसराजके समय विश्वकर्ट्टक निहत हुये।
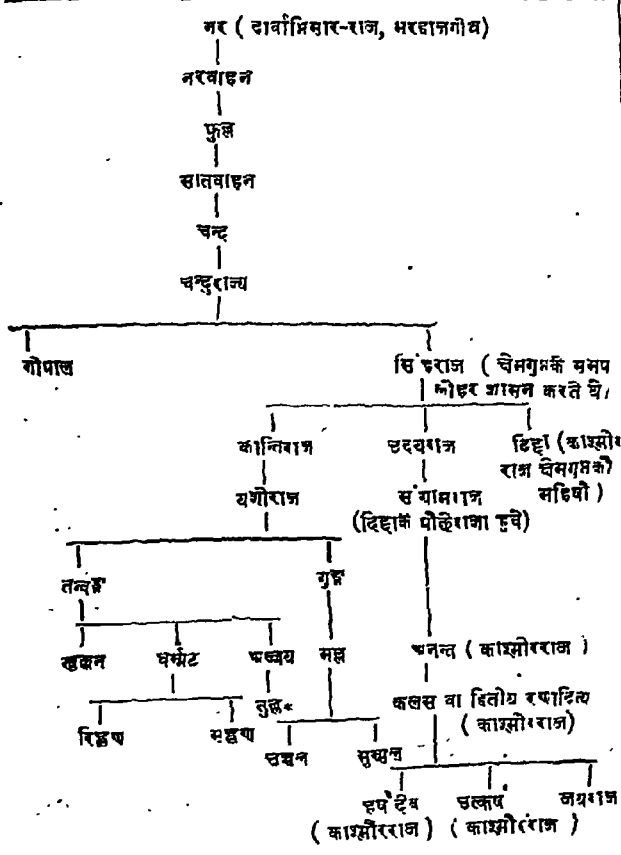
उच्चलने वराहमूल हुष्कपुरका पथ छोड़ क्रमराज्यमें प्रवेश किया। मण्डलराज लड़ाईमें पराजित होने पर बांध लिये गये। किन्तु उन्होंने प्रलोभन दिखा उच्चलको परिहासपुर ले जाकर हर्षदेवके नाम ससैन्य वहां पहुंचनेका पत्र भेजा था। हर्षदेव भी संवाद पा ससैन्य वहां पहुंच गये। युद्ध होने लगा था। मण्डलराजने ससैन्य राजाकी ओर योग दिया। उच्चलका सैन्य प्रायः विनष्ट हो गया। भिन्नसेन नामक किसी डामर-सेनापतिने भाग कर राजविहारमें आश्रय लिया था। राजसैन्यने सोचा—"सम्भवतः उच्चलने ही विहारमें आकर आश्रय लिया है।" सिपाहियोंने मठमें अग्नि लगाया था। किन्तु उच्चल और सोमपाल अपर दिक् लड़ते रहे। शेषको वह प्रतिद्वंद्वियोंकी संख्या अधिक देख युद्धसे अलग हो गये। फिर उन्होंने सैन्य ले ज्येष्ठ मासको परिहासपुर अधिकार किया था। किन्तु उनने परिहासकेशवमूर्तिको बचा दिया।

उधर भवनाइसे सैन्यसंग्रह कर सुस्सलने शूरपुर नामक स्थानमें काश्मीर-सेनापति माणिकको पराजय किया था। हर्षदेवने उस समय उच्चलको छोड़ पट्ट, मण्डलाधिप प्रभृति सुस्सलकी ओर भेज दिये। दर्शनपाल युद्धमें पराजित हो मरे थे। कायस्थ-सेनापति मुट्टेलने डर कर काश्मीरमें ही आश्रय लिया। इधर तारमूलमें उच्चल भी क्षमताशाली होने लगे।

उसके बाद उच्चल लोहरके पार्वत्य पथसे आगे बढ़े थे। हर्षदेवने उदयराजको द्वारपति और चन्द्रराजको कम्पनापतिके पदपर अभिषिक्त कर उच्चलके विरुद्ध प्रेरण किया इसी बीच उच्चलके मातुल कम्पनराज्य अधिकार कर बैठे थे। चन्द्रराजने अवन्तिपुरके युद्धमें उनको मार डाला। उसके बाद चन्द्रराज सैन्यको १२।१३ दलोंमें विभक्त कर धीरे धीरे विजयक्षेत्रके अभिमुख चले थे। उसीबीच लोहरके युद्धमें मण्डलाधिपका सैन्य हार गया। उनने उच्चलके निकट आश्रय लिया था। किन्तु अवशेषको वह हर्षदेवके विद्रोही सेनापति गर्गचन्द्रके हाथ मारे गये। इसके बाद हिरण्यपुरके ब्राह्मणोंने उच्चलको राजा मान अभिषिक्त किया था। हर्षदेव उक्त संवाद पा मन्त्रियोंके साथ

स्वयं युद्ध करनेको चल दिए। मन्त्रियोंने परामर्श दिया कि जानेसे पहले भोजदेव (हर्षदेवके ज्येष्ठपुत्र) को दुर्गमें उपयुक्त रक्षियोंके हाथ सौंपना उचित था। वही किया भी गया। यद्यपि पुत्र राजाकी विपक्षता रखते थे, तथापि उच्चलके पिता मल्ल राजा हर्षदेवके वशीभूत रहे। किन्तु हर्षदेवने वृथा कुत्सामें पड़ सर्वांग उनका भवन आक्रमण किया था। मल्लने स्वीय अपर सन्तान भेज राजाकी अभ्यर्थना की। किन्तु राजाने शांत न हो उनको युद्धार्थ बुलाया था। मल्लदेव उस समय देवसेवामें रहे। वह उसी वेशमें असि लेकर निकल पड़े। उस युद्धमें मल्ल उदयराज, रथावट्ट तथा विजय नामक आप्तपादय, पौरगव, कोष्टक आर सक्क निहत हुवे। अन्तःपुरमें राज्ञी कुसुमलेखा, राजवधू आसमती तथा सरला, (सल्हण और लक्ष्मणकी पत्नी), राज्ञी नन्दा (उच्चल और सुस्सलकी माता) और चपला नाम्नी धात्रीने चितापर चढ़ जीवन विसर्जन किया।

पिता मरनेके दूसरे दिन सुस्सलने वह्निपुरसे विजयक्षेत्र पर्यन्त अधिकार किया था। युद्धमें कम्पनापति चन्द्रराज, अचोटमल्ल और चावरमल्ल मारे गये। उसके बाद सुस्सल क्रमशः सुवर्णसानुर और शूरपुर जीत राजधानी जा पहुंचे। हर्षदेव उस समय राजधानी छोड़ उच्चलसे लड़ने गये थे। उसीसे सुस्सलने अनायास राजधानीको हस्तगत किया। भोजदेव राजधानी आक्रान्त होनेका समाचार सुन स्वयं सैन्य ले लड़ाईमें प्रवृत्त हुवे। उस लड़ाईमें भोजने जय पा सुस्सलको राजधानीसे निकाल दिया था। अल्पदिन बाद ही भोजदेवने सुना कि उच्चल ससैन्य उपस्थित हुए थे।

इधर राजा हर्षदेवने जयाक्षा नदीके तीर जाकर देखा कि उन्हींका निर्मित नौसेतु लेकर विपक्षी सावधान रक्षा करते थे। उधर उच्चलने राजधानीको अधिकार किया था। हर्षदेव लोहरके अभिमुख चले। पथमें अनुचर उनको छोड़ कर अलग हो गये। शेषको कोई एक मंत्री, आत्मीय स्वजन और दो एक अनुचर साथ ले हर्षदेव लोहर पहुंचे थे। कपिलने आश्रय देना चाहा; किन्तु राजाने स्वीकार न किया। उसी समय राजाके अपर पुत्र भी विद्रोही हो गये और उनको छोड़ इधर उधर चल दिए। जब हर्षदेव जोहिलदेवके मन्दिरके निकट पहुंचे, तब उनका कनिष्ठ भ्राता ससुराल जानेको कह भाग गये। दण्डनायकने भी राजाका साथ छोड़ा था। उनके साथ अकेले भृत्य प्रयाग रहे। हर्षदेव फिर क्या करते। जीवनरक्षाके लिये निकटवर्ती श्मशान अरण्यके मध्य सोमेश्वर मन्दिरके निकट मिल्ल नामक किसी तपस्वीके कुटीरमें उन्होंने आश्रय लिया था।

उधर भोजदेव राज्यसे भागे थे। हस्तिकर्ण नामक स्थानमें वह २। ३ अश्वारोही अनुचरोंके साथ पहुंचे। वहां वह विद्रोही दलकर्तृक आक्रान्त हुवे और युद्धमें अपने मातुलपुत्र पद्मकके साथ मारे गये।

यथाक्रम उच्चलके साथ सुस्सल मिले थे। उच्चलने सुना कि हर्षदेवने पितृवनमें वास किया था। उनने हर्षदेवको कैद करनेके लिये डामरोंको लगाया था। उन्होंने बहु अनुसन्धानसे राजाको पकड़ लिया। छुरिका मात्र सहायतासे हर्षने अनेकोंको मारा था। शेष को कई लोगोंने मिल कर उन पर अस्त्राघात किया। वह सामान्य शृगाल कुक्कुरकी भांति कालग्रासमें पतित हुवे। यथासमय हर्षदेवका मुण्ड उच्चलके निकट लाया गया था। उच्चल घूम कर उस ओर देख न सके उन्होंने अंत्येष्टिक्रिया करनेका आदेश भी दिया न था। किसी काठुरियाने उनके देहका सत्कार किया।

हर्षदेवके अधीन वेतनभोगी १०० तुरुष्क योद्धा रहे। उनके समय तुरुष्क महा प्रतापशाली और विस्तृत राज्यके अधीश्वर हो गये थे। यहां तक कि हर्षके अत्याचारसे काश्मीरकी बहुतसी प्रजा म्लेच्छदेशमें जाकर रहने लगी।

उदयराजके वंशमें ६ राजावोंने ८० वर्ष ११ मास २४ दिन राजत्व किया था।

महाराज हर्षदेवके पीछे उच्चल राजा हुवे। सुस्सलने वीरदर्पसे राज्यके मध्य अत्याचार आरम्भ किया था। डामरराज्यमें उनका अत्याचार अधिक न चला। उसीसे उन्होंने उच्चलको डामर राज्य जलानेका परामर्श दिया था। उनने उसको कार्यमें परिणत न किया सही, किन्तु भ्राताके अत्याचारसे राजा पीड़ित देख उनको

लोहर राज्य देकर वहीं पहुंचाया था। सुस्सल धनरत्न हय हस्ती, अस्त्र-शस्त्र और उत्कर्षके पुत्र प्रतापको साथ ले चल दिये। कनक उसी स्थलमें बन्दी थे। पथिमध्य वह भाग खड़े हुवे और काशी जाकर गङ्गा-जलमें डूब मरे। उधर जनकचन्द्र राज्यमें ऐसा कार्य करने लगे, कि वही सबके ऊपर समझ पड़े उच्चल नाममात्रको राजा रह गये।

उरशाराज अभयकी कन्या विभवमती हर्षदेवके पुत्र भोजदेवको पत्नी थीं। भोजदेवके अनेक सन्तान होकर मर गये, केवल २ वर्षके कोई पुत्र जीवित रहे उनका नाम भिक्षाचार था। जनकचन्द्रके अनुरोध और कुछ कुछ दयाके परवश उच्चलने उस शिशुको विनाश न किया। उस समय समझ पड़ा जनकचन्द्र जिस-भावसे कार्य करते, उससे वह स्वयं राजा होनेकी आशा रखते या उक्त शिशुको राजा बनाना चाहते थे। उच्चलने शेषमें जनकचन्द्रको भी द्वारपतिके पदपर अभिषिक्त कर राज्यसे दूर भेज दिया। भीमदेव उससे चिढ़े थे। शेषको जनकचन्द्रसे भीमदेवका युद्ध होने लगा। संग्राममें कालपाश नामक भीमदेवके किसी सेनानीके हाथ जनकचन्द्र आहत और भीमदेवके हाथ निहत हुवे। गग्ग और सड्ड नामक जनकके दो भ्राता भी आहत हो लोहरको भगे थे। संग्रामस्थलमें उच्चल ससैन्य उपस्थित रहे। उनने कोई पक्ष लिया न था। कारण जनककी क्षमताको खर्व करना उनको भी ईप्सित रहा। शेषको उच्चल क्रमशः राज्यमें शान्ति स्थापन कर मडरराज्य चले गये। वहां उनने विद्रोही डामरोंके प्रधान कालिय प्रभृति और दूकाराजको मारा था। फिर देशको शासन कर उच्चलने प्रस्थान किया। गग्ग उसी समयसे उनके प्रियपात्र बन गये।

उच्चलने दग्धावशिष्ट नन्दीक्षेत्र नगरके चक्रधर, योगेश और स्वयम्भु मन्दिरको पुनर्निर्माण कराया। हर्षदेव कर्तृक श्रीपरिहासकेशवमूर्ति विनष्ट हुयी थी। उच्चलने उसे फिर प्रतिष्ठा किया। त्रिभुवनस्वामी-के मन्दिर और तत्संलग्न शुकावली प्रासादको भी हर्षदेवने श्रीहीन कर डाला था। उच्चलने उसे फिर पूर्वकी भांति धनशाली और सौन्दर्यपूर्ण कर दिया। जयापीड कन्नौजसे जो सिंहासन लाये थे, उच्चलके राजधानी अधिकार करते समय वह कुछ कुछ जल गया। उनने फिर उसे नूतन निर्माण कराया था।

उच्चलने कायस्थोंका अत्याचार देख सर्वथा समस्त कायस्थोंको राजकाजसे अलग कर दिया। कोष्ठधरादि दुष्ट कायस्थोंको यथारीति शास्ति मिली थी। कम्पनापतिके दंशक महाप्रतापशाली होनेसे उच्चलके क्रोधभाजन बने और विषशाटाको भाग जाते भी खशों द्वारा विनष्ट हुवे। द्वारपति रक्तक उसी दोषसे विजयक्षेत्रको निकाले गये और उच्चलको दी हुयी सामान्य संख्यक मुद्रासे जीविका चलाने लगे। माणिक्य, तिलक, जनक प्रभृति वीर भी उसी प्रकार देशसे निकाले गये थे। फिर सड्डके पुत्र रड्ड, कुड्ड और व्यड्ड मन्त्री हुवे। यम, ऐल, अभय और बाण प्रभृति अपरिचित व्यक्तियोंने द्वारपति आदि उच्चपद पाये थे। वृद्ध कन्दर्प भी कार्यग्रहणार्थ आहूत हुवे। किन्तु उच्चलकी मति बिगड़ी देख वह न गये।

उधर सुस्सलने लोहरमें रह राज्य लोभसे उच्चलके विरुद्ध अस्त्रधारण किया था। वराहवर्त नामक स्थानमें दोनों भ्रातावोंमें प्रथम लड़ाई हुई। सुस्सल पराजित हो लोहरको भगे थे। उच्चलको किन्तु संवाद मिला कि सुस्सल दूसरे दिन लौटनेवाले रहे। उसीसे गग्गचन्द्रके साथ एक दल सैन्य भेजा गया। पथिमध्य सुस्सलसे लड़ाई होने लगी। लड़ाईमें सुस्सलके अच्छे अच्छे योद्धा निहत हुवे। शेषको उच्चलने भी क्रमराज्य पर्यन्त भ्राताका अनुसरण किया था। सेल्यपुरकी लड़ाई-में हार सुस्सल लोहरके पार्वत्य पथसे स्वराज्यको लौट गये। उच्चलने सेल्यपुरके डामरराज लोष्टकको मार डाला। कारण उनने स्वराज्यसे सुस्सलको भागने-में सहायता की थी। उच्चल भ्रातृस्नेहमें पड़ लोहर पर्यन्त सुस्सलके पीछे न गये।

उधर भीमदेव राजाने कलशके एक सन्तान भोजको सिंहासन पर बैठा दरदराज जगद्दलको साहाय्यार्थ बुलाया था। दर्शनपालके भ्राता सहपालभी हर्षदेव-पुत्र सल्हणसे मिल गये। दरदराज राहमें उच्चलसे लड़नेके लिये उनकी ओर बढ़े थे। किन्तु उच्चलने उन्हें

बन्धुभावसे ग्रहण कर मिष्ट कथामें स्वराज्यको लौटा दिया। सल्हणभी दरदराजके साथ चले गये। भोजराज्य छोड़ स्वदेशको भगे थे। किन्तु पथिमध्य वह पकड़े गये उन्हें दस्यु की भांति शास्ति मिली थी। देवेश्वरके पुत्र पिट्ठकने डामरोंके साहाय्यसे राज्यलाभकी चेष्टा लगायी, किन्तु उनसे कुछ बन न पड़ा। रामल नामक किसी खाद्यविक्रेताने अपनेको मल्लका पुत्र बता राज्य पानेकी चेष्टा की थी। अनेक निर्बोध राजावोंने भी उसकी साहाय्य करना चाहा। किन्तु राजभृत्योंने कौशलसे पकड़ उसकी नाक काट डाली।

उस समय भिक्षाचार (भोजदेवके पुत्र) किशोर अवस्थापन्न थे। उच्चलने सुना कि वह राज्ञी जयमती पर आसक्त थे। उसीमें उनको विनाश करनेकी आज्ञा निकली। घातकोंने उनको वितस्ताके खरस्रोतमें फेंक दिया। भाग्यबलसे वह किसी ब्राह्मण द्वारा रक्षित हुवे। साहीराजकन्या दिद्दा उक्त संवाद पा भिक्षाचारको अपने घर ले गयीं। फिर उनने निरापद रखनेके लिये उनको मालवराज्य भेज दिया। मालवराजने परिचय पा भिक्षाचारको लड़ना भिड़ना और पढ़ना लिखना सिखाया था।

उसी समय उच्चलने पिता और भगिनीके नाम पर एक एक मठ स्थापन किया। राज्ञी जयमतीने भी एक मठ और एक विहार बनवाया था। उसके बाद उच्चल क्रमराज्यके वर्हेंठचक्र नामक तीर्थको दर्शन करने गये। पथिमध्य चण्डाल दस्युओंने उनको आक्रमण किया था। साथमें अधिक अनुचर न रहनेसे वह भागने पर बाध्य हुवे। शेषको वनमध्य दिक्भ्रम होनेसे उनने घने जंगलमें प्रवेश किया। उधर नगरमें संवाद पहुंचा कि उच्चलको चण्डालोंने मार डाला था। कामदेववंशीय रड्डके भ्राता नगराध्यक्ष कुड्ड नगरमें शान्ति स्थापन कर राज्यलाभार्थ परामर्श करने लगे। कायस्थोंके परामर्शसे कुड्डने हो राजा बननेकी चेष्टा लगायी थी। किन्तु उच्चलके जीवित रहनेका संवाद सुन वह उनको मार डालनेकी चिन्तामें पड़ गये। उधर उच्चलने किसी कारण जयमती पर विरक्त हो वर्तुलाकी राजकन्या विज्जलासे विवाह कर लिया था।

उसी समय राजपुरीके राजा संग्रामसिंह मर गये। उनके पुत्र सोमपाल ज्येष्ठको बन्दी बना राजा हुवे। इसलिये उच्चल क्रुद्ध हो लड़ने चले थे। किन्तु सोमपालका राज्यशासन और प्रजाप्रियता देख उनने उनके साथ स्वीय कन्याका विवाह कर दिया। फिर उच्चलने भोगसेन पर विरक्त हो उनको पदच्युत किया था। उसके बाद भोगसेन एवं रड्ड और व्यड्ड तथा सहू कई लोगोंने मिलकर उच्चलको मार डालनेके लिये चण्डालोंको लगा दिया। राजा किसी रातको प्रियतमा विज्जलाके घर जाते थे। उसी समय सकल दुर्वृत्तोंने मिलकर उनपर आक्रमण किया और उपर्युपरि अस्त्र चला भूमिपर उनको गिरा दिया। शेषको सड्डके अस्त्राघातसे काश्मीरीय ८७ लौकिकाब्द पौष मासकी शुक्लषष्ठीके दिन ४१ वर्षके वयसमें महाराज उच्चल इहलोकसे चल बसे।

रड्ड रक्ताक्त कलेवर उसी रातको सिंहासन पर बैठे थे। उसीसे उनके बन्धु उनसे लड़ पड़े। बहु क्षण युद्ध होने पर रड्ड मारे गये। रड्डने शङ्खराज उपाधि धारणकर रातको एक पहर और एक दिन राजत्व किया था। उसके बाद गर्गचन्द्रने विद्रोहियोंमें किसीको मार, किसीको पकड़ और किसीको देशसे निकाल उपद्रव मिटाया। राज्ञी विज्जला चिता पर चढ़ गयीं।

सबने गर्गको राजा बनाना चाहा था। किन्तु गर्गने अपनी ओरसे उच्चलके शिशु पुत्रको राज्य देनेका प्रस्ताव किया। मल्लराजके औरस और राज्ञी श्वेताके गर्भसे सह्लण, लोठन एवं रल्हण नामक तीन पुत्रोंने जन्म लिया था। उनमें सह्लण पहले हो मर गये। शङ्खराज (रड्ड) के भयसे लोठन और सह्लणने मठमें आश्रय लिया था। विद्रोह मिटने पर तन्त्रियोंने उन्हें गर्गके निकट ले जाकर उपस्थित किया। गर्गने सह्लणको राजा बनाया था। उसके बाद गर्गने सुस्सलके निकट दूत भेजा। वह काश्मीरके अभिमुख चले थे। किन्तु पथिमध्य सह्लणके राजा होनेका संवाद मिला। सुस्सल उस समय राजा लोभसे काष्ठवाट पहुंचे थे। गर्ग भी उस ओर ससैन्य हुष्कपुर गये। भोगसेन और सज्जपालने सुस्सलके साथ योग दिया था। किन्तु भोगसेन पथमें

गर्गद्वारा आक्रान्त और विनष्ट हुवे। उसके बाद गर्गके सेनापति सूर्य साथ लड़ाईमें हार सुस्सल लोहरको भागे थे। गर्गके लोहरसे लौटते बड़ी विपद् पड़ी। वह जाते ही राजाके प्रियपात्रोंको मारने लगे। उसीसे सब लोग डर गये। तिलकसिंहादिने अपेक्षा न कर गर्गके भवनको आक्रमण किया था। गर्ग भी संवाद पाकर भीत हुये। राजा सल्हणने विद्रोह न रोक लोठनको सैन्यसह गर्गका पथ रोकनेको भेजा था। केशव नामक कोई धनुर्धर (लोठिकामठके अध्यक्ष) रहे। उन्हींके कौशलसे गर्गका घर बचा और लोठनका बहुत सा सैन्य मारा गया। उसके बाद सुस्सल और गर्गमें सन्धि हुवी। गर्गकी ज्येष्ठ कन्या राजलक्ष्मीके साथ सुस्सल और कनिष्ठ कन्या गुणलेखाके साथ सुस्सलके पुत्रका विवाह किया गया।

दुष्ट सल्हण भोगसेनकी पवित्रचारिणी पत्नी मल्ला पर अत्याचार करने लगे। उनने उनके भ्राता दिद्दभट्टारकको विषप्रयोगसे मार डाला। मल्ला चितारोहण करनेसे उनके हाथ न लगीं।

सुस्सलने उपयुक्त समय देख काश्मीर आक्रमणार्थ सल्लपालको भेजा था। पथिमध्य द्वारपति लक्कवी बन्दी बना सल्लपाल अग्रसर हुवे। सुस्सल भी जा पहुंचे थे। काष्ठवाटका राजप्रासाद अवरुद्ध हुवा। सुस्सलने ससैन्य नगर प्रवेश किया। राजसैन्यने द्वार रोक दिया था। किन्तु अपर पथसे सल्लपालके घुसते ही भीषण युद्ध होने लगा। युद्धमें सल्हणके मन्त्री अल्लक निहत हुवे। सुस्सल जीते थे। सल्हण और लोठनने जाकर सुस्सलका शरण लिया। उनने भी उनको अभयदान दे आलिङ्गन किया था।

८८ लौकिकाब्दकी वैशाखी शुक्लतृतीयाके दिन ४ मास २७ दिन राजत्व करने पीछे सल्हण राज्यच्युत हुवे।

सुस्सल सिंहासन पर बैठे थे। उनके शासनगुणसे राज्यमें सुखशान्ति उबल पड़ी। वह दयालु, विनयी, साहसी, प्रजारक्षक, दुष्टशासक और शिष्टपालक थे। उसी समय गर्गने उच्चलके शिशुपुत्रके लिये अस्त्र धारण किया। सुस्सलने भ्रातुष्पुत्रको लानेके लिये बार बार आदमी भेजा था, किन्तु गर्गने उनको न दिया। शेषको वितस्ता-सिन्धु-सङ्गमके निकट महायुद्ध हुवा था। उस युद्धमें सुस्सलकी ओर मृङ्गार, कपिल, कर्ण, शूद्रक प्रभृति तन्त्री वीर मारे गये। विजयक्षेत्रके युद्धमें भी तिल्ह, कम्पनापतिके बहुसैन्य और तन्त्रीवीर निव्वाकार हत हुवे, किन्तु गर्ग पीछे न हटे। अवशेषको वह रत्नवर्ष दुर्गमें जीवन सङ्कट देख उच्चलके पुत्रको ले सुस्सलके शरणागत हुवे।

मल्लपाल, यशोराज प्रभृतिने सुस्सलके राज्यारोहणमें विशेष सहायता दी थी। उसीसे वह बहुत गर्वित और दुर्दान्त हो गये। सुस्सल उसे सह न सके थे। उनने उनको राज्यसे निर्वासित किया। उनने भी सहस्र-मङ्गलका पक्ष लिया था। सहस्रमङ्गलके पुत्र प्राय सैन्य ले कान्द पथसे काश्मीर आक्रमण करने गये। किन्तु पथमें राजसैन्यद्वारा यशोराज आहत हुवे। उसीसे वह भीत हो लौटे थे। उधर चम्पापति जासट, वल्लापुरराज वज्रधर, वर्तुलराज सहजपाल और वल्लापुरके आनन्दराज कुरुक्षेत्र जाकर भिक्षाचारसे मिल गये। जासटने स्वीय-कन्याका विवाह भिक्षाचारसे कर दिया। ठक्कुर गयापालने यथेष्ट सैन्यसह भिक्षाचारका पक्ष लिया था। पद्म नामक स्थानमें वह राजसैन्यसे लड़े। युद्धमें दर्पक मारे गये। यथेष्ट सैन्य क्षय भी हुवा। भिक्षाचार सर्वथा ही दुर्दशामें पड़ गये। शेषको उनने श्वशुर जासटके राज्यमें आश्रय लिया। किन्तु जासट उनपर अत्याचार करने लगे। चन्द्रभागाके ठक्कुर देंगपालने उनको ले जाकर आदरसे स्वालयमें रखा और अपनी कन्याके साथ उनका विवाह किया।

उसी बीच सहस्रमङ्गलके पुत्र फिर सैन्य ले सिन्धुपथसे आगे बढ़े थे। राजसैन्यने पथमें आक्रमण कर उनको बांध लिया।

सुस्सलने वितस्तातीर तीन बड़े मन्दिर बनाये थे। उनमें उनने एकका अपने, एकका स्वीय पत्नी और एकका सासके नाम नामकरण किया। भग्नप्राय दिद्दाके विहारका भी संस्कार हुवा। किसी दिन गर्गको संवाद मिला कि सुस्सलने उनको पकड़नेका परामर्श किया था। वह काल विलम्ब न लगा पुत्र कल्याणचन्द्रके साथ अपने घर लौट गये।

उसके बाद सन्धि हुयी। किसी दिन राजा स्नानागारमें उनको जाते देख बिगड़े थे। उनने उनको तत्क्षण निरस्त्र कर बन्दी बनाया। कल्याण, विदेह प्रभृति गर्गके पुत्र और उनकी पत्नी मल्लादेवी सब लोग पकड़े गये। ३ मास पीछे (८४ लौकिकाब्दको गर्गादि राजाके आदेशसे निहत हुवे।

फिर मल्लकोट, पृथ्वीहर, विजय प्रभृति सबने मिल कर भिक्षाचारका पक्ष अवलम्बन पूर्वक सुस्सलके साथ हिरण्यपुर और महासरित् स्थान पर लड़ कर राजधानीमें प्रवेश किया। राज्य भिक्षाचारके अधिकारमें गया था। राजा सुस्सलने अवशेष (८६ लौकिकाब्द) को अग्रहायण मास ब्रह्मनराज्यमें आश्रय लिया। तिलकसिंहने समस्त अपमान भूल उन्हें यत्नसे रखा था। तिलक सैन्य संग्रह कर फिर युद्धका उद्योग लगाने लगे। उधर नगराध्यक्षकी कन्याके साथ भिक्षाचारका विवाह हो गया। उसके बाद भिक्षाचार राजसिंहासन पर बैठे।

कुछ दिन बाद भिक्षुने हो सुस्सलके विरुद्ध भागी विम्बको भेजा था। पर्णोत्स, विटोला और सदाशिव नामक स्थानमें युद्ध हुवा। विम्बके पराजित होने पर सुस्सलने सम्पूर्ण जयलाभ किया था। भिक्षाचार भाग गये। किन्तु अल्प दिन बाद पृथ्वीहर और भिक्षाचार मिल विजयक्षेत्रमें जय पा राजधानीके अभिमुख अग्रसर हुवे।

उसके बाद नाना स्थानोंमें युद्ध हुवा। भिक्षाचार या सुस्सल कोई सम्पूर्ण जय पा न सका। सुस्सलके अनुपस्थिति काल डामर राजधानीमें नाना स्थानों पर आग लगाने लगे। वितस्ताके उभय पार जितने काष्ठनिर्मित घर रहे, प्रायः सभी जल गये। निरीह प्रजा राजधानी छोड़ भगने लगी। सुस्सल राजधानीको लौटे। उसी समय उत्पल व्याघ्र प्रभृति साजिश कर राजाके प्राणनाशकी चेष्टा करने लगे। सुस्सलने उसका आभास पाया, किन्तु विश्वास आया न था। किसी दिन वह स्नानागारमें नहा रहे थे। उसी समय उत्पल और व्याघ्रने आकर देखा कि राजाका कोई रक्षक न था। उत्पलने द्वार बन्द कर दिया। सुस्सल उनका काण्ड देख "राजद्रोह" कह कर चिल्ला उठे। किन्तु उनके तीक्ष्ण आघातसे महाराज चिरदिनके लिये निद्रित हुवे। उनका छिन्नमस्तक भिक्षाचारके पास भेजा गया। राजपूत सिंहदेवको उक्त संवाद मिला था। सिंहदेव राजा बने। उन्होंने मन्त्रियोंके परामर्शसे राजधानी सुरक्षित रखनेको चारो ओर पहरी बैठाये थे। दूसरे दिन मध्याह्न काल भिक्षाचारने ससैन्य नगरमें प्रवेश किया। उसी समय गर्गपुत्र पञ्चचन्द्र विस्तर सैन्य ले राजासे जा मिले। घोरतर युद्ध हुवा था। भिक्षाचारने गड़बड़ देख राजधानीका परित्याग किया। उसके बाद विजयक्षेत्र प्रभृति कई स्थानों पर घोरतर लड़ाई हुई। किन्तु भिक्षाचारकी मनस्कामना सिद्ध न हुई।

सुस्सलके पुत्र जयसिंहने राजा हो राज्योन्नतिकी ओर दृष्टिपात तो किया किन्तु प्रतीहार पर राज्यका प्रधान भार डाल दिया। प्रतीहारने शान्ति स्थापनके लिये राजविद्रोहियोंसे सन्धि की थी। जयसिंह अनेक कीर्ति कर गये। उनके समय कह्लण पण्डितने राजतरङ्गिणी नामक संस्कृत इतिहास प्रणयन किया।

जयसिंहने राजा हो २२ वर्ष राजत्वके बाद ३० लौकिकाब्दको फाल्गुणकी कृष्ण द्वादशीके दिन परलोक गमन किया। वह नियत प्रजागणके हितसाधनमें तत्पर रहे। उसके बाद जयसिंहके पुत्र परमाणुक काश्मीरके सिंहासन पर बैठे। उन्होंने पहले प्रजा रक्षणादि कार्य परित्याग पूर्वक किसी न किसी प्रकार स्वीय धनकोष भरनेकी चेष्टा की थी। अवशेषको उनके धूर्त मन्त्रियोंने बालककी भांति उन्हें फुसला और भय दिखा समस्त धन अपहरण किया। वह ८ वर्ष ६ मास १० दिन राजत्व कर ४० लौकिकाब्दको कालग्रासमें पतित हुवे। परमाणुकके बाद उनके पुत्र वर्तिदेवने राजा हो ७ वत्सर राजत्व किया। वर्तिदेवके मरने पर वोप्यदेवको राजसिंहासन मिला था। उन्होंने ८ वर्ष ४ मास २१ दिन राजत्व किया। वह मूर्खोंके शिरोमणि रहे। फिर उनके कनिष्ठ भ्राता जस्सदेव राजा हुवे। उन्होंने १८ वर्ष १३ दिन

राजत्व किया था। वह भी अतिशय मूर्ख रहे। हुच और भीम नामक २ धूर्त ब्राह्मण उनको बहुत प्रिय थे। फिर उनके पुत्र जयदेवने राज्य पा १४ वर्ष ३ दिन राजत्व किया। वह विनयी और प्रजाप्रिय थे उनने स्वीय राज्यके मध्य सुव्यवस्थाको स्थापन और राज्यका समस्त शल्य उद्धार किया। राहुल नामक उनके सर्वगुणाकर मन्त्री रहे। उनके मन्त्रबलसे राजाने समस्त शत्रुवर्गको विनाश किया। महाराज जगदेवने रत्नपुरमें हर्षेश्वरका प्रासाद बनाया था। द्वारपति पद्मने उन्हें गुप्त भावसे विष दे कर मार डाला। जगदेवके मरनेके पीछे उनके पुत्र राजदेवने राजा हो २३ वर्ष ३ मास २७ दिन राज्य शासन किया। उनने पितृघातक पद्मके भयसे काष्ठवाट नामक स्थान पर सह्वण दुर्गमें आश्रय लिया था। द्वारपतिने जाकर उन्हें चारो ओरसे वेष्टित किया। द्वारपति प्रमत्त हो लड़ रहे थे। उसी समय किसी चण्डालने उन्हें मार डाला। राजदेवने शत्रुको विनाश कर स्वीय प्रजापुञ्जको विशेष निष्कलसाध किया।

उसके पीछे उनके पुत्र संग्रामदेव सिंहासन पर बैठे थे। उन्होंने १६ वर्ष १० दिन राजत्व किया। संग्रामदेवने विजयेश्वर नामक स्थानमें गोब्राह्मणगणके निमित्त २१ उत्तम छत्रशाला बनायी। वह सर्वदा प्रजागणके मङ्गल साधनको व्यस्त रहते थे। कल्हणवंशीय राजावोंने उन्हें मार डाला।

संग्रामदेवके मरनेके पीछे उनके पुत्र रामदेव राजा हुवे। उन्होंने स्वीय प्रभूत शौर्यबलसे समस्त पितृशत्रुवोंको विनाश किया। रामदेवने लेदरीके दक्षिण पार सहर नामक स्थानमें स्वनामचिह्नित दुर्ग बनाया और उत्पलपुरके विष्णुका जीर्ण एवं भग्नदशापन्न प्रासाद उत्तमरूपसे सुधरवाया था। उन्होंने २१ वर्ष १ मास १३ दिन राजत्व किया। चन्दनद्रुमपर पुष्पकी भांति विधाताने उन्हें पुत्र दिया न था। उनने भिषायकपुरस्थित किसी ब्राह्मणके लक्ष्मण नामक पुत्रको गोद ले काश्मीर राज्यपर अभिषिक्त किया। उनको समुद्रानाम्नी महिषीने वितस्ताने नदीके तीरदेश पर समुद्रामठ बनाया था।

रामदेवके पीछे लक्ष्मणदेव राजा हुवे। उनके राजत्व काल शत्रुवोंने राज्यमें विषम उत्पात आरम्भ किया था। महिलानाम्नी उनको पापपरिशून्या महिषीने स्वीय श्वशुनिर्मित मठके पार्श्वदेशमें एक नूतन मठ बनवाया। लक्ष्मणदेव १३ वत्सर ३ मास १२ दिन राजत्व कर तुरुष्कराज कज्जलके हाथ मारे गये।

लक्ष्मणदेवके परलोक गमन करने पर अन्य वंशजात नीतिविशारद लेदरीनायक सिंहदेवने काश्मीर राज्यके राजा हो १४ वत्सर ५ मास २७ दिन राजत्व किया। उनने गुरुके साथ मिल ध्यानोद्दार नामक स्थानोंमें नृसिंहदेवका मन्दिर बनाया था। उनके मन्त्रोपदेष्टा गुरुका नाम शङ्करस्वामी रहा। राजाने उनको अष्टादश मठका ऐश्वर्य दक्षिणास्वरूप देकर पूजा था। किन्तु शेषको सिंहदेव आस्तिक्यबुद्धि और विनयादि विसर्जन कर भगिनीके साथ आसक्त हुवे। उनके भगिनीपतिने छलपूर्वक उनको मार डाला।

अनन्तर उनके भ्राता सुहदेव राजा हुवे। उनके निकट वृत्तिलाभ करनेको दिग दिगन्तरसे अनेक ब्राह्मणादि प्रजाने जाकर आश्रय लिया था। वह पञ्चगह्वर देशमें पार्थकी भांति पूजित हुवे। उनके पुत्र बभ्रुवाहनने गर्भरपुर स्थापन किया था। उनका राज्य १९ वर्ष ३ मास २५ दिन रहा।

सुहदेवके मरने पर म्लेच्छराज डलचने जाकर उनका राज्य नाश किया था। दानशील भोटवंशोद्भव (तिब्बत देशवासी) रिञ्चण काश्मीरराजके सिंहासन पर बैठ गये। वह इन्द्रतुल्य पराक्रमशाली रहे। उनके शासनकाल प्रजाकुलको सन्तोषवृद्धि और उन्नति साधित हुयी। उनने ३ वर्ष २ मास १९ दिन राजत्व कर ९९ लौकिकाब्दको परलोक गमन किया था। फिर उनकी पत्नीने ४ मास तक मन्त्रीके साथ राज्य किया। उनने काश्मीरमण्डलमें कोटा खनन किया था। उसी समय सिंहदेवके ज्ञाति उद्यानदेवने राज्यपद आकाङ्क्षा कर राज्य पा १५ वर्ष १ मास १० दिन शासन किया था। उनके गतासु होनेपर कोटादेवी ६ मास १५ दिन रानी रहीं।

उसके बाद शाहमीर नामक मन्त्रीने अन्यान्य मन्त्रियों और विप्रोंके साहाय्यसे अपुत्रा रानीको मार स्वयं

राज्यशासन किया। उसी समयसे काश्मीर राज्य मुसलमान शासकोंके अधीन हो गया। शाहमीर शम्स उद्दीन नामसे विख्यात रहे। पश्चगह्वर देशजात १८ मुसलमान काश्मीर देशके सिंहासन पर बैठे। उनमें ताहराज कुलजात शमस-उद्-दीन काश्मीरके प्रथम मुसलमान राजा थे। वह अतिशय बलशाली रहे। उनने भिक्षणभट्टोंको मार बलपूर्वक राज्य लिया था। समस-उद्-दीनके मरनेपर उनके पुत्र जमशीदने साम्राज्य पाया। उनने १वर्ष १० मास राजत्व किया। अनन्तर उनके कनिष्ठ भ्राता अला-उद्-दीन राजा हुवे उनने १२वत्सर ११ मास १३ दिन सुनियमसे प्रजापालन किया अनन्तर उनके पुत्र शहाब-उद्-दीन दिग्विजयी राजा हुये। उनने २० वर्ष राज्यशासनपूर्वक समस्त राजावोंके साथ प्रतिस्पर्धाको प्रकाश किया था। फिर उनके कनिष्ठ भ्राता कुतुब उद्-दीन १५ वर्ष ५ मास २ दिन तक राजा रहे। कुतुब-उद्-दीनके बाद उसके पुत्र सिकन्दरने २२ वर्ष ८ मास ६ दिन राजत्व किया। उन्होंने बहुतर संस्कृत पुस्तक अग्निमें फेंक जला डाले थे। सिकन्दरके मरने पर उनके पुत्र अलीशाहने राजा हो ६ वर्ष ८ मास राजत्व किया। अलीशाहके बाद प्रजादिके पुण्यबलसे उनके सहोदर प्रजारक्षक जिन-उल्-अब-दीनको राज्य मिल गया।

वह अतिशय विद्योत्साही रहे। अपने निकट किसीके हृदयग्राहिणी कविता अथवा कोई उत्कृष्ट शिल्प उपस्थित करनेसे वह यथायोग्य पुरस्कार देते थे। सिन्धु और हिन्दुवाड़ादि देश जयकर उन्होंने विविध शिल्पसमन्वित एक यन्त्रागार निर्माण कराया। उनके आदम खान्, हाजीखान् और वरहमखान् नामक तीन पुत्र हुवे। हाजीखान्से वरहमखान् लड़ पड़े थे। उसमें हाजीखान् जीत गये। जिन-उल-अब-दीन्ने राज्यका बहुविध मङ्गलकर कार्यसाधनकर ५२ वर्ष राज्य शासनपूर्वक शरीर छोड़ा था। उसके बाद हाजी खान् राजा हुवे। उनने मुद्रापर "हैदरशाही" नाम अङ्कित कराया था। रिक्तेतर नामक कोई नापित राजा को अत्यन्त प्रिय रहा। वह मन्त्री हो प्रजाको अतिशय कष्ट देता और राजाको कुकार्यमें फांस दीन दुःखी प्रजासे उत्कोच लेता था। हाजी खान्ने स्वीय कर्मचारी और मंत्री प्रभृतिकी प्रवर्तनासे द्विजोंको सताया और अपनी पितृप्रदत्तसम्पत्तिसे ब्राह्मणोंको दूर भगाया। उनने १ वर्ष २ मास राजत्व किया।

बाद उनके पुत्र हसनशाह राजा हुवे। उनने दिद्दामठके निकट मनोहर राजधानी बनायी थी। वहीं उनकी माताने एक धर्मशाला भी निर्माण करायी। राजा हसन खान्ने अनेक मसजिद धर्मवास प्रभृति बनाये थे। फलतः उन्होंने मठ, अग्रहार दान, देवमन्दिरनिर्माण, अतिथिपूजा आदि सत्कार्य द्वारा अपनी राजसम्पत्तिका साफल्य सम्पादन किया। वह अनेक संस्कृत पद समझते थे। हसन संङ्गीतशास्त्रज्ञ भी रहे। वह स्वयं उत्तम रूपसे राग आलाप कर सकते थे। उनके समय प्रजाने सुखसे कालातिपात किया। पितृव्य वहरामखान् राज्यलाभकी वासनामें हसनसे लड़कर हारे थे। उनने ६० लौकिकाब्दको चैत्रमास १२ वर्ष ५ दिस राज्य भोगके बाद प्राण त्याग किया।

हसनके बाद उनके पुत्र मुहम्मद शाह काश्मीरका राज्यलाभ कर २ वर्ष ७ मास राजा रहे। उनका राज्य मंत्रियोंकी दुष्ट अभिसन्धिसे डोल उठा था। वह सैयदवंशीयोंके दौहित्र रहे। उसीसे सैयदोंने उनके राज्यमें प्राधान्य पाया था। मुहम्मदके समय मद्रों और सैयदोंका महाविप्लव उपस्थित हुवा। बाद उनके पितृव्य फतेहशाहने काश्मीरका सिंहासन आरोहण किया। उनके समय प्रजाने स्वधर्मनिरत और दयादाक्षिण्यादि विभूषित हो सुखसे समय बिताया था। वह ८ वर्ष १ मास शासन कर राज्यभ्रष्ट हुवे। उनके कोई चन्द्रवंशीय व्यसनशून्य सोमराजानक नामक विनयी मंत्री रहे। किन्तु उनने मीर शेखके आदेशसे ब्राह्मणोंसे पूर्वप्रदत्त सकल भूमि छीन देवालयस्थित भृत्योंको प्रधान बनाया था।

अनन्तर मुहम्मदशाहने पुनर्वार काश्मीरके राजा हो ११ वर्ष १० मास १० दिन शासन चलाया। उनके समय कण्ठभट्टादि महोदयोंने सोमराजानककर्तृक विलुप्त हिन्दू क्रियोका पुनरुद्धार किया था। किन्तु खोजा मीर अहमदने यह कष्ट कर निर्मलादि ब्राह्म-

णोंको मरवा डाला—"हे विप्र लोगो! इस कलियुग में तुम्हारा ब्रह्मतेज कहां है? वा आचार हो कहां है?" उसी समय मुहम्मद शाहको फतेहशाहका मृत्युसंवाद मिला था। उनके समय अन्य किसी चक्रवर्ती राजा। गजपति सिकन्दरने काश्मीरराजा आक्रमण किया, किन्तु मुहम्मदने उनको हरा दिया। फिर फतेहशाह के पुत्र खान् पितृव्य राजा पुनः पानेकी आशासे काश्मीर पहुंचे। उनने मुहम्मदको राजभ्रष्ट किया था। उसके काश्चनचक्रने इब्राहीमको काश्मीरका राजा बनाया। उसी समय काश्मीरराजमें तुरुष्क-राजका विषम उपद्रव उठा था। प्रथम मार्गेश्वर अब्दुलने मुगलराज बाबरके निकट गमनपूर्वक काश्मीर राज जीतनेके लिये सैन्य मांगा। बाबरने उनको एक सहस्र सैनिक दिये थे। अब्दुलने फतेहशाहके पुत्र नाजुकखान्‌को आगे रख गिरिपथसे काश्मीर राजमें प्रवेश किया। उनने तुरुष्क सेन्य द्वारा काश्मीर जीत नाजुकशाहको राजा बना दिया।

फिर मुहम्मद शाहके कोहरका राजा होने पर तुरुष्क-सैन्य अपने स्थानको चला गया। नाजुक शाहने १ वर्ष राज कर मुहम्मदसे यौवराज्य पाया था। ५ वर्ष पीछे पुनर्वार मुहम्मद राज्यपर अभिषिक्त हुवे, उसके पीछे बाबर मर गये। उनके कामरान् और हुमायूं नामक पुत्रद्वयने काश्मीरराज्य लाभ किया। कुछ दिन पीछे महरम नामक सेनापति बहुतर सैन्य ले काश्मीर जीतने गये थे। पौरगणने भयसे पार्वत्य प्रदेशको पलायनपूर्वक गुहादिमें आश्रय लिया। उस समय पुरीको शून्य देख मुगलोंने राजधानीके सकल गृहादि जला दिये और सहस्र सहस्र व्यक्तियोंके प्राण विनाश किये। फिर काश्मीरमें काशगरोंका उपद्रव उठा था। उससे तुरकोंने बहु ग्राम नगरादि जला डाले और धन रत्न एवं रमणीय रत्न ग्रहणपूर्वक स्वदेश को चले गये। उसके पीछे काश्मीरराज्यमें भयानक दुर्भिक्ष पड़ा था। मुहम्मदशाहने फिर ५ वर्ष राजत्व कर कलेवर परित्याग किया।

अनन्तर उनके पुत्र शमसशाह राजा हुवे। उनके समय काषचक्रपति काश्मीर आक्रमण करने जैन-पुरसे चल पड़े। बाद सन्धिसूत्रसे युद्ध बन्द हो गया। शमसशाहके बाद उनके भ्राता इस्माइल शाह राजा हुवे। उधर मुगल सेनानी नाजुकशाह पापगड देश जीतने सैन्य सह चले गये। नाजुकशाहके राजत्वकाल काश्मीरको प्रजाने सुख स्वच्छन्दसे दिन यापन और समस्त वैदिक क्रिया कलाप निर्विघ्न निर्वाह किया था। उनके समय ग्राम विभाग पर कर्मचारियोंमें विरोध हो गया। उसी विरोधसे मिर्जा हैदर और दौलतखान् लड़ने लगे। एक मास लड़ाई होनेके पीछे दौलत (गाजीखान्) जीते थे। उसके पीछे उन्होंने राज्यशासन किया। उनके समय काश्मीरमें भयङ्कर भूमिकम्प हुवा था। उससे अनेक स्थान विध्वस्त हो गये। किसी दिन दौलतखान्‌ने तुलमुल स्थान पर अभिमन्यु नामक महात्मा साधुके निकट जाकर पूछा था—"हमारा राज्य किस प्रकार विस्तृत होगा।" उस पर साधुने उत्तर दिया—"ब्राह्मणोंसे वार्षिक कर न लेने पर तुम्हारी अभीष्ट सिद्धि होगी।" यह सुनकर दौलतने कहा था—"हम म्लेच्छ हो कर आपको आज्ञासे किस प्रकार ब्राह्मणोंका कर निवारण करेंगे?" उस पर साधुने क्रोधाविष्ट हो शाप दिया—"अल्पदिनके मध्य हो तुम्हारी राजश्री बिगड़ जायेगी।" उसीसे दौलतकी राजसम्पत्ति विनष्ट हो गयी। उसके पीछे हबीब नामक किसी व्यक्तिके एक मास राजत्व करने पर गाजीखान्‌ने राज्य ग्रहण किया था। किसी दिन उनने गणकोंसे पूछा—"हमारे राज्यमें भूमिकम्पादि दुर्निमित्त क्यों होते हैं?" उनने उत्तर दिया—"आपके राज्यमें कोई घोरतर लड़ाई होगी।" कुछ दिन पीछे मिर्जा हैदरके सेनानी हुहत् सैन्यदल ले काश्मीर जा पहुंचे। गाजीशाहने ससैन्य राजविर नामक स्थानमें जा युद्ध घोषणा की थी। उस लड़ाईमें हैदरके सेनानी गाजीशाहका सागरसदृश सेनासमूह देख भयसे भाग गये। उसके पीछे गाजीशाहसे चक लोगोंका युद्ध हुवा। इसमें उनने हुसैनचकको मार जय पाया था।

मुगलराज शाह अब्दुल मालीके बहुतर सैन्यके साथ काश्मीर जय करनेको उपस्थित होने पर दौलत

महती सेनाके समभिव्याहार परिहासपुरके निकट लड़ाई करनेको सम्मुखीन हुवे। घोरतर लड़ाई हुई थी। उसमें मुगलराजकी बहुतसी सेना मारी गयी। वह अपने स्थानको भगे थे। दौलत अतिशय निष्ठुर रहे। किसी दिन फल चोरानेके अपराधमें उनने एक बालकके दोनों हाथ काट डाले थे। फिर उनके प्रतापशाली पुत्रने मातुलके प्रति कोई अत्याचार किया था। दौलतने उसे भी मार डाला। उनके राज्यमें १८ मन्त्री रहे। अवशेषको वह गलित कुष्ठरोगसे आक्रान्त हुवे। उनने इहलोकमें नरकयन्त्रणा भोग पञ्चत्व पाया था।

दौलतके बाद उनके भ्राता हुसेनखान्ने राज्यलाभ किया। वह दाता और प्रजारञ्जक थे। खान् जमान् नामक मन्त्रीने उन्हें हटा स्वयं थोड़े दिन राज्य किया। वह प्रति दिन सौ लोगोंको वध करता था। यहां तक कि दिलावरखान् द्वारा उनने अपने पुत्रको भी मरवा डाला। हुसेनखान्ने फिर जाकर मन्त्रिको मारा था। पीछे अपस्मार रोगसे हुसेनखान्का मृत्यु हुआ। उनने ७ वर्ष राजत्व किया था।

फिर उनके भ्राता अलीखान् राजा हुवे। वह प्रजाको सुखी करने पर तत्पर रहे। उसी समय घोर दुर्भिक्ष पड़ गया। ९ वर्षके राजत्व बाद अलीखान् मरे थे।

अलीखान्के बाद उनके पुत्र यूसुफशाहने राजत्व ग्रहण किया। किन्तु उनके पितृव्य अब्दुलखान्ने किसी दूतसे कहला भेजा था—"भ्राताके मरने पर भ्राता ही राजपद पाता है। आप क्यों राजलाभको आशा करते हैं।" सिकन्दरपुरमें अब्दुल और यूसुफको लड़ाई हुई। अब्दुलने प्राणत्याग किया था। उसके बाद मुबारकखान् यूसुफसे लड़ने चले। यूसुफके सेनापति मुहम्मदखान् उस लड़ाईमें मारे गये। उसके बाद मुबारकखान् काश्मीरके राजा हुवे। यूसुफने अकबर बादशाहके निकट दिल्ली जा साहाय्य मांगा था। उसी समय चकोंने मुहम्मदखान्को हरा लोहर-चकको काश्मीरका राज्य दे डाला। यूसुफने अकबरके निकटसे लौट वितस्तावेष्टित खयपुर ग्राममें अवस्थान किया था। लोहरचक उनसे लड़ने लगे। उस लड़ाईमें लोहरचकके मन्त्री अब्दुलमीर मारे गये। फिर यूसुफने काश्मीरका सिंहासन पाया था। उस समय लोहरखान्ने याकूबका शरण लिया। किन्तु याकूबने सुविधा देख उनके और उनके भाईके नेत्र फोड़ डाले। फिर हैदर-चकके साथ याकूबका युद्ध हुवा। उसमें हार हैदर अकबर बादशाहके पास भाग गये। यूसुफने काश्मीर जीत बहुतर उपढौकनसह अपने पुत्रको सम्राट् अकबरके निकट भेजा था। अकबरने यूसुफके भेजे उपढौकन पाते भी काश्मीरके जयका अभिलाष न छोड़ा। उन्होंने भगवान्दास सेनापतिको काश्मीर भेजा था। युसुफ भगवान्दासको बहुतर धनरत्न उपहार दे अकबरके शरणागत हुवे। कुछ दिन राज्य कर वह अकबर सम्राट्के सेवार्थ चले गये। फिर उनके पुत्र याकूबने काश्मीरका राजत्व किया। उस समय शम्सचक अत्यन्त क्रुद्ध हो याकूबसे लड़े थे किन्तु शेषको हार गये।

फिर सम्राट् अकबरको काश्मीर विजयकी स्पृहा बढ़ी थी। उन्होंने बहुतर सैन्यके साथ कासिमखान्के अधीन २२सेनाध्यक्ष काश्मीर भेजे। कासिमखान्के आगमनको बात सुन याकूबने पलायन किया था। उनका सैन्य सकल छिन्न भिन्न हो गया। फिर शम्स चकने अल्प संख्यक सैन्य ले कासिमसे लड़ाई की। किन्तु मुगल जीते थे। हैदरचक कासिमखान्को जाते देखे गये। उसीसे लोगोंने उनका पक्ष अवलम्बन किया। कासिमखान्ने हैदरचकके साथ अनेक व्यक्तियोंको देख कर पकड़ा था। उससे काश्मीरकी बहुतसी प्रजा भयसे वनको भाग गयी। वनमें सब लोग मिले थे। लड़ाई करनेको कृतसङ्कल्प हो प्रजा याकूबखान्को ले गयी। कासिमने मोमारखान्को याकूबके विरुद्ध भेजा था। याकूबने सदाशिवपुरमें मोमारखान्की सेना पर आक्रमण किया। कासिमखान्ने काश्मीरका बहुतर सैन्य देख काराग्टह-स्थित हैदरचकको मार डाला। उसके बाद कासिम और याकूबकी लड़ाई हुई। किन्तु जय पराजय समझ न पड़ा। याकूब काठवाट चले गये। उस समय याकूबके पिता यूसुफ और अन्यान्य प्रधान व्यक्तिने सन्धिके लिये प्रार्थना की। कासिमने यूसुफ प्रभृति व्यक्तिको अकबरके पास भेजा था। अकबरने उन्हें समादरसे लिया।

उसी समय काश्मीरमें तुषारपात आरम्भ हुवा। याकूबने ससैन्य काष्ठवाटसे निकल मुगलसेनाको आक्रमण किया था। ३ मास तक लड़ाई चली। कासिमखानको पराजितप्राय सुन अकबरने यूसुफखान्‌को काश्मीर जीतनेके लिये आदेश किया था। यूसुफखान्‌ने आकर याकूबका पराजय किया। वह फिर अकबरके निकट लौट गये। १८५६ ई० को काश्मीर अकबरके हाथ लगा। उस समय अकबर काश्मीर देखने लाहोरसे चले थे। काश्मीरमें उपस्थित होने पर याकूब उनके शरणागत हुवे। अकबरने उन्हें राजा मानसिंहके अधीन सेनाध्यक्ष बनाया था। फिर वह यूसुफखान्‌को काश्मीरका शासनकार्य सौंप देशान्तरको चले गये। यूसुफ काश्मीरराज्यका शासन करने लगे। किसी कारण यूसुफ अकबरके विरागभाजन हुवे थे। अकबरने यूसुफके प्रति क्रुद्ध हो काजी अलाको काश्मीरके शासन कार्यमें नियुक्त किया। काजी अलाके काश्मीरकोषका समस्त धन व्यय कर डालनेसे मुगलोंमें परस्पर विरोध उपस्थित हुवा। उसमें मिर्जा यादगारने काश्मीरियोंसे मिल काजी अलाके साथ लड़ाई की। काजी अला हार कर पर्वत पर भाग गये और वहीं चल बसे।

अनन्तर मिर्जा यादगारने काश्मीरके शासनकर्ता हो अकबरकी अधीनता मानी न थी। अकबरने शेख फरीदको ससैन्य काश्मीर भेज दिया। शूरपुरमें मिर्जा यादगार अपने अनुचरोंके ही हाथों मारे गये। शेख फरीदके शासनकाल अकबर फिर काश्मीर पहुंचे थे। उस बार उन्होंने अनेक सत्कार्य किये। उन्होंने सुना कि ब्राह्मण म्लेच्छराजसे देशान्तरको जाते थे। उसीसे प्रथम अकबरने चक्रवंशियोंसे वार्षिक कर लेना निषेध किया। फिर उन्होंने ढिंढोरा पिटाया था—"काश्मीरका जो व्यक्ति ब्राह्मणोंकी पूजा करेगा उसको तत्क्षण पारितोषिक मिलेगा। यहां जो ब्राह्मणोंसे कर लेगा, उसका घर उसी समय गिरा दिया जावेगा। फिर ब्राह्मण उन्हें आशीर्वाद देने लगे। अकबरके कोई रामदास कर्मचारी काश्मीरवासी ब्राह्मणोंका नियत उपकार करते थे। वह ब्राह्मणोंको देखते ही स्वर्णरौप्य दे देते रहे। उन्हें कुछ भी अभिमान न था। प्रवाद है कि उन्होंने प्रत्येक ब्राह्मणके घर सौ सौ रुपये और एक एक अशरफी बांटी थी। अकबर भी काश्मीरी ब्राह्मणोंको विशेष रूपसे परितृप्त रखते थे। किसी दिन उन्होंने सहस्र स्वर्णमुद्रा दरिद्र ब्राह्मणोंको दे डालीं।

अकबरने यूसुफखान्‌को पुनर्वार काश्मीरका शासनकर्तृत्वभार सौंप लौटाया था। वह प्रजाका कोई अनिष्ट न कर राज्यशासन चलाने लगे। कुछ दिन पीछे यूसुफखान्‌के अकबरके कार्य साधनार्थ चले जानेसे उनके पुत्र मिर्जालश्कर काश्मीरके शासनकर्ता हुवे। उन्होंने निम्नलिखित आदेश निकाला था—"जो व्यक्ति काश्मीर-निवासियोंको सतायेगा, वह तत्क्षण अपने अपराधका फल पायेगा।" मिर्जालश्करके ८ वर्ष शासन करने पर अकबरने पहले अयाजखान् और उसके पीछे अहमदखान् तथा सुलतान मुहम्मद कुली खान्‌को काश्मीरका शासनभार प्रदान किया। उनने काश्मीर जा दुर्नीतिको पकड़ा था। उसी समय अकबरके आदेशसे उक्त दोनो शासनकर्ताओंने प्रवरपुरके निकट एक नगनामकदुर्ग और शारिका पर्वतके पास नग नामक नगर निर्माण कराया। वर्तमान श्रीनगर जैन-उल्-आब्दीन निर्मित पुरातन नगरीके सन्निधानमें ही बना था। किसी दिन मध्याह्न कालको पुरातन नगरी अकस्मात् जलने लगी। दो सहस्र गृहसम्वलित उक्त नगरी अल्प क्षणके मध्य ही भस्मावशेष हुयी। उस समय नवीन नगरी सपत्नी विनाशसे प्रियतमा रमणीकी भांति फूल कर आनन्द प्रकाश करने लगी।

काश्मीर अकबरके पुत्र जहांगीरका अतिप्रिय स्थान था। वह प्रियतमा नूरजहान्‌के साथ सर्वदा वहां वसन्तलीला करते थे। काश्मीरमें अद्यापि नूरजहान्‌के लीला-उद्यान और मनोरम प्रासादका भग्नावशेष देख पड़ता है।

जबतक दिल्लीके मुगल बादशाहोंका प्रभाव अक्षुण्ण था, तबतक काश्मीरराज उनके अधीन रहा। उस समय कोई शासनकर्ता दिल्लीके अधीन राजकार्य

निर्वाह करता था। १७५२ ई० को पठान-वीर अहमद शाह दुरानीने काश्मीर राज्य जीता था। फिर कुछ कालतक पठानोंका प्रभाव रहा। १८१९ ई०को महाराज रणजीत् सिंहने काश्मीर अधिकार किया। उस समय सिखराजके अधीन कोई शासनकर्ता भेजा जाता और काश्मीरका शासनकार्य चलाता था। १८४३ ई०को जम्बु, लादक और बलतिस्तानके साथ काश्मीरभूमि गुलाबसिंहको मिल गयी। १८४६ ई० को सोब्राउन युद्धके बाद गुलाबसिंहने ७५ लाख रुपये दे अंगरेजोंसे काश्मीरराज्य क्रय किया था। गुलाबसिंह अंगरेज गवरन्मेण्टके एक मित्र राजा बने। युद्धकाल वह अंगरेज गवरन्मेण्टको साहाय्य करने पर बाध्य थे। किन्तु वह स्वाधीन भावसे हिन्दू राजनीतिके अनुसार राज्य करते थे। गुलाब सिंह देखो। १८५८ ई० को गुलाब सिंहके मरने पर उनके पुत्र रणधीर सिंह राजा हुवे। उनने १८८२ ई०को अंगरेज सरकारसे २१ तोपोंकी सलामी, 'ब्रटिशसेनापतित्व' और 'महारानीका मन्त्रित्व' पाया था। १८८५ ई०को जम्बु नगरमें रणवीरसिंह मर गये। फिर उनके ज्येष्ठपुत्र प्रतापसिंहने सिंहासन लाभ किया। उनकी सभामें ब्रटिश रेसोडण्ट घुस गये।

प्रतापसिंहको ब्रटिश गवर्नमेण्टने जी. सी. एस. आई. उपाधि, परंपराके लिये 'महाराज' पद और श्रेष्ठ सम्मानकी सूचक २१ तोपोंकी सलामी प्रदान की है।

काश्मीरराज महारानी भारतेश्वरीको प्रतिवर्ष एक घोड़ा, २१ सेर पशम और और अत्युत्कृष्ट ३ काश्मीरी दुशाले कर स्वरूप देते थे। अब काश्मीरराज्य सम्पूर्ण रूपसे ब्रटिश सरकारके अधीन है।

कह्लणने लौकिक संवत् ६२८से लौकिक संवत् ६४१ तक अर्थात् प्रथम गोनन्दसे लेकर बलादित्य तक जिन राजावोंके नामका उल्लेख किया है। उन्होंने अवश्य काश्मीरके सिंहासनपर आरोहण कर राज्य किया था। ऐसा निःसन्देह उन लोगोंका कीर्ति सूचक चिह्न और किंवदंतियोंसे ज्ञात होता है। परन्तु उनके नामोंकी सूची जिस क्रमसे उल्लिखित है वह ठीक वैसो ही है इसमें पूरा पूरा सन्देह है और उसके साथ यह तो निश्चय है कि—उन लोगोंका शासनकाल अवश्य ही कुछ गलत है। हां! कर्कोटक-वंशसे आगे कह्लणने जो कुछ लिखा है वह अवश्य ठीक है और इसलिये इतिहासवेत्ता उस प्रकरणसे वास्तविक कालानुसार इतिहास ग्रहण करते हैं।

काश्मीरके राजाओंकी तालिका।

राजाका नाम	अभिषेकवर्ष	राज्यकाल
गोनन्द १म (कह्लणके मतमें ६५३ कल्यब्द तथा ६२८ लौकिक संवत्)		१२६६ लौ० सं० ६२८-१८९४
दामोदर १म	...	
यशोवती	...	
गोनन्द २य		
(३५ राजावोंका विवरण लुप्त है।		
लव	....	
कुश	...	
खगेन्द्र	...	
सुरेन्द्र	...	
गोधर	...	
सुवर्ण		
जनक		
शचीनर	..	
अशोक		
जलौक		
दामोदर २य		
हुष्क, युष्क, कनिष्क, *	...	
अभिमन्यु १म	...	

गोनन्दवंश।

गोनन्द ३य	...	१८९४-०-० लौ० सं०	३५	वर्ष
विभीषण १म	...	१९२९-०-० ,,	...५३	,, ६ मास
इन्द्रजित्	...	१९८२-६-० ,,	...३५	,,
रावण	...	२०१७-६-० ,,	...३०	वर्ष ६ मास
विभीषण २य	...	२०४८-०-० ,,	...३५	वर्ष ६ मास
नर (प्रथम) वा किन्नर		२०८३-६-० ,,	...४०	वर्ष ९ मास
सिद्ध	...	२१२४-३-० ,,	...६०	वर्ष
उत्पलाक्ष	...	२१८४-३-० ,,	...३०	वर्ष ६ मास
हिरण्याक्ष	...	२२१४-९-० ,,	...३७	वर्ष ७ मास
हिरण्यकुल†	...	२२५१-४-० ,,	...६०	,,
मुकुल वा वसुकुल	...	२३११-४-० ,,	...६०	,,

* यह तीनों राजा ई० प्रथम शताब्दको विद्यमान थे। कनिष्क देखो।

† शिलालेख और चीनीय विवरणके अनुसार यह ई० ६ठ शतकमें विद्यमान थे

मिहिरकुल* वा त्रिकोटिहा	२३०२-४-०	,, ...	वर्ष
वक ...	२४९२-४-०	,, ...६३	,, तेरह दिन
क्षितिनन्द ...	२५०५-४-१३	,, ...३०	,,
वसुनन्द...... ...	२५३५-४-१३	,, ...५२	वर्ष २ मास
नर २य...	२५८७-६-१३	,, ...६०	,,
अक्ष... ...	२६४७-६-१३	,, ...६०	,,
गोपादित्य... ...	२७०७-६-१३	,, ...६०	वर्ष ६ दिन
गोकर्ण... ...	२७६७-६-१९	,, ...५७	वर्ष ११ मास
नरेन्द्र वा खिङ्खिल* ...	२८२४-५-१९	,, ...३६	,, ३ मास १० दिन
युधिष्ठिर	२८६१-८-२९	,, ...३५	वर्ष ३ मास १ दिन

विक्रमादित्य-शाकिवंश।

प्रतापादित्य (प्रथम)....	२८९६-०-०	लौ० सं०..३२	वर्ष
जलौकः ...	२९२८-०-०	,, ३२	,,
तुञ्जीन (प्रथम	२९६०-०-०	,, ३६	,,
विजय (अन्य वंश)...	२९९६-०-०	,, ८	,,
जयेन्द्र ...	३००४-०-०	,, ३७	,,
सन्धिमति वा आर्यराज	३०४१-०-०	,, ४७	,,

गोनन्दवंश (३य बार)

मेघवाहन ...	३०८८-०-०	लौ सं	३४ वर्ष
प्रवरसेन प्रथम वा तुंजीन २य	३१२२-०-०	,,	३० वर्ष
हिरण्य और तोरमाण*	३१५२-०-०	,,	३० वर्ष २ मास
मातृगुप्त (अन्य वंश)	३१८२-२-०	,,	४ ,, ९ मास १ दिन
प्रवरसेन २य ...	३१८६-११-१	,,	६० ,,
युधिष्ठिर २य ...	३२४६-११-१	,,	३९ वर्ष ३ मास
नरेन्द्र वा लक्ष्मण ...	३२८६-२-१	,,	१३ ,,
रणादित्य वा तुंजीन ३य,‡	३२९९-२-१	,,	३०० ,,
विक्रमादित्य	३५९९-२-१	,,	४२ वर्ष
बालादित्य	३६४१-२-१	,,	३६ ,, ८ मास

कायस्थ वा कार्कोट वंश।

दुर्लभवर्धन वा प्रज्ञादित्य	३६७७-१०-११	लौ० सं०	३६ वर्ष
दुर्लभक वा प्रतापादित्य २य*	३७१३-१०-१	,,	५० ,,
चन्द्रापीड वा वज्रादित्य	३७६३-१०-१	,,	८ ,, ८ मास
तारापीड वा उदयादित्य	३७७२-६-१	,,	४ ,, २४ दिन
मुक्तापीड वा ललितादित्य‡	३७७६-६-२५	,,	३६ ,, ७ मास ११ दिन
कुवलयापीड	३८१३-२-६	,,	१ वर्ष १५ दिन
वज्रादित्य वा ललितादित्य २य	३८१४-२-२१	,,	७ ,,
पृथिव्यापीड	३८२१-२-२१	,,	४ ,, १ मास
संग्रामापीड (प्रथम)	३८२५-३-२१	,,	७ दिन

* ई० ६ष्ठ शतकमें विद्यमान थे।

† राजतरङ्गिणीमें लिखा है—

"अथ प्रतापादित्याख्यस्तै राज्ञीय दिगन्तरात्।
विक्रमादित्यभूभर्तुर्ज्ञातिरभ्यषिच्यत।
शकारिविक्रमादित्य इति स भ्रममाश्रितैः॥" (२।५—६)

उक्त श्लोक द्वारा संवत्प्रतिष्ठाता शकारि विक्रमादित्यके पीछे प्रतापादित्यका राज्यारम्भ अवश्य मानना पड़ता है। किन्तु कल्हणने काश्मीरके राजाओंका राजत्वकाल जिस प्रकार स्थिर किया है, उससे प्रतापादित्य १६९ खृ० पूर्वाब्द अर्थात् संवत् प्रतिष्ठातासे ११२ वर्ष पूर्वके लोग समझ पड़ते हैं।

‡ राजतरङ्गिणीमें लिखा है कि रणादित्यने ३०० वर्ष राजत्व किया यथा— "एवं स भूपतिर्भुक्त्वा भुवं वर्षशतत्रयम्।
निर्वा[illegible]पातालमिश्रमासदत्॥" (३।४७२)

किन्तु एक व्यक्तिके लिये इतने दीर्घकालपर्यन्त राजत्व करना क्या सम्भव है? मालूम होता है कि कल्हणने रणादित्यके परवर्ती राजगणके राज्यकाल सम्बन्धमें यथेष्ट और प्रकृत प्रमाण पाया था। उनके पूर्ववर्ती राजगणका यथायथ विवरण प्राप्त होते भी प्रकृत समयके निरूपण सम्बन्धमें वह कोई विशिष्ट प्रमाण संग्रह कर न सके। इसीसे सम्भवतः विक्रमादित्य शाकि-वंशीय प्रतापादित्यसे पूर्ववर्ती राजा युधिष्ठिरका राज्यकाल बिलकुल निरूपण किया न गया। फिर प्रतापादित्य शकारि-विक्रमादित्यके परवर्ती होते भी उनकी गणनामें पूर्ववर्ती निकले हैं। उक्त कारणसे कल्हणने जो ३०० वर्ष रणादित्यके शासनकाल मध्य डाले हैं, हमारे विवेचनासे वह प्रतापादित्य पूर्ववर्ती राजगणके राजत्वमें चले जावेंगे। इस रीतिसे गणना करने पर शकारि-विक्रमादित्य और उनके ज्ञातिवंशीय प्रतापादित्यका प्रकृत समय निरूपित हो सकता है। राजतरङ्गिणीके मतसे रणादित्यके पीछे उनके पुत्र विक्रमादित्यने ४२ वर्ष राजत्व किया था। किन्तु उक्त दीर्घकालके राजत्वका विवरण कल्हणने २ श्लोकोंमें शेष कर दिया है। उससे पहले जिन जिन राजाओंने दीर्घ काल राजत्व किया कल्हणने उनके सम्बन्धमें बहुत कुछ लिखा है। किन्तु उनके सम्बन्धमें वह क्यों नीरव रहे? अधिक यही सम्भव-पर है कि पितापुत्र उभयने ४२ वर्ष राजत्व किया था।

* चीन इतिहासमें इनका समय ई० ६२७ से लेकर ६४९के बीच बताया गया है। इनका परिचय तु-ली-न नामसे दिया गया है।

† चीन इतिहासमें इनका नाम चेन्-लो-तो-पि-लि लिखा है। और उन्होंने सातसौ तेरह ई० में चीन-सम्राट्के पास अरब लोगोंके विरुद्ध युद्ध करनेमें सहायता माँगनेके लिये दूत भेजा था।

‡ चीन इतिहासमें 'मु-तो-पि' नामसे इनका उल्लेख है। ई० सन ७३६से ७४७के बीच जब बल्तीस्तानके साथ युद्ध करनेके लिये चीनी सेना भेजी गई थी, उसी समय मुक्तापीडने चीन-सम्राट्के पास दूत भेजा था। Vide Kalhan's Chronicle of the Kings of Kasmir, by M. A. Stein, Vol. 1 (intro. p. 67.)

जज्ज (जयापीड़के श्यालक और मन्त्री उनकी अनुपस्थिति कालमें)	३८२५-३-२८	लौ० सं	३ वर्ष
जयापीड़ वा विनयादित्य	३८२८-३-२८	”	३१ ”
ललितापीड़	३८५९-३-२८	”	१२ ”
पृथिव्यापीड़ वा संग्रामापीड़ २य	३८७१-३-२८	”	७ ”
चिप्पट जयापीड़ (बृहस्पति)	३८७८-३-२८	”	१२ ”
अजितापीड़	३८८९	,,	३७ ”
अनङ्गापीड़	३९२६	,,	३ ”
उत्पलापीड़	३९२९	,,	२ ”

अन्यवंश।

अवन्तिवर्मा	८५५।६	ई०	
शङ्करवर्मा	८८३	”	
गोपालवर्मा	९०२	”	२ वर्ष
सङ्कट	९०४	”	१० दिन
सुगन्धा	९ ४	”	२ वर्ष
पार्थ	९०६	”	
निर्जितवर्मा या पङ्गु	९२१	”	
चक्रवर्मा	९२३	”	
शूरवर्मा (प्रथम)	९३३	”	१ वर्ष
पार्थ (२य वार)	९३४	”	
चक्रवर्मा (२य वार)	९३५	”	
शङ्करवर्धन	९३५	”	
चक्रवर्मा (तृतीयवार)	९३६	”	
उन्मत्तावन्ति	९३७	”	
शूरवर्मा २य	९३९	”	
यशस्कर,	९३९	”	९ वर्ष
वर्णट	९४८	”	१ दिन
संग्रामदेव	९४८	”	
पर्वगुप्त	९४९	”	
क्षेमगुप्त	९५०	”	
अभिमन्यु	९५८	”	
नन्दिगुप्त	९७२	”	
त्रिभुवन	९७३	”	
भीमगुप्त	९७५	”	
दिद्दा	९८०।१	”	
संग्रामराज	१००३	”	
हरिराज	१०२८	”	२२ दिन
अनन्त	१०२८	”	
कलश	१०६३	”	
उत्कर्ष	१०८९	”	२२ दिन
हर्ष	१०८९	”	
उच्चल	११०१	”	
रड्ड वा शङ्कराज	११११	ई०	१ दिन
सल्हण	११११	”	३ मास २९ दिन
सुस्सल	१११२	”	
भिक्षाचार	११२०	”	६ मास १० दिन
सुस्सल २य वार	११२१	”	
जयसिंह	११२८	”	२२ वर्ष
परमाणुक	११५१	”	९ वर्ष ६ मास १० दिन
वन्तिदेव	११६०	”	७ वर्ष
वप्पदेव	११६७	”	२ वर्ष ६ मास
जस्सदेव	११७०	”	१८ वर्ष १३ दिन
जगदेव	११८८	”	१४ वर्ष ३ मास
राजदेव	१२०२	”	२३ वर्ष ३ मास २७ दिन
संग्रामदेव	१२२५	”	१६ वर्ष १ मास १० दिन
रामदेव	१२४१	”	२१ वर्ष १ मास १३ दिन
लक्ष्मणदेव	१२६२	”	१३ वर्ष ३ मास १२ दिन
सिंहदेव	१२७६	”	१४ वर्ष ५ मास २७ दिन
सुहदेव	१२९०	”	१९ वर्ष ३ मास २५ दिन
रिञ्चण (तिब्बतदेशीय)	१३०९	”	३ वर्ष २ मास १९ दिन
उदयानदेव	१३१३	”	१५ वर्ष १ मास १० दिन
रानी कोटादेवी (अराजक)			

मुसलमान वंश।

शाहमीर (ताहराजकुलोद्भव) वा शम्स उद्-दीन	१३४२	ई०	३ वर्ष ११ मास २५ दिन
१८ मुसलमानराज			
जमशेद (जमशेद)	१३५०	”	१ वर्ष २ मास
अला उद्-दीन	१३५१	”	१२ वर्ष ८ मास १३ दिन
शहाब्-उद्-दीन	१३६४	”	२० वर्ष
कुतुब-उद्-दीन	१३८४	”	१५ वर्ष
सिकन्दर	१४१०	”	२२ वर्ष ९ मास ६ दिन
अलीशाह	१४१६	”	६ वर्ष ९ मास
जैन-उल-आबदीन	१४२२	”	५२ वर्ष
हाजी हैदर शाह	१४७३	”	१ वर्ष २ मास
हुसैन खान्	१४७४	”	१२ वर्ष ५ मास
मुहम्मद शाह	१४८६	”	२ वर्ष ७ मास
फतेह शाह	१४९६	”	९ वर्ष १ मास
मुहम्मदशाह (द्वितीयवार)	१५०५	”	९ मास ९ दिन
फतेह शाह (द्वितीयवार)			१ वर्ष १ मास
मुहम्मद शाह (तृतीयवार)			११ वर्ष १० मास १० दिन
इब्राहीम			८ मास २५ दिन
नाजुकशाह	१५२०	”	१ वर्ष
मुहम्मदशाह (चतुर्थवार)			५ मास
शम्सी (शमस शाह)			२ मास
इस्माइल			२ वर्ष ९ मास

सुलतान नाजुकशाह (द्वितीयवार)		१३ वर्ष ८ मास
इस्माइल (द्वितीयवार)		१ वर्ष ५ मास
मिर्जा हैदरखान्	१५४१ ई०	१० वर्ष
सुलतान नाजुक शाह (तृतीयवार)		१० मास
इब्राहीम, इस माइल, हबीब, गाजीखान्		१० वर्ष ६ मास
हुसेन चक	१५६३ ई०	७ वर्ष
अलीशाह चक		८ वर्ष
युसुफ शाह	१५८० "	१ वर्ष १० दिन
सैयद मुबारक		१ मास २५ दिन
लोहर चक		१ वर्ष २ मास
युसुफ शाह (द्वितीयवार)		५ वर्ष ३ मास
याकूबखान्		१ वर्ष
दिल्लीवाले मुगलसम्राट्के अधीन १५८६ ई० से १७५२ ई०		
अहमदशाह दुर्रानी	१७५२ "	
अफगानोंके अधीन	१७५२ " से १८१८ ई०	
रणजीत्‌सिंह	१८१९ "	
गुलाबसिंह	१८४२ "	१५ वर्ष
रणबीरसिंह	१८५८	२७ वर्ष
प्रतापसिंह	१८८५ "	

प्राचीन मन्दिर और ध्वंसावशेष—तुषारमय शैलशिखरवेष्टित काश्मीरमें भी बहुतसी पुरानी चीजें देखने लायक हैं। इतिहास पढ़नेसे समझते हैं कि काश्मीरके प्रायः सकल हिन्दूराजावोंके द्वारा अथवा उनके राजत्वमें अपर व्यक्तिकर्तृक नाना स्थानोंमें सहस्र सहस्र देवमूर्ति एवं देवमन्दिर प्रतिष्ठित हुवे थे। कालवश उनमें अधिकांश बिगड़ गये। फिर भी उनकी संख्या बहुत कम नहीं। आज भी श्रीनगर, पाण्डुथन्, अवन्तिपुर, तख्त सुलेमान्, पामपुर, पत्तन, लेदरी, काकपुर, वराहमूल, यमपुर, भवानीयर, वर्णकोटरी, भौमज, पायच, मार्तण्ड, ममलपुर, मानसबल, नारायणताल, फतेहगढ़, तैवन, टुवनसा, वङ्गातके निकट, नौसेहरा, तथा इरीका मध्यवर्ती दिमन नामक स्थान और खुनमोके अनेक प्राचीन देवालय भग्न वा अभग्न अवस्थामें पड़े हैं। इन प्राचीन मन्दिरोंका शिल्पनैपुण्य देखनेसे चमत्कृत होना पड़ता है। हिमानीगह्वरके मध्य जब पर पाषाणमय देवमन्दिर दर्शन करनेसे किसी अद्भुत रसका आविर्भाव होता और निर्माताको सहस्र धन्यवाद देनेके लिये जी चाहता है। प्राचीन भारतवासियोंकी शिल्पविद्याका परिचय काश्मीरमें यथेष्ट मिलता है।* अनेक प्राचीन देवस्थान पुण्यतीर्थकी भांति प्रसिद्ध हैं। बरफके ढेरको काटकर असंख्य तीर्थयात्री उक्त सकल प्राचीन पुण्यतीर्थ दर्शन करने जाते हैं। अमरनाथ देखो।

एतद्भिन्न काश्मीरके अनेक तीर्थोंमें आज भी अद्भुत नैसर्गिक व्यापार सङ्घटित हुवा करता है। उनको दर्शन करनेसे जगत्स्रष्टाकी अपार महिमा हृदयङ्गम होती है। भारतके प्रायः सभी देशोंमें तीर्थ हैं। उनमें जो अद्भुत व्यापार देखा जाता, उसमें अधिकांश अनेकोंकी धारणासे कृत्रिम कहाता है। किन्तु काश्मीरमें ऐसे अनेक तीर्थ हैं, जिनके नैसर्गिक व्यापारको देख कर कभी कृत्रिम कह नहीं सकते। यहां हम दो एक तीर्थकी बात कहेंगे।

क्षीरभवानी—श्रीनगरसे उत्तर ३ घण्टे नावकी राह पर एक क्षुद्र द्वीप है। उसमें एक कुण्ड विद्यमान है। उसीको क्षीरभवानी कहते हैं। वहां लोग क्षीर वा पायसान्नसे देवी भवानीकी पूजा करते हैं। उक्त कुण्डका जल कभी लाल, कभी हरा, कभी गुलाबी नाना वर्णका आकार धारण करता है। वैसा क्यों होता है? कोई वैज्ञानिक उसका प्रकृत कारण ठहरा नहीं सकता है।

चलद्वीप—श्रीनगरके दक्षिण माछिहामा नामका परगना है। उस परगनेमें कोई अतिवृहत् जलाशय है उसके जलपर बड़े बड़े भूमिखण्ड पड़े हैं। उन भूखण्डों पर पेड़ पत्ते लगे हैं। पशु भी चरनेके लिये उनपर घूमा करते हैं। बड़ा ही आश्चर्य है। अधिक वायु चलनेसे उक्त भूखण्ड वृक्षादिके साथ घूमने लग जाते हैं।

* Asiatic Journal Vol. XVII. pt. II. p. 241-327; Vol. XXV. pt. 1 (1866.) p. 91—123, Bühler's Sanskrit Mss. in Kashmir (1877.) p. 4—16 प्रभृति ग्रन्थोंमें काश्मीरके प्राचीन देवमन्दिरका विवरण मिलता है।

कुण्डसंयोग—काश्मीरके दक्षिण भागमें देवसर परगनेके बीच वासुकिनागकुण्ड है। उससे प्रायः १० कोस दूर पीरपंजालके दूसरे पार्श्वपर गुलाबगढ़ कुण्ड पड़ता है। आश्चर्यका विषय है कि उक्त दोनों कुण्डोंसे एकमें जल रहने पर दूसरा सूख जाता है। उसी प्रकार प्रत्येकमें छह छह मास जल रहता है।

जटागङ्गा—श्रीनगरके दक्षिण देसू परगनामें वनहामा ग्राम है। उस ग्राममें जटागङ्गा नामक कोई कुण्ड है। वह संवत्सर शुष्क रहता है। केवल भाद्रमासको शुक्लाष्टमी तिथिको उस भूमिमें जल आ अकस्मात् उसको परिपूर्ण कर देता है। उसीप्रकार काश्मीरमें नित्य कई अद्भुत नैसर्गिक काण्ड होते हैं। सामान्य मानव उनके प्रकृत तथ्यके निर्णयमें अक्षम है।

जाति—काश्मीरमें नाना जातिका वास है। उनमें प्राचीन अधिवासी ब्राह्मण हैं। कितने ही ब्राह्मणोंने मुसलमान धर्म ग्रहण कर लिया है। काश्मीरका वर्तमान राजपरिवार डोगरा राजपूत जातिभुक्त है। डोगरा लोग जम्बु उपत्यकामें अधिक देख पड़ते हैं। उस जाति के मध्य सकल श्रेणीके हिन्दू होते हैं।

पश्चिमांशमें सिन्धुप्रवाहित गिरिप्रदेश अवधि कुक्का तथा बम्बा जाति और दक्षिणांश एवं झिलमके पश्चिम गक्खर, गुज्जर, खतीर, अवन, जञ्जु प्रभृति लोगोंका वास है। पूर्वांशमें लादख और बलतिस्तान प्रधानतः भोट जाति रहती है। जम्बूमें डोम, मेघ, हिन्दूपहाड़ी, गड्डी, वाचाल प्रभृति मिलते हैं। उत्तरांशमें प्रायः सर्वत्र चम्पा और दरद जाति देख पड़ती है।

काश्मीरके सम्बन्धमें विस्तृत विवरण मालूम करनेको निम्न लिखित पुस्तक द्रष्टव्य हैं—कल्हण-विरचित राजतरङ्गिणी, जोनराजकृत राजावली श्रीवरप्रणीत जैनराजतरङ्गिणी, प्राज्यभट्टकृत राजावलिपताका, साहबरामका काश्मीरतीर्थसंग्रह, तारीख-ई-काश्मीरी, नवादिर-उल-अखबार, गुहश्दा आलिमका वाकियात काश्मीर, बदर-उद-दीनका गौहरे-आलम-तोहफात उस-शाही, तबकात-काश्मीरी, तबकात अकबरी, Malleson's Native States; Moorcroft's Travels, Forester's Journal, Vol II; Baron Hugele's Travels in Kashmir; Vigne's Travels; Cunningham's Ancient Geography of India; Dreow's Jummoo and Kashmir; Schonberg's Travels in Kashmir; Bellew's Kashmir etc.

(त्रि०) ५ काश्मीरदेशवासी, काश्मीरका रहनेवाला।

काश्मीरक (सं० त्रि०) काश्मीरे भवः, काश्मीर-वुञ्। १ काश्मीरदेशीय, काश्मीरमें पैदा होनेवाला। (पु०) २ काश्मीरदेशवासी, काश्मीरका बाशिन्दा। ३ काश्मीर देशका राजा।

काश्मीरज (सं० क्ली०) काश्मीरे जायते, काश्मीर-जन-ड। सप्तम्यां जनेर्डः। पा ३।२।९७। १ कुङ्कुम, जाफरान, केसर। २ कुष्ठभेद, एक दवा। ३ पुष्करमूल। ४ अतिविषा।

काश्मीरजन्मा (सं० क्ली०) काश्मीरे जन्म यस्य, बहुव्री०। कुङ्कुम, जाफरान, केसर।

काश्मीरजा (सं० स्त्री०) अतिविषा, अतीस।

काश्मीरजीरक (सं० क्ली०) शुक्लजीरक, सफेद जीरा।

काश्मीरपुष्प (सं० क्ली०) गाम्भारी वृक्ष, गम्भारीका पेड़।

काश्मीरा (सं० स्त्री०) काश्मीरे भवः, काश्मीर-अण्-टाप। तत्र भवः। पा ४।३।५३। १ अतिविषा, अतीस। २ कपिलद्राक्षा, काला दाख। ३ स्थल पद्मिनी।

काश्मीरा (हिं० पु०) १ वस्त्रविशेष, कोई कपड़ा। यह मोटे ऊनसे तैयार होता है। २ किसी किस्मका अंगूर।

काश्मीरिक (सं० त्रि०) काश्मीरे भवः, काश्मीर-ठञ्। काश्मीरदेशीय, काश्मीरमें पैदा होनेवाला।

काश्मीरी—काश्मीर देशकी भाषा। यह किसी अपभ्रंश भाषासे उत्पन्न हुई है। इसके पहले पिशाची प्राकृत भाषा थी। वर्तमानकी काश्मीरी भाषा उसका दूसरा संस्करण है। इसको बोलनेवाले दशलाखसे ऊपर मनुष्य हैं।

काश्मीरी (सं० स्त्री०) काश्मीर-ङीष्। गाम्भारी वृक्ष, गम्भारीका पेड़। २ कपिलमृगनाभि, काली कस्तूरी।

काश्मीरी (हिं० वि०) १ काश्मीरदेश-सम्बन्धीय, काश्मीरसे ताल्लुक रखनेवाला। २ काश्मीरदेशवासी, काश्मीरका बाशिन्दा। (पु०) ३ रक्तरका पेड़। ४ काश्मीरका ब्राह्मण। काश्मीरमें नाना स्थानों पर विदेशीय लोग देख पड़ते भी पुरातन हिन्दू अधिवासीमात्र ब्राह्मणके नामसे अभिहित हैं। भारतवर्षमें नाना स्थानों पर जो शाखा भेद रहता है, वह काश्मीरियोंमें देख नहीं पड़ता। सब अपनेको 'काश्मीरिक' वा 'सारस्वत' शाखाभुक्त बतलाते हैं। अति पूर्वकालसे काश्मीर

आद्यभूमि होते भी प्राचीन ग्रन्थमें इसका उल्लेख मिलता कि भारतके नाना स्थानोंसे जा कर ब्राह्मण काश्मीरमें बसे थे। कल्हनकी राजतरङ्गिणीमें गान्धार, कान्यकुब्ज, तैलङ्ग, गौड़ प्रभृति स्थानोंसे ब्राह्मणोंके जानेकी कथा कही है।

आजकल सब काश्मीरी ब्राह्मण एक समाजभुक्त हैं। सभी परस्पर अन्न ग्रहण और अध्यापनादि किया करते हैं। किन्तु उनके समाजमें सबके साथ योनि सम्बन्ध नहीं चलता। आचार-व्यवहार भारतके अपर ब्राह्मणोंकी भांति है। फिर भी देशभेदसे कुछ पार्थक्य पड़ गया है। वह यथाकाल उपनयन ग्रहण करते हैं। समय उत्तीर्ण होने पर यथानियम प्रायश्चित्त भी किया जाता है। प्रायश्चित्त न करनेसे राजद्वारमें दण्डनीय होते हैं। हिन्दुस्थानमें ब्राह्मणसन्तान जैसे उपनयनके ५।७ दिन पीछे मेखला खोल रखते, काश्मीरमें वैसे नहीं करते। वह दीक्षाके पीछे यावज्जीवन वामस्कन्ध पर यज्ञोपवीत और दक्षिणहस्तमें कुशकी मेखला रखते हैं। उनके द्वारा वेदोक्त कर्मकाण्ड तथा नियम पालन किये जाते हैं। फिर भी बहुतोंने शास्त्रचर्चा छोड़ दी है। कितने ही अंगरेजी फारसी पढ़ नाना उपायोंसे जीविका चलाते हैं। काश्मीरी ब्राह्मणोंमें कुछ व्यतिक्रम देख पड़ता है।

वह प्रायः सभी शैव हैं। वामाचार शाक्त बहुत अल्प दृष्ट होते हैं। पहले अनेक शैव, बौद्ध और भागवत वैष्णव थे। आजकल प्रायः तीन प्रकारके काश्मीरी ब्राह्मण देख पड़ते हैं—१म श्रेणीके ब्राह्मण 'पण्डित' नामसे प्रसिद्ध हैं। वह केवल शास्त्रचर्चामें अग्निष्टोम याग तथा श्राद्धादि कर्मकाण्ड द्वारा एवं राजवृत्ति-भोगसे कालको निकालते हैं। २य 'राजगान' हैं। वही प्रधान राजकर्मचारी और व्यवसायी होते हैं। वे संस्कृत भाषा छोड़ फारसी पढ़ते हैं। ३य वाचभट्ट होते हैं। वह लेखक, पुजारी और तीर्थस्थलमें पण्डेका काम करते हैं। १म श्रेणीके ब्राह्मण २य श्रेणीवालोंसे मन ही मन घृणा करते और कन्यादान करना ठीक नहीं समझते। पण्डित और वाचभट्ट ही व्रतव्रतादि पालन करते हैं। १म श्रेणीके ब्राह्मण आज भी काश्मीरमें उच्च धर्माधिकार पर नियुक्त होते हैं।

काश्मीरी ब्राह्मण सभी वेद पाठ किया करते हैं। कोई कोई अपनेको चतुर्वेदी बतलाते हैं। किन्तु वह काठकशाखाभुक्त हैं।

गोत्र—१म पण्डितश्रेणीके मध्य १ कापिष्ठल, २ कौशिक, ३ भारद्वाज, ४ उपमन्यु, ५ दत्तात्रेय, ६ गार्ग्य और ७ भार्गव गोत्र है।

२य राजधानीमें गौतम, लौगाक्षि और दत्तात्रेय गोत्र होता है।

३य वाचभट्टोंमें विश्वामित्र और काश्यपगोत्र प्रचलित है।

शैव प्रत्यह वेदोक्त विधि और समय समय पर सोमशम्भुके क्रियाकाण्डानुसार तान्त्रिक पूजादि सम्पन्न करते हैं।

काश्मीर्य (सं० त्रि०) काश्मीर-ष्य। १ काश्मीरदेशीय, काश्मीरवाला। (क्लो०) २ कुङ्कुम, जाफरान्, केसर।

काश्य (सं० क्लो) कुत्सितं अश्यं यस्मात्, बहुव्री०। १ मद्य, शराब। (पु०) २ काशिराजविशेष, काशीका कोई राजा। (भारत १।१०१।४९।)

काश्यक (सं० पु०) काश्य स्वार्थे संज्ञायां वा कन्। राजविशेष, कोई राजा।

काश्यप (सं० पु०) कश्यपस्य गोत्रापत्यम्, कश्यप-अण्। १ कणाद मुनि। २ मृगविशेष, कोई हिरन। ३ मत्स्यविशेष, एक मछली। ४ गोत्रविशेष। ५ काश्यप प्रवरान्तर्गत एक मुनि। ६ अरुणका नामान्तर। ७ ब्राह्मणविशेष। काश्यप ब्राह्मण विषविद्यामें पारदर्शी रहे। महाभारतमें उनका विवरण इस प्रकार लिखा गया है—"जिस समय राजा परीक्षित सप्ताह मध्य सर्पदष्ट होनेको ऋषिकुलके अभिशप्त हुवे, उसी समय काश्यप ब्राह्मण उनको बचानेके लिये गये। पथिमध्य तक्षकको वह मिले थे। तक्षकने चिकित्साशक्ति देखनेको सम्मुखस्थ कोई वटवृक्ष दंशन द्वारा भस्मीभूत कर उन्हें जीवित करनेको कहा। उन्होंने स्वीय विद्याबलसे तत्क्षण वह वृक्ष पुनर्जीवित कर दिया। उसको देख तक्षकने सोचा, वह लोग अवश्य परीक्षितको फिर जिला सकेंगे। सुतरां उन्होंने ब्राह्मणोंको प्रचुर धनादि दे राजाके पास जानेसे रोक लिया।" (भारत आदि ४३ अध्याय)

(क्ली०) ८ मांस, गोश्त। (त्रि०) ९ काश्यप प्रजापतिवंश वा गोत्रसम्बन्धीय।

काश्यपायन (सं० पु०) काश्यपस्य गोत्रापत्यम्, कश्यप-फक्। नडादिभ्य-फक्। पा ४।१।९९। काश्यपके गोत्रापत्य वा वंशधर।

काश्यपि (सं० पु०) कश्यपस्य अपत्यम्, कश्यप बाहुलकात् इञ्। १ अरुण, सूर्यके सारथी। २ गरुड़।

काश्यपिन् (सं० पु०) काश्यपेन प्रोक्तं अधीयते इति, काश्यप-णिनि। शौनकादिभ्यश्छन्दसि। पा ४।३।१०६। काश्यप-प्रणीत शाखाविशेषके अध्ययनकर्ता।

काश्यपी (सं० स्त्री०) कश्यपस्य इयम्, कश्यप-अण्-ङीप्। तस्येदम्। ४।३।१२०। १ पृथिवी, जमीन्। २ प्रजा, रैयत।

काश्यपीबालाकयामाठरीपुत्र (सं० पु०) वेदशाखा प्रवर्तक एक ऋषि।

काश्यपेय (सं० पु०) काश्यपी अदितिः तत्र भवः, काश्यपी-ढक्। १ सूर्य, सूरज।

'जवाकुसुमसङ्काशं काश्यपेयं महाद्युतिम्।
ध्वान्तारिं सर्वपापघ्नं प्रणतोऽस्मि दिवाकरम्॥' (सूर्यप्रणाम)

२ देवमात्र। ३ असुरमात्र। ४ गरुड़।

काश्यायन (सं० पु०) काश्यस्य काशिराजस्य गोत्रापत्यम्, काश्य-फक्। काशिराजवंशीय।

काश्मरी (सं० स्त्री०) काश-वनिप् ङीप् रश्च। वनो-र-च। पा ४।१।७ क्षुद्र गाम्भारी वृक्ष, गम्भारीका छोटा पेड़।

काष (सं० पु०) कष्यते ऽनेन, कष करणे घञ्। १ कष्टि-प्रस्तर, कसौटी २ ऋषिविशेष।

काषाय (सं० त्रि०) काषायेण रक्तम्, कषाय-अण्। कषायद्रव्य द्वारा रञ्जित, सुर्ख लाल।

'काषायपरिधानस्य कथं रामो भविष्यति।' (रामायण २।१२।९८)

काषायकन्थ (सं० पु०) काषाया कन्था यस्य, बहुव्री०। कषाय द्रव्य द्वारा रक्तवर्ण कन्थाधारी भिक्षुकविशेष।

काषायण (सं० पु०) कषस्य ऋषेः गोत्रापत्यम्, काष-फक्। काषऋषिगोत्रीय कोई ऋषि। वह वाजसनेय शाखाभुक्त थे।

काषायवसन (सं० त्रि०) काषायं कषायरक्तं वसनं यस्य, बहुव्री०। काषायवस्त्र विशिष्ट, गेरुहे कपड़े पहने हुवा।

काषायवासिक (सं० पु०) काषाये काषायरक्तवस्त्रे वासोऽस्यास्ति, काषाय-वास-ठन्। कीटविशेष, एक कीड़ा। वह सौम्य और सविष होता है। उसके काटनेसे श्लेष्मजन्य रोग हो जाता है।

काषायी (सं० पु०) काषायेण प्रोक्तमधीते, कषाय शौन-कादित्वात् णिनि। १ कषाय ऋषिकथित शाखाध्यायी। (स्त्री०) २ सविष मक्षिका विशेष, कोई जहरीली मक्खी।

काष्ठ (सं० क्ली०) काशते दीप्यते ऽनेन, काश-कथन्। हनि कुषिनीरमिकाशिभ्यः क्थन्। उण् २।२। दारु, लकड़ी, काठ। काष्ठका लक्षण इस प्रकार कहा गया है—

"ससारमतिशुष्कं यत् मुष्टिमध्ये समेष्यति।
तत्काष्ठं काष्ठमित्याहुः खदिरादिसमुद्भवम्॥"

खदिर प्रभृति वृक्ष समूहका जो खण्ड सारयुक्त, अत्यन्त शुष्क और मुष्टि द्वारा ग्रहण करनेके उपयुक्त होता, वही काष्ठ कहाता है।

काष्ठक (सं० क्ली०) काष्ठं सत् कायति, काष्ठ कै-क। यद्वा काष्ठं विद्यतेऽस्य, काष्ठ-छ कुक्-छलस्य लुक्। १ अगुरु। २ काष्ठागुरु। ३ कृष्णागुरु। (त्रि०) ४ काष्ठयुक्त।

काष्ठकदली (सं० स्त्री०) काष्ठवत् काष्ठमा कदली, मध्यपदलो०। वन्य कदलीविशेष, कठकेला। उसका संस्कृत पर्याय-सुकाष्ठा, वनकदली, काष्ठिका, शिला रम्भा, दारुकदली, फलाढ्या, वनमोचा और अश्मकदली है। राजनिघण्टुके मतानुसार वह रुचिकारक, रक्तपित्तनाशक, शीतल, गुरु, मन्दाग्निकारक, दुष्पच्य और मधुररस होती है। उसके खानेसे तृष्णा, दाह, मूत्रकृच्छ्, रक्तपित्त, विस्फोटक और अस्थिरोग दूर होता है। (वैद्यकनिघण्टु)

काष्ठकीट (सं० पु०) काष्ठे जातः कीटः काष्ठच्छेदको कीटो वा, मध्यपदलो०। काटको काटनेवाला कीड़ा, घुण, घुन।

काष्ठकीय (सं० त्रि०) काष्ठस्य इदम्, काष्ठ-छ। अगुरु काष्ठसम्बन्धीय।

काष्ठकुटक, काष्ठकुट्ट देखो।

काष्ठकुट्ट (सं० पु०) काष्ठं कुट्टति, काष्ठ-कुट्ट-अण्। शतच्छद, कठफोड़वा। उसका मांस लघु, वातहर, अग्नि-

वर्धक, वातश्लेष्माधिक, शीतल, विशद, बलकारक और अश्मरी रोगहर होता है। (भावप्रकाश)

काष्ठकुड्य (सं० क्ली०) काष्ठमयं कुड्यम्, मध्यपदलो०। १ काष्ठनिर्मित भित्ति, लकड़ीकी दीवार। २ काष्ठ और भित्ति, लकड़ी और दीवार।

काष्ठकुद्दाल (सं० पु०) कुं मलं उद्दालयति विदारयति इति कुद्दालः काष्ठस्य कुद्दालः काष्ठमयः कुद्दालो वा। अविभ्र, लकड़ीकी कुदाल। वह नौकासे जल निकालने या उसका पेंदा साफ करनेके काम आता है।

काष्ठकूट, काष्ठकूट देखो।

काष्ठगोधा (सं० स्त्री०) १ औषधि विशेष। १ जड़ीबूटी २ काष्ठाकार गोधामृग।

काष्ठघटित (सं० त्रि०) काष्ठेन घटितं निर्मितम्, ३-तत्। काष्ठद्वारा निर्मित, लकड़ीका बना हुवा।

काष्ठजम्बू (सं० स्त्री०) काष्ठप्रधाना जम्बूः मध्यपदलो०। भूमिजम्बूवृक्ष, जङ्गली जामनका पेड़।

काष्ठतक्षक (सं० पु०) काष्ठं तक्षति तनूकरोति, काष्ठ-तक्ष-ण्वुल्। १ सूत्रधर, सुतार, बढ़ई। (त्रि०) २ काष्ठच्छेदक, लकड़ी काटनेवाला।

काष्ठतट, काष्ठतक्षक देखो।

काष्ठतन्तु (सं० पु०) काष्ठे तन्तुरिव विस्तृतत्वेन अवस्थितत्वात्। काष्ठकृमि, लकड़ीके भीतर रहनेवाला कीड़ा।

काष्ठदारु (सं० पु०) काष्ठप्रधानो दारुः यद्वा काष्ठं दारुरिवकम्। देवदारुभेद। देवदारु देखो।

काष्ठद्रु (सं० पु०) काष्ठप्रधानो द्रुः वृक्षः, मध्यपदलो०। पलाशवृक्ष, टेसूका पेड़।

काष्ठधात्री (सं० स्त्री०) काष्ठामलकी वृक्ष, क्षुद्रामलक, जङ्गली आंवलेका पेड़, छोटा आंवला।

काष्ठधात्रीफल (सं० क्ली०) काष्ठमिव शुष्कं धात्रीफलम्, मध्यपदलो०। क्षुद्रामलक फल, छोटा आंवला। वह कषाय, कटु, शीतल और रक्तपित्तघ्न होता है। (राजनिघण्टु)

काष्ठपाटला (सं० स्त्री०) काष्ठवत् कठिना पाटला, मध्यपदलो०। सितपाटलिका, सफेद पदलका पेड़।

काष्ठपाटलि, काष्ठपाटला देखो।

काष्ठपादुका (सं० स्त्री०) काष्ठनिर्मिता पादुका, मध्यपदलो०। खड़ाऊं, लकड़ीका जूता।

काष्ठपुत्तलिका (सं० स्त्री०) काष्ठनिर्मिता पुत्तलिका, मध्यपदलो०। लकड़ीकी पुतली, कठपुतली।

काष्ठपुष्पा (सं० पु०) केतकी वृक्ष, केवड़ेका पेड़।

काष्ठप्रदान (सं० क्ली०) चिताका बनाव।

काष्ठफलक (सं० क्ली०) काष्ठनिर्मितं फलम् मध्यपदलो०। काष्ठनिर्मित चित्राधार प्रभृति विस्तृत काष्ठखण्ड, लकड़ीका बड़ा टुकड़ा।

काष्ठभार (सं० पु०) काष्ठस्य भारः, ६-तत्। काष्ठका बोझ, लकड़ीका वजन।

काष्ठभारिक (सं० त्रि०) काष्ठभारेण जीवति, काष्ठभार-ठञ्। काष्ठका भार वहन कर वा काष्ठको विक्रय कर जीविका निर्वाह करनेवाला, जो लकड़ी ढो या बेच कर गुजर करता हो।

काष्ठभूत (सं० त्रि०) काष्ठ-भू-क्त। काष्ठरूपमें परिणत, लकड़ी बना हुवा। २ काष्ठकी भांति चेतनाशून्य एवं कठिन, लकड़ीकी तरह बेजान और सख्त।

काष्ठभृत् (सं० त्रि०) काष्ठं बिभर्ति, काष्ठ-भृ-क्विप् तुगागमश्च; काष्ठविशिष्ट, लकड़ी रखनेवाला। २ काष्ठनिर्मित, लकड़ीका बना हुवा।

'इषान् काष्ठभृतो यथा।' (शतपथ ब्राह्मण, ११।५।५।१३)

काष्ठमठी (सं० स्त्री०) काष्ठरचिता मठीव, उपमि०। चिता, सरा, मुर्दा जलानेके लिये लकड़ीका ढेर।

काष्ठमय (सं० त्रि०) काष्ठात्मकम्, काष्ठ-मयट्। १ काष्ठनिर्मित, लकड़ीका बना हुवा। २ काष्ठकी भांति कठिन, लकड़ीकी तरह सख्त।

काष्ठमल्ल (सं० पु०) काष्ठं मल्लः वाहक इव यत्र, बहुव्री०। शव वहन करनेके लिये लकड़ीकी कोई सवारी।

काष्ठमल्लिका (सं० स्त्री०) पुष्पवृक्षविशेष, एक फूलदार पेड़।

काष्ठमार्जारिका (सं० स्त्री०) काष्ठबिडालिका, गिलहरी।

काष्ठमौन (सं० क्ली०) काष्ठमिव मौनम् उपमि०। काष्ठकी भांति मौन, सख्त खामोशी। जिस मौनमें इङ्गित द्वारा भी अभिप्राय प्रकाश नहीं करते, उसे काष्ठ मौन कहते हैं।

काष्ठरजनी (सं॰ स्त्री॰) दारुहरिद्रा।
काष्ठरज्जु (सं॰ स्त्री॰) लकड़ी बांधनेकी रस्सी।
काष्ठलेखक (सं॰ पु॰) काष्ठं लिखति, काष्ठ-लिख-ण्वुल्। घुणकीट, घुन।
काष्ठलोही (सं॰ पु॰) काष्ठेन युक्तं लोहं विद्यते यत्र. यद्वा काष्ठस्य लोहस्य ते स्तोऽस्य, काष्ठ-लोह-इनि। वातर्टि, लोहयुक्त मुद्गर।
काष्ठवल्लिका, (सं॰ स्त्री॰) काष्ठवत शुष्का वल्लिका, मध्यपदलो॰। १ कटुका, कुटकी। २ कटुकवल्ली, एक लता
काष्ठवाट (सं॰ पु॰) काश्मीरदेशस्थ स्थानविशेष काश्मीरकी एक जगह।
काष्ठवान् (सं॰ त्रि॰) काष्ठं अस्यास्ति, काष्ठ-मतुप् मस्य वः। काष्ठविशिष्ट, लकड़ी रखनेवाला।
काष्ठवास्तुक (सं॰ पु॰) वास्तुकशाकभेद, किसी किस्मका बथुवा।
काष्ठविवर (सं॰ क्ली॰) काष्ठस्य विवरम्, मध्यपदलो॰। तरुकोटर, पेड़की खोह।
काष्ठशारिवा (सं॰ स्त्री॰) काष्ठमिव शुष्का शारिवा, उपमि॰। अनन्ता, अनन्तमूल।
काष्ठशालि (सं॰ पु॰) रक्तशालि, लालधान।
काष्ठसारिवा (सं॰ स्त्री॰) श्वेतशारिवा, सफेद सतावर।
काष्ठस्तम्भ (सं॰ पु॰) काष्ठेन निर्मितः स्तम्भः। काष्ठका स्तम्भ, लकड़ीका खंभा।
काष्ठा (सं॰ स्त्री॰) काशते प्रकाशते, काशि-क्थन् व्रश्चेति षत्वम्-टाप्। १ दिक्, जानिब, तर्फ। २ स्थिति, हालत। ३ सीमा, हद। ४ उत्कर्ष, बड़ाई।
"पुरुषान्न परं किञ्चित् सा काष्ठा सा परा गतिः।" (कठ श्रुति)
५ समयविशेष, कोई वक्त। सुश्रुतसंहिता और विष्णुपुराणके मतसे १५ चक्षुनिमेषमें १ काष्ठा होती है। किन्तु मनुने १८ निमेषकी ही १ काष्ठा मानी है।
"निमेषा दश चाष्टौ च काष्ठा त्रिंशत्तु ताः कला।" (मनु १।६४)
६ कश्यपकी कोई पत्नी। (भागवत ६।६।२४) ७ दारुहरिद्रा।
काष्ठागार (सं॰ क्ली॰) काष्ठनिर्मितं आगारम्, मध्यपदलो॰। काठघर, लकड़ीका मकान।
काष्ठागुरु (सं॰ क्ली॰) पीतवर्ण अगुरु, पीला-अगर। वह कटु, उष्ण, लेपमें रूक्ष और कफघ्न होता है (राजनिघण्टु)
काष्ठामलकी (सं॰ स्त्री॰) काष्ठधात्री, छोटा आंवला।
काष्ठाम्बुवाहिनी (सं॰ स्त्री॰) अम्बूनां जलानां वाहिनी, काष्ठनिर्मिता अम्बुवाहिनी, मध्यपदलो॰। जलसेचनके लिये काष्ठनिर्मित पात्रविशेष, द्रोणी।
काष्ठालु, काष्ठालुक देखो।
काष्ठालुक (सं॰ क्ली॰) काष्ठमिव कठिनं आलुकम् मध्यपदलो॰। काष्ठवत् कठिन कन्दविशेष, लकड़ी जैसी कड़ी एक आलू। वह मधुररस, शीतल, गुरु, शुक्र एवं स्तन्यवर्धक और रक्तपित्तनाशक होता है। (सुश्रुत)
काष्ठाश्मन (सं॰ पु॰) घुण, घुन।
काष्ठासन (सं॰ क्ली॰) काष्ठनिर्मितं आसनम्, मध्यपदलो॰। काठका आसन, लकड़ीकी चौकी वगैरह।
काष्ठिक (सं॰ त्रि॰) काष्ठमस्यास्ति, काष्ठ-ठन्। १ बहु काष्ठयुक्त, बहुत लकड़ी रखनेवाला। (पु॰) २ काष्ठवाहक, लकड़िहारा।
काष्ठिका (सं॰ स्त्री॰) काष्ठ-अल्पार्थे ङीष्, काष्ठी स्वार्थे कन्-टाप् ह्रस्वश्च। १ क्षुद्र काष्ठखण्ड, लकड़ीका छोटा टुकड़ा। २ काष्ठकदलीवृक्ष, कठकेलेका पेड़।
काष्ठरसा (सं॰ स्त्री॰) कदली वृक्ष केलेका पेड़।
काष्ठिला (सं॰ स्त्री॰) १ कदलीवृक्ष, केलेका पेड़। २ राजार्क, बड़ा मदार।
काष्ठी (सं॰ त्रि॰) काष्ठं अस्यास्ति, काष्ठ-इनि। बहु काष्ठयुक्त, लकड़ीवाला।
काष्ठील (सं॰ पु॰) काष्ठिना इल्यते क्षिप्यते, काष्ठि-इल् कर्मणि घञ्। राजार्कवृक्ष, बड़ा मदार। २ कुलिशमत्स्य, एक मछली।
काष्ठीला (सं॰ स्त्री॰) कुत्सिता ईषत् वा अष्ठीलेव, कोः कादेशः। १ राजार्क, बड़ा मदार। २ कदलीवृक्ष, केलेका पेड़।
काष्ठीलिका, काष्ठीला देखो।
काष्ठेक्षु (सं॰ पु॰) काष्ठवत् कठिनकाण्ड इक्षुः, उपमि॰। श्वेतेक्षु॰ सफेद ऊख। वह कान्तारके समान गुणयुक्त और वातकोपन होता है।
काष्ठोडुम्बरिका (सं॰ स्त्री॰) काष्ठप्रधाना उदुम्बरिका, मध्यपदलो॰। काकोदुम्बरिका, कठगूलर।

कास (सं० पु०) कासते शब्दायते अनेन, कास-घञ्। हलश।पा ३।३।१२१ १ रोगविशेष, खांसी। काश देखो। २ शोभाञ्जनवृक्ष। ३ कासतृण, एक घास। ४ कफ। (त्रि०) ५ हिंसक, खूंखार।

कासकन्द (सं० पु०) कासहेतुः कन्दः, मध्यपदलो०। कासालुक, कसेरू।

कासकर (सं० त्रि०) कासं करोति, कास-कृ-अच्। कासरोगोत्पादक, खांसी पैदा करनेवाला।

कासघ्न (सं० त्रि०) कास-हन्-ठक्। १ कासरोग-नाशक, खांसी मिटानेवाला। (पु०) २ बिभीतकवृक्ष, बहेराका पेड़। ३ कासमर्द, कसौंदी। ४ कण्टकारी, कटैया। ५ मोदकविशेष, एक लड्डू। वह हरीतकी, पिप्पली, शुण्ठी, मरिच और गुड़के योगसे बनता और कासरोगको नाश करता है।

कासघ्नधूम (सं० पु०) पञ्चविध धूमपानान्यतम धूम, पीनेसे खांसीको मिटानेवाला एक धुवां। वह वृहती, कण्टकारी, त्रिकटु, कासमर्द, हिङ्गु, इङ्गुदीत्वक् और मनःशिला जलानेसे निकलता है। उक्त सकल द्रव्योंका कल्क बना लेना चाहिये। (सुश्रुत)

कासघ्नी (सं० स्त्री०) कासघ्न ङीप्। १ कण्टकारी, कटैया २ भार्गी।

कासजित् (सं० स्त्री०) कासं जयति, कास-जि-क्विप् तुगागमश्च। १ भार्गी, ब्राह्मणयष्टिका। (त्रि०) २ कासरोगनाशक, खांसी मिटानेवाला।

कासनाशिका (सं० स्त्री०) १ अरुणत्रिवृत्। २ कर्कट-शृङ्गी, ककड़ासींगी।

कासनाशिनी (सं० स्त्री०) कासं नाशयति, कास-नश्-णिच्-णिनि-ङीप्। कर्कटशृङ्गी, ककड़ासींगी।

कासनी (फा० स्त्री०) वृक्षविशेष, एक पौदा। (Cichorium Intybus) वह भारतके उत्तरांश, चीन, पारस्य और इजिप्टमें उपजती है। कासनी शाक केवल भारतवर्षके लोग ही नहीं, वरन् बहुत दिन युरोपीय भी खाते हैं। ओभिद, प्लिनि प्रभृति प्राचीन पाश्चात्य पण्डितोंके ग्रन्थमें उसका विवरण विवृत हुवा है।

मुसलमान हकीमोंके मतानुसार वह द्रावक, शीतल और पित्तनाशक है। उसका मूल उष्ण, बलकर और ज्वरहर होता है।

पश्चिमको कासनीका ही आदर विशेष है। वह पञ्जाब तथा काश्मीरसे उत्तर साइबेरिया, समस्त युरोप और अफरीकामें भी बहुत उत्पन्न होती है। युरोपीय उसका शाक बड़े आदरसे खाते और मूलको बुकनी बना कहवाके साथ पी जाते हैं। भारतवर्षमें उसका वैसा प्रचार नहीं। युरोपकी भांति भारतमें उसकी कृषिमें यत्न भी कम करते हैं। पञ्जाबकी काङ्गडा उपत्यकामें उसके बीजका सामान्य यत्न देख पड़ता है। उक्त सामान्य वृक्षसे जिस विशेष लाभकी सम्भावना है, उसे बहुतसे लोग नहीं समझते। अकेले इङ्गलेण्डमें ही प्रति वर्ष लाखों रुपयेकी कासनी बिकती है। वह बलकारक, स्निग्धकर और शीतल होती है। कासनी-का बीज रजोनिःसारक है। बीजका चूर्ण पैत्तिक-वमननिवारक और सर्वज्वरहर होता है। कासनी-का मूल खानेमें कटु लगता है। औषधादिमें वही व्यवहार किया जाता है। युरोपमें कहवाके बदले, कुछ लोग कासनीके मूलका चूर्ण सिद्ध कर सेवन करते हैं। मूलमें प्रायः चौथाई भाग शर्करा डाल जलमें सड़ा यथानियम निचोड़ लेनेसे उत्कृष्ट तीव्र सुरा बन जाती है। कासनी अल्प परिश्रम करनेसे बहुत उत्पन्न हो सकती है। उसमें लाभकी भी अधिक सम्भावना है।

वह हाथ डेढ़ हाथ ऊंची होती है। कासनी देखने-में बहुत हरीभरी मालूम पड़ती है। पत्तियां छोटी छोटी रहती और पालकीसे मिलती जुलती हैं। डण्ठलमें तीन तीन चार चार अङ्गुलीके अंतर पर ग्रंथित होती है। उसीमें नीलवर्ण पुष्पके गुच्छ निकलते हैं। फूल गिर जानेसे बीज आते हैं। कासनीका मूल डण्ठल और बीज समस्त अंश औषधमें व्यवहृत होता है। हिन्दुस्थानमें कासनी ठण्डाईमें डालकर पी जाती है। २ कासनीका बीज। ३ वर्णविशेष, एक रंग। वह नीला और कासनीके फूल जैसा होता है। ४ नीलवर्ण-कपोत, नीला कबूतर।

कासन्दी (सं० स्त्री०) कासं द्यति नाशयति कास-दो-क-ङीप्। आमका एक अचार।

कासन्दीवटिका (सं० स्त्री०) १ कासघ्न औषध, खांसी मिटानेवाली दवा । २ एक अचार, कसौंदी । राजवल्लभके मतानुसार वह रुचिकारक, अग्निवर्धक, वायु एवं मल अनुलोमक और वातश्लेष्मज रोगनाशक होती है।

कासपीड़ित (सं० त्रि०) कासेन कासरोगेण पीड़ितः, ३-तत्। कासरोगी, खांसीका बीमार, जिसको खांसी आती हो।

कासभञ्जन (सं० पु०) पटोल, परवल ।

कासमर्द (सं० पु०) कासं मृद्‌नाति, कास-मृद्-अण् । कर्मण्यण् । पा ।३।२।१। स्वनामख्यात पत्रशाकविशेष, कसौंदा।

कासमर्दका व्यञ्जनरसमें प्रयोग करते हैं, वह अग्निदीपन और स्वादु होता है। (राजवल्लभ) कासमर्द तिक्त, उष्ण, मधुर, कफवातघ्न, अजीर्णघ्न, कासपित्तघ्न और कण्ठशोधन है। (राजनिघण्टु) कासमर्दका पर्ण-पाकमें कटु, हृद्य, उष्ण, लघु और श्वास, कास तथा अरुचिघ्न है। पुष्प-श्वास-कासघ्न तथा वातविनाशन होता है। (वैद्यकनिघण्टु)

२ वेशवारविशेष, कसौंदी । ३ पटोल, परवल। ४ कासघ्न औषध, खांसीको मिटानेवाली दवा।

कासमर्दक, कासमर्द देखो

कासमर्दकपत्र (सं० क्ली०) कासमर्दकदल, कसौंदेका पत्ता।

कासमर्ददल, कासमर्दकपत्र देखो।

कासमर्दन (सं० पु०) कासं मृद्‌नाति, कास मृद् कर्तरि ल्यु। पटोल, परवल।

कासमर्दिका (सं० स्त्री०) कासमर्द, कसौंदा।

कासर (सं० पु०) के जले आसरति, क-आ-सृ-अच् । महिष, भैंसा; उसे अधिक समय तक जलमें रहना अच्छा लगता है। (हिं० स्त्री०) २ काली भेड़ । इसके पेटके रोयें लाल होते हैं ।

कासरोग (सं० पु०) रोगविशेष, खांसीकी बीमारी । कास देखो।

कासलक्ष्मीविलास—वैद्यकोक्त औषधविशेष, खांसीकी कोई दवा। वङ्ग, लौह, अभ्र, ताम्र, कांस्य, पारद, गन्धक, हरिताल मनःशिला और खर्पर प्रत्येक एक पलके हिसाबसे एकत्र मिलाना चाहिये। फिर केशराजके रस तथा कुलत्थ कलायके क्वाथमें तीन दिन भावना दे उसमें छलायची, जायफल, तेजपात, लौंग, अजवाइन, जीरा, त्रिकटु, त्रिफला, तगरपादुका, गुड़त्वक् और वंशलोचन प्रत्येक दो दो तोला डालते हैं। अंतको केशराजके रस और कुलत्थ कलायके क्वाथमें लपेट चणक प्रमाण वटिका बना ली जाती हैं। अनुपान शीतल जल है। मत्स्य, मांस, दुग्ध और स्निग्ध आहार पथ्य होता है। शाकाम्लको छोड़ देना चाहिये। उक्त औषध सेवन करनेसे कास, यक्ष्मा, श्वास, ज्वर, पाण्डुरोग, शोथ, शूल, अर्श प्रभृति रोग शान्त होते हैं। फिर कासलक्ष्मीविलास बलवर्धक और तृष्णा तथा अरुचिनाशक भी है। (भैषज्यरत्नावली)

कासलनाडू—तेलङ्ग ब्राह्मण जातिका ६ ठां भेद। ऐलेश्वरोपाध्यायने यह भेद डाले थे।

काससंहारभैरव (सं० पु०) वैद्यकोक्त कासरोगका औषधविशेष, खांसीकी एक दवा। पारद, गन्धक, ताम्र, शङ्खभस्म, सोहागीकी फूली, लौह, मरिच, कुष्ठ, तालीशपत्र, जातीफल, लवङ्ग प्रत्येकका चूर्ण दो दो तोले एकत्र मिला भेकपर्णी, केशराज, निर्गुण्डी, काकमाचिका, द्रोणपुष्पी, शालची, शोभसुन्दर, भार्गी, हरीतकी तथा वासाके रससे घोंटना चाहिये । पञ्चगुञ्जाके समान वटिका सेवन करनेसे कासरोग दूर होता है। (रसरत्नाकर)

कासहरवर्ग (सं० पु०) कासरोगनाशक दश द्रव्य समूह, खांसीकी बीमारी दूर करनेवाली दश चीजोंका जखीरा। इसमें द्राक्षा, अभया, आमलक, पिप्पली, दुरालभा, शृङ्गी, कण्टकारी, वृश्चीर, पुनर्नवा और तमालका डालते हैं। (चरक)

कासहाक्वाथ (सं० पु०) १ कण्टकारीकृत पिप्पलीचूर्णयुक्त कासहर क्वाथ, खांसीका कोई काढ़ा। वह कण्टकारीसे बनता और उसमें पिप्पलीचूर्ण पड़ता है । २ धूमपान विशेष । उसमें धूमकी नाड़ी १६ अङ्गुली रहती है। धूम द्रव्यको क्षुद्र कोषणमें जलाना चाहिये।

कासान्तकरस (सं० पु०) कासाधिकारका रसविशेष, खांसीकी एक दवा। पारद, गन्धक, शुद्धविष, शाल-

पर्णी और धान्यक प्रत्येकका चूर्ण समभाग तथा सर्व-चूर्ण सम मरीचचूर्ण डाल चार गुञ्जाके तुल्य मधुके साथ सेवन करनेसे कासरोग आरोग्य होता है।

(रसेन्द्रसारसंग्रह)

कासार (सं० पु०) कास-आरन्, कस्य जलस्य आसारो यत्र। (उणादयः। उण् ३।१३८।) १ हृहत् सरोवर, बड़ा तालाब। २ दण्डकजातीय छन्दोविशेष। उक्त छन्दमें २० रगण रहते हैं। ३ स्वनामख्यात पक्वान्नविशेष, एक मिठाई। माषकल्याणी (उड़द), शृङ्गाटक (सिंघाड़ा), केसर, शालूक प्रभृति द्रव्य पेषण कर चतुष्कोण खण्ड बनाना पड़ते हैं। उसके पीछे उक्त खण्डोंको तप्त घृतमें भून चीनीकी चाशनीमें डालते हैं। कासार—रुचिकारक और अधिक रूक्ष तथा विच्छिन्न न होनेवाला है। वह वमनेच्छा, कफ और पित्तका नाश करता है। (भावप्रकाश)

कासारि (सं० पु०) कासस्य अरिः नाशकः, ६-तत्। कासमर्द, कसौंदा।

कासालु (सं० पु०) कासजनक आलुः, मध्यपदलो०। कोङ्कणदेशप्रसिद्ध आलुविशेष। उसका संस्कृत पर्याय—कासकन्द, कन्दालु, आलुक, आलु, विशालपत्र और पत्रालु है। राजनिघण्टुके मतसे वह मधुररस, उष्णवीर्य, शिरःशोधक, अग्निकारक और कण्डु, वायु, श्लेष्मरोग तथा अरुचिनाशक होता है।

कासिका (सं० स्त्री०) १ कफ, खांसी। २ वनमुद्ग, जङ्गली मोठ।

कासिद (अ० पु०) पत्रवाहक, हरकारा।

कासिप—राजपूतोंकी एक जाति। कासिप लोग युक्तप्रदेशमें रहते हैं। अपने गोत्रसे वह कश्यपवंशीय क्षत्रिय हैं। परन्तु बहुतसे लोग उन्हें क्षत्रिय नहीं मानते।

कासिम—बसराके शासनकर्ता हजाजके भ्रातुष्पुत्र। खृष्टीय अष्टम शताब्दको भारतललनाके रूपकी कथा तुरुष्कराज खलीफाके अन्तःपुरमें निकली थी। खलीफाको लोभ लग गया। शस्त्रधारी अरब उनकी मनस्तुष्टि के लिये अर्णवपोतमें चल दिये। सिन्धुप्रदेशके देवल नामक बन्दरमें भारतवासियोंने अरबी पोतको आक्रमण किया था। उक्त घटनाका समाचार खलीफाको मिला। आरबोंकी मानरक्षाके लिये विंशतिवर्षीय मुहम्मद कासिम ३०० अश्वारोही और १००० पदातिके साथ भेजे गये। युवकने विपुल साहससे देवलबन्दर आक्रमण किया। उस समय समस्त सिन्धुदेश मूलतान सह हिन्दू राजा डाहिरके अधीन था। महाराज डाहिर राज्यकी रक्षाके लिये कासिमसे बहुत लड़े। वह स्वयं हाथी पर चढ़ रणमें गये थे। घटनाक्रमसे मुसलमानोंके फेंके अग्निगोलक द्वारा उनका हस्ती आहत हुवा और प्रबल वेगसे अश्वारोहीके साथ नदीके खरस्रोतमें गिर पड़ा। हिन्दुओंका सैन्य राजाकी वह अवस्था देख भागा था। वीर कासिम उस समय सुविधा देख अपने मुष्टिमेय सैन्यसे डाहिरकी सागर सदृश विपुल वाहिनीको विदलित करने लगे। शत शत ब्राह्मण और राजपूत मुसलमानोंके हाथ निहत हुवे। दुर्भाग्य क्रमसे हिन्दूराजने वाहनसह कालका आतिथ्य स्वीकार किया था।

कासिम देवलक्षेत्र परित्याग कर ब्राह्मणावादके अभिमुख अग्रसर हुवे। राजभक्त ब्राह्मण और राजपूत डाहिरकी आकस्मिक विपद् देख घबरा गये थे। सुतरां सामर्थ्य रहते भी किसीने राजधानीकी रक्षाके लिये विशेष यत्न न किया।

मुहम्मद कासिमने ब्राह्मणावाद नगरमें जाकर देखा कि एक ओर गगनस्पर्शी प्रज्वलित चिता सज्जित रही और दूसरी ओर महाराज डाहिरकी वीर महिषी ससैन्य विपक्षके गतिरोधार्थ उपस्थित थीं। हिन्दू वीरबाला अनेक चेष्टा करने पर भी राज्य बचा न सकीं। उन्होंने देखा कि भीरु ब्राह्मणोंकी देखा देखी उनका राजपूत सैन्य भी पृष्ठ प्रदर्शन करता था। उस समय पतिके मानकी रक्षाको सतीने सपत्नी और पुरमहिलावर्गके साथ उसी ज्वलत् चितापर आरोहण किया। कासिम अनेक उपायोंके पीछे दो राजकन्यावोंको बन्दी बना स्वदेश लौट गये। तुरुष्कराज खलीफाने दामसकासकी सभामें उक्त दोनों राजकन्यावोंको बुलाया था। ज्येष्ठा कन्या सभामें जाकर रोने लगी। खलीफाने रोनेका कारण पूछा था। राजबालाने उत्तर दिया—

"मैं आपके अयोग्य हूं। कासिमने मेरा धर्म बिगाड़ डाला है।" यह बात सुनते ही खलीफाने आदेश निकाला था,—"शीघ्र ही उस दुर्वृत्त कासिमको खाल खींच कर यहां ले आवो।" आदेश पालित हुवा। कासिमका देह राजसभामें लाया गया था। राजकन्याने हंसकर कहा—"मेरी मनस्कामना सिद्ध हुयी मैंने जो दोष लगाया, प्रकृत पक्षमें कासिम उसका पात्र न था। जिसने मेरा पितृवंश नाश किया, उसीसे मैंने बदला चुका लिया।"

७१४ ई० को मुहम्मद कासिम मर गये।

कासिम—१ जाफरनामा-अकबरी नामक ग्रन्थके रचयिता। इस पुस्तकमें दोस्त मुहम्मद खान्के पुत्र अकबर खान्के विजयका वर्णन है। इसे कासिमने १८४४ ई० को सम्पूर्ण किया था। पुस्तक पद्यात्मक है। अंगरेजोंके काबुल-युद्धका विषय भी इसमें सन्निविष्ट है। आगरेमें रहनेसे लोग इन्हें कासिम अकबराबादी कहते हैं। २ हकीम मीर कुदरत-उल्लाका उपनाम। उन्होंने एक तजकिरा (कवियोंका जीवनवृत्तान्त) लिखा था।

कासिम अलीखान् (मीर)—बङ्गालवाले नवाब मीरजाफर अलीखान्के जामाता। साधारणतः इन्हें लोग मीरकासिम कहते थे। १७६० ई० को अङ्गरेजोंने इन्हें श्वशुरके पदपर प्रतिष्ठित किया। कारण इन्हें बङ्गालकी आर्थिक अवस्था भली भांति विदित रही। किन्तु थोड़े दिन पीछे ही इन्होंने मुङ्गेरमें जा निवास किया और अंगरेजोंको बङ्गालसे निकालनेका बीड़ा उठा लिया। मीरकासिमको अंगरेजोंके राजनैतिक अधिकार और व्यवसायिक प्रसारकी वृद्धि अच्छी लगती थी। १७६३ ई० को २री अगस्तको उदयनाले पर युद्ध हुवा। उसमें इनकी सेना हारी थी। फिर यह बङ्गालके सिंहासनसे उतारे गये। नवाब जाफर अलीको पुनः अपना पद प्राप्त हुवा। मीरकासिम यह हाल देख पागल बन गये थे। इन्होंने मुङ्गेरसे भाग पटनेमें जा आश्रय लिया और वहांके समस्त अंगरेजोंको वध करनेका आदेश दिया। उस समय छोटे बड़े सब मिलाकर १५० अंगरेज रहे। ५वीं अक्तोबरको सोम्बर नामक किसी जर्मनकी आज्ञासे सबके सब मारे गये। अक्तोबर मासमें ही अंगरेजोंने मुङ्गेर अधिकार किया था। फिर ६ठीं नवम्बरको पटने पर आक्रमण पड़ा। मीरकासिम अपनी फौज और दौलत ले लखनऊको भागे थे। १७६४ ई० को २३वीं अक्तोबरको बक्सरमें जो युद्ध हुवा, उसमें सुजा-उद-दौला की फौजको मेजर कारनाकने पूर्णरूपसे हरा दिया। दूसरे ही दिन मुगल-बादशाह शाह आलम अंगरेजोंसे आ मिले। फिर अंगरेजी फौज अवधको आक्रमण करनेके लिये चली थी। मीरकासिमको लूट लेते भी लखनऊके नवाबने अंगरेजोंके हाथ सौंपना न चाहा। मीरकासिम फिर रुहेलखण्डको भगे और वहां आनन्दसे रहने लगे। इनके पास कुछ बहुमूल्य रत्न और मित्र बच गये थे। किन्तु अपने कपट-प्रबन्धके कारण इन्हें वहांसे भी भाग गोहदके रानाके पास जाकर रहना पड़ा। कुछ वर्ष पीछे फिर यह योधपुर गये और वहांसे दिल्ली पहुंच १७७४ ई०को शाह आलमके नौकर बने। १७७७ ई० को इनका मृत्यु हुवा। इनोंके साथ बङ्गालकी सुबेदारी मिटी थी।

कासिम अलीखान् नवाब—रामपुरवाले नवाबके चाचा। १८६८ ई० को यह बरेलीमें रहते थे। १८६८ ई० को २२वीं दिसम्बरको ही इनकी दुहिताका बध हुवा।

कासिम कादिरी शेख—एक मुसलमान साधु। इन्हें लोग शाह कासिम सुलेमानी भी कहते थे। कब्र चुनारमें बनी है। इनके पुत्र शेख कबीर १५४४ ई० को कन्नौजमें मरे और गड़े थे। साधारणतः लोग उन्हें बालापीर कहते रहे। शाह कासिम सुलेमानीके मकबरेका व्यय कररहित भूमि और माथ रोजीना पेनशनसे चलता है।

कासिम कादी मौलाना—एक सैयद। इनका यथोचित नाम नजम-उद-दीन् और उपाधि अबुल कासिम रहा। यह अबदुल रहमान् जामीके शिष्य थे। इन्होंने हिरातसे बादशाह हुमायूंके भ्राता मिर्जा कामरानके साथ

मक्केको यात्रा की। फिर १५५७ ई० को उनके मरने पर यह बादशाह अकबरके समय भारत आये थे। इन्होंने बहुत समय तक अलीकुली खान्के भ्राता बहादुर खान्के साथ काशीमें निवास किया और उनके मरने पर वहांसे लौट आगरेमें डेरा डाल दिया। १५८० ई० को १७ वीं अप्रेलको आगरेमें ही इनका मृत्यु हुवा।

कासिम खान्–१ बङ्गालके कोई नवाब। इसलामखान्के मरने पर जहांगीरने कासिमखान्को बङ्गालका सूबेदार बनाकर भेजा था। उस समय निम्नबङ्गमें मग लोगोंका उत्पात रहा। वह दौरात्म्य निवारण कर न सके। उसीसे पदच्युत होने पर १६१८ ई० को दिल्लीको भेजे गये।

२ मीरजाफरके भाई। शीराज-उद्-दौलाके समय कासिमखान् राजमहलके एक सेनाध्यक्ष रहे। शीराज्-उद्-दौलाने अंगरेजोंके भयसे जब राजधानी छोड़ दाना-शाह नामक मुसलमान फकीरका आश्रय लिया, तब कासिमखान्ने खबर पाते ही गुप्तभावसे जाकर नवाबको बांध लिया और मीरजाफरके पास भेज दिया। शीराज-उद्-दौला और मीरजाफर देखो।

कासिम खान् जबीनी–बङ्गालके कोई मुसलमान नवाब। नवाब फिदाखान्के मरने पर दिल्लीश्वर शाहजहान्ने १६२७ ई० कासिमको बङ्गालकी सूबेदारी दी थी। वह धर्मभीरु, साहसी, वीर और सुकवि रहे। उनके समय पोर्तगीज बङ्गालमें प्राधान्य लाभ करते थे। कासिमने शाहजहान्की अनुमति ले १६३२ ई० को हुगलीमें उन्हें आक्रमण किया। ३ मास अवरोधके पीछे पोर्तगीजोंने हुगली छोड़ी थी। प्रायः सहस्राधिक पोर्तगीज मारे और चार हजार पकड़े गये थे। उस समय अनेक पोर्तगीज-रमणी शाहजहान्के अन्तःपुर-शोभार्थ दिल्लीको प्रेरित हुयीं। पोर्तगीज देखो। हुगली जयके अल्पकाल पीछे ढाका नगरमें कासिम मर गये।

कासिम खान् जबीनी नवाब—बादशाह जहांगीर और शाह-जहांकी सभाके एक सभासद। इनके अधिकारमें ५००० सवार रहे। यह सब्जवारके अधिवासी थे। मनीजा बेगमसे इनका विवाह हुवा। वह नूरजहांकी भगिनी रहीं। इसीसे कभी कभी सभासद इन्हें हंसीमें कासीम खान् मनीजा कहते थे। यह एक दीवान्के ग्रन्थकार रहे। उपनाम कासिम था। १६२८ ई० को इन्हें शाहजहांके समय फिदाई खान्के स्थान पर बङ्गालकी सूबेदारी मिली। इन्होंने कोई १०००० पोर्तगीजोंको मार और बाकीको भगा हुगली अधिकार किया। इस घटनाके ३ दीन पीछे १६३१ ई० को इनका मृत्यु हुवा। इन्होंने आगरेमें २० बीघे भूमि पर एक बृहत् भवन बनाया और १० बीघे भूमि पर एक उद्यान लगाया था। किन्तु अब उसका कोई चिह्न देख नहीं पड़ता।

कासीम खान् शेख—इसलाम खान्के भ्राता। इनका निवासस्थान फतेपुर-सीकरी और उपाधि मुहतशिम खान् रहा। बादशाह जहांगीरके समय इन्हें ४०००० सवारोंपर अधिकार मिला था। १६१३ ई० को भाईके मरने पर जहांगीरने इन्हें बङ्गालका सूबेदार बनाया। इन्होंने आसाम आक्रमण किया था। किन्तु आसामियोंने रातको धावा कर इनको बहुतसी फौज मार डाली थी। इसीसे यह दिल्ली वापस बुलाये गये। फिर इनका मृत्यु हुवा।

कासिम बरीद शाह १—दक्षिणमें बरीदशाहीवंशके प्रतिष्ठाता। यह एक तुर्की या जार्जीय गुलाम रहे। धीरे धीरे ये दक्षिणके २य मुहम्मदशाह नवाबके वजीर हुवे और अपने प्रभावसे राज्यके प्रभु बन गये। फिर १४९२ ई० को इन्होंने आदिल शाह, निजाम शाह और इमाद शाहके परामर्शानुसार अपनेको स्वतन्त्र बनाया तथा अपने नामका सिक्का चलाया। नवाबको केवल अहमदाबाद बीदरका नगर और दुर्ग मिला था। १२ वर्ष राज्य करनेके पीछे इनका १५०४ ई० को मृत्यु हुवा। फिर इनके पुत्र अमीर बरीदने राज्यका उत्तराधिकार पाया था। इन्होंने अपना वैभव खूब बढ़ाया और महम्मद शाहको अपने पितासे भी अधिक नीचा देखाया। इस वंशके जिन सात पुरुषोंने अहमदाबाद बीदरका राज्य चलाया, उनका नाम नीचे लिखे अनुसार है—

कासिम बरीद १म	...	१४८२ ई०
अमीर बरीद	...	१५०४ "
अली बरीद (प्रथम नवाब)	...	१५४२ "
इब्राहीम बरीदशाह	...	१५६२ "
कासिम बरीद शाह २य	...	१५६९ "
अली बरीद शाह २य	...	१५७२ "
अमीर बरीद शाह २य	...	१६०९ "

कासिम बरीद शाह २य—अहमदाबाद बीदरके एक नवाब। १५६९ ई० को इन्हें अपने भ्राता इब्राहीम बरीदशाहका उत्तराधिकार मिला था। किन्तु १५७२ ई०को ३ वर्ष राज्य करनेके पीछे इनका मृत्यु हुआ। फिर इनके पुत्र २य मीर्जा अली बरीदने राज्य पाया था। उन्होंने २७ वर्ष राज्य चलाया। १६०९ ई०को २य अमीर बरीदने इन्हें मार राज्य अधिकार किया। यह अपने वंशके अन्तिम नवाब थे।

कासिमबाजार—बंगालके मुर्शिदाबाद जिलेका एक पुराना शहर। वह अक्षा २४° ८´ ४०´´ उ० और देशा० ८८° १७´ पू० गंगाके तट पर अवस्थित है। ई० १८ श शताब्दको वहां पोर्तगीजों, फरासीसियों और अंगरेजों की कोठी थी। रेशमका बड़ा व्यापार होता था। आजकल वह बात नहीं। कासिमबाजारमें कई बड़े बड़े जमीन्दार रहते हैं।

कासियारि—बङ्गालका एक प्राचीन ग्राम। वह मेदनीपुरसे प्रायः ३०० मील दूर दक्षिण-पश्चिम अवस्थित है। वहां अनेक प्राचीन कीर्तियोंके भग्नावशेष पड़े हैं। उनमें कुरुम्बर दुर्गका बहिःप्राचीर आज भी बहुत कम बिगड़ा है। वह रक्तवर्ण वालुका-प्रस्तरसे बना है। कुरुम्बर दुर्ग प्रायः १० फीट ऊंचा है। प्राचीरके बगलमें चार मेहराबोंवाला बरामदा है। अभ्यन्तरकी पूर्वदिक्के प्रान्तभागमें शिवमन्दिर बना है। उक्त मन्दिरके अन्तवर्ती किसी कूपमें शिवलिङ्ग प्रतिष्ठित है। ठीक मन्दिरके सामने पश्चिम प्रान्तमें एक मसजिद है। वहां उड़ीया भाषामें खोदित शिलालिपि लगी है। उसके पाठसे समझ पड़ता है कि औरङ्गजेबके राजत्वकाल मुहम्मद ताहरने वह मसजिद बनवायी थी, ११०२ हिजरीको उसका निर्माणकाल शेष हुवा।

पूर्वदिक् एक गभीर दीर्घिका (तलैया) है। उसे योगेश्वरकुण्ड कहते हैं। वह कुण्ड कुम्भीरसे परिपूर्ण है। वहां मुगलपाड़ा नामकी एक पल्ली (गांव) है। उसमें मुगलों द्वारा निर्मित अनेक मसजिदें और इमारतें खड़ी हैं। मुगलोंके शासनकाल कासियारि ग्राम टसर वाणिज्यका केन्द्रस्थल और तहसीलदारोंका सदर थाना था। किसी मसजिदमें अरबी भाषासे खोदित एक प्रस्तरलिपि है। उससे भी मालूम पड़ता है कि वह औरङ्गजेबके समय बनी थी। ध्वंसावशेषके मध्य किसी स्थान पर एक मुसलमान फकीरकी प्रस्तर-मूर्तिका भग्नखण्ड पड़ा है। उसके गात्रमें फारसी भाषासे खोदित एक शिलालिपि है। उसमें भी औरङ्गजेबका ही समय मिलता है।

कासियारिसे कुछ दक्षिण मुगलमारी ग्राम है। मुसलमानोंने सर्वप्रथम कुरुम्बरके हिन्दुवोंको हरा मन्दिरादि ध्वंसकर उनके स्थानमें मसजिद बनायी थी। फिर मराठोंने मुगलमारीमें ही मुसलमानोंको पराजय किया। सम्भवतः उक्त पराजयके पीछे ही मुगलमारी नाम पड़ गया।

कुरुम्बरके सम्बन्धमें स्थानीय प्रवाद इस प्रकार है—उड़ीसाके देवराजवंशीय महाराज कपिलेश्वरने यह मन्दिर बनवाया था। फिर उन्होंने इसमें गगनेश्वर नामक शिवलिङ्ग स्थापन किया। कहते हैं वह स्थान पहले जंगलसे घिरा था। सुवर्णरेखा बहरही थी। उस समय यहां बाघराज नामक कोई राजा रहे। बाघराज नामसे ही सम्भवतः बाघभूमि परगना कहाया है। उनके अनेक दुग्धवती गायें थीं। उनको लेकर कोई रक्षक प्रतिदिन सुवर्णरेखाके पश्चिम तीर चराने जाता था। कुछ दिन पीछे एक गायका दुग्ध प्रत्यह घटने लगा। राजाने सुनकर सोचा सम्भवतः रक्षक क्षुधातुर होनेपर वनमें दुहकर पी जाता होगा। उन्होंने किसीदिन रक्षकोंको वृथा विस्तर तिरस्कार किया था। रक्षक वृथा तिरस्कृत हो दूसरे दिन दूध घटनेका पता लेनेके लिये उसी गायके पीछे पीछे फिरता रहा। गायने वनमें जाकर प्रथम पेट भर घास खायी, फिर

वह नदी पार हो पूर्वमुख एक वनमें चली गयी। रक्षकने पहुंच उसका अनुसरण किया था। कुछ दूर जाकर उसने देखा कि गाय शिवलिङ्ग पर दुग्धधारा छोड़ती थी। उसने उसी दिन घर जा राजासे उक्त घटना बता दी। व्याघराजने फिर वह बात महाराज कपिलेश्वरसे कही। कपिलेश्वरने उस शिवलिङ्ग पर कुरुम्बरका मन्दिर बनवाया और गगनेश्वर लिङ्गका नाम रखाया। उन्होंने योगीश्वरकुण्ड भी खनन कराया था। मुसलमानोंके समय अब्दुल समद नामक किसी प्रसिद्ध मुसलमान फकीरने बलपूर्वक उक्त मन्दिर अधिकार और उसमें गोहत्या कर मन्दिरकी पवित्रता बिगाड़ डाली थी। फिर उन्होंने शिवलिङ्गको स्थानान्तरित कर चत्वरके मध्य तीन मसजिदें बनायीं। कहते हैं कि गोरक्तसे मन्दिर कलङ्कित होने पर महादेवकी लिङ्गमूर्ति अन्तर्हित हो एगरा नामक स्थानमें प्रकाशित हुयी थी। फकीरके पहुंचनेसे पहले 'गांजिया महाराज' नामक कोई महन्त महादेवके पूजक रहे। 'बींणयाबुड़ी' नाम्नी उनके कोई भैरवी थी। लोगोंके कथनानुसार महादेवके अन्तर्हित होने पर महन्त और उनकी भैरवी दोनों ऐशीर्शक्तिके बल सूपमें बैठ आकाशपथसे पूर्वमुख उड़े चले जाते थे। किन्तु पथिमध्य भैरवी किसी जलपूर्ण स्थान पर गिर पड़ी। उसीसे गांजिया महाराजको भी उतरना पड़ा। उनके उतरनेका स्थान "कुलासनि" ग्राम कहाता है। उस ग्राममें आज भी महन्त और भैरवीकी मूर्ति स्थापित है। महन्तमूर्तिकी पूजा होती है। कालक्रमसे उक्त स्थान घने जंगलसे भर गया है। वहां कोई सहज हो घुस नहीं सकता। बंगाली सन् १२३१ को वनमाली पण्डा नामक किसी व्यक्तिने मेदिनीपुर कलक्टरके आदेशसे जंगल कटाया और कूपके मध्य दो खण्ड महादेवकी भग्न लिङ्गमूर्तिको पाया था।

कुरुम्बरमन्दिरमें आज भी अनेक मूर्तियां अक्षुस भावसे दण्डायमान हैं। उक्त प्रस्तरमन्दिर देखनेमें अतिमनोरम है। वह २०० हाथ लम्बा और १५० हाथ चौड़ा है। मन्दिरकी पश्चिम दीवारमें उड़िया भाषाकी एक शिलालिपि विद्यमान है। किन्तु उसके प्रायः समस्त अक्षर बिगड़ गये हैं। सुतरां इस समय तक उसका पाठोद्धार नहीं हुआ। प्रवाद है कि मुसलमानोंने वह शिलालिपि बिगाड़ डाली है।

कासी (सं० त्रि०) कासो ऽस्यास्ति, कास-इनि। कासरोगविशिष्ट, खांसीका बीमार। (हि०) कासी देखो।

कासीमृत्तिका (सं० स्त्री०) सौराष्ट्रमृत्तिका, एक मट्टी।

कासीस (सं० क्ली०) कासीं क्षुद्रकासं स्यति नाशयति, कासी-सो-क। १ उपधातुविशेष, कसीस। २ माक्षिक सुराविशेष, एक शराब। ३ तुत्थक, तूतिया। कासीस भस्मसदृश, किञ्चित् अम्ल और लवणरस होता है। (सुश्रुत)

कासीसद्वय (सं० क्ली०) धातु कासीस और पुष्पकासीस। पुष्प कासीस किञ्चित् पीत और तुवर रस होता है। (सुश्रुत)

कासुन्द (सं० पु०) कासमर्द, कसौंदा।

कासुम्भी (सं० पु०) कौसुम्भी शालि, एक धान।

कासुर (सं० पु०) महिष, भैंसा।

कासू (सं० स्त्री०) कशति कुत्सितं शब्दं गच्छति, कश-ऊ, पृषोदरादित्वात् शस्य सत्वम्। विभक्तिगिरयते। उण् १। ८०। १ विकलवाक्य, उलटी बात। २ शक्ति-अस्त्र, बरछी भाला। ३ दीप्ति, चमक। ४ भाषा, जबान्। ५ रोग, बीमारी। ६ बुद्धि, समझ।

कासूतरी (सं० स्त्री०) ह्रस्वा कासूः, कासू-ष्टरच्। कासूगोणीभ्यां ष्टरच्। पा ५। ३। ९०। क्षुद्र शक्ति-अस्त्र, छोटी बरछी।

कासृति (सं० स्त्री०) कुत्सिता सृतिः सरणम्, कोः कादेशः। कुत्सित गमन, खराब चाल।

कासेक्षु (सं० पु०) ह्रस्व काशतृण, छोटा कांस।

कासाली (सं० स्त्री०) अतिबला, एक बूटी।

कास्कन्द, कासमर्द देखो।

कास्टक (अं० पु० Caustic) जारक, तेजाब। इसके पड़नेसे चर्म जल जाता या आबला उभर आता है।

कास्त—महाराष्ट्रकी एक ब्राह्मण जाति। कास्त लोग खेतीबारीका काम करते और अधिकतर पूना तथा खानदेशमें रहते हैं। दूसरे ब्राह्मणोंमें उनका पद-

सामान्य समझा जाता है। वह बहुत कम लिखते पढ़ते और वैष्णव धर्म पर चलते हैं। कहते हैं उनको उत्पत्तिका कुछ ठिकाना नहीं। दूसरे पूनाके ब्राह्मण कास्तोंको शूद्र समझते हैं। पेशवा सरकारकी आज्ञासे इन्हें आज तक दानपुण्य नहीं मिलता।

कास्तीर (सं० क्ली०) ईषत्तीरं अस्यास्ति, कोः कादेशः निपातनात् सुट् च। कास्तीराजस्तुन्दे नगरे। पा ६।१।१५५। १ ईषत्तीरयुक्त नगरविशेष। २ तीक्ष्णलौह, तीखा लोहा।

काश्मर्य (सं० पु०) काश्मर्य पृषोदरादित्वात् अस्य सः। गाम्भारी, गम्भारी।

काहँ, कहं देखो।

काह (हिं० क्रि० वि०) क्या, कौन चीज।

काहका (सं० स्त्री०) काहला पृषोदरादित्वात् लस्य कः। काहला वाद्य, एक बाजा।

काहल (सं० क्ली०) कुत्सितं अस्पष्टं हलं वाक्यं ध्वनिर्वा यत्र, बहुव्री०। १ अस्पष्ट वाक्य, समझमें न आनेवाली बात। (पु०) २ कुक्कुट, मुरगा। ३ विडाल, बिलाव। ४ शब्दमात्र, कोई आवाज। ५ वृहत् ढक्का, बड़ा ढोल। उसका अपर संस्कृत नाम महानाद है। (त्रि०) ६ शुष्क, सूखा। ७ विशाल, बड़ा। ८ बुरा।

काहला (सं० स्त्री०) कुत्सितं हलति शब्दं करोति, कु-हल-अच्-टाप्, को कादेशः। १ वाद्ययन्त्रविशेष, एक बाजा। २ अप्सरोविशेष, कोई परी।

काहलापुष्प (सं० पु०) काहलाकृतिरिव पुष्पमस्य। श्वेतधुस्तूर वृक्ष, सफेद धतूरेका पेड़।

काहिल (सं० पु०) कं सुखं आहलति ददाति, क-आ-हल्-इन्। महादेव।

"सुख्योऽसुख्यश्च देहश्च काहलिः सर्वकामदः।" (भारत, अनु० १७ अ०)

काहली (सं० स्त्री०) कं सुखं आहलति ददाति, क-आ-हल्-इन्-ङीप्। १ युवती, जवान औरत। (पु०) २ किसी ऋषिका नाम। ३ एक छोटी जाति। यह उड़ीसाकी तरफ पाई जाती है।

काहावाह (सं० क्ली०) आंतोंमें होनेवाला गड़बड़ शब्द।

काहार (कहार) जातिविशेष, एक कौम। उच्चवर्ण पिताके औरस और निम्न जातीय माताके गर्भसे कहारोंकी उत्पत्ति है। उनकी प्रधान उपजीविका खेती करने, पालकी ढोने, बहङ्गी ले जाने, मछली पकड़ने और नौकरी करनेसे चलती है। कहारका सामाजिक व्यवहारादि साधारण हिन्दुओंकी भांति है। वह अपनेको जरासन्धका वंशोद्भव मानते हैं। उनमें एक अद्भुत प्रवाद प्रचलित है। कहार कहते हैं कि गिरिएक पहाड़में मगधराजका एक उपवन रहा। किन्तु अतिवृष्टिसे वह नष्ट हो गया। कुछ काल पीछे मगधराजने फिर उपवन लगाना चाहा था। उन्होंने घोषणा की 'जो व्यक्ति एक रात्रिके मध्य हमारा उपवन गङ्गा जलसे पूर्ण कर सकेगा, उसे हम अपनी कन्या और आधा राज्य दान करेंगे।' कहारोंमें उस समय चन्द्रावत् नामक कोई प्रधान व्यक्ति रहा। वह राजकन्या और राज्यके लोभसे उक्त कार्य करने पर स्वीकृत हुवा। उसने असुरबांध नामक एक बड़ा बांध बांधा था। फिर चन्द्रावत्‌ने बावनगङ्गाका जल ले जाकर अपने अधीनस्थ कहारोंके साहाय्यसे उक्त जलद्वारा पर्वतका उपवन पूर्ण कर दिया। उधर मगधराजने देखा कि चन्द्रावत् शीघ्र ही उपवनको जलसे भर उनकी कन्या और अर्ध राज्य ले लेनेवाला था। उस समय उन्होंने चन्द्रावत्‌को कन्या देना अनुचित समझ एक कौशल उद्भावन किया था। उनकी आज्ञासे प्रभात होनेके पूर्व ही काक बोलने लगा। कहारोंने देखा कि प्रभात हुवा था, किन्तु उनका कार्य चलता रहा। फिर मगधराजके भयसे व्यस्त हो भागने लगे। जिसके हाथमें बांस रहा, वह कहार हो गया। फिर रस्सी रखनेवाले मगहिया ब्राह्मण बने थे। किन्तु गल्पमें यह बात नहीं मिलती, कहारोंकी धानुक और राजवार शाखा कहांसे निकली है। अवशेषको मगधराजने सन्तुष्ट हो उन्हें प्रायः साढ़े तीन सेर धान्य प्रभृति शस्य दिया था।

कहार जाति विभिन्न शाखाओंमें विभक्त है—रवानी, धुड़िया, धीमर, यशवार, गड़हुक, तुड़ा, मगहिया प्रभृति। कहारोंके कथनानुसार प्रथम कोई श्रेणीविभाग न रहा। पहले वह गया जिलेके रमणपुर नामक स्थानमें बसते थे। कहारोंकी जातिके प्रधान

व्यक्तिने दो विवाह किये। किन्तु पत्नीद्वयके मध्य नित्य विवाद होता था। उसीसे उन्होंने दोमें एक पत्नीको यशपुर भेज दिया। यशपुर जानेवाली पत्नीसे यशवार और दूसरीसे रवानी हुये हैं। सन्ताल परगनेके रवानियोंमें नाग और कश्यप नामसे दो श्रेणी देख पड़ती हैं। कहार ऊर्ध्वतन सात पुरुषोंका सम्पर्क देख विवाह करते हैं। विवाहप्रथा साधारण हिन्दुवोंके समान है। कहारोंकी स्त्रियां विशेष अपराध होनेसे पञ्चायतके अनुमतिक्रमसे पतिको छोड फिर विवाह कर सकती हैं। उनकी पञ्चायत अधिक क्षमता रखती है। उसे कोई अमान्य समझ नहीं सकता। धर्म सम्बन्धमें कहार शैव, शाक्त और गाणपत्य हैं। उनमें वैष्णव बहुत अल्प होते हैं। वह अन्यान्य देवतावोंकी भी उपासना करते हैं। कहारोंमें नौकरी करनेवाले अन्यान्य श्रेणीकी अपेक्षा सामाजिक सम्मानमें श्रेष्ठ हैं।

युक्तप्रदेशके कहार द्विजातिके घर पानी भरते विवाहादि अवसरोंमें अन्यान्य कार्य भी यथायोग्य करते हैं। वृष्टि होने पर वह तालावोंमें वेल डाल देते हैं। शरत्‌ऋतुमें सिंघाडा लगनेसे उसे कच्चा-पक्का वेच अपनी जीविका चलाते हैं। डोली ले जानेका कार्य भी उन्हींके जिम्मे है।

काहारक (सं० पु०) कुत्सितं शिविकादिवहनरूपनीचवृत्तिमवलम्ब्य आहरति जीवनयात्रा निर्वाहयति, कु आ-हृ-ण्वुल्, कोः कादेशः। शिविकादि वाहक जातिविशेष, कहार।

"तथा गान्धिका वीराः क्षुरकर्मोपजीविकाः।
व्याधाः काहारकाः पुष्टाः क्षयं संवाहयन्ति ये॥"
(जैमिनिभारते आश्व० १० अ०)

काहि (हिं० सर्व०) किसको, किसे।

काहिल (अ० वि०) १ अलस, सुस्त। २ रुग्न, बीमार। ३ दुर्बल, कमजोर। ४ कृश, दुवला।

काहिली (अ० स्त्री०) आलस्य, सुस्ती।

काही (सं० स्त्री०) केन वायुना आहन्यते क-आ-हन-ड-ङीप्। कुटज वृक्ष, कुटकीका पेड़।

काही (हिं० वि०) १ नील हरित्, काला-हरा घासके रंगवाला। (पु०) २ वर्णकविशेष, कोई रंग। वह नील-हरित् रहता और नील, हलदी तथा फिटकरी मिलानेसे बनता है।

काहु, काहू देखो।

काहू (हिं० सर्व०) किसी।

काहू (फा० पु०) सलाद, खस। काहूको बङ्गलामें काहू, सलाद, तामिलमें शल्लातु, तेलगुमें काहू और सिंहलीमें सलद कहते हैं। (Lactuca Scariola) काहू पश्चिम हिमालयमें मरीसे कुनावर तक सात हजारसे दश हजार फीट ऊंचे उत्पन्न होता है। वह पश्चिम तिव्वतमें भी मिलता है। उसमें कुछ कुछ कांटे रहते हैं। फिर साईवेरियासे काहू अङ्गरेजी द्वीपों और कनारीज तक चला गया है।

यह गोभीकी भांतिका पौदा है। पत्र दीर्घ और कोमल होते हैं। शीतकालको भारतके उद्यानोंमें उसे शाकको भांति वोते हैं।

काहूके वीजसे स्वच्छ, मधुर और स्फटिकप्रभ तैल निकलता है। गत १८६४ ई० को पञ्जावप्रदर्शिनीके समय लाहोरमें उसका नमूना दिखाया गया था।

काहू शीतल और क्लान्तिनाशक है। भारतका काहू ईरानके काहूसे अच्छा होता है। किन्तु भारतके औषधालयोंमें उसका व्यवहार कम है। काहू युरोपीयोंके काम आता है। खृष्टीय संवत्‌से प्रायः ४०० वर्ष पूर्व वह ईरान्‌के बादशाहोंके भोजनमें व्यवहृत होता था। भारतीय काहू नहीं खाते।

अक्तोबरसे फरवरी मासतक काहू उत्पन्न होता है। गोभीको भांति उसमें भी एक डण्ठल निकलता, जो ऊपरको रहता है। उसीमें फूल और वीज आते हैं। काहूकी अफीम अच्छी नहीं होती।

काहूजी (सं० पु०) ज्योतिषग्रन्थ-रचयिता महादेवके पिता

काहून—झेलम प्रदेशकी एक कृषक-जाति। इसकी संख्या दश हजारके करीब है।

काह्नय (सं० पु०) कह्नयस्य अपत्यम्, कह्नय-अण्। शिवादिभ्योऽण्। पा ४।१।११२। कह्नयके पुत्र।

काहे (हिं० क्रि०) क्यों, क्या बात है।

काहोड़ (सं० पु०) कहोड़स्य अपत्यम्, कहोड़-अण्। काहोड़वंशीय।

कि (हिं० क्रि० वि०) १ कैसे, किस प्रकार, क्या। (अव्य०) २ संयोजक शब्द। ३ अथवा, या।

किं (सं० अव्य०) १ क्या, जिज्ञासाबोधक शब्द। २ आश्चर्य वा विस्मयबोधक शब्द। ३ निषेधवाचक शब्द। ४ वितर्क। ५ निन्दा।

किंगरई (हिं० स्त्री०) वृक्षविशेष, एक पौदा। वह लाजवंतीसी मिलती और कंटीली रहती है। किंगरईके सोंके ७।८ इञ्च लंबे होते हैं। पत्तोंका दैर्घ्य चौथाई इञ्च है। आषाढ़ श्रावण मास उसमें फूल आते हैं। पुष्प प्रथम रक्तवर्ण रहते, किन्तु पश्चात् श्वेतवर्ण धारण करते हैं। पत्र और बीज औषधमें व्यवहृत होता है। लकड़ीके कोयलेसे बारूद बनती है। किंगरई भारतवर्षमें सर्वत्र मिलती है।

किंगरिया—एक नीच जाति। इसका पेशा भीख मांगना है। युक्तप्रदेशके पूर्वीय भागमें इस जातिके लोग विशेषतया पाये जाते हैं।

किंगिरी (हिं० स्त्री०) वाद्यविशेष, एक बाजा। यह छोटे चिकारे या सारंगी—जैसी होती है। नट और योगी किंगरी बजा कर भीख मांगा करते हैं।

किंगोरा (हिं० पु०) क्षुपविशेष, एक झाड़ी। वह ४।५ हाथ ऊंचा और कंटीला होता है। किंगोरा भूमि पर दूर तक नहीं फैलता, सीधा ऊपर उठता है। पत्र ४।५ अंगुलि दीर्घ रहते हैं। उनके प्रान्तभागमें दूर दूर दांत होते हैं। किंगोरेमें क्षुद्र क्षुद्र पुष्प और लाल या काली काली फलियां आती हैं। फलियोंको लोग खाया करते हैं। किंगोरामें दारुहल्दीकी भांति गुण होता है। उसे किलमोरा और चित्रा भी कहते हैं।

किंडरगार्डेन (अं० पु०) शिक्षा-प्रणालीविशेष, तालीमकी एक तरकीब। इसे किसी जर्मन विद्वान्ने निकाला था। उसने बालकोंके लिये उद्यानमें एक पाठशाला खोली। उसमें अनेक प्रकारकी ऐसी सामग्री एकत्र थी, जिससे वह बच्चे अक्षरों आदिके अभ्यासके साथ साथ अपने मनको भी बहला सकें। किंडरगार्डेन अब अनेक देशोंमें चल गया है। उसके द्वारा बालकोंको चित्रविचित्र काठखण्डोंसे शिक्षा दी जाती है। कानपुर जिलेके मसवानपुरनिवासी पण्डित गौरीशङ्कर भट्टने हिन्दीका बहुत अच्छा किंडरगार्डेन बनाया है।

किंयु (वै० त्रि०) किं इच्छति, किं वैदिकत्वात् क्यच्-उ। किमिच्छुक, क्या चाहनेवाला।

किंराजन् (सं० पु०) कः कुत्सितो राजा किम्-राजन् निन्दार्थत्वात् न टच्। १ कुत्सित राजा, खराब बादशाह। (त्रि) २ निन्दित राजयुक्त, बुरे बादशाहवाला।

किंशारु (सं० पु०) किं किञ्चित् कुत्सितं वा शृणाति, किम्-श-ञुण्। किंजरयोः श्रिणः। उण् १।४। १ शस्यशूक, धनाजका रेशा। २ वाण, तीर। ३ काङ्कपक्षी, एक चिड़िया। ४ रोटक, रोटी।

किंशुक (सं० पु०) किं किञ्चित् शुकः शुकावयवविशेष इव, उपमि०। पलाशवृक्ष, ढाक या टेसूका पेड़। किंशुकका पुष्प आकृति और वर्णविषयमें शुकपक्षीके चञ्चु-जैसा होता है। उसी हेतु किंशुक नाम पड़ा। उसका संस्कृत पर्याय—पलाश, पर्ण, यज्ञिय, रक्तपुष्प, क्षारश्रेष्ठ, वातहर, ब्रह्मवृक्ष और समिद्वर है। (भावप्रकाश) ढाक देखो। २ नन्दीवृक्ष। ३ पुराणोक्त वनभेद।

"सूर्यस्य किंशुकवने तथा रुद्रगणस्य च।" (लिङ्गपुराण, ४९।६२)

किंशुकक्षार (सं० पु०) पलाशक्षार, ढाकका नमक।

किंशुकतैल (सं० क्लो०) पलाशबीजतैल, ढाकका तेल। वह पित्तश्लेष्मघ्न होता है।

किंशुका (सं० स्त्री०) १ पलाशवृक्ष, ढाकका पेड़। २ ज्योतिष्मती, रतनजोत। ३ नन्दीवृक्ष।

किंशुकादिगण (सं० पु०) किंशुक प्रभृति द्रव्यसमूह, ढाक वगैरह चीजोंका जखीरा। उसमें निम्नलिखित द्रव्य सम्मिलित हैं— किंशुक, काश्मरी, बिल्व, अग्निमन्थ, त्रिकण्टक, श्योणाक, शालपर्णी, सिंहपुच्छिद्वय, क्षिरा, पाटला, कण्टकारी, बृहती और विल्व।

(रवीन्द्रसार-संग्रह)

किंशुलुक (सं० पु०) किंशुक निपातनात् साधुः। १ हस्तिकर्णपलाश, बड़ा ढाक। २ नीलकण्ठ पक्षी।

किंशुलुकागिरि (सं० पु०) किंशुलुकप्रधानो गिरिः अकारस्य दीर्घत्वम्। वनगिर्योः संज्ञायां कोटरकिंशुलुकादीनाम्। पा६।३।११७। बहुसंख्यक पलाशवृक्षविशिष्ट पर्वत, ढाकके बहुतसे पेड़ रखनेवाला पहाड़।

किंशुलुकादि (सं० पु०) पाणिनि व्याकरणोक्त शब्दगण विशेष, लफजोंका एक जखीरा। इसमें निम्नलिखित शब्द आते हैं— किंशुलुक, शाल्व, नड़, अञ्जन, भञ्जन, लोहित और कुक्कुट।

किंस (सं० त्रि०) किं कुत्सितं स्यति छिनत्ति, किम् सो-क। कुत्सित छेदनकारी, खराब काटनेवाला।

किंसखि (सं० पु०) कः कुत्सितः सखा। कुत्सित सखा, बुरा दोस्त।

"स किंसखा साधु न शास्ति योऽधिपम्।" (किरातार्जुनीय)

किंसारु, किंशारु देखो।

किंस्वित् (सं० अव्य०) १ प्रश्नार्थबोधक शब्द। २ सन्देहवाचक शब्द।

किक (अं० स्त्री० =Kick)पदाघात, पैरकी ठोकर, लात।

किकारी—एक शूद्र जाति। इस जातिके लोग डलिया टोकरी आदि बनाकर आजीविका चलाते हैं।

किकि (सं० पु०) कक-इन् पृषोदरादित्वात् अदेरित्वम्। १ चाषपक्षी २ नीलकण्ठ। २ नारिकेल, नारियल।

किकिदिव (सं० पु०) किकि इति अव्यक्तशब्देन दीव्यति क्रीडति, किकि-दिव्-क। चाषपक्षी, नीलकण्ठ। इसका पर्याय—स्वर्णचातक, चाष, चास, किकिदिवि, किकीदिवि, किकीदिव, किकिदीव, किकिदिव और स्वर्णचूड़ है।

किकिदीधिति (सं० पु०) कुक्कुट, मुरगा।

किकियाना (हिं० क्रि०) १ कोलाहल करना, शोर मचाना, चिल्लाना। २ रोदन करना, रोना। ३ कें कें करना, दबना।

किकिर (सं० पु०) १ कोकिल, कोयल। २ पक्षी, चिड़िया। ३ अश्व, घोड़ा।

किकिरा (वै० अव्य०) क धात्वर्थे कर्मणि क पृषोदरादित्वात् साधुः। खण्ड खण्ड करके, टुकड़े टुकड़े उड़ा कर।

किकी, किकि देखो।

किकीदिव, किकिदिव देखो।

किकीदिव, किकिदिव देखो।

किकीदीवि, किकिदिव देखो।

किकोरी (हिं० स्त्री०) वृक्षविशेष, एक पौदा।

किक्किट (वै० त्रि०) कुत्सित, खराब।

"किक्किटाकारेण वै ग्राम्याः पशवो रमन्ते।"
(तैत्तिरीय-संहिता, ३।४।२।१।)

किक्किश (सं० पु०) १ केशादिघ्न कीटविशेष, बाल वगैरह उड़ानेवाला एक कीड़ा। केश, रोम, नख, दन्त आदि खानेवाले कीड़ेको किक्किश कहते हैं। (सुश्रुत) २ मांसदारण रोग, चमड़ा उड़ानेवाली बीमारी। उक्त रोगमें वरुण-पत्र जलमें पीस घृत मिला मलते और लगाते हैं। फिर गोमय रगड़नेसे भी उपकार होता है। (भैषज्यरत्नावली)

किक्किस, किक्किश देखो

किक्किसाद (सं० पु०) राजिमत् सर्पविशेष, एक सांप। किक्किसाद राजिमान् सर्पोंके अन्तर्भूत है। मध्यवयसको उसका विष अति प्रखर रहता है। किक्किसादके दंशनसे त्वगादिकी शुक्लता, शीतज्वर, रोमहर्ष, स्तब्धता, दष्टस्थानमें शोथ, मुख नासिका द्वारा कफस्राव, वमन, चक्षुद्वयमें निरन्तर कण्डु, कण्ठदेशमें सूजन, घुर्घुरशब्द, निःश्वास अवरोध, अन्धकारमें प्रवेश करनेकी भांति अनुभव और अन्यान्य कफजन्य वेदना होती है। विषरोग शब्दमें चिकित्सादि देखो।

किक्कस (सं० पु०) दले हुये अनाजका दाना।

किखि (सं० स्त्री०) खदति हिनस्ति, निपातनात् साधुः। १ लघुशृगाल, लोमड़ी। (पु०) २ वानर, बन्दर।

किङ्कणी (सं० स्त्री०) किञ्चित् कणति, किम्-कण-इन्-ङीप्। छोटे छोटे घुंघरू।

किङ्कर (सं० त्रि०) किञ्चित् करोति, किम्-कृ-ट। दास, नौकर।

किङ्करगोविन्द—बुन्देलखण्डके अधिवासी एक कवि। इनका जन्म १७५३ ई०में हुवा था और शान्तिरसमें कविता करते थे।

किङ्करसेन—एक बंगाली कायस्थ। दिल्लीवाले मुगल-सम्राट बहादुर शाहके समय उनके पुत्र आजिम्-उश्-शान् बङ्गाल-विहार-उड़ीसाके नाजिम और दीवान् रहे। उसी समय हुगलीमें एक जैन-उद्-दीन फौजदार थे। आजिमके साथ जैन-उद्-दीनकी सम्प्रीति न रही उसीसे उन्हें पदच्युत होना पड़ा। आजिमने अपने प्रियपात्र वालीवेगको हुगलीका फौजदार बनाया था। पदच्युत फौजदार जैन-उद्-दीनके अधीन किङ्करसेन पेशकार रहे। वह अति चतुर और कार्य-दक्ष थे। जैन-उद्-दीनकी उन पर प्रीति तो रही, किन्तु वह किङ्करसेन पर पूर्ण विश्वास न रखते थे। कारण किङ्करसेनकी बुद्धि और क्षमताको उस समय कोई राजपुरुष पाता न था। जैन-उद्-दीन्ने निश्चय किया कि वालीवेगके पहुंचते ही वह उन्हें फौजदारीका कागजपत्र समझा दिल्ली चले जायेंगे। किन्तु आनेमें बिलम्ब देख जैन-उद्-दीनने उन्हें अपना उद्देश बता शीघ्र चलनेको अनुरोध किया था। वालीवेग भी किङ्करसेनको जानते और उनपर विश्वास भी रखते थे। उन्होंने जैन-उद्-दीनको कहला भेजा कि किङ्करसेनको कागज़पत्र बता वह दिल्ली जा सकते थे। जैन-उद्-दीनने अपने मनमें सोचा—'किङ्करसेन किसी समय हमारे ही अधीनस्थ कर्मचारी रहे। उनको कागजपत्र समझा देनेकी बात कह वालीवेगने हमारा अपमान किया है।' उक्त विवेचनासे उन्हों'ने कागज़ पत्र छोड़े न थे। वालीवेगने उसी सूत्रपर जैन-उद्-दीनसे युद्ध छेड़ दिया। फरासडांगीके निकट युद्ध हुवा। फरासीसियों और ओलन्दाजों'ने जैन-उद्-दीनका पक्ष लिया था। वालीवेगने दिलपत् नामक किसी व्यक्तिके अधीन नवाबका सैन्य भेजा था। किन्तु जैन-उद्-दीनने सन्धिका प्रस्ताव कर दिलपत्के पास आदमी पहुंचाया। उसके पहुंचते ही अचानक वा पूर्वके किसी षड़यन्त्रानुसार फरासीसी तोपका एक गोला दिलपत्सिंहके जाकर लगा था। सेनाध्यक्ष हत होनेसे नवाबकी फौजमें गड़बड़ पड़ गयी। जैन-उद्-दीन उसी सुयोगमें किङ्करसेनको ही साथ ले दिल्ली चले गये। वहां पहुंचते ही वह मर गये। किङ्करसेन स्वदेशको लौटे और निर्भीकचित्त मुरशिदाबाद जाकर नवाबसे मिले। नवाब उन्हें जैन-उद्-दीनका आदमी समझ क्रुद्ध हो गये, किन्तु उस क्रोधको छिपा मुखसे मीठी मीठी बातें कहने लगे। फिर उन्हों'ने किङ्करसेनको ही हुगलीके कार-'संग्राहकपद पर बैठाया था। एक वर्ष पीछे नवाबने उनसे हिसाब तलब किया। किङ्करसेन हिसाब समझाने मुरशिदाबाद गये थे। कागजपत्रों'को झूठ बता नवाबने उन्हें कैद किया था। कैदखानेमें उन्हें भैंसका दूध नमक डालकर खानेको दिया जाता था। १७०८ ई० के पीछे किसी समय किङ्करसेनने परलोक गमन किया। उनका घर सम्भवतः फरासडांगीमें रहा। फरासडांगीका एक स्थान आज भी 'किङ्करसेनका गड़' कहाता है।

किङ्करी (सं० स्त्री०) किङ्कर-ङीष्। दासी, टहलुई।

किङ्कर्तव्य (सं० त्रि०) क्या करना उचित, कौन फर्ज वाजिब।

किङ्कर्तव्यता (सं० स्त्री०) किङ्कर्तव्यस्य भावः किङ्कर्तव्य-तल्। क्या करना पड़ेगा जैसी चिन्ता।

किङ्कर्तव्यविमूढ़ (सं० त्रि०) किङ्कर्तव्ये कर्तव्यतानिश्चये विमूढ़ः, ७-तत्। कर्तव्य निश्चय करनेको असमर्थ, जो अपना फर्ज ठहरा न सकता हो।

किङ्किण (सं० पु०) सात्वतवंशीय कोई राजा।

"भजमानस्य निम्लोचिः किङ्किणो धृष्टिरेव च।" (भागवत)

किङ्किणी (सं० स्त्री०) किमपि किञ्चिद्वा कणति किम्-कण-इन्-ङीप् पृषोदरादित्वात् साधुः। १ कटिदेशका आभरणविशेष, कमरका एक गहना, करधनी। उसका संस्कृत पर्याय—क्षुद्रघण्टिका, कङ्कणी, किङ्किणिका, किङ्किणि, क्षुद्रघण्टी प्रतिसरा, किङ्किणीका, कङ्कणिका, क्षुद्रिका और घर्घरी है। २ अम्लरसयुक्त द्राक्षाविशेष, एक खट्टा अंगूर। ३ वृक्षविशेष, एक पेड़। ४ देवीस्तुतिविशेष। ५ विकङ्कत वृक्ष, बैंची। ६ युद्धास्त्र-विशेष, लड़ाईका एक हथियार। (रामायण, १। २७ सर्ग)

किङ्किणीका (सं० स्त्री०) किङ्किणी स्वार्थे कन्-टाप्। क्षुद्रघण्टिका, करधनी।

किङ्किणीकाश्रम (सं० पु०-क्ली०) एक तीर्थ। उक्त तीर्थमें रहनेसे परजन्म अप्सरोलोक मिलता है।

(भारत, अनु० २५ अ०)

किङ्किणीका (सं० त्रि०) किङ्किणीति कृत्वा कायति शब्दायते, किङ्किणी-का-कः, किङ्किणीकः क्षुद्रघण्टिका स अस्यास्ति, किङ्किणीक-इनि। क्षुद्रघण्टिकायुक्त, करधनीवाला।

किङ्किणीतैल (वृहत्)—वैद्यकोक्त किसी किस्मका तैल। उक्त तैलके व्यवहारसे कानमें सन सन शब्दका होना, कान बहना, वधिरता, शिरोरोग, चक्षुरोग, कण्ठरोध और मन्यास्तम्भादि मिट जाता है। प्रस्तुत करनेका नियम यह है—क्वाथके लिये आदित्यभक्ता की २ सेर और जल १६ सेर एकत्र पका ४ सेर रहनेसे उतार लेना चाहिये। झंटि, कालधुस्तूर और निर्गुण्डी प्रत्येक २ सेर परिमाण और समनियममें फिर तीन प्रकारका क्वाथ बनाते हैं। कल्कार्थ ४ सेर सर्षपतैल, यष्टिमधु, पिप्पली, मुस्ता, गन्धक, कुष्ठ, दुरालभा, कर्कटशृङ्गी, आदित्यभक्तावीज, धुस्तूरवीज, रास्ना, मधुरिका, झटिकामूल, ईशलाङ्गलका मूल, विषमाधुक, मञ्जिष्ठा और सहोंजनकी छाल प्रत्येक ४ तोला डाल कर पकाना चाहिये।

किङ्किनि (सं० पु०) किङ्किणी देखो।

किङ्किनी (सं० स्त्री०) १ विकङ्कतवृक्ष, बैंची। २ आम्लद्राक्षा, खट्टा अंगूर।

किङ्किर (सं० क्ली०) किं कुत्सितं मदवारि किरति विक्षिपति, किम्-कृ-क। १ हस्तिकुम्भ, हाथीका मत्था। (पु०) २ वृहत् कृष्णमक्षिका, भौंरा। ३ कोकिल, कोयल। ४ घोटक, घोड़ा। ५ कामदेव। ६ रक्तवर्ण, लालरंग। (त्रि०) ७ रक्तवर्णविशिष्ट, सुर्ख लाल।

किङ्किरा (सं० स्त्री०) किं कुत्सितं यथा तथा किरति शरीरात् निःसरति, किम्-कृ-क-टाप्। १ रक्त, खून, लह्र। २ विकङ्कतवृक्ष, बैंचीका पेड़।

किङ्किराट (सं० पु०) १ ववूरक वृक्ष, बबूलका पेड़। किङ्किराट शीत, भेदक, ग्राहक और कफ, कुष्ठ, क्रमि एवं विषनाशक होता है। (वैद्यकनिघण्टु)

किङ्किरात (सं० पु०) किङ्किरं रक्तवर्णत्वं अतति पुष्पकाले विस्तारयति, किङ्किर-अत-अण्। १ अशोक वृक्ष। २ कन्दर्प। ३ शुकपक्षी, तोता। ४ कोकिल, कोयल। ५ सकण्टकपीतपुष्पाख्य झण्टोक्षुप, एक लाल झाड़ी कटसरैया। ६ पुष्पविशेष, एक फूल। उसका संस्कृत पर्याय—हेमगौर, पीतक, पीतभद्रक, विप्रलोभी, पीताम्लान और षट्पदानन्द है। राजनिघण्टुके मतमें किङ्किरात कषाय एवं तिक्तरस, उष्णवीर्य, अग्निदीपक और कफ, वायु, कण्डु, शोथ, रक्त तथा त्वक्दोषनाशक है। फिर भावप्रकाशमें उसे पिपासा, दाह, शोष, वमि और क्रमिनाशक भी कहा है।

किङ्किराल (सं० पु०) किङ्किराय रक्तत्वाय अलति पर्याप्नोति, किङ्किर-अल्-अच्। ववूरवृक्ष, बबूलका पेड़।

किङ्किरी (सं० पु०) किङ्किरं रक्तवर्णफलं अस्त्यस्मिन्, किङ्किर-इनि। विकङ्कतवृक्ष, बैंची।

किङ्किल (सं० अव्य०) किं च किल च, द्वन्द्वः। १ क्रोधसे। २ अश्रद्धासे।

किङ्किशास (सं० पु०) अशोकवृक्ष।

किङ्क्षण (सं० त्रि०) किं कियत्परिमाणं क्षणमत्र, बहुव्री०। कितने समयजात, कितने क्षणमें सम्पन्न, कितनी देरमें बना हुवा।

किङ्गोत्र (सं० त्रि०) किं किन्नामधेयं गोत्रमस्य, बहुव्री०। कौन गोत्रीय, किस वंशजात, किस गोत्र या वंशवाला।

किचकिच (हिं० स्त्री०) १ निरर्थक वादविवाद, झूठा झगड़ा। २ वाक्युद्ध, तकरार।

किचकिचाना (हिं० क्रि०) १ क्रोधके कारण दन्तघर्षण करना, दांत पीसना। २ पूर्ण बलप्रयोग करना, पूरी ताकत लगाना। ३ क्रुद्ध होना, गुस्सा आना।

किचकिचाहट (हिं० स्त्री०) क्रोध, गुस्सा, दांत पिसाई।

किचकिची (हिं० स्त्री०) क्रोध, गुस्सा, किचकिचाहट।

किचपिच (हिं० वि०) १ क्रमरहित, बेसिलसिला। २ अस्पष्ट, जो साफ न हो।

किचड़ाना (हिं० क्रि०) आंखमें कीचड़ आना, आंख उठना।

किचरपिचर, किचरकिचर, किचपिच देखो।

किञ्च (सं० अव्य०) किम् च च च इत्योर्द्वन्द्वः। १ आरम्भसे, शुरूमें। २ समुच्चय पर, जोड़में। ३ साकल्यमें। ४ सम्भवतः, गालिबन्। ५ भेदपूर्वक, बंटवारेसे।

किञ्चन (सं० पु०) किम-चन्-अच्। १ हस्तिकर्ण

पलाश, बड़ा ढाक। (अव्य०) २ कोई अनिर्दिष्ट वस्तु या चीज। ३ अल्प, थोड़ा। ४ असाकल्य।

किञ्चनक (सं० पु०) नागराजविशेष, नागोंके एक राजा।

किञ्चिच्चोरितपत्रिका (सं० स्त्री०) शाकवृक्षविशेष, पलांकी।

किञ्चित् (सं० अव्य०) किम् च चित् च इयोर्द्वन्द्वः। १ अल्प, कम, थोड़ा। इसका संस्कृत पर्याय—ईषत्, मनाक् और अमाकल्य है।

"आवर्जिता किञ्चिदिव स्तनाभ्याम्।" (कुमारसम्भव)

२ कोई अनिर्दिष्ट वस्तु। (त्रि०) ३ चतुर्थांश, चौथाई।

किञ्चित्कर (सं० त्रि०) किञ्चिदपि करोति, किञ्चित्-कृ-ट। अल्पकार्यकारक, थोड़ा काम करनेवाला।

किञ्चित्पाणि (सं० पु०) वर्षमितमान, दो तोलेकी तौल।

किञ्चिदुष्ण (सं० त्रि०) किञ्चित् ईषत् उष्णम्, कर्मधा०। ईषत् उष्ण, थोड़ा गर्म। उसका संस्कृत पर्याय—कोष्ण और कवोष्ण है।

किञ्चिदून (सं० त्रि०) किञ्चित् अल्पपरिमाणं ऊनं न्यूनं यस्य, बहुव्री०। अल्प न्यून, कुछ कम।

किञ्चिन्मात्र (सं० त्रि०) किञ्चित् अल्पा मात्रा यस्य, बहुव्री०। अल्पपरिमित, थोड़ासा।

किञ्चिलिक (सं० पु०) किञ्चित् चुलुम्पति, किम्-चुलुप् (सौत्रधातुः)-ड़ः संज्ञायां कन् पृषोदरादित्वात् साधुः। गण्डूपद, केंचुवा।

किञ्चिलुक (सं० पु०) किञ्चित् चुलुम्पति, किम्-चुलुम्प-डु-संज्ञायां कन्। गण्डूपद, केंचुवा। उसका संस्कृत पर्याय—महीलता, गण्डूपद, गण्डूपदी, भूलता और कुसु है।

किञ्चुलुक, किञ्चुलिक देखो।

किञ्छन्दस् (वै० त्रि०) किस वेदका अवलम्बन करनेवाला।

किञ्ज (सं० क्ली०) किञ्चित् जलं यत्र, पृषोदरादित्वात् ल लोपः। १ किञ्जल्क, कमलका रेशा। २ मृणाल, कमलकी डण्डी। ३ नागकेशरपुष्प।

किञ्जप्य (सं० क्ली०) किञ्चित् जप्यं यत्र, बहुव्री०। तीर्थविशेष। उक्त तीर्थमें स्नान करनेसे अपरिमित जपका फल मिलता है। (भारत, वन, ८३ अ०)

किञ्जल (सं० पु०) किञ्चित् जलं यत्र, बहुव्री०। १ पद्मकेशर, कमलका रेशा। २ किञ्जल्कमात्र।

किञ्जल्क (सं० पु०-क्ली०) किञ्चित् जलति अपवारयति, किम्-जल बाहुलकात् कः। १ नागकेशरपुष्प। २ नागकेशरवृक्ष। ३ पद्मकेशर, कमलका रेशा। वह बीज कोषको चारो ओर वेष्टित रहता है। उसका संस्कृत पर्याय—मकरन्द, केशर, पद्मकेशर, किञ्ज, पीतपराग, तुङ्ग और चाम्पेयक हैं। राजनिघण्टुके मतमें वह मधुर एवं कटुरस, रुच, शीतल, रुचिकारक और पित्त, तृष्णा, दाह तथा मुखव्रणनाशक है। फिर भावप्रकाशमें किञ्जलकको कफ, रक्तार्श, विष और शोथरोगनाशक कहा है।

किञ्जल्की (सं० त्रि०) किञ्जल्कोऽस्यास्ति, किञ्जल्क-इनि। केशरयुक्त, रेशेदार।

"किञ्जल्किनीं ददौ चाब्धिर्मालामम्लानपङ्कजाम्।" (देवीमाहात्म्य २।५१)

किञ्जवालुक (सं० क्ली०) कंकुष्ठ, एक पहाड़ी मट्टी।

किटकिट (हिं० पु०) वादविवाद, झगड़ा, झंझट।

किटकिटाना (हिं० क्रि०) १ दन्तघर्षण करना, दांत पीसना, किचकिचाना। २ दांतोंके नीचे कङ्कड़ पड़ना।

किटकिना (हिं० पु०) १ कोई दस्तावेज। उसके द्वारा ठीकेदार अपना ठेका अपनी ओरसे दूसरे असामियोंके नाम कर देता है। २ यन्त्रविशेष, एक ठप्पा। किटकिने पर सोनार सोना चांदीके पत्रों या तारोंको पीट कर बेलबूटे बनाते हैं।

किटकिनादार (हिं० पु०) ठेकेदारसे ठेके पर कोई चीज लेनेवाला आदमी।

किटकिरा, किटकिना देखो।

किटि (सं० पु०) केटति अवन् प्रतिवेगेन गच्छति, मलादीन् उद्दिश्य गच्छति वा, किट् गतौ इन् इगुपधात् किञ्च। १ वनशूकर, जङ्गली सूवर। २ वाराहीकन्द।

किटिदंष्ट्रा (सं० स्त्री०) शूकरदंष्ट्रा, सूवरकी डाढ़।

किटिभ (सं० पु०) किटिरिव भाति, किटि-भा-क । १ केशकीट, जूं । २ कुष्ठरोगभेद, किसी किस्मका कोढ़ । (क्लो०) ३ तुत्थक, तूतिया ।

किटिभकुष्ठ (सं० पु०) कुष्ठरोगभेद, किसी किस्मका कोढ़। इसमें चर्म शुष्क व्रणकी भांति कृष्णवर्ण और कठोर पड़ जाता है ।

किटिम (सं० क्लो०) १ क्षुद्रकुष्ठभेद, किसी किस्मका हलका कोढ़ । अत्यन्त कण्डुविशिष्ट एवं स्रावयुक्त स्निग्ध कृष्णवर्ण गोलाकार घनसन्निविष्ट पिड़का विशेषको किटिभकुष्ठ कहते हैं। कुष्ठ देखो। काञ्जिकके साथ कृष्णसिन्धुककी शिखा पीस कर लगानेसे उक्त रोग अच्छा हो जाता है।

किटिमूलक (सं० पु०) वाराहीकन्द, शूकरकन्द ।

किटिलाभ, किटिमूलक देखो।

किटी , किटि देखो ।

किट्ट (सं० क्लो०) केटति लोहादि धात्ववयवात् निर्गच्छति किट्ट-क्त आगमशास्त्रस्य अनित्यत्वात् नेट् । १ लौह आदि धातुका मैल, लोहे आदिका मोरचा । शतवर्षका उत्तम, अशीति वर्षका मध्यम और षष्टि वर्षका अधम होता है । उससे हीन किट्ट विषतुल्य है । उसमें लौहका ही गुण रहता है । (भावप्रकाश) किट्टका शोधन इस प्रकार है—किट्टको विभीतक काष्ठके अग्निसे जला जब अग्निवर्ण हो जावे, तब गोमूत्रमें बुझा लेना चाहिये । इसी प्रकार उसे ७ वार शोधन करते हैं। फिर किट्टको चूर्ण कर त्रिफलाके द्विगुण क्वाथमें पकाते हैं। उसे मधुके साथ सेवन करने पर पाण्डुरोग आरोग्य होता है। किट्ट मधुर, कटु, उष्ण, और क्रमि, वात, शूल, मेह, गुल्म, एवं शोफघ्न है। (राजनिघण्टु) २ पुरीष, मैला । ३ कर्णमल, खूंट । ४ शुक्र, वीर्य । ५ तैलमल, काट, कीट ।

किट्टक, किट्ट देखो।

किट्टवर्जित (सं० क्लो०) किट्टेन मलेन वर्जितम्, ३-तत् । १ शुक्रधातु । शुक्र देखो । (त्रि०) २ मलशून्य, निर्मल, साफ, जो मैला न हो।

किट्टाल (सं० पु०) किट्टेन मलेन अलति पर्याप्नोति, किट्ट-अल्-अच् । १ लौहगूथ, लोहेका मोरचा । २ ताम्रकलश, तांबेका घड़ा । (क्लो०) ३ ताम्र, तांबा । ४ मंडूर ।

किट्टिम (सं० क्लो०) द्रवद्रव्यविशेष, एक रकीक चीज ।

किड़कना (हिं० क्रि०) चल देना, खिसकना ।

किड़किड़ाना (हिं० क्रि०) किटकिटाना, दांत पीसना ।

किण (सं० पु०) कण गतौ अच् पृषोदरादित्वात् अत इत्वम् । १ मांसग्रन्थि, गोश्तकी गांठ । २ घुण, घुन ।

"यत्नोद्धर्षं यत्नोद्धर्षैरपि सदा पृष्ठे न जातः किणः ।"

(मृच्छकटिक नाटक)

३ हृणु, जख । ४ करोर, करोल । ५ कोशाङ्ग । ६ मथितोपरिस्थ फेनाभ वस्तु, मथी हुई चीज पर झाग जैसी चीज़ । ७ योनिकन्दरोग, एक बीमारी । ८ घर्षणजचिह्न, रगड़का निशान् । ९ शुष्क व्रणचिन्ह, सूखे जखमका निशान ।

किणवान् (सं० पु०) किणोऽस्यास्ति, किण-मतुप् मस्य वः । किणविशिष्ट, सख्त, कड़ा ।

किणालात (सं० पु०) इन्द्रका नामान्तर ।

किणि (सं० स्त्री०) किणाय तन्निवृत्तये प्रभवति, किण बाहुलकात् इन् । अपामार्ग, लटजीरा । अपामार्ग देखो ।

किणिहि, किणिही देखो ।

कणिही (सं० स्त्री०) किणः अस्त्यस्य, किण-इनिः किणिनो व्रणान् हन्ति, किणिन्-हन्-ड-ङीष् । १ अपामार्ग, लटजीरा । २ कृष्णकटभीवृक्ष, एक पेड़ । ३ श्वेतगोकर्णी ।

किण्व (सं० पु०-क्लो०) कण-क्वन् बहुलवचनात् इत्वम् । अशूप्रुषिलटिकणीत्यादि । उण् १ । १५१ । १ सुराबीज, शराबका नशा बढ़ानेवाली एक चीज । २ पाप, गुनाह ।

किण्वक, किण्व देखो ।

किण्वमूलक (सं० पु०) वकुलवृक्ष, मौलसिरीका पेड़ ।

किण्वी (सं० पु०) १ अश्व, घोड़ा । (त्रि०) २ पापयुक्त, गुनाहगार ।

कित (सं० पु०) मुनिविशेष ।

कित (हिं० क्रि० वि०) १ कुत्र, कहां । २ किस ओर, किधर ।

कितक (हिं० क्रि० वि०) कियत्, कितना ।

कितना (हिं० वि०) कियत्, किस क़दर। २ अधिक, कैसा। यह शब्द क्रियाविशेषणकी भांति भी व्यवहृत होता है।

कितव (सं० पु०) कितं वायति कितेन वाति वा, कित-वा-क। १ पाशाक्रीड़क, किमारबाज, जुवारी। २ धुस्तूरवृक्ष, धतूरेका पेड़। ३ मत्त, मतवाला आदमी। ४ वञ्चक, धोकेबाज। ५ धूर्त, ठग। ६ खल, नामाकूल। ७ गोरोचना नामक गन्धद्रव्य। ८ ग्रन्थिपर्ण, गण्ठि-वन खुशबूदार चीज।

कितवराज (सं० पु०) धुस्तूरवृक्ष, धतूराका पेड़।

किता (अ० पु०) १ काट छांट, कतर ब्योंत। २ ढङ्ग, चाल। ३ संख्या, अदद। ४ विस्तारभाग, सतहका हिस्सा। ५ प्राङ्गण भूभाग, जमीन्का टुकड़ा।

किताब (अ० स्त्री०) १ पुस्तक, ग्रन्थ। २ बहीखाता, रजिष्टर।

किताबी (अ० वि०) पुस्तकाकार, किताब जैसा। सदा पुस्तक पाठ करनेवालेको 'किताबी कीड़ा' कहते हैं।

कितिक, कितना देखो।

कितेक, कितना देखो।

किती, कितना देखो।

कित्ता, कितना देखो।

कित्ति (हिं० स्त्री०) कीर्त्ति, नामवरी।

कित्तूर—बेलगाम जिलेका पुराना शहर। यह अक्षा० १५° २६″ उ० देशा० ७४° ४८′ पू० पर सामगांवसे दक्षिण १४ मील चलकर अवस्थित है। लोकसंख्या ७५००के लग भग है। यहां स्कूल, पोष्ट आफिस और सोमवार तथा वृहस्पतिवारको बाजार लगता है।

किदारा, केदारा देखो।

किधर (हिं० क्रि० वि०) कुत्र, कहां, किस ओर।

किधौं (हिं अव्य०) अथवा, या तो।

किन (हिं० सर्व०) १ 'किस' का बहुवचन। (क्रि० वि०) २ क्यों नहीं। ३ अवश्य, बेशक। (पु०) ४ घर्षणचिह्न, रगड़का दाग।

किनका (हिं० पु०) कणिक, अनाजका टुकड़ा।

किनहा (हिं० वि०) कृमियुक्त, किरहा।

किनवर—एक जाति। युक्तप्रदेशमें इस जातिके लोगोंकी संख्या अधिक पाई जाती है। ये अपनेको क्षत्रिय बतलाते हैं, परंतु और लोग इन्हें क्षत्रिय नहीं मानते।

किनाट (सं० क्ली०) वृक्षका अभ्यंतरस्थ वल्कल, पेड़-की भीतरी छाल।

किनाती (हिं० स्त्री०) पक्षीविशेष, एक चिड़िया। उक्त पक्षी सरोवरके निकट रहता है। उसका चक्षु हरिद्वर्ण और शिर तथा कण्ठ श्वेतवर्ण होता है। अण्डा देनेका समय मई और सितम्बर मासका मध्य भाग है।

किनार, किनारा देखो।

किनारदार (हिं० वि०) किनारेवाला, जिसमें कोर रहे।

किनारपेच (हिं० पु०) एक डोर। वह दरीके तानेको दोनों तरफ लगता है। किनारपेच दरीके ताने-बानेसे कुछ ज्यादा मोटा रहता और तानेको बचानेकेलिये लगता है।

किनारा (फा० पु०) तीर, कूल, प्रान्तभाग।

किनारी (हिं० स्त्री०) १ गोट, हाशिया। २ सुनहला या रुपहला गोटा।

किनी (सं० स्त्री०) ह्रस्व ब्रहती, छोटी कटैया।

किन्तनु (सं० पु०) किं कुत्सिता तनुरस्य, बहुव्री०। ऊर्णनाभ, मकड़ा।

किन्तमाम् (सं० अव्य०) इदमेषामतिशयेन किं कुत्सितं इत्यर्थः, किम्-तमप्-आमुः। दो कुत्सित द्रव्योंके मध्य अतिशय कुत्सित, बदतर।

किन्तु (सं० अव्य०) किञ्च तु च द्वयोर्द्वन्द्वः। परन्तु, लेकिन, पूर्ववाक्यका सङ्कोचबोधक। २ पूर्ववाक्यका विकल्पबोधक, वरन्, बल्कि। ३ फिर क्या।

किन्तुघ्न (सं० पु०) ज्योतिषशास्त्रोक्त ववादि एकादश करणोंके अन्तर्गत एक करण। किन्तुघ्न करणमें जन्म लेनेसे मनुष्यको मित्र एवं अमित्र और धर्म तथा अधर्ममें कोई भेदज्ञान नहीं रहता। फिर वह स्तव और विचारकार्य प्रिय होता है। (कोष्ठीप्रदीप)

किन्दत (सं० पु०) महाभारतोक्त तीर्थविशेष। किन्दत-तीर्थमें तिलप्रस्थ प्रदान करनेसे मनुष्य समस्त ऋण-

से छूट परम गति पाता है। (भारत, वन० ८३ अ०)

किन्दम (सं० पु०) ऋषिविशेष। किन्दम ऋषि मृग-रूप धारणकर मृगरूपधारिणी स्त्रीके साथ किसी काल विहार करते थे। उसी समय महाराज पाण्डुने उन्हें मार डाला। उसीसे किन्दमने पाण्डुको अभि-शाप दिया था—'तुम भी सङ्गमकालमें मरोगे।' (भारत, आदि० ११८ अ०)।

किन्दर्भ (सं० पु०) कोई ऋषि।

किन्दान (सं० क्ली०) किञ्चिदपि दानं आवश्यकं यत्र, बहुव्री०। सरस्वतीतीर्थस्थ तीर्थविशेष। किन्दान तीर्थमें स्नान करनेसे अपरिमित दानका फल मिलता है। (भारत, वन, ८३ अ०)।

किन्दास (सं० पु०) कः कुत्सितो दासः, कर्मधा०। निन्दित दास, खराब नौकर।

किन्दो (सं० पु०) घोटक, घोड़ा।

किन्दुविल्व (सं० पु० क्ली०) राढ़देशीय एक ग्राम। किन्दुविल्व अजयनदीके तीर अवस्थित है। उसे केन्दुविल्व, केन्दुविल्ल और केन्दुविल भी कहते हैं। प्रसिद्ध वैष्णव कवि जयदेव गोस्वामीने उक्त ग्राममें जन्मग्रहण किया था। वहां प्रति वर्ष माघ मासको 'जयदेवका मेला' लगता है। आजकल इसे केन्दुली कहते हैं। जयदेव देखो।

किन्देवत (सं० त्रि०) का देवताऽस्य, किम्-देवता-अच्। १ किस देवताका उपासक, किस देवताकी पूजा करनेवाला। २ किस देवतासम्बन्धीय।

किन्देवत्व (सं० क्ली०) किन्देवतस्य भावः, किन्दे-वत-ष्यञ्। किन्देवतका धर्म।

किन्धी (सं० पु०) किं कुत्सिता धीः बुद्धिरस्यस्य, किम्-धी इनि। अश्व, घोड़ा।

किन्नर (सं० पु०) किं कुत्सितो नरः, कर्मधा०। १ देवयोनिविशेष, एक प्रकारके देव। किन्नरका मुख अश्वकी भांति रहता, किन्तु अन्यान्य समस्त अवयव मनुष्यतुल्य देख पड़ता है। उसका संस्कृत पर्याय—किम्पुरुष, तुरङ्गवदन, मयु, अश्वमुख, गीतमोदी और हरिणनर्तक है। किन्नर अतिशय सङ्गीतपटु होता है। तुम्बुरु प्रभृति स्वर्गगायक भी उक्त जातिके हो हैं। २ वर्षविशेष। ३ कोई बौद्ध-उपासक।

किन्नर (हिं० पु०) १ वादविवाद, झगड़ा। २ नखरा। ३ बहाना।

किन्नरकण्ठरस—वैद्यकोक्त औषधविशेष, एक दवा। पारद, गन्धक, अभ्र, स्वर्णमाक्षिक एवं लौह प्रत्येक २ तोला, वैक्रान्त ४ माषा, स्वर्ण २ माषा तथा रौप्य १ तोला सबको वासक, ब्राह्मणयष्टिका, बृहती, कण्ट-कारी, आर्द्रक और ब्राह्मीके रससें मिला पृथक् पृथक् भावना देना चाहिये। फिर २ रत्ती की बराबर वटिका बना छायामें सुखा लेनेसे उक्त औषध प्रस्तुत होता है। किन्नरकण्ठरस थोड़े दिन नियमित व्यवहार करनेसे किन्नरकी भांति कण्ठस्वर बनता और स्वरभङ्ग, कास, श्वास, एवं कफज तथा वातश्लेष्मज रोग मिटता है।

किन्नरवर्ष (सं० पु०) वर्षविशेष, एक मुल्क। किन्नर-वर्ष हिमालय पर्वतके उत्तरभागमें अवस्थित है।

किन्नरी (सं० स्त्री०) किन्नर-ङीष्। किन्नर जातीय स्त्री।

"शोभयन्ति च तद्वेश्म ममन्ताण्णा वरस्त्रियः।
यथा कैलासशृङ्गाणि गतशः किन्नरीगणाः॥"
(रामायण, ५।१२।१८)

किन्नरीवीणा (सं० स्त्री०) किसी प्रकारका वीणायन्त्र। पूर्वकालको उक्त यन्त्र नारियलके खोपडेसे बनता था। आज कल उसे पक्षिविशेषके अण्ड वा रजतादि धातु द्वारा भी प्रस्तुत करते हैं। वह कच्छपीवीणाकी अपेक्षा आकारमें क्षुद्र होती है। किन्नरी-जातीय वीणा हो पहले यहूदियोंमें 'किन्नर' और यूनानियोंमें 'शम्बुका' नामसे विख्यात थी। वह दो प्रकारकी होती है—लघ्वी और बृहती। बृहतीमें तीन तुम्बी लगती हैं।

किन्नरेश (सं० पु०) किन्नराणां ईशो राजा। किन्नर-राज कुवेर। काशीखण्डमें लिखा है—कुवेरने महा-तपस्याके बल महादेवके निकट गुह्यक, यक्ष, किन्नर प्रभृतिके आधिपत्य और धनेश्वरत्वका वर पाया था। (काशीखण्ड, १२ अ०)

किन्नरेश्वर (सं० पु०) किन्नराणां ईश्वरः, ६-तत्। कुवेर। किन्नरेश देखो।

किन्नामधेय (सं० त्रि०) किं नामधेयमस्य, बहुव्री०। किन्नामविशिष्ट, किस नामवाला।

किन्नामा (सं० त्रि०) किं नाम अस्य, बहुव्री०। किन्नामधेय देखो।

किन्निमित्त (सं० त्रि०) किं निमित्तं कारणं अस्य, बहुव्री०। किस कारण, किस लिये।

किमु (सं० अव्य०) किं च नु च इयोर्द्वन्द्वः। १ प्रश्न क्यों, क्या। २ वितर्क, शायद। ३ सादृश्य, जैसे। ४ स्थान. जहां, कहां। ५ कारण, क्योंकर, कैसे।

किम्य (सं० पु०) मलज कृमिविशेष, मैलेका एक कोड़ा। कृमि देखो।

किफ़ायत (अ० स्त्री०) १ अलम होनेका भाव, काफी होनेकी हालत। २ मितव्ययिता, कमखर्ची।

किफ़ायती (अ० वि०) मितव्ययी, कमखर्च, संभल कर चलनेवाला।

क़िबलई (हिं० स्त्री०) पश्चिमदिक्, मगरिबकी सिम्त।

क़िबला (अ० पु०) १ पश्चिमदिक्, मगरिबकी सिम्त। मुसलमान् उसी ओर मुख रख नमाज पढ़ते हैं। २ मक्का।

क़िबला आलम (अ० पु०) १ ईश्वर, सबका मालिक। २ सम्राट्, बादशाह।

क़िबलागाह (अ० पु०) पिता, वालिद, बाप।

क़िबलागाही, किबलागाह देखो।

क़िबलानुमा (फा० पु०) यन्त्रविशेष, एक औजार। किबलानुमा पश्चिमदिक्को बहता है। अरब नाविक उक्त यन्त्रको व्यवहार करते थे। उसमें एक सूई ऐसी लगती जो पश्चिम ओरको ही अपना मुख रखती है।

किम् (सं० अव्य०) कु बाहुलकात् डिमु। १ कुत्सा, निन्दा, छी छी। २ वितर्क, कौनसा। ३ निषेध, नहीं। ४ प्रश्न, क्यों, क्या।

किम् (सं० त्रि०) १ त्याग। २ वितर्क। ३ निन्दा। ४ प्रश्न।

किमपि (सं० अव्य०) किं च अपि च इयोर्द्वन्द्वः। १ कोई भी। २ अनिर्वचनीय, कह कर बताया न जानेवाला।

"सनव्यशोशीरं प्रशिथिलमृणालैकवलयं प्रियायाः
सावाधं किमपि रमणीयं वपुरिदम्"। (शकुन्तला, ३ अ०)

किमरिक (हिं० पु०) वस्त्रविशेष, किसी किस्मका कपड़ा। किमरिक चिक्कण, श्वेत तथा सूक्ष्म रहता और सनसे बनता है। किन्तु आज कल लोग उसे रुई से भी बना लेते हैं। उक्त शब्द अंगरेजीके केम्ब्रिक (Cambrick) का अपभ्रंश है।

किमर्थं (सं० अव्य०) किं अर्थं प्रयोजनं अत्र, बहुव्री०। किस कारण, किस लिये, क्यों।

किमाकार (सं० त्रि०) किं कीदृशः आकारोऽस्य, बहुव्री०। किस प्रकार आकारविशिष्ट, कैसी सूरत शक्लवाला।

किमाख्य (सं० त्रि०) का आख्या अस्य, बहुव्री०। क्या नामविशिष्ट, किस नामवाला।

किमाछु (हिं० पु०) केवांच।

किमाम (हिं० पु०) किवाम, खमीर, एक शर्बत। किमाम शहदकी तरह गाढ़ा बनाया जाता है।

क़िमारख़ाना (फा० पु०) द्यूतक्रीड़ागृह, जुवा खेलनेकी जगह।

क़िमारबाज (फा० वि०) द्यूतक्रीड़क, जुवारी, जुवा खेलनेवाला।

क़िमारबाज़ी (फा० स्त्री०) द्यूतक्रीड़ा, जुवेका खेल।

क़िमाश (अ० पु०) १ रीति, ढंग। २ गंजीफेका ताजा रंग।

किमि (हिं० क्रि० वि०) किस रीतिसे, क्योंकर, कैसे।
"किमि पठय हु तुम सबकरनायक" (तुलसीदास)

किमिच्छक (सं० पु०) किमिच्छतीति प्रश्नेन दानार्थं कायति शब्दायतेऽत्र पृषोदरादित्वात् साधुः। १ व्रतविशेष। उक्त व्रत करनेके समय प्रार्थियोंसे पूछना पड़ता है वह क्या चाहते हैं। फिर वह जो मांगते, वही व्रतकारी उन्हें देते हैं। मार्कण्डेयपुराणमें लिखा है—महाराज करन्धमके पुत्र अवीक्षित् किसी स्वयम्बरमें उपस्थित हो राजकन्याको बलपूर्वक ग्रहण करने पर उद्यत हुवे। उस समय सभाके समस्त राजाओंने उनके विरुद्ध अस्त्र धारण किया। महावीर अवीक्षित्ने अपने बाहुबलसे अकेले ही उन समस्त राजावोंको हरा दिया था। परंतु राजावोंने निरस्त्र न हो युद्धमें अन्याय ग्रहण कर अवीक्षित् को पराजित कर दिया। अवीक्षित्ने उस प्रकार अपमानित हो कभी विवाह न करने का

प्रतिज्ञा की। और अपने पिताके बहुत समझाने पर भी उस प्रतिज्ञाको तोड़ा न था। किन्तु उपोषित माता के आदेशानुसार किमिच्छक व्रतके समय अवीक्षितने उच्चैःस्वरसे घोषणा की थी—"हमारा धन पर अधिकार नहीं है, अतएव यदि हमारे शरीर द्वारा कोई प्रयोजन सिद्ध करना चाहता हो तो हम उसकी इच्छा पूर्ण कर देंगे।" उस समय पिता करन्धमने उनके निकट उपस्थित हो कहा "वत्स! हमें पौत्रके मुखका दर्शन करा दो।" अवीक्षित्ने अपने पिताको उक्त प्रार्थना परिवर्तन करनेकी बहुतसी चेष्टा की, परन्तु क्षतकार्य न हो सके। सुतरां विवाह करनेके लिये वाध्य हो इन्होंने उसी राजकन्याका पाणिग्रहण किया था।" (त्रि०) २ क्या चाहनेवाला।

"एते भोगैरलङ्कारैरन्यैश्च किमिच्छिकैः।
सदा पूज्या नमस्कारैः रक्ष्याश्च पितृवन्नृप ॥" (भारत, अनु० १३ अ०)

किमीदी (वै० पु०) किमिदानीमिति चरति, किम्-इदानीम्-इनि पृषोदरादित्वात् साधुः। १ अब क्या करेंगे सोचते विचरण करनेवाला खल व्यक्ति, अब क्या करेंगे खयाल कर घूमनेवाला वदमाश। २ प्रेत श्रेणीविशेष।

"द्वेषे धत्तमनवायं किमीदिने।" (ऋक्, ७।१०४।२)
'किमीदिने किमिदानीमिति चरते पिशुनाय।' (सायण)

किमु (सं० अव्य०) किम् च उ च, द्वन्द्वः। १ कदाचित्, शायद, सम्भावना। २ क्यों, किसलिये, वितर्क। ३ विमर्ष। ४ क्या, क्यों, प्रश्न। ५ नहीं, निषेध। ६ छी छी, निन्दा।

किमुत (सं० अव्य०) किम् च उत् च, द्वन्द्वः। १ क्यों, क्या, प्रश्न। २ यद्यपि, क्योंकि, वितर्क। ३ अथवा, या, विकल्प। ४ अतिशय, बहुत, ज्यादा।

किमेदि—मन्द्राजप्रदेशके गंजाम जिलेकी पश्चिम भागस्थ एक जमीन्दारी। उक्त जमीन्दारी तीन भागमें विभक्त है—परलाकिमेदि, बोडाकिमेदि वा विजयनगरम् और चिन्नकिमेदि वा प्रतापगिरि। किमेदि एक छोटा-सा पार्वतीय राज्य है। उसकी चारो ओर पर्वत विस्तृत तथा उर्वर उपत्यका और नदी, नाला एवं वापी हैं। प्रचुर शस्य उत्पन्न होते भी उक्त स्थान स्वास्थ्यकर नहीं।

किमेदि जमिन्दारी पहले जगन्नाथवाले राजाओंके अधीन थी। उन्हींके वंशीय राजपुत्रोंमें उत्तराधिकार न पाने पर किसीने किमेदि और किसीने इच्छापुर राज्यका विजयनगर अधिकार किया। आज भी किमेदिराज्य उक्त वंशोद्भव नारायणदासके उत्तर-पुरुषोंके अधीन है। प्रजा यहांके राजाको देवतुल्य भक्ति करती है।

किम्पच (सं० त्रि०) किं कुत्सितं केवलं स्वोदरपूरणायैव पचति, किम्-पच्-अच्। कृपण, कंजूस, अपने ही लिये पकाने और दूसरेको न खिलानेवाला।

किम्पचान (सं० त्रि०) किं कुत्सितं कस्मैचिदपि न दत्वा केवलं आत्मोदरपूरणायैव पचति, किम्-पच्-आनक्। किम्पच देखो।

किम्पराक्रम (सं० त्रि०) किं कीदृशः पराक्रमोऽस्य, बहुव्री०। १ किस प्रकारका विक्रमशाली, कैसा ताकतवर। किं कुत्सितः पराक्रमोऽस्य। २ निन्दित पराक्रमशाली, खराब ताकत रखनेवाला। ३ हीनवल, कमजोर।

किम्परिमाण (सं० त्रि०) किं परिमाणमस्य, बहुव्री०। कितना परिमाणविशिष्ट, कितनी मिकदारवाला।

किम्पर्यन्त (सं० क्रि० वि०) कितनी दूर पर्यन्त, कहां तक।

किम्पाक (सं० त्रि०) किं कथमपि पाकः शिक्षाप्रकारो यस्य, बहुव्री०। १ मातृशासित, माके हुक्म पर चलनेवाला। (पु०) किं कुत्सितः पाकः परिमाणो यस्य, बहुव्री०। २ महाकाललता, लाल इन्द्रायण।

महाकाल देखो

"न लुब्धा बुध्यते दोषान् किम्पाकमिव भक्षयन्।"
(रामायण, २।६६।६)

३ विषतिन्दुकवृक्ष, कुचिलेका पेड़। ४ रोग, बीमारी। ५ ज्वर, बुखार। ६ मलादिनिर्गम। (क्ली०) ७ महाकाल फल।

किम्पुना (सं० स्त्री०) नदीविशेष, एक दरया।
(भारत, २।३०१)

किम्पुरुष (सं० पु०) किं कुत्सितः पुरुषः कर्मधा० १ किन्नर। किन्नर देखो। २ लोकविशेष, कोई लोग। किम्पुरुष और किम्पुरुषी पर्वतके निकट वनमें घर

वनाकार रहती और फल, मूल तथा पत्र खाकर जीविका निर्वाह करती हैं। (रामायण, उत्तर, ८८ सर्ग)

३ जम्बुद्वीपाधिपति अग्नीध्रके एक पुत्र। (विष्णुपुराण, २।१।१९) ४ जम्बुद्वीपके नवखण्ड मध्य हिमालय और हेमकूटके बीचका एक क्षेत्र वा देश।

"स श्वेतपर्वतं वीर समतिक्रम्य वीर्यवान्।
देशं किम्पुरुषावासं द्रुमपुत्रेण रक्षितम्॥"
(भारत, सभा, २८।१)

५ कुत्सितपुरुष, खराब आदमी।

किम्पुरुषाधिप (सं० पु०) किम्पुरुषान् अधिपाति रक्षति, किम्पुरुष-अधि-पा-क। कुवेर, किम्पुरुषों या किन्नरोंके राजा।

"धनदस्य धनाध्यक्षो यक्षः किम्पुरुषाधिपः।" (हरिवंश)

किम्पुरुषेश्वर (सं० पु०) किम्पुरुषस्य किम्पुरुषाणां वा ईश्वरः, ६-तत्। १ किम्पुरुषवर्षके राजा। २ कुवेर।

किम्पुरुष (सं० स्त्री०) किम्पुरुषनामक वर्षविशेष, एक मुल्क।

किम्प्रकार (सं० अव्य०) किं कीदृशः प्रकारोऽस्मिन् कर्मणि। १ किस प्रकार, कैसे। २ किस उपायसे, किस तदवीरसे।

किम्प्रभाव (सं० त्रि०) किं कीदृशः प्रभावोऽस्य, बहुव्री०। किस प्रकार प्रभावविशिष्ट, कैसे असरवाला।

किम्बल (सं० त्रि०) किं कीदृशः बलः अस्य, बहुव्री०। किस प्रकार सैन्यविशिष्ट, कैसी फौज या ताकत रखनेवाला।

किम्भरा (सं० स्त्री०) किञ्चित् विभर्ति, किम्-भृ-अच्-टाप्। नली नामक गन्धद्रव्य, एक खुशबूदार चीज।

किम्भूत (सं० त्रि०) किं कीदृशं भूतम्, कर्मधा०। किस प्रकारका, कैसा।

किम्मय (सं० त्रि०) किं स्वरूपम्, किम्-मयट्। किमात्मक, किस तरहका।

किम्वान् (सं० त्रि०) किमपि अस्यास्ति, किम्-मतुप् मस्य वः। १ किञ्चित् विशिष्ट, कुछ रखनेवाला। २ किम्विशिष्ट, क्या रखनेवाला।

किम्वदन्ति (सं० स्त्री०) किम् वद-णिच्। जनश्रुति, प्रवाद, अफवाह।

किम्वदन्ती (सं० स्त्री०) किम्-वद्-णिच्-ङीप्। जनश्रुति, अफवाह। सत्य हो या असत्य बहुतसे लोग जो बात विश्वासपूर्वक बताते रहते, उसीको किम्वदन्ती कहते हैं।

"अस्ति किम्वदन्ती प्रबोधकं कुले कालरात्रि कल्पविद्या नाम राक्षसी समुत्पत्स्यते।" (प्रबोधचन्द्रोदय)

किम्वा (सं० अव्य०) किं च वा च, द्वन्द्वः। अथवा, या तो, विकल्प। किम्वाका संस्कृत पर्याय—उताहो, यदि वा, यद्वा और नेति है।

किम्वद् (सं० त्रि०) किं वेत्ति, किम्-विद्-क्विप्। किस विषयमें अभिज्ञ, क्या जाननेवाला।

किम्वीर्य (सं० त्रि०) किं कीदृशं वीर्यमस्य, बहुव्री०। किस प्रकारका बलशाली, कैसा ताकतवर।

किम्व्यापार (सं० त्रि०) किं कीदृशो व्यापारोऽस्य, बहुव्री०। १ किस प्रकारका व्यापारविशिष्ट, कैसे काममें लगा हुवा। (पु०) कीदृशो व्यापारः, कर्मधा०। २ किस प्रकारका कार्य, कैसा काम।

कियत् (सं० त्रि०) किं परिमाणमस्य, किम्-वतुप् वस्य घः किमः कि आदेशश्च। किमिदंभ्यां वो घः। पा ५।२।४०। क्या परिमाणविशिष्ट, किस मिकदारवाला, कितना।

"गतव्यमस्ति कियदित्यसकृद्ब्रुवाणा।" (साहित्यदर्पण)

कियती (सं० स्त्री०) कियत्-ङीप्। कितनी।

"निविशते यदि शूकशिखापदे सृजति सा कियतीमिव न व्यथाम्।"
(नैषध, ४ र्थ सर्ग)

कियत्काल (सं० पु०) कियान् किम्परिमितः कालः, कर्मधा०। १ क्या परिमित काल, कितना वक्त। २ किञ्चित् काल, थोड़ा समय।

कियद्देतिका (सं० स्त्री०) उद्योग, कोशिश।

कियद्दूर (सं० त्रि०) किं परिमितं दूरं व्यवधानम्, कर्मधा०। कितनी दूर।

कियन्मात्र (सं० त्रि०) किं परिमिता मात्रा अस्य, बहुव्री०। क्या मात्राविशिष्ट, किस मिकदारवाला।

कियन्मूल्य (सं० त्रि०) किं परिमितं मूल्यमस्य, बहुव्री०। क्या मूल्यविशिष्ट, किस कीमतवाला।

कियारी (हिं० स्त्री०) १ क्षेत्र वा उद्यानमें अल्प अल्प

अन्तर पर दो सूक्ष्म मोड़ोंके मध्यकी भूमि। कियारीमें बीज बोते या पौदे लगाते हैं। २ क्षेत्रविभागविशेष, खेतका एक हिस्सा। ३ क्षेत्रका वह भाग जो जल सिञ्चनके निमित्त बरहों या नालियोंके मध्य फावड़ेसे मेंड़ लगाकर बनाते हैं। ४ वृहत् कटाहविशेष, कोई बड़ा कड़ाह। उसमें समुद्रका क्षारजल लवण नीचे बैठानेको भरा जाता है। ५ चारपाई, खाट। उक्त अर्थमें कियारी शब्द स्वर्णकार व्यवहार करते हैं। ६ चौका, भोजनका विभिन्न स्थान।

कियाह (सं॰ पु॰) कियान् रक्तवर्णो हयः, पृषोदरादित्वात् साधुः। १ रक्तवर्णाश्व, सुर्ख या लाल घोड़ा। २ शृगाल, गीदड़।

कियूल—१ जनपदविशेष, एक बसती। लक्खीसराय रेलवेके ठीक दक्षिण या केवल नदीतीर कियूल एक क्षुद्र ग्राम है। किसी समय वह समृद्ध बौद्धनगर था। किन्हींके मतमें कियूल ही युअन-चुयाङ्गके उल्लिखित 'लो-इन्-नि-लो'का अंश है। उक्त ग्रामके पश्चिमदिशामें 'मंसारपुखुर' नामक एक बावड़ी है और उस बावड़ीकी उत्तरदिशामें फिर एक बावड़ी है। इस द्वितीय पुष्करिणीके तीर पर किसी बौद्ध-मन्दिरका भित्तिभाग और कुछ बौद्ध युवावोंकी प्रतिकृति पड़ी हैं। ग्रामके मध्य एक स्थान पर पद्मपाणि बोधिसत्वकी पाषाणमूर्ति है। फिर स्थानीय जमींदारोंके उद्यानमें भी उन्हींकी एक क्षुद्रकाय प्रतिमा विद्यमान है। कियूलसे ईषत् दक्षिण 'कोवय' नामक ग्राम है। उक्त ग्रामकी वसति आधुनिक होते भी स्थान बहुत प्राचीन है। वहां प्राचीन कीर्तिका भग्नावशेष यथेष्ट देख पड़ता है। ग्रामके मध्य बालकक्रीड़ा षष्ठी वा भवानीकी मूर्ति और मन्दिर है। कोवयमें पञ्चध्यानी बुद्धकी एक मूर्ति मिली है। कियूल ग्रामके अपर पार कियूल नदीके पूर्वतीर ३० फीटका एक भग्न इष्टकस्तूप है। उसे 'विर्दावन स्तूप' कहते हैं। गंवार लोग स्तूपको सामान्यतः 'गढ़' कहते हैं। उक्त स्तूपके पश्चिम १५० से १६० फीट पर्यन्त विस्तृत किसी मठका भग्नावशेष देख पड़ता है। प्रत्नतत्त्ववित् कनिंगहाम साहबको उक्त स्तूपके शीर्षदेशपर ६ फीट गभीर गह्वरके मध्य प्रस्तरका एक भग्नप्राय खोल और बुद्धमूर्ति मिली। बुद्धमूर्तिका मस्तक टूट गया था। कनिंगहामने खोलने पर उक्त खोलके भीतर एक सुवर्णका डिब्बा और उसके भीतर एक चांदीका डिब्बा पाया। उक्त डिब्बेके मध्य एक हरिद्वर्ण स्फटिकमाला, एकखण्ड अस्थि और एक मनुष्यदन्त था। स्तूपके गात्रमें द्रव्य रखनेके कई आले बने हैं। उक्त पार्वोंसे प्रायः २००, ३०० छाप लगी लाखके पत्र मिले हैं। उक्त छापें चार प्रकारकी हैं। बड़ी छापें २ इञ्च लंबी हैं। उनमेंसे कईमें बुद्धमूर्ति, स्तूपकी आकृति और नानाविध विषय मुद्रित था। किन्तुः प्रायः ३ भाग छापें ग्रीष्मकालमें गलकर असट हो गयी हैं। कई छापोंसे स्थिर हुवा है कि उक्त स्तूप ईसवीय ९ म।१०म शताब्दके मध्यकाल बना था। वहां किसी मट्टीके कलशमें पित्तलनिर्मित ४ बुद्धिमूर्ति रहीं। उनका कुछ भी नहीं बिगड़ा है। २ ईष्ट इण्डियन रेलवेका एक जंकशन ष्टेशन।

किर (सं॰ पु॰) किरति विक्षिपति मलोपचितस्थलं इति शेषः, क-क। १ शूकर, सूअर। २ प्रान्तभाग, सहन। (त्रि॰) ३ क्षेपणकारी, फेंकनेवाला

किरंटा (हिं॰ पु॰) निम्नश्रेणीका ईसाई, करानी, छोटा क्रिस्टान। किरंटा अंगरेजीके क्रिश्चियन (Christian) शब्दका अपभ्रंश है।

किरक (सं॰ पु॰) किरति लिखति, कृ-खुल्। १ लेखक, कातिब, लिखनेवाला। किर क्षुद्रार्थे कन्। २ शूकरशावक, सूअरका बच्चा या छौना।

किरका (हिं॰ पु॰) क्षुद्र खण्ड, कंकड़, किरकिरी, छोटा टुकड़ा।

किरकिटी (हिं॰ स्त्री॰) धूलि वा तृणका कण, गर्द या तिनकेका छोटा टुकड़ा। किरकिटी चक्षुमें पड़नेसे पीड़ा उत्पन्न करती है।

किरकिन (हिं॰ पु॰) चर्मविशेष, किसी किस्मका चमड़ा। किरकिन घोड़े या गधेके दानादार चमड़ेको कहते हैं।

किरकिरा (हिं॰ वि॰) १ कंकरीला, जिसमें छोटे छोटे कांकड़ रहें। २ बुरा, खराब।

किरकिराना (हिं० क्रि०) १ पीड़ा करना, दुखाना। २ अच्छा न लगना, बुरा मालूम पड़ना। ३ किट-किटाना, दांत पीसना।

किरकिराहट (हिं० स्त्री०) १ चक्षुपीड़ाविशेष, आंख का दर्द। किरकिराहट आंखमें गर्द या तिनकेका छोटा टुकड़ा पड़ जानेसे होती है। २ दांतके नीचे कंकड़ पड़नेकी आवाज। ३ कंकरीलापन।

किरकिरी (हिं० स्त्री०) किरकिटी, गर्द या तिनके-का छोटा टुकड़ा। २ अपमान, बेइज्जती, हेटी।

किरकिल (हिं० पु०) १ कृकलास, गिरदान्. गिरगिट। (स्त्री०) २ शरीरस्थ वायुविशेष, एक हवा। किर-किल छींक लाती है।

किरकिला (हिं० पु०) पक्षिविशेष. एक चिड़िया। किरकिला आकाशसे टूट मत्स्यको आक्रमण करता है।

किरकी (हिं० स्त्री०) अलङ्कार-विशेष, एक गहना।

किरकी (खाड़की) पूने जिलेकी हवेली तहसीलका एक कसबा। यह अक्षा० १८° ३४´ उ० और देशा० ७३° ५१´ पू० पर अवस्थित है। बंबईसे ११६ मील दक्षिणपूर्व और पूनेसे ४ मील उत्तर-पश्चिम यह पड़ता है। लोकसंख्या ग्यारह हजारके करीब है। गुडास्त्र तयार करनेका यहां बहुत बड़ा कारखाना है।

किरच (हिं० स्त्री०) १ अस्त्रविशेष, एक हथियार। किरच सीधी तलवार जैसी रहती है। उसे अग्रभागकी ओर सीधे भोंक देते हैं। २ खण्डविशेष, नोकदार टुकड़ा।

किरचिया (हिं० पु०) पक्षिविशेष, एक चिड़िया। किरचिया बगलेसे छोटा होता है। उसके पंजेकी झिल्ली सुनहली रहती है।

किरची (हिं० स्त्री०) १ किसी किस्मका मुलायम रेशम। किरची बंगालमें उपजती है। २ रेशमकी लच्छी।

किरटा (सं० स्त्री०) कुसुम्भबीज, कुसुमका बीज।

किरण (सं० पु०) कीर्यन्ते विक्षिप्यन्ते रश्मयोऽस्मात्, कॄ-क्यु। कॄ पृश्रिनन्दिनिधाञ: क्यु:। उण् २।८१। १ सूर्य, सूरज। कीर्यते परित: क्षिप्यते असौ। २ सूर्यरश्मि, सूरजकी किरण। ३ चन्द्ररश्मि, चांदकी किरण। ४ रत्नरश्मि, जवाहिरकी किरण। किरणका संस्कृत पर्याय—अस्र, मयूख, अंशु, गभस्ति, घृणि, घृष्णि, भानु, कर, मरीचि, दीधितिस्त्रिट, द्युति, आभा, विभा, प्रभा, रुक्, रुचि, भा:, छवि, दीप्ति, रश्मि, अभीषु, मह:, ज्योति:, सह:, रोचि:, शोचि:, त्विषा, पृश्नि, प्रकाश, आतप, द्योत, पाद, आलोक, वसु, ऋष्टि, भास, घर्म, लोक, अर्चि, वीचि, ईति, धाम, वर्च, शुष्म, तेज: और ओज: है।

" भवति विरलभक्तिम्लानपुष्पोपहार:
स्वकिरणपरिवेषोद्भेदशून्या: प्रदीपा:।" (रघु० ५। ७४)

किरणतन्त्र—माधवाचार्यने अपने सर्वदर्शनसंग्रहमें इस नामके एक शैवतन्त्रका उल्लेख किया है।

किरणमय (सं० त्रि०) किरण-मयट्। १ किरणस्वरूप। २ किरणविशिष्ट।

किरणमाली (सं० पु०) किरणानां माला अस्त्यस्य, किरणमाला-इनि। सूर्य, आफताब।

किरणावली (सं० पु०) किरणानां आवली श्रेणी। किरण-श्रेणी, किरनोंकी कतार। २किरणावली नामके संस्कृत भाषामें बहुतसे ग्रन्थ हैं। उनमें उदयनाचार्य-विर-चित वैशेषिकसूत्रके प्रशस्तपादकी व्याख्या मुख्य है। फिर इसके ऊपर भी बहुतसी टीका हैं। जैसे—पद्मनाभ-कृत किरणावलीभास्कर, वर्धमानकृत द्रव्यकिरणा-वलीप्रकाश, चंद्रशेखरभारतीकृत द्रव्यकिरणावली-शब्दविवरण, महादेवकृत गुणकिरणावलीरससार, रामभद्रकृत गुणरहस्य, वरदराज और कृष्णकृत टीका आदि। किरणावलीकी उन टीकाओं पर भी और बहुतसे विवरण उपलब्ध होते हैं। उनमेंसे कुछके नाम ये हैं—भेघभगीरथकृत किरणावलीप्रकाशप्रका-शिका, रुद्रन्यायवाचस्पतिकृत रघुनाथीय द्रव्यकिरणावली-परीक्षा, माधवदेवकृत गुणरहस्यप्रकाश, रघुनाथकृत गुण-प्रकाशविवृति, मथुरानाथकृत गुणप्रकाशदीधिति और गुणप्रकाशदीधितिमंजरी नाम्नी विवृतिटीका। इनके सिवा रुद्रभट्टाचार्यकृत गुणप्रकाशविवृति-भावप्रकाशिका, रामकृष्णभट्टाचार्यविरचित गुणप्रकाशविवृतिप्रकाशिका और जयरामभट्टाचार्यविरचित दीधितिप्रकाशिका भी प्रचलित है।

३ दादाभाई विरचित सूर्यसिद्धांतटीका। ४ शम्भर-कृत एक अलंकार निरूपक ग्रंथ।

किरन (हिं० स्त्री०) १ किरण, रोशनीकी लकीर। २ चमकदार झालर। किरन कलाबत्तून या बादलेकी बनती और बच्चों या औरतोंके कपड़ोंमें लगती है।

किरपा (हिं०) कृपा देखो।

किरपान (हिं०) कृपाण देखो।

किरम (हिं० पु०) १ कृमि, कीड़ा। २ कीटविशेष, किरिमदाना।

किरमई (हिं० स्त्री०) लाक्षासेद, किसी किस्मको लाह या लाख।

किरमाल (सं० पु०) आरग्वधवृक्ष, अमिलतासका पेड़।

किरमाला (हिं०) किरमाल देखो।

किरमिच (हिं० पु०) वस्त्रविशेष, एक कपड़ा। किरमिच बारीक टाट जैसे रहता और परदे, जूता, थैले वगैरह बनानेमें लगता है। उक्त शब्द अंगरेजीके कानवास (Canvas) शब्दका अपभ्रंश है।

किरमिज (हिं० पु०) १ किसी किस्मका रंग, हिरमजी, पीसा हुवा किरिमदाना। २ घोटकविशेष, किरमिजी घोड़ा।

किरमिजी (हिं० वि०) किरमिजीका रंग रखनेवाला, मटमैला करौंदिया।

किरयात (हिं० पु०) किरात, चिरायता।

किरराना (हिं० क्रि०) १ दन्तघर्षण करना, दांत पीसना। २ क्रुद्ध होना, गुस्सा आना। ३ किरकिर करना।

किरवंत, किलवंत—दक्षिण प्रांतकी एक ब्राह्मण जाति। यह चितपावन ब्राह्मणोंकी एक शाखा है।

किरवार (हिं० पु०) करवाल, तलवार।

किरवारा (हिं० पु०) आरग्वध, अमिलतास।

किरांची (हिं० स्त्री०) शकटविशेष, कोई गाड़ी। किरांचीमें दो या चार पहिये लगते हैं। वह माल असबाब ढोनेमें व्यवहृत होती है। किरांचीमें प्रायः अनाज और भूसा लादते हैं। रेलगाड़ीके पूरे डब्बेको भी किरांची कहते हैं। वह अंगरेजीके केरोच (Caroche) शब्दका अपभ्रंश है।

किराटिका (सं० स्त्री०) किरे पर्यन्त भूमौ अटति, किर-अट-ण्वुल्-टाप् अत इत्वम्। शारिका, सारस।

किराड—एक ब्राह्मण जाति। यह पूना जिलेमें पायी जाती है। ब्रटिश राज्यके समय ग्वालियरकी तरफसे इस जातिके लोग यहां आये थे। इनमें शाखाभेद नहीं है सुतरां परस्परमें विवाह होता है। ये घरमें हिन्दी और बाहर मराठी बोलते हैं।

किरात (सं० पु०) किरं अवस्कारादेर्निक्षेपभूमिं अत निरन्तरं भ्रमति, किर-अत-अच्। १ जाति-विशेष, कोई कौम। २ व्याध, बहेलिया। ३ भूनिम्ब, चिरायता। किरात—वातिक, तिक्त, कफपित्तज्वरघ्न, व्रणरोपण, पथ्य, और कुष्ठकण्डूशोपघ्न होता है। (राजनिघण्टु) ४ घोटकरक्षक, सईस। ५ मत्स्य, ब्रह्माण्ड, वामन प्रभृति पुराणोंके मतसे भारतकी पूर्वसीमा किरात है। महाभारतमें लिखा कि प्राग्ज्योतिषाधिप भगदत्तने चीन और किरातका सैन्य ला अर्जुनके साथ युद्ध किया था।

> "स किरातैश्च चीनैश्च वृतः प्राग्ज्योतिषोऽभवत्।
> अन्यैश्च बहुभिर्योधैः सागरानूपवासिभिः॥"
>
> (भारत० सभा० २६।९)

उक्त श्लोकसे समझ पड़ता है कि प्राग्ज्योतिषके निकट ही किरात और चीन था। प्राग्ज्योतिषका वर्तमान नाम आसाम है। अतएव किरात जनपदका पूर्वदिक ही होना सम्भव है। सभापर्वके अपर स्थल पर कहा है—

> "ये परार्धे हिमवतः सूर्योदयगिरौ नृपाः।
> कारूषे च समुद्रान्ते लौहित्यमभितश्च ये॥ ८॥
> फलमूलाशना ये च किराताश्चर्मवाससः।
> क्रूरशस्त्राः क्रूरकृतस्तांश्च पश्याम्यहं प्रभो॥ ९॥
> चन्दनागुरुकाष्ठानां भारान् कालीयकस्य च।
> चर्मरत्नसुवर्णानां गन्धानाञ्चैव राशयः॥ १०॥
> कैरातकीनामयुतं दासीनाञ्च विशाम्पते।
> आहृत्य रमणीयार्थान् दूरजान् मृगपक्षिणः॥ ११॥
> निचितं पर्वतेभ्यश्च हिरण्यं भूरिवर्चसम्।
> बलिञ्च कृत्स्नमादाय द्वारि तिष्ठन्ति वारिताः॥ १२॥
>
> (सभा० ५२ अ०)

उक्त श्लोक द्वारा भी ज्ञात होता है कि हिमालयके पूर्व लौहित्यनदीके आगे किरात रहते थे। पाश्चात्य भौगोलिक टलेमिने Cirrhadae नामसे उक्त जातिका उल्लेख किया है। उनके मतसे किरात भारतके पूर्व प्रान्तवासी हैं। पुरातत्त्ववित् टलेमि-वर्णित उक्त

जातिका निवास वर्तमान आराकान बताते हैं।

ब्रह्मदेश और कम्बोज (काम्बोडिया) से खृष्टीय ५म ६ष्ठ शताब्दकी शिलालिपि आविष्कृत हुयी है। उसमें ब्रह्म और कम्बोजके आदिम अधिवासियोंका किरात नाम लिखा है।

उक्त सकल प्रमाणद्वारा समझ पड़ता है किसी समय हिमालयके पूर्वांशमें वर्तमान भूटान और आसामके पूर्वांश मणिपुर, ब्रह्मदेश तथा चीनसमुद्र कूलवर्ती कम्बोज तक किरात जातिका वास था। फिर उक्त समस्त स्थान समय समय पर किरातजनपद कहे जाते थे। आज भी नेपालके पूर्वांशसे आसाम अञ्चलके पर्वत पर्यन्त किरात रहते हैं। नेपालमें उनको 'किरांति' कहते हैं। किन्तु वहां किरात अपनेको मोम्बो या किरावा बताते हैं। अद्यापि किरात जातिके नामानुसार नेपालका एक जिला 'किरान्ति' नामसे अभिहित है।

वर्तमान किरान्ति जाति तीन भागमें विभक्त है—वल्लो किरान्त, माझ किरान्त और पल्ल किरान्त। वल्लो किरान्तोंमें लिम्बु, यख (यच?) और रयस् (रचस्?) नामसे श्रेणीभेद है। लिम्बू किरान्ति पत्नी क्रय करते हैं। जिसके क्रय करनेको अर्थ नहीं रहता, वह श्वशुरके घर कुछ दिन नौकरी करता है। फिर पारिश्रमिक अर्थके परिवर्तनमें उसे पत्नी मिलती है। किरात पहाड़ पर शवदेहको ले जाकर जलाते हैं। पीछे उस शवके भस्मको समाधि दिया जाता है। समाधि पर ३।४ हाथ पत्थरकी एक छड़ बना कर रखनेकी प्रथा है।

नेपालका पार्वतीय वंशावली नामक इतिहास पढ़नेसे समझ पड़ता है कि आहिरवंशके पीछे किरातवंशीय २९ राजाओंने नेपालमें राजत्व किया था। उसके पीछे भी बहुत दिन किरातोंकी क्षमता रही। अवशेषमें नेपालराज पृथ्वीनारायणने उन्हें एक बारगी ही नीचे गिरा दिया।

सिकिम और नेपालके किरातोंमें कुछ लोग बौद्ध और कुछ हिन्दूधर्मावलम्बी हैं।

वराहमिहिरकी वृहत्संहितामें भारतके दक्षिण-पश्चिम 'किरात' नामक किसी जनपदका उल्लेख है। शक्तिसङ्गमतन्त्रके मतमें—

"तमकुण्डं समारभ्य रामचेत्रान्तकं शिवे।
किरातदेशो देवेशि विन्ध्यशैलेऽवतिष्ठते॥"

तमकुण्डसे लेकर रामचेत्रान्त पर्यन्त किरात देश है। वह विन्ध्यशैलमें अवस्थित है। (त्रि०) ७ अल्पशरीर, छोटे जिस्मवाला।

किरात (हिं० स्त्री०) परिमाणविशेष, एक तौल। किरात ४ यवके बराबर रहती और रत्नादि तौलनेमें लगती है। वह अरबीके 'कैरात' शब्दका अपभ्रंश है। २ औंसका २४वां हिस्सा। ३ मुद्राविशेष, एक सिक्का। वह बहुत छोटी और मूल्यमें पाईसे भी न्यून होती थी।

किरातक (सं० पु०) किरात एव स्वार्थे कन्। १ चिरायता। २ युद्धप्रिय जातिविशेष, एक लड़ाका कौम।

किरातकान्त (सं० क्ली०) कोङ्कणप्रसिद्ध शवरचन्दन, किसी किस्मका सन्दल।

किराततिक्त (सं० पु०) किरातो भूनिम्बः स एव तिक्तः, कर्मधा०। भूनिम्ब, चिरायता। किराततिक्तका संस्कृत पर्याय—भूनिम्ब, अनार्यतिक्त, कैरात, काण्डतिक्तक, किरातक, चिरतिक्त, तिक्तक, सुतिक्तक, कटुतिक्त और रामसेनक है। भावप्रकाशके मतमें यह भेदक, रुच, शीतल, तिक्तरस, लघु, एवं सन्निपात ज्वर, श्वास, कफ, पित्त, रक्त, दाह, कास, शोथ, तृष्णा, कुष्ठ, ज्वर, व्रण और क्रमिरोगनाशक है।

किराततिक्तक (सं० पु०) किराततिक्त स्वार्थे कन्। भूनिम्ब, चिरायता।

किराततिक्तादि, किरातादि देखो।

किरातपति (सं० पु०) शिव, किरातोंके राजा महादेव।

किरातपुर—बिजनौर जिलेमें नजीबाबाद तहसीलका एक कसबा। यह अक्षा० २९° ३०´ उ० और देशा० ७८° १३´ पू० पर बिजनौरसे १० मील उत्तर अवस्थित है। जनसंख्या १५ हजारके करीब है। इसके दो विभाग हैं—किरातपुर खास और वनी।

किरातसिंह—१ धौलपुर रियासतके सबसे प्रथम राणा। २ चंदेला वंशके अंतिम राजा।

किरातादि (सं० पु०) वातपित्तज्वरका कषायविशेष, बुखारका एक काढ़ा। किराततिक्त, अमृता, द्राक्षा, आमलकी और शटीका क्वाथ बना गुड़के साथ पीने पर वातपित्तज्वर छूट जाता है। इसको चतुर्भद्रक भी कहते हैं। (भावप्रकाश) फिर किरातादि—किरातक, महानिम्ब, कुस्तुम्बुरु, शतावरी, पटोल, चन्दन, पद्म, शाल्मली और उदुम्बरीजटासे भी बनता है। (रस-चन्द्रिका) अन्य किरातादि—किरात, नागर, मुस्ता और गुडूचीके योगसे बनाया जाता है। वातज्वरमें किरात, मुस्ता, गुलंचीन, वाला, वृहती, कण्टकारी, गोक्षुर, शालपर्णी, पृश्निपर्णी और शुण्ठी प्रत्येक १६ रत्ती ३२ तोले जलमें पकाकर ८ तोले रहनेसे पीते हैं। कण्ठकुब्ज सन्निपातमें चिरायिता, कटुकी, पिप्पली, कुटज, कण्ट-कारी, शटी, विभीतक, देवदारु, हरीतकी, मरिच, मुस्ता, कट्फल, अतिविषा, आमलकी, पुष्करमूल, चित्रक, कर्कटशृङ्गी, और वासकका २ तोले क्वाथ बना आध तोला शुण्ठीचूर्ण डालकर पीनेसे लाभ पहुं-चता है।

किरातादिचूर्ण (सं० क्ली०) चूर्णविशेष, एक बुकनी। चिरायिता, विहृता, वाल्यालक, पिप्पली, विडङ्ग, कटुकी और शुण्ठी सबका सम भागसे चूर्ण बना मधुके साथ सेवन करने पर दुर्जलदोषज्वर शान्त हो जाता है। (भावप्रकाश)

किरातादितैल (सं० क्ली०) तैलविशेष, एक तेल। मूर्च्छित कटुतैल ४ शरावक, दहीकी मलाई ४ शरा-वक, काञ्जिक ४ शरावक तथा किराततिक्त क्वाथ ४ शरावक एक साथ पकाने और उसमें मूर्वामूल, लाक्षा, हरिद्रा, दारुहरिद्र, मञ्जिष्ठा, इन्द्रवारुणी, कुष्ठ, वालक, रास्ना, गजपिप्पली, त्रिकटु पाठा, इन्द्रयव, सैन्धव, सचललवण, विट्लवण, वाशालक, श्वेतार्क-मूलत्वक, श्यामालता, देवदारु और महाकालफलका मिलित १ शरावक कल्क मिला पकानेसे उक्त तैल प्रस्तुत होता है। किरातादितैल लगानेसे नाना ज्वर आरोग्य होते हैं।

वृहत् किरातादितैल इस प्रकार बनाया जाता है—कटुतैल ८ सेर, चिरायतेका क्वाथ १२॥ सेर, मूर्वामूलका क्वाथ ८ सेर, लाक्षाका क्वाथ ८ सेर, काञ्जिक ८ सेर और दहीकी मलाई ८ सेर ३४ सेर जलमें पका १६ सेर अवशिष्ट रखना चाहिये। फिर चिरायता, गजपिप्पली, रास्ना, कुष्ठ लाक्षा, इन्द्रवारुणी-मूल, मञ्जिष्ठा, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, मूर्वामूल, यष्टी-मधु, मुस्ता, पुनर्नवा, सैन्धव, जटामांसी, वृहती, विट् लवण, वालक, शतमूली, रक्तचन्दन, कटुकी, अश्वगन्धा, शतपुष्पा, रेणुक, देवदारु, वेणामूल, द्राक्षा कुष्ठ, धान्यक, पिप्पली, वचा, शटी, त्रिफला, यमानी, वनयमानी, कर्कटशृङ्गी, गोक्षुर, शालपर्णी, चक्रमर्द, दन्तीमूल, विड़ङ्ग, जीरक, कालजीरक, महानिम्बत्वक्, हबुषा, यवक्षार और शुण्ठी प्रत्येक ४ तोला परिमाणसे कल्कार्थ डाल तैल प्रस्तुत करते हैं। उक्त तैल लगानेसे सकल प्रकार विषमज्वर, प्लीहाज्वर, शोथयुक्त ज्वर एवं प्रमेहज्वर मिटता और वह्नि, बल एवं वीर्य बढ़ता है।

किरातार्जुनीय (सं० क्ली०) किरातश्च अर्जुनश्च तयो र्वृत्तमधिकृत्य कृतम्, किरात-अर्जुन छ। भारविकवि प्रणीत एक महाकाव्य। साधारणतः लोग इस काव्यको 'भारवि' कहा करते हैं। दुर्योधनके साथ द्यूतक्रीड़ामें पराजित हो युधिष्ठिर प्रभृति पञ्चभ्राता वनमें रहते थे। उसी समय व्यासदेव उनके निकट जाकर उपस्थित हुये। पाण्डवको दुर्योधनके पक्षकी अपेक्षा अधिक बलशाली बनानेके लिये उन्होंने अर्जुनको परामर्श दिया—'तुम तपस्या द्वारा देवगणके निकट अस्त्र ग्रहण करो।' तदनुसार अर्जुन हिमालयपर्वतके निकट प्रथम इन्द्रकी तपस्या की थी। इन्द्रने उससे परितुष्ट हो अर्जुनको शिवकी तपस्या करनेके लिये उपदेश दिया। फिर वह महादेवकी ही तपस्या करने लगे। महादेव उनकी तपस्यासे सन्तुष्ट हुये थे। किन्तु वे अर्जुनकी वीरताको परीक्षाके लिये किरातके वेशमें एक प्रकाण्ड वराहके पीछे पीछे वहां जाकर उपस्थित हुवे। वराहने निकट पहुंचते ही अर्जुनको आक्रमण किया था। सुतरां उन्हें भी उसके प्रति वाण चलाना पड़ा। किरातवेशी महादेवने भी अर्जुनके वाणपातके साथ अपर वाण निक्षेप किया था। उभयके

वाणसे विद्ध हो वराह मर गया। किन्तु निश्चय न हुवा किसके वाणसे वराह मरा था। फिर दोनों 'हमने मारा है' कहते वादानुवाद करने लगे। क्रमसे उसी पर दोनोंमें युद्ध चलने लगा। उस युद्धमें महादेव अर्जुनका वीरत्व देख सन्तुष्ट हुवे। फिर उन्होंने अर्जुनको पाशुपत अस्त्र प्रदान किया। किरातार्जुनीयमें उक्त समस्त विषय विस्तृतभावसे वर्णित है। काव्यकी रचनाप्रणाली अति निगूढ़ भावविशिष्ट है। लोग कहा करते हैं—

"उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।
नैषधे पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः॥"

किरातार्जुनीय काव्य १८ सर्गमें समाप्त हुवा है। भारवि देखो।

किरातांशी (सं॰ पु॰) किरातान् निषादान् अश्नाति, किरात-अश-णिनि। गरुड़। महाभारतमें लिखा है—किसी समय गरुड़ माता विनताका दासीत्व छुड़ानेके लिये अमृत लाने जाते थे। उस समय उन्होंने क्षुधार्त हो मातासे खाद्य मांगा। माताने कह दिया—'समुद्र तीर एक निषाददेश है। वहां सहस्र सहस्र निषाद रहते हैं। तुम उन्हें भक्षण कर क्षुधा निवारणपूर्वक अमृत ले आवो। गरुड़ने भी माताकी आज्ञाके अनुसार किरातोंको खाया था।

किराति (हिं॰ स्त्री॰) किरेण समन्तात् जलक्षेपेण अतति गच्छति, किर-अत-इन्। गङ्गा।

किरातिनी (सं॰ स्त्री॰) किरातदेश उत्पत्तिस्थानत्वेन अस्त्यस्याः, किरात-इनि-ङीप्। १ जटामांसी। २ किरातजातिकी स्त्री।

किराती (सं॰ स्त्री॰) किरात किराति वा ङीष्। १ दुर्गा। जिस समय महादेव अर्जुनकी परीक्षाके लिये किरातवेश धारण कर उनके निकट जाते थे। दुर्गाने भी उसी समय किराती वेश बना उनका अनुगमन किया। २ किरातस्त्री। ३ स्वर्गगङ्गा। ४ कुट्टिनी, कुटनी। ५ चामरधारिणी, चंवर डुलानेवाली।

किरान (अ॰ क्रि॰ वि॰) निकट, नज़दीक, पास।

किराना (हिं॰ पु॰) लवंग, हरिद्रादि नित्यव्यवहार्थ द्रव्य, नमक हलदी वगैरह रोज काममें आनेवाली चीज। किराना पंसारियोंके पास बिकता है। (क्रि॰) २ पछोरना, साफ करना, सूपसे बनाना।

किरानी (हिं॰ पु॰) १ युरेशियन, करंटा, दोगला युरोपियन। किरानी अंगरेजीके क्रिश्चियन (Christian) शब्दका अपभ्रंश है। २ क्लार्क, मुंशी।

किराया (अ॰ पु॰) भाटक, भाड़ा। जो मूल्य अन्यकी वस्तुको कार्यमें लगानेके परिवर्त उस वस्तुके स्वामीको दिया जाता, वह किराया कहाता है।

किरायादार (फा॰ पु॰) भड़ैतिया, किसीकी चीज भाड़े पर लेनेवाला।

किरार (हिं॰ पु॰) जातिविशेष, एक कौम।

किरारि (सं॰ पु॰) ललितविस्तरोक्त कोई व्यक्ति। विरारि पाठ भी मिलता है।

किराव (हिं॰ पु॰) कलाय, मटर।

किरावल (हिं॰ पु॰) १ मुहरिल ठीक करनेके लिये अग्रगामी सैन्य, लड़ाईका मैदान दुरुस्त करनेके लिये आगे जानेवाली फौज। २ बन्दूकसे शिकार खेलनेवाला शख्स। किरावल तुर्कोंके 'करावल' शब्दका अपभ्रंश है।

किरासन (हिं॰ पु॰) केरोसीन, मट्टीका तेल। किरासन अंगरेजीके केरोसीन। (Kerosene) शब्दका अपभ्रंश है।

किरि (सं॰ पु॰) किरति समलभूमिमिति शेषः, कॄ-इ। कॄगृशॄकुटिभिदिच्छिदिभ्यः। उण् ४। १४२। १ शूकर, सूवर। २ वाराहीकन्द। किरति विक्षिपति जलम्। ३ मेघ, मेह, बादल।

किरिक (सं॰ पु॰) किरिर्मेघ इव कायति प्रकाशते, किरि-कै-क। रुद्रविशेष। किरिक अग्नि, वायु और सूर्य मूर्तिधर रुद्र हैं। वह वृष्टि द्वारा जगत् पालन करते हैं।

"नमो वः किरिकेभ्यो देवानां हृदयेभ्यः।" (शुक्लयजु, १६। ४६)
'किरिकेभ्यः इति इत्यादि द्वारा जगत् कुर्वन्ति किरिकाः तेभ्यः।"
(महीधरभाष्य)

किरिकिञ्चिका (सं॰ स्त्री॰) सङ्गीतविद्याविषयक यंत्रविशेष, गाने बजानेका एक औजार।

किरिच (हिं॰ स्त्री॰) कठोर वस्तुका क्षुद्र खण्ड, कड़ा

घोजका छोटा नोकदार टुकड़ा। जिस गोलेमें लोहेके छोटे छोटे टुकड़े, कीलें या छर्रे भरते, उसे रच किचिका गोला' कहते हैं। वह शत्रुके जहाजका पाल फाड़ने या रस्सियां और मस्तूल काट कर गिरानेके लिये मारा जाता है।

किरिटि (सं० क्लो०) किरिणा शूकरेण टन्यते विक्षप्यते, किरि-टन-डि। १ हिन्तालफल। (पु०) २ अर्जुनवृक्ष। ३ खर्जूरवृक्ष, खजूरका पेड़। ४ गंधपुष्पी, सखोली।

किरिटी, किरिटि देखो।

किरिन (हिं०) किरण देखो।

किरिम (हिं०) कृमि देखो।

किरिमदाना (हिं० पु०) कृमिविशेष, किरमिजी कोड़ा। किरिमदाना किसी किस्मका छोटा कोड़ा है। वह थूहरके पेड़ पर फैल जाता है। प्रायः ७० हजार किरिमदाने तौलमें आध सेरसे ज्यादा नहीं होते। मादा कोड़े उठा कर सुखाये और पीस कर रङ्गनेके काममें लाये जाते हैं। किरिमदानेकी बुकनी ही किरमिजी या हिरीमजी कहलाती है। उसका रङ्ग हलका और मटमैलापन लिये लाल रहता है।

किरिया (हिं० स्त्री०) १ शपथ, कसम, सौगन्ध। २ फर्ज, कर्तव्यकाम। ३ मृतकर्म, मुर्देके लिये किया जानेवाला काम काज।

किरीट (सं० पु०-क्लो०) किरति कीर्यते अनेन वा, कृ-कीटन्। कृतकंपिभ्यः कीटन्। उण् ४।१८४। १ मुकुट, ताज। २ शिरोवेष्टन, पगड़ी। ३ छन्दोविशेष। इसमें केवल भगण रहते हैं। ४ कुसुम्भवृक्ष, कुसुमका पेड़।

किरीटमाली (सं० पु०) किरीटस्य माली सम्बन्धी, किरीट मलसम्बन्धे णिनि, ६-तत्। अर्जुन।

किरीटधारी (सं० पु०) किरीटं धरति धारयति वा, किरीट-धृ-णिनि। १ अर्जुन। (त्रि०) २ मुकुटधारी, ताज लगाये हुवे।

किरीटी (सं० पु०) किरीटोऽस्यास्ति, किरीट-इनि। १ अर्जुन। उन्होंने जब स्वर्गलोकमें देवशत्रु दानवगणके साथ युद्ध किया, तब इन्द्रने उन्हें एक समुज्ज्वल किरीट दिया था। उसीसे वह किरीटी नामसे प्रसिद्ध हुवे। (भारत, ४।४४।१०) (त्रि०) २ मुकुटयुक्त, ताज पहने हुवा। "किरीटिनं गदिनं चक्रिणञ्च तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमन्तम्।" (गीता, ११।१७)

किरोड़, करोड़ देखो।

किरोलना (हिं० क्रि०) कर्तन करना, खुरचना।

किरौना (हिं० पु०) कृमि, कीड़ा।

किर्च, किरच देखो।

किर्मिज (हिं० पु०) १ हिरमिजी, किरिमदानेकी बुकनी, एक रंग। २ कृमिविशेष, किरमिजी कोड़ा।

किर्मीर (वै० त्रि०) विचित्रवर्ण, कर्बुर, कबरा।

"नमस्ते भाः किर्मिरवन्तमवे किलासम्।" (यजुस्, १०।२०)

'नमस्ते भाः किर्मिरं कर्बुरवर्णम्।' (महीधर)

किर्मी (सं० स्त्री०) कृ-कि-मुट् च निपातनात् ङीप्। १ पलाशवृक्ष, ढाकका पेड़। २ गृह, घर। ३ स्वर्णपुत्तलिका, सोनेकी पुतली। ४ लौहपुत्तलिका, लोहेकी पुतली।

किर्मीर (सं० पु०) कृ-ईरन् निपातनात् साधुः। १ नागरङ्गवृक्ष, नीबूका पेड़। २ कोई राक्षस। (भारत, ३।११।२१) ३ विचित्रवर्ण, चितकबरा रङ्ग। (त्रि०) ४ विचित्रवर्णयुक्त, चितकबरा।

किर्मीरजित् (सं० पु०) किर्मीरं जितवान्, किर्मीर-जि-क्विप्। भीमसेन। वन भ्रमणके समय किर्मीर राक्षसने युधिष्ठिरादिको आक्रमण किया था। भीमसेनने युद्ध कर उसे मार डाला। (भारत, ३।११)

किर्मीरत्वक् (सं० स्त्री०) किर्मीरा चित्रा त्वगस्याः, बहुव्री०। नागरङ्गवृक्ष, नीबूका पेड़।

किर्मीरनिसूदन, किर्मीरजित् देखो।

किर्मीरभित्, किर्मीरजित् देखो।

किर्मीरसूदन, किर्मीरजित् देखो।

किर्मीरहा, किर्मीरजित् देखो।

किर्मीरारि, किर्मीरजित् देखो।

किर्मीरित (सं० त्रि०) किर्मीरं सञ्जातमस्य, किर्मीर-इतच्। विचित्रवर्णयुक्त, चितकबरा।

किर्याणी (सं० पु०) वनशूकर, जङ्गली सूवर।

किर्रा (हिं० स्त्री०) यन्त्रविशेष, किसी किस्मकी छेनी। किर्रासे धातु पर पत्र और शाखा खोद कर बनाते हैं।

किल (सं० अव्य०) किल्-क। १ वास्तवमें, दरहकीकत असलमें। २ अर्थात्, यानी। ३ सम्भवतः, गालिबन् शायद।

"इदं किलाव्याज मनोहरं वपुस्तपःक्षमं साधयितुं य इच्छति।"

(शाकुन्तल, १ अ०)

किलक (हिं० स्त्री०) १ हर्षध्वनि, खुशीकी आवाज। २ प्रसन्नता, खुशी। (फा०) ३ तृणविशेष, किसी किस्मका नरकट। किलकका कलम बनता है।

किलकना (हिं० क्रि०) हर्षध्वनि करना, खुशीकी आवाज निकालना, किलकारना।

किलकार (हिं० स्त्री०) हर्षध्वनि, खुशीकी आवाज। किलकार गम्भीर तथा अस्पष्ट रहती और आनन्द एवं उत्साहके समय मुहसे निकलती है।

किलकारना, किलकना देखो।

किलकारी, किलकार देखो।

किलकिञ्चित (सं० क्ली०) किल अलीकेन किं ईषत् चितं रचितम्, ३-तत्। शृङ्गारभावजन्य क्रियाविशेष, एक अदा। "स्मितशुष्करुदितहसितत्रासक्रोधश्रमादीनाम्।

साङ्कर्यं किलकिञ्चितमभीष्टतमसङ्गमादिजाद्धर्षात्॥"

(साहित्यदर्पण, ३।१०९)

प्रियनायकके समागमसे अतिमात्र हृष्ट हो उसी नायकसे स्त्री शुष्कहास, रोदन, भय, क्रोध और श्रान्ति प्रभृति मिश्ररूपसे जो भावप्रकाश करती है, उसीको किलकिञ्चित् कहते हैं।

"त्वयि वीर विराजते परं दमयन्तीकिलकिञ्चितं किल।

तरुणीस्तन एव दीप्यते मणिहारावलिरामणीयकम्॥"

(नैषध, २य सर्ग)

किलकिल (सं० पु०) १ महादेव। २ नगरविशेष, कोई शहर।

किलकिला (सं० स्त्री०) किल्-क प्रकारे वीप्सायां वा द्विलम् टाप्। १ हर्षध्वनि, किलकार। २ वीरोंका सिंहनाद, ललकार। ३ दिग्विजयप्रकाशोक्त वङ्गदेशके अन्तर्गत सरस्वती और कालिन्दी नदीका मध्यवर्ती कोई जनपद, बंगालकी एक वस्ती। कलकत्ता देखो।

किलकिला (हिं० स्त्री०) १ पक्षिविशेष, एक चिड़िया। किलकिला छोटी रहती और मछली खाकर अपना पेट भरती है। वह मछलियोंको देख पानीके ऊपर १० हाथ ऊंचे उड़ा करती है। घात लगते ही किलकिला मछली पर एकाएक टूट उसे पकड़ कर ले जाती है। (पु०) २ समुद्रका एक भाग। किलकिलाकी लहरें भयानक शब्द करती हैं।

किलकिलाना (हिं० क्रि०) १ हर्षध्वनि करना, किलकना। २ कोलाहल करना, शोर मचाना। ३ वादविवाद लगाना, झगड़ा उठाना। ४ खुजलाना। ५ क्रोध करना।

किलकिलाहट (हिं० स्त्री०) १ हर्षध्वनि, किलकार। २ कण्डु, खुजली। ३ क्रोध, गुस्सा। ४ वादविवाद, झगड़ा।

किलकी (हिं० स्त्री०) यन्त्रविशेष, एक औजार। बढ़ई किलकीसे नापके मुवाफिक लकड़ीपर चिह्न लगाते हैं।

किलकैया (हिं० पु०) १ रोगविशेष, एक बीमारी। किलकैयेसे पशुओंके खुरोंमें कीड़े पड़ जाते हैं। २ हर्षध्वनिकारी, किलकार लगानेवाला।

किलटा (हिं० पु०) करण्डविशेष, किसी किस्मका टोकरा। किलटा ऐसी युक्तिसे बनाया जाता है कि उसमें रखी हुयी चीजका भार ढोनेवालेके कंधोंपर हो आता है।

किलना (हिं० क्रि०) १ कीला जाना, अभिमन्त्रित होना। २ वशमें लाया जाना, तावेदारीमें आना।

किलनी (हिं० स्त्री०) कीटविशेष, एक कीड़ा। किलनी गाय, बैल, भैंस, कुत्ते, बिल्ली वगैरह जानवरोंके चिपटी रहती और उनका रक्त पान कर अपना शरीर पोषण करती है। उसे किल्ली और किलौनी भी कहते हैं।

किलपादिका (सं० स्त्री०) क्षुद्रलज्जालुका, छोटी लाजवंती।

किलबिलाना (हिं० क्रि०) कुलबुलाना, धीरे धीरे चलना फिरना।

किलमी (हिं० पु०) नौकाका पश्चाद्भाग, जहाजका पिछला हिस्सा। २ पिछले हिस्सेके मस्तूलका बादबान।

किलमोरा (हिं० पु०) दारुहरिद्राविशेष, किसी

किस्मकी दारुहल्दी। किलमोराकी झाड़ियां हिमालय पर कोसों फैल जाती हैं।

किलवांक (हिं० पु०) अश्वविशेष, एक काबुली घोड़ा।

किलवा (हिं० पु०) बड़ा फावड़ा। छोटे किलवेको किलैया कहते हैं।

किलवाई (हिं० स्त्री०) पांचा, लकड़ीकी फरुई। किलवाईसे सूखी घास या पयाल बटोरते हैं।

किलवान (हिं० क्रि०) १ कील लगवाना । २ अभिमन्त्रित कराना, जादूसे बंधाना।

किलवारी (हिं० स्त्री०) कन्ना, पतवार।

किलविष (हिं० पु०) किल्विष, पाप, इल्जाम।

किलहा (हिं० पु०) फांक, आमका तेलमें रखा हुवा अचार।

किला (अ० पु०) दुर्ग, गढ़, बचावकी जगह।

किलाट (सं० पु०) शोषित क्षीरपिण्ड, छेना। किलाट गुरु, तृप्तिकारक, शुक्रवर्धक, पुष्टिकारक, वायुनाशक और दीप्ताग्नि एवं निद्राशून्य व्यक्तिके लिये हितकारक है। फिर वह श्लेष्मजनक, रुचिकारक और पित्त, विद्रधि, मुखशोष, तृष्णा, दाह, रक्तपित्त तथा ज्वरनाशक भी होता है। (चरक) उसके बनानेकी प्रणाली इसप्रकार कही है—दधि वा घोलके संयोगसे दुग्धको विकृतकर गर्म करते हैं। फिर वस्त्रसे निचोड़ उसका पानी निकालना पड़ता है। किलाट कई प्रकारका होता है—पीयूष, मोरट और क्षीरशाक।

किलाटक (सं० पु०) किलाट एव स्वार्थे कन्। छेना, फटे हुये दूधका मावा। नष्ट पक्वदुग्धके पिण्डको किलाटक कहते हैं। जो दुग्ध अपक्व रहते ही फट जाता, वही क्षीरशाक कहाता है। (भावप्रकाश)

किलाटी (सं० पु०) किलशाली आटी चेति, कर्मधा०। यद्वा किलं अटति, किल-अट्-णिनि। १ वंश, बांस। २ एरण्डवृक्ष, रेंड़का पेड़।

किलाटी (सं० स्त्री०) किलाट-ङीष्। दुग्धविकृति, कूर्चिका, छेना।

किलात (सं० पु०) किलं अलति, किल-अत्-अण्। १ ऋषिविशेष। २ राक्षसविशेष। (त्रि०) ३ वामन, ह्रस्व, बौना, छोटा।

किलाना, किलवाना देखो।

किलाबन्दी (फा० स्त्री०) १ दुर्गनिर्माण, किलेकी बंधाई। २ व्यूहरचना, फौजकी तरतीबसे खड़ा करनेका काम। ३ शतरंजमें बादशाहको किला बांधकर उसके भीतर रखनेकी चाल।

किलाल (सं० क्ली०) गोमूत्र, गायका पेशाब।

किलावा (हिं० पु०) १ यन्त्रविशेष, एक औजार। किलावा सोनारोंके काम आता है। २ हाथीके गलेका एक रस्सा। किलावेमें पैर डाल महावत हाथीको हांकता है।

किलास (सं० क्ली०) किलं वर्णं अस्यति क्षिपति विकृतिं करोति इति यावत्, किल-अस-अण्। क्षुद्रकुष्ठरोगभेद, किसी किस्मका हलका कोढ़। मिथ्या वचन, कृतघ्नता, देवनिन्दा, गुरुजनके अपमान, पापकार्य, पूर्वजन्मके कर्मफल और विरुद्ध अन्नपानादिके सेवनसे उक्त रोग उत्पन्न होता है। (चरक)

वात, पित्त और श्लेष्मभेदसे किलास रोग भी तीन प्रकारका होता है। उसमें वायुजन्य किलास अरुणवर्ण, कर्कश और स्थान स्थान पर गोलाकार होता है। पित्तजन्य किलास ताम्रवर्ण, पद्मपत्र तुल्य और दाहविशिष्ट होता है। श्लेष्मज किलास श्वेतवर्ण, स्निग्ध, घन और कण्डूयुक्त रहता है। उक्त त्रिदोषजन्य किलास यथाक्रम रक्त, मांस और मेदमें उत्पन्न होता है। किन्तु सुश्रुत ऋषिने उसे केवलमात्र त्वग्गत बताया है। वायुजन्य किलासकी अपेक्षा श्लेष्मजन्य किलास कष्टसाध्य है। उसके उपरिस्थ लोम रक्तवर्ण वा श्वेतवर्ण न होने, परस्पर पृथक् रहने, अल्पदिनजात ठहरने और अग्निमें न जलनेसे किलास आरोग्य हो जाता, नतुवा असाध्य देखाता है। (वाग्भट)

[चिकित्सा— कुष्ठ, तमालपत्र, मरिच, मनःशिला और हरिकाशीशको समभाग तैलके साथ ताम्रपात्रमें ७ दिन धूपसे उत्तप्त करते हैं। फिर उक्त तैल किलासके स्थान पर लगानेसे आरोग्यलाभ होता है।

मूलीके बीज, सोमराजीबीज, लाक्षा, गोरोचना, सौवीराञ्जन, रसाञ्जन, पिप्पली और काललौहचूर्ण एकत्र पीसकर प्रलेप चढ़ानेसे किलास रोग दूर हो जाता है।

हरीतकीकी एक बत्ती बना आम्रवृक्षके पत्र और वल्कलके रसकी भावना देते हैं। फिर वटके दूधसे दूसरी भावना दे उसे ताम्रप्रदीपमें जलाना पड़ता है। उसकी मसीको ग्रहण कर पुनर्वार हरीतकीके क्वाथकी भावना लगाते हैं। अन्तको उक्त मसी कटुतैलमें मिला अधिकतर मर्दन करनेसे किलास रोग आरोग्य होता है। (सुश्रुत)

किलासघ्न (सं० पु०) किलासं हन्ति, किलास-हन्-टक्। कर्कोटक, कांकरोल। किलासघ्नका संस्कृत पर्याय—कर्कोट, तिक्तपत्र और सुगन्धक है। कर्कोटक देखो।

किलासनाशन (सं० त्रि०) किलासं नाशयति किलास-नश्-णिच्-ल्यु। किलासरोगनाशक।

किलासी (सं० त्रि०) किलासं अस्यास्ति, किलास्-इनि। किलासरोगयुक्त, कोढ़ी।

किलि (सं० अव्य०) कण्ठकूजित, किलकार।

किलिक (फा० स्त्री०) किलक देखो।

किलिच (सं० क्ली०) किल्यते अनेन, किल-इनि, किलिं चिनोति, किलि-चि-ड पृषोदरादित्वात् साधुः। सूक्ष्म-काष्ठ, पतला तख्ता।

किलिघन (सं० पु०) १ राल, धूना। २ मीनभेद, एक मछली।

किलिञ्ज (सं० पु०) किलितं जायते, किलि-जन्-ड-नुम् पृषोदरादित्वात् साधुः। १ सूक्ष्मकाष्ठ, पतला तख्ता। २ वीरणादि कट, चटाई। ३ परदा। किसी किसी स्थान पर किलिञ्ज क्लीवलिङ्ग भी देख पड़ता है।

किलिञ्जक (सं० पु०) किलिञ्ज स्वार्थे कन्। १ कट, चटाई। २ काशादि निर्मित रज्जु, एक रस्सी। किलि-ञ्जकसे धान्यादि रखनेके मराइ (कोठी) को वेष्टन करते हैं।

किलिन (हिं० पु०) नौस्थानविशेष, केदासकी मोड़, जहाजकी एक जगह। किलिन जहाजका वह पिछला हिस्सा है, जहां बाहरी तख्त मुड़कर मिलते हैं।

किलिनकिल (सं० पु०-क्ली०) नगरविशेष, किसी शहरका नाम।

किलिम (सं० क्ली०) किल-इमन्। १ देवदारु वृक्ष। २ धूनक।

किलोवा (हिं० पु०) वंशविशेष, किसी किस्मका बांस। किलोवा ब्रह्मदेशमें पेगू और मर्तबानके वनमध्य उत्पन्न होता है। वह ६० से १२० फीट तक लम्बा और ५से ८ इञ्च तक मोटा रहता है। उसका वर्ण धूसर होता है। उससे नावके मस्तूल बनाये जाते हैं।

किलोल (हिं०) कल्लोल देखो।

किलौनी, किलनी देखो।

किल्की (सं० पु०) घोटक, घोड़ा।

किल्लो—खानदेश जिलेका एक गांव। यहांके राजा भील हैं, जिन्हें दत्तकपुत्र लेनेका अधिकार नहीं।

किल्लत (अ० स्त्री०) १ न्यूनता, कमी। २ सङ्कोच, तंगी। ३ अड़चन।

किल्ला (हिं० पु०) १ मेख, खूंटा, कील। २ जांतेकी मेख। किल्ला जांतेके बीचमें गाड़ा जाता है। ३ नवीन शाखा, अङ्कुर।

किल्लाना, किलकिलाना देखो।

किल्ली (हिं० स्त्री०) १ कील, मेख, खूंटी। २ बिल्ली, सिटकिनी। ३ मुठिया या दस्ता। किल्ली घुमानेसे कल या पेंच चलने लगता है। ४ कुञ्जी।

किल्लिकेतर (कातावू) बेलगांवजिलेकी पशु रखने और चित्र दिखानेवाली जाति। यह सांपगांव, चिकोदी, पारस-गढ़, गोकाक और अथनीमें मिलते हैं। किल्लिकेतर मराठों जैसे ही होते और कोल्हापुर या सतारेसे आये समझ पड़ते हैं। प्रत्येक परिवारमें १ कुत्ता, २ या ४ भैंस, २ या ३ गाय और ४ या ५ बकरे रहते हैं। पुरुष स्वच्छ, सुथरे, भले, मितव्ययी और शान्त होते हैं। यह मृगछालापर बने पाण्डवों और कौर-वोंके चित्र रातको दिखा जीविका निर्वाह करते हैं। एक मनुष्य चित्रके पीछे दीपक लेकर बैठता और दूसरा आगे उसकी घटना समझाता है। स्त्रियां बाजा बजाया करती हैं। यह प्रदर्शन रातको ८ या १० बजेसे आरम्भ हो ५ या ७ घण्टे चलता है। स्त्रियां गोदनेका काम अच्छा करती हैं। कन्याओंका विवाह ४ या ५ और बालकोंका १० और १२ वर्षके बीच होता है। इनमें विधवा-विवाह प्रचलित है। शवको समाधि दिया जाता है। निर्धन होते भी यह किसीके ऋणी नहीं।

किल्विष (सं० क्ली०) किल्-टिषच्-वुक् आगमश्च। १ पाप, गुनाह। २ अपराध, जुर्म। ३ रोग, बीमारी।

किल्विषी (सं० त्रि०) किल्विषं अस्त्यस्य, किल्विष-इनि। पापी, गुनाहगार।

किल्ली (सं० पु०) किल् भावे क्विप्; किल् अस्त्यस्य, किल्-विनि। घोटक, घोड़ा।

किवांच (हिं० पु०) केवांच।

किवाड़ (हिं० पु०) कपाट, दरवाजा बन्द करनेके लिये लगनेवाले लकड़ीके दो तख्ते।

किशटा (हिं० पु०) किसी किस्मका शफताल। किश-टेका मुरब्बा बनाते हैं। और गुठलीसे चांदी चमकाते हैं। उक्त शब्द फारसीके 'किश्ता'से निकलता है।

किशनताल (हिं० पु०) हस्तिविशेष, किसी किस्मका हाथी। उसका तालू काला रहता है। किशनतालूको बहुत शुभ समझते हैं।

किशमिश (फा० पु०) सुखाया हुवा अंगूर, सूखी दाख। अंगूर देखो।

किशमिशी (फा० वि०) १ किशमिशवाला, जिसमें किशमिश रहे। २ किशमिशका रंग रखनेवाला। (पु०) ३ किसी किस्मका रंग। प्रथम वस्त्रको धोकर हरीतकीके जलमें बोर देते हैं। फिर गेरिक डाल कर हरिद्रामें उसे रंगते हैं। अन्तको अनारकी छालमें रंगनेसे वस्त्रपर किशमिश रंग चढ़ जाता है। दूसरी रीतिपर प्रथम वस्त्रको ईंगुरमें रंगकर सुखा लेते हैं। फिर कटहलकी छाल, कुसुम, हरसिंगार और तुनके फूलमें रंगनेसे उसपर किशमिशी रंग चढ़ता है।

किशर (सं० पु०-क्ली०) किम्-शृ-अच्-पृषोदरादित्वात् साधुः। सुगन्धद्रव्यविशेष, एक खुशबूदार चीज।

किशरा (सं० स्त्री०) किञ्चित् शृणाति हिनस्ति, किम्-शृ-अच्-टाप् पृषोदरादित्वात् साधुः। कृशरा, खिचड़ी।

किशरादि (सं० पु०) पाणिनिव्याकरणोक्त शब्दगण-विशेष। किशरादिमें किशर, नरद, नलद, स्थागल, तगर, गुग्गुलु, उशीर, हरिद्रा, हरिद्र और पर्णी शब्द सम्मिलित हैं। उक्त शब्दोंके उत्तर ष्ठन् प्रत्यय होता है।

किशरोमा (सं० स्त्री०) शुकशिम्बी, खजोहरा।

किशल (सं० पु० क्ली०) किञ्चित् शलति चलति, किम्-शल-अच् मलोपः पल्लव, नया पत्ता।

किशलय (सं० पु०-क्ली०) किञ्चित् शलति, किम्-शल् बाहुलकात् कयन् मलोपः पृषोदरादित्वात् साधुः। कोमल पल्लव; मुलायम नया पत्ता।

"अधरः किशलयरागः कोमलविटपानुकारिणी बाहू।"

(शकुन्तल, १ अ०)

किशलयतल्प (सं० पु०-क्ली०) किशलयनिर्मितं तल्पम् मध्यपदलो०। पल्लवनिर्मित शय्या, पत्तेका बिछौना।

किशलयशयन, किशलयतल्प देखो।

किशुनगर, कृष्णगढ़ देखो।

किशुनचन्द—दिल्लीवाले अचलदास खत्रीके पुत्र। इनका उपनाम इखलास रहा। अचलदासके निकट अच्छे अच्छे विद्वान् आते थे। अपने पिताके मरने पर वह कविता बनानेमें लगे। १७७३ ई० को हमेशबहार नामक एक जीवन-वृत्तान्त इन्होंने लिखा था। इस पुस्त-कामें २०० कवियोंका वर्णन है। वह भारतवर्षमें जहां-गीरके समयसे मुहम्मद शाहके समय तक हुये थे।

किशुनसिंह—किशुनगढ़के एक राजा।

किशुनसिंह—जोधपुर महाराज उदयसिंहके २य पुत्र। इनका जन्म १५७५ ई०को हुवा था। यह १५९६ ई० तक अपनी मातृभूमिमें ही रहे, पीछे जोधपुर महाराज शूरसिंह अपने बड़े भाईसे कुछ अनबन होने पर अजमेरमें जा बसे। अकबरसे परिचय होने पर इन्होंने हिन्ददौनका जिला पाया जो अब जयपुरमें लगता है। फिर मेरोंसे सरकारी खजाना छुड़ाने पर इन्हें सेथोलाव और कुछ दूसरे जिले माफी मिले। १६११ ई०को इन्होंने कृष्णगढ़ बसाया था। अकबरके समय इनका उपाधि राजा रहा, परन्तु जहांगीराने इन्हें महाराजका उपाधि प्रदान किया। १६१५ ई०को यह स्वर्गवासी हुए।

किशोर (सं० पु०) किञ्चित् शृणाति, किम्-शृ-ओरन्। किशोरादयश्च। उण् १।६६। १ अश्वशिशु, बछेड़ा। २ तैल-पर्णी, एक बूटी। ३ सूर्य, सूरज। ४ तरुणावस्था, जवानी। एकादशसे पञ्चदश वर्ष पर्यन्त किशोर अवस्था रहती है। "वय किशोर सब भांति सुहाये।" (तुलसी) ५ शिशु, लड़का। (त्रि०) ६ किशोरयुक्त, छोटी उम्रवाला।

किशोरसिंह—कोटाराज माधवसिंहके कनिष्ठ पुत्र। १६५८ ई०को उज्जैनके पास औरङ्गजेबके विरुद्ध युद्ध करनेमें यह घोररूपसे आहत हुये थे, परन्तु पीछे अच्छे हो गये। इन्होंने १६७०से १६८६ ई० तक राजत्व किया। यह औरङ्गजेबके बहुत चतुर सेनापति थे और अरकाटके अवरोधमें मारे गये।

किशोरसूर—हिन्दीके एक कवि। इनका जन्म १७०४ ई०को हुआ। इन्होंने बहुतसे छप्पय बनाये हैं। सरदार कवि और हरिश्चन्द्रने इनकी कविता उद्धृत की है।

किशोरिका (सं० स्त्री०) किशोरी स्वार्थे कन्-टाप् इकारस्य ह्रस्वत्वञ्च। किशोरी, ग्यारहसे १५ वर्ष तककी स्त्री।

किशोरी (सं० स्त्री०) किशोर-ङीष्। किशोरिका देखो।

किश्त (फा० स्त्री०) १ शतरञ्जके खेलमें बादशाहका किसी मोहरेकी मारमें जानेकी चाल।

किश्तवार (हिं० पु०) पटवारीका एक कागज। किश्तवारमें खेतका नम्बर, रकबा वगैरह लिखा रहता है।

किश्ती (फा० स्त्री०) १ नौका, नाव। २ पात्रविशेष, किसी किस्मकी थाली या तशतरी। किश्तीमें कोई उपढौकन रख कर दिया जाता है। ३ शतरंजका हाथी, मोहरा।

किश्तीनुमा (फा० वि०) नौकासदृश, नाव जैसा।

किष्किन्ध (सं० पु०) किं किं दधाति, किम्-धा क पूर्वस्य किमो मलोपः सुट् षत्वञ्च। १ महिसुरदेशीय एक पर्वत। २ उक्त पर्वतको गुहा।

किष्किन्धा (सं० स्त्री०) कष्किन्ध देखो।

किष्किन्धाकाण्ड (सं० क्लो०) रामायणका ४र्थ काण्ड। किष्किन्धाकाण्डमें सुग्रीवादिसे रामका मिलना और वालिवध प्रभृति विषय वर्णित हैं।

किष्किन्धी (सं० स्त्री०) किष्किन्ध-ङीष्। किष्किन्धपर्वतको गुहा।

किष्किन्ध्य (सं० पु०) किष्किन्ध स्वार्थे यत्। किष्किन्ध्य-पर्वत।

किष्किन्ध्या (सं० स्त्री०) किष्किन्ध्य-टाप्। किष्किन्ध्य-पर्वतको गुहा। किष्किन्ध्यामें ही वालि राजाकी राजधानी रही। पीछे रामने वालिको मार उक्त स्थान सुग्रीवको प्रदान किया।

किष्किन्ध्याकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड देखो।

किष्किन्ध्याधिप (सं० पु०) किष्किन्ध्याया अधिपः, ६-तत्। १ किष्किन्ध्याके राजा वालि। २ सुग्रीव।

किष्कु (सं० पु०-स्त्री०) कै-कु पारस्करादित्वात् सुट षत्वञ्च निपातनात् साधुः। १ द्वादशांगुल परिमाण, १२ अङ्गुलकी नाप। २ हस्त, हाथ। ३ वितस्त, वित्ता। ४ प्रकोष्ठ। ५ शालवृक्ष। ६ वंश, बांस। ७ इक्षुभेद, किसी किस्मकी ऊख। (त्रि०) ८ कुत्सित, खराब।

किष्कुपर्वा (सं० पु०) किष्कु मितं पर्व यस्य, बहुव्री०। १ इक्षु, ऊख। २ वंश, बांस। ३ नल, एक घास।

किस् (वे० अव्य०) कर्त्ता, करनेवाला।

"अयं यो होता किरु स यमस्य कमप्यूहे यत् समञ्जन्ति देवाः।"
(ऋक् १०।२५।१)

किस (हिं० सर्व०) "कौन"-का रूपान्तर। विभक्ति लगनेसे 'कौन'-का 'किस' हो जाता है। 'किस' में 'ही' लगानेसे दोनोंको मिलाकर 'किसी' हो जाता है।

किस (सं० पु०) सूर्यके एक अनुचर।

किसनई (हिं० स्त्री०) कृषि, खेती, किसानका काम।

किसबत (अ० पु०) नापित, स्यूतविशेष, नाईका एक थैला। किसबतमें उस्तरा, कैंची आदि रखते हैं।

किसबी (हिं० पु०) कसबी, श्रमजीवी, मजदूर।

किसर (सं० पु०-क्लो०) किञ्चित् सरति, किम्-सृ-कम्-अच् पृषोदरादित्वात् साधुः। सुगन्धिद्रव्यविशेष, एक खुशबूदार चीज।

किसरिक (सं० त्रि०) किसरं पण्यं अस्य, बहुव्री०, किसर-ठन्। किसर नामक सुगन्धि द्रव्य-विक्रेता।

किसल, किसल देखो।

किसलय, किसलय देखो।

किसलयित (सं० त्रि०) किसलयं सञ्जातमस्य, किसलय-इतच्। नूतनपल्लवविशिष्ट, नये पत्तोंवाला।

किसान (हिं० पु०) १ कृषक, खेतिहर। २ नाई, बारी वगैरहकी कमानेका घर।

किसानी (हिं० स्त्री०) १ कृषिकर्म, खेतीका काम। (वि०) २ कृषकसम्बन्धीय, खेतीके मुतअल्लिक।

किसी (हिं० सर्व० वि०) 'कोई' का रूपान्तर। विभक्ति लगनेसे 'कोई' का 'किसी' हो जाता है।

किसू, किसी देखो।

किस्त (अ० स्त्री०) १ ऋण चुकानेकी एक रीति, कर्ज देनेका कोई तरीका। किस्तमें एक साथ न दे ऋण नियत समय थोड़ा थोड़ा चुकाया जाता है। २ निश्चित समय पर दिया जानेवाला ऋणका एक अंश, मुकरर वक्त पर अदा होनेवाला कर्जका हिस्सा। ३ ऋण प्रतिशोधका, निश्चित समय, कर्ज अदा करनेका मुकरर वक्त।

किस्तबन्दी (फा० स्त्री०) अंशशः ऋण प्रतिशोध करनेका नियम, थोड़ा थोड़ा कर्ज अदा करनेका कायदा।

किस्तवार (फा० क्रि० वि०) १ किस्तके नियमानुसार, किस्तके तौर पर। २ प्रत्येक किस्त पर, हरेक किस्तके वक्त।

किस्म (अ० स्त्री०) १ प्रकार, तरह। २ रीति, चाल।

किस्मत (अ० स्त्री०) १ भाग्य, नसीब, तकदीर। २ कमिश्नरी, प्रान्तका बड़ा विभाग। किस्मतमें कई जिले लगते, जो कमिश्नरके अधीन रहते हैं।

किस्मतवर (फा० वि०) भाग्यशाली, तकदीरी।

किस्सा (अ० पु०) १ कथा, कहानी। २ समाचार, हाल। ३ विषम कागड़, झगड़ा।

किहकना (हिं० पु०) पक्षिविशेष, एक चिड़िया।

की (हिं० प्रत्यय) १ 'का'का स्त्रीलिङ्ग। यथा—उसकी भाषा। 'की' सम्बन्ध कारकका चिन्ह है। (क्रि०) २ 'किया'का स्त्रीलिङ्ग। यथा—रामने रणमें बड़ी वीरता की। (अव्य०) ३ क्या। ४ अथवा, या तो।

कीक (हिं० स्त्री०) १ चीतकार, शोर, हल्ला। २ वानररव, बन्दरकी आवाज।

कीकट (सं० पु०) की शनैर्दूरं वा कटति गच्छति, की-कट-अच्। १ घोटक, घोड़ा। २ देशविशेष, कोई मुल्क। कीकट मगधका वेदोक्त नाम है।

"चरणाद्रिं समारभ्य गृध्रकूटान्तकं शिवे।
तावत् कीकटदेशः स्यात् तदन्तर्मगधो भवेत्॥" (शक्तिसङ्गमतन्त्र)

चरणाद्रि (चुनार)से गृध्रकूट (गिद्धोर) पर्वत पर्यन्त कीकटदेश है। मगधदेश उसीके अन्तर्भूत है। ३ कीकटदेशज अश्व, मगधका घोड़ा। ४ सङ्कट-पुत्रविशेष। (भागवत, ६।६।४) ५ अनार्य जातिविशेष, एक कौम। ६ ऋषभके एक पुत्र। (त्रि०) ७ निर्धन, गरीब। ८ कृपण, बखील, कंजूस।

कीकटक, कीकट देखो।

कीकटी (सं० पु०) वन्यवराह, जंगली सूवर।

कीकना (हिं० क्रि०) चीत्कार करना, किकियाना।

कीकर (सं० पु०-क्ली०) ग्रामविशेष, एक गांव।

कीकर (हिं० पु०) बबूरवृक्ष, बबूलका पेड़।

कीकरी (हिं०स्त्री०) १ बबूरभेद, किसी किस्मका बबूल। कीकरीके पत्रक बहुत सूक्ष्म होते हैं। २ किसी किस्मकी दस्तकारी। कीकरीमें कपड़ा कतरकर लहरदार या कंगूरेदार बनाते हैं।

कीकश (सं० पु०-क्ली०) कीति कशति शब्दायते, की-कश्-अच्। १ चण्डाल, हत्यारा। (महानिर्वाणतन्त्र, ३।८०) २ कृमिजाति, कीड़ा मकोड़ा। ३ अस्थि, हड्डी।

कीकस (सं० पु०-क्ली०) की कुत्सितं यथास्यात्तथा कसति गच्छति, की-कस्-अच्। १ कीटजाति, कीड़ा मकोड़ा। की कुत्सितेन रक्तादिना कसति उत्पद्यते। २ अस्थि, हड्डी। (त्रि०) ३ कर्कश, कड़ा।

कीकसमुख (सं० पु०) कीकसं चञ्चुरूपं अस्थि मुखे यस्य, बहुव्री०। पक्षी, चिड़िया।

कीकसास्य, कीकसमुख देखो।

कीकसेश्वर (सं० पु०) कीकसाया ईश्वरः, ६-तत्। शिव।

कीका (हिं० पु०) कीकट, घोड़ा।

कीकि (सं० पु०) कीति शब्दं कायति, की-कै बाहुल, कात् हि। चाषपक्षी, नीलकण्ठ।

कीच (हिं० स्त्री०) कर्दम, कीचड़।

कीचक (सं० पु०) चीकयति शब्दायते चीक-वुन्। आद्यन्तविपर्ययश्च। उण् ५। ३६। १ वंशभेद, किसी किस्मका बांस, वायुस्पर्शसे कीचक शब्द करता है। २ रन्ध्रवंश, छेददार बांस। ३ राक्षसविशेष। ४ दैत्यविशेष। ५ नल, एक घास। ६ वृक्षविशेष, कोई पेड़। ७ विराटराजाके श्यालक और सेनापति। कीचकके पिताका नाम केकयराज था। द्रौपदीके प्रति अत्याचार करनेकी इच्छा रखनेसे भीमसेनने उन्हें मार डाला। महाभारतमें उनकी मृत्यु कथा इसप्रकार लिखी है—"पञ्चपाण्डवके अज्ञातवासका समय उपस्थित होनेपर वह छद्मवेशसे विराटराज्य पहुंचे और छद्मवेशसे ही विविध कार्यमें नियुक्त

हो रहने लगी। उसी समय कीचक सैरिन्ध्री-रूपिणी द्रौपदीको देख अत्यन्त कामार्त हुवे और अन्य किसी प्रकार अभीष्ट निकाल न सकनेपर बलात्कार करने पर तुल गये। फिर उन्होंने भगिनीसे अनुरोध किया कि वह द्रौपदीको उनके घर भेज दे। भगिनीने सुरा मंगानेके बहाने द्रौपदीको कीचकके गृह पहुंचाया था। उनके उपस्थित होते ही कीचक उनको आक्रमण करनेके लिये उद्यत हुवे। किन्तु वह चीत्कारपूर्वक वहांसे दौड़ कर राजसभाको भाग गयीं और उनके हाथ न लगीं। पीछे भीमसेनसे परामर्शकर द्रौपदीने कीचकको सङ्केतस्थान नाट्यशालामें बुलाया था। उसीके अनुसार वह वहां जाकर उपस्थित हुवे। परन्तु भीमसेन उक्त स्थानपर पहलेसे ही नारीवेशमें बैठे थे। कीचकको देखते ही मार डाला। (भारत, विराट, १५ अ०)
जैन हरिवंशपुराणमें इसकी कथा इस भांति लिखी है—जिस समय कीचक द्रौपदी पर आसक्त हो संकेत-स्थान पर पहुंचा तो उसे छद्मवेशी भीमसेनने बहुत मारा और क्षमा याचना करने पर छोड़ दिया। इसके बाद विषयोंसे विरक्त हो उसने एक दिगम्बर जैन मुनिसे दीक्षा ले तप किया एवं घोर तपश्चरण द्वारा कर्म नष्टकर मुक्ति पाई।

कीचकजित् (सं० पु०) कीचकं जितवान्, कीचक-जि अतीते क्विप्। भीमसेन।

कीचकनिसूदन, कीचकजित् देखो।

कीचकभित्, कीचकजित् देखो।

कीचकवध (सं० पु०) कीचकस्य वधः मारणम्, ६-तत्। १ कीचकका वध। कीचकस्य वधः विनाशकथा वर्णितो यत्र, बहुव्री०। २ कीचकवधके विवरणका पुस्तक।

कीचकाह्वय (सं० पु०) १ रन्ध्रवंश, छेददार बांस। २ नल, एक घास।

कीचड़ (हिं० पु०) कर्दम, कीच। २ चक्षुमल, आंखका मैल।

कीज (वै० पु०) कथं जातः पृषोदरादित्वात् साधुः। अद्भुत, अनोखा। "यः शको मृधो अश्व्यो यो वा कीजो हिरण्ययः।" (ऋक् ८।६६।३) 'कीज इत्यद्भुतनाम।' (भाष्य)

कीट (सं० पु०) कीट-अच्। १ क्षुद्रजीवभेद, कीड़ा, मकोड़ा। कीट बहुविध और नाना प्रकार होता है। सुतरां उसे निर्देश कर नहीं सकते। सुश्रुतने कई कीटोंके दंशनसे उत्पन्न रोगोंको चिकित्साके लिये सर्प-समूहके शुक्र, मल, मूत्र एवं शव, पूति तथा अण्ड-जात कई कीटोंकी प्रकृति, दंशनजन्य रोग और उनकी चिकित्साका निर्देश किया है। उक्त सकल कीटोंके मध्य कुछ वायुप्रकृति, कुछ पित्तप्रकृति, कुछ श्लेष्म-प्रकृति और कुछ त्रिदोषप्रकृति होते हैं। सर्वापेक्षा त्रिदोषप्रकृति कीट ही भयङ्कर होता है।

कुम्भीनस, तुण्डिकेरी, शृङ्गी, शतकुलीरक, उच्चिटिङ्ग, अग्निनामा, चिच्चिटिङ्ग, मयूरिका, आवर्तक, उरभ्र, सारिका, मुखवैदल, शरावकुर्द, अभीराजी, परुष, चित्रशीर्षक, शतबाहु और रक्तराजि—१८ प्रकारके कीट वायुप्रकृति होते हैं। उनके दंशन करनेसे वायुजन्य रोग उत्पन्न होता है।

कौण्डिल्यक, कणभक, वरटी, पत्रवृश्चिक, विनासिका, ब्राह्मणिका, विन्दुल, भ्रमर, वाह्यकी, पिच्चिट, कुम्भी, वर्चःकीट, पाकमत्स्य, कृष्णतुण्ड, अरिमेदक, पद्मकीट, दुन्दुभिक, मकर, शतपदिक, पञ्चालक, गर्दभी, क्लीत, कृमिसरारि और उत्क्लेशक—२४ प्रकारके कीट पित्तप्रकृति होते हैं। उनके दंशनसे पित्तजन्य रोग उठता है।

विश्वम्भर, पञ्चशुक्ल, पञ्चकृष्ण, कोकिल, सैरेयक, प्रचलक, वलभ, किटिभ, सूचीमुख, कृष्णगोधा, कषाय-वासिक, कीटगर्दभक और त्रोटक—१३ प्रकारके कीट श्लेष्मप्रकृति हैं। उनके दंशनसे श्लेष्मजन्य रोग लग जाता है।

तुङ्गीनास, विचिलक, तालक, वाहक, कोष्ठागारी, कृमिकर, मण्डलपुच्छक, तुङ्गनाभ, सर्षपिक, अवल्गुली, शम्बुक और अग्निकीट—१२ प्रकारके कीट सन्निपात-प्रकृति हैं। उनके दंशन करनेसे सर्प-दंशनकी भांति तीव्र यातना उठती और सान्निपातिक रोग समूहकी उत्पत्ति होती है। उक्त कीटोंके काटनेसे दष्टस्थान क्षार वा अग्निदग्धकी भांति स्फिङ्गयुक्त बन जाता और रक्त, पीत, श्वेत वा अरुणवर्ण देखाता है।

ज्वर, अङ्गमर्द, रोमाञ्च, वमन, अतीसार, तृष्णा, दाह, मोह, जृम्भा, कम्प, श्वास, हिक्का, शीत, पिड़कानिर्गम, शोथ, ग्रन्थि, चकत्ता, दद्रु, कर्णिका, वीसर्प, किटिभ प्रभृति रोग भी उनके काटनेसे होते हैं। एतद्व्यतीत दूसरे भी कई कीट और उनके दंशनके चिह्नादि सुश्रुतमें उपदिष्ट हैं। यथा—

त्रिकण्टक, कुणी, हस्तिकक्ष और अपराजित—चार प्रकारके कीटोंका नाम कणभ है। उनके काटनेसे तीव्रवेदना, शोथ, अङ्गमर्द एवं गात्रगौरव आता और दष्टस्थान काला पड़ जाता है। प्रतिसूर्य, पिङ्गभास, बहुवर्ण, महाशिरा और निरुपम—पांच प्रकारके कीट गोधेरक कहाते हैं। उनके दंशनसे यातना आवेग, विविधरोग और भयङ्कर ग्रन्थि निकलती है। गलगोली, श्वेतकृष्णा, रक्तराजी, रक्तमण्डला, सर्वश्वेता और सर्षपिका छह प्रकारके कीड़ोंमें सर्षपिका व्यतीत अन्य पांच प्रकारके कीटोंके दंशनसे दाह, शोथ और क्लेद आता है। फिर सर्षपिकाके काटनेसे हृदयपीड़ा और अतिसार रोग उपजता है। कर्कशस्पर्श, विचित्रवर्ण और कृष्ण, पीत, श्वेत, कपिल तथा अग्निवर्ण भेदसे शतपदी कीट ८ प्रकारका होता है। उसके दंशनसे दष्ट स्थान पर शोथ एवं वेदना और हृदयमें दाह उठता है। विशेषतः श्वेतवर्ण और अग्निवर्ण शतपदी के काटनेसे दाह, मूर्च्छा और श्वेतवर्ण पिड़का उत्पन्न होती है। कृष्णसार, कुहक, हरित, रक्त एवं यववर्ण और भृकुटी तथा कोटिक नाम भेदसे मण्डूक (मेंढ़क) ८ प्रकारका है। उसमें विष रहता है। दंशन करनेसे दष्ट स्थान खुजलाने लगता और मुख निकल पड़ता है। विशेषतः भृकुटी और कोटिक मण्डूकके काटनेसे हाफिका भिन्न दाह, वमन और अत्यन्त मूर्च्छा आया करती है।

विश्वम्भर नामक कीटके दंशनसे दष्ट स्थान पर सर्षपको भांति क्षुद्र क्षुद्र पिड़का पड़ती और शीतज्वर आता है।

अहिण्डुक नामक कीटके काटनेसे सूई चुभनेको भांति पीड़ा, दाह, कण्डु, शोथ और मोह होता है।

कण्डूमक नामक कीटके काटनेसे अङ्ग पीतवर्ण पड़ जाता और वमन, अतीसार तथा ज्वररोगसे मृत्यु आता है।

शूकवृन्त प्रभृति कीटके काटनेसे कण्डु होती शरीर में चकती और दष्ट स्थानमें शूक भी दिखाई देता है।

पिपीलिका छह प्रकारकी होती है। यथा—स्थूलशीर्ष, सम्वाहिका, ब्राह्मणिका, अंगुलिका, कपिलिका और चित्रवर्णा। उसके काटनेसे दष्टस्थान पर शोथ और अग्निस्पर्शकी भांति दाह हुआ करता है।

कान्तारिका, कृष्णा, पिङ्गलिका, मधुलिका, काषायी और स्थलिका नामभेदसे मक्षिका भी छह प्रकारकी होती है। उसके काटनेसे दष्ट स्थान पर दाह और शोथ उठता है। स्थलिका और कषायीके काटनेसे उक्त उपद्रवके साथ साथ पिड़का भी पड़ जाती है।

मशक पांच प्रकार है—सामुद्र, परिमण्डली, हस्तिमशक, कृष्ण और पार्वतीय। उसके काटनेसे दष्ट स्थान पर शोथ और अत्यन्त कण्डु होती है। किन्तु पार्वतीय मशकके काटनेसे प्राणनाशक कीटदंशनसे जो समस्त लक्षण कहे गये हैं, वह समस्त देख पड़ते हैं। उक्त स्थान पर नख द्वारा छिन्न होनेसे अत्यन्त पिड़का पड़ जाती और वह पक आती हैं।

वृश्चिक कीट मन्द, मध्य और महाविष भेदसे तीन प्रकारका होता है। पूति गोमयसे जो सकल वृश्चिक उपजते, वह मन्दविष रहते हैं। काठ और ईटकसे जन्म लेनेवाले मध्यविष होते हैं। फिर पूतिसर्पदेह और विषसे जो उपजते, उन्हें महाविष कहते हैं।

कृष्ण, श्याव, चित्र, पाण्डु, गोमूत्र, कर्कश, स्निग्ध, कृष्ण, श्वेत, रक्त एवं हरितवर्ण और रक्तलोमयुक्त वृश्चिक मन्दविष होता है। उसके काटनेसे वेदना, कम्प, गात्रस्तम्भ, दष्ट स्थानमें कृष्णवर्ण, रक्तस्राव तथा शोथ, ज्वर एवं हस्तपादादिमें दंशन करनेसे यातना और वेगकी क्रमशः ऊर्ध्वगति देख पड़ती है।

रक्तवर्ण एवं पीतवर्ण, किन्तु उदरदेश कपिलवर्ण और सर्व शरीर धूम्रवर्ण वृश्चिक मध्यविष है। उसके शरीरका परिमाण ३ पर्व होता है। उसकी उत्पत्ति सर्पकी पूति, मल मूत्र और अण्डसे है। उसके काटनेसे जिह्वा पर शोथ, कण्ठनालीमें भुक्त द्रव्यका अवरोध और अत्यन्त मूर्च्छा आती है।

श्वेतवर्ण, चित्रवर्ण, श्यामवर्ण, रक्ताभ, रक्तश्वेत, रक्तोदर, नीलोदर, पीतरक्त, नीलपीत, रक्तनील, नीलशुक्ल एवं रक्तपिङ्गलवर्ण प्रभृति वर्णयुक्त और परिमाणमें एक पर्व, एक पर्वकी अपेक्षा भी क्षुद्र अथवा दो पर्व वृश्चिक-समूह महाविष तथा प्राणनाशक है। पूतिसर्पदेह वा सर्पदष्ट व्यक्तिके देहसे उसका जन्म है। उसके काटनेसे सर्पविषकी भांति विषवेगकी प्रवृत्ति, स्फोट, भ्रम, दाह, ज्वर और शरीरस्थ छिद्रपथसे रक्तस्राव होनेपर प्राण छूट जाता है।

सुश्रुतके मतमें—किसी समय राजा विश्वामित्रने वशिष्ठकी कामधेनु अपहरण की थी। उससे वह अत्यन्त कुपित हुवे। उसी समय उनके ललाटदेशसे अति-तेजस्वी स्वेदविन्दु निकला था। वह छिन्न तृणमें गिर पड़ा। उससे लूता (मकड़ी) नामक कीट उत्पन्न हुवा। आकार, वर्ण और प्रकृतिभेदसे नानाविध लूता केवल षोड़श प्रकारमें विभक्त किया गया है। सब प्रकारकी लूताका विष भयानक है। उसमें आठ प्रकारकी लूता कष्टसाध्य और आठ प्रकारकी एकबारगी ही असाध्य निर्दिष्ट हुयी है। त्रिमण्डला, श्वेता, कपिला, पीतिका, आलविषा, मूत्रविषा, रक्ता और कसना लूताका विष कष्टसाध्य है। उसके दंशन करनेसे शिरोरोग, कण्डू, दष्टस्थान पर वेदना और वातश्लेष्मिक रोग समूहकी उत्पत्ति होती है। सौवर्णिका, लाजवर्णा, जालिनी, एणीपदी, कृष्णा, अग्निवर्णा, काकाण्डा और माला-गुणा—आठ प्रकारकी लूताका विष असाध्य है। उसके दंशन पर दष्टस्थानसे रक्त निकलता, दष्टस्थान सड़ता और ज्वर, दाह, अतिसार प्रभृति त्रिदोषजात रोग, विविध पिड़का, गात्रमें बड़ा बड़ा चकता और रक्तवर्ण अथवा श्यामवर्ण एवं मृदु चञ्चल शोथ हुवा करता है। दंशनव्यतीत भी उक्त प्रकारकी लूताकी लाला, नखा-घात, दंष्ट्राघात, मूत्र, रजः, मल और इन्द्रियस्पर्शसे भी विष-पीड़ित होना पड़ता है। लालाके विषसे कण्डू एकस्थानस्थायी, अल्पमूलकोष्ठ और अल्प वेदना होती है। नखाघातके विषसे शोथ, एवं कण्डूका वेग बढ़ता और मनुष्य अकड़ रहता है। दंष्ट्राघातके विषसे दष्ट-स्थान उग्र, कठिन एवं विवर्ण पड़ जाता और शरीरमें एकस्थानस्थायी मण्डल निकला आता है। मूत्र-स्पर्शसे स्पृष्टस्थान गलने लगता और उसका मध्यदेश कृष्णवर्ण तथा प्रान्तभाग रक्तवर्ण देख पड़ता है। रजः, मल एवं इन्द्रियके स्पर्शसे पक्व पिलु फलकी भांति पाण्डुवर्ण स्फोटक उठता है। लूताका किसी प्रकार विष-लक्षण एक ही बारमें समस्त प्रकाशित नहीं होता। दंशके पीछे पहले दिन अव्यक्तवर्ण और कण्डू विशिष्ट चञ्चल चकते उभरा करते हैं। दूसरे दिन इन मण्डलोंका मध्यभाग, निम्न और चतुर्दिक्का प्रान्त-भाग फूल उठता है। तीसरे दिन विषका लक्षण देख पड़ता है। चतुर्थ दिन शरीरस्थ विष कुपित होता है। पञ्चम दिन विषकोपसे रोगसमूह उभर आता है। षष्ठ दिन विष सर्वशरीरमें फैल विशेषरूपसे मर्मस्थान-समूहको आश्रय करता है। सप्तम दिन विषप्रकोप बहुत बढ़ जाता है। तीक्ष्ण या प्रचण्ड विष होनेसे उसी दिन रोगीका प्राण विनष्ट होता है। मध्यम-विषविशिष्ट लूताके दंशनसे सप्तम दिवसके पीछे और मन्द विषयुक्त लूताके दंशनसे एक पक्षकाल मध्य मृत्यु आ सकता है।

चिकित्सा—उग्रविष कीटोंके काटनेसे सर्पदंशनकी भांति ही चिकित्सा करना पड़ती है। स्वेद, प्रलेप और जल-सेकादि उष्ण कर व्यवहार करना चाहिये। दष्टस्थान पक्व या सड़ जाने और मूर्च्छादि उपद्रव बढ़ जानेसे वमन विरेचनादि संशोधन कार्य और विनाशक क्रिया-समुदायसे लाभ होता है। उक्त सकल उपद्रवमें शिरीष, कुटकी, कुष्ठ, वचा, हरिद्रा, सैन्धवलवण, गव्यदुग्ध, मज्जा, वसा, गव्यघृत, शुण्ठी, पिप्पली और देवदारुका पुलटिस बांधना चाहिये। अथवा प्रथम शालपर्णीचूर्ण कर उसका स्वेद लगाना उचित है। किन्तु वृश्चिक दंशनमें स्वेद अहितकर है। त्रिकण्टकके विषमें कुष्ठ, अपक्व सिन्धुवार, वचा, विल्वमूल, विड़कर्णी, सुवटिका, कज्जल, हरिद्रा और दारुहरिद्राका प्रलेपादि हितकर है। गलगोली (सर्पविशेष)-के विषमें कज्जल, हरिद्रा, अपक्व सिन्धुवार, कुष्ठ और पलाशबीजसे उपकार होता है। शतपदी (कानखजूरा)-के विष पर कुङ्कुम, तगर-पादुका, शोभाञ्जन, पद्मकाष्ठ, हरिद्रा और दारुहरिद्रा

पानीमें पीस कर प्रलेप लगाना चाहिये। सकल प्रकार मण्डूक-विष, मेषशृङ्गी, वचा, विहकर्णी, अम्लवेतस, मञ्जिष्ठा और वालकके प्रयोगसे नष्ट हो जाता है। विश्वम्भर कीटके काटनेसे वचा, अश्वगन्धा, पीतवाट्याल्लका, श्वेतवाट्याल्लका, क्षुद्रचक्रमर्द और शालपर्णी प्रयोग करना चाहिये। अहिण्डुका कीटके दंशन करनेसे शिरीष, तगरपादुका, कुष्ठ, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, शालपर्णी, मुद्गपर्णी और माषपर्णी हितकर है। कण्डूमकाके काट खानेसे रात्रिकालको शीतल क्रियासमूह करना पड़ता है। कारण दिनको सूर्यरश्मि द्वारा विष अधिक प्रकुपित होनेसे शीतल क्रियासे कोई फल नहीं मिलता। शूकदन्त (झांझा) के विषमें कच्चा सिन्धुवार, कुष्ठ और अपामार्ग प्रयोग करते हैं। अथवा कृष्णवल्मीककी मट्टी भृङ्गराजके रसमें पीस कर प्रलेप चढ़ाना चाहिये। पिपीलिका, मक्षिका और मशक दंशन पर कृष्णवल्मीककी मट्टी गोमूत्रके साथ पीस कर प्रलेप देते हैं। प्रतिसूर्यक (गुहेरा)-के दंशन करने पर सर्पदंशनकी भांति चिकित्सा करना पड़ती है।

उग्रविष और मध्यविष वृश्चिकके दंशनमें सर्पदंशनकी भांति चिकित्सा कर्तव्य है। मन्दविष वृश्चिकके काट खानेसे चक्रतैल अथवा विदार्यादि गणोक्त द्रव्य समूहके साथ सुसिद्ध उष्ण जलका सेक देना चाहिये। अथवा विषघ्न द्रव्यसमूहके पुलटिससे स्वेद लगा दष्टस्थान पर हरिद्रा, सैन्धव, त्रिकटु, शिरीषबीज और शिरीष पुष्पके चूर्ण द्वारा घर्षण करते हैं। तुलसीकी मञ्जरी, बिजोरा और गोमूत्रके साथ पीसकर प्रलेप करनेसे भी वृश्चिकके विषकी शान्ति होती है। उक्त विषमें दधि-दुग्ध गोमयका प्रलेप और स्वेद हितकर है।

कुसुमपुष्प तथा कोद्रव प्रत्येक १ भाग और हरिद्रा २ भाग घृतमें मिला गुह्यदेशमें धूप प्रदान करनेसे वृश्चिकविष सत्वर निवारित होता है।

लूता (मकड़ी)-के विभागानुसार प्रत्येक जातीय लूताविषमें पूर्वोक्त साधारण लक्षणको अपेक्षा अनेक विभिन्न लक्षण देख पड़ते हैं।

त्रिमण्डला लूताके दंशनादिसे दष्टस्थान विदीर्ण हो जाता है। उससे कृष्णवर्ण रक्त बहता है। फिर बधिरता, चक्षुकी आविलता और चक्षुद्वयका दाह होता है। उसमें अर्कमूल, हरिद्रा, नाकुली और चक्रमर्दको अभ्यङ्ग, पान, अञ्जन और नस्यरूपमें प्रयोग करना चाहिये।

श्वेतालूताके दंशन करनेसे श्वेतवर्ण और कण्डूयुक्त पिडका उत्पन्न होती हैं। दाह, मूर्च्छा, ज्वर, विसर्प, क्लेद और वेदना भी उठती है। उसपर चन्दन, रास्ना, एला, रेणुका, नल, अश्मन्तकत्वक्, कुष्ठ और चक्रमर्द—सकल द्रव्य प्रत्येक १ भाग एवं वेणामूल २ भाग एकत्र प्रलेपादिमें व्यवहार करना चाहिये।

कपिला लूताके काटनेसे ताम्रवर्ण एवं एकस्थानस्थायी पिड़का, मस्तक भार, दाह, अन्धकार दर्शन और भ्रम होता है। उसमें पद्मकाष्ठ, कुष्ठ, एला, करञ्जत्वक्, अर्जुनत्वक्, शालपर्णी, अर्क, अपामार्ग, दूर्वा और ब्राह्मी—सकल द्रव्य हितकर हैं।

पीतिकाके काटनेसे पिड़का, वमि, ज्वर एवं शूल आता और चक्षु रक्तवर्ण पड़ जाता है। उसपर कुटजत्वक्, वेणामूल, पद्मकेशर, पद्मकाष्ठ, अशोक, शिरीष, अपामार्ग, सहसोडा, कदम्ब और अर्जुनत्वक् उपकारक है।

जालविषाके दंशनसे दष्टस्थान पर रक्तवर्ण मण्डल (चकता), सर्षपकी भांति पिड़का, तालुशोष और दाह होता है। उसपर पियंगु, वालक, कुष्ठ, वेणामूल एवं अशोक अथवा शतपुष्पा और अश्वत्थ तथा वटका अङ्कुर एकत्र प्रयोग करनेसे उपकार पहुंचता है।

मूत्रविषके स्पर्शसे दष्टस्थान सड़ जाता कृष्ण एवं रक्तवर्ण पिड़का पड़ती और कास, श्वास, वमन, मूर्च्छा, ज्वर तथा दाह होता है। उसपर मनःशिला, हरिताल, यष्टिमधु, कुष्ठ, चन्दन, पद्मकाष्ठ और वेणामूल पीसकर मधुके साथ प्रलेप चढ़ाना चाहिये।

रक्तलूता काट खानेसे दष्टस्थानको चतुर्दिक् रक्तवर्ण हो जाती हैं और पाण्डुवर्णको पिड़का उठ आती है। फिर क्लेद और दाह भी होता है। उस पर रास्ना, चन्दन, वेणामूल एवं पद्मकाष्ठ अथवा अर्जुन, सहसोडा तथा आम्रातककी त्वक्का प्रलेप लगाया जाता है।

कसनाके दंशनपर दष्टस्थानसे पिच्छिल एवं शीतल रक्त गिरता और कास तथा श्वासरोग उपजता है। उसमें रक्तलूताकी भांति ही चिकित्सा करना चाहिये।

कृष्णाके दंशनपर दष्टस्थानसे विष्ठाकी भांति गन्धयुक्त रक्तस्राव होता और ज्वर, मूर्च्छा, वमि, दाह, कास तथा श्वासरोग उठा करता है। उस पर एला, चक्रमर्द तथा चन्दन प्रत्येक १भाग और गन्धनाकुली २ भाग एकत्र पेषण कर प्रलेप चढाते हैं।

अग्निवर्णाके दंशनसे अत्यन्त रक्तस्राव होता और ज्वर, यातना, कण्डू, रोमहर्ष, दाह तथा स्फोट उपजता है। उसपर कृष्णाविषाकी भांति चिकित्सा करना पड़ती है।

अनन्तमूल, वेणामूल, यष्टिमधु, रक्तचन्दन, सौगन्धिकपुष्प, पद्मकाष्ठ, श्लेष्मातक और अश्वत्थत्वक् पूर्वोक्त समुदाय लूताविषपर प्रयोग करते हैं।

सौवर्णिकाके काटनेसे मत्स्यकी भांति गन्धयुक्त और फेनमिश्र रक्तादिस्राव होता है। फिर कास, श्वास, ज्वर, तृष्णा और मूर्च्छारोग भी दबा बैठता है।

लाजवर्णाके दंशनसे अपक्क अथवा पूति रक्तस्राव होता और दाह, मूर्च्छा, अतिसार, तथा शिरोरोग उपजता है।

जालिनीके काटने पर दष्टस्थान सूक्ष्म सूक्ष्म शिरा उठ आनेसे फट जाता और स्तम्भ, श्वास, अन्धकारदर्शन तथा तालुशोष हुआ करता हैं।

एणीपदीके दंशनसे कृष्णतिलकी भांति चिह्न पड़ता और तृष्णा, मूर्च्छा, ज्वर, वमि, कास तथा श्वासरोग लगता है।

काकाण्डाके काटनेसे दष्टस्थान पाण्डु वा रक्तवर्ण पड़ जाता और उसमें अत्यन्त वेदना होती है।

मालागुणाके दंसनसे दष्टस्थानसे धूमकी भांति गन्ध निकलता, अत्यन्त वेदना होती, बहुतसा स्थान फट जाता और दाह, मूर्च्छा तथा ज्वर आता है।

उक्त समस्त लूताओंके काटते ही दष्टस्थान वृद्धिपत्र अस्त्र द्वारा एकबारगी ही काट कर अग्नितप्त जम्बोष्ठ शलाकासे जलाना पड़ता है। किन्तु मर्मस्थानमें काट खाते अथवा ज्वरादि उपद्रव बढ़ आनेसे चीर फाड़ करना न चाहिये। उस पर प्रियंगु, हरिद्रा, कुष्ठ, मञ्जिष्ठा और यष्टिमधु पीसकर मधु तथा सैन्धवलवणके साथ प्रलेप चढ़ाते हैं। वटादि क्षीरीवृक्षका क्वाथ बना शीतल होनेपर दष्टस्थान सेचन किया जाता है। फिर वमन विरेचन द्वारा संशोधन और जलौका द्वारा रक्त मोचण कर अन्यान्य विषघ्न प्रयोग करना चाहिये।

सर्वप्रकार कीट दंशनमें व्रण तथा शोथ आरोग्य होने पर निम्बपत्र, त्रिवृत्, दन्ती, कुसुमबीज, हरिद्रा, मधु, गुग्गुलु, सैन्धव, सुराबीज और कपोतकी विष्ठा द्वारा दंष्ट्र (डंक) निकाल डालते हैं। (सुश्रुत)

युरोपीय प्राणितत्त्वविद्के मतमें—कीट स्वभावतः शिरदंष्ट्राहीन ग्रन्थियुक्त क्षुद्र जीव (Insects) हैं। उनके मस्तक, वक्षः, उदर, मस्तक पर दो स्पर्शेन्द्रिय और वक्षकोटरके छह पैर होते हैं। अधिकांश स्थलमें धात्री-कीटके पक्ष रहते, किन्तु अति अल्पके ही देख पड़ते हैं।

वह प्रधानतः कीटजातिको ३ श्रेणीमें भाग करते हैं। १म श्रेणीके बहुतसे कीट जन्मसे मृत्यु पर्यन्त रूपान्तर ग्रहण नहीं करते। छोटे बड़े सबका गठन एक प्रकार होता है। केवल वयोवृद्धिके अनुसार देह छोटा बड़ा रहता है। पक्ष नहीं होते। चक्षु अति सामान्य लगते। कोई कीट चक्षुहीन भी होता है। (Ametabola)

१, शूक (कड़ावाल)
२, कीटकी शेष अवस्था।

१ मस्तक; २ वक्षकोटर (Thorax), ३ उदर; ४ पक्षमूल, ५ पक्ष; ६ स्पर्शेन्द्रिय वा कीटको सूंड।

२य श्रेणीके बहुतसे बड़े होने पर भी सम्पूर्ण रूपान्तर नहीं पाते। वह प्रथम शूक (कड़ेवाल) की भांति देख पड़ते हैं। आकारमें भी कुछ पार्थक्य

रहता है। प्रायः पच्चसूत्र नहीं होते। अवशेषको वह कोषकी भांति हो जाते अथवा तृतीय अवस्था (Pupa) पाते हैं। उक्त अवस्थामें गति रहते भी कीट नहीं चलते फिरते। (Hemimetabola)

३य श्रेणीके कीट सम्पूर्ण रूपान्तर प्राप्त होते हैं। भ्रूण, तृतीयावस्था और आयतन क्रमशः परिवर्तित हो नूतन आकार बन जाता है। (Holometabola)

उत्कुण (जूं), पक्षीके गात्रका क्रिमि, शतपदी (कानखजूरा) प्रभृति कीट प्रथम श्रेणीके अन्तर्गत हैं।

इन्द्रगोप (वीरवहूटी), आम्रक्रिमि (आमका कीड़ा), भित्तिक्रिमि (दीवारका कीड़ा, घिनोहरी) खारकीट (खटमल), झुझुंर (झींगर), तिलचट, पिपीलिका, शलभ (टिड्डी) प्रभृति द्वितीय श्रेणीमें आते हैं।

मशक, मक्षिका, पिङ्गकपिशा (गुलुवा) प्रभृति तृतीय श्रेणीके कीट हैं।

प्राणितत्त्वविदने उक्त तीन श्रेणियोंको फिर नाना शाखा प्रशाखाओंमें विभक्त किया है। उन्होंने आजतक १२५६ प्रकारके कीटोंका सन्धान पाया है।

भारतवर्ष एवं पूर्व उपद्वीपादिकी भूमि जिस प्रकार उच्च तथा निम्न है और प्रत्येक स्थानमें शीतातपका जैसा तारतम्य देख पड़ता, उससे उक्त सकल देशमें कीटोंकी नानाविध श्रेणी, जाति और प्रभेद मिलता है।

भारतीय कीटसमूहका जो विवरण देखनेमें आता, वह प्रायः एकरूप पाया जाता है। ग्रीष्ममण्डल और समसमण्डलमें समस्त कीटोंको जो विभिन्न जाति और श्रेणी देख पड़ती, उसका गठन प्रभेद इतना मिश्रित रहता कि उनका प्रभेद निर्णय करना दुःसाध्य ठहरता है। हिमालयके स्थान स्थान, भारतके दक्षिणप्रान्त और भारतमहासागरीय कई द्वीपोंमें ग्रीष्ममण्डलके कीटोंकी ही श्रेणी अधिक मिलती है। फिर नेपाल, दक्षिण महिसुर, सिंहल, बम्बई प्रदेश, मन्द्राज, कलकत्ता, दक्षिणवङ्ग, सिंगापुर, जापान और यवद्वीपमें भी उक्त श्रेणीके कीटोंके अधिक रहनेकी ही बात है। इसी प्रकार एशियाके कीटसंस्थानमें अफरीकाका कीटसंस्थान मिलता है।

एशिया और अफरीकामें एक जातीय पिङ्गकपिशा (गुलुवा) होती है। (Ateuchus sanctus)। इसे मिसर देशीय अति पवित्र और सुलक्षण समझते हैं। (The sacred beetle of the Egyptions.) वह कहते कि उक्त कीट भूमिकी उर्वरताका चिह्न स्वरूप है।

हिमालयके कीटराज्यमें युरोप और एशियाका कीटगठन देख पड़ता है। फिर उसके उपत्यका प्रदेशमें दक्षिणाञ्चलकी श्रेणी ही अधिक मिलती है। वहां ग्रीष्ममण्डलकी भांति बहुतसे हिंस्र (मांस खानेवाले) कीट भी होते हैं।

कीटोंके मध्य बहुतोंसे मनुष्यका जो उपकार होता, वह कहनेमें नहीं आता। कितने ही उसी प्रकार अनिष्टकारी भी हैं। फिर बहुतसे कीट सर्वस्व नाश कर देते हैं। कितने ही देखनेमें अति सुन्दर और कितने ही कौतूहलजनक हैं। फिर बहुतसे कीड़ोंका आचार-व्यवहार और वासस्थानके निर्माणकी प्रणाली आश्चर्यजनक होती है।

कीटके भी इन्द्रिय रहते हैं। कीटस्त्री गर्भिणी होनेसे पुंकीट मर जाता और वह डिम्बप्रसव कर मरती है। कीटोंके असंख्य सन्तान उत्पन्न होते हैं। जगदीश्वरके राज्यमें यदि सब कीटोंके लिये जीनेका नियम रहता, तो अकेली कीट श्रेणीका स्थान भरनेमें ही समग्र पृथिवीका प्रयोजन पड़ता। इसमें जिस प्रकार कीट संख्या बढ़ती, वह यदि काष्ठभुक् पक्षी, पशु वा वृक्षलतादि द्वारा विनष्ट न होती तो अनुमान किया जा नहीं सकता क्या हो जाता। यही नहीं कि केवल कीटभुक् पशुपक्षी ही विद्यमान हैं। अनेक कीट मनुष्यभोज्य भी हैं। यूनानी पहले टिड्डी खाते, जिसे न्यू साउथ वेलसके आदिम असभ्य आज भी खा जाते हैं। इलियात नामक कोई ग्रन्थकार कहते हैं कि सम्भवतः भारतमें भी कुछ लोग किसी किसी कीटके डिम्बसे सद्यप्रसूत शावक निकाल खा डालते हैं।

जामेकाद्वीपके काफिर बुगङ्गा (Bugong Butt-

erflies) नामक एक चित्रपतङ्ग (तीतली) आहार करते हैं। चीनदेशके बड़े आदरसे रेशमका कीड़ा (रेशम निकाल लेने पर गुटीके मध्य मिलनेवाला हरिद्रावर्णका मृतकीट) खाते हैं। कपोतारिपतङ्ग (बाजकी पांखी) (Hawk-moth) का सद्यजात शावक भी चीनावोंको अतिप्रिय है।

कोई कोई असभ्य लम्बी थोथनीके कीटका शावक खाते हैं। ब्रह्मदेशीय उसे अति उपादेय खाद्य समझते हैं। करेन लोग आम्रकीटको भांति एक जातीय कीटशावक आहार करते, जिसे मट्टीके नलमें भर कर रखते हैं।

मारविट्न और मारगेरेटार लोग पिपीलिका भक्षण करते हैं। हटेण्ट दीमक खा जाते हैं। ब्राउटन साहबने लिखा है कि महाराष्ट्रयुद्धके समय सेंधियाके मन्त्री सुरजीराव दुर्बलतावश दीमक रोटीके साथ मिला कर आहार करते थे।

लाङ्गिङकके कृषक एक प्रकारके कीटको देवताकी भांति मान्य करते और उसे प्रेगा-डेवरी (Prega-Deori) कहते हैं। हिन्दुस्तानी तुलसी वृक्षके कीटको भक्ति करते और विश्वास रखते कि उसे स्वर्णरक्षाकरण्ड (सोनेके तावीज)-में धारण करनेसे श्वास, यक्ष्मा, रक्तवमन प्रभृति दुःसाध्य रोग आरोग्य होते हैं। गाल (Galls) नामक कीटसे औषध, वर्णक (रंग) और मसी (स्याही) बनती है। किरिमदाना (Cochineal) कीड़ेको सुखा लेनेसे अच्छा लाल रंग तैयार हो जाता है। वह जब मातृगर्भमें रहते, तब जरायुके मध्य एक नाड़ीमें परस्पर चिपट बैठते हैं। एक किरिमदानेके १०० शावक होते हैं। मध्यअमेरिकासे उनकी सर्वोत्कृष्ट श्रेणी इङ्गलैण्ड भेजी गयी है। स्त्रीजाति लाचा कीटसे सोललाक, बटनलाक, छिकलाक और लाकडाई प्रभृति लाख बनती है।

काम्थरिस प्रभृति जातीय कीटसे प्रलेप और औषधादि प्रस्तुत होते हैं।

क्रिसोक्रोवा (Chrysochroa) नामक कीटके पक्षमूलको आवरणीसे भारतवर्षमें एक प्रकार बढ़िया हरा रंग बनाया जाता है। उसे यहांसे युरोप भेजते हैं।

उक्त जातीय एक प्रकार कीटके पक्षमूलकी आवरणीसे ब्रह्मदेशीय स्त्री हार, कण्ठी और झुमझुमी बनाती हैं। वह लाल हरी धूपछांहका रंग रखता है। फिर मानो उस पर सोनेका पानी चढ़ा रहता है। आवरणी देखनेमें सम्पूर्ण उज्ज्वल मणिकी भांति चमकती है।

पृथिवीके मध्य सर्वापेक्षा वृहदाकार कीट यवद्वीपका पिङ्गकपिशा (Scarabaeus Atlas, गुबरा) है।

मकड़ीके बड़े बड़े जालेसे आजकल बहुतसे लोग सूत और रेशम बनानेको चेष्टा करते हैं। मुंगेरमें गङ्गातीर लाल और काले रंगकी मकड़ियोंके बड़े बड़े जाले देखनेमें आते हैं।

पिङ्गकपिशाके पक्षमूलको आवरणीके खण्ड काट काट कर स्त्रियां टिकलियां तैयार करती हैं। प्रवाद है कि उक्त कीट तिलचटेको पकड़ कर गुबरा बना डालता है। वस्तुतः तिलचटा गुबरासे डर जाता है।

वाला कीड़ा गेहूंको बालको बिगाड़ देता है।

गिरोया शस्यका वर्ण नष्ट कर धूलिमें मिलाता है।

गिरण्डार नामक कीट कलायका विषम शत्रु है।

बकाली और भौमा कीट धानको चाट जाता है।

शेषोक्त तीन प्रकार कीट पश्चिममें अधिक पाये जाते हैं।

सुंडर नानाविध वृक्ष नष्ट करता है और खासकर दानापुरमें अफीमकी खेतीको नष्ट करता है। हरखी नीलको बिगाड़ता है।

नानाविध फलोंमें भी नानाविध कीट होते हैं।

आम, अमरूद, बैगन, करेला, ककड़ी प्रभृति फलोंमें कई तरहके कीड़े देख पड़ते हैं।

गूलरमें प्रायः भुनभुने भरे रहते हैं। कहते हैं उनको खानेसे आदमीको आंख नहीं आती।

२ मागधजाति। ३ लोहकिट्ट, लोहेकी जंग। ४ विष्ठा, नजिस। (त्रि०) ५ निठुर, बेरहम, सख्त।

कीट (हिं० पु०) तेल वगैरहका नीचे बैठा हुवा मैल।

कीटक (सं० पु०) कीट संज्ञायां स्वार्थे वा कन्। कीट देखो।

कीटगर्दभक (सं० पु०) सौम्यकीटविशेष, गदहला। उसके दंशनसे श्लेष्मजन्य रोग उत्पन्न होते हैं।

कीटघ्न (सं० पु०) कीटं हन्ति, कीट-हन्-ढक्। गन्धक, कीड़ोंको मारनेवाली चीज।

कीटज (सं० क्ली०) कीटात् जायते, कीट-जन्-ड। १ रेशम, टसर, कीड़ेसे पैदा होनेवाली चीज। (त्रि०) २ कीटजात, कीड़ेसे पैदा। ३ रेशमका बना हुवा।

"श्रौर्णंच राङ्कवश्चैव पट्टजं कीटजन्तथा।" (भारत, २। ५। २१)

कीटजा (सं० स्त्री०) कीटेभ्यो जायते कीट-जन्-ड-टाप्। लाक्षा, लाह, लाख।

कीटनामा (सं० स्त्री०) रक्तलज्जालुका, लाल लाजवन्ती।

कीटपक्षोद्भव (सं० पु०) कोषकारसे चित्रपतङ्गके प्रति परिवर्तन, तीतोरसे तितिलीकी तबदीली।

कीटपादिका (सं० स्त्री०) कीटाः पादे मूलेऽस्याः, कीट-पाद-कप्-टाप् अत इत्वम्। १ हंसपदीलता, एक बेल। २ रक्तलज्जालुका, लाल लाजवन्ती।

कीटपादी, कीटपादिका देखो।

कीटभुक्-उद्भिद्—कीटको आहार करनेवाले वृक्षादि, कीड़ोंको खानेवाले पौधे। आजतक उक्त श्रेणीके जितने उद्भिद् आविष्कृत हुवे हैं, उनमें निम्नलिखित कई एक प्रधान हैं।

(१) बिहारप्रदेशके मैदानों और पर्वतके ढालू स्थानोंपर सामान्यतः भारतवर्षके पार्वत्यप्रदेशमें क्षुद्र वृक्ष होता है उसके पत्र छोटे, गोल और कुछ कुछ लाल रहते हैं। उसके डण्ठल लम्बे और सुगठित लगते हैं। दूरसे उक्त वृक्ष देखनेमें समझ पड़ता, मानो भूमिपर कोई लाल चीज पड़ी है। पत्र बहुत घने होते हैं। पत्रकी चारो दिक् केशराकार कई पत्राणु उत्पन्न होते हैं। उक्त पत्राणुके अग्रभागमें चिड़ी रंगकी भांति एक घुण्डी जैसी लगी रहती है। मूलपत्रांश द्रोण जैसा होता है। उक्त द्रोणमें एक तरल पदार्थ रहता है। वह फिर सूर्यकिरणमें अति उज्ज्वलता धारण करता है। पतङ्ग उड़ते उड़ते सम्भवतः उसे जल वा मधु समझ कर पीनेके लिये उतर पड़ते हैं। उक्त रस गोंदकी तरह चिपचिपा होता है। पतङ्ग एक बार बैठ जानेसे फिर किसी क्रममें उड़ नहीं सकता। उसके पीछे क्रमशः पत्राणु अपने आप चारो ओरसे सिकुड़ने लगते हैं और क्षुद्र पतङ्ग उनमें जीता जागता आबद्ध हो जाता है। परीक्षा द्वारा देखा गया है कि पतङ्ग उस रसमें फंस क्रमशः बलहीन होते होते जीवनसे हाथ धोता और अवशेषको उसी रसमें गलकर मिला करता है। पत्राणु इतने चैतन्यविशिष्ट हैं कि अपर किसी सूक्ष्म वा कोमल वस्तु द्वारा पत्र स्पृष्ट होते ही वह सिकुड़ जाते और प्रायः एक घण्टा मुद्रित रह खुल आते हैं। उक्त जातीय उद्भिद्को अंगरेजी उद्भिद्शास्त्रमें ड्रोसेरा ब्रुमनी (Drosera Brumanni) कहते हैं।

(२) हमारे देशके तलावोंमें जो कोई उपजती, वह भी कीट भक्षण कर अपना निर्वाह करती है। हम लोग जिन्हें काईका पत्ता समझते, वह सूक्ष्म नलाकार पत्राणुमात्र ठहरते हैं। उक्त नलाकार पत्राणुका मुख सर्वथा खुला नहीं रहता। नलके मुख पर एक ढक्कन होता है। वह भीतरकी ओर खुल जाता है। नलके मध्य गोंद जैसा रस रहता है। जो सकल जलीय कीटाणु यन्त्रके साहाय्य व्यतीत चक्षुसे देख नहीं पड़ते, वह जलमें घूमते समय उक्त नलोंके सम्मुख पहुंचते हैं। उसी समय नलका ढक्कन खुल जाता है। कीट रसपानके लिये उसके भीतर प्रवेश करता है। उसके घुसते ही ढक्कन लग और कीट क्रमशः सड़ गलकर वृक्षके रसमें मिल जाता है।

(३) अमेरिकामें एक प्रकारका वृक्ष होता है। अंगरेजीमें उसे वेनस फ्लाई-ट्राप (Venus fly-trap) कहते हैं। उसके पत्र दो भागमें विभक्त हैं। पत्रके ऊर्ध्वभाग और निम्नभागके मध्यस्थलमें पत्रकी केवल मध्यशिरा रहती है। ऊर्ध्वखण्डकी चारो ओर सूक्ष्म कण्टक वेष्टित होते हैं। फिर ऊर्ध्वखण्डके पत्र पर भी कई कण्टक निकलते हैं। उक्त कण्टकोंका मुख नाना दिक्को मुड़ा रहता है। पत्रके निकट कोई पतङ्ग उड़नेसे उसकी मध्यशिरा रक्तवर्ण हो जाती है। पतङ्ग उस मनोहर वर्णके पत्रको मधुपूर्ण पुष्प समझकर

उस पर बैठता है। उसके बैठते ही पत्र सिकुड़ता और कण्टकोंके आघातसे कीट मरता है। पीछे कीटको गल जाने पर पत्र शोषण कर लेता है।

(४) हमारा चिरपरिचित तम्बाकूका पेड़ भी कीटभुक् है। उसके पत्तों और कच्चे डण्ठलोंमें चिपचिपा रस रहता है। उसमें एक अच्छा मधुवत् गंध उठता है। उक्त गन्धसे आकृष्ट हो अनेक कीट-पतङ्ग पत्ते और डण्ठलमें जाकर चिपक जाते हैं। तम्बाकू रसमें कीड़ा न गलते भी जब वह उसके खींचनेको शक्ति रखता, तब कीडेसे उसको अवश्य कोई न कोई उपकार पहुंचता है।

(५) रक्तैरण्ड भी उसी प्रकार गुणविशिष्ट है। उसपर कीटादि बैठते ही गात्रवर्ण काला पड़ जाता और केशरवत् पत्राणुसे रस निकल आता है। फिर उक्त रस उसको गला डालता और वह वृक्ष शरीरको पालता है।

(६) कोई दूसरा वृक्ष भी होता है। उसके पत्रके अग्रभागसे किसी पेचीदा शीर्षके आगे एक भाण्डाकार पत्र रहता है। उक्त भाण्डका मध्यभाग रससे पूर्ण और उसके मुख पर एक ढक्कन होता है। पूर्वकाल लोग विश्वास करते थे कि पथिकोंकी पिपासा मिटानेको भगवान्‌ने उक्त भाण्ड बना उसमें वृष्टिजल भरकरके रखा था। किन्तु अब परीक्षासे स्थिर हुवा है कि वह भाण्ड कीट-पतङ्गादि पकड़नेके लिये कौशलस्वरूप है। कीट-पतङ्ग उसके रसके गन्धसे मुग्ध हो भाण्डगर्भमें पतित होते हैं। उनके गिरते ही ढक्कन बन्द हो जाता और मध्यमें कीट गलकर अपना प्राण गंवाता है।

उक्त जातीय उद्भिद्‌का मूल बहुत दीर्घ नहीं होता। किन्तु घासके मूलकी भांति संख्यामें आधिक्य आता है।

अनेक लोग तर्क कर कहते हैं कि उक्त कीटादिसे वृक्षके शरीर-पोषणमें कोई साहाय्य नहीं पहुंचता। किन्तु यदि वैसा न होता, तो उसके गलनेसे रस क्यों वृक्षके शरीरमें जा पहुंचता। बहुविध परीक्षकोंने स्व स्व आश्रयमें उक्त सकल उद्भिदोंका कलम लगा और किसीको कीट खिला तथा किसीको न खिला हृष्टिके लक्षणसे स्थिर किया है कि कीटभुक् उद्भिद्‌के लिये कीटादि भोजन एकान्त आवश्यक है, नहीं तो उनको पूर्ण रूपसे वृद्धि होनेमें बाधा पहुंचती है।

बहुतसे लोगोंने इस प्रकार मीमांसा की है कि चाय, नील, इक्षु प्रभृतिके क्षेत्रमें तम्बाकूका पौदा लगानेसे उनमें कीड़ा नहीं लगता। क्योंकि तम्बाकूको डालों और पत्तोंमें लगकर वह मर जाता है।

कीटभृङ्ग (सं० पु०) न्यायविशेष। अनेक वस्तु एक रूप हो जानेसे कीटभृङ्ग न्याय लगता है। कहते हैं कि भृङ्ग दूसरे कीड़ोंको पकड़ और बिलमें लेजाकर अपने ही रूपका बना डालता है।

कीटमणि (सं० पु०) कीटेषु मणिरिव, उपमि०। १ खद्योत, जुगनू। २ पतङ्गभेद, तितली।

कीटमर्दरस (सं० पु०) क्रम्यधिकारका रसविशेष, कीडे पड़नेकी एक दवा। शुद्धसूत, शुद्धगन्धक, अजमोद, विड़ङ्क, विषमुष्टि और व्रह्मदण्डी यथाक्रम गुणोत्तर ले कूट पीसकर १ निष्क मधुके साथ खाने पर मनुष्य क्रमिजित् हो जाता है। पीछे मुस्ताका क्वाथ पीना चाहिये।

कीटमाता (सं० स्त्री०) कीटानां माता इव, उपमि०। हंसपदीलता, एक बेल। उसके मूलसे बहुसंख्यक कीट उत्पन्न होते हैं।

कीटमारी (सं० स्त्री०) कीटं मारयति, कीट-मृ-णिच्-अण्-ङीप्। रक्त-लज्जालुका, लाल लाजवन्ती।

कीटमेष (सं० पु०) कीटो मेष इव, उपमि०। उच्चिटिङ्ग जातीय कीटविशेष, झींगुरकी किस्मका एक कीड़ा। वह नदीतीर वालुकाके मध्य गर्त बना वास करता है। आकारमें कीटमेष उच्चिटिङ्ग जैसा रहता और उसी प्रकार कूद कूद कर चलता है। किन्तु उच्चिटिङ्गकी अपेक्षा उसकी आकृति कुछ बड़ी होती है। कीटमेष पृथक् पृथक् गर्तमें वास करते हैं। दो को एकत्र कर देनेसे उनमें भयङ्कर युद्ध आरम्भ होता है। दोनोंमें एकके निहत न होने तक युद्ध चला करता है। तप्ततैलमें एक कीटमेष तलकर व्यवहार करनेसे कण्डू रोग आरोग्य होता है।

कीटरिपु, कीटघ्न देखो।

कीटघ्न (सं॰ पु॰) कीटानां घ्नः, ६-तत्। १ वृक्षविशेष, कोई पेड़। २ गन्धक। ३ विड़ङ्ग। (त्रि॰) ४ कीटनाशक, कीड़े मारनेवाला।

कीटसंज्ञ (सं॰ पु॰) कीटः संज्ञा यस्य, बहुव्री॰। वृश्चिकराशि, बिच्छूका झुण्ड।

कीटारि, कीटघ्न देखो।

कीटाणु (सं॰ पु॰) कीटेषु अणुः सूक्ष्मः, ७-तत्। कीट समूह मध्य अति सूक्ष्म कीट, आंखसे न देख पड़नेवाला कीड़ा।

कीटाणुकीट (सं॰ पु॰) कीटादपि अणुः सूक्ष्मः कीटः। कीटकी अपेक्षा भी अति सूक्ष्म कीट, बारीकसे बारीक कीड़ा।

कीटाद (सं॰ त्रि॰) कीटान् अत्ति कीट-अद्-अण्। कीटभक्षक, कीड़े खानेवाला।

कीटारि (सं॰ पु॰) कीटानां अरिः घ्नः, ६-तत्। कीटघ्न देखो।

कीटारिरस (सं॰ पु॰) कृमिघ्न औषधविशेष, कीड़े मारनेवाली एक दवा। शुद्धपारद, इन्द्रयव, अजमोदा, मनःशिला, पलाशबीज और गन्धक समपरिमाणसे ले देवदालीके रससे समस्त दिन सान कर रत्ती रत्तीकी बटी बनाना चाहिये। अनुपान चीनी और वनमुद्गका रस है।

कीटारिष्ट (सं॰ क्ली॰) अश्वका कीटवेधरोग, घोड़ेके पेटमें कीड़े पड़नेकी बीमारी। शरद्, निदाघ और घर्मके सेवनसे निरुपचार वश वाजियोंके कीटवध (कीटारिष्ट) रोग हो जाता है। फिर घनकाल तोय पीनेसे उनके जठरमें कीट-काण्ड पड़ते हैं। ज्येष्ठ शुक्ल द्वितीयाको उनसे कीड़े निकलते हैं। (जयदत्त)

कीड़ा (हिं॰ पु॰) १ उड़ने या रेंगनेवाला लघु कीट, मकोड़ा, पतङ्गा। २ कृमि, बारीक कीट। ३ सर्प, सांप। ४ उत्कुण मत्कुण प्रभृति, जूं खटमल वगैरह। ५ छोटा बच्चा।

कीड़ी (हिं॰ स्त्री॰) १ लघुकीट, छोटा कीड़ा। २ पिपीलिका, चींटी।

कीड़ेर (सं॰ पु॰) कीर-एरच् लस्य डः। तण्डुलीयशाक, एक सब्जी।

कीतनिका (सं॰ स्त्री॰) यष्टिमधु, मुलहटी, मौरेठी।

कीदृक् (सं॰ त्रि॰) क इव दृश्यतेऽसौ, किम्-दृश्-क्विन् क्यादेशः इदं किमोरीश् की। पा ६।३।९०। किस प्रकार, किस तरह, क्योंकर।

"यद्येतानि जयन्ति हन्त परितः शस्त्राण्यमोघानि मे।
तद् भोः कीदृगसौ विवेकविभवः कीदृक् प्रबोधोदयः॥"
(प्रबोधचन्द्रोदय, ७।८)

कीदृच (सं॰ त्रि॰) कस्येव दर्शनं अस्य, किम्-दृश्-क्स क्यादेशश्च। किस प्रकारका, कैसा।

कीदृश (सं॰ त्रि॰) क इव दृश्यते असौ, किम्-दृश्-कञ्। किस प्रकारका, कैसा।

"कीदृशाः ब्राह्मणो विप्राः केभ्यो दत्तं महाफलम्।
कीदृशानाञ्च भोक्तव्यं तन्मे ब्रूहि पितामह॥"
(भारत, अनुशासन)

कीन (सं॰ क्ली॰) मांसधातु, गोश्त।

कीनखाब (हिं॰ स्त्री॰) कमखाब, एक बढ़िया कपड़ा।

कीनना (हिं॰ क्रि॰) क्रय करना, मोल लेना।

कीनराजवंश—राजविशेष, एक शाही खान्दान। खृष्टीय ८म शताब्दके मध्य उक्त राजवंश पूर्वमांचुरिया, कोरिया और चीनका उत्तरभाग अधिकार कर राजत्व करता था। उस समय वह प्रबल पराक्रमी हो गया। आधुनिक पाश्चात्य पण्डितोंके मतमें कीन राजवंशसे ही मञ्चूरियाके वर्तमान राजवंशकी उत्पत्ति है। कीना तातार जातीय हैं। उनके गात्रका वर्ण ईषत् हरिद्राभ होता है। उसीसे उन्हें 'स्वर्णवर्ण तातार जाति' कहते हैं। पाश्चात्य पण्डितोंने माञ्चूरियाके प्रवाद एवं इतिहासादिके अनुसार नानाविध अनुसन्धानसे स्थिर किया है कि वर्तमान माञ्चू कीन-तातार जातिसे ही उत्पन्न हुवे हैं। कीना-तातारोंका आदिनिवास सुङ्गारि और आमूर नदीका तीर है। वहांके नावोंको जुर्चि कहते हैं।

जिस समय ताङ्ग राजवंश उक्त सकल प्रदेशमें राजत्व करता था, सुङ्गारितीरस्थ जुर्चियोंने प्रबल हो पोहाइ नामक तातार राजवंशका प्रभुत्व जमाया और आमूरतीरस्थ जुर्चियोंको नीचा दिखाया। खितान वंशने पोहाइयोंका राजत्व उच्छन्न किया था। फिर वह खितानवंशके अधीन हो सभ्य वा वशीभूत जुर्चि-

कहाने लगे। पोहाइयोंके अधीन दूसरे जुर्चि स्वाधीन वा दुर्दम्य जुर्चिके नामसे ख्यात थे। दुर्दम्य जुर्चि तातारोंसे ही कीना-तातारोंकी उत्पत्ति है। वह उस समय माञ्चुरियाके पूर्वांश, कोरियानिकटस्थ भूभाग और आमूर-तीरवर्ती जनपदमें स्वाधीनभावसे राजत्व करते थे। खितानोंने पोहाइयोंको उच्छेद कर सर्वप्रधान क्षमता पायी। दुर्दम्य जुर्चि उनको अधीनता स्वीकार तो करते, किन्तु उनके विधिनियम शासनादि मानते न थे।

कीन-राजवंशके आदिपुरुषका नाम पुखां वा कुखां था। उन्होंने कोरियामें जन्म ग्रहण किया। हियान-पु वा सियान-कु उनका उपाधि था। उन्होंने ६० वर्षके वयसमें अपने कनिष्ठ सहोदर पाओ-हो-लिके साथ पुकान नदीके तीर यि-लान नामक स्थानमें वनियान लोगोंके मध्य जाकर वास किया। पुकान नदीका आधुनिक नाम कानतुई है। वहां आज भी वनियान लोग रहते हैं।

पुखांके वहां जाने पर वनियान जातिके साथ फिर एक जातिका विवाद उठा था। उस समय वनियानोंने उभय पक्ष पर पुखांको मध्यस्थ मान विवाद मिटाने कहा और स्वीकार किया यदि पुखां विवाद मिटा सकेंगे, तो वही उनके सरदार बनेंगे और वह उन्हें एक अलौकिक बुद्धिमती साठ वर्षकी अनूढ़ा कन्यादान करेंगे। क्रमसे वही हुवा। पुखां वनियानोंके सरदार बने और उनको दी हुई षष्टिवर्षीया कन्यासे विवाह कर वु-लु तथा वु-आलु नामक २ पुत्र और पु-से-पान नामक एक कन्याको उत्पादन किया। कीन-राजवंश पुखांको आदिपुरुष (चि-तुसु) बताते हैं। पिताके मरने पर वुलु टे-वाङ्-टि नामसे राजा हुवे। वुलुके पुत्र पोहाई धन-वङ्टो और पोहाईके पुत्र सुहखो हियेनलु थे। उनके राजत्वके समय भी दुर्दम्य जुर्चियोंके गृहादि न थे। कोई गृहादि बनाना जानता भी न था। वह पर्वतकी मूल मृत्तिकाके मध्य गर्त बना घास फूससे ढांक शीतकालको रहते थे। फिर ग्रीष्मकालको गवादि पशु और स्त्रीपुत्रादि ले वह घूमा करते थे। सुहखो राजाने उन्हें सर्वप्रथम हइकू नदी-तीर गृहादि बना उनमें रहना और कृषिकर्म द्वारा जीविका निर्वाह करना सिखाया था। क्रमशः वह आनचुही नदी-(स्वर्णनदी, उसमें स्वर्णरेणु मिलती थी)-तीर पर्यन्त फैल गये। सुहखोके पुत्र सिलूने उनमें सर्वप्रथम कई राजविधि और समाजविधिका प्रचार किया। शिलूके पुत्र उकु-नाइने १०२१ ई०को जन्म लिया था। उन्होंने सर्वप्रथम जुर्चियोंको लौह-अस्त्र बनाना और चलाना सिखाया। उकु-नाईके पुत्र हिलि-पुने १०३२ ई० को जन्मग्रहण किया था। १०७४ ई० को पिताके मरने पर वह राजा हुवे। उनके भ्राता पुलासुने १०४२ ई० को जन्म लिया था। पुलासु पिता और ज्येष्ठ भ्राताके राज्यमें कुएसियान (प्रधान मन्त्री) थे। वही अपने समयकी घटनावाली लकड़ीके तख्ते या मट्टीके खपरे पर स्मरणार्थ लिख गये। उनके मरने पर कनिष्ठ इनकु ४२ वर्षके वयसमें राजा हुवे। हिलिपुके एक पुत्र अगुट बड़े वीर थे। उन्होंने पिङ्व्योंके अनेक शत्रुवोंका दमन किया। उनके परामर्शसे राज्यमें अनेक व्यवस्थायें और शृङ्खलायें स्थापित हुईं। फिर उन्होंने नाना क्षुद्र क्षुद्र राज्योंको वशीभूत किया था। ११०३ ई० को इनकु मर गये। अगुटके ज्येष्ठ उखासु राजा हुवे। उनके राजत्वकाल खिताम-साम्राज्य बिगड़ गया। १११३ ई० को ज्येष्ठका मृत्यु होनेसे अगुट राजा बने। उन्होंने खितान-साम्राज्यका पुनर्गठन और माञ्चुरिया राज्यको स्थापन किया। अगुटने १०६८ ई० को जन्म लिया था। उन्होंने १११६ ई० को स्वर्णके पत्र पर राजसभाका आदेशादि चलाया और अपने राज्यकालको 'टियनकु' (स्वर्गका साहाय्य काल) बताया। १११७ ई० को उन्होंने नियम निकाला—कोई अपने वंशकी कन्यासे विवाह कर न सकेगा। उसी समय खितान-साम्राज्य पर चीनके शुङ्ग सम्राट्से अगुटका विवाद हुवा था। उसी विवादमें अगुटने समस्त खितान साम्राज्य पर अधिकार किया। पीछे चीनराजके साथ सन्धि हो गयी। ११२३ ई० को अगुटने पुटु ऊदके तीर ५५ वर्षके वयसमें सूर्यग्रहणके दिन परलोक गमन किया। उनके स्मरणार्थ पिकिं नगरमें एक स्मृतिलिपि स्थापित है।

अगुटके पीछे उनके कनिष्ठ उक्तिमाई राजा हुवे। उनके साथ चीनराजाका युद्ध छिड़ गया। युद्धसे उत्तर चीन उकिमाईके अधिकारमें चला गया और अपरा-धके लिये शुङ्ग सम्राट्को वार्षिक २५०००० चीनी रौप्य-मुद्रा कर देना पड़ा। उसी समय होयाई नदी उभय राज्यकी सीमा ठहरायी गयी। कौनराजधानी येन-किङ्ग नगर (वर्तमान पिकिं)-में स्थापित हुयी। चीनकी राजधानी चिकियाङ्ग प्रदेशमें हङ्गचाउ नगरको बदल गयी। किन्तु उसी समय कौनसाम्राज्यके उत्तरांशमें मुगलतातारोंने अपना अधिकार जमा लिया था।

शेषको मुगलोंके हाथसे १२३४ ई० को उक्त बल-शाली राजवंश नष्ट हो गया।

कौना (फा० पु०) द्वेष, बुग्ज़, दुश्मनी।

कौनार (वै० पु०) १ कृषक, किसान। २ श्रमजीवी, मजदूर। "कौनारेव खेद माषिष्टिदाना।" (ऋक् १०। १०६। १०)

कौनाश (सं० पु०) क्लिश्नाति छिनत्ति क्लिश-कन् उपधाया ईत्वं लकारस्य लोपः नामागमश्च। क्लिशेरीचोप-धायाः कन् लोपश्च लो नामच्। उण् ५। ५६। १ यम। २ वानर-विशेष, किसी किस्मका बन्दर। ३ राक्षसविशेष। (त्रि०) ४ कृषक, किसान। ५ क्षुद्र, छोटा। ६ पशु-घातक, जानवरोंको कत्ल करनेवाला। ७ लोभी, लालची। ८ गुप्तहत्याकारी, छिपकर मार डालने-वाला।

कोप (हिं० स्त्री०) कौफ, कुप्पी, एक चोंगी। वह छोटे मुंहके पात्रमें तेल आदि बाहर न गिरनेके लिये लगायी जाती है।

कीमत (अ० पु०) मूल्य, दाम, किसी चीजके बदले बिकने पर मिलनेवाला रुपया पैसा।

कीमती (अ० वि०) बहुमूल्य, महंगा।

कीमा (अ० पु०) मांसविशेष, किसी किस्मका गोश्त। कीमा मांसको बारीक काटनेसे बनता है।

कीमिया (फा० स्त्री०) रसायन, रासायनिक क्रिया।

कीमियागर (फा० पु०) रसायन बनानेवाला, जो आदमी कीमियागारीमें होशियार हो।

कीमियागरी (फा० स्त्री०) रसायन प्रस्तुत करनेको क्रिया।

कीमुख्त (अ० पु०) गर्दभ वा अश्वचर्म, गधे या घोड़ेका चमड़ा। कीमुख्त हरा और दानेदार होता है। उसके जूते बरसातमें पहने जाते हैं।

कीर (सं० क्ली०) कीलति बध्नाति शरीरम्, कील-अच् लस्य रः। १ मांस, गोश्त। (पु०) कौति अव्यक्त शब्दं ईरयति, कौ-ईर-णिच्-अच्। २ शुकपक्षी, तोता, सुवा।

"स्वगवाशियमिव्यतोऽपि किं न सुदं धास्यति कीरगीरिव" (नैषध, २।१५)

३ काश्मीरदेश और काश्मीरवासी।

कीर—काहार देखो।

कीरक (सं० पु०) कीर संज्ञाया कन्। १ वृक्षविशेष, एक पेड। २ बौद्धसंन्यासी। ३ शुकपक्षी, तोता। ४ प्राप्ति, याफ्त।

कीरग्राम—कोट-कांगड़ाके निकट एक प्राचीन ग्राम। आजकल उसे वैद्यनाथ कहते हैं। वहां वैद्यनाथ और सिद्धनाथका मन्दिर बना हैं। ८०४ ई०को उक्त मन्दिर बनाया गया था। अनेकांश नष्ट हो जानेसे १७८६ ई० को राजा संसारचांदने उसे परवर्तित और परिवर्धित कर दिया।

कीरट (सं० पु०) वङ्गधातु, रांगा।

कीरटा (सं० स्त्री०) कीरट देखो।

कीरतनूफला (सं० स्त्री०) तूलकवृक्ष, कपासका पेड़।

कीरति, (हिं०) कीर्ति देखो।

कीरनासा (सं० पु०) शुकनासा, तोतेकी नाक।

कीरमणि (सं० पु०) धूम्याटपक्षी, एक चिड़िया।

कीरवर्णक (सं० क्ली०) कीरस्येव वर्णो यस्य, कीर-वर्ण-कप्। स्थौणेयक नामक सुगन्धि द्रव्यविशेष, एक खुशबू-दार चीज। स्थौणेयक देखो।

कीरशब्दा (सं० स्त्री०) तालभेद। उसमें तीन भरे, एक खाली और फिर तीन भरे ताल पाते हैं।

कीराः (सं० पु०) क-ईर-णिच् पृषोदरादित्वात् साधुः। १ काश्मीरदेश। २ काश्मीरदेशीय व्यक्ति। उक्त शब्द नित्यबहुवचनान्त है।

कीरि (सं० पु०) कीर्यते विक्षिप्यते, कृ बाहुलकात् कि। १ स्तव, तारीफ।

"कीरिणा देवान्नमसोपशिक्षन्।" (ऋक् ५।४०।८)
'कीरिणा स्तोत्रे च।' (सायण)

(त्रि०) २ स्तवादिमें आसक्त, तारीफ करनेमें लगा हुवा।

"यत्रा चुदा कीरिणा मन्यमानः।" (ऋक् ५।४।१०)
'कीरिणा स्तुत्यादिषु विक्षिप्तेन इदा।' (सायण)

३ स्तोता, तारीफ करनेवाला।

कीरिचोदन (सं० त्रि०) कीरीन् चोदयति प्रेरयति, कीरि-चुद्-णिच्-ल्यु। स्तवकारकोंका प्रेरक।

"अस्त्रार्द कीरिचोदनम्।" (ऋक् ६।४५।१९)
'कीरीणां स्तोतृणां चोदनं प्रेरयितारम्।' (सायण)

कीरी (हिं० स्त्री०) १ कीटविशेष, एक महीन कीड़ा। कीरा गेहूं, जौ वगैरहकी बालमें घुस दूध पी जाती है। २ पिपीलिका, चींटी। ३ बहेलियेकी स्त्री। ४ सूक्ष्म कीट, बहुत बारीक कीड़ा।

कीरेष्ट (सं० पु०) कीरस्य शुकस्य इष्टः, ६-तत्। १ आम्रवृक्ष, आमका पेड़। २ आखोटवृक्ष, अखरोटका दरखत। ३ जलमधूक। ४ निम्बवृक्ष, नीमका पेड़।

कीर्ण (सं० त्रि०) कीर्यते स्मेति, कृ कर्मणि क्त। १ आच्छन्न, ढका हुवा। २ विक्षिप्त, फैला हुवा। ३ निहित, छिपा हुवा। ४ हिंसित, मारा हुवा। ५ पूर्ण, भरा हुवा

कीर्णपुष्प (सं० पु०) क्षीरमोरट, एक लता।

कीर्णि (सं० स्त्री०) कृ भावे क्तिन् निपातनात् साधुः। १ आच्छादन, ढकन, ओढ़ना। २ विक्षेप, फैलाव। ३ हिंसाकार्य, मार पीट। ४ व्याप्ति, भराव।

कीर्तक (सं० त्रि०) कीर्तयति, कृत्-णिच्-ण्वुल्। कीर्तन-कारक, बयान् करनेवाला।

कीर्तन (सं० क्ली०) कृत् भावे ल्युट्। १ वर्णन, बयान्।
"रचां करोति भूतेभ्यो जन्मनां कीर्तनं मम।" (मार्कण्डेय-पुराण, ९२।१२)
२ यशःप्रकाश, शोहरतका इजहार। ३ गुणकथन, तारीफका बयान्। ४ कृष्णलीलाविषयक सङ्गीतविशेष। सङ्कीर्तन देखो।

कीर्तनिया (हिं० पु०) कीर्तनकारक, कृष्णलीला सम्बन्धी भजन गानेवाला।

कीर्तनी (सं० स्त्री०) नीलीवृक्ष, नीलका पेड़।

कीर्तनीय (सं० त्रि०) कृत्-णिच्-अनीयर् यद्वा कीर्तने गुणकथने साधुः, कीर्तन-छ। १ वर्णनीय, बयान्के काबिल। २ गणनीय, गिना जानेवाला।

कीर्तन्य (वै० त्रि०) कीर्तनाय साधुः, कीर्तन-यत्। कीर्तनके उपयुक्त, जो गाये जानेके लायक हो।

कीर्ति (सं० स्त्री०) कृत्-इन् इरादिश। इगुपिधज्ञाप्रीकिरः कित् इति वि हित्। इति कीर्तिभाष्य। उण् ४। ११८। १ पुण्य, सवाब। २ यशः, शोहरत। कीर्तिका संस्कृत पर्याय—यशः, समज्ञा, समाज्ञा, समाख्या, समन्या, अभिख्या, श्लोक, वर्ण और कीर्तना है। कोई कोई यशः और कीर्तिमें यह भेद बताते हैं—"दानादिप्रभवा कीर्तिः शौर्यादिप्रभवं यशः।"

दानादि कार्यसे जो सुख्याति होती, वह कीर्ति कहाती है। फिर वीरत्वादिके प्रकाशसे होनेवाली सुख्यातिको यशः कहते हैं।

किसीके मतमें जीवित व्यक्तिकी प्रशंसाका नाम यशः और मृत व्यक्तिकी प्रशंसाका नाम कीर्ति है।

किन्तु उक्त मत ठीक समझ नहीं पड़ता। अनेक स्थलपर जीवित व्यक्तिकी भी कीर्तिका वर्णन मिलता है— "इह कीर्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमं सुखम्।" (मनु० २।९)

३ प्रसाद, खुशी। ४ शब्द, आवाज। ५ दीप्ति, चमक। ६ मातृकाविशेष। ७ विस्तार, फैलाव। ८ कर्दम, कीचड़। ९ सीताकी सखीविशेष, जानकीका एक सहेली। १० आर्याछन्दभेद। उसमें १४ गुरु और १९ लघुवर्ण लगते हैं। ११ दशाक्षरी वृत्तविशेष। उसके प्रत्येक चरणमें ३ सगण और १ गुरु वर्ण रखते हैं। १२ एकादशाक्षरी वृत्तविशेष। वह इन्द्रवज्राके संयोगसे उत्पन्न होता है। उसके प्रथम चरणका पहला अक्षर लघु रहता है। शेष तीन चरणोंमें पहले गुरु अक्षर ही लगाते हैं। १३ तालविशेष। १४ दक्षकन्या-विशेष। वह धर्मकी पत्नी रहीं।

कीर्तिकर (सं० त्रि०) कीर्तिं करोति जनयति, कीर्ति-कृ ट। कीर्तिकारक, शोहरत पैदा करनेवाला, जिससे नामवरी रहे।

कीर्तिकूट—किसी पर्वतका नाम, एक पहाड़।
(जैनहरिवंश, ५१। १। १०)

कीर्तिचन्द्र—१ वर्धमानके कोई राजा। (देशावली।)

२ कुमायूं के २ राजावों का नाम। ताम्रशासन द्वारा समझते कि उक्त २ राजावों में एक १४२२ शक और दूसरा १७२७ शकको राजत्व करते थे।

कीर्तित (सं० त्रि०) क्त्-क्त। १ कथित, कहा हुवा। २ ख्यात, मशहूर। ३ निर्दिष्ट, ठहरा।

कीर्तितव्य (सं० त्रि०) कृ-णिच्-तव्य। कर्तन करनेके उपयुक्त, जिसकी तारीफ गायी जा सके।

कीर्तिदेव—१म वाराणसीके कोई कादम्बराजा, उनका अपर नाम कीर्तिवर्मा (२य)था। तैलके पुत्र। शिलालिपिसे समझ पड़ता कि उन्होंने १०६८से १०७७ ई० तक राजत्व किया था। वह चौलुक्यराज (षष्ठ) विक्रमादित्यके मित्रराज रहे।

२य कीर्तिदेव चामलादेवीके गर्भजात तथा तैलके पुत्र और दिग्विजयी कामदेवके भ्राता थे।

कीर्तिधर (सं० त्रि०) कीर्तिं धरति धारयति वा, कीर्ति-धृ-अच्। १ कीर्तिमान्, मशहूर। (पु०) २ कोई सङ्गीत-शास्त्ररचयिता। शार्ङ्गधरने उनके श्लोक उद्धृत किये हैं।

कीर्तिपाल—राजपूतानेके नाडोलवाले एक चौहान-राव। गत १२ वीं शताब्दीके अन्तमें इन्होंने योधपुरके जालोर नगरको, परमारोंसे जीत अपनी राजधानी बनाया था।

कीर्तिपुर—पार्वतीय प्राचीन नगरविशेष, एक पुराना पहाड़ी शहर। कीर्तिपुर नेपालके अन्तर्गत पाटनसे डेढ़ कोस पश्चिम क्षुद्र गोलाकार पर्वत पर अवस्थित है। वह चतुःपार्श्वस्थ समतल भूमिसे २०० फीट ऊंचा है। कीर्तिपुर प्राचीर द्वारा इस प्रकार दुर्भेद्यभावसे वेष्टित है, कि सहसा शत्रु आक्रमण कर नहीं सकता।

आज कल वह सामान्य नगर होते भी पूर्वकालको एक स्वाधीन राज्यकी राजधानी गिना जाता था। उसके पीछे कीर्तिपुर पाटन राज्यके अधिकारमें आया था। पाटन राज्याधिकारसे पहले ही वह चारो ओर दुर्गादि द्वारा सुरक्षित था। भग्न नगर-प्राचीरके स्थान स्थान पर उक्त प्राचीन दुर्गका भग्नावशेष देख पड़ता है।

१७६५ ई० को राजा पृथ्वीनारायण प्रबल हो गये थे। उन्होंने अनेक कष्ट और छलबलसे ३ वर्ष पीछे कीर्तिपुरवासी दुर्धर्ष नेवार लोगोंको हरा नगर अधिकार किया। तदवधि कीर्तिपुर उक्त राजवंशके ही अधिकारमें चला आता है।

कीर्तिपुर अधिकृत होनेके पीछे पृथ्वीनारायणके अधीनस्थ गोर्खा सिपाहियोंने मातृक्रोड़स्थ शिशु और वाद्यकार व्यतीत नेवार जातीय बालक, युवक, वृद्ध प्रभात सबकी नाक काट डाली थी। उसी दिनसे कीर्तिपुरका दूसरा नाम 'नकटापुर' पड़ गया है।

कीर्तिपुरमें अब वह पुर्वश्री नहीं चमकती। किन्तु आज भी उस पूर्व गौरवका ह्रास नहीं हुवा है। उक्त वीरजन्मभूमिमें देखने योग्य अनेक प्राचीन मन्दिर हैं। उनमें कई भग्न और कई सम्पूर्ण हैं। नगरके उत्तरांशमें बाघभैरवका चौतल्ला मन्दिर प्रधान है। १५१३ ई० को कीर्तिपुरके किसी राजकुमारने उसे बनाया था। मन्दिरके मध्य बाघकी एक रक्खी हुयी मूर्ति है। प्रदक्षिणाके निकट भैरवका एक स्वतन्त्र मन्दिर भी बना है। नेपालके अनेक तीर्थ बाघ भैरव दर्शन करने जाते हैं। नगरके उत्तर प्रान्तमें एक सुवृहत् गणेश-मन्दिर है। जोषीवंशीय शेरिस्ता नेवारने १६६५ ई० को बना उसे प्रतिष्ठित किया था। उसके सम्मुख तोरण और मध्यस्थल गणनाथका आराम है। उसकी दक्षिणदिक् मयूरोपरि कुमारी और वाम दिक् गरुड़ोपरि वैष्णवी हैं। कुमारीके पीछे वराह पर वाराही, वाराहीके पीछे शवोपरि चामुण्डा, वैष्णवीके पार्श्वमें ऐरावत पर इन्द्राणी और इन्द्राणीके पीछे सिंह पर महालक्ष्मी विराजमान हैं। उक्त अष्ट नायिकाकी मूर्ति शोभा दे रही है। एतद्भिन्न सर्वोपरि भैरवनाथ और कार्तिकेयकी मूर्ति है। नगरके दक्षिण पूर्वांशमें 'चिलनदेव' नामक एक बौद्ध मन्दिर विद्यमान है। यह भी देखनेयोग्य समझा जाता है। वहां प्रायः सकल बौद्ध देवमूर्ति, बौद्धधर्मके सकल चिह्न और यन्त्रादिकी प्रतिकृति देखनेमें आती है। कीर्तिपुरमें पहले जो प्रसिद्ध राजसभाभवन था। आज कल उसका ध्वंसावशेष पड़ा है। उससे थोड़ी दूर पर १५५५ ई० को इष्टक द्वारा निर्मित किसी मन्दिरका भी ध्वंसा-

वशीय मिलता है। पश्चात् पर वैसा इष्टक-मन्दिर प्रायः देख नहीं पड़ता।

२ प्राचीन ग्रामविशेष, एक पुराना गांव। वह खर्गदेशके अन्तर्गत करहचि ग्रामसे उत्तर आधाकोस पर अवस्थित है। उसके पार्श्वमें दुग्धि और गङ्गा-नदीका सङ्गम है। चन्द्रवंशीय कीर्तिचन्द्र नामक किसी मण्डलेशने प्रतिष्ठानसे जाकर अपने नाम पर उक्त ग्राम स्थापन किया था। (भविष्य ब्रह्मखण्ड, ५८.५१-६०)

कीर्तिभाक् (सं० पु०) कीर्तिं भजते, कीर्ति-भज्-ण्वि। १ द्रोणाचार्य। (त्रि०) २ कीर्तियुक्त, मशहूर।

कीर्तिमय (सं० त्रि०) कीर्ति-मयट्। कीर्तियुक्त, मशहूर।

कीर्तिमान् (सं० त्रि०) कीर्तिरस्यास्ति, कीर्ति-मतुप्। १ कीर्तियुक्त, मशहूर। (पु०) २ विश्वेदेवान्तर्गत आद्यविशेष। (भारत, अनुशासन, ९१२ अ०) विश्वेदेव देखो। ३ वसुदेवके ज्येष्ठपुत्र। (भागवत, ९।२४।५३)

कीर्तिरथ (सं० पु०) विदेहराज जनकवंशीय प्रतीन्धकराजाके पुत्र। (रामायण, १।७१।८)

कीर्तिराज (सं० पु०) कोल्हापुरके शिलाहारवंशीय एक राजा। वह १०५८ ई० से पहले राजत्व करते थे।

कीर्तिरात (सं० पु०) मिथिलाराज महीध्रकके पुत्र। (रामायण १।७१।११)

कीर्तिवर्धन (सं० पु०) कुलोत्तुङ्गवंशीय एक चोलराज। वह कार्तिकेयदेवके उपासक थे। (चोलमाहात्म्य)

कीर्तिवर्मा—१ तीन चौलुक्य राजावोंका नाम। १म कीर्तिवर्माका उपाधि पृथिवीवल्लभ था, वह पुलिकेशि-वल्लभके पुत्र रहे। उन्होंने रणक्षेत्रमें नल, मौर्य और कदम्बराजगणको पराजय किया था। राज्यकाल ४८९ शक रहा। २य कीर्तिवर्मा विक्रमादित्यके पुत्र थे। लोकमहादेवीके गर्भसे उनका जन्म हुवा। उन्होंने पल्लवराजगणको जीता था। राज्यकाल ६५५-६६९ शक रहा। ३य कीर्तिवर्मा भीमराजके पुत्र थे।

२ वनवासीके दो कदम्बराजावोंका नाम। उनमें प्रथम शान्तिवर्माके पुत्र एक महामण्डलेश्वर रहे। द्वितीय तैलपके पुत्र थे। चट्टुन्दला देवीके गर्भसे उनका जन्म हुवा। राज्यकाल १०६८-१०७७ ई० था। कीर्तिदेव देखो।

३ चन्द्रात्रेय (चंदेल)-वंशीय कालञ्जराधिप विजयपालके पुत्र। उन्होंने अपने प्रधान सेनापति गोपालकी साहाय्यसे चेदिराज कर्णको परास्त किया था। समस्त बुंदेलखण्ड और उसका चतुःपार्श्वस्थ स्थान उनके अधिकारभुक्त रहा। चंदेलराजावोंकी शिलालिपि पढ़नेसे समझ पड़ता कि कीर्तिवर्माने ११०७ संवत् (१०५० ई०) से ११५४ संवत् (१०९८ ई०) पर्यन्त राजत्व किया था। उनके भ्राताका नाम देववर्मा रहा। कीर्तिवर्माकी सभामें प्रबोधचन्द्रोदय-प्रणेता विख्यात पण्डित कृष्णमिश्र रहते थे। सेनापति गोपालके आदेशसे उन्होंने प्रबोधचन्द्रोदय नाटक बनाया। उक्त ग्रन्थ पढ़नेसे ही मालूम पड़ता कि वह राजा कीर्तिवर्माके सम्मुख अभिनीत हुवा था। राजा कीर्तिवर्माने महोबामें कीर्तिसागर नामक एक वृहत् जलाशय खुदाया था। उनके पुत्र वीरवर सल्लक्षणवर्मा रहे। पिता और पुत्रके समयकी अनेक शिलालिपि आविष्कृत हुयी हैं।

कीर्तिशेष (सं० पु०) कीर्तिः शेषो यस्य, बहुव्री०। मरण, मौत।

कीर्तिशाह—टेहरी राज्यके एक राजा। १८९४ ई० को सिंहासन पर बैठे थे। इन्होंने नेपालके महाराज जङ्ग-बहादुरकी एक पौत्रीका पाणिग्रहण किया।

कीर्तिसेन (सं० पु०) कीर्तिः सेनेव यस्य, बहुव्री०। वासुकिके भ्रातुष्पुत्र।

कीर्तिस्तम्भ (सं० पु०) कीर्तिख्यापकः स्तम्भः, मध्यपदलो०। कीर्ति विशेषके स्मरणार्थ निर्मित स्तम्भ।

कीर्श (वै० स्त्री०) पक्षिविशेष, एक चिड़िया।

कील (सं० पु०) किल्यते बध्यतेऽसौ अनेन अत्र वा, कील कर्मणि करणे अधिकरणे वा घञ्। १ अग्निशिखा, लपट। २ शङ्कु, मेख, खूंटी, परेग। ३ स्तम्भ, सितून, खंभा। ४ लेश, बहुत बारीक टुकड़ा। ५ कफोणि, कुहनी। ६ कफोणिका निम्नदेश, कुहनीका निचला हिस्सा। ७ मूढ़गर्भविशेष, अटक रहनेवाला हमल।

जो मूढ़गर्भ हस्त, पद और मस्तक ऊर्ध्व दिक् उठा शङ्कुकी भांति योनिमुखको निरोधमें लाता, वह कोल कहाता है। (सुश्रुत) ८ काष्ठफलक, लकड़ीका पचड़। ९ मुहांसाको दूर करनेवाली कील। १० रति-बन्धविशेष, एक डौला। ११ कुम्हारके चाकको खूंटी। १२ जांतेके बीचकी खूंटी। १३ भाला। १४ कुहनीको मार। १५ शिव।

कोल (हिं॰ स्त्री॰) कार्पासभेद, किसी किस्मकी कपास कोलखुंगी या देवकपास कहाती और गारोकी पहाड़ियोंमें अधिक बोयी जाती है।

कोलक (सं॰ पु॰) कोलति बध्नाति अनेन, कील करणे घञ् स्वार्थे कन्। १ स्तम्भविशेष, किसी किस्मकी मेख। २ पशुवोंके बांधनेका खूंटा। ३ तन्त्रोक्त देवताविशेष। (क्ली॰) ४ मन्त्रविशेष। ५ ज्योतिषशास्त्रोक्त प्रभवादि ६० वर्षोंके अन्तर्गत एक वर्ष। उक्त वर्षमें यावतीय शस्य उपजता और देशसमूहमें दुर्भिक्ष, अनावृष्टि तथा उपद्रवादि नष्ट हो मङ्गल हुवा करता है। ६ स्तव-विशेष। सप्तशतीके पाठकाल कीलकस्तव पढ़ना पड़ता है। ७ केतुविशेष।

कीलकाख्य कील देखो।

कीलन (सं॰ क्ली॰) कील-ल्युट्। १ बन्धन, बन्दिश। २ तन्त्रमन्त्रविशेष।

"तत् सम्पुटः भवेत्तस्य कीलने परिभाषितम्।" (फेत्कारिणीतन्त्र)

कीलना (हिं॰ क्रि॰) १ कील लगाना, मेख ठोंकना। २ कील देना, अभिमन्त्रित करना। ३ सर्पको वशमें करना। ४ वशीभूत करना, तावेदार बना लेना।

कीलपादिका (सं॰ स्त्री॰) हंसपादीक्षुप, एक झाड़ी।

कीलमुद्रा (सं॰ स्त्री॰) लिपिभेद, एक प्रकारके अक्षर। उसके अक्षर कील-जैसे होते थे। उक्त लिपिके कई लेख ई॰ से कतिपय शताब्द पूर्व पारसिक देशमें मिले थे।

कीलशायी (सं॰ पु॰) कुक्कुर, कुत्ता।

कीलसंस्पर्श (सं॰ पु॰) कीलं संस्पृशति, कील-सं-स्पृश् अच्। तिन्दुकवृक्ष, तेंदूका पेड़।

कीला (सं॰ स्त्री॰) कील-टाप्। १ कील, मेख। २ रति-प्रहारविशेष। ३ रतिबन्धविशेष।

कीलाक्षर (सं॰ पु॰) कीलमुद्रा देखो।

कीलाट (सं॰ पु॰) शोधितक्षीरपिण्ड।

कीलाल (सं॰ क्ली॰) कीलं अग्निशिखां अलति वारयति, कील-अल्-अण्। १ जल, पानी। २ रक्त, खून। ३ अमृत। ४ मधु, शहद। ५ पशु, बांधा जानेवाला जानवर। ६ बन्धननिवारक, बन्दिश छोड़ानेवाला।

"ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम्।" (शुक्लयजुः, २।३४)

'कीलो बन्धः तमलति वारयति, कीलालं सर्वबन्धनिवर्तकम्।' (महीधर)

७ शक्कीरस।

कीलालज (सं॰ क्ली॰) कीलालात् जायते, कीलाल-जन-ड। मांस, गोश्त।

"पादौ न धावयिष्यावत् यावन्न निहतोऽर्जुन।
कीलालजं न खादेयं करिष्ये चासुरव्रतम्॥" (भारत, वन)

कीलालधि (सं॰ पु॰) कीलालं जलं धीयतेऽस्मिन् कीलाल-धा-कि। समुद्र, बहर।

कीलालप (सं॰ पु॰) कीलालं रुधिरं पिबति, कीलाल-पा-क। १ राक्षस। २ जलाका, जोंक।

कीलालपा (वै॰ पु॰) कीलाल-पा-विच्। आतो मनि-क्वनिब्वनिपश्च। पा ३।२।३। १ अग्नि। २ यम।

कीलिका (सं॰ स्त्री॰) नाराचभेद, किसी किस्मका तीर। २ अस्थिभेद, किसी किस्मकी हड्डी। कीलिका ऋषभ एवं नाराच व्यतीत अन्य स्नायु द्वारा आबद्ध रहती है।

कीलित (सं॰ त्रि॰) कील्यतेस्मेति, कील कर्मणि क्त। १ बद्ध, बंधा हुवा।

"एभिः कामशरैस्तदद्भुतमभूत् पत्युर्मनः कीलितम्।"
(गीतगोविन्द, १२।१२)

२ कीलरूपमें परिणत, मेख बना हुवा। (क्ली॰) भावे क्त। ३ बन्धन, कैद।

कीलिया (हिं॰ पु॰) परहा, पुरवोला, जो मोटके बैलोंको हांकता हो।

कीली (हिं॰ स्त्री॰) कीलविशेष, एक खूंटी। वह किसी चक्रके मध्य लगायी जाति है। किसी पर ही चक्र घूमता है।

कीवत् (वै॰ त्रि॰) कियत्, पृषोदरादित्वात् साधुः। कुछ, थोड़ा।

कौश (सं० पु०) कौ इति शब्दं ईष्टे, कौ-ईश्-क यद्वा कस्य वायोरपत्यम्, क-श्रत-इञ् किः हनुमान् स ईशो यस्य। वानर, बन्दर। के आकाशे ईष्टे प्रभवति, क-ईश्-क। २ सूर्य, सूरज। ३ पची, चिड़िया। (त्रि०) ४ नग्न, नंगा।

कौशपर्ण (सं० पु०) कौशं वानरः तस्य लोमेव पर्णं पत्रमस्य, बहुव्री०। अपामार्ग, लटजीरेका पेड़।

कौशपर्णी (सं० स्त्री०) कौशपर्ण जातौ ङीष्।

कौशपर्ण देखो।

कौशफल (सं० क्लो०) कक्कोल, शीतल चीनी।

कौशरोमा (सं० स्त्री०) कपिकच्छु, केवांच।

कौशाण—जातिविशेष, एक कौम। कौशाणोंको नागेश्वर भी कहते हैं। वह लोहारडांगा, पलामूं, यशपुर और सरगुजा प्रभृति स्थानोंमें रहते हैं। वनके मध्य उनका वास और कृषि ही उनकी उपजीविका है। कौशाण बाघकी उपासना करते हैं। वह उसे वनके राजाकी भांति पूजते हैं। एतद्भिन्न सूर्य, महादेव, महीधुनिया, शिकरिया और मृत पितृगणके उद्देश भी पूजा की जाती है। शिकरिया देवताके आगे छाग और सूर्य देवताके उद्देश श्वेत हंस बलि देते हैं। उनके ग्राम्यदेवताका नाम दरहा है। उक्त ग्राम्यदेवके स्थानमें 'वामनी पाट' 'श्रन्दरीपाट' इत्यादि नामधेय कई पाट हैं। कौशाण कोलजातिकी भांति नाचते गाते हैं। उनकी स्त्रियां गोदना गोदानेसे अपने समाजमें हेय और समाजच्युत समझी जाती हैं।

कौस (हिं० पु०) १ कौसा, जरायुज, गर्भकी थैली। २ कौश, बन्दर।

कौसा (फा० पु०) थैली, कोष।

कौस्त (वै० पु०) स्तव, स्तुति।

"दिवो यदी कौस्तासो अभिद्यवो नमस्यन्।" (ऋक् १।१२७।७)

कु (सं० अव्य०) कु-डु। १ पाप, दुराव, राम राम। २ निन्दा, छी छी। ३ ईषत्, थोड़ा। ४ निवारण, दूर दूर। ५ मन्द, धीरे धीरे। (त्रि०) ६ निन्दनीय, बदनाम।

कु (सं० स्त्री०) कु-डु। पृथिवी, जमीन्।

कुआशा (हिं० स्त्री०) दुराशा, ना उम्मेदी।

कुंअर (हिं०) कुमार देखो।

कुंअरपुरिया (हिं० पु०) हरिद्राभेद, किसी किस्मकी हलदी। वह कटकके निकट कुंअरपुर राज्यमें उत्पन्न होता है। ५ वर्ष पीछे उसे खेतसे खोदते हैं। मूल और पत्र बृहत् तथा दीर्घ होता है। भैंसके गोबरकी खाद देनेसे कुंअरपुरिया बहुत पनपता है।

कुंअरविरास (हिं० पु०) धान्यविशेष, किसी किस्मका चावल।

कुंअरेटा (हिं० पु०) कुमार, छोटा कुंवर।

कुंआ (हिं० पु०) कूप, चाह, कुवां।

कुंआरा (हिं० वि०) अविवाहित, बेव्याहा, जिसकी शादी न हुई हो।

कुंइयां (हिं० स्त्री०) क्षुद्र कूप, छोटा कुवां।

कुंई (हिं० स्त्री०) १ क्षुद्र कूप, छोटा कुवां। २ कुमुदिनी।

कुंकुमफूल (हिं० पु०) पुष्पविशेष, दुपहरियाका फूल।

कुंकुमा (हिं० पु०) लाखका एक पोला गोला। होलीको उसमें गुलाल डाल कर मारते हैं।

कुंची (हिं०) कुंचिका देखो।

कुंज (हिं० पु०) वृक्ष लतादि द्वारा आच्छादित स्थान, पौदों और बेलोंसे ढकी हुई जगह। २ हाथी दांत। ३ दुशालेके कोनेका बूटा। ४ कोनिया, बड़ेरसे कोने पर मिलनेवाली खपरैल या छप्परकी छाजनकी एक लकड़ी।

कुंजगली (हिं० स्त्री०) १ पादपलतादि द्वारा आच्छादित पथ, पौदों और बेलोंसे ढकी हुई राह। २ अप्रशस्तमार्ग, तङ्गकूचा।

कुंजड़ (हिं० पु०) कुंदुर, पिस्तेका गोंद। वह श्रीष्मर्में बढ़ता और रूमीमस्तगी— जैसा रहता है।

कुंजड़ा (हिं० पु०) जातिविशेष, एक कौम। कुंजड़ा तरकारी और फल बेचते हैं। वह सबके सब मुसलमान हैं।

कुंजा (हिं० पु०) कूजा, पुरवा, सिकोरा।

कुंड़ (हिं० पु०) हल चलनेसे पड़नेवाली खेतकी गहरी लकीर।

कुंडपुजी (हिं॰ स्त्री॰) कुंडसुदनी, कुंडकी पूजा। वह छापकोंका एक वार्षिकोत्सव है। रबी बोयी जा चुकने पर कुंडपुजी होती है।

कुंडबुजी, कुंडपुजी देखो।

कुंडसुदनी, कुंडपुजी देखो।

कुंड़रा (हिं॰ पु॰) १ कुण्डल, मण्डलाकार रेखा। २ गेंडुरी।

कुंडरा (हिं॰ पु॰) कुंडा, मटका।

कुंडलिया (हिं॰ स्त्री॰) छन्दोविशेष, एक बहर। वह दोहा और रोला छन्दके योगसे बनती है। दोहेका प्रथम शब्द रोलाके अन्तमें और दोहाका अन्तिम शब्द रोलाके आदिमें आता है। गिरिधरदासकी कुण्डलियां प्रसिद्ध हैं।

कुंडा (हिं॰ पु॰) १ पात्रविशेष, एक बरतन। वह मिट्टीका बनता और चौड़े मुंह गहरा रहता है। २ कोंढ़ा। उसमें सांकल लगा ताला डाला जाता है। ३ हस्त लाघवविशेष, कुश्तीका एक पेंच। नीचे गये हुवे पहलवान्‌के दाहने खड़े हो अपनी दाहनी टांग उसकी गरदनमें बायीं ओरसे डाल उसकी दाहनी बगलसे निकाली जाती है। फिर अपने बायें पैरके घुटनेके भीतर मोजेको दबा उसके शिर पर बैठते और बायें हाथसे उसका जांघिया खींच उसे चित करते हैं। ४ निरकाट, ताबर डोल, जहाजके अगले मस्तूलका चौथा हिस्सा।

कुंडला (हिं॰ पु॰) पात्रविशेष, मट्टीकी कुंडी या पथरी। उसमें कलाबत्तू बनानेवाले टिकुरियों पर कलाबत्तू लपेट कर रखते हैं।

कुंडिया (हिं॰ स्त्री॰) १ गर्तविशेष, एक चौकूंटा गड्ढा। वह शोरेके कारखानोंमें रहती है। कुंडिया २ हाथ चौड़ी, ५ हाथ लंबी और १ हाथ गहरी होती है। शोरा बनानेको उसमें नोना मिट्टी पानीके साथ डालते हैं। २ पात्रविशेष, एक बरतन। उसमें पोटनेके लिये बादला रखा जाता है। ३ पथरी, पत्थर का कटोरी-जैसा छोटा बर्तन। ४ कठौती, काठका बरतन।

कुंडी (हिं॰ स्त्री॰) पात्रविशेष, पत्थर या लकड़ीका एक छोटा बरतन। वह कटोरा-जैसी बनती और प्रायः खट्टी चीजें रखनेके काममें लगती है। २ जञ्जीर की कड़ी। ३ सांकल। ४ लंगरका बड़ा छल्ला। ५ सुर्रा भैंसा। उसके शृङ्ग वेष्टित रहते हैं।

कुंडू (हिं॰ पु॰) पक्षिविशेष, एक चिड़िया। उसका रंग काला होता है। किन्तु कण्ठ तथा मुख श्वेत और पुच्छ पीतवर्ण रहता है। उसका दैर्घ्य प्रायः ११ इञ्च है। काश्मीरसे आसाम तक कुंडू पाया जाता है। उसे कस्तूरा भी कहते हैं।

कुंढवा (हिं॰ पु॰) पात्रविशेष, मट्टीका मिकोरा या पुरवा।

कुंतली (हिं॰ स्त्री॰) मक्षिका भेद, एक छोटी मक्खी। उसके छत्तेमें 'डामर' नामका मोम होता है। कुंतली-के डंक नहीं रहता। भारतमें कई स्थानोंमें वह पायी जाती है।

कुंदन (हिं॰ पु॰) १ स्वर्णपत्रविशेष, सोनेका एक पत्तर। वह बहुत अच्छे और साफ सोनेसे बनता है। कुंदन रख कर नगीना जड़ा जाता है। २ स्वर्ण, खालिस सोना। (वि॰) ३ स्वच्छ, खालिस, चोखा।

कुंदनसाज (हिं॰ पु॰) १ स्वर्णपत्र प्रस्तुतकारक, सोनेका बारीक पत्थर बनानेवाला। २ जड़िया, नगीना जड़नेवाला।

कुंदना (हिं॰ पु॰) बाजरेकी एक बीमारी।

कुंदरू (हिं॰ स्त्री॰) रक्तफला, एक बेल। उसे हिन्दुस्थानमें बिम्ब या कुंदरूकी बेल, पंजाबमें घोल, बंगालमें तेलाकूचा, सिन्धुमें गोलारू, गुजरातमें गलेटू, बम्बई-में तेंदुली, मारवाड़में जिददी, तामिलमें कोवई, तेलगु-में दोंद, मलयमें कवेल, कनारामें तोंदेबलि, अरबमें कबार हिन्दी, ब्रह्ममें केनबंग और सिंहलमें कोवका कहते हैं। (Cephalandra indica)

कुंदरू भारतवर्षमें साधारणतः पायी जाती है। फल चार-पांच अङ्गुलि प्रमाण दीर्घ होते हैं। कुंदरू को तरकारी बनाकर खाते हैं। फल पकने पर अधिक रक्तवर्ण हो जाता है। उसीसे कवि कुंदरूसे ओष्ठकी उपमा देते हैं। पत्र चार-पांच अङ्गुलिप्रमाण दीर्घ और पञ्चकोणविशिष्ट रहते हैं। पुष्प श्वेत आते हैं।

बरई या तंबोली पानोंकी ओरमें कुंदरुकी बेल लगाते हैं। कहते हैं कुंदरु खानेसे बुद्धि मारी जाती है। बहुमूत्र प्रमेहमें उसके मूलको बांट कर पीनेसे लाभ होता है। कुंदरुके मूलका रस जमकर गोंद बन जाता है।

कुंदला (हिं० पु०) शिविरविशेष, किसी किस्मका खेमा या तंबू।

कुंदा (हिं० पु०) १ लक्कड़, लकड़ीका मोटा टुकड़ा। २ निहटा, लकड़ीका एक टुकड़ा। उसपर मढ़ाई पिटाई वगैरह होती है। ३ बन्दूकका पिछला हिस्सा। वह त्रिकोणाकार रहता है। कुंदामें ही घोड़ा और नली लगाते हैं। ४ अपराधीके पैर ठोकनेकी एक लकड़ी, काठ। ५ मुष्टि, मूठ, बेंट। ६ लकड़ीकी बड़ी मोगरी। उससे कपड़ों पर कुंदी की जाती है। (पु०) ७ पक्षमूल, डैना। ८ कुश्तीका कोई पेंच। कुंडा देखो। ९ रद्दा, घस्सा, एक मार। १० मावा, खोवा।

कुंदी (हिं० स्त्री०) १ कपड़े की कुटाई। वह धुले और रङ्ग हुये कपड़ों पर तह करके की जाती है। कुंदीसे कपड़ेको सिकुड़न और रुखाई मिटती है। २ कड़ी मार।

कुंदीगर (हिं० पु०) कुंदी करनेवाला।

कुंदुर (अ० पु०) निर्यासविशेष, किसी किस्मका गोंद। वह सुगन्धि और पीतवर्ण होता है। कुन्दुर किसी कंटीले पौदेसे निकाला जाता है। वह पौदा २ हाथ ऊंचा रहता और अरबके यमन आदि पार्वत्य प्रदेशमें मिलता है। उसका फल तथा बीज कटु होता है। सूर्यके कर्कराशि पर रहते गोंद निकालते हैं। हकीमोंके मतानुसार वह बलवीर्यवर्धक, हृद्य और रक्तस्रावनाशक है।

कुंदेरना (हिं० क्रि०) खरोंटना, छीलना।

कुंदेरा (हिं० पु०) कुनेरा, खरादी।

कुंबी (हिं०) कुम्बी देखो।

कुम्भनदास—व्रजके एक कवि। वह अष्ट छापके कवियोंमें एक कवि रहे। कुंभनदास सखाभावसे कृष्णकी उपासना करते थे।

कुंभिलाना (हिं० क्रि०) म्लान पड़ना, मुरझाना।

कुंवर (हिं०) कुमार देखो।

कुंवरि (हिं० स्त्री०) राजकुमारी, बादशाहकी बेटी।

"कुंवरि मनोहर विजयबड़ि कीरति अति कमनीय।
पावनहार विरंचि जनु, रचेउ न धनु दमनीय।" (तुलसी)

कुंहकुंह (हिं० पु०) कुङ्कुम, जाफरान, केशर।

कुआं (हिं०) कूप देखो।

कुआड़ी (हिं० स्त्री०) सङ्गीतकी एक लय। इसमें बराबर और छोटी दोनों लय रहती हैं।

कुआर (हिं० पु०) आश्विन मास।

कुआरा (हिं० वि०) आश्विनसम्बन्धीय।

कुइंदर (हिं० पु०) गर्तविशेष, एक गड्ढा। वह कुयेंके बैठ जानेसे बनता है।

कुइयां, कुंइयां देखो।

कुएनलुन—तिब्बतकी एक पर्वतमाला। वह ऊंची उपजाऊ भूमिकी उत्तर ओर अवस्थित है। निकटवर्ती अधिवासी उसे विभिन्न नामसे अभिहित करते हैं। यथा—बेलुर-ताग, (तुषार पर्वत), बुलुट-ताग (मेघपर्वत), मुसताग, कराकार कोरम (कृष्णपर्वत) टसुन-लुन (पएलाण्ड पर्वत) और तियानशान (स्वर्गीय पर्वत)। वह समुद्रपृष्ठसे १३२१५ फीट ऊंचा है। जन्द-अवस्ता ग्रन्थमें उक्त पर्वतका नाम हरो-बेरेजइति लिखा है। वह प्रायः १५५० मील विस्तृत और मध्य एशियाकी उत्तर तथा दक्षिण अववाहिकाके मध्यस्थलमें दण्डायमान है। दक्षिणकी अववाहिका सिन्धुनदादि एवं साम्पु (ब्रह्मपुत्र) और उत्तर अववाहिका गोबीमरुकी ओर प्रवाहित है। उक्त पर्वतके गिरिवर्त्मसे ही तिब्बतकी उत्तरसीमा अतिक्रमण करना पड़ती है। उसके मध्यस्थलमें स्लेट—जैसा प्रस्तरस्तर है। मरमर और पुडिङ्ग ष्टोनकी भांति एक प्रकारका कठिन एवं स्वच्छ पत्थर भी मिलता है।

कुक (सं० त्रि०) कुक-क। १ समर्थ, ताकतवर। २ अदा करनेवाला, जो देता हो। ३ स्वीकार करनेवाला, जो मानता हो। (पु०) ४ चक्रवाकपक्षी।

कुकटी (हिं० स्त्री०) कार्पासभेद, किसी किस्मकी कपास। उसकी रुई लाली लिये सफेद होती है। उसे गोरखपुर, बस्ती प्रभृति जिलोंमें बोते हैं।

कुकड़ना (हिं० क्रि०) सङ्कुचित होना, सिकुड़ना।

कुकड़बेल (हिं० स्त्री०) बंडाल।

कुकड़ी (हिं० स्त्री०) १ मुट्ठा, अंटी, तकलेसे कात कर उतारा हुवा कच्चे सूतका लपेटा हुवा लच्छा। २ मदारका फल, अकौड़ेकी बोड़ी। ३ खुखड़ी।

कुकथा (सं० स्त्री०) कु निन्दिता कथा, कर्मधा०। १ खराब बात।

कुकनू (यू० पु०) पक्षिविशेष, एक चिड़िया। कहते हैं कि वह अकेले ही उपजता और अपना जोड़ा नहीं रखता। कुकनू गानेमें बहुत निपुण होता है। उसके चंचुमें अनेक छिद्र रहते, जिनसे विभिन्न स्वर निकलते हैं। उसके विलक्षण गानेसे अग्नि निर्गत होता है। पूर्ण युवा होनेपर कुकनू वर्षाऋतुमें लकड़ियां एकत्र कर उनपर बैठता और गाया करता है। फारसीमें उसे "आतशजन" कहते हैं।

कुकभ (सं० क्ली०) कुकेन आदानेन पानेन इत्यर्थः भाति, कुक-भा क। मद्य, शराब।

कुकर (सं० त्रि०) कुत्सितः करो यस्य, बहुव्री०। कुत्सित हस्तविशिष्ट, खराब हाथोंवाला। उसका संस्कृत पर्याय—कुणि, कूणि और कोणि है।

कुकर—औघड़ नामक शिवसम्प्रदायकी एक शाखा। गुजरातमें कोई दशनामी संन्यासी रहे। उन्हें गोरक्षनाथके अनुग्रहसे ब्रह्मगिरि नाम मिला। वही ब्रह्मगिरि औघड़ सम्प्रदायके प्रवर्तक थे। औघड़ शैव कहते कि गोरक्षनाथने ब्रह्मगिरिको कानके सुंदरे (अलङ्कार) और कई चिह्न प्रदान किये। पीछे ब्रह्मगिरिने फिर वह गुदर, सुखर, रुखर, भूखर और कुकरको पांच शिष्योंको दे डाले। तदनन्तर उन पांचों लोगोंने स्व स्व नाम पर एक एक दल बनाया था। उनके मध्य गुदर एक कानमें सुंदरा और दूसरे कानमें गोरक्षनाथका पदचिह्नित एकखण्ड ताम्र पहनते हैं। सुखर और रुखर दोनों कानोंमें पीतलका सुंदरा धारण करते हैं। कानका सुंदरा देखनेसे ही औघड़के सम्प्रदायका पता लग जाता है। भूखर और कुकर दलकी संख्या अल्प है। प्रथम ३ दल अपने अपने भिक्षापात्रमें धूप नहीं सुलगाते। किन्तु शेषोक्त २ दल उसे करते हैं। कुकर कालीहांडी नामक नूतन मृण्मय पात्रमें भिक्षा मांगते और उसीमें पकाते खाते हैं। रुखर नामक दलका भी नाम सुन पड़ता है। उक्त सब लोग शैव हैं। वह कभी अपना धर्म नहीं छोड़ते। प्रत्येक दलपति मठाध्यक्ष होता है।

कुकरी (हिं० स्त्री०) १ मुरगी, जंगली मुरगी। २ पीड़ा, दर्द। ३ झिल्ली। ४ करोटि, खोपड़ी।

कुकरौंधा (हिं० पु०) कुक्कुरद्रु, एक छोटा पौदा। (Blumea Lac era) उसे हिन्दीमें ककरौंदा, कुकुरबन्दा या जंगली मूली, बंगलामें कुकुरशुंगा, बम्बैयामें निमूर्दि, दक्षिणीमें जंगली कामनी, तामिलमें कत्तुमुल्लांगि, तैलङ्गुमें कारुपोगाकु, संस्कृतमें कुक्कुरद्रु, अरबीमें कमाफितुस, और आसामीमें भैयगान कहते हैं।

कुकरौंधा साधारणतः भारतके मैदानोंमें होता है। वह उत्तर-पश्चिम (हिमालय पर २००० फीट ऊंचे तक)-से त्रिवाङ्कुर, सिंगापुर और सिंहल तक पाया जाता है। पत्र बड़े होते हैं। उनसे एक प्रकारका गन्ध छूटता है। वर्षाऋतु बीतने पर आर्द्र स्थानोंमें अथवा नालियोंके निकट कुकरौंधा उगता है। उसके सुदीर्घ पत्रशाखा निकलनेसे छोटे पड़ जाते हैं। शाखापत्र क्षुद्र क्षुद्र रोम द्वारा आच्छादित रहते हैं। हाथ डेढ़ हाथ बढ़ने पर मञ्जरी आती है, उसमें जो बीज होते, वह जलमें डालनेसे फूलते हैं। कुकरौंधा रक्तस्राव रोकनेके लिये व्यवहार किया जाता है। हैजेमें काली मीर्च मिलाकर उसे पिलाने पर उपकार पहुंचता है। उसकी आंख धोनेका अच्छा पानी तैयार होता है। कोङ्कनके लोग उसे मक्खियों और कीड़ोंके भगानेमें व्यवहार करते हैं। कुकरौंधेकी पत्तियोंसे तैल भी निकाल सकते हैं। कृमिरोगमें उसके पत्रका रस निकाल कर पिलाया जाता है। नवीन मूलको मुखमें डाल लेनेसे खुश्की दूर होती है। उसे कुकुरमुत्ता भी कहते हैं।

कुकर्म (सं० क्ली०) कुत्सितं कर्म, कर्मधा०। १ लोकनिन्दित और शास्त्रनिन्दित कर्म, बुरा काम। (त्रि०) २ कुकर्मसंयुक्त, बुरा काम करनेवाला।

कुकर्मकारी (सं० त्रि०) कुकर्म करोति, कु-कर्मन्-

कु-णिनि। कुकर्म करनेवाला, जो बुरा काम करता हो।

कुकर्मशाली (सं० त्रि०) कु कर्मणा शालते, कु-कर्मन् शाल्-णिनि। कुकर्मयुक्त, जो बुरा काम करता हो।

कुकर्मा (सं० पु०) कुत्सितं कर्म यस्य, बहुव्री०। कुत्सित कार्यकारी, बुरा काम करनेवाला शख्स।

कुकर्मी (सं० पु०) कु कुत्सितं कर्म कार्यत्वेन अस्यास्ति कु-कर्मन्-इनि। कुत्सित कार्यकारी, बुरा काम करनेवाला।

कुकाञ्चन (सं० क्ली०) पित्तल, पीतल।

कुकापन्थी—एक सिखसम्प्रदाय। लुधियानेसे साढ़े तीन कोस दक्षिण-पूर्व भैणी नामक एक क्षुद्र ग्राम है। वहां रामसिंह नामक किसी बढ़ईने जन्म लिया था। वही रामसिंह उक्त सम्प्रदायके प्रवर्तक हुवे। १८४५ ई० को रामसिंह सिख-सैन्यमें कर्म करते थे। अंगरेजोंके कौशलसे सिखोंका प्रभाव खर्व होने पर उन्होंने युद्धवृत्ति परित्याग कर सिखधर्मके पुनः संस्कार पर मन लगाया। अल्प दिनके मध्य ही धर्मोपदेशके गुणसे सहस्र सहस्र व्यक्ति उनके शिष्य बनने लगे। यहां तक कि १८६७ ई० तक लक्षाधिक लोग उनके अनुवर्ती हो गये थे। मन्त्रोच्चारणके समय उक्त सम्प्रदायवालोंके मुख से 'कुक' 'कुक' शब्द निकलता है। उसीसे उनका नाम 'कुकापन्थी' है।

अपर सिखसम्प्रदायकी भांति कुका-गुरुके भी १० आदेश हैं। उनमें पांच पालनीय और पांच निषिद्ध हैं। पाल्य आदेशोंको 'क' विधि कहते हैं। यथा—करद्, काछ, कपेल, ककती और केश अर्थात् लौहभूषण, छोटा जांघिया, लौहास्त्र, चिरुणि और केश। शेष पांचको नरमार (नरहत्या करनेवाले), कुरिखार (धूमपान करनेवाले), सिरकंटा (मुण्डन करानेवाले), सुनत कट्टा (मुण्डितमस्तक रखनेवाले) और धीरमालिया (कर्तारपुरवाले गुरुके शिष्य) कहते हैं। प्रथम दो कार्य हैं और शेषोक्त तीन प्रकारके व्यक्तियोंके कन्यादान निषिद्ध है।

नानकशाहियोंकी भांति कुकापन्थी भी कठिन नियम में बद्ध हैं। सभी एकप्रकार निर्दिष्ट चिह्न व्यवहार करते हैं। वह शवदेहका कोई यत्न नहीं करते। उनके कथनानुसार जीवात्माने जब देह छोड़ दिया तब यथासम्भव शीघ्र उक्त मृतदेहको चक्षुसे अलग रखना ही अच्छा है। उसे कोई देखने न पाये।

उनमें किसीका आसन्नकाल उपस्थित होनेसे बड़ी धूम पड़ती है। वह बड़े उल्लाससे मिष्टान्न खाते और अपने धर्मका प्रतिपाद्य ग्रन्थ पढ़ते जाते हैं। मृत्यु होनेसे किसीके लिये शोक नहीं करते। उस समय १३ दिन दिवारात्र ग्रन्थ पाठ होता है। उसके पीछे जाति कुटुम्ब सब मिलकर एक दिन पानभोजन और आमोद प्रमोद करते हैं।

१८७२ ई० को विषनसिंह नामक किसी कुकादलपतिने धर्म प्रचार करने जा लोगोंको उत्तेजित किया था। उसीसे उन्हें फांसी हुयी। पीछे उनके देहका सत्कार किया गया। उनके पुत्रने भस्मावशिष्ट देहका एक अस्थि हरिद्वार ले जाकर समाहित किया।

कुकार्य (सं० क्ली०) कु कुत्सितं कार्यम्, कर्मधा०। मन्दकार्य, बुरा काम।

कुकि—भारतकी पूर्वप्रान्तवासी एक जाति। आसामसे मणिपुर और चट्टग्रामसे त्रिपुराके मध्य पर्वत और वनमें कुकिलोग रहते हैं। साधारणतः उन्हें 'लेङ्टा' कहते हैं। कुकि अनेकश्रेणियोंमें विभक्त हैं-पुरातन कुकि, नूतन कुकि और अन्य श्रेणीभुक्त कुकि। पुरातन कुकयोंमें भी दूसरी कई शाखा हैं। उनमे कछारमें रङ्कल, खेलमा तथा वेच और अन्यान्य स्थानोंमें छोटी, आइमोल रङ्गलङ्ग, पुरम, मल्लक, कोम, कोइरेंग और करुम प्रधान है। नूतन कुकि त्रिपुरा और चट्टग्रामसे जा कर उत्तराञ्चलमें वास करते हैं। वहां ठदन, चङ्गसेन, शिङ्गसन और लङ्गम शाखा मिलती हैं। त्रिपुराके पहाड़ी अञ्चलमें आमरई, कुतलङ्ग, हलम्, वरपई और कोचक कुकि पाये जाते हैं।

कपुईके दक्षिण आजकल दुर्दान्त खोङ्जइ कुकि आकर रहे हैं। उसके दक्षिण उक्त कुकियोंसे भिन्न तथा एक वंशीय अथच भिन्न शाखाभुक्त पई, शक्ति, तौति एवं लुसाई प्रभृति पराक्रान्त कुकियोंका वास है। मणिपुर और उत्तर तथा दक्षिण कछारको चारो ओर भी खोङ्गजई कुकियोंका रहना होता है। आज कल वह उक्त शाखासे भिन्न हो गये हैं। मणिपुरके

प्रतिनिकट प्रनल व वामके कुकियोंका एक दल रहता है। किन्तु, शक्ति और दुर्दाई कुकि अति प्रबल और दुर्धर्ष हैं। उनमें कोई लिखना पढ़ना न जानते भी सब लोग बन्दूक प्रभृति नानाप्रकार अस्त्रशस्त्र चला सकते हैं। निविड़ अरण्यवासी कुकि आज भी विवस्त्र रहते हैं। किन्तु आसाम, श्रीहट्ट प्रभृति कई स्थानोंमें अंगरेज गवर्नमेण्टके शासनसे उन्होंने कपड़ा पहनाना सीख लिया है।

कुकि लोग स्वभावतः बलशाली हैं। देखनेमें वह मणिपुरवासी खसिया लोगोंसे मिलते जुलते हैं।

कुकि प्रति पल्लीमें प्रायः डेढ़ सौ दो सौके हिसाबसे रहते हैं। उनका घर ३।४ हाथ मट्टी छोड़ माचे पर बांससे बनाया जाता है। पर्वतके उच्चस्थान पर तथा जलके निकट वह पल्ली निर्वाचन करते हैं।

नूतन कुकियोंके प्रत्येक दलमें राजा, मन्त्री प्रभृति पद विद्यमान हैं। दलपतिको वह 'लाल' कहते हैं। सकल दलों पर फिर एक अधिपति रहते हैं। उन्हें कुकि 'प्रथम' कह कर पुकारते हैं। नूतन कुकि कहते हैं कि उन्हों और मगोंने एक पिताके औरससे जन्म लिया है। उनके आदिपुरुषके २ स्त्री रहीं। प्रथमाके गर्भसे मगों और द्वितीयाके गर्भसे कुकियोंका जन्म हुवा। जन्म होनेके अल्प दिन पीछे ही कुकियोंकी माता मर गयीं। विमाता उन्हें देख न सकती थीं। वह अपने पुत्रको कपड़े पहनातीं, किन्तु कुकिको नंगा ही रखती थीं। इसीसे कुकि वनमें जाकर रहने लगे।

कुकियोंमें प्रत्येक गृहस्थ अपने परिवारको ले स्वतन्त्र गृहमें वास करता है। उनकी विधवाके लिये अलग घर रहता है। सब लोग मिल कर विधवाके रहनेको अलग घर बना देते हैं। आजकल उनमें पुरुष बड़े बड़े कपड़े पहनते हैं। कोई एक वस्त्र पहन दूसरेको कमरमें बांधता, जिसका कुछ अंश लटका करता है। स्त्रियोंने अब कुरतीसे वक्ष ढांकना सीखा है। विवाहित रमणी वक्ष खुला रखती, किन्तु अविवाहिता वहे ढांक लेती हैं। स्त्रियोंकी केशोंकी चूड़ा बांधती हैं। दूसरे पहाड़ियोंको भांति कुकि भी गात्र नहीं धोते। १२।१३ वर्ष वयस होते ही वह रात्रिकालको गृहमें नहीं रहते, प्रहरीगृहमें रात्रियापन करते हैं। उसके पीछे वयस होने पर विवाह किया जाता है। फिर कुकि घरमें रातको रह सकते हैं। विवाहित व्यक्तिका मृत्यु, होनेसे उसके आत्मीय कुटुम्बी सब एकत्र हो दुःख प्रकाश करते हैं। मृतदेहके वाम पार्श्व तरकारी, भात और उसके साथ एक कटहर या मट्टीका बरतन रख दिया जाता है।

कुकियोंको धनस्पृहा नहीं होती। धनके लिये वह कभी लूटमार करना नहीं चाहते। फिर भी वह जो बीच बीच दलबद्ध हो निकटस्थ स्थान आक्रमण करते उसका अभिप्राय भिन्न रखते है। कुकियोंका कोई राजा वा दलपति मरनेसे उसके प्रेतात्माको तुष्टिके लिये नरबलि आवश्यक होता है। इसीसे वह मध्य मध्य किसी स्थानको आक्रमण कर वहांसे कई अधिवासियोंको पकड़ लाते और उन्हें दुर्गम स्थानमें छिपाते हैं। प्रयोजन पड़नेसे उनमें एकको बलि दे अभीष्ट सिद्धि करते हैं। किसी अपर असभ्य जातिके साथ विवाद बढ़ने पर यदि शत्रु गुप्तभावसे राजाको मार जाते, तो सब पार्वतीय कुकि एकत्र हो उसका प्रतिशोध लेनेकी चेष्टा करते हैं। वह आयोजन बहुत भयानक होता है। शत शत व्यक्तियोंके कार्यसाधन करने जा कालग्रासमें पड़ते भी कुकि पीछे नहीं हटते। यदि वह एक शत्रुको मार आते, तो फिर फूले नहीं समाते। उक्त मृतव्यक्तिका मुण्ड सम्मुख रख सब लोग पान भोजन और उल्लाससे नृत्य गीत किया करते हैं। पीछे वही मुण्ड खण्ड विखण्ड कर पर्वतोपर दलपतियोंके निकट भेजा जाता है।

कुकि भ्रमणशील लोग हैं। वह अधिक काल एक स्थानमें वास नहीं करते। विजन कानन और दुर्गम पर्वतकी उपत्यकाभूमि उनका रम्यस्थान और कृषिकार्य उपजीविका है।

कुकियोंमें किसी किसीने हिन्दुधर्म ग्रहण किया है। अधिकांश लोग जड़ोपासक हैं।

चतुर्थ भाग सम्पूर्ण।